श्रीमद्देवीभागवतम्

भाषाभाष्योपेतम्

श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी

॥ श्रीः ॥
विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला.
२३२

श्रीमद्देवीभागवतम्

(भाषाभाष्योपेतम्)

व्याख्याकार:
श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्यः)

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

• अन्य पौराणिक साहित्य •

- **आदिपुराण** । भाषाटीकायुक्त । भाष्यकार—पं. श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी ।
  मूल्य : 200.00 (सजिल्द), 175.00 (पत्राकार)
- **श्रीमद्भागवत्** । 'गूढार्थदीपिनी' संस्कृतटीकायुक्त । टीकाकार—राममूर्तिशास्त्रीपौराणिक ।
  मूल्य 500.00 (1-2 भाग)
- **मार्कण्डेयपुराण** । भाषाटीकायुक्त ।
  मूल्य : 500.00 (सजिल्द), 450.00 (पत्राकार)
- **मत्स्यपुराण** । भाषाटीकायुक्त । भाष्यकार—पं. कालीचरण एवं बस्तीरामजा
- **वामन पुराणम्** । भाषाटीकायुक्त ।
  मूल्य : 500.00 (सजिल्द), 450.00 (पत्राकार)
- **कूर्मपुराणम्** । भाषाटीकायुक्त । भाष्यकार—श्रीशिवजीतसिंह
  मूल्य : 500.00 (सजिल्द), 450.00 (पत्राकार)
- **श्रीरामचरितमानस** । श्रीविजयानन्दत्रिपाठीकृत 'विजया' हिन्दीव्याख्यायुक्त ।
  मूल्य : 1500.00 (1-3 भाग)

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 0542-2420404
E-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण 2010
मूल्य : 950.00 (पत्राकार)
1000.00 (सजिल्द)

• वैदिक साहित्य •

- **अथर्ववेद** । मूल, सायणभाष्य, पदपाठ एवं हिन्दीव्याख्यायुक्त । व्याख्याकार—पं. रामस्वरूप गौड़ । (1-8 भाग)
  मूल्य : 3000.00
- **ऋग्वेदसंहिता** । मूल, सायणभाष्य, पदपाठ एवं हिन्दीव्याख्यायुक्त । व्याख्याकार—पं. रामगोविन्द त्रिवेदी ।
  (1-9 भाग) । मूल्य : 3500.00
- **शुक्लयजुर्वेदसंहिता** । मूल, उव्वट एवं महीधरकृत भाष्य, पदपाठ एवं 'तत्त्वबोधिनी' हिन्दीव्याख्यायुक्त । व्याख्याकार—डॉ. रामकृष्णशास्त्री । मूल्य : 600.00
- **सामवेदसंहिता** । मूल, सायणभाष्य, पदपाठ एवं हिन्दीव्याख्यायुक्त । व्याख्याकार—पं. रामस्वरूप गौड़
  मूल्य : 600.00
- **वैदिक-इण्डेक्स** । लेखक—ए.ए. मैकडॉनल, ए.बी.कीथ। अनु.—डॉ. रामकुमार राय । (1-2 भाग)। मूल्य : 600.00
- **नारदीयशिक्षा** । श्रीशिवराजआचार्यकौण्डिन्न्यायनकृत 'नारायणी' हिन्दीटीका एवं भारतीय गानपरम्परा एवं नारदीयशिक्षा के विशेष परिचय सहित । मूल्य : 150.00
- **ऋग्वेदसंहिता** । मूलमात्र ।
  मूल्य : 400.00 (सजिल्द), 375.00 (पत्राकार)

वितरक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी 221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002

प्राक्कथन

भारतीय वाङ्मय में पुराण-साहित्य का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है इसकी उपयोगिता मानव जीवनोपयोगी विषयों की विस्तृत व्याख्याओं के कारण है । भारतीय वाङ्मय की सर्वाधिक प्राचीन तथा मूल्यवान् निधि वेद हैं । उन वेदों की अनवगाहनीयता इसलिए है कि वे अनन्त हैं । **'अनन्ताः वै वेदाः'** इत्यादि वाक्य वेदों के आनन्त्य का प्रतिपादन करते हैं । वेदों की शाखाओं के विषय में महर्षि पतञ्जलि व्याकरणमहाभाष्य में लिखते हैं– **'एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा वहवृच्यः नवधाथर्वणः' (व्या० महा० १/१/१)** अर्थात् यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाएँ है, सामवेद की एक हजार शाखाएँ हैं, ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ हैं और अथर्ववेद की नव शाखाएँ हैं ।

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि महर्षि पतञ्जलि के काल में इन वेदों की इतनी शाखायें उपलब्ध थीं । विशाल वैदिकसाहित्य की इन सभी शाखाओं का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके उनके अर्थयाथात्म्य का ठीक-ठीक विचार करना सामान्य मनुष्यों के लिए असंभव है । किञ्च वेदों के अत्यधिक मात्रा में ऐसे रहस्य हैं जिनको सामान्य मनुष्यों को समझना अत्यधिक कठिन है । इसीलिए महर्षि व्यास वेदार्थों के समझने के साधनों का निर्देश करते हुए कहते हैं–

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।' (महाभारत आदिपर्व १/१)

अर्थात् इतिहास और पुराण के द्वारा वेद के अर्थों का उपबृंहण करना चाहिए । अल्पश्रुत पुरुष से वेद इसलिए भयभीत रहता है कि यह (पुरुष) हमारा अनर्थ कर देगा । श्रीवचनभूषणकार भी कहते हैं– **'वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहासपुराणैः' (श्रीवचनभूषणम्– १)** इन वाक्यों से स्पष्ट है कि पुराण वेदार्थों की व्याख्या करते हैं । अतएव किसी को भी चाहिए कि वह पुराणों तथा इतिहासों के आलोक में ही वेदार्थ की व्याख्या करे, स्वतंत्र रूप से मनः कल्पित रूप से वेदार्थों की व्याख्या नहीं करे ।

वेदों के स्वरूप के विषय में विभिन्न विचारकों की विमति है । कुछलोग केवल संहिताभाग को ही वेद मानते हैं । ब्राह्मणभाग को वे वेद नहीं मानना चाहते हैं । किन्तु उन विचारकों की कल्पना में कोई भी आधार नहीं है क्योंकि भारतीय प्राचीन ऋषियों की मान्यता है कि वेद के दो भाग हैं, मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग । इन दोनों भागों में समान रूप से वेदत्व है । महर्षि कात्यायन तथा महर्षि आपस्तम्ब दोनों कहते हैं– **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।'** अर्थात् वेदों के मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग दोनों का समुदित नाम वेद है ।

महर्षि जैमिनि भी वेद के इन दोनों भागों के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं– **'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या' (मीमांसा २/१/३२)** प्रेरक वाक्यों को ही मन्त्रभाग कहते हैं । अर्थात् वेद के जिन वाक्यों के माध्यम से किसी कर्म को करने की प्रेरणा दी जाती है, अथवा किसी कर्म को नहीं करने की प्रेरणा दी जाती है, उन वाक्यों का मन्त्र शब्द से अभिधान किया जाता है । इसके पश्चात् वे ब्राह्मणभाग का निरूपण करते हुए कहते हैं– **'शेषे ब्राह्मणशब्दः' (मी० २/१/३३)** अर्थात् प्रेरक वाक्य व्यतिरिक्त वेद के वाक्यों को ब्राह्मण शब्द से अभिहित किया जाता हैं ।

महर्षि कणाद भी कहते हैं– **'दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।' (वैशेषिक दर्शनम् १०/२/८)** अर्थात् जिनका प्रयोजन लोक में देखा जाता है तथा जिनका प्रयोजन लौकिक प्रयोजनों की सिद्धि नहीं है, ऐसे दृष्ट (लौकिक) तथा अदृष्ट प्रयोजन वाले कर्मों का अनुष्ठान कल्याणकारी होता है। वेद के ब्राह्मणभाग तथा मन्त्रभाग दोनों में ही लौकिक और अलौकिक फलों की प्राप्ति के साधन रूप से अनुष्ठान बतलाये गये हैं । अतएव इन दोनों भागों को समान रूप से वेद स्वीकार करना चाहिए । महर्षि मनु भी कहते हैं–

'एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षाविप्रो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदोरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ।।' (मनुस्मृति ६/२९)

दीक्षाप्राप्त ब्राह्मण को चाहिए कि वह वन में निवास करते हुए आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए इस स्मृति में उपदिष्ट नियमों, अन्य नियमों तथा उपनिषदों की श्रुतियों का परिशीलन करे । उपनिषदें ब्राह्मणभाग के अंशविशेष हैं, उन उपनिषद् वाक्यों को ही मनु **'औपनिषदीः'** श्रुति शब्द से अभिहित करते हैं । इन समस्त प्रमाणों के आधार पर मन्त्रभाग के ही समान ब्राह्मणभाग का भी वेदत्व सिद्ध होता है और इतिहास तथा पुराण वेद के दोनों भागों का उपबृंहण करने का काम करते हैं ।

पुराणों की प्राचीनता

पुराण साहित्य की प्राचीनता की सिद्धि इसीसे हो जाती है कि वेदों के विभिन्न वाक्यों में पुराणों का नाम आया है । सामवेदीय छान्दोग्योपनिषत् के सातवें अध्याय में आचार्य सनत्कुमार को नारदजी बतलाते हुए कहते हैं–

'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।' (छा० उ० ७/७/१)

नारदजी ने कहा– हे भगवन् ! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा चतुर्थ अथर्ववेद का अध्ययन किया है और वेदों के भी वेदस्वरूप पाञ्चवें इतिहास पुराण का भी अध्ययन किया है । इसी तरह से बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं–

'अरेऽस्य महतोभूतस्य निश्श्वसितमेवैतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरसः इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः ।' (बृ० उ० ४/११/५)

अरे ! जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद (अथर्वांगिरस) इतिहास, पुराण तथा उपनिषदों की विद्याएँ ये सबके सब, उस परमात्मा के श्वास स्वरूप ही हैं । इसी तरह आश्वलायनसूत्र के पञ्चयज्ञ प्रकरण में भी आया है–

'अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नराशंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृताहुतीभिर्यदृचोऽधीते पयसःकुल्या अस्य पितृन् स्वधा अपक्षरन्ति, यद् यजूंषि घृतस्य कुल्या, यत्सामानि मध्वः कुल्या, यदर्थाङ्गिरसः सोमस्य कुल्या, यद् ब्राह्मणानि, कल्पान्, गथा, नराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृतस्य कुल्याः स यावन्मन्येत तावदधात्यैतया परिदधाति ।' (आश्वलायन सूत्र- ३, पञ्चयज्ञप्रकरणम्)

उसके पश्चात् श्राद्धकर्ता को चाहिए कि वह वेदपाठ करे, ऋग, यजुः, साम तथा अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थ, कल्प, गाथा, नराशंसी, इतिहास तथा पुराण का पाठ करे । इस तरह से अमृत की आहुतियों के द्वारा जो ऋग्वेदकार अध्ययन करता है, उसके पितरों के लिए स्वधा दूध की नदी प्रदान करती है, जो यजुर्वेद का पाठ करता है उसके पितरों को घी की नदी, सामवेद का पाठ करने वालों के पितरों को मधु की नदी, अथर्ववेद का पाठ करने वालों के पितरों को सोम की नदी, ब्राह्मणग्रन्थों, कल्पग्रन्थों, गाथाओं, नराशंसी, इतिहास तथा पुराण का पाठ करने वालों के पितरों को स्वधा अमृत की नदी प्रदान करती है। जब तक चाहे तब तक श्राद्ध कर्ता इन सबों का पाठ करके पुनः उसे ढंक दे । इसी तरह शतपथ ब्राह्मण (११/३/८/८) तथा शतपथ ब्राह्मण (१४/४/१०) गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग प्रपाठक- २, अथर्ववेद (११/१/२४) में भी पुराणों का नाम आया है । इससे भी सिद्ध होता है कि पुराणसाहित्य अत्यन्त प्राचीन है ।

पुराणों की संख्या तथा पुराणों के नाम

प्रायः सभी विचारक मानते हैं कि महर्षि व्यास के द्वारा प्रणीत पुराणों की संख्या अठारह (१८) है । एक संग्रह श्लोक में पुराणों के संक्षिप्ततम नामों का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

'मद्वयं भद्वयं चैव व्रत्रयं वचतुष्टयम् । अनापलिङ्गकुष्कानि पुराणानि विदुर्बुधाः ।।'

विद्वानों ने मकारादि दो, भकारादि दो, व्रकारादि तीन, वकारादि चार, अकारादि, नाकारादि, पुकारादि, लिंकारादि, गकारादि, कुकारादि तथा स्करादि प्रत्येक एक-एक इस तरह अठारह पुराणों को बतलाया है ।

मकारादि– मत्स्य तथा मार्कण्डेय ये दो पुराण हैं । **भकारादि–** भागवत तथा भविष्य ये दो पुराण हैं । **ब्रकारादि–** ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त ये तीन पुराण हैं । **वकारादि–** विष्णु, वामन, वाराह तथा वायु ये चार पुराण हैं । **अकारादि–** अग्निपुराण है । **नाकारादि–** नारदपुराण है । **पकारादि–** पद्मपुराण है । **लिंकारादि–** लिङ्गपुराण है । **गकारादि–** गरुडपुराण है । **कूकरादि–** कूर्मपुराण है । **स्कारादि–** स्कन्द पुराण हैं । इस तरह पुराणों की सम्पूर्ण संख्या अठारह हो जाती है । भागवतकार भी कहते हैं कि दश प्रकार के विषयों का वर्णन करने वाले पुराणों की संख्या अठारह ही है ।

'एवं लक्षण लक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः । मुनयोऽष्टादशप्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ।' (भागवत १२/७/२२)

इतिहासतत्त्व के ज्ञाता मुनियों ने दश लक्षणों से युक्त छोटे-बड़े पुराणों की संख्या अठारह बतलायी है । इस श्लोक में क्षुल्लक शब्द से उपपुराणों की ओर निर्देश किया गया है । अर्थात् जिस तरह महापुराणों की संख्या अठारह है, उसी तरह उपपुराणों की भी संख्या अठारह है । श्रीमद्भागवत में पुराणों का नाम इस तरह गिनाया गया है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लिङ्गं स गारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम् ।।
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् । वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमितित्रिषट् ।।

ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहापुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण इस तरह से पुराणों की संख्या अठारह है ।

पुराणों के सात्त्विकादि भेद

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में पुराणों का सात्त्विकादि की दृष्टि से भेद का निरूपण किया गया है । चूकि सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणात्मक है । त्रिगुण शब्द से यहाँ पर प्रकृति तथा उसके गुणों को समझना चाहिए । अतएव संसार के जितने भी पदार्थ हैं, उन सबों में सभी गुणों का सद्भाव न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य रहता है । इसलिए महर्षि बादरायण प्रणीत इन पुराणों में भी न्यूनाधिक मात्रा में त्रिगुण विद्यमान है । जिन पुराणों में सत्त्वगुण की प्रधानता है, वे पुराण सात्त्विक हैं, जिनमें रजोगुण की प्रधानता है, वे पुराण रजोगुणी कहे जाते हैं और जिन पुराणों में तमोगुण की प्रधानता रहती है वे पुराण तामसिक बतलाये गये हैं । सात्त्विक पुराणों में भी रजोगुण और तमोगुण का सद्भाव रहता है किन्तु वे दोनों सत्त्वगुण से अभिभूत रहते हैं और वे दोनों गुण सत्त्वगुण की अपेक्षा न्यूनमात्रा में रहते हैं । इसी तरह राजसपुराणों में भी तमोगुण तथा सत्त्वगुण रहते हैं; किन्तु उनकी मात्रा रजोगुण की अपेक्षा कम होती है । तामस पुराणों में भी रजोगुण तथा सत्त्वगुण तमोगुण की अपेक्षा न्यून मात्रा में रहते हैं । पद्मपुराण में पुराणों के सत्त्वादिभेद का निरूपण करते हुए कहा गया है—

'वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् । गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने । षडेतानि पुराणानि सात्त्विकानि मतानि मे ।।'

हे शुभ दर्शने ! (पार्वती) मुझको, विष्णुपुराण, नारदीयपुराण, भागवतपुराण, गरुडपुराण, पद्मपुराण तथा वाराहपुराण ये छह पुराण सात्त्विकपुराण के रूप में अभिमत हैं ।

'ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च । भविष्य वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ।।'

मेरे द्वारा तुम यह जानो कि ब्रह्माण्डपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, भविष्यपुराण, वामनपुराण तथा ब्रह्मपुराण ये छह पुराण राजस पुराण हैं।

'मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च । आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।।'

मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, लिङ्गपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण तथा अग्निपुराण ये छह पुराण तामसपुराण हैं यह मेरे माध्यम से जानो ।

विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या

श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वादश स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में पुराणों की श्लोक संख्या इस प्रकार से वर्णित है–

ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्ठि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ।।
दशाष्टं श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः । मर्कण्डेयं नव वाह्नं दशपञ्च चतुश्शतम् ।।
चतुर्दश भविष्यं स्यात् तथा पञ्चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ।।
चतुर्विंशति वाराहमेकाशीति सहस्रकम् । स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दशकीर्तितम् ।।
कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश । एकोनविंशति सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण १२/१३/४-८)

ब्रह्मपुराण में दश हजार श्लोक हैं, पद्मपुराण में पचपन हजार श्लोक हैं, श्रीविष्णुपुराण में तेइस हजार श्लोक हैं । शिवपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं । श्रीमद्भागवत महापुराण में अठारह हजार श्लोक हैं, नारदीय पुराण में पच्चीस हजार श्लोक हैं । मार्कण्डेय पुराण में नव हजार श्लोक हैं, अग्निपुराण में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक हैं । भविष्य पुराण में चौदह हजार पाँच सौ श्लोक हैं । ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह हजार श्लोक हैं तथा लिङ्गपुराण में ग्यारह हजार श्लोक हैं । वाराहपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं । स्कन्दपुराण में एक्यासी हजार एक सौ श्लोक हैं तथा वामन पुराण में दश हजार श्लोक हैं । कूर्मपुराण में सत्रह हजार श्लोक प्रसिद्ध हैं तथा मत्स्यपुराण में चौदह हजार श्लोक हैं । गरुडपुराण में उन्नीस हजार श्लोक बतलाये गये हैं तथा ब्रह्माण्डपुराण में बारह हजार श्लोक बतलाये गये हैं ।

यह जो पुराणों की श्लोकसंख्या बतायी गयी है वह वर्तमान काल में भी पायी जाती है । काल के अन्तराल, अवापोद्वाप की प्रक्रिया एवं प्रक्षिप्तांश की समस्या इत्यादि के कारण इन श्लोकों की संख्या में थोड़ा सा अन्तर अवश्य पाया जाता है, किन्तु वह अन्तर नगण्य है । वर्तमानकाल में प्रकाशित विष्णुपुराण में यद्यपि लगभग छह हजार ही श्लोक पाये जाते हैं, जब कि भागवत में विष्णुपुराण के श्लोकों की संख्या तेइस हजार बतलायी गयी है । किन्तु इस वैषम्य का कारण यह है कि सम्प्रति विष्णुपुराण का उत्तरार्द्ध भाग विष्णुधर्मोत्तर को विष्णुपुराण से पृथक् करके प्रकाशित किया गया है । उसका कारण भी स्पष्ट है कि वर्तमान काल में उपलब्ध होने वाला ही विष्णुपुराण का अंश तत्त्वनिर्णयोपयोगी है । यदि विष्णुधर्मोत्तर को भी विष्णुपुराण के साथ मिला दिया जाय तो समग्र विष्णुपुराण के श्लोकों की संख्या तेइस हजार पूरी हो जाती है ।

यही स्थिति गरुडपुराण की भी है । वर्तमान काल में प्रकाशित गरुडपुराण का कलेवर इसलिए अत्यन्त छोटा हो गया है कि लोकोपयोगी होने के कारण मूल गरुड पुराण से उसके श्राद्धकल्पभाग को ही अलग करके गरुडपुराण के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है । इसके ही कारण सम्पूर्ण गरुडपुराण

की प्रति दुर्लभ सी होती जा रही है । केवल कुछ पुस्तकालयों में ही सम्पूर्ण गरुड पुराण पाया जाता है । उसके फलस्वरूप सामान्य जनता में इस प्रकार की भ्रान्ति फैलती जा रही है कि जब गरुडपुराण इतना लघु आकार का है तो फिर भागवतपुराण में उसकी श्लोक संख्या उन्नीस हजार बतलाना गलत ही है ।

पुराणों के वर्ण्य विषय

महर्षियों ने पुराणों के वर्ण्य विषयों का निरूपण करते हुए कहा है–

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम् ।।'

अर्थात् सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित ये पुराणों के पाञ्च वर्ण्य विषय हैं । किन्तु ये सभी लक्षण जिस तरह महापुराणों में उपलब्ध होते हैं, उसी तरह उपपुराणों में भी उपलब्ध होते हैं । अतएव महापुराणों को उपपुराणों से पृथक् करने के लिए महर्षियों ने बतलाया कि जिन पुराणों की महापुराणों में गणना की जाती है, जिनकी संख्या अठारह है, उन पुराणों के वर्ण्य विषय दश है । उन दशो विषयों का निर्देश करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च । वंशो वंशानुचरितं संस्थाहेतुरपाश्रयः । दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/९-१०)

१. सर्ग, २. विसर्ग, ३. वृत्ति, ४. रक्षा, ५. मन्वन्तर, ६. वंश, ७. वंशानुचरित, ८. संस्था, ९. हेतु तथा १०. अपाश्रय इन दश लक्षणों से युक्त महापुराण होते हैं, यह पुराणों के ज्ञाता महापुरुष बतलाते हैं । इन दशों विषयों के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार से किया गया है ।

१. सर्ग– अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः । भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ।।' (भा० १२/७/११)

अर्थात् साम्यावस्थावस्थित प्रकृति में परमात्मा के सत्यसंकल्प के द्वारा जब विकार उत्पन्न होता है तो उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है । उस महत्तत्त्व से तीन प्रकार के (सात्त्विक, राजस एवं तामस) अहंकार की उत्पत्ति होती है । उससे पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है । शब्दतन्मात्रा स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा । ये तन्मात्राएँ क्रमश आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी इन पाँचों महाभूतों के सूक्ष्मतम रूप हैं । इन पञ्चतन्मात्राओं से क्रमश उपर्युक्त पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है । इन पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति का क्रम बतलाती हुई श्रुति भी कहती है–

'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्नि अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी ।' (तैत्तिरीयोपनिषत् २/१/१)

उस परमात्मा के सत्य संकल्प से आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की उत्पत्ति हुयी, वायु से तेज की उत्पत्ति हुई, तेज से जल की उत्पत्ति हुई और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई । यहाँ पर आकाश शब्द से आकाश के सूक्ष्मतम रूप शब्दतन्मात्रा को कहा गया है । इसीतरह वायु शब्द से

स्पर्शतन्मात्रा को, अग्निशब्द से रूपतन्मात्रा को,अप् शब्द से रसतन्मात्रा को तथा पृथिवी शब्द से गन्धतन्मात्रा को औपचारिक रूप से कहा गया है। इन पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति का क्रम ऐसा समझना चाहिए । प्रलयकाल के सभाप्त हो जाने पर तथा सृष्टिकाल के आ जाने पर परमात्मा सत्य संकल्प करते हैं । **'एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय'** अर्थात् मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ तदर्थ प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न होऊँ । इस सत्य संकल्प से साम्यावस्थावस्थित प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है । उसके फलस्वरूप प्रकृति से महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है । वह महत् तत्त्व तीन प्रकार का होता है– सात्त्विक, राजस एवं तामस । महत् तत्त्व से अहङ्कार की उत्पत्ति होती है । वह अहङ्कार भी तीन प्रकार का होता है । सात्त्विक, राजस एवं तामस ।

उन तीनों प्रकार के अहङ्कारों में से राजस अहङ्कार के साथ मिलकर शब्द आदि पञ्च तन्मात्राएँ आकाश आदि पञ्च महाभूतों को उत्पन्न करते हैं । भूतों की जो अव्यवहित पूर्वक्षणवर्ती सूक्ष्मावस्था होती है, उसे ही तन्मात्रा शब्द से कहा जाता है । ये तन्मात्राएँ ही महाभूतों के उपादान कारण हैं । तन्मात्रावस्था में उनके गुणों में शान्तत्व, घोरत्व तथा मूढत्व अनुद्भुत रहते हैं । ये तन्मात्राएँ पाञ्च हैं, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा तथा गन्धतन्मात्रा। इन तन्मात्राओं से ही पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है ।

तामसाहङ्कार तथा आकाश की मध्यमावस्था से जो विशिष्ट द्रव्य होता है, उसे ही शब्दतन्मात्रा कहते हैं । उसीसे आकाश की उत्पत्ति होती है । आकाश से स्पर्शतन्मात्रा की उत्पत्ति होती है । आकाश तथा वायु की मध्यमावस्था से जो विशिष्ट द्रव्य होता है उसे स्पर्श तन्मात्रा कहते हैं । स्पर्श तन्मात्रा से वायु की उत्पत्ति होती है । वायु तथा तेजोद्रव्य की मध्यमावस्था से विशिष्ट जो द्रव्य होता है, उसे रूपतन्मात्रा कहते हैं । रूपतन्मात्रा से तेजोद्रव्य की उत्पत्ति होती है । तेज तथा जल की मध्यमावस्था से विशिष्ट जो द्रव्य होता है, उसे रसतन्मात्रा कहते हैं । रसतन्मात्रा से जल की उत्पत्ति होती है । जल तथा पृथिवी की मध्यमावस्था से विशिष्ट जो द्रव्य होता है, उसे गन्धतन्मात्रा कहते हैं । गन्धतन्मात्रा से पृथिवी की उत्पत्ति होती है ।

आकाश में केवल शब्द नामक गुण रहता है । वायु में शब्द तथा स्पर्श ये दोनों गुण रहते हैं । तेज में शब्द, स्पर्श तथा रूप ये तीनों गुण पाये जाते हैं । जल में शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस ये चारो गुण रहते हैं । पृथिवी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पाँचो गुण पाये जाते हैं । महाभूतों में गुणों की इस विषमता का कारण यह है कि उत्तरोत्तर महाभूतों में पूर्व-पूर्व महाभूतों की कारणता रहती है । **'कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते'** इस सार्वभौम नियम के ही कारण पूर्व-पूर्व महाभूतों के गुणों का सद्भाव उत्तरोत्तर महाभूतों में पाया जाता है । इसी तरह सात्त्विकाहङ्कार से पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना तथा घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है । वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ दशो बाह्येन्द्रियाँ हैं । आभ्यन्तरेन्द्रिय एक ही है मन । वह मन ही औपधिक भेद के कारण मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा चित्त इन चारो नामों से अभिहित किया जाता है । मन जब सङ्कल्प करता है तो वह मन कहलाता है । वही जब निश्चय करता है तो बुद्धि कहलाता है। जब मन चिन्तन करता है तो चित्त कहलाता है, वही जब अभिमान करता है तो अहङ्कार कहलाता है । इस तरह से प्रकृति से उद्भूत महत् तत्त्व

पञ्चतन्मात्राओं, पञ्चमहाभूतों, पाँच विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द) पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों एव मन की उत्पत्ति को ही सर्ग शब्द से अभिहित किया जाता है ।

विसर्ग– विसर्ग को निरूपित करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः । विसर्गोऽयं समाहारः बीजाद् बीजं चराचरम् ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१२)

जिस तरह एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है, उसी तरह से चराचर (जडचेतनात्मक) जगत् की उत्पत्ति विसर्ग कहलाती है । यह जीवानुगृहीत वासनामय समाहार स्वरूप होता है ।

वृत्ति– वृत्ति को निरूपित करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च । कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१३)

अपनी इच्छा से अथवा किसी के प्रेरणा से जो समस्त भूतों की तथा चराचर की वृत्तियाँ होती हैं उन्हे ही वृत्ति शब्द से अभिहित किया जाता है।

रक्षा– रक्षा का वर्णन करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे । तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१४)

प्रत्येक युगों में परमात्मा अपनी इच्छा से ही तिर्यक् (पशु-पक्षी) मनुष्य, ऋषि तथा देव आदि योनियों में अवतार लेकर वेद के विरोधियों का वध करके वेद की रक्षा किया करते है, उसे ही रक्षा शब्द से कहा जाता है ।

मन्वन्तर– मन्वन्तर का वर्णन करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः । ऋषयोंशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१५)

मन्वन्तर छह प्रकार के होते हैं– मनुओं, देवताओं, मंनु के पुत्रों, सुरेश्वरों, ऋषियों तथा श्रीहरि के अंशावतारों; मन्वन्तर वर्णन के अन्तर्गत इन छहों पदार्थों का वर्णन किया जाता है ।

वंश तथा वंशानुचरित– का वर्णन करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं--

'राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः । वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१६)

ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न किए गये राजाओं के वंश का वर्णन ही वंश शब्दाभिधेय है । उन वंशो में उद्भूत महान् पुरुषों के चरित, उनके व्यवहार तथा उन वंशों के मनुष्यों के चरित का वर्णन ही वंशानुचरित कहलाता है ।

संस्था– का वर्णन करते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–

'नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः । संस्थेति कविभिः प्रोक्ताः चतुर्धास्य स्वभावतः ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१७)

कवियों ने लय को ही संस्था कहा है । यह प्रलय चार प्रकार का होता है १. नैमित्तिक, २. प्राकृतिक, ३. नित्य तथा ४. आत्यन्तिक । संस्था के अन्तर्गत इन चारों प्रकार के लयों का वर्णन किया जाता है ।

हेतुः– का निरूपण करते हुए महर्षि बादरायण कहते हैं–

'हेतुर्जीवोस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः । यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुता परे ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१८)

आविद्यिक कर्मों को करने वाला संसारी जीव ही इस जगत् की सृष्टि आदि का हेतु है उसको ही दूसरे लोगों ने अव्यक्त शब्द से अभिहित किया है । कहने का अभिप्राय है कि अनादिकाल से श्लिष्ट अविद्या के कारण जीव विभिन्न प्रकार के कर्मों को करते है । उन कर्मों का फल भी उन जीवों को ही भोगना पड़ता है । उस फल को भोगने के ही लिए सृष्टयादि का क्रम चलता रहता है । अतएव आविद्यिक कर्मों को करने वाला जीव ही सृष्टि आदि का हेतु होता है ।

अपाश्रय– का निरूपण करते हुए व्यासजी कहते हैं–

'व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिषु । मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ।।' (श्रीमद्भागवत १२/७/१९)

मायाव्याप्त जीवों की वृत्तियों में तथा जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जिसका व्यतिरेकान्वय (सबन्धाभाव) रहता है, उस ब्रह्म को ही अपाश्रय कहते हैं । सभी महापुराणों में इन दशों प्रकार के विषयों का वर्णन न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है । अतएव वे महापुराण शब्दाभिधेय हैं ।

पुराणों की गणना में नाम निरूपण की समस्या

जहाँ कहीं भी पुराणों के नामों की गणना की गयी है, वहाँ सर्वत्र भागवत शब्द का ही प्रयोग किया गया है । कहीं भी श्रीमद्भागवत अथवा देवीभागवत शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है । इसी के कारण बल्लभसम्प्रदाय मतानुयायी श्रीवैष्णव कहते हैं कि भागवत शब्द के द्वारा श्रीमद्भागवत महापुराण का ही वर्णन अभिप्रेत है । उससे भिन्न किसी दूसरे पुराण को नहीं स्वीकार किया जा सकता है । जिस तरह से भगवान् के वराहावतार को लेकर प्रणीत

पुराण वाराहपुराण है, कूर्मावतार को लेकर प्रणीत किया गया पुराण कूर्मपुराण है । वामन भगवान् के चरित को मुख्य रूप से वर्ण्य विषय बनाकर प्रणीत पुराण वामन पुराण है तथा विष्णु भगवान् के चरित को वर्ण्यविषय बनाकर प्रणीत किया गया पुराण विष्णुपुराण है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण के चरित को ही प्रधान रूप से वर्ण्य विषय को लेकर प्रणीत पुराण श्रीमद्भागवत पुराण है । भगवान् श्रीकृष्ण ऐश्वर्य सम्पन्न हैं तथा नित्य ही लक्ष्मीजी से युक्त रहते हैं इसीलिए इस पुराण का नाम श्रीमद्भागवत पुराण है । किञ्च भगवान् विष्णु के जितने भी अवतार हुए हैं, उन सबों की अपेक्षा अधिक कल्याणकारी अवतार होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । श्रीभगवान् का यह अकेला अवतार है, जो संसारी जीवों के अधिक सन्निकट है । इस अवतार में जीवों की रक्षा करने के साथ-साथ आचार्यत्व तथा अभय प्रदानत्व नामक गुण अधिक मात्रा में विद्यमान है । अतएव भी यह अवतार ऐश्वर्य सम्पन्न है । इस तरह के श्रीभगवान् के चरित को मुख्य वर्ण्य विषय बनाकर प्रणीत होने के कारण इस पुराण को श्रीमद्भागवत पुराण कहते हैं ।

किन्तु शाक्तमतानुयायी विद्वानों का कहना है कि वस्तुतः देवीभागवत ही भागवत पुराण है । देवी ही सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी हैं । वे समस्त वस्तुओं में पायी जाने वाली शक्ति स्वरूपा है । शक्ति की व्यापकता और महत्ता इसलिए भी सर्वाधिक है कि शक्ति के विना कोई भी शक्तिमान नहीं हो सकता है। लोक में भी देखा जाता है कि शक्ति से रहित पुरुष निन्दित तथा उपेक्षित होता है, उसी तरह से शक्ति सम्पन्न देवता, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी शक्ति से यदि अलग हो जायँ तो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी असमर्थ तथा उपेक्षित हो जायेंगे । वे भी जगत् की सृष्टि आदि का कार्य नहीं कर पायेंगे । अतएव सम्पूर्ण जगत् के कण-कण में व्याप्त रहने वाली देवी को ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि की भी नियामिका मानना चाहिए ।

किञ्च भगवत् शब्द का प्रयोग जिन गुणों को लेकर लोक तथा वेद में होता है, भगवती जगदम्बा में वे सारे गुण पूर्ण रूप से पाये जाते हैं, इसलिए उनके लिए ही भगवत शब्द का प्रयोग हुआ । देवी ही परमात्मा हैं, वे ही भगवत् शब्द वाच्य हैं । वे ही परा प्रकृति हैं और भागवत पुराण में वर्णित हैं । इसलिए देवीभागवत को ही भागवत शब्दाभिधेय मानना चाहिए । किञ्च महर्षि व्यास की दृष्टि में सभी प्रकार के अधिकारियों का कल्याण करना अभिप्रेत है । वे भगवान् विष्णु तथा उनके विभिन्न अवतारों को लेकर विभिन्न पुराणों की रचना कर चुके हैं । वामन, विष्णु, वाराह आदि पुराणों में मुख्य रूप से भगवान् विष्णु के ही अवतारों का वर्णन किया गया है । अतएव उनको देवी के भक्तों की भी भक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए देवी के भी चरित को प्रधान रूप से वर्ण्य विषय बनाकर पुराण का प्रणयन करना आवश्यक था । इसीलिए उन्होंने भगवती जगदम्बा के ही चरित से सम्बद्ध भागवत पुराण का प्रणयन किया है । उसी को देवीभागवत कहते हैं । यद्यपि मार्कण्डेय पुराण में भी देवी का चरित्र वर्णित है, किन्तु उसमें महर्षि मार्कण्डेय के भी चरित की प्रधानता होने के कारण महर्षि बादरायण को देवीभागवत पुराण का प्रणयन करना उचित ही था ।

सबसे बड़ी बात यह है कि महर्षि व्यास के द्वारा प्रणीत जितने भी पुराण हैं उन सभी पुराणों की जो भाषा तथा जो शैली है, वही भाषा तथा वही शैली देवीभागवत पुराण में भी पायी जाती है । अतएव स्वेतर समस्त पुराणों की भाषा तथा शैली से साम्य रखने के कारण भी भागवत शब्द के द्वारा

देवी भागवत को ही लेना चाहिए श्रीमद्भागवत को नहीं; क्योंकि श्रीमद्भागवत की जो भाषा है, वह तो परवर्ती कालवर्ती पण्डितों की भाषा प्रतीत होती है। जिसमें काठिन्य की भरमार है । अतएव लगता है कि श्रीमद्भागवत महर्षि बादरायण की रचना नहीं है ।

किञ्च आचार्य बल्लभ से पहले जो-जो आचार्य हुए जैसे आचार्य शङ्कर तथा आचार्य रामानुज इत्यादि उन लोगों ने भगवच्चरित्र के वर्णन के प्रसङ्ग में भी अपनी रचना में श्रीमद्भागवत पुराण के एक भी श्लोक को नहीं उद्धृत किया है । जबकि स्कन्द, लिङ्ग, विष्णु आदि पुराणों को उन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन आचार्यों के समय में श्रीमद्भागवत पुराण था ही नहीं । इधर यह भी पता चला है कि आधुनिक किसी बोपदेव नामक प्रकाण्ड पण्डित ने श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की ही । अतएव भागवत शब्द के द्वारा देवीभागवत को ही महर्षि बादरायण ने रचना की है यह स्वीकार करना चाहिए ।

देवीभागवत पुराण की विशेषता

चूकि श्रीमद्भागवत और देवीभागवत इन दोनों पुराणों में कौन सा महर्षि बादरायण प्रणीत पुराण है ? इस बात का निर्णय करना ऐतिह्यविदों का ही काम है । इस अल्पकाय अग्रलेख में इस बात का निर्णय करना असंभव है; अतएव इस विषय पर बहुत विवेचन करने की अपेक्षा देवीभागवत की मानवजीवन में उपयोगिता की चर्चा करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । यदि विषय की व्यापकता एवं उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाय तो देवीभागवत संसारी जीवों के ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से अधिक उपयोगी है । इसमें ऐसे भी विषयों का संग्रह है जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं होती है । जैसे– अठाइस द्वापरों में वेदों के विभाग कर्ता व्यासों की नामावली । देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय के अनुसार अठाइसों द्वापरों में वेदों के विभागकर्ता व्यासों के नाम इस प्रकार हैं–

प्रथम द्वापर में वेद स्वयं विभक्त हो गये । दूसरे द्वापर के **व्यास** प्रजापति हैं । तीसरे द्वापर के व्यास **शुक्राचार्य** हैं । चतुर्थ द्वापर के व्यास **बृहस्पति** हैं । पञ्चम द्वापर के व्यास **सविता** हैं । षष्ठ द्वापर के व्यास **मृत्यु** हैं । सप्तम द्वापर के व्यास **इन्द्र** हैं । अष्टम द्वापर के व्यास **वसिष्ठ** हैं । नवम द्वापर के व्यास **सारस्वत** हैं । दशम द्वापर के व्यास **त्रिधामा** हैं । एकादशवें द्वापर के व्यास **त्रिवृष** हैं । द्वादशवें द्वापर के व्यास **भरद्वाज** हैं । त्रयोदशवें द्वापर के व्यास **अन्तरिक्ष** हैं । चतुर्दशवें द्वापर के व्यास **धर्म** हैं । पन्द्रहवें द्वापर के व्यास **त्रय्यारुणि** हैं । सोलहवें द्वापर के व्यास **धनञ्जय** हैं । सत्रहवें द्वापर के व्यास **मेधातिथि** हैं । अठारहवें द्वापर के व्यास **व्रती** हैं । उन्नीसवें द्वापर के व्यास **अत्रि** हैं । बीसवें द्वापर के व्यास **गौतम** हैं । इक्कीसवें द्वापर के व्यास **उत्तम** हैं । बाइसवें द्वापर के व्यास **वेन** हैं । तेइसवें द्वापर के व्यास **सोम** हैं । चौबीसवें द्वापर के व्यास **तृणविन्दु** हैं । पचीसवें द्वापर के व्यास **भार्गव** हैं । छब्बीसवें द्वापर के व्यास **शक्ति** हैं । सत्ताइसवें द्वापर के व्यास **जातुकर्ण्य** हैं तथा अठाइसवें द्वापर के व्यास **कृष्णद्वैपायन** हैं ।

२. बुध की उत्पत्ति की कथा तथा पुरुरवा की उत्पत्ति की कथा इत्यादि भी इस पुराण में विस्तार से वर्णित है । ३. भूमण्डल का विस्तार वर्णन

यह भूगोल ज्ञान की दृष्टि से उपयोगी है। यह देवीभागवत के आठवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में वर्णित हैं । ४. सृष्टि के पाञ्च प्रकृतियों की उत्पत्ति का नवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में वर्णन हैं। ५. नवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय में सरस्वती महास्तोत्र का वर्णन है । ६. ग्यारहवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में गायत्री पुरश्चरण का वर्णन है ।

देवीभागवत का बारहवाँ स्कन्ध तो द्विजतियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है । इसके प्रथम अध्याय में गायत्री के ऋषि आदि का वर्णन, तीसरे अध्याय में भगवती कवच, चतुर्थ अध्याय का गायत्री हृदय, पाँचवें अध्याय का गायत्री स्तोत्र तथा छठे अध्याय का गायत्री अष्टोत्तर सहस्रनाम का संग्रह भी गायत्री के उपासकों के लिए बहुत ही उपयोगी है । उपयोग की दृष्टि से विश्वजय नामक कवच छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी है, उसे अविकल रूप से यहाँ दिया जा रहा है ।

विश्व विजय कवच

अस्य श्रीविश्वविजय कवचस्तोत्रमन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः बृहतीछन्दः, शारदाम्बिका देवता सर्वतत्त्व परिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु, सर्वासु कवितासु च विनियोगः।

ध्यानम्

सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् । कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ।।
बह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम् । रत्नसारेन्द्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम् ।।
सुपूजितां सुरगणै ब्र्रह्मविष्णु शिवादिभिः । वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनुमानवैः ।।

कवचम्

श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः । श्रीवाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु ।।
ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम् । ॐ श्री ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ।।
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदावतु । ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदावतु ।।
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्मयै स्वाहेति दंतपंक्तिं सदावतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु ।।
ओं श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु । ओं ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु ।।
ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातुनाभिकाम् । ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदावतु ।।
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु । ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु ।।
ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैऋत्यां सर्वदाऽवतु । ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणे सदावतु ।।
ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु। ॐ ऐं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ।।
ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु। ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु ।।
ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदावतु । ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ।।
इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ।।
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वतेगन्धमादने । तव स्नेहान् मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।।
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । प्रणम्यदण्डभूमौ कवचं धारयेत् सुधीः ।।
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात् सिद्धकवचो बृहस्पति समो भवेत् ।।
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्। शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ।।
इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने ।

यह कवच श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय के अन्त में पठित ।

देवीभागवत के अनुष्ठान तथा नवाह परायण में, गायत्री की उपासना में, गायत्री सहस्रनाम के पाठ तथा पुष्पादि से चतुर्थ्यन्तगायत्री सहस्रनामावली तथा गायत्री सहस्रनामावली से होम करने का बड़ा ही महत्त्व है । इसलिए सामान्य उपासकों की सुविधा के लिए चतुर्थी विभक्ति से युक्त गायत्री सहस्रनामावली को यहाँ पर उद्धृत किया जा रहा है ।

विनियोगः– अस्याः श्रीगायत्रीअष्टोत्तरसहस्रनामावल्याः ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, गायत्रीशक्ति देवता, हल् वर्ण बीजम्, स्वरवर्णः शक्तिः, सर्वपापापनोदनपूर्वकं गायत्र्यर्चने विनियोगः ।

ध्यानम्– **रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैः युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम् । रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् ।।**
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां । पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढांभजे ।।

गायत्री अष्टोत्तरसहस्र नामावली

१. ॐ अचिन्त्यलक्षणायै नमः ।
२. ॐ अव्यक्तायै नमः ।
३. ॐ अर्थमातृमहेश्वर्यै नमः ।
४. ॐ अमृतायै नमः ।
५. ॐ अर्णवमध्यस्थायै नमः ।
६. ॐ अजितायै नमः ।
७. ॐ अपराजितायै नमः ।
८. ॐ अणिमादिगुणाधारायै नमः ।
९. ॐ अर्कमण्डलसंस्थितायै नमः ।
१०. ॐ अजरायै नमः ।
११. ॐ अजायै नमः ।
१२. ॐ अपरायै नमः ।
१३. ॐ अधमायै नमः ।
१४. ॐ अक्षसूत्रधरायै नमः ।
१५. ॐ अधरायै नमः ।
१६. ॐ अकारादिक्षकारान्तायै नमः ।
१७. ॐ अरिषड्वर्गभेदिन्यै नमः ।
१८. ॐ अञ्जनाद्रिप्रतीकाशायै नमः ।
१९. ॐ अञ्जनाद्रि निवासिन्यै नमः ।
२०. ॐ अदित्यै नमः ।
२१. ॐ अजपायै नमः ।
२२. ॐ अविद्यायै नमः ।
२३. ॐ अरविन्दनिभेक्षणायै नमः ।
२४. ॐ अन्तर्वहिस्थितायै नमः ।
२५. ॐ अविद्याध्वंसिन्यै नमः ।
२६. ॐ अन्तरात्मिकायै नमः ।
२७. ॐ अजायै नमः ।
२८. ॐ अजमुखावासायै नमः ।
२९. ॐ अरविन्दनिभाननायै नमः ।
३०. ॐ अर्धमात्रायै नमः ।
३१. ॐ अर्थदानज्ञायै नमः ।
३२. ॐ अरिमण्डलमण्डिन्यै नमः ।
३३. ॐ असुरघ्न्यै नमः ।
३४. ॐ अमावस्यायै नमः ।
३५. ॐ अलक्ष्मीघ्नन्यंतजायै नमः ।
३६. ॐ आदिलक्ष्म्यै नमः ।
३७. ॐ आदिशक्त्यै नमः ।
३८. ॐ आकृत्यै नमः ।
३९. ॐ आयताननायै नमः ।
४०. ॐ आदित्यपदवीचरायै नमः ।
४१. ॐ आदित्यपरिसेवितायै नमः ।
४२. ॐ आचार्यायै नमः ।
४३. ॐ आवर्तनायै नमः ।
४४. ॐ आचारायै नमः ।
४५. ॐ आदिमूर्तिनिवासिन्यै नमः ।
४६. ॐ आग्नेयै नमः ।
४७. ॐ आमर्यै नमः ।
४८. ॐ आद्यायै नमः ।
४९. ॐ आराध्यायै नमः ।
५०. ॐ आसनस्थितायै नमः ।
५१. ॐ आधारनिलयायै नमः ।
५२. ॐ आधारायै नमः ।
५३. ॐ आकाशान्त निवासिन्यै नमः ।
५४. ॐ आद्याक्षर समायुक्तायै नमः ।
५५. ॐ आन्तराकाश रूपिण्यै नमः ।
५६. ॐ आदित्यमण्डलगतायै नमः ।
५७. ॐ आन्तरध्वन्तनाशिन्यै नमः ।
५८. ॐ इन्दिरायै नमः ।
५९. ॐ इष्टदायै नमः ।
६०. ॐ इष्टायै नमः ।
६१. ॐ इन्दीवरनिभेक्षणायै नमः ।
६२. ॐ इरावत्यै नमः ।
६३. ॐ इन्द्रपदायै नमः ।

६४. ॐ इन्द्राण्यैनमः ।
६५. ॐ इन्दुरूपिण्यै नमः ।
६६. ॐ इक्षुकोदण्डसंयुतायै नमः ।
६७. ॐ इषुसंधानकारिण्यै नमः ।
६८. ॐ इन्द्रनीलसमाकारायै नमः ।
६९. ॐ इडापिङ्गलरूपिण्यै नमः ।
७०. ॐ इन्द्राक्ष्यै नमः ।
७१. ॐ ईश्वरीदेव्यै नमः ।
७२. ॐ ईहात्रयवर्जितायै नमः ।
७३. ॐ उमायै नमः ।
७४. ॐ उषायै नमः ।
७५. ॐ डडुनिभायै नमः
७६. ॐ उर्वारूकफलाननायै नमः ।
७७. ॐ उडुप्रभायै नमः ।
७८. ॐ उडुमत्यै नमः ।
७९. ॐ उडूपायै नमः ।
८०. ॐ उडुमध्यगायै नमः ।
८१. ॐ ऊर्ध्वायै नमः ।
८२. ॐ ऊर्ध्वकेश्यै नमः ।
८३. ॐ ऊर्ध्वाधोगतिभेदिन्यै नमः ।
८४. ॐ ऊर्ध्वबाहुप्रियायै नमः ।
८५. ॐ ऊर्मिमाला वाग्ग्रन्थदायिन्यै नमः ।
८६. ॐ ऋतायै नमः ।
८७. ॐ ऋषिस्वरूपिण्यै नमः ।
८८. ॐ ऋतुमत्यै नमः ।
८९. ॐ ऋषिदेवनमस्कृतायै नमः ।
९०. ॐ ऋग्वेदायै नमः ।
९१. ॐ ऋणहर्त्र्यै नमः ।
९२. ॐ ऋषिमण्डलचारिण्यै नमः ।
९३. ॐ ऋद्धिदायै नमः ।
९४. ॐ ऋजुमार्गस्थायै नमः ।
९५. ॐ ऋजुधर्मायै नमः ।
९६. ॐ ऋजुप्रदायै नमः ।
९७. ॐ ऋग्वेदनिलयायै नंमः ।
९८. ॐ ऋज्वै नमः ।
९९. ॐ ऌतधर्मप्रवर्तिन्यै नमः ।
१००. ॐ ऌतारिवरसम्भूतायै नमः ।
१०१. ॐ ऌतादिविषहारिण्यै नमः ।
१०२. ॐ एकाक्षरायै नमः ।
१०३. ॐ एकमात्रायै नमः ।
१०४. ॐ एकायै नमः ।
१०५. ॐ एकैकनिष्ठायै नमः ।
१०६. ॐ ऐन्द्र्यै नमः ।
१०७. ॐ ऐरावतारूढायै नमः ।
१०८. ॐ ऐहिकामुष्मिकप्रदायै नमः ।
१०९. ॐ ओंकारायै नमः ।
११०. ॐ ओषध्यै नमः ।
१११. ॐ ओतायै नमः ।
११२. ॐ ओतप्रोतनिवासिन्यै नमः ।
११३. ॐ और्वायै नमः ।
११४. ॐ औषधसम्पन्नायै नमः ।
११५. ॐ औपासनफलप्रदायै नमः ।
११६. ॐ अण्डमध्यस्थितायै देव्यै नमः ।
११७. ॐ अःकारमनुरूपिण्यै नमः ।
११८. ॐ कात्यायन्यै नमः ।
११९. ॐ कालरात्र्यै नमः ।
१२०. ॐ कामाक्ष्यै नमः ।
१२१. ॐ कामसुन्दर्यै नमः ।
१२२. ॐ कमलायै नमः ।
१२३. ॐ कामिन्यै नमः ।
१२४. ॐ कान्तायै नमः ।
१२५. ॐ कामदायै नमः ।
१२६. ॐ कालकण्ठिन्यै नमः ।
१२७. ॐ करिकुम्भस्तनभरायै नमः ।
१२८. ॐ करवीरसुवासिन्यै नमः ।
१२९. ॐ कल्याण्यै नमः ।
१३०. ॐ कुण्डलवत्यै नमः ।
१३१. ॐ कुरुक्षेत्रनिवासिन्यै नमः ।
१३२. ॐ कुरुविन्ददलाकरायै नमः ।

१३३. ॐ कुण्डल्यै नमः ।
१३४. ॐ कुमुदालयायै नमः ।
१३५. ॐ कालजिह्वायै नमः ।
१३६. ॐ करालास्यायै नमः ।
१३७. ॐ कलिकायै नमः ।
१३८. ॐ कालरूपिण्यै नमः ।
१३९. ॐ कमनीयगुणायै नमः ।
१४०. ॐ कान्त्यै नमः ।
१४१. ॐ कलाधरायै नमः ।
१४२. ॐ कुमुद्वत्यै नमः ।
१४३. ॐ कौशिक्यै नमः ।
१४४. ॐ कमलाकारायै नमः ।
१४५. ॐ कामचारप्रभञ्जिन्यै नमः ।
१४६. ॐ कौमार्यै नमः
१४७. ॐ करुणापाङ्ग्यै नमः ।
१४८. ॐ ककुबन्तायै नमः ।
१४९. ॐ करिप्रियायै नमः ।
१५०. ॐ केसर्यै नमः ।
१५१. ॐ केशवनुतायै नमः ।
१५२. ॐ कदम्बकुसुमप्रियायै नमः ।
१५३. ॐ कालिन्द्यै नमः ।
१५४. ॐ कालिकायै नमः ।
१५५. ॐ काञ्च्यै नमः ।
१५६. ॐ कलशोद्भवसंस्तुतायै नमः ।
१५७. ॐ काममात्रे नमः ।
१५८. ॐ क्रतुमत्यै नमः ।
१५९. ॐ कामरूपायै नमः ।
१६०. ॐ कृपावत्यै नमः ।
१६१. ॐ कुमार्यै नमः ।
१६२. ॐ कुण्डनिलयायै नमः ।
१६३. ॐ किरात्यै नमः ।
१६४. ॐ किरवाहनायै नमः ।
१६५. ॐ कैकेय्यै नमः ।
१६६. ॐ कोकिलालापायै नमः ।
१६७. ॐ केतक्यै नमः ।
१६८. ॐ कुसुमप्रियायै नमः ।
१६९. ॐ कमण्डलुधरायै नमः ।
१७०. ॐ काल्यै नमः ।
१७१. ॐ कर्मनिर्मूलकारिण्यै नमः ।
१७२. ॐ कलहंसगत्यै नमः ।
१७३. ॐ कक्षायै नमः
१७४. ॐ कृतकौतुकमङ्गलांयै नमः ।
१७५. ॐ कस्तूरीतिलकायै नमः ।
१७६. ॐ कम्रायै नमः ।
१७७. ॐ करीन्द्रगमनायै नमः ।
१७८. ॐ कुहवे नमः ।
१७९. ॐ कर्पूरलेपनायै नमः ।
१८०. ॐ कृष्णायै नमः ।
१८१. ॐ कपिलायै नमः ।
१८२. ॐ कुहराश्रयायै नमः ।
१८३. ॐ कूटस्थायै नमः ।
१८४. ॐ कुधरायै नमः ।
१८५. ॐ कम्रायै नमः ।
१८६. ॐ कुक्षिस्थाखिलविष्टपायै नमः ।
१८७. ॐ खड्गखेटकरायै नमः ।
१८८. ॐ खर्वायै नमः ।
१८९. ॐ खेचर्यै नमः ।
१९०. ॐ खगवाहनायै नमः ।
१९१. ॐ खट्वाङ्गधारिण्यै नमः ।
१९२. ॐ ख्यातायै नमः ।
१९३. ॐ खगराजोपरिस्थितायै नमः ।
१९४. ॐ खलघ्न्यै नमः ।
१९५. ॐ खण्डितजरायै नमः ।
१९६. ॐ खण्डाख्यानप्रदायिन्यै नमः ।
१९७. ॐ खण्डेन्दुतिलकायै नमः ।
१९८. ॐ गङ्गायै नमः ।
१९९. ॐ गणेशगुहपूजितायै नमः ।
२००. ॐ गायत्र्यै नमः ।

२०१. ॐ गोमत्यै नमः ।
२०२. ॐ गीतायै नमः ।
२०३. ॐ गान्धार्यै नमः ।
२०४. ॐ गानलोलुपायै नमः ।
२०५. ॐ गौतम्यै नमः ।
२०६. ॐ गामिन्यै नमः ।
२०७. ॐ गाधायै नमः ।
२०८. ॐ गन्धर्वाप्सरसेवितायै नमः ।
२०९. ॐ गोविन्दचरणाक्रान्तायै नमः ।
२१०. ॐ गुणत्रयविभावितायै नमः ।
२११. ॐ गान्धर्व्यै नमः ।
२१२. ॐ गह्वर्यै नमः ।
२१३. ॐ गोत्रायै नमः ।
२१४. ॐ गिरीशायै नमः ।
२१५. ॐ गहनायै नमः ।
२१६. ॐ गम्यै नमः ।
२१७. ॐ गुहावासायै नमः ।
२१८. ॐ गुणवत्यै नमः ।
२१९. ॐ गुरुपापप्रणाशिन्यै नमः ।
२२०. ॐ गुर्व्यै नमः ।
२२१. ॐ गुणवत्यै नमः ।
२२२. ॐ गुह्यायै नमः ।
२२३. ॐ गोप्तव्यायै नमः ।
२२४. ॐ गुणदायिन्यै नमः ।
२२५. ॐ गिरिजायै नमः ।
२२६. ॐ गुह्यमातङ्ग्यै नमः ।
२२७. ॐ गरुडध्वजबल्लभायै नमः ।
२२८. ॐ गर्वपहारिण्यै नमः ।
२२९. ॐ गोदायै नमः ।
२३०. ॐ गोकुलस्थायै नमः ।
२३१. ॐ गदाधरायै नमः ।
२३२. ॐ गोकर्णनिलयासक्तायै नमः ।
२३३. ॐ गुह्यमण्डलवर्तिन्यै नमः ।
२३४. ॐ घर्मदायै नमः ।
२३५. ॐ घनदायै नमः ।
२३६. ॐ घण्टायै नमः ।
२३७. ॐ घोरदानवमर्दिन्यै नमः ।
२३८. ॐ घृणिमन्त्रमय्यै नमः ।
२३९. ॐ घोषायै नमः ।
२४०. ॐ घनसम्पत्तिदायिन्यै नमः ।
२४१. ॐ घण्टारवप्रियायै नमः ।
२४२. ॐ घ्राणायै नमः ।
२४३. ॐ घृणिसन्तुष्टकारिण्यै नमः ।
२४४. ॐ घनारिमण्डलायै नमः ।
२४५. ॐ घूर्णायै नमः ।
२४६. ॐ घृताच्यै नमः ।
२४७. ॐ घनवेगिन्यै नमः ।
२४८. ॐ ज्ञानधातुमय्यै नमः ।
२४९. ॐ चर्चायै नमः ।
२५०. ॐ चर्चितायै नमः ।
२५१. ॐ चारुहासिन्यै नमः ।
२५२. ॐ चटुलायै नमः ।
२५३. ॐ चण्डिकायै नमः ।
२५४. ॐ चित्रायै नमः ।
२५५. ॐ चित्रमाल्यविभूषितायै नमः ।
२५६. ॐ चतुर्भुजायै नमः ।
२५७. ॐ चारुदन्तायै नमः ।
२५८. ॐ चातुर्यै नमः ।
२५९. ॐ चरितप्रदायै नमः ।
२६०. ॐ चूलिकायै नमः ।
२६१. ॐ चित्रवस्त्रान्तायै नमः ।
२६२. ॐ चन्द्रमः कर्णकुंडलायै नमः ।
२६३. ॐ चन्द्रहासायै नमः ।
२६४. ॐ चारुदात्र्यै नमः ।
२६५. ॐ चकोर्यै नमः ।
२६६. ॐ चन्द्रहासिन्यै नमः ।
२६७. ॐ चन्द्रिकायै नमः ।

२६८. ॐ चन्द्रधात्र्यै नमः ।
२६९. ॐ चौर्यै नमः ।
२७०. ॐ चोरायै नमः ।
२७१. ॐ चण्डिकायै नमः ।
२७२. ॐ चञ्चद्वाग्वादिन्यै नमः ।
२७३. ॐ चन्द्रचूडायै नमः ।
२७४. ॐ चोरविनाशिन्यै नमः ।
२७५. ॐ चारुचंदनलिप्ताङ्ग्यै नमः ।
२७६. ॐ चञ्चच्चामरवीजितायै नमः ।
२७७. ॐ चारुमध्यायै नमः ।
२७८. ॐ चारुगतये नमः ।
२७९. ॐ चन्द्रिकायै नमः ।
२८०. ॐ चन्द्ररूपिण्यै नमः ।
२८१. ॐ चारुहोमप्रियायै नमः ।
२८२. ॐ चार्वाचरितायै नमः ।
२८३. ॐ चक्रबाहुकायै नमः ।
२८४. ॐ चन्द्रमण्डलमध्यस्थायै नमः ।
२८५. ॐ चन्द्रमण्डलदर्पणायै नमः ।
२८६. ॐ चक्रवाकस्तन्यै नमः ।
२८७. ॐ चेष्टायै नमः ।
२८८. ॐ चित्रायै नमः ।
२८९. ॐ चारुविलासिन्यै नमः ।
२९०. ॐ चित्स्वरूपायै नमः ।
२९१. ॐ चन्द्रवत्यै नमः ।
२९२. ॐ चन्द्रमसे नमः ।
२९३. ॐ चन्दनप्रियायै नमः ।
२९४. ॐ चोदयित्र्यै नमः ।
२९५. ॐ चिरप्रज्ञायै नमः ।
२९६. ॐ चातकायै नमः ।
२९७. ॐ चारुहेतुक्यै नमः ।
२९८. ॐ छत्रयातायै नमः ।
२९९. ॐ छत्रधरायै नमः ।
३००. ॐ छायाछन्दः परिच्छदायै नमः ।
३०१. ॐ छायादेव्यै नमः ।
३०२. ॐ छिद्रनद्धायै नमः ।
३०३. ॐ छन्नेन्द्रियविसर्पिण्यै नमः ।
३०४. ॐ छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठांतायै नमः ।
३०५. ॐ छिद्रोपद्रवभेदिन्यै नमः ।
३०६. ॐ छेदायै नमः ।
३०७. ॐ छत्रेश्वर्यै नमः ।
३०८. ॐ छिन्नायै नमः ।
३०९. ॐ छुरिकायै नमः ।
३१०. ॐ छेदनप्रियायै नमः ।
३११. ॐ जनन्यै नमः ।
३१२. ॐ जनरहितायै नमः ।
३१३. ॐ जातवेदायै नमः ।
३१४. ॐ जगन्मय्यै नमः ।
३१५. ॐ जाहन्व्यै नमः ।
३१६. ॐ जटिलायै नमः ।
३१७. ॐ जेत्र्यैनमः ।
३१८. ॐ जरामरणवर्जितायै नमः ।
३१९. ॐ जम्बूद्वीपवत्यै नमः ।
३२०. ॐ ज्वालायै नमः ।
३२१. ॐ जयन्त्यै नमः ।
३२२. ॐ जलशालिन्यै नमः ।
३२३. ॐ जितेन्द्रियायै नमः ।
३२४. ॐ जितक्रोधायै नमः ।
३२५. ॐ जितामित्रायै नमः ।
३२६. ॐ जगत्प्रियायै नमः ।
३२७. ॐ जातरूपमय्यै नमः ।
३२८. ॐ जिह्वायै नमः ।
३२९. ॐ जानक्यै नमः ।
३३०. ॐ जगत्यै नमः ।
३३१. ॐ जरायै नमः ।
३३२. ॐ जनित्र्यै नमः ।
३३३. ॐ जह्नुतनयायै नमः ।
३३४. ॐ जगत्त्रयहितैषिण्यै नमः ।

३३५. ॐ ज्वालामुख्यै नमः ।
३३६. ॐ जपवत्यै नमः ।
३३७. ॐ ज्वरघ्न्यै नमः ।
३३८. ॐ जितविष्टपायै नमः ।
३३९. ॐ जिताक्रांतमय्यै नमः ।
३४०. ॐ ज्वालायै नमः ।
३४१. ॐ जाग्रत्यै नमः ।
३४२. ॐ ज्वरदेवतायै नमः ।
३४३. ॐ ज्वलंत्यै नमः ।
३४४. ॐ जलदायै नमः ।
३४५. ॐ ज्येष्ठायै नमः ।
३४६. ॐ ज्याधोषस्फोटदिङ्मुख्यै नमः ।
३४७. ॐ जंभिन्यै नमः ।
३४८. ॐ जृम्भणायै नमः ।
३४९. ॐ जृम्भायै नमः ।
३५०. ॐ ज्वलन्माणिक्यकुण्डलायै नमः ।
३५१. ॐ झिंझिकायै नमः ।
३५२. ॐ झणनिर्घोषायै नमः ।
३५३. ॐ झंझामारुतवेगिन्यै नमः ।
३५४. ॐ झल्लरीवाद्यकुशलायै नमः ।
३५५. ॐ ञरूपायै नमः ।
३५६. ॐ ञभुजायै नमः ।
३५७. ॐ टंकबाणसमायुक्तायै नमः ।
३५८. ॐ टंकिन्यै नमः ।
३५९. ॐ टंकभेदिन्यै नमः ।
३६०. ॐ टंकीगणकृतघोषायै नमः ।
३६१. ॐ टंकनीयमहोरसायै नमः ।
३६२. ॐ टंकारकारिण्यै देव्यै नमः ।
३६३. ॐ ठठशब्दनिनादिन्यै नमः ।
३६४. ॐ डामर्यै नमः ।
३६५. ॐ डाकिन्यै नमः ।
३६६. ॐ डिम्भायै नमः ।
३६७. ॐ डुंडमारैकनिर्जितायै नमः ।
३६८. ॐ डामरीतंत्रमार्गस्थायै नमः ।
३६९. ॐ डमड्डुमरुनादिन्यै नमः ।
३७०. ॐ डिडीरवसहायै नमः ।
३७१. ॐ डिंभलसत्क्रीडापरायणायै नमः ।
३७२. ॐ ढुंढिविघ्नेशजनन्यै नमः ।
३७३. ॐ ढक्काहस्तायै नमः ।
३७४. ॐ ढिलिव्रजायै नमः ।
३७५. ॐ नित्यज्ञानायै नमः ।
३७६. ॐ निरुपमायै नमः ।
३७७. ॐ निर्गुणायै नमः ।
३७८. ॐ नर्मदायै नमः ।
३७९. ॐ नद्यै नमः ।
३८०. ॐ त्रिगुणायै नमः ।
३८१. ॐ त्रिपदायै नमः ।
३८२. ॐ तंत्र्यै नमः ।
३८३. ॐ तुलस्यै नमः ।
३८४. ॐ तरुणायै नमः ।
३८५. ॐ तरवे नमः ।
३८६. ॐ त्रिविक्रमपदाक्रान्तायै नमः ।
३८७. ॐ तुरीयपदगामिन्यै नमः ।
३८८. ॐ तरुणादित्यसंकाशायै नमः ।
३८९. ॐ तामस्यै नमः ।
३९०. ॐ तुहिनातुरायै नमः ।
३९१. ॐ त्रिकालज्ञानसम्पन्नायै नमः ।
३९२. ॐ त्रिवल्यै नमः ।
३९३. ॐ त्रिलोचनायै नमः ।
३९४. ॐ त्रिशक्त्यै नमः ।
३९५. ॐ त्रिपुरायै नमः ।
३९६. ॐ तुंगायै नमः ।
३९७. ॐ तुरङ्गवदनायै नमः ।
३९८. ॐ तिमिंगिलगिलायै नमः ।
४९९. ॐ तीव्रायै नमः ।
४००. ॐ त्रिस्रोतायै नमः ।
४०१. ॐ तामसादिन्यै नमः ।
४०२. ॐ तंत्रमंत्र विशेषज्ञायै नमः ।

४०३. ॐ तनुमध्यायै नमः ।
४०४. ॐ त्रिविष्टपायै नमः ।
४०५. ॐ त्रिसन्ध्यायै नमः ।
४०६. ॐ त्रिस्तन्यै नमः ।
४०७. ॐ तोषसंस्थायै नमः ।
४०८. ॐ तालप्रतापिन्यै नमः ।
४०९. ॐ ताटंकिन्यै नमः ।
४१०. ॐ तुषाराभायै नमः ।
४११. ॐ तुहिनाचलवासिन्यै नमः ।
४१२. ॐ तंतुजालसमायुक्तायै नमः ।
४१३. ॐ तारहारावलिप्रियायै नमः ।
४१४. ॐ तिलहोमप्रियायै नमः ।
४१५. ॐ तिर्थायै नमः ।
४१६. ॐ तमालकुसुमाकृत्यै नमः ।
४१७. ॐ तारकायै नमः ।
४१८. ॐ त्रियुतायै नमः ।
४१९. ॐ तन्व्यै नमः ।
४२०. ॐ त्रिशंकुपरिवारितायै नमः ।
४२१. ॐ तलोदर्यै नमः ।
४२२. ॐ तिलाभूषायै नमः ।
४२३. ॐ ताटंकप्रियवादिन्यै नमः ।
४२४. ॐ त्रिजटायै नमः ।
४२५. ॐ तित्तिर्यै नमः ।
४२६. ॐ तृष्णायै नमः ।
४२७. ॐ त्रिविधायै नमः ।
४२८. ॐ त्रिविधाकृत्यै नमः ।
४२९. ॐ तप्तकांचनसंकाशायै नमः ।
४३०. ॐ तप्तकांचभूषणायै नमः ।
४३१. ॐ त्रैयम्बकायै नमः ।
४३२. ॐ त्रिवर्गायै नमः ।
४३३. ॐ त्रिकालज्ञानदायिन्यै नमः ।
४३४. ॐ तर्पणायै नमः ।
४३५. ॐ तुप्तिदायै नमः ।
४३६. ॐ तृप्तायै नमः ।
४३७. ॐ तामस्यै नमः ।
४३८. ॐ तुंबुरुस्तुतायै नमः ।
४३९. ॐ तार्क्ष्यस्थायै नमः ।
४४०. ॐ त्रिगुणाकारायै नमः ।
४४१. ॐ त्रिभंग्यै नमः ।
४४२. ॐ तनुवल्लर्यै नमः ।
४४३. ॐ थात्कार्यै नमः ।
४४४. ॐ थारवायै नमः ।
४४५. ॐ थांतायै नमः ।
४४६. ॐ दोहिन्यै नमः ।
४४७. ॐ दीनवत्सलायै नमः ।
४४८. ॐ दानवांतकर्यै नमः ।
४४९. ॐ दुर्गायै नमः ।
४५०. ॐ दुर्गासुरनिवर्हिण्यै नमः ।
४५१. ॐ देवरीत्यै नमः ।
४५२. ॐ दिवारात्र्यै नमः ।
४५३. ॐ द्रौपद्यै नमः ।
४५४. ॐ दुंदुभिस्वनायै नमः ।
४५५. ॐ देवयान्यै नमः ।
४५६. ॐ दुरावासायै नमः ।
४५७. ॐ दारिद्र्योद्भेदिन्यै नमः ।
४५८. ॐ दिवसे नमः ।
४५९. ॐ दामोदरप्रियायै नमः ।
४६०. ॐ दीप्तायै नमः ।
४६१. ॐ दिग्वासायै नमः ।
४६२. ॐ दिग्विमोहिन्यै नमः ।
४६३. ॐ दण्डकारण्यनिलयायै नमः ।
४६४. ॐ दण्डिन्यै नमः ।
४६५. ॐ देवपूजितायै नमः ।
४६६. ॐ देववंद्यायै नमः ।
४६७. ॐ दिविषदायै नमः ।
४६८. ॐ द्वेषिण्यै नमः ।
४६९. ॐ दानवाकृत्यै नमः ।
४७०. ॐ दीनानाथस्तुतायै नमः ।
४७१. ॐ दीक्षायै नमः ।

४७२. ॐ दैवतादिस्वरूपिण्यै नमः ।
४७३. ॐ धात्र्यै नमः ।
४७४. ॐ धनुर्धरायै नमः ।
४७५. ॐ धेनवे नमः ।
४७६. ॐ धारिण्यै नमः ।
४७७. ॐ धर्मचारिण्यै नमः ।
४७८. ॐ धरंधरायै नमः
४७९. ॐ धराधरायै नमः ।
४८०. ॐ धनदायै नमः ।
४८१. ॐ धान्यदोहिन्यै नमः ।
४८२. ॐ धर्मशीलायै नमः ।
४८३. ॐ धनाध्यक्षायै नमः ।
४८४. ॐ धनुर्वेदविशारदायै नमः ।
४८५. ॐ धृत्यै नमः ।
४८६. ॐ धन्यायै नमः ।
४८७. ॐ धृतपदायै नमः ।
४८८. ॐ धर्मराजप्रियायै नमः ।
४८९. ॐ ध्रुवायै नमः ।
४९०. ॐ धूमावत्यै नमः ।
४९१. ॐ धूमकेश्यै नमः ।
४९२. ॐ धर्मशास्त्रप्रकाशिन्यै नमः ।
४९३. ॐ नंदायै नमः ।
४९४. ॐ नंदप्रियायै नमः ।
४९५. ॐ निद्रायै नमः ।
४९६. ॐ नृनुतायै नमः ।
४९७. ॐ नंदनात्मिकायै नमः ।
४९८. ॐ नर्मदायै नमः ।
४९९. ॐ नलिन्यै नमः ।
५००. ॐ नीलायै नमः ।
५०१. ॐ नीलकण्ठसमाश्रयायै नमः ।
५०२. ॐ नारायणप्रियायै नमः ।
५०३. ॐ नित्यायै नमः ।
५०४. ॐ निर्मलायै नमः ।
५०५. ॐ निर्गुणायै नमः ।
५०६. ॐ निधये नमः ।
५०७. ॐ निराधारायै नमः ।
५०८. ॐ निरुपमायै नमः ।
५०९. ॐ नित्यशुद्धायै नमः ।
५१०. ॐ निरंजनायै नमः ।
५११. ॐ नादबिंदुकलातीतायै नमः ।
५१२. ॐ नादविन्दुकलात्मकायै नमः ।
५१३. ॐ नृसिंहिन्यै नमः ।
५१४. ॐ नगधरायै नमः ।
५१५. ॐ नृपनागविभूषितायै नमः ।
५१६. ॐ नरकक्लेशशमन्यै नमः ।
५१७. ॐ नारायणपदोद्भवायै नमः ।
५१८. ॐ निरवद्यायै नमः ।
५१९. ॐ निराकारायै नमः ।
५२०. ॐ नारदप्रियकारिण्यै नमः ।
५२१. ॐ नानाज्योतिः समाख्यातायै नमः ।
५२२. ॐ निधिदायै नमः ।
५२३. ॐ निर्मलात्मिकायै नमः ।
५२४. ॐ नवसूत्रधरायै नमः ।
५२५. ॐ नीत्यै नमः ।
५२६. ॐ निरुपद्रवकारिण्यै नमः ।
५२७. ॐ नंदजायै नमः ।
५२८. ॐ नवरत्नाढ्यायै नमः ।
५२९. ॐ नैमिषारण्य वासिन्यै नमः ।
५३०. ॐ नवनीतप्रियायै नमः ।
५३१. ॐ नार्यै नमः ।
५३२. ॐ नीलजीमूतनिस्वनायै नमः ।
५३३. ॐ निमेषिण्यै नमः ।
५३४. ॐ नदीरूपायै नमः ।
५३५. ॐ नीलग्रीवायै नमः ।
५३६. ॐ निशीश्वर्यै नमः ।
५३७. ॐ नामावल्यै नमः ।
५३८. ॐ निशुम्भघ्न्यै नमः ।
५३९. ॐ नागलोकनिवासिन्यै नमः ।

५४०. ॐ नवजाम्बूनदप्रख्यायै नमः ।
५४१. ॐ नागलोकाधिदेवतायै नमः ।
५४२. ॐ नूपुराक्रांतचरणायै नमः ।
५४३. ॐ नरचित्तप्रमोदिन्यै नमः ।
५४४. ॐ निमग्नायै नमः ।
५४५. ॐ रक्तनयनायै नमः ।
५४६. ॐ निर्घातसमनिस्वनायै नमः ।
५४७. ॐ नन्दनोद्याननिलयायै नमः ।
५४८. ॐ निर्व्यूहोपरिचारिण्यै नमः ।
५४९. ॐ पार्वत्यै नमः ।
५५०. ॐ परमोदारायै नमः ।
५५१. ॐ परब्रह्मात्मिकायै नमः ।
५५२. ॐ परायै नमः ।
५५३. ॐ पञ्चकोशविनिर्मुक्तायै नमः ।
५५४. ॐ पञ्चपातकनाशिन्यै नमः ।
५५५. ॐ परचित्तविधानज्ञायै नमः ।
५५६. ॐ पञ्चिकायै नमः ।
५५७. ॐ पञ्चरूपिण्यै नमः ।
५५८. ॐ पूर्णिमायै नमः ।
५५९. ॐ परमायै नमः ।
५६०. ॐ प्रीत्यै नमः ।
५६१. ॐ परतेजः प्रकाशिन्यै नमः ।
५६२. ॐ पुराण्यै नमः ।
५६३. ॐ पौरुष्यै नमः ।
५६४. ॐ पुण्यायै नमः ।
५६५. ॐ पुण्डरीकनिभेक्षणायै नमः ।
५६६. ॐ पातालतलनिमग्नायै नमः ।
५६७. ॐ प्रीतायै नमः ।
५६८. ॐ प्रीतिविवर्धिन्यै नमः ।
५६९. ॐ पावन्यै नमः ।
५७०. ॐ पादसहितायै नमः ।
५७१. ॐ पेशलायै नमः ।
५७२. ॐ पवनाशिन्यै नमः ।
५७३. ॐ प्रजापतये नमः ।
५७४. ॐ परिश्रांतायै नमः ।
५७५. ॐ पर्वतस्तनमण्डलायै नमः ।
५७६. ॐ पद्मप्रियायै नमः ।
५७७. ॐ पद्मसंस्थायै नमः ।
५७८. ॐ पद्माक्ष्यै नमः ।
५७९. ॐ पद्मसंभवायै नमः ।
५८०. ॐ पद्मपत्रायै नमः ।
५८१. ॐ पद्मपदायै नमः ।
५८२. ॐ पद्मिन्यै नमः ।
५८३. ॐ प्रियभाषिण्यै नमः ।
५८४. ॐ पशुपाशविनिर्मुक्तायै नमः ।
५८५. ॐ पुरंध्र्यै नमः ।
५८६. ॐ पुरवासिन्यै नमः ।
५८७. ॐ पुष्कलायै नमः।
५८८. ॐ पुरुषायै नमः
५८९. ॐ पर्वायै नमः ।
५९०. ॐ पारिजातसुमप्रियायै नमः ।
५९१. ॐ पतिव्रतायै नमः ।
५९२. ॐ पवित्रांग्यै नमः ।
५९३. ॐ पुष्पहास परायणायै नमः ।
५९४. ॐ प्रज्ञावती सुतायै नमः ।
५९५. ॐ पौत्र्यै नमः ।
५९६. ॐ पुत्रपूज्यायै नमः ।
५९७. ॐ पयस्विन्यै नमः ।
५९८. ॐ पाट्टीशपाशधरायै नमः ।
५९९. ॐ पंक्त्यै नमः ।
६००. ॐ पितृलोकप्रदायिन्यै नमः ।
६०१. ॐ पुराण्यै नमः ।
६०२. ॐ पुण्यशीलायै नमः ।
६०३. ॐ प्रणतार्तिविनाशिन्यै नमः
६०४. ॐ प्रद्युम्नजनन्यै नमः ।
६०५. ॐ पुष्टायै नमः ।
६०६. ॐ पितामहपरिग्रहायै नमः ।

६०७. ॐ पुण्डरीकपुरावासायै नमः ।
६०८. ॐ पुण्डरीकसमाननायै नमः ।
६०९. ॐ पृथुजंघायै नमः ।
६१०. ॐ पृथुभुजायै नमः ।
६११. ॐ पृथुपादायै नमः ।
६१२. ॐ पृथुदर्यै नमः ।
६१३. ॐ प्रवालशोभायै नमः ।
६१४. ॐ पिंगाक्ष्यै नमः ।
६१५. ॐ पीतवाससे नमः ।
६१६. ॐ प्रचापलायै नमः ।
६१७. ॐ प्रसवायै नमः ।
६१८. ॐ पुष्टिदायै नमः ।
६१९. ॐ पुण्यायै नमः ।
६२०. ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।
६२१. ॐ प्रणवागत्यै नमः ।
६२२. ॐ पञ्चवर्णायै नमः ।
६२३. ॐ पञ्चवाण्यै नमः ।
६२४. ॐ पञ्चिकायै नमः ।
६२५. ॐ पंजरस्थितायै नमः ।
६२६. ॐ परमायायै नमः ।
६२७. ॐ परंज्योतिषे नमः ।
६२८. ॐ परप्रीत्यै नमः ।
६२९. ॐ परागतये नमः ।
६३०. ॐ पराकाष्ठायै नमः ।
६३१. ॐ परेशान्यै नमः ।
६३२. ॐ पावन्यै नमः ।
६३३. ॐ पावकद्युतये नमः ।
६३४. ॐ पुण्यभद्रायै नमः ।
६३५. ॐ परिच्छेद्यायै नमः ।
६३६. ॐ पुष्पहासायै नमः ।
६३७. ॐ पृथूदर्यै नमः ।
६३८. ॐ पीताङ्ग्यै नमः ।
६३९. ॐ पीतवसनायै नमः ।
६४०. ॐ पीतशय्यायै नमः ।
६४१. ॐ पिशाचिन्यै नमः ।
६४२. ॐ पीतप्रियायै नमः ।
६४३. ॐ पिशाचघ्न्यै नमः ।
६४४. ॐ पाटलाक्ष्यै नमः ।
६४५. ॐ पटुक्रियायै नमः ।
६४६. ॐ पञ्चभक्षप्रियाचारायै नमः ।
६४७. ॐ पूतनाप्राणघातिन्यै नमः ।
६४८. ॐ पुन्नागवनमध्यस्थायै नमः ।
६४९. ॐ पुण्यतीर्थनिषेवितायै नमः ।
६५०. ॐ पञ्चाङ्ग्यै नमः ।
६५१. ॐ पराशक्त्यै नमः ।
६५२. ॐ परमाह्लादकारिण्यै नमः ।
६५३. ॐ पुष्पकाण्डस्थितायै नमः ।
६५४. ॐ पूषायै नमः ।
६५५. ॐ पोषिताखिलविष्टपायै नमः ।
६५६. ॐ पानप्रियायै नमः ।
६५७. ॐ पञ्चशिखायै नमः ।
६५८. ॐ पन्नगोपरिशायिन्यै नमः ।
६५९. ॐ पञ्चमात्रात्मिकायै नमः ।
६६०. ॐ पृथ्व्यै नमः ।
६६१. ॐ पथिकायै नमः ।
६६२. ॐ पृथुदोहिन्यै नमः ।
६६३. ॐ पुराणन्यायमीमांयै नमः ।
६६४. ॐ पाटल्यै नमः ।
६६५. ॐ पुष्पगन्धिन्यै नमः ।
६६६. ॐ पुण्यप्रजायै नमः ।
६६७. ॐ पारदात्र्यै नमः ।
६६८. ॐ परमार्थैकगोचरायै नमः ।
६६९. ॐ प्रवालशोभायै नमः ।
६७०. ॐ पूर्णाशायै नमः ।
६७१. ॐ प्रणवायै नमः ।
६७२. ॐ पल्लवोदर्यै नमः ।
६७३. ॐ फलिन्यै नमः ।

६७४. ॐ फलदायै नमः ।
६७५. ॐ फल्वे नमः ।
६७६. ॐ फूल्कार्यै नमः ।
६७७. ॐ फलकाकृत्यै नमः ।
६७८. ॐ फणीन्द्रभोगशयनायै नमः ।
६७९. ॐ फणिमण्डलमण्डितायै नमः ।
६८०. ॐ बालबालायै नमः ।
६८१. ॐ बहुमतायै नमः ।
६८२. ॐ बालातपनिभांशुकायै नमः ।
६८३. ॐ बलभद्रप्रियायै नमः ।
६८४. ॐ बन्द्यायै नमः ।
६८५. ॐ बडवायै नमः ।
६८६. ॐ बुद्धिसंस्तुतायै नमः ।
६८७. ॐ वन्दीदेव्यै नमः ।
६८८. ॐ बिलवत्यै नमः ।
६८९. ॐ बडिशध्न्यै नमः ।
६९०. ॐ बलिप्रियायै नमः ।
६९१. ॐ बांधव्यै नमः ।
६९२. ॐ बोधितायै नमः ।
६९३. ॐ बुद्ध्यै नमः ।
६९४. ॐ बंधूककुसुमप्रियायै नमः ।
६९५. ॐ बालभानुप्रभाकारायै नमः ।
६९६. ॐ ब्राह्म्यै नमः ।
६९७. ॐ ब्राह्मणदेवतायै नमः ।
६९८. ॐ बृहस्पतिस्तुतायै नमः ।
७९९. ॐ बृन्दायै नमः ।
७००. ॐ बृन्दावनविहारिण्यै नमः ।
७०१. ॐ बलाकिन्यै नमः ।
७०२. ॐ बिलाहारायै नमः ।
७०३. ॐ विलावासायै नमः ।
७०४. ॐ बहूदकायै नमः ।
७०५. ॐ बहुनेत्रायै नमः ।
७०६. ॐ बहुपदायै नमः ।
७०७. ॐ बहुकर्णावतंसिकायै नमः ।
७०८. ॐ बहुबाहुयुतायै नमः ।
७०९. ॐ बीजरूपिण्यै नमः ।
७१०. ॐ बहुरूपिण्यै नमः ।
७११. ॐ बिंदुनादकलातीतायै नमः ।
७१२. ॐ विन्दुनादस्वरूपिण्यै नमः ।
७१३. ॐ बद्धगोधांगुलित्राणायै नमः ।
७१४. ॐ बदर्याश्रमवासिन्यै नमः ।
७१५. ॐ बृंदारकायै नमः ।
७१६. ॐ बृहत्स्कन्धायै नमः ।
७१७. ॐ बृहत्यै नमः ।
७१८. ॐ बाणपातिन्यै नमः ।
७१९. ॐ बृंदाध्यक्षायै नमः ।
७२०. ॐ बहुनुतायै नमः ।
७२१. ॐ बनितायै नमः ।
७२२. ॐ बहुविक्रमायै नमः ।
७२३. ॐ बद्धपद्मासनासीनायै नमः ।
७२४. ॐ विल्वपत्रतलस्थितायै नमः ।
७२५. ॐ बोधिद्रुमनिजावासायै नमः ।
७२६. ॐ बडिस्थायै नमः ।
७२७. ॐ विन्दुदर्पणायै नमः ।
७२८. ॐ बालायै नमः ।
७२९. ॐ बाणासनवत्यै नमः ।
७३०. ॐ बडवानलवेगिन्यै नमः ।
७३१. ॐ ब्रह्माण्डबहिरन्तस्थितायै नमः ।
७३२. ॐ ब्रह्मकंकणसूत्रिण्यै नमः ।
७३३. ॐ भवान्यै नमः ।
७३४. ॐ भीषणवत्यै नमः ।
७३५. ॐ भाविन्यै नमः ।
७३६. ॐ भयहारिण्यै नमः ।
७३७. ॐ भद्रकाल्यै नमः ।
७३८. ॐ भुजङ्गाक्ष्यै नमः ।
७३९. ॐ भारत्यै नमः ।
७४०. ॐ भारताशयायै नमः ।
७४१. ॐ भैरव्यै नमः ।

७४२. ॐ भीषणाकारायै नमः ।
७४३. ॐ विभूतिदायै नमः ।
७४४. ॐ भूतिमालिन्यै नमः ।
७४५. ॐ भामिन्यै नमः ।
७४६. ॐ भोगनिरतायै नमः ।
७४७. ॐ भद्रदायै नमः ।
७४८. ॐ भूरिविक्रमायै नमः ।
७४९. ॐ भूतावासायै नमः ।
७५०. ॐ भृगुलतायै नमः ।
७५१. ॐ भार्गव्यै नमः ।
७५२. ॐ भूसुरार्चितायै नमः ।
७५३. ॐ भागीरथ्यै नमः ।
७५४. ॐ भोगवत्यै नमः ।
७५५. ॐ भवनस्थितायै नमः ।
७५६. ॐ भिषग्वरायै नमः ।
७५७. ॐ भामिन्यै नमः ।
७५८. ॐ भोगिन्यै नमः ।
७५९. ॐ भाषायै नमः ।
७६०. ॐ भवान्यै नमः ।
७६१. ॐ भूरिदक्षिणायै नमः ।
७६२. ॐ भर्गात्मिकायै नमः ।
७६३. ॐ भीमवत्यै नमः ।
७६४. ॐ भवबन्धविमोचिन्यै नमः ।
७६५. ॐ भजनीयायै नमः ।
७६६. ॐ भूतधात्रीरञ्जितायै नमः ।
७६७. ॐ भुवनेश्वर्यै नमः ।
७६८. ॐ भुजंगवलयायै नमः ।
७६९. ॐ भीमायै नमः ।
७७०. ॐ भेरुण्डायै नमः ।
७७१. ॐ भागधेयिन्यै नमः ।
७७२. ॐ मात्रे नमः ।
७७३. ॐ मायायै नमः ।
७७४. ॐ मधुमत्यै नमः ।
७७५. ॐ मधुजिह्वायै नमः ।
७७६. ॐ मधुप्रियायै नमः ।
७७७. ॐ महादेव्यै नमः ।
७७८. ॐ महाभागायै नमः ।
७७९. ॐ मालिन्यै नमः ।
७८०. ॐ मीनलोचनायै नमः ।
७८१. ॐ मायातीतायै नमः ।
७८२. ॐ मधुमत्यै नमः ।
७८३. ॐ मधुमासायै नमः ।
७८४. ॐ मधुद्रवायै नमः ।
७८५. ॐ मानव्यै नमः ।
७८६. ॐ मधुसम्भूतायै नमः ।
७८७. ॐ मिथिलापुरवासिन्यै नमः ।
७८८. ॐ मधुकैटभसंहन्त्र्यै नमः ।
७८९. ॐ मेदिन्यै नमः ।
७९०. ॐ मेघमालिन्यै नमः ।
७९१. ॐ मन्दोदर्यै नमः ।
७९२. ॐ महामायायै नमः ।
७९३. ॐ मैथिल्यै नमः ।
७९४. ॐ मसृणप्रियायै नमः ।
७९५. ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।
७९६. ॐ महाकाल्यै नमः ।
७९७. ॐ महाकन्यायै नमः ।
७९८. ॐ महेश्वर्यै नमः ।
७९९. ॐ माहेन्द्र्यै नमः ।
८००. ॐ मेरुतनयायै नमः ।
८०१. ॐ मन्दारकुसुमार्चितायै नमः ।
८०२. ॐ मञ्जुमञ्जीरचरणायै नमः ।
८०३. ॐ मोक्षदायै नमः ।
८०४. ॐ मञ्जुभाषिण्यै नमः ।
८०५. ॐ मधुरद्राविण्यै नमः ।
८०६. ॐ मुद्रायै नमः ।
८०७. ॐ मलयायै नमः ।
८०८. ॐ मलयान्वितायै नमः ।

८०९. ॐ मेधायै नमः ।
८१०. ॐ मरकतश्यामायै नमः ।
८११. ॐ मागध्यै नमः ।
८१२. ॐ मेनकात्मजायै नमः ।
८१३. ॐ महामार्यै नमः ।
८१४. ॐ महावीरायै नमः ।
८१५. ॐ महाश्यामायै नमः ।
८१६. ॐ मनुस्तुतायै नमः ।
८१७. ॐ मातृकायै नमः ।
८१८. ॐ मिहिराभासायै नमः ।
८१९. ॐ मुकुन्दपदविक्रमायै नमः ।
८२०. ॐ मूलाधारस्थितायै नमः ।
८२१. ॐ मुग्धायै नमः ।
८२२. ॐ मणिपूरकवासिन्यै नमः ।
८२३. ॐ मृगाक्ष्यै नमः ।
८२४. ॐ महिषारूढायै नमः ।
८२५. ॐ महिषासुरमर्दिन्यै नमः ।
८२६. ॐ योगासनायै नमः ।
८२७. ॐ योगगम्यायै नमः ।
८२८. ॐ योगायै नमः ।
८२९. ॐ यौवनैकाश्रयायै नमः ।
८३०. ॐ यौवन्यै नमः ।
८३१. ॐ युद्धमध्यस्थायै नमः ।
८३२. ॐ यमुनायै नमः ।
८३३. ॐ युगधारिण्यै नमः ।
८३४. ॐ यक्षिण्यै नमः ।
८३५. ॐ योगयुक्तायै नमः ।
८३६. ॐ यक्षराजप्रसूतिन्यै नमः ।
८३७. ॐ यात्रायै नमः ।
८३८. ॐ यानविधानज्ञायै नमः ।
८३९. ॐ यदुवंशसमुद्भवायै नमः ।
८४०. ॐ यकारादिहकारांतायै नमः ।
८४१. ॐ याजुष्यै नमः ।
८४२. ॐ यज्ञरूपिण्यै नमः ।
८४३. ॐ यामिन्यै नमः ।
८४४. ॐ योगनिरतायै नमः ।
८४५. ॐ यातुधानभयंकर्यै नमः ।
८४६. ॐ रुक्मिण्यै नमः ।
८४७. ॐ रमण्यै नमः ।
८४८. ॐ रामायै नमः ।
८४९. ॐ रेवत्यै नमः ।
८५०. ॐ रेणुकायै नमः ।
८५१. ॐ रत्यै नमः ।
८५२. ॐ रौद्र्यै नमः ।
८५३. ॐ रौद्रप्रियाकारायै नमः ।
८५४. ॐ राममात्रे नमः ।
८५५. ॐ रतिप्रियायै नमः ।
८५६. ॐ रोहिण्यै नमः ।
८५७. ॐ राज्यदायै नमः ।
८५८. ॐ रेवायै नमः ।
८५९. ॐ रमायै नमः ।
८६०. ॐ राजीवलोचनायै नमः ।
८६१. ॐ राकेश्यै नमः ।
८६२. ॐ रूपसम्पन्नायै नमः ।
८६३. ॐ रत्नसिंहासनस्थितायै नमः ।
८६४. ॐ रक्तमाल्यम्बरधरायै नमः ।
८६५. ॐ रक्तगन्धानुलेपनायै नमः ।
८६६. ॐ राजहंससमारूढायै नमः ।
८६७. ॐ रम्भायै नमः ।
८६८. ॐ रक्तबलिप्रियायै नमः ।
८६९. ॐ रमणीययुगाधारायै नमः ।
८७०. ॐ राजिताखिलभूतलायै नमः ।
८७१. ॐ रुरुचर्मपरिधानायै नमः ।
८७२. ॐ रधिन्यै नमः ।
८७३. ॐ रत्नमलिकायै नमः ।
८७४. ॐ रोगेश्यै नमः ।
८७५. ॐ रोगशमन्यै नमः ।
८७६. ॐ रावण्यै नमः ।

८७७. ॐ रामहर्षिण्ये नमः ।
८७८. ॐ रामचन्द्रपदाक्रान्तायै नमः ।
८७९. ॐ रावणच्छेदकारिण्यै नमः ।
८८० ॐ रत्नवस्त्रपरिच्छन्नायै नमः ।
८८१. ॐ रथस्थायै नमः ।
८८२. ॐ रुक्मभूषणायै नमः ।
८८३. ॐ लज्जाधिदेवतायै नमः ।
८८४. ॐ लोलायै नमः ।
८८५. ॐ ललितायै नमः ।
८८६. ॐ लिङ्गधारिण्यै नमः ।
८८७. ॐ लक्ष्म्यै नमः ।
८८८. ॐ लोलायै नमः ।
८८९. ॐ लुप्तविषायै नमः।
८९०. ॐ लोकिन्यै नमः ।
८९१. ॐ लोकविश्रुतायै नमः ।
८९२. ॐ लज्जायै नमः ।
८९३. ॐ लम्बोदरीदेव्यै नमः ।
८९४. ॐ ललनायै नमः ।
८९५. ॐ लोकधारिण्यै नमः ।
८९६. ॐ वरदायै नमः ।
८९७. ॐ वन्दितायै नमः ।
८९८. ॐ विद्यायै नमः ।
८९९. ॐ वैष्णव्यै नमः ।
९००. ॐ विमलाकृत्यै नमः ।
९०१. ॐ वाराह्यै नमः ।
९०२. ॐ विरजायै नमः ।
९०३. ॐ वर्षायै नमः ।
९०४. ॐ वरलक्ष्म्यै नमः ।
९०५. ॐ विलासिन्यै नमः ।
९०६. ॐ विनतायै नमः ।
९०७. ॐ व्योममध्यस्थायै नमः ।
९०८. ॐ वारिजासनसंस्थितायै नमः ।
९०९. ॐ वारुण्यै नमः ।
९१०. ॐ वेणुसंभूतायै नमः ।
९११. ॐ वीतिहोत्रायै नमः ।
९१२. ॐ विरूपिण्यै नमः ।
९१३. ॐ वायुमण्डलमध्यस्थायै नमः ।
९१४. ॐ विष्णुरूपायै नमः ।
९१५. ॐ विधिप्रियायै नमः ।
९१६. ॐ विष्णुपत्न्यै नमः ।
९१७. ॐ विष्णुमत्यै नमः ।
९१८. ॐ विशालाक्ष्यै नमः ।
९१९. ॐ वसुन्धरायै नमः ।
९२०. ॐ वामदेवप्रियायै नमः ।
९२१. ॐ वेलायै नमः ।
९२२. ॐ वज्रिण्यै नमः ।
९२३. ॐ वसुदोहिन्यै नमः ।
९२४. ॐ वेदाक्षरपरीतांग्यै नमः ।
९२५. ॐ वाजपेयफलप्रदायै नमः ।
९२६. ॐ वासव्यै नमः ।
९२७. ॐ वामजनन्यै नमः ।
९२८. ॐ वैकुण्ठनिलयायै नमः ।
९२९. ॐ वरायै नमः ।
९३०. ॐ व्यासप्रियायै नमः ।
९३१. ॐ वर्मधरायै नमः ।
९३२. ॐ वाल्मीकिपरिसेवितायै नमः ।
९३३. ॐ शाकम्भर्यै नमः ।
९३४. ॐ शिवायै नमः ।
९३५. ॐ शान्तायै नमः ।
९३६. ॐ शारदायै नमः ।
९३७. ॐ शरणागत्यै नमः ।
९३८. ॐ शातोदर्यै नमः ।
९३९. ॐ शुभाचारायै नमः ।
९४०. ॐ शुम्भासुरविमर्दिन्यै नमः ।
९४१. ॐ शोभावत्यै नमः ।
९४२. ॐ शिवाकारायै नमः ।
९४३. ॐ शङ्करार्धशरीरिण्यै नमः ।
९४४. ॐ शोणायै नमः ।
९४५. ॐ शुभाशयायै नमः ।

९४६. ॐ शुभ्रायै नमः ।
९४७. ॐ शिरःसंधानकारिण्यै नमः ।
९४८. ॐ शरावत्यै नमः ।
९४९. ॐ शरानन्दायै नमः ।
९५०. ॐ शरज्ज्योत्स्नायै नमः ।
९५१. ॐ शुभननायै नमः ।
९५२. ॐ शरभायै नमः ।
९५३. ॐ शूलिन्यै नमः ।
९५४. ॐ शुद्धायै नमः ।
९५५. ॐ शबर्यै नमः ।
९५६. ॐ शुकवाहनायै नमः ।
९५७. ॐ श्रीमत्यै नमः ।
९५८. ॐ श्रीधरानंदायै नमः ।
९५९. ॐ श्रवणानन्ददायिन्यै नमः ।
९६०. ॐ शर्वाण्यै नमः ।
९६१. ॐ शर्वरीवंद्यायै नमः ।
९६२. ॐ षड्भाषायै नमः ।
९६३. ॐ षड्ऋतुप्रियायै नमः ।
९६४. ॐ षोढाधारस्थितायैदेव्यै नमः ।
९६५. ॐ षण्मुखप्रियकारिण्यै नमः ।
९६६. ॐ षडंगरूपसुमत्यै नमः ।
९६७. ॐ सुरासुरनमस्कृतायै नमः ।
९६८. ॐ सरस्वत्यै नमः ।
९६९. ॐ सदाधारायै नमः ।
९७०. ॐ सर्वमङ्गलकारिण्यै नमः ।
९७१. ॐ सामगानपियायै नमः ।
९७२. ॐ सूक्ष्मायै नमः ।
९७३. ॐ सावित्र्यै नमः।
९७४. ॐ सामसम्भवायै नमः ।
९७५. ॐ सर्वावासायै नमः ।
९७६. ॐ सदानन्दायै नमः ।
९७७. ॐ सुस्तन्यै नमः ।
९७८. ॐ सागराम्बरायै नमः ।
९७९. ॐ सर्वैश्वर्यप्रियायै नमः ।
९८०. ॐ सिद्ध्यै नमः ।
९८१. ॐ साधुबन्धुपराक्रमायै नमः ।
९८२. ॐ सप्तर्षिमण्डलगतायै नमः ।
९८३. ॐ सोममण्डलवासिन्यै नमः ।
९८४. ॐ सर्वज्ञायै नमः ।
९८५. ॐ सान्द्रकरुणायै नमः ।
९८६. ॐ समानाधिकवर्जितायै नमः ।
९८७. ॐ सर्वोत्तुङ्गायै नमः ।
९८८. ॐ संज्ञाहीनायै नमः ।
९८९. ॐ सद्गुणायै नमः ।
९९०. ॐ सकलेष्टदायै नमः ।
९९१. ॐ सरघायै नमः ।
९९२. ॐ सूर्यतनयायै नमः ।
९९३. ॐ सुकेश्यै नमः ।
९९४. ॐ समसंहत्यै नमः ।
९९५. ॐ हिरण्यवर्णायै नमः ।
९९६. ॐ हरिण्यै नमः ।
९९७. ॐ ह्रींकार्यै नमः ।
९९८. ॐ हंसवाहिन्यै नमः ।
९९९. ॐ क्षौमवस्त्रपरीतांग्यै नमः ।
१०००. ॐ क्षीराब्धितनयायै नमः ।
१००१. ॐ क्षमायै नमः ।
१००२. ॐ गायत्र्यै नमः ।
१००३. ॐ सावित्र्यै नमः ।
१००४. ॐ पार्वत्यै नमः ।
१००५. ॐ सरस्वत्यै नमः ।
१००६. ॐ वेदगर्भायै नमः ।
१००७. ॐ वरारोहायै नमः ।
१००८. ॐ श्रीगायत्रीपराम्बिकायै नमः ।

गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र श्रीमद्देवीभागवत महापुराण की आसाधरणनिधि है । केवल इसी महापुराण में गायत्री सहस्रनाम संगृहीत है । गायत्री सहस्रनाम का संग्रह महर्षि व्यास ने इस महापुराण के बारहवें स्कन्ध के छठे अध्याय में किया है । द्विजातियों के लिए इस स्तोत्र का पाठ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

देवी के अत्यन्त प्रिय मणिद्वीप का विस्तृत वर्णन भी इस महापुराण की अपनी विशेषता है । इस तरह उपयोगिता की दृष्टि से यह महापुराण अत्यधिक उपयोगी है । गायत्री की जितनी अधिक विस्तृत चर्चा इस पुराण में की गयी है, उतनी अधिक विस्तृत चर्चा अन्यत्र दुर्लभ है । शिरोव्रत का विशेष वर्णन; रुद्राक्ष और भस्मधारण की विशेष महिमा का वर्णन भी इस पुराण में किया गया है । कुछ ऐसी देवियों की चर्चा सामान्य जनता में चला करती है, जिनके चरित्र का वर्णन अन्य पुराणों में बहुत कम उपलब्ध होता है अथवा नहीं उपलब्ध होता है जैसे– स्वाहाशक्ति का उपाख्यान, स्वधा देवी का उपाख्यान, दक्षिणादेवी का उपाख्यान, षष्ठीदेवी का उपाख्यान, मङ्गलचण्डी का उपाख्यान, मनसा देवी का उपाख्यान, तुलसी का उपाख्यान सुरभि गौ का उपाख्यान इत्यादि । किन्तु इस महापुराण के नवें स्कन्ध के अन्तिम अध्यायों में इन सभी देवियों का उपाख्यान संगृहीत है ।

श्रीमद्देवीभागवत के नवाह यज्ञ के विश्राम स्थल

पहले दिन प्रारम्भ से लेकर तीसरे स्कन्ध के तीन अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

दूसरे दिन चतुर्थ स्कन्ध के आठवें अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

तीसरे दिन पाँचवें स्कन्ध के आठवें अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

चौथे दिन छठे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

पाँचवे दिन सातवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय तक कुल ३१ अध्याय ।

छठे दिन आठवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय तक कुल ३९ अध्याय ।

सातवें दिन नवें स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

आठवें दिन दशवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय तक कुल ३५ अध्याय ।

नवें दिन बारहवें स्कन्ध के अन्तिम अध्याय तक कुल ३८ अध्याय ।

नोट– १. कथा के प्रारम्भ होने से एक दिन पहले पञ्चाङ्गपूजन करके माहात्म्य की कथा कह लेनी चाहिए ।

२. कथा के पूरी होने के दूसरे दिन होम तथा पूर्णाहुति करनी चाहिए ।

श्रीमद्देवीभागवत के स्कन्धानुसार अध्यायों की संख्या

प्रथम स्कन्ध में २० अध्याय, द्वितीय स्कन्ध में १२ अध्याय, तृतीय स्कन्ध में ३० अध्याय, चतुर्थ सकन्ध में २५ अध्याय, पञ्चम स्कन्ध में ३५ अध्याय, षष्ठ स्कन्ध में ३१ अध्याय, सप्तम स्कन्ध में ४० अध्याय, अष्टम स्कन्ध में २४ अध्याय, नवम स्कन्ध मे ५० अध्याय, दशम स्कन्ध में १३ अध्याय, एकादश स्कन्ध में २४ अध्याय तथा द्वादश स्कन्ध में १४ अध्याय । कुल ३१८ अध्याय और माहात्म्य में ५ अध्याय हैं ।

इस तरह यह महापुराण अपनी अनेक विशेषताओं से समलङ्कृत है । **चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी** के स्वामियों की इच्छा थी कि इस महापुराण को नवीन परिवेश में नूतनतया अनूदित करके प्रकाशित किया जाय और उसी के परिणाम रूप से यह संस्करण पाठकों के हाथों में समर्पित है। विश्वास है कि इस संस्करण से पुराणप्रेमी पाठकों को कुछ-न-कुछ प्रेरणा अवश्य मिलेगी ।

अन्त में जगदम्बा से मेरी प्रार्थना है कि वे चौखम्बा विद्याभवन के स्वामियों को इस तरह के प्रकाशन की ओर और अधिक प्रेरित करें । विशेष भगवदिच्छा

वैक्रमाब्द सम्वत् २०६७
चैत्र शुक्ल १, १६ मार्च २०१०

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
अवकाश प्राप्त प्राचार्य
श्रीहनुमत् संस्कृत महाविद्यालय, हनुमानगढ़ी, अयोध्या

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

विषयानुक्रमणिका

अ०	विषय	पृष्ठांक
	माहात्म्यम्	१
१.	शुक-शौनक संवाद के प्रसङ्ग में इतिहास पूर्वक देवीभागवत के माहात्म्य का वर्णन	२
२.	स्यमन्तकमणि का पता लगाने के लिए गये हुए श्रीकृष्ण के आने के लिए वसुदेवजी का देवीभागवत को सुनना	७
३.	श्राद्धदेवमनु का वृत्तान्त, सुद्युम्न को स्त्रीत्व की प्राप्ति, देवीभागवत के सुनने से पुनः पुंस्त्व की प्राप्ति	१३
४.	ऋतवाक् मुनि का इतिहास	१८
५.	देवीभागवत पुराण के श्रवण की विधि	२६
	प्रथमः स्कन्धः	३५
१.	महर्षि शौनक के प्रश्न	३६
२.	श्रीमद्देवीभागवत के अध्यायों एवं श्लोकों की संख्या	३८
३.	पुराणों उपपुराणों तथा व्यासों की संख्या	४२
४.	शुकदेवजी की जन्मकथा	४६
५.	हयग्रीवावतार की कथा	५२
६.	मधुकैटभ युद्ध का प्रारम्भ	६१
७.	ब्रह्माकृत देवी स्तुति	६५
८.	आराध्य का निर्णय	७१
९.	भगवान् विष्णु के द्वारा मधुकैटभ का वध	७५
१०.	शङ्करजी के आशीर्वाद से व्यासजी को पुत्र की प्राप्ति	८२
११.	बुध की उत्पत्ति की कथा	८५
१२.	सुद्युम्न द्वारा देवी की स्तुति	९२
१३.	पुरूरवा तथा उर्वशी का मिलन	९७
१४.	शुकदेवजी के जन्म का वर्णन	१००
१५.	शुकदेवजी कृत वैराग्य वार्ता भगवती का भगवान् विष्णु को उपदेश देना	१०६
१६.	शुकदेवजी द्वारा देवीभागवत का अध्ययन	११२
१७.	शूकदेवजी का मिथिला जाना	११७
१८.	जनकजी का शुकदेवजी को उपदेश देना	१२३
१९.	शुकदेवजी का विवाह	१२९
२०.	व्यासजी के कृत्यों का वर्णन	१३४
	द्वितीयः स्कन्धः	१४१
१.	मत्स्य तथा मत्स्यगन्धा का जन्म वृत्तान्त	१४२
२.	व्यासजी की जन्मकथा	१४६

अ०	विषय	पृष्ठांक
३.	ब्राह्माजी द्वारा गङ्गा को शाप	१५१
४.	मृत्युलोक में अष्टवसुओं का जन्म	१५६
५.	शन्तनु का सत्यवती के साथ विवाह	१६२
६.	पाण्डवों का जन्मवृत्तान्त	१६७
७.	व्यासजी द्वारा स्वजनों को मृत कौरवों को दिखाना	१७४
८.	परीक्षित को शाप का वर्णन	१८०
९.	रुरु का वृत्तान्त तथा परीक्षित् का गुप्तप्रकोष्ठ में निवास	१८४
१०.	तक्षक-कश्यप संवाद	१८८
११.	राजा जनमेजय का सर्पयाग	१९४
१२.	जरत्कारु मुनि का विवाह और आस्तीक का जन्म	२००
	तृतीयः स्कन्धः	**२०६**
१.	जनमेजय के अनेक प्रश्न	२०७
२.	देवी का देवताओं को अनेक लोंको को दिखाना	२११
३.	विमान में बैठे हुए त्रिदेवों द्वारा देवी का दर्शन	२१५
४.	भगवान् विष्णु द्वारा देवी की स्तुति	२२१
५.	शिवजी द्वारा तथा ब्रह्माजी द्वारा देवी की स्तुति	२२६
६.	देवी का उपदेश	२३२
७.	तत्त्वों का निरूपण	२४०
८.	गुणों का स्वरूप	२४४
९.	गुणों के लक्षण	२४९
१०.	सत्यव्रत ब्राह्मण की कथा	२५४
११.	सारस्वत बीजमन्त्र का महत्त्व	२५९
१२.	अम्बायज्ञ की विधि	२६५
१३.	भगवान् विष्णु द्वारा देवी यज्ञ का अनुष्ठान	२७२
१४.	देवी की महिमा और सुदर्शनाख्यान	२७७
१५.	युद्धाजित् तथा वीरसेन का युद्ध	२८२
१६.	सुदर्शन को मारने के लिए युधाजित् का भारद्वाजाश्रम में जाना	२८७
१७.	सुदर्शन वृत्तान्तार्गत सुदर्शन को कामबीज की प्राप्ति	२९२
१८.	शशिकला का स्वयम्बर	२९७
१९.	स्वयम्बर में सुदर्शन का आना	३०२
२०.	राजाओं का विवाद और कन्या की सुदर्शन का वरण करने की इच्छा	३०८
२१.	सुदर्शन के साथ शशिकला का विवाह	३१४
२२.	सुदर्शन तथा शशिकला का विवाह	३१९
२३.	राजाओं के साथ सुदर्शन का युद्ध और देवी का सहायता करना	३२४
२४.	देवी का काशी में स्थायी निवास	३३०
२५.	अयोध्या तथा काशी में दुर्गा मन्दिर का निर्माण	३३४
२६.	शारदीय नवरात्र व्रत की विधि	३३८
२७.	कुमारी पूजन की विधि और सुशील बनिया की कथा	३४४
२८.	श्रीराच चरित का वर्णन	३४९
२९.	सीताहरण और श्रीराम का विलाप	३५५
३०.	नारदजी द्वारा श्रीराम को नवरात्र व्रत करने का उपदेश	३५९
	चतुर्थः स्कन्धः	**३६६**
१.	जनमेजय के श्रीकृष्णावतार के विषय में प्रश्न	३६७

अ०	विषय	पृष्ठांक
२.	गहन कर्मगति का निरूपण	३७१
३.	कश्यप तथा अदिति को वरुण, ब्रह्मा तथा दिति के शाप	३७६
४.	अधिकारी पुरुषों की पाप में प्रवृत्ति	३८१
५.	नर और नारायण की तपस्या का वर्णन	३८६
६.	नर-नारायण के सन्निकट अप्सराओं का जाना	३९०
७.	अहङ्कारी बन्धन की व्याख्या	३९५
८.	महर्षि व्यवन के द्वारा तीर्थों का माहात्म्य का वर्णन	४००
९.	प्रह्लाद और नारायण का युद्ध वर्णन	४०५
१०.	भृगु महर्षि द्वारा नारायण को शाप और देवासुर संग्राम में असुरों का पराजय	४१०
११.	भगवान् विष्णु द्वारा शुक्राचार्य की माता का वध	४१४
१२.	महर्षि भृगु का भगवान् विष्णु को शाप	४१९
१३.	बृहस्पति का शुक्राचार्य के रूप में दैत्यों को धोखा देना	४२५
१४.	दैत्यों का शुक्राचार्य पर आविश्वास	४३०
१५.	इन्द्र तथा प्रह्लाद का युद्ध तथा देवों एवं दैत्यों में सन्धि	४३६
१६.	प्रत्येक मन्वन्तरों में होने वाले भगवान् विष्णु के अवतारों का वर्णन	४४२
१७.	नर-नारायण आश्रम में इन्द्र द्वारा भेजी गयी अप्सराओं का वृत्तान्त	४४५
१८.	पापियों के अत्याचार से भयभीत पृथिवी का देवलोक में जाना	४४९
१९.	देवताओं द्वारा महाशक्ति की स्तुति तथा अवतार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना	४५४
२०.	देवी की महिमा, वसुदेव तथा देवकी का विवाह तथा कंस का देवकी को मारने का प्रयास	४५९
२१.	देवकी और वसुदेव की भाग्यविषयिणी वार्ता तथा देवकी के पुत्र का कंस द्वारा वध	४६६
२२.	देवताओं के अवतार की कथा	४७१
२३.	श्रीकृष्णजन्म की कथा	४७६
२४.	श्रीकृष्ण चरित्र	४८०
२५.	भगवती पराशक्ति की सर्वज्ञता का वर्णन	४८६
	पञ्चमः स्कन्धः	४९४
१.	भगवान् विष्णु की अपेक्षा शिवजी की श्रेष्ठता का वर्णन	४९५
२.	महिषासुर के जन्म तथा वरदानप्राप्ति का वर्णन	५००
३.	महिषासुर का देवताओं के साथ युद्ध की तैयारी	५०५
४.	देवसभा में देवताओं तथा दानवों में होने वाले युद्ध विषयक विचार	५०९
५.	देवदानव संग्राम तथा ताम्र के पराजय का वर्णन	५१४
६.	अनेक देवता एवं दैत्य सेनापतियों के युद्ध का वर्णन	५१९
७.	पराजित देवताओं का कैलास पर्वत पर जाना	५२४
८.	देवताओं के तेज से देवी की उत्पत्ति का वर्णन	५३०
९.	देवताओं द्वारा देवी की स्तुति	५३६
१०.	दैत्य महामन्त्री तथा देवी का संवाद	५४३
११.	दैत्यों की आपस में मन्त्रणा और ताम्र का युद्ध करने के लिए जाना	५४९
१२.	महिषासुर के मंत्रिमण्डल का युद्ध करने का निश्चय करना	५५५

अ०	विषय	पृष्ठांक
१३.	देवी द्वारा वाष्कल तथा दुर्मुख का वध	५६१
१४.	भगवती द्वारा ताम्र तथा चिक्षुर का वध	५६५
१५.	देवी द्वारा असिलोम तथा विडाल का वध	५७०
१६.	देवी का महिषासुर से संवाद	५७६
१७.	मन्दोदरी की कथा	५८२
१८.	महिषासुर के वध की कथा	५८७
१९.	देवताओं द्वारा देवी की स्तुति	५९३
२०.	भूलोक के स्वामी राजा शत्रुघ्न के राज्य की सुख सम्पत्ति का वर्णन	६००
२१.	तपस्या करके शुम्भ निशुम्भ द्वारा स्वर्ग पर विजय प्राप्ति का वर्णन	६०५
२२.	हिमालय पर्वत पर देवताओं द्वारा की गयी देवी की स्तुति और देवी का प्रादुर्भाव	६१०
२३.	कौशिकी देवी का आविर्भाव और चण्ड-मुण्ड के द्वारा उनकी शुम्भ निशुम्भ को सूचना	६१६
२४.	देवी तथा दूत का संवाद	६२२
२५.	भगवती द्वारा धूम्रलोचन का वध	६२८
२६.	चण्ड तथा मुण्ड का देवी द्वारा वध	६३४
२७.	रक्तबीज का युद्ध करने के लिए प्रस्थान	६३९
२८.	रक्तबीज का मूर्छित होना तथा मातृकाओं द्वारा असुर सेना का संहार	६४५
२९.	देवी द्वारा रक्तबीज का बध	६५१
३०.	देवी द्वारा निशुम्भ का वध	६५६

अ०	विषय	पृष्ठांक
३१.	शुम्भ वध की कथा	६६१
३२.	राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य की कथा	६६८
३३.	देवीमाहात्म्य, ब्रह्मा और विष्णु का विवाद, शिवलिङ्ग के अन्त का पता लगाने का प्रयास तथा ब्रह्माजी का झूठ बोलना	६७३
३४.	भगवती की आराधना पूजा तथा होम की विधि	६७९
३५.	राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य के द्वारा देवी का साक्षात् दर्शन और वर की प्राप्ति	६८३
	षष्ठः स्कन्धः	६८९
१.	विश्वरूप तथा त्रिशिरा की तपस्या में इन्द्र द्वारा विघ्न	६९०
२.	इन्द्र द्वारा त्रिशिरा का वध	६९६
३.	देवताओं के साथ वृत्रासुर का युद्ध और इन्द्र की पराजय	७०१
४.	ब्रह्माजी से वृत्रासुर को वर की प्राप्ति, देवताओं का पराजय तथा वृत्रासुर का स्वर्ग पर राज्य	७०६
५.	भगवान् विष्णु का वृत्रासुर के वध का उपाय बतलाना और देवों को देवी के वरदान की प्राप्ति	७१२
६.	इन्द्र का वृत्रासुर को विश्वस्त बनाकर उसका वध करना	७१९
७.	ब्रह्महत्या के भय से भागकर इन्द्र का कमलनाल में प्रवेश करना तथा नहुष को इन्द्रत्व की प्राप्ति	७२५
८.	देवताओं का बृहस्पति से परामर्श	७३१
९.	नहुष का इन्द्रासन से पतन	७३७
१०.	अनेक प्रकार के कर्मों तथा युगधर्मों का वर्णन	७४४
११.	युग धर्म का वर्णन	७४८

अ० विषय पृष्ठांक

१२. भूलोक के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन ७५४
१३. वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के कलह का वर्णन ७६०
१४. वसिष्ठजी के मैत्रावरुणि नाम पड़ने का कारण ७६५
१५. निमि का नेत्रों की पलकों में निवास का वर्णन ७७२
१६. हैहयवंशीय क्षत्रियों द्वारा भृगुवंशीय ब्राह्मणों के विनाश का वर्णन ७७८
१७. किसी ब्राह्मण के जंघे से भार्गव ब्राह्मण की उत्पत्ति की कथा का वर्णन ७८४
१८. शंकरजी द्वारा लक्ष्मीजी को वरदान की प्राप्ति का वर्णन ७९०
१९. बडवा (घोड़ी) का रूप धारण करने वाली लक्ष्मीजी को घोड़े का रूप धारण करने वाले श्रीहरि से पुत्र की प्राप्ति का वर्णन ७९६
२०. तुर्वसु को पुत्रप्राप्ति का वर्णन ८०१
२१. एकवीर चरित्र का वर्णन ८०६
२२. राजकुमारी एकावली का चरित्र वर्णन ८१२
२३. कालकेतु के वध का वर्णन ८१७
२४. व्यासजी की आत्मकथा ८२३
२५. व्यासजी की आत्मकथा (२) ८२८
२६. नारद मुनि को पर्वत मुनि का शाप ८३४
२७. दमयन्ती और नारद के विवाह का वर्णन ८३९
२८. नारदजी को स्त्रीत्व की प्राप्ति ८४४
२९. स्त्रीरूपधारी नारदजी का राजा तालध्वज के साथ विवाह का वर्णन ८४९
३०. महामाया की महिमा का वर्णन ८५५
३१. भगवती का माहात्म्य वर्णन ८६०

अ० विषय पृष्ठांक

सप्तमः स्कन्धः ८६६
१. जनमेजय के सृष्टिविषयक प्रश्न ८६७
२. राजा शर्याति की कथा ८७०
३. महर्षि च्यवन तथा सुकन्या का विवाह वर्णन ८७६
४. सुकन्या द्वारा महर्षि च्यवन की सेवा ८८१
५. अश्विनी कुमारों की दया से च्यवन ऋषि को युवावस्था की प्राप्ति ८८६
६. युवक च्यवन महर्षि को देखकर शर्याति का सन्देह ८९२
७. महर्षि च्यवन का अश्विनीकुमारों को सोमपायी बनाना ८९७
८. रेवती तथा बलराम का विवाह ९०२
९. सूर्यवंश के राजाओं के नाम का वर्णन तथा राजा मान्धाता के जन्म वृतान्त का वर्णन ९०७
१०. राजा सत्यव्रत के त्रिशंकु नाम पड़ने के कारण का निरुपण ९१२
११. सत्यव्रतोपाख्यान ९१७
१२. राजा त्रिशंकु की कथा ९२२
१३. त्रिशंकु के ऊपर विश्वामित्र की कृपा ९२८
१४. महर्षि विश्वामित्र की तपस्या के प्रभाव से त्रिशंकु का सदेह स्वर्ग गमन ९३३
१५. हरिश्चन्द्रोपाख्यान ९३८
१६. हरिश्चन्द्रोपाख्यान (२) ९४४
१७. हरिश्चन्द्रोपाख्यान (३) ९४९
१८. हरिश्चन्द्रोपाख्यानम (४) ९५५
१९. हरिश्चन्द्र द्वारा विश्वामित्र को अपने राज्य का दान करना ९६०

अ०	विषय	पृष्ठांक
२०.	राजा हरिश्चन्द्र का काशी जाना	९६५
२१.	राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी और पुत्र के विक्रय विषयक चर्चा	९६९
२२.	राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी तथा उनके पुत्र का विक्रय	९७२
२३.	राजा हरिश्चन्द्र का चण्डाल के हाथ बिकना	९७७
२४.	राजा हरिश्चन्द्र की श्मशान घाट पर नियुक्ति	९८१
२५.	सर्प के काटने से रोहित की मृत्यु	९८४
२६.	राजा हरिचन्द्र का शैव्या को पहचानना	९९२
२७.	राजा हरिश्चन्द्र के स्वर्गारोहण का वर्णन	९९९
२८.	भगवती दुर्गा के शताक्षी तथा शाकम्भरी इत्यादि नामों के इतिहास का वर्णन	१००३
२९.	भगवती का तिरोहित होकर पुन:प्रकट हो जाना	१०१०
३०.	सिद्धपीठ में विराजमान अष्टोत्तरशत शक्तियों के नाम	१०१५
३१.	तारकासुर के द्वारा सताये गये देवताओं द्वारा देवी की स्तुति	१०२४
३२.	भगवती द्वारा हिमालय को ज्ञानोपदेश	१०३१
३३.	भगवती द्वारा विराट् रूप का प्रदर्शन	१०३६
३४.	(देवी गीता– ४) देवी द्वारा ज्ञानोपदेश	१०४१
३५.	(देवी गीता– ५) देवी द्वारा अनेक योगों का वर्णन	१०४६
३६.	(देवी गीता– ६) देवी के द्वारा ब्रह्म का निरूपण	१०५२
३७.	(देवी गीता– ७) भक्ति के भेद तथा ज्ञान की महिमा का वर्णन	१०५५
३८.	(देवी गीता– ८) देवी के तीर्थ, व्रत, उत्सव तथा पूजन के प्रकार का वर्णन	१०५९
३९.	(देवी गीता– ९) देवीपूजन के अनेक प्रसंग	१०६४
४०.	(देवी गीता– १०) पूजन का विधान तथा फलश्रुति	१०६८

अ०	विषय	पृष्ठांक
	अष्टमः स्कन्धः	**१०७२**
१.	सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु द्वारा देवी की स्तुति	१०७३
२.	वराहावतार की संक्षेप में कथा	१०७७
३.	मनु की कन्याओं का संक्षिप्त परिचय	१०८०
४.	सात द्वीपों के उत्थान का उपक्रम	१०८३
५.	भूमण्डल का विस्तृत वर्णन	१०८५
६.	गङ्गा तथा अन्य नदियों की उत्पत्ति का वर्णन	१०८८
७.	गङ्गा की धाराओं का वर्णन	१०९१
८.	इलावृत वर्ष में शिवजी द्वारा संकर्षण की तथा भद्राश्व वर्ष में भद्रश्रवा द्वारा हयग्रीव की स्तुति	१०९४
९.	हरिवर्ष में प्रह्लाद द्वारा नृसिंह भगवान् की केतुमाल वर्ष में लक्ष्मी जी द्वारा कामदेव स्वरूप श्रीभगवान् की और रम्यक् वर्ष में मनु के द्वारा मत्स्यरूपधारी श्रीहरि की स्तुति	१०९७
१०.	हरिवर्ष में प्रह्लाद द्वारा नृसिंह भगवान् की केतुमाल वर्ष में लक्ष्मीजी द्वारा कामदेव स्वरूप श्रीभगवान् की और रम्यक् वर्ष में मनु के द्वारा मत्स्यरूपधारी श्रीहरि की स्तुति	११०१
११.	नारदजी द्वारा भगवान् नारायण की स्तुति तथा भारतवर्ष की महिमा	११०४
१२.	प्लक्ष, शाल्मलि तथा कुश द्वीप का वर्णन	११०८
१३.	क्रौंच, काक तथा पुष्कर आदि द्वीपों का वर्णन	११११
१४.	लोकालोक पर्वत का वर्णन	१११४
१५.	सूर्य की गति का वर्णन	१११७
१६.	चन्द्र आदि ग्रहों की गति का वर्णन	११२१

अ०	विषय	पृष्ठांक
१७.	शिशुमार चक्र का वर्णन	११२४
१८.	राहुमण्डल आदि का वर्णन	११२७
१९.	अतल, वितल एवं सुतल लोकों का वर्णन	११३०
२०.	तलातल, महातल, रसातल तथा पताल लोकों का वर्णन	११३३
२१.	भगवान् अनन्त का यशोगान तथा नरकों की नामावली	११३६
२२.	तामिस्र आदि नरकों का वर्णन	११३९
२३.	अवीचि आदि नरकों का वर्णन	११४४
२४.	देवी की उपासना का वर्णन	११४६
	नवमः स्कन्धः	**११५३**
१.	पञ्चविध प्रकृति का वर्णन	११५४
२.	श्रीराधाकृष्ण से प्रकट होने वाले देवता और देवियों का चरित	११६७
३.	राधा से प्रकट हुए विराट् स्वरूप बालक का वर्णन	११७४
४.	सरस्वती पूजन विधि तथा सरस्वती कवच	११८०
५.	याज्ञवल्क्य महर्षि द्वारा सरस्वती की स्तुति	११८७
६.	भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा का परस्पर में शाप के कारण भारत वर्ष में अवतरण	११९०
७.	भगवान् द्वारा भक्तों के लक्षण तथा महत्त्व का वर्णन	११९६
८.	कलियुग चरित्र का वर्णन तथा गोलोक में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन	१२०१
९.	पृथिवी की उत्पत्ति उसका ध्यान एवं पूजन के प्रकार आदि का वर्णन	१२१०
१०.	अनेक प्रकार के पापों का वर्णन	१२१६
११.	गंगा की उत्पत्ति का वर्णन	१२१९
१२.	गङ्गाजी के ध्यान और स्तुति का तथा राधाकृष्ण के अङ्गों के प्रादुर्भाव का वर्णन	१२२५
१३.	राधा का गंगा पर क्रोध और गंगा का श्रीकृष्ण के चरणों में आश्रय ग्रहण करना	१२३२
१४.	गङ्गा और विष्णु का गान्धर्व विवाह	१२४३
१५.	तुलसी की कथा के प्रसङ्ग में राजा वृषध्वज का चरित्र वर्णन	१२४६
१६.	वेदवती की कथा, सीताजी और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त वर्णन	१२५०
१७.	तुलसी के प्रादुर्भाव की कथा	१२५५
१८.	तुलसी तथा शंखचूड के विवाह का ब्रह्माजी का आदेश	१२६०
१९.	शंखचूड और तुलसी के गान्धर्व विवाह का वर्णन	१२६८
२०.	शिवजी द्वारा शंखचूड़ के पास दूत भेजना और शंखचूड़ द्वारा तुलसी को ज्ञानोपदेश	१२७६
२१.	शंखचूड का पुष्पभद्रा नदी के तट पर जाना और वहाँ उसकी शिवजी से विशद वार्ता	१२८३
२२.	शंकरजी तथा शंखचूड की सेनाओ में घोर युद्ध	१२९०
२३.	शिवजी और शंखचूड का युद्ध, शिव के त्रिशूल से शंखचूड का भस्म होना और सुदामा के रूप में गोलोक जाना	१२९६
२४.	शंखचूडवेषधारी श्रीहरि के द्वारा तुलसी में वीर्याधान की कथा	१२९९
२५.	तुलसी पूजन, तुलसी का ध्यान, तुलसीनामाष्टक और तुलसीस्तव इत्यादि का वर्णन	१३०७
२६.	सावित्री देवी की पूजा तथा उनकी स्तुति का वर्णन	१३११

अ०	विषय	पृष्ठांक
२७.	राजा अश्वपति के द्वारा सावित्री की उपासना, उसके फलस्वरूप राजा को पुत्री की प्राप्ति	१३१९
२८.	सावित्री और यमराज का संवाद	१३२१
२९.	सावित्री के प्रश्नों का यमराज द्वारा उत्तर और सावित्री को वरदान	१३२४
३०.	सावित्री के प्रश्न और धर्मराज द्वारा उसका उत्तर	१३३०
३१.	सावित्री और यम का संवाद	१३४२
३२.	यमपुरी के भयंकर कुण्डों का वर्णन	१३४४
३३.	नारकीय गति का वर्णन	१३४६
३४.	नरक कुण्डों का वर्णन	१३५७
३५.	नरक कुण्डों का वर्णन	१३६५
३६.	पञ्चदेवों के उपासकों के नरक में नहीं जाने का वर्णन	१३७०
३७.	नरककुण्डों के लक्षण	१३७३
३८.	भुवनेश्वरी देवी के स्वरूप आदि का वर्णन	१३८३
३९.	महालक्ष्मी के जन्म की कथा	१३९२
४०.	लक्ष्मी के जन्म आदि के वृत्तान्त का वर्णन	१३९५
४१.	इन्द्र का ब्रह्मलोक जाना	१४०३
४२.	महालक्ष्मी की पूजा विधि	१४०८
४३.	भगवती की स्वहा शक्ति की कथा	१४१४
४४.	भगवती स्वधा शक्ति की कथा	१४१९
४५.	दक्षिणा देवी की कथा	१४२३
४६.	षष्ठी देवी की कथा	१४३१
४७.	मङ्गलचण्डी की कथा	१४३७
४८.	मनसा देवी की कथा	१४४२
४९.	सुरभि गौ की कथा	१४५५
५०.	श्रीराधाजी तथा श्रीदुर्गाजी के स्तोत्र आदि का वर्णन	१४५८
	दशमः स्कन्धः	**१४६७**
१.	स्वायम्भुव मनु की उत्पत्ति आदि का वर्णन	१४६८
२.	भगवती का विन्ध्यगिरि पर जाना	१४७०
३.	विन्ध्यपर्वत द्वारा सूर्य के मार्गावरोध का वर्णन	१४७२
४.	शंकरजी द्वारा देवी की स्तुति	१४७५
५.	देवताओं द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति	१४७७
६.	अगस्त्य महर्षि के द्वारा देवी की स्तुति किए जाने पर विन्ध्यगिर की वृद्धि का रुकना	१४७९
७.	अगस्त्य महर्षि द्वारा विन्ध्यगिरि की वृद्धि को रोकना	१४८२
८.	स्वारोचिष् , उत्तम, तामस तथा रैवतमनु की कथा	१४८४
९.	चाक्षुष मनु की कथा	१४८६
१०.	सावर्णि मनु की कथा	१४८९
११.	देवी का वर्णन	१४९२
१२.	महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा	१४९५
१३.	नवम आदि मनुओं की कथा	१५०२
	एकादशः स्कन्धः	**१५१३**
१.	सदाचार का वर्णन	१५१४
२.	शौचाचार विचार	१५१८
३.	सदाचार वर्णन और रुद्राक्ष का महत्त्व	१५२२
४.	रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन	१५२६
५.	जप की माला का लक्षण	१५३०

अ०	विषय	पृष्ठांक
६.	रुद्राक्ष धारण विधि	१५३३
७.	रुद्राक्ष के लक्षण और मन्त्रविन्यास	१५३८
८.	भूतशुद्धि का वर्णन	१५४१
९.	शिरोव्रत का माहात्म्य	१५४३
१०.	शिरोव्रतविधि का निरूपण	१५४७
११.	भस्म का त्रैविध्य तथा उसकी विशेषता	१५५०
१२.	भस्म धारण करने का फल वर्णन	१५५३
१३.	भस्मधारण की महिमा	१५५६
१४.	भस्मधारी की महिमा	१५६०
१५.	भस्मधारण की महिमा	१५६५
१६.	सन्ध्योपासन का विवेचन	१५७५
१७.	गायत्रीजप विवेचन	१५८४
१८.	श्रीदेवी की विशेष पूजा का वर्णन	१५८९
१९.	मध्याह्न संध्याविधि	१५९५
२०.	ब्रह्मयज्ञ तथा सायंसन्ध्या विधि	१५९७
२१.	गायत्री के पुरश्चरण की विधि	१६०१
२२.	बलिवैश्वदेव तथा प्राणाग्निहोत्र की विधि	१६०६
२३.	प्राजापत्यादि व्रतों का वर्णन	१६१०
२४.	गायत्री के विविध प्रयोग	१६१६
	द्वादशः स्कन्धः	१६२६
१.	गायत्री के ऋषि आदि का वर्णन	१६२७
२.	गायत्री की महिमा	१६२९
३.	गायत्री कवच	१६३१
४.	गायत्री हृदय का वर्णन	१६३३
५.	गायत्री स्तोत्र	१६३६
६.	गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र	१६३८
७.	दीक्षाविधि का वर्णन	१६६५
८.	देवताओं का गर्व ध्वसं	१६७८
९.	महर्षि गौतम द्वारा असंख्य ब्राह्मणों की रक्षा और कृतघ्न ब्राह्मणों को महर्षि का शाप	१६८६
१०.	मणिद्वीप का वर्णन १	१६९३
११.	मणिद्वीप का वर्णन २	१७०१
१२.	मणिद्वीप का वर्णन ३	१७१०
१३.	राजा जनमेजय द्वारा अम्बायज्ञ और देवीभागवत की महिमा	१७१६
१४	देवीभागवत की महिमा	१७१८

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

माहात्म्यम्

प्रथमोऽध्यायः

श्री गणेशाय नमः । श्रीदुर्गादेव्यै नमः । सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री, संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या । पश्यन्ती मध्यमाऽथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा, साऽस्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरशाराधिताऽलंकरोतु ॥१॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥२॥ ऋषय ऊचुः– **सूत जीव समा बह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः । कथा मनोहरा पुण्या व्यासशिष्य महामते ॥३॥ सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम् । अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम् ॥४॥ शिवस्य चरितं दिव्यं भस्मरुद्राक्षयोस्तथा। सेतिहासं च माहात्म्यं श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ॥५॥ अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात्पावनं परम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः ॥६॥ तत्त्वं ब्रूहि महाभाग येन सिद्ध्यन्ति मानवाः । कलावपि परं त्वत्तो न विद्मः संशयच्छिदम् ॥७॥** सूत उवाच– **साधु पृष्टं महाभागा लोकानां हितकाम्यया । सर्वशास्त्रस्य यत्सारं तद्वो वक्ष्याम्यशेषतः ॥८॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च । यावन्न श्रूयते सम्यग्देवीभागवतं**

शुक-शौनक संवाद के प्रसङ्ग में इतिहास पूर्वक देवीभागवत के माहात्म्य का वर्णन

श्रीगणेशाय नमः । श्रीदुर्गादेव्यै नमः । जो सृष्टि के कार्य में उत्पत्तिस्वरूपिणी, संसार की रक्षा करने में पालन करने वाली तथा संहार के कार्य में जो रुद्राणी स्वरूप हैं, यह सारा संसार जिनकी क्रीडास्थली है, जो भगवती परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी स्वरूप हैं, सदा प्रसन्न रहने वाली तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर के द्वारा आराधित हैं वे भगवती हमारी वाणी को अलंकृत करें ॥१॥ भगवान् नारायण, मनुष्यों में श्रेष्ठ नर, सरस्वती देवी तथा व्यास जी को नमस्कार करके, महाभारत संबन्धी किसी ग्रन्थ का प्रवचन करना चाहिए ॥२॥ **ऋषियों ने कहा–** हे व्यासजी के शिष्य तथा महाबुद्धिमान सूतजी आप अनेकों वर्ष तक जीवित रहें, क्योंकि आप हमलोगों को मनोहर काथायें सुनाया करते हैं ॥३॥ हमलोगों ने सभी पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् विष्णु के अवतारों से सम्बद्ध आश्चर्यमय चरित्र का श्रवण किया है ॥४॥ हमलोगों ने आपके मुखकमल से, शिवजी के चरित्र को, भस्म तथा रुद्राक्ष के इतिहासों तथा माहात्म्य को सुना है ॥५॥ इस समय हमलोग मनुष्यों को बिना प्रयास के ही भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली, अत्यन्त पवित्र कथा को सुनना चाहते हैं ॥६॥ हे महाभाग ! आप हमें वह कथा बतलाएँ जिससे कलियुग में भी मनुष्यों को सिद्धि मिलती है। आपसे बढ़कर कोई दूसरा संदेह को दूर करने वाला नहीं है ॥७॥ **सूतजी ने कहा–** हे महाभागों ! आपलोगों ने संसार का कल्याण करने की कामना से बहुत अच्छा प्रश्न किया है । सभी

नरैः ॥९॥ तावत्पापाटवी नृणां क्लेशदाऽदभ्रकंटका। यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः ॥१०॥ तावत्क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः । यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः ॥११॥ ऋषय ऊचुः– **सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कीदृशं तत्पुराणं हि विधिस्तच्छ्रवणे च कः ॥१२॥ कतिभिर्वासरैरेतच्छ्रोतव्यं किं च पूजनम् । कैर्मानवैः श्रुतं पूर्वं काँस्कान्कामानवाप्नुयुः ॥१३॥** सूत उवाच– **विष्णोरंशो मुनिर्जातः सत्यवत्यां पराशरात् । विभज्य वेदांश्चतुरः शिष्यानध्यापयत्पुरा ॥१४॥ व्रात्यानां द्विजबन्धूनां वेदेष्वनधिकारिणाम् । स्त्रीणां दुर्मेधसां नृणां धर्मज्ञानं कथं भवेत् ॥१५॥ विचार्यैतत्तु मनसा भगवान् बादरायणः । पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया ॥१६॥ अष्टादश पुराणानि स कृत्वा भगवान् मुनिः । मामेवाध्यापयामास भारताख्यानमेव च ॥१७॥ देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम् स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम्॥१८॥ पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित्तक्षकाहिना । संदष्टस्तस्य संशुद्ध्यै राज्ञा भागवतं श्रुतम् ॥१९॥ नवभिर्दिवसैः श्रीमद्वेव्यासमुखाम्बुजात् । त्रैलोक्यमातरं देवीं पूजयित्वा विधानतः ॥२०॥ नवाहयज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः । दिव्यरूपधरो देव्याः सालोक्यं तत्क्षणादगात् ।२१॥ पितुर्दिव्यां गतिं**

शास्त्रों का जो सार है उसे मैं आपलोगों को पूर्णरूप से बतलाऊँगा ॥८॥ सभी तीर्थ, पुराण तथा व्रत तबतक गरजते हैं जबतक कि मनुष्य अच्छी तरह से देवीभागवत को नहीं सुनता है ॥९॥ पापरूपी अरण्य तबतक ही मनुष्यों को दुःख देने वाला तथा अत्यधिक कंटकाकीर्ण प्रतीत होता है, जबतक कि वह देवीभागवत रूपी कुल्हाड़ी को नहीं प्राप्त कर लेता है ॥१०॥ उपसर्ग रूपी घोर अन्धकार तबतक ही मनुष्यों को दुःख देता है जबतक कि देवीभागवत नामक सूर्य का उदय नहीं होता है । **ऋषियों ने कहा**– हे बोलने वालों में श्रेष्ठ महाभाग सूतजी ! आप हमें बतलाएँ कि वह पुराण कैसा है? तथा उसके सुनने की विधि कैसी है? ॥१२॥ उस पुराण को कितने दिनों में सुनना चाहिए और उस समय किसकी पूजा करनी चाहिए ? किन मनुष्यों ने उसे सुनकर किन-किन कामनाओं को प्राप्त किया है ?॥१३॥ **सूतजी ने कहा**– महर्षि पराशर तथा माता सत्यवती के पुत्र के रूप में भगवान् विष्णु के अंश से व्यास जी अवतीर्ण हुए । उन्होंने पूर्वकाल में वेदों का चार भागों में विभाग करके अपने शिष्यों को पढ़ाया ॥१४॥ ब्रात्यों, ब्राह्मणाधमों, स्त्रियों तथा अज्ञानियों का वेदों में अधिकार नहीं होने के कारण इन सबों को धर्म का ज्ञान कैसे हो, इस बात को अपने मन में विचार करके भगवान् बादरायण ने उन सबों को ज्ञान कराने के लिए पुराण संहिता का ध्यान किया ॥१५-१६॥ भगवान् बादरायण ने अठारह पुराणों की रचना करके मुझको (सूतजी को) महाभारत को पढ़ाया ॥१७॥ उन पुराणें में देवीभागवत पुराण भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है । व्यासजी ने स्वयं जनमेजय नामक राजा को उसे सुनाया ॥१८॥ पहले जनमेजय के पिता को तक्षक नाम के सर्प ने काट लिया था उन्हीं की मुक्ति के लिए राजा जनमेजय ने देवीभागवत को सुना ॥१९॥ उन्होंने त्रैलोक्य

राजा विलोक्य जनमेजयः । व्यासं मुनिं समभ्यर्च्च्य परां मुदमवाप ह ॥२२॥ अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम् । देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥२३॥ ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम् । तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः ॥२४॥ दिनमर्द्धं तदर्द्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा । ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित् ॥२५॥ सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । सकृत्पुराणश्रवणत्तत्फलं लभते नरः ॥२६॥ कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम् । पुराणश्रवणादन्यो विद्यते नापरो नृणाम् ॥२७॥ धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम् । व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥२८॥ सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः । देव्याः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम्॥२९॥ मासानां नियमो नात्र दिनानां नियमोऽपि न । सदा सेव्यं सदा सेव्यं देवीभागवतं नरैः ॥३०॥ आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा । चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात्फलदायकम् ॥३१॥ अतो नवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात्पुण्यकर्मणः । फलाधिकप्रदानेन प्रोक्तः पुण्यप्रदो नृणाम् ॥३२॥ ये दुर्हृदः

की माता देवी का विधिपूर्वक पूजन करके वेदव्यास जी के मुख से नव दिनों में देवीभागवत का श्रवण किया ॥२०॥ नव दिनों के इस यज्ञ के पूरा होने पर राजा परीक्षित भी दिव्यरूप को धारण करके उसी क्षण देवी के लोक में चले गये ॥२१॥ राजा जनमेजय अपने पिता की दिव्यगति को देखकर व्यास महर्षि की पूजा करके अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२२॥ अठारह पुराणों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाला देवीभागवत सर्वोत्तम पुराण है ॥२३॥ जो कोई भक्तिपूर्वक सदा देवीभागवत की कथा का श्रवण करता है; उसकी सिद्धि सद्यः हो जाती है, अतएव मनुष्यों को सदा देवीभागवत की कथा का श्रवण करना चाहिए ॥२४॥ जो लोग इस कथा को एक दिन, आधा दिन, या उसके आधा, या एक मुहूर्त या एक क्षण भी भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उनकी कभी दुर्गति नहीं होती है ॥२५॥ समस्त यज्ञों, तीर्थों तथा दानों का जो फल होता है उस फल को मनुष्य इस पुराण का श्रवण करके ही प्राप्त कर लेता है ॥२६॥ सत्ययुग आदि युगों में अनेक धर्म थे, किन्तु कलियुग में मनुष्यों के लिए पुराण के श्रवण से भिन्न कोई दूसरा धर्म नहीं हैं ॥२७॥ कलियुग में धर्माचरण नहीं करने वाले तथा अल्प आयु वाले मनुष्यों का कल्याण करने के लिए व्यासजी ने पुराण रूपी अमृतरस का प्रणयन किया ॥२८॥ अमृत के पीने से एक ही मनुष्य अजर-अमर हो सकता है; किन्तु देवी की कथा रूपी अमृत तो पूरे वंश को अजर-अमर बना देता है ॥२९॥ इसके विषय में महीना अथवा दिन का कोई नियम नहीं है, अतएव मनुष्यों को सदा देवीभागवत का सेवन करना चाहिए ॥३०॥ आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ मास के चारो नवरात्रों में यह विशेष फल देने वाला है ॥३१॥ अतएव यह नवाहयज्ञ सभी पुण्यकर्मों से अधिक फल देने के कारण लोगों के लिए पुण्यप्रद कहा गया है ॥३२॥ जो दुष्ट प्रकृति

पापरता विमूढा मित्रद्रुहो वेदविनिन्दकाश्च । हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता नवाहयज्ञेन पुनन्ति ते कलौ ॥३३॥ परस्वदाराहरणेऽतिलुब्धा ये वै नराः कल्मषभारभाजः । गोदेवताब्राह्मणभक्तिहीना नवाहयज्ञेन भवन्ति शुद्धाः ॥३४॥ तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनैर्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च। हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते नवाहयज्ञेन तदाप्यते नृणाम् ॥३५॥ तथा न गङ्गा न गया न काशी न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम् । पुनाति सद्यो बदरीवनं नो यथा हि देवीमख एष विप्राः ॥३६॥ अतो भागवतं देव्याः पुराणं परतः परम् । धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम् ॥३७॥ आश्विनस्य सिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ । महाष्टम्यां समभ्यर्च्य हैमसिंहासनस्थितम् ॥३८॥ देवीप्रीतिप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम् । दद्याद्विप्राय योग्याय स देव्याः पदवीं लभेत् ॥३९॥ देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा । भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत् ॥४०॥ उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम् । उत्पातानखिलांश्चापि हन्ति श्रवणमात्रतः ॥४१॥ बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम् । देवीभागवतस्यास्य श्रवणाद्याति दूरतः ॥४२॥ यस्तु भागवतं देव्याः पठेद्भक्त्या शृणोति वा । धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥४३॥ श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे

वाले, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदनिंदक, हिंसा करने वाले तथा नास्तिक मार्गानुयायी हैं; वे भी नवाहयज्ञ से कलियुग में पवित्र हो जाते हैं ॥३३॥ जो लोग दूसरों की सम्पत्ति तथा दूसरों की पत्नी का हरण करने के अत्यन्त लोभी हैं, जो पाप के भार से दबे हुए हैं, जो गौ, देवता तथा ब्राह्मण की भक्ति से रहित हैं वे भी नवाहयज्ञ से शुद्ध हो जाते हैं ॥३४॥ जिस फल की प्राप्ति तपस्याओं, उग्रव्रतों तथा तीर्थों के सेवन, अनेक प्रकार के दानों, नियमों के पालन, यज्ञों, होमों तथा जपों के करने से नहीं होती है, उस फल की प्राप्ति नवाहयज्ञ से होती है ॥३५॥ हे विप्रों ! गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा तथा पुष्कर एवं बदरिकावन ये सभी तीर्थ उस तरह से मनुष्य को शीघ्र पवित्र नहीं कर पाते हैं जिस तरह से यह देवी का यज्ञ उन्हें पवित्र बना देता है॥३६॥ अतएव देवी भागवत सर्वश्रेष्ठ पुराण है तथा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का उत्तम साधन माना गया है ॥३७॥ आश्विन के महीने में जब सूर्य कन्या राशि पर हों, उस महाष्टमी के दिन स्वर्ण के सिंहासन पर रखकर देवी को प्रसन्न करने वाले देवीभागवत ग्रन्थ की पूजा करके; उसे योग्य ब्राह्मण को दान देना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य देवी के लोक में जाता है ॥३८-३९॥ जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक देवीभागवत के एक श्लोक अथवा आधे श्लोक को नित्य पढ़ता है वह देवी की प्रीति का पात्र बनता है ॥४०॥ भयंकर उपसर्ग के भय तथा महामारी की उत्पत्ति से उत्पन्न होने वाले सभी भयों का देवीभागवत के सुनने मात्र से नाश हो जाता है ॥४१॥ बालग्रहजन्य तथा भूतप्रेतों से उत्पन्न भय, देवीभागवत के सुनने मात्र से नष्ट हो जाता है ॥४२॥ जो मनुष्य

गतम् । चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वा मुमोद ह ॥४४॥ य एतां शृणुयाद्भक्त्या श्रीमद्भागवतीं कथाम् भुक्तिं मुक्तिं स लभते भक्त्या यश्च पठेदिमाम् ॥४५॥ अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् । रोगी रोगात् प्रमुच्येत श्रुत्वा भागवतामृतम् ॥४६॥ बन्ध्या वा काकबन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना । देवीभागवतं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं चिरायुषम् ॥४७॥ पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम् । तदगृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम् ॥४८॥ अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि स सिद्धिं लभते पराम् ॥४९॥ पठन् द्विजो वेदविदग्रणीर्भवेद्बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात्। वैश्यः पठन् वित्तसमृद्धिमेति शूद्रोऽपि शृण्वन् स्वकुलोत्तमः स्यात् ॥५०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भक्तिपूर्वक देवीभागवत को सुनता है अथवा पढ़ता है वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।।४३।। इस पुराण के सुनने मात्र से वसुदेवजी, प्रसेनजित को खोजने के लिए गये हुए और बहुत दिनों तक नहीं लौटे हुए अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण जी को प्राप्त करके आनन्दानुभव किए ।।४४।। जो व्यक्ति इस श्रीमद्भागवती कथा को भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा पढ़ता है वह लौकिक ऐश्वर्य तथा मोक्ष को प्राप्त करता है ।।४५।। इस भागवतामृत का श्रवण करके अपुत्र पुत्र को प्राप्त कर लेता है, दरिद्र धनवान् हो जाता है तथा रोगी निरोग हो जाता है ।।४६।। बन्ध्या, काकबन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी देवीभागवत का श्रवण करके दीर्घायुपुत्र को प्राप्त करती है ।।४७।। जिसके घर में नित्य ही श्रीदेवीभागवत के पुस्तक की पूजा होती है, वह घर तीर्थ के समान हो जाता है और उसमें रहने वालों के पाप को विनष्ट कर देता है ।।४८।। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशी के दिन इस पुराण का पाठ या श्रवण करता है, वह सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है ।।४९।। इस पुराण को पढ़ने वाला ब्राह्मण वेदज्ञों में श्रेष्ठ हो जाता है, क्षत्रिय पृथिवीपति हो जाता है । इसका पाठ करने वाले वैश्य के धन की समृद्धि होती है और शूद्र इसका श्रवण करके अपने वंश में उत्तम हो जाता है ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत माहात्म्य के पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

द्वितीयोऽध्याय:

ऋषय: ऊचु– वसुदेवो महाभाग: कथं पुत्रमवाप्तवान् । प्रसेन: कुत्र कृष्णेन भ्रमताऽन्वेषित: कथम् ॥१॥ विधिना केन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम् । वसुदेवेन सुमते वद सूत कथामिमाम् ॥२॥ सूत उवाच– सत्राजिद्भोजवंशीयो द्वारवत्यां सुखं वसन् । सूर्यस्याराधने युक्तो भक्तश्च परम: सखा ॥३॥ अथ कालेन कियता प्रसन्न: सविताऽभवत् । स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेन च ॥४॥ तस्मै प्रीतश्च भगवान् स्यमन्तकमणिं ददौ । स तं विभ्रन् मणिं कण्ठे द्वारकामाजगाम ह ॥५॥ दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रांता मत्वाऽऽदित्यं पुरौकस: । कृष्णमूचु: समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम् ॥६॥ एष आयाति सविता दिदृक्षुस्त्वां जगत्पते । श्रुत्वा कृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाच संसदि ॥७॥ सविता नैष भो बाला: सत्राजिन्मणिना ज्वलन् । स्यमन्तकेन चायाति भास्वद्दत्तेन भास्वता ॥८॥ अथ विप्रान् समाहूय स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । प्रावेशयत् समभ्यर्च्य सत्राजित्स्वगृहे मणिम् ॥९॥ न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयं क्वचित् । यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णद: ॥१०॥ अथ सत्राजितो भ्राता

स्यमन्तकमणि का पता लगाने के लिए गये हुए श्रीकृष्ण के आने के लिए वसुदेवजी का देवीभागवत को सुनना

ऋषियों ने पूछा– वसुदेव जी ने कैसे अपने पुत्र को प्राप्त किया ? भ्रमण करते हुए श्रीकृष्ण ने कहाँ पर प्रसेनजित का अन्वेषण किया ?॥१॥ हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप इस कथा को सुनाइये कि वसुदेवजी ने किससे और किस विधि से इस कथा को सुना ?॥२॥ **सूतजी ने कहा–** भोजवंशीय सत्राजित द्वारका में सुखपूर्वक निवास करते थे, वे सूर्य की आराधना करते थे और सूर्य के भक्त तथा मित्र थे ॥३॥ कुछ समय के बाद सूर्य प्रसन्न हो गये और सत्राजित की भक्ति तथा प्रेम से प्रसन्न होकर उन्हें अपने लोक का दर्शन कराये ॥४॥ प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने सत्राजित को स्यमन्तक मणि प्रदान किया । उस मणि को अपने गले में धारण करके सत्राजित द्वारका आये ॥५॥ उनको देखकर भ्रान्त नागरिकों ने उन्हें सूर्य मानकर सुधर्मा सभा में बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कहा कि आपको देखने के लिए ये सूर्य आ रहे हैं। उस बात को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने हँसकर सभा में कहा ॥६-७॥ लोगों! ये सूर्य नहीं हैं, सूर्य के द्वारा प्रदत्त स्यमन्तक मणि से प्रकाशित होते हुए सत्राजित आ रहे हैं ॥८॥ इसके पश्चात् सत्राजित ने ब्राह्मणों को बुलाकर स्वस्ति वाचन कराकर स्यमन्तक मणि को अपने घर में रखा ॥९॥ प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देने वाली वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ पर कभी भी मारी, दुर्भिक्ष अथवा किसी प्रकार के उपसर्ग का भय नहीं होता था ॥१०॥ एक दिन सत्राजित का छोटा भाई प्रसेनजित अपने गले में मणि धारण करके

प्रसेनो नाम कर्हिचित् । कण्ठे बद्ध्वा मणिं सद्यो हयमारुह्य सैन्धवम् ॥११॥ मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः । प्रसेनं सहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम् ॥१२॥ जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम् । हत्वा च तु बिलद्वारि मणिं जग्राह वीर्यवान् ॥१३॥ स तं मणिं स्वपुत्राय क्रीडनार्थमदात् प्रभुः । अथ चिक्रीड बालोऽपि मणिं सम्प्राप्य भास्वरम् ॥१४॥ प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित्पर्यतप्यत । न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता ॥१५॥ अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत् । कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनो मणिलिप्सुना ॥१६॥ स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशो लिप्तमात्मनि । मार्ष्टुं तत्तस्य पदवीं पुरौकोभिः सहागमत् ॥१७॥ गत्वा स विपिनेऽपश्यत् प्रसेनं हरिणा हतम् । ययौ मृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्द्वङ्किताध्वना॥१८॥ अथ कृष्णो हतं सिंहं बिलद्वारि तिलोक्य च । उवाच भगवान् वाचं कृपया पुरवासिनः ॥१९॥ तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम । प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये ॥२०॥ तथेत्युक्त्वा तु ते तस्थुस्तत्रैव द्वारकौकसः । जगामान्तर्बिलं कृष्णो यत्र जाम्बवतो गृहम् ॥२१॥ ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णो मणिधरं तदा । हर्तुमैच्छन्मणिं तावद्धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥२२॥ श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट् तदा । युयुधे स्वामिना साकमविश्राममहर्निशम् ॥२३॥ एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः । कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि

तथा सिन्धुदेशीय घोड़े पर सवार होकर आखेट करने के लिए बन में गये । प्रसेनजित को किसी सिंह ने देखा और प्रसेनजित तथा उनके घोड़े को मारकर सिंह ने उस मणि को ले लिया ॥११-१२॥ उसके बाद ऋक्षों के राजा जाम्बवान् ने मणि धारण करने वाले सिंह को देखकर अपनी गुफा के द्वार पर सिंह को मारकर स्वयं उस मणि को ले लिया ॥१३॥ जाम्बवान् ने उस मणि को खेलने के लिए अपने पुत्र को दे दिया । चमकती हुई मणि को प्राप्त करके वह बालक उसी से खेलता था ॥१४॥ प्रसेन के नहीं लौटने पर सत्राजित दुःखी हुए और कहने लगे कि न जाने किसने उस मणि के लिए प्रसेन को मार दिया॥१५॥ इसके बाद नगरी में अफवाह फैल गयी कि मणि चाहने वाले श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मार दिया ॥१६॥ अपने विषय में भगवान् कृष्ण ने भी उस अपयश को सुना और उस अपवाद को दूर करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण नागरिकों के साथ प्रसेन को खोजने गये ॥१७॥ वन में जाकर उन्होंने सिंह के द्वारा मारे गये प्रसेन को देखा। इसके बाद वे खून के बिन्दुओं से अंकित मार्ग से सिंह को खोजने लगे ॥१८॥ उसके बाद कृष्ण ने गुफा के द्वार पर मारे गये सिंह को देखकर नागरिकों से कृपा पूर्वक कहा— मैं जब तक न आऊँ तब तक आप लोग यहीं रहें। मणि का हरण करने वाले को प्राप्त करने के लिए मैं इस गुफा में प्रवेश करता हूँ ॥१९-२०॥ ठीक है, ऐसा कहकर द्वारकावासी वहीं ठहर गये और गुफा के भीतर जहाँ जाम्बवान् का गृह था वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण गये ॥२१॥ कृष्ण ने मणि धारण करने वाले ऋक्षराज के पुत्र को देखा और उसे छीन लेना चाहा कि उठकर धायी चिल्ला पड़ी॥२२॥ धायी की आवाज को सुनकर ऋक्षराज आकर श्रीभगवान् के साथ निरन्तर युद्ध करने लगे ॥२३॥ इस तरह उन दोनों का सत्ताइस दिनों तक घोर युद्ध चला

पुरौकसः ॥२४॥ द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम् । तत्र ते कथायामासुर्वृत्तान्तं सर्वमादितः ॥२५॥ सत्राजितं शपन्तस्ते सर्वे शोकाकुला भृशम् । वसुदेवो महाभागः श्रुत्वा पुत्रस्य तां कथाम् ॥२६॥ मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा । चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम॥२७॥ अथाजगाम भगवान् देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः । उत्थाय तं प्रणम्यासौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत् ॥२८॥ नारदोऽनामयं पृष्ट्वा वसुदेवं महामतिम् । पप्रच्छ च यदुश्रेष्ठं किं चिन्तयसि तद्वद ॥२९॥ वसुदेव उवाच– पुत्रो मेऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु । पौरैः साकं वनं गत्वा निहतं तं तदैक्षत॥३०॥ प्रसेनघातकं दृष्ट्वा बिलद्वारे मृतं हरिम् । द्वारि पौरानधिष्ठाय बिलान्तर्गतवान् स्वयम् ॥३१॥ बहवो दिवसा याता नायात्यद्यापि मे सुतः । अतः शोचामि तद्ब्रूहि येन लप्स्ये सुतं मुने ॥३२॥ नारद उवाच– पुत्रप्राप्त्यै यदुश्रेष्ठ देवीमाराधयाम्बिकाम् । तस्या आराधनेनैव सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥३३॥ वसुदेव उवाच– भगवान् का हि सा देवी किंप्रभावा महेश्वरी । कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद ॥३४॥ नारद उवाच– वसुदेव महाभाग शृणु संक्षेपतो मम । देव्या माहात्म्यमतुलं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः ॥३५॥ या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी । परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत् ॥३६॥ यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम् । यां च स्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद्भयात् ॥३७॥

और द्वारकावासी कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा गुफा के द्वार पर करते रहे ॥२४॥ बारहवें दिन वे सब डरकर अपने घर लौट गये और वहाँ पर उन सबों ने शुरु से सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥२४-२५॥ सत्राजित की निन्दा करते हुए वे सब शोकाकुल हो गये और वसुदेव जी अपने पुत्र का यह समाचार सुनकर सपरिवार शोक सन्तप्त होकर मूर्छित हो गये और अनेक प्रकार से सोचने लगे कि मेरा कल्याण कैसे होगा ?॥२६-२७॥ उसी समय ब्रह्मलोक से देवर्षि नारद आये, उन्हें देखकर वसुदेव जी उठकर उनकी पूजा किए ॥२८॥ महाज्ञानी वसुदेव जी से कुशल-प्रश्न करने के बाद नारद जी ने उनसे पूछा आप किस बात की चिन्ता कर रहे हैं ॥२९॥ **वसुदेवजी ने कहा–** मेरा प्रिय पुत्र प्रसेन को खोजने के लिए नागरिकों के साथ वन जाकर उसे मरा हुआ देखा॥३०॥ प्रसेन को मारने वाले सिंह को गुफा के द्वार पर मरा देखकर नागरिकों को गुफा के द्वार पर छोड़कर स्वयं वह गुफा में चला गया ॥३१॥ बहुत दिन बीत गये किन्तु अब भी मेरा पुत्र नहीं आया। अतएव उसे पुनः प्राप्त करने का उपाय आप मुझे बतलाएँ ॥३२॥ **नारदजी ने कहा–** हे यदुश्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करने के लिए आप अम्बिका देवी की आराधना करें । उनकी आराधना करने मात्र से आप शीघ्र कल्याण प्राप्त करेंगे ॥३३॥ **वसुदेवजी ने कहा–** हे भगवन्! वे देवी कौन हैं ? उन महेश्वरी का प्रभाव कैसा है ? उनकी आराधना कैसे की जाती है ? देवर्षे ! आप कृपा करके मुझे बतलाएँ ॥३४॥ **नारदजी ने कहा–** महाभाग सुनें ! मैं उसे संक्षेप में बतला रहा हूँ । देवी का प्रभाव अतुलनीय है, उसे विस्तार पूर्वक कौन कह सकता है ?॥३५॥ जो भगवती नित्य, सच्चिदानन्द स्वरूप सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा जिन से यह सारा जगत् व्याप्त है ॥३६॥ उनकी ही आराधना करके ब्रह्माजी इस चराचर जगत् की सृष्टि

विष्णुर्यत्कृपया विश्वं बिभर्ति भगवानिदम् । रुद्रः संहरते यस्याः कृपापाङ्गनिरीक्षणात् ॥३८॥ संसारबन्धहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी । सा विद्या परमा देवी सैव सर्वेश्वरीश्वरी ॥३९॥ नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम् । नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं शृणु ॥४०॥ यस्य श्रवणमात्रेण सद्यः पुत्रमवाप्स्यसि । भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥४१॥ इत्युक्तो नारदेनासौ वसुदेवः प्रणम्य तम् । उवाच परया प्रीत्या नारदं सुनिसत्तमम् ॥४२॥ वसुदेव उवाच– **भगवंस्तव वाक्येन संस्मृतं वृत्तमात्मनः । श्रूयतां तच्च वक्ष्यामि देवीमाहात्म्यसम्भवम् ॥४३॥ पुरा नभोगिरा कंसो देवक्यष्टमगर्भतः । ज्ञात्वाऽऽत्ममृत्युं पापो मां सभायां न्यरुणद्भिया ॥४४॥ कारागारेऽहमवसं देवक्या सह भार्यया । जातं जातं समवधीत् पुत्रं कंसोऽपि पापकृत् ॥४५॥ षट् पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम् । अतप्यद्देवकी देवी नक्तन्दिवमनिन्दिता ॥४६॥ तदाऽहं गर्गमाहूय मुनिं नत्वाऽभिपूज्य च । निवेद्य देवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया ॥४७॥ भगवन् करुणासिन्धो यादवानां गुरुर्भवान् । आयुष्मत्पुत्रसम्प्राप्तिसाधनं वद मे मुने ॥४८॥ ततो गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः ।** गर्ग उवाच– **वसुदेव महाभाग शृणु तत्साधनं परम्॥४९॥**

करते हैं । जिनकी स्तुति करके भगवान् विष्णु मधु एवं कैटभ के भय से छुटकारा पाये और संसार का वे पालन करते हैं । जिनकी कृपा दृष्टि को ही प्राप्त करके शंकरजी संहार करते हैं ॥३८॥ जो संसार का बन्धन तथा उससे मुक्ति दिलाने वाली हैं, वे ही परमा विद्या और परमेश्वरी हैं ॥३९॥ जगदम्बिका की नवरात्र विधि से पूजा करके नव दिनों में देवीभागवत पुराण को आप सुनें ॥४०॥ उसको सुनने मात्र से आप शीघ्र अपने पुत्र को प्राप्त करेंगे । उसको पढ़ने और सुनने वालों को भोग तथा मोक्ष अवश्य मिलते हैं ॥४१॥ इस प्रकार से नारदजी से कहे जाने पर वसुदेवजी ने प्रणाम करके उन मुनिश्रेष्ठ से प्रेमपूर्वक कहा ॥४२॥ **वसुदेवजी ने कहा–** भगवन् ! आपकी बातों को सुनने से मुझे अपने विषय में बात याद आयी है । मैं उसे कह रहा हूँ उसे आप सुनें– जो देवी के माहात्म्य से संबद्ध है ॥४३॥ एक बार आकाशवाणी को सुनकर और देवकी के आठवें गर्भ से अपनी मृत्यु को जानकर भय के मारे कंस मुझे कारागार में डाल दिया ॥४४॥ मैं अपनी पत्नी के साथ कारागार में रह रहा था और पापी कंस भी उत्पन्न होने वाले सभी पुत्रों को मार देता था ॥४५॥ जब कंस ने देवकी के छह पुत्रों को मार दिया तो साध्वी देवकी देवी अत्यन्त दुःखी हुईं ॥४६॥ उस समय गर्ग महर्षि को बुलाकर, उन्हें प्रणाम करके और उनकी पूजा करके पुत्रप्राप्ति की कामना से मैंने देवकी देवी के कष्ट को बतलाया ॥४७॥ हे करुणासिन्धु भगवन् ! आप यादवों के गुरु हैं, अतएव आप मुझे आयुष्मान पुत्र को प्राप्त करने का साधन बतलायें ॥४८॥ तब दयासागर गर्ग ने प्रसन्न होकर मुझे कहा– **महर्षि गर्ग ने कहा–** महाभाग वसुदेव ! आप उस श्रेष्ठ साधन को सुनें ॥४९॥ जो भक्तों की दुर्गति को दूर करने वाली भगवती दुर्गा हैं । आप उन्हीं कल्याणी की आराधना करें आपका शीघ्र कल्याण

या सा भगवती दुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी । तामाराधय कल्याणीं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥५०॥ यदाराधनतः सर्वे सर्वान् कामानवाप्नुयुः । न किञ्चिद्दुर्लभं लोके दुर्गार्चनवतां नृणाम् ॥५१॥ इत्युक्तोऽहं मुदा युक्तः सभार्यो मुनिपुङ्गवम् । प्रणम्य परया भक्त्या प्रावोचं विहिताञ्जलिः ॥५२॥ वसुदेव उवाच– यद्यस्ति भगवन् प्रीतिर्मयि ते करुणानिधे । तदा पुरो मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम् ॥५३॥ निरुद्धः कंसगेहेऽहं न किञ्चित्कर्तुमुत्सहे । अतस्त्वमेव दुःखाब्धेर्मामुद्धर महामते ॥५४॥ इत्युक्तस्तु मया प्रीतः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । वसुदेव तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव ॥५५। अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया सम्प्रार्थितोऽगमत् । आरिराधयिषुर्दुर्गां विन्ध्याद्रिं ब्राह्मणैः सह ॥५६॥ तत्र गत्वा जगद्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम्। आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः ॥५७॥ ततः समाप्ते नियमे वागुवाचाशरीरिणी । प्रसन्नाऽहं मुने कार्यसिद्धिस्तव भविष्यति ॥५८॥ भूभारहरणार्थाय मया सम्प्रेरितो हरिः । वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनावतरिष्यति ॥५९॥ कंसभीत्या तमादाय बालमानकदुन्दुभिः प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि ॥६०॥ यशोदातनयां नीत्वा स्वगृहे कंसभूभुजे । दास्यत्यथ च तां हन्तुं कंस आक्षेप्स्यति क्षितौ ॥६१॥ सा तद्धस्ताद्विनिर्गत्य सद्यो दिव्यवपुर्धरा । मदंशभूता विन्ध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम् ॥६२॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य जगदम्बिकाम् । गर्गो मुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामगमत्

होगा ॥५०॥ उनकी ही आराधना से सब लोग अपने अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करते हैं । दुर्गा की आराधना करने वाले मनुष्यों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥५१॥ इस तरह से मुनि के द्वारा कहे जाने पर अपनी पत्नी के साथ गर्ग महर्षि को प्रणाम करके मैंने हाथ जोड़कर कहा ॥५२॥ **वसुदेवजी ने कहा–** हे करुणासागर ! यदि आपका मुझपर प्रेम है तो आप मेरे लिए ही चण्डिका की आराधना करें ॥५३॥ मैं तो कंस के घर में बन्द हूँ; अतः कुछ भी नहीं कर सकता हूँ । अतएव हे महामते ! आप ही मेरा दुःखसागर से उद्धार करें ॥५४॥ इस प्रकार से कहे जाने पर प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा– वसुदेव जी आपकी प्रसन्नता के लिए मैं आपका कल्याण कार्य करूँगा ॥५५॥ इसके बाद मेरे द्वारा प्रार्थना किए जाने पर गर्ग महर्षि प्रेमपूर्वक ब्राह्मणों के साथ विन्ध्य पर्वत पर दुर्गा जी की आराधना करने की इच्छा से गये ॥५६॥ वहाँ जाकर भक्तों को अभीष्ट फल देने वाली जगन्माता की जप तथा पाठ करके आराधना किए ॥५७॥ उसके बाद नियम समाप्त हो जाने पर आकाशवाणी ने कहा मुने ! मैं प्रसन्न हूँ आपका कार्य सिद्ध होगा ॥५८॥ पृथिवी का भार उतारने के लिए मैंने श्रीहरि को प्रेरित किया है । वे माता देवकी के गर्भ से वसुदेव जी के पुत्र के रूप में अवतार लेंगे ॥५९॥ कंस के भय से उस बालक को लेकर वसुदेव जी शीघ्र ही उसे गोकुल में नन्द जी के घर पहुँचा देंगे ॥६०॥ यशोदा की पुत्री को अपने घर लाकर वे राजा कंस को देंगे और कंस उस बालिका को मारने के लिए पृथिवी पर पटक देगा ॥६१॥ मेरे अंशस्वरूप वह बालिका उसके हाथ से छूटकर सद्यः दिव्य शरीर धारण करके विन्ध्य

**पुरीम् ॥६३॥ वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम् । श्रुत्वा सभार्यः सम्प्रीतः परां मुदमथागमम् ॥६४॥ तदारभ्य परं जाने देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
अधुनाऽपि हि देवर्षे श्रुतं तव मुखाम्बुजात् ॥६५॥ अतो भागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावय प्रभो । मद्भाग्यादेव देवर्षे सम्प्राप्तोऽसि दयानिधे ॥६६॥
वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः । सुदिने शुभनक्षत्रे कथारम्भमथाकरोत् ॥६७॥ कथाविघ्नविघातार्थं द्विजा जेपुर्नवाक्षरम् । मार्कण्डेयपुराणोक्तं
पेठुर्देव्याः स्तवं तथा ॥६८॥ प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम् । प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम् । शुश्राव वसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम्॥६९॥
नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा । प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः ॥७०॥ अथ तत्र बिलस्यान्तः कृष्णजाम्बवतोर्मृधे ।
कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथाङ्गो जाम्बवानभूत् ॥७१॥ अथागतस्मृतिः सोऽपि भगवन्तं प्रणम्य च । उवाच परया भक्त्या स्वापराधं क्षमापयन्॥७२॥
ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यद्रोषात्सरितां पतिः । क्षोभं जगाम लङ्का च रावणः सानुगो हतः ॥७३॥ स एवासि भवान् कृष्ण मद्दौरात्म्यं क्षमस्व भोः।
ब्रूहि यत्करणीयं मे भृत्योऽहं तव सर्वथा ॥७४॥ श्रुत्वा जाम्बवतो वाचमब्रवीज्जगदीश्वरः । मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥७५॥
ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम् । ददौ कृष्णाय सम्पूज्य स्यमन्तकमणिं तथा ॥७६॥ स तां पत्नीं समादाय मणिं कण्ठे तथा दधत्।**

पर्वत पर रहकर जगत् का कल्याण करेगी ॥६२॥ इस तरह से उस आकाशवाणी को सुनकर गर्ग मुनि उसे प्रणाम करके मथुरापुरी आये ॥६३॥ गर्ग महर्षि
के मुख से देवी के वरदान को सुनकर मैं अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥६४॥ उसी समय से मैं देवी के उत्तम माहात्म्य को जानता हूँ और
हे देवर्षे ! इस समय आपके भी मुख से सुन लिया है ॥६५॥ अतएव आप ही मुझे देवी के माहात्म्य को सुनायें । हे दयानिधे देवर्षे ! आप मेरे भाग्य
से ही यहाँ पधारे हैं ॥६६॥ वसुदेव जी की वाणी सुनकर प्रसन्नमना देवर्षि ने शुभदिन तथा शुभ नक्षत्र में कथा प्रारम्भ किया ॥६७॥ कथा में संभावित विघ्न
को दूर करने के लिए ब्राह्मणों ने नवाक्षरी मन्त्र का जप किया तथा मार्कण्डेय पुराण के देवी सूक्त का पाठ किया ॥६८॥ नारदजी के मुख से वसुदेवजी
ने भक्तिपूर्वक भागवतामृत का श्रवण किया ॥६९॥ नवें दिन कथा की पूर्ति होने पर महामना वसुदेव जी ने कथावाचक तथा पुस्तक की पूजा की ॥७०॥
गुफा के भीतर श्रीकृष्ण और जाम्बवान् के युद्ध में कृष्ण की मुष्टि के प्रहार से जाम्बवान् के अङ्ग शिथिल हो गये ॥७१॥ इसके बाद स्मरण होते ही भगवान्
को प्रणाम करके उनसे क्षमा प्रार्थना करते हुए **जाम्बवान् ने कहा–** भगवन् मैंने जान लिया है कि आप वही श्रीराम हैं जिनके कोप से समुद्र में हलचल पैदा
हो गया और अपने अनुयायियों के साथ रावण मारा गया ॥७३॥ आप वही कृष्ण हैं, आप मेरी दुष्टता को क्षमा करें । आप अपनी सेवा बतलाएँ मैं आपका
दास हूँ ॥७४॥ जाम्बवान् की बात को सुनकर **श्रीभगवान् ने कहा–** हे ऋक्षपते ! हम आपकी गुफा में मणि के लिए आये हैं ॥७५॥ उसके

अभिमन्त्र्यर्क्षराजञ्च प्रतस्थे द्वारकां प्रति ॥७७॥ कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः । ब्राह्मणान् भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत् ॥७८॥ आशीर्वाचं प्रयुञ्जाना द्विजा यत्समये हरिः । आजगाम क्षणे तस्मिन् पत्न्या सह मणिं दधन् ॥७९॥ भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः । दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षाः समवापुः परां मुदम् ॥८०॥ देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः । आमन्त्र्य वसुदेवं च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ ॥८१॥ हरिचरितमिदं यत्कीर्तितं दुर्यशोघ्नं पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तः शृणोति । स भवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो जगति च वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च॥८२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच– **अथेतिहाससमन्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः । देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते ॥१॥ एकदा कुम्भयोनिस्तु लोपामुद्रापतिर्मुनिः ।**

बाद जाम्बवान् ने भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करके उन्हें अपनी कन्या जाम्बवती तथा मणि को प्रदान किया ॥ ७६॥ भगवान् भी अपनी उस पत्नी को लेकर और गले में मणि को धारण करके ऋक्षराज से अनुमति लेकर द्वारका के लिए प्रस्थान किए ।।७७।। कथा की समाप्ति के दिन उदार बुद्धि वाले वसुदेव जी ने ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा से सन्तुष्ट किया ।।७८।। जिस समय ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे उसी समय श्रीहरि मणि को धारण किए हुए अपनी पत्नी के साथ आ गये ।।७९।। पत्नी के साथ श्रीकृष्ण को देखकर वसुदेव आदि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी आँखों में हर्ष के आँसू भर गये ।।८०।। इसके बाद नारदजी भी कृष्ण के आने से प्रसन्न होकर भगवान् कृष्ण और वसुदेव जी से अनुमति लेकर ब्रह्मसभा में चले गये ।।८१।। श्रीहरि के अपयश को दूर करने वाले इस चरित को शुद्धचित्त से जो श्रवण करता है वह संसार में सुखी रहकर सफल कामना वाला हो जाता है और अन्त में मुक्ति को प्राप्त करता है ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

श्राद्धदेवमनु का वृत्तान्त, सुद्युम्न को स्त्रीत्व की प्राप्ति, देवीभागवत के सुनने से पुनः पुंस्त्व की प्राप्ति

सूतजी ने कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! आप दूसरे इतिहास को सुनें जिसमें देवीभागवत का माहात्म्य वर्णित है ।।१।। एक बार लोपामुद्रा के पति अगस्त्य

गत्वा कुमारमभ्यर्च्य प्रपच्छ विविधाः कथाः ॥२॥ स तस्मै भगवान् स्कन्दः कथयामास भूरिशः । दानतीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथाः॥३॥ वाराणस्याश्च माहात्म्यं मणिकर्णीभवं तथा । गङ्गायाश्चापि तीर्थानां वर्णितं बहुविस्तरम् ॥४॥ श्रुत्वाऽथ स मुनिः प्रीतः कुमारं भूरिवर्चसम् । पुनः पप्रच्छ लोकानां हितार्थं कुम्भसम्भवः ॥५॥ अगस्त्य उवाच– भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु । माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो ॥६॥ देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम् । त्रैलोक्यजननी साक्षाद्गीयते यत्र शाश्वती ॥७॥ स्कन्द उवाच– श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः । शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन् कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥८॥ या नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका । साक्षात् समाश्रिता यत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥९॥ अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवते मुने । पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किञ्चिदिह दुर्लभम् ॥१०॥ आसीद्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः । सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वसिष्ठानुमतो नृपः ॥११॥ होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाऽथ दयिता मनोः । कन्या भवतु मे ब्रह्मंस्तथोपायो विधीयताम् ॥१२॥ मनसा चिन्तयन्होता कन्यामेवाजुहोद्धविः । ततस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम चाभवत् ॥१३॥ अथ राजा सुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमना गुरुम् । कथं संकल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा स मुनिर्दध्यौ ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम् । ईश्वरं शरणं यात इलायाः

महर्षि कार्तिकेय जी के पास जाकर उनसे अनेक शुभ कथाओं के विषय में पूछे ॥२॥ भगवान स्कन्द ने भी दान, तीर्थ तथा व्रत आदि के माहात्म्य से पूर्ण कथाओं को सुनाया ॥३॥ मणिकर्णिका से संबद्ध वाराणसी के माहात्म्य तथा गंगा के बहुत से तीर्थों का माहात्म्य विस्तार के साथ कहा ॥४॥ इन कथाओं को सुनकर अगस्त्य महर्षि बहुत प्रसन्न हुए तथा लोककल्याण की भावना से अत्यन्त तेजस्वी स्कन्द जी से कहा ॥५॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा–** हे तारकाराते! आप देवीभागवत के माहात्म्य तथा उसके सुनने की विधि को हमें बतलाएँ ॥६॥ अत्यन्त उत्तम देवीभागवत पुराण में साक्षात् त्रैलोक्य माता का वर्णन किया गया है ॥७॥ **स्कन्दजी ने कहा–** देवी भागवत के माहात्म्य का विस्तार से वर्णन कौन कर सकता है ? इस समय उसका मैं संक्षेप में वर्णन करूँगा ॥८॥ वह सच्चिदानन्द स्वरूपिणी, भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली जगदम्बिका का वर्णन है ॥९॥ हे मुने ! देवी भागवत देवी की वाङ्मयी मूर्ति है उसका पाठ करने और श्रवण करने से मनुष्य को इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है ॥१०॥ विवस्वान् के पुत्र राजा श्राद्धदेव थे । उन्होंने महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से इष्टि (यज्ञ) किया ॥११॥ उनकी पत्नी श्रद्धा ने होता से प्रर्थना किया कि आप ऐसा उपाय करें कि मुझे पुत्री हो ॥१२॥ होता ने भी मन से कन्या का ध्यान करते हुए हविष्य का होम किया । उसी के कारण इला नाम की कन्या पैदा हुई ॥१३॥ पुत्री को देखकर उदास होकर राजा ने **वसिष्ठ महर्षि से कहा–** भगवन् आपके संकल्प के विपरीत यह कैसे हो गया ?॥१४॥ यह सुनकर महर्षि ने ध्यान करके होता के व्यतिक्रम को जान लिया और

**पुंस्त्वकाम्यया ॥१५॥ मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा । पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुषतामगात् ॥१६॥ गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथ
मनोः सुतः । निधिर्बभूव विद्यानां सरितामिव सागरः ॥१७॥ अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च । मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य
सैन्धवम्॥१८॥ वनाद्वनान्तरं गच्छन्बहु बभ्राम सानुगः । दैवादधस्ताद्धेमाद्रेः स कुमारो वनं ययौ ॥१९॥ कस्मिंश्चित्समये यत्र भार्ययाऽपर्णया सह।
अरमद्देवदेवस्तु शङ्करो भगवान्मुदा ॥२०॥ तदा तु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः । आजग्मुरथ तान्दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताऽभवत् ॥२१॥
रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशौ संशितव्रताः । निवृत्ता मुनयो जग्मुर्वैकुण्ठनिलयं तदा ॥२२॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह।
अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान्योषिद्भवेदिति ॥२३॥ तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयंति हि । तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा ॥२४॥
स्त्रीभूतानुगानश्वं बडवां वीक्ष्य विस्मितः । अथ सा सुन्दरी योषा विचचार वने वने ॥२५॥ एकदा सा जगामाथ बुधस्याश्रमसन्निधौ । दृष्ट्वा तां
चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥२६॥ बिम्बोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम् । अनंगशरविद्धांगश्चकमे भगवान्बुधः ॥२७॥ साऽपि तं चकमे**

कन्या को पुत्र बनाने की इच्छा से उन्होंने परमात्मा की आराधना की ॥१५॥ मुनि की तपस्या के प्रभाव से और परमात्मा की कृपा से सबों के देखते ही
देखते इला पुरुष हो गयी ॥१६॥ मनु के उस पुत्र का संस्कार करके गुरु वसिष्ठ ने उसका नाम सुद्युम्न रखा । नदियों के आश्रय सागर के समान वह सभी
विद्याओं का आश्रय बन गया ॥१७॥ युवक होने पर सुद्युम्न एक बार घोड़े पर चढ़कर आखेट करने के लिए वन में गया ॥१८॥ वह अपने अनुचरों के
साथ अनेक बनों में घूमता हुआ हिमालय के उस वन में चला गया; जहाँ पर किसी समय अपनी पत्नी पार्वती के साथ भगवान् शङ्कर जब रमण कर रहे
थे; उसी समय भगवान् शङ्कर का दर्शन करने की इच्छा से ऋषिगण आये और उन ऋषियों को देखकर पार्वतीजी लज्जित हो गयीं ॥१९-२१॥ पार्वती
और शङ्करजी को रमण करते हुए देखकर ऋषिगण लौट गये और वैकुण्ठलोक में चले गये ॥२२॥ अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए भगवान् शङ्कर
ने शाप दे दिया कि आज से जो कोई भी इस वन में आयेगा वह स्त्री हो जायेगा ॥२३॥ उसी समय से कोई भी पुरुष उस वन में नहीं जाता था । उस
वन में प्रवेश करके सुद्युम्न सुन्दर स्त्री हो गया ॥२४॥ उसके सभी अनुचर स्त्री हो गये और उनके घोड़े घोड़ियाँ हो गयीं । इसके बाद वह सुन्दरी वन
में विचरण करने लगी ॥२५॥ एक बार वह ऋषि बुध के आश्रम के सन्निकट गयी । उसके सभी अङ्ग सुन्दर थे, स्तन ऊँचे थे, उसके ओष्ठ बिम्बफल
के समान और दाँत कुन्दपंक्ति के समान थे । उसका मुख सुन्दर था और नेत्र नीलकमल के समान थे । उसको देखकर बुध काम के बाणों से पीड़ित
होकर उसको प्राप्त करना चाहे ॥२६-२७॥ उस सुन्दरी ने भी सोमनंदन बुध को पति के रूप में चाहा । उसके बाद बुध के साथ रमण करती हुई वह

सुभ्रूः कुमारं सोमनन्दनम् । ततस्तस्याश्रमेऽवात्सीद्रममाणा बुधेन सा ॥२८॥ अथ कालेन कियता पुरूरवसमात्मजम् । स तस्यां जनयामास
मित्रावरुणसम्भव ॥२९॥ अथ वर्षेषु यातेषु कदाचित्सा बुधाश्रमे । स्मृत्वा स्वं पूर्ववृत्तान्तं दुःखिता निर्जगाम ह ॥३०॥ गुरोरथाश्रमं गत्वा
वसिष्ठस्य प्रणम्य तम् । निवेद्य वृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती ॥३१॥ वसिष्ठो ज्ञातवृत्तान्तो गत्वा कैलासपर्वतम् । संपूज्य शंभुं तुष्टाव भक्त्या
परमया युतः ॥३२॥ वसिष्ठ उवाच– **नमो नमः शिवायास्तु शङ्कराय कपर्दिने । गिरिजार्द्धाङ्गदेहाय नमस्ते चन्द्रमौलये ॥३३॥ मृडाय सुखदात्रे**
ते नमः कैलासवासिने । नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिक्तिप्रदायिने ॥३४॥ शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे । नमो वृषभवाहाय शरण्याय
परात्मने ॥३५॥ ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च । नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये ॥३६॥ यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः ।
गङ्गाधराय सर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः ॥३७॥ एवं स्तुतः स भगवान्प्रादुरासीज्जगत्पतिः । वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥३८॥
रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चंद्रशेखरः । प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥३९॥ श्रीभगवानुवाच– **वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते ।**

उसी आश्रम में रहने लगी ॥२८॥ कुछ समय के बाद उसके गर्भ से बुध के पुत्र पुरुरवा उत्पन्न हुए ॥२९॥ बुध के आश्रम में कुछ वर्ष बीत जाने पर
उसने अपने पूर्वभाव का स्मरण किया और दुःखी होकर वह उस आश्रम से निकल गयी ॥३०॥ उसके बाद गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाकर उसने उन्हें
प्रणाम करके पुनः पुंस्त्व प्राप्त करने की इच्छा से महर्षि वसिष्ठ की शरणागति की ॥३१॥ सारा वृत्तान्त जानकर वसिष्ठ जी कैलास पर्वत पर जाकर
भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर की स्तुति करने लगे ॥३२॥ **वसिष्ठजी ने कहा–** भगवान शिव को नमस्कार है, शङ्कर को नमस्कार है, कपर्दी को नमस्कार है,
अर्द्धनारीश्वर को नमस्कार है, चन्द्रमौलि को नमस्कार है ॥३३॥ कैलासवासी तथा सुख प्रदान करने वाले मृड को नमस्कार है । भक्तों को भोग तथा मोक्ष
प्रदान करने वाले नीलकण्ठ को नमस्कार है ॥३४॥ शरणागतों के भय को दूर करने वाले कल्याणकारी शिवजी को नमस्कार है। वृषभवाहन तथा रक्षक
परमात्मा शिव को नमस्कार है ॥३५॥ सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय काल में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप को धारण करने वाले वर प्रदान करने वाले
देवाधिदेव पुरारि को नमस्कार है ॥३६॥ यज्ञ करने वालों को फल प्रदान करने वाले यज्ञस्वरूप को बारम्बार नमस्कार है । सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि जिनके
नेत्र हैं ऐसे गङ्गाधर को नमस्कार है ॥३७॥ इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर जगत् के स्वामी शङ्करजी प्रकट हो गये। उस समय वे पार्वतीजी के साथ
बैल पर सवार थे और उनकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान थी ॥३८॥ उनका शरीर चाँदी के पर्वत के समान देदीप्यमान था, वे तीन नेत्र वाले और चन्द्रमा
को धारण किए हुए थे। शरणागत मुनिश्रेष्ठ से प्रसन्न होकर वे कहे ॥३९॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे विप्रवर्य ! आपके मन में जो हो वह वरदान माँगिये।

इत्युक्तस्तं प्रणम्येला पुंस्त्वमभ्यर्थयन्मुनिः ॥४०॥ अथ प्रसन्नो भगवानुवाच मुनिसत्तमम् । मासं पुमान्स भविता मासं नारी भविष्यति ॥४१॥ इति प्राप्य वरं शंभोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम् । वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम महेश्वरीम् ॥४२॥ कोटिचन्द्रकलाकान्तिं सुस्मितां परिपूज्य च । तुष्टाव भक्त्या सततमिलाया पुंस्त्वकाम्यया ॥४३॥ जय देवि महादेवि भक्तानुग्रहकारिणी । जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये ॥४४॥ नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले । जय दुर्गे दुःखहंत्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि ॥४५॥ भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके । संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे॥४६॥ ब्रह्मादयोऽपि बिबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया । विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः ॥४७॥ प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि। कस्त्वां स्तोतुं क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥४८॥ एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा। भक्त्या वसिष्ठमुनिना प्रसन्ना तत्क्षणादभूत् ॥४९॥ तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम् । सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम् ॥५०॥ सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियंकरम् । देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम ॥५१॥ श्रवणादेव सततं पुंस्त्वमस्य भविष्यति । इत्युक्त्वा च तिरोधानं गच्छतः स्म शिवेश्वरौ ॥५२॥ वसिष्ठस्तां दिशं नत्वा

यह सुनकर मुनि ने शङ्करजी को प्रणाम करके इला के पुरुष होने का वरदान माँगा ॥४०॥ प्रसन्न होकर शङ्करजी ने कहा कि वह एक मास पुरुष रहेगी और एकमास नारी रहेगी ॥४१॥ शङ्करजी के इस वरदान को प्राप्त करके महर्षि ने वरदानोन्मुखी महेश्वरी जगदम्बिका को प्रणाम किया ॥४२॥ जगदम्बिका की कान्ति करोड़ों चन्द्रमा की कला के समान थी, वे मुस्कुरा रही थीं । उनकी पूजा करके इला को पुंस्त्व प्राप्त करने की कामना से महर्षि ने भक्तिपूर्वक प्रार्थना की ॥४३॥ हे भक्तों पर कृपा करने वाली महादेवि आपकी जय हो । हे सभी देवताओं के आराध्य तथा अनन्त गुणों के आश्रय आपकी जय हो॥४४॥ हे शरणागत वत्सले देवेशि ! आपको बारम्बार नमस्कार है । हे दुष्ट दैत्यों को मारने वाली तथा दुःखों को दूर करने वाली दुर्गे ! आपकी जय हो ॥४५॥ हे महामाये जगदम्बिके ! आप भक्ति से ही जानने योग्य हैं । आपके चरणकमल संसारसागर से पार होने के लिए नौका के समान हैं ॥४६॥ ब्रह्मा आदि देवता भी आपके चरण कमलों की सेवा करके ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने में समर्थ हुए हैं ॥४७॥ हे चार पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली देवि ! आप प्रसन्न होएँ । हे देवि ! आपकी स्तुति कौन कर सकता है मैं तो केवल शरणागत हूँ ॥४८॥ वसिष्ठ महर्षि से इस प्रकार स्तुति किए जाने पर पराम्बा, नारायणी भगवती दुर्गा उसी क्षण प्रसन्न हो गयीं ॥४९॥ शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाली देवी ने मुनि से कहा, आप सुद्युम्न के घर जाकर मेरी भक्तिपूर्वक पूजा करें ॥५०॥ और मुझको प्रसन्न करने वाले देवीभागवत पुराण को नव दिनों में सुद्युम्न को सुनाएँ ॥५१॥ उसके सुनने मात्र से सुद्युम्न को निरन्तर पुंस्त्व प्राप्त हो जायेगा । इस तरह से कहकर शङ्करजी तथा पार्वतीजी दोनों अन्तर्धान हो गये ॥५२॥ वसिष्ठ महर्षि उस दिशा

समागत्याश्रमं निजम् । समाहूय च सुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत् ॥५३॥ आश्विनस्य सिते पक्षे संपूज्य जगदम्बिकाम् । नवरात्रविधानेन श्रावयामास भूपतिम् ॥५४॥ श्रुत्वा भक्त्याऽपि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम् । प्रणम्याभ्यर्च्य च गुरुं लेभे पुंस्त्वं निरंतरम् ॥५५॥ राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा। भुवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरंजयन् ॥५६॥ ईजे च विविधैर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः । पुत्रेषु राज्यं सन्दिश्य प्राप देव्याः सलोकताम् ॥५७॥ इति कथितमशेषं सेतिहासं च विप्रा यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति । स इह सकलकामान्प्राप्य देव्याः प्रसादात्परममृतमथान्ते याति देव्याः सलोकम् ॥५८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच– **इति श्रुत्वा कथां दिव्यां विचित्रां कुम्भसंभवः । शुश्रूषुः पुनराहेदं विशाखं विनयान्वितः ॥१॥** अगस्त्य उवाच– **देवसेनापते**

को नमस्कार करके अपने आश्रम में आये और सुद्युम्न को बुलाकर देवी की आराधना करने का आदेश दिए ॥५३॥ आश्विन महीने के शुक्लपक्ष में जगदम्बिका की पूजा करके नवरात्र की विधि से उस राजा को देवीभागवत सुनाये ॥५४॥ सुद्युम्न ने भी भक्तिपूर्वक देवीभागवत का श्रवण करके देवी को प्रणाम करके पूजन किया तथा निरन्तर पुंस्त्व को प्राप्त कर लिया ॥५५॥ महर्षि वसिष्ठ ने उसे राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त किया और सुद्युम्न ने भी प्रजाओं का अनुरंजन करते हुए पृथिवी का प्रशासन किया ॥५६॥ राजा ने पुष्कल दक्षिणा देकर अनेक यज्ञों को किया और अन्त में अपने पुत्रों को राज्य देकर देवी के लोक को प्राप्त किया ॥५७॥ हे ब्राह्मणों मैंने आप लोगों को इतिहास के साथ देवी का माहात्म्य सुनाया; यदि कोई मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढ़ता और सुनता है, वह देवी की कृपा से इस लोक में सभी अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त करके अन्त में देवी के लोक में चला जाता है ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत माहात्म्य के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

ऋतवाक् मुनि का इतिहास

सूतजी ने कहा– इस तरह से दिव्य तथा विचित्र कथा को सुनकर महर्षि अगस्त्य ने स्कन्दजी से नम्रता पूर्वक कहा ॥१॥ **अगस्त्यजी ने कहा–** हे

देव विचित्रेयं श्रुता कथा । पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे ॥२॥ स्कन्द उवाच– मित्रावरुणसंभूत मुने शृणु कथामिमाम् । यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु ॥३॥ वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च । गायत्र्या महिमा यत्र तद्भागवतमिष्यते ॥४॥ भगवत्या इदं यस्मात्तस्माद्भागवतं विदुः । ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवती हि सा ॥५॥ ऋतवागिति विख्यातो मुनिरासीन्महामतिः । तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे॥६॥ स तस्य जातकर्मादि क्रियाश्चक्रे यथाविधि । चूडोपनयनादींश्च संस्कारानपि सोऽकरोत् ॥७॥ यत आरभ्य जातोऽसौ पुत्रस्तस्य महात्मनः । तत एवाथ स मुनिः शोकरोगाकुलोऽभवत् ॥८॥ रोषलोभपरीतात्मा तथा माताऽपि तस्य च । बहुरोगार्दिता नित्यं शुचा दुःखीकृता भृशम् ॥९॥ ऋतवाक्स मुनिश्चिन्तामवाप भृशदुःखितः । किमेतत्कारणं जातं पुत्रो मेऽत्यंतदुर्मतिः ॥१०॥ कस्यचिन्मुनिपुत्रस्य बलात्पत्नीं जहार च । मेने शिक्षां पितुर्नासौ न च मातुर्विमूढधीः ॥११॥ ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम् । अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता ॥१२॥ पितृन्कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि । यावज्जीवेत्सदा पित्रोः केवलं दुःखदायकः ॥१३॥ पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः । सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम् ॥१४॥ धन्यास्ते मानवा लोके सुपुत्रो यद्गृहे स्थितः । परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः ॥१५॥ कुपुत्रेण कुलं नष्टं

देवताओं के सेनापते ! मैंने यह अद्भुत कथा सुनी । आप देवीभागवत के दूसरे माहात्म्य को बतलाएँ ॥२॥ **स्कन्दजी ने कहा**– हे अगस्त्यजी आप इस कथा को सुनें इसमें भागवत की महिमा का एक अंश वर्णित है ॥३॥ अब मैं गायत्री के आधार पर धर्म का वर्णन करता हूँ । जिस आख्यान में गायत्री की महिमा वर्णित हो उसको भागवत कहते हैं ॥४॥ इस पुराण में देवी की महिमा वर्णित है अतएव इसे देवीभागवत कहते हैं । वे पराम्बा भगवती ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के आराध्य हैं ॥५॥ एक ऋतवाक् नामक महाबुद्धिमान् ऋषि थे । रेवती नक्षत्र तथा गण्डान्त योग में उनको एक पुत्र पैदा हुआ ॥६॥ ऋषि ने उसके जातकर्म, चूडाकरण तथा उपनयन आदि संस्कारों को किया भी ॥७॥ उस महात्मा को जिस काल से पुत्र पैदा हुआ उसी समय से मुनि शोक एवं रोग से आकुल हो गये ॥८॥ उसकी माँ भी रोष तथा लोभ के कारण अनेक रोगों से युक्त होकर अत्यधिक दुःखी हुई ॥९॥ अत्यन्त दुःखी ऋतवाक् मुनि अत्यन्त चिन्तित हुए, उन्होंने सोचा कि क्या कारण है कि मेरा ऐसा दुर्मति पुत्र हुआ ॥१०॥ उसने बलपूर्वक किसी मुनिपुत्र की पत्नी का अपहरण कर लिया । वह मूर्ख अपनी माता और पिता की कोई शिक्षा नहीं मानता था ॥११॥ उसके बाद उदास होकर ऋतवाक् मुनि ने कहा मनुष्य के लिए पुत्र का न होना ठीक है; किन्तु कुपुत्र का होना ठीक नहीं है ॥१२॥ कुपुत्र स्वर्ग में गये हुए पितरों को भी नरक में गिरा देता है । वह जब तक जीवित रहता है तब तक अपने माता-पिता को केवल दुःख ही देता है ॥१३॥ पापी और माता-पिता को दुःख देने वाले कुपुत्र के जन्म को धिक्कार है । वह अपने

कुपुत्रेण हतं यशः। कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरययातनाः ॥१६॥ कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया। कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः ॥१७॥ स्कन्द उवाच– एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः । तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत॥१८॥ ऋतवागुवाच– भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत्प्रभो । ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्य पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥१९॥ गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया । ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहो विधिवत्कृतः ॥२०॥ भार्यया सह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम् । पंचयज्ञविधानं च मयाऽकारि यथाविधि॥२१॥ नरकाद्विभ्यता विप्र न तु कामसुखेच्छया । गर्भाधानं च विधिवत्पुत्रप्राप्त्यै मया कृतम् ॥२२॥ पुत्रोऽयं मम दोषेण मातुर्दोषेण वा मुने ॥ जातो दुःखावहः पित्रोर्दुःशीलो बंधुशोकदः ॥२३॥ एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा । विचार्य सर्वं तद्धेतुं ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत्॥२४॥ गर्ग उवाच– मुने नैवापराधस्ते न मातु र्न कुलस्य च। रेवत्यन्तं तु गण्डान्तं पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥२५॥ दुष्टे काले यतो जन्म पुत्रस्य तव भो मुने। तेनैव तव दुःखाय नान्यो हेतुर्मनागपि ॥२६॥ तद्दुःखशांतये ब्रह्मञ्जगतां मातरं शिवाम् । समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥२७॥ गर्गस्य

मित्रों का न तो कल्याण करता है और न तो शत्रुओं का अपकार ही कर पाता है ॥१४॥ संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जिनके घर में सुपुत्र है । परोपकारी पुत्र अपने माता-पिता को सुख देता है ॥१५॥ कुपुत्र से कुल नष्ट हो जाता है और यश विनष्ट हो जाता है । कुपुत्र से इस लोक तथा परलोक दोनों में नारकीय यातना भोगनी पड़ती हैं ॥१६॥ कुपुत्र से वंश नष्ट हो जाता है और कुभार्या (दुष्टपत्नी) से जन्म नष्ट हो जाता है । कुभोजन से दिन नष्ट हो जाता है और कुमित्र से सुख नहीं मिलता है ॥१७॥ **स्कन्दजी ने कहा**– इस तरह से दुष्टपुत्र के आचरण से महर्षि हमेशा दुःखी रहते थे और जाकर उन्होंने गर्ग महर्षि से पूछा ॥१८॥ **ऋतवाक् ने कहा**– भगवन् ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ उसे आप बतलाएँ । आप ज्योतिष् शास्त्र के आचार्य हैं । आप बतलाएँ कि मेरे पुत्र की दुश्शीलता का कारण क्या है ॥१९॥ मैंने गुरुओं की सेवा करके विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन किया है। ब्रह्मचारिव्रत को समाप्त करके मैंने विधिपूर्वक विवाह किया है ॥२०॥ मैंने अपनी पत्नी के साथ गार्हस्थ्य धर्म का पालन किया है । मैंने विधिपूर्वक पञ्चमहायज्ञ का विधान किया है ॥२१॥ मैंने काम सुख को प्राप्त करने के लिए नहीं; अपितु नरक के भय से डरकर पुत्र को प्राप्त करने के लिए विधिपूर्वक गर्भाधान किया ॥२२॥ हे मुने ! यह पुत्र मेरे या अपनी माता के दोष के कारण अपने बाँधवों को शोक एवं दुःख देने वाला दुःशील हो गया ॥२३॥ मुनि के वचन को सुनकर ज्योतिर्विद् गर्गाचार्य ने सब कुछ विचार कर कहा॥२४॥ **गर्गमहर्षि ने कहा**– हे मुने ! न तो इसमें आपका अपराध है, न तो इसकी माँ का और न तो वंश का आपके पुत्र के दुःशील होने का कारण रेवती का अन्तिमभाग गण्डान्त योग ही कारण है ॥२५॥ मुने ! चूकि आपके पुत्र का जन्म दोषयुक्त काल में हुआ है, इसीलिए वह आपको दुःख देता है, इसमें दूसरा कोई भी कारण नहीं है ॥२६॥ उस दुःख की शान्ति के लिए आप जगत् कल्याणकारिणी तथा दुर्गति का नाश करने वाली दुर्गाजी की पूजा करें ॥२७॥

वचनं श्रुत्वा ऋतवाक् क्रोधमूर्छितः । रेवतीं तु शशापासौ व्योम्नः पततु रेवती ॥२८॥ दत्ते शापे तु तेनाथ पूष्णो भं च पपात खात् ॥ कुमुदाद्रौ
भासमानं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥२९॥ ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात्कुमुदाचलः । अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृति सोऽप्यभूत् ॥३०॥ दत्त्वा शापं
च रेवत्यै गर्गोक्तविधिना मुनिः । समाराध्यांबिकां देवीं सुखसौभाग्यभागभूत् ॥३१॥ स्कन्द उवाच– रेवत्यृक्षस्य यत्तेजस्तस्माज्जाता तु कन्यका।
रूपेणाप्रतिमा लोके द्वितीया श्रीरिवाभवत् ॥३२॥ अथ तां प्रमुचः कन्यां रेवतीकांतिसंभवाम् । दृष्ट्वा नाम चकारास्या रेवतीति मुदा मुनिः॥३३॥
निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः । ब्रह्मर्षिः प्रमुचो नाम कुमुदाद्रौ सुतामिव ॥३४॥ अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम् । स
मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत् ॥३५॥ बहुधाऽन्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतिम् । ततोऽग्निशालां संविश्य मुनिस्तुष्टाव पावकम्॥३६॥
कन्यावरं तदाशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट् । धर्मिष्ठो बलवान्वीरः प्रियवागपराजितः ॥३७॥ दुर्दमो भविता भर्ता मुनेऽस्याः पृथिवीपतिः । इति
श्रुत्वा वचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा ॥३८॥ दैवादाखेटकव्याजात्तत्क्षणादागतो नृपः । दुर्दमो नाम मेधावी तस्याश्रमपदं मुनेः ॥३९॥ पुत्रो
विक्रमशीलस्य बलवान् वीर्यवत्तरः । कालिन्दीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः ॥४०॥ मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम् । आमन्त्र्य तां प्रिये
चेति रेवतीं पृष्टवान् नृपः ॥४१॥ राजोवाच– महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात् क्व गतः प्रिये । तत्पादौ द्रष्टुमिच्छामि वद कल्याणि तत्त्वतः ॥४२॥

गर्ग महर्षि की बात सुनकर ऋतवाक् महर्षि ने क्रुद्ध होकर रेवती को शाप दे दिया कि वह आकाश से गिर जाय ॥२८॥ ऋषि के शाप देते ही रेवती आकाश
से टूटकर पर्वत पर गिरकर चमकने लगी ॥२९॥ रेवती के गिरने से कुमुदाचल रैवतक के नाम से विख्यात हो गया । उस समय से वह पर्वत अत्यन्त
मनोहर हो गया ॥३०॥ इस प्रकार रेवती को शाप देकर ऋतवाक् महर्षि गर्गाचार्य की बतायी विधि से देवी की आराधना करके सुखी हो गये ॥३१॥ **स्कन्दजी
ने कहा**– रेवती नक्षत्र का जो तेज था उससे एक कन्या उत्पन्न हुई । दूसरी लक्ष्मी के समान उसका रूप अतुलनीय था ॥३२॥ रेवती के तेज से उत्पन्न
उस कन्या का नाम प्रमुच मुनि ने रेवती रखा ॥३३॥ प्रमुच मुनि ने उसे अपने आश्रम में लाकर उसका धर्मपूर्वक पुत्री के समान पालन-पोषण किया ॥३४॥
उस सुन्दरी के युवती होने पर महर्षि इस बात की चिन्ता करने लगे कि इसके योग्य वर कौन है ?॥३५॥ बहुत खोजने पर भी उसके योग्य वर को वे
नहीं प्राप्त कर सके । इसके बाद वे अपनी यज्ञशाला में जाकर अग्नि की स्तुति किए ॥३६॥ उससे प्रसन्न होकर **अग्निदेव ने कहा**– मुने ! इस कन्या का
पति दुर्दम नाम का राजा होगा । वह राजा बलवान्, वीर, धार्मिक प्रियभाषी तथा अपराजेय होगा ॥३७-३८॥ भाग्यवशात् मृगया के व्याज से राजा दुर्दम
उस आश्रम में आया ॥३९॥ वह राजा प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न विक्रमशील का पुत्र था । उसकी माता का नाम कालिन्दी था ॥४०॥ मुनि के आश्रम

कन्योवाच– **अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः । निश्चक्रामाश्रमात्तूर्णं राजाप्याकर्ण्य तद्वचः ॥४३॥ अथाग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः। राजलक्षणसंयुक्तमपश्यत् प्रश्रयानतम् ॥४४॥ प्रणनाम च तं राजा मुनिः शिष्यमुवाच ह । गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्ति भूपतिः ॥४५॥ आगतश्चिरकालेन जामातेति विशेषतः । इत्युक्त्वाऽर्घ्यं ददौ तस्मै सोऽपि जग्राह चिन्तयन् ॥४६॥ मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम् । आशीर्भिरभिनन्द्याथ कुशलं चाप्यपृच्छत ॥४७॥ अपि तेऽनामयं राजन् बले कोशे सुहृत्सु च । भृत्येऽमात्ये पुरे देशे तथात्मनि जनाधिप ॥४८॥ भार्याऽस्ति ते कुशलिनी यतः साऽत्रैव तिष्ठति । अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चान्यासां कुशलं वद ॥४९॥** राजोवाच– **भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम । एतत्कुतूहलं ब्रह्मन् मद्भार्या काऽत्र विद्यते ॥५०॥** ऋषिरुवाच– **रेवती नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि । विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तां न वेत्सि महीपते ॥५१॥** राजोवाच– **सुभद्राद्यास्तु या भार्या मम सन्ति गृहे विभो । जानामि तास्तु भगवन्नैव जानामि रेवतीम् ॥५२॥** ऋषिरुवाच– **प्रियेति साम्प्रतं राजंस्त्वयोक्ता या महामते । सा विस्मृता क्षणादेव या ते श्लाघ्यतमा प्रिया ॥५३॥** राजोवाच– **त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामन्त्रिता मया । मुने दुष्टो न मे भावः कोपं मा कर्तुमर्हसि ॥५४॥** ऋषिरुवाच– **राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव । वह्निना**

में प्रवेश करके उन महामुनि को नहीं देखकर रेवती को प्रिये कहकर संबोधित करके उसने पूछा ॥४१॥ प्रिये ! भगवान् महर्षि इस आश्रम से कहाँ गये हैं ? कल्याणि ! बतलाओ मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ ॥४१॥ **कन्या ने कहा**– महामुनि यज्ञशाला में गये हैं ॥४२॥ राजा भी उसकी वाणाी को सुनकर शीघ्र आश्रम से निकल गये ॥४३॥ इसके बाद मुनि ने यज्ञशाला के द्वार पर विद्यमान राजा के लक्षण से युक्त और विनयावनत राजा दुर्दम को देखा ॥४४॥ राजा ने भी मुनि को प्रणाम किया और मुनि ने अपने **शिष्य से कहा**– गौतम अर्घ्य लाओ ये राजा अर्घ्य प्रदान करने योग्य हैं ॥४५॥ दीर्घकाल के बाद ये हमारे जामाता आये हैं; यह कहकर मुनि ने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया और राजा ने भी उसे स्वीकार किया ॥४६॥ अर्घ्य स्वीकार करके आसन पर बैठ जाने पर मुनि ने राजा से कुशल पूछा और आशीर्वाद दिया ॥४७॥ राजन् ! आपकी सेना, कोष, मित्र, भृत्य, मन्त्री, नगरी तथा देश में कुशल तो है न ॥४८॥ तुम्हारी पत्नी कुशलपूर्वक यहीं विद्यमान है, इसीलिए मैं उसका कुशल नहीं पूछ रहा हूँ ॥४८॥ **राजा ने कहा**– भगवन् ! आपकी कृपा से सब कुशल है, मुझे बहुत बड़ा कुतूहल है कि मेरी यहाँ पत्नी कौन है ?॥५०॥ **ऋषि ने कहा**– तुम्हारी पत्नी अनुपम सुन्दरी रेवती है । उसे तुम नहीं जानते हो क्या?॥५१॥ **राजा ने कहा**– मेरी सुभद्रा आदि पत्नियाँ तो घर पर हैं, और रेवती को तो मैं नहीं जानता हूँ ॥५२॥ **ऋषि ने कहा**– राजन् ! जिसे आपने प्रिये कहा है; अपनी उस प्रशंसनीय पत्नी को भूल गये क्या ?॥५३॥ **राजा ने कहा**– आप सत्य कह रहे हैं; मैने उसे वैसे ही बुलाया है, मुने ! किन्तु उसके विषय में मेरा कोई दूषित भाव नहीं है, अतएव आप कोप न करें ॥५४॥ **ऋषि ने कहा**– राजन् आप सत्य कह रहे हैं कि उसके विषय में आपका

प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतं वचः ॥५५॥ अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति । तेनोक्तं दुर्दमो राजा भविताऽस्याः पतिर्ध्रुवम् ॥५६॥ तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते । प्रियेत्यामन्त्रिता पूर्वं मा विचारं कुरुष्व भोः ॥५७। श्रुत्वैतत् सोऽभवत्तूष्णीं चिन्तयन् मुनिभाषितम् । वैवाहिकं विधिं तस्य मुनिः कर्तुं समुद्यतः ॥५८॥ अथोद्यतः विवाहाय दृष्ट्वा कन्याऽब्रवीन्मुनिम् । रेवत्यर्क्षे विवाहो मे तात कर्तुं त्वमर्हसि॥५९॥ ऋषिरुवाच– वत्से विवाहयोग्यानि सन्त्यन्यर्क्षाणि भूरिशः । रेवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम् ॥६०॥ कन्योवाच– रेवत्यृक्षं विना कालो ममोद्वाहोचितो न हि। अतः सम्प्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभं कुरु ॥६१॥ ऋषिरुवाच– ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रेवतीभं निपातितम् । भान्तरे चेन्न ते प्रीतिर्विवाहः स्यात् कथं तव ॥६२॥ कन्योवाच– तपः किं तप्तवानेक ऋतवागेव केवलम् । भवता किं तपो नेदृक् तप्तं वाक्कायमानसैः॥६३॥ जगत्स्रष्टुं समर्थस्त्वं वेद्म्यहं ते तपोबलम् । रेवत्यृक्षं दिवि स्थाप्य ममोद्वाहं पितः कुरु ॥६४॥ ऋषिरुवाच– एवं भवतु भद्रं ते यथैव त्वं ब्रवीषि माम् । त्वत्कृते सोममार्गेऽहं स्थापयाम्यद्य पौष्णभम् ॥६५॥ स्कन्द उवाच– एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात् । यथापूर्वं तथा चक्रे सोममार्गे घटोद्भव ॥६६॥ रेवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः । रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने ॥६७॥ कृत्वा विवाहं कन्याया मुनी

कोई दूषित भाव नहीं है, आप तो अग्नि के द्वारा प्रेरित होकर वैसा कहे हैं ॥५५॥ मैने आज अग्नि से पूछा कि इसका पति कौन होगा ? तो अग्नि ने कहा कि इसके पति दुर्दम होंगे ॥५६॥ अतएव मेरे द्वारा प्रदत्त इस कन्या को आप स्वीकार करें । इसमें विचार न करें; आपने इसे प्रिये कहकर बुलाया है ॥५७॥ यह सुनकर राजा दुर्दम मुनि की बात का विचार करते हुए चुप रहे । मुनि भी राजा का विवाह करने के लिए उद्यत थे ॥५८॥ मुनि को विवाह करने के लिए उद्यत देखकर **कन्या रेवती ने कहा–** तात ! आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में ही कीजियेगा ॥५९॥ **ऋषि ने कहा–** हे वत्से ! विवाह के योग्य तो बहुत से नक्षत्र है फिर भी रेवती नक्षत्र में ही विवाह का आग्रह क्यों करती हो । रेवती नक्षत्र तो इस समय आकाश में स्थित भी नहीं है ॥६०॥ **कन्या ने कहा–** रेवती नक्षत्र के बिना मेरा विवाह उचित नहीं है । अतएव मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में करें ॥६१॥ **ऋषि ने कहा–** पूर्वकाल में ऋतवाक् मुनि ने शाप देकर रेवती नक्षत्र को भूपतित कर दिया है; यदि तुम्हारा प्रेम दूसरे नक्षत्र में नहीं है तो तुम्हारा विवाह कैसे होगा ? ॥६२॥ **कन्या ने कहा–** केवल ऋतवाक् ऋषि ने ही ऐसा तप किया है क्या ? आपने ऐसा तप नहीं किया है ?॥६३॥ मैं आपकी तपस्या का बल जानती हूँ आप जगत् की सृष्टि करने में समर्थ हैं, अतएव हे पितः ! रेवती नक्षत्र को आकाश में स्थापित करके आप मेरा विवाह करें ॥६४॥ **ऋषि ने कहा–** भद्रे ! जैसा तुम कह रही हो वैसा ही होगा । तुम्हारे लिए रेवती को मैं आज आकाश मार्ग में स्थापित कर रहा हूँ ॥६५॥ **स्कन्दजी ने कहा–** ऐसा कहकर प्रमुच मुनि ने

राजानमब्रवीत् । किं तेऽभिलषितं वीर वद तत्पूरयाम्यहम् ॥६८॥ राजोवाच– मनोः स्वायंभुवस्याहं वंशे जातोऽस्मि हे मुने । मन्वंतराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाच्च कामये ॥६९॥ मुनिरुवाच– यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनं कुरु । भविष्यत्येव ते पुत्रो मनुर्मन्वंतराधिपः ॥७०॥ देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पंचमम् । पंचकृत्वस्तु तच्छ्रुत्वा लप्स्यसेऽभिमतं सुतम् ॥७१॥ रेवत्या रैवतो नाम पंचमो भविता मनुः । वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः ॥७२॥ इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम् । भार्यया सह मेधावी जगाम नगरं निजम् ॥७३॥ पितृपैतामहं राज्यं चकार स महामतिः । पालयामास धर्मात्मा प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥७४॥ एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः । प्रणिपत्य तमभ्यर्च्य प्रांजलिश्चाब्रवीन्नृपः ॥७५॥ राजोवाच– भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने । देवीभागवतं नाम पुराणं पुत्रलिप्सया ॥७६॥ श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः । धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्यमातरि ॥७७॥ सुरासुरनराराध्या या परा जगदम्बिका । तस्यां चेद्भक्तिरुपन्ना कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥७८॥ अतस्त्वां श्रावयिष्यामि श्रीमद्भागवतं नृप । यस्य श्रवणमात्रेण न किंचिदपि दुर्लभम् ॥७९॥ इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन्कथारंभमथाकरोत् । पंचकृत्वः स शुश्राव विधिवद्भार्यया सह ॥८०॥ समाप्तिदिवसे राजा पुराणं च मुनिं तथा । पूजयामास धर्मात्मा

हे अगस्त्यजी अपनी तपस्या के बल पर रेवती नक्षत्र को आकाशमार्ग में स्थापित कर दिया ॥६६॥ महर्षि ने राजा दुर्दम को रेवती नामक नक्षत्र में वैवाहिक विधि से रेवती को प्रदान किया ॥६७॥ कन्या का विवाह करके मुनि ने राजा दुर्दम से कहा– वीर ! आपको जो अभिप्रेत हो उसे आप बतलाएँ । उसे मैं पूरा करूँगा ॥६८॥ **राजा ने कहा**– मुने ! मैं स्वयंभू मनु के वंश में उत्पन्न हूँ, मैं चाहता हूँ कि मेरा पुत्र मन्वन्तराधिप हो ॥६९॥ **मुनि ने कहा**– यदि तुम्हारी यह कामना है तो देवी की आराधना करो । ऐसा करने से तुम्हारा पुत्र मन्वन्तराधिप ही होगा ॥७०॥ देवीभागवत नामक जो पाँचवाँ पुराण है, उसका पाँच बार श्रवण करने से अपने अभिलषित पुत्र को प्राप्त करोगे ॥७१॥ रेवती में उत्पन्न होने वाला रैवत पाँचवाँ मनु होगा । वह वेदों एवं शास्त्रों का ज्ञाता, धार्मिक तथा अपराजेय वीर होगा ॥७२॥ मुनि की इस बात को सुनकर मेधावी राजा मुनि को प्रणाम करके अपनी पत्नी के साथ अपने नगर में चला गया॥७३॥ वहाँ जाकर वह अपने पिता पितामह से सम्पादित राज्य का अपने औरस पुत्र के समान पालन करने लगा ॥७४॥ एक बार उसके यहाँ लोमश महर्षि आये। राजा ने उनको प्रणाम करके तथा उनका पूजन करके हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥७५॥ **राजा ने कहा**– भगवन् ! आपकी कृपा से पुत्र प्राप्त करने के लिए देवीभागवत पुराण सुनना चाहता हूँ ॥७६॥ राजा की बात से प्रसन्न होकर लोमश महर्षि ने कहा– राजन् आप धन्य हैं कि आपकी भक्ति त्रैलोक्य माता में उत्पन्न हो गयी है ॥७७॥ पराम्बा जगदम्बिका देव, दानव और मानवों की आराध्या हैं । यदि उनमें तुम्हारी भक्ति है तो तुम्हारे कार्य की सिद्धि होगी॥७८॥ अतएव राजन् ! मैं तुम्हें देवीभागवत सुनाऊँगा । उसके सुनने मात्र से कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ॥७९॥ ऐसा कहकर उन्होंनें शुभ दिन को कथा शुरू

मुदा परमया युतः ॥८१॥ हुत्वा नवार्णमंत्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः । बाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत् ॥८२॥ अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः । गर्भं दधार सा राज्ञी लोककल्याणकारकम् ॥८३॥ पुण्येऽथ समये प्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसंगतैः । सर्वमंगलसम्पन्ने रेवती सुषुवे सुतम् ॥८४॥ श्रुत्वा पुत्रस्य जननं स्नात्वा राजा मुदान्वितः । ससुवर्णाम्भसा चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥८५॥ यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत् । कृतोपनयनं राजा सांगान्वेदानपाठयत् ॥८६॥ सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः । धर्मस्य वक्ता कर्ता च रैवतो नाम वीर्यवान् ॥८७॥ नियुक्तवानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे । मन्वन्तराधिपः श्रीमान्गां शशास स धर्मतः ॥८८॥ इत्थं देव्याः प्रभावोऽयं संक्षेपेणोपवर्णितः । पुराणस्य च माहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ॥८९॥ सूत उवाच– **कुम्भयोनिस्तु माहात्म्यं विधिं भागवतस्य च । श्रुत्वा कुमारं चाभ्यर्च्य स्वाश्रमं पुनरराययौ ॥९०॥ इदं मया भागवतस्य विप्रा माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम् । शृणोति भक्त्या पठतीह भोगान्भुक्त्वाऽखिलान्मुक्तिमुपैति चांते ॥९१॥**

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये चतुर्थोध्यायः ।।४।।

की । राजा ने विधिपूर्वक पाँच बार उस कथा का श्रवण किया ॥८०॥ समाप्ति के दिन राजा ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक पुराण तथा मुनि की पूजा की ॥८१॥ उन्होंने नवार्ण मन्त्र से होम किया, कुमारियों को भोजन कराया तथा सपत्नीक ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया ॥८२॥ इसके कुछ समय पश्चात् भगवती की कृपा से रानी ने लोक कल्याणकारी गर्भ को धारण किया ॥८३॥ जब शुभ समय आया सभी ग्रह सुन्दर स्थान पर थे; उस सभी प्रकार के मंगलमय काल में रेवती ने पुत्र को जन्म दिया ॥८४॥ पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक स्नान किया और सुवर्ण के घड़ों से जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न किया ॥८५॥ विधिपूर्वक दान देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। बालक का उपनयन संस्कार करके साङ्गवेदों को पढ़ाया ॥८६॥ वीर्यवान रैवत सभी विद्याओं के ज्ञाता धार्मिक, अस्त्रज्ञों में श्रेष्ठ, धर्म के वक्ता और कर्ता हो गये ॥८७॥ इसके बाद ब्रह्मा जी ने रैवत को मनु के पद पर प्रतिष्ठित किया । मन्वन्तराधिप होकर उन्होंने पृथिवी का धर्मपूर्वक प्रशासन किया ॥८८। इस तरह से मैंने संक्षेप में देवी के प्रभाव का वर्णन किया । देवीभागवत की विस्तृत महिमा को कौन बतला सकता है ॥८९॥ **सूतजी ने कहा–** अगस्त्य महर्षि ने देवीभागवत की महिमा और विधि का श्रवण करके कार्तिकेयजी की पूजा की और वे अपने आश्रम पर आये ॥९०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **सूत सूत महाभाग श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम् । अधुना श्रोतुमिच्छामः पुराणश्रवणे विधिम् ॥१॥** सूत उवाच– **श्रूयतां मुनयः सर्वे पुराणश्रवणे विधिम् । नराणां शृण्वतां येन सिद्धिः स्यात्सार्वकामिकी ॥२॥ आदौ दैवज्ञमाहूय मुहूर्त्तं कल्पयेत्सुधीः । आरभ्य शुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम् ॥३॥ हस्ताश्विमूलपुण्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे । सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम् ॥४॥ गुरुभाद्वेद४वेदा४ब्ज१शरां५गा६ब्धि४गुणैः३ क्रमात् । धर्माप्तिरिन्दिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम् ॥५॥ पीडाऽथ भूपतिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम् । पुराणश्रवणे चक्रं शोधयेच्छिवभाषितम् ॥६॥ अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये । शृणुयादन्यमासेऽपि तिथिवारर्क्षशोभिते ॥७॥ संभारं तादृशं कार्यं विवाहादौ च यादृशम् । नवाहयज्ञे चाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतो बुधैः ॥८॥ सहाया बहवः कार्या दंभलोभविवर्जिताः । चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः ॥९॥ प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशे देशे जने जने । आगन्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति ॥१०॥ सौराश्च**

देवीभागवत पुराण के श्रवण की विधि

ऋषियों ने कहा– हे महाभाग सूतजी ! हम लोगों ने उत्तम माहात्म्य को सुना है । अब हमलोग देवीभागवत पुराण के सुनने की विधि सुनना चाहते हैं ॥१॥ **सूतजी ने कहा**– हे मुनियों पुराण सुनने की विधि को आपलोग सुने । उस विधि से श्रवण करने से मनुष्यों की हर प्रकार की कामना की सिद्धि होती है ॥२॥ बुद्धिमान को चाहिए कि सर्वप्रथम ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त निश्चित करे । ज्येष्ठ मास से लेकर आगे के छह मास पुराण श्रवण के लिए शुभ हैं ॥३॥ हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र; शुभ तिथि तथा शुभवार को पुराण श्रवण शुभ होता है ॥४॥ बृहस्पति के नक्षत्र से ४,४,१,५,६,४ तथा ३ नक्षत्रों में कथा श्रवण का फल क्रमशः धर्मप्राप्ति, लक्ष्मीप्राप्ति, कथासिद्धि, परमसुख, पीडा, राजभय तथा ज्ञानप्राप्ति को प्रदान करने वाले होते हैं । अथवा पुराण श्रवण के समय शिवप्रोक्त चक्र का शोधन करना चाहिए ॥५-६॥ अथवा देवी की प्रसन्नता के लिए चारो नवरात्रों में तथा शुभवार से युक्त काल में कथा सुननी चाहिए ॥७॥ जिस तरह विवाह आदि के समय तैयारी की जाती है, उसी तरह की तैयारी नवाह यज्ञ के भी अवसर पर करनी चाहिए ॥८॥ इसमें दंभ तथा लोभ से रहित अनेक सहायकों को रखना चाहिए। उन सहायकों को चतुर, उदार तथा देवी का भक्त होना चाहिए ॥९॥ देश-देशान्तर में तथा लोगों को यह समाचार भेजना चाहिए की देवी भगवती की कथा होने वाली है, आप लोग अवश्य आयें॥१०॥ चूकि सभी देवता शक्ति से सम्पन्न हैं अतः इस कार्य में सूर्यभक्तों, गणपतिभक्तों, शिवभक्तों, शक्ति के उपासकों तथा वैष्णवों, सबको

गाणपत्याश्च शैवाः शाक्ताश्च वैष्णवाः । सर्वेषामपि सेव्येयं यतो देवाः सशक्तयः ॥११॥ श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः । आगंतव्यं विशेषण कथार्थं प्रेमतत्परैः ॥१२॥ ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा । सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यं तैः कथामृतम् ॥१३॥ नावकाशः कदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपि तैः । आगंतव्यं यथाकालं यज्ञे पुण्या क्षणस्थितिः ॥१४॥ विनयेनैव कर्त्तव्यमेवमाकारणं नृणाम् । आगतानां च कर्त्तव्यं वासस्थानं यथोचितम् ॥१५॥ कथास्थानं प्रकर्त्तव्यं भूमौ मार्जनपूर्वकम् । लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम् ॥१६॥ कार्यस्तु मण्डपो रम्यो रंभास्तंभोपशोभितः । वितानमुपरिष्टात्तु पताकाध्वजराजितम् ॥१७॥ वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम् । रचितव्यं प्रयत्नेन प्राङ्मुखं वाप्युदङ्मुखम् ॥१८॥ यथोचितानि कुर्वीत श्रोतृणामासनानि च । नृणां चैवाथ नारीणां कथाश्रवणहेतवे ॥१९॥ वाग्मी दांतश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः । दयालुर्निस्पृहो दक्षो धीरो वक्तोत्तमो मतः ॥२०॥ ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारसपरायणः । उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोता हिंसादिवर्जितः ॥२१॥ पाखण्डनिरतो लुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा । निष्ठुरः क्रोधनो वक्ता देवीयज्ञे न शस्यते ॥२२॥ संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः । श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्यो वक्तुः सहायकृत् ॥२३॥ मुहूर्तदिवसादर्वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः । कर्त्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो

आना चाहिए ॥११॥ श्रीमद्देवीभागवत के रस के लोलुप भक्तों को तो प्रेमपूर्वक इस कथा को अवश्य सुनना चाहिए ॥१२॥ ब्राह्मण आदि वर्णों, स्त्रियों तथा आश्रमियों, सकामों तथा निष्कामों को भी इस कथामृत का पान करना चाहिए ॥१३॥ जिन लोगों को नव दिन का अवकाश न हो उन लोगों को भी अवकाशानुसार सम्मिलित होना चाहिए, क्योंकि यज्ञ में तो क्षणभर भी सम्मिलित होना पुण्यप्रद होता है ॥१४॥ इस तरह लोगों को विनय पूर्वक बुलाना चाहिए और आये हुए लोगों का उचित निवास स्थान बनाना चाहिए ॥१५॥ विशाल भूमि पर सफाई करके तथा गोबर से लिपकर कथा के स्थान को मनोहर बनाना चाहिए ॥१६॥ केले के स्तम्भ से सुशोभित मण्डप बनाना चाहिए । ध्वजा-पताका से सुशोभित चन्दोवा ऊपर लगाये ॥१७॥ सुखद विछौने से युक्त दिव्य आसन वक्ता का होना चाहिए । वक्ता का आसन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होना चाहिए ॥१८॥ कथा सुनने के लिए पुरुष तथा स्त्री श्रोताओं का भी यथोचित आसन होना चाहिए ॥१९॥ वाग्मी, संयमी, शास्त्रों के जानकार देवी की आराधना करने वाले, दयालु, निर्लोभ, दक्ष तथा धैर्य सम्पन्न वक्ता उत्तम माने गये हैं ॥२०॥ ब्राह्मणभक्त, देवताभक्त, कथा के रस में मग्न रहने वाले, उदार, लोभरहित नम्र तथा हिंसा आदि नही करने वाले श्रेष्ठ श्रोता हैं ॥२१॥ पाखण्डी, लोभी, स्त्रीपरायण, दिखावटी धर्म करने वाले, निष्ठुर तथा क्रोधी वक्ता देवी के यज्ञ में अच्छे नहीं होते हैं ॥२२॥ श्रोताओं के संदेह को दूर करने वाला, श्रोताओं को ठीक ज्ञान कराने वाला एक विद्वान् वक्ता का सहायक होना चाहिए ॥२३॥ कथा प्रारम्भ होने से एक दिन पहले वक्ता तथा

नियमकल्पनम् ॥२४॥ अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचं विधाय च । संध्यातर्पणकार्यं च नित्यं संक्षेपतश्चरेत् ॥२५॥ कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्च दापयेत् । समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत् ॥२६॥ कलशांश्चापि संस्थाप्य पूजयेत्तत्र दिग्भवान् । वटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीर्मातृकास्तथा॥२७॥ तुलसीं चापि संपूज्य ग्रहान्विष्णुं च शंकरम् । नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥२८॥ सर्वोपचारैः संपूज्य श्रीभागवतपुस्तकम् । श्रीदेव्या वाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोधनाक्षरम् ॥२९॥ कथाविघ्नोपशान्त्यर्थं वृणुयात् तं च बाडवान् । जाप्यो नवार्णमंत्रैस्तैः पाठ्यः सप्तशतीस्तवः ॥३०॥ प्रदक्षिणानमस्कारान्कृत्वांते स्तुतिमाचरेत् । कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि ॥३१॥ संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामयि । ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके ॥३२॥ मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते । इति संप्रार्थ्य शृणुयात्कथां नियतमानसः ॥३३॥ वक्तारं चापि संपूज्य व्यासबुद्ध्या यतात्मवान् । माल्यालंकार वस्त्राद्यैः संभूष्य प्रार्थयेच्च तम् ॥३४। सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ व्यासरूप नमोऽस्तु ते । कथाचंद्रोदयेनांतस्तमः स्तोमं निराकुरु ॥३५॥ तदग्रे तु नवाहान्तं कर्तव्या नियमास्तदा । विप्रादीनुपवेश्यादौ संपूज्योपविशेत्स्वयम् ॥३६॥ श्रोतव्यं सावधानेन चतुर्वर्गफलप्तये।

श्रोता आदि को बाल बनवा लेना चाहिए और उसके बाद नियमों का पालन करना चाहिए ॥२४॥ शौच करके अरुणोदय काल में ही स्नान करले और प्रतिदिन संक्षेप से संध्या तर्पण करे ॥२५॥ कथा श्रवण की योग्यता के लिए गोदान करे और पहले समस्त विघ्नों का विनाश करने वाले गणेशजी की पूजा करे ॥२६॥ कलशों की स्थापना करके दिक्पालों, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी तथा मातृकाओं की पूजा करे ॥२७॥ तुलसी की पूजा करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरजी की पूजा करे तथा नवाक्षर मन्त्र से जगदम्बिका की पूजा करे ॥२८॥ श्रीदेवी की वाङ्मय मूर्ति तथा सुन्दर अक्षरों वाले देवीभागवत का सभी उपचारों से पूजन करे ॥२९॥ कथा में संभावित विघ्न की शान्ति के लिए पाँच ब्राह्मणों का वरण करके उनसे नवार्णमन्त्र का जप करायें तथा सप्तशती का पाठ कराये ॥३०॥ उसकी प्रदक्षिणा करे तथा नमस्कार करके इस तरह स्तुति करें– हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे भवानि ! हे भुवनेश्वरि ! हे कृपामयि संसार-सागर में मैं डूब रहा हूँ; आप मेरा उद्धार करें । हे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी के आराध्य जगदम्बिके ! आप प्रसन्न हों ॥३१-३२॥ हे देवि ! आपको नमस्कार है। आप मुझे मनोभिलषित वरदान दें । इस तरह से प्रार्थना करके शान्तमना होकर कथा सुने ॥३३॥ संयतमना होकर साक्षात् व्यासदेव समझकर वक्ता की भी पूजा करें । उनको माला, अलंकार तथा वस्त्र आदि से अलंकृत करके उनसे प्रार्थना करे ॥३४॥ हे सभी शास्त्रों तथा इतिहासों के ज्ञाता व्यास जी आपको नमस्कार है । आप कथारूपी चन्द्रोदय के द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करें ॥३५॥ उनके समक्ष ही नव दिन पर्यन्त के नियमों का व्रत ले, फिर ब्राह्मणों आदि को बैठा कर उनकी पूजा करके स्वयम् बैठे ॥३६॥ चतुर्विध पुरुषार्थ रूपी फल की प्राप्ति के लिए धन की चिन्ता छोड़कर सावधान

गृहपुत्रकलत्राप्तधनचिंतामपास्य च ॥३७॥ सूर्योदयं समारभ्य किंचित्सूर्येऽवशेषिते मुहूर्त्तमात्रं विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः ॥३८॥ मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते । हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना ॥३९॥ अथवा स्यात्फलाहारी पयोभुग्वा घृताशनः । यथां स्यान्न कथाविघ्नस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥४०॥ कथाश्रवणनिष्ठानां वक्ष्यामि नियमं द्विजाः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः ॥४१॥ देवीभक्तिविहीना ये पाखण्डा हिंसकाः खलाः । विप्रद्रुहो नास्तिका ये न ते योग्याः कथाश्रवे ॥४२॥ ब्रह्मस्वहरणे लुब्धाः परदारधनेषु च । देवस्वहरणे तेषां नाधिकारः कथाश्रवे ॥४३॥ ब्रह्मचारी च भूशायी सत्यवक्ता जितेन्द्रियः । कथासमाप्तौ भुंजीत पत्रावल्यां यतात्मवान् ॥४४॥ वृंताकं च कलिन्दं च तैलं च द्विदलं मधु । दग्धमन्नं पर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद्व्रती ॥४५॥ आमिषं च मसूरान्नमुदक्या दृष्टमेव च । रसोनं मूलकं हिंगुं पलांडुं गृञ्जनं तथा ॥४६॥ कूष्मांडनलिकाशाकं न भुञ्जीत कथाव्रती । कामं क्रोधं मदं लोभं दंभं मानं च वर्जयेत् ॥४७॥ विप्रध्रुक्पतितव्रात्यश्वपाकयवनांत्यजैः। उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती ॥४८॥ वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा । देवानां देवभक्तानां न निंदां शृणुयादपि ॥४९॥ विनयं

होकर अपने पुत्रों तथा पत्नी के साथ कथा सुनें ॥३७॥ वक्ता दोपहर में थोड़ा सा विश्राम करके सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त से थोड़े पहले तक कथा बाँचें॥३८॥ मलमूत्र पर नियन्त्रण रखने के लिए थोड़ा भोजन करना चाहिए । यजमान को एक बार हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए ॥३९॥ अथवा उसे फलाहार करने वाला या केवल दुग्ध पीने वाला या केवल घी खाने वाला होना चाहिए । बुद्धिमान यजमान को चाहिए कि वह ऐसा ही भोजन करे जिससे कि कथा में विघ्न न हो ॥४०॥ विप्रों ! अब मैं कथा सुनने वालों के लिए नियम बतलाता हूँ । जो लोग ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में भेददृष्टि रखते हैं, जिनकी देवी में भक्ति नहीं है, जो खल, पाखण्डी तथा हिंसक हैं, ब्राह्मणों से द्रोह करते हैं तथा नास्तिक हैं वे कथा सुनने के योग्य नहीं हैं ॥४१-४२॥ दूसरे के धन का हरण करने वाले, दूसरों की पत्नी और धन का लोभ करने वाले, देवता की संपत्ति को हड़पने वाले लोग कथा के सुनने के अधिकारी नहीं है ॥४३॥ यजमान को ब्रह्मचारी, पृथिवी पर सोने वाला, सत्य बोलने वाला, जितेन्द्रिय, सावधान तथा कथा समाप्त होने पर पत्तल में भोजन करने वाला होना चाहिए ॥४४॥ बैगन, तरबूज, तेल, दाल, मधु, भूँजा, बासीअन्न तंथा चित्त को बिगाड़ने वाला अन्न कथाव्रती को छोड़ देना चाहिए ॥४५॥ मांस, मसूर, जिसे किसी रजस्वला स्त्री ने देख लिया हो वह भोजन, लहसून, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कोंहड़ा तथा करेमू का साग कथाव्रती न खाय तथा उसे काम, क्रोध, मद, लोभ दंभ तथा मान को त्याग देना चाहिए ॥४६-४७॥ कथाव्रती श्रोता ब्राह्मणों से द्रोह, पतित, अन्त्यज, चण्डाल, रजस्वला स्त्री तथा वेदवाह्य प्राणियों से बात न करे ॥४८॥ वह वेद, गौ, गुरु, ब्राह्मण की स्त्री, राजा, महापुरुष, देवता और देवीभक्त की निन्दा न सुने ॥४९॥ कथाव्रती को नम्रता

चार्जवं शौचं दयां च मितभाषणम् । उदारं मानसं चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती ॥५०॥ श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत् । दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम् ॥५१॥ वंध्या वा काकवंध्या वा दुर्भगा वा मृतार्भका । पतद्गर्भांगना या च ताभिः श्रव्या तथा कथा॥५२॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वांछति विना श्रमम् । भगवत्या भागवतं श्रोतव्यं तेन यत्नतः ॥५३॥ कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि। तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत् ॥५४॥ एवं व्रतं नवाहं तु कृत्वोद्यापनमाचरेत् । महाष्टमीव्रतं यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः ॥५५॥ निष्कामा श्रवणेनैव पूता मुक्तिं व्रजन्ति हि। भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा ॥५६॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्या तु नित्यशः । वक्त्रा दत्तं प्रसादं तु गृहणीयाद्भक्तिपूर्वकम् ॥५७॥ कुमारीः पूजयेन्नित्यं भोजयेत्प्रार्थयेच्च यः । सुवासिनीश्च विप्रांश्च तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥५८॥ गायत्र्या नाम साहस्रं समाप्तावथवा पठेत् । विष्णोर्नामसहस्त्रं च सर्वदोषोपशान्तये ॥५९॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति तस्माद्विष्णुं च कीर्तयेत् ॥६०॥ देव्याः सप्तशतीमंत्रैः समाप्तौ होममाचरेत् । देवीमाहात्म्यमूलेन नवार्णमनुनाऽथवा ॥६१॥ गायत्र्या त्वथवा होमः

ऋजुता, पवित्रता, दया, कम भाषण तथा मन की उदारता को बनाये रखना चाहिए।।५०।। श्वेत कुष्ठ तथा गलित कुष्ठ के रोगी, क्षय रोग के रोगी, भाग्यहीन, पापी, दरिद्र तथा निःसन्तान भी भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनें ।।५१।। बंध्या, काकबन्ध्या (केवल एक सन्तान वाली स्त्री) पति से परित्यक्त, जिसके बच्चे मर जाते हों ऐसी भी स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए कथा सुननी चाहिए ।।५२।। जो व्यक्ति अनायास धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को प्राप्त करना चाहे उसे भी प्रयत्नपूर्वक देवीभागवत की कथा सुननी चाहिए।।५३।। इस कथा के नव दिन नव यज्ञों के समान होते हैं । उन दिनों में किया गया दान, होम तथा जप अनन्त फल देने वाले होते हैं ।।५४।। कथाव्रती को इस तरह से नवाह व्रत करके उसका पूर्णफल प्राप्त करने के लिए महाष्टमी व्रत के समान उद्यापन करना चाहिए ।।५५।। चूकि पराम्बा भगवती भोग तथा मोक्ष रूपी फल को प्रदान करने वाली हैं, अतएव निष्काम भाव से इस कथा को सुनने वाले मुक्ति को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं ।।५६।। पुस्तक तथा वक्ता की पूजा प्रतिदिन करनी चाहिए और वक्ता जो प्रसाद दें उसे श्रोता को भक्तिपूर्वक लेना चाहिए।।५७।। प्रतिदिन, कुमारी, सुवासिनी तथा ब्राह्मणों की पूजा करके उनको भोजन कराकर जो उनकी प्रार्थना करता है, उसके अभिलषित अर्थ की अवश्य पूर्ति होती है ।।५८।। कथा की समाप्ति होने पर सभी दोषों की शान्ति के लिए गायत्रीसहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना चाहिए ।।५९।। चूकि तप, यज्ञ तथा क्रिया आदि में विष्णु के स्मरण और कीर्तन से सभी कमियों की पूर्ति हो जाती है अतएव भगवान् विष्णु का कीर्तन करना चाहिए ।।६०।। कथा की समाप्ति होने पर दुर्गा सप्तशती के मन्त्रों से होम करना चाहिए अथवा देवीमाहात्म्य के मूलभूत नवार्ण मन्त्र से होम करना चाहिए ।।६१।। अथवा घृतमिश्रित

पायसेन ससर्पिषा । यतो भागवतं त्वेतद्गायत्रीमयमीरितम् ॥६२॥ वाचकं तोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः । प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥६३॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत् । पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम् ॥६४॥ सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत् । ताभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः ॥६५॥ दद्याद्दानानि चान्यानि सुवर्णं गाः पयस्विनीः । हयानिभान्मेदिनीं च तस्य स्यादक्षयं फलम् ॥६६॥ देवीभागवतं चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम् । हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम् ॥६७॥ अष्टम्यां वा नवम्यां च वाचकायार्चिताय च। दद्यात्स भोगान्भुक्त्वेह दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात् ॥६८॥ दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा । पुराणवेत्ता वंद्यः स्यात्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा ॥६९॥ सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः । सर्वेषामपि तेषां च पुराणज्ञः परो गुरुः ॥७०॥ पौराणिको ब्राह्मणस्तु व्यासासनसमाश्रितः । आसमाप्ते प्रसंगे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥७१॥ पौराणिकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वंत्यभक्तितः । तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम् ॥७२॥ असंपूज्य पुराणं तु ताम्बूलकुसुमादिभिः । ये शृण्वंति कथां देव्यास्ते दरिद्रा भवंति हि ॥७३॥ कीर्त्यमानां कथां

पायस (खीरान्न) से होम करना चाहिए, क्योंकि देवीभागवत गायत्र्यात्मक है ॥६२॥ वक्ता को वस्त्र, आभूषण तथा धन आदि के द्वारा अच्छी तरह से प्रसन्न करना चाहिए । वक्ता के प्रसन्न हो जाने पर कथा के सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥६३॥ भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट करना चाहिए । ब्राह्मण भूदेव हैं, उनके प्रसन्न होने पर अभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥६४॥ देवी की भक्तिपूर्वक सुवासिनियों तथा कुमारियों को भोजन कराये । उन सबों को भी दक्षिणा देकर अपने अभिलषित अर्थ की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करे ॥६५॥ जो व्यक्ति सुवर्ण, दुग्धदेने वाली गौ, घोड़े, हाथी तथा भूमि आदि दूसरे दानों को देता है उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है ॥६६॥ जो सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए देवीभागवत ग्रन्थ को रेशमी वस्त्र में लपेट कर तथा सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर अष्टमी अथवा नवमी को अपने पूजित वाचक को दान देता है, वह इस लोक में भोगों को भोगकर दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त करता है ॥६७-६८॥ पुराणवेत्ता विद्वान्, दरिद्र, दुर्बल, बालक, युवक अथवा बूढ़ा भी हो तो वह वंदनीय, पूजनीय और सम्माननीय होता है ॥६९॥ संसार में अपने गुण और जन्म के कारण बहुत से गुरु होते हैं, उन सबों में पुराणवेत्ता श्रेष्ठ गुरु है ॥७०॥ व्यासासन पर बैठे हुए ब्राह्मण को चाहिए कि वह प्रसंग के समाप्त हुए बिना किसी को प्रणाम न करे ॥७१॥ जो लोग बिना भक्ति के पुराण की कथा सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल नहीं मिलता है, वे केवल दुख तथा दारिद्र्य के भागी होते हैं ॥७२॥ जो लोग पुराण की पुष्प तथा पान आदि से पूजा किए बिना कथा का श्रवण करते हैं वे दरिद्र होते हैं ॥७३॥ जो लोग कथा को छोड़कर बीच में ही कहीं अन्यत्र जाते हैं कुछ समय बाद उनकी सम्पत्ति और स्त्रियाँ नष्ट हो जाती

त्यक्त्वा ये व्रजंत्यन्यतो नराः । भोगान्तरे प्रणश्यंति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥७४॥ ये च तुंगासनारूढाः कथां शृण्वंति दांभिकाः । ते वायसा भवंत्यत्र भुक्त्वा निरययातनाम् ॥७५॥ ये चाढ्यासनसंस्थाश्च ये वीरासनसंस्थिताः । शृण्वंति च कथां दिव्यां ते स्युरर्जुनशाखिनः ॥७६॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये वदंति दुरुत्तरम् । रासभास्ते भवंतीह कृकलासास्ततः परम् ॥७७॥ निंदंति ये पुराणज्ञान्कथां वा पापहारिणीम् । ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः ॥७८॥ ये शृण्वंति कथां वक्तुः समानासनसंस्थिताः ॥ गुरुतल्पसमं पापं लभंते नरकालयाः ॥७९॥ ये चाप्रणम्य शृवंति ते भवन्ति विषद्रुमाः ॥ शयाना येऽपि शृण्वन्ति भवंत्यजगरादयः ॥८०॥ ये कदाचन पौराणीं न शृण्वन्ति कथां नराः । ते घोरं नरकं भुक्त्वा भवंति वनसूकराः ॥८१॥ ये कथां नानुमोदंते विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः । कोट्यब्दं निरयं भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥८२॥ आसनं भाजनं द्रव्यं फलं वस्त्राणि कम्बलम् । पुराणज्ञाय यच्छन्ति ते व्रजन्ति हरेः पदम् ॥८३॥ पुराणपुस्तकस्यापि ये पट्टवसनं नवम् । प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नराः सुखभागिनः ॥८४॥ पुराणानां तु सर्वेषां श्रवणाद्यत्फलं लभेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत् ॥८५॥ यथा सरित्सु प्रवरा गङ्गा देवेषु शंकरः । काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथा रविः ॥८६॥ आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानां च यथा यशः ।

हैं ॥७४॥ जो लोग ऊँचे आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं वे नारकीय यातना भोगकर कौआ होते हैं ॥७५॥ जो लोग कीमती आसन पर बैठकर अथवा वीरासन से बैठकर कथा सुनते हैं वे जन्मान्तर में अर्जुन वृक्ष होते हैं ॥७६॥ जो लोग कथा में व्यर्थ के तर्क-वितर्क करते हैं, वे मरकर गदहा होते हैं और बाद में गिरगिट होते हैं ॥७७॥ जो लोग पौराणिकों अथवा इस पवित्र कथा की निन्दा करते हैं वे सौ जन्मों तक दुष्ट कुत्ते होते हैं ॥७८॥ जो लोग वक्ता के समान आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं उन्हें गुरु के आसन पर बैठने का पाप लगता है ॥७९॥ जो लोग बिना प्रणाम किए कथा सुनते हैं वे बाद में जहरीले वृक्ष होते हैं । जो लोग सोकर कथा सुनते हैं वे अजगर आदि होते हैं ॥८०॥ जो लोग कभी भी कथा नहीं सुनते हैं वे घोर नरक भोगकर बनैले सूकर होते हैं ॥८१॥ जो लोग कथा का अनुमोदन न करके बीच-बीच में विघ्न डालते हैं, वे करोड़ो वर्ष तक नरक भोगकर ग्राम सूकर होते हैं॥८२॥ जो लोग पौराणिक को आसन, पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र तथा कम्बल प्रदान करते हैं वे श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥८३॥ जो लोग पुराण के पुस्तक के लिए नया रेशमी वस्त्र देते हैं, अथवा सूत्र प्रदान करते हैं वे सुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ सभी पुराणों के सुनने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके सौ गुना फल देवीभागवत के सुनने से प्राप्त होता है ॥८५॥ जैसे नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ हैं, देवताओं में शंकरजी श्रेष्ठ हैं, काव्यों में रामायण श्रेष्ठ है, प्रकाशकों में सूर्य श्रेष्ठ हैं, आह्लादकों में चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, धनों में यश श्रेष्ठ है, क्षमाशीलों में पृथिवी श्रेष्ठ है, गाम्भीर्य में सागर श्रेष्ठ है, मन्त्रों में गायत्री

**क्षमावतां यथा भूमिर्गाम्भीर्ये सागरो यथा ॥८७॥ मंत्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः । अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा ॥८८॥ येन
केनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत् । न शक्यं तत्फलं वक्तुं जीवन्मुक्तः स एव हि ॥८९॥ राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा । दुर्भिक्षे
राष्ट्रभङ्गे च तच्छांत्यै शृणुयादिदम् ॥९०॥ भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः । पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः ॥९१॥ श्रीमद्भागवतं
यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि । श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम् ॥९२॥ भगवत्या स्वयं देव्या श्लोकार्द्धेन प्रकाशितम् । शिष्यप्रशिष्यद्वारेण
तदेव विपुलीकृतम् ॥९३॥ न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः । न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ॥९४॥ गातारं त्रायते
यस्माद्गायत्री तेन सोच्यते । साऽत्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता ॥९५॥ अतो भागवतस्यास्य देव्याः प्रीतिकरस्य च । महांत्यपि पुराणानि
कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥९६॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्ब्राह्मणानां धनं धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः । गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च
मणिद्वीपश्च संवर्णितः श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीता स्वयम् ॥९७॥ तस्मान्नास्य पुराणस्य लोकेऽन्यत्सदृशं परम् । अतः सदैव
संसेव्यं देवीभागवतं द्विजाः ॥९८॥ यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः । अंशांशका अपि च ते**

श्रेष्ठ है, पापनाशकों में भगवत् स्मरण श्रेष्ठ है, उसी तरह अठारह पुराणों में देवीभागवत श्रेष्ठ है ॥८६-८८॥ यदि कोई इस पुराण को किसी तरह नव
बार सुनता है, उसके फल का वर्णन नहीं किया जा सकता है, वह पुरुष जीवन्मुक्त हो जाता है ॥८९॥ शत्रु राजा के आक्रमण करने पर, महामारी में,
अकाल पड़ने पर, राष्ट्रभङ्ग के समय, विपत्ति की शान्ति के लिए इस पुराण को सुनना चाहिए ॥९०॥ ब्राह्मणों, भूत-प्रेत के विनाश के लिए, शत्रु के हाथ
में गये हुए अपने राज्य को प्राप्त करने के लिए तथा पुत्र की प्राप्ति के लिए देवीभागवत का श्रवण करना चाहिए ॥९१॥ जो मनुष्य देवीभागवत के एक
श्लोक को या आधा श्लोक को अथवा उसके एक पाद को पढ़ता अथवा सुनता है वह परमपद को प्राप्त करता है ॥९२॥ स्वयं भगवती ने इस पुराण
को आधे श्लोक में प्रकाशित किया था। वही शिष्यों प्रशिष्यों द्वारा बढ़ते-बढ़ते विस्तृत हो गया ॥९३॥ गायत्री से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और न गायत्री
से बढ़कर कोई तप है । गायत्री के समान कोई देवता नहीं है और न गायत्री के समान मन्त्र है ॥९४॥ गान करने वालों की रक्षा करने के कारण देवी
गायत्री कही जाती हैं । इसीलिए गायत्रीदेवी रहस्य के साथ इस पुराण में प्रतिष्ठित हैं ॥९५॥ अतएव देवी को प्रसन्न करने वाले इस देवीभागवत के माहात्म्य
की सोलहवीं कला भी दूसरे पुराण नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥९६॥ अतएव देवीभागवत निर्मल पुराण है । वही ब्राह्मणों का धन है । इस पुराण में धर्म
के पुत्र नारायण ने धर्मोपदेश किया है । इसमें गायत्री के रहस्य तथा मणिद्वीप का वर्णन है। हिमालय पर देवी के द्वारा वर्णित देवीगीता का वर्णन

किमुतान्यदेवास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥९९॥ यत्पादपंकजरजः समवाप्य विश्वं ब्रह्मा सृजत्यनुदिनं च बिभर्ति विष्णुः । रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्थास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥१००॥ सुधाकूपारातस्त्रिदशतरुवाटीविलिसिते मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे । विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षं च लभते ॥१०१॥ ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता । जगतां श्रेयसे साऽस्तु मणिद्वीपाधिदेवता ॥१०२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

॥ समाप्तमिदं देवीभागवतमाहात्म्यम् ॥

इस पुराण में है ॥९७॥ अतएव संसार में इसके समान कोई श्रेष्ठ पुराण नहीं है । अतएव ब्राह्मणों को इसका सदा सेवन करना चाहिए ॥९८॥ देवी के सम्पूर्ण प्रभाव को न तो ब्रह्माजी जानते हैं, न तो श्रीहरि या शंकरजी और न तो शेष जानते हैं । वे सब देवी के एक अंशमात्र हैं । अतएव दूसरे लोग उसे क्या जान सकेंगे । उस देवी को नमस्कार है ॥९९॥ जिनके चरण कमल की धूलि को प्राप्त करके ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करते हैं, भगवान् विष्णु उसका पालन करते हैं और रुद्र उसका संहार करते हैं, अन्यथा वे लोग अपने कार्य में समर्थ नहीं हो सकते हैं उन जगदम्बिका को नमस्कार है॥१००॥ अमृत-सागर के तट पर कल्पवृक्ष की वाटिका से सुशोभित, मणिद्वीप के मनोहर मणिमय गृह में परशिव के हृदय में विराजमान मुस्कान युक्त मुखवाली पराम्बा का ध्यान करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष दोनों को प्राप्त कर लेता है ॥१०१॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा जिनकी उपासना की जाती है, वे मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी जगत् का कल्याण करें ॥१०२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत माहात्म्य के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

॥ देवीभागवत माहात्म्य भी पूरा हुआ ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

प्रथमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्याय:

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि । बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥१॥ शौनक उवाच– **सूत सूत महाभाग धन्योऽसि पुरुषर्षभ । यदधीतास्त्वया सम्यक्पुराणसंहिताः शुभाः ॥२॥ अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनाऽनघ । कथितानि सुदिव्यानि पठितानि त्वयाऽनघ ॥३॥ पंचलक्षणयुक्तानि सरहस्यानि मानद । त्वया ज्ञातानि सर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥४॥ अस्माकं पुण्योगेन प्राप्तस्त्वं क्षेत्रमुत्तमम् । दिव्यं विश्वसनं पुण्यं कलिदोषविवर्जितम् ॥५॥ समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुकामोऽस्ति पुण्यदाम् । पुराणसंहितां सूत ब्रूहि त्वं नः समाहितः ॥६॥ दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ तापत्रयविवर्जितः । कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥७॥ श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराः स्वादविचक्षणाः । न शृण्वंति पुराणानि वंचिता विधिना हि ते ॥८॥ यथा जिह्वेन्द्रियाह्लादः षड्रसैः प्रतिपद्यते । तथा श्रोत्रेन्द्रियाह्लादो वचोभिः सुधियां स्मृतः ॥९॥ अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यंति हि नभोगुणैः । सकर्णा ये न शृण्वंति तेऽप्यकर्णाः कथं न च ॥१०॥ अतः सर्वे द्विजाः सौम्य श्रोतुकामाः समाहिताः।**

महर्षि शौनक के प्रश्न

ओम् समस्त ज्ञान स्वरूप उन आद्या विद्या का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करती हैं ॥१॥ **शौनक महर्षि ने कहा–** हे सूतजी आप पुरुषों में अग्रगण्य तथा धन्य हैं, क्योंकि आपने पुराण संहिताओं का अच्छी तरह से अध्ययन किया है ॥२॥ हे निष्पाप ! महर्षि व्यास ने अठारह पुराणों का प्रणयन किया है और आपने उन सबों का अध्ययन किया है ॥३॥ पाँच लक्षणों से युक्त तथा रहस्यों के साथ उन सभी पुराणों को व्यासजी से आपने जान लिया है ॥४॥ आप हमलोगों के पुण्य से ही दिव्य, विश्वास करने योग्य, कलि के दोष से रहित इस पवित्र क्षेत्र में आये हैं ॥५॥ यह मुनियों का समाज पुण्य प्रदान करने वाली पुराणसंहिता को सुनना चाहता हैं, अतएव आप हमलोगों को उसे सुनाएँ ॥६॥ हे सर्वज्ञ ! आप तीनों (दैहिक, दैविक एवं भौतिक) तापों से रहित होकर दीर्घायु होएँ और आज वेद तुल्य पुराण को हमें सुनाएँ ॥७॥ हे सूतजी श्रोत्रेन्द्रिय को आनन्दित करने वाली, स्वाद के जानकार यदि पुराणों को नहीं सुनते हैं तो उनको विधि ने ठग ही लिया ॥८॥ जैसे छह रसों के द्वारा जिह्वा को आनन्द मिलता है उसी तरह बुद्धिमानों की वाणी से श्रोत्रेन्द्रिय को सुख मिलता है ॥९॥ यदि कानों से रहित सर्प शब्दों के द्वारा मोहित हो जाते हैं तो कानों वाले भी यदि पुराणों का नहीं श्रवण करते हैं तो वे भी प्रकारान्तर से कर्ण रहित ही हैं ॥१०॥ हे सौम्य ! कलि से भयभीत इस नैमिषारण्य क्षेत्र में रहने वाले सभी ब्राह्मण सावधानी पूर्वक

वर्तंते नैमिषारण्ये क्षेत्रे कलिभयार्दिताः ॥११॥ येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम् । व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिंतनैः ॥१२॥
शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुतानि च । (त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च । वितंडाछलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च ॥१॥)
नानार्थवादयुक्तानि हेतुमन्ति बृहन्ति च ॥१३॥ सात्त्विकं तत्र वेदान्तं मीमांसा राजसं मतम् । तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभियंत्रितम् ॥१४॥ तथैव
च पुराणानि त्रिगुणानि कथानकैः । कथितानि त्वया सौम्य पंचलक्षणवंति च ॥१५॥ तत्र भागवतं पुण्यं पंचमं वेदसंमितम् । कथितं यत्त्वया पूर्वं
सर्वलक्षणसंयुतम् ॥१६॥ उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं परमाद्भुतम् । मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा ॥१७॥ विस्तरेण तदाख्याहि पुराणोत्तममादरात्।
श्रोतुकामा द्विजाः सर्वे दिव्यं भागवतं शुभम् ॥१८॥ त्वं तु जानासि धर्मज्ञ पौराणीं संहितां किल । कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात्सम्यक्सत्त्वगुणाश्रयः॥१९॥
श्रुतान्यन्यानि सर्वज्ञ त्वन्मुखान्निःसृतानि च । नैव तृप्तिं व्रजामोऽद्य सुधापानेऽमरा यथा ॥२०॥ धिक्सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन ।
पिबन्भागवतं सद्यो नरो मुच्येत संकटात् ॥२१॥ सुधापाननिमित्तं यत्कृता यज्ञाः सहस्रशः । न शांतिमधिगच्छामः सूत सर्वात्मना वयम् ॥२२॥

पुराणों को सुनना चाहते हैं ॥११॥ कहा गया है कि किसी तरह समय बिताना चाहिए। उनमें मूर्खों का तो व्यसन में ही समय व्यतीत होता है और विद्वानों का समय शास्त्र चिन्तन में बितता है ॥१२॥ जल्प तथा वादों से युक्त शास्त्र भी विचित्र हैं। (पुराण एवं शास्त्र भी तीन-तीन प्रकार के हैं जिनसे गर्व एवं अमर्ष ही बढ़ता है ॥१॥) वे अनेक प्रकार के अर्थवादों से युक्त युक्तियुक्त तथा बृहदाकार वाले हैं ॥१३॥ शास्त्रों में वेदान्त सात्त्विक है, मीमांसा राजस है तथा तर्क-वितर्क से युक्त न्यायशास्त्र तामस है ॥१४॥ हे सौम्य ! आपने कहा है कि शास्त्रों के ही समान पुराण भी कथानकों से युक्त त्रिगुणमय हैं और पाँच लक्षणों से युक्त हैं ॥१५॥ उन पुराणों में पाँचवाँ देवी भागवत पुराण वेद के समान है। उसको आपने पहले सभी लक्षणों से युक्त बतलाया है ॥१६॥ उस समय आपने उसका नाममात्र बतलाकर उसे अत्यन्त अद्भुत धर्म देने वाला और मुमुक्षु जीवों को मुक्ति देने वाला बतलाया है ॥१७॥ आप उसे आदर पूर्वक विस्तार से बतलाएँ । उस दिव्य भागवत को सभी द्विज सुनना चाहते हैं ॥१८॥ अपने गुरु का भक्त होने के कारण सत्त्वगुण के आश्रय स्वरूप हे धर्मज्ञ ! व्यासजी के द्वारा कही गयी पुराण संहिता को आप जानते हैं ॥१९॥ आपके मुख से निस्सृत अन्य पुराणों को हमलोगों ने सुना है किन्तु जिसतरह देवता अमृत पीने से तृप्त नहीं होते हैं, उसीतरह हमलोगों को भी तृप्ति नहीं होती है ॥२०॥ अमृत को धिक्कार है क्योंकि उसके पीने से मुक्ति नहीं मिलती है किन्तु देवी भागवत का पान करने वाला शीघ्र ही संकट से मुक्त हो जाता है ॥२१॥ हे सूतजी ! हमलोगों ने जिस अमृत का पान करने के लिए हजारों यज्ञों

मखानां हि फलं स्वर्गः स्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः । एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमणं च निरंतरम् ॥२३॥ बिना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैव मुक्तिः कदाचन । भ्रमता कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके ॥२४॥ अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद । पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्रयां संहितायां प्रथमस्कन्धे शौनकप्रश्नो नाम प्रथमोध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच– **धन्योऽहमतिभाग्योऽहं पावित्रोऽहं महात्मभिः । यत्पृष्टं सुमहत्पुण्यं पुराणं वेदविश्रुतम् ॥१॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसम्मतम्। रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम् ॥२॥ नत्वा तत्पदपंकजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां ब्रह्माद्यैरपि सेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा । वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः ॥३॥ या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा**

को किया है उससे हमें पूर्ण रूप से शान्ति नहीं मिलती है ॥२२॥ यज्ञों का फल स्वर्ग है जहाँ से पतन होता है, इस तरह निरन्तर संसारचक्र में भ्रमण होता रहता है ॥२३॥ इस त्रिगुणात्मक कालचक्र में भ्रमण करने वाले जीवों को ज्ञान के बिना कभी मुक्ति नहीं मिल सकती है ॥२४॥ अतएव आप पवित्र, मुक्ति प्रदान करने वाले, रहस्यमय तथा मुमुक्षु जीवों को सदा प्रिय लगने वाले सभी रसों से युक्त देवी भागवत को सुनाएँ ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥१॥

श्रीमद्देवीभागवत के अध्यायों एवं श्लोकों की संख्या

श्रीसूतजी ने कहा– मै धन्य हूँ, मैं अत्यन्त भाग्यवान हूँ तथा महात्माओं के द्वारा पवित्र कर दिया गया हूँ; क्योंकि मुझसे वेद में प्रख्यात अत्यन्त पवित्र पुराण के विषय में पूछा गया है ॥१॥ अतएव मैं सम्पूर्ण श्रुतियों के अनुकूल समस्त शास्त्रों एवं आगमों के सर्वोत्तम रहस्य को बतलाऊँगा ॥२॥ हे ब्राह्मणों योगियों तथा ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा सेवित, स्तुति करने वाले मुनीन्द्रों के द्वारा ध्यान करने योग्य, मुक्ति प्रदान करने वाली भगवती के चरण कमलों

सर्वज्ञा भवबंधछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता । दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता प्रत्यक्षा भवती हसा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा॥४॥ सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् । संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ॥५॥ ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः । विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म तैरुक्तमेव सृजते न हि स स्वतन्त्रः ॥६॥ विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीति काले तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म । आधारतां किल गतोऽत्र सहस्त्रमौलिः सम्बोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः ॥७॥ एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव पात्रं बिना न हि रसस्थितिरस्ति कश्चित् । या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि ॥८॥ योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुंद्दष्ट्वाऽम्बुजे स्थितः । अजस्तुष्टाव यां देवीं तामहं शरणं गतः ॥९॥ तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा । वक्ष्ये पुराणमखिलं श्रृण्वन्तु मुनयस्त्विह ॥१०॥ पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम् ।

को नमस्कार करके मैं विस्तार पूर्वक अनेक रसों से समन्वित ऐश्वर्य सम्पन्न उत्तम देवीभागवत पुराण को भक्तिपूर्वक कहूँगा ॥३॥ इस वैदिकमार्ग में जिसे विद्या कहा जाता है, जो सदा आद्या तथा परा शक्ति के नाम से अभिहित की जाती हैं, जो सर्वज्ञ तथा संसार के बन्धन को काटने में कुशल हैं; जो सर्वव्यापक हैं, दुरात्मा जिन्हे जान नहीं पाते हैं, मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं, जो साधन द्वारा प्रत्यक्ष की जा सकती हैं; वे भगवती हमारे लिए सिद्धिप्रद हों ॥४॥ जो चेतनाचेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करके अपनी त्रिगुणात्मिका शक्ति से उसका पालन करती हैं, कल्पान्त में उसका संहार करके अकेले विहार करती हैं, उन सम्पूर्ण जगत् की माता का मैं मन से स्मरण करता हूँ ॥५॥ यह विश्वप्रसिद्ध है कि ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करते हैं, वैदिक तथा पौराणिक इस बात का समर्थन करते हैं कि वे ब्रह्माजी भगवान् विष्णु के नाभिकमल से पैदा होकर उनकी प्रेरणा से ही सब कुछ करते हैं, क्योंकि वे स्वतन्त्र नहीं हैं ॥६॥ कल्पान्त में विष्णु भी शेषशय्या पर शयन करते हैं और उन्हीं के नाभिकमल से ब्रह्मा जी जन्म लिए। जब भगवान् विष्णु के ही आधार शेष जी हैं तो फिर उनको मुरारि कैसे कहा जा सकता है ?॥७॥ कल्पान्त में एकार्णव का भी जल रस स्वरूप है, और किसी पात्र के बिना रस की स्थित नहीं हो सकती है, अतएव जो सभी प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित रहती हैं मैं उन्हीं जगन्माता की शरणागति करता हूँ ॥८॥ योगनिद्रा में भगवान् विष्णु को आँखें मूँदे हुए देखकर ब्रह्मा जी ने जिनकी स्तुति की थी; मैं उन्हीं देवी की शरणागति करता हूँ ॥९॥ हे मुनियों ! मैं उन्हीं सगुणामाया तथा मुक्ति प्रदान करने वाली निर्गुणा भगवती का ध्यान करके देवीभागवत पुराण को कहूँगा आपलोग उसे सुनें ॥१०॥ सभी पुराणों में श्रीमद्देवीभागवत पुराण उत्तम हैं, उसमें संस्कृत

अष्टादश सहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः ॥११॥ स्कन्धा द्वादश चैवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः । त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः॥१२॥ विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशज्ञैव तु । त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पंचविंशतिः ॥१३॥ पंचत्रिंशत्तथाऽध्यायाः पचंमे परिकीर्तिताः। एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्च सप्तमे ॥१४॥ अष्टमे तत्त्वसंख्याश्च पंचाशन्नवमे तथा । त्रयोदश तु संप्रोक्ता दशमे मुनिना किल ॥१५॥ तथा चैकादशस्कन्धे चतुर्विंशतिरीरिताः । चतुर्दशैव चाध्याया द्वादशे मुनिसत्तमाः ॥१६॥ एवं संख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन्महात्मना । अष्टादशसाहस्रीया संख्या च परिकीर्तिता ॥१७॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥१८॥ निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिका विकृता शिवा । योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता ॥१९॥ तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा । महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः ॥२०॥ तासां तिसृणां शक्तीनां देवांगीकारलक्षणः । सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः ॥२१॥ हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता । पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः ॥२२॥ सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम् । हिरण्यकशिप्वादीनां वंशास्ते परिकीर्तिताः ॥२३॥ स्वायंभुवमुखानां च मनूनां परिवर्णनम् । कालसंख्या तथा तेषां तत्तन्मन्वंतराणि च ॥२४॥ तेषां वंशानुकथनं

के अठारह हजार श्लोक हैं ॥११॥ महर्षि बादरायण ने उसमें बारह स्कन्धों को बनाया है। सम्पूर्ण देवीभागवत में तीन सौ अठारह अध्याय हैं ॥१२॥ पहले स्कन्ध में बीस, दूसरे में बारह, तीसरे में तीस और चौथे में पच्चीस अध्याय हैं ॥१३॥ पाँचवें स्कन्ध में पैंतीस, छठे में एकतीस तथा सातवें स्कन्ध में चालिस अध्याय हैं ॥१४॥ आठवें स्कन्ध में चौबीस, नवें में पचास तथा दशवें स्कन्ध में महर्षि ने तेरह अध्याय कहा है। ग्यारहवें स्कन्ध में चौबीस अध्याय कहे गये हैं। हे मुनियों ! बारहवें स्कन्ध में चौदह ही अध्याय है ॥१६॥ इस तरह से महर्षि वेदव्यास ने इस पुराण में अठारह हजार श्लोक कहे हैं ॥१७॥ सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्ग (प्रलय का वर्णन) वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों का वर्णन तथा वंशों के चरित का वर्णन ये पुराणों के पाँच वर्णनीय विषय होते हैं ॥१८॥ जो सदा गुणातीत, व्यापक, विकार से रहित कल्याणस्वरूपा, योग के द्वारा जानने योग्य, सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूप तथा तुरीयावस्था वाली हैं ॥१९॥ उन्हीं भगवती की सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी शक्तियाँ महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली ये तीनों स्त्रियाँ है ॥२०॥ उन तीनों शक्तियों के शरीर धारण का जो मूल कारण है उसी को शास्त्रज्ञ पुरुष सर्ग कहते हैं ॥२१॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं उनकी उत्पत्ति का मूलतत्त्व एवं विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार का जो निमित कारण है, उसे ही प्रतिसर्ग कहते हैं ॥२२॥ सोम तथा सूर्य से उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंश का वर्णन तथा हिरण्यकशिपु आदि

वंशानुचरितं स्मृतम् । पंचलक्षणयुक्तानि भवंति मुनिसत्तमाः ॥२५॥ सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम् । इतिहास इति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम् ॥२६॥ शौनक उवाच– कानि तानि पुराणानि ब्रूहि सूत सविस्तरम् । कतिसंख्यानि सर्वज्ञ श्रोतुकामा वयं त्विह ॥२७॥ कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः । ब्रह्मणाऽत्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम् ॥२८॥ कथितं तेन नः सर्वान्गच्छंत्वेतस्य पृष्ठतः । नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः ॥२९॥ कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित्संभविष्यति । तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत्सत्ययुगं पुनः ॥३०॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम् । चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया ॥३१॥ प्रेत्यात्र चालयंश्चक्रं नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यतः । तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम् ॥३२॥ कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानं कृतं मया । मुनिभिः सिद्धसंघैश्च कलिभीतैर्महात्मभिः ॥३३॥ पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल । कालातिवाहनं कार्यं यावत्सत्ययुगागमः ॥३४॥ भाग्ययोगेन संप्राप्तः सूत त्वं चात्र सर्वथा । कथयाद्य पुराणं हि पावनं ब्रह्मसम्मतम् ॥३५॥ सूत शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वं मतिमानथ । निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च ॥३६॥ त्वं सूत भव

के वंश का वर्णन वंश शब्द से अभिहित किया जाता है ॥२३॥ स्वायंभुव आदि मनुओं के काल के वर्णन को मन्वन्तर कहते हैं ॥२४॥ उन मनुओं के वंश के क्रमशः वर्णन को वंशानुचरित कहते हैं। हे मुनिवर्यो ! इन पाँच लक्षणों से युक्त सभी पुराण होते हैं ॥२५॥ महर्षि व्यास ने सवा लाख श्लोकों वाले महाभारत ग्रन्थ का प्रणयन किया। यह पञ्चम वेद के समान इतिहास कहा गया है ॥२६॥ **शौनक महर्षि ने कहा**– हे सर्वज्ञ ! हमलोग सुनना चाहते हैं कि पुराण कौन-कौन से हैं तथा कितने हैं ? इसे आप विस्तार से बतलाएँ ॥२७॥ नैमिषारण्य वासी हमलोग कलि के भय से डर गये थे, तो ब्रह्मा जी ने हमलोगों को मनोमय चक्र देकर कहा कि आप लोग इसके पीछे-पीछे जायँ; यह नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाय वही पवित्र स्थान है ॥२८-२९॥ वहाँ पर कभी भी कलियुग का प्रवेश नहीं होगा। वहीं पर आपलोग तब तक निवास करें जब तक सत्ययुग न आ जाय ॥३०॥ ब्रह्मा जी के वचन को सुनकर और उनके आदेश को हृदय में धारण करके हमलोग चक्र के पीछे-पीछे सभी देशों को देखने के लिए चल पड़े ॥३१॥ यहाँ पर आकर नेमि का धूरा शीर्ण हो गया इसीलिए इस स्थान को नैमिष कहा जाता है ॥३२॥ यहाँ पर कलि का प्रवेश नहीं होता है इसीलिए मैंने, सिद्धों ने तथा महात्माओं ने इस स्थान को अपना निवास स्थान बनाया ॥३३॥ जब तक सत्ययुग नहीं आ जाता है तब तक पशुओं से रहित केवल पुरोडाश आदि से युक्त समय बिताना चाहिए ॥३४॥ हे सूतजी ! आप हमलोगों के भाग्य से यहाँ आये हैं इस वेद के सदृश पुराण को आप हमें सुनायें ॥३५॥ हे सूतजी ! सबलोग उसे सुनना चाहते हैं और आप उसके वक्ता हैं। हमलोग सभी कार्यों को छोड़कर सावधान हो गये हैं ॥३६॥ हे सूतजी ! आप तीनों तापों से रहित होकर दीर्घायु बने रहें। आप हमलोगों

दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जित । कथयाद्य पुराणं हि पुण्यं भागवतं शिवम् ॥३७॥ यत्र धर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम् । विद्यां प्राप्य तथा मोक्षः कथितो मुनिना किल ॥३८॥ द्वैपायनेन मुनिना कथितं यच्च पावनम् । न तृप्यामो वयं सूत कथां श्रुत्वा मनोरमाम् ॥३९॥ सकलगुणानामेकपात्रं पवित्रमखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम् । निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकन्दं प्रकटय भगवत्या नामयुक्तं पुराणम् ॥४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच– **शृण्वन्तु संप्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः । यथाश्रुतानि तत्त्वेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥१॥ मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् । अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक् ॥२॥ चतुर्दशसहस्रं च मत्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् । तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महद्भुतम्॥३॥**

को कल्याणकारी देवी भागवत पुराण को सुनायें ॥३७॥ उस देवीभागवत में धर्म अर्थ और कामों का सविधि वर्णन है। उससे ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मुक्ति मिल जाती है ॥३८॥ द्वैपायन महर्षि ने उस पावन पुराण का वर्णन किया है । हे सूतजी ! हमलोगों को मनोहर कथाओं को सुनने से तृप्ति नहीं होती है ॥३९॥ समस्त गुणों का एकमात्र पात्र, पवित्र तथा सम्पूर्ण जगत् की माता की लीला के समान विचित्र, समस्त दोषों को विनष्ट करने वाले, कामनाओं को पूर्ण करने वाले, देवीभागवत पुराण को आप हमलोगों को सुनाएँ ॥४०॥

इसतरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

पुराणों उपपुराणों तथा व्यासों की संख्या

सूतजी ने कहा– हे मुनीश्वरों सत्यवती के पुत्र व्यास जी के मुख से मैंने जैसा सुना है उसी तरह पुराणों को कहूँगा, उसे आपलोग सुनें ॥१॥ मकारादि मत्स्य एवं मार्कण्डेय दो पुराण, भकारादि (भागवत एवं भविष्य) ब्रकारादि (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड एवं ब्रह्मवैवर्त) तीन पुराण, वकारादि चार (वामन, विष्णु, वराह तथा वायु) पुराण, अकारादि (अग्निपुराण) नाकारादि (नारदपुराण) पकारादि (पद्मपुराण) लिंकारादि (लिङ्गपुराण) गकारादि (गरुडपुराण) कूकारादि (कूर्मपुराण)

चतुर्दश सहस्राणि तथा पंचशतानि च । भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥४॥ अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल । तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम् ॥५॥ द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्मांडं च शताधिकम् । तथाऽष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥६॥ अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च । चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥७॥ त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् । चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥८॥ षौडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम् । पंचविशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥९॥ पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम्। एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम् ॥१०॥ एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं परिभाषितम् । सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥११॥ एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम् । पुराणाख्या संख्या च विस्तरेण मयाऽनघाः ॥१२॥ तथैवोपपुराणानि शृण्वंतु ऋषिसत्तमाः । सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम् ॥१३॥ नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम् । कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम् ॥१४॥ वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नंदिकृतं शुभम् । सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम् ॥१५॥ माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम् । एतान्युपपुराणानि

स्कादि (स्कन्दपुराण) इसतरह अठारह पुराण अलग-अलग हैं ॥२॥ आदि पुराण मत्स्य में चौदह हजार श्लोक हैं। नव हजार श्लोकों वाला मार्कण्डेयपुराण अत्यन्त अद्भुत है ॥३॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने भविष्यपुराण में साढ़े चौदह हजार श्लोक बतलाया है ॥४॥ पवित्र देवीभागवत पुराण में अठारह हजार श्लोक हैं और ब्रह्मपुराण में दश हजार श्लोक हैं ॥५॥ ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार एक सौ श्लोक बतलाये गये हैं जबकि ब्रह्मवैवर्तपुराण में अठारह हजार श्लोक हैं ॥६॥ हे शौनकणी ! वामनपुराण में दश हजार श्लोक हैं जबकि वायुपुराण में चौबीस हजार छह सौ श्लोक हैं ॥७॥ अत्यन्त अद्भुत विष्णुपुराण में तेइस हजार श्लोक हैं और वाराहपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं ॥८॥ अग्निपुराण में सोलह हजार श्लोक हैं और नारदपुराण में पच्चीस हजार श्लोक हैं ॥९॥ विस्तृत पद्मपुराण में पचपन हजार श्लोक हैं और लिङ्गपुराण में ग्यारह हजार श्लोक हैं ॥१०॥ गरुडपुराण में श्रीहरि ने उन्नीस हजार श्लोक पढा है और कूर्मपुराण में सत्रह हजार श्लोक हैं ॥११॥ स्कन्द नामक अद्भुत पुराण में एक्यासी हजार श्लोक हैं। हे अनघ मुनियों! मैंने विस्तार से पुराणों तथा उनकी श्लोक संख्या को बतलाया ॥१२॥ हे मुनिश्रेष्ठों ! इसी तरह आपलोग उपपुराणों को भी सुनें। पहला उपपुराण सनत्कुमार है, दूसरा नारसिंह उपपुराण हैं, तीसरा नारदीयउपपुराण हैं, चौथा शिवउपपुराण है, पाचवाँ दुर्वासाउपपुराण है, छठा कपिलउपपुराण है, सातवाँ मनु उपपुराण है, आठवाँ उशना (शुक्र) उपपुराण है ॥१३-१४॥ नवँ वरुण उपपुराण है, दशवाँ कालिका उपपुराण, ग्यारहवा साम्ब उपपुराण, बारहवाँ नन्दी उपपुराण, तेरहवाँ सूर्य उपपुराण, चौदहवाँ पराशर उपपुराण, पन्द्रहवाँ पराशर प्रोक्त अत्यन्त विस्तृत आदित्य उपपुराण है, सोलहवाँ माहेश्वर उपपुराण है;

कथितानि महात्मभिः ॥१६॥ अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः । भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम् ॥१७॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे-द्वापरे युगे । प्रादुःकरोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि ॥१८॥ द्वापरे-द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा । वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया॥१९॥ अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ । पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे ॥२०॥ स्त्रीशूद्रद्विजबंधूनां न वेदश्रवणं मतम् । तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च ॥२१॥ मन्वंतरे सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे । अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः ॥२२॥ व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः । एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति ॥२३॥ अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च । पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे ॥२४॥ ऋषय ऊचुः– ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः । वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे ॥२५॥ सूत उवाच– द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयंभुवा । प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत् ॥२६॥ तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः। पंचमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तथापरे ॥२७॥ मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः । सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा ॥२८॥ एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम् । त्रयोदशे चांतरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे ॥२९॥ त्रय्यारुणिः पंचदशे षोडशे तु धनंजयः । मेधातिथिः

सत्रहवाँ भागवत उपपुराण और अठारहवाँ वसिष्ठ उपपुराण है । महात्माओं ने इतने ही उपपुराणों को बतलाया है ॥१५-१६॥ अठारह पुराणों की रचना करके व्यासजी ने उनके उपबृंहण रूप महाभारत नामक इतिहास का प्रणयन किया ॥१७॥ सभी मन्वन्तरों के द्वापरयुग में धर्मार्थी व्यासजी विधिपूर्वक पुराणों की रचना करते हैं ॥१८॥ प्रत्येक द्वापरों में भगवान् विष्णु व्यासजी का रूप धारण करके कल्याण करने की इच्छा से एक ही वेद का अनेक प्रकार से विस्तार करते हैं ॥१९॥ कलियुग में ब्राह्मणों को अल्पायु तथा अल्पबुद्धि वाले जानकर व्यासजी पवित्र पुराणसंहिता का निर्माण करते हैं ॥२०॥ स्त्रियों, शूद्रों तथा ब्राह्मणाधामों का वेद में अधिकार नहीं होने के कारण उन्हीं का कल्याण करने के लिए पुराणों की रचना हुई ॥२१॥ हे मुनिवर्यों ! सातवें वैवश्वत मन्वन्तर के अठाइसवें द्वापर में धर्मात्मा और हमारे गुरु व्यासजी हुए । उनतीसवें द्वापर में अश्वत्थामा व्यास होंगे ॥२३॥ इससे पहले सत्ताइस व्यास हो चुके हैं। उन लोगों ने भी प्रत्येक द्वापर में पुराणसंहिताओं का प्रणयन किया ॥२४॥ **ऋषियों ने कहा**– पहले द्वापर युगों में पुराणों के वक्ता जो व्यास हुए उन लोगों को आप बतलाएँ ॥२५॥ **सूतजी ने कहा**– पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्माजी व्यास हुए, दूसरे द्वापर के व्यास प्रजापति हुए ॥२६॥ तीसरे द्वापर के व्यास शुक्राचार्य तथा चौथे द्वापर के व्यास बृहस्पति हुए। पाँचवे द्वापर के व्यास सविता और छठे द्वापर के व्यास मृत्यु हुए ॥२७॥ सातवें द्वापर के व्यास मघवा (इन्द्र) और आठवें द्वापर के व्यास वसिष्ठ हैं। नवें द्वापर के व्यास सारस्वत तथा दशवें द्वापर के व्यास त्रिधामा हुए ॥२८॥ ग्यारहवें द्वापर में त्रिवृष

सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा ॥३०॥ अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम् । उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः ॥३१॥ वेनो वाजश्रवाश्चैव
सोमोऽमुष्यायणस्तथा । तृणबिंदुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम् ॥३२॥ ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः । अष्टविंशतिसंख्येयं कथिता
या मया श्रुता ॥३३॥ कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम् । श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखौघनाशनम् ॥३४॥ कामदं मोक्षदं चैव
वेदार्थपरिबृंहितम् । सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥३५॥ व्यासेन कृत्वाऽतिशुभं पुराणं शुकाय पुत्राय महात्मने यत् । वैराग्ययुक्ताय च
पाठितं वै विज्ञाय चैवारणिसंभवाय ॥३६॥ श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनींद्राः । पुराणगुह्यं सकलं समेतं गुरोः
प्रसादात्करुणानिधेश्च॥३७॥ सूतेन पृष्टः सकलं जगाद द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम् । अयोनिजेनाद्भुतबुद्धिना वै श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम् ॥३८॥
श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादावरः सत्तमाः संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं संतर्तुकामः शुकः । नानाख्यानरसालयं श्रुतिपुटैः प्रेम्णाऽशृणोदद्भुतं
तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवंविधः कः क्षितौ ॥३९॥ पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो व्याजेनापि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम्।

और बारहवें द्वापर में भरद्वाज व्यास हुए । तेरहवें द्वापर में व्यास अन्तरिक्ष और चौदहवें द्वापर में व्यास धर्म हुए ॥२९॥ पन्द्रहवें द्वापर में त्रय्यारुणि व्यास
हुए और सोलहवें द्वापर में धनंजय व्यास हुए। सत्रहवें द्वापर में व्यास मेधातिथि और अठारहवें द्वापर में व्यास व्रती हुए ॥३०॥ उन्नीसवें द्वापर में व्यास
अत्रि महर्षि और बीसवें द्वापर में व्यास गौतम हुए । इक्कीसवें द्वापर में व्यास उत्तम और बाइससवें द्वापर में व्यास वाजश्रवा हुए ॥३१॥ तेइसवें द्वापर में
सोम तथा चौबीसवें द्वापर में तृणविन्दु व्यास हुए । पच्चीसवें द्वापर में व्यास भार्गव हुए और छब्बीसवें द्वापर में शक्ति व्यास हुए। सत्ताइसवें द्वापर में जातुकर्ण्य
व्यास हुए और अठाइसवें द्वापर में कृष्ण द्वैपापन व्यास हुए। इसतरह मैंने अठाइस व्यासों का नाम आपलोगों को बतलाया ॥३२-३३॥ मैंने कृष्णद्वैपायन
से सभी दुःखों को दूर करने वाले देवीभागवत पुराण को सुना है ॥३४॥ यह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला, मोक्ष प्रदान करने वाला, तथा वेदार्थ
का उपबृंहण स्वरूप है। सभी आगमों के रस से परिपूर्ण होने के कारण मुमुक्षु जीवों को प्रिय है ॥३५॥ इस अत्यन्त शुभ पुराण की रचना करके व्यासजी
ने अपने वैराग्यपूर्ण पुत्र शुकदेवजी को अरणि के गर्भ से उत्पन्न जानकर पढ़ाया ॥३६॥ हे मुनीन्द्रों उस पुराण को अपने आचार्य के मुख से सुनकर वैसे
ही हृदयं गम कर लिया ॥३७॥ अपने अयोनिज महाप्रभावशाली पुत्र शुकदेवजी द्वारा पूछे जाने पर इस अद्भुत पुराण को उन्होंने सुनाया था उसी समय
मैने उसे सुना ॥३८॥ हे मुनियों श्रीमद्भागवत रूपी कल्पवृक्ष के फल का स्वाद लेने तथा अगाध संसार-सागर को पार करने के लिए शुकदेवजी ने अनेक
कथानकों से युक्त जिसे प्रेमपूर्वक सुना उसको सुनकर कलियुग के भय से नहीं मुक्त होने वाला कौन सा व्यक्ति होगा ॥३९॥ बहुत बड़ा पापी भी, वैदिकधर्म

मुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलं योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामांकितं सुन्दरम् ॥४०॥ या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या विद्या सतां प्रियतमाऽथसमाधिगम्या । सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं यः संश्रृणोति सततं तु सतीपुराणम् ॥४१॥ संप्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं पोतं भवार्णवजलोत्तरणाय कामम् । संप्राप्य वाचकमहो न श्रृणोति मूढः स वंचितोऽत्र विधिना सुखदं पुराणम् ॥४२॥ यः प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे रागी श्रृणोति सततं च परापवादान् । सर्वार्थदं रसनिधिं विमलं पुराणं नष्टः कुतो न श्रृणुते भुवि मंदबुद्धिः ॥४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **सौम्य व्यासस्य भार्यायां कस्यां जातः सुतः शुकः । कथं वा कीदृशो येन पठितेयं सुसंहिता ॥१॥ अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथा चारणिजः शुकः । संदेहोऽस्ति महांस्तत्र कथयाद्य महामते ॥२॥ गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः । कथं च पठितं तेन पुराणं**

का परित्याग करने वाला, आचारहीन व्यक्ति भी यदि किसी व्याज से भी इस पुराणोत्तम को सुनता है तो वह इस लोक में सभी भोगों को भोग कर अन्त में अविचल भगवती के लोक में चला जाता है ॥४०॥ जो मनुष्य इस देवीभागवत को नित्य ही सुनता है; उसके हृदयगुफा में विष्णु एवं शिव आदि को भी नहीं प्राप्त होने वाली पराविद्या स्वरूपिणी सज्जनों को प्रिय समाधिगम्य भगवती निवास करने लगती हैं ॥४१॥ सभी अंगों से युक्त मानव शरीर प्राप्त करके भी संसार सागर को पार करने के लिए जहाज के समान वक्ता को भी प्राप्त करके जो मूर्ख इस पुराण को नहीं सुनता है, वह भाग्य हीन है ॥४२॥ जो मनुष्य सुनने में पटु दो कानों को प्राप्त करके भी रागवशात् दूसरों की बुराई ही सुनता रहता है, वह मूर्ख सर्व पुरुषार्थों को देने वाले, रस के निधि स्वरूप, इस देवीभागवत पुराण को क्यों नहीं सुनता है ॥४३॥

इसतरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

शुकदेवजी की जन्मकथा

ऋषियो ने कहा– हे सौम्य ! व्यासजी के किस पत्नी से शुकदेवजी पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । उनका जन्म कैसे हुआ और उनकी कौन सी विशेषता

बहुविस्तरम् ॥३॥ सूत उवाच– **पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः । आश्रमे कलविंकौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥४॥ जातमात्रं शिशुं नीडे**
मुक्तमंडान्मनोहरम् । ताम्रास्यं शुभसर्वाङ्गं पिच्छांकुरविवर्जितम् ॥५॥ तौ तु भक्ष्यार्थमत्यंतं रतौ श्रमपरायणौ । शिशोश्चंचुपुटे भक्ष्यं क्षिपतौ च पुनः
पुनः ॥६॥ अङ्गेनाङ्गानि बालस्य घर्षयंतौ मुदान्वितौ । चुंबंतौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम् ॥७॥ वीक्ष्य प्रेमाद्भुतं तत्र बाले
चटकयोस्तदा । व्यासश्चिंतातुरः कामं मनसा समचिन्तयत् ॥८॥ तिरश्चामपि यत्प्रेम पुत्रे समभिलक्ष्यते । किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम्॥९॥
किमेतौ चटकौ चास्य विवाहं सुखसाधनम् । विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम् ॥१०॥ अथवा वार्द्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति।
पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः ॥११॥ अर्जयित्वाऽथवा द्रव्यं पितरौ तर्पयिष्यति । अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यति यथाविधि ॥१२॥
अथवा किं गयाश्रद्धं गत्वा संवितरिष्यति । नीलोत्सर्गं च विधिवत्प्रकरिष्यति बालकः ॥१३॥ संसारेऽत्र समाख्यातं सुखानामुत्तमं सुखम् ।
पुत्रगात्रपरिष्वंगो लालनं च विशेषतः ॥१४॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । पुत्रादन्यतरं नास्ति परलोकस्य साधनम् ॥१५॥
मन्वादिभिश्च मुनिभिर्धर्मशास्त्रेषु भाषितम् । पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तु कथंचन ॥१६॥ दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते । पुत्रावान्मुच्यते

थी जिसके कारण वे इस संहिता को पढ़े ॥१॥ आपने उनको अयोनिज तथा अरणि से उत्पन्न कहा है। हे महामते ! इस विषय में सन्देह होता है, उसे
आप बतलाएँ ॥२॥ हमलोगों ने सुना है कि वे महातपस्वी तथा गर्भयोगी थे। उन्होंने अत्यन्त विस्तृत इस पुराण को कैसे पढ़ा ॥३॥ **सूतजी ने कहा**– प्राचीन
काल में व्यासजी अपने आश्रम में गौरैया के एक जोड़े को देखकर अत्यन्त आश्चर्चित हुए ॥४॥ उन्होंने देखा की अण्डे से अभी-अभी निकले हुए सुन्दर,
लाल मुख वाले, जिनके पंख भी नहीं निकले थे सुन्दर बच्चों को अपने घोसले में छोड़कर उड़ गये और परिश्रम पूर्वक चारा लाकर उस बच्चे के मुख
में डालने लगे ॥५-६॥ वे अपने बच्चे के अंग से अपने अंग को रगड़ते तथा शिशु के मुख को प्रसन्नता पूर्वक चुम्बते थे ॥७॥ उन दोनों गौरैयों को अपने
बच्चे पर अद्भुत प्रेम देखकर चिन्तित व्यासजी मन में सोचने लगे ॥८॥ इन चटकों का कैसा अपने बच्चे में प्रेम है ? क्या इसका विवाह होने पर इसकी
पत्नी का मुख इन सबों को अनान्दित करेगा ॥१०॥ अथवा इन दोनों के वृद्ध हो जाने पर यह धार्मिक बच्चा इन सबों की सेवा करेगा ?॥११॥ द्रव्य
कमाकर इन सबों को प्रसन्न करेगा ? अथवा यह इन सबों के मरने पर इनकी अन्त्येष्टी करेगा ?॥१२॥ अथवा यह गया जाकर इन सबों का श्राद्ध करेगा?
अथवा यह बालक इन सबों के लिए सांड़ छोड़ेगा ?॥१३॥ संसार में सर्वोत्तम सुख अपने पुत्र के गात्र का अलिंगन और उसका लालन-पालन ही है ॥१३॥
निःसन्तान की गति नहीं होती है, और न तो उसको स्वर्ग मिलता है। पुत्र से भिन्न कोई दूसरा परलोक का साधन नहीं है ॥१५॥ मनु आदि ने धर्मशास्त्रों
में कहा है कि पुत्र वाले को ही स्वर्ग मिलता है, पुत्रहीन को नहीं ॥१६॥ यह प्रत्यक्ष देखा जाता है इसमें अनुमान करने की कोई बात नहीं है। आप्त वाक्य

पापादाप्तवाक्यं च शाश्वतम् ॥१७॥ आतुरे मृत्युकालेऽपि भूमिशय्यागतो नरः । करोति मनसा चिंतां दुःखितः पुत्रवर्जितः ॥१८॥ धनं मे विपुलं गेहे पात्राणि विविधानि च । मंदिरं सुन्दरं चैतत्कोऽस्य स्वामी भविष्यति ॥१९॥ मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमते यतः । अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रांतचित्तस्य सर्वथा ॥२०॥ एवं बहुविधां चिंतां कृत्वा सत्यवतीसुतः । निःश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनाः सम्बभूव ह ॥२१॥ विचार्य मनसाऽत्यर्थं कृत्वा मनसि निश्चयम् । जगाम च तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसंनिधौ ॥२२॥ मनसा चिंतयामास कं देवं समुपास्महे । वरप्रदाननिपुणं वांछितार्थप्रदं तथा॥२३॥ विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् । गणेशं कार्तिकेयं च पावकं वरुणं तथा ॥२४॥ एवं चिंतयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः। यदृच्छया समायातो वीणापाणिः समाहितः ॥२५॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतो व्यासः सत्यवतीसुतः । कृत्वाऽर्घ्यमासनं दत्वा पप्रच्छ कुशलं मुनिम्॥२६॥ श्रुत्वाऽथ कुशलप्रश्नं पप्रच्छ मुनिसत्तमः । चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायन वदस्व मे ॥२७॥ व्यास उवाच– अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसे यतः । तदर्थं दुःखितश्चाहं चिंतयामि पुनः पुनः ॥२८॥ तपसा तोषयाम्यद्य कं देवं वांछितार्थदम् । इति चिंतातुरोऽस्म्यद्य त्वामहं शरणं गतः॥२९॥ सर्वज्ञोऽसि महर्षे त्वं कथायाशु कृपानिधे । कं देवं शरणं यामि यो मे पुत्रं प्रदास्यति ॥३०॥ सूत उवाच– इति व्यासेन पृष्टस्तु

के अनुसार पुत्रवाला ही पाप से मुक्त होता है ॥१७॥ रोगी तथा मरने के समय भूमि की शय्या पर पड़ा हुआ भी अपुत्र मनुष्य चिन्ता करता है ॥१८॥ वह सोचता है कि मेरे घर में धन सम्पत्ति और पात्र बहुत हैं, मकान भी सुन्दर है, इसका स्वामी कौन होगा ?॥१९॥ चूकि मृत्यु के समय उसका दुःखी मन भ्रमित होता हैं; अतएव उस भ्रान्तचित्त वाले मनुष्य की दुर्गति अवश्य होती है ॥२०॥ इस प्रकार से अनेक प्रकार की चिन्ता करके व्यासजी गरम-गरम श्वास लेकर उदास हो गये ॥२१॥ इसतरह मन में बहुत विचार करके व्यासजी मन में निश्चय करके तपस्या करने के लिए सुमेरु पर्वत पर चले गये॥२२॥ वे मन में विचार करने लगे कि मैं किस देवता की उपासना करूँ जो देवता वर प्रदान करने में निपुण तथा अभिलषित अर्थ को प्रदान करने वाला हो ॥२३॥ विष्णु, रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि अथवा वरुण की उपासना करूँ ॥२४॥ जब व्यासजी इस प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय हाथ में वीणा लिए हुए नारदजी वहाँ आ गये ॥२५॥ उनको देखकर व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और नारदजी को अर्घ्य देने के बाद आसन देकर उनसे पूछे ॥२६॥ कुशल प्रश्न के प्रश्चात् नारदजी ने व्यासजी से पूछा कि आप क्यों चिन्तित हैं ? मुझे कारण बतलाएँ ॥२७॥ **व्यासजी ने कहा–** चूकि निःसंतान की न तो गति होती है और न उसके मन में सुख मिलता है, इसीलिए मैं दुःखी हूँ और बार-बार चिन्ता कर रहा हूँ कि तपस्या के द्वारा मैं किस देवता को प्रसन्न करूँ। मैं आपके शरणागत हूँ इसे आप बतलाएँ ॥२८-२९॥ हे दयासागर महर्षे ! आप सर्वज्ञ हैं अतएव इसे आप बतलाएँ कि मैं किस देवता की शरण में जाऊँ जो मुझे पुत्र प्रदान करेगा ॥३०॥ **सूतजी ने कहा–** इसतरह से व्यासजी से पूछे जाने पर वेदज्ञ तथा महामना नारदजी

नारदो वेदविन्मुनिः । उवाच परया प्रीत्या कृष्णं प्रति महामनाः ॥३१॥ नारद उवाच– पाराशर्य महाभाग यत्त्वं पृच्छसि मामिह । तमेवार्थं पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः ॥३२॥ ध्यानस्थं च हरिं दृष्ट्वा पिता मे विस्मयं गतः । पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथं जगतः पतिम् ॥३३॥ कौस्तुभोद्भासितं दिव्यं शंखचक्रगदाधरम् । पीतांबरं चतुर्बाहुं श्रीवात्सांकितवक्षसम् ॥३४॥ कारणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम् । वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः ॥३५॥ ब्रह्मोवाच– देवदेव जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो । तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन ॥३६॥ विस्मयोऽयं ममात्यर्थं त्वं सर्वजगतां प्रभुः । ध्यानयुक्तोऽसि देवेश किं च चित्रमतः परम् ॥३७॥ त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्ताऽहमखिलस्य ह । त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्त्यत्र तं देवं ब्रूहि मापते ॥३८॥ जानाम्यहं जगन्नाथ त्वमादिः सर्वकारणम् । कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत् ॥३९॥ इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदं जगत् । हरः संहरते काले सोऽपि ते वचने सदा ॥४०॥ सूर्यो भ्रमति चाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः । अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया ॥४१॥ त्वं तु ध्यायसि कं देवं संशयोऽयं महान्मम । त्वत्तः परं न पश्यामि देवं वै भुवनत्रये ॥४२॥ कृपां कृत्वा वदस्वाद्य भक्तोऽस्मि तव सुव्रत । महतां नैव गोप्यं हि प्रायः किंचिदिति स्मृतिः ॥४३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिराह प्रजापतिम् । शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां

ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक कहा ॥३१॥ **नारदजी ने कहा–** हे महाभाग व्यासजी ! आप मुझ से जो पूछ रहे है, उसी बात को मेरे पिता ब्रह्माजी ने भगवान् मधुसूदन से पूछा था ॥३२॥ श्रीहरि को ध्यानस्न देखकर मेरे पिता ब्रह्माजी आश्चर्यचकित हो गये और जगत्पति श्रीपति से पूनः पूछे ॥३३॥ उस समय भगवान्, कौस्तुभमणि से प्रकाशित थे दिव्य शंख तथा चक्र धारण किए हुए थे, पिताम्बरधारी श्रीभगवान् की चार भुजायें थीं और उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था । सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र कारण देवताओं के भी आराध्य, जगद्गुरु वासुदेव जगन्नाथ को तपस्या करते हुए देखकर उनसे ब्रह्माजी ने कहा ॥३४-३५॥ हे देवताओं के भी आराध्य ! हे जगन्नाथ ! भूत भविष्यत् एवं वर्तमान के स्वामिन् ! आप क्यों तपस्या कर रहे हैं ? और किसका ध्यान कर रहे हैं ?॥३६॥ मुझको अत्यन्त आश्चर्य है कि आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप किसका ध्यान कर रहे हैं ? इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा ?॥३७॥ सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाला मैं आपके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ हूँ, क्या आपसे भी बढ़कर कोई है ? उसे आप मुझे बतलाएँ ॥३८॥ हे जगन्नाथ ! मैं जानता हूँ कि आप ही सम्पूर्ण जगत् के कारण है। आप ही रचयिता, पालन करने वाले तथा संहार करने वाले हैं ॥३९॥ प्रभो ! आप की ही इच्छा से मैं सृष्टि करता हूँ और आपकी आज्ञा के अनुसार रुद्र संहार करते हैं ॥४०॥ आपकी ही आज्ञा से सूर्य चलते रहते हैं, वायु भी चलती रहती है, अग्नि सदा जलती रहती है और इन्द्र वर्षा करते हैं ॥४१॥ ऐसे आप किसका ध्यान कर रहे हैं ? यह मुझको बहुत बड़ा सन्देह है । हे देव! आपसे बड़ा मैं त्रैलोक्य में किसी को भी नहीं जानता हूँ ॥४२॥ मैं आपका भक्त हूँ ! आप कृपा करके मुझे इस बात को आज बतलाइयें। हे सुव्रत यह विख्यात है कि महापुरुष अपने भक्तों

ब्रवीमि मनोगतम् ॥४४॥ यद्यपि त्वां शिवं मां च स्थितिसृष्ट्यंतकारणम् । ते जानंति जनाः सर्वे सदेवासुरमानुषाः ॥४५॥ स्रष्टा त्वं पालकश्चाहं हरः संहारकारकः । कृताः शक्त्येति सत्तर्कः क्रियते वेदपारगैः ॥४६॥ जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी । सात्त्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्तिता ॥४७॥ तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः । नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शंकरः ॥४८॥ तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो । प्रत्यक्षे च परोक्षे च दृष्टांतं शृणु सुव्रत ॥४९॥ शेषे स्वपिमि पर्यंके परतंत्रो न संशयः । तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः॥५०॥ तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहं सदा । कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथासुखम् ॥५१॥ कदाचिद्दानवैः सार्द्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम् । दारुणं देहदमनं सर्वलोकभयंकरम् ॥५२॥ प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा । पंचवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम् ॥५३॥ तौ कर्णमलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ । देव देव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ ॥५४॥ तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणं तु परात्परम् । शक्तिरूपं महाभाग किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥५५॥ यदिच्छः पुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे । कच्छपः कोलसिंहश्च वामनश्च युगे युगे ॥५६॥ न कस्यापि

से कोई भी बात नहीं छिपाते हैं ॥४३॥ ब्रह्माजी की उस बात को सुनकर **श्रीहरि ने ब्रह्माजी से कहा–** ब्रह्मन् ! आप सावधान होकर सुनें मैं अपने मन की बात बतलाता हूँ ॥४४॥ यद्यपि सभी देवता, असुर एवं मनुष्य यही जानते हैं कि आप सृष्टि करने वाले हैं, मैं जगत् की रक्षा करता हूँ और शंकरजी संहार करते हैं ॥४५॥ वेदपारंगत पुरुष यह तर्क करते हैं किसी शक्ति के द्वारा आप स्रष्टा, मैं पालक और शंकरजी संहार कर्ता हैं ॥४६॥ जगत् की सृष्टि के कार्य में आपमें राजसी शक्ति रहती हैं, मुझमें सात्त्विकी शक्ति रहती है और रुद्र में तामसी शक्ति रहती है ॥४७॥ उस शक्ति के बिना न तो आप सृष्टि कर सकते हैं, न मैं पालन कर सकता हूँ और न तो रुद्र संहार का कार्य कर सकते हैं ॥४८॥ हम तीनों उस शक्ति के ही अधीन रहते हैं, इसके विषय में मैं आपको प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दृष्टान्त बतलाता हूँ ॥४९॥ उसी के परतंत्र होकर मैं शेषशय्या पर शयन करता हूँ। और समय आने पर उसी के परतंत्र होकर मैं जगता हूँ ॥५०॥ मैं उसी के अधीन रहकर सदा तपस्या करता हूँ और कभी लक्ष्मीजी के साथ विहार करता हूँ ॥५१॥ कभी मैं दानवों के साथ भयंकर देह को थका देने वाला संग्राम करता हूँ ॥५२॥ हे धर्मज्ञ ! यह तो आप को भी ज्ञात है कि मैं उस महासागर में पाँच हजार वर्ष तक बाहु युद्ध करता रहा ॥५३॥ मेरे कान के मैल से उत्पन्न मधु एवं कैटभ नामक दो बड़े भयंकर दैत्यों को उस देवी की ही कृपा से मैंने मारा ॥५४॥ हे देव ! उस समय क्या आपने परात्पर, कारण स्वरूपा देवी को नहीं पहचाना ? और यदि आपने पहचाना तो आप बार-बार क्यों पूछ रहे हैं। उन्हीं की इच्छा से मैं पुरुष होकर महासागर में विचरण करता हूँ और प्रत्येक युग में कच्छप, वराह, सिंह तथा वामन रूप से अवतार लेता हूँ ॥५६॥ किसे तिर्यग् योनियों में जन्म

प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु संभवः । नाभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु ।।५७।। विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु। शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः करोमि युद्धं विपुलं स्वतंत्रः ।।५८।। पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं गतं धनुर्ज्यास्खलनात्क्व चापि । त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः ।।५९।। हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः । विडंबनेयं किल लोकमध्ये कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम् ।।६०।। तस्मान्नाहं स्वतंत्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा । तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरंतरम् ।।६१।। नातः परतरं किंचिज्जानामि कमलोद्भव । नारद उवाच– इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ ।।६२।। तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुंगव । तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे ।।६३।। असंशयं हृदम्भोजे भज देवीपदांबुजम् । सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव ।।६४।। सूत उवाच– नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः । देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ ।।६५।।

इति श्रीमद्देवीभागवते प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

लेना अच्छा लगेगा। मैं अपनी इच्छा से वामन तथा वराह आदि योनियों में नही अवतीर्ण होता हूँ ।।५७।। लक्ष्मीजी के साथ विहार का परित्याग करके मत्स्य आदि हीन योनियों में कौन जाना चाहेगा ? यदि मैं स्वतंत्र होता तो शय्या का परित्याग करके गरुडासन पर बैठा हुआ क्यों युद्ध करता ?।।५८।। प्राचीन काल में एक बार धनुष की प्रत्यंचा से टूटकर मेरा शिर कहीं चला गया उस समय में आपने ही शिल्पी त्वष्टा के द्वारा मेरे शरीर से घोड़े के शिर को जोड़वा दिया था ।।५९।। हे लोककर्ता ब्रह्माजी आप भी जानते हैं कि मैं उस समय हयग्रीव के नाम से प्रख्यात हुआ यदि मैं स्वतंत्र होता तो यह विडम्बना कैसे होती ?।।६०।। अतएव मैं स्वतंत्र नहीं हूँ अपितु शक्ति के अधीन हूँ । उसी शक्ति का मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ ।।६१।। हे ब्रह्माजी ! मैं उस शक्ति से बढ़कर किसी को नहीं जानता हूँ। **नारदजी ने कहा–** इसतरह से भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा ।।६२।। ब्रह्माजी ने उस बात को मुझे बतलाया । अतएव आप भी कल्याण प्राप्त करने के लिए संशय से रहित होकर अपने हृदय में देवी के चरणकमलों का ध्यान करें। आपको जो भी अभीष्ट है वह सब कुछ देवी देंगी ।।६३-६४।। **सूतजी ने कहा–** नारदजी के द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवी के चरणों का ध्यान करने में निष्णात व्यासजी तपस्या करने के लिए पर्वत पर चले गये ।।६५।।

इसतरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे । यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम् ॥१॥ यन्मूर्द्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम् । हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः ॥२॥ वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः। आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारणकारणः ॥३॥ तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा । तत्सर्वं कथयाशु त्वं विस्तरेण महामते ॥४॥** सूत उवाच– **शृण्वंतु मुनयः सर्वे सावधानाः समंततः। चरित्रं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः ॥५॥ कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः । दशवर्षसहस्राणि परिश्रांतो जनार्दनः ॥६॥ समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः । अवलंब्य धनुः सज्यं कंठदेशे धरास्थितम् ॥७॥ दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामापरमापतिः । श्रांतत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः ॥८॥ तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः । ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः ॥९॥ गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम् । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम् ॥१०॥ अदृष्ट्वा तु तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते । यत्रास्ते भगवान्विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः ॥११॥ ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशं गतम् । विचेतनं विभुं विष्णुं तत्रासांचक्रिरे सुराः ॥१२॥ स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ।**

हयग्रीवावतार की कथा

ऋषियो ने कहा– हे सूतजी ! हमलोगों का मन संशय के सागर में डूब गया है । आपने अत्यन्त आश्चर्यमय तथा संसार को विस्मित करने वाली कथा कही है कि भगवान् विष्णु का शिर कट गया और तबसे वे हयग्रीव हो गये ॥१-२॥ वेद भी भगवान् की स्तुति करता है सभी देवता उनके ही आधीन हैं। सभी कारणों के भी कारण भगवान् आदिदेव हैं ॥३॥ दैवयोग से उनका शिर कैसे कट गया ? हे महामते ! उसे आप विस्तार पूर्वक बताएँ ॥४॥ **सूतजी ने कहा–** हे सभी मुनियों ! सावधान होकर देवाधिदेव के चरित्र को आप्लोग सुनें ॥५॥ एकबार भगवान् जनार्दन दश हजार वर्ष तक युद्ध करके श्रान्त हो गये थे ॥६॥ उसके बाद एक समतल और पवित्र स्थान पर भगवान् विष्णु चढ़े हुए धनुष पर गर्दन रखकर धनुष की नोक पर ही भार देकर सो गये । थके हुए होने के कारण उनको अत्यधिक नींद आ गयी ॥७-८॥ उस समय कुछ समय बाद इन्द्र आदि देवता यज्ञ करने के लिए तैयार हुए॥९॥ वे सब यज्ञों के स्वामी भगवान् विष्णु को देखने के लिए वैकुण्ठ गये जिससे कि देवताओं का कार्य सिद्ध हो सके ॥१०॥ वहाँ पर भगवान् विष्णु को नहीं देखकर उन सबों ने ज्ञान की दृष्टि से जानकर जहाँ भगवान् विष्णु थे वहाँ गये ॥११॥ उन लोगों ने देखा कि भगवान् विष्णु निद्रा के अधीन होकर अचेत

चिंतामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥१३॥ तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः । निद्राभङ्गः कथं कार्यश्चिन्तयन्तु सुरोत्तमाः ॥१४॥
तमुवाच तदा शंभुर्निद्राभंगेऽस्ति दूषणम् । कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः॥१५॥ उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना । तया भक्षयितुं
तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम् ॥१६॥ भक्षितेऽग्रे तदा निम्नं गमिष्यति शरासनम् । तदा निद्राविमुक्तोऽसौ देवादेवो भविष्यति॥१७॥ देवकार्यं तदा
सर्वं भविष्यति न संशयः । स वम्रीं संदिदेशाथ देवदेवः सनातनः ॥१८॥ तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः । निद्राभंगः कथं कार्यो देवस्य
जगतां गुरोः ॥१९॥ निद्राभंगः कथाच्छेदो दंपत्योः प्रीतिभेदनम् । शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम् ॥२०॥ तत्कथं देवदेवस्य करोमि
सुखनाशनम् । किं फलं भक्षणादेव येन पापं करोम्यहम् ॥२१॥ सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरुते पातकं किल । तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव
प्रभक्षणम्॥२२॥ ब्रह्मोवाच– तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु । तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुं बोधय मा चिरम् ॥२३॥ होमकर्मणि
पार्श्वे च हविर्दानात्यतिष्यति । तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यं त्वरान्विता ॥२४॥ सूत उवाच– इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता ।
चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाऽभवत् ॥२५॥ प्रत्यंचायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा । शब्दः समभवद्धोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा॥२६॥

पड़े हैं । सभी देवता वहीं रूक गये ॥१२॥ भगवान् को निद्रित अवस्था में देखकर सभी देवता अत्यन्त चिन्तित हुए ॥१३॥ **इन्द्र ने कहा–** देववर्यो !
आपलोग बतलाएँ कि इससमय क्या करना चाहिए ? आपलोग बतलाएँ की भगवान् की नीन्द कैसे टूटे ?॥१४॥ शंकरजी ने इन्द्र से कहा कि नीन्द तोड़ने
से पाप लगेगा और यज्ञ का कार्य भी करना आवश्यक है ॥१५॥ उस समय ब्रह्माजी ने पृथिवी पर स्थित भगवान् विष्णु के धनुष को खा लेने के लिए
दीमकों को उत्पन्न कर दिया ॥१६॥ उन्होंने सोचा कि धनुष के अग्रभाग के खा लेने से धनुष नीचे चला जायेगा और भगवान् जग जायेंगे ॥१७-१८॥
ऐसा करने से देवताओं का काम हो जायेगा । ब्रह्माजी ने दीमकों को भेजा । दीमकों ने पूछा कि मैं भगवान् विष्णु की निद्रा का भंग हम कैसे करेंगे ?॥१९॥
नींद तोड़ना, कथा में विध्न डालना, पति-पत्नी के प्रेम में भेद डालना, माता और पुत्र में झगड़ा लगाना ये सब ब्रह्महत्या के समान पाप बतलाए गये
हैं ॥२०॥ अतएव देवाधिदेव के सुख को हम कैसे नष्ट करें । ऐसा करने से हमें कौन सा फल मिलेगा ? कि हम यह पाप करें ॥२१॥ संसार के सभी
लोग स्वार्थ वश पाप करते हैं अतएव हम किस स्वार्थ के लिए खाने का काम करें ॥२२॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** यज्ञ में तुम्हारा भाग मैं बनाऊँगा उसे तुम सुनो।
अतएव तुम शीघ्र देवताओं का कार्य करो ॥२३॥ होम के काम में कुण्ड के सन्निकट जो हविष्य गिर जायेगा वह तुम्हारा भाग होगा अतएव शीघ्र काम करो।
सूतजी ने कहा– ब्रह्माजी के कहने से वम्रियों ने विष्णु के धुनष के अग्र भाग को खा लिया उसके कारण प्रत्यञ्चा खुल गयी ॥२५॥ प्रत्यञ्चा के खुलते ही धनुष
का एक शिरा उछल पड़ा उससे भयंकर शब्द हुआ उसके कारण देवता डर गये ॥२६॥ उससे सारा ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो गया और पृथिवी काँप गयी । समुद्र

ब्रह्मांडं क्षुभितं सर्वं वसुधा कंपिता तदा । समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजंतवः ॥२७॥ ववुर्वातास्तथा चोग्राः पर्वताश्च चकम्पिरे । उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः ॥२८॥ दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत् । चिंतामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने ॥२९॥ एवं चिंतयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुंडलः। गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः ॥३०॥ अन्धकारे तदा घोरे शांते ब्रह्महरौ तदा । शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम् ॥३१॥ दृष्ट्वा कबंधं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः । चिंतासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः ॥३२॥ हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम् । वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन ॥३३॥ मायेयं कस्य देवस्य यया तेऽद्य शिरो हृतम् । अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा ॥३४॥ एवंगते त्वयि विभो मरिष्यंति च देवताः । कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे ॥३५॥ नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः । देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते ॥३६॥ पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च । शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम् ॥३७॥ न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी । यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः ॥३८॥ क्रंदमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान् । बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः ॥३९॥ रुदितेन महाभागाः क्रंदितेन तथापि किम् । उपायश्चात्रकर्तव्यः सर्वथा

उद्विग्न हो गये और जल जंतु डर गये ॥२७॥ वायु जोर से चलने लगी पर्वत काँपने लगे और दुःख की सूचना देने वाले उल्कापात आदि महा उत्पात होने लगे ॥२८॥ दिशाएँ भयानक हो गयीं और सूर्य भी अस्त हो गये । देवता चिन्तित हो गये कि इस दुर्दिन में न जाने क्या होगा ?॥२९॥ देवता इसतरह सोच ही रहे थे कि भगवान् विष्णु का कुण्डल और मुकुट के साथ शिर न जाने कहाँ चला गया ॥३०॥ जब अन्धकार दूर हुआ तो ब्रह्मा और शंकर जी ने भगवान् विष्णु का शिर से रहित शरीर देखा ॥३१॥ वे उत्तम देवता भगवान् विष्णु के कबन्ध को देखकर आश्चर्यित हो गये । वे चिन्ता के सागर में मग्न होकर रोने लगे ॥३२॥ वे कह रहे थे, हे नाथ ! हे प्रभो ! यह कैसी घटना हो गयी, हे सनातन देव ! हम देवताओं के लिए तो महाअनर्थ हो गया ॥३३॥ यह किस देवता की माया है जिसने आपका शिर हर लिया ? आप तो अच्छेद्य, अभेद्य तथा अप्रदाह्य हैं ॥३४॥ हे प्रभो ! आपके ऐसा होने पर तो सभी देवता मर जायेगें । आपका हमलोगों पर अत्यधिक स्नेह था, हमलोग अपने स्वार्थ के लिए रो रहे हैं ॥३५॥ हे रमापते ! यह विघ्न दैत्यों, यक्षों अथवा राक्षसों ने नहीं किया है? यह देवताओं ने ही किया है । हम किसको दोष दें ॥३६॥ सभी देवता पराधीन हैं, हम क्या करें और कहाँ जायँ? हम अज्ञानी देवताओं का रक्षक कोई नहीं है ॥३७॥ हे जगद्गुरो यह सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी माया नहीं है, जिसने कि आपका शिर काट दिया हो ॥३८॥ शिव आदि देवताओं को रोते देखकर वेदज्ञ वृहस्पति ने उनलोगों को शान्त करते हुए कहा ॥३९॥ हे महाभाग ! रोने और कल्पने से कोई

बुद्धिगोचरः ॥४०॥ दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ । उपायश्च विधातव्ये दैवात्फलति सर्वथा ॥४१॥ इन्द्र उवाच– दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्। विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम् ॥४२॥ ब्रह्मोवाच– अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत् । शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं कोऽतिक्रमेत्पुनः ॥४३॥ देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः । यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शंभुना पुरा ॥४४॥ तथैव लिंगपातश्च महादेवस्य शापतः । तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणांभसि ॥४५॥ सहस्रभगसंप्राप्तिर्दुःखं चैव शचीपतेः । स्वर्गाद्भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे ॥४६॥ एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते । संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै ॥४७॥ चिंतयंतु महामायां विद्यादेवीं सनातनीम् । सा विधास्यति नः कार्यं निपुणा प्रकृतिः परा ॥४८॥ ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा । यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४९॥ सूत उवाच– इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह । देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये ॥५०॥ ब्रह्मोवाच– स्तुवंतु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम् । गूढांगीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम् ॥५१॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वांगसुन्दराः। तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगत्स्थिताम् ॥५२॥ वेदा ऊचुः– नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे । निर्गुणे सर्वभूतेशिमातः शंकरकामदे॥५३॥

लाभ नहीं है, बुद्धि के अनुसार कुछ उपाय करना चाहिए ॥४०॥ हे देवेश ! दैव और पुरुष ये दोनों एक समान हैं । अतएव उपाय करना चाहिए । ऐसा करने से दैवयोग से सफलता भी मिल जाती है ॥४१॥ **इन्द्र ने कहा–** मैं दैवको ही प्रधान मानता हूँ पुरुषार्थ को धिक्कार है । देवताओं के ही सामने भगवान् विष्णु का भी शिर कट गया ॥४२॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** समयानुसार प्राप्त होने पर सभी शुभ एवं अशुभ फल को भोगना ही पड़ता है । भाग्य का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता है ॥४३॥ सभी देह धारियों को समय-समय से सुख-दुख भोगना ही पड़ता है । पहले शंकरजी ने भी मेरा शिर काट लिया था॥४४॥ उसीतरह शापवशात् शिवजी का लिङ्ग कटकर पृथिवी पर गिर पड़ा था । उसीतरह भगवान् विष्णु का भी शिर कटकर आज लवण समुद्र में गिर पड़ा है ॥४५॥ इन्द्र को सहस्रयोनि का दुःख सहना पड़ा था और स्वर्ग से भागकर उन्हें कमल वन में छिपने के लिए विवश होना पड़ा था ॥४६॥ ये सबके सब दुःख भोगने वाले हैं किसे दुःख नहीं भोगना पड़ता है? अतएव हे महाभाग ! आपलोग शोक का परित्याग करें । आपलोग महामाया सनातनी विद्या देवी का ध्यान करें वह निपुण देवी हमारा सारा कार्य बना देंगी ॥४८॥ वे ब्रह्मविद्या, जगत् की धात्री और सबों की माता हैं । उनके द्वारा यह सचराचर सारा जगत् व्याप्त है ॥४९॥ **सूतजी ने कहा–** मुनियों देवताओं से इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी ने देहधारी वेदों को आदेश दिया ॥५०॥ ब्रह्माजी ने कहा आपलोग सभी कार्यों को सिद्ध करने वाली परा ब्रह्मविद्या, सनातनी, गूढ अंगो वाली, महामाया की स्तुति करें ॥५१॥ ब्रह्माजी की बातों को सुनकर सर्वाङ्ग

त्वं भूतिः सर्वभूतानां प्राणाः प्राणवतां तथा । धीः श्रीः कांतिः क्षमा शांतिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः ॥५४॥ त्वमुद्गीथेऽर्धमात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा । जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया ॥५५॥ त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधानदक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम् । विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम् ॥५६॥ ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्रवाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः । ते त्वत्कृताः संति ततो न मुख्या माता यतस्त्वं स्थिरजंगमानाम् ॥५७॥ सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान् । स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः ॥५८॥ न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो न नाम्नां संख्या ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः । यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु गरः कथं पारावाराकलनचतुरः स्यादृतमतिः ॥५९॥ न देवानां मध्ये भगवति तवानंतविभवं विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकाऽसि जननी । कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि प्रमाणं त्वेतस्मिन्नगमवचनं देवि विहितम् ॥६०॥ निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति । कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुणप्रभावः

सुन्दर वेदों ने जगत् में स्थित ज्ञानगम्य महामाया की स्तुति की ॥५२॥ **वेदों ने कहा–** हे देवि ! हे महामाये ! हे जगत् को उत्पन्न करने वाली ! हे शिवे! हे निर्गुणे ! हे सर्वभूतेशि ! हे मातः ! हे शंकरजी की कामना को पूर्ण करने वाली भगवति ! आपको नमस्कार है ॥५२-५३॥ आप सभी प्राणियों के ऐश्वर्य, प्राणधारियों के प्राण, उनकी बुद्धि, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति श्रद्धा, मेधा तथा स्मृति हैं ॥५४॥ आप ओंकार में चन्द्र विन्दु स्वरूपिणी, गायत्री, व्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा तथा दया स्वरूपिणी हैं ॥५५॥ हे माँ आप तीनों लोकों की सृष्टि करने में निपुण, दयारस से परिपूर्ण, और सभी जनों की माँ हैं, आप विद्या, शिवा, सम्पूर्ण जीवों के वरेण्य कल्याणरूपिणी, वाग्बीज मंत्र में निवास करने वाली तथा संसार के बन्धन को काटने वाली हैं ॥५६॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य तथा लोकपाल को बनाने वाली हैं । अतएव ये प्रधान नहीं हैं; क्योंकि आप सम्पूर्ण जड जंगमों की माता हैं ॥५७॥ हे माँ ! इस सम्पूर्ण जगत् को बनाने की इच्छा से जब आप ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओं की सृष्टि करती हैं, तो उन सबों के द्वारा आप सृष्टि, पालन और संहार समान रूप से करवाती हैं, किन्तु हे देवि ! आपका संसार से विल्कुल सम्बन्ध नहीं होता ॥५८॥ हे देवि! सम्पूर्ण संसार में कोई भी आपके रूप को जानने में निपुण नहीं है और न तो आपके नामों की संख्या को कोई पुरुष बतला सकता है । जो व्यक्ति एक छोटे से सरोवर को नहीं पार कर सकता है, वह महासागर को कैसे पार कर सकता है ?॥५९॥ देवताओं में कोई भी ऐसा नहीं है जो आपके अनन्त ऐश्वर्य को जान सके । आप सम्पूर्ण जगत् की अकेली माता हैं । आप अकेले इस मिथ्या विश्व की रचना कैसे करती हैं ? हे देवि ! इस विषय में वेद की वाणी ही प्रमाण है ॥६०॥ हे मातः ! आप सम्पूर्ण जगत् का कारण है फिर भी निरीह हैं । आपका यह अद्भुत चरित्र हमारे मन को आश्चर्यित करता है । यही कारण

स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम् ॥६१॥ न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः । हरेः किं वा मातर्दुरिततततिरेषा बलवती भवत्या पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम् ॥६२॥ उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजनकम् । महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला न जानीमो मौलेर्विघटन विलंबः कथमभूत् ॥६३॥ ज्ञात्वा दोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते । विष्णोर्वा किं समरजनितः कोपवर्गोऽतिवेगाच्छेतुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम् ॥६४॥ किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्या । अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि द्रष्टुं किं वा विगतिशिरसं वासुदेवं विनोदः ॥६५॥ सिंधोः पुत्र्या रोषिता किं त्वमाद्ये कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम् । क्षंतव्यस्ते स्वांशजातापराधो व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व ॥६६॥ एते सुरास्त्वां सततं नमंति कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः । शोकार्णवात्तारय देवि देवानुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम् ॥६७॥ मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य । यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा तथा

है कि सम्पूर्ण वेदों के भी अविषयभूत आपके प्रभाव को न तो हमलोग जानते हैं और न तो आप ही अपने प्रभाव को पूर्ण रूप से जानती हैं ॥६१॥ हे माँ! क्या आप श्रीहरि के शिरः छेद को नहीं जानती हैं ? हे शिवे ! क्या आप जानकर भी श्रीहरि की शक्ति को जानना चाहती हैं ? हे माँ ! श्रीहरि का यह कौन सा अत्यधिक पाप है ? आपके चरणों की सेवा करने में निपुण पुरुष में पाप ही कहाँ रह सकता है ?॥६२॥ हे माँ ! आप इस देव समूह की अत्यधिक उपेक्षा क्यो कर रही हैं ? श्रीहरि के शिर का नाश होना अत्यन्त आश्चर्यजनक है । हे माँ ! आप बड़ी से बड़ी विपत्ति को विनष्ट करने में कुशल हैं । हम नहीं जानते हैं कि शिर के जुटने में विलम्ब क्यों हो रहा है ?॥६३॥ समस्त देवसमूह के द्वारा किए गये दोषों को जानकर उन सम्पूर्ण दोष को विष्णु पर आपने डाल दिया है क्या ? अन्यथा युद्ध से उत्पन्न विष्णु के पापसमूह के अत्यधिक वेग से विनष्ट करने के लिए आपका यह विलास है क्या ? इसमें आपके भाव को हमलोग नहीं जान पा रहे हैं ॥६४॥ अथवा युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने किसी मनोहर तीर्थ में घोर तपस्या करके आप से वरदान प्राप्त कर लिया है ? हे भवानि! इस समय विष्णु का शिर अन्तर्धान हो गया है अथवा शिर से विहीन विष्णु को देखने के लिए यह आपका मनोविनोद है ॥६५॥ हे आद्ये ! सिन्धु की पुत्री लक्ष्मी पर आप कुपित तो नहीं हो गयी हैं ? यदि ऐसी बात नहीं है तो आप उन्हें अनाथ कैसे देख रही हैं ? आप अपने अंश से उत्पन्न लक्ष्मी के अपराध को क्षमा कर दें और विष्णु भगवान् को जीवित करके लक्ष्मी को प्रसन्न करें ॥६६॥ सृष्टि आदि के कार्यों में नियुक्त ये देवता आपको सदा नमस्कार करते हैं । हे देवि ! भगवान् विष्णु को जीवित करके आप देवताओं का शोक के सागर से उद्धार करें ॥६७॥ हे देवि हमलोग नहीं जानते हैं कि श्रीहरि का शिर कहाँ

जगज्जीवितदाऽसि देवि ॥६८॥ सूत उवाच– **एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी । प्रसन्ना परमा माया वेदैः सांगैश्च सामगैः ॥६९॥ तानुवाच तदा वाणी चाकाशस्था शरीरिणी । देवान्प्रतिसुखैः शब्दैर्जनानंदकरी शुभा ॥७०॥ मा कुरुध्वं सुराश्चिंतां स्वस्थास्तिष्ठन्तु चामराः । स्तुताऽहं निगमैः कामं संतुष्टाऽस्मि न संशयः ॥७१॥ यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम् । पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥७२॥ शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः । विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम् ॥७३॥ शृण्वंतु कारणं चाद्य मद्गतं वदनं हरेः । अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति ॥७४॥ उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामंतिके प्रियाम्। जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम् ॥७५॥ तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः । विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना ॥७६॥ विनापि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य संभवः । सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी ॥७७॥ ततः कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा । तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत् ॥७८॥ केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये । प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा ॥७९॥ तामस्याविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा । शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः ॥८०॥ स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः । अनिवार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः॥८१॥**

चला गया ? इनके जीवित होने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं है । जैसे अमृतजीवन प्रदान करता है उसी तरह हे देवि ! आप जगत् को जीवन प्रदान करती हैं ॥६८॥ **सूतजी ने कहा–** इस प्रकार से सामगान करने वाले वेदों के द्वारा की गयी स्तुति को सुनकर गुणातीत महेश्वरी देवी प्रसन्न हो गयीं ॥६९॥ उसी समय देवताओं को सुख देने वाली वाणी से युक्त आकाशवाणी ने कहा ॥७०॥ देवताओं आपलोग चिन्ता न करें आपलोग प्रसन्न होएँ । वेदों की स्तुति सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥७१॥ संसार में जो कोई भी इस स्तुति से मेरी भक्तिपूर्वक स्तुति करेगा उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी ॥७२॥ अथवा जो भक्तिपूर्वक मेरी इस स्तुति को तीनों कालों में सुनेगा उसका सारा दुःख दूर हो जायेगा और वह सुखी होगा । यह स्तुति वेद के ही समान है ॥७३॥ देवताओं श्रीहरि के शिर कटने के कारण को आपलोग मुझसे सुनें, क्योंकि बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता है ॥७४॥ एक समय की बात है कि भगवान् विष्णु अपनी प्रियतमा पत्नी लक्ष्मी जी के सुन्दर मुख को देखकर हँस पड़े ॥७५॥ यह देखकर लक्ष्मी ने सोचा कि भगवान् मेरे मुख को देखकर क्यों हँसे? इन्होंने मेरे मुख में कौन सा दोष देखा है ॥७६॥ बिना किसी कारण के ये हँस नहीं सकते हैं । हो सकता है कि इन्होंने मेरी कोई सौत रख ली हो ॥७७॥ यह सोचकर लक्ष्मी कुपित हो गयीं, उसी समय उनके शरीर में तामसी शक्ति का प्रवेश हो गया ॥७८॥ कुछ समय बाद देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए लक्ष्मी के शरीर में अत्यन्त दारुण तामसी शक्ति प्रविष्ट हुई ॥७९॥ तामसी शक्ति के प्रवेश के कारण लक्ष्मीजी भगवान् पर अत्यधिक कुपित हुईं और उन्होंने मन्द स्वर में कहा आपका यह शिर कटकर गिर जाय ॥८०॥ स्त्री का स्वभाव तथा भावी कालयोग के कारण उन्होंने अपने ही

सपत्नीसंभवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति । विचिंत्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः ॥८२॥ अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता । अशौचं
निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥८३॥ सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा । शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणांबुधौ ॥८४॥
अन्यच्च कारणं किंचिद्वर्तते सुरसत्तमाः । भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः ॥८५॥ पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽतिविश्रुतः । तपश्चक्रे
सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम् ॥८६॥ जपन्नेकाक्षरं मंत्रं मायाबीजात्मकं मम । निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः ॥८७॥ ध्यायन्मां तामसीं
शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम् । एवं वर्षसहस्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम् ॥८८॥ तदाऽहंतामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता । दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन
यादृशम् ॥८९॥ सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता। वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत ॥९०॥ इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः।
प्रदक्षिणां प्रणामं च चकार त्वरितस्तदा ॥९१॥ दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः । हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा ॥९२॥
हयग्रीव उवाच– नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे ॥९३॥ धरांबुतेजः पवनखपंचानां च
कारणम् । त्वं गंधरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः ॥९४॥ घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रमिंद्रियाणि च । कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि त्वत्तः सर्वं

सुख का नाश करने वाला यह शाप दे दिया ॥८१॥ सौत से होने वाला दुख वैधव्य से भी अधिक दुःख देने वाला होता है, यह सोचकर तामसी शक्ति
के कारण इस प्रकार का शाप दिया ॥८२॥ झूठ, अविचार, माया, मूर्खता, अत्यधिक लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियों के स्वभाविक दोष हैं ॥८३॥
देवी ने कहा– अब मैं भगवान् विष्णु को शिर से युक्त कर देती हूँ । लक्ष्मी के शाप के कारण इनका शिर लवणसागर में गिरकर डूब गया है ॥८४॥
देवताओं! इसका दूसरा भी कारण है उसके कारण आपलोगों का बहुत बड़ा कार्य होगा ॥८५॥ पहले हयग्रीव नामक दैत्य ने सरस्वती नदी के तट पर
घोर तपस्या किया ॥८६॥ वह मेरे एक अक्षर वाले मायाबीज को जपता था । उसने भोजन करना छोड़ दिया था और अपनी इन्द्रियों को वश में करके
सभी लोगों को त्याग दिया था ॥८७॥ उसने मेरी तामसी शक्ति का ध्यान करते हुए एक हजार वर्ष तक घोर तपस्या की ॥८८॥ चूकि उसने तामसी शक्ति
का ही ध्यान किया था इसलिए मैं अपना तामसी रूप बना कर वहाँ आयी ॥८९॥ मैं सिंह पर सवार थी और मैंने दयापूर्वक कहा; महाभाग वरदान मागो
मैं तुम्हें वरदान दूँगी ॥९०॥ देवी की यह बाणी सुनकर वह दैत्य प्रेमपूर्वक प्रदक्षिणा तथा नमस्कार किया ॥९१॥ मेरे उस रूप को देखकर अपने आँखों
में हर्ष के आँसू को भरकर प्रेम के कारण विकसित नेत्रों से देखते हुए मेरी स्तुति की ॥९२॥ **हयग्रीव ने कहा**– हे महामाये ! हे सृष्टि का पालन तथा संहार
करने वाली ! भक्तों पर कृपा करने में चतुर काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली शिवे ! आपको नमस्कार है ॥९३॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश
एवं उनके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द जो गुण हैं, उनके भी कारण आप ही हैं ॥९४॥ हे महेश्वरि ! घ्राण, रसना, चक्षु त्वक् एवं श्रोत्र ये ज्ञानेन्द्रियाँ

महेश्वरि ॥९५॥ श्रीदेव्युवाच– **किं तेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वांछितं यद्ददामि तत् । परितुष्टाऽस्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च ॥९६॥** हयग्रीव उवाच– **यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथा कुरु । भवेयममरो योगी तथाऽजेयः सुरासुरैः ॥९७॥** देव्युवाच– **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा ॥९८॥ एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम । वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल ॥९९॥** हयग्रीव उवाच– **हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदंबिके । इति मे वांछितं कामं पूरयस्व मनोगतम् ॥१००॥** देव्युवाच– **गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यं यथासुखम् । हयग्रीवादृते मृत्युर्न ने नूनं भविष्यति ॥१०१॥ इति दत्त्वा वरं तस्मा अंतर्धानं गता तथा । मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः ॥१०२॥ स पीडयति दुष्टात्मा मुनिन्वेदाँश्च सर्वशः । न कोऽपि विद्यते तस्य हंताऽद्य भुवनत्रये ॥१०३॥ तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम् । देहेऽत्र विशिरो विष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति ॥१०४॥ हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तं महासुरम् । पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया ॥१०५॥** सूत उवाच– **एवं सुराँस्तदाऽऽभाष्य शर्वाणी विरराम ह । देवास्तदातिसंतुष्टास्तमूचूर्देवशिल्पिनम्॥१०६॥** देवा ऊचुः– **कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम् । दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति ॥१०७॥** सूत उवाच– **इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः । वाजिशीर्षं चकर्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ ॥१०८॥ विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम् । हयग्रीवो हरिर्जातो**

तथा कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ) आप से ही उत्पन्न होती हैं ॥९५॥ **श्रीदेवी ने कहा–** मैं तुम्हारी भक्ति तथा तपस्या से सन्तुष्ट हूँ, जो तुम्हें अभिप्रेत हो वह वरदान मैं दे रही हूँ ॥९६॥ **हयग्रीव ने कहा–** हे माँ ! आप मुझे ऐसा बना दें कि मेरी मृत्यु न हो । मैं देवताओं तथा असुरों के लिए अमर हो जाऊँ ॥९७॥ **देवी ने कहा–** जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म होना भी निश्चित है । यह संसार की मर्यादा है यह बदल नहीं सकता है ॥९८॥ हे राक्षसोत्तम ! मृत्यु के विषय में इस तरह निश्चय करके तुम विचार करके वरदान माँगो ॥९९॥ **हयग्रीव ने कहा–** मेरी मृत्यु हयग्रीव से ही हो किसी दूसरे से नहीं यही मेरी अभिलाषा है उसे आप पूरा करें ॥१००॥ **देवी ने कहा–** महाभाग आप अपने घर जायँ और सुखपूर्वक राज्य करें । हयग्रीव को छोड़कर किसी दूसरे से तुम्हारी मृत्यु नहीं होंगी॥१०१॥ इस तरह से वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और परम प्रसन्न होकर हयग्रीव भी अपने घर चला गया ॥१०२॥ वह दुष्ट मुनियों तथा वेदों को दुख दे रहा है । आज त्रैलोक्य में उसको मारने वाला कोई नहीं है ॥१०३॥ अतएव विश्वकर्मा किसी सुन्दर घोड़े का शिर लेकर शिररहित विष्णु के शरीर में जोड़ दें ॥१०४॥ उसके बाद हयग्रीव उस पापी क्रूर दानव को देवताओं का कल्याण करने के लिए मारेंगे ॥१०५॥ **सूतजी ने कहा–** देवताओं को इस तरह कहकर देवी चुप हो गयीं । उसके बाद देवताओं ने उस बात को देवशिल्पी विश्वकर्मा से कहा ॥१०६॥ **देवताओं ने कहा–** हे विश्वकर्मा आप देवताओं का काम करें । हयग्रीव भगवान् दानव श्रेष्ठ हयग्रीव का वध करेंगे ॥१०७॥

महामायाप्रसादतः ॥१०९॥ कियता तेन कालेन दानवो मददर्पितः । निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा ॥११०॥ यं इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुवि मानवाः । सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते भवंति न संशयः ॥१११॥ महामायाचरित्रञ्च पवित्रं पापनाशनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वसंपत्तिकारकम् ॥११२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते प्रथमस्कन्धे हयग्रीवावतारकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे । मधुकैटभयोः सार्द्धं पंचवर्षसहस्रकम् ॥१॥ कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्नेकार्णवे जले । महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ ॥२॥ कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ । तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम्॥३॥ श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः । दैवाच्चात्रैव संजातः संयोगश्च तथावयोः ॥४॥ मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।

सूतजी ने कहा– देवताओं की बातों को सुनकर विश्वकर्मा ने देवताओं के सामने ही घोड़े का शिर काट दिया ॥१०८॥ और उस शिर को भगवान् विष्णु के शरीर से जोड़ दिया । महामाया की कृपा से श्रीहरि हयग्रीव बन गये ॥१०९॥ और कुछ समय बाद देवताओं को समाचार ज्ञात हुआ कि शत्रु हयग्रीव उनके द्वारा मारा गया ॥११०॥ जो मनुष्य इस कथा को सुनेंगे वे निश्चित रूप से सभी दुःखों से मुक्त हो जायेगे ॥१११॥ महामाया का यह पवित्र चरित्र पापों को विनष्ट करने वाला और पढ़ने तथा सुनने वालों को सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करने वाला है ॥११२॥

इसतरह श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

मधुकैटभ युद्ध का प्रारम्भ

ऋषियों ने कहा– हे सौम्य ! आपने यह जो कहा है कि महासागर में श्रीहरि ने मधुकैटभ के साथ पाँच हजार वर्ष युद्ध किया ॥१॥ वे दोनो महाबलवान, दुराधर्ष तथा देवताओं के लिए दुर्जय दैत्य महार्णव में कैसे उत्पन्न हुए ॥२॥ वे दोनों असुर कैसे उत्पन्न हुए तथा श्रीहरि के द्वारा कैसे मारे गये ? हे महाप्राज्ञ उस अद्भुत चरित को आप सुनाएँ ॥३॥ हमलोग उसे सुनना चाहते हैं और उसके वक्ता आप बहुश्रुत हैं । अतएव भाग्यवशात् हमलोगों का यहाँ संयोग

विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः ॥५॥ जीवंति पशवः सर्वे खादंति मेहयन्ति च । जानंति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम् ॥६॥ न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः । पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः ॥७॥ मृगाद्याः पशवः केचिज्जानंति श्रावणं सुखम् । अश्रोत्राः फणिनश्चैव मुमुहुर्नादपानतः ॥८॥ पंचानामिंद्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने । श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरंजनम् ॥९॥ श्रवणं त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकं राजसं तथा । तामसं च महाभागाः सुज्ञोक्तं निश्चयान्वितम् ॥१०॥ सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम् । तामसं युद्धवार्ता च परदोषप्रकाशनम् ॥११॥ सात्त्विकं त्रिविधं प्रोक्तं प्रज्ञावद्भिश्च पण्डितैः । उत्तमं मध्यमं चैव तथैवाधममित्युत ॥१२॥ उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा । अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः ॥१३॥ साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम् । मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाऽधमम् ॥१४॥ तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः । आततायिनियुद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम् ॥१५॥ मध्यमं चापि विद्वेषात्पांडवानां तथाऽरिभिः । अधमं निर्निमित्तं तु विवादे कलहे तथा ॥१६॥ तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महामते । बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम्॥१७॥

हुआ है ॥४॥ मूर्ख के साथ होने वाला संयोग विष से भी अधिक घातक होता है । विद्वान् के साथ होने वाले संयोग को अमृत के समान कहा गया है॥५॥ पशु भी खाते हैं, मल-मूल करते हैं तथा अद्भुत विषय सुख का आनन्द लेते हैं ॥६॥ किन्तु उन्हें भले-बुरे का ज्ञान नहीं होता है और न तो उनमें मोक्ष प्रदान करने वाला विवेक उत्पन्न होता है । जिनका कथा के श्रवण में आदर नहीं है वे पशु के ही तरह जानने योग्य हैं ॥७॥ मृग आदि कुछ पशु श्रवण जन्य सुख को जानते हैं । श्रोत्रेन्द्रिय रहित सर्प भी ध्वनि के नाद से मोहित हो जाते हैं ॥८॥ पाँचों इन्द्रियों में श्रवणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय को शुभ माना जाता है । सुनने से वस्तुओं का ज्ञान होता है और देखने से मनोरंजन होता है ॥९॥ हे महाभाग ! विद्वानों ने तीन प्रकार का श्रवण बतलाया है– सात्त्विक, राजस एवं तामस ॥१०॥ वेदशास्त्र आदि का श्रवण सात्त्विक है साहित्य का श्रवण राजस है तथा दूसरों के दोषों को प्रकाशित करने वाली युद्ध की कथा तामस है ॥११॥ प्राज्ञ विद्वानों ने तीन प्रकार का सात्त्विक श्रवण बतलाया है उत्तम, मध्यम और अधम ॥१२॥ मोक्ष फल देने वाला उत्तम श्रवण है, स्वर्गरूपी फल प्रदान करने वाला मध्यम श्रवण है और भोग प्रदान करने वाला अधम श्रवण है, यह विद्वानों ने निर्णय करके जाना है ॥१३॥ साहित्य भी तीन प्रकार का होता है- उत्तम, मध्यम तथा अधम । स्वकीया नायिका के वर्णन वाला उत्तम, वेश्याओं के वर्णन वाला साहित्य मध्यम तथा परस्त्री वर्णन वाला साहित्य अधम होता है ॥१४॥ शास्त्र के जानकारों ने तामस साहित्य को भी तीन प्रकार का बतलाया है– किसी आततायीके साथ युद्ध के वर्णन वाला साहित्य उत्तम ॥१५॥ कौरवों के साथ विद्वेष के कारण पाण्डवों के युद्ध वर्णन जैसा साहित्य मध्यम और बिना किसी कारण के विवाद और कलह का वर्णन करने वाला साहित्य अधम होता है ॥१६॥ हे महामते ! समस्त सुनने योग्य साहित्य में पुराण प्रधान है, उससे बुद्धि बढ़ती है और पाप

तदाख्याहि महाबुद्धे कथां पौराणिकीं शुभाम्। श्रुतां द्वैपायनात्पूर्वं सर्वार्थस्य प्रसाधिनीम् ॥१८॥ सूत उवाच– **यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं**
पृथिवीतले । येषां श्रवणबुद्धिश्च ममापि कथने किल ॥१९॥ पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये । शेषपर्यङ्कसुप्ते च देवदेवे जनार्दने ॥२०॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ । महाबलौ च तो दैत्यौ विवृद्धौ सागरे जले ॥२१॥ क्रीडमानौ स्थितौ तत्र विचरंतावितस्ततः । तावेकदा
महाकायौ क्रीडासक्तौ महार्णवे ॥२२॥ चिंतामवापतुश्चिते भ्रातराविव संस्थितौ । नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परंपरा ॥२३॥ आधेयं तु विनाधारं
न तिष्ठति कथंचन । आधाराधेयभावस्तु भाति नो चित्तगोचरः ॥२४॥ क्व तिष्ठति जलं चेदं सुखरूपं सुविस्तरम् । केन सृष्टं कथं जातं
मग्नावावाञ्जले स्थितौ ॥२५॥ आवां वा कथमुत्पन्नौ केन वोत्पादितावुभौ । पितरौ क्वेति विज्ञानं नास्ति कामं तथावयोः ॥२६॥ सूत उवाच–
एवं कामयमानौ तौ जग्मतुर्न विनिश्चयम् । उवाच कैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितं जले ॥२७॥ कैटभ उवाच– **मधो वामत्र सलिले स्थातुं**
शक्तिर्महाबला । वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता ॥२८॥ तया ततमिदं तोयं तदाधारं च तिष्ठति । सा एव परमा देवी कारणं च
तथावयोः ॥२९॥ एवं विवुध्यमानौ तौ चिंताविष्टौ यदाऽसुरौ । तदाकाशे श्रुतं ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम् ॥३०॥ गृहीतं च ततस्ताभ्यां तस्याभ्यासो

का नाश होता है ॥१७॥ हे महाबुद्धे ! आप पुराण की कथा हमलोगों को सुनाएँ वह सभी पुरुषार्थों को देने वाली है, और जिसे आपने द्वैपायन महर्षि
से सुना है ॥१८॥ **सूतजी ने कहा–** हे महाभाग ! इस भूलोक में आपलोग तथा मैं दोनों धन्य हैं क्योंकि आपलोग का मन श्रवण में लगा है और मेरा
मन कहने में ॥१९॥ प्राचीन काल में महार्णव में संसार विलीन हो गया और भगवान् विष्णु शेष की शय्या पर सो गये ॥२०॥ उस समय भगवान् विष्णु
के कानों के मैल से मधु एवं कैटभ उत्पन्न हो गये । वे दोनों महाबली सागर के जल में बढ़ गये ॥२१॥ वे उसी में क्रीडा करते हुए इधर-उधर घूमते
रहे वे एकबार महावर्ण में क्रीडा कर रहे थे ॥२२॥ वे दोनों भाई के तरह रहते थे । उन सबों ने सोचा कि बिना कारण के कार्य नहीं होता है ॥२३॥
आधार के बिना आधेय नहीं रहता है । इसीलिए हमारे मन में आधाराधेय भाव आता है ॥२४॥ यह सुख स्वरूप जलराशि का आधार क्या है ? इसे
किसने और कैसे बनाया ? हमदोनों इस जल में क्यों मग्न रहते हैं ॥२५॥ हमदोनों कैसे उत्पन्न हुए, हमदोनों को किसने उत्पन्न किया ? हमदोनों नहीं
जानते हैं कि हमदोनों के मातापिता कौन हैं? ॥२६॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह सोचते हुए वे दोनों कोई निर्णय नहीं कर पाये । तब अपने सन्निकट में
जल में विद्यमान मधु से कैटभ ने कहा ॥२७॥ **कैटभ ने कहा–** मधो ! हमलोगों के इस तरह से जल में रहने के कारण रूप से कोई शक्ति अवश्य है। मुझे
लगता है कि वह शक्ति अचल है ॥२८॥ उसी ने इस जल को फैलाया है, और उसी के आधार पर यह जल टिका है । वही परमादेवी हम दोनों का कारण

दृढः कृतः । तदा सौदामनी दृष्टा ताभ्यां खे चोत्थिता शुभा ।।३१।। ताभ्यां विचारितं तत्र मंत्रोऽयं नात्र संशयः । तथा ध्यानमिदं द्दष्टं गगने सगुणं किल ।।३२।। निराहारौ जितात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ । बभूवतुर्विचिंत्यैव जपध्यानपरायणौ ।।३३।। एवं वर्षसहस्रं तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः । प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमा तयोः ।।३४।। खिन्नौ तौ दानवौ द्दष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ । तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचाशरीरिणी।।३५।। वरं वां वांछितं दैत्यौ ब्रूतं परमसंमतम् । ददामि परितुष्टाऽस्मि युवयोस्तपसा किल । ।३६।। सूत उवाच– इति श्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा । स्वेच्छया मरणं देवि वरं नौ देहि सुव्रते ।।३७।। वागुवाच– वांछितं मरणं दैत्यौ भवेद्वां मत्प्रसादतः । अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नात्र संशयः ।।३८।। सूत उवाच– इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मददर्पितौ । चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ ।।३९।। कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यां यदृच्छया । दृष्टः प्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः ।।४०।। दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ । तमूचतु स्तदा तत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत ।।४१।। नोचेत्पद्मं परित्यज्य यथेष्टं गच्छ माचिरम् । यदि त्वं निर्बलश्चासि क्व योग्यं शुभमासनम् ।।४२।। वीरभोग्यमिदं

भी है ।।२९।। जब वे दोनों इस तरह से चिन्ता ग्रस्त थे उसी समय उन दोनों ने आकाश में वाणी के बीज मंत्र को सुना ।।३०।। उन दोनों ने उस मंत्र को हृदयंगम कर लिया । उस समय उन दोनों ने आकाश में सुन्दर विजली को देखा ।।३१।। और उन दोनों ने विचार किया कि यह निश्चित रूप से मंत्र है और उसका सगुण ध्यान ही आकाश में दिखायी पड़ा है ।।३२।। इस प्रकार से विचार करके वे दोनों निराहार रहकर और जितेन्द्रिय रहकर समाधि में स्थिति होकर उस मंत्र का जप और उस रूप का ध्यान करने लगे ।।३३।। इस तरह उन दोनों ने एक हजार वर्ष तक घोर तपस्या की, उसके कारण उन दोनों पर शक्ति अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं ।।३४।। तपस्या करने के दृढ निश्चय वाले उन दोनों दानवों को खिन्न देखकर उन पर कृपा करने के लिए आकाशवाणी हुई ।।३५।। तुमदोनों अपने मनोवाँछित वरदान माँगो । तुम दोनों की तपस्या से मैं परम प्रसन्न हूँ ।।३६।। **सूतजी ने कहा**– उस आकाशवाणी को सुनकर उन **दैत्यों ने कहा**– हे सुव्रते देवि ! आप हमदोनों को अपनी इच्छा के अनुसार मृत्यु का वरदान दें ।।३७।। **आकाशवाणी ने कहा**– हे दैत्यों ! मेरी कृपा से तुम दोनों की मृत्यु तुम्हारी इच्छा से ही होगी । तुमदोनों भाई देवों एवं दानवों के लिए अजेय हो जाओगे ।।३९।। **सूतजी ने कहा**– देवी के द्वारा इस तरह वरदान प्राप्त करके मदमत्त दोनों दानव सागर में जल-जंतुओं के साथ क्रीडा कर रहे थे ।।३९।। हे ब्राह्मणों ! कुछ समय बाद उन दोनों ने पद्मासन पर बैठे हुए ब्रह्माजी को देखा ।।४०।। महाबलवान तथा युद्ध करने की कामना वाले वे दोनों ब्रह्माजी को देखकर प्रसन्न हो गये और ब्रह्माजी से कहे कि तुम हमदोनों के साथ युद्ध करो ।।४१।। अन्यथा इस कमल को छोड़कर भाग जाओ । यदि तुम निर्बल हो तो तुमको इस सुन्दर आसन पर बैठने का अधिकार

स्थानं कातरोऽसि त्यजाशु वै । तयोरिति वचः श्रुत्वा चिंतामाप प्रजापतिः ॥४३॥ दृष्ट्वा च बलिनौ वीरौ किं करोमीति तापसः । चिंताविष्टस्तदा तस्थौ चिंतयन्मनसा तदा ॥४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच– **तौ वीक्ष्य बलिनौ ब्रह्मा तदोपायानचिंतयत् । सामदानभिदादींश्च युद्धांतान्सर्वतंत्रवित् ॥१॥ न जानेऽहं बलं नूनमेतयोर्वा यथातथम् । अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते ॥२॥ स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः । प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम् ॥३॥ वधिष्यति तदैकोऽपि निर्बलत्वे प्रकाशिते । दानं नैवाद्य योग्यं वा भेदः कार्यो मया कथम् ॥४॥ विष्णुं प्रबोधयाम्यद्य शेषे सुप्तं जनार्दनम् । चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति ॥५॥ इति संचिन्त्य मनसा पद्मनालगतोऽब्जजः । जगाम शरणं विष्णुं मनसा दुःखनाशकम् ॥६॥ तुष्टाव**

नहीं है ॥४२॥ यह स्थान वीरों के लिए भोग्य है यदि कातर हो तो शीघ्र इसे छोड़ दो । उन दोनों की बातों को सुनकर ब्रह्माजी चिन्तित हो गये ॥४३॥ उन दोनों बलवानों को देखकर उन्होंने सोचा कि मैं इन दोनों के सामने क्या कर सकता हूँ ?॥४४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

ब्रह्माकृत देवी स्तुति

सूतजी ने कहा– हे मुनियो ! उन दोनों वीरों को देखकर राजनीति आदि सभी शास्त्रों को जानने वाले ब्रह्माजी साम, दान, भेद आदि उपायों को सोचने लगे ॥१॥ हम इन दोनों के बल को ठीक से नहीं जानते हैं और बल को जाने बिना युद्ध करना ठीक नहीं होता है ॥२॥ इन दोनों मदमत्तों की यदि मैं स्तुति करता हूँ तो यह मेरा स्वयं अपने निर्बलत्व का प्रकाशन होगा ॥३॥ अपनी निर्बलता को प्रकाशित करने पर इनमें से कोई एक भी मेरा बध कर देगा । इन सबों को कोई दान भी नहीं दिया जा सकता है तो भेद कैसे किया जा सकता है ॥४॥ मैं शेष पर सोए हुए चतुर्भुज, महाबलवान भगवान्

बोधनार्थं तं शुभैः संबोधनैर्हरिम् । नारायणं जगन्नाथं निस्पंदं योगनिद्रया ॥७॥ ब्रह्मोवाच– दीनानाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव । भक्तार्त्तिहृत् हृषीकेश सर्वावास जगत्पते ॥८॥ अन्तर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते । दुष्टारिनाशनैकाग्रचित चक्रगदाधर ॥९॥ सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वशक्तिसमन्वित। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश दुःखनाशन पाहि माम् ॥१०॥ विश्वम्भर विशालाक्ष पुण्यश्रवणकीर्तन । जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यन्तकारक ॥११॥ इमौ दैत्यौ महाराज हंतुकामौ मदोद्धतौ । न जानास्यखिलाधार कथं मां संकटे गतम् ॥१२॥ उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणं गतम् । पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः ॥१३॥ एवं स्तुतोऽपि भगवान्न बुबोध यदा हरिः । योगनिद्रासमाक्रांतस्तदा ब्रह्मा ह्यचिंतयत् ॥१४॥ नूनं शक्तिसमाक्रांतो विष्णुर्निद्रावशं गतः । जजागार न धर्मात्मा किं करोम्यद्य दुःखितः ॥१५॥ हंतुकामावुभौ प्राप्तौ दानवौ मदगर्वितौ । किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे शरणं क्वचित् ॥१६॥ इति संचिंत्य मनसा निश्चयं प्रतिपद्य च । तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थिताम् ॥१७॥ विचार्य मनसाऽप्येवं शक्तिर्मे रक्षणे क्षमा । यया ह्यचेतनो विष्णुः कृतोऽस्ति स्पंदवर्जितः ॥१८॥ व्यसुर्यथा न जानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह । तथा हरिर्न

विष्णु को जगता हूँ, वे ही मेरा दुःख दूर करेंगे ॥५॥ मन में यह सोचकर कमल नाल पर बैठे हुए ब्रह्माजी मन से भगवान् विष्णु की शरण में गये ॥६॥ वे योगनिद्रा में पड़े हुए जगत् के नाथ भगवान् नारायण की शुभ सम्बोधनों से स्तुति करने लगे ॥७॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे दीनानाथ ! हे हरे ! हे विष्णो! हे वामन ! हे माधव ! हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले हृषीकेश ! हे सर्वावास ! हे जगत्पते आप जगें ॥८॥ हे अन्तर्यामिन् हे अमेयात्मन् ! हे वासुदेव! हे जगत्पते ! हे दुष्ट शत्रुओं का सदा विनाश करते रहने वाले, हे चक्रधर ! हे सर्वज्ञ ! हे सभी लोकों के स्वामिन् ! हे सर्वशक्तिमान ! हे देवेश! हे दुःखनाशन अब आप जगिए और मेरी रक्षा कीजिए ॥१०॥ हे विश्वम्भर ! हे विशालाक्ष ! हे पुण्यश्रवणकीर्तन ! हे जगत्कारण ! हे निराकार ! हे सृष्टि स्थिति एवं विनाश को करने वाले प्रभो ! आप जगिए ॥११॥ ये दोनों दैत्य मुझे मार देने के लिए तैयार हैं । मैं संकटग्रस्त हूँ । हे अखिलाधार! आप मुझे क्यों नहीं जानते हैं ?॥१२॥ अत्यन्त दुःखी और शरणागत यदि आप मेरी उपेक्षा करते हैं तो हे महाविष्णो आपका पालक जो विशेषण है, वह व्यर्थ हो जायेगा ॥१३॥ इस तरह से स्तुति करने पर भी जब योगनिद्रा से आक्रान्त भगवान् नहीं जगे तो ब्रह्माजी सोचने लगे ॥१४॥ निश्चय ही भगवान् विष्णु शक्ति से आक्रान्त होने के कारण नहीं जग रहे हैं, अब मैं क्या करूँ ?॥१५॥ मुझे मारने की इच्छा से ये दोनों मदमत्त दानव आये हैं, मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कोई मेरा रक्षक नहीं हैं ॥१६॥ ऐसा विचार करके ब्रह्माजी एकाग्रचित्त से योगनिद्रा की स्तुति किए ॥१७॥ उन्होंने समझ लिया कि इस समय महाशक्ति ही मेरी रक्षा कर सकती हैं । उन्होंने ही भगवान् विष्णु को इस प्रकार से अचेत कर रखा है ॥१८॥ लोक में जैसे कोई मरा हुआ व्यक्ति शब्दादि

जानाति निद्रामीलितलोचनः ॥१९॥ न जहाति यतो निद्रां बहुधा संस्तुतोऽप्यसौ । मन्ये नास्य वशे निद्रा निद्रयाऽयं वशीकृतः ॥२०॥ यो यस्य
वशमापन्नः स तस्य किंकरः किल । तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी मापतेहरिः ॥२१॥ सिंधुजाया अपि वशे यया स्वामी वशीकृतः । नूनं जगदिदं
सर्वं भगवत्या वशीकृतम् ॥२२॥ अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाप्युमा । सर्वे वयं वशे यस्या नात्र किंचिद्विचारणा ॥२३॥
हरिरप्यवशः शेते यथाऽन्यः प्राकृतो जनः । ययाऽभिभूतः का वार्ता किलान्येषां महात्मनाम् ॥२४॥ स्तौम्यद्ययोगनिद्रां वै यया मुक्तो जनार्दनः।
घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः ॥२५॥ इति कृत्वा मतिं ब्रह्मा पद्मनालस्थितस्तदा । तुष्टाव योगनिद्रां तां विष्णोरंगेषु संस्थिताम् ॥२६॥
ब्रह्मोवाच– **देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब । यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता निद्रावशं च गमितः**
पुरुषोत्तमोऽद्य ॥२७॥ को वेद ते जननि मोहविलासलीलां मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते । ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे विद्वत्तमो
विबुधकोटिषु निर्गुणायाः ॥२८॥ सांख्या वदंति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम् । किं तादृशाऽसि कथमत्र जगन्निवासश्चैतन्यताविरहितो

गुणों को नहीं जान पाता है; उसी तरह निद्रा के कारण आँखें बन्द किए हुए भगवान् विष्णु कुछ नहीं जान पा रहे हैं।।१९।। इनकी बहुत अधिक स्तुति करने पर भी चूकि निद्रा इनको नहीं छोड़ती है इससे लगता है कि निद्रा इनके वश में नहीं है, अपितु ये स्वयं निद्रा के वश में हैं ।।२०।। जो जिसके वश में रहता है, वह उसका किंकर हो जाता है, अतएव यह योगनिद्रा लक्ष्मीपति श्रीहरि की स्वामिनी हैं ।।२१।। जिसने सिन्धुसुता लक्ष्मी के वश में रहने वाले भगवान् विष्णु को भी अपने वश में कर रखा है, अतएव यह सम्पूर्ण जगत् भगवती के वशवर्ती है ।।२२।। मैं (ब्रह्मा) विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती निःसन्देह भगवती के ही वश में है ।।२३।। जिसके द्वारा अभिभूत होकर भगवान् विष्णु भी सामान्य मनुष्य की भाँति सो रहे हैं तो दूसरों की कौन सी बात है ?।।२४।। अतएव मैं योगनिद्रा की स्तुति करूँगा, जिससे छूटकारा पाकर सनातन भगवान् विष्णु इन दुष्ट दैत्यों के साथ युद्ध करेंगे ।।२५।। इस तरह से सोचकर कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्माजी भगवान् विष्णु के शरीर में स्थित योगनिद्रा की स्तुति करने लगे ।।२६।। **ब्रह्माजी ने कहा–** हे देवि ! आप इस जगत् के कारण हैं यह मैंने वेद वाक्यों से जाना है । समस्त विश्व को ज्ञान देने वाले पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु आपकी प्रेरणा से निद्रा के वशीभूत हो गये हैं ।।२७।। हे मातः आपकी मोहमयी विलास लीला को कौन जान सकता है? मैं तो मूढ हो गया हूँ । और आपके परतंत्र विष्णु भगवान् सो रहे हैं । हे समस्त प्राणियों में निवास करने वाली मातः देवताओं में भी कौन ऐसा विद्वान् है जो गुणतीत आपके भेद को जान सके ।।२८।। सांख्य मतावलम्बी जिसे प्रकृति और पुरुष बतलाते हैं, उसमें जगत् कारण प्रकृति को वे जड़ बतलाते हैं । यदि आप जड होतीं तो जगन्निवास भगवान् विष्णु को चेतना रहित

विहितस्त्वयाऽद्य ॥२९॥ नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम् । ध्यायंति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं संध्येति नाम परिकल्प्य गुणान्भवानि ॥३०॥ बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं श्रीश्चासि देवि सततं सुखदा सुराणाम्। कीर्तिस्तथा मतिभृतो किल कांतिरेव श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः ॥३१॥ नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन । त्वं चात्र सर्वजगतां जननीति सत्यं निद्रालुतां वितरता हरिणाऽत्र दृष्टम् ॥३२॥ त्वं देवि वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद । यस्मात्त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ॥३३॥ कस्ते चरित्रमखिलं भुवि वेद धीमान्नाहं हरिर्न च भवो न सुरास्तथाऽन्ये। ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके ॥३४॥ यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदंति स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि। न प्राप्नुवंति सततं मखभागधेयं देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदाऽसि ॥३५॥ त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै देवारिसंभवभयादधुना तथैव । भीतोऽस्मि देवि वरदे शरणं गतोऽस्मि घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च ॥३६॥ नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेतज्जाने त्वयात्मविवशीकृतदेहयष्टिः।

कैसे बनातीं ॥२९॥ हे देवि ! आप सगुण रूप से अनेक प्रकार की लीलाएँ करती हैं आपके कार्यों के विधान के योग को कोई भी नहीं जान पाता है। मुनिगण आपको सन्ध्या के नाम से अभिहित करके आपका प्रातः, सायं तथा मध्याह्न इन तीनों कालों में ध्यान करते हैं ॥३०॥ हे मातः ! आप बुद्धि रूप से समस्त संसारी जीवों को ज्ञान प्रदान करती हैं, लक्ष्मी रूप से आप देवताओं को सुख प्रदान करती हैं । हे माँ ! आप संसार के समस्त प्राणियों में कीर्ति, मति, धृति, कान्ति तथा श्रद्धा एवं रतिरूप से विराजमान हैं ॥३१॥ इस समय भयंकर कष्ट में पड़ा हुआ मैने निद्रावस्था में अचेत पड़े हुए भगवान् विष्णु पर आपकी प्रत्यक्ष महिमा को देख ली है, इस प्रत्यक्ष प्रमाण को पाकर अब तर्क-वितर्क युक्त अनुमानादि प्रमाणों की कोई भी आवश्यकता नहीं है॥३२॥ हे देवि ! आप वेद के जानकार विद्वानों द्वारा भी कठिनाई से जानने योग्य हैं । वेद भी आपको अच्छी तरह से नहीं जानते हैं । वे वेद भी आपसे ही उद्भूत हैं यह सम्पूर्ण कार्यवर्ग आपसे ही उत्पन्न है ॥३३॥ हे देवि ! आपके समस्त चरित्रों को कौन बुद्धिमान् जान सकता है ? मैं श्रीहरि, रुद्र तथा दूसरे देवता एवं मुनिजन तथा मेरे पुत्र भी आपकी महिमा को नहीं जान सकते हैं । अतएव सम्पूर्ण जगत् में आपकी महिमा दुर्वाच्य है ॥३४॥ हे माँ ! यज्ञों में वैदिक पुरुष होम करते समय आपके स्वाहा इस नाम का उच्चारण न करें तो देवताओं को यज्ञ का भाग नहीं मिल सकता है । अतएव पता चलता है कि आपही देवताओं को वृत्ति प्रदान करती हैं ॥३५॥ हे माँ ! दैत्यों के द्वारा देवताओं पर संकट आने पर आपने पहले भी उनकी रक्षा की है । उसी तरह मधु तथा कैटभ को देखकर मैं भी अत्यन्त भयभीत होकर आपकी शरण में आया हूँ ॥३६॥ इस समय भगवान् विष्णु मुझपर आयी हुई विपत्ति को नहीं जान पा रहे हैं क्योंकि

मुंचादिदेवमथवा जहि दानवेंद्रौ यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे ॥३७॥ जानांति ये न तव देवि परं प्रभावं ध्यायंति ते हरिहरावपि मंदचित्ताः । ज्ञातं मयाऽद्य जननि प्रकटं प्रमाणं यद्विष्णुरत्यतितरां विवशोऽथ शेते ॥३८॥ सिन्धूद्भवापि न हरिं प्रतिबोधितुं वै शक्ता पतिं तव वशानुगमद्य शक्त्या । मन्ये त्वया भगवति प्रसभं रमाऽपि प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव ॥३९॥ धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ त्यक्त्वाऽन्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः । कुर्वंति देवि भजनं सकलं निकामं ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम् ॥४०॥ धीकांतिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाद्य । बंदीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः ॥४१॥ त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम् । त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले नाट्ये यथा विहरते स्वकृतौ नटो वै ॥४२॥ विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय । त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य यद्रोचते तव तथाऽम्ब करोषि नूनम् ॥४३॥ सृष्ट्वाऽत्र मां भगवति प्रविनाशितुं चेन्नेच्छाऽस्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम् । कस्मादिमौ प्रकटितौ किल कालरूपौ यद्वा भवानि हसितुं नु किमिच्छसे

आपने उनके सम्पूर्ण शरीर को विवश बना दिया है । हे महानुभावे ! आप इस समय या तो भगवान् विष्णु के देह को छोड़ दें अथवा इन दोनों दैत्यों को मार दें । इन दोनों में से जो आपको अच्छा लगे वह कर दें ॥३७॥ हे देवि ! जो लोग आपके प्रभाव को नहीं जानते हैं, वे अज्ञानी-जीव हरि तथा हर का भी ध्यान करते हैं । मैंने आपके महाप्रभाव को प्रत्यक्षतः जान लिया है । उसीके अधीन होकर भगवान् विष्णु सो रहे हैं ॥३८॥ इस समय लक्ष्मी जी भी भगवान् विष्णु को जगाने में इसलिए समर्थ नहीं हैं कि भगवान् आपकी शक्ति के अधीन हैं । हे भगवति ! मैं समझता हूँ कि आपने लक्ष्मीजी को भी सोने के लिए विवश बना दिया है ॥३९॥ हे देवि ! वे लोग धन्य हैं जो अन्य देवों की उपासना का परित्याग करके आपके चरणों में लीन हो गये हैं और आपको कामधेनु के समान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली जानकर आपका भजन करते हैं ॥४०॥ धी, कान्ति, कीर्ति तथा शुभवृत्ति आदि गुण भगवान् विष्णु को छोड़कर कहाँ चले गये ? हे भगवति ! अत्यन्त मानवती आपकी ही शक्ति से भगवान् विष्णु निद्राभिभूत हो गये हैं ॥४१॥ जैसे कोई नट अपने द्वारा ही निर्मित नाट्य में अभिनय किया करता है, उसी तरह आप भी अपने ही द्वारा निर्मित मोहपाश में लीला किया करती हैं । आप ही संसार के सम्पूर्ण प्रभावों वाली शक्ति हैं और यह जगत् आपके ही द्वारा निर्मित है ॥४२॥ आपने ही युग की आदि में भगवान् विष्णु को प्रकट करके उन्हें पालन करने की शक्ति प्रदान की हैं । और उससे सम्पूर्ण जगत् की आपने रक्षा की है आपको जो अच्छा लगता है, आप वैसा ही करती हैं ॥४३॥

माम्॥४४॥ ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतंत्रा । लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव हंतुं त्वमिच्छसि भवानि किमत्र चित्रम् ॥४५॥ कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मातर्दुःखं न मे मरणजं जगदंबिकेऽत्र । कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चायं दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम् ॥४६॥ उत्तिष्ठ देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले । नोचेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ यस्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम् ॥४७॥ सूत उवाच– **एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा । निःसृत्य हरिदेहात्तु संस्थिता पार्श्वतस्तदा॥४८॥ त्यक्त्वाङ्गानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः । निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा ॥४९॥ विस्पंदितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः । धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिं ततः ॥५०॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

◆

हे भगवति ! यदि आप मेरी सृष्टि करके मुझे विनष्ट नहीं करना चाहती हैं तो आप अपना मौन तोड़कर मेरे ऊपर कृपा करें । हे देवि ! आपने इन काल के समान भयंकर दैत्यों को क्यों प्रकट किया है ? अथवा आप ऐसा करके मेरा उपहास करना चाहती है ?॥४४॥ मैंने आपकी अद्भुत लीला को जान लिया है । आप इस सम्पूर्ण जगत् की रचना करके इसमें विहार करती हैं । जब आप चाहती हैं तो इसको समेट कर अपने में लीन कर लेती हैं। उसी तरह आप मेरी सृष्टि करके यदि मुझे विनष्ट कर देना चाहती हैं तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ?॥४५॥ हे माँ ! आप मेरा बध कर दें, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है ! मुझे चिन्ता इस बात की है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आपने जिसकी रचना की उसे एक दैत्य ने मार डाला यह आपके नाम पर बहुत बड़ा कलंक लगेगा॥४६॥ हे देवि ! आप अपना अद्भुत रूप धारण करके जगें । हे बाललीला करने वाली माँ ! आप या तो मुझे मार दें, या इन दोनों दैत्यों को मार दें, या भगवान् विष्णु को जगा दें, जिससे कि वे इन दोनों को मार सकें । यह सब आप ही कर सकती हैं ॥४७॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा स्तुति किए जाने पर तामसी देवी श्रीहरि के देह से निकलकर उनके बगल में बैठ गयीं ॥४८॥ योगनिद्रा उन दोनों दैत्यों का नाश करने के लिए अत्यन्त तेजस्वी भगवान् विष्णु के शरीर से निकल गयीं ॥४९॥ उस समय भगवान् के शरीर में आती हुई चेतना को देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

◆

अष्टमोऽध्याय:

ऋषय ऊचु:– **संदेहोऽत्र महाभाग कथायां तु महाद्भुतः । वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः ॥१॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवाः सनातनाः । नातः परतरं किंचिद्ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महामते ॥२॥ ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत् । रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम् ॥३॥ एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । रजःसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः ॥४॥ तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः । आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्वकर्मसु ॥५॥ नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः । स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया ॥६॥ क्व गतं तस्य विज्ञानं जीवतश्चेष्टितं कुतः । संदेहोऽयं महाभाग कथयस्व यथाशुभम् ॥७॥ का सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता यया विष्णुर्जितः प्रभुः । कुतो जाता कथं शक्ता का शक्तिर्वद सुव्रत ॥८॥ यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः । परमात्मा परमानन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥९॥ सर्वकृत्सर्वभृत्स्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः । स कथं निद्रया नीतः परतन्त्रः परात्परः ॥१०॥ एतदाश्चर्यभूतो हि सन्देहो**

आराध्य का निर्णय

ऋषियों ने कहा– हे सूतजी ! इस कथा के विषय में यह अद्भुत सन्देह है कि वेद, शास्त्र, पुराण तथा विद्वानों द्वारा यह निश्चित किया गया है कि, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र ये तीनों देवता सनातन हैं,इस ब्रह्माण्ड में इन तीनों से बड़ा कोई नहीं है ॥१-२॥ ब्रह्माजी लोकों की सृष्टि करते हैं; विष्णु भगवान् सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं । रुद्र संहार का काल आ जाने पर संहार करने का कार्य करते है । ये तीनों विश्व के कारण हैं ॥३॥ ये तीनों देव एक ही मूर्ति के तीन रूप हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये क्रमशः रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण से संयुक्त होकर अपना कार्य करते हैं ॥४॥ उन तीनों में पुरुषोत्तम श्रीहरि श्रेष्ठ हैं । वे लक्ष्मीपति हैं । वे आदिदेव, जगत् के स्वामी और सब कुछ करने में समर्थ हैं ॥५॥ अतुल तेजस्वी विष्णु के समान कोई भी देवता समर्थ नहीं है । उनको योगमाया ने अपने अधीन कैसे किया ? उस समय उनका विज्ञान कहाँ चला गया ? उनकी चेष्टाएँ कहाँ चली गयीं ? हे महाभाग! यही सन्देह है, उसे आप बतलाएँ ॥७॥ जिसके विषय में आप पहले कह चुके हैं, वह शक्ति कौन सी है ? जिसने भगवान् विष्णु को जीत लिया ? वह शक्ति कहाँ उत्पन्न हुई ? उसमें इतनी शक्ति कैसे आयी, वह शक्ति कौन सी है ?॥८॥ जो भगवान् विष्णु सर्वेश्वर हैं, वासुदेव (सब में व्यापक) हैं, जगद्गुरु हैं; परमात्मा हैं, परमानन्द स्वरूप हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, सम्पूर्ण भूतों की सृष्टि करने वाले हैं, और सब कुछ करने में समर्थ हैं, रजोगुण रहित, सर्वव्यापक, पवित्र तथा परात्पर हैं, उनको निद्रा ने अपने अधीन कैसे बना लिया ?॥१०॥ हे परंतप ! हमलोगों का यही सन्देह है, हे महामते ! इसे आप ज्ञानरूपी

नः परंतप । छिंधि ज्ञानासिना सूत व्यासशिष्य महामते ॥११॥ सूत उवाच– कः सन्देहं भिनत्त्येनं त्रैलोक्ये सचराचरे । मुह्यन्ति मुनयः कामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः ॥१२॥ नारदः कपिलश्चैव प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः । किं ब्रवीमि महाभागा दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने॥१३॥ देवेषु विष्णुः कथितः सर्वगः सर्वपालकः । यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ॥१४॥ ते सर्वे समुपासन्ते नत्वा देवं परात्परम् । नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥१५॥ तथा केचिन्महादेवं शङ्करं शशिशेखरम् । त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च शूलपाणिं वृषध्वजम् ॥१६॥ तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियंबकम् । कपर्दिनं पञ्चवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम् ॥१७॥ कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम् । भूतवृन्दयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम्॥१८॥ तथा सूर्यं वेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने । मध्याह्ने तु महाभागाः स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः ॥१९॥ तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम् । परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः ॥२०॥ अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः । इन्द्रश्चापि त्रिलोकेशो वरुणश्च तथापरः ॥२१॥ यथा गङ्गा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते । तथैव सर्वदेवेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः ॥२२॥ त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपण्डितैः । प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम् ॥२३॥ चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च । अर्थापत्तियुतान्यन्ये पंच प्राहुमहाधियः ॥२४॥ सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदंति।

तलवार से काट डालें ॥११॥ **सूतजी ने कहा–** हे महामुने ! त्रैलोक्य में कौन है जो आपके इस सन्देह को दूर करे । इसके विषय में ब्रह्माजी के पुत्र सनकादिक ऋषियों को भी सन्देह है ॥१२॥ हे मुनिसत्तम ! नारदजी एवं कपिल महर्षि भी इस विषय में मौन हैं। मैं इन दुर्घट विषय में क्या कहूँ ?॥१३॥ देवताओं में विष्णु सर्वव्यापक और सर्वपालक कहे गये हैं । उन्हीं से यह सचराचर विराट् उत्पन्न हुआ॥१४॥ वे सब परात्पर परमात्मा को प्रणाम करते हैं । वे ही नारायण, हृषीकेश, वासुदेव तथा जनार्दन हैं ॥१५॥ इस तरह कुछ लोग शशिशेखर तीन नेत्र वाले तथा पाञ्चमुख वाले, शूलपाणि तथा बृषध्वज को सर्वश्रेष्ठ देवता मानते हैं ॥१६॥ वेदों में वे त्र्यम्बक, कपर्दी, पञ्चवक्त्र तथा अर्द्धनारीश्वर, कैलासवासी, सर्वशक्तिमान, भूतवृन्द से समन्वित, दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने वाले कहे गये ॥१७-१८॥ इसी तरह वेदज्ञ पुरुष सूर्य की प्रतिदिन सायंकाल तथा प्रातःकाल एवं माध्याह्न में अनेक प्रकार की स्तुतियों से स्तुति करते हैं॥१९॥ इसतरह सभी वेदों में सूर्य की उपासना उत्तम बतलायी गयी हैं, और उनका नाम परमात्मा बतलाया गया है ॥२०॥ वेदज्ञों के द्वारा वेदों में अग्नि की भी स्तुति की गयी है । इन्द्र को त्रिलोक का स्वामी तथा वरुण को परमात्मा कहा गया है ॥२१॥ जैसे गंगा अनेक धाराओं में बहती हैं, उसी तरह सभी वेदों में महर्षियों ने विष्णु की स्थिति बतलायी है ॥२२॥ पण्डितों ने तीन ही प्रमाणों को बतलाया है– प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ॥२३॥ दूसरे लोगों ने उपमान को मिलाकर चार प्रमाणों को बतलाया है । कुछ दार्शनिकों ने अर्थापत्ति के साथ पाँच प्रमाणों को कहा है ॥२४॥ पौराणिक विद्वान् सात प्रमाणों को बतलाते

मनीषिणः । एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद्ब्रह्म परमं च तत् ॥२५॥ वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च । निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्य च पुनः पुनः॥२६॥ प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिंत्यं मतिमतां सदा । दृष्टान्तेनापि सततं शिष्टमार्गानुसारिणा ॥२७॥ विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं पुराणैः परिगीयते। द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता ॥२८॥ हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका । धराधरणशक्तिश्च शेषे कूर्मे तथैव च ॥२९॥ साऽऽद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता । दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका ॥३०॥ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जिताः । शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः ॥३१॥ एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महातपाः॥३२॥ शक्तिहीनं तु निंद्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम् । अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा ॥३३॥ एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते । सोपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा ॥३४॥ विष्णौ च सात्त्विकी शक्तिस्तया हीनोऽप्यकर्मकृत् । द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत्॥३५॥ शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहारकारकः । इत्यूह्यं मनसा सर्वं विचार्य च पुनः पुनः ॥३६॥ शक्तिः करोति ब्रह्मांडं सा वै पालयतेऽखिलम्। इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम् ॥३७॥ न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः । न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन॥३८॥

हैं । इन सभी प्रमाणों के द्वारा जिसको जानना कठिन है वह हीं परंब्रह्म हैं ॥२५॥ इस विषय में निश्चयात्मिका बुद्धि, युक्ति तथा आगम में खूब विचार करके तर्क करना चाहिए ॥२६॥ बुद्धिमानों को चाहिए कि वे शिष्टमार्गानुयायी दृष्टान्तों द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञान का चिन्तन करें ॥२७॥ सभी विद्वान् एवं पुराण बतलाते हैं कि ब्रह्माजी में सृष्टि करने की शक्ति, विष्णु में पालन करने की शक्ति, शिव में संहार करने की शक्ति सूर्य में प्रकाश करने की शक्ति और शेष तथा कूर्म में पृथिवी के धारण करने की शक्ति है ॥२८-२९॥ इन सभी देवताओं में एकमात्र आद्याशक्ति ही व्याप्त रहती है । और अग्नि में जलाने की शक्ति, वायु में प्रेरक शक्ति है ॥३०॥ कुण्डलिनी से रहित शिव भी शव हो जाते हैं । जो शक्तिहीन है उसे विद्वान् असमर्थ कहते हैं ॥३१॥ हे महातपस्वियों ! समस्त चर एवं अचर भूतों में ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी शक्ति से हीन है वह निन्द्य वस्तुमात्र है । वह शत्रु पर विजय प्राप्त करने, चलने तथा भोजन करने में असमर्थ होता है ॥३३॥ इस तरह सबों में जो शक्ति व्याप्त है उसी को ब्रह्म कहते हैं । विद्वानों के द्वारा वही अच्छी तरह से विचार करने योग्य तथा उपासना करने योग्य है ॥३४॥ भगवान् विष्णु में सात्त्विकी शक्ति रहती है, उसके बिना वे अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्माजी में राजसी शक्ति रहती है, उसके बिना वे सृष्टि का कार्य नहीं कर सकते हैं ॥३५॥ शंकरजी में तामसी शक्ति रहती है, उसीसे वे संहार करने का काम करते हैं । इस तरह से मन से बारम्बार विचार तथा तर्क करना चाहिए ॥३५-३६॥ शक्ति ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है, वही सम्पूर्ण जगत् का पालन

तया युक्ता हि कुर्वंति स्वानि कार्याणि ते सुराः । सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते ॥३९॥ सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥४०॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला । ददाति वांछितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम्॥४१॥
न जानंति जना मूढास्तां सदा माययाऽऽवृताः। जानंतोऽपि नराः केचिन्मोहयंति परानपि ॥४२॥ पंडिताः स्वोदरार्थं वै पाखंडानि पृथक्पृथक् ।
प्रवर्तयंति कलिना प्रेरिता मंदचेतसः ॥४३॥ कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः । नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथंचन ॥४४॥
विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः । ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायंतः कमपि ध्रुवम् ॥४५॥ कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि । यजंति
यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥४६॥ ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम्। ध्यायंति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥४७॥
तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः । निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः ॥४८॥ कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात्।

करती है । वह अपनी इच्छामात्र से इस चराचर जगत् का संहार कर देती है ॥३७॥ विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य तथा वरुण ये स्वयं अपने
कार्यों को करने में समर्थ नहीं हैं ॥३८॥ वे सभी देवता शक्ति से ही सम्पन्न होकर अपना-अपना कार्य करते हैं । सभी कारणों तथा कार्यों में वह शक्ति
प्रत्यक्षत: दिखायी पड़ती है ॥३९॥ शक्ति को मनीषियों ने सगुण तथा निर्गुण रूप से दो प्रकार का बतलाया है । सगुण शक्ति का सेवन रागियों को तथा
निर्गुण शक्ति का सेवन विरागियों को करना चाहिए ॥४०॥ वह शक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों की स्वामिनी है । विधिपूर्वक पूजा करने
पर वह समस्त कामनाओं को पूरा करती है ॥४१॥ सदा माया से ढँके रहने वाले (अज्ञानी बने हुए) मूर्ख जीव उसे नहीं जान पाते हैं । कुछलोग उसे
जानकर भी दूसरों को धोखा देते हैं ॥४२॥ पण्डित अपना पेट भरने के लिए कलि से प्रेरित होकर अलग-अलग पाखण्ड का प्रवर्तन करते हैं ॥४३॥
हे महाभागों ! इस कलियुग में भेदमूलक धर्म उत्पन्न हो गये हैं । अन्य युगों में अवैदिक धर्म नहीं थे ॥४४॥ विष्णु अनेक वर्षों तक उग्र तपस्या करते
हैं, ब्रह्माजी तथा शंकरजी ये तीनों देवता किसी दूसरे का ध्यान करते हैं ॥४५॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए तरह-तरह के
यज्ञ करते हैं ॥४६॥ निश्चित रूप से वे ब्रह्म नामक परमात्मिका सनातनी देवी का ध्यान करते हैं॥४७॥ अतएव जिन लोगो ने दृढनिश्चय कर लिया है, उन्हें
सदा शक्ति की सेवा करनी चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठों ! यही सभी शास्त्रों का निश्चय है ॥४८॥ यह बात मैंने व्यासजी से सुना है, उन्होंने नारदजी से इस बात को
सुना था । नारदजी ने ब्रह्माजी से सुना था और ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से इसे सुना था ॥४९॥ विद्वानों को न तो किसी की बात सुनना चाहिए और न उसका

पित्तुः सकाशात्तेनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः ॥४९॥ न श्रोतव्यं न मंतव्यमन्येषां वचनं बुधैः । शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः॥५०॥ प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम् । अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि ॥५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

सूत उवाच– **यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः । नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥१॥ निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा । उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनः पुनः ॥२॥ तदाऽपश्यत्स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम् । उवाच च महातेजा मेघगंभीरया गिरा॥३॥** विष्णुरुवाच– **किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वाऽत्र पद्मज । कस्माच्चिंतातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः ॥४॥** ब्रह्मोवाच– **त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ । हंतुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ ॥५॥ भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते । त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं**

मनन करना चाहिए उन्हें सदा शक्ति की उपासना करनी चाहिए ॥५०॥ प्रत्यक्षत: भी देखना चाहिए कि शक्तिहीन मनुष्य कुछ भी नहीं कर पाता है । अतएव सभी प्राणियों में शक्ति की ही सत्ता देखनी चाहिए ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भगवान् विष्णु के द्वारा मधुकैटभ का वध

सूतजी ने कहा– जब निद्रा श्रीभगवान् के शरीर, नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा वक्षस्थल से निकल गयी ॥१॥ वह निकलकर तामसी शक्ति आकाश में स्थित हो गयी । तो बार-बार जम्भाई लेते हुए भगवान् विष्णु उठे ॥२॥ उसके बाद उन्होंने डरे हुए ब्रह्माजी को देखा और मेघ के समान गम्भीर वाणी से भगवान् विष्णु ने पूछा ॥३॥ **विष्णु भगवान् ने कहा**– हे ब्रह्माजी ! आप तपस्या छोड़कर यहाँ क्यों आये हैं ? तथा आप चिन्तित एवं भयभीत कैसे हैं?॥४॥ **ब्रह्माजी ने कहा**– हे देव ! आपके कान के मैल से उत्पन्न महाबलवान् तथा भयंकर दैत्य मधु एवं कैटभ मुझको मारने के लिए आये हैं ॥५॥ उन

विचेतनम् ॥६॥ विष्णुरुवाच– **तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौ हनिष्याम्यहं किल । युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ** ॥७॥ सूत उवाच– **एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ । विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ** ॥८॥ **निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ । तावूचतुर्मदोन्मत्तौ ब्रह्माणं मुनिसत्तमाः** ॥९॥ **पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः । युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ** ॥१०॥ **पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरि स्थितम् । त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद** ॥११॥ सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तावुवाच जनार्दनः । कुरुतां समरं कामं मया दानवपुंगवौ** ॥१२॥ **हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल । आगच्छतं महाभागौ श्रद्धा चेद्वां महाबलौ** ॥१३॥ सूत उवाच– **श्रुत्वा तद्वचनं चोभौ क्रोधव्याकुललोचनौ । निराधारौ जलस्थौ च युद्धोद्युक्तौ बभूवतुः** ॥१४॥ **मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणा सह संयुगम् । कर्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः** ॥१५॥ **बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः । श्रांते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा** ॥१६॥ **पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः । बाहुयुद्धेन रागांधौ विष्णुना प्रभविष्णुना** ॥१७॥ **प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवांतरिक्षगा । न मम्लतुस्तदा तौ तु विष्णुस्तु ग्लानिमाप्तवान्** ॥१८॥ **पञ्चवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्ध्यता । हरिणा चिंतितं तत्र कारणं मरणे तयोः** ॥१९॥ **पंचवर्षसहस्राणि मया**

दोनों के भय से मैं आपके सन्निकट आया हूँ । हे वासुदेव ! आज आप हमारी रक्षा करें ॥६॥ **विष्णु भगवान् ने कहा**– आप निर्भय रहें; मैं उन दोनों को मार दूँगा। उन दोनों की आयु समाप्त हो गयी है, अतएव वे मेरे पास आये हैं ॥७॥ **सूतजी ने कहा**– जब भगवान् विष्णु इस प्रकार से कह रहे थे; उसी समय मदमत्त दोनों दानव ब्रह्माजी को खोजते हुए वहाँ आ गये ॥८॥ हे मुनिवर्यों ! वे उस एकार्णव के जल में निराधार और निर्भीक खड़े थे । मदोन्मत्त उन दोनों ने **ब्रह्माजी से कहा**– ॥९॥ तुम भागकर यहाँ इसके पास आये हो ? तुम युद्ध करो और इसके सामने ही हमलोग तुम्हें मार डालेंगे ॥१०॥ उसके बाद सर्प की शय्या पर सोये हुए इसको हमलोग मारेंगे । अब तुम हमलोगों के साथ युद्ध करो या यह कहो कि मैं आप दोनों का दास हूँ ॥११॥ **सूतजी ने कहा**– उन दोनों की बातों को सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा कि हे दानव-पुंगवों ! तुमलोग मेरे साथ युद्ध करो ॥१२॥ तुम दोनों मदमत्तों का घमण्ड मैं विनष्ट कर दूँगा । यदि चाहो तो तुम दोनों आओ ॥१३॥ **सूतजी ने कहा**– भगवान् की बातों को सुनकर निराधार जल में खड़े तथा अत्यन्त क्रुद्ध वे दोनों युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥१४॥ पहले अत्यन्त क्रुद्ध होकर मधु युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा और कैटभ जहाँ के तहाँ खड़ा रहा ॥१५॥ उन दोनों में मदमत्त पहलवान के समान युद्ध हुआ । जब मधु थक गया तो कैटभ युद्ध करने लगा ॥१६॥ इस तरह मदमत्त मधु और कैटभ बारी-बारी से सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णु से युद्ध करते थे ॥१७॥ इस युद्ध को देखने वाले ब्रह्माजी तथा आकाश में स्थित भगवती थीं । बहुत दिनों बाद भी वे दोनों नहीं थके और भगवान्

युद्धं कृतं किल । न श्रांतौ दानवौ घोरौ श्रांतोऽहं चैतदद्भुतम् ॥२०॥ क्व गतं मे बलं शौर्यं कस्माच्चेमावनामयौ । किमत्र कारणं चिंत्यं विचार्य मनसा त्विह ॥२१॥ इति चिंतापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपरावुभौ । ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगंभीरनिःस्वनौ ॥२२॥ तव नोचेद्बलं विष्णो यदि श्रांतोऽसि युद्ध्यतः । ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चांजलिम् ॥२३॥ न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते । हत्वा त्वां निहनिष्यावः पुरुषं च चतुर्मुखम् ॥२४॥ सूत उवाच– श्रुत्वा तद्भाषितं विष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ । उवाच वचनं श्लक्ष्णं सामपूर्वं महामनाः ॥२५॥ हरिरुवाच– श्रांते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा । प्रहरंति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः ॥२६॥ पंचवर्षसहस्त्राणि कृतं युद्धं मया त्विह । एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौ सदृशौ तथा ॥२७॥ कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः । तथा विश्रमणं कृत्वा युध्येऽहं नात्र संशयः ॥२८॥ तिष्ठतां हि युवां तावद्बलवंतौ मदोत्कटौ । विश्रम्याहं करिष्यामि युद्धं वा न्यायमार्गतः ॥२९॥ सूत उवाच– इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्त्रब्धौ दानवोत्तमौ । संस्थितौ दूरतस्तत्र संग्रामे कृतनिश्चयौ ॥३०॥ अतिदूरे च तौ दृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः । दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः ॥३१॥ चिंतनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्तवरावुभौ । कामं वांछितमरणौ न मम्लतुरतस्त्विमौ ॥३२॥ वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः । करोमि च

विष्णु का मुख कुम्हलाने लगा ॥१८॥ जब युद्ध करते हुए पाँच हजार वर्ष बीत गये तो भगवान् विष्णु उन दोनों को मारने का साधन सोचने लगे ॥१९॥ वे सोच रहे थे मैंने पाँच हजार वर्ष तक युद्ध किया, किन्तु ये दोनों नहीं थके और मैं थक गया यह आश्चर्य की बात है ॥२०॥ मेरा बल और शौर्य कहाँ चला गया और ये दोनों क्यों स्वस्थ हैं ? इस विषय पर मुझे विचार करना हैं ॥२१॥ इस तरह से श्रीहरि को चिन्तित देखकर मदमत्त उन दोनों ने प्रसन्नता पूर्वक कहा ॥२२॥ विष्णो ! यदि तुम थक गये हो और तुममें बल नहीं है; तो तुम हाथ जोड़कर कहो कि मैं आप दोनों का दास हूँ ॥२३॥ अन्यथा यदि तुम समर्थ हो तो युद्ध करो । पहले तुम को मार कर हमलोग इस चार मुख वाले पुरुष को मारेंगे ॥२४॥ **सूतजी ने कहा–** उस महासागर में उन दोनों की बातों को सुनकर विष्णु ने सांत्वनापूर्ण वचनों में कहा ॥२५॥ थके हुए, भयभीत, जिसने शस्त्र को छोड़ दिया है, गिरे हुए तथा बालक पर वीर लोग प्रहार नहीं करते हैं, यह सनातन धर्म है ॥२६॥ मैंने पाँच हजार वर्ष तक युद्ध किया है, मैं अकेला हूँ और तुम दोनों भाई एक समान बलवान् हो ॥२७॥ तुम दोनों ने बीच-बीच में विश्राम किया है, उसी तरह मैं भी विश्राम करके युद्ध करूँगा ॥२८॥ तुम दोनों बलवान और मदमत्त हो; ठहरो मैं विश्राम करके न्यायानुसार युद्ध करूँगा ॥२९॥ **सूतजी ने कहा–** भगवान् विष्णु की बात को सुनकर दोनों दानव विश्वास करके युद्ध करने की इच्छा से थोड़ी दूर जाकर बैठ गये ॥३०॥ उन दोनों को दूर बैठे देखकर चतुर्भुज भगवान् विष्णु उन दोनों के मरण के कारण का ध्यान किए ॥३१॥ ध्यान करके उन्होंने देवी द्वारा दिए गये वरदान के विषय में जान लिया। ये दोनों स्वेच्छामरण वाले हैं; इसीलिए अभी तक नहीं थके हैं ॥३२॥ मैंने व्यर्थ ही युद्ध किया और मेरा परिश्रम भी व्यर्थ गया । इस बात को भी जानकर

कथं युद्धमेवं ज्ञात्वा विनिश्चयम् ॥३३॥ अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः । विनाशं दुःखदौ नित्यं दानवौ वरदर्पितौ ॥३४॥ भगवत्या
वरौ दत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः । मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वांछति ॥३५॥ रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षति कश्चन । कथं चेमौ
मदोन्मत्तौ मर्तुकामौ भविष्यतः ॥३६॥ नन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम् । विना तया न सिध्यंति कामाः सम्यक्प्रसन्नया ॥३७॥ एवं
संचिंत्यमानस्तु गगने संस्थितां शिवाम् । अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रां मनोहराम् ॥३८॥ कृतांजलिरमेयात्मा तां च तुष्टाव योगवित् । विनाशार्थं
तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम् ॥३९॥ विष्णुरुवाच– **नमो देवि महामाये सृष्टिसंहारकारिणि । अनादिनिधने चंडि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे ॥४०॥ न**
ते रूपं विजानामि सगुणं निर्गुणं तथा । चरित्राणि कुतो देवी संख्यातीतानि यानि ते ॥४१॥ अनुभूतो मया तेऽद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः । यदहं
निद्रया लीनः संजातोऽस्मि विचेतनः ॥४२॥ ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनः पुनः । न प्रबुद्धः सर्वथाऽहं संकोचितषडिंद्रियः ॥४३॥
अचेतनत्वं संप्राप्तः प्रभावात्तव चांबिके । त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहं युद्धं च बहुधा कृतम् ॥४४॥ श्रांतोऽहं न च तौ श्रांतौ त्वया दत्तवरौ वरौ ।
ब्रह्माणं हंतुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ ॥४५॥ आहूतौ च मया कामं द्वंद्वयुद्धाय मानदे । कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे ॥४६॥ मरणं

मैं इन दोनों के साथ कैसे युद्ध करूँ ?॥३३॥ और युद्ध नहीं करने पर ये दोनों कैसे मरेंगे ? ये दोनों वरदान के दर्प के कारण दुःख देने वाले हैं॥३४॥
देवी ने जो इन्हें वरदान दिया है, वह पूरा हो नहीं सकता है । अपनी इच्छा से कोई भी मरना नहीं चाहता है ॥३५॥ रोगी तथा दीन व्यक्ति भी मरना
नहीं चाहता है । ये दोनों मदमत्त हैं, कैसे मरना चाहेंगे ॥३६॥ अब मै विद्याशक्ति की शरणागति करूँगा । उन भगवती की कृपा के बिना किसी की कामना
पूर्ण नहीं होती है ॥३७॥ इस तरह से विचार करते हुए भगवान् विष्णु ने आकाश में स्थित मनोहर कल्याणकारिणी योगनिद्रा को देखा ॥३८॥ तब
अमेयात्मा तथा योगवेत्ता भगवान् विष्णु हाथ जोड़कर उन दोनों का विनाश करने के लिए स्तुति करने लगे ॥३९॥ **विष्णु ने कहा**– हे सृष्टि एवं संहार करने
वाली, अनादि निधन, भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली शिवे आपको नमस्कार है॥४०॥ मैं आपके सगुण तथा निर्गुण रूप को नहीं जानता हूँ। हे देवि!
मैं आपके असंख्य चरित्रों को कैसे जान सकता हूँ ॥४१॥ मैं आपके दुर्घट प्रभाव को जानता हूँ । उसीके कारण मैं निद्रा में अचेतन जैसे पड़ा रहा ॥४२॥ ब्रह्मा
के द्वारा बार-बार जगाये जाने पर भी मैं छहो इन्द्रियों के संकुचित हो जाने के कारण नहीं जगा ॥४३॥ हे अम्बिके ! आपके ही प्रभाव से मैं अचेतन सा हो
गया था । आपके द्वारा परित्यक्त होकर मैंने बहुत युद्ध किया ॥४४॥ मैं तो थक गया और आपके द्वारा वरदान पाने के कारण वे दोनों नहीं थके । मद से
गर्वित ये दोनों ब्रह्माजी को मारने के लिए आये हैं ॥४५॥ हे मानदे ! मैंने इन दोनों को युद्ध करने के लिए आहूत किया । मैंने महार्णव में इन दोनों

वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम् । ज्ञात्वाऽहं शरणं प्राप्तस्त्वामद्य शरणप्रदाम् ॥४७॥ साहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा । दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने ॥४८॥ हंतुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च । इत्युक्ता सा तदा देवी स्मितपूर्वमुवाच ह ॥४९॥ प्रणमंतं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् । देवदेव हरे विष्णो कुरु युद्धं पुनः स्वयम् ॥५०॥ वंचयित्वा त्विमौ शूरौ हंतव्यौ च विमोहितौ । मोहयिष्याम्यहं नूनं दानवौ वक्रया दृशा ॥५१॥ जहि नारायणाशु त्वं मम मायाविमोहितौ । सूत उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तस्याः प्रीतिरसान्वितम् ॥५२॥ संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौ तत्र महार्णवे । तदायातौ च तौ वीरौ युद्धकामौ महाबलौ ॥५३॥ वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः । तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरु युद्धं चतुर्भुज ॥५४॥ दैवाधीनौ विदित्वाऽद्य नूनं जयपराजयौ । सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः ॥५५॥ सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना । पुरा वै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा ॥५६॥ अधुना चावयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः । सूत उवाच– इत्युक्त्वा तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ ॥५७॥ वीक्ष्य विष्णुर्जघानाशु मुष्टिनाऽद्भुतकर्मणा । तावप्यतिबलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिना हरिम् ॥५८॥ एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम् । युध्यमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा ॥५९॥ अपश्यत्संमुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः । तं वीक्ष्य

के साथ भयंकर युद्ध किया ॥४६॥ बाद में मैंने जाना कि आपने इन दोनों को अद्भुत मरण का वरदान दे रखा है । उस बात को जानकर मैंने आपकी शरणागति की है ॥४७॥ हे माँ ! आप मेरी सहायता करें मैं युद्ध करने से थक गया हूँ । हे देवताओं की आर्ति को विनष्ट करने वाली देवि ! ये दोनों आपके वरदान से दृप्त हो गये हैं ॥४८॥ ये दोनों पापी मुझको मारने के लिए तैयार हैं । इस तरह कहे जाने पर मुस्कुराती हुई देवी ने जगन्नाथ, सनातन, **वासुदेव से कहा–** हे देव-देव आप पुनः युद्ध करें ॥४९-५०॥ आप उन दोनों को मोह में डाल कर मारें । मैं अपनी वक्रदृष्टि से उन दोनों को मोहित करूँगी ॥५१॥ हे नारायण! मेरी माया से मोहित इन दोनों को आप शीघ्र मार डालें । **सूतजी ने कहा–** भगवान् विष्णु ने देवी के प्रेम भरे वचनों को सुना ॥५२॥ और वे उस महार्णव में युद्ध के स्थान पर आकर वे खड़े हो गये । उसके बाद वे दोनों वीर युद्ध करने की इच्छा से वहाँ आये ॥५३॥ विष्णु को वहाँ स्थित देखकर वे दोनों हर्षित हुए । हे महाकाम चतुर्भुज आप हमलोगों के साथ युद्ध कीजिए ॥५४॥ जय और पराजय दैवाधीन होता है । दैववशात् कभी बलवान जीतता है तो कभी दुर्बल ही जीतता है ॥५५॥ अतएव महापुरुष जय एवं पराजय के लिए न तो हर्ष करते हैं और न शोक करते हैं । दानवों के वैरी आपके द्वारा अनेक दैत्य पराजित हो गये ॥५६॥ आज हम दोनों के साथ युद्ध करते हुए तुम पराजित हो गये । **सूतजी ने कहा–** ऐसा कहकर वे दोनों युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥५७॥ अवसर देखकर भगवान् विष्णु ने तेजी से मुक्के से प्रहार किया और वे दोनों बल से उन्मत्त बने हुए दानव मुक्के से भगवान् को मारे ॥५८॥ इस तरह

तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम् ॥६०॥ जहासातीव ताम्राक्षी वीक्षमाणा तदाऽसुरौ । तौ जघान कटाक्षैश्च कामबाणैरिवापरैः ॥६१॥ मन्दस्मितयुतैः कामं प्रेमभावयुतैरनु । दृष्ट्वा मुमुहतुः पापौ देव्या वक्त्रं विलोकयन् ॥६२॥ विशेषमिति मन्वानौ कामबाणातिपीडितौ । वीक्षमाणौ स्थितौ तत्र तां देवीं विशदप्रभाम् ॥६३॥ हरिणाऽपि च तद्दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम् । मोहितौ तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः ॥६४॥ उवाच तौ हसन् श्लक्ष्णं मेघगंभीरया गिरा । वरं वरयतां वीरौ युवयोर्योऽभिवांछितः ॥६५॥ ददामि परमप्रीतो युद्धेन युवयोः किल । दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा ॥६६॥ युवयोः सदृशः कोऽपि न दृष्टो न च वै श्रुतः । तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेन बलेन च ॥६७॥ भ्रात्रोश्च वांछितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ । तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ ॥६८॥ सूत उवाच– **वीक्षमाणौ महामायां जगदानन्दकारिणीम् । तमूचतुश्च कामार्तौ विष्णुं कमललोचनौ ॥६९॥ हरे न याचकावावां त्वं किं दातुमिहेच्छसि । ददावतुल्यं देवेश दातारौ नौ न याचकौ ॥७०॥ प्रार्थय त्वं हृषीकेश मनोऽभिलषितं वरम् । तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च ॥७१॥ तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः । भवेतामद्य मे तुष्टौ मम**

परस्पर में अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा । दोनों बलवानों को एक साथ युद्ध करते हुए देखकर भगवान् नारायण ने देवी के समक्ष दीनदृष्टि से देखा । विष्णु को करुण बने हुए देखकर लाल-लाल नेत्रों वाली देवी उन दोनों असुरों को देखकर जोर से हँसने लगी और दूसरे काम बाण के समान उन दोनों पर अपने कटाक्ष से प्रहार किया ॥६१॥ इसके बाद वे मन्द-मन्द मुसुकाती हुई उन दोनों में काम की वासना जगाने लगीं । यह देखकर वे दोनों पापी देवी के मुख को देखकर मोहित हो गये ॥६३॥ वे अपने को उनका विशेष कृपापात्र जानकर, काम के बाण से अत्यन्त पीड़ित होकर वहीं खड़े रहकर देवी को देखते हुए खड़े रहे ॥६२-६३॥ भगवान् विष्णु ने भी देवी के अभिप्राय को जान लिया और वे जान गये कि ये दोनों देवी के रूप पर आसक्त हैं ॥६४॥ हँसते हुए भगवान् विष्णु ने मेघ के समान गंभीर वाणी में, उन सबों से कहा, वीरों आपलोग हम से वरदान माँग लें ॥६५॥ तुम दोनों के युद्ध करने से मैं परम प्रसन्न हूँ । युद्ध करने वाले बहुत से दानवों को मैंने देखा हैं ॥६६॥ तुम दोनों के समान वीर मैंने न तो कभी देखा है और न सुना है । तुम दोनों के अतुल बल से मैं परम प्रसन्न हूँ ॥६७॥ और महाबलवान् आप दोनों भाइयों को मनोभिलषित वरदान दे रहा हूँ । भगवान् विष्णु की बातों को सुनकर कामातुर बने हुए उन दोनों ने कहा ॥६८॥ **सूतजी ने कहा–** जगत् को आनन्द देने वाली महामाया को देखते हुए कमल के समान नेत्र वाले वे दोनों भगवान् विष्णु से बोले ॥६९॥ विष्णों ! हम दोनों याचक नहीं है, तुम क्या देना चाहते हो ? हम अवश्य आपको दे सकते हैं, हम दोनों दाता हैं याचक नहीं ॥७०॥ हे हृषीकेश ! आप अपना अभिलषित वरदान माँग लें । हे वासुदेव ! आपके अतुल युद्ध से हम दोनों प्रसन्न हैं ॥७१॥ उनदोनों की बात को सुनकर

वध्यावुभावपि ॥७२॥ सूत उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चातिविस्मितौ । वंचिताविति मन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ ॥७३॥ विचार्य मनसा तौ तु दानवौ विष्णुमूचतुः । प्रेक्ष्य सर्वं जलमयं भूमिं स्थलविवर्जितम् ॥७४॥ हरे योऽयं वरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन । सत्यवागसि देवेश देहि तं वांछितं वरम् ॥७५॥ निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन । वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव ॥७६॥ स्मृत्वा चक्रं तदा विष्णुस्तावुवाच हसन्हरिः । हन्म्यद्य वां महाभागौ निर्जले विपुले स्थले ॥७७॥ इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वाऽतिविस्तरौ । दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि ॥७८॥ नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुंचतामिह । सत्यवागहमद्यैव भविष्यामि च वां तथा ॥७९॥ तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिंत्य मनसा च तौ । वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्त्रकम् ॥८०॥ भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा । शीर्षे संदधतां तत्र जघने परमाद्भुते ॥८१॥ रथांगेन तदा छिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना । जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसी तयोः ॥८२॥ गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ। सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः ॥८३॥ मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समंततः । अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः ॥८४॥ इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम् । महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः ॥८५॥ आराध्या परमा शक्तिः

भगवान् ने कहा– आप दोनों यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ ॥७२॥ **सूतजी ने कहा–** भगवान् विष्णु की उस वाणी को सुनकर वे दोनों अत्यन्त अश्चर्यित हुए और सोचने लगे कि हम दोनों के साथ धोखा हो गया । यह मानकर वे शोक सन्तप्त हो गये ॥७३॥ दोनों दानवों ने मन से विचार करके सर्वत्र जलमय भूमि को देखकर उन भगवान् विष्णु से कहा ॥७४॥ हे हरे, आपने ने पहले जो हम दोनों को वर दिया है, आप सत्यवादी होकर उसे पूरा कीजिए ॥७५॥ आप किसी निर्जल लम्बे चौड़े स्थान पर हमें मारिए तो हम दोनों मर जायेंगे ॥७७॥ ऐसा कहने पर भगवान् विष्णु ने अपने जंघे को खूब लम्बा चौड़ा करके उसे निर्जल रूप में दिखाया और कहा– दानवों यहाँ जल नहीं हैं, यहीं पर अपना शिर रख दो । हे दानवों ऐसा करके आज हम और तुम दोनों सत्य वक्ता हो जायेंगे ॥७९॥ भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर उन दोनों ने अपना शरीर बढ़ाकर हजार योजन का कर दिया ॥८०॥ यह देखकर भगवान् ने अपनी जंघा दो गुना कर दिया । यह देखकर विस्मित होकर उन दोनों ने उस जंघे पर अपना शिर रख दिया ॥८१॥ उस समय भगवान् विष्णु ने अपने जंघे के ऊपर उन दोनों के शिर को चक्र से काट दिया ॥८२॥ उसके बाद मधु और कैटभ दोनों मर गये और उनकी मेदा से यह सारा समुद्र भर गया। उसी समय से पृथिवी का नाम मेदिनी हों गया । इसीलिए हे मुनीश्वरों मिट्टी अभक्ष्य हो गयी ॥८४॥ आपलोगों ने जो पूछा है, वह सब मैंने कह दिया।

सर्वैरपि सुरासुरैः । नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥८६॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः । पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **सूत पूर्वं त्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा । कृत्वा पुराणमखिलं शुकायाध्यापितं शुभम् ॥१॥ व्यासेन तु तपस्तप्त्वा कथमुत्पादितः शुकः । विस्तरं ब्रूहि सकलं यच्छ्रुतं कृष्णतस्त्वया ॥२॥** सूत उवाच– **प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात् । यथोत्पन्नः शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः ॥३॥ मेरुश्रृंगे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः । तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥४॥ जपन्नेकाक्षरं मंत्रं वाग्बीजं नारदाच्छ्रुतम् । ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः ॥५॥ अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरंतरिक्षस्य चाप्ययम् । वीर्येण संमितः पुत्रो मम**

विद्वानों को सदा महाविद्या महामाया की सेवा करनी चाहिए ॥८५॥ सभी देवों एवं दानवों द्वारा यह परमा शक्ति आराध्य हैं । उससे बढ़कर त्रैलोक्य में कोई भी तत्त्व नहीं है ॥८६॥ वेद तथा शास्त्र का सबसे बड़ा सत्य निर्णय है कि सगुण तथा निर्गुण शक्ति परं पूजनीय हैं ॥८७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

शङ्करजी के आशीर्वाद से व्यासजी को पुत्र की प्राप्ति

ऋषियों ने कहा– हे सूतजी ! आपने पहले कहा है कि अत्यन्त तेजस्वी व्यासजी ने समस्त पुराणों की रचना करके उसे शुकदेवजी को पढ़ाया ॥१॥ व्यासजी ने तपस्या करके शुकदेवजी नामक पुत्र को कैसे प्राप्त किया इसके विषय में जो आपने व्यास जी से सुना है उसे विस्तार पूर्वक कहें ॥२॥ **सूतजी ने कहा–** व्यासजी के पुत्र शुकदेव जी की उत्पत्ति का मैं वर्णन करूँगा कि व्यासजी के पुत्र रूप में शुकदेवजी कैसे उत्पन्न हुए ? शुकदेवजी योगियों में श्रेष्ठ हैं ॥३॥ माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर उग्र तपस्या पुत्र की प्राप्ति के लिए किया ॥४॥ व्यासजी ने जो नारदजी से सुना था उस एक अक्षर वाले वाणी के बीजमंत्र का जप पराम्बा महामाया का ध्यान करते हुए पुत्र प्राप्ति की कामना से किया ॥५॥ व्यासजी जप तथा

भूयादिति स्म ह ॥६॥ अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः । आराधयन्महादेवं तथैव च सदाशिवम् ॥७॥ शक्तिः सर्वत्र पूज्येति विचार्य च पुनः पुनः । अशक्तो निंद्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते ॥८॥ यत्र पर्वतश्रृंगे वै कर्णिकारवनाद्भुते । क्रीडंति देवताः सर्वे मुनयश्च तपोऽधिकाः ॥९॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा । वसन्ति मुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः ॥१०॥ तत्र हेमगिरेः श्रृंगे संगीतध्वनिनादिते । तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः ॥११॥ ततोऽस्य तेजसा व्याप्तं विश्वं सर्वं चराचरम् । अग्निवर्णा जटा जाता पाराशर्यस्य धीमतः ॥१२॥ ततोऽस्य तेज आलक्ष्य भयमाप शचीपतिः । तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम् ॥१३॥ उवाच भगवान् रुद्रो मघवंतं तथा स्थितम् । कथमिंद्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर ॥१४॥ शंकर उवाच– अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन । तपश्चरंति मुनयो ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम् ॥१५॥ न त्वेतेऽहितमिच्छंति तापसाः सर्वथैव हि । इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम् ॥१६॥ कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः । शिव उवाच– पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम् ॥१७॥ पूर्णवर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम् । इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः ॥१८॥ सूत उवाच– गत्वा ऋषिसमीपं तु तमुवाच जगद्गुरुः । उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविता शुभः ॥१९॥ सर्वतेजोमयो ज्ञानी कीर्तिकर्ता तवानघ।

ध्यान करते समय सोचते थे कि मुझे अग्नि, वायु, जल, पृथिवी तथा आकाश के तेज से सम्पन्न पुत्र प्राप्त हो ॥६॥ आहार का त्याग करके व्यासजी सौ वर्षों तक महादेवजी एवं पार्वतीजी की आराधना किए ॥७॥ शक्ति से हीन की लोक में निन्दा होती है और शक्तिमान की पूजा होती है । अतएव सर्वत्र शक्ति ही पूजनीय है । इस बात को बार-बार विचार करके पर्वत के जिस शिखर पर कर्णिकार के अद्भुत वन में देवता तपस्वी मुनिगण ॥८-९॥ आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण तथा अश्विनी कुमार निवास करते हैं तथा दूसरे ब्रह्मवेत्ता रहते हैं ॥१०। सुमेरु पर्वत के उसी शिखर पर जहाँ पर संगीत की ध्वनि होती रहती थी धर्मात्मा व्यासजी तपस्या करते थे ॥११॥ कुछ समय बाद व्यासजी के तेज से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया और व्यासजी की जटा लाल हो गयी ॥१२॥ उसके बाद व्यासजी के तेज को देखकर इन्द्र डर गये उस समय इन्द्र को भयभीत देखकर ॥१३॥ भगवान शंकर ने उनसे कहा, हे इन्द्र! आज आप क्यों भयभीत हैं ? आपको क्या कष्ट है ?॥१४॥ **शंकरजी ने कहा–** तपस्वियों के विषय में अमर्ष (डाह) नहीं करनी चाहिए वे मुझे शक्ति सम्पन्न ही जानकर कठोर तपस्या करते हैं ॥१५॥ ये तपस्वी किसी का अहित नहीं चाहते हैं । इस तरह कहने पर इन्द्र ने शंकरजी से कहा ॥१६॥ व्यास जी क्यों तपस्या करते हैं ? वे क्या चाहते हैं ? **शिवजी ने कहा–** व्यासजी पुत्र की प्राप्ति की इच्छा से कठोर तपस्या कर रहे हैं ॥१७॥ उनको तप करते हुए सौ वर्ष बीत गये और मैं उन्हें शुभ लक्षण सम्पन्न पुत्र दूँगा ॥१८॥ इन्द्र को इसतरह से कहकर शंकरजी दया से युक्त होकर प्रसन्नता का अनुभव किए ॥१९॥

अखिलस्य जनस्यात्र बल्लभस्ते सुतः सदा ॥२०॥ भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः । तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा॥२१॥ सूत उवाच– शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाश्रममात्मनः । स गत्वाऽऽश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः ॥२२॥ अरणीसहितं गुह्यं ममंथाग्नि चिकीर्षया। मंथनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिंताभरस्तदा ॥२३॥ प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः । मंथानारणिसंयोगान्मंथनाच्च समुद्भवः ॥२४॥ पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः । पुत्रारणिस्तु या ख्याता सा ममाद्य न विद्यते ॥२५॥ तरुणी रूपसंपन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता । कथं करोमि कांतां च पादयोः शृंखलासमाम् ॥२६॥ पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदा स्थिताम् । पतिव्रताऽपि दक्षाऽपि रूपवत्यपि कामिनी ॥२७॥ सदा बंधनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी । शिवोऽपि पर्वते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः ॥२८॥ कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम् । एवं चिंतयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी ॥२९॥ प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र समीपे गगने स्थिता । तां दृष्ट्वा चञ्चलापांगीं समीपस्थां वराप्सराम् ॥३०॥ पंचबाणपरीतांगस्तूर्णमासीद्धृतव्रतः। चिंतयामास च तदा किं करोम्यद्य संकटे ॥३१॥ धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे । अंगीकरोमि यद्येनां वंचनार्थमिहागताम् ॥३२॥

सूतजी ने कहा– शंकरजी, व्यासजी के समीप जाकर कहे हे वासवी पुत्र व्यासजी आप उठें आपका शुभ लक्षणों वाला पुत्र होगा । हे निष्पाप व्यासजी, आपका वह पुत्र सभी तेजों से युक्त, ज्ञानी, आपका यश बढ़ाने वाला, तथा सभी लोगों का प्रिय होगा ॥२०॥ वह सात्त्विक गुणों से परिपूर्ण तथा सत्य के बल से सम्पन्न होगा । शिवजी की उस प्रिय वाणी को सुनकर व्यासजी, शंकरजी को प्रणाम करके अपने आश्रम में चले गये । शीघ्र अपने आश्रम में जाकर व्यास जी बहुत वर्षों से थके हुए होने के कारण अरणि में विद्यमान अग्नि को प्रकट करने के लिए अरणि मंथन करने लगे । अरणि मंथन करते समय उनके मन में अपने पुत्र की उत्पत्ति के विषय में चिन्ता हुई ॥२१-२३॥ अरणि के मंथन से उत्पन्न अग्नि को देखकर उन्होंने सोचा पावक के समान मेरा पुत्र कैसे उत्पन्न होगा, क्योंकि पुत्र को उत्पन्न करने वाली अरणि (स्त्री) मेरे पास नहीं है ॥२४-२५॥ मैं किसी युवती, रूपवती, सद्वंश में उत्पन्न तथा पतिव्रता पत्नी को कैसे प्राप्त करूँ । पत्नी तो पैरों की वेणी के समान होती है ॥२६॥ पुत्र को उत्पन्न करने में निपुण और पतिव्रता पत्नी मुझे कैसे मिले ? पतिव्रता, चतुर और सुन्दरी स्त्री भी सदा बन्धन स्वरूप होती है; किन्तु वह अपनी इच्छा के अनुसार सुख देती है । पर्वत पर रहने वाले शंकरजी भी स्त्री के बन्धन में बँधे रहते हैं ॥२७-२८॥ गृहस्थाश्रम अत्यन्त जटिल होता है, उसे मैं कैसे करूँ ? जिस समय व्यासजी ऐसा सोच रहे थे उसी समय दिव्य रूप वाली घृताची नाम की अप्सरा वहाँ उन्हें आकाश में दिखायी दी । उस श्रेष्ठ अप्सरा को सन्निकट में देखकर ॥२९-३०॥ व्यासजी कामासक्त हो गये और सोचने लगे कि इस संकट के समय मैं क्या करूँ ॥३१॥ धर्म के सामने काम के उपस्थित होने पर यदि मैं इसको स्वीकार करता हूँ तो यह मुझे धोखा

**हसिष्यन्ति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम् । तपस्तप्त्वा महाघोरं पूर्णं वर्षशतं त्विह ॥३३॥ दृष्ट्वाऽप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः ।
कामं निंदापि भवतु यदि स्यादतुलं सुखम् ॥३४॥ गृहस्थाश्रमसंभूतं सुखदं पुत्रकामदम् । स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा ॥३५॥ न
भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया । नारदाच्च मया पूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम् । यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः ॥३६॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशी देवकन्यका । कथं कष्टं च संप्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना ॥१॥ सर्वं कथानकं ब्रूहि
लोमहर्षणजाधुना । श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतं रसम् ॥२॥ अमृतादपि मिष्टा ते वाणी सूत रसात्मिका । न तृप्यामो वयं सर्वे सुधया**

देने के लिए आयी है ॥३२॥ मुझ कामाकुल को देखकर महात्मागण मेरा उपहास करेंगे । वे कहेंगे कि पूरे सौ वर्ष तक घोर तपस्या करके भी अप्सरा को देखकर ये महातपस्वी क्यों कामाकुल हो गये । ठीक है यदि अतुल सुख प्राप्त हो तो ऐसी निन्दा भी बर्दास्त की जा सकती है ॥३३-३४॥ पुत्र रूपी कामना को पूर्ण करने वाला गृहस्थाश्रम अत्यन्त सुख देने वाला है । वह स्वर्ग प्रदान करने वाला होता है तथा ज्ञानी गृहस्थ को मोक्ष भी प्रदान करने वाला होता है ॥३५॥ किन्तु वह सुख तो इस देवकन्या से नहीं मिल सकता है । नारदजी ने यह कथानक मुझे बतलाया था कि उर्वशी ने राजा पुरुरवा को धोखा दिया था ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

बुध की उत्पत्ति की कथा

ऋषियों ने कहा– राजा पुरुरवा कौन थे ? और देवकन्या उर्वशी कौन थी ? राजा पुरुरवा ने कैसे कष्ट प्राप्त किया ?॥१॥ हे लोमहर्षण के पुत्र सूतजी ! इन सारी बातों को आप हमें बतलाइये, हम आपके मुख से इस कथा को सुनना चाहते हैं ॥२॥ हे सूतजी ! आप की वाणी अमृत से भी अधिक

च यथाऽमराः ॥३॥ सूत उवाच– **शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम् । वक्ष्याम्यहं यथाबुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात् ॥४॥ गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता । रूपयौवनयुक्ता सा चार्वङ्गी मदविह्वला ॥५॥ गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी । दृष्टा च शशिनाऽत्यर्थं रूपयौवनशालिनी ॥६॥ कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति । साऽपि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता ॥७॥ तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः । ताराशशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ ॥८॥ रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ । दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः ॥९॥ बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुं गृहम् । प्रेषयामास शिष्यं तु नायाता सा वशीकृता ॥१०॥ पुनः पुनर्यदा शिष्यं परावर्तत चन्द्रमाः । बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि ॥११॥ गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः । उवाच शशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम् ॥१२॥ किं कृतं किल शीतांशो कर्म धर्मविगर्हितम् । रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केन हेतुना ॥१३॥ तव देव गुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा । गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताऽथवा ॥१४॥ ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः । महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥१५॥ महापातकयुक्तस्त्वं दुराचारोऽतिगर्हितः । न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमङ्गना ॥१६॥ मुञ्चेमामसितापाङ्गीं नयामि सदनं मम।**

मिठी है, इस अमृत का पान करने से हमलोगों वैसे ही तृप्ति नहीं होती है, जिस तरह देवताओं को अमृत का पान करने से तृप्ति नहीं मिलती है । **सूतजी ने कहा–** आप लोग इस दिव्य तथा मनोरम कथा को सुनिये जैसा मैंने व्यासजी से सुना है, वैसा ही सुनाऊँगा ॥४॥ बृहस्पति की अत्यन्त प्रियतमा पत्नी का नाम तारा था वह रूप तथा यौवन के मद से मत्त थी ॥५॥ एक बार वह अपने यजमान चन्द्रमा के घर गयी । उस सुन्दरी तारा को चन्द्रमा ने देखा ॥६॥ चन्द्रमा के समान मुख वाली तारा को देखकर चन्द्रमा कामातुर हो गये और तारा भी चन्द्रमा को देखकर कामातुर हो गयी ॥७॥ वे दोनों परस्पर में एक दूसरे को देखकर कामपीड़ित तथा मदमत्त रहने लगे ॥८॥ वे दोनों एक दूसरे पर आसक्त होकर कामपिपासा को पूर्ण करते हुए रमण करने लगे । इस तरह दोनों के रमण करते हुए कुछ दिन बीत गये ॥९॥ दुःखी बृहस्पति ने तारा को लाने के लिए अपने शिष्य को चन्द्रमा के घर भेजा; किन्तु चन्द्रमा की वशवर्तिनी वह नहीं आयी ॥१०॥ चन्द्रमा ने जब बृहस्पति के शिष्य को बार-बार लौटा दिया तो तारा को लाने के लिए बृहस्पति स्वयं गये ॥११॥ चन्द्रमा के घर उदारबुद्धि बृहस्पति मुस्कुराते हुए चन्द्रमा को देखकर क्रुद्ध होकर कहने लगे ॥१२॥ चन्द्रमा तुमने धर्म के विपरीत यह क्या किया ? तुमने मेरी सुन्दरी पत्नी को अपने घर में क्यों रख लिया ?॥१३॥ मैं तुम्हारा गूरु हूँ और तुम मेरे यजमान हो । तुमने क्यों गुरु की पत्नी के साथ दुराचार किया ? तथा अपने घर में रख लिया ॥१४॥ ब्राह्मण को मारने वाला, सुवर्ण चुराने वाला, मदिरा पीने वाला, गुरु की शय्या पर सोने वाला तथा इन सबों के साथ सम्बन्ध रखने वाला, ये पाँचों महापातकी हैं ॥१५। अतएव तुम दुराचारी, निन्दित और महापातकी हों, क्योंकि तुमने मेरी पत्नी का भोग किया है, अतएव देवलोक में रहने योग्य नहीं हो ॥१६॥ मेरी इस पत्नी को छोड़ दो मैं इसे अपने

नोचेद्दक्ष्यामि दुष्टात्मन् गुरुदारापहारिणम् ॥१७॥ इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणीपतिः । गुरुं क्रोधसमायुक्तं कान्ताविरहदुःखितम् ॥१८॥
इन्दुरुवाच– **क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः । पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनीयास्ततोऽन्यथा ॥१९॥ आगमिष्यति सा कामं गृहं ते**
वरवर्णिनी । अत्रैव संस्थिता बाला का ते हानिरिहानघ ॥२०॥ इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा । दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया
चागमिष्यति ॥२१॥ त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा । न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥२२॥ इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यन्तदुःखितः।
जगाम स्वगृहं तूर्णं चिन्ताविष्टः स्मरातुरः ॥२३॥ दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा चिन्तातुरो गुरुः । ययावथ गृहं तस्य त्वरितश्चौषधीपतेः ॥२४॥
स्थितः क्षत्रा निषिद्धोऽसौ द्वारदेशे रुषाऽन्वितः । नाजगाम शशी तत्र चुकोपाति बृहस्पतिः ॥२५॥ अयं मे शिष्यतां यातो गुरुपत्नीं तु मातरम्।
जग्राह बलतोऽधर्मी शिक्षणीयो मयाऽधुना ॥२६॥ उवाच वाचं कोपात्तु द्वारदेशस्थितो बहिः । किं शेषे भवने मंद पापाचार सुराधम ॥२७॥ देहि
मे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापं ददाम्यहम् । करोमि भस्मसान्नूनं न ददासि प्रियां मम ॥२८॥ सूत उवाच– **क्रूराणि चैवमादीनि भाषणानि बृहस्पतेः।**
श्रुत्वा द्विजपतिः शीघ्रं निर्गतः सदनाद्बहिः॥२९॥ तमुवाच हसन्सोमः किमिदं बहु भाषसे । न ते योग्याऽसितापांगी सर्वलक्षणसंयुता ॥३०॥ कुरूपां

घर ले जा रहा हूँ । अन्यथा हे गुरु की पत्नी का अपहरण करने वाले दुष्ट ! मैं तुम्हे शाप दे दूँगा ॥१७॥ क्रोध से व्याकुल, पत्नी के वियोग से दुःखी
तथा इस तरह से बोलने वाले बृहस्पत्ति को देखकर चन्द्रमा ने कहा ॥१८॥ **चन्द्रमा ने कहा–** क्रोध से ब्राह्मण की निन्दा होती है अतएव ब्राह्मण को सदा
क्रोधहीन होना चाहिए। धर्मशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मण पूजनीय होते हैं और इन गुणों से हीन ब्राह्मण त्याज्य होते हैं । वह रूपवती नारी अपनी इच्छा से आपके
घर चली जायेगी । यदि वह यहीं है तो आपकी कौन सी हानि है ?॥१९-२०॥ वह अपनी इच्छा से यहाँ रह रही हैं, क्योंकि उसकी सुखोपभोग की इच्छा
है । वह यहाँ कुछ दिन रहकर अपनी इच्छा से चली जायेगी ॥२१॥ आपने ही अपने धर्मशास्त्र में कहा है कि संचरण से स्त्री दूषित नहीं होती है और
न तो वैदिक कर्म करने वाला ब्राह्मण दूषित होता है ॥२२॥ चन्द्रमा के इस तरह कहने पर बृहस्पति अत्यन्त दुःखित होकर कामातुर होने के कारण चिन्तित
होकर शीघ्र अपने घर लौट गये ॥२३॥ चिन्तित बृहस्पति कुछ दिन रहकर फिर चन्द्रमा के घर गये ॥२४॥ द्वार पर खड़े पहरेदार ने उन्हें भीतर नहीं जाने
दिया तो वे द्वार पर ही क्रुद्ध होकर रुक गये । जब वहाँ चन्द्रमा नहीं आये तो बृहस्पति अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥२५॥ वे द्वार पर ही खड़े होकर कहे कि
यह मेरा शिष्य है और गुरु की पत्नी इसकी माता हुई । यह अधर्मी उसे बलपूर्वक रोके हुए है । अतएव मुझको इसे दण्ड देना चाहिए ॥२६॥ उन्होंने
कहा– अरे पापी, नीच, सुराधम ! घर में क्यो पड़े हो जल्दी से मेरी पत्नी को लौटा दो नहीं तो मैं शाप दे रहा हूँ । यदि तुम मेरी पत्नी को नहीं देते
हो तो मैं भस्म कर दूँगा ॥२८॥ **सूतजी ने कहा–** बृहस्पति के इस तरह के क्रूर वचन को सुनकर चन्द्रमा शीघ्र अपने भवन से बाहर निकले ॥२९॥ हँसते

च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज । भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी ॥३१॥ रतिः स्वसदृशे कांते नार्याः किल निगद्यते । त्वं न जानासि मंदात्मन्कामशास्त्रविनिर्णयम्॥३२॥ यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहं दास्यामि कामिनीम् । यच्छक्यं कुरु तत्कामं न देया वरवर्णिनी ॥३३॥ कामार्तस्य च ते शापो न मां बाधितुमर्हति । नाहं ददे गुरो कांतां यथेच्छसि तथा कुरु ॥३४॥ सूत उवाच– इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिंतामाप रुषान्वितः । जगाम तरसा सद्म क्रोधयुक्तः शचीपतेः ॥३५॥ दृष्ट्वा शतक्रतुस्तत्र गुरुं दुःखातुरं स्थितम् । पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयित्वा सुसंस्थितः ॥३६॥ पप्रच्छ परमोदारस्तं तथाऽवस्थितं गुरुम् । का चिंता ते महाभाग शोकार्तोऽसि महामुने ॥३७॥ केनापमानितोऽसि त्वं मम राज्ये गुरुश्च मे । त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यं लोकाधिपैः सह ॥३८॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्ये चान्ये देवसत्तमाः । करिष्यंति च साहाय्यं का चिंता वद सांप्रतम् ॥३९॥ गुरुरुवाच– शशिनाऽपहृता भार्या तारा मम सुलोचना । न ददाति स दुष्टात्मा प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः ॥४०॥ किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम । साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मि शतक्रतो ॥४१॥ इन्द्र उवाच– मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मि तव सुव्रत । आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तव महामते ॥४२॥ प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः । ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैः समावृतः ॥४३॥

हुए चन्द्रमा ने बृहस्पति से कहा बहुत क्या बोलते हो ? सभी लक्षणों से सम्पन्न यह सुन्दरी तुम्हारे योग्य नहीं है ॥३०॥ हे ब्राह्मण किसी दूसरी कुरूप स्त्री को अपना लो भिक्षुकों के घर इस तरह की योग्य सुन्दरी नहीं रहती है ॥३१॥ हे मूर्ख ! तुम कामशास्त्र के इस निर्णय को नहीं जानते हो कि अपने समान पति पर ही नारी का प्रेम होता है ॥३२॥ मूर्ख तुम लौट जाओं मैं इस सुन्दरी को नहीं दूँगा । जो करना चाहो वह कर लो ॥३३॥ तुम कामार्त हो तुम्हारा शाप मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पायेगा । मैं तुम्हारी पत्नी को नहीं दूँगा जो मन में आये सो कर लो ॥३४॥ **सूतजी ने कहा–** चन्द्रमा के ऐसा कहने पर बृहस्पति बहुत चिन्तित हो गये और क्रुद्ध होकर वे इन्द्र के घर चले गये ॥३५॥ अपने सामने उपस्थित गुरु को चिन्तित और दुःखी देखकर पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदि से इन्द्र ने उनकी विधिवत् पूजा की ॥३६॥ उसके बाद उस प्रकार से स्थित गुरु से उन्होंने पूछा– हे महामुने ! आप शोकर्त क्यों हैं, आपको कौन सी चिन्ता है ?॥३७॥ मेरे राज्य में किसने मेरे गुरु को अपमानित किया है ? समस्त लोकपालों के साथ मेरी सारी सेना आपके साथ है ॥३८॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आदि जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे सब आपकी सहायता करेंगे आप अपनी चिन्ता बतलाइये ॥३९॥ **बृहस्पति ने कहा–** दुष्ट चन्द्रमा ने मेरी सुन्दरी पत्नी तारा का अपहरण कर लिया है और बार-बार प्रार्थना करने पर भी वह उसे नहीं देना चाहता है ॥४०॥ इन्द्र मैं क्या करूँ ? इस समय तो आप ही मेरे रक्षक हैं। इन्द्र मैं दुःखी हूँ । आप मेरी सहायता करें ॥४१॥ **इन्द्र ने कहा–** हे धर्मज्ञ ! हे सुन्दर व्रत वाले ! आप चिन्ता न करें मैं आपका दास हूँ । मैं आपकी पत्नी को अवश्य लौटा लाऊँगा ॥४२॥ यदि मेरे दूत भेजने पर भी चन्द्रमा आपकी पत्नी को नहीं लौटाये तो मैं देवताओं की सेना के साथ युद्ध करूँगा ॥४३॥

इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तृविचक्षणम् । प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम् ॥४४॥ स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः । उवाच
वचनेनैव वचनं रोहिणीपतिम् ॥४५॥ प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेण त्वं विवक्षया । कथितं प्रभुणा यच्च तद्ब्रवीमि महामते ॥४६॥ धर्मज्ञोऽसि
महाभाग नीतिं जानासि सुव्रत । अत्रिः पिता ते धर्मात्मा न निंद्यं कर्तुमहसि ॥४७॥ भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतंद्रितैः । तदर्थे कलहः कामं
भविता नात्र संशयः ॥४८॥ यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दाराक्षणे । आत्मवत्सर्वभूतानि चिंतय त्वं सुधानिधे ॥४९॥ अष्टाविंशतिसंख्यास्ते
कामिन्यो दक्षजाःशुभाः । गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे ।।५०।। स्वर्गे सदा वसन्त्येता मेनकाद्या मनोरमाः । भुंक्ष्व ताः स्वेच्छया
कामं मुञ्च पत्नीं गुरोरपि ॥५१॥ ईश्वरा यदि कुर्वन्ति जुगुप्सितमहंतया । अज्ञास्तदनुवर्तंते तदा धर्मक्षयो भवेत् ॥५२॥ तस्मान्मुंच महाभाग गुरोः
पत्नीं मनोरमाम् । कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्य सुराणां न भवेद्यथा ॥५३॥ सूत उवाच– **सोमः शक्रवचः श्रुत्वा किंचित्क्रोधसमाकुलः। भंग्या प्रतिवचः**
प्राह शक्रदूतं तदा शशी॥५४॥ इन्दुरुवाच– **धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम् । पुरोधाऽपि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः ॥५५॥**
परोपदेशे कुशला भवंति बहवो जनाः । दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा ॥५६॥ बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृहणन्ति

इस तरह गुरु को आश्वासन देकर बात करने में चतुर दूत को इन्द्र ने चन्द्रमा के पास भेजा ॥४४॥ इन्द्र की आज्ञा से वह दूत चन्द्रमा के लोक में गया
और चन्द्रमा से कहा ॥४५॥ हे महामते ! मैं इन्द्र के द्वारा आपसे बात करने के लिए दूत भेजा गया हूँ । अतएव उन्होंने जो कहा है उसे सुना रहा हूँ
॥४६॥ उन्होंने कहा है कि हे महाभाग ! आप धर्म को तथा नीति को जानते हैं । आपके पिता महर्षि अत्रि हैं; अतएव आपको निन्दितकर्म नहीं करना
चाहिए ॥४७॥ सभी की पत्नी की रक्षा अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिए नहीं तो उसके लिए कलह होता है ॥४८॥ अपनी पत्नी के ही समान
दूसरे की पत्नी की रक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए । हे चन्द्रमा ! अपने ही समान दूसरे के भी विषय में विचार करना चाहिए ॥४९॥ हे चन्द्रमा जब आपकी
अठाइस पत्नियाँ हैं, जो दक्ष की पुत्रियाँ है ? तो फिर गुरु की पत्नी का क्यों भोग करना चाहते हो ?॥५०॥ स्वर्ग मे तो मेनका आदि अप्सराएँ सदा
निवास करती हैं तुम अपनी इच्छा के अनुसार उनका भोग करो गुरु की पत्नी को लौटा दो ॥५१॥ आप जैसे महापुरुष ही यदि अहंकारमय कार्य करेंगे
तब तो अज्ञानी जीव उसका ही अनुसरण करने लगेंगे फिर तो धर्म का नाश हो जायेगा ॥५२॥ अतएव हे महाभाग आप गुरु की पत्नी को छोड़ दें जिससे
कि आपके चलते देवताओं में परस्पर में युद्ध न हो ॥५३॥ **सूतजी ने कहा–** इन्द्र की बातों को सुनकर चन्द्रमा ने क्रोध करके कुछ व्यंग्य करते हुए दूत से
कहा॥५४॥ **चन्द्रमा ने कहा–** हे महाबाहो ! आप जैसे देवताओं के स्वामी हैं उसीतरह के आपके पुरोहित हैं; अतएव आप दोनों की बुद्धि एक समान हैं ॥५५॥
औरों को उपदेश देने में बहुत से लोग कुशल होते हैं; किन्तु समय आने पर उसका पालन करने वाले बहुत कम लोग हैं ॥५६॥ हे देवेश ! बृहस्पति के बनाए

मानवाः । को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्स्त्रियम् ॥५७॥ स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किंचन । स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मंदचेतसाम् ॥५८॥ तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ । अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा ॥५९॥ गृहारंभस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत् । विरक्तेयं यदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम् ॥६०॥ न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वद स्वयम् । ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥६१॥ सूत उवाच– **इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम् । इन्द्रायाचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना ॥६२॥ तुराषाडपि तच्छुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह । सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः ॥६३॥ शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययौ । मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति ॥६४॥ साहाय्यं ते करिष्यामि मंत्रशक्त्या महामते । भविता यदि संग्रामस्तव चेंद्रेण मारिष ॥६५॥ शंकरस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम् । गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा ॥६६॥ संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्धुतम् । बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल॥६७॥ देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः । हंसारूढो जगामाशु तं देशं क्लेशशांतये ॥६८॥ राकापतिं तदा प्राह मुंच भार्यां गुरोरिति । नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम् ॥६९॥ भृगुं निवारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः । किमन्यायमतिर्जाता सङ्गदोषान्महामते ॥७०॥ निषेधयामास ततो**

हुए धर्मशास्त्र का पालन सब लोग करते हैं । उसी शास्त्र के अनुसार अपने पर आसक्त स्त्री का उपभोग करने में कौन सा दोष है ?॥५७॥ बलवानों का सब कुछ अपना हो जाता है, और दुर्बलों का अपना कुछ नहीं रहता है । स्वकीया और परकीया का तो मूर्खों का भ्रम है ॥५८॥ तथा तारा का जिस तरह का अनुराग मुझमें है वैसा अनुराग गुरु में नहीं है । अनुरक्ता का धर्म अथवा न्याय के अनुसार कैसे त्याग किया जा सकता है ॥५९॥ गृह तो अनुरक्त स्त्री से ही चल सकता है विरक्त स्त्री से नहीं । जबसे बृहस्पति अपने छोटे भाई संवर्त की स्त्री पर अनुरक्त हुए तब से ही तारा उनसे विरक्त हो गयी ॥६०॥ हे दूत ! तुम जाओं और कह दो कि मैं तारा को नहीं दूँगा । इन्द्र राजा हैं जो चाहें सो करें ॥६१॥ **सूतजी ने कहा–** चन्द्रमा की बातों को सुनकर दूत इन्द्र के पास चला गया और उन सभी बातों को बतलाया जो चन्द्रमा ने कहा था ॥६२॥ इन्द्र भी उस बात को सुनकर क्रुद्ध हो गये और बृहस्पति की सहायता करने के लिए सेना जुटाये ॥६३॥ शुक्र ने जब कलह की बात सुनी तो बृहस्पति से द्वेष होने के कारण चन्द्रमा के पास गये और कहे कि तुम स्त्री को मत लौटाओं॥६४॥ यदि इन्द्र के साथ युद्ध हुआ तो मैं तुम्हारी सहायता मन्त्र की शक्ति से करूँगा ॥६५॥ शंकरजी ने जब गुरु की पत्नी के साथ दुराचार की बात को सुना तो गुरु का विरोधी शुक्राचार्य को जानकर गुरु की सहायता करने लगे ॥६६॥ उस समय देवता और दानवों में भयंकर युद्ध हुआ। तारकासुर युद्ध के समान यह भी युद्ध अनेक वर्षों तक चलता रहा ॥६७॥ जब ब्रह्माजी ने इस देवासुर संग्राम को देखा तो वे हंस पर बैठकर कलह शान्त कराने के लिए वहाँ गये ॥६८॥ उन्होंने चन्द्रमा से कहा कि बृहस्पति की पत्नी को छोड़ दो अन्यथा विष्णु को बुलाकर तुम्हारा नाश करा दूँगा ॥६९॥

भृगुस्तं चौषधीपतिम् । मुंच भार्यां गुरोरद्य पित्राऽहं प्रेषितस्तव ॥७१॥ सूत उवाच– द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम् । ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम् ॥७२॥ प्राप्य कान्तां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ । ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति ॥७३॥ ब्रह्मा स्वसदनं प्राप्तः कैलासं चापि शङ्करः । बृहस्पतिस्तु सन्तुष्टः प्राप्य भार्यां मनोरमाम् ॥७४॥ ततः कालेन कियता ताराऽसूत सुतं शुभम् । सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः ॥७५॥ दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम् । जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥७६॥ श्रुतं चन्द्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः । दूतं च प्रेषयामास गुरुं प्रति महामतिः ॥७७॥ न चायं तव पुत्रोऽस्ति मम वीर्यसमुद्भवः । कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकं विधिम् ॥७८॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः । उवाच मम पुत्रो मे सदृशो नात्र संशयः ॥७९॥ पुनर्विवादः संजातो मिलिता देवदानवाः । युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत ॥८०॥ तत्रागतः स्वयं ब्रह्मा शान्तिकामः प्रजापतिः । निवारयामास मुखे संस्थितान् युद्धदुर्मदान् ॥८१॥ तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे । सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति ॥८२॥ तमुवाचासितापांगी लज्जमाना प्यधोमुखी । चंद्रस्येति शनैरंतर्जगाम वरवर्णिनी ॥८३॥ जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनांतरात्मना । नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः ॥८४॥

उन्होंने भृगुवंशी शुक्राचार्य को बुलाकर कहा– क्या असुरों के सङ्गजन्य दोष से तुम्हारी भी बुद्धि अन्याय की ओर चली गयी है ॥७०॥ इसके बाद शुक्राचार्य ने जाकर चन्द्रमा से कहा कि तुम बृहस्पति की पत्नी को छोड़ दो यह मैं तुम्हारे पिता ब्रह्माजी का सन्देश लेकर आया हूँ ॥७१॥ **सूतजी ने कहा**– शुक्राचार्य की बात को सुनकर चन्द्रमा ने बृहस्पति की गर्भवती पत्नी को लौटा दिया ॥७२॥ पत्नी को प्राप्त करके बृहस्पति प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चले गये उसके बाद देवता और दैत्य भी अपने-अपने घर चले गये ॥७३॥ ब्रह्माजी अपने घर गये तथा शंकरजी कैलास चले गये । बृहस्पति भी अपनी प्रियतमा पत्नी को प्राप्त करके प्रसन्न थे ॥७४॥ उसके कुछ समय बाद तारा एक सुन्दर दिन को तथा सुन्दर नक्षत्र में चन्द्रमा के समान गुण वाले सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। उत्पन्न हुए पुत्र को देखकर बृहस्पति ने प्रसन्नतापूर्वक उसके जातकर्म आदि संस्कारों को विधिपूर्वक किया ॥७६॥ चन्द्रमा ने जब पुत्र के जन्म की बात को सुना तो बृहस्पति के पास दूत भेजा ॥७७॥ यह आपका पुत्र नहीं मेरा पुत्र है, आपने उसके जातकर्मादि संस्कारों को कैसे किया ?॥७८॥ दूत की बात सुनकर बृहस्पति ने कहा कि यह मेरे ही समान मेरा पुत्र है ॥७९॥ इसके बाद पुनः देवताओं और दैत्यों का परस्पर में विवाद होने लगा और युद्ध करने के लिए उनका समाज आया ॥८०॥ शान्ति कराने के लिए वहाँ स्वयं ब्रह्मा जी आये और युद्ध करने के लिए तैयार वीरों को उन्होंने रोका ॥८१॥ इसके बाद ब्रह्मा जी ने तारा को बुलाकर पूछा कि तुम सच बतलाओं कि यह किसका पुत्र है ? जिससे विवाद शान्त हो ॥८२॥ इसके बाद लजाती हुई तारा ने कहा कि यह चन्द्रमा का पुत्र है और यह कहकर वह भीतर चली गयी ॥८३॥ इसके बाद चन्द्रमा ने प्रसन्नता पूर्वक उस लड़के को ले लिया और उसका

ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः । यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः ॥८५॥ कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः। यथा श्रुता मया पूर्वं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥८६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते प्रथमस्कन्धे बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच– **ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां कथयामि वः । बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मा यज्ञकृद्दानतत्परः ॥१॥ सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेंद्रियः । सैन्धवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने ॥२॥ युतः कतिपयामात्यैर्दर्शितश्चारुकुडलः । धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसंघंतथाद्भुतम् ॥३॥ स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान् । शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्च गवयांस्तथा ॥४॥ शरभान्महिषाँश्चैव साँभरान्वनकुक्कुटान्। निघ्नन्मेध्यान्पशून्राजा कुमारवनमाविशत् ॥५॥ मेरोरधस्तले दिव्यं मंदारद्रुमराजितम् । अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवासितम् ॥६॥ सालैस्तालैस्तमालैश्च चंपकैः पनसैस्तथा।**

नाम बुध रखा ॥८४॥ इसके बाद ब्रह्मा जी अपने धाम चले गये और इन्द्रादि देवता भी जैसे आये थे वैसे ही अपने-अपने घर चले गये ॥८५॥ मैने आप लोगों को बृहस्पति की पत्नी में चन्द्रमा के पुत्र बुध की उत्पत्ति की कथा को सुनाया, मैंने इसीतरह अपने गुरु व्यास जी के मुख से सुना था ॥८६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

सुद्युम्न द्वारा देवी की स्तुति

सूतजी ने कहा– अब इसके बाद मैं इला में उत्पन्न बुध के पुत्र पुरूरवा के जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूँ । बुध धर्मात्मा, ज्ञानी तथा यज्ञ करने वाले राजा थे ॥१॥ सुद्युम्न नामक राजा सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे । एक बार वे सिन्धु देशीय अश्व पर सवार होकर आखेट करने के लिए कुछ मन्त्रियों के साथ वन में विचरण कर रहे थे । वे अपने हाथ में अजगव धनुष तथा बाण लिए हुए थे । उनके कानों में सुन्दर कुण्डल थे ॥२-३॥ उस वन में रुरुमृगों, खरगोशों, वनसूकरों, गैंडों, गवयों, शरभों, महिषों तथा संभर कुकुट्टो को मारते हुए वे कुमार वन में प्रवेश कर गये ॥४-५॥ वह वन सुमेरु पर्वत के नीचे

आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमंडपावृतम् ।।७।। दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखंडमंडितम् । यूथिकामालतीकुंदपुष्पवल्लीसमावृतम् ।।८।। हंसकारंडवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम् । भ्रमरालिरुतारामं वनं सर्वसुखावहम् ।।९।। दृष्ट्वा प्रमुदितो राजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमंडितान्।।१०।। प्रविष्टस्तत्र राजर्षिः स्त्रीत्वमाप क्षणात्ततः । अश्वोऽपि बडवा जातश्चिंताविष्टः स भूपतिः।।११।। किमेतदिति चिंतार्तश्चिंत्यमानः पुनः पुनः। दुःखं बहुतरं प्राप्तः सुद्युम्नो लज्जयाऽन्वितः ।।१२।। किं करोमि कथं यामि गृहं स्त्रीभावसंयुतः । कथं राज्यं करिष्यामि केन वा वंचितो ह्यहम् ।।१३।। ऋषय ऊचुः– **सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षणम् । सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः।।१४।। किं तत्कारणमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे। किं कृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत ।।१५।।** सूत उवाच– **एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः। दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन्।।१६।। तस्मिंश्च समये तत्र शंकरः प्रमदायुतः । क्रीडासक्तो महादेवी विवस्त्रा कामिनी शिवा ।।१७।। उत्संगे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा । तान्विलोक्यांबिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।।१८।। भर्तुरंकात्समुत्थाय वस्त्रमादाय पर्यधात् । लज्जाविष्टा स्थिता तत्र वेपमानातिमानिनी।।१९।।**

था और मन्दार वृक्ष से सुशोभित था । उसमें अशोक की लताएँ फैली हुई थीं और मौलश्री के फूलों की सुगन्धि आ रही थी । उस वन में साल, ताल, तमाल, चम्पा, कटहल, आम्र, कदम्ब, महुआ के पेड़ थे और माधवी लता के माण्डप थे ।।६-७।। अनार, नारियल, तथा केले के पेड़ो से वह वन सुशोभित था । उसमें जूही, मालती तथा कुन्द पुष्प की लताएँ थीं । उसमें हंस और बत्तख विचरते थे और चारो ओर से बाँस की चों चों की ध्वनि आती थी । भौरों की गुञ्जन की ध्वनि सुनायी पड़ती थी । इन विभूतियों से सुशोभित वह वन अत्यन्त आनन्दप्रद था ।।८-९।। खिले हुए पुष्पों और कोयल की ध्वनि से सुशोभित उस वन को देखकर राजा अपने सेवकों के साथ उसमें प्रवेश किए । उस वन में प्रवेश करते ही राजा स्त्री हो गया, उनका घोड़ा घोड़ी हो गयी ।।१०-११।। यह क्या हो गया यह बार-बार सोचते हुए राजा अत्यन्त दुःखी और लज्जित थे ।।१२।। मैं क्या करूँ ? स्त्री रूप में मैं घर कैसे जाऊँ ? मैं राज्य कैसे करूँगा ? मुझे किसने धोखा दिया है ?।।१३।। **शौनकादि ऋषियों ने कहा–** सूतजी आपने तो यह रोंगटे खड़ा कर देने वाली आश्चर्य की बात बतायी है कि राजा सुद्युम्न स्त्री हो गया ।।१४।। उस मनोहर वन में इसका कया कारण था, और स्त्री हो जाने के बाद राजा ने क्या किया ? यह आप विस्तार के साथ बतलाइये ।।१४-१५।। **सूतजीने कहा–** एकबार शंकरजी का दर्शन करने के लिए सनकादिक ऋषि दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उस वन में आये।।१६।। उस समय भगवान् शंकर अपनी पत्नी पार्वतीजी के साथ विहार कर रहे थे और निर्वस्त्र पार्वती जी उनकी गोद में बैठी हुए रमण कर रही थीं । आये हुए ऋषियों को देखकर विवस्त्र पार्वतीजी अत्यन्त लज्जित हो गयीं ।।१७-१८।। वे तुरन्त शंकरजी की गोद से उठकर अपना वस्त्र पहन

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः । परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम् ॥२०॥ ह्रीयुतां कामिनीं वीक्ष्य प्रोवाच भगवान्हरः । कथं लज्जातुराऽसि त्वं सुखं ते प्रकरोम्यहम् ॥२१॥ अद्यप्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने । वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति ॥२२॥ इति शप्तं वनं तेन ये जानंति जनाः क्वचित् । वर्जयंतीह ते कामं वनं दोषसमृद्धिमत् ॥२३॥ सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह । तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः ॥२४॥ चिंताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया । विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशादितस्ततः ॥२५॥ इलेति नाम संप्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना । विचरंस्तत्र संप्राप्तो बुधः सोमसुतो युवा ॥२६॥ स्त्रीभिः परिवृतां तां तु दृष्ट्वा कांतां मनोरमाम् । हावभावकलायुक्तां चकमे भगवान्बुधः ॥२७॥ साऽपि तं चकमे कांतं बुधं सोमसुतं पतिम् । संयोगस्तत्र संजातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम् ॥२८॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् । इलायां सोमपुत्रस्तु चक्रवर्तिनमुत्तमम् ॥२९॥ सा प्रासूत सुतं बाला चिंताविष्टा वने स्थिता । सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥३०॥ स तदाऽस्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः । अतोषयन्महादेवं शंकरं लोकशंकरम् ॥३१॥ तस्मै सभगवांस्तुष्टः प्रददौ वांछितं वरम् । वसिष्ठः प्रार्थयामास पुंस्त्वं राज्ञः प्रियस्य च ॥३२॥ शंकरस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह । मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री

लिया और लज्जा के मारे वे काँप रही थीं ॥१९॥ सनकादिक महर्षि भी वहाँ शंकरजी के रमण के प्रसंग को जानकर वहाँ से लौट गये और नर-नारायण आश्रम बदरिका वन में चले गये ॥२०॥ पार्वती जी को लज्जित देखकर भगवान् शंकर ने कहा– तुम क्यों लज्जित हो ? मैं तुम्हारे सुख का उपाय कर देता हूँ ॥२१॥ हे सुन्दरि ! आज से जो कोई भी मोहवशात् इस वन में प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायेगा ॥२२॥ इसतरह से शापग्रस्त उस बन को जो लोग जानते थे वे उस वन में नहीं जाते थे ॥२३॥ सुद्युम्न उस बात को नहीं जानते थे अतएव मन्त्रियों के साथ उस वन में चले गये । इसी कारण वे अपने मन्त्रियों के साथ स्त्री हो गये ॥२४॥ चिन्तित राजर्षि लाज के मारे अपने घर नहीं गये । और उस वन में ही इधर-उधर विचरने लगे ॥२५॥ स्त्री हो जाने पर उनका नाम इला हो गया । वहाँ पर विचरते हुए उन्होंने सोम के युवक पुत्र बुध को देखा ॥२६॥ स्त्रियों से घिरे हुए हावभाव से युक्त इला को देखकर बुध उसपर आसक्त हो गये ॥२७॥ इला भी उस मनोहर बुध पर आसक्त हो गयी और उन दोनों में परस्पर में प्रेम हो गया ॥२८॥ बुध ने इला में अपने चक्रवर्ती पुत्र पुरूरवा को उत्पन्न किया ॥२९॥ चिन्ताग्रस्त उस सुन्दरी ने वन में रहकर पुत्र को जन्म दिया । इसके बाद उसने अपने कुलगुरु वसिष्ठ का स्मरण किया ॥३०॥ इला की दशा देखकर महर्षि वसिष्ठ ने कृपा से युक्त होकर लोक कल्याणकारी भगवान् शंकर का स्मरण किया ॥३१॥ वसिष्ठ महर्षि पर प्रसन्न होकर शंकर जी ने उनसे वरदान माँगने के लिए कहा तो उन्होंने राजा सुद्युम्न के पुरुषत्व का वरदान माँगा ॥३२॥ अपनी वाणी को सत्य

भूपतिः किल ॥३३॥ इत्थं प्राप्य वरं राजा जगाम स्वगृहं पुनः । चक्रे राज्यं स धर्मात्मा वसिष्ठस्याप्यनुग्रहात् ॥३४॥ स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यं प्रशास्ति च । प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनन्दन्महीपतिम् ॥३५॥ काले तु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा । प्रतिष्ठां नृपतिस्तस्मै दत्त्वा राज्यं वनं ययौ ॥३६॥ गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले । नारदान्मंत्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम् ॥३७॥ जजाप मंत्रमत्यर्थं प्रेमपुरितमानसः । परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणी शिवा ॥३८॥ सिंहारूढ़ा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा । वारुणीपानसंमत्ता मदाघूर्णितलोचना ॥३९॥ दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च प्रेमाकुलितलोचनः । प्रणम्य शिरसा प्रीत्या तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥४०॥ इलोवाच– दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम् । वंदे त्वदंघ्रिकमलं सुरसंघसेव्यं कामप्रदं जननि चापि विमुक्तिदं च ॥४१॥ को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं मुह्यंति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे । ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च दृष्टैव देवि सकलं किल विस्मयो मे ॥४२॥ शंभुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः । जानंति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः ॥४३॥ जानाति विष्णुरमितद्युतिरंब

करते हुए शंकरजी ने कहा कि यह राजा एक मास तक पुरुष रहेगा और एक मास तक स्त्री रहेगा ॥३३॥ इस तरह का वरदान प्राप्त करके राजा अपने घर चला गया और वसिष्ठ महर्षि की आज्ञा प्राप्त करके राज्य करने लगा ॥३४॥ जब वह स्त्री रहता था तो राजमहल में रहता था और जब वह पुरुष रहता था तो राज्य का प्रशासन करता था । यह देखकर प्रजा उस राजा के विषय में उद्विग्न हो गयी और राजा का अभिनन्दन नहीं करती थी ॥३५॥ कुछ समय बाद सुद्युम्न का पुत्र पुरूरवा युवक हो गया और राजा ने उसे राजा बनाया और स्वयं वन में चला गया ॥३६॥ अनेक प्रकार के वृक्षों से भरे मनोहर वन में जाकर राजा ने नारदजी से नवाक्षर मंत्र प्राप्त किया ॥३७॥ राजा प्रेमपूर्ण मन से उस मंत्र का अत्यधिक जप करता था । उससे जगत् तारिणी सगुणा भगवती प्रकट हो गयीं ॥३८॥ दिव्य रूप वाली, सिंह पर सवार देवी राजा के समक्ष आ गयीं । उस समय उन्होंने वारुणी मदिरा पिया था और नशे के कारण उनके नेत्र घूर्णित हो रहे थे ॥३९॥ दिव्य रूपवाली देवी को देखकर प्रेमभरे नेत्रों वाले राजा जगदम्बा को प्रणाम करके स्तुति करने लगे॥४०॥ **इला ने कहा–** हे देवि आपका दिव्यरूप प्रख्यात हैं । मैंने उसे अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया है । हे माँ मैं आपके देव समूह से सेवित, इच्छाओं को पूर्ण करने वाले तथा मोक्ष प्रदान करने वाले चरण-कमल की वन्दना करता हूँ ॥४१॥ हे देवि ! जिसके विषय में देवता तथा मुनिजन भ्रमित रहते हैं, आपकी उस महिमा को पूर्ण रूप से कौन जानता हैं ? आपके इस अतुलनीय ऐश्वर्य तथा मुझ जैसे जीव पर आपकी कृपा को सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है॥४२॥ शंकरजी, श्रीहरि, ब्रह्माजी, इन्द्र, सूर्य, कुबेर तथा वरुण पवन तथां चन्द्रमा भी अपके प्रभाव को जब नहीं जान पाते हैं तो गुणहीन मनुष्य आपके गुणों

साक्षात्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च । को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां वेदांबिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम् ॥४४॥ क्वाहं
सुमंदमतिरप्रतिमप्रभावः क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः । जाने भवानि चरितं करुणासमेतं यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान् ॥४५॥
वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयापि नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च । पादौ तवादिपुरुषः किल पावकेन कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ ॥४६॥
वांछत्यहो हरिरशोक इवातिकामं पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः । तां त्वं करोषि रुषिता प्रणतं च पादे दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम्॥४७॥
वक्षस्थले वसति देवि सदैव तस्य पर्यंकवत्सुचरिते विपुलेऽतिशांते । सौदामिनीव सुघने सुविभूषिते च किं ते न वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि ॥४८॥
त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमंब कोपान्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः । प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजंति शांतं श्रियोज्झितमतीवगुणैर्वियुक्तम्॥४९॥
ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो ये त्वत्पदांबुजमहर्निशमाश्रयंति । मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः किं वर्णयामि तव शक्तिमनंतवीर्ये॥५०॥

को कैसे जान सकता है ?॥४३॥ हे मातः अमित प्रभाव वाले भगवान् विष्णु आपको सत्त्वगुण से सम्पन्न साक्षात् लक्ष्मी जानते हैं, ब्रह्मा जी आपको रजोगुण से सम्पन्न सरस्वती जानते हैं और शंकर जी आपको तामसी देवी पार्वती जानते हैं, किन्तु इनमें से कोई भी आपके निर्गुण रूप को नहीं जानता है ॥४४॥ कहाँ तो अत्यन्त मन्दमति वाला मैं और कहाँ निःसीम प्रभाव वाली आपकी कृपा ? हे भगवति ! मैं आपके अत्यन्त करुणा पूर्ण चरित्र को जानता हूँ कि आप अपने में भाव वाले सेवकों पर कृपा करती हैं ॥४५॥ कमल वन वासिनी लक्ष्मी होकर आपने भगवान् विष्णु का वरण किया; किन्तु वे भगवान् विष्णु आप जैसे पत्नी को प्राप्त करके भी प्रसन्न नहीं हैं। क्योंकि वे अपने को आपके योग्य पति नहीं मानते हैं । वे अपने पैरों को आप से इसलिए दबवाते हैं कि वे आपके हाथों के संस्पर्श से अपने को पवित्र करवाना चाहते हैं ॥४६॥ जिस तरह अशोक वृक्ष किसी सुन्दरी के पाद प्रहार को चाहता है, उसीतरह श्रीहरि भी आपके पाद प्रहार को प्रमुदित होकर प्राप्त करना चाहते हैं । जब आप प्रणय कोप करती हैं, उस समय श्रीहरि जो सभी देवताओं के प्रणम्य हैं वे स्मरार्त होकर आपके पैरों पर गिरते हैं, उस समय आप उन पर पादप्रहार करती हैं ॥४७॥ हे देवि ! आप श्रीभगवान् के अत्यन्त विस्तृत तथा सच्चरित्र युक्त मेघ के समान श्यामवर्ण के पलंग के समान वक्षःस्थल में विद्युत् के समान निवास करती हैं इसके कारण क्या जगदीश्वर भी आपके वाहन नहीं हुए॥४८॥ हे माँ ! यदि आप कुपित होकर भगवान् विष्णु का परित्याग कर दें तो वे सम्पूर्ण विश्व से पूजित होकर भी शक्तिहीन हो जायेंगे । लोक में यह देखा जाता है कि श्रीहीन, शान्त तथा गुणहीन पुरुषों को उनके परिवार जन भी त्याग देते हैं ॥४९॥ ब्रह्मादिक जितने भी देवता हैं वे सदा आपके चरण कमल की जो सेवा करते है उसी के कारण आपने उनमें पुरुषत्व प्रदान किया है । हे अनन्तवीर्य सम्पन्न माँ ! मैं आपकी शक्ति का क्या वर्णन करूँ ॥५०॥

त्वं नापुमान्न च पुमानिति मे विकल्पो या काऽसि देवि सगुणा ननु निर्गुणा वा । तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो वांछामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं ते ॥५१॥ सूत उवाच– इति स्तुत्वा महीपालो जगाम शरणं तदा । परितुष्टा ददौ देवी तत्र सायुज्यमात्मनि ॥५२॥ सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकं स्थिरम् । तस्या देव्याः प्रसादेन मुनीनामपि दुर्लभम् ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते प्रथमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच– **सुद्युम्ने तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः । सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारंजनतत्परः ॥१॥ प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्वनमस्कृतम् । चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः ॥२॥ मंत्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञता तथा । सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा ॥३॥ सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः । वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन्राज्यं शशास ह ॥४॥ यज्ञांश्च विविधांश्चक्रे स राजा बहुदक्षिणान् । दानानि च पवित्राणि**

हे माँ आप न तो स्त्री हैं और न तो पुरुष आप चाहें निर्गुण हों या सगुण, मैं सदा भक्तिपूर्वक आपको नमस्कार करता हूँ और मैं चाहता हूँ कि आपके चरण कमलों में मेरी अविचल भक्ति बनी रहे ॥५१॥ **सूतजी ने कहा**– इस तरह की स्तुति करके राजा सुद्युम्न ने देवी की शरणागति की और देवी ने उन्हें सायुज्य मुक्ति प्रदान की ॥५२॥ इसतरह से सुद्युम्न ने परमस्थिर पद को उस देवी की कृपा से प्राप्त किया ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

पुरूरवा तथा उर्वशी का मिलन

सूतजी ने कहा– सुद्युम्न के स्वर्गलोक चले जाने पर पुरूरवा राज्य करते थे । वे गुणों से सम्पन्न, देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा प्रजाओं को सदा प्रसन्न करने में लगे रहते थे ॥१॥ प्रजाओं की रक्षा करने वाले राजा पुरूरवा, अत्यन्त सुन्दर प्रतिष्ठान पुर में रहकर राज्य करते थे ॥२॥ उनकी अपनी मन्त्रणा सदा गुप्त रहती थी; किन्तु अन्य राजाओं की गतिविधि को वे अच्छी तरह जानते रहते थे । उनमें उत्तम कोटि की उत्साहशक्ति तथा प्रभुशक्ति विद्यमान थी ॥३॥ साम, दान, दण्ड तथा भेद ये चारो नीतियाँ उनके वश में थीं । वे प्रजाओं के वर्णाश्रमधर्म और स्वधर्म का पालन करते हुए राज्य करते थे ।

ददावथ नराधिपः ।।५।। तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् । श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम् ।।६।। ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता । गुणिनं तं नृपं मत्वा वरयामास मानिनी ।।७।। समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वरांगना । एतावुरणकौ राजन्यस्तौ रक्षस्व मानद।।८।। घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किञ्चिन्नृपाशनम् । नेक्षे त्वां च महाराज नग्नमन्यत्र मैथुनात् ।।९।। भाषाबंधस्त्वयं राजन् यदि भग्नो भविष्यति । तदा त्यक्त्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।।१०।। अंगीकृतं च तद्राज्ञा कामिन्या भाषितं तु यत् । स्थिता भाषणबन्धेन शापानुग्रहकाम्यया।।११।। रेमे तदा स भूपालो लीनो वर्षगणान्बहून् । धर्मकर्मादिकं त्यक्त्वा चोर्वश्या मदमोहितः ।।१२।। एकचित्तस्तु संजातस्तन्मनस्को महीपतिः । न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः ।।१३।। एवं वर्षगणांते तु स्वर्गस्थः पाकशासनः । उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गंधर्वानाह देवराट् ।।१४।। उर्वशीमानयध्वं भो गन्धर्वाः सर्व एव हि । हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल ।।१५।। उर्वशीरहितं स्थानं मदीयं नातिशोभते । येन केनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम् ।।१६।। इत्युक्तास्तेऽथ गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः । ततो गत्वा महागाढ़े तमसि प्रत्युपस्थिते ।।१७।।

उस राजा ने बहुत अधिक दक्षिणा देकर बहुत से यज्ञों को किया और अनेक प्रकार के पवित्र दानों को भी किया ।।५।। उस राजा के रूप, गुण औदार्य, शील, ऐश्वर्य तथा पराक्रम को सुनकर उर्वशी नाम की अप्सरा उन पर आसक्त होकर उनकी वशवर्तिनी हो गयी ।।६।। ब्रह्माजी के शाप से शप्त होकर वह मनुष्य लोक में आयी और उस मानिनी ने पुरूरवा को गुणों से सम्पन्न मानकर उनका पति के रूप में वरण किया ।।७।। उर्वशी ने तीन शर्त रखकर पुरूरवा का वरण किया । १. ये दो मेरे मेष के बच्चे हैं आपको इनकी सदा रक्षा करनी होगी ।।८।। २. राजन् मैं प्रतिदिन घी का ही भोजन करूँगी, इसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कुछ नहीं भोजन होगा । ३. राजन् मैथुन काल को छोड़कर कभी भी मैं आपको नग्न नहीं देखूँ ।।९।। **उर्वशी ने कहा**– राजन् यदि आप मेरे इन शर्तों को छोड़ेगे तो मैं आपको छोड़कर चली जाऊँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ ।।१०।। राजा पुरुरवा ने उर्वशी के सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया और इन्हीं शर्तों के साथ उर्वशी भी शाप से छुटकारा पाने की इच्छा से राजा के भवन में रहने लगी ।।११।। राजा पुरूरवा ने भी सभी धर्म कर्म आदि को छोड़कर उर्वशी के रूप पर मोहित होकर उसके साथ अनेक वर्षों तक रमण किया ।।१२।। राजा का मन सदा उर्वशी में ही लगा रहता था । वे उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते थे ।।१३।। इस तरह बहुत वर्ष बीत गये । एकबार अपनी सभा में उर्वशी को अनुपस्थित देखकर ।।१४।। इन्द्र ने यक्षों से कहा– हे गन्धर्वो ! प्रतिज्ञा के समय राजा पुरूरवा के घर में रखे गये उर्वशी के दो मेषों को चुराकर तुमलोग उर्वशी को स्वर्ग ले आओ ।।१५।। उर्वशी के विना मेरी सभा सुशोभित नहीं होती है, अतएव किसी भी तरह आपलोग उर्वशी को लाओ ।।१६।। इसतरह से इन्द्र के कहने पर वे गन्धर्व

जह्रुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्य तम् । चक्रंदतुस्तदा तौ तु ह्रियमाणौ विहायसा ॥१८॥ उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रंदितं सुतयोरिव । कुपितोवाच
राजानं समयोऽयं कृतो मया ॥१९॥ नष्टाऽहं तव विश्वासाद्धृतौ चौरैर्ममोरणौ । राजन्पुत्रसमावेतौ त्वं किं शेषे स्त्रिया समः ॥२०॥ हताऽस्म्यहं
कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना । उरणौ मे गतौ चाद्य सदा प्राणप्रियौ मम ॥२१॥ एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः । नग्न एव ययौ तूर्णं
पृष्ठतः पृथिवीपतिः ॥२२॥ विद्युत्प्रकाशिता तत्र गन्धर्वैर्नृपवेश्मनि । नग्नभूतस्तया दृष्टौ भूपतिर्गन्तुकामया ॥२३॥ त्वक्त्वोरणौ गताः सर्वे
गन्धर्वाः पथि पार्थिवः । नग्नो जग्राह तौ श्रांतो जगाम स्वगृहं प्रति ॥२४॥ तदोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः । नग्नं वीक्ष्य पतिं नारी
गता सा वरवर्णिनी ॥२५॥ क्रंदन्स देशदेशेषु बभ्राम नृपतिः स्वयम् । तच्चित्तो विह्वलः शोचन्विवशः काममोहितः ॥२६॥ भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं
कुरुक्षेत्रे ददर्श ताम् । दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः ॥२७॥ अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि । मां त्वं त्वन्मनसं कांतं वशगं
चाप्यनागसम् ॥२८॥ स देहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया । खादंत्येनं वृकाः काकास्त्वया त्यक्तं वरोरु यत् ॥२९॥ एवं विलपमानं तं राजानं

विश्वावसु आदि के साथ राजा के घर में गये और जब घोर अन्धकार हो गया उस समय राजा को रमण करते हुए देखकर उन दोनों मेष के बच्चों को चुरा लिये ॥१७-१८॥ बालक की तरह बोलने वाले मेमनों की आवाज सुनकर कुद्ध होकर उर्वशी ने कहा कि मैंने जो पहली शर्त रखी थी वह भंग हो गयी ॥१९॥ मैं आपके विश्वास में नष्ट हो गयी, मेरे दोनों मेंमने चुरा लिए गये । हे राजन् ! ये दोनों मेरे पुत्र के समान हैं, आप स्त्री के समान क्यों सो रहे हैं ?॥२०॥ अपने को वीर मानने वाले इस कुत्सित स्वामी ने मुझे मार दिया । मेरे प्राण के समान प्रिय ये दोनों मेमने चले गये ॥२१॥ इस तरह विलाप करने वाली उर्वशी की बातों से मोहित राजा नंगे ही उन गन्धर्वों के पीछे दौड़े ॥२२॥ उसीसमय गन्धर्वों ने राजा के भवन में विद्युत् का प्रकाश कर दिया। और जाने की इच्छा वाली उर्वशी ने राजा को नग्न देख लिया ॥२३॥ सभी गन्धर्व उन दोनों मेंमनों को रास्ते में छोड़कर भाग गये । थके हुए राजा उन दोनों मेंमनों को लेकर अपने घर आये ॥२४॥ उस समय गयी हुई उर्वशी को जानकर राजा ने बहुत विलाप किया । वह सुन्दरी अपने पति को नग्न देखकर चली गयी॥२५॥ अब काममोहित, विह्वल, विवश राजा तो उर्वशी के ही विषय में सोचते हुए स्वयं विभिन्न स्थानों में घूमते रहे ॥२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमते हुए राजा ने एकबार उर्वशी को कुरुक्षेत्र में देखा । उसको देखकर श्रेष्ठ राजा ने सूक्त कहा ॥२७॥ हे घोर पत्नी ठहरो-ठहरो मुझे त्यागो मत । मेरा मन तुम में ही लगा है ऐसे अपने वशवर्ती तथा निरपराध पति का तुम त्याग मत करो ॥२८॥ यदि तुम मेरा त्याग कर दोगी तो यहाँ तक खिंचकर लाया हुआ यह मेरा शरीर निष्प्राण होकर गिर जायेगा । हे वरोरु ! तुम्हारे द्वारा त्यक्त इस शरीर को भेड़िये तथा कौए खा लेंगे ॥२९॥ इसतरह विलाप करने वाले दुखी, कृपण, श्रान्त

प्राह चोर्वशी । दुःखितं कृपणं श्रांतं कामार्तं विवशं भृशम् ॥३०॥ उर्वश्युवाच– **मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव । क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां बृकाणामिव पार्थिव ॥३१॥ न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः । गृहं गच्छ सुखं भुंक्ष्व मा विषादे मनः कृथाः ॥३२॥ इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः । दुःखं च परमं प्राप्तः स्वैरिणीस्नेहयंत्रितः ॥३३॥** सूत उवाच– **इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितंमहत्। वेदे विस्तारितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया ॥३४॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच– **दृष्ट्वा तामसितापांगीं व्यासश्चिंतापरोऽभवत् । किं करोमि न मे योग्या देवकन्येयमप्सराः ॥१॥ एवं चिंतयमानं तु दृष्ट्वा व्यासं तदाऽप्सराः । भयभीता हि सञ्जाता शापं मा विसृजेदयम् ॥२॥ सा कृत्वाऽथ शुकीरूपं निर्गता भयविह्वला । कृष्णस्तु विस्मयं प्राप्तो**

तथा अत्यन्त कामार्त राजा से उर्वशी ने कहा ॥३०॥ **उर्वशी ने कहा**– हे राजवर्य ! आप अज्ञानी हो गये हैं । आपका ज्ञान कहाँ चला गया ? हे पार्थिव! वृकों के समान स्वभाव वाली स्त्रियों की कौन सी मित्रता ?॥३१॥ राजाओं को चोरों तथा स्त्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए । आप अपने घर जायँ और सुख भोगें विषाद करना छोड़ दें ॥३२॥ इसतरह से समझाए जाने पर भी अत्यन्त मोहित राजा को कुछ भी नहीं समझ में आया । स्वेच्छाचरिणी अप्सरा के स्नेह में जकड़े हुए राजा को अपार कष्ट हुआ ॥३३॥ **सूतजी ने कहा**– इसतरह मैंने आपलोगों को उर्वशी के सम्पूर्ण चरित्र को सुनाया । वेद में इसका विस्तार के साथ वर्णन है मैंने उसे सक्षेप में कहा है ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

शुकदेवजी के जन्म का वर्णन

सूतजी ने कहा– उस सुन्दरी घृताची को देखकर व्यासजी चिन्तित हुए और सोचने लगे मैं क्या करूँ यह देवकन्या मेरे योग्य नहीं है ॥१॥ इसतरह से चिन्ता करते हुए व्यासजी को देखकर वह अप्सरा इसलिए डर गयी कि ये महर्षि मुझे शाप दे देंगे ॥२॥ शुकी का रूप बनाकर वह वहाँ से भाग गयी।

विहंगीं तां विलोकयन् ॥३॥ कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव संगतः । मनोऽतिविस्मितं जातं सर्वगात्रेषु विस्मितः ॥४॥ स तु धैर्येण महता निगृहणन्मानसं मुनिः । न शशाक नियंतुं च स व्यासः प्रसृतं मनः ॥५॥ बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितं मनः । भावित्वान्नैव विधृतं व्यासस्यामिततेजसः ॥६॥ मंथनं कुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया । अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत् ॥७॥ सोऽविचिंत्य तथा पातं ममंथारणिमेव च । तस्माच्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः ॥८॥ विस्मयं जनयन्बालः सञ्जातस्तदरण्यजः । यथाऽध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्येन दीप्तिमान् ॥९॥ व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमं गतः । किमेतदिति संचिंत्य वरदानाच्छिवस्य वै ॥१०॥ तेजोरूपी शुको जातोऽप्यरणीगर्भसंभवः। द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानः स्वतेजसा ॥११॥ विलोकयामास तदा व्यासस्तु मुदितं सुतम् । दिव्येन तेजसा युक्तं गार्हपत्यमिवापरम् ॥१२॥ गङ्गांतः स्नापयामास समागत्य गिरेस्तदा । पुष्पवृष्टिस्तु खाज्जाता शिशोरुपरि तापसाः, ॥१३॥ जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः । देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१४॥ जगुर्गंधर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः । विश्वावसुर्नारदश्च तुंबुरुः शुकसंभवे ॥१५॥ तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा । दृष्ट्वा व्याससुतं दिव्यमरणीगर्भसंभवम् ॥१६॥ अंतरिक्षात्पपातोर्व्यां दंडः कृष्णाजिनं शुभम् । कमण्डलुस्तथा दिव्यः

उस शुकी को देखकर व्यासजी आश्चर्यित हो गये ॥३॥ उस शुकी को देखकर व्यास जी के शरीर में काम का संचार हो गया और उनका मन अत्यन्त आश्चर्यित हुआ ॥४॥ उन्होंने बड़े धैर्य के साथ मन को रोकना चाहा; किन्तु वे अपने विषयासक्त मन को नहीं रोक सके ॥५॥ अमित तेजस्वी व्यास जी का घृताची के द्वारा मोहित मन भावीवश सारे प्रयास के पश्चात् भी वश में नहीं हुआ ॥६॥ महर्षि अग्नि की स्थापना के लिए जब अरणि मन्थन कर रहे थे, उसी समय उनका वीर्य अरणि पर गिर पड़ा ॥७॥ वे वीर्यपात की चिन्ता किए बिना अरणिमंथन करते रहे । उससे एक व्यास के ही समान शुक उत्पन्न हो गया ॥८॥ जिस तरह यज्ञ में हविष्य से प्रदीप्त अग्नि होता है उसी तरह उस अरणि से उत्पन्न बालक तेजस्वी था ॥९॥ पुत्र को देखकर वे अत्यन्त आश्चर्यित हुए और सोचने लगे कि यह कैसे हुआ ? उन्होंने सोचा कि यह शिव जी के वरदान से हुआ है ॥१०॥ तेजस्वी तथा रूपवान शुक अरणि से उत्पन्न होने के कारण दूसरे अग्नि के समान अत्यन्त तेजस्वी थे ॥११॥ व्यासजी ने प्रसन्न होकर दिव्यतेज से युक्त दूसरे अग्नि के समान तेजस्वी अपने पुत्र को प्रसन्न होकर देखा ॥१२॥ वे पर्वत से उतरकर नीचे आए और उसे गंगा जी में स्नान कराये । हे तपस्वियों ! उसके बाद बालक के ऊपर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई ॥१३॥ व्यासजी ने उस बालक का जातकर्म आदि संस्कार किया देवताओं ने दुन्दुभि बजायी और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥१४॥ उस बालक को देखने के इच्छुक विश्वावसु, नारद तथा तुम्बुरु आदि गन्धर्वों ने शुकदेवजी की उत्पत्ति पर गीत गाया ॥१५॥ अरणि से उत्पन्न व्यासजी के दिव्यपुत्र को देखकर सभी

शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः ॥१७॥ सद्यः स ववृधे बालो जातमात्रोऽतिदीप्तिमान् । तस्योपनयनं चक्रे व्यासो विद्याविधानवित् ॥१८॥ उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः । उपतस्थुर्महात्मानं यथाऽस्य पितरं तथा ॥१९॥ यतो दृष्टं शुकी रूपं घृताच्याः संभवे तदा । शुकेति नाम पुत्रस्य चकार मुनिसत्तमः ॥२०॥ बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा । व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकार विधिपूर्वकम् ॥२१॥ सोऽधीत्य निखिलान्वेदान्सरहस्यान्ससंग्रहान् । धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कृत्वा गुरुकुले शुकः ॥२२॥ गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा । आजगाम पितुः पार्श्वं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥२३॥ दृष्ट्वा व्यासः शुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थाय ससंभ्रमः । आलिलिंग मुहुर्घ्राणं मूर्ध्नि तस्य चकार ह ॥२४॥ पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तथा चाध्ययनं शुचिः । आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राश्रमे शुभे ॥२५॥ दारकर्म ततो व्यासः शुकस्य पर्यचिंतयत् । कन्यां मुनिसुतां कांतामपृच्छदतिवेगवान् ॥२६॥ शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयाऽनघ । धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते ॥२७॥ गार्हस्थ्यं च समासाद्य यज देवान्पितॄनथ । ऋणान्मोचय मां पुत्र प्राप्य दारान्मनोरमान् ॥२८॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ।

देवताओं और विद्याधरों ने उनकी स्तुति की ॥१६॥ हे ब्राह्मणवर्यों ! शुकदेवजी के लिए आकाश से दिव्य दण्ड, मृगचर्म, तथा कमण्डलु गिरे ॥१७॥ उत्पन्न होते ही वह तेजः सम्पन्न बालक बड़ा हो गया । विद्याओं के विधान को जानने वाले व्यास जी ने उसका उपनयन संस्कार किया ॥१८॥ उस उत्पन्न मात्र बालक को रहस्यों तथा संग्रह ग्रन्थों के साथ वेद उसीतरह से कण्ठस्थ हो गये जिस तरह से व्यास जी को कण्ठस्थ थे ॥१९॥ चूकि उस बालक की उत्पत्ति के समय कामासक्त व्यासजी ने घृताची को शुकी के रूप में देखा था, इसलिए उन्होंने उस पुत्र का नाम शुक रखा ॥२०॥ उसके बाद शुकदेवजी ने बृहस्पति को अपना उपाध्याय बनाकर ब्रह्मचर्य के व्रतों का विधिपूर्वक पालन किया ॥२१॥ शुकदेवजी ने गुरुकुल में रहस्यग्रन्थों तथा संग्रहग्रन्थों के साथ वेदों का अध्ययन करके सभी धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया ॥२२॥ अपने आचार्य को दक्षिणा देकर उन्होंने अपना समावर्तन कराया और उसके बाद वे अपने पिता कृष्णद्वैयायन के पास आये ॥२३॥ आये हुए शुकदवे जी को देखकर व्यास जी शीघ्र उठकर उनका आलिङ्गन किये और उनके शिर को सूंघे॥२४॥ उन्होंने शुकदेव जी का कुशल पूछा, उनके अध्ययन को जानकर उन्हें अपने आश्रम में ले जाकर रखे ॥२५॥ इसके बाद व्यासजी, शुकदेवजी के विवाह के विषय में विचार करने लगे और उन्होंने शुकदेव जी से भी उनके मनोऽनुकूल किसी मुनि की पुत्री के विषय में पूछा ॥२६॥ उन्होंने **शुकदेवजी से कहा**– हे अनघ! तुमने वेदों का अध्ययन कर लिया है तथा धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन कर लिया है । अब तुम विवाह कर लो ॥२७॥ तुम मनोहर पत्नी को प्राप्त करके गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए देवताओं तथा पितरों का यजन करो और मुझे पितृऋण से मुक्त कर दो ॥२८॥ पुत्रहीन की न तो सद्गति होती है और

तस्मात्पुत्र महाभाग कुरुष्वाद्य गृहाश्रमम् ॥२९॥ कृत्वा गृहाश्रमं पुत्र सुखिनं कुरु मां शुक । आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते ॥३०॥ तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि त्वमयोनिजः । देवरूपी महाप्राज्ञ पाहि मां पितरं शुक ॥३१॥ सूत उवाच– इति वादिनमभ्याशे प्राप्तः प्राह शुकस्तदा । विरक्तः सोऽतिरक्तं तं साक्षात्पितरमात्मनः ॥३२॥ शुक उवाच– किं त्वं वदसि धर्मज्ञ वेदव्यास महामते । तत्त्वेन शाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञां करवाण्यलम् ॥३३॥ व्यास उवाच– त्वदर्थे यत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः । प्राप्तस्त्वं चातिदुःखेन शिवस्याराधनेन च ॥३४॥ ददामि तव वित्तं तु प्रार्थयित्वाथ भूपतिम् । सुखं भुंक्ष्व महाप्राज्ञ प्राप्य यौवनमुत्तमम् ॥३५॥ शुक उवाच– किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम् । दुःखविद्धं सुखं प्राज्ञा न वदंति सुखं किल ॥३६॥ स्त्रियं कृत्वा महाभाग भवामि तद्वशानुगः । सुखं कि परतंत्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥३७॥ कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियंत्रितः । पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ॥३८॥ विण्मूत्रसंभवो देहो नारीणां तन्मयस्तथा । कः प्रीतिं तत्र विप्रेन्द विबुधः कर्तुमिच्छति ॥३९॥ अयोनिजोऽहं विप्रर्षे योनौ मे कीदृशी मतिः । न वांछाम्यहमग्रेऽपि योनावेव समुद्भवम् ॥४०॥ विट्सुखं किमु वांछामि त्यक्त्वाऽऽत्मसुखमद्भुतम् । आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः ॥४१॥ प्रथमं पठिता वेदा मया

न तो उसे स्वर्ग प्राप्त होता है । अतएव हे महाभाग ! अब तुम गार्हस्थ्य स्वीकार कर लो ॥२९॥ हे पुत्र शुक गृहाश्रम स्वीकार करके मुझे सुखी बना दो। हे पुत्र ! इस तरह मेरी बहुत बड़ी आशा को पूरा करो ॥३०॥ घोर तपस्या करके मैंने तुम आयोनिज पुत्र को प्राप्त किया है । तुम स्वयं देवस्वरूप हो। हे महाप्राज्ञ ! तुम अपने पिता की रक्षा करो ॥३१॥ **सूतजी ने कहा–** अपने सन्निकट में इसतरह से कहने वाले रागी पिता व्यासजी से अत्यन्त विरक्त शुकदेवजी ने कहा ॥३२॥ **शुकदेवजी ने कहा–** हे धर्मज्ञ, हे वेदव्यास ! हे महामते ! यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं आपका शिष्य हूँ । आप मुझे तत्त्व का उपदेश दें । मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ॥३३॥ **व्यासजी ने कहा–** हे पुत्र ! तुम्हे प्राप्त करने के लिए सौ वर्षों तक मैंने तपस्या की और शिव जी की आराधना करके अत्यन्त कष्ट से तुम्हें मैंने प्राप्त किया है ॥३४॥ राजा से प्रार्थना करके मैं तुम्हें सम्पत्ति प्रदान करूँगा, तुम उत्तम युवावस्था प्राप्त करके सुखोपभोग करो ॥३५॥ **शुकदेवजी ने कहा–** पिता जी ! आप मुझे यह बतलाइये कि क्या इस संसार में कोई ऐसा भी सुख है, जो विपत्ति से रहित हो ? प्राज्ञपुरुष बतलाते हैं कि संसार के सभी सुख दुःखमिश्र हैं अतएव कोई भी सुख नहीं हैं ॥३६॥ हे महाभाग ! विवाह करके मैं स्त्री के वशवर्ती हो जाऊँगा । किसी भी परतंत्र तथा विशेष रूप स्त्री में आसक्त कोई सुख मिलता है क्या ?॥३७॥ लोहे तथा काष्ठ में बँधा हुआ जीव तो कभी छूट भी सकता है, किन्तु पुत्र तथा पत्नी की ममता में फँसा हुआ जीव तो कभी भी नहीं छूट सकता है ॥३८॥ स्त्रियों का शरीर विष्ठा तथा मूत्र से बना होता है, हे विप्रेन्द कौन विद्वान ऐसा होगा जो उससे प्रेम करना चाहेगा ॥३९॥ हे विप्रर्षे ! मैं अयोनिज हूँ, अतएव मेरी बुद्धि योनि को प्राप्त करने वाली कैसे होगी ? मैं चाहता

विस्तारिताश्च ते । हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥४२॥ बृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे । अविद्याग्रस्तहृदयः कथं तारयितुं क्षमः ॥४३॥ रोगग्रस्तो यथा वैद्यः पररोगचिकित्सकः । तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयं विडम्बना ॥४४॥ कृत्वा प्रणामं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः। त्राहि मां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः ॥४५॥ संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत् । न च विश्रमणं क्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि ॥४६॥ किं सुखं तात संसारे निधनत्वविचारणात् । मूढानां सुखबुद्धिस्तु विट्सु कटिसुखं यथा ॥४७॥ अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये । तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः ॥४८॥ मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च । बद्ध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः ॥४९॥ नातःपरतरं लोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम् । पुत्रदारगृहासक्तः पंडितः परिगीयते ॥५०॥ न बाध्यते यः संसारे नरो मायागुणैस्त्रिभिः । स विद्वान्स च मेधावी शास्त्रपारं गतो हि सः ॥५१॥ किं वृथाऽध्ययनेनाऽत्र दृढबंधकरेण च । पठितव्यं तदेवाशु मोचयेद्भवबंधनात् ॥५२॥ गृहणाति पुरुषं यस्माद्गृहं तेन प्रकीर्तितम् । क्व सुखं बन्धनागारे तेन भीतोस्म्यहं पितः ॥५३॥ येऽबुधा मंदमतयो विधिना मुषिताश्च ये । ते प्राप्य मानुषं जन्म

हूँ कि आगे भी मेरा जन्म योनि से न हो ॥४०॥ क्या मैं आत्म सुख का परित्याग करके विष्ठा का सुख प्राप्त करना चाहूँगा ? अपनी आत्मा में सुखानुभव करने वाला व्यक्ति अत्यन्त लोलुप नहीं होता है ॥४१॥ सबसे पहले मैंने आपके द्वारा विस्तारित वेदों का अध्ययन किया । वे सबके सब हिंसामय तथा कर्ममार्ग में प्रवृत्त करने वाले हैं ॥४२॥ मैंने बृहस्पति को गुरु बनाया वे भी गृहरूपी सागर में डूबे हुए हैं । उनका हृदय अविद्या से ग्रस्त है, वे मुझे कैसे तार सकते हैं ?॥४३॥ जैसे कोई स्वयं रोगी वैद्य दूसरे रोगी की चिकित्सा करे, उसी तरह मुझ मुमुक्ष के गुरु गृहस्थ हो यह विडम्बना ही है ॥४४॥ मैं अपने गुरु को प्रणाम करके आपके समीप आया हूँ । मैं संसाररूपी सर्प से भयभीत हूँ । आप मुझे तत्त्व का उपदेश कर मेरी रक्षा करें ॥४५॥ इस अत्यन्त भयंकर संसार में नक्षत्रों के समान प्राणी को हमेशा भ्रमण करते रहना पड़ता है, उन्हें रात-दिन सूर्य के समान कभी भी विश्राम नहीं मिलता है. । हे तात! तत्त्वविचार से बढ़कर इस संसार में कौन सा सुख है ? मूर्खों को इस संसार में होने वाली सुख की प्रतीति कीड़े की विष्ठा में होने वाली सुख की प्रतीति के समान है ॥४७॥ वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन करके भी जिसका संसार में राग बना हुआ है, उससे बड़ा मूर्ख दूसरा कोई नहीं है वह उसी तरह से हैं जिस तरह से अश्व, घोड़े तथा सूकर हैं ॥४८॥ दुर्लभ मनुष्यत्व प्राप्त करके तथा वेदशास्त्रों का अध्ययन करके भी संसार में कोई बँध जाता है तो फिर वह मुक्त कैसे हो सकता है ?॥४९॥ इससे बढ़कर कोई दूसरा आश्चर्य नहीं हो सकता है कि पुत्र, पत्नी और गृह में भी आसक्त रहने वाला व्यक्ति पंडित कहलाता है ॥५०॥ जो व्यक्ति माया के तीन गुणों (रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण) में नहीं बँधता है वही विद्वान्, मेधावी तथा शास्त्रों में पारंगत है ॥५१॥ उस अध्ययन से कौन सा लाभ है ? जिससे संसार का बन्धन सुदृढ होता है । जिससे संसार का बन्धन शीघ्र छूट जाय उसे पढ़ना चाहिए ॥५२॥ गृह को गृह

पुनर्बंधं विशंत्युत ॥५४॥ व्यास उवाच– न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम् । मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥५५॥
न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात् । गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सयत्यवाक्शुंचिः ॥५६॥ ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः ।
गृहस्थं समुपासंते मध्याह्नातिक्रमे सदा ॥५७॥ श्रद्धया चान्नदानेन वाचा सूनृतया तथा । उपकुर्वन्ति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः ॥५८॥
गृहाश्रमात्परो धर्मो न दृष्टो न च वै श्रुतः । वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः ॥५९॥ किमसाध्यं महाभाग वेदोक्तानि च कुर्वतः । स्वर्गं
मोक्षं च सज्जन्म यद्यद्वांछति तद्भवेत् ॥६०॥ आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदो विदुः । तस्मादग्निं समाधाय कुरु कर्माण्यतन्द्रितः ॥६१॥
देवान्पितृन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्य विधिवत्सुत । पुत्रमुत्पाद्य धर्मज्ञ संयोज्य च गृहाश्रमे ॥६२॥ त्यक्त्वा गृहं वनं गत्वा कर्ताऽसि व्रतमुत्तमम् ।
वानप्रस्थाश्रमं कृत्वा संन्यासं च ततः परम् ॥६३॥ इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम् । अदारस्य दुरंतानि पंचैव मनसा सह ॥६४॥
तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते । वार्द्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः ॥६५॥ विश्वामित्रो महाभाग तपः कृत्वाऽतिदुश्चरम् । त्रीणि

इसलिए कहा जाता है कि वह पकड़ लेने का काम करता है । कारागार में किसी को भी कहाँ सुख मिलता है, इसीलिए मैं इससे भयभीत हूँ ॥५३॥ वे
लोग अज्ञानी, मन्दमति वाले तथा अभागे हैं, जो लोग मनुष्य शरीर प्राप्त करके पुनः बन्धन में पड़ जाते हैं ॥५४॥ **व्यासजी ने कहा**– गृह कारागार नहीं
है, और न तो वह बन्धन का कारण ही है; जो व्यक्ति मन से गृहस्थी में आसक्त नहीं है, वह गृहस्थ होकर भी मुक्त हो जाता है ॥५५॥ वेदोपदिष्ट विधि
से जो व्यक्ति न्याय से प्राप्त धन का उपभोग करता है, वह श्राद्ध करने वाला, सत्य बोलने वाला तथा पवित्र गृहस्थ भी मुक्त होता है ॥५६॥ सभी ब्रह्मचारी,
संन्यासी, वानप्रस्थी तथा व्रती मध्याह्न के पश्चात् गृहस्थ के ही पास जाते हैं ॥५७॥ धार्मिक गृहस्थ श्रद्धापूर्वक अन्नदान करके तथा मधुरवाणी के द्वारा सबों
का उपकार करते हैं ॥५८॥ गृहस्थाश्रम से बड़ा न तो कोई धर्म देखा गया है, और न तो सुना गया है । वसिष्ठ आदि ज्ञानी आचार्यों ने गृहस्थाश्रम का
ही पालन किया है ॥५९॥ वेदोक्त धर्म का पालन करने वाले के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा सद्वंश में जन्म जो कुछ भी
चाहता है उसे वही मिलता है ॥६०॥ धर्म के जानकारों का कहना है कि एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रम में प्रवेश करना चाहिए; अतएव तुम अग्न्याधान
करके सावधानी पूर्वक आश्रम धर्मों का पालन करो ॥६१॥ हे पुत्र ! विधिपूर्वक, देवों, पितरों तथा मनुष्यों को सन्तुष्ट करके गृहस्थाश्रम का पालन करते
हुए पुत्र को पैदा करके अन्त में गृह को त्याग करके वन में जाकर उत्तमव्रत करना । वानप्रस्थ के कर्तव्यों का अनुष्ठान करने के बाद संन्यास में प्रवेश
करना ॥६२-६३॥ हे महाभाग ! यह शास्त्रसम्मत है कि इन्द्रियाँ मनुष्य को उन्मत्त बना देती है । स्त्रीहीन व्यक्ति को उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन

वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः ॥६६॥ मोहितश्च महातेजा वने मेनकया स्थितः । शकुन्तला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा ॥६७॥ दृष्ट्वा दाशसुतां कालीं पिता मम पराशरः । कामबाणार्दितः कन्यां तां जग्राहोडुपे स्थितः ॥६८॥ ब्रह्माऽपि स्वसुतां दृष्ट्वा पञ्चबाणप्रपीडितः । धावमानश्च रुद्रेण मूर्छितश्च निवारितः ॥६९॥ तस्मात्त्वमपि कल्याण कुरु मे वचनं हितम् । कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गं समाश्रय ॥७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच– **नाहं गृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः । वागुरासदृशं नित्यं बन्धनं सर्वदेहिनाम् ॥१॥ धनचिंतातुराणां हि क्व सुखं तात दृश्यते । स्वजनैः खलु पीड्यंते निर्धना लोलुपा जनाः ॥२॥ इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः । कोऽन्यः स्यादिह संसारे**

व्याकुल कर देते हैं । हे महामते ! उन सबों पर विजय प्राप्त करने के लिए दारग्रहण करना चाहिए और बुढ़ापे में तपस्या करनी चाहिए ॥६४-६५॥ हे महाभाग ! महर्षि विश्वामित्र निराहार तथा जितेन्द्रिय रहकर तीन हजार वर्ष तक घोर तपस्या किए फिर भी वे महातेजस्वी मेनका को देखकर मोहित हो गये और उनकी शकुन्तला नाम की पुत्री मेनका में उत्पन्न हुई ॥६६-६७॥ मेरे पिता महर्षि पराशर धीवर की काली नामक पुत्री को देखकर कामार्त हो गये और नाव पर ही उसके साथ भोग किए ॥६८॥ हे पुत्र ! स्वयं ब्रह्माजी भी अपनी पुत्री सरस्वती को देखकर काम से पीड़ित हो गये और उसके पीछे दौड़ पड़े तो उन्हें शंकरजी ने रोका ॥६९॥ अतएव हे कल्याण स्वरूप शुकदेव ! मेरी कल्याणकारी बातों को सुनो और किसी कुलीन कन्या को ग्रहण करके वैदिक मार्ग का अनुसरण करो ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

शुकदेवजी कृत वैराग्य वार्ता भगवती का भगवान् विष्णु को उपदेश देना

शुकदेवजी ने कहा– हे पितः ! मैं सदा दुःख देते रहने वाले गृहस्थाश्रम को नहीं अपना सकता हूँ । वह सदा सभी प्राणियों को दुःख देने वाले जाल के समान है ॥१॥ जो धन की चिन्ता से व्याकुल हैं उनको सुख कहाँ मिल सकता है और जो लोग निर्धन हैं उनको लोभी जन दुःख देते हैं ॥२॥ जितना

त्रिलोकीविभवे सति ॥३॥ तपन्तं तापसं दृष्ट्वा मघवा दुःखितोऽभवत् । विघ्ननान्बहुविधानस्य करोति च दिवस्पतिः ॥४॥ ब्रह्माऽपि न सुखी विष्णुर्लक्ष्मीं प्राप्य मनोरमाम् । खेदं प्राप्नोति सततं संग्रामैरसुरैः सह ॥५॥ करोति विपुलान्यत्नांस्तपश्चरति दुश्चरान् । रमापतिरपि श्रीमान्कस्यास्ति विपलुं सुखम् ॥६॥ शङ्करोऽपि सदा दुःखी भवत्येव च वेद्म्यहम । तपश्चर्या प्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा ॥७॥ कदाचिन्न सुखी शेते धनवानपि लोलुपः । निर्धनस्तु कथं तात सुखं प्राप्नोति मानवः ॥८॥ जानन्नपि महाभाग पुत्रं वा वीर्यसंभवम् । नियोक्ष्यसि महाघोरे संसारे दुःखदे सदा॥९॥ जन्मदुःखं जरादुःखं दुःखं च मरणे तथा । गर्भवासे पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः ॥१०॥ तस्मादतिशयं दुःखं तृष्णालोभसमुद्भवम्। याच्ञायां परमं दुःखं मरणादपि मानद ॥११॥ प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः । पराशा परमं दुःखं मरणं च दिने दिने ॥१२॥ पठित्वा सकलान्वेदाञ्छास्त्राणि च समन्ततः । गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिः सर्वात्मना बुधैः ॥१३॥ एकोदरस्य का चिन्ता पत्रमूलफलादिभिः । येन केनाप्युपायेन सन्तुष्ट्या च प्रपूर्यते ।।१४।। भार्या पुत्रास्तथा पौत्राः कुटुम्बे विपुले सति । पूरणार्थं महद्दुःखं क्व सुखं पितरद्भुतम् ॥१५॥ योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रं सुखाकरम् । कर्मकांडेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन ॥१६॥ वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं संचितं तथा । वर्तमानं यथा

सुखी निस्पृह योगी होता है उतना सुखी इन्द्र भी नहीं हैं । अतएव इस त्रैलोक्य में दूसरा कौन है जो धन प्राप्त करके सुखी हुआ हो ।।३।। तपस्या करते हुए तपस्वी को देखकर इन्द्र दुःखी हो जाते हैं और उसकी तपस्या में अनेक प्रकार का विघ्न डालते हैं ।।४।। न तो ब्रह्मा सुखी हैं और न तो विष्णु ही लक्ष्मी को प्राप्त करके भी सुखी हैं । वे सदा असुरों के साथ युद्ध करते हुए दुःखी होते रहते हैं ।।५।। वे अनेक प्रकार के प्रयत्नों को सुख प्राप्त करने के लिए करते हैं और कठोर तपस्या करते हैं । जब लक्ष्मीपति की यह हालत है तो फिर किसको पर्याप्त सुख मिलता है ?।।६।। मैं यह जानता हूँ कि शंकरजी भी हमेशा दुःखी होते रहते हैं । वे तपस्या करते है तथा उन्हें भी दैत्यों से युद्ध करना पड़ता है ।।७।। लोभी धनवान् व्यक्ति कभी भी सुखपूर्वक नहीं सोता है तो हे तात ! निर्धन मनुष्य कैसे सुख प्राप्त कर सकता है ।।८।। हे महाभाग आप अपने वीर्य जनित पुत्र को जानकर भी सर्वदा दुःखद तथा भयंकर संसार में कैसे लगा सकते हैं ?।।९।। हे पितः ! जन्म लेने में दुःख होता है, बूढा होने पर दुःख मिलता है, मृत्यु के समय भी दुःख मिलता है तथा विष्ठा एवं मूत्र मय गर्भ में वास के समय भी दुःख मिलता है ।।१०।। उससे भी अधिक दुख तृष्णा एवं लोभ के कारण होता है । हे मानद ! माँगने में तो मृत्यु से भी अधिक दुख होता है ।।११।। उसमें भी ब्राह्मण तो परिग्रह के ही बल पर निर्भर रहते हैं । वे जीविकोपार्जन के लिए बुद्धि तथा बल का उपयोग नहीं करते हैं । दूसरे की आशा पर रहना बड़ा दुःखद होता है, ऐसे लोगों का प्रतिदिन मरण होता है ।।१२।। सभी वेदों तथा शास्त्रों को पढ़कर भी विद्वानों को भी धनिकों की हर प्रकार से प्रशंसा करनी पड़ती है ।।१३।। अकेले पेट के लिए कौन सी चिन्ता है, उसे तो सागपात नहीं मिलने पर सन्तोष से भी भरा जा सकता है ।।१४।। पिताजी, पत्नी, पुत्र, पौत्र आदि का विशाल परिवार हो तो उसका पालन-पोषण करने के लिए बहुत अधिक कष्ट उठाना पड़ता

नश्येत्रिविधं कर्ममूलजम् ॥१७॥ जलौकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै । मूर्खस्तु न विजानाति मोहितो भावचेष्टितैः ॥१८॥ भौगैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिलभाषणैः । कांता हरति सर्वस्वं कः स्तेनस्तादृशोऽपरः ॥१९॥ निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम् । करोति वंचितो धात्रा दुःखाय न सुखाय च ॥२०॥ सूत उवाच– एवं विधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च । संप्राप महतीं चितां किं करोमीत्यसंशयम् ॥२१॥ तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च । वेपथुश्च शरीरेऽभूद्ग्लानिं प्राप मनस्तथा ॥२२॥ शोचंतं पितरं दृष्ट्वा दीनं शोकपरिप्लुतम् । उवाच पितरं व्यासं विस्मयोत्फुल्लोचनः ॥२३॥ अहो मायाबलं चोग्रं यन्मोहयति पंडितम् । वेदांतस्य च कर्तारं सर्वज्ञं वेदसंमितम् ॥२४॥ न जाने का च सा माया किंस्वित्साऽतीव दुष्करा । या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥२५॥ पुराणानां च वक्ता च निर्माता भारतस्य च । विभागकर्ता वेदानां सोऽपि मोहमुपागतः ॥२६॥ तां यामि शरणं देवीं या मोहयति वै जगत् । ब्रह्मविष्णुहरादींश्च कथाऽन्येषां च कीदृशी ॥२७॥ कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो न मुह्यति मायया । यन्मोहं गमितः पूर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥२८॥ अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम् ।

है ॥१५॥ हे पिताजी ! आप मुझे योगशास्त्र तथा ज्ञानशास्त्र का उपदेश दें । मेरा मन कर्मकाण्ड में बिल्कुल नहीं लगता है ॥१६॥ आप मुझे ऐसे उपाय का उपदेश दें जिससे कि मेरे प्रारब्ध, संचित और वर्तमान तीनों प्रकार के कर्मों का नाश हो जाय ॥१७॥ नारी तो जोंक के समान सदा खून पीती रहती है; किन्तु उसके भाव तथा चेष्टाओं से मोहित होकर मूर्ख मनुष्य उसे नहीं जान पाता है ॥१८॥ नारी भोग के द्वारा मनुष्य के वीर्य तथा धन को तथा मीठी-मीठी बातों से मन को हरने का काम करती है । अतः उसके समान दूसरा चोर कौन हो सकता है ?॥१९॥ भाग्यहीन मनुष्य निद्राजन्य सुख का विनाश करने के लिए विवाह करता है, सुख प्राप्त करने के लिए नहीं ॥२०॥ **सूतजी ने कहा–** शुकदेवजी की इस तरह की बातों को सुनकर व्यासजी चिन्तित हो गये और सोचने लगे कि मैं अब क्या करूँ ॥२१॥ उनकी आँखों से दुःख के कारण आँसू बहने लगा, उनका शरीर काँपने लगा और मन मलीन हो गया ॥२२॥ शोक करने वाले दुखी तथा असहाय अपने पिता को देखकर शुकदेवजी की आँखे आश्चर्यचकित हो गयीं और वे मन-ही-मन कहने लगे॥२३॥ अरे माया का बल अत्यन्त उग्र होता है जिसके कारण वेद के ही समान वेदान्तशास्त्र के प्रणेता मेरे पिताजी का मन मोहित हो रहा है ॥२४॥ मैं यह नही जानता हूँ कि वह कौन सी माया है और वह कितना प्रबल है कि सत्यवती के पुत्र विद्वान् व्यासजी को भी मोहित कर रही है ॥२५॥ जो व्यासजी पुराणों के वक्ता तथा महाभारत के प्रणेता हैं, जो वेदों का विभाग करने वाले हैं, वे भी मोहित हो गये हैं ॥२६॥ मैं उस देवी की शरणागति करता हूँ जो सम्पूर्ण जगत् को मोहित करती है । वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर आदि को भी मोहित करती है तो दूसरों के विषय में क्या कहना है ॥२७॥ तीनों लोकों में कोई ऐसा है क्या जो माया के जाल में न फँसे ? माया ने तो ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजी को भी अपने जाल में फँसा रखा है ॥२८॥ देवी के द्वारा

माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः ॥२९॥ विष्ण्वंशसंभवो व्यास इति पौराणिका जगुः । सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा॥३०॥ अश्रुपातं करोत्यद्य विवशः प्राकृतो यथा । अहो मायाबलं चैतद्दुस्त्यजं पंडितैरपि ॥३१॥ कोऽयं कोऽयं कथं चेह कीदृशोऽयं भ्रमः किल । पंचभूतात्मके देहे पिता पुत्रेति वासना ॥३२॥ बलिष्ठा खलु मायेयं मायिनामपि मोहिनी । ययाऽभिभूतः कृष्णोऽपि करोति रोदनं द्विजः ॥३३॥ सूत उवाच– **तां नत्वा मनसा देवीं सर्वकारणकारणाम् । जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम् ॥३४॥ पितरं प्राह दीनं तं शोकार्णवपरिप्लुतम्। अरणीसंभवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम् ॥३५॥ पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदः स्वयम् । किं शोकं कुरुषे स्वामिन्यथाऽज्ञः प्राकृतो नरः ॥३६॥ अद्याहं तव पुत्रोऽस्मि न जाने पूर्वजन्मनि । कोऽहं कस्त्वं महाभाग विभ्रमोऽयं महात्मनि ॥३७॥ कुरु धैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः । मोहजालमिमं मत्वा मुंच शोकं महामते ॥३८॥ क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनिन च । पिपासा जलपानेन याति नैवात्मजेक्षणात् ॥३९॥ घ्राणं सुखं सुगंधेन कर्णजं श्रवणेन च । स्त्रीसुखं तु स्त्रिया नूनं पुत्रोऽहं किं करोमि ते ॥४०॥ अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चंद्राय भूभुजे । पशुकामाय यज्ञार्थं**

निर्मित माया का बल तथा वीर्य अद्भुत है जिसने सर्वज्ञ ईश्वर तथा सबों के स्वामी को भी अपने वश में कर रखा है ॥२९॥ पौराणिकों का कहना है कि व्यासजी भगवान् विष्णु के अंश से अवतीर्ण हैं, वे व्यासजी भी जिसकी नाव बीच में ही टूट गयी हो उस वणिक् के समान मोह के सागर में मग्न हो गये हैं ॥३०॥ वे आज माया के वश में पड़कर एक प्राकृत मनुष्य के समान आँसू बहा रहे हैं । धन्य है यह माया का बल जिससे पण्डित भी नहीं बच पाते हैं ॥३१॥ ये कौन हैं ? मैं कौन हूँ ? यह जगत् कौन सी वस्तु हैं ? यह कैसा भ्रम है ? इस पंचभूतात्मक देह में पिता पुत्र की भावना कैसे आयी ?॥३२॥ यह माया अत्यन्त बलवान् है, मायावियों को भी मोहित करती है । उसी के कारण व्यासजी भी मोहित होकर रो रहे हैं ॥३३॥ **सूतजी ने कहा–** शुकदेवजी ने उस देवी को मन से नमस्कार किया, वे सोच रहे थे वे ही सभी कारणों का भी कारण हैं । वे सभी देवताओं की माता हैं और ब्रह्मा आदि की भी स्वामिनी हैं ॥३४॥ अरणि के गर्भ से उत्पन्न शुकदेवजी ने शोकसागर में डूबने वाले अपने दीन पिता से युक्तियुक्त बातें कहने लगे ॥३५॥ हे पाराशर्य (व्यासजी) महाभाग! आप तो सबों को ज्ञान देने वाले हैं, आप अज्ञ प्राकृत मनुष्य के समान क्या शोक कर रहे हैं ?॥३६॥ आज तो मैं आपका पुत्र हूँ किन्तु पूर्वजन्म में तो मैं आपका पुत्र नहीं था । पूर्वजन्म में कौन था ? और आप कौन थे ? आपको इस प्रकार का भ्रम नहीं करना चाहिए ॥३७॥ आप धैर्य धारण कीजिए होश में आइये, विषाद नहीं कीजिये । हे महामते ! इसे मोह का जाल मानकर शोक का परित्याग कीजिए ॥३८॥ भूख भोजन से मिटती है पुत्र को देखने से नहीं । प्यास भी जल पीने से मिटती है पुत्र को देखने से नहीं ॥३९॥ सुगन्ध से घ्राण को सुख मिलता है और अच्छी बातो को सुनने से कानों को सुख मिलता है । स्त्रीजन्य सुख स्त्री से मिलता है, उसमें आपका पुत्र मैं क्या कर सकता हूँ ?॥४०॥ अजीगर्त ने मूल्य लेकर अपने पुत्र शुनःशेप को यज्ञपशु चाहने वाले राजा हरिश्चन्द्र

दत्तो मौल्येन सर्वथा ॥४१॥ सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखसमुच्चय: । धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहं किं करोम्यहम् ॥४२॥ मां प्रबोधय बुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते । यथा मुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने ॥४३॥ दुर्लभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहानघ । तत्रापि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमे कुले॥४४॥ बद्धोऽहमिति मे बुद्धिर्नापसर्पति चित्तत: । संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धिगामिनी ॥४५॥ सूत उवाच– **इत्युक्तस्तु तदा व्यास: पुत्रेणामितबुद्धिना । प्रत्युवाच शुकं शांतं चतुर्थाश्रममानसम् ॥४६॥** व्यास उवाच– **पठ पुत्र महाभाग मया भागवतं कृतम् । शुभं न चाति विस्तीर्णं पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥४७॥ स्कन्धा द्वादश तत्रैव पञ्चलक्षणसंयुतम् । सर्वेषां च पुराणानां भूषणं मम सम्मतम् ॥४८॥ सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते । येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते ॥४९॥ वटपत्रशयानाय विष्णवे बालरूपिणे । केनास्मि बालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना॥५०॥ किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाखिलम् । इत्येवं चिन्त्यमानाय मुकुन्दाय महात्मने ॥५१॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम् । सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम् ॥५२॥ तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि । केनोक्ता वागियं सत्या चिंतयामास चेतसा ॥५३॥ कथं वेद्मि प्रवक्तारं स्त्रीपुंसौ वा नपुंसकम् । इति चिंताप्रपन्नेन धृतं भागवतं हृदि ॥५४॥ पुन: पुन: कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा।**

को बेंच दिया था ॥४१॥ सांसारिक सुख का साधन धन है, धन से संसार के सभी सुख प्राप्य हैं । यदि आपको लोभ हो तो आप धन कमाइये मुझ पुत्र से आपको कौन सा सुख मिल सकता है ?॥४२॥ हे महामते ! आप दैवज्ञ हैं मुझे ज्ञान प्रदान कीजिये । हे महामुने ! जिससे कि मैं गर्भवास से मुक्ति प्राप्त कर सकूँ ऐसा ज्ञान दीजिये ॥४३॥ हे अनघ ! इस कर्मभूमि में मनुष्य का जन्म प्राप्त करना दुर्लभ है । उसमें भी उत्तम ब्राह्मण के कुल में जन्म लेना और दुर्लभ है ॥४४॥ मेरे अन्त:करण से यह बुद्धि निकलती नहीं है कि मैं बद्ध हूँ । यह भावना सांसारिक वासनाओं के जाल में फँसकर बढ़ती ही जाती है॥४५॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह कहने पर व्यासजी ने अपने निस्सीमबुद्धि वाले, शान्त तथा जिसका मन संन्यासाश्रम में लगा था ऐसे अपने पुत्र से कहा॥४६॥ **व्यासजी ने कहा–** हे महाभाग पुत्र ! मेरे द्वारा निर्मित, भागवत को पढ़ो । यह ग्रन्थ कल्याणकारक तथा वेद के समान है ॥४७॥ पाँच लक्षणों से सम्पन्न इस पुराण में बारह स्कन्ध हैं तथा यह सभी पुराणों का भूषण स्वरूप है ॥ ४८॥ इसके सुनने मात्र से सत् क्या है और असत् क्या है ? इस बात का ज्ञान हो जाता है। हे महामते आप उसे ही पढ़ें ॥४९॥ महाप्रलय काल में वटपत्रशायी भगवान् विष्णु वटपत्र पर सोये-सोये यह सोच रहे थे कि किस चिदात्मा के द्वारा मैं बालक रूप से निर्मित किया गया हूँ ॥५०॥ मैं किसलिए तथा किस साधन के द्वारा सबकुछ जानता हूँ । इस प्रकार से जब भगवान् मुकुन्द सोच रहे थे उसी समय भगवती ने उनकी सारी शंकाओं का समाधान आधे श्लोक में कर दिया । यह सब कुछ मैं ही हूँ मुझे से भिन्न कुछ भी सनातन नहीं है ॥५१-५२॥ यह वाक्य सर्वप्रथम भगवान् विष्णु के ही अन्त:करण में आविर्भूत हुआ था । अब वे यह सोच रहे थे कि इस वाणी का उच्चारण किसने किया है ?॥५३॥ इसको

वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चिन्तासमन्वितः ॥५५॥ तदा शांता भगवती प्रादुरास चतुर्भुजा । शङ्खचक्रगदापद्मवरायुधधरा शिवा ॥५६॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता । संयुता सदृशीभिश्च सखीभिः स्वविभूतिभिः ॥५७॥ प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः । मन्दहास्यं प्रयुंजाना महालक्ष्मीः शुभानना ॥५८॥ सूत उवाच– **तां तथा संस्थितां दृष्ट्वा हृदये कमलेक्षणः । विस्मितः सलिले तस्मिन्निराधारां मनोरमाम् ॥५९॥ रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः । श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः ॥६०॥ तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्द्रा च शक्तयः । संस्थिताः सर्वतः पार्श्वे महादेव्याः पृथक्पृथक् ॥६१॥ वरायुधधराः सर्वा नानाभूषणभूषिताः । मन्दारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः॥६२॥ तां दृष्ट्वा ताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले । विस्मयाविष्टहृदयः संबभूवजनार्दनः ॥६३॥ चिंतयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः । कुतो भूताः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः ॥६४॥ अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः । केनाहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिः॥६५॥**

कहने वाला कोई पुरुष है, या स्त्री है, या नपुंसक है ? इस तरह से चिन्ता होने पर वे उसी आधे श्लोक का मनन करने लगे ॥५४॥ वटपत्र पर सोये हुए भगवान् चिन्तित हो गये । उनका उसी श्लोक में मन लगा था और वे उसका बार-बार उच्चारण कर रहे थे ॥५५॥ उसी समय अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म इन आयुधों को धारण की हुई चार भुजाओं वाली शान्त स्वरूप वाली कल्याणकारिणी भगवती प्रकट हो गयीं ॥५६॥ वे दिव्य वस्त्र तथा दिव्य आभूषणों से समलंकृत थीं । वे अपने सदृश सखियों तथा विभूतियों के साथ थीं ॥५७॥ वे भगवान् विष्णु के समक्ष प्रकट हो गयीं, उस समय सुन्दर मुख वाली महालक्ष्मी मन्द-मन्द मुस्कुरा रही थीं ॥५८॥ **सूतजी ने कहा**– कमलनयन भगवान् उनको उस तरह से निराधार जल में स्थित देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥५९॥ उन महादेवी के बगल में चारो ओर रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, गति, तुष्टि, पुष्टि, लज्जा, जृम्भा तथा तन्द्रा नाम की शक्तियाँ पृथक्-पृथक् विद्यमान थीं ॥६०-६१॥ ये सभी शक्तियाँ श्रेष्ठ आयुध धारण किए हुए थीं, अनेक अलंकारों से अलंकृत थीं, पारिजात पुष्प की माला धारण किए थीं तथा मोती की माला से सुशोभित थीं ॥६२॥ उन भगवती देवी तथा उनकी शक्तियों को उस महासागर के जल में देखकर भगवान् विष्णु आश्चर्यित हो गये ॥६३॥ माया को देखकर अत्यन्त विस्मित सर्वात्मा भगवान् विष्णु सोचने लगे कि ये स्त्रियाँ कहाँ से उत्पन्न हो गयीं और वटपत्रशायी मैं कहाँ से हो गया ॥६४॥ इस भयंकर महासागर में वटवृक्ष कैसे उत्पन्न हो गया ? मुझको सुन्दर बालक बनाकर इसपर (वटपत्र पर) किसने स्थापित किया है ?॥६५॥ यह मेरी माता भी प्रतीत नहीं होती है हो सकता है यह कोई दुर्घट माया हो । अभी-अभी

मयेयं जननी नो वा माया वा काऽपि दुर्घटा । दर्शनं केनचित्वद्य दत्तं वा केन हेतुना ॥६६॥ किं मया चात्र वक्तव्यं गन्तव्यं वा न वा क्वचित्। मौनमास्थाय तिष्ठेयं बालभावादतंद्रितः ॥६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **दृष्ट्वा तं विस्मितं देवं शयानं वटपत्रके । उवाच सस्मितं वाक्यं विष्णो किं विस्मितो ह्यसि ॥१॥ महाशक्त्याः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा । प्रभवे प्रलये जाते भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः ॥२॥ निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाप्यहम् । सात्त्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम् ॥३॥ त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः । स कर्ता सर्वलोकस्य रजोगुणसमन्वितः ॥४॥ स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् । रजसा रक्तवर्णञ्च करिष्यति जगत्त्रयम् ॥५॥ सगुणान्पंचभूतांश्च समुत्पाद्य महामतिः । इन्द्रियाणीद्रियेशांश्च मनः पूर्वान्समंततः॥६॥**

इस शक्ति ने मुझे दर्शन किसलिए दिया हैं ?॥६६॥ मुझे क्या कहना चाहिए ? कहाँ मुझे जाना चाहिए ? अथवा नहीं ? अथवा इसी तरह बालकरूप में यहाँ मैं पड़ा रहूँ ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

शुकदेवजी द्वारा देवीभागवत का अध्ययन

व्यासजी ने कहा– वटपत्र पर सोए तथा विस्मित भगवान् विष्णु को देखकर देवी ने मुस्कुराते हुए कहा– हे विष्णु भगवन् ! क्यों आप विस्मित हैं?॥१॥ पूर्वकाल में आप महाशक्ति के प्रभाव से मुझे भूल गये । आप पहले भी प्रत्येक प्रलयकालों में बारम्बार जन्म ले चुके हैं ॥२॥ वह परा शक्ति निर्गुण है। मैं और आप दोनों सगुण हैं । मैं सात्त्विकी शक्ति हूँ ॥३॥ आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न होंगे । रजोगुण से युक्त होने के कारण वे सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले हैं ॥४॥ वे उस समय तपस्या करके सर्वोत्तम शक्ति प्राप्त करके अपने रजोगुण से त्रैलोक्य को रक्तवर्ण का कर देंगे ॥५॥ वे सगुण पञ्चभूतों

करिष्यति ततः सर्गं तेन कर्ता स उच्यते । विश्वस्यास्य महाभाग त्वं वै पालयिता तथा ॥७॥ तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद्रुद्रो भविष्यति । तपः कृत्वा महाघोरं प्राप्य शक्तिं तु तामसीम् ॥८॥ कल्पांते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते । तेनाहं त्वामुपायाता सात्त्विकीं त्वमवेहि माम् ॥९॥ स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाऽहं मधुसूदन । हृदये ते कृतावासा भवामि सततं किल ॥१०॥ विष्णुरुवाच– **श्लोकस्यार्द्धं मया पूर्वं श्रुतं देवि स्फुटाक्षरम्। तत्केनोक्तं वरारोहे रहस्यं परमं शिवम् ॥११॥ तन्मे ब्रूहि वरारोहे संशयोऽयं वरानने । निर्धनो हि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः॥१२॥** व्यास उवाच– **विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा महालक्ष्मीः स्मितानना । उवाच परया प्रीत्या वचनं चारुहासिनी ॥१३॥** महालक्ष्मीरुवाच– **शृणु शौरे वचो मह्यं सगुणाऽहं चतुर्भुजा । मां जानासि न जानासि निर्गुणां सगुणालयाम् ॥१४॥ त्वं जानीहि महाभाग तया तत्प्रकटीकृतम् । पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम् ॥१५॥ कृपां च महतीं मन्ये देव्याः शत्रुनिषूदन । यया प्रोक्तं परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत ॥१६॥ रक्षणीयं सदा चित्ते न विस्मार्यं कदाचन । सारं हि सर्वशास्त्राणां महाविद्याप्रकाशितम् ॥१७॥ नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये । प्रियोऽसि खलु देव्यास्त्वं तेन ते**

मन, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की सृष्टि करने के कारण कर्ता कहे जाते हैं । हे महाभाग विष्णो ! आप सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाले हैं ॥६-७॥ ब्रह्माजी के भौहों के मध्यभाग से ब्रह्माजी के क्रोध से रुद्र उत्पन्न होंगे और घोर तपस्या करके तामसी शक्ति को प्राप्त करके हे महामते! वे कल्प के अन्त में जगत् का संहार करने वाले होंगे । इसीलिए मैं आपके पास आयी हूँ । मुझको आप सात्त्विकी शक्ति जानें ॥८-९॥ हे मधुसूदन ! मै सदा आपके समीप में बनी रहूँगी, और आपके हृदय में सदा मेरा निवास होगा ॥१०॥ **विष्णु भगवान् ने कहा**– हे देवि ! अभी थोड़ी देर पहले मैंने आधा श्लोक सुना था, उस परमकल्याणकारी वाक्य को किसने कहा था ?॥११॥ हे वरारोहे ! यह आप मुझे बतलाएँ यह मुझे संशय है । मैं उसको बार-बार उसीतरह स्मरण करता हूँ जैसे कोई निर्धन अपने धन को बार-बार याद करता है ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा**– भगवान् विष्णु की बातों को सुनकर मन्द-मन्द मुस्काने वाली देवी महालक्ष्मी ने हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहा ॥१३॥ **महालक्ष्मी ने कहा**– हे शौरे ! आप मेरी बात को सुनें । मैं चार भुजाओं वाली सगुणा शक्ति हूँ । आप मुझको तो जानते हैं किन्तु आप निर्गुणा शक्ति को नहीं जानते हैं । वे ही सगुणा शक्ति के आश्रय हैं ॥१४॥ उस निर्गुणा शक्ति ने ही आधे श्लोक को कहा था । वह परम कल्याणकारी, वेदों का सार तथा भगवती का मंत्र है ॥१५॥ हे शत्रुओं का नाश करने वाले आप पर देवी की महती कृपा मैं समझती हूँ । हे सुव्रत ! आपके कल्याण के लिए उन्होंने वेदों के सार को कहा है ॥१६॥ उसे सदा मन में सुरक्षित रखना चाहिए कभी भूलना नहीं चाहिए; क्योंकि देवी ने सभी शास्त्रों के सार महाविद्या को प्रकाशित किया है ॥१७॥ त्रैलोक्य में इससे बढ़कर जानने योग्य कुछ भी नहीं है । आप देवी

व्याहतं वचः ॥१८॥ व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा वचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः । दधार हृदये नित्यं मत्वा मंत्रमनुत्तमम् ॥१९॥ कालेन कियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः । ब्रह्मा दैत्यभयात्त्रस्तो जगाम शरणं हरेः ॥२०॥ ततः कृत्वा महायुद्धं हत्वा तौ मधुकैटभौ । जजाप भगवान्विष्णुः श्लोकार्धं विशदाक्षरम् ॥२१॥ जपंतं वासुदेवं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः । प्रपच्छ परमप्रीतः कंजजः कमलापतिम् ॥२२॥ किं त्वं जपसि देवेश त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्ति वै । यत्स्मृत्वा पुण्डरीकाक्ष प्रीतोऽसि जगदीश्वर ॥२३॥** हरिरुवाच– **मयि त्वयि च या शक्तिः क्रियाकारणलक्षणा । विचारय महाभाग या सा भगवती शिवा ॥२४॥ यस्याधारे जगत्सर्वं तिष्ठत्यत्र महार्णवे । साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी ॥२५॥ यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥२६॥ सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥२७॥ अहं त्वमखिलं विश्वं तस्याश्चिच्छक्तिसम्भवम् । विद्धि ब्रह्मन्न सन्देहः कर्तव्यः सर्वदाऽनघ ॥२८॥ श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल । विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा ॥२९॥** व्यास उवाच– **ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तु नाभिपङ्कजे । नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ॥३०॥ नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा । मया कृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कन्धविस्तरम् ॥३१॥ तत्पठस्व महाभाग**

के प्रिय हैं, इसीलिए उन्होंने यह वाणी कही है ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा–** इसतरह से महालक्ष्मी की बातों को सुनकर चतुर्भुज भगवान् विष्णु ने उस वाणी को सर्वोत्तम मन्त्र मानकर हृदय में धारण किया ॥१९॥ कुछ समय बीत जाने पर भगवान् विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी दैत्य के भय से भयभीत होकर श्रीहरि के शरण में गये ॥२०॥ उसके बाद भगवान् विष्णु महायुद्ध करके मधु एवं कैटभ को मारने के बाद विशद अक्षरों वाले श्लोकार्द्ध का जप करने लगे ॥२१॥ जप करते हुए भगवान् विष्णु को देखकर ब्रह्माजी ने परम प्रेमपूर्वक उनसे पूछा ॥२२॥ हे देवेश ! आप क्या जपते हैं ? क्या आप से भी बड़ा कोई है ? जिसका स्मरण करके आप प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ?॥२३॥ **श्रीहरि ने कहा–** हे महाभाग ! आपमें तथा मुझ में जो कार्य-कारण स्वरूप शक्ति है, उसका आप विचार करे वे ही भगवती कल्याणकारिणी हैं ॥२४॥ जिसके सहारे यह सम्पूर्ण विश्व इस महार्णव में टिका हुआ हैं। जो महाशक्ति साकार, अजेय, तथा सनातनी हैं ॥२५॥ जो इस चराचर जगत् की सृष्टि करती हैं वे ही जब प्रसन्न होती हैं तो मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करती हैं । वे ही परमा विद्या है, मुक्ति प्रदान करने वाली हैं, सनातनी हैं, वे सबों की स्वामिनी तथा संसाररूपी बन्धन का कारण हैं ॥२७॥ हे अनघ! मैं, आप और यह सारा विश्व उसी चित् शक्ति से उत्पन्न है, इस बात को सर्वदा याद रखना चाहिए । इसके विषय में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए ॥२८॥ उन्होंने जो आधा श्लोक में कहा है, वह भागवत है और उसका विस्तार द्वापर युग के प्रारम्भ में होगा ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा–** उसको भगवान् के नाभिकमल पर विद्यमान ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से सुना, उन्होंने उसका उपदेश अत्यन्त बुद्धिमान अपने पुत्र नारदजी को दिया, नारदजी ने उसका उपदेश

पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । पञ्चलक्षणयुक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥३२॥ तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् । धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थेनोपबृंहितम्॥३३॥ वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम् । ब्रह्मविद्यानिधानं तु संसारार्णवतारकम् ॥३४॥ गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः । पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ ॥३५॥ अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम् । अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम् ॥३६॥ सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्करं शिवम् । शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥३७॥ शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः । पठिष्यति त्वया सार्धं पुराणीं संहितां शुभाम् ॥३८॥ सूत उवाच— **इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितं किल । मया गृहीतं तत्सर्वं पुराणं चातिविस्तरम् ॥३९॥ शुकोऽधीत्य पुराणं तु स्थितो व्यासाश्रमे शुभे । न लेभे शर्म धर्मात्मा ब्रह्मात्मज इवापरः ॥४०॥ एकान्तसेवी विकलः स शून्य इव लक्ष्यते । नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा ॥४१॥ चिन्ताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासः प्राह सुतं प्रति । किं पुत्र चिन्त्यते नित्यं कस्माद्व्यग्रोऽसि मानद ॥४२॥ आस्से ध्यानपरो नित्यमृणग्रस्त इवाधनः । का चिन्ता वर्तते पुत्र मयि ताते तु तिष्ठति ॥४३॥ सुखं भुंक्ष्व यथाकामं मुञ्च शोकं मनोगतम् । ज्ञानं चिन्तय शास्त्रोक्तं विज्ञाने च मतिं कुरु ॥४४॥ न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत । गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह ॥४५॥ स ते मोहं महाभाग**

मुझको दिया और मैंने उसका विस्तार बारह स्कन्धों में किया है ॥३०-३१॥ हे महाभाग ! वेद के समान उस पुराण को आप पढ़ें । उसका पवित्र नाम भागवत है और वह पुराणों में श्रेष्ठ है ॥३५॥ आप उसके अठारह हजार श्लोकों को कण्ठस्थ करें । वह अज्ञान को विनष्ट करने वाला तथा ज्ञानरूपी सूर्य को प्रकाशित करने वाला है ॥३६॥ वह पुराण धन्य है सुख एवं शान्ति देने वाला है, दीर्घ आयु करने वाला तथा कल्याणकारी है । जो कोई उसे सुनता एवं पढ़ता है उसके पुत्रों तथा पौत्रों की समृद्धि करता है ॥३७॥ यह लोमहर्षण का पुत्र सूत मेरा शिष्य है, वह तुम्हारे ही साथ उस मंगलमयी पुराणसंहिता का अध्ययन करेगा ॥३८॥ **सूतजी ने कहा—** व्यासजी इस प्रकार से अपने पुत्र को कहकर मुझे भी उस संहिता को पढ़ाये । मैंने उस अत्यन्त विस्तृत पुराण का अध्ययन किया ॥३९॥ शुकदेवजी उस पुराण का अध्ययन करके व्यासजी के आश्रम में रहने लगे, किन्तु उनको दूसरे ब्रह्माजी के पुत्र के समान शान्ति नहीं मिली ॥४०॥ वे एकान्त में रहते थे तथा व्याकुल के तरह शून्य प्रतीत होते थे । वे न तो अधिक भोजन करते थे और न तो उपवास ही करते थे ॥४१॥ अपने पुत्र शुकदेवजी को चिन्तित देखकर व्यासजी ने पूछा कि पुत्र ! तुम सदा क्या सोचते रहते हो ? क्यों व्यग्र हो ?॥४२॥ तुम किसी ऋण से ग्रस्त निर्धन के समान क्या सोचते हो ? मैं तुम्हारा पिता हूँ; मेरे रहते तुमको कौन सी चिन्ता है ?॥४३॥ अपनी इच्छा के अनुसार सुखोपभोग करो तथा अपने मन के शोक का परित्याग करो । शास्त्रोक्त ज्ञान का विचार करो और विज्ञान में अपनी बुद्धि को लगाओ ॥४४॥ हे सुव्रत ! यदि तुमको मेरी बातों

नाशयिष्यति भूपतिः । जनको नाम धर्मात्मा विदेहः सत्यसागरः ॥४६॥ तं गत्वा नृपतिं पुत्र सन्देहं स्वं निवर्तय। वर्णाश्रमाणां धर्मास्त्वं पृच्छ पुत्र यथातथम् ॥४७॥ जीवन्मुक्तः स राजाषिर्ब्रह्मज्ञानमतिः शुचिः । तथ्यवक्ताऽतिशान्तश्च योगी योगप्रियः सदा ॥४८॥ सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासस्यामिततेजसः । प्रत्युवाच महातेजाः शुकश्चारणिसम्भवः ॥४९॥ दम्भोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाधुना । जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदान्वितः ॥५०॥ वन्ध्यापुत्र इवाभाति राजाऽसौ जनकः पितः । कुर्वन्राज्यं विदेहः किं सन्देहोऽयं ममाद्भुतः ॥५१॥ द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूपं विदेहं नृपसत्तमम् । कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवांभसि ॥५२॥ संदेहोऽयं महांस्तात विदेहे परिवर्तते । मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठ सौगतानामिवापरः ॥५३॥ कथं भुक्तमभुक्तं स्यादकृतं च कृतं कथम् । व्यवहारः कथं त्याज्य इन्द्रियाणां महामते ॥५४॥ माता पुत्रस्तथा भार्या भगिनी कुलटा तथा । भेदाभेदः कथं न स्याद्यद्येतन्मुक्तता कथम् ॥५५॥ कटु क्षारं तथा तीक्ष्णं कषायं मिष्टमेव च । रसना यदि जानाति भुक्ते भोगाननुत्तमान् ॥५६॥ शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत् । मुक्तता कीदृशी तात संदेहोऽयं ममाद्भुतः ॥५७॥ शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरं प्रीतिकरं**

से शान्ति नहीं मिलती हो तो तुम महाराज जनक के द्वारा पालित मिथिलापुरी में चले जाओ ।।४५।। हे महाभाग ! वे तुम्हारे मोह को नष्ट क्रर देगें । राजा जनक धर्मात्मा, विदेह एवं सत्यसागर हैं ।।४६।। हे पुत्र ! उन राजा के पास जाकर तुम अपने सन्देह को दूर करो । हे पुत्र ! तुम उनसे वर्णों तथा आश्रमों के धर्मों को ठीक-ठीक जानो ।।४७।। वे राजर्षि जीवनमुक्त, ब्रह्मज्ञानी, पवित्र, सत्यवक्ता, अत्यन्त शान्त, योगी तथा योगप्रिय हैं ।।४८।। **सूतजी ने कहा–** अत्यन्त तेजस्वी व्यासजी की उस वाणी को सुनकर अरणि से उत्पन्न होने वाले शुकदेवजी ने व्यासजी से कहा ।।४९।। हे धर्मात्मन ! यह तो मेरे मन में केवल दम्भ ही प्रतीत होता है कि राजा जनक जीवन्मुक्त तथा विदेह होकर भी प्रसन्नता पूर्वक राज्य का प्रशासन करते हैं ।।५०।। हे पिताजी ! राजा जनक तो मुझे बन्ध्या पुत्र के समान प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे विदेह होकर भी राज्य करते हैं यह अत्यन्त आश्चर्यकारी है ।।५१।। पिताजी मैं राजश्रेष्ठ विदेह को देखना चाहता हूँ कि वे इस संसार में जल में विद्यमान कमलपत्र के समान अनासक्त कैसे रहते हैं ।।५२।। हे तात ! विदेह के विषय में मुझे अत्यन्त सन्देह है । हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! वे कहीं बौद्धों के समान मोक्ष के विषय में दूसरी प्ररिभाषा के समान तो नहीं हैं ।।५३।। हे महामते ! भोगा हुआ भोग अभुक्त कैसे हो सकता है ? किया हुआ कर्म अकृत कैसे हो सकता है ? इन्द्रियों के व्यवहार को कैसे त्यागा जा सकता है ?।।५४।। माता, पुत्र, पत्नी, बहन तथा कुलटा स्त्री इनमें विद्यमान भेद को अभेद क्यों न मान लिया जाय यदि इस प्रकार की मुक्तता है तब ।।५५।। सर्वश्रेष्ठ भोगों का भोग करने पर यदि जीभ को कटु, क्षार, तीक्ष्ण, कषाय इन रसों के भेद का पता चलता है तो फिर कैसी मुक्तता ?।।५६।। शीत, उष्ण, सुख तथा दुःख का यदि परिज्ञान होता है तो फिर हे तात वह मुक्तता कैसे हो सकती है । यह मुझको बहुत बड़ा सन्देह है ।।५७।। श्रेष्ठ पद पर बैठे हुए महाराज जनक व्यवहार में क्या

सदा । व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः ॥५८॥ चौरं वा तापसं वाऽपि समानं मन्यते कथम् । असमा यदि बुद्धिः स्यान्मुक्तता तर्हि कीदृशी॥५९॥ दृष्टपूर्वो न मे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः । शंकेयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः ॥६०॥ दिदृक्षा महती जाता श्रुत्वा तं भूपतिं तथा । संदेहविनिवृत्त्यर्थं गच्छामि मिथिलां प्रति ॥६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

सूत उवाच– **इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोः पतितः शुकः । बद्धांजलिरुवाचेदं गंतुकामो महामनाः ॥१॥ आपृच्छे त्वां महाभाग ग्राह्यं ते वचनं मया । विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालिताञ्जनकेन तु ॥२॥ विना दंडं कथं राज्यं करोति जनकः किल । धर्मे न वर्तते लोको दण्ड श्चेन्न भवेद्यदि॥३॥ धर्मस्य कारणं दण्डो मन्वादिप्रहितः सदा । स कथं वर्तते तात संशयोऽयं महान्मम ॥४॥ मम माता त्वियं वंध्या तद्वद्भाति विचेष्टितम्।**

शत्रु से वैर तथा मित्र से प्रेम का व्यवहार नहीं करते हैं ?॥५८॥ वे चोर और तपस्वी दोनों को एक समान कैसे मानते हैं ? यदि उनको इन विषयों में भेदबुद्धि है; तो फिर उनको मुक्त कैसे माना जाय ?॥५९॥ हे तात ! मैने इससे पहले कभी घर में रहने वाले जीवन्मुक्त को नहीं देखा है । मुझको यही सबसे बड़ी शंका है कि जीवन्मुक्त घर में कैसे रह सकता है ?॥६०॥ उस राजा को सुनकर मुझे उसे देखने की बहुत बड़ी इच्छा है, अतएव अपने सन्देह को दूर करने के लिए मैं मिथिला जा रहा हूँ ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

शुकदेवजी का मिथिला जाना

सूतजी ने कहा– इस तरह से कहकर शुकदेवजी ने अपने पिता व्यासजी को प्रणाम किया । महामनस्वी शुकदेवजी ने हाथ जोड़कर जाने की इच्छा से कहा ॥१॥ हे महाभाग ! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है । मैं महाराज जनक के द्वारा पालित मिथिलापुरी को देखने के लिए जाना चाहता हूँ । आप मुझे

पृच्छामि त्वां महाभाग गच्छामि च परंतप ॥५॥ सूत उवाच– **तं दृष्ट्वा गन्तुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः । आलिंग्योवाच पुत्रं तं ज्ञानिनं निस्पृहं दृढम् ॥६॥** व्यास उवाच– **स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते । सत्यां वाचं प्रदत्त्वा मे गच्छ तात यथासुखम् ॥७॥ आगंतव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम् । न कुत्रापि च गंतव्यं त्वया पुत्र कथंचन ॥८॥ सुखं जीवामि पुत्राहं दृष्ट्वा ते मुखपङ्कजम् । अपश्यन्दुःखमाप्नोमि प्राणस्त्वमसि मे सुत ॥९॥ दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र सन्देहं विनिवर्त्य च । अत्रागत्य सुखं तिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः ॥१०॥** सूत उवाच– **इत्युक्तः सोऽभिवाद्याथ कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् । चलितस्तरसाऽतीव धनुर्मुक्तः शरो यथा ॥११॥ संपश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्च वित्तधर्मिणः । वनानि पादपांश्चैव क्षेत्राणि फलितानि च ॥१२॥ तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयान्वितान् । योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान् वनौकसः ॥१३॥ शैवान्पाशुपतांश्चैव सौराञ्छाक्तांश्च वैष्णवान् । वीक्ष्य नानाविधान्धर्माञ्जगामातिस्मयन्मुनिः ॥१४॥ वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लंध्य महामतिः । हिमाचलं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति ॥१५॥ प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम् । प्रजाश्च सुखिताः सर्वाःसदाचाराः सुसंस्थिताः ॥१६॥ क्षत्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र**

आज्ञा दें ॥२॥ यह जानना चाहता हूँ कि दण्ड दिए बिना जनक कैसे राज्य करते हैं । दण्ड के बिना प्रजायें धर्म का पालन नहीं कर सकती हैं ॥३॥ मनु आदि महर्षियों ने धर्म का कारण दण्ड को बतलाया है । राजा जनक दण्ड दिए बिना कैसे राज्य चलाते हैं, यह हमको बहुत बड़ा संशय है ॥४॥ जिस तरह मेरी माता बँध्या है यह कहना झूठा है, उसीतरह दण्ड के बिना राज्य का प्रशासन करना मुझे व्याहत प्रतीत होता है । हे महाभाग ! मैं आप से अनुज्ञा चाहता हूँ, हे परंतप मैं जा रहा हूँ ॥५॥ **सूतजी ने कहा–** अपने पुत्र शुकदेवजी को जाने के लिए उद्यत देखकर व्यासजी ने उनका आलिंगन किया और अपने ज्ञानी पुत्र से कहा ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** हे महाज्ञानी पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो तुम दीर्घायु होओ । मुझे से यह सत्य प्रतिज्ञा करके अपनी इच्छा के अनुसार तुम जाओ ॥७॥ तुम वहाँ से लौटकर मेरे आश्रम में आना । हे पुत्र ! तुम्हें किसी भी हालत में कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहिए॥८॥ हे पुत्र ! तुम्हारे मुखकमल को देखकर मैं जीवित हूँ । तुमको देखे बिना मैं दुःखी होता हूँ । हे पुत्र ! तुम मेरे प्राण हो ॥९॥ हे पुत्र ! जनक से भेंट करके तथा अपने सन्देह को दूर करके यहाँ पर वेदाध्ययन करते हुए सुखपूर्वक निवास करो ॥१०॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह कहने पर शुकदेवजी ने व्यासजी को प्रणाम किया और अपने पिता की प्रदक्षिणा की । जिस तरह धनुष से छूटा हुआ बाण चलता है, उसीतरह वे अत्यन्त वेगपूर्वक चल पड़े॥११॥ रास्ते में पड़ने वाले अनेक देशों, मनुष्यों, धनोपार्जन करने वाले व्यापारियों, वनों, वृक्षों, फल से भरे क्षेत्रों, तपस्वियों, तपस्या करने में लीन तपस्वियों, दीक्षा में प्रविष्ट यज्ञ करने वालों, योगाभ्यास में लगे हुए योगियों, वन में रहने वाले वानप्रस्थियों, शैवों, पाशुपतों, सूर्य के भक्तों, शाक्तों (शक्ति के उपासकों) वैष्णवों तथा अनेक प्रकार के धर्मावलम्बियों को देखते हुए महामति शुकदेव जी दो वर्षों में सुमेरु तथा हिमालय पर्वत को पार करके मिथिला पहुँच गये ॥१३-१५॥ सभी प्रकार की उत्तम

समागतः । किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टस्तेन न चाब्रवीत् ॥१७॥ निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः । विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किंचन ॥१८॥ प्रतीहार उवाच– **ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्किमर्थं त्वमिहागतः । चलनं च विना कार्यं न भवेदिति मे मतिः ॥१९॥ राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज । अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशो नात्र सर्वथा ॥२०॥ तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्राह्मणो वेदवित्तमः । कुलं कार्यं च मे ब्रूहि यथेष्टं गच्छ मानद ॥२१॥** शुक उवाच– **यदर्थमागतोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव । विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः ॥२२॥ मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लंघ्य गिरिद्वयम् । राजानं द्रष्टुकामोऽहं पर्यटन्समुपागतः ॥२३॥ वंचितोऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते । भ्रामितोऽहं महाभाग कर्मणा वा महीतले ॥२४॥ धनाशा पुरुषस्येह परिभ्रमणकारणम् । सा मे नास्ति तथाप्यत्र संप्राप्तोऽस्मि भ्रमात्किल ॥२५॥ निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न मज्जति । निराशोऽहं महाभाग मग्नोऽस्मिन्मोहसागरे ॥२६॥ क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः । परिश्रमफलं किं मे वंचितो विधिना किल ॥२७॥ प्रारब्धं किल भोक्तव्यं शुभं वाप्यथवाऽशुभम् । उद्यमस्तद्वशे नित्यं कारयत्येव सर्वथा ॥२८॥ न तीर्थं न च**

समृद्धि से सम्पन्न मिथिलापुरी में वे प्रवेश किए । वहाँ की प्रजा सुखी सदाचार सम्पन्न और सुसंयत थी ॥१६॥ प्रवेश करते हुए शुकदेवजी को देखकर उन्हें द्वारपाल ने रोका और पूछा आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? आपका क्या काम है ? किन्तु शुकदेवजी कुछ भी नहीं बोले ॥१७॥ वे नगर द्वार से बाहर निकल कर एक स्थान पर स्तम्भ के समान खड़े हो गये । आश्चर्यित होकर अत्यधिक हँस रहे थे; किन्तु कुछ भी बोल नहीं रहे थे ॥१८॥ **द्वारपाल ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! आप मूक हैं क्या ? आप यहाँ किसलिए आये हैं ? मैं समझता हूँ कि बिना किसी प्रयोजन के कोई कहीं जाता नहीं है ॥१९॥ हे द्विज ! बिना राजाज्ञा के इस नगरी में कोई प्रवेश नहीं कर सकता है । जिसका कुल तथा शील ज्ञात नहीं है उसका बिल्कुल प्रवेश नहीं होता है ॥२०॥ लगता है आप वेदज्ञों में श्रेष्ठ तेजस्वी हैं । आप अपने कुल तथा प्रयोजन को बतलाकर जहाँ चाहें वहाँ जायँ ॥२१॥ **शुकदेवजी ने कहा–** मैं जिस काम के लिए यहाँ आया था उसकी प्राप्ति तो तुम्हारी बातों से ही हो गयी । मैं विदेह की नगरी देखने आया था; किन्तु यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ है ॥२२॥ मेरा यह अज्ञान ही था कि दो पर्वतों को पार करके राजा से मिलने की इच्छा से घूमता हुआ यहाँ आया ॥२३॥ स्वयं मेरे पिताजी ने ही मुझे घोखा दिया है तो किसको दोष दूँ । अथवा अपने दुर्भाग्य के कारण मैं पृथिवी पर इतना चला ॥२४॥ संसार में मनुष्य के घूमने का कारण धन प्राप्त करने की आशा होती हैं, किन्तु मुझे धन प्राप्त करने की आशा नहीं है । फिर भी मैं यहाँ आया हूँ ॥२५॥ निराश व्यक्ति सदा सुखी रहता है, वह मोह में नहीं पड़ता है; किन्तु हे महाभाग निराश होकर भी मैं मोह के सागर में पड़ा हुआ हूँ ॥२६॥ सुमेरु पर्वत कहाँ है ? और मिथिला नगरी कहाँ हैं ? मैं इतना दूर पैदल आया हूँ । मेरे इस परिश्रम का फल क्या हुआ ? भाग्य ने ही मुझे धोखा दिया है ॥२७॥ शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के प्रारब्ध को भोगना ही पड़ता है।

वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः । अप्रवेशः पुरे जातो विदेहो नाम भूपतिः ॥२९॥ इत्युक्त्वा विररामाशु मौनीभूत इव स्थितः । ज्ञातो हि प्रतिहारेण ज्ञानी कश्चिद्द्विजोत्तमः ॥३०॥ सामपूर्वमुवाचासौ तं क्षत्ता संस्थितं मुनिम् । गच्छ भो यत्र ते कार्यं यथेष्टं द्विजसत्तम ॥३१॥ अपराधो मम ब्रह्मन् यन्निवारितवानहम् । तत्क्षंतव्यं महाभाग विमुक्तानां क्षमाबलम् ॥३२॥ शुक उवाच– **किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा । प्रभुकार्यं प्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम् ॥३३॥ न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया । चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥३४॥ ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः। गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम् ॥३५॥** प्रतीहार उवाच– **किं सुखं द्विज किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता । कः शत्रुर्हितकर्ता को ब्रूहि सर्वं ममाद्य वै ॥३६॥** शुक उवाच– **द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधो जनः । रागी चैव विरागी च तयोश्चित्तं द्विधा पुनः ॥३७॥ विरागी त्रिविधः कामं ज्ञातोऽज्ञातश्च मध्यमः । रागी च द्विविधः प्रोक्तो मूर्खश्च चतुरस्तथा ॥३८॥ चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रजं मतिजंतथा । मतिस्तु द्विविधा लोके युक्तायुक्तेति सर्वथा ॥३९॥** प्रतीहार उवाच– **यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम । तत्सर्वं विस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम ॥४०॥**

और वह उसी के अनुसार प्रयास भी करवाता है ॥२८॥ यहाँ न तो कोई तीर्थ है और न तो यहाँ वेदाध्ययन सम्भव है, जिसके कारण मुझे यह श्रम करना पड़ा है । यहाँ के राजा विदेह हैं और उनकी नगरी में प्रवेश करना ही निषिद्ध है ॥२९॥ इतना कहकर शुकदेवजी चुप हो गये और वे मौनी के समान स्थित हो गये । प्रतिहारी ने भी जान लिया कि ये कोई ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥३०॥ उन बैठे हुए मुनि से प्रतिहारी ने शान्तिपूर्वक कहा– हे द्विजश्रेष्ठ आप जहाँ चाहें वहाँ जाइये ॥३१॥ हे ब्रह्मन् ! मैने जो आपको रोका आप मेरे उस अपराध को क्षमा करें विमुक्तपुरुषों का बल तो उनकी क्षमा ही होती है ॥३२॥ **शुकदेवजी ने कहा–** हे द्वारपाल ! तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? तुम तो परतंत्र हो । सेवक को तो अपने स्वामी का कार्य ठीक-ठीक करना ही चाहिए ॥३३॥ मुझको जो तुमने रोका इसमें राजा का भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि बुद्धिमानों को सदा चोर एवं शत्रुओं का ज्ञान तो प्राप्त करना ही चाहिए।॥३४॥ इसमें तो मेरा ही केवल दोष है कि मैं यहाँ आया दूसरे के घर जाना ही अपनी लघुता का कारण होता है ॥३५॥ **प्रतिहारी ने कहा–** हे द्विज! आप यह बतलाइये कि सुख क्या है ? दुःख क्या है ? कल्याण चाहने वाले को क्या करना चाहिए ? कौन शत्रु है ? और कौन हितकारी है ? इसे आप मुझे बतलायें ॥३६॥ **शुकदेवजी ने कहा–** सभी लोगों में द्वैतभावना (भेद की बुद्धि) विद्यमान रहती है अतएव मनुष्य भी दो तरह के होते हैं; रागी और विरागी और उनका चित्त भी दो प्रकार का होता है ॥३७॥ विरागी भी तीन प्रकार के होते हैं ज्ञात, अज्ञात तथा मध्यम । रागी भी दो प्रकार के होते हैं मूर्ख तथा चतुर ॥३८॥ चतुरता भी दो प्रकार की होती है शास्त्रजन्य एवं बुद्धिजन्य । मति भी दो प्रकार की होती है युक्त (उचित) और अयुक्त (अनुचित) ॥३९॥

शुक उवाच– **रागो यस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यते ध्रुवम् । दुःखं बहुविधं तस्य सुखं च विविधं पुनः ॥४१॥ धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानं च**
विजयं तथा । तदप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणे क्षणे ॥४२॥ कार्यस्तस्य सुखोपायः कर्तव्यं सुखसाधनम् । तस्यारातिः स विज्ञेयः सुखविघ्नं
करोति यः ॥४३॥ सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा । चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति ॥४४॥ विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकांतसेवनम्।
आत्मानुचिन्तनं चैव वेदान्तस्य च चिन्तनम् ॥४५॥ दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम् । शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः ॥४६॥
कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः । बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये ॥४७॥ सूत उवाच– **तच्छुत्वा वचनं तस्य मत्त्वा**
तं ज्ञानिनं द्विजम् । क्षत्ता प्रवेशयामास कक्षां चातिमनोरमाम् ॥४८॥ नगरं वीक्षमाणः संस्त्रैविध्यजनसंकुलम् । नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम्॥४९॥
रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा । विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम् ॥५०॥ पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद्राजमन्दिरम् । प्राप्तः परमतेजस्वी
द्वितीय इव भास्करः ॥५१॥ निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत् । तत्रैव च स्थितो द्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन् ॥५२॥ छायायामातपे चैव

प्रतिहारी ने कहा– हे विद्वन् ! हे द्विजोत्तम ! आपने जो कहा है मैं उसका अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ । अतएव उन सभी बातों को आप विस्तारपूर्वक ठीक-ठीक बतलाएँ ॥४०॥ **शुकदेवजी ने कहा–** जिसका संसार में राग (आसक्ति) है उसे रागी कहते हैं । उसको अनेक प्रकार के दुःख और अनेक प्रकार के सुख मिलते हैं ॥४१॥ धन को प्राप्त करके पुत्र, पत्नी, मान, सम्मान तथा विजय को प्राप्त करना सुख कहलाता है और इन सभी वस्तुओं के नहीं मिलने पर रागी को क्षण-क्षण में अत्यन्त दुःख होता है ॥४२॥ कल्याणकामी को चाहिए कि वह ऐसा उपाय करे कि उसे सच्चा सुख मिले और जो उसके सुख की प्राप्ति में बाधा डाले उसे शत्रु कहते हैं ॥४३॥ रागी पुरुष को जो सुख देता है, वही उसका मित्र होता है । चतुर मनुष्य उसमें नहीं फँसता है और मूर्ख उसमें फँस जाते हैं ॥४४॥ विरागी पुरुष तथा अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले पुरुष को एकान्त में रहकर अपनी आत्मा के चिन्तन में तथा वेदान्तों के चिन्तन में सुख मिलता है ॥४५॥ उसके लिए सांसारिक चर्चाएँ दुःख स्वरूप होती हैं । आत्मकल्याण चाहने वाले ज्ञानी मनुष्य के अनेक शत्रु होते हैं । काम, क्रोध तथा प्रमाद आदि उसके अनेक शत्रु कहे गये हैं । उसका त्रैलोक्य में बन्धु संतोष को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है ॥४७॥ **सूतजी ने कहा–** शुकदेवजी की वाणी को सुनकर द्वारपाल ने जान लिया कि ये ज्ञानी ब्राह्मण हैं अतएव उसने उन्हें अत्यन्त मनोरम कक्ष में पहुँचा दिया ॥४८॥ शुकदेवजी अनेक प्रकार के दुकानों पर बेचने योग्य संपत्ति से भरे हुए क्रय-विक्रय करने वाले राग एवं द्वेष से युक्त, काम तथा लोभ से व्याकुल तथा विवाद करने वाले लोगों से सम्पन्न बहुत अधिक सम्पत्ति से युक्त उपर्युक्त तीन प्रकार के लोगों से भरे हुए नगर को देखते हुए राजभवन में आये । वे वहाँ पर परम तेजस्वी दूसरे सूर्य के समान प्रकाशित होते थे ॥४९-५१॥ वहाँ पर ही प्रतिहारी ने उन्हें रोक दिया और वे द्वार पर ही मोक्ष का विचार करते

समदर्शी महातपाः । ध्यानं कृत्वा तथैकान्ते स्थितः स्थाणुरिवाचलः ॥५३॥ तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृताञ्जलिः । प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः ॥५४॥ तत्र दिव्यं मनोरम्यं पुष्पितं दिव्यपादपम् । तद्वनं दर्शयित्वा तु कृत्वा चातिथिसत्क्रियाम् ॥५५॥ वारमुख्यः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः । गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः ॥५६॥ ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः । निर्गतः सदनात्तस्माद्व्यासपुत्रः स्थितस्तदा ॥५७॥ पूजितः परया भक्त्या ताभिः स्त्रीभिर्यथाविधि । देशकालोपपन्नेन नानाऽन्नेनातितोषितः ॥५८॥ ततोऽन्तः पुरवासिन्यस्तस्यान्तः पुरकाननम् । रम्यं संदर्शयामासुरङ्गनाः काममोहिताः ॥५९॥ स युवा रूपवान्कांतो मृदुभाषी मनोरमः। दृष्ट्वा ता मुमुहुः सर्वास्तं च काममिवापरम्॥६०॥ जितेन्द्रियं मुनिं मत्त्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा । आरणेयस्तु शुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत् ॥६१॥ आत्मारामो जितक्रोधो न हृष्यति न तप्यति । पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान् ॥६२॥ तस्मै शय्यां सुरम्यां च ददुर्नार्यः सुसंस्कृताम् । परार्ध्यास्तरणोपेतां नानोपस्करसंवृताम्॥६३॥

हुए काष्ठ के समान खड़े हो गये ॥५२॥ छाया तथा धूप दोनों को एक समान देखने वाले महातपस्वी शुकदेवजी ध्यान करते हुए एकान्त में स्थाणु (स्तम्भ) के समान स्थिर बैठ गये ॥५३॥ मुर्हूर्त भर में राजा का एक मंत्री हाथ जोड़े हुए उनके पास आया और उन्हें राजगृह की दूसरी कक्ष में पहुँचा दिया ॥५४॥ उस कक्षा में अनेक प्रकार के दिव्य वृक्ष फूलों से भरे हुए थे । उसने शुकदेवजी को उस वन को दिखाया तथा उनका अतिथि सत्कार किया॥५५॥ वहाँ पर गीत तथा वाद्य में कुशल तथा कामशास्त्र में दक्ष राजा की सेवा करने वाली वेश्याएँ थीं ॥५६॥ उन सबों को शुकदेवजी की सेवा करने का आदेश देकर वह मन्त्री उस कक्ष से निकल गया और शुकदेव जी वहीं रहे ॥५७॥ उन स्त्रियों ने श्रद्धापूर्वक विधिवत् शुकदेवजी की पूजा की और देश कालानुसार अनेक प्रकार के अन्नों से उन्हें सन्तुष्ट किया ॥५८॥ उसके पश्चात् अन्तःपुर में रहने वाली तथा काममोहित स्त्रियों ने उन्हें अन्तःपुर के उद्यान को दिखाया॥५९॥ शुकदेवजी युवक रूपवान् तथा मनोहर मृदुभाषण करने वाले तथा मनोरम थे । उन्हें दूसरे कामदेव के समान सुन्दर देखकर वे सभी स्त्रियाँ मोहित हो गयीं ॥६०॥ शुकदेवजी को जितेन्द्रिय समझकर उन सबों ने उनकी सेवा की और शुकदेवजी ने उन सबों को माता की दृष्टि से देखा ॥६१॥ वे आत्माराम (अपनी आत्मा में रमण करने वाले) तथा क्रोध रहित होने के कारण न हर्षित होते थे और न तो संतप्त होते थे । उन स्त्रियों में होने वाले विकारों को देखकर भी वे स्वस्थ ही बने रहे ॥६२॥ उन स्त्रियों ने शुकदेवजी को मनोहर तथा शुद्ध शय्या प्रदान किया । उस शय्या पर अत्यन्त मूल्यवान विस्तर विछा था और अनेक प्रकार के उपकरण उस पर विद्यमान थे ॥६३॥ शुकदेवजी ने पैर धोकर सावधानीपूर्वक हाथ में कुश ग्रहण करके सायं संध्या करके ध्यान

स कृत्वा पादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः । उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यानमेवान्वपद्यत ॥६४॥ याममेकं स्थितो ध्याने सुष्वाप तदनन्तरम् । सुप्त्वा यामद्वयं तत्र चोदतिष्ठत्ततः शुकः ॥६५॥ पाश्चात्यं यामिनीयामं ध्यानमेवान्वपद्यत । स्नात्वा प्रातः क्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते प्रथमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच– **श्रुत्वा तमागतं राजा मन्त्रिभिः सहितः शुचिः । पुरः पुरोहितं कृत्वा गुरुपुत्रं समभ्यगात् ॥१॥ कृत्वार्हणां नृपः सम्यग्दत्त्वाऽऽसनमनुत्तमम् । पप्रच्छ कुशलं गां च विनिवेद्य पयस्विनीम् ॥२॥ स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृहणाद्यथाविधि । पप्रच्छ कुशलं राज्ञे स्वं निवेद्य निरामयम् ॥३॥ कृत्वा कुशलसंप्रश्नमुपविष्टं सुखासने । शुकं व्याससुतं शांतं पर्यपृच्छत पार्थिवः ॥४॥ किं निमित्तं महाभाग निःस्पृहस्य च मां प्रति । जातं ह्यागमनं ब्रूहि कार्यं तन्मुनिसत्तम ॥५॥** शुक उवाच– **व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम् । सर्वेषामाश्रमाणां**

करने लगे ॥६४॥ वे एक प्रहर तक ध्यान करते रहे और उसके बाद अच्छी तरह सो गये । दो प्रहर तक सोने के बाद शुकदेवजी जग गये ॥६५॥ रात्रि के अन्तिम प्रहर में वे ध्यान करने लगे । उसके पश्चात् स्नान करके तथा प्रातःकालिक क्रियाओं को करके समाधिस्थ हो गये ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

जनकजी का शुकदेवजी को उपदेश देना

सूतजी ने कहा– शुकदेवजी के आगमन का समाचार सुनकर राजा जनक अपने पुरोहित को आगे करके उनसे मिलने आये ॥१॥ राजा ने उनकी अच्छी तरह से पूजा की और उसके पश्चात् उन्हें उत्तम आसन प्रदान किया । उन्हें दुधारु गौ का दान देकर उनसे कुशल-प्रश्न किए ॥२॥ शुकदेवजी ने राजा की पूजा को विधि पूर्वक स्वीकार किया और अपना कुशल बतलाकर राजा का कुशल पूछा ॥३॥ कुशल-प्रश्न करने कें पश्चात् सुखद आसन पर बैठे हुए व्यासजी के पुत्र शान्त शुकदेवजी से राजा ने पूछा ॥४॥ हे महाभाग ! आप जैसे निःस्पृह मुनि का मेरे यहाँ आगमन किसलिए हुआ है ? हे मुनिश्रेष्ठ!

च गृहस्थाश्रम उत्तमः ॥६॥ मया नांगीकृतं वाक्यं मत्त्वा बन्धं गुरोरपि । न बंधोऽस्तीति तेनोक्तो नाहं तत्कृतवान्पुनः ॥७॥ इति संदिग्धमनसं मत्वा स मुनिसत्तमः । उवाच वचनं तथ्यं मिथिलां गच्छ मा शुचः ॥८॥ याज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः । विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकंटकम् ॥९॥ कुर्वंन्राज्यं तथा राजा मायापाशैर्न बध्यते । त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परंतप ॥१०॥ पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम् । कुरु दारान्महाभाग पृच्छ वा भूपतिं च तम् ॥११॥ संदेहं ते मनोजातं कथयिष्यति पार्थिवः । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मामेहि तरसा सुत॥१२॥ संप्रोक्तोऽहं महाराज त्वत्पुरे च तदाज्ञया । मोक्षकामोऽस्मि राजेंद्र ब्रूहि कृत्यं ममानघ ॥१३॥ तपस्तीर्थव्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम्। ज्ञानं वा वद राजेंद्र मोक्षं प्रति च कारणम् ॥१४॥ जनक उवाच– **शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत् । उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासाय वै गुरौ ॥१५॥ अधीत्य वेदवेदांतान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् । समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसेन्मुनिः ॥१६॥ न्यायवृत्तिस्तु संतोषी निराशी गतकल्मषः । अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्शुचिः ॥१७॥ पुत्रं पौत्रं समासाद्य वानप्रस्थाश्रमे वसेत् । तपसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यां पुत्रे**

मैं उसे पूरा करना चाहता हूँ ॥५॥ **शुकदेवजी ने कहा**– हे महाराज ! व्यासजी ने मुझे विवाह करने के लिए कहा और उन्होंने बतलाया कि सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम उत्तम है ॥६॥ मैंने बन्धन समझकर अपने पिता की आज्ञा को नहीं स्वीकार किया । उन्होंने कहा गार्हस्थ्य बन्धन नहीं है, फिर भी हम उनकी बात नहीं माने ॥७॥ इसतरह से मुझे संदेहयुक्त जानकर उन्होंने कहा कि तुम मिथिला जाओ शोक मत करो ॥८॥ राजा जनक यज्ञकर्ता तथा जीवन्मुक्त हैं । वे लोकप्रख्यात विदेह हैं और निष्कण्टक राज्य का पालन करते हैं ॥९॥ वे राजा राज्य करते हुए भी माया के पाश में नहीं बँधते हैं । हे पुत्र ! तुम क्यों डरते हो तुम तो वन में रहते हो ॥१०॥ उस श्रेष्ठ राजा को देखो अपने मन के मोह का परित्याग करो । तुम या तो विवाह करो अथवा जाकर राजा जनक से इस विषय में पूछ लो ॥११॥ वे राजा तुम्हारे मन के सारे सन्देहों को दूर कर देंगे । उन राजा की बातों को सुनकर हे पुत्र तुम शीघ्र मेरे पास आना ॥१२॥ हे महाराज ! उनके द्वारा आदेश दिए जाने के बाद उन्हीं की आज्ञा से मैं आपकी नगरी में आया हूँ । मैं मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ । अतः मुझे क्या करना चाहिए ॥१३॥ हे राजेन्द्र ! तपस्या, तीर्थसेवन, व्रत, यज्ञ, वेदाध्ययन, अथवा ज्ञान इनमें से कौन मोक्ष का साधन हैं ? उसे आप मुझे बतलाइये ॥१४॥ **जनकजी ने कहा**– हे विप्र ! आप सुनें मैं मोक्षाभिलाषी मनुष्यों के कर्तव्य को बतलाता हूँ । उपनयन हो जाने के पश्चात् सर्वप्रथम वह वेदाध्ययन करने के लिए गुरु के पास जाय ॥१५॥ वेदों तथा वेदान्तों का अध्ययन करके उन्हें गुरुदक्षिण प्रदान करके समावर्तन होने के पश्चात् अपनी पत्नी के साथ गृहस्थ धर्म का पालन करे ॥१६॥ न्यायतः प्राप्त सम्पत्ति से संतुष्ट रहे, किसी से कोई आशा न रखे । निष्पाप वह ब्राह्मण अग्निहोत्र आदि कर्मों को करते हुए सत्य बोले तथा पावित्र्य का पालन करे ॥१७॥ पुत्रों तथा पौत्रों को प्राप्त करने के बाद वानप्रस्थाश्रम में चला जाय और तपस्या के द्वारा (काम,

निवेश्य च ॥१८॥ सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित् । वसेत्तुर्याश्रमे श्रांतः शुद्धे वैराग्यसम्भवे ॥१९॥ विरक्तस्याधिकारोऽस्ति संन्यासे नान्यथा क्वचित् । वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम ॥२०॥ शुकाष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारा वेदबोधिताः । चत्वारिंशद्गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः ॥२१॥ अष्टौ च मुक्तिकामस्य प्रोक्ताः शमदमादयः । आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम् ॥२२॥ श्रीशुक उवाच– **उत्पन्ने हृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसंभवे । अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा ॥२३॥** जनक उवाच– **इन्द्रियाणि बलिष्ठानि न नियुक्तानि मानद । अपक्वस्य प्रकुर्वंति विकारांस्ताननेकशः ॥२४॥ भोजनेच्छां सुखेच्छां च शय्येच्छामात्मजस्य च । यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते ॥२५॥ दुर्जरं वासनाजालं न शांतिमुपयाति वै । अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत् ॥२६॥ ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः । परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः ॥२७॥ यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति । शनैः शनैः फलं याति सुखेन पदगामिनी ॥२८॥ विहंगस्तरसा याति विघ्नशंकामुदस्य वै । श्रांतो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका ॥२९॥ मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः । अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानुक्रमेण**

क्रोध, मद-मोह, लोभ तथा मात्सर्य) इन छहो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अपनी पत्नी की रक्षा का भार अपने पुत्रों पर छोड़ दे ॥१८॥ उसके पश्चात् अपनी सभी अग्नियों को अपनी आत्मा में आरोपित करके वह धर्मात्मा जब सांसारिक विषयों के सेवन से थक जाने के कारण चतुर्थ आश्रम (संन्यास) में वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर प्रवेश करे ॥१९॥ मैं यह जानता हूँ कि यह वेद का वाक्य सत्य है कि संन्यास में विरक्त का ही अधिकार है दूसरे का नहीं॥२०॥ हे शुकदेवजी ! वेदों में अड़तालिस संस्कार बतलाये गये हैं । उनमें महापुरुषों ने गृहस्थों के लिए चालिस संस्कारों को बतलाया है ॥२१॥ और शम, दम आदि आठ संस्कार मुक्ति चाहने वालों के लिए बतलाये गये हैं । शिष्टपुरुषों का यह आदेश है कि एक आश्रम के पश्चात् दूसरे आश्रम में प्रवेश करना चाहिए ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी ने पूछा कि यदि किसी गृहस्थ के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो उसे वन में जाना चाहिए कि उसे संन्यास में प्रवेश कर जाना चाहिए ॥२३॥ **जनकजी ने कहा–** हे मानद ! इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान हैं, यदि वे वश में नहीं हैं तो वे अपरिपक्व विचार वालों के मन में अनेक प्रकार के विकारों को उत्पन्न करती हैं ॥२४॥ उस यति के मन में भोजन की इच्छा, सुख की इच्छा अथवा अच्छी शय्या की इच्छा या पुत्र की इच्छा है तो उसके संन्यास लेने से कौन सा लाभ है ॥२५॥ वासना का जाल दुर्जर है वह शान्त नहीं होता है, अतएव उस वासना के जाल को शान्त करने के लिए क्रमशः त्याग करना चाहिए ॥२६॥ जो ऊपर सोता है, वही गिरता है जो नीचे सोता है, वह नहीं गिरता है । संन्यास लेकर जो भ्रष्ट हो जाता है, उसके लिए कोई भी मार्ग नहीं है ॥२७॥ जैसे चींटी जड़ से शाखा पर चढती है और सुख पूर्वक पैर से चलती हुई वह फल पर्यन्त पहुँच जाती है ॥२८॥ पक्षी विघ्न की शंका किए बिना ही वेगपूर्वक चलकर थक जाता है; किन्तु चींटी सुखपूर्वक चंलती हुइ अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है ॥२९॥

च ॥३०॥ गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शांतः सुमतिरात्मवान् । न च हृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत् ॥३१॥ विहितं कर्म कुर्वाणस्त्यजंश्चिन्तान्वितं च यत् । आत्मलाभेन संतुष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥३२॥ पश्याहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथाऽनघ । विचरामि यथाकामं न मे किंचित्प्रजायते ॥३३॥ भुंजानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः । भविष्यामि यथाऽहं त्वं तथा मुक्तो भवानघ ॥३४॥ कथ्यते खलु यद्वश्यमदृश्यं बद्ध्यते कुतः । दृश्यानि पंचभूतानि गुणास्तेषां तथा पुनः ॥३५॥ आत्मा गम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन । स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारो निरंजनः ॥३६॥ मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज । जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम् ॥३७॥ भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः । निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम् ॥३८॥ न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप । मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥३९॥ शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा न वै बद्ध्येत कर्हिचित् । बन्धमोक्षौ मनः संस्थौ तस्मिञ्छांते प्रशाम्यति ॥४०॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः । एकात्मत्वे कथं भेदः संभवेद्द्वैतदर्शनात् ॥४१॥ जीवो ब्रह्म सदैवाहं नात्र कार्या विचारणा । भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना

जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उसके लिए प्रवल कामनाओं को उत्पन्न करती हैं अतएव मन को आश्रमों के क्रमानुसार जीतना चाहिये ॥३०॥ शान्त और सुन्दर मति वाला गृहस्थ गृहस्थाश्रम में भी रहकर आत्मज्ञ हो जाता है । उसे किसी वस्तु को प्राप्त करके न तो प्रसन्न होना चाहिए और न तो किसी वस्तु के नहीं मिलने पर दुःखी होना चाहिए । उसे लाभ तथा अलाभ दोनों में एक समान रहना चाहिए ॥३१॥ जो गृहस्थ शास्त्रविहित कर्मों को करते हुए तथा चिन्ता का परित्याग करते हुए रहता है, और आत्मज्ञान से ही सन्तुष्ट रहता है, वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥३२॥ हे अनघ ! आप मुझे देखें मैं राज्य में भी रहकर जीवन्मुक्त हूँ । मैं अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करता हूँ, मुझे कोई भी चिन्ता बाधित नहीं करती है ॥३३॥ मैं अनेक भोगों को भोगता हूँ तथा अनेक कार्यों को करता हूँ । हे अनघ ! आप भी मेरे ही समान जीवन्मुक्त हो जाइये ॥३४॥ यह कहा जाता है कि जो दृश्य पदार्थ है, उससे अदृश्य पदार्थ को कैसे अधीन किया जा सकता है ? पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और उनके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों गुण दृश्य पदार्थ हैं ॥३५॥ आत्मा को तो अनुमान के ही द्वारा जाना जा सकता है, उसका प्रत्यक्ष कभी नहीं होता है । अतएव हे ब्रह्मन् ! निर्विकार तथा निरञ्जन आत्मा बंधन में कैसे पड़ सकता है ॥३६॥ हे द्विज ! मन ही महान सुखों एवं दुःखों का कारण है यदि मन निर्मल हो जाय तो सब कुछ निर्मल हो जाता है ॥३७॥ ज़ब तक मन निर्मल नहीं है तब तक बार-बार तीर्थों में घूमने तथा स्नान करने से कौन सा लाभ है ? सबकुछ निरर्थक है ॥३८॥ हे परंतप ! बन्धन तथा मोक्ष का कारण न तो देह है, न इन्द्रियाँ हैं और न जीवात्मा है, मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है ॥३९॥ आत्मा तो सैदव शुद्ध एवं मुक्त रहता है, वह कभी भी नहीं बँधता है । बन्ध तथा मोक्ष तो मन में स्थित रहते हैं, मन के शान्त हो जाने पर बन्धन भी समाप्त हो जाता है ॥४०॥

प्रवर्तते ॥४२॥ अविद्येयं महाभाग विद्या चैतन्निवर्तनम् । विद्याविद्ये च विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः ॥४३॥ विनाऽऽतपं हि छायाया ज्ञायते च कथं सुखम् । अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्यां च वेत्ति वै ॥४४॥ गुणा गुणेषु वर्तन्ते भूतानि च तथैव वै । इन्द्रियाणींद्रियार्थेषु को दोषस्तत्र चात्मनः॥४५॥ मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृता वेदेषु सर्वशः । अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ ॥४६॥ धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः। अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम् ॥४७॥ श्रीशुक उवाच– संदेहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित् । भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप ॥४८॥ वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा । कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते ॥४९॥ प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप। पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणं चामिषस्य च ॥५०॥ सौत्रामणौ तथा प्रोक्तः प्रत्यक्षेण सुराग्रहः । द्यूतक्रीडा तथा प्रोक्ता व्रतानि विविधानि च ॥५१॥ श्रूयते स्म पुरा ह्यासीच्छशबिंदुर्नृपोत्तमः । यज्वा धर्मपरो नित्यं वदान्यः सत्यसागरः ॥५२॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता चोत्पथगामिनाम् । यज्ञाश्च विहितास्तेन बहवो भूरिदक्षिणाः ॥५३॥ चर्मणां पर्वतो जातो विंध्याचलसमः पुनः । मेघांबुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती शुभा ॥५४॥ सोऽपि

शत्रु, मित्र तथा उदासीन ये सभी भेद मन के ही होते हैं एकात्मभाव के आ जाने पर भेद की प्रतीति कैसे हो सकती है ॥४१॥ मैं सर्वदा जीव ब्रह्म हूँ, इस विषय में कोई भी विचार नहीं करना चाहिए, भेदबुद्धि तो संसार के व्यवहार में होती है ॥४२॥ हे महाभाग ! भेद की बुद्धि का होना ही अविद्या (अज्ञान) है और विद्या (आत्मैक्यज्ञान) उसकी निवर्तिका है । अतएव विज्ञ पुरुषों को विद्या तथा अविद्या इन दोनों के स्वरूप को जानना चाहिए ॥४३॥ धूप के बिना छाया में प्राप्त होने वाले सुख का ज्ञान कैसे हो सकता है ? उसी तरह अविद्या के बिना विद्या को कैसे कोई जान सकता है ॥४४॥ गुण गुणों में पञ्चभूत पञ्चभूतों में तथा इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द) में रमण करते हैं उसमें आत्मा का क्या दोष हैं ?॥४५॥ वेदों में सबों की रक्षा के लिए व्यवस्था कर दी गयी है, अन्यथा हे अनघ ! बौद्धधर्म के समान सभी धर्मों का नाश हो गया होता ॥४६॥ धर्म के नष्ट होने पर सभी वर्णों के जो आचार हैं वे भी नष्ट हो जायेंगे अतएव वेदप्रतिपादित मार्ग का ही अनुसरण करने में सबों का कल्याण है ॥४७॥ **श्रीशुकदेवजी ने कहा–** हे राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है उसको सुनकर भी मेरे सन्देह बने ही हुए हैं, वे दूर नहीं हो रहे हैं ॥४८॥ हे राजन् ! वेदप्रोक्त धर्मों में हिंसा की प्रधानता है ओर अहिंसा अधर्म बहुल होती है अतएव वेदप्रोक्त धर्म मुक्ति प्रदान करने वाला कैसे हो सकता है ?॥४९॥ हे राजन् ! सोमपान तो प्रत्यक्षतः अनाचार है । उसी तरह पशुओं की हिंसा तथा मांस का भक्षण भी अनाचार ही है ॥५०॥ हे राजन् ! सौत्रामणि याग में तो प्रत्यक्षतः मदिरापान का विधान है । इसी तरह जूआ खेलने तथा अनेक प्रकार के व्रत कहे गये हैं ॥५१॥ सुना जाता है कि शशविन्दु नामक एक उत्तम धार्मिक राजा थे । वे यज्ञ करने वाले धर्म का पालन करने वाले, उदार तथा सत्यवक्ता थे ॥५२॥ वे धर्म की मर्यादा की रक्षा करने वाले तथा कुमार्गगामियों के प्रशासक थे । उन्होंने अनेक

राजा दिवं यातः कीर्तिरस्याचला भुवि । एवं धर्मेषु वेदेषु न मे बुद्धिः प्रवर्तते ॥५५॥ स्त्रीसंगेन सदा भोगे सुखमाप्नोति मानवः । अलाभे दुःखमत्यंतं जीवन्मुक्तः कथं भवेत् ॥५६॥ जनक उवाच– **हिंसा यज्ञेषु प्रत्यक्षा साऽहिंसा परिकीर्तिता । उपाधियोगतो हिंसा नान्यथेति विनिर्णयः ॥५७॥ यथा चेंधनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते । तद्वियोगात्तथा तस्मिन्निर्धूमत्वं विभाति वै ॥५८॥ अहिंसां च तथा बिद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तम । रागिणां साऽपि हिंसैव निःस्पृहाणां न सा मता ॥५९॥ अरागेण च यत्कर्म तथाऽहंकारवर्जितम् । अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदंति मनीषिणः ॥६०॥ गृहस्थानां तु हिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम । अरागेण च यत्कर्म तथाऽहंकारवर्जितम् । साऽहिंसैव महाभाग मुमुक्षूणां जितात्मनाम्॥६१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

ऐसे यज्ञों का अनुष्ठान किया जिसमें बहुत अधिक दक्षिण दी जाती है ॥५३॥ उन यज्ञों में मारे गये पशुओं के चमड़े का पर्वत जैसा ढेर लग गया । पर जब वर्षा हुई तो उससे निकलने वाली नदी का नाम चर्मण्वती हो गया ॥५४॥ वह राजा भी स्वर्ग चला गया तो उसकी कीर्ति अचल हो गयी । इस तरह के धर्मों का प्रवर्तन करने वाले वेदों में मेरी आस्था नहीं होती है ॥५५॥ स्त्री का साथ करके मनुष्य उसके भोग में सुख का अनुभव करता है और स्त्री के नहीं प्राप्त होने पर उसे अत्यन्त कष्ट होता है । ऐसा मनुष्य जीवन्मुक्त कैसे हो सकता है ॥५६॥ **जनकजी ने कहा**– वेदों में जिस हिंसा का प्रतिपादन किया गया है वह हिंसा नहीं अहिंसा ही है । हिंसा वही होती है जो किसी उपाधि वश अथवा राग (आसक्ति) वश की जाती है यही शास्त्रों का निर्णय है ॥५७॥ जैसे आर्द्रेन्धन के संयोग से अग्नि से धूम निकलता है और आर्द्रेन्थन रूपी उपाधि के अभाव में अग्नि निर्धूम रहती है ॥५८॥ हे मुनिसत्तम! यह आप जानें कि वेद जिसका विधान करता है, वह हिंसा अहिंसा ही है, किन्तु यदि कोई रागी मनुष्य उस हिंसा को अपने मनोऽनुकूल रूप से करता है तो वहीं हिंसा हैं, किन्तु निःस्पृह पुरुषों के लिए वह हिंसा नहीं है ॥५९॥ जो कर्म रागरहित होकर तथा अहंकाररहित होकर किए जाते हैं, उसको वेदों के विद्वान् तथा मनीषी पुरुष किए जाने पर भी नहीं किया गया ही बतलाते हैं ॥६०॥ हे द्विजसत्तम ! गृहस्थों के लिए जो हिंसा बतलायी गयी है, वह यदि राग एवं अहंकार रहित होकर की जाती है तो वह जितेन्द्रियों के लिए अहिंसा ही है, हिंसा नहीं ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच– **संदेहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम । मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत् ॥१॥ शास्त्रज्ञानं च संप्राप्य नित्यानित्यविचारणम् । त्यजते न मनो मोहं स कथं मुच्यते नरः ॥२॥ अंतर्गतं तमश्छेत्तुं शास्त्राद्बोधो हि न क्षमः । यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया ॥३॥ अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः । स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा ॥४॥ वित्तैषणा न ते शांता तथा राज्य सुखैषणा । जयैषणा च संग्रामे जीवन्मुक्तः कथं भवेः ॥५॥ चौरेषु चौरबुद्धिस्ते साधुबुद्धिस्तु तापसे । स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वं कथं नृप॥६॥ कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान् वेत्सि शुभाशुभान् । शुभेषु रमते चित्तं नाशुभेषु तथा नृप ॥७॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तव राजन्भवंति हि । अवस्थास्तु यथाकालं तुरीया तु कथं नृप ॥८॥ पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम । स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे ॥९॥ मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा । मालायां च तथा सर्पे समदृक्क्व नृपोत्तम ॥१०॥ विमुक्तस्तु भवेद्राजन्समलोष्ठाश्मकांचनः । एकात्मबुद्धिः सर्वत्र**

शुकदेवजी का विवाह

शुकदवेजी ने कहा– महाराज ! मुझे इस बात का संशय है कि माया के बीच में रहने वाला मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सकता है ?॥१॥ शास्त्रज्ञान प्राप्त करके तथा नित्य पदार्थ एवं अनित्य पदार्थ का विचार करके भी जिस मनुष्य का मन मोह का परित्याग नहीं करता है, वह संसारबंधन से कैसे मुक्त हो सकता है ?॥२॥ केवल शास्त्रजन्य ज्ञान से अज्ञानान्धकार उसी तरह दूर नहीं होता है, जिस तरह केवल दीपक की बात करने से कमरे का अन्धकार दूर नहीं होता है ॥३॥ विद्वानों को चाहिए कि वे कभी भी किसी प्राणी से द्रोह न करें, किन्तु यह एक साधारण गृहस्थ के लिए कैसे सम्भव है ?॥४॥ स्वयम् आपकी न तो धन प्राप्त करने की इच्छा शान्त हुई है, न राज्यसुखप्राप्त करने की इच्छा समाप्त हुई है और न तो संग्राम में विजय प्राप्त करने की इच्छा ही समाप्त हुई है ऐसी स्थिति में आप जीवन्मुक्त कैसे हो सकते हैं ॥५॥ आप चोरों को चोर समझते हैं, तपस्वियों को साधु समझते हैं, आप भी किसी को अपना तथा किसी को पराया समझते हैं; ऐसे में आप विदेह कैसे कहे जा सकते है ॥६॥ हे राजन् ! आपको भी कड़वे, तीक्ष्ण, कषाय तथा खट्टे रस का ज्ञान होता है, आपका अच्छे कामों में मन लगता है तथा बुरे कामों में नहीं लगता है ॥७॥ हे राजन् ! आपकी भी, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाएँ होती ही हैं ऐसी स्थिति में आपकी तुरीयावस्था कैसे हो सकती है ?॥८॥ हे राजन् ! आप अपने को पैदल, घोड़े, रथ तथा हाथियों वाली सेना का स्वामी मानते हैं कि नहीं ?॥९॥ हे राजन् ! आप सदा अच्छी वस्तुओं को खाते हैं फिर भी कभी उदास हो जाते हैं तथा कभी प्रसन्न होते हैं । आप यदि माला तथा

हितकृत्सर्वजंतुषु ॥११॥ न मेऽद्यरमते चित्तं गृहदारादिषु क्वचित् । एकाकी निःस्पृहोऽत्यर्थं चरेयमिति मे मतिः ॥१२॥ निःसंगो निर्ममः शांतः पत्रमूलफलाशनः । मृगवद्विचरिष्यामि निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥१३॥ किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया । विरागमनसः कामं गुणातीतस्य पार्थिव ॥१४॥ चिंत्यसे विविधाकारं नानारागसमाकुलम् । दम्भोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे ॥१५॥ कदाचिच्छत्रुजा चिंता धनजा च कदाचन । कदाचित्सैन्यजा चिंता निश्चिंतोऽसि कदा नृप ॥१६॥ वैखानसा ये मुनयो मिताहारा जितव्रताः । तेऽपि मुह्यंति संसारे जानंतोपि ह्यसत्यताम् ॥१७॥ तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते । कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन ॥१८॥ विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मांधस्तु दिवाकरः । लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम् ॥१९॥ तव वंशोद्भवा ये ये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः । विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते ॥२०॥ निमिनामाऽभवद्राजा पूर्वं तव कुले नृपः । यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठं स्वगुरुं मुनिम् ॥२१॥ निमंत्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः। निमंत्रितोऽस्मि यज्ञार्थं देवेन्द्रेणाधुना किल ॥२२॥ कृत्वा तस्य मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै । तावत्कुरुष्व राजेन्द्र संभारं तु शनैः शनैः ॥२३॥

सर्प को एक समान नहीं मानते हैं तो आप समदर्शी कैसे हैं ?॥१०॥ हे राजन् ! विमुक्त तो वह होता है जो मिट्टी के ढेले और सुवर्ण दोनों को एक समान समझता है, सबों में एकात्मबुद्धि रखता है तथा सभी जीवों का कल्याण करता है ॥११॥ मेरा मन गृह तथा पत्नी आदि में नहीं लगता है, मैं चाहता हूँ कि मैं निःस्पृह होकर विचरण किया करूँ ॥१२॥ मैं सङ्ग से रहित ममता से रहित, शान्तमना, फल मूल का भोजन करने वाला द्वन्द्व तथा परिग्रह से रहित होकर मृग के समान विचरण करना चाहता हूँ ॥१३॥ मेरा मन विरक्त हो गया है मुझे गृह, सम्पत्ति तथा सुन्दर पत्नी से क्या काम है ? मैं तो गुणातीत हूँ ॥१४॥ आप अनेक प्रकार की राग एवं द्वेषयुक्त बातों को सोचते हैं और अपने को जीवन्मुक्त कहते हैं, मुझे यह आपका केवल दम्भ ही प्रतीत होता है ॥१५॥ राजन् ! आपको कभी शत्रु की, कभी धन की, तो कभी सेना की, चिन्ता होती है, ऐसी स्थिति में आप निश्चिन्त कहाँ हैं ?॥१६॥ जो मुनिजन वैखानस हैं मिताहार करते हैं और जितेन्द्रिय हैं, वह संसार की असत्यता को जानकर भी उससे मोहित हो जाते हैं ॥१७॥ राजन् ! आपके वंश में उत्पन्न होने वाले सभी राजा विदेह कहलाते हैं । इसमें तो मुझे कुटिलता ही प्रतीत होती है ॥१८॥ उनसबों का विदेह नाम वैसे ही निरर्थक है जैसे किसी मूर्ख का नाम विद्याधर हो,किसी जन्मांध का नाम दिवाकर हो अथवा किसी दरिद्र का नाम लक्ष्मीधर हो ॥१९॥ आपके वंश में उत्पन्न होने वाले जितने राजा हैं वे नाम से विदेह हैं कर्म से नहीं ॥२०॥ राजन् आपके वंश में पहले निमि नाम के-राजा हुए, उन्होंने यज्ञ करने के लिए महर्षि वसिष्ठ को निमन्त्रित किया । इस पर महर्षि वसिष्ठ ने उनसे कहा कि इस समय मैं इन्द्र से निमन्त्रित हूँ ॥२१-२२॥ मैं उनका यज्ञ पूरा करके तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा । हे राजन्!

इत्युक्त्वा निर्ययौ सोऽथ महेन्द्रयजने मुनिः । निमिरन्यं गुरुं कृत्वा चकार मखमुत्तमम् ॥२४॥ तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः ।
शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुरुलोपक ॥२५॥ राजाऽपि तं शशापाथ तवापि च पतत्वयम् । अन्योन्यशापात्पतितौ तावेतौ च मया श्रुतम् ॥२६॥
विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम् । विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम ॥२७॥ जनक उवाच— **सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या**
किञ्चिदिदं मतम् । तथापि शृणु विप्रेन्द्र गुरुर्मम सुपूजितः ॥२८॥ पितुः सङ्गं परित्यज्य त्वं वनं गन्तुमिच्छसि । मृगैः सह सुसंबंधो भविता ते न
संशयः ॥२९॥ महाभूतानि सर्वत्र निःसङ्गः क्व भविष्यसि । आहारार्थं सदा चिंता निश्चिंतः स्याः कथं मुने ॥३०॥ दण्डाजिनकृता चिंता यथा
तव वनेऽपि च । तथैव राज्यचिंता मे चिन्तयानस्य वा न वा ॥३१॥ विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः । न मे विकल्पसंदेहो निर्विकल्पोऽस्मि
सर्वथा ॥३२॥ सुखं स्वपिमि विप्राहं सुखं भुञ्जामि सर्वथा । न बद्धोऽस्मीति बुद्ध्याऽहं सर्वदैव सुखी मुने ॥३३॥ त्वं तु दुःखी सदैवासि

तब तक आप धीरे-धीरे यज्ञ की तैयारी करें ॥२३॥ इस तरह कहकर महर्षि वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ कराने के लिए चले गये । इस पर राजा ने अपना दूसरा गुरु बनाकर उत्तम यज्ञ कराया ॥२४॥ इस बात को जब महर्षि वसिष्ठ ने सुना तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और राजा को यह शाप दे दिए कि राजन् ! आज ही तुम्हारा शरीरपात हो जाय क्योंकि तुमने गुरु का लोप किया है ॥२५॥ इस पर राजा ने भी महर्षि वसिष्ठ को शाप दे दिया कि तुम्हारा भी शरीरपात हो जाय । इस तरह दोनों के परस्पर शाप से दोनों का शरीरपात हो गया, यह मैंने सुना है ॥२६॥ राजन् बतलाओ विदेह ने भी स्वयं अपने गुरु को शाप क्यों दे दिया यह तो मुझे मनोविनोद के समान् प्रतीत होता है ॥२७॥ **जनकजी ने कहा—** हे विप्रवर्य ! आपने सत्य ही कहा है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है फिर भी मेरे गुरु व्यासजी पूज्य हैं ॥२८॥ आप अपने पिता को छोड़कर वन में चले जाना चाहते हैं । मैं जानता हूँ कि वन में आपका मृगों के साथ सम्बन्ध भी स्थापित हो जायेगा इसमें किसी प्रकार संदेह नहीं है ॥२९॥ किन्तु महाभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश) सब जगह हैं, उनके साथ तो आपका संग हो ही जायेगा । अतएव आप निःसंग कैसे हो जायेंगे । आपको सदा आहार की चिन्ता होती रहेगी अतएव आप निश्चिंत कैसे होंगे ?॥३०॥ जैसे वन में भी आपको दण्ड और मृगचर्म की चिन्ता होगी उसी तरह मुझको भी राज्य में राज्य की चिन्ता होती है; तो दोनों की चिन्ता में क्या अन्तर होगा॥३२॥ भ्रम में पड़कर आप यहाँ इतनी दूर चले आये मुझे विकल्पजन्य किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है, अतएव मैं निर्विकल्प हूँ ॥३२॥ मैं सुखपूर्वक सोता हूँ और सुखपूर्वक भोजन करता हूँ । मैं जानता हूँ कि मैं बद्ध नहीं हूँ इसलिए सुखी हूँ ॥३३॥ हे मुने ! आप तो सदैव इसलिए दुःखी रहते हैं कि आप

बद्धोऽहमिति शङ्कया । इति शङ्कां परित्यज्य सुखी भव समाहितः ॥३४॥ देहोऽयं मम बन्धोऽयं न ममेति च मुक्तता । तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः ॥३५॥ सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शुकः प्रीतमनाऽभवत् । आपृच्छ्य तं जगामाशु व्यासस्याश्रममुत्तमम् ॥३६॥ आगच्छन्तं सुतं दृष्ट्वा व्यासोऽपि सुखमाप्तवान् । आलिंग्याघ्राय मूर्धानं पप्रच्छ कुशलं पुनः ॥३७॥ स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः। वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ॥३८॥ जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः । स निर्वृतिं परां प्राप्य पितुराश्रमसंस्थितः ॥३९॥ पितृणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुन्दरी । शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि ॥४०॥ स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि । कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा ॥४१॥ कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्य व्यासपुत्रः प्रातापवान् । ददौ विभ्राजपुत्राय त्वणुहाय महात्मने ॥४२॥ अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् । ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः ॥४३॥ कालेन कियता तत्र नारदस्योपदेशतः । ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम् ॥४४॥ पुत्रे राज्यं निधायाथ गतो बदरिकाश्रमम् । मायाबीजोपदेशेन तस्य ज्ञानं निरर्गलम् ॥४५॥ नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो**

सोचते हैं कि मैं बद्ध हूँ । आप अपने बद्ध होने की शंका को अपने मन से निकाल दें और सुखी हो जायँ ॥३४॥ यह मेरा देह है, यह मेरा बन्धन नहीं है, इस प्रकार का विचार करना ही मुक्तता कहलाती है । उसी तरह धन, राज्य, गृह मेरे नहीं है, इस प्रकार का निश्चय होने से मैं जीवन्मुक्त हूँ ॥३६॥ **सूतजी ने कहा–** महाराज जनक की उस वाणी को सुनकर शुकदेवजी प्रसन्न हो गये । और महाराज जनक की आज्ञा लेकर वे व्यासजी के आश्रम में चले गये॥३६॥ आते हुए पुत्र को देखकर व्यासजी भी सुखी हो गये । उन्होंने शुकदेवजी का आलिंगन किया तथा उनके शिर को सूंघा और उनसे कुशल पूछा॥३७॥ वेदाध्ययन से सम्पन्न तथा सभी शास्त्रों के ज्ञाता शुकदेवजी समाहित होकर अपने पिता के ही मनोहर आश्रम में रह गये ॥३८॥ राज्य में रहने वाले जनकजी की दशा को देखकर वे अपने पिता के ही आश्रम में रहते हुए अत्यन्त शान्ति प्राप्त किए ॥३९॥ शुकदेवजी ने पितरों की पीवरी नाम की सुन्दर कन्या को अपना पत्नी बनाया । जब कि वे योगमार्ग में स्थित थे ॥४०॥ उन्होंने अपनी उस पत्नी में कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि तथा देवश्रुत नामक चार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४१॥ उन्होंने अपनी कीर्ति नाम की पुत्री को उत्पन्न करके उसका विवाह विभ्राज के पुत्र अणुह के साथ कर दिया ॥४२॥ अणुह के प्रतापी पुत्र ब्रह्मदत्त हुए । शुकदेवजी की पुत्री में उत्पन्न राजा ब्रह्मदत्त भी ब्रह्मज्ञानी थे ॥४३॥ कुछ समय बाद नारदजी की कृपा से ब्रह्मदत्त को परंतत्त्व और योगमार्ग का ज्ञान हो गया ॥४४॥ वे अपने पुत्र को राज्य सौंप कर बदरिकाश्रम चले गये । माया बीज का उपदेश प्राप्त होने से उन्हें उत्तमज्ञान प्राप्त हो गया था ॥४५॥ नारदजी की कृपा से उन्हें मुक्ति प्रदान करने वाला ज्ञान प्राप्त हो गया । शुकदेवजी भी अपने पिताजी के संग

विमुक्तिदम् । कैलासशिखरे रम्ये त्यक्त्वा संगं पितुः शुकः ॥४६॥ ध्यानमास्थाय विपुलं स्थितः संगपराङ्मुखः । उत्पपात गिरेः शृंगात्सिद्धिं च परमां गतः ॥४७॥ आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः । गिरेः शृङ्गं द्विधा जातं शुकस्योत्पतने तदा ॥४८॥ उत्पाता बहवो जाताः शुकश्चाकाशगोऽभवत् । अन्तरिक्षे यथा वायुः स्तूयमानः सुरर्षिभिः ॥४९॥ तेजसाऽतिविराजन्वै द्वितीय इव भास्करः । व्यासस्तु विरहाक्रांतः क्रंदन्पुत्रेति चासकृत् ॥५०॥ गिरेः शृंगे गतस्तत्र शुको यत्र स्थितोऽभवत् । क्रंदमानं तदा दीनं व्यासं मत्वा श्रमाकुलम् ॥५१॥ सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्दमदात्तदा । तत्राद्यापि गिरेः शृंगे प्रतिशब्दः स्फुटोऽभवत् ॥५२॥ रुदंतं तं समालक्ष्य व्यासं शोकसमन्वितम् । पुत्र पुत्रेति भाषंतं विरहेण परिप्लुतम् ॥५३॥ शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत् । व्यास शोकं मा कुरु त्वं पुत्रस्ते योगवित्तमः ॥५४॥ परमां गतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः । तस्य शोको न कर्तव्यस्त्वया शोकं विजानता ॥५५॥ कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चानघ । व्यास उवाच– **न शोको याति देवेश किं करोमि जगत्पते ॥५६॥ अतृप्ते लोचने मेऽद्य पुत्रदर्शनलालसे ।** महादेव उवाच– **छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनोहराम् ॥५७॥**

का परित्याग करके कैलास पर्वत के मनोहर शिखर पर जाकर ध्यानस्थ होकर संग का परित्याग कर दिए । और परमासिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त करके उस पर्वत के शिखर से उड़कर आकाश में चले गये ॥४७॥ आकाश में जाकर महातेजस्वी शुकदेवजी सूर्य के समान सुशोभित हुए । शुकदेवजी के उड़ने के समय पर्वत का शिखर दो भागों में विभक्त हो गया ॥४८॥ अनेक प्रकार के उत्पात हुए तथा शुकदेवजी आकाश में स्थित हो गये । अन्तरिक्ष में स्थित शुकदेवजी को देखकर देवताओं तथा ऋषियों ने उनकी स्तुति की ॥४९॥ अत्यधिक तेज से सुशोभित दूसरे सूर्य के समान व्यासजी हा पुत्र ! हा पुत्र कहकर रोने लगे ॥५०॥ वे उस पर्वत के शिखर पर गये जहाँ पर शुकदेवजी थे, रोते हुए दीन तथा श्रम से व्याकुल व्यासजी को देखकर सभी प्राणियों में साक्षी रूप से विद्यमान शुकदेवजी ने उनका प्रतिशब्द (प्रति ध्वनि) के रूप में उन्हें उत्तर दिया । आज भी उस पर्वत शिखर पर वह प्रतिध्वनि सुनायी देती है॥५२॥ विरह से व्याकुल, बार-बार हा पुत्र कहने वाले शोकसमन्वित तथा रोते हुए व्यासजी को देखकर वहाँ शिवजी आकर व्यासजी से कहे कि व्यासजी शोक मत कीजिये, आपका पुत्र योगियों में अग्रगण्य है ॥५३-५४॥ जिसे अज्ञानी जीव नहीं प्राप्त कर सकते हैं उस गति को आपके पुत्र ने प्राप्त किया है । आप ज्ञानी हैं अतएव आपको उसके विषय में शोक नहीं करना चाहिए ॥५५॥ हे अनघ ! उस पुत्र के द्वारा आपकी कीर्ति विमल हो गयी । **व्यासजी ने कहा–** हे देवेश ! हे जगत्पते !. मेरा शोक समाप्त नहीं होता है ॥५६॥ पुत्र के दर्शन की लालसा के कारण मेरे नेत्र अतृप्त हो गये हैं । महादेवजी

तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल शोकं जहि परंतप । सूत उवाच– **तदा ददर्श व्यासस्तु छायां पुत्रस्य सुप्रभाम् ॥५८॥ दत्त्वा वरं हरस्तस्मै तत्रैवांतरधीयत। अन्तर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात् ॥५९॥ शुकस्य विरहेणापि तप्तः परमदुःखितः ॥६०॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः । किं चकार ततो व्यासस्तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ॥१॥** सूत उवाच– **शिष्या व्यासस्य येऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः । आज्ञामादाय ते सर्वे गताः पूर्वं महीतले ॥२॥ असितो देवलश्चैव वैशम्पायन एव च । जैमिनिश्च सुमंतुश्च गताः सर्वे तपोधनाः ॥३॥ तानेतान्वीक्ष्य पुत्रं च लोकांतरितमप्युत । व्यासः शोकसमाक्रांतो गमनायाकरोन्मतिम् ॥४॥ सस्मार मनसा व्यासस्तां निषादसुतां**

ने वरदान दिया कि तुम अपने बगल में अपने पुत्र की मनोहर छाया को देखते रहोगे ॥५७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस छाया को देखकर आप अपना शोक त्याग दें । **सूतजी ने कहा–** उस समय व्यासजी ने अपने पुत्र की सुन्दर प्रभा से युक्त छाया को देखा ॥५८॥ व्यासजी को वरदान देकर शंकरजी अन्तर्धान हो गये। शंकरजी के अन्तर्धान हो जाने पर व्यासजी अपने आश्रम में आ गये ।

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

व्यासजी के कृत्यों का वर्णन

ऋषियों ने पूछा– हे सूतजी ! देवश्रेष्ठ शुकदेवजी की मुक्ति हो जाने पर व्यासजी ने क्या किया ? उसे आप विस्तार पूर्वक बतलाएँ ॥१॥ **सूतजी ने बतलाया–** व्यासजी के जो शिष्य उनसे वेदाभ्यास कर रहे थे वे उनसे आज्ञा लेकर पृथिवी पर आये ॥२॥ असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु ये सभी तपस्वी पृथिवी पर चले गये ॥३॥ इन सभी शिष्यों के पृथिवी पर गये हुए तथा अपने पुत्र शुकदेवजी के लोकान्तर में गये हुए देखकर व्यासजी ने अन्यत्र जाने का निश्चय किया; क्योंकि वे शोक से संतप्त थे ॥४॥ व्यासजी ने मन से अपनी माता तथा निषादराज की पुत्री जिनको व्यासजी गंगा के तट पर छोड़

शुभाम् । मातरं जाह्नवीतीरे मुक्तां शोकसमन्विताम् ।।५।। स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम् । आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः ।।६।। द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क्व गता सा वरानना । निषादास्तं समाचख्युर्दत्ता राज्ञे तु कन्यका ।।७।। दाशंराजोऽपि संपूज्य व्यासं प्रीतिपुरःसरम् । स्वागतेनाभिसत्कृत्य प्रोवाच विहितांजलिः ।।८।। दाशराज उवाच– **अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने । देवानामपि दुर्दर्शं यज्जातं तव दर्शनम् ।।९।। यदर्थमागतोऽसि त्वं तद्ब्रूहि द्विजसत्तम । अपि दारा धनं पुत्रास्त्वदायत्तमिदं विभो ।।१०।। सरस्वत्यास्तटे रम्ये चाकराश्रममंडलम् । व्यासस्तपःसमायुक्तस्तत्रैवास समाहितः ।।११।। सत्यवत्याः सुतौ जातौ शंतनोरमितद्युतेः । मत्वा तौ भ्रातरौ व्यासः सुखमाप वने स्थितः ।।१२।। चित्रांगदः प्रथमजो रूपावाञ्छत्रुतापनः । बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ।।१३।। विचित्रवीर्यनामाऽसौ द्वितीयः समजायत। सोऽपि सर्वगुणोपेतः शंतनोः सुखवर्धनः ।।१४।। गांगेयः प्रथमस्तस्य महावीरो बलाधिकः । तथैव तौ सुतौ जातौ सत्यवत्यां महाबलौ।।१५।। शंतनुस्तान्सुतान्वीक्ष्य सर्वलक्षणसंयुतान् । अमंस्ताजय्यमात्मानं देवादीनां महामनाः ।।१६।। अथ कालेन कियता शंतनुः कालपर्ययात्। तत्याज देहं धर्मात्मा देही जीर्णमिवांबरम् ।।१७।। कालधर्मगते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः । प्रेतकार्याणि सर्वाणि दानानि विविधानि च ।।१८।।**

कर चले आये थे उनको मन से स्मरण किया ।।५।। माता सत्यवती का स्मरण करके व्यासजी ने उस उत्तम पर्वत को छोड़ दिया और वे अपने जन्म स्थान में आये ।।६।। उस द्वीप में आकर उन्होंने पूछा कि वे कहाँ गयीं ? तो निषादों ने बतलाया कि उनका विवाह राजा से हो गया ।।७।। दाशराज ने भी प्रेमपूर्वक व्यासजी की पूजा की । उनका स्वागत पूर्वक सत्कार करके दाशराज ने हाथ जोड़कर कहा ।।८।। **दाशराज ने कहा–** हे मुने ! आज हमारा जन्म तथा कुल पवित्र हो गया क्योंकि देवताओं को भी दुर्लभ आपका दर्शन मुझे मिल गया ।।९।। आप जिस कार्य के लिए आये हों वह मुझे बतलाइये। हे विभो ! मेरी स्त्री, पुत्र, धन सब कुछ आपके अधीन हैं ।।१०।। व्यासजी ने सरस्वती नदी के तट पर अपना आश्रम बनाया और वहीं समाहित चित्त से तपस्या करने लगे ।।११।। वहाँ पर उन्होंने सुना कि राजा शन्तनु के वीर्य से तथा सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं । उन दोनों को भाई मानकर व्यासजी प्रसन्न हुए ।।१२।। उनमें बड़े पुत्र का नाम चित्रांगद था वह रूपवान् तथा शत्रुओं को संतप्त करने वाला था । वह राजा के सभी लक्षणों से सम्पन्न था ।।१३।। शन्तनु के दूसरे पुत्र का नाम विचित्रवीर्य था और वह भी सभी गुणों से सम्पन्न था ।।१४।। शन्तनु के बड़े पुत्र भीष्म गंगाजी से उत्पन्न थे तथा वे अत्यन्त बलवान् थे । उसी तरह सत्यवती के भी दोनों पुत्र अत्यन्त बलवान् हुए ।।१५।। महामना शन्तनु अपने इन तीनों पुत्रों को देखकर यह मानते थे कि उन्हें देवता भी नहीं परास्त कर सकते हैं ।।१६।। कुछ समय पश्चात् राजा शन्तनु ने उसी तरह अपने शरीर का सुखपूर्वक त्याग किया जैसे कोई व्यक्ति

चित्रांगदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान् । स्वयं न कृतवान् राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत् ॥१९॥ चित्रांगदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः । बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः ॥२०॥ अथैकदा महाबाहुः सैन्येन महताऽऽवृतः । प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान् रुरून् ॥२१॥ चित्रांगदस्तु गंधर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम् । उत्ततारान्तिकं भूमेर्विमानवरमास्थितः ॥२२॥ तत्राभूच्च महद्युद्धं तयोः सदृशवीर्ययोः । कुरुक्षेत्रे महास्थाने त्रीणि वर्षाणि तापसाः ॥२३॥ इन्द्रलोकमवापाशु गंधर्वेण हतो रणे । भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदैहिकं तदा ॥२४॥ गांगेयः कृतशोकस्तु मन्त्रिभिः परिवारितः । विचित्रवीर्यनामानं राज्येशं च चकार ह ॥२५॥ मन्त्रिभिर्बोधिता पश्चाद्गुरुभिश्च महात्मभिः । स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहताऽपि च ॥२६॥ सत्यवत्यतिसंतुष्टा बभूव वरवर्णिनी । व्यासोऽपि भ्रातरं श्रुत्वा राजानं मुदितोऽभवत् ॥२७॥ यौवनं परमं प्राप्तः सत्यवत्याः सुतः शुभः । चकार चिंतां भीष्मोऽपि विवाहार्थं कनीयसः ॥२८॥ काशिराजसुतास्तिस्रः सर्वलक्षणसंयुताः । तेन राज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्च स्वयम्वरे ॥२९॥ राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः । इच्छास्वयम्वरार्थं वै पूज्यमानाः समागताः ॥३०॥ तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै । निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान् ॥३१॥ स जित्वा पार्थिवान्सर्वांस्ताश्चादाय महारथः । बाहुवीर्येण तेजस्वी

अपना पुरानावस्त्र त्याग देता है ॥१७॥ राजा की मृत्यु हो जाने पर भीष्म ने विधिपूर्वक उनके समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाओं को सम्पन्न किया और अनेक प्रकार का दान किया ॥१८॥ उसके बाद उन्होंने चित्रांगद को राजा बनाया । उन्होंने चूकि स्वयं राज्य नहीं किया अतएव उनका नाम देवव्रत हुआ ॥१९॥ अत्यधिक बलवान् होने के कारण चित्रांगद मदमत्त और शत्रुओं के लिए दुःखद थे । वे सत्यवती के पवित्र पुत्र अत्यधिक बलवान् वीर थे ॥२०॥ एक बार राजा चित्रांगद विशाल सेना लेकर वन में रुरु मृगों को देखते हुए वन में विचरण कर रहे थे ॥२१॥ उसी समय चित्रांगद नामक गन्धर्व पृथिवी पर चलते हुए उन्हें देखा तो वह उनके सन्निकट ही विमान से पृथिवी पर उतरा ॥२२॥ हे तपस्वियों ! उन दोनों समान बल वालों में घोर युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ और वह युद्ध तीन वर्षों तक चलता रहा ॥२३॥ अन्त में राजा चित्रांगद गन्धर्व चित्रांगद के द्वारा मारे गये और इन्द्र के लोक में चले गये । इस बात को जब भीष्म ने सुना तो उन्होंने चित्रांगद की और्ध्वदैहिक क्रिया की ॥२४॥ मन्त्रियों से धिरे हुए गंगापुत्र भीष्म शोकसंतप्त थे और उन्होंने विचित्रवीर्य को राजा बनाया॥२५॥ पुत्र के शोक से संतप्त सत्यवती मन्त्रियों के द्वारा सान्त्वना दिए जाने पर तथा अपने पुत्र को राजा बने देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो गयीं । व्यास जी ने भी जब सुना कि उनका भाई राजा हुआ है तो वे प्रसन्न हुए ॥२७॥ सत्यवती के पुत्र विचित्रवीर्य जब युवक हुए तो भीष्म उनके विवाह के विषय में सोचने लगे ॥२८॥ सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न काशिराज की तीन पुत्रियाँ थीं । काशिराज ने उन सबों के विवाह के लिए स्वयम्बर का आयोजन किया ॥२९॥ इच्छानुसार स्वयम्बर के लिए हजारों राजा बुलाये गये थे ॥३०॥ वहाँ पर महातेजस्वी भीष्म ने एक ही रथ से जाकर उन सभी राजाओं

ह्याससाद गजाह्वयम् ॥३२॥ मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीवच्चिंतयन्किल । तिस्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः ॥३३॥ सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः । दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यपृच्छच्छुभं दिनम् ॥३४॥ कृत्वा विवाहसंभारं यदा वै भ्रातरं निजम् । विचित्रवीर्यं धर्मिष्ठं विवाहयति ता यदा ॥३५॥ तदा ज्येष्ठाऽप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम् । लज्जमानाऽसितापांगी तिसृणां चारुलोचना ॥३६॥ गङ्गापुत्र कुरुश्रेष्ठ धर्मज्ञ कुलदीपक । मया स्वयम्वरे शाल्वो वृतोऽस्ति मनसा नृपः ॥३७॥ वृताऽहं तेन राज्ञा वै चित्ते प्रेमसमाकुले । यथायोग्यं कुरुष्वाद्य कुलस्यास्य परंतप ॥३८॥ तेनाहं वृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः । बलवानसि गांगेय यथेच्छसि तथा कुरु ॥३९॥ सूत उवाच– एवमुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनंदनः । अपृच्छद्ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा ॥४०॥ सर्वेषां मतमाज्ञाय गांगेयो धर्मवित्तमः । गच्छेति कन्यकां प्राह यथारुचि वरानने ॥४१॥ विसर्जिताऽथ सा तेन गता शाल्वनिकेतनम् । उवाच तं वरारोहा राजानं मनसेप्सितम् ॥४२॥ विनिर्मुक्ताऽस्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः । आगताऽस्मि महाराज गृहाणाद्य करं मम ॥४३॥ धर्मपत्नी तवात्यंतं भवामि नृपसत्तम । चिंतितोऽसि मया पूर्वं त्वयाऽहं

को परास्त करके उन तीनों का हरण कर लिया ॥३१॥ सभी राजाओं को पराजित करके उन तीनों को लेकर बाहुबल से सम्पन्न महातेजस्वी भीष्म हस्तिनापुर आये ॥३२॥ तीनों कन्याओं को माता के समान, बहन के समान तथा पुत्री के समान मानते हुए भीष्म उन सबों का सम्मान करते थे ॥३३॥ वे तीनों को लाकर भीष्म ने माता सत्यवती को सौंप दिया और शीघ्र ही वेदज्ञ ज्योतिषी से शुभदिन के विषय में पूछा । उन्होंने विवाह की सारी तैयारी की । वे अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य से उन सबों का विवाह कर देना चाहते थे ॥३५॥ उसी समय तीनों कन्याओं में सबसे सुन्दर जो बड़ी कन्या थी वह लज्जित होती हुई भीष्मजी से कही ॥३६॥ हे गंगापुत्र ! आप कुरुओं में श्रेष्ठ हैं । आप धर्म के जानकार तथा अपने कुल के दीपक (प्रकाशक) हैं । हे राजन्! मैंने अपने मन से स्वयम्बर में शाल्व को चुना है ।॥३७॥ उस राजा ने भी प्रेमपूर्वक अपने हृदय में मुझे अपनी पत्नी समझ लिया है । अतएव आप अपने वंश के अनुसार जो उचित हो वही करें ॥३८॥ शाल्व ने मेरा पहले ही वरण कर लिया है । आप धर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं । आप बलवान हैं, अतएव जैसा चाहें वैसा करें ॥३९॥ **सूतजी ने कहा–** उस कन्या के द्वारा इस तरह कहे जाने पर भीष्म ने बृद्ध बाह्मणों, अपनी माता सत्यवती तथा मन्त्रियों से पूछा॥४०॥ सबों का मत जानकर गंगापुत्र भीष्म ने उस कन्या से कहा कि तुम जिसके पास जाना चाहो अपनी इच्छानुसार जा सकती हो ॥४१॥ भीष्म के द्वारा छोड़ दिए जाने पर वह शाल्व के घर गयी और अपने अभीष्ट राजा शाल्व से उसने कहा ॥४२॥ महाराज ! मुझे आप पर आसक्त जानकर धर्मज्ञ भीष्म ने मुझे छोड़ दिया हैं; मैं आपके पास आयी हूँ, आप मेरा पाणिग्रहण करें ॥४३॥ हे श्रेष्ठ राजन् ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ । मैंने पहले ही आपको अपने पति के रूप

नात्र संशयः ।।४४।। शाल्व उवाच– **गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम । रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्ये करं तव ।।४५।। परोच्छिष्टां च कः कन्यां गृहणाति मतिमान्नरः । अतोऽहं न ग्रहीष्यामि त्यक्तां भीष्मेण मातृवत् ।।४६।। रुदती विलपंती सा त्यक्ता तेन महात्मना । पुनर्भीष्मं समागत्य रुदती चेदमब्रवीत् ।।४७।। शाल्वो मुक्तां त्वया वीर न गृहणाति गृहाण माम् । धर्मज्ञोऽसि महाभाग मरिष्याम्यन्था ह्यहम् ।।४८।।** भीष्म उवाच– **अन्यचित्तां कथं त्वां वै गृहणामि वरवार्णिनि । पितरं त्वं वरारोहे व्रज शीघ्रं निराकुला ।।४९।। तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव हि । तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने ।।५०।। द्वे भार्ये चातिरूपाढ्ये तस्य राज्ञो बभूवतुः । अम्बालिका चांबिका च काशिराजसुते शुभे ।।५१।। राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः । रेमे नानाविहारैश्च गृहे चोपवने तथा ।।५२।। वर्षाणि नव राजेन्द्रः कुर्वन् क्रीडां मनोरमाम् । प्रापासौ मरणं भूयो गृहीतो राजयक्ष्मणा ।।५३।। मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ता जाता सत्यवती तदा । कारयामास पुत्रस्य प्रेतकार्याणि मंत्रिभिः ।।५४।। भीष्ममाह तदैकांते वचनं चातिदुःखिता । राज्यं कुरु महाभाग पितुस्ते शंतनोः सुत ।।५५।। भ्रातुर्भार्यां गृहाण त्वं वंशं च परिरक्षय । यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत ।।५६।।** भीष्म उवाच– **प्रतिज्ञा मे श्रुता मातः पित्रर्थे या मया कृता । नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम्।।५७।।**

से मान लिया है ।।४४।। **शाल्व ने कहा–** हे वरारोहे ! मेरे सामने ही भीष्म ने पकड़कर तुम्हें अपने रथ पर बैठाया था अतएव मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता हूँ ।।४५।। कौन ऐसा बुद्धिमान है जो दूसरे के द्वारा गृहीत कन्या का ग्रहण करेगा । अतएव तुम माता के समान हो ? भीष्म ने तुम्हारा परित्याग किया है ।।४६।। इस तरह शाल्व के द्वारा परित्याग कर दिए जाने पर वह रोती विलपती हुई फिर भीष्म के पास आयी और कहने लगी ।।४७।। हे वीर! आपके द्वारा परित्यक्त होने के कारण शाल्व मुझे पत्नी के रूप में नहीं स्वीकार करता है, अतएव आप मेरे साथ विवाह कर लें । हे महाभाग ! आप धर्म के जानकार हैं, यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो मैं अपनी जान दे दूँगी ।।४८।। **भीष्म ने कहा–** सुन्दरि ! तुम्हारा मन दूसरे में लगा है, अतएव मैं तुम्हें कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ? हे वरारोहे ! तुम शीघ्र ही अपने पिता के पास चली जाओ ।।४९।। भीष्म के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वह वन में चली गयी और एकान्तस्थान में रहकर परमपावन तीर्थ में तपस्या करने लगी ।।५०।। राजा विचित्रवीर्य की अत्यन्त सुन्दरी दो स्त्रियाँ थी । वे दोनों काशिराज की पुत्रियाँ थी और उनका नाम अम्बिका और अम्बालिका था ।।५१।। राजा विचित्रवीर्य उन दोनों पत्नियों के साथ गृह में तथा उपवनों में अनेक प्रकार का विहार करते थे।।५२।। वे राजा नव वर्षों तक अनेक प्रकार की मनोरम क्रीडाओं को करते हुए राजयक्ष्मा के रोगी होकर मर गये ।।५३।। पुत्र के मर जाने के बाद सत्यवती अत्यन्त दुःखी हुईं और मन्त्रियों के द्वारा उन्होंने अपने पुत्र का प्रेतकार्य करवाया ।।५४।। अत्यन्त दुःखी सत्यवती ने एकान्त में **भीष्म से कहा–** हे महाराज शन्तनु

तदा चिंतातुरा जाता कथं वंशो भवेदिति । नालसाद्धि सुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके ।।५८।। गांगेयस्तामुवाचेदं मा चिंतां कुरु भामिनि । पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजं चोपपादय ।।५९।। कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय । नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल।।६०।। पौत्रं चैव समुत्पाद्य राज्यं देहि शुचिस्मिते । अहं च पालयिष्यामि तस्य शासनमेव हि ।।६१।। तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कानीनं स्वसुतं मुनिम् । जगाम मनसा व्यासं द्वैपायनमकल्मषम् ।।६२।। स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः । कृत्वा प्रणामं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः ।।६३।। भीष्मेण पूजितः कामं सत्यवत्या च मानितः । तस्थौ तत्र महातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः ।।६४।। तमुवाच मुनिं माता पुत्रमुत्पादयाधुना । क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुन्दरं तव वीर्यजम् ।।६५।। व्यासः श्रुत्वा वचो मातुराप्तवाक्यममन्यत । ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिंतयत् ।।६६।। अम्बिका च यदा स्नाता नारी ऋतुमती तदा । सङ्गं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतान्धं महाबलम् ।।६७।। जन्मांधं च सुतं वीक्ष्य दुःखिता सत्यवत्यपि । द्वितीयां च बधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै ।।६८।। ऋतुकालेऽथ संप्राप्ते व्यासेन सह सङ्गता । तथा चांबालिका रात्रौ गर्भं नारी दधार सा ।।६९।। सोऽपि पांडुः सुतो

के पुत्र ! तुम राज्य करों ।।५५।। तुम अपने भाइयों की पत्नियों को अपना लो और वंश की रक्षा करो । ऐसा करने से ययाति का वंश नष्ट नहीं होगा।।५६।। **भीष्म ने कहा–** माँ मैंने अपने पिताजी के समक्ष जो प्रतिज्ञा की थी कि न तो मैं राज्य करूँगा और न तो विवाह करूँगा ।।५७।। यह सुनकर सत्यवती चिन्तित हो गयीं कि वंश कैसे चलेगा ? राजसिंहासन पर किसी राजा के न होने की स्थिति में यदि मैंने थोड़ा सा भी आलस्य किया तो राज्य में अराजकता फैल जायेगी । उससे मुझे अपार कष्ट होगा ।।५८।। भीष्मजी ने सत्यवती से कहा आप चिन्ता न करें, विचित्रवीर्य की पत्नी में आप पुत्र उत्पन्न करायें ।।५९।। किसी कुलीन ब्राह्मण को बुलाकर अपनी बधू के साथ सम्बन्ध करायें । ऐसा करने में कोई दोष इसलिए नहीं है कि कुल की रक्षा करने के लिए वेद में यह विधि बतलायी गयी है ।।६०।। हे शुचिस्मिते ! आप अपने पौत्र को उत्पन्न कराकर उसे राज्य दे दें । मैं उसकी आज्ञा का पालन करूँगा ।।६१।। भीष्मजी की बातों को सुनकर सत्यवती ने अपने कानीन एवं निर्दोष पुत्र व्यासजी का मन से स्मरण किया ।।६२।। स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी आ गये । उन्होंने अपनी माता को प्रणाम किया और बैठ गये ।।६३।। भीष्मजी ने व्यासजी का सम्मान किया और सत्यवती ने उनका समादर किया । इसके पश्चात् धूमरहित अग्नि के समान देदीप्यमान व्यासजी राजभवन में ही रुक गये ।।६४।। एकदिन उनकी माता सत्यवती ने उनसे एकान्त में कहा कि तुम विचित्र वीर्य के क्षेत्र में सुन्दर पुत्र को अपने वीर्य से उत्पन्न करो ।।६५।। अपनी माता की बात को सुनकर व्यासजी ने उसे आप्तवचन माना और ऋतुकाल की प्रतीक्षा करने लगे ।।६६।। जब अम्बिका ने ऋतुस्नान किया तो उसका संग करके व्यासजी ने उसमें अन्धे पुत्र को उत्पन्न किया । जन्मान्ध पुत्र को देखकर सत्यवती दुःखी हुईं । उन्होंने अपनी दूसरी बधू से कहा कि तुम शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो ।।६८।। ऋतुकाल आने पर उसने व्यासजी के साथ सहगमन किया और उससे

जातो राज्ययोग्यो न सम्मतः । पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षान्ते च पुनर्वधूम् ॥७०॥ आहूय च ततो व्यासं संप्रार्थ्य मुनिसत्तमम् । प्रेषयामास रात्रौ सा शयनागारमुत्तमम् ॥७१॥ न गता च वधूस्तत्र प्रेष्या संप्रेषिता तया । तस्यां च विदुरो जातो दास्यां धर्मांशतः शुभः ॥७२॥ एवं व्यासेन ते पुत्रा धृतराष्ट्रादयस्त्रयः । उत्पादिता महावीरा वंशरक्षणहेतवे ॥७३॥ एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम् । व्यासेन रक्षितो वंशो भ्रातृधर्मविदाऽनघाः॥७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

वेदाष्टेन्दुक्षितिमितैः (११८४) सार्धश्लोकैः सविस्तरम् । देवीभागवतस्यास्य प्रथमस्कन्ध ईरितः ॥१॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमः स्कन्धः ॥

◆

अम्बालिका ने गर्भ धारण किया ॥६९॥ किन्तु वह भी पुत्र पाण्डुरोग से ग्रस्त था अतएव राज्य के योग्य नहीं था । वर्ष के बीत जाने पर सत्यवती ने पुनः अपनी बधू को पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रेरित किया ॥७०॥ व्यासजी को बुलाकर उन्होंने उनसे प्रार्थना किया और उन्हें उत्तम शयनागार में भेजा। किन्तु वहाँ उनकी बधू नहीं गयी उसने व्यासजी के पास अपनी दासी को भेज दिया । उस दासी के पुत्र के रूप में धर्मराज के अंश से विदुरजी उत्पन्न हुए ॥७२॥ इसतरह वंश की रक्षा करने के लिए व्यासजी के द्वारा महाबलवान् तीन पुत्र उत्पन्न किए गये ॥७३॥ हे धर्म के जानकार मुनिजनों ! इस तरह से मैंने वंश की उत्पत्ति को आपलोगों को सुनाया और बतलाया कि व्यासजी ने वंश की रक्षा की ॥७४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

इसतरह प्रथम स्कन्ध में कुल एक हजार एक सौ चौरासी श्लोक वर्णित हैं ।

इस तरह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

◆

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

द्वितीयः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

ऋषयः ऊचुः– **आश्चर्यकरमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम् । संदेहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम् ॥१॥ माता व्यासस्य मेधाविन्नाम्ना सत्यवतीति च । विवाहिता पुरा ज्ञाता राजा शंतनुना यथा ॥२॥ तस्याः पुत्रः कथं व्यासः सती स्वभवने स्थिता । ईदृशी सा कथं राज्ञा पुनः शंतनुना वृता ॥३॥ तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत । विस्तरेण महाभाग कथां परमपावनीम् ॥४॥ उत्पत्तिं वद व्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः । श्रोतुकामाः पुनः सर्वे ऋषयः संशितव्रताः ॥५॥** सूत उवाच– **प्रणम्य परमां शक्तिं चतुर्वर्गप्रदायिनीम् । आदिशक्तिं वदिष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥६॥ यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती । व्याजेनापि हि बीजस्य वाग्भवस्य विशेषतः ॥७॥ सम्यक्सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थसिद्धये । स्मर्तव्या सर्वथा देवी वांछितार्थप्रदायिनी ॥८॥ राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसंगरः । चेदिदेशपतिः श्रीमान्बभूव द्विजपूजकः॥९॥ तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम् । दत्तमिंद्रेण तत्तस्मै सुन्दरं प्रियकाम्यया ॥१०॥ तेनारूढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः । न**

मत्स्य तथा मत्स्यगन्धा का जन्म वृत्तान्त

ऋषियों ने कहा– हे सूतजी ! आपने नियोग के द्वारा गर्भ की बात बतलाकर हमलोगों को आश्चर्यित कर दिया है । इस विषय में हम तपस्वियों को अत्यन्त सन्देह है ॥१॥ हे मेघाविन् ! व्यासजी की माता सत्यवती को पहले से ही विवाहित जानकर महाराज शन्तनु ने उनके साथ कैसे विवाह कर लिया?॥२॥ और अपने पिता के भवन में रहती हुई सत्यवती ने पुत्र कैसे उत्पन्न किया ऐसा होने पर भी शन्तनु के द्वारा वे कैसे विवाहित हुईं ॥३॥ हे सुव्रत ! आप इस अत्यन्त पवित्र कथा को बतलाएँ कि उनके दो पुत्र कैसे हुए ? इसे आप विस्तार पूर्वक बतलाएँ ॥४॥ व्रत करने वाले ये सभी महर्षि जानना चाहते हैं कि सत्यवती तथा व्यासजी के जन्म कैसे हुए ॥५॥ **सूतजी ने कहा**– चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली परमा शक्ति आदि शक्ति को प्रणाम करके मैं आप लोगों को परम पवित्र पुराण की कथा सुनाता हूँ ॥६॥ विशेष रूप से वाग्बीज का किसी बहाने से भी उच्चारण करने मात्र से शाश्वतिक सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥७॥ उस सभी अभिलषित अर्थों को प्रदान करने वाली भगवती का सब लोगों को अपनी कामना की पूर्ति के लिए सब तरह से स्मरण करना चाहिए ॥॥८॥ ब्राह्मणों की पूजा करने वाला उपरिचर नाम का एक चेदिदेश का धार्मिक राजा था ॥९॥ उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसे

भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः ॥११॥ विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः । तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी ॥१२॥ पुत्राश्चास्य महावीर्याः पंचासन्नमितौजसः । पृथग्देशेषु राजानः स्थापितास्तेन भूभुजा ॥१३॥ वसोस्तु पत्नी गिरिका कामान्काले न्यवेदयत् । ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः ॥१४॥ तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति । तच्छ्रुत्वा चिंतयामास भार्यामृतुमतीं तथा ॥१५॥ पितृवाक्यं गुरुं मत्त्वा कर्तव्यमिति निश्चितम् । चचार मृगयां राजा गिरिकां मनसा स्मरन् ॥१६॥ वने स्थितः स राजर्षिश्चित्ते सस्मार भामिनीम् । अतीवरूपसम्पन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥१७॥ तस्य रेतः प्रचस्कन्द स्मरतस्तां च कामिनीम् । वटपत्रे तु तद्राजा स्कन्नमात्रं समाक्षिपत् ॥१८॥ इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम् । ऋतुकालं च विज्ञाय मतिं चक्रे नृपस्तदा ॥१९॥ अमोघं सर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः । प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत् ॥२०॥ शुक्रप्रस्थापने काले महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः । अभिमंत्र्याथ तद्वीर्यं वटपर्णपुटे कृतम् ॥२१॥ पार्श्वस्थं श्येनमाभाष्य राजोवाच द्विजं प्रति । गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम ॥२२॥ मत्प्रीत्यर्थमिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहं नय । गिरिकायै प्रयच्छाशु

एक सुन्दर विमान दिया जो स्फटिक मणि का बना हुआ था ॥१०॥ उस दिव्य विमान पर ही चढ़कर वह सर्वत्र जाता था। वह विमान भूमि पर नहीं; अपितु भूमि से ऊपर ही चलता था; अतएव वह उपरिचरवसु कहलाता था ॥११॥ वह राजा धर्म के लिए विख्यात था। उसकी सुन्दरी पत्नी का नाम गिरिका था॥१२॥ उसके पाँच महाबलवान् पुत्र थे । उपरिचरवसु ने उन सबों को अलग-अलग राज्य का राजा बनाया ॥१३॥ एकबार उपरिचरवसु की पत्नी गिरिका ने उनसे ऋतुस्नान करके पुंसवन के पश्चात् पवित्र होकर तथा कामासक्त होकर गर्भाधान करने के लिए कहा ॥१४॥ उसी दिन राजा के पिता ने उसे आदेश दिया कि मृगों को मारकर लाओं । उसको सुनकर राजा अपनी ऋतुमती पत्नी को याद किया ॥१५॥ किन्तु पिता की बात का महत्त्व जानकर राजा ने उसका पालन करना आवश्यक समझा। अतएव वह गिरिका को स्मरण करता हुआ आखेट करता रहा ॥१६॥ राजा जब बन में ही था उसी समय उसे अपनी पत्नी की याद आयी जो दूसरी लक्ष्मी के समान अत्यन्त रूपवती थी ॥१७॥ उस पत्नी का स्मरण करते ही राजा का वीर्य स्खलित हो गया । राजा ने उस स्खलित हुए वीर्य को एक बटपत्र के दोने में रख लिया और सोचने लगा कि यह स्खलित हुआ वीर्य क्या किया जाय कि व्यर्थ न हो । राजा ने अपनी पत्नी का ऋतुकाल जानकर सोंचा कि निश्चय ही यह मेरा वीर्य अमोघ है, अतएव इसे मैं अपनी पत्नी के पास भेज दूँ ॥१८-२०॥ वीर्य भेजते समय राजा ने अपनी पत्नी का स्मरण करके उसे अभिमंत्रित किया और सन्निकट में बैठे हुए एक बाज पक्षी से कहा कि तुम इसे मेरी पत्नी के पास पहुँचा

तस्यास्त्वार्तवमद्य वै ॥२३॥ सूत उवाच– इत्युक्त्वा प्रददौ पर्णं श्येनाय नृपसत्तमः । स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः ॥२४॥ गच्छन्तं गगनं श्येनं धृत्वा चंचुपटे पुटम् । तमपश्यदथायांतं खगं श्येनस्तथाऽपरः ॥२५॥ आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम् । तुंडयुद्धमथाकाशे तावुभौ संप्रचक्रतुः ॥२६॥ युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनम्भसि ॥ खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा ॥२७॥ एतस्मिन्समये काचिदद्रिका नाम चाप्सराः । ब्राह्मणं समनुप्राप्तं संध्यावंदनतत्परम् ॥२८॥ कुर्वती जलकेलिं सा जले मग्ना चचार सा । जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी॥२९॥ प्राणायामपरः सोऽथ दृष्ट्वा तां कामचारिणीम् । शशाप भव मत्स्यी त्वं ध्यानविघ्नकरी यतः ॥३०॥ सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी । शफरी रूपसम्पन्ना ह्यद्रिका च वराप्सराः ॥३१॥ श्येनपादपरिभ्रष्टं तच्छुक्रमथ वासवी । जग्राह तरसाऽभ्येत्य साऽद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥३२॥ अथ कालेन कियता मत्स्यीं तां मत्स्यजीवनः । संप्राप्ते दशमे मासि बबंध तां मनोरमाम् ॥३३॥ उदरं विददाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः । युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति ॥३४॥ बालः कुमारः सुभगस्तथा कन्या शुभानना । दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयं

दो ॥२१-२२॥ हे सौम्य ! तुम इसे मेरी भलाई के लिए मेरी पत्नी गिरिका को दे देना ॥२३॥ **सूतजी ने कहा–** यह कहकर उस राजा ने उस दोने को बाज को दिया । अपनी गति का जानकार वह बाज पक्षी भी उस दोने को लेकर शीघ्र ही अकाश में उड़ गया ॥२४॥ अपनी चोंचे में दोने को लेकर आकाश में जाते हुए उस बाज पक्षी को किसी दूसरे बाज पक्षी ने देखा ॥२५॥ उसने समझा कि यह मांस लिए जा रहा है; अतएव वह शीघ्र ही उसके ऊपर टूट पड़ा और दोनों आकाश में अपनी चोंच से युद्ध करने लगे ॥२६॥ इस प्रकार जब वे दोनों युद्ध कर रहे थे उस समय वह वीर्य यमुना नदी के जल में गिर पड़ा ॥२८॥ वीर्य के गिर जाने पर वे दोनों पक्षी इधर-उधर चले गये । उसी समय एक अद्रिका नाम की अप्सरा जल में खड़ा होकर संध्या वन्दन करते हुए किसी ब्राह्मण को देखकर उसके सन्निकट में जलक्रीड़ा करने लगी और जलक्रीडा करती हुई वह जल में डुबकी लगाकर उस ब्राह्मण का चरण पकड़ ली ॥२८-२९॥ प्रणायाम परायण ब्राह्मण ने अपने मनोनुकूल बिहार करने वाली उस अप्सरा को देखकर शाप दिया कि तुमने मेरे ध्यान में विघ्न किया है; अतएव तुम मछली हो जाओ ॥३०॥ ब्राह्मण के शाप के कारण वह अद्रिका नाम की अप्सरा सुन्दर मछली होकर यमुना में विचरने लगी॥३१॥ बाज पक्षी के पैर से टकराकर गिरा हुआ वीर्य से भरा हुआ दोना बहते हुए उस मछली के सामने आ गया और मछली का रूप धारण करने वाली अद्रिका ने उसे खा लिया ॥३२॥ दस महीने बाद एक मछुआरे ने उस सुन्दर मछली को अपने जाल में फँसा लिया ॥३३॥ उसने उस मछली के पेट को फाड़ा तो उसके पेट से दो बच्चे निकले ॥३४॥ उन दानों में एक अत्यन्त सुन्दर बालक था और दूसरी अत्यन्त सुन्दर कन्या थी । इस आश्चर्य को देखकर वह

परमं गतः ॥३५॥ राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौ तु झषोद्भवौ । राजाऽपि विस्मयाविष्टः सुतं जग्राह तं शुभम् ॥३६॥ स मत्स्यो नाम राजाऽसौ धार्मिकः सत्यसंगरः । वसुपुत्रो महातेजाः पित्रा तुल्यपराक्रमः ॥३७॥ कालिका वसुना दत्ता तरसा जलजीवने । नाम्ना कालीति विख्याता तथा मत्स्योदरीति च ॥३८॥ मत्यस्यगंधेति नाम्ना वै गुणेन समजायत । विवर्धमाना दासस्य गृहे सा वासवी शुभा ॥३९॥ ऋषयः ऊचुः— आद्रिका मुनिना शप्ता मत्स्यी जाता वराप्सराः । विदारिता च दाशेन मृता च भक्षिता पुनः ॥४०॥ किं बभूव पुनस्तस्या अप्सराया वदस्व तत् । शापस्यांतं कथं सूत कथं स्वर्गमवाप सा ॥४१॥ सूत उवाच— शप्ता यदा सा मुनिना विस्मिता संबभूव ह । स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदती तदा ॥४२॥ दयावान्ब्राह्मणः प्राह तां तदा रुदतीं स्त्रियम् । मा शोकं कुरु कल्याणि शापांतं ते वदाम्यहम् ॥४३॥ मत्क्रोधशापयोगेन मत्स्ययोनिं गता शुभे ॥ मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि ॥४४॥ इत्युक्ता तेन सा प्राप मत्स्यदेहं नदीजले ॥ बालकौ जनयित्वा सा मृता मुक्ता च शापतः ॥४५॥ संत्यज्य रूपं मत्स्यस्य दिव्यरूपमवाप्य च । जगामामरमार्गं च शापांते वरवर्णिनी ॥४६॥ एवं जाता वरा पुत्री मत्स्यगन्धा

मत्स्यजीवी अत्यन्त विस्मित हुआ । उसने उस मछली के पेट से निकलने वाले दोनों बच्चों को राजा को समर्पित कर दिया । राजा भी आश्चर्य चकित होकर लड़के को स्वीकार कर लिए ॥३६॥ वह बालक ही आगे चलकर धर्मात्मा, सत्यवादी, महातेजस्वी उपरिचर वसु का पुत्र हुआ । वह अपने पिता के समान ही पराक्रमी हुआ ॥३७॥ उपरिचर वसु ने उस काली कन्या को उस मत्स्यजीवी को ही लौटा दिया और आगे चलकर वह काली तथा मत्स्योदरी के नाम से विख्यात हुई ॥३८॥ अपने गुण के कारण उसका नाम मत्स्यगन्धा भी हुआ । उस दास के ही घर में वह वसुपुत्री बढ़ने लगी ॥३९॥ **ऋषियों ने पूछा**— सूतजी ! जिसे ब्राह्मण ने शाप दे दिया था, और शाप के कारण जो अप्सरा मछली हो गयी थी उसका क्या हुआ ? क्या दाश उसे फाडकर खा गये? उसके शाप का अन्त कैसे हुआ ? वह पुनः स्वर्ग में कैसे गयी ?॥४०॥ सूतजी ने बतलाया कि जब ब्राह्मण ने उस अप्सरा को शाप दे दिया तो वह आश्चर्यचकित हो गयी और दीन होकर रोने लगी तथा ब्राह्मण की स्तुति करने लगी ॥४२॥ रोती हुई उस अप्सरा को दीन देखकर दयावान् ब्राह्मण ने कहा— तुम शोक मत करो, तुम्हारे शाप का अन्त मैं बतला रहा हूँ ॥४२-४३॥ मेरे क्रोधजन्य शाप के कारण तुम मछली हो जाओगी और जब तुम दो मनुष्यों को उत्पन्न कर दोगी तो तुम्हारे शाप का अन्त हो जायेगा ॥४४॥ ऐसा कहने पर नदी के जल के भीतर उसने मछली का शरीर प्राप्त किया और दोनों बालकों को उत्पन्न करके मर गयी पुनः स्वर्ग चली गयी । इस तरह उसके शाप का अन्त हो गया ॥४५॥ मछली का रूप त्याग कर वह दिव्यरूप प्राप्त करके शाप के अन्त

वरानना । पुत्री च पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत ॥४७॥ मत्स्यगंधा तदा जाता किशोरी चातिसुप्रभा । तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चातिसुप्रभा ॥४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

सूत उवाच– **एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्याराशरो मुनिः । आजगाम महातेजाः कालिंद्यास्तटमुत्तमम् ॥१॥ निषादमाह धर्मात्मा कुर्वंतं भोजनं तदा । प्रापयस्व परं पारं कालिंद्या उडुपेन माम् ॥२॥ दाशः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कुर्वाणो भोजनं तटे । उवाच तां सुतां बालां मत्स्यगंधां मनोरमाम्॥३॥ उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्व ह । गंतुकामोऽस्ति धर्मात्मा तापसोऽयं शुचिस्मिते ॥४॥ इत्युक्ता सा तदा पित्रा मत्स्यगंधाऽथ वासवी । उडुपे मुनिमासीनं संवाहयति भामिनी ॥५॥ व्रजन् सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः । कामार्तस्तु मुनिर्जातो दृष्ट्वा तां चारु लोचनाम्॥६॥**

में उसने स्वर्ग लोक को प्राप्त किया ॥४६॥ इस तरह से वह श्रेष्ठ पुत्री सुन्दरी मत्स्यगन्धा दाश के घर में पलती हुई बढ़ने लगी ॥४७॥ उसके बाद मत्स्यगन्धा अत्यन्त सुन्दर किशोरी हुई तो वह वसुपुत्री निषाद के घर में घरेलू कार्यों को करने लगी ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

व्यासजी की जन्मकथा

सूतजी ने कहा– एक बार पराशर महर्षि तीर्थ यात्रा में जा रहे थे । उसी प्रसंग में वे महातेजस्वी यमुना तट में आये ॥१॥ उस समय निषादराज भोजन कर रहे थे । उन्होंने निषादराज से कहा– मुझे यमुना के उस पार पहुँचा दो ॥२॥ भोजन करते हुए दाशराज ने मुनि की बात को सुनकर मत्स्यगन्धा से कहा ॥३॥ हे शुचिस्मिते ! ये धर्मात्मा तपस्वी जाना चाहते हैं, इनको नाव से उस पार पहुँचा दो ॥४॥ पिता के इस तरह कहने पर वासवी मत्स्यगन्धा नाव में बैठे हुए मुनि को यमुना पार कराने लगी ॥५॥ यमुना के जल में जाते हुए मुनि पराशर दैवयोग से उस सुन्दर नेत्रवाली वासवी को देखकर कामार्त

ग्रहीतुकामः स मुनिर्दृष्ट्वा व्यंजितयौवनाम् । दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥७॥ तमुवाचासितापांगी स्मितपूर्वमिदं वचः । कुलस्य सदृशं वः किं श्रुतस्य तपसश्च किम् ॥८॥ त्वं वै वसिष्ठदायादः कुलशीलसमन्वितः । किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः ॥९॥ दुर्लभं मानुषं जन्म भुवि ब्राह्मणसत्तम । तत्रापि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः ॥१०॥ कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन द्विजोत्तमस्त्वं किल धर्मविच्च । अनार्यभावं कथमागतोऽसि विप्रेंद्र मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम् ॥११॥ मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम् । समीपं समायासि कामातुरस्त्वं कथं नाभिजानासि धर्मं स्वकीयम् ॥१२॥ अहो मंदबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्यञ्जले मग्न एवाद्य मां वै गृहीत्वा । मनो व्याकुलं पञ्चबाणातिविद्धं न कोऽपीह शक्तः प्रतीपं हि कर्तुम् ॥१३॥ इति संचिंत्य सा बाला तमुवाच महामुनिम् । धैर्यं कुरु महाभाग परं पारं नयामि वै ॥१४॥ सूत उवाच– पराशरस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम् । करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सिंधोः पारं गतः पुनः ॥१५॥ मत्स्यगंधां प्रजग्राह मुनिः कामातुरस्तदा । वेपमाना तु सा कन्या तमुवाच पुरः स्थितम् ॥१६॥ दुर्गंधाऽहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशंकसे । समानरूपयोः कामसंयोगस्तु

हो गये ॥६॥ जिसकी जवानी के चिह्न आविर्भूत हो गये थे उस मत्स्यगन्धा को देखकर उसको पकड़ लेने की इच्छा से उन्होंने अपने दाहिने हाथ से उसके हाथ का स्पर्श किया ॥७॥ उस काले नेत्रों वाली मत्स्यगन्धा ने मुस्कुराते हुए कहा– आपके प्रख्यात तपस्वी के कुल के अनुरूप यह कार्य नहीं है ॥८॥ आप कुल तथा शील से सम्पन्न महर्षि वसिष्ठ के वंशज हैं, हे धर्मज्ञ ! आप काम से पीड़ित होकर यह क्या करना चाहते हैं ?॥९॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! संसार में मनुष्य का जन्म प्राप्त करना दुर्लभ है, उसमें भी विशेष रूप से ब्राह्मणत्व प्राप्त करना तो और कठिन है ॥१०॥ आप कुल, शील तथा ज्ञान के कारण ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं तथा धर्म के जानकार हैं । हे विप्रेन्द्र ! मछली की गन्ध वाली मुझको देखकर आपमें यह अनार्यभाव कैसे आ गया ॥११॥ हे अमोघ (अव्यर्थ) ज्ञान वाले महर्षि ! आपने मेरे शरीर में ऐसी कौन सी विशेषता को देखा है कि आप मेरा हाथ पकड़ने के लिए उद्यत हो गये और आप मेरे समीप आ रहे हैं। आप इस समय कामातुर हैं, अतएव आपको अपने धर्म का ख्याल नहीं है ॥१२॥ अरे ये ब्राह्मण मंद बुद्धि हैं, ये जल में ही मुझको पकड़ लेंगे । क्योंकि ये काम के बाण से व्याकुल हैं, अतएव कोई भी यहाँ ऐसा नहीं है जो इनको ऐसा करने से रोक सके ॥१३॥ इस तरह विचार करके उस बाला ने मुनि से कहा– हे महाभाग ! आप धैर्य रखें मैं आपको दूसरे तट पर ले चल रही हूँ ॥१४॥ **सूतजी ने कहा**– पराशर महर्षि ने उस हितकारी बात को सुना और वे मत्स्यगंधा के हाथ को छोड़ दिए तथा नदी के दूसरे तट पर गये ॥१५॥ फिर कामातुर मुनि ने मत्स्यगन्धा को पकड़ लिया और सामने खड़े मुनि से काँपती हुई मत्स्यगंधा ने कहा ॥१६॥ हे मुने ! मेरे शरीर से दुर्गन्ध निकलती है, आप इससे घृणा क्यों नहीं करते हैं?

सुखावहः ॥१७॥ इत्युक्तेन तु सा कन्या क्षणमात्रेण भामिनी । कृता योजनगंधा तु सुरूपा च वरानना ॥१८॥ मृगनाभिसुगन्धां तां कृत्वा कान्तां मनोहराम् । जग्राह दक्षिणे पाणौ मुनिर्मन्मथपीडितः ॥१९॥ ग्रहीतुकामं तं प्राह नाम्ना सत्यवती शुभा । मुने पश्यति लोकोऽयं पिता चैव तटस्थितः ॥२०॥ पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः । प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ यावद्भवति यामिनी ॥२१॥ रात्रौ व्यवाय उद्दिष्टो दिवा न मनुजस्य हि । दिवासंगे महान्दोषः पश्यन्ति किल मानवाः ॥२२॥ कामं गच्छ महाबुद्धे लोकनिन्दा दुरासदा । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः॥२३॥ नीहारं कल्पयामास शीघ्रं पुण्यबलेन वै । नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते ॥२४॥ कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदं वचः । कन्याऽहं द्विजशार्दूल भुक्त्वा गन्ताऽसि कामतः ॥२५॥ अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन्का गतिर्मे भवेदिति । पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भा चेद्भवाम्यहम् ॥२६॥ त्वं गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत् । पराशर उवाच– **कान्तेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥२७॥ वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ।** सत्यवत्युवाच– **यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद ॥२८॥ कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम । पुत्रश्च त्वत्समः कामं भवेदद्भुतवीर्यवान् ॥२९॥ गन्धोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनं च नवं नवम् ।** पराशर उवाच– **शृणु सुन्दरि पुत्रस्ते विष्णवंशसम्भवः**

समान रूप वालों में ही कामजन्य संयोग सुखद होता है ॥१७॥ यह कहते ही वह कन्या क्षण भर में योजनगन्धा तथा सुन्दर रूप वाली हो गयी । उस कन्या के शरीर को कस्तूरी की सुगन्धिवाला बनाकर कामपीड़ित मुनि ने उसके दाहिने हाथ को पकड़ लिया ॥१८-१९॥ उसने देखा कि मुनि मुझे पकड़ना चाहते हैं तो उसने कहा कि मुझको इस तरह से लोग देख रहे हैं और दूसरे तट पर स्थित मेरे पिता भी मुझे देख रहे हैं ॥२०॥ इस पशुधर्म के कारण मुझे प्रसन्नता नहीं हो रही है, आप तब तक प्रतीक्षा करें जब तक कि रात्रि नहीं आ जाती है ॥२१॥ मनुष्य के लिए रात्रि में ही व्यवाय (रतिक्रीडा) बतलायी गया है दिन में नहीं। दिन में संगम करने में लोग बहुत से दोष बतलाते हैं, लोग इसे देख रहे हैं ॥२२॥ हे महाबुद्धे ! इस समय आप अपने को रोकें, क्योंकि लोकनिन्दा अत्यन्त खराब होती है। पराशर महर्षि ने उसकी युक्तियुक्त वाणी को सुना ॥२३॥ महर्षि ने अपनी तपस्या के बल से कुहरा उत्पन्न कर दिया । उस कुहरा के उत्पन्न होने पर तट पर अत्यन्त अन्धकार छा गया ॥२४॥ उस समय उस योजनगन्धा ने मृदुतापूर्वक मुनि से कहा– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ मैं कन्या हूँ आप तो मेरा भोग करके अपनी इच्छानुसार चले जायेंगे । हे ब्रह्मन् ! आप तो अमोघ वीर्य वाले हैं, किन्तु मेरी क्या दशा होगी ? यदि मैं गर्भिणी हो जाऊँगी तो अपने पिता को क्या बतलाऊँगी ?॥२५-२६॥ यह आप बतलाइये। **पराशर महर्षि ने कहा–** हे कान्ते ! तुम यदि इस मसय मेरे मनोऽनुकूल कार्य करोगी तो बाद में भी तुम कन्या ही बनी रहोगी ॥२७॥ हे भीरु ! तुम जो चाहो वह वरदान मुझसे माँग लो । **सत्यवती ने कहा–**

शुचिः ॥३०॥ भविष्यति च विख्यातस्त्रैलोक्ये वरवर्णिनि । केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि ॥३१॥ कदापि च न संमोहो भूतपूर्वो वरानने । दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाऽहं धैर्यमावहम् ॥३२॥ दैवयोगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम् । तत्किंचित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम् ॥३३॥ दृष्ट्वाऽहं चातिदुर्गंधां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम् । पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने ॥३४॥ वेदविद्भागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये । सूत उवाच– इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः ॥३५॥ जगाम तरसा स्नात्वा कालिंदीसलिले मुनिः । साऽपि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती ॥३६॥ सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम् । जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम् ॥३७॥ तपस्येव मनः कृत्वा विविशे चातिवीर्यवान् । गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥३८॥ तपः कर्तुं महाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः । मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किञ्चिदनुत्तमम् ॥३९॥ स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिंतां सुखं वस ॥४०॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः साऽपि पित्रंतिकं गता । द्वीपे न्यस्तस्तया बालस्तस्माद्द्वैपायनोऽभवत् ॥४१॥ जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्ण्वंशयोगतः । तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचार तप उत्तमम् ॥४२॥ एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् । चकार वेदशाखाश्च प्राप्तं ज्ञात्वा कलेर्युगम् ॥४३॥

हे द्विजोत्तम ! आप मुझे ऐसा बना दें कि मेरे माता-पिता इस बात को न जानें तथा मेरा कन्याव्रत भी न विनष्ट हो। मेरा जो पुत्र हो वह भी आपके ही समान पराक्रमी हो ॥२८-२९॥ मेरे शरीर में यह सुगन्धि सर्वदा बनी रहे और मेरी जवानी सदा नवीन बनी रहे । **पराशर महर्षि ने कहा–** हे सुन्दरि ! सुनो तुम्हारा पुत्र भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होगा और परम पवित्र होगा ॥३०॥ हे सुन्दरि ! वह त्रैलोक्य में विख्यात होगा । किसी कारणवशात् मैं तुमको देखकर कामातुर हो गया हूँ ॥३१॥ हे वरानने ! मुझको इस प्रकार का मोह कभी भी नहीं हुआ था । मैं अप्सराओं के भी रूप को देखकर सदा धैर्यवान् ही बना रहा ॥३२॥ दैववशात् मैं तुमको देखकर कामपीड़ित हो गया हूँ; तो इसमें कोई कारण ही समझो क्योंकि कोई दैव का अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥३३॥ अन्यथा तुम दुर्गन्धा को ही देखकर मैं कामार्त कैसे हो जाता ? तुम्हारा पुत्र पुराणों का रचयिता होगा ॥३४॥ वह वेदों का विभाग करने वाला तथा त्रैलोक्य में विख्यात होगा । **सूतजी ने कहा–** इस तरह से उन्होंने अपने वशवर्तिनी का उपभोग किया ॥३५॥ इसके बाद यमुना में स्नान करके वे शीघ्र ही चले गये । वह सत्यवती भी शीघ्र ही गर्भवती हो गयी ॥३६॥ उसने उस यमुना के द्वीप में दूसरे कामदेव के समान सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया । उत्पन्न होते ही वे तेजस्वी अपनी माता से कहे ॥३७॥ अत्यन्त पराक्रमी उस बालक का मन तपस्या में ही था, उसने अपनी माता से कहा– माँ तुम जाओ, मैं यहाँ से जा रहा हूँ ॥३८॥ हे महाभागे ! मैं तपस्या करने जा रहा हूँ किन्तु जब कभी भी तुम स्मरण करोगी उसी समय मैं तुम्हारे सामने आ जाऊँगा। तुम्हारा कल्याण हो आप मेरी चिन्ता छोड़ दो, सुखपूर्वक रहो ॥४०॥ इस तरह कहकर व्यासजी चले गये और सत्यवती भी अपने पिता के सन्निकट चली गयी । चूंकि उन्होंने बालक को द्वीप में जन्म दिया इसलिए उस बालक का नाम द्वैपायन हो गया ॥४१॥ विष्णु के अंश का योग होने के कारण वे

वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाऽभवन्मुनिः । पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥४४॥ शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वा विभागशः । सुमंतुं जैमिनिं पैलं वैशंपायनमेव च ॥४५॥ असितं देवलं चैव शुकं चैव स्वमात्मजम् । सूत उवाच– **एतच्च कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः ॥४६॥ सत्यवत्याः सुतस्यापि समुत्पत्तिस्तथा शुभा । संशयोऽत्र न कर्तव्यः संभवे मुनिसत्तमाः ॥४७॥ महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति । कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्या झषोदरे ॥४८॥ पराशरेण संयोगः पुनः शंतनुना तथा । अन्यथा तु मुनेश्चित्तं कथं कामाकुलं भवेत् ॥४९॥ अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथं मुनिः । सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताऽऽश्चर्यकारिणी ॥५०॥ श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा । य एतच्छुभमाख्यानं शृणोति श्रुतिमान्नरः । न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा ॥५१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते द्वितीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

उत्पन्न होते ही बड़े हो गये । प्रत्येक तीर्थों में स्नान करके उन्होंने उत्तम तप किया ॥४२॥ इस तरह से माता सत्यवती के गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र द्वैपायन उत्पन्न हुए । उन्होंने जाना कि कलियुग आ गया है; अतएव उन्होंने वेदों की शाखाओं का विभाग किया ॥४३॥ वेदों का विस्तार करने के कारण वे व्यास कहलाए । उन्होंने अनेक पुराण संहिताओं तथा महाभारत का प्रणयन किया ॥४४॥ उन्होंने वेदों का विभाग करके उसे अपने शिष्यों– सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल तथा अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया । **सूतजी ने कहा**– हे मुनिवर्यों ! मैंने समस्त कारणों को बतलाया ॥४६॥ मैने सत्यवती के पुत्र महर्षि व्यास की भी उत्पत्ति बतलायी । उनकी उत्पत्ति के विषय में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए ॥४७॥ महापुरुषों के जीवन-चरित से केवल गुण का ही ग्रहण करना चाहिए दोषों को नहीं । उद्देश्य विशेष के ही कारण सत्यवती का जन्म मछली के पेट से हुआ था ॥४८॥ पहले सत्यवती का संयोग महर्षि पराशर से हुआ था, उसके पश्चात् शन्तनु से हुआ । यदि ऐसी बात नहीं होती तो उनको देखकर महर्षि पराशर का मन कामाकुल कैसे हो जाता ॥४९॥ और धर्मज्ञ महर्षि पराशर अनार्य पुरुषों के द्वारा आचरणीय कार्य कैसे करते ? अतएव सत्यवती की यह उत्पत्ति किसी कारण विशेष से ही हुई थी ॥५०॥ इस कथा का श्रवण करके मनुष्य पापों से छूट जाता है । श्रुति के ज्ञान से सम्पन्न जो मनुष्य इस कल्याणकारी आख्यान को सुनता है, उसकी दुर्गति नहीं होती है, वह सर्वदा सुखी रहता है ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

ऋषयः ऊचुः– **उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः । सत्यवत्यास्तथा सूत विस्तरेण त्वयाऽनघ ॥१॥ तथाप्येकस्तु संदेहश्चित्तेऽस्माकं सुसंस्थितः । न निवर्तति धर्मज्ञ कथितेन त्वयाऽनघ ॥२॥ माता व्यासस्य या प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा । सा कथं नृपतिं प्राप्ता शंतनुं धर्मवित्तमम् ॥३॥ निषादपुत्रीं स कथं वृतवान्नृपतिः स्वयम् । धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृताम् ॥४॥ शंतनोः प्रथमा पत्नी का ह्यभूत्कथयाधुना । भीष्मः पुत्रोऽथ मेधावी वसोरंशः कथं पुनः ॥५॥ त्वया प्रोक्तं पुरा सूत राजा चित्रांगदः कृतः । सत्यवत्याः सुतो वीरो भीष्मेणामिततेजसा ॥६॥ चित्रांगदे हते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा । विचित्रवीर्यनामाऽसौ सत्यवत्याः सुतो नृपः ॥७॥ ज्येष्ठे भीष्मे स्थिते पूर्वं धर्मिष्ठे रूपवत्यपि । कृतवान्स कथं राज्यं स्थापितस्तेन जानता ॥८॥ मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुःखिता । वधूभ्यां गोलकौ पुत्रौ जनयामास सा कथम् ॥९॥ कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी । न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः ॥१०॥ अधर्मस्तु कृतः कस्माद्व्यासेनामिततेजसा। ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति ॥११॥ पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः । सेवनं परदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः ॥१२॥ जुगुप्सितमिदं**

ब्रह्माजी द्वारा गङ्गा को शाप

ऋषियों ने कहा– हे निष्पाप सूतजी ! आपने विस्तारपूर्वक व्यासजी तथा सत्यवती की उत्पत्ति की कथा सुनायी ॥१॥ फिर भी हमलोगों के मन में एक सन्देह बना ही हुआ है । आपके द्वारा कहे जाने पर भी वह दूर नहीं होता है ॥२॥ जो सत्यवती व्यासजी की माता थीं वे महाराज शन्तनु को कैसे प्राप्त हुईं ? क्योंकि शन्तनु तो धर्मज्ञ थे ॥३॥ स्वयं राजा ने निषाद की पुत्री का वरण क्यों किया ? पुरुवंशी राजा शन्तनु धार्मिक थे, वे हीनवंश वाली सत्यवती को क्यों अपनाए ॥४॥ अब आप यह बतलाएँ कि शन्तनु की पहली पत्नी कौन थीं ? उनके पुत्र भीष्म कैसे वसु के अंश थे ॥५॥ हे सूतजी! आपने पहले कहा है कि अमित तेजस्वी भीष्म के द्वारा सत्यवती के पुत्र चित्रांगद राजा बनाये गये ॥६॥ और चित्रांगद के मारे जाने के बाद उनके छोटे भाई तथा सत्यवती के छोटे पुत्र विचित्रवीर्य राजा हुए ॥७॥ धार्मिक रूपवान तथा बड़े भाई भीष्म के रहने पर भी उनके द्वारा अपने छोटे भाइयों को राज्य सिंहासन पर क्यों बैठाया गया । विचित्रवीर्य के मर जाने पर अत्यन्त दुखी सत्यवती ने अपनी बहुओं से गोलक पुत्रों को क्यों उत्पन्न कराया ॥८-९॥ सत्यवती ने भीष्म को राज्य क्यों नहीं प्रदान किया ? और भीष्म ने अपना विवाह क्यों नहीं किया ?॥१०॥ अपरिमित तेजः सम्पन्न व्यासजी ने ज्येष्ठ

कर्म स कथं कृतवान्मुनिः । शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः ॥१३॥ व्यासशिष्योऽसिमेधाविन्संदेहं छेत्तुमर्हसि । श्रोतुकामा वयं सर्वे धर्मक्षेत्रे कृतक्षणाः ॥१४॥ सूत उवाच– **इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः । सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपोत्तमः ॥१५॥ अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च । तोषयामास देवेन्द्रं स्वर्गं प्राप महामतिः ॥१६॥ एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः । सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम् ॥१७॥ गंगा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम् । तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन तरस्विना ॥१८॥ अधोमुखाः सुराः सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः । राजा महाभिषस्तां तु निःशंकः समपश्यत ॥१९॥ साऽपि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी । दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौ काममोहितौ ॥२०॥ ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषान्वितः । मर्त्यलोकेषु भूपाल जन्म प्राप्य पुनर्दिवम् ॥२१॥ पुण्येन महताऽऽविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा । गङ्गां तथोक्तवान्ब्रह्मा वीक्ष्य प्रेमवतीं नृपे ॥२२॥ विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽन्तिकात् । स नृपश्चिंतयित्वाऽथ भूर्लोकि धर्मतत्परान् ॥२३॥ प्रतीपं चिन्तयामास पितरं पूरुवंशजम् । एतस्मिन्समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः ॥२४॥ वसिष्ठस्याश्रमं**

होकर भी अपने भाइयों की पत्नियों के साथ दो पुत्रों को उत्पन्न करने का अधार्मिक कार्य क्यों किया ? पुराणों के रचयिता धर्मात्मा महर्षि व्यासजी ने परदाराओं का सेवन क्यों किया और विशेष रूप से अपने छोटे भाइयों की पत्नियों का सेवन क्यों किया ॥१२॥ वे महर्षि व्यास इस निन्दितकर्म को क्यों किए । वेदों के ज्ञान का उपदेश करने वाले व्यास जी के लिए यही शिष्टाचार है क्या ? ॥१३॥ हे मेधाविन् सूतजी ! आप व्यासजी के शिष्य हैं इस विषय में होने वाले हम लोगों के सन्देह को आप दूर करें । हम जानने की ही इच्छा से इस धर्मक्षेत्र में बैठे हैं ॥१४॥ **सूतजी ने कहा–** महाराज इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न एक महाभिष नामक राजा थे । वे सत्यवक्ता, धर्मशील तथा चक्रवर्ती राजा थे ॥१५॥ उन्होंने एक हजार अश्वमेघ यज्ञों तथा सौ वाजपेय यज्ञों को करके देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया और स्वर्ग चले गये ॥१६॥ एक बार महाभिष ब्रह्माजी के लोक में गये वहाँ ब्रह्माजी से मिलने के लिए सभी देवता आये थे ॥१७॥ ब्रह्माजी की सेवा करने के लिए वहाँ गङ्गा नदी उपस्थित थीं । तेजी से चलने वाली वायु ने गङ्गाजी के वस्त्र को उड़ा दिया ॥१८॥ सभी देवताओं ने अपना मुख नीचे कर लिया और गङ्गा को नहीं देखा। किन्तु राजा महाभिष निःशंक भाव से उन्हें देखते रहे ॥१९॥ गङ्गा नदी ने भी राजा महाभिष को प्रेमयुक्त रूप से जान लिया । इसके बाद दोनों (गङ्गा नदी और राजा महाभिष) परस्पर में प्रेम संपन्न होने के कारण काममोहित होकर निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार करने लगे ॥२०॥ यह देखकर ब्रह्माजी क्रुद्ध हो गये और उन दोनों को शाप दे दिए । राजन् ! तुम मर्त्यलोक में जन्म लेकर उसके बाद महान पुण्यवान् होकर ही स्वर्गलोक में आओगे । उसी तरह से उन्होंने गङ्गा को भी राजा पर आसक्त जानकर शाप दे दिया ॥२२॥ वे दोनों उदास होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक से निकल गये । राजा महाभिष ने विचार किया कि भूलोक में कौन से राजा धर्मपरायण हैं ?॥२३॥ उन्होंने पुरुवंश में उत्पन्न

प्राप्ता रममाणा यदृच्छया । पृथ्वादीनां वसूनां च मध्ये कोऽपि वसूत्तमः ॥२५॥ द्यौर्नामा तस्य भार्याऽथ नंदिनीं गां ददर्श ह । दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा ॥२६॥ द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि । दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथ वा ॥२७॥ अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः । तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मृत्युलोकेऽस्ति मे सखी ॥२८॥ उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना । तस्य हेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥२९॥ आनयस्वाश्रमं श्रेष्ठं नंदिनीं कामदां शुभाम् । यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि ॥३०॥ मानुषेषु भवेदेका जरारोगविवर्जिता । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहार च नंदिनीम् ॥३१॥ अवमन्य मुनिं दांतं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः । हृतायामथ नंदिन्यां वसिष्ठस्तु महातपाः ॥३२॥ आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः । नापश्यत् यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः । मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि । नासादिता यदा धेनुश्चुकोपातिशयं मुनिः ॥३४॥ वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम् । वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमन्य वै ॥३५॥ तस्मात्सर्वे जनिष्यंति मानुषेषु न संशयः । एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान्वारुणिः स्वयम् ॥३६॥ श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्च ते । शप्ताः

होने वाले महाराज प्रतीप को अपना पिता बनाने का निश्चय किया । उसी समय आठो वसु अपनी पत्नियों के साथ ॥२४॥ महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में आकर अपनी इच्छा के अनुसार रमण करने लगे । पृथु आदि वसुओं में से कोई द्यौ नामक उत्तम वसु था । उसकी पत्नी ने नन्दिनी नामक गौ को देखा। उस गौ को देखकर उसने अपने पति से पूछा कि यह किसकी उत्तम गौ है ?॥२५-२६॥ द्यौ ने अपनी पत्नी से कहा कि हे सुन्दरि ! यह महर्षि वसिष्ठ की गौ है । यदि स्त्री अथवा पुरुष इसका दुग्ध पी ले तो उसकी दश हजार वर्ष की आयु हो जाय तथा उसकी जवानी सदा बनी रहे । उस बात को सुनकर सुन्दरी ने कहा कि मृत्युलोक में मेरी एक सखी है ॥२७-२८॥ वह राजर्षि उशीनर की पुत्री है और परम सुन्दरी है ! हे महाभाग ! उसके लिए बछड़े के साथ इस नन्दिनी गौ को अपने आश्रम में लाइये । जिससे कि इस गौ के दुग्ध को पीकर मेरी सखी सदैव ही सभी मनुष्यों में अकेले बुढापे तथा रोग से रहित हो जाय। सुन्दरी की बात को सुनकर द्यौ ने नन्दिनी गौ को चुरा लिया ॥२९-३०॥ पृथु आदि अष्ट वसुओं के साथ द्यौ ने गुण सम्पन्न महर्षि वसिष्ठ की अवमानना कर दिया । नन्दिनी के चुरा लिए जाने पर महर्षि वसिष्ठ फलों को लेकर शीघ्रता से अपने आश्रम में आये और उन्होंने अपने आश्रम में नन्दिनी तथा उसके बछड़े को नहीं देखा ॥३१॥ तेजस्वी महर्षि ने उसे गुफाओं तथा वनों में खोजा । जब उन्हें वह नहीं मिली तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥३२-३३॥ वरुणपुत्र महर्षि वसिष्ठ ने ध्यान के द्वारा यह जान लिया कि मेरी गौ का अपहरण वसुओं ने किया है। इसके बाद उन्होंने शाप दिया कि चूंकि वसुओं ने मेरी अवमानना करके मेरी गौ का अपहरण किया है, अतएव वे निश्चित रूप से मनुष्य योनि में जन्म लेंगे, इसमें कोई भी संशय नहीं है । इस प्रकार से महर्षि वसिष्ठ ने वसुओं को स्वयं शाप दे दिया ॥३५-३६॥ वसुओं ने जब यह जाना कि महर्षि वसिष्ठ ने हम लोगों को शाप दिया है तो वे उदास

स्म इति जानंत ऋषिं तमुपचक्रमुः ॥३७॥ प्रसादयंतस्तमृषिं वसवः शरणं गताः । मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनान्पुरः स्थितान् ॥३८॥ अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ । येनेयं विहृता धेनुर्नंदिनी मम वत्सला ॥३९॥ तस्माद्द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति । ते शप्ताः पथि गच्छन्तीं गङ्गां दृष्ट्वा सरिद्वराम् ॥४०॥ ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चितातुरां नदीम् । भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः ॥४१॥ मानुषाणां च जठरे चिंतेयं महती हि नः । तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे ॥४२॥ शंतनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे । जाताञ्जाताञ्जले चास्मान्निःक्षिपस्व सुरापगे ॥४३॥ एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः । तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः ॥४४॥ गङ्गाऽपि निर्गता देवि चिंत्यमाना पुनः पुनः । महाभिषो नृपो जातः प्रतीपस्य सुतस्तदा ॥४५॥ शंतनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसंगरः । प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः ॥४६॥ तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी । दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना ॥४७॥ अंके स्थितां स्त्रियं चाह मां दृष्ट्वा किं वरानने । ममोरावास्थिताऽसि त्वं किमर्थं दक्षिणे शुभे ॥४८॥ सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम । स्थिताऽस्म्यंके कुरूश्रेष्ठ कामयानां भजस्व माम् ॥४९॥ तमवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम् । नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयं वरवर्णिनीम् ॥५०॥ स्थिता दक्षिणमूरुं

हो गये और दुःखी होकर महर्षि वसिष्ठ के शरण में गये ॥३७॥ महर्षि वसिष्ठ के शरणागत वसुओं ने उन्हें प्रसन्न किया तो उन सबों को दीन देखकर महर्षि ने कहा ॥३८॥ आठ वसुओं में से सात वसु तो एक-एक वर्ष में ही शाप से छुटकारा पा जायेंगे, किन्तु जिस द्यौ ने मेरी वत्सला गौ का अपहरण किया है, वह द्यौ तो दीर्घकाल तक मनुष्य शरीर में निवास करेगा । महर्षि वसिष्ठ के द्वारा अभिशप्त वसुओं ने मार्ग में जाती हुई गङ्गा को देखा॥३९-४०॥ उन सबों ने अभिशप्त होने के कारण चिन्तत गङ्गा नदी को प्रणाम करके कहा– हे देवि ! हम अमृत पान करने वाले देवता मानव गर्भ से कैसे जन्म लेंगे। यही हमलोगों को अत्यधिक चिन्ता है। अतएव हे नदियों में श्रेष्ठ ! आप मानुषी होकर हमलोगों को उत्पन्न करें ॥४१॥ हे निष्पाप आप शन्तनु नामक राजर्षि की पत्नी हो जायँ । हे सुरापगे हम लोगों को उत्पन्न होते ही आप जल में फेंक दें ॥४३॥ इस तरह से हमलोगों को शाप से मुक्ति मिल जायेगी। गङ्गा ने भी कहा कि ठीक है ऐसा ही होगा । यह सुनकर वे सभी देवता अपने लोक में चले गये ॥४४। गङ्गा नदी भी बार-बार चिन्ता करती हुई वहाँ से चली गयी । उसी समय राजा महाभिष भी राजा प्रतीप के पुत्र के रूप से उत्पन्न हुए ॥४५॥ राजर्षि राजा शन्तनु धर्मात्मा तथा सत्यवक्ता थे। महाराज प्रतीप ने सूर्य की स्तुति की ॥४६॥ उसी समय उस जल से एक सुन्दरी निकली और महाराज प्रतीप के शाल के सदृश विस्तृत दाहिने जंघे पर आकर बैठ गयी॥४७॥ अपनी गोद में बैठी हुई स्त्री से **प्रतीप ने पूछा**– तुम मेरी दाहिनी जंघे पर क्यों बैठी हो ?॥४८॥ **सुन्दरी ने कहा**– हे राजश्रेष्ठ ! मैं आपको चाहती हूँ इसीलिए आपके जंघे पर आकर बैठी हूँ। अतएव आप मुझे अपनी पत्नी बना लें ॥४९॥ उस रूप तथा यौवन से सुशोभित सुन्दरी से **राजा प्रतीप ने कहा**–

मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि । अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते ॥५१॥ स्नुषा मे भव कल्याणि जाते पुत्रेऽतिवांछिते । भविष्यति च मे पुत्रस्तव पुण्यान्न संशयः ॥५२॥ तथेत्युक्त्वा गता सा वै कामिनी दिव्यदर्शना । राजा चापि गृहं प्राप्तश्चिन्तयंस्तां स्त्रियं पुनः॥५३॥ ततः कालेन कियता जाते पुत्रे वयस्विनि । वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तांतमूचिवान् ॥५४॥ वृत्तांतं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम्। यदि प्रयाति सा बाला त्वां वने चारुहासिनी ॥५५॥ कामयाना वरारोहा तां भजेथा मनोरमाम् । न प्रष्टव्या त्वया काऽसि मन्नियोगान्नराधिप॥५६॥ धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भविता त्वं सुखी किल । सूत उवाच– **एवं संदिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः ॥५७॥ दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां वनं राजा विवेश ह। तत्रापि च तपस्तप्त्वा सामाराध्य परांबिकाम् ॥५८॥ जगाम स्वर्गं राजाऽसौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा । राज्यं प्राप्य महातेजाः शन्तनुः सार्वभौमिकम्। प्रजां वै पालयामास धर्मदंडो महीपतिः ।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हे सुन्दरि ! मैं दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता हूँ ॥५०॥ हे भामिनि ! तुम मेरी जिस पवित्र दाहिनी जंघा पर बैठी हो वह पुत्रों तथा पुत्रबधुओं का स्थान है ॥५१॥ अतएव तुम मेरे अत्यन्त अभिलषित पुत्र की पत्नी बनना । तुम्हारे पुण्य के कारण ही मेरा पुत्र होगा, इसमें काई सन्देह नहीं है ॥५२॥ इस बात को सुनकर वह कामिनी 'ऐसा ही होगा' यह कहकर चली गयी और राजा भी उस स्त्री के विषय में सोंचते हुए चले गये ॥५३॥ कुछ समय बाद जब महाराज प्रतीप का पुत्र युवक हुआ तो राजा वन में जाने की इच्छा से अपने पुत्र से कहे ॥५४॥ उन्होंने अपने पुत्र को सारा वृत्तान्त सुनाने के बाद कहा– यदि वह सुन्दरी तुमको वन में मिलती है ॥५५॥ तो तुमको चाहने वाली उस सुन्दरी को तुम अपना लेना, हे राजन् ! तुमको मेरी आज्ञा है कि तुम उससे यह मत पूछना कि तुम कौन हो ॥५६॥ उसको तुम अपनी धर्मपत्नी बनाकर सुखी हो जाओगे । सूतजी ने ऋषियों को बतलाया कि अपने पुत्र को राजा ने इस प्रकार से आदेश दिया और प्रसन्नता पूर्वक उसे अपना राज्य समर्पित करके वे वन में चले गये । वन में भी तपस्या करते हुए पराम्बिका की आराधना करके ॥५८॥ राजा ने अपने शरीर का त्याग किया और अपने तेज से स्वर्ग चले गये । शन्तनु भी सार्वभौम राज्य को प्राप्त करके धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच– **प्रतीपेऽथ दिवं याते शंतनुः सत्यविक्रमः । बभूव मृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः ॥१॥ स कदाचिद्वने घोरे गङ्गातीरे चरन्नृपः । ददर्श मृगशावाक्षीं सुंदरीं चारुभूषणाम् ॥२॥ दृष्ट्वा तां नृपतिर्मग्नः पित्रोक्तेयं वरानना । रूपयौवनसंपन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥३॥ पिबन्मुखांबुजं तस्या न तृप्तिमगमन्नृपः । हृष्टरोमाऽभवत्तत्र व्याप्तचित्त इवानघः ॥४॥ महाभिषं साऽपि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह । किंचिन्मंदस्मितं कृत्वा तस्थावग्रे नृपस्य च ॥५॥ वीक्ष्य तामसितापांगीं राजा प्रीतमना भृशम् । उवाच मधुरं वाक्यं सांत्वयंश्लक्ष्णया गिरा ॥६॥ देवी वा त्वं च वामोरु मानुषी वा वरानने । गंधर्वी वाऽथ यक्षी वा नागकन्याऽप्सरापि वा ॥७॥ यासि कासि वरारोहे भार्या मे भव सुंदरि । प्रेमयुक्तस्मितैव त्वं धर्मपत्नी भवाद्य मे ॥८॥** सूत उवाच– **राजा तां नाभिजानाति गङ्गेयमिति निश्चतम् । महाभिषं समुत्पन्नं नृपं जानाति जाह्नवी ॥९॥ पूर्वप्रेमसमायोगाच्छ्रुत्वा वाचं नृपस्य ताम् । उवाच नारी राजानं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥१०॥** स्त्र्युवाच– **जानामि त्वां नृपश्रेष्ठ प्रतीपतनयं शुभम्। का न वांछति चार्वंगी भावित्वात्सदृशं पतिम् ॥११॥ वाग्बंधेन नृपश्रेष्ठ वरिष्यामि पतिं किल । श्रृणु मे समयं राजन्वृणोमि त्वां नृपोत्तम ॥१२॥**

मृत्युलोक में अष्टवसुओं का जन्म

सूतजी ने कहा– राजा प्रतीप के दिवंगत हो जाने के पश्चात् सत्यपराक्रम राजा शन्तनु व्याघ्रों एवं मृगों को मारते हुए मृगयाप्रिय हो गये ॥१॥ एक बार राजा शन्तनु गङ्गा के तट पर घोरवन में विचरण कर रहे थे, उसी समय उन्होंने वहाँ पर मृगलोचनी तथा अलंकारों से अलंकृत एक सुन्दरी को देखा॥२॥ उसको देखकर राजा का मन उस सुन्दरी में ही लग गया और वे सोंचने लगे कि पिताजी ने जिसे बतलाया था यह वही सुन्दरी है। यह रूप तथा यौवन से सम्पन्न होने के कारण देखने में दूसरी लक्ष्मी के समान लगती है ॥३॥ उसके मुखकमल को देखने से राजा तृप्त नहीं हो पा रहे थे । उनका मन उसी स्त्री में आसक्त हो गया और उन्हें रोमाञ्च हो गया ॥४॥ उसने भी जान लिया कि ये महाभिष ही हैं, अतएव वह राजा के सामने खड़ी हो गयी और मन्द-मन्द मुसुकाने लगी ॥५॥ उस सुन्दरी को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये और मीठी वाणी में उसे सान्त्वना देते हुए कहने लगे ॥६॥ हे सुन्दरि ! तुम क्या कोई देवी हो ? या मानुषी हो? या गान्धर्वी हो ? या यक्षी हो ? या नागकन्या हो ? या कोई अप्सरा हो ?॥७॥ हे सुन्दरि ! चाहे तुम जो हो मेरी पत्नी बन जाओ । प्रेमपूर्वक मुस्कुरा कर तुम आज मेरी धर्मपत्नी बनो ॥८॥ **सूतजी ने कहा**– राजा तो यह नहीं जानते थे कि ये गङ्गा हैं किन्तु गङ्गा इस बात को जानती थीं कि ये महाभिष ही राजा शन्तनु के रूप में उत्पन्न हुए है ॥९॥ पहले के प्रेम का संयोग होने के कारण शन्तनु की

यच्च कुर्यामहं कार्यं शुभं वा यदि वाऽशुभम् । न निषेध्या त्वया राजन्न वक्तव्यं तथाऽप्रियम् ॥१३॥ यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः। तदा मुक्त्वा गमिष्यामि यथेष्टं देशमारिष ॥१४॥ स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थनापूर्वकं हृदि । महाभिषस्य प्रेमाथ विचिंत्यैव च जाह्नवी ॥१५॥ तथेत्युक्ताऽथ सा देवी चकार नृपतिं पतिम् । एवं वृता नृपेणाथ गङ्गा मानुषरूपिणी ॥१६॥ नृपस्य मंदिरं प्राप्ता सुभगा वरवर्णिनी । नृपतिस्तां सामासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे ॥१७॥ साऽपि तं रमयामास भावज्ञा वै वरांगना । न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ ॥१८॥ स तया मृगशावाक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा। सा सर्वगुणसंपन्ना सोऽपि कामविचक्षणः ॥१९॥ रेमाते मंदिरे दिव्ये रमानारायणाविव । एवं गच्छति काले सा दधार नृपतेस्तदा ॥२०॥ गर्भं गङ्गा वसुं पुत्रं सुषुवे चारुलोचना । जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके ॥२१॥ तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पंचमे षष्ठ एव च । सप्तमे च हते पुत्रे राजा चिंतापरोऽभवत् ॥२२॥ किं करोम्यद्य वंशो मे कथं स्यात्सुस्थिरो भुवि । सप्त पुत्रा हता नूनमनया पापरूपया ॥२३॥ निवारयामि यदि मां त्यक्त्वा यास्यति सर्वथा। अष्टमोऽयं सुसंप्राप्तो गर्भो मे मनसीप्सितः ॥२४॥ न वारयामि चेदद्य सर्वथेयं

बात को सुनकर वह नारी मुस्कुरा कर कहने लगी ॥१०॥ उस स्त्री ने कहा– राजन् ! मैं जानती हूँ कि आप महाराज प्रतीप के पुत्र हैं । भाग्यवशात् प्राप्त आप जैसे पति को कौन सुन्दरी नहीं चाहेगी ?॥११॥ राजन् ! मैं कुछ शर्त के साथ ही आपको अपना पति बनाऊँगी । आप मेरे शर्तों को सुनें तब ही मैं आपको अपने पति के रूप में वरण करूँगी जब कि आप मेरी शर्त को मान लें ॥१२॥ मैं चाहे कोई अच्छा कार्य करूँ अथवा बुरा काम करूँ आप मुझे रोकेंगे नहीं और न तो अप्रिय बात कहेंगे ॥१३॥ राजन् जब आप मेरे शर्त को नहीं मानेंगे तो मैं आपका परित्याग करके चली जाऊँगी ॥१४॥ गङ्गा ने यह सोचा कि अष्टवसुओं ने मेरे गर्भ से जन्म लेने की बात कही थी और महाभिष ने भी प्रेमप्रदर्शन किया था ॥१५॥ राजा ने गङ्गा की बातों को स्वीकार कर लिया और गङ्गा ने भी राजा को अपना पति बना लिया । इस तरह से मनुष्य रूप धारण करने वाली गङ्गा का महाराज शन्तनु ने वरण किया ॥१६॥ वह सुन्दरी राजमहल में रहने लगी राजा भी उस रमणी को प्राप्त करके उसके साथ उपवन में क्रीडा करने लगे ॥१७॥ भावों को जानने वाली वह वरांगना भी राजा को रमण कराने लगी । उसके साथ रमण करते हुए राजा के कई वर्ष बीत गये; किन्तु उन्हें समय का पता नहीं चला ॥१८॥ शची के साथ रमण करने वाले इन्द्र के समान राजा शन्तनु उस मृगनयनी के साथ क्रीडा करते थे । राजा कामक्रीडा में दक्ष थे और वह भी सभी गुणों से सम्पन्न थी॥१९॥ वे दोनों अपने भवन में उसी तरह से रमण करते थे जिस तरह लक्ष्मी तथा नारायण रमण करते हैं । इस तरह कुछ समय बीतने पर उसने राजा का गर्भधारण किया ॥२०॥ और उस सुन्दरी ने वसुरूपी पुत्र को जन्म दिया। उसने उत्पन्न होते ही पहले और दूसरे पुत्र को जल में फेंक दिया ॥२१॥ तीसरे, चौथे पाँचवें छठे तथा सातवें पुत्र के इस तरह मार देने पर राजा चिन्तित हो गये ॥२२॥ वे सोचने लगे कि मैं क्या करूँ ? मेरा वंश कैसे सुस्थिर हो?

जले क्षिपेत् । भविता वा न वा चाग्रे संशयोऽयं ममाद्भुतः ॥२५॥ संभवेऽपि च दुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत् । एवं संशयिते कार्ये किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥२६॥ वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया । ततः काले यदा जातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः ॥२७॥ मुनेर्येन हृता धेनुर्नंदिनी स्त्रीजितेन हि। तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतन्पदे ॥२८॥ दासोऽस्मि तव तन्वंगि प्रार्थयामि शुचिस्मिते । पुत्रमेकं पुषाम्यद्य देहि जीवितमद्य मे ॥२९॥ हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वया शुभाः । अष्टमं रक्ष सुश्रोणि पतामि तव पादयोः ॥३०॥ अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम् । वंशो मे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने ॥३१॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः । तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थयाम्यष्टमं सुतम्॥३२॥ इत्युक्ताऽपि गृहीत्वा तं यदा गंतुं समुत्सुका । तदाऽतिकुपितो राजा तामुवाचातिदुःखितः ॥३३॥ पापिष्ठे किं करोम्यद्य निरयान्न बिभेषि किम् । काऽसि पापकराणां त्वं पुत्री पापरता सदा ॥३४॥ यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयतामिह । किं करोमि त्वया पापे वंशांतकरयाऽनया ॥३५॥ एवं वदति भूपाले सा गृहीत्वा सुतं शिशुम् । गच्छंती वचनं कोपसंयुता तमुवाच ह ॥३६॥ पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि

इस पापिनी ने मेरे सात पुत्रों को मार दिया ॥२३॥ यदि मैं रोकता हूँ तो यह मुझको छोड़कर चली जायेगी । मुझको अभिलषित यह आठवाँ गर्भ हो गया है ॥२४॥ यदि मैं इसे नहीं रोकता हूँ तो यह इसको भी जल में फेंक देगी । आगे मेरी कोई सन्तान होगी कि नहीं यह संशय ही है ॥२५॥ होने पर यह दुष्टा उसकी भी रक्षा करे कि नहीं, इस तरह से संशयास्पद विषय में मुझे क्या करना चाहिए ॥२६॥ राजा ने निश्चय किया कि वंश की रक्षा करने के लिए मुझे प्रयास अवश्य करना चाहिए । उसके बाद आठवें वसु ने जन्म लिया ॥२७॥ स्त्री के वशवर्ती होकर उसी ने महर्षि वसिष्ठ की नन्दिनी गौ को चुराया था उसको देखकर राजा उस पत्नी के पैर पर गिरकर कहने लगे ॥२८॥ हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूँ । मै तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं एक पुत्र का पालन करना चहता हूँ, उसे जीवित ही मुझे दे दो ॥२९॥ हे सुन्दरि ! तुमने मेरे सात पुत्रों को मार दिया है । मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ आठवें की तुम रक्षा करो॥३०॥ इसके बदले में तुम जो भी माँगोगी उस दुर्लभ वस्तु को भी मैं तुम्हें दूँगा । हे परम सुन्दरि ! आज तुम मेरे वंश की रक्षा करो ॥३१॥ वेदज्ञों का कहना है कि निष्पुत्र को स्वर्ग नहीं मिलता है । अतएव हे वरारोहे ! तुम से मैं यह आठवाँ पुत्र माँगता हूँ ॥३२॥ इस तरह से कहने पर भी जब उस बालक को लेकर वह चलने के लिए तैयार हो गयी तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुःखी राजा ने उससे कहा ॥३३॥ अरे पापिनि ! मैं क्या करूँ ? तुम्हें नरक से भी भय नहीं है क्या ? तुम कौन हो ? लगता है तुम पापी की पुत्री हो इसीलिए सदा पाप करती हो ॥३४॥ तुम चाहे जाओ या रहो; किन्तु मेरा पुत्र यहीं रहेगा । तुम जैसी अपने वंश का विनाश करने वाली पापिनी को रखकर ही मैं क्या करूँगा ? ॥३५॥ महाराज शन्तनु के इस तरह कहने पर भी उसने उस नवजात

वने गता । समयो मे गमिष्यामि वचनं ह्यन्यथाकृतम् ॥३७॥ गंङ्गां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम् । वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना॥३८॥ व्रजंतु मानुषीं योनिं स्थितां चिंतातुरास्तु माम् । दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननी नो भवानघे ॥३९॥ तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम । देवकायार्थ सिद्ध्यर्थं जानीहि संभवो मम ॥४०॥ सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापादृषेस्तु ते । कियंतं कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति ॥४१॥ गङ्गादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शंतनो स्वयम् । वसुं देवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम् ॥४२॥ गाङ्गेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः । अद्य तत्र नयाम्येनं यत्र त्वं वै मया वृतः ॥४३॥ दास्यामि यौवनप्राप्तं पालयित्वा महीपते । न मातृरहितः पुत्रो जीवेन्न च सुखी भवेत् ॥४४॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे गङ्गा तं गृहीत्वा च बालकम् । राजा चातीव दुःखार्तः संस्थितो निजमन्दिरे ॥४५॥ भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्य चाद्भुतम् । सर्वदा चिंतयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः ॥४६॥ एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयां गतः । निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि॥४७॥ गङ्गातीरमनुप्राप्तः स राजा शंतनुस्तदा । नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वा विस्मितः स महीपतिः ॥४८॥ तत्रापश्यत्कुमारं तं मुंचंतं विशिखान्बहून् । आकृष्य

शिशु को उठा लिया और क्रोधपूर्वक कहा मैं भी इस पुत्र को जीवित रखना चाहती हूँ । किन्तु इसे मैं वन में ले जाकर पालूँगी । आपने चूकि अपनी शर्त को नहीं रखा है, अतएव मैं यहाँ से चली जाऊँगी ॥३६-३७॥ मैं गङ्गा हूँ देवताओं का काम बनाने के लिए मैं यहाँ आयी थी । पूर्वकाल में महर्षि वसिष्ठ ने वसुओं को शाप दे दिया था ॥३८॥ उन्होंने कहा था तुम लोग मनुष्य योनि में चले जाओ । यह शाप सुनकर वसुगण चिन्तित हो गये । उन सबों ने मुझसे कहा हे अनघे ! आप मेरी माता बन जायँ ॥३९॥ उन सबों को वरदान देकर मैं आपकी पत्नी बन गयी । देवताओं का कार्य सिद्ध करने के ही लिए मैं उत्पन्न हुई थी ॥४०॥ आपके पुत्र बने हुए सात वसु तो ऋषि के शाप से मुक्त हो गये । कुछ काल के बाद यह आठवाँ वसु आपके पुत्र रूप में कुछ काल तक रहेगा ॥४१॥ महाराज ! मुझ गङ्गा के द्वारा दिये गये इस आठवें वसु को अपने पुत्र रूप में आप स्वीकार कीजिये ॥४२॥ गङ्गा का यह पुत्र अत्यधिक बलवान् होगा । आज मैं इसको वहीं ले जा रही हूँ जहाँ पर मैने आपका पति के रूप में वरण किया था ॥४३॥ राजन् ! इसका पालन करके जब यह युवक हो जायेगा तो मैं आपको दे दूँगी । माता के बिना न तो कोई पुत्र जीवित रह सकता है और न तो सुखी ही रह सकता है ॥४४॥ यह कहकर गङ्गा उस बालक को लेकर अन्तर्धान हो गयी और राजा अत्यन्त दुःखी होकर अपने भवन में रहने लगे ॥४५॥ राज्य करते हुए भी राजा को अपनी पत्नी के विरहजन्य दुःख तथा पुत्र के विरहजन्य दुःख होता रहता था ॥४६॥ इस तरह समय बीतने पर राजा एक बार आखेट के लिए बन में गये । वे अपने बाणों से मृगों, महिषों तथा वनसूकरों को मार रहे थे ॥४७॥ इस तरह राजा शन्तंनु गङ्गातट पर गये, वे नदी में थोड़ा जल देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥४८॥ वहाँ उन्होंने एक बालक को देखा जो बहुत अधिक बाणों को छोड़ रहा था । वह अपना विशाल धनुष चढ़ाकर नदी

**च महाचापं क्रीडंतं सरितस्तटे ॥४९॥ तं वीक्ष्य विस्मितो राजा न स्म जानाति किंचन । नोपलेभे स्मृतिं भूपः पुत्रोऽयं मम वा न वा ॥५०॥
दृष्ट्वाप्यमानुषं कर्म बाणेषु लघुहस्तताम् । विद्यां वाऽप्रतिमां रूपं तस्य वै स्मरसन्निभम् ॥५१॥ पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य पुत्रोऽसि चानघ ।
नोवाच किञ्चिद्वीरोऽसौ मुञ्चंछिलीमुखानथ ॥५२॥ अन्तर्धानं गतः सोऽथ राजा चिन्तातुरोऽभवत् । कोऽयं मम सुतो बालः किं करोमि व्रजामि
कम् ॥५३॥ गङ्गां तुष्टाव भूपालः स्थितस्तत्र समाहितः । दर्शनं सा ददौ चाथ चारुरूपा यथा पुरा ॥५४॥ दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं बभाषे नृपतिः
स्वयम् । कोऽयं गङ्गे गतो बालो मम त्वं दर्शयाधुना ॥५५॥** गङ्गोवाच— **पुत्रोऽयं तव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः । ददामि तव हस्ते तु
गाङ्गेयोऽयं महातपाः ॥५६॥ कीर्तिकर्ता कुलस्यास्य भविता तव सुव्रत । पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदं च शाश्वतम् ॥५७॥ वसिष्ठस्याश्रमे
दिव्ये संस्थितोऽयं सुतस्तव । सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलः शुचिः ॥५८॥ यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव । गृहाण गच्छ राजेन्द्र
सुखी भव नराधिप ॥५९॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे गङ्गा दत्त्वा पुत्रं नृपाय वै । नृपतिस्तु मुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः ॥६०॥ समालिंग्य सुतं राजा**

के तट पर खेल रहा था ॥४९॥ उसको देखकर राजा आश्चर्यित हो गये; किन्तु वे उस बालक के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे । राजा को यह बात
भी याद नहीं आ रही थी कि यह मेरा पुत्र है कि नहीं ॥५०॥ उस बालक के अमानुषिक कर्म; बाण चलाने में क्षिप्रता, उसकी विद्या तथा उसका कामदेव
के समान अप्रतिम रूप देखकर ॥५१॥ राजा ने पूछा हे अनघ ! आप किसके पुत्र हो ? किन्तु बाणो को छोड़ता हुआ वह बालक कुछ भी नहीं
बोला॥५२॥ वह बालक अन्तर्धान हो गया और राजा चिन्तित हो गये । उन्होंने सोचा कहीं यह मेरा ही पुत्र न हो मैं क्या करूँ, किसके पास जाऊँ ॥५३॥
वे गङ्गाजी की वहीं खड़ा होकर स्तुति करने लगे । इसके बाद गङ्गा ने पहले के ही समान सुन्दर रूप धारण करके दर्शन दिया ॥५४॥ उन सर्वाङ्गसुन्दरी
गङ्गाजी को देखकर राजा ने कहा— हे गङ्गे ! यह बालक कौन है ? वह कहाँ चला गया ? उसे तुम मुझे दिखाओ ॥५५॥ गङ्गा ने कहा— राजन् यह
आपका ही पुत्र आठवाँ वसु है । उसकी रक्षा मैने की है । यह महातपस्वी गाङ्गेय है । इसे मैं आपके हाथों में दे रही हूँ ॥५६॥ यह आपके कुल का यश
बढ़ायेगा । इसने सम्पूर्ण वेदों को पढ़ लिया है और धनुर्वेद को जान लिया है ॥५७॥ आपका यह पुत्र महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में रहा है । यह सभी
विद्याओं के विधान को जानता है। यह परमपवित्र तथा सभी विषयों में कुशल है ॥५८॥ परशुरामजी जो कुछ भी जानते हैं यह वह सब जानता है । अर्थात्
परशुरामजी ने इसे अपनी सारी विद्या प्रदान की है । राजन् ! इसे आप ले लें और सुखी रहें ॥५९॥ इस तरह से राजा को उनका पुत्र सौंप कर
गङ्गा अन्तर्धान हो गयीं । राजा भी अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हुए सुखी हो गये ॥६०॥ राजा ने अपने पुत्र का अलिङ्गन करके उसका शिर सूंघा

समाघ्राय च मस्तकम् । समारोप्य रथे पुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे ॥६१॥ गत्वा गजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम् । दैवज्ञं च समाहूय पप्रच्छ च शुभं दिनम् ॥६२॥ समाहृत्य प्रजाः सर्वाः सचिवान्सर्वशः शुभान् । यौवराज्येऽथ गाङ्गेयं स्थापयामास पार्थिवः ॥६३॥ कृत्वा तं युवराजानं पुत्रं सर्वगुणान्वितम् । सुखमास स धर्मात्मा न सस्मार च जाह्नवीम् ॥६४॥ सूत उवाच– **एतद्वः कथितं सर्वं कारणं वसुशापजम् । गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः संभवं तथा ॥६५॥ गङ्गावतरणं पुण्यं वसूनां संभवं तथा । यः शृणोति नरः पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥६६॥ पुण्यं पवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमाः । यथा मया श्रुतं व्यासात्पुराणं वेदसंमितम् ॥६७॥ श्रीमद्भागवतं पुण्यं नाना ख्यानकथान्वितम् । द्वैपायनमुखोद्भूतं पंचलक्षणसंयुतम् ॥६८॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा। इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमाः ॥६९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

और रथ पर पुत्र को बैठाकर अपने नगर लाये ॥६१॥ हस्तिनापुर जाकर राजा ने उत्सव मनाया और दैवज्ञों को बुलाकर शुभ मुहूर्त पूछा ॥६२॥ उन्होंने अपनी समस्त प्रजा को तथा मन्त्रियों को बुलाकर गाङ्गेय भीष्म को युवराज पद पर नियुक्त किया ॥६३॥ सर्वगुण सम्पन्न अपने पुत्र को युवराज बनाकर धर्मात्मा राजा सुखपूर्वक रहने लगे । अब उनको गङ्गा की याद नहीं सताती थी ॥६४॥ **सूतजी ने कहा**– यह मैंने आप लोगों को वसुओं के शाप की सारी कथा बतलायी तथा गाङ्गेय एवं गङ्गा की उत्पत्ति की कथा सुनायी ॥६५॥ जो मनुष्य गङ्गा के अवतार तथा वसुओं की उत्पत्ति की कथा को सुनता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥६६॥ हे मुनिवर्यों ! मैंने इस परम पवित्र कथा को सुनाया है, यह वेद के समान पवित्र है और ऐसा ही मैंने व्यासजी के मुख से सुना है । यह पवित्र श्री देवीभागवत अनेक प्रकार के आख्यानों वाला है, यह महर्षि द्वैपायन के मुख से उद्भूत तथा पुराणों के पाँचों लक्षणों से युक्त है ॥६८॥ यह सुनने वालों के समस्त पापों को विनष्ट करने वाला, कल्याण और सुख देने वाला है। हे मुनिवर्यों ! मैंने आप लोगों को यह इतिहास सुनाया है ॥६९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः– **वसूनां संभवः सूत कथितः शापकारणात् । गांगेयस्य तथोत्पत्तिः कथिता लोमहर्षणे ॥१॥ माता व्यासस्य धर्मज्ञ नाम्ना सत्यवती सती । कथं शन्तनुना प्राप्ता भार्या गंधवती शुभा ॥२॥ तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथं वृता । राज्ञा धर्मवरिष्ठेन संशयं छिंधि सुव्रत॥३॥** सूत उवाच– **शंतनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा । वनं जगाम निध्नन्वै मृगांश्च महिषान्रुरून् ॥४॥ चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः । रममाणः सुखं प्राप कुमारेण यथा हरः ॥५॥ एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खड्गसूकरान् । स कदाचिद्वनं प्राप्तः कालिंदीं सरितां वराम्॥६॥ महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् । तस्य प्रभवमन्विच्छन्संचचार वनं तदा ॥७॥ न मन्दारस्य गन्धोऽयं मृगनाभिमदस्य न । चंपकस्य न मालत्या न केतक्या मनोहरः ॥८॥ न चानुभूतपूर्वोऽयं वाति गन्धवहः शुभः । कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः ॥९॥ इति संचिंत्यमानोऽसौ बभ्राम वनमंडलम् । मोहितो गंधलोभेन शंतनुः पवनानुगः ॥१०॥ स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम् । शृङ्गाररहितां कांतां सुस्थितां मलिनांबराम् ॥११॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मितः स महीपतिः । अस्या देहस्य गंधोऽयमिति संजातनिश्चयः ॥१२॥ तदद्भुतं**

शन्तनु का सत्यवती के साथ विवाह

ऋषियों ने कहा– हे सूतजी ! आपने शाप के कारण वसुओं के जन्म की कथा तथा गांगेय की उत्पत्ति की कथा सुनायी ।।१।। हे सुव्रत ! अब आप यह सुनाकर हमलोगों का सन्देह दूर कीजिये कि महर्षि व्यास की माता सत्यवती जो गंधवती हो गयी थीं उनका विवाह शन्तनु के साथ कैसे हुआ ? क्योंकि राजा शन्तनु तो श्रेष्ठ धार्मिक थे वे दाश पुत्री के साथ विवाह कैसे किए ।।२-३।। सूतजी ने बतलाया कि– राजर्षि शन्तनु हमेशा आखेट करते रहते थे। एकबार वे महिषों, मृगों तथा रुरुओं को मारते हुए वन में गये ।।४।। वे चार वर्ष पर्यन्त अपने पुत्र के साथ रहते हुए उसी प्रकार आनन्दानुभव करते थे; जिस तरह कुमार (कार्तिकेय) को देखकर शंकरजी प्रसन्न होते थे ।।५।। एकबार वे अपने बाणों से गैण्डों, तथा सूकरों को मारते हुए यमुना के तट पर वन में गये।।६।। वहाँ पर उन्हें एक अनिर्वचनीय सुगन्धि की प्रतीति हुई, वे उस सुगन्धि की उत्पत्ति के स्थान को खोजते हुए वे वन में विचरने लगे ।।७।। वे सोच रहे थे कि यह न तो पारिजात की सुगन्धि है और न तो कस्तूरी की सुगन्धि है । न तो चम्पा की सुगन्धि है, न मालती की और न तो केतकी की सुगन्धि है ।।८।। इस तरह की सुगन्धि को तो मैंने कभी भी नहीं सूँघा ।।८।। इस दिव्य सुगन्धि को लेकर वायु चल रही है । मेरे प्राणों को तृप्त करने वाली यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है ?।।९।। इस तरह से सोचते हुए वे वन में ही घूम रहे थे । वे उसी तरफ चल रहे थे जिस तरफ से वह सुगन्धि लेकर हवा आ रही थी ।।१०।।

**रूपमतीव सुंदरं तथैव गन्धोऽखिललोकसंमतः । वयश्च तादृङ्नवयौवनं शुभं दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत् ॥१३॥ केयं कुतो वा
समुपागताऽधुना देवांगना वा किमु मानुषी वा । गन्धर्वपुत्री किल नागकन्या जाने कथं गंधवतीं नु कामिनीम् ॥१४॥ संचिंत्य चैवं मनसा नृपोऽसौ
न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम् । गङ्गां स्मरन्कामवशं गतोऽथ पप्रच्छ कान्तां तटसंस्थितां च ॥१५॥ काऽसि प्रिये कस्य सुताऽसि कस्मादिह
स्थिता त्वं विजने वरोरु । एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे विवाहिता वा न विवाहिताऽसि ॥१६॥ संजातकामोऽहमरालनेत्रे त्वां वीक्ष्य कान्तां च
मनोहरां च । ब्रूहि प्रिये काऽसि चिकीर्षसि त्वं किं चेति सर्वं मम विस्तरेण ॥१७॥ इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण प्रोवाच तं सस्मितमंबुजेक्षणा ।
दाशस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्कन्यां पितुः शासनसंस्थितां च ॥१८॥ तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव संवाहयामीह जले नृपेंद्र । पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति
कामं सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे ॥१९॥ इत्येवमुक्त्वा विरराम बाला कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे । कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं वृथा न गच्छेन्ननु
यौवनं ते ॥२०॥ न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि । दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव मनोभवस्तापयति प्रिये
माम्॥२१॥ गता प्रिया मां परिहृत्य कांता नान्या वृताऽहं विधुरोऽस्मि कांते । त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां मनो हि जातं विवशं मदीयम् ॥२२॥**

उन्होंने यमुनाजी के किनारे बैठी हुई एक सुन्दरी स्त्री को देखा । उसने अपना शृंगार नहीं किया था और उसके वस्त्र मलिन थे ॥११॥ उस सुन्दरी को देखकर
वे राजा आश्चर्यित हो गये ॥१३॥ वे सोचने लगे यह कौन है ? अथवा इस समय यह कहाँ से आयी है ? यह कोई देवता नारी है ? या मानुषी है?
लगता है कि यह गन्धवती कामिनी किसी गन्धर्व की पुत्री है या नागकन्या है ?॥१४॥ इस तरह से विचार करके भी राजा जब कोई निश्चय नहीं कर सके
तो स्वयं वे गंगा का स्मरण करते हुए, तट पर बैठी हुई उस कामिनी से पूछे ॥१५॥ हे वरोरु ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? इस निर्जन वन
में अकेली क्यों बैठी हो ? हे सुन्दर नेत्रों वाली ! बतलाओं कि तुम्हारा विवाह हुआ है या नहीं ?॥१६॥ हे तिरछी नेत्रोंवाली तुम सुन्दरी को देखकर मैं
कामातुर हो गया हूँ । हे प्रिये ! बतलाओ तुम कौन हो ? क्या करना चाहती हो ? ये सारी बातें विस्तार पूर्वक मुझे बतलाओ ॥१७॥ इस तरह कहे
जाने पर सुन्दर दन्तपंक्ति तथा विकसित कमल के समान नेत्रों वाली सुन्दरी ने कहा– मैं निषाद की पुत्री हूँ और मैं अपने पिता की आज्ञा का पालन करती
हुई अपने जाति धर्म के अनुसार इस नौका को चलाती हूँ । मै सत्य कह रही हूँ, पिताजी अभी घर गये हैं ॥१८-१९॥ इस तरह से कहकर वह बाला चुप
हो गयी तो कामार्त बने हुए राजा ने उससे कहा– तुम कुरुवंशीय मुझको अपना पति बना लो, कहीं तुम्हारी जवानी व्यर्थ न हो जाय ॥२०॥ मेरी कोई दूसरी
पत्नी नहीं है, हे मृगनयनि ! तुम मेरी पत्नी बन जाओ । मैं तुम्हारा वशवर्ती दास हूँ । हे प्रिये ! मुझको काम सता रहा है ॥२१॥ मेरी प्रिय पत्नी मुझको
छोड़कर चली गयी, मैंने किसी दूसरी पत्नी का वरण नहीं किया है, हे कान्ते ! मैं विधुर हूँ । सभी मनोहर अङ्गों वाली तुमको देखकर मेरा मन विवश हो

श्रुत्वाऽमृतास्वादरसं नृपस्य वचोऽतिरम्यं खलु दासकन्या । उवाच तं सात्त्विकभावयुक्ता कृत्वाऽतिधैर्यं नृपतिं सुगंधा ॥२३॥ यदात्थ राजन्मयि तत्तथैव मन्येऽहमेतत्तु यथा वचस्ते । नास्मि स्वतंत्रा त्वमवेहि कामं दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु ॥२४॥ न स्वैरिणीहास्म्यपि दाशपुत्री पितुर्वशेऽहं सततं चरामि । स चेद्ददाति प्रथितः पिता मे गृहाण पाणिं वशगाऽस्मि तेऽहम् ॥२५॥ मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति यथा पुनर्मां नवयौवनां च । दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया धृतिः कुलाचारपरंपरासु ॥२६॥ सूत उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपतिः काममोहितः । गतो दाशपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे ॥२७॥ दृष्ट्वा नृपतिमायांतं दाशोऽतिविस्मयं गतः । प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृताञ्जलिरभाषत ॥२८॥** दाश उवाच– **दासोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहं तवागमे । आज्ञां देहि महाराज यदर्थमिह चागमः ॥२९॥** राजोवाच– **धर्मपत्नीं करिष्यामि सुतामेतां तवानघ। त्वया चेद्दीयते मह्यं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३०॥** दाश उवाच– **कन्यारत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं प्रार्थयसे नृप । दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन॥३१॥ तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथिवीपतिः । सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै ॥३२॥** सूत उवाच– **श्रुत्वा वाक्यं तु दाशस्य राजा चिन्तातुरोऽभवत् । गांगेयं मनसा कृत्वा नोवाच नृपतिस्तदा ॥३३॥ कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिंताविष्टो महीपतिः । न सस्नौ बुभुजे नाथ**

गया है ॥२२॥ अमृत रस से भरे; राजा की मनोहर बात को सुनकर सात्त्विक भाव से युक्त वह दाशकन्या सुगन्धा अत्यन्त धैर्यपूर्वक कहने लगी ॥२३॥ हे राजन् ! जैसा आपने कहा है, वह आपकी वाणी सत्य है, यह मैं मानती हूँ । आप यह जाने कि मैं स्वतंत्र नहीं हूँ, अतएव आप मेरे पिता से मुझे माँगें॥२४॥ दाशपुत्री होकर भी मैं स्वेच्छाचारिणी नहीं हूँ; मैं सदा पिता की आज्ञा के अनुसार चलती हूँ । यदि मेरे पिता मुझे आपको प्रदान कर देते हैं तो आप मेरा पाणिग्रहण कर लें । मैं आपकी वशवर्तिनी हूँ ॥२५॥ राजन् ! केवल आप को ही नहीं मुझे भी काम सताता है; क्योंकि मैं नवयौवना हूँ। फिर भी कुल की आचार परम्परा के अनुसार धैर्य की रक्षा करनी ही होती है ॥२६॥ **सूतजी ने कहा**– उस सुगन्धा की वाणी सुनकर काममोहित राजा दाशपति के घर उसको माँगने के लिए गये ॥२७॥ आते हुए राजा को देखकर दाशराज अत्यन्त आश्चर्यित हुए और राजा को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहे ॥२८॥ **दाशराज ने कहा**– राजन् ! मैं आपका दास हूँ; आपके आने से मैं कृतार्थ हो गया । आप जिस काम के लिए आये हैं वह आज्ञा करें ॥२९॥ **राजा ने कहा**– यदि आप मुझे प्रदान करें तो मै आपकी पुत्री को अपनी धर्मपत्नी बनाना चाहता हूँ ॥३०॥ **दाशराज ने कहा**– राजन् ! आप मेरी कन्या रूपी रत्न को प्राप्त करना चाहते हैं, वह तो देने की ही चीज है, कन्या अदेय तो होती नहीं है ॥३१॥ किन्तु इस विषय में मेरी एक शर्त है कि आपके बाद मेरी इस कन्या का ही पुत्र राजा बने; आपका कोई दूसरा पुत्र राजा नहीं होए ॥३२॥ **सूतजी ने कहा**– दाशराज की बात को सुनकर राजा चिन्तित हो गये और गंगापुत्र

न सुष्वाप गृहं गतः ॥३४॥ चिंतातुरं तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा । गत्वाऽपृच्छन्महीपालं तदसंतोषकारणम् ॥३५॥ दुर्जयः सोऽस्ति शत्रुस्ते करोमि वशगं तव । का चिंता नृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम ॥३६॥ किं तेन जातेन सुतेन राजन्दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः । ऋणं ग्रहीतुं समुपागतोऽसौ प्राग्जन्मजं नात्र विचारणाऽस्ति ॥३७॥ विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः । वनं गतो लक्ष्मणजानकीभ्यां सहैव शैलं किल चित्रकूटम् ॥३८॥ सुतो हरिश्चन्द्रनृपस्य राजन् यो रोहितश्चेति प्रसिद्धनामा । क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च दासार्पितो विप्रगृहे तु नूनम् ॥३९॥ तथाऽजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो नाम्ना शुनःशेप इति प्रसिद्धः । क्रीतस्तु पित्राप्यथ यूपबद्धः सम्मोचितो गाधिसुतेन पश्चात् ॥४०॥ पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम् । अकार्यमप्याचरितं च तेन गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता ॥४१॥ इदं शरीरं तव भूपते न क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम् । न शोचनीयं मयि वर्तमानेऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः ॥४२॥ प्रब्रूहि राजंस्तव काऽस्ति चिन्ता निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा । देहेन मे चेच्चरितार्थता वा भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा ॥४३॥ धिक्तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं क्षमोऽपि सन्न प्रतिपादयेद्यः।

भीष्म को सोच कर वे कुछ भी नहीं बोले ॥३३॥ चिन्तित होकर कामातुर राजा अपने घर आये और घर आकर उन्होंने न तो स्नान किया, न भोजन किया और न तो सोए ही ॥३४॥ राजा को चिन्तित देखकर देवव्रत उनके पास जाकर उनके असन्तोष का कारण पूछे ॥३५॥ राजन् ! आपको कौन सी चिन्ता है ? यदि कोई आपका दुर्जय शत्रु हो तो उसे आप बतलाएँ; उसको मैं आपका वशवर्ती बना दूँगा । राजन् ! आप अपनी चिन्ता का कारण सत्य-सत्य बतलाएँ॥३६॥ राजन् ! उस पुत्र के उत्पन्न होने से कौन सा लाभ है जो अपने पिता के दुःख को जानकर उसे विनष्ट न कर दे ? वैसा पुत्र तो अपने पूर्वजन्म में दिए हुए ऋण को भुगतान कराने के लिए जन्म लेता है ॥३७॥ पिता की आज्ञा से रघुनन्दन श्रीराम राज्य का परित्याग करके अपनी पत्नी सीता तथा अनुज लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर्वत पर चले गये थे ॥३८॥ राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित अपने माता-पिता के बिक जाने पर स्वयं भी बिक कर एक ब्राह्मण के घर में उसका दास बनकर रहने लगा था ॥३९॥ इस तरह अजिगर्त ब्राह्मण का पुत्र शुनः शेप अपने पिता की आज्ञा से यूप में बँध गया था जिसे बाद में महर्षि विश्वामित्र ने छुडाया था ॥४०॥ महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने भी अपने पिता की आज्ञा से अपनी माता का शिर काट दिया । इस अनुचित कार्य को भी करके उन्होंने पिता की आज्ञा का महत्त्व बढ़ाया ॥४१॥ राजन् ! यह शरीर आपका है । यद्यपि मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ फिर भी आप आज्ञा दें । मैं आपकी कौन सी सेवा करू ? मेरे रहते आपको कुछ भी नहीं सोचना चाहिए, असाध्य कार्य को भी मैं पूरा करूँगा ॥४२॥ राजन् ! आप बतलाएँ कि आपको कौन सी चिन्ता है ? उसे आज ही मैं धनुष उठा कर दूर कर दूँगा । यदि मेरे शरीर से आपका काम हो सके तो उससे भी मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा ॥४३॥ उस पुत्र को धिक्कार हैं जो कि समर्थ होकर भी अपने पिता की इच्छा को पूर्ण नहीं करता

जातेन किं तेन सुतेन कामं पितुर्न चिंतां हि समुद्धरेद्यः ।।४४।। सूत उवाच– निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शंतनुर्नृपः । लज्जमानस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम् ।।४५।। राजोवाच– चिंता मे महती पुत्र यस्त्वमेकोऽसि मे सुतः । शूरोऽतिबलवान्मानी संग्रामेष्वपराङ्मुखः ।।४६।। एकापत्यस्य मे तात वृथेदं जीवितं किल । मृते त्वयि मृधे क्वापि किं करोमि निराश्रयः ।।४७।। एषा मे महती चिंता तेनाद्य दुःखितोऽस्म्यहम्। नान्या चिंताऽस्ति मे पुत्र यां तवाग्रे वदाम्यहम् ।।४८।। सूत उवाच– तदाकर्ण्याथ गांगेयो मंत्रिवृद्धानपृच्छत । न मां वदति भूपालो लज्जयाऽद्य परिप्लुतः ।।४९।। चित्तवार्तां नृपस्याद्य पृष्ट्वा यूयं विनिश्चयात् । सत्यं ब्रुवंतु मां सर्वं तत्करोमि निराकुलः ।।५०।। तच्छ्रुत्वा ते नृपं गत्वा संविज्ञाय च कारणम् । शशंसुर्विदितार्थस्तु गांगेयस्तदचिंतयत् ।।५१।। सहितस्तैर्जगामाशु दाशस्य सदनं तदा । प्रेमपूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः।।५२।। गांगेय उवाच– पित्रे देहि सुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम् । माता मेऽस्तु सुतेयं ते दासोऽस्म्यस्याः परंतप ।।५३।। दाश उवाच– त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरु नृपात्मज । पुत्रोऽस्या न भवेद्राजा वर्तमाने त्वयीति वै ।।५४।। गांगेय उवाच– मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम् । पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः ।।५५।। दाश उवाच– सत्यं वाक्यं मया ज्ञातं पुत्रस्ते बलवान्भवेत् । सोऽपि राज्यं बलान्नूनं

है । उस पुत्र के उत्पन्न होने से ही कौन सा लाभ है जो अपने पिता की चिन्ता को दूर न कर सके ।।४४।। **सूतजी ने कहा**– राजा शन्तनु अपने पुत्र की वाणी को सुनकर मन में लज्जा करते हुए उससे कहे ।।४५।। **राजा ने कहा**– पुत्र मुझको यही चिन्ता है कि तुम मेरे अकेले पुत्र हो । तुम शूर वीर तथा बलवान् हो । तुम संग्राम से कभी पलायन नहीं करते हो ।।४६।। एक सन्तान वाला मेरा जीवन व्यर्थ है, क्योंकि यदि तुम कही युद्ध में मारे गये तो फिर आश्रय हीन मैं क्या करूँगा ।।४७।। यह मेरी सबसे बड़ी चिन्ता है और उसी के कारण मैं दुःखी हूँ ।।४८।। पुत्र इससे भिन्न मुझे कोई चिन्ता नहीं है कि उसे मैं तुम्हे बतलाऊँ ।।४८।। **सूतजी ने कहा**– उसको सुनकर गंगापुत्र मन्त्रियों से कहे कि महाराज लज्जित होने के कारण नहीं बतला रहे हैं ।।४९।। आपलोग महाराज के मन की बात को जानकर मुझे सत्य-सत्य बतलाए मैं उसे पूरा करूँगा ।।५०।। इस बात को सुनकर वे मन्त्री महाराज से उनकी उदासी का कारण जानकर गांगेय को बतलाये और गांगेय उस पर विचार किए ।।५१।। वे उन मन्त्रियों के साथ दाशराज के घर गये और उन्होंने प्रेमपूर्वक दाशराज से कहा ।।५२।। **गांगेय ने कहा**– हे दाशराज ! आज ही आंप अपनी सुन्दरी पुत्री को मेरे पिता को दे दीजिये वह मेरी माता रहेगी और मैं उसका दास रहूँगा ।।५३।। **दाशराज ने कहा**– हे राजपुत्र ! तुम इसे लेकर अपनी पत्नी बना लो क्योंकि आपके रहते इसका पुत्र राजा नहीं हो सकता है ।।५४।। **गांगेय ने कहा**– यह दाशपुत्री मेरी माता है; मैं राज्य नहीं करूँगा । इसमें कोई सन्देह नही है कि इसी का पुत्र राज्य करेगा ।।५५।। **दाशराज ने कहा**– आपकी बात सत्य है कि

गृहणीयादिति निश्चयः ॥५६॥ गांगेय उवाच– **न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा । सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम् ॥५७॥** सूत उवाच– **एवं कृतां प्रतिज्ञां तु निशम्य झषजीवकः । ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्गशोभनाम् ॥५८॥ अनेन विधिना तेन वृता सत्यवती प्रिया। न जानाति परं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः ॥५९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच– **एवं सत्यवती तेन वृता शंतनुना किल । द्वौ पुत्रौ च तया जातौ मृतौ कालवशादपि ॥१॥ व्यासवीर्यात्तु संजातो धृतराष्ट्रोऽन्ध एव च । मुनिं दृष्ट्वाऽथ कामिन्या नेत्रसंमीलने कृते ॥२॥ श्वेतरूपा यतो जाता दृष्ट्वा व्यासं नृपात्मजा । व्यासकोपात्समुत्पन्नः पांडुस्तेन न संशयः॥३॥ संतोषितस्तया व्यासो दास्या कामकलाविदा । विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक्शुचिः ॥४॥ राज्ये संस्थापितः पांडुः कनीयानपि**

आप राज्य नहीं करेंगे; किन्तु यदि आपका पुत्र बलवान् हुआ तो वह राजा हो जायेगा ॥५६॥ **गांगेय ने कहा–** हे तात ! मेरी यह सत्यप्रतिज्ञा है कि मैं आजीवन विवाह नहीं करूँगा । यह मेरी भीष्म प्रतिज्ञा है ॥५७॥ **सूतजी ने कहा–** इसतरह की प्रतिज्ञा को सुनकर निषाद ने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी उस कन्या को राजा के लिए दे दिया ॥५८॥ इस प्रकार से राजा शन्तनु ने सत्यवती का पत्नी रूप से वरण किया । वे व्यास के जन्म के विषय में नहीं जानते थे ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के पाँचवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

पाण्डवों का जन्मवृत्तान्त

सूतजी ने कहा– कि इस प्रकार से शन्तनु ने सत्यवती का पत्नी के रूप में वरण किया । उससे शन्तनु के दो पुत्र हुए, किन्तु कालवशात् वे दोनों मर गये ॥१॥ व्यासजी के वीर्य से अन्धे धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए, क्योंकि मुनि को देखकर अम्बिका ने अपने नेत्रों को बन्द कर लिया था ॥२॥ अम्बालिका व्यासजी को देखकर डर से श्वेत हो गयी, अतएव व्यासजी के क्रोध से पाण्डु उसके पुत्र हुए ॥३॥ कामकला को जानने वाली दासी ने व्यासजी को

मंत्रिभिः । अन्धत्वाद्धृतराष्ट्रोऽसौ नाधिकारे नियोजितः ॥५॥ भीष्मस्यानुमते राज्यं प्राप्तः पाण्डुर्महाबलः । विदुरोऽप्यथ मेधावी मंत्रिकार्ये नियोजितः॥६॥ धृतराष्ट्रस्य द्वे भार्ये गांधारी सौबली स्मृता । द्वितीया च तथा वैश्या गार्हस्थ्येषु प्रतिष्ठिता ॥७॥ पाण्डोरपि तथा पत्न्यौ द्वे प्रोक्ते वेदवादिभिः । शौरसेनी तथा कुन्ती माद्री च मद्रदेशजा ॥८॥ गांधारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम् । वैश्याप्येकं सुतं कांतं युयुत्सुं सुषुवे प्रियम् ॥९॥ कुन्ती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णं मनोहरम् । सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पाण्डुपरिग्रहः ॥१०॥ ऋषय ऊचुः— किमेतत्सूत चित्रं त्वं भाषसे मुनिसत्तम । जनितश्च सुतः पूर्वं पांडुना सा विवाहिता ॥११॥ सूर्यात्कर्णः कथं जातः कन्यायां वद विस्तरात् । कन्या कथं पुनर्जाता पाण्डुना सा विवाहिता ॥१२॥ सूत उवाच— शूरसेनसुता कुन्ती बालभावे यदा द्विजाः । कुन्तिभोजेन राज्ञा तु प्रार्थिता कन्यका शुभा ॥१३॥ कुन्तिभोजेन सा बाला पुत्री तु परिकल्पिता । सेवनार्थं तु दीप्तस्य विहिता चारुहासिनी ॥१४॥ दुर्वासास्तु मुनिः प्राप्तश्चातुर्मास्ये स्थितो द्विजः । परिचर्या कृता कुन्त्या मुनिस्तोषं जगाम ह॥१५॥ ददौ मंत्रं शुभं तस्यै येनाहूतः सुरः स्वयम् । समायाति तथा कामं पूरयिष्यति वांछितम् ॥१६॥ गते मुनौ ततः कुन्ती निश्चयार्थं

सन्तुष्ट किया; अतएव धर्म के अंश से पवित्र विदुर का जन्म हुआ ॥४॥ छोटे होने पर भी मन्त्रियों ने पाण्डु को इसलिए राजा बनाया कि धृतराष्ट्र अन्धे थे; अतएव वे राजा नहीं बनाये गये ॥५॥ भीष्म की अनुमति से महाबलवान पाण्डु राज्य प्राप्त कर लिए और मेधावी विदुर को उनका मन्त्री बनाया गया॥६॥ धृतराष्ट्र की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी सुबल की पुत्री गन्धारी थी। दूसरी एक वैश्य की पुत्री थी वह गृहस्थी के सब कार्यों को देखती थी॥७॥ वेदज्ञों ने पाण्डु की भी दो पत्नियों को बतलाया है। पहली शूरसेन की पुत्री कुन्ती थी और दूसरी मद्रदेश के राजा की पुत्री माद्री थी ॥८॥ गान्धारी ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया; जबकि वैश्या ने युयुत्सु नामक प्रिय पुत्र को उत्पन्न किया ॥९॥ कुन्ती ने तो विवाह से पहले ही सूर्य पुत्र कर्ण को उत्पन्न किया। उसने अपने पिता के ही घर में कर्ण को जन्म दिया था, उसके बाद में पाण्डु से उसका विवाह हुआ ॥१०॥ **ऋषियों ने पूछा**— हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी आप यह क्या कह रहे हैं कि पहले कुन्ती ने पुत्र को उत्पन्न और बाद में उसका पाण्डु से विवाह हुआ ॥११॥ आप यह विस्तार से बतलाएँ कि कन्या कुन्ती में सूर्य का कर्ण नामक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ ? और पुत्र हो जाने के बाद भी वह कन्या कैसे रही ? तथा उसका पाण्डु के साथ विवाह कैसे हुआ ?॥१२॥ **सूतजी ने कहा**— हे ब्राह्मणों ! जब शूरशेन की पुत्री कुन्ती बच्ची थी उसी समय कुन्तिभोज ने उनसे उस कन्या को माँग लिया ॥१३॥ इसके बाद कुन्तिभोज ने उसे अपनी पुत्री मान लिया और उस चारुहासिनी कन्या को चातुर्मास व्रत में आये हुए महर्षि दुर्वासा के अग्निहोत्र में सेवा का कार्य सौप दिया। कुन्ती ने महर्षि की खूब सेवा की; उससे महर्षि दुर्वासा प्रसन्न हो गये ॥१४-१५॥ उन्होंने कुन्ती को ऐसा मन्त्र बतला दिया जिससे आवाहित किए जाने पर कोई भी देवता आये

गृहे स्थिता । चिंतयामास मनसा कं सुरं समचिंतये ॥१७॥ उदितश्च तदा भानुस्तया दृष्टो दिवाकरः । मंत्रोच्चारं तया कृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा॥१८॥ मंडलान्मानुषं रूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम् । अवातरत्तदाऽऽकाशात्समीपे तत्र मंदिरे ॥१९॥ दृष्ट्वा देवं समायांतं कुन्ती भानुं सुविस्मिता । वेपमाना रजोदोषं प्राप्ता सद्यस्तु भामिनी ॥२०॥ कृतांजलिः स्थिता सूर्यं बभाषे चारुलोचना । सुप्रीता दर्शनेनाद्य गच्छ त्वं निजमंडलम् ॥२१॥ सूर्य उवाच– **आहूतोऽस्मि कथं कुन्ति त्वया मंत्रबलेन वै । न मां भजसि कस्मात्त्वं समाहूय पुरोगतम् ॥२२॥ कामार्तोऽस्म्यसितापांगि भज मां भावसंयुतम् । मंत्रेणाधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति ॥२३॥** कुंत्युवाच– **कन्याऽस्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम् । तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्याऽस्मि सुव्रत ॥२४॥** सूर्य उवाच– **लज्जा मे महती चाद्ययदि गच्छाम्यहं वृथा । वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्र न संशयः ॥२५॥ शप्स्यामि तं द्विजं चाद्य येन मंत्रः समर्पितः । त्वां चापि सुभृशं कुन्ति नोचेन्मां त्वं भजिष्यसि ॥२६॥ कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यंति जनाः किल । मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने ॥२७॥ इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम् । भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वाऽतिवांछितम् ॥२८॥ गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मंदिरे स्थिता । धात्री वेद प्रिया चैका न माता न जनस्तथा ॥२९॥ गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु**

और उसकी इच्छा की पूर्ति करे ॥१६॥ मुनि के चले जाने पर कुन्ती मन्त्र की परीक्षा करने के लिए सोचने लगी कि मैं किस देवता का आवाहन करूँ॥१७॥ उस समय उसने सामने देखा कि सूर्योदय हो गया है । उसने मन्त्र का उच्चारण करके सूर्य का आवाहन किया ॥१८॥ मन्त्रोच्चारण करते ही सूर्य नारायण सुन्दर मनुष्य का रूप धारण करके कुन्ती के पास आये ॥१९॥ आते हुए सूर्य को देखकर आश्चर्यचकित होकर कुन्ती काँपने लगी और उसमें रजोदोष उत्पन्न हो गया ॥२०॥ उसने हाथ जोड़कर सूर्य से कहा आपका दर्शन करके मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गयी हूँ, आप अपने मंडल में चले जायँ ॥२१॥ **सूर्य ने कहा–** हे कुन्ति ! तुमने अपने मन्त्र के बल से मुझे किसलिए बुलाया है ? और मुझको अपने सामने बुलाने के बाद जब मैं तुम्हारे सामने आ गया तो मेरा उपयोग क्यों नहीं करती हो ॥२२॥ हे असितापांगि ! मैं कामार्त हूँ और भाव से युक्त हूँ, मन्त्र के कारण मैं तुम्हारे अधीन हो गया हूँ । तुम मुझे बिहार करने के लिए ले चलो ॥२३॥ **कुन्ती ने कहा–** हे सर्वसाक्षिन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ । हे सुव्रत ! मैं कन्या हूँ आप मुझे दुर्वचन न कहें ॥२४॥ **सूर्य ने कहा–** यदि मैं आज व्यर्थ ही लौट जाऊँ तो मुझको अत्यन्त लज्जा होगी और सभी देवता मेरा उपहास करेंगे ॥२५॥ यदि तुम मेरा कहना नहीं मनोगी तो मैं तुम्हे तथा उस मुनि को भी शाप दे दूँगा जिसने तुम्हें मन्त्र प्रदान किया है ॥२६॥ तुम्हारा कन्या का धर्म बना रहेगा । इसबात को लोग नहीं जान पायेंगे । हे वरानने ! तुम्हारा पुत्र भी मेरे ही समान तेजस्वी होगा ॥२७॥ इस तरह से कहकर सूर्य ने अपने में आसक्त कुन्ती का उपभोग किया और

जातश्चातिमनोहरः । कवचेनातिरम्येण कुण्डलाभ्यां समन्वितः ॥३०॥ द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः । करे कृत्वाऽथ धात्रेयी तामुवाच
सुलज्जिताम् ॥३१॥ कां चिंतां करभोरु त्वमाधत्सेऽद्य स्थिताऽस्म्यहम् । मंजूषायां सुतं कुन्ती मुंचंती वाक्यमब्रवीत् ॥३२॥ किंकरोमि सुतार्ताऽहं
त्यजे त्वां प्राणवल्लभम् । मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्वलक्षणसंयुतम् ॥३३॥ पातु त्वां सगुणाऽगुणा भवगती सर्वेश्वरी चाम्बिका स्तन्यं सैव
ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा । द्रक्ष्येऽहं मुखपङ्कजं सुललितं प्राणप्रियार्हं कदा त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी॥३४॥
पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न चाराधिता न ध्यातं पदपङ्कजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम् । तेनाहं सुत दुर्भगाऽस्मि सततं त्यक्त्वा
पुनस्त्वां वने तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम् ॥३५॥ सूत उवाच– **इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मञ्जूषायां सुतं किल । धात्रीहस्ते**
ददौ भीता जनदर्शनतस्तथा ॥३६॥ स्नात्वा त्रस्ता तदा कुन्ती पितृवेश्मन्युवास सा । मञ्जूषा वहमाना च प्राप्ता ह्यधिरथेन वै ॥३७॥ राधा सूतस्य
भार्या वै तयाऽसौ प्रार्थितः सुतः । कर्णोऽभूद्बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि ॥३८॥ कुन्ती विवाहिता कन्या पाण्डुना सा स्वयम्वरे । माद्री

उसे अभिलषित वर प्रदान करके वे चले गये ॥२८॥ सूर्यदेव के ऐसा करने से कुन्ती गर्भवती हो गयी और वह एकान्त में छिपकर रहने लगी । कुन्ती
के इस बात को उसकी केवल एक नौकरानी जानती थी, उसके माता-पिता इस बात को नहीं जानते थे ॥२९॥ उस गुप्तभवन में ही कुन्ती ने अत्यन्त
मनोहर पुत्र को जन्म दिया । वह बालक अत्यन्त सुन्दर कवच तथा कुण्डल से समन्वित था ॥३०॥ दूसरे सूर्य अथवा कार्तिकेय के समान उस बालक को
अपने हाथ में लेकर धात्री ने अत्यन्त लज्जित कुन्ती से कहा ॥३१॥ हे सुन्दरि ! मेरे रहते तुम क्यों चिन्ता कर रही हो ? उसके बाद कुन्ती ने उस बच्चे
को एक मञ्जूषा में रखकर कहा ॥३२॥ बेटे मैं अत्यन्त दुखी होकर तुम्हारा त्याग कर रही हूँ । मैं मन्द भाग्यवाली हूँ कि तुम जैसे सभी लक्षणों से युक्त
बालक का त्याग कर रही हूँ ॥३३॥ सगुणा, निर्गुणा, सर्वेश्वरी भगवती तुम्हारी रक्षा करें ! विश्वजननी कात्यायनी भगवती तुम्हें दूध पिलायें । वे संसार की
कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं । भगवान् सूर्य के पुत्र को एक कुलटा नारी के समान वन में त्याग करके अब कब मैं तुम्हारा प्राणप्रिय मुख देख
सकूँगी॥३४॥ मैंने अपने पूर्वजन्म में माता अम्बिका की न तो आराधना की है, और न तो उनके चरणकमलों का मैंने ध्यान किया है । हे पुत्र ! मैं इसीलिए
सदा की दुर्भाग्यवती हूँ तुम्हारा त्याग करके मैं पुनः अपने बुद्धिपूर्वक किए गये पापों का फल भोगने के लिए वन में तपस्या करूँगी ॥३५॥ **सूतजी ने कहा**– इस
तरह से उस बच्चे से कहकर कुन्ती बच्चे को एक मञ्जूषे में रखकर उसे धायी के हाथ में दे दी क्योंकि वह इस बात से डरी हुई थी कि कहीं कोई देख न
ले॥३६॥ इसके बाद कुन्ती स्नान करके अपने पिता के घर रहने लगी । मंजूषा बहती हुई गयी और सारथि अधिरथ को मिल गयी ॥३७॥ सूत की
पत्नी का नाम राधा था । उसकी प्रार्थना को सुनकर अधिरथ ने उस बच्चे को राधा को दे दिया । सूत के घर में पलने वाला वह बालक कर्ण नामक

चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा ॥३९॥ मृगयायां रममाणस्तु वने पांडुर्महाबलः । जंघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने ॥४०॥ शप्तस्तेन तदा पाण्डुर्मुनिना कुपितेन च । स्त्रीसङ्गं यदि कर्ताऽसि तदा ते मरणं ध्रुवम् ॥४१॥ इति शप्तस्तु मुनिना पांडुः शोकसमन्वितः । त्यक्त्वा राज्यं वने वासं चकार भृशदुःखितः ॥४२॥ कुन्ती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सह सङ्गते । सेवनार्थं सतीधर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः ॥४३॥ गङ्गातीरे स्थितः पाण्डुर्मुनीनामाश्रमेषु च । शृण्वानो धर्मशास्त्राणि चकार दुश्चरं तपः ॥४४॥ कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्मसंश्रितम् । अशृणोद्वचनं राजा सुपृष्टं मुनिभाषितम् ॥४५॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे गन्तुं परन्तप । येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत् ॥४६॥ अंशजः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गोलकस्तथा । कुण्डः सहोढः कानीनः क्रीतः प्राप्तस्तथा वने ॥४७॥ दत्तः केनापि चाशक्तौ धनग्राहिसुताः स्मृताः । उत्तरोत्तरतः पुत्रा निकृष्टा इति निश्चयः ॥४८॥ इत्याकर्ण्य तदा प्राह कुन्तीं कमललोचनाम् । सुतमुत्पादयाशु त्वं मुनिं गत्वा तपोन्वितम् ॥४९॥ ममाज्ञया न दोषस्ते पुरा राज्ञा महात्मना । वसिष्ठाज्जनितः पुत्रः सौदासेनेति मे श्रुतम् ॥५०॥ तं कुन्ती वचनं प्राह मम मन्त्रोऽस्ति कामदः । दत्तो दुर्वाससा पूर्वं सिद्धिदः

बलवान् वीर हुआ ॥३८॥ स्वयम्बर में कुन्ती का विवाह पाण्डु से हुआ । पाण्डु की दूसरी पत्नी मद्रराज की पुत्री माद्री थी ॥३९॥ मृगया में आनन्दानुभव करने वाले पाण्डु ने वन में अपनी पत्नियों के साथ रमण करते हुए एक ऋषि को मार दिया ॥४०॥ क्रुद्ध होकर मुनि ने पाण्डु को शाप दे दिया कि जब कभी भी तुम अपनी पत्नी का संग करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी ॥४१॥ मुनि के द्वारा अभिशप्त पाण्डु शोकान्वित होकर राज्य का त्याग करके वन में निवास करने लगे ॥४२॥ हे मुनिवर्यों ! कुन्ती तथा माद्री ये दोनों पत्नियाँ पातिव्रत्य धर्म का पालन करने के लिए पाण्डु के साथ वन में चली गयीं॥४३॥ गंगा के तट पर मुनियों के आश्रमों में रहकर पाण्डु धर्मशास्त्रों का श्रवण करते हुए कठोर तपस्या करने लगे ॥४४॥ एक दिन कथा में विद्यमान तथा मुनि के मुख से उच्चरित वाणी को पाण्डु ने सुना ॥४५॥ हे परन्तप ! निष्पुत्र की स्वर्ग में जाने की गति नहीं होती है । किसी भी उपाय से पुत्र को उत्पन्न करना चाहिए ॥४६॥ औरस (अपना सगा) पुत्री का पुत्र, क्षेत्रज (अपनी स्त्री में किसी के नियोग से उत्पन्न) गोलक (दूसरे पुरुष के वीर्य से उत्पन्न) कुण्ड (पति के सामने दूसरे पुरुष द्वारा अपनी पत्नी में उत्पन्न किया गया) सहोढ (विवाह के समय कन्या के उदर में विद्यमान) कानीन (विवाह से पहले ही कन्या में उत्पन्न) क्रीत (मूल्य देकर खरीदा गया) तथा वन में प्राप्त, दत्तक, ये सभी पुत्र पिता के धन के अधिकारी होते हैं । इनमें उत्तरोत्तर पुत्र निकृष्ट कोटि के होते हैं ॥४७-४८॥ यह सुनकर पाण्डु ने अपनी कमलनयनी पत्नी कुन्ती से कहा कि तुम किसी तपस्वी मुनि के साथ सहगमन करके शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो ॥४९॥ मेरी आज्ञा होने के कारण तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा । प्राचीन काल में सौदास ने भी वसिष्ठ महर्षि से पुत्र उत्पन्न कराया था ॥५०॥ पाण्डु

सर्वथा प्रभो ॥५१॥ निमन्त्रयेऽहं यं देवं मन्त्रेणानेन पार्थिव । आगच्छेत्सर्वथाऽसौ वै मम पार्श्वं निमन्त्रितः ॥५२॥ भर्तुर्वाक्येन सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम् । संगम्य सुषुवे पुत्रं प्रथमं च युधिष्ठिरम् ॥५३॥ वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शतक्रतोः । वर्षे वर्षे त्रयः पुत्राः कुन्त्या जाता महाबलाः ॥५४॥ माद्री प्राह पतिं पाण्डुं पुत्रं मे कुरु सत्तम । किं करोमि महाराज दुःखं नाशय मे प्रभो ॥५५॥ प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता । एकपुत्रप्रबन्धेन माद्री पतिमते स्थिता ॥५६॥ स्मृत्वा तदाऽश्विनौ देवौ मद्रराजसुता सुतौ । नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी ॥५७॥ एवं ते पांडवाः पञ्च क्षेत्रोत्पन्नाः सुरात्मजाः । वर्षवर्षान्तरे जाता वने तस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥५८॥ एकस्मिन्समये पाण्डुर्माद्रीं दृष्ट्वाऽथ निर्जने । आश्रमे चातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः ॥५९॥ मा मा मा मेति बहुधा निषिद्धोऽपि तया भृशम् । आलिलिंग प्रियां दैवात्पपात धरणीतले ॥६०॥ यथा वृक्षगता वल्ली छिन्ने पतति वै द्रुमे । तथा सा पतिता बाला कुर्वन्ती रोदनं बहु ॥६१॥ प्रत्यागता तदा कुन्ती रुदती बालकास्तथा । मुनयश्च महाभागाः श्रुत्वा कोलाहलं तदा ॥६२॥ मृतः पांडुस्तदा सर्वे मुनयः संशितव्रताः । सहाग्निभिर्विधिं कृत्वा गंगातीरे तदाऽदहन् ॥६३॥ चक्रे सहैव

की बात सुनकर कुन्ती ने कहा कि मेरे पास ऐसे मन्त्र हैं जिससे मेरी सारी कामना पूर्ण हो सकती है । महर्षि दुर्वासा ने मुझे विवाह से पूर्व उस मन्त्र को दिया था ॥५१॥ राजन् ! मैं इस मन्त्र के द्वारा जिस देवता को निमन्त्रित करूँगी वह देवता मेरे पास अवश्य आयेगा ॥५२॥ अपने पति की आज्ञा से कुन्ती ने सर्वप्रथम देवताओं में श्रेष्ठ धर्म का स्मरण किया और उनके साथ संगम करके प्रथम पुत्र युधिष्ठिर को उत्पन्न किया ॥५३॥ वायु से कुन्ती ने भीम को तथा इन्द्र से अर्जुन को जन्म दिया । इस तरह तीन वर्ष में कुन्ती के तीन पुत्र उत्पन्न हुए जो महाबलवान् थे ॥५४॥ माद्री ने पाण्डु से कहा कि आप मुझे पुत्र प्रदान करें । मैं क्या करूँ । आप मेरे दुःख को दूर करें ॥५५॥ पाण्डु के अनुरोध करने पर कुन्ती ने दया करके वह मन्त्र माद्री को बतला दिया। माद्री अपने पति के कहने से एक पुत्र के लिए उद्यत हो गयी । माद्री ने उस मन्त्र से अश्विनी कुमारों का स्मरण किया और उनके साथ संयोग करके उसने दो पुत्रों नकुल और सहदेव को जन्म दिया ॥५७॥ इस तरह से पाँचों पाण्डव पाण्डु के क्षेत्र में उत्पन्न हुए देवताओं के पुत्र थे । वे सभी एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष में वन में ही उत्पन्न हुए ॥५८॥ एकबार पाण्डु ने वन में एकान्त में माद्री को देखा तो वे कामार्त होकर उसे पकड़ लिए; क्योंकि उनकी मृत्यु सन्निकट आ गयी थी ॥५९॥ माद्री ने उन्हें बार-बार रोका किन्तु वे नहीं माने और माद्री को पकड़कर उसका आलिगंन कर लिए । ऐसा करते ही वे पृथिवी पर गिर कर मर गये ॥६०॥ जिस तरह वृक्षपर चढ़ी हुई लता वृक्ष के कट जाने पर पृथिवी पर गिर जाती है, उसी तरह माद्री भी पाण्डु के मरते ही पृथिवी पर गिर कर रोने लगी ॥६१॥ यह सुनकर कुन्ती और बालक भी रोते हुए वहाँ आ गये । मुनियों ने जब यह कोलाहल सुना तो वे भी वहाँ आ गये ॥६२॥ पाण्डु

गमनं माद्री दत्त्वा सुतौ शिशू । कुन्त्यै धर्मं पुरस्कृत्य सतीनां सत्यकामतः ॥६४॥ जलदानादिकं कृत्वा जग्मुस्तत्र.वासिनः । पञ्चपुत्रयुतां कुन्तीमनयन्हस्तिनापुरम् ॥६५॥ तां प्राप्तां च समाज्ञाय गांगेयो विदुरस्तथा । नगरीं धृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र समाययुः ॥६६॥ पप्रच्छुश्च जनाः सर्वे कस्य पुत्रा वरानने । पांडोः शापं समाज्ञाय कुन्ती दुःखान्विता तदा ॥६७॥ तानुवाच सुराणां वै पुत्राः कुरुकुलोद्भवाः । विश्वसार्थं समाहूताः कुन्त्या सर्वे सुरास्तदा ॥६८॥ आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किल । भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः ॥६९॥ गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम् । भीष्मादयः प्रीतचित्ताः पालयामासुरर्थतः । एवं पार्थाः समुत्पन्ना गांगेयेनाथ पालिताः ॥७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

* * *

को मरे हुए जानकर श्रेष्ठ मुनियों ने चिता बनाकर उनका गंगातट पर ही दाह संस्कार किया ॥६३॥ पतिव्रता माद्री भी अपने दोनों छोटे बच्चों को कुन्ती को सौंप कर सती हो गयी ॥६४॥ वहाँ पर रहने वाले मुनियों ने जलदान इत्यादि करने के बाद पाँच पुत्रों के साथ कुन्ती को हस्तिनापुर लाया ॥६५॥ कुन्ती के हस्तिनापुर आने का समाचार सुनकर गंगापुत्र भीष्म, विदुर, आदि सब धृतराष्ट्र की नगरी में आये ॥६६॥ पाण्डु के शाप की बात को जानकर सब लोगों ने पूछा कि हे वरानने ! ये किसके पुत्र हैं ? उस समय दुःखी कुन्ती ने उन लोगों को बतलाया कि ये सभी कुरुकुल में उत्पन्न तथा देवताओं के पुत्र हैं । और विश्वास कराने के लिए वहाँ पर कुन्ती ने सभी देवताओं को भी आहूत किया ॥६७-६८॥ उस समय वे सभी देवता आकाश में आये और बतलाये कि ये हमारे पुत्र हैं । इसके बाद उन्हें देवताओं का पुत्र जानकर भीष्म ने उन बालकों का सत्कार किया ॥६९॥ वे सब लोग पाण्डवों तथा कुन्ती को लेकर हस्तिनापुर गये और भीष्म आदि ने प्रसन्नता पूर्वक धन प्रदान करके उनका पालन किया । इस तरह सभी पाण्डवों की उत्पत्ति हुई और उन सबों का पालन भीष्म ने किया ॥७०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

* * *

सप्तमोध्यायः

सूत उवाच– **पञ्चानां द्रौपदी भार्या सामान्या सा पतिव्रता । पञ्च पुत्रास्तु तस्याः स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः ॥१॥ अर्जुनस्य तथा भार्या**
कृष्णस्य भगिनी शुभा । सुभद्रा या हृता पूर्वं जिष्णुना हरिसम्मते ॥२॥ तस्यां जातो महावीरो निहतोऽसौ रणाजिरे । अभिमन्युर्हतस्तत्र द्रौपद्याश्च
सुताः किल ॥३॥ अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुन्दरी । कुलांते सुषुवे पुत्रं मृतो बाणाग्निना शिशुः ॥४॥ जीवितः स तु कृष्णेन
भागिनेयसुतः स्वयम् । द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धः प्रतापेनाद्भुतेन च ॥५॥ परिक्षीणेषु वंशेषु जातो यस्माद्वरः सुतः । तस्मात्परीक्षितो नाम विख्यातः
पृथिवीतले ॥६॥ निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुःखितः । तस्थौ पांडवराज्ये च भीमवाग्बाणपीडितः ॥७॥ गांधारी च तथाऽतिष्ठत्पुत्रशोकातुरा
भृशम् । सेवां तयोर्दिवारात्रं चकारार्तो युधिष्ठिरः ॥८॥ विदुरोप्यतिधर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत् । युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वेव्यतिष्ठत ॥९॥
धर्मपुत्रोऽपि धर्मात्मा चकार सेवनं पितुः। पुत्रशोकोद्भवं दुःखं तस्य विस्मारयन्निव ॥१०॥ यथा श्रृणोति वृद्धोऽसौ तथा भीमोऽतिरोषितः ।
वाग्बाणेनाहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान् ॥११॥ मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यांधस्य ते रणे । दुःशासनस्य रुधिरं पीतं हृद्यं तथा भृशम् ॥१२॥

व्यासजी द्वारा स्वजनों को मृत कौरवों को दिखाना

सूतजी ने कहा– पतिव्रता द्रौपदी पाञ्चो पाण्डवों की समान रूप से पत्नी थी । उसके अपने पाँचों पतियों से अत्यन्त सुन्दर पाँच पुत्र हुए ॥१॥ अर्जुन की पत्नी सुभद्रा भगवान् श्रीकृष्ण की बहन थी और कृष्ण की ही अनुमति से अर्जुन ने उसका अपहरण किया था ॥२॥ सुभद्रा में उत्पन्न अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु थे तथा वे युद्ध में मारे गये और द्रौपदी के पाँचो पुत्र भी मारे गये ॥३॥ अभिमन्यु की पत्नी विराट की पुत्री उत्तरा अत्यन्त सुन्दरी थी, जब कौरव वंश का नाश हो गया था उस समय अश्वत्थामा के बाण की अग्नि से मरे हुए पुत्र परीक्षित् को उसने उत्पन्न किया ॥४॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भागिनेय के पुत्र को जीवित कर दिया क्योंकि वह अश्वत्थामा के अद्भुत प्रताप वाले बाण की अग्नि से जल चुका था ॥५॥ वंश के विनष्ट होने के अन्त में चुकि वह श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था अतएव पृथिवी पर वह परीक्षित् के नाम से प्रख्यात हुआ ॥६॥ पुत्रों के मार दिए जाने पर धृतराष्ट्र अत्यन्त दुःखी हुए । वे पाण्डवों के ही राज्य में रहते थे और भीम उन्हें अपने व्यंग्य बाणों से दुखी बनाते रहते थे ॥७॥ धृतराष्ट्र के साथ पुत्र के शोक से दुःखी गांधारी भी रहती थी और महाराज युधिष्ठिर उन दोनों की दिन-रात सेवा किया करते थे ॥८॥ धर्मात्मा विदुर भी युधिष्ठिर के सलाह से धृतराष्ट्र के सन्निकट ही रहते थे और उन्हें ज्ञान की बातें सुनाते थे ॥९॥ धर्मात्मा युधिष्ठिर भी अपने माता-पिता की सेवा उनके पुत्रशोक जन्य दुःख को दूर करने के लिए रात-दिन

भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मया दत्तं गतत्रपः । ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः ।।१३। एवंविधानि रूक्षाणि श्रावयत्यनुवासरम् । आश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोऽयमिति च ब्रुवन् ।।१४।। अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः । धृतराष्ट्रो वने यानं प्रार्थयामास धर्मजम् ।।१५।। अयाचत धर्मपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः । पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निर्वापं विधिपूर्वकम् ।।१६।। वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम् । न कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन् ।।१७।। ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् । गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपः स्वर्गफलप्रदम् ।।१८।। एकान्ते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः । धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने ।।१९।। समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः । धनं दास्ये महाभागाः पित्रे निर्वापकामिने ।।२०।। तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्यामिततेजसः । संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत् ।।२१।। धनं देयं महाभाग दुर्योधनहिताय किम् । अन्धोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम् ।।२२।। तव दुर्मन्त्रितेनाथ दुःखं प्राप्ता वने वयम् । द्रौपदी च महाभागा समानीता दुरात्मना।।२३।। विराटभवने वासः प्रसादात्तव सुव्रत । दासत्वं च कृतं सर्वैर्मत्स्यस्यामितविक्रमैः ।।२४।। देविता त्वं न चेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयः

किया करते थे ।।१०।। किन्तु भीम अत्यन्त क्रोध के साथ सब लोगों के समक्ष ही धृतराष्ट्र को सुना-सुना कर उन पर व्यंग्य कसते रहते थे ।।११।। वे कहते थे कि इस दुष्ट अन्धे के सभी पुत्रों को मैने युद्ध में मारा है और दुःशासन के हृदय का खून मैंने खूब पिया है ।।१२।। यह निर्लज्ज मेरे द्वारा दिए गये भोजन को करता है, यह कुत्तों अथवा कौओ के समान व्यर्थ ही जीवित रह रहा है ।।१३।। भीम तो इस तरह के कटु वचनों का प्रतिदिन धृतराष्ट्र को सुनाते रहते थे । किन्तु युधिष्ठर धृतराष्ट्र को यह कहकर आश्वासन देते थे कि यह मूर्ख है ।।१४।। हस्तिनापुर में अठारह वर्ष रहने के बाद धृतराष्ट्र ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि मैं वन में जाना चाहता हूँ ।।१५।। उन्होंने कहा कि मैं अपने पुत्रों को सविधि पिण्डदान करना चाहता हूँ ।।१६।। भीम ने सभी मृतकों के लिए पिण्डदान तो किया है किन्तु वैर का स्मरण करके मेरे पुत्रों के लिए कुछ भी नहीं किया है ।।१७।। अतएव यदि आप मुझे धन दें तो मैं सबों के लिए और्ध्वदैहिक क्रिया करके वन में जाकर स्वर्गप्रद तपस्या करना चाहता हूँ ।।१८।। एकान्त में विदुर के कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को धन प्रदान करने का मन बना लिए ।।१९।। उन्होंने अपने सभी लोगों को बुलाकर कहा कि पिण्डदान करने के इच्छुक पिता धृतराष्ट्र को मैं धन देना चाहता हूँ ।।२०।। अत्यन्त तेजस्वी महाराज युधिष्ठिर की बातों को सुनकर महाबाहु भीम ने क्रुद्ध होकर कहा ।।२१।। हे महाराज ! दुर्योधन का कल्याण करने के लिए राजकोष का धन क्यों दिया जाय ? इस अन्धे धृतराष्ट्र को सुख देने से बढ़कर और कौन सी मूर्खता होगी ? ।।२२।। आपकी बुरी मन्त्रणा के ही कारण हमलोग वन में दुःख भोगे । और महारानी द्रौपदी का उस दुष्ट के द्वारा किया गया भयंकर अपमान सहना पड़ा ।।२३।। हे सुव्रत ! आपकी ही कृपा से हमलोगों को विराट् के घर रहना पड़ा । उन असाधारण वीर पुरुषों को मत्स्याधिपति की सेवा करनी पड़ी ।।२४।। हम सबके ज्येष्ठ भ्राता आप यदि जुआड़ी नहीं होते

कथम् । सूपकारो विराटस्य हत्वाऽभूवं तु मागधम् ॥२५॥ बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद्बालस्य नर्तकः । कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषाया वासवात्मजः॥२६॥ गांडीवशोभितौ हस्तौ कृतौ कङ्कणशोभितौ । मानुषं च वपुः प्राप्य किं दुःखं स्यादतः परम् ॥२७॥ दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा। असिं गृहीत्वा तरसा छेद्म्यहं नान्यथा सुखम् ॥२८॥ अपृष्ट्वा च महीपालं निक्षिप्तोऽग्निर्मया गृहे । दग्धुकामश्च पापात्मा निर्दग्धोऽसौ पुरोचनः ॥२९॥ कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप । न तथा निहताः सर्वे सभार्या धृतराष्ट्रजाः ॥३०॥ मूर्खत्वं तव राजेन्द्र गन्धर्वेभ्यश्च मोचिताः । दुर्योधनादयः कामं शत्रवो निगडीकृताः ॥३१॥ दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि । नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया॥३२॥ इत्युक्ता निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतो नृपः । ददौ वित्तं सुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः ॥३३॥ कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम् । ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥३४॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गांधारीसहितो नृपः । प्रविवेश वनं तूर्णं कुंत्या च विदुरेण च ॥३५॥ संजयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः । पुत्रैर्निवार्यमाणोऽपि शूरसेनसुता गता ॥३६॥ विलपन्भीमसेनोऽपि तथाऽन्ये चापि कौरवाः । गङ्गातीरात्परावृत्य

तो हमारे वंश का नाश नहीं होता । मगध के राजा जरासंध को मारने वाले मुझको भी विराट के घर रसोइये का काम करना पड़ा ॥२५॥ इन्द्र पुत्र अर्जुन भी राजा के पुत्र को नृत्य सिखाने वाले बृहन्नला नर्तक का वेष बनाकर क्यों रहते ?॥२६॥ उन्होंने अपने गाण्डीव से सुशोभित हाथ को कंगन से सुशोभित कर लिया । मनुष्य का शरीर प्राप्त करके इससे बड़ा दुःख क्या होगा ?॥२७॥ अर्जुन के शिर पर चोटी और उनके नेत्रों में काजल को याद करके मेरे मन में होता है कि तलवार लेकर इस अन्धे का शिर काट दूँ । इससे भिन्न प्रकार से मुझे सुख नहीं मिलेगा ॥२८॥ राजा धृतराष्ट्र से पूछे बिना दुर्योधन हमलोगों को जलाकर मार डालने के लिए लाक्षागृह में भेज दिया, किन्तु भाग्यवशात् हमलोग बच गये और उसका मित्र पुरोचन मर गया ॥२९॥ जिसतरह मैंने आपसे पूछे बिना ही कीचक और उसके साथियों को मार डाला उसी तरह मैं अकेले ही दुर्योधन और उसके भाइयो को नहीं मार डाला यह हमको कष्ट है ॥३०॥ हे महाराज ! जब गन्धर्वों ने दुर्योधन आदि को बन्दी बना लिया था उस समय आपकी मूर्खता ने ही उन सबों को छुड़वा दिया॥३१॥ आज आप दुर्योधन के कल्याण के लिए धन देना चाहते हैं, किन्तु मैं आपकी प्रेरणा से धन नहीं दे सकता हूँ ॥३२॥ इस तरह से कहकर जब भीम वहाँ से चले गये तो अपने तीन भाइयों के साथ धर्मपुत्र युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को बहुत सम्पत्ति प्रदान किए ॥३०॥ इसके बाद अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र ने विधिपूर्वक अपने पुत्रों की और्ध्वदैहिक क्रिया की और ब्राह्मणों को दान दिया ॥३४॥ अपने पुत्रों को पिण्डदान देकर धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती तथा विदुर के साथ वन में चले गये ॥३५॥ सञ्जय के द्वारा जब कुन्ती को यह पता चला कि धृतराष्ट्र वन जा रहे हैं; तो अपने पुत्रों के द्वारा रोके जाने पर भी वे वन में

ययुः सर्वे गजाह्वयम् ॥३७॥ ते गत्वा जाह्नवीतीरे शतयूपाश्रमं शुभम् । कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुः समाहिताः ॥३८॥ गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याता हि तापसाः । युधिष्ठिरस्तु विरहादनुजानिदमब्रवीत् ॥३९॥ स्वप्ने दृष्टा मया कुन्ती दुर्बला वनसंस्थिता । मनो मे जायते द्रष्टुं मातरं पितरौ तथा ॥४०॥ विदुरं च महात्मानं संजयं च महामतिम् । रोचते यदि वः सर्वान्व्रजाम इति मे मतिः ॥४१॥ ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा दौपदी तथा। वैराटी च महाभागा तथा नागरिको जनः ॥४२॥ प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पांडवा दर्शनोत्सुकाः । शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते ॥४३॥ विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा । क्वास्ते स विदुरो धीमाँस्तमुवाचांबिकासुतः ॥४४॥ विरक्तश्चरते क्षत्ता निरीहो निष्परिग्रहः। कुतोऽप्येकांतसंवासी ध्यायतेऽन्तः सनातनम् ॥४५॥ गंगां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः । ददर्श विदुरं क्षामं तपसा संशितव्रतम् ॥४६॥ दृष्ट्वोवाच महीपालो वंदेऽहं त्वां युधिष्ठिरः । तस्थौ श्रुत्वा च विदुरः स्थाणुभूत इवाधनः ॥४७॥ क्षणेन विदुरस्यास्यान्निःसृतं तेज अद्भुतम् । लीनं युधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम् ॥४८॥ क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचातियुधिष्ठिरः । दाहार्थं तस्य देहस्य कृतवानुद्यमं नृपः ॥४९॥

चली ही गयी ॥३६॥ भीमसेन तथा अन्य कुरुवंशी उनके साथ गंगातट तक गये वहाँ से रोते हुए हस्तिनापुर लौट आये ॥३७॥ धृतराष्ट्र आदि जाह्नवी के तट पर शतयूपाश्रम में गये और वहाँ तृण की कुटी बनाकर तपस्या करने लगे ॥३८॥ उन सबों के गये हुए जब छह वर्ष बीत गये तो युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा कि मैंने स्वप्न में देखा है कि माता कुन्ती बहुत दुर्वल हो गयी हैं । अतएव मेरा मन माताओं और पिता धृतराष्ट्र को देखने का करता है।॥३९-४०॥ मैं महात्मा विदुर तथा महा बुद्धिमान् संजय को देखना चाहता हूँ यदि यह आप लोगों को अच्छा लगे तो हम सब वहाँ चलें ॥४१॥ उसके बाद सभी भाई, द्रौपदी, सुभद्रा तथा विराट पुत्री उत्तरा एवं दूसरे नागरिक भी गये ॥४२॥ सभी लोगों के साथ उन लोगों का दर्शन करने के लिए उत्सुक सभी पाँण्डव वहाँ गये । वे शतयूपाश्रम में जाकर सबों का दर्शन किए किन्तु विदुर को नहीं देखे । तब युधिष्ठिर धृतराष्ट्र से पूछे कि बुद्धिमान् विदुरजी कहाँ हैं ?॥४३-४४॥ इसके बाद धृतराष्ट्र ने बतलाया कि विदुर विरक्त, निरीह तथा परिग्रह रहित होकर कहीं पर एकान्तवासी होकर अपने हृदय में परमात्मा का ध्यान करते हैं ॥४२॥ दूसरे दिन गंगा के तट पर चलते हुए युधिष्ठिर ने वन में, तपस्या करने के कारण प्रशंसनीय व्रत वाले विदुरजी को अत्यन्त दुर्बल देखा ॥४६॥ उनको देखकर राजा युधिष्ठिर ने कहा कि मैं युधिष्ठिर आपकी वन्दना करता हूँ । इस बात को सुनकर भी विदुर स्थाणु के समान चुपचाप बैठे रहे ॥४६॥ क्षण भर में विदुर के मुख से अद्भुत तेज निकला और वह तेज युधिष्ठिर के मुख में प्रवेश कर गया; क्योंकि दोनों धर्म के अंश थे ॥४८॥ इसके बाद विदुर ने अपने प्राणों को त्याग दिया और युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित हुए । वे विदुर के शरीर को जलाने का प्रयास करने लगे ॥४९॥ उसी

शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी । विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टं गच्छ भूपते ॥५०॥ श्रुत्वा ते भ्रातरः सर्वे सस्नुर्गङ्गाजलेऽमले । गत्वा निवेदयामासुर्धृतराष्ट्राय विस्तरात् ॥५१॥ स्थितास्तत्राश्रमे सर्वे पांडवा नागरैः सह । तत्र सत्यवतीसूनुर्नारदश्च समागतः ॥५२॥ मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागता धर्मनन्दनम् । कुन्ती प्राह तदा व्यासं संस्थितं शुभदर्शनम् ॥५३॥ कृष्ण कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तु वीक्षितः । मनो मे तप्यते तीव्रं दर्शयस्व तपोधन ॥५४॥ समर्थोऽसि महाभाग कुरु मे वांछितं प्रभो । गांधार्युवाच– **दुर्योधनो रणेऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने ॥५५॥ तं दर्शय मुनिश्रेष्ठ पुत्रं मे त्वं सहानुजम् ।** सुभद्रोवाच– **अभिमन्युं महावीरं प्राणादप्यधिकं प्रियम् ॥५६॥ द्रष्टुकामाऽस्मि सर्वज्ञ दर्शयाद्य तपोधन। एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः ॥५७॥ प्राणायामं ततः कृत्वा दध्यौ देवीं सनातनीम् । सन्ध्याकालेऽथ संप्राप्ते गङ्गायां सुनिसत्तमः॥५८॥ सर्वास्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान् । तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले ॥५९॥ प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणां निर्गुणां तथा । देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥६०॥ यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो न वासवो नैव जलाधिपस्तथा । न वित्तपो नैव यमश्च पावकस्तदाऽसि देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥६१॥ जलं न वायुर्न धरा न चांबरं गुणा न तेषां च न चेंद्रियाण्यहम् । मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी तदाऽसि**

समय युधिष्ठिर के सुनते ही सुनते आकाशवाणी हुई, हे राजन् ये विरक्त हैं जलाने योग्य नहीं हैं, आप चले जाइये ॥५०॥ इस बात को सुनकर सभी भाइयों ने गंगा के विमल जल में स्नान किया । इसके बाद जाकर उनलोगों ने सारी बातें विस्तार पूर्वक धृतराष्ट्र को बतलाया ॥५१॥ उसी आश्रम में सभी नागरिक तथा सभी पाण्डव बैठ गये । उसी समय वहाँ व्यासजी तथा नारदजी भी आ गये ॥५२॥ दूसरे मुनिगण वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास आ गये। उसके बाद कुन्ती ने मङ्गलमय दर्शन वाले व्यासजी से कहा ॥५३॥ हे व्यासजी ! मैंने कर्ण को तो केवल उत्पत्ति काल में ही देखा था । मेरा मन अत्यन्त संतप्त हो रहा है । हे तपोधन ! हमें उसको दिखा दीजिए ॥५४॥ हे महाभाग ! आप समर्थ हैं मै जो चाहती हूँ उसे आप पूरा करें । **गान्धारी ने कहा**– दुर्योधन जब रण में गया तो उस समय मैं उसे नहीं देख पायी ॥५५॥ आप मेरे पुत्र को उसके छोटे भाइयों के साथ मुझे दिखा दीजिये । **सुभद्रा ने कहा**– प्राण से भी अधिक प्रिय महावीर अभिमन्यु को हे तपोधन ! मैं देखना चाहती हूँ; उसे आप दिखा दें । व्यासजी ने इस प्रकार के वाक्यों को सुनकर प्राणायाम करके सनातनी देवी का ध्यान किया । उस समय गंगा के तट पर सायंकाल हो रहा था ॥५७-५८॥ युधिष्ठिर आदि सबों को बुलाकर व्यास जी ने पवित्र नदी में स्नान करके विश्वमाता भगवती की स्तुति की ॥५९॥ प्रकृति तथा पुरुष होने की क्षमता रखने वाली सगुण तथा निर्गुण स्वरूप वाली, देवदेवी, ब्रह्मस्वरूपिणी, मणिद्वीप की स्वामिनी की उन्होंने स्तुति की ॥६०॥ हे देवि ! जब न तो ब्रह्मा, न विष्णु, न शंकर, न इन्द्र, न वरुण, न कुबेर, न यम

देवि त्वमहं नमामि ताम् ॥६२॥ इमं जीवलोकं समाधाय चित्ते गुणैर्लिङ्गकोशं च नीत्वा समाधौ । स्थिता कल्पकालं नयस्यात्मतन्त्रा न कोऽप्यस्ति वेत्ता विवेकं गतोऽपि ॥६३॥ प्रार्थयत्येष मां लोको मृतानां दर्शनं पुनः । नाहं क्षमोऽस्मि मातस्त्वं दर्शयाशु जनान्मृतान् ॥६४॥ सूत उवाच– एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी । स्वर्गादाहूय सर्वान् वै दर्शयामास पार्थिवान् ॥६५॥ दृष्ट्वा कुन्ती च गांधारी सुभद्रा च विराटजा । पांडवा मुमुहुः सर्वे वीक्ष्य प्रत्यागतान्स्वकान् ॥६६॥ पुनर्विसर्जितास्तेन व्यासेनामिततेजसा । स्मृत्वा देवीं महामायामिंद्रजालमिवोद्यतम् ॥६७॥ तदा पृष्ट्वा ययुः सर्वे पांडवा मुनयस्तथा । राजा नागपुरं प्राप्तः कुर्वन्व्यासकथां पथि ॥६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

और न तो अग्नि रहते हैं उस समय केवल आप ही रहती हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥६१॥ जब न जल, न वायु, न पृथिवी, न आकाश और न तो उनके गुण, (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) न इन्द्रियाँ, न अहंकार, न मन, न बुद्धि, न सूर्य और न चन्द्रमा रहते हैं उस समय हे देवि! आप ही रहती हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥६२॥ इन समस्त जीव समूहों को अपने चित्त में स्थापित करके, सत्त्व रज आदि गुणों के साथ लिङ्ग कोष को सुषुप्ति के द्वारा साम्यावस्था में पहुँचाकर जब आप बिहार करती हैं तब बड़े-बड़े ज्ञानी भी आपके तत्त्व को नहीं जान पाते हैं ॥६३॥ ये सभी लोग मरे हुओं का दर्शन करना चाहते हैं, मैं इसकार्य को करने में समर्थ नहीं हूँ, अतएव आप उन मरे हुए लोगों को शीघ्र दिखा दें ॥६४॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह से स्तुति किए जाने पर श्रीभुवनेश्वरी माया, सभी राजाओं को स्वर्ग से बुलाकर दिखा दिया ॥६५॥ कुन्ती, गांधारी, उत्तरा तथा सुभ्रदा आदि उन सबों को आये हुए देखकर मोहित हो गयीं । इसके बाद अमित तेजस्वी व्यासजी इन्द्रजाल के समान आये हुए उन लोगों को महामाया का स्मरण करके विसर्जित कर दिया ॥६७॥ उसके बाद आज्ञा लेकर सभी पाण्डव तथा मुनिजन से आज्ञा लेकर महाराज युधिष्ठिर रास्ते में व्यासजी की चर्चा करते हुए हस्तिनापुर आये ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच– ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः स भूपतिः । दावाग्निना वने दग्धः सभार्यः कुन्तिसंयुतः ॥१॥ संजयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतिम् । श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद्दुःखमाप्तवान् ॥२॥ षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः । प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥३॥ ते पीत्वा मदिरां मत्ताः कृत्वा युद्धं परस्परम् । क्षयं प्राप्ता महात्मनः पश्यतो रामकृष्णयोः ॥४॥ देहं तत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः । व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः ॥५॥ वसुदेवस्तुतच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथ । जहौ प्राणञ्छुचीन्कृत्वा चित्ते श्रीभुवनेश्वरीम्॥६॥ अर्जुनस्तु ततो गत्वा प्रभासे चातिदुःखितं । संस्कारं तत्र सर्वेषां यथायोग्यं चकार ह ॥७॥ समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा काष्ठस्य संचयम् । अष्टभिः सह पत्नीभिर्दाहयामास पार्थिवः ॥८॥ देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ । अर्जुनो द्वारकामेत्य पुरान्निष्क्रामयज्जनम्॥९॥ पुरी सा वासुदेवस्य प्लावितोदधिना ततः । अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वा निर्गतस्तदा ॥१०॥ कृष्णपत्न्यस्तदा मार्गे चौराभीरैश्च लुण्ठिताः । धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजश्चार्जुनोऽभवत् ॥११॥ इन्द्रप्रस्थे समागत्य वज्रो राजा कृतस्तदा । अनिरुद्धसुतो नाम्ना पार्थेनामिततेजसा ॥१२॥ व्यासाय कथितं

परीक्षित को शाप का वर्णन

सूतजी ने कहा– उसके तीसरे दिन राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गाँधारी तथा कुन्ती के साथ दावाग्नि में जल गये ॥१॥ उसके बाद संजय धृतराष्ट्र को छोड़कर तीर्थयात्रा में चले गये । इस बात को नारदजी के मुख से सुनकर महाराज युधिष्ठिर दुःखी हो गये ॥२॥ महाभारत युद्ध में कौरवों का विनाश हो जाने के छत्तीस वर्ष बाद ब्राह्मण के शाप से यादवों का भी प्रभास क्षेत्र में जाकर विनाश हो गया ॥३॥ वे सब मदिरा का पान करके मदमत्त हो गये और परस्पर में युद्ध करके बलराम जी एवं भगवान् श्रीकृष्ण के ही सामने विनष्ट हो गये ॥४॥ इसके पश्चात् बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना देहत्याग कर दिया । व्याध के बाण से मारे गये भगवान् शाप का पालन करते हुए शरीर त्यागे ॥५॥ वसुदेवजी ने जब भगवान् श्रीकृष्ण के देहत्याग को सुना तो अपने मन में भुवनेश्वरी का ध्यान करते हुए वे भी अपने प्राण का परित्याग कर दिए ॥६॥ इसके बाद अर्जुन प्रभास क्षेत्र में जाकर सबों का यथायोग्य संस्कार किये ॥७॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को देखकर उन्होंने काष्ठ एकत्रित कर आठ पटरानियों के साथ भगवान् के शरीर को जलाया ॥८॥ रेवती के साथ बलरामजी के शरीर को जलाकर अर्जुन द्वारका आकर उस नगरी से लोगों को बाहर निकाले ॥९॥ उसके बाद समुद्र ने भगवान् श्रीकृष्ण की नगरी को डुबा दिया । इसके बाद सबलोगों को लेकर अर्जुन वहाँ से निकल गये ॥१०॥ मार्ग में चोरों तथा भीलों ने भगवान् कृष्ण

दुःखं तेनोक्तोऽसौ महारथः । पुनर्यदा हरिस्त्वं च भविताऽसि महामते ॥१३। तदा तेजस्तवात्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे । तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः ॥१४॥ दुःखितो धर्मराजानं वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत् । देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानां क्षयं तथा ॥१५॥ गमनाय मतिं चक्रे राजा हैमाचलं प्रति । षट्त्रिंशद्वार्षिकं राज्ये स्थापयित्वोत्तरासुतम् ॥१६॥ निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्या भ्रातृभिः सह । षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि कृत्वा राज्यं गजाह्वये ॥१७॥ गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः । परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वाः सुधार्मिकः ॥१८॥ अपालयच्च राजेन्द्रः षष्टिवर्षाण्यतंद्रितः । बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत् ॥१९॥ विद्धं मृगं विचिन्वानो मध्याह्ने भूपतिः स्वयम् । तृषितश्च परिश्रान्तः क्षुधितश्चोत्तरासुतः ॥२०॥ राजा घर्मेण संतप्तो ददर्श मुनिमन्तिके । ध्याने स्थितं मुनिं राजा जलं पप्रच्छ चातुरः ॥२१॥ नोवाच किंचिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा । मृतं सर्पं तदाऽऽदाय धनुष्कोट्या तृषातुरः ॥२२॥ कलिनाऽऽविष्टचित्तस्तु कंठे तस्य न्यवेशयत् । आरोपिते तथा सर्पे नोवाच मुनिसत्तमः ॥२३॥ न चचाल समाधिस्थो राजाऽपि स्वगृहं गतः । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गविजातो महातपाः ॥२४॥ महाशाक्तोऽथ शुश्राव क्रीडमानो वनांतिके । मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रं पितुः कंठे तवाधुना ॥२५॥ लम्भितोऽस्ति मृतः सर्पः केनापीति मुनीश्वर । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिशयं

की पत्नियों के साथ-साथ सारी सम्पत्ति को लूट लिया जिससे अर्जुन निस्तेज हो गये थे ॥११॥ इन्द्रप्रस्थ आकर अमित तेजस्वी अर्जुन ने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को यादवों का राजा बनाया ॥१२॥ इसके बाद अर्जुन ने व्यासजी से अपना सारा दुःख बतलाया तो व्यासजी ने कहा कि हे अर्जुन ! जब भगवान् श्रीकृष्ण पुनः अवतार लेंगे तो तुम भी जन्म लोगे ॥१३॥ उस समय भी तुम्हारा आति उग्र तेज हो जायेगा । इस बात को सुनकर अर्जुन हस्तिनापुर गये॥१४॥ उन्होंने दुःखी होकर धर्मराज युधिष्ठिर को सारा वृत्तान्त सुनाया । श्रीहरि के देहत्याग तथा यादवों के विनाश को सुनकर महाराज युधिष्ठिर हिमालय पर जाने का विचार किए । उन्होंने छत्तीस वर्ष की अवस्था वाले उत्तरा के पुत्र परीक्षित् को राजा बनाया ॥१५-१६॥ वे छत्तीस वर्ष तक हस्तिनापुर में राज्य करके अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ वन में चले गये ॥१७॥ वे छहो हिमालय में जाकर अपने प्राणों का परित्याग कर दिये । अत्यन्त धार्मिक राजर्षि परीक्षित् भी सारी प्रजाओं का सावधानी पूर्वक साठ वर्षों तक पालन किए । वे मृगया के अभ्यासी होकर एक़ बार वन में गये ॥१८-१९॥ मध्याह्न में वे घायल मृग को खोजते हुए भूख तथा प्यास से व्याकुल हो गये ॥२०॥ धूप से सन्तप्त होकर राजा परीक्षित् ने सन्निकट में विद्यमान एक मुनि को देखा; मुनि उस समय ध्यानमग्न थे । प्यास से व्याकुल राजा ने उनसे जल माँगा ॥२१॥ किन्तु मुनि कुछ नहीं बोले वे मौन थे, यह देखकर राजा क्रुद्ध हो गये। प्यास से व्याकुल राजा ने अपने धनुष के एक छोर से मरे हुए साँप को उठाकर ऋषि के गले में लगा दिया, क्योंकि उस समय राजा के मन में कलि का प्रवेश हो गया था । सर्प के गले में लपेट देने पर भी ऋषि कुछ नहीं बोले ॥२२-२३॥ वे समाधिस्थ होने के कारण इधर-उधर भी नहीं चले और राजा भी अपने घर चले गये । ऋषि का पुत्र गविजात महातपस्वी और तेजस्वी था ॥२४॥ वह शक्ति का महान् उपासक था । वह वन में खेल

तदा ॥२६॥ शशाप नृपतिं क्रुद्धो गृहीत्वाऽऽशु करे जलम् । पितुः कंठेऽद्य मे येन विनिक्षिप्तो मृतोरगः ॥२७॥ तक्षकः सप्तरात्रेण तं
दशेत्पापपूरुषम् । मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्य गृहे स्थितम् ॥२८॥ शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेण चार्पितम् । अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शापं दत्तं
द्विजेन वै ॥२९॥ अनिवार्यं च विज्ञाय मंत्रिवृद्धानुवाच ह । शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम् ॥३०॥ किं विधेयं मयाऽमात्या उपायश्चिंत्यतामिह।
मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदन्ति वेदवादिनः ॥३१॥ यत्नस्तथापि शास्त्रोक्तः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः । उपायवादिनः केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः॥३२॥
विज्ञोपायेन सिद्ध्यन्ति कार्याणि नेतरस्य च । मणिमंत्रौषधीनां वै प्रभावाः खलु दुर्विदः ॥३३॥ न भवेदिति किं तैस्तु मणिमद्भिः सुसाधितैः ।
सर्पदष्टा पुरा भार्या मुनेः संजीविता मृता ॥३४॥ दत्त्वाऽर्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराऽप्सराः । भवितव्ये न विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥३५॥
प्रत्यक्षं तत्र दृष्टांतं पश्यंतु सचिवाः किल । दिवि कोऽपि पृथिव्यां वा दृश्यते पुरुषः क्वचित् ॥३६॥ दैवे मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यमः।
विरक्तस्तु यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा ॥३७॥ गृहस्थानां गृहे काममाहूतो वाथवाऽन्यथा । यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे ॥३८॥
उद्यमेन विना चास्यादुदरे संविशेत्कथम् । प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत् ॥३९॥ तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद्बुधः।

रहा था । उसके मित्रों ने उससे कहा कि अभी-अभी आपके पिता के गले में ॥२५॥ एक आदमी ने मरा सर्प लपेट दिया है । अपने मित्रों की बात को सुनकर वे मुनीश्वर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥२६॥ वे क्रुद्ध होकर अपने हाथ में जल ले लिए और राजा को शाप दे दिए कि मेरे पिता के गले में जिसने मरा हुआ सर्प डाला है ॥२७॥ उस पापी पुरुष को आज के सातवें दिन तक्षक काट ले । मुनि के शिष्य राजा के घर जाकर राजा को मुनिपुत्र के द्वारा दिए गये शाप को बतलाए । अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् ऋषि के द्वारा दिए गए शाप को जब सुने ॥२८-२९॥ तो अनिवार्य समझकर अपने वृद्ध मन्त्रियों से कहे– कि मेरे दोष के कारण ब्राह्मण ने मुझे शाप दे दिया है ॥३०॥ हे मन्त्रियों ! इस विषय में आपलोग कुछ उपाय सोचें कि मुझे क्या करना चाहिए। वेदज्ञों का कहना है कि सबके लिए मृत्यु अनिवार्य होती है ॥३१॥ किन्तु विद्वानों को चाहिए कि फिर भी वे शास्त्रोक्त उपाय करें । उपायों को बतलाने वाले मनीषीगण इस तरह की बातें करते हैं ॥३२॥ विज्ञ पुरुष के द्वारा किए गये उपायों के द्वारा कार्यों की सिद्धि होती है, क्योंकि मणि, मन्त्र तथा औषधियों के प्रभाव को जानना कठिन है ॥३३॥ मणिधारण करने वाले विषवैद्य क्या नहीं कर सकते हैं ? किसी मुनि की स्त्री को सर्प ने काट लिया था और वह मर गयी थी; फिर भी मुनि ने उपाय करके उसे जीवित कर लिया था ॥३४॥ उन्होंने उस श्रेष्ठ अप्सरा को अपनी आधी आयु प्रदान कर दी थी; अतएव विद्वानों को चाहिए कि वे केवल भाग्य पर ही विश्वास न करें ॥३५॥ हे मन्त्रियों ! आपलोग प्रत्यक्षतः दृष्टान्त रूप से देखें कि कोई भी स्वर्गलोक अथवा पृथिवीलोक में ऐसा पुरुष है क्या जो भाग्य पर भरोसा करके चुपचाप बैठा रहे ? और कुछ भी न करे । विरक्त व्यक्ति भी संन्यासी होकर भिक्षा के लिए इधर-उधर जाता ही है, चुपचाप नहीं बैठता है ॥३६-३७॥ वे गृहस्थों के घर बुलाये जाने पर अथवा बिना बुलाये भी चले ही जाते हैं, और वहाँ भी भोजन

मंत्रिण ऊचुः– **को मुनिर्येन दत्त्वाऽधर्ममायुषो जीविता प्रिया ॥४०॥ कथं मृता महाराज तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ।** राजोवाच– **भृगोर्भार्या वरारोहा पुलोमा नाम सुन्दरी ॥४१॥ तस्यां तु च्यवनो नाम मुनिर्जातोऽतिविश्रुतः । च्यवनस्य च शर्यातिः सुकन्या नाम सुन्दरी ॥४२॥ तस्यां जज्ञे सुतः श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुतः । प्रमितेस्तु प्रिया भार्या प्रतापी नाम विश्रुता ॥४३॥ रुरुर्नाम सुतो जातस्तथा परमतापसः। तस्मिंश्च समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुतः ॥४४॥ बभूव तपसा युक्तो धर्मात्मा सत्यसम्मतः । एतस्मिन्नंतरे मान्या मेनका च वराप्सराः ॥४५॥ क्रीडां चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरी । गर्भं विश्वावसोः प्राप्य निर्गता वरवर्णिनी ॥४६॥ स्थूलकेशाश्रमे गत्वा विससर्ज वराप्सराः । कन्यकां च नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरीम्॥४७॥ दृष्ट्वाऽनाथां तदा कन्यां जग्राह मुनिसत्तमः । पुपोष स्थूलकेशस्तु नाम्ना चक्रे प्रमद्वराम् ॥४८॥ सा काले यौवनं प्राप्ता सर्वलक्षणसंयुता । रुरुर्दृष्ट्वाऽथ तां बालां कामबाणार्दितो ह्यभूत् ॥४९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते द्वितीयस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

उनके मुख में अपने आप नहीं चला जाता है; अपितु उसे खाने के लिए वहाँ भी प्रयास करना ही पड़ता है ॥३८॥ इसी तरह वह भोजन प्रयास किए बिना मुख से पेट में नहीं चला जाता है, उसके लिए मुख हिलाना ही पड़ता है । अतएव प्रयास अवश्य करना चाहिए प्रयास करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तब विद्वान् को मान लेना चाहिए कि ऐसा ही भाग्य में था । **मंत्रियों ने पूछा**– वे कौन मुनि थे जिन्होंने अपनी आधी आयु देकर अपनी पत्नी को जीवित कर लिया ॥३९-४०॥ हे महाराज आप विस्तार से बतलाएँ कि वह उनकी पत्नी कैसे मर गयी । **राजा ने कहा**– महर्षि भृगु की पुलोमा नाम की सुन्दर पत्नी थी॥४१॥ उसके गर्भ से च्यवन नामक विख्यात मुनि पैदा हुए । च्यवन मुनि की पत्नी का नाम सुकन्या था वह शर्याति नामक राजा की पुत्री थी ॥४२॥ सुकन्या के बुद्धिमान पुत्र प्रमिति हुए । प्रमिति की प्रिय पत्नी का नाम प्रतापी था ॥४३॥ प्रमिति के परम तपस्वी पुत्र रुरु थे । उसी समय एक स्थूलकेशा नामक, धर्मात्मा और सत्यवादी महात्मा विख्यात हुए । किसी समय मेनका नाम की तीनों लोकों में अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात अप्सरा नदी के तट में क्रीडा कर रही थी । वह विश्वावसु से गर्भवती होकर घर से निकली ॥४४-४६॥ उस अप्सरा ने स्थूलकेशा महर्षि के आश्रम में जाकर तीनों लोकों में विख्यात एक सुन्दर कन्या को नदी के तट में जन्म दिया और उसे छोड़कर कहीं चली गयी ॥४७॥ उस अनाथ कन्या को देखकर मुनि श्रेष्ठ स्थूलकेशा ने उसे रख लिया । उन्होंने उसका पालन किया और उसका नाम प्रमद्वरा रखा ॥४८॥ सभी सुन्दर लक्षणों से युक्त प्रमद्वरा जब युवती हुई तो उसको देखकर महर्षि रुरु कामार्त हो गये ॥४८-४९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

नवमोऽध्यायः

परीक्षिदुवाच– **कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुः सुप्तो निजाश्रमे । पिता पप्रच्छ दीनं तं किं रुरो विमना असि ॥१॥ त तमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाश्रमे । कन्या प्रमद्वरा नाम सा मे भार्या भवेदिति ॥२॥ स गत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम् । प्रमुह्य सुमुखं कृत्वा ययाचे तां वराननाम् ॥३॥ ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभेऽहनि । विवाहार्थं च संभारं रचायामासतुर्वने ॥४॥ प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ । बभूवतुर्महात्मानौ समीपस्थौ तपोवने ॥५॥ तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणा गृहाङ्गणे । प्रसुप्तं पन्नगं पादेनास्पृशच्चारुलोचना ॥६॥ दष्टा तु पन्नगेनाथ सा ममार वरांगना । कोलाहलस्तदा जतो मृतां दृष्ट्वा प्रमद्वराम् ॥७॥ मिलिता मुनयः सर्वे चुक्रुशुः शोकसंयुताः । भूमौ तां पतितां दृष्ट्वा पिता तस्यातिदुःखितः ॥८॥ रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा । रुरुः श्रुत्वा तदाक्रन्दं दर्शनार्थं समागतः ॥९॥ ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम् । रुदंतं स्थूलकेशं च दृष्ट्वाऽन्यानृषिसत्तमान् ॥१०॥ रुरुःस्थानाद्बहिर्गत्वारुरोद विरहाकुलः । अहो दैवेन सर्पोऽयं प्रेषितः परमाद्भुतः ॥११॥ मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल । किं करोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राणवल्लभा ॥१२॥ न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः**

रुरु का वृत्तान्त तथा परीक्षित् का गुप्तप्रकोष्ठ में निवास

परीक्षित् ने कहा– कामार्त होकर रुरु अपने आश्रम में जाकर सो गये । उनको देखकर उनके पिता ने पूछा कि तुम क्यों दुःखी हो ?॥१॥ अत्यन्त कामार्त रुरु ने कहा कि स्थूलकेशा के आश्रम में प्रमद्वरा नाम की कन्या है, उसे मैं अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ ॥२॥ इसके बाद प्रमति महर्षि स्थूल केशा महर्षि के यहाँ जाकर उनको अपने मीठे वचनों से प्रसन्न करके उनसे प्रमद्वरा नामक कन्या की याचना किए ॥३॥ स्थूलकेशा महर्षि ने भी वचन दिया कि शुभ दिन के आने पर मैं प्रमद्वरा को दूँगा । दोनों महर्षियों ने विवाह की तैयारी वन में की ॥४॥ प्रमति और स्थूलकेशा दोनों विवाह के लिए तैयार थे; उस तपोवन में एक दूसरे का स्वागत करने के लिए एक-दूसरे के सन्निकट पहुँचे ॥५॥ उस समय वह कन्या घर के आँगन में खेल रही थी और उसके पैर से किसी सोए हुए सर्प का स्पर्श हो गया ॥६॥ स्पर्श होते ही सर्प ने उसे काट लिया और वह सुन्दरी मर गयी । उस समय प्रमद्वरा को मरा देखकर कोलाहल हो गया ॥७॥ एकत्रित सभी ऋषि अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे । उस प्रमद्वरा को पृथिवी पर गिरे हुए देखकर उसके पिता महर्षि स्थूलकेशा अत्यन्त दुखी हुए ॥८॥ वे रोने लगे । मर जाने पर भी प्रमद्वरा अपने तेज के कारण प्रकाशित हो रही थी । उस रुदन को सुनकर उसे देखने के लिए रुरु महर्षि आये ॥९॥ सजीव के समान गिरी हुई उस सुन्दरी को देखकर तथा स्थूलकेशा ऋषि एवं अन्य ऋषियों को रोते हुए देखकर ॥१०॥ रुरु उस स्थान

प्रिययाऽनया । नालिङ्गिता वरारोहा न मया चुम्बिता मुखे ॥१३॥ न पाणिग्रहणं प्राप्तं मंदभाग्येन सर्वथा । लाजाहोमस्तथा चाग्नौ न कृतस्त्वनया सह ॥१४॥ मानुष्यं धिगिदं कामं गच्छन्त्वद्य ममासवः । दुःखितस्य न वा मृत्युर्वांछितः समुपैति हि ॥१५॥ सुखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वांछितम् । प्रपतामि ह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम् ॥१६॥ विषमद्मि गले पाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम् । विलप्यैवं रुरुस्तत्र विचार्य मनसा पुनः॥१७॥ उपायं चिंतयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे । मरणात्किं फलं मे स्यादात्महत्या दुरत्यया ॥१८॥ दुःखितश्च पिता मे स्याज्जननी चातिदुःखिता । दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम् ॥१९॥ सर्वः प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षयेनात्र संशयः । उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि ॥२०॥ मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च । परलोके प्रिया साऽपि न मे स्यादात्मघातिनः ॥२१॥ एतदर्थं मृते दोषा मयि नैवामृते पुनः । विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्य शुचिः स्थितः ॥२२॥ अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः । यन्मया सुकृतं किंचित्कृतं देवार्चनादिकम् ॥२३॥ गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तं तपः कृतम् । अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री संस्कृता यदि ॥२४॥ रविराराधितस्तेन

से बाहर जाकर विरह से व्याकुल हो गये । भाग्य ने इस अद्भुत सर्प को मेरे कल्याण को विघ्नित करने के लिये भेजा है । निश्चय ही यह मुझे दुःख देने वाला है । अब मैं क्या करूँ ? कहाँ चला जाऊँ मेरी प्राणप्रिया मर गयी ॥१२॥ इस प्रियतमा से वियुक्त होकर मैं जीना नहीं चाहता हूँ । मैंने न तो अपनी इस प्राणप्रिया का आलिङ्गन किया और न तो इसके मुख का चुम्बन ही किया ॥१३॥ मैं इसका पाणिग्रहण भी नहीं कर पाया मैं मन्दभाग्य वाला हूँ । इसके साथ मैं अग्नि में लाजा होम भी नहीं कर पाया ॥१४॥ मेरी इस मनुष्यता को धिक्कार है, मैं चाहता हूँ कि मेरे प्राण निकल जायँ । दुःखी आदमी के चाहने पर भी उसे मृत्यु नहीं मिलती है । यदि ऐसी बात है तो भूलोक में दिव्य सुख की प्राप्ति कैसे संभव है ? मैं भयंकर ह्रद में अथवा अग्नि में गिरकर अपनी जान दे देना चाहता हूँ ॥१५-१६॥ मैं विष खाकर अथवा अपने गले में फाँसी लगाकर मर जाना चाहता हूँ । इस तरह से विलाप करने के बाद रुरु पुनः अपने मन में विचार करने लगे ॥१७॥ वे नदी के तट पर बैठकर उपाय सोचने लगे कि मेरे मर जाने से मुझे कौन सा फल मिलेगा? और आत्महत्या तो भयंकर पाप है ॥१८॥ मेरे मर जाने पर पिताजी दुःखी होंगे और मेरी माता भी अत्यन्त दुःखी होगी । हाँ मुझे मरा हुआ देखकर दैव को प्रसन्नता अवश्य होगी ॥१९॥ हाँ मेरे मरने से सर्प अवश्य प्रसन्न होगा, किन्तु ऐसा करने से मेरी प्रियतमा का परलोक में कौन सा उपकार होगा । आत्म हत्या करके, मेरे मर जाने अथवा विरह के कारण दुःखी होने से, तो वह मेरी प्रियतमा बन नहीं जायेगी ॥२१॥ अतः मेरे मर जाने पर तो मुझे पाप लगेगा किन्तु नही मरने पर मुझे कोई पाप नहीं लगेगा । इस तरह से विचार करके रुरु नदी में स्नान करके आचमन किये और पवित्र होकर वे बैठ गये ॥२२॥ उन्होंने हाथ में जल लेकर कहा; मैंने जो देवताओं की अर्चना आदि पुण्य कार्यों को किया है ॥२३॥ मैंने भक्ति पूर्वक जो गुरुजनों की पूजा की है, होम

संजीवतु मम प्रिया । यदि जीवेन्न मे कांता त्यजे प्राणानहं ततः ॥२५॥ इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाराध्य देवताः । राजोवाच– **एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च ॥२६॥ देवदूतस्तदाऽभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं ततः ।** देवदूत उवाच– **माऽकार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया ॥२७॥ गतायुरेषा सुश्रोणी गंधर्वाप्सरसोः सुता । अन्यां कामय चार्वंगीं मृतेयं चाविवाहिता ॥२८॥ किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे का प्रीतिस्तेऽनया सह ।** रुरुरुवाच– **देवदूत न चान्यां वै वरिष्याम्यहमंगनाम् ॥२९॥ यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाधुना मया ।** राजोवाच– **विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदान्वितः ॥३०॥ उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम् । उपायं शृणु विप्रेंद्र विहितं यत्सुरैः पुरा ॥३१॥ आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाशु प्रमद्वराम् ।** रुरुरुवाच– **आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नात्र संशयः ॥३२॥ अद्य प्रत्यावृतप्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया । विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः ॥३३॥ ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम् । ततो गंधर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः ॥३४॥ धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम्। धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा ॥३५॥ सुता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना । सा रुरोरायुषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज ॥३६॥**

तथा तपस्या की है । यदि मैंने गायत्री के संस्कार से युक्त सम्पूर्ण वेदों को पढ़ा है ॥२४॥ यदि मैंने विधिपूर्वक सूर्य की आराधना की है तो मेरी प्रिया प्रमद्वरा जी जाय । यदि मेरी प्रियतमा नही जीवित होती है तौ मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा ॥२५॥ इस तरह रुरु महर्षि ने देवताओं की आराधना करके उस जल को पृथिवी पर छोड़ दिया । **राजा ने कहा–** पत्नी के कारण दुःखी तथा विलाप करने वाले रुरु के पास देवदूत आये और रुरु से बोले **देवदूत ने कहा–** ब्राह्मण साहस न करो, मरा हुआ आदमी कैसे जी सकता है? ॥२६-२७॥ इसकी आयु समाप्त हो चुकी है । यह सुन्दरी गन्धर्व की पुत्री है तथा अप्सरा में उत्पन्न हुई है आप किसी दूसरी स्त्री का वरण कर लें । इसका विवाह नहीं हुआ था यह मर गयी है ॥२८॥ हे दुर्बेद्धे ! तुम क्यों रोते हो, इसके साथ तुम्हारा कैसा प्रेम है ? **रुरु महर्षि ने कहा–** हे देवदूत ! मैं किसी दूसरी स्त्री का वरण नहीं करूँगा ॥२९॥ यदि यह जीवित हो जाती है तो ठीक ही है, अन्यथा मैं भी आज मर जाऊँगा । **राजा ने कहा–** रुरु महर्षि का हठ जानकर देवदूत प्रसन्न हो गया ॥३०॥ उसने अत्यन्त मनोहर यह सत्य बात बतलाया कि हे विप्रवर्य ! आप उस उपाय को सुनें जिसे देवताओं ने पहले ही बनाया है ॥३१॥ आप अपनी आयु का आधा भाग प्रदान करके प्रमद्वरा को जीवित कर लें । यह सुनकर **रुरु महर्षि ने कहा–** मैं इस कन्या के लिए अपनी आयु का आधा भाग प्रदान करता हूँ इसमें कोई भी संशय नहीं है॥३२॥ अब मेरी प्रिया जीवित होकर जग जाय । उसी समय विश्वावसु विमान से वहाँ यह जानकर स्वर्ग से आये कि उनकी पुत्री प्रमद्वरा मर गयी है । उसके बाद विश्वावसु और वह श्रेष्ठ देवदूत, धर्मराज के पास जाकर यह कहे कि रुरु की पत्नी और विश्वावसु की पुत्री प्रमद्वरा है ॥३३-३५॥ उसको आज सर्प ने काट लिया है । हे सूर्यपुत्र ! अपनी पत्नी के वियोग में मर जाने की इच्छा वाले रुरु की आधी आयु के द्वारा ॥३६॥ यदि आप चाहें तो वह सुन्दरी

समुत्तिष्ठतु तन्वंगी व्रतचर्याप्रभावतः । धर्म उवाच– **विश्ववसुसुतां कन्यां देवदूत यदीच्छसि ॥३७॥ उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुं गत्वा त्वमर्पय ।** राजोवाच– **एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम् ॥३८॥ रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः । ततः शुभेऽह्नि विधिना रुरुणाऽपि विवाहिता ॥३९॥ इत्थ चोपाययोगेन मृताऽप्युज्जीविता तदा । उपायस्तु प्रकर्तव्यः सर्वथा शास्त्रसंमतः ॥४०॥ मणिमंत्रौषधीभिश्च विधिवत्प्राणरक्षणे। इत्युक्त्वा सचिवान्राजा कल्पयित्वा सुरक्षकान् ॥४१॥ कारयित्वाऽथ प्रासादं सप्तभूमिकमुत्तमम् । आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैः सह तत्क्षणम्॥४२॥ मणिमंत्रधराः शूराः स्थापितास्तत्र रक्षणे । प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः ॥४३॥ प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः । ब्राह्मणान्सिद्धमंत्रज्ञान्रक्षणार्थमितस्ततः ॥४४॥ मंत्रिपुत्रः स्थितस्तत्र स्थापयामास दंतिनः । न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादे चातिरक्षिते ॥४५॥ वातोऽपि न चरेत्तत्र प्रवेशे विनिवारिते । भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्च चकार सः ॥४६॥ स्नानसंध्यादिकं कर्म तत्रैव विनिवर्त्य च । राजकार्याणि सर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः ॥४७॥ मंत्रिभिः सह संमंत्र्य गणयन्दिवसानपि । कश्चिच्च कश्यपो नाम ब्राह्मणो मंत्रिसत्तमः ॥४८॥ शुश्राव च तथा**

व्रतचर्या के प्रभाव से जीवित हो जाय । **धर्मराज ने कहा–** हे देवदूत यदि तुम चाहो तो विश्वावसु की पुत्री को रुरु की आधी आयु प्रदान करके उस रुरु को समर्पित कर दो । **राजा ने कहा–** इस तरह से धर्मराज की बात सुनकर देवदूत शीघ्रता से प्रमद्वरा को जीवित करके रुरु को समर्पित कर दिया। इसके बाद रुरु ने भी शुभ दिन को प्रमद्वरा के साथ विवाह किया ॥३८-३९॥ इस तरह उपाय के द्वारा मरी हुई भी प्रमद्वरा जीवित हो गयी । अतएव शास्त्रसम्मत उपाय तो प्राण की रक्षा करने के लिए मणि, मन्त्र और औषधियों के द्वारा करना ही चाहिए । इस तरह से मन्त्रियों से कहकर राजा परीक्षित् ने अपनी सुरक्षा के लिए रक्षकों की व्यवस्था की ॥४०-४१॥ इस योजना के अनुसार राजा ने एक सात महला मकान बनवाया और अपने मन्त्रियों के साथ उसमें जाकर बैठ गये ॥४२॥ वहाँ पर उन्होंने रक्षा करने के लिए मणियों तथा मंत्रों के जानकार वीरों को नियुक्त किया । इसके बाद उन्होंने गौरमुख नामक मुनि को गविजात ऋषि के पास यह संदेश भेजकर कहलवाया कि मैं आपका सेवक हूँ; आप मेरे अपराध को क्षमा करें । इसके बाद उन्होंने मन्त्रसिद्ध ब्राह्मणों को रक्षा के कार्य में नियुक्त किया ॥४३-४४॥ एक मन्त्री के पुत्र ने उस महल के चारो ओर हाथियों का घेरा डलवा दिया जिससे कि कोई उस सुरक्षित महल में प्रवेश न कर सके ॥४५॥ ऐसी व्यवस्था की गयी कि उस महल में बिना आज्ञा के वायु भी न प्रवेश कर सके और राजा उसी में रहकर भक्ष्य भोज्य आदि वस्तुओं को लेने लगे ॥४६॥ वे वहीं पर स्नान तथा सन्ध्या आदि करते थे और वहीं रहकर राज्य का सारा कार्य करते थे ॥४७॥ वे उसी भवन में रहकर मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करते थे और शाप के दिनों को गिनते रहते थे । उसी समय मन्त्र के जानकार कश्यपगोत्रीय तथा धन के लोलुप ब्राह्मण ने सुना कि राजा

शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना । स धनार्थी द्विजश्रेष्ठः कश्यपः समचिन्तयत् ॥४९॥ व्रजामि तत्र यत्रास्ते शप्तो राजा द्विजेन ह । इति कृत्वा मतिं विप्रः स्वगृहान्निःसृतः पथि । कश्यपो मंत्रविद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

सूत उवाच– **तस्मिन्नेव दिने नाम्ना तक्षकस्तं नृपोत्तमम् । शप्तं ज्ञात्वा गृहात्तूर्णं निःसृतः पुरुषोत्तमः ॥१॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः । अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजंतं नृपतिं प्रति ॥२॥ तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मंत्रवादिनम् । क्व भवांस्त्वरितो याति किं च कार्यं चिकीर्षति॥३॥** कश्यप उवाच– **परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति । तत्राहं त्वरितो यामि नृपं कर्तुमपज्वरम् ॥४॥ मंत्रोऽस्ति मम विप्रेंद्र विषनाशकरः किल । जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल ॥५॥** तक्षक उचाव– **अहं स पन्नगो ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम् । निवर्तस्व**

परीक्षित् को तक्षक सर्प के काटने का शाप मिल गया है । यह सुनकर उस धनार्थी ब्राह्मण ने विचार किया ॥४८-४९॥ मुझे वहाँ चलना चाहिए जहाँ पर ब्राह्मण के द्वारा अभिशप्त राजा हैं । यह सोचकर वे धनार्थी ब्राह्मण अपने घर से निकले, वे मन्त्रों के ज्ञाता विद्वान् थे ॥५०॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

तक्षक-कश्यप संवाद

सूतजी ने कहा– उसी दिन राजा को शापग्रस्त जानकर तक्षक भी मनुष्य का रूप धारण करके अपने घर से निकला ॥१॥ तक्षक बृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाकर रास्ते में चल पड़ा और उसने राजा परीक्षित् के पास जाते हुए कश्यप ब्राह्मण को देखा ॥२॥ तक्षक ने उस मन्त्रज्ञ ब्राह्मण से पूछा आप इतनी जल्दी से कहाँ पर किस कार्य के लिए जा रहे हैं ?॥३॥ **कश्यप ब्राह्मण ने कहा–** राजा परीक्षित् को आज तक्षक काट लेगा अतएव मैं शीघ्रता से राजा को विष से रहित करने के लिए जा रहा हूँ ॥४॥ मैं विष को विनष्ट कर देने वाला मन्त्र जानता हूँ । यदि उनका जीवन शेष होगा तो मैं उनको

न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम् ॥६॥ कश्यप उवाच– **अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै । जीवयिष्याम्यसंदेहं कामं मंत्रबलेन वै ॥७॥** तक्षक उवाच– **यदि त्वं जीवितुं यासि मया दष्टं नृपोत्तमम् । मंत्रशक्तिबलं विप्र दर्शय त्वं ममानघ ॥८॥ धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै ।** कश्यप उवाच– **जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम ॥९॥** सूत उवाच– **अदशत्पन्नगो वृक्षं भस्मासाच्च चकार तम् । उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम ॥१०॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना । सर्वं भस्म समाहृत्य कश्यपो वाक्यमब्रवीत् ॥११॥ पश्य मंत्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम । जीवयाम्यद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष ॥१२॥ इत्युक्त्वा जलमादाय कश्यपो मंत्रवित्तमः । सिषेच भस्मराशिं तं मंत्रितेनैव वारिणा ॥१३॥ तद्वारिसेचनाज्जातो न्यग्रोधः पूर्ववच्छुभः । विस्मयं तक्षकः प्राप्तो दृष्ट्वा तं जीवितं नगम् ॥१४॥ तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः । सम्पादयामि तं कामं ब्रूहि बाडव वांछितम् ॥१५॥** कश्यप उवाच– **वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः । गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम् ॥१६॥** तक्षक उवाच– **वित्तं गृहाण विप्रेन्द्र यावदिच्छसि पार्थिवात् । ददामि स्वगृहं याहि कृतार्थोऽहं भवाम्यतः॥१७॥**

अपने मन्त्र के बल से जीवित कर दूँगा ॥५॥ **तक्षक ने कहा**– ब्राह्मण ! मैं ही तक्षक सर्प हूँ और राजा को भस्म कर दूँगा । आप लौट जायँ मेरे द्वारा काटे गये राजा को आप जीवित नहीं कर सकते हैं ॥६॥ **कश्यप ब्राह्मण ने कहा**– ब्राह्मण के द्वारा शप्त तथा तुम्हारे द्वारा काटे गये राजा को अपने मन्त्र के बल से अवश्य जीवित कर दूँगा ॥७॥ **तक्षक ने कहा**– यदि तुम मेरे द्वारा काटे गये राजा को जीवित करने के लिए जा रहे हो तो मुझे अपने मन्त्र की शक्ति दिखाओ ॥८॥ मैं अपने विषैले दाँतों से इस बटवृक्ष को जला देता हूँ । तक्षक की बातों को सुनकर कश्यप ब्राह्मण ने कहा हे पन्नगोत्तम तुम्हारे द्वारा डँसे गये अथवा जलाये गये को मैं जीवित कर दूँगा ॥९॥ **सूतजी ने कहा**– इसके बाद तक्षक ने उस वृक्ष को दंश लिया वटवृक्ष जलकर भस्म हो गया । इसके बाद उसने कश्यप से कहा हे ब्राह्मण ! अब इसको जीवित कर दो ॥१०॥ वृक्ष को विष की आग से भस्म हुए देखकर ब्राह्मण ने सारी भस्म राशि को इकट्ठाकर लिया और कहा ॥११॥ हे महाविषैले सर्पश्रेष्ठ ! तुम मेरे मन्त्र का बल देखो तुम्हारे सामने ही इस वृक्ष को मैं जीवित कर रहा हूँ ॥१२॥ मन्त्रज्ञों में श्रेष्ठ कश्यप ने हाथ में जल लेकर उस अभिमंत्रित जल से भस्मराशि को सिंच दिया ॥१३॥ जल से सिंचते ही वह बटवृक्ष पहले के ही समान सुन्दर हो गया । उस जीवित बटवृक्ष को देखकर तक्षक आश्चर्यचकित हो गया ॥१४॥ इसके बाद तक्षक ने उस ब्राह्मण से कहा कि तुम किसलिए जाने का इतना परिश्रम कर रहो हो, मैं तुम्हारी सारी इच्छा यहीं पूरी कर देता हूँ, तुम अपनी इच्छा बतलाओं ॥१५॥ **कश्यप ने कहा**– हे सर्प! धन प्राप्त करना चाहता हूँ, अतएव राजा को शापयुक्त मानकर उनका उपकार करने के लिए मैं घर से निकला हूँ ॥१६॥ **तक्षक ने कहा**– हे विप्रश्रेष्ठ ! तुम राजा

सूत उवाच– **तच्छुत्वा वचनं तस्य कश्यपः परमार्थवित् । चिंतयामास मनसा किं करोमि पुनः पुनः ॥१८॥ धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहं पुनः । भविष्यति न मे कीर्तिर्लोके लोभसमाश्रयात् ॥१९॥ जीवितेऽथ नृपश्रेष्ठे कीर्तिः स्यादचला मम । धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यं च जीवनात्॥२०॥ रक्षणीयं यशः कामं धिग्धनं यशसा विना । सर्वस्वं रघुणा पूर्वं दत्तं विप्राय कीर्त्तये ॥२१॥ हरिश्चंद्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम् । उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना ॥२२॥ जीवितेऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च । अराजके प्रजानाशो भविता नात्र संशयः ॥२३॥ प्रजानाशस्य पापं मे भविष्यति मृते नृपे । अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति ॥२४॥ इति संचिन्त्य मनसा ध्यानं कृत्वा स कश्यपः । गतायुषं च नृपतिं ज्ञातवान्बुद्धिमत्तरः ॥२५॥ आपन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा ध्यानेन कश्यपः । गृहं ययौ स धर्मात्मा धनमादाय तक्षकात्॥२६॥ निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसे नृपम् । हंतुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम् ॥२७॥ शुश्राव नगरस्यांते प्रासादस्थं परीक्षितम्। मणिमंत्रौषधैः कामं रक्ष्यमाणमतंद्रितम् ॥२८॥ चिन्ताविष्टस्तदा नागो विप्रशापभयाकुलः । चिंतयामास योगेन प्रविशेयं गृहे कथम्॥२९॥**

से जितना धन लेना चाहते हो उतना धन मैं ही तुम्हें दे रहा हूँ । धन लेकर तुम घर लौट जाओ । इससे मेरा प्रयास सफल होगा ॥१७॥ **सूतजी ने कहा–** उस बात को सुनकर परमार्थवेत्ता कश्यप ने बार-बार मन में विचार किया कि इस समय मैं क्या करूँ ?॥१८॥ यदि मैं धन लेकर घर लौट जाता हूँ तो लोभ के कारण मेरी कीर्ति संसार में नहीं होगा ॥१९॥ राजा के जीवित हो जाने पर तो मेरी अचल कीर्ति होगी । उनके जी जाने से धन की प्राप्ति और यश दोनों होंगे ॥२०॥ यश की रक्षा करनी चाहिए । यश के बिना धन व्यर्थ है । महाराज रघु ने यश की प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व ब्राह्मण को दान में दे दिया था ॥२१॥ इसी तरह हरिश्चन्द्र तथा कर्ण ने यश के लिए बहुत कुछ किया था अतएव मैं विष की अग्नि से जलते हुए राजा की कैसे उपेक्षा कर सकता हूँ ॥२२॥ आज यदि मैं राजा को जीवित कर देता हूँ तो सभी प्रजा को सुख होगा, देश के राजा से रहित जो जाने पर तो प्रजाओं का ही नाश हो जायेगा ॥२३॥ राजा के मर जाने पर मुझको प्रजा के नाश का पाप लगेगा और धन के लोभ के कारण मेरा संसार में अपयश होगा ॥२३॥ इस तरह से विचार करके उस बुद्धिमान ब्राह्मण कश्यप ने ध्यान करके जान लिया कि राजा की आयु समाप्त हो गयी है ॥२४॥ उस धार्मिक कश्यप ने ध्यान के द्वारा राजा की मृत्यु की बेला को जानकर तक्षक से धन ले लिया और अपने घर लौट गया ॥२६॥ कश्यप ब्राह्मण को लौटा कर वह तक्षक सर्प सातवें दिन राजा को मार देने की इच्छा से हस्तिनापुर में गया ॥२७॥ नगर के सन्निकट में जाकर उसने जाना कि परीक्षित महल में रहते हैं, और बड़ी ही सावधानी पूर्वक उनकी रक्षा मणि, मन्त्र तथा औषधि के द्वारा की जा रही है ॥२८॥ ब्राह्मण के शाप के भय से घबराया हुआ सर्प चिन्तित हो

वंचयामि कथं चैनं राजानं पापकारिणम् । विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडाकरं शठम् ॥३०॥ पांडवानां कुले जातः कोऽपि नैतादृशोऽभवत् । तापसस्य गले येन मृतः सर्पो निवेशितः ॥३१॥ कृत्वा विगर्हितं कर्म जानन्कालगतिं नृपः । रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च ॥३२॥ मृत्युं वंचयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः । तं कथं धक्षयिष्यामि विप्रवाक्येन चोदितः ॥३३॥ न जानाति च मंदात्मा मरणं ह्यनिवर्तनम्। तेनासौ रक्षकान्स्थाप्य सौधारूढोऽद्य मोदते ॥३४॥ यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनामिततेजसा । स कथं परिवर्तेत कृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः ॥३५॥ पांडवस्य च दायादो जानन्मृत्युं गतं नृपः । जीवने मतिमास्थाय स्थितः स्थाने निराकुलः ॥३६॥ दानपुण्यादिकं राजा कर्तुमर्हति सर्वथा । धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत् ॥३७॥ नोचेन्मृत्युविधिं कृत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः । मरणं स्वर्गलोकाय नरकायान्यथा भवेत् ॥३८॥ द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वाऽस्य च भूपतेः । विप्रशापस्तथा घोर आसन्ने मरणे किल ॥३९॥ न कोऽपि ब्राह्मणः पार्श्वे य एनं प्रतिबोधयेत् । वेधसा विहितो मृत्युरनिवार्यस्तु सर्वथा ॥४०॥ इति संचिन्त्य सर्पोऽसौ स्वान्नागान्निकटे स्थितान् । कृत्वा तापसवेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजंगमान् ॥४१॥ फलमूलादिकं

गया कि मैं क्या करूँ ?वह सोच रहा था कि सब तरह से सुरक्षित उस महल में मैं कैसे प्रवेश करूँ ॥२९॥ इस पापी राजा को मैं कैसे घोखा दूँ ? क्योंकि यह राजा ब्राह्मण को पीड़ित करने के कारण ब्राह्मण के शाप से ही मर चुका है ॥३०॥ पाण्डवों के वंश में उत्पन्न होने वाला कोई भी ऐसा नहीं हुआ था जो कि तपस्वी के गले में मरा हुआ साँप लपेट दे ॥३१॥ इस निन्दित कर्म को करके तथा काल की गति को जानते हुए भी यह राजा भवन में रक्षकों को नियुक्त करके तथा महल में जाकर ॥३२॥ मृत्यु को सावधानी पूर्वक धोखा दे रहा है । मैं ब्राह्मण के वाक्य से प्रेरित हूँ, अतएव उसको मैं अपनी विषाग्नि से कैसे भस्म कर दूँ ॥३३॥ यह मूर्ख यह भी नहीं जानता है कि मृत्यु को नहीं रोका जा सकता है । इसीलिए रक्षकों को नियुक्त करके महल के ऊपर चढ़कर प्रसन्न हो रहा है ॥३४॥ यदि अमित तेजस्वी दैव ने मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों भी प्रयास करके उसे कैसे व्यर्थ किया जा सकता है ?॥३५॥ पाण्डव वंशीय यह राजा अपने को काल के सन्निकट पहुँचा हुआ भी जानकर स्वयं जीवित रहने के लिए निरापद स्थान में जाकर बैठ गया है॥३६॥ इस राजा को तो धर्म तथा पुण्य आदि करना चाहिए; क्योंकि ऐसा ही करने से व्याधि का नाश होता है और आयु बढ़ती रहती है ॥३७॥ मृत्यु को उद्दिष्ट करके यदि स्नान दान आदि क्रियायें की जाती हैं तो वह स्वर्गलोक प्रद होती हैं, नहीं तो नरक होता है ॥३८॥ इसको तो ब्राह्मण को दुःख देने का पाप लगा है और इसे ब्राह्मण का शाप हो गया है । इसकी मृत्यु भी सन्निकट है ॥३९॥ लगता है कि इसके सन्निकट में कोई ब्राह्मण भी नहीं हैं जो उसे समझायें कि ब्रह्मा के द्वारा निश्चित की गयी मृत्यु तो अनिवार्य होती है, उसको कोई भी नहीं रोक सकता है ॥४०॥ इस तरह से विचार करके वह सर्प अपने सन्निकट में विद्यमान नागों को तपस्वी का वेष बनाकर राजा के पास भेजना चाहा ॥४१॥ उस तक्षक नाग ने फल-मूल इत्यादि राजा के लिए नागों को

गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः । स्वयं च कीटरूपेण फलमध्ये ससार ह ॥४२॥ निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः । ते राजभवनं प्राप्य
स्थिताः प्रासादसन्निधौ ॥४३॥ रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम् । ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात् ॥४४॥ अभिमन्युसुतं
वीरं कुलार्कं चारुदर्शनम् । परिवर्धयितुं प्राप्ता मंत्रैराथर्वणैस्तथा ॥४५॥ निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन् । कृत्वाऽभिषेकान् यास्यामो दत्त्वा
मिष्टफलानि च ॥४६॥ भरतानां कुले क्वापि न दृष्ट्वा द्वाररक्षकाः । न श्रुतं तापसानां तु राज्ञोऽसंदर्शनं किल ॥४७॥ आरोहामो वयं तत्र यत्र
राजा परीक्षितः आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे ॥४८॥ सूत उवाच– इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानां तु रक्षकाः । प्रत्यूचुस्तान् द्विजान्मत्वा
निदेशं भूपतेर्यथा ॥४९॥ नाद्य वो दर्शनं विप्रा राज्ञः स्यादिति नो मतिः । श्वः सर्वतापसैरत्र त्वागंतव्यं नृपालये ॥५०॥ अनारोहस्तु प्रासादो
विप्राणां मुनिसत्तमाः । विप्रशापभयाद्राज्ञा विहितोऽस्ति न संशयः ॥५१॥ तदोचुस्तानथो विप्राः फलमूलजलानि च । विप्राशिषश्च राज्ञेऽथ
ग्राहयन्तु सुरक्षकाः ॥५२॥ ते गत्वा नृपतिं प्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः । राजोवाचानयध्वं वै फलमूलादिकं च यत् ॥५३॥ पृच्छध्वं तापसान्कार्यं
प्रातरामगनं पुनः । प्रणामं कथयध्वं मे नाद्य संदर्शनं मम ॥५४॥ ते गत्वाऽथ समादाय फलमूलादिकं च यत् । राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरः

दे दिया और स्वयं एक छोटा सा कीड़ा होकर फल के भीतर प्रवेश कर गया ॥४२॥ इसके बाद वे तपस्वी वेषधारी नाग फल लेकर राजा के पास शीघ्र
गये, वे राजभवन के सन्निकट जाकर रुक गये ॥४३॥ रक्षकों ने उन तपस्वियों को देखकर उनसे पूछा कि वे क्या करना चाहते हैं ? उन तपस्वियों ने
कहा कि हमलोग आज तपोवन से राजा से मिलने के लिए आये हैं ॥४४॥ सुन्दर दिखने वाले अभिमन्यु के पुत्र महाराज परीक्षित् अपने वंश को प्रकाशित
करने वाले वीर हैं । हमलोग उनका अथर्ववेद के मन्त्रों से परिवर्धन करने के लिए आये हैं ॥४५॥ तुमलोग राजा को बतलाओ कि दर्शन के लिए वन
से मुनिगण आये हैं । हमलोग उनका अभिषेक करके तथा उन्हें मधुर फल प्रदान करके लौट जायेंगे ॥४६॥ आजतक भरतवंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं
को यहाँ द्वाररक्षक तपस्वियों को रोकते हुए नहीं देखे गये और यह भी नहीं सुना गया है कि तपस्वियों को राजा का दर्शन नहीं होता है ॥४७॥ हमलोग
वहाँ जायेंगे जहाँ राजा परीक्षित् हैं। उनको आशीर्वाद देकर तथा उनसे आज्ञा लेकर हमलोग लौट जायेंगे ॥४८॥ **सूतजी ने कहा–** तपस्वियों की इस तरह
की वाणी सुनकर रक्षकों ने उन्हें ब्राह्मण जानकर राजा की आज्ञा को सुनाया ॥४९॥ ब्राह्मणों हम जानते हैं कि आज आपलोगों को राजा का दर्शन नहीं होगा। कल
सभी तपस्वी इस राजमहल में आयें ॥५०॥ राजा ने ब्राह्मणों को आज तो ब्राह्मण के शाप के भय से मिलने से निषेध कर दिया है ॥५१॥ उसके बाद उन **ब्राह्मणों
ने रक्षकों से कहा–** कि तुमलोग फल, मूल, जल तथा ब्राह्मणों का आशीर्वाद राजा को दे दो ॥५२॥ इसके बाद उन रक्षकों ने जाकर राजा को ब्राह्मणों के आगमन

सरम् ॥५५॥ गतेषु तेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च । फलान्यादाय राजाऽसौ सचिवानिदमब्रवीत् ॥५६॥ सुहृदो भक्षयंत्वद्य फलान्येतानि सर्वशः।
अद्म्यहं चैकमेतद्वै फलं विप्रार्पितं महत् ॥५७॥ इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः । करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम्॥५८॥
विदारितं फलं राज्ञा तत्र क्रिमिरभूदणुः । स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टो भूपतिना स्वयम् ॥५९॥ तं दृष्ट्वा नृपतिः प्राह सचिवान्विस्मितानथ ।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम् ॥६०॥ अंगीकरोमि तं शापं कृमिको मां दशत्वयम् । एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्यवेशयत्॥६१॥
अस्तं याते दिवानाथे धृतः कंठेऽथ कीटकः । तक्षकस्तु तदा जातः कालरूपी भयानकः ॥६२॥ राजा संवेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः । मंत्रिणो
विस्मयं प्राप्ता रुरुदुर्भृशदुःखिताः ॥६३॥ घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवस्ते भयार्दिताः । चुक्रुशू रक्षकाः सर्वे हाहाकारो महानभूत् ॥६४॥ वेष्टितो
भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः । नोवाच नृपतिः किंचिन्न चचालोत्तरासुतः ॥६५॥ उत्थिताऽग्निशिखा घोरा विषजा तक्षकाननात् । प्रजज्वाल नृपं

को बतलाया । राजा ने कहा कि जो फल मूल इत्यादि हो उसे तुमलोग लाओ ॥५३॥ तपस्वियों के कार्य को पूछ लो और उन्हें कल आने के लिए कहो।
उनलोगों से मेरा प्रणाम कहना और उनसे कहना कि आज मेरा दर्शन नहीं हो सकता है ॥५४॥ रक्षकों ने जाकर जो फल मूल इत्यादि था उसे ले लिया
और बहुमान पुरसर उसे राजा को समर्पित किया ॥५५॥ ब्राह्मण वेषधारी उन नागों के चले जाने पर राजा ने फल लेकर मन्त्रियों से कहा ॥५६॥ मित्रों
आज आपलोग इन फलों को खा लें और इसमें ब्राह्मण के द्वारा प्रदत्त इस एक फल को मैं खा लेता हूँ ॥५७॥ इस तरह से परीक्षित् ने उन फलों को
अपने मित्रों को प्रदान किया और एक पके हुए फल को हाथ में लेकर राजा ने उसे स्वयं फाड़ा ॥५८॥ राजा ने जिस फल को फाड़ा उसमें एक बहुत
छोटा कीड़ा दिखायी दिया । इसके बाद राजा ने स्वयं देखा कि उस कीड़े के नेत्र काले थे और उसका शरीर लाल था ॥५९॥ उसको देखकर राजा ने
आश्चर्यचकित **मन्त्रियों से कहा**– अब सूर्यास्त हो रहा है, मुझको विष से भय नहीं है ॥६०॥ मैं शाप को स्वीकार करता हूँ यह छोटा कीड़ा मुझे काट ले।
यह कहकर राजा ने उसे अपने गले में लगा लिया ॥६१॥ सूर्यास्त होने पर गले पर रखा हुआ वह कीड़ा ही कालरूपी भयंकर तक्षक हो गया ॥६२॥
उसने राजा को लपेट लिया और काट भी लिया । यह देखकर सभी मन्त्री आश्चर्यित हो गये और जोर-जोर से रोने लगे ॥६३॥ भयंकर उस सर्प को
देखकर वे भयभीत हो गये और वहाँ से भाग गये । सभी रक्षक चिल्लाने लगे । महान् हाहाकार मच गया ॥६४॥ सर्प के शरीर से लपेट लिए जाने के
कारण राजा की भुजाओं का बल समाप्त हो गया । वे न तो कुछ बोल सके और न तो इधर-उधर हिल-डुल सके ॥६५॥ तक्षक के मुख से विष की
भयंकर ज्वाला निकलने लगी और उसी में राजा जलने लगे और मर गये ॥६६॥ राजा के प्राणों का हरण करके तक्षक शीघ्र ही आकाश में चला गया।

त्वाशु गतप्राणं चकार ह ॥६६॥ हत्वाऽऽशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगने गतः । जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह ॥६७॥ स पपात गतप्राणो राजा दग्ध इव द्रुमः । चुक्रुशुश्च जनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम् ॥६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

सूत उवाच– **गतप्राणं तु राजानं बालं पुत्रं समीक्ष्य च । चक्रुश्च मंत्रिणः सर्वे परलोकस्य सत्क्रियाः ॥१॥ गंगातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायं महीपतिम् । अगुरुभिश्चाभियुक्तायां चितायामध्यरोपयन् ॥२॥ दुर्मरणे मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्वदैहिकीम् । क्रियां पुरोहितास्तस्य वेदमंत्रैर्विधानतः॥३॥ ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम् । अन्नं बहुविधं तत्र वस्त्राणि विविधानि च ॥४॥ सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीतिवर्धनम् । सिंहासने शुभे तत्र मंत्रिणः संन्यवेशयन् ॥५॥ पौरा जानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम् । जनमेजयनामानं राजलक्षणसंयुतम् ॥६॥ धात्रेयी शिक्षयामास**

लोगों ने देखा कि उस तक्षक में संसार को भस्म कर देने की शक्ति थी ॥६७॥ मरे हुए राजा उसीतरह पृथिवी पर गिर पड़े जिस तरह जला हुआ वृक्ष गिर पड़ता है । राजा परीक्षित् को मरे हुए देखकर सभी लोग चिल्लाने लगे ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

राजा जनमेजय का सर्पयाग

सूतजी ने कहा– राजा को मरे हुए तथा उनके पुत्र को बालक देखकर सभी मन्त्रियों ने राजा परीक्षित् की और्ध्वदैहिक क्रिया की ॥१॥ गंगा के तट पर अधजले शरीर वाले राजा को अगरु से बनायी गयी चिता पर रखा गया ॥२॥ दुर्मरण (अकालमृत्यु) से मरे हुए राजा की और्ध्वदैहिक क्रिया को राजपुरोहितों ने वैदिक मंत्रों से विधिपूर्वक किया ॥३॥ उनलोगों ने ब्राह्मणों को दान में गौ, सुवर्ण, अनेक प्रकार के अन्न तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों को दिया ॥४॥ इसके बाद सुन्दर मुहूर्त में प्रजाओं की प्रसन्नता को बढ़ाने वाले राजा के बालक पुत्र को मन्त्रियों ने राजसिंहासन पर बैठाया ॥५॥ नगरवासी और

राजचिह्नानि सर्वशः । दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः ॥७॥ प्राप्ते चैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः । यथोचितां ददौ विद्यां जग्राह स यथोचिताम् ॥८॥ धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम् । अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णाय भार्गवो यथा ॥९॥ संप्राप्तविद्यो बलवान्बभूव दुरतिक्रमः । धनुर्वेदे तथा वेदे पारगः परमार्थवित् ॥१०॥ धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेन्द्रियः । चकार राज्यं धर्मात्मा पुरा धर्मसुतो यथा॥११॥ ततः सुवर्णवर्माख्यो राजा काशिपतिः किल । वपुष्टमां शुभां कन्यां ददौ पारीक्षिताय च ॥१२॥ स तां प्राप्यासितापांगीं मुमुदे जनमेजयः । काशिराजसुतां कांतां प्राप्य राजा यथा पुरा ॥१३॥ विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथाऽर्जुनः । विजहार महीपालो वनेषूपवनेषु च॥१४॥ तया कमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा । प्रजास्तस्य सुसंतुष्टा बभूवुः सुखलालिताः ॥१५॥ मंत्रिणः कर्मकुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः । एतस्मिन्नेव काले तु मुनिरुत्तंकनामकः ॥१६॥ तक्षकेण परिक्लिष्टो हस्तिनापुरमभ्यगात् । वैरस्यापचितिं कोऽस्य प्रकुर्यादिति चिंतयन्॥१७॥ परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः । कार्याकार्यं न जानासि समये नृपसत्तम ॥१८॥ अकर्तव्यं करोष्यद्य कर्तव्यं न करोषि वै । किं त्वां

जनपदवासी नागरिकों ने राजा के लक्षण से सम्पन्न जनमेजय को राजा मान लिया ॥६॥ राजकुमार की धायी ने उन्हें राजाओं के सभी क़र्मों की शिक्षा दी और प्रतिदिन बढ़ते हुए जनमेजय महाबुद्धिमान हो गये ॥७॥ जब जनमेजय ग्यारह वर्ष के हो गये तो कुलपुरोहित ने उन्हें विद्याओं को पढ़ाया और जनमेजय ने उन विद्याओं को ग्रहण किया ॥८॥ सुन्दर संस्कार से युक्त जनमेजय को कृपाचार्य ने उसी तरह से धनुर्वेद की शिक्षा दी जैसे अर्जुन को द्रोणाचार्य ने तथा कर्ण को परशुरामजी ने धनुर्वेद की शिक्षा दी ॥९॥ परमार्थवेत्ता जनमेजय धनुर्वेद तथा वेद में पारंगत होकर अजेय बलवान् वीर हुए ॥१०॥ धर्मशास्त्र के अर्थ को जानने वाले सत्यवक्ता जितेन्द्रिय जनमेजय उसीतरह राज्य करने लगे जैसे महाराज युधिष्ठिर करते थे ॥११॥ उसके बाद काशी के सुवर्णवर्मा नामक राजा ने अपनी वपुष्टमा नामक सुन्दर राजकुमारी का विवाह जनमेजय से कर दिया ॥१२॥ काशीराज की पुत्री को पत्नी के रूप में प्राप्त करके राजा जनमेजय उसी तरह प्रसन्नता का अनुभव किए जिस तरह विचित्रवीर्य ने काशिराज की पुत्री को प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किया था तथा अर्जुन ने सुभद्रा को प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किया था । राजा ने अपनी उस पत्नी के साथ वनों तथा उपवनों में विहार किया ॥१३-१४॥ जिस तरह शतक्रतु इन्द्र शची के साथ सुखी थे उसी तरह वपुष्टमा के साथ जनमेजय सुखी थे । सुखपूर्वक पाली जाने वाले प्रजा भी जनमेजय से अत्यन्त सन्तुष्ट थी ॥१५॥ कार्यों को सम्पादित करने में कुशल मन्त्रीगण सभी कार्यों को करते थे । उसीसमय तक्षक से दुःखी उत्तंक नामक मुनि हस्तिनापुर आये । वे यह सोच रहे थे कि तक्षक से वैर का बदला कैसे लिया जाय ॥१६-१७॥ तक्षक से वैर का बदला चुकाने में समर्थ जनमेजय को जानकर वे उस राजा के पास आये और कहे कि राजन् आपको इस बात का ज्ञान नहीं है कि किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ॥१८॥ इस समय तुम्हारा जो कर्तव्य

संप्रार्थयाम्यद्य गतामर्षं निरुद्यमम् ॥१९॥ अवैरज्ञमतंत्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम् । जनमेजय उवाच– **किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया॥२०॥ तद्वद त्वं महाभाग करोमि यदनन्तरम् ।** उत्तंक उवाच– **पिता ते निहतो भूप तक्षकेण दुरात्मना ॥२१॥ मंत्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छ स्वपितृनाशनम् ।** सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मंत्रिसत्तमान् ॥२२॥ ऊचुस्ते द्विजशापेन दष्टः सर्पेण वै मृतः ।** जनमेजय उवाच– **शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल ॥२३॥ तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनि सत्तम ।** उत्तंक उवाच– **तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः स निवारितः ॥२४॥ न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते । भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टा सर्पेण सा मृता ॥२५॥ अविवाहिता तु मुनिना जीविता च पुनः प्रिया । रुरुणाऽपि कृता तत्र प्रतिज्ञा चातिदारुणा ॥२६॥ यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै । एवं कृत्वा प्रतिज्ञां स शस्त्रपाणी रुरुस्तदा ॥२७॥ व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान् यतस्ततः । एकदा स वने घोरं डुण्डुभं जरसान्वितम् ॥२८॥ अपश्यद्दंडमुद्यम्य हंतुं तं समुपाययौ । अभ्यहन्नु षितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः ॥२९॥ नापराध्नोमि ते विप्र कस्मान्मामभिहंसि वै ।** रुरुरुवाच– **प्राणप्रिया मे दयिता**

नहीं है उसे तो करते हो और जो कर्तव्य है, उसे नहीं करते हो, अतएव आमर्ष और उद्यम से रहित आप से कौन सी प्रार्थना करूँ ॥१८-१९॥ आप बालक जैसी चेष्टा करते हैं, वैरी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इस बात का आपको ज्ञान नहीं है । मुनि की बातों को सुनकर **जनमेजय ने पूछा**– मैं किस बैर को नहीं जानता हूँ और मैंने किस बैरी का प्रतिकार नहीं किया है ॥२०॥ हे महाभाग ! आप उसे मुझे बतलाएँ जिसे मैं इसके बाद करूँ । **उत्तंक मुनि ने कहा**– दुष्ट तक्षक ने आपके पिता को मारा है ॥२१॥ आप अपने मन्त्रियों को बुलाकर उनसे अपने पिता की मृत्यु का वृत्तान्त पूछिये । **सूतजी ने कहा**– इस बात को सुनकर राजा ने अपने श्रेष्ठ मंत्रियों से पूछा ॥२२॥ मन्त्रियों ने बतलाया कि एक ब्राह्मण का शाप हो जाने पर तक्षक ने आपके पिता को काट लिया और उनकी मृत्यु हो गयी । जनमेजय ने **उत्तंक मुनि से कहा**– हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्राह्मण के शाप से ग्रस्त होना ही महाराज की मृत्यु का कारण है, इसमें तक्षक का क्या दोष है ? **उत्तंक मुनि ने कहा**– तक्षक ने धन प्रदान करके विषवैद्य कश्यप ब्राह्मण को आने से रोक कर लौटा दिया था॥२४॥ इस प्रकार का तक्षक जो आपके पिता को मारने वाला है वह आपका वैरी नहीं है क्या ? राजन् ! प्राचीन काल में साँप के काटने से रुरु महर्षि की पत्नी मर गयी थी ॥२५॥ यद्यपि उसका विवाह रुरु महर्षि से नहीं हुआ था फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी को जिलाया और रुरु महर्षि ने भी भयंकर प्रतिज्ञा की थी ॥२६॥ मैं जिस सर्प को देखूँगा उसे आयुध से मार डालूँगा । इस तरह से प्रतिज्ञा करके रुरु अपने हाथ में शस्त्र लेकर वन में विचरण करने लगे और सर्पों को मारने लगे । एकबार उन्होंने वन में डुण्डुभ नामक बूढे सर्प को देखा और अपना डंडा उठाकर उसको मारने के लिए उसके पास आये । क्रुद्ध होकर ऋषि जब उसे मारने लगे तो डुण्डुभ ने उनसे कहा ॥२७-२९॥ हे विप्र ! आप मुझे क्यों मारते हैं, मैंने तो आपका कोई अपराध नहीं किया है?

दष्टा सर्पेण सा मृता ॥३०॥ प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता । डुण्डुभ उवाच– **नाहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशंति भुजंगमाः ॥३१॥ शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि ।** उत्तङ्क उवाच– **श्रुत्वा तां मानुषीं वाणीं सर्पेणोक्तां मनोहराम् ॥३२॥ रुरुः पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्मात् डुण्डुभतां गतः ।** सर्प उवाच– **ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाभिधः ॥३३॥ विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेन्द्रियः । स मया वंचितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम् ॥३४॥ भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः । तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना ॥३५॥ भव सर्पो मंदबुद्धे येनाहं धर्षितस्त्वया । मया प्रसादितोऽत्यर्थं सर्पेणासौ द्विजोत्तमः ॥३६॥ मामुवाचाथ तत्क्रोधात्किंचिच्छान्तिमवाप्य च । रुरुस्ते मोचिता शापस्यास्य सर्प भविष्यति ॥३७॥ प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः । सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वं च शृणु मे परमं वचः ॥३८॥ अहिंसा परमो धर्मो विप्राणां नात्र संशयः । दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेन विजानता ॥३९॥ यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता ।** उत्तंक उवाच– **सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः ॥४०॥ कृत्वा तस्य च शापांतं परित्यक्तं च हिंसनम् । विवाहिता तेन बाला मृता संजीविता पुनः ॥४१॥ कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन् । त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ ॥४२॥ विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातकरेषु वै । अन्तरिक्षे**

रुरु ने कहा– मेरी प्राणप्रिया पत्नी को सर्प ने काट लिया था उसके कारण वह मर गयी ॥३०॥ हे सर्प मैंने दुःखी होकर उसी समय प्रतिज्ञा की थी । **डुंडुभ ने कहा–** मैं तो किसी को काटता नहीं हूँ । काटने वाले सर्प दूसरे हैं ॥३१॥ अपने शरीर के ही समान मेरे शरीर को प्रिय जानकर आप मुझे न मारे । **उत्तंक मुनि ने कहा–** सर्प की इस मनोहर वाणी को सुनकर ॥३२॥ **रुरु महर्षि ने कहा–** कि तुम कौन हो ? तथा किस कारण से डुंडुभ हो गये हो ? **सर्प ने कहा–** पहले जन्म में मैं ब्राह्मण था और मेरा एक खगम नामक मित्र था ॥३३॥ वह धार्मिकों में श्रेष्ठ,जितेन्द्रिय और सत्यवादी था । मैंने मूर्खता वश एक घास का सर्प बनाकर उसे डराया ॥३४॥ वह अग्निहोत्र वाले घर में बैठा था और उस सर्प को देखकर अत्यन्त भयभीत हो गया । वह भयभीत होकर काँपने लगा था । उसने मुझे शाप दे दिया ॥३५॥ तुमने मुझे सर्प से डराया है अतएव सर्प हो जा । उसके बाद मैं सर्प हो गया ॥३६॥ पुनः मैंने उससे बहुत प्रार्थना की तो प्रसन्न होकर उसने कहा तुम्हें इस योनि से प्रमति के पुत्र रुरु छुडायेंगे । मैं वही सर्प हूँ और आप रुरु हैं यह मैं जानता हूँ । आप मेरी बात सुनें ॥३७॥ ब्राह्मणों का सबसे बड़ा धर्म अहिंसा है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । विद्वान् ब्राह्मण को सब पर दया करनी चाहिए॥३९॥ यज्ञ से अन्यत्र कहीं हिंसा का विधान नहीं है । यज्ञ में की जाने वाली हिंसा हिंसा नहीं कहलाती है । **उत्तंक मुनि ने कहा–** इसके बाद वह ब्राह्मण सर्प की योनि से छूट गया और उसके बाद रुरु महर्षि उस ब्राह्मण के शाप का अन्त करके हिंसा करना त्याग दिए । उसके बाद जब प्रमद्वरा मर गयी थी तब उसको उन्होंने जीवित करके उसके साथ विवाह किया ॥४०-४१॥ इसतरह रुरु ने तो सर्प के वैर का स्मरण करके सर्प जाति का

मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः ।।४३।। तस्योद्धारं च राजेंद्र कुरु हत्वाऽथ पन्नगान् । पितुर्वैरं न जानाति जीवन्नेव मृतो हि सः ।।४४।। दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि । अम्बामखमिषं कृत्वा कुरु यज्ञं नृपोत्तम ।।४५।। सर्पसत्रं महाराज पितुर्वैरमनुस्मरन् । सूत उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जनमेजयस्तदा ।।४६।। नेत्राभ्यामश्रुपातं च चकारातीव दुःखितः । धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धेर्वृथा मानकरस्य वै ।।४७।। पिता यस्य गतिं घोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः । अद्याहं मखमारभ्य करोम्यपचितिं पितुः ।।४८।। हत्वा सर्पानसंदिग्धो दीप्यमाने विभावसौ । आहूय मंत्रिणः सर्वान्राजा वचनमब्रवीत् ।।४९।। कुर्वन्तु यज्ञसंभारं यथार्हं मंत्रिसत्तमाः । गंगातीरे शुभां भूमिं मापयित्वा द्विजोत्तमैः ।।५०।। कुर्वन्तु मंडपं स्वस्थाः शतस्तंभं मनोहरम् । वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाद्य सचिवाः खलु ।।५१।। तदंगत्वे विधेयो वै सर्पसत्रः सुविस्तरः । तक्षकस्य पशुस्तत्र होतोत्तंको महामुनिः।।५२।। शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः ।** सूत उवाच– **मंत्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः ।।५३।। यज्ञस्य सर्वसंभारं वेदीं यज्ञस्य विस्तृताम् । हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः ।।५४।। इन्द्रं प्रति भयार्तोऽहं त्राहि मामिति चाब्रवीत् । भयभीतं समाश्वास्य स्वासने संनिवेश्य च ।।५५।। दादावभयमत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग । तमिंद्रशरणं ज्ञात्वा मुनिर्दत्ताभयं तथा ।।५६।। उत्तङ्कोऽह्यदुद्विग्नः सेंद्रं कृत्वा**

संहार किया और आप हैं कि अपने बैरी को बैरी नहीं मानते हैं ।।४२।। हे भरतश्रेष्ठ ! अपने पिता के साथ घात करने वाले के विषय में आप क्रोध क्यों नहीं करते हैं । उस सर्प के भय से आपके पिता स्नान दान इत्यादि का परित्याग करके अन्तरिक्ष में मरे हैं ।।४३।। हे राजेन्द्र ! आप सर्पों का वध करके अपने पिता का उद्धार कीजिए । जो अपने पिता के वैर का बदला नहीं लेता है वह जीते जी मरा हुआ है ।।४४।। जब तक आप सर्पों का बध नहीं करेंगे तब तक आपके पिता नरक में ही रहेंगे । अतएव आप नवरात्र में अम्बामख की योजना बनाइये ।।४५।। और अपने पिता के वैर का स्मरण करके सर्प सत्र कीजिए । **सूतजी ने कहा–** उत्तंक मुनि की बात सुनकर राजा जनमेजय ।।४६।। अत्यन्त दुःखी होकर आँखों से आँसू बहाने लगे । मुझ दुर्बुद्धि को धिक्कार है । मैं व्यर्थ ही अभिमान करता हूँ ।।४७।। क्योंकि सर्प से पीड़ित होकर मेरे पिता घोरगति को प्राप्त कर गये । अपने पिता के बैर का बदला लेने के लिए मैं आज से ही यज्ञ प्रारम्भ कर रहा हूँ ।।४८।। आग की ज्वाला में सभी सर्प जलकर मर जायेंगे । इसके बाद राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा ।।४९।। हे मन्त्रियों आपलोग आज से ही यज्ञ की तैयारी करें सामग्रियाँ जुटा ली जायँ, उत्तम ब्राह्मणों के द्वारा गंगाजी के तट पर भूमि की माप करके ।।५०।। उसमें सौ स्तम्भों वाला एक मनोहर मण्डप बनाया जाय आज ही उसमें यज्ञ की वेदी बनायी जाय ।।५१।। उसके अंगरूप से सर्पसत्र किया जायेगा । उस यज्ञ का यज्ञपशु तक्षक होगा तथा उस यज्ञ के होता उत्तंक मुनि होंगे ।।५२।। शीघ्र ही वेदों में पारंगत सर्वज्ञ ब्राह्मणों को आहूत किया जाय । **सूतजी ने कहा–** चतुर मंत्रियों ने राजा की आज्ञा का पालन किया ।।५३।। यज्ञ की सारी सामग्री जुटा ली गयी, विस्तृत वेदी बनायी गयी । जब सर्पों का हवन प्रारंभ हुआ तो तक्षक इन्द्र के पास गया । उसने भयभीत होकर इन्द्र से कहा कि आप मेरी रक्षा करें । इन्द्र ने भयभीत तक्षक को आश्वासन

निमंत्रणम् । स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः ॥५७॥ आस्तीको नाम धर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः । तत्रागत्य मुनेर्बालस्तुष्टाव जनमेजयम्॥५८॥ राजा तमर्चयामास दृष्ट्वा बालं सुपण्डितम् । अर्चयित्वा नृपस्तं तु छंदयामास वांछितैः ॥५९॥ स तु वव्रे महाभाग यज्ञोऽयं विरमत्विति । सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा ॥६०॥ होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः । भारतं श्रावयामास वैशंपायन विस्तरात् ॥६१॥ श्रुत्वाऽपि नृपतिः कामं न शांतिमभिजग्मिवान् । व्यासं पप्रच्छ भूपालो मम शांतिः कथं भवेत् ॥६२॥ मनोऽति दह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे । पिता मे दुर्भगस्यैव मृतः पार्थसुतात्मजः ॥६३॥ क्षत्रियाणां महाभाग संग्रामे मरणं वरम् । रणे वा मरणं व्यास गृहे वा विधिपूर्वकम्॥६४॥ मरणं न पितुर्मेऽभूदंतरिक्षे मृतोऽवशः । शांत्युपायं वदस्वात्र त्वं च सत्यवतीसुत । यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिं गतः ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

दिया और उसे अपने आसन पर बैठाया ॥५४-५५॥ तक्षक को अभय प्रदान करते हुए इन्द्र ने कहा कि सर्प डरो मत । जब मुनि ने जान लिया कि तक्षक को इन्द्र ने अभय प्रदान करके उसे अपने शरण में ले लिया है ॥५६॥ इसके बाद उद्विग्न होकर उत्तंक मुनि ने इन्द्र के साथ तक्षक का आवाहन किया। उस समय तक्षक ने यायावर वंशीय आस्तीक का स्मरण किया । धर्मात्मा आस्तीक जरत्कारु मुनि के पुत्र थे । उस समय आस्तीक राजा जनमेजय के यज्ञ में आकर उनकी प्रशंसा किए ॥५७-५८॥ उस बालक को सुन्दर पण्डित देखकर राजा ने उससे याचना करने के लिए कहा और उसकी पूजा की ॥५९॥ **आस्तीक ने राजा ने कहा—** महाराज ! आप इस यज्ञ को स्थगित कर दें । सत्यवादी राजा वचनबद्ध हो गयें, और बालक ने पुनः अपनी माँग दुहरायी ॥६०॥ आस्तीक मुनि के कथनानुसार राजा ने उस यज्ञ को बंद कर दिया । इसके बाद वैशम्पायन मुनि ने राजा जनमेजय को विस्तार पूर्वक महाभारत की कथा सुनायी ॥६१॥ उस कथा को सुनकर महाराज जनमेजय को शान्ति नहीं मिली । उसके बाद उन्होंने व्यास जी से पूछा कि मुझको शान्ति कैसे मिल सकती है ॥६२॥ मेरा हृदय अशान्ति की आग में जल रहा है । मुझ अभागे के पिता तथा अर्जुन के पुत्र (अभिमन्यु) के पुत्र महाराज परीक्षित् की दुर्मृत्यु हुई है ॥६३॥ हे व्यासजी ! क्षत्रियों की सर्वोत्तम मृत्यु संग्राम में होती है । या रण में होती है अथवा विधिपूर्वकं घर में होती है ॥६४॥ किन्तु मेरे पिता की मृत्यु इस तरह की नहीं होकर विवशता के कारण अन्तरिक्ष में हुई है । हे माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ! आप इस विषय में मुझे शान्ति का उपाय बतलायें जिससे कि दुर्गति को प्राप्त मेरे पिता को स्वर्ग मिले ॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः । उवाच वचनं तत्र सभायां नृपतिं च तम् ॥१॥** व्यास उवाच– **शृणु
राजन्प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम् । पुण्यं भागवतं नाम नानाख्यानयुतं शिवम् ॥२॥ अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै । श्रावयामि नृप
त्वां हि रहस्यं परमं मम ॥३॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां दायकं श्रवणात्किल । शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम् ॥४॥** जनमेजय उवाच–
**आस्तीकोऽयं सुतः कस्य विघ्नार्थं कथमागतः । प्रयोजनं किमत्रास्य सर्पाणां रक्षणे प्रभो ॥५॥ कथयैतन्महाभाग विस्तरेण कथानकम् । पुराणं
च यथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत ॥६॥** व्यास उवाच– **जरत्कारुर्मुनिः शांतो न चकार गृहाश्रमम् । तेन दृष्टा वने गर्ते लम्बमानाः स्वपूर्वजाः ॥७॥
ततस्तमाहुः कुरु पुत्र दारान्यथा च नः स्यात्परमा हि तृप्तिः । स्वर्गे व्रजामः खलु दुःखमुक्ता वयं सदाचारयुते सुते वै ॥८॥ स तानुवाचाथ लभे
समानामयाचितां चातिवशानुगां च । तदा गृहारंभमहं करोमि ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै ॥९॥ इत्युक्त्वा ताञ्जरत्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः ।
तदैव पन्नगाः शप्ता मात्राऽग्नौ निपतंत्विति ॥१०॥ कश्यपस्य मुनेः पत्न्यौ कद्रूश्च विनता तथा । दृष्ट्वाऽऽदित्यरथे चाश्वमूचतुश्च परस्परम् ॥११॥**

जरत्कारु मुनि का विवाह और आस्तीक का जन्म

सूतजी ने कहा– राजा जनमेजय की वाणी को सुनकर सत्यवती नंदन व्यासजी ने सभा में उनसे कहा ॥१॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् मैं आपको अद्भुत तथा अत्यन्त गोपनीय, कल्याणकारी तथा अनेक अख्यानों वाले देवीभागवत पुराण को सुनाऊँगा, उसे आप सुनें ॥२॥ मैंने पहले उसको अपने पुत्र शुक को पढ़ाया है उस अत्यन्त रहस्यमय पुराण को ही मैं आपको सुनाऊँगा ॥३॥ उसके श्रवण करने मात्र से ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है यह कल्याण और सुख प्रदान करने वाला और वेदों का सार है ॥४॥ **जनमेजय ने कहा–** यह आस्तीक किसका पुत्र है ? और इस यज्ञ में विघ्न करने के लिए क्यों आया था ? हे व्यासजी उसका सर्पों की रक्षा करने में कौन सा प्रयोजन था ?॥५॥ हे सुव्रत ! आप इन सारी बातों को विस्तार पूर्वक कहें और पुराण की कथा भी सुनायें ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** जरत्कारु महर्षि शान्त प्रकृति के थे उन्होंने विवाह नहीं किया था । उन्होंने वन में अपने पूर्वजों को गढे मे लटकते हुए देखा ॥७॥ इसके बाद उन पूर्वजों ने जरत्कारु महर्षि से कहा कि हे वत्स ! तुम गृहस्थाश्रम को अपनाओ जिससे कि हमलोगों को अत्यन्त तृप्ति हो । तुम्हारा पुत्र सदाचारी होगा उसी के प्रभाव से हमलोग स्वर्ग चले जायेंगे ॥८॥ जरत्कारु महर्षि ने कहा कि मैं यह सत्य कह रहा हूँ कि मैं तब ही अपना विवाह करुँगा जब कि मुझे मेरे ही समान, रूपवती तथा बिना माँगी हुई एवं मेरे वश में रहने वाली कन्या मिले ॥९॥ ऐसा कहकर

तं दृष्ट्वा च कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् । किंवर्णोऽयं हयो भद्रे सत्यं प्रब्रूहि माचिरम् ॥१२॥ विनतोवाच– **श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे । ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततस्तु विपणावहे ॥१३॥** कद्रूरुवाच– **कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते । एहि सार्धं मया दिव्यं दासीभावाय भामिनि ॥१४॥** सूत उवाच– **कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान् । बालान् श्यामान्प्रकुर्वंतु यावतोऽश्वशरीरके ॥१५॥ नेति केचन तत्राहुस्तानथासौ शशाप ह । जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम् ॥१६॥ अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरं वर्णभोगकैः । वेष्टयित्वाऽस्य पुच्छं तु मातुः प्रियचिकीर्षया ॥१७॥ भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम् । कर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता ॥१८॥ तदाऽऽजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः । स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः ॥१९॥ मातः कथं सुदीनाऽसि रुदितेव विभासि मे । जीवमाने मयि सुते तथाऽन्ये रविसारथौ ॥२०॥ दुःखिताऽसि ततोऽवां धिग्जीवितं चारुलोचने । किं जातेन सुतेनाथ यदि माता सुदुःखिता ॥२१॥ शंस मे कारणं मातः करोमि विगतज्वराम् ।** विनतोवाच– **सपत्न्या दास्यहं पुत्र किं ब्रवीमि वृथा क्षता ॥२२॥ वह मां सा ब्रवीत्यद्य तेनास्मि दुःखिता सुत ।**

जरत्कारु ऋषि तीर्थ यात्रा में चले गये, उसी समय क्रुद्ध होकर सर्पों की माता ने उन्हे शाप दे दिया कि तुम लोग आग में जल जाओ ॥१०॥ कश्यप महर्षि की दो पत्नियाँ थीं कद्रू और विनता । वे दोनों सूर्य के रथ के घोड़ों को देखकर आपस में बात करने लगीं ॥११॥ कद्रू ने सूर्य के घोड़े को देखकर विनता से कहा कि बतलाओ सूर्य के घोड़े का वर्ण क्या है ?॥१२॥ **विनता ने कहा**– यह अश्वराज तो श्वेत वर्ण का है; तुम इन्हें कैसा मानती हो ? तुम भी इनका वर्ण बतलाओं तो हमदोनों शर्त लगायेंगी ॥१३॥ **कद्रू ने कहा**– हे शुचिस्मिते मैं तो इसे कृष्ण वर्ण का मानती हूँ । आओ हमलोग एक दूसरे की दासी होने का शर्त लगायें ॥१४॥ **सूत जी ने कहा**– कद्रू ने अपने वशवर्ती पुत्रों से कहा कि तुमलोग जाकर सूर्य के घोड़े के शरीर में लिपट कर उसे काला बना दो ॥१५॥ कुछ सर्पों ने ऐसा करने से जब इनकार कर दिया तो उसने उन्हें शाप दे दिया कि तुमलोग जनमेजय के यज्ञ में आग में जलकर मर जाओंगे ॥१६॥ दूसरे जो सर्प थे वे अपनी माता को प्रसन्न करने के लिए सूर्य के घोड़े के पूँछ आदि में लिपट कर अपने विभिन्न रंगो से उसे चितकबरा बना दिया ॥१७॥ इसके बाद उनदोनों बहनों ने जाकर देखा कि सूर्य के घोड़े का रंग चितकबरा है । घोड़े को ऐसा देखकर विनता बहुत दुखी हुई ॥१८॥ उसके बाद महाबलवान् गरुड आये और उन्होंने अपनी माँ को दुःखी देखा । उन्होंने उसका कारण पूछा ॥१९॥ उन्होंने कहा माँ तुम तो दुःखी हो लगता है जैसे रो रही हो । मैं और सूर्य के सारथि अरुण ये दोनों आपके पुत्र हैं और जीवित हैं । फिर भी क्या बात है ?॥२०॥ हमदोनों के रहते तुम दुःखी हो तो हमदोनों को धिक्कार है । उस पुत्र के उत्पन्न होने से कौन सा लाभ है जिसकी माता दुःखी हो ॥२१॥ हे माँ ! अपने दुःख का कारण बतलाओ मैं उसे दूर कर दे रहा हूँ । **विनता ने कहा**– मैं क्या कहूँ; मैं व्यर्थ ही अपनी सौत की दासी बन गयी हूँ ॥२२॥ वह आज मुझसे कह

गरुड उवाच– **वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गन्तुमुत्सुका ॥२३॥ मा शोकं कुरु कल्याणि निश्चिंतां त्वां करोम्यहम् ।** व्यास उवाच– **इत्युक्ता सा गता पार्श्वं कद्रोश्च विनता तदा ॥२४॥ दासीभावमपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः । उवाह तां सपुत्रां वै सिंधोः पारं जगाम ह ॥२५॥ गत्वा तां गरुडः प्राह ब्रूहि मातर्नमोऽस्तु ते । कथं मुच्येत मे माता दासीभावादसंशयम् ॥२६॥** कद्रूरुवाच– **अमृतं देवलोकात्त्वं बलादानीय मे सुतान्। समर्पय सुताद्याशु मातरं मोचयाबलाम् ॥२७॥** व्यास उवाच– **इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिन्द्रलोकं महाबलः । कृत्वा युद्धं जहाराशु सुधाकुम्भं खगोत्तमः ॥२८॥ समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत् । मोचिता विनता तेन दासीभावादसंशयम् ॥२९॥ अमृतं संजहारेन्द्रः स्नातुं सर्पा यदा गताः । दासीभावाद्विनिर्मुक्ता विनता विपतेर्बलात् ॥३०॥ तत्रास्तीर्णाः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनामकैः । द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः॥३१॥ मात्रा शप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाः शुचा । ब्रह्माणं शरणं गत्वा ते होचुः शापजं भयम् ॥३२॥ तानाह भगवान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः । वासुकेर्भगिनीं तस्मै अर्पयध्वं सनामिकाम् ॥३३॥ तस्यां यो जायते पुत्रः स वस्त्राता भविष्यति । आस्तीक इति नामासौ भविता नात्र संशयः॥३४॥ वासुकिस्तु तदाकर्ण्य वचनं ब्रह्मणः शिवम् । वनं गत्वा सुतां तस्मै ददौ विनयपूर्वकम् ॥३५॥ सनामां तां मुनिर्ज्ञात्वा जरत्कारुरुवाच**

रही है कि मैं जहाँ चलू वहाँ तुम मुझे अपने कन्धे पर चढ़ाकर ले चलो इसीलिए मैं दुःखी हो गयी हूँ । **गरुड ने कहा**– जहाँ वह जायेगी वहाँ उसे मैं ले जाऊँगा ॥२३॥ माँ तुम शोक मत करों मैं तुम्हें चिन्ता रहित बना दे रहा हूँ । **व्यासजी ने कहा**– यह कहने पर विनता कद्रू के पास गयी ॥२४॥ अपनी माता को दासीपन से छुड़ाने के लिए गरुड कद्रू और उसके पुत्रों को समुद्र के उस पार तक ले जाते थे ॥२५॥ एक बार गरुड़ कद्रू से कहे कि माँ आपको नमस्कार है । मेरी माता आपके दासीपन से कैसे मुक्त हो सकती हैं ?॥२६॥ यह सुनकर **कद्रू ने कहा**– तुम देवलोक में जाकर बलपूर्वक देवताओं से अमृत छिनकर लाओं और मेरे पुत्रों को समर्पित कर दो तुम्हारी माँ दासीपन से मुक्त हो जायेंगी ॥२७॥ **व्यासजी ने कहा**– यह सुनकर गरुड इन्द्रलोक में गये और उन्होंने युद्ध करके अमृत के कलश का अपहरण कर लिया ॥२८॥ अमृत लाकर गरुड ने उसे कद्रू को समर्पित कर दिया और उस दिन से उनकी माता विनता अपने दासीभाव से मुक्त हो गयीं ॥२९॥ जब सर्प स्नान करने के लिए गये उसी समय इन्द्र ने अमृत के कलश का अपहरण कर लिया और विनता भी दासीभाव रूपी बहुत बड़ी विपत्ति से मुक्त हो गयीं ॥३०॥ वहाँ पर जो कुश बिछे थे उन सबों को सर्पों ने चाट लिया, कुश के चाटने से उन सबों की जीभ चिर गयी और तबसे वे द्विजिह्वा हो गये ॥३१॥ अपनी माता कद्रू के द्वारा जो अभिशप्त हो गये थे वे वासुकी इत्यादि सर्प ब्रह्माजी के शरण में गये और उन्हें अपने शापजन्य भय को सुनाये ॥३२॥ उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी ने उन सबों से कहा कि तुमलोग वासुकी की बहन जिसका नाम

तम् । अप्रियं मे यदा कुर्यात्तदा तां संत्यजाम्यहम् ॥३६॥ वाग्बंधं तादृशं कृत्वा मुनिजग्राह तां स्वयम् । दत्त्वा च वासुकिः कामं भवनं स्वं जगाम ह ॥३७॥ कृत्वा पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने । तया सह सुखं प्राप रममाणः परंतपः ॥३८॥ एकदा भोजनं कृत्वा सुप्तोऽसौ मुनिसत्तमः। भगिनी वासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी ॥३९॥ न सम्बोधयितव्योऽहं त्वया कान्ते कथंचन । इत्युक्त्वा तु गतो निद्रां मुनिस्तां सुदतीं तदा ॥४०॥ रविरस्तगिरिं प्राप्तः सन्ध्याकाल उपस्थिते । किं करोमि न मे शांतिस्त्यजेन्मां बोधितः पुनः ॥४१॥ धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिन्तयत् । नोचेत्प्रबोधयाम्येनं सन्ध्याकालो वृथा व्रजेत् ॥४२॥ धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथापि मरणं ध्रुवम् । धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः ॥४३॥ इति संचिंत्य सा बाला तं मुनिं प्रत्यबोधयत् । सन्ध्याकालोऽपि संजात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत ॥४४॥ उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम् । त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणी ॥४५॥ वेपमानाऽब्रवीद्वाक्यमित्युक्ता मुनिना तदा । भ्रात्रा दत्ता यदर्थं तत्कथं स्यादमितप्रभ ॥४६॥ मुनिः

जरत्कारु है, उसका विवाह जरत्कारु महर्षि से कर दो ॥३३॥ उसका जो पुत्र होगा वह तुमलोगों का रक्षक होगा । उस बालक का नाम आस्तीक होगा॥३४॥ ब्रह्माजी की कल्याणकारिणी बात को सुनकर वासुकी वन में गये और विनयपूर्वक अपनी बहन का व्याह जरत्कारु महर्षि से कर दिए ॥३५॥ अपने ही सदृश नाम वाली उसे जानकर जरत्कारु महर्षि ने कहा जब कभी भी यह मेरा अप्रिय कार्य करेगी तो मैं इसका परित्याग कर दूँगा ॥३६॥ इस तरह के शर्त के साथ जरत्कारु महर्षि उस कन्या को स्वीकार कर लिए और वासुकी भी अपनी बहन को उन्हें प्रदान करके प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चले गये॥३७॥ जरत्कारु महर्षि वन में कुटी बनाकर उसके साथ रमण करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे ॥३८॥ एकबार जरत्कारु महर्षि भोजन करके सो गये, वासुकी की बहन भी वहीं पर विद्यमान थी ॥३९॥ उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि तुम किसी भी हालत में मुझे जगाना मत, इस तरह से अपनी सुन्दरी पत्नी से कहकर मुनि सो गये ॥४०॥ जब सूर्यास्त होने लगा तो जरत्कारु ने सोचा कि मैं क्या करूँ, मुझको शान्ति नहीं मिल रही है, यदि मैं जगा देती हूँ तो ये मुनि मेरा परित्याग कर देंगे ॥४१॥ वह महर्षि जरुत्कार के धर्मलोप के भय से भयभीत हो गयी थी । वह सोच रही थी कि यदि मैं इन्हें नहीं जगाती हूँ तो सन्ध्या का समथ व्यर्थ ही बीत जायेगा ॥४२॥ अन्त में उसने निश्चित किया कि धर्म का नाश होने की अपेक्षा मेरा त्याग अथवा मेरा मरण अच्छा है, क्योंकि धर्म का नाश मनुष्यों के लिए नरक प्रदान करने वाला होता है ॥४३॥ इसतरह से विचार करके वह बाला मुनि को जगाती हुई कही हे सुव्रत आप जगें सन्ध्या करने की बेला हो गयी है ॥४४॥ जगकर मुनि ने कहा कि मेरी निद्रा को भंग करने वाली मैं जा रहा हूँ और तुम अपने भाई वासुकी के घर चली जा ॥४५॥ यह सुनकर **जरत्कारु ने कहा**— हे अमितप्रभाव वाले महर्षे ! मेरे भाई ने मुझे जिस उद्देश्य से आपको प्रदान किया था उसकी पूर्ति कैसे होगी ?॥४६॥ उसकी बात सुनकर शान्त मन से मुनि **जरत्कारु ने कहा**— वह हो गया है । अर्थात् मैंने अपने वीर्य से गर्भाधान कर दिया है । मुनि

प्राह जरत्कारुः तदस्तीति निराकुलः । गता सा मुनिना त्यक्ता वासुकेः सदनं तदा ॥४७॥ पृष्टा भ्रात्राऽब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा । अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः ॥४८॥ वासुकिस्तु तदाकर्ण्य सत्यवाङ्मुनिरित्युत । विश्वासं च परं कृत्वा भगिनीं तां समाश्रयत्॥४९॥ ततः कालेन कियता जातोऽसौ मुनिबालकः । आस्तीक इति नामाऽसौ विख्यातः कुरुसत्तम ॥५०॥ तेनायं रक्षितो यज्ञस्तव पार्थिवसत्तम् । मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना ॥५१॥ भव्यं कृतं महाराज मानितोऽयं त्वया मुनिः । यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः॥५२॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम् । दानानि बहु दत्तानि पूजिता मुनयस्तथा ॥५३॥ कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः । पावितं नः कुलं कृत्स्नं त्वया नृपतिसत्तम ॥५४॥ देव्याश्चायतनं भूप विस्तीर्णं कुरु भक्तितः । येन वै सकला सिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय ॥५५॥ पूजिता परया भक्त्या शिवा सकलदा सदा । कुलवृद्धिं करोत्येव राज्यं च सुस्थिरं सदा ॥५६॥ देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम । श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु ॥५७॥ त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम् । संसारतारिणीं दिव्यां नानारससमाहृताम् ॥५८॥ न श्रोतव्यं परं चास्मात्पुराणाद्विद्यते भुवि । नाराध्यं विद्यते राजन्देवीपादाम्बुजादृते ॥५९॥ ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्त नृपसत्तम । येषां चित्ते सदा देवी वसति

के ऐसा कहने पर वह जरत्कारु भी वासुकी के घर चली गयी ॥४७॥ जब वासुकी ने पूछा तो उसने जरत्कारु महर्षि की कही हुई बात को दुहरा दी । उसने कहा कि महर्षि ने कहा है कि वह हो गया है, और यह कहकर वे मुझे छोड़कर चले गये ॥४८॥ उसकी बात को सुनकर वासुकी ने सोचा कि मुनि जरत्कारु सत्यवक्ता हैं, अतएव उनकी बातों का विश्वास करके वासुकी ने अपनी बहन को अपने घर में रखा ॥४९॥ हे कुरुश्रेष्ठ जनमेजय ! कुछ दिनों के बाद उस बालक ने जन्म लिया । चूकि महर्षि ने अस्ति कहा था अतएव उस बालक का विख्यात नाम आस्तीक हो गया ॥५०॥ अपने मातृपक्ष की रक्षा के लिए ही भावुक आस्तीक ने इस यज्ञ को बन्द कराया है ॥५१॥ आपने बहुत अच्छा किया है कि उस यायावर वंश में उत्पन्न तथा वासुकी के बहन के पुत्र आस्तीक की बात का सम्मान किया है ॥५२॥ हे महाबाहो ! आपने महाभारत का श्रवण करके अनेक प्रकार का दान दिया है और मुनियों की पूजा की है ॥५३॥ ग्राजन् ऐसा करने पर भी आपके पिता स्वर्ग नहीं गये । आपने हमारे कुरुवंश को पवित्र कर दिया है ॥५४॥ आप भक्तिपूर्वक देवी का एक विस्तृत मन्दिर बनवाइये । हे जनमेजय ! ऐसा करने से आपको सभी प्रकार की सिद्धि मिल जायेगी ॥५५॥ सब कुछ प्रदान करने वाली भगवती की भक्तिपूर्वक पूजा करने से कुल की वृद्धि होती हैं और राज्य को सुस्थिर हो जाता हैं ॥५६॥ हे राजन् ! विधिपूर्वक देवी का यज्ञ करके आप देवीभागवत नामक सर्वोत्तम पुराण का श्रवण करें ॥५७॥ मैं स्वयम् अनेक रसों से परिपूर्ण उस परम पवित्र कथा को आपको सुनाऊँगा । वह कथा संसार-सागर से पार करने वाली

प्रेमसंकुले ॥६०॥ सुदुःखितास्ते दृश्यंते भुवि भारत भारते । नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदाऽम्बिका ॥६१॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः । वर्तंते सर्वदा राजंस्तां न सेवेत को जनः ॥६२॥ य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् । भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम्॥६३॥ तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्ते शांतिर्भविष्यति । पितृणां चाक्षयः स्वर्गः पुराणश्रवणाद्भवेत् ॥६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥
द्वाविंशत्यधिकसंख्यैः पद्यैः सप्तशतैः शुभैः। श्रीमद्व्यासमुखोद्गीतैर्द्वितीयस्कन्ध ईरितः ॥१॥
॥ समाप्तोऽयं द्वितीयः स्कन्धः ॥

* * *

है॥५८॥ इस पुराण से बढ़कर कोई दूसरी सुनने योग्य वस्तु नहीं है और देवी के चरणकमलों की सेवा से बढ़कर दूसरी सेवनीय वस्तु नहीं है ॥५९॥ वे लोग भाग्यवान्, बुद्धिमान तथा धन्य हैं जिनके प्रेम से परिपूर्ण मन में देवी का सदा निवास होता है ॥६०॥ हे भरतवंशीय ! राजन् इस भारत वर्ष में वे ही लोग सदा दुःखी रहते हैं जो लोग महामाया अम्बिका की सेवा नहीं करते हैं ॥६१॥ ब्रह्मा आदि देवता जिनकी सदा सेवा करते रहते हैं, उन देवी की कौन ऐसा व्यक्ति है जो सेवा न करे ॥६२॥ भगवती के द्वारा भगवान् विष्णु के लिए उपदिष्ट पुराण का जो श्रवण नित्य ही करता है उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥६३॥ हे राजन् ! उस पुराण को सुनने से तुम्हें शान्ति की प्राप्ति होगी तथा तुम्हारे पिता को अक्षय स्वर्गलोक की प्राप्ति होगी ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥
श्रीमद्व्यास महर्षि के मुख से निःसृत सात सौ बाइस श्लोकों वाला यह दूसरा स्कन्ध भी पूरा हुआ ॥२॥

* * *

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

तृतीयः स्कन्धः

प्रथमोऽध्याय:

जनमेजय उवाच– **भगवन्भवता प्रोक्तं यज्ञमंबाभिधं महत् । सा का कथं समुत्पन्ना कुत्र कस्माच्च किंगुणा ।।१।। कीदृशश्च मखस्तस्याः स्वरूपं कीदृशं तथा । विधानं विधिवद्ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ।।२।। ब्रह्माण्डस्य तथोत्पत्तिं वद विस्तरतस्तथा । यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर ।।३।। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मया श्रुताः । सृष्टिपालनसंहारकारकाः सगुणास्त्वमी ।।४।। स्वतंत्रास्ते महात्मानः पराशर्य वदस्व मे । आहोस्वित्परतंत्रास्ते श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ।।५।। मृत्युधर्माश्च ते नो वा सच्चिदानन्दरूपिणः । अधिभूतादिभिर्युक्ता न वा दुःखैस्त्रिधात्मकैः।।६।। कालस्य वशगा नो वा ते सुरेन्द्रा महाबलाः । कथं ते वै समुत्पन्नाः कस्मादिति च संशयः ।।७।। हर्षशोकयुतास्ते वै निद्रालस्यसमन्विताः । सप्तधातुमयास्तेषां देहाः किं वान्यथा मुने ।।८।। कैर्द्रव्यैर्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिंद्रियैस्तथा । भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा ।।९।। निवासस्थानमप्येषां विभूतिं च वदस्व मे । श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन्विस्तरेण कथामिमाम् ।।१०।।** व्यास उवाच– **दुर्गमः प्रश्नभारोऽयं कृतो राजंस्त्वयाऽधुना।**

जनमेजय के अनेक प्रश्न

जनमेजय ने कहा– भगवन् ! आपने अम्बायज्ञ को करने के लिए कहा है । मैं यह जानना चाहता हूँ कि वे अम्बा कौन हैं ? वे कैसे और कहाँ उत्पन्न हुई हैं, उनके कौन से गुण हैं ?।।१।। उनका यज्ञ कैसा है, उसका स्वरूप कैसा है ? हे दयानिधे ! आप सर्वज्ञ हैं उसके विधान का आप विधिपूर्वक वर्णन करें ।।२।। हे भूसुर ! आप तो सारी बातें जानते हैं । आप मुझे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को तथा ब्राह्माण्ड जैसा है, उसे विस्तारपूर्वक बतलाइये ।।३।। मैंने सुना है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर ये तीनों देवता सगुण हैं तथा जगत् की सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता हैं ।।४।। मैं इस समय यह जानना चाहता हूँ कि वे तीनो देवता स्वतंत्र हैं अथवा परतंत्र हैं ?।।५।। वे तीनों मृत्युधर्मा हैं ? अथवा सच्चिदानंद स्वरूप हैं ? तीनो आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक संतापों से संतप्त होते हैं अथवा नहीं ?।।६।। वे तीनों महाबलवान् देवता काल के वश में रहते हैं अथवा नहीं ? वे तीनों कैसे उत्पन्न हुए तथा किसलिए उत्पन्न हुए ? यह मुझको संशय हैं ।।७।। हे मुने ! वे हर्ष, शोक, निद्रा तथा आलस्य से युक्त हैं या नहीं ? उनका शरीर सप्तधातुओं से निर्मित है कि नहीं ?।।८।। उनका शरीर किन द्रव्यों से बना है ? उनमें सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों मे से किस गुण की प्रधानता हैं ? उनमें कौन-कौन सी इन्द्रियाँ हैं ? उनको कैसा भोग प्राप्त है ? तथा उनकी आयु का प्रमाण क्या है ?।।९।। हे ब्रह्मन् ! इन तीनों देवताओ के निवासस्थान तथा विभुति को भी हमें आप बतलाएँ । इन्हें हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं ।।१०।। **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! आपने दुर्गम प्रश्न का भार मुझ पर पूछ कर डाल

ब्रह्मादीनां समुत्पत्तिः कस्मादिति महामते ॥११॥ एतदेव मया पुत्र पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः । विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते ॥१२॥
कस्मिंश्चित् समये चाहं गंगातीरे स्थितं मुनिम् । अपश्यं नारदं शांतं सर्वज्ञं वेदवित्तमम् ॥१३॥ दृष्ट्वाऽहं मुदितो भूत्वा पादयोरपतं मुनेः ।
तेनाज्ञप्तः समीपेऽस्य संविष्टश्च वरासने ॥१४॥ श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम् । निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मबालुके॥१५॥
मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्मांडस्य महामते । कः कर्ता परमः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि विधानतः ॥१६॥ कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्मांडं मुनिसत्तम । अनित्यं वा
तथा नित्यं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥१७॥ एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा । अकर्तृकं न कार्यं स्याद्विरोधोऽयं विभाति मे ॥१८॥ इति संदेहसंदोहे
मग्नं मां तारयाधुना । विकल्पकोटीः कुर्वाणं संसारेऽस्मिन् प्रविस्तरे ॥१९॥ ब्रुवन्ति शङ्करं केचिन्मत्वा कारणकारणम् । सदाशिवं महादेवं
प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ॥२०॥ आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलं हरम् । संसारतारकं नित्यं सृष्टिस्थित्यंतकारणम् ॥२१॥ अन्ये विष्णुं स्तुवंत्येनं
सर्वेषां प्रभुमीश्वरम् परमात्मानमव्यक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥२२॥ भुक्तिदं मुक्तिदं शांत सर्वादि सर्वतोमुख । व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनं

दिया है कि इन तीनों देवताओं की उत्पत्ति किससे हुई है ?॥११॥ हे वत्स ! यही प्रश्न मैंने नारदजी से किया था तो उन्होंने आश्चर्यचकित होकर जो उत्तर
दिया उसे ही मैं तुम्हे सुना रहा हूँ, तुम उसे सुनो ॥१२॥ एकबार मैंने शान्त, सर्वज्ञ तथा मुनियों में श्रेष्ठ श्रीनारदजी को गंगा जी के तट पर बैठे हुए
देखा ॥१३॥ उनको देखकर मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा । उसके बाद मैं उनकी आज्ञा प्राप्त करके एक सुन्दर आसन पर बैठ गया ॥१४॥ कुशल प्रश्न
के पश्चात् बालू के छोटे-छोटे कण वालें गंगातट पर एकान्त में बैठे हुए ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी से मैंने पूछा ॥१६॥ हे मुने ! इस अत्यन्त विस्तृत ब्रह्माण्ड
के रचयिता कौन हैं ? इस बात को मुझे आप सविधि बतलाइये ॥१६॥ हे मुने ! यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है ? यह नित्य है अथवा अनित्य?
यह मुझे बतलाएँ ॥१७॥ इस ब्रह्माण्ड का रचयिता कोई एक है, अथवा अनेक हैं, क्योंकि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता है, यह सिद्धान्त है ॥१८॥
मैं इस संशय के सागर में मैं डूब रहा हूँ, अतएव आप इससे मुझे निकालें । क्योंकि इस विषय में करोड़ों प्रकार के तर्कों से मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी
हैं ॥१९॥ कुछ लोग सभी कारणों के भी कारण, सदा शिव, महादेव तथा प्रलय एवं उत्पत्ति से रहित शंकरजी को मानकर उन्हें ही जगत् का कारण बतलाते
हैं ॥२०॥ वे लोग शंकरजी को अपनी आत्मा में रमण करने वाले, देवताओं के स्वामी, सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से सम्पन्न, समस्त दोषों
से रहित, संसारतारक, नित्य तथा संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाला बतलाते हैं ॥२१॥ दूसरे विद्वान् सबों के स्वामी ईश्वर,
परमात्मा, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान्, भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले सब कुछ प्रदान करने वाले, सबों के कारण, सर्वतोमुख, व्यापक, सम्पूर्ण जगत् के

हरिम्॥२३॥ धातारं च तथा चान्ये ब्रुवन्ति सृष्टिकारणम् । तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम् ॥२४॥ चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम् ॥२५॥ दिनेशं प्रवदंत्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः । स्तुवन्ति चैव गायंति सायंप्रातरतद्रिताः ॥२६॥ यजंति च तथा यज्ञं वासवं च शतक्रतुम् । सहस्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुल्बणम् ॥२७॥ यज्ञाधीशं सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम् । यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम् ॥२८॥ वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा । यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथापरे ॥२९॥ हेरंबं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम् । स्मरणात्सिद्धिदं कामं कामदं कामगं परम् ॥३०॥ भवानीं केचनाचार्याः प्रवदंत्यखिलार्थदाम् । आदिमायां महाशक्तिं प्रकृतिं पुरुषानुगाम् ॥३१॥ ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् । मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च ॥३२॥ अनादिनिधनां पूर्णां व्यापिकां सर्वजंतुषु । ईश्वरीं सर्वलोकानां निर्गुणां सगुणां शिवाम् ॥३३॥ वैष्णवीं शांकरीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा । वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाऽद्भुताम् ॥३४॥ वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोः स्थिराम् । सर्वदुःखनिहंत्री च स्मरणात्सर्वकामदाम् ॥३५॥ मोक्षदां च मुमुक्षूणां कामदां

रक्षक, तथा अनादिनिधन मानकर श्रीहरि भगवान् विष्णु को जगत् का कारण बतलाते हैं ॥२२-२३॥ कुछ लोग ब्रह्माजी को ही सृष्टि का कारण बतलाते हैं । उनके मतानुसार ब्रह्माजी ही सर्वज्ञ, सभी प्राणियों को जन्म देने वाले, चतुर्मुख, देवताओं के नियामक, भगवान् विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न होने वाले, व्यापक, सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने वाले तथा सत्यलोक में रहने वाले हैं ॥२४-२५॥ कुछ वेदज्ञ पुरुष भगवान् सूर्य को सर्वेश बतलाते हैं और विना किसी आलस्य के सायंकाल एवं प्रातःकाल उनकी स्तुति करते हैं ॥२६॥ कुछ यज्ञ करने वाले धनों को प्रदान करने वाले शतक्रतु, सहस्राक्ष देवताओं के स्वामी तथा सबों के महान् स्वामी इन्द्र को ही सर्वश्रेष्ठ मानकर उन्हीं का यज्ञ करते हैं । वे उन्हीं को यज्ञाधीश, सुराधीश, त्रिलोकी के स्वामी शची के पति, यज्ञों के भोक्ता, सोमपान करने वाले तथा सोमपान करने वालों के प्रिय मानते हैं ॥२७-२८॥ इसी तरह कुछ लोग वरुण को, कुछ लोग सोम को, कुछ लोग अग्नि को, कुछ लोग वायु को, कुछ लोग यम को, कुछ लोग धन देने वाले कुबेर को तथा कुछ लोग गणों के स्वामी गजवक्त्र तथा सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाले गणेशजी को जगत् का कारण मनते हैं । वे कहते हैं कि स्मरण करने मात्र से ही गणेशजी सभी कामनाओं को पूर्ण करते है और सर्वत्र व्यापक हैं ॥२९-३०॥ कुछ आचार्य सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्रदान करने वाली भवानी को जगत् का कारण बतलाते हैं । उनके मतानुसार भवानी, आदिमाया, महाशक्ति तथा पुरुष का अनुसरण करने वाली प्रकृति हैं ॥३१॥ वे ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त, जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाली, सभी जीवों की माता, तथा देवताओं की माता हैं ॥३२॥ वे आदि एवं अन्त में रहित, परिपूर्ण तथा सभी जीवों में व्यापक, समस्त लोकों की स्वामिनी, निर्गुण स्वरूप सगुणस्वरूप तथा कल्याण करने वाली हैं ॥३३॥ वे ही वैष्णवी, शाङ्करी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही तथा अद्भुत स्वरूप वाली

च फलार्थिनाम् । त्रिगुणातीतरूपां च गुणविस्तारकारकाम् ॥३६॥ निर्गुणां सगुणां तस्मात्तां ध्यायंति फलार्थिनः । निरञ्जनं निराकारं निर्लेपं
निर्गुणं किल ॥३७॥ अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदंति मुनीश्वराः । वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित् ॥३८॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रनयनस्तथा।
सहस्रकरकर्णश्च सहस्रास्यः सहस्रपात् ॥३९॥ विष्णोः पादमथाकाशं परमं समुदाहृतम् । विराजं विरजं शान्तं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥४०॥
पुरुषोत्तमं तथा चान्ये प्रवदन्ति पुराविदः । नैकोऽपीति वदंत्यन्ये प्रभुरीशः कदाचन ॥४१॥ अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्माण्डमिति केचन । न
कदापीशजन्यं यज्जगदेतदचिंतितम् ॥४२॥ सदैवेदमनीशं च स्वभावोत्थं सदेदृशम् । अकर्ताऽसौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तु तथा च सा ॥४३॥ एवं
वदन्ति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः । एते सन्देहसन्दोहाः प्रभवन्ति तथाऽपरे ॥४४॥ विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर । धर्माधर्मविवक्षायां
न मनो मे स्थिरं भवेत् ॥४५॥ को धर्मः कीदृशोऽधर्मश्चिह्नं नैवोपलभ्यते । देवाः सत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिताः ॥४६॥ पीड्यन्ते दानवैः

महालक्ष्मी हैं ॥३४॥ वे ही वेदमाता, विद्यास्वरूपिणी एकमात्र संसार रूपी वृक्ष की स्थिर स्वामिनी हैं । सभी दुःखों को दूर करने वाली और स्मरण करने
मात्र से सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हैं ॥३५॥ वे मोक्ष को चाहने वालों को मोक्ष प्रदान करने वाली तथा विभिन्न फलों को चाहने वालों की कामनाओं
को पूर्ण करने वाली हैं । वे त्रिगुणातीत स्वरूपा तथा गुणों का विस्तार करने वाली हैं ॥३६॥ फल चाहने वाले लोग उस निर्गुण स्वरूपा भगवती की
सगुणरूप से ध्यान करते हैं । कुछ मुनीश्वर बतलाते हैं कि ईश्वर-निरञ्जन, निराकार, निर्लेप (पापों के सम्बन्ध से रहित) निर्गुण, अरूप तथा व्यापक ब्रह्म
बतलाते हैं । वेदों तथा उपनिषदों में उस ईश्वर को तेजोमय कहा गया है ॥३७-३८॥ हजारों शिर वाला, हजारों नेत्रों वाला, हजारों हाथों और कानों वाला,
हजारों मुखों तथा हजारों चरणों वाला पुरुष कहा गया है ॥३९॥ मनीषी पुरुष बतलाते हैं कि भगवान् विष्णु का स्थान परमाकाश हैं । वे पुराण पुरुष को
रजोगुण से रहित तथा शान्त बतलाते हैं ॥४०॥ उनको कुछ इतिहासज्ञ पुरुषोत्तम बतलाते हैं । कुछ लोगों का कहना है कि इस विशाल विश्व का रचयिता
कोई एक ईश्वर नहीं हो सकता है ॥४१॥ कुछ विद्वानों का कहना है कि इस ब्राह्मण्ड का ईश्वर (स्वामी) कोई भी नहीं है । यदि जगत् किसी ईश्वर का
बनाया हुआ होता तो यह अचिन्त्य नहीं कहलाता ॥४२॥ कपिल आदि सांख्यसिद्धान्त वालों का कहना है कि जगत् सदा ईश्वर से हीन रहा है, उसका
सदा ऐसा ही स्वभाव रहता है । पुरुष कर्तृत्व विहीन है और जगत् का कारण प्रकृति ही है । इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के इस विषय में सन्देह होते
हैं ॥४४॥ हे मुनीश्वर ! हमारा चित्त विकल्पों के कारण भ्रमित हो गया है, मैं क्या करूँ ? धर्म तथा अधर्म के विषय में मेरा मन स्थिर नहीं है ॥४५॥ धर्म
क्या है और अधर्म का चिह्न क्या है ? देवता सत्त्वगुण से उत्पन्न हैं और सत्य धर्म का पालन करते हैं ॥४६॥ किन्तु वे देवता भी पापी राक्षसों के द्वारा सताये

पापैः कुत्र धर्मव्यवस्थितिः । धर्मस्थिताः सदाचाराः पाण्डवा मम वंशजाः ॥४७॥ दुःखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः । अतो मे हृदयं तात वेपतेऽतीव संशये ॥४८॥ कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने । त्राहि संसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने ॥४९॥ मज्जन्तं चोत्पतंतं च मग्नं मोहजलाविले ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे प्रथमोऽध्याय: ॥१॥

द्वितीयोऽध्याय:

व्यास उवाच– **यत्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तम । तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः ॥१॥** नारद उवाच– **व्यास किं ते ब्रवीम्यद्य पुराऽयं संशयो मम । उत्पन्नो हृदयेऽत्यर्थं संदेहासारपीडितः ॥२॥ गत्वाऽहं पितरं स्थाने ब्रह्माणममितौजसम् । अपृच्छं यत्त्वया पृष्टं व्यासाद्य प्रश्नमुत्तमम् ॥३॥ पितः कुतः समुत्पन्नं ब्रह्माण्डमखिलं विभो । भवत्कृतेन वा सम्यक्किं वा विष्णुकृतं त्विदम् ॥४॥ रुद्रकृतं वा विश्वात्मन्ब्रूहि**

जाते हैं तो धर्म की व्यवस्था कहाँ रह गयी । मेरे वंश में उत्पन्न होने वाले पाण्डव भी सदाचार का पालन करते थे और वे सब भी अनेक प्रकार के दुःख भोगे तो धर्म की व्यवस्था कहाँ रह गयी ?। अतएव हे तात संशय से ग्रस्त होने के कारण मेरा हृदय अत्यन्त काँप रहा है ॥४७-४८॥ हे मुने ! आप समर्थ हैं, अतएव आप मेरा संसारसागर से उद्धार ज्ञान रूपी नौका के द्वारा करें । आप मेरे संशय को दूर करें ॥४९॥ मैं मोह रूपी कीचड़ में डूब उतरा रहा हूँ ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

देवी का देवताओं को अनेक लोंको को दिखाना

व्यासजी ने कहा– हे कुरुश्रेष्ठ ! आपने जो प्रश्न मुझसे किया है उन्हीं प्रश्नों को मैंने नारदजी से किया था और उन्होंने जो उत्तर दिया वहीं मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥१॥ **नारदजी ने व्यासजी से कहा–** हे व्यासजी ! मैं आपको क्या बतलाऊँ प्राचीन काल में एकबार मेरे भी हृदय में ऐसा ही संदेह हुआ था और इस संदेह रूपी वर्षा से पीड़ित होकर मैं धबरा गया था ॥२॥ उसके बाद मैं अपने पिता ब्रह्माजी के लोक में गया और आपके द्वारा किए गये

सत्यं जगत्पते । आराधनीयः कः कामं सर्वोत्कृष्टश्च कः प्रभुः ॥५॥ तत्सर्वं वद मे ब्रह्मन्सन्देहांश्छिन्धि चानघ । निमग्नो ह्यस्मि संसारे दुःखरूपेऽनृतोपमे ॥६॥ सन्देहांदोलितं चेतो न प्रशाम्यति कुत्रचित् । न तीर्थेषु न देवेषु साधनेष्वितरेषु च ॥७॥ अविज्ञाय परं तत्त्वं कुतः शान्तिः परन्तप । विकीर्णं बहुधा चित्तं नैकत्र स्थिरतां व्रजेत् ॥८॥ कं स्मरामि यजे कं वा कं व्रजाम्यर्चयामि कम् । स्तौमि कं नाभिजानामि देवं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥९॥ ततो मां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः । मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे ॥१०॥ ब्रह्मोवाच– किं ब्रवीमि सुताद्याहं दुर्बोधं प्रश्नमुत्तमम् । त्वयाऽशक्यं महाभाग विष्णोरपि सुनिश्चयात् ॥११॥ रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः ॥१२॥ एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजंगमे । भूतमात्रे समुत्पन्ने संजज्ञे कमलादहम् ॥१३॥ नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षान्न च पर्वतान् । कर्णिकायां समाविष्टश्चिन्तामकरवं तदा ॥१४॥ कस्मादहं समुद्भुतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे । को मे त्राता प्रभुः कर्ता संहर्ता वा युगात्यये ॥१५॥ न च भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम् । पङ्कजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं रूढियोगयोः ॥१६॥ पश्याम्यद्यास्य पंकं तं मूलं वै पंकजस्य

प्रश्नों को ब्रह्माजी से मैंने पूछा– हे पिताजी ! यह सारा ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है ? इस ब्रह्माण्ड को आपने बनाया है ? अथवा भगवान् विष्णु ने बनाया है ?॥४॥ अथवा इसके कर्ता रुद्र हैं ? आप मुझे सत्य-सत्य बतलाएँ । आप यह भी बतलाएँ कि किसकी आराधना करनी चाहिए और सर्वश्रेष्ठ ईश्वर (स्वामी) कौन है ?॥५॥ हे ब्रह्माजी ! इन सारी बातों को बतलाकर आप मेरे सन्हेह को दूर करें । मैं दुःख स्वरूप तथा मिथ्या संसारसागर में डूब रहा हूँ ॥६॥ संदेह के कारण चंचल बना हुआ मेरा मन न तो तीर्थों में, ने देवताओं में और न तो दूसरे साधनों में स्थिर होता है ॥७॥ हे परन्तप ! परंतत्त्व को जाने विना शान्ति मिल भी कैसे सकती है ? अनेक बातों में विकीर्ण हुआ मन किसी एक जगह स्थिर नहीं होता है ॥८॥ मैं किसका स्मरण करूँ? किसकी पूजा करूँ ? किसके शरण में जाऊँ ? किसकी अर्चना करूँ ? और किसकी स्तुति करूँ ? क्योंकि मैं सबों के जो स्वामी देवता हैं उनको नहीं जानता हूँ ॥९॥ हे सत्यवतीनंदन व्यासजी मेरे द्वारा इस तरह से प्रश्न किए जाने पर उस समय लोकपितामह ब्रह्माजी ने मुझे बतलाया ॥१०॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे पुत्र ! तुमने जिन दुरुह प्रश्नों को किया है उन प्रश्नों का उत्तर स्वयं भगवान् विष्णु भी नहीं दे सकते हैं; अतएव मैं उसके विषय में क्या बतलाऊँ॥११॥ इस संसार में रहने वाला कोई भी रागी पुरुष इन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता है, जो निरीह (इच्छा रहित) अथवा मत्सर रहित और विरक्त हो वही इन प्रश्नों का उत्तर जानता है ॥१२॥ पूर्वकाल में सभी स्थावर-जंगम प्राणी विनष्ट हो गये थे; उस समय महासमुद्र के रूप में सारा विश्व परिणत हो गया था । उस समय मैं कमल से पैदा हुआ ॥१३॥ उस समय न तो सूर्य थे, न चन्द्रमा थे, न वृक्ष थे न पर्वत थे । केवल कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं सोच

च । भविष्यति धरा तत्र मूलं नास्त्यत्र संशयः ॥१७॥ उत्तरन्सलिले तत्र यावद्वर्षहस्त्रकम् । अन्वेषमाणो धरणीं नावाप तां यदा तदा॥१८॥
तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी । ततो मया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्त्रकम् ॥१९॥ सृजेति पुनरुद्भुता वाणी तत्र श्रुता मया । विमूढोऽहं
तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम् ॥२०॥ तदा दैत्यावति प्राप्तौ दारुणौ मधुकैटभौ । ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये ॥२१॥ ततोऽहं
नालमालंब्ध्य वारिमध्यमवातरम् । तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः ॥२२॥ मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः । शेषशायी जगन्नाथो
वनमालाविभूषितः ॥२३॥ शंखचक्रगदापद्माद्यायुधैः सुविराजितः । तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यंकशायिनम् ॥२४॥ योगनिद्रासमाक्रांतमविस्पंदिनमच्युतम्।
शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरि स्थितम् ॥२५॥ चिंता ममाद्भुता जाता किं करोमीति नारद । मया स्मृता तदा देवी स्तुता निद्रास्वरूपिणी॥२६॥
देहान्निर्गत्य सा देवी गगने संस्थिता शिवा । अवितर्क्यशरीरा सा दिव्याभरणमण्डिता ॥२७॥ विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता ।

रहा था ॥१४॥ इस महासमुद्ररूपी जल में मैं किससे उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा रक्षक, मेरा स्वामी तथा प्रलयकाल में मेरा संहार करने वाला कौन है ?॥१५॥
पृथिवी भी स्पष्ट रूप से नहीं दिखायी पड़ती है जिसके ऊपर यह जल टिका हुआ है । ऐसी स्थिति में बिना पंक के पङ्कज कैसे उत्पन्न हुआ ॥१६॥ आज
मैं इस पंकज के मूल पंक पर कहाँ हूँ, क्योंकि जहाँ पंक होगा वहाँ पृथिवी अवश्य होगी ॥१७॥ उसके बाद मैं नीचे उतर कर एक हजार वर्ष तक भूमि
का पता लगता रहा जब पृथिवी का मैं पता नहीं लगा सका तो ॥१८॥ उसी समय आकाशवाणी हुई कि तपस्या करो । इसके बाद उस कमल पर ही
बैठकर मैंने एक हजार वर्ष तक तपस्या की ॥१९॥ उस समय फिर आकाशवाणी हुई कि सृष्टि करो । यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया कि मैं किसकी
सृष्टि करूँ तथा उसके लिए मैं क्या करूँ ॥२०॥ उसी समय दो भयंकर दैत्य मेरे पास आये, उनका नाम मधु एवं कैटभ था । युद्ध करने के लिए तैयार
उन दोनों को देखकर मैं डर गया ॥२१॥ उसके बाद मैं उस कमल के नाल को पकड़कर जल में उतरा । मैंने एक अत्यन्त अद्भुत पुरुष को देखा ॥२२॥
उनका शरीर मेघ के समान श्यामवर्ण का था, वे पीताम्बर धारण किए हुए चार भुजाओं वाले थे । शेष की शय्या पर सोए हुए जगत् के स्वामी, वे वनमाला
से समलंकृत थे ॥२३॥ वे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म आदि आयुधों को धारण किए हुए थे, इस तरह शेष की शय्या पर सोने वाले महाविष्णु को मैंने
देखा॥२४॥ वे योगनिद्रा से आक्रान्त थे तथा उनके शरीर में कोई चेष्टा भी नहीं हो रही थी । सर्प की शय्या पर सोए हुए उनको देखकर ॥२५॥ हे नारदजी!
मुझको अत्यधिक चिन्ता हुई कि अब मैं क्या करूँ ? उस समय मैंने निद्रास्वरूपिणी देवी का स्मरण करके उनकी स्तुति की ॥२६॥ इससे वह

**उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः ॥२८॥ पञ्चवर्षसहस्राणि कृतवान् युद्धमुत्तमम् । तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणा विनिपातितौ ॥२९॥ उत्सङ्गं
विमलं कृत्वा तत्रैव निहतौ च तौ । रुद्रस्तैव संप्राप्तो यत्रावां संस्थितावुभौ ॥३०॥ त्रिभिः संवीक्षिताऽस्माभिः खस्था देवी मनोहरा । संस्तुता
परमा शक्तिरुवाचास्मानवस्थितान् ॥३१॥ कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ ।** देव्युवाच– **काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतंद्रिताः॥३२॥
सृष्टिस्थितिविशिष्टानि हतावेतौ महासुरौ । कृत्वा स्वानि निकेतानि वसध्वं विगतज्वराः ॥३३॥ प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वविभूतिभिः ।**
ब्रह्मोवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु ॥३४॥ अब्रूम तामशक्ताः स्मः कथं कुर्मस्त्विमाः प्रजाः । न मही वितता मातः सर्वत्र
विततं जलम् ॥३५॥ न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । तदाकर्ण्य वचोऽस्माकं शिवा जाता स्मितानना ॥३६॥ झटित्येवागतं तत्र
विमानं गगनाच्छुभम् । सोवाचास्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः ॥३७॥ विमाने ब्रह्मविष्णवीशा दर्शयाम्यद्य चाद्भुतम् । तन्निशम्य वचस्तस्या**

देवी भगवान् विष्णु के शरीर से निकलकर आकाश में स्थित हो गयीं । उनका शरीर कल्पनातीत था और वे दिव्य आभूषणों से भूषित थीं ॥२७॥ जब
वे देवी भगवान् विष्णु के शरीर से निकलकर आकाश में स्थित हो गयीं तो उनसे मुक्त होने के कारण भगवान् जनार्दन जग गये ॥२८॥ उन्होंने उन दोनों
के साथ पाँच हजार वर्ष तक युद्ध किया । उसके बाद यह देखा गया कि श्रीभगवान् ने उन दोनों को मार दिया है । उस समय वहाँ रुद्र भी आ गये जहाँ
पर हमदोनों विद्यमान थे ॥३०॥ हम तीनों ने आकाश में स्थिति अत्यन्त मनोहर देवी का दर्शन किद । हमलोगों के द्वारा स्तुति किये जाने पर देवी ने
हमतीनों को कृपा पूर्वक देखकर पवित्र बना दिया और कहा । **देवी ने कहा**– हे ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर आपलोग अपने कार्य को सावधानी से करें ॥३२॥
आप तीनों का काम क्रमशः सृष्टि, स्थिति और विनाश करना है । आपलोग अपना निवास स्थान बनाकर सुखपूर्वक रहें ॥३३॥ अपनी विभूतियों से चारो
प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करें । **ब्रह्माजी ने कहा**– भगवती की उस मधुर एवं मनोहर वाणी को सुनकर हमलोगों ने कहा कि हमलोग तो शक्तिहीन हैं प्रजाओं
की सृष्टि कैसे करें । न तो विस्तृत पृथिवी है न कुछ, सर्वत्र जल ही फैला है ॥३४-३५॥ न पञ्च महाभूत हैं, और न उनके (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श
तथा शब्द) गुण हैं, न तो तन्मात्राएँ हैं और न इन्द्रियाँ हैं । हमलोगों की बात सुनकर कल्याणकारिणी भगवती मुस्कुराने लगीं ॥३६॥ उस समय वहाँ पर
शीघ्र ही आकाश से विमान आ गया । उसके बाद **भगवती ने कहा**– हे देवताओं इसमें आपलोग निःशंक होकर प्रवेश कर जायँ ॥३७॥ हे ब्रह्मा,
विष्णु और शङ्कर ! इस विमान में आपलोग बैठें आपलोगों को मैं अद्भुत वस्तु दिखलाती हूँ । भगवती की वाणी सुनकर हमलोगों ने कहा; ठीक

ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम् ॥३८॥ समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमंडिते । मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते ॥३९॥ सुरसद्मनिभे रम्ये त्रयस्तत्राविशंकिताः । सोपविष्टांस्ततो दृष्ट्वा देव्यस्मान्विजितेन्द्रियान् ॥४०॥ स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चांबरे ॥४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **विमानं तन्मनोवेगं यत्र स्थानांतरे गतम् । न जलं तत्र पश्यामो विस्मिताः स्मो वयं तदा ॥१॥ वृक्षाः सर्वफला रम्याः कोकिलारावमंडिताः । मही महीधराः कामं वनान्युपवनानि च ॥२॥ नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः । वाप्यः कूपास्तडागाश्च पल्वलानि च निर्झराः ॥३॥ पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमंडितम् । यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम् ॥४॥ प्रत्यभिज्ञा तदा जाताऽप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम्।**

है ॥३८॥ उस रत्नजटित विमान पर चढ़कर हमलोग बैठ गये । उस विमान में मोतियों की मालाएँ लगी थीं और छोटी-छोटी घंटियाँ बज रही थीं ॥३९॥ वह विमान स्वर्ग के समान मनोहर था । हम तीनों उसमें निर्भय होकर बैठ गये । हम तीनों जितेन्द्रिय देवताओं को बैठे देखकर देवी ने अपनी शक्ति से उस विमान को प्रेरित किया ॥४०-४१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

विमान में बैठे हुए त्रिदेवों द्वारा देवी का दर्शन

ब्रह्माजी ने कहा– मन के वेग के समान वेग वाला वह विमान जिस दूसरे स्थान पर गया वहाँ हमलोगों ने आश्चर्यित होकर देखा कि वहाँ जल नहीं था ॥१॥ वहाँ के मनोहर वृक्ष सभी प्रकार के फलों से भरे थे, उन पर कोयल की ध्वनि सुनाई देती थी । पृथिवी, पर्वत, वन, उपवन, स्त्रियाँ, पुरुष, पशु, नदियाँ, वापियाँ, कुएँ, सरोवर (छोटे-छोटे जलाशय) तथा झरने सबके सब मनोहर थे ॥२-३॥ सामने दिव्य चहारदिवारी से सुशोभित नगर था । उसमें अनेक भवन थे और यज्ञशालाएँ थीं ॥४॥ उसको देखकर हमलोगों को लगा कि यही स्वर्ग है । हमलोगों को जानने की इच्छा हुई कि इसे किसने बनाया

स्वर्गोऽयमिति केनासौ निर्मितोऽस्ति तदद्भुतम् ॥५॥ राजानं देवसंकाशं व्रजंतं मृगयां वने । अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चांबिका ॥६॥ क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम् । मुहूर्ताद्वा ततः प्राप्तं देशे वान्ये मनोहरे ॥७॥ नन्दनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम् । पारिजाततरुच्छायासंश्रितासुरभिः स्थिता ॥८॥ चतुर्दन्तो गजस्तस्याः समीपे समवस्थितः । अप्सरसां तत्र वृंदानि मेनकाप्रभृतीनि च ॥९॥ क्रीडंति विविधैर्भावैर्गाननृत्यसमन्वितैः । गन्धर्वाः शतशस्तत्र यक्षा विद्याधरास्तथा ॥१०॥ मंदारवाटिकामध्ये गायंति च रमंति च । दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः ॥११॥ वयं तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वा त्रैविष्टपं तदा । यादःपतिं कुबेरं च यमं सूर्यं विभावसुम् ॥१२॥ विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान् । तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमंडितात् ॥१३॥ देवराज इवाक्षोभ्यो नरवाह्यावनौ स्थितः । विमानस्था वयं तच्च चचाल तरसा गतम् ॥१४॥ ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम् । तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ ॥१५॥ सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे सांगाः स्वरूपिणः । सागराः सरितश्चैव पर्वताः पन्नगोरगाः ॥१६॥ मामूचतुश्चतुर्वक्त्रं कोऽयं ब्रह्मा सनातनः । ताववोचमहं नैव जाने सृष्टिपतिं पतिम् ॥१७॥ कोऽहं कोऽयं किमर्थं वा भ्रमोऽयं मम चेश्वरौ । क्षणादथ विमानं तच्चचालाशु मनोजवम् ॥१८॥ कैलासशिखरे प्राप्तं

है ॥५॥ उसी समय हमलोगों ने देखा कि एक देवता के समान सुन्दर राजा आखेट करने जा रहा है और हमलोगों ने यह भी देखा कि अपने विमान पर अम्बिका विराजमान हैं ॥६॥ वायु के द्वारा प्रेरित वह विमान वहाँ से चल पड़ा और मुर्हूत भर में ही वह दूसरे मनोहर स्थान में पहुँच गया ॥७॥ वहाँ पर हमलोगों ने उत्तम नन्दन वन को देखा और उसमें देखा कि पारिजात वृक्ष की छाया में सुरभि गौ खड़ी है ॥८॥ उसी के सन्निकट में चार दाँतो वाला हाथी विद्यमान है । वहाँ पर मेनका आदि अप्सराओं का समूह अनेक भावों के साथ गान एवं नृत्य करते हुए क्रीडा कर रहा था । वहाँ पर सैकड़ों गन्धर्व एवं विद्याधर विद्यमान थे ॥९-१०॥ जो मन्दार वृक्ष की बाटिका में गीत गा रहे थे और रमण कर रहे थे । वहाँ पर हमलोगों ने शची के साथ विद्यमान इन्द्र को भी देखा ॥११॥ उस समय स्वर्ग को तथा उस स्वर्ग में विद्यमान् वरुण, कुबेर, यम, सूर्य तथा अग्नि आदि देवताओं को देखकर बहुत घबराए॥१२॥ वहाँ पर देवताओं को देखकर हमलोग बहुत आश्चर्यित थे कि उसी समय उस समलंकृत नगर से राजा निकला ॥१३॥ देवराज इन्द्र के समान वह राजा एक गाड़ी पर बैठा था और उस गाड़ी को मनुष्य खींच रहे थे । उसी समय हमलोग जिस विमान पर बैठे थे वह वहाँ से तेजी से चल पड़ा॥१४॥ वहाँ से वह सभी देवों से नमस्कृत ब्रह्मलोक में पहुँचा । वहाँ पर ब्रह्माजी को विद्यमान देखकर शंकरजी और भगवान् विष्णु बहुत आश्चर्यित हुए ॥१५॥ ब्रह्माजी की उस सभा में सभी वेद मूर्तरूप से विद्यमान थे । वहाँ पर सागर, नदी, पर्वत, पन्नग तथा उरग विद्यमान थे ॥१६॥ उन लोगों ने (शंकर एवं विष्णु

रम्ये यक्षगणान्विते । मंदारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते ॥१९॥ वीणामुरजवाद्यैश्च नादिते सुखदे शिवे । यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छुभात् ॥२०॥ निर्गतो भगवाञ्छंभुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः । पंचाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः ॥२१॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः। पार्ष्णिरक्षौ महावीरौ गजाननषडाननौ ॥२२॥ शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः । नंदिप्रभृतयः सर्वे गणपाश्च वराश्च ते ॥२३॥ जयशब्दं प्रयुंजाना व्रजन्ति शिवपृष्ठगाः । तं वीक्ष्य शंकरं चान्यं विस्मितास्तत्र नारद ॥२४॥ मातृभिः संशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने । क्षणात्तस्माद्गिरेः शृंगाद्विमानं वातरंहसा ॥२५॥ वैकुंठसदनं प्राप्तं रमारमणमंदिरम् । असंभाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत ॥२६॥ विसिष्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम् । सदनाग्रे ययौ तावद्धरिः कमलोचनः ॥२७॥ अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतुर्भुजः । द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूपितः॥२८॥ वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः । तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम् ॥२९॥ परस्परं निरीक्षन्तं स्थितास्तस्मिन् वरासने। ततश्चचाल तरसा विमानं वातरंहसा ॥३०॥ सुधासमुद्रः संप्राप्तो मिष्टवारिमहोर्मिमान् । यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः ॥३१॥ मन्दारपारिजाताद्यैः

भगवान् ने) मुझसे पूछा कि ये बह्मा कौन हैं ? मैंने कहा कि मैं इन ब्रह्माजी को तथा इन सबों की सृष्टि करने वाले को नहीं जानता हूँ ॥१७॥ हे ईश्वरों! मुझको यह भ्रम हो रहा है कि ये कौन हैं और मैं कौन हूँ ? उसके बाद मन के समान वेग वाला वह विमान क्षण भर में वहाँ से चल पड़ा ॥१८॥ वह कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँचा, वहाँ यक्षों का समूह विद्यमान था । मन्दारपुष्प की वाटिका में शुक पक्षी और कोयल कूजन कर रहे थे ॥१९॥ वहाँ पर वीणा और मृदङ्ग आदि वाद्य बज रहे थे, जिसके कारण वह शिखर अत्यन्त सुखद था । जिस समय वहाँ विमान पहुँचा उसी समय मनोहर भवन से॥२०॥ भगवान् शंकर निकले, वे बैल पर सवार थे और उनके तीन नेत्र थे । और पाँच मुख थे, दश भुजायें थी और उनके शिर पर अर्द्धचन्द्रमा विराजमान थे ॥२१॥ वे व्याघ्र के चर्म को पहने थे और गज के चर्म का उनका उत्तरीय था । उनके दोनों बगल में महाबलवान् गणेश जी और कार्तिकेय विद्यमान थे ॥२२॥ शिवजी के साथ चलते हुए उनके दोनो पुत्र सुशोभित हो रहे थे । नन्दी इत्यादि श्रेष्ठ शिवगण, जयजयकार करते हुए उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । उन दूसरे शंकरजी को देखकर हे नारदजी हमलोग आश्चर्यित हो गये ॥२३-२४॥ मातृकाओं के साथ शंकरजी को देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्यित हुआ । क्षण भर के बाद वह विमान वायु के वेग से भगवान् विष्णु के आवासभूत वैकुण्ठ धाम में पहुँचा । हे पुत ! वहाँ पर मैंने असंभाव्य ऐश्वर्य को देखा ॥२५-२६॥ उस उत्तम नगर को देखकर भगवान् विष्णु अत्यन्त आश्चर्यित हुए । ज्योंहि भगवान् विष्णु एक भवन के आगे गये त्यों हि उसमें अतसी पुष्प के समान श्यामवर्ण वाले, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, गरुड पर बैठे हुए तथा दिव्य आभूषणों से भूषित दूसरे भगवान् विष्णु दिखायी पड़े॥२७-२८॥ उनकी पत्नी लक्ष्मीजी उनको चमर झल रही थीं । हमलोग उन सनातन विष्णु को देखकर आश्चर्यित हो गये ॥२९॥ उस विमान में बैठे

पादपैरतिशोभितः । नानास्तरणसंयुक्तो नानाचित्रविचित्रितः ॥३२॥ मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः । अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैः कुरबकादिभिः॥३३॥ सर्वतः संवृतः सौम्यैः केतकीचंपकैर्वृतः । कोकिलारावसंघुष्टो दिव्यगंधसमन्वितः ॥३४॥ द्विरेफातिरणत्कारै रंजितः परमाद्भुतः । तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यङ्क सुमनोहरः ॥३५॥ रत्नालिखचितोऽत्यर्थं नानारत्नविराजितः । दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतः परिमण्डितः॥३६॥ नानास्तरणसंछन्न इन्द्रचापसमन्वितः । पर्यङ्कप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वरांगना ॥३७॥ रक्तमाल्यांबराधरा रक्तगंधानुलेपना । सुरक्तनयना कांता विद्युत्कोटिसमप्रभा ॥३८॥ सुचारुवदना रक्तदंतच्छदविराजिता । रमाकोट्यधिका कांत्या सूर्यबिंबनिभाऽखिला ॥३९॥ वरपाशांकुशाभीष्टधरा श्रीभुवनेश्वरी। अदृष्टपूर्वा दृष्टा सा सुन्दरी स्मितभूषणा ॥४०॥ ह्रींकारजपनिष्ठैस्तु पक्षिवृंदैर्निषेविता । अरुणा करुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना॥४१॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्या मन्दस्मितमुखांबुजा । उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिर्जितांभोजकुड्मला ॥४२॥ नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता । कनकांगदकेयूरकिरीटपरिशोभिता ॥४३॥

हुए आश्चर्य चकित हमलोग एक दूसरे को देख रहे थे । उसी समय वह विमान वायु के वेग से चल पड़ा ॥३०॥ थोड़ी देर में हमारा विमान अमृत सागर के तट पर पहुँचा । उस समुद्र का जल मीठा था । बड़ी-बड़ी लहरियाँ उठ रही थीं । उसमें जलचर जीव भरे थे और उस समुद्र की लहरें चञ्चल थीं ॥३१॥ उसके तट पर मन्दार तथा पारिजात इत्यादि के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे । विहार के लिए बने हुए भव्य भवनों में सुन्दर विस्तर थे जो अनेक चित्र-विचित्र रंग के थे ॥३२॥ मोतियों की मालाएँ लटक रही थीं और उसमें अनेक प्रकार की मालायें लगी थीं । अशोक, मौलश्री तथा कुरवक आदि के वृक्षों से वह घिरा हुआ था ॥३३॥ उसमें चारो ओर केवड़ा और चम्पा के वृक्ष लगे थे । कोयल की ध्वनि से वह ध्वनित था चारों ओर से दिव्य सुगन्धि आ रही थी॥३४॥ उसमें भौंरे गुञ्जार कर रहे थे । उस द्वीप में शिव के आकार का एक सुन्दर पलङ्ग था ॥३५॥ वह विविधरत्नों से जटित तथा अनेक रत्नों से सुशोभित था ॥३५॥ उस समलंकृत पलंग को हमलोगों ने दूर से विमान में ही बैठे-बैठे देखा ॥३६॥ वह पलंग अनेक विस्तरों से ढँका था अतएव वह देखने में इन्द्रधनुष के समान दिखता था । उस पलंग पर एक सुन्दर स्त्री बैठी थी ॥३७॥ वह लाल माला, तथा लाल वस्त्र धारण किए हुई थी । उसका शरीर रक्त चंदन से चर्चित था । उसके सुन्दर नेत्र रक्तवर्ण के थे । उसके शरीर से करोड़ो विद्युत् की कान्ति निकल रही थी ॥३८॥ उसका मुख सुन्दर था तथा ओष्ठ लाल-लाल थे । उसकी करोड़ों लक्ष्मी के समान कान्ति थी । उसका सारा शरीर सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशित था ॥३९॥ वे श्रीभुवनेश्वरी माता थीं । वे अपने हाँथ में पाश एवं अंकुश धारण किए थीं तथा दोनों दाहिनी भुजाएँ अभय मुद्रा से सुशोभित थीं । ऐसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखा था । उनकी मन्द मुस्कान भी भूषण का काम कर रही थी ॥४०॥ वहाँ के पक्षी ह्रीं इस मंत्र का जप करते हुए उनकी सेवा करते थे । श्रीभुवनेश्वरी लाल

कनकश्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा । हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः ॥४४॥ सखीवृंदैः स्तुता नित्यं भुवनेशी महेश्वरी । हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिः परिवेष्टिता ॥४५॥ अनंगकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टता । देवी षट्कोणमध्यस्था यंत्रराजोपरिस्थिता ॥४६॥ दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिताऽभवम् । केयं कांता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिताः ॥४७॥ सहस्रनयना रामा सहस्रकरसंयुता । सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम् ॥४८॥ नाप्सरा नापि गंधर्वी नेयं देवाङ्गना किल । इति संशयमापन्नास्तत्र नारदं संस्थिताः ॥४९॥ तदाऽसौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् । उवाचांबां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥५०॥ एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः । महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया ॥५१॥ दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया । इच्छा परात्मनः कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी ॥५२॥ दुराराध्याऽल्पभाग्यैश्च देवी विश्वेश्वरी शिवा । वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी ॥५३॥ एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये । लिंगानि सर्वजीवानां स्वशरीरे

वर्ण की, करुणा की मूर्ति, कुमारी तथा नवीन जवानी की अवस्था वाली थीं ॥४१॥ उनका वेष सभी श‍ृङ्गारों से सुशोभित था और उनका मुखकमल मन्द मुस्कान से युक्त था । उभड़ते हुए उनके दोनों स्तन कमल की कली को भी तिरस्कृत कर रहे थे ॥४२॥ अनेक प्रकार की मणियों से उनके भूषण सुशोभित थे । वे सुवर्ण किरीट, अंगद (बाजूबद) तथा केयूर से समलंकृत थीं । सुवर्ण निर्मित कर्णफूल, उनके मुखकमल की शोभा बढ़ा रहा था । उनकी सखियों का समूह उनके हृल्लेखा तथा भुवनेश्वरी इन दोनों नामों का जप कर रहा था । अनेक सखियाँ उनकी स्तुति कर रही थीं । हृल्लेखा आदि देवकन्यायें उन्हें चारों ओर से घेरे थीं ॥४३-४५॥ अनंग कुसुम आदि देवियाँ भी उन्हें घेरें थीं । वे स्वयं षट्कोण यंत्र पर विराजमान थीं ॥४६॥ उनको देखकर हम सबलोग आश्चर्यित होकर स्थित थे । किन्तु हमलोगों को यह नहीं ज्ञात हो सका कि ये कौन हैं ? इनका नाम क्या है ?॥४७॥ उन देवी के हजार नेत्र, हजार हाथ तथा हजार मुख थे दूर से देखने में वे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होती थीं ॥४८॥ ये न तो अप्सरा हैं, न गन्धर्वी हैं और न तो देवांगना हैं ? आखिर ये कौन हैं ? इसतरह से हमलोग संशयग्रस्त थे ॥४८॥ उस समय भगवान् विष्णु अपने मन में निश्चय करके सुन्दर हास वाली अपने विज्ञान के अनुसार उन पराम्बा से कहे॥५०॥ ये हमसबों के कारण स्वरूपा भगवती देवी हैं । ये ही महाविद्या, महामाया, पूर्णा तथा अविकृत प्रकृति हैं ॥५१॥ अज्ञानी जीव इन्हें नहीं जान सकते हैं, ये केवल योगमार्ग से ही जानी जा सकती हैं । इनके मन की बात को जानना कठिन हैं । ये परमात्मा की इच्छा स्वरूपिणी तथा नित्य एवं अनित्य स्वरूपिणी हैं ॥५२॥ मन्दभाग्य जीव इनकी आराधना नहीं कर सकते हैं, ये कल्याण करने वाली विश्वेश्वरी देवी हैं । ये ही वेदगर्भा, विशालाक्षी

निवेश्य च ॥५४॥ सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ । विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात् ॥५५॥ दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगंधानुलेपनाः परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतां ब्रह्मशंकरौ ॥५६॥ धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म सांप्रतम् । यदत्र दर्शनं प्राप्तं भगवत्याः स्वयं त्विदम् ॥५७॥ तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् । अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ॥५८॥ पश्यन्ति पुण्यपुञ्जा ये ये वदान्यास्तपस्विनः । रागिणो नैव पश्यन्ति देवीं भगवतीं शिवाम् ॥५९॥ मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसंगता । ब्रह्मांडं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने ॥६०॥ द्रष्टाऽसौ दृश्यमखिलं ब्रह्मांडं देवताः सुरौ । तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा ॥६१॥ क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रम्भाद्याः सुरयोषितः । लक्षांशेन तुलामस्य न भवामः कथंचन ॥६२॥ सैषा वरांगना नाम या वै दृष्ट्वा महार्णवे । बालभावे महादेवी दोलयंतीव मां मुदा ॥६३॥ शयानं वटपत्रे च पर्यंके सुस्थिरे दृढे । पादांगुष्ठं करे कृत्वा निवेश्य मुखपंकजे ॥६४॥ लेलिहंतं च क्रीडंतमनेकैर्बालचेष्टितैः।

तथा सबों की आदि स्वामिनी हैं ॥५३॥ प्रलयकाल में ये ही सम्पूर्ण जगत् का संहार करके तथा सभी जीवों के लिङ्ग शरीर को आत्मसात् करके क्रीडा करती हैं ॥५४॥ हे ब्रह्मा तथा शिवजी ! इस समय ये सम्पूर्ण जगत् के बीज रूप से विराजमान हैं । आपलोग देखें इनके सन्निकट में करोड़ों इनकी विभूतियाँ विराजमान हैं ॥५५॥ वे सबके सब दिव्य अलंकारों से अलंकृत तथा दिव्य गन्धों से चर्चित हैं । हे ब्रह्माजी तथा शंकरजी ! आपलोग देखें वे सबके सब इन भुनेश्वरी की सेवा में लगी हैं ॥५६॥ हे महाभागों ! हमलोग इस समय धन्य तथा कृतकृत्य हो गये हैं क्योंकि हमलोगों ने यहाँ पर देवी का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है ॥५७॥ हमलोगों ने पूर्वजन्म में प्रयास पूर्वक तपस्या की है, उसी का यह उत्तम फल है । नहीं तो इस तरह से भगवती हमलोगों को समादर पूर्वक दर्शन कैसे देतीं ?॥५८॥ जो लोग पुण्यात्मा हैं, उदार हैं तथा तपस्वी हैं, उन लोगों को ही देवी का दर्शन मिलता है आसक्ति वाले पुरुषों को इनका दर्शन नहीं मिलता हैं ॥५९॥ ये ही मूलप्रकृति भगवती परमपुरुष के सहयोग से ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके उसे परमात्मा को दिखाती हैं॥६०॥ हे ब्रह्मा तथा शंकरजी ! यह जीवात्मा ही द्रष्टा है और सारा ब्रह्माण्ड ही दृश्य है । इस ब्रह्माण्ड का कारण माया, सर्वेश्वरी, शिवा, भवानी हैं॥६१॥ कहाँ तो मैं, कहाँ सभी देवता और रम्भा आदि देवाङ्गनाएँ ? इनकी तुलना में हमलोग इनके लक्षांश के भी बराबर नही हैं ॥६२॥ ये वही सुन्दरी देवी हैं जिन्हें हमने महार्णव में बालभाव में देखा था और ये हमको मानो झूला झूलाती थीं ॥६३॥ उस समय मैं वटपत्र पर शयन किये था । वह वटपत्र ही मेरे लिए सुदृढ शय्या बन गया था । मैंने अपने पैर के अंगुठे को हाथ से पकड़कर अपने मुख में डाल दिया था ॥६४॥ इस तरह मैं अनेक प्रकार की बालक्रीडाओं को करता

रममाणं कोमलांगं वटपत्रपुटे स्थितम् ॥६५॥ गायंती दोलयंती च बालभावान्मयि स्थिते । सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव ॥६६॥ कामं नो जननी सैषा शृणु तं प्रवदाम्यहम् । अनुभूतं मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता ॥६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः । वयं गच्छेम पार्श्वेऽस्याः प्रणमंतः पुनः पुनः ॥१॥ सेयं वरा महामाया दास्यत्येषा वरान्हि नः । स्तुवामः संनिधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणांतिके ॥२॥ यदि नो वारयिष्यंति द्वारस्थाः परिचारकाः । पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः ॥३॥** ब्रह्मोवाच– **इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ । जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च ॥४॥ ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे**

हुआ अपने पैर के अंगूठे को चाट रहा था । उस वटपत्र पर स्थित मेरे अंग कोमल थे और मैं उसी में प्रसन्न था ॥६५॥ जब मैं बालक था उस समय ये गीत गाती हुई मुझे झुलाती थीं इनके दर्शन करने से मुझे निश्चित ज्ञान हो गया है ॥६६॥ निश्चित रूप से ये मेरी माता हैं । मैं इनके विषय में बतला रहा हूँ उसे आपलोग सुनें । जो मैंने पहले अनुभव किया है, उसकी मुझे याद आ गयी है ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

भगवान् विष्णु द्वारा देवी की स्तुति

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा– इस तरह से कहने के पश्चात् जनार्दन भगवान् विष्णु फिर कहे कि हमलोग इनको बारम्बार प्रणाम करते हुए इनके पास चलें ॥१॥ ये श्रेष्ठ महामाया हमलोगों को वरदान देंगी । हमलोग इनके सन्निकट निर्भय होकर चलें और इनकी स्तुति करें ॥२॥ यदि इनके द्वारा नियुक्त रक्षक हमलोगों को जाने से रोक देंगे तो हमलोग वहीं खड़ा होकर इनकी स्तुति करेंगे ॥३॥ **ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा–** भगवान् विष्णु के इस तरह से कहने पर हमलोग प्रसन्नता पूर्वक भगवती के सन्निकट जाने के लिए उतावले हो गये ॥४॥ हमलोगों ने श्रीहरि से कहा कि ठीक है और उसके बाद हम तीनों विमान

विमानात्त्वरितास्त्रयः । उत्तीर्य निर्गता द्वारि शंकमाना मनस्यलम् ॥५॥ द्वारस्थान्वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा । स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः ॥६॥ वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः । विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्संनिधिं पुनः ॥७॥ सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपांश्चरणांतिके । व्यलोकयत चार्वङ्गी प्रेमसंपूर्णया दृशा ॥८॥ प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम् । परस्परं लोकयंतः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः ॥९॥ पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणिविभूषितम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं ततः ॥१०॥ काश्चिद्रक्तांबरास्तत्र सहचर्यः सहस्त्रशः। काश्चिन्नीलांबरा नार्यस्तथा पीतांबराः शुभाः ॥११। देव्यः सर्वाः शुभाकारा विचित्राम्बरभूषणाः । विरेजुः पार्श्वतस्तस्याः परिचर्यापराः किल ॥१२॥ जगुश्च ननृतुश्चान्याः पर्युपासन्त ताः स्त्रियः । वीणामारुतवाद्यानि वादयंत्यो मुदान्विताः ॥१३॥ शृणु नारद वक्ष्यामि यद्दृष्टं तत्र चाद्भुतम् । नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपंकजे ॥१४॥ ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजंगमम् । अहं विष्णुश्च रुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः ॥१५॥ वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः । पर्वताः सागरा नद्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥१६॥ विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्रांगदस्तथा । नारदस्तुंबुरुश्चैव हाहाहूहूस्तथैव च ॥१७॥ अश्विनौ वसवः साध्याः सिद्धाश्च पितरस्तथा । नागाः शेषादयः सर्वे किन्नरोरगराक्षसाः ॥१८॥ वैकुंठो ब्रह्मलोकश्च

से उतर गये । मन में शंका करते हुए हमलोग उनके द्वार पर गये ॥५॥ हम तीनों को अपने द्वार पर खड़े देखकर देवी ने मुस्कुराकर हम तीनों को स्त्री बना दिया ॥६॥ इसके बाद हमसब सुन्दर रूप तथा अलंकारों से भूषित युवति हो गये । अत्यन्त विस्मित होकर हमलोग देवी के सन्निकट चले गये ॥७॥ सुन्दर अंगों वाली देवी ने स्त्रीरूपधारी तथा अपने चरणों के सन्निकट देखकर अपने प्रेमपूर्ण नेत्रों से हमलोगों को देखा ॥८॥ हमलोग भी देवी को प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये । स्त्री रूपधारी तथा सुन्दर आभूषणधारी हमलोग परस्पर एक दूसरे को देखने लगे ॥९॥ अनेक प्रकार के मणियों से समलंकृत तथा करोड़ो सूर्य के समान देवी की चरण चौकी को हमतीनों देखते हुए खड़े थे ॥१०॥ वहाँ भगवती की हजारो दासियाँ उपस्थित थीं । उनमें से कुछ दासियाँ लाल वस्त्र, कुछ नीले वस्त्र तथा कुछ पीले वस्त्र को धारण की थीं ॥११॥ वे सभी देवियाँ देखने में सुन्दर तथा विचित्र वस्त्र एवं आभूषण को धारण किए हुई थीं। और वे भगवती की ही सेवा में संलग्न रहकर उनके बगल में खड़ी थीं ॥१२॥ उनमें से कुछ देवियाँ नाच रही थीं कुछ गा रही थीं और कुछ उनकी उपासना में लगी थीं । उनमें से कुछ वीणा तथा मुरली प्रसन्नता के साथ बजा रही थीं ॥१३॥ नारदजी मैंने वहाँ पर जो आश्चर्य देखा उसे बतला रहा हूँ । देवी के चरण कमल के नख रूपी दर्पण में मैने स्थावर जंगमात्मक सारा ब्रह्माण्ड अपने को; विष्णु, रुद्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, सागर, नदियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्रांगद, नारद, तुंबुरु, हाहा, हूहू, दोनों अश्विनीकुमारों, वसुगण, साध्यगण, सिद्धगण, पितृगण,

कैलासः पर्वतोत्तमः । सर्वं तदखिलं दृष्टं नखमध्यस्थितं च वै ॥१९॥ मज्जन्मपंकजं तत्रस्थितोऽहं चतुराननः । शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकौटभौ ॥२०॥ श्रीभगवानुवाच– एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम् । विस्मितोऽहं ततो वीक्ष्य किमेतदिति शंकितः ॥२१॥ विष्णुश्च विस्मयाविष्टः शंकरश्च तथा स्थितः । तां तदा मेनिरे देवीं वयं विश्वस्य मातरम् ॥२२॥ ततो वर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रांतं प्रपश्यतः । सुधामये शिवे द्वीपे विहारं विविधं तदा ॥२३॥ सख्य इव तदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान् । देव्यः प्रमुदिताकारा नानाभरणमंडिताः ॥२४॥ वयमप्यतिरम्यत्वाद्बभूविम विमोहिताः । प्रहृष्टमनसः सर्वे पश्यन्भावान्मनोरमान् ॥२५॥ एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् । तुष्टाव भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः॥२६॥ श्रीभगवानुवाच– नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः । कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमोनमः ॥२७॥ सच्चिदानंदरूपिण्यै संसाराराणये नमः । पंचकृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमोनमः ॥२८॥ सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमोनमः । अर्थमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमोनमः ॥२९॥ ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं त्वत्तोऽस्य संभवलयावपि मातरद्य । शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम् ॥३०॥ विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं संदर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले । तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च भासींद्रजालमिव

शेष आदि नाग, किन्नर, सर्प, राक्षस, वैकुण्ठलोक, ब्रह्मलोक पर्वतोत्तम कैलास, इन सभी वस्तुओं को उनके नख में स्थित देखा ॥१४-१९॥ जिस कमल पर मेरा जन्म हुआ था उस कमल को उस पर बैठे हुए अपने को शेषशायी भगवान् विष्णु को तथा मधु एवं कैटभ को मैंने देखा ॥२०॥ हे ब्रह्माजी ! इस तरह से मैंने देवी भगवती के चरणकमल में इन सारी वस्तुओं को देखकर सोचने लगा कि यह क्या है ?॥२१॥ भगवान् विष्णु तथा शंकर भी आश्चर्यित थे और हमलोगों ने निश्चय किया कि ये ही विश्व की माता हैं ॥२२॥ इस तरह उस अमृतमय द्वीप में अनेक प्रकार के विहारों को देखते हुए हमलोगों के सौ वर्ष बीत गये ॥२३॥ वहाँ की प्रसन्न आकार वाली तथा अनेक आभूषणों से भूषित देवियाँ हमलोगों को अपनी सखियाँ मानती थीं ॥२४॥ उन सबों के अत्यन्त मनोरम होने के कारण हमलोग भी प्रसन्नतापूर्वक उनके स्नेह भरे व्यवहारों से विमोहित थे ॥२५॥ युवती के रूप में स्थित भगवान् विष्णु श्रीभुवनेश्वरी देवी की स्तुति करने लगे ॥२६॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** प्रकृति देवी तथा विधात्री देवी को मेरा नमस्कार है । कल्याणी, कामदा, वृद्धि तथा सिद्धि देवी को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥२७॥ सच्चिदानंद स्वरूपिणी तथा संसार के कारण स्वरूपिणी देवी को नमस्कार है । पञ्चकर्म विधात्री तथा भुवन की स्वामिनी को मेरा नमस्कार है ॥२८॥ सबों के अधिष्ठान स्वरूपिणी तथा कूटस्थ (सर्वदा एक समान बनी रहने वाली अविकृत स्वरूपा) देवी को मेरा नमस्कार है । अर्धमात्रा की अर्थस्वरूपिणी तथा हृल्लेखा देवी को मेरा नमस्कार है । हे माँ ! मैंने यह जान लिया है कि यह सारा विश्व आप में ही लीन

नः किल रंजनाय ॥३१॥ न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थिताऽसि । शक्तिं विना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो
बम्भण्यते जननि बुद्धिमता जनेन ॥३२॥ प्रीणासि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि । अस्त्येव देवि तरसा किल
कल्पकाले को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य ॥३३॥ त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां लोकाश्च ते सुवितताः खलु दर्शिता वै। नीताः सुखस्य
भवने परमां च कोटिं यद्दर्शन तव भवानि महाप्रभावम् ॥३४॥ नाहं भवो न च विरिंच विवेद मातः कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम्।
कानीह संति भुवनानि महाप्रभावे ह्यस्मिन्भवानि रचिते रचनाकलापे ॥३५॥ अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न संति किं ते किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम् ॥३६॥ याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं चित्ते सदा वसतु रूपमिदं
तवैतत् । नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव संदर्शनं तव पदांबुजयोः सदैव ॥३७॥ भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं त्वां स्वामिनीति मनसा ननु
चिंतयामि । एषाऽऽवयोरविरता किल देवि भूयाद्व्याप्तिः सदैव जननी सुतयोरिवार्ये ॥३८॥ त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपंचं सर्वज्ञतापरिसमाप्तिनितांतभूमिः।

है और इसको आप ही उत्पन्न करती हैं तथा इसका संहार करती हैं । विस्तृत प्रभाव वाली आपकी ही शक्ति इसको उत्पन्न कर सकती है और आज मैंने यह भी जान लिया कि आप ही सम्पूर्ण लोक स्वरूपिणी हैं ॥३०॥ सृष्टिकाल के आजाने पर ही इस सत् एवं असत् विकार को उत्पन्न करके अविकल रूप से पुरुष को प्रदर्शित करती हैं । और पुरुष तत्त्व को प्रसन्न करने के लिए आप तेइस तत्त्वों के साथ इन्द्रजाल के तरह प्रतीत होती हैं ॥३१॥ हे माँ संसार की सभी वस्तुओं में मुझे आपकी सिवा कुछ भी नहीं प्रतीत होता है आप ही सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रूप से स्थित है । बुद्धिमान् पुरुषों का कहना है कि आपके द्वारा प्रदत्त शक्ति के बिना वह पुरुष भी कुछ भी करने में असमर्थ है ॥३२॥ आप अपने प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न रखती हैं और अपने तेज के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को आप प्रकट करती हैं । कल्पान्त की बेला में आप ही इसे ग्रस्त कर लेती हैं । हे देवि ! आपके वैभव को कौन जान सकता है ?॥३३॥ आपने हमलोगों की रक्षा मधु एवं कैटभव से की तथा आपने हमें विस्तृत लोकों का दर्शन कराया । उसके पश्चात् आपने हमलोगों को सुख के सदन स्वरूप इस मणिद्वीप में पहुँचाया । हे देवि ! आपका दर्शन अत्यन्त प्रभावशाली है ॥३४॥ हे माँ ! जब आपके आश्चर्यमय चरित को न तो मैं जानता हूँ और न तो ब्रह्माजी ही जानते हैं तो दूसरा कौन जान सकता है ? ये भवानि आपके महाप्रभावशाली रचना समूह में यहाँ कौन-कौन से भुवन हैं ?॥३५॥ हे देवि ! हमने आपके इस लोक में अत्यधिक प्रभाव सम्पन्न दूसरे ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव को देखा है, वे दूसरे लोकों में नहीं है । आपके प्रभाव को हमलोग कैसे जान सकते हैं ॥३६॥ हे माँ ! आपके चरणकमलों में प्रणाम करके हम यही याचना करते हैं कि आपका यह सुन्दर रूप सदा हमारे हृदय में निवास करे । हमारे मुख से आपका नाम सदा उच्चरित होता रहे और सदा आपके चरण कमलों का दर्शन हमें होता रहे ॥३७॥ मैं यह

किं पामरेण जगदंब निवेदनीयं यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात् ॥३९॥ ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धः। किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः ॥४०॥ धात्री धराधरसुते न जगद्बिभर्ति आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति । सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते त्वं सर्वमेतदखिलं विरजा विभासि ॥४१॥ ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः । केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा ॥४२॥ त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं जानेऽहमद्य तव संनिधिगः सदैव । नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो विश्वात्मधीरिति तमःप्रकृतिः सदैव ॥४३॥ विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव । त्वं कीर्तिकांतिकमलामलतुष्टिरूपा मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ॥४४॥ गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा । आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्यै संजीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ॥४५॥ मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम् । अंशा अनादिनिधनस्य किलानघस्य पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः ॥४६॥ जीवो यदा तु

सोचता हूँ कि आप ही हमारी स्वामिनी हैं, और आप अपने मन में मुझे अपने भृत्य रूप से स्मरण करें । हे माँ ! इस प्रकार से हमदोनों का माता और पुत्र का सम्बन्ध बना रहे ॥३८॥ हे देवि ! आप सम्पूर्ण प्रपञ्च को जानती हैं, आप सर्वज्ञता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई हैं । हे देवि ! मैं पामर हूँ अधिक क्या कह सकता हूँ आप जो उचित समझें वैसा करें, क्योंकि सब कुछ आपकी प्रेरणा से ही होता है ॥३९॥ संसार में यह प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर जी संहार करने का काम करते हैं । हे देवि ! क्या यह लोक प्रसिद्धि सत्य है ? हमलोग तो आपकी शक्ति को ही प्राप्त करके सबकुछ करते है ॥४०॥ हे पार्वति ! क्या आपकी ही आधार शक्ति पृथिवी को धारण करने का काम नहीं करती है ? आपकी आधार शक्ति ही सम्पूर्ण जगत् को धारण करने का काम करती है । हे वरदे ! आपकी ही प्रभा से सूर्य प्रकाशित होते हैं । हे निर्मलस्वरूपें ! आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के रूप में प्रतीत होती हैं ॥४१॥ ब्रह्माजी मैं और शंकरजी हम सभी आपकी ही शक्ति से जन्म लेते हैं, यदि हमलोग ही नित्य नहीं है तो इन्द्र आदि अन्य देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? हे माँ ! आप ही नित्य हैं और पुराण प्रकृति हैं ॥४२॥ हे देवि ! आप सदा पुराणपुरुष पर दया बनाये रखती हैं, इस बात को मैं आपका साक्षात्कार करके ही समझ गया हूँ । यदि ऐसी बात नहीं होती तो मैं अपने को अज्ञानवश विभु, अनादि, अनीह, ईश तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा समझकर विनष्ट हो जाता ॥४३॥ आप ही बुद्धिमानों की विद्या हैं, शक्तिमानों की शक्ति है । आप ही मर्त्यलोक में कीर्ति, कान्ति, कमला तथा निर्मल तुष्टि स्वरूप हैं । मुक्ति प्रदान करने वाली विरक्ति स्वरूपा आप ही हैं ॥४४॥ आप वेद की प्रधान कला गायत्री स्वरूपा हैं । आप ही स्वाहा, स्वधा तथा सगुणा और अर्धमात्रा

परिवेत्ति तवैव कृत्यं त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धिम् । नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरंगे कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा ॥४७॥ त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धेस्त्वामंबिके सततमेमि महार्तिदे च । रागादिभिर्विरचिते वितथे किलांते मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले ॥४८॥ नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव । सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ॥४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने । उवाच शंकरः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः ॥१॥** शिव उवाच– **यदि हरिस्तव देवि विभावजस्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः । किमहमत्र तवापि न सद्गुणः सकललोकविधौ चतुरा शिवे ॥२॥ त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा**

हैं । आपने ही देवताओं की रक्षा के लिए आगमों तथा निगमों की रचना की है ॥४५॥ आप जीवों की मुक्ति के लिए सम्पूर्ण प्रपञ्च की रचना करती हैं । ये समस्त जीव निष्पाप तथा अनादिनिधन ब्रह्म के उसी तरह से अंश हैं जिस तरह से लहरें महासागर का अंश होती हैं ॥४६॥ जीव जब इस बात को जान लेता है कि यह सम्पूर्ण जगत् आपका कार्य है, और आप ही सम्पूर्ण जगत् का संहार करती हैं, तो आपको अपने हृदय में अपने सृष्टिरूप कार्य के करने में संतोष होता है ॥४७॥ हे देवि ! राग आदि से भरे हुए, अत्यधिक दुःख देने वाले, इस संसार के दुःखों से आप ही मेरी रक्षा अन्तिम समय में करेंगी ॥४८॥ हे महाविद्या रूपिणी देवि ! आपके चरणों की मैं बन्दना करता हूँ हे सबकुछ प्रदान करने वाली कल्याणकारिणी शिवे ! आप मुझे ज्ञान का प्रकाश प्रदान करें ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

शिवजी द्वारा तथा ब्रह्माजी द्वारा देवी की स्तुति

ब्रह्माजी ने कहा– इस तरह से स्तुति करके देवाराध्य भगवान् विष्णु चुप हुए तो देवी के सामने खड़े शंकरजी ने विनयावनत होकर कहा । **शिवजी ने कहा–** हे देवि ! यदि श्रीहरि आपके प्रभाव से उत्पन्न हैं, उसके बाद ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तो क्या मैं आपके सद्गुण से नहीं उत्पन्न हुआ हूँ । हे शिवे!

खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः । जननि तानि पुनः करणानि च त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथ हंकृतिः ॥३॥ न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा हरिहराजकृतं निखिलं जगत् । तव कृतास्त्रय एव सदैव ते विरचयन्ति जगत्सचराचरम् ॥४॥ अवनिवायुखवह्निजलादिभिः सविषयैः सगुणैश्च जगद्भवेत् । यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं प्रभवतीति तवांब कलामृते ॥५॥ भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम् । विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि ॥६॥ सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः कमलभूश्च भवाम यदाऽम्बिके । तव पदाम्बुजपांसुपरिग्रहं समधिगम्य तदा ननु चक्रिम ॥७॥ यदि दयार्द्रमना न सदांबिके कथमहं विहितश्च तमोगुणः । कमलजश्च रजोगुणसम्भवः सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः ॥८॥ यदि न ते विषमा मतिरम्बिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् । सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं बहुधनैरधनैश्च समाकुलम् ॥९॥ तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः प्रकटनावनसंहरणेषु वै । हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात्त्वया विरचितास्त्रिजगत्किल कारणम् ॥१०॥ परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै । पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा कथय केन भवानि नवानि च ॥११॥ सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके

आप ही सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करने में निपुण हैं ॥२॥ हे देवि ! आप ही पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश एवं उनके गुण (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श एवं शब्द) स्वरूपिणी हैं । हे देवि ! आप ही, इन्द्रिय, बुद्धि तथा अहंकार स्वरूपिणी हैं ॥३॥ जो लोग यह कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के द्वारा प्रणीत यह सारा जगत् है, वे वास्तविकता को नहीं जानते हैं । आपके ही द्वारा जन्म लेकर ये तीनों सचराचर (जडजंगमात्मक) जगत् की रचना करते हैं ॥४॥ हे अम्ब ! यदि पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश इनके विषय तथा गुणों से जगत् की उत्पत्ति हुई; इस जडवाद को मान भी लिया जाये तो भी यह जगत् आपकी चिदंशशक्ति के बिना स्पष्टरूप से कैसे प्रकाशित हो सकता है ?॥५॥ आप ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूपी आकृतियों से कल्पित इस जगत् में व्याप्त होकर अनेक प्रकार के वेषों से विलास करने के कुतूहल से बिहार करती हैं और प्रलयकाल में आप विश्राम करती हैं ॥६॥ जब हम, ब्रह्माजी तथा श्रीहरि इस जगत् की सृष्टि करने की इच्छा करते हैं तो उस समय हे अम्बिके ! आपके चरण कमलों की धूलि को प्राप्त करके जगत् की हमलोग रचना करते हैं ॥७॥ हे अम्बिके ! यदि आप मेरे ऊपर सदा दया नहीं करतीं तो मैं तमोगुण प्रधान कैसे होता ? ब्रह्माजी रजोगुण प्रधान और श्रीहरि सत्त्वगुण प्रधान कैसे होते ?॥८॥ हे अम्बिके ! यदि आपकी विषम बुद्धि नहीं होती तो यह जगत् मंत्रि, राजा तथा भृत्यों तथा धनियों और निर्धनों से भरा हुआ अनेक प्रकार का कैसे होता ?॥९॥ हे देवि ! आपके तीनों गुण (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) ही जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करने में समर्थ हैं फिर भी आपने इन कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की रचना की है ॥१०॥ हे मातः !

स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम् । रमयसे स्वपितं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे ॥१२॥ जननि देहि पदाम्बुजसेवनं युवति भावगातानपि नः सदा । पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्विरहिताः क्व लभे न सुखं स्फुटम् ॥१३॥ न रुचिरस्ति ममांब पदांबुजं तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम् । विवसितुं नरदेहमवाप्य च त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै ॥१४॥ सुदति नास्ति मनागपि मे रतिर्युवतिभावमवाप्य तवान्तिके । पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं तव पदं न यदीक्षणगोचरम् ॥१५॥ त्रिभुवनेषु भवत्वियमम्बिके मम सदैव हि कीर्तिरनाविला । युवतिभावमवाप्य पदांबुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम् ॥१६॥ भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं क इव वांछति राज्यमकंटकम् । त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम् ॥१७॥ तपसि ये निरता मुनयोऽमलास्तव विहाय पदांबुजपूजनम् । जननि ते विधिना किल वञ्चिताः परिभवो विभवे परिकल्पितः ॥१८॥ न तपसा न दमेन समाधिना न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा । तव पदाब्जपरागनिषेवणाद्भवति मुक्तिरजे भवसागरात्॥१९॥ कुरु दयां दयसे यदि देवि मां कथय मंत्रमनाविलमद्भुतम् । समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम् ॥२०॥ प्रथमजन्मनि चाधिगतो

इस विमान में बैठे हुए मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु ने रास्ते में आने वाले भुवनों को देखा है । आपके सिवा दूसरा कौन इन नवीन भुवनों की रचना करने में समर्थ हो सकता है ?॥११॥ हे जगदम्बिके ! आप अपनी कला से जगत् की सृष्टि और पालन करती हैं और जब आपकी इच्छा होती है, तो उसका नाश कर देती हैं । ऐसा करके आप अपने परम पुरुष पति को आनन्दित करती हैं, आपकी लीलाओं को कौन जान सकता है ?॥१२॥ हे देवि ! युवतिभाव को प्राप्त हम तीनों देवताओं को आप अपने चरणों की सेवा करने का अवसर प्रदान करें । अपने पुरुषत्व को प्राप्त करके, आपके चरणों से दूर होकर, हमलोगों को कहाँ सुख मिलेगा ?॥१३॥ हे माँ ! आपके चरणकमलों को छोड़कर तथा पुरुष शरीर को प्राप्त करके त्रिभुवनपति होकर भी मुझे रहने की इच्छा नहीं है ॥१४॥ हे सुन्दर दाँतों वाली ! युवतिभाव के प्राप्त करने से मुझे आपके चरणों का सान्निध्य मिला, अतएव पुरुषत्व की प्राप्ति में मेरी बिल्कुल श्रद्धा नहीं है, क्योंकि वैसा होने पर आपके चरणों का दर्शन नहीं प्राप्त होगा ॥१५॥ हे अम्बिके ! स्त्रीभाव को प्राप्त करने से हमे आपके चरण कमलों का परिचय मिला इससे हमारी त्रैलोक्य में निर्मल कीर्ति होगी । आपके चरणों का दर्शन संसार के बन्धन को काटने वाला है ॥१६॥ संसार में कौन ऐसा प्राणी होगा जो आपके चरणों का सान्निध्य छोड़कर रहना चाहेगा ? आपके चरणों से क्षणभर की भी दूरी लगता है कि एक युग बीत गया ॥१७॥ जो अमलात्मा मुनिजन आपके चरणों की सेवा न करके तपस्यारत हैं, निश्चित रूप से उनके साथ भाग्य ने धोखा किया है, वे अभागे हैं ॥१८॥ हे अजे! तपस्या, इन्द्रियनिरोध, समाधि तथा यज्ञों के विधि पूर्वक अनुष्ठान से उस प्रकार से मुक्ति नहीं मिलती है, जिस तरह आपके चरणकमलों की धूलि का सेवन

मया तदधुना न विभाति नवाक्षरः । कथय मां मनुमद्य भवार्णवाज्जननि तारय तारय तारके ॥२१॥ ब्रह्मोवाच– **इत्युक्ता सा तदा देवी**
शिवेनाद्भुततेजसा । उच्चचारांबिका मंत्रं प्रस्फुटं च नवाक्षरम् ॥२२॥ तं गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह । प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः
शिवः ॥२३॥ जपन्नवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा । बीजयुक्तं शुभोच्चारं शङ्करस्तस्थिवांस्तदा ॥२४॥ तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा शङ्करं
लोकशङ्करम् । अवोचं तां महामायां संस्थितोऽहं पदांतिके ॥२५॥ न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्नपटवो यतस्तेनोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम्।
स्वधाभूता देवी सकलमखहोमेषु विहिता तदा त्वं सर्वज्ञा जननि खलु जाता त्रिभुवने ॥२६॥ कर्ताऽहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतं
कोऽन्योस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान् । धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्माऽस्मि लोकातिगो मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितरे
गर्वाभिवेशादिति ॥२७॥ अद्याहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते । याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां
मुक्तिप्रदां चेश्वरीं हित्वा मोहकृतं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु ॥२८॥ अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद्वै ।

करने से संसार सागर से मुक्ति मिलती है ॥१९॥ हे देवि ! आप कृपा करके मुझे उस नवार्ण मन्त्र की दीक्षा दीजिये, उस विशद मन्त्र का जप करके मैं सदा-सदा के लिए सुखी हो जाऊँगा ॥२०॥ हे संसारसागर सें उद्धार करने वाली मात: ! पूर्वजन्म में मैंने नवार्णमन्त्र की दीक्षा प्राप्त की थी, किन्तु आज उसकी यादगारी नहीं है, आप मेरा उद्धार अवश्य करें ॥२१॥ ब्रह्माजी ने नारदजी को बतलाया कि इस प्रकार से शिवजी के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जगदम्बिका ने अपने अद्भुत तेज के द्वारा नवाक्षर मन्त्र का स्पष्ट रूप से उच्चारण किया ॥२२॥ उस मन्त्र का श्रवण करके शंकरजी को परम प्रसन्नता हुई। वे देवी के चरणों में प्रणाम कर्के वहीं खड़े हो गये ॥२३॥ भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले बीज से युक्त नवाक्षरी मन्त्र का जप करते हुए शंकरजी खड़े रहे॥२४॥ लोक कल्याणकारी शंकरजी को उस तरह से स्थित देखकर महामाया के चरणों के सन्निकट में स्थित मैं कहने लगा ॥२५॥ हे देवि ! वेद भी आपको जानने में समर्थ नहीं हुए इसीलिए वे जगद्धात्री आपकी कहीं भी चर्चा नहीं किए । किन्तु सभी प्रकार के यज्ञों में आपके 'स्वाहा' इस नाम का ही उच्चारण किया जाता है इसीसे हे देवि ! आप सर्वज्ञ हो गयीं ॥२६॥ हे देवि ! मुझको इस बात का गर्व हो गया था कि मैं ही सम्पूर्ण जगत् का कर्ता हूँ, और इस सम्पूर्ण अद्भुत जगत् की मैं रचना करता हूँ, चराचर में मुझसे बढ़कर दूसरा धन्य पुरुष कौन हैं ? मैं संसार में सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मा हूँ; अतएव धन्य हूँ । और इसी गर्व के कारण मैं विस्तृत संसारसागर में मग्न हूँ ॥२७॥ आज मैं आपके चरणकमलों की धूलि को प्राप्त करके वास्तविक रूप से आपकी कृपा से धन्य हो गया हूँ । मैं संसार के भय को दूर करने वाली, मुक्ति को प्रदान करने वाली तथा स्वामिनी आप से यही वरदान माँगता हूँ कि अत्यन्त

तवाज्ञाकरः किंकरोऽस्मीति नूनं शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥२९॥ न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम् । यजन्तीह ये याजकाः स्वर्गकामा न ते ते प्रभावं विदंत्येव कामम् ॥३०॥ त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम् । अहं वेद्मि कोऽन्यो विवेदादिमाये क्षमस्वापराधं त्वहङ्कारजं मे ॥३१॥ श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः प्रकुर्वंति मूढाः समाधौ स्थिता वै । न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥३२॥ विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने पदे मोहिता नाम ते संविहाय । न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि त्वमेवासि संसारमुक्तिप्रदा वै ॥३३॥ परं तत्त्वविज्ञानमाद्यैर्जनैर्यैरजे चानुभूतं त्यजन्त्येव ते किम् । निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं शिवा चांबिका शक्तिरीशेति नाम ॥३४॥ न किं त्वं समर्थाऽसि विश्वं विधातुं दृशैवाशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम् । विनोदार्थमेवंविधं मां विधायादिसर्गे किलेदं करोषीति कामम् ॥३५॥ हरिः पालकः किं त्वयाऽसौ मधोर्वा तथा कैटभाद्रक्षितः सिंधुमध्ये । हरः संहृतः किं त्वयाऽसौ न काले कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः ॥३६॥ न ते जन्म कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा कुतः संभवस्ते न कोऽपीह वेद । किलाद्यासि शक्तिस्त्वमेका भवानि स्वतंत्रैः

दुःखदायी मेरे मोह को दूर करके आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें ॥२८॥ हे शिवे ! आपके ही द्वारा रचित कमल से मैं उत्पन्न हुआ हूँ । मैं किस प्रकार मुक्ति को प्राप्त करूँगा; यही मुझे चिन्ता है । मैं आपका आज्ञाकारी दास हूँ । हे शिवे इस मोहसागर में डूबे हुए मेरा आप संसारसागर से उद्धार करें ॥२९॥ जो लोग आपके आद्य पवित्र चरित्र को नहीं जानते हैं वे ही मुझे प्रभु मानते हैं । जो लोग स्वर्ग प्राप्ति की कामना से यज्ञ करते हैं, वे निश्चित रूप से आपके प्रभाव को नहीं जानते हैं ॥३०॥ हे आदिमाये ! आदि सृष्टि को चार (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज) रूपों में सृष्टि का विभाग करके उसमें बिहार करने के लिए आपने मुझे ब्रह्मा के पद पर नियुक्त किया है । किन्तु मैंने यह समझ लिया कि मैं ही इस बात को जानता हूँ, मुझको छोड़कर इसे कौन जानता है ? हे देवि ! आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ॥३१॥ जो लोग अष्टाङ्गयोगमार्ग में परिश्रम करके समाधि में स्थित हैं, वे लोग मूर्ख हैं । उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि किसी भी बहाने से आपका नाम ले लेने मात्र से मुक्ति मिल जाती है ॥३२॥ जो लोग आपके नाम का परित्याग करके तत्त्वों की संख्या के ही चिन्तन में व्यस्त रहते हैं, क्या ऐसे लोग मूर्ख नहीं हैं ? क्योंकि हे भवानि ! संसार से मुक्ति देने वाली तो केवल आप ही हैं ॥३३॥ जिन लोगों को तत्त्वों का ज्ञान हो गया है, हे भवानि ! क्या वे लोग क्षणभर के लिए भी पवित्र चरित्रों से युक्त शिवा, भवानी, अम्बिका आदि आपके नामों का परित्याग करते हैं ?॥३४॥ हे देवि ! क्या आप सम्पूर्ण जगत् को अपनी दृष्टि के निक्षेप मात्र से चार भागों में विभक्त करके रचना करने में समर्थ नहीं

समस्तैरतो बोधिताऽसि ॥३७॥ त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो हरिस्त्रातुमंब त्वया संयुतश्च । हरः संप्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः ॥३८॥ यथाऽहं हरिः शङ्करः किं तथाऽन्ये न जाता न सन्तीह नो वा भविष्यन् । न मुह्यन्ति केऽस्मिंस्तवात्यन्तचित्रे विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम् ॥३९॥ अकर्ता गुणस्पष्ट एवाद्य देवो निरीहोऽनुपाधिः सदैवाकलश्च । तथापीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं सुसंपश्यतीत्याहुरेवं विधिज्ञाः ॥४०॥ दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः । नान्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते ॥४१॥ न मिथ्या वेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन । विरोधोऽयं मयाऽत्यंतं हृदये तु विशंकितः ॥४२॥ एकमेवाद्वितीयं यद्ब्रह्म वेदा वदंति वै । सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं संदेहं विनिवर्तय ॥४३॥ निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशंकितम् । द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नं क्षुल्लकं मनः ॥४४॥ स्वमुखेनापि संदेहं छेत्तुमर्हसि

हैं ? आप तो अपने मनोविनोद के लिए मुझे ब्रह्मा के पद पर नियुक्त करके अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे सृष्टि का कार्य करवाती हैं ॥३५॥ आपने जब महासागर में श्रीहरि की रक्षा मधु और कैटभ से किया तब वे सम्पूर्ण जगत् के पालक बने । आपने यदि प्रलयकाल में शिव का संहार नहीं किया तो फिर वे मेरे भ्रूमध्य से कैसे पैदा हुए ?॥३६॥ हे अम्ब ! आपका जन्म न तो कहीं सुना गया है और न देखा गया है । कोई भी नहीं जानता है कि आपका जन्म किससे हुआ । हे भवानि ! चूकि आप ही आदि शक्ति हैं इसलिए सम्पूर्ण वेदों ने आपका इसी तरह से वर्णन किया है ॥३७॥ आपकी ही शक्ति से सम्पन्न होकर मैं सृष्टि करने में समर्थ हूँ । आपकी ही शक्ति से सम्पन्न भगवान् विष्णु पालन करने में समर्थ हैं और आपकी ही शक्ति से सम्पन्न रुद्र जगत् का संहार करते हैं, आपकी शक्ति से रहित होकर हमलोग कुछ भी नहीं कर सकते हैं ॥३८॥ जिस तरह मैं, श्रीहरि तथा शंकरजी उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह से अन्य देवता उत्पन्न नहीं हुए हैं क्या ? किन्तु अल्पज्ञ प्राणी आपके विचित्र चरित्र के विषय में विवाद में पड़कर भ्रान्त हो जाते हैं ॥३९॥ विधि को जानने वाले पुरुषों का कहना है कि अकर्ता, गुणों से स्पष्ट होने वाले, अनीह तथा उपाधिरहित आद्यदेव ईश्वर ही आपके विनोदपूर्ण चरित्रों के द्रष्टा हैं ॥४०॥ प्रमेय प्रदार्थों का अच्छी तरह से विचार करने पर यह पता चलता है कि दृष्ट एवं अदृष्ट भेद वाले इस जगत् में आप तथा परमपुरुष से भिन्न कोई तीसरा नहीं है ॥४१॥ कभी भी वेद वाक्यों को मिथ्या नहीं मानना चाहिए, किन्तु मैं शंकायुक्त हूँ, अतएव मेरे मन में विरोध उत्पन्न होता है कि 'एकमेवाद्वितीयम्' यह वेदवाक्य जिसे एक बतलाता है, वह आप ही हैं कि वह परम पुरुष हैं । आप मेरे इस संदेह को दूर करें ॥४३॥ द्वित्व तथा एकत्व के विचार में लगा हुआ मेरा क्षुद्र मन निःसंशय नहीं हो पाता है ॥४४॥ आप अपने ही मुख से मेरे इस संदेह को दूर कर सकती हैं । मेरे सौभाग्य से ही

मामकम् । पुण्ययोगाच्च मे प्राप्ता संगतिस्तव पादयोः ॥४५॥ पुमानसि त्वं स्त्री वाऽसि वद विस्तरतो मम । ज्ञात्वाऽहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात् ॥४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **इति पृष्टा मया देवी विनयावनतेन च । उवाच वचनं श्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा ॥१॥** देव्युवाच– **यदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च । योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥२॥ आवयोरंतरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः । विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः ॥३॥ एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम् । द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके ॥४॥ यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्संजायते द्विधा । छायेवादर्शमध्ये वा प्रतिबिम्बं तथाऽऽवयोः ॥५॥ भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज । दृश्यादृश्यविभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥६॥**

मुझे आपके चरणों का सान्निध्य मिल पाया है ॥४५॥ आप पुरुष हैं या स्त्री हैं, इस बात को आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलाएँ । जिससे कि मैं परमा शक्ति आप को जानकर संसारसागर से मुक्त हो जाऊँ ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

देवी का उपदेश

ब्रह्माजी ने नारदजी को आगे बतलाया– इस तरह से विनयावनत होकर मेरे द्वारा पूछे जाने पर आद्या भगवती ने मधुर वाणी में कहा ॥१॥ **देवी ने कहा**– मुझमें तथा परमपुरुष ईश्वर में काई भी भेद नहीं हैं, जो मैं हूँ वहीं वे हैं और जो वे हैं वही मैं हूँ ॥२॥ हमदोनों में विद्यमान सूक्ष्म-भेद को जो जानता है, वही बुद्धिमान हैं, वह व्यक्ति संसार से मुक्त है । उसकी मुक्ति में किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥३॥ ब्रह्म एक है, नित्य है तथा सनातन है, किन्तु जब सृष्टि का काल आता है तो वह द्वैतभाव को प्राप्त कर जाता है ॥४॥ जैसे कोई एक ही दीपक किसी को उपाधि (अंगुल्यवष्टम्भ, काचकामलादि

नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये । सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः ॥७॥ अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥८॥ कांतिः शांतिः पिपासा च निद्रा तंद्रा जराऽजरा । विद्याऽविद्या स्पृहा वांछा शक्तिश्चाशक्तिरेव
च ॥९॥ वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृता नृता । परा मध्या च पश्यन्ती नाड्योऽहं विविधाश्च याः ॥१०॥ किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं
किमस्ति हि । सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज ॥११॥ एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे । तस्मादहं विधे चास्मिन्सर्गे वै
वितताऽभवम्॥१२॥ नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम् । भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥१३॥ गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही
वैष्णवी शिवा । वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी ॥१४॥ उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि ताम् । करोमि सर्वकार्याणि निमित्तं तं विधाय
वै ॥१५॥ जले शीतं तथा वह्नावौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे । निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथा तथा ॥१६॥ मया त्यक्तं विधे नूनं स्पंदितुं न क्षमं भवेत्।
जीवजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि ॥१७॥ अशक्तः शंकरो हंतुं दैत्यान्किल मयोज्झितः । शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम् ॥१८॥ रुद्रहीनं

दोष आदि) के कारण दो दिखायी पड़ता है, अथवा दर्पण में प्रतिविम्बित होने वाली मुख की छाया भिन्न-भिन्न दिखायी देती है, उसी तरह और उस परम
पुरुष और मुझमें भेद प्रतीत होता है ॥५॥ हे ब्रह्माजी ! भेद की प्रतीति सृष्टिकाल में सृष्टि करने के लिए होती है । यह भेद भी दो प्रकार का है– दृश्य
एवं अदृश्य ॥६॥ सृष्टि का संहार होने पर न तो मैं स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न तो नपुंसक हूँ । सृष्टि के होने पर ही स्त्री पुरुष आदि विभाग बुद्धि के
द्वारा कल्पित होते हैं ॥७॥ मैं ही बुद्धि श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा,
जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, बाँछा, शक्ति, अशक्ति हूँ ॥८-९॥ मैं ही वसा, मज्जा, त्वक्, दृष्टि, वाक् ऋत, अनृत, परा, मध्यमा, पश्यन्ती और
अनेक प्रकार की नाडियाँ हूँ । मैं क्या नहीं हूँ ? बतलाओं संसार में मुझसे रहित कौन सी वस्तु हैं ? हे कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी ! आप यह निश्चय
रखें कि सबकुछ मैं ही हूँ ॥११॥ मेरे इन निश्चित रूपों से भिन्न क्या है ? यह मुझे बतलाओ । अतएव हे ब्रह्मन् ! मैं इस सृष्टि में व्यापक हूँ ॥१२॥
निश्चित रूप से मैं सभी देवताओं में विभिन्न नामों वाली हूँ । मैं उनमें शक्ति रूप से विद्यमान रहकर पराक्रम पैदा करती हूँ ॥१३॥ मैं ही, गौरी, ब्राह्मी,
रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही तथा वासवी हूँ ॥१४॥ सभी कार्यों के उत्पन्न होने पर मैं उसमें पुरुष को प्रवेश कराती हूँ, और
उसी को निमित्त बनाकर मैं सभी कार्यों को करती हूँ ॥१५॥ मैं ही जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता, सूर्य में प्रकाश तथा चन्द्रमा में हिम, रूप से विद्यमान
हूँ ॥१६॥ हे ब्रह्माजी मेरे विना जीव समूह में तो किसी प्रकार का स्पन्दन भी नहीं हो सकता है, यह मैं आपको निश्चित रूप से बतलाती हूँ ॥१७॥ मेरे

विष्णुहीनं न वदंति जनाः किल । शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदंति नराधमम् ॥१९॥ पतितः स्खलितो भीतः शांतः शत्रुवशं गतः । अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः कोऽपि कथ्यते ॥२०॥ तद्बद्धि कारणं शक्तिर्यया त्वं च सिसृक्षसि । भविता च यथा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाऽखिलम् ॥२१॥ तथा हरिस्तथा शंभुस्तथेन्द्रोऽथ विभावसुः । शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरुणः पवनस्तथा ॥२२॥ धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तियुक्ता यदा भवेत् । अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे ॥२३॥ तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः । मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम्॥२४॥ जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम् । पवनं स्तंभयाम्यद्य यदिच्छामि तथाचरम् ॥२५॥ तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदापि कमलोद्भव । असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन ॥२६॥ कदाचित्प्रागभावः स्यात्प्रध्वंसाभाव एव वा । मृत्पिंडेषु कपालेषु घटाभावे यथा तथा ॥२७॥ अद्यात्र पृथिवी नास्ति क्व गतेति विचारणे । संजाता इति विज्ञेया अस्यास्तु परमाणवः ॥२८॥ शाश्वतं क्षणिकं शून्यं नित्यानित्यं सकर्तृकम् । अहंकाराग्रिमं चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम् ॥२९॥ गृहाणाज महतत्त्वमहंकारस्तदुद्भवः । ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथा पुरा ॥३०॥

द्वारा परित्यक्त होने पर शंकर दैत्यों को मारने में असमर्थ हो जायेंगे । संसार में शक्तिहीन मनुष्य को अत्यन्त दुर्बल कहा जाता है ॥१८॥ इसीलिए उस दुर्बल व्यक्ति को लोग रुद्र से हीन अथवा विष्णु से हीन नहीं कहता है, उस नराधम को तो लोग शक्तिहीन ही कहते हैं ॥१९॥ गिरा हुआ, लड़खड़ाया हुआ, भयभीत, शान्त तथा शत्रुओं के बीच में पड़ा हुआ व्यक्ति शक्ति हीन ही कहलाता है, रुद्रहीन उसे कोई नहीं कहता है ॥२०॥ आप जिससे सृष्टि करने का काम करते हैं, वह शक्ति मुझे ही जानो और उसी शक्ति से सम्पन्न होकर आप सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने का काम करेंगे ॥२१॥ इसी प्रकार विष्णु, शंकर, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, त्वष्टा, वरुण, पवन ये सब के सब शक्ति से युक्त ही होकर अपने-अपने कार्यों को करते हैं ॥२२॥ पृथिवी धारण करने में तब ही समर्थ होती है जब कि वह शक्ति से सम्पन्न हो जाय । अन्यथा वह परमाणु को भी धारण करने में असमर्थ होगी ॥२३॥ उसी तरह शेष, कूर्म दूसरे दिग्गज भी मुझसे युक्त ही होकर अपने कार्यों को करने में समर्थ हो सकते हैं ॥२४॥ यदि मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण विश्व का जल पी सकती हूँ, अग्नि का संहार कर सकती हूँ तथा वायु को मैं स्तम्भित कर दे सकती हूँ । हे कमलोद्भव ब्रह्माजी आपको कभी भी तत्त्वों के असद्भाव के विषय में संदेह नहीं करना चाहिए ॥२६॥ जैसे मृत्पिण्ड के रहने पर घट का प्रागभाव होता है तथा कपालों के रहने पर घट का प्रध्वंसाभाव होता है, उसी तरह॥२७॥ आज यहाँ पर पृथिवी नहीं हैं, कहाँ चली गयी इस तरह से विचार करने पर यह जानना चाहिए कि पृथिवी इस समय परमाणुओं के रूप में हो गयी है । शाश्वत, क्षणिक शून्य, नित्य, अनित्य, सकर्तृक तथा अहंकार इन सात भेदों वाली प्रकृति का विभाग किया गया है ॥२९॥ हे ब्रह्मा ! तुम महत् तत्त्व को ही लो, उससे

व्रजन्तु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्य निवसन्तु वः । स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वंतु देवभाविताः ॥३१॥ गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां
चारुहासिनीम् । महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम् ॥३२॥ श्वेतांबरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम् । वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम्॥३३॥
एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वरांगना । माऽवमंस्था विभूतिं मे मत्वा पूज्यतमां प्रियाम् ॥३४॥ गच्छ त्वमनया सार्धं सत्यलोकं बताशु वै ।
बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय सांप्रतम् ॥३५॥ लिङ्गकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा । वर्तन्ते संस्थिताः काले तान्कुरु त्वं यथा
पुरा॥३६॥ कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत् । स्वभावस्वगुणैर्युक्तं पूर्ववत्सचराचरम् ॥३७॥ माननीयस्त्वया विष्णुः पूजनीयश्च
सर्वदा । सत्त्वगुणप्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा ॥३८॥ यदा यदा हि कार्यं वो भविष्यति दुरत्ययम् । करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा
हरिः॥३९॥ तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः । दानवानां विनाशं वै करिष्यति जनार्दनः ॥४०॥ भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यति महाबलः।
समुत्पाद्य सुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम् ॥४१॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः । यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः॥४२॥
मन्त्रामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च । सदा तृप्ताश्च सन्तुष्टा भविष्यध्वं सुराः किल ॥४३। शिवश्च माननीयो वै सर्वथा यत्तमोगुणः । यज्ञकार्येषु

अहंकार की उत्पत्ति होती है, अहंकार से सभी भूतों की रचना पूर्वकल्प के ही समान करो ॥३०॥ अब आपलोग जायँ, अपने-अपने निवास स्थान की रचना
करके उसमें निवास करते हुए प्रारब्ध के अनुसार प्रेरणा प्राप्त करके अपना-अपना कार्य करें ॥३१॥ हे ब्रह्माजी ! आप इस सुन्दर रूप वाली तथा
चारुहासिनी रजोगुण से युक्त महासरस्वती नाम की श्रेष्ठ शक्ति को स्वीकार करें ॥३२॥ ये नित्य ही श्वेत वस्त्र को धारण करती हैं, इनका रूप दिव्य है,
ये दिव्य आभूषणों को धारण करने वाली तथा श्रेष्ठ आसन पर बैठने वाली हैं । ये आपका मनोविनोद करती हुई सदा आपके साथ रहेंगी ॥३३॥ ये वरांगना
आपकी नित्य सहचरी होंगी । मेरी इस पूज्यतमा तथा प्रियविभूति का आप कभी अपमान नहीं करेंगे ॥३४॥ आप इनके साथ सत्यलोक में जायँ और मेरे
महत् तत्त्व रूपी बीज के द्वारा चार प्रकार की सृष्टि करें ॥३५॥ जीवों के प्राचीन कर्म और लिङ्गशरीर पहले से ही विद्यमान हैं, उन सबों को आप पहले
के ही समान कर दीजिए ॥३६॥ आप पहले के ही समान सम्पूर्ण सचराचर जगत् को काल, कर्म तथा स्वभाव नामक साधनों के द्वारा उनके स्वभाव तथा
गुणों से युक्त करें ॥३७॥ आप सत्त्वगुण से सम्पन्न होने के कारण विष्णु को अधिक मानेंगे और उनकी पूजा करेंगे ॥३८॥ जब-जब आपका कार्य कठिन
होगा तब-तब श्रीहरि पृथिवी पर अवतार ग्रहण करेंगे ॥३९॥ उस समय तिर्यग् योनि में अथवा मनुष्य योनि में अवतीर्ण होकर जनार्दन दानवों का
विनाश करेंगे ॥४०॥ ये शंकरजी आपके सदा सहायक बने रहेंगे । आप सभी देवताओं की सृष्टि करके अपने मनोऽनुकूल विहार करें ॥४१॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय

सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥४४॥ यदा पुनः सुराणां वै भयं दैत्याद्भविष्यति । शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यंति सुविग्रहाः ॥४५॥ वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही सदाशिवा । एताश्चान्याश्च कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥४६॥ नवाक्षरमिमं मंत्रं बीजध्यानयुतं सदा । जपन्सर्वाणि कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव ॥४७॥ मन्त्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहि महामते । हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये ॥४८॥ इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता । विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥४९॥ सदा वक्षःस्थले स्थानं भविता नात्र संशयः । क्रीडार्थं ते मया दत्ता शक्तिः सर्वार्थदा शिवा ॥५०॥ त्वयेयं नावमन्तव्या माननीया च सर्वदा । लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगो वै विहितो मया ॥५१॥ जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया । अविरोधेन सङ्गेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा ॥५२॥ त्वं च वेधाः शिवस्त्वेते देवा मद्गुणसम्भवाः । मान्याः पूज्याश्च सर्वेषां भविष्यन्ति न संशयः ॥५३॥ ये विभेदं करिष्यन्ति मानवा मूढचेतसः । निरयं ते गमिष्यन्ति विभेदान्नात्र संशयः ॥५४॥ यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः । एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः ॥५५॥ तथैव द्रुहिणो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा । अपरो गुणभेदोऽस्ति

तथा वैश्य अनेक प्रकार के विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा आपलोगों का यजन करेंगे ॥४२॥ सभी यज्ञों में मेरे नाम का उच्चारण करने मात्र से आप सभी देवता सन्तुष्ट और तृप्त हो जायेंगे ॥४३॥ तमोगुण से सम्पन्न शिव का भी सदा सम्मान करना चाहिए और सभी यज्ञकर्मों में उनका पूजन करना चाहिए ॥४४॥ जब कभी भी दैत्यों के द्वारा देवताओं के लिए भय उत्पन्न होगा उस समय मेरी शक्तियाँ उत्पन्न होकर उस भय को विनष्ट कर देंगी ॥४५॥ वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, शिवा ये मेरी सभी शक्तियाँ आपकी सहायता करेंगी; आप जाकर अपना कार्य शीघ्र प्रारम्भ कर दें ॥४६॥ बीज तथा ध्यान के साथ नवाक्षर मन्त्र का जप करते हुए आप कामों को करें ॥४७॥ हे महामते ! तुम इसे सर्वोत्तम मन्त्र को जानो और अपने सभी अभिलषित अर्थों की प्राप्ति के लिए सदा इसे अपने हृदय में धारण करो ॥४८॥ सुन्दर मुसुकान वाली जगन्माता मुझसे इस तरह से कहकर श्रीहरि से कहने लगीं, हे विष्णो ! आप इस मनोहर महालक्ष्मी नामक शक्ति को लेकर जायँ ॥४९॥ इसका स्थान सदा आपके वक्षःस्थल में होगा । तुम्हें क्रीडा करने के लिए मैंने इस कल्याणकारिणी शक्ति को तुम्हें प्रदान किया है ॥५०॥ आप इसका कभी अपमान नहीं करेंगे इसका सदा आप सम्मान करेंगे । आपका यह मैंने लक्ष्मीनारायण नामक योग बनाया है ॥५१॥ देवताओं के जीवन के लिए मैंने अनेक प्रकार के यज्ञों को बनाया है आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश परस्पर में सदा विना किसी विरोध के ही रहेंगे ॥५२॥ मेरे सद्गुण से समुद्भूत आप ब्रह्मा और शिव ये तीनों देवता सबों के लिए मान्य तथा पूज्य होंगे । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥५३॥ इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो मूढ मनुष्य अपने अज्ञान के कारण आप तीनों में भेद मानेंगे वे अपनी भेदबुद्धि के ही कारण नरकगामी होंगे ॥५४॥ जो

शृणु विष्णो ब्रवीमि ते ॥५६॥ मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिन्तने । गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ ॥५७॥ लक्ष्म्या सह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा । रजोगुणयुतो भूत्वा विहरस्वानया सह ॥५८॥ वाग्बीजं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम् । मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्त मद्दत्तः परमार्थदः ॥५९॥ गृहीत्वा जप तं नित्यं विहरस्व यथासुखम् । न ते मृत्युभयं विष्णो न कालप्रभवं भयम् ॥६०॥ यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः । संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वं चराचरम् ॥६१॥ भवन्तोऽपि तदा नूनं मयि लीना भविष्यथ । स्मर्तव्योऽयं सदा मन्त्रः कामदो मोक्षदस्तथा ॥६२॥ उद्गीथेन च संयुक्तः कर्तव्यः शुभमिच्छता । कारयित्वाऽथ वैकुण्ठं वस्तव्यं पुरुषोत्तम ॥६३॥ विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम् । ब्रह्मोवाच– **इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा ॥६४॥ निर्गुणा शङ्करं देवमवोचदमृतं वचः ।** देव्युवाच– **गृहाण हर गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम् ॥६५॥ कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम् । मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ ॥६६॥ विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ । तपस्तप्तं तथा कर्तुं स्मरणं परमात्मनः ॥६७॥ सर्व सत्त्वगुणः शान्तो गृहीतव्यः सदाऽनघ । सर्वथा त्रिगुणा**

शिव हैं वे ही श्रीहरि हैं, और जो श्रीहरि हैं वे ही शिव हैं । इन दोनों में भेद बतलाने वाला मनुष्य नरक जायेगा ॥५५॥ इन्ही के समान ब्रह्मा को भी मानना चाहिए । इस विषय में कोई भी विचार नहीं करना चाहिए । हे विष्णु भगवन् ! आप तीनों जो गुणों का भेद है उसे मैं बतलाती हूँ ॥५६॥ परमात्मतत्त्व के चिन्तन में आपका प्रधान गुण सत्त्वगुण होना चाहिए और रजोगुण तथा तमोगुण आपमें अप्रधान होंगे ॥५७॥ अनेक प्रकार के विकारों के उत्पन्न होने पर आप रजोगुणी होकर लक्ष्मी के साथ विहार करेंगे ॥५८॥ हे रमाकान्त ! वाग्बीज, कामराज और माया बीज ये तीनों जो मैंने आपको प्रदान किया है वे परमार्थ प्रदान करने वाले हैं ॥५९॥ उनको ग्रहण करके सदा उनका जप करते रहें और अपने मनोऽनुकूल विहार करें । आपको न तो मृत्यु का भय होगा और न तो कालजन्य भय होगा ॥६०॥ जबतक मेरा बिहार होता रहेगा तब तक यह संसार बना रहेगा । जब मैं संसार का संहार कर दूँगी तो आप तीनों मुझमें लीन हो जायेंगे । आपलोगों को सर्वदा इस मोक्ष तथा भोग प्रदान करने वाले मन्त्र का जप करते रहना चाहिए ॥६१-६२॥ कल्याणकामी को इस मंत्र का जप ओम् लगाकर करना चाहिए । हे पुरुषोत्तम ! आप वैकुण्ठलोक का निर्माण करके उसमें निवास करें ॥६४॥ मुझ सनातनी देवी का स्मरण करते हुए अपनी इच्छा के अनुसार आप विहार करें । **ब्रह्माजी ने कहा–** इस तरह से वासुदेव से कहकर उस त्रिगुणा, निर्गुणा परा प्रकृति ने **शंकरजी से कहा–** हे हर ! आप मनोहरा, गौरी नामक महाकाली शक्ति को स्वीकार करें ॥६४-६५॥ आप कैलास का निर्माण करके अपने मनोऽनुकूल विहार करें । आप में मुख्य गुण तमोगुण होगा और सत्त्वगुण एवं रजोगुण गौण रूप से होगें ॥६६॥ आप असुरों का विनाश करने के लिए रजोगुण एवं

यूयं सृष्टिस्थित्यन्तकारकाः ॥६८॥ एभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवात्र कुत्रचित् । वस्तुमात्रं तु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत् ॥६९॥ दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति । निर्गुणः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन ॥७०॥ सगुणा निर्गुणा चाहं समये शंकरोत्तमा । सदाऽहं कारणं शम्भो न च कार्यं कदाचन ॥७१॥ सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषांतिके । महत्तत्त्वमहङ्कारो गुणाः शब्दादयस्तथा ॥७२॥ कार्यकारणरूपेण संसरन्ते त्वहर्निशम् । समुद्भूतस्त्वहङ्कारस्तेनाहं कारणं शिवा ॥७३॥ अहङ्कारश्च मे कार्यं त्रिगुणोऽसौ प्रतिष्ठितः । अहङ्कारान्महत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता ॥७४॥ महत्तत्त्वं हि कार्यं स्यादहङ्कारो हि कारणम् । तन्मात्राणि त्वहंकारादुत्पद्यंते सदैव हि ॥७५॥ कारणं पञ्चभूतानां तानि सर्वसमुद्भवे । कर्मेन्द्रियाणि पंचैव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च ॥७६॥ महाभूतानि पंचैव मनः षोडशमेव च । कार्यं च कारणं चैव गणोऽयं षोडशात्मकः ॥७७॥ परमात्मा पुमानाद्यो न कार्यं न च कारणम् । एवं समुद्भवः शंभो सर्वेषामादिसंभवे ॥७८॥ संक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः। व्रजंत्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः ॥७९॥ स्मरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमे स्थिते । स्मर्तव्याऽहं सदा देवा परमात्मा सनातनः ॥८०॥

तमोगुण से विहार करें । हे अनघ शर्व ! तपस्या करने के लिए और परमात्मा का स्मरण करने के लिए शान्त सत्त्वगुण का ग्रहण करना चाहिए । सृष्टि, स्थिति तथा विनाश करने वाले आपलोग पूर्णरूप से त्रिगुण रहेंगे ।।६७-६८।। इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें ये त्रिगुण न हों । संसार में जो कोई भी वस्तु है वह त्रिगुण ही है ।।६९।। संसार की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं हुई और न होगी जो दृश्य भी हो और निर्गुण भी हो । निर्गुण तो परमात्मा हैं किन्तु वे कभी भी दृश्य नहीं होते हैं ।।७०।। मैं ही समय आने पर सगुण एवं निर्गुण होती रहती हूँ । किन्तु हमेशा मैं कारण स्वरूपा ही रहती हूँ कार्य स्वरूपा कभी भी नहीं होती हूँ ।।७१।। कारण स्वरूपा होने के कारण मैं सगुण हूँ और परंपुरुष परमात्मा के सन्निकट मैं निर्गुण रूप से रहती हूँ । महत् तत्त्व, अहंकार तथा शब्द आदि (स्पर्श, रूप, रस तथा गंध) गुण ।।७२।। दिन-रात कार्य-कारण रूप से परिवर्तित होते रहते हैं । महत् तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हैं, और मैं उस महत् तत्त्व का कारण हूँ ।।७३।। त्रिगुण अहंकार मेरा कार्य है । उस अहंकार से महत् तत्त्व उत्पन्न होता है उसी को बुद्धि कहते हैं ।।७४।। महत् तत्त्व ही कार्य है और अहंकार कारण है । सदैव अहंकार से तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं ।।७५।। सम्पूर्ण प्रपञ्च की उत्पत्ति के समय तन्मात्राएँ ही पञ्चभूतों की उत्पत्ति के कारण बन जाती हैं । कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ) पाँच है और ज्ञानन्द्रियाँ (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण) भी पाँच ही हैं ।।७६।। महाभूत (अकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी) भी पाँच हैं और छठी ज्ञानेन्द्रिय मन है । इन सोलहों का समुदाय कार्यरूप तथा कारणरूप दोनों हैं ।।७७।। परंपुरुष परमात्मा न तो किसी का कार्य हैं और न तो किसी का कारण । हे शम्भो ! आदि सृष्टि में इसी तरह

उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम् । ब्रह्मोवाच– **इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्दत्त्वा शक्तीः सुसंस्कृतान् ॥८१॥ विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च । महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः ॥८२॥ स्थलांतरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम् । चिंतयंतः स्वरूपं यत्प्रभावं परमाद्भुतम् ॥८३॥ विमानं तत्समासाद्य संरूढास्तत्र वै त्रयः । न द्वीपोऽसौ न सा देवी सुधासिंधुस्तथैव च । पुनर्दृष्टं विमानं वै तत्रास्माभिर्न चान्यथा ॥८४॥ आसाद्य तस्मिन्वितते विमाने प्राप्ता वयं पंकजसन्निधौ च । महार्णवे यत्र हतौ दुरत्ययौ मुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ॥८५॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोध्यायः ॥६॥

से सबों की उत्पत्ति होती है ॥७८॥ इस तरह से मैंने आपलोगों को संक्षेप में उत्पत्ति का क्रम बतलाया । अब आपलोग इस विमान में बैठकर जायँ और अपना-अपना कार्य करें ॥७९॥ जब आपलोगों पर विपत्ति आयेगी उस समय स्मरण करते ही मैं दर्शन दूँगी । हे देवों ! आपलोग मुझे तथा सनातन परमात्मा का स्मरण करते रहें ॥८०॥ हमदोनों का स्मरण करने से आप लोगों के कार्यों की सिद्धि अवश्य होगी । **ब्रह्माजी ने कहा–** इस तरह से संस्कार सम्पन्न शक्तियों को प्रदान करके देवी ने हमलोगों को वहाँ से विदा किया ॥८१॥ विष्णु को महालक्ष्मी, शिव को महाकाली तथा मुझको महासरस्वती नामक शक्ति को प्रदान करके हमलोगों को देवी ने भेज दिया ॥८२॥ दूसरे स्थान पर आते ही हमलोग पुरुष हो गये । हमलोग महामाया के उस अद्भुत स्वरूप तथा प्रभाव का स़्मरण करने लगे ॥८३॥ हमलोगों के विमान में बैठते ही न तो वह सुधासिंधु रहा, न महामाया देवी रहीं और न तो वह द्वीप रहा । वहाँ पर हमलोगों ने विमान को छोड़कर कुछ भी नहीं देखा ॥८४॥ हमलोग उस विस्तृत विमान म़ें बैठकर पुनः उसी स्थान पर आ गये जहाँ वह कमल था और भगवान् विष्णु ने मधु एवं कैटभ नामक दैत्यों का वध किया था ॥८५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **एवंप्रभावा सा देवी मया दृष्टाऽथ विष्णुना । शिवेनापि महाभाग देव्यः सर्वाः पृथक्पृथक् ॥१॥** व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः ॥२॥** नारद उवाच– **पुमानाद्योऽविनाशी यो निर्गुणोऽच्युतिरव्ययः । दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह ॥३॥ त्रिगुणा वीक्षिता शक्तिर्निर्गुणा कीदृशी पितः । तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्य च पद्मज ॥४॥ यदर्थं च मया तप्तं श्वेतद्वीपे महातपः । दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः ॥५॥ परमात्मा न संप्राप्तो मयाऽसौ दृष्टिगोचरः । पुनः पुनस्तपस्तीव्रं कृतं तत्र प्रजापते ॥६॥ भवता सगुणा शक्तिर्दृष्टा तात मनोरमा । निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तो वदस्व मे ॥७॥** व्यास उवाच– **इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः । उवाच वचनं तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः ॥८॥** ब्रह्मोवाच– **निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद्दृष्टिगोचरम् । दृश्यं च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम् ॥९॥ निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथा पुमान् । ज्ञानगम्यौ मुनीनां तु भावनीयौ तथा पुनः ॥१०॥ अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ । विश्वासेनाभिगम्यौ तौ नाविश्वासेन कर्हिचित् ॥११॥ चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम् । तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु**

तत्त्वों का निरूपण

ब्रह्माजी ने नारदजी को बतलाया– हे महाभाग ! मैंने, भगवान् विष्णु ने तथा शंकरजी ने उस महाप्रभाव वाली देवी का दर्शन किया और पृथक्-पृथक् देवियों का भी दर्शन किया ॥१॥ **व्यासजी ने कहा**– अपने पिता श्रीब्रह्माजी की इस प्रकार की वाणी सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी ने बड़ी ही प्रसन्नता के साथ ब्रह्माजी से कहा ॥२॥ **नारदजी ने कहा**– हे पितामह ! आपने अविनाशी, निर्गुण तथा अच्युत एवं अव्यय पुरुष का दर्शन करके जो अनुभव किया उसे बतलाएँ ॥३॥ आपने त्रिगुण तथा निर्गुण शक्ति को कैसे देखा ? हे ब्रह्माजी आप उस पुरुष का भी स्वरूप मुझे बतलाएँ ॥४॥ हे ब्रह्माजी ! मैने जिस लिए श्वेतद्वीप में कठोर तपस्या की और क्रोधरहित, सिद्ध तपस्वियों का दर्शन किया ॥५॥ किन्तु मैं परमात्मा का दर्शन नहीं प्राप्त किया । फिर मैंने वहाँ पर बार-बार तीव्र तपस्या की ॥६॥ हे तात ! आपने मनोरम सगुण शक्ति का दर्शन किया निर्गुणा शक्ति तथा निर्गुण पुरुष कैसे हैं ? मुझे आप बतलायें॥७॥ **व्यासजी ने कहा**– नारदजी के इस तरह से कहने पर ब्रह्माजी ने मुस्कुराते हुए कहना प्रारम्भ किया ॥८॥ **ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा**– हे मुने! निर्गुण का रूप नहीं दिखायी देता है क्योंकि जो दृश्य होता है, वह नश्वर होता है, जो रूप रहित है वह कैसे दिखायी देगा ॥९॥ निर्गुणा शक्ति और निर्गुण पुरुष दोनों दुर्गम हैं मुनिलोग अपनी भावना के द्वारा उसे जानने का प्रयास करते हैं, वे ज्ञानगम्य हैं ॥१०॥ तुम उस प्रकृति और पुरुष को आदि और

नारद ॥१२॥ तं च तां च महाभाग व्यापकौ विद्धि सर्वगौ । ताभ्यां विहीनं संसारे न किंचिद्वस्तु विद्यते ॥१३॥ तौ विचिंत्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाऽव्ययौ । एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ ॥१४॥ या शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता । अन्तरं नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद ॥१५॥ अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्सांगाँश्च नारद । न जानाति तयोः सूक्ष्ममंतरं विरतिं विना ॥१६॥ अहंकारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजंगमम् । कथं तद्रहितं पुत्र भवेत्कल्पशतैरपि ॥१७॥ निर्गुणं सगुणः पुत्र कथं पश्यति चक्षुषा । सगुणं च महाबुद्धे चेतसा संविचारय॥१८॥ पित्तेनाच्छादिता जिह्वा चक्षुश्च मुनिसत्तम । कटु पीतं विजानाति रसं रूपं न तत्तथा ॥१९॥ गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम् । अहंकारोद्भवं तच्च तद्विहीनं कथं भवेत् ॥२०॥ यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः । तं पश्यति तदा चित्ते यदाऽहंकारवर्जितः॥२१॥ नारद उवाच– **स्वरूपं देवदेवेश त्रयाणामेव विस्तरात् । गुणानां यत्स्वरूपोऽस्ति ह्यहंकारस्त्रिरूपकः ॥२२॥ सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च तथापरः ।**

अन्त से रहित जानो । उनको विश्वास के ही द्वारा जाना जा सकता है अविश्वास के द्वारा नहीं ॥११॥ सभी भूतों में चैतन्य (ज्ञान) है, हे नारद ! उसे परमात्मा स्वरूप जानो अनेक प्रकार के भावपदार्थों में व्यापक तेज ही परमात्मा का रूप है ॥१२॥ हे महाभाग ! उस परमात्मा तथा महामाया को सबों में व्यापक जानो । उन दोनों से रहित संसार में कोई भी वस्तु नहीं है ॥१३॥ उनके स्वरूप में कभी भी कोई विकार नहीं आता है । उन दोनों को परस्पर में मिले हुए जानना चाहिए । दोनों का एक ही शरीर है, वे ज्ञान स्वरूप हैं और निर्मल हैं ॥१४॥ जो शक्ति हैं वही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं वही शक्ति हैं । दोनों में होने वाले सूक्ष्मभेद को कोई भी नहीं जान सकता है ॥१५॥ हे नारद ! सभी शास्त्रों तथा साङ्गवेदों का अध्ययन करके भी मनुष्य में जब तक विरक्ति नहीं आती है, तब तक उन दोनों में विद्यमान सूक्ष्म अन्तर का ज्ञान नहीं हो पाता है ॥१६॥ हे पुत्र ! यह सारा स्थावर जंगमात्मक जगत् अहंकारजन्य है, सैकड़ों कल्पों में भी कोई अहंकार रहित कैसे हो सकता है ?॥१७॥ हे पुत्र ! कोई सगुण व्यक्ति निर्गुणतत्त्व को अपने नेत्रों से कैसे देख सकता है ? अतएव तुम अपने मन में सगुण का ही विचार करो ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसकी जिह्वा पित्त से अच्छादित है, वह कटु रस का ही आस्वादन कर पाता है, और जिसके नेत्र पित्त से आच्छादित होते हैं, वह केवल पीले रंग को ही देख पाता है । उसे न तो अन्य रस की प्रतीति होती है और उसे अन्य रूप तथा रस की प्रतीति नहीं होती है ॥१९॥ गुणों से आच्छन्न चित्त निर्गुण परमात्मा को कैसे जान सकता है ? अहंकार से उत्पन्न होने वाला मन अहंकार से रहित कैसे हो सकता है ?॥२०॥ जबतक वह गुणों से रहित नहीं होगा तब तक निर्गुण परमात्मा का दर्शन कैसे हो सकता है ? मनुष्य परमात्मा का अपने मन में तब दर्शन कर पाता है जब कि वह अहंकार से रहित हो जाय ॥२१॥ **नारदजी ने कहा–** हे देवाधिदेव ! आप तीनों गुणों के स्वरूप का विस्तार

विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम ॥२३॥ यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वद मे प्रभो । गुणानां लक्षणान्येव विततानि विभागशः ॥२४॥
ब्रह्मोवाच— **त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद्ब्रवीमि तवानघ । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथापरा ॥२५॥ सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ति राजसस्य क्रियात्मिका।**
द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥२६॥ तेषां कार्याणि वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः । तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः ॥२७॥
रूपं रसंच गंधश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते । शब्दैकगुणमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा ॥२८॥ सुरूपैकगुणोऽग्निश्च जलं रसगुणात्मकम् । पृथ्वी
गंधगुणा ज्ञेया सूक्ष्माण्येतानि नारद ॥२९॥ दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानि वै । तामसाहंकारजः सः स्यात्सर्गस्तदनुवृत्तिकः ॥३०॥
राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्व मे । श्रोत्रं त्वग्रसना चक्षुर्घ्राणं चैव च पंचमम् ॥३१॥ ज्ञानेंद्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
वाक्पाणिपादपायुश्च गुह्यांतानि च पंच वै ॥३२॥ प्राणोऽपानश्च व्यानश्च समानोदानवायवः । पंचदश मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते ॥३३॥
साधनानि किलैतानि क्रियाशक्तिमयानि च । उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते ॥३४॥ ज्ञानशक्तिसमायुक्ताः सात्त्विकाच्च समुद्भवाः । दिशो

पूर्वक वर्णन कीजिये । अहंकार भी तीन रूपों वाला है सात्त्विक, राजस एवं तामस । इन तीनों का भी स्वरूप आप बतलाएँ ॥२२-२३॥ हे प्रभो ! आप हमें उस ज्ञान का उपदेश दें जिससे कि मैं मुक्त हो जाऊँ । आप भेदपूर्वक गुणों का लक्षण विस्तार से बतलाएँ ॥२४॥ **ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा—** हे निष्पाप नारद ! इन तीनों गुणों की जो ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा अर्थशक्ति हैं, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ ॥२५॥ सत्त्वगुण की ज्ञानशक्ति, रजोगुण की क्रियाशक्ति तथा तमोगुण की अर्थशक्ति या द्रव्यशक्ति बतलायी गयी है ॥२६॥ हे नारद मैं उन शक्तियों के कार्यों को बतला रहा हूँ उसे आप सुनें । तामसी द्रव्यशक्ति से शब्द स्पर्श रूप, रस तथा गन्ध की पञ्च तन्मात्राओं (शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा एवं गन्धतन्मात्रा) की उत्पत्ति होती है । आकाश में केवल शब्द नामक गुण होता है । वायु में स्पर्श नामक गुण होता है ॥२७-२८॥ तेज का अपना गुण रूप है । जल रस नामक गुण वाला होता है । पृथिवी में गन्ध नामक गुण होता है ये सभी गुण सूक्ष्म हैं ॥२९॥ पञ्च महाभूत तथा पाँच उनके गुण ये दशो द्रव्यशक्ति से युक्त होते हैं । तामसाहंकार का अनुवर्तन करके ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है ॥३०॥ राजसी क्रियाशक्ति से उत्पन्न होने वाले कार्यों को तुम सुनो । श्रोत्र, त्वक्, रसना, चक्षु, घ्राण ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान ये पञ्च वायु ये पन्द्रहो समुदित रूप से राजससर्ग कहलाते हैं ॥३१-३३॥ ये पन्द्रहो क्रियाशक्ति से युक्त होते हैं तथा साधन स्वरूप हैं । इन पन्द्रहों का उपादान कारण चैतन्य शक्ति है ॥३४॥ सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले कार्य ज्ञानशक्ति से युक्त होते हैं, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण तथा दोनों अश्विनीकुमार ज्ञानेन्द्रियों

वायुश्च सूर्यश्च वरुणश्चाश्विनावपि ॥३५॥ ज्ञानेंद्रियाणां पंचानां पंचाधिष्ठातृदेवताः । चंद्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्च चतुर्थकः ॥३६॥ इत्यन्तःकरणाख्यस्य बुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम् । चत्वार्येव तथा प्रोक्ताः किलाधिष्ठातृदेवताः ॥३७॥ मनसा सह चैतानि नूनं पंचदशैव तु । सात्त्विकस्य तु सर्गोऽयं सात्त्विकाख्यः प्रकीर्तितः ॥३८॥ स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः । ज्ञानरूपं निराकारं निदानं तत्प्रचक्षते ॥३९॥ साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते । शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्य प्रकीर्तितम् ॥४०॥ मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्यभिधीयते । स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥४१॥ शृणु नारद यत्नेन यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यते । तन्मात्राणि पुरोक्तानि भूतसूक्ष्माणि यानि वै ॥४२॥ पञ्चीकृत्य तु तान्येव पञ्चभूतसमुद्भवः । पञ्चीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल ॥४३॥ प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि । कल्पयेच्च तथा तद्वै यथा भवति चोदकम् ॥४४॥ शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक्पृथक् । उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमये ततः ॥४५॥ तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते । चैतन्यस्य प्रवेशात्तु तदाऽहमिति संशयः ॥४६॥ प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाभिमानतः । आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते॥४७॥ घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते । वृद्धिं प्राप्य गुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः ॥४८॥ आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः । शब्दस्पर्शौ

के अधिष्ठितृ देवता हैं । चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र तथा क्षेत्रज्ञ (जीव) ये चारो बुद्धि आदि (मन, अहंकार तथा चित्त) अन्त:करणों के अधिष्ठातृ देवता बतलाये गये हैं ॥३५-३७॥ इस तरह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा पञ्च वायु कुल मिलाकर सोलह सात्त्विक सर्ग कहे गये हैं ॥३८॥ परमात्मा के दो रूप हैं– स्थूल तथा सूक्ष्म । ज्ञानरूप अर्थात् साकार तथा निराकर उसका कारण बतलाया जा रहा है ॥३९॥ साधक के ध्यान में परमात्मा का स्थूल रूप ही उपकारी होता है । इसे ही पुरुष का सूक्ष्म शरीर कहा गया है ॥४०॥ मेरा शरीर सूत्र कहलाता हैं । उसे परमात्मा का स्थूल शरीर कहलाता हैं॥४१॥ हे नारद ! इसे सावधानी से सुनो । इसका श्रवण करने से जीव की मुक्ति हो जाती है । पहले मैंने जिन भूत सूक्ष्मों को तन्मात्रा कहा है ॥४२॥ उन्हीं के पञ्चीकरण से पञ्चभूतों की उत्पत्ति होती है । अब मैं तुम्हें पञ्चीकरण बतलाता हूँ उसे तुम सुनो ॥४३॥ पहले रस तन्मात्रा जिससे जल उत्पन्न होता है, उसकी मन में दो भागों की कल्पना करे ॥४४॥ इसी तरह अवशिष्ट भूतों की तन्मात्राओं के भी दो-दो भागों की पृथक्-पृथक् कल्पना मन में करे । रसतन्मात्रा के दो आधे भागों में से एक को जल में मिला दे । फिर अन्य चार भूतों के भी आधे भाग को चार-चार भागों में विभक्त करके उनके एक-एक भाग को जल में मिला दे । यही पञ्चीकृत जल हुआ (इसी तरह अन्य भूतों का भी पञ्चीकरण होता है) ॥४५॥ उन पञ्च महाभूतों के अधिष्ठाता होने के कारण उनमें चैतन्य का प्रवेश हो जाता है । चैतन्य का प्रवेश हो जाने पर उसमें अहंम् इस रूप से संशय होता है ॥४६॥ वह अहंवृत्ति जब स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगती

च वायोश्च द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ ॥४९॥ अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः । शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्य च ॥५०॥ स्पर्शशब्दरसा रूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः । एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुच्यते ॥५१॥ सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्मांडांशसमुद्भवाः । चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः ॥५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच– **सर्गोऽयं कथितस्तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना । गुणानां रूपसंस्थां वै शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥१॥ सत्त्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः । आर्जवं च तथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः ॥२॥ अनुकम्पा तथा लज्जा शांतिः सन्तोष एव च । एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च**

है, तब उसमें अभिमान युक्त चैतन्य, आदिनारायणदेव अथवा भगवान् कहलाता है ॥४७॥ जब यह पञ्चीकरण प्रक्रिया सुदृढ़ हो जाती है और उसमें भूतों का विभाग स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगता है तो उन भूतों की वृद्धि एक-एक गुणों की वृद्धि के द्वारा होती है ॥४८॥ आकाश में केवल शब्द नामक गुण रहता है । उसमें दूसरे गुण नहीं होते हैं । वायु के दो गुण बतलाये गये हैं, शब्द तथा स्पर्श ॥४९॥ तेज में तीन गुण होते हैं, शब्द स्पर्श और रूप । जल के चार गुण होते हैं शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस ॥५०॥ पृथिवी में पाँच गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध । इस तरह से मिश्रण के ही योग से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है ॥५१॥ ब्रह्माण्ड के अंश से उत्पन्न होने वाले समस्त जीवों की जाति की संख्या चौरासी लाख बतलायी गयी है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

गुणों का स्वरूप

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा– तुमने जो पूछा था उस सृष्टि का वर्णन मैंने किया, अब सावधानी से गुणों के रूप तथा उनके संस्थाओं को तुम सुनो॥१॥ सत्त्वगुण प्रेमात्मक होता है । सुख से प्रेम की उत्पत्ति होती है । ऋजुता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धृति, अनुकम्पा, लज्जा, शान्ति तथा सन्तोष इन

जायते निश्चला सदा ॥३॥ श्वेतवर्णं तथा सत्त्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा । सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यमसच्छ्रद्धानिवारकम् ॥४॥ सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथाऽपरा । श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥ रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम् । अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता॥६॥ प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च । उत्कंठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी ॥७॥ मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते । प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः ॥८॥ कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत । आलस्यं च तथाऽज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा॥९॥ विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च । वैषम्यं वाऽतिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम् ॥१०॥ प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः। तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम् ॥११॥ सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियंतव्यं रजः सदा । संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभमिच्छता ॥१२॥ अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यंति परस्परम् । तथाऽन्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठंति निराश्रयाः ॥१३॥ सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा। मिलिताश्चसदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः ॥१४॥ अन्योन्यमिथुनाच्चैव विस्तारं कथयाम्यहम् । शृणु नारद यज्ज्ञात्वा मुच्यते भवबंधनात्॥१५॥

दश लक्षणो से निश्चल सत्त्वगुण की प्रतीति होती है ॥२-३॥ सत्त्वगुण का वर्ण श्वेत है । उससे धर्म में प्रेम होता है । उससे सदासत्श्रद्धा की उत्पत्ति होती है और असत् श्रद्धा की निवृत्ति होती है ॥४॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने तीन प्रकार की श्रद्धाओं को बतलाया है सात्त्विकीश्रद्धा, राजसीश्रद्धा और तामसी श्रद्धा॥५॥ रजोगुण का वर्ण लाल बतलाया गया है । यह अद्भुत अप्रीति को उत्पन्न करता है । यह निश्चित है कि अप्रीति दुःख के संयोग से उत्पन्न होती है ॥६॥ प्रद्वेष, द्रोह, मत्सर, स्तम्भ, उत्कण्ठा, निद्रा, राजसीश्रद्धा, मानमद तथा गर्व ये रजोगुण से उत्पन्न होते है । विचक्षण पुरुषों को इन्ही लक्षणों से रजोगुण की पहचान करनी चाहिए ॥७-८॥ तमोगुण का वर्ण काला बतलाया गया है । यह मोह, विषाद, आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कृपणता, कुटिलता, रोष, विषमता, अत्यधिक नास्तिकता तथा दूसरों में विद्यमान दोषों के चिन्तन को उत्पन्न करता है ॥९-१०॥ विद्वानों को इन्हीं लक्षणों से तमोगुण को पहचानना चाहिए । तामसीश्रद्धा से ही दूसरों को संतप्त करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ॥११॥ अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने सत्त्व का प्रकाशन करे, रजोगुण का नियन्त्रण करे और जितना हो सके उतना अपने तमोगुण को विनष्ट करे ॥१२॥ ये तीनों गुण परस्पर में विरोधी अतएव अपने से भिन्न दो गुणों को अभिभूत करके कोई एक गुण उद्रिक्त होता है । ये तीनों एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और कभी भी निराश्रित नहीं रहते हैं ॥१३॥ अकेले न तो सत्त्वगुण रहता है, न रजोगुण और न तमोगुण । वे सब एक दूसरे से मिश्रित रहते हैं, अतएव इन तीनों को अन्योन्याश्रय कहा गया है ॥१४॥ ये तीनों गुण अन्योन्यमिथुन हैं । इन सबों का विस्तार मैं बतलाता हूँ । नारद ! उसे सुनो । उसका श्रवण करने

संदेहोऽत्र न कर्तव्यो ज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः । ज्ञातं तदनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति ॥१६॥ श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते । संस्कारानुभवाच्चैव
परिज्ञानं न जायते ॥१७॥ श्रुतं तीर्थं पवित्रं च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी । निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टं चैव यथाश्रुतम् ॥१८॥ स्नातस्तत्र कृतं कृत्यं दत्तं
दानं च राजसम् । स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुणसमावृतः ॥१९॥ रागद्वेषान्न निर्मुक्तः कामक्रोधसमावृतः । पुनरेव गृहं प्राप्तो यथापूर्वं तथा
स्थितः ॥२०॥ श्रुतं च नानुभूतं वै तेन तीर्थं मुनीश्वर । न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद ॥२१॥ निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम।
कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम् ॥२२॥ पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयः परे । लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः॥२३॥
असूयेर्ष्याक्षमाशांतिः पापान्येतानि नारद । न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतो नरः ॥२४॥ कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत् । निष्फलः श्रम
एवैकः कर्षकस्य यथा तथा ॥२५॥ श्रमेणापीडितं क्षेत्रं कृष्टा भूमिः सुदुर्घटा । उप्तं बीजं महर्घं च हिता वृत्तिरुदाहृता ॥२६॥ अहोरात्रं परिक्लिष्टो

से संसार के बंधन से मुक्ति मिल जाती है ॥१५॥ मैं जो कह रहा हूँ उस पर संहेह मत करना, क्योंकि मैं जो कुछ कह रहा हूँ जानकर कह रहा हूँ । पहले मैंने जाना, उसके बाद में अनुभव किया और उसका फल प्राप्त किया ॥१६॥ हे महामते ! श्रवण करने से देखने से तथा संस्कारजन्य ज्ञान मात्र से परिज्ञान नहीं होता है ॥१७॥ जैसे किसी मनुष्य ने किसी पवित्र तीर्थ की महिमा का श्रवण किया, श्रवण के बाद उसमें राजसी श्रद्धा उत्पन्न हुई । उस श्रद्धा से प्रेरित होकर वह घर से निकला और तीर्थ में जाकर उसने वैसा ही पाया जैसा कि उसने उस तीर्थ के बारे में श्रवण किया था ॥१८॥ इसके बाद उसने तीर्थ में स्नान किया और राजसी दान भी किया और रजोगुण से समन्वित होकर उसने उस तीर्थ में कुछ समय तक निवास किया ॥१९॥ किन्तु वहाँ उसका राग और द्वेष नहीं छूटा, उसके मन में काम और क्रोध बना रहा । उसके बाद वह घर लौट आया और पहले के जैसा रहने लगा ॥२०॥ हे मुनीश्वर नारद ! इसका अर्थ है कि उसने तीर्थ की महिमा का श्रवण तो किया किन्तु उसका अनुभव नहीं किया और उसका परिणाम यह हुआ कि उसको उस तीर्थ सेवन का फल नहीं मिला । अतएव उसका श्रवण करना नहीं श्रवण करने के बराबर है ॥२१॥ तीर्थ श्रवण का फल हे निष्पाप ! हो जाना, रागद्वेष से मुक्त हो जाना है । जैसे लोक में की जाने वाली कृषि का फल है कि उससे प्राप्त अन्न को खाया जाय ॥२२॥ काम, क्रोध आदि पाप देह के विकार हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष राग, मद, असूया, इर्ष्या अक्षमा, अशान्ति, ये पाप जब तक शरीर से नहीं निकलते हैं तब तक मनुष्य पापी ही रहता है॥२३-२४॥ तीर्थ करने पर भी यदि ये शरीर के पाप नहीं निकलते हैं तो तीर्थयात्रा के लिए किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ है । यह उसी तरह से है जैसे किसी कृषक का किया हुआ श्रम विफल हो जाय ॥२५॥ जैसे उसने परिश्रम करके भूमि को गोड़ा, कठोर भूमि को जोता, उसमें मूल्यवान बीज बोया और उसके लिए

रक्षणार्थं फलोत्सुकः । काले सुप्तस्तु हेमंते वने व्याघ्रादिभिर्भृशम् ॥२७॥ भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः । तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः ॥२८॥ सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात् । वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद ॥२९॥ प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे। रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः ॥३०॥ तत्तथाभिभवत्येव तमः सत्त्वे तथा उभे । तमस्तथोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः ॥३१॥ तत्सत्त्वरजसी चोभे संगम्याभिभवत्यपि । विस्तरं कथयाम्यद्य यथाभिभवतीति वै ॥३२॥ यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थिता तदा । न चिन्तयति बाह्यार्थं रजस्तमः समुद्भवम् ॥३३॥ अर्थं सत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति च न चान्यथा । अनायासकृतं चार्थं धर्मं यज्ञं च वांछति ॥३४॥ सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा । राजसेषु न मोक्षार्थी तामसेषु पुनः कुतः ॥३५॥ एवं जित्वा रजः पूर्वं ततश्च तमसो जयः । सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम् ॥३६॥ यदा रजः प्रवृद्धं वै त्यक्त्वा धर्मान्सनातनान् । अन्यथा कुरुते धर्माञ्छ्रद्धां प्राप्य तु राजसीम् ॥३७॥ राजसादर्थसंवृद्धिस्तथा

आवश्यक सभी कार्यों को किया ॥२६॥ फल प्राप्त करने के लिए उसने उस कृषि की रात-दिन सुरक्षा भी की और फल प्राप्त करने की जब बेला आयी तो वह सो गया । उसका परिणाम हुआ कि व्याघ्र आदि पशुओं ने तथा कीड़ों ने आकर कृषि का सारा फल खा लिया और उस कृषक की आशा पर पानी फिर गया । उसे कुछ भी फल नहीं प्राप्त हुआ । वह निराश होकर घर लौट आया । उसी तरह उस तीर्थ यात्री का तीर्थ के लिए किया गया श्रम फलप्रद नहीं होता है ॥२७-२८॥ शास्त्रों का अवलोकन करने से सत्त्वगुण उद्रिक्त होता है और उसका परिणाम यह होता है कि उसका रजोगुण तथा तमोगुण के प्रति वैराग्य हो जाता है ॥२९॥ वह सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को बलपूर्वक दबा देता है । लोभभाव के कारण रजोगुण उद्रिक्त होता है ॥३०॥ उत्कृष्ट रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को दबा देता है । मोह के कारण तमोगुण उत्कट होता है ॥३१॥ वह सत्त्वगुण तथा रजोगुण से मिलकर उन दोनों को अभिभूत कर देता है । किस प्रकार एक गुण अपने से भिन्न गुणों को अभिभूत करता है, इस बात को मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ ॥३२॥ जिस समय सत्त्वगुण प्रवृद्ध होता है उस समय बुद्धि धर्म में स्थित होती है । उस समय वह रजोगुण तथा तमोगुण के कार्यों का चिन्तन नहीं करती है ॥३३॥ वह सात्त्विक कार्यों का ही ग्रहण करती है, उस समय वह रजोगुण और तमोगुण के कार्यों को नहीं ग्रहण करती है । उस समय वह बुद्धि स्वाभाविक रूप से धार्मिक कार्यों में तथा यज्ञ में लगती है ॥३४॥ मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष सात्त्विक भोगों को ही प्राप्त करना चाहता है; वह राजस एवं तामस भोगों को नहीं प्राप्त करना चाहता है ॥३५॥ सत्त्वगुण सबसे पहले रजोगुण को जीतता है, उसके बाद वह तमोगुण पर विजय प्राप्त करता है । उसके बाद सत्त्वगुण निर्मल होता है ॥३६॥ जिस समय रजोगुण प्रवृद्ध होता है, उस समय मनुष्य सनातन धर्म का परित्याग कर देता है, वह राजसी श्रद्धा के कारण

भोगस्तु राजसः । सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापि निग्रहः ॥३८॥ यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं संबभूव ह । तदा वेदे न विश्वासो धर्मशास्त्रे तथैव च ॥३९॥ श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोति च धनात्ययम् । द्रोहं सर्वत्र कुरुते न शांतिमधिगच्छति ॥४०॥ जित्वा सत्त्वरजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः । वर्तते कामचारेषु भावेषु विततेषु च ॥४१॥ एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा । सदैवाश्रित्य वर्तते गुणा मिथुनधर्मिणः ॥४२॥ रजो विना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित् । तमो विना न चैवैते वर्तंते पुरुषर्षभ ॥४३॥ तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन । सर्वे मिथुनधर्माणो गुणाः कार्यान्तरेषु वै ॥४४॥ अन्योन्यसंश्रिताः सर्वे तिष्ठंति न वियोजिताः । अन्योन्यजनकाश्चैव यतः प्रसवधर्मिणः ॥४५॥ सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत । कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि ॥४६॥ कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे । जनयंत्येवमन्योन्यं मृत्पिंडश्च घटं यथा ॥४७॥ बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयंति परस्परम् । देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयो यथा ॥४८॥ यथा स्त्रीपुरुषश्चैव मिथुनौ

सत्त्वगुण के विपरीत आचरण करने लगता है ॥३७॥ रजोगुण के कारण धन की समृद्धि होती है और उस मनुष्य के सारे भोग भी राजस हो जाते हैं । उस समय सत्त्वगुण निकलकर दूर हो जाता है और तमोगुण भी अभिभूत हो जाता है ॥३८॥ जिस समय तमोगुण उत्कट होता है, उस समय उसका वेद में तथा धर्मशास्त्र में विश्वास नहीं रहता है ॥३९॥ वह मनुष्य तामसी श्रद्धा को प्राप्त करके धन का दुरुपयोग करता है । वह सबसे द्रोह करता है, उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है ॥४०॥ सत्त्वगुण तथा रजोगुण को जीतकर मनुष्य क्रोधी, दुष्टबुद्धि वाला, और शठ स्वेच्छाचारी हो जाता है ॥४१॥ किसी भी प्राणी में न तो केवल सत्त्वगुण रहता है, न रजोगुण रहता है और न तमोगुण ही रहता है । ये गुण मिथुन धर्मी है अतएव सबके सब एक दूसरे को आश्रय बनाकर रहते हैं ॥४२॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! न तो रजोगुण के बिना कहीं सत्त्वगुण रहता है और न तो सत्त्वगुण के बिना कहीं रजोगुण रहता है। और न इन दोनों के बिना कहीं तमोगुण ही रहता है ॥४३॥ सत्त्वगुण और रजोगुण के बिना तमोगुण भी नहीं रहता है । विभिन्न प्रकार के कार्यों में रहने वाले ये गुण मिथुनधर्मी हैं ॥४४॥ वे अन्योन्याश्रित होने के कारण अलग होकर रहते ही नहीं है । प्रसवधर्मी होने के कारण दो गुण मिलकर तीसरे गुण को उत्पन्न कर देते हैं ॥४५॥ कभी सत्त्वगुण को रजोगुण और तमोगुण परस्पर में मिलकर पैदा कर देते हैं । कभी सत्त्वगुण और तमोगुण मिलकर रजोगुण को उत्पन्न कर देते है ॥४६॥ कभी सत्त्वगुण और रजोगुण मिलकर तमोगुण को उत्पन्न कर देते हैं । जिस तरह मृत्पिण्ड घट को उत्पन्न कर देता है, वैसे ही परस्पर. में ये गुण एक दूसरे को उत्पन्न कर देने का काम करते हैं ॥४७॥ ये गुण बुद्धि में रहने वाले हैं और वे एक दूसरे को उसी तरह से उद्रिक्त करते हैं जिसतरह देवदत्त, विष्णुमित्र तथा यज्ञदत्त आदि एक दूसरे को उकसाने का काम करते हैं ॥४८॥ जिस तरह स्त्री और पुरुष परस्पर में मिलकर काम

च परस्परम् । तथा गुणाः समायांति युग्मभावं परस्परम् ॥४९॥ रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुने रजः । उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः ॥५०॥ नारद उवाच– **इत्येतत्कथितं पित्रा गुणरूपमनुत्तमम् । श्रुत्वाप्येतत्स एवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम् ॥५१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

नारद उवाच– **गुणानां लक्षणं तात भवता कथितं किल । न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम् ॥१॥ गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय । येनाहं परमां शांतिमधिगच्छामि चेतसि ॥२॥** व्यास उवाच– **इति पृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना । उवाच च जगत्कर्ता रजोगुणसमुद्भवः ॥३॥** ब्रह्मोवाच– **शृणु नारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम् । सम्यङ् नाहं विजानामि यथामति वदामि ते ॥४॥ सत्त्वं तु केवलं**

करते हैं, उसी तरह ये गुण भी परस्पर में मिलकर जोड़े बन जाते हैं ॥४९॥ रजोगुण के मिथुनीभाव का प्रकार प्राप्त करने पर सत्त्वगुण गौण (स्त्रीभाव) को प्राप्त कर जाता है, सत्त्वगुण के मिथुनीभाव प्राप्त करने पर रजोगुण गौण हो जाता है । तमोगुण के मिथुनी भाव प्राप्त करने पर सत्त्वगुण एवं रजोगुण गौण हो जाते हैं ॥५०॥ **नारदजी ने व्यासजी से कहा**– इस तरह से हमारे पिता ब्रह्माजी ने गुणों के सर्वोत्तम रूप को हमें बतलाया है । इन सारी बातों को सुनकर मैंने ब्रह्माजी से पूछा ॥५१॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

गुणों के लक्षण

नारदजी ने कहा– हे तात ! आपने गुणों का लक्षण तो बतलाया; किन्तु आपके मुख से प्रवाहित होने वाले इस मीठे रस का पान करने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ अब आप गुणों के ठीक-ठीक परिज्ञान का वर्णन करें जिससे कि मुझे शान्ति की प्राप्ति हो ॥२॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह अपने महात्मा पुत्र नारदजी से पूछे जाने पर रजोगुण प्रधान जगत्कर्ता ब्रह्माजी ने गुणों के कार्यों का वर्णन करना प्रारम्भ किया ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा**– हे नारद ! अब मैं गुणों

नैव कुत्रापि परिलक्ष्यते । मिश्रीभावस्तु तेषां वै मिश्रत्वं प्रतिभाति वै ॥५॥ यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता । हावभावयुता कामं भर्तुः प्रीतिकरी भवेत् ॥६॥ मातापित्रोस्तथा सैव बंधुवर्गस्य प्रीतिदा । दुःखं मोहं सपत्नीषु जनयत्यपि सैव हि ॥७॥ एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च । रजसस्तमसश्चैव जनिता वृत्तिरन्यथा ॥८॥ रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः । अन्योन्यस्य समायोगादन्यथा प्रतिभाति वै ॥९॥ अवस्थानात्स्वभावेषु न वै जात्यंतराणि च । लक्ष्यंते विपरीतानि योगान्नारद कुत्रचित् ॥१०॥ यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता । लज्जा माधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता ॥११॥ कामशास्त्रविधिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपि संमता । भर्तुः प्रीतिकरी भूत्वा सपत्नीनां च दुःखदा ॥१२॥ मोहदुःखस्वभावस्था सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः । तथा सत्त्वं विकुर्वाणमन्यभावं विभाति वै ॥१३॥ चौरैरुपद्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत् । दुःखा मूढा च दस्यूनां सैव सेना तथाऽगुणा ॥१४॥ विपरीतप्रतीतिं वै वर्जयन्ति स्वभावतः । यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम् ॥१५॥ विद्युत्स्तनितसंयुक्तं तिमिरेणावगुण्ठितम् । सिंचद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम् ॥१६॥ यदेतत्कर्षकाणां वै तदेवातीव दुर्दिनम् । बीजोपस्कर युक्तानां

का परिज्ञान बतला रहा हूँ । मैं भी इसे पूर्णरूप से नहीं जानता हूँ फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें बतला रहा हूँ ॥४॥ केवल सत्त्वगुण कहीं भी नहीं प्रतीत होता है । गुणों के मिश्रभाव के कारण वह मिश्रित ही दिखायी देता है ॥५॥ जिस तरह कोई सभी अलंकारों से अलंकृत तथा हावभाव से युक्त श्रेष्ठ रमणी अपने पति को प्रसन्न करने वाली होती है ॥६॥ उसी तरह वह माता, पिता तथा अपने बाँधवों को प्रसन्न करने वाली होती है । किन्तु वही अपनी सौतों को दुःख तथा मोह को प्रदान करके दुखी बनाती है ॥७॥ इसी तरह उसी सत्त्वगुण के द्वारा स्त्रीभाव के प्राप्त होने से, वह रजोगुण और तमोगुण के द्वारा उसमें दूसरी वृत्ति उत्पन्न हो जाती है ॥८॥ रजोगुण तथा तमोगुण जब स्त्रीभाव को प्राप्त करता है, तो उन दोनों के योग से वह दूसरे ही तरह की प्रतीत होती है ॥९॥ हे नारद ! यदि ये तीनों गुण परस्पर में मिश्रित न होकर पृथक्-पृथक् होते तो उनमें एक ही तरह की प्रतीत होती । किन्तु प्राणी में कभी सुख कभी दुःख एवं कभी मोह देखकर प्रतीत होता है कि तीनों गुणों का परस्पर में मिश्रीभाव है ॥१०॥ जैसे कोई सुन्दरी नारी यौवन से समलंकृत हो, लज्जा, माधुर्य एवं नम्रता से युक्त होती है ॥११॥ वह धर्मशास्त्र की विधि तथा कामशास्त्र की विधि से परिचित हो तो वह अपने पति को तो प्रसन्न करती है, किन्तु अपनी सौतों को दुःख देती है ॥१२॥ लोग उसके बारे में कहते हैं कि यह नारी सात्त्विकी प्रकृति का होकर भी इसके स्वभाव से मोह एवं दुःख होता है । इस तरह सत्त्वगुण के भी विकार से विभिन्न प्रकार के भाव प्रकट होते हैं ॥१३॥ जैसे राजा की सेना चोरों के द्वारा उपद्रवग्रस्त सज्जनों के लिए सुखद होती है; किन्तु वही चोरों के लिए मूर्ख, दुःखद तथा गुणों से रहित प्रतीत होती है ॥१४॥ इससे स्पष्ट है कि ये तीनों गुण परस्पर में उसी तरह विपरीत ज्ञान को उत्पन्न

सुखदं प्रभवत्युत ॥१७॥ अप्रच्छन्नगृहाणां च दुर्भगानां विशेषतः । तृणकाष्ठगृहीतानां दुःखदं गृहमेधिनाम् ॥१८॥ प्रोषितभर्तृकाणां वै मोहदं प्रवदन्त्यपि । स्वभावस्था गुणाः सर्वे विपरीता विभांति वै ॥१९॥ लक्षणानि पुनस्तेषां शृणु पुत्र ब्रवीम्यहम् । लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विशदं सदा ॥२०॥ यदाऽङ्गानि लघून्येव नेत्रादीनिन्द्रियाणि च । निर्ममं च तथा चेतो गृहणाति विषयान्न तान् ॥२१॥ तदा सत्त्वं शरीरे वै मंतव्यं च समुत्कटम् । जृम्भा स्तम्भं च तंद्रा च चलं चैव रजः पुनः ॥२२॥ यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित् । कलिं मृगयते कर्तुं गन्तुं ग्रामांतरं तथा ॥२३॥ चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा । गुरुमावरणं कामं तमो भवति तद्यथा ॥२४॥ तदाऽङ्गानि गुरूण्याशु प्रभवंत्यावृतानि च । इन्द्रियाणि मनः शून्यं निद्रां नैवाभिवांछति ॥२५॥ गुणानां लक्षणान्येवं विज्ञेयानीह नारद । नारद उवाच– **विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ताः पितामह गुणास्त्रयः ॥२६॥ कथमेकत्र संस्थाने कार्यं कुर्वन्ति शाश्वतम् । परस्परं मिलित्वा हि विभिन्नाः शत्रवः किल ॥२७॥ एकत्रस्थाः कथं कार्यं**

करते हैं जिस तरह महामेघ समूह से घिरा हुआ वर्षा का दिन हो, बिजली चमक रही हो, घना अन्धकार छा गया हो तथा होने वाली वर्षा से भूमि सींच रही हो, फिर भी लोग उसे तमस्विनी कहते हैं । यह दुर्दिन उन कृषकों के लिए सुखद होता है जो बीज बोने के साधनों से सम्पन्न होते हैं ॥१७॥ किन्तु जिन अभागे कृषकों के घर नहीं छाये गये हैं, वह अभी तृण और काष्ठ आदि की जुटाने में लगे हैं, उन गृहस्थों के लिए वह दुःखद होता है ॥१८॥ और वे नारियाँ जिनके पति परदेश में हैं, उनके लिए वह मोहप्रद होता है । इस तरह ये सभी गुण एक दूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं ॥१९॥ हे पुत्र! तुम सुनों उन सभी गुणों का मैं लक्षण बतला रहा हूँ । सत्त्वगुण, लघु, प्रकाशक, निर्मल तथा विशद होता है ॥२०॥ उस समय नेत्र आदि इन्द्रियाँ और सभी अङ्ग हल्के प्रतीत होते हैं । ममता रहित होने के कारण वह उन विषयों को ग्रहण नहीं कर पाता है ॥२१॥ उस समय जानना चाहिए कि शरीर में सत्त्व गुण का उद्रेक हो गया है । जम्भाई, शरीर का स्तम्भित हो जाना तन्द्रा हो जाना तथा मन का चंचल होना ये रजोगुण के कार्य हैं ॥२२॥ शरीर में ये सब उत्पन्न हो जायँ तो शरीर में रजोगुण उत्पन्न हो गया है, यह जानना चाहिए । रजोगुणी व्यक्ति दूसरे गाँव में भी जाकर झगड़ा करना चाहता है॥२३॥ उसका चित्त अत्यन्त चंचल हो जाता है । वह सदा विवाद करने के लिए तैयार रहता है । शरीर को भारी बना देना, ज्ञान पर अज्ञान का परदा पड़ जाना, कामुकता बढ़ जाना ये सब तमोगुण के उद्रिक्त होने पर होते हैं ॥२४॥ तमोगुण के उद्रिक्त होने पर सारे अंग भारी हो जाते हैं, इन्द्रियाँ अज्ञानावृत हो जाती हैं, मन शून्य सा हो जाता है, नींद भी नहीं अच्छी लगती है ॥२५॥ हे नारद ! इसी तरह से गुणों के लक्षणों को जानना चाहिए । **नारदजी ने कहा–** हे पितामह ! तीनों को विभिन्न लक्षणों वाला बतलाया है आपने ॥२६॥ अब आप यह बतलाएँ कि एक स्थान में रहकर भी विपरीत वृत्ति वाले

कुर्वंतीति वदस्व मे । ब्रह्मोवाच— **शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः ॥२८॥ प्रदीपश्च यथा कार्यं प्रकरोत्यर्थदर्शनम् । बर्तिस्तैलं यथाऽर्चिश्च**
विरुद्धाश्च परस्परम् ॥२९। विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह संगतम् । तैलं बर्तिविरोध्येव पावकोऽपि परस्परम् ॥३०॥ एकत्रस्थाः पदार्थानां
प्रकुर्वंति प्रदर्शनम् । नारद उवाच— **एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गुणाः सत्यवतीसुत ॥३१॥ विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम् ।** व्यास
उवाच— **इत्युक्तं नारदेनाथ मम सर्वं सविस्तरम् ॥३२॥ गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः । आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं**
ततम्:।३३॥ सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि । अकर्ता पुरुषः पूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः ॥३४॥ करोत्येषा महामाया विश्वं सदसदात्मकम्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सूर्यचन्द्रः शचीपतिः ॥३५॥ अश्विनौ वसवस्त्वष्टा कुबेरो यादसां पतिः । वह्निर्वायुस्तथा पूषा सेनानीश्च विनायकः ॥३६॥
सर्वे शक्तियुताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च । अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पंदितुमनीश्वराः ॥३७॥ सा चैव कारणं राजञ्जगतः परमेश्वरी ।
समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप ॥३८॥ पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः । महालक्ष्मी महाकाली तथा महासरस्वती ॥३९॥ ईश्वरी

गुण सदा अपना कार्य कैसे करते रहते हैं । वे परस्पर में विरोधी होने के कारण एक दूसरे के शत्रु हैं ॥२७॥ फिर भी एकत्र रहकर कैसे कार्यों को करते हैं ? **ब्रह्माजी ने कहा—** पुत्र ! सुनों गुणों की वृत्ति दीपक की वृत्ति के समान होती है ॥२८॥ दीपक विषयों को प्रकाशित करने का काम करता है । किन्तु उसमें प्रयुक्त होने वाले बाती, तेल तथा प्रकाश परस्पर में एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं ॥२९॥ जिस तरह तैल अपने विरोधी अग्नि के साथ संयुक्त होता है । तेल, बाती तथा अग्नि परस्पर में विरोधी हैं ॥३०॥ फिर भी ये तीनों एक साथ मिलकर विषयों का प्रकाशन ही किया करते हैं । **नारदजी ने व्यासजी से कहा—** हे सत्यवती कुमार ! इसी प्रकार प्राकृतिक गुण बतलाये गये हैं ॥३१॥ मैंने पहले भी बतलाया है कि प्रकृति के गुण ही विश्व की उत्पत्ति के कारण हैं । व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा इन सारी बातों का मुझे नारद जी ने विस्तार पूर्वक उपदेश दिया है ॥३२॥ गुणों के सभी लक्षणों को एवं कार्यों को विभागपूर्वक बतलाया है । अतएव सम्पूर्ण विश्व में व्यापक परमाशक्ति की ही आराधना करनी चाहिए ॥३३॥ वे ही कार्यभेद के कारण सगुण एवं निर्गुण भेद वाली हैं । परमपुरुष परमात्मा अकर्ता, अव्यय तथा निरीह हैं ॥३४॥ महामाया ही चेतनाचेतनात्मक जगत् को उत्पन्न करती हैं । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, दोनों अश्विनी कुमार, अष्टवसु, त्वष्टा, कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा, स्कन्द, गणेश ॥३५-३६॥ ये सबके सब शक्ति से सम्पन्न होकर ही अपने-अपने कार्यों को करने में समर्थ होते हैं । शक्ति के विना वे भी असमर्थ तथा हिलने-डुलने में असमर्थ हो जाते हैं ॥३७॥ हे राजन् ! वे परमेश्वरी ही जगत् के कारण हैं । हे राजन् ! आप उनकी आराधना रूपी यज्ञ करें ॥३८॥ आप उनकी ही विधिपूर्वक पूजा करें । वे ही महालक्ष्मी, महाकाली तथा

सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम् । सर्वकामार्थदा शांता सुखसेव्या दयान्विता ।।४०।। नामोच्चारणमात्रेण वांछितार्थफलप्रदा । देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।।४१।। मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः । अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसंगेनापि भाषितम् ।।४२।। ददाति वांछितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा । ऐऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने ।।४३।। बिंदुहीनमपीत्युक्तं वांछितं प्रददाति वै । तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टांतो नृपसत्तम ।।४४।। प्रत्यक्ष एव चास्माकं मुनीनां भावितात्मनाम् । ब्राह्मणानां समाजेषु तस्योदाहरणं बुधैः ।।४५।। कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम् । अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ।।४६।। श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्य स्वयं ततः । बिन्दुहीनं प्रसंगेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः ।।४७।। ऐकारोच्चरणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा । चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी ।।४८।।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।।९।।

◆

महासरस्वती स्वरूपा हैं ।।३९।। वे ही सभी भूतों की स्वामिनी तथा सभी कारणों के भी कारण हैं । वे सभी पुरुषार्थों को प्रदान करके भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाली शान्त तथा दयालु हैं ।।४०।। केवल उनके नामों का उच्चारण करने से वे समस्त अभिलषित फलों को प्रदान करने वाली हैं । प्राचीन काल में उनकी ही आराधना ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर इन तीनों देवों ने की है ।।४१।। मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा से जिन जितेन्द्रिय तपस्वियों ने उनका यदि प्रसंग वशात् उनके अशुद्ध नाम का भी उच्चारण किया तो उनकी भी दुर्लभ कामनाओं को वे पूर्ण कर देती हैं । सत्यव्रत नामक मुनि वन में व्याघ्र आदि को देखकर डर गये और वे डर के मारे देवी के 'ऐ' 'ऐ' इस मंत्र का (विन्दुहीन मन्त्र का) अशुद्ध उच्चारण किये । किन्तु उनके इस विन्दुहीन 'ऐं' मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण करने पर भी उनकी कामना को देवी ने पूर्ण कर दिया ।।४२-४४।। अनेक देवीभक्त मुनियों ने सत्यव्रत ब्राह्मण की कथा का वर्णन ब्राह्मणों की सभा में विस्तार पूर्वक किया है ।।४५।। राजन् मैंने उस वर्णन किए जाने वाले वर्णन को विस्तार पूर्वक सुना है । ब्राह्मण सत्यव्रत महामूर्ख, निरक्षर था । और किसी कोलभिल्ल के मुख से विन्दुहीन इस मंत्र का उच्चारण प्रसंगवशात् सुनकर श्रेष्ठ विद्वान् बन गया ।।४७।। उसके मुख से उच्चारण किए गये 'ऐ' मंत्र को सुनकर देवी प्रसन्न हो गयीं और दयार्द्र होकर उस बाह्मण को कविराज. बना दीं ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

◆

दशमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **कोऽसौ सत्यव्रतो नाम ब्राह्मणो द्विजसत्तमः । कस्मिन्देशे समुत्पन्नः कीदृशश्च वदस्व मे ॥१॥ कथं तेन श्रुतः शब्दः कथमुच्चारितः पुनः । सिद्धिश्च कीदृशी जाता तस्य विप्रस्य तत्क्षणात् ॥२॥ कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञा सर्वसंस्थिता । विस्तरेण वदस्वाद्य कथामेतां मनोरमाम् ॥३॥** सूत उवाच– **इति पृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः । उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि ॥४॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् । श्रुता मुनिसमाजेषु मया पूर्वं कुरूद्वह ॥५॥ एकदाऽहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि । संप्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम् ॥६॥ प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान् स्थितस्तत्र वराश्रमे । विधिपुत्रास्तु यत्रासञ्जीवन्मुक्ता महाव्रताः ॥७॥ कथाप्रसंग एवासीत्तत्र विप्रसमागमे । जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं सभास्थितः ॥८॥** जमदग्निरुवाच– **संदेहोऽस्ति महाभागा मम चेतसि तापसाः समाजेषु मुनीनां वै निःसन्देहो भवाम्यहम् ॥९॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः । कुबेरः पवनस्त्वष्टा सेनानीश्च गणाधिपः ॥१०॥ सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहस्तथा । आराधनीयतमः कोऽत्र वांछितार्थफलप्रदः ॥११॥ सुखसेव्यश्च सततं चाशुतोषश्च मानदः । ब्रुवन्तु मुनयः शीघ्रं**

सत्यव्रत ब्राह्मण की कथा

जनमेजय ने पूछा– आप मुझे बतलाएँ कि सत्यव्रत ब्राह्मण कौन था ? वह कहाँ उत्पन्न हुआ था ? और कैसा था ?॥१॥ उसने कैसे 'ऐं' शब्द को सुना और कैसे उच्चारण किया और उस ब्राह्मण को उस समय कैसी सिद्धि मिली ? सर्वत्र व्यापक भवानी उस ब्राह्मण से कैसे प्रसन्न हो गयीं । आप इस मनोहर कथा को विस्तार पूर्वक बतलाएँ ॥३॥ **सूतजी ने ऋषियों से कहा–** राजा जनमेजय के द्वारा पूछे जाने पर सत्यवतीनंदन व्यासजी ने अत्यन्त उदार तथा पवित्र वाणी में कहा ॥४॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! आप सुनें मैं आपको पौराणिक कथा सुनाता हूँ, हे राजन् ! मैंने उसे मुनियों के समाज में सुना है॥५॥ एक बार मैं पवित्र तीर्थों में घूमता हुआ मुनियों से सेवित पवित्र नैमिषारण्य में गया ॥६॥ सभी मुनियों को प्रणाम करके मैं एक श्रेष्ठ आश्रम में रुक गया। उसी आश्रम में जीवन्मुक्त तथा महाव्रत वाले ब्रह्माजी के पुत्र रहते थे ॥७॥ उस ब्राह्मणों की सभा में कथा चल रही थी । उस सभा में विद्यमान जमदग्नि ऋषि ने मुनियों से प्रश्न किया ॥८॥ **जमदग्नि ऋषि ने कहा–** हे महाभागों ! मेरे अन्तःकरण में संदेह बना हुआ है मैं मुनियों के समाज में संदेह रहित होना चाहता हूँ ॥९॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, वायु, त्वष्टा, कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, अश्विनीकुमार, भग, पूषा, चन्द्रमा तथा ग्रह इन सबों में सर्वश्रेष्ठ अराधनीय कौन है ? जो आराधक के अभिलषित अर्थ को प्रदान करने वाला हो ॥१०-११॥ जो सुख पूर्वक सेवा करने योग्य तथा शीघ्र

सर्वज्ञाः संशितव्रताः ॥१२॥ एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत् । जगदग्ने शृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाऽधुना ॥१३॥ सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषां शुभमिच्छताम् । परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदा शिवा ॥१४॥ देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनां महात्मनाम् । आदिप्रकृतिमूलं सा संसारपादपस्य वै ॥१५॥ स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वांछितम् । सर्वदैवार्द्रचित्ता सा वरदानाय सेविता ॥१६॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयः शुभम् । अक्षरोच्चारणादेव यथा प्राप्तं द्विजेन वै ॥१७॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः । अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम् ॥१८॥ तमसातीरमास्थाय कृत्वा मंडपमुत्तमम् । द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान् ॥१९॥ कृत्वा वेदीं विधानेन स्थापयित्वा विभावसून् । पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तमः ॥२०॥ ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रं मुनिसत्तमम् । अध्वर्युं याज्ञवल्क्यं च होतारं च बृहस्पतिम्॥२१॥ प्रस्तोतारं तथा पैलमुद्गातारं च गोभिलम् । सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौ वसु ॥२२॥ उद्गाता सामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम्। रथन्तरमगायत्तु स्वरितेन समन्वितम् ॥२३॥ तदाऽस्य स्वरभंगोऽभूत्कृते श्वासे मुहुर्मुहुः । देवदत्तश्चुकोपाशु गोभिलं प्रत्युवाच ह ॥२४॥ मूर्खोऽसि मुनिमुख्याद्य स्वरभंगस्त्वया कृतः । काम्यकर्मणि संजाते पुत्रार्थं यजतश्च मे ॥२५॥ गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः । मूर्खस्ते भविता

प्रसन्न होने वाला देवता हो; हे श्रेष्ठव्रत वाले मुनियों ! इस बात को आपलोग हमें बतलाएँ ॥१२॥ इस तरह से प्रश्न करने पर **लोमश महर्षि ने कहा**– हे जमदग्ने ! आपने जो पूछा है उसका उत्तर आप सुनें ॥१३॥ सभी कल्याणकामी पुरुषों के लिए सर्वश्रेष्ठ सेवनीय शक्ति हैं । वे ही पराप्रकृति, सर्वव्यापक तथा सदा कल्याणकारिणी हैं ॥१४॥ ब्रह्मा आदि देवताओं की वे ही जननी हैं । संसार रूपी वृक्ष का वे आदि प्रकृति मूल हैं ॥१५॥ स्मरण करने तथा मंत्रोच्चारण करने पर वे वांछित फल प्रदान करती हैं । उनका चित्त दया से आर्द्र बना रहता है और सेवा करने पर वे वरदान देती हैं ॥१६॥ हे मुनियों आपलोग सुनें इसके विषय में मैं एक इतिहास बतला रहा हूँ । देवी के मंत्र का अक्षर उच्चारण करने मात्र से उस ब्राह्मण ने देवी का वरदान प्राप्त किया॥१७॥ कोसल देश में एक देवदत्त नामक ब्राह्मण रहते थे । उनकी कोई सन्तान नहीं थीं । उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ किया ॥१८॥ उन्होंने तमसा नदी के तट पर उत्तम मण्डप बनाया और सत्रकर्म के विधान को जानने वाले ब्राह्मणों को आहूत किया ॥१९॥ उन्होंने विधिपूर्वक वेदी का निर्माण करके उस पर अग्नियों की स्थापना की । उस ब्राह्मण ने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि की ॥२०॥ उन्होंने मुनियों में श्रेष्ठ सुहोत्र को उस यज्ञ का ब्रह्मा बनाया। याज्ञवल्क्य महर्षि को अध्वर्यु और बृहस्पति को होता बनाया ॥२१॥ पैल महर्षि को ग्रस्तोता तथा गोभिल महर्षि को उद्गाता बनाया । दूसरे मुनियों को सभ्य बनाकर उन्हें प्रचुर मात्रा में धन प्रदान किया ॥२२॥ श्रेष्ठ सामगान करने वाले उद्गाता ने सात स्वरों तथा स्वरित स्वर से युक्त रथन्तर का गायन किया ॥२३॥ उस समय बार-बार

पुत्रः शठः शब्दविवर्जितः ॥२६॥ सर्वप्राणिशरीरे तु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः । न मेऽत्र दूषणं किंचित्स्वरभंगे महामते ॥२७॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्य महात्मनः । शापाद्भीतो देवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः ॥२८॥ कथं क्रुद्धोऽसि विप्रेन्द्र वृथा मयि निरागसि । अक्रोधना हि मुनयो भवंति सुखदाः सदा ॥२९॥ स्वल्पेऽपराधे विप्रेंद्र कथं शप्तस्त्वया ह्यहम् । अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक्तापयुक्तः पुनः कृतः ॥३०॥ मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः । तथापि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निंद्य एव हि ॥३१॥ पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु । किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम ॥३२॥ यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः । न पूजार्हो न दानार्हो निंद्यश्च सर्वकर्मसु ॥३३॥ देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः । करदः शूद्रवच्चैव मंतव्यः स च भूभुजा ॥३४॥ नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः । मूर्खः समुपवेश्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता॥३५॥ राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु । कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेदवर्जितः ॥३६॥ विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं

श्वास लेने के कारण स्वरभङ्ग हो गया । इससे क्रुद्ध होकर यज्ञदत्त ने गोभिल महर्षि से कहा ॥२४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मूर्ख हैं । आपने स्वरभंग किया है । मैं पुत्र प्राप्ति के लिए इस काम्यकर्म के द्वारा यजन कर रहा हूँ ॥२५॥ यह सुनकर क्रुद्ध गोभिल महर्षि ने कहा कि तुम्हारा पुत्र निरक्षर, मूर्ख और शठ होगा ॥२६॥ सभी प्राणियों के देह में देखा जाता है कि वे श्वास बार-बार लेते और छोड़ते हैं । श्वास को रोक लेना कठिन है । उसके कारण यदि स्वर भंग हो गया तो उसमें मेरा कोई दोष नहीं है ॥२७॥ गोभिल महर्षि की बात को सुनकर यज्ञदत्त शाप के भय से अत्यन्त दुःखी हो गये और बोले॥२८॥ हे विप्रवर्य ! मैं निरपराध हूँ आप क्रोध न करें । मुनिजन तो सदा सुख देने वाले और क्रोध से रहित होते हैं । इस छोटे से अपराध के कारण आपने मुझे शाप दे दिया । पुत्रहीन होने के कारण मैं दुःखी तो पहले से ही था आपने मुझे और दुःखी बना दिया ॥३०॥ वेदज्ञों का कहना है कि मूर्ख पुत्र की अपेक्षा तो पुत्रहीन रहना ही ठीक होता है । उसमें भी मूर्ख ब्राह्मण तो सबों के लिए निन्दनीय होता है ॥३१॥ वह पशु तथा शूद्र के समान किसी भी काम के योग्य नहीं होता है । हे ब्राह्मणवर्य ! उस मूर्ख पुत्र को प्राप्त करके मैं क्या करूँगा ॥३२॥ मूर्ख ब्राह्मण तो शूद्र के ही समान होता है । इसमें कोई भी संशय नहीं है । न तो वह पूजा के योग्य होता है और न दान के योग्य होता है । वह सभी कर्मों में निंदनीय होता है ॥३३॥ वेद ज्ञान विहीन ब्राह्मण जिस देश में रहता है उस देश का राजा उस ब्राह्मण से शूद्रों के समान कर वसूलता है ॥३४॥ अपने कर्म का फल चाहने वाले लोग उसको न तो पितृकर्म में आसन पर बैठाते हैं और न तो देवकार्य में; क्योंकि वह मूर्ख है ॥३५॥ राजा को चाहिए कि उसे शूद्र के समान जाने किसी कार्य में न लगाये। वेदज्ञान विहीन ब्राह्मण को कृषि के कार्य में लगाना चाहिए ॥३६॥ यदि वेदज्ञ ब्राह्मण न मिले तो कुंश के आसन पर स्वयं श्राद्ध कर ले किन्तु मूर्ख ब्राह्मण से

कुशचटेन वै । न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन ॥३७॥ आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपंडिते । दाता नरकमाप्नोति ग्रहीता तु विशेषतः॥३८॥ धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधा जनाः । पूज्यन्ते ब्राह्मणा मूर्खा दानमानादिकैरपि ॥३९॥ आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि । मूर्खपंडितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै ॥४०॥ मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः । तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पंडितेन कथंचन॥४१॥ असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः । पिचुमंदः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते ॥४२॥ भुक्त्वाऽन्नं वेदविद्विप्रो वेदाभ्यासं करोति वै । क्रीडंति पूर्वजास्तस्य स्वर्गे प्रमुदिताः किल ॥४३॥ गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम । संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणादतिगर्हितम् ॥४४॥ कृपां कुरु महाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति । दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामि तव पादयोः ॥४५॥ लोमश उवाच– इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्य पादयोः । स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः ॥४६॥ गोभिलस्तु तदा तत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम् । क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः ॥४७॥ जलं स्वभावतः शीतं पावकातपयोगतः । उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत् ॥४८॥ दयावान्गोभिलस्त्वाह देवदत्तं सुदुःखितम् । मूर्खो

श्राद्ध नहीं कराये ॥३७॥ वेदज्ञान विहीन ब्राह्मण को पेट भर से अधिक अन्न नहीं देना चाहिए । उससे अधिक अन्न देने वाले को नरक में जाना पड़ता है और लेने वाले को तो विशेष रूप से नरक में जाना पड़ता है ॥३८॥ जिस राजा के राज्य में मूर्ख ब्राह्मण रहते हैं, उस राजा के राज्य को धिक्कार है, क्योंकि वहाँ मूर्ख ब्राह्मण दान तथा सम्मान के द्वारा पूजित होते हैं ॥३९॥ जहाँ पर आसन, पूजन तथा दान में थोड़ा सा भी अन्तर नहीं किया जाता हो वहाँ पर भी विद्वानों और बुद्धिमानों से मूर्ख और विद्वान् में थोड़ा अन्तर कर ही लेना चाहिए ॥४०॥ जहाँ पर दान तथा मान से सम्मानित होकर मूर्ख गर्व के साथ रहते हों वहाँ पर विज्ञों को कभी भी नहीं रहना चाहिए ॥४१॥ दुर्जनों की सम्पत्तियों से दुष्टों का ही उपकार होता है जैसे फलों से भरा हुआ नीम्ब का पेड़ केवल कौओं के लिए उपकारी होता है॥४२॥ जिस व्यक्ति का अन्न खाकर वेदज्ञ ब्राह्मण वेद का अभ्यास करते हैं उस व्यक्ति के पितृगण स्वर्ग में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ॥४३॥ अतएव हे गोभिल ! आपने यह क्या कह दिया ? आप तो वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं संसार में मूर्ख पुत्र वाला होना मरण से भी अधिक निंदित है ॥४४॥ हे महाभाग ! आप क्षमा करें मुझे इस शाप से छुड़ाएँ । मैं आपके चरणों पर गिरता हूँ आप शरणागत की रक्षा करने में समर्थ हैं ॥४५॥ लोमश महर्षि ने बतलाया कि– यह कहकर देवदत्त गोभिल के चरणों पर गिर पड़ा । उसकी आँखें आसू से भरी हुई थीं। वह गोभिल की स्तुति कर रहा था ॥४६॥ गोभिल महर्षि उसे अत्यन्त दीन बने देखकर दया से द्रवित हो गये । महापुरुषों का कोप क्षण भर के लिए होता है पापी पुरुषों का कोप एक कल्प पर्यन्त बना रहता है ॥४७॥ जल स्वभावतः शीतल होता है और अग्नि तथा धूप के संयोग को प्राप्त करके उष्ण

भूत्वा सुतस्ते वै विद्वानपि भविष्यति ॥४९॥ इति दत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद्द्विजर्षभः । इष्टिं समाप्य विप्रान्वै विससर्ज यथाविधि ॥५०॥ कालेन कियता तस्य भार्या रूपवती सती । गर्भं दधार काले सा रोहिणी रोहिणीसमा ॥५१॥ गर्भाधानादिकं कर्म चकार विधिवद्द्विजः । पुंसवनविधानं च श्रृंगारकरणं तथा ॥५२॥ सीमन्तोन्नयनं चैव कृतं वेदविधानतः । ददौ दानानि मुदितो मत्वेष्टिं सफलां तथा ॥५३॥ शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणीयुते । दिने लग्ने शुभेत्यर्थं जातकर्म चकार सः ॥५४॥ पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च । उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा ॥५५॥ स चाष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे । तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता ॥५६॥ वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम् । नोच्चचार तथोतथ्यः संस्थितो मुग्धवत्तदा ॥५७॥ बहुधा पाठितः पित्रा न दधार मतिं शठः । मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पिता तदा॥५८॥ एवं कुर्वन्सदाऽभ्यासं जातो द्वादशवार्षिकः । न वेद विधिवत्कर्तुं संध्यावन्दनकं विधिम् ॥५९॥ मूर्खोऽभूदितिलोकेषु गता वार्ताऽतिविस्तरा। ब्राह्मणेषु च सर्वेषु तापसेष्वितरेषु च ॥६०॥ जहास लोकस्तं विप्रं यत्र तत्र गतं वने । पिता माता निनिंदाथ मूर्खं तमतिभर्त्सयन् ॥६१॥ निंदितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथ बांधवैः । वैराग्यमगमद्विप्रो जगाम वनमप्यसौ ॥६२॥ अन्धो वरस्तथा पंगुर्न मूर्खस्तु वरः सुतः । इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां

होता है । वह उनका संयोग समाप्त होते ही शीघ्र ही ठंढा हो जाता है ॥४८॥ दया से द्रवित होकर गोभिल ने दुःखी देवदत्त से कहा- तुम्हारा पुत्र मूर्ख होकर भी विद्वान् हो जायेगा ॥४९॥ इस प्रकार से वरदान प्राप्त करके देवदत्त ब्राह्मण प्रसन्न हो गये । वे यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणों को विधिपूर्वक विदा किए ॥५०॥ कुछ दिनों पश्चात् उस ब्राह्मण की रूपवती भार्या गर्भिणी हुई । उसका नाम रोहिणी था । उसने रोहिणी के ही समान गर्भ धारण किया ॥५१॥ उस ब्राह्मण ने सविधि गर्भाधान पुंसवन तथा श्रृंगारकरण आदि संस्कारों को सविधि सम्पन्न किया ॥५२॥ उन्होंने वैदिकविधि से सीमन्तोन्नयन किया और अपनी इष्टि को सफल मानकर अनेक प्रकार का दान दिया ॥५३॥ रोहिणी ने रोहिणी नक्षत्र वाले शुभ दिन में अपने पुत्र को जन्म दिया । ब्राह्मण ने शुभ लग्न तथा शुभ दिन को जातकर्म संस्कार किया ॥५४॥ उन्होंने पुत्र का मुख देखकर उसका नामकरण संस्कार किया और ज्योतिर्विद ने उस बालक का नाम उतथ्य रखा ॥५५॥ पिता ने उस बालक के गर्भ के आठवें वर्ष में सविधि उपनयन संस्कार किया ॥५६॥ ब्रह्मचारी उतथ्य को गुरु जब वेद पढ़ाते थे तो वह वेदोच्चारण नहीं कर पाता था और मूर्ख बना बैठा रहता था ॥५७॥ पिता ने बहुत पढ़ाने की कोशिश की किन्तु वह कुछ भी नहीं सिख पाया । वह सदा मूर्ख की तरह बैठे रहता था, उसे देखकर पिता को बहुत चिन्ता हुई ॥५८॥ इस तरह सदा अभ्यास करते हुए बारह वर्ष बीत गये किन्तु वह विधिपूर्वक सन्ध्याबन्दन भी नहीं कर पाता था ॥५९॥ लोगों में यह बात फैल गयी कि यह मूर्ख है । इस बात को सभी ब्राह्मण; तपस्वी तथा दूसरे लोग भी जान

वै विवेश काननं प्रति ॥६३॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृत्वोटजमनुत्तमम् । वन्यां वृत्तिं च संकल्प्य स्थितस्तत्र समाहितः ॥६४॥ नियमं च परं कृत्वा नासत्यं प्रब्रवीम्यहम् । स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये ब्रह्मचर्यव्रतो हि सः ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

लोमश उवाच– **न वेदाध्ययनं किंचिज्जानाति न जपं तथा । ध्यानं न देवतानां च न चैवाराधनं तथा ॥१॥ नासनं वेद विप्रोऽसौ प्राणायामं तथा पुनः । प्रत्याहारं तु नो वेद भूतशुद्धिं च कारणम् ॥२॥ न मंत्रकीलकं जाप्यं गायत्रीं च न वेद सः । शौचं स्नानविधिं चैव तथाचमनकं पुनः ॥३॥ प्राणाग्निहोत्रं नो वेद बलिदानं न चातिथिम् । न संध्यां समिधो होमं विवेद च तथा मुनिः ॥४॥ सोऽकरोत्प्रातरुत्थाय**

गये ॥६०॥ वह जहाँ कहीं भी जाता था वहाँ लोग उसका उपहास करते थे । उसकी निन्दा उसके माता-पिता भी करते थे ॥६१॥ माता, पिता, बन्धुजन तथा दूसरे लोगों से निन्दित उस ब्राह्मण के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह वन में रहने लगा ॥६२॥ माता-पिता के द्वारा यह कहने पर वह वन में चला गया कि अन्धा और लंगड़ा पुत्र अच्छा होता है किन्तु मूर्ख पुत्र अच्छा नहीं होता है ॥६३॥ वह गंगा के तट पर कुटी बनाकर वन्यवृत्ति का संकल्प करके वन में ही निवास करने लगा ॥६४॥ उसने झूठ नहीं बोलने का संकल्प किया और ब्रह्मचारी जीवन बिताते हुए अपनी कुटिया में रहने लगा॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

सारस्वत बीजमन्त्र का महत्त्व

महर्षि लोमश ने बतलाया– वह ब्राह्मण न तो वेदाध्ययन करना जानता था और न जप करना जानता था । वह न तो देवताओं का ध्यान करता था और न आराधना करता था ॥१॥ वह ब्राह्मण न तो आसन तथा प्राणायाम करना जानता था और न प्रत्याहार का उसे ज्ञान था । वह भूतशुद्धि करना भी नहीं जानता था और न उसे जगत् कारण का ज्ञान था ॥२॥ उसे मन्त्र, कीलक, जप, गायत्री, शौच का पालन, स्नान की विधि तथा आचमन करना

यत्किचिद्दन्तधावनम् । स्नानं च शूद्रवत्तत्र गंगायां मंत्रवर्जितम् ॥५॥ फलान्यादाय वन्यानि मध्याह्नेऽपि यदृच्छया । भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानं न जानाति
शठस्तथा ॥६॥ सत्यं ब्रूते स्थितस्तत्र नानृतं वदते पुनः । जनैः सत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै ॥७॥ नाहितं कस्यचित्कुर्यान्न तथाऽविहितं
क्वचित् । सुखं स्वपिति तत्रैव निर्भयश्चिंतयन्निति ॥८॥ कदा मे मरणं भावि दुःखं जीवामि कानने । जीवितं धिक्च मूर्खस्य तरसा मरणं
ध्रुवम्॥९॥ दैवेनाहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम । प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं ममाधुना ॥१०॥ यथा वंध्या सुरूपा च यथा वा निष्फलो
द्रुमः । अदुग्धदोहा धेनुश्च तथाऽहं निष्फलः कृतः ॥११॥ किं नु निन्दाम्यहं दैवं नूनं कर्म ममेदृशम् । न दत्तं पुस्तकं कृत्वा ब्राह्मणाय
महात्मने॥१२॥ न वै विद्या मया दत्ता पूर्वजन्मनि निर्मला । तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मि च द्विजाधमः ॥१३॥ न च तीर्थे तपस्तप्तं सेविता न च
साधवः । न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेन जातोऽस्मि दुष्टधीः ॥१४॥ वर्तन्ते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः । अहं सुमूढः संजातो दैवयोगेन
केनचित्॥१५॥ न जानामि तपस्तप्तुं किं करोमि सुसाधनम् । मिथ्याऽयं मेऽत्र संकल्पो न मे भाग्यं शुभं किल ॥१६॥ दैवमेव परं मन्ये

भी नहीं आता था ॥३॥ उसे प्राणाग्नि होम, बलिदान तथा अतिथि सत्कार का भी ज्ञान नहीं था । उसे संध्या समिधा तथा होम का भी ज्ञान नहीं था ॥४॥
वह प्रात:काल उठकर किसी तरह से दतौन कर लेता था । वह शूद्र के समान बिना मन्त्र के ही गंगा में स्नान कर लेता था ॥५॥ वह भाग्यानुसार प्राप्त
वनैले फल को लाकर दोपहर में खा लेता था । उस मूर्ख ब्राह्मण को भक्ष्याभक्ष्य का भी ज्ञान नहीं था ॥६॥ वह सत्य ही बोलता था, कभी झूठ नहीं
बोलता था । इसीलिए लोगों ने उसका नाम सत्यतपा रख दिया ॥७॥ वह न तो किसी का अपकार करता था और न तो निषिद्ध कर्मो को करता था ।
वह सदा यही सोचते हुए वन में निर्भय होकर सोता था कि मेरी मृत्यु कब होगी ? मैं वन में बड़े कष्ट से जी रहा हूँ । ऐसे जीवन की अपेक्षा तो मर
जाना ही ठीक है ॥७-९॥ विधाता ही ने मुझे मूर्ख बना दिया है, इसका दूसरा कोई भी कारण नहीं है । ब्राह्मणकुल में जन्म लेना मेरा व्यर्थ हो गया॥१०॥
जिस तरह बन्ध्या स्त्री का सुन्दर रूप व्यर्थ होता है, नहीं फलने वाला वृक्ष व्यर्थ होता है, नहीं दूध देने वाली गौ व्यर्थ होती है, उसी तरह मेरा जीवन
व्यर्थ है ॥११॥ मैं अपने भाग्य को क्यों दोष दूँ ? मेरा कर्म ही ऐसा था । मैंने पूर्वजन्म में पुस्तक बनाकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान नहीं दिया है ॥१२॥
मैंने किसी को अपने पूर्वजन्म में किसी को विद्या का दान नहीं दिया है । ऐसे ही कर्म के कारण मैं मूर्ख तथा अधम ब्राह्मण हुआ हूँ ॥१३॥ मैंने किसी
तीर्थ में जाकर तपस्या नहीं की है, और न तो सन्तों की सेवा की है किसी ब्राह्मण को द्रव्य प्रदान करके मैंने उसकी सेवा भी नहीं की है, इसीलिए मूर्ख
हुआ हूँ ॥१४॥ मुनियों के पुत्र वेद तथा शास्त्रों के अर्थ के विषय में पारंगत हैं, किन्तु मैं किसी दुर्भाग्य के कारण मूर्ख हो गया हूँ ॥१५॥ मैं तपस्या करना

धिक्पौरुषमनर्थकम् । वृथा श्रमकृतं कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा ॥१७॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याः किल देवताः । कालस्य वशगाः सर्वे कालो हि दुरतिक्रमः ॥१८॥ एवंविधान्वितर्कांस्तु कुर्वाणोऽहर्निशं द्विजः । स्थितस्तत्राश्रमे तीरे जाह्नव्याः पावने स्थले ॥१९॥ विरक्तः स तु संजातः स्थितस्तत्राश्रमे द्विजः । कालातिवाहनं शांतश्चकार विजने वने ॥२०॥ एवं स्थितस्य तु वने विमलोदके वै वर्षाणि तत्र नवपंच गतानि कामम्। नाराधनं न च जपं न विवेद मंत्रं कालातिवाहनमसौ कृतवान्वने वै ॥२१॥ जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः सत्यं वदत्यपि मुनिः किल नामजातम् । जातं यशश्च सकलेषु जनेषु कामं सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी ॥२२॥ तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः । क्रीडन्वनेऽतिविपुले यमतुल्यदेहः क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चातिदक्षः ॥२३॥ तेनातिकृष्टेन शरेण विद्धः कोलः किरातेन धनुर्धरेण। पलायमानो भयविह्वलश्च मुनेः समीपं विद्रुतो जगाम ॥२४॥ विकंपमानो रुधिरार्द्रदेहो यदा जगामाश्रममंडलं वै । कोलस्तदातीव दयार्द्रभावं प्राप्तो मुनिस्तत्र समीक्ष्य दीनम् ॥२५॥ अग्रे व्रजंतं रुधिरार्द्रदेहं दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम् । दयाभिवेशादतिकंपमानः सारस्वतं बीजमथोच्चचार॥२६॥ अज्ञातपूर्वं च तथाऽश्रुतं च दैवान्मुखे वै समुपागतं च । न ज्ञातवान्बीजमसौ विमूढो ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा ॥२७॥ कोलः प्रविश्याश्रममण्डलं

भी नहीं जानता हूँ अब कौन सा उपाय करूँ । मेरा भाग्य ठीक नहीं हैं, इसलिए यह सब कुछ सोचना व्यर्थ है ॥१६॥ मैं भाग्य को ही बलवान् मानता हूँ, और पौरुष को धिक्कारता हूँ । भाग्य के ठीक नहीं रहने पर परिश्रम से किया हुआ भी कार्य बिगड़ जाता है ॥१७॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्र देवता भी काल के वशवर्ती होते हैं अतएव कोई भी काल का अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥१८॥ वह ब्राह्मण इसी तरह से अनेक प्रकार के वितर्कों को रात-दिन किया करता था और गंगा के पवित्र तट पर निवास करता था ॥१९॥ उस आश्रम में रहता हुआ वह ब्राह्मण विरक्त हो गया था और उस निर्जन वन में अपना समय बिता रहा था ॥२०॥ इस तरह स्वच्छ जल वाले वन में रहते हुए उस ब्राह्मण के चौदह वर्ष बीत गये । वह न तो आराधना करना जानता था, न जप करना जानता था और न तो कोई मंत्र ही जानता था । वह उस निर्जन वन में अपना समय बिता रहा था । आसपास के लोग उसके विषय में यही जानते थे कि यह केवल सत्य ही बोलता है । अतएव उसका सत्यव्रत रूप से यश फैल गया । लोग यह जानते थे कि यह झूठ कभी नहीं बोलता है ॥२२॥ एकबार उसी वन में आखेट करता हुआ अपने हाथ में धनुष बाण लिए हुए एक व्याध आ गया, वह बध के कार्य में अत्यन्त चतुर था ॥२३॥ उस बहेलिए ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर एक सूकर को मारा और घायल सूकर उस सत्यव्रत ब्राह्मण के पास भागता हुआ आया ॥२४॥ वह सूकर भय से काँप रहा था, उसका शरीर खून से भींग गया था । उस दीन सूकर को देखकर सत्यव्रत मुनि के मन में दया भर गयी ॥२५॥ उस घायल

तद्गतो निकुंजे प्रविलीय गूढम् । अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताः प्रवेपमानः शरपीडितत्वात् ॥२८॥ ततः क्षणादाकर्णान्तकृष्टं चापं दधानोऽतिकरालदेहः। प्राप्तस्तदंन्ते स च मृग्यमाणे निषादराजः किल काल एव ॥२९॥ दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम् । व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ पप्रच्छ कोलः क्व गतो द्विजेश ॥३०॥ जानामि तेऽहं सुव्रतं प्रसिद्धं तेनाद्य पृच्छे मम बाणविद्धः । क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुंबं विभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि ॥३१॥ वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा नान्याऽस्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि । भर्तव्यमेवेह कुटुम्बमंजसा केनाप्युपायेन शुभाशुभेन ॥३२॥ सत्यं ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः । क्वासौ गतः सूकरो बाणविद्धः पृच्छाम्यहं बाडव ब्रूहि तूर्णम्॥३३॥ तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम् । सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै ॥३४॥ गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः कथं ब्रवीम्यद्य मृषाऽमृषा वा । क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीह दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै ॥३५॥ सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् । हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव ॥३६॥ हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयोस्तदुत्तरं किं न यथा मृषा

सूकर को देखकर मुनि का मन दया से द्रवित हो गया । दया के अभिनिवेश के कारण वे अत्यधिक काँपने लगे, और उन्होंने विन्दु विहीन 'ऐ' 'ऐ' इस वाग्बीज मन्त्र का उच्चारण किया ॥२६॥ उन्होंने उस मंत्र को न तो पहले जाना था और न सुना था । दैववशात् उनके मुख से वह मंत्र निकल पड़ा । वे इस बीजमन्त्र को नहीं जान सके और उन महात्मा मुनि का मन शोक में डूब गया ॥२७॥ सूकर भी उस आश्रम में प्रवेश करके एक झाड़ी में छिप गया । उसको वहाँ से निकलने का मार्ग नहीं मिला बाण लगने के कारण वह काँप रहा था ॥२८॥ उसके क्षणभर बाद धनुष पर बाण चढ़ाए हुए भयंकर शरीर वाला वह व्याध दूसरे काल के समान सूकर को खोजते हुए आश्रम में आया ॥२९॥ उसने देखा कि अकेले सत्यव्रत मुनि कुशासन पर बैठे हुए हैं । व्याध ने उनको प्रणाम करके पूछा कि वह घायल सूकर कहाँ गया ?॥३०॥ मैं आपके सत्य बोलने के प्रसिद्ध व्रत को जानता हूँ । मेरा सारा परिवार भूखा है । उसका भरण करने की इच्छा से आप से मैं पूछने के लिए आया हूँ कि बाण से घायल वह सूकर कहाँ गया ॥३१॥ हे ब्राह्मण मेरी यह वृत्ति ही ब्रह्मा ने बनायी है । इसके अतिरिक्त मेरी कोई जीविका नहीं है, मैं सत्य कहता हूँ । मुझे पुण्य अथवा अपुण्य (पाप) मय किसी भी उपाय से अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना ही है ॥३२॥ आप सत्यव्रत हैं, अतएव सत्य बतलाइये, मेरा सारा परिवार भूख से व्याकुल है । वह बाण से घायल सूकर कहाँ गया ? आप शीघ्र बतलाएँ ॥३३॥ उस बहेलिए के पूछने के कारण वे महात्मा बहुत घबरा गये थे । वे सोच रहे थे कि यदि मैं कहूँ कि मैंने नहीं देखा है तो क्या मेरे सत्य बोलने का व्रत भंग नहीं होगा ?॥३४॥ यह बाण से विद्ध सूकर इधर गया है, ऐसा मैं कहूँ तो यह उस सूकर को मार देगा, क्योंक भूख से व्याकुल होने के कारण पूछ रहा है । अतएव मैं झूठ अथवा सच कैसे बोलूँ ॥३५॥ वह सत्य-सत्य नहीं है जिसके द्वारा हिंसा होती हो

वचः । विचारयन्बाडव धर्मसंकटे न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम् ॥३७॥ बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितं च कोलं तदंते समुदाहृतं वचः । तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै ॥३८॥ बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताऽखिला । वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः ॥३९॥ तमुवाच द्विजो व्याधं संमुखस्थं धनुर्धरम् । सत्यकामस्तु धर्मात्मा श्लोकमेकं दयापरः ॥४०॥ या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति । अहो व्याध स्वकार्यार्थिन्किं पृच्छसि पुनः पुनः ॥४१॥ इत्युक्तस्तु तदा तेन गतोऽसौ पशुहा पुनः । निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तो निजालये ॥४२॥ ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः । प्रसिद्धः सर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः ॥४३॥ सारस्वतं ततो बीजं जजाप विधिपूर्वकम् । पंडितश्चातिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले ॥४४॥ प्रतिपर्वसु गायंति ब्राह्मणा यद्यशः सदा । आख्यानं चातिविस्तीर्णं स्तुवंति मुनयः किल ॥४५॥ तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागत्य तदाश्रमे । येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतोऽतिमानितः ॥४६॥ तस्माद्राजन्सदा सेव्या पूजनीया च भक्तितः । आदिशक्तिः परा देवी जगतां कारणं हि सा ॥४७॥ तस्या यज्ञं महाराज कुरु वेदविधानतः । सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा ॥४८॥ स्मृता सम्पूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चारिता स्तुता । ददाति वांछितानर्थान्कार्यदा तेन कीर्त्यते ॥४९॥ अनुमानमिदं राजन्कर्तव्यं

जिस दयायुक्त असत्य से किसी प्राणी का कल्याण होता हो वह असत्य ही सत्य है । जो इसके विपरीत हो वह सत्य नहीं है ॥३६॥ इन परस्पर विरोधियों के रहने पर मेरा कल्याण कैसे हो ? मैं इसे क्या उत्तर दूँ कि मेरी वाणी झूठी न हो । इस तरह विचार करते हुए ब्राह्मण धर्मसंकट में पड़ गये थे और यह मालुम नहीं हो रहा था कि मेरा उचित उत्तर क्या हो ॥३७॥ बाण से घायल सूकर को देखकर दया से द्रवित मुनि के मुख से जो 'ऐ' 'ऐ' यह वाग्बीज उच्चरित हो गया था उससे भगवती शिवा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने उस ब्राह्मण को दुर्लभ विद्या प्रदान कर दिया ॥३८॥ देवी के बीज मन्त्र का उच्चारण करने से उन ब्राह्मण को सारी विद्याएँ प्राप्त हो गयीं । पहले जैसे वाल्मीकि महर्षि हुए थे उसी तरह वे सत्यव्रत मुनि भी कवि हो गये ॥३९॥ धनुष धारण किए हुए सामने खड़े व्याध को देखकर दयार्द्र मुनि सत्यव्रत ने एक श्लोक कहा ॥४०॥ जो (आँख) देखने का काम करती है, वह बोलना नहीं जानती है और जो (जिह्वा) बोलती है, वह देखने का काम नहीं करती है । व्याध तुम तो अपना काम सिद्ध करना चाहते हो बार-बार क्या पूछ रहे हो ?॥४१॥ इस बात को सुनकर वह व्याध समझ लिया कि मुनि कुछ बतलाना नहीं चाहते हैं, और वह सूकर के विषय में निराश होकर अपने घर चला गया ॥४२॥ वे ब्राह्मण भी दूसरे वाल्मीकि महर्षि के समान कवि हो गये और सभी लोगों में सत्यव्रत के नाम से प्रसिद्ध हो गये ॥४३॥ उसके बाद वे विधिपूर्वक सारस्वत बीज मन्त्र को जपने लगे और इस भूमण्डल पर वे विख्यात पण्डित हो गये ॥४४॥ प्रत्येक पर्व पर ब्राह्मणगण उनके यश का गायन करते हैं और उनके विस्तृत आख्यान का वर्णन करते हैं ॥४५॥ उसके बाद उनके घर वालों ने उनकी असाधारण ख्याति को सुना तो वे उनके आश्रम में आये और उन्हें ससम्मान अपने घर ले गये ॥४६॥ अतएव हे राजन् ! आदिशक्ति परादेवी की सदा भक्तिपूर्वक सेवा और पूजा करनी चाहिए । वे ही जगत् के

सर्वथा बुधैः । दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान् ॥५०॥ जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा । दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ॥५१॥ अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेंद्रियान् । तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान् ॥५२॥ तथा विभवसंपन्नान्पुत्रपौत्रविवर्धनान् । पुष्टदेहांश्च संभोगैः संयुतान्वेदवादिनः ॥५३॥ राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ । स्वजनैरवियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान् ॥५४॥ व्यतिरेकान्वयाभ्यां च विचेतव्यं विचक्षणैः । एभिर्न पूजिता देवी सर्वार्थफलदा शिवा ॥५५॥ समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदाऽम्बिका । यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः ॥५६॥ व्यास उवाच– इति राजञ्छ्रुतं तत्र मया मुनिसमागमे । लोमशस्य मुखात्कामं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥५७॥ इति संचिंत्य राजेन्द्र कर्तव्यं च सदार्चनम् । भक्त्या परमया देव्याः प्रीत्या च पुरुषर्षभ ॥५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

कारण हैं ॥४७॥ हे महाराज ! वेद के विधान के अनुसार आप उनका यज्ञ करें । वह यज्ञ सभी कामनाओं को निश्चित रूप से पूर्ण करने वाला है इस बात को मैं पहले ही बतला चुका हूँ ॥४८॥ उनको कार्मदा का इसलिए कहा जाता है कि वे भक्तिपूर्वक स्मरण, पूजन, ध्यान, मन्त्रोच्चारण तथा स्तुति किए जाने पर अभिलषित समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं ॥४९॥ हे राजन् ! रोगी, दीन, भूखे, निर्धन, शठ, आर्त, मूर्ख, वैरियों से पीड़ित, आज्ञाकारी भृत्य, क्षुद्र, विकल, विह्वल, भोजन तथा भोग में अतृप्त, सदा आर्त, अजितेन्द्रिय, अधिक लोभी, असमर्थ तथा सदा रोगों से पीड़ित लोगों को देखकर यह अनुमान करना चाहिए कि उन लोगों ने देवी की पहले आराधना नहीं की थी ॥४८-५२॥ इसी तरह वैभव से सम्पन्न, पुत्र पौत्रों से परिपूर्ण, पुष्ट शरीर, भोगों से सम्पन्न, वेदज्ञ, राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न, शूरवीर लोगों को भी वश में रखने वाले सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न अपने परिवार के सभी लोगों के साथ रहने वाले लोगों के विषय में अनुमान कर लेना चाहिए कि इन लोगों ने भगवती की आराधना की है ॥५४॥ ज्ञानियों को इस प्रकार से अन्वय व्यतिरेक के द्वारा निश्चय कर लेना चाहिए कि इन लोगों ने सभी फलों को प्रदान करने वाली भगवती शिवा की आराधना नहीं की है और इन लोगों ने अम्बिका की आराधना की है इसीलिए ये सब संसार में सुखी हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥५६॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! हमने मुनियों के समाज में इसी प्रकार से महर्षि लोमश के मुख से देवी के उत्तम माहात्म्य का श्रवण किया है ॥५७॥ हे राजेन्द्र ! इसी तरह से विचार करके परमा भक्ति से प्रेमपूर्वक देवी की सदा अर्चना करनी चाहिए॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

राजोवाच– **वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समंततः । श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन् यथाशक्ति ह्यतंद्रितः ॥१॥ पूजाविधिं च मंत्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम् । ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च दक्षिणाश्च तथा पुनः ॥२॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्या यज्ञं विधानतः । त्रिविधं तु सदा ज्ञेयं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥३॥ सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च तथा परम् । मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम् ॥४॥ तामसं राक्षसानां वै ज्ञानिनां तु गुणोज्झितम् । विमुक्तानां ज्ञानमयं विस्तरात्प्रब्रवीमि ते ॥५॥ देशः कालस्तथा द्रव्यं मंत्राश्च ब्राह्मणास्तथा । श्रद्धा च सात्त्विकी यत्र तं यज्ञं सात्त्विकं विदुः ॥६॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मंत्रशुद्धिश्च भूमिप । भवेद्यदि तथा पूर्णं फलं भवति नान्यथा ॥७॥ अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम् । न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम् ॥८॥ तस्मान्न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा । यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च ॥९॥ प्रत्यक्षं तव राजेंद्र पांडवैस्तु मखः कृतः । राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः ॥१०॥ यत्र साक्षाद्धरिः**

अम्बायज्ञ की विधि

राजा जनमेजय ने कहा– हे स्वामिन् ! आप मुझे उस देवी के यज्ञ की विधि को अच्छी तरह से बतलाएँ, श्रवण करके मैं उस यज्ञ को अपनी शक्ति के अनुसार सावधानी पूर्वक करूँगा ॥१॥ आप पूजा की विधि, मन्त्रों, होम के द्रव्य, ब्राह्मणों की संख्या तथा ब्राह्मणों को दी जाने वाली दक्षिणा के बारे में बतलाएँ ॥२॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! मैं देवी के यज्ञ का वर्णन विधिपूर्वक कर रहा हूँ । उसे आप सुनें । अनुष्ठान की विधि से किया जाने वाला देवीयज्ञ तीन प्रकार का होता है ॥३॥ सात्त्विक, राजस एवं तामस । मुनियों के लिए सात्त्विक यज्ञ बतलाया गया है, राजाओं के लिए राजस और राक्षसों के लिए तामस । ज्ञानियों के लिए निर्गुण यज्ञ का विधान है और वैराग्यसम्पन्न मनुष्यों के लिए ज्ञानमय यज्ञ विहित है । इन सभी यज्ञों का मैं विस्तार पूर्वक वर्णन कर रहा हूँ ॥४-५॥ जिस यज्ञ में देश, काल, द्रव्य, मंत्र तथा ब्राह्मण ये सभी उत्तमकोटि के हों और सात्त्विकी श्रद्धा हो उस यज्ञ को सात्त्विक यज्ञ कहते हैं ॥६॥ राजन् यज्ञ का पूरा फल तब ही प्राप्त होता है जब कि यज्ञ में द्रव्य, क्रिया तथा मन्त्र इन तीनों की पूर्णरूप से शुद्धि हो ॥७॥ अन्यायपूर्वक अर्जित किए गये द्रव्य से किये गये पुण्य कर्म से न तो इस लोक में यश होता है और न तो परलोक में फल की प्राप्ति होती है ॥८॥ अतएव सदा न्यायार्जित धन से पुण्य कार्य करना चाहिए । उससे इस लोक में यश फैलता है और परलोक में प्राणी को सुख की प्राप्ति होती है ॥९॥ राजेन्द्र ! आपको यह ज्ञात ही है कि पाण्डवों ने श्रेष्ठ दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ को किया था । उस यज्ञ में साक्षात् श्रीहरि यादवेन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान

कृष्णो यादवेन्द्रो महामनाः । ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्च भारद्वाजादयस्तथा ॥११॥ कृत्वा यज्ञं सुसंपूर्णं मासमात्रेण पांडवैः । प्राप्तं महत्तरं कष्टं
वनवासश्च दारुणः ॥१२॥ पीडनं चैव पांचाल्यास्तथा द्यूते पराजयः । वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम् ॥१३॥ दासत्वं च विराटस्य
कृतं सर्वैर्महात्मभिः । कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा ॥१४॥ आशीर्वादा द्विजातीनां क्व गताः शुद्धचेतसाम् । भक्तिर्वा वासुदेवस्य क्व
गता तत्र संकटे ॥१५॥ न रक्षिता तदा बाला केनापि द्रुपदात्मजा । प्राप्तकेशग्रहा काले साध्वी च वरवर्णिनी ॥१६॥ किमत्र चिंतनीयं वै
धर्मवैगुण्यकारणम् । केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥१७॥ भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यात्तदागमः । वेदमंत्रास्तथाऽन्ये च वितथाः
स्युरसंशयम् ॥१८॥ साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः । भवितव्यं भवत्येव वचने प्रतिपादके ॥१९॥ आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा
निरर्थकाः । स्वर्गार्थं च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा ॥२०॥ सर्वं प्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि । उभयं चापि मंतव्यं दैवं चोपाय एव
च ॥२१॥ कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत् । वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पण्डितमौलिभिः ॥२२॥ तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिः
कर्मकारिभिः । कर्तृभेदान्मंत्रभेदाद्द्रव्यभेदात्तथा पुनः ॥२३॥ यथा मघवता पूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः । विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै॥२४॥

थे और विद्याओं के पूर्ण ज्ञाता भरद्वाज आदि ब्राह्मण थे ॥११॥ एक मास में पाण्डवों ने उस यज्ञ को सम्पन्न किया, किन्तु उस यज्ञ को करके भी उन्हें
वनवास का महान् कष्ट उठाना पड़ा ॥१२॥ उसके फलस्वरूप द्रौपदी को अपमान सहना पड़ा, जूए में उनका पराजय हुआ, वनवास का महान् कष्ट सहना
पड़ा, बतलाओ कहाँ गया यज्ञ का फल ?॥१३॥ सभी पाण्डव विराट् के दास बन गये; परम सुन्दरी द्रौपदी को कीचक ने कष्ट दिया ॥१४॥ शुद्ध
अन्तःकरण वाले ब्राह्मणों का अशीर्वाद कहाँ गया । उस विपत्ति में वासुदेव की भक्ति का फल कहाँ चला गया ॥१५॥ उस समय किसी ने भी द्रौपदी की
रक्षा नहीं की । उस सुन्दरी के केश पकड़कर खींचे गये ॥१६॥ जिस यज्ञ में स्वयं केशव अग्रगण्य हों; धर्मराज युधिष्ठिर यजमान हों, और उसका फल
इतना दुःखद हो तो अवश्य उसमें धर्मवैगुण्य मानना होगा ॥१७॥ यदि उसे भाग्य का फल माना जाय तब तो शास्त्र, मन्त्र तथा अन्य क्रियाओं के अनुष्ठान
को व्यर्थ ही मानना होगा ॥१८॥ यदि दैव को ही बलवान माना जाय तब तो मानना होगा कि सभी साधन और उपाय व्यर्थ हैं ॥१९॥ शास्त्रों को अर्थवाद
(प्रशंसावाक्य) मात्र मानना होगा, और सभी क्रियाएँ निरर्थक होंगी । स्वर्गप्राप्ति के लिए अनुष्ठित तपस्याएँ और वर्णाश्रम के धर्म व्यर्थ होगें ॥२०॥
भवितव्यता की ही प्रधानता मानने पर सभी प्रमाण व्यर्थ हो जायेंगे । अतएव दैव तथा पुरुषार्थ दोनों को स्वीकार करना चाहिए ॥२१॥ कर्म के
करने पर भी विपरीत फल की प्राप्ति होने पर पण्डितों को यह विचार करना चाहिए कि कर्म के करने में कहाँ त्रुटि हुई है ?॥२२॥ विद्वानों ने कर्ता

देवेभ्यो दानवेभ्यस्तु स्वस्तीत्युक्त्वा पुनः पुनः । असुरा मातृपक्षीयाः कृतं तेषां च रक्षणम् ॥२५॥ दैत्यान् दृष्ट्वाऽतिसंपुष्टांश्चुकोप मघवा तदा ।
शिरांसि तस्य वज्रेण चिच्छेद तरसा हरिः ॥२६॥ क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम् । नोचेत्पंचालराजेन रोषेणापि कृता क्रिया ॥२७॥
भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च । धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी ॥२८॥ पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा । अपुत्रस्य
सुतास्तस्य चत्वारः संप्रजज्ञिरे ॥२९॥ अतः क्रिया कृता युक्त्या सिद्धिदा सर्वथा भवेत् । अयुक्त्या विपरीता स्यात्सर्वथा नृपसत्तम ॥३०॥
पांडवानां यथा यज्ञे किंचिद्वैगुण्ययोगतः । विपरीतं फलं प्राप्तं निर्जितास्ते दुरोदरे ॥३१॥ सत्यवादी तथा राजन्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । द्रौपदी च
तथा साध्वी तथाऽन्येप्यनुजाः शुभाः ॥३२॥ कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा । साभिमानैः कृताद्वापि दूषणं समुपस्थितम् ॥३३॥
सात्त्विकस्तु महाराज दुर्लभो वै मखः स्मृतः । वैखानसमुनीनां हि विहितोऽसौ महामखः ॥३४॥ सात्त्विकं भोजनं ये वै नित्यं कुर्वंति तापसाः।
न्यायार्जितं च वन्यं च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम् ॥३५॥ पुरोडाशपरा नित्यं वियूपा मंत्रपूर्वकाः । श्रद्धाधिका मखा राजन्सात्त्विकाः परमाः स्मृताः॥३६॥

के भेद से, मन्त्र के भेद से तथा द्रव्य के भेद से कर्म को अनेक प्रकार का बतलाया है ॥२३॥ प्राचीन काल में इन्द्र ने विश्वरूप को अपना गुरु बनाया था, किन्तु उसने अपने मातृपक्ष के दैत्यों के कल्याण के विपरीत कर्म किया ॥२४॥ विश्वरूप ने देवों तथा दैत्यों दोनों के लिए बार-बार स्वस्ति वाक्य का प्रयोग करके अपने मातृपक्षीय दैत्यों की रक्षा की थी ॥२५॥ दैत्यों को अत्यन्त पुष्ट देखकर इन्द्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने वज्र से विश्वरूप के तीनों शिरों को काट दिया ॥२६॥ निश्चय ही यहाँ कर्ता के भेद के कारण क्रिया में वैगुण्य आया, यदि ऐसा नहीं माना जाय तो पाञ्चालराज ने क्रोधपूर्वक इस आशय से यज्ञ किया था कि भरद्वाज वंशीय द्रोणाचार्य का विनाश हो और मुझे एक पुत्र की प्राप्ति हो । उसके फलस्वरूप धृष्टद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और यज्ञ की वेदी के मध्य भाग से द्रौपदी का प्राकट्य हुआ ॥२७-२८॥ इसी तरह त्रेतायुग में महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था और उसके फलस्वरूप उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥२९॥ अतएव युक्तिपूर्वक की गयी क्रिया अवश्य सिद्धि प्रदान करने वाली होती है । हे राजन् ! युक्ति से रहित की गयी क्रिया विपरीत फल प्रदान करने वाली होती है ॥३०॥ पाण्डवों के यज्ञ में कुछ वैगुण्य के कारण, विपरीत फल की प्राप्ति हुई और वे जुए में हार गये ॥३१॥ राजन् ! सत्यवादी युधिष्ठिर, साध्वी द्रौपदी तथा युधिष्ठिर के सभी भाई; सबके सब शुभ थे । इससे यही पता चलता है कि कुद्रव्य के प्रयोग से यज्ञ में वैगुण्य हुआ । अथवा उन लोगों ने अभिमान पूर्वक यज्ञ किया; जिसके कारण यज्ञ में दोष आया ॥३३॥ शास्त्रों में सात्त्विक यज्ञ का होना बड़ा कठिन बतलाया गया है । ऐसा महायज्ञ, वैखानस मुनियों (वानप्रस्थ मुनियों) के लिए ही विहित है ॥३४॥ जो तपस्वी सदा सात्त्विक भोजन करते हैं, किञ्च

राजसा द्रव्यबहुलाः सयूपाश्च सुसंस्कृताः । क्षत्रियाणां विशां चैव साभिमानाश्च वै मखाः ॥३७॥ तामसा दानवानां वै सक्रोधा मदवर्धकाः ।
सामार्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्ता महात्मभिः ॥३८॥ मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम् । मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसाधनसंयुतः॥३९॥
अन्येषु सर्वयज्ञेषु किंचिन्नयूनं भवेदपि । द्रव्येण श्रद्धया वाऽपि क्रियया ब्राह्मणैस्तदा ॥४०॥ देशकालपृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा । नान्यो
भवति पूर्णो वै यथा भवति मानसः ॥४१॥ प्रथमं तु मनः शोध्यं कर्तव्यं गुणवर्जितम् । शुद्धे मनसि देहो वै शुद्ध एव न संशयः ॥४२॥
इन्द्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मनः शुचि । तदा तस्य मखस्यासौ प्रभवेदधिकारवान् ॥४३॥ तदाऽसौ मंडपं कृत्वा बहुयोजनविस्तृतम् । स्तम्भैश्च
विपुलैः श्लक्ष्णैर्यज्ञियद्रुमसंभवैः ॥४४॥ वेदीं च विशदां तत्र मनसा परिकल्पयेत् । अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल ॥४५॥
ब्राह्मणानां च वरणं तथैव प्रतिपाद्य च । ब्रह्माऽध्वर्युस्तथा होता प्रस्तोता विधिपूर्वकम् ॥४६॥ उद्गाता प्रतिहर्ता च सभ्याश्चान्ये यथाविधि । पूजनीयाः
प्रयत्नेन मनसैव द्विजोत्तमाः ॥४७॥ प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च । पावकाः पञ्च एवैते स्थाप्या वेद्यां विधानतः ॥४८॥ गार्हपत्यस्तदा

वे ऋषि न्यायार्जित वन्य तथा संस्कारयुक्त ऋष्यन्न को खाते हैं । पुरोडाश का भोजन करते हैं । बलिपशु से विहीन अत्यधिक श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला यज्ञ सात्त्विक यज्ञ कहलाता है ॥३५-३६॥ राजस यज्ञ वे हैं जिनमें बहुत अधिक द्रव्य का व्यय किया जाता है, संस्कार युक्त यूप होते हैं, ऐसे यज्ञ क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए विहित होते हैं और अभिमान पूर्वक किए जाते हैं ॥३७॥ दानवों द्वारा क्रोधपूर्वक किए जाने वाले और गर्व को बढ़ाने वाले यज्ञ तामस हैं । ये आमर्षपूर्वक बहुत अधिक सजावट के साथ किए जाते हैं । ऐसे यज्ञों को मुनियों ने क्रूर यज्ञ बतलाया है ॥३८॥ मोक्ष चाहने वाले विरक्त महात्माओं के लिए तो सभी साधनों से सम्पन्न मानस यज्ञ बतलाया गया है ॥३९॥ अन्य सभी प्रकार के यज्ञों में कुछ न्यूनता होने पर द्रव्य, क्रिया, ब्राह्मण, देश तथा काल आदि के द्वारा वैसी अच्छी पूर्ति नहीं हो सकती है जैसी पूर्ति मानस यज्ञ की होती है ॥४०-४१॥ पहले मन को शुद्ध करके उसे सत्त्वादि गुणों से रहित बनाना चाहिए । मन के शुद्ध हो जाने पर देह भी शुद्ध हो जाता है ॥४२॥ जब मन शुद्ध होकर इन्द्रियों के विषय (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) में रमण करना छोड़ देता है; तब ही मनुष्य मानस यज्ञ करने का अधिकारी होता है ॥४३॥ उसके बाद उसे अनेक योजन विस्तृत मंडप बनाना चाहिए । इसमें यज्ञीय वृक्षों से चिकने अनेक स्तम्भों को लगाये ॥४४॥ उसके बाद मन से सुन्दर वेदी का निर्माण करे । उसके बाद उस पर मन से ही अग्नियों की स्थापना करे ॥४५॥ उसके बाद वह मानसिक ही होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा तथा प्रस्तोता का सविधि वरण करे ॥४६॥ फिर उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा सभ्यों की कल्पना करे । मन से ही प्रयत्न पूर्वक वृत ब्राह्मणों की पूजा करे ॥४७॥ वेदी के ऊपर प्राण, अपान, समान व्यान तथा उदान

प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः । दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्यकः ॥४९॥ सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाः परमोत्कटाः । द्रव्यं च मनसा भाव्यं निर्गुणं परमं शुचि ॥५०॥ मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत् । यज्ञाधिदेवता ब्रह्म निर्गुणं च सनातनम् ॥५१॥ फलदा निर्गुणा शक्तिः सदा निर्वेददा शिवा । ब्रह्मविद्याऽखिलाधारा व्याप्य सर्वत्र संस्थिता ॥५२॥ तदुद्देशेन तद्द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः । पश्चाच्चितं निरालंबं कृत्वा प्राणानपि प्रभो ॥५३॥ कुण्डलीमुखमार्गेण हुनेद् ब्रह्मणि शाश्वते । स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम् ॥५४॥ समाधिनैव योगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः । सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥५५॥ यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम् । दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद्भूयात्सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥५६॥ तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप । प्रारब्धं कर्ममात्रं तु यावद्देहं च तिष्ठति ॥५७॥ जीवन्मुक्तस्तदा जातो मृतो मोक्षमवाप्नुयात् । कृतकृत्यो भवेत्तात यो भजेज्जगदम्बिकाम् ॥५८॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी । श्रोतव्या चैव मंतव्या गुरुवाक्यानुसारतः ॥५९॥ राजन्नेवं कृतो यज्ञो मोक्षदो नात्र संशयः । अन्ये यज्ञाः सकामास्तु प्रभवंति क्षयोन्मुखाः ॥६०॥ अग्निष्टोमेन विधिवत्स्वर्गकामो

इन पाञ्च प्राणों की अग्नि के रूप में स्थापना करनी चाहिए ॥४८॥ उस यज्ञ में प्राणवायु की गार्हपत्य अग्नि के रूप में, अपानवायु की आहवनीय अग्नि के रूप में, व्यानवायु की दक्षिणाग्नि के रूप में, समान वायु की आवसथाग्नि के रूप में तथा उदानवायु की सभ्याग्नि के रूप में कल्पना करनी चाहिये। ये सभी अग्नियाँ अत्यन्त उत्तम कोटि की हैं । मानसिक रूप से कल्पित द्रव्य को भी निर्गुण और अत्यन्त पवित्र होना चाहिए ॥४९-५०॥ उस यज्ञ का होता तथा यजमान मन होता है । उसके अधिदेव निर्गुण तथा सनातन ब्रह्म होते हैं ॥५१॥ उस यज्ञ के निर्वेद (वैराग्य) रूपी फल को देने वाली निर्गुणा; शिवा शक्ति होती है । वे ही ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी सबों के अधार तथा सर्वव्यापक हैं ॥५२॥ उस जगदम्बिका की प्रसन्नता के लिए उन मनः कल्पित द्रव्यों का प्राण रूपी अग्नियों में होम करना चाहिए । हे राजन् ! उसके बाद अपने मन को निर्विषय बनाकर कुण्डलिनी के मुखरूपी मार्ग से शाश्वत ब्रह्म में होम करना चाहिए । समाधि की स्थिति में महेश्वरी का अपनी आत्मा के रूप में अनुभव करके उस देवी का समाधिस्थ होकर ध्यान करना चाहिए । ऐसा करके वह सभी भूतों में अपने को और सभी भूतों को अपने में अनुभव करने लगता है ॥५३-५५॥ ऐसी स्थिति में ही वह भूतात्मा शिवा देवी का दर्शन कर पाता है । उस सच्चिदानन्द स्वरूपिणी देवी का दर्शन करके वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है ॥५६॥ हे राजन् ! उस समय माया आदि सब दोष विनष्ट हो जाते हैं और प्रारब्ध कर्म जन्य शरीर जब तक विनष्ट नहीं हो जाता है तब तक ही वह रहता है ॥५७॥ तदन्तर वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और मरने के बाद वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है । हे तात ! जो जगदम्बिका की सेवा करता है उसका जीवन सफल हो जाता है ॥५८॥ अतः सारे प्रयत्नों के द्वारा श्रीभुवनेश्वरी का ध्यान

यजेदिति । वेदानुशासनं चैतत्प्रवदंति मनीषिणः ॥६१॥ क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशंति च यथामति । तस्मात्तु मानसः श्रेष्ठो यज्ञोऽप्यक्षय एव सः ॥६२॥ न राज्ञा साधितुं योग्यो मखोऽसौ जयमिच्छता । तामसस्तु कृतः पूर्वं सर्पयज्ञस्त्वयाऽधुना ॥६३॥ वैरं निर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः । यत्कृते निहताः सर्पास्त्वयाऽग्नौ कोटिशः परे ॥६४॥ देवीयज्ञं कुरुष्वाद्य विततं विधिपूर्वकम् । विष्णुना यः कृतः पूर्वं सृष्ट्यादौ नृपसत्तम ॥६५॥ तथा त्वं कुरु राजेन्द्र विधिं ते प्रब्रवीम्यहम् । ब्राह्मणाः संति राजेन्द्र विधिज्ञा वेदवित्तमाः ॥६६॥ देवीबीजविधानज्ञा मन्त्रमार्गविचक्षणाः । याजकास्ते भविष्यन्ति यजमानस्त्वमेव हि ॥६७॥ कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम् । समुद्धर महाराज पितरं दुर्गतिं गतम् ॥६८॥ विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम् । तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवानघ ॥६९॥ तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भुभूजा। अन्तराले तथा मृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे ॥७०॥ न संग्रामे न गंगायां स्नानदानादिवर्जितम् । मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह ॥७१॥ कृपणानि च सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम । तत्रैकं कारणं तस्य न जातं चातिदुर्लभम् ॥७२॥ यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम् ।

करना चाहिए और गुरु के उपदेश वाक्य के अनुसार उनका श्रवण तथा मनन करना चाहिए ॥५९॥ राजन् ! इस प्रकार से किया गया यज्ञ मोक्ष प्रदान करने वाला होता है । दूसरे किए गये सकाम यज्ञ विनाशशील होते हैं, ॥६०॥ मनीषीगण कहते हैं कि वेदों की यह आज्ञा है कि स्वर्ग चाहने वाले पुरुष को विधिपूर्वक अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिए ॥६१॥ और वे अपनी बुद्धि के अनुसार बतलाते हैं कि स्वर्गस्थ जीव पुण्य के समाप्त हो जाने पर पुनः मर्त्यलोक में आते हैं । अतएव मानस यज्ञ ही करना चाहिए क्योंकि उसका फल अक्षय होता है ॥६२॥ विजय की प्राप्ति चाहने वाले राजा इस यज्ञ को नहीं कर सकते हैं। तुमने पहले तामस सर्पयज्ञ किया है ॥६३॥ आपने दुष्ट तक्षक के साथ अपना वैर निभाया है । उसके करने से तुमने करोड़ो सर्पों को आग में गिरा कार मार डाला है ॥६४॥ अब तुम विधिपूर्वक विस्तृत देवी के यज्ञ को करो । सृष्टि के प्रारम्भ में विष्णु ने इस यज्ञ को किया था ॥६५॥ हे राजेन्द्र ! तुम भी वैसा ही करो । तुम्हें मैं इस यज्ञ की विधि को बतला रहा हूँ । हे राजन् ! श्रेष्ठ वेदज्ञ इस यज्ञ की विधि जानने वाले ब्राह्मण हैं।॥६६॥ वे देवी के बीजमन्त्र के विधान को जानते हैं तथा मन्त्रमार्ग को भी जानते हैं । वे ही यज्ञ करायेंगे और तुम ही यजमान होओ ॥६७॥ तुम विधिपूर्वक यज्ञ को करके उससे प्राप्त हुए पुण्य को अपने पिताजी को प्रदान करो । उससे वे ब्राह्मण के शाप से हुई दुर्गति से बच जायेंगे । आप अपने पिता का उद्धार करो॥६८॥ ब्राह्मण का अपमान करने से उत्पन्न होने वाला पाप भयंकर और नरक प्रदान करने वाला होता है । हे अनघ ! आपके पिता ने उसी प्रकार का शापजन्य दोष प्राप्त किया है ॥६९॥ उनकी सर्प के काटने से दुर्मृत्यु हुई है । वह भी उनकी मृत्यु अन्तरिक्ष में हुई है । पृथिवी पर कुश की चटाई पर नहीं हुई है ॥७०॥

साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसंकटे ।।७३।। यदा निर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै । पंचभूतात्मको देहो मम किं चात्र दुःखदम् ।।७४।। पतत्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहं निर्गुणोऽव्ययः । नाशात्मकानि तत्त्वानि तत्र का परिदेवना ।।७५।। ब्रह्मैवाहं न संसारी सदा मुक्तः सनातनः । देहेन मम संबंधः कर्मणा प्रतिपादितः ।।७६।। तानि सर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणि च । मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात् ।।७७।। विमुक्तोऽतिभयाद्घोरादस्मात्संसारसंकटात् । इत्येवं चिंत्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः ।।७८।। मरणं चेदवाप्नोति स मुच्येज्जन्मदुःखतः । एषा काष्ठा परा प्रोक्ता योगिनामपि दुर्लभा ।।७९।। पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापं द्विजोदितम् । देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान् ।।८०।। नीरोगो मम देहोऽयं राज्यं निहतकंटकम् । कथं जीवाम्यहं कामं मंत्रज्ञानानयंतु वै ।।८१।। औषधं मणिमन्त्रं च यंत्रं परमकं तथा । आरोहणं तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा ।।८२।। न स्नानं न कृतं दानं न देव्याः स्मरणं कृतम् । न भूमौ शयनं चैव दैवं मत्वा परं तथा ।।८३।। मग्नो महार्णवे घोरे

हे कुरुश्रेष्ठ ! आपके पिता की मृत्यु संग्राम में नहीं हुई है उनकी मृत्यु गंगा नदी में स्नान दान आदि से रहित हुई है । उनकी मृत्यु छत पर हुई है ।।७१।। ये सभी कारण उन्हें नरक में भेजने वाले थे । उनमें कोई भी ऐसा कारण नहीं था जो उन्हें नरक से बचाए ।।७२।। प्राणी चाहे जहाँ रहे, उसे जब इस बात का पता चल जाय कि मेरी मृत्यु आ गयी है, उस समय साधनों का अभाव रहने पर तथा अत्यन्त संकट रहने पर भी मन के स्वच्छ रहने के कारण वैराग्य आ जाय और वह सोचने लग जाय कि देह तो पञ्चभूतों से बना है, यह मुझको क्या सुख देगा ?।।७३-७४।। यह आज ही विनष्ट हो जाय मैं मुक्त हूँ, निर्गुण तथा अविनाशी हूँ । पञ्चतत्त्व नाशवान् हैं । इसमें मुझे कौन सा कष्ट है ?।।७५।। मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं हूँ, मैं सदा मुक्त हूँ सनातन हूँ । देह के साथ मेरा संबन्ध तो कर्म के कारण हुआ है ।।७६।। मेरे सभी पुण्य तथा पाप कर्म विनष्ट हो गये । मनुष्य के देह के कारण होने वाले सुख-दुःख के अनुसंधान से भी मेरा संबन्ध छूट गया ।।७७।। मैं अत्यन्त भयंकर संसार के इस संकट से छूट गया हूँ । इस तरह से चिन्तन करता हुआ यदि कोई स्नान दान किए बिना भी मृत्यु पा लेता है, तो वह जन्म मरण के दुःख से मुक्त हो जाता है । किन्तु यह मार्ग अत्यन्त कठिन है, यह योगियों के लिए भी दुर्लभ है ।।७९।। हे राजन् ! आपके पिता ने ब्राह्मण के द्वारा दिए गये शाप को सुना तो उनकी शरीर में ममता बढ़ गयी । उनको वैराग्य नहीं हुआ ।।८०।। वे चाहते थे कि मेरा शरीर निरोग है, मैं अकण्टक राज्य करता हूँ । मैं किस प्रकार बहुत दिनों तक जीवित रहूँ ? उन्होंने लोगों से कहा कि मन्त्र के जानकारों को बुला लाओ । उन्होंने औषधि, मणि तथा मन्त्र से सम्पन्न तथा यन्त्र से सम्पन्न महल को बनवाकर उसमें निवास किया ।।८१-८२।। उन्होंने न तो स्नान किया, न दान किया और न तो देवी का स्मरण ही किया । उन्होंने भाग्य को ही बलवान् मानकर भूमि पर शयन भी नहीं किया ।।८३।।

मृतः सौधेऽहिना हतः । कृत्वा पापं कलेर्योगत्तापसस्यावमानजम् ॥८४॥ अवश्यमेव नरकं एतैराचरणैर्भवेत् । तस्मात्तं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तम॥८५॥ सूत उवाच– **इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः । साश्रुकंठोऽतिदुःखार्तो बभूव जनमेजयः ॥८६॥ धिगिदं जीवितं मेऽद्य पिता मे नरके स्थितः । तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गं यात्युत्तरासुतः ॥८७॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

राजोवाच– **हरिणा तु कथं यज्ञः कृतः पूर्वं पितामह । जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥१॥ के सहायास्तु तत्रासन्ब्राह्मणाः के महामते । ऋत्विजो वेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहि परंतप ॥२॥ पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेन कर्मणा । श्रुत्वा विष्णुकृतं यागमंबिकायाः समाहितः ॥३॥**

कलि का सम्बन्ध हो जाने के कारण तपस्वी का अपमान करने से उत्पन्न पाप के कारण मोह रूपी महासागर में डूबे हुए वे एक सर्प के काटने से मरे॥८४॥ इस तरह के आचरण करने से नरक अवश्य होता है । हे राजन् ! आप अपने पिता का उस पाप से अवश्य उद्धार करें ॥८५॥ **सूतजी ने कहा**– अत्यन्त तेजः सम्पन्न व्यासजी की बात को सुनकर, जनमेजय अत्यन्त दुःखी हो गये, उनका गला रुँध सा गया था ॥८६॥ वे सोच रहे थे कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है कि मेरे पिता नरक में पड़े हुए हैं; अतएव मैं ऐसा ही कार्य करूँगा कि मेरे पिता स्वर्ग में पहुँच जायँ ॥८७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

भगवान् विष्णु द्वारा देवी यज्ञ का अनुष्ठान

राजा जनमेजय ने व्यासजी से पूछा– हे पितामह व्यासजी ! भगवान् श्रीहरि ने किस प्रकार से प्राचीन काल में यज्ञ किया था । भगवान् विष्णु तो सम्पूर्ण जगत् के कारण तथा सर्वसमर्थ हैं ॥१॥ हे महामते ! उस यज्ञ में सहायक कौन थे ? और ब्राह्मण कौन थे ? हे परंतप ! मुझे यह बतलाइये कि उस यज्ञ में तत्त्वों के जानकार ऋत्विज कौन थे ?॥२॥ पहले भगवान् विष्णु के द्वारा किए गये अम्बिका के यज्ञ को सावधानी पूर्वक सुनकर मैं उसके बाद

व्यास उवाच– **राजञ्छृणु महाभाग विस्तरं परमाद्भुतम् । यथा भगवता यज्ञः कृतश्च विधिपूर्वकः ।।४।। विसर्जिता यदा देव्या दत्त्वा शक्तीश्च तास्त्रयः । काजेशाः पुरुषा जाता विमानवरमास्थिताः ।।५।। प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः । चक्रुः स्थानानि वासार्थं समुत्पाद्य धरां स्थिताः ।।६।। आधारशक्तिरचला दत्ता देव्या स्वयं ततः । तदाधारा स्थिता जाता धरा मेदःसमन्विता ।।७।। मधुकैटभयोर्मेदःसंयोगान्मेदिनी स्मृता। धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वी विस्तारयोगतः ।।८।। मही चापि महीयस्त्वाद्भूता सा शेषमस्तके । गिरयश्च कृताः सर्वे धारणार्थं प्रविस्तराः ।।९।। लोहकीलं यथा काष्ठे तथा ते गिरयः कृताः । महीधरा महाराज प्रोच्यन्ते विबुधैर्जनैः ।।१८।। जातरूपमयो मेरुर्बहुयोजनविस्तरः । कृतो मणिमयैः शृङ्गैः शोभितः परमाद्भुतः ।।११।। मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । दक्षो वसिष्ठ इत्येते ब्रह्मणः प्रथिताः सुताः ।।१२।। मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश । ताभ्यो देवाश्च दैत्याश्च समुत्पन्ना ह्यनेकशः ।।१३।। ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा । मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा ।।१४।। ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वाम्भुवोऽभवत् । शतरूपा तथा नारी संजाता वामभागतः ।।१५।। प्रियव्रतोत्तानपादौ**

विधि-विधान पूर्वक यज्ञ करूँगा ।।३।। **व्यासजी ने कहा**– हे महाभाग राजन् ! जिस तरह भगवान् विष्णु ने अत्यन्त अद्भुत यज्ञ किया उसको आप विस्तार पूर्वक सुनें ।।४।। जब देवी ने ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को शक्तियों को प्रदान करके भेज दिया उस समय वे तीनों देव विमान में बैठते ही पुरुष हो गये।।५।। वे पुनः उसी भयंकर महासमुद्र में पहुँच गये । वहाँ उन लोगों ने पृथिवी को उत्पन्न करके अपने निवास स्थान को बनाया ।।६।। उसी समय भगवती ने पृथिवी को अविचल आधार शक्ति प्रदान कर दी । उसी समय से मेदस् से सम्पन्न पृथिवी धारण करने के कारण धरा कहलाने लगी ।।७।। मधु एवं कैटभ के मेदस से सम्बन्ध होने के कारण पृथिवी मेदिनी कहलाती है । धारण करने के कारण वह धरा कहलाती है । विस्तार होने के कारण यह पृथिवी कहलाती है ।।८।। महान् होने के कारण यह मही कहलाती है । वह शेषनाग के मस्तक के ऊपर रखी गयी है । उसे धारण करने के लिए बड़े-बड़े पर्वत बनाये गये।।९।। जिस तरह लोहे का किल काष्ट को बाँधे रखता है, उसी तरह पृथिवी को वे बाँधे रखने का काम करते हैं । इसीलिए पर्वतों को महीधर कहा जाता है।।१०।। अनेक योजन विस्तृत सुमेरु पर्वत सुवर्णमय है । वह पर्वत मणिनिर्मित शिखरों से सुशोभित होने के कारण अत्यन्त अद्भुत है ।।११।। मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष तथा वसिष्ठ ये ब्रह्मा जी के पुत्र हैं ।।१२।। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, दक्ष की तेरह कन्यायें हुई । उन सबों से अनेक देवता और दैत्य उत्पन्न हुए ।।१३।। उसके पश्चात् अत्यन्त विस्तृत काश्यपी सृष्टि प्रारम्भ हुई । वह मनुष्य, पशु, सर्प आदि जाति के भेद से अनेक प्रकार की हुई ।।१४।। ब्रह्माजी के आधे शरीर से स्वांयम्भुव मनु हुए और उनके आधे भाग से शतरूपा नाम की नारी उत्पन्न हुई ।।१५।। स्वायभुव मनु के दो पुत्र हुए

सुतौ तस्या बभूवतुः । तिस्रः कन्या वरारोहा ह्यभवन्नतिसुन्दराः ॥१६॥ एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः । चकार ब्रह्मलोकं च मेरुश्रृंगे मनोहरम् ॥१७॥ वैकुण्ठं भगवान्विष्णू रमारमणमुत्तमम् । क्रीडास्थानं सुरम्यं च सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥१८॥ शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकार ह । समासाद्य भूतगणं विजहार यथारुचि ॥१९॥ स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः । तच्च स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नविराजितम् ॥२०॥ समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः । चतुर्दंतस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा ॥२१॥ उच्चैःश्रवास्तथाऽश्वो वै रंभाद्याप्सरसस्तथा । इन्द्रेणोपात्तमखिलं जातं वै स्वर्गभूषणम् ॥२२॥ धन्वंतरिश्चन्द्रमाश्च सागराच्च समुद्भवौ । स्वर्गस्थितौ विराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ ॥२३॥ एवं सृष्टिः समुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम । देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥२४॥ अंडजाः स्वेदजाश्चैव चोद्भिज्जाश्च जरायुजाः । चतुर्भेदैः समुत्पन्ना जीवाः कर्मयुताः किल ॥२५॥ एवं सृष्टिं समासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । विहारं स्वेषु स्थानेषु चक्रुः सर्वे यथेप्सितम् ॥२६॥ एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः । महालक्ष्म्या समं तत्र चिक्रीड भुवने स्वके ॥२७॥ एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुण्ठे संस्थितः

प्रियव्रत और उत्तानपाद । उनकी अत्यन्त सुन्दर तीन पुत्रियाँ हुईं ॥१६॥ इस तरह से सृष्टि करके ब्रह्मा जी ने सुमेरुपर्वत के शिखर पर ब्रह्मलोक का निर्माण किया ॥१७॥ लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने सभी लोकों के ऊपर अत्यन्त मनोहर वैकुण्ठ को अपना क्रीडा स्थल बनाया ॥१८॥ शंकर जी ने कैलास पर्वत को अपना निवास स्थान बनाया और वहीं पर भूतगण के साथ अपनी रुचि के अनुसार बिहार करने लगे ॥१९॥ सुमेरु पर्वत के एक शिखर पर त्रिविष्टप नामक एक स्वर्ग की रचना हुई और अनेक रत्नों से सुशोभित वह इन्द्र का निवास स्थान हुआ ॥२०॥ समुद्र का मंथन करने से पारिजात नामक उत्तम वृक्ष, चार दाँतों वाली हाथी और कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु निकली ॥२१॥ उच्चैःश्रवा नामक अश्व, और रम्भा आदि अप्सराएँ भी निकलीं। इन्द्र ने इन सबों को प्राप्त कर लिया ये ही सब स्वर्ग के भूषण हुए ॥२२॥ धन्वन्तरि तथा चन्द्रमा भी समुद्र से उत्पन्न हुए, ये दोनों अनेक देवताओं से सुशोभित होकर स्वर्ग में रहने लगे ॥२३॥ हे राजन् ! इस तरह से तीन प्रकार की सृष्टि हुई, पुनः देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी) एवं मनुष्य आदि के भेद से उसके अनेक भेद हुए ॥२४॥ कर्म करने वाले जीवों के भी चार भेद हुए अण्डज (अण्डे से उत्पन्न होने वाले) जरायुज (शरीर से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि) स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले ढील आदि) तथा उद्भिज (पृथिवी को फोड़कर निकलने वाले वृक्ष आदि) ॥२५॥ इसतरह से सृष्टि को करके ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अपने निवास स्थान में अपने मन के अनुसार क्रीडा करने लगे ॥२६॥ इस तरह से सृष्टि के हो जाने पर सबों के स्वामी भगवान् विष्णु अपने लोक में महालक्ष्मी के साथ क्रीडा करने लगे ॥२७॥ प्राचीन काल में एकबार भगवान् विष्णु सुधासागर में विद्यमान मणिद्वीप का स्मरण

पुरा । सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमंडितम् ॥२८॥ तत्र दृष्ट्वा महामायां मन्त्रश्चासादितः शुभः । स्मृत्वा तां परमां शक्तिं स्त्रीभावं गमितो यथा ॥२९॥ यां कर्तुं मनश्चके अम्बिकाया रमापतिः । उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम् ॥३०॥ ब्राह्मणं वरुणं शक्रं कुबेरं पावकं यमम् । वसिष्ठं कश्यपं दक्षं वामदेवं बृहस्पतिम् ॥३१॥ संभारं कल्पयामास यज्ञार्थं चातिविस्तरम् । महाविभवसंयुक्तं सात्त्विकं च मनोहरम्॥३२॥ मंडपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः । ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशति सुव्रतान् ॥३३॥ चितिं च कारयामास वेदीश्चैव सुविस्तराः । प्रजेपुर्ब्राह्मणा मंत्रान्देव्या बीजसमन्वितान् ॥३४॥ जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत्परिकल्पिते । कृते तु वितते होमे वागुवाचाशरीरिणी ॥३५॥ विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरा मधुराक्षरा । विष्णो त्वं भव देवानां हरे श्रेष्ठतमः सदा ॥३६॥ मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि । सर्वे त्वामर्चयिष्यंति ब्रह्माद्याश्च सवासवाः ॥३७॥ प्रभविष्यंति वो भक्त्या मानवा भुवि सर्वतः । वरदस्त्वं च सर्वेषां भविता मानवेषु वै ॥३८॥ कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः । सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः ॥३९॥ त्वां जनाः पूजयिष्यंति वरदस्त्वं भविष्यसि । श्रयिष्यंति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः ॥४०॥ शरणस्त्वं च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम । पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च ॥४१॥ त्वं वै पूज्यतमः कामं

किए ॥२८॥ वहाँ पर महामाया का दर्शन करके उन्होंने मन्त्र को प्राप्त किया । उस परमा शक्ति का स्मरण करते ही वे स्त्रीभाव को प्राप्त कर लिए ॥२९॥ और भगवान् ने अम्बिका का यज्ञ करने का मन बनाया । उस भवन से उत्तर कर उन्होंने शंकर जी को बुलाया ॥३०॥ ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव तथा बृहस्पति को बुलाया ॥३१॥ उन्होंने अत्यन्त विस्तार के साथ यज्ञ के लिए अत्यधिक वैभव युक्त सात्त्विक सामग्रियों को जुटाया ॥३२॥ शिल्पियों से बहुत बड़ा मण्डप बनवाया और सुन्दर व्रत वाले सत्ताइस ऋत्विजों का वरण किया ॥३३॥ उन्होंने अग्नि का चयन कराया और अत्यन्त विस्तृत वेदियों को बनवाया । देवीबीज से युक्त मन्त्रों का ब्राह्मणों ने जप किया ॥३४॥ वे ब्राह्मण विधिपूर्वक स्थापित अग्नि में हविष्य का होम किए । होम का कार्य सम्पन्न हो जाने पर भगवान् विष्णु को सम्बोधित करके सुन्दर स्वर तथा मधुर अक्षरों से युक्त आकाशवाणी हुई। हे विष्णो ! आप सदा देवताओं में श्रेष्ठ बने रहें ॥३५-३६॥ सभी देवताओं में आप मान्य, पूजनीय तथा समर्थ हों । ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि सभी देवता तुम्हारी पूजा करेंगे ॥३७॥ पृथिवी के सभी मनुष्य आपकी भक्तिपूर्वक पूजा करेंगे और आप सबों को वरदान देने वाले होंगे ॥३८॥ आप सभी देवताओं की कामना को पूर्ण करने वाले और परम परमेश्वर होंगे । सभी यज्ञ करने वालों के द्वारा आप मुख्य रूप से पूज्य होंगे ॥३९॥ लोग आपकी पूजा करेंगे और आप सबों को वरदान देने वाले होंगे । दानवों से अत्यन्त पीड़ित होने पर देवगण आपकी शरणागति करेंगे ॥४०॥ हे पुरुषोत्तम ! आप सबों के रक्षक

कीर्तिस्तव भविष्यति । यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले ॥४२॥ तदांशेनावतीर्याशु कर्तव्यं धर्मरक्षणम् । अवताराः सुविख्याताः पृथिव्यां तव भागशः ॥४३॥ भविष्यंति धरायां वै माननीया महात्मनाम् । अवतारेषु सर्वेषु नानायोनिषु माधव ॥४४॥ विख्यातः सर्वलोकेषु भविता मधुसूदन । अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी ॥४५॥ भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी । वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा ॥४६॥ नानायुधाः शुभाकाराः सर्वाभरणमंडिताः । ताभिर्युक्ताः सदा विष्णो सुरकार्याणि माधव ॥४७॥ साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः । तास्त्वया नावमंतव्याः सर्वदा गर्वलेशतः ॥४८॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा । नूनं ता भारते खंडे शक्तयः सर्वकामदाः ॥४९॥ भविष्यन्ति मनुष्याणां पूजिताः प्रतिमासु च । तासां तव च देवेश कीर्तिः स्यादखिलेष्वपि ॥५०॥ द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुवि मंडले । ताश्च त्वां वै महाभाग मानवा भुवि मंडले ॥५१॥ अर्चयिष्यंति वांछार्थं सकामाः सततं हरे । अर्चासु चोपहारैश्च नानाभावसमन्विताः ॥५२॥ पूजयिष्यंति वेदोक्तैर्मंत्रैर्नामजपैस्तथा । महिमा तव भूर्लोके स्वर्गे च मधुसूदन ॥५३॥ पूजनाद्देवदेवेश वृद्धिमेष्यति मानवैः । व्यास उवाच– **इति दत्त्वा**

होंगे सभी पुराणों और वेदों में आप सर्वश्रेष्ठ पूज्य होंगे और आपकी कीर्ति फैलेगी । जब-जब पृथिवी पर धर्म की हानि होगी ॥४१-४२॥ उस समय आप अपने अंश से अवतीर्ण होकर धर्म की रक्षा करेंगे । पृथिवी पर आपके अवतार अत्यन्त विख्यात होंगे ॥४३॥ महापुरुष आपके उन अवतारों का सम्मान करेंगे । हे माधव ! आपका अवतार अनेक योनियों में होगा और वह सभी लोकों में विख्यात होगा । उन सभी अवतारों में मेरी शक्ति आपकी सहचारिणी होगी । वह शक्ति मेरे अंशस्वरूपा तथा सभी कार्यों को सिद्ध करने वाली होगी । उन शक्तियों के वाराही, नारसिंही आदि अनेक भेद होंगे ॥४४-४६॥ उन सबों के अनेक आयुध होंगे । उनका आकार भव्य होगा, वे सभी अलंकारों से अलंकृत होंगी । हे माधव ! उन शक्तियों के द्वारा आप देवताओं के कार्य को सिद्ध करेंगे; क्योंकि मैं आपको वरदान दे रही हूँ । आप कभी भी अभिमान पूर्वक उन सबों का अपमान नहीं करेंगे ॥४७-४८॥ उन सबों का आप प्रयत्न पूर्वक पूजन तथा सम्मान करेंगे । वे शक्तियाँ भारतवर्ष में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होंगी ॥४९॥ वे मूर्तियों में स्थित रहकर मनुष्यों के लिए पूज्य होंगी । उन सबों की तथा आपकी कीर्ति हे देवेश ! सातो द्वीपों में भूमण्डल में व्याप्त होगी ॥४९-५१॥ भूमण्डल के सभी लोग अनेक प्रकार की भावना से युक्त होकर अर्चामूर्ति में अनेक प्रकार के उपहारों से आपकी और उन शक्तियों की वेदोक्त मन्त्रों तथा नाम जप के द्वारा पूजा करेंगे । हे देवताओं के भी आराध्य मधुसूदन पूजन करने मात्र से ही आपकी महिमा भूलोक तथा स्वर्गलोक में बढ़ेगी ॥५२-५३॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से वरदान देकर आकाश वाणी रुक गयी । उसको सुनकर भगवान् विष्णु भी बहुत प्रसन्न हुए । सबों के निमित्त श्रीभगवान् ने विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्त करके देवताओं

वरान्वाणी विरराम खसंभवा ॥५४॥ भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव । समाप्य विधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः ॥५५॥ विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ । जगामानुचरैः सार्धं वैकुंठं गरुडध्वजः ॥५५॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरास्ततः । मुनयो विस्मिता वार्ता कुर्वंतस्ते परस्परम् ॥५७॥ ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्यावनानथ ॥५८॥ श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोत्ररम्यां सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्च जातः । चक्रुः सर्वे द्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्तास्तस्याः कामं निखिलफलदं चागमोक्तं मुनीन्द्राः ॥५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **श्रुतो वै हरिणा क्लृप्तो यज्ञो विस्तरतो द्विज । महिमानं तथाऽम्बाया वद विस्तरतो मम ॥१॥ श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वे मखमनुत्तमम् । प्रसादात्तव विप्रेंद्र भविष्यामि च पावनः ॥२॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् । इतिहासं पुराणं च**

और मुनियों को विदा किया । इसके बाद भगवान् अपने अनुचरों के साथ वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥५४-५५॥ उसके बाद सभी देवता तथा मुनिगण आश्चर्यित होकर बातें करते हुए अपने-अपने निवास स्थान को चले गये । वे सबके सब प्रसन्न थे ॥५८॥ अत्यन्त स्पष्ट तथा कर्णप्रिय आकाशवाणी को सुनकर सबों के मन में प्रकृति के प्रति भक्ति की भावना उत्पन्न हो गयी थी । भक्ति की भावना से भरकर सभी ब्राह्मणों तथा मुनियों ने शास्त्रोक्त समस्त फलों को प्रदान करने वाली भगवती की पूजा की ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

देवी की महिमा और सुदर्शनाख्यान

जनमेजय ने कहा– हमने भगवान् विष्णु के द्वारा अनुष्ठित देवीयज्ञ का विस्तृत वर्णन सुना । अब आप जगदम्बा की महिमा को विस्तार से बतलायें॥१॥ हे विप्रेन्द्र ! मैं देवी का चरित्र श्रवण करने के बाद उस श्रेष्ठयज्ञ को करूँगा और आपकी कृपा से पवित्र हो जाऊँगा ॥२॥ **व्यासजी ने कहा–**

कथयामि सुविस्तरम् ॥३॥ कोसलेषु नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः । पुष्पपुत्रो महातेजा ध्रुवसंधिरिति स्मृतः ॥४॥ धर्मात्मा सत्यसंधश्च वर्णाश्रमहिते
रतः । अयोध्यायां समृद्धायां राज्यं चक्रे शुचिव्रतः ॥५॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः । स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये
धर्मतोऽभवन् ॥६॥ न चौराः पिशुना धूर्तास्तस्य राज्ये च कुत्रचित् । दंभाः कृतघ्ना मूर्खाश्च वसंति किल मानवाः ॥७॥ एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य
कुरुसत्तम । द्वे पत्न्यौ रूपसम्पन्ने ह्यासतुः कामभोगदे ॥८॥ मनोरमा धर्मपत्नी सुरूपाऽतिविचक्षणा । लीलावती द्वितीया च साऽपि रूपगुणान्विता॥९॥
विजहार सपत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च । क्रीडागिरौ दीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च ॥१०॥ मनोरमा शुभे काले सुषुवे पुत्रमुत्तमम् । सुदर्शनाभिधं पुत्रं
राजलक्षणसंयुतम् ॥११॥ लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी । सुषुवे सुन्दरं पुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा ॥१२॥ चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मा
दिकं द्वयोः । ददौ दानानि विप्रेभ्यः पुत्रजन्मप्रमोदितः ॥१३॥ प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप । नृपश्चकार सौहार्देष्वंतरं न कदाचन॥१४॥
चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः । यथाविभवमेवासौ प्रीतियुक्तः परंतपः ॥१५॥ कृतचूडौ सुतौ कामं जहतुर्नृपतेर्मनः । क्रीडमानावुभौ कांतौ
लोकानामनुरंजकौ ॥१६॥ तयोः सदुर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याः सुतः शुभः । शत्रुजित्संज्ञकः कामं चाटुवाक्यो बभूव ह ॥१७॥ नृपतेः प्रीतिजनको

हे राजन् ! आप सुनें । मैं देवी के उत्तम चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ और मैं आपको इतिहास तथा पुराण को भी विस्तारपूर्वक सुना रहा हूँ ॥३॥ कोसल
देश में सूर्यवंश में उत्पन्न महाराज पुष्प के महातेजस्वी पुत्र ध्रुवसन्धि थे ॥४॥ वे धर्मात्मा, सत्यवक्ता तथा वर्णाश्रम के रक्षण मे तत्पर रहते थे । वे पवित्र
व्रत करने वाले महाराज धन-धान्य से समृद्ध अयोध्या में राज्य करते थे ॥५॥ उन राजा के राज्य में सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे ब्राह्मण
अपनी-अपनी वृत्ति में स्थिर रहते हुए धार्मिक थे ॥६॥ उनके राज्य में कहीं भी चोर, चुगली करने वाले, धूर्त, दम्भी, कृतघ्न तथा मूर्ख मनुष्य नहीं थे॥७॥
राजन् इसतरह से रहने वाले उस राजा की रूपवती तथा काम तथा भोग प्रदान करने वाली दो पत्नियाँ थीं ॥८॥ उसकी एकपत्नी का नाम मनोरमा था
वह सुन्दर रूप वाली और अत्यन्त चतुर थी । दूसरी पत्नी का नाम लीलावती था । वह भी रूप एवं गुण से सम्पन्न थी ॥८॥ राजा अपनी उन दोनों
पत्नियों के साथ घर, उपवन, क्रीडाशैल, बावलियों तथा अनेक भवनों में विहार करते थे ॥१०॥ मनोरमा ने सुन्दर समय में राजा के लक्षण से सम्पत्र सुदर्शन
नामक पुत्र को जन्म दिया ॥११॥ उसके एक महीने के बाद लीलावती ने भी शुभ पक्ष और शुभदिन में एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया ॥१२॥ राजा ने उन
दोनों पुत्रों के जातकर्म आदि संस्कार को किया । पुत्र के जन्म से प्रसन्न राजा ने अनेक प्रकार का दान दिया ॥१३॥ राजा उन दोनों पुत्रों से एक समान प्रेम करते
थे । उन्होंने उन दोनों में होने वाले प्रेम में कोई भी अन्तर नहीं रखा ॥१४॥ उस श्रेष्ठ राजा ने उन दोनों पुत्रों का सविधि चूडाकरण संस्कार प्रेमपूर्वक अपने

मंजुवाक्चारुदर्शनः । प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथा मंत्रिजनस्य वै ॥१८॥ यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः । मंदभाग्यान्मंदभावो न तथा वै सुदर्शने ॥१९॥ एवं गच्छति काले तु ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः । जगाम वनमध्येऽसौ मृगयानिरतः सदा ॥२०॥ निघ्नन्मृगान् रुरून्कंबून्सूकरान्गवयाञ्छशान् महिषाञ्छरभान्खड्गांश्चिक्रीड नृपतिर्वने ॥२१॥ क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे । उदतिष्ठन्निकुंजात्तुसिंहः परमकोपनः ॥२२॥ राज्ञा शिलीमुखेनादौ विद्धः क्रोधवशं गतः । दृष्ट्वाऽग्रे नृपतिं सिंहो ननाद मेघनिःस्वनः ॥२३॥ कृत्वा चोर्ध्वं स लांगूलं प्रसारितबृहत्सटः । हंतुं नृपतिमाकाशादुत्पपातातिकोपनः॥२४॥ नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा । वामे चर्म समादाय स्थितः सिंह इवापरः ॥२५॥ सेवकास्तस्य ये सर्वेंतेऽपि बाणान्पृथक् पृथक् । अमुंचन्कुपिताः कामं सिंहोपरि रुषान्विताः ॥२६॥ हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः । उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरि दारुणः ॥२७॥ तं पतंतं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः । सोऽपि क्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्रागत्य व्यदारयत्॥२८॥ स नखैराहतो राजा पपात च ममार वै । चुक्रुशुः सैनिकास्ते तु निर्जघ्नुर्विशिखैस्तदा ॥२९॥ मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथा मृतः । सैनिकैर्मन्त्रिमुख्याश्च तत्रागत्य

वैभव के अनुसार किया ॥१५॥ चूडाकर्म हो जाने के बाद क्रीड़ा करते हुए तथा प्रजाओं का अनुरंजन करते हुए वे दोनों बालक राजा के मन को आकृष्ट कर लिये ॥१६॥ मनोरमा का सुदर्शन नामक पुत्र बड़ा था और लीलावती का शत्रुजित् नामक पुत्र छोटा तथा मधुरभाषी था ॥१७॥ इसीलिए वह प्रजाओं का तथा मन्त्रियों का प्रिय था; क्योंकि वह देखने में सुन्दर और मधुर बोलने वाला था ॥१८॥ अतएव राजा ध्रुवसन्धि जितना प्रेम शत्रुजित् से करते थे उनका उतना प्रेम सुदर्शन में नहीं था ॥१९॥ कुछ समय के बाद राजवर्य ध्रुवसन्धि मृगया करते हुए वन में आखेट करते हुए गये ॥२०॥ राजा ध्रुवसन्धि मृगों, रुरुओं, कम्बुओं, सूकरों नीलगायों, खरगोशों, भैंसों, शरभों तथा गैण्डों को मारते हुए वन में क्रीडा कर रहे थे ॥२१॥ अत्यन्त भयंकर वन में जब राजा ध्रुवसन्धि क्रीड़ा कर रहे थे उसी समय एक अत्यन्त क्रोधी सिंह एक निकुंज से निकला ॥२२॥ पहले राजा ने उसे अपने बाण से बेध दिया अतएव वह सिंह क्रुद्ध हो गया था । सिंह ने अपने सामने राजा को देखा और मेघ के समान गर्जना किया ॥२३॥ उसने अपनी पूंछ ऊपर उठायी, अपने आयालों को फडफड़ाया और राजा को मारने के लिए आकाश में उछल पड़ा ॥२४॥ उसे देखकर राजा भी अपने हाथ में ढाल और तलवार लेकर दूसरे सिंह के समान उसके सामने खड़े हो गये ॥२५॥ राजा के जो सेवक थे वे भी उस सिंह पर अलग-अलग बाणों का प्रहार किए ॥२६॥ उसके बाद सिंह राजा पर झपटा और भयंकर प्रहार किया । उसके कारण हाहाकार मच गया ॥२७॥ सिंह को झपटते हुए देखकर राजा ने खड्ग से प्रहार किया और सिंह ने भी अपने नखों के अग्रभाग से राजा को चिर फाड़ दिया ॥२८॥ नखों के प्रहार से राजा गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी । उस समय सैनिक चिल्लाने

निवेदिताः ॥३०॥ परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मंत्रिसत्तमाः । संस्कारं कारयामासुर्गत्वा तत्र वनांतिके ॥३१॥ परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम् । कारयामास तत्रैव परलोकसुखावहाम् ॥३२॥ प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः । सुदर्शनं नृपं कर्तुं मंत्रं चक्रुः परस्परम्॥३३॥ धर्मपत्नीसुतः शांतः पुरुषश्च सुलक्षणः । अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मंत्रिसत्तमाः ॥३४॥ वसिष्ठोऽपि तथैवाह योग्योऽयं नृपतेः सुतः । बालोऽपि धर्मवान्राजा नृपासनमिहार्हति ॥३५॥ कृते मंत्रे मंत्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः । तत्राजगाम तरसा श्रुत्वा तूज्जयिनीपतिः ॥३६॥ मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा । तत्राजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया ॥३७॥ वीरसेनस्तथाऽऽयातः सुदर्शनहितेच्छया । कलिङ्गाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः ॥३८॥ उभौ तौ सैन्यसंयुक्तौ नृपौ साध्वससंस्थितौ । चक्रतुर्मंत्रिमुख्यैस्तैर्मंत्रं राज्यस्य कारणात् ॥३९॥ युधाजित्तु तदाऽपृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः । राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन ॥४०॥ वीरसेनोऽपि तत्राह धर्मपत्नीसुतः किल । राज्यार्हः स यथा राजञ्छास्त्रज्ञेभ्यो मया श्रुतम् ॥४१॥ युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः । राजलक्षणसंयुक्तो न तथाऽयं सुदर्शनः ॥४२॥ विवादोऽत्र सुसंपन्नौ नृपयोस्तत्र लुब्धयोः । कः संदेहमपाकर्तुं क्षमः स्यादतिसंकटे ॥४३॥ युधाजिन्मंत्रिणः प्राह यूयं स्वार्थपराः किल । सुदर्शनं नृपं कृत्वा धनं भोक्तुं किलेच्छथ॥४४॥

लगे और बाण से सिंह पर प्रहार किए ॥२९॥ वह सिंह और राजा दोनों मर गये । सैनिकों के मुख से राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर मंत्रिगण वहाँ आये और वन के सन्निकट में ही राजा का संस्कार सम्पन्न कराये ॥३०-३१॥ महर्षि वसिष्ठ ने परलोक में सुख देने वाली सारी क्रियाओं को वहीं सम्पन्न कराया ॥३२॥ प्रजाओं, मन्त्रियों तथा महामुनि वसिष्ठ ने परस्पर में विचार करके सुदर्शन को राजा बनाना चाहा ॥३३॥ श्रेष्ठ मन्त्रियों ने कहा कि महाराज की धर्मपत्नी का पुत्र, शान्त प्रकृति वाला तथा सुन्दर लक्षणों वाले सुदर्शन राजा होने योग्य है ॥३४॥ महर्षि वसिष्ठ ने भी कहा कि यद्यपि यह बालक है, फिर भी धार्मिक होने के कारण यही राजा होने के योग्य है ॥३५॥ वृद्ध मन्त्रियों द्वारा विचार का निर्णय हो जाने पर उसे सुनकर उज्जयिनी के राजा युधाजित् शीघ्र वहाँ आ गये ॥३६॥ लीलावती के पिता ने भी जब अपनी दामाद की मृत्यु का समाचार सुना तो अपने नाती का प्रिय करने की इच्छा से वहाँ आ गये ॥३७॥ उसी समय सुदनर्शन का कल्याण करने की इच्छा से मनोरमा के पिता कलिङ्ग नरेश वीरसेन भी वहाँ आ गये ॥३८॥ ये दोनों राजा अपनी-अपनी सेना के साथ वहाँ रुक गये । और वे ध्रुवसंधि के मुख्य मंत्रियों के साथ राज्य के विषय में विचार करने लगे ॥३९॥ उस समय युधाजित् ने पूछा इन दोनों पुत्रों में बड़ा कौन है ? बड़ा ही राज्य प्राप्त करता है छोटा नहीं ॥४०॥ इसके बाद वीरसेन ने कहा कि पटरानी का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है, यह मैंने शास्त्रज्ञों के मुख से सुना है ॥४१॥ युधाजित् ने कहा कि यद्यपि सुदर्शन बड़ा है, फिर भी यह शत्रुजित् जितना गुणवान् है, उतना सुदर्शन गुणवान् नहीं है ॥४२॥ उन दोनों राज्य के लोभी राजाओं में विवाद हो गया । ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों में विवाद रूपी संकट को दूर

युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञातस्तथेंगितैः । शत्रुजित्सबलस्तस्मात्सम्मतो वो नृपासने ॥४५॥ मयि जीवति कः कुर्यात्कनीयांसं नृपं किल । त्यक्त्वा ज्येष्ठं गुणार्हं च सेनया च समन्वितम् ॥४६॥ नूनं युद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी । धारया च द्विधा भूयाद्युष्माकं तत्र का कथा॥४७॥ वीरसेनस्तु तच्छ्रुत्वा युधाजित्तमभाषत । बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौ को भेदोऽत्र विचक्षण ॥४८॥ एवं विवदमानौ तौ संस्थितौ नृपती तदा। प्रजाश्च ऋषयश्चैव बभूवुर्व्यग्रमानसाः ॥४९॥ समाजग्मुश्च सामंताः ससैन्याः क्लेशतत्पराः । विग्रहं चाभिकांक्षंतः परस्परमतंद्रिताः॥५०॥ निषादा ह्याययुस्तत्र श्रृंगवेरपुराश्रयाः । राजद्रव्यमुपाहर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम् ॥५१॥ पुत्रौ च बालकौ श्रुत्वा विग्रहं च परस्परम् । चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशांतरादपि ॥५२॥ संमर्दस्तत्र संजातः कलहे समुपस्थिते । युधाजिद्वीरसेनश्च युद्धकामौ बभूवतुः ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

◆

करने की शक्ति किसी में भी नहीं थी ॥४३॥ युधाजित् के मन्त्रियों ने कहा कि आपलोग स्वार्थ परायण हैं इसीलिए सुदर्शन को राजा बनाकर स्वयं राज्य हड़पना चाहते हैं ॥४४॥ मंत्रियों ने कहा कि आपलोगों के इस विचार को हम पहले से ही आपलोगों की चेष्टाओं से जान लिए थे कि शत्रुजित् बलवान् है और आपलोगों के अभिमत राजा बनने योग्य है ॥४५॥ किन्तु ज्येष्ठ, गुणवान तथा सेना से सम्पन्न सुदर्शन को छोड़कर कौन है जो मेरे जीते जी छोटे को राजा बना सकेगा ॥४६॥ उसके लिए मैं युद्ध करूँगा । मेरे खड्ग की धार से पृथिवी के भी दो टुकड़े हो सकते हैं फिर आपलोगों की मुझे कौन सी परवाह है ॥४७॥ उस बात को सुनकर वीरसेन ने युधाजित् से कहा कि दोनों बालक एक समान बुद्धि वाले हैं, इसमें कौन सा भेद हैं ?॥४८॥ इस तरह से विवाद करते हुए दोनों राजा वहीं ठहरे रहे । यह देखकर प्रजागण और ऋषिगण व्याकुल हो गये ॥४९॥ उसी समय दोनों ओर के सामन्त अपनी-अपनी सेना लेकर आ गये । वे यह चाहते थे कि शीघ्र युद्ध प्रारम्भ हो जाय ॥५०॥ श्रृंगवेरपुर से निषादगण भी राजा की मृत्यु का समाचार जानकर राजा का द्रव्य लूट लेने के लिए आ गये ॥५१॥ दोनों पुत्रों को बालक तथा परस्पर में होने वाले युद्ध का समाचार सुनकर दूसरे देशों से चोर भी आ गये ॥५२॥ इस तरह से कलह की स्थिति आ जाने पर युधाजित् और वीरसेन दोनों ने निश्चय किया कि अब युद्ध से ही निर्णय होगा ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

◆

पञ्चदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **संयुगे च सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः । क्रोधलोभवशयोः समंततः संबभूव तुमुलस्तु विमर्दः ॥१॥ संस्थितः स समरे धृतचापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित् । संयुतः स्वबलवाहनादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः ॥२॥ वीरसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्रधर्ममनुसृत्य संगरे । पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः ॥३॥ स बाणवृष्टिं विससर्ज पार्थिवो युधाजितं वीक्ष्य रणे स्थितं च । गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ ॥४॥ तं वीरसेनो विशिखैः शिलाशितैः समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः । चिच्छेदबाणैश्च शिलीमुखानसौ तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥५॥ गजरथतुरगाणां संबभूवातियुद्धं सुरनरमुनिसंघैर्वीक्षितं चातिघोरम् । विततविहगवृन्दैरावृतं व्योम सद्यः पिशितमशितुकामैः काकगृध्रादिभिश्च ॥६॥ तत्राद्भुता क्षतजसिन्धुरुवाह घोरा वृंदेभ्य एव गजवीरतुरंगमाणाम् । त्रासावहा नयनमार्गगता नराणां पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम् ॥७॥ कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि केशावृतनि च विभांति यथैव सिंधौ । तुम्बीफलानि विहितानि विहर्तुकामैर्बालैर्यथा रविसुताप्रभवैश्च नूनम् ॥८॥ वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वैगृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये । जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्य**

युद्धाजित् तथा वीरसेन का युद्ध

व्यासजी ने कहा– युद्ध के निर्णय हो जाने पर दोनों राजाओं ने अपने-अपने शस्त्र उठा लिये । वे दोनों लोभ के वशीवर्ती थे; अतएव भयंकर युद्ध होने लगा ॥१॥ युद्ध में बलवान् युधाजित् धनुष धारण करके खड़े हो गये । वे अपनी सेना तथा वाहन के साथ युद्ध करने के लिए तैयार थे ॥२॥ इन्द्र के समान तेजस्वी वीरसेन भी क्षात्रधर्म का अनुसरण करते हुए अपनी पुत्री के पुत्र (दौहित्र) का कल्याण करने के लिए युद्ध मे डट गये ॥३॥ सत्यपराक्रम राजा वीरसेन युधाजित् के ऊपर बाणों की उसी तरह से वर्षा करने लगे जिस तरह मेघ पर्वत के ऊपर वर्षा करता है । वीरसेन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से युधाजित् को ढँक दिया । इस पर युधाजित् ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उन बाणों को काटकर वीरसेन के ऊपर तीक्ष्ण प्रहार किया ॥५॥ उधर हाथी, रथ और घोड़ों वाले सैनिकों में भी परस्पर में भयंकर युद्ध होने लगा जिसे देव, मनुष्य और मुनि समुदाय देख रहा था । माँस खाने के इच्छुक कौए, गृध्र आदि पक्षिगण आकाश में फैल गये ॥६॥ उस समय हाथी, घोड़े तथा वीरों के कटे हुए शरीर से निकले रक्त की नदी बह निकली और युद्ध देखने वालों को वह रणभूमि उसी तरह से भयंकर लग रही थी जिसतरह पापियों को यममार्ग भयंकर लगता है ॥७॥ उस खून की नदी में कटकर गिरने वाले केशों वाले शिर उसी तरह तैरते हुए दिखायी दे रहे थे जिस तरह यमुना नदी में तैरने वाले बालकों ने तुम्बियों को डाल दिया हो ॥८॥ मरकर रथ से गिरते हुए

कांतं कांक्षत्यहोऽतिविवशोऽपि पुनः प्रवेष्टुम् ॥९॥ आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः स्वांके स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम् । पश्याधुना मम शरीरमिदं पृथिव्यां बाणाहतं निपतितं करभोरु कांतम् ॥१०॥ एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽन्तरिक्षं देवांगनां समधिगम्य युतो विमाने । तावत्प्रिया हुतवहे सुसमर्प्य देहं जग्राह कांतमबला सबला स्वकीया ॥११॥ युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि संगतौ तावन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह संप्रयातौ । तत्रैव जघ्नतुरलं परमाहितास्त्रावेकाप्सरोर्थविहतौ कलहाकुलौ च ॥१२॥ कश्चिद्युवा समधिगम्य सुरांगनां वै रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः । स्वीयान् गुणान्प्रविततान्प्रवदंस्तदाऽसौ तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः ॥१३॥ भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितं च रात्रिं चकार तरणिं च समावृणोद्यत् । मग्नं तदेव रुधिरांबुनिधावकस्मात्प्रादुर्बभूव रविरप्यतिकांतियुक्तः ॥१४॥ कश्चिद्गतस्तु गगनं किल देवकन्यां सम्प्राप्य चारुवदनां किल भक्तियुक्ताम् । नांगीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः ॥१५॥ संग्रामे संवृते तत्र युधाजित्पृथिवीपतिः । जघान वीरसेनं तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः ॥१६॥ निहतः स पपातोर्व्यां छिन्नमूर्धा महीपतिः । प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतं च चतुर्दिशम् ॥१७॥ मनोरमा हतं श्रुत्वा पितरं रणमूर्धनि । भयत्रस्ताऽथ संजाता पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥१८॥ हनिष्यति युधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः । राज्यलोभेन पापात्मा सेति

वीरों के शरीर को देखकर उसके ऊपर गृध्र उसी तरह मँडराने लगे थे जैसे कोई वीर अपने मरे हुए देदीप्त शरीर को देखकर उसमें फिर प्रवेश करना चाहता हो ॥९॥ युद्ध में मारा गया कोई वीर सुन्दर विमान पर बैठकर अपनी गोद में बैठी हुई सुरसुन्दरी से कहता था हे करभोरु ! देखो मेरा सुन्दर शरीर पृथिवी पर पड़ा हुआ है ॥१०॥ एकवीर युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग में पहुँच कर सुन्दर विमान में किसी अप्सरा के साथ बैठा था उसी समय उसकी स्त्री उसके शरीर के साथ सती हो गयी और स्वर्ग में जाकर वह अपने पति को प्राप्त कर ली ॥११॥ युद्ध में दो वीर परस्पर में युद्ध करते हुए एक दूसरे के शस्त्र से मारे गये । स्वर्ग में जाने पर उन दोनों को एक ही अप्सरा मिली । यह देखकर वे दोनों उसे प्राप्त करने के लिए वहाँ भी युद्ध करने लगे ॥१२॥ कोई युवा स्वर्ग में अपने से अधिक रूपवती तथा गुणवती अप्सरा को प्राप्त करके उसकी खूब प्रशंसा किया और उसको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया॥१३॥ पृथिवी की धूलि उड़कर आकाश में सूर्य को ढँक ली और लगा जैसे रात्रि हो गयी है । किन्तु और अधिक खून गिरने के कारण धूल का उड़ना समाप्त हो गया और सूर्य और चमकने लगे ॥१४॥ कोई अविवाहित नवयुवक जब स्वर्ग में गया तो उसे अत्यन्त सुन्दरी तथा भक्तियुक्त अप्सरा मिली; किन्तु उसने उसको इस भय से नही स्वीकार किया कि कहीं मेरा विशेषणीभूत ब्रह्मचारी शब्द व्यर्थ न हो जाय । संग्राम होने पर युधाजित् नामक राजा ने वीरसेन को अपने भयंकर तथा तीक्ष्ण बाणों से मार डाला ॥१६॥ मरे हुए राजा वीरसेन का शिर पृथिवी पर कट कर गिर गया और उनकी सेना भयभीत होकर चारों

चिन्तापराऽभवत् ॥१९॥ किं करोमि क्व गच्छामि पिता मे निहतो रणे । भर्ता चापि मृतोऽद्यैव पुत्रोऽयं मम बालकः ॥२०॥ लोभोऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः । किं न कुर्यात्तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः ॥२१॥ पितरं मातरं भ्रातॄन्गुरून्स्वजनबांधवान् । हंति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा ॥२२॥ अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा । करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागं तथा पुनः ॥२३॥ न सहायोऽस्ति मे कश्चिन्नगरेऽत्र महाबलः । यदाधारे स्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम् ॥२४॥ हते पुत्रे नृपेणाद्य किं करिष्याम्यहं पुनः । न मे त्राताऽस्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम् ॥२५॥ साऽपि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत् । लीलावती न मे पुत्रे भविष्यति दयावती ॥२६॥ युधाजिति समायाते न मे निःसरणं भवेत् । ज्ञात्वा बालं सुतं सोऽद्य कारागारं नयिष्यति ॥२७॥ श्रूयते हि पुरेंद्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः । कृंतितः सप्तधा पश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा ॥२८॥ प्रविश्य चोदरं मातुः करे कृत्वाऽल्पकं पविम् । एकोनपंचाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि ॥२९॥ सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया । गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम् ॥३०॥ जातस्तु बालकः पश्चाद्देहे विषयुतः किल । तेनासौ सगरो नाम विख्यातो

दिशाओं में भाग गयी ॥१७॥ मनोरमा ने जब यह सुना कि मेरे पिता युद्ध में मारे गये तो वह अपने पिता के साथ युधाजित् के बैर का स्मरण करके भयभीत हो गयी ॥१८॥ उसने सोचा कि राज्य का लोभी पापी युधाजित् मेरे पुत्र को भी मार देगा और वह चिन्तित हो गयी ॥१९॥ वह सोच रही थी कि मेरे पिता रण में मारे गये अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे पति भी मर गये है और मेरा पुत्र बालक है ॥२०॥ लोभ अत्यन्त पापी होता है, वह सब को अपने वश में कर लेता है और लोभी राजा भी कौन सा पाप नहीं कर बैठता है ?॥२१॥ लोभी व्यक्ति बिना विचार किए हुए अपने पिता, माता, भाई, गुरुजन तथा बान्धवों को भी मार डालता है ॥२२॥ लोभ के कारण मनुष्य अभक्ष्य भक्षण कर लेता है, अगम्या गमन करता है और लालच के कारण वह अपने धर्म का त्याग कर देता है ॥२३॥ इस नगर में मेरा कोई भी बलवान सहायक नहीं है, जिसके सहारे मैं अपने पुत्र का पालन करूँ॥२४॥ राजा होकर शत्रुजित् मेरे पुत्र को मार ही डाले तो मैं क्या कर सकूँगी । इस संसार में मेरा कोई रक्षक नहीं है, जिसके सहारे मैं सुस्थिर रहूँ ॥२५॥ मेरी सौत लीलावती भी मुझसे वैर करेगी और वह मेरे पुत्र पर दया नहीं करेगी ॥२६॥ युधाजित् के आ जाने पर तो मैं यहाँ से भाग भी नहीं सकूँगी वह आज ही मेरे पुत्र को कारागार में डाल देगा ॥२७॥ मैने सुना है कि इन्द्र भी माता दिति के गर्भ में प्रवेश करके उसके गर्भ को उनचास टुकड़ों में काट दिया था॥२८॥ उस समय इन्द्र अपनी माता के गर्भ में प्रवेश कर गये और वज्र को छोटा बना लिए थे उसीके कारण स्वर्ग में उनचास मरुत् हो गये । यही नहीं सूर्यवंश की ही एक सौत ने अपने सौत के गर्भ को नष्ट करने के लिए विष दे दिया था ॥३०॥ किन्तु बाद में वह बालक गरल (विष) के साथ ही जन्म लिया; अतएव उसका

भुविमंडले ॥३१॥ जीवमानोऽथ भर्त्ता वै कैकेय्या नृपभार्यया । रामः प्रव्राजितो ज्येष्ठो मृतो दशरथो नृपः ॥३२॥ मंत्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम् । राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते ॥३३॥ न मे भ्राता तथा शूरो यो मां बंधात्प्रमोचयेत् । महत्कष्टं च संप्राप्तं मया वै दैवयोगतः ॥३४॥ उद्यमः सर्वथा कार्यः सिद्धिर्दैवाद्धि जायते । उपायं पुत्ररक्षार्थं करोम्यद्य त्वरान्विता ॥३५॥ इति संचिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम् । निपुणं सर्वकार्येषु चिन्त्यं मंत्रिवरोत्तमम् ॥३६॥ समाहूय तमेकांते प्रोवाच बहुदुःखिता । गृहीत्वा बालकं हस्ते रुदती दीनमानसा॥३७॥ पिता मे निहतः संख्ये पुत्रोऽयं बालकस्तथा । युधाजिद्बलवान्राजा किं विधेयं वदस्व मे ॥३८॥ तामुवाच विदल्लोऽसौ नात्र स्थातव्यमेव च । गमिष्यामो वने कामं वाराणस्यां पुनः किल ॥३९॥ तत्र मे मातुलः श्रीमान्वर्तते बलवत्तरः । सुबाहुरिति विख्यातो रक्षिता स भविष्यति ॥४०॥ युधाजिद्दर्शनोत्कंठमनसा नगराद्बहिः । निर्गत्य रथमारुह्य गंतव्यं नात्र संशयः ॥४१॥ इत्युक्ता तेन सा राज्ञी गत्वा लीलावतीं प्रति । उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने ॥४२॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सैरंध्रीसंयुता तदा । विदल्लेन च संयुक्ता निःसृता नगराद्बहिः ॥४३॥ त्रस्ता ह्यार्ताऽतिकृपणा पितुः शोकसमाकुला । दृष्ट्वा युधाजितं भूपं पितरं गतजीवितम् ॥४४॥ संस्कार्य च त्वरायुक्ता वेपमाना भयाकुला । दिनद्वयेन संप्राप्ता राज्ञी

विश्व में उसका विख्यात नाम सगर हुआ ॥३१॥ पति के जीवित ही रहने पर भी रानी कैकेयी ने राम को बनवास दे दिया उसके कारण राजा दशरथ की मृत्यु हो गयी ॥३२॥ मन्त्री तो पराधीन रहते हैं, जो मेरे पुत्र को राजा बनाना चाहते थे वे अब युघाजित् के वश में हैं ॥३३॥ मेरा भाई इतना वीर नहीं है कि मुझे बंधन से मुक्त करा सके, भाग्यवशात् मेरे ऊपर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है ॥३४॥ उपाय तो करना ही चाहिए सफलता तो भाग्याधीन होती है; अतएव मैं शीघ्र अपने पुत्र की रक्षा का उपाय करती हूँ ॥३५॥ इस तरह का विचार करके रानी मनोरमा ने स्वाभिमानी तथा सभी कार्यों में चतुर मन्त्री विदल्ल का स्मरण किया ॥३६॥ उसने मंत्री को एकान्त में बुलाकर और अपने पुत्र का हाथ पकड़कर रोती हुई दीन होकर कहा ॥३७॥ मेरे पिता युद्ध में मारे गये; मेरा पुत्र बालक है, राजा युधाजित् बलवान है, आप बतलाएँ कि क्या करना चाहिए ॥३८॥ विदल्ल ने रानी से कहा अब हमलोगों को यहाँ नहीं रहना चाहिए, हमलोग वाराणसी के वन में निकल चलें ॥३९॥ वहाँ पर मेरे बलवान् मामा सुबाहु हैं, वे हम लोगों की रक्षा करेंगे ॥४०॥ हमलोग युधाजित् से मिलने के बहाने रथ पर चढ़कर नगर से बहार निकलें ॥४१॥ मंत्री के ऐसा कहने पर मनोरमा लीलावती के पास गयी और कही कि मैं अपने मृत पिता का दर्शन करने जा रही हूँ ॥४२॥ यह कहकर वह अपने पुत्र, दासी तथा विदल्ल के साथ रथ पर चढ़कर नगर से बाहर निकली ॥४३॥ उस समय वह अत्यन्त आर्त और भयभीत थी । पिता की मृत्यु के कारण शोक संतप्त थी उसने अपने मरे हुए पिता को देखा । शीघ्र उसने उनका दाह संस्कार

भागीरथीतटम् ॥४५॥ निषादैर्लुंठिता तत्र गृहीतं सकलं वसु । रथं चापि गृहीत्वा ते निर्गता दस्यवः शठाः ॥४६॥ रुदती सुतमादाय चारुवस्त्रा मनोरमा । निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरंध्रीकरलंबिता ॥४७॥ आरुह्य च भयाच्छीघ्रमुडुपं सा भयाकुला । तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकुटपर्वतम्॥४८॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरया च भयाकुला । संवीक्ष्य तापसांस्तत्र संजाता निर्भया तदा ॥४९॥ मुनिना सा ततः पृष्टा काऽसि कस्य परिग्रहः । कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते ॥५०॥ देवी वा मानुषी वाऽसि बालपुत्रा वने कथम् । राज्यभ्रष्टेव वामोरु भासि त्वं कमलेक्षणे॥५१॥ एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी । रुदती दुःखसंतप्ता विदल्लं च समादिशत् ॥५२॥ विदल्लस्तमुवाचेदं ध्रुवसंधिर्नृपोत्तमः । तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा ॥५३॥ सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः । पुत्रोऽयं नृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः ॥५४॥ अस्याः पिताऽतिधर्मात्मा दौहित्रार्थे मृतो रणे । युधाजिद्भयसंत्रस्ता संप्राप्ताविजने वने ॥५५॥ त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा । त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनिसत्तम ॥५६॥ आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम् । भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम् ॥५६॥ ऋषिरुवाच— निर्भया वस कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते । न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसंभवम् ॥५८॥ पालयस्व सुतं कान्तं राजा तेऽयं भविष्यति । नात्र

कराया, भय के कारण काँपती हुई वह दो दिन में गंगा के तट पर आयी ॥४४-४५॥ निषादों ने वहाँ उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली और वे शठ दस्यु उसके रथ को भी छीन लिए ॥४६॥ सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए वह रोती हुई अपने पुत्र को लेकर सैरन्ध्री का हाथ पकड़ कर गंगा के तीर में चली गयी॥४७॥ भयभीत होकर शीघ्र ही नाव से गंगा को पार करके त्रिकुट पर्वत पर चली गयी ॥४८॥ भयभीत मनोरमा शीघ्र ही महर्षि भरद्वाज के आश्रम में पहूँच गयी। वहाँ पर तपस्वियों को देखकर वह निर्भय हो गयी ॥४९॥ महर्षि भरद्वाज ने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? किसकी पत्नी हो ? यहाँ कष्टपूर्वक कैसे आयी हो ? हे शुचिस्मिते ! सत्य-सत्य बतलाओं ॥५०॥ तुम कोई देवी हो ? या मानुषी हो ? इस छोटे बालक को लेकर वन में क्यों आयी हों ? हे सुन्दरि! देखने में लगता है कि तुम्हारा राज्य भ्रष्ट हो गया है ॥५१॥ मुनि के द्वारा पूछे जाने पर वह कुछ भी बोल न सकी दुःखसंतप्त वह रोती हुई विदल्ल से अपना परिचय देने को कहा ॥५२॥ विदल्ल ने बतलाया कि महाराज ध्रुवसंधि की ये मनोरमा नाम की धर्मपत्नी हैं ॥५३। महाराज ध्रुवसंधि को सिंह ने मार दिया था । यह ध्रुवसंधि का पुत्र सुदर्शन है ॥५४॥ मनोरमा के धार्मिक पिता युद्ध में अपने दौहित्र के लिए मारे गये । युधाजित् से भयभीत होकर ये विजन वन में चली आयी हैं ॥५५॥ ये राजा की पत्नी हैं और आपके शरण में आयी हैं । हे मुनिवर्य ! आप इनकी रक्षा करें ॥५६॥ आर्त व्यक्ति की रक्षा करना यज्ञ से भी अधिक पुण्यप्रद बतलाया गया है । भयभीत तथा दीन की रक्षा करना तो और अधिक पुण्यवान् होता है ॥५६॥ **ऋषि भरद्वाज ने कहा—** हे

दुःखं तथा शोकः कदाचित्संभविष्यति ॥५९॥ व्यास उवाच– **इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा संबभूव ह । उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदाऽवसत् ॥६०॥ सैरन्ध्रीसहिता तत्र विदल्लेन च संयुता । सुदर्शनं पालयाना न्यवसत्सा मनोरमा ॥६१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **युधाजित्त्वथ संग्रामाद्गत्वाऽयोध्यां महाबलः । मनोरमां च पप्रच्छ सुदर्शनजिघांसया ॥१॥ सेवकान् प्रेषयामास क्व गतेति मुहुर्वदन् । शुभे दिनेऽथ दौहित्रं स्थापयामास चासने ॥२॥ मंत्रिभिश्च वसिष्ठेन मंत्रैराथर्वणैः शुभैः । अभिषिक्तश्च संपूर्णैः कलशैर्जलपूरितैः ॥३॥ भेरीशंखनिनादैश्च तूर्याणां चाथ निःस्वनैः । उत्सवस्तु नगर्यां वै संबभूव कुरूद्वह ॥४॥ विप्राणां वेदपाठैश्च बंदिनां स्तुतिभिस्तथा । अयोध्या**

कल्याणि ! हे सुव्रते ! तुम निर्भय होकर यहाँ निवास करो और अपने पुत्र का पालन करो ॥५७॥ तुम्हे अपने शत्रु के भय की यहाँ शंका नहीं करनी चाहिए॥५८॥ तुम अपने मनोहर पुत्र का पालन करो यह राजा बनेगा । यहाँ पर तुम्हें किसी भी प्रकार का दुःख तथा शोक नहीं होगा ॥५९॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** मुनि के द्वारा इस तरह कहे जाने पर मनोरमा स्वस्थ हो गयी और मुनि के द्वारा प्रदत्त झोपड़ी में सुखपूर्वक रहने लगी ॥६०॥ वहाँ पर उसके साथ सैरन्ध्री तथा विदल्ल थे । इस तरह सुदर्शन का पालन करती हुई मनोरमा वहाँ निवास करने लगी ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

सुदर्शन को मारने के लिए युधाजित् का भारद्वाजाश्रम में जाना

व्यासजी ने कहा– युधाजित् संग्राम से अयोध्या आया और सुदर्शन को मार डालने की इच्छा से मनोरमा के विषय में पूछा ॥१॥ पता नहीं पाने पर उसने सेवकों को इस बात का पता लगाने के लिए भेजा कि मनोरमा कहाँ गयी ? इसके बाद शुभदिन आने पर उसने अपने दौहित्र को राजा बनाया ॥२॥ मंत्रियों तथा महर्षि वसिष्ठ ने मंगलमय अथर्ववेदीय मन्त्रों से शत्रुजित् का जल भरे कलशों से अभिषेक किया ॥३॥ शंख, भेरी तथा तुरही की ध्वनि से अयोध्या

मुदितेवासीज्जयशब्दैः सुमंगलैः ॥५॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना । नवे तस्मिन्महीपाले पूर्बभौ नूतनेव सा ॥६॥ केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः । सुदर्शनं विचिंत्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः ॥७॥ मनोरमाऽतिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता । पिताऽस्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा ॥८॥ इत्येवं चिंतयानास्ते साधवः समबुद्धयः । अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः ॥९॥ युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः । राज्यं च मंत्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीं प्रति ॥१०॥ श्रुत्वा सुदर्शनं तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम् । हंतुकामो जगामाशु चित्रकूटं स पर्वतम् ॥११॥ निषादाधिपतिं शूरं पुरस्कृत्य बलाधिकम् । दुर्दर्शाख्यमगादाशु श्रृङ्गवेरपुराधिपम् ॥१२॥ श्रुता मनोरमा तत्र बभूवातिसुदुःखिता । आगच्छन्तं बालपुत्रा भयार्ता सैन्यसंयुतम् ॥१३॥ तमुवाचातिशोकार्ता मुनिं साश्रुविलोचना । किं करोमि क्व गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः ॥१४॥ पिता मे निहतोऽनेन दौहित्रो भूपतिः कृतः । सुतं मे हंतुकामोऽत्र समायाति बलान्वितः ॥१५॥ पुरा श्रुतं मया स्वामिन्पांडवा वै वने स्थिताः । मुनीनामाश्रमे पुण्ये पांचाल्या सहितास्तदा ॥१६॥ गतास्ते मृगयां पार्था भ्रातरः पञ्च एव ते । द्रौपदी संस्थिता तत्र मुनीनामाश्रमे शुभे ॥१७॥ धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः । च्यवनश्चात्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः क्रतुः ॥१८॥ वीतिहोत्रः सुमंतुश्च

में उत्सव मनाया गया ॥४॥ ब्राह्मणों के वेदपाठ तथा वन्दीजनों के स्तुतिपाठ की ध्वनि एवं मंगलमय जय-जयकार की ध्वनि से अयोध्या प्रमुदित प्रतीत हो रही थी ॥५॥ हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरी हुई, स्तुतियों तथा वाद्यों की ध्वनियों से मुखरित तथा नवीन राजा के कारण; अयोध्या नवीन सी प्रतीत हो रही थी ॥६॥ कुछ सज्जन थे जो अपने घर में शोक मना रहे थे । वे इस बात की चिन्ता कर रहे थे कि राजकुमार सुदर्शन कहाँ गये ॥७॥ साध्वी मनोरमा अपने पुत्र के साथ कहाँ चली गयीं ? राज्य के लोभी शत्रु ने उनके पिता को युद्ध में मार डाला ॥८॥ समान बुद्धि वाले वे सज्जन इस प्रकार से सोचते हुए अपने घर में दुःखी मन से पड़े रहे क्योंकि वे शत्रु के अधीन थे ॥९॥ युधाजित् भी अपने दौहित्र को विधिपूर्वक राजा बनाकर अपनी नगरी में चला गया ॥१०॥ युधाजित् ने जब सुना कि सुदर्शन चित्रकूट में मुनि के आश्रम में है तो वह उसे मारने के लिए चित्रकूट पर्वत पर गया ॥११॥ उसने शृङ्गवेर पुर के दुर्दर्शन नामक बलवान निषादराज को अपना अग्रणी बनाया और चित्रकूटे आया ॥१२॥ बालक पुत्र वाली मनोरमा सेना के साथ आते हुए शत्रु को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई ॥१३॥ शोक संतप्त मनोरमा ने अपनी आँखों में आँसू भरकर मुनि से कहा, मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? युधाजित् आ गया है ॥१४॥ इसने मेरे पिता को मार दिया है और अपने दौहित्र को राजा बनाया है, मेरे पुत्र को मारने के लिए सेना के साथ आ रहा है ॥१५॥ हे स्वामिन् ! मैने सुना है कि द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डव वनवास मे मुनियों के आश्रम में थे ॥१६॥ एकदिन जब पाँचो पाण्डव आखेटार्थ वन में गये थे

**यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः । राशासनः कहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः ॥१९॥ एते चान्ये च मुनयो भारद्वाजादयः शुभाः । वेदपाठयुताः सर्वे
संस्थिताश्चाश्रमे स्थिताः ॥२०॥ दासीभिः सहिता तत्रयाज्ञसेनी स्थिता मुने । आश्रमे चारुसर्वांगी निर्भया मुनिसंवृते ॥२१॥ पार्था मृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च
वनाद्वनम् । धनुर्बाणधरा वीराः पंच वै शत्रुतापनाः ॥२२॥ तावत्सिन्धुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बलसंयुतः । आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम्॥२३॥
श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम् । उत्ततार रथात्तूर्णं दर्शनाकांक्षया नृपः ॥२४॥ यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः । वेदपाठयुतान्
वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः ॥२५॥ कृतांजलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः । आश्रमे मुनिभिर्जुष्टे भूपतिः संविवेश ह ॥२६॥ तत्रोपविष्टं राजानं
द्रष्टुकामाः स्त्रियस्तदा । आययुर्मुनिभार्याश्च कोऽयमित्यब्रुवन्नृपम् ॥२७॥ तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता । जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण
श्रीरिवापरा ॥२८॥ तां विलोक्यासितापांगीं देवकन्यामिवापराम् । पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना ॥२९॥ भार्या कस्य सुता कस्य नाम्ना
का वरवर्णिनी । रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधां गता ॥३०॥ बर्बूलवनमध्यस्था लवंगलतिका यथा । राक्षसीवृन्दगा नूनं रंभेवाभाति
भामिनी॥३१॥ सत्यं वद महाभाग कस्येयं वल्लभाऽ बला । राजपत्नीव चाभाति नैषा मुनिवधूर्द्विज ॥३२॥** धौम्य उवाच– **पांडवानां प्रिया**

उस समय द्रौपदी मुनियों के आश्रम में थी ॥१७॥ धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमंतु, वत्सल
यज्ञदत्त, राशासन, कहोड, यवकृत, यज्ञकृत्, क्रतु ये सभी तथा भारद्वाजाश्रम में रहने वाले दूसरे महर्षि जो मंगलमय वेदपाठ करते थे, वे सबके सब आश्रम
में ही थे ॥१८-२०॥ वहाँ पर द्रौपदी अपनी दासियों के साथ विद्यमान थी मुनियों से आश्रम के परिपूर्ण होने के कारण वह सुन्दरी निर्भय थी ॥२१॥ पाण्डव
भी आखेट करते हुए एकवन से दूसरे वन में चले गये । वे सब धनुषधारी तथा शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले वीर थे ॥२२॥ उसी समय वेदध्वनि सुनकर
मार्ग में विद्यमान सिन्धुदेश का राजा आश्रम में आया ॥२३॥ वेदध्वनि सुनकर सिन्धु नरेश जयद्रथ रथ से उत्तर पड़े और मुनियों का दर्शन करने के लिए
आश्रम में अपने दो अङ्गरक्षकों के साथ आये ॥२४-२५॥ मुनियों से परिपूर्ण उस आश्रम में जयद्रथ हाथ जोड़कर बैठ गये ॥२६॥ वहाँ पर बैठे हुए राजा
जयद्रथ को देखने के लिए मुनियों की पत्नियाँ और अन्य आश्रम की स्त्रियाँ आ गयीं वे यह जानना चाहती थीं कि यह कौन है ?॥२७॥ उन सबों के
साथ द्रौपदी भी आयी और दूसरी लक्ष्मी के समान रूपवती द्रौपदी को जयद्रथ ने देखा ॥२८॥ देवकन्या के समान सुन्दर द्रौपदी को देखकर जयद्रथ ने महर्षि
धौम्य से पूछा कि यह सुन्दरी कौन है ?॥२९॥ यह किसकी पत्नी तथा किसकी पुत्री है ? इसका नाम क्या है ? रूप तथा लावण्य से युक्त यह दूसरी शची
के समान भूतल पर अवतरित हुई है ॥३०॥ बबूल के वन में लवंग लता के समान तथा राक्षसियों के बीच में विद्यमान रम्भा के समान दिखती है ॥३१॥

भार्या द्रौपदी शुभलक्षणा । पांचाली सिंधुराजेन्द्र वसत्यत्र वराश्रमे ॥३३॥ जयद्रथ उवाच– **क्व गताः पांडवाः पंच शूराः संप्रति विश्रुताः । वसंत्यत्र वने वीरा वीतशोका महाबलाः ॥३४॥** धौम्य उवाच– **मृगयार्थं गताः पंच पांडवा रथसंस्थिताः आगमिष्यंति मध्याह्ने मृगानादाय पार्थिवाः ॥३५॥ तच्छुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौ नृपः । द्रौपदी सन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह ॥३६॥ कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते । एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल ॥३७॥ द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज । विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायांति पांडवाः॥३८॥ एवं ब्रुवंत्यां तस्यां तु लोभाविष्टः स भूपतिः । जहार द्रौपदीं वीरोऽनादृत्य मुनिसत्तमान् ॥३९॥ कस्यचिन्नैव विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः । कुर्वन्दुःखमवाप्नोति दृष्टांतस्तत्र वै बलिः ॥४०॥ वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसंगरः । यज्ञकर्ता च दाता च शरण्यः साधुसम्मतः ॥४१॥ नाधर्मे निरतः क्वापि प्रह्लादस्य च पौत्रकः । एकोनशतयज्ञान् वै स चकार सदक्षिणान् ॥४२॥ सत्त्वमूर्तिः सदा विष्णुः सेव्यः स योगिनामपि । निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥४३॥ कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः । राज्यं छलेन हृतवान्महीं चैव ससागराम् ॥४४॥ सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा । कपटं कृतवान्विष्णुरिंद्रार्थे तु मया श्रुतम् ॥४५॥ अन्यः किं न करोत्येवं कृतं**

आप सच बतलाएँ कि यह किसकी पत्नी है ? हे ब्राह्मण ! यह देखने में राजा की पत्नी के समान लगती है, यह कोई मुनि की पत्नी नहीं हो सकती है ?॥३२॥ **धौम्य महर्षि ने कहा**– हे सुन्धुराज ! यह पाण्डवों की प्रिय पत्नी तथा सुन्दर लक्षणों से युक्त पांचाली है । यह इस आश्रम में ही रहती है ॥३३॥ **जयद्रथ ने पूछा**– इस समय शूरवीर पाण्डव कहाँ गये हैं ? वे महाबलवांन् हैं और सुखपूर्वक इस आश्रम में रहते हैं ॥३४॥ **धौम्य महर्षि ने कहा**– वे पाञ्चो पाण्डव मृगया के लिए गये हैं मध्याह्न में वे मृगों को लेकर आयेंगे ॥३५॥ महर्षि की बात सुनकर जयद्रथ उठ खड़ा हुआ और द्रौपदी के सन्निकट में जाकर प्रणाम करके कहने लगा ॥३६॥ हे सुन्दरि ! तुम्हारा कुशल तो है ? तुम्हारे पति कहाँ गये हैं ? तुम्हे वन में रहते हुए ग्यारह वर्ष बीत गये ॥३७॥ द्रौपदी ने कहा राजकुमार आपका कल्याण हो; आप आश्रम के सन्निकट ही रहें, क्षण भर में पाण्डव आ जायेंगे ॥३८॥ इस तरह से द्रौपदी के कहने पर लोभी जयद्रथ ने मुनियों का अनादर करके द्रौपदी का अपहरण कर लिया ॥३९॥ विद्वानों को चाहिए कि वे किसी का विश्वास न करें, विश्वास करने पर दुःख मिलता हैं इसमें बलि ही प्रमाण हैं ॥४०॥ बलि विरोचन के श्रीमान्, धार्मिक, सत्यवादी, यज्ञ करने वाले, दाता तथा सज्जनों के प्रिय थे ॥४१॥ वे कभी अधर्म नहीं करते थे, प्रह्लाद के पौत्र थे । वे दक्षिणा देकर निन्यानबे यज्ञ किए थे ॥४२॥ सत्त्वगुणसम्पन्न भगवान् विष्णु योगियों के लिए भी सेवनीय हैं । यद्यपि वे निर्विकार हैं फिर भी देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ॥४३॥ महर्षि कश्यप के पुत्र के रूप में कपटी वामन बन गये और सागर

वै सत्त्वमूर्तिना । वामनं रूपमास्थाय यज्ञपातं चिकीर्षता ।।४६।। न च विश्वसितव्यं वै कदाचित्केनचित्तथा । लोभश्चेतसि चेत्स्वामिन्कीदृक्पापकृतं
भयम् ।।४७।। लोभाहताः प्रकुर्वंति पापानि प्राणिनः किल । परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने ।।४८।। मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः।
प्रपतंति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः ।।४९।। देवानाराध्य सततं वांछंति च धनं नराः । न देवास्तत्करे कृत्वा समर्था दातुमंजसा ।।५०।।
अन्यस्यानीयते वित्तं प्रयच्छंति मनीषितम् । वाणिज्येनाथ दानेन चौर्येणापि बलेन वा ।।५१।। विक्रयार्थं गृहीत्वा च धान्यवस्त्रादिकं बहु ।
देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मे भवेदिति ।।५२।। नात्र किं परवित्तेच्छा वाणिज्येन परंतप । ग्रहणकाले तु संप्राप्ते महर्घं चापि कांक्षति ।।५३।। एवं
हि प्राणिनः सर्वे परस्वादानतत्पराः । वर्तन्ते सततं ब्रह्मन् विश्वासः कीदृशः पुनः ।।५४।। वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाऽध्ययनमेव च ।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ।।५५।। तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहं प्रति । सपुत्राऽहं वसिष्यामि जानकीवद्द्विजोत्तम ।।५६।।
इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद्गत्वा युधाजितं नृपम् । उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान् ।।५७।। गच्छ राजन् यथाकामं स्वपुरं नृपसत्तम । नेयं

पर्यन्त की पृथिवी तथा बलि का राज्य छल पूर्वक ले लिए ।।४४।। मैंने सुना है कि विरोचन के पुत्र बली सत्यवादी थे किन्तु विष्णु ने इन्द्र के लिए छल
किया ।।४५।। जब सत्त्वमूर्ति भगवान् विष्णु ऐसा किए तो दूसरा क्यों नही छल करेगा ? बलि का यज्ञ ध्वस्त करने के लिए वे वामन का रूप धारण
कर लिए।।४६।। हे स्वामिन् ! इस तरह से किसी पर भी किसी को विश्वास नहीं करना चाहिए । लोभी व्यक्ति को पाप करने में भय नहीं होता है ।।४७।।
लोभी व्यक्ति पाप करते ही हैं । किसी भी पापी को कभी भी परलोक का भय नहीं होता है ।।४८।। दूसरे की सम्पत्ति हडपने के लिए मन, कर्म तथा वाणी
से कर्म करके लोग लोभ के कारण नरक में चले जाते हैं ।।४९।। देवताओं की आराधना करके वे सर्वदा धन प्राप्त करना चाहते हैं । किन्तु ऐसे आराधकों
के हाथ में कही से धन देने का सामर्थ्य देवताओं में नहीं है ।।५०।। वे उन लोभी भक्तों को व्यापार, दान, चोरी अथवा बल से दूसरों के ही धन को लाकर
दे सकते हैं ।।५१।। बेचने के लिए बहुत अन्न तथा वस्त्र आदि लेकर वैश्य इसलिए पूजन करता है कि वह अधिक धनी हो जाय ।।५२।। हे परंतप !
व्यापारी अन्न लेते ही चाहता है कि अब अन्न बहुत मँहगा हो जाय । क्या वाणिज्य के द्वारा दूसरे की संपत्ति को लेने की इच्छा नहीं होती है ?।।५३।।
इस तरह सभी लोभ दूसरे की संपत्ति हड़प लेना चाहते हैं, ऐसी स्थिति में उनपर विश्वास कैसे किया जाय ?।।५४।। जिनका मन लोभ तथा मोह से आच्छन्न
है उसका तीर्थ, दान तथा अध्ययन करना सब व्यर्थ है ।।५५।। अतएव हे महाभाग ! इस युधाजित् को आप लौटा दें मैं आपके आश्रम में अपने पुत्र के साथ
जानकी के समान निवास करूँगी ।।५६।। मनोरमा की इस तरह की बात को सुनकर प्रतापवान महर्षि भरद्वाज ने युधाजित् से कहा ।।५७।। राजन् ! आप स्वेच्छा

मनोरमाऽभ्येति बालपुत्रा सुदुःखिता ॥५८॥ युधाजिदुवाच– **मुने मुंच हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम् । न च यास्याम्यहं भुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः ॥५९॥** ऋषिरुवाच– **नयस्व यदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात् । विश्वामित्रो यथा धेनुं वसिष्ठस्य मुनेः पुरा ॥६०॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः । मंत्रिवृद्धं समाहूय पप्रच्छ तमतंद्रितः ॥१॥ किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाऽद्य वद सुव्रत । बलान्नयामि तां कामं सपुत्रां च सुभाषणीम् ॥२॥ रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता । राजयक्ष्मेव संवृद्धो मृत्यवे परिकल्पयेत्॥३॥ नात्र सैन्यं न योद्धाऽस्ति यो मामत्र निवारयेत् । गृहीत्वा हन्मि तं तत्र दौहित्रस्य रिपुं किल ॥४॥ निष्कंटकं भवेद्राज्यं यताम्यद्य बलादहम् । हते सुदर्शने नूनं निर्भयोऽसौ भवेदिति ॥५॥** प्रधान उवाच– **साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतं राजन्मुनेर्वचः । विश्वामित्रस्य दृष्टांतः कथितस्तेन मारिष ॥६॥**

से अपने नगर में लौट जायँ । इसका बच्चा अभी छोटा है वह दुःखिनी मनोरमा आपके समक्ष नहीं आयेगी ॥५८॥ **युधाजित् ने कहा**– हे मुने ! आप अपना हठ छोड़ दें, मनोरमा को आप मुझे दे दें । मैं उसे छोड़कर नहीं जा सकता हूँ । अन्यथा उसे मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा । **ऋषि ने कहा**– जिस तरह प्राचीनकाल में विश्वामित्र, वसिष्ठ महर्षि की धेनु बलपूर्वक ले जाते थे उसी तरह यदि तुम में शक्ति हो तो मेरे आश्रम से मनोरमा को ले जाओ ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

सुदर्शन वृत्तान्तार्गत सुदर्शन को कामबीज की प्राप्ति

व्यासजी ने कहा– मुनि की इस बात को सुनकर राजा ने अपने वृद्ध मंत्री को बुलाकर सावधानी से पूछा कि हे सुव्रत ! आप यह बतलाएँ कि इस विषय में मुझे क्या करना चाहिए । मैं उस मनोरमा को बलपूर्वक ले जाना चाहता हूँ ॥१-२॥ अपने छोटे से भी शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । छोटा सा रोग राजयक्ष्मा के रूप में बढ़ जाने पर मृत्यु का कारण बन जाता है ॥३॥ न तो यहाँ पर कोई सेना है और न योद्धा जो कि मुझे रोक सके । मैं अपने दौहित्र को पकड़कर मार देता हूँ ॥४॥ ऐसा करने से मेरे दौहित्र का राज्य निष्कण्टक हो जायेगा । ऐसा करने के लिए मैं बलपूर्वक प्रयास करता हूँ । सुदर्शन

पुरा गाधिसुतः श्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः । विचरन्स नृपश्रेष्ठो वसिष्ठाश्रममभ्यगात् ॥७॥ नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान् । उपविष्टो नृपश्रेष्ठो मुनिना दत्तविष्टरः ॥८॥ निमंत्रितो वसिष्ठेन भोजनाय महात्मना । ससैन्यश्च स्थितो राजा गाधिपुत्रो महायशाः ॥९॥ नन्दिन्याऽऽसादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् । भुक्त्वा राजा ससैन्यश्च वांछितं तत्र भोजनम् ॥१०॥ प्रतापं तं च नंदिन्याः परिज्ञाय स पार्थिवः । ययाचे नंदिनीं राजा वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥११॥ विश्वामित्र उवाच– **मुने धेनुसहस्त्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम् । नंदिनीं देहि मे धेनुं प्रार्थयामि परंतप ॥१२॥** वसिष्ठ उवाच– **होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथंचन । सहस्त्रं चापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु ॥१३॥** विश्वामित्र उवाच– **अयुतं वाऽथ लक्षं वा ददामि मनसेप्सितम् । देहि मे नंदिनीं साधो ग्रहीष्यामि बलादथ ॥१४॥** वसिष्ठ उवाच– **कामं गृहाण नृपते बलादद्य यथारुचि । नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छया नंदिनीं गृहात् ॥१५॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेश महाबलान् । नयध्वं नंदिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः॥१६॥ ते भृत्या जगृहुस्तां तु हठादाक्रम्य यंत्रिताम् । वेपमाना मुनिं प्राह सुरभिः साश्रुलोचना ॥१७॥ मुने त्यजसि मां कस्मात्कर्षयंति सुयंत्रिताम् ।**

के मार देने पर वह शत्रुजित् निर्भय हो जायेगा ॥५॥ **प्रधान ने कहा**– राजन् ! आपने मुनि की बात को सुना है, अतएव आपको साहस नहीं करना चाहिए। उन्होंने विश्वामित्र का दृष्टान्त दिया है । प्राचीन काल में राजा विश्वामित्र भ्रमण करते हुए एक बार महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में गये ॥७॥ राजा विश्वामित्र महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम करके महर्षि के द्वारा आसन प्राप्त करके बैठ गये ॥८॥ महर्षि वसिष्ठ ने गाधिपुत्र विश्वामित्र को उनकी सेना के साथ भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया ॥९॥ उस समय जितनी भी भक्ष्य एवं भोज्य वस्तुएँ आवश्यक थी उन सबों की व्यवस्था नन्दिनी ने किया; और राजा विश्वामित्र ने अपनी रुचि के अनुसार भोजन किया ॥१०॥ राजा ने नन्दिनी के प्रभाव को जानकर वसिष्ठ महर्षि से उसकी याचना की ॥११॥ **विश्वामित्र ने कहा**– मुनें! मैं आपको एकहजार घटोध्नी गायों को दे रहा हूँ । हे परंतप ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ आप मुझे नन्दिनी को दे दें ॥१२॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा**– राजन्! यह मेरी होम धेनु है मैं इसे कभी भी नहीं दे सकता हूँ । आप अपनी एक हजार गायों को अपने ही पास रखें ॥१३॥ **विश्वामित्र ने कहा**– मैं दश हजार अथवा एक लाख गायें इसके बदले में दे रहा हू, आप इसे मुझे दे दें । अन्यथा मैं इसे बलपूर्वक ले जाऊँगा ॥१४॥ **वसिष्ठ ने कहा**– ठीक है तुम इसे बलपूर्वक ही ले जा सकते हो, मैं अपनी इच्छा से नन्दिनी को नहीं दे सकता हूँ ॥१५॥ इसके बाद राजा ने अपने बलवान सैनिकों को आदेश दिया कि इस नन्दिनी गौ को ले चलो ॥१६॥ इसके बाद राजा के भृत्यों ने बलपूर्वक नन्दिनी को पकड़ लिया । आँखों में आँसू भरकर नन्दिनी ने महर्षि वसिष्ठ से काँपते हुए कहा ॥१७॥ मुने ! आप मेरा परित्याग क्यों कर रहे हैं, ये सब बलपूर्वक मुझे बाँधकर ले जा रहे हैं । **महर्षि ने कहा**– हे सुन्दर देह वाली !

**मुनिस्तां प्रत्युवाचेदं त्यजे नाहं सुदुग्धदे ॥१८॥ बलान्नयति राजाऽसौ पूजितोऽद्य मया शुभे । किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा
किल॥१९॥ इत्युक्ता मुनिना धेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह । हुंभारवं चकाराशु क्रूरशब्दं सुदारुणम् ॥२०॥ उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्या घोरतरास्तदा ।
सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवंतः कवचावृताः ॥२१॥ सैन्यं सर्वं हतं तैस्तु नंदिनी प्रतिमोचिता । एकाकी निर्गतो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः ॥२२॥
हंत पापोऽतिदीनात्मा निंदन्क्षात्रबलं महत् । ब्राह्मं बलं दुराराध्यं मत्वा तपसि संस्थितः ॥२३॥ तप्त्वा बहूनि वर्षाणि तपो घोरं महावने । ऋषित्वं
प्राप गाधेयस्त्यक्त्वा क्षात्रं विधिं पुनः ॥२४॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मा कृथा वैरमद्भुतम् । कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम् ॥२५॥ मुनिवर्यं
व्रजाद्य त्वं समाश्वास्य तपोनिधिम् । सुदर्शनोऽपि राजेन्द्र तिष्ठत्वत्र यथासुखम् ॥२६॥ बालोऽयं निर्धनः किं ते करिष्यति नृपाहितम् । वृथा ते
वैरभावोऽयमनाथे दुर्बले शिशौ ॥२७॥ दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदं जगत् । ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥२८॥ वज्रं तृणायते
राजन्दैवयोगान्न संशयः । तृणं वज्रायते क्वापि समये दैवयोगतः ॥२९॥ शशको हंति शार्दूलं मशको वै तथा गजम् । साहसं मुंच मेधाविन्कुरु**

मैं तुम्हारा परित्याग नहीं कर रहा हूँ ॥१८॥ यह आज मेरे द्वारा पूजित राजा तुमको ले जाना चाहता है । तुमको नहीं छोड़ना चाहता है । मैं क्या करूँ
मैं मन से तुम्हारा त्याग नहीं कर रहा हूँ ॥१९॥ मुनि के द्वारा इस तरह कहने पर नन्दिनी गौ क्रुद्ध हो गयी । उसने क्रूर तथा अशुभ रम्भा ध्वनि की ॥२०॥
उस समय नन्दिनी के शरीर से भयंकर आयुधधारी दैत्य उत्पन्न हो गये । वे कवच पहने थे और ठहरो-ठहरो कह रहे थे ॥२१॥ उन सबों ने विश्वामित्र
की सारी सेना का संहार कर दिया और नन्दिनी गौ को मुक्त कराया । वहाँ से राजा विश्वामित्र अत्यन्त दुःखी होकर अकेले लौटे ॥२२॥ वे मन ही मन
सोच रहे थे मैं पापी तथा अत्यन्त दीन हूँ । वे क्षात्रबल की निन्दा कर रहे थे । ब्राह्म बल को दुराराध्य मानकर वे तपस्या करने लगे ॥२३॥ अनेक वर्षों
तक तपस्या करके गाधिपुत्र विश्वामित्र ने ऋषित्व को प्राप्त करके क्षात्रविधि का परित्याग कर दिया ॥२४॥ अतएव हे राजेन्द्र ! आप भी इस अद्भुत वैर
को मत करें । तपस्वियों के साथ युद्ध करना वंश को ही विनष्ट कर देने वाला होता है ॥२५॥ तपोनिधि मुनिवर्य को प्रसन्न करके आप लौट जायँ और
हे राजेन्द्र ! सुदर्शन भी यहाँ सुखपूर्वक रहे ॥२६॥ राजन् ! यह बालक है और निर्धन है, आपका क्या बिगाड़ सकता है ? इस अनाथ एवं दुर्बल बालक
से आपका वैर करना व्यर्थ है ॥२७॥ राजन् यह जगत् दैव के अधीन है, अतएव सबों पर दया रखनी चाहिए । ईर्ष्या करने से कोई लाभ नहीं होता है,
जो होना होता है, वह होकर ही रहता है ॥२८॥ हे राजन् ! दैव के योग से वज्र भी तृण जैसा नगण्य बन जाता है और तृण भी वज्र के समान
शक्तिशाली हो जाता है ॥२९॥ खरगोश भी सिंह को मार देता है और मच्छर भी हाथी को मार डालता है । हे मेधाविन् ! आप साहस का परित्याग

मे वचनं हितम् ।।३०।। व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः । प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगाम स्वपुरं ततः ।।३१।। मनोरमाऽपि**
स्वस्थाऽभूदाश्रमे तत्र संस्थिता । पालयामास पुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम् ।।३२।। दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः । मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयः
सर्वतः शुभः ।।३३।। एकस्मिन्समये तत्र बिदल्लं समुपागतम् । क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामंत्रयत्तदंतिके ।।३४।। सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं
स्फुटम् । अनुस्वारयुतं तच्च प्रोवाचापि पुनः पुनः ।।३५।। बीजं वैकामराजाख्यं गृहीतं मनसा तदा । जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि
सादरम्।।३६।। भावियोगान्महाराज कामाराजाख्यमद्भुतम् । स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै ।।३७।। तदाऽसौ पंचमे वर्षे प्राप्य मंत्रमनुत्तमम्।
ऋषिच्छंदोविहीनं च ध्यानन्यासविवर्जितम् ।।३८।। प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि । विसस्मार न तं मंत्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम् ।।३९।।
वर्षे चैकादशे प्राप्ते कुमारोऽसौ नृपात्मजः । मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा ।।४०।। धनुर्वेदं तथा सांगं नीतिशास्त्रं विधानतः । अभ्यस्ताः
सकला विद्यास्तेन मंत्रबलादिव ।।४१।। कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपं ददर्श ह । रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तसर्वांगभूषणम् ।।४२।। गरुडे वाहने
संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम् । दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः ।।४३।। वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित् । मातरं सेवमानस्तु

करके कल्याणार्थ कार्य को करें ।।३०।। **व्यासजी ने कहा**– उस मंत्री की बात को सुनकर राजा युधाजित् मुनि भरद्वाज को प्रणाम करके अपने नगर को चले
गये ।।३१।। मनोरमा भी उस आश्रम में निवास करती हुई स्वस्थ हो गयी और अपने सत्यव्रत का पालन करने वाले पुत्र सुदर्शन का पालन करने लगीं।।३२।।
कुमार सुदर्शन भी प्रतिदिन बढ़ने लगे । वे मुनि बालकों के साथ निर्भय होकर क्रीड़ा करते थे ।।३३।। एक दिन वहाँ विदल्ल आये और मुनिपुत्र ने उन्हें
क्लीब कहा ।।३४।। सुदर्शन ने उसे सुनकर उसके क्ली इस एक अक्षर को याद कर लिया । और उसे बार-बार अनुस्वार के साथ क्लीं-कलीं रटने
लगा।।३५।। इस कामराज नामक बीजमंत्र का हृदय में धारण करके वह सदा प्रेमपूर्वक जपता रहता था ।।३६।। हे महाराज ! भाग्यवशात् इस कामराज नामक
अद्भुत मन्त्र को उस बालक ने हृदय में धारण कर लिया ।।३७।। पाँच वर्ष का वह बालक ऋषि, छन्द तथा ध्यान के ज्ञान से रहित इस मंत्र को खेलते
तथा सोते समय भी मन में सदा जपता रहता था । उसे मंत्र का सार समझ कर वह कभी भी उस मंत्र को नहीं भूलता था ।।३९।। बालक के ग्यारह वर्ष
के हो जाने पर ऋषि ने उसका यज्ञोपवित कर दिया और उसे वेद पढ़ाया ।।४०।। उस मंत्र कें प्रभाव से सुदर्शन ने सांग धनुर्वेद और राजनीति का भी अभ्यास
किया और अन्य विद्याओं का भी अध्ययन किया ।।४०-४१।। एक बार उसने लाल वस्त्र को धारण की हुई, रक्तवर्ण की तथा रक्तवर्ण के
सभी आभूषणों से समलंकृत देवी का प्रत्यक्ष दर्शन भी किया । देवी का दर्शन करके वह राजकुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।।४२-४३।। वन में रहने वाला

विजहार नदीतटे ॥४४॥ शरासनं च सम्प्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः । तूणीरकवचं तस्मै दत्तं चाम्बिकया वने ॥४५॥ एतस्मिन्समये पुत्री काशिराजस्य सुप्रिया । नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता ॥४६॥ शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थं च सुदर्शनम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं शूरं काममिवापरम् ॥४७॥ वंदीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसम्मतम् । चकमे मनसा तं वै वरं वरयितुं धिया ॥४८॥ स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदम्बा निशांतरे । उवाच वचनं चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता ॥४९॥ वरं वरय सुश्रोणि मम भक्तः सुदर्शनः । सर्वकामप्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनि॥५०॥ एवं शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम् । अंबाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी ॥५१॥ उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः । प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता ॥५२॥ जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः । सखीं प्राह तदाऽन्यां वै स्वप्नवृत्तं सविस्तरम्॥५३॥ कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम् । सखीयुक्ता विशालाक्षी चंपकैरुपशोभितम् ॥५४॥ पुष्पाणि चिन्वती बाला चंपकाधः स्थिताऽबला । अपश्यद्ब्राह्मणं मार्गे आगच्छंतं त्वरान्वितम् ॥५५॥ तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः । कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया ॥५६॥ द्विज उवाच– भारद्वाजाश्रमाद्बाले नूनमागमनं मम । जातं वै कार्ययोगेन किं पृच्छसि वदस्व मे ॥५७॥ शशिकलोवाच– तत्राश्रमे महाभाग

वह बालक अपनी माता की सेवा करते हुए नदी के तट में विचरण करता था ॥४४॥ वन में उसने अम्बिका द्वारा धनुष तथा तीक्ष्ण बाणों, तुणीर एवं कवच को प्राप्त किया ॥४५॥ उसी समय काशीराज की अत्यन्त प्यारी सभी दिव्य लक्षणों से सम्पन्न राजकुमारी शशिकला ने वन में रहने वाले राजकुमार सुदर्शन के विषय में सुना कि सभी लक्षणों से सम्पन्न शूर वीर सुदर्शन हैं ॥४६-४७॥ वन्दीजनों से उसका वृतान्त सुनकर राजकुमारी ने मन ही मन उसका पति के रूप में वरण करने का निश्चय किया ॥४८॥ उसी रात को जगदम्बा ने उसे रात्रि में आश्वस्त करके कहा कि हे सुन्दरि ! सुदर्शन मेरा भक्त है, तुम उसी को अपना पति बनाओ । वह तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण करेगा । मेरी बात तुम मानो ॥४९-५०॥ स्वप्न में शशिकला देवी के मनोज्ञ रूप का दर्शन करके और मन की बात का स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥५१॥ अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वह जगी । उसकी माता ने उसकी प्रसन्नता का कारण बार-बार पूछा किन्तु अत्यन्त लज्जित होने के कारण वह कुछ भी नहीं बोली ॥५२॥ उस स्वप्न को स्मरण करके वह बार-बार जोर से हँस पड़ती थी। उसने अपनी सखी से स्वप्न के वृत्तान्त को विस्तार से बतलाया ॥५३॥ एक बार वह अपनी सखी के साथ चम्पक के वृक्षों से सुशोभित उपवन में विहार करने के लिए आयी ॥५४॥ वह चम्पक वृक्ष के नीचे फूलों को चुन रही थी कि उसने शीघ्रता पूर्वक आते हुए एक ब्राह्मण को देखा ॥५५॥ उसने उस ब्राह्मण को प्रणाम करके मधुर वाणी से पूछा; हे महाभाग ! आप किस देश से आ रहे हैं ?५६॥ **ब्राह्मण ने कहा–** मैं कार्यवशात् भरद्वाज महर्षि के आश्रम

वर्णनीयं किमस्ति वै । लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल ॥५८॥ ब्राह्मण उवाच– **ध्रुवसंधिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः । यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः ॥५९॥ तस्य लोचनमत्यंतं निष्फलं प्रतिभाति मे । येन दृष्टो न वामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः ॥६०॥ एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा । गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात् ॥६१॥ तव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हति । योगोऽयं विहितोऽप्यासीन्मणिकांचनयोरिव ॥६२॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **श्रुत्वा तद्वचनं श्यामा प्रेमयुक्ता बभूव ह । प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वा समाहितः ॥१॥ सा तु पूर्वानुरागाद्वै मग्ना प्रेम्णाऽतिचंचला । कामबाणहतेवास गते तस्मिन्द्विजोत्तमे ॥२॥ अथ कामार्दिता प्राह सखीं छंदोनुवर्तनीम् । विकारश्च समुत्पन्नो देहे यच्छ्रवणादनु॥३॥**

से आ रहा हूँ; तुम क्या पूछना चाहती हो ?॥५७॥ **शशिकला ने कहा–** उस आश्रम में प्रशंसनीय वस्तु क्या है और वहाँ दर्शनीय वस्तु क्या है ?॥५८॥ **ब्राह्मण ने कहा–** हे सुन्दरि ! वहाँ महाराज ध्रुवसन्धि के पुत्र सुदर्शन हैं । उनका जैसा नाम है वैसा ही उनमें गुण भी है वे पुरुषों में उत्तम हैं ॥५९॥ हे सुन्दरि ! जिसने सुदर्शन को नहीं देखा है मेरी समझ में उसके नेत्र विफल हैं ॥६०॥ सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी ने उनमें ही समस्त गुणों का आधान कर दिया है । मैं मानता हूँ कि ब्रह्माजी ने समस्त गुणों के एकमात्र आश्रय को देखने की इच्छा से ऐसा किया है ॥६१॥ यह राजकुमार तुम्हारे लिए योग्य पति है । तुम्हारा और उसका योग मणिकाञ्चन संयोग के समान मैं मानता हूँ ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

शशिकला का स्वयम्बर

व्यासजी ने महाराजं जनमेजय से कहा– उस ब्राह्मण की बातों को सुनकर वह सुन्दरी प्रेमयुक्त हो गयी । वे ब्राह्मण उन सबों को वहाँ से कहकर चले गये॥१॥ पहले के अनुराग के कारण तथा उस ब्राह्मण की बात को सुनकर वह अत्यन्त चंचला शशिकला ब्राह्मण के चले जाने पर काम के बाण से विद्ध सी हो

अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसंभवम् । दुनोति मदनः पापः किं करोमि क्व यामि च ॥४॥ स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पंचबाण इवापरः । तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु ॥५॥ चंदनं देहलग्नं मे विषवद्भाति भामिनि । स्रगियं सर्पवच्चैव चंद्रपादाश्च वह्निवत् ॥६॥ न च हर्म्ये वने शं मे दीर्घिकायां न पर्वते । न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः ॥७॥ न शय्या न च तांबूलं न गीतं न च वादनम् । प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य न तृप्ते मम लोचने ॥८॥ प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः । भीताऽस्मि कुललज्जायाः परतंत्रा पितुस्तथा ॥९॥ स्वयंवरं पिता मेऽद्य न करोति करोमि किम् । दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै ॥१०॥ संत्यन्ये पृथिवीपालाः शतशः संभृतर्द्धयः । रमणीया न मे तेऽद्य राज्यहीनोऽप्यसौ मतः ॥११॥ व्यास उवाच– **एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुदर्शनः । वनवासी फलाहारस्तस्याश्रिते सुसंस्थितः ॥१२॥ वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाऽप्युपस्थिता । सोऽपि ध्यानपरोऽत्यंतं जजाप मंत्रमुत्तमम् ॥१३॥ स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखंडिताम् । विश्वमातरमव्यक्तां सर्वसंपत्करांबिकाम् ॥१४॥ शृंगवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्य तम् । ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम् ॥१५॥ चतुर्भिस्तुरगैर्युक्तं**

गयी ॥२॥ काम के बाण से आहत शशिकला ने अपने मनोऽनुकूल कार्य करने वाली अपनी एक सखी से कहा उस ब्राह्मण की बातें सुनने से मेरे शरीर में विकार उत्पन्न हो गया है ॥३॥ जिसे कामरस का ज्ञान नहीं है उस कुलीन राजकुमार के विषय में पापी काम मुझे कष्ट दे रहा है मैं क्या करू ? और कहाँ जाऊँ ?॥४॥ मैंने उसे स्वप्न में दूसरे कामदेव के समान देखा है । उसके कारण विरह से व्याकुल मेरा मन अत्यन्त संतप्त हो रहा है ॥५॥ शरीर में चन्दन लगाने पर वह विष के समान प्रतीत होता है, यह माला सर्प के समान प्रतीत होती है और चन्द्रमा की किरणें अग्नि की तरह प्रतीत होती हैं ॥६॥ मुझे शान्ति न तो महल में मिलती हैं, न वन में मिलती है, न वावली में, न पवर्त पर, न दिन में, न रात में और न तो अनेक प्रकार के सुख के साधनों में शान्ति मिलती हैं ॥७॥ मेरे मन को नशय्या न ताम्बूल, न गीत और न वाद्य अच्छे लगते हैं । और न तो कहीं मेरे नेत्र तृप्त होते हैं ॥८॥ मन करता है कि मैं उस वन में चली जाऊँ जहाँ वे निष्ठुर रहतें हैं किन्तु कुल की लज्जा तथा पिता की परतंत्रता मुझे ऐसा करने से रोकती है ॥९॥ मेरे पिता मेरा आज ही स्वयम्बर क्यों नहीं कर देते हैं ? मैं क्या करूँ ? मैं अपने को राजकुमार सुदर्शन को सौंप चुकी हूँ ॥१०॥ यद्यपि दूसरे सैकड़ो राजा समृद्धि से सम्पन्न हैं, किन्तु वे मुझको अच्छे नहीं लगते हैं और राज्यहीन भी सुदर्शन मुझको अच्छे लगते हैं ॥११॥ **व्यासजी ने कहा–** उस राजकुमारी के मन में वह निर्धन, सेना विहीन, वन में रहने वाले तथा फलाहार करने वाले सुदर्शन बस गये थे ॥२१॥ वाग्बीज का जप करने के कारण उनको यह सिद्धि प्राप्त हुई थी और वे सुदर्शन भी ध्यानस्थ होकर उस उत्तम मंत्र को जपते रहते थे ॥१३॥ वे स्वप्न में अखण्ड विष्णु की माया, जगन्माता,

पताकावरमंडितम् । जैत्रं राजसुतं ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा ॥१६॥ सोऽपि जग्राह तं प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम् । वन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शंबरम् ॥१७॥ कृतातिथ्ये गते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा । मुनयः प्रीतियुक्तास्ते तमूचुस्तापसा मिथः ॥१८॥ राजपुत्र ध्रुवं राज्यं प्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा । स्वल्पैरहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्र संशयः ॥१९॥ प्रसन्ना तेऽम्बिका देवी वरदा विश्वमोहिनी । सहायस्तु सुसंपन्नो न चिन्तां कुरु सुव्रत॥२०॥ मनोरमां तथोचुस्ते मुनयः संशितव्रताः । पुत्रस्तेऽद्य धराधीशो भविष्यति शुचिस्मिते ॥२१॥ सा तानुवाच तन्वंगी वचनं वोऽस्तु सत्फलम् । दासोऽयं भवतां विप्रा किं चित्रं सदुपासनात् ॥२२॥ न सैन्यं सचिवाः कोशो न सहायश्च कश्चन । केन योगेन पुत्रो मे राज्यं प्राप्तुमिहार्हति ॥२३॥ आशीर्वादैश्च वो नूनं पुत्रोऽयं मे महीपतिः । भविष्यति न संदेहो भवंतो मंत्रवित्तमाः ॥२४॥ व्यास उवाच– रथारूढः स मेधावी यत्र याति सुदर्शनः । अक्षौहिणीसमावृत्त इवाभाति स तेजसा ॥२५॥ प्रतापो मंत्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते । एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वथा ॥२६॥ संप्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम् । जपेद्यस्तु शुचिः शांतः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२७॥ न तदस्ति पृथिव्यां

अव्यक्त तथा सर्व सम्पत् प्रदायिनी भगवती अम्बिका का दर्शन करते थे ॥१४॥ शृंङ्गवेरपुर के निषादराज ने आकर समस्त सामग्रियों से युक्त एक श्रेष्ठ रथ उनको प्रदान किया ॥१५॥ उस रथ में चार घोड़े जुते थे । पताका से वह रथ सुशोभित था । सुदर्शन को विजयी राजकुमार समझकर उसने उन्हें उस रथ को उपहार के रूप में प्रदान किया था ॥१६॥ सुदर्शन ने उसे मित्र का उपहार समझकर स्वीकार किया और निषादराज का सत्कार वन के फल-मूलों से किया ॥१५॥ आतिथ्य के बाद निषादराज के चले जाने पर प्रसन्न होकर सभी तपस्वियों ने सुदर्शन से कहा ॥१८॥ राजकुमार ! आप थोड़े ही दिन में अपना राज्य अपने प्रताप से ही प्राप्त करेंगे ॥१९॥ विश्व को मोहित करने वाली तथा वरदान देने वाली भगवती अम्बिका आपके ऊपर प्रसन्न हैं । आपके सहायक भी अच्छे मित्र हैं किसी बात की आप चिन्ता न करें ॥२०॥ उत्तम व्रत वाले उन मुनियों ने मनोरमा से भी कहा कि हे शुचिस्मिते ! तुम्हारा पुत्र पृथिवी का स्वामी बनेगा ॥२१॥ **सुन्दरी मनोरमा ने मुनियों से कहा–** आपलोगों की वाणी फलदायिनी बने । हे विप्रगण ! यह सुदर्शन तो आपलोगों का दास है । महापुरुषों की सेवा से राज्य मिले तो इसमें क्या आश्चर्य है ?॥२२॥ इसके पास न तो सेना है, न मंत्री हैं, न तो कोष है और न तो कोई इसका सहायक है । अतएव किस प्रकार मेरा पुत्र राज्य प्राप्त कर सकता है ?॥२३॥ आपलोग मन्त्रों के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं । आपलोगों के आशीर्वाद से ही मेरा पुत्र राज्य पायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२४॥ **व्यासजी ने कहा–** सुदर्शन जहाँ कही रथ पर चढ़कर ज़ाता था अपने तेज के कारण लगता था कि वह अक्षौहिणी सेना से सम्पन्न है ॥२५॥ राजन् ! यह किसी दूसरे का प्रभाव नहीं था अपितु उस मंत्र के जपने का ही प्रभाव था । सुदर्शन सदा प्रेमपूर्वक उस मंत्र को जपते रहते थे ॥२६॥ जो भी व्यक्ति सदाचार्य से उस कामराज नामक मंत्र को प्राप्त करके उसका जप पवित्रता पूर्वक शान्त मन सें करता है,

वा दिवि वाऽपि सुदुर्लभम् । प्रसन्नायाः शिवायाश्च यदप्राप्यं नृपोत्तम ॥२८॥ ते मंदास्तेऽतिदुर्भाग्या रोगैस्ते समभिद्रुताः । येषां चित्ते न विश्वासो भवेदंबार्चनादिषु ॥२९॥ या माता सर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता । आदिमातेति विख्याता नाम्ना तेन कुरूद्वह ॥३०॥ बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः । सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते ॥३१॥ न जानंति नरा ये वै मोहिता मायया किल । न भजन्ति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥३२॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा शंभुर्वासवो वरुणो यमः । वायुरग्निः कुबेरश्च त्वष्टा पूषाऽश्विनौ भगः ॥३३॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः । सर्वे ध्यायंति तां देवीं सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥३४॥ को न सेवेत विद्वान्वै तां शक्तिं परमात्मिकाम् । सुदर्शनेन सा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा ॥३५॥ ब्रह्मैव साऽतिदुष्प्राप्या विद्याऽविद्यास्वरूपिणी । योगगम्या परा शक्तिर्मुमुक्षूणां च वल्लभा ॥३६॥ परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना । या सृष्टिं त्रिविधां कृत्वा दर्शयत्यखिलात्मने ॥३७॥ सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसा परिचिंतयन् । राज्यलाभात्परं प्राप्य सुखं वै कानने स्थितः ॥३८॥ साऽपि चंद्रकलाऽत्यर्थं कामबाणप्रपीडिता । नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः ॥३९॥

उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥२७॥ राजन् ! भूलोक अथवा स्वर्गलोक में कोई भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं है जो जगदम्बा के प्रसन्न होने पर प्राप्त न हो सके ॥२८॥ वे लोग अज्ञानी, दुर्भाग्य वाले तथा रोगाक्रान्त होते हैं, जिनके मन में जगदम्बा के अर्चन आदि में विश्वास नहीं होता है ॥२९॥ युग की आदि में वे देवमाता कही गयी हैं । हे कुरुद्वह जनमेजय ! इसीलिए वे आदि माता के नाम से विख्यात हैं ॥३०॥ यह प्रत्यक्षतः ज्ञात होता है कि वे ही सबलोगों की बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति तथा स्मृति स्वरूपा है ॥३१॥ माया से मोहित होने के कारण जो लोग इस बात को नहीं जानते हैं, अतएव कुतर्क करने वाले वे लोग विश्व की स्वामिनी तथा कल्याण करने वाली देवी का भजन नहीं करते हैं ॥३२॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेव तथा मरुद्गण ये सबके सब सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाली उस देवी का ही ध्यान करते हैं ॥३३-३४॥ कौन ऐसा विद्वान् होगा जो उस परमात्मिका शक्ति की सेवा न करे । सुदर्शन ने उनको जान लिया है जो सब कुछ देने वाली हैं ॥३५॥ वे ही ब्रह्म स्वरूपिणी तथा दुष्प्राप्य विद्या स्वरूपिणी एवं अविद्या स्वरूपिणी हैं वे मुमुक्षु जीवों को प्रिय तथा योगगम्या हैं ॥३६॥ जो देवी त्रिगुणात्मिका सृष्टि को करके उसे परमात्मा को दिखलाती हैं, उनको छोड़कर दूसरा कौन परमात्मा के स्वरूप को जान सकता है ॥३७॥ सुदर्शन ने तो मन से उस देवी का ध्यान करके राज्य के लाभ से भी अधिक सुख वन में रहकर प्राप्त किया ॥३८॥ वह शशिकला भी काम के बाणों से अत्यधिक पीड़ित होकर अनेक उपचारों से सेवित रहने पर भी अपने दुःखी शरीर को धारण करती थी ॥३९॥ जब शशिकला के पिता सुबाहु

तावत्तस्याः पिता ज्ञात्वा कन्यां पुत्रवरार्थिनीम् । सुबाहुः कारयामास स्वयंवरमतंद्रितः ॥४०॥ स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परिकीर्तितः । राज्ञां विवाहयोग्यो वै नान्येषां कथितः किल ॥४१॥ इच्छास्वयंवरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः । यथा रामेण भग्नं वै त्र्यंबकंस्य शरासनम् ॥४२॥ तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः । इच्छास्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः ॥४३॥ शिल्पिभिः कारिता मंचाः शुभैरास्तरणैर्युताः । ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमंडपाः ॥४४॥ एवं कृतेऽतिसंभारे विवाहार्थं सुविस्तरे । सखीं शशिकला प्राह दुःखिता चारुलोचना ॥४५॥ इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकांते वचो मम । मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसंधिसुतः शुभः ॥४६॥ नान्यं वरं वरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम् । स मे भर्ता नृपसुतो भगवत्या प्रतिष्ठितः ॥४७॥ व्यास उवाच– **इत्युक्ता सा सखी गत्वा मातरं प्राह सत्वरा । वैदर्भी विजने वाक्यं मधुरं मञ्जुभाषिणी॥४८॥ पुत्री ते दुःखिता प्राह साध्वि त्वां मन्मुखेन यत् । शृणु त्वं कुरु कल्याणि तद्धितं त्वरिताऽधुना ॥४९॥ भारद्वाजाश्रमे पुण्ये ध्रुवसंधिसुतोऽस्ति यः। स मे भर्ता वृतश्चित्ते नान्यं भूपं वृणोम्यहम् ॥५०॥** व्यास उवाच– **राज्ञी तद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते । निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम्॥५१॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितः प्रहसन्मुहूः । भार्यामुवाच वैदर्भीं सुबाहुस्तु ऋतं वचः ॥५२॥ सुभ्रु जानासि बालोऽसौ राज्यान्निष्कासितो**

ने जाना कि उसकी पुत्री वर चाहती है तो उन्होंने उसके लिए स्वयम्बर का आयोजन किया ॥४१॥ विद्वानों ने तीन प्रकार का स्वयम्बर बतलाया है । ऐसा विवाह क्षत्रियों के लिए ही योग्य होता है दूसरों के लिए नहीं ॥४१॥ पहला कन्या द्वारा अपने से पति का चयन करना, दूसरा किसी बात का शर्त लगाकर स्वयम्बर करना । जैसे कि श्रीराम ने शंकरजी का धनुष तोड़ा था ॥४२॥ तीसरे प्रकार के स्वयम्बर में कोई वीर अपनी वीरता का प्रदर्शन करके कन्या को प्राप्त करता है । काशिराज ने पहली कोटि का इच्छा स्वयम्बर का आयोजन किया ॥४३॥ उसके लिए कारीगरों से अच्छे मञ्चों को बनवाया । उन पर अच्छे-अच्छे विस्तर बिछाये गये । उसके बाद अनेक प्रकार के सभ्य मण्डप बनाये गये ॥४४॥ इस तरह से विवाह के लिए जब विस्तृत तैयारी हो गयी तब सुन्दर नेत्रों वाली शशिकला ने दुःखी होकर अपनी सखी से कहा ॥४५॥ तुम एकान्त में मेरी माता से कहो कि मैने अपने मन में ध्रुवसन्धि के पुत्र को अपने पति के रूप में चुन लिया है ॥४६॥ मैं सुदर्शन से भिन्न किसी को भी पति के रूप में वरण नहीं करूँगी । भगवती ने उनको ही मेरे पति के रूप में निर्दिष्ट किया है ॥४७॥ **व्यासजी ने कहा–** यह सुनकर उसकी सखी शशिकला की माता के पास शीघ्र गयी और एकान्त में मीठे स्वर में बतलायी ॥४८॥ हे साध्वि ! आप की पुत्री ने मेरे द्वारा आपको जो कहलवाया है उसे उसके लिए कल्याणकारी बात आप मुझसे सुनें ॥४९॥ महर्षि भरद्वाज के आश्रम में जो ध्रुवसन्धि के पुत्र हैं उन्हीं का मैंने अपने मन में पति के रूप में वरण कर लिया है और किसी भी राजा का मैं वरण नहीं करूँगी ॥५०॥

वने । एकाकी सह मात्रा वै वसते निर्जने वने ॥५३॥ तत्कृते निहतो राजा वीरसेनो युधाजिता । स कथं निर्धनो भर्ता योग्यः स्याच्चारुलोचने॥५४॥ ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम् । आगमिष्यंति राजानः स्थितिमंतः स्वयंवरे ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **भर्त्रा साऽभिहिता बाला पुत्रीं कृत्वाऽङ्कसंस्थिताम् । उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम् ॥१॥ किं वृथा सुदति त्वं हि विप्रियं मम भाषसे । पिता ते दुःखमाप्नोति वाक्येनानेन सुव्रते ॥२॥ सुदर्शनोऽतिदुर्भाग्यो राज्यभ्रष्टो निराश्रयः । बलकोशविहीनश्च परित्यक्तस्तु बांधवैः ॥३॥ मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनः कृशः । न ते योग्यो वरोऽयं वै वनवासी च दुर्भगः ॥४॥ राजपुत्राः कृतप्रज्ञा**

व्यासजी ने बतलाया– रानी ने उस वाक्य को सुनकर जब महाराज घर आये तो अपनी पुत्री की बात को ज्यों के त्यों बतला दिया ॥५१॥ उसको सुनकर आश्चर्यित राजा ने बार-बार हँसते हुए अपनी पत्नी से सत्य वचन बतलाया ॥५२॥ सुन्दरि तुम जानती हो कि वह बालक राज्य से निष्कासित होकर वन में अकेले अपनी माँ के साथ रहता है ॥५३॥ उसके ही लिए राजा वीरसेन युधाजित् के द्वारा मारे गये, हे सुन्दरि ! निर्धन मेरी पुत्री का पति होने के योग्य कैसे हो सकता है ?॥५४॥ तुम जाकर पुत्री शशिकला को बतला दो कि स्वयम्बर में अच्छे-अच्छे राजा आने वाले हैं अतएव वह कभी ऐसा दुर्वचन न कहे ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

स्वयम्बर में सुदर्शन का आना

व्यासजी ने कहा– अपने पति के द्वारा ऐसा कहने के बाद शशिकला की माता ने अपने गोद में शशिकला को बैठाकर उसे आश्वस्त करते हुए कहा॥१॥ हे सुन्दर दाँतो वाली पुत्रि ! तुम मेरी मर्यादा के विपरीत ऐसी बाते क्यों करती हो । इस बात को सुनकर तुम्हारे पिता को कष्ट होता है ॥२॥ सुदर्शन अत्यन्त दुर्भाग्य वाला, राज्य से निष्कासित तथा निराश्रय है । उसके पास न तो सेना है और न खजाना । बाँधवों ने उसे निष्कासित कर दिया है ॥३॥ अपनी

रूपवंतः सुसंमताः । तवार्हाः पुत्रि सन्त्यन्ये राजचिह्नैरलंकृताः ॥५॥ भ्राताऽस्य वर्तते कांतः स राज्यं कोसलेषु वै । करोति रूपसंपन्नः सर्वलक्षणसंयुतः ॥६॥ अन्यच्च कारणं सुभ्रु शृणु यच्च मया श्रुतम् । युधाजित्सततं तस्य वधकामोऽस्ति भूमिपः ॥७॥ दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्ये कृत्वाऽतिसंगरम् । वीरसेनं नृपं हत्वा संमंत्र्य सचिवैः सह ॥८॥ भारद्वाजाश्रमं प्राप्तं हंतुकामः सुदर्शनम् । मुनिना वारितः पश्चाज्जगाम निजमंदिरम् ॥९॥ शशिकलोवाच– मातर्ममेप्सितः कामं वनस्थोऽपि नृपात्मजः । शर्यातिवचनेनैव सुकन्या च पतिव्रता ॥१०॥ च्यवनं च यथा प्राप्य पतिशुश्रूषणे रता । पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥११॥ अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः । भगवत्या समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम् ॥१२॥ तमृतेऽहं कथं चान्यं संश्रयामि नृपात्मजम् । मच्चित्तभित्तौ लिखितो भगवत्या सुदर्शनः ॥१३॥ तं विहाय प्रियं कांतं करिष्येऽहं न चापरम् । व्यास उवाच– प्रत्यादिष्टाऽथ वैदर्भी तथा बहुनिदर्शनैः ॥१४॥ भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम् । विवाहस्य दिनादर्वागाप्तं श्रुतसमन्वितम् ॥१५॥ द्विजं शशिकला तत्र प्रेषयामास सत्वरम् । यथा न वेद मे तातस्तथा गच्छ सुदर्शनम् ॥१६॥ भारद्वाजाश्रमे

माता के साथ वन में रहकर वह फल एवं मूल का भोजन करता है । इस तरह का वनवासी तथा दुर्भाग्य वाला वह तुम्हारे योग्य वर नहीं है ॥४॥ हे पुत्रि! तुम्हारे योग्य वर बुद्धिमान, रूपवान्, राजचिह्नों से समलंकृत बहुत से राजकुमार हैं ॥५॥ सुदर्शन का भाई कोसल देश का राजा है, वह देखने में सुन्दर और रूपवान् है और राजा के लक्षणों से संपन्न है ॥६॥ दूसरी बात यह है कि युधाजित् नामक राजा सर्वदा सुदर्शन का वध कर देना चाहता है, यह मैंने सुना है ॥७॥ युधाजित् ने बहुत बड़ा युद्ध करके अपने दौहित्र को राजा बनाया है । उसने मंत्रियों के साथ विचार करके वीरसेन का वध कर दिया था ॥८॥ सुदर्शन का वध करने के लिए वह भारद्वाजाश्रम में भी आया था, किन्तु मुनि के द्वारा रोक दिए जाने के कारण वह अपने घर लौट गया ॥९॥ **शशिकला ने कहा–** माँ मेरा अभिप्रेत राजकुमार वन में भी रहने वाला सुदर्शन ही मेरा पति है । महाराज शर्याति का वचन मानकर पतिव्रता सुकन्या ने वनवासी महर्षि च्यवन को अपना पति बनाया ॥१०॥ वह च्यवन महर्षि की सेवा में लग गयी । पति की सेवा करना स्त्रियों के लिए स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥११॥ अपने पति के प्रति कपटहीन व्यवहार ही स्त्रियों के लिए सुखद होता है ॥१२॥ अतएव सुदर्शन को छोड़कर मैं किसी भी राजकुमार को कैसे पति बना सकती हूँ ? भगवती ने मेरे चित्त रूपी फलक पर सुदर्शन को चित्रित कर दिया है ॥१३॥ अतएव सुदर्शन को छोड़कर मैं किसी दूसरे को अपना पति नहीं बना सकती हूँ । **व्यासजी ने कहा–** इसके बाद माता ने अनेक उदाहरणों से शशिकला को समझाया किन्तु शशिकला को वह बात अच्छी नहीं लगी ॥१४॥ रानी ने अपनी पुत्री द्वारा कही गयी सारी बातों को राजा को बतला दिया । विवाह से एक दिन पहले एक विद्वान् ब्राह्मण को

ब्रूहि यद्वाक्यात्तरसा विभो । पित्रा मे संभृतः कामं मदर्थेन स्वयंवरः ॥१७॥ आगमिष्यंति राजानो बलयुक्ता ह्यनेकशः । मया त्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथा प्रीतिपूर्वकम् ॥१८॥ भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम । विषमद्मि हुताशे वा प्रपतामि प्रदीपिते ॥१९॥ वरये त्वदृते नान्यं पितृभ्यां प्रेरिताऽपि वा । मनसा कर्मणा वाचा संवृतस्त्वं मया वरः ॥२०॥ भगवत्याः प्रसादेन शर्मावाभ्यां भविष्यति । आगंतव्यं त्वयाऽत्रैव दैवं कृत्वा परं बलम् ॥२१॥ यदधीनं जगत्सर्वं वर्तते सचराचरम् । भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति ॥२२॥ यद्वशे देवताः सर्वा वर्तन्ते शंकरादयः। वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकांते वै नृपात्मजः ॥२३॥ यथा भवति मे कार्यं तत्कर्तव्यं त्वयाऽनघ । इत्युक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा मुनिर्व्यापारितस्तथा ॥२४॥ गत्वा सर्वं निवेद्याशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः । सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा ॥२५॥ चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात् । व्यास उवाच– **गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा ॥२६॥ वेपमानाऽतिदुःखार्ता जातत्रासाऽश्रुलोचना । कुत्र गच्छसि तत्राद्य समाजे भूभृतां किल ॥२७॥ एकाकी कृतवैरश्च किं विचिन्त्य स्वयंवरे । युधाजिद्धन्तुकामस्त्वां समेष्यति महीपतिः ॥२८॥ न तेऽन्योस्ति सहायश्च तस्मान्मा**

शशिकला ने भरद्वाज महर्षि के आश्रम में भेज दिया और कहा कि आप इसतरह सुदर्शन के पास जायँ कि मेरे पिता नहीं जान सकें ॥१५-१६॥ उसने ब्राह्मण से कहा कि महर्षि भरद्वाज के आश्रम में सुदर्शन से मेरी ओर से कहेंगे कि मेरे पिता ने मेरे लिए स्वयम्बर का आयोजन किया है ॥१७॥ अनेक राजा अपनी सेना के साथ आयेंगे । मैंने अपने मन में आपको प्रेमपूर्वक अपने पति के रूप में वरण कर लिया है ॥१८॥ हे देवोपम ! भगवती ने स्वप्न में मुझे आपको ही पति बनाने का आदेश दिया है । मैं विष पीकर मर सकती हूँ; या अग्नि में जल जा सकती हूँ ॥१९॥ किन्तु आपसे भिन्न किसी दूसरे को अपने माता-पिता से प्रेरित होकर भी अपना पति नहीं बना सकती हूँ । मैंने मन, वाणी तथा कर्म से आपको अपना पति बना लिया है ॥२०॥ भगवती की कृपा से हमदोनों का कल्याण होगा । आप भाग्य को बलवान् समझकर इस स्वयम्बर में अवश्य आयेंगे ॥२१॥ जिनके अधीन सारा संसार है, उस भगवती का आदेश कभी मिथ्या नहीं हो सकता है ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! आप एकान्त में कहेंगे कि उन भगवती के ही वश में ब्रह्मा इत्यादि सभी देवता रहा करते हैं॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! आप ऐसा करेंगे कि मेरा कार्य हो जाय । यह कहकर तथा दक्षिणा देकर शशिकला ने ब्राह्मण को भेज दिया ॥२४॥ ब्राह्मण भरद्वाज महर्षि के आश्रम में जाकर सारी बातें कहकर शीघ्र लौट आये । सुदर्शन ने यह सुनकर जाने का निश्चय कर लिया और महर्षि भरद्वाज ने बड़े प्रेम से सुदर्शन को जाने के लिए प्रेरित किया । **व्यासजी ने कहा–** जाने के लिए तैयार अपने पुत्र को देखकर मनोरमा ने उससे कहा ॥२५-२६॥ वह काँप रही थी, अत्यन्त दुःखी थी, भयभीत थी उसकी आँखों में आँसू भर गये थे । तुम राजाओं के समाज में क्यों जाते हो ?॥२७॥ तुम अकेले हो, तुमसे राजाओं का वैर है

व्रज पुत्रक । एकपुत्राऽतिदीनाऽस्मि तवाधारा निराश्रया ॥२९॥ नार्हसि त्वं महाभाग निराशां कर्तुमद्य माम् । पिता मे निहतो येन सोऽपि तत्रागतो नृपः ॥३०॥ एकाकिनं गतं तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति । सुदर्शन उवाच– **भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥ आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयम्वरे । मा शोकं कुरु कल्याणि क्षत्रियाऽसि वरानने ॥३२॥ न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरन्तरम् ।** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा रथामरुह्य गन्तुकामं सुदर्शनम् ॥३३॥ दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमाशीर्भिश्चान्वमोदयत् । अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वती पातु पृष्ठतः ॥३४॥ अपर्णा पार्श्वयोः पातु शिवा सर्वत्र सांप्रतम् । वाराही विषमे मार्गे दुर्गा दुर्गेषु कर्हिचित् । कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी ॥३५॥ मण्डपे तत्र मातंगी तथा सौम्या स्वयंवरे । भवानी भूपमध्ये तु पातु त्वां भवमोचनी ॥३६॥ गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डा चत्वरेषु च । कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी ॥३७॥ विवादे वैष्णवी शक्तिरवतात्त्वां रघूद्वह । भैरवी चरणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे ॥३८॥ सर्वदा सर्वदेशेषु पातु त्वां भुवनेश्वरी । महामाया जगद्धात्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥३९॥** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा तं तदा माता वेपमाना भयाकुला । उवाचाहं त्वया सार्धमागमिष्यामि सर्वथा ॥४०॥ निमिषार्धं विना त्वां वै नाहं स्थातुमिहोत्सहे । सहैव नय मां वत्स यत्र ते गमने मतिः ॥४१॥ इत्युक्त्वा निःसृता**

क्या सोचकर स्वयम्बर में जाते हो ?। राजा युधाजित् तुम्हें मारने के लिए वहाँ अवश्य आयेगा ॥२८॥ तुम्हारा कोई सहायक नहीं है, अतएव हे पुत्र ! तुम मत जाओ । तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो, तुम ही मेरे आधार हो । मैं निराश्रय हूँ ॥२९॥ आज तुम मुझको निराश न करो । मेरे पिता को जिसने मारा है, वह भी वहाँ आयेगा ॥३०॥ अकेले गये हुए तुमको युधाजित् मार देगा । **सुदर्शन ने कहा**– जो भवितव्यता होती है, वह होकर ही रहती है; इसके विषय में विचार नहीं करना चाहिए ॥३१॥ मैं जगन्माता के आदेश से आज स्वयम्बर में जा रहा हूँ । माँ तुम क्षत्रिया हो, शोक मत करो ॥३२॥ भगवती की कृपा मेरे ऊपर सदा रहती है, अतएव मैं डरता नहीं हूँ । **व्यासजी ने कहा**– यह कहकर, रथ पर बैठकर जाने की इच्छा वाले सुदर्शन को ॥३३॥ देखकर मनोरमा ने आशीर्वाद प्रदान किया । उसने कहा आगे से तुम्हारी रक्षा अम्बिका करें, पीछे से पार्वती रक्षा करें ॥३४॥ मण्डप में तुम्हारी रक्षा मातंगी देवी करें और स्वयम्बर में सौम्या देवी करें । राजाओं के बीच में भवमोचनी भवानी तुम्हारी रक्षा करें ॥३६॥ पर्वत के दुर्गों में गिरिजा तुम्हारी रक्षा करें और चामुण्डा देवी तुम्हारी रक्षा चत्वरों पर करें । वनों में सनातनी कामगा देवी तुम्हारी रक्षा करें ॥३७॥ हे रघूद्वह ! विवाद में वैष्णवी देवी तुम्हारी रक्षा करें। शत्रुओं का समागम होने पर तुम्हारे चरणों की रक्षा भैरवी देवी करें ॥३८॥ सभी देशों मे सर्वदा भुवनेश्वरी देवी तुम्हारी रक्षा करें । वे ही महामाया जगत् की माता हैं । सच्चिदानन्द स्वरूपिणी हैं । **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से कहकर उसकी माता मनोरमा ने भय से काँपते हुए कहा– मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी ॥४०॥

माता धात्रेयीसंयुता तदा । विप्रैर्दत्ताशिषः सर्वे निर्ययुर्हर्षसंयुताः ॥४२॥ वाराणस्यां ततः प्राप्ते रथेनैकेन राघवः । ज्ञातः सुबाहुना तत्र
पूजितश्चार्हणादिभिः ॥४३॥ निवेशार्थं गृहं दत्तमन्नपानादिकं तथा । सेवकं समनुज्ञाप्य परिचर्यार्थमेव च ॥४४॥ मिलितास्त्वथ राजानो नानादेशाधिपाः
किल । युधाजिदपि संप्राप्तो दौहित्रेण समन्वितः ॥४५॥ करूषाधिपतिश्चैव तथा मद्रेश्वरो नृपः । सिंधुराजस्तथा वीरो योद्धा माहिष्मतीपतिः॥४६॥
पांचालः पर्वतीयश्च कामरूपोऽतिवीर्यवान् । कार्णाटश्चोलदेशीयो वैदर्भश्च महाबलः ॥४७॥ अक्षौहिणी त्रिषष्टिश्च मिलिता संख्यया तदा । वेष्टिता
नगरी सा तु सैन्यैः सर्वत्र संस्थितैः ॥४८॥ एते चान्ये च बहवः स्वयम्वरदिदृक्षया । मिलितास्तत्र राजानो वरवारणसंयुताः ॥४९॥ अन्योन्यं
नृपपुत्रास्त इत्यूचुर्मिलितास्तदा । सुदर्शनो नृपसुतो ह्यागतोऽस्ति निराकुलः ॥५०॥ एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः । विवाहार्थमिहायातः
काकुत्स्थः किं नु सांप्रतम् ॥५१॥ एतान्राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान् सायुधानथ । किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम् ॥५२॥ युधाजिदथ
राजेशस्तानुवाच महीपतीन् । अहमेनं हनिष्यामि कन्यार्थे नात्र संशयः ॥५३॥ केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः । नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं

तुम्हारे विना मैं आधा निमेष भी नहीं रहना चाहती हूँ । हे वत्स ! जहाँ जाना चाहते हो वहाँ मुझे भी ले चलो ॥४१॥ इस तरह कहकर मनोरमा धाई
के साथ निकली । ब्राह्मणों ने उन सबों को आशीर्वाद दिया और वे सब हर्ष के साथ निकल पड़े ॥४२॥ रघुवंशी सुदर्शन रथ पर एक ही बार बैठकर
वाराणसी आ गया । इस बात को राजा सुबाहु ने सुना तो उन सबों का सत्कार किया ॥४३॥ रहने के लिए गृह तथा अन्न-पानी की व्यवस्था उन्होंने कर
दी । उनकी सेवा करने के लिए सेवकों को आज्ञा उन्होंने दे दी ॥४४॥ वहाँ पर अनेक देश के राजा भी आ गये । युधाजित् भी अपने दौहित्र के साथ
आ गये ॥४५॥ करुषदेश के राजा और मद्रदेश के भी राजा आये । वीर सिन्धुराज और योद्धा तथा महिष्मती के महाराज भी आये ॥४६॥ पञ्चाल देश
के राजा पर्वतीय राजागण, कामरूपदेश के अत्यन्त पराक्रमी महाराज, कर्णाट (कर्णाटक) चोल तथा विदर्भदेश के भी महाबली राजा आये ॥४६-४७॥ उन सभी
राजाओं की सब मिलकर तिरसठ अक्षैहिणी सेना थी । सर्वत्र विद्यमान सैनिकों से नगरी घिर गयी थी ॥४८॥ इन सभी राजाओं के अतिरिक्त अनेक राजा स्वयम्बर
देखने की इच्छा से श्रेष्ठ हाथियों पर चढ़कर वहाँ आये थे ॥४९॥ परस्पर में सभी राजकुमार कहते थे कि राजकुमार सुदर्शन निर्भय होकर आया है ॥५०॥
महाबुद्धिमान् सुदर्शन अकेले रथ पर बैठकर अपनी माता के साथ विवाह के लिए यहाँ पर आ गया है ॥५०॥ आयुध तथा सेना के साथ आये हुए इन राजकुमारों
को छोड़कर राजकुमारी उसका ही वरण करेगी ॥५१॥ राजा युधाजित् ने उन राजकुमारों से कहा कि राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए मैं सुदर्शन को मार
डालूँगा । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥५२॥ नीतिज्ञों में श्रेष्ठ केरलाधिपति ने कहा कि यह इच्छास्वयम्बर है, इसमें युद्ध नहीं करना चाहिए ॥५३॥ यहाँ

राजन्निच्छास्वयंवरे ॥५४॥ बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः । कन्येच्छयाऽत्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह ॥५५॥ अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः । दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम ॥५६॥ काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः । कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम् ॥५७॥ लप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम । शास्ताऽस्ति कश्चिदायुष्मञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः ॥५८॥ धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयतिनानृतम् । माऽनयं कुरु राजेन्द्र त्यज पापमतिं किल ॥५९। दौहित्रस्तव संप्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः । राज्ययुक्तस्तथा श्रीमान्कथं तं न वरिष्यति ॥६०॥ अन्ये राजसुताः कामं वर्तंते बलवत्तराः । कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति सांप्रतम् ॥६१॥ वृते तथा विवादः कः प्रवदंतु महीभुजः । परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्यो विजानता ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बलपूर्वक न तो कन्या का हरण करना है और न तो यह शुल्क स्वयम्बर है । इसमें तो कन्या अपनी इच्छा से वरण करेगी इसमें विवाद किस बात का है ?॥५५॥ तुमने अन्याय पूर्वक इसका राज्य लेकर उसे राज्य से निकाल दिया है । हे राजन् ! आपने जबरदस्ती अपने दौहित्र को राज्य दे दिया है ॥५६॥ महाभाग ! यह रघुवंशी कोसलाधिप का पुत्र है; इस निरपराध को तुम क्यों मारोगे ॥५७॥ राजन् ! तुम अपने अन्याय का फल अवश्य पाओगे । आयुष्मन्! इस जगत् का प्रशासक कोई दूसरा है जो जगत्पति है ॥५८॥ सदा धर्म एवं सत्य की विजय होती है, अधर्म और असत्य की नहीं । राजेन्द्र ! अन्याय मत करो अपनी पापबुद्धि को छोड़ दो ॥५९॥ तुम्हारा भी दौहित्र आया है, वह देखने में सुन्दर भी है । वह राजा और श्रीमान् है, वह उसका वरण क्यों नहीं करेगी ?॥६०॥ और भी दूसरे अधिक बलवान् राजकुमार हैं, वे भी स्वयम्बर में कन्या को स्वीकार करेंगे ॥६१॥ राजाओं ! आपलोग ही बताएँ कि इस प्रकार के विवाह में विवाद की कौन सी आवश्यकता है ?। इस राजसमूह में परस्पर में विरोध विल्कुल उचित नहीं है ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति वादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा । प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः ॥१॥ नीतिरेषा महीपाल यद्ब्रवीषि भवानिह । समाजे पार्थिवानां वै सत्यवाग्विजितेंन्द्रियः ॥२॥ योग्येषु वर्तमानेषु कन्यारत्नं कुलोद्वह । अयोग्योऽर्हति भूपाल न्यायोऽयं तव रोचते॥३॥ भागं सिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हति वा कथम् । तथा सुदर्शनोऽयं वै कन्यारत्नं किमर्हति ॥४॥ बलं वेदो हि विप्राणां भूभुजां चापजं बलम् । किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यहमिहाधुना ॥५॥ बलं शुल्कं यथा राज्ञां विवाहे परिकीर्तितम् । बलवानेव गृह्णातु नाबलस्तु कदाचन ॥६॥ तस्मात्कन्यापणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम् । अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम् ॥७॥ एवं विवादे संवृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम् । आहूतस्तु सभामध्ये सुबाहुर्नृपसत्तमः ॥८॥ समाहूय नृपाः सर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः । राजन्नीतिस्त्वया कार्या विवाहेऽत्र समाहिता ॥९॥ किं ते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्व समाहितः । पुत्र्याः प्रदानं कस्मै ते रोचते नृप चेतसि ॥१०॥** सुबाहुरुवाच– **पुत्र्या मे मनसा कामं वृतः किल सुदर्शनः । मया निवारितोऽत्यर्थं न सा प्रत्येति मे वचः ॥११॥ किं करोमि सुताया मे न वशे वर्तति मनः । सुदर्शनस्तथैकाकी संप्राप्तोऽस्ति निराकुलः ॥१२॥**

राजाओं का विवाद और कन्या की सुदर्शन का वरण करने की इच्छा

व्यासजी ने कहा– केरलाधिपति के ऐसा कहने पर राजा युधाजित् ने कहा ॥१॥ हे राजन् ! राजाओं के समाज में आप सत्यवक्ता एवं जितेन्द्रिय हैं। आप जो कह रहे हैं क्या वही नीति है ?॥२॥ हे अपने वंश में श्रेष्ठ राजन् ! योग्य पुरुषों के विद्यमान रहने पर भी अयोग्य व्यक्ति कन्यारत्न को प्राप्त करे क्या यही न्यायसंगत है ?॥३॥ सिंह के भाग को शृगाल (स्यार) कैसे ले जा सकता है ? उसी तरह से यह सदुर्शन क्या कन्यारत्न के योग्य है ?॥४॥ ब्राह्मणों का बल वेद होता है और क्षत्रियों का बल धनुष जन्य होता है । हे महाराज ! यहाँ पर मैं कौन सी अन्याय की बात कर रहा हूँ ?॥५॥ विवाह में क्षत्रियों का शुल्क बल बतलाया गया है, अतएव बलवान् ही क्षत्रिय कन्या को प्राप्त करता है बलहीन नहीं ॥६॥ अतएव कन्या के लिए कोई शर्त ही लगाकर नीति का अनुसरण कीजिये, अन्यथा यहाँ राजाओं में कलह होगा ॥७॥ इस तरह से विवाद के उपस्थित होने पर सभा में राजा सुबाहु को बुलाया गया ॥८॥ तत्त्वदर्शी राजाओं ने सुबाहु को बुलाकर कहा– राजन् ! आपको इस विवाह के लिए पण की नीति अपनानी चाहिए ॥९॥ आप सावधानी पूर्वक बतलाएँ कि आप क्या करना चाहते हैं । आपने अपने मन में किसको अपनी पुत्री देने का निश्चय किया है ॥१०॥ **सुबाहु ने कहा–** मेरी पुत्री ने अपने

व्यास उवाच– **संपन्ना भूभुजः सर्वे समाहूय सुदर्शनम् । ऊचुः समागतं शांतमेकाकिनमतंद्रिताः ॥१३॥ राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत । एकाकी यः समायातः समाजे भूभृतामिह ॥१४॥ न वै सैन्यं न सचिवा न कोशो न बृहद्बलम् । किमर्थं च समायातस्तत्त्वं ब्रूहि महामते ॥१५॥ युद्धकामा नृपतयो वर्ततेऽत्र समागमे । कन्यार्थं सैन्यसंपन्नाः किं त्वं कर्तुमिहेच्छसि ॥१६॥ भ्राता ते सुबलः शूरः संप्राप्तोऽस्ति जिघृक्षया । युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः ॥१७॥ गच्छ वा तिष्ठ राजेन्द्र याथातथ्यमुदाहृतम् । त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टं कुरु सुव्रत ॥१८॥** सुदर्शन उवाच– **न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः । न मित्राणि न सौहार्दी न नृपा रक्षका मम ॥१९॥ अत्र स्वयंवरं श्रुत्वा द्रष्टुकाम इहागतः । स्वप्ने देव्या प्रेरितोऽस्मि भगवत्या न संशयः ॥२०॥ नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाह जगदीश्वरी । तया यद्विहितं तच्च भविताऽद्य न संशयः ॥२१॥ न शत्रुरस्ति संसारे कोऽप्यत्र जगतीश्वराः । सर्वत्र पश्यतो मेऽद्य भवानीं जगदंबिकाम् ॥२२॥ यः करिष्यति शत्रुत्वं मया सह नृपात्मजः । शास्ता तस्य महाविद्या नाहं जानामि शत्रुताम् ॥२३॥ यद्भावि तद्वै भविता नान्यथा नृपसत्तमाः । का चिंता ह्यत्र कर्तव्या दैवाधीनोऽस्मि**

मन में सुदर्शन का वरण किया है मैने उसे बार-बार समझाया है; किन्तु वह मेरी बात नहीं मानती है ॥११॥ मैं क्या करूँ ? मेरी पुत्री का मन मेरे वश में नहीं है और शान्त मन से सुदर्शन भी यहाँ अकेले आ गया है ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा–** उन श्रेष्ठ राजाओं ने शान्त तथा अकेले सुदर्शन को सभा में बुलाकर कहा ॥१३॥ महाभाग राजकुमार आपको यहाँ किसने बुलाया है कि आप अकेले इस राजाओं के समाज में आये हैं ॥१४॥ आपके पास न तो सेना है, न मन्त्री हैं, न खजाना है, न तो आप बलवान हैं । हे महामते ! आप ठीक-ठीक बतलाएँ कि आप किसलिए आये हैं ?॥१५॥ इस सभा में राजागण कन्या के लिए युद्ध करना चाहते हैं । वे सेना के साथ हैं । इस विषय में आप क्या करना चाहते हैं ॥१६॥ तुम्हारा भाई शत्रुजित् सेना के साथ यहाँ कन्या को ग्रहण करने के लिए आया है । महाबलवान् युधाजित् उसकी सहायता करने के लिए आये हैं ॥१७॥ तुम चाहो तो यहाँ से जा सकते हो या यहाँ रह सकते हो । तुम्हें सत्य बात बतला दी गयी; क्योंकि तुम सेना से रहित हो । तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥१८॥ **सुदर्शन ने कहा–** मेरे पास न तो सेना है, न कोई सहायक है, न खजाना है, न तो किला है, न कोई मेरा मित्र है और न तो कोई सुहृद राजा मेरा रक्षक है ॥१९॥ मैं यहाँ पर होने वाले स्वयम्बर को सुनकर देखने की इच्छा से आया हूँ । इसमें कोई संशय नहीं है कि स्वप्न में देवी ने मुझे यहाँ आने की प्रेरणा दी है ॥२०॥ कोई दूसरा कार्य करना भी मुझे अभिप्रेत नहीं है । मुझे जगदीश्वरी ने यहाँ आने को कहा है । देवी ने जो विधान किया है, वही होगा भी ॥२१॥ राजगण! संसार में मेरा कोई भी शत्रु नहीं है । मैं तो सब जगह भवानी का ही दर्शन करता हूँ ॥२२॥ जो मेरे साथ शत्रुता करेगा, उसका प्रशासन महाविद्या स्वरूपिणी देवी करेंगी ।

सर्वदा ॥२४॥ देवभूत मनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा । सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः ॥२५॥ सा यं चिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः।
निर्धनं वा नरं कामं का चिंता वै तदा मम ॥२६॥ तामृते परमां शक्तिं ब्रह्मविष्णुहरादयः । न शक्ताः स्पंदितुं देवाः का चिंता मे तदा
नृपाः॥२७॥ अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम् । तदाज्ञया नृपाद्यैव संप्राप्तोऽस्मि स्वयंवरे ॥२८॥ सा यदिच्छति तत्कुर्यान्मम किं
चिंतनेन वै । नात्र शंका प्रकर्तव्या सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥२९॥ जये पराजये लज्जा न मेत्राण्वपि पार्थिवाः । भगवत्यास्तु लज्जाऽस्ति तदधीनोऽस्मि
सर्वथा ॥३०॥ व्यास उवाच– **इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः । ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य निश्चयज्ञा नराधिपाः ॥३१॥ सत्यमुक्तं त्वया साधो**
न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत् । तथाप्युज्जयनीनाथस्त्वां हंतुं परिकांक्षति ॥३२॥ त्वत्कृते न दयां दृष्ट्वा त्वां ब्रूमो वै महामते । यदुक्तं तत्त्वया कार्यं
विचार्य मनसाऽनघ ॥३३॥ सुदर्शन उवाच– **सत्यमुक्तं भवद्भिश्च कृपावद्भिः सुहृज्जनैः । किं ब्रवीमि पुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः ॥३४॥ न**
मृत्युः केनचिद्भाव्यः कस्यचिद्वा कदाचन । दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥३५॥ स्ववशोऽयं न जीवोऽस्ति स्वकर्मवशगः सदा । तत्कर्म
त्रिविधं प्रोक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥३६॥ संचितं वर्तमानं च प्रारब्धं च तृतीयकम् । कालकर्मस्वभावैश्च ततं सर्वमिदं जगत् ॥३७॥ न देवो

मैं शत्रुता नाम की वस्तु को जानता भी नहीं हूँ ॥२३॥ राजाओं ! जो भावी होगा वही होगा, उसके विपरीत कुछ भी नहीं होगा । इस विषय में क्या चिन्ता
करनी है ? मैं तो सर्वदा भाग्य के अधीन रहता हूँ ॥२४॥ राजवर्यों ! देवता, भूत, मनुष्य तथा सभी प्रणियों में सदा देवी की ही शक्ति विद्यमान रहती
है ॥२५॥ वह जिसको चाहती हैं, उसी को राजा बनाती हैं, चाहे मनुष्य अत्यन्त निर्धन ही क्यों न हो । अतएव इस विषय में मुझको क्या चिन्ता करनी
है ?॥२६॥ उस परमा शक्ति के बिना, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर आदि देवता जब हिल-डुल नहीं सकते हैं तो फिर मुझे क्या चिन्ता करनी है ?॥२७॥
मैं अशक्त हूँ या सशक्त हूँ । मैं जैसा हूँ वैसा हूँ । मैं उस देवी की ही आज्ञा से यहाँ स्वयम्बर में आया हूँ ॥२८॥ वे जो चाहें सो करें मुझे चिन्ता करने
से कौन सा लाभ है ? मेरे इस कथन में आपलोग शंका न करें मैं सत्य कहता हूँ ॥२९॥ मुझे विजय अथवा पराजय से थोड़ी सी भी लज्जा नहीं है।
लज्जा उस भगवती को है मैं तो उनके अधीन हूँ ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा–** सुदर्शन की बात को सुनकर निश्चय करने में समर्थ राजाओं ने कहा कि राजकुमार
इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है फिर भी उज्जयिनी नरेश आपके शत्रु हैं, वे आपको मार डालना चाहते हैं ॥३१-३२॥ हे महामते ! आपके प्रति उनके मन
में थोड़ी सी भी दया नहीं है, यह हमलोगों ने आपको बतला दिया अब आप जो चाहें सो करें ॥३३॥ **सुदर्शन ने कहा–** आपलोग दयावान और सुहृद्
हैं । आपलोगों ने सत्य कहा है, किन्तु इसमें मैं और क्या कर सकता हूँ ॥३४॥ किसी की भी किसी के द्वारा मृत्यु नहीं होती है । सारा जडजंगमात्मक

मानुषं हंतुं शक्तः कालागमं विना । हतं निमित्तमात्रेण हंति कालः सनातनः ॥३८॥ यथा पिता मे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः । तथा मातामहोऽप्येवं युद्धे युधाजिता हतः ॥३९॥ यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः । जीवेद्वर्ष सहस्राणि रक्षणेन विना नरः ॥४०॥ नाहं बिभेमि धर्मिष्ठाः कदाचिच्च युधाजितः । दैवमेव परं मत्त्वा सुस्थितोऽस्मि सदा नृपाः ॥४१॥ स्मरणं सततं नित्यं भगवत्याः करोम्यहम् । विश्वस्य जननी देवी कल्याणं सा करिष्यति ॥४२॥ पूर्वार्जितं हि भोक्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा । स्वकृतस्य च भोगेन कीदृक्शोको विजानताम् ॥४३॥ स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः । निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल ॥४४॥ न तथाऽहं विजानामि वैरं शोकं भयं तथा । निःशंकमिह संप्राप्तः समाजे भूभृतामिह ॥४५॥ एकाकी द्रष्टुकामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम् । भविष्यति च यद्भाव्यं प्राप्तोऽस्मि चंडिकाज्ञया ॥४६॥ भगवत्याः प्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः । तत्कृतं च सुखं दुःखं भविष्यति च नान्यथा ॥४७॥ युधाजित्सुखमाप्नोतु न मे वैरं नृपोत्तमाः । यः करिष्यति मे वैरं स प्राप्स्यति फलं तथा ॥४८॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तास्ते तथा तेन संतुष्टा भूभुजः स्थिताः । सोऽपि स्वमाश्रमं प्राप्य सुस्थितः**

जगत् दैव की अधीन है ॥३५॥ यह जीव अपने अधीन नहीं है, यह कर्म के परतंत्र है । तत्त्वदर्शी विद्वानों ने तीन प्रकार के कर्मों को बतलाया है ॥३६॥ संचित, वर्तमान तथा प्रारब्ध । यह सारा जगत् काल, कर्म तथा स्वभाव से व्याप्त है ॥३७॥ काल के आये बिना देवता भी मनुष्य को नहीं मार सकते हैं । निमित्त मात्र से मारे गये जीवों को काल ही मारता है ॥३८॥ जैसे शत्रुओं पर शासन करने वाले मेरे पिता को सिंह ने मार डाला । उसी तरह मेरे नाना को युद्ध में युधाजित् ने मार डाला ॥३९॥ जिसका काल आ जाता है, वह सैकड़ों प्रयास करके भी नहीं बच सकता है और जिसका दैवयोग नहीं आया रहता है, वह बिना रक्षा के भी हजारों वर्ष तक जीवित रहता है ॥४०॥ हे धार्मिक राजाओं ! मैं युधाजित् से नहीं डरता हूँ । मैं सदा भाग्य को ही बलवान् मानकार स्थिर रहता हूँ ॥४१॥ मैं सदा भगवती का स्मरण करता रहता हूँ । देवी संसार की माता हैं वे ही कल्याण करेंगी ॥४२॥ पहले से ही अर्जित पाप अथवा पुण्य का फल भोगना पड़ता है । अतएव अपने किए हुए कर्म का फल भोगने में शोक क्या करना है ॥४३॥ अज्ञानी तथा कम बुद्धि वाला व्यक्ति अपने कर्म के फलरूपी दुःखों को प्राप्त करके उसके निमित्तकरण से ही वैर करता है ॥४४॥ मैं वैर, शोक तथा भय को वैसा नहीं मानता हूँ, अतएव निःशंक भाव से राजाओं के समाज में इस उत्तम स्वयम्बर को अकेले देखने के लिए आया हूँ । जो होना होगा वह होगा । मैं चाण्डिका की आज्ञा से आया हूँ ॥४६॥ इस विषय में भगवती ही प्रमाण हैं, उनसे भिन्न मैं किसी को नहीं जानता हूँ । वे ही सुख एवं दुःख को देने वाली हैं । दूसरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता है ॥४७॥ राजाओं ! युधाजित् सुखी रहें, उनसे मेरा कोई वैर नहीं हैं । जो मुझसे वैर करेगा वही उसका फल प्राप्त करेगा ॥४८॥

संबभूव ह ॥४९॥ अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाः संमंत्रिताः किल । सुबाहुना नृपेणाथ रुचिरे वै स्वमंडपे ॥५०॥ दिव्यास्तरणयुक्तेषु मंचेषु रचितेषु
च । उपविष्टाश्च राजानः शुभालंकरणैर्युताः ॥५१॥ दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव । दीप्यमानाः स्थितास्तत्र स्वयंवरदिदृक्षया ॥५२॥
इति चिंतापराः सर्वे कदा साऽप्यागमिष्यति । भाग्यवन्तं नृपश्रेष्ठं श्रुतपुण्यं वरिष्यति ॥५३॥ यदा सुदर्शनं दैवात्स्रजा संभूषयेदिह । विवादो वै
नृपाणां च भविता नात्र संशयः ॥५४॥ इत्येवं चिंत्यमानास्ते भूपा मंचेषु संस्थिताः । वादित्रघोषः सुमहानुत्थितो नृपमंडपे ॥५५॥ अथ काशीपतिः
प्राह सुतां स्नातां स्वलंकृताम् । मधूकमालासंयुक्तां क्षौमवासोविभूषिताम् ॥५६॥ विवाहोपस्करैर्युक्तां दिव्यां सिंधुसुतोपमाम् । चिंतापरां सुवसनां
स्मितपूर्वमिदं वचः ॥५७॥ उत्तिष्ठ पुत्रि सुनसे करे धृत्वा शुभां स्रजम् । व्रज मंडपमध्येऽद्य समाजं पश्य भूभुजाम् ॥५८॥ गुणवान्नृपसम्पन्नः
कुलीनश्च नृपोत्तमः । तव चित्ते वसेद्यस्तु तं वृणुष्व सुमध्यमे ॥५९॥ देशदेशाधिपाः सर्वे मंचेषु रचितेषु च । संविष्टाः पश्य तन्वंगि वरयस्व
यथारुचि ॥६०॥ व्यास उवाच– तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषिणी । उवाच वचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम् ॥६१॥ शशिकलोवाच–
नाहं दृष्टिपथे राज्ञां गमिष्यामि पितः किल । कामुकानां नरेशानां गच्छंत्यन्याश्च योषितः ॥६२॥ धर्मशास्त्रे श्रुतं तात मयेदं वचनं किल । एक एव

व्यासजी ने कहा– इस तरह सुदर्शन की बात सुनकर सभी राजा प्रसन्न थे । सुदर्शन भी अपने स्थान पर आकर सुखी हो गये ॥४९॥ दूसरे दिन शुभ काल
के आने पर सभी राजा सुबाहु के द्वारा मनोहर मण्डप में बुलाये गये ॥५०॥ दिव्य विस्तरों से युक्त बनाये गये मण्डपों में मनोहर अलंकारों से युक्त सभी
राजा बैठे थे ॥५१॥ वे दिव्य वेष धारण किए हुए राजा लगता था कि विमानों में देवता बैठे हैं । देदीप्यमान वे राजागण स्वयम्बर देखने की इच्छा से
बैठे थे॥५२॥ वे सब यही सोच रहे थे कि वह कब आयेगी तथा भाग्यवान् श्रेष्ठ राजा का वरण करेगी ॥५३॥ यदि भाग्यवशात् वह सुदर्शन को माला
से अलंकृत करती है तब तो निश्चित रूप से विवाद होयेगा ॥५४॥ इस प्रकार से सोचते हुए सभी राजा मञ्चों पर बैठे हुए थे । उसी समय राजाओं के
मण्डप में जोर-जोर से बाजे बजने लगे ॥५५॥ उसके बाद काशिराज ने स्नान करके अलंकृत हुई अपनी पुत्री से कहा । उस समय वह अपने हाथ में
महुए की माला लिए हुई थी तथा रेशमी वस्त्र पहनी थी ॥५६॥ विवाह की सामग्री लिए हुए लक्ष्मी के समानं दुर्गा के ध्यान में लीन एवं सुन्दर वस्त्र धारण
की हुई शशिकला से राजा सुबाहु ने कहा ॥५७॥ हे सुन्दर नासिका वाली पुत्रि ! उठो अपने हाथ में इस मंगलमयी माला को लेकर मण्डप में चलो और
राजाओं के समाज को देखो ॥५८॥ तुम्हारे मन में जो राजा, रूपवान, कुलीन आये उसका तुम वरण करो ॥५९॥ हे सुन्दरि ! अनेक देशों के राजा बनाये
गये मञ्चों पर विराजमान हैं, उनको देखो और अपनी रुचि के अनुसार किसी राजा का वरण करो॥६०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस प्रकार से कहने वाले अपने पिता

वरो नार्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः ।।६३।। सतीत्वं निर्गतं तस्या या प्रयाति बहूनथ । सङ्कल्पयन्ति ते सर्वे दृष्ट्वा मे भवतादिति ।।६४।। स्वयम्वरे स्रजं धृत्वा यदागच्छति मंडपे । सामान्या सा तदा जाता कुलटेवापरा वधूः ।।६५।। वारस्त्रीविपणे गत्वा यथा वीक्ष्य नरान्स्थितान् । गुणागुणपरिज्ञानं करोति निजमानसे ।।६६।। नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम् । तथाऽहं मंडपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम् ।।६७।। वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि सांप्रतम् । पत्नीव्रतं तथा कामं चरिष्येऽहं धृतव्रता ।।६८।। सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा सङ्कल्पितं बहु । वृणोति चैकं तद्वद्वै वृणोमि कथमद्य वै ।।६९।। सुदर्शनो मया पूर्वं वृतः सर्वात्मना पितः । तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम ।।७०।। विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभे दिने । सुदर्शनाय नृपते यदीच्छसि शुभं मम ।।७१।।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशोऽध्यायः ।।२०।।

से कम बोलने वाली शशिकला धर्मयुक्त मनोहर शब्दों में बोली ।।६१।। **शशिकला ने कहा**— पिताजी मैं राजाओं के सामने नहीं जाऊँगी । कामुक राजाओं के सामने जाने वाली दूसरी ही स्त्रियाँ होती हैं ।।६२।। पिताजी मैंने धर्मशास्त्र में सुना है कि स्त्रियों को किसी एक पुरुष को ही देखना चाहिए ।।६३।। जो अनेक पुरुषों के सामने जाती हैं उसका सतित्व समाप्त हो जाता है । क्योंकि वे सबके सब चाहते हैं कि यह मेरी ही बन जाय ।।६४।। जब वह माला लेकर मण्डप में आती है, वह कुलटा नारी के समान सामान्य नारी हो जाती है ।।६५।। जैसे कोई वेश्या बाजार में जाकर वहाँ पर विद्यमान मनुष्यों के गुण तथा अवगुण का अपने मन में विचार करती है ।।६६।। जैसे वेश्या अनेक पुरुषों में भाव रखती है और लोगों को व्यर्थ ही देखती है, क्या मैं भी उसी तरह से वेश्या के समान आचरण करूँ ।।६८।। अपने कुल के वृद्ध पुरुषों द्वारा चलायी गयी परम्परा का अनुसरण मैं नहीं करूँगी । पातिव्रत्य व्रत को मैने धारण किया है और उसी का आचरण करूँगी ।।६८।। जैसे कोई वेश्या जाकर अनेक लोगों का संकल्प करती है, और उनमें से किसी एक पुरुष का वरण करती हैं, उस तरह का काम मैं कैसे करूँगी ।।६९।। पिताजी मैंने सुदर्शन का सम्पूर्ण मन से वरण किया है । उनके अतिरिक्त मैं किसी भी दूसरे का वरण नहीं करना चाहती हूँ ।।७०।। यदि आप मेरा कल्याण करना चाहते हैं तो किसी शुभ दिन को सुदर्शन के लिए विवाह की विधि से मेरा कन्यादान कर दीजिये ।।७१।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

एकविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तं तया तदा । चिंताविष्टो बभूवाशु किं कर्तव्यमतः परम् ॥१॥ संगताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः । उपविष्टाश्च मंचेषु योद्धुकामा महाबलाः ॥२॥ यदि ब्रवीमि तान्सर्वान्सुता नायाति सांप्रतम् । तथापि कोपसंयुक्ता हन्युर्मां दुष्टबुद्धयः॥३॥ न मे सैन्यबलं तादृङ्न दुर्गबलमद्भुतम् । येनाहं नृपतीन्सर्वान् प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे ॥४॥ सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहायोऽधनः शिशुः । किं कर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथा दुःखसागरे ॥५॥इति चिंतापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ । प्रणम्य तानुवाचाथ प्रश्रयावनतो नृपः ॥६॥ किं कर्तव्यं नृपाः कामं नैति मे मंडपे सुता । बहुशः प्रेर्यमाणाऽपि सा मात्राऽपि मयाऽपि च ॥७॥ मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि सांप्रतम् । पूजादिकं गृहीत्वाऽद्य व्रजंतु सदनानि वः ॥८॥ ददामि बहुरत्नानि वस्त्राणि च गजान्रथान् । गृहीत्वाऽद्य कृपां कृत्वा व्रजन्तु भवनान्युत ॥९॥ न वशे मे सुता बाला म्रियते यदि खेदिता । तदा मे स्यान्महद्दुःखं तेन चिंतातुरोऽस्म्यहम् ॥१०॥ भवन्तः करुणावन्तो महाभाग्या महौजसः । किमेतया दुहित्रा मे मंदया दुर्विनीतया ॥११॥ अनुग्राह्योऽस्मि वः कामं दासोऽहमिति सर्वथा । सुता सुतेव मन्तव्या भवद्भिः सर्वथा मम ॥१२॥** व्यास उवाच– **श्रुत्वा**

सुदर्शन के साथ शशिकला का विवाह

व्यासजी ने कहा– राजा सुबाहु भी अपनी पुत्री के द्वारा कही गयी उचित बात को सुनकर चिन्तित हो गये कि अब क्या किया जाय ।।१।। सभी राजा अपनी सेना तथा वैवाहिक सामग्री से सम्पन्न होकर आ गये हैं । वे महाबलवान् हैं तथा युद्ध करना चाहते हैं । मञ्च पर बैठ भी गये हैं ।।२।। यदि मैं कहूँ कि मेरी पुत्री नहीं आ रही है तो वे दुष्ट बुद्धि होने के कारण मेरा बध कर देंगे ।।३।। मेरे पास न तो वैसी सेना है और न तो वैसा किला है जिसके सहारे मैं उन सभी राजाओं को रोककर प्रत्याक्रमण कर सकूँ ।।४।। इस समय सुदर्शन भी अकेला, सहायक रहित, निर्धन तथा बालक है । अब मैं 'क्या करूँ ? मैं तो दुःख के समुद्र में मानो डूब रहा हूँ ।।५।। इस तरह से चिन्तित राजा सुबाहु राजाओं के पास गये और उन सबों को प्रणाम करके बड़े ही विनीत भाव से कहे ।।६।। राजाओं मैं क्या करूँ ? मेरे द्वारा तथा अपनी माता के द्वारा बार-बार प्रेरित किए जाने पर भी मेरी पुत्री मण्डप में नहीं आ रही है ।।७।। आप सबों को मैं सादर प्रणाम करता हूँ । मैं आपलोगों का दास हूँ । आपलोग मुझसे पूजा इत्यादि स्वीकार करके अपने-अपने घर लौट जायँ ।।८।। मैं आपलोगों को बहुत रत्न, वस्त्र, हाथी, रथ दे रहा हूँ उसे लेकर कृपा करके आपलोग अपने घर चले जायँ ।।९।। मेरी पुत्री मेरे वश में नहीं हैं, यदि वह खिन्न होकर मर जायेगी तो मुझे अपार कष्ट होगा । अतएव मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ ।।१०।। आपलोग दयालु महाभाग्यवान तथा महातेजस्वी हैं ।

सुबाहुवचनं नोचुः केचन भूमिपाः । युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाच रुषान्वितः ॥१३॥ राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूषे कृत्वा कार्यं सुनिन्दितम् । स्वयंवरः कथं मोहाद्रचितः संशये सति ॥१४॥ मिलिता भूभुजः सर्वे त्वयाऽऽहूताः स्वयंवरे । कथमद्य नृपा गंतुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति ॥१५॥ अवमान्य नृपान्सर्वांस्तं किं सुदर्शनाय वै । दातुमिच्छसि पुत्रीं च किमनार्यमतः परम् ॥१६॥ विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वै शुभमिच्छता । आरब्धव्यं त्वया तत्तु कृतं राजन्नजानता ॥१७॥ एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान् । वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि सांप्रतम् ॥१८॥ अहं त्वां हन्मि पापिष्ठं तथा पश्चात्सुदर्शनम् । दौहित्रायाद्य ते कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः ॥१९॥ मयि तिष्ठति कोन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति । सुदर्शनः कियानद्य निर्धनो निर्बलः शिशुः ॥२०॥ भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तो मुनिकृते मया । नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथा जीवितं शिशोः ॥२१॥ तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्या च भार्यया सह । दौहित्राय प्रियां कन्यां देहि मे सुभ्रुवं किल ॥२२॥ सम्बन्धी भव दत्त्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम् । उच्चाश्रयः प्रकर्तव्यः सर्वदा शुभमिच्छता ॥२३॥ सुदर्शनाय दत्त्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम् । एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि ॥२४॥ "कुलं

मेरी इस मूर्ख तथा दुर्विनीत पुत्री से आपलोग क्या करेंगे ?॥११॥ मैं आपलोगों का सेवक हूँ । अतएव आपलोग मेरे ऊपर कृपा करें । मेरी पुत्री को आपलोग भी अपनी पुत्री के ही समान समझें ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा**— सुबाहु की बातों को सुनकर कुछ राजा तो नहीं बोले । किन्तु क्रुद्ध होकर युधाजित् अपनी आँखें लाल करके बोला ॥१३॥ राजन् ! आप मूर्ख हैं अत्यन्त निन्दित कार्य करके यह क्या कह रहे हैं ? यदि संदेह था तो आपने स्वयम्बर का आयोजन क्यों किया ॥१४॥ आपके द्वारा आहूत सभी राजा यहाँ आ गये हैं । वे योग्य राजा आज अपने घर कैसे लौट सकते हैं ?॥१५॥ सभी राजाओं का अपमान करके क्या आप अपनी पुत्री को सुदर्शन को देना चाहते हैं ॥१६॥ कल्याणकामी पुरुष को पहले ही विचार करके कोई काम करना चाहिए किन्तु आपने बिना जाने ही उस कार्य को प्रारम्भ कर दिया है ॥१७॥ सेना तथा बल से सम्पूर्ण इन राजाओं को छोड़कर आप सुदर्शन को अपना जामाता क्यों बनाना चाहते हैं ?॥१८॥ पहले मैं आपको मार देता हूँ उसके बाद सुदर्शन को मारूँगा । मैं आपकी कन्या को अपने दौहित्र शत्रुजित् को प्रदान कर देता हूँ ॥१९॥ कौन है जो मेरे रहते कन्या को ले जाय ? निर्धन तथा निर्बल बालक सुदर्शन कौन होता है ?॥२०॥ मैंने मुनि के कहने से उसे भारद्वाजाश्रम में छोड़ दिया था किन्तु आज मैं उसे जीवित नहीं छोड़ूंगा ॥२१॥ अतएव आप अपनी पुत्री तथा पत्नी से अच्छी तरह से विचार करके अपनी प्रियकन्या का मेरे द्रौहित्र से विवाह कर दें ॥२२॥ अपनी इस सुन्दर पुत्री को देकर आप मेरे सम्बन्धी बन जायँ । कल्याण चाहने वाले को सदा बड़े से ही साथ करना चाहिए ॥२३॥ अपनी प्राणप्रिया पुत्री का विवाह आप एकाकी तथा राज्यहीन सुदर्शन के साथ करके कौन सा सुख प्राप्त करना चाहते हैं ?॥२४॥

वित्तं बलं रूपं राज्यं दुर्गं सुहृज्जनम् । दृष्ट्वा कन्या प्रदातव्या नान्यथा सुखमृच्छति ॥१॥'' परिचिंतय धर्मं त्वं राजनीतिं च शाश्वतीम् । कुरु कार्यं यथायोग्यं मा कृथा मतिमन्यथा ॥२५॥ सुहृदसि ममात्यर्थं हितं ते प्रब्रवीम्यहम् । समानय सुतां राजन्मंडपे तां सखीवृताम् ॥२६॥ सुदर्शनमृते चेयं वरिष्यति यदाऽप्यसौ । विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तु तवेप्सितः ॥२७॥ अन्ये नृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः । विरोधः कीदृशस्त्वेनं वृणोद्यदि नृपोत्तम ॥२८॥ अन्यथाऽहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम् । मा विरोधं सुदुःसाध्यं गच्छ पार्थिवसत्तम॥२९॥ व्यास उवाच– युधाजिता समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः । निःश्वसन्भवनं गत्वा भार्यां प्राह शुचा वृतः ॥३०॥ पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते । किं कर्त्तव्यं मया शक्यं त्वद्वशोऽस्मि सुलोचने ॥३१॥ व्यास उवाच– सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतांतिकम् । वत्से राजातिदुःखार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते ॥३२॥ त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम् । अन्यं वरय सुश्रोणि सदुर्शनमृते नृपम् ॥३३॥ यदि सुदर्शनं वत्से हठात्त्वं वै वरिष्यसि । युधाजित्त्वां च मां चैव हनिष्यति बलान्वितः ॥३४॥ सुदर्शनं च राजाऽसौ बलमत्तः प्रतापवान् । द्वितीयस्ते पतिः पश्चाद्भविता कलहे सति ॥३५॥ तस्मात्सुदर्शनं त्यक्त्वा वरयान्यं नृपोत्तमम् । (सुखामिच्छसि चेन्मह्यं तुभ्यं वा मृगलोचने) । इति मात्रा

(कन्या का विवाह वर के कुल, सम्पत्ति, रूप, राज्य, किला तथा उसके मित्रों को देखकर करना चाहिए, अन्यथा उसे सुख नहीं मिलता है ॥१॥) आप धर्म का तथा शाश्वत नीति का विचार करें और उचित कार्य करें, इसके विपरीत किसी दूसरी बात को आप न सोचें ॥२५॥ आप मेरे अन्तरङ्ग मित्र हैं । मैं आपके लिए कल्याणकारी बातें कर रहा हूँ । आप अपनी पुत्री को उसकी सखियों के साथ मण्डप में लिवा लाइये ॥२६॥ यदि वह सुदर्शन से भिन्न किसी दूसरे राजा का वरण कर लेती है, तो उसके साथ मैं विरोध नहीं करूँगा । आपके मनोनुकूल ही विवाह होगा ॥२७॥ दूसरे सभी राजा बलवान, कुलीन तथा एक समान हैं । अतएव यदि वह इन राजाओं में किसी का भी वरण करती है तो विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं है ॥२८॥ यदि आप मेरी बात नहीं मानते हैं तो मैं आपकी कन्या का अपहरण कर लूँगा । मेरे साथ आपका विरोध करना ठीक नहीं है । आप जाइये ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा–** युधाजित् की बातें सुनकर राजा सुबाहु शोकसन्तप्त हो गये और घर जाकर उन्होंने दुःखी होकर अपनी पत्नी से कहा ॥३०॥ हे धर्मज्ञे ! भयंकर कलह उपस्थित हो गया है, अब मैं क्या कर सकता हूँ । तुम अपनी पुत्री से कह दो ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा–** रानी ने अपने पति के वचन सुनकर अपनी पुत्री से जाकर कहा वत्से ! तुम्हारे पिता अत्यन्त दुःखी हैं ॥३२॥ तुम्हारे लिए राजाओं का बहुत बड़ा कलह उपस्थित हो गया है । हे सुन्दरि ! तुम सुदर्शन को छोड़कर किसी दूसरे राजा का वरण कर लो ॥३३॥ यदि हठ करके सुदर्शन का ही वरण करती हो तो बलवान् युधाजित् तुम को, हमको, राजा को,

बोधितां तां पश्चाद्राजाऽप्यबोधयत् ॥३६॥ उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका । सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ जानासि च व्रतं मम ॥३७॥ नान्यं वृणोमि भूपाल सुदर्शनमृते क्वचित् । बिभेषि यदि राजेन्द्र नृपेभ्यः किल कातरः ॥३८॥ सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः । स मां रथे समारोप्य निर्गमिष्यति ते पुरात् ॥३९॥ भवितव्यं तु पश्चाद्वै भविष्यति न चान्यथा । नात्र चिन्ता त्वया कार्या भवितव्ये नृपोत्तम ॥४०॥ यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथाऽत्र न संशयः । राजोवाच— **न पुत्रि साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन ॥४१॥ बहुभिर्न विरोद्धव्यमिति वेदविदो विदुः । विस्त्रक्ष्यामि कथं कन्यां दत्त्वा राजसुताय च ॥४२॥ राजानो वरसंयुक्ताः किं न कुर्युरसांप्रतम् । यदि ते रोचते वत्से पणं संविदधाम्यहम् ॥४३॥ जनकेन तथा पूर्वं कृतः सीतास्वयम्वरे । शैवं धनुर्यथा तेन धृतं कृत्वा पणं तथा ॥४४॥ तथाऽहमपि तन्वंगि करोम्यद्य दुरासदम् । विवादो येन राज्ञां वै कृते सति शमं व्रजेत् ॥४५॥ पालयिष्यति यः कामं स ते भर्ता भविष्यति । सुदर्शनस्तथाऽन्यो वा यः कश्चिद्बलवत्तरः ॥४६॥ पालयित्वा**

तथा सुदर्शन को मार डालेगा; क्योंकि वह बलवान् तथा प्रतापी राजा है । कलह के बाद भी कोई दूसरा ही पति होगा ॥३४-३५॥ अतएव सुदर्शन को छोड़कर किसी दूसरे राजा का तुम वरण कर लो । (हे मृगनयनि यदि तुम अपने अथवा मेरे लिए सुख चाहती हो तो ऐसा ही करो) इस तरह से माता के द्वारा कहे जाने के बाद राजा ने भी उसे समझाया ॥३६॥ दोनों की बातें सुनकर कन्या ने निर्भय होकर कहा **कन्या ने कहा**— राजन् ! आपने सत्य कहा है और आप मेरे भी व्रत को जानते हैं ॥३७॥ सुदर्शन को छोड़कर मैं किसी दूसरे का वरण नहीं कर सकती हूँ । यदि आप राजाओं से भयभीत होकर डरते हैं ॥३८॥ तो सुदर्शन से मेरा विवाह करके आप मुझे नगर से बाहर निकाल दीजिये । वे मुझे अपने रथ पर बैठाकर नगर से बाहर चले जायेंगे॥३९॥ उसके बाद जो होना होगा वह होयेगा ही । राजन् ! भवितव्यता के विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥४०॥ जो होना होता है, वह निश्चित रूप से होता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है । **राजा ने कहा**— पुत्रि ! बुद्धिमानों को कभी साहसिक कार्य नहीं करना चाहिए ॥४१॥ वेदज्ञों का कहना है कि बहुत लोगों से विरोध नहीं करना चाहिए । मैं राजकुमार को कन्यादान देकर कैसे छोड़ सकता हूँ ॥४२॥ बहुत से राजा मेरे शत्रु हो गये हैं, वे कुछ भी कर सकते हैं । यदि तुम चाहो तो मैं कोई शर्त रख देता हूँ ॥४३॥ जिस तरह से जनक जी ने सीता जी के स्वयम्बर में शर्त रखा था। उन्होंने सुरक्षित रूप से रखे गये शंकरजी के धनुष को शर्त के रूप में रखा था ॥४४॥ उसी तरह से मैं भी कोई कठोर शर्त रख दूँगा । उससे राजाओं का विवाद ही समाप्त हो जायेगा ॥४५॥ उस शर्त को जो पूरा करेगा वही तुम्हारा पति होगा । चाहे वह सुदर्शन हो या उससे बलवान् कोई दूसरा राजा

पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा । एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत् ॥४७॥ सुखेनाहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम् । कन्योवाच–
संदेहे नैव मज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः ॥४८॥ मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नान्यथा । कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते॥४९॥ मनसा
विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यं वृणे पितः । कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगा ह्यहम् ॥५०॥ एकः पालयिता द्वौ वा बहवो वा भवन्ति चेत्। किं कर्तव्यं
तदा तात विवादे समुपस्थिते ॥५१॥ संशयाधिष्ठिते कार्ये मतिं नाहं करोम्यतः । मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र देहि सुदर्शनाय माम् ॥५२॥ विवाहं
विधिना कृत्वा शं विधास्यति चंडिका । यन्नामकीर्तनादेव दुःखौघो विलयं व्रजेत् ॥५३॥ तां स्मृत्वा परमां शक्तिं कुरु कार्यमतन्द्रितः । गत्वा वद
नृपेभ्यस्त्वं कृतांजलिपुटोऽद्य वै ॥५४॥ आगंतव्यं च श्वः सर्वैरिह भूपैः स्वयंवरे । इत्युक्त्वा त्वं विसृज्याशु सर्वं नृपतिमंडलम् ॥५५॥ विवाहं
कुरु रात्रौ मे वेदोक्तविधिना नृप । पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय ॥५६॥ गमिष्यति गृहीत्वा मां ध्रुवसन्धिसुतः किल । कदाचित्ते नृपाः
क्रुद्धाः संग्रामं कर्तुमुद्यताः ॥५७॥ भविष्यति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति । सोऽपि राजसुतस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति ॥५८॥ दैवान्मृधे

हो ॥४६॥ वह शर्त को पूरा करके ही तुम्हारा वरण कर पायेगा । ऐसा करने से राजाओं का विवाद शान्त हो जायेगा ॥४७॥ मैं भी तुम्हारा विवाह कर
सकूँगा । **कन्या ने कहा–** मैं सन्देह में नहीं रहना चाहती हूँ । यह मूर्खों का काम है ॥४८॥ मैंने सुदर्शन को पहले ही अपने मन में बसा लिया है, उसमें
परिवर्तन नहीं हो सकता है । राजन् ! पुण्य और पाप का कारण मन ही होता है ॥४९॥ पिताजी जिसको मैंने मन से वरण कर लिया है, उससे भिन्न
का वरण मैं कैसे कर सकती हूँ । शर्त कर देने पर तो मैं सबके अधीन हो जाऊँगी ॥५०॥ उसे कोई एक या दो या अनेक राजा मिलकर पूरा कर सकते
हैं । उसके बाद जब विवाद होगा तो फिर क्या होगा ?॥५१॥ अतएव मैं किसी संशयास्पद कार्य को सोच भी नहीं सकती हूँ । राजेन्द्र ! आप चिन्ता
न करें मुझे वैवाहिक विधि पूर्वक सुदर्शन को समर्पित कर दीजिये । चण्डिका अवश्य कल्याण करेंगी । उनका नाम स्मरण करने से ही दुखों का समूह विनष्ट
हो जाता है ॥५२-५३॥ आप उस परमाशक्ति का ही स्मरण करके सावधानी से कार्य करें । आज आप राजाओं के समक्ष जायँ और हाथ जोड़कर कहें॥५४॥
कि आप सभी राजागण कल इस स्वयम्बर में आयें । यह कहकर आप सम्पूर्ण राज समूह को विदा कर दें ॥५५॥ और रात्रि में वेदोक्त विधि से मेरा विवाह
कर दें और सुदर्शन को अपनी शक्ति के अनुसार दहेज देकर विदा कर दें ॥५६॥ मुझे लेकर महाराज ध्रुवसन्धि के पुत्र चले जायेंगे । यदि क्रुद्ध होकर
राजागण युद्ध करना चाहेंगे तो भगवती हमारी सहायता करेंगी । राजकुमार सुदर्शन भी उन सबों के साथ युद्ध करेंगे ॥५७-५८॥ यदि भाग्यवशात् वे युद्ध

मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत । स्वस्ति तेऽस्तु गृहे तिष्ठ दत्त्वा मां सहसैन्यकः ॥५९॥ एकैवाहं गमिष्यामि तेन सार्धं रिरंसया । व्यास उवाच— इति तस्या वचः श्रुत्वा राजाऽसौ कृतनिश्चयः । मतिं चक्रे तथा कर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच— श्रुत्वा सुतावाक्यमनिंदितात्मा नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद । व्रजन्तुं कामं शिविराणि भूपाः श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये॥१॥ भक्ष्याणि पेयानि मयाऽर्पितानि गृहणन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः । श्वो भावि कार्यं किल मंडपेऽत्र समेत्य सर्वैरिह संविधेयम् ॥२॥ नायाति पुत्री किल मंडपेऽद्य समेत्य किं भूपतयोऽत्र कामम् । प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये गच्छन्तु तस्माच्छिविराणि भूपाः ॥३॥ न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये । विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये सुतां तु गच्छन्तु नृपा यथेष्टम् ॥४॥ इच्छापणं वा परिचिंत्य चित्ते

में मारे गये तो मैं भी उनके साथ मर जाऊँगी । आपका कल्याण हो, आप मेरा विवाह करके अपने घर में सेना के साथ रहें ॥५९॥ मैं भी विहार करने के लिए उनके साथ अकेली चली जाऊँगी । **व्यासजी ने कहा—** अपनी पुत्री की बातें सुनकर राजा सुबाहु ने भी विश्वास पूर्वक वैसा ही करने के लिए निश्चय कर लिया ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

सुदर्शन तथा शशिकला का विवाह

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा— राजा सुबाहु अपनी पुत्री की बातों को सुनकर राजाओं के पास गये और कहे— हे राजाओं ! आज आप लोग अपने शिविर में चले जायँ मैं कल विवाह करूँगा ॥१॥ मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आप सभी खाद्य एवं पेय पदार्थों को स्वीकार करें । यह कार्य कल सम्पन्न होगा। आप सभी लोग यहाँ अवश्य आयें ॥२॥ हे राजन् ! आज मेरी पुत्री मण्डप में नहीं आ रही है, कल उसे समझाकर मैं यहाँ लाऊँगा । अतएव आज आपलोग

प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम् । सर्वैंसमेत्यात्र नृपैः समेतैः स्वयम्वरः सर्वमतेन कार्यः ॥५॥ श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वा वाचो ययुः स्वानि निकेतनानि । विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च ॥६॥ सुबाहुरप्यार्यजनैः समेतश्चकार कार्याणि विवाहकाले । पुत्रीं समाहूय गृहे सुगुप्ते पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः ॥७॥ स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा विवाहभूषाकरणं तथैव । आनाय्य वेदीरचिते गृहे वै तस्यार्हणां भूमिपतिश्चकार ॥८॥ सविष्टरं चाचमनीयमर्घ्यं वस्त्रद्वयं गामथ कुंडले द्वे । समर्प्य तस्मै विधिवन्नरेन्द्र ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥९॥ सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीनचेताः शशाम चिंताऽथ मनोरमायाः । कन्यां सुकेशीं निधिकन्यकासमां मेने तदाऽऽत्मानमनुत्तमं च ॥१०॥ सुपूजितं भूषणवस्त्रदानैर्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम् । निन्युश्च ते कौतुकमंडपांतर्मुदान्विता वीतभयाश्च सर्वे ॥११॥ समाप्तभूषां विधिवद्विधिज्ञाः स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने । आरोप्य निन्युर्वरसन्निधानं चतुष्कयुक्ते किल मंडपे वै ॥१२॥ अग्निं समाधाय पुरोहितः स हुत्वा यथावच्च तदन्तराले । आह्वावयत्तौ कृतकौतुकौ तु वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम् ॥१३॥ लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणां च । तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं

अपने शिविरों में चले जायँ ॥३॥ बुद्धिमानों को चाहिए कि वे अपने आश्रितों के साथ कलह न करें, बच्चों पर सदा कृपा करनी चाहिए । कल प्रातः उसे अनुकूल बनाकर मैं यहाँ लाऊँगा आज आपलोग अपने अभिप्रेत स्थान पर चले जायँ ॥४॥ कल विचार करके मैं या तो इच्छा स्वयम्बर करूँगा या शर्त पर स्वयम्बर करूँगा । उसके बाद विवाह करूँगा । स्वयम्बर का काम सर्व सम्मति से होगा । कल आपलोग आयें ॥५॥ इसबात को सुनकर उसे सत्य मानकर सभी राजा अपने शिविर में चले गये । नगर के आस-पास रक्षा का प्रबन्ध करके वे लोग अपने मध्याह्न कालिक कृत्य में लग गये ॥६॥ राजा सुबाहु भी घर के सम्मानित लोगों के साथ वैवाहिक कृत्य में लग गये । श्रेष्ठ वैदिकों को बुलाकर वे अपनी पुत्री को गुप्त स्थान में ले गये ॥७॥ वे वर का स्नान कराके उसे विवाह के अलंकारों से अलंकृत किए । उसके पश्चात् जिस घर में वेदी बनायी गयी थी उसमें ले जाकर वर की पूजा किए ॥८॥ उन्होंने वर को विष्टर, आचमनीय, अर्घ्य, दो वस्त्र तथा दो कुण्डल सविधि समर्पित करके अपनी पुत्री का दान करने की इच्छा किया ॥९॥ वे सुदर्शन ने भी इन सारी वस्तुओं को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और मनोरमा की भी चिन्ता शान्त हो गयी । राजा सुबाहु ने अपनी पुत्री को कुबेर की पुत्री के समान भाग्यशालिनी समझा॥१०॥ उत्तम वस्त्र तथा भूषण देकर पूजित वर को देखकर राजा के मन्त्रिगण भी प्रसन्न हुए और निर्भीक होकर उन्हें कौतुक मण्डप में ले गये ॥११॥ इसके बाद विवाह की विधि को जानने वाली सुहागिन स्त्रियों ने राजकुमारी को वस्त्र तथा आभूषणों से सजाया और उसे एक सुन्दर पालकी में बैठाकर वे उसे मंडप में लायीं ॥१२॥ उसके बीच में पुरोहित ने वेदी पर अग्नि की स्थापना करके वर-वूध के बीच में अग्नि को प्रज्वलित किया । उसके पश्चात्

तत्सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम् ॥१४॥ शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां सुभूषितं चापि शरौघसंयतम् । ददौ नृपेन्द्रस्तु सुदर्शनाय सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे॥१५॥ मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च गजान्गिरेः श्रृंगसमानदेहान् । शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ ददावथ प्रेमयुतो नृपेन्द्रः ॥१६॥ दासीशतं कांचनभूषितं च करेणुकानां च शतं सुचारु । समर्पयामास वराय राजा विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम् ॥१७॥ अदात्पुनर्दासहस्त्रमेकं सर्वायुधैः संभृतभूषितं च । रत्नानि वासांसि यथोचितानि दिव्यानि चित्राणि तथाऽऽविकानि ॥१८॥ ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै रम्याणि दीर्घाणि विचित्रितानि। सिंधूद्भवानां तुरगोत्तमानामदात्सहस्त्रद्वितयं सुरम्यम् ॥१९॥ क्रमेलकानां च शतत्रयं वै प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु । शतद्वयं वै शकटोत्तमानां तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम् ॥२०॥ मनोरमां राजसुतां प्रणम्य जगाद वाक्यं विततांजलिः पुरः । दासोऽस्मि ते राजसुते वरिष्ठे तद्ब्रूहि यत्स्यात्तु मनोगतं ते ॥२१॥ तं चारुवाक्यं निजगाद सापि स्वस्त्यस्तु ते भूप कुलस्य बृद्धिः । संमानिताऽहं मम सूनवे त्वया दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या॥२२॥ न वंदीपुत्री नृप मागधी वा स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्तरम् । सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे संबंधिना भूपतिनोत्तमेन ॥२३॥ अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं परं पवित्रं तव किं वदामि । यद्भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा ॥२४॥

कौतुक समाप्त होने के पश्चात् वर-वधू को अपने पास बुलाया ॥१३॥ लाजा होम करने के पश्चात् वर-वधू ने अग्नि की प्रदक्षिणा की । उन दोनों ने अपने कुल तथा गोत्र के अनुकूल समस्त कार्यों को सम्पन्न किया । विवाह के उपलक्ष्य में राजा सुबाहु ने सुदर्शन को देहेज के रूप में घोड़ों से जुते हुए दो सौ रथ तथा बाण समूह से भरा हुआ तुणीर प्रदान किया ॥१५॥ पर्वत के समान शरीर वाले मदमत्त तथा सुवर्ण से अलंकृत सवा सौ हाथी प्रेमपूर्वक प्रदान किया ॥१६॥ सुवर्णालंकृत एक सौ दासियों, तथा सुन्दर एक सौ मादा हाथियों को प्रसन्न होकर राजा सुबाहु ने विवाह के समय सुदर्शन को प्रदान किया॥१७॥ उन्होंने समस्त आयुधों से सुसज्जित एक हजार दासों, रत्नों तथा दिव्य एवं रंग-विरंगे यथोचित्त वस्त्रों तथा कम्बलों को, बड़ी-बड़ी अनेक छोलदारियों को तथा सिन्धुदेश में उत्पन्न उत्तमकोटि के दो हजार घोड़ो को दिया । भार ढोने वाले तीन सौ सुन्दर ऊँटों को तथा दो सौ अन्न तथा रस से भरी बैलगाड़ियाँ को राजा ने सुदर्शन को प्रदान किया ॥१८-२०॥ राजा ने रानी मनोरमा से हाथ जोड़कर कहा हे श्रेष्ठ राजपुत्रि ! मैं आपका दास हूँ । आपके मन में जो बात हो बतलाइये ॥२१॥ राजा की मीठी वाणी सुनकर **मनोरमा ने कहा—** राजन् ! आप का कल्याण हो, आपके कुल की समृद्धि हो, आपने मेरे पुत्र को अपनी कन्या रूपी श्रेष्ठरत्न प्रदान करके मेरा सम्मान किया है ॥२२॥ राजन् न तो मैं वन्दीजन की पुत्री हूँ और न

वनाधिवासाय किलाधनाय पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय । सर्वानिमान्भूमिपतीन्विहाय फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥२५॥ समानवित्तेऽथ कुले बले च ददाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः । न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने गुणान्वितां रूपवतीं च दद्यात् ॥२६॥ वैरं तु सर्वैः सह संविधाय नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च। सुदर्शनायाथ सुताऽर्पिता मे किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम् ॥२७॥ निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः कृतांजलिर्वाक्यमुवाच भूयः । गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं भवामि सेनापतिरद्य चाहम् ॥२८॥ नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चात्र सुतान्वितो राज्यफलानि भुंक्ष्व । विहाय वाराणसिकानिवासं वने पुरे वासमतो न मेऽस्ति ॥२९॥ नृपास्तु सन्त्येव रुषान्विता वै गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सांत्वनम् । ततः परं द्वावपरावुपायौ नोचेत्ततो युद्धमहं करिष्ये॥३०॥ जयाजयौ दैववशौ तथापि धर्मे जयो नैव कृतेऽप्यधर्मे । तेषां किलाधर्मवतां नृपाणां कथं भविष्यत्यनुचिंतितं वै ॥३१॥ आकर्ण्य तद्भाषितमर्थवच्च जगाद वाक्यं हितकारकं तम् । मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना ॥३२॥ राजञ्छिवं तेऽस्तु कुरुष्व राज्यं त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः । सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह ॥३३॥ विसर्जयास्मान्निजसद्म गंतुं शिवं भवानी तव

तो किसी भाँट की पुत्री हूँ; अतएव मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ ? मैं यह नहीं जानती हूँ । आप मेरे उत्तम सम्बन्धी ने मेरे पुत्र को सुमेरु के समान उन्नत बना दिया है ॥२३॥ आप का चरित्र अत्यन्त विचित्र परं पवित्र है, उसके विषय में मैं क्या कहूँ ? आपने राज्य से भ्रष्ट मेरे पुत्र को अपनी श्रेष्ठ पुत्री को प्रदान किया है ॥२४॥ आपने स्वयम्बर में आये हुए इन राजाओं को छोड़कर वन में रहने वाले निर्धन, पिता से हीन तथा सेना से रहित मेरे पुत्र को अपनी पुत्री प्रदान की है ॥२५॥ राजा लोग अपने समान ही सम्पत्ति, वंश तथा सेना से सम्पन्न व्यक्ति को अपनी पुत्री प्रदान करते हैं । कोई भी राजा मेरे निर्धन पुत्र को अपनी गुणवती पुत्री को नहीं दे सकता था ॥२६॥ आपने सेना से सम्पन्न वरिष्ठ राजाओं के साथ वैर करके अपनी पुत्री का विवाह सुदर्शन के साथ किया है, मैं आपके धैर्य का कितना वर्णन करूँ ॥२७॥ इन सारी बातों को सुनकर प्रसन्न होकर राजा सुबाहु ने पुनः हाथ जोड़कर कहा कि आप मेरा काशी का राज्य ले लीजिये मैं आपका सेनापति हो जा रहा हूँ ॥२८॥ यदि यह न चाहें तो मेरा आधा राज्य लेकर अपने पुत्र के साथ राज्यसुख का अनुभव करें; क्योंकि काशी का निवास छोड़कर आपका वन में रहना मुझे अच्छा नहीं लगेगा ॥२९॥ राजा तो मुझ पर क्रुद्ध पहले से ही हैं मैं जाकर उन सबों को सान्त्वना प्रदान करूँगा, उसके बाद मैं साम एवं दान का भी प्रयोग करूँगा, यदि उससे काम नहीं होगा तो मैं युद्ध करूँगा ॥३०॥ जय और पराजय दैवाधीन होते हैं; किन्तु धर्म की ही विजय होती है, अधर्म की नहीं । वे राजा अधार्मिक हैं अतएव उनका मनोरथ सफल नहीं हो सकता है ॥३१॥ महाराज सुबाहु की बात सुनकर मनोरमा ने उसे अपना सम्मान माना अतएव पूर्ण रूप से प्रसन्न होकर उन्होंने हितकारी बातों को कहा ॥३२॥ राजन् आपका कल्याण हो, आप

संविधास्यति । न काऽपि चिंता मम भूप वर्तते संचिंतयंत्या परमांबिकां वै ॥३४॥ दोषा गता विविधवाक्यपदै रसालैरन्योन्यभाषण पदैरमृतोपमैश्च। प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः ॥३५॥ अद्यैव तं नृपकलंकधरं च हत्वा बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम् । गृहणीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम ॥३६॥ शृण्वन्तु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमानाञ्छंखस्वनानभिभवंति मृदंगशब्दाः । गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनं च मन्यामहे नृपतिनाऽत्र कृतो विवाहः ॥३७॥ अस्मान्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै । कर्तव्यमद्य किमहो प्रविचिंतयंतु भूपाः परस्परमतिं च समर्थयंतु ॥३८॥ एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः । भूपान्निमंत्रयितुमाशु जगाम राजा काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः ॥३९॥ आगच्छंतं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा । नोचुः किंचिदपि क्रोधान्मौनमाधाय संस्थिताः ॥४०॥ स गत्वा प्रणिपत्याह कृतांजलिरभाषत । आगंतव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम ॥४१॥ कन्ययाऽसौ वृतो भूप किं करोमि हिताहितम् । भवद्भिस्तु शमः कार्यो महांतो हि दयालवः ॥४२॥ तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः

अपने पुत्रों के साथ राज्य करें । मेरा पुत्र भी अपना राज्य प्राप्त करके साकेत नगरी में विहार करेगा ॥३३॥ आप हमलोगों को अपने घर जाने की आज्ञा दें, भवानी आपका कल्याण करेंगी । पराम्बा अंबिका का ध्यान करने के कारण मुझे कोई भी चिन्ता नहीं है ॥३४॥ इस तरह दोनों संबन्धियों के अमृत के समान सरस बात करते-करते रात बीत गयी । प्रात:काल जब राजाओं ने यह जाना कि विवाह हो गया तो वे क्रुद्ध होकर नगर के बाहर जाकर कहने लगे॥३५॥ राजाओं के कलंक स्वरूप तथा विवाह के लिए अयोग्य उस लड़के को आज ही मार कर शशिकला को हमलोग छिन लें और राजा की सम्पत्ति को भी ले लें, अन्यथा लज्जित होकर हमलोग कैसे घर जायेंगे ?॥३६॥ आपलोग इस तरह के शंख तथा मृदंग के शब्दों को सुन लें, गीत की ध्वनि तथा वेदों की ध्वनि भी सुनाई दे रही है । लगता है, राजा सुबाहु ने आज विवाह कर दिया ॥३७॥ अपनी बातों से हमलोगों को धोखा देकर राजा ने सविधि विवाह सम्पन्न कर दिया है । राजाओं ! अब आपलोग ही बतलायें कि हमलोगों को क्या करना चाहिए ॥३८॥ जब राजागण इस तरह की बातें कर रहे थे उसी समय विवाह सम्पन्न करके सुबाहु अपने प्रख्यात प्रभाव वाले मित्रों के साथ उन राजाओं को अपने यहाँ निमन्त्रण देने के लिए आये ॥३९॥ आते हुए काशीराज को देखकर वे राजागण क्रोध के कारण उनसे कुछ भी नहीं बोले, मौन ही रहे ॥४०॥ राजा जाकर उन राजाओं को प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहे कि आप सभी राजागण मेरे घर भोजन करने के लिए आयें ॥४१॥ उस कन्या का तो विवाह हो गया अच्छा और बुरा मैं क्या कहूँ । आपलोग शान्ति बनाये रखें महापुरुष तो दयालु ही होते हैं ॥४२॥ राजा की बातें सुनकर क्रोध से व्याकुल राजाओं ने कहा हमलोगों ने भोजन कर लिया है, राजन् ! आप

क्रोधपरिप्लुताः । प्रत्यूचुर्भुक्तमस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज ॥४३॥ कुरु कार्याण्यशेषाणि यथेष्टं सुकृतं कृतम् । नृपाः सर्वे प्रयांत्वद्य स्वानि-स्वानि गृहाणि वै ॥४४॥ सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा जगाम शंकितो गृहम् । किं करिष्यंति संविग्नाः क्रोधयुक्ता नृपोत्तमाः ॥४५॥ गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्चसमयं पुनः । रुद्ध्वा मार्गं ग्रहीष्यामः कन्यां हत्वा सुदर्शनम् ॥४६॥ केचनोचुः किमस्माकं हंत तेन नृपेण वै । दृष्ट्वा तु कौतुकं सर्वं गमिष्यामो यथागतम् ॥४७॥ इत्युक्त्वा ते नृपाः सर्वे मार्गमाक्रम्य संस्थिताः । चकरोत्तरकार्याणि सुबाहुः स्वगृहं गतः ॥४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते तृतीयस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तस्मै गौरवभोज्यानि विधाय विधिवत्तदा । वासराणि च षड्राजा भोजयामास भक्तितः ॥१॥ एवं विवाहकार्याणि कृत्वा सर्वाणि पार्थिवः । पारिबर्हं प्रदत्वाऽथ मन्त्रयन्सचिवैः सह ॥२॥ दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम् । बभूव विमना राजा सुबाहुरमितद्युतिः॥३॥**

अपने घर जायँ ॥४३॥। विवाह का जो कार्य रह गया हो उसे पूरा करे लें, आपने बहुत बड़ा पुण्य कार्य कर लिया है अब सभी राजागण अपने-अपने घर चले जायेंगे ॥४५॥ राजाओं की बात सुनकर काशिराज यह सोचते हुए अपने घर लौट गये कि ये क्रुद्ध राजागण न जाने क्या करेंगे ?॥४६॥ काशिराज के चले जाने पर राजाओं ने प्रतिज्ञा की कि हमलोग सुदर्शन को मारकर राजकन्या को छिन लेंगे ॥४६॥ कुछ राजाओं ने कहा कि उस सुदर्शन को मारने से हमलोगों को कौन सा लाभ होगा ? इस कौतुक को देखकर हमलोग घर लौट जायेंगे ॥४७॥ इस तरह से कहकर वे राजागण अपने घर चल दिए और काशिराज भी घर जाकर विवाह के शेष कार्यों को पूरा किए ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

राजाओं के साथ सुदर्शन का युद्ध और देवी का सहायता करना

व्यासजी ने कहा– राजा सुबाहु ने छह दिनों तक सुदर्शन को अपने यहाँ रखकर उनको विविध प्रकार का भोजन कराया ॥१॥ इस तरह से राजा ने

सुदर्शनस्तदोवाच श्वशुरं संशितव्रतः । अस्मान्विसर्जयाशु त्वं गमिष्यामो ह्यशंकिताः ॥४॥ भारद्वाजाश्रमं पुण्यं गत्वा तत्र समाहिताः । निवासाय विचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप ॥५॥ नृपेभ्यश्च न कर्तव्यं भयं किंचित्त्वयाऽनघ । जगन्माता भवानी मे साहाय्यं वै करिष्यति ॥६॥ व्यास उवाच– **तस्येति मतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः । विससर्ज धनं दत्त्वा प्रतस्थे सोऽपि सत्वरः ॥७॥ बलेन महताऽऽविष्टो ययावनु नृपोत्तमः । सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः ॥८॥ रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः । गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनन्दनः ॥९॥ सुबाहुरपि तान्वीक्ष्य चिंताविष्टो बभूव ह । विधिवत्स शिवां चित्ते जगाम शरणं मुदा ॥१०॥ जजापैकाक्षरं मंत्रं कामराजमनुत्तमम् । निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्या सह नवोढया ॥११॥ ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा । उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हर्तुकामास्तु कन्यकाम् ॥१२॥ काशिराजस्तु तान्दृष्ट्वा हन्तुकामो बभूव ह । निवारितस्तदाऽत्यर्थं राघवेण जिगीषता ॥१३॥ तत्रापि नेदुः शंखाश्च भेर्यश्चानकदुन्दुभिः । सुबाहोश्च नृपाणां च परस्परजिघांसताम् ॥१४॥ शत्रुजित्तु सुसंवृत्तः स्थितस्तत्र जिघांसया । युधाजित्तत्सहायार्थं सन्नद्धः प्रबभूव ह ॥१५॥ केचिच्च प्रेक्षकास्तस्य सहानीकैः**

समस्त वैवाहिक कार्यों को सम्पन्न करके मन्त्रियों के साथ विचार करके उन्हें दहेज प्रदान किया ॥२॥ दूतों ने बतलाया कि राजाओं ने रास्ता रोक रखा है। इस बात को सुनकर अमित प्रभाव वाले राजा सुबाहु उदास हो गये ॥३॥ उत्तमव्रत वाले सुदर्शन ने अपने श्वासुर से कहा– आप हमलोगों को आज्ञा दें, हम निर्भीक रूप से जायेंगे ॥४॥ राजन् ! हमारा विचार है कि हम महर्षि भरद्वाज के पवित्र आश्रम में ही निवास करें । आप राजाओं से भयभीत नहीं होयेंगे । मेरी सहायता जगन्माता भवानी करेंगी ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** सुदर्शन के विचार को जानकर काशिनरेश भी धन प्रदान करके अपने दामाद को विदा किए। और सुदर्शन ने भी शीघ्र ही प्रस्थान किया ॥७॥ राजा सुबाहु भी विशाल सेना लेकर सुदर्शन के पीछे चल पड़े । उन सैनिकों से घिरे हुए सुदर्शन निर्भीक भाव से जा रहे थे ॥८॥ अनेक रथों से घिरे हुए वे एक रथ पर अपनी पत्नी के साथ बैठे थे । जाते हुए उन्होंने राजाओं की सेनाओं को देखा ॥९॥ सुबाहु भी उन सबों को देखकर चिन्तित हो गये और उन्होंने सविधि भवानी की शरणागति की ॥१०॥ वे एक अक्षर वाले कामराज नामक उत्तम मंत्र जप रहे थे । सुदर्शन शोकरहित थे निर्भय रूप से अपनी नवोढा पत्नी के साथ बैठे थे ॥११॥ उसी समय सब राजा शोरगुल मचाते हुए अपनी सेना के साथ कन्या का अपहरण करने के लिए आगे बढ़े ॥१२॥ काशिराज ने उन सबों को देखकर प्रहार करना चाहा; किन्तु विजय प्राप्त करने के इच्छा से रघुंवशी सुदर्शन ने उन्हें रोक दिया ॥१३॥ उस समय काशिराज सुबाहु तथा विरोधी राजाओं की सेना में शंख, तथा भेरी आदि युद्ध के बाजे बजने लगे । वे परस्पर में एक-दूसरे पर विजय प्राप्त करना चाहते थे ॥१४॥ शत्रुजित् सेना से घिरा हुआ सुदर्शन को मारने की इच्छा से खड़ा था और युधाजित् उसकी सहायता

स्थितास्तदा । युधाजिदग्रतो गत्वा सुदर्शनमुपस्थितः ॥१६॥ शत्रुजित्तेन सहितो हन्तुं भ्रातरमानुजः । परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुः क्रोधमूर्छिताः॥१७॥ संमर्दः सुमहांस्तत्र संप्रवृत्तः सुमार्गणैः काशीपतिस्तदा तूर्णं सैन्येन बहुना वृतः ॥१८॥ साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरमनिंदितम्। एवं प्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे ॥१९॥ प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता । नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता ॥२०॥ दिवयांबरपरीधाना मन्दारस्रक्सुसंयुता। तां दृष्ट्वा तेऽथ भूपाला विस्मयं परमं गताः ॥२१॥ केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता । सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत्॥२२॥ पश्य राजन्महादेवीमागतां दिव्यदर्शनाम् । अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता ॥२३॥ निर्भयोऽहं महाराज जातोऽस्मि निर्भयादपि । सुदर्शनः सुबाहुश्च तामालोक्य वराननाम् ॥२४॥ प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेन च । ननाद च तदा सिंहो गजास्त्रस्ताश्चकम्पिरे॥२५॥ ववुर्वाता महाधोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः । सुदर्शनस्तदा प्राह निजं सेनापतिं प्रति ॥२६॥ मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः । किं करिष्यन्ति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः ॥२७॥ शरणार्थं च संप्राप्ता देवी भगवती हि नः । निरातंकैश्च गंतव्यं मार्गेऽस्मिन्भूपसंकुले ॥२८॥ स्मृता मया महादेवी रक्षणार्थमुपागता । तच्छ्रुत्वा वचनं सेनापतिस्तेन पथा व्रजन् ॥२९॥ युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन् । किं स्थिता भयसंत्रस्ता निघ्नंतु

करने के लिए तैयार थे ॥१५॥ कुछ राजा युद्ध देखने की इच्छा से वहाँ पर अपनी सेना के साथ खड़े थे । युधाजित् सुदर्शन के आगे जाकर खड़ा हो गया ॥१६॥ युधाजित् के साथ शत्रुजित् अपने भाई को मारने के लिए खड़ा था । इस तरह दोनों पक्ष में भयंकर बाणों की वर्षा होने लगी ॥१७॥ इस तरह वहाँ पर भयंकर युद्ध छिड़ गया । उसी समय शीघ्र ही काशिराज अपनी सेना के साथ ॥१८॥ अपने जामाता की सहायता के लिए आ गये । इस तरह रोंगटे खड़ा कर देने वाला युद्ध हो रहा था ॥१९॥ उसी समय सहसा देवी सिंह पर सवार होकर प्रकट हो गयीं । वे अनेक प्रकार के आयुधों तथा उत्तम कोटि के अलंकरणों से अलंकृत थीं ॥२०॥ वे दिव्य वस्त्र तथा पारिजात पुष्प की माला धारण किए हुई थीं । उनको देखकर वे सभी राजा अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ॥२१॥ यह सिंह पर सवार कौन स्त्री है तथा कहाँ से आयी है ? देवी को देखकर सुदर्शन ने सुबाहु से कहा ॥२२॥ महाराज दिव्य दर्शन वाली देवी को आप देखिये । वे मेरे ऊपर कृपा करने के लिए अपनी दया से प्रेरित होकर प्रकट हुई हैं ॥२३॥ महाराज मैं अत्यन्त निर्भय हो गया हूँ। सुदर्शन तथा सुबाहु ने देवी को देखकर ॥२४॥ उनको प्रणाम किया और उनका दर्शन करके प्रसन्न हो गये । उस समय सिंह ने घोर गर्जना की उसे सुनकर सब हाथी काँप गये ॥२५॥ अत्यन्त भयंकर हवा चलने लगी और दिशाएँ भयंकर हो गयीं । उस समय सुदर्शन ने अपने सेनापति से कहा ॥२६॥ आप शीघ्र उस मार्ग पर बढ़ें जहाँ पर ये राजागण विद्यमान हैं । ये दुष्ट राजा क्रुद्ध होकर मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं ?॥२७॥ हमलोगों की रक्षा करने के लिए

कन्यकान्वितम् ॥३०॥ अवमन्य च नः सर्वान्बलहीनो बलाधिकान् । कन्यां गृहीत्वा संयाति निर्भयस्तरसा शिशुः ॥३१॥ किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम् । नोपेक्ष्यो हि महाभाग हंतव्योऽत्र समाहितैः ॥३२॥ हत्वैनं संग्रहीष्यामः कन्यां चारुविभूषणाम् । नायं केसरिणाऽऽदत्तां छेत्तुमर्हति जम्बुकः ॥३३॥ इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रुजित्सहितस्तदा । योद्धुकामः सुसंप्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः ॥३४॥ मुमोच विशिखांस्तूर्णं समपुंखाञ्छिलाशितान् । धनुराकृष्य कर्णान्तं कर्मारपरिमार्जितान् ॥३५॥ हन्तुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि । सुदर्शनस्तु तान्बाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात् ॥३६॥ एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ चुकोप चंडिका भृशम् । दुर्गा देवी मुमोचाथ बाणान्युधाजितं प्रति ॥३७॥ नानारूपा तदा जाता नानाशस्त्रधरा शिवा । संप्राप्ता तुमुलं तत्र चकार जगदम्बिका ॥३८॥ शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः । पतितौ तो रथाभ्यां तु जयशब्दस्तदाऽभवत्॥३९॥ विस्मयं परमं प्राप्ता भूपाः सर्वे विलोक्य तान् । निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे ॥४०॥ सुबाहुरपि तं दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः । तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥४१॥ सुबाहुरुवाच– नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः । दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥४२॥

स्वयं भगवती आ गयी हैं, अतएव राजाओं से भरे इस मार्ग पर निर्भय होकर बढ़ें ॥२८॥ मेरे द्वारा स्मरण करते ही देवी रक्षा करने के लिए आ गयीं। यह सुनकर सेनापति उसी मार्ग से चल पड़ा ॥२९॥ युधाजित् ने क्रुद्ध होकर राजाओं से कहा, क्यों आपलोग भयभीत होकर खड़े हैं, कन्या के साथ इसको मार डालो ॥३०॥ यह निर्बल लड़का हम सभी बलवान् राजाओं की अवहेलना करके, कन्या को लेकर निर्भय रूप से जा रहा है ॥३१॥ क्या इस सिंह पर सवारी स्त्री को देखकर आपलोग डर गये हैं ? महाभाग ! आप लोग उपेक्षा न करें आप लोग तत्परता पूर्वक इसको मार डालें ॥३२॥ इसको मारकर सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित कन्या को हमलोग ले लेंगे ॥ सिंह के भाग को यह स्यार लेकर नहीं जा सकता है ॥३३॥ यह कहकर क्रुद्ध हुआ युधाजित् शत्रुजित् के साथ सुदर्शन से युद्ध करने के लिए आया ॥३४॥ अब दोनों ओर से अत्यन्त तीक्ष्ण तथा चौकोर बाण कान पर्यन्त प्रत्यंचा को खींचकर छोड़े जाने लगे ॥३५॥ युधाजित् सुदर्शन को मारने के लिए उस पर बाणों का प्रहार कर रहा था और सुदर्शन ने उन सभी बाणों को क्षणभर में काट दिया॥३६॥ इस तरह से युद्ध होने लगने पर चण्डिका क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने युद्धाजित् के ऊपर बाणों को चलाया ॥३७॥ उस समय अनेक अस्त्रों को धारण करके चण्डिका भवानी अनेक रूपों को धारण कर लीं और उन्होंने घोर युद्ध किया ॥३८॥ उस युद्ध में शत्रुजित् तथा युधाजित् दोनों मारे गये । वे दोनों मरकर रथ से नीचे गिर गये । उस समय जय-जयकार होने लगा ॥३९॥ उन सबों को देखकर सभी राजा अत्यन्त आश्चर्यित हो गये । क्योंकि उस युद्ध में मामा और भाँजें दोनों की मृत्यु हो गयी थी ॥४०॥ सुबाहु ने भी उस युद्ध में उन दोनों की मृत्यु को देखकर दुःख को दूर करने वाली दुर्गा की स्तुति

नमः शिवायै शांत्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः । विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे ।।४३।। नाहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन् वै जानामि देवि सगुणः किल निर्गुणायाः । किं स्तौमि विश्वजननीं प्रकटप्रभावां भक्तार्तिनाशनपरां परमां च शक्तिम् ।।४४।। वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धिर्विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजंतोः । त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियंत्री किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम् ।।४५।। ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम् । क्वाहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहोऽप्रसिद्धः ।।४६।। सत्सङ्गतिः कथमहो न करोति कामं प्रासङ्गिकाऽपि विहिता खलु चित्तशुद्धिः । जामातुरस्य विहितेन समागमेन प्राप्तं मयाऽद्भुतमिदं तव दर्शनं वै।।४७।। ब्रह्माऽपि वांछति सदैव हरो हरिश्च सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः । यद्दर्शनं जननि तेऽद्य मया दुरापं प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च।।४८।। क्वाहं सुमंदमतिराशु तवावलोकं क्वेदं भवानि भवभेषजमद्वितीयम् । ज्ञाताऽसि देवि सततं किल भावयुक्ता भक्तानुकंपनपराऽमरवर्गपूज्या ।।४९।। किं वर्णयामि तव देवि चरित्रमेतद् यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम् । शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसा

की ।।४१।। **सुबाहु ने कहा–** कल्याणकारी जगन्माता तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाली दुर्गा देवी को नमस्कार है ।।४२।। शिवा, शान्ति, विद्या तथा मोक्ष देने वाली देवी को नमस्कार है । विश्व में व्यापक, जगत् की माता तथा जगद्धात्री शिवा देवी को नमस्कार है ।।४३।। हे देवि ! मैं सगुण हूँ मैं चिन्तन करके भी आपके निर्गुण स्वरूप को जानने में असमर्थ हूँ । प्रत्यक्ष प्रभाव वाली, भक्तों की विपत्ति को विनष्ट करने वाली परमा शक्ति आपकी मैं कैसे स्तुति करूँ ।।४४।। हे देवि ! आप ही सबों की वाग्देवता, बुद्धि, विद्या, मति तथा गति हैं । आप ही सबों के मन का नियन्त्रण करने वाली हैं; तो मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ ? आप ही आत्मा स्वरूपिणी हैं ।।४५।। सर्वदा आपकी स्तुति करते रहने वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता भी अपके गुणों का अन्त नहीं पाये तो हे माँ ! मैं तो भेदवाला व्यक्ति हूँ तथा त्रिगुणों से आवृत हूँ । अतएव आपके समस्त चरित्रों का वर्णन कैसे कर सकता हूँ।।४६।। सत्संगति से क्या नहीं हो सकता है । इस प्रासङ्गिक सत्संगति के कारण मेरा चित्त शुद्ध हो गया है । अपने इस जामाता का संयोग होने मात्र से मैंने आपका यह अद्भुत दर्शन प्राप्त कर लिया ।।४७।। हे जननि ! ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र एवं इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण भी आपका दर्शन करना चाहते हैं । हे माँ ! आपका जो दुर्लभ दर्शन है उसको मैंने शम, दम आदि साधनों के बिना ही प्राप्त कर लिया ।।४८।। हे माँ ! कहाँ तो मैं अत्यन्त मन्दबुद्धि वाला जीव और कहाँ संसार रूपी रोग को दूर करने में समर्थ अद्वितीय भेषज के समान आपका दर्शन है ? हे देवि मैंने जान लिया है कि आप सदा भावयुक्त, भक्तों पर कृपा करने वाली तथा देवसमूह के लिए पूज्य हैं ।।४९।। हे माँ ! मैं आपके चरित्र का वर्णन क्या करूँ । आपने इस भयंकर परिस्थिति में सुदर्शन की

त्वयाऽद्य भक्तानुकंपि चरितं परमं पवित्रम् ॥५०॥ नाश्चर्यमेतदिति देवि विचारितेऽर्थे त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै । त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसंधिसूनुः ॥५१॥ भक्तस्य सेवनपरं स्वयशोऽतिदीप्तं कर्तुं भवानि रचितं चरितं त्वयैतत् । नोचेत्कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः ॥५२॥ शक्ताऽसि जन्ममरणादिभयान्विहंतुं किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम् । त्वं गीयसे जननि भक्तजनैरपारा त्वं पापपुण्यरहिता सगुणाऽगुणा च ॥५३॥ त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्यजन्मा। बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मातर्ज्ञातस्तवाद्य महिमा प्रकटप्रभावः ॥५४॥ व्यास उवाच– एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा । उवाच तं नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

◆

रक्षा की है । आपने अत्यन्त बलवान् दोनों शत्रुओं को मार दिया है । इस तरह भक्तों पर कृपा करने वाला आपका चरित्र अत्यन्त पवित्र है ॥५०॥ हे देवि ! विचार करने पर ज्ञात होता है कि आपका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आप तो सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् की रक्षा करने वाली हैं। अपनी दया के परतन्त्र होकर आपने शत्रुओं को मारकर इस सुदर्शन की रक्षा की है ॥ ५२॥ हे देवि ! आप अपने सतत सेवन परायण भक्तों के यश का विस्तार करने के लिए ही अपने ऐसे चरित्र की रचना की है । अन्यथा मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करने वाले सुदर्शन कैसे सकुशल रहते ?॥५२॥ आप अपने भक्तों के जन्म-मरण से होने वाले भयों को विनष्ट करने में समर्थ हैं, इसमें क्या आश्चर्य हैं ? हे माँ ! आपका चरित्र अपार है; आप पुण्य से परे सगुण तथा अगुण दोनों रूपों वाली हैं ॥५३॥ आपके दर्शन से ही मैं पुण्यवान तथा कृतार्थ हो गया । मेरा जन्म धन्य हो गया । ह माँ ! मैं आपके भजन के बीज मन्त्र को नहीं जानता हूँ । मैंने आपकी महिमा का प्रभाव प्रत्यक्षतः देख लिया है ॥५४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से स्तुति करने से भगवती शिवा प्रसन्न हो गयी और उन्होंने राजा से कहा कि तुम वरदान माँगो ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचाय) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

◆

चतुर्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः । प्रोवाच वचनं तत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः ॥१॥** सुबाहुरुवाच– **एकतो देवलोकस्य राज्यं भूमंडलस्य च । एकतो दर्शनं ते वै न च तुल्यं कदाचन ॥२॥ दर्शनात्सदृशं किंचित्त्रिषु लोकेषु नास्ति मे । कं वरं देवि याचेऽहं कृतार्थोऽस्मि धरातले ॥३॥ एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुं वांछितं वरम् । तव भक्तिः सदा मेऽस्तु निश्चला ह्यनपायिनी ॥४॥ नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं मम सर्वदा । दुर्गादेवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता ॥५॥ रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह । यथा सुदर्शनस्त्रातो रिपुसंघादनामयः ॥६॥ तथाऽत्ररक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयाऽम्बिके । यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिता ॥७॥ तावत्त्वयाऽत्रस्थातव्यं दुर्गे देवि कृपानिधे । वरोऽयं मम ते देयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम् ॥८॥ विविधान्सकलान्कामान्देहि मे विद्विषो जहि । अभद्राणां विनाशं च कुरु लोकस्य सर्वदा ॥९॥** व्यास उवाच– **इति संप्रार्थिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । तमुवाच नृपं तत्र स्तुत्वा वै संस्थितं पुरः ॥ १०॥** दुर्गोवाच– **राजन्सदा निवासे मे मुक्तिपुर्यां भविष्यति । रक्षार्थं सर्वलोकानां यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥११॥ अथो सुदर्शनस्तत्र समागत्य मुदान्वितः । प्रणम्य**

देवी का काशी में स्थायी निवास

व्यासजी ने कहा– राजा सुबाहु ने भगवती की बातों को सुनकर भक्ति की भावना से परिपूर्ण होकर कहा ॥१॥ **सुबाहु ने कहा–** हे माँ ! एक तरफ स्वर्गलोक तथा भूलोक का राज्य हो तथा दूसरी तरफ आपका दर्शन; हो तो भी दोनों एक समान नहीं हो सकते हैं ॥२॥ आपके दर्शन के समान मेरे लिए त्रैलोक्य में कोई भी वस्तु नहीं है । हे देवि ! मैं आप से कौन सा वरदान माँगू ? मैं धरातल में कृतार्थ हो गया हूँ ॥३॥ हे मातः ! आपसे मैं यही वरदान माँगता हूँ कि आप में मेरी निश्चला भक्ति बनी रहे ॥४॥ हे मातः ! आप मेरे नगर में सदा स्थित रहें । आप यहाँ (वाराणसी) में दुर्गादेवी के नाम से विख्यात हों ॥५॥ आप इस नगर की सर्वदा रक्षा करती रहें । जिस तरह से आपने सुदर्शन की रक्षा की है, उसी तरह हे जगदम्बिके ! आप वाराणसी की भी रक्षा करें। जब तक यह नगरी पृथिवी पर सुप्रतिष्ठित बनी रहे ॥६-७॥ हे दुर्गे देवि ! तब तक आप स्थित रहें, आप तो दया के सागर हैं । आप यही मुझे वरदान दें आप से और दूसरा वर मैं क्या माँगूँ ?॥८॥ आप हमारी अनेक प्रकार की समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हुए शत्रुओं का विनाश करें । और संसार के समस्त अमङ्गलों का आप विनाश करें ॥९॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर दुर्गति को विनष्ट करने वाली दुर्गा देवी ने स्तुति करके

परया भक्त्या तुष्टाव जगदंबिकाम् ॥१२॥ अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः । भक्तानुकंपी सकलो जनोऽस्ति विमुक्तभक्तेरवनं व्रतं ते ॥१३॥ त्वं देवि सर्वं सृजसि प्रपंचं श्रुतं मया पालयसि स्वसृष्टम् । त्वमत्सि संहारपरे च काले न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै ॥१४॥ करोमि किं ते वद देवि कार्यं क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाशु । कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाऽहं गच्छामि तिष्ठे विहरामि मातः ॥१५॥ व्यास उवाच– तं तथा भाषमाणं तु देवी प्राह दयान्विता । गच्छायोध्यां महाभाग कुरु राज्यं कुलोचितम् ॥१६॥ स्मरणीया सदाऽहं ते पूजनीया प्रयत्नतः । शं विधास्याम्यहं नित्यं राज्यं ते नृपसत्तम ॥१७॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः । मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः॥१८॥ अर्चा मदीया नगरे स्थापनीया त्वयाऽनघ । पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालं भक्तिपूर्वकम् ॥१९॥ शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा । नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च ॥२०॥ चैत्रेऽश्विनेतथाऽऽषाढे माघे कार्यो महोत्सवः । नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः ॥२१॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः । कर्तव्या नृपशार्दूल तथाऽष्टम्यां सदा बुधैः॥२२॥ इत्युक्त्वांतर्हिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । नता सुदर्शनिनाथ

सामने खड़े उस राजा से कहा ॥१०॥ **दुर्गादेवी ने कहा–** राजन् जबतक यह पृथिवी रहेगी तब तक सभी जीवों की रक्षा के लिए मेरा इस मुक्ति की नगरी में निवास होगा ॥११॥ इसके बाद सुदर्शन वहाँ आकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करके अत्यन्त भक्ति के साथ जगदम्बिका की प्रार्थना करने लगे ॥१२॥ माँ ! मैं आपकी स्तुति क्या करूँ ?। आपने मुझ भक्तिहीन व्यक्ति की रक्षा की है । भक्तों की रक्षा तो सब करते हैं किन्तु आप ही ने केवल भक्तिहीनों की भी रक्षा करने का व्रत ले रखा है ॥१३॥ हे देवि ! मैंने सुना है कि आप ही सम्पूर्ण प्रपञ्च की सृष्टि करती हैं, और सृष्टि करके उसकी रक्षा करती हैं । प्रलय काल के आ जाने पर आप उसे निगीर्ण कर जाती हैं । अतएव आपके द्वारा मेरी रक्षा किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥१४॥ हे देवि ! आप बतलाएँ कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? मैं कहाँ जाऊँ यह आप बतलाएँ । मैं तो इस विषय में किंकर्तव्य विमूढ हूँ । हे माँ ! मैं तो आपकी ही आज्ञा से कहीं भी जाता हूँ, ठहरता हूँ, तथा विहार करता हूँ ॥१५॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से बोलने वाले सुदर्शन से देवी ने कहा महाभाग ! तुम अयोध्या जाओ और अपने कुल के लिए उचित राज्य करो ॥१६॥ तुम सर्वदा मेरा स्मरण तथा पूजन प्रयत्न पूर्वक करना । हे नृपश्रेष्ठ ! मैं सर्वदा तुम्हारा कल्याण करूँगी॥१७॥ बलिदान विधि से अष्टमी, नवमी तथा चतुर्दशी तिथि को विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ॥१८॥ अपने नगर में तुम मेरी आर्चा मूर्ति स्थापित करना और भक्तिपूर्वक उसकी त्रिकाल पूजा करना ॥१९॥ शरत्काल में तुम्हे मेरी सदा भक्तिभाव तथा नवरात्र की विधि से पूजा करनी चाहिए ॥२०॥ महाराज ! चैत्र, आषाढ़ माघ तथा आश्विन के नवरात्रों में आप मेरी विशेष पूजा करेंगे ॥२१॥ हे महाराज ! कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियों को विद्वानों

स्तुता च बहुविस्तरम् ॥२३॥ अन्तर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते । प्रणेमुस्तं समागम्य यथा शक्रं सुरास्तथा ॥२४॥ सुबाहुरपि तं नत्वा स्थितश्चाग्रे मुदान्वितः । ऊचुः सर्वे महीपाला अयोध्याधिपतिं तदा ॥२५॥ त्वमस्माकं प्रभुः शास्ता सेवकास्ते वयं सदा । कुरु राज्यमयोध्यायां पालयास्मा न्नृपोत्तम ॥२६॥ त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टा विश्वेश्वरी शिवा । आदिशक्तिर्भवानी सा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥२७॥ धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्यो धरातले । यस्माच्च त्वत्कृते देवी प्रादुर्भूता सनातनी ॥२८॥ न जानीमो वयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम । चंडिकायास्तमोयुक्ता मायया मोहिताः सदा ॥२९॥ धनदारसुतानां च चिंतनेऽभिरताः सदा । मग्ना महार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले ॥३०॥ पृच्छामस्त्वां महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते । केयं शक्तिः कुतो जाता किंप्रभावा वदस्व तत् ॥३१॥ भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽतिदयापराः । तस्मान्नो वद काकुत्स्थ देवीमाहात्म्युत्तमम् ॥३२॥ यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृवरोत्तम ॥३३॥ व्यास उवाच– **इति पृष्टस्तदा तैस्तु ध्रुवसंधिसुतो नृपः । विचिंत्य मनसा देवीं तानुवाच मुदान्वितः ॥३४॥** सुदर्शन उवाच– **किं ब्रवीमि महीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम्।**

को चाहिए कि मेरी भक्तिभाव से पूजा करें ॥२२॥ यह कहकर दुर्गति विनाशिनी दुर्गा देवी अन्तर्धान हो गयीं । सुदर्शन ने देवी को प्रणाम करके अत्यन्त विस्तार पूर्वक स्तुति की ॥२३॥ देवी को अन्तर्धान हुए देखकर सभी राजा आकर सदुर्शन को उसी तरह प्रणाम किए जैसे देवता इन्द्र को प्रणाम करते हैं ॥२४॥ सुबाहु भी सुदर्शन को नमस्कार किये और उनके सामने प्रसन्नता पूर्वक खड़े हो गये । इसके बाद सभी राजाओं ने अयोध्याधिपति सुदर्शन से कहा ॥२५॥ आप हमारे स्वामी हैं और हमलोग आपके सेवक हैं । आप अयोध्या में राज्य करें और हमलोगों का पालन करें ॥२६॥ महाराज ! आपकी ही कृपा से हमलोगों ने विश्व की स्वामिनी शिवा का दर्शन किया है । वे आदिशक्ति भवानी ही चतुर्विध पुरुषार्थ को प्रदान करने वाली हैं ॥२७॥ चूकि आप अत्यन्त पुण्यवान, धन्य एवं कृतकृत्य हैं इसीलिए आपकी रक्षा करने के लिए सनातनी देवी प्रकट हुईं ॥२८॥ हे महाराज ! सर्वदा माया से मोहित रहने के कारण हमलोग चण्डिका देवी के प्रभाव को नहीं जानते हैं ॥२९॥ हमलोग तो सर्वदा अपने धन, पत्नी और पुत्रों के ही विषय में चिन्तित रहते हैं और काम एवं क्रोध रूपी जलचरों से परिपूर्ण इस भयंकर संसार-सागर में पड़े हैं ॥३०॥ हमलोग आप से यह जानना चाहते हैं कि ये शक्ति कौन हैं? ये किससे उत्पन्न हुई हैं, और इनका प्रभाव क्या है ? आप तो सर्वज्ञ हैं । इसे हमलोगों को बतलाइये ॥३१॥ आप हमलोगों के लिए संसार की नौका बन जाइये । महापुरुष तो दयालु होते हैं । अतएव हे काकुत्स्थ आप हमलोगों को देवी का उत्तम माहात्म्य बतलाइये ॥३२॥ हे राजन् ! आप हमलोगों को देवी के प्रभाव स्वरूप तथा उत्पत्ति को विस्तार के साथ बतलाइये । हमलोग सुनना चाहते हैं ॥३३॥ इस तरह से पूछे जाने पर महाराज ध्रुवसन्धि के पुत्र

ब्रह्मादयो न जानंति सेशाः सुरगणास्तथा ॥३५॥ सर्वस्याद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा । सात्त्विकीयं महीपाला जगत्पालनतत्परा ॥३६॥ सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने । संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता ॥३७॥ निर्गुणा परमा शक्तिः सर्वकामफलप्रदा । सर्वेषां कारणं सा हि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः ॥३८॥ निर्गुणा सर्वथा ज्ञातुमशक्या योगिभिर्नृपाः । सगुणा सुखसेव्या सा चिंतनीया सदा बुधैः ॥३९॥ राजान ऊचुः– **बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः । कथं ज्ञाता त्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा ॥४०॥ उपासिता कथं चैव पूजिता च कथं नृप । या प्रसन्ना तु साहाय्यं चकार त्वरयान्विता ॥४१॥** सुदर्शन उवाच– **बालभावान्मया प्राप्तं बीजं तस्याः सुसंमतम् । स्मरामि प्रजपन्नित्यं कामबीजाभिधं नृपाः ॥४२॥ ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताऽम्बिका शिवा । स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया परम् ॥४३॥** व्यास उवाच– **तन्निशम्य वचस्तस्य राजानो भक्तितत्पराः । तां मत्वा परमां शक्तिं निर्ययुः स्वगृहान्प्रति ॥४४॥ सुबाहुरगमत्काश्यां तमापृच्छ्य सुदर्शनम्। सुदर्शनोऽपि धर्मात्मा निर्जगाम सुकोसलान् ॥४५॥ मंत्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितं मृधे । जितं सुदर्शनं चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः॥४६॥**

सुदर्शन प्रसन्न होकर देवी का मन में ध्यान करके उन राजाओं से कहने लगे ॥३४॥ **सुदर्शन ने कहा–** हे राजाओं ! मैं देवी के उत्तम चरित का क्या वर्णन करूँ । उसे तो पूर्ण रूप से ब्रह्मा तथा इन्द्र इत्यादि देवगण भी नहीं जानते हैं ॥३५॥ हे राजगण ! सबों में श्रेष्ठ सात्त्विकी शक्ति महालक्ष्मी हैं और ये सदा जगत् का पालन करने में लगी रहती हैं ॥३६॥ जो शक्ति सृष्टि करने का काम करती है जो सत्त्व स्वरूपा शक्ति पालन करने का काम करती है और संहार करने के समय वे तमः स्वरूपिणी होती हैं । इस तरह वे सदा त्रिगुणात्मिका हैं ॥३७॥ निर्गुणाशक्ति सर्वश्रेष्ठ हैं,वे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं । हे राजगण ! वे ही ब्रह्मा आदि सबों के कारण स्वरूपा हैं ॥३८॥ राजाओं ! निर्गुणा शक्ति को तो योगिजन भी नहीं जान सकते हैं । सगुणा देवी की सेवा सुखपूर्वक की जा सकती है, अतएव विद्वानों को उनका सदा ध्यान करना चाहिए ॥३९॥ **राजाओं ने कहा–** आप तो भय के कारण बाल्यावस्था में ही वन में चले आये तो आपने उस परमा देवी को कैसे जाना ?॥४०॥ आपने उनकी उपासना तथा पूजा कैसे की ? जिसके कारण प्रसन्न होकर देवी ने शीघ्र आपकी सहायता की ॥४१॥ **सुदर्शन ने कहा–** बाल्यावस्था में ही देवी के बीजमन्त्र को मैंने प्राप्त कर लिया था । उसी कामराज नामक बीज मंत्र का मैं जप करता रहता हूँ ॥४२॥ उसके पश्चात् ऋषियों ने जब मुझे बतलाया तो मुझे उस अम्बिका के स्वरूप का ज्ञान हुआ । मैं उसी अम्बिका का दिन-रात स्मरण करता रहता हूँ ॥४३॥ **व्यासजी ने कहा–** सुदर्शन की बातें सुनकर सभी राजा भक्ति करने में तत्पर हो गये और उस अम्बिका देवी को परमाशक्ति मानकर अपने घर चले गये ॥४४॥ सुदर्शन से विदा लेकर राजा सुबाहु भी काशी चले गये और धर्मात्मा सुदर्शन भी कोसल देश में चले

आगच्छंतं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः । उपायनान्युपादाय प्रययुः सम्मुखे जनाः ॥४७॥ तथा प्रकृतयः सर्वे नानोपायनपाणयः । ध्रुवसन्धिसुतं मत्वा मुदिताः प्रययुः प्रजाः ॥४८॥ स्त्रियोपसंयुतः सोऽथ प्राप्यायोध्यां सुदर्शनः । सम्मान्य सर्वलोकांश्च ययौ राजनिवेशनम् ॥४९॥ बंदिभिः स्तूयमानस्तु वंद्यमानश्च मंत्रिभिः । कन्याभिः कीर्यमाणश्च लाजैः सुमनसैस्तथा ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **गत्वाऽयोध्यां नृपश्रेष्ठो गृहं राज्ञः सुहृद्वृतः । शत्रुजिन्मातरं प्राह प्रणम्य शोकसंकुलाम् ॥१॥ मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल । न पिता ते युधाजिच्च शपे ते चरणौ तथा ॥२॥ दुर्गया तौ हतौ संख्ये नापराधो ममात्र वै । अवश्यम्भाविभावेषु प्रतीकारो न**

आये ॥४५॥ मन्त्रियों ने जब सुना कि सुदर्शन राजा हो गये; उनके शत्रु युद्ध में मारे गये और सुदर्शन विजयी हो गये तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥४६॥ साकेतवासी प्रजाओं ने जब सुना कि सुदर्शन आ रहे हैं तो वे सब उपहार लेकर सुदर्शन के समक्ष आये ॥४७॥ सारी प्रजा अपने हाथ में अनेक प्रकार के उपहारों को लेकर उन्हें प्रदान की और उनको महाराज ध्रुवसन्धि का पुत्र मानकर प्रसन्न हुई है ॥४८॥ इसके बाद अपनी पत्नी के साथ अयोध्या आकर सुदर्शन सभी लोगों का सम्मान करके राजभवन में प्रवेश किए ॥४९॥ वन्दिजनों तथा मन्त्रियों ने उनकी स्तुति की कन्याओं ने उनके ऊपर पुष्पों और लावा को बरसाया ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

अयोध्या तथा काशी में दुर्गा मन्दिर का निर्माण

व्यासजी ने कहा– अपने मित्रों के साथ राजा सुदर्शन अयोध्या के राजगृह में प्रवेश करके शोक संतप्त शत्रुजित् की माता को प्रणाम करके कहे ॥१॥ माँ ! आपके चरणों की शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि न तो मैंने आपके पुत्र को मारा है और न आपके पिता युधाजित् को मैंने मारा है ॥२॥ दुर्गा देवी

विद्यते ॥३॥ न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनि । स्वकर्मवशगो जीवो भुंक्ते भोगान्सुखासुखान् ॥४॥ दासोऽस्मि तव भो मातर्यथा मम मनोरमा । तथा त्वमपि धर्मज्ञे न भेदोऽस्ति मनागपि ॥५॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । तस्मान्न शोचितव्यं ते सुखे दुःखे कदाचन ॥६॥ दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् । आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥७॥ दैवाधीनमिदं सर्वं नात्माधीनं कदाचन । न शोकेन तदात्मानं शोषयेन्मतिमान्नरः ॥८॥ यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते । तथा स्वकर्मवशगो देही सर्वत्र वर्तते ॥९॥ अहं वनगतो मातर्नाभवं दुःखमानसः । चिंतयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति वेद्मि च ॥१०॥ मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी मम । भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौ गहनं वनम् ॥११॥ लुंठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता । पाथेयं च हृतं सर्वं बालपुत्रा निराश्रया ॥१२। माता गृहीत्वा मां प्राप्ता भारद्वाजाश्रमं प्राति । विदल्लोऽयं समागतस्तथा धात्रेयिकाऽबला ॥१३॥ मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः समन्ततः । पोषितः फलनीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः ॥१४॥ दुःखं न मे तदा ह्यासीत्सुखं नाद्य धनागमे । न वैरं न च मात्सर्यं मम चित्ते तु कर्हिचित् ॥१५॥ नीवारभक्षणं श्रेष्ठं

ने उन दोनों का वध किया है । जो भावी होता है, वह होकर ही रहता है ॥३॥ अपने मरे हुए पुत्र के विषय में आप शोक न करें, जीव अपने कर्मों के अधीन ही रहकर सुख एवं दुःख को भोगता है । माँ ! मैं आपका दास हूँ । जैसे मनोरमा मेरी माता हैं वैसे ही आप भी मेरी माता हैं । हे धर्मज्ञे! आप दोनों में कोई भी भेद नहीं है ॥५॥ अपने किए हुए शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है । अतएव आपको सुख एवं दुःख के विषय में कोई भी विचार नहीं करना चाहिए ॥६॥ जो लोग दुःख आने पर उसे अत्यधिक दुःख के रूप में अनुभव करते हैं और सुख के आने पर उससे अधिक सुख चाहने वाले को चाहिए कि वे अपने को शोक एवं हर्ष के हाथों में न सौंपे ॥७॥ यह सम्पूर्ण जगत् दैव के अधीन है, अपने अधीन नहीं अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वे अपने को शोक करके सुखायें नहीं ॥८॥ जिस तरह कठपुतली नट के इशारे पर नाचती है, उसी तरह यह जीवात्मा अपने कर्मों के अधीन सर्वत्र रहती है ॥९॥ माँ ! मैं वन में भी जाकर मन से दुःखी नहीं हुआ था क्योंकि मैं जानता हूँ कि सब को अपने किए कर्मों का ही फल मिलता है ॥१०॥ मेरे नाना मर गये और मेरी विधवा माता भयभीत होकर मुझे लेकर गहन वन में चली गयी ॥११॥ रास्ते में चोरों ने लूट लिया और कपड़े भी छिन लिए । चोरों ने रास्ते का खर्च भी छिन लिया मैं बालक था अतएव मेरी माता निःसहाय हो गयी ॥१२॥ माँ मुझको लेकर भरद्वाज मुनि के आश्रम में चली गयी । केवल विदल्ल और धायी हमलोगों के साथ रहे ॥१३॥ मुनियों तथा मुनिपत्नियों ने नीवार तथा वन के फलों से हम तीनों का पोषण किया और हम वहीं रहने लगे ॥१४॥ उस समय न तो मुझको दुःख हुआ और न तो इस समय धन मिलने पर मुझको बहुत अधिक

राजभोगात्परंतपे । तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः क्वचित् ॥१६॥ धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेण विजानता । संजित्येन्द्रियवर्गं वै यथा न नरकं
व्रजेत् ॥१७॥ मानुष्यं दुर्लभं मातः खंडेऽस्मिन्भारते शुभे । आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु ॥१८॥ प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं
धर्मसाधनम्। स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु ॥१९॥ व्यास उवाच– **इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता । पुत्रशोकं परित्यज्य**
तमाहाश्रुविलोचना ॥२०॥ सापराधाऽस्मि पुत्राहं कृता पित्रा युधाजिता । हत्वा मातामहं तेऽत्र हृतं राज्यं तु येन वै ॥२१॥ न तं वारयितुं शक्ता
तदाऽहं न सुतं मम । यत्कृतं कर्म तेनैव नापराधोऽस्ति मे सुत ॥२२॥ तौ मृतौ स्वकृतेनैव 'कारणं त्वं तयोर्न च । नाहं शोचामि तं पुत्रं सदा
शोचामि तत्कृतम् ॥२३॥ पुत्र त्वमसि कल्याण भगिनी मे मनोरमा । न क्रोधो न च शोको मे त्वयि पुत्र मनागपि ॥२४॥ कुरु राज्यं महाभाग
प्रजाः पालय सुव्रत । भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकंटकम् ॥२५॥ तदाकर्ण्य वचो मातुर्नत्वा तां नृपनन्दनः । जगाम भवनं रम्यं यत्र पूर्वं
मनोरमा॥२६॥ न्यवसत्तत्र गत्वा तु सर्वानाहूय मंत्रिणः । दैवज्ञानथ पप्रच्छमुहूर्तं दिवसं शुभम् ॥२७॥ सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम् ।

प्रसन्नता है । मेरे मन में कभी भी न तो वैर हुआ और न द्वेष ॥१५॥ मैं तो राज्य के भोग से नीवार का भोजन श्रेष्ठ मानता हूँ । राजभोग खाने वाला
नरक में जाता है और नीवार खाने वाला कभी भी नरक में नहीं जाता है ॥१६॥ विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियों को वश में करके धर्माचरण
करे, जिससे कि उसको नरक में नहीं जाना पड़े ॥१७॥ आहार आदि का सुख तो सभी योनियों में प्राप्त होता है, किन्तु भरतखण्ड में मनुष्य जन्म प्राप्त
करना दुर्लभ है ॥१८॥ इस मानव शरीर को प्राप्त करके धर्माचरण करना चाहिए । उससे स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, अन्य योनियों में धर्माचरण
दुर्लभ है ॥१९॥ **व्यासजी ने कहा**– सुदर्शन के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर अत्यन्त लज्जित लीलावती ने अपने पुत्रशोक का परित्याग कर दिया और
आँखों में आँसू भरकर सुदर्शन से कहा ॥२०॥ वत्स ! युधाजित् ने तुम्हारे नाना का वध करके और तुम्हारे राज्य को हड़पकर मुझे भी अपराधिनी बना
दिया॥२१॥ उस समय न तो मैं और न तो मेरा पुत्र ही उसको रोक सकते थे । उन्होंने सबकुछ अपने मन से किया । उसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं
है ॥२२॥ वे दोनों अपने कर्म के कारण ही मारे गये, उनकी मृत्यु में तुम कारण नहीं हो । मैं अपने पुत्र के बारे में नहीं, अपितु उसके कर्म के विषय
में सोचती हूँ ॥२३॥ सुदर्शन तुम मेरे पुत्र हो और मनोरमा मेरी बहन हैं । पुत्र ! तुम्हारे विषय में मुझे न तो क्रोध है और न कोई शोक है ॥२४॥ तुम
राज्य करो और प्रजाओं का पालन करो । भगवती की कृपा से तुम्हें यहाँ का अकण्टक राज्य प्राप्त हुआ है ॥२५॥ लीलावती की बात सुनकर सुदर्शन
ने उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे उस मनोहर भवन में गये जहाँ पहले मनोरमा रहती थीं ॥२६॥ वहाँ पर रहते हुए उन्होंने मंत्रियों तथा दैवज्ञों

सिंहासने स्थितां देवीं पूजयिष्ये सदाऽप्यहम् ॥२८॥ स्थापयित्वाऽऽसने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम् । राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः
कृतम्॥२९॥ पूजनीया सदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः । माननीया शिवाशक्तिः सर्वकामार्थसिद्धिदा ॥३०॥ इत्युक्ता मंत्रिणस्ते तं चक्रुर्वै राजशासनम्।
प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम् ॥३१॥ प्रतिमां कारयित्वाऽथ मुहूर्तेऽथ शुभे दिने । द्विजानाहूय वेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः ॥३२॥
हवनं विधिवत्कृत्वा पूजयित्वाऽथ देवताम् । प्रासादे मतिमान् देव्याः स्थापयामास भूमिपः ॥३३॥ उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणां च निःस्वनैः ।
ब्राह्मणानां वेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप ॥३४॥ व्यास उवाच– प्रतिष्ठाप्य शिवां देवीं विधिवद्वेदवादिभिः । पूजां नानाविधां राजा चकारातिविधानतः॥३५॥
कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम् । विख्याता चाम्बिका देवी कोसलेषु बभूव ह ॥३६॥ राज्यं प्राप्य नृपः सर्वं सामंतकनृपानथ ।
वशे चक्रेऽतिधर्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः ॥३७॥ यथा रामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्य रघुर्यथा । प्रजानां वै सुखं तद्वन्मर्यादाऽपि तथाऽभवत् ॥३८॥
धर्मो वर्णाश्रमाणां च चतुष्पादभवत्तथा । नाधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले ॥३९॥ ग्रामे ग्रामे च प्रासादांश्चक्रुः सर्वे जनाधिपाः । देव्याः पूजा
तदा प्रीत्या कोसलेषु प्रवर्तिता ॥४०॥ सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम् । कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः ॥४१॥ तत्र तस्या

को बुलाया और मुहूर्त पूछा ॥२७॥ उन्होंने मुहूर्त यह सोचकर पूछा कि मैं सुवर्ण का सिंहासन बनवाकर उस पर देवी की स्थापना करके मैं सदा उनकी
पूजन किया करूँगा ॥२८॥ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाली देवी की स्थापना करने के पश्चात् मैं उसी तरह से राज्य करूँगा, जिस तरह से
श्रीराम आदि ने किया ॥२९॥ सभी नागरिकों को भी देवी की पूजा करनी चाहिए । सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली शिवा शक्ति को मानना चाहिए॥३०॥
सुदर्शन की बातों को सुनकर मन्त्रियों ने शिल्पियों द्वारा एक मनोहर प्रासाद बनवाया ॥३१॥ देवी की प्रतिमा का निर्माण कराकर शुभ दिन को शुभ मुहूर्त
में उस प्रतिमा की स्थापना वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर कराया ॥३२॥ बुद्धिमान राजा ने विधिपूर्वक होम करके उस मन्दिर में देवी की मूर्ति की स्थापना
करायी॥३३॥ वहाँ पर वाद्यों की ध्वनि, वेद ध्वनि तथा अनेक प्रकार के गायनों की ध्वनि के द्वारा उत्सव मानाया गया ॥३४॥ **व्यासजी ने कहा–** वैदिक
विद्वानों के द्वारा देवी की मूर्ति की स्थापना करके राजा ने सारे विधानों के साथ देवी की अनेक प्रकार से पूजा की ॥३५॥ देवी की सविधि पूजा करके
सुदर्शन ने अपने पैतृक राज्य को प्राप्त किया और अम्बिका देवी भी कोसल देश में विख्यात हो गयीं ॥३६॥ धार्मिक सुदर्शन ने राज्य को प्राप्त करके
सभी धार्मिक सामन्तों को अपने वश में कर लिया, क्योंकि राजा सुदर्शन सद्धर्म विजयी थे ॥३७॥ जिस तरह महाराज दिलीप, रघु, दशरथ और राम के
राज्य में प्रजा सुखी थी उसी तरह सुदर्शन के भी राज्य में प्रजा सुखी रही ॥३८॥ वर्णों तथा आश्रमों के धर्म चारों पादों वाले हो गये । भूतल में किसी

जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः । पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह ॥४२॥ विख्याता सा बभूवाथ दुर्गा देवी धरातले ॥ देशे देशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत ॥४३॥ सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा । भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा ॥४४॥ शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप । आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः ॥४५॥ नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः । अर्चनं हवनं यागं देव्या भक्तिपरा जनाः ॥४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते तृतीयस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **नवरात्रे तु संप्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम । विधानं विधिवद् ब्रूहि शरत्काले विशेषतः ॥१॥ किं फलं खलु कस्तत्र विधिः कार्यो महामते । एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम ॥२॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम् । शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं**

का भी मन अधर्म में नहीं लगता था ॥३९॥ राजाओं ने प्रत्येक ग्रामों में मन्दिर बनवाया । इस तरह कोसल देश में देवी की पूजा प्रेमपूर्वक होने लगी॥४०॥ राजा सुबाहु ने भी काशी में देवी की सुन्दर प्रतिमा बनवाकर उसकी मन्दिर में स्थापना की ॥४१॥ वाराणसी में प्रेम तथा भक्ति के साथ लोगों ने उसी तरह से देवी की पूजा की जिस तरह वे विश्वेश्वर की पूजा करते हैं ॥४२॥ दुर्गा देवी भूलोक में विख्यात हो गयीं । हे महाराज ! उनकी भक्ति प्रत्येक देशों में बढ़ गयी ॥४३॥ सम्पूर्ण भारत वर्ष में सबलोगों के लिए भगवती दुर्गा पूजनीय बन गयीं ॥४४॥ शक्ति की भक्ति में निरत रहने वाले सभी लोग सम्मानित हो गये और वैदिक मन्त्रों तथा पैराणिक स्तोत्रों से पाठ के द्वारा भगवती के मन्त्र का जप और उनका ध्यान करने लगे ॥४५॥ नवरात्र के दिनों में बड़े विधान से सभी देवीभक्त देवी का पूजन, हवन तथा यज्ञ करने लगे ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५॥

शारदीय नवरात्र व्रत की विधि

जनमेजय ने कहा– हे द्विजो ! नवरात्र के आने पर क्या करना चाहिए । शरदीय नवरात्र का विधान आप विधिपूर्वक बतलायें ॥१॥ हे महामते! उसका

विधिपूर्वकम् ॥३॥ वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम् । द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै ॥४॥ शरद्वसन्तनामानौ दुर्गमौ प्राणिनामिह । तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता ॥५॥ द्वावेव सुमहाघोरावृतू रोगकरौ नृणाम् । वसन्तशरदावेव सर्वनाशकरावुभौ ॥६॥ तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चंडिकापूजनं बुधैः । चैत्राश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्वं नराधिप ॥७॥ अमावास्यां च संप्राप्य संभारं कल्पयेच्छुभम् । हविष्यं चाशनं कार्यमेकभुक्तं तु तद्दिने ॥८॥ मंडपस्तु प्रकर्तव्यः समे देशे शुभे स्थले । हस्तषोडशमानेन स्तंभध्वजसमन्वितः ॥९॥ गौरमृद्गोमयाभ्यां च लेपनं कारयेत्ततः । तन्मध्ये वेदिका शुभ्रा कर्तव्या च समा स्थिरा ॥१०॥ चतुर्हस्ता च हस्तोच्छ्रा पीठार्थं स्थानमुत्तमम् । तोरणानि विचित्राणि वितानं च प्रकल्पयेत्॥११॥ रात्रौ द्विजानथामंत्र्य देवीतत्त्वविशारदान् । आचारनिरतान्दांतान्वेदवेदांगपारगान् ॥१२॥ प्रतिपद्दिवसे कार्यं प्रातः स्नानं विधानतः। नद्यां नदे तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा ॥१३॥ प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः । अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यं मधुपूर्वकम् ॥१४॥ वस्त्रालङ्करणादीनि देयानि च स्वशक्तितः । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विभवे सति कर्हिचित् ॥१५॥ विप्रैः सन्तोषितैः कार्यं सम्पूर्णं सर्वथा भवेत्।

फल क्या है ? उसकी कौन सी विधि है ? हे द्विजश्रेष्ठ ! आप इस बात को विस्तार पूर्वक बतलाएँ । **व्यासजी ने कहा—** हे राजन् ! मङ्गलमय नवरात्र व्रत को मैं बतला रहा हूँ । उसे आप सुनें । शरदकाल में इस व्रत को विशेष रूप से विधिपूर्वक करना चाहिए ॥३॥ उसी तरह वसन्त ऋतु में भी इसे प्रेम पूर्वक करना चाहिए । शरत् एवं वसन्त ये दोनों ऋतु यम के दाँत रूप से लोगों में प्रसिद्ध हैं ॥४॥ ये दोनों प्राणधारियों के लिए दुर्गम कहे गये है। अतएव इन दोनों ऋतुओं में प्रयत्न पूर्वक नवरात्र व्रत को करना चाहिए ॥५॥ ये दोनों ऋतु भयंकर रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं । वसन्त एवं शरद ये दोनों सर्वनाश करने वाले हैं ॥६॥ अतएव हे राजन् ! चैत्र तथा आश्विन में भक्तिपूर्वक चण्डिका की सविधि पूजा करनी चाहिए ॥७॥ अमावस्या के दिन समस्त मङ्गलमय सामग्रियों को जुटा लेना चाहिए । उस दिन एक शाम हविष्य का भोजन करें ॥८॥ समस्त भूमि पर सुन्दर मण्डप बनाना चाहिए । मण्डप को सोलह हाथ का होना चाहिए मण्डप के स्तम्भ एवं ध्वजा से सुशोभित होना चाहिए ॥९॥ मण्डप को पीली मिट्टी और गोबर से पोतना चाहिए । उसके बीच में समतल और सुदृढ़ वेदी बनवाये ॥१०॥ चार हाँथ ऊँची वेदी पीठ के लिए उत्तम होती है । उसमें मनोहर तोरण चन्दोवा लगाये ॥११॥ रात्रि में वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत इन्द्रियों को वश में रखने वाले, आचार का पालन करने वाले तथा देवी के तत्त्व के ज्ञाता ब्राह्मणों को बुलाकर ॥१२॥ प्रतिपत् तिथि को प्रातःकाल नदी, नद, सरोवर बावली अथवा कुआँ पर या घर में सविधि स्नान करे ॥१३॥ प्रातःकाल नित्य-क्रिया के करने के पश्चात् ब्राह्मणों का वरण करे । उन ब्राह्मणों को अर्घ्य, पाद्य, आदि से पूजन मधुपर्क प्रदान पूर्वक करना चाहिए ॥१४॥ फिर उन ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार

नवपञ्चत्रयश्चैको देव्याः पाठे द्विजाः स्मृताः ॥१६॥ वरयेद् ब्राह्मणं शांतं पारायणे कृते तदा । स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमंत्रविधानतः ॥१७॥
वेद्यां सिंहासनं स्थाप्य क्षौमवस्त्रसमन्वितम् । तत्र स्थाप्याऽम्बिका देवी चतुर्हस्तायुधान्विता ॥१८॥ रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता ।
दिव्याम्बरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता ॥१९॥ शङ्खचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिता शिवा । अष्टादशभुजा वापि प्रतिष्ठाप्या सनातनी ॥२०॥
अर्चाभावे तथा यन्त्रं नवार्णमंत्रसंयुतम् । स्थापयेत्पीठपूजार्थं कलशं तत्र पार्श्वतः ॥२१॥ पंचपल्लवसंयुक्तं वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतम् । सुतीर्थजलसम्पूर्णं
हेमरत्नैः समन्वितम् ॥२२॥ पार्श्वे पूजार्थसंभारान्परिकल्प्य समंततः । गीतवादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मंगलाय वै ॥२३॥ तिथौ हस्तान्वितायां च नन्दायां
पूजनं वरम् । प्रथमे दिवसे राजन्विधिवत्कामदं नृणाम् ॥२४॥ नियमं प्रथमं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् । उपवासेन नक्तेन चैकभक्तेन वा
पुनः॥२५॥ करिष्यामि व्रतं मतर्नवरात्रमनुत्तमम् । साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम् ॥२६॥ यथाशक्ति प्रकर्तव्यो नियमो व्रतहेतवे ।
पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिवन्मंत्रपूर्वकम् ॥२७॥ चंदनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगंधिभिः । मंदारकरजाशोकचंपकैः करवीरकैः ॥२८॥ मालतीब्रह्मकापुष्पैस्तथा

वस्त्र एवं अलंकार प्रदान करे । यदि वैभव हो तो कभी वित्त की शठता नहीं करनी चाहिए ॥१५॥ ब्राह्मणों के सन्तुष्ट हो जाने पर वह व्रत पूर्ण अवश्य होता है । देवी के पाठ में नव, या पाँच या तीन अथवा एक ब्राह्मण को होना चाहिए ॥१६॥ पारायण करने के लिए एक शान्त ब्राह्मण का वरण करना चाहिए । वैदिक मंत्रों के विधान से स्वस्तिवाचन करना चाहिए ॥१७॥ पहले वेदी पर रेशमी वस्त्र से अलंकृत सिंहासन की स्थापना करे । उसके ऊपर चतुर्भुजी अम्बिका देवी की स्थापना करनी चाहिए ॥१८॥ प्रतिमा को रत्नजटित आभूषणों से युक्त, मोतियों के हार से सुशोभित, दिव्य वस्त्र धारण किए हुए तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए ॥१९॥ शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण की हुई, सिंह पर बैठी हुई अथवा अठारह भुजाओं वाली सनातनी शिवा देवी की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए ॥२०॥ अर्चामूर्ति के अभाव में नवार्ण मंत्र से युक्त यन्त्र की पूजा करने के लिए पीठ पर स्थापना करनी चाहिए । उसके बगल में पञ्चपल्लव से युक्त, वेदमंत्रों से संस्कार किए हुए तीर्थ के जल से परिपूर्ण तथा सुवर्ण तथा रत्नों से समन्वित कलश की स्थापना करनी चाहिए ॥२१-२२॥ उसके बगल में पूजा की सामग्री सजा कर रखनी चाहिए और मंगल के लिए गीत तथा वाद्य की ध्वनि करनी चाहिए ॥२३॥ हस्त नक्षत्र से युक्त नन्दा तिथि को पूजन करना श्रेष्ठ होता है। पहले दिन पूजा करना मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता है ॥२४॥ पहले नियम करके बाद में पूजा करनी चाहिए । पूजन के दिन उपवास करना चाहिए अथवा रात्रि में एक शाम भोजन करे ॥२५॥ देवी से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे मातः ! मैं नवरात्रव्रत करूँगा । जगदम्बे ! मेरी आप हर प्रकार की सहायता करें ॥२६॥ व्रत के लिए अपनी शक्ति के अनुसार नियम करना चाहिए । उसके

बिल्वदलैः शुभैः । पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः ॥२९॥ फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै । नारिकेलैर्मातुलुंगैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥३०॥ नारंगैः पनसैश्चैव तथा पूर्णफलैः शुभैः । अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप ॥३१॥ मांसाशनं ये कुर्वन्ति तैः कार्यं पशुहिंसनम् । महिषाजवराहाणां बलिदानं विशिष्यते ॥३२॥ देव्यग्रे निहिता यांति पशवः स्वर्गमव्ययम् । न हिंसा पशुजा तत्र निघ्नतां तत्कृतेऽनघ ॥३३॥ अहिंसा याज्ञिकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये । देवतार्थे निसृष्टानां पशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा ॥३४॥ होमार्थं चैव कर्तव्यं कुण्डं चैव त्रिकोणकम् । स्थंडिलं वा प्रकर्तव्यं त्रिकोणं मानतः शुभम् ॥३५॥ त्रिकालं पूजनं नित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः । गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥३६॥ नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम् । वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः ॥३७॥ एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः । द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि प्रत्येकं नवकं च वा ॥३८॥ विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं राजञ्छक्तिमखे सदा ॥३९॥ एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप । परमज्ञा तु भोगानां गंधादीनां च बालिका ॥४०॥ कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह । त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च

बाद मन्त्रोच्चारण पूर्वक सविधि पूजन करना चाहिए ॥२७॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, सुगन्धित पुष्प, मंदार, करंज, अशोक, चम्पा कनैल, मालती, ब्राह्मी के पुष्प तथा विल्वपत्र धूप, दीप आदि से जगन्माता की सविधि पूजा करनी चाहिए ॥२८-२९॥ पूजन के समय अनेक प्रकार के फलों से अर्घ्य देना चाहिए। जैसे– नारियल, मातुलुंग (बड़ा नीबू) अनार, केला, नारंगी, कटहल तथा विल्वफल के साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए । राजन् ! भक्तिपूर्वक अन्नदान करना चाहिए ॥३१॥ जो लोग माँस खाते हैं उनको पशुबलि भी देनी चाहिए । भैंसा, बकरा तथा बनैले सूकर की बलि का महत्त्व अधिक है ॥३२॥ देवी के सामने मारे गये पशु स्वर्ग लोक जाते हैं । उसमें पशुओं को मारने से हिंसा नहीं होती है ॥३३॥ सभी शास्त्रों का निर्णय है कि यज्ञ में की गयी हिंसा हिंसा नहीं कहलाती है । देवता के लिए मारे गये पशुओं को स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है ॥३४॥ होम के लिए त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए । अथवा प्रमाणानुसार त्रिकोण स्थण्डिल (वेदी) बनाना चाहिए ॥३५॥ प्रतिदिन अनेक प्रकार के मनोहर द्रव्यों से पूजा करनी चाहिए । गीत, वाद्य तथा नृत्य से उत्सव मनाना चाहिए ॥३६॥ नित्य ही भूमि पर शयन करना चाहिए और कुमारीपूजन वस्त्र, अलंकार मीठे अन्न के भोजन से करना चाहिए ॥३७॥ प्रतिदिन एक-एक कुमारी का पूजन करना चाहिए अथवा प्रतिदिन एक-एक कुमारी को बढ़ाता जाय । अथवा दो गुना, या तीन गुना कुमारियों की संख्या बढ़ाये अथवा प्रतिदिन नव कुमारियों का पूजन करें ॥३८॥ अपने एश्वर्य के अनुसार पूजन करना चाहिए । हे राजन् ! शक्ति के यज्ञ में वित्त की शठता नहीं करनी चाहिए।॥३९॥ पूजा में एक वर्ष की कुमारी का पूजन नहीं करना चाहिए । किन्तु गंध आदि भोगों को नहीं जाननें वाली वह बालिका कहलाती है ॥४०॥ दो

कल्याणी चतुरब्दिका ॥४१॥ रोहिणी पंचवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता । चंडिका सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शांभवी ॥४२॥ नववर्षा भवेद्दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी । अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता ॥४३॥ एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता । तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा ॥४४॥ कुमारी पूजिता कुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम् । शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिं करोति वै ॥४५॥ त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत् । धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः ॥४६॥ विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः । सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥४७॥ कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् । ऐश्वर्यधनकामश्च चंडिकां पूरिपूजयेत् ॥४८॥ पूजयेच्छांभवीं नित्यं नृपसंमोहनाय च । दुःखदारिद्र्यनाशाय संग्रामे विजयाय च ॥४९॥ क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने । दुर्गां च पूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च ॥५०॥ वांछितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा । रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः ॥५१॥ श्रीरस्त्विति च मंत्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः । श्रीयुक्तमंत्रैरथवा बीजमंत्रैरथापि वा ॥५२॥ कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया । कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम् ॥५३॥ सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या

वर्ष की कुमारी बालिका होती है । तीन वर्ष की त्रिमूर्ति होती है । चार वर्ष की कल्याणी होती है ॥४१॥ पाँच वर्ष की बालिका रोहिणी कहलाती है । छह वर्ष की बालिका कालिका कहलाती है । सात वर्ष की बालिका चण्डिका कहलाती है । आठ वर्ष की बालिका शाम्भवी कहलाती है ॥४२॥ नववर्ष की बालिका दुर्गा कहलाती है तथा दश वर्ष की बालिका सुभद्रा कहलाती है। इससे अधिक उम्र की कन्याओं को भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे सभी कार्यों में निन्दित कही गयी हैं ॥४३॥ कुमारियों की पूजा इन्हीं नामों से सविधि करनी चाहिए । इन कुमारियों की पूजा से प्राप्त होने वाले फल का मैं वर्णन कर रहा हूँ ॥४४॥ कुमारी का पूजन करने से दुख, दारिद्र्य का नाश होता है और शत्रुओं का नाश होता है तथा धन, आयु एवं बल की वृद्धि होती है ॥४५॥ त्रिमूर्ति की पूजा करने से आयु बढ़ती है तथा धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति होती है । धन-धान्य की प्राप्ति तथा पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि होती है ॥४६॥ विद्या, विजय, राज्य तथा सुख चाहने वाले राजा को सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली कल्याणी की पूजा करनी चाहिए ॥४७॥ शत्रु का नाश करने के लिए भक्तिपूर्वक कालिका की पूजा करनी चाहिए । ऐश्वर्य एवं धन चाहने वाले को चण्डिका की पूजा करनी चाहिए ॥४८॥ राजा का संमोहन करने के लिए दुःख एवं दारिद्र्य का नाश तथा संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए शांभवी का पूजन करना चाहिए ॥४९॥ क्रूर शत्रु का विनाश करने के लिए तथा उग्रकर्म की सिद्धि के लिए एवं परलोक में सुख प्राप्त करने के लिए भक्तिपूर्वक दुर्गा की पूजा करनी चाहिए ॥५०॥ अपने अभिलषित अर्थ की प्राप्ति के लिए सदा सुभद्रा की पूजा करनी चाहिए । रोग का नाश करने के लिए मनुष्य को रोहिणी का पूजन करना चाहिए ॥५१॥ भक्ति में संलग्न व्यक्ति को 'श्रीरस्तु' इस मंत्र से भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए । श्री से युक्त मंत्रों के द्वारा अथवा बीज मंत्रों के द्वारा पूजन करना चाहिए ॥५२॥ इन कुमारियों का पूजन

तैर्हि नानास्वरूपिणी । त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥५४॥ कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम् । पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥५५॥ रोहयन्तीं च बीजानि प्राग्जन्मसंचितानि वै । या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥५६॥ काली कालयते सर्वं ब्रह्मांडं सचराचरम् । कल्पांतसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥५७॥ चण्डिकां चण्डरूपां च चण्डमुण्डविनाशिनीम् । तां चंडपापहरणीं चंडिकां पूजयाम्यहम् ॥५८॥ अकारणात्समुत्पत्त्िर्यन्मयैः परिकीर्तिता । यस्यास्तां सुखदां देवीं शांभवीं पूजयाम्यहम् ॥५९॥ दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गतिनाशिनी । दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम् ॥६०॥ सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा । अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥६१॥ एभिर्मंत्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः । वस्त्रालङ्करणैर्माल्यैर्गंधैरुच्चावचैरपि ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

करते समय कहना चाहिए कि जो कार्तिकेय के तत्त्वों की सृष्टि तथा ब्रह्मा आदि की सृष्टि लीला पूर्वक करती हैं मैं उन्हीं कुमारी की पूजा करता हूँ ॥५३॥ जो देवी सत्व आदि (रजस् एवं तमस्) के कारण तीन मूर्तियों आदि विभिन्न रूपों में दिखायी पड़ती हैं तथा जो त्रिकाल में व्यापिका शक्ति हैं उन त्रिमूर्ति की मैं पूजा करता हूँ ॥५४॥ जो पूजित होकर भगवती भक्तों का सदा कल्याण करती रहती हैं उन सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवी की मैं पूजा करता हूँ । जो भगवती सबों के पूर्व जन्मों के कर्मों के बीज को रोहित करती हैं मैं उन रोहिणी देवी की पूजा करता हूँ ॥५६॥ जो कालिका भगवती संहार काल के आ जाने पर सम्पूर्ण जड जंगमात्मक जगत् को काल कवलित करती हैं, उन कालिका की पूजा मैं करता हूँ ॥५७॥ प्रचण्ड रूप को धारण करने वाली, चण्ड एवं मुण्ड नामक दैत्यो। का विनाश करने वाली तथा भक्तों के प्रचण्ड पाप को विनष्ट करने वाली चण्डिका देवी की मैं पूजा करता हूँ ॥५८॥ वेदों में जिनकी उत्पत्ति अकारण बतलायी गयी है, मैं उन्हीं शाम्भवी देवी की पूजा करता हूँ ॥५९॥ जो देवी अपने भक्तों की रक्षा भयंकर विपत्ति से करती हैं, जो भक्तों की दुर्गति को विनष्ट करती हैं, जो सभी देवताओं के लिए दुर्ज्ञेय हैं मैं उन्हीं दुर्गा देवी की पूजा करता हूँ ॥६०॥ जो पूजित होकर अपने भक्तों का कल्याण करती हैं, तथा उनके अमंगलों का विनाश करती है मैं उन सुभद्रा भवानी की पूजा करता हूँ ॥६१॥ विद्वानों को इन्हीं मन्त्रों से कन्याओं की पूजा करनी चाहिए तथा उन्हें, वस्त्र, अलंकार तथा विविध प्रकार की मालाएँ एवं चन्दन प्रदान करना चाहिए ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **हीनांगी वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणांकिताम् । गन्धस्फुरितहीनांगीं विशीलकुलसंभवाम् ॥१॥ जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम् । सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनांकिताम् ॥२॥ क्षामां गर्भसमुद्भूतां गोलकां कन्यकोद्भवाम् । वर्जनीयाः सदा चैताः सर्वपूजादिकर्मसु ॥३॥ अरोगिणीं सुरूपांगीं सुन्दरीं व्रणवर्जिताम् । एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत् ॥४॥ ब्राह्मणी सर्वकार्येषु जायार्थे नृपवंशजा । लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा ॥५॥ ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजाः । वैश्यैस्त्रिवर्गजाः पूज्याश्चतस्रः पादसम्भवैः ॥६॥ कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत् । नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि ॥७॥ अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके। अष्टम्यां च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा ॥८॥ पुराऽष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनी कोटिभिः सह ॥९॥ अतोऽष्टम्यां विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा । नानाविधोपहारैश्च गंधमाल्यानुलेपनैः ॥१०॥ पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानां व भोजनैः । फलपुष्पोपहारैश्च**

कुमारी पूजन की विधि और सुशील बनिया की कथा

व्यासजी ने कहा– कम अंगों वाली, कोढी, जिसको घाव हो गये हों, जिसके शरीर से दुर्गन्धि आती हो, हीनाङ्ग, शील रहित वंश में जो उत्पन्न हुई हो ॥१॥ जन्मांध, तिरछा देखने वाली, कानी, कुरूप, जिसके शरीर में बहुत अधिक रोएँ हों, रोगी, रजस्वला, अत्यन्त दुबली-पतली, गर्भ के समय से कुछ पहले ही उत्पन्न होने वाली, जो दूसरे पति से उत्पन्न हुई हो (दोगली) तथा जो कन्या से उत्पन्न हुई हो, ऐसी कन्याओं का पूजन नहीं करना चाहिए॥३॥ निरोग, सुन्दर, जिसको कोई घाव न हुआ हो, जिसके माता-पिता एक ही वंश के हों, ऐसी कन्या का पूजन अच्छी तरह से करना चाहिए॥४॥ सभी कार्यों की सिद्धि के लिए ब्राह्मण की कन्या का, विजय की प्राप्ति के लिए क्षत्रिय की कन्या का, धन की प्राप्ति के लिए वैश्य की कन्या का तथा वंश की वृद्धि के लिए शूद्र की कन्या का पूजन करना चाहिए ॥५॥ ब्राह्मण को केवल ब्राह्मण जाति की कन्या का, क्षत्रिय को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति की कन्या का, वैश्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जाति की कन्या का और शूद्र को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति की कन्या का पूजन करना चाहिए॥६॥ शिल्पियों को अपनी ही जाति की कन्याओं का पूजन नवरात्र विधि से भक्तिपूर्वक करना चाहिए ॥७॥ जो नवरात्र में प्रतिदिन नियम पूर्वक पूजन करने में असमर्थ हो उसे अष्टमी के दिन विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ॥८॥ प्राचीन काल में दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने वाली अत्यन्त भयंकर भद्रकाली करोड़ो योगियों के साथ अष्टमी के ही दिन उत्पन्न हुई थी ॥९॥ अतएव अष्टमी के दिन अनेक प्रकार के उपहारों, चन्दन, गन्ध पदार्थों, खीर, मांस, होम, ब्राह्मणभोजन

तोषयेज्जगदम्बिकाम् ॥११॥ उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः । उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तफलदं नृप ॥१२॥ सप्तम्यां च तथाऽष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः । त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात् ॥१३॥ पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा । संपूर्णं तद्व्रतं प्रोक्तं विप्राणां चैव भोजनैः॥१४॥ व्रतानि यानि चान्यानि दानानि विविधानि च । नवरात्रव्रतस्यास्य नैव तुल्यानि भूतले ॥१५॥ धनधान्यप्रदं नित्यं सुखसंतानवृद्धिदम्। आयुरारोग्यदं चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥१६॥ विद्यार्थी वा धनार्थी वा पुत्रार्थी वा भवेन्नरः । तेनेदं विधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम् ॥१७॥ विद्यार्थी सर्वविद्यां वै प्राप्नोति व्रतसाधनात् । राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वदा ॥१८॥ पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न कृतं व्रतमुत्तमम् । ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवन्ति पुत्रवर्जिताः ॥१९॥ वन्ध्या च या भवेन्नरी विधवा धनवर्जिता । अनुमा तत्र कर्तव्या नेयं कृतवती व्रतम् ॥२०॥ नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले । स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि ॥२१॥ रक्तचन्दनसंमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः । भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ ॥२२॥ नाराधिता येन शिवा सनातनी दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्धरा । दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः ॥२३॥ यां विष्णुरिन्द्रो हरपद्मजौ तथा वह्निः कुबेरो वरुणो दिवाकरः । ध्यायन्ति सर्वार्थसमाप्तिनन्दितास्तां किं मनुष्या न भजन्ति

तथा फल एवं पुष्पों के उपहार से जगदम्बिका को प्रसन्न करना चाहिए ॥१०-११॥ जो पूरे नवरात्र भर उपवास करने में असमर्थ हैं, उनको तीन दिन उपवास करने से भी नवरात्र के समस्त फलों की प्राप्ति हो जाती है ॥१२॥ नवरात्र के सप्तमी, अष्टमी, एवं नवमी इन तीन दिनों में भक्तिपूर्वक पूजन करने से भी सभी फलों की प्राप्ति हो जाती है ॥१३॥ नवरात्र के व्रत के सम्पूर्ण फल की प्राप्ति पूजन, होम तथा ब्राह्मण भोजन इन तीन कामों को करने से होती है ॥१४॥ भूलोक में इस नवरात्र व्रत के समान कोई भी व्रत अथवा दान नहीं है ॥१५ यह व्रत धन-धान्य को प्रदान करने वाला, सुख एवं सन्तान की वृद्धि करने वाला, आयु एवं आरोग्य को बढ़ाने वाला तथा स्वर्ग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला है ॥१६॥ जो व्यक्ति विद्या, या धन अथवा पुत्र प्राप्त करना चाहता है उस व्यक्ति को इस सौभाग्य तथा कल्याण को प्रदान करने वाले व्रत को करना चाहिए ॥१७॥ इस व्रत को करने वाला विद्यार्थी सभी विद्याओं को प्राप्त कर लेता है और जिस राजा का राज्य नष्ट हो गया हो; वह इस व्रत को करके उसे प्राप्त कर लेता है ॥१८॥ जो लोग पूर्वजन्म में नवरात्र व्रत नहीं किए रहते हैं, वे वर्तमान जन्म में रोगी, दरिद्र और निःसंतान होते हैं ॥१९॥ जो नारी विधवा तथा दरिद्र होती है, उसके विषय में यह अनुमान कर लेना चाहिए कि इसने, नवरात्र व्रत नहीं किया है ॥२०॥ जो इस लोक में नवरात्र व्रत नहीं करता है, वह व्यक्ति इस लोक में वैभव प्राप्त करके परलोक में कैसे आनन्दानुभव कर सकता है ?॥२१॥ जो व्यक्ति लालचन्दन लगाकर कोमल विल्वपत्रों से भवानी की पूजा करता है वह संसार में राजा होता है॥२२॥

चंडिकाम् ॥२४॥ स्वाहास्वधानाममनुप्रभावैस्तृप्यन्ति देवाः पितरस्तथैव । यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरन्ति यन्नामयुग्मं श्रुतिभिर्मुनीन्द्राः ॥२५॥ यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च । नूनं करोति जगतः किल भस्म शम्भुस्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः ॥२६॥ नैकोऽस्ति सर्वभुवनेषु तया विहीनो देवी नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा । गन्धर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं यः स्पंदितु भवति शक्तियुतो यथेच्छम्॥२७॥ तां न सेवेत कश्चण्डीं सर्वकामार्थदां शिवाम् । व्रतं तस्या न कः कुर्याद्वांछन्नर्थचतुष्टयम् ॥२८॥ महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतं चरेत्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा ॥२९॥ पुरा कश्चिद्वणिग्दीनो धनहीनः सुदुःखितः । कुटुम्बी चाभवत्कश्चित्कोसले नृपसत्तम॥३०॥ अपत्यानि बहून्यस्याभवन्क्षुत्पीडितानि च । भक्ष्यं किंचित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः ॥३१॥ भुंक्तेस्म कार्यकर्ताऽसौ परस्याथ बुभुक्षितः । कुटुंबभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः ॥३२॥ सदा धर्मरतः शांतः सदाचारश्च सत्यवाक् । अक्रोधनश्च धृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः ॥३३॥ संपूज्य देवता नित्यं पितॄनप्यतिथींस्तदा । भुंजाने पोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनं वणिक् ॥३४॥ एवं गच्छति काले वै सुशीलो नामतो गुणैः। दारिद्र्यार्तो

जिसने सनातनी तथा दुःखों को विनष्ट करने वाली, सिद्धि प्रदान करने वाली संसार में सबसे श्रेष्ठ देवी की पूजा नहीं करता है, वह मनुष्य पृथिवी पर अनेक शत्रुओं से युक्त तथा दरिद्र होता है ॥२३॥ जिस देवी का ध्यान विष्णु, इन्द्र, शंकरजी, ब्रह्माजी, अग्नि, कुबेर, वरुण और सूर्य करते हैं, उनकी आराधना मनुष्य क्यों नही करते हैं ॥२४॥ देवी के 'स्वाहा' इस नाम से देवगण तथा 'स्वधा' इस नाम से पितृगण तृप्त होते हैं; इसीलिए सभी यज्ञों तथा श्राद्धों में देवी के इन दोनों वेदोक्त नामों का मुनिजन उच्चारण करते हैं ॥२५॥ जिन देवी की इच्छा के अनुसार ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करते हैं और श्रीहरि अनेक अवतारों को धारण करते हैं; शंकरजी जगत् को भस्म कर देते हैं, उन देवी का भजन मनुष्य क्यों नहीं करते हैं ॥२६॥ देवता, मनुष्य, पक्षी, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच एवं पर्वत में से कोई भी संसार में ऐसा नहीं है जो देवी की शक्ति के बिना अपनी इच्छा से हिल-डुल भी सके ॥२७॥ कौन ऐसा मनुष्य है, जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप पुरुषार्थों को चाहे और चण्डी की पूजा न करे ॥२८॥ महापापी मनुष्य भी नवरात्र व्रत को करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नही है ॥२९॥ हे राजन् ! प्राचीन काल में कोसल देश में अत्यन्त निर्धन, दुःखी तथा बहुत बड़े परिवार वाला एक वैश्य था ॥३०॥ उसके भूख से पीड़ित अनेक पुत्र हुए । वे किसी तरह शाम को कुछ खाने के लिए पा जाते थे ॥३१॥ वह भूखा वैश्य दूसरे के यहाँ काम करता था, वह बड़े धैर्य के साथ अपने परिवार का पालन करता था ॥३२॥ वह सदा धर्मपरायण, शान्त, सदाचारी, सत्य बोलने वाला, क्रोध रहित, धैर्यशाली, गर्वहीन और किसी से जलन नहीं करने वाला था ॥३३॥ वह प्रतिदिन देवता एवं अतिथि की पूजा करके, अपने आश्रितों के

द्विजं शांतं पप्रच्छातिबुभुक्षितः ॥३५॥ सुशील उवाच– भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाद्य महामते । कथं दारिद्र्यनाशः स्यादिति मे निश्चयेन वै॥३६॥ धनैषणा मे नैवास्ति धनी स्यामिति मानद । कुटुंबभरणार्थं वै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम ॥३७॥ पुत्री सुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदते भृशम्। तावन्मात्रं गृहे नान्नं मुष्टिमेकां ददाम्यहम् ॥३८॥ विसर्जितो यतो गेहाद्गतो बालो रुदन्मया । अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किं करोमिं धनं विना॥३९॥ विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम् । दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम् ॥४०॥ तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि दयानिधे । ततो दानं व्रतं किंचिद्ब्रूहि मंत्रं जपं तथा ॥४१॥ येनाहं पोष्यवर्गस्य करोमि द्विज पोषणम् । तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल ॥४२॥ त्वत्प्रसादात्कुटुम्बं मे सुखितं प्रभवेदिह । तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिंत्य च ॥४३॥ व्यास उवाच– इति पृष्टस्तथा तेन ब्राह्मणः संशितव्रतः । उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम ॥४४॥ पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा ॥४५॥ वेदपारायणं शक्तिजपहोमादिकं तथा । कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्यं भविष्यति ॥४६॥ एतस्मादपरं किंचिद् व्रतं नास्ति धरातले । नवरात्राभिधं वैश्य पावनं सुखदं तथा॥४७॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव सुखसन्तानवर्धनम् । शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा ॥४८॥ राज्यभ्रष्टेन रामेण सीताविरहितेन च । किष्किंधायां व्रतं

भोजन कर लेने के बाद में भोजन करता था ॥३४॥ इस प्रकार से कुछ समय बीत जाने पर वह यथा नाम तथा गुण वाला वैश्य भूख से पीड़ित होकर एक शान्त ब्राह्मण के पास जाकर कहा ॥३५॥ **सुशील ने कहा–** हे ब्राह्मण देवता ! आप कृपा करके मुझे बतलाएँ कि किस प्रकार मेरे दारिद्रय का नाश हो सकता है ॥३६॥ हे ब्राह्मणवर्य ! मुझको धनैषणा (धन प्राप्त करने की इच्छा) नहीं है, मै धनी न बनूँ । केवल परिवार के पालन का उपाय जानना चाहता हूँ ॥३७॥ मेरे बेटा-बेटी अत्यधिक रोते रहते हैं, किन्तु मेरे पास इतना भी अन्न नहीं है कि मैं उन्हें एक मुट्ठी अन्न दे सकूँ ॥३८॥ भूख से रोते हुए बालक को मैंने घर से निकाल दिया और वह रोता हुआ चला गया इसीलिए मेरा हृदय जल रहा है; मैं धन के विना क्या करूँ ॥३९॥ मेरी पुत्री का विवाह होने वाला है । किन्तु मेरे पास धन नहीं है, क्या करूँ । उसकी दश वर्ष की अवस्था जो कन्यादान की होती है, बीतने वाली है ॥४०॥ हे दयासागर ! आप तो सर्वज्ञ हैं । इसी कारण से मैं सोच रहा हूँ । आप कोई तपस्या, दान, व्रत, मंत्र का जप बतलाइये जिससे कि मैं अपने पोष्यवर्ग का पालन कर सकूँ। मैं केवल इतना ही धन चाहता हूँ, इससे अधिक नहीं ॥४२॥ हे महाभाग ! आप अपने ज्ञान से विचार करके ऐसा कर दें कि आपकी कृपा से मेरा परिवार सुखी हो जाय ॥४३॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! उस वैश्य की बात सुनकर उत्तम व्रत वाले उस ब्राह्मण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस वैश्य से कहा॥४४॥ तुम अपनी शक्ति के अनुसार आज देवी का पूजन, हवन, ब्राह्मण भोजन, वेदपाठ तथा जप कराओ । इससे तुम्हारा काम बन जायेगा॥४५-४६॥ हे

चैतत्कृतं दुःखातुरेण वै ॥४९॥ प्रतप्तेनापि रामेण सीताविरहवह्निना । विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै ॥५०॥ तेन प्राप्ताऽथ वैदेही कृत्वा सेतुं महार्णवे । हत्वा मन्दोदरीनाथं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥५१॥ मेघनादं सुतं हत्वा कृत्वा भूपं विभीषणम् । पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकंटकम् ॥५२॥ नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेण विशां वर । सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणामितजेजसा ॥५३॥ व्यास उवाच– **इति विप्रवचः श्रुत्वा स वैश्यस्तं द्विजं गुरुम् । कृत्वा जग्राह सन्मंत्रं मायाबीजाभिधं नृप ॥५४॥ जजाप परया भक्त्या नवरात्रमतंद्रितः । नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम् ॥५५॥ नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः । नवमे वत्सरांते तु महाष्टम्यां महेश्वरी ॥५६॥ अर्धरात्रे तु संजाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम् ॥५७॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

वैश्य ! इस भूलोक में नवरात्र नामक व्रत से बढ़कर कोई भी दूसरा व्रत पवित्र और सुखद नहीं है ॥४७॥ नवरात्र व्रत सदा ज्ञान तथा मोक्ष देने वाला एवं शत्रुओं का नाश करने वाला होता है ॥४८॥ राज्यभ्रष्ट श्रीराम ने सीता के वियोग में दुःखातुर होकर किष्किन्धा में इसी व्रत को किया था ॥४९॥ सीता की विरहाग्नि से संतप्त श्रीराम ने नवरात्र व्रत की विधि से देवी की सविधि पूजा की थी ॥५०॥ उसके फलस्वरूप वे कुम्भकर्ण तथा रावण का वध करके समुद्र पर पुल बाँधकर सीता को प्राप्त किये थे ॥५१॥ उन्होंने रावण के पुत्र मेघनाद का वध करके विभीषण को लङ्का का राजा बनाया । उसके पश्चात् वे अयोध्या आकर अकण्टक राज्य प्राप्त किए ॥५२॥ हे वैश्यवर्य ! इस नवरात्र व्रत के प्रभाव से अत्यन्त तेजस्वी श्रीराम ने इस भूलोक में सुख को प्राप्त किया ॥५३॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! ब्राह्मण की उस बात को सुनकर उस वैश्य ने उस ब्राह्मण को ही अपना गुरु बनाया । उससे माया बीज नामक मंत्र की दीक्षा प्राप्त की और नवरात्र में सावधानी पूर्वक उस मंत्र का जप किया । अनेक प्रकार के उपहारों से देवी की पूजा की ॥५४-५५॥ इस तरह वह वैश्य नव वर्षों तक उस मंत्र का जप करता रहा । नवें वर्ष के पूरा होने पर भगवती ने उस वैश्य को प्रत्यक्ष दर्शन देकर अनेक प्रकार का वरदान दिया, जिससे कि वह वैश्य कृतार्थ हो गया ॥५६-५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम् । राज्यभ्रष्टः कथं सोऽथ कथं सीता हृता पुनः ॥१॥** व्यास उवाच– **राजा दशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा । सूर्यवंशवरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः ॥२॥ चत्वारो जज्ञिरे तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः । रामलक्ष्मण शत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः ॥३॥ राज्ञः प्रियकराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः । कौसल्यायाः सुतो रामः कैकेय्या भरतः स्मृतः ॥४॥ सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ । ते जाता वै किशोराश्च धनुर्बाणधराः किल ॥५॥ सूनवः कृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः । कौशिकेन तदाऽऽगत्य प्रार्थितो रघुनन्दनः ॥६॥ राघवं मखरक्षार्थं सूनुं षोडशवार्षिकम् । तस्मै सोऽयं ददौ रामं कौशिकाय सलक्ष्मणम् ॥७॥ तौ समेत्य मुनिं मार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ । ताटका निहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना ॥८॥ रामेणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदा सदा । यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः॥९॥ मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तो बाणवेगतः । एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम् ॥१०॥ गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मणकौशिकाः।**

श्रीराच चरित का वर्णन

जनमेजय ने कहा– श्रीराम ने किस प्रकार से सुखप्रद देवी के व्रत को किया ? वे किस तरह से राज्यभ्रष्ट हुए तथा सीता का हरण कैसे हुआ ?॥१॥ **व्यासजी ने कहा–** प्राचीन काल में देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाले सूर्यवंश के श्रेष्ठ राजा अयोध्यापति महाराज दशरथ हुए ॥२॥ उनके चार पुत्र हुए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥३॥ सबके सब महाराज दशरथ को प्रिय थे और रूप तथा गुण में सब एक समान थे । कौसल्या के पुत्र श्रीराम थे और कैकेयी के पुत्र का नाम भरत था ॥४॥ सुमित्रा के दो जुड़वे पुत्र हुए लक्ष्मण और शत्रुघ्न । वे देखने में अत्यन्त सुन्दर थे । किशोरावस्था प्राप्त करके वे चारो पुत्र धनुषबाण धारी हो गये ॥५॥ बड़े होने पर महाराज दशरथ ने उन सबों का संस्कार कर दिया । उन सबों को देखकर महाराज दशरथ को सुख मिलता था । महर्षि विश्वामित्र ने आकर महाराज दशरथ से सोलह वर्ष की अवस्था वाले श्रीराम को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए माँगा महाराज दशरथ ने विश्वामित्र महर्षि को अपने पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण को सौंप दिया ॥६-७॥ मनोहर श्रीराम और लक्ष्मण ने महर्षि विश्वामित्र के साथ जाते हुए मार्ग में भयंकर आकार वाली तथा मुनियों को दुःख देने वाली तटका का एक ही बाण से वध कर दिया । महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते समय उन्होंने सुबाहु का वध किया ॥८-९॥ मृतप्राय मारीच को अपने बाण के वेग से उन्होंने दूर फेंक दिया । इस तरह से यज्ञ की रक्षा रूपी महान कर्म करके वे राम,

अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताऽबला ॥११॥ विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह । बभंज शिवचापं च जनकेन पणीकृतम् ॥१२॥ उपयेमे ततः सीतां जानकीं च रमांशजाम् । लक्ष्मणाय ददौ राजा पुत्रीमेकां तथोर्मिलाम् ॥१३॥ कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतुर्भ्रातरावुभौ । तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभलक्षणौ ॥१४॥ एवं दारक्रियास्तेषां भ्रातॄणां चाभवन्नृप । चतुर्णां मिथिलायां तु यथाविधिविधानतः ॥१५॥ राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजा दशरथस्तदा । राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै ॥१६॥ संभारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्वकल्पितौ । वरौ सम्प्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम् ॥१७॥ राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने । रामाय वनवासं च चतुर्दश समास्तथा ॥१८॥ रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुतः । जगाम दण्डकारण्यं राक्षसैरुपसेवितम् ॥१९॥ राजा दशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः । जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन्॥२०॥ भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै । राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥२१॥ पंचवट्यां वसन् रामो रावणावरजां वने । शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिस्मरातुराम् ॥२२॥ खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः । चक्रुः संग्राममतुलं रामेणामिततेजसा ॥२३॥ स जघान

लक्ष्मण और महर्षि विश्वामित्र मिथिला चले गये । रास्ते में श्रीराम ने अबला अहल्या को पाप से मुक्त किया ॥१०-११॥ इसके बाद वे जनकराज विदेह के नगर में गये और वहाँ पर पण के रूप में रखे गये भगवान् शंकर के धनुष को तोड़ा ॥१२॥ श्रीराम ने लक्ष्मी के अंश स्वरूपिणी सीता के साथ विवाह किया । महाराज जनक ने अपनी एक पुत्री उर्मिला का विवाह लक्ष्मण के साथ किया । कुशध्वज की माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति नामक दो पुत्रियों का विवाह सुशील तथा शुभलक्षण से युक्त भरत तथा शत्रुघ्न के साथ हुआ ॥१३-१४॥ राजन् इस तरह से उन चारों का विवाह मिथिला में ही विधिविधान से सम्पन्न हो गया ॥१५॥ महाराज दशरथ ने राज्य के योग्य श्रीराम को देखकर राज्य का भार उनको देना चाहा ॥१६॥ राजा बनाने की तैयारी देखकर राजा को अपने वश में रखने वाली कैकेयी ने पहले से ही निश्चित किए गये दो वरदानों को राजा से माँग लिया ॥१७॥ एक वरदान के रूप में अपने पुत्र भरत के लिए राज्य माँगा और दूसरे वरदान के रूप में श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास माँगा ॥१८॥ कैकेयी की बात को मानकर श्रीराम सीता तथा लक्ष्मण के साथ राक्षसों के निवास स्थान दण्डकारण्य में चले गये ॥१९॥ महाराज दशरथ ने अपने पुत्र के विरह से दुःखी होकर पहले के शाप का स्मरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२०॥ अपनी माता के कारण अपने पिता को मरा हुआ देखकर भरत अपने भाई का प्रिय करने की इच्छा से उस समृद्ध राज्य को नहीं स्वीकार किये ॥२१॥ पञ्चवटी में निवास करते समय श्रीराम ने रावण की छोटी बहन अत्यन्त कामुकी शूर्पणखा को उसके नाक-कान काटकर विरूप बना दिया ॥२२॥ नाक और कान से विहीन शूर्पणखा को देखकर खर आदि राक्षसों ने अत्यन्त तेजस्वी श्रीराम के साथ युद्ध किया ॥२३॥ सत्य

खरादींश्च दैत्यानतिबलान्वितान् । मुनीनां हितमन्विच्छन् रामः सत्यपराक्रमः ॥२४॥ गत्वा शूर्पणखा लंकां खरदूषणघातनम् । दूषिता कथयामास रावणाय च राघवात् ॥२५॥ सोऽपि श्रुत्वा विनाशं तं जातः क्रोधवशः खलः । जगाम रथमारुह्य मारीचस्याश्रमं तदा ॥२६॥ कृत्वा हेममृगं नेतुं प्रेषयामास रावणः । सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनमसंभवम् ॥२७॥ सोऽथ हेममृगो भूत्वा सीतादृष्टिपथं गतः । मायावी चातिचित्रांगश्चरन्प्रबलमंतिके॥२८॥ तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता । चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा ॥२९॥ अविचार्याथ रामोऽपि तत्र संस्थाप्य लक्ष्मणम् । सशरं धनुरादाय ययौ मृगपदानुगः ॥३०॥ सारंगोऽपि हरिं दृष्ट्वा मायाकोटिविशारदः । दृश्यादृश्यो बभूवाथ जगाम च वनान्तरम् ॥३१॥ मत्वा हस्तगतं रामः क्रोधाकृष्टधनुः पुनः । जघान चातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमं मृगम् ॥३२॥ स हतोऽतिबलात्तेन चुक्रोश भृशदुःखितः । हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति मायावी नश्वरः खलः ॥३३॥ स शब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्या संश्रुतस्तदा । राघवस्येति सा मत्वा दीना देवरमब्रवीत् ॥३४॥ गच्छ लक्ष्मण तूर्णं त्वं हतोऽसौ रघुनन्दनः । त्वामाह्वयति सौमित्रे साहाय्यं कुरु सत्वरम् ॥३५॥ तत्राह लक्ष्मणः सीतामंब रामवधादपि । नाहं गच्छेऽद्य मुक्त्वा त्वामसहायामिहाश्रमे ॥३६॥ आज्ञा मे राघवस्यात्र तिष्ठेति जनकात्मजे । तददतिक्रमभीतोऽहं

पराक्रम श्रीराम ने मुनियों का कल्याण करने की इच्छा से अत्यन्त बलवान् खर इत्यादि का बध कर दिया ॥२४॥ विरूप शूर्पणखा ने लङ्का जाकर श्रीराम के द्वारा खर तथा दूषण के वध की बात रावण को बतलाया ॥२५॥ उस विनाश कथा को सुनकर दुष्ट रावण क्रुद्ध हो गया और रथ पर बैठकर वह मारीच नामक राक्षस के आश्रम में गया ॥२६॥ मायावी मारीच को असंभव सुवर्ण का मृग बनाकर रावण ने सीता को प्रलोभभित करने के लिए भेजा ॥२७॥ मारीच सुवर्ण का मृग बनकर सीता की आँखों के सामने गया । अद्भुत अङ्गों को धारण करके वह मायावी मारीच सीता के सन्निकट में ही चरने लगा ॥२८॥ उसको देखकर दैव से प्रेरित सीता ने स्वाधीनपतिका के समान श्रीराम से कहा कि इस मृग का चर्म ले आइये ॥२९॥ राम भी बिना विचार किए ही वहाँ लक्ष्मण को रखकर धनुषबाण धारण करके मृग का पीछा करने लगे ॥३०॥ अनेक प्रकार की माया करने में दक्ष वह मृग भी कभी दृश्य तथा कभी अदृश्य होते हुए दूसरे वन में पहुँच गया ॥३१॥ मृग को सन्निकट में देखकर श्रीराम ने क्रोध से धनुष को खींचकर उस कृत्रिम मृग को अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से मारा॥३२॥ श्रीराम के प्रबल प्रहार से अत्यन्त दुःखी मरते हुए दुष्ट ने जोर से चिल्लाया हा ! लक्ष्मण मैं मारा गया ॥३३॥ उस जोर की आवाज को सीताजी ने सुना । उन्होंने समझा कि यह श्रीराम की आवाज है । वे दुखी होकर लक्ष्मण से कहीं ॥३४॥ लक्ष्मण तुम शीघ्र जाओ श्रीराम मारे गये । वे तुमको बुला रहे हैं, जाकर उनकी सहायता करो ॥३५॥ लक्ष्मण ने कहा माँ ! यदि श्रीराम का बध हो भी गया तो मैं आपको अकेला छोड़कर

न त्यजामि तवांतिकम् ॥३७॥ दूरं वै राघवं दृष्ट्वा वने मायाविना किल । त्यक्त्वा त्वां नाधिगच्छामि पदमेकं शुचिस्मिते॥३८॥ कुरु धैर्यं न मन्येऽद्य रामं हंतुं क्षमं क्षितौ । नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामि विलंघ्य रामभाषितम् ॥३९॥ व्यास उवाच– **रुदती सुदती प्राह तं तदा विधिनोदिता । अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥४०॥ अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति । प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह संगतम्॥४१॥ नाहं तथाविधा नारी स्वैरिणी कुहकाधम । मृते रामे पतिं त्वां न कर्तुमिच्छामि कामतः ॥४२॥ नागमिष्यति चेद्रामो जीवितं संत्यजाम्यहम् । विना तेन न जीवामि विधुरा दुःखिता भृशम् ॥४३॥ गच्छ वा तिष्ठ सौमित्रे न जानेऽहं तवेप्सितम् । क्व गतं तेऽत्र सौहार्दं ज्येष्ठे धर्मरते किल ॥४४॥ तच्छुत्वा वचनं तस्या लक्ष्मणो दीनमानसः । प्रोवाच रुद्धकंठस्तु तां तदा जनकात्मजाम् ॥४५॥ किमात्थ क्षितिजे वाक्यं मयि क्रूरतरं किल । किं वदस्यत्यनिष्टं ते भावि जाने धिया ह्यहम् ॥४६॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ वीरस्तां त्यक्त्वा प्ररुदन्भृशम् । अग्रजस्य ययौ पश्यञ्शोकार्तः पृथिवीपते॥४७॥ गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटाकृतिः । भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे ॥४८॥ जानकी तं यतिं मत्वा दत्त्वार्घ्यं वन्यमादरात् । भैक्ष्यं**

नहीं जा सकता हूँ ।३६।। हे सीते ! श्रीराम ने मुझे यहाँ ही रहने का आदेश दिया है । उनकी आज्ञा के उल्लंघन के भय से मैं आपके सन्निकट से नहीं जा सकता हूँ ।।३७।। वह मायावी श्रीराम को दूर दौड़ा ले गया है अतएव हे शुचिस्मिते ! मैं आपको छोड़कर यहाँ से एक पग भी नहीं जा सकता हूँ।।३८।। आप धैर्य रखें । पृथिवी पर कोई भी श्रीराम को मारने में समर्थ नहीं है । अतएव श्रीराम की आज्ञा का उल्लंन करके मैं नहीं जा सकता हूँ ।।३९।। **व्यासजी ने कहा–** भाग्य से प्रेरित सुन्दर दाँतों वाली तथा अक्रूर स्वभाव वाली भी सीता ने रोते हुए शुभलक्षणों से सम्पन्न लक्ष्मण से क्रूरता भरी बातों को कहा।।४०।। लक्ष्मण मैं जानती हूँ कि तुम भरत के द्वारा प्रेरित होकर मुझपर मोहित होकर मुझे प्राप्त करने के लिए साथ में आये हो ।।४१।। अरे कुलाधम! मैं कोई कुलटा नारी नहीं हूँ । अतएव राम के मर जाने पर मैं तुम्हें अपना पति नहीं बना सकती हूँ ।।४२।। यदि राम नहीं आये तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगी, उनके विना विधवा होकर मैं अत्यन्त दुःखी होने के कारण जीवित नहीं रहूँगी ।।४३।। लक्ष्मण ! तुम जाओ या रहो मैं तुम्हारी इच्छा को नहीं जानती हूँ । तुम्हारा अपने धर्मात्मा ज्येष्ठ भाई के प्रति प्रेम कहाँ गया ?।।४४।। सीता की बातों को सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुए । उनका गला रुँध गया। और उन्होंने सीता से कहा ।।४५।। सीते ! आपने मुझे इतना कठोर बात क्यों कहा है ? मुझे लगता है कि आपका अत्यन्त अनिष्ट होने वाला है ।।४६।। यह कहकर लक्ष्मण अत्यधिक रोते हुए निकल पड़े । हे राजन् ! वे अत्यन्त शोकार्त होकर अपने बड़े भाई श्रीराम के पास गये ।।४७।। लक्ष्मण के चले जाने पर कपटी रावण भिक्षुक का वेष बनाकर उस आश्रम में प्रवेश किया ।।४८।। जानकी ने उसे संन्यासी समझकर आदरपूर्वक उसको वन्य पदार्थों से

समर्पयामास रावणाय दुरात्मने ॥४९॥ तां पप्रच्छ स दुष्टात्मा नम्रपूर्वं मृदुस्वरम् । काऽसि पद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनी प्रिये ॥५०॥ पिता
कस्तेऽथ वामोरु भ्राता कः कः पतिस्तव । मूढे वैकाकिनी चात्र स्थिताऽसि वरवर्णिनी ॥५१॥ निर्जने विपिने किं त्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये ।
उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा ॥५२॥ व्यास उवाच– इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विदेहजा । दिव्यं दिष्ट्या यतिं ज्ञात्वा मंदोदर्याः पतिं
तदा॥५३॥ राजा दशरथः श्रीमांश्चत्वारस्तस्य वै सुताः । तेषां ज्येष्ठः पतिर्मेऽस्ति रामनामेति विश्रुतः ॥५४॥ विवासितोऽथ कैकेय्या कृते
भूपतिना वरे । चतुर्दश समा रामो वसतेऽत्र सलक्ष्मणः ॥५५॥ जनकस्य सुता चाहं सीतानाम्नीति विश्रुता ॥५४॥ भंक्त्वा शैवं धनुः कामं
रामेणाहं विवाहिता ॥५६॥ रामबाहुबलेनात्र वसामो निर्भया वने । काञ्चनं मृगमालोक्य हंतुं मे निर्गतः पतिः ॥५७॥ लक्ष्मणोऽपि पुनः श्रुत्वा
रवं भ्रातुर्गतोऽधुना । तयोर्बाहुबलेनात्र निर्भयाऽहं वसामि वै ॥५८॥ मयेदं कथितं सर्वं वृत्तान्तं वनवासके । तेऽत्रागत्यार्हणां ते वै करिष्यंति
यथाविधि ॥५९॥ यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया । आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले ॥६०॥ तस्मात्त्वां परिपृच्छामि सत्यं
ब्रूहि ममाग्रतः । कोऽसि त्रिदंडिरूपेण विपिने त्वं समागतः ॥६१॥ रावण उवाच– लंकेशोऽहं मरालाक्षि श्रीमान्मंदोदरीपतिः । त्वत्कृते तु कृतं

अर्ध्य प्रदान किया और दुष्ट रावण को भिक्षा प्रदान किया ॥४९॥ उस समय रावण ने सीताजी से नम्र स्वर में पूछा हे कमलनयनी ! तुम कौन है ? और
तुम्हारा पति कौन है । हे सुन्दरि ! तुम अकेले यहाँ क्यों रहती हो ॥५१॥ हे प्रिये ! तुम तो महल में रहने योग्य हो इस निर्जन वन में क्यों रहती हो?।
तुम देवकन्या के समान कान्तिवाली हो और मुनिपत्नी के समान झोपड़ी में रहती हो ॥५२॥ **व्यासजी ने कहा–** रावण की बातों को सुनकर उसे उत्तर देते
हुए सीताजी ने रावण को दिव्य दृष्टि सम्पन्न सन्यासी मानकर कहा ॥५३॥ महाराज दशरथ के चार पुत्र हैं । उनमें सबसे बड़े श्रीराम के नाम से प्रख्यात
मेरे पति हैं ॥५४॥ महाराज दशरथ से वरदान प्राप्त करके कैकेयी ने इनको चौदह वर्षों का वनवास दे दिया । यहाँ श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के
साथ रहते हैं ॥५५॥ मैं महाराज जनक की पुत्री सीता हूँ । राम ने शंकर का धनुष तोड़कर मेरे साथ विवाह किया ॥५६॥ श्रीराम की भुजाओं के बल
पर हमलोग यहाँ वन में निवास करते हैं । सुवर्णमृग को देखकर मेरे पति उसे मारने के लिए गये हैं ॥५७॥ लक्ष्मण भी अपने भाई की ध्वनि सुनकर
उनके पास चले गये हैं । उन दोनों के बाहुबल पर मैं यहाँ निर्भय होकर वन में रहती हूँ ॥५८॥ मैंने अपने वनवास का सारा समाचार आपको बतला
दिया । वे दोनों आकर आपकी सविधि पूजा करेंगे ॥५९॥ आप विष्णु स्वरूप यति हैं, अतएव मैंने आपकी पूजा की है । मेरा आश्रम घोर वन में हैं, यहाँ
राक्षसों का निवास है ॥६०॥ अतएव मैं आपसे पूछती हूँ, आप सत्य बतलाइये । आप त्रिदण्डि के रूप में कौन हैं ? और वन में क्यों आये हैं ?॥६१॥

रूपं मयेत्थं शोभनाकृते ॥६२॥ आगतोऽहं वरारोहे भगिन्या प्रेरितोऽत्र वै । जनस्थाने हतो श्रुत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ ॥६३॥ अंगीकुरु नृपं मां त्वं त्यक्त्वा तं मानुषं पतिम् । हृतराज्यं गतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम् ॥६४॥ पट्टराज्ञी भव त्वं मे मंदोदर्युपरि स्फुटम् । दासोऽस्मि तव तन्वंगि स्वामिनी भव भामिनी ॥६५॥ जेताऽहं लोकपालानां पतामि तव पादायोः । करं गृहाण मेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि ॥६६॥ पिता ते याचितः पूर्वं माया वै त्वत्कृतेऽबले । जनको मामुवाचेत्थं पणबंधो मया कृतः ॥६७॥ रुद्रचापभयान्नाहं संप्राप्तस्तु स्वयंवरे । मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम् ॥६८॥ वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः । अगतोऽस्म्यसितापांगि सफलं कुरु मे श्रमम् ॥६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

रावण ने कहा– हे हंस के समान नेत्रों वाली ! मैं लकाधिपति तथा मंदोदरि का पति रावण हूँ । हे सुन्दरी ! मैंने तुम्हारे लिए ही यह रूप बनाया है ॥६२॥ अपनी बहन से प्रेरित होकर मैं यहाँ आया हूँ । इस जनस्थान में मेरे दो भाई खर और दूषण मार दिए गये हैं ॥६३॥ तुम राज्य से निकाले गये, निःश्रीक निर्बल तथा वनवासी मनुष्य राम का परित्याग करके मुझे अपना पति बना लो मैं राजा हूँ ॥६४॥ तुम मन्दोदरी से भी बड़ी मेरी महारानी बन जाओ । सुन्दरि मैं तुम्हारा दास हूँ और तुम मेरी स्वामिनी बन जओ ॥६५॥ मैंने लोकपालों पर भी विजय प्राप्त की है मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ । हे जानकि ! तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सनाथ कर दो ॥६६॥ मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे पिता से याचना की थी, किन्तु उन्होंने कहा कि मैंने शर्त रखी है ॥६७॥ शंकर जी के धनुष के भय से मैं तुम्हारे स्वयम्बर में नहीं आया; किन्तु विरह से व्याकुल मेरा मन तुम में लगा रहा ॥६८॥ हे सुन्दरि ! तुमको यहाँ वन में स्थित जानकर पहले के प्रेम के कारण मैं यहाँ आया हूँ । तुम मेरा परिश्रम सफल करो ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **तदाकर्ण्य वचो दुष्टं जानकी भयविह्वला । वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनो वाचमुवाच ह ॥१॥ पौलस्त्य किमसद्वाक्यं त्वमात्थ
स्मरमोहितः । नाहं वै स्वैरिणी किंतु जनकस्य कुलोद्भवा ॥२॥ गच्छ लंकां दशास्य त्वं रामस्त्वां वै हनिष्यति । मत्कृते मरणं तेऽत्र भविष्यति
न संशयः ॥३॥ इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ । गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम् ॥४॥ सोऽथ कृत्वा निजं रूपं
जगामोटजमंतिकम् । बलाज्जग्राह तां बालां रुदतीं भयविह्वलाम् ॥५॥ रामरामेति क्रंदंती लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः । गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य
सत्वरः ॥६॥ गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रूद्धो जटायुषा । संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वानंतरे ॥७॥ हत्वा तं तां गृहीत्वा च गतोऽसौ राक्षसाधिपः।
लंकायां क्रन्दती तात कुररीव दुरात्मना ॥८॥ अशोकवनिकायां सा स्थापिता राक्षसीयुता । स्ववृत्तान्नैव चलिता साम दानादिभिः किल ॥९॥
रामोऽपि तं मृगं हत्वा जागामादाय निर्वृतः । आयांतं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम् ॥१०॥ एकाकिनीं प्रियां हित्वा किमर्थं त्वमिहागतः।
श्रुत्वा स्वनं तु रामस्य राघवस्त्वब्रवीदिदम् ॥११॥ सोमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणपीडितः । प्रभोऽत्राहं समायातः कालयोगान्न संशयः॥१२॥**

सीताहरण और श्रीराम का विलाप

व्यासजी ने कहा– रावण की दुष्टवाणी को सुनकर कांपती हुई सीता ने अपना मन स्थिर करके कहा ॥१॥ हे महर्षि पुलस्त्य के वंशज रावण ! तुम काममोहित होकर ऐसी बुरी बात क्यों कह रहे हो । मैं जनक के वंश में उत्पन्न हुई हूँ मैं कोई वेश्या नहीं हूँ ॥२॥ रावण ! तुम शीघ्र लंका लौट जाओ अन्यथा राम तुम्हें मार डालेंगे । मेरे ही कारण तुम्हारा यहाँ मरना ठीक नहीं है ॥३॥ यह कह कर सीता संसार को दुःख देने वाले रावण को चले जाओ चले जाओ कहती हुई पर्णशाला (कुटिया) में अग्नि के सन्निकट चली गयीं ॥४॥ उसके बाद रावण ने अपना रूप धारण करके कुटिया के भीतर जाकर भयभीत तथा रोती हुई सीता को पकड़ लिया ॥५॥ शीघ्र ही बार-बार हे राम ! तथा हे लक्ष्मण ! कहकर चिल्लाती हुई सीता को पापी रावण रथ पर बैठाकर वहाँ से चल पड़ा ॥६॥ जाते समय रास्ते में अरुण के पुत्र जटायु के द्वारा रोके जाने पर वन में ही रावण और जटायु का भयंकर युद्ध हुआ॥७॥ जटायु को मारकर कुररी के समान रोती हुई सीता को लेकर राक्षसों के राजा दुष्ट रावण लंका चला गया ॥८॥ उसने राक्षसियों के साथ सीता को अशोक वाटिका में रखा; किन्तु सीता रावण के साम और दान से मोहित नहीं हुई ॥९॥ श्रीराम भी मृग को मारकर तथा उसे लेकर लौटे । मार्ग में आते हुए लक्ष्मण को देखकर उन्होंने कहा अरे ! तुमने यह क्या किया ?॥१०॥ प्रिया सीता को अकेले छोड़कर तुम यहाँ क्यों आ गये ? श्रीराम की बातों को सुनकर लक्ष्मण

तदा तौ पर्णशालायां गत्वा वीक्ष्यातिदुःखितौ । जानक्यन्वेषणे यत्नमुभौ कर्तुं समुद्यत्तौ ॥१३॥ मार्गमाणौ तु संप्राप्तौ यत्रासौ पतितः खगः ।
जटायुः प्राणशेषस्तु पतितः पृथिवीतले ॥१४॥ तेनोक्तं रावणेनाद्य हृताऽसौ जनकात्मजा । मयानिरुद्धः पापात्मा पातितोऽहं मृधे पुनः ॥१५॥
इत्युक्त्वाऽसौ गतप्राणः संस्कृतो राघवेण वै । कृत्वौर्ध्वदैहिकं रामलक्ष्मणौ निर्गतौ ततः ॥१६॥ कबंधंघातयित्वाऽसौ शापाच्चामोचयत्प्रभुः ।
वचनात्तस्य हरिणा सख्यं चक्रेऽथ राघवः ॥१७॥ हत्वा च वालिनं वीरं किष्किंधाराज्यमुत्तमम् । सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः॥१८॥
तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः । चिंतयञ्जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम् ॥१९॥ लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः । सौमित्रे
केकयसुता जाता पूर्णमनोरथा ॥२०॥ न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना । नगमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनंदिनीम् ॥२१॥ गतं राज्यं
वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया । पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति ॥२२॥ दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भरतानुज । आवयोः का
गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा ॥२३॥ प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल । वनेऽति दुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च ॥२४॥ त्यक्त्वा

ने कहा ॥११॥ हे प्रभो ! सीताजी की वाणी से पीड़ित होकर कालवशात् मैं यहाँ आया हूँ ॥१२॥ उसके बाद श्रीराम और लक्ष्मण पर्णशाल में जाकर
और सीता को न देखकर अत्यन्त दुःखी हुए और सीता को खोजने का प्रयास करने लगे ॥१३॥ सीता को खोजते हुए वे वहाँ आये जहाँ रास्ते में जटायू
गिरे थे । पृथिवी पर गिरे हुए जटायू के केवल प्राण बचे थे ॥१४॥ जटायू ने बतलाया कि सीता का रावण ने हरण कर लिया है । मेरे द्वारा रोके जाने
पर उसने युद्ध में मुझे मार दिया ॥१५॥ यह कहकर जटायू की मृत्यु हो गयी और श्रीराम ने उसका दाह संस्कार किया । जटायू का और्ध्वदैहिक संस्कार
करके श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ से चल पड़े ॥१६॥ कबन्ध का बध करके श्रीराम ने उसे शापमुक्त बना दिया । कबन्ध के ही कहने से श्रीराम ने सुग्रीव
से मित्रता की ॥१७॥ श्रीराम ने वीर बाली का बध करके किष्किन्धा का उत्तम राज्य अपने मित्र सुग्रीव को दे दिया ॥१८॥ वहीं पर रावण के द्वारा हरण
की गयी सीता की चिन्ता करते हुए उन्होंने लक्ष्मण के साथ वर्षा के महीनों को बिताया ॥१९॥ सीता के विरह से पीड़ित होकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा
कि लक्ष्मण ! कैकेयी का मनोरथ पूरा हो गया ॥२०॥ यदि जानकी नहीं मिली तो मैं जी नहीं सकता हूँ और न तो सीता के बिना मैं अयोध्या ही
जाऊँगा॥२१॥ मेरा राज्य चला गया, मेरे पिताजी की मृत्यु हो गयी और मेरी पत्नी का अपहरण हो गया । इस तरह मुझे दुःख देने वाला दुष्ट भाग्य न
जाने आगे क्या करने वाला है ?॥२२॥ हे लक्ष्मण ! भवितव्यता को जानना बड़ा ही कठिन है । हे तात ! अत्यधिक दुःख देने वाली
न जाने हम दोनों की कौन सी गति होगी ?॥२३॥ मनु के वंश में जन्म लेकर हम दोनों राजकुमार अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार बन में अत्यन्त दुःख

त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः । दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम् ॥२५॥ न कोऽप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः । अकिंचनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति ॥२६॥ किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे । न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल॥२७॥ न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः । कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेऽस्मिन्स्वकृतेऽनुज ॥२८॥ गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिंद्रयमोपमम्। वने वासस्तु संप्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम् ॥२९॥ बालभावाच्च वैदही चलिता चावयोः सह । नीता दैवेन दुष्टेन श्यामा दुःखतरां दशाम्॥३०॥ लंकेशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखे भविष्यति । पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम् ॥३१॥ न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत् । स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा ॥३२॥ त्यजेत्प्राणान्नियंतृत्वे मैथिली भरतानुज । न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम् ॥३३॥ मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । मृता चेदसितापाङ्गी किं मे देहेन लक्ष्मण ॥३४॥ एवं विलपमानं तं रामः कमललोचनम् । लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सांत्वयन्नृतया गिरा ॥३५॥ धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह । आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम् ॥३६॥ आपदि संपदि तुल्या धैर्याद्भवंति ते धीराः । अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवंति विभवेऽपि ॥३७॥ संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि । शोकस्तु

भोग रहे हैं ॥२४॥ हे लक्ष्मण ! तुम भी भोगों का त्याग करके मेरे साथ वन में चले आए । अब भाग्यानुसार अत्यधिक कष्टों को भोगो ॥२५॥ हमारे वंश में मेरे समान दुःखी अकिंचन और असमर्थ न तो कोई मनुष्य हुआ और न तो होगा ॥२६॥ हे सौमित्र ! मैं क्या करूँ, दुःख के सागर में डूब रहा हूँ । मैं असहाय हूँ, इस दुःख से पार पाने का कोई भी उपाय नहीं है ॥२७॥ हे वीर ! मेरे पास न तो सम्पत्ति है और न बल है । मेरे साथ रहने वाले केवल तुम हो । इस दुःख को भोगने में मैं किस पर क्रोध करूँ ॥२८॥ इन्द्र तथा यम के राज्य के समान हाथ में आया हुआ विशाल राज्य क्षण भर में चला गया । अब वन में रहना पड़ता है भाग्य के विधान को कौन जानता है ?॥२९॥ अपने स्वभाव के कारण सुन्दरी सीता हम दोनों के साथ चली आयी । दुष्ट दैव ने उसे भी दुःख की स्थिति में पहुँचा दिया ॥३०॥ पतिव्रता, सुशीला और मुझसे अत्यन्त प्रेम करने वाली सीता रावण के घर न जाने कितना दुःख भोगती होगी ॥३१॥ लक्ष्मण ! सीता कभी भी रावण की वशवर्तिनी नहीं होगी । महाराज जनक की पुत्री कुलटा का आचरण कैसे कर सकती है ?॥३२॥ बहुत अधिक दबाव पड़ने पर सीता अपने प्राणों का परित्याग कर देगी; किन्तु वह रावण की वशवर्तिनी नहीं हो सकती है । यह निश्चित है॥३३॥ हे वीर ! यदि जानकी मर गयी तो मैं भी अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा । लक्ष्मण ! सीता के मर जाने पर मेरे इस शरीर का क्या प्रयोजन है ?॥३४॥ इस तरह से विलाप करने वाले कमल के समान नेत्र वाले श्रीराम को सांत्वना प्रदान करते हुए लक्ष्मण ने कहा ॥३५॥ हे महाबाहो ! आप

कीदृशस्तत्र देहेऽनात्मनि च क्वचित् ॥३८॥ राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा । तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति ॥३९॥
प्राप्तव्यं सुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित् । नान्यथा जानकीजाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना ॥४०॥ वानराः सन्ति भूयांसो गमिष्यन्ति चतुर्दिशम्।
शुद्धिं जनकनन्दिन्या आनयिष्यन्ति ते किल ॥४१॥ ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र गत्वा कृत्वा पराक्रमम् । हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम्॥४२॥
ससैन्यं भरतं वाऽपि समाहूय सहानुजम् । हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाऽग्रज ॥४३॥ रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा । तद्वंशजः
कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव ॥४४॥ एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान् । किं पुनः ससहायो वै रावणं कुलपांसनम् ॥४५॥ जनकं वा
समानीय साहाय्ये रघुनन्दन । हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकंटकम् ॥४६॥ सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्रनेमिरिवैकं तन्न
भवेद्रघुनन्दन ॥४७॥ मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखसमुद्भवे । स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन ॥४८॥ इन्द्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै
रघुनन्दन । नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे ॥४९॥ स्थितः पंकजमध्ये च बहुवर्षगणानपि । अज्ञातवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम्॥५०॥

धैर्य धारण करें । अपनी कातरता का परित्याग करें । मैं रावण का वध करके सीता को लाऊँगा । विपत्ति और संपत्ति दोनों में एक समान रहने वाले धीर
पुरुष होते हैं । अज्ञानी जीव विपत्ति तथा सम्पत्ति दोनों में ही दुःखी होते हैं ॥३७॥ संयोग और वियोग तो भाग्याधीन होते हैं । आत्मा से भिन्न शरीर के
विषय में शोक क्या करना है ॥३८॥ जैसे राज्य से बन में वास हुआ, जिस तरह जानकी का हरण हुआ उसी तरह अच्छे समय के आने पर जानकी
का संयोग भी होगा ॥३९॥ हे जानकीजाने ! प्राप्त होने वाले सुख तथा दुःख तो भोगने ही पड़ते हैं । अतएव आप शोक का इस समय परित्याग कर
दें॥४०। बहुत अधिक बन्दर हैं । वे चारो दिशाओं में जाकर जनकनन्दिनी का पता लगा लायेंगे ॥४१॥ वहाँ के मार्ग की स्थिति को जानकर मैं वहाँ जाऊँगा
और पराक्रम पूर्वक उस पापी का वध करके मैथिली को लाऊँगा ॥४२॥ अथवा हे भैया ! सेना के साथ शत्रुघ्न और भरत को भी बुलाकर हमलोग शत्रु
का बध करेंगे, आप व्यर्थ क्यों शोक करते हैं ?॥४३॥ हे राघव ! महाराज रघु एक ही बार रथ पर बैठकर सभी दिशाओं को जीत लिए थे; उनके ही
वंशज होकर आप क्यों शोक करते हैं ?॥४४॥ मैं अकेले सम्पूर्ण देवों और दानवों को जीतने में समर्थ हूँ और आप जैसे सहायक के रहने पर कुलाधम
को मारने में क्या परेशानी है ?॥४५॥ अथवा हे रघुनन्दन ! मैं जनकजी को सहायता के लिए बुलाकर देवताओं के शत्रु रावण का वध करूँगा ॥४६॥
हे रघुनन्दन ! रथ के पहिये के समान सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आते-जाते रहते हैं, अकेले दुःख ही नहीं रहता है ॥४७॥ सुख तथा
दुःख के उत्पन्न होने पर जिसका मन अत्यन्त दुःखी हो जाता है, वह शोक के सागर में मग्न होने के कारण कभी भी सुखी नहीं होता है ॥४८॥ रघुनन्दन!

पुनः प्राप्तं निजं स्थानं काले विपरिवर्तिते । नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः ॥५१॥ इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमान्य च। अगस्त्यकोपात्संजातः सर्पदेहो महीपतिः ॥५२॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव । उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता ॥५३॥ सर्वज्ञोऽपि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते । किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि ॥५४॥ व्यास उवाच– इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः । त्यक्त्वा शोकं तथाऽत्यर्थं बभूव विगतज्वरः ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः । आजगाम तदाऽऽकाशान्नारदो भगवानृषिः ॥१॥ रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम्।

पूर्वकाल में इन्द्र पर बहुत अधिक विपत्ति आयी । उस समय सभी देवताओं ने इन्द्र पद पर नहुष को बैठाया ॥४९॥ भयभीत इन्द्र अपना पद छोड़कर अज्ञातवास करते हुए अनेक वर्षों तक कमलवन में छिपे रहे ॥५०॥ जब समय बदला तो फिर इन्द्र अपना पद प्राप्त कर लिए और अभिशप्त होकर नहुष अजगर बनकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥५१॥ इन्द्राणी को चाहने वाले नहुष ब्राह्मणों का अपमान करके महर्षि अगस्त्य के शाप के कारण सर्प का शरीर वाले हो गये ॥५२॥ हे राघव ! विपत्ति आने पर शोक न करके ज्ञानी को चाहिए कि उद्यम में अपने मन को लगाकर स्थिर रहे ॥५३॥ हे जगत्पते ! हे महाभाग! आप सर्वज्ञ तथा समर्थ हैं । आप सामान्य प्राणी के समान अत्यधिक शोक क्यों करते हैं ?॥५४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से लक्ष्मणजी के वाक्यों से श्रीभगवान् श्रीराम को सान्त्वना प्राप्त हुई और वे शोक का परित्याग करके पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये ॥५५॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभगवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

नारदजी द्वारा श्रीराम को नवरात्र व्रत करने का उपदेश

व्यासजी ने कहा– जब इस तरह से बातें करके श्रीराम और लक्ष्मण चुप हुए उसी समय ऐश्वर्य सम्पन्न ऋषि नारदजी आकाश से आये ॥१॥ स्वर

गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान् ॥२॥ दृष्ट्वां तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम् । आसनं चार्घ्यपाद्यं च कृतवानमितद्युतिः ॥३॥ पूजां परमिकां कृत्वा कृतांजलिरुपस्थितः । उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः ॥४॥ उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् । पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ॥५॥ कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः । हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना ॥६॥ सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम् । पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता ॥७॥ तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै । मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप ॥८॥ पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी । रावणेन वने दृष्टा तपस्यंती शुचिस्मिता ॥९॥ प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव । तिरस्कृतस्तयाऽसौ वै जग्राह कबरं बलात् ॥१०॥ शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम् । कुपिता त्यक्तुमिच्छंती देहसंस्पर्शदूषितम् ॥११॥ दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले । आयोनिजा वरा नारी त्यक्त्वा देहं जहावपि ॥१२॥ सेयं रमांशसुभृता गृहीता तेन रक्षसा । विनाशार्थं कुलस्यैव व्याली स्रगिव संभ्रमात् ॥१३॥ तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः । प्रार्थितस्य हरेरंशादजवंशेऽप्यजन्मनः ॥१४॥ कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा । सतीधर्मरता सीता त्वां ध्यायंती दिवानिशम् ॥१५॥ कमाधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम् । पानार्थं प्रेषितं

समूह से समलंकृत अपनी महती नामकी वीणा को बजाते हुए तथा बृहद्रथ साम का गायन करते हुए वे वहाँ आये ॥२॥ उनको देखकर भगवान् श्रीराम उठकर उन्हें आसन प्रदान किए तथा उनका अर्घ्य और पाद्य आदि से पूजन किये ॥३॥ अच्छी तरह से पूजा करके भगवान् श्रीराम हाथ जोड़कर खड़े हो गये और मुनि की आज्ञा पाकर वे उनके सन्निकट में बैठ गये ॥४॥ मन में दुःखी अपने भाई के साथ बैठे हुए श्रीराम से नारदजी ने कुशल पूछा ॥५॥ उन्होंने कहा राघव ! आप सामान्य मनुष्य के समान शोकार्त क्यों हैं ? मैं जानता हूँ कि दुष्ट रावण ने सीता का हरण कर लिया है ॥६॥ स्वर्गलोक में जाकर मैंने सुना कि अपनी मृत्यु को नहीं जानने वाले रावण ने मोहवशात् सीता का हरण कर लिया है ॥७॥ राघव आपका जन्म रावण का वध करने के लिए ही हुआ है । हे नराधिप ! इसीलिए मैथिली का हरण हुआ है ॥८॥ पूर्वजन्म में सीता मुनि की तपस्विनी पुत्री थी । उस सुन्दरी को रावण ने देखा॥९॥ हे राघव ! रावण ने उससे प्रार्थना किया कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ । उसने रावण का जब तिरस्कार किया तो रावण ने बलपूर्वक उसके बालों को पकड़ लिया ॥१०॥ उस तपस्विनी ने रावण के स्पर्श से दूषित अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा से क्रुद्ध होकर रावण को भयंकर शाप दे दिया॥११॥ उसने कहा दुष्ट तुम्हारा विनाश करने के लिए अयोनिजा होकर मैं पृथिवी पर जन्म लूँगी और यह कहकर उसने अपने शरीर का परित्याग कर दिया ॥१२॥ लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न उसी का अपहरण उसी तरह हुआ है जैसे कोई माला समझकर सर्पिणी को पकड़ ले ॥१३॥ हे काकुत्स्थ ! देवताओं की प्रार्थना

तस्याः पीतं चैवामृतं यथा ॥१६॥ सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता । जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया ॥१७॥ उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव । व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि सांप्रतम् ॥१८॥ नवरात्रोपवासं च भगवत्याः प्रपूजनम् । सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः॥१९॥ मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंकितैः । दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि ॥२०॥ विष्णुनाऽऽचरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा । तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै ॥२१॥ सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम् । विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै ॥२२॥ विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः । भृगुणाऽथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च ॥२३॥ गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम् । तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च ॥२४॥ इन्द्रेण वृत्रनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम् । त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुरा कृतम् ॥२५॥ हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते । विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतंद्रितः ॥२६॥ श्रीराम उवाच– **का देवि किं प्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया । व्रतं किं विधिवद्ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥२७॥** नारद उवाच– **शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी । सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी ॥२८॥ कारणं**

से अजन्मा भी आपका अज के वंश में जन्म रावण का विनाश करेने के लिए हुआ है ॥१४॥ आप धैर्य धारण करें । वहाँ सीता रावण के वश में नहीं होगी । सती के धर्म में स्थिर सीता आप का रात-दिन ध्यान करती हैं ॥१५॥ इन्द्र ने स्वयं कामधेनु के दूध को पात्र में करके उसे पीने के लिए भेजा और सीता ने उसे अमृत के समान पी लिया है ॥१६॥ मैंने स्वयं देखा है कि कामधेनु के दूध का पान करने से कमलनयनी सीता भूख तथा प्यास के कष्ट से रहित हैं ॥१७॥ राघव मैं रावण के विनाश का उपाय बतला रहा हूँ । आप श्रद्धापूर्वक आश्विन के महीने में व्रत करें ॥१८॥ हे राम ! जप तथा होम करते हुए नवरात्र भर उपवास तथा पूजन करना सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला है ॥१९॥ देवी को पवित्र पशुओं की बलिप्रदान करके तथा जप के दशांश होम करके आप शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे ॥२०॥ सर्वप्रथम इस व्रत को भगवान् विष्णु ने किया था उसके बाद शंकरजी ने तथा ब्रह्माजी ने किया तथा स्वर्ग में स्थित इन्द्र ने इस व्रत को किया ॥२१॥ हे राम ! सुखी व्यक्ति को इस व्रत को करना चाहिए । और जो कष्ट में हो उसे इस व्रत को विशेष रूप से करना चाहिए ॥२२॥ हे राम ! इस व्रत को महर्षि विश्वामित्र ने, महर्षि भृगु ने, वसिष्ठ ने तथा कश्यप महर्षि ने किया है ॥२३॥ पत्नी का हरण हो जाने पर बृहस्पति ने इस व्रत को किया था अतएव हे राजेन्द्र ! आप रावण का वध करने के लिए इस महाव्रत को करें ॥२४॥ वृत्रासुर का वध करने के लिए इन्द्र ने इस सर्वोत्तम व्रत को किया था तथा त्रिपुर नामक राक्षस का विनाश करने के लिए शिवजी ने भी इस व्रत को किया था ॥२५॥ हे महामते ! श्रीहरि ने मधुनामक राक्षस का विनाश करने के लिए सुमेरु पर्वत पर इस व्रत को किया था । अतएव काकुत्स्थ

सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनां रघूद्वह । तस्याः शक्तिं विना कोऽपि स्पंदितु न क्षमो भवेत् ॥२९॥ विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम । रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्या शक्तिः परा शिवा ॥३०॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये । तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिः कुतो भवेत्॥३१॥ न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः । न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः ॥३२॥ तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै । संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुणा शिवा ॥३३॥ सा भूत्वा सगुणा पश्चात्करोति भुवनत्रयम् । पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन्दत्त्वा शक्तींश्च सर्वशः ॥३४॥ तां ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् । सा विद्या परमा ज्ञेया वेदाद्या वेदकारिणी ॥३५॥ असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल । गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥३६॥ अकारादिक्षकारांतैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः । असंख्येयानि नामानि भवंति रघुनन्दन ॥३७॥ राम उवाच– **विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः । करोम्यद्यैव श्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याः पूजनं तथा ॥३८॥** नारद उवाच– **पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदम्बिकाम् । उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः ॥३९॥ आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्यस्मिन्महीपते । देवकार्यविधानार्थमुत्साहं**

आप सावधान रहकर इस व्रत को विधिपूर्वक करें ॥२६॥ श्रीराम ने पूछा– हे दयासागर ! आप तो सर्वज्ञ हैं । मुझे आप विधिवत् बतलाएँ कि वे देवी कौन हैं ? उनका प्रभाव कैसा है ? वे कहाँ उत्पन्न हुईं ? और उनका नाम क्या है ? और उनका व्रत कौन हैं ?॥२७॥ **नारदजी ने कहा–** हे राम ! आप सुनें वे देवि नित्य, सनातनी और आद्या देवी हैं । वे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली और पूजा करने पर दुःखों का विनाश कर देने वाली हैं॥२८॥ हे श्रीराम ! वे ब्रह्मा आदि देवों तथा सभी जीवों के कारण स्वरूप हैं । उनकी शक्ति के बिना कोई हिल डुल भी नहीं सकता है ॥२९॥ वे ही भगवान् विष्णु की पालन शक्ति तथा मेरे पिता ब्रह्माजी की कर्तृशक्ति हैं । वे रुद्र की संहारिका शक्ति हैं तथा वे ही पराशिवा भगवती हैं ॥३०॥ त्रैलोक्य, में जहाँ कहीं भी जड चेतनात्मक जो कुछ भी है, उन सभी वस्तुओं की जो शक्ति है, उसकी उत्पत्ति कहा से हो सकती है ॥३१॥ जब न ब्रह्माजी, न विष्णु भगवान्, न भगवान् शंकर, न सूर्य, न इन्द्र आदि देवता, न पृथिवी, न पर्वत कुछ भी नहीं रहता है, उस समय युग के प्रारम्भ में वे परा शिवा निगुर्णा भगवती परं पुरुष के साथ विहार करती हैं ॥३२-३३॥ उसके पश्चात् वे सगुण होकर त्रिभुवन को उत्पन्न करती हैं । सर्वप्रथम वे ब्रह्मा आदि देवताओं की सृष्टि करके उन्हें शक्तियों को प्रदान करती हैं ॥३४॥ उनका ज्ञान प्राप्त करके जीव संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । वे ही परमा विद्या, ज्ञेया, वेदज्ञा तथा वेदकारिणी हैं ॥३५॥ ब्रह्मा आदि ने उनके गुणों तथा कर्मों के अनुसार उनके असंख्य नामों की कल्पना की है मैं क्या बतलाऊँ ?॥३६॥ हे रघुनदंन!

प्रकरोम्यहम् ।।४०।। व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान् । कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाऽम्बिकां शिवाम् ।।४१।। विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान् हरिः । संप्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन्गिरिवरे तदा ।।४२।। उपवासपरो रामः कृतवान्व्रतमुत्तमम् । होमं च विधिवत्तत्र बलिदानं च पूजनम् ।।४३।। भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसंमतम् । अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा ।।४४।। सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता । गिरिशृङ्गे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा ।।४५।। मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता ।** देव्युवाच– **राम राम महाबाहो तुष्टाऽस्म्यद्य व्रतेन ते ।।४६।। प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते । नारायणांशसंभूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे ।।४७।। रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वमरैरसि । पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा घोरं च राक्षसम् ।।४८।। त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता । भूत्वा कच्छपरूपस्तु धृतवान्मन्दरं गिरिम् ।।४९।। अकूपारं प्रमंथानं कृत्वा देवानपोषयः । कोलरूपं परं कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम् ।।५०।। धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं**

अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त स्वरों तथा वर्णों का संयोग करने से उनके अनंत नाम हो जाते हैं ।।३७।। **श्रीराम ने कहा–** हे विप्रर्षे ! आप इस व्रत की विधियों को संक्षेप में मुझे बतलाएँ । मैं आज ही श्रद्धा पूर्वक उन देवी की पूजा करूँगा ।।३८।। **नारदजी ने कहा–** समतल स्थान पर सिंहासन बनाकर उस पर जगदम्बा की स्थापना करके नवदिन का आप सविधि उपवास करें ।।३९।। हे राजन् ! इस कार्य में मैं आचार्य रहूँगा । मेरा देवताओं के कार्य में अत्यधिक उत्साह रहता है ।।४०।। **व्यासजी ने कहा–** उस बात को सुनकर श्रीराम ने उस बात को सत्य मानकर सुन्दर सिंहासन बनवाकर और उस पर कल्याणकारिणी अम्बिका की स्थापना करके ।।४१।। व्रतधारी श्रीहरि ने विधिपूर्वक पूजा की जब आश्विन का महिना आया तो उस श्रेष्ठ पर्वत पर श्रीराम उपवास करते हुए उस उत्तम व्रत को किए । उन्होंने होम करके विधिपूर्वक बलि प्रदान तथा पूजन किया ।।४३।। नारदजी के मन के अनुसार दोनों भाइयों ने प्रेम पूर्वक व्रत किया । अष्टमी के दिन आधीरात को देवी ने पूजित होकर सिंह पर सवार होकर दर्शन दिया । और पर्वत के शिखर पर स्थित होकर अनुज के साथ विद्यमान श्रीराम से उन्होंने कहा ।।४४-४५।। भक्ति की भावना से संतुष्ट होकर देवी ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा **देवी ने कहा–** हे महाबाहो ! श्रीराम ! आपके व्रत से मैं प्रसन्न हूँ ।।४६।। आपके मन में जो हो वरदान माँगे । आप मनु के पवित्र वंश में भगवान् नारायण के अंश से उत्पन्न हुए हैं ।।४७।। देवताओं ने रावण का बध करने के लिए आपसे प्रार्थना की थी । प्राचीन काल में आपने मत्स्य का रूप धारण करके भयंकर राक्षस का वध किया ।।४८।। देवताओं का कल्याण करने के लिए आपने वेदों की रक्षा की थी । आपने कच्छप का रूप धारण करके मन्दराचल पर्वत को धारण किया था ।।४९।। आपने

जघान च । नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा ॥५१॥ प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव । वामनं वपुरास्थाय पुरा
छलितवान्बलिम्॥५२॥भूत्वेंद्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः । जमदग्निसुतस्त्वं मे विष्णोरंशेन संगतः ॥५३॥ कृत्वाऽन्तं क्षत्रियाणां तु दानं
भूमेरदाद्द्विजे । तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः ॥५४॥ प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वै रावणेनातिपीडितैः । कपयस्ते सहाया वै देवांशा
बलवत्तराः ॥५५॥ भविष्यन्ति नरव्याघ्रमच्छक्तिसंयुता ह्यमी । शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः ॥५६॥ भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्रत्वयाऽनघ।
वसन्ते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया ॥५७॥ हत्वाऽथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम् । एकादश सहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले ॥५८॥
कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गंतासि त्रिदिवं पुनः । व्यास उवाच– इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः ॥५९॥ समाप्य तद्व्रतं चक्रे पारणं
दशमीदिने । विजयापूजनं कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥६०॥ कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च प्रकटपरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः । उदधितटगतोऽसौ

समुद्र का मन्थन करके देवताओं का पोषण किया । आपने वराह का रूप धारण करके अपने दाँतों के ऊपर पृथिवी को धारण किया और हिरण्याक्ष का वध किया । प्राचीन काल में आपने नृसिंह का शरीर बनाकर हिरण्यकशिपु का वध किया ॥५०-५१॥ और प्रह्लाद की आपने रक्षा की । आपने वामन शरीर धारण करके बलि को छला ॥५२॥ और इन्द्र का अनुज बनकर आपने देवताओं के कार्य को सिद्ध किया । भगवान् विष्णु के अंश से युक्त महर्षि जमदग्नि का पुत्र बनकर ॥५३॥ क्षत्रियों का विनाश करके ब्राह्मण को पृथिवी का दान दे दिया । इसी तरह आप इस समय महाराज दशरथ के पुत्र हो गये हैं ॥५४॥ रावण के द्वारा अत्यधिक सताये गये देवताओं की प्रार्थना से राम बने हैं । देवताओं के अंश से सम्पन्न होने के कारण अत्यन्त बलवान वानर ही आपके सहायक होंगे । ये सब के सब वानर मेरी शक्ति से सम्पन्न होगें ॥५५॥ आपके ये अनुज रावण के पुत्र इन्द्रजित का बध करेंगे । ये शेष के अंशावतार हैं ॥५६॥ इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि आप इस कार्य को करेंगे । आप चैत्र के महीने में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरी पूजा कीजियेगा॥५५॥ आप पापी रावण को मारकर पृथिवी पर ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करें ॥५८॥ हे रघुश्रेष्ठ ! आप राज्य करके अपने लोक में चले जायेंगे। **व्यासजी ने कहा–** यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी और प्रसन्न मन से व्रत को समाप्त करके श्रीराम ने दशमी के दिन व्रत का पारण किया । उन्होंने विजया की पूजा करके अनेक प्रकार का दान दिया ॥६०॥ सुग्रीव की सेना से युक्त अपने अनुज के साथ श्रीपति साक्षात् परमा शक्ति के द्वारा प्रेरित होकर पूर्णकाम होकर समुद्र के तट पर गये । वहाँ पर सेतु का बन्धन करके रावण का वध किया ॥६१। जो व्यक्ति देवी के इस उत्तम चरित का श्रवण करता

सेतुबन्धं विधायात्यहनद मरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः ॥६१॥ यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम् । स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम्॥६२॥ सन्त्यन्यानि पुराणानि विस्तराणि बहूनि च । श्रीमद्भागवतस्यास्य न तुल्यानीति मे मतिः ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

॥ समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः॥

◆

है, वह लोक में बहुत अधिक भोगों को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त करता है ॥६२॥ व्यासजी कहते हैं कि यद्यपि अन्य भी बहुत विस्तृत पुराण हैं किन्तु वे देवीभागवत के समान नहीं हैं ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण का तीसरा स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

◆

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

चतुर्थः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ । प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन ॥१॥ शूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान् । श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान् ॥२॥ देवानामपि पूज्योऽभून्नाम्ना चानकदुन्दुभिः । कारागारे कथं बद्धः कंसस्य धर्मतत्परः॥३॥ देवक्या भार्यया सार्धं किमागः कृतवानसौ । देवक्या बालषट्कस्य विनाशश्च कृतः पुनः ॥४॥ तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च । कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः ॥५॥ गोकुले च कथं नीतो भगवान्सात्वतां पतिः । गतो जन्मांतरं कस्मात्पितरौ निगडे स्थितौ ॥६॥ देवकीवसुदेवौ च कृष्णस्यामिततेजसः । कथं न मोचितौ वृद्धौ पितरौ हरिणाऽमुना ॥७॥ जगत्कर्तुं समर्थेन स्थितेन जनकोदरे । प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेयं महात्मभिः ॥८॥ जन्म वै वासुदेवस्य यत्रासीत्परमात्मनः । के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता ॥९॥ शिलायां निर्गता व्योम्नि जाता त्वष्टभुजा पुनः । गार्हस्थ्यं च हरेर्ब्रूहि बहुभार्यस्य चानघ ॥१०॥ कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागं च तस्य वै । किंवदन्त्या श्रुतं यत्तन्मनो मोहयतीव**

जनमेजय के श्रीकृष्णावतार के विषय में प्रश्न

जनमेजय ने कहा– हे वासवी पुत्र, मुनियों में श्रेष्ठ समस्त ज्ञानों के आकर तथा निष्पाप तथा मेरे वंश की वृद्धि करने वाले महापुरुष व्यासजी मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मैंने सुना है कि शूरसेन के पुत्र श्रीवसुदेवजी के पुत्र श्रीहरि हुए ।।१-२।। इसलिए आनकुदन्दुभि (श्रीवसुदेव जी) देवताओं के भी पूज्य हो गये । धर्म का पालन करने वाले कंस के कारागार में कैसे बँध गये ।।३।। अपनी पत्नी देवकी देवी के साथ इन्होंने कौन सा अपराध किया था ? किञ्च देवकी के छह पुत्र उस ययाति के वंश में उत्पन्न कंस के द्वारा क्यों मार दिए गये ? श्रीहरि वासुदेव का कारागार में क्यों जन्म हुआ ?।।५।। भगवतों के स्वामी श्रीभगवान् गोकुल में क्यों लाये गये ? जन्म के पश्चात् भी उनकी माता-पिता क्यों जेल में बंधे रहे ?।।६।। अत्यन्त तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपने वृद्ध माता-पिता देवकी और वसुदेव को कारागार से क्यों नहीं मुक्त कराये ?।।७।। संसार की सृष्टि करने में समर्थ भगवान् क्यों गर्भ में आये ? उनका पूर्व जन्म का कौन सा पुण्य था जो महात्माओं के लिए दुर्विज्ञेय था ?।।८।। जहाँ पर भगवान् वासुदेव का जन्म हुआ उन वसुदेव के छह पुत्र कौन थे ? वह बालिका कौन थी जिसे कंस ने पत्थर पर पटक दिया और वह वहाँ से आकाश में जाकर आठ भुजाओं वाली हो गयी ?।।९-११।। हे अनघ आप अनेक पत्नियों वाले श्रीहरि के गार्हस्थ का वर्णन करे ।।१०।। उन्होंने वहाँ कौन सा कार्य किया तथा उन्होंने अपने शरीर का त्याग कैसे किया ? मैंने किं

मे ॥११॥ चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहि यथातथम् । नरनारायणौ देवौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥१२॥ धर्मपुत्रौ महात्मनौ तपश्चेरतुरुत्तमम् । यौ मुनी बहुवर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥१३॥ निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ । विष्णोरंशौ जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम् ॥१४॥ तयोरंशावतारौ हि जिष्णुकृष्णौ महाबलौ । प्रसिद्धौ मुनिभिः प्रोक्तौ सर्वज्ञैर्नारदादिभिः ॥१५॥ विद्यमानशरीरौ तौ कथं देहान्तरं गतौ । नरनारायणौ देवौ पुनः कृष्णार्जुनौ कथम् ॥१६॥ यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रं मुक्त्यर्थं मुनिसत्तमौ । तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ ॥१७॥ शूद्रः स्वधर्मनिष्ठस्तु देहान्ते क्षत्रियस्तु सः । शुभाचारो मृतो यो वै शूद्रो ब्राह्मणो भवेत् ॥१८॥ ब्राह्मणो निःस्पृहः शान्तो भवरोगाद्विमुच्यते । विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ ॥१९॥ तपसा शोषितात्मानौ क्षत्रियौ तौ बभूवतुः । केन तौ कर्मणा शान्तौ जातौ शापेन वा पुनः ॥२०॥ ब्राह्मणौ क्षत्रियौ जातौ कारणं तन्मुने वद । यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादिति श्रुतः ॥२१॥ कृष्णस्यापि हि गांधार्याः शापेनैव कुलक्षयः । प्रद्युम्नहरणं चैव शम्बरेण कथं कृतम् ॥२२॥ वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने । पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम् ॥२३॥ द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्माद्दुरत्ययात् । न ज्ञातं

वदन्ती के माध्यम से जो सुना है, उससे मेरा मन मोहित होता है ॥११॥ आप वासुदेव के चरित का ठीक-ठीक वर्णन करें । प्राचीन ऋषिश्रेष्ठ धर्म के पुत्र नर तथा नारायण दोनों मुनियों ने बदरिकाश्र में घोर तपस्या अनेक वर्षों तक की ॥१२-१३॥ निराहार, अपने मन को वश में रखने वाले निःस्पृह तथा काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य को जीत लेने वाले इन दोनों ऋषियों ने जगत् के स्थैर्य के लिए उत्तम तपस्या की । ये भगवान् विष्णु के अंशावतार थे । सर्वज्ञ नारद आदि ऋषियों ने कहा है कि अर्जुन और कृष्ण इनके ही अंशावतार थे ॥१४-१५॥ ये एक शरीर के रहते हुए भी दूसरे शरीर में कैसे प्रवेश कर गये और नर-नारायण ये दोनों देव कृष्ण अर्जुन कैसे हो गये ॥१६॥ जिन दोनों श्रेष्ठ ऋषियों ने मुक्ति की प्राप्ति के लिए घोर तपस्या की वे महातपस्वी तो योग को प्राप्त ऋषि देह को कैसे प्राप्त कर लिए ॥१७॥ अपनी जाति के धर्म में निष्ठा रखने वाला शूद्र जन्मान्तर में क्षत्रिय होता है । और जो शूद्र शुभ आचरण करने वाला होता है, वह जन्मान्तर में ब्राह्मण होता है ॥१८॥ शान्त और स्पृहा रहित ब्राह्मण शरीर त्याग के बाद मुक्ति पा लेता है । किन्तु नर-नारायण के विषय में यह उसके विपरीत हो गया । नर और नारायण दोनों ने तपस्या के द्वारा अपने शरीर को सुखाकर भी वे दोनों क्षत्रिय हो गये । वे किस कर्म के कारण अथवा शाप के कारण क्षत्रिय हुए ॥२०॥ हे मुने ! आप बतलाएँ कि ब्राह्मण से उनके क्षत्रिय होने का कारण क्या था ? मैंने सुना है कि यादवों का विनाश भी ब्राह्मण के शाप से हुआ ॥२१॥ कृष्ण के भी कुल का विनाश गान्धारी के शाप से हुआ । आप यह

वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा ॥२४॥ सन्देहोऽयं महान्ब्रह्मन्निःसन्देहं कुरु प्रभो । यत्पत्न्यौ वासुदेवस्य दस्युभिर्लुण्ठिता हृताः ॥२५॥ स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम । संशयो जायते ब्रह्मंश्चित्तान्दोलनकारकः ॥२६॥ विष्णोरंशः समुद्भूतः शौरिर्भूभारहारकृत् । स कथं मथुराराज्यं भयात्त्यक्त्वा जनार्दनः ॥२७॥ द्वारवत्यां गतः साधो ससैन्यः ससुहृद्गणः । अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै ॥२८॥ पापात्मनां विनाशाय धर्मसंस्थापनाय च । तत्कथं वासुदेवेन चौरास्ते न निपातिताः ॥२९॥ यैर्हृता वासुदेवस्य पत्न्यः संलुंठिताश्च ताः । स्तेनास्ते किं न विज्ञाताः सर्वज्ञेन सता पुनः ॥३०॥ भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः । अर्चिताश्च महात्मानः पांडवा धर्मतत्पराः ॥३१॥ कृष्णभक्ताः सदाचारा युधिष्ठिरपुरोगमाः । ते कृत्वा राजसूयं च यज्ञराजं विधानतः ॥३२॥ दक्षिणा विविधा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः । पाण्डुपुत्रास्य देवांशा वासुदेवाश्रिता मुने ॥३३॥ घोरं दुःखं कथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतं च तत् । किं यत्पापं महारौद्रं येन ते पीडिताः सदा ॥३४॥ द्रौपदी च महाभागा वेदीमध्यात्समुत्थिता । रमांशजा च साध्वी च कृष्णभक्तियुता तथा ॥३५॥ सा कथं दुःखमतुलं प्राप घोरं पुनः पुनः । दुःशासनेन केशे

भी बतलाएँ कि शम्बरासुर ने प्रद्युम्न का हरण क्यों किया ?॥२२॥ देवताओं के भी आराध्य वासुदेव के रहने पर भी सूतिकागृह से पुत्र का हरण तो अत्यन्त अंसभव है ॥२३॥ द्वारका नामक दुर्ग के बीच से और पूर्णरूप से सुरक्षित श्रीकृष्ण के महल से पुत्र के अपहरण को श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य नेत्रों से क्यों नही देख लिया ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! यह मुझको महान् सन्देह है, आप मेरे सन्देह को दूर करें । देवताओं के भी आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण के स्वर्गलोक चले जाने पर लुटेरों ने भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों को कैसे लूट लिया ? हे ब्रह्मन् ! यह संशय मेरे चित्त को आन्दोलित कर देता है ॥२५-२६॥ भगवान् विष्णु के अंश से अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी के भार को दूर करने वाले हैं । वे जनार्दन भय के कारण मथुरा के राज्य को छोड़कर अपनी सेना तथा मित्रों के साथ द्वारका चले गये । भगवान् का अतवार तो पृथिवी का भार दूर करने के लिए बतलाया गया है ॥२७-२८॥ उनका अवतार पापियों का विनाश तथा धर्म की स्थापना करने के लिए होता है तो फिर भगवान् ने अपनी पत्नियों को लूटने वाले चोरों को क्यों नहीं मार दिया । क्या सर्वज्ञ भगवान् उन चोरों को नहीं जान पाये ॥२९-३०॥ जब भीष्म तथा द्रोण का वध पृथिवी का भार दूर करने के लिए माना गया है । महात्मा तथा धार्मिक पाण्डवों की पूजा की गयी । युधिष्ठिर आदि सदाचारी और भगवान् कृष्ण के भक्त थे । उन लोगों ने विधिपूर्वक सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञ किया ॥३१-३२॥ यज्ञ में पाण्डवों ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दक्षिणा दी । पाण्डु के पुत्र तो देवताओं के अंश वासुदेव के आश्रित थे ॥३३॥ फिर भी उनलोगों ने घोर दुःख

गृहीता पीडिता भृशम् ॥३६॥ रजस्वला सभायां तु नीता भीतैकवाससा । विराटनगरे दासी जाता मत्स्यस्य सा पुनः ॥३७॥ धर्षिता कीचकेनाथ
रुदती कुररी यथा । हृता जयद्रथेनाथ क्रंदमानाऽतिदुःखिता ॥३८॥ मोचिता पांडवैः पश्चाद्बलवद्भिर्महात्मभिः । पूर्वजन्मकृतं पापं किं तद्येन च
पीडिताः ॥३९॥ दुःखान्यनेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते । राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः ॥४०॥ दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन
वै । देवांशानां कथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे ॥४१॥ सदाचारैस्तु कौन्तेयैर्भीष्मद्रोणादयो हताः । छलेन धनलाभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत् ॥४२॥
प्रेरता वासुदेवेन पापे घोरे महात्मना । कुलं क्षयितवंतस्ते हरिणा परमात्मना ॥४३॥ वरं भिक्षाटनं साधोर्नीवारैर्जीवनं वरम् । योधान्न हत्वा लोभेन
शिल्पेन जीवनं वरम् ॥४४॥ विच्छिन्नस्तु त्वया वंशो रक्षितो मुनिसत्तम । समुत्पाद्य सुतानाशु गोलकाञ्शत्रुनाशनान् ॥४५॥ सोऽल्पेनैव तु कालेन

क्यों प्राप्त किया ? उनका पुण्य कहाँ चला गया ? पाण्डवों का वह कौन सा भयंकर पाप था जिसके कारण वे सदा दुःखी रहे ॥३४॥ द्रौपदी का भी
प्राकट्य यज्ञ की वेदी से हुआ था । उनमें लक्ष्मीजी का अंश तथा वे साध्वी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ता थीं ॥३५॥ उन्होंने क्यों बार-बार घोर दुःख
प्राप्त किया ? दुःशासन ने उनका केश खींचकर उन्हें बहुत अधिक दुःख दिया था ॥३६॥ एक वस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को सभा में लाया गया । और मत्स्य
राज के यहाँ उन्हें दासी बनना पड़ा ॥३७॥ कुररी के समान रोती हुई द्रौपदी का कीचक ने अपमान किया । चिल्लाती हुई और अत्यन्त दुःखी द्रौपदी का
जयद्रथ ने अपहरण किया था ॥३८॥ बाद में बलवान् पाण्डवों ने उसे छुड़ाया । पाण्डवों के पूर्वजन्म का कौन सा पाप था जिसके कारण उनको कष्ट सहना
पड़ा ॥३९॥ हे महामते ! उस पाप को आप बतलाएँ जिसके कारण मेरे पूर्वजों ने राजसूय नामक श्रेष्ठ यज्ञ को करके भी अनेक प्रकार के कष्टों को प्राप्त
किया ॥४०॥ यदि कहें कि पूर्वजन्म के पाप के कारण ऐसा हुआ तो मेरे पूर्वज पूर्वजन्म में देवता थे और देवताओं से ऐसा पाप होने की कोई सम्भावना
भी नहीं है ॥४१॥ सदाचारी पाण्डवों के द्वारा भीष्म तथा द्रोण आदि धन के लाभ के लिए छल पूर्वक मारे गये जब कि पाण्डव जगत् की नश्वरता को
जानते थे ॥४२॥ पाण्डवों को ऐसा घोर पाप करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रेरित किया और परमात्मा श्रीहरि के द्वारा प्रेरित पाण्डव अपने ही कुल
का विनाश कर दिए ॥४३॥ साधुपुरुष भिक्षाटन करके अथवा वन में जाकर नीवार से अपना जीवन यापन करना अच्छा मानेंगे या किसी शिल्प से जीवन
बिताना अच्छा मानेंगे किन्तु वीरों का वध करना अच्छा नहीं मानेंगे ॥४४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! विनष्ट होते हुए मेरे वंश की आपने रक्षा शत्रुओं को विनष्ट करने
वाले गोलक पुत्रों को उत्पन्न करके की ॥४५॥ उस वंश को उत्तरा के पुत्र परीक्षित् ने मुनि के गले में सर्प डालाना रूपी अद्भुत कर्म करके थोड़े ही देर
में विनष्ट कर दिया ॥४६॥ क्षत्रियों के वंश में उत्पन्न कोई व्यक्ति ब्राह्मणों से द्वेष नहीं करता है । किन्तु मेरे पिता मौनी तथा तपस्वी के साथ ऐसा कर्म

विराटतनयासुतः । तापसस्य गले सर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम् ॥४६॥ न कोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्य कुलोद्भवः । तापसं मौनसंयुक्तं पित्रा किं तत्कृतं मुने ॥४७॥ एतैरन्यैश्च संदेहैर्विकलं मे मनोऽधुना । स्थिरं कुरु पितः साधो सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते चतुर्थस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

सूत उवाच– **एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः । परीक्षितसुतं शांतं ततो वै जनमेजयम् ॥१॥ उवाच संशयच्छेत्तृ वाक्यं वाक्यविशारदः ।** व्यास उवाच– **राजन्किमेतद्वक्तव्यं कर्मणो गहना गतिः ॥२॥ दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा । यदा समुत्थितं चैतद्ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम् ॥३॥ कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः । अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः ॥४॥ नानायोनिषु जायंते म्रियन्ते च पुनः पुनः । कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन ॥५॥ शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम् । त्रिविधानि हि तान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च**

क्यों किए ?॥४७॥ इन सबों तथा इसके अतिरिक्त संदेहों के कारण मेरा मन इस समय विकल है । हे दयासागर ! साधु पुरुष आप मेरे मन को स्थिर बनायें ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

गहन कर्मगति का निरूपण

सूतजी ने कहा– इस तरह से पूछे जाने पर सत्यवती के पुत्र तथा पुराणों के ज्ञाता वाक्यविशारद व्यासजी ने परीक्षित् के शांत पुत्र जनमेजय से संशय को विनष्ट करने वाले वाक्य को कहा । **व्यासजी ने कहा–** राजन् इसके विषय में क्या कहा जाय कर्मों की गति अत्यन्त गहन है ॥१-२॥ उसको तो देवता भी नहीं जान सकते हैं, फिर मानव उसे क्या जान सकते हैं ? जबकि यह ब्रह्माण्ड ही त्रिगुणात्मक उत्पन्न हुआ है ॥३॥ इस संसार में सबों की उत्पत्ति कर्मों के ही अनुसार होती है । कर्म रूप बीज से उत्पन्न होने वाले जीव नित्य हैं ॥४॥ वे अपने कर्मों के ही अनुसार बार-बार अनेक योनियों में जन्म

ये ॥६॥ संचितानि भविष्यन्ति प्रारब्धानि तथा पुनः । वर्तमानानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणां किल ॥७॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां तद्वशत्वं नराधिप । सुखं दुःखं जरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा ॥८॥ कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः । दैवाधीनश्च सर्वेषां प्रभवंति नराधिप ॥९॥ रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवंति हि । देवानां मानवानां च तिरश्चां च तथा पुनः ॥१०॥ विकाराः सर्व एवैते देहेन सह संगताः । पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः ॥११॥ उत्पत्तिः सर्वजंतूनां विना कर्म न विद्यते । कर्मणा भ्रमते सूर्यः शशांकः क्षयरोगवान् ॥१२॥ कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैव न संशयः । अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्म विद्यते ॥१३॥ तेनेह शाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् । नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा ॥१४॥ न जानन्ति किमेतद्वै नित्यं वाऽनित्यमेव च । मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते ॥१५॥ कार्याभावः कथं वाच्यः कारणे सति सर्वथा । माया नित्या कारणं च सर्वेषां सर्वदा किल ॥१६॥ कर्मबीजं ततोऽनित्यं चिंतनीयं सदा बुधैः । भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजन्कर्मनियंत्रितम्॥१७॥ नानायोनिषु राजेन्द्र नानाधर्ममयेषु च । इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसः ॥१८॥ युगे युगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम् । त्यक्त्वा वैकुंठसंवासं

लेकर मरते रहते हैं । कर्म के बिना कभी भी देह का संयोग नहीं हो सकता है ॥५॥ यह संसार अच्छे, बुरे तथा अच्छा बुरामिश्रित तीन प्रकार के कर्मों से वेष्टित है । विद्वानो तथा तत्त्वज्ञों ने तीन प्रकार के ही कर्मों को बतलाया है ॥६॥ पुनः इन कर्मों के तीन विभाग किये गये हैं । सञ्चित, भविष्य तथा प्रारब्ध । इस शरीर में रहने वाले कर्म भी तीन प्रकार के हैं ॥७॥ राजन् ब्रह्मा आदि देवता भी कर्म के ही अधीन हैं । राजन् उन कर्मों के ही अनुसार जीवों को सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध तथा लोभ देहगत गुण भाग्याधीन ही होते हैं ॥८-९॥ स्वर्ग में भी राग तथा द्वेष आदि की भावना होती है । इसी तरह देवताओं, मानवों तथा तिर्यग् योनि के जीवों के ये भाव होते हैं ॥१०॥ ये सभी विकार सदा देह के साथ बने रहते हैं । प्राचीन वैर तथा स्नेह के कारण ये सदा नये-नये बने रहते हैं ॥११॥ बिना कर्म के किसी भी जीव की उत्पत्ति नहीं होती है, कर्म के कारण ही सूर्य सदा घूमते रहते हैं तथा क्षय रोग के रोगी चन्द्रमा सदा घूमते रहते हैं ॥१२॥ अपने कर्म के ही कारण रुद्र कपालं धारण करते हैं । यह कर्म रूपी कारण नित्य है॥१३॥ कर्म के ही कारण स्थावर जंगमात्मक संसार बना है और मुनिजन इस संसार के नित्यत्वानित्यत्व के विचार में मग्न रहते हैं ॥१४॥ ये यह नहीं जानते हैं कि संसार नित्य है अथवा अनित्य है । माया के विद्यमान रहने पर संसार नित्य प्रतीत होता है ॥१५॥ कारण के रहने पर कार्य का अभाव कैसे हो सकता है । सबों का कारण माया है । और वह नित्य है ॥१६॥ अतएव विद्वानों को यह सोचना चाहिए कि कर्म रूपी बीज अनित्य है । हे राजन्! यह सारा संसार कर्म के परतंत्र होकर चक्कर काटता रहता है ॥१७॥ हे राजेन्द्र ! अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु की अपनी इच्छा से ही अनेक धर्मों वाली अनेक

सुखभोगाननेकशः ॥१९॥ विण्मूत्रमंदिरे वासं संत्रस्तः कोऽभिवांछति । पुष्पावचयलीलां च जलकेलिं सुखासनम् ॥२०॥ त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवांछति बुद्धिमान् । तूलिकां मृदुसंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम् ॥२१॥ त्यक्त्वाऽधोमुखवासं च कोऽभिवांछति पंडितः। गीतं नृत्यं च वाद्यं च नानाभावसमन्वितम् ॥२२॥ मुक्त्वा को नरके वासं मनसाऽपि विचिंतयेत् । सिंधुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्॥२३॥ विण्मूत्ररसपानं च क इच्छेन्मतिमान्नरः । गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये ॥२४॥ तद्भीताश्च प्रकुर्वंति मुनयो दुस्तरं तपः । हित्वा भोगं च राज्यं च वने यांति मनस्विनः ॥२५॥ तद्भीतस्तु विमूढात्मा कस्तं सेवितुमिच्छति । गर्भे तुदंति कृमयो जठराग्निस्तपत्यधः ॥२६॥ वपासंवेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते । वरं कारागृहे वासो बन्धनं निगडैर्वरम् ॥२७॥ अल्पमात्रं क्षणं नैव गर्भवासः क्वचिच्छुभः । गर्भवासे महद्दुःखं दशमासनिवासनम् ॥२८॥ तथा निःसरणे दुःखं योनियंत्रेऽतिदारुणे । बालभावे तदा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम् ॥२९॥ क्षुत्तृष्णावेदनाशक्तः परतंत्रोऽतिकातरः । क्षुधिते रुदिते बाले माता चिंतातुरा तदा ॥३०॥ भेषजं पातुमिच्छन्ती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम् । नानाविधानि दुःखानि

योनियों मे जन्म होता है । यदि ऐसी बात होती तो अनेक युगों में वैकुण्ठवास तथा सुखों के भोग को परित्याग करके नीच योनियों में उनका जन्म कैसे होता ?॥१८-१९॥ कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो पुष्प के चुनने की लीला तथा जलक्रीडा एवं सुखप्रद आसन को छोड़कर मल-मूत्र के गृहरूपी गर्भ में निवास करना चाहेगा । कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो कोमल रुई से बनी शय्या को छोड़कर माता के गर्भ में नीचे शिर तथा ऊपर पैर करके अधोमुख होकर रहना चाहेगा । अनेक भावों से युक्त गीत, नृत्य तथा वाद्य का परित्याग करके नरक में रहने का मन से भी विचार करेगा ? लक्ष्मीजी के, कठिनाई से त्यागने योग्य अद्भुत भावों के रस का परित्याग करके कौन बुद्धिमान मल एवं मूत्र के रस का पान करना चाहेगा ? त्रैलोक्य में गर्भ में निवास से बड़ा कोई नरक नहीं है ॥२१-२४॥ गर्भ में निवास रूपी नरक के ही भय से भयभीत होकर मुनिजन कठोर तपस्या करते हैं । मनस्वी पुरुष भोगों तथा राज्य का परित्याग करके वन में चले जाते हैं ॥२५॥ कौन ऐसा मूर्ख होगा जो गर्भ के वास से भयभीत होकर भी गर्भ में निवास करना चाहेगा । गर्भ में जीव को एक ओर तो कीड़े काटते रहते हैं और नीचे से जाठराग्नि उसे संतप्त करती रहती है ॥२६॥ उस समय सम्पूर्ण शरीर में दुर्गन्ध युक्त मज्जा पुती रहती है । जंजीर में बँधकर कारागार में निवास करना ठीक है, किन्तु अल्पकाल के लिए थोड़ा सा भी गर्भ में निवास करना अच्छा नहीं है । दस महीने तक गर्भ में रहना बहुत बड़ा कष्ट है ॥२७-२८॥ इसी तरह योनि रूपी यंत्र से बाहर निकलना भी बड़ा दुःखद है । गूंगे तथा अज्ञानी के समान बनकर बचपन बिताना भी कष्टप्रद होता है ॥२९॥ बचपन में भूख तथा प्यास की वेदना से बालक कातर हो जाता है । बालक भूख. के कारण जब रोता है तो माता चिन्तित हो

बालभावे भवंति वै ॥३१॥ किं सुखं विबुधा दृष्ट्वा जन्म वांछंति चेच्छया । संग्रामममरैः सार्धं सुखं त्यक्त्वा निरंतरम् ॥३२॥ कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम् । सर्वथैव नृपश्रेष्ठ सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥३३॥ कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवंति सुखासुखे । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम ॥३४॥ तपसा दानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत् । क्षीणे पुण्येऽथ शक्रोऽपि पतत्येव न संशयः॥३५॥ रामावतारयोगेन देवा वानरतां गताः । तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः ॥३६॥ एवं युगे युगे विष्णुरवताराननेकशः । करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम् ॥३७॥ पुनः पुनर्हरिरेवं नानायोनिषु पार्थिव । अवतारा भवंत्यन्ये रथचक्रवदद्भुताः ॥३८॥ दैत्यानां हननं कर्म कर्तव्यं हरिणा स्वयम् । अंशांशेन पृथिव्यां वै कृत्वा जन्म महात्मना ॥३९॥ तदहं संप्रवक्ष्यामि कृष्णजन्मकथां शुभाम् । स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णो यदोः कुले ॥४०॥ कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान् । गोवृत्तिरभवद्राजन्पूर्वशापानुभावतः ॥४१॥ कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र महीपते । अदितिः सुरसा चैवमासतुः पृथिवीपते ॥४२॥ देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ । वरुणेन महाञ्छापो दत्तः

जाती है, और सोचती है कि बालक को बहुत कष्ट है ॥३०॥ वह व्याधिजन्य बच्चे के कष्ट को सोचकर उसे दवा पिलाने लगती है । इस तरह से बचपन में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं ॥३१॥ इस प्रकार के सुख को देखकर कौन बुद्धिमान जन्म लेना चाहेगा ? स्वभावत: प्राप्त सुख का परित्याग करके देवताओं के साथ युद्ध कौन करना चाहेगा ?॥३२॥ जिसमें श्रम करना पड़ता है और सुख का नाश होता है । अतएव हे राजन् । (जनमेजय) ब्रह्मा आदि देवता भी अपने किए हुए कर्मों के अनुसार ही सुख तथा दुःख को प्राप्त करते हैं । अपने द्वारा किए गये अच्छे बुरे कर्मों का फल सब को अवश्य भोगना पड़ता है । चाहे वह देहधारी देवता हो या मनुष्य हो या पक्षुपक्षी हो ॥३३-३४॥ मनुष्य तपस्या, दान तथा यज्ञ का अनुष्ठान करके यदि इन्द्र भी बन जाय तो भी पुण्य का नाश हो जाने पर इन्द्र का भी इस संसार में पतन होता ही है ॥३५॥ रामावतार के समय राम की सहायता करने के लिए देवताओं को बानर होना पड़ा और कृष्णावतार के समय देवताओं को उनकी सहायता करने के लिए यादव होना पड़ा ॥३६॥ इस तरह ब्रह्मा के द्वारा प्रेरित होकर भगवान् विष्णु प्रत्येक युगों में धर्म की रक्षा करने के लिए अवतारों को धारण करते हैं ॥३७॥ हे राजन् ! इस प्रकार से श्रीहरि के बारम्बार अनेक योनियों में अद्भुत अवतार रथचक्र के समान होते रहते हैं ॥३८॥ महात्मा श्रीहरि को अपने अंशों से पृथिवी पर अवतार ग्रहण करके दैत्यों का वध करना पड़ता है ॥३९॥ अतएव मैं श्रीकृष्ण जन्म की सुन्दर कथा का वर्णन करूँगा । वे ही भगवान् विष्णु यदु के वंश में श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए ॥४०॥ पूर्व जन्म के शाप के प्रभाव से महर्षि कश्यप के अंश से वसुदेव के रूप में अवतीर्ण होकर गोपालन का कार्य करते थे ॥४१॥ हे राजन ! कश्यप महर्षि

कोपादिति श्रुतम् ॥४३॥ राजोवाच— **किं कृतं कश्यपेनागो येन शाप्तो महानृषिः । सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्व महामते ॥४४॥ कथं च**
भगवान्विष्णुस्तत्र जातोऽस्ति गोकुले । वासी वैकुण्ठनिलये रमापतिरखंडितः ॥४५॥ निदेशात्कस्य भगवान्वर्तते प्रभुरव्ययः । नारायणः
सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः ॥४६॥ स कथं सदनं त्यक्त्वा कर्मवानिव मानुषे । करोति जननं कस्मादत्र मे संशयो महान् ॥४७॥ प्राप्य
मानुषदेहं तु करोति च विडंबनम् । भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि ॥४८॥ कामः क्रोधोऽमर्षशोकौ वैरं प्रीतिश्च कर्हिचित् । सुखं दुःखं
भयं नृणां दैन्यमार्जवमेव च ॥४९॥ दुष्कृतं सुकृतं चैव वचनं हननं तथा । पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम् ॥५०॥ लोभो दंभस्तथा
मोहः कपटः शोचनं तथा । एते चान्ये तथा भावा मानुष्ये संभवंति हि ॥५१॥ स कथं भगवान्विष्णुस्त्यक्त्वा सुखमनश्वरम् । करोति मानुषं जन्म
भावैस्तैस्तैरभिद्रुतम् ॥५२॥ किं सुखं मानुषं प्राप्य भुवि जन्म मुनीश्वर । किं निमित्तं हरिः साक्षाद्गर्भवासं करोति वै ॥५३॥ गर्भदुःखं जन्मदुःखं
बालभावे तथा पुनः । यौवने कामजं दुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम् ॥५४॥ दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम । कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः
पुनः ॥५५॥ प्राप्य रामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना । दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे ॥५६॥ सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः।

की दो पत्नियाँ सुरसा तथा अदिति शापवशात् पृथिवी पर अवतीर्ण हुईं ॥४२॥ सुना जाता है कि वरुण ने कुद्ध होकर उन्हें शाप दिया था जिसके कारण
वे रोहिणी एवं देवकी के रूप में अवतीर्ण हुयीं ॥४३॥ **राजा जनमेजय ने पूछा**— महर्षि कश्यप ने कौन सा अपराध किया था जिसके कारण वे अपनी पत्नियों
के साथ इस पृथिवी पर अवतीर्ण हुए उसे आप बतलाएँ ॥४४॥ वैकुण्ठवासी लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को क्यों गोकुल में अवतार लेना पड़ा ?॥४५॥
मुझको यह संशय है कि सबों के स्वामी, देवताओं में श्रेष्ठ, युगों के कारण स्वरूप तथा सबों को धारण करने वाले भगवान् नारायण अपने वैकुण्ठ को
छोड़कर कर्म परतंत्र मनुष्य के समान किसके आदेश से जन्म ग्रहण किए ॥४६-४७॥ भगवान् भी दोष दूषित मानव अवतार में मानव शरीर प्राप्त करके
उसके अनुसार अनेक प्रकार की चेष्टाओं को करते हैं ॥४८॥ मानव जन्म में काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय, दीनता, ऋजुता, पाप,
पुण्य, वचन, मरण, पोषण, चलन, ताप, विमर्श, आत्मश्लाघा, लोभ, दम्भ, मोह, कपट तथा शोक ये सभी तथा इन से भिन्न भी भाव होते हैं ॥४८-५१॥
भगवान् विष्णु अपने नित्य सुख का परित्याग करके अनेक प्रकार के उपद्रवों से युक्त मानव शरीर क्यों ग्रहण करते हैं ॥५२॥ हे मुनीश्वर! मानव शरीर
प्राप्त करके कौन सा सुख मिलता है ?॥५३॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मानव योनि में तो गर्भ का दुख, जन्म काल में दुख, बचपन का दुःख युवावस्था में कामजन्य
दुःख और गार्हस्थ्य में तो अत्यधिक दुःख ये सभी दुःख मिलते हैं । भगवान् विष्णु क्यों बार-बार अवतारों को लेते हैं ॥५४-५५॥ ब्रह्माजी

कान्तात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना ॥५७॥ तथा कृष्णावतारेऽपि जन्म रक्षागृहे पुनः । गोकुले गमनं चैव गवां चारणमित्युत ॥५८॥ कंसस्य हननं कष्टाद्द्वारकागमनं पुनः। नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान्कथम् ॥५९॥ स्वेच्छया कः प्रतीक्षेत मुक्तो दुःखानि ज्ञानवान् । संशयं छिंधि सर्वज्ञ मम चित्तप्रशांतये ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

व्यास उवाच– **कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल । सर्वेषां चैव देवानामंशावतरणेष्वपि ॥१॥ वसुदेवावतारस्य कारणं शृणु तत्त्वतः। देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम् ॥२॥ एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरत् । याचितोऽयं बहुविधं न ददौ धेनुमुत्तमाम् ॥३॥**

के ही कारण श्रीहरि ने रामवतार में तो वनवास काल में बहुत अधिक दुःख का अनुभव किया ॥५६॥ सीता के विरहजन्य दुःख मिला बार-बार संग्राम करना पड़ा । अन्त में उनको सीता के परित्यागजन्य कष्ट प्राप्त हुआ ॥५७॥ इसी तरह कृष्णावतार में उनका जन्म राक्षस के घर में हुआ । उनको गोकुल जाना पड़ा और गौओ को चराना पड़ा ॥५८॥ कष्टपूर्वक कंस का वध करके द्वारका जाना पड़ा । इस तरह से भगवान् ने संसार के अनेक दुःखों को क्यों भोगा ॥५९॥ कौन ज्ञानी तथा दुःखों से मुक्त व्यक्ति अपनी इच्छा से दुःखों को प्राप्त करना चाहेगा । हे सर्वज्ञ व्यासजी ! मेरे मन की शान्ति के लिए आप मेरे संशयों को दूर करें ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

कश्यप तथा अदिति को वरुण, ब्रह्मा तथा दिति के शाप

व्यासजी ने कहा– श्रीहरि के अवतार के बहुत से कारण हैं । और देवतओं के भी अंशावतारों के बहुत से कारण हैं ॥१॥ आप वसुदेवजी के अवतार का कारण सुने तथा देवकी एवं रोहिणी के भी अवतार का कारण सुनें ॥२॥ एक बार महर्षि कश्यप यज्ञ करने के लिए वरुण की गौ कामधेनु

वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम् । प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः ॥४॥ किं करोमि महाभाग मत्तोऽसौ न ददाति गाम्।
शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे ॥५॥ भार्ये द्वे अपि तत्रैव भवेतां चातिदुःखिते । यतो वत्सा रुदंत्यत्र मातृहीनाः सुदुःखिताः ॥६॥
मृतवत्साऽदितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले । कारागारनिवासा च तेनापि बहुदुःखिता ॥७॥ व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यादोनाथस्य
पद्मभूः । समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः ॥८॥ कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्य धेनवः । हृताः पुनर्न दत्ताश्च किमन्यायं करोषि च ॥९॥
जानन्न्यायं महाभाग परवित्तापहारणम् । कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥१०॥ अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुंचति । लोभं नरकदं
नूनं पापाकरमसंमतम् ॥११॥ कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुं समर्थः किं करोम्यहम् । सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभो वै कलितो मया ॥१२॥ धन्यास्ते
मुनयः शांता जितो यैर्लोभ एव च । वैखानसैः शमपरैः प्रतिग्रहपराङ्मुखैः ॥१३॥ संसारे बलावञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्योऽवरः सदा । कश्यपोऽपि
दुराचारः कृतस्नेहो दुरात्मना ॥१४॥ ब्रह्माऽपि तं शशापाथ कश्यपं मुनिसत्तमम् । मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम् ॥१५॥ अंशेन त्वं
पृथिव्यां वै प्राप्य जन्म यदोः कुले । भार्याभ्यां संयुतस्तत्र गोपालत्वं करिष्यसि ॥१६॥ व्यास उवाच– एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेन च

को माँग लाये । यज्ञ समाप्त होने पर वरुण के द्वारा बहुत बार गौ लौटाने के लिए कहने पर भी वे गौ को नहीं लौटाये ॥३॥ इसके बाद वरुण ब्रह्माजी
के पास जाकर प्रणाम करके विनम्रता पूर्वक अपने कष्ट को बतलाये, ॥४॥ हे महाभाग ! मैं क्या करू ? मदमत्त कश्यप मेरी गौ नहीं लौटाते हैं । इसलिए
मैंने कश्यप को शाप दे दिया है किं तुम मनुष्य योनि में गोपाल हो जाओ ॥५॥ वहाँ पर तुम्हारी दोनों पत्नियाँ भी बहुत दुःख पायेंगी । चूकि गौ के बछड़े
अपनी माँ से विलग होकर अत्यन्त दुःखी होकर रोते हैं ॥६॥ अतएव पृथिवी पर अदिति के भी बच्चे मार दिए जायेंगे । और कारागार में निवास के कारण
भी वह बहुत दुःखी होगी ॥७॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** वरुण की बात सुनकर ब्रह्माजी कश्यप मुनि को बुलाकर कहे ॥८॥ हे महामुने ! आप
लोकपाल वरुण की गौ को क्यों नहीं लौटाते हैं । आप अन्याय क्यों कर रहे हैं ॥९॥ हे महाभाग ! आप जानते हैं कि दूसरे की सम्पत्ति ले लेना अन्याय
है । हे सर्वज्ञ महामुने ! आप तो सर्वज्ञ हैं ॥१०॥ अरे लोभ तो महापुरुषों को भी नही छोड़ता है, उसकी बहुत बड़ी महिमा है । लोभ तो पाप का आकर
है और उससे नरक मिलता है ॥११। जब महर्षि कश्यप भी लोभ को नहीं त्याग सके तो मैं क्या करूँ । मैं समझता हूँ कि लोभ सबसे बड़ा पाप है ॥१२॥
वे शान्त मुनि धन्य हैं जिनलोगों ने लोभ को जीत लिया है । ऐसे मुनि जन प्रतिग्रह से पराड्मुख होने के कारण धन्य हैं ॥१३॥ संसार में सबसे अपवित्र
लोभ है, वही सबसे बड़ा शत्रु हैं । लोभ से स्नेह करने के कारण कश्यप भी दुराचारी हो गये ॥१४॥ मर्यादा की रक्षा करने के लिए ब्रह्माजी ने भी

ब्रह्मणा । अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च ॥१७॥ तथा दित्याऽदितिः शप्ता शोकसंतप्तया भृशम् । जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै ॥१८॥ जनमेजय उवाच– **कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेंद्रजननी मुने । कारणं वद शापे च शोकस्तु मुनिसत्तम ॥१९॥** सूत उवाच– **पारीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः । राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः ॥२०॥** व्यास उवाच– **राजन्दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे। कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे ॥२१॥ अदित्यां मघवा पुत्रो यदाऽभूदतिवीर्यवान् । तदा तु तादृशं पुत्रं चकमे दितिरोजसा ॥२२॥ पतिमाहासितापांगी पुत्रं मे देहि मानद । इन्द्रतुल्यबलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम् ॥२३॥ तामुवाच मुनिः कान्ते स्वस्था भव मयोदिते । व्रतांते भविता तुभ्यं शतक्रतुसमः सुतः ॥२४॥ सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकार व्रतमुत्तमम् । निषिक्तं मुनिना गर्भं विभ्राणा सुमनोरहम् ॥२५॥ भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा । पवित्रा धारणायुक्ता बभूव वरवर्णिनी ॥२६॥ एवं जातः सुसंपूर्णो यदा गर्भोऽतिवीर्यवान् । शुभ्रांशुमतिदीप्तांगीं दितिं दृष्ट्वा तु दुःखिता ॥२७॥ मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यति महाबलः । दित्यास्तदा मम सुतस्तेजोहीनो भवेत्किल ॥२८॥ इति चिंतापरा पुत्रमिदं**

अपने प्रिय प्रौत्र को शाप दे दिया ॥१५॥ तुम अपने अंश से पृथिवी पर यदु के वंश में जन्म लेकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ गोपाल हो जाओगे ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से अपने अंश से अवतार लेने के लिए तथा पृथिवी का भार दूर करने के लिए वरुण ने तथा ब्रह्माजी ने कश्यप महर्षि को शाप दे दिया ॥१७॥ शोक से संतप्त होकर दिति ने भी अदिति को शाप दे दिया कि उत्पन्न होते ही तुम्हारे सात पुत्र विनष्ट हो जायँ ॥१८॥ **जनमेजय ने पूछा–** हे मुने ! दिति ने अपनी बहन तथा इन्द्र की माता अदिति को क्यों शाप दिया ? उनके शोक तथा शाप का कारण बतलायें ॥१९॥ **सूतजी ने ऋषियों से कहा–** जनमेजय द्वारा पूछे जाने पर व्यासजी बड़ी सावधानी पूर्वक दिति को शाप का कारण बतलाने लगे ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन्! दक्ष की पुत्रियाँ थी दिति और अदिति । वे दोनों महर्षि कश्यप की पत्नियाँ हुईं ॥२१॥ जब अदिति के अत्यन्त बलवान् पुत्र इन्द्र हुए तो उस समय दिति ने भी उसी प्रकार का पुत्र प्राप्त करना चाहा ॥२२॥ उसने अपने पति कश्यप महर्षि से कहा कि आप मुझे पुत्र प्रदान करें । वह इन्द्र के समान बलवान् वीर और धार्मिक हो मुनि ने दिति से कहा– धैर्य धारण करो । मैं जिस व्रत को बतला रहा हूँ । उस व्रत को कर लेने पर तुम्हारा इन्द्र के ही समान पुत्र होगा ॥२४॥ दिति ने कहा ठीक है और उस व्रत को करने लगी । वह मुनि के द्वारा मनोहर गर्भ को धारण किए हुई थी ॥२५॥ वह प्रयोव्रत करती हुई पृथिवी पर सो रही थी । उसने अपनी धारणा पवित्र कर ली ॥२६॥ जब दिति का अत्यन्त बलवान गर्भ पूरा हो गया उस समय दिति के अत्यन्त देदीप्यमान तथा चमकते अंगों को देखकर अदिति को बड़ा कष्ट हुआ ॥२७॥ यदि दिति का पुत्र इन्द्र के समान होगा तो मेरा पुत्र तेज से रहित हो जायेगा॥२८॥

चोवाच मानिनी । शत्रुस्तेऽद्य समुत्पन्नो दितिगर्भेऽतिवीर्यवान् ॥२९॥ उपायं कुरु नाशाय शत्रोरद्य विचिंत्य च । उत्पत्तिरेव हंतव्या दित्या गर्भस्य
शोभन ॥३०॥ वीक्ष्य तामसितापांगी सपत्नीभावमास्थिताम् । दुनोति हृदये चिंता सुखमर्मविनाशिनी ॥३१॥ राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैव
भवेद्रिपुः । तस्मादंकुरितं हन्याद्बुद्धिमानहितं किल ॥३२॥ लोहशंकुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम । येन केनाप्युपायेन पातयाद्य शतक्रतो॥३३॥
सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वया सुतः । दित्या गर्भो महाभाग मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥३४॥ व्यास उवाच– **श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्य**
मनसा ततः । जगामापरमातुः स समीपममराधिपः ॥३५॥ ववंदे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप । प्रोवाच विनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम्॥३६॥
इन्द्र उवाच– **मातस्त्वं व्रतयुक्ताऽसि क्षीणदेहाऽतिदुर्बला । सेवार्थमिह संप्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥३७॥ पादसंवाहनं तेऽहं करिष्यामि**
पतिव्रते । गुरुशुश्रूणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम् ॥३८॥ न मे किमपि भेदोऽस्ति तथाऽदित्या शपे किल । इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा संवाहनपरोऽभवत्॥३९॥
संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना । श्रांता व्रतकृशा सुप्ता विश्वस्ता परमा सती ॥४०॥ तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम् । रूपं

इस तरह से चिन्ता करती हुई अदिति ने इन्द्र से कहा इस समय दिति के गर्भ में तुम्हारा शत्रु विद्यमान है ॥२९॥ तुम विचार करके अपने शत्रु के नाश
का उपाय करो । तुम किसी भी उपाय से दिति के गर्भ को ही विनष्ट कर दो ॥३०॥ सौत के भाव में स्थित सुन्दरी दिति को देखकर मेरे सुख तथा मर्मस्थल
को विनष्ट करने वाली चिन्ता मुझे दुःखी बनाती है ॥३१॥ जब तक राजयक्ष्मा की तरह प्राण धातक शत्रु बढ न जाय उससे पहले ही बुद्धिमान को चाहिए
कि वह उसे विनष्ट कर दे ॥३२॥ लोहे की कील के समान मेरे हृदय को दुःख देने वाले उस गर्भ को आज किसी भी उपाय से विनष्ट कर दो ॥३३॥
पुत्र ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो उसका विनाश साम तथा दान के द्वारा भी तुम्हें कर देना चाहिए ॥३४॥ **व्यासजी ने कहा–** अपनी माता
की बात सुनकर देवराज इन्द्र मन में विचार करके दिति के समीप गये ॥३५॥ पापमति वाले इन्द्र ने दिति के चरणों की वन्दन की और अत्यन्त मधुर
बातें भी की ॥३६॥ **इन्द्र ने कहा–** माँ व्रत करने के कारण तुम्हारा शरीर दुर्बल हो गया है मैं तुम्हारी सेवा करने के लिए आया हूँ; सेवा बतलाओ ॥३७॥
हे पतिव्रते ! मैं तुम्हारा पैर दबाऊँगा क्योंकि गुरुजनों की सेवा करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३८॥ मैं आपमें और अपनी माता अदिति में
कोई भेद नहीं मानता हूँ । इस तरह से कहकर वह दिति का पैर दबाने लगा ॥३९॥ पैर दबाने के कारण सुख की प्राप्ति से दिति को नींद आ गयी ।
व्रत करने के कारण दुर्बल एवं थकी हुई परम सती दिति ने इन्द्र पर विश्वास कर लिया ॥४०॥ दिति को निद्रित देखकर इन्द्र अपना सूक्ष्म शरीर बनाकर

कृत्वाऽतिसूक्ष्मं च शस्त्रपाणिः समाहितः ॥४१॥ उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै । गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः ॥४२॥ रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा । मो रुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम् ॥४३॥ शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानि च । तदा चैकोनपंचाशन्मरुतश्चाभवन्नृप ॥४४॥ तदा प्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथाकृतम् । इन्द्रेण छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता ॥४५॥ भगिनीकृतं तु सा बुद्ध्वा शशाप कुपिता तदा । अदितिं मघवंतं च सत्यव्रतपरायणा ॥४६॥ यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना । तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु ॥४७॥ यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः । अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः ॥४८॥ तस्याः पुत्रास्तु नश्यंतु जाता जाताः पुनः पुनः । कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम् ॥४९॥ अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति । व्यास उवाच– **इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनंदनः ॥५०॥ उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव । मा कोपं कुरु कल्याणि पुत्रास्ते बलवत्तराः ॥५१॥ भविष्यंति सुराः सर्वे मरुतो मघवत्सखा । शापोऽयं तव वामोरु त्वष्टाविंशेऽथ द्वापरे ॥५२॥ अंशेन मानुषं जन्म प्राप्य भोक्ष्यति भामिनी । वरुणेनापि दत्तोऽस्ति शापः**

हाथ में शस्त्र लेकर दिति के शरीर में प्रवेश कर गये ॥४१॥ वज्रधारी इन्द्र ने अपने योग के बल से दिति के पेट में प्रवेश करके दिति के गर्भ को सात टुकड़ों में काट दिया ॥४२॥ व्रज से मारे जाने के कारण वह बालक रोने लगा तो इन्द्र ने उस बालक से कहा 'मारुद' मत रोओ ॥४३॥ उसके बाद इन्द्र ने उन सातों टुकड़ों को भी सात-सात टुकड़ों में काट दिया । हे राजन् ! उसी से मरुतों की संख्या उनचास हो गयी ॥४४॥ उस समय जागकर जब दिति ने यह जाना कि उसके गर्भ को इन्द्र ने छल से काट दिया है तो वह अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध की ॥४५॥ जब दिति ने जाना कि उसकी बहन ने यह काम किया है तो सत्यव्रत का पालन करने वाली दिति ने अदिति और इन्द्र को शाप दे दिया ॥४६॥ जिस तरह छल से तुम्हारे पुत्र ने मेरे गर्भ को काटा है । उसी तरह से उसका (इन्द्र का) भी त्रिभुवन का राज्य नष्ट हो जाय ॥४७॥ पापिनी अदिति ने जिस तरह मेरे सोते रहने पर मेरे गर्भ को विनष्ट कराया है, उसी तरह उसके भी पुत्र उत्पन्न हो-होकर मारे जायँ । और यह पुत्र के शोक से पीडित होकर कारागार में निवास करे ॥४९॥ दूसरे जन्म में भी इसके बच्चे मर जायेंगे । **व्यासजी ने कहा–** इस शाप को सुनकर मरीचिनंदन कश्यप महर्षि ने दिति को सान्त्वना देते हुए कहा हे कल्याणि ! क्रोध मत करो तुम्हारे पुत्र अधिक बलवान् होंगे और इन्द्र के मित्र हो जायेंगे । तुम्हारे इस शाप को भी अदिति अठाइसवें द्वापर में भोगेगी ॥५०-५२॥ उस समय मानव शरीर धारण करके अदिति अपने कर्म का फल भोगेगी । वरुणदेव ने भी रुष्ट होकर उसे शाप दे दिया है ॥५३॥ इन दोनों के शाप

संतापितेन च ॥५३॥ उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति । व्यास उवाच– **पतिनाऽऽश्वासिता देवी संतुष्टा साऽभवत्तदा ॥५४॥ नोवाच विप्रियं किंचित्ततः सा वरवर्णिनी । इति ते कथितं राजन्पूर्वशापस्य कारणम् ॥५५॥ अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृपसत्तम ॥५६॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

राजोवाच– **विस्मितोऽस्मि महाभाग श्रुत्वाऽऽख्यानं महामते । संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बन्धनात् ॥१॥ कश्यपस्यापि दायादस्त्रिलोकीविभवे सति । कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्याज्जुगुप्सितम् ॥२॥ गर्भे प्रविश्य बालस्य हननं दारुणं किल । सेवामिषेण मातुश्च कृत्वा शपथमद्भुतम् ॥३॥ शास्ता धर्मस्य गोप्ता च त्रिलोक्याः पतिरप्युत । कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्यादसांप्रतम् ॥४॥ पितामहा मे संग्रामे कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् । कृतवंतस्तथाऽऽश्चर्यं दुष्टं कर्म जगद्गुरो ॥५॥ भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो धर्मांशोऽपि युधिष्ठिरः । सर्वे विरुद्धधर्मेण वासुदेवेन नोदिताः ॥६॥**

के कारण अदिति मानुषी होयेगी । **व्यासजी ने कहा**– पति के द्वारा आश्वासन दिए जाने पर दिति संतुष्ट हुई ॥५४॥ उसके बाद उसने कोई भी अप्रिय बात नहीं कहा । इस तरह से हे राजन् ! मैंने बतलाया कि पूर्वशाप के कारण अदिति ही अपने अंश से देवकी हुयी ॥५५-५६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

अधिकारी पुरुषों की पाप में प्रवृत्ति

राजा जनमेजय ने कहा– हे महामते ! इस अद्भुत आख्यान को सुनकर मैं अत्यन्त विस्मित हूँ । यह संसार तो पाप स्वरूप है । इसके बन्धन से कैसे छूटा जा सकता है ?॥१॥ त्रैलोक्य के वैभव से सम्पन्न महर्षि कश्यप के पुत्र इन्द्र यदि ऐसा निन्दित कर्म किये है तो निन्दित कर्म कौन नहीं कर सकता है ?। शपथ करके सेवा करने के बहाने अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करके इन्द्र ने गर्भ को मारना रूपी ऐसा कठोर कर्म किया ॥३॥ धर्म के रक्षक तथा त्रिलोकी के प्रशासक ने यदि ऐसा कर्म किया तो फिर निंदित कर्म कौन नहीं कर सकता है ॥४॥ हे जगद्गुरो ! कुरुक्षेत्र मे मेरे पितामहों ने भी

असारतां विजानंतः संसारस्य सुमेधसः । देवांशाश्च कथं चक्रुर्निन्दितं धर्मतत्पराः ॥७॥ काऽऽस्था धर्मस्य विप्रेन्द्र प्रमाणं किं विनिश्चितम् ।
चलचित्तोऽस्मि संजातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम् ॥८॥ आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान् । पुरुषो विषयासक्तो रागी भवति सर्वथा ॥९॥
रागो द्वेषो भवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम् । द्वेषादसत्यवचनं वक्तव्यं स्वार्थसिद्धये ॥१०॥ जरासंधविघातार्थं हरिणा सत्त्वमूर्तिना । छलेन रचितं रूपं
ब्राह्मणस्य विजानता ॥११॥ तदाऽऽप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः । अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते ॥१२॥ कीदृशोऽयं कृतो
यज्ञः किमर्थं शमवर्जितः । परलोकपदार्थं वा यशसे वाऽन्यथा किल ॥१३॥ धर्मस्य प्रथमः पादः सत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः । द्वितीयस्तु तथा शौचं दया
पादस्तृतीयकः ॥१४॥ दानं पादश्चतुर्थश्च पुराणज्ञा वदन्ति वै । तैर्विहीनः कथं धर्मस्तिष्ठेदिह सुसंमतः ॥१५॥ धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदं
भवेत्। धर्मे स्थिरा मतिः क्वापि न कस्यापि प्रतीयते ॥१६॥ छलार्थं च तदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः । येन वामनरूपेण वंचितोऽसौ बलिर्नृपः॥१७॥
विहर्ता शतयज्ञस्य वेदानां परिपालकः । धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१८॥ स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना । जितं

इस तरह से आश्चर्यमय निंदित कर्म किया था ॥५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण तथा धर्मराज युधिष्ठिर ने भी ऐसा निंदित कर्म किया था ॥६॥ संसार की असारता को जानने वाले बुद्धिमान तथा देवताओं के अंश होकर भी इन लोगों ने निन्दित कर्म किया ॥७॥ हे विप्रवर्य ! यदि ऐसी बात है तो धर्म पर किसकी आस्था होगी, धर्म के विषय में प्रमाण क्या है ? इस कथानक को सुनकर मेरा मन चंचल हो गया है ॥८॥ यदि आप्त पुरुष के वचन को प्रमाण माना जाय तो आप्त किसको माना जाय ? विषयों में आसक्त रहने वाला व्यक्ति रागी होता ही है ॥९॥ अपने स्वार्थ की सिद्धि नहीं होने पर दूसरों के प्रति राग एवं द्वेष होता ही है । लोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए झूठ बोलते ही हैं ॥१०॥ जरासंध को मारने के लिए सत्त्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण ने छल से ब्राह्मण का रूप बनाया ॥११॥ जब ऐसे सात्त्विक पुरुष भी इस तरह का अनर्थ कर सकते हैं तो फिर कौन आप्त प्रामाणिक हो सकता है । राजसूययज्ञ के अवसर पर अर्जुन ने भी छल किया था ॥१२॥ शमगुण से रहित यह यज्ञ कैसा है ? यह यज्ञ किसलिए किया गया था ? स्वर्गलोक प्राप्त करने के लिए या यश की प्राप्ति के लिए अथवा अन्य किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए ?॥१३॥ श्रुति कहती है कि धर्म का प्रथम चरण सत्य है । उसका दूसरा पाद शौच तथा तीसरा पाद दया है ॥१४॥ पुराणों के जानकारों का कहना है कि धर्म का चतुर्थपाद दान है । इन सबों के बिना सुसस्मत धर्म कैसे रह सकता है ?॥१५॥ धर्म से रहित किया गया कर्म अपना फल कैसे प्रदान कर सकता है । लगता है कि उस समय किसी की भी धर्म में आस्था नहीं थी ॥१६॥ जब भगवान् विष्णु स्वयं छल करने के लिए वामन बन गये और उस वामन रूप को धारण करके वे बलि

केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा ॥१९॥ छलकर्मविदा चायं सन्देहोऽत्र महान्मम । वंचयित्वा वंचितेन सत्यं वद द्विजोत्तम ॥२०॥ पुराणकर्ता
त्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः । व्यास उवाच– जितं वै बलिना राजन्दत्ता येन च मेदिनी ॥२१॥ त्रिविक्रमोऽपि नाम्ना यः प्रथितो वामनोऽभवत्।
छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप ॥२२॥ संप्राप्तं हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च । सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलं धर्मस्य पार्थिव ॥२३॥ दुःसाध्यं
देहिनां राजन्सत्यं सर्वात्मना किल । माया बलवती भूप त्रिगुणा बहुरूपिणी ॥२४॥ ययेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः । तस्माच्छलवतां
सत्यं कुतोऽविद्धं भवेन्नृप ॥२५॥ मिश्रेण जनिता चैव स्थितिरेषा सनातनी । वैखानसाश्च मुनयो निःसंगा निष्प्रतिग्रहाः ॥२६॥ सत्ययुक्ता भवन्त्यत्र
वीतरागा ग़तस्पृहाः । दृष्टांतदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः ॥२७॥ अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप । नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु
नृपसत्तम॥२८॥ धर्मशास्त्रेषु चांगेषु सगुणै रचितेष्विह । सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणं न करोति वै ॥२९॥ गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसंगताः।
निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा ॥३०॥ भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि तदासक्तं मनस्तथा ॥३१॥

को छले ॥१७॥ सौ यज्ञों को करने वाले, वेदों की रक्षा करने वाले, धर्म में निष्ठा रखने वाले, दानी, सत्यवक्ता और जितेन्द्रिय ॥१८॥ बलि को सर्वसमर्थ
भगवान् विष्णु ने पदभ्रष्ट कर दिया । अब आप ही बतलायें कि उन दोनों में कौन जीता, बलि या वामन ?॥१९॥ हे द्विजोत्तम ! मुझे सन्देह है कि छलकर्म
करने वाले वामन विजयी हुए अथवा बलि ? आप ही इसे बतलायें ॥२०॥ आप पुराणों के निर्माता, धर्मज्ञ तथा महाज्ञानी हैं । **व्यासजी ने कहा**– राजन्!
पृथिवी का दान करने वाले बलि ही विजयी हुए ॥२१॥ इसीलिए त्रिविक्रम के नाम से प्रख्यात भगवान् भी वामन हो गये । राजन् ! छल करने के कारण
ही उनका वामन नाम हुआ ॥२२॥ उसी के कारण श्रीहरि को बलि का द्वारपाल होना पड़ा । राजन् ! सत्य से भिन्न कोई दूसरी वस्तु धर्म का मूल नहीं
है ॥२३॥ राजन् ! शरीरधारियों के लिए सत्य का पालन करना बड़ा कठिन है । राजन् ! अनेक रूपों वाली माया अत्यन्त बलवान् है ॥२४॥ उसी ने
सम्पूर्ण जगत् को त्रिगुण मिश्रित बना दिया है । अतएव छल करने वाले लोगों से सत्य क्यों नहीं पीड़ित होगा ॥२५॥ यह सनातनी स्थिति सत्त्व, रजस्
एवं तमस् से मिश्रित है । वैखानस एव मुनिजन इसीलिए सङ्ग से रहित एवं परिग्रह रहित होते हैं ॥२६॥ वे सत्यवक्ता, वीतराग और निःस्पृह होते हैं ।
उनलोगों की रचना जनसामान्य को दृष्टान्त दिखाने के लिए हुई है ॥२७॥ उन मुनियों को छोड़कर सम्पूर्ण जगत् त्रिगुण मिश्रित है । अतएव पुराणों तथा वेदों
धर्मशास्त्रों, वेदाङ्गों में जो सगुण रूप से रचित हैं, उनमें एक वाक्यता की प्रतीति नहीं होती है । सगुण से सगुण की ही उत्पत्ति होती है, निर्गुण की
नहीं॥२८-२९॥ वे सभी गुण मिश्रित रूप से मिले है, पृथक् नहीं, इसीलिए निर्व्यलीक धर्म में किसी की भी बुद्धि स्थिर नहीं होती है ॥३०॥ संसार की उत्पत्ति

करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम् । ब्रह्मादिस्तंबपर्यंताः प्राणिनः स्थिरजंगमाः ॥३ २॥ सर्वे मायावशा राजन्साऽनुक्रीडति तैरिह । सर्वान्वै मोहयत्येषा विकुर्वत्यनिशं जगत् ॥३ ३॥ असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः । इन्द्रियार्थांश्चिंतयानो न प्राप्नोति यदा नरः ॥३ ४॥ तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते । कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः ॥३ ५॥ कृताकृतं न जानन्ति प्राणिनस्तद्वशं गताः । विभवे सत्यहंकारः प्रबलः प्रभवत्यपि ॥३ ६॥ अहंकाराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च । संकल्पा बहवस्तत्र विकल्पाः प्रभवन्ति च ॥३ ७॥ इर्ष्याऽसूया तथा द्वेषः प्रादुर्भवति चेतसि । आशा तृष्णा तथा दैन्यं दंभोऽधर्ममतिस्तथा ॥३ ८॥ प्राणिनां प्रभवंत्येते भावा मोहसमुद्भवाः । यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३ ९॥ अहंकाराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम् । अहंभावकृतं सर्वं प्रभवेद्वै न शौचवत् ॥४ ०॥ रागलोभात्कृतं कर्म सर्वाङ्गं शुद्धिवर्जितम् । प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्च द्रष्टव्या विबुधैः किल ॥४ १॥ अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि । द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः॥४ २॥ विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम । मनोऽतिनिर्मलं यस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत् ॥४ ३॥ तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थफलं

के समय हे महाराज माया से मोहित व्यक्ति की महाबलवान् इन्द्रियों में मन आसक्त रहता है ॥३१॥ और वह अनेक प्रकार के भावों को उन गुणों से प्रेरित होकर उत्पन्न करता है । ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सभी स्थावर जंगमात्मक प्राणी माया के वश में हैं । और माया उन सबों के साथ क्रीड़ा करती है और निरन्तर जगत् में अनेक नये विकारों को उत्पन्न करती है ॥३२-३३॥ राजन् ! संसारी जीव अपना कर्म करने के लिए असत्य के सहारे अपना कार्य करते हैं । जब इन्द्रिय के विषयों (रूप रसादि) की चिन्ता करके मनुष्य उन्हें नहीं प्राप्त कर पाता है तो उसे प्राप्त करने के लिए छल करता है । छल करने से पाप की वृद्धि होती है । उसके कारण काम, क्रोध, तथा लोभ जो मनुष्यों के वैरी हैं वे बलवान् होते हैं ॥३४-३५॥ इन लोभ मोहादि शत्रुओं के वशवर्ती मनुष्य अपने कर्तव्या-कर्तव्य का विचार नहीं कर पाते हैं । वैभव के बढ़ जाने पर अहंकार प्रबल हो जाता है ॥३६॥ अहंकार से मोह उत्पन्न होता है, और मोह से विनाश हो जाता है । मोह के कारण मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं ॥३७॥ मोह से ही प्राणी में ईर्ष्या, असूया तथा द्वेष उत्पन्न होते हैं । किञ्च मोह से ही आशा, तृष्णा तथा अधार्मिक बुद्धि उत्पन्न होती है । प्राणी में ये सभी भाव मोह के ही कारण उत्पन्न होते हैं । मनुष्य अहंकार के ही वशीभूत होकर प्रतिदिन यज्ञ, दान, तीर्थयात्रा, व्रत तथा नियमों को करता है । किन्तु उसका फल वैसा नहीं होता है जैसा कि निर्मल अन्तःकरण वाले को फल प्राप्त होता है ॥३८-४०॥ आसक्ति तथा लोभ के कारण किया हुआ कर्म अशुद्ध होता है, अतएव विद्वानों को सर्वप्रथम द्रव्य की शुद्धि पर विचार करना चाहिए ॥४१॥ धर्म के काम में द्रोह रहित रूप से अर्जित धन का विनियोग प्रशस्त होता है । द्रोह करके अर्जित धन से मनुष्य जो कोई भी धर्म-कर्म करता है, उसका फल उसके विपरीत ही होता है । जिसका मन अत्यन्त निर्मल है वही कर्मों का ठीक-ठीक फल

लभेत् । कर्तारः कर्मणां सर्वे आचार्यर्त्विजादयः ॥४४॥ स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम् । देशकालक्रियाद्रव्यकर्तॄणां शुद्धता यदि॥४५॥ मंत्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते । शत्रूणां नाशमुद्दिश्य स्ववृद्धिं परमां तथा ॥४६॥ करोति सुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल । स्वार्थासक्तः पुमान्नित्यं न जानाति शुभाशुभम् ॥४७॥ दैवाधीनः सदा कुर्यात्पापमेव न सत्कृतम् । प्राजापत्याः सुराः सर्वे ह्यसुराश्च तदुद्भवाः॥४८॥ सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः । सत्त्वोद्भवाः सुराः सर्वेऽप्युक्ता वेदेषु मानुषाः ॥४९॥ रजोद्भवास्ताम सास्तुतिर्यंचः परिकीर्तिताः । सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम् ॥५०॥ तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे । सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा ॥५१॥ असन्तुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः । अहंकारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृप ॥५२॥ रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

◆

प्राप्त करता है ॥४२-४३॥ मन के विकार से युक्त होने पर कर्मों के यथार्थ फल की प्राप्ति नहीं होती है । यज्ञादि कर्मों को करने वाले आचार्य, ऋत्विक् इत्यादि यदि विशुद्ध मन वाले होते हैं तब ही सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है । यदि कर्मों के देश, काल तथा क्रिया की शुद्धता होती है तो मन्त्रों का पूर्ण फल प्राप्त होता है । शत्रुओं के नाश तथा अपनी परम वृद्धि के उद्देश्य से यदि कोई कर्म किया जाता है तो, उसका विपरीत ही फल होता है । स्वार्थ में लगा हुआ मनुष्य शुभ तथा अशुभ को नहीं जान पाता है ॥४४-४७॥ ऐसे लोग भाग्य के अधीन रहकर सदा पाप ही करते हैं वे अच्छे काम को नहीं करते हैं । प्रजापति से ही देवताओं और असुरों की उत्पत्ति होती है ॥४८॥ वे आपस में विरोधी तथा स्वार्थ परायण हैं । वेदो में कहा गया है कि देवताओं की उत्पत्ति सत्त्वगुण से, मनुष्यों की उत्पत्ति रजोगुण से तथा पशुपक्षियों की उत्पत्ति तमोगुण से होती है । सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले देवताओं में परस्पर में वैरभाव बना रहता है ॥४९-५०॥ जब सत्त्वगुण सम्पन्न देवताओं में वैरभाव रहता है और यदि वे दूसरों की तपस्या में विघ्न करने वाले हैं तो फिर पशु-पक्षियों में यदि जातिगत वैर है तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ॥५१॥ वे असन्तुष्ट रहकर एक-दूसरे से द्वेष की भावना रखने के कारण परस्पर में 'विरोधी हैं, तो अहंकार से उत्पन्न होने वाला रागद्वेष से रहित कैसे रह सकता है ?॥५२-५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

◆

पञ्चमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **अथ किं बहुनोक्तेन संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम । धर्मात्माऽद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद्भवति कर्हिचित् ॥१॥ रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वं स्थावरजंगमम् । आद्ये युगेऽपि राजेंद्र किमद्य कलिदूषिते ॥२॥ देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा । मानुषाणां तिरश्चां च का वार्ता नृप गण्यते ॥३॥ द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता । अद्रोहिणि तथा शांते विद्वेषः खलता स्मृता ॥४॥ यः कश्चित्तापसः शांतो जपध्यानपरायणः। भवेत्तस्य जपे विघ्नकर्ता वै मघवा परम् ॥५॥ सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवासतां कलिः। मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगे स्मृतौ ॥६॥ कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः । अन्यथाऽन्ययुगानां वै सर्वे धर्मपरायणाः ॥७॥ वासना कारणं राजन्सर्वत्रधर्मसंस्थितौ । तस्यां वै मलिनानां तु धर्मोऽपि मलिनो भवेत् ॥८॥ मलिना वासना सत्यं विनाशायेति सर्वथा । ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति स्मृतः ॥९॥ ब्राह्मणः सत्यसंपन्नो वेदधर्मरतः सदा । दक्षस्य दुहितारो हि वृता दश महात्मना ॥१०॥ विवाहविधिना सम्यङ्मुनिना गृहधर्मिणा । तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मः सत्यवतां वरः ॥११॥ हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप । योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह ॥१२॥ नरनारायणौ चैव चेरतुस्तप**

नर और नारायण की तपस्या का वर्णन

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– राजन् ! बहुत अधिक क्या कहना है इस संसार में कहीं पर कोई विरला पुरुष ही धर्मात्मा और द्रोहरहित बुद्धिवाला होता है ॥१॥ यह सारा संसार राग-द्वेष से परिपूर्ण है । यह सत्ययुग में भी ऐसा ही था तो फिर कलियुग में क्या कहना है ?॥२॥ जब देवता ही द्रोह, इर्ष्या तथा छल कर्म परायण होते हैं तो फिर मनुष्यों तथा पशु-पक्षियों के विषय में क्या कहना है ?॥३॥ द्रोही के प्रति द्रोह करना तो समानता का व्यवहार है; किन्तु द्रोहरहित तथा शान्त प्रकृति के प्रति द्रोह करना दुष्टता है ॥४॥ जो कोई तपस्वी, शान्त तथा जप एवं ध्यान में लगा रहता है, उसके जप में सबसे अधिक विघ्न इन्द्र ही करते हैं ॥५॥ सज्जन पुरुष को सर्वदा सत्ययुग ही दिखता है और असज्जनों को सर्वदा कलियुग ही दिखता है । कर्म तथा योग वाले त्रेतायुग के अनुसार तो मध्यम कोटि के पुरुष चलते हैं ॥६॥ कभी-कभी कोई विरला व्यक्ति सत्यधर्म का पालन करने वाला मिलता है । उससे भिन्न लोग तो युगधर्म का ही अनुसरण करते हैं ॥७॥ राजन् ! धर्ममार्ग पर चलने के लिए वासना ही मुख्य कारण है । वासना के मलिन होने पर धर्म भी मलिन हो जाता है ॥८॥ मलिन वासना विनाश का ही कारण बनती है । ब्रह्माजी के हृदय से उत्पन्न होने वाले एक पुत्र का नाम धर्म है ॥९॥ ब्रह्माजी का वह धर्म नामक पुत्र सत्य तथा वैदिक धर्म का अनुरागी था । उसने दक्ष की दश पुत्रियों के साथ विवाह किया ॥१०॥ विधिपूर्वक

उत्तमम् । प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ॥१३॥ तपस्विषु धुरीणौ तौ पुराणौ मुनिसत्तमौ । गृणंतौ तत्परं ब्रह्म गंगाया विपुले तटे ॥१४॥ हरेरंशौ स्थितौ तत्र नरनारायणावृषी । पूर्णं वर्षसहस्रं तु चक्राते तप उत्तमम् ॥१५॥ तापितं च जगत्सर्वं तपसा सचराचरम् । नरनारायणाभ्यां च शक्रः क्षोभं तदा ययौ ॥१६॥ चिन्ताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत् । किं कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ ॥१७॥ सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं मे ग्रहीष्यतः । विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि ॥१८॥ उत्पाद्य कामं क्रोधं च लोभं वाप्यतिदारुणम् । इत्युद्दिश्य सहस्राक्षः समारुह्य गजोत्तमम् ॥१९॥ विघ्नकामस्तु तरसा जगाम गन्धमादनम् । गत्वा तत्राश्रमे पुण्ये तावपश्यच्छतक्रतुः ॥२०॥ तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ । ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसू ॥२१॥ धर्मपुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः । इति संचिंत्य तौ दृष्ट्वा तदोवाच शचीपतिः ॥२२॥ किं वां कार्यं महाभागौ ब्रूतं धर्मसुतौ किल । ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुंयातोऽस्म्यहं ऋषी ॥२३॥ अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल । व्यास उवाच– एवं पुनः पुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः ॥२४॥ नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ।

विवाह करके वह गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने लगा । उसने अपनी पत्नियों में चार पुत्रों को उत्पन्न किया ॥११॥ उन पुत्रों के नाम थे हरि, कृष्ण, नर तथा नारायण । उनमें हरि तथा कृष्ण नित्य ही योगाभ्यास करते थे ॥१२॥ नर और नारायण ये धर्म के दोनों पुत्र हिमालय पर्वत के वदरिकाश्रम में जाकर उग्रतप करने लगे ॥१३॥ तपस्वियों में अग्रगण्य प्राचीन मुनि नर और नारायण गंगातट पर बैठकर गायत्री नामक वैदिक मंत्र का जप करने लगे ॥१४॥ भगवान् विष्णु के अंशावतार नर और नारायण ने उस स्थान पर एक हजार वर्ष तक उत्तम तपस्या की ॥१५॥ नर-नारायण की उग्र तपस्या से सम्पूर्ण विश्व जब संतप्त होने लगा तो उससे इन्द्र क्षुब्ध हो गये ॥१६॥ चिन्तित इन्द्र अपने मन में सोचने लगे कि धर्म के पुत्र तपस्या तथा ध्यान में संलग्न हैं अब मुझे क्या करना चाहिए ॥१७॥ यदि वे अपनी तपस्या से सिद्ध हो गये तो वे मेरा पद ले लेंगे । अतएव उनकी तपस्या में विघ्न करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए, जिससे कि वे सिद्ध न हो सकें ॥१८॥ वे अत्यन्त दारुण (भयंकर) काम, क्रोध और लोभ को उनके मन में उत्पन्न करने के लिए ऐरावत हाथी पर सवार होकर उनके आश्रम में गन्धमादन पर्वत पर गये । वहाँ जाकर इन्द्र ने उन दोनों ऋषियों को देखा ॥१९-२०॥ तपस्या के प्रभाव से उदित सूर्य के समान देदीप्यमान शरीर वाले ये दोनों ब्रह्मा तथा विष्णु हैं क्या ? अथवा यहाँ दो अग्नियाँ प्रकट हो गयी हैं ?॥२१॥ धर्म के पुत्र ये दोनों ऋषि तपस्या के द्वारा क्या करेंगे ? इस तरह से विचार करके उन दोनों को देखकर इन्द्र ने कहा ॥२२॥ हे महाभाग ! धर्म के पुत्र आप दोनों का प्रयोजन क्या है ? मैं आप दोनों को उत्तम वर देने के लिए आया हूँ ॥२३॥ मैं आपलोगो की तपस्या से प्रसन्न हूँ । अदेय भी वरदान मैं आपलोगों को

ततो वै मोहिनीं मायां चकार भयदां वृषः ॥२५॥ वृकान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च समुत्पाद्याविभीषयत् । वर्षं वातं तथा वह्निं समुत्पाद्य पुनः पुनः ॥२६॥
भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम् । भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी ॥२७॥ नरनारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः।
वरदाने प्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः ॥२८॥ व्याघ्रसिंहादिभिः क्रांतौ चलितौ नाश्रमात्स्वकात् । न तयोर्ध्यानभङ्गं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत्॥२९॥
इन्द्रोऽपि सदनं गत्वा चिन्तयामास दुःखितः । चलितौ भयलोभाभ्यां नेमौ मुनिवरोत्तमौ ॥३०॥ चिंतयंतौ महाविद्यामादिशक्तिं सनातनीम् । ईश्वरीं
सर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम् ॥३१॥ ध्यायतां कः क्षमो लोके बहुमायाविदप्युत । यन्मूलाः सकला माया देवासुरकृताः किल ॥३२॥ ते कथं
बाधितुं शक्ता ध्यायंति गतकल्मषाः । वाग्बीजं कामबीजं च मायाबीजं तथैव च ॥३३॥ चित्ते यस्य भवेत्तं तु बाधितुं कोऽपि न क्षमः । मायया
मोहितः शक्रो भूयस्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥३४॥ कर्तुं कामवसंतौ तु समाहूयाब्रवीद्वचः । मनोभव वसंतेन रत्या युक्तो व्रजाधुना ॥३५॥ अप्सरोभिः
समायुक्तस्तरसा गंधमादनम् । नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ ॥३६॥ कुरुतस्तप एकान्ते स्थितौ बदरिकाऽऽश्रमे । गत्वा तत्र समीपे तु

दूँगा । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से उन दोनों के सामने खड़े होकर इन्द्र ने बार-बार कहा ॥२४॥ किन्तु ध्यान में मग्न तथा स्थिरचित्त वाले नर-नारायण कुछ नहीं बोले । उसके बाद इन्द्र ने वहाँ भयभीत करने वाली अपनी मोहिनी माया को फैलाया ॥२५॥ उसने वृक, सिंह तथा व्याघ्रों को उत्पन्न करके डराया। बार-बार, वर्षा, वायु तथा अग्नि को उत्पन्न करके उन्हें डाराना चाहा ॥२६॥ इस तरह से इन्द्र ने मोहिनी माया करके उन दोनों को डाराया, किन्तु धर्म के पुत्र वे दोनों मुनि भय से भी इन्द्र के वश में नहीं आये ॥२७॥ तब नर और नारायण को देखकर इन्द्र अपने घर चले गये और दुःखी होकर विचार करने लगे वे दोनों न तो वरदान से मोहित हुए और न तो अग्नि और वायु से भयभीत हुए । व्याघ्र और सिंहों के आने पर भी वे अपने आसन से विचलित नहीं हुए । कोई भी उपाय उन दोनों के ध्यान को भङ्ग करने में समर्थ नहीं हुआ ॥२९॥ इस तरह इन्द्र अपने घर जाकर दुःखी होकर सोच रहे थे कि ये दोनों मुनि भय तथा लोभ से विचलित नहीं हुए ॥३०॥ वे दोनों महाविद्या आदिशक्ति सनातनी, सम्पूर्ण लोकों की स्वामिनी अद्भुत तथा परा प्रकृति को ध्यान कर रहे थे । अनेक प्रकार की माया जानने वाला भी कैसे समर्थ हो सकता है । जो देवी देवताओं तथा असुरों की समस्त मायाओं का मूल हैं ॥३१-३२॥ जो निष्पाप व्यक्ति वाग्बीज, मायाबीज अथवा कामबीज का ध्यान करता है, उसको कोई कैसे बाधित कर सकता है ?॥३३॥ ये तीनों मन्त्र जिसके मन में स्थित हैं उसको बाधित करने में कोई भी समर्थ नहीं है । माया से मोहित इन्द्र उनकी प्रतिक्रिया करने के लिए काम तथा वसन्त को बुलाकर कहे कामदेव तुम आज वसन्त तथा रति एवं अप्सराओं के साथ गन्धमादन पर्वत पर जाओ । वहाँ पर प्रचीन ऋषि नर और नारायण हैं ॥३४-३६॥

तयोर्मन्मथ मार्गणैः ॥३७॥ चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाधुना । मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाशु च ॥३८॥ वशीकुरु महाभाग मुनी धर्मसुतावपि । को ह्यस्मिन्सर्वसंसारे देवौ दैत्योऽथ मानवः ॥३९॥ यस्ते बाणवशं प्राप्तो न याति भृशताडितः । ब्रह्माऽहं गिरिजानाथश्चंद्रो वह्निर्विमोहितः ॥४०॥ गणना काऽनयोः काम त्वद्बाणानां पराक्रमे । वारांगनागणोऽयं ते सहायार्थं मयेरितः ॥४१॥ आगमिष्यति तत्रैव रंभादीनां मनोरमः । एका तिलोत्तमा रंभा कार्यं साधयितुं क्षमा ॥४२॥ त्वमेवैकः क्षमः कामं मिलितैः कस्तु संशयः । कुरु कार्यं महाभाग ददामि तव वांछितम् ॥४३॥ प्रलोभितौ मयाऽत्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ । स्थानान्न चलितौ शान्तौ वृथाऽयं मे गतः श्रमः ॥४४॥ तथा वै मायया कृत्वा भीषितौ तापसौ भृशम् । तथापि नोत्थितौ स्थानाद्देहरक्षापरौ न तौ ॥४५॥ व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा शक्रं प्राह मनोभवः। वासवाद्य करिष्यामि कार्यं ते मनसेप्सितम् ॥४६॥ यदि विष्णुं महेशं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् । ध्यायंतौ तौ तदाऽस्माकं भवितारौ वशौ मुनी॥४७॥ देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथंचन । कामराजं महाबीजं चिंतयंतं मनस्यलम् ॥४८॥ तां देवीं चेन्महाशक्तिं संश्रितौ भक्तिभावतः।

वे बदरिकाश्रम में एकान्त स्थान में तपस्या कर रहे हैं । वहाँ जाकर तुम अपने काम बाणों से उनके चित्त को कामातुर बना दो । तुम मेरे इस कार्य को करो उनको तुम अपने बाणों के प्रहार से मोहित तथा उच्चाटित करके धर्म के पुत्र इन दोनों मुनियों को अपने वश में कर लो । संसार का कोई भी देव, दानव अथवा मानव ॥३७-३९॥ ऐसा नहीं है जो तुम्हारे बाण के वश में न हो जाय । जब ब्रह्मा, शंकरजी, चन्द्रमा तथा अग्नि भी मोहित हो जाते हैं॥४०॥ हे काम ! तुम्हारे बाणों के पराक्रम के सामने इन दोनों की कौन सी गणना है । तुम्हारी सहायता करने के लिए इन वाराङ्गनाओं को भी मैंने कह दिया है ॥४१॥ वहाँ रम्भा आदि का मनोहर समुदाय पहुँच जायेगा । अकेली तिलोत्तमा ही इस कार्य को सिद्ध करने में समर्थ है ॥४२॥ काम तुम अकेले ही इस काम को कर सकते हो और सहायक के साथ काम पूरा होने में कोई सन्देह नहीं है । तुम इस काम को करो फिर मैं तुम्हें अभिप्रेत वस्तु प्रदान करूँगा ॥४३॥ उन दोनों तपस्वियों को मैंने वरदान देने का बहुत प्रलोभन दिया किन्तु वे अपने स्थान से नहीं डिगे और मेरा परिश्रम व्यर्थ हो गया॥४४॥ उसके बाद मैंने माया करके उन दोनों को बहुत डराया; किन्तु वे न तो अपने स्थान से उठे और न तो अपने देह की रक्षा किए ॥४५॥ **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र की इस बात को सुनकर कामदेव ने इन्द्र से कहा । इन्द्र ! मैं आपका अभिप्रेत कार्य करूँगा ॥४६॥ यदि वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र अथवा सूर्य की आराधना करते होंगे तब तो वे दोनों मेरे वश में हो जायेंगे ॥४७॥ अपने मन में कामराज महाबीज का ध्यान करने वाले देवी के भक्तों

न तदा मम बाणानां गोचरौ तापसौ किल ।।४९।। इन्द्र उवाच– **गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्र समुद्यतैः । कार्यं ममातिदुःसाध्यं कर्ता हितमनुत्तमम्** ।।५०।। व्यास उवाच– **इति तेन समादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः । यत्र तौ धर्मपुत्रौ द्वौ तेपाते दुष्करं तपः ।।५१।।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

व्यास उवाच– **प्रथमं तत्र संप्राप्तो वसंतः पर्वतोत्तमे । पुष्पिताः पादपाः सर्वे द्विरेफालिविराजिताः ।।१।। आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः । सालास्तालास्तमालाश्च मधूकाः पुष्पिता बभुः ।।२।। बभूवुः कोकिलाऽऽलापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः । बल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वाः आलिलिंगुर्नगोत्तमान् ।।३।। प्राणिनः स्वासु भार्यासु प्रेमयुक्ताः स्मरातुराः । बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम् ।।४।। ववुर्मन्दाः सुगंधाश्च सुस्पर्शा दक्षिणानिलाः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाभवन् ।।५।। रतियुक्तस्ततः कामः पूरयन्पंच मार्गणान् । चकार त्वरितस्तत्र वासं**

को मैं अपने वश में नहीं कर सकता हूँ ।।४८।। यदि वे भक्तिभाव पूर्वक देवी की उपासना करते होंगे तो फिर मेरे बाण उन तक पहुँच ही नहीं पायेंगे ।।४९।। **इन्द्र ने कहा–** तुम सब लोग वहाँ तैयार होकर जाओ । मेरा काम यद्यपि अत्यन्त कठिन है फिर भी मेरा विश्वास है कि तुम उसे पूरा करोगे ।।५०।। **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र के द्वारा आदिष्ट होकर वे सब वहाँ गये जहाँ पर वे दोनों धर्म के पुत्र कठोर तपस्या करते थे ।।५१।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

नर-नारायण के सन्निकट अप्सराओं का जाना

व्यासजी ने कहा– सर्वप्रथम उस उत्तम पर्वत पर वसन्त पहुँचा । उसके कारण वहाँ के सभी वृक्ष फल-फलों से भर गये और उन पर भौरों का समूह मँडराने लगा ।।२।। आम, मौलिश्री, तिलक, पलाश, साल, ताल तमाल और महुआ के वृक्ष पुष्पित हो गये ।।२।। वृक्षों की शाखाओं पर कोयलें मनोहर कूजन करने लगीं । लतायें भी पुष्पित होकर वृक्षों से लिपट गयीं ।।३।। कामासक्त जीव अपनी पत्नियों से प्रेम करने लगे और अत्यन्त आसक्ति पूर्वक

बदरिकाश्रमे ॥६॥ रंभा तिलोत्तमाद्याश्च गत्वा तत्र वराश्रमे । गानं चक्रुः सुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम् ॥७॥ तच्छ्रुत्वा मधुरोद्गीतं कोकिलानां च कूजितम् । भ्रमरालिविरावं च प्रबुद्धौ तो मुनीश्वरौ ॥८॥ ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितं वनम् । जातौ चिंतापरौ तत्र नरनारायणावृषी ॥९॥ किमद्य शिशिरापायः संवृतः समयं विना । प्राणिनो विह्वलाः सर्वे लक्ष्यंतेऽतिस्मरातुराः ॥१०॥ कालधर्मविपर्यासः कथमद्य दुरासदः । नरं नारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥११॥ नारायण उवाच– **पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिताः प्रतिभांति वै । कोकिलाऽऽलापसंघुष्टा भ्रमरालिविराजिताः ॥१२॥ शिशिरं भीममातंगं दारयन्स्वखरैर्नखैः । वसंतकेशरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥१३॥ रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकांघ्रिका । नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलाऽऽनना ॥१४॥ नीलेंदीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी । प्रोत्फुल्लकुन्दरदना मंजरीकर्णशोभिता॥१५॥ बंधुजीवाधरा शुभ्रा सिंधुवारनखोद्भवा । पुंस्कोकिलस्वरा पुण्या कदंबवसना शुभा ॥१६॥ बर्हिर्वृंदकलापा च सारसस्वननूपुरा । वासंती बद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा ॥१७॥ पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता । वसंतलक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन्बदरिकाश्रमे ॥१८॥ अकाले किमियं प्राप्ता**

क्रीड़ा करने लगे ॥४॥ सुगन्धि से पूर्ण मलयानिल धीरे-धीरे बहने लगी । मुनियों की भी इन्द्रियाँ प्रमाथी बन गयीं ॥५॥ रति के साथ कामदेव भी अपने पाँचों बाणों का प्रयोग करते हुए बदरिकाश्रम में निवास करने लगा ॥६॥ उस श्रेष्ठ आश्रम में जाकर सुन्दर गीतों को जानने वाली रम्भा तथा तिलोत्तमा आदि स्वर एवं तान के साथ गीत गाने लगीं ॥७॥ उस मधुर गीत, कोयलों की कूक, भवरों की गुंजार को सुनकर उनदोनों मुनियों का ध्यान टूट गया॥८॥ बिना समय के ही वसन्त तथा पुष्पित वन को देखकर नर तथा नारायण ऋषि सोचने लगे ॥९॥ आज विना समय के ही शिशिर ऋतु क्यों समाप्त हो गयी ? सभी जीव कामासक्त होकर विह्वल दिखायी पड़ते हैं ॥१०॥ आश्चर्यित होकर नारायण ने नर से पूछा कि आज एकाएक काल का धर्म कैसे परिवर्तित हो गया ?॥११॥ नारायण ने नर से कहा भाई देखो ये वृक्ष विकसित से प्रतीत होते हैं । उन पर कोयलें कूज रही हैं, और भौंरे मड़रा रहे हैं ॥१२॥ हे मुने ! शिशिर रूपी भयंकर हाथी को वसंत रूपी सिंह अपने पलाश पुष्प रूपी नख से विदीर्ण कर रहा है ॥१३॥ देवर्षे ! वसंत श्री रूपी सुन्दरी आ गयी है । लाल अशोक ही उसके हाथ हैं, पलाश पुष्प ही उसके पैर हैं, नीला अशोक ही उसके केशपाश हैं, विकसित कमल ही उसका मुख है ॥१४॥ नीला कमल ही उसके नेत्र हैं, विल्ववृक्ष के फल ही उसके स्तन हैं । विकसित कुन्द ही उसकी दन्तपंक्ति है । आम्रमंजरी ही उसके कान हैं ॥१५॥ दुपहरिया के पुष्प ही उसके ओष्ठ हैं, सिन्धुवार के पुष्प हीं उसके नख हैं, पुंस्कोकिल ही उसके स्वर हैं कदम्ब पुष्प ही उसके वस्त्र हैं ॥१६॥ मयूर पिच्छ उसकी चोटी है । सारस की ध्वनि उसके पैरों के नूपुर हैं । माधवी लता ही उसकी करधनी है । मत्त हंस ही उसकी चाल है । पुत्र जीव ही उसके रोएँ हैं । इस

विस्मयोऽयं ममाधुना । तपोविघ्नकरा नूनं देवर्षे परिचिंतय ।।१९।। श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम् । आवयोस्तपभंगाय कृतं मघवता किल ।।२०।। ऋतुराडन्यथा काले प्रीतिं संजनयेत्कथम् । विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनासुरशत्रुणा ।।२१।। वाताः सुगंधाः शीताश्च समायांति मनोहराः । नान्यत्कारणमस्तीह शतक्रतुकृतिं विना ।।२२।। इति ब्रुवति विप्राग्र्ये देवे नारायणे विभौ । सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा।।२३।। ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा । विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि ।।२४।। मन्मथं मेनकां चैव रम्भां चैव तिलोत्तमाम् । पुष्पगन्धां सुकेशीं च महाश्वेतां मनोरमाम् ।।२५।। प्रमद्वरां घृताचीं च गीतज्ञां चारुहासिनीम् । चन्द्रप्रभां च सोमां च कोकिलाऽऽलापमंडिताम् ।।२६।। विद्युन्मालांबुजाक्षीं च तथा कांचनमालिनीम् । एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदाऽन्तिके ।।२७।। तासां द्व्यष्टसहस्राणि पंचाशदधिकानि च । वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम् ।।२८।। प्रणम्याग्रे स्थिताः सर्वा देववारांगनास्तदा । दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यमाल्योपशोभिताः ।।२९।। जगुश्छलेन ताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम् । तत्तथाऽवस्थितं दिव्यं मन्मथादिविवर्धनम् ।।३०।। शुश्राव भगवान्विष्णुर्नरो नारायणस्तदा । श्रुत्वा प्रोवाच तास्तत्र प्रीत्या नारायणो मुनिः ।।३१।। आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम् । भवंत्योऽतिथिधर्मेण प्राप्ताः स्वर्गात्सुमध्यमाः ।।३२।।

तरह की वसन्त श्री इस समय आ गयी है ।।१८।। मुझको आश्चर्य है कि बिना समय के यह वसंत श्री क्यों आ गयी । देवर्षे यह आप विचार करें यह हमलोगों की तपस्या भंग करने वाली है ।।१९।। ध्यान को विनष्ट करने वाला अप्सराओं का गीत सुनायी दे रहा है । लगता है हमलोगों की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने यह सबकुछ किया है ।।२०।। लगता है असुरों के शत्रु इन्द्र ने यह विघ्न उपस्थित किया है । अन्यथा वसंत इस तरह के प्रेम कैसे उत्पन्न करता है ।।२१।। शीतल सुगन्धित और मनोहर वायु चल रही है । यह इन्द्र की करदानी से भिन्न कोई भी दूसरा कारण नहीं है ।।२२।। जब ब्राह्मण श्रेष्ठ नारायण देव इस तरह से कह रहे थे उसी समय कामदेव इत्यादि दिखायी पड़े ।।२३।। सबों को भगवान् नर तथा नारायण ने देखा और वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये ।।२४।। कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी, महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, सुन्दर हँसी वाली और गीतों को जानने वाली घृताची, चन्द्रप्रभा, सोमा, कोयल के समान अलाप करने वाली विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी तथा काञ्चन मालिनी इत्यादि देव सुन्दरियाँ तथा अन्य अप्सराएँ भी उनके साथ दिखायी पड़ी । उनकी संख्या सोलह हजार पचास थी । काम की इस विस्तृत सेना को देखकर दोनों विस्मित हो गये ।।२८।। वे अप्सरायें भगवान् नर-नारायण को प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गयीं । वे सब दिव्य आभूषणों तथा दिव्य मालाओं से सुशोभित थीं ।।२९।। वे सबके सब छल पूर्वक पृथिवी पर अत्यन्त दुर्लभ तथा कामवासना को बढ़ाने वाले गीतों को गाने लगीं ।।३०।। भगवान् नर और नारायण ने उसे सुना और उसके

व्यास उवाच– **साभिमानस्तु संजातस्तदा नारायणो मुनिः । इन्द्रेण प्रेषिता नूनं तथा विघ्नचिकीर्षया ॥३३॥ वराक्यः का इमाः सर्वाः सृजाम्यद्य नवाः किल । एताभ्यो दिव्यरूपाश्च दर्शयामि तपोबलम् ॥३४॥ इति संचिन्त्य मनसा करेणोरुं प्रताड्य वै । तरसोत्पादयामास नारीं सर्वांगसुन्दरीम्॥३५॥ नारायणोरुसंभूता ह्युर्वशीति ततः शुभा । ददृशुस्ताः स्थितास्तत्र विस्मयं परमं ययुः ॥३६॥ तासां च परिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुन्दरीः । प्रादुश्चकार तरसा तदा मुनिरसंभ्रमः ॥३७॥ गायंत्यश्च हसंत्यश्च नानोपायनपाणयः । प्रणेमुस्ता मुनी सर्वाः स्थिताः कृत्वांजलिं पुरः ॥३८॥ तां वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं देवांगना हि मुमुहुः प्रविमोहयंत्यः । ऊचुश्च तौ प्रमुदिताननपद्मशोभा रोमोद्गमोल्लसितचारुनिजांगवल्ल्यः ॥३९॥ कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः । अस्मत्कटाक्षविषदिग्धशरेण दग्धः को वा न तत्रभवतां मनसो व्यथा नः॥४०॥ ज्ञातौ युवां नरहरेः परमांशभूतौ देवौ मुनी शमदमादिनिधी सदैव । सेवा निमित्तमिह नो गमनं न कामं कार्यं हरेः शतमखस्य विधातुमेव॥४१॥ भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः संपादितं न विदितं खलु संचितं तत् । चित्तं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्यामस्मद्विधे किल**

बाद भगवान् नारायण ने प्रेमपूर्वक उन सबों से कहा ॥३१॥ आप सब लोग बैठें आप सभी सुन्दरियाँ हमारे अतिथि रूप में स्वर्ग से आयी हैं मैं आपलोगों का अद्भुत स्वागत करता हूँ ॥३२॥ **व्यासजी ने कहा–** भगवान् नारायण को अभिमान हो गया । वे सोच रहे थे इन सबों को इन्द्र ने हमारे तप में विघ्न करने के लिए भेजा है ॥३३॥ ये बेचारी क्या हैं ? मैं इन सबों से नवीन तथा इन सबों की अपेक्षा दिव्यरूप वाली अप्सराओं को अपने तपोबल से दिखाता हूँ ॥३४॥ यह सोचकर उन्होंने अपनी जाँघ को ठोका और शीघ्र ही एक सर्वाङ्ग सुन्दरी नारी को उत्पन्न कर दिया ॥३५॥ चूकि वह नारायण के ऊरु से उत्पन्न हुई थी अतएव उसका नाम उर्वशी हुआ । उसको देखकर सभी अप्सरायें आश्चर्य चकित हो गयीं ॥३६॥ उन सभी अप्सराओं की सेवा के लिए उन्होंने उतनी ही संख्या में अत्यन्त सुन्दरी अप्सराओं को उत्पन्न कर दिया ॥३७॥ वे सबके सब गाती हुई और हँसती हुई हाथ में उपहार लेकर नर और नारायण दोनों मुनियों को प्रणाम किया और उनके समक्ष खड़ी हो गयीं ॥३८॥ इन्द्र से प्रेरित वे अप्सरायें जो जनसाधारण को मोहित कर देने वाली थीं उर्वशी को देखकर अपनी सुधि-बुधि खो बैठीं । उनके प्रसन्न मुख कमल विकसित हो गये और उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया ॥३९॥ हम आपके धैर्य और तपस्या की प्रशंसा क्या करें । आपके तप और धैर्य को देखकर हमलोग आश्चर्यित हैं । संसार में ऐसा कौन है जो हमारे विष में बुझायें गये बाणों के समान भयंकर कटाक्ष को देखकर बेचैन न हो जाय ॥४०॥ हमलोगों ने जान लिया है कि आप दोनों भगवान् नृसिंह के अंश से अवतीर्ण हैं । आप दोनों शम तथा दम गुणों के आकर हैं । हमलोग आपकी सेवा करने के लिए नहीं अपितु देवराज इन्द्र का स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आयी हैं ॥४१॥ न जाने अपने

कृतागसि तापमुक्तम् ॥४२॥ कुर्वंति नैव विबुधास्तपसौ व्ययं वै शापेन तुच्छफलदेन महानुभावाः । व्यास उवाच– **इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिननीनां तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम् ॥४३॥ प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ धर्मात्मकौ निजतपोरुचिशोभितांगौ ।** नरनारायणावूचतुः– **ब्रुवंतु वांछितान्कामान्ददावस्तुष्टमानसौ ॥४४॥ यांतु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलोचनाम् । उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा ॥४५॥ दत्ताऽऽवाभ्यां मघवतः प्रीणनायोरुसंभवा । स्वस्त्यस्तु सर्वदेवेभ्यो यथेष्टं प्रव्रजंतु च ॥४६॥ "न कस्यापि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम्"** । देव्य ऊचुः– **क्व गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपंकजम् । नारायण सुरश्रेष्ठ भक्त्या परमया मुदा ॥४७॥ वांछितं चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन । तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम् ॥४८॥ पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परंतप । भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर ॥४९॥ त्वया चोत्पादिता नार्यः संत्यन्याश्चारुलोचनाः । उर्वश्याद्यास्तथा यांतु स्वर्गं वै भवदाज्ञया ॥५०॥ स्त्रीणां षोडशसाहस्रं तिष्ठत्वत्र शतार्धकम् । सेवां तेऽत्र करिष्यामो युवयोस्तापसोत्तमौ ॥५१॥ वांछितं देहि देवेश सत्यवाग्भव माधव । आशाभंगो हि नारीणां हिंसनं परिकीर्तितम् ॥५२॥ कामार्तानां**

किस सञ्चित सौभाग्य के कारण हमलोगों को आपका दर्शन मिला है । शाप देने में समर्थ होने पर भी आप हम अपराध करने वाली वेश्याओं के ऊपर क्रोध नहीं किये हैं ॥४२॥ महानुभाव देवता तुच्छ फल प्रदान करने वाले शाप के द्वारा अपनी तपस्या को व्यय नहीं करते हैं । **व्यासजी ने कहा–** उन देवस्त्रियों की इस बात को सुनकर उन विनयावनत स्त्रियों से दोनों मुनियों ने कहा ॥४३॥ उनका मुख प्रसन्न था वे काम और लोभ को जित लिए थे वे धर्म स्वरूप थे और अपनी तपस्या की कान्ति से उनका शरीर सुशोभित हो रहा था । नर और नारायण ने कहा हमदोनों तुमलोगों पर प्रसन्न हैं; जो चाहो वरदान माँग लो, हम देंगे ॥४३॥ इस सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी को भी स्वर्ग लेते जाओ यह अप्सरा स्वर्ग में उपहार रूप से जाय ॥४५॥ हमारे ऊरु भाग से उत्पन्न इस उर्वशी को हम इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए दे रहे हैं । सभी देवताओं का कल्याण हो; आपलोग अपनी इच्छानुसार लौट जायँ ॥४६॥ अब इसके बाद किसी की भी तपस्या को भंग न करना । **देवियों ने कहा–** हे महाभाग नारायण ! हम कहाँ जायँ हम परमा भक्ति से प्रसन्नता पूर्वक आपकी शरण में आयी हैं ॥४७॥ हे नाथ ! हे मधुसूदन ! आप यदि हमें अभिलषित वरदान दे रहे हैं तो हे कमलनयन ! हम अपने अभिलषित अर्थ को बतला रही हैं ॥४८॥ हमे यही वर दीजिये कि आप हमलोगों के पति हो जायँ । हमलोग प्रेमपूर्वक आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥४९॥ आपने अन्य सुन्दर स्त्रियों को उत्पन्न किया है, उनको आप आज्ञा देकर स्वर्ग में भेज दें ॥५०॥ यहाँ पर हमलोग सोलह हजार पचास स्त्रियाँ रहेंगी । हे तपस्वी श्रेष्ठ ! हमलोग आप दोनों की सेवा करेंगी ॥५१॥ हे माधव ! आप हमलोगों को अभिलषित वर प्रदान करके आप सत्यवक्ता बन जायँ । कामार्त स्त्रियों की आशा का भंग करना उनकी

च मुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः । भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः ॥५३॥ त्यक्तुं नार्हसि देवेश समर्थोऽसि जगत्पते । नारायण उवाच– **पूर्णं वर्षसहस्त्रं तु तपस्तप्तं मयाऽत्र वै ॥५४॥ जितेन्द्रियेण चार्वंग्यः कथं भंगं करोम्यतः । नेच्छा कामे सुखे काचित्सुखधर्मविनाशके॥५५॥ पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम् ।** अप्सरस ऊचुः– **शब्दादीनां च पंचानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम् ॥५६॥ आनन्दरसमूलं वै नान्यदस्ति सुखं किल । अतोऽस्माकं महाराज वचनं कुरु सर्वथा ॥५७॥ निर्भरं सुखमासाद्य चरस्व गंधमादने । यदि वांछसि नाकं त्वं नाधिको गंधमादनात्॥५८॥ रमस्वात्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाः सुरांगनाः ॥५९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्मपुत्रः प्रतापवान् । विमर्शमकरोच्चिते किं कर्तव्यं मयाऽधुना ॥१॥ (हास्योऽहं मुनिवृन्देषु भविष्याम्यहं**

हिंसा करने के समान होता है यह धर्म के ज्ञाता तत्त्वज्ञ मुनियों ने कहा है । हमलोग भाग्यानुसार यहाँ प्रेमपूर्वक आपके यहाँ आयी हैं ॥५२-५३॥ हे जगत्पते! आप समर्थ हैं, आप हमलोगों का परित्याग न करें । **नारायण ने कहा–** मैंने यहाँ पर एक हजार वर्ष तक जितेन्द्रिय रहकर तपस्या की है । अतएव उसका भंग मैं कैसे कर सकता हूँ । धर्मजन्य सुख को विनष्ट करने वाले कामसुख को प्राप्त करने की हमारी इच्छा नहीं है ॥५४-५५॥ कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति पशु के समान रमण कैसे कर सकता है ? **अप्सराओं ने कहा–** शब्दादि पाँच सुखों में स्पर्शजन्य सुख ही श्रेष्ठ है ॥५६॥ उसको छोड़कर कोई भी दूसरा सुख आनन्द रस मूलक नहीं है । अतएव हे महाराज ! आप हमलोगों की बात मानें ॥५७॥ आप इस सर्वोत्तम सुख का आस्वाद लेकर इस गन्धमादन पर्वत पर विहार करें । गन्धमादन से श्रेष्ठ स्वर्ग नहीं है ॥५८॥ इन सभी देवस्त्रियों को प्राप्त करके रमण कीजिये ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

अहङ्कारी बन्धन की व्याख्या

व्यासजी ने कहा– अप्सराओं की इस तरह की बात को सुनकर प्रतापी धर्मपुत्र अपने मन में विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिए ॥१॥

संगमात् ।) अहंकारादिदं प्राप्तं दुःखं नात्र विचारणा । मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहंकृतिः ॥२॥ मूलं संसारवृक्षस्य यतः प्रोक्तो महात्मभिः दृष्ट्वा मौनं समाधाय न स्थितोऽहं समागतम् ॥३॥ वारांगनागणं जुष्टं तेनासं दुःखभाजनम् । उत्पादितास्तथा नार्यो मया धर्मव्ययेन वै ॥४॥ तास्तु मां बाधितुं वृत्ताः कामार्ताः प्रमदोत्तमाः । ऊर्णनाभिरिवाद्याहं जालेन स्वकृतेन वै ॥५॥ बद्धोऽस्मि सुदृढेनात्र किं कर्तव्यमतः परम् । यदि चिंतां समुत्सृज्य संत्यजाम्यबला इमाः ॥६॥ शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यंति इमा भग्नमनोरथाः । मुक्तोऽहं संचरिष्यामि विजने परमं तपः ॥७॥ तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्ष्यामि सुन्दरीगणम् । व्यास उवाच– **इति संचिंत्य मनसा मुनिर्नारायणस्तदा ॥८॥ विमर्शमकरोच्चिते सुखोत्पादनसाधने । द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः संतापकारकः ॥९॥ कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः । क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम् ॥१०॥ दुःखदां सर्वभूतानां नरकारामदीर्घिकाम् । यथाऽग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा ॥११॥ देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः ।** व्यास उवाच– **इति संचिंत्यमानं तं भ्रातरं दीनमानसम् ॥१२॥ उवाच वचनं तथ्यं नरो धर्मसुतोऽनुजः ।** नर उवाच– **नारायण महाभाग कोपं यच्छ महामते ॥१३॥ शांतं भावं समाश्रित्य नाशयाहंकृतिं पराम् । पुराऽहंकारदोषेण तपो नष्टं किलावयोः ॥१४॥ संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह । दिव्यवर्षशतं**

यदि मैं इन सबों की बात मानकर विषयोपभोग में लिप्त हो जाऊँ तो मुनिमण्डली मेरा उपहास करेगी । निश्चय ही अहंकार धर्म के नाश का प्रधान एवं मूलकारण है ॥२॥ महात्माओं ने अहंकार को संसाररूपी वृक्ष की जड़ बतलाया है । इन सबों को आया हुआ देखकर मैं मन को एकाग्र करके मौन नहीं रह सका ॥३॥ वाराङ्गनाओं के समूह से मिलने के ही कारण मुझे यह दुःख मिला है । मैंने अपने धर्म का व्यय करके नारियों को उत्पन्न किया ॥४॥ और ये नारियाँ कामार्त होकर मुझे बाधित करने लगीं । मकड़ी के समान मैं अपने ही जाल में स्वयं फँस गया हूँ ॥५॥ मैं सुदृढ बँधन में बँध गया हूँ, अब मैं क्या करूँ ? यदि चिन्ता छोड़कर इन नारियों का परित्याग करता हूँ ॥६॥ तो ये भग्न मनोरथ होकर मुझे शाप देकर चली जायेंगी । उसके बाद इनके प्रेमपाश से मुक्त होकर किसी एकान्त स्थान में तपस्या करूँगा ॥७॥ अतएव मैं क्रोध उत्पन्न करके इन सुन्दरियों के समुदाय का परित्याग कर दूँगा । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से विचार करके नारायण मुनि ॥८॥ अपने मन में सुख उत्पन्न करने के लिए किसी दूसरे साधन का विचार करने लगे कि यह क्रोध तो महान दुःख देने वाला दूसरा शत्रु है ॥९॥ क्रोध करने वाला व्यक्ति तो काम तथा लोभ से भी अधिक भयंकर प्राणघातक हिंसा कर लेता है ॥१०॥ हिंसा सभी जीवों को दुःख देने वाली तथा नरकरूपी उद्यान की वावली है । जैसे वन में पेड़ों के परस्पर रगड़ से उत्पन्न अग्नि उस पेड़ को ही जला देती है ॥११॥ उसी तरह देह से उत्पन्न होने वाला भयंकर क्रोध देह को ही जलाता रहता है । **व्यासजी ने कहा–** इसी तरह से चिन्ता करने वाले तथा दुःखी भाई को ॥१२॥

चैव प्रह्लादेन महाद्भुतम् ॥१५॥ दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्रावाभ्यां सुरोत्तम । तस्मात्क्रोधं परित्याज्य शांतो भव मुनीश्वर ॥१६॥ "शांतत्वं तपसो मूलं मुनिभिः परिकीर्तितम् ।" व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा शांतोऽभूद्धर्मनन्दनः । जनमेजय उवाच– संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ प्रह्लादेन महात्मना ॥१७॥ विष्णुभक्तेन शांतेन कथं युद्धं कृतं पुरा । कृतवंतौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी ॥१८॥ तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशांतमानसावुभौ। समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च ॥१९॥ संग्रामस्तु कथं ताभ्यां कृतस्तेन महात्मना । प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्मा ज्ञानवान्विष्णुतत्परः॥२०॥ नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ । तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम् ॥२१॥ तदा तपसि धर्मे च श्रम एव हि केवलम् । क्व जपः क्व तपश्चर्या पुरा सत्ययुगेऽपि च ॥२२॥ तादृशैर्न जितं चित्तं क्रोधाहंकारसंवृतम् । न क्रोधो न च मात्सर्यमहङ्कारांकुरं विना ॥२३॥ अहङ्कारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल । वर्षकोटिसहस्रं तु तपः कृत्वाऽतिदारुणम् ॥२४॥ अहंकारांकुरे जाते व्यर्थं भवति सर्वथा । यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति ॥२५॥ अहङ्कारांकुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति । प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणा समयुध्यत॥२६॥ तदा व्यर्थं

देखकर उनके छोटे भाई नर ने उनसे कहा । **नर ने कहा–** हे महाबुद्धिमान् महाभाग नारायण ! आप क्रोध का परित्याग कर दें ॥१३॥ आप शान्त हो जायँ और अहंकार का परित्याग कर दें । इससे पहले अहंकार के कारण हमलोगों की तपस्या नष्ट हो गयी थी ॥१४॥ दैत्यराज प्रहलाद के साथ हमलोगों को पूरे एक सौ दिव्य वर्ष तक अद्भुत युद्ध करना पड़ा था ॥१५॥ उसके कारण हमदोनों को बहुत अधिक कष्ट झेलना पड़ा था । अतएव हे मुनीश्वर ! आप क्रोध का परित्याग करके शांत हो जायँ ॥१६॥ मुनियों ने शान्ति को ही तपस्या का मूल बतलाया है । **व्यासजी ने कहा–** नर की इस तरह की बात सुनकर नारायण शान्त हो गये । **जनमेजय ने कहा–** महाराज ! मुझको यह संदेह होता है कि प्रह्लाद तो महात्मा, भगवान् विष्णु के भक्त तथा शान्त प्रकृति के थे। उन्होंने नर-नारायण ऋषि के साथ क्यों युद्ध किया ॥१७-१८॥ धर्म के पुत्र नर एवं नारायण भी अत्यन्त शान्त, ऋषि तथा तपस्वी हैं । उन दोनों की प्रह्लाद से भेंट कैसे हुई ॥१९॥ प्रह्लाद ने उन दोनों के साथ युद्ध क्यों किया ? क्योंकि प्रह्लाद भी अत्यन्त धर्मात्मा तथा भगवान् विष्णु के भक्त थे ॥२०॥ उसी तरह नर और नारायण भी सात्त्विक और तपस्वी थे । यदि उन दोनों के साथ उनका वैर हो गया ॥२१॥ तब तो तपस्या एवं धर्म के लिए प्रयास करना व्यर्थ है । इसका अर्थ है कि धर्म और तपस्या सत्ययुग में नहीं थे ॥२२॥ ऐसे लोग भी क्रोध एवं अहंकार भरे चित्त पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। विना अहंकार रूपी अंकुर के क्रोध और मात्सर्य उत्पन्न नहीं हो सकते हैं ॥२३॥ अहंकार से ही काम और क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं । सैकड़ों करोड़ो वर्ष तक अत्यन्त कठोर तपस्या करके यदि अहंकार का अंकुर उत्पन्न होता है तो किया हुआ सब व्यर्थ हो जाता है । यह उसी तरह से होता है जैसे सूर्योदय

कृतं सर्वं सुकृतं किल भूतले । नरनारायणौ शान्तौ विहाय परमं तपः ॥२७॥ कृतवन्तौ यदा युद्धं क्व शमः सुकृतं पुनः । ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्यामजेया यद्यहंकृतिः ॥२८॥ मादृशानां च का वार्ता मुनेऽहङ्कारसंक्षये । अहंकारपरित्यक्तो न कोऽप्यस्ति जगत्त्रये ॥२९॥ न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा । मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा ॥३०॥ अहंकारनिबद्धस्तु न कदाचिद्विमुच्यते । अहंकारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥३१॥ भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते । ब्रह्मज्ञानं कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते ॥३२॥ मतं मीमांसकानां वै संमतं भाति सुव्रत । महान्तोऽपि सदा युक्ताः कामक्रोधादिभिर्मुने ॥३३॥ मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम । व्यास उवाच– कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत ॥३४॥ कटकं कुण्डलं चैव सुवर्णसदृशं भवेत् । अहंकारोद्भवं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥३५॥ पटस्तंतुवशः प्रोक्तस्तद्वियुक्तः कथं भवेत् । मायागुणैस्त्रिभिः सर्वं रचितं स्थिरजंगमम् ॥३६॥ सतृणं स्तम्बपर्यतं का तत्र परिदेवना । ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते चाहंकारमोहिताः॥३७॥ भ्रमंत्यस्मिन्महाऽगाधे संसारे नृपसत्तम । वसिष्ठनारदाद्याश्च मुनयो ज्ञानिनः परम् ॥३८॥ तेऽभिभूताः संसरंति संसारेऽस्मिन्पुनः पुनः । न कोऽप्यस्ति

हो जाने पर अन्धकार नहीं रह जाता है ॥२४-२५॥ उसी तरह से अहंकार के अंकुर के समक्ष पुण्य विनष्ट हो जाता है । हे महाभाग ! प्रह्लाद ने भी श्रीहरि के साथ क्यों युद्ध किया ॥२६॥ इससे तो पृथिवी पर किया गया उनका सारा पुण्य व्यर्थ हो गया । शान्त प्रकृति वाले नर-नारायण भी अपनी तपस्या को छोड़कर यदि युद्ध किए तब उनका शम नामक गुण और पुण्य कहाँ रहा ? ऐसे सात्त्विक पुरुषों द्वारा भी यदि अहंकार को जीतना कठिन है ॥२७-२८॥ तो हे व्यासजी ! हम जैसे व्यक्ति कैसे अहंकार को विनष्ट कर पायेंगे । सम्पूर्ण संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अहंकार से रहित हो । अहंकार से रहित कोई भी व्यक्ति न तो हुआ और न तो होयेगा । लोहे और काठ की जंजीरों से बँधा हुआ व्यक्ति छूट सकता है; किन्तु अहंकार रूपी जंजीर में बँधा हुआ व्यक्ति कभी नहीं छूट सकता है । यह सारा स्थावर जंगमात्मक संसार अहंकार की जंजीर में बँधा है ॥२९-३१॥ यदि अहंकार से ग्रस्त मनुष्य मल-मूत्र से दूषित संसार में चक्कर काटता रहता है; तो फिर इस मोह से ग्रस्त संसार में ब्रह्मज्ञान की चर्चा ही कहाँ रही ॥३२॥ हे सुव्रत ! मीमांसकों की यह बात ठीक प्रतीत होती है कि महान से महान् व्यक्ति भी काम एवं क्रोध से युक्त रहता है ॥३३॥ हे मुनिवर्य ! इस कलियुग में हम जैसे जीव की क्या बात है ? **व्यासजी ने कहा–** हे भरतवंशी जनमेजय ! कारण से भिन्न कार्य कैसे हो सकता है ?॥३४॥ सम्पूर्ण स्थावर जगत् माया के तीनों गुणों से बना है । जिस तरह सुवर्ण से बने कटक और कुण्डल सुवर्ण के ही समान होते हैं उसी तरह अहंकार से उत्पन्न संसार अहंकारात्मक है ॥३५॥ जिस तरह वस्त्र तंतुमय होता है वह तंतु से रहित कैसे हो सकता है ? माया के तीनों गुणों से बना सारा स्थिरजंगमात्मक संसार है ॥३६॥ तृण से लेकर स्तम्ब पर्यन्त की यदि यही स्थिति है तो इसके विषय में खेद की कौन सी बात है ? ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भी अहंकार से मोहित हैं ॥३७॥ हे राजवर्य ! परमज्ञानी वसिष्ठ

नृपश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु देहभृत् ॥३९॥ एभिर्मायागुणैर्मुक्तः शांत आत्मसुखे स्थितः । कामक्रोधौ तथा लोभो मोहोऽहंकारसंभवः॥४०॥ न मुंचन्ति नरं सर्वं देहवंतं नृपोत्तम । अधीत्य वेदशास्त्राणि पुराणानि विचिंत्य च ॥४१॥ कृत्वा तीर्थाटनं दानं ध्यानं चैव सुरार्चनम् । करोति विषयासक्तः सर्वं कर्म च चौरवत् ॥४२॥ विचारयति नो पूर्वं काममोहमदान्वितः । कृते युगेऽपि त्रेतायां द्वापरे कुरुनन्दन ॥४३॥ विद्धोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाऽद्य कलौ पुनः। स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा ॥४४॥ एवंविधोऽस्ति संसारो नात्र कार्या विचारणा । साधवो विरला लोके भवंति गतमत्सराः ॥४५॥ जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टांतार्थं व्यवस्थिताः । राजोवाच– ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः॥४६॥ जितेन्द्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम् । दुनोमि पातकं स्मृत्वा पितुर्मम महात्मनः ॥४७॥ कृतस्तपस्विनः कंठे मृतः सर्पो ह्यघं विना । अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः ॥४८॥ न जाने बुद्धिसंमोहात्किं वा कार्यं भविष्यति । मधु पश्यति मूढात्मा प्रपातं नैव पश्यति ॥४९॥ करोति निंदितं कर्म नरकान्न बिभेति च । कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥५०॥ प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै । प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्तद्वदस्व

तथा नारद इत्यादि मुनिजन भी इस महा अगाध संसार-सागर में चक्कर काटते रहते हैं ॥३८॥ माया से मोहित होकर वे इस संसार में बारम्बार संसरण करते हैं । इस संसार में कोई भी ऐसा देहधारी नहीं है जो माया के गुणों से रहित होकर शांत मन से आत्मसुख का अनुभव करता हो । अहंकार से उत्पन्न होने वाले काम, क्रोध, लोभ तथा मोह ॥३९-४०॥ किसी भी देहधारी को नहीं छोड़ते हैं । वेदों तथा शास्त्रों का अध्ययन करके तथा पुराणों का चिन्तन भी करके ॥४१॥ विषयासक्त पुरुष तीर्थाटन, दान, ध्यान तथा देवार्चन इत्यादि सभी कर्मों को चोर के समान करता है ॥४२॥ वह काम, मोह तथा मद से युक्त होने के कारण किसी भी कर्म के करने से पहले विचार नहीं करता है । हे कुरुनन्दन ! जब सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में भी धर्म का विरोध था तो कलियुग के विषय में क्या कहना है ? द्रोह से युक्त स्पर्धा लोभ एवं मोह सर्वदा रहे हैं ॥४३-४४॥ संसार ऐसा ही है, इसके विषय में विचार नहीं करना चाहिए । मत्सर से रहित साधु पुरुष तो संसार में बहुत कम होते हैं ॥४५॥ क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाले, आमर्ष पर विजय पाने वाले पुरुष तो दृष्टान्त देने के लिए होते हैं । **राजा ने कहा**– मद एव मोह से रहित पुरुष तो पुण्यवान् तथा धन्य होते हैं ॥४६॥ ऐसे जितेन्द्रिय तथा सदाचारी पुरुष तो त्रैलोक्य को जीत लेते हैं । मैं अपने पिता के द्वारा किए गये पाप को स्मरण करके दुःखी होता हूँ ॥४७॥ उन्होंने एक निरपराध तपस्वी के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था, अब उनकी मेरे आगे कौन सी गति होगी ॥४८॥ मैं यह नहीं जानता हूँ कि मोह के कारण मैं कौन सा कर्म कर बैठूँगा मूर्ख व्यक्ति मधु को ही देखता है और उसके सन्निकट में विद्यमान खाईं को वह नहीं देख पाता है ॥४९॥ मनुष्य निन्दित कर्म को कर देता है; किन्तु उसके

मे ॥५१॥ सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे । नरनारायणौ शांतौ तापसौ मुनिसत्तमौ ॥५२॥ कृतवंतौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद । वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम् ॥५३॥ एषणारहितौ कस्माच्चक्रतुः प्रघनं महत् । प्रह्लादोऽपि च धर्मात्मा ज्ञात्वा देवौ सनातनौ ॥५४॥ कृतवन्तौ कथं युद्धं नरनारायणौ मुनी । एतद्विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम् ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच– **इति पृष्टस्तदा विप्रो राज्ञा पारीक्षितेन वै । उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥ जनगेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः । चितं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्य वै ॥२॥ तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः । विप्रावमानपापेन यमलोकं गतस्य वै ॥३॥**

फल रूप से प्राप्त होने वाले नरक से वह नहीं भयभीत होता है । प्राचीन काल में प्रह्लाद के साथ नर-नारायण का युद्ध क्यों हुआ ? इसे आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलाएँ ॥५०॥ पाताललोक से प्रह्लाद अत्यन्त उग्र तपस्या करने वाले नर-नारायण के पास कैसे पहुँच गये ? यह आप मुझे बतलाएँ ॥५१॥ शान्त प्रकृति वाले मुनियों में श्रेष्ठ नर-नारायण तो सारस्वत तीर्थ बदरिकाश्रम में तपस्या करते थे ॥५२॥ उनलोगों में किस कारण से युद्ध हुआ, क्योंक वैर तो या तो धन सम्पत्ति को लेकर होता है, या स्त्री के कारण होता है ॥५३॥ ये नर-नारायण भी सभी प्रकार की कामना से रहित थे फिर उन लोगों ने युद्ध क्यों किया ? और उन दोनों को ईश्वर का अवतार भी जानकर प्रह्लाद ने युद्ध क्यों किया ॥५४॥ नर एवं नारायण इन दोनों मुनियों ने क्यों युद्ध किया इस बात को मैं आप से विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

महर्षि च्यवन के द्वारा तीर्थों का माहात्म्य का वर्णन

सूतजी ने कहा– राजा जनमेजय के द्वारा पूछे जाने पर माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ने सारी बातों को विस्तार पूर्वक बतलाया ॥१॥ धर्मात्मा राजा जनमेजय भी अपने पिता विराटराज की पुत्री उत्तरा के पुत्र महाराज परीक्षित् के द्वारा किए गये पाप को सोचकर अत्यन्त दुःखी थे और उन्हीं के उद्धार के लिए

पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम् । पुत्रेति नाम सार्थं स्यात्तेन तस्य मुनीश्वराः ॥४॥ सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरि मृतं तथा । विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम् ॥५॥ पितुर्गतिं निशम्यासौ निर्वेदं गतवान्नृपः । पारीक्षितो महाभागः संतप्तो भयविह्वलः ॥६॥ पप्रच्छाथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिंदितः । नरनारायणस्येमां कथां परमविस्तृताम् ॥७॥ व्यास उवाच– स यदा निहतो रौद्रो हिरण्यकशिपुर्नृप। अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्सुतः ॥८॥ तस्मिञ्छासति दैत्येंद्रे देवब्राह्मणपूजके । मखैर्भूमौ नृपतयो यजंतः श्रद्धयाऽन्विताः ॥९॥ ब्राह्मणाश्च तपोधर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते । वैश्याश्च स्वस्ववृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥१०॥ नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट् । राज्यं चकार तत्रैव प्रजापालनतत्परः॥११॥ कदाचिद्भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः । जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम् ॥१२॥ रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामवातरत् । उत्तरंतं प्रजग्राह नागो विषभयंकरः ॥१३॥ गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनिसत्तमः । सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जनार्दनम् ॥१४॥ संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः । न प्राप च्यवनो दुःखं नीयमानो रसातलम् ॥१५॥ द्विजिह्वेन मुनिस्त्यक्तो निर्विण्णेनातिशंकिना । मां शपेत मुनिः क्रुद्धस्तापसोऽयं

उनका मन सदा दुःखी रहता था; क्योंकि महाराज परीक्षित् ब्राह्मण का अपमान करने के कारण नरक में चले गये थे ॥२-३॥ हे मुनीश्वरों ! पुं नामक नरक से अपने पिता को तारने वाला ही पुत्र कहलाता है, और ऐसा करने से ही पुत्र यह नाम सार्थक होता है ॥४॥ उन्होंने जब से सुना था कि महल के ऊपर, स्नान तथा दान का परित्याग करके ब्राह्मण के शाप के कारण सर्प के काटने से होने वाली मृत्यु के भय के कारण पिता की नरकीय गति हुई है तब से जनमेजय को बड़ा दुःख हुआ था । और उसी के कारण जनमेजय सदा अत्यन्त भयभीत रहते थे ॥५-६॥ उन्होंने अपने घर आये हुए महर्षि व्यासजी से नर और नारायण की अत्यन्त विस्तृत कथा को पूछा ॥७॥ **व्यासजी ने कहा–** अत्यन्त भयंकर दैत्य हिरण्कशिपु मारा गया तो राज्य सिंहासन पर हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद अभिषिक्त हुए ॥८॥ देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा करने वाले दैत्येन्द्र प्रह्लाद के राज्य में सभी राजा पृथिवी पर श्रद्धापूर्वक यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना करते थे ॥९॥ ब्राह्मण तपस्या और तीर्थ यात्रा करते थे वैश्य अपनी वृत्ति मे लगे थे और शूद्र सेवा का कार्य करते थे ॥१०॥ भगवान् नृसिंह ने प्रह्लाद को पाताल लोक में स्थापित कर दिया और प्रजाओं के पालन में सदा तत्पर रहने वाले प्रह्लाद वहीं राज्य करते थे ॥११॥ एक बारं महर्षि भृगु के पुत्र महर्षि च्यवन नर्मदा नदी के व्याहृतीश्वर तीर्थ में नर्मदा नदी में स्नान करने के लिए गये ॥१२॥ महानदी नर्मदा में जब वे उतर रह थे उसी समय उन्हें एक अत्यन्त विषैले भयंकर सर्प ने पकड़ लिया ॥१३॥ च्यवन महर्षि को पकड़कर वह सर्प उन्हें खींचकर पाताल लोक में ले गया । वहाँ जाकर भयभीत महर्षि ने भगवान् जनार्दन का स्मरण किया ॥१४॥ भगवान् का स्मरण करते ही वह सर्प विषरहित हो गया और उसके फलस्वरूप पाताल में ले जाते समय महर्षि को कोई भी कष्ट नहीं हुआ ॥१५॥ उसके बाद दुःखी तथा भयभीत होकर उस सर्प ने महर्षि च्यवन को यह सोचकर छोड़ दिया

महानिति ॥१६॥ चचार नागकन्याभिः पूजितो मुनिसत्तमः । विवेशाप्यथ नागानां दानवानां महत्पुरम् ॥१७॥ कदाचिद्भृगुपुत्रं तं विचरंतं पुरोत्तमे। ददर्श दैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्मवत्सलः ॥१८॥ दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा । प्रपच्छ कारणं किं ते पातालागमने वद ॥१९॥ प्रेषितोऽसि किमिंद्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम । दैत्यविद्वेषयुक्तेन मम राज्यदिदृक्षया ॥२०॥ च्यवन उवाच– किं मे मघवता राजन् यदहं प्रेषितः पुनः। दूतकार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव ॥२१॥ विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्परम् । मा शंकां कुरु दैत्येंद्र वासवप्रेषितस्य वै॥२२॥ स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम । नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाऽहिना ॥२३॥ जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणादिव। मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै ॥२४॥ अत्रागतेन राजेन्द्र मयाऽऽप्तं तव दर्शनम् । विष्णुभक्तोऽसि दैत्येंद्र तद्भक्तं मां विचिन्तय ॥२५॥ व्यास उवाच– तन्निशम्य वचः श्लक्ष्णं हिरण्यकशिपोः सुतः । पप्रच्छ परया प्रीत्या तीर्थानि विविधानि च ॥२६॥ प्रह्लाद उवाच– पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनिसत्तम । पाताले च तथाऽऽकाशे तानि नो वद विस्तरात् ॥२७॥ च्यवन उवाच– मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे । तथा मलिनचित्तानां गंगाऽपि कीकटाधिका ॥२८॥ प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम् । तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवंति

कि महर्षि च्यवन क्रुद्ध होकर उसे कहीं शाप न दे दें ॥१६॥ नागकन्याओं द्वारा पूजित महर्षि वहाँ पर विचरण करने लगे और वे दानवों तथा नागों की नगरी मे भी गये ॥१७॥ एक बार महर्षि भृगु के पुत्र च्यवन महर्षि को अपनी नगरी में विचरण करते हुए धर्मवत्सल प्रह्लाद ने देखा ॥१८॥ उन मुनिं को देखकर दैत्यों के स्वामी प्रह्लाद ने उनकी पूजा की और उनसे पाताल लोक में आने का कारण पूछा ॥१९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! क्या आप को दैत्यों के वैर रखने वाले इन्द्र ने मेरे राज्य को देखने के लिए भेजा है ? **महर्षि च्यवन ने कहा–** मेरा इन्द्र से क्या प्रयोजन है कि मैं उनका दूत बनकर आपकी नगरी में आऊँगा ॥२१॥ आप अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखें मैं धार्मिक महर्षि भृगु का पुत्र हूँ । आप मेरे विषय में यह शंका न करें कि मुझे इन्द्र ने भेजा है ॥२२॥ मैं नर्मदा के पवित्र तीर्थ में स्नान करने के लिए गया था ज्योंहि मैं नदी में प्रवेश किया उसी समय एक महान सर्प ने मुझे पकड़ लिया ॥२३॥ भगवान् विष्णु के स्मरण करने से वह सर्प विषरहित हो गया और भगवत् स्मरण के प्रभाव से उस सर्प ने मुझे छोड़ दिया ॥२४॥ राजेन्द्र यहाँ पर आकर मैं आपका दर्शन पाया । दैत्येन्द्र ! आप भगवान् विष्णु के भक्त हो और मुझे भी उन्हीं का भक्त जानो ॥२५॥ **व्यासजी ने कहा–** उस बात को सुनकर प्रह्लाद ने अत्यधिक प्रेमपूर्वक अनेक तीर्थों के विषय में पूछा ॥२६॥ **प्रह्लाद ने पूछा–** हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे विस्तार के साथ इस बात को आप बतलायें कि पृथिवी, पाताल तथा आकाश में कौन-कौन से तीर्थ हैं ॥२७॥ **च्यवन महर्षि ने कहा–** हे राजन ! जिनलोगों के मन, वाणी तथा शरीर शुद्ध हैं उनके लिए पद-पद पर तीर्थ

वै॥२९॥ गंगातीरे हि सर्वत्र वसंति नगराणि च । व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेटास्तथापरे ॥३०॥ निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथापरे । हूणबंगखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम ॥३१॥ पिबंति सर्वदा गांगं जलं ब्रह्मोपमं सदा । स्नानं कुर्वंति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः ॥३२॥ तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष । किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयोपहतात्मसु ॥३३॥ कारणं मन एवात्र नान्यद्राजन्विचिन्तय । मनः शुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता ॥३४॥ तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रात्मवंचनात् । तत्रैवाचरितं पापमानंत्याय प्रकल्पते ॥३५॥ यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते । भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुद्ध्यति ॥३६॥ प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता । शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा ॥३७॥ तथैवाचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिद्ध्यति । अन्यथा तु कृतं सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात् ॥३८॥ "हीनवर्णस्य संसर्ग तीर्थे गत्वा सदा त्यजेत्" । भतानुकंपनं चैव कर्तव्यं कर्मणा धिया । यदि पृच्छसि राजेंद्र तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ॥३९॥ प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम् । अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले ॥४०॥ पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम । व्यास उवाच— तच्छुत्वा

विद्यमान हैं, और मलिन मन वालों के लिए तो गंगा भी कीकटक्षेत्र (मगधप्रदेश) से भी अधिक निन्दित है ॥२८॥ सर्वप्रथम यदि मन शुद्ध हो गया तो सभी तीर्थ भी पवित्र कारक हो जाते हैं ॥२९॥ गंगा के तट पर अनेक नगर बसे हैं, गोशालाएँ है, बाजार हैं, ग्राम हैं तथा छोटे-छोटे कस्बे हैं ॥३०॥ दैत्यश्रेष्ठ ! निषादों तथा मल्लाहों का निवास है, हूणों, बंगों खसों तथा म्लेच्छों का निवास हैं ॥३१॥ वे सब के सब ब्रह्म के समान निर्मल गंगाजल को पीते हैं तथा अपनी इच्छा के अनुसार त्रिकाल स्नान करते रहते हैं ॥३२॥ हे विद्वन् ! उनमें से कोई भी विशुद्ध मन वाला नहीं होता है । अतएव जिन लोगों का मन विषयासक्त है उन लोगों के लिए तीर्थों का क्या फल है ॥३३॥ अतएव मन ही शुद्धि में प्रधान कारण है शुद्धि चाहने वालों को पहले अपने मन को शुद्ध करना चाहिए ॥३४॥ तीर्थ में रहकर आत्मवंचना करने वाला महापापी होता है । तीर्थ में किया गया पाप अक्षय हो जाता है ॥३५॥ जैसे इन्द्रवारुण (निम्ब) का पका हुआ भी फल मीठा नहीं होता है, उसी तरह जिसकी भावना दूषित हैं उसके करोड़ों तीर्थों में भी स्नान करने का कोई फल नहीं होता है ॥३६॥ अतएव कल्याण चाहने वाले को सर्वप्रथम अपना मन शुद्ध करना चाहिए । मन की शुद्धि हो जाने पर द्रव्य की शुद्धि स्वयं हो जाती है । अन्यथा नहीं ॥३७॥ उसके बाद आचार की शुद्धि अपेक्षित होती है । ऐसा ही करने से तीर्थ यात्रा सफल होती है । इससे भिन्न प्रकार से तो सब किया कराया क्षणभर में ही नष्ट हो जाता है ॥३८॥ तीर्थ में जाने के बाद अपने से हीन वर्ण वाले की संगति को बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए और कर्म तथा बुद्धि पूर्वक जीवों पर दया करनी चाहिए । राजन् ! यदि आप पूछ रहे है तो मैं आपको तीर्थों को बतला रहा हूँ ॥३९॥ पृथिवी पर नैमिषतीर्थ का

वचनं राजा नैमिषं गंतुमुद्यतः ।।४१।। नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः । प्रह्लाद उवाच– **उत्तिष्ठंतु महाभागा गमिष्यामोऽद्य नैमिषम् ।।४२।। द्रक्ष्यामः पुंडरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ।** व्यास उवाच– **इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा ।।४३।। तेनैव सह पातालान्निर्ययुः परया मुदा। ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः ।।४४।। नैमिषारण्यमासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः । प्रह्लादस्तत्र तीर्थेषु चरन्दैत्यैः समन्वितः ।।४५।। सरस्वतीं महापुण्यां ददर्श विमलोदकाम् । तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः ।।४६।। मनः प्रसन्नं संजातं स्नात्वा सारस्वते जले । विधिवत्तत्र दैत्येन्द्रः स्नानदानादिकं शुभे ।।४७।। चकारातिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने ।।४८।।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

◆

स्थान सर्वप्रथम है, उसके बाद चक्रतीर्थ है और पुष्करतीर्थ का तीसरा स्थान है । इनके अतिरिक्त पृथिवी पर बहुत से तीर्थ हैं । उनकी गणना नहीं की जा सकती है । **व्यासजी ने कहा–** महर्षि की उस बात को सुनकर प्रह्लाद जी नैमिष तीर्थ में जाने के लिए तैयार हो गये ।।४०-४१।। प्रसन्न मन से प्रह्लाद जी ने अन्य दैत्यों को भी प्रेरित किया । **प्रह्लाद ने कहा–** महाभागो ! आप लोग तैयार हो जाएँ । आज हमलोग नैमिष तीर्थ चलेंगे ।।४२।। वहाँ पर पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु का दर्शन करेंगे । **व्यासजी ने कहा–** विष्णु भक्त प्रह्लादजी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे सभी दानव, अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उनके साथ पाताल से निकल पड़े । वे सभी दानव एवं दैत्य एकत्रित होकर ।।४३-४४।। नैमिषारण्य आकर प्रसन्नता पूर्वक स्नान किए । उन दैत्यों के साथ तीर्थों में घूमते हुए प्रह्लाद ।।४५।। स्वच्छ जल वाली सरस्वती नदी का दर्शन किए । उस तीर्थ में सारस्वत जल में स्नान करके प्रह्लाद का मन प्रसन्न हो गया। उसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न मन से प्रह्लाद ने विधिपूर्वक उस पवित्र तीर्थ में स्नान तथा दान इत्यादि किया ।।४७-४८।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

◆

नवमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **कुर्वंस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः । न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा ॥१॥ ददर्श बाणानपरान्नानाजातीयकांस्तदा। गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान् ॥२॥ चिंतयामास मनसा कस्येमे विशिखास्त्विह । ऋषीणामाश्रमे पुण्ये तीर्थे परमपावने ॥३॥ एवं चिंतयताऽनेन कृष्णाजिनधरौ मुनी । समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा ॥४॥ तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते । शार्ङ्गमाजगवं चैव तथाऽक्षय्यौ महेषुधी ॥५॥ ध्यानस्थौ तो महाभागौ नरनारायणावृषी । दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा ॥६॥ क्रोधरक्तेक्षणस्तौ तु प्रोवाचासुरपालकः । किं भवद्भ्यां समारब्धो दम्भो धर्मविनाशनः ॥७॥ न श्रुतं नैव दृष्टं हि संसारेऽस्मिन्कदापि हि । तपसश्चरणं तीव्रं तथा चापस्य धारणम् ॥८॥ विरोधोऽयं युगे चाद्ये कथं युक्तं कलिप्रियम् । ब्राह्मणस्य तपो युक्तं तत्र किं चापधारणम् ॥९॥ क्व जटाधारणं देहे क्वेषुधी च विडंबनौ । धर्मस्याचरणं युक्तं युवयोर्दिव्यभावयोः ॥१०॥** व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा नरः प्रोवाच भारत । का ते चिन्ताऽत्र दैत्येन्द्र वृथा तपसि चावयोः ॥११॥ सामर्थ्ये सति यत्कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि । आवां कार्यद्वये मन्द समर्थौ लोकविश्रुतौ ॥१२॥ युद्धे**

प्रह्लाद और नारायण का युद्ध वर्णन

व्यासजी ने कहा– वहाँ पर तीर्थ की विधि को सम्पादित करते हुए प्रह्लादजी ने अत्यधिक सघन छाया वाले एक बटवृक्ष को देखा ॥१॥ उस पर उन्होंने अनेक प्रकार के गृध्र पंख वाले तीव्र तथा चमकते हुए बाणों को देखा ॥२॥ वे मन में विचार करने लगे कि ये किसके बाण हैं ? यह तो ऋषियों का अत्यन्त पवित्र आश्रम है ॥३॥ इसके बाद उन्होंने बड़ी-बड़ी जटाओं वाले तथा कृष्णमृगचर्मधारी धर्म के पुत्र नर एवं नारायण को देखा ॥४॥ उनके आगे समस्त लक्षणों से युक्त दो सुन्दर शार्ङ्ग तथा अजगव नामक धनुष तथा अक्षय तुणीर रखे थे ॥५॥ उस समय वे दोनों मुनि ध्यानमग्न थे । यह देखकर प्रह्लाद क्षुब्ध हो गये और क्रोध से अपनी आँखें लाल करके उन्होंने कहा आप दोनों धर्म विनाशक पाखण्ड को कैसे फैला रखे हैं ॥६-७॥ इस संसार में धनुष धारण करना और तीव्र तपस्या करना दोनों एक साथ न तो सुना गया है और न देखा गया है ॥८॥ कलियुग में अच्छा लगने वाला यह विरोध सत्ययुग में कैसे आ गया ? ब्राह्मण को तो तपस्या करना उचित है धनुष धारण से क्या मतलब है ? ॥९॥ कहाँ तो शरीर पर जटा धारण करना और कहाँ तुणीर धारण करना ? यह पाखण्ड है । आप दोनों दिव्यभाव वाले हैं अतएव धर्म का आचरण उचित है ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** प्रह्लाद की बातों को सुनकर नर ने कहा हे दैत्येन्द्र ! आपकी हमदोनों की तपस्या के विषय में क्यों चिन्ता हो रही है ॥११॥ सामर्थ्यवान् पुरुष

तपसि सामर्थ्यं त्वं पुनः किं करिष्यसि । गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे ।।१३।। ब्रह्मतेजो दुराराध्यं न त्वं वेद विमोहितः । विप्रचर्चा
न कर्तव्या प्राणिभिः सुखमीप्सुभिः ।।१४।। प्रह्लाद उवाच– **तापसौ मन्दबुद्धी स्थो मृषा वां गर्वमोहितौ । मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके।।१५।।**
न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माचरणं पुनः । का शक्तिस्तव युद्धेऽस्ति दर्शयाद्य तपोधन ।।१६।। व्यास उवाच– **तदाकर्ण्य वचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवा**
च ह । युध्यस्वाद्य मया सार्धं यदि ते मतिरीदृशी ।।१७।। अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसुराधम । (युद्धे श्रद्धा न ते पश्चाद्भविष्यति कदाचन)
व्यास उवाच– **तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रः कुपितस्तदा ।।१८।। प्रह्लादो बलवानत्र प्रतिज्ञामारुरोह सः । येन केनाप्युपायेन जेष्यामि तावुभावपि**
।।१९।। नरनारायणौ दांतावृषी तपसमन्वितौ । व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम् ।।२०।। आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दं**
च चकार ह । नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्राञ्छिलाशितान् ।।२१।। मुमोच बहुशः क्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव ।।२२।। तान्दैत्यराजस्तपनीयपुंखैश्चिच्छेद
बाणैस्तरसा समेत्य । समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टानन्यान्मुमोचाशु रुषान्वितो वै ।।२३।। दैत्याधिपस्तानपि तीव्रवेगैश्छित्त्वा जघानोरसि तं मुनींद्रम्।

जो करे उसके लिए वह ठीक ही है । हे मूर्ख ! हमदोनों इन दोनों कार्यों को करने में विश्वविख्यात रूप से समर्थ हैं ।।१२।। हमलोग युद्ध एवं तपस्या दोनों में समर्थ्य सम्पन्न हैं तुम क्या कर सकते है ? यहाँ से अपने मार्ग पर चले जाओ यहाँ क्या बक्-बका रहे हो ?।।१३।। तुम अज्ञानी हो ब्रह्मतेज को नहीं जानते हो कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को ब्राह्मणों से बहस नहीं करना चाहिए ।।१४।। **प्रह्लाद ने कहा–** तपस्वियों तुम दोनों मूर्ख हो और गर्व के कारण अज्ञानी बन गये हो; मैं स्वयं धर्मसेतु का प्रवर्तन करने वाला दैत्यराज हूँ । मेरे रहते इसतरह से अधर्म आचरण करना उचित नहीं है । तपस्वी तुम्हारी युद्ध में कितनी शक्ति है आज मुझे दिखाओ ।।१६।। **व्यासजी ने कहा–** प्रह्लाद की उस वाणी को सुनकर नर ने उनसे कहा यदि तुम यही चाहते हो तो आज हमारे साथ युद्ध करो ।।१७।। असुराधम ! आज मैं तुम्हारा शिर फोड़ देता हूँ । फिर तुम्हारी कभी भी युद्ध करने की इच्छा नहीं होगी । **व्यासजी ने कहा–** उस बात को सुनकर प्रह्लाद क्रुद्ध हो गये ।।१८।। बलवान् प्रह्लाद ने मन में ही प्रतिज्ञा की कि आज मैं किसी भी तरह इन दोनों पर विजय प्राप्त करूँगा ।।१९।। ये नर-नारायण ऋषि अपने मन को वश में रखने वाले तपस्वी हैं । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह सोचकर प्रह्लाद अपने हाथ में धनुष धारण करके ।।२०।। वेग पूर्वक धनुष चढ़ाकर टंकोर किये । नर भी धनुष धारण करके अपने नुकीले तीव्र बाणों का क्रोध पूर्वक प्रह्लाद पर प्रहार किए ।।२२।। प्रह्लाद ने भी अपने पंख वाले बाणों से नर के बाणों को तत्काल काट दिया । अपने बाणों को कटें हुए देखकर नर भी अपने बनाये हुए अन्य बाणों का प्रहार क्रोधपूर्वक किए ।।२३।। दैत्यराज ने शीघ्रता से उन बाणों को काट कर नर के हृदय में प्रहार किया । नर ने भी अपने पाँच बाणों से दैत्यराज के भुजाओं पर प्रहार

नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च क्रुद्धोऽहनद्दैत्यपतिं बाहुदेशे ॥२४॥ सेन्द्राः सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च । नरस्य वीर्यं युधिसंस्थितस्य ते तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः ॥२५॥ ववर्ष दैत्याधिप आत्तचापः शिलीमुखानंबुधरो यथापः । आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं मुमोच बाणाञ्छितहेमपुङ्खान्॥२६॥ बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु जयैषिणोः पार्थिव देवदैत्ययोः । ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः ॥२७॥ चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स मुमोच बाणानतितीव्रवेगान् । चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णैर्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाशु ॥२८॥ ततो नारायणं बाणैः प्रह्लादश्चातितर्षितैः । ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम् ॥२९॥ नारायणोऽपि तं वेगान्मुक्तैर्बाणैः शिलाशितैः ॥२९॥ तुतोदातीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम् । सन्निपातोऽम्बरे तत्र दिदृक्षूणां बभूव ह ॥३०॥ देवानां दानवानां च कुर्वतां जयघोषणम् । उभयोः शरवर्षेण छादिते गगने तदा ॥३१॥ दिवाऽपि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत् । ऊचुः परस्परं देवा दैत्याश्चातीव विस्मिताः ॥३२॥ अदृष्टपूर्वं युद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम् । देवर्षयोऽथ गंधर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥३३॥ विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः । नारंदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी ॥३४॥ नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा । तारकासुरयुद्धं च तथा वृत्रासुरस्य च ॥३५॥ मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणा चेदृशं कृतम् । प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च॥३६॥

किया ॥२४॥ इन्द्र के साथ सभी देवता भी आकाश में अपने विमान पर स्थित होकर उनदोनों के युद्ध को देख रहे थे । उन सबों ने बार-बार नर एवं प्रह्लाद के पराक्रम की प्रशंसा की ॥२५॥ धनुर्धारी प्रह्लाद जैसे मेघ जल बरसाता है उसी तरह से बाणों की वर्षा कर रहे थे । वे शार्ङ्ग धनुष धारण करके सुवर्ण पुंख वाले बाणों को वर्षा रहे थे ॥२६॥ राजन् ! उन दोनों (नर एवं प्रह्लाद) का वह घोर युद्ध हुआ । वे दोनों एक दूसरे पर विजय प्राप्त करना चाहते थे । और आकाश में स्थित देवगण उन दोनों पर प्रसन्नतापूर्वक फूलों की वर्षा कर रहे थे ॥२७॥ दैत्यराज प्रह्लाद श्रीहरि पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर अत्यन्त तीव्र वेग वाले बाणों का प्रहार किए, और उन बाणों को धर्म के पुत्र ने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया ॥२८॥ उसके बाद प्रह्लाद ने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की सनातन वीर नारायण के ऊपर वर्षा की । नारायण ने अपने धनुष से छोड़े गये तीव्र और नुकीले बाणों से प्रह्लाद को व्यथित किया । उस युद्ध को देखने के इच्छुक देवताओं का समूह एकत्रित हो गया । उस समय देवता और दानव अपने-अपने पक्ष की जयकार कर रहे थे । दोनों के बाणों की वर्षा से आकाश भर गया ॥३१॥ दिन में रात्रि के समान घोर अन्धकार छा गया । देवता और दैत्य परस्पर में बातें करते हुए कह रहे थे ॥३२॥ आज का यह घोर युद्ध अदृष्टपूर्व है । उस युद्ध को देखकर देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, पन्नग (सर्प), विद्याधर तथा चारण अत्यन्त आश्चर्यित हुए । नारद तथा पर्वत, ऋषि भी उस युद्ध को देखने के लिए आये ॥३३-३४॥ नारद ऋषि ने पर्वत ऋषि से कहा कि इसतरह का युद्ध तो शंकर तथा

करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाद्भुतकर्मणा । व्यास उवाच– **दिने दिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ॥३७॥ चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ । नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्य शरासनम् ॥३८॥ तरसैकेन बाणेन स चान्यद्धनुराददे । नारायणस्तु तरसा मुक्त्वाऽन्यं च शिलीमुखम्॥३९॥ तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः । छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे ॥४०॥ नारायणस्तु चिच्छेद विशिखैराशु कोपितः । छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रः परिघं तु समाददे ॥४१॥ जघान धर्मजं तूर्णं बाह्वोर्मध्येऽतिकोपनः । तमायांतं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः ॥४२॥ चिच्छेद परिघं घोरं दशभिस्तमताडयत् । गदामादाय दैत्येद्रः सर्वायसमयीं दृढाम् ॥४३॥ जानुदेशे जघानाशु देवं नारायणं रुषा । गदया चापि गिरिवत्संस्थितः स्थिरमानसः ॥४४॥ धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाशु शिलीमुखान् । गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्दृढाम् ॥४५॥ विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षका गगने स्थिताः । स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा ॥४६॥ चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि । तामापतंतीं संवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया ॥४७॥ सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह । दिव्यवर्षशतं चैव तद्युद्धं परमं तयोः ॥४८॥ जातं विस्मयदं राजन्सर्वेषां**

तारकासुर अथवा वृत्रासुर अथवा श्रीहरि के साथ मधु एवं कैटभ का भी युद्ध नहीं हुआ था ॥३५॥ प्रह्लाद बहुत बड़े वीर हैं, इसीलिए वे अद्भुत कर्म करने वाले सिद्ध पुरुष नारायण के साथ इस प्रकार का युद्ध कर रहे हैं । **व्यासजी ने कहा–** इसीतरह प्रह्लाद तथा नारायण दिन-दिन भर तथा रात्रि-रात्रिभर युद्ध कर रहे थे ॥३६-३७॥ उस समय प्रह्लाद और तपस्वी नारायण घोर युद्ध कर रहे थे । नारायण ने प्रह्लाद के धनुष को वेग युक्त एक बाण से काट दिया तो प्रह्लाद ने दूसरा धनुष ले लिया ॥३८॥ नारायण ने शीघ्रता दिखाते हुए एक दूसरे बाण से प्रह्लाद के उस धनुष को भी बीच से काट दिया॥३९॥ बार-बार धनुष के कट जाने पर प्रह्लाद दूसरे धनुष उठा लेते थे ॥४०॥ क्रुद्ध हुए नारायण अपने बाणों से प्रह्लाद के धनुष को काट देते थे । धनुष के कट जाने पर दैत्यराज प्रह्लाद ने अपने हाथ में परिघ ले लिया ॥४१॥ अत्यन्त कुपित प्रह्लाद ने शीघ्र ही नारायण की दोनों भुजाओं के बीच में प्रहार किया उस आते हुए परिघ को नारायण भगवान् ने नव बाणों से काट दिया और दश बाणों से प्रह्लाद पर प्रहार किया । उसके बाद प्रह्लाद ने लौह निर्मित सुदृढ गदा को उठाया ॥४२-४३॥ और उससे नारायण की जाँघ पर प्रहार किया । उस गदा के प्रहार के बाद भी नारायण पर्वत के समान अटल खड़े रहे ॥४४॥ उसके पश्चात् अत्यन्त बलवान् भगवान् नारायण ने अनेक बाणों के प्रहार से उस गदा को भी काट दिया ॥४५॥ आकाश में स्थित होकर देखने वाले देवता अत्यन्त आश्चर्यित हुए । शत्रुओं के वीरों का विनाश करने वाले प्रह्लाद ने शक्ति लेकर और अत्यन्त क्रुद्ध होकर नारायण के हृदय पर प्रहार किया । उसे आते देखकर नारायण बड़ी आसानी से उसे एक ही बाण में सात टुकड़ों में काटकर सात बाणों से प्रह्लाद के ऊपर प्रहार किया ॥४६-४७॥ इस तरह वह भयंकर युद्ध

तत्र चाश्रमे । तदाऽऽजगाम तरसा पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥४९॥ प्रह्लादस्याश्रमं तत्र जगाद च गदाधरः । चतुर्भुजो रमाकांतो रथाङ्गदरपद्मभृत् ॥५०॥ दृष्ट्वा तमागतं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः । प्रणम्य परया भक्त्या प्रांजलिः प्रत्युवाच ह ॥५१॥ प्रह्लाद उवाच– **देवदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल माधव । कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ । संग्रामस्तु मया देव कृतः पूर्णं शतं समाः ॥५२॥ सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान्।** विष्णुरुवाच– **सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष ॥५३॥ तापसौ न जितात्मानौ नरनारायणौ जितौ । गच्छ त्वं वितलं राजन्कुरु भक्तिं ममाचलाम् ॥५४॥ नाभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते ।** व्यास उवाच– **इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह ॥५५॥ नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥५६॥**

श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

सौ दिव्य वर्षों तक चलता रहा । उसके कारण उस आश्रम के सभी लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । उस समय पीताम्बर धारी चतुर्भुज, गदाधारी चक्र तथा पद्मधारी भगवान् विष्णु उस आश्रम में प्रह्लाद के पास आये ॥४८-५०॥ आये हुए भगवान् विष्णु को देखकर प्रह्लाद ने कहा ॥५१॥ प्रह्लाद बोले हे देवताओं के भी आराध्य, जगन्नाथ, भक्तवत्सल, माधव मैं इन दोनों तपस्वियों को क्यों नहीं हरा पाया ?। मैंने पूरे सौ दिव्य वर्षों तक युद्ध किया ॥५२॥ मैं इन दोनों को क्यों नहीं जीत पाया यह मुझको अत्यन्त आश्चर्य है । **विष्णु ने कहा**– विद्वन् ! इसमें क्या आश्चर्य है, ये दोनों सिद्ध मेरे अंश है ॥५३॥ तपस्वी तथा जितेन्द्रिय इन नर तथा नारायण को तुम नहीं जीत सकते हो । राजन् ! आप वितल लोक में चले जायँ और मेरी अचला भक्ति करें ॥५४॥ हे महामते ! इन दोनों तपस्वियों से विरोध न करे । **व्यासजी ने कहा**– इसतरह की आज्ञा पाकर प्रह्लाद असुरों के साथ चले गये ॥५५॥ उसके बाद नर एवं नारायण पुनः तपस्या करने लगे ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

दशमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **संदेहोऽयं महानत्र पाराशर्य कथानके । नरनारायणौ शांतौ वैष्णवांशौ तपोधनौ ॥१॥ तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौ वन्याशनपरौ सदा । धर्मपुत्रौ महात्मानौ तापसौ सत्यसंस्थितौ ॥२॥ कथं रागसमायुक्तौ जातौ युद्धे परस्परम् । संग्रामं चक्रतुः कस्मात्त्यक्त्वा तपिमनुत्तमाम् ॥३॥ प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल । हित्वा शांतिसुखं युद्धं कृतवन्तौ कथं मुनी ॥४॥ कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी । कथयस्व महाभाग कारणं विग्रहस्य वै ॥५॥ (कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्य वै) । युद्धबुद्धिः कथं जाता तयोश्च तद्विरक्तयोः । तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्यां च केन हेतुना ॥६॥ मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परन्तप । कृतमत्युत्कटं ताभ्यां तपः सर्वफलप्रदम् ॥७॥ मुनीभ्यां शांतचित्ताभ्यां प्राप्तं किं फलमद्भुतम् । तपसा पीडितो देहः संग्रामेण पुनः पुनः ॥८॥ दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ । न राज्यार्थे धने वाऽपि न दारेषु गृहेषु च ॥९॥ किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना । निरीहः पुरुषः कस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम् ॥१०॥ दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम्।**

भृगु महर्षि द्वारा नारायण को शाप और देवासुर संग्राम में असुरों का पराजय

जनमेजय ने पूछा– हे पाराशर्य व्यास ज़ी ! इस कथानक के विष़य में मुझे यह बहुत बड़ा संदेह है कि नर और नारायण तो शान्त, भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न और तपस्वी थे ॥१॥ वे तीर्थ में रहने वाले, सात्त्विक तथा वन्यफलों को खाने वाले थे । वे धर्म के पुत्र, महात्मा, तपस्वी तथा सत्यवक्ता थे ॥२॥ वे युद्ध करने में परस्पर में कैसे आसक्त हो गये और सर्वोत्तम तपस्या का परित्याग करके क्यों युद्ध करने लगे ॥३॥ वे दोनों मुनि शान्ति तथा सुख का परित्याग करके प्रह्लाद के साथ सौ दिव्य वर्षों तक क्यों युद्ध करते रहे ॥४॥ उनलोगों ने प्रह्लाद के साथ क्यों युद्ध किया । आप युद्ध का कारण बतलाइये ॥५॥ युद्ध के कारण तो कामिनी, सुवर्ण अथवा कोई कार्य विशेष होता है । इन सबों से विरक्त रहने वाले उन दोनों में युद्ध करने की बुद्धि कैसे उत्पन्न हो गयी । उन दोनों ने वैसी उग्र तपस्या ही क्यों की ॥६। किसी को मोहित करने के लिए या सुख भोगने के लिए अथवा स्वर्ग प्राप्त करने के लिए ऐसी उग्र तपस्या किया था । क्योंकि तपस्या तो समस्त अभिलषित फलों को प्रदान करने वाली होती है ॥७॥ शान्तचित्त वाले उन दोनों मुनियों ने बार-बार तपस्या तथा युद्ध के द्वारा अपने शरीर को पीड़ित करके कौन सा फल प्राप्त किया था ? इस तरह से पूरे सौ दिव्यवर्षों तक परिश्रम करके वे न तो राज्य पाये, न धन पाये, न स्त्री पाये और न तो कुटुम्ब ही प्राप्त किए ॥९॥ उन दोनों नर एवं नारायण ने महात्मा प्रह्लाद के साथ युद्ध क्यों किया? कोई भी निरभिलाष पुरुष इस प्रकार का युद्ध क्यों करेगा ?॥१०॥ सनातन धर्म को जानने वाला पुरुष जानता है कि युद्ध शरीर को कष्ट देता है । इसीलिए

सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा ॥११॥ न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी । धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ ॥१२॥ कृतवंतौ कथं युद्धं दुःखं धर्मविनाशकम् । त्यक्त्वा तपः समाधीतं सुखारामं महत्फलम् ॥१३॥ संयुगं दारुणं कृष्ण नैव मूर्खोऽपि वांछति । श्रुतो मया ययातिस्तु च्युतः स्वर्गान्महीपतिः ॥१४॥ अहंकारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले । यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥१५॥ शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना । अहंकारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः ॥१६॥ किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम् । व्यास उवाच– राजन्संसारमूलं हि त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥१७॥ अहंकारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये । स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृतां किल ॥१८॥ कारणेन विना कार्यं न भवत्येव निश्चयः । तपो दानं तथा यज्ञाः सात्त्विकात्प्रभवंति ते ॥१९॥ राजसाद्वा महाभागा तामसात्कलहस्तथा । क्रिया स्वल्पाऽपि राजेन्द्र नाहंकारं विना क्वचित् ॥२०॥ शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि प्रभवत्यपि निश्चयः । अहंकाराद्बन्धकारी नान्योऽस्ति जगतीतले ॥२१॥ येनेदं रचितं विश्वं कथं तद्रहितं भवेत् । ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुरहंकारयुतास्त्वमी ॥२२॥ अन्येषां चैव का वार्ता मुनीनां वसुधाधिप । अहंकारावृतं विश्वं

सुन्दर बुद्धि वाला व्यक्ति सदा सबों को सुख देने वाले कार्मों को ही करता है ॥११॥ वह दुःख देने वाले कर्मों नहीं करता है, यह सनातनी स्थिति है । धर्म के पुत्र तो श्रीहरि के अंश थे, सर्वज्ञ तथा सभी गुणों से समलंकृत थे ॥१२॥ फिर भी उन लोगों ने धर्म को विनष्ट करने वाले तथा दुःख देने वाले युद्ध को समाधिजन्य सुख के आगार महान फल देने वाली तपस्या का परित्याग करके क्यों किया ॥१३॥ हे व्यास जी ! दुःख देने वाले युद्ध को कोई मूर्ख व्यक्ति भी नहीं करना चाहता है । मैंने सुना है कि महाराज ययाति स्वर्ग से च्युत हो गये थे ॥१४॥ यज्ञों के कर्ता, दानदाता तथा पृथिवी के धार्मिक सम्राट् थे किन्तु अहंकार रूपी पाप के उत्पन्न हो जाने के कारण उन्हें स्वर्ग के राज्य से पृथिवी पर गिरना पड़ा ॥१५॥ अहंकार पूर्ण शब्द का उच्चारण करने मात्र से इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग से नीचे गिरा दिया था । यह निश्चित है कि अहंकार के बिना युद्ध नहीं होता है ॥१६॥ उस युद्ध को करने से उन्हें कौन सा फल प्राप्त हुआ उससे तो केवल उनके पुण्य का विनाश ही हुआ । **व्यासजी ने कहा**– राजन् ! संसार बन्धन के तीन कारण बतलाए गये हैं ॥१७॥ किन्तु धर्म का निश्चय करने वाले मुनियों ने केवल अहंकार को ही संसार का कारण बतलाया है । उसका परित्याग कोई भी मुनि कैसे कर सकता है ॥१८॥ यह निश्चित है कि कारण के विना कोई कार्य नहीं होता है । सात्त्विक अथवा राजस अहंकार से तपस्या, दान और यज्ञ किए जाते हैं और तामस अहंकार से कलह ही होता है । राजेन्द्र अहंकार के विना छोटा से छोटा भी कोई काम नहीं हो सकता है ॥१९-२०॥ अहंकार के विना छोटा अथवा बड़ा कोई भी काम नहीं होता है । संसार में अहंकार से बढ़कर दूसरी कोई भी वस्तु बन्धन कारक नहीं है ॥२१॥ जिस अहंकार से यह विश्व उत्पन्न हुआ है, वह विश्व भी अहंकार से रहित कैसे हो सकता है ? जब ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भी अहंकार से युक्त हैं ॥२२॥ तो हे राजन् ! दूसरे मुनियों के विषय में क्या

भ्रमतीदं चराचरम् ॥२३॥ पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वं कर्मवशानुगम् । देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते ॥२४॥ रथांगवदसर्वार्थं भ्रमणं सर्वदा स्मृतम् । विष्णोरप्यवताराणां संख्यां जानाति कः पुमान् ॥२५॥ विततेऽस्मिंस्तु संसार उत्तमाधमयोनिषु । नारायणो हरिः साक्षान्मात्स्यं वपुरुपाश्रितः ॥२६॥ कामठं सौकरं चैव नारसिंहं च वामनम् । युगे युगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः ॥२७॥ अवतारानसंख्यातान्करोति विधियंत्रितः । वैवस्वते महाराज सप्तमे भगवान्हरिः ॥२८॥ मन्वंतरेऽवतारान्वै चक्रे ताञ्छृणु तत्त्वतः । भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरः प्रभुः॥२९॥ अवतारानेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः । राजोवाच– **संदेहोऽयं महाभाग हृदये मम जायते ॥३०॥ भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह । हरिणा च मुनेस्तस्य विप्रियं किं कृतं मुने ॥३१॥ यद्दोषाद्भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः ।** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम् ॥३२॥ पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः । यदा तदा सुरैः सार्धं कृतं संख्यं परस्परम् ॥३३॥ कृते संख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत । हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत ॥३४॥ देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः । संग्रामो ह्यभवद्धोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा॥३५॥ पूर्णं वर्षशतं राजँल्लोकविस्मयकारकम् । देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः ॥३६॥ निर्वेदं परं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम् । विरोचनसुतं**

कहना है । अहंकार से ढंका हुआ यह चराचर विश्व चक्कर काटता रहता है ॥२३॥ हे राजन् । इस संसार में देवता, पशु-पक्षी तथा मनुष्यों का बार-बार जन्म लेना तथा बार-बार मरना सब कुछ कर्माधीन हीं होता है ॥२४॥ चक्र के समान सबकुछ चक्कर काटता रहता है, यह कहा गया है । औरों की क्या बात भगवान् विष्णु के ही अवतारों की संख्या कौन मनुष्य जान सकता है ॥२५॥ उनके उत्तम, मध्यम और अधम योनियों में अवतार होते रहते हैं । स्वयं श्रीहरि ने मछली का शरीर धारण किया ॥२६॥ उन्होंने कच्छप, नरसिंह तथा वामन शरीर धारण किया । प्रत्येक युगों में जगन्नाथ, वासुदेव जनार्दन विधि (भाग्य) के परतंत्र होकर अनेक अवतारों को धारण करते हैं । हे महाराज ! उन्होंने सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में जिन अवतारों को धारण किया उन अवतारों को आप सुनें ॥२७-२८/२॥ उस मन्वन्तर में महर्षि भृगु के शाप से देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु ने अनेक अवतारों को धारण किया । राजा ने कहा हे महाभाग ! मेरे हृदय में यह सन्देह हो रहा है कि महर्षि भृगु ने भगवान् विष्णु को क्यों शाप दिया । भगवान् श्रीहरि ने उनका कौन सा अपराध किया था ?॥२९-३१॥ जिसके कारण भृगु महर्षि ने उन्हें शाप दे दिया । **व्यासजी ने कहा**– राजन् ! आप सुनें मैं भृगु के शाप का कारण बतलाता हूँ । प्राचीन काल में कश्यप महर्षि के पुत्र हिरण्यकशिपु देवताओं के साथ युद्ध कर रहा था; उस समय संग्राम के प्रारम्भ हो जाने से सारा संसार व्याकुल हो गया । बाद में जब हिरण्यकशिपु मारा गया तो प्रह्लाद राजा बने ॥३२-३४॥ शत्रुओं को पीड़ा देने वाले प्रह्लाद भी देवताओं को सताने लगे जिसके कारण प्रह्लाद

राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप ॥३७॥ जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गंधमादने । प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह ॥३८॥ ततः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम् । ततः सुरैर्जिता दैत्या इन्द्रेणामिततेजसा ॥३९॥ विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप । ततः पराजिता दैत्याः काव्यस्य शरणं गताः ॥४०॥ किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन् साहाय्यं नः प्रतापवान् । स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम् ॥४१॥ यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मंत्रविदुत्तम । व्यास उवाच– इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः ॥४२॥ मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भोऽसुराः । मंत्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि ॥४३॥ करिष्यामि कृतोत्साहा भवंतु विगतज्वराः । व्यास उवाच– ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात् ॥४४॥ देवैः श्रुतस्तु वृत्तांतः सर्वैश्चारमुखात्किल । तत्र संमंत्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम् ॥४५॥ मंत्रं चक्रुः सुसंविग्नाः काव्यमंत्रप्रभावतः । योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्न च्यावयन्ति वै ॥४६॥ प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे । दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः संरुष्टाः शस्त्रपाणयः ॥४७॥ जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान् हरिणोदिताः । वध्यमानास्तु ते दैत्याः संत्रस्ता भयपीडिताः ॥४८॥ काव्यस्य शरणं जग्मू

और इन्द्र में भयानक युद्ध हुआ ॥३५॥ संसार को आश्चर्यित कर देने वाला वह युद्ध सौ वर्षों तक चलता रहा । देवताओं ने घोर युद्ध किया जिसके कारण प्रह्लाद पराजित हो गये ॥३६॥ सनातन धर्म का ज्ञान प्राप्त करके प्रह्लाद विरोचन के पुत्र बलि को राज्य सिंहासन देकर संसार से उदास हो गये ॥३७॥ प्रह्लाद तपस्या करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर चले गये और राज्य प्राप्त करके बलि ने देवताओं से बैर करना प्रारम्भ कर दिया ॥३८॥ उसके बाद देवों तथा दैत्यों में परस्पर में महासंग्राम हुआ और अमित तेजस्वी इन्द्र तथा देवताओं के द्वारा बलि पराजित हो गये । राजन् ! विष्णु की सहायता से दैत्य राज्यभ्रष्ट हो गये । उसके बाद दैत्य शुक्राचार्य के शरण में चले गये ॥४०॥ दैत्यों ने शुक्राचार्य से प्रार्थना किया कि हे ब्रह्मन् ! आप हमलोगों की सहायता क्यों नहीं करते हैं ? आप तो महा प्रतापी हैं । मंत्रों के सर्वश्रेष्ठ जानकार आप यदि हमलोगों की सहायता नहीं कर रहें हैं तो हम लोग इसलोक में नहीं रह पा रहे हैं अब हमलोग पाताल में चले जा रहे हैं । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** दैत्यों की इस तरह की बात सुनकर करुणा करने वाले मुनि शुक्राचार्य ने दैत्यों से कहा ॥४१-४२॥ दैत्यों डरो मत मैं अपने तेज से तुमलोगों की रक्षा करूँगा और औषधियों तथा मन्त्रों से तुमलोगों की सहायता करूँगा॥४३॥ आपलोगों का मैं उत्साह बढाऊँगा । आपलोग निर्भय हो जायँ । **व्यासजी ने कहा–** उसके बाद. शुक्राचार्य की सहायता प्राप्त करके दैत्य निर्भय हो गये ॥४४॥ देवताओं ने जब गुप्तचरों के मुख से सारा वृत्तान्त सुना तो देवताओं ने इन्द्र के साथ मिलकर मंत्रणा किया ॥४५॥ देवताओं ने विचार किया कि इससे पहले शुक्राचार्य हमलोगों को अपने मंत्र के बल से राज्यभ्रष्ट न कर दें हमलोग असुरों पर आक्रमण कर दें ॥४६॥ और दैत्यों के बचे

रक्ष रक्षेति चाब्रुवन् । ताञ्छुक्रः पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान् ॥४९॥ मा भैष्टेति वचः प्रह मंत्रौषधिबलाद्विभुः । दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह । ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं यच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः ॥१॥ विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनिष्यति जनार्दनः । वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षो यथा हतः ॥२॥ यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः । तथा सर्वान्कृतोत्साहो हनिष्यति न चान्यथा॥३॥ न मे मंत्रबलं सम्यक्प्रतिभाति यथा हरिम् । जेतुं यूयं समर्थाः स्थ मया त्राताः सुरानथ ॥४॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं कियंतं दानवोत्तमाः । अहमद्य**

सैनिकों को मारकर बचे सैनिको को पाताल भेज दें । ऐसा सोचकर देवताओं ने हाथ में शस्त्र लेकर दैत्यों पर आक्रमण कर दिया ॥४७॥ इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने विष्णु के साथ दैत्यों पर आक्रमण किया । मारे जाते हुए दैत्य अत्यन्त डर गये ॥४८॥ वे शुक्राचार्य की शरण में जाकर कहने लगे आप हमारी रक्षा करें, रक्षा करें । शुक्राचार्य ने देवताओ के द्वारा महाबलवान दैत्यों को पीड़ित हुए देखकर ॥४९॥ मन्त्र तथा औषधि के बल पर दैत्यों से कहा डरो मत, डरो मत । शुक्राचार्य को देखते ही देवतागण दैत्यों को छोड़कर भाग गये ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

भगवान् विष्णु द्वारा शुक्राचार्य की माता का वध

व्यासजी ने कहा– देवताओं के चले जाने पर शुक्राचार्य ने दैत्यों से कहा– हे श्रेष्ठ दानवों ! प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने कहा था उसे आपलोग सुनें॥१॥ उन्होंने कहा था कि भगवान् विष्णु दैत्यों के बध करने के कार्य में संलग्न होकर दैत्यों का बध कर देंगे । जैसे वाराह का रूप धारण करके उन्होंने हिरण्याक्ष का वध कर दिया ॥२॥ उसी तरह उन्होंने नृसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का वध किया । उसी तरह वे उत्साहयुक्त होकर सभी दैत्यों का वध कर देंगे ॥३॥ मेरे पास इस समय कोई मन्त्र बल नहीं है, जिससे कि आपलोग देवताओं के रक्षक विष्णु को जीत सकें ॥४॥ अतएव हे श्रेष्ठ दानवों!

महादेवं मंत्रार्थं प्रव्रजामि वै ।।५।। प्राप्य मंत्रान्महादेवादागमिष्यामि सांप्रतम् । युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः ।।६।। दैत्या ऊचुः– **पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम । शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम् ।।७।। निहता बलिनः सर्वे केचिच्छिष्टाश्च दानवाः । नाद्य युक्ताश्च संग्रामे स्थातुमेवं सुखावहाः ।।८।।** शुक्र उवाच– **यावदहं मंत्रविद्यामानयिष्यामि शंकरात् । तावद्भवद्भिः स्थातव्यं तपोयुक्तैः शमान्वितैः ।।९।। समादानादयः प्रोक्ता विद्वद्भिः समयोचिताः । देशं कालं बलं वीरैर्ज्ञात्वा शक्तिं बलं बुधैः ।।१०।। सेवाऽथ समये कार्या शत्रूणां शुभकाम्यया। स्वशक्त्युपचये काले हंतव्यास्ते मनीषिभिः ।।११।। तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै । तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकांक्षया ।।१२।। प्राप्य मंत्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः । युध्यामहे पुनर्देवान्मन्त्रमास्थाय वै बलम् ।।१३।। इत्युक्त्वाऽथ भृगुस्तेभ्यो जगाम कृतनिश्चयः । महादेवं महाराज मंत्रार्थं मुनिसत्तमः ।।१४।। दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसंनिधौ । सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां प्रत्ययप्रदम् ।।१५।। प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृपः । असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम् ।।१६।। न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च । देवास्तपश्चरिष्यामः संवृता बल्कलैर्युताः ।।१७।। प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत् । ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते ।।१८।। न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा**

आपलोग कुछ समय तक प्रतीक्षा करें । आज मैं मन्त्र प्राप्त करने के लिए भगवान् शंकर के पास जा रहा हूँ ।।५।। मैं महादेव जी से मंत्र प्राप्त करके लौट रहा हूँ और उन मन्त्रों को आपलोगों को प्रदान कर दूँगा ।।६।। **दैत्यों ने कहा–** हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोग तो पराजित हो गये हैं, बलहीन हो गये हैं । अतएव उतने समय तक पृथिवी पर रहने में समर्थ कैसे हो सकते हैं ।।७।। सभी बलवान् दैत्य मार दिए गये कुछ बचे हुए हैं, अतएव हमलोग इस समय युद्ध करने में समर्थ नहीं हैं ।।८।। **शुक्राचार्य ने कहा–** जब तक मैं शंकरजी से मन्त्र विद्या को लेकर नहीं आ रहा हूँ तब तक आपलोग शान्ति धारण करके तपस्या करें ।।८।। विद्वानों ने कहा हैं कि वीरों को चाहिए कि वे देश, काल, बल तथा शक्ति को जानकर समयानुसार साम, तथा दान आदि का पालन करना चाहिए ।।१०।। बुद्धिमानों को चाहिए कि कल्याण प्राप्त करने के लिए शत्रुओं की सेवा भी करनी पड़े तो उसे करना चाहिए और जब अपने अनुकूल समय आये तो शत्रुओं का वध कर देना चाहिए ।।११।। दानवों ! भगवान् शंकर से मन्त्र प्राप्त करके जब मैं लौट आऊँगा तब हमलोग मन्त्र का बल प्राप्त करके देवताओं के साथ युद्ध करेंगे ।।१३।। इस तरह दैत्यों को कहकर भृगुवंशी मुनियों में श्रेष्ठ शुक्राचार्य अपनें निश्चयानुसार मन्त्र प्राप्त करने के लिए शंकरजी के पास गये ।।१४।। उधर दैत्यों ने सत्यवादी, धैर्यवादी तथा देवताओं के विश्वास पात्र प्रह्लाद को देवताओं के पास भेजा ।।१५।। असुरों के साथ देवताओं के पास जाकर प्रह्लाद ने देवताओं से नम्रता पूर्वक कहा ।।१६।। हे देवताओं ! हमलोगों ने शस्त्रों और कवचों का परित्याग कर दिया है । हमारे पास युद्ध की कोई

सुराः । विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ताः सुसंस्थिताः ॥१९॥ दैत्या दम्भं समालंब्य तापसास्तपिसंयुताः । कश्यपस्याश्रमे वासं चक्रुः
काव्यागमेच्छया ॥२०॥ काव्यो गत्वाऽथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च । उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्यमिति प्रभुः ॥२१॥ मंत्रानिच्छाम्यहं देव
ये न संति बृहस्पतौ । पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च ॥२२॥ व्यास उवाच— **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शंकरः शिवः । चिंतयामास**
मनसा किं कर्तव्यमतः परम् ॥२३॥ सुरेषु द्रोहबुद्ध्याऽसौ मंत्रार्थमिह सांप्रतम् । प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च ॥२४॥ रक्षणीया
मया देवा इति संचिंत्य शंकरः । दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः ॥२५॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः । यदि पास्यसि भद्रं ते ततो
मंत्रानवाप्स्यसि ॥२५॥ इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं वाढमित्यब्रवीद्वचः । व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽज्ञप्तः सुरेश्वर ॥२७॥ व्यास उवाच— **इत्युक्त्वा**
शंकरं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम् । धूमपानरतः शांतो मंत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥२८॥ ततो देवाः परिज्ञात्वा काव्यं व्रतरतं तदा । दैत्यान्दम्भरतांश्चैव
बभूवुर्मंत्रतत्पराः ॥२९॥ विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप । ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः ॥३०॥ तानागतान्समीक्ष्याथ सायुधान्दंशितांस्तथा।

भी सामग्री नहीं है । हमलोग बल्कल धारण करके तपस्या करेंगे ॥१७॥ प्रह्लाद की बातों को सुनकर देवताओं ने समझ लिया कि प्रह्लाद ने सत्य कहा है। उसके बाद निश्चिन्त होकर देवता प्रसन्नता पूर्वक लौट गये ॥१८॥ दैत्यों के शस्त्र त्याग कर देने पर देवता भी लौट गये और अपने घर जाकर सुखशान्ति पूर्वक भोग-विलास में लिप्त हो गये ॥१९॥ दैत्य अपने दम्भ को आधार बनाकर तपस्या करने में लग गये और शुक्राचार्य के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए कश्यप महर्षि के आश्रम में निवास करने लगे ॥२०॥ शुक्राचार्य भी कैलास चले गये । वहाँ भगवान् शंकर द्वारा उनके आगमन का प्रयोजन पूछे जाने पर उन्होंने शंकरजी को प्रणाम करके कहा ॥२१॥ हे देव ! मैं उन मन्त्रों को प्राप्त करना चाहता हूँ जो मन्त्र बृहस्पति के पास नहीं हैं । जिसंसे कि देवताओं का पराजय और दैत्यों को विजय प्राप्त हो सके ॥२२॥ **व्यासजी ने कहा**— सर्वज्ञ भगवान् शंकर शुक्राचार्य की बातों को सुनकर विचार करने लगे कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए ?॥२३॥ देवताओं के साथ द्रोह बुद्धि के कारण ये शुक्राचार्य मेरे पास मन्त्रों को प्राप्त करने के लिए आये हैं जिससे कि दैत्यों को विजय प्राप्त हो सके ॥२४॥ शंकरजी ने सोचा कि मुझे देवताओं की रक्षा करनी चाहिए अतएव उन्होंने एक बहुत कठिन व्रत को करने के लिए शुक्राचार्य को कहा ॥२५॥ शुक्राचार्य यदि आप नीचे शिर तथा ऊपर पैर करके एक हजार वर्ष तक भूसी का धूआँ पीकर व्रत करें तो आपका कल्याण होगा और उस मन्त्र की प्राप्ति होगी ॥२६॥ भगवान् शंकर की बातों को सुनकर शुक्राचार्य ने उन्हें प्रणाम करके कहा हे सुरेश्वर ! बहुत अच्छी बात है, मैं आपकी आज्ञा से उस व्रत को करने जा रहा हूँ ॥२७॥ **व्यासजी ने कहा**— शंकरजी से ऐसा कहकर शुक्राचार्य मन्त्र को प्राप्त करने के लिए शान्त मन से निश्चय पूर्वक उस उत्तम व्रत को करने लगे ॥२८॥ उसके बाद देवताओं ने धूमपान के व्रत को तथा दैत्यों को ढोंगात्मक तपस्या को

आसंस्ते भयसंविग्ना दैत्या देवान्समंततः ।।३१।। उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भयकर्शिताः । अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान् ।।३२।। न्यस्तशस्त्रे भयवति आचार्ये व्रतमास्थिते । दत्त्वाऽभयं पुरा देवाः संप्राप्ता नो जिघांसया ।।३३।। सत्यं वः क्व गतं देवा धर्मश्च श्रुतिनोदितः । न्यस्तशस्त्रा न हंतव्या भीताश्च शरणं गताः ।।३४।। देवा ऊचुः— **भवद्भिः प्रेषितः काव्यो मंत्रार्थं कुहकेन च । तपो ज्ञातं हि युष्माकं तेन युध्याम एव हि ।।३५।। सज्जा भवंतु युद्धाय संरब्धा शस्त्रपाणयः । शत्रुश्छिद्रेण हंतव्य एष धर्मः सनातनः ।।३६।।** व्यास उवाच— **तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्या विचार्य च परस्परम् । पलायनपराः सर्वे निर्गता भयविह्वलाः ।।३७।। शरणं दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम् । दृष्ट्वा ताऩतिसंतप्तानभयं च ददावथ ।।३८।।** काव्यमातोवाच— **न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः । मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति ।।३९।। तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्याः स्थितास्तत्र गतव्यथाः । निरायुधा ह्यसंभ्रान्तास्तत्राश्रमवरेऽसुराः ।।४०।। देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्य दानवांस्ते पदानुगाः । अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् ।।४१।। तत्रागताः सुराः सर्वे हंतुं दैत्यान्समुद्यताः । वारिताः काव्यमात्राऽपि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान् ।।४२।। हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वा**

जानकर आपस में मन्त्रणा करने लगे ।।२९।। मन से विचार करके संग्राम करने के लिए तैयार देवता उन श्रेष्ठ दानवों के पास पहुँचे ।।३०।। क्रुद्ध तथा आयुध धारण करके आये हुए देवताओं को देखकर दैत्य भयभीत हो गये ।।३१।। भयभीत दैत्य देवताओं के सन्निकट में आकर बलवान् देवताओं से सत्य-सत्य बातें बतलाने लगे ।।३२।। दैत्यों ने देवताओं से कहा हमलोगों ने शस्त्रों का परित्याग कर दिया है, अतएव भयभीत हैं हमारे आचार्य जब व्रत कर रहे हैं, आप लोगों ने पहले ही अभय दान भी दे दिया है, तो फिर भी हमलोगों को मार देने की इच्छा से क्यों आये हैं ?।।३३।। आपलोगों का सत्य बोलने का व्रत कहाँ चला गया ? आपलोगों का वेदविहित धर्म कहाँ गया ? आपलोगों का धर्म बतलाता है कि न्यस्तशस्त्र, शरणागत तथा भयभीत प्राणी को नहीं मारना चाहिए ।।३४।। **देवताओं ने कहा—** आपलोगों ने छल से शुक्राचार्य को मन्त्र प्राप्त करने के लिए भेज दिया है और आपलोग जिस प्रकार के तपस्वी हैं, उसका रहस्य भी हमें ज्ञात हो गया है, अतएव हमलोग आपलोगों से युद्ध करेंगे ही ।।३५।। आपलोग अपने शस्त्रों तथा अस्त्रों को लेकर तैयार हो जाइये क्योंकि राजनीति के अनुसार शत्रु को उस समय मार देना चाहिए जब कि वह निर्बल हो गया हो ।।३६।। **व्यासजी ने कहा—** देवताओं की उस वाणी को सुनकर दैत्यों ने आपस में विचार किया और भयभीत होकर वहाँ से भागने लगे ।।३७।। वे दानव शुक्राचार्य की माता (ख्याति देवी) के शरण में गये । उन संतप्त दानवों को देखकर शुक्राचार्य की माता ने उन्हें अभय प्रदान कर दिया ।।३८।। **शुक्राचार्य की माता ने कहा—** आपलोगों को थोड़ा भी भयभीत नहीं होना चाहिए । मेरे सन्निकट में रहने वाले को किसी भी प्रकार का भय नहीं हो सकता है ।।३९।। शुक्राचार्य की माता की उस वाणी को सुनकर दैत्य वहीं निर्भय होकर रहने लगे । वे आयुध तथा भय से रहित होकर उसी आश्रम में रहने लगे ।।४०।। जब देवताओं ने देखा कि दैत्य भाग

काव्यमाताऽतिवेपिता । उवाच सर्वान्सनिद्रांस्तपसा वै करोम्यहम् ॥४३॥ इत्युक्त्वा प्रेरिता निद्रा तानागत्य पपात च । सेंद्रा निद्रावशं याता देवा मूकवदास्थिताः ॥४४॥ इन्द्रं निद्राजितं द्रष्ट्वा दीनं विष्णुरभाषत । मां त्वं प्रविश भद्रं ते नये त्वां च सुरोत्तम ॥४५॥ एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः । निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षितः ॥४६॥ रक्षितं हरिणा दृष्ट्वा शक्रं तत्र गतव्यथम् । काव्यमाता ततः क्रुद्धा वचनं चेदमब्रवीत् ॥४७॥ मघवंस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपोबलात् । पश्यतां सर्वदेवानामीदृशं मे तपोबलम् ॥४८॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तौ तु तया देवौ विष्ण्विंद्रौ योगविद्यया । अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ संबभूवतुः ॥४९॥ विस्मितास्तु तदा देवा दृष्ट्वा तावतिबाधितौ । चक्रुः किलकिलाशब्दं ततस्ते दीनमानसाः ॥५०॥ क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुं प्राह शचीपतिः । विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं मधुसूदन ॥५१॥ जह्येनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो । तपसा दर्पितां दुष्टां मा विचारय माधव ॥५२॥ इत्युक्तो भगवान् विष्णुः शक्रेण प्रथितेन च । चक्रं सस्मार तरसा घृणां त्यक्त्वाऽथ माधवः ॥५३॥ स्मृतमात्रं तु संप्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम् । दधार च करे क्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः ॥५४॥**

गये हैं तो वे अपने शत्रुपक्ष के बलाबल का विचार किए बिना उनके पदचिह्नों के अनुसार उनका पीछा करने लगे ॥४१॥ देवता दैत्यों का वध करने के लिए तैयार होकर उस आश्रम में ही आ गये और शुक्राचार्य की माता के मना करने पर भी दैत्यों को मारने लगे ॥४२॥ दैत्यों को मारे जाते हुए देखकर शुक्राचार्य की माता क्रोध से काँपने लगीं और उन्होंने देवताओं से कहा कि अभी मैं अपनी तपस्या के बल से तुम सबों को निद्रित कर देती हूँ ॥४३॥ इस तरह से कहकर शुक्राचार्य की माता के द्वारा प्रेरित होकर निद्रा ने देवों पर आक्रमण कर दिया इन्द्र के साथ ही सभी देवता निद्रा के वश में होकर मूक हो गये ॥४४॥ इन्द्र को निद्रा परवश तथा दुःखी देखकर भगवान् विष्णु ने इन्द्र से कहा कि तुम मेरे भीतर प्रवेश कर जाओं मैं तुम्हें अन्यत्र प्रेषित कर दे रहा हूँ ॥४५॥ ऐसा कहने पर इन्द्र विष्णु में प्रवेश कर गये और श्रीहरि के द्वारा रक्षित होकर वे निद्रारहित तथा निर्भय हो गये ॥४६॥ शुक्राचार्य की माता श्रीहरि के द्वारा रक्षित तथा निर्भय इन्द्र को देखकर क्रुद्ध हो गयीं और कहा कि इन्द्र ! मैं अपनी तपस्या के बल से सभी देवताओं के सामने ही विष्णु के साथ ही तुम को खा जाती हूँ । मेरी तपस्या का बल ऐसा ही है ॥४८॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहे जाने पर शुक्राचार्य की माता की योगविद्या से अभिभूत होकर इन्द्र तथा विष्णु दोनों स्तब्ध हो गये ॥४९॥ उन दोनों (इन्द्र तथा विष्णु) को अत्यन्त दुःखी देखकर अत्यन्त दीन होकर देवता आश्चर्यित हो गये और चिल्लाने लगे ॥५०॥ देवताओं को चिल्लाते हुए देखकर इन्द्र ने **भगवान् विष्णु से कहा–** मधुसूदन आपकी अपेक्षा मैं अधिक अभिभूत हो गया हूँ ॥५१॥ अतएव हे भगवन् विष्णो ! यह अपने तपोबल से जब तक हमदोनों को जला न दे उससे पहले ही आप इसका वध कर दीजिये । हे माधव ! इसके विषय में आप विचार न कीजिये । इस दुष्टा को अपनी तपस्या का घमण्ड है ॥५२॥ इन्द्र के इस प्रकार से कहने पर भगवान् विष्णु

गृहीत्वा तत्करे चक्रं शिरश्चिच्छेद रंहसा । हतां दृष्ट्वा तु तां शक्रो मुदितश्चाभवत्तदा ॥५५॥ देवाश्चातीव संतुष्टा हरिं जय जयेति च । तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे संजाता विगतज्वराः ॥५६॥ इंद्रविष्णू तु संजातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ । स्त्रीवधाच्छंकमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम् ॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः । वेपमानोऽतिदुःखार्तः प्रोवाच मधुसूदनम् ॥१॥** भृगुरुवाच– **अकृत्यं ते कृतं विष्णो जानन्पापं महामते । वधोऽयं विप्रजायाया मनसा कर्तुमक्षमः ॥२॥ आख्यातस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः । तथाऽसौ तामसः शंभुर्विपरीतं कथं स्मृतम् ॥३॥ तामसस्त्वं कथं जातः कृतं कर्मातिनिन्दितम् । अवध्या स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा ॥४॥ शपामि त्वां**

ने स्त्री वधजन्य पाप की घृणा का परित्याग करके शीघ्र ही चक्र का स्मरण किया ॥५३॥ सदा भगवान् विष्णु के वश में रहने वाला चक्र स्मरण करते ही उपस्थित हो गया और इन्द्र के द्वारा प्रेरित भगवान् विष्णु ने अपने हाथ में उसे धारण किया ॥५४॥ अपने हाथ में चक्र को लेकर भगवान् विष्णु ने शीघ्रता पूर्वक शुक्राचार्य की माता का शिर काट दिया । उसको मृत देखकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥५५॥ अत्यन्त सन्तुष्ट देवता श्रीहरि का जय-जयकार मनाते हुए उनकी स्तुति करने लगे और उनका दुःख दूर हो गया ॥५६॥ किन्तु इन्द्र और विष्णु के हृदय में उस स्त्री का वध करने से व्यथा उत्पन्न हो गयी और उन्हें यह शंका होने लगी कि पत्नी के वध जन्य क्रोध से महर्षि भृगु उन्हें शाप न दे दें ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

महर्षि भृगु का भगवान् विष्णु को शाप

व्यासजी ने कहा– उस भयानक स्त्रीहत्या रूपी वध को देखकर महर्षि भृगु अत्यन्त कुपित हो गये । वे दुःख से काँपते हुए भगवान् मधुसूदन से कहे ॥१॥ **भृगु महर्षि ने कहा–** हे महामते ! भगवन् विष्णो ! आपने जानबूझकर यह पाप किया है । कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति ब्राह्मण की पत्नी के वध

दुराचारं किमन्यत्प्रकरोमि ते । विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाऽहं शक्रकारणात् ॥५॥ न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन । सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशयः ॥६॥ ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल । तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्षं मे जनार्दन ॥७॥ अवतारा मृत्युलोके संतु मच्छापसंभवाः । प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन ॥८॥ व्यास उवाच– **ततस्तेनाथ शापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः । लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह ॥९॥** राजोवाच– **भृगुभार्या हता तत्र चक्रेणामिततेजसा । गार्हस्थ्यं च पुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः ॥१०॥** व्यास उवाच– **इति शप्त्वा हरिं रोषात्तदादाय शिरस्त्वरन् । काये संयोज्य तरसा भृगुः प्रोवाच कार्यवित् ॥११॥ अद्य त्वां विष्णुना देवि हतां संजीवयाम्यहम् । यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा ॥१२॥ तेन सत्येन जीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् । पश्यंतु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत् ॥१३॥ अद्भिस्त्वां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात् । सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम् ॥१४॥** व्यास उवाच– **अद्भिः संप्रोक्षिता देवी सद्यः संजीविता तदा । उत्थिता परमप्रीता भृगोर्भार्या शुचिस्मिता ॥१५॥ ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव । साधु**

रूप पाप करने के लिए मन से भी नहीं सोच सकता है ॥२॥ कहा गया है कि आप सत्त्वगुण सम्पन्न हैं, ब्रह्मा रजोगुण सम्पन्न हैं और रुद्र तमोगुण सम्पन्न हैं । आपने अपने गुण के विपरीत यह पाप कैसे किया ॥३॥ आप तमोगुणी कैसे हो गये और अत्यन्त निन्दित कार्य कर डाले आप स्त्री को अबध्य जानते हुए इस निरपराधिनी मेरी पत्नी का वध क्यों किये ?॥४॥ तुम दुराचारी हो अतएव मैं तुमको शाप देता हूँ । हे पापी ! तुमने इन्द्र के कारण मुझे विधुर बना दिया है ॥५॥ मैं इन्द्र को शाप नहीं दूँगा; अपितु मैं तुमको शाप दूँगा । तुम हमेशा छल भरे कार्यों को करते हो जिस तरह कीट योनि वाले दुष्ट स्वरूप भाव के होते हैं उसी तरह तुम हो ॥६॥ तुमको सात्त्विक बतलाने वाले मुनिगण मूर्ख हैं । हे जनार्दन ! मैंने साक्षात् जान लिया है कि तुम तामस प्रकृति के हो । दुराचारी हो ॥७॥ मेरे शाप के कारण तुम्हारे मर्त्यलोक में अवतार होंगे । हे जनार्दन ! उन सभी अवतारों में आपको गर्भ में होने वाले कष्टों को भोगना पड़ेगा ॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** उसी शाप के कारण धर्म के नष्ट होने पर भगवान् विष्णु जगत् का कल्याण करने के लिए बार-बार मनुष्य के रूप में अवतार लेते हैं ॥९॥ **राजा जनमेजय ने कहा–** जब भगवान् के अत्यन्त तेजस्वी चक्र के द्वारा भृगुपत्नी का वध हो गया तो फिर भृगु महर्षि का गार्हस्थ्य कैसे निभा ? **व्यासजी ने कहा–** क्रोध के कारण इस तरह से भगवान् विष्णु को शाप देकर कार्यों को जानने वाले महर्षि भृगु अपनी पत्नी के कटे हुए शिर को लेकर उसके धड़ से जोड़ कर कहे ॥११॥ हे देवि ! यदि मैं सम्पूर्ण धर्मों को जानता हूँ और उन सबों का मैंने आचरण किया है तो हे देवि ! मैं तुम्हारे विष्णु के द्वारा काटे गये शिर को जीवित कर रहा हूँ ॥१२॥ यदि मैं सत्य बोलता हूँ तो अपने उस सत्य रूपी तपस्या के बल से तुम्हें जीवित कर रहा हूँ सभी देवता मेरी तपस्या के बल को देख लें ॥१३॥ यदि मुझमें सत्य, पावित्र्य, वेदाध्ययन और तपस्या का बल है तो अपनी तपस्या के बल

साध्विति तं तां तु तुष्टुवुः सर्वतो दिशम् ॥१६॥ एवं संजीविता तेन भृगुणा वरवर्णिनी । विस्मयं परमं जग्मुर्देवाः सेन्द्रा विलोक्य तत् ॥१७॥ इन्द्रः सुरानथोवाच मुनिना जीविता सती । काव्यस्तप्त्वा ततो घोरं किं करिष्यति मंत्रवित् ॥१८॥ व्यास उवाच– गता निद्रा सुरेन्द्रस्य देहेऽक्षेममभून्नृप। स्मृत्वा काव्यस्य वृत्तांतं मंत्रार्थमतिदारुणम् ॥१९॥ विमृश्य मनसा शक्रो जयंतीं स्वसुतां तदा । उवाच कन्यां चार्वंगीं स्मितपूर्वमिदं वचः ॥२०॥ गच्छ पुत्रि मया दत्ता काव्याय त्वं तपस्विने । समाराधय तन्वंगि मत्कृते तं वशं कुरु ॥२१॥ उपचारैर्मुनिं तैस्तैः समाराध्य मनः प्रियैः । भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे ॥२२॥ सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा । तमपश्यद्विशालाक्षी पिबंतं धूममाश्रमे ॥२३॥ तस्य देहं समालोक्य स्मृत्वा वाक्यं पितुस्तदा । कदलीदलमादाय बीजयामास तं मुनिम् ॥२४॥ निर्मलं शीतलं वारि समानीय सुवासितम् । पानाय कल्पयामास भक्त्या परमया लघु ॥२५॥ छायां वस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति । रचयामास तन्वंगी स्वयं धर्मे स्थिता सती॥२६॥ फलान्यानीय दिव्यानि पक्वानि मधुराणि च । मुमोचाग्रे मुनेस्तस्य भक्षार्थं विहितानि च ॥२७॥ कुशाः प्रादेशमात्रा हि हरिताः शुकसन्निभाः।

से तुम्हें शीतल जल से सींच कर जीवित कर रहा हूँ ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा**– जल से सींच दिये जाने पर सुन्दर मुस्कान वाली महर्षि भृगु की पत्नी जीवित होकर अत्यन्त प्रेम पूर्वक उठ गयी ॥१५॥ सोकर जगी हुई के समान उसे उठकर खड़ी हुई देखकर सभी जीव सभी ओर से बहुत अच्छा, बहुत अच्छा यह कहकर पति तथा पत्नी दोनों की स्तुति करने लगे ॥१६॥ इस प्रकार महर्षि भृगु द्वारा जिलायी गयी उस सुन्दरी को देखकर इन्द्र आदि सभी देवता आश्चर्यित हो गये ॥१७॥ इन्द्र ने सभी देवताओं से कहा भृगु ने अपनी पत्नी को जीवित कर लिया । तपस्या करके तथा शिवजी से मन्त्र प्राप्त करके जब शुक्राचार्य लौटेंगे और अपनी माता का वध सुनेंगे तो न जाने हमलोगों की कौन सी गति होगी ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा**– राजन् ! यद्यपि इन्द्र की निद्रा समाप्त हो गयी थी फिर भी जब वे शुक्राचार्य के मन्त्र सम्बन्धी वृत्तान्त को सुनते थे तो वे व्याकुल हो जाते थे ॥१९॥ मन से विचार करके इन्द्र ने अपनी सुन्दरी कन्या जयन्ती से मुस्कुराते हुए कहा ॥२०॥ हे पुत्रि ! तुम्हें मैंने शुक्राचार्य को दे दिया है । तुम उनके पास जाओ और मेरे कल्याण के लिए तुम उनकी सेवा करके उन्हें अपने वश में कर लो ॥२१॥ उनके उत्तम आश्रम में जाकर उनके मनोनुकूल उपचारों से उनकी सेवा करो और मेरे भय को दूर करो ॥२२॥ सुन्दरी जयन्ती ने अपने पिता की बातों को सुनकर शुक्राचार्य के आश्रम में जाकर देखा कि वे धूम्रपान कर रहे हैं ॥२३॥ जयन्ती शुक्राचार्य के शरीर को देखकर तथा अपने पिता के वाक्य को स्मरण करके केले के पत्ते को लेकर उन्हें पंखा करने लगी ॥२४॥ वह अत्यन्त भक्तिपूर्वक स्वच्छ शीतल तथा सुगन्धित जल शुक्राचार्य को पीने के लिए ले आती थी ॥२५॥ सूर्य के आकाश के मध्य में आ जाने पर अपने वस्त्र का छाता बनाकर, उनको छाया करती थी तथा स्वयं धूप में खड़ी रहती थी ॥२६॥ वह शुक्राचार्य को खाने के लिए उनके सामने पके हुए दिव्य तथा मधुर फलों को लाकर

दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये ॥२८॥ निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम् । तस्मिन्मुनौ चादरस्था चकार ब्यजनं शनैः ॥२९॥ हावभावादिकं किंचिद्विकारजननं च तत् । न चकार जयंती सा शापभीता मुनेस्तदा ॥३०॥ स्तुतिं चकार तन्वंगी गीर्भिस्तस्य महात्मनः । सुभाषिण्यनुकूलाभिः प्रीतिकर्त्रीभिरप्युत ॥३१॥ प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च । मनोऽनुकूलं सततं कुर्वन्ती व्यचरत्तदा ॥३२॥ इन्द्रोऽपि सेवकांस्तत्र प्रेषयामासचातुरः । प्रवृत्तिं ज्ञातुकामो वै मुनेस्तस्य जितात्मनः ॥३३॥ एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराऽभवत् । निर्विकारा जितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती ॥३४॥ पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः । वरेण छंदयामास काव्यं प्रीतमना हरः ॥३५॥ ईश्वर उवाच– **यच्च किंचिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनंदन । प्रतिपश्यसि यत्सर्वं तच्च वाच्यं न कस्यचित् ॥३६॥ सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः । अवध्यः सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः ॥३७॥** व्यास उवाच– **एवं दत्त्वा वराञ्छंभुस्तत्रैवांतरधीयत । काव्यस्तामथ संवीक्ष्य जयंतीं वाक्यमब्रवीत् ॥३८॥ काऽसि कस्यासि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम् । किमर्थमिह संप्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे ॥३९॥ किं वांछसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने । प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाद्य वरं वरय सुव्रते ॥४०॥ ततः सा तु मुनिं प्राह जयंती मुदितानना । चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥४१॥**

रखती थीं ॥२७॥ उन्हें नित्यकर्म करने के लिए एक-एक बीते के हरे कुशों तथा फूलों को लाकर रख देती थी ॥२८॥ मुनि को सोने के लिए वह पल्लवों से शय्या बनाती थी और आदरपूर्वक वह मुनि को पंखा करती रहती थी ॥२९॥ मुनि कहीं शाप न दे दें, इस भय से भयभीत होकर जयन्ती उनके समक्ष मन में विकारों को उत्पन्न करने वाले थोड़े से भी हाव-भावों का प्रदर्शन नहीं करती थी ॥३०॥ सुन्दर ध्वनि वाली वह सुन्दरी प्रसन्न कर देने वाली वाणी से उनके मनोऽनुकूल स्तुति करती थी ॥३१॥ शुक्राचार्य के जग जाने पर वह उनको आचमन करने के लिए जल उनके समक्ष लाकर रख देती थी । इस तरह जयन्ती शुक्राचार्य के मनोऽनुकूल आचरण करती थी ॥३२॥ इन्द्र भी जितेन्द्रिय शुक्राचार्य की प्रवृत्ति को जानने के लिए अपने चतुर सेवकों को भेजा करते थे ॥३३॥ इस तरह से जयन्ती अनेक वर्षों तक महर्षि की सेवा ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई क्रोध तथा विकार रहित होकर करती रही ॥३४॥ इस तरह से पूरे एकहजार वर्ष बीत जाने पर शंकरजी प्रसन्न हो गये और प्रसन्न मन से शुक्राचार्य को वरदान माँगने के लिए कहे ॥३५॥ **शंकरजी ने शुक्राचार्य से कहा–** हे भृगुनन्दन ! इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ है, जिन्हें आप देख रहे हैं और जो वाणी से परे हैं ॥३६॥ उन सबों के आप अभिभावक होंगे। आप सभी जीवों के लिए अबध्य होंगे । आप प्रजापति तथा मंत्रशक्ति के ज्ञाता होंगे ॥३७॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से वरदान देकर शंकरजी वहीं पर अन्तर्धान हो गये । इसके बाद शुक्राचार्य ने जयन्ती को देखकर कहा ॥३८॥ हे सुन्दरि ! तुम कौन हो तुम क्या चाहती हो बतलाओ । हे सुन्दरि ! तुम

शुक्र उवाच– ज्ञातं मया तथापि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् । करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया ।।४२।। जयंत्युवाच– शक्रस्याहं सुता ब्रह्मन्पित्रा तुभ्यं समर्पिता । जयंती नामतश्चाहं जयंतावरजा मुने ।।४३।। सकामाऽस्मि त्वयि विभो वांछितं कुरु मेऽधुना । रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम् ।।४४।। शुक्र उवाच– मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि । सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया ।।४५।। व्यास उवाच– एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयंत्याः पाणिमुद्वहन् । तया सहावसद्देव्या दश वर्षाणि भार्गवः ।।४६।। अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः । दैत्यास्तमागतं श्रुत्वा कृतार्थं मंत्रसंयुतम् ।।४७।। अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः । नापश्यन्रममाणं ते जयंत्या सह संयुतम् ।।४८।। तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते । चिंतापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः ।।४९।। अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम् । स्वगृहान्दैत्यवर्यास्ते चिंताविष्टा भयातुराः ।।५०।। रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रः प्रोवाच तं गुरुम् । बृहस्पतिं महाभाग किं कर्तव्यमतः परम् ।।५१।। गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय । अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या संचिंत्य मानद ।।५२।। तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणं सुसंवृतम् । ज्ञात्वा

यहाँ किसलिए आयी हो ? उसे तुम बतलाओ ।।३९।। हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम क्या चाहती हो ? यदि वह दुष्कर भी कार्य होगा तो मैं उसे पूरा करूँगा। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूँ हे सुव्रते ! तुम वरदान माँगो ।।४०।। इसके पश्चात् प्रसन्नमुख वाली जयन्ती ने मुनि शुक्राचार्य से कहा हे मुने ! आप अपनी तपस्या के बल से ही मेरे अभिप्रेत अर्थ को जान लें ।।४१।। **शुक्राचार्य ने कहा**– वह तो मैंने जान लिया है, फिर भी तुम अपने मन को अच्छी लगने वाली बात को बतलाओ । मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूँ । मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा ।।४२।। **जयन्ती ने कहा**– हे ब्रह्मन् ! मेरा नाम जयन्ती है मैं इन्द्र की पुत्री हूँ । मेरे पिता ने मुझे आपको दान कर दिया है । मैं जयन्त की छोटी बहन हूँ ।।४३।। विभो ! मैं आप पर आसक्त हूँ । आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। हे महाभाग ! मैं पातिव्रत धर्म के अनुसार आपके साथ रमण करूँगी ।।४४।। **शुक्राचार्य ने कहा**– हे सुन्दरि ! तुम मेरे साथ दश वर्षों तक अपनी इच्छा के अनुसार रमण करती रहो । इतने समय में तुम्हें कोई नहीं देख पायेगा ।।४५।। **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा**– इस तरह शुक्राचार्य जयन्ती का हाथ पकड़े हुए अपने घर जाकर दश वर्षों तक जयन्ती के साथ एक साथ रहे ।।४६।। अपनी माया के द्वारा वे सभी भूतों के लिए अदृश्य हो गये । दैत्यों ने जब सुना कि शुक्राचार्य मन्त्र प्राप्त करने के प्रयास में सफल होकर आ गये हैं ।।४७।। तो वे उनका दर्शन करने के लिए उनके घर प्रसन्नता-पूर्वक गये। किन्तु जयन्ती के साथ रमण करते हुए उन्हें नहीं देख सके ।।४८।। उसके बाद उदास अपने प्रयास में विफल चिन्तित तथा अत्यन्त दीन होकर बार-बार देखकर भी जब वे दैत्य शुक्राचार्य को नहीं देख पाये तो वे दैत्य चिन्तित तथा भयभीत होकर अपने घर लौट गये ।।४९-५०।। शुक्राचार्य को रमण करते

तद्रूपमास्थाय दैत्यान्प्रति ययौ गुरुः ॥५३॥ गत्वा तत्रातिभक्त्याऽसौ दानवान्समुपाह्वयत् । आगतास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः ॥५४॥ प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वाऽतिमोहिताः । न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम् ॥५५॥ तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया । स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय वै ॥५६॥ अहं वो बोधयिष्यामि विद्यां प्राप्ताममायया । तपसा तोषितः शंभुर्युष्मत्कल्याणहेतवे ॥५७॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसो जातास्ते दानवोत्तमाः । कृतकार्यं गुरुं मत्वा जहृषुस्ते विमोहिताः ॥५८॥ प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातंका गतव्यथाः । देवेभ्यश्च भयं त्यक्त्वा तस्थुः सर्वे निरामयाः ॥५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हुए जानकर इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति से पूछा कि अब क्या करना चाहिए ॥५१॥ हे ब्रह्मन् ! आज आप जायँ तथा दानवों को अपनी माया से मोहित करें । हे मानद ! आप अपनी बुद्धि से विचार करके हम देवताओं का कार्य सम्पन्न करें ॥५२॥ इन्द्र की बातों से जब बृहस्पति ने जाना कि शुक्राचार्य इस समय पूर्ण रूप से गुप्त रहकर रमण कर रहें है तो वे शुक्राचार्य का रूप बनाकर दैत्यों के पास गये ॥५२-५३॥ वे जाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक दैत्यों को बुलाये । दैत्यों ने आकर अपने सामने शुक्राचार्य को देखा ॥५४॥ अत्यन्त मोहित दैत्यों ने उन्हें शुक्राचार्य जानकर प्रणाम किया और उनके सामने खड़े हो गये । वे यह नहीं जान सके कि यह देवगुरु की मोहिनीमाया है ॥५५॥ शुक्राचार्य का रूप बनाये हुए देवगुरु ने हे यजमानो ! आपलोगों का स्वागत हैं । मैं आपलोगों का कल्याण करने के लिए आया हूँ ॥५६॥ मैंने आपलोगों का कल्याण करने के लिए शंकरजी को प्रसन्न किया है और उनसे प्राप्त विद्या को मैं आपलोगों को बिना किसी दुराव के बतलाऊँगा ॥५७॥ उस बात को सुनकर वे दानवोत्तम अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्हें लगा कि हमारे गुरु अपने प्रयास में सफल हो गये हैं और वे मोहित होने के कारण अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किए ॥५८॥ वे भय तथा दुःख से रहित होकर उन्हें बार-बार प्रणाम किए । अब उन सबों को देवताओं से भय समाप्त हो गया था और वे निर्भय हो गये थे ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

राजोवाच– **किं कृतं गुरुणा पश्चाद्भृगुरूपेण वर्तता । छलेनैव हि दैत्यानां पौरोहित्येन धीमता ॥१॥ गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा। सुतोऽङ्गिरस एवासौ स कथं छलकृन्मुनिः ॥२॥ धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम् । कथितं मुनिभिर्येन परमात्माऽपि लभ्यते ॥३॥ वाचस्पतिस्तथा मिथ्या वक्ता चेद्दानवान्प्रति । कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी ॥४॥ आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्मांडविभवेऽपि न । तदर्थं मुनयो मिथ्या प्रवर्तन्ते कथं मुने ॥५॥ शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम् । छलकर्मप्रवृत्ते वाऽविगीतत्वं गुरौ कथम् ॥६॥ देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः । तिर्यंचस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल ॥७॥ अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि । तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः ॥८॥ क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य संदेहोऽयं ममात्मनः । का गतिः सर्वजंतूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये ॥९॥ हरिर्ब्रह्मा शचीकांतस्तथाऽन्ये सुरसत्तमाः । सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणां च का कथा ॥१०॥ कामक्रोधाभिसंतप्ता लोभोपहतचेतसः । छले**

बृहस्पति का शुक्राचार्य के रूप में दैत्यों को धोखा देना

राजा जनमेजय ने कहा– बुद्धिमान् बृहस्पति ने दैत्यों से छल करने के लिए शुक्राचार्य का रूप बनाने के पश्चात् क्या किया ॥१॥ आचार्य बृहस्पति तो समस्त विद्याओं के ज्ञाता और अंगिरा मुनि के पुत्र थे फिर वे दैत्यों के साथ छल क्यों किये ॥२॥ सभी धर्मशास्त्रों में सत्य को ही धर्म का मूल बतलाया गया है। मुनियों ने बतलाया है कि सत्य से तो परमात्मा की भी प्राप्ति हो जाती है ॥३॥ यदि ऐसे बृहस्पति भी दनवों से मिथ्या बोले तो संसार में कौन ऐसा गृहस्थ होगा जो सत्यवक्ता हो ॥४॥ हे मुने ! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वैभव के रहने पर भी कोई पेटभर से अधिक भोजन नहीं कर सकता है । उसी पेट को भरने के लिए मुनिजन मिथ्या भाषण क्यों करते हैं ॥५॥ जब देवगुरु स्वयं छल करने का काम किए तो शिष्टता कहाँ रह गयी ? और शिष्टता के अभाव में उनके वचन की प्रामाणिकता ही कहाँ रह गयी ?॥६॥ हे मुने ! कहा गया है कि देवताओं की सत्त्वगुण से उत्पत्ति हुई है, मनुष्य रजोगुण प्रधान होते हैं, और पशु-पक्षी तमोगुण प्रधान होते हैं ॥७॥ यदि देवताओं के गुरु भी स्वयं मिथ्यावादी हैं तो फिर राजस एवं तामस जीवों में कौन सत्यवक्ता होगा॥८॥ ऐसी स्थिति में धर्म कहाँ रहेगा यही मुझको सन्देह है । त्रैलोक्य के मिथ्यावादी हो जाने पर सभी जीवों की कौन सी गति होगी ॥९॥ जब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्य श्रेष्ठ देवता छल करने में प्रवीण हैं तो फिर मनुष्यों के विषय में क्या कहना है । वे तो इस कर्म में और अधिक प्रवीण होंगे ॥१०॥

दक्षाः सुराः सर्वे मुनष्यश्च तपोधनाः ॥११॥ वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा । एते पापरताः काऽत्र गतिर्धर्मस्य मानद ॥१२॥
इन्द्रोऽग्निश्चंद्रमा वेधाः परदाराभिलंपटाः । आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद ॥१३॥ वचनं कस्य मंतव्यमुपदेशधियाऽनघ । सर्वे
लोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा ॥१४॥ व्यास उवाच– **किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः । देहवान् प्रभवत्येव विकारैः**
संयुतस्तदा ॥१५॥ रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्माऽपि रागसंयुतः । (रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप ।) रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव
लक्ष्यते ॥१६॥ संप्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः संबाध्यते किल । कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति ॥१७॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एव हि
कारणम् । पंचविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा ॥१८॥ काले मरणधर्मास्ते संदेहः कोऽत्र ते नृप । परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वे भवन्ति
च॥१९॥ विप्लुतिर्ह्यविशेषेण स्वकार्ये समुपस्थिते । कामः क्रोधस्तथा लोभो द्रोहाहंकारमत्सराः ॥२०॥ देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवति
तान्पुनः। संसारोऽयं महाराज सदैवैवंविधः स्मृतः ॥२१॥ नान्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल । कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरति दारुणम्॥२२॥

सभी देवता तथा सभी तपस्वी मुनिगण काम तथा क्रोध से सन्तप्त हैं और उनका चित्त लोभ से मोहित हो गया है ॥११॥ वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र तथा बृहस्पति जैसे महापुरुष भी यदि पाप कर्म में लिप्त हैं तो फिर हे मानद ! धर्म कैसे बचेगा ॥१२॥ यदि इन्द्र, अग्नि, चन्द्र और ब्रह्मा भी परायी स्त्री में आसक्त हो गये तो हे मुने ! आप बतलायें कि संसार में शिष्टता कहाँ रह गयी ॥१३॥ हे निष्पाप ! जब सभी देवता तथा मुनिजन लोभ से अक्रान्त हो गये हैं तो फिर किसके वचन को उपदेश माना जाय ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! चाहे विष्णु हों या शिव, ब्रह्मा हों या इन्द्र, अथवा बृहस्पति हीं क्यों न हों, जो-जो देहधारी है, वे सबके सब लोभ, मोह आदि विकारों से युक्त होते ही हैं ॥१५॥ ब्रह्मा, विष्णुं तथा शिव भी रागी (असक्ति से युक्त) हैं । हे राजन् ! रागी जीव कौन सा पाप नहीं कर सकता है ? यह दूसरी बात है कि कुछ ऐसे चतुर रागी होते हैं जो अपने चतुराई के द्वारा विदेह के समान प्रतीत होते हैं ॥१६॥ किन्तु जबं संकट की बेला आती है, तो उस समय उनकी भी कलई खुल जाती है । वे भी अपने गुण की प्रधानता के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कार्य कारण के विना नहीं हो सकता है ॥१७॥ ब्रह्मा आदि की भी उत्पत्ति इन गुणों से ही हुई है । उनका भी शरीर इन पच्चीस तत्त्वों से ही उद्भूत हैं ॥१८॥ समय के आ जाने पर उन्हें भी मरना पड़ता है; अतएव इस विषय में संदेह के लिए कोई अवसर ही क्या है ? दूसरों को उपदेश देने के समय तो सबलोग शिष्ट पुरुष प्रतीत होते हैं ॥१९॥ किन्तु जब उन पर भी कोई संकट आ जाता है तो उस समय उनके भी उपदेश का सारा महत्त्व समाप्त हो जाता है । हे महाराज ! कौन ऐसा देहधारी पुरुष है जो काम, क्रोध, लोभ, द्रोह, अहंकार तथा मत्सर का परित्याग करने में समर्थ हो सकता है ? और हे महाराज ! यह संसार सर्वदा इसी प्रकार का रहता है ॥२०-२१॥ इस संसार में

कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः । कदाचित्तु रमारंगरंजितः परमेश्वरः ॥२३॥ रमते किल वैकुण्ठे तद्वशस्तरुणो विभुः । कदाचिद्दानवैः
सार्धं युद्धं परमदारुणम् ॥२४॥ करोति करुणासिंधुस्तद्बाणापीडितो भृशम् । कदाचिज्जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम् ॥२५॥ सुखदुःखाभिभूतोऽसौ
भवत्येव न संशयः । शेषे शेते कदाचिद्वै योगनिद्रासमावृतः ॥२६॥ काले जागर्ति विश्वात्मा स्वभावप्रतिबोधितः । शर्वो ब्रह्मा हरिश्चेति इन्द्राद्या
ये सुरास्तथा ॥२७॥ मुनयश्च विनिर्माणैः स्वायुषो विचरंति हि । निशाऽवसाने संजाते जगत्स्थावरजंगमम् ॥२८॥ म्रियते नात्र संदेहो नृप
किंचित्कदापि च । स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छंति पार्थिव ॥२९॥ प्रभवंति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः । तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते॥३०॥
नात्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव । संसारोऽयं तु संदिग्धः कामक्रोधादिभिर्नृप ॥३१॥ दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित् । यो
बिभेतीह संसारे स दारान्न करोत्यपि ॥३२॥ विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो विचरत्यविशंकितः । तस्माद्बृहस्पतेर्भार्या शशिना लंभिता पुरा ॥३३॥ गुरुणा
लंभिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः । एवं संसारचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः ॥३४॥ गार्हस्थ्यं समास्थाय कथं मुक्तो भवेन्नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन

सर्वदा अच्छी और बुरी बातें रहती हैं । इस संसार में कभी भगवान् विष्णु कठोर तपस्या करते हैं । कभी इन्द्र अनेक प्रकार के यज्ञों को करते हैं । कभी भगवान् विष्णु लक्ष्मी के रङ्गराग का अनन्दानुभव करते हैं ॥२३॥ और वे वैकुण्ठ में युवक के समान कामासक्त होकर रमण करते हैं । कभी वे ही भगवान् विष्णु दानवों के साथ भयंकर युद्ध करते हैं ॥२४॥ वे कभी दैत्यों के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होते हैं और कभी तो वे दैत्यों के साथ युद्ध करते हुए पराजित होते हैं तो कभी वे दैत्यों पर विजय प्राप्त करते हैं ॥२५॥ वे कभी सुख तथा दुःख से अभिभूत होते हैं । वे कभी योगनिद्रा से अभिभूत होकर शेषशय्या पर शयन करते हैं ॥२६॥ और सृष्टि काल के आजाने पर वे अपने स्वभावानुसार जग भी जाते हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव एवं इन्द्र आदि देवता ॥२७॥ तथा मुनिगण अपनी आयु पर्यन्त जीवित रहते हैं । और प्रलयकाल के आजाने पर इस संसार के समस्त स्थावर एवं जंगम जीव मर जाते हैं, इस विषय में किसी को भी कभी भी संदेह नहीं होना चाहिए । राजन् ! आयु के समाप्त हो जाने पर ब्रह्मा आदि की भी मृत्यु होती है ॥२८-२९॥ उसके पश्चात् जब पुनः सृष्टि काल आता है तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवता उत्पन्न हो जाते है । अतएव सभी शरीरधारी काम इत्यादि भावों को प्राप्त करते हैं ॥३०॥ राजन् आपको इन विषयों में संदेह कभी नहीं करना चाहिए । राजन् यह सारा संसार काम तथा क्रोध इत्यादि से सना हुआ है॥३१॥ काम, क्रोध इत्यादि से रहित तथा परमार्थ के ज्ञाता पुरुष इस संसार में दुर्लभ हैं । जो इस संसार से डरता है वह विवाह भी नहीं करता है ॥३२॥ वह सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित होकर विना किसी भय के विचरण करता है । जो लोग विवाह करके गार्हस्थ्य से उदासीन रहते हैं, उनकी वैसी ही दशा होंती है जैसे विवाह करकें गार्हस्थ्य से उदासीन रहने वाले बृहस्पति की हुई । उनकी पत्नी को चन्द्रमा ने रख लिया ॥३३॥ स्वयं देवगुरु बृहस्पति

हित्वा संसारसारताम् ॥३५॥ आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानंदरूपिणीम् । तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥३६॥ भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप। तस्या आराधनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च ॥३७॥ मुक्तिं भजेत मतिमान्नान्यः पंथास्त्वितः परः । आराधिता महेशानी न यावत्कुरुते कृपाम् ॥३८॥ तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोन्योऽस्ति दयया युतः । करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया ॥३९॥ यस्यास्तु भजनेनैव जीवन्मुक्तत्वमश्नुते । मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी ॥४०॥ निःश्रेणिकाग्रात्पतित अध इत्येव विद्महे । अहंकारावृतं विश्वं गुणत्रयसमन्वितम् ॥४१॥ असत्येनापि संबद्धं मुच्यते कथमन्यथा । हित्वा सर्वं ततः सर्वैः संसेव्या भुवनेश्वरी ॥४२॥ राजोवाच– **किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च । कदा शुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥४३॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा । कृत्वा काव्यस्वरूपं च प्रच्छन्नेन महात्मना ॥४४॥ गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम् । विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा ॥४५॥ विद्यार्थं शरणं प्राप्ता भृगुं मत्वाऽतिमोहिताः।**

अपने छोटे भाई उतथ्य की पत्नी को रख लिए थे । इस तरह इस संसारचक्र में राग एवं लोभ से परिपूर्ण रहने वाला व्यक्ति गार्हस्थ्य को अपनाकर कैसे मुक्त हो सकता है ॥३४॥ अतएव संसार की हर प्रकार की वासनाओं से मन को हटाकर सच्चिादानन्द स्वरूपिणी भगवती जगदम्बा की आराधना करनी चाहिए । उनकी ही माया के गुणों से यह संसार व्याप्त है ॥३५-३६॥ भगवती जगदम्बा की आराधना के द्वारा माया के समस्त गुणों को विनष्ट करके भक्त इस संसार से अनासक्त रहकर उन्मत्त अथवा मदमत्त के समान निश्शंक भ्रमण करता है ॥३७॥ आराधना से प्रसन्न होकर जगदम्बा जब तक जीव पर कृपा नहीं करती हैं, तब तक मुक्ति प्राप्त करने का कोई भी दूसरा उपाय नहीं है ॥३८॥ भगवती की कृपा प्राप्ति के विना सुख नहीं मिल सकता है, क्योंकि उनको छोड़कर दूसरा कौन है जो दयावान हो । अतएव सच्चे मन से दया के सागर भगवती की आराधना करे ॥३९॥ उनकी ही आराधना करने से जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है । मानव जीवन प्राप्त करके भी जिसने महेश्वरी जगदम्बा की आराधना नहीं की उसके विषय में मैं यही समझता हूँ कि जैसे कोई महल की सभी सीढियों पर चढ़कर फिसल जाय और नीचे गिर जाय । अथवा जैसे संसार की समस्त योनियों को पार करके मानव जीवन प्राप्त करके भी कोई अपने लक्ष्य से च्युत हो जाय । तीनों गुणों से युक्त यह संसार अहंकार से व्याप्त है ॥४०-४१॥ इस असत्य संसार से संबद्ध जीव किसी भी दूसरे उपाय से मुक्त नहीं हो सकता है, अतएव सबों को चाहिए कि वे सबकुछ त्यागकर भुवनेश्वरी की आराधना करे ॥४२॥ **राजा जनमेजय ने कहा**– हे पितामह! शुक्राचार्य का रूप बनाये हुए बृहस्पति ने देवों के बीच में क्या किया और शुक्राचार्य कब आये ? यह आप हमें बतलाएँ । **व्यासजी ने कहा**– राजन् ! आप सुनें, मैं बतलाता हूँ कि छलपूर्वक शुक्राचार्य का रूप धारण करने वाले बृहस्पति ने क्या किया ?॥४४॥ आचार्य बृहस्पति के द्वारा समझाये जाने पर दैत्यों ने मान लिया कि हमारे गुरु शुक्राचार्य ये ही हैं । उसके बाद वे अत्यन्त विश्वास के साथ उनके ही अनुगामी बन गये ॥४५॥ वे उन्हीं को शुक्राचार्य मानकर

गुरुणा विप्रलब्धास्ते लोभात्को वा न मुह्यति ॥४६॥ दशवर्षात्मके काले संपूर्णसमये तदा । जयंत्या सह क्रीडित्वा काव्यों याज्यानचिंतयत्॥४७॥ आशया मम मार्गं ते पश्यंतः संस्थिताः किल । गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान् ॥४८॥ मा देवेभ्यो भयं तेषां मद्भक्तानां भवेदिति। संचिंत्य बुद्धिमास्थाय जयंतीं प्रत्युवाच ह ॥४९॥ देवानेवोपसंयांति पुत्रा मे चारुलोचने । समयस्तेऽद्य संपूर्णो जातोऽयं दशवार्षिकः ॥५०॥ तस्माद्गच्छाम्यहं देवि द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे । पुनरेवागमिष्यामि तवांतिकमनुद्रुतः ॥५१॥ तथेति तमुवाचाथ जयंती धर्मवित्तमा । यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये ॥५२॥ तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगाम त्वरितस्ततः । अपश्याद्दानवानां च पार्श्वे वाचस्पतिं तदा ॥५३॥ छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयंतं छलेन तान् । जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिंदापरं तथा ॥५४॥ भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम् । अहिंसा परमो धर्मोऽहंतव्या ह्याततायिनः ॥५५॥ द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दर्शितं हिंसनं पशोः । जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा माता ॥५६॥ एवंविधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च । ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः ॥५७॥ चिंतयामास मनसा मम द्वेष्यो गुरुः किल । वंचिताः किल धूर्तेन याज्या मे नात्र

उनके पास विद्या प्राप्त करने के लिए आये, क्योंकि वे अत्यन्त मोहित हो गये थे । और बृहस्पति ने भी उन्हें विद्या प्रदान करने का प्रलोभन देकर खूब ठगा; क्योंकि लोभ के कारण सभी लोग अज्ञानी बन जाते हैं ॥४६॥ जब दश वर्षों का समय बीत गया तब तक जयन्ती के साथ रमण करने के पश्चात् शुक्राचार्य को अपने यजमानों की चिन्ता हुई ॥४७॥ उन्होंने सोचा वे सब मेरे आने की आशा में मेरा रास्ता देखते होंगे । मैं जाकर अत्यन्त भयभीत अपने यजमानों को देखूँ ॥४८॥ मैं चाहता हूँ कि मेरे भक्तों को देवताओं से किसी भी प्रकार का भय न प्राप्त हो । यह सोचकर उन्होंने अपनी पत्नी जयन्ती से कहा ॥४९॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली जयन्ती ! मेरे पुत्र के समान प्रिय यजमान देवताओं के दास बनते जा रहे हैं । मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार दश वर्ष का समय बीत चुका है । अतएव हे सुन्दरि मैं अपने यजमानों को देखने के लिए जा रहा हूँ । उसके बाद मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास लौटूँगा ॥५०-५१॥ धर्मों की जानकार जयन्ती ने कहा आप ऐसा ही करें । हे धर्मों के ज्ञाता आर्यपुत्र आप अपनी इच्छानुसार जायँ मैं आपके धर्म का लोप नहीं होने दूँगी ॥५२॥ जयन्ती की बातों को सुनकर शुक्राचार्य शीघ्र दैत्यों के पास आये और उन्होंने देखा कि दैत्यों के पास बृहस्पति बैठे हैं ॥५३॥ और अपना कपटी रूप बनाकर दैत्यों को छल पूर्वक अपने द्वारा प्रणीत यज्ञ की निन्दा युक्त धर्म सिखा रहे हैं ॥५४॥ वे दैत्यों को बतला रहे थे हे देवताओं ! के शत्रुगण आपलोगों के लिए कल्याणमयी बातें मैं बतला रहा हूँ । सबसे बड़ा धर्म अहिंसा ही है । अतातायी का भी वध नहीं करना चाहिए ॥५५॥ भोगी ब्राह्मणों ने ही वेदों में पशु की हिंसा को बतलाया है । यह सब उन ब्राह्मणों ने अपनी जिह्वा का स्वाद लेने के लिए कहा है अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ है ॥५६॥ इस तरह की

संशयः ॥५८॥ धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम् । गुरुरप्यनृतं ब्रूते प्रेरितो येन पाप्मना ॥५९॥ प्रमाणं वचनं यस्य सोऽपि पाखंडधारकः। गुरुः सुराणां सर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः ॥६०॥ किं किं न लभते लोभान्मलिनीकृतमानसः । अन्योऽपि गुरुरप्येवं जातः पाखंडपंडितः ॥६१॥ शैलूषचेष्टितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः । वंचयत्यतिसंमूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति संचिंत्य मनसा तानुवाच हसन्निव । वंचिता मत्स्वरूपेण दैत्याः किं गुरुणा किल ॥१॥ अहं काव्यो गुरुश्चायं देवकार्यप्रसाधकः । अनेन वंचिता यूयं मद्याज्या नात्र संशयः ॥२॥ मा श्रद्धध्वं वचोऽस्यार्या दांभिकोऽयं मदाकृतिः । अनुगच्छत मां याज्यास्त्यजतैनं**

वेदों तथा शास्त्रों में प्रतिपादित वाक्यों को बृहस्पति द्वारा कहे जाते हुए सुनकर शुक्राचार्य को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥५७॥ वे मन में सोचने लगे कि बृहस्पति हमारे शत्रु हैं । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि उन्होंने धूर्तता से मेरे यजमानों से छल किया है ॥५८॥ पापों के मूलभूत लोभ को धिक्कार है। यह तो नरक के लिए खुले द्वार के समान है । उसी पापस्वरूप लोभ से प्रेरित होकर जिसके वाक्य को प्रामाणिक माना जाता है वे बृहस्पति भी पाखण्डी हो गये हैं । यद्यपि वे देवताओं के गुरु तथा धर्मशास्त्र के प्रवर्तक हैं ॥५९-६०॥ जिसका मन लोभ के कारण मलिन हो गया है, वह कौन सा अनर्थ नहीं कर सकता है । जब बृहस्पति इस तरह से पाखण्ड के पण्डित हो गये हैं तो दूसरों के विषय में कौन सी बात की जाय ॥६१॥ ये ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भी होकर बृहस्पति बहुरूपियों के समान रूप बदल कर हमारे यजमानों को ठगने का काम करते हैं; क्योंकि दैत्य अत्यन्त अज्ञानी हैं ॥६२॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

दैत्यों का शुक्राचार्य पर आविश्वास

व्यासजी ने कहा– इस तरह से मन में विचार करके शुक्राचार्य हँसते हुए दैत्यों से कहे दैत्यों ! मेरा स्वरूप बनाकर आये हुए बृहस्पति की बातों में

बृहस्पतिम् ॥३॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दृष्ट्वा तौ सदृशौ पुनः । विस्मयं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चिताः ॥४॥ स तान्वीक्ष्य सुसंभ्रांतान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह । गुरुर्वो वंचयंत्येव मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥५॥ प्राप्तो वंचयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये । मा विश्वासं वचस्यस्य कुरुध्वं दैत्यसत्तमाः ॥६॥ प्राप्ता विद्या मया शम्भोर्युष्मानध्यापयामि ताम् । देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः ॥७॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं काव्यरूपधरस्य ते । विश्वासं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चयात् ॥८॥ काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किल दानवाः । बुबुधुर्न गुरोर्मायामोहिताः कालपर्ययात् ॥९॥ एवं ते निश्चयं कृत्वा ततो भार्गवमब्रुवन् । अयं गुरुर्नो धर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः ॥१०॥ दश वर्षाणि सततमयं नः शास्ति भार्गवः । गच्छं त्वं कुहको भासि नास्माकं गुरुरप्युत ॥११॥ इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः । जगृहुस्तं गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥१२॥ काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाथ शशाप च । दैत्यान्विबोधितान्मत्वा गुरुणा चातिवंचितान् ॥१३॥ यस्मान्मया बोधिता वै गृहणीयुर्न च मे वचः । तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा

आकर आपलोग देवगुरु से ठगा गये क्या ?॥१॥ शुक्राचार्य मैं हूँ और ये तो देवताओं का कार्य सिद्ध करने वाले बृहस्पति हैं । हे मेरे यजमानों ! आपलोग इनके द्वारा छले जा रहे हैं ॥२॥ दैत्यों इसकी बातों पर विश्वास न करो यह ठग मेरा रूप बनाये हुए है । यजमानों तुम लोग मेरे पास आओ, मेरा अनुसरण करो बृहस्पति को त्याग दो ॥३॥ इस तरह से शुक्राचार्य की बातों को सुनकर दैत्यों ने दोनों को एक आकार वाला देखा और अत्यन्त आश्चर्यित हुए । अन्त में उन सबों ने निश्चय किया कि ये ही शुक्राचार्य हैं ॥४॥ दैत्यों को अत्यन्त भ्रान्त सा देखकर बृहस्पति ने कहा कि यह बृहस्पति है और आपलोगों को धोखा दे रहा है और मेरा रूप बना कर आया है ॥५॥ यह देवताओं का काम बनाने के लिए आप लोगों के पास आया है । दैत्यवर्यों आपलोग इस पर विश्वास न करें ॥६॥ मैंने भगवान् शंकर से जो विद्या प्राप्त की है, उसे मैं आपलोगों को बतला रहा हूँ । इसके द्वारा हमलोग देवताओं पर अवश्य विजय प्राप्त करेंगे॥७॥ इस तरह से शुक्राचार्य का रूप धारण किए हुए बृहस्पति की बातों को सुनकर दैत्यों को यह पूर्ण रूप से विश्वास हो गया कि वस्तुतः ये ही शुक्राचार्य हैं ॥८॥ यद्यपि शुक्राचार्य ने बहुत समझाया किन्तु बृहस्पति की माया से मोहित होने के कारण दैत्यों ने उनकी बात को नहीं सुना; क्योंकि दैत्यों का विपरीत समय आ गया था ॥९॥ इस तरह से निश्चित करके दैत्यों ने शुक्राचार्य से कहा कि हमारे धर्मात्मा, ज्ञानप्रदान करने वाले तथा हमलोगों का कल्याण करने वाले गुरु ये ही हैं ॥१०॥ ये हमारे गुरु शुक्राचार्य हमलोगों को दश वर्षों से उपदेश दे रहे हैं । आप जाइये । आप पाखण्डी लग रहे हैं । आप हमलोगों के गुरु नहीं हैं॥११॥ इस तरह से कहकर दैत्यों ने शुक्राचार्य की बार-बार भर्त्सना की और उस नकली शुक्राचार्य को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्हें अपने गुरु रूप से स्वीकार किया॥१२॥ शुक्राचार्य ने जब देख लिया कि इन दैत्यों के ऊपर बृहस्पति का गहरा रंग चढ़ चुका है, ये हमारी बात नहीं सुनने वाले हैं । इनको बृहस्पति ने पूर्ण रूप से ठग लिया है । तो उनके मन में कष्ट हुआ । वे क्रुद्ध हो गये और दैत्यों को शाप दे दिये ॥१३॥ उन्होंने कहा चूकि मेरे द्वारा

वै पराभवमवाप्स्यथ ॥१४॥ मदवज्ञाफलं कामं स्वल्पे काले ह्यवाप्स्यथ । तदाऽस्य कपटं सर्वं परिज्ञातं भविष्यति ॥१५॥ इत्युक्त्वाऽसौ जगामाशु भार्गवः क्रोधसंयुतः । बृहस्पतिर्मुदं प्राप्य तस्थौ तत्र समाहितः ॥१६॥ ततः शप्तान्गुरुर्ज्ञात्वा दैत्यांस्तान्भार्गवेण हि । जगाम तरसा त्यक्त्वा स्वरूपं स्वं विधाय च ॥१७॥ गत्वोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यं मया ध्रुवम् । शप्ता शुक्रेण ते दैत्या मया त्यक्ताः पुनः किल ॥१८॥ निराधाराः कृता नूनं यतध्वं सुरसत्तमाः । संग्रामार्थं महाभाग शापदग्धा मया कृताः ॥१९॥ इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवा मुदमाप्तवान् । जहृषुश्च सुराः सर्वे प्रतिपूज्य बृहस्पतिम् ॥२०॥ संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः । निर्ययुर्मिलिताः सर्वे दानवाभिमुखाः सुराः ॥२१॥ सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान् । अन्तर्हितं गुरुं चैव बभूवुश्चिन्तयान्विताः ॥२२॥ परस्परमथोचुस्ते मोहितास्तस्य मायया। संप्रसाद्यो महात्मा च यातोऽसौ रुष्टमानसः ॥२३॥ वंचयित्वा गतः पापो गुरुः कपटपंडितः । भ्रातृस्त्री लंभनः प्रायो मलिनोऽन्तर्बहिः शुचिः॥२४॥ किं कुर्मः क्व च गच्छामः कथं काव्यं प्रकोपितम् । कुर्वीमहि सहायार्थं प्रसन्नं हृष्टमानसम् ॥२५॥ इति संचिंत्य ते सर्वे मिलिता भयकंपिताः । प्रह्लादं पुरतः

बतलाये जाने पर भी तुमलोगो ने मेरी बात नहीं सुनी अतएव ज्ञान के विनष्ट होने के कारण तुमलोग पराजित हो जाओगे ॥१४॥ मेरा अपमान करने का फल तुमलोग थोड़े ही दिनों में पा जाओगे । उसके बाद तुमलोग को इस कपटी का ज्ञान हो जायेगा ॥१५॥ यह कहकर शुक्राचार्य वहाँ से शीघ्र ही क्रोध करते हुए चले गये । बृहस्पति उससे बहुत प्रसन्न हुए और वहीं बने रहे ॥१६॥ उसके बाद बृहस्पति शुक्राचार्य के द्वारा दैत्यों को अभिशप्त जानकर शीघ्र ही शुक्राचार्य के रूप का परित्याग करके और अपना वास्तविक रूप बनाकर वहाँ से चले गये ॥१७॥ वे जाकर इन्द्र को बतलाये कि मैंने आपका काम बना दिया है । दैत्यों को शुक्राचार्य ने शाप दे दिया है, और मैंने भी उन सबों का परित्याग कर दिया है ॥१८॥ देवताओं ! अब आपलोग युद्ध करने की तैयारी कीजिये, मैंने दैत्यों को आधारहीन बना दिया है । मैंने उन सबों को शुक्राचार्य के शाप से दग्ध बना दिया है ॥१९॥ बृहस्पति की इस बात को सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गये । सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और बृहस्पति की सबों ने पूजा की ॥२०॥ इसके बाद सबों ने आपस में विचार करके युद्ध करने का निश्चय किया । सभी देवता एकत्रित होकर दानवों पर आक्रमण करने के लिए चल दिए ॥२१॥ दैत्यों ने जब यह देखा कि महाबली देवता आक्रमण करने की तैयारी में हैं और हमारे गुरु अन्तर्धान हो गये हैं; तो उन्हें अत्यधिक चिन्ता हुई ॥२२॥ अब वे आपस में बातें करने लगे कि हमलोग नकली बृहस्पति की माया से ठगे जा चुके हैं । हमलोगों को अपने गुरु शुक्रचार्य को प्रसन्न करना चाहिए, वे रुष्ट होकर चले गये हैं ॥२३॥ कपट करने में चतुर पापी बृहस्पति हमलोगों को ठग कर चला गया । जो अपने भाई की पत्नी को रख ले सकता है वह तो भीतर तथा बाहर दोनों प्रकार से मलिन होगा ही ॥२४॥ अब हमलोग क्या करें, कहाँ जायँ ? सहायता प्राप्त करने के लिए क्रुद्ध हुए शुक्राचार्य को कैसे प्रसन्न करें ॥२५॥ इस तरह से विचार करके

कृत्वा जग्मुस्ते भार्गवं पुनः ॥२६॥ प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा । भार्गवस्तानुवाचाथ रोषसंरक्तलोचनः ॥२७॥ मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया । न गृहीतं वचो योग्यं तदा याज्या हितं शुचि ॥२८॥ तदाऽवगणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः । प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममावमाननं फलम् ॥२९॥ तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्राऽसौ कपटाकृतिः । वंचकः सुरकार्यार्थी नाहं तद्वद्धि वंचकः ॥३०॥ व्यास उवाच– एवं ब्रुवंतं शुक्रं तु वाक्यसंदिग्धया गिरा । प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वा चरणौ ततः ॥३१॥ प्रह्लाद उवाच– भार्गवाद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथाऽऽतुरान् । त्यक्तुं नार्हसि सर्वज्ञ त्वद्धितांस्तनयान्हि नः ॥३२॥ गते त्वयि तु मंत्रार्थं शैलूषेण दुरात्मना । त्वद्वेषमधुरालापैर्वयं तेन प्रवंचिताः ॥३३॥ अज्ञानकृतदोषेण नैव कुप्यति शांतिमान् । सर्वज्ञस्त्वं विजानासि चित्तं नः प्रवणं त्वयि ॥३४॥ ज्ञात्वा नस्तपसा भावं त्यज कोपं महामते । ब्रुवंति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः ॥३५॥ जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातपसमागमात् । भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति ॥३६॥ क्रोधश्चांडालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः । तस्माद्रोषं परित्यज्य प्रसादं कुरु सुव्रत ॥३७॥ यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान् । त्वया त्यक्ता महाभाग

एकत्रित दैत्य प्रह्लाद को आगे करके भय से काँपते हुए शुक्राचार्य के पास गये ॥२६॥ उन सबों ने मौनधारी शुक्राचार्य के चरणों में प्रणाम किया । रोष से आँखें लाल करके शुक्राचार्य ने उन दैत्यों से कहा ॥२७॥ बृहस्पति की माया से मोहित होकर तुम लोगों ने मेरी हितकारिणी एवं निर्दोष बातों को नहीं सुना ॥२८॥ बृहस्पति के वशवर्ती बने हुए तुम लोगों ने मेरा अपमान भी किया है । तुम लोगों ने मेरा अपमान करने का ही फल पाया है ॥२९॥ अब तुमलोग भ्रष्ट हो गये हो, उस कपटी के ही पास जाओ वह वंचक देवताओं का काम करना चाहता है । मैं उसके समान वंचक नहीं हूँ ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से क्रोध भरी शुक्राचार्य की बातों को सुनकर प्रह्लाद ने उनका पैर पकड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा ॥३१॥ **प्रह्लाद ने कहा**– हे सर्वज्ञ भार्गव! हमलोग आपके यजमान हैं । इस समय हमलोग अत्यन्त दुःखी है और आपके हितचिंतक हैं । आप अपने पुत्रों के समान हमलोगों को समझकर हमलोगों का त्याग न करें ॥३२॥ जब आप मंत्र प्राप्त करने के लिए चले गये थे उस समय बहुरूपिया उस दुष्ट बृहस्पति ने आपका वेष धारण करके अपनी मधुर बातों से हमलोगों को छल लिया ॥३३॥ शान्त पुरुष किसी के अज्ञान जन्य दोष के कारण क्रुद्ध नहीं होते हैं । आप तो सर्वज्ञ हैं । आप यह जानते हैं कि हमलोगों का मन आपमें ही लगा है ॥३४॥ अपनी तपस्या के बल से हमलोगों के भावों को जानकर आप क्रोध का परित्याग कर दें । सभी मुनिजन कहते हैं कि साधु पुरुषों का क्रोध क्षणभर के लिए होता है ॥३५॥ जल स्वभावतः शीतल होता है किन्तु अग्नि तथा धूप का सम्बन्ध होने पर वह उष्ण हो जाता है । और अग्नि तथा धूप का सम्बन्ध समाप्त होते ही वह पुनः शीतल हो जाता है ॥३६॥ चाण्डाल के समान स्वभाव वाले क्रोध को ज्ञानियों को त्याग ही देना चाहिए। अतएव हे सुव्रत! आप क्रोध को छोड़कर कृपा करें ॥३७॥ यदि आप क्रोध को नहीं छोड़ना चाहते हैं तो फिर हम दुःखी दैत्यों का परित्याग कर

गमिष्यामो रसातलम् ॥३८॥ व्यास उवाच– प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा । विलोक्य सुमना भूत्वा तानुवाच हसन्निव ॥३९॥ न भेतव्यं न गंतव्यं दानवा वा रसातलम् । रक्षयिष्यामि वो याज्यान्मंत्रैरवितथैः किल ॥४०॥ हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य शृणुध्वं तत्तु निश्चयम् । वचनं मम धर्मज्ञाः श्रुतं यद्ब्रह्मणः पुरा ॥४१॥ अवश्यंभाविनो भावाः प्रभवंति शुभाशुभाः । दैवं न चान्यथा कर्तुं क्षमः कोऽपि धरातले ॥४२॥ अद्य मंदबला यूयं कालयोगादसंशयम् । देवैर्जिताः सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥४३॥ प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत । भुक्तं राज्यं भवद्भिश्च पूर्णं सर्वं समृद्धिमत् ॥४४॥ युगानि दश पूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि । दैवयोगाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ॥४५॥ सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति । पौत्रस्त्रैलोक्यविजयी राज्यं प्राप्स्यति ते बलिः ॥४६॥ यदा वामनरूपेण हृतं देवेन विष्णुना । तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन विष्णुना ॥४७॥ हृतं येन बले राज्यं देववांछार्थसिद्धये । त्वमिन्द्रो भविता चाग्रे स्थिते सावर्णिके मनौ ॥४८॥ भार्गव उवाच– इत्युक्तो हरिणा पौत्रस्तव प्रह्लाद सांप्रतम् । अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत् ॥४९॥ एकदा वासवेनासौ बलिर्गर्दभरूपभाक् । शून्ये गृहे स्थितः कामं भयभीतः शतक्रतोः ॥५०॥ पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा । किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुंगव ॥५१॥ भोक्ता त्वं

दें । आपसे परित्यक्त होकर हमलोग रसातल में चले जायेंगे ॥३८॥ **व्यासजी ने कहा–** प्रह्लाद की बातों को सुनकर शुक्राचार्य ने अपनी ज्ञानदृष्टि के द्वारा जान लिया कि दैत्य मेरे भक्त हैं । प्रसन्न होकर उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा ॥३९॥ दानवों तुमलोगों को न तो डरना चाहिए और न तो रसातल में ही जाना चाहिए । मैं अपने अमोघ मंत्रों से तुमलोगों की रक्षा करूँगा ॥४०॥ दानवों बहुत पहले ब्रह्माजी ने हमसे कल्याणकारी जो बातें कही थी उसे तुम लोग सुनों॥४१॥ अच्छा या बुरा जो होना होता है, वह तो होकर ही रहता है । पृथिवी पर ऐसा कोई भी नहीं है जो होनी को बदल दें ॥४२॥ समय के विपरीत होने के कारण आज आपलोग कमजोर पड़ गये हो देवताओं से पराजित होकर आपलोगों को एकबार पाताल में जाना होगा ॥४२॥ ब्रह्माजी ने कहा था कि तुमलोगों का अच्छा समय नहीं है, किन्तु आपलोग एकबार पूर्णरूप से अपने समृद्ध राज्य का उपभोग कर चुके हैं ॥४४॥ उस समय आक्रमण करके तुम लोगो ने देवों को पराजित किया और पूरे दशयुगों तक त्रैलोक्य पर राज्य किया ॥४५॥ सावर्णि मन्वन्तर में आपलोगों को अपना राज्य पुनः प्राप्त हो जायेगा । तुम्हारा पौत्र बलि त्रैलोक्य विजयी होकर राज्य करेगा ॥४६॥ जब भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारण करके बलि का राज्य ले लिया उसी समय उन्होंने बलि से कहा था कि इस समय देवताओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए मैंने तुमसे राज्य ले लिया है किन्तु सावर्णि मन्वन्तर में तुम ही इन्द्र बनोगे॥४७-४८॥ **शुक्राचार्य ने कहा–** हे प्रह्लाद ! श्रीहरि के इस प्रकार से कहने पर तुम्हारा पौत्र बलि भयभीत के समान छिपकर रहता है ॥४९॥ एक

सर्वलोकस्य दैत्यानां च प्रशासिता । न लज्जा खररूपेण तव रांक्षससत्तम । तस्य तद्वचनं दैत्यराजो श्रुत्वा बलिस्तदा ॥५२॥ प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्र शोकः शतक्रतो । यथा विष्णुर्महातेजा मत्स्यकच्छपतां गतः ॥५३॥ तथाऽहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः । यथा त्वं कमले लीनः संस्थितो ब्रह्महत्यया ॥५४॥ पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहं खररूपधृक् । दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन ॥५५॥ कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा । भार्गव उवाच– **इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम् ॥५६॥ प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानं च जग्मतुः । इत्येतत्ते समाख्याता मया दैवबलिष्ठता । दैवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥५७॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

* * *

बार इन्द्र से भयभीत होकर बलि एक सूने गृह में गधे का रूप बनाकर खड़े थे ॥५०॥ उसी समय इन्द्र वहाँ पहुँच गये और बलि से पूछे– दैत्यवर्य ! आपने गधे का रूप क्यों बना रखा है ?॥५१॥ किसी समय आप सभी लोको के प्रशासक तथा दैत्यों के स्वामी थे । गधे का रूप धारण करने में आपको लज्जा नहीं आती है क्या ?। इन्द्र की बातों को सुनकर **दैत्यराज़ बलि ने कहा–** देवराज ! इसमें लज्जा की कौन सी बात है । जिस तरह महातेजस्वी भगवान् विष्णु को मत्स्य एवं कच्छप का रूप धारण करना पड़ा था; उसी तरह मैं गधे का रूप धारण करके अपना समय बिता रहा हूँ । जिस तरह तुम ब्रह्महत्या के डर से कमल वन में छिपकर समय बिताये थे ॥५२-५४॥ इसी तरह से मैं शत्रुओं से पीड़ित होकर गधे का रूप धारण करके समय बिता रहा हूँ । इन्द्र भाग्य के अधीन रहने वाले पुरुष के लिए न तो कोई सुख होता है और न दुःख होता है ॥५५॥ काल जैसा चाहता है पुरुष को वैसा ही बना देता है । **शुक्राचार्य ने कहा–** इस तरह से परस्पर में बातें करके इन्द्र और बलि आश्वस्त होकर अपने अभिलषित स्थान पर चले गये । इस तरह से मैंने भाग्य की बलवत्ता का वर्णन किया । देवता, असुर तथा मानवों से युक्त यह सारा संसार दैव के अधीन है ॥५६-५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

* * *

पञ्चदशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः । प्रह्लादस्तु सुसंहृष्टो बभूव नृपनन्दन ॥१॥ ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठं च प्रह्लादस्तानुवाच ह । कृतेऽपि युद्धे न जयो भविष्यति कदाचन ॥२॥ तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः । संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे ॥३॥ निरुद्यमानां दैवं हि प्रधानमसुराधिप । केन दृष्टं क्व वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम् ॥४॥ तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थाय सांप्रतम्। भवाग्रे दैत्यवर्य त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥५॥ इत्युक्तैस्तदा राजन् प्रह्लादः प्रबलारिहा । सेनानीश्च तदा भूत्वा देवान् युद्धे समाह्वयत् ॥६॥ तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान् । सर्वे संभृतसंभारा देवास्तान्समयोधयन् ॥७॥ संग्रामस्तु तदा घोरः शक्रप्रह्लादयोर्भवत् । पूर्णं वर्षशतं तत्र मुनीनां विस्मयावहः ॥८॥ वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः । जयमापुस्तदा दैत्याः प्रह्लादप्रमुखा नृप ॥९॥ तदैवेन्द्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम्। सस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम् ॥१०॥** इन्द्र उवाच– **जय देवि महामाये शूलधारिणि चांबिके । शंखचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे॥११॥ नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके । दशतत्त्वात्मिके मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि ॥१२॥ महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणी । प्राणाग्निहोत्रविद्ये**

इन्द्र तथा प्रह्लाद का युद्ध तथा देवों एवं दैत्यों में सन्धि

व्यासजी ने कहा– हे राजन् ! इसतरह से शुक्राचार्य की बात को सुनकर प्रह्लाद अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१॥ भाग्य को ही सर्वापेक्षया बलवान् जानकर प्रह्लाद ने दैत्यों से कहा– इस समय युद्ध करने पर भी हमलोग विजयी नहीं हो पायेंगे ॥२॥ उस समय विजयी दैत्यों ने प्रह्लाद से कहा कि हमलोगों को युद्ध करना चाहिए, भाग्य कौन सी वस्तु है, यह नहीं जानते हैं ॥३॥ दैत्यराज आलसी लोग ही दैव को प्रधान मानते हैं, भाग्य को किसने कहाँ पर और किस प्रकार का देखा है । भाग्य का निर्माता कौन है ?॥४॥ हे महामते ! आप तो सर्वज्ञ हैं; आप हमारे नेता बनें; हमलोग बल के भरोसे युद्ध करेंगे॥५॥ दैत्यो द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर प्रबल शत्रु संहारक प्रह्लाद सेनापति बनकर देवताओं को युद्ध करने के लिए ललकारे ॥६॥ दैत्यों को युद्ध के लिए तैयार देखकर देवता भी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिए दौड़ पड़े ॥७॥ वहाँ पर मुनियों को आश्चर्य चकित कर देने वाला प्रह्लाद और इन्द्र का युद्ध पूरे सौ वर्षों तक चलता रहा ॥८॥ राजन् शुक्राचार्य के नेतृत्व में चलने वाले उस युद्ध में दैत्यों को विजय श्री मिल गयी ॥९॥ उस समय आचार्य बृहस्पति के द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र ने सर्वकष्ट विनाशिनी जगदम्बा परमा शिवा का स्मरण किया ॥१०॥ इन्द्र ने देवी की स्तुति करते हुए कहा– हे देवि ! हे महामाये ! हे त्रिशूलधारण करने वाली ! हे अम्बिके ! हे अपने हाथ में शंख, चक्र, गदा, पद्म और खड्ग धारण करने वाली तथा अभय

ते नमो दीपशिखात्मिके ॥१३॥ पञ्चकोशांतरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि । आनन्दकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते ॥१४॥ मातः प्रसीद सुमुखी भव हीनसत्त्वास्त्रायस्व नो जननि दैत्यपराजितान् वै । त्वं देवि नः शरणदा भुवने प्रमाणा शक्ताऽसि दुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते ॥१५॥ ध्यायंति येऽपि सुखिनो नितरां भवंति दुःखान्विता विगतशोकभयास्तथाऽन्ये । मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसंगाः संसारवारिधिजलं प्रतरंति संतः ॥१६॥ त्वं देवि विश्वजननि प्रथितप्रभावा संरक्षणार्थमुदिताऽऽर्तिहरप्रतापा । संहर्तुमेतदखिलं किल कालरूपा को वेत्ति तेऽम्ब चरितं ननु मंदबुद्धिः ॥१७॥ ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च इंद्रो यमोऽथ वरुणोऽग्निसमीरणौ च । ज्ञातुं क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा यस्याः प्रभावमतुलं निगमागमाश्च॥१८॥ धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महांतः संसारदुःखरहिताः सुखसिंधुमग्नाः । ये भक्तिभावरहिता न कदापि दुःखांभोधिं जनिक्षयतरङ्गमुमे तरंति॥१९॥ ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च क्रीडंति धन्याः शिबिकाधिरूढाः । तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे नानोपहारैरिति चिन्तयामि ॥२०॥ ये पूज्यमाना वरवारणस्था विलासिनीवृंदविलासयुक्ताः । सामन्तकैश्चोपनतैर्व्रजन्ति मन्ये हि तैस्त्वं किल पूजिताऽसि ॥२१॥ व्यास उवाच– **एवं स्तुता मघवता देवी विश्वेश्वरी**

प्रदान करने वाली देवि आपकी जय हो ॥११॥ हे समस्त भुवनों की स्वामिनि ! हे शक्ति दर्शन की नायिके ! हे दशतत्त्वात्मिके ! हे महाविन्दु स्वरूपिणि मातः आपको नमस्कार है ॥१२॥ हे महाकुण्डलिनि स्वरूपे ! हे सच्चिदानन्द स्वरूपिणि ! हे प्राणाग्निहोत्रविद्यास्वरूपिणि ! हे दीपशिखा स्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है ॥१३॥ हे पञ्चकोशों में विराजमान रहने वाली देवि ! हे पुच्छब्रह्म स्वरूपिणि ! हे आनन्दकलिके ! हे सभी उपनिषदों में पूजित माँ !॥१४॥ आप प्रसन्न होइये । हम निर्बल तथा दैत्यों से पराजित देवताओं की रक्षा कीजिये । हमलोगो की एकमात्र रक्षा करने वाली आप ही हैं । हे समस्त प्रकार के पराक्रमों से सम्पन्न देवि ! इस संसार में आप ही हमलोगों की रक्षा कर सकती हैं ॥१५॥ हे माँ ! जो लोग आप का ध्यान करते हैं, वे समस्त दुःखो शोकों तथा भयों से रहित होकर पूर्णरूप से सुखी हो जाते हैं, और आपको भूल जाने वाले भय, शोक एवं कष्ट से युक्त हो जाते हैं । मोक्ष चाहने वाले मान तथा आसक्ति से रहित सन्तजन संसार-सागर को पार कर जाते हैं ॥१६॥ हे देवि ! आप विश्व की माता हैं । आपका प्रभाव प्रख्यात है । आप रक्षा करने के ही लिए प्रकट होती है । आपका प्रताप ही भक्तों के कष्ट को दूर कर देता है । इस संसार का संहार करने के लिए आप काल स्वरूपा हैं । हे माँ ! कोई भी मंदबुद्धि जीव आप के चरित को नहीं जान पाता है ॥१७॥ ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, मैं (इन्द्र) यम, अग्नि, वायु बड़े-बड़े महानुभाव मुनिजन, निगम तथा आगम भी जिस देवी के अतुलित प्रभाव को नहीं जान पाते हैं ॥१८॥ वे महापुरुष धन्य हैं, जो आपकी भक्ति में सदा संलग्न रहते हैं और संसार के दुःखों से रहित होकर सुख के सागर में मग्न रहते हैं । हे उमे ! जो लोग आपकी भक्ति नहीं करते हैं वे कभी भी दुःख के सागर के जन्म तथा मरण रूपी तरङ्गों को नहीं विनष्ट कर पाते हैं ॥१९॥ जो लोग पालकी पर चढ़कर चलते हैं, जिन पर धवल चमर डुलाया जाता है, उन लोगों को देखकर मुझको

तदा । प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा ॥२२॥ शंखचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना । रक्तांबरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषणा ॥२३॥
तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदना गिरा । भयं त्यजंतु भो देवाः शं विधास्ये किलाधुना ॥२४॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढाऽतिसुन्दरी ।
जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः ॥२५॥ प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वा देवीं पुरः स्थिताम् । ऊचुः परस्परं भीताः किं कर्तव्यमितस्तदा॥२६॥
देवं नारायणं चात्र संप्राप्ता चंडिका किल । महिषांतकरी नूनं चंडमुंडविनाशिनी ॥२७॥ निहनिष्यति नः सर्वानंबिका नात्र संशयः । वक्रदृष्ट्या
यया पूर्वं निहतौ मधुकैटभौ ॥२८॥ एवं चिन्तातुरान्वीक्ष्य प्रह्लादस्तानुवाच ह । योद्धव्यं नाथ गन्तव्यं पलाय्य दानवोत्तमाः ॥२९॥ नमुचिस्तानुवाचाथ
पलायनपरानिह । हनिष्यति जगन्माता रुषिता किल हेतिभिः ॥३०॥ तथा कुरु महाभाग यथा दुःखं न जायते । व्रजामोऽद्यैव पातालं तां स्तुत्वा
तदनुज्ञया ॥३१॥ प्रह्लाद उवाच– **स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् । सर्वेषां जननीं शक्तिं भक्तानामभयंकरीम् ॥३२॥** व्यास
उवाच– **इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित् । तुष्टाव जगतां धात्रीं कृताञ्जलिपुटस्तदा ॥३३॥ माला सर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम्।**

लगता है कि उनलोगों ने अपने पूर्वजन्मों में विविध उपहारों द्वारा आपकी पूजा अवश्य की होगी ॥२०॥ जो लोगों से पूजित होते हैं, श्रेष्ठ हाथियों पर चढ़कर चलते हैं श्रेष्ठ सुन्दरियों के साथ विलास करते हैं, सामन्त लोग जिनके सामने विनयावनत रहते हैं, निश्चय ही उन लोगों के द्वारा आप पूजित हुई हैं ॥२१॥ इस तरह से इन्द्र के द्वारा स्तुति किए जाने पर चार भुजाओं वाली देवी सिंह पर सवार होकर शीघ्र ही प्रकट हो गयीं ॥२२॥ वे देवी शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किए हुई थीं । उनके नेत्र सुन्दर थे । वे लालवस्त्र को धारण किए हुई थीं और दिव्य मालाओं से समलंकृत थीं ॥२३॥ उन देवताओं से देवी ने प्रसन्न वाणी में कहा– देवताओं ! आपलोग भयभीत न हों अब आपलोगों का मैं कल्याण करूँगी ॥२४॥ इस तरह से कहकर अत्यन्त सुन्दरी देवी सिंह पर बैठकर वहाँ गयीं जहाँ पर मदमत्त दैत्य विद्यमान थे ॥२५॥ प्रह्लाद इत्यादि सभी दैत्य अपने सम्मुख देवी को देखकर भयभीत हो गये और आपस में कहने लगे कि अब हमलोगों को क्या करना चाहिए ?॥२६॥ भगवान् नारायण की सहायता करने के लिए महिषासुर को मारने वाली तथा चण्ड मुण्ड का विनाश करने वाली देवी आ गयी हैं ॥२७॥ निश्चय ही ये अम्बिका हमलोगों का वध कर देंगी । इन्होंने ही अपनी टेढी भृकुटी से मधु तथा कैटभ को मारा था ॥२८॥ दैत्यों को इस प्रकार से चिन्ता से व्याकुल देखकर प्रह्लाद ने उन सबों से कहा– हे दानववर्यों ! हमलोगों को भाग जाना चाहिए युद्ध नहीं करना चाहिए ॥२९॥ भागने के लिए तैयार दैत्यों से नमुचि नामक दैत्य ने कहा– भागने पर तो देवी हमलोगों को त्रिशूल से मार डालेंगी ॥३०॥ अतएव आपलोग ऐसा करें कि हमलोगों को और अधिक कष्ट न उठाना पड़े । हमलोग उनकी स्तुति करके उनकी आज्ञा लेकर आज ही पाताल चल चलें ॥३१॥ **प्रह्लाद ने कहा–** मैं सृष्टि, स्थिति तथा संहार को करने वाली, भक्तों को अभय बना देने वाली तथा सबों की माता देवी महामाया

सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः ॥३४॥ त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरं जंगमं तथा । अन्ये निमित्तमात्रास्ते कर्तारस्तव निर्मिताः ॥३५॥ नमो देवि महामाये सर्वेषां जननी स्मृता । को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च ॥३६॥ मातुः पुत्रेषु को भेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च । तथैव देवेष्यस्मासु न कर्तव्यस्त्वयाऽधुना ॥३७॥ यादृशास्तादृशा मातः सुतास्ते दानवाः किल । यतस्त्वं विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता ॥३८॥ तेऽपि स्वार्थपरा नूनं यथैव वयमप्युत । नांतरं दैत्यसुरयोर्भेदोऽयं मोहसंभवः ॥३९॥ धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम् । तथैव देवा देवेशि को भेदोऽसुरदेवयोः॥४०॥ तेऽपि कश्यपदायादा वयं तत्संभवाः किल । कुतो विरोधसंभूतिर्जाता मातस्तवाधुना ॥४१॥ न तथा विहितं मातस्त्वयि सर्वसमुद्भवे । साम्यतैव त्वया स्थाप्या देवेष्वस्मासु चैव हि ॥४२॥ गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाः सुरासुराः । गुणान्विता भवेयुस्ते कथं देहभृतोऽमराः ॥४३॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च सर्वदेहेषु संस्थिताः । वर्तन्ते सर्वदा तस्मात्को विरोधी भवेज्जनः ॥४४॥ त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात् । मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया ॥४५॥ अन्यथा खलु भ्रातृणां विरोधः कीदृशोऽनघे । त्वं चेन्नेच्छसि चामुंडे वीक्षितुं कलहं किल ॥४६॥

की स्तुति करता हूँ ॥३२॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु के भक्त तथा परमार्थ के ज्ञाता प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर देवी की स्तुति की॥३३॥ जिनके शरीर में सचराचर विश्व माला में सर्प की भाँति प्रतीत होता है उन सबों के अधिष्ठान स्वरूपिणी ह्रींकार स्वरूपा देवी को नमस्कार है॥३४॥ आप से ही यह सम्पूर्ण स्थावर तथा जंगम जगत् उत्पन्न होता है, दूसरे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र तो जगत् के निमित्त कारण हैं और आप से ही निर्मित होते हैं ॥३५॥ हे महामाये देवि ! आपको नमस्कार है आप ही सबों की माता हैं । अपने ही द्वारा निर्मित देवों तथा दैत्यों में आप अन्तर क्यों देखती हैं?॥३६॥ जिस तरह माता के लिए अच्छे और बुरे पुत्रों में कोई भेद नहीं होता है; उसी तरह आप देवों तथा दैत्यों में कोई भेद न देखें ॥३७॥ हे माँ ! दानव चाहें जैसे भी हों किन्तु वे आपके ही पुत्र हैं; क्योंकि पुराणों में आपको विश्व की माता बतलाया गया है ॥३८॥ हमलोगों के ही समान देवता भी स्वार्थ परायण हैं । अतएव देवों तथा दैत्यों में कोई भेद नहीं है । यदि कोई उनमें भेद देखता है तो वह उसका अज्ञानमात्र है ॥३९॥ हमलोग दिन-रात धन तथा पत्नियों के भोग में लगे हुए हैं । हे देवेशि ! देवता भी तो ऐसे ही हैं अतएव देवों तथा दानवों में कौन सा भेद है ?॥४०॥ देवता भी कश्यप महर्षि की ही सन्तान हैं, हम भी महर्षि कश्यप से ही उत्पन्न हैं । हे मातः ! आपके मन में भेद की भावना कैसे उत्पन्न हो गयी ? सबों की माता होने के कारण आपका ऐसा करना शोभा नहीं देता है । आपको तो देवों तथा दानवों को समान दृष्टि से देखना चाहिए ॥४२॥ सत्वादि गुणों के संयोग से ही देवता और दैत्य उत्पन्न हुए हैं । देह धारण करने वाले देवता भी सत्त्वादि गुणों से युक्त ही होंगे ॥४३॥ जब सबों के शरीर में काम, क्रोध तथा लोभ रहा करते हैं तो कौन किसका विरोधी है ॥४४॥ आप अपने कौतुकवशात् हमलोगों में विरोधी की कल्पना कर ली हैं वह भी इसलिए कि आपको युद्ध देखने की इच्छा

जानामि धर्मं धर्मज्ञे वेद्मि चाहं शतक्रतुम् । तथापि कलहोऽस्माकं भोगार्थं देवि सर्वदा ॥४७॥ एकः कोऽपि न शास्तास्ति संसारे त्वां विनाऽम्बिके । स्पृहावतस्तु कः कर्तुं क्षमते वचनं बुधः ॥४८॥ देवासुरैरयं सिंधुर्मथितः समये क्वचित् । विष्णुना विहितो भेदः सुधारत्नच्छलेन वै ॥४९॥ त्वयाऽसौ कल्पितः शौरिः पालकत्वे जगद्गुरुः । तेन लक्ष्मीः स्वयं लोभाद्गृहीताऽमरसुन्दरी ॥५०॥ ऐरावतस्तथेन्द्रेण पारिजातोऽथ कामधुक् । उच्चैः श्रवाः सुरैः सर्वं गृहीतं वैष्णवेच्छया ॥५१॥ अनयं तादृशं कृत्वा जाता देवास्तु साधवः । (अन्यायिनः सुरा नूनं पश्य त्वं धर्मलक्षणम् ।) संस्थापिताः सुरा नूनं विष्णुना बहुमानिना ॥५२॥ नूनं दैत्याः पराभूवन्पश्य त्वं धर्मलक्षणम् । क्व धर्मः कीदृशो धर्मः क्व कार्यं क्व च साधुता ॥५३॥ कथयामि च कस्याग्रे सिद्धं मैमांसिकं मतम् । तार्किका युक्तिवादज्ञा विधिज्ञा वेदवादकाः ॥५४॥ उक्ताः सकर्तृकं विश्वं विवदंते जडात्मकाः । कर्ता भवति चेदस्मिन्संसारे वितते किल ॥५५॥ विरोधः कीदृशस्तत्र चैककर्मणि वै मिथः । वेदे नैकमतिस्तद्वच्छास्त्रेष्वपि तथा पुनः ॥५६॥ नैकवाक्यं वचस्तेषामपि वेदविदां पुनः । यतः स्वार्थपरं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥५७॥ निःस्पृहः कोऽपि संसारे नाभवन्न

थी ऐसा मैं मानता हूँ ॥४५॥ हे अनघे ! चामुण्डे ! यदि आप युद्ध नहीं देखना चाहें तो फिर भाइयों में विरोध कैसे हो सकता है ?॥४६॥ हे धर्मज्ञे ! मैं धर्म को जानता हूँ और मैं इन्द्र को भी जानता हूँ; फिर भी हमलोगों में सदा से भोग के लिए कलह होता चला आ रहा है ॥४७॥ हे अम्बिके ! इस संसार में केवल आप ही प्रशासन करने वाली हैं, तो फिर कौन है जो किसी लोभी की बातों पर विश्वास करे ॥४८॥ किसी समय देवताओं और दैत्यों ने मिलकर समुद्र का मंथन किया था, किन्तु विष्णु ने अमृत तथा रत्न के व्याज से हमलोगों में भेद पैदा कर दिया ॥४९॥ आपने विष्णु को जगद्गुरु तथा जगत् पालक के पद पर प्रतिष्ठित किया था; किन्तु उन्होंने लोभवशात् लोक सुन्दरी लक्ष्मी को ले लिया ॥५०॥ विष्णु की ही इच्छा से इन्द्र ने ऐरावत हाथी को तथा देवताओं ने पारिजात वृक्ष, कामधेनु गौ तथा उच्चैःश्रवा घोड़े को ले लिया ॥५१॥ इस प्रकार का अत्याचार करके देवता तो सज्जन हो गये, और असुर अन्यायी हो गये, आप भी धर्म पर विचार करें । अत्यधिक अभिमानी विष्णु ने देवताओं को तत्-तत् पदों पर नियुक्त कर दिया ॥५२॥ दैत्य पराजित हो गये । आप धर्म पर विचार करके देखें कि धर्म कहाँ है । उसका स्वरूप कैसा है उचित कार्य कौन करता है और किसमें साधुता है ?॥५३॥ मैं अपना विचार किसके सामने प्रस्तुत करूँ । नैयायिक युक्तिवाद का सहारा लेते हैं; मीमांसक कर्मवाद का सहारा लेते हैं और वैदिक विधिवाद को अपनाते हैं ॥५४॥ कुछ लोग जगत् के कर्ता ईश्वर को मानते हैं तथा जड़वादी प्रकृति को ही सबकुछ मानकर विवाद करते हैं । वे कहते हैं कि इस संसार का कोई एक कर्ता होता तो फिर एक के ही कर्ता होने पर परस्पर में इतना विरोध कैसे होता है ? वेदों तथा शास्त्रों में भी ऐकमत्य नहीं है ॥५५-५६॥ वेदों के जानकार भी भिन्न-भिन्न तरह की बातें करते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण स्थावर-जंगमात्मक जगत् स्वार्थ परायण है ॥५७॥ आज तक संसार में कोई न तो निःस्पृह हुआ और

भविष्यति । शशिनाऽथ गुरोर्भार्या हृता ज्ञात्वा बलादपि ॥५८॥ गौतमस्य तथेन्द्रेण जानता धर्मनिश्चयम् । गुरुणाऽनुजभार्या च भुक्ता गर्भवती बलात् ॥५९॥ शप्तो गर्भगतो बालः कृतश्चांधस्तथा पुनः । विष्णुना च शिरश्छिन्नं राहोश्चक्रेण वै बलात् ॥६०॥ अपराधं विना कामं तदा सत्त्ववताऽम्बिके । पौत्रो धर्मवतां शूरः सत्यव्रतपरायणः ॥६१॥ यज्वा दानपतिः शांतः सर्वज्ञः सर्वपूजकः । कृत्वाऽथ वामनं रूपं हरिणा छलवेदिना ॥६२॥ वंचितोऽसौ बलिः सर्वं हृतं राज्यं पुरा किल । तथापि देवान्धर्मस्थान्प्रवदंति मनीषिणः ॥६३॥ वदंति चाटुवादांश्च धर्मवादाज्जयं गताः । एवं ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु ॥६४॥ शरणा दानवाः सर्वे जहि वा रक्ष वा पुनः । श्रीदेव्युवाच– सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम् ॥६५॥ कुरुध्वं दानवाः सर्वे निर्भया गतमन्यवः । कालः प्रतीक्ष्यो युष्माभिः कारणं स शुभेऽशुभे ॥६६॥ सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा । त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम् ॥६७॥ कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि । तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयांत्वद्य महीतलम् ॥६८॥ ममाज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः । व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा

न होगा । चन्द्रमा ने जान बूझकर बृहस्पति की पत्नी का अपहारण कर लिया ॥५८॥ इस तरह धर्म को जानकर भी इन्द्र ने गौतम की पत्नी का भोग किया और बृहस्पति ने अपने अनुज की गर्भवती पत्नी का भोग किया ॥५९॥ उस गर्भस्थित बालक ने जब विरोध किया तो बृहस्पति ने उसे शाप देकर अन्धा बना दिया । विष्णु ने निरपराध राहु का चक्र से शिर काट दिया ॥६०॥ हे अम्बिके ! आप ही बतलाएँ कि इस प्रकार के कार्य करने वाले विष्णु में सात्त्विकता कैसे है ? मेरे धार्मिक वीर, सत्य वक्ता, यज्ञकर्ता, दानिशिरोमणि, शांत तथा सर्वज्ञ, सबों की पूजा करने वाले पौत्र का सारा राज्य विष्णु ने वामन का रूप बनाकर छल करके ले लिया । फिर भी विद्वान् लोग देवताओं को धार्मिक कहते हैं ॥६१-६३॥ वे चाटुकार कहते हैं कि धार्मिक होने के कारण ही देवता विजयी हो गये । हे जगन्मातः ! इन सारी बातों का विचार करके आप जो चाहें सो करें ॥६४॥ सभी दानव आपके शरणगत हैं, आप चाहे तो इनकी रक्षा करें या इन्हें मार दें । **श्रीदेवी ने कहा–** तुम सब लोग पाताल में जाकर अपनी इच्छा के अनुसार निवास करो ॥६५॥ वहाँ पर अपने क्रोध का परित्याग करके तुम लोग निर्भय होकर निवास करो और शुभ तथा अशुभ के कारण स्वरूप समय की प्रतीक्षा करो ॥६६॥ वैराग्य युक्त जीव को सर्वत्र और सर्वदा सुख मिलता है । लोभी को तो त्रैलोक्य का राज्य भी मिल जाने पर सुख नहीं प्राप्त होता है ॥६७॥ लोभियों को सत्ययुग का पूरा फल मिल जाने पर भी सुख नहीं मिल सका अतएव आज ही पृथिवी को छोड़कर तुम लोग पाताल चले जाओ ॥६८॥ इसके बाद देवी की उस बात को सुनकर दैत्यों ने कहा ठीक है, और देवी के द्वारा रक्षित सभी दैत्य उन्हें प्रणाम करके पाताल चले गये । देवी भी अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी

रसातलम् ॥६९॥ प्रणम्य दानवाः सर्वे गताः शक्त्याऽभिरक्षिताः । अन्तर्दधे ततो देवी देवाः स्वभुवनं गताः ॥७०॥ त्यक्त्वा वैरं स्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः । एतदाख्यानमखिलं यः शृणोति वदत्यथ । सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम् ॥७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुतकर्मणः । अवताराः कथं जाताः कस्मिन्मन्वन्तरे विभो ॥१॥ विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथां हरेः । पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम् ॥२॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि अवतारान् हरेर्यथा । यस्मिन्मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप ॥३॥ येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै । तत्सर्वं नृप वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाधुना ॥४॥ धर्मस्यैवावतारोऽभूच्चाक्षुषे मनुसंभवे। नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले ॥५॥ अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीये तु युगे पुनः । दत्तात्रेयावतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः ॥६॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा**

अपने लोकों में चले गये ॥६९-७०॥ सभी देवता और दैत्य वैर का त्याग करके रहने लगे । इस सम्पूर्ण कथा को जो कहता है अथवा सुनता है उसके सभी दुःख दूर हो जाते हैं और वह उत्तमपद को प्राप्त करता है ॥७१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

प्रत्येक मन्वन्तरों में होने वाले भगवान् विष्णु के अवतारों का वर्णन

जनमेजय ने कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! महर्षि भृगु के शाप के कारण अद्भुत कर्मकरने वाले भगवान् विष्णु का कौन सा अवतार किस मन्वन्तर में हुआ उसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ हे धर्मज्ञ ! श्रीहरि के अवतारों की कथा को आप विस्तार पूर्वक बतलाएँ । हे ब्रह्मन् ! इन कथाओं को सुनने से पाप का नाश हो जाता है और समस्त सुखों की प्राप्ति होती है ॥२॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप सुने ! श्रीहरि का जो अवतार जिस मन्वन्तर में तथा जिस युग में हुआ उसे आप सुनें ॥३॥ राजन् ! जिस अवतार में भगवान् नारायण ने जिस कार्य को किया उसे मैं संक्षेप में बतलाता हूँ ॥४॥ चाक्षुष मन्वन्तर

रुद्रस्त्रयोऽमी देवसत्तमाः । पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्यात्रेर्भार्यया वृताः ॥७॥ अनसूयाऽत्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा सती । यया संप्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः॥८॥ ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम् । दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं ते प्रपेदिरे ॥९॥ नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये । चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः ॥१०॥ हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान् हरिः । चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम् ॥११॥ बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा । चकार रूपं भगवान्वामनं कश्यपान्मुनेः ॥१२॥ छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहार ह । पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक् ॥१३॥ युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान् हरिः । जमदग्निसुतो जातो रामो नाम महाबलः ॥१४॥ क्षत्रियांतकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः । दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने ॥१५॥ यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारस्तु राजेन्द्र कथितः पापनाशनः॥१६॥ त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः । नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ ॥१७॥ अष्टविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुनशौरिणौ । धराभारावतारार्थं जातौ कृष्णार्जुनौ भुवि ॥१८॥ कृतवंतौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् । एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल ॥१९॥ भवंति बहवः कामं

में धर्म का अवतार हुआ । धर्म के दो पुत्र हुए नर और नारायण ॥५॥ दूसरे वैवस्वत मन्वन्तर में श्रीहरि महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय के रूप में अवतीर्ण हुए । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये तीनों अत्रि की पत्नी के द्वारा वर रूप में माँगे जाने के कारण महर्षि अत्रि के पुत्र हो गये ॥७॥ महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया सर्वश्रेष्ठ पतिव्रता हैं । उनके द्वारा प्रार्थना किए जाने के कारण वे तीनों देवता उनके पुत्र हो गये ॥८॥ ब्रह्माजी ही चन्द्रमा हो गये, श्रीहरि दत्तात्रेय हुए और रुद्र महर्षि दुर्वासा नामक अत्रि महर्षि के पुत्र हुए ॥९॥ चौथे मन्वन्तर में देवताओं का कार्य करने के लिए श्रीहरि का नृसिंहावतार हुआ । भगवान् का यह दो रूपों वाला अवतार अत्यन्त मनोहर था ॥१०॥ हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए श्रीहरि ने नृसिंह रूप बनाया । जो देवताओं को भी आश्चर्यित करने वाला था ॥११॥ बलि का नियमन करने के लिए भगवान् त्रेतायुग में कश्यप महर्षि के पुत्र वामन बन गये ॥१२॥ वामन रूपधारी भगवान् राजा बलि को उनके यज्ञ में छलकर उन्हें पाताल में स्थापित किये थे ॥१३॥ उन्नीसवें युग में भगवान् महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम बने थे वे अत्यन्त बलवान् थे॥१४॥ ये क्षत्रियों का विनाश करने वाले तथा सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय थे । इन्होंने कश्यप महर्षि को सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया था ॥१५॥ राजेन्द्र अद्भुत कर्म करने वाले परशुरामावतार कहा गया है । वह पापों का विनाश करने वाला है ॥१६॥ त्रेतायुग में रघु नामक राजा के वंश में महाराज दशरथ के पुत्र के रूप से महाबलवान् भगवान् राम के रूप में अवतीर्ण हुए । उसके बाद अठाइसवें युग के द्वापर युग में पृथिवी का भार उतारने के लिए भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन बनकर अवतार लिए ॥१७-१८॥ उन दोनों ने कुरुक्षेत्र में अत्यन्त भयंकर युद्ध किया । राजन् इस प्रकार भगवान् श्रीहरि ने विभिन्न

प्रकृतेरनुरूपतः । प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम् ॥२०॥ यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशं जगत् । पुरुषस्य प्रियार्थं सा रचयत्यखिलं जगत्॥२१॥ सृष्ट्वा पुरा हि भगवाञ्जगदेतच्चराचरम् । सर्वादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः ॥२२॥ निरालंबो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः । उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा ॥२३॥ उत्पत्तिकालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा । सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा ॥२४॥ कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी । तया युक्तोऽसृजद्ब्रह्मा विष्णुः पाति तयाऽन्वितः ॥२५॥ रुद्रः संहरते कामं तया संमिलितः शिवः । सा चैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम् ॥२६॥ कुत्रचित्स्थापयामास दानवानां जयाय च । एवमस्मिंश्च संसारे सुखदुःखान्विताः किल । भवंति प्राणिनः सर्वे विधितंत्रनियंत्रिताः ॥२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

◆

युगों में अवतार लिया ॥१९॥ श्रीहरि के समस्त अवतार प्रकृति के संसर्ग से होते है । त्रैलोक्य सदा प्रकृति के वश में रहता है ॥२०॥ प्रकृति जैसा चाहती है उसी तरह से जगत् को नचाती है । वह सम्पूर्ण संसार की रचना परमपुरुष को प्रसन्न करने के लिए करती है ॥२१॥ प्राचीन काल में भगवान् चराचर जगत् की सृष्टि करके सबके आदिरूप, सर्वव्यापक दुर्ज्ञेय परम, अव्यय, निरालम्ब, निराकार, निःस्पृह और परात्पर बन गये । जिसकी उपाधि वशात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप से प्रतीति होती है, वही परा प्रकृति है ॥२२-२३॥ सृष्टि, संहार और रक्षा के कार्यों को करने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतीत होती है । जब जगत् की सृष्टि करती है तो परा, जब पालन करती है तो शिवा और संहार करने के समय वह कामदा कहलाती है ॥२४॥ विश्व को मोहित करने वाली वह कल्प के अन्त में संसार का संहार करती है । उसी की शक्ति से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं ॥२५॥ उसी के साथ मिलकर शिव संहार करते हैं । उस परा प्रकृति ने ककुत्स्थ राजा को उत्पन्न करके उन्हें दानवों पर विजय प्राप्त करने के लिए नियुक्त कर दिया । इस तरह से इस संसार में सुखी तथा दुःखी जीव उत्पन्न होते हैं और वे विधि के अधीन रहते हैं ॥२६-२७॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

◆

सप्तदशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **वारांगनास्त्वयाऽऽख्याता नरनारायणाश्रमे । एकं नारायणं शांतं कामयानाः स्मरातुराः ॥१॥ शप्तुकामस्तदा ज्ञातो मुनिर्नारायणश्च ताः । निवारितो नरेणाथ भ्रात्रा धर्मविदा नृप ॥२॥ किं कृतं मुनिना तेन व्यसने समुपस्थिते । ताभिः संकल्पिते नाथकामाथाभिर्भृशं मुने ॥३॥ शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहुप्रार्थनया पुनः । याचितेन विवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना ॥४॥ इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितं तस्य मोक्षदम् । नारायणस्य मे ब्रूहि विस्तरेण पितामह ॥५॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः । धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते॥६॥ शप्तुकामस्तु संदृष्टो नरेणाथ यदा हरिः । वारितोऽसौ समाश्वास्य मुनिर्नारायणस्तदा ॥७॥ शांतकोपस्तदोवाच तास्तपस्वी महामुनिः । स्मितपूर्वमिदं वाक्यं मधुरं धर्मनन्दनः ॥८॥ अस्मिञ्जन्मनि चार्वंग्यः कृतसंकल्पवानहम् । आवाभ्यां च न कर्तव्यः सर्वथा दारसंग्रहः ॥९॥ तस्माद्गच्छंतु त्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि । धर्मज्ञा न प्रकुर्वन्ति व्रतभंगं परस्य वै ॥१०॥ शृङ्गारेऽस्मिन्रसे नूनं स्थायीभावो रतिः स्मृतः । कथं करोमि सम्बन्धं तदभावे सुलोचनाः ॥११॥ कारणेन विना कार्यं न भवेदिति निश्चयः । कविभिः कथितं शास्त्रे स्थायीभावे रसः किल ॥१२॥**

नर-नारायण आश्रम में इन्द्र द्वारा भेजी गयी अप्सराओं का वृत्तान्त

जनमेजय ने कहा– हे महामुने ! आपने पहले बतलाया है कि नर-नारायण के आश्रम पर इन्द्र के द्वारा प्रेषित की गयी अप्सराएँ शान्त ऋषि नारायण पर मोहित हो गयी थीं ॥१॥ जिसके कारण क्रुद्ध होकर नारायण ऋषि उन सबों को शाप देने के लिए तैयार हो गये थे । उस समय उनके भ्राता ने उन्हें रोक दिया था ॥२॥ ऐसी स्थिति में नारायण ऋषि ने क्या किया ? क्योंकि उन सबों ने तो नारायण मुनि को अपने मन से पति बना ही लिया था ॥३॥ जिन अप्सराओं को इन्द्र ने भेजा था उन सबों ने विवाह करने के लिए नारायण मुनि से बहुत प्रार्थना किया उस समय नारायण मुनि ने क्या किया ?॥४॥ मैं भगवान् नारायण की इस मोक्षदायिनी कथा को सुनना चाहता हूँ । अतएव हे पितामह ! उसे आप विस्तार पूर्वक बतलायें ॥५॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन्! आप सुनें ! धर्म के पुत्र महात्मा नारायण के चरित्र को विस्तार पूर्वक बतला रहा हूँ ॥६॥ जब महामुनि नर ने देखा कि नारायण शाप देने के लिए तैयार हैं तो उन्होंने नारायण को शाप देने से रोक दिया ॥७॥ जब तपस्वी महामुनि नारायण का क्रोध शान्त हो गया तो वे धर्मपुत्र मन्द-मन्द मुस्काते हुए उन अप्सराओं से मुधर वाणी में कहने लगे ॥८॥ हे सुन्दरियों ! हमदोनों भाई यह संकल्प कर लिए है कि इस जन्म में हमलोग विवाह नहीं करेंगे ॥९॥ अतएव मेरे ऊपर आपलोग कृपा करके स्वर्ग चली जायँ । क्योंकि धार्मिक व्यक्ति किसी दूसरे के व्रत को भंग नहीं करता है ॥१०॥ और शृङ्गार रस का स्थायिभाव रति

धन्यः सुचारुसर्वाङ्गः सभाग्योऽहं धरातले । प्रीतिपात्रं यतो जातो भवतीनामकृत्रिमम् ॥१३॥ भवतीभिः कृपां कृत्वा रक्षणीयं व्रतं मम । भविष्यामि महाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि ॥१४॥ अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रभविष्यामि सर्वथा ॥१५॥ तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्य जन्म पृथक्पृथक् । भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नीभावं गमिष्यथ ॥१६॥ इत्याश्वास्य हरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम् । व्यसर्जयत्स भगवाञ्जग्मुश्च विगतज्वराः ॥१७॥ एवं विसर्जितास्तेन गताः स्वर्गं तदांगनाः । शक्राय कथयामासुः कारणं सकलं पुनः ॥१८॥ आश्रुत्य मघवांस्ताभ्यो वृत्तान्तं तस्य विस्तरात् । तुष्टाव तं महात्मानं नारीर्दृष्ट्वा तथोर्वशीः ॥१९॥ इन्द्र उवाच– अहो धैर्यं मुनेः कामं तथैव च तपोबलम् । येनोर्वश्यः स्वतपसा तादृग्रूपाः प्रकल्पिताः ॥२०॥ इति स्तुत्वा प्रसन्नात्मा बभूव सुरराट् ततः । नारायणोऽपि धर्मात्मा तपस्यभिरतोऽभवत् ॥२१॥ इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तांतमद्भुतम् । नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुने ॥२२॥ तौ हि कृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणाय च । जातौ तौ भरतश्रेष्ठ भृगोः शापवशादिह ॥२३॥ राजोवाच– कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे । संदेहो मम चित्तेऽस्ति तं निवारय

बतलाया गया है । हे सुन्दरियों उस रति का मुझमें अभाव है, अतएव आपलोगों के साथ संबन्ध कैसे कर सकता हूँ ॥११॥ कारण के बिना कार्य नहीं होता है, और कवियों ने रस का कारण स्थायिभाव को बतलाया है ॥१२॥ मैं इस धरातल पर धन्य एवं भाग्यवान् हूँ । मेरे सभी अङ्ग सुन्दर एवं सुडौल हैं इसीलिए मैं आपलोगों के प्रेम का स्वाभाविक पात्र बन गया हूँ ॥१३॥ आपलोग कृपा करके मेरे व्रत की रक्षा करें मैं दूसरे जन्म में आपलोगों का पति बनूँगा ॥१४॥ मैं देवताओं का कार्य करने के लिए अठाइसवें द्वापर मे पृथिवी पर अवतीर्ण होऊँगा ॥१५॥ उस समय आपलोग विभिन्न राजाओं के यहाँ जन्म लेकर मेरी पत्नी बनेंगी । आपलोग राजकुमारियाँ होकर मेरी पत्नी बनेंगी ॥१६॥ इस तरह नारायण ने उन सबों को पाणिग्रहण करने का आश्वासन देकर भेज दिया और वे सब भी सन्तुष्ट होकर चली गयीं ॥१७॥ इस प्रकार से नारायण के द्वारा भेज दिये जाने पर वे सब स्वर्ग में जाकर इन्द्र को सारी बातों को बतलायीं ॥१८॥ नारायण का सारा हाल सुनकर तथा उर्वशी नाम की अप्सरा को देखकर भगवान् नारायण की इन्द्र ने स्तुति की ॥१९॥ **इन्द्र ने कहा–** भगवान् नारायण का धैर्य प्रशंसनीय है और उनमें असाधारण तपोबल है । इसीलिए तो उन्होंने इतनी सुन्दरी उर्वशी को अपनी तपस्या से उत्पन्न किया है ॥२०॥ नारायण की स्तुति करके देवराज इन्द्र प्रसन्न हुए और नारायण मुनि भी अपनी तपस्या में लग गये ॥२१॥ इस तरह से मैंने महामुनि नारायण के सम्पूर्ण वृतान्त को आपको बतलाया ॥२२॥ हे भरतश्रेष्ठ ! भृगु महर्षि के शाप के कारण नर-नारायण ही देवताओं का कार्य करने के लिए कृष्ण तथा अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए ॥२३॥ **राजा जनमेजय ने कहा–** हे मानद ! आप भगवान् कृष्ण का चरित्र विस्तार के साथ सुनायें ।

मानद ॥२४॥ ययोः पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनंतौ महाबलौ । देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौ कथं मुने ॥२५॥ कंसेन निगडें बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान्। ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत् ॥२६॥ जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स कथं गतः । कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान्कथम्॥२७॥ पित्रादिसेवितं देशं समृद्धं पावनं किल । त्यक्त्वा देशांतरेऽनार्ये गतवान्स कथं हरिः ॥२८॥ कुलं च द्विजशापेन कथमुत्सादितं हरेः । भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातनः ॥२९॥ देहं मुमोच तरसा जगाम च दिवं हरिः । पापिष्ठानां च भारेण व्याकुलाऽभूच्च मेदिनी ॥३०॥ ते हता वासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा । लुंठिता यैर्हरिः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः ॥३१॥ भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः । वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्थिवः ॥३२॥ सोमदत्तादयः सर्वे निहताः समरे नृपाः । तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हृतः कथम् ॥३३॥ कृष्णपत्न्यः कथं दुःखं प्राप्ताः प्रान्ते पतिव्रताः । संदेहोऽयं मुनिश्रेष्ठ चित्ते मे परिवर्तते ॥३४॥ वसुदेवस्तु धर्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः । त्यक्तवान्स कथं प्राणानपमृत्युं जगाम ह ॥३५॥ पांडवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे च निरताः सदा । ते कथं दुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम ॥३६॥ द्रौपदी च महाभागा कथं दुःखस्य भागिनी । वेदीमध्याच्च संजाता लक्ष्म्यंशसंभवा किल ॥३७॥ सभायां सा समानीता रजोदोषसमन्विता ।

उसके विषय में मेरे संदेह को दूर करें ॥२४॥ जिनके पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम हुए उन देवकी और वसुदेव को इतना कष्ट क्यों उठाना पड़ा ?॥२५॥ जिनकी तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् उनके पुत्र बन गये उन देवकी और वसुदेव को कंस के कारागार में वर्षों तक क्यों रहना पड़ा ?॥२६॥ भगवान् मथुरा में अवतीर्ण होकर गोकुल में क्यों चले गये ? उन्होंने कंस का वध करके द्वारका में निवास क्यों किया ?॥२७॥ अपने पिता इत्यादि के द्वारा सेवित तथा पवित्र देश का परित्याग करके भगवान् अनार्य. देश में क्यों चले गये ? ॥२८॥ ब्राह्मण के शाप से श्रीभगवान् का वंश किस प्रकार से विनष्ट हो गया पृथिवी का भार उतार कर सनातन भगवान् अपने शरीर का परित्याग करके तो स्वर्ग चले गये और पृथिवी पापियों के भार से दब गयी ॥३०॥ अपरिमित कर्म करने वाले वासुदेव ने उन पापियों का तो विनाश कर दिया; किन्तु उन्होंने उन सबों को क्यों नहीं मारा जिन सबों ने श्रीभगवान् की पत्नियों को लूट लिया॥३१॥ भीष्म, द्रोण, कर्ण, वाह्लीकराज विराट्, विकर्ण, राजा धृष्टधुम्न ॥३१-३२॥ तथा सोमदत्त आदि सबके सब मारे गये । उन सबों का तो भार समाप्त हो गया; किन्तु चोरों का भार भगवान् ने क्यों नहीं विनष्ट किया ॥३३॥ भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ तो पतिव्रता थीं उन सबों को अन्तिम समय में इस प्रकार का कष्ट क्यों सहना पड़ा ? यह मेरे मन में संदेह हैं ॥३४॥ पुत्र के शोक से व्याकुल धर्मात्मा वसुदेव को क्यों प्राण त्याग करके दुर्मुत्यु का विषय बनना पड़ा ॥३५॥ पाण्डव धार्मिक थे तथा भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त थे । हे मुनिश्रेष्ठ ! उन लोगों को क्यों दुःख भोगना पड़ा ?॥३६॥ महाभाग

बाला दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता ॥३८॥ पीडिता सिंधुराज्ञाऽथ वनमध्यगता सती । तथैव कीचकेनापि पीडिता रुदती भृशम् ॥३९॥ पुत्राः पंचैव तस्यास्तु निहता द्रौणिना गृहे । सुभद्रायाः सुतो युद्धे बाल एव निपातितः ॥४०॥ तथा च देवकीपुत्राः षट् कंसेन निषूदिताः । समर्थेनापि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा ॥४१॥ यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनं पुनः । कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनां च लुंठनम् ॥४२॥ विष्णुना चेश्वरेणापि साक्षान्नारायणेन च । उग्रसेनस्य सेवा वै दासवत्सततं कृता ॥४३॥ संदेहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ । सर्वजन्तुसमानत्वं व्यवहारे निरंतरम् ॥४४॥ हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम् । ईश्वरस्य हरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः ॥४५॥ तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत् । अलौकिकेन हरिणा कृतं कर्म महीपते ॥४६॥ हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः । क्वैश्वर्यशक्तिः प्रथिता हरिणा मुनिसत्तम ॥४७॥ रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाऽथ पलायनम् । कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा ॥४८॥ मथुरामंडलं त्यक्त्वा समृद्धं कुलसंमतम् । जरासंधभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम् ॥४९॥ तदा केनापि न ज्ञातो भगवान्हरिरीश्वरः । किंचित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन्कारणं व्रजगोपनम्॥५०॥

द्रौपदी को क्यों दुःख भोगना पड़ा वे तो लक्ष्मी के अंश तथा यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई थीं ॥३७॥ रजस्वला अवस्था में उनको सभा मे लाया गया । दुःशासन उनका केश पकड़कर घसीटते हुए उन्हें सभा में लाया था । जब द्रौपदी वनवास में थी उस समय उनको सिन्धुराज जयद्रथ ने तथा कीचक ने भी अत्यधिक दुःख दिया था ॥३९॥ द्रौपदी के पाँच पुत्रों को अश्वत्थामा ने उनके घर में घुसकर कैसे मार डाला ? सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु बाल्यावस्था में ही युद्ध में क्यों मार डाला गया ?॥४०॥ देवकी के छह पुत्रों को कंस ने क्यों मार दिया और सर्व समर्थ होकर भी भगवान् ने उनके भाग्य को क्यों नहीं बदल दिया ?॥४१॥ यादवों को ब्राह्मणों का शाप क्यों मिला और उन सबों का प्रभास क्षेत्र में निधन क्यों हुआ ? इस तरह से वंश का विनाश हो जाने के बाद भगवान् की पत्नियाँ क्यों लूट ली गयीं ॥४२॥ भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण ईश्वर और विष्णु थे तो उन्होंने दास के समान उग्रसेन की सदा सेवा क्यों की ?॥४३॥ हे महाभाग ! नारायण मुनि के विषय में मेरा संदेह है कि उन्होंने सर्वदा सामान्य मनुष्य के समान व्यवहार क्यों किया ?॥४४॥ यदि वे ईश्वर थे तो फिर उनको सामान्य मनुष्यों के समान शोक, मोह इत्यादि क्यों होते थे ?॥४५॥ अतएव आंप भगवान् श्रीकृष्ण के महान् चरित को मुझे विस्तृत रूप से बतलाएँ । लोकोत्तर भगवान् श्रीकृष्ण; पृथिवी पर किन बड़े कार्यों को किए ॥४६॥ आयु के क्षीण हो जाने पर उन्होंने दैत्यों को महान् क्लेश पूर्वक मारा । हे मुनिवर्य ! इसमें उनकी कौन सी ईश्वरता हैं ?॥४७॥ रुक्मिणी हरण के समय पलायन करके उन्होंने चोर के समान कार्य किया॥४८॥ जरासंध के भय से हर प्रकार से समृद्ध तथा अपने पूर्वजों से सेवित मथुरा मंडल को छोड़कर द्वारका क्यों चले गये ?॥४९॥ उस समय उनको

एते चान्ये च बहवः संदेहा वासवीसुत । नाशयाद्य महाभाग सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम ॥५१॥ गोप्यस्तथैकः संदेहो हृदयान्न निवर्तते । पांचाल्याः पंचभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम् ॥५२॥ सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदंति मनीषिणः । पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः ॥५३॥ भीष्मेणापि कृतं किं वा देवरूपेण भूतले । गोलकौ तौ समुत्पाद्य यत्तु वंशस्य रक्षणम् ॥५४॥ धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः परिदर्शितः । येन केनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितं महत् । अवतारकारणं चैव देव्याश्चरितमद्भुतम् ॥१॥ धरैकदा भराक्रांता रुदती चातिकर्शिता । गोरूपधारिणी दीना भीताऽगच्छत्त्रिविष्टपम् ॥२॥ पृष्टा शक्रेण किं तेऽद्य वर्तते भयमित्यथ । केन वै पीडिताऽसि त्वं किं ते दुःखं**

कोई भी ईश्वर अथवा भगवान् रूप से क्यों नहीं जाना । भगवान व्रज में छिपकर क्यों रहे ?आप उसका कोई कारण बतलायें ॥५०॥ हे व्यासजी ! मेरे ये सभी तथा दूसरे प्रकार के भी संदेह हैं । हे द्विजोत्तम ! आप सर्वज्ञ हैं । आप मेरे इन समस्त सन्देहों को दूर करें ॥५१॥ एक गोपनीय संदेह मेरे हृदय से नहीं निकलता है कि द्रौपदी के पाँच पतियों का होना क्या संसार में निन्दित नहीं है ?॥५२॥ मनीषीगण सदाचार को ही प्रमाण मानते हैं । समर्थ होकर भी उनलोगों ने पशुवत् आचरण क्यों किया ॥५३॥ भूलोक में देवतुल्य भीष्म ने भी अपने वंश की रक्षा के लिए गोलक पुत्रों को क्यों उत्पन्न कराया॥५४॥ मुनियों ने यह जो नियम बनाया है कि किसी भी प्रकार से पुत्र को उत्पन्न करना चाहिए, ऐसे धर्म को धिक्कार है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

पापियों के अत्याचार से भयभीत पृथिवी का देवलोक में जाना

व्यासजी ने कहा– हे राजन् ! आपको भगवान् श्रीकृष्ण के महान् चरित को सुना रहा हूँ । उनके अवतार के कारण को तथा देवी के अद्भुत चरित्र

वसुन्धरे ॥३॥ तच्छ्रुत्वेला तदोवाच शृणु देवेश मेऽखिलम् । दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रांताऽस्मि मानद ॥४॥ जरासंधो महापापी मागधेषु पतिर्मम । शिशुपालस्तथा चैद्यः काशिराजः प्रतापवान् ॥५॥ रुक्मी च बलवान्कंसो नरकश्च महाबलः । शाल्वः सौभपतिः क्रूरः केशी धेनुकवत्सकौ ॥६॥ सर्वे धर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः । पापाचारा मदोन्मत्ताः कालरूपाश्च पार्थिवाः ॥७॥ तैरहं पीडिता शक्र भाराक्रान्ताऽक्षमा विभो । किं करोमि क्व गच्छामि चिंता मे महती स्थिता ॥८॥ पीडिताऽहं वराहेण विष्णुना प्रभविष्णुना । शक्र जानीहि हरिणा दुःखाद् दुःखतरं गता ॥९॥ याताऽहं दुष्टदैत्येन कश्यपस्यात्मजेन वै । हृताऽहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे ॥१०॥ तदा सूकररूपेण विष्णुना निहतोऽप्यसौ। उद्धृताऽहं वराहेण स्थापिता हि स्थिरा कृता ॥११॥ नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यां सुखशायिनी । न शक्ताऽस्म्यद्य देवेश भारं वोढुं दुरात्मनाम्॥१२॥ अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः । तदाहं पीडिता शक्र गंताऽस्म्याशु रसातलम् ॥१३॥ तस्मात्त्वं देवेदेवेश दुःखरूपार्णवस्य च । पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते ॥१४॥ इन्द्र उवाच– **इले किं ते करोम्यद्य ब्रह्माणं शरणं व्रज । अहं तत्रागमिष्यामि**

को सुना रहा हूँ ॥१॥ एकबार पाप के भार से दबी हुई तथा रोती हुई अत्यन्तकृश तथा भयभीत पृथिवी दीन होकर गौ का रूप धारण करके देवलोक में गयी ॥२॥ पृथिवी को देखकर इन्द्र ने पूछा कि हे वसुन्धरे ! तुमको कौन सा दुःख है ? तुम्हें किसने सताया है ? तुमको कौन सा भय है ?॥३॥ इन्द्र की बात को सुनकर पृथिवी ने कहा हे मानद देवेश ! आप मेरे सम्पूर्ण दुःखों को सुनें । मैं पाप के भार से दबी हुई हूँ ॥४॥ मगध का राजा जरासंध महापापी है । इसी तरह चेदि देश के राजा शिशुपाल तथा प्रतापी काशिराज भी हैं ॥५॥ रुक्मी, बलवान् कंस, सौभनरेश, शाल्व, क्रूर केशी, धेनुकासुर तथा वत्सासुर ये सबके सब धर्महीन, परस्पर विरोधी, पापी, मदमत्त तथा कालस्वरूप राजा हैं ॥६-७॥ हे इन्द्र ! ये सब मुझे दुःख देते हैं और इनके पाप के भार को सहने में मैं असमर्थ हूँ । मुझको बहुत अधिक चिन्ता है कि मैं क्या करूँ ? और कहाँ जाऊँ ?॥८॥ एकबार वराह रूप धारी सर्व समर्थ विष्णु ने मुझे दुःख दिया उस समय से मैं सदा दुःख ही पा रही हूँ ॥९॥ महर्षि कश्यप के पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्ष ने मेरा अपहरण करके मुझे समुद्र में डाल दिया और मैं उसमें डूब गयी ॥१०॥ उस समय वराह रूपधारी भगवान् विष्णु ने हिरण्याक्ष का वध करके मेरा उद्धार किया और मुझे जल के ऊपर स्थापित करके मुझे स्थिर बना दिया ॥११॥ यदि विष्णु ऐसा नहीं किये होते तो मैं शान्तिपूर्वक रसातल में पड़ी रहती । आज मैं पापियों के भार को ढोने में असमर्थ हूँ ॥१२॥ आगे दुष्ट अठाइसवाँ कलियुग आ रहा है । उस समय पीड़ित होकर मैं रसातल में चली जाऊँगी ॥१३॥ अतएव हे इन्द्र ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ आप मेरे भार को दूर कर मुझे दुःख के सागर में पार कीजिये ॥१४॥ **इन्द्र ने कहा**– इले ! इस विषय में मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम ब्रह्माजी

स ते दुःखं हरिष्यति ॥१५॥ तच्छुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा । शक्रोऽपि पृष्ठतः प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः ॥१६॥ सुरभीमागतां तत्र दृष्ट्वोच प्रजापतिः । महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम् ॥१७॥ कस्माद्रुदसि कल्याणि किं ते दुःखं वदाधुना । पीडिताऽसि च केन त्वं पापाचारेण भूर्वद ॥१८॥ धरोवाच– कलिरायाति दुष्टोऽयं बिभेमि तद्भयादहम् । पापाचाराः प्रजास्तत्र भविष्यन्ति जगत्पते ॥१९॥ राजानश्च दुराचाराः परस्परविरोधिनः । चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्ववैरिणः ॥२०॥ तान्हत्वा नृपतीन्भारं हर मेऽद्य पितामह। पीडिताऽस्मि महाराज सैन्यभारेण भूभृताम् ॥२१॥ ब्रह्मोवाच– नाहं शक्तस्तथा देवि भारावतरणे तव । गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः ॥२२॥ स ते भारापनोदं वै करिष्यति जनार्दनः । पूर्वं मयाऽपि ते कार्यं चिंतितं सुविचार्य च ॥२३॥ तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्र देवो जनार्दनः । व्यास उवाच– इत्युक्त्वा वेदकर्ताऽसौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम् ॥२४॥ जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः । तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः ॥२५॥ ब्रह्मोवाच– सहस्रशीर्षास्त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात् । त्वं वेदपुरुषः पूर्वं देवदेवः सनातनः ॥२६॥ भूतपूर्वं भविष्यच्च वर्तमानं च यद्विभो । अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते ॥२७॥ एतावान्महिमा तेऽस्ति को न वेत्ति जगत्त्रये । त्वं कर्ताऽप्यविता हर्ता त्वं सर्वगतिरीश्वरः ॥२८॥

की शरण में जाओ । मैं भी आ रहा हूँ वे ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे ॥१५॥ उस बात को सुनकर पृथिवी ब्रह्माजी के लोक में गयी । इन्द्र भी उसके पीछे सभी देवताओं के साथ गये ॥१६॥ ध्यान से जगकर ब्रह्माजी ने आयी हुई गोरूप धारिणी पृथिवी को देखा और कहा ॥१७॥ हे कल्याणि ! तुम क्यों रो रही हो बतलाओं ? तुम्हें कौन सा दुःख है ? बतलाओ किस पापी ने तुम्हे दुःख दिया है ?॥१८॥ **पृथिवी ने कहा–** कलियुग आ रहा है मैं उसके भय से भयभीत हूँ । हे जगत्पते ! कलियुग में प्रजायें पापी हो जायेंगी ॥१९॥ सभी राजा दुराचारी हो जायेंगे और परस्पर में विरोधी होंगे । वे डकैत हो जायेंगे । वे पूर्वजन्म के वैरी राक्षस ही होंगे ॥२०॥ हे पितामह ! आप उन राजाओं को मार कर मेरा भार दूर कीजिये । महाराज मैं राजाओं की सेना के भार से पीडित हूँ ॥२१॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे देवि ! मैं तुम्हारे भार को दूर करने में समर्थ नहीं हूँ अतएव हमदोनों चक्रधारी भगवान् विष्णु के यहाँ चलें ॥२२॥ वे जनार्दन ही तुम्हारे भार को दूर कर सकते हैं । तुम्हारे कष्ट के बारे में मैंने भी पहले से ही सोचकर यह रास्ता निकाला है ॥२३॥ हे देवराज! आप भी भगवान् जनार्दन के पास चलें । **व्यासजी ने कहा–** यह कहकर ब्रह्माजी इन्द्र तथा पृथिवी को आगे करके ॥२४॥ हंस पर सवार होकर भगवान् विष्णु के धाम में गये और भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥२५॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे भगवन् ! आप हजारों शिर वाले, हजारों नेत्र वाले, हजारो पैर वाले हैं । आप वेद प्रतिपाद्य पुरुष तथा सनातन देव हैं ॥२६॥ हे देव ! आप ही भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान हैं । हे रमापते ! आपने

इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुडध्वजः । दर्शनं च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः ॥२९॥ पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः ।
ततस्त्वागमने तेषां कारणं च सविस्तरम् ॥३०॥ तमुवाचाब्जजो नत्वा धरादुःखं च संस्मरन् । भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन ॥३१॥
भुवि धृत्वाऽवतारं त्वं द्वापरान्ते समागते । हत्वा दुष्टनृपानुर्व्यां हर भारं दयानिधे ॥३२॥ विष्णुरुवाच– **नाहं स्वतंत्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा।**
नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा ॥३३॥ योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजंगमम् । ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं ग्रथितं गुणसूत्रतः ॥३४॥ यथा सा
स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत । तथा करोति सहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः ॥३५॥ यद्यहं स्यां स्वतंत्रो वै चिंतयंतु धिया किल । कुतोऽभवं
मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे ॥३६॥ तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः । किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे ॥३७॥
कोलो वाऽथ नृसिंहो वा वामनो वाऽभवं कुतः । जमदग्निसुतः कस्मात्संभवेयं पितामह ॥३८॥ नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले ।
क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथं पुनः ॥३९॥ तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रो भूत्वा द्विजोत्तमः । क्षत्रियान्हतवानाजौ निर्दयो गर्भगानापि ॥४०॥ रामो

ही हमे देवत्व प्रदान किया है ॥२७॥ संसार में कौन ऐसा प्राणी है जो आपकी निस्मीम महिमा को नहीं जानता है ?। आप ही सृष्टि करने वाले, रक्षा करने वाले, संहार करने वाले, सबों के आश्रय एवं स्वामी हैं ॥२८॥ इस तरह से स्तुति किए जाने पर गरुडध्वज भगवान् प्रसन्न हो गये । उन अमलात्मा ने देवताओं को दर्शन दिया ॥२९॥ प्रसन्न मन से श्रीहरि ने देवताओं से कुशल पूछा और उसके पश्चात् उन देवताओं के आने का कारण पूछा ॥३०॥ श्रीभगवान् को प्रणाम करके ब्रह्माजी पृथिवी के कष्ट को ध्यान में रखकर बोले आप पृथिवी के भार को दूर कर दें ॥३१॥ हे दयानिधे ! आप द्वापर के अन्त में अवतार धारण करके दुष्ट राजाओं का वध करके पृथिवी के भार को दूर करें ॥३२॥ **विष्णु ने कहा–** इस काम में न तो मैं, न ब्रह्माजी और न शिवजी स्वतंत्र है । इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, त्वष्टा तथा सूर्य भी स्वतंत्र नहीं है ॥३३॥ यह स्थावर जंगात्मक जगत् योगमाया के वश में है । ब्रह्माजी से लेकर तृण तथा गुल्मभी त्रिगुण रूपी सूत्र से बँधे हैं ॥३४॥ हे सुब्रत ! वे सबों का कल्याण करने वाली हैं, जैसा चाहती हैं, वैसा ही कंरती हैं । हम सभी उनके ही अधीन हैं ॥३५॥ आप अपनी बुद्धि से सोचे कि यदि मैं स्वतंत्र होता तो फिर महासागर में मत्स्य का अथवा कच्छप का शरीर क्यों धारण करता?॥३६॥ तिर्यग् योनि में कौन सा भोग है ? या कौन सा यश है ? अथवा कौन सा सुख है ? क्षुद्रयोनि में जाने में मुझे कौन सा पुण्य अथवा उसका फल मिलता है ?॥३७॥ मैं वाराह, वामन अथवा नृसिंह क्यों होता ? अथवा हे ब्रह्माजी ! मैं जमदग्नि का पुत्र क्यों होता ?॥३८॥ यदि मैं स्वतंत्र रहता तो भीषण नरसंहार जैसा पापकर्म करके क्षत्रियों के खून से अनेक सरोवरों को क्यों भरता ?॥३९॥ हे ब्रह्माजी ! श्रेष्ठ ब्राह्मण जगदग्नि का पुत्र होकर मैंने क्षत्रियों को तो

भूत्वाऽथ देवेन्द्र प्राविशं दंडकं वनम् । पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः ॥४१॥ असहायो ह्यपाथेयो भीषणे निर्जने वने । कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः ॥४२॥ न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया पिहितस्तदा । उटजे जानकीं त्यक्त्वा निर्गतस्तत्पदानुगः ॥४३॥ लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः । वारितोऽपि मयाऽत्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः ॥४४॥ भिक्षुरूपं ततः कृत्वा रावणः कपटाकृतिः । जहार तरसा रक्षो जानकीं शोककर्शिताम् ॥४५॥ दुःखार्तेन मया तत्र रुदितं च वने वने । सुग्रीवेण च मित्रत्वं कृतं कार्यवशान्मया ॥४६॥ अन्यायेन हतो वाली शापाच्चैव निवारितः । सहायान्वानरान्कृत्वा लंकायां चलितः पुनः ॥४७॥ बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्च ममानुजः । विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः ॥४८॥ गरुडेन तदाऽऽगत्य मोचितौ भ्रातरौ किल । चिन्ता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति ॥४९॥ हृतं राज्यं वने वासो मृतः तातः प्रिया हृता । युद्धं कष्टं ददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति ॥५०॥ प्रथमं तु महद्दुःखमराज्यस्य वनाश्रयम् । राजपुत्र्याऽन्वितस्यैव धनहीनस्य मे सुराः॥५१॥ वराटिकाऽपि पित्रा मे न दत्ता वननिर्गमे । पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः ॥५२॥ चतुर्दशैव वर्षाणि नीतानि च तदा मया । क्षात्रं धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने ॥५३॥ दैवाद्युद्धे जयः प्राप्तो निहतोऽसौ महासुरः । आनीता च पुनः सीता प्राप्ताऽयोध्या मया तथा॥५४॥

मारा ही गर्भस्थ शिशुओं को भी मार दिया ॥४०॥ रामावतार में मुझे हे देवेन्द्र ! दण्डक वन में पैदल जटा तथा बल्कल धारण करके जाना पड़ा ॥४१॥ उस समय न तो मेरा कोई सहायक था और न मेरे पास पाथेय ही था । उस निर्जन वन में निर्लज्ज होकर शिकार करता हुआ मैं विचरण करता था ॥४२॥ माया से मेरी आँखें ढँक गयी थीं और मैं मायावी स्वर्णमृग को भी नहीं पहचान सका । झोपड़ी में सीता को छोड़कर मैं उस मृग के पीछे दौड़ पडा ॥४३॥ मै यद्यपि रोक कर गया था फिर भी माया से मोहित लक्ष्मण भी सीता को छोड़कर मेरे पीछे चले गये ॥४४॥ उसके बाद कपटी रावण संन्यासी का वेष बनाकर बलपूर्वक सीता का अपहरण कर लिया ॥४५॥ दुःखार्त मैं वन-वन में रोता रहा और कार्यवशात् मैंने सुग्रीव के साथ मित्रता की ॥४६॥ मैंने अन्याय पूर्वक बालि का वध करके उसके शाप का अन्त कर दिया । फिर वानरों को सहायक बनाकर लंका के लिए प्रस्थान किया ॥४७॥ मैं और मेरे अनुज लक्ष्मण दोनों नागपाश में बँध गये । हम दोनों को बेहोश देखकर वानर आश्चर्यित हो गये ॥४८॥ उस समय गरुड आकर हम दोनों भाइयों को बन्धन से मुक्त किए। मुझको बड़ी चिन्ता हुई कि भाग्य न जाने क्या करेगा ?॥४९॥ मेरा राज्य चला गया, वन में रहना पड़ा, पिता की मृत्यु हो गयी, पत्नी का हरण हो गया, युद्ध इस प्रकार कष्ट दे रहा है, न जाने आगे क्या होगा ?॥५०॥ देवताओं मुझको सबसे बड़ा कष्ट यह हुआ कि मेरा राज्य चला गया, वन में रहना पड़ा । मेरे साथ राजकुमारी सीता थी किन्तु इनके भरण-पोषण के लिए धन बिल्कुल नहीं था ॥५१॥ वन जाते समय मेरे पिता ने मुझे कौड़ी भी नहीं दी । धनहीन तथा असहाय मैं पैदल निकला ॥५२॥ उस समय क्षात्र धर्म छोड़कर बहेलिए की वृत्ति से मुझे चौदह वर्ष बिताने पड़े ॥५३॥ भाग्यवशात्

वर्षाणि कतिचित्तत्र सुखं संसारसंभवम् । प्राप्तं राज्यं च संपूर्णं कोसलानधितिष्ठता ॥५५॥ पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येन वै तदा । लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया ॥५६॥ कांताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम् । पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्वा धरात्मजा ॥५७॥ एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरंतरम् । परतंत्रेण मे नूनं स्वतंत्रः को भवेत्तदा ॥५८॥ पश्चात्कालवशात्प्राप्तः स्वर्गो मे भ्रातृभिः सह । परतंत्रस्य का वार्ता वक्तव्या विबुधेन वै ॥५९॥ परतंत्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय । तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह प्रजापतिम् । यन्मायामोहितः सर्वस्तत्त्वं जानाति नो जनः ॥१॥ वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम् । परमं पुरुषं शान्तं सच्चिदानंदमव्ययम् ॥२॥ अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः । न जानीमो वयं धातः परं वस्तु**

मुझे विजय प्राप्त हो गया और महाराक्षस रावण मारा गया । मैं सीता को लौटा लाया और भाग्यवशात् मुझे राज्य भी प्राप्त हो गया ॥५४॥ कुछ वर्षों तक मुझे संसार का सुख भी प्राप्त हुआ क्योंकि मुझे सम्पूर्ण कोसलदेश का राज्य मिल गया था ॥५५॥ पहले के समान रहते हुए राज्य करने वाले मैंने लोकापवाद के भय से सीता का वन में परित्याग कर दिया ॥५६॥ पुनः मुझको पत्नी के विरह से उत्पन्न भयंकर दुःख प्राप्त हुआ । इसके बाद भूमि की पुत्री सीता पृथ्वी का भेदन करके पाताल में चली गयीं ॥५७॥ इस तरह से परतंत्र होने के कारण मैं रामावतार में सदा दुःख ही प्राप्त करता रहा । ऐसी स्थिति में दूसरा कौन स्वतंत्र हो सकता है ॥५८॥ उसके बाद मैं अपने भाइयों के साथ स्वर्ग चला गया परतंत्र मैं अपनी गाथा आपलोगों को क्या बतलाऊँ॥५९॥ ब्रह्माजी ! मैं, आप तथा शंकरजी ये तीनों परतंत्र हैं ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

देवताओं द्वारा महाशक्ति की स्तुति तथा अवतार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना

व्यासजी ने कहा– यह कहकर भगवान् विष्णु ने पुनः ब्रह्माजी से कहा जिस भगवती की माया से मोहित होने के कारण कोई आदमी तत्त्व को नहीं

सनातनम् ॥३॥ यन्मायामोहितश्चाहं सदा वर्ते परात्मनः । परवान्दारुपांचाली मायिकस्य यथा वशे ॥४॥ भवताऽति तथा दृष्टा विभूतिस्तस्य चाद्भुता । कल्पादौ भवयुक्तेन मयाऽपि च सुधार्णवे ॥५॥ मणिद्वीपेऽथ मंदारविटपे रासमण्डले । समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुता न वचसाऽपि च॥६॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरंत्वद्य सुराः शिवाम् । सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः ॥७॥ व्यास उवाच– **इत्युक्ता हरिणा देवि ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम् । सस्मरुर्मनसा देवीं योगमायां सनातनीम् ॥८॥ स्मृतमात्रा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । पाशांकुशवराभीतिधरा देवी जपारुणा । दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम् ॥९॥** देवा ऊचुः– **ऊर्णनाभाद्यथा तंतुर्विस्फुलिंगा विभावसोः । तथा जगद्यदेतस्या निर्गतं तां नता वयम्॥१०॥ यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् । तां चितं भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम् ॥११॥ यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम्। संविद्रूपां च तां देवीं स्मरामः सा प्रचोदयात् ॥१२॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥१३॥ मातर्नताः स्म**

जान पाता है ॥१॥ हमलोग भी माया से मोहित होने के कारण जगद्गुरु, परमपुरुष, शान्त, सच्चिदानन्द तथा अव्यय परमात्मा को नहीं स्मरण कर पाते हैं ॥२॥ हे ब्रह्माजी ! मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं रुद्र हूँ इस तरह से मोहित होने के कारण सर्वोत्कृष्ट सनातन वस्तु को नहीं जान पाते हैं ॥३॥ जिस परमात्मा की माया से मोहित होकर हमलोग सूत्रधार के संकेत पर चलने वाली कठपुतली के समान परमात्मा के परतन्त्र होकर उसके संकेत पर चला करते हैं ॥४॥ आपने कभी उस परमात्मा की अद्भुत विभूति को देखा है । शिव जी के साथ मैंने भी अमृत सागर में उसका दर्शन किया था ॥५॥ हमलोगों ने अदृष्ट-पूर्व और अश्रुत-पूर्व मणिद्वीप में मन्दार वृक्ष के नीचे, रास मण्डल में तथा देवताओं के समाज में उसका दर्शन किया था ॥६॥ अतएव हे देवताओं! आज उस शिवा देवी का ही हमलोग स्मरण करें । सभी कामानाओं को पूर्ण करने वाली परमात्मा की वे आदि शक्ति हैं । **व्यासजी ने कहा–** श्रीहरि के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर ब्रह्मा आदि देवताओ ने भुवनों की स्वामिनी सनातनी योगमाया का स्मरण किया ॥८॥ स्मरण करते ही देवी ने देवताओं को दर्शन दिया । भगवती का शरीर जपाकुसुम के समान लाल वर्ण का था । वे पाश, अंकुश तथा अभय मुद्रा धारण किए हुयी थीं । देखने में अत्यन्त सुन्दर देवी का दर्शन पाकर देवताओं ने उनकी स्तुति की ॥९॥ **देवताओं ने कहा–** जिस तरह मकड़ी से तंतु पैदा होता है, अग्नि से चिनगारी निकलती है, उसी तरह यह जगत् जिनसे निकला है, उस देवी को हमलोग नमस्कार करते हैं ॥१०॥ हमलोग उस करुणा-सागर देवी का स्मरण करते हैं; जिनकी शक्ति से यह सम्पूर्ण जगत् सम्पन्न है तथा जो ज्ञान स्वरूप तथा जगत् की स्वामिनी हैं ॥११॥ जिनके स्वरूप का ज्ञान नहीं होने से संसार का बन्धन होता है, और जिनके स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर संसार का बन्धन विनष्ट हो जाता है, उन ज्ञानस्वरूपा देवी का हमलोग स्मरण करते हैं, वे हमलोगो को प्रेरित

भुवनार्तिहरे प्रसीद शन्नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे । भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं मह्या महेश्वरि सतां कुरु शं भवानि ॥१४॥ यद्यंबुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्किं ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम् । एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं धृत्वा तृणं दह हुताश पदाभिलापैः ॥१५॥ कंसः कुजोऽथ यवनेंद्रसुतश्च केशी बार्हद्रथो बकबकीखरशाल्वमुख्याः । येऽन्ये तथा नृपतयो भुवि संति तांस्त्वं हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः॥१६॥ ये विष्णुना न निहताः किल शंकरेण ये वा विगृह्य जलजाक्षि पुरंदरेण । ते ते मुखं सुखकरं सुसमीक्षमाणाः संख्ये शरैविनिहता निजलीलया ते ॥१७॥ शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि । किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनंतो धर्तुं धरां च रजनीशकलावतंसे ॥१८॥ इंद्र उवाच– वाचा विना विधिरलं भवतीह विश्वं कर्तुं हरिः किमु रमारहितोऽथ पातुम् । संहर्तुमीश उभयोज्झित ईश्वरः किं ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः ॥१९॥ विष्णुरुवाच– कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाहं नापीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः । कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम् ॥२०॥ व्यास उवाच– एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान् । किं

करें ॥१२॥ हमलोग महालक्ष्मी को जानते हैं, उन सर्व शक्ति स्वरूपिणी का हमलोग ध्यान करते हैं । वे देवी हमलोगों को सन्मार्ग पर प्रवर्तित करें ॥१३॥ हे संसार के कष्ट को दूर करने वाली मातः ! हमलोग आपको प्रणाम करते हैं । आप प्रसन्न होइये । आप हमलोगों का कल्याण कीजिये । देवताओं का यह काम कीजिये कि आप दैत्यों का विनाश करके पृथिवी का भार दूर करें । हे भवानि ! हे महेश्वरि ! आप सज्जनों का कल्याण कीजिये ॥१४॥ हे कमलनयनि देवि ! यदि आप हमलोगों पर कृपा नहीं करेंगी तो हमलोग दैत्यों पर प्रहार करने में कैसे समर्थ हो पायेंगे । आपने यक्ष रूप धारण करके अग्नि से कहा था कि तुम इस तृण को जलाओ ॥१५॥ हे माँ ! कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, जरासंध, बकासुर, पूतना, धेनुकासुर, शाल्व तथा पृथिवी पर दूसरे जो दुष्ट राजा हैं उन सबों को मारकर शीघ्र ही संसार के भार को आप दूर कीजिये ॥१६॥ हे देवि ! जिन दैत्यों को अनेक बार युद्ध करके विष्णु, शंकर तथा इन्द्र भी नहीं मार सके, उन सबों को आपने रणभूमि में लीला पूर्वक ही मार दिया । वे दैत्य आपके मुख मण्डल का दर्शन करके मुक्त हो गये ॥१७॥ हे चन्द्रमा की कला को अपने शिर पर धारण करने वाली देवि ! आपकी शक्ति के बिना हरि तथा हर आदि प्रधान देवता चल भी नहीं सकते हैं । क्या शक्ति के बिना अनन्त (शेषनाग) पृथिवी को धारण कर सकते हैं ?॥१८॥ **इन्द्र ने कहा–** हे माँ ! सरस्वती जी के सहयोग के विना ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि नहीं कर सकते हैं, लक्ष्मी जी के सहयोग के विना भगवान् विष्णु जगत् की रक्षा नहीं कर सकते हैं और पार्वतीजी के सहयोग के विना भगवान् शंकर जगत् का संहार नहीं कर सकते हैं। ये तीनों प्रजेश अपनी शक्तियों के विना अपने-अपने कार्य को नहीं कर सकते हैं ॥१९॥ **भगवान्**

तत्कार्यं वदंत्वद्य करोमि विगतज्वराः ॥२१॥ असाध्यमपि लोकेऽस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम् । शंसंतु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः ॥२२॥ देवा ऊचुः– वसुधेयं भराक्रांता संप्राप्ता विबुधान्प्रति । रुदती वेपमाना च पीडया दुष्टभूभुजैः ॥२३॥ भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि । देवानामीप्सितं कार्यमेतदेवाधुना शिवे ॥२४॥ घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत् । दानवोऽतिबलाक्रांतस्तत्सहायाश्च कोटिशः ॥२५॥ तथा शुम्भो निशुम्भश्च रक्तबीजस्तथापरः । चंडमुडौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः ॥२६॥ दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चातिवीर्यवान् । अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः ॥२७॥ तथैव च सुरारींश्च जहि सर्वान्महीश्वरान् । (भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम् ।) व्यास उवाच– इत्युक्ता सा तदा देवी देवानाहाम्बिका शिवा ॥२८॥ संप्रहस्यासितापांगी मेघगंभीरया गिरा । श्रीदेव्युवाच– मयेदं चिंतितं पूर्वमंशावतरणं सुराः॥२९॥ भारावतरणं चैव यथा स्याद्दुष्टभूभुजाम् । मया सर्वे निहंतव्या दैत्येशा ये महीभुजः ॥३०॥ मागधाद्या महाभागाः स्वशक्त्या मंदतेजसः । भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्य धरातले ॥३१॥ मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः । कश्यपो भार्यया सार्धं दिविजानां प्रजापतिः ॥३२॥

विष्णु ने कहा– हे सम्पूर्ण विभवों की स्वामिनि ! आपकी शक्ति के विना ब्रह्माजी न तो सृष्टि कर सकते हैं, न मैं पालन कर सकता हूँ और न तो रुद्र संहार कर सकते हैं । मेरे विचारानुसार तो आप ही त्रैलोकी की सृष्टि, रक्षा, और संहार करके अपनी लीला करती है ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा**– देवताओं की स्तुति सुनकर देवी ने देवताओं से कहा आपलोग निर्भय हो जाइये । मैं आपलोगों का कौन सा कार्य कर दूँ ॥२१॥ **देवी ने कहा**– मैं इस लोक में देवताओं के अभिप्रेत असाध्य कार्य को भी कर दे रही हूँ । देवताओं ! आपलोग अपना तथा पृथिवी के दुःख को बतलाइये ॥२२॥ **देवताओं ने कहा**– दुष्ट राजाओं के भार से भयाक्रांत रोती हुई पृथिवी देवताओं के पास आयी ॥२३॥ हे भुवनेश्वरि ! आप पृथिवी के भार को दूर कर दें । हे शिवे ! इस समय देवताओं का यही अभिप्रेत कार्य है ॥२४॥ माँ ! आपने प्राचीन काल में महाराक्षस महिषासुर और उसके करोड़ो सहायकों का विनाश किया है ॥२५॥ इसी तरह आपने शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, चण्ड, मुण्ड तथा धूम्रलोचन का बध किया ॥२६॥ फिर आपने दुःसह, दुर्मख, अत्यत्न बलवान् कराल आदि अनेक क्रूर राक्षसों का विनाश किया ॥२७॥ आप दुष्ट राजाओं का वध करके पृथिवी के भार को दूर कीजिये । **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से कहने पर अम्बिका शिवा ने अट्टहास करके मेघ की गर्जना के समान गंभीर वाणी में कहा **श्रीदेवी ने कहा**– देवताओं मैंने पहले ही पृथिवी पर अपने अंश से अवतीर्ण होने की बात सोच ली है ॥२८-२९॥ जिस तरह से पृथिवी पर से दुष्ट राजाओं का भार उतरे वैसा उपाय करके मैं सभी दैत्यों तथा राजाओं को विनष्ट कर दूँगी ॥३०॥ जरासंध आदि जो बड़े राजा हैं उनका तेज मैं मंद कर दूँगी । आपलोगों को भी पृथिवी पर अपने अंश से अवतीर्ण होकर मेरी शक्ति

यादवानां कुले पूर्वं भविताऽऽनकदुंदुभिः । तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः ॥३३॥ अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः । तदाऽहं
प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले ॥३४॥ कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः । कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले ॥३५॥ शेषं
च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम् । मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंक्षयम् ॥३६॥ दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरांते सुनिश्चितम् ।
इन्द्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम् ॥३७॥ धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः । वाय्वंशो भीमसेनश्चाश्विन्यंशौ च यमावपि॥३८॥
वसोरंशोऽथ गांगेयः करिष्यति बलक्षयम् । व्रजंतु च भवंतोऽद्य धरा भवतु सुस्थिरा ॥३९॥ भारावतरणं नूनं करिष्यामि सुरोत्तमाः । कृत्वा
निमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याऽहं न संशयः ॥४०॥ कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम् । असूयेर्ष्यामतिस्तृष्णा ममताऽभिमता स्पृहा ॥४१॥
जिगीषा मदनो मोहो दौर्षर्नंक्ष्यंति यादवाः । ब्राह्मणस्य च शापेन वंशनाशो भविष्यति ॥४२॥ भगवानपि शापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम् ।
भवन्तोऽपि निजांगैश्च सहायाः शार्ङ्गधन्वनः ॥४३॥ प्रभवन्तु सनारीका मथुरायां च गोकुले । व्यास उवाच– **इत्युक्त्वांतर्दधे देवी योगमाया**

से सम्पन्न होकर पृथिवी का भार उतारना चाहिए । देवताओं के प्रजापति कश्यप पहले तथा अपनी पत्नी के साथ यादवों के कुल में वसुदेव होंगे ॥३१-३२॥
भृगु के शाप के कारण भगवान् विष्णु भी अपने अंश से अवतीर्ण होकर वसुदेव के पुत्र होंगे । उस समय मैं गोकुल में यशोदा की पुत्री होऊँगी॥३३-३४॥
देवताओं मैं देवताओं का सारा कार्य सम्पन्न करूँगी । कारागार में उत्पन्न कृष्ण को मैं गोकुल में पहुँचा दूँगी ॥३५॥ देवकी के गर्भ से निकाल कर मैं शेष
को रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दूँगी । मेरी शक्ति से सम्पन्न होकर वे दोनों दुष्टों का विनाश करेंगे ॥३६॥ द्वापर के अन्त में दुष्ट राजाओं का विनाश होना
निश्चित है । इन्द्र के अंश से उत्पन्न होने वाले अर्जुन दुष्टों की सेना का विनाश करेंगे ॥३७॥ धर्म के अंश से महाराज युधिष्ठिर होंगे । वायु के अंश
से भीम होंगे और अश्विनी कुमार के अंश से नकुल और सहदेव होंगे ॥३८॥ वसु के अंश से उत्पन्न भीष्म भी दुष्ट राजाओं की सेना का संहार करेंगे।
आपलोग आज जायँ पृथिवी को स्थिर रहना चाहिए ॥३९॥ देवताओं मैं निश्चित रूप से भार को उतारने का काम करूँगी । मैं अपनी शक्ति से इस कार्य
को करूँगी, इन सबों को तो केवल निमित बनाऊँगी ॥४०॥ कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों का मैं विनाश करूँगी । असूया, ईर्ष्या, अज्ञान, लोभ, ममता, राग, स्पृहा,
जिगीषा, काम तथा मोह आदि दोषों के कारण यादवों का भी विनाश हो जायेगा । ब्राह्मणों के शाप से यादवों के वंश का विनाश हो जायेगा॥४१-४२॥
शाप के कारण भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शरीर का त्याग कर देंगे । आपलोग भी मथुरा और गोकुल में अपनी पत्नी के साथ जन्म लेकर भगवान् की

परात्मनः ॥४४॥ सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि च । धराऽपि सुस्थिरा जाता तस्या वाक्येन तोषिता ॥४५॥ ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय । प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्महोदयम् । सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुधर्मतत्पराः ॥४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **शृणु भारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा । कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया ॥१॥ यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमितेजसः। भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च ॥२॥ क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मतिः । मायया विहितो योगो विष्णोर्जन्म धरातले ॥३॥ किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि । नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणानपरान्किमु ॥४॥ गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम् । विष्णोरापादितं सम्यग्यया**

सहायता करें । **व्यासजी ने कहा–** यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं ॥४३-४४॥ देवता भी पृथिवी के साथ अपने निवास स्थान पर चले गये । देवी के वाक्य से संतुष्ट होकर पृथिवी भी स्थिर हो गयी ॥४५॥ हे जनमेजय ! वह औषधियों तथा वृक्षों से भर गयी । प्रजाएँ सुखी हो गयीं और ब्राह्मणों का खूब कल्याण हुआ । सन्तुष्ट होकर सभी मुनिगण अपने धर्म पालन में लग गये ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

देवी की महिमा, वसुदेव तथा देवकी का विवाह तथा कंस का देवकी को मारने का प्रयास

व्यासजी ने कहा– राजन् ! अब मैं देवी द्वारा पृथिवी का भार उतारने और कुरुक्षेत्र तथा प्रभास क्षेत्र में योगमाया के द्वारा सेना के संहार का वर्णन करूँगा । उसे आप सुनें ॥१॥ महर्षि भृगु के शाप के कारण तथा महामाया के बल से अत्यन्त तेजस्वी भगवान् का यदुवंश में अवतार वर्णन मैं कर रहा हूँ ॥२॥ मेरे विचारानुसार भार को उतारना तो केवल निमित्त था, माया ने ही पृथिवी पर विष्णु के अवतार का योग बना दिया ॥३॥ राजन् ! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है जब महामाया ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी नचाती रहती हैं तो दूसरों की कौन सी बात है ?॥४॥ महामाया की लीला को कोई भी नहीं

विगतलीलया ॥५॥ पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः । विदितं ते यथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः ॥६॥ अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप । योगिनो मुक्तसंगाश्च मुक्तिकामा मुमुक्षवः ॥७॥ तामेव समुपासंते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् । यद्भक्तिलेशलेशांशं लेशलेशलवांशकम्॥८॥ लब्ध्वा मुक्तो भवेज्जंतुस्तां न सेवेत को जनः । भुवनेशीत्येव वक्त्रे ददाति भुवनत्रयम् ॥९॥ मां पाहीत्यस्य वचसो देयाभावादृणान्विता । विद्याऽविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव ॥१०॥ विद्यया मुच्यते जंतुर्बद्ध्यतेऽविद्यया पुनः । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगाः॥११॥ अवताराः सर्व एव यंत्रिता इव दामभिः । कदाचिच्च सुखं भुंक्ते वैकुण्ठे क्षीरसागरे ॥१२॥ कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः । हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै विततान्प्रकरोति च ॥१३॥ कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत । कदाचिच्छयने शेते योगनिद्रामुपाश्रितः ॥१४॥ न स्वतंत्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः । तथा ब्रह्मा तथा रुद्रस्तथेन्द्रो वरुणो यमः ॥१५॥ कुबेरोऽग्नी रवींदू च तथाऽन्ये सुरसत्तमाः । मुनयः सनकाद्याश्च वसिष्ठाद्यास्तथापरे ॥१६॥ सर्वेऽम्बावशगा नित्यं पांचालीव नरस्य च । नसि प्रोता यथा गावो विचरन्ति वशानुगाः ॥१७॥ तथैव देवताः सर्वाः

जान सकता है । उन्होंने भगवान् विष्णु को मल, मूत्र तथा झिल्लियों से भरे गर्भ में डाल दिया ॥५॥ पहले रामावतार काल में महामाया ने ही देवताओं को वानर बनाया था । आप यह तो जानते ही हैं कि श्रीराम किस तरह दुःख के जाल में फँसकर अज्ञान में पड़ गये थे ॥६॥ हे राजन् ! वे अहंकार तथा ममकार के पाश में सुदृढ़ रूप से बँध गये थे । इसीलिए विषय की वासना से विरक्त योगिजन तथा मुमुक्षु पुरुष उस महामाया की ही उपासना करते हैं ॥७॥ जिस महामाया की भक्ति के लेश मात्र से भी मुक्ति की प्राप्ति हो जाती हैं, उन महामाया का भजन कौन नहीं करेगा ? मुख से भुवनेश्वरी शब्द के निकलने मात्र से देवी उस भक्त को त्रैलोक्य की समृद्धि प्रदान कर देती हैं ॥८-९॥ जो भक्त देवी से 'मेरी रक्षा करो' कहता है उसको देने के लिए देवी के पास कुछ रह ही नहीं जाता है, अतएव वे उसकी ऋणी बन जाती हैं । राजन् उस देवी के दो रूप हैं विद्या तथा अविद्या ॥१०॥ जीव विद्या के द्वारा मुक्त हो जाता है और अविद्या के द्वारा संसार के बन्धन में बँध जाता है । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र सभी महामाया के अधीन हैं ॥११॥ रस्सी से बँधे हुए पशु के समान भगवान् के सभी अवतार महामाया के संकेत के ही अनुसार होते हैं । कभी तो भगवान् वैकुण्ठ तथा क्षीरसागर में रहकर सुख भोगते हैं ॥१२॥ कभी वे बलवान् दानवों के साथ युद्ध करते हैं । कभी वे बड़े-बड़े यज्ञों को करते हैं ॥१३॥ कभी वे तीर्थों में तपस्या करते हैं । कभी वे योगनिद्रा का सहारा लेकर शयन करते हैं ॥१४॥ भगवान् मधुसूदन कभी स्वतंत्र नहीं रहते हैं । उसी तरह ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण और यम भी महामाया के पराधीन हैं ॥१५॥ कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा, तथा दूसरे श्रेष्ठ देवता सनकादि महर्षि तथा वसिष्ठ आदि महर्षि ॥१६॥ ये सबके सब जगदम्बा

कालपाशनियंत्रिताः । हर्षशोकादयो भावा निद्रातन्द्रालसादयः ॥१८॥ सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः । अमरा निर्जराः प्रोक्ता देवाश्च ग्रन्थकारकैः ॥१९॥ अभिधानतश्चार्थतो न ते नूनं तादृशाः क्वचित् । उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरंतरम् ॥२०॥ अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्च कथं पुनः । कथं दुःखाभिभूता वा जायन्ते विबुधोत्तमाः ॥२१॥ कथं देवाश्च वक्तव्या व्यसने क्रीडनं कथम् । क्षणादुत्पत्तिनाशश्च दृश्यतेऽस्मिन्न संशयः ॥२२॥ जलजानां च कीटानां मशकानां तथा पुनः । उपमा कथं न चैतेषामायुषोऽन्ते मराः स्मृताः ॥२३॥ ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुषस्तथा । मनुष्या ह्यमरा देवास्तस्माद् ब्रह्मा परः स्मृतः ॥२४॥ रुद्रस्तथा तथा विष्णुः क्रमशश्च भवंति हि । नश्यंति क्रमशश्चैव वर्द्धन्ते चोत्तरोत्तरम् ॥२५॥ नूनं देहवतां नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च । चक्रवद्भ्रमणं राजन्सर्वेषां नात्र संशयः ॥२६॥ मोहजालावृतो जंतुर्मुच्यते न कदाचन । मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति ॥२७॥ उत्पित्सुकाल उत्पत्तिः सर्वेषां नृप जायते । तथैव नाशः कल्पान्ते ब्रह्मादीनां यथाक्रमम् ॥२८॥ निमित्तं यस्तु यन्नाशे स घातयति तं नृप । नान्यथा तद्भवेन्नूनं विधिना निर्मितं तु यत् ॥२९॥ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं

के अधीन उसी तरह रहते हैं जैसे कठपुतली बाजीगर के अधीन होती है तथा नथे हुए बैल अपने स्वामी के अधीन रहते हैं ॥१७॥ उसी तरह सभी देवता भी काल के पाश में बँधे हैं और हर्ष, शोक, आदि भावों तथा निद्रा, तन्द्रा एवं आलस्य का अनुभव करते हैं । उनकी भी सदा उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश होते रहते हैं ॥२०॥ ऐसी स्थिति में उनको अजर तथा अमर कैसे कहा जा सकता है । जब वे दुःख से दुःखी रहते हैं तो उन्हें विवुध कैसे कहा जा सकता है ॥२१॥ वे देव क्रीडा करने वाले कैसे हो सकते हैं ?। विपत्ति में क्रीडा कैसे हो सकती है । उनके भी क्षण भर में ही उत्पत्ति और नाश होते हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२२॥ जोंक, कीड़े और मच्छर के समान उनकी भी उपमा क्यों न दी जाय जबकि आयु के समाप्त हो जाने पर वे भी मरते हैं ॥२३॥ जैसे किसी मनुष्य की आयु सौ वर्ष की होती है और मनुष्यों से बड़ी आयु देवताओं की होती है । देवताओं से अधिक आयु ब्रह्माजी की होती है ॥२४॥ ब्रह्माजी से अधिक आयु शंकरजी की होती है । उनसे अधिक आयु भगवान् विष्णु की होती है । ये क्रमशः नष्ट होते हैं, और क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ते हैं ॥२५॥ देहधारियों की मृत्यु अवश्य होती है, और मरने वाले उत्पन्न होते हैं । हे राजन् ! ये सबके सब चाक पर चढे हुए की तरह जन्म और मरण के चक्र में घूमते रहते हैं ॥२६॥ मोह के जाल में फँसा हुआ जीव कभी भी मुक्त नहीं हो पाता है । माया जब तक बनी रहती है तब तक मोह का जाल विनष्ट नहीं होता है ॥२७॥ राजन् ! सृष्टि काल में सबों की उत्पत्ति होती है और काल के अन्त में ब्रह्मा आदि का भी क्रमशः नाश हो जाता है ॥२८॥ जिसकी जिस निमित्त से मृत्यु निश्चित होती है उसकी उसी निमित्त से मृत्यु होती है । ब्रह्मा ने जो निश्चित कर दिया है, उसमें

वा सुखमेव वा । तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः ॥३०॥ सर्वेषां सुखदौ देवौ प्रत्यक्षौ शशिभास्करौ । न नश्यति तयोः पीडा
क्वचित्तद्वैरिसंभवा ॥३१॥ भास्करस्य सुतो मंदः क्षयी चन्द्रः कलंकवान् । पश्य राजन्विधेः सूत्रं दुर्वारं महतामपि ॥३२॥ वेदकर्ता जगत्स्रष्टा
बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः । सोऽपि विक्लवतां प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम् ॥३३॥ शिवस्यापि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम् । सोऽभवद्दुःखसंतप्तः
कामार्तश्च जनार्तिहा ॥३४॥ कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिंद्यां पतितः शिवः । साऽपि श्यामजला जाता तन्निदाघवशान्नृप ॥३५॥ कामार्तो रममाणस्तु
नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम् । गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम् ॥३६॥ पतत्वद्यैव ते लिंगं निर्लज्जेति भृशं किल । पपौ चामृतवापीं
च दानवैर्निर्मितां मुदे ॥३७॥ इन्द्रोऽपि च वृषो भूत्वा वाहनत्वं गतः क्षितौ । आद्यस्य सर्वलोकस्य विष्णोरेव विवेकिनः ॥३८॥ सर्वज्ञत्वं गतं
कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता । यद्धैममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल ॥३९॥ राजन्मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः । रामो विरहसंतप्तो रुरोद
भृशमातुरः ॥४०॥ योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा । भक्षिता वा हृता केन रुदन्नुच्चतरं ततः ॥४१॥ लक्ष्मणाहं मरिष्यामि कांताविरहदुःखितः।

कोई भी परिवर्तन नहीं होता है ॥२९॥ जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, दुःख अथवा सुख जैसे निश्चित होते हैं वे उसी क्रम से प्राप्त होते हैं, उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता है ॥३०॥ सबों को सुख देने वाले देवता सूर्य और चन्द्रमा हैं । किन्तु इन दोनों के वैरी दुख देने वाले राहु की पीड़ा का कोई नाश नहीं कर सका ॥३१॥ सब को सुख देने वाले सूर्य का पुत्र शनि सब को सताता हैं । चन्द्रमा भी क्षयरोग से ग्रस्त और कलंकित हैं राजन् ! देखो विधि का विधान इतना अटल है, उससे बड़े-बड़े देवता भी नहीं बच पाते हैं ॥३२॥ वेदकर्ता, जगत् के स्रष्टा तथा सबों को बुद्धि देने वाले ब्रह्माजी अपनी पुत्री सरस्वती के रूप को देखकर व्याकुल हो गये ॥३३॥ शंकरजी की पत्नी सती जलकर अपने शरीर का त्याग कर दीं तो सबों के दुःख को दूर करने वाले शंकरजी भी कामाकुल हो गये ॥३४॥ कामाग्नि से जब शिवजी का शरीर जलने लगा तो वे यमुना में कूद पड़े । उसकी गर्मी से यमुना का भी जल श्याम वर्ण का हो गया ॥३५॥ शिवजी भृगुवन में जाकर काम पीड़ित होने के कारण नंगे रमण करने लगे तो कामातुर शंकरजी को देखकर भृगु महर्षि ने उन्हें शाप दे दिया और कहा ॥३६॥ हे निर्लज्ज ! आज ही तुम्हारा लिङ्ग गिर जाय । उस समय शंकरजी ने शान्ति प्राप्त करने के लिए दैत्यों द्वारा निर्मित अमृत सरोवर के जल को ही पी लिया ॥३७॥ इन्द्र भी पृथिवी पर बैल बन गये और ककुत्स्थ राजा के सवारी बन गये । सम्पूर्ण जगत् के आदि पुरुष भगवान् विष्णु की रामावतार में सर्वज्ञता और प्रभुता कहाँ चली गयी कि वे यह भी नहीं समझ सके कि कहीं सोने का भी मृग होता है क्या ?॥३८-३९॥ राजन्! माया का प्रभाव तो देखो कि परम-पुरुष राम काममोहित होकर वन में सीता के वियोग में फूट-फूट कर रोने लगे ॥४०॥ अज्ञानी होकर वे वृक्षों

त्वं चापि मम दुःखेन मरिष्यसि वनेऽनुज ॥४२॥ आवयोर्मरणं ज्ञात्वा माता मम मरिष्यति । शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तः कथं जीवितुमर्हति ॥४३॥ सुमित्रा जीवितं जह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता । पूर्णकामाऽथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता ॥४४॥ हा सीते क्व गताऽसि त्वं मां विहाय स्मरातुरा । एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवय कृशोदरि ॥४५॥ किं करोमि क्व गच्छामि त्वदधीनं च जीवितम् । समाश्वासय दीनं मां प्रियं जनकनन्दिनि ॥४६॥ एवं विलपता तेन रामेणामिततेजसा । वने वने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा ॥४७॥ शरण्यः सर्वलोकानां रामः कमललोचनः । शरणं वानराणां स गतो मायाविमोहितः ॥४८॥ सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम् । जघान रावणं वीरं कुम्भकर्णं महोदरम् ॥४९॥ आनीय च ततः सीतां रामो दिव्यमकारयत् । सर्वज्ञोऽपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना ॥५०॥ किं ब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत् । यया विश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल ॥५१॥ एवं नानाऽवतारेऽत्र विष्णुः शापवशं गतः । करोति विविधाश्चेष्टा दैवाधीनः सदैव हि ॥५२॥ तवाहं कथयिष्यामि कृष्णस्यापि विचेष्टितम् । प्रभवं मानुषे लोके देवकार्यार्थसिद्धये ॥५३॥ कालिन्दीपुलिने रम्ये ह्यासीन्मधुवनं पुरा । लवणो मधुपुत्रस्तु तत्रासीद्दानवो

से पूछे कि सीता कहाँ गयी ? वे जोर से रोते हुए पूछते थे कि सीता को किसी ने खा लिया अथवा उसका किसी ने अपहरण कर लिया ?॥४१॥ उन्होंने लक्ष्मण से कहा लक्ष्मण पत्नी के वियोग से दुःखी मैं मर जाऊँगा । तुम मेरे दुःख से वन में मर जाओंगे ॥४२॥ हम दोनों के मरने का समाचार सुनकर मेरी माँ मर जायेगी । अत्यधिक दुःख से आर्त होकर शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रहेंगे ॥४२॥ पुत्रों के मरण के समाचार से दुःखी सुमित्रा भी अपने प्राणों का त्याग कर देंगी । उसके बाद अपने पुत्र के साथ कैकेयी की कामना पूर्ण हो जायेगी ॥४७॥ हाय सीते ! तुम मुझको छोड़कर कहाँ चली गयी । हे मृगनयनि, हे कशोदरि ! तुम आकर मुझको जीवित कर दो ॥४५॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरा जीवन तुम्हारे ही अधीन है । हे जनकपुत्रि ! तुम आकर मुझे आश्वासन दो । मैं अत्यन्त दीन हूँ ॥४६॥ इस तरह से विलाप करते हुए अत्यन्त तेजस्वी श्रीराम सीता को वन में खोजते रहे; किन्तु सीता नहीं मिली ॥४७॥ सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले माया से मोहित राम तब वानरों की शरण में गये ॥४८॥ वानरों को सहायक बनाकर उन्होंने समुद्र पर पुल बाँधा । उन्होंने वीर रावण, कुम्भकर्ण तथा महोदर का वध किया ॥४९॥ राम सर्वज्ञ थे किन्तु सीता को रावण के द्वारा हरी गयी मानकर उन्होंने उनकी अग्नि परीक्षा की ॥५०॥ महाराज मैं क्या कहूँ । योगमाया का बल बहुत बड़ा है । उसी के द्वारा नचाया गया विश्व निरन्तर नाचता रहता है । शाप के कारण अनेक अवतारों में भगवान् विष्णु दैवाधीन होकर अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं ॥५२॥ अब मैं आपको श्रीकृष्ण का भी चरित सुना रहा हूँ। देवताओ के कार्य की सिद्धि के लिए उनका अवतार हुआ था ॥५३॥ यमुना के मनोहर तट पर मधुवन में मधु नामक दैत्य का पुत्र लवणासुर राज्य

बली ॥५४॥ द्विजानां दुःखदः पापी वरदानेन गर्वितः । निहतोऽसौ महाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै ॥५५॥ शत्रुध्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम्। वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना ॥५६॥ स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः । निवेश्य राज्ये मतिमान्काले प्राप्ते दिवं गतः॥५७॥ सूर्यवंशक्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे । मथुरां मुक्तिदां राजन् ययातितनयः पुरा ॥५८॥ शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः । माथुराञ्छूरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप ॥५९॥ तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्च वरुणस्य वै । वसुदेवोऽतिविख्यातः शूरसेनसुतस्तदा ॥६०॥ वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः । उग्रसेनो बभूवाथ कंसस्तस्यात्मजो महान् ॥६१॥ अदितिर्देवकी जाता देवकस्य सुता तदा । शापाद्वै वरुणस्याथ कश्यपानुगता किल ॥६२॥ दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना ॥ विवाहे रचिते तत्र वागभूद्गगने तदा ॥६३॥ कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसंभवः । अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हंता भविष्यति ॥६४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः । देववाचं तु तां मत्वा सत्यां चिन्तामवाप सः ॥६५॥ किं करोमीति संचिन्त्य विमर्शमकरोत्तदा । निहत्यैनां न मे मृत्युर्भवेदद्यैव सत्वरम् ॥६६॥ उपायो नान्यथा चास्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे । इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिन्तयत् ॥६७॥ पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहो स्वसा । पापेनापि प्रकर्तव्या देहरक्षा

करता था ॥५४॥ वह पापी वरदान के गर्व से ब्राह्मणों को दुःख देता था । उसको लक्ष्मण के अनुज शत्रुघ्न ने मारा था ॥५५॥ उस मदमत्त को संग्राम में मारकर शत्रुघ्न ने मथुरा नाम की नगरी को बसाया ॥५६॥ शत्रुघ्न ने वहाँ पर कमल के सदृश सुन्दर नेत्र वाले अपने दो पुत्रों सुबाहु तथा श्रुतसेन को राज्य पर नियुक्त करके समय आने पर स्वर्गवासी हो गये ॥५७॥ सूर्यवंश का नाश हो जाने पर उस नगरी को यादवों ने प्राप्त कर लिया । मथुरा मुक्तिदायिनी नगरी है । वहाँ के राजा ययाति के पुत्र शूरसेन हो गये । वे मथुरा और शूरसेन दोनों प्रदेशों का प्रशासन करते थे ॥५८-५९॥ वरुण देवता के शाप के कारण कश्यप महर्षि के अंश से वसुदेव नामक शूरसेन के पुत्र हुए । वसुदेव अत्यन्त विख्यात थे ॥६०॥ अपने पिता शूरसेन की मृत्यु हो जाने पर वैश्य वृत्ति वाले वसुदेव हो गये । शूरसेन के पुत्र उग्रसेन हुए । उग्रसेन का पुत्र कंस परम प्रतापी था ॥६१॥ वरुण के शाप के कारण कश्यप की पत्नी देवक की पुत्री देवकी हुई ॥६२॥ उसका विवाह वसुदेव के साथ हुआ । विवाह के समय आकाशवाणी हुई ॥६३॥ हे महाभाग कंस ! देवकी का आठवाँ पुत्र तुम्हें मारेगा ॥६४॥ आकाशवाणी को सुनकर कंस आश्चर्यचकित हो गया । आकाशवाणी को सत्य मानकर वह चिंतित हो गया ॥६५॥ मुझे क्या करना चाहिए? इस प्रकार से विचार करके उसने निश्चय किया कि यदि मैं इसको आज ही मार डालूँ तो मेरी मृत्यु नहीं होगी ॥६६॥ भयंकर मृत्यु से बचने का इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है । किन्तु यह मेरी चचेरी बहन है अतएव पूज्य है । इसे कैसे मारूँ ? यह सोचने लगा ॥६७॥ फिर उसने विचार किया

विपश्चिता ॥६८॥ प्रायश्चित्तेन पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा । प्राणरक्षा प्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा ॥६९॥ विचिन्त्य मनसा कंसः खड्गमादाय सत्वरः । जग्राह तां वरारोहां केशेष्वाकृष्य पापकृत् ॥७०॥ कोशात्खड्गमुपाकृष्य हंतुकामो दुराशयः । पश्यतां सर्वलोकानां नवोढां तां चकर्ष ह ॥७१॥ हन्यमानां च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् । वसुदेवानुगा वीरा युद्धायोद्यतकार्मुकाः ॥७२॥ मुञ्च मुञ्चेति प्रोचुस्तं तदा चाद्भुतसाहसाः। कृपया मोचयामासुर्देवकीं देवमातरम् ॥७३॥ तद्युद्धमभवद्घोरं वीराणां च परस्परम् । वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना ॥७४॥ वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे । कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये यदुसत्तमाः ॥७५॥ पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिशा । न हंतव्या त्वया वीर विवाहोत्सवसंगमे ॥७६॥ स्त्रीहत्या दुःसहा वीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा । भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्या विजानता ॥७७॥ अन्तर्हितेन केनापि शत्रुणा तव चास्य वा । उदितेति कुतो न स्याद्वागनर्थकरी विभो ॥७८॥ यशसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च । अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप ॥७९॥ बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषितभाषया । यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणा कृतः ॥८०॥ पितृष्वसा न हंतव्या विवाहसमये पुनः । भवितव्यं महाराज भवेच्च कथमन्यथा ॥८१॥ एवं तैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत्तो नाभवद्यदा । तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञः प्रत्यभाषत ॥८२॥ कंस

कि यह मेरी बहन मेरी मृत्यु है, बुद्धिमान को चाहिए कि वह पाप करके भी अपने शरीर की रक्षा करे ॥६८॥ प्रायश्चित कर लेने से भी पाप की शुद्धि हो जाती है । अतएव बुद्धिमान को चाहिए कि वह पाप करके भी प्राण की रक्षा करे ॥६९॥ इस तरह से विचार करके पापी कंस ने तलवार निकाल कर देवकी का केश पकड़ लिया ॥७०॥ कंस के मारने की इच्छा से कंस ने म्यान से तलवार निकाल ली और सबों के सामने ही उसने नवोढा को खींच लिया॥७१॥ उसको मारी जाती हुई देखकर हाहाकार मच गया । वसुदेव के साथ के वीर युद्ध करने के लिए धनुष उठा लिए ॥७२॥ अद्भुत साहस वाले उन लोगों ने कंस से कहा छोड़ो-छोड़ो इसको और कृपा पूर्वक उन सबों ने देवों की माता देवकी को छुड़ा लिया ॥७३॥ उस समय वसुदेवानुगामी वीरों तथा कंस के साथ घोर युद्ध हुआ ॥७४॥ उस दारुण तथा लोमहर्षक युद्ध के बढ़ने पर वृद्ध यादवों ने समझाकर कंस को रोक दिया ॥७५॥ उनलोगों ने कहा वीर यह तुम्हारी पूज्या चचेरी बहन है, अबोध है । विवाहोत्सव के समय इसका वध करना ठीक नहीं है ॥७६॥ वीर स्त्री की हत्या करने से बहुत कष्ट मिलता है, इससे कीर्ति का नाश होता है । तुम जैसे वीर को भूत की वाणी पर विश्वास करके इस तरह का निंदित कर्म नहीं करना चाहिए ॥७७॥ यह भी संभव है कि तुम्हारे किसी मायावी शत्रु ने वसुदेव की पत्नी का नाश करने के लिए ऐसी बात कही हो ॥७८॥ वीर होकर भी तुम भूत की वाणी पर विश्वास करते हो ? लगता है तुम्हारे यश का नाश करने के लिए किसी शत्रु ने ऐसा काम किया है ॥८०॥ विवाह के समय चचेरी बहन को नहीं मारना

सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम् । दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः ॥८३॥ जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदि प्रभो । कुम्भीपाके तदा घोरे पतंतु मम पूर्वजाः ॥८४॥ श्रुत्वाऽथ वचनं सत्यं पौरवा ये पुरः स्थिताः । ऊचुस्ते त्वरिताः कंसं साधु साधु पुनः पुनः ॥८५॥ न मिथ्या भाषते क्वापि वसुदेवो महामनाः । केशं मुंच महाभाग स्त्रीहत्यापातकं तथा ॥८६॥ व्यास उवाच– **एवं प्रबोधितः कंसो यदुवृद्धैर्महात्मभिः। क्रोधं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सत्यवाक्यानुमोदितः । ततो दुंदुभयो नेदुर्वादित्राणि च सस्वनुः ॥८७॥ (जयशब्दस्तु सर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि ।) प्रसाद्य कंसं प्रतिमोच्य देवकीं महायशाः शूरसुतस्तदानीम् । जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो नवोढया वीतभयस्तरस्वी ॥८८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **अथ काले तु संप्राप्ते देवकी देवरूपिणी । गर्भं दधार विधिवद्वसुदेवेन संगता ॥१॥ पूर्णेऽथ दशमे मासे सुषुवे सुतमुत्तमम्।**

चाहिए । महाराज भवितव्यता तो होकर ही रहती है ॥८१॥ इस तरह से कहने पर भी जब कंस नहीं रुक रहा था तो उस समय नीतिज्ञ वसुदेव ने कहा॥८२॥ कंस मैं सत्य कह रहा हूँ । सत्य से ही त्रैलोक्य टिका है । मैं उत्पन्न होने वाले पुत्रों को तुम्हें समर्पित कर दिया करूँगा ॥८३॥ यदि उत्पन्न होने वाले पुत्रों को मैं तुम्हें नहीं समर्पित कर दूँ तो मेरे पूर्वज कुंभीपाक नरक में गिर जायँ ॥८४॥ वसुदेव की बात को सुनकर वहाँ पर उपस्थित पुरुवंशीय यादव उन्हें धन्यवाद देने लगे और वे कंस से कहे ॥८५॥ महामना वसुदेव कभी असत्य नहीं बोलते हैं । अतएव हे महाभाग ! अब आप देवकी का केश छोड़ दें और स्त्री की हत्या के पाप से बच जायँ ॥८६॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से यदुवंशीय वृद्धों द्वारा कहे जाने पर वसुदेवजी की बात पर विश्वास करके कंस ने देवकी के केश को छोड़ दिया । उस समय दुंदुभि और वाद्य बजने लगे ॥८७॥ वहाँ पर सबलोग जय-जयकार करने लगे । उस समय कंस को प्रसन्न करके तथा देवकी को छुड़ाकर महायशस्वी वसुदेवजी अपने लोगों तथा नवविवाहिता के साथ शीघ्र ही निर्भयभाव से अपने घर चले गये ॥८८॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

देवकी और वसुदेव की भाग्यविषयिणी वार्ता तथा देवकी के पुत्र का कंस द्वारा वध

व्यासजी ने कहा– इसके बाद देव स्वरूपिणी देवकी वसुदेवजी के साथ रहती हुई विधिपूर्वक गर्भ धारण की ॥१॥ दशवाँ महीना पूरा होने पर उसने

रूपावयवसंपन्नं देवकी प्रथमं यदा ॥२॥ तदाऽऽह वसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः । भावित्वाच्च महाभागो देवकीं देवमातरम् ॥३॥ वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे । मोचिता त्वं महाभागे शपथेन मया तदा ॥४॥ इमं पुत्रं सुकेशांते दास्यामि भ्रातृसूनवे । (खले कंसे विनाशार्थं दैवे किं वा करिष्यसि ।) विचित्रकर्मणा पाको दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥५॥ सर्वेषां किल जीवानां कालपाशानुवर्तिनाम् । भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥६॥ प्रारब्धं सर्वथैवात्र जीवस्य विधिनिर्मितम् । देवक्युवाच– स्वामिन्पूर्वं कृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः ॥७॥ तीर्थैस्तपोभिदर्नैर्वा किं न याति क्षयं हि तत् । लिखितो धर्मशास्त्रेषु प्रायश्चित्तविधिर्नृप ॥८॥ पूर्वार्जितानां पापानां विनाशाय महात्मभिः । ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः ॥९॥ द्वादशाब्दव्रते चीर्णे शुद्धिं याति यतस्ततः । मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चितं विधानतः ॥१०॥ तथा कृत्वा नरः पापान्मुच्यते वा न वाऽनघ । विगीतवचनास्ते किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥११॥ याज्ञवल्क्यादयः सर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः । भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो ॥१२॥ आयुर्वेदः स मिथ्यैव मंत्रवादास्तथाऽखिलाः । उद्यमस्तु वृथा सर्वमेवं चेद्दैवनिर्मितम् ॥१३॥ भवितव्यं भवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका। अग्निष्टोमादिकं व्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम् ॥१४॥ यदा तदा प्रमाणं हि वृथैव परिभाषितम् । वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदः कुतो न

रूप तथा अङ्गों से युक्त पुत्र को जन्म दिया ॥२॥ उस समय सत्यवक्ता वसुदेवजी ने भावीवशात् देवमाता देवकी से कहा ॥३॥ हे सुन्दरि ! अपने पुत्र के समर्पण के विषय में तुम मेरी प्रतिज्ञा को जानती हो । इसी प्रतिज्ञा को करके मैंने तुम्हे बचाया था ॥३॥ इस पुत्र को मैं तुम्हारे चचेरे भाई कंस को प्रदान करूँगा । कंस दुष्ट है और वह इसको मार देगा । भाग्य के विषय में क्या किया जा सकता है ? साधारण व्यक्ति कर्मों के विचित्र तथा दुर्ज्ञेय परिणाम को नहीं जान पाते हैं ॥५॥ सभी प्राणियों को अपने किए हुए कर्मों के अच्छे अथवा बुरे परिणाम को भोगना ही पड़ता है ॥६॥ जीवों के प्रारब्ध का निर्माण तो ब्रह्माजी ही करते हैं । **देवकी ने कहा–** हे स्वामिन् ! पहले किए हुए कर्मों का फल तो सबों को भोगना पड़ता है । क्या उसका नाश, तीर्थ,, तपस्या अथवा दान से नहीं होता है ? राजन् ! धर्मशास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है ॥८॥ उन्हीं ग्रन्थों में महापुरुषों ने पूर्वार्ज़ित पापों के विनाश के लिए प्रायश्चित का विधान किया है । ब्रह्मघाती, सुवर्ण चुराने वाला, मद्यपायी तथा गुरु की शय्या पर सोने वाले की बारह वर्ष के व्रत के बाद शुद्धि हो जाती है । मनु आदि महर्षियों ने जैसा प्रायश्चित का विधान किया है, वैसा अनुष्ठान करके मनुष्य पाप से मुक्त होता है कि नहीं । यदि नहीं तो क्या उन तत्त्वदर्शी मुनियों के वचन व्यर्थ हैं ?॥११॥ तब या तो यागवल्क्य आदि धर्मशास्त्रों के प्रणेताओं की बातें मिथ्या हैं यदि भवितव्यता होकर ही रहती है, यही मान लिया जाय तो ॥१२॥ ऐसी स्थिति में आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्र व्यर्थ हो जायेंगे । विमारों के लिए औषधि तथा मन्त्र जप की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी।

हि ॥१५॥ उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते । तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपंचश्चित्तकल्पितः ॥१६॥ यथाऽयं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः। मिथ्या यदि प्रकर्तव्यं वचनं शुभमिच्छता ॥१७॥ न तत्र दूषणं किंचित्प्रवदंति मनीषिणः । वसुदेव उवाच– **निशामय महाभागे सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१८॥ उद्यमः खलु कर्तव्यः फलं दैववशानुगम् । त्रिविधानीह कर्माणि संसारेऽत्र पुराविदः ॥१९॥ प्रवदंतीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च । संचितानि च जीर्णानि प्रारब्धानि सुमध्यमे ॥२०॥ वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीह देहिनाम् । शुभाशुभानि कर्माणि बीजभूतानि यानि च ॥२१॥ बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठंति सर्वथा । पूर्वदेहं परित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः ॥२२॥ स्वर्गं वा नरकं वाऽपि प्राप्नोति स्वकृतेन वै । दिव्यं देहं च संप्राप्य यातनादेहमर्थजम् ॥२३॥ भुनक्ति विविधान्भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथवा । भोगांते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते ॥२४॥ लिंगदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम् । तदैव संचितेभ्यश्च कर्मभ्यः कर्मभिः पुनः ॥२५॥ योजयत्येव तं कालं कर्माणि प्राकृतानि च । देहेनानेन भाव्यानि शुभानि चाशुभानि च ॥२६॥ प्रारब्धानि च जीवेन भोक्तव्यानि सुलोचने । प्रायश्चित्तेन नश्यंति**

यदि सब कुछ भाग्याधीन है तो यह सब कुछ व्यर्थ है ॥१३॥ यदि भवितव्यता ही होती है तब तो स्वर्ग प्राप्ति के साधनभूत अग्निष्टोम आदि का अनुष्ठान भी व्यर्थ है ॥१४॥ यदि वेदों के यज्ञ प्रतिपादक प्रमाण ही व्यर्थ हैं तो फिर धर्म प्रतिपादक प्रमाणों का सर्वनाश कैसे नहीं होगा ॥१५॥ प्रयास करने पर तो प्रत्यक्षत: सफलता मिलती है । अतएव मन में विचार करके आप कोई उपाय खोजिये ॥१६॥ जिस तरह से मेरा यह नवजात बच्चा बच जाय ऐसा उपाय कीजिये । कल्याण प्राप्ति के लिए मिथ्याभाषण करने में कोई दोष नहीं है ॥१७॥ मनीषीगण ऐसा करने में कोई दोष नहीं बतलाते हैं । **वसुदेव ने कहा–** हे महाभागे ! तुम सुनो मैं यह सत्य कहता हूँ ॥१८॥ मैं भी मानता हूँ कि प्रयत्न करना चाहिए; किन्तु उसका फल तो दैव के हाथ में है । पुराविद् महर्षियों ने कर्मों को तीन प्रकार का बतलाया है ॥१९॥ जीवों के लिए पुराणों तथा आगमों में ऐसा ही कहा गया है । वे हैं संचित कर्म, जीर्णकर्म तथा प्रारब्ध कर्म ॥२०॥ हे सुन्दरि ! शरीरधारियो ! के ये ही तीन प्रकार के कर्म होते हैं । संसार में रहकर मनुष्य जो अच्छा अथवा बुरा कर्म करता है वही बीज बन जाता है ॥२१॥ ये कर्म बहुत जन्मों तक बने रहते हैं । कर्म के परतन्त्र पूर्वशरीर को त्यागकर अपने कर्मानुसार जब स्वर्ग अथवा नरक में जीव जाता हैं तो वहाँ भी वह अनेक प्रकार के कष्टों को भोगता है । स्वर्ग में वह दिव्य देह को प्राप्त करता है और नरक में यातना शरीर को प्राप्त करता है॥२१-२३॥ वह स्वर्ग में अनेक प्रकार के भोगों को भोगता है और नरक में अनेक प्रकार के कष्टों को भोगता है । भोग के अन्त में जब उसकी उत्पत्ति का समय आता है ॥२४॥ तब वह लिङ्ग शरीर के साथ जीव बन जाता है । उसी समय परमात्मा उस जीव के साथ उसके संञ्चित प्रारब्ध तथा वर्तमान इन तीनों प्रकार के कर्मों को लगा देते हैं । हे सुनयनि ! जीव को अपने शरीर से ही शुभ तथा अशुभ कर्मों को तथा प्रारब्ध कर्मों को भोगना पड़ता है । प्रायश्चित्त के

वर्तमानानि भामिनि॥२७॥ संचितानि तथैवाशु यथार्थं विहितेन च । प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत् ॥२८॥ तेनायं ते कुमारो वै देयः कंसाय सर्वथा । न मिथ्यावचनं मेऽस्ति लोकनिंदाऽभिदूषितम् ॥२९॥ अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम् । दैवाधीनं हि सर्वेषां मरणं जननं तथा ॥३०॥ तस्माच्छोको न कर्तव्यो देहिनां हि निरर्थकः । सत्यं यस्य गतं कांते वृथा तस्यैव जीवितम् ॥३१॥ इह लोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः। अतो देहि सुतं सुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम् ॥३२॥ सत्यसंस्तरणाद्देवि शुभमग्रे भविष्यति । कर्तव्यं सुकृतं पुंभिः सुखे दुःखे सति प्रिये ॥३३॥ (सत्यसंरक्षणाद्देवि शुभमेव भविष्यति ।) व्यास उवाच– **इत्युक्तवति कांते सा देवकी शोकसंयुता । ददौ पुत्रं प्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी॥३४॥ वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम् । जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः ॥३५॥** लोका ऊचुः– **पश्यंतु वसुदेवं भो लोका एवं मनस्विनम् । स्ववाक्यमनुरुध्यैव बालमादाय यात्यसौ ॥३६॥ मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः । सफलं जीवितं चास्य धर्मं पश्यंतु चाद्भुतम् ॥३७॥ यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि । इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप ॥३८॥ ददावस्मै कुमारं तं जातमात्रममानुषम् । कंसोऽपि विस्मयं प्राप्तो दृष्ट्वा धैर्यं महात्मनः ॥३९॥ गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः । धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य**

द्वारा वर्तमान कर्मों का ही नाश होता है ॥२५-२७॥ उसी प्रकार यथार्थ विधि पूर्वक किए जाने वाले प्रायश्चित के द्वारा संचित कर्मों का भी क्षय होता है, किन्तु प्रारब्ध कर्मों का तो फल भोगने से ही क्षय होता है ॥२८॥ अतएव तुम्हारे इस पुत्र को कंस को दे ही देना चाहिए । मेरी वाणी लोकनिंदा से दूषित मिथ्या नहीं होती है ॥२८॥ इस अनित्य संसार में महापुरुषों के लिए केवल धर्म ही सार है । किसी की भी मृत्यु अथवा जन्म भाग्य के ही अनुसार होते हैं ॥३०॥ अतएव हे प्रिये ! शोक नहीं करना चाहिए, शोक करना व्यर्थ है । प्रिये ! जिसका सत्य समाप्त हो गया है उसका जीवन व्यर्थ है ॥३१॥ जिसका यह लोक बिगड़ गया उसका परलोक क्या बनेगा ? अतएव हे सुन्दरि ! बच्चे को मुझे दे दो उसे मैं कंस को दे आऊँ ॥३२॥ हे देवि ! सत्य का पालन करने से आगे कल्याण होगा । हे देवि ! सुख हो या दुःख किसी भी स्थिति में पुण्य ही करना चाहिए ॥३३॥ देवि ! सत्य की रक्षा करने से कल्याण ही होता है । **व्यासजी ने कहा–** वसुदेवजी के ऐसा कहने पर शोक संतप्त मनस्विनी देवकी काँपती हुई उस उत्पन्न पुत्र को दे दी ॥३४॥ धर्मात्मा वसुदेव भी अपने शिशु पुत्र को लेकर मार्ग में लोगों के द्वारा प्रशंसित होते हुए कंस के घर गये ॥३५॥ **लोगो ने कहा–** हे लोगों ! मनस्वी वसुदेव को देखो ये अपने कथनानुसार बालक को लेकर जा रहे हैं ॥३६॥ बिना किसी असूया के ये अपनी बात की रक्षा करने के लिए बच्चे को मृत्यु को देने जा रहे हैं। इनका ही जीवन सफल है इनके अद्भुत धर्म को देखो ॥३७॥ ये काल स्वरूप कंस को अपने पुत्र को देने जा रहे हैं । इस तरह से प्रशंसित होते हुए

ज्ञातः पुत्रसमर्पणात् ॥४०॥ मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाष्टमः । न हंतव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम् ॥४१॥ अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते । इत्युक्त्वा वसुदेवाय ददावाशु खलः शिशुम् ॥४२॥ गच्छत्वयं गृहे बालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः । तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा ॥४३॥ कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातये शिशुम् । अष्टमाद्देवकीपुत्रान्मम मृत्युरुदाहृतः ॥४४॥ अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम् । साधु साध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मंत्रिसत्तमाः ॥४५॥ विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति । गतेषु तेषु संप्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः ॥४६॥ अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादि चकारोग्रसुतस्तदा । पप्रच्छ कुशलं राजा तत्रागमनकारणम् ॥४७॥ नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः । कंस कंस महाभाग गतोऽहं हेमपर्वतम् ॥४८॥ तत्र ब्रह्मादयो देवा मंत्रं चक्रुः समाहिताः । देवक्यां वसुदेवस्य भार्यायां सुरसत्तमः ॥४९॥ वधार्थं तव विष्णुश्च जन्म चात्र करिष्यति । तत्कथं न हतः पुत्रस्त्वया नीतिं विजानता ॥५०॥ कंस उवाच— अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम् । नारद उवाच— न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभाम् ॥५१॥ मायाबलं च देवानां न त्वं वेत्सि वदामि

वसुदेवजी कंस के घर पहुँचे ॥३८॥ उन्होंने उत्पन्न हुए देवस्वरूप उस पुत्र को दे दिया । वसुदेव के धैर्य को देखकर कंस भी आश्चर्यित हो गया ॥३९॥ बालक को लेकर मुस्कुराते हुए उसने कहा हे महाराज शूर के पुत्र ! आप धन्य हैं । इस बच्चे को दे देने के कारण मैं आपको जान गया ॥४०॥ यह तो मेरी मृत्यु नही है । आकाशवाणी ने तो आठवें पुत्र को मेरा काल बतलाया है । मैं इसको नहीं मार सकता इसे लेकर आप अपने घर चले जायँ ॥४१॥ हे महामते ! आप अपने आठवें पुत्र को दे दीजियेगा । यह कहकर उस दुष्ट ने बच्चे को लौटा दिया ॥४२॥ **कंस ने कहा—** यह बालक अपने घर चला जाय और कुशलपूर्वक रहे । इसके बाद वसुदेवजी प्रसन्नतापूर्वक उस बच्चे को लेकर अपने घर लौट आये ॥४३॥ कंस ने भी अपने मंत्रियों से कहा व्यर्थ ही बच्चे को क्यों मारूँ । मेरी मृत्यु तो देवकी के आठवें पुत्र से बतलायी गयी है ॥४४॥ अतएव पहले बालक को मारकर क्यों पाप करूँ । मंत्रियों ने भी कंस की साधु ! साधु !! कहकर प्रशंसा की ॥४५॥ कंस ने उन मंत्रियों को भी उनके घर भेज दिया । उन सबों के चले जाने पर श्रेष्ठमुनि नारदजी आये ॥४६॥ कंस ने खड़ा होकर तथा अर्ध्य आदि प्रदान करके उनकी पूजा की । राजा ने कुशल पूछा और नारदजी के आने का कारण जानना चाहा॥४७॥ नारदजी ने मुस्कुराते हुए कहा महाभाग कंस ! मैं सुमेरु पर्वत पर गया था ॥४८॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवता सावधानी पूर्वक विचार कर रहे थे कि वसुदेव देवकी के गर्भ से भगवान् विष्णु तुम्हें मारने के लिए अवतार लेंगे । तुम तो नीतिज्ञ हो तुमने उस पुत्र को मारा क्यों नहीं ॥४९-५०॥ **कंस ने कहा—** देवताओं ने आठवें पुत्र को मेरी मृत्यु बतलाया है उसको मैं मार दूँगा । **नारदजी ने कहा—** आप राजनीति के शुभ अथवा अशुभ परिणाम को

किम्। रिपुरल्पोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता ॥५२॥ संमेलनक्रियायां तु सर्वे ते ह्यष्टमाः स्मृताः । मूर्खस्त्वमरिसंत्यागः कृतोऽयं जानता त्वया॥५३॥ इत्युक्त्वाऽऽशु गतः श्रीमान्नारदो देवदर्शनः । गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम् । पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मंदधीः॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह । यज्जातमात्रो निहतस्तथा तेन दुरात्मना ॥१॥ नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः । कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः ॥२॥ कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः । स कथं प्रेरयामास मुनिः कंसं खलं तदा ॥३॥ संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहि सर्वं सविस्तरम् । येन कर्मविपाकेन बालको निधनं गतः ॥४॥** व्यास उवाच– **नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा**

जब नहीं जानते हैं तो मैं क्या कहूँ कल्याण चाहने वाले वीर को अपने छोटे से भी शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥५१-५२॥ यदि गणित शास्त्र की सम्मिलित प्रक्रिया को देखा जाय तो सभी आठवें हो सकते हैं । इस बात को जानते हुए भी तुम शत्रु को छोड़ने वाले मूर्ख हो ॥५३॥ यह कहकर देवदर्शन नारदजी वहाँ से चले गये । नारदजी के चले जाने पर कंस ने बालक को बुलवाया और उसे पत्थर पर पटक कर वह मूर्ख प्रसन्न हो गया ॥५४॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

देवताओं के अवतार की कथा

जनमेजय ने कहा– हे पितामह ! उस बालक ने कौन सा पाप किया था ? जिसके कारण उस उत्पन्न हुए मात्र बालक को पापी कंस ने मार दिया॥१॥ नारदजी तो मुनियों में श्रेष्ठ, धार्मिक और ज्ञानी हैं । ब्रह्मज्ञानी होकर भी उन्होंने इस तरह का पाप क्यों किया ?॥२॥ विद्वानों ने पाप करने वाले तथा पाप कराने वाले दोनों को समान रूप से पापी बतलाया है । ऐसी स्थिति में नारदजी ने दुष्ट कंस को ऐसा पाप करने के लिए क्यों प्रेरित किया ॥३॥

कलहप्रियः । देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह ॥५॥ न मिथ्याभाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन । सत्यवक्ता सुराणां स कर्तव्ये निरतः शुचिः॥६॥ एवं षड् बालकास्तेन जाता जाता निपातिताः । षड्गर्भाः शापयोगेन संभूय मरणं गताः ॥७॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तेषां शापस्य कारणम् । स्वायंभुवेऽन्तरे पुत्रा मरीचेः षण्महाबलाः ॥८॥ ऊर्णायां चैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम्॥९॥ शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशंत्वधः । कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भा विशांपते ॥१०॥ अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः । जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वशापभयान्नृप ॥११॥ तस्मिञ्जन्मनि शांताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः । तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ ॥१२॥ ब्रह्मोवाच– **शप्ता यूयं मया पूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः । तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवंतु वांछितं वरम् ॥१३॥** व्यास उवाच– **ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः । ब्रह्माणमब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः ॥१४॥** गर्भा ऊचुः– **पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वांछितं वरम् । अवध्या दैवतै सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः ॥१५॥ गंधर्वसिद्धपतिभिर्वधो माभूत्पितामह ।** व्यास उवाच– **तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति ॥१६॥**

इस विषय में मुझे बड़ा संशय हो रहा है, आप इसे विस्तार पूर्वक बतलाइये कि किस कर्म के परिणाम स्वरूप वह बालक मरा ॥४॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! नारदजी को खिलवाड़ करना और कलह करवाना बहुत प्रिय है । वे तो देवताओं का काम बनाने के लिए यह सारा काम किए ॥५॥ नारदजी कभी झूठ नहीं बोलते हैं । वे सदा सत्य बोलते हैं और देवताओं का काम बनाते हैं ॥६॥ इस तरह से कंस ने देवकी के छह बालकों को उत्पन्न होते ही मार दिया । शापित होने के कारण वे छहो बालक उत्पन्न होकर मर गये ॥७॥ राजन् ! आप सुनें मैं उन सबों के शाप का कारण बतला रहा हूँ । स्वायंभुव मन्वन्तर में महर्षि मरीचि के छह महाबलवान् पुत्र हुए ॥८॥ ये मरीचि महर्षि की पत्नी उर्णा के गर्भ से उत्पन्न थे और धर्मशास्त्र के ज्ञाता थे । अपनी पुत्री सरस्वती के साथ मैथुन करने के लिए उद्यत ब्रह्माजी को तैयार देखकर वे उन पर हँस पड़े थे ॥९॥ यह देखकर ब्रह्माजी ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम लोग दैत्य योनि में चले जाओ । उसके कारण वे छह दैत्य कालनेमि के पुत्र हुए ॥१०॥ उसके बाद वे छहो हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए । वे उत्पन्न होते ही ज्ञानी होने के कारण पहले जन्म के शाप के भय से उस जन्म में शान्त होकर तपस्या किए । उससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन छहों को वरदान दिया था । मैं प्रसन्न हूँ । तुमलोग अपने मनोभिलषित वरदान माँगो ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा–** ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर वे सब बहुत प्रसन्न हुए और अपनी कामना पूर्ण करने के लिए ब्रह्माजी से कहे ॥१४॥ उन सबों ने कहा पितामह ! यदि आप प्रसन्न हैं तो जिसे हम चाहते हैं वह वरदान हमें दीजिये। हमलोग चाहतें है कि हम को देवता, मनुष्य, सर्प, गन्धर्व तथा बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष भी नहीं मार सकें । **व्यासजी ने कहा–** ब्रह्माजी ने उन सबों से कहा ऐसा ही होगा ॥१६॥ तुम लोग चले जाओं यह बात सत्य ही होगी । इसमें कोई भी संशय नहीं है । ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके वे छहो बहुत प्रसन्न

गच्छंतु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः । दत्त्वा वरं ततो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाऽभवन् ॥१७॥ हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह ।
यस्माद्विहाय मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः ॥१८॥ वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन् । युष्माभिर्हापितः स्नेहस्ततो युष्मांस्त्यजाम्यहम्॥१९॥
यूयं व्रजंतु पाताले षड्गर्भा विश्रुता भुवि । पाताले निद्रयाविष्टास्तिष्ठंतु बहुवत्सरान् ॥२०॥ ततस्तु देवकी गर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः । पिता वः
कालेनेमेस्तु तत्र कंसो भविष्यति ॥२१॥ स एव जातमात्रान् वो वधिष्यति सुदारुणः । व्यास उवाच– **एवं शप्तांस्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः**
पुनः॥२२॥ जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः । शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसंस्थितः ॥२३॥ विस्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया ।
नीतश्च रोहिणीगर्भे हृत्वा संकर्षणं बलात् ॥२४॥ पतितः पंचमे मासि लोकख्यातिं गतस्तदा । कंसोऽपि ज्ञातावांस्तत्र देवकीगर्भपातनम् ॥२५॥
मुदं प्राप स दुष्टात्मा श्रुत्वा वार्तां सुखावहाम् । अष्टमे देवकीगर्भे भगवान्सात्वतां पतिः ॥२६॥ उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च ।
राजोवाच– **वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाऽभवत् ॥२७॥ हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम । अन्ये च येऽञ्शा देवानां तत्र जातास्तु**
तान् वद ॥२८॥ भारावतारणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयाऽनघ । व्यास उवाच– **सुराणमसुराणां च ये येऽञ्शा भुवि विश्रुताः ॥२९॥ तानहं संप्रवक्ष्यामि**

हुए ॥१७॥ यह सुनकर हिरण्यकशिपु बहुत क्रुद्ध हुआ और उन सबों से कहा पुत्रों तुमलोगों ने मुझको छोड़कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया है ॥१८॥ उन
से वरदान प्राप्त करके तुमलोग बहुत बलवान हो गये हो अतएव मैं तुमलोगों को त्यागता हूँ ॥१९॥ अब तुमलोग पाताल लोक में चले जाओ । भूतल
पर तुमलोग 'षडगर्भ' के नाम से विख्यात होओगे । पाताल में तुमलोग बहुत दिनों तक नींद में पड़े रहोगे ॥२०॥ उसके बाद प्रत्येक वर्ष तुमलोग देवकी
के गर्भ से जन्म लोगे । तुमलोगों का पिता कालनेमि कंस होयेगा ॥२१॥ वह भयानक तथा क्रूर कंस तुमलोगों को उत्पन्न होते ही मार डालेगा । **व्यासजी
ने कहा–** इस तरह से शप्त उन सबों को गर्भ से उत्पन्न होते ही कंस मार डालता था ॥२२॥ देवकी के छह गर्भों से उत्पन्न पुत्रों को कंस ने मार कर
उनके शाप को दूर कर दिया । देवकी के सातवें गर्भ में शेष आये ॥२३॥ उस गर्भ को योगमाया ने अपने योग से गिरा दिया । और शेष को खींच कर
रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया ॥२४॥ सबलोगों में प्रसिद्धि हो गयी कि पाँचवें महीने में देवकी का गर्भ गिर गया । देवकी के गर्भपात की बात जानकर
कंस भी प्रसन्न हो गया । इस बात से कंस बहुत प्रसन्न हुआ । देवकी के आठवें गर्भ में स्वयं भगवान् आये ॥२५-२६॥ भगवान् इस गर्भ में देवताओं
का कार्य करने तथा पृथिवी का भार उतारने के लिए आये । **राजा जनमेजय ने कहा–** हे मुनिवर्य ! आपने कहा है कि वसुदेवजी कश्यप महर्षि के अंशावतार
थे इसके बाद शेष के अंशावतार बलरामजी आये ॥२७॥ भगवान् नारायण के अंशावतार भगवान् श्रीकृष्ण थे । इसके अतिरिक्त दूसरे देवताओं के जो

संक्षेपेण श्रृणुष्व तान् । वसुदेवः कश्यपांशो देवकी च तथाऽदितिः ॥३०॥ बलदेवस्त्वनंताशो वर्तमानेषु तेषु च । योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण इति श्रुतः ॥३१॥ तस्यांशो वासुदेवस्तु विद्यमाने मुनौ तदा । नरस्तस्यानुजो यस्तु तस्यांशोऽर्जुन एव च ॥३२॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मांशो वाय्वंशो भीम इत्युत । अश्विन्यंशौ ततः प्रोक्तौ माद्रीपुत्रौ महाबलौ ॥३३॥ सूर्यांशः कर्ण आख्यातो धर्मांशो विदुरः स्मृतः । द्रोणो बृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तु शिवांशजः ॥३४॥ समुद्रः शंतुनः प्रोक्तो गंगा भार्या मता बुधैः । देवकस्तु समाख्यातो गंधर्वपतिरागमे ॥३५॥ वसुर्भीष्मो विराटस्तु मरुद्गण इति स्मृतः । अरिष्टस्य सुतो हंसो धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः ॥३६॥ मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथापरः । दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम्॥३७॥ सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररुरुदाहृतः । पावकांशो धृष्टद्युम्नः शिखंडी राक्षसस्तथा ॥३८॥ सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः। द्रुपदो वरुणस्यांशो द्रौपदी च रमांशजा ॥३९॥ दौपदीतनयाः पंच विश्वेदेवांशजाः स्मृताः । कुंती सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गांधारराजजा ॥४०॥ कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वा देववारांगनाः स्मृताः । राजानश्च तथा सर्वे असुराः शक्रनोदिताः ॥४१॥ हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपाल उदाहृतः । विप्रचित्तिर्जरासंधः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि ॥४२॥ कालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा । अरिष्टो बलिपुत्रस्तु ककुद्मी गोकुले हतः ॥४३॥

अंशावतार हुए उन्हें आप बतलायें ॥२८॥ जो देवता पृथिवी की प्रार्थना से उसका भार उतारने के लिए आये थे । **व्यासजी ने कहा–** देवताओं तथा असुरों के जो-जो अंशावतार पृथिवी पर विख्यात हुए उन सबों को मैं संक्षेप में कहा रहा हूँ उसे आप सुनें । वसुदेवजी महर्षि कश्यप के अंश थे, और देवकी अदिति का अंश थी ॥३०॥ बलरामजी शेष के अंश थे । धर्म के पुत्र नारायण ही श्रीकृष्ण भगवान् हुए ॥३१॥ उनके भाई नर के अंश से अर्जुन हुए। धर्म के अंश से युधिष्ठिर थे । वायु के अंश से भीम हुए । अश्विनीकुमार के अंश से माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव हुए । ये दोनों महाबलवान् थे॥३२-३३॥ सूर्य के अंश से कर्ण हुए, धर्म के अंश विदुर थे । बृहस्पति के अंश से द्रोणाचार्य हुए, अश्वत्थामा शिव के अंश से हुए ॥३४॥ शंतनु समुद्र के अंश थे, उनकी पत्नी गंगाजी हुयीं । आगमों में देवक को गन्धर्व का अंश कहा गया है ॥३५॥ भीष्म वसु के अंश थे, विराट मरुद्गण के अंश थे । अरिष्ट नेमि के पुत्र हंसावतार के पुत्र धृतराष्ट्र थे ॥३६॥ कृपाचार्य और कृतवर्मा मरुद्गण के अंश थे । दुर्योधन कलि का अंश था । शकुनि द्वापर का अंशावतार था ॥३७॥ सोम प्ररु नाम के यादव सोम के पुत्र सुवर्चा के अंशावतार थे । धृष्टद्युम्न अग्नि के अंशावतार थे । शिखंडी राक्षस का अंशावतार था ॥३८॥ श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न सनत्कुमार के अंशावतार थे । द्रुपद वरुण के अंश थे, और द्रौपदी लक्ष्मी का अंशावतार थी ॥३९॥ द्रौपदी के पाँचो पुत्र विश्वेदेव के अंशावतार थे । कुन्ती सिद्धि तथा माद्री धृति का अंशावतार थी और गांधारी मति का अंशावतार थी ॥४०॥ भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ अप्सराओं की अंशावतार थीं । इन्द्र के द्वारा प्रेरित सभी असुर राजगण हो गये ॥४१॥ शिशुपाल हिरण्यकशिपु का अंश था । विप्रचिति जरासंध था और प्रह्लाद के

अनुह्लादो धृष्टकेतुर्भगदत्तोऽथ बाष्कलः । लंबः प्रलंबः संजातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत् ॥४४॥ वाराहश्च किशोरश्च दैत्यौ परमदारुणौ मल्लौ तावेव संजातौ ख्यातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥४५॥ दितिपुत्रस्तथाऽरिष्टो गजः कुवलयाभिधः । बलिपुत्री बकी ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः ॥४६॥ यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः । तेषांमंशैस्तु संजातो द्रोणपुत्रो महाबलः ॥४७॥ अंशावतरणे पूर्वंदैतेया राक्षसास्तथा । जाताः सर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे ॥४८॥ एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप । सुराणां चासुराणां च पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥४९॥ यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिं गताः । हरिणा च तदा दत्तौ केशौ खलु सितासितौ ॥५०॥ श्यामवर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः संकर्षणस्तथा । भारावतारणार्थं तौ जातौ देवांशसंभवौ ॥५१॥ अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः ॥५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अंशावतार शल्य थे ॥४२॥ कंस कालनेमि का अंशावतार था । हयग्रीव का अंशावतार केशी था, बलिपुत्र का अंशावतार अरिष्ट था । वृषभासुर का रूप धारण करने वाला वह श्रीकृष्ण के द्वारा गोकुल में मारा गया था । अनुह्लाद का अंशावतार धृष्टकेतु था और वाष्कल का अंशावतार भगदत्त था । प्रलंब ही प्रलम्बासुर हुआ खर नामक राक्षस धेनुकासुर हुआ ॥४३-४४॥ वाराह और किशोर नामक दो भयंकर दैत्य चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवान हुए॥४५॥ दिति का पुत्र गजासुर कुबलयापीड हाथी हुआ । बलि की पुत्री बकी (पूतना) हुयी और उसका छोटा भाई बकासुर हुआ ॥४६॥ यम, रुद्र, काम तथा क्रोध के अंश से अश्वत्थामा हुआ । यह द्रोणाचार्य का महाबलवान् पुत्र था ॥४७॥ पूर्वकाल के सभी राक्षसगण द्वापर युग में राजा हुए । पृथिवी पर से उनका भार उतारने के लिए देवताओं को भी अवतार ग्रहण करना पड़ा ॥४८॥ राजन् पुराणों मे वर्णित इन देवताओं तथा असुरों के अवतार का मैंने वर्णन किया॥४९॥ जब ब्रह्मा इत्यादि देवता प्रार्थना करने के लिए श्रीभगवान् के पास गये तो उस समय भगवान् उन लोगों को एक काला और एक उजला केश दिए ॥५०॥ उन दोनों से ही श्यामवर्ण के कृष्ण हुए तथा गौरवर्ण के बलरामजी हुए । वे दोनों भगवान् के अंशावतार थे और पृथिवी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुए थे ॥५१॥ जो भक्तिभाव से भगवान् के अंशावतार की कथा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर इस संसार में अपने लोगों के साथ आनंदानुभव करता है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना । सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च ॥१॥ अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतंद्रितः। प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिंतयन् ॥२॥ समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः । अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम् ॥३॥ तदेयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया । प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये ॥४॥ रोहिण्यास्तनयो रामो गोकुले समजायत । यतः कंसभयोद्विग्ना संस्थिता सा च कामिनि ॥५॥ कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम् । स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत ॥६॥ वसुदेवस्तु कामिन्याः प्रेमतंतुनियंत्रितः। पुत्रोत्पत्तिं च संचिन्त्य प्रविष्टः सह भार्यया ॥७॥ देवकीगर्भगो विष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये । संस्तुतोऽमरसंघैश्च व्यवर्धत यथाक्रमम् ॥८॥ संजाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रावणे शुभे । प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ते कृष्णपक्षेऽष्टमीदिने ॥९॥ कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः । रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमंदिरे ॥१०॥ अष्टमो देवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति । रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः ॥११॥ हत्वैनं बालकं दैत्याः सुखं**

श्रीकृष्णजन्म की कथा

व्यासजी ने कहा– कंस के द्वारा देवकी के छह पुत्रों के मार दिए जाने पर तथा सातवें गर्भ के गिर जाने पर कंस नारदजी के कथनानुसार आठवें गर्भ की रक्षा करने तथा अपनी मृत्यु के विषय में बड़ी सावधानी के साथ विचार करने लगा ॥१-२॥ अवतार का समय आने पर वसुदेवजी के द्वारा श्रीहरि अपने अंश से देवकी के गर्भ में प्रवेश कर गये ॥३॥ उसी समय योगमाया भी अपनी इच्छानुसार देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए यशोदा के गर्भ में प्रवेश कर गयी ॥४॥ रोहिणी के पुत्र बलरामजी का जन्म गोकुल में हुआ । क्योंकि कंस के भय से भयभीत होकर रोहिणी गोकुल में नंदजी के यहाँ रहती थीं ॥५॥ देवताओं के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी थी ऐसी देवकी को कंस कारागार में रखा था और उनकी रक्षा के लिए सेवको को नियुक्त किया था ॥६॥ अपनी पत्नी के प्रेमपाश में बँधकर तथा पुत्रप्रसव की बात सोचकर वसुदेवजी कारागार में ही अपनी पत्नी के साथ रहने लगे ॥७॥ देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए देवकी के गर्भ में प्रविष्ट भगवान् विष्णु देवसमूह के द्वारा संस्तुत होकर क्रमशः बढ़ने लगे ॥८॥ जब दशवाँ महीना पूरा हो गया तो श्रावण (सौर) महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र के आने पर ॥९॥ भयभीत कंस ने सभी दानवों से कहा– तुमलोग बड़ी सावधानी से देवकी की और उसके गर्भगृह की रक्षा करना ॥१०॥ उसमें देवकी का आठवाँ गर्भ जो मेरा शत्रु है वह जन्म लेगा । मेरी मृत्यु स्वरूप उस बालक की तुमलोग सावधानी से रक्षा करना ॥११॥ दैत्यों उस बालक को मारकर ही मैं सुखपूर्वक अपने घर में सो पाऊँगा । पुनः दुःख के लौटने की शंका से रहित

स्वप्स्यामि मंदिरे । निवृत्तिवर्जिते दुःखे नाशिते चाष्टमे सुते ॥१२॥ खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठंतु धृतकार्मुकाः । निद्रातंद्राविहीनाश्च सर्वत्र निहितेक्षणाः ॥१३॥ व्यास उवाच– **इत्यादिश्यासुरगणान् कृशोऽतिभयविह्वलः । मंदिरं स्वं जगामाशु न लेभे दानवः सुखम् ॥१४॥ निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह । किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम ॥१५॥ बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठंत्यत्र भयानकाः । नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽसि समयः पुरा ॥१६॥ प्रेषितव्यस्त्वया पुत्रो मंदिरे मम मानिनि । पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसा किल ॥१७॥ अपत्यं ते प्रदास्यामि कंसस्य प्रत्ययाय वै । किं कर्तव्यं प्रभो चात्र विषमे समुपस्थिते ॥१८॥ व्यत्ययः संततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः । दूरे तिष्ठस्व कांतात्र लज्जा मेऽतिदुरत्यया ॥१९॥ परावृत्य मुखं स्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तं महाभागं देवकी देवसंमतम् ॥२०॥ बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम् । तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम् ॥२१॥ पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा । पश्य पुत्रमुखं कांत दुर्लभं हि तव प्रभो ॥२२॥ अद्यैनं कालरूपोऽसौ घातयिष्यति भ्रातृजः । वसुदेवस्तथेत्युक्त्वा तमादाय करे सुतम् ॥२३॥ अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः। वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिंताविष्टो बभूव ह ॥२४॥ किं करोमि कथं न स्याद्दुःखमस्य कृते मम । एवं चिंतातुरे तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥२५॥**

होकर मैं इस आठवें पुत्र के विनष्ट हो जाने पर ही अपने भवन में सो सकूँगा ॥१२॥ तुमलोग खड्ग, प्रास तथा धनुष धारण करके निद्रा तथा तंद्रा से रहित होकर सब जगह ध्यान रखना ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा**– भयभीत होने के कारण अत्यन्त कृश वह इस प्रकार से असुरों को आदेश देकर शीघ्र ही अपने भवन में चला गया, किन्तु उसे शान्ति नहीं थी ॥१४॥ आधी रात की बेला में देवकी ने वसुदेव से कहा कि महाराज मैं क्या करूँ । यह मेरी प्रसव की बेला है ॥१५॥ यहाँ पर अत्यन्त भयानक राक्षस विद्यमान हैं । बहुत पहले नन्द की पत्नी यशोदा ने प्रतिज्ञा की थी कि तुम मेरे यहाँ अपने पुत्र को भेज देना मैं बड़े ही प्रेम से तुम्हारे पुत्र का पालन करूँगी ॥१६-१७॥ कंस के विश्वास के लिए मैं तुम्हें अपनी सन्तान दे दूँगी । प्रभो ! ऐसी विषम परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए ॥१८॥ हे शौरि ! यह सन्तान की अदला-बदली आप कैसे कर सकेंगे । इस समय मुझे अधिक लज्जा हो रही है, अतएव आप थोड़ा दूर बैठें ॥१९॥ हे स्वामिन् ! आप थोड़ा मुँह फेरकर बैठ जायँ, क्योंकि इसके अतिरिक्त कुछ किया भी नहीं जा सकता है॥२०॥ उसी आधीरात को देवकी ने एक अद्भुत बालक को जन्म दिया । उस शुभ बालक को देखकर देवकी आश्चर्यित हो गयी ॥२१॥ हर्ष के मारे विकसित अंगों वाली देवकी ने अपने पति वसुदेवजी से कहा– हे नाथ ! आप इस बालक का मुख देख लीजिये, क्योंकि बाद में यह दुर्लभ हो जायेगा ॥२२॥ आज इसको काल स्वरूप कंस मार डालेगा । वसुदेवजी ने अच्छा कहकर उस बालक को अपने हाथ में ले लिया ॥२३॥ उस अद्भुत कर्म करने वाले अपने पुत्र का

वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा । वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः ॥२६॥ रक्षपालास्तथा सर्वे कृता निद्राविमोहिताः । विवृतानि कृतान्यष्ट कपाटानि च शृंखलाः ॥२७॥ मुक्त्वैनं नंदगेहे त्वं योगमायां समानय । श्रुत्वैवं वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गतः ॥२८॥ विवृतं द्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप । तमादाय ययावाशु द्वारपालैरलक्षितः ॥२९॥ कालिन्दीतटमासाद्य पूरं दृष्ट्वा सुनिश्चितम् । तदैव कटिदध्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा ॥३०॥ योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभिः । गत्वा तु गोकुलं शौरिर्निशीथे निर्जने पथि ॥३१॥ नन्दद्वारे स्थितः पश्यन्विभूतिं पशुसंज्ञिताम् । तदैव तत्र संजाता यशोदा गर्भसंभवा ॥३२॥ योगमायांशजा देवी त्रिगुणा दिव्यरूपिणी । जातां तां बलिकां दिव्यां गृहीत्वा करपंकजे ॥३३॥ तत्रागत्य ददौ देवी सैरंध्रीरूपधारिणी । वसुदेवः सुतं दत्त्वा सैरंध्री करपंकजे ॥३४॥ तामादाय ययौ शीघ्रं बालिकां मुदिताशयः । कारागारे ततो गत्वा देवक्याः शयने सुताम् ॥३५॥ निःक्षिप्य संस्थितः पार्श्वे चिन्ताविष्टो भयातुरः । रुरोद सस्वरं कन्या तदैवागतसंज्ञकाः ॥३६॥ उत्तस्थुः सेवका राज्ञः श्रुत्वा तद्रुदितं निशि । तमूचुर्भूपतिं गत्वा त्वरितास्तेऽतिविह्वलाः ॥३७॥ देवक्याश्च सुतो जातः शीघ्रमेहि महामते । तदाकर्ण्य वचस्तेषां शीघ्रं भोजपतिर्ययौ ॥३८॥ प्रावृत्तं द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत् । कंस उवाच– **सुतमानय देवक्या**

मुख देखा । अपने पुत्र का मुख देखकर वसुदेवजी चिन्तित हो गये ॥२४॥ मैं क्या करूँ इसके लिए मुझे अत्यधिक कष्ट है । वे जब चिन्तित थे उसी समय आकाशवाणी हुई ॥२५॥ वसुदेवजी को सम्बोधित करके आकाशवाणी ने स्पष्ट शब्दों में कहा– वसुदेव ! इस बालक को लेकर तुम शीघ्र ही गोकुल में पहुँचा दो ॥२६॥ सभी रक्षक सो गये हैं । उठो फाटक के दरवाजे तथा जंजीरें खोल दी गयी हैं ॥२७॥ इस बालक को नन्द के घर छोड़कर वहाँ से योगमाया को लाओ । इस बात को सुनकर वसुदेवजी उस कारागार में गये ॥२८॥ सभी फाटकों के द्वार को खुले हुए देखकर शीघ्रता पूर्वक उस बालक को लेकर द्वारपालों की नजर बचाते हुए शीघ्रता से गोकुल चल पड़े ॥२९॥ यमुना के तटपर पहुँचकर उन्होंने देखा कि यमुना में बहुत बाढ़ है । उसी समय यमुना में कमरभर पानी हो गया ॥३०॥ योगमाया के प्रभाव से वसुदेवजी यमुना पार कर गये । वसुदेवजी आधीरात में निर्जन मार्ग से गोकुल जाकर॥३१॥ नन्द के द्वारपर उन्होंने पशुओं के ऐश्वर्य को देखा । उसी समय वहाँ यशोदा की उत्पन्न योगमाया के अंश से उत्पन्न बालिका को उन्होंने देखा। वह देवी त्रिगुणात्मिका और दिव्यरूप वाली थी । उन्होंने उस दिव्य बालिका को अपने हाथ में लेकर सैरन्ध्री का रूप धारण करने वाली योगमाया ने उस वसुदेवजी को दे दिया । वसुदेव ने सैरन्ध्री के हाथ में उस बालक को दे दिया ॥३३-३४॥ और उस बालिका को लेकर वे प्रसन्नता पूर्वक चल दिए । कारागार में जाकर उस बालिका को देवकी की शय्या पर रखकर भयभीत और चिन्तित होते हुए बगल में खड़े हो गये । वह बालिका जोर से रोने लगी और सभी रक्षक जग गये॥३५-३६॥

वसुदेव महामते ॥३९॥ मृत्युर्मे चाष्टमो गर्भस्तं निहन्मि रिपुं हरिम् । व्यास उवाच– **श्रुत्वा कंसवचः शौरिर्भयत्रस्तविलोचनः ॥४०॥ तामादाय सुतां पाणौ ददौ चाशु रुदन्निव । दृष्ट्वाऽथ दारिकां राजा विस्मयं परमं गतः ॥४१॥ देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम् । वसुदेवः कथं कुर्यादनृतं संकटे स्थितः ॥४२॥ रक्षपालाश्च मे सर्वे सावधाना न संशयः । कुतोऽत्र कन्यका कामं क्व गतः स सुतः किल ॥४३॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यः कालस्य विषमा गतिः । इति संचिंत्य तां बालां गृहीत्वा पादयोः खलः ॥४४॥ पोथयामास पाषाणे निर्घृणः कुलपांसनः। सा करान्निःसृता बाला ययावाकाशमंडलम् ॥४५॥ दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना । किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान्रिपुः ॥४६॥ हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वां नराधमम् । इत्युक्त्वा सा गता कन्या गगनं कामगा शिवा ॥४७॥ कंसस्तु विस्मयाविष्टो गतो निजगृहं तदा । आनाय्य दानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥४८॥ वकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टो भयातुरः । गच्छन्तु दानवाः सर्वे मम कार्यार्थसिद्धये ॥४९॥ जातामात्राश्च हंतव्या बालका यत्र कुत्रचित् । पूतनैषा व्रजत्वद्य बालघ्नी नंदगोकुलम् ॥५०॥ जातमात्रान्विनिघ्नंती शिशूंस्तत्र ममाज्ञया । धेनुको**

उस कन्या का रात्रि में रुदन सुनकर वे शीघ्रता से जाकर राजा कंस को उसकी सूचना दिए ॥३७॥ हे महामते ! देवकी का पुत्र जन्म ले लिया है; आप शीघ्र आइये । उन सबों की इस वाणी को सुनकर कंस शीघ्रता से वहाँ गया ॥३८॥ खुले हुए दरवाजे को देखकर कंस ने वसुदेवजी को बुलाया । कंस ने कहा महामते देवकी के पुत्र को लाओ ॥३९॥ आठवाँ गर्भ ही मेरी मृत्यु है मैं अपने उस शत्रु को मार देता हूँ । **व्यासजी ने कहा–** कंस की वाणी सुनकर वसुदेवजी भयभीत हो गये ॥४०॥ वे रोते हुए उस बालिका को कंस के हाथ में दे दिए । उस बालिका को देखकर कंस अत्यन्त आश्चर्यित हुआ ॥४१॥ नारद की तथा देवताओं की वाणी व्यर्थ हो गयी । इस भयंकर परिस्थिति में वसुदेव भी कोई धोखा नहीं कर सकते हैं ॥४२॥ मेरे रक्षक गण सावधान हैं, यह कन्या कहाँ से आयी और वह पुत्र कहाँ चला गया ॥४३॥ ठीक है काल की गति विचित्र है । उसके विषय में संदेह भी नहीं किया जा सकता है । इस तरह से विचार करके कंस उस बालिका का पैर पकड़कर निर्दयता पूर्वक उसे पत्थर पर पटक दिया । वह बालिका कंस के हाथ से छूटकर आकाश में चली गयी ॥४५॥ वहाँ दिव्यरूप धारण करके वह मधुर स्वर में बोली– पापी मुझको मारने से कौन सा लाभ है ? तुम्हारा बलवान् शत्रु पैदा हो गया है ॥४६॥ हे नराधम ! वे दुराराध्य परमपुरुष तुमको अवश्य मारेंगे । इसतरह से कहकर अपनी इच्छानुसार चलने वाली कल्याणकारिणी देवी आकाशमण्डल में चली गयीं ॥४७॥ कंस भी आश्चर्यित होकर अपने भवन में चला गया । क्रोध तथा भय से युक्त कंस ने बक, धेनुक तथा वत्स आदि दानवों को बुलाकर कहा– हे दानवों ! तुमलोग मेरा काम करने के लिए जाओ ॥४९॥ जहाँ कहीं भी बालक उत्पन्न हुए हों उन सबों को मार डालो । यह मेरी आज्ञा है । बालकों

वत्सकः केशी प्रलंबो बक एव च ।।५१।। सर्वे तिष्ठंतु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया । इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसो ययौ निजगृहं खलः ।।५२।। चिंताविष्टोऽतिदीनात्मा चिंतयित्वैव तं पुनः ।।५३।।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

चतुर्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **प्रातर्नंदगृहे जातः पुत्रजन्ममहोत्सवः । किंवदंत्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि ।।१।। जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसंति हि। पशवो दासवर्गश्च सर्वे ते नन्दगोकुले ।।२।। तेन शंकासमाविष्टो गोकुलं प्रति भारत । नारदेनापि तत्सर्वं कथितं कारणं पुरा ।।३।। गोकुले ये च नंदाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः । देवकीवसुदेवाद्याः सर्वे ते शत्रवः किल ।।४।। इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौ कुलाधमः । जातः कोपमना राजन्कंसः परमपापकृत् ।।५।। पूतना निहता तत्र कृष्णेनामिततेजसा । बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः ।।६।। प्रलंबो निहतस्तेन तथा गोवर्धनो**

को मारने वाली पूतना नंदगोकुल में जाय ।।५०।। मेरी आज्ञा से नवजात सभी शिशुओं को वह मार डाले । वत्सासुर, केशी, प्रलंबासुर और बकासुर भी मेरा कार्य करने के लिए वहीं रहें । इस तरह आज्ञा देकर वह दुष्ट अपने भवन में चला गया ।।५१-५२।। वह चिन्तित तथा दीन होकर उसी बात को सोचने लगा।।५३।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

श्रीकृष्ण चरित्र

व्यासजी ने कहा– कंस ने गुप्तचरों से जब सुना कि प्रातःकाल नन्द के घर पुत्र जन्म महोत्सव मनाया गया ।।१।। वह जानता था कि वसुदेव की पत्नियाँ, पशु, तथा नौकर नन्द के गोकुल में रहते हैं ।।२।। अतएव हे भरतवंशी जनमेजय ! उसको इससे गोकुल के विषय में शंका हो गयी इन सारी बातों को नारदजी ने भी पहले ही कंस को बतलाया था ।।३।। उन्होंने कहा था कि गोकुल में रहने वाले नन्द, उनकी पत्नियाँ, देवकी तथा वसुदेव आदि सब के सब देवताओं के अंश से उत्पन्न हैं ।।४।। इस तरह से नारदजी द्वारा बतलाये जाने के कारण वह कुलाधम, महापापी और अधिक क्रुद्ध हो गया ।।५।।

धृतः । श्रुत्वैतत्कर्म कंसस्तु मेने मरणमात्मनः ॥७॥ तथा विनिहतः केशी ज्ञात्वा कंसोऽतिदुर्मनाः । धनुर्यागमिषेणाशु तावानेतुं प्रचक्रमे॥८॥ अक्रूरं
प्रेषयामास क्रूरः पापमतिस्तदा । आनेतुं रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ ॥९॥ रथमारोप्य गोपालौ गोकुलाद्गांदिनीसुतः । आगतो मथुरायां तु
कंसादेशे स्थितः किल ॥१०॥ तावागत्य तदा तत्र धनुर्भंगं च चक्रतुः । हत्वाऽथ रजकं कामं गजं चाणूरमुष्टिकम् ॥११॥ शलं च तोशलं चैव
निजघान हरिस्तदा । जघान कंसं देवेशः केशेष्वाकृष्य लीलया ॥१२॥ पितरौ मोचयित्वाऽथ गतदुःखौ चकार ह । उग्रसेनाय राज्यं
तद्ददावरिनिषूदनः॥१३॥ वसुदेवस्तयोस्तत्र मौंजीबन्धनपूर्वकम् । कारयामास विधिवद् व्रतबंधं महामनाः ॥१४॥ उपनीतौ तदा तौ तु गतौ
सांदीपनालयम् । विद्याः सर्वाः समभ्यस्य मथुरामागतौ पुनः ॥१५॥ जातौ द्वादशवर्षीयौ कृतविद्यौ महाबलौ । मथुरायां स्थितौ वीरौ सुतावानकदुदुभेः॥१६॥
मागधस्तु जरासंधो जामातृवधदुःखितः । कृत्वा सैन्यसमाजं स मथुरामागतः पुरीम् ॥१७॥ स सप्तदशवारं तु कृष्णेन कृतबुद्धिना ॥ जितः
संग्राममासाद्य मधुपुर्यां निवासिना ॥१८॥ पश्चाच्च प्रेरितस्तेन स कालयवनाभिधः । सर्वम्लेच्छाधिपः शूरो यादवानां भयंकरः ॥१९॥ श्रुत्वा

गोकुल में ही निस्सीमं तेजस्वी कृष्ण ने पूतना, महाबलवान् बकासुर, वत्सासुर तथा धेनुकासुर को मार दिया ॥६॥ वहाँ पर उन्होंने प्रलम्बासुर को मारा तथा गोवर्धन पर्वत को धारण किया । इन सारी बातों को सुनकर कंस ने जान लिया कि मेरी मृत्यु होने वाली है ॥७॥ जब कंस ने सुना कि केशी भी मारा गया तो वह अत्यन्त दुःखी हो गया । उसने धनुर्यज्ञ के बहाने श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाने की योजना बनायी ॥८॥ पापी तथा क्रूर कंस ने अमित विक्रम सम्पन्न श्रीकृष्ण और बलराम का वध करने के लिए उन दोनों को लाने के लिए अक्रूर को भेजा ॥९॥ गंदिनी के पुत्र अक्रूरजी श्रीकृष्ण और बलराम को रथपर बैठाकर कंस के आदेशानुसार गोकुल से मथुरा लाये ॥१०॥ मथुरा में उन दोनों ने धनुष को तोड़ दिया । धोबी, कुबलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक, शल तथा तोशल को श्रीहरि ने मार दिया । देवेश श्रीकृष्ण ने केश पकड़कर लीला पूर्वक कंस को भी मार दिया ॥१२॥ इसके पश्चात् उन्होंने अपने माता-पिता को कंस के कारागार से मुक्त करके उन्हें सुखी बनाया । शत्रुओं का बध करने वाले श्रीहरि ने उग्रसेन को राज्य प्रदान कर दिया ॥१३॥ इसके पश्चात् महामना वसुदेवजी ने उन दोनों (बलराम तथा श्रीकृष्ण) का मौञ्जी बन्धन करके सविधि यज्ञोपवीत कराया ॥१४॥ उपनयन संस्कार के बाद श्रीकृष्ण और बलरामजी विद्याध्ययन करने के लिए संदीपनि नामक आचार्य के आश्रम में गये । विद्या का अध्ययन करके वे दोनो मथुरा लौट आये ॥१५॥ विद्याध्ययन करने के बाद वे दोनों बारह वर्ष के हो गये । वे दोनों महाबलवान् वसुदेवजी के पुत्र मथुरा मे ही रहने लगे ॥१६॥ मगध का राजा जरासन्ध अपने दामाद के मारे जाने के कारण अत्यन्त दुःखी था । वह विशाल सेना के साथ मथुरा आ गया ॥१७॥ मथुरा में निवास करते हुए बुद्धिमान श्रीकृष्ण ने जरासंघ को

यवनमायांतं कृष्णः सर्वान् यदूत्तमान् । आनाय्य च तथा राममुवाच मधुसूदनः ॥२०॥ भयं नोऽत्र समुत्पन्नं जरासंधान्महाबलात् । किं कर्तव्यं महाभाग यवनः समुपैति वै ॥२१॥ प्राणत्राणं प्रकर्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम् । सुखेन स्थीयते यत्र स देशः खलु पैतृकः ॥२२॥ सदोद्वेगकरः कामं किं कर्तव्यं कुलोचितम् । शैलसागरसान्निध्ये स्थातव्यं सुखमिच्छता ॥२३॥ यत्र वैरिभयं न स्यात्स्थातव्यं तत्र पंडितैः । शेषशय्या समाश्रित्य हरिः स्वपिति सागरे ॥२४॥ तथैव च भयाद्भीतः कैलासे त्रिपुरार्दनः । तस्मान्नात्रैव स्थातव्यमस्माभिः शत्रुतापितैः ॥२५॥ द्वारवत्यां गमिष्यामः सहिताः सर्व एव वै । कथिता गरुडेनाथ रम्या द्वारावती पुरी ॥२६॥ रैवताचलसान्निध्ये सिंधुकूले मनोहरा । व्यास उवाच– तच्छुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुङ्गवाः ॥२७॥ गमनाय मतिं चक्रुः सकुटुम्बाः सवाहनाः । शकटानि तथोष्ट्राश्च वाम्यश्च महिषास्तथा ॥२८॥ धनपूर्णानि कृत्वा ते निर्ययुर्नगराद्बहिः । रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः ॥२९॥ अग्रे कृत्वा प्रजाः सर्वाश्चेलुः सर्वे यदूत्तमाः । कतिचिद्दिवसैः प्रापुः पुरीं द्वारवतीं किल ॥३०॥ शिल्पिभिः कारयामास जीर्णोद्धारं हि माधवः । संस्थाप्य यादवांस्तत्र तावेतौ बलकेशवौ ॥३१॥ तरसा मथुरामेत्य

सत्रह बार परास्त किया ॥१८॥ इसके बाद जरासंध ने सभी म्लेच्छों के स्वामी तथा वीर एवं मथुरा के लिए भयंकर कालयवन को प्रोत्साहित किया ॥१९॥ श्रीकृष्ण भगगवान् ने जब सुना कि कालयवन आ रहा है तो उन्होंने बलरामजी तथा सम्पूर्ण यादव सेना को बुला कर कहा ॥२०॥ इस समय हमलोगों को कालयवन तथा जरासन्ध दोनों से भय है । दोनों मथुरा पर आक्रमण करने आ रहे हैं । ऐसी स्थिति में हमलोगों को क्या करना चाहिए ?॥२१॥ मनुष्य को चाहिए कि वह गृह, धन तथा सेना का परित्याग करके सर्वप्रथम अपने प्राणों की रक्षा करे । जहाँ पर मनुष्य सुखपूर्वक रहता है, वही उसका पैतृक देश हो जाता है ॥२२॥ जहाँ रहने पर सदा उद्वेग ही बना रहे उस पैतृक स्थान से भी क्या लाभ ?। सुख चाहने वाले व्यक्ति को पर्वत तथा समुद्र के सन्निकट रहना चाहिए ॥२३॥ जहाँ पर शत्रु का भय न हो पण्डितों (ज्ञानियों) को वहाँ ही रहना चाहिए । श्रीहरि भी शेष की शय्या पर सागर में सोते हैं ॥२४॥ इसी तरह शत्रुओं से भयभीत होकर शङ्करजी कैलास पर सोते हैं । अतएव शत्रु से पीड़ित होने के कारण हम लोगों को यहाँ नहीं रहना चाहिए॥२५॥ गरुड़ ने मनोहर द्वारकापुरी को बतलाया है, अतएव हम सबलोग द्वारकापुरी चले जायेंगे ॥२६॥ रैवत पर्वत के सन्निकट में वह मनोहर पुरी विद्यमान है । **व्यासजी ने कहा**– भगवान् श्रीकृष्ण की नीतियुक्त इस वाणी को सुनकर सभी यादव सहमत हो गये ॥२७॥ वे अपने कुटुम्ब तथा वाहन के साथ द्वारका जाने का निश्चय कर लिए । उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को आगे किया तथा गाड़ी, ऊँट, घोड़ी तथा भैसों पर अपना समान लाद लिया ॥२८-२९॥ प्रजाओं को आगे करके सभी यदुवंशी वीर चल पड़े और वे कुछ ही दिनों में द्वारका पहुँच गये ॥३०॥ माधव ने शिल्पियों से

संस्थितौ निर्जनां पुरीम् । तदा तत्रैव संप्राप्तो बलवान् यवनाधिपः ॥३२॥ ज्ञात्वैनमागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद्बहिः । पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः ॥३३॥ पीताम्बरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः । तं दृष्ट्वा पुरतो यांतं कृष्णं कमललोचनम् ॥३४॥ यवनोऽपि पदातिः सन्पृष्ठतोऽनुगतः खलः । प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुंदो महाबलः ॥३५॥ प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः । तत्रैवांतर्दधे विष्णुर्मुचुकुंदं समीक्ष्य च ॥३६॥ तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत् । मत्वा तं वासुदेवं स पादेनाताडयन्नृपम् ॥३७॥ प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः । तं दग्ध्वा मुचुकुंदोऽथ ददर्श कमलेक्षणम् ॥३८॥ वासुदेवं सदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम् । जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः ॥३९॥ उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि । अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपालस्वयंवरात् ॥४०॥ राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः । ततो जांबवतीं सत्यां मित्रविंदां च भामिनीम् ॥४१॥ कालिन्दीं लक्ष्मणां भद्रां तथा नाग्नजितीं शुभाम् । पृथक्पृथक्समानीयाप्युपयेमे जनार्दनः ॥४२॥ अष्टावेव महीपाल पत्न्यः परमशोभनाः । प्रासूत रुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम् ॥४३॥ जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः । हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छंबरेण बलीयसा॥४४॥

उस नगरी का जीर्णोद्धार कराया । सबलोगों को द्वारका में रखकर बलराम तथा श्रीकृष्ण मथुरा आ गये ॥३१॥ और उस निर्जन मथुरा नगरी में रहने लगे। उसके बाद वहाँ बलवान् कालयवन आ गया ॥३२॥ कालयवन को आये हुए जानकर श्रीकृष्ण नगर से बाहर आये । उस यवन के सामने पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण हँसते हुए पैदल ही आये । आते हुए कमलनयन श्रीकृष्ण को सामने देखकर कालयवन पैदल ही उनके पीछे-पीछे चल पड़ा । और चलते हुए वहाँ पहुँचा जहाँ पर महाबलवान् राजर्षि मुचकुन्द सोये थे ॥३३-३५॥ कालयवन के साथ श्रीभगवान् वहाँ मुचकुन्द को देखकर छिप गये ॥३६॥ वहाँ पर कालयवन भी गया और सोये हुए मुचकुन्द को देखा । उनको वासुदेव ही मानकर कालयवन ने उन्हें पैर से मारा ॥३७॥ जगकर क्रोध से लाल आँखें किए मुचकुन्द ने कालयवन को भस्म कर दिया । कालयवन को भस्म करने के बाद मुचकुन्द ने कमलनयन श्रीभगवान् को देखा ॥३८॥ देवों के स्वामी व्रासुदेव को प्रणाम करके मुचकुन्द वन में चले गये और भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी के साथ द्वारका चले गये ॥३९॥ उग्रसेन को राजा बनाकर भगवान् अपनी रुचि के अनुसार विहार करने लगे । उन्होंने शिशुपाल के स्वयम्बर में रुक्मिणी का अपहरण किया ॥४०॥ उन्होंने रुक्मिणी के साथ राक्षस विधि से विवाह किया । इसके पश्चात् श्रीहरि जाम्बवती, सत्या, भित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा तथा नग्नजीती को अलग-अलग स्थानों से लाकर उनके साथ विवाह किए ॥४१-४२॥ राजन् ! श्रीभगवान् की अत्यन्त सुन्दर ये आठ पत्नियाँ थीं । समयानुसार रुक्मिणी ने अत्यन्त सुन्दर प्रद्युम्न नामक पुत्र को जन्म दिया ॥४३॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उस बालक का जातकर्म आदि संस्कार किया । किन्तु बलवान् शम्बासुर ने सूतिका गृह से ही उसका अपहरण कर लिया ॥४४॥

नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यै समर्पितः । वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रं शोकसमन्वितः ॥४५॥ जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा । वृत्रासुरादयो दैत्या लीलयैव यया हताः ॥४६॥ ततोऽसौ योगमायायाश्चकार परमां स्मृतिम् । वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः॥४७॥ श्रीकृष्ण उवाच– मातर्मयाऽतितपसा परितोषिता त्वं प्राग्जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चिताऽसि । धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः ॥४८॥ सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे केनापि दुष्टमनसाऽप्यथ कौतुकाद्वा । मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥४९॥ दुर्गो महानतितरां नगरी सुगुप्ता तत्रापि मेऽतिसदनं किल मध्यभागे । अन्तःपुरे च पिहितं ननु सूतिगेहं बालो हृतः खलु तथापि ममैव दोषात् ॥५०॥ नाहं गतः परपुरं न च यादवाश्च रक्षावतीव नगरी किल वीरवर्यैः। माया तवैव जननी प्रकटप्रभावा मे बालकः परिहृतः कुहकेन केन ॥५१॥ नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं को वेद मंदमतिरल्पविदेव देही । क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा हर्ताऽम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम् ॥५२॥ चित्रं न तेऽत्र पुरतो मम मातृगर्भो नीतस्त्वयाऽर्भसमये किल माययाऽसौ । यं रोहिणी हलधरं सुषुवे प्रसिद्धं दूरे स्थिता पतिपरा मिथुनं विनाऽपि ॥५३॥ सृष्टिं करोषि जगतामनुपालनं च नाशं तथैव पुनरप्यनिशं गुणैस्त्वम्। को वेद तेऽम्ब

उस बालक को अपनी नगरी में लाकर उसने उसे मायावती को दे दिया । बालक का अपहरण देखकर श्रीकृष्ण शोकन्वित हो गये ॥४५॥ उन्होंने भक्तिपूर्वक देवी की शरणागति की । जो भगवान् वृत्रासुर जैसे बड़े-बड़े दैत्यों को मार डाले थे । उन्होंने सुन्दर वाणी में देवी की स्तुति की ॥४७॥ **श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा–** हे माँ ! पूर्वजन्म के नर-नारायणावतार में मैंने आपकी बदरिकाश्रम में पुष्प एवं फल से बहुत पूजा की थी । माँ मेरे उस भक्तिभाव को आप भूल गयी हैं क्या ?॥४८॥ किसी ने अपनी दुष्टतामयी भावना से अथवा खिलवाड़ करने के लिए अथवा मेरे सम्मान का विनाश करने के लिए सूतिकागृह से ही मेरे पुत्र का अपहरण कर लिया है । माँ चाहे किसी भी भावना से यह अपहरण हुआ हो आपके भक्तजनों के प्रति किया गया यह कार्य आपके लिए लज्जा कारक ही है ॥४८॥ मेरी यह नगरी अच्छी तरह से सुरक्षित है । यह बहुत बड़ा किला है । उसमें भी मेरा भवन बीच में है । उसमें भी सूतिका गृह अन्तःपुर के भीतर है । उस समय भी मेरे बालक का अपहरण मेरे ही दोष के कारण हो गया ॥५०॥ मैं कहीं बाहर भी नहीं गया था और न तो यादववीर ही कहीं गये थे । मेरी नगरी की रक्षा बड़े-बड़े वीर करते हैं । हे माँ ! यह आपकी माया ही है कि किसी छली व्यक्ति ने मेरे बालक का अपहरण कर लिया है ॥५१॥ हे माँ ! मैं आपके अत्यन्त गुप्तचरित को नहीं जानता हूँ । अल्पज्ञ कोई भी शरीरधारी आपके चरित्र को नहीं जान सकता है । मेरे सैनिकों ने भी नहीं देखा कि वह कहाँ चला गया। लगता है कि आपने ही मेरे सैनिकों की आँखों के समक्ष पर्दा डाल दिया था ॥५२॥ यदि आपने ऐसा किया

चरितं दुरितांतकारि प्रायेण सर्वमखिलं विहितं त्वयैतत् ॥५४॥ उत्पाद्य पुत्रजननप्रभवं प्रमोदं दत्त्वा पुनर्विरहजं किल दुःखभारम् । त्वं क्रीडसे सुललितैः खलु तैर्विहारैर्नो चेत्कथं मम सुताप्तिरतिर्वृथा स्यात् ॥५५॥ माताऽस्य रोदिति भृशं कुररीव बाला दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव। कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रतिमप्रभावा मातस्त्वमेव शरणं भवपीडितानाम् ॥५६॥ सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो दुःखस्य देवि भवनं विबुधा वदन्ति। तत्किं करोमि जननि प्रथमे प्रनष्टे पुत्रे ममाद्य हृदयं स्फुटतीव मातः ॥५७॥ यज्ञं करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा दैवं च पूजनमथाखिलदुःखहा त्वम्। मातः सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाशु त्वं वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय ॥५८॥ व्यास उवाच– **एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा। प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम् ॥५९॥** श्रीदेव्युवाच– **शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयं ते पुरातनः । तस्य योगेन पुत्रस्ते शम्बरेण हृतो**

है तो इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है; क्योंकि पहले आपने माता देवकी के पाँच महीने के गर्भ को उठाकर माता रोहिणी के गर्भ में डाल दिया था । इसमें बलरामजी का जन्म ही प्रत्यक्ष प्रमाण है, क्योंकि पति समागम के बिना ही माता रोहिणी ने बलरामजी को कैसे जन्म दिया ॥५३॥ आप अपने तीनों गुणों के द्वारा जगत् की सृष्टि, पालन और उसका विनाश करती हैं । हे माँ ! आपका चरित्र पापों का विनाश करने वाला है । अतएव यह सम्पूर्ण जगत् आपका ही कार्य हैं ॥५४॥ पहले तो आपने पुत्र का जन्म प्रदान करके मुझे प्रमोद प्रदान किया, इसके पश्चात् उसके अपहरण के द्वारा अत्यधिक दुःख का भार मेरे ऊपर डालकर आप अपने अत्यन्त मनोहर विहारों के द्वारा किस रस का अनुभव कर रही हैं ? अन्यथा मुझको व्यर्थ ही पुत्र की प्राप्ति क्यों होती?॥५५॥ हे माँ ! उस बालक की माँ कुररी पक्षी के समान अत्यधिक रोती रहती है । मेरे सन्निकट में आकर वह दुःख को और अधिक बढ़ा देती है । हे निस्सीम प्रभाव वाली माँ ! आप उस कष्ट को नहीं जानती हैं । हे माँ ! संसार के भय से पीड़ित जीवों के लिए आप ही एकमात्र शरण (रक्षक) हैं ॥५६॥ हे माँ ! पुत्र का जन्म होना सुख की पराकाष्ठा है और पुत्र का होकर विनष्ट हो जाना दुःख की पराकाष्ठा है । इस प्रकार से विद्वान पुरुष बतलाते हैं । अतएव हे माँ ! अपने पहले पुत्र के विनष्ट हो जाने से लगता है मेरा हृदय फट जायेगा, मैं क्या करूँ ?॥५७॥ हे माँ ! आपको प्रसन्न करने के लिए मैं अम्बायज्ञ करूँ, अथवा नवरात्र व्रत करूँगा । मैं सविधि आपकी पूजा करूँगा; कयोंकि समस्त दुखों को विनष्ट करने वाली तो आप ही हैं । यदि मेरा पुत्र इस संसार में जी रहा हो तो आप उसे मुझको शीघ्र दिखा दीजिये । आप ही सभी प्रकार के शोकों को विनष्ट करने में समर्थ हैं ॥५८॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से अक्लिष्ट (कल्याणकारी) कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रत्यक्ष दर्शन देकर जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण से देवी ने कहा ॥५९॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे देवेश ! आप शोक न कीजिये आपको पूर्वकाल में ही यह शाप मिल गया था । उसी के कारण शम्बरासुर

बलात् ॥६०॥ अतः स षोडशे वर्षे हत्वा तं शम्बरं बलात् । आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्न संशयः ॥६१॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी चंडिका चंडविक्रमा । भगवानपि पुत्रस्य शोकं त्यक्त्वाऽभवत्सुखी ॥६२॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

राजोवाच– **संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव । वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिं विलोक्य च ॥१॥ नारायणांशसंभूतो वासुदेवः प्रतापवान् । कथं स सूतिकागाराद्धृतो बालो हरेरपि ॥२॥ सुगुप्तनगरे रम्ये गुप्तेऽथ सूतिकागृहे । प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः॥३॥ न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम् । जायते महदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत ॥४॥ ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन्न ज्ञातं केशवेन यत् । हरणं तत्र संस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात् ॥५॥** व्यास उवाच– **माया बलवती राजन्नराणां बुद्धिमोहिनी । शांभवी विश्रुता लोके को वा मोहं न गच्छति ॥६॥**

बलपूर्वक आपके पुत्र का अपहरण कर लिया है । मेरी कृपा से आपका वह पुत्र सोलहवें वर्ष में आ जायेगा । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥६१॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर प्रचण्ड पराक्रम सम्पन्न देवी अन्तर्धान हो गयीं । श्रीभगवान् भी अपने पुत्र के शोक का परित्याग करके सुखी हो गये ॥६२॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

भगवती पराशक्ति की सर्वज्ञता का वर्णन

राजा जनमेजय ने कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! विष्णु भगवान् के अंशावतार भगवान् श्रीकृष्ण के कष्ट को देखकर तो मुझको भी सन्देह होता है ॥१॥ प्रतापी भगवान् वासुदेव भगवान् नारायण के अंश से अवतीर्ण थे ऐसी स्थिति में श्रीहरि के भी सूतिकागृह से बालक का अपहरण कैसे हो गया ?॥२॥ अच्छी तरह से सुरक्षित नगर के भीतर मनोहर सूतिकागृह में प्रवेश करके उस शम्बरासुर ने कैसे बालक का अपहरण कर लिया ?॥३॥ यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि उसे वासुदेव भी नहीं जान सके । हे व्यासजी ! मेरे मन में इस बात से बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! आप बतलायें कि किस

मानुषं जन्म संप्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः । भवन्ति देहजाः कामं न देवा नासुरास्तदा ॥७॥ क्षुत्तृण्निद्रा भयं तंद्रा व्यामोहः शोकसंशयः । हर्षश्चैवाभिमानश्च जरामरणमेव च ॥८॥ अज्ञानं ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्याऽसूया मदः श्रमः । एते देहभवा भावाः प्रभवंति नराधिप ॥९॥ यथा हेममृगं रामो न बुबोध पुरोगतम् । जानक्या हरणं चैव जटायुमरणं तथा ॥१०॥ अभिषेकदिने रामो वनवासं न वेद च । तथा न ज्ञातवान्रामः स्वशोकान्मरणं पितुः ॥११॥ अज्ञवद्विचचारासौ पश्यमानो वने वने । जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात् ॥१२॥ सहायान् वानरान्कृत्वा हत्वा शक्रसुतं बलात् । सागरे सेतुबंधं च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम् ॥१३॥ प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान् । संग्रामं कृतवान्घोरं दुःखं प्राप रणाजिरे ॥१४॥ बंधनं नागपाशेन प्राप रामो महाबलः । गरुडान्मोक्षणं पश्चादन्वभूद्रघुनन्दनः ॥१५॥ अहनद्रावणं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् । मेघनादं निकुम्भं च कुपितो रघुनन्दनः ॥१६॥ अदूष्यत्वं च जानक्या न विवेद जनार्दनः । दिव्यं च कारयामास ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम् ॥१७॥ लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम् । अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः ॥१८॥ न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ ।

कारण से भगवान् श्रीकृष्ण भी उस शम्बरासुर को नहीं जान सके । न तो वे सूतिकागृह से बालक के अपहारण को ही जान सके ॥५॥ **व्यासजी ने कहा**— हे राजन् ! मनुष्यों की बुद्धि को मोहित कर देने वाली माया अत्यन्त बलवती है । शाम्भवी माया प्रख्यात है । उसके कारण कौन मोहित नहीं हो सकता है ?॥६॥ मनुष्य का जन्म होने पर शरीर में उत्पन्न होने वाले सभी गुण मनुष्य के हो जाते हैं, उस समय देवता अथवा असुर के गुण नहीं रह जाते हैं॥७॥ हे राजन् ! देह में भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, व्यामोह, शोक, सन्देह, हर्ष, अभिमान, जरा, मरण, अज्ञान, ग्लानि, द्वेष, राग, असूया, ईर्ष्या मद तथा श्रम ये सभी उत्पन्न हो जाते हैं ॥८-९॥ उदाहरणार्थ सामने आये हुए सुवर्ण मृग को देखकर श्रीराम उसे पहचान नहीं सके कि यह राक्षस है । उसी के फलस्वरूप जानकी का अपहरण हो गया । तथा जटायू का मरण हो गया ॥१०॥ श्रीराम को यह भी नहीं पता चला कि अभिषेक के दिन मुझे वन में जाना पड़ेगा । वे यह भी नहीं जान पाये कि हमारे शोक में पिताजी की मृत्यु हो गयी ॥११॥ वे अज्ञानी के समान सीता को खोजते हुए वन में भटकते रहे । वे यह भी नहीं जाने कि रावण ने सीता का बलपूर्वक अपहरण कर लिया है । वानरों को सहायक बनाकर इन्द्र के पुत्र बलि का वध करके, सागर के ऊपर पुल का निर्माण करके और समुद्र को पार करके ॥१२-१३॥ सभी दिशाओं में सीता की खोज करने के लिए वानरों को भेजे और भयंकर संग्राम करके वे युद्ध भूमि में दुःख को भी प्राप्त किये ॥१४॥ महबलवान् श्रीराम नागपाश में बँध गये । बाद में वे गरुड़जी की सहायता से बन्धन से मुक्त हुए ॥१५॥ श्रीराम रघुनंदन ने क्रुद्ध होकर युद्ध के मैदान में महाबलवान् रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा निकुम्भ का वध किया ॥१६॥ वे स्वयं जनार्दन थे परन्तु जानकी की निर्दोषता को भी नहीं जान सके और प्रज्ज्वलित अग्नि में सीता को प्रवेश कराकर वे सीता को शुद्ध बनाये ॥१७॥ उसके बाद

मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ ॥१९॥ पातालगमनं चैव जानक्या ज्ञातवान्न च । राघवः कोपसंयुक्तो भ्रातरं हंतुमुद्यतः ॥२०॥ कालस्यागमनं चैव न विवेद खरांतकः । मानुषं देहमाश्रित्य चक्रे मानुषचेष्टितम् ॥२१॥ तथैव मानुषान्भावान्नात्र कार्या विचारणा। पूर्वं कंसभयात्प्राप्तो गोकुले यदुनन्दनः ॥२२॥ जरासंधभयात्पश्चाद्द्वारवत्यां गतो हरिः । अधर्मं कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरणं च यत् ॥२३॥ शिशुपालहृतायाश्च जानन् धर्मं सनातनम् । शुशोच बालकं कृष्णः शंबरेण हृतं बलात् ॥२४॥ मुमोद जानन्पुंत्रं तं हर्षशोकयुतस्ततः । सत्यभामाज्ञया यत्तु युयुधे स्वर्गतः किल ॥२५॥ इन्द्रेण पादपार्थं तु स्त्रीजितत्वं प्रकाशयन् । जहार कल्पवृक्षं यः पराभूय शतक्रतुम् ॥२६॥ मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधरः प्रभुः । बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम् ॥२७॥ दत्त्वाऽथ कानकं कृष्णं मोचयामास भामिनी । दृष्ट्वा पुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ॥२८॥ कृष्णं जांबवती दीना ययाचे संततिं शुभाम् । स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः ॥२९॥ उपमन्युर्मुनिर्यत्र

वे लोकापवाद के भय से अपनी प्रियतमा सीता का परित्याग कर दिए, यद्यपि वे जानते थे कि सीता शुद्ध हैं ॥१८॥ श्रीराम यह भी नहीं जान सके कि कुश तथा लव उनके ही पुत्र हैं अतएव महर्षि वाल्मीकि उन्हें बतलाये कि वे दोनों महाबलवान् उनके ही पुत्र हैं ॥१९॥ श्रीराम जानकी के पाताल गमन को भी नहीं जान सके । क्रुद्ध होकर श्रीराम अपने भाई का वध करने के लिए तैयार हो गये ॥२०॥ खर नामक राक्षस का वध करने वाले श्रीराम काल के भी आगमन को नहीं जान सके । वे मानवशरीर धारण करके मनुष्य के समान चेष्टा करते रहे ॥२१॥ इसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण में भी मनुष्य के सारे भाव विद्यमान थे । इसमें किसी भी प्रकार का विचार करने की आवश्यकता नहीं है । पहले तो वे कंस के भय से गोकुल में चले गये ॥२२॥ उसके पश्चात् वे जरासंध के भय से द्वारकापुरी में चले गये । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण करके अधर्म भी किया ॥२३॥ श्रीकृष्ण सनातन धर्म को जानते थे । उन्हें इस बात का भी पता था कि रुक्मिणी का शिशुपाल के साथ विवाह तय हो चुका है । शम्बरासुर के द्वारा बलपूर्वक बालक का अपहरण कर लिए जाने पर वे शोक भी किए ॥२४॥ भगवती के द्वारा जब उनको पता चला की बालक जीवित है तो शोक का परित्याग करके हर्षित हो गये । वे सत्यभामा के कहने से स्वर्ग में जाकर युद्ध किए ॥२५॥ उससे तो यह सिद्ध होता है कि वे स्त्री के वशवर्ती थे । इन्द्र को परास्त करके वे कल्पवृक्ष को संसार में लाये ॥२६॥ अपनी मानिनी पत्नी सत्यभामा का मान रखने के लिए वे श्रीभगवान् चित्रबन गये और सत्यभामा ने उन्हें वृक्ष में बाँध कर नारदजी को दान में दे दिया ॥२७॥ उसके बाद बदले में सुवर्ण प्रदान करके सत्यभामा ने उनको नारदजी से छुड़ाया । अत्यधिक गुण सम्पन्न प्रद्युम्न इत्यादि पुत्रों को देखकर जाम्बवती ने अपने सन्तान के लिए दीन होकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना की । एतदर्थ श्रीकृष्ण तपस्या करने के लिए पर्वत पर चले गये ॥२९॥ वहाँ

शिवभक्तः परंतपः । उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः ॥३०॥ जग्राह पुत्रकामस्तु मुंडी दंडी बभूव ह । उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः ॥३१॥ जजाप शिवमंत्रं तु शिवध्यानपरो हरिः । द्वितीये तु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदा हरिः ॥३२॥ तृतीये वायुभक्षस्तु पदांगुष्ठाग्रसंस्थितः। षष्ठे तु भगवान्रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः ॥३३॥ दर्शनं च ददौ तत्र सोमः सोमकलाधरः । आजगाम वृषारूढः सुरैरिंद्रादिभिर्वृतः ॥३४॥ ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगंधर्वसेवितः । संबोधयन्वासुदेवं शंकरस्तमुवाच ह ॥३५॥ तुष्टोऽस्मि कृष्ण तपसा तवोग्रेण महामते । ददामि वांछितान्कामान्ब्रूहि यादवनंदन ॥३६॥ मयि दृष्टे कामपूरे कामशेषो न संभवेत् । व्यास उवाच– तं दृष्ट्वा शंकरं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः ॥३७॥ पपात पादयोस्तस्य दंडवत्प्रेमसंयुतः । स्तुतिं चकार देवेशो मेघगंभीरया गिरा ॥३८॥ स्थितस्तु पुरतः शंभोर्वासुदेवः सनातनः । कृष्ण उवाच– देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन ॥३९॥ विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्यकारक । नीलकंठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः ॥४०॥ शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तु ते । धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत ॥४१॥ जन्म मे सफलं जातं नत्वा ते पादपंकजम् । बद्धोऽहं स्त्रीमयैः पाशैः संसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो॥४२॥

पर भगवान् शिव के भक्त उपमन्यु विद्यमान थे । श्रीहरि ने उपमन्यु को अपना गुरु बनाकर पशुपति दीक्षा ग्रहण की ॥३०॥ और वे मुण्डी-दण्डी हो गये। एक महीने तक फलाहार करके उन्होंने कठोर तपस्या की ॥३१॥ वे भगवान् शंकर का ध्यान करते हुए शिवमंत्र का जप किए । दूसरे मास में केवल जल पीकर तथा एक पैर पर खड़ा होकर श्रीहरि तपस्या करते रहे ॥३२॥ तीसरे मास में वायु पीकर अपने पैर के अंगूठे पर खड़ा होकर वे तपस्या किए । इस तरह छठे महीने में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये ॥३३॥ चन्द्रमा की कला को धारण करने वाले शंकरजी इन्द्र आदि देवताओं के साथ अपने नन्दी बैल पर सवार होकर आये ॥३४॥ शंकरजी के साथ ब्रह्माजी, विष्णु भगवान् तथा गन्धर्व गण विद्यमान थे । भगवान् वासुदेव को संबोधित करके शंकरजी ने कहा ॥३५॥ हे महामते ! श्रीकृष्ण ! मैं आपकी उग्र तपस्या से प्रसन्न हूँ । हे यदुनंदन आप अपना अभिलषित वरदान माँगे मैं उसे देना चाहता हूँ ॥३६॥ कामनाओं को पूर्ण करने वाले मेरे दर्शन के हो जाने पर सारी कामना पूर्ण हो जाती है । **व्यासजी ने कहा–** शंकरजी को प्रसन्न देखकर भगवान् कृष्ण प्रेमपूर्वक उनके चरणों पर दण्ड के समान पड़ गये और शंकरजी के समक्ष खड़े होकर सनातन वासुदेव ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से शंकरजी की स्तुति किए ॥३७-३८॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–** हे सबो के कष्ट को दूर करने वाले देवताओं के भी आराध्य,जगत् के स्वामिन्! हे सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप ! हे दैत्यों का विनाश करने वाले ! हे त्रैलोक्य की रचना करने वाले, आपको नमस्कार है । हे नीलकंठ ! हे त्रिशूल धारण करने वाले शंकरजी ! आपको बार-बार नमस्कार है ॥४०॥ हे पार्वतीबल्लभ ! तथा दक्षप्रजापति के यज्ञ का विनाश करने वाले आपको नमस्कार है ।

शरणं तेऽद्य संप्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन । संप्राप्य मानुषं जन्म खिन्नोऽहं दुःखनाशन ॥४३॥ त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना । गर्भवासे महद्दुःखं प्राप्तं मदनदाहक ॥४४॥ जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले । जातोऽहं नंदगोपालो बल्लवाज्ञाकरस्तथा ॥४५॥ गोरजःकीर्णकेशस्तु भ्रमन्वृन्दावने वने । म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः ॥४६॥ त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो । ययातिशापबद्धेन तस्मै दत्तं भयाद्विभो ॥४७॥ राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षापरेण च । उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया ॥४८॥ राजाऽसौ यादवानां वै कृतो नः पूर्वजैः किल । गार्हस्थ्यं दुःखदं शम्भो स्त्रीवश्यं धर्मखंडनम् ॥४९॥ पारतंत्र्यं सदा बंधो मोक्षवार्ताऽत्र दुर्लभा । रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जाम्बवती मम ॥५०॥ प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनांतक । सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै ॥५१॥ लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो । कस्त्वामाराध्य देवेश मुक्तिदं भक्तवत्सलम् ॥५२॥ प्रसन्नं याचते मूढः फलं तुच्छं विनाशि यत् । सोऽयं मायाविमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो॥५३॥ कामिन्या प्रेरितः शंभो मुक्तिदं त्वां जगत्पते । जानामि दुःखदं शंभो संसारं दुःखसाधनम् ॥५४॥ अनित्यं नाशधर्माणं तथापि

हे सुव्रत ! आपका दर्शन पाकर हम धन्य तथा कृतकृत्य हो गये ॥४१॥ आपके चरणों में नमस्कार करके मेरा जन्म सफल हो गया ॥ हे जगद्गुरो मैं संसार में स्त्री रूपी बंधन से बँधा हुआ हूँ ॥४२॥ हे त्रिलोचन आप मेरी रक्षा करें मैं आपके शरण में आया हूँ । हे दुःखों को दूर करने वाले; मैं मनुष्य जन्म प्राप्त करके दुःखी हो गया हूँ ॥४३॥ हे भव ! इस समय संसार से भयभीत तथा शरणागत मेरी आप रक्षा कीजिये । हे कामदेव को भस्म करने वाले! गर्भवास काल में मुझे अत्यधिक कष्ट मिला ॥४४॥ जन्म से ही कंस के भय का मैंने गोकुल में रहते हुए अनुभव किया । इसके बाद मैं नन्दजी के गायों को चराने वाला बन गया और मुझे गोपालों की आज्ञा का पालन करना पड़ा ॥४५॥ उसके बाद गायों के खुर की धूल से सने हुए केशों वाला मैं वृन्दावन में एक वन से दूसरे वन में भटकता रहा । फिर म्लेक्षराज कालयवन के भय से मुझे द्वारका जाना पड़ा ॥४६॥ अपने पैतृक दुर्लभ मथुरा के राज्य को छोड़कर हे विभो ! ययाति के शाप के कारण मैं मथुरा तथा द्वारका का राज्य, धर्म की रक्षा करने के लिए महाराज उग्रसेन को सौंपकर उनका सेवक बना रहा ॥४७॥ हमारे पूर्वज भी उग्रसेन को ही राजा मानते थे । हे शम्भो ! गार्हस्थ्य जीवन दुःखद होता है । इसमें स्त्री के वश में रहना पड़ता है और धर्म छूट जाता है ॥४९॥ इसमें अपने बान्धवों की परतंत्रता बनी रहती है और मोक्ष की वार्ता दुर्लभ हो जांती है । रुक्मिणी के पुत्रों को देखकर मेरी पत्नी जम्बवती ने मुझे पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या करने के लिए प्रेरित किया । हे मदनांतक ! मैने सकाम भावना से पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या की है॥५०-५१॥ हे देवेश ! आप तो मुक्ति प्रदान करने वाले तथा भक्तवत्सल हैं । कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विनाशवान् फल की प्राप्ति के लिए आपको प्रसन्न करके उसकी याचना

विरतिर्न मे । शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मि क्षितिमंडले ॥५५॥ भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यंत्रितः । व्यास उवाच– इत्युक्तवंतं गोविंदं प्रत्युवाच महेश्वरः ॥५६॥ बहवस्ते भविष्यंति पुत्राः शत्रुनिषूदन । स्त्रीणां षोडशसाहस्त्रं भविष्यति शतार्धकम् ॥५७॥ तासु पुत्रा दश दश भविष्यंति महाबलाः । इत्युक्तोपरराामाशु शंकरः प्रियदर्शनः ॥५८॥ उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम् । कृष्ण-कृष्ण महाबाहो संसारेऽस्मिन्नराधिप॥५९॥ गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह । ततो वर्षशतांते तु द्विजशापाज्जनार्दन ॥६०॥ गांधार्याश्च तथा शापद्भविता ते कुलक्षयः । परस्परं निहत्याजौ पुत्रास्ते शापमोहिताः ॥६१॥ गमिष्यंति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथाऽपरे । सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम् ॥६२॥ शोकस्तत्र न कर्तव्यो भवितव्यं प्रति प्रभो । अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते ॥६३॥ तत्र शोको न कर्तव्यो नूनं मम मतं सदा । अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन ॥६४॥ चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यंति मृते त्वयि । व्यास उवाच– इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शंभुः सोमः ससुरमंडलः ॥६५॥ उपमन्युं प्रणम्याथ कृष्णोऽपि द्वारकां ययौ । यस्माद्ब्रह्मादयो राजन्संति यद्यप्यधीश्वराः ॥६६॥ तथापि मायाकल्लोलयोगंक्षुभितांतराः।

करेगा । माया के कारण अज्ञानी होकर आपसे पुत्रजन्य सुख की याचना करता हूँ ॥५२-५३॥ हे शम्भो ! मैंने पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर मुक्ति प्रदान करने वाले तथा जगत् के स्वामी आपसे इस प्रकार की प्रार्थना की है । हे शम्भो ! मैं जानता हूँ कि संसार दुःखदायी होता है ॥५३-५४॥ यद्यपि संसार अनित्य तथा नाशवान् है फिर भी मुझे उससे वैराग्य नहीं होता है । मैं नारायण के अंश से पृथिवी पर माया के पाश में बँधकर दुःख भोगने के लिए पृथिवी पर शाप के कारण अवतीर्ण हुआ हूँ ॥५५॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से कहने वाले गोविन्द को शंकरजी ने कहा ॥५६॥ आप इस संसार में सबसे बड़ा गृहस्थ होयेंगे । हे शत्रुओं का विनाश करने वाले ! आपके बहुत से पुत्र होयेंगे । आपकी सोलह हजार पचास स्त्रियाँ होंगी ॥५७॥ उन सबों के महाबलवान् दश-दश पुत्र होंयेंगे । यह कहकर देखने में प्रिय लगने वाले शंकरजी यह कहकर शीघ्र ही चुप हो गये ॥५८॥ विनयान्वित मधुसूदन से गिरिजा देवी ने कहा हे महाबाहो ! श्रीकृष्ण ! हे राजन् ! आप इस लोक में श्रेष्ठ गृहस्थ होएंगे । उसके पश्चात् आपके सौ वर्ष की आयु हो जाने के बाद हे जनार्दन ! ब्राह्मणों के शाप के कारण आपके वंश का नाश हो जायेगा ॥५९-६०॥ और गंधारी के भी शाप से आप के वंश का विनाश हो जायेगा । शाप-ग्रस्त आपके पुत्र युद्ध में परस्पर में एक दूसरे को मारकर ॥६१॥ सभी यादव तथा दूसरे लोग भी विनष्ट हो जायेंगे । आप दोनों भाई (कृष्ण और बलराम) भी शरीर का त्याग करके स्वर्गलोक चले जायेंगे ॥६२॥ हे प्रभो ! आपको भवितव्यता के विषय में शोक नहीं करना चाहिए । भवितव्यता होकर ही रहती है; उसका कोई भी प्रतिकार नहीं है ॥६३॥ मेरा मत है कि भवितव्यता के विषय में शोक करना ही नहीं चाहिए । हे मधुसूदन ! अष्टावक्र महर्षि के शाप के कारण

तदधीनाः स्थिताः सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमाः ॥६७॥ यथा यथा पूर्वभवं कर्म तेषां तथा तथा । प्रेरयत्यनिशं माया परब्रह्मस्वरूपिणी ॥६८॥ न वैषम्यं न नैर्घृण्यं भगवत्यां कदाचन । केवलं जीवमोक्षार्थं यतते भुवनेश्वरी ॥६९॥ यदि सा नैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम् । तदा मायां विना भूतं जडं स्यादेव नित्यशः ॥७०॥ तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिकं च यत् । करोति सततं देवी प्रेरयत्यनिशं च तत् ॥७१॥ तस्माद्ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यः संशयो न हि । मायांतः पातिनः सर्वे मायाधीनाः सुरासुराः ॥७२॥ स्वतंत्रा सैव देवेशी स्वेच्छाचारविहारिणी । तस्मात्सर्वात्मना राजन्सेवनीया महेश्वरी ॥७३॥ नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये । एतद्धि जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदस्मृतिः ॥७४॥ माभूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम् । अहं देवी न चान्याऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥७५॥ इत्यभेदेन तां नित्यां चिंतयेज्जगदंबिकाम् । ज्ञात्वा गुरुमुखादेनां वेदांतश्रवणादिभिः ॥७६॥ नित्यमेकाग्रमनसा भावयेदात्मरूपिणीम् । मुक्तो भवति तेनाशु नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥७७॥ श्वेताश्वतरादयः

आपके मर जाने पर आपकी पत्नियों को चोर लूट लेंगे । **व्यासजी ने कहा–** इतना कहकर देव समूह के साथ भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये॥६४-६५॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने गुरु उपमन्यु को प्रणाम करके द्वारका चले गये । हे राजन् ! यद्यपि ब्रह्मा इत्यादि अधीश्वर है ॥६६॥ फिर भी माया रूपी नदी के तरङ्गो से उनका भी अन्तःकरण क्षुब्ध रहता है । अतएव जिस तरह कठपुतली बाजीगर के अधीन रहती है, उसी तरह वे सब भी महामाया के अधीन रहते हैं॥६७॥ उन सबों के पूर्वजन्मों के कर्म जिस प्रकार के होते हैं, उसी तरह उनको माया भी प्रेरित करती रहती है । वह परब्रह्म स्वरूपिणी है ॥६८॥ भगवती में न तो विषमता बुद्धि है और न तो निष्ठुरता ही है । भुवनेश्वरी तो सदा जीवों को मोक्ष प्रदान करने के लिए प्रयत्न करती रहती हैं ॥६९॥ यदि वह इस चराचर जगत् की सृष्टि न करें तो फिर माया के बिना यह सम्पूर्ण जगत् जड ही हो जायेगा ॥७०॥ अतएव वे जगत् में जितने जीवों की सृष्टि करती है उन सबों पर वह दया बनाये रहती हैं और उन जीवों को शुभ प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं ॥७१॥ अतएव ब्रह्मा इत्यादि को जो मोह होता है उसके विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए । सभी देवता तथा असुर माया के अधीन है ॥७२॥ वे भगवती ही स्वतन्त्र हैं और अपनी इच्छा के अनुसार विहार करती हैं । अतएव हे राजन् ! हर प्रकार से उन महेश्वरी की सेवा करनी चाहिए ॥७३॥ हे महाराज ! तीनों लोकों में उनसे श्रेष्ठ देवता कोई नहीं है । जन्म ग्रहण करने की सफलता यही है कि सदा भगवती परा शक्ति के चरणों की सदा स्मृति बनी रहे ॥७४॥ जिसकुल की देवता भगवती नहीं हैं उस कुल में मेरा जन्म न हो । मैं न तो देवी हूँ और न मै कोई दूसरा देवता हूँ । मैं ब्रह्मा ही हूँ । मैं शोक का पात्र नहीं हूँ ॥७५॥ इस तरह से नित्य ही उस जगदम्बिका का ध्यान करना चाहिए । वेदान्त इत्यादि के श्रवण के द्वारा उस देवी के स्वरूप का ज्ञान आचार्य के मुख से करना चाहिए ॥७६॥ उस आत्म स्वरूपिणी की सदा एकाग्रमन से चिन्तन करना चाहिए । ऐसा करके ही जीव संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । इससे भिन्न करोड़ों कर्मों के

सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः । आत्मरूपां हृदा ज्ञात्वा विमुक्ता भवबन्धनात् ॥७८॥ ब्रह्मविष्णवादयस्तद्वद्गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा । तामेव समुपासंते सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥७९॥ इति ते कथितं राजन् यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ । प्रपंचतापत्रस्तेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८०॥ एतते कथितं राजन्मयाऽऽख्यानमनुत्तमम् । सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं परमाद्भुतम् ॥८१॥ य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणं वेदसंमितम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते ॥८२॥ सूत उवाच– **एतन्मया श्रुतं व्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम् । पुराणं पञ्चमं नूनं श्रीमद्भागवताभिधम् ॥८३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अर्धाधिकैर्वसुविधुयुगविश्वंभरा (१४१८) भिधैः । पद्यैश्चतुर्थस्कन्धोऽयं कथितो व्यासनिर्मितैः ।

॥ समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥

करने से भी मुक्ति नहीं मिलती है ॥७७॥ श्वेताश्वतर आदि निर्मल अन्तःकरण वाले महर्षिगण आत्मस्वरूपिणी भगवती का हृदय में ध्यान करके संसार के बन्धन से मुक्त हो चुके हैं ॥७८॥ उसी तरह ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण तथा गौरी, लक्ष्मी आदि देवियाँ उस सच्चिदानन्द स्वरूपिणी देवी की ही उपासना करते हैं ॥७९॥ हे राजन् ! संसार के संताप से सन्तप्त आपने जो-जो पूछा उसका उत्तर मैंने दे दिया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥८०॥ राजन् मैंने आपको सर्वोत्तम आख्यान सुनाया है । यह पुराण सभी पापों को प्रणष्ट करने वाला होने के कारण अत्यन्त अद्भुत है ॥८१॥ यह पुराण वेद के समान है जो व्यक्ति इस पुराण को नित्य ही सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर देवी के लोक में सम्मानित होता है ॥८२॥ **सूतजी ने कहा–** यह श्रीमद्देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है, इसे जब व्यासजी विस्तार के साथ कह रहे थे मैंने इसे उन्हीं के मुख से सुना है ॥८३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५॥

इस चतुर्थ स्कन्ध में व्यासजी द्वारा रचित एक हजार चार सौ साढे अठारह श्लोक हैं ।

इस तरह चतुर्थ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

पञ्चमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः— **भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम् । कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम् ॥१॥ संदेहोऽत्र महाभाग वासुदेवकथानके। जायते च प्रोच्यमानेऽविस्तरेण महामते ॥२॥ वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम् । विष्णोरंशावतारेण शिवस्याराधनं कृतम् ॥३॥ वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः । जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया ॥४॥ ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ संप्रपूजितौ । न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम ॥५॥** सूत उवाच— **शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यासात्श्रुतं च यत् । प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम् ॥६॥ वृत्तान्तं व्यासतः श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तदा । पुनः पप्रच्छ मेधावी संदेहं परमं गतः ॥७॥** जनमेजय उवाच— **सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम् । तथापि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुंचति ॥८॥ कृष्णेनाराधितः शंभुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् । विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना ॥९॥ यः सर्वात्माऽपि सर्वेशः सर्वसिद्धिप्रदः प्रभुः । स कथं कृतवान्घोरं तपः प्राकृतवद्धरिः ॥१०॥ जगत्कर्तुं क्षमः कृष्णस्तथा पालयितुं क्षमः । संहर्तुमपि**

भगवान् विष्णु की अपेक्षा शिवजी की श्रेष्ठता का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी ! आपने अत्यन्त उत्तम कथा सुनायी । इस कथा में समस्त पापों को विनष्ट करने वाला भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित है ॥१॥ हे महामते ! वासुदेव के कथानक के विषय में मुझे बहुत अधिक सन्देह है, क्योंकि उस कथा को आपने विस्तार से नहीं सुनाया है ॥२॥ भगवान् विष्णु के अंशावतार भगवान् श्रीकृष्ण ने वन में जाकर घोर तपस्या क्यों की ? और उन्होंने शिवजी की आराधना क्यों की ॥३॥ देवी पार्वती ने भगवान् श्रीकृष्ण को वरदान क्यों दिया ? वे तो जगन्माता तथा परिपूर्ण श्रीदेवी के अंश स्वरूप हैं ॥४॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उन दोनों की आराधना क्यों की ? क्या उनमें किसी प्रकार की न्यूनता है ? यही मेरा संशय है ॥५॥ **सूतजी ने कहा—** हे मुनियों ! आप लोग सुनें जो कि मैंने व्यासजी से सुना है । हे महाभागों! मैं भगवान् कृष्ण के गुणों से युक्त कथा को कह रहा हूँ ॥६॥ व्यासजी से इस वृत्तान्त को सुनकर राजा जनमेजय का संदेह और बढ़ गया और उन्होंने पुनः प्रश्न किया ॥७॥ **जनमेजय ने पूछा—** हे व्यासजी ! आपने परम कारण स्वरूप भगवती की कथा से ओतप्रोत कथा सुनायी है; फिर भी मेरे मन में संदेह बना ही हुआ है ॥८॥ अत्यन्त घोर तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा शिवजी आराधित हुए । हे महाभाग ! भगवान् श्रीकृष्ण तो देवताओं के आराध्य विष्णु के अंशावतार हैं ॥९॥ वे सबों की आत्मा स्वरूप तथा सर्वेश हैं । सभी सिद्धियों को प्रदान करने में समर्थ है । वे सामान्य मनुष्य के समान घोर तपस्या क्यों किए ॥१०॥ भगवान् श्रीकृष्ण तो जगत् की सृष्टि तथा उसका पालन करने में समर्थ हैं । वे जगत् का संहार करने में भी समर्थ हैं, फिर भी उन्होंने घोर

कस्मात्स दारुणं तप आचरत् ॥११॥ व्यास उवाच– **सत्यमुक्तं त्वया राजन्वासुदेवो जनार्दनः । क्षमः सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदनः ॥१२॥ तथापि मानुषं देहमाश्रितः परमेश्वरः । कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान् ॥१३॥ वृद्धानां पूजनं चैव गुरुपादाभिवंदनम् । ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा ॥१४॥ शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नतिः । दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम् ॥१५॥ कामः क्रोधस्तथा लोभः काले काले भवंति हि । तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत् ॥१६॥ सौबलीशापजाद्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात् । निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम् ॥१७॥ हरणं लुण्ठनं तद्वत्तत्पत्नीनां नराधिप । अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च ॥१८॥ अज्ञत्वं हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयोः। एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम् ॥१९॥ विष्णोरंशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा । अंशजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने ॥२०॥ स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम् । सुषुप्तस्थाननाथः स विष्णुना च प्रपूजितः ॥२१॥ तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते । अकारो भगवान्ब्रह्माऽप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम् ॥२२॥ मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी । उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः ॥२३॥ अतः**

तपस्या क्यों की ?॥११॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! आपने सत्य ही कहा है कि भगवान् श्रीकृष्ण जनार्दन हैं । वे देवताओं के समस्त कार्यों को करने में समर्थ हैं । वे दैत्यों का वध करने वाले हैं ॥१२॥ फिर भी मानव शरीर धारण करके उन्होंने अपने वर्ण एवं आश्रम के लिए विहित कर्मों को किया॥१३॥ इसीलिए उन्होंने वृक्षों की पूजा की अपने गुरुजनों के चरणों की वन्दना की । उन्होंने ब्राह्मणों की सेवा तथा देवताओं का पूजन किया ॥१४॥ शोक के समय उन्होंने शोक का प्रदर्शन किया और हर्ष के समय हर्ष का अनुभव किया । समयानुसार उन्होंने दीनता भी दिखायी और स्त्रियों का विषयोपभोग भी किया ॥१५॥ जिस तरह सामान्य मनुष्य को समय-समय से काम, क्रोध तथा लोभ होते हैं, वैसे ही वे भी समयानुसार काम, क्रोध तथा लोभ का अनुभव करते थे । शरीर तो त्रिगुणात्मक है, उसमें निर्गुणत्व कैसे आ सकता है ॥१६॥ गान्धारी के तथा ब्राह्मणों के शापजन्य दोष के कारण यादवों का निधन हो गया और भगवान् श्रीकृष्ण को शरीर त्यागना पड़ा ॥१७॥ भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों का हरण हुआ और उनका खजाना लूट गया । ब्राह्मण के शाप के कारण ही अर्जुन का लुटेरों पर शस्त्र का प्रयोग विफल हो गया ॥१८॥ वे सामान्य मनुष्य के समान प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का उनके धर से हुए अपहरण को जान नहीं सके । इसतरह से भगवान् श्रीकृष्ण ने मनुष्य शरीर में रहकर मनुष्य के समान चेष्टाएँ की ॥१९॥ ऐसी स्थिति में भगवान् विष्णु तथा नारायण के अंश से अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्ण ने यदि भगवान् शंकर की आराधना की तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ?॥२०॥ भगवान् शंकर सबों के स्वामी तथा विष्णु के भी कारण हैं । वे सुषुप्ति स्थान के स्वामी हैं तथा भगवान् विष्णु के द्वारा पूजित हैं ॥२१॥ कृष्ण आदि उनके अंश हैं, अतएव कृष्ण आदि

सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता । अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः ॥२४॥ विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः । तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने ॥२५॥ इच्छया ब्राह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्बभौ । मूलरुद्रस्यांशभूतो रुद्रनामा द्वितीयकः ॥२६॥ सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा । देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे ॥२७॥ अवतारा हरेरेवं प्रभवन्ति युगे युगे । योगमायाप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा ॥२८॥ या नेत्रपक्ष्मपरिसंचलनेन सम्यग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा । सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्नानावतारकलने परिभूयमानान् ॥२९॥ सूतीगृहाद्व्रजनमप्यनया नियुक्तं संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः । संप्रापितश्च मथुरां विनियोजितश्च श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्तः ॥३०॥ निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता नार्योऽष्टसंमततराः स्वकलासमुत्थाः । तासां विलासवशगं तु विधाय कामं दासीकृतो हि भगवाननयाप्यनंतः ॥३१॥ एकाऽपि बंधनविधौ युवती समर्था पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम । किं नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च तं स्वीकृतं शुकमिवातिनिबंधयंति ॥३२॥ सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन प्राप्तं सुरेन्द्रभवनं हरिणा तदानीम् । कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणामीशः

से क्यों नहीं पूजे जायँ । ओम् के अ अक्षर ब्रह्मा का वाचक है, उकार श्रीहरि का वाचक है ॥२२॥ मकार रुद्र का वाचक है और अर्द्धमात्रा के द्वारा महेश्वरी बतलायी गयी हैं । इन चारों में उत्तरोत्तर भाव से उत्कृष्टता का प्रकर्ष है ॥२३॥ अतएव ही सभी शास्त्रों में देवी को उत्तम बतलाया गया है । प्रणव के अर्द्धमात्रा (चन्द्र विन्दु) में वे नित्य ही स्थित है । वे विशेषरूप से उच्चार्य (उच्चारण करने योग्य) नहीं हैं ॥२४॥ विष्णु से श्रेष्ठ रुद्र हैं । विष्णु ब्रह्माजी से श्रेष्ठ हैं । अतएव श्रीकृष्ण के द्वारा शिवजी की पूजा किए जाने के विषय में शंका नहीं करनी चाहिए ॥२५॥ पूर्वकाल में सृष्टि का कार्य करने के लिए जब ब्रह्माजी ने शिवजी की उपासना की तो ब्रह्माजी को वरदान के लिए रुद्र उनके ही मुख से प्रकट हो गये । वे मूल रुद्र के अंश है और द्वितीय रुद्र हैं ॥२६॥ वे द्वितीय रुद्र भी सबों के लिए पूज्य हैं तो फिर मूल रुद्र के विषय में क्या कहना हैं । देवीतत्त्व के सन्निकट रहने के कारण शिवजी में उत्तमता है ॥२७॥ इसतरह प्रत्येक युगों में श्रीहरि के अवतार होते हैं । वे अवतार योगमाया के प्रभाव से होते हैं, अतएव उसके विषय में अधिक विचार विमर्श नहीं करना चाहिए ॥२८॥ जो भगवती अपने नेत्र के संचालन मात्र से ही विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करती हैं । उनका अभिप्राय रहस्यमय है । वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरजी को नाना प्रकार का अवतार ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती रहती हैं ॥२९॥ भगवती महामाया ने ही भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसूतिगृह से निकाल कर गोकुल में नन्दजी के घर में पहुँचा दिया । उन्होंने ही कालयवन से भयभीत भगवान् श्रीकृष्ण को द्वारका का निर्माण करने के कार्य में नियुक्त कर दिया ॥३०॥ योगमाया ने ही अपनी शक्ति से सोलह हजार एक सौ पचास रानियों तथा आठ पटरानियों की रचना करके, उनके हाव-भाव तथा प्रेम के बँधन में बाँधकर भगवान् श्रीकृष्ण को उन स्त्रियों का दास बना दिया ॥३१॥ एक भी सुन्दरी अपनी हाव-भाव तथा वासनामयी

प्रियासदनभूषणतां य आप ॥३३॥ यो भीमजां हि हृतावाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः । जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ विजातः ॥३४॥ अहंकारवशः प्राणी करोति च शुभाशुभम् । विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनातिपातिना॥३५॥ अहंकाराद्धि संजातमिदं स्थावरजंगमम् । मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसंभवात् ॥३६॥ अहंकारपरित्यक्तो यदा भवति पद्मजः । तदा विमुक्तो भवति नोचेत्संसारकर्मकृत् ॥३७॥ तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः । न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदरः ॥३८॥ बंधनं प्राणिनां राजन्नहंकारस्तु बंधकः । अहं कर्ता मया चेदं कृतं कार्यं बलीयसा ॥३९॥ करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत् । कारणेन बिना कार्यं न संभवति कर्हिचित् ॥४०। यथा न दृश्यते जातो मृत्पिंडेन विना घटः । विष्णुः पालयिता विश्वस्याहंकारसमन्वितः ॥४१॥ अन्यथा सर्वदा

लोहे के सुदृढ जंजीर में पुरुष को बाँध सकती है, तो फिर सोलह हजार एक सौ पचास स्त्रियों के विषय में क्या कहना है ?। वे तो उस पुरुष को पालतू शुकपक्षी के समान नाच नचा सकती हैं ॥३२॥ सत्राजित् की पुत्री सत्यभामा के वशवर्ती बने हुए भगवान् उनके साथ इन्द्र के भवन में गये थे । वहाँ पर युद्ध करके वे कल्पवृक्ष को प्राप्त करके उसे सत्यभामा के भवन का भूषण बनाये ॥३३॥ सभी धर्मों का प्रवर्तन करने वाले तथा धर्मों का पालन करने वाले जिसका पहले ही वाग्दान हो चुका था उस रुक्मिणी का हरण भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशुपाल आदि को हराकर किया है और उस रुक्मिणी को अपनी पत्नी बनाया । ऐसा करके उन्होंने किस धर्मविधि का पालन किया ?॥३४॥ अहंकार के अधीन होकर प्राणी पाप तथा पुण्य को करता है और मोह जाल में फँसने के कारण उसका अध:पतन हो जाता है ॥३५॥ मूलप्रकृति से ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि प्रधान देवताओं की उत्पत्ति हुई और उस मूलप्रकृति से उत्पन्न तामसाहंकार से स्थावरजंगमात्मक जगत् की उत्पत्ति हुई ॥३६॥ जब ब्रह्मा जो अहंकार का परित्याग कर देते हैं तो वे मुक्त हो जाते हैं । अन्यथा वे संसार रूपी कार्य के कर्ता ही बने रहते हैं ॥३७॥ जिस प्राणी ने अहंकार का त्याग कर दिया है, वह मुक्त हो जाता है। जो प्राणी अहंकार के वश में है, वही संसार के बन्धन में बँधा हुआ है । संसार के बन्धन के साधन स्त्री, धन, गृह, पुत्र और सहोदर भाई नहीं हैं, अपितु प्राणियों को संसार के बन्धन में बाँधने वाला उसका अहंकार ही है । जब मनुष्य यह सोचता है कि मैं ही इन सभी कार्यों को करने वाला हूँ, इन सभी कार्यों को मैंने ही किया है, मैं अमुक कार्यों को करूँगा तथा मैं इन कार्यों को करता हूँ । तो इस प्रकार से सोचकर अहंकार सम्पन्न प्राणी स्वयम् अपने को इस संसार के बन्धन में बाँध लेता है; क्योंकि बाँधने का काम तो अहंकार ही करता है । बिना कारण के कोई भी कार्य नहीं होता है । संसार के बन्धन रूपी कार्य का कारण अहंकार ही है ॥३८-४०॥ जिस तरह मृत्पिण्ड के बिना घट की उत्पत्ति नहीं होती है, उसी तरह कारण के बिना कार्य नहीं होता है । अहंकार से युक्त होने के कारण विष्णु संसार का पालन करने का काम करते हैं ॥४१॥ यदि ऐसी बात नहीं होती तो वे सर्वदा चिन्तामग्न क्यों

चिंताम्बुधौ मग्नः कथं भवेत् । अहंकारविमुक्तस्तु यदा भवति मानवः ॥४२॥ अवतारप्रवाहेषु कथं मज्जेच्छुभाशयः । मोहमूलमहंकारः संसारस्तत्समुद्भवः ॥४३॥ अहंकारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः । त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा ॥४४॥ तामसस्तु महाराज ब्रह्मविष्णुशिवादिषु । त्रिविधस्त्रिषु राजेन्द्रं काजेशादिषु सर्वदा ॥४५॥ अहंकारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अहंकारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः ॥४६॥ मायाविमोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः । करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः ॥४७॥ मन्दोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसंकटे। न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत् ॥४८॥ कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले । स्वेच्छया प्रवदंत्यद्धा गतो हि मधुसूदनः ॥४९॥ वैकुण्ठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं न किम् । चिंताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसंमिते ॥५०॥ तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । न वांछन्ति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम् ॥५१॥ स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः । गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि ॥५२॥

रहते हैं । मनुष्य जब अहंकार से रहित हो जाता है ॥४२॥ तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । फिर वह अवतार रूपी नदी के प्रवाह में क्यों बहेगा? अज्ञान का मूल अहंकार है और उस अहंकार से ही संसार की उत्पत्ति होती है ॥४३॥ जो जीव अहंकार से विहीन हो जाते हैं उन प्राणियों को न तो मोह होता है और न तो संसार ही होता है । महाराज तीन प्रकार के पुरुष बतलाये गये हैं, सात्त्विक, राजस तथा ॥४४॥ तामस । ये तीनों गुण संसार की सृष्टि रक्षा तथा संहार रूपी कार्यों के लिए उपयोगी होने के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में रहा करते हैं । ब्रह्माजी रजोगुण प्रधान हैं, विष्णु सत्त्वगुण प्रधान हैं, और शंकर जी तमोगुण प्रधान हैं । ये तीनों गुण इन तीनों देवताओं में सर्वदा रहा करते हैं ॥४५॥ अतएव यह बात सिद्ध हो गयी कि, ये सभी प्राणी उस अहंकार से ही बन्धे हुए हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥४६॥ जो जीव माया से मोहित हैं वे कहते हैं कि विष्णु अपनी इच्छा से ही अनेक अवतारों को धारण करते हैं ॥४७॥ हे राजन् ! मूर्ख व्यक्ति भी अत्यन्त संकटमय दुःख से भरे हुए गर्भ में निवास करना नहीं चाहता है, और विष्णु भगवान् तो चक्रधारी हैं, वे क्यों गर्भ में निवास करना चाहेंगे ॥४८॥ अज्ञानी जीव कहते हैं कि मधुसूदन अपनी इच्छा से ही, कैलास पर गये तथा देवकी के मलमूत्र से भरे गर्भ में प्रवेश किए ॥४९॥ वैकुण्ठ का निवास त्यागकर अनेक प्रकार की चिन्ताओं को उत्पन्न करने वाले, दुख देने वाले तथा विष के समान गर्भ में निवास करने में कौन सा सुख मिलता है ?॥५०॥ संसारी जीव तपस्या करके, यज्ञों का अनुष्ठान करके तथा अनेक प्रकार के दानों को करके यही चाहते हैं कि मुझे गर्भ में निवास नहीं करना पड़े; क्योंकि गर्भ में अत्यधिक दुःख मिलता है ॥५१॥ यदि भगवान् विष्णु स्वयं स्वतंत्र होते तो फिर उनमें गर्भ में निवास करने की इच्छा कैसे उत्पन्न होती ॥५२॥ हे महाराज ! आप यह जान लें कि ब्रह्माजी से लेकर स्तम्ब पर्यन्त जितने देवता, मनुष्य

जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत् । ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं देवमानुषतिर्यगम् ॥५३॥ मायातंत्रीनिबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः । भ्रमंति बन्धमायान्ति लीलया चोर्णनाभवत् ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

राजोवाच— **योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात् । ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम ॥१॥ महादेवीप्रभावं वै श्रोतुं को नाभिवांछति । यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम् ॥२॥** व्यास उवाच— **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते । श्रद्दधनाय शांताय न ब्रूयात्स तु मंदधीः ॥३॥ पुरा युद्धमभूद्धोरं देवदानवसेनयोः । पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ ॥४॥ महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप**

तथा तिर्यक् हैं वे सब के सब प्राणी माया के वशवर्ती हैं ॥५३॥ जिस तरह उर्णनाभि (मकड़ी) स्वयं जाल बनाकर उसमें फँस जाता है, उसी तरह ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी माया के जाल में फँसे हुए हैं ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

महिषासुर के जन्म तथा वरदानप्राप्ति का वर्णन

राजा जनमेजय ने महर्षि व्यास से पूछा— हे स्वामिन् आपने योगेश्वरी जगदम्बा का प्रभाव विस्तार से बतलाया अब आप मुझे उस योगेश्वरी के चरित्र को सुनायें । मुझे उसे सुनने की अत्यधिक उत्कण्ठा है ॥१॥ जो व्यक्ति यह जानता है कि सारा संसार योगेश्वरी जगदम्बा से ही उत्पन्न है, ऐसा कौन प्राणी होगा कि वह उनके प्रभाव को नहीं सुनना चाहे ॥२॥ **व्यासजी ने कहा**— हे महाबुद्धिमान राजन् ! आप सुनें; मैं देवी के चरित को विस्तार से बतलाता हूँ। जो व्यक्ति श्रद्धालु तथा शान्त श्रोता को उसे नहीं सुनाता है, वह मूर्ख है ॥३॥ हे राजन् ! जब पृथिवी का राजा महिषासुर हुआ उस समय देवताओं तथा असुरों की सेना के बीच भयंकर युद्ध हुआ ॥४॥ महिषासुर ने सुमेरु पर्वत पर जाकर घोर तपस्या की । वह तपस्या देवताओं को भी विस्मित कर देने वाली

उत्तमम् । गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम् ॥५॥ वर्षाणामयुतं पूर्णं चिंतयन्हृदि देवताम् । तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः ॥६॥ तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसारूढश्चतुर्मुखः । वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वांछितम् ॥७॥ महिष उवाच– अमरत्वं देवदेव वांछामि द्रुहिण प्रभो । यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह ॥८॥ ब्रह्मोवाच– उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल॥९॥ नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुङ्गव । महीमहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा ॥१०॥ एकं स्थानं परित्यज्य मरणस्य महीपते । प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते ॥११॥ महिष उवाच– न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह । पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषा मां का हनिष्यति॥१२॥ तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्या कुरु पद्मज । अबला हंत मां हंतुं कथं शक्ता भविष्यति ॥१३॥ ब्रह्मोवाच– यदा कदाऽपि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम् । न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर ॥१४॥ व्यास उवाच– एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम् । सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदान्वितः ॥१५॥ राजोवाच– महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली । कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना॥१६॥ व्यास उवाच– दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमंडले । रम्भश्चैव करम्भश्चद्वावास्तां दानवोत्तमौ ॥१७॥ तावपुत्रौ महाराज

थी ॥५॥ वह अपने हृदय में अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए दश हजार वर्षों तक तपस्या किया । उसकी तपस्या से ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये । ब्रह्माजी तो लोकपितामह हैं । चतुर्मुख ब्रह्माजी हंस पर बैठकर वहाँ आये और महिषासुर से कहे– हे धर्मात्मन् ! तुम वरदान माँगो । तुम्हारी जो इच्छा हो उसे मैं दे रहा हूँ ॥७॥ **महिषासुर ने कहा–** हे देवताओं के भी आराध्य ब्रह्माजी ! मैं अमर हो जाना चाहता हूँ । पितामह ! मुझे ऐसा बना दीजिये कि मुझे मृत्यु का भय न हो ॥८॥ उसकी बात को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा– जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जो मरता है उसका जन्म भी निश्चित रूप से होता है । इस तरह जितने भी प्राणी संसार में हैं, उन सबों के जन्म और मरण अवश्य होते हैं ॥९॥ हे दैत्यश्रेष्ठ ! समयानुसार सभी प्राणियों की मृत्यु होती है । पृथिवी, पर्वत तथा समुद्र के भी विनाश होते हैं ॥१०॥ अतएव हे राजन् केवल मृत्यु के अभाव को छोड़कर जों तुम चाहो उसे माँग लो । तुम्हारे मन में जो हो सो माँग लो ॥११॥ **महिषासुर ने कहा–** मेरी मृत्यु न तो देवता से हो, न मनुष्य से और न दैत्य से । मुझे पुरुष भी न मार सकें । मुझे कोई स्त्री क्या मार पायेगी ॥१२॥ अतएव हे पद्मयोने ब्रह्माजी ! मेरी मृत्यु किसी स्त्री से ही हो । नारी तो अबला होती है । वह मुझे क्या मार पायेगी । अतएव किसी स्त्री के ही हाथ मेरी मृत्यु हो ॥१३॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारी मृत्यु जब कभी भी होगी स्त्री से ही होगी। महिषासुर तुम्हारी मृत्यु मनुष्यों से नहीं होगी ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा–** इसतरह से महिषासुर को वरदान देकर ब्रह्माजी अपने धाम चले गये और वह दैत्यों में श्रेष्ठ

पुत्रार्थं तेपतुस्तपः । बहून्वर्ष गणान्कामं पुण्ये पञ्चनदे जले ॥१८॥ करम्भस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः । वृक्षं रसावटं प्राप्य रभोऽग्निमसेवयत्॥१९॥ पञ्चाग्निसाधनासक्तः स रंभस्तु यदाऽभवत् । ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति ॥२०॥ गत्वा पंचनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह । वासवस्तु करंभं तं तदा जग्राह पादयोः ॥२१॥ निजघान च तं दुष्टं करंभं वृत्रसूदनः । भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रंभः कोपं परं गतः ॥२२॥ स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्वा करेण ह । केशपाशे गृहीत्वाऽऽशु वामेन क्रोधसंयुतः ॥२३॥ दक्षिणेन करेणाग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् । छिनत्ति शीर्षं तावद्वह्निना प्रतिबोधितः ॥२४॥ उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि । आत्महत्याऽतिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः ॥२५। वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते । मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति ॥२६॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं रंभः पावकस्य सुभाषितम् । ततोऽब्रवीद्वचो रंभस्त्यक्त्वा केशकलापकम् ॥२७॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वांछितं वरम् । त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्दनः॥२८॥ अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः । कामरूपी महावीर्यं सर्वलोकाभिवन्दितः ॥२९॥ पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम् । पुत्रस्तवमहाभाग**

महिषासुर भी अपने घर चला आया । **राजा जनमेजय ने कहा–** यह महिषासुर किसका पुत्र है । वह महाबलवान् कैसे हो गया ? उसने भैंस का रूप क्यों प्राप्त किया ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा–** महराज ! दनु नामक दैत्य के दो पुत्र हुए जो पृथिवीमण्डल पर विख्यात थे । उन दोनों का नाम रम्भ और करम्भ था । ये दोनों श्रेष्ठ दानव थे । वे दोनों नि:सन्तान थे । पुत्र की प्राप्ति के लिए उन दोनों ने तपस्या पवित्र पञ्चनद के जल में खड़ा होकर की ॥१७-१८॥ करम्भ ने जल में डूबकर घोर तपस्या किया और रम्भ आमके वृक्ष के ऊपर बैठकर पञ्चाग्नि तापता था ॥१९॥ जिस समय रम्भ पञ्चाग्नि का सेवन करता था उस समय उन दोनों के दु:ख को जानकर उन सबों के पास इन्द्र गये ॥२०॥ पञ्चनद में जाकर इन्द्र ने अपना घड़ियाल का रूप बना लिया और करम्भ के पैरों को पकड़ लिया ॥२१॥ दुष्ट करम्भ को इन्द्र ने मार डाला । अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर रम्भ को अत्यधिक क्रोध हुआ ॥२२॥ वह अपने शिर को अपने हाथ से काटकर उसका होम कर देना चाहा । क्रोध करके अपने बायें हाथ से उसने अपने केश को पकड़ लिया ॥२३॥ उसने अपने दाहिने हाथ से भयंकर खड्ग को उठाया जब वह अपना शिर काटना ही चाहता था उसी समय अग्नि ने कहा ॥२४॥ हे दैत्य ! तुम मूर्ख हो कि अपना शिर काटना चाहते हो । आत्महत्या अत्यन्त दु:साध्य है । अतएव आत्महत्या क्यों करते हो ?॥२५॥ तुम्हारे मन में जो हो उस वरदान को तुम मुझसे माँग लो; मरो मत । मरने से कौन सा लाभ होगा ॥२६॥ **व्यासजी ने कहा–** रम्भ ने अग्नि की वाणी को सुना तो उसने अपने केशों को छोड़ दिया और अग्नि से कहा ॥२७॥ हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप मुझे अभिलषित वरदान दीजिये । शत्रुओं की सेना को विनष्ट करने वाला मेरा त्रैलोक्य विजयी पुत्र हो ॥२८॥ देवताओं, दानवों और मानवों के लिए वह अजेय हो । जब जैसा चाहे वैसा रूप वह धारण कर ले । वह महाबलवान् तथा सभी

मरणाद्विरमाधुना ॥३०॥ यस्यां चित्तं तु रंभ त्वं प्रमदायां करिष्यसि । तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः ॥३१॥ व्यास उवाच– इत्युक्तो वह्निना रम्भो वचनं चित्तरंजनम् । श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः ॥३२॥ यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियान्वितम् । दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः ॥३३॥ मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्यां च योषितम् । सा समागाच्च तरसा कामयन्ती मुदान्विता ॥३४॥ रम्भोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः । सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः ॥३५॥ तां गृहीत्वाऽथ पातालं प्रविवेश मनोहरम् । महिषेभ्यश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल ॥३६॥ कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत् । स्वयमागत्य तं हन्तुं दानवः समुपाद्रवत् ॥३७॥ स्वरक्षार्थं समागत्य महिषं समाताडयत् । सोऽपि तं निजघानाशु शृङ्गाभ्यां काममोहितः ॥३८॥ ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदये भृशम् । भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्छितः ॥३९॥ मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम् । सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता ॥४०॥ पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः । कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः ॥४१॥ रुदती सा भृशं दीना दृष्टा यक्षैर्भयातुरा । धावमानं च

लोकों के द्वारा वन्दनीय हो ॥२९॥ अग्नि ने कहा तुम जैसा चाहते हो तुम्हारा पुत्र वैसा ही होगा । अब तुम मरो मत ॥३०॥ हे रम्भ ! जिस स्त्री पर तुम्हारा मन असक्त हो जायेगा, उस स्त्री के गर्भ से तुम्हारा अत्यन्त बलवान् पुत्र होगा ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा–** रम्भ ने अग्नि की मनोहर वाणी को सुना और अग्नि को प्रणाम किया तथा वहाँ से चल दिया ॥३२॥ वहाँ से चलकर वह एक ऐसे मनोहर स्थान पर पहुँचा जो स्थान यक्षों का निवास स्थान था। वहाँ उसने एक महिषी को देखा और उसका मन उसी में आसक्त हो गया ॥३३॥ यद्यपि वहाँ पर बहुत सी सुन्दर तथा युवती एवं मदमत्त स्त्रियाँ थीं, किन्तु उन सबों को छोड़कर उसका मन उस भैंस में ही आसक्त हो गया । अपने में आसक्त रम्भ को देखकर वह भैंस रम्भ को चाहती हुई प्रसन्नता पूर्वक उसके पास आयी ॥३४॥ भवितव्यता से प्रेरित होकर रम्भ ने भी उसी के साथ सहगमन किया और उसके वीर्य से वह भैंस गर्भवती हो गयी ॥३५। उस भैंस को लेकर रम्भ भैंसों से उसकी रक्षा करते हुए पाताल में चला गया क्योंकि वह भैंस उसकी प्रियतमा थी ॥३६॥ एक बार एक भैंसा उस भैंस को देखकर उस पर कामासक्त होकर उसकी ओर चला तो रम्भ भी उसको मारने के लिए दौड़ा और उस महिष पर कठोर प्रहार किया । उस काममोहित महिष ने भी अपने सींग से रम्भ पर प्रहार किया ॥३७-३८॥ उस भैंसे ने रम्भ पर अपनी सिंगो से तीव्र प्रहार किया जिससे मूर्छित होकर रम्भ पृथिवी मर गिर पड़ा और मर गया ॥३९॥ अपने पति के मर जाने पर दीन बनी हुई वह भैंस वहाँ से जोर से भाग गयी । वह उस वट के पास जाकर यक्षों के शरण में चली गयी ॥४०॥ वह महिष भी कामातुर होकर उसके पीछे-पीछे गया, बल तथा वीर्य के मद से उद्धत वह महिष उसे चाहता था ॥४१॥ यक्षों ने उस

तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः ॥४२॥ युद्धं समभवद्घोरं यक्षाणं च हयारिणा । शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले ॥४३॥ मृतं रम्भं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम् । चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये ॥४४॥ महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा । प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना सह पावकम् ॥४५॥ वार्यमाणाऽपि यक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम् । ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम् ॥४६॥ महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः । रम्भोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः ॥४७॥ रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः । अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः ॥४८॥ एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान् । अवध्यस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम ॥४९॥ इत्येतत्कथितं राजञ्जन्म तस्य महात्मनः । वरप्रदानं च तथा प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम् ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

रोती हुई, दीन तथा भयभीत महिषी को देखा और उसके पीछे दौड़ते हुए भैंसे को देखकर उस भैंस की रक्षा करने के लिए आये ॥४२॥ वहाँ पर यक्षों तथा भैंसे से घोर युद्ध हुआ । बाण से मारा गया वह भैंसा पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४३॥ उसके पश्चात् यक्ष अपने परम प्रियतम मित्र रम्भ के मृतशरीर को उठा लाये और उसके शरीर की शुद्धि के लिए उसे चिता पर रख दिये ॥४४॥ वह महिषी अपने पति को चिता पर सुलाये हुए देखकर उसी के साथ सती होने की इच्छा से चिता में प्रवेश करना चाही ॥४५॥ यक्षों के मना करने पर भी वह साध्वी महिषी अपने प्रिय पति को लेकर उस अग्नि में प्रवेश कर गयी ॥४६॥ उसी समय एक महिष तथा पुत्रप्रेमी रम्भ दूसरा शरीर धारण करके उस चिता से निकल पड़े ॥४७॥ वह महाबलवान् रम्भ ही रक्तबीज हो गया । उसका पुत्र महिष भी महाबलवान् वीर हुआ । इसके बाद श्रेष्ठ असुरों ने महिषासुर का राज्याभिषेक कर दिया ॥४८॥ इसतरह से वह महिष हो गया और रक्तबीज भी बलवान् हुआ । हे नृपोत्तम ! वह देवता, दैत्य एवं मनुष्यों के लिए अबध्य था ॥४९॥ इसतरह से मैंने महिषासुर के जन्म तथा उसके वरदान प्राप्ति की कथा को विस्तार से सुनाया ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

व्यास उवाच– एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः । प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः ॥१॥ पृथिवीं पालयामास सागरान्तां भुजार्जिताम् । एकच्छत्रां निरातङ्कां वैरिवर्गविवर्जिताम् ॥२॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो मदोत्कटः । धनाध्यक्षस्तथा ताम्रः सेनाऽयुतसमावृतः॥३॥ असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः । त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबंधको बलदर्पितः ॥४॥ एते सैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा । आवृत्य संस्थिताः काममृद्धां सागरमेखलाम् ॥५॥ करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः । निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः ॥६॥ ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः । महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमंडले ॥७॥ एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः । स्वर्गं जेतुं मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः ॥८॥ प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम् । स संदेशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट् ॥९॥ गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ । ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशंकः सुरसन्निधौ ॥१०॥ मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ माचिरम् । सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः ॥११॥ स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम् । तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते ॥१२॥ नोचेद्वज्रं गृहाणाशु

महिषासुर का देवताओं के साथ युद्ध की तैयारी

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– इस प्राकर से वर प्राप्त करने के कारण वह महिषासुर बल के दर्प से युक्त होकर तथा राज्यप्राप्त करके सम्पूर्ण संसार को अपने वश में कर लिया ॥१॥ वह अपने भुजाओं के बल से अर्जित सागर पर्यन्त की पृथिवी का प्रशासन करता था । शत्रुओं से रहित, निरातंक पृथिवी का वह एक छत्र राजा था ॥२॥ उसका सेनापति चिक्षुर था वह भी महाबलवान् और मदमत्त था । उसका धनाध्यक्ष ताम्र नामक असुर था । उसकी दश हजार अपनी सेना थी ॥३॥ असिलोम, उदक, बिडाल, वाष्कल, त्रिनेत्र तथा बल के दर्प से दृप्त कालबँधक ये सभी प्रधान-प्रधान असुर अपनी-अपनी सेना से सारी पृथिवी को घेर कर पृथिवी को समृद्ध बना दिये ॥४-५॥ उन सबों ने सभी राजाओं को अपना करदाता बना दिया । क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाले बलवान् राजाओं को वे सब मार डाले ॥६॥ उनसबों के वशवर्ती होकर ब्राह्मण भी सम्पूर्ण पृथिवी पर महिषासुर को ही अपने यज्ञ का भाग समर्पित करने लगे ॥७॥ महिषासुर ने अपने छत्र के अधीन उस राज्य को कर लिया और वरदान के बल से गर्वित बना हुआ वह स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने का मन बना लिया ॥८॥ उसने इन्द्र के पास अपने दूत को भेजा । उसने अपने वाहक दूत को बुलाकर कहा ॥८॥ हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम मेरा दूत बनकर बिना किसी शंका के स्वर्गलोक जाओ ॥१०॥ और इन्द्र से कह दो कि हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग को छोड़कर जहाँ मन हो वहाँ शीघ्र चले

युद्धाय बलसूदन । पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम् ॥१३॥ अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसंघप । युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते
रमते मनः ॥१४॥ व्यास उवाच– **तच्छुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः । उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥१५॥ न जानेऽहं**
सुमंदात्मन् यतस्त्वं मददर्पितः । चिकित्सां च करिष्यामि रोगस्यास्य प्रभोस्तव ॥१६॥ अतः परं करिष्यामि मूलस्यास्य निकृन्तनम् । गच्छ दूत
तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम् ॥१७॥ शिष्टैर्दूता न हंतव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम् । युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत ॥१८॥ हयारे
त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः । शृंगयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम् ॥१९॥ दर्पः शृंगबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया । विषाणे ते परिच्छित्त्वा
संहरिष्यामि तद्बलम् ॥२०॥ यद्बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः । कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम ॥२१॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तोऽसौ**
सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः । जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह ॥२२॥ दूत उवाच– **राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ । मन्यते**

जाओं । अथवा आकर महिषासुर की सेवा करो ॥११॥ तुम शरणागत की रक्षा राजा महिषासुर अवश्य करेंगे । अतएव हे इन्द्र ! तुम महिषासुर के शरण
में चले जाओ ॥१२॥ अन्यथा तुम युद्ध करने के लिए अपना वज्र उठाओ । हमलोग पहले भी तुम्हें पराजित कर चुके हैं । अतएव हम तुम्हारे बल को
खूब जानते हैं ॥१३॥ हे देवराज ! तुमने अहल्या के साथ जार कर्म किया था । तुम्हारा बल हमको ज्ञात है । या तो तुम युद्ध करो या जहाँ तुम्हारा मन
लगे वहाँ चले जाओ ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा**– दूत की बातों को सुनकर क्रुद्ध होकर मुस्कुराते हुए इन्द्र ने कहा ॥१५॥ हे मन्दमति दैत्य मैं नहीं जानता
हूँ कि तुमको इतना घमण्ड किस कारण हो गया है । फिर भी मैं तुम्हारे स्वामी के दर्पज्वर को उतारने के लिए चिकित्सा अवश्य करूँगा ॥१६॥ इसके
पश्चात् मैं उसके मूल को भी विनष्ट करूँगा । दूत अब तुम अपने स्वामी के पास चले जाओ और मेरी बात को तुम अपने स्वामी को सुना देना ॥१७॥
शिष्टपुरुष को चाहिए कि वह दूत का वध न करे अतएव मैं तुम्हें छोड़ दे रहा हूँ । तुम मेरी ओर से कहना– हे महिषासुर ! यदि युद्ध करने की इच्छा
हो तो शीघ्र आ जाओ ॥१८॥ हे महिषासुर ! मैं तुम्हारे बल को जानता हूँ । तुम घास खानेवाले जड़ प्रकृति के पशु हो । तुम्हारे सीगों का मैं मजबूत
धनुष बनाऊँगा ॥१९॥ तुम्हें अपने सींगों के बल का अभिमान हैं, इसतरह बोलने के कारण है यह मैं जानता हूँ । तुम्हारे सींगों को काटकर मैं उसके
बल को दूरकर दूँगा ॥२०॥ जिसके बल पर तुम अत्यन्त अभिमानी हो गये हो, केवल उन्हीं से आघात करने में तुम कुशल हो । हे महिषाधम ! तुम
युद्ध करने में कुशल नहीं हो । **व्यासजी ने कहा**– इन्द्र की इन बातों को सुनकर वह दूत शीघ्र ही चला गया और मदमत महिषासुर को प्रणाम करके कहने
लगा॥२१॥ **दूत ने कहा**– हे राजन् ! देवराज ! आपकी कोई परवाह नहीं करते हैं । देवताओं की सेना से समन्वित होने के कारण वे अपने को पूर्ण मानते

स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः ॥२३॥ यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद्ब्रवीम्यहम् । प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः ॥२४॥ प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना । इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी ॥२५॥ केवलं चेत्प्रियं ब्रूयां न ते कार्यं भविष्यति । परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता ॥२६॥ यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरंति विषोपमाः । तथा भृत्युमुखान्नाथ निःसरंति कथं गिरः ॥२७॥ यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते । तादृशानि न मे जिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित् ॥२८॥ व्यास उवाच– **तच्छुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः । भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः ॥२९॥ समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः । लांगूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन् ॥३०॥ भो भो दैत्याः सुरेंद्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा । बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः ॥३१॥ मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः । न बिभेम्येकतः कामं हनिष्याम्यद्य सर्वथा ॥३२॥ शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः । बलकर्ता हि कुहको लंपटः परदारहृत् ॥३३॥ अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविध्नकरः खलः । छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः ॥३४॥ नमुचिर्निहतो येन कृत्वा संधिं दुरात्मना । शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन छद्मना ॥३५॥ विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः । नानारूपधरः कामं बलकृद्दंभपंडितः ॥३६॥ कृत्वा कोलाकृतिं येन**

हैं ॥२२॥ उस मूर्ख ने आपको जो कहा उसको मैं अपने मुँह से कैसे कहूँ ?॥२३॥ हे प्रभो ! भृत्य को चाहिए कि वह अपने स्वामी से प्रिय सत्य को कहे ॥२४॥ हे महाराज ! कल्याण करने वाली यही नीति है कि कल्याण चाहने वाले को चाहिए कि अपने स्वामी से प्रिय तथा सत्य बोले ॥२५॥ यदि मैं केवल प्रिय बोलूँ तो आपका काम नहीं होगा । और शुभ चाहने वाले भृत्य को परुष बातें कहनीं नहीं चाहिए ॥२६॥ हे नाथ ! शत्रु के मुख से विष के समान जैसी बातें निकलती हैं, उस तरह की बाते भृत्य के मुख से कैसे निकल सकती हैं ॥२७॥ राजन् ! इन्द्र ने जैसी बातों को कहा है, उसतरह की बातें हमारे मुख से नहीं निकल सकती हैं ॥२८॥ **व्यासजी ने कहा**– दूत की रहस्यपूर्ण बातों को सनुकर घास खाने वाले महिषासुर की आँखें क्रोध से लाल हो गयी ॥२९॥ उसने अपनी पूँछ उठाकर अपने पीठ पर रख ली और पेशाब करने लगा । उसने दैत्यों को बुलाया और उन सबों से कहने लगा॥३०॥ हे दैत्यों ! इन्द्र युद्ध करना चाहता है । तुमलोग सेना की तैयारी करो अब उस देवताधम को तो जीतना ही होगा ॥३१॥ मेरे सामने उसके जैसे करोड़ो वीर हों तो भी मैं नहीं डरूँगा । आज मैं उस इन्द्र का वध अवश्य करूँगा ॥३२॥ वह शान्त पुरुषों पर अपनी वीरता का प्रदर्शन करता है और तपस्वियों पर अपने बल का प्रयोग करता है । वह परस्त्री के अपहरण, व्यभिचार और छल करने में कुशल है । उसे अपनी अप्सराओं के बल पर अभिमान है । वह खल तपस्वियों की तपस्या में विघ्न करता है । वह कमजोरी को जानकर प्रहार करता है । वह सदा से पापी तथा विश्वासघात

हिरण्याक्षो निपातितः । हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः ॥३७॥ नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनंदनाः । विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित् ॥३८॥ किं करिष्यति मे विष्णुरिंद्रो वा बलवत्तरः । रुद्रो वापि न मे शक्तः प्रतिकर्तुं रणांगणे ॥३९॥ त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम् । धनदं पावकं चैव चंद्रसूर्यौ विजित्य च ॥४०॥ यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः । जित्वा देवसमूहं च विहरिष्यामि दानवैः ॥४१॥ न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः । मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति ॥४२॥ पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान्। दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वंतु त्वरिताश्चराः ॥४३॥ एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः । शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसंगमे ॥४४॥ शृंगाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल । न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः ॥४५॥ अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा । तस्मात्सज्जा भवंत्वद्य देवलोकजयाय वै ॥४६॥ जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नंदने । मंदारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः ॥४७॥ कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः । देवगंधर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः ॥४८॥ उर्वशी मेनका रंभा घृताची च तिलोत्तमा । प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा॥४९॥

करने वाला है ॥३४॥ पहले तो संधि करने के लिए उसने अनेक प्रकार के कसमों को खाया । उसके बाद छलपूर्वक नमुचि को मार दिया ॥३५॥ विष्णु तो कपट करने का आचार्य है छल करता है, झूठी शपथें करता है । सदा अनेक प्रकार का रूप बनाते रहता है । अपनी शक्ति का संचय करता है, और दम्भ करने में पण्डित है ॥३६॥ उसने शूकर का रूप बनाकर हिरण्याक्ष का वध कर दिया और नृसिंह का रूप बनाकर हिरण्यकशिपु का वध किया ॥३७॥ दानवों मैं उसके अधीन नहीं होऊँगा । मैं कही भी किसी भी प्रकार देवताओं पर विश्वास ही नहीं करता हूँ ॥३८॥ विष्णु अथवा इन्द्र मेरा क्या कर सकते हैं, अथवा क्या बिगाड़ सकते हैं । युद्ध के मैदान में रुद्र भी मेरा सामना नहीं कर सकते हैं ॥३९॥ मैं इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा को हराकर स्वर्गलोक पर अधिकार कर लूँगा । आज हमलोग यज्ञ के भाग का भोग करने वाले तथा सोमपान करने वाले हो जायेंगे । देवताओं को परास्त करके मैं दानवों के साथ स्वर्गलोक में विहार करूँगा ॥४१॥ दानवों ! वरदान प्राप्त कर लेने के कारण मुझे देवताओं से कोई भय नहीं है । मुझको मनुष्य भी नहीं मार सकते हैं । कोई स्त्री मेरा क्या बिगाड़ लेगी ?॥४२॥ गुप्तचरों ! मेरे उच्चकोटि के दानवों को जो पाताल, पर्वत आदि पर रहते हैं, उन सबों को शीघ्र बुलवा लो ॥४३॥ हे दानवों ! यद्यपि मैं अकेले ही समस्त देवताओं को जीत लेने में समर्थ हूँ। आपलोगों को बुलाकर तो मैं युद्धभूमि की शोभा बढाऊँगा ॥४४॥ मैं अपने दोनों शृङ्गों और दोनों खुरों से देवताओं का वध कर दूँगा । वरदान के प्रभाव के कारण मुझको देवताओं से डर नहीं है ॥४५॥ मैं देवों, असुरों तथा मनुष्यों के लिए अवध्य हूँ अतएव आज आपलोग देवलोक पर विजय प्राप्त करने के लिए तैयार हो जायँ ॥४६॥ दैत्यों ! मैं देवलोक पर विजय प्राप्त करके कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला पहन कर अप्सराओं के साथ नंदनवन में विहार करूँगा ॥४७॥ कामधेनु का दुग्धपान करके और

विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः । रंजयिष्यंति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः ॥५०॥ सर्वे सज्जा भवंत्वद्य रोचतां गमनं दिवि। संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मंगलमुत्तमम् ॥५१॥ रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम् । समाहूय च संपूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम्॥५२॥ व्यास उवाच– **इति संदिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा । जगाम त्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदान्वितः ॥५३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

व्यास उवाच– **गते दूते सुरेंद्रोऽपि समाहूय सुरानथ । यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान् ॥१॥ महिषो नाम दैत्येन्द्रो रंभपुत्रो महाबलः। वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः ॥२॥ तस्य दूतोऽद्य संप्राप्तः प्रेषितस्तेन भोः सुराः । स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः ॥३॥ त्यज**

अमृतपान जन्य आनन्द ये युक्त होकर, देवताओं गन्धर्वों आदि के गीत तथा नृत्य आदि का हम आनन्द लेंगे ॥४८॥ उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा, और विप्रचित्ती इत्यादि नृत्य तथा गीत आदि में निपुण अप्सराएँ आपलोगों को विविधप्रकार की मदिरा पिलाकर आपलोगों का मनोरञ्जन करेंगी ॥४९-५०॥ आज आप सब लोग तैयार होकर स्वर्ग चलें । उत्तम मंगल करके देवताओं के साथ युद्ध करने के लिए चलना चाहिए ॥५१॥ सबों की रक्षा करने के लिए भार्गव शुक्राचार्य को बुलाकर और उनकी पूजा करके उन्हें यज्ञ के कार्य में लगाकर चलना है॥५२॥ **व्यासजी ने कहा–** पापी महिषासुर इसतरह से असुरों को आदेश देकर प्रसन्नता पूर्वक अपने भवन में चला गया ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

देवसभा में देवताओं तथा दानवों में होने वाले युद्ध विषयक विचार

व्यासजी ने कहा– दूत के चले जाने पर देवराज इन्द्र ने भी यम, वायु, कुबेर, वरुण आदि देवताओं को बुलाकर यह बतलाया कि ॥१॥ रम्भ नामक दैत्य का पुत्र महिषासुर दैत्यों का स्वामी है । वह महाबलवान् वरदान प्राप्त करके मदमत्त हो गया है । वह बहुत मायावी है ॥२॥ देवताओं ! उसके द्वारा

देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव । सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः ॥४॥ दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृतिं विधास्यति। नतेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन ॥५॥ नोचेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरु स्वयम् । गते मयि स दैत्येंद्रस्त्वरितः समुपेष्यति ॥६॥ इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः । किं कर्तव्यमतः कार्यं चिन्तयध्वं सुरोत्तमाः ॥७॥ दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः । विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः ॥८॥ उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धिर्यथाबलम् । दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाऽथ पराजयः ॥९॥ संधियोगो न चात्रास्ति खले संधिर्निरर्थकः । सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः ॥१०॥ यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः । प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशद[illegible]ः ॥११॥ इङ्गितज्ञाश्च निःसंगा निःस्पृहाः सत्यवादिनः । सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः ॥१२॥ वीराणां च परिज्ञानं कृत्वाऽयांतु त्वरान्विताः । ज्ञात्वा दैत्यपतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम् ॥१३॥ करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वा दुर्गसंग्रहम् । (विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा) सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत् ॥१४॥ तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः । नात्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु

भेजा गया दूत आज यहाँ आया वह लोभी स्वर्ग को अपने वश में करना चाहता है । उसके दूत ने मुझसे कहा ॥३॥ हे देवेन्द्र आप स्वर्ग का अधिकार छोड़कर जहाँ जाना चाहो चले जाओ अथवा महाराज महिषासुर की आकर सेवा करो ॥४॥ दयालु महाराज महिषासुर तुम्हें किसी कार्य में लगा देंगे । वे कभी भी अपने विनम्र जीवों पर क्रोध नहीं करते हैं ॥५॥ अथवा हे देवेश ! स्वयम् अपनी सेना की तैयारी करो । मेरे जाने पर दैत्येन्द्र शीघ्र ही स्वर्ग पर आक्रमण कर देंगें ॥६॥ यह कहकर उस दुष्ट दैत्य का दूत तो चला गया । अब आपलोग इस बात पर विचार करें कि हमलोगों को क्या करना चाहिए?॥७॥ देवताओं ! बलवान् व्यक्ति को भी अपने दुर्बल भी शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । विशेष रूप से ऐसे शत्रु के विषय में तो सदा सावधान रहना चाहिए जो सदा युद्ध करने के लिए उद्योग करता रहता हो, बलवान् और बल के दर्प से दृप्त रहता हो ॥८॥ अतएव हमलोगों को अपने बल तथा बुद्धि के अनुसार उद्योग तो करना ही चाहिए । जय अथवा पराजय तो दैव के अधीन रहता है ॥९॥ इस विषय में संधि करने का कोई भी अवसर नहीं है; क्योंकि दुष्टों के साथ की जाने वाली संधि व्यर्थ होती है । संधि तो सज्जन पुरुषों के ही साथ बार-बार विचार करके करनी चाहिए ॥१०॥ सहसा आक्रमण भी कर देना ठीक नहीं होता है, अतएव सर्वप्रथम गुप्तचरों को भेजना चाहिए । जो शीघ्र जाकर शत्रु के दल में प्रवेश करके, उनके इङ्गित चेष्टित को जान सकें। जो निःस्पृह हों तथा सत्यवादी हों । उन गुप्तचरों को ऐसा होना चाहिए जो कि सेना कि तैयारी को जान सकें, उनके प्रस्थान, सेना की संख्या को ठीक-ठीक जान सकें ॥१२॥ जो वीरों का परिज्ञान प्राप्त करके शीघ्र लौट भी आयें । उन्हें दैत्यों के स्वामी महिषासुर की सेना के प्रबल्य अथवा दैर्बल्य का भी ठीक-ठीक पता लगाना चाहिए ॥१३॥ उस दूत के पता लगाकर आ जाने पर मैं या तो आक्रमण करूँगा अथवा दुर्ग में प्रवेश कर जाऊँगा । बुद्धिमान व्यक्ति

च सर्वथा ॥१५॥ एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्माच्चारा व्रजंतु वै । ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च ॥१६॥ विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च । अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम् ॥१७॥ सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा । व्यास उवाच– **इति संचिंत्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम् ॥१८॥ प्रेषयामास देवेंद्रः परिज्ञानाय पार्थिवः । दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम् ॥१९॥ निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम् । ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः ॥२०॥ देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम् । मंत्रं मंत्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः॥२१॥ उवाचांगिरसं श्रेष्ठं समासीनं वरासने ।** इन्द्र उवाच– **भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः ॥२२॥ सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः । दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः ॥२३॥ योद्धुकामः समायाति बहुभिर्दानवैर्वृतः । तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मंत्रविदाऽधुना॥२४॥ तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंयतः ।** व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः ॥२५॥ विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः।**

को कोई भी काम विचार करके ही करना चाहिए । सहसा किया हुआ कार्य सदा दुःखप्रद ही होता है ॥१४॥ अतएव हे देवों ! खूब अच्छी तरह से विचार करके सुखप्रद ही कार्य करना चाहिए ॥१५॥ दानवों मे भेदनीति बिल्कुल काम नहीं कर सकती है ॥१५॥ क्योंकि उन सबों में ऐकमत्य है अतएव गुप्तचरों को जाना चाहिए और दैत्यों की सेना के बलाबलत्व (प्राबल्य अथवा दौर्बल्य) को जानने के पश्चात् विचार करके नीति का निर्धारण कर लिया जायेगा॥१६॥ देवताओं में जो बड़े-बड़े नीति के जानकार हैं वे दैत्यों पर अपनी नीति का प्रयोग करें । यदि हमलोग नीति के अनुसार कार्य न करके उसके विपरीत कार्य करेंगे तो उसका हमें प्रतिकूल फल प्राप्त होगा ॥१७॥ यह ठीक उसी तरह होगा जिसतरह कोई किसी औषधी का गुण जाने बिना प्रयोग करता है तो विपरीत फल को प्राप्त करता है । **व्यासजी ने कहा–** इसप्रकार से देवताओं के साथ विचार करने के पश्चात् इन्द्र ने एक कार्यकुशल गुप्तचर को दैत्यों की गतिविधि का पता लगाने के लिए प्रेषित किया । दूत भी दैत्यों की गतिविधि का पता लगाकर लौट आया और देवराज इन्द्र के पास आया॥१८-१९॥ उसने इन्द्र को दैत्यों की सेना के प्राबल्य तथा दौर्बल्य को बतलाया । महिषासुर की सेना की तैयारी को जानकर इन्द्र अत्यधिक आश्चर्यचकित हो गये ॥२०॥ उन्होंने शीघ्र ही देवपुरोहित आचार्य बृहस्पति को देवताओं को भेजकर बुलवाया और उनसे मन्त्रणा किया; क्योंकि बृहस्पति मन्त्रज्ञों में श्रेष्ठ हैं ॥२१॥ इन्द्र ने श्रेष्ठ आसन पर विराजमान अंगिरा गोत्रीय आचार्य बृहस्पति से कहा **इन्द्र ने कहा–** हे देवताओं के गुरु ! आचार्य बृहस्पति ! आप बतलायें कि इस समय हमलोगों को क्या करना चाहिए ॥२२॥ आप सर्वज्ञ हैं । ऐसी भयंकर परिस्थिति में इससमय केवल आप ही हमलोगों के रक्षक हैं । महिषासुर नामक दैत्य महाबलवान् और मदमत्त हो गया है ॥२३॥ वह इस समय बहुत से दानवों के साथ युद्ध करने की इच्छा से आ रहा है । आप मन्त्रकार्य करने में निपुण है । अतएव आप कोई ऐसा उपाय बतलायें जिससे कि उसका प्रतिकार किया जा सके ॥२४॥ जिस तरह दैत्यों के ऊपर

गुरुरुवाच– **स्वस्थो भव सुरेन्द्र त्वं धैर्यमालंब्य मारिष ॥२६॥ व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्ममाशु वै । जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि ॥२७॥ स्थातव्यं धैर्यमालंब्य तस्माद्बुद्धिमता सदा । भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो ॥२८॥ उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः । मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा ॥२९॥ दैवाधीनं च जानन्तो योगध्यानपरायणाः । तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः ॥३०॥ सुखं भवतु वा मा वा दैवे का परिदेवना ॥ विना पुरुषकारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात् ॥३१॥ अंधवत्पंगुवत्कामं न तथा मुदमावहेत् । कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते ॥३२॥ न तत्र दूषणं तस्य दैवाधीने शरीरिणि । कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मंत्रे न च मंत्रणे ॥३३॥ न रथे नायुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप । बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते ॥३४॥ बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत् । कातरो जयमाप्नोति शूरो याति**

आयी हुई विपत्ति को दूर करने का काम शुक्राचार्य किया करते हैं उसीतरह देवताओं पर आने वाली विपत्ति को विनष्ट करने का काम आप किया करते हैं । **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र की बातों को सुनकर बृहस्पति ने अपने मन में कार्य कारण के विषय में अच्छी तरह से विचार करके कहा । हे देवेन्द्र ! आप धैर्य धारण करें चिन्ता न करें ॥२५-२६॥ विपत्ति के आ जाने पर इतना शीघ्र धैर्य नहीं छोड़ देना चाहिए । हे देवेन्द्र ! विजय तथा पराजय तो भाग्याधीन होते हैं ॥२७॥ अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह धैर्य धारण करे । इन्द्र ! आप तो जानते हैं कि जो भवितव्यता होने वाली होती.है, वह तो होकर ही रहती है ॥२८॥ अपनी शक्ति के अनुसार प्रयास करना चाहिए । मुनिगण भी मुक्ति की प्राप्ति के लिए निरन्तर उद्योगशील बने रहते हैं ॥२९॥ वे यद्यपि इसबात को जानते हैं कि सबकुछ भाग्यानुसार ही होगा; किन्तु वे सदा योग तथा ध्यान में लगे रहते हैं । अतएव सर्वदा प्रयत्नानुकूल ही व्यवहार करते रहना चाहिए ॥३०॥ सुख मिले चाहे दुःख किन्तु भाग्य के भरोसे पड़े रहना और विपत्ति में पड़े रहकर दुःख भोगते रहना ठीक नहीं है । विना प्रयास के सफलता किसी भी कार्य में नहीं मिलती है ॥३१॥ अंधे और लंगडे के समान सफलता प्राप्त करके आनन्दित होना नहीं चाहिए । किसी गाँव में एक अन्धा व्यक्ति रहता था और एक लंगड़ा व्यक्ति रहता था । उस गाँव में कभी आग लग गयी । सबलोग अपना घर छोड़कर भागने लगे । किसीतरह अपनी जान बचाने के लिए भागते हुए एक स्थान पर दोनों अंधे तथा लंगडे मिल गये । दोनों ने आपस में बात की । और अंधे को रास्ता बतलाने के लिए लंगड़ा उसके कंधे पर चढ़ गया । इस तरह वे गाँव से बाहर निकलकर दोनों ने अपनी जान बचा ली । अतएव प्रयास करना चाहिए । प्रयास करने पर भी यदि सफलता न मिले तो उसमें प्रयास करने वाले का कोई भी दोष नहीं होता है; क्योंकि जीव भाग्याधीन है । कार्य की सिद्धि सेना अथवा मन्त्र अथवा मन्त्रणा से नहीं मिलती है ॥३१-३३॥ रथ तथा आयुध विशेषं से भी कार्य की सिद्धि नहीं मिलती है । देवेन्द्र वह तो भाग्याधीन है ही । देखा जाता है कि बलवान् व्यक्ति को भी दुख मिलने लगता है और दुर्बल व्यक्ति भी सुखी हो जाता है ॥३४॥ बुद्धिमान व्यक्ति को भी भूखे सो जाना

पराजयम् ॥३५॥ दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना । उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप ॥३६॥ दुःखदे सुखदे वाऽपि तत्र तौ न विचिंतयेत् । दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् ॥३७॥ आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् । धैर्यमेवावगंतव्यं हर्षशोकोद्भवे बुधैः ॥३८॥ अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम् । दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः ॥३९॥ हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद्बुद्धिनिश्चयात्। किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाऽव्ययः ॥४०॥ चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखं च किम् । प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने ॥४१॥ जरामृत्यु शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः । शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिंतने ॥४२॥ शरीरं नाहमथवा तत्सम्बन्धी न चाप्यहम् । सप्तैकषोडशादिभ्यो विभिन्नोऽहं सदा सुखी ॥४३॥ प्रकृतिर्विकृतिर्नाहं किं मे दुःखं सदा पुनः । इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा भव निर्ममः ॥४४॥ उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो । ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ॥४५॥ संतोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते। अथवा यदि न ज्ञानं ममत्वनाशने किल ॥४६॥ ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप । प्रारब्धकर्मणां नाशो न भोगाल्लक्ष्यते किल ॥४७॥

पड़ता है और मूर्ख भी भोगों से सम्पन्न हो जाता है । डरपोक भी विजयी हो जाता है और शूरवीर भी युद्ध में पराजित हो जाते हैं ॥३५॥ जब सम्पूर्ण जगत् भाग्याधीन है तो इसमें दुःख करने की कौन सी बात है ?। देवराज ! भवितव्यता का सम्बन्ध प्रयास से अवश्य होना चाहिए ॥३६॥ प्रयास करने के बाद भी चाहे दुःख मिले या सुख, उस पर अधिक विचार नहीं करना चाहिए । दुःख में यह नहीं सोचना चाहिए कि मुझे बहुत अधिक दुःख मिल रहा है और न तो सुख मिलने पर यह सोचना चाहिए कि मुझे बहुत अधिक सुख मिल रहा है ॥३७॥ हर्ष और शोक दोनों आत्मा के शत्रु हैं, अतएव आत्मा का इन दोनों से सम्बन्ध नहीं होने देना चाहिए । विद्वानों को चाहिए कि सुख तथा दुःख दोनों में धैर्य धारण करें ॥३८॥ धैर्य का त्याग कर देने पर जितना दुःख मिलता है, उतना दुःख धैर्य धारण करने पर नहीं होता है । सुख-दुःख दोनों को ही समान रूप से सहना बड़ा कठिन होता है ॥३९॥ अतएव प्राणी को इतना दृढ निश्चय कर लेना चाहिए कि उस पर सुख और दुःख का कोई असर न पड़े । सुख और दुःख किसको होता है ? मैं तो निर्गुण तथा निर्विकार हूँ ॥४०॥ मैं प्राकृतिक चौबीस तत्त्वों से भिन्न आत्मा तत्त्व हूँ । मेरे लिए दुःख और सुख क्या है ? भूख और प्यास तो प्राणों को लगते हैं, शोक और मोह मन को होता है ॥४१॥ बृद्धापा और मृत्यु तो शरीर के धर्म हैं । मैं तो इन सबों से भिन्न शिव स्वरूप हूँ । षडूर्मियों से रहित हूँ । जब शोक और मोह शरीर के धर्म हैं तो मुझको इस विषय में सोचने की कौन सी आवश्यकता है ॥४२॥ मैं न तो शरीर हूँ और न तो शरीर सम्बन्धी हूँ। मैं तो चौबीस तत्त्वों से भिन्न सदासुखी रहने वाला हूँ ॥४३॥ मैं न तो किसी का कारण हूँ और न तो किसी का कार्य हूँ । तब फिर मुझको दुःख और सुख क्यों ! हे सुरेश ! इस प्रकार से सोचकर आप अपने मन से ममता रहित हो जायँ ॥४४॥ हे इन्द्र ! आपके दुःख के नाश का सबसे प्रधान उपाय यही

यद्भावि तद्भवत्येव का चिन्ता सुखदुःखयोः । सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम ॥४८॥ सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष। तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः ॥४९॥ अथवा मंत्रयित्वाऽद्य कुरु यत्नं यथाविधि । कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम् । युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै ॥१॥ नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः । निरुद्यमं च शंसंति कातरा न च सोद्यमाः ॥२॥ यतीनां भूषणं ज्ञानं संतोषो हि द्विजन्मनाम् । उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम्॥३॥ उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च । तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम ॥४॥ बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुधमुत्तमम् ।**

हैं । ममता से बढ़कर कोई दुःख नहीं हैं, और निर्ममत्व से बढ़कर कोई सुख नहीं है ॥४५॥ इन्द्र ! सन्तोष करना ही सर्वाधिक सुखप्रद स्थान है । देवराज! यदि आपका ज्ञान ममत्व को समाप्त करने में समर्थ नहीं हो तो फिर आपको विवेक का सहारा लेना चाहिए । उस विवेक का स्वरूप यही है कि प्रारब्ध कर्मों के फल का नाश भोगे बिना कभी समाप्त नहीं होता है ॥४६-४७॥ जो होने वाला है वह तो हो ही रहा है सुख मिले अथवा दुःख उसकी क्या चिन्ता करनी है ?। यदि सभी देवता आपकी सहायता करें अथवा आपकी बुद्धि ही सहायता करे किन्तु होनहार होकर ही रहता है ॥४८॥ हे विद्वन् ! सुख से पुण्य कर्मों का नाश होता है और दुःख से पाप कर्मों का नाश होता है । अतएव बुद्धिमानों को चाहिए कि वे सुख का क्षय होने पर हर्षित हों॥४९॥ अथवा आप मन्त्रणा करके उसके अनुसार प्रयत्न करें । महाराज ! प्रयत्न करने पर भी जो होने वाला होगा वह तो होगा ही ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

देवदानव संग्राम तथा ताम्र के पराजय का वर्णन

व्यासजी ने कहा– इस तरह से बृहस्पति की बातों को सुनकर इन्द्र ने उनसे कहा कि मैं महिषासुर का विनाश करने के लिए युद्ध करूँगा ॥१॥ प्रयत्न के बिना न तो राज्य रहता है, न सुख मिलता है और न तो यश की प्राप्ति होती है । कायर पुरुष ही उद्योगराहित्य की प्रशंसा करते हैं । जो लोग उद्योगशील

सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः ॥५॥ रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम् । स्वसैन्याभिनिवेशं च महिषं प्रति मानद ॥६॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह । सुरेन्द्रं युद्धसंसक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥७॥** बृहस्पतिरुवाच– **प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निर्वारयाम्यहम् । संदिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये ॥८॥ न तेऽत्र दूषणं किंचिद्भवितव्ये शचीपते । सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति ॥९॥ न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा । यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि ॥१०॥ शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन । स्वाश्रमस्थेन सम्प्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम् ॥११॥ बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराधिप । क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात् ॥१२॥ तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः । कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप ॥१३॥** व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः । ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत् ॥१४॥ पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः । ग्रहीतुकामः स्वर्गं**

हैं वे निरुद्योगिता की प्रशंसा नहीं करते हैं ॥२॥ संन्यासियों का भूषण ज्ञान है, ब्राह्मणों का भूषण सन्तोष है, और ऐश्वर्याभिलाषियों का भूषण उद्योग करना तथा शत्रु का नाश करना है ॥३॥ उद्योग करके ही मैंने पहले वृत्रासुर का वध किया, नमुचि तथा बल नामक दैत्यों को मारा । हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी प्रकार मैं इस महिषासुर का भी वध करूँगा ॥४॥ हे देवगुरो ! आप ही मेरा बल हैं, वज्र ही मेरा आयुध है । मेरे सर्वश्रेष्ठ सहायक श्रीहरि और अविनाशी शंकर जी हैं ॥५॥ हे साधो ! आप मङ्गलमय रक्षोघ्न मन्त्रों का पाठ कीजिये मैं तो युद्ध की तैयारी कर रहा हूँ और महिषासुर के विपरीत सेना को उचित स्थान पर लगाने के लिए जा रहा हूँ ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** युद्ध करने के लिए तैयार इन्द्र को देखकर बृहस्पति ने मुस्कुराते हुए उनसे कहा ॥७॥ **बृहस्पति ने कहा–** युद्ध करने से अभी आपको विजय श्री मिलेगी अथवा आप पराजित होंगे, इस विषय में संदेह है । अतएव मैं न तो आपको युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा हूँ और न तो हतोत्साहित कर रहा हूँ ॥८॥ हे इन्द्र ! आपका होनहार के विषय में कोई दोष नहीं है । चाहे आप को सुख मिले अथवा दुःख जो होने वाला होगा वह होगा ही ॥९॥ आप जानते ही हैं, कि मेरी पत्नी का अपहरण चन्द्रमा ने कर लिया था। उस समय जो मुझे कष्ट मिला उसे मैं पहले से नहीं जानता था । अतएव मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ । यदि मुझे मालुम होता तो मैं चन्द्रमा के यहाँ अपनी पत्नी को भेजता ही नहीं ॥१०॥ हे शत्रुओं को विनष्ट करने वाले इन्द्र ! चन्द्रमा ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया था उसके कारण गृहस्थ जीवन में प्राप्त होने वाले मेरे सभी सुख समाप्त हो गये थे ॥११॥ हे सुराधिप ! सम्पूर्ण संसार में मैं सर्वाधिक बुद्धिमान माना जाता हूँ । जिस समय मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण हो गया उस समय मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी ॥१२॥ हे सुराधिप ! बुद्धिमानों को सदा चाहिए के वे उपाय करते रहें, किन्तु कार्य की सिद्धि तो सदा भाग्य के ही अधीन होती है ॥१३॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** अपने आचार्य बृहस्पति के सार्थक वचनों को सुनकर इन्द्र ! ब्रह्माजी के शरण में गये और उनको

मे बलोद्योगं करोत्यलम् ॥१५॥ अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः । योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः ॥१६॥ तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः । सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥ ब्रह्मोवाच– गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम्। शंकरं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम् ॥१८॥ ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह । मिलित्वा मंत्रमाधाय देशंकालं विचिंत्य च ॥१९॥ बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च । साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति ॥२०॥ व्यास उवाच– तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह। ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः ॥२१॥ तुष्टावशंकरं गत्वा वेदमंत्रैर्महेश्वरम् । प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति ॥२२॥ स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाचचात्मनः । महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात् ॥२३॥ तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह । करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम् ॥२४॥ व्यास उवाच– इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः । स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः ॥२५॥ ब्रह्मा हंससमारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः । शंकरो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः ॥२६॥ मयूरवाहनः स्कंदो यमो महिषवाहनः । कृत्वा सैन्यसमायोगं

प्रणाम करके कहे ।।१४।। हे देवताओं के स्वामिन् ! हे पितामह ! महिषासुर नामक दैत्य मेरे स्वर्ग को जीत लेने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न कर रहा है ।।१५।। दूसरे दैत्य भी उसकी सेना में आ गये हैं । वे सबके सब युद्ध करना चाहते हैं तथा युद्ध करने में निपुण हैं ।।१६।। मैं उससे अत्यन्त भयभीत होकर आपके पास आया हूँ । हे महाप्राज्ञ ! आप तो सब कुछ जानते हैं । अतएव मेरी सहायता करें ।।१७।। **ब्रह्माजी ने कहा–** हमसब लोग आज पहले कैलास चलें और वहाँ से शंकरजी को साथ लेकर सर्वाधिक बलवान् भगवान् विष्णु के पास चलें ।।१८।। वहाँ सभी देवता मिलकर विचार कर लें कि युद्ध करना चाहिए कि नहीं । अर्थात् युद्ध करना देश और काल के अनुसार उचित है कि नहीं ।।१९।। जो लोग अपनी शक्ति तथा सेना को नहीं जानते हैं, और उस पर विचार भी नहीं करते हैं, फिर जोखिम का कार्य करने लगते हैं तो ऐसे लोगों के पतन की पूरी संभावना बनी रहती है ।।२०।। **व्यासजी ने कहा–** ब्रह्माजी की बात को सुनकर इन्द्र कैलास के लिए चल पड़े । उन्होंने ब्रह्माजी को आगे कर लिया और लोकपालों को अपने साथ ले लिया।।२१।। वहाँ पर जाकर सबों ने वेदमंत्रों के द्वारा शंकरजी की स्तुति की । शंकरजी के प्रसन्न हो जाने पर उनको आगे करके सभी देवता भगवान् विष्णु के लोक में गये ।।२२।। सबों ने देवताओं के आराध्य भगवान् विष्णु की स्तुति की और उसके पश्चात् सबों ने अपने आने का प्रयोजन बतलाया। महिषासुर के विषय में तथा उससे प्राप्त होने वाले भय के विषय में सभी देवतओं ने बतलाया । उनलोगों ने यह भी बतलाया कि महिषासुर वरदान प्राप्त करके मदमत्त हो गया है ।।२३।। उस बात को सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा कि हमलोग युद्ध करेंगे और दुर्जय महिषासुर का वध कर देंगे ।।२४।। **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से निश्चय करके ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरजी एवं सभी देवता अपने-अपने वाहन पर सवार होकर युद्ध करने के लिए निकल पड़े ।।२५।।

यावत्ते निर्युयुः सुराः ॥२७॥ तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम् । तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः ॥२८॥ बाणैः खाड्गैस्तथा प्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः । गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः ॥२९॥ मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः । अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्पम्॥३०॥ सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः । मघवंतं पंचभिस्तैः सायकैः समताडयत् ॥३१॥ तुराषाडपि तांश्छित्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः। हृदये चार्धचंद्रेण ताडयामास तं कृती ॥३२॥ बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि । करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः ॥३३॥ तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह । दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत् ॥३४॥ गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम् । वरुणादीनपरान्हत्वा त्वमागच्छ ममांतिकम् ॥३५॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाख्यो महाबलः । आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम् ॥३६॥ वासवस्तं समायांतं दुष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥३७॥ स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः। पंचाशद्भिर्जघानाशु वासवं च शिलीमुखैः ॥३८॥ तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः । जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥३९॥**

ब्रह्माजी हंस पर सवार थे, विष्णु भगवान् गरुड पर सवार हुए और शङ्करजी नन्दी बैल पर सवार हुए और इन्द्र अपने ऐरावत नामक हाथी पर सवार हुए॥२६॥ कार्तिकेय मयूर पर सवार हुए और यम भैंसे पर चढ़ गये । इस तरह से सेना को एकत्रित करके जब सभी देवता युद्ध करने के लिए समराङ्गण में आये तो उनलोग ने महिषासुर के द्वारा पालित दैत्यों की सेना को देखा । वहाँ पर देवताओं तथा दानवों की सेना में भयंकर युद्ध हुआ ॥२८॥ वे परस्पर में एक दूसरे पर बाणों, खड्गों, प्रासों, मूसलों, फरसों, गदाओं, पट्टिशों, शूलों, चक्रों, शक्तियों, तोमरों, मुद्गरों, भिन्दपालों तथा अत्यन्त भयंकर हलों से प्रहार करते थे ॥३०॥ महिषासुर का सेनापति चिक्षुर हाथी पर सवार था । उसने पाँच बाणों से इन्द्र पर प्रहार किया ॥३१॥ इन्द्र ने भी बड़ी ही शीघ्रता से उन बाणों को अपने बाणों से काटकर अपने अर्द्धचन्द्र बाणों से उसके हृदय पर प्रहार किया ॥३२॥ बाणों के प्रहार से सेनापति चिक्षुर हाथी पर ही बेहोश हो गया । उसके पश्चात् इन्द्र ने अपने वज्र से हाथी के सूँड पर प्रहार किया । उस वज्र के प्रहार से हाथी भाग चला और पूरी सेना में भगदड़ मच गयी, यह देखकर क्रुद्ध होकर महिषासुर ने विडाल नामक दैत्य से कहा ॥३३-३४॥ हे महाबाहो ! वीर ! जाकर मदमत्त इन्द्र का वध कर दो और वरुण आदि दूसरे देवताओं को भी मार कर मेरे पास आओ ॥३५॥ **व्यासजी ने कहा–** महिषासुर की वाणी सुनकर महाबली विडाल मदमत्त हाथी पर सवार होकर इन्द्र के पास युद्ध करने के लिए गया ॥३६॥ उसको आते हुए देखकर इन्द्र क्रुद्ध हो गये । उन्होंने उसे भी सर्पों के ही समान कान्ति वाले चमकते बाणों से मारा । विडाल ने इन्द्र के बाणों को शीघ्र ही काट दिया और उसने अपने पचास बाणों से इन्द्र पर प्रहार किया ॥३७-३८॥ उसी तरह इन्द्र ने भी विडाल के बाणों को

स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि ।।४०।। स्वकरे निहतो नागश्चकरार्तस्वरं मुहुः । परिवृत्य
जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम् ।।४१।। दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात् । समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुराव्रणे ।।४२।। तुराषाडपि तं
वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम् । अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ।।४३।। सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः । बभूव तुमुलं युद्धं
तयोस्तत्र जयैषिणोः ।।४४।। इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः । जयंतमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः ।।४५।। जयंतस्तु शितैर्बाणैस्तं
जघान स्तनांतरे । पंचभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम् ।।४६।। स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि । अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात्।।४७।।
तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्छिते । जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः ।।४८।। सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम् ।
जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।४९।। चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम् । प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम् ।।५०।। ताम्रस्तु
बहुभिः सार्धं समागत्य रणाजिरे । शरवृष्टिं चकाराशु तडित्वानिव सागरे ।।५१।। वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा । यमश्च महिषारूढो

काट कर गिरा दिया और क्रोध में भरकर सर्प के समान चमकते बाणों से प्रहार किया ।।३९।। विडाल भी इन्द्र के बाणों को अपने बाणों से काट दिया
और अपनी गदा से हाथी के सूंड पर प्रहार किया ।।४०।। सूंड पर प्रहार लगने के कारण हाथी बार-बार चिघाड़ने लगा और भाग चला । उसके पैरों से
भयभीत दानवों के सेना कुचल गयी ।।४१।। विडाल ने जब देखा कि इन्द्र का हाथी भाग गया तो वह सुन्दर रथ पर बैठकर युद्ध करने के लिए देवताओं
के समक्ष आया ।।४२।। इन्द्र ने देखा कि विडाल रथ पर बैठकर पुनः आ गया है तो उन्होंने उस पर पुनः नागों के समान चमकते हुए बाणों से प्रहार
किया ।।४३।। महाबलवान विडाल ने भी क्रुद्ध होकर भयंकर बाणों की वर्षा की । वहाँ पर विजय चाहने वाले विडाल तथा इन्द्र ने घोर युद्ध किया ।।४४।।
इन्द्र उस महाबली विडाल को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये । उन्होंने अपने पुत्र जयन्त को भी अपने साथ ले लिया और विडाल से युद्ध करने लगे।।४५।।
जयन्त ने अपने पाँच तीक्ष्ण बाणों से मंदमत्त विडाल के स्तनों के बीच में प्रहार किया ।।४६।। उस समय विडाल बाणों से मारे जाने के कारण अपने रथ
पर ही गिर पड़ा और विडाल के सारथि उसके रथ को युद्ध के मैदान से हटा ले गया ।।४७।। विडाल नामक दैत्य के मूर्छित होकर युद्धाङ्गण से चले जाने
के कारण बहुत जोर से देवताओं ने दुन्दुभि बजायी ।।४८।। सभी देवता प्रसन्न हो गये और इन्द्र की स्तुति करने लगे । गन्धर्वगण गायन करने लगे
और अप्सरायें नृत्य करने लगी ।।४९।। देवताओं के द्वारा किए जाने वाले जय-जयकार को सुनकर महिषासुर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और शत्रुओं के मद
को विनष्ट करने वाले ताम्र को युद्ध करने के लिए भेजा ।।५०।। बहुत अधिक सेना के साथ युद्ध स्थल में आकर ताम्र जिस तरह सागर में बिजली

दंडमादाय निर्ययौ ॥५२॥ तत्र युद्धमभूद्घोरं देवदानवयोर्मिथः । बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः ॥५३॥ दंडेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च । न चचाल महाबाहुः संग्रामांगणतस्तदा ॥५४॥ चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान् । इन्द्रदीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे॥५५॥ तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः । निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धांस्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः ॥५६॥ निहतस्तैः सुरैर्दैत्यो मूर्च्छामाप रणांगणे । हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयातुरे ॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते पंचमस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

व्यास उवाच– **ताम्रेऽथ मूर्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः । समुद्यम्य गदांगुर्वीं देवानुपजगाम ह ॥१॥ तिष्ठन्त्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया**

गिरती हो उस तरह से बाणों की वर्षा करने लगा ॥५१॥ उस समय वरुण शीघ्र ही अपना पाश उठाकर उसके समक्ष युद्ध करने के लिए गये । भैंसे पर सवार यमराज भी अपना दण्ड लेकर युद्ध करने आये ॥५२॥ उस समय वहाँ पर देवताओं तथा दानवों में बाणों, खड्गों, मुसलों, शक्तियों तथा फरसों, से भयंकर युद्ध हुआ ॥५३॥ यद्यपि यमराज ने अपने दण्ड से ताम्र के ऊपर प्रहार किया फिर भी महाबाहु ताम्र युद्ध के मैदान से विरत नहीं हुआ ॥५४॥ उसने धनुष लेकर तीक्ष्ण बाणों से इन्द्र आदि देवताओं पर प्रहार किया ॥५५॥ इन्द्र आदि देवताओं ने भी दिव्य तथा तीक्ष्ण बाणों से दैत्यों पर प्रहार किया एवं तिष्ठ-तिष्ठ कहकर दैत्यों को ललकारा ॥५६॥ उन बाणों के प्रहार से ताम्र मूर्छित हो गया । उस समय दैत्यों की सेना भयभीत हो गयी और दैत्यसेना में हहाकार मच गया ॥५७॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

अनेक देवता एवं दैत्य सेनापतियों के युद्ध का वर्णन

व्यासजी ने कहा– ताम्र नामक दैत्य के मूर्छित हो जाने पर महिषासुर क्रोध से आग-बबूला हो गया वह गदा उठाकर देवताओं के पास युद्ध करने

किल । सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि ॥२॥ इत्युक्त्वाऽसौ गजारूढं सम्प्राप्य मदगर्वितः । जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः ॥३॥
सोऽपि वज्रेण घोरेण विच्छेदाशु गदां च ताम् । प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति ॥४॥ हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम् । ययाविंद्रं
महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवांतकम् ॥५॥ बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम् । आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम् ॥६॥ चकाराशु तदा दैत्यो
मायां मोहकरीं किल । शांबरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम् ॥७॥ कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः । ददृशु सायुधाः सर्वे निघ्नन्तो
देववाहिनीम् ॥८॥ मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम् । बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल ॥९॥ वरुणोऽपि सुसंत्रस्तस्तथैव
धननायकः । यमो हुताशनः सूर्यः शीतरश्मिर्भयातुरः ॥१०॥ पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः॥११॥
तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृतमात्राः सुरोत्तमाः । हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामा वरायुधाः ॥१२॥ शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम् ।
मुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता ॥१३॥ वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र सृष्टिस्थित्यंतकारिणः । योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत् ॥१४॥

गया ॥१॥ उसने कहा देवता सब ठहरें, आज मैं उन सबों को अपनी गदा से मार डालता हूँ । बलि खाने वाले कौए के समान देवताओं में कितना बल है, वे तो सदा से कमजोर रहे हैं ॥२॥ इस तरह कहकर और मदमत्त महिषासुर हाथी पर सवार इन्द्र की भुजाओं के मूल भाग में गदा से प्रहार किया॥३॥ इन्द्र ने भी वज्र से महिषासुर की गदा को काट दिया और महिषासुर पर प्रहार करने के लिए वे उसके पास पहुँच गये । महिषासुर ने भी अपना चमकता हुआ खड्ग उठाया । और इन्द्र पर प्रहार करने के लिए यमराज के समान इन्द्र के पास पहुँच गया ॥५॥ इन्द्र और महिषासुर में सम्पूर्ण लोकों को भयभीत कर देने वाला युद्ध हुआ । उन दोनों ने मुनियों को आश्चर्यित करने वाले अनेक आयुधों से युद्ध किया ॥६॥ उसके बाद महिषासुर ने मोह (अज्ञान) को उत्पन्न करने वाली अपनी माया को फैलाया । वह शाम्बरी माया सम्पूर्ण जीवों को मार देने वाली तथा मुनियों को भी अज्ञान में डाल देने वाली थीं ॥७॥ सबों ने देखा कि एक समान आकार वाले करोड़ों महिषासुर आयुध लेकर देवताओं की सेना को मार रहे हैं ॥८॥ महिषासुर की उस शाम्बरी माया को देखकर इन्द्र आश्चर्यित हो गये और अत्यन्त भयभीत हो गये ॥९॥ उस माया को देखकर वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा भयभीत हो गये और भागने लगे । अन्त में सभी देवताओं ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरजी का स्मरण किया ॥१०-११॥ स्मरण करते ही वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु और शंकरजी आ गये । वे देवतओं की रक्षा करने के लिए क्रमशः हंस, गरुड एवं वृषभ पर सवार होकर आये थे । और अपना-अपना आयुध धारण करके आये थे ॥१२॥ विष्णु ने उस माया को देखा और अपने अत्यन्त देदीप्यमान सुदर्शन को उन्होंने छोड़ा । इसके कारण वह माया विनष्ट हो गयी ॥१३॥ सृष्टि, पालन,

महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा । उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः ॥१५॥ असिलोमा त्रिनेत्रश्च बाष्कलांधक एव च । एते चान्ये
च बहवो योद्धुकामा विनिर्ययुः ॥१६॥ सन्नद्धा धृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः । परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान् ॥१७॥ बाणवृष्टिं
ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः । सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः ॥१८॥ अन्धको हरिमासाद्य पञ्च बाणाञ्छिलाशितान् । मुमोच
विषसंदिग्धान्कर्णाकृष्टान्महाबलान् ॥१९॥ वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा । चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशनः ॥२०॥ तयोः
परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययोः । बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥२१॥ महेशांधकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । पंचाशद्दिनपर्यंतं बभूव च
परस्परम् ॥२२॥ इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः । यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥२३॥ असिलोमावरुणयोर्युद्धं परमदारुणम् । गरुडं
गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम् ॥२४॥ स गदापातखिन्नांगो निःश्वसन्नवतिष्ठत । शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसांत्वयन् ॥२५॥ स्थिरं चकार
देवेशो वैनतेयं महाबलम् । समाकृष्य धनुः शार्ङ्ग मुमोच विशिखान्बहून् ॥२६॥ अंधकोपरि कोपने हंतुकामो जनार्दनः । दानवोऽपि च तान्बाणांश्चिच्छेद

संहार करने वाले उन आये हुऐ तीनों देवताओं को देखकर महिषासुर अपनी गदा लेकर उनके साथ युद्ध करने के लिए दौड़ा ॥१४॥ महिषासुर के साथ
उनका सेनापति चिक्षुर था उग्रास्य तथा उग्रवीर्य नामक भी दैत्य थे जो सदा युद्ध करने की इच्छा वाले थे । यही नहीं असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल, अन्धकासुर
तथा दूसरे भी बहुत से दैत्य युद्ध करने की इच्छा से वहाँ आये ॥१६॥ वे सबके सब धनुष और बाण लिए थे, रथ पर सवार थे तथा मदमत्त थे । जिस
तरह भेडिये छोटे-छोटे बच्चों को घेर लेते हैं, उसी तरह इन दैत्यों ने देवताओं को चारों ओर से घेर लिया ॥१७॥ और मदमत्त वे दैत्य देवताओं पर
बाणों की वर्षा करने लगे । एक दूसरे को मार डालने की इच्छा वाले देवताओं ने भी दैत्यों पर बाणों की वर्षा की ॥१८॥ अन्धकासुर ने अपने धनुष
की प्रत्यंचा को कान तक खींचकर शाण पर चढ़ाये गये तथा विष में बुझाये गये तीक्ष्ण चमकते हुए पाँच बाणों से भगवान् विष्णु पर प्रहार किया ॥१९॥
भगवान् वासुदेव भी पास आने से पहले ही अपने बाणों से उन पाँचों बाणों को काटकर गिरा दिए ॥२०॥ इसके बाद श्रीहरि तथा अन्धकासुर में परस्पर
में बाण, कृपाण, चक्र, मुसल, गदा तथा फरसे से युद्ध हुआ ॥२१॥ इस तरह भगवान् विष्णु तथा अन्धकासुर में परस्पर में रोमाञ्चक युद्ध पचास दिनों
तक हुआ ॥२२॥ उसी तरह इन्द्र तथा वाष्कल में, महिषासुर तथा रुद्र में, यम तथा त्रिनेत्र में महाहनु और कुबेर में एवं असिलोमा तथा वरुण में भी उसी
तरह से भयंकर युद्ध होता रहा ॥२३॥ अन्धकारसुर ने अपनी गदा से गरुड पर प्रहार किया । गदा की चोट से गरुड घबरा गये ओर लम्बी श्वास लेते
हुए स्थिर रहे । श्रीहरि ने अपने दाहिने हाथ से उन्हें सहलाया ॥२५॥ श्रीहरि के ऐसा करने से गरुड स्थिर हो गये और उन्होंने अपने धनुष की प्रत्यंचा को

स्वशरैः शितैः ॥२७॥ पंचाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः । वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वंचयित्वा शरोत्तमान् ॥२८॥ चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम् । [illegible] सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत् ॥२९॥ ननाद च महाराज देवान्संमोहयन्निव । दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्य शार्ङ्गिणः ॥३०॥ जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा । वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥३१॥ गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवः समुपाद्रवत् । तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः ॥३२॥ स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्च्छितः । तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः ॥३३॥ आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः । वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायान्तं क्रुधान्वितम् ॥३४॥ चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नंदयन्सुरान् । शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि ॥३५॥ सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान् । तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्परभयावहम्॥३६॥ गदया ताडयामस केशवो मस्तकोपरि । स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्छितः ॥३७॥ हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः । स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥३८॥ गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम् । परिघेणाहतस्तेन मूर्छामाप जनार्दनः ॥३९॥ मूर्छितं तमुवाहाशु

खीचकर अनेक बाणों को अन्धक के ऊपर उसको मारने के लिए चलाया । किन्तु अन्धकासुर ने भी अपने बाणों से श्रीहरि के बाणों को काट गिराया॥२६-२७॥ इसके पश्चात् अन्धकासुर ने श्रीहरि पर एक ही साथ पचास बाणों को छोड़ा किन्तु श्रीहरि ने शीघ्र ही उन समस्त बाणों को विफल बना दिया ॥२८॥ श्रीहरि ने अन्धकासुर पर अपना सुदर्शन चक्र चलाया किन्तु अन्धकासुर ने अपने चक्र से उसे विफल बना दिया ॥२९॥ देवताओं को सम्मोहित करते हुए उसने घोर गर्जना किया । भगवान् विष्णु के चक्र को विफल देखकर देवता शोक सन्तप्त हो गये और दैत्य प्रहर्षित हो गये । भगवान् वासुदेव ने जब दुःखी देवताओं को देखा ॥३०॥ तो उन्होंने अपनी कौमोदकी गदा को उठाया और अन्धक पर दौड़े और उस गदा से मायावी अन्धकासुर के शिर पर प्रहार किया ॥३२॥ गदा के मार से अन्धकासुर मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । अन्धकासुर को गिरे देखकर अत्यन्त क्रोधी महिषासुर जोर-जोर से गर्जना करते हुए श्रीहरि के समक्ष युद्ध करने आया । श्रीहरि ने भी क्रोधी महिषासुर को आते हुए देखा ॥३३-३४॥ उन्होंने देवताओं को प्रहर्षित करते हुए अपने धनुष का टंकार किया । उसके बाद उन्होंने महिषासुर पर शीघ्र ही बाणों की वर्षा की ॥३५॥ महिषासुर ने भी श्रीहरि के बाणों को आकाश में ही काट दिया । इस तरह हे राजन् ! श्रीहरि और महिषासुर में भयंकर युद्ध हुआ ॥३६॥ श्रीहरि ने महिषासुर के शिर पर अपनी गदा से प्रहार किया और उस गदा के प्रहार से महिषासुर मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३७॥ यह देखकर महिषासुर की सेना में भयंकर हाहाकार मच गया । किन्तु कुछ देर में ही महिषासुर होश में आया और खड़ा हो गया । उसने अपना परिघ (मुद्गर) लेकर श्रीहरि के शिर पर प्रहार किया । उस प्रहार से श्रीहरि मूर्छित

जगाम गरुडो रणात् । परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥४०॥ भयं प्रापुः सुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे । क्रंदमानान्सुरान्वीक्ष्य शंकरः शूलभृत्तदा ॥४१॥ महिषं तरसाऽभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः । सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शंकरस्योरसि स्फुटम् ॥४२॥ जगर्ज स च दुष्टात्मा वंचयित्वा त्रिशूलकम् । शंकरोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः ॥४३॥ तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः । संलग्नं शंकरं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना॥४४॥ आजगाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्छां प्रहारजाम् । महिषस्तु तदा वीक्ष्य संप्राप्तौ हरिशंकरौ ॥४५॥ युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ । कोपयुक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ ॥४६॥ जगाम संमुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः । माहिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम्॥४७॥ चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि । धुन्वञ्छृङ्गं महाकायो दारुणो जलदो यथा ॥४८॥ शृंगाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान् । दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ ॥४९॥ चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणाम् । कुर्वाणौबाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः ॥५०॥ चिक्षेप गिरिशृंगं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम् । आपतंतं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वातं पतिः ॥५१॥ विशिखैः शतधा चक्रे चक्रेणाशु जघान तम् । हरिचक्राहतः

हो गये ॥३९॥ मूर्छित हुए श्रीहरि को लेकर गरुड रणभूमि से बाहर चले गये । श्रीभगवान् के चले जाने पर इन्द्र आदि देवगण ॥४०॥ भयभीत हो गये। और रोने चिल्लाने लगे । रोते हुए देवताओं को देखकर शंकरजी ने अपना त्रिशूल उठाया और महिषासुर के सन्निकट आकर उस पर प्रहार किया । महिषासुर ने भी शङ्करजी के वक्षस्थल पर प्रहार किया ॥४१-४२॥ शंकरजी के त्रिशूल को विफल करके वह गर्जना करने लगा । यद्यपि महिषासुर ने शंकरजी के वक्षस्थल में प्रहार किया था किन्तु उससे शंकरजी पीडित नहीं हुए ॥४२-४३॥ उन्होंने क्रोध से आँखें लाल करके महिषासुर को त्रिशूल से मारा । शंकरजी को महिषासुर के साथ युद्ध करते हुए देखकर ॥४४॥ श्रीहरि होश में आकर वहाँ पर युद्ध करने के लिए आ गये । महिषासुर ने युद्ध करने के लिए उपस्थित श्रीहरि और शंकरजी को देखा कि वे चक्र और त्रिशूल धारण किए है । वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया ॥४५-४६॥ वह उन दोनों से युद्ध करने के लिए महिष का शरीर धारण करके तथा अपनी पूँछ उठाकर घूमाते हुए आ गया ॥४७॥ भयंकर गर्जना करके वह देवताओं को भयभीत कर रहा था और काले मेघ के समान भयंकर शरीर वाला वह अपनी पूंछ घूमा-धूमाकर अपने श्रृंगों से बड़े-बड़े पर्वत शिलाओं को फेंकने लगा । भगवान् विष्णु और शंकरजी उस दैत्य को देखे ॥४८-४९॥ उसके बाद वे दोनों देवता महिषासुर पर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगे । उन दोनों देवताओं के बाण को देखकर महिषासुर ने एक बड़े पर्वत शिखर को अपनी पूँछ में लपेट कर उन पर फेंका । भगवान् विष्णु ने देखा कि पर्वत उन पर गिर रहा है ॥५०-५१॥ उन्होंने अपने बाणों से उस पर्वत शिखर के सैकड़ों टुकड़े कर दिये और महिषासुर पर चक्र से प्रहार किया । श्रीहरि के चक्र के प्रहार से महिषासुर मूर्छित हो

संख्ये मूर्छामाप स दैत्यराट् ॥५२॥ उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः । गदापाणिर्महाघोरो दानवः पर्वतोपमः ॥५३॥ मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि। तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुः पांचजन्यं समुज्ज्वलम् ॥५४॥ पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम् । तेन शब्देन शंखस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः॥५५॥ बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तथा । त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ ॥१॥ कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम् । पपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदर्शनैः ॥२॥ गरुडं च नखाघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम् । जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी॥३॥ वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान् । हंतुकामो हरिः काममवापाशु क्रुधान्वितः ॥४॥ यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान**

गया ॥५२॥ और क्षण भर के बाद वह मनुष्य का शरीर धारण करके खड़ा हो गया । पर्वत के समान वह दानव अपने हाथ में भयंकर गदा लिए था॥५३॥ वह मेघ के समान गर्जना करते हुए देवताओं को भी भयभीत कर रहा था । उसको सुनकर भगवान् विष्णु ने अपने चमकते हुए शंख को बजाया और शंख की ध्वनि से सम्पूर्ण 'समरभूमि को गुञ्जारित कर दिया । शंख की उस ध्वनि से सभी दानव भयभीत हो गये ॥५५॥ और देवता तथा ऋषिगण प्रसन्न हो गये ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

पराजित देवताओं का कैलास पर्वत पर जाना

व्यासजी ने कहा– महिषासुर ने उस प्रकार से उदास असुरों को देखकर अपने महिषरूप को छोड़कर सिंह का रूप धारण किया ॥१॥ उसने अपने आयालों के फड़ फड़ाकर तथा भयंकर गर्जना करके अपने पंजे को दिखाते हुए देवताओं की सेना पर टूट पड़ा ॥२॥ उसने अपने नखों के अघात

तम् । तावत्सोऽतिबलः शृङ्गी शृंगाभ्यां न्यहनद्धरिम् ॥५॥ वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः । पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनं
निजम्॥६॥ गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शंकरोऽपि भयान्वितः । अवध्यं तं परं मत्त्वा ययौ कैलासपर्वतम् ॥७॥ ब्रह्माऽपि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ
भयात् । मघवा वज्रमालंब्य तस्थावाजौ महाबलः ॥८॥ वरुणः शक्तिमालंब्य धैर्यमालंब्य संस्थितः । यमोऽपि दंडमादाय यत्तः समरतत्परः ॥९॥
ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः । पावकः शक्तिमादाय तत्राभूद्युद्धमानसः ॥१०॥ नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थितावुभौ । वीक्ष्य तं
दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ ॥११॥ एतस्मिन्नंतरे कुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात् । विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च ॥१२॥ कृत्वा हि महिषं
रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा । देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥ ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत् । संग्रामे सुमहाघोरे
देवदानवसेनयोः॥१४॥ शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृगांश्चिक्षेप च महाबलः । जघान सुरसंघांश्च दानवो मदगर्वितः ॥१५॥ खुराघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य
भ्रामणेन च । स जघान रुषाविष्टो महिषः परमाद्भुतः ॥१६॥ ततो देवाः सगंधर्वा भयमाजग्मुरुद्यताः । मघवा महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत्॥१७॥

से गरुड को लहुलुहान कर दिया और अपने नंखों से भगवान् विष्णु की भुजाओं पर प्रहार किया ॥३॥ भगवान् वासुदेव ने भी उसे देखकर बड़े वेग से
अपने चक्र को उठाकर उसपर प्रहार किया ॥४॥ भगवान् ने उसे चक्र से जब मारा तो वह अपने सिंह रूप को त्यागकर भैंसे का रूप धारण कर लिया
और अपने सिंगों से श्रीहरि पर प्रहार किया ॥५॥ अपनी छाती पर उसके सिंग के प्रहार से विकल होकर भगवान् विष्णु भगकर अपने लोक में चले गये॥६॥
श्रीहरि को गये हुए देखकर शंकरजी ने जान लिया कि यह दैत्य अवध्य है, अतएव वे भी कैलास पर्वत पर चले गये ॥७॥ ब्रह्माजी भी भयभीत होकर
अपने लोक मे चले गये किन्तु महाबलवान् इन्द्र वज्र लेकर युद्ध के मैदान में डटे रहे ॥८॥ धैर्यधारण करके वरुण भी अपनी शक्ति लेकर खड़े रहे और
यमराज अपना दण्ड लेकर युद्ध के मैदान में युद्ध करने मे तत्पर रहें ॥९॥ यक्षाधिपति कुबेर भी युद्ध के लिए तैयार थे । अग्नि अपनी शक्ति लेकर युद्ध
करने के लिए उद्यत थे ॥१०॥ सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों भी एक साथ खड़े थे । इनदोनों ने भी महिषासुर को देखकर युद्ध करने के लिए निश्चय कर
लिया था ॥११॥ उसी समय दैत्यों की सेना क्रुद्ध होकर आयी वह क्रूर सर्पों के सदृश बाणों का प्रहार करने लगी ॥१२॥ उस समय दैत्यों का राजा भैंसे
का रूप बनाये खड़ा था । देवताओं तथा दानवों के योद्धाओं का घोर कोलाहल हो रहा था ॥१३॥ उस समय युद्ध में मेघ की गर्जना के समान धनुष
की प्रत्यंचा की और ताल ठोकने की ध्वनि हो रही थी ॥१४॥ महाबली महिषासुर अपनी सींगों से पर्वतों के शिखर को फेंक रहा था । मदमत्त
होकर वह देवसमूह को मार रहा था ॥१५॥ अत्यन्त अद्भुत वह महिषासुर क्रोध के मारे अपनी पूंछ घुमा-घुमाकर देवताओं को मार रहा था । खुर के

संगरं संपरित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ । यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयातुराः ॥१८॥ महिषोऽपि जयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः । ऐरावतं
गजं प्राप्य त्यक्तमिन्द्रेण गच्छता ॥१९॥ तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम् । स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं स्वर्गं गन्तुं मनो दधे ॥२०॥ तरसा
देवसदनं गत्वा स महिषासुरः । जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयातुरैः ॥२१॥ इन्द्रासने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत् । दानवान्स्थापयामास
देवानां स्थानकेषु सः ॥२२॥ एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम् । अवापैद्रं पदं कामं दानवो मदगर्वितः ॥२३॥ निर्जरा निर्गता नाकात्तेन
सर्वेऽतिपीडिताः । एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे ॥२४॥ श्रांताः सर्वे तदा रजन्ब्रह्माणं शरणं ययुः । प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं
चतुर्मुखम्॥२५॥ पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः । मरीचिप्रमुखैः शांतैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥२६॥ किन्नरैः सिद्धगंधर्वैश्चारणोरगपन्नगैः ।
तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥२७॥ देवा ऊचुः– **धातः किमेतदखिलार्तिहरांबुजन्म जन्माभिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान् यत् ।**
संपीडितान्रणजितानसुराधिपेन स्थानच्युतान्गिरिगुहाकृतसन्निवासान् ॥२८॥ पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेतान्संत्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान्।

प्रहार से वह देवताओं को मारता था ॥१६॥ उस समय देवता और गन्धर्व भयभीत हो गये थे । महिषासुर को देखकर इन्द्र भाग चले ॥१७॥ युद्ध छोड़कर इन्द्र के भाग जाने पर यम, कुबेर, वरुण ये सबके सब भयभीत हो गये ॥१८॥ महिषासुर भी अपना विजय मानकर अपने भवन चला गया । भागते समय इन्द्र ऐरावत हाथी और उच्चैःश्रवा घोड़े को छोड़कर भाग गये थे । महिषासुर ने इन सबों को अपने अधिकार में कर लिया इसके बाद महिषासुर शीघ्र अपनी सेना के साथ स्वर्ग जाने का निश्चय किया ॥१९-२०॥ महिषासुर स्वर्ग जाकर देवताओं का राज्य ले लिया क्योंकि भयभीत देवता स्वर्ग को छोड़कर भाग गये थे ॥२१॥ महिषासुर मनोहर इन्द्रासन पर बैठने लगा । उसने देवताओं के स्थानों पर दैत्यों को बैठा दिया ॥२२॥ इस तरह महिषासुर ने पूरे सौ वर्ष तक भयंकर राज्य किया । वह मदमत्त दानव ऐन्द्र पद को प्राप्त कर लिया ॥२३॥ महिषासुर से पीड़ित होकर सभी देवता स्वर्ग से भाग गये और अनेक वर्षों तक पर्वतों की गुफाओं में निवास करते रहे ॥२४॥ वे सभी देवता थककर रजोगुण की मूर्ति, जगत् के स्वामी चार मुखों वाले ब्रह्माजी की शरण में गये ॥२५॥ उस समय ब्रह्माजी कमल के आसन पर विराजमान थे, हृदय में वेदों को धारण किए हुए थे । उनके शान्त पुत्र मरीचि आदि जो वेदों तथा वेदांगों में पारंगत थे उनके द्वारा तथा किन्नरों सिद्धों, गन्धर्वों चारणों, पन्नगों आदि से घिरे थे । ऐसे ब्रह्माजी को देखकर भयभीत देवताओं ने उनकी स्तुति की ॥२६-२७॥ **देवताओं ने कहा–** हे संसारियों के समस्त दुःख को दूर करने वाले, हे कमल से जन्म लेने वाले ब्रह्माजी ! आप हम दुःखियों पर दया क्यों नहीं करते हैं । हमलोगों को महिषासुर ने युद्ध में पराजित कर दिया है । अपने स्थान से भ्रष्ट होकर हमलोग, पर्वतों की कन्दराओं में निवास

यस्त्वं सुरांस्तव पदांबुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्च कृपणान् यदुपेक्षसेऽद्य ॥२९॥ अमरभुवराज्यं तेन भुक्तं नितांतं मखहविरपि योग्यं ब्रह्मणैराददाति। सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम् ॥३०॥ किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम् । ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवित्तस्मात्प्रभो ते प्रणताःस्म पादयोः ॥३१॥ यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ नानाचरित्रः खलुः पापमानसः । पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टितस्त्राताऽसि देवेश विधेहि शं विभो ॥३२॥ नो चेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः कं शांतिकर्तारमनंततेजसम् । यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम् ॥३३॥ व्यास उवाच– **इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम् । बद्धांजलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम् ॥३४॥ तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः । उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुखं संजनयन्निव ॥३५॥** ब्रह्मोवाच– **किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः । स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः ॥३६॥ व्रजामोऽद्य सुराः सर्वै कैलासं पर्वतोत्तमम् । शंकरं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम् ॥३७॥ ततो व्रजाम वैकुंठं यत्र देवो जनार्दनः । मिलित्वा देवकार्यं च विमृशामो विशेषतः ॥३८॥ इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा**

करते हैं ॥२८॥ क्या सैकड़ों अपराध करने वाला भी पुत्र यदि किसी विपत्ति में पड़ जाता है तो उसे उसका पिता त्याग देता है ?। अतएव आपके चरणों के भक्त तथा दैत्यों से सताये गये देवताओं की आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ॥२९॥ उसने देवताओं के स्वर्गलोक के राज्य को खूब भोगा है। वह ब्राह्मणों से यज्ञों में हविष्य को भी ग्रहण करता है । वह कल्पवृक्ष के फूलों का उपभोग करता है, तथा समुद्र से निंकली हुयी कामधेनु का भी वही उपभोग करता है ॥३०॥ हे देवताओं के स्वामिन् ! इस समय हम देवताओं पर कैसी विपत्ति हैं, इस बात का वर्णन हमलोग क्या करें ?। आप दैत्यों की गतिविधि से पूर्णरूप से परिचित हैं । हे देव ! आप अपनी ज्ञानदृष्टि से सब कुछ जानते हैं । अतएव हमसभी देवता आपके श्रीचरणों की शरणागति कर रहे हैं ॥३१॥ देवता जहाँ कहीं भी जाते हैं, यह दुष्ट महिषासुर उनको दुःख देता है । अब आप ही रक्षक हैं आप हमलोगों का कल्याण करें ॥३२॥ यदि आप हमारी प्रार्थना पर नहीं ध्यान देंगे तो फिर दैत्यों की दावाग्नि रूपी कष्ट से पीड़ित हम देवगण आपके सदृश शान्तिप्रदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजाओं के स्वामी तथा देवताओं के अराध्य, आदि पिता तथा कल्याणकारी आपको छोड़कर अपने किस स्वामी के शरण में जायेंगे ॥३३॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से स्तुति करके सभी देवताओं ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया । वे सबके सब हाथ जोडे हुए उदास खड़े थे ॥३४॥ लोकपितामह ब्रह्माजी ने देवताओं को उस प्रकार से दुःखी देखकर मधुर वाणी में देवताओं को सुखी बनाते हुए कहा ॥३५॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** देवताओं मैं क्या करूँ ?। वर प्राप्त कर लेने के कारण वह दैत्य इतना उद्धत हो गया हैं । वह किसी पुरुष के द्वारा नहीं मारा जा सकता है । उसको कोई स्त्री ही मार सकती है। हम सभी देवता पहले कैलास पर्वत पर सभी कार्यों में निपुण शङ्करजी के पास चलते हैं ॥३७॥ फिर हमलोग वैकुण्ठ चलेंगे जहाँ भगवान् जनार्दन हैं ।

**कार्यसमुच्चये । देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ ॥३९॥ तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम् । आगच्छंतं सुरैः सार्धं निर्गतः
स्वगृहाद्बहिः ॥४०॥ दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृत्वाऽभिवादनौ भृशम् । प्रणतौ च सुरैः सर्वैः संतुष्टौ संबभूवतुः ॥४१॥ आसनानि पृथग्दत्त्वा
देवेभ्यो गिरिजापतिः । उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके ॥४२॥ कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः । पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासागमने
विभुः ॥४३॥** शिव उवाच– **किमत्रागमनं ब्रह्मन्कृतं देवैः सवासवैः । भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल ॥४४॥** ब्रह्मोवाच– **महिषेण
सुरेशान पीडिताः स्वर्निवासिनः । भ्रमंति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः ॥४५॥ यज्ञभुङ्महिषो जातस्तथाऽन्ये सुरशत्रवः । पीडिता लोकपालाश्च
त्वमद्य शरणं गताः ॥४६॥ मया ते भवनं शम्भो प्रापिताः कार्यगौरवात् । यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर ॥४७॥ त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां
देवानां भूतभावन ।** व्यास उवाच **इति तद्वचनं श्रुत्वा शंकरः प्रहसन्निव ॥४८॥ वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति ।** शिव उवाच–
भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो ॥४९॥ अनर्थदं च देवानां किं कर्तव्यमतः परम् । ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः ॥५०॥ का समर्था

हमसब लोग एकसाथ मिलकर देवताओं के कार्य के विषय में विशेष रूप से विचार करेंगे ॥३८॥ इस तरह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओं को अपने साथ लेकर हंस पर बैठकर कैलास गये ॥३९॥ उस समय शंकरजी ने ध्यान में जान लिया कि ब्रह्माजी देवताओं के साथ आ रहे हैं और वे भी अपने गृह से बाहर निकल आये ॥४०॥ एक दूसरे ने एक दूसरे को देखकर प्रणाम किया । और वे दोनों सभी देवताओं के साथ अत्यधिक सन्तुष्ट हुए ॥४१॥ शंकर जी ने सभी देवताओं को पृथक्-पृथक् आसन प्रदान किया उन सबों के बैठ जाने पर शंकरजी अपने आसन पर बैठे ॥४२॥ शंकरजी ने ब्रह्माजी से देवताओं के कैलास आने का प्रयोजन कुशल प्रश्न करने के बाद पूछा ॥४३॥ **शिवजी ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! इन इन्द्र आदि देवताओं के साथ आप कैसे आये हैं? आप अपने आने का प्रयोजन बतलायें ॥४४॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे देवताओं के स्वामिन् ! महिषासुर ने देवताओं को बहुत दुःख दिया है इन्द्र इत्यादि सभी देवता पर्वतों की कन्दराओं में भयभीत होकर घूमते रहते हैं ॥४५॥ इस समय महिषासुर तथा दूसरे दानव यज्ञभाग के भोक्ता बन गये हैं जो देवताओं के शत्रु हैं । पीड़ित होकर सभी लोकपाल आपके शरण में आये हैं ॥४६॥ कार्य की महत्ता को देखते हुए मैं इनसबों को आपके पास लाया हूँ। हे महेश्वर! जिस तरह से आप उचित समझें, उस तरह से देवताओं के कार्य को करें ॥४७॥ हे भूतभावन ! अब सभी देवताओं का भार आपके ऊपर है । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** ब्रह्माजी की बात सुनकर शंकरजी हँसने लगे ॥४८॥ और मधुर वाणी में उन्होंने ब्रह्माजी से कहा **शिवजी ने कहा–** प्राचीन काल में आपने ही वरदान देकर देवताओं के लिए अनर्थकारी कार्य किया है, अब इस विषय में क्या किया जाय ? अब महिषासुर इतना

वरा नारी तं हंतुं मददर्पितम् । न मे भार्या न ते भार्या संग्रामं गंतुमर्हति ॥५१॥ गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः । इन्द्राणी च महाभागा न युद्धकुशलाऽस्ति हि ॥५२॥ काऽन्या हंतुं समर्थाऽस्ति तं पापं मददर्पितम् । ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम् ॥५३॥ स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम् । सोऽस्ति बुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने ॥५४॥ मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिंतनम् । प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम् ॥५५॥ व्यास उवाच– **इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः । उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः ॥५६॥ स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति । मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकराञ्छुभान् ॥५७॥ ववुर्वाताः शुभाः शांताः सुगंधाः शुभशंसिनः । पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः ॥५८॥ निर्मलं चाभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा । गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत् ॥५९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

◆

बलवान हो गया है कि देवताओं को भी भयभीत करता है ॥४९-५०॥ उस मदमत्त महिषासुर को मारने में कौन सी स्त्री समर्थ हो सकती है ऐसी स्त्री न तो मेरी पत्नी है और न आपकी जो संग्राम में जा सकें ॥५१॥ ये दोनों संग्राम करने जायँ भी तो युद्ध कैसे करेंगी । इन्द्र की पत्नी भी युद्ध करने में कुशल नहीं है ॥५२॥ अब आप ही बतलायें की दूसरी कौन सी नारी है जो उस मदमत्त पापी को मार सके । मेरा तो विचार है कि हमलोग भगवान् जनार्दन के पास चलें ॥५३॥ उनकी स्तुति करके उन्हें देवताओं का कार्य करने के लिए प्रेरित करें । वे कार्यों की सिद्धि करने में सबसे अधिक बुद्धिमान हैं ॥५४॥ वासुदेव से मिलकर ही हमलोगों को इस कार्य पर विचार करना चाहिए । वे माया के द्वारा अथवा अपनी बुद्धि से अवश्य कोई न कोई साधन जुटा लेंगे ॥५५॥ **व्यासजी ने कहा–** भगवान् शंकर की इस वाणी को सुनकर ब्रह्माजी इत्यादि देवता चलने के लिए उठकर खड़े हो गये ॥५६॥ वे लोग कार्य की सिद्धि प्रदान करने वाले शकुनों को देखकर प्रसन्नता के साथ अपने-अपने वाहनों से भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ॥५७॥ उस समय शुभप्रदा शीतल तथा कल्याण सूचक सुगन्धित वायु चल रही थी । मार्ग में पक्षीगण सर्वत्र कल्याण प्रद ध्वनि कर रहे थे ॥५८॥ आकाश निर्मल हो गया, दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं । इस तरह देवताओं के जाने के समय सब कुछ कल्याणमय हो गया ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

◆

अष्टमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तरसा तेऽथ संप्राप्य वैकुंठं विष्णुवल्लभम् । ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्यसद्मविराजितम् ॥१॥ सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम् । हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम् ॥२॥ चंपकाशोककह्लारमंदारवकुलावृतैः । मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः॥३॥ कोकिलारावसन्नादैः शिखंडैर्नृत्यरंजितैः । भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम् ॥४॥ सुनंदनंदनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः । संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभावृत्तिभिः॥५॥ प्रासादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमंडितैः। अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥६॥ गायद्भिर्देवगंधर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः। रंजितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्ठैर्मनोहरैः ॥७॥ मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृतादरैः । स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मंडितं सदनं हरेः ॥८॥ ते च विष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाकृती । वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ ॥९॥ गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् । द्वारस्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥१०॥** व्यास उवाच– **विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ । सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः ॥११॥**

देवताओं के तेज से देवी की उत्पत्ति का वर्णन

व्यासजी ने कहा– कि वे सभी देवता तीव्रगति से चलकर भगवान् विष्णु के प्रियधाम वैकुण्ठलोक में पहुँचें और सभी प्रकार की शोभा से परिपूर्ण दिव्य भवनों से सुशोभित वैकुण्ठधाम का दर्शन किए ॥१॥ वैकुण्ठलोक सरोवर, वापी तथा नदियों से युक्त होने के कारण सुखप्रद तथा कल्याणप्रद था । ध्वनि करने वाले हंस, सारस तथा चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित था ॥२॥ वहाँ के दिव्य उपवनों में चम्पा, अशोक, श्वेतकमल, मन्दार, मौलश्री, मल्लिका, तिलक, आमड़ा तथा कुरबक आदि के पेड़ लगे थे । कोयल की ध्वनि सुनायी दे रही थी मयूर नृत्य कर रहे थे तथा भौरों की गुजन ध्वनि सुनायी दे रही थी ॥३-४॥ वहाँ नन्द सुनन्द आदि पार्षद तथा अन्य भक्तगण अत्यन्त भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की स्तुति अनन्यभाव से कर रहे थे ॥५॥ गगनचुम्बी रत्नजटित स्वर्ण निर्मित विचित्र सुन्दर भवनों से सुशोभित था वह वैकुण्ठलोक ॥६॥ देवता एवं गन्धर्व गायन गा रहे थे, अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं और मनोहर किन्नर गण अपनी सुरीली कण्ठ ध्वनि से मन को मोहित कर रहे थे ॥७॥ श्रीहरि के धाम में वेदपाठ करने वाले शान्त प्रकृति वाले मुनिगण वैदिक सूक्तों से श्रीहरि की स्तुति कर रहे थे ॥८॥ वे सभी देवता श्रीहरि के धाम में जाकर जय एवं विजय नामक श्रीहरि के द्वारपालों के देखें, जो अपने हाथ में सुवर्ण की छड़ी धारण किए हुए थे ॥९॥ देवताओं ने उन द्वारपालों से कहा कि आपमें से कोई एक जाकर श्रीभगवान् से निवेदित कर दे कि आपके दर्शन के लिए आये हुए ब्रह्मा, शिव आदि अनेक देवता आपके द्वार पर खड़े हैं ॥१०॥ व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया कि हे

विजय उवाच– देवदेव महाराज रमाकांत सुरारिहन् । समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठन्ति वै विभो ॥१२॥ ब्रह्मा रुद्रस्तथेंद्रश्च वरुणः पावको यमः। स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः ॥१३॥ व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः । निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः॥१४॥ गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान् । प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान् ॥१५॥ प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम् । तुष्टुवुश्च सुरारिध्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम् ॥१६॥ देवा ऊचुः– देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यंतकारक । दयासिंधो महाराज त्राहि नः शरणागतान् ॥१७॥ विष्णुरुवाच– विशंतु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयंतु वः । आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः ॥१८॥ चिंताऽऽतुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः । ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम् ॥१९॥ देवा ऊचुः– महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा । असाध्येनातिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना ॥२०॥ यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान् । अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमंति च भयातुराः ॥२१॥ वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन ।

राजन् ! उन देवताओं की वाणी को सुनकर विजय नामक द्वारपाल ने शीघ्र ही जाकर भगवान् विष्णु को प्रणाम करके दर्शनार्थ समागत देवताओं की सूचना दे दी ॥११॥ **विजय ने भगवान् से कहा**– हे रमाकान्त ! हे देवताओं के शत्रुओं का विनाश करने वाले प्रभो ! आपका दर्शन करने के लिए आये हुए देवगण द्वार पर खड़े हैं ॥१२॥ आपका दर्शन करने की इच्छा से आये हुए ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वरुण, अग्नि तथा यम आपकी वेदसूक्तों से स्तुति कर रहे हैं ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा**– विजय की बातों को सुनकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु उन देवताओं से मिलने के लिए अत्यधिक उत्सुकतापूर्वक अपने भवन से बाहर निकल कर आये ॥१४॥ जाकर श्रीहरि ने अपने द्वार पर खड़े, श्रम करने के कारण कृश तथा दुःखी देवताओं को प्रेम से परिपूर्ण दृष्टि से देखकर उन्हें प्रसन्न कर दिया ॥१५॥ उन देवताओं ने भी श्रीभगवान् को प्रणाम किया और वेदवेद्य असुरों को विनष्ट करने वाले भगवान् की वैदिक वाक्यों से स्तुति की ॥१६॥ **देवताओं ने कहा**– हे देवताओं के आराध्य ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले, हे दया सागर ! हे महाराज! आप शरणागत हम देवताओं की रक्षा करें । **विष्णु भगवान् ने कहा**– हे देवताओं ! आपलोग भीतर आयें और आसन पर बैठकर अपना कुशल बतलायें । आप सबलोग एक साथ मिलकर क्यों आये हैं ॥१८॥ आपलोग दैन्ययुक्त मन वाले होकर इतना चिन्तातुर क्यों हैं । आप सभी ब्रह्मा तथा रुद्र के साथ शीघ्रता से अपना कार्य बतलायें ॥१९॥ **देवताओं ने कहा**– प्रभो ! वरदान प्राप्त करके महिषासुर अत्यन्त दृप्त हो गया है । वह अत्यन्त दुष्ट पापी हम सभी देवताओं को दुःख दे रहा है ॥२०॥ ब्राह्मणों के द्वारा प्रदत्त यज्ञों के भाग का वह स्वयं भोग कर रहा है । भयभीत देवता घूम-घूमकर पर्वत की कन्दराओं में अपना समय बिता रहे हैं ॥२१॥ हे मधुसूदन ! ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके वह दुर्जय हो गया है । अतएव कार्य की महत्ता को देखते

तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम् ॥२२॥ समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद । कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन ॥२३॥ धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽस्ति नरैः किल । का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे ॥२४॥ उमा मा वा शची विद्या का समर्थाऽस्य घातने। महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि ॥२५॥ विचिन्त्य बुद्ध्या तत्सर्वं मरणस्यास्य कारणम् । कुरु कार्यं च देवानां भक्तवत्सल भूधर ॥२६॥ व्यास उवाच– श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव । युद्धं कृतं पुराऽस्माभिस्तथापि न मृतो ह्यसौ ॥२७॥ अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसंपदा । उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात् ॥२८॥ हयारिं वरदृप्तं च मायाशतविशारदम् । हन्तुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः ॥२९॥ प्रार्थयंतु च तेजोंशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा पुनः । उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥३०॥ आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः। तस्य सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च ॥३१॥ सर्वायुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता । हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम् ॥३२॥ व्यास उवाच– इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनात्ततः । स्वयमेवोद्बभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः ॥३३॥ रक्तवर्णं शुभाकरं पद्मरागमणिप्रभम् । किंचिच्छीतं

हुए हमलोग आपके शरण में आये हैं ॥२२॥ आप ही दैत्यों की माया को जानते हैं । आप ही उसका विनाश कर सकते हैं । हे दानवों का विनाश करने वाले भगवन् विष्णो ! आप उसके बध का कोई उपाय कीजिये ॥२३॥ ब्रह्माजी ने वरदान देकर उसे मानवों के लिए अवध्य बना दिया है । ऐसी कौन सी स्त्री हो सकती है जो उस दुष्ट का वध कर सके ॥२४॥ भगवती पार्वती, लक्ष्मी जी, अथवा सरस्वती जी अथवा इन्द्र पत्नी शची इनमें से कोई ऐसी स्त्री है क्या जो उस दुष्ट का युद्ध में वध कर सके ? । महिषासुर अत्यन्त दुष्ट है और वरदान के दर्प से दृप्त हो गया है ॥२५॥ हे भक्तवत्सल ! हे भूदेवी को धारण करने वाले । इन सभी बातों का विचार करके आप उसको मारने का कोई उपाय कीजिये और देवताओं का कार्य सम्पन्न कीजिये ॥२६॥ **व्यासजी ने कहा–** उन देवताओं की वाणी को सुनकर मुस्कुराते हुए भगवान् विष्णु ने कहा– हमलोगों ने बहुत पहले युद्ध तो किया था; किन्तु वह महिषासुर मरा नहीं ॥२७॥ अब केवल एक ही उपाय है कि हम सभी देवताओं के तेज से कोई एक वीर सुन्दर स्त्री उत्पन्न होए तो वह उस दुष्ट को युद्ध में मार सकती हैं ॥२८॥ वह महासुर वरदान के कारण दृप्त है और अनेक प्रकार की माया करने में निपुण है । उसको मारने के लिए योग्य नारी तो हमलोगों की शक्ति से उत्पन्न होकर ही हो सकती है ॥२९॥ अतएव हम सबलोग परा देवी से प्रार्थना करें कि वे हमलोगों के तेज समूह से एक तेज:पुञ्ज स्वरूपिणी नारी बन जायँ ॥३०॥ तथा रुद्र आदि हमसब लोग उन्हे अपना आयुध प्रदान करें । हमलोगों के त्रिशूल आदि जो दिव्य आयुध हैं, उन्हें हमलोग प्रदान करेंगे॥३१॥ सभी आयुधों से सम्पन्न तथा सभी तेजों से सम्पन्न वह श्रेष्ठ नारी उस पापी मदमत्त तथा वरदान के कारण दृप्त बने दुष्ट का वध कर देगी ॥३२॥

तथा चोष्णं मरीचिजालमंडितम् ॥३४॥ निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना । विस्मतौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ ॥३५॥ शंकरस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम् । रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत् ॥३६॥ भयंकरं च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम् । घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम्॥३७॥ ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम् । नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति ॥३८॥ ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम् । आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम् ॥३९॥ कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समंततः । निश्चकाम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च ॥४०॥ अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम् । निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः ॥४१॥ तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः । तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम् ॥४२॥ पश्यतां तत्र देवानां तेजः पुञ्जसमुद्भवा । बभूवातिवरा नारी सुन्दरी विस्मयप्रदा॥४३॥ त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा । अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी ॥४४॥ श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा । ताम्रपाणितला कांता दिव्यभूषणभूषिता॥४५॥ अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमंडिता । संभूताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥४६॥ जनमेजय उवाच– कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम ।

व्यासजी ने कहा– इस तरह से भगवान् विष्णु के कहने पर ब्रह्माजी के मुख से अत्यन्त दुःसह तेजोराशि निकल पड़ी ॥३३॥ उसका वर्ण लाल था, आकार सुन्दर था । उसकी कान्ति पदमराग मणि के समान थी । वह तेजोराशि कुछ ठंढी तथा कुछ गर्म थी । उसकी कान्ति चारो ओर फैल रही थी ॥३४॥ उस निकलती हुई तेजो राशि को श्रीहरि तथा शंकरजी दोनों ने देखा । उसको देखकर वे दोनों देवता आश्चर्य चकित हो गये ॥३५॥ उसी समय शंकरजी के भी शरीर से चाँदी के समान चमकदार धवल तेज निकला । वह इतना तीव्र था कि उसे देख पाना कठिन था । वह तेज दैत्यों के लिए भयानक था और देवताओं को आश्चर्यित करने वाला था उसका आकार पर्वत के समान विशाल था । वह तमोगुण की मूर्ति स्वरूप था ॥३७॥ उसके पश्चात् भगवान् विष्णु के भी शरीर से दूसरी तेजोराशि उत्पन्न हुई । वह नील वर्ण की तथा सत्त्वगुण का मूर्तिमान रूप थी ॥३८॥ उसके पश्चात् इन्द्र के भी शरीर से तेज निकला। उसका आकार-प्रकार असह्य था वह तेज गोलाकार था तथा सभी गुणों से युक्त था ॥३९॥ उसके पश्चात् कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुण आदि देवताओं के भी शरीर से एक ही साथ तेज प्रकट हुआ ॥४०॥ दूसरे भी देवतओं के भी शरीर से अत्यन्त चमकीला तेज समूह निकला । वह तेजोराशि अत्यन्त देदीप्यमान थी ॥४१॥ उस तेजोराशि को देखकर सभी विष्णु आदि देवता आश्चर्यित हो गये । वह तेजःसमूह देखने में दूसरे हिमालय पर्वत के समान लग रहा था ॥४२॥ सभी देवताओं के देखते ही देखते उस तेजः समूह से एक श्रेष्ठनारी उत्पन्न हो गयी । वह अत्यन्त सुन्दर थी । तथा आश्चर्यप्रद थी ॥४३॥ समस्त देवताओं के शरीर से निःसृत वह नारी विश्वमोहिनी तीनों वर्णों वाली, त्रिगुणात्मिका, मनोहर तथा अठारह भुजाओं वाली थी । वह साक्षात् महालक्ष्मी स्वरूपा थी ॥४४॥ उसका मुख गौरवर्ण का था, आँखें नीली थीं, ओष्ठ रक्तवर्ण के थे, हाथों के तलवे लाल थे तथा वह दिव्यालंकारों

विस्तरं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम् ।।४७।। एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथीक्स्थितम् । अंगानि चैव तस्यास्तु सर्वतेजोमयानि वा।।४८।। भिन्नभागविभागेन जातान्यंगानि यानि तु । मुखनासाक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च ।।४९।। ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीरांगसमुद्भवम् । बभूव यस्य देवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम् ।।५०।। आयुधाभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा । तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखांबुजनिर्गतम् ।।५१।। न हि तृप्याम्यहं ब्रह्मन्सुधामयरसं पिबन् । चरितं च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखांभोजनिःसृतम् ।।५२।। सूत उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः। उवाच मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम् ।।५३।। व्यास उवाच– शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण ब्रवीमि ते । यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम्।।५४।। न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः । याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन ।।५५।। कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः । वाचारंभणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत् ।।५६।। सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये । नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात्।।५७।।

से अलंकृत अत्यन्त मनोज्ञ थी ।।४५।। हजार भुजाओं वाली देवी असुरों के विनाश के लिए जो तेजः समूह से उत्पन्न हुई थी अठारह भुजाओं से समलंकृत हो गयी ।।४६।। **जनमेजय ने कहा–** हे व्यासजी ! हे महाभाग ! आप तो सर्वज्ञ हैं और मुनियों में श्रेष्ठ हैं । आप उस देवी के शरीर की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक करें ।।४७।। सभी देवताओं के शरीर से निकला हुआ तेज एकत्रित हो गया अथवा अलग-अलग ही रहा उस महालक्ष्मी के अङ्ग जो सभी देवताओं के तेजोमय थे वे विभिन्न वर्णों के थे अथवा एक ही रङ्ग के थे ?।।४८।। उस देवी के भिन्न-भिन्न अङ्ग जो मुख, नासिका, नेत्र थे वे सभी देवताओं के तेज को मिलाकर हुए थे अथवा अलग-अलग देवताओं के तेज से बने थे ।।४९।। हे व्यासजी ! आप उस देवी के अङ्गों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन करें । यह बतलाएँ कि किस देवता के तेज से देवी का कौन सा अङ्ग बना ।।५०।। जिस देवता ने जो आयुध तथा जो आभरण उस देवी को प्रदान किया और जैसे-जैसे दिया हम उन सारी बातों को आपके मुख से सुनना चाहते हैं ।।५१।। हे ब्रह्मन् ! इस अमृतमय रस के पान से मुझे तृप्ति नहीं हुयी है । जो अमृत महालक्ष्मी के चरित स्वरूप है तथा आपके मुख से निकला हुआ है ।।५२।। सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा कि राजा जनमेजय की उस वाणी को सुनकर माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ने राजा को प्रसन्न करते हुए मुधरवाणी में कहना प्रारम्भ किया ।।५३।। **व्यासजी ने कहा–** हे राजन्! आप सुनें मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उस देवी के देह की उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ ।।५४।। देवी के रूप का ठीक-ठीक वर्णन, न ब्रह्मा, न श्रीहरि, न रुद्र और न तो इन्द्र ही कर सकते हैं ।।५५।। अतएव मैं कैसे जान सकता हूँ कि देवी का रूप कैसा है ?। अतएव मैं देवी के रूप का वर्णन तो अपनी वाणी के विलास मात्र के लिए कर रहा हूँ ।।५६।। वे देवी नित्य हैं, सर्वदा ही रहती हैं । वे तो देवताओं के कार्य को पूरा करने के लिए, कार्य के गौरव

यथा नटो रंगगतो नानारूपो भवत्यसौ । एकरूपस्वभावोऽपि लोकरंजनहेतवे ॥५८॥ तथैषा देवकार्यार्थमरूपाऽपि स्वलीलया । करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च ॥५९॥ कार्यकर्मानुसारेण नामानि प्रभवंति हि । धात्वर्थगुणयुक्तानि गौणानि सुबहन्यपि ॥६०॥ तद्बै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप । यथा तेजः समुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम् ॥६१॥ शंकरस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपंकजम् । श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम्॥६२॥ केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाऽभवन् । वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः ॥६३॥ नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा । कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम् ॥६४॥ वक्रे स्निग्धे कृष्णवर्णे संध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ । जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते ॥६५॥ वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ संबभूवतुः । नातिदीर्घौ नातिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः ॥६६॥ तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा । संजाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा ॥६७॥ दंताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुंदाग्रसदृशाः समाः । संजाताः सुप्रभा राजन्प्राजापत्येन तेजसा ॥६८॥ अधरश्चातिरक्तोऽस्याः संजातोऽरुणतेजसा । उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकियस्य तेजसा ॥६९॥ अष्टादशभुजाकारा बहवो विष्णुतेजसा।

के कारण एक रूप वाली हो जाती हैं । वे वस्तुतः अनेक रूपों वाली हैं ॥५७॥ जैसे नट रङ्गशाला में अनेक रूपों को धारण करता है, उसी प्रकार देवी भी लोकरंजन के लिए अपना कोई एक रूप बना लेती हैं ॥५८॥ इसी तरह ये देवी अपनी लीलामात्र से निर्गुण होने पर भी अपने अनेक सगुण रूपों को बना लेती हैं ॥५९॥ देवी के कार्यों तथा कर्मों के अनुसार ही उनके नाम भी हो जाते हैं । उनके वे नाम घातुओं के अर्थ से युक्त होते हैं । तथा देवी के गुणों के कारण होते है । ऐसे देवी के गुणकृत नाम बहुत से हैं ॥६०॥ राजन् ! इन सारी बातों का मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करूँगा कि देवताओं के तेज समूह से भगवती का वह मनोहर रूप कैसे उत्पन्न हुआ था ?॥६१॥ शंकरजी का जो तेज था उससे देवी का मुखकमल बना । वह गौरवर्ण का सुन्दर आकार वाला तथा अत्यधिक कल्याणकारी हुआ ॥६२॥ देवी के मुलायम तथा काले-काले केश यमराज के तेज से उद्भूत हुए । उनके केश घुंघराले तथा मनोहर श्यामवर्ण के थे ॥६३॥ अग्नि के तेज से उनके तीनों नेत्र उद्भूत हुए । उनके नेत्र श्वेत, श्याम तथा रक्तवर्ण से युक्त थे ॥६४॥ दोनों सन्ध्याओं के तेज से श्याम वर्ण की तथा टेढ़ी दोनों भौहें हुई । वे देखने में कामदेव के धनुष के समान अत्यन्त मनोहर थीं ॥६५॥ वायु के तेज से देवी के दोनों श्रोत्र बने जो न तो बहुत बड़े थे और न तो बहुत छोटे । वे कामदेव के मूल के समान थे ॥६६॥ कुबेर के तेज से तिल के पुष्प के समान अत्यन्त मनोहर तथा स्निाधवर्ण वाली देवी की नाक हुई ॥६७॥ हे राजन् ! प्रजापति के तेज से देवी के दाँत बने जो नुकीले, चिकने, चमकदार, और कुन्दपुष्प के समान तथा एक सदृश आकार वाले थे ॥६८॥ देवी का लाल अधरोष्ठ सूर्य के तेज से उद्भूत हुआ और उनका मनोहर उत्तरोष्ठ कार्तिकेय

वसूनां तेजसांगुल्यो रक्तवर्णा स्तथाऽभवन् ॥७०॥ सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम् । ऐन्द्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिबलिसंयुतम् ॥७१॥ जंघोरू वरुणस्याथ तेजसा संबभूवतुः । नितंबः स तु संजातो विपुलस्तेजसा भुवः ॥७२॥ एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम् । समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमद्भवा ॥७३॥ तां दृष्ट्वा सुष्ठु सर्वांगीं सुदतीं चारुलोचनाम् । मुदं प्रापुः सुरा सर्वे महिषेण प्रपीडिताः ॥७४॥ विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च । प्रयच्छन्तु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि सांप्रतम् ॥७५॥ स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः । समर्पयन्तु सर्वेऽद्य देव्यै नानायुधानि वै ॥७६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा । ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च ॥१॥ क्षीरोदश्चांबरे दिव्ये रक्ते**

के तेज से बना ॥६९॥ भगवान् विष्णु के तेज से उनकी अठारहों भुजायें बनीं और वसुओं के तेज से उनकी लाल अंगुलियाँ बनी ॥७०॥ चन्द्रमा के तेज से उनके दोनों सुन्दर स्तन बने और इन्द्र के तेज से देवी का त्रिवली से युक्त मध्यभाग बना ॥७१॥ वरुण के तेज से देवी के विस्तृत ऊरुभाग और जंघायें बनीं और पृथिवी के तेज से देवि का विस्तृत नितम्ब बना ॥७२॥ राजन् ! इस प्रकार से विभिन्न देवताओं के तेज से सुन्दर आकार वाली सुन्दर रूपवाली तथा अत्यन्त मनोहर स्वर वाली देवी की उत्पत्ति हुई ॥७३॥ उन सर्वाङ्ग सुन्दरी, मनोहर दाँतों तथा मनोहर नेत्रों वाली देवी को देखकर महिषासुर के द्वारा अत्यन्त पीड़ित देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥७४॥ भगवान् विष्णु ने सभी देवताओं से कहा कि आप सभी लोग इस देवी को अपना-अपना मङ्गलमय आयुध प्रदान करें ॥७५॥ आपलोग शीघ्र अपने आयुधों से तेजोमय आयुधों को उत्पन्न करके उन्हें देवी को समर्पित करें ॥७६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके पाँचवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

व्यासजी ने कहा– भगवान् विष्णु की बातें सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और शीघ्र ही देवी को वस्त्र आयुध तथा भूषण प्रदान किए ॥१॥ क्षीर

सूक्ष्मे तथाऽजरे । निर्मलं च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमंडितम् ॥२॥ ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् । कुंडले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै ॥३॥ केयूरान्कङ्कणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान् । ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥४॥ नूपुरौ सुस्वरौ कांतौ निर्मलौ रत्नभूषितौ । ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः ॥५॥ तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः । अंगुलीयकरत्नानि तेजोवन्ति च सर्वशः ॥६॥ अम्लानपङ्कजां मालां गन्धाढ्यां भ्रमरानुगाम् । तथैव वैजयन्तीं च वरुणः सम्प्रयच्छत ॥७॥ हिमवानथ सन्तुष्टो रत्नानि विविधानि च । ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम् ॥८॥ भूषणैर्भूषिता दिव्यैः सा रराज वरा शुभा। सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता ॥९॥ विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथांगकम् । सहस्रारं सुदीप्तं च देवारिशिरसां हरम् ॥१०॥ स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शंकरः शूलमुत्तमम् । ददौ देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम्॥११॥ वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शंखं समुज्ज्वलम् । घोषवन्तं स्वशंखात्तु समुत्पाद्य सुमङ्गलम् ॥१२॥ हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम् । प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनम् ॥१३॥ इषुधिं बाणपूर्णं च चापं चाद्भुतदर्शनम् । मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम् ॥१४॥

सागर ने देवी को दो दिव्य वस्त्र प्रदान किया जो वस्त्र महीन, रक्तवर्ण के तथा कभी पुराने नहीं होने वाले थे । उसने प्रसन्नता पूर्वक देवी को सुन्दर एवं स्वच्छ हार भी प्रदान किया ॥२॥ विश्वकर्मा ने प्रसन्न मन से देवी को दिव्य चूडामणि प्रदान किया जो करोड़ो सूर्य के समान चमक रहा था । कानों में पहनने के लिए दो कुण्डल तथा भुजाओं के लिए दो कटक, तथा विभिन्न रत्नों से जटित केयूर (भुजबन्ध) एवं कंगन प्रदान किया ॥३-४॥ त्वष्टा ने देवी के पैरों में पहनने के लिए रत्नजटित मनोहर और सुन्दर ध्वनि करने वाले एवं सूर्य के समान चमकने वाले दो नूपुरों को प्रदान किया ॥५॥ महासागर ने गलें में पहनने के लिए सुन्दर हार तथा तेजोयुक्त अंगुठियों को प्रदान किया ॥६॥ वरुणदेव ने कभी नहीं कुम्हलाने वाली सुगन्धित तथा जिस पर भौरे मँडरा रहे थे ऐसी माला प्रदान की तथा वैसी ही वैजयन्ती माला प्रदान की ॥७॥ सन्तुष्ट होकर हिमालय पर्वत ने देवी को अनेक रत्न तथा सुवर्ण के समान कान्ति वाले मनोहर सिंह को वाहन के रूप में प्रदान किया ॥८॥ सभी प्रकार के दिव्य भूषणों से समलंकृत सभी लक्षणों से सम्पन्न अत्यन्त सुन्दरी सिंह पर सवार होकर सुशोभित हो रही थी ॥९॥ विष्णु ने अपने चक्र से उत्पन्न करके देवी को सहस्र अरों वाले देदीप्यमान तथा शत्रुओं के शिर को काट डालने वाला चक्र प्रदान किया ॥१०॥ शंकरजी ने अपने त्रिशूल से दैत्यों को विनष्ट करने वाले तथा भय को विनष्ट करने वाले उत्तम कोटि के त्रिशूल को पैदा करके देवी को प्रदान किया ॥११॥ प्रसन्न होकर वरुण देव ने अपने शंख से मङ्गलमय घोष करने वाले चमकते हुए शंख को उत्पन्न करके देवी को प्रदान किया॥१२॥ अग्नि ने अपनी शक्ति से सौ वीरों को मारने वाली, मन के समान वेग वाली दैत्यों का विनाश करने वाली शक्ति को देवी को प्रसन्न मन

स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविन्द्रोऽतिदारुणम् । घंटामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुन्दराम् ॥१५॥ ददौ दंडं यमः कामं कालदंडसमुद्भवम् । येनांतं
सर्वभूतानामकरोत्काल आगते ॥१६॥ ब्रह्मा कमण्डलुं दिव्यं गङ्गावारिप्रपूरितम् । ददावस्यै मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च ॥१७॥ कालः खड्गं
तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप । परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ ॥१८॥ धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम् । पंकजं वरुणश्चादाद्देव्यै
दिव्यं मनोहरम् ॥१९॥ गदां कौमीदकीं त्वष्टा घंटाशतनिनादिनीम् । अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम् ॥२०॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि
तथाऽभेद्यं च दंशनम् । ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः ॥२१॥ सायुधां भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः । तुष्टवुस्तां सुरा देवीं
त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम् ॥२२॥ देवा ऊचुः— **नमः शिवायै कल्याण्यै शांत्यै पुष्ट्यै नमो नमः । भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः ॥२३॥**
कालरात्र्यै तथांबायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः । सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा बृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥२४॥ पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीं
च या । अन्तःस्थिता यमयति वंदे तामीश्वरीं पराम् ॥२५॥ मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम् । अन्तःस्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नुमः

से प्रदान किया ॥१३॥ वायु देवता ने कठोर टंकार से युक्त देखने में सुन्दर धनुष तथा बाणों से सदा पूर्ण रहने वाले तरकस को देवी को प्रदान किया॥१४॥ इन्द्र ने अपने वज्र से उत्पन्न करके देवी को वज्र प्रदान किया तथा ऐरावत हाथी का घंटा जो तीव्र ध्वनि करने वाला एवं सुन्दर था उसे प्रदान किया ॥१५॥ यमराज ने अपने दण्ड से उत्पन्न करके देवी को एक ऐसा दण्ड प्रदान किया जिससे कालदेव मृत्यु की बेला आ जाने पर सभी जीवों का अन्त किया करते थे ॥१६॥ ब्रह्माजी ने देवी को गंगाजल से परिपूर्ण दिव्यकमण्डलू प्रदान किया और वरुणदेव ने उनको पाश प्रदान किया ॥१७॥ हे राजन् ! काल ने देवी को खड्ग तथा ढाल प्रदान किया और विश्वकर्मा ने देवी को फरसा प्रदान किया ॥१८॥ वरुणदेव ने मदिरा से भरा हुआ सुवर्ण निर्मित प्याला प्रदान किया। वरुणदेव ने देवी को मनोहर दिव्य कमल प्रदान किया ॥१९॥ त्वष्टा ने देवी को कौमोदकी गदा प्रदान की जो दैत्यों को विनष्ट करने वाली तथा सैकड़ों घण्टों की ध्वनि से युक्त थी ॥२०॥ त्वष्टा ने जगन्माता देवी को अनेक प्रकार के अस्त्रों को तथा अभेद्य कवच को प्रदान किया और सूर्यदेव ने देवी को किरणें प्रदान की ॥२१॥ इसतरह से आयुधों तथा अलंकारों से युक्त देवी को देखकर देवता आश्चर्यित हो गये और त्रैलोक्य को मोहित करने वाली शिवा देवी की देवताओं ने स्तुति की ॥२२॥ **देवताओं ने कहा—** हे देवि ! आप कल्याणी, शान्ति और पुष्टि हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । भगवती, रुद्राणी तथा देवी को हमलोगों का नमस्कार है ॥२३॥ कालरात्रि, अम्बा तथा इन्द्राणी स्वरूपिणी आपको बारम्बार नमस्कार है । सिद्धि, बुद्धि, वृद्धि तथा वैष्णवी स्वरूपिणी आपको नमस्कार है ॥२४॥ जो परमेश्वरी पृथिवी के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, जिन्हें पृथिवी नहीं जान पाती है, जो पृथिवी के भीतर रहकर उसका नियमन करती हैं, उन परमेश्वरी को नमस्कार है ॥२५॥ जो माया के भीतर रहती हैं, माया जिनको नहीं जान पाती है जो माया के भीतर

शिवाम् ॥२६॥ कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापितान् । जहि पापं हयारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम् ॥२७॥ खलं मायाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम् । दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम् ॥२८॥ त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवल्सले । पीडितान्दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तु ते॥२९॥ व्यास उवाच– एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा । तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः ॥३०॥ देव्युवाच– भयं त्यजंतु गीर्वाणा महिषान्मन्दचेतसः । हनिष्यामिरणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम् ॥३१॥ व्यास उवाच– इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम् । चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत् ॥३२॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेंद्राश्चान्ये सुरास्तथा । कंपयुक्ता भयत्रस्ता वर्तन्ते महिषात्किल ॥३३॥ अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः । कालः कर्ताऽस्ति दुःखानां सुखानां प्रभुरीश्वरः ॥३४॥ सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा । मुह्यंति क्लेशसंतप्ता महिषेण प्रपीडिताः ॥३५॥ इति कृत्वा स्मितं देवी साऽट्टहासं चकार ह । उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम् ॥३६॥ चकम्पे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् । चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान् ॥३७॥ मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः । भयं

रहकर उसको प्रेरित करती हैं, उन शिवा को हम लोग प्रणाम करते हैं ॥२६॥ हे मातः ! आप हमलोगों का कल्याण करें । हमलोग शत्रु से संतप्त हैं। आप हमलोगों की रक्षा करें, आपके ही तेज से मोहित पापी महिषासुर का आप वध कर दें । वह खल मायावी हैं । वरदान के कारण वह दृप्त हो गया है । कोई स्त्री ही उसको मार सकती है । वह शठ अनेक रूपों को धारण करके देवताओं को दुःख देता है ॥२८॥ हे भक्तवत्सले ! केवल आप ही सभी देवताओं की रक्षिका है । आप दानव के द्वारा पीड़ित देवताओं की रक्षा करें, आपको नमस्कार है ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा–** देवताओं द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर सबों को सुख देने वाली देवी ने मुस्कुराते हुए देवताओं से कहा ॥३०॥ **देवी ने कहा–** देवताओं ! अज्ञानी महिषासुर से उत्पन्न भय को आपलोग त्याग दें । वरदान के कारण दृप्त तथा अज्ञानी महिष को मैं आज ही युद्ध में मार दूँगी ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवताओं को कहकर देवी ने खूब जोर से अट्टहास किया । यह संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य है कि सम्पूर्ण जगत् भ्रमजन्य अज्ञान में पड़ा हुआ है ॥३२॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि सभी देवता महिषासुर के भय से भयभीत होकर काँपते रहते हैं ॥३३॥ देवतावर्यों दैव का बल बड़ा भयानक तथा दुर्जय है । काल ही सुख तथा दुःख देने वाला, प्रभु तथा सबों का स्वामी हैं ॥३४॥ क्योंकि आपलोग सृष्टि पालन तथा संहार करने की क्षमता से युक्त होकर भी महिषासुर से पीड़ित होकर घबरा जाते हैं ॥३५॥ यह मन में सोचकर देवी ने अट्टहास किया । देवी के उस अट्टहास का घोर शब्द दानवों के लिए अत्यन्त भयंकर था ॥३६॥ उस अद्भुत शब्द को सुनकर पृथिवी काँप गयी । सभी पर्वत भी डगमगाने लगे और समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगीं ॥३७॥ उस

जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तत्स्वनं महत् ॥३८॥ जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः । महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः ॥३९॥ किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशंकितः । गच्छंतु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम् ॥४०॥ कृतः केनायमत्युग्रः शब्दः कर्णव्यथाकरः । देवो वा दानवो वापि यो भवेत्स्वनकारकः ॥४१॥ गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयंत्विह । हनिष्यामि दुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम् ॥४२॥ क्षीणायुष्यं मंदमतिं नयामि यमसादनम् । पराजिताः सुराः कामं न गर्जन्ति भयातुराः ॥४३॥ नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम् । त्वरिता माभुपायांतु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम् ॥४४॥ अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम् । व्यास उवाच– **इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥४५॥ अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम् । सर्वलक्षणसंपन्नां वरायुधधरां शुभाम् ॥४६॥ दधतीं चषकं हस्ते पिबंती च मुहुर्मधु । संवीक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशङ्किताः ॥४७॥ सकासे महिषास्याशु तमूचुः स्वनकारणम् ।** दूता ऊचुः– **देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदंगना॥४८॥ सर्वाङ्गभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता । न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा ॥४९॥ सिंहारूढाऽऽयुधधरा चाष्टादशकरा वरा । सा नादं**

शब्द से सुमेरु पर्वत काँपने लगा; सारी दिशाएँ शब्द से भर गयीं । उस महान शब्द को सुनकर दैत्य भी भयभीत हो गये ॥३८॥ देवगण अत्यन्त हर्षित होकर देवी की जय मनाते हुए कहे कि हे देवि ! आप रक्षा करें । महिषासुर भी मदमत्त होने के कारण उस ध्वनि को सुनकर क्रुद्ध हो गया ॥३९॥ उस आवाज को सुनकर शंकित हुए महिषासुर ने दैत्यों से पूछा यह क्या है । जहाँ से यह आवाज आयी है, जाकर उसका पता लगाओ ॥४०॥ कानों को व्यथित करने वाली इस आवाज को किसने किया है ? वह चाहे देवता हो या दानव ॥४१॥ उसको पकड़कर मेरे समीप लाओ मैं उस अभिमानी तथा व्यर्थ गर्जना करने वाले को मार डालूँगा ॥४२॥ लगता है उस मूर्ख की आयु समाप्त हो गयी है । मैं उसे यमलोक भेज दे रहा हूँ । पराजित होने के कारण भयभीत देवता तो गर्जना नहीं कर सकते हैं ॥४३॥ असुर भी ऐसी ध्वनि नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे सब मेरे वशवर्ती हैं; न जाने किसने यह मूर्खता की है । इस शब्द का पता लगाकर तुम लोग शीघ्र मेरे पास आओ ॥४४॥ उस व्यर्थश्रम करने वाले के पास जाकर मैं उसे मार दूँगा । **व्यासजी ने कहा–** महिषासुर के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर दूतों ने सर्वाङ्गसुन्दरी देवी को जाकर देखा ॥४५॥ जो अठारह भुजाओं वाली और सभी दिव्यअलङ्कारों से अलंकृत थीं । उनका स्वरूप दिव्य था । वे अपने हाथों में श्रेष्ठ आयुध को धारण किए हुयी थीं । वह श्रेष्ठनारी के सभी लक्षणों से सम्पन्न थी । उनका स्वरूप मङ्गलमय था ॥४६॥ वे अपने हाथ में प्याला लेकर बार-बार मदिरा का पान कर रही थीं । उन देवी को देखकर वे दूत भयभीत हो गये और शंका से विकल होकर वहाँ से भाग गये ॥४७॥ दूतों ने महिषासुर के पास जाकर उसके उस ध्वनि को करने वाली देवी को बतलाते हुए कहा । **दूतों ने कहा–** हे दैत्येश्वर वह शब्द करने वाली कोई अपरिचित स्त्री है । वह प्रौढ नारी देखने में देवी जैसी लगती है ॥४८॥ उस नारी के समस्त अङ्ग आभूषणों

कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता ॥५०॥ सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका । अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंति मुदान्विताः ॥५१॥ जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो । न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः ॥५२॥ किमर्थमागता चात्र कि चिकीर्षति सुन्दरी । द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजःपरिधर्षिताः ॥५३॥ शृंगारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता । दृष्ट्वैवंविधां नारीमसंभाष्य समागताः ॥५४॥ वयं त्वदाज्ञया राजन्किं कर्तव्यमतः परम् । महिष उवाच– गच्छ वीर मयाऽऽदिष्टो मंत्रि श्रेष्ठ बलान्वितः ॥५५॥ सामादिभिरुपायैस्त्वं समानया शुभाननाम् । नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह ॥५६॥ अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम् । करोमि पट्टमहिषीं तामरालभ्रुवं मुदा ॥५७॥ प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना । रसभंगो यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम् ॥५८॥ श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्य रूपस्य संपदा । व्यास उवाच– महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं मंत्रिसत्तमः ॥५९॥ जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः । गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम्॥६०॥

से भूषित हैं । वह समस्त रत्नों से समलंकृत है । वह न तो कोई मानुषी है और न तो कोई असुर जाति की स्त्री है । उसका मनोहर रूप अलौकिक है।।४९।। वह सिंह पर सवार है और अपने अठारहो भुजाओं में श्रेष्ठ आयुधों को धारण किए हुयी है । वही नारी ही यह शब्द कर रही है । देखने में वह मदमत्त सी लगती है ।।५०।। वह बार-बार मदिरा का पान करती है । देखने में ऐसा लगता है कि अभी उसका विवाह नहीं हुआ है । अंतरिक्ष में स्थित होकर सभी देवता उसकी स्तुति कर रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं ।।५१।। हे स्वामिन् ! वे सभी देवता उसका जय-जयकार कर रहे हैं । वे उस नारी से कह रहे हैं कि हे देवि ! आप हमलोगों के शत्रु को मार डालिए । न जाने वह कौन सी स्त्री है, न जाने उसका पति कौन है ?।।५२।। वह सुन्दरी यहाँ न जाने किस काम के लिए आयी है । न जाने वह क्या करना चाहती है ? उसके तेज से अभिभूत होकर हमलोग उसको देख पाने में भी समर्थ नहीं हैं ।।५३।। वह शृङ्गाररस, वीररस, हास्यरस, रौद्ररस से समकाल में ही परिपूर्ण है । इस प्रकार की उस नारी को देखकर उससे बात किए बिना ही हमलोग वहाँ से लौट आये हैं ।।५४।। हे राजन् ! अब आपकी कौन सी आज्ञा है ? हमलोग क्या करें ? दूतों की बात सुनकर **महिषासुर ने कहा–** हे वीर ! हे मेरे प्रधान मन्त्रिन् ! यह मेरा आदेश है कि आप सेना लेकर उस नारी के पास जायँ ।।५५।। उस सुन्दरी को आप साम, दान आदि उपायों से प्रसन्न करके मेरे पास लायें । यदि वह साम, दान तथा भेद इन तीनों प्रकार के उपायों से मेरे पास नहीं आये तो ।।५६।। उसको बलपूर्वक आप मेरे पास लायें । उसे आप जान से मारेंगे नहीं । मैं उस टेढी भ्रुकुटि वाली को अपनी पटरानी बनाऊँगा ।।५७।। यदि वह मृगनयनी प्रेमपूर्वक मेरे पास आ जाती है तो फिर आप कोई भी ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे कि उसके प्रेम में कोई बाधा हो । उसका रसभंग न होए । आप मेरे इस अभीप्सित कार्य को कीजिये ।।५८।। मैं सुनकर ही उसकी रूप सम्पत्ति पर मोहित हो गया हूँ । **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! महिषासुर की मधुर वाणी सुनकर, उसका वह मंत्रीश्रेष्ठ ।।५९।। शीघ्र हाथी और

विनयावनतः श्लक्ष्णं मंत्री मधुरया गिरा । प्रधान उवाच– **काऽसि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम् ॥६१॥ पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः । स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैः किल ॥६२॥ ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने । दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा ॥६३॥ श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम् । प्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः ॥६४॥ मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति । यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहे वयम् ॥६५॥ तदेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः । नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम् ॥६६॥ तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम् । वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव ॥६७॥ करभोरु वदाशु त्वं संविधेयं मया तथा ॥६८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

घोड़ों की सेना के साथ देवी के पास गया और देवी से दूर ही खड़ा होकर उसने उस मनस्विनी देवी से कहा ॥६०॥ उस मंत्री ने विनयावनत होकर देवी से मधुर और मृदुवाणी में **प्रधान मंत्री ने कहा–** हे मधुर आलाप करने वाली ! आप कौन हैं ? आप यहाँ किसलिए आयी हैं ?॥६१॥ मेरे माध्यम से मेरे स्वामी महिषासुर आपसे यह जानना चाहते हैं । उन्होंने आपके विषय में सुना है । उनको कोई भी देवता नहीं मार सकता है । वे सभी देवताओं के लिए अबध्य हैं । वे सभी देवताओं पर विजय प्राप्त कर लिए हैं । कोई मनुष्य उन्हें मार नहीं सकता है । वे ब्रह्माजी के वरदान से गर्वित हैं । हे सुन्दरि ! ये दैत्यों के स्वामी महाबलवान् हैं और अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण कर लेते हैं ॥६२-६३॥ आपके सुन्दर और मनोहर वेष को सुनकर मेरे महिषासुर नामक महाराज इन सारी बातों को आपसे जानना चाहते हैं ॥६४॥ वे मनुष्य का रूप धारण करके आपके पास आयेंगे ॥६४॥ हे सुन्दरि! आपकी जैसी रूचि हो हमलोग वैसा ही करेंगे ॥६५॥ अतएव हे मृगनयनि ! आप उनके समीप चलें । यदि आप स्वयं उनके पास नहीं चलना चाहें तो हमलोग जाकर उनको लिवा लायें । वे राजा हैं और वे भक्ति में तत्पर हैं ॥६६॥ हे देवि ! आपको जो अच्छा लगे वैसा मैं करने के लिए मैं तैयार हूँ । आपके इस सौन्दर्य को सुनकर महाराज आपके अत्यन्त वशवर्ती बन गये हैं ॥६७॥ हे सुन्दरि ! आप यह शीघ्र बतलायें कि मैं क्या करूँ ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

दशमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा । तमुवाच महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१॥** देव्युवाच– **मंत्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल । महालक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम् ॥२॥ प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च । पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभाग बहिष्कृतैः ॥३॥ तस्मादिहागताऽस्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा । एकाकिनी न सैन्येन संयुता मंत्रिसत्तम ॥४॥ यत्त्वयाऽहं सामपूर्वं कृत्वा स्वागतमादरात्। उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टाऽस्मि तेऽनघ ॥५॥ नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल । कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु ॥६॥ गच्छ तं महिषं पापं वद मद्वचनादिदम् । गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥७॥ नोचेत्कृतागसं दुष्टं हनिष्यामि रणांगणे । मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वं गन्तासि यमसादनम् ॥८॥ दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम् । हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यन्ति सत्वरम् ॥९॥ तस्माद्गच्छस्व त्यक्त्वैको मेदिनीं च ससागराम् । पातालं तरसा मन्द यावद्बाणा न मेऽपतन् ॥१०॥ युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर । वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम् ॥११॥ युगे युगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल । असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणांगणे ॥१२॥ साफल्यं कुरु**

दैत्य महामन्त्री तथा देवी का संवाद

व्यासजी ने कहा– इसतरह से महिषासुर के महामंत्री की वाणी सुनकर उस श्रेष्ठ नारी ने जोर से हँसकर अपनी मेघ के समान गंभीर वाणी से उससे कहा ॥१॥ **देवी ने कहा–** हे मन्त्रिश्रेष्ठ ! मेरे विषय में आप यह जानें कि मैं देवताओं की माता हूँ । मेरा नाम महालक्ष्मी है । मैं सभी दैत्यों का विनाश करने वाली हूँ ॥२॥ सभी देवताओं ने महिषासुर का वध करने के लिए मुझसे प्रार्थना की है क्योंकि उसने सभी देवताओं को दुःख दिया है और उन सबों को यज्ञभाग से बहिष्कृत कर दिया है ॥३॥ अतएव मैं यहाँ पर महिषासुर का वध करने के लिए आयी हूँ । हे मन्त्रिश्रेष्ठ ! मैं अकेली हूँ मेरे साथ कोई सेना भी नहीं है ॥४॥ हे अनघ ! आपने शान्तिपूर्वक मेरा स्वागत किया है, मेरे साथ मधुरवाणी में जो कुछ आपने कहा है, उससे मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ॥५॥ अन्यथा मैं तुम्हे अपनी कालाग्नि के समान दृष्टिपात मात्र से मार डालती । मधुरवाणी सुनकर किसको प्रेम नहीं होता है ?॥६॥ तुम पापी महिषासुर के पास जाओ और मेरी आज्ञा को उसे सुनाओ कि हे महिषासुर ! यदि तुम जीना चाहते हो तो पाताललोक मे चले जाओ ॥७॥ अन्यथा तुम अपराधी हो। तुम दुष्ट हो और मैं तुम्हें युद्धभूमि में मार डालूँगी । मेरे बाणों से तुम्हारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जायेगा और तुम यमलोक चले जाओंगे ॥११॥ तुम्हारे

शस्त्राणं धारणे तु श्रमोऽन्यथा । तद्युद्ध्यस्व मया सार्धं समरे स्मरपीडित ॥१३॥ मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन् यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः । स्त्रीवध्यत्वे त्वया
मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः ॥१४॥ कर्तव्यं वचनं धातुस्तेन त्वामुपागता । स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हन्तुं कृतागसम् ॥१५॥ यथेच्छं गच्छ वा मूढ
पातालं पन्नगावृतम् । हित्वा भूसुरसद्माद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥१६॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तः स ततो देव्या मन्त्रिश्रेष्ठो बलान्वितः। प्रत्युवाच
निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम् ॥१७॥ देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता । क्वासौ क्व त्वं कथं युद्धमसंभाव्यमिदं किल ॥१८॥
एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः । महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि सङ्गतम् ॥१९॥ सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।
पदातिगणसंविद्धं नानायुधविराजितम् ॥२०॥ कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने । मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे ॥२१॥ यदि त्वां
परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम् । शृंगारे तद्विरुद्धं हि रसभङ्गाद्बिभेम्यहम् ॥२२॥ राजाऽस्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान् । साममेव मया वाच्यं
दानयुक्तं तथा वचः ॥२३॥ नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम् । मिथ्याऽभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम् ॥२४॥ स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा**

जैसे असंख्य दैत्यों को मैने विभिन्न युगों में मारा है । तुम महामूढ हो । तुम्हारा विनाश मैं युद्धभूमि में करूँगी ॥१२॥ हे कामी तुम मेरा सामना करके मेरे
शस्त्र धारण करने के श्रम को सफल करो । युद्ध के मैदान में तुम मेरे साथ युद्ध करो ॥१३॥ अरे दुष्टात्मन् ! तुम इस बात का गर्व मत करो कि मुझे
ब्रह्माजी का वरदान प्राप्त है । स्त्री का वध्य होने के कारण तुमने देवताओं को बहुत दुःख दिया है ॥१४॥ ब्रह्माजी की वाणी सत्य करने के ही लिए मैं
अतुलनीय स्त्री का रुप धारण करके तुम्हारे पास आयी हूँ । तुम अपराधी और पापी हो अतएव मैं तुम्हे मारने के लिए आयी हूँ ॥१५॥ यदि तुम्हें जीने
की इच्छा हो तो तुम आज ही इस स्वर्गलोक को छोड़कर दैत्यों के साथ पाताल लोक में चले जाओ ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा**– देवी की इसतरह की बात
को सुनकर सेना के साथ आये हुए उस मन्त्रीश्रेष्ठ ने उत्तर देना शुरु किया ॥१७॥ हे देवि ! तुम मद से गर्वित हो अतएव स्त्रियों के समान बातें करती
हो। कहाँ तो आप और कहाँ महिषासुर ! आपदोनों में युद्ध होना कैसे संभव है ?॥१८॥ आप अकेली हैं और कोमल बाला हैं । अभी आपकी जवानी
प्रारम्भ हुयी है । महिषासुर महाकाय हैं । अतएव आप दोनों में युद्ध होना असंभव हैं ॥१९॥ महिषासुर के पास हाथी, रथ, घोड़े तथा अनेक प्रकार के
आयुधो से युक्त पैदल सेना अत्यधिक है ॥२०॥ हे सुन्दरि ! जिस तरह गजराज को मालती पुष्प के मसल देने में कोई श्रम नहीं करना पड़ता है उसी
तरह महिषासुर को तुम्हें युद्ध में मारने में कितनी देर लगेगी ?॥२१॥ यदि मैं थोड़ी भी कठोर वाणी तुमसे बोलूँ तो वह तुम्हारे शृङ्गार के विरुद्ध होगा।
उससे रसभङ्ग होगा । अतएव मैं तुमसे कठोर वाणी बोलने से डरता हूँ ॥२२॥ हमारे राजा महिषासुर देवताओं के शत्रु हैं, वे तुमसे प्रेम करते हैं । अतएव मुझको
तुमसे साम और दान युक्त ही वाणी बोलना उचित है ॥२३॥ नहीं तो मृषा बोलने वाली तुमको मैं अपने बाणों से आज ही मार डालूँ । तुम मिथ्याभिमान करने

रूपं ते भुवनातिगम् । तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया ॥२५॥ राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल । कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम् ॥२६॥ पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि । पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते ॥२७॥ त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम् । सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात् ॥२८॥ देव्युवाच– शृणु सचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम् । शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिंत्य च ॥२९॥ महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल । पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव सांप्रतम् ॥३०॥ मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत् । उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना किल ॥३१॥ यदुक्तं स्त्रीस्वभावाऽसि तद्विचारय मूढ किम् । पुमान्नाहं तत्स्वभावाऽभवं स्त्रीवेषधारिणी ॥३२॥ याचितं मरणं पूर्वं स्त्रिया त्वत्प्रभुणा यथा । तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः ॥३३॥ कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम् । प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना ॥३४॥ तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कर्तुमुपागता । कथं बिभेति त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः ॥३५॥ विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत् । विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा ॥३६॥ किं सैन्यैरायुधैः

में चतुर हो तथा रूप तथा जवानी के गर्व से गर्वित हो गयी हो ॥२४॥ मेरे स्वामी तुम्हारे अतिलौकिक रूप के विषय में सुनकर तुम पर मोहित हो गये हैं । अतएव उनकी प्रसन्नता के लिए मुझे जो कुछ भी कहना है तुमसे प्रिय वाणी में ही कहना है ॥२५॥ हे विशालाक्षि ! उनका राज्य तुम्हारा ही राज्य है । उनका सारा धन तुम्हारा ही धन है । महिषासुर तुम्हारे दास हैं । अतंएव मृत्यु प्रदान करने वाले क्रोध को छोड़कर तुम उनसे प्रेम करो ॥२६॥ हे भामिनि ! मैं प्रेमपूर्वक तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता हूँ । हे सुन्दर मुस्कान वाली ! शीघ्र ही तुम महाराज की पटरानी बन जाओ ॥२७॥ महिषासुर को अपनाकर तुम त्रैलोक्य के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लोगी तथा संसार के समस्त सुखों को प्राप्त कर लोगी । **देवी ने कहा**– हे मंत्री ! सुनो मैं शास्त्र प्रतिपादित प्रकार से तुम्हारे चातुर्य पूर्ण बातों का उत्तर संक्षेप में दे रही हूँ ॥२९॥ मैंने अपनी बुद्धि से जान लिया है कि तुम महिषासुर के प्रधान मंत्री हो । तुम्हारी बातों से लगता है कि तुम्हारी बुद्धि पशुओं की बुद्धि के समान है ॥३०॥ जिसके मन्त्री ही तुम्हारे जैसे हैं वह बुद्धिमान कैसे हो सकता है ? तुम दोनों को तो ब्रह्मा ने ही मिला दिया है ॥३१॥ तुमने यह जो कहा है कि तुम स्वभाव से स्त्री हो । तो तुम विचार करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ । मैं स्त्री के वेष में पुरुष ही हूँ ॥३२॥ प्राचीन काल में तुम्हारे स्वामी ने अपनी मृत्यु की याचना स्त्री से की थी, इसीलिए मैं समझती हूँ कि वह वीर रस का ज्ञाता नहीं है ॥३३॥ स्त्री के हाथों मरने में नपुंसक सुख मानता है किन्तु वीरों को तो उससे महान् कष्ट होता है । तुम्हारा स्वामी भैंस है । अतएव भैंस के समान बुद्धि होने के कारण उसने ऐसा वरदान माँगा ॥३४॥ इसीलिए स्त्री का रूप धारण करके मैं अपना कार्य करने के लिए आयी हूँ । तुम्हारे धर्मशास्त्र विरोधी

किं वा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः । मरणं सांप्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम् ॥३७॥ यदाऽयं देवसंबंधो जीवस्य कालयोगतः । तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः ॥३८॥ यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम् । तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः ॥३९॥ ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते । तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते ॥४०॥ ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः । मरिष्यामो न मन्यंते ते मूढा मन्दचेतसः ॥४१॥ तस्माद्गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम् । यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल ॥४२॥ मघवा स्वर्गमाप्नोतु देवाः सन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥४३॥ अन्यथा चेन्मतिर्मंद महिषस्य दुरात्मनः । तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः॥४४॥ मन्यसे संगरे भग्ना देवा विष्णुपुरोगमाः । दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः ॥४५॥ व्यास उवाच– **इति देव्या वचः श्रुत्वा चिंतयामास दानवः । किं कर्तव्यं मया युद्धं गन्तव्यं वा नृपं प्रति ॥४६॥ विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै । तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ॥४७॥ इयं बुद्धिः समीचीना यद्व्रजामि कलिं विना । यथाऽऽगतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम् ॥४८॥ स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा**

वाक्यों से मुझे भय क्यों होगा ?॥३५॥ जब भाग्य विपरीत हो जाता है तो तृण भी वज्र के समान हो जाता है और जब भाग्य अनुकूल होता है तो उस समय वज्र भी रुई के समान हो जाता है ॥३६॥ जिसकी मृत्यु सन्निकट आ गयी हो उसको आयुध सेना अथवा दुर्ग से क्या लाभ होगा ? जिसको अभी मरना है, उसको सेना और आयुध से कोई लाभ नहीं मिलता है ॥३७॥ जिस समय जीव का शरीर से सम्बन्ध होता है, उसी समय ब्रह्मा उसके, सुख, दुःख तथा मृत्यु का निश्चय कर देते हैं ॥३८॥ ब्रह्मा ने जिसकी जहाँ पर जिस प्रकार से मृत्यु निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु वहीं पर उसी प्रकार से तथा उसी समय होती है, यह निश्चित है ॥३९॥ यही नहीं ब्रह्मा आदि देवताओं की भी जिस तरह समयानुसार ही जन्म तथा मृत्यु निश्चित होती है । उसी प्रकार होती हैं तो फिर दूसरों की कौन सी बात है ?॥४०॥ जो मरने वाले जीव है, वे वरदान प्राप्त करके यह जो घमण्ड करते हैं कि मैं मरने वाला नहीं हूँ। ऐसे जीव अत्यन्त अज्ञानी हैं ॥४१॥ अतएव तुम शीघ्र अपने स्वामी के पास चले जाओ । उनसे मेरी बात कहो । वे जैसी तुमको आज्ञा दे वैसा ही करो॥४२॥ तुम अपने स्वामी से कहना कि इन्द्र को स्वर्ग का राज्य तथा देवताओं को यज्ञ का भाग मिलना चाहिए । और यदि तुमलोग जीना चाहते हो तो तुमलोग पाताल लोक में चले जाओ ॥४३॥ यदि दुष्ट महिषासुर की बुद्धि मन्द है तो फिर वह मरने के लिए तैयार हो जाय और मेरे साथ युद्ध करे॥४४॥ यदि तुम यह सोचते हो कि युद्ध में विष्णु आदि देवता मुझसे परास्त हो गये तो उनके पराजय का कारण तुम नहीं हो अपितु उनका विपरीत भाग्य तथा ब्रह्मा जी का वरदान है ॥४५॥ **व्यासजी ने कहा–** कि राजन् ! देवी के इस वचन को सुनकर वह महामंत्री सोचने लगा कि मैं क्या करूँ ? मैं देवी के साथ युद्ध करूँ अथवा अपने राजा के पास जाऊँ ?॥४६॥ वे तो कामातुर होकर मुझको आदेश दिए थे कि जिस तरह से हो उसे प्रसन्न करके मेरे पास विवाह

मतिमतां वरः । करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह ॥४९॥ सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह । जये पराजये वापि भूपतेरप्रियं भवेत्॥५०॥ यदि मां सुन्दरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः । येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल ॥५१॥ तस्मात्तत्रैव गत्वाऽहं बोधयिष्यामि तं नृपम् । यथाद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः ॥५२॥ व्यास उवाच— इति संचिंत्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ । प्रणम्य तमुवाचेदं कृतांजलिरसात्मकः ॥५३॥ मंत्र्युवाच— राजन्देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता । अष्टादशभुजा रम्या वरायुधधरा परा ॥५४॥ सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि । महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया ॥५५॥ पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः । स तवाज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति ॥५६॥ त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने । महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव ॥५७॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मयावेशमोहिता । मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः ॥५८॥ महिषीगर्भसम्भूतं पशूनामधमं किल । बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया ॥५९॥ का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत् । मादृशी मन्दबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह ॥६०॥ महिषी महिषं नाथं

करने के लिए लाओ । उसको विरस बनाकर मैं महाराज के पास कैसे जाऊँ ॥४७॥ मुझे तो यही अच्छा लगता है कि युद्ध किए बिना ही मैं महाराज के पास जाकर सारी बातें बता दूँ ॥४८॥ उसके बाद वे जैसी आज्ञा देंगे वैसा होगा । वे बुद्धिमान हैं और मन्त्रियों के साथ विचार करके ही कुछ भी करेंगे॥४९॥ मुझे इस देवी के साथ सहसा युद्ध नहीं करना चाहिए । क्योंकि युद्ध में मुझे विजय मिले अथवा पराजय । इन दोनों ही स्थितियों में महाराज को प्रसन्नता नहीं होगी ॥५०॥ चाहे यह सुन्दरी मुझे मार दे अथवा मैं किसी भी उपाय से इसे मार दूँ तो इससे हमारे राजा क्रुद्ध ही होंगे ॥५१॥ अतएव मैं राजा के पास जाकर इन सारी बातों को बतला दूँ जैसा कि इस देवी ने कहा है । उसके बाद वे जैसा चाहें वैसा करें ॥५२॥ **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से विचार करके वह मेधावी मंत्री अपने राजा के पास चला गया और प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर अपने राजा से कहा ॥५३॥ **मंत्री ने कहा**— हे राजन् ! वह सुन्दरी सिंह पर सवार है । उसकी मनोहर अठारह भुजाएँ हैं और वह श्रेष्ठ आयुधों को धारण किए हुई है ॥५४॥ मैंने उससे कहा कि तुम मेरे महाराज महिषासुर से विवाह कर लो । महाराज की तुम रानी बन जाओ । वे त्रैलोक्य के स्वामी हैं । तुम उनकी प्रिय पत्नी बनो ॥५५॥ तुम ही उनकी पटरानी बनोगी इसमें कोई भी संशय नहीं है और वे तुम्हारे वशवर्ती होकर तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे ॥५६॥ हे वरानने ! त्रैलोक्य के ऐश्वर्य को दीर्घकाल पर्यन्त भोग करो तथा महिषासुर को पति के रूप में प्राप्त करो स्त्रियों में भाग्यवती बन जाओ ॥५७॥ मेरी इस बात को सुनकर वह सुन्दरी आवेश में आ गयी और मन्द-मन्द मुस्काती हुई मुझसे कहने लगी ॥५९॥ भैंस के गर्भ से उत्पन्न होने वाले महिषासुर अधम पशु है । मैं देवी को उसकी

सशृंगाशृंगसंयुतम् । कुरुते क्रन्दमाना वै नाहं तत्सदृशी शठ ॥६१॥ करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् । गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥६२॥ परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया । तच्छ्रुत्वाऽहं समायातः प्रविचिंत्य पुनः पुनः ॥६३॥ रसभङ्गं विचिंत्यैव न युद्धं तु मया कृतम् । आज्ञां विना तवात्यन्तं कथं कुर्यां वृथोद्यमम् ॥६४॥ साऽतीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनी । भवितव्यं न जानमि किं वा भावि भविष्यति ॥६५॥ कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मन्त्रोऽतीव दुरासदः । युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम् ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

* * *

बलि इसलिए चढ़ाऊँगी कि देवताओं का कल्याण हो ॥५९॥ कौन ऐसी मूर्ख सुन्दरी होगी जो भैंसे को अपना पति बनायेगी ? मैं उसके योग्य शठ स्त्री नहीं हूँ जो उसके साथ पशु बन जाऊँ ॥६०॥ सींगों वाली तथा डकारने वाली कोई भैंस ही उस सींग वाले भैंसे की स्त्री बन सकती है । हे शठ मैं तो भैंस हूँ नहीं कि उसकी स्त्री बन जाऊँगी ॥६१॥ मैं संग्रामस्थल में युद्ध करूँगी और महिसासुर का वध देवताओं की प्रसन्नता के लिए करूँगी । हे दुष्ट ! यदि तुम्हारी जीने की इच्छा हो तो पाताल लोक में चले जाओ ॥६२॥ राजन् ! इस मदमत्त नारी ने इस तरह कठोर वाणी में कहा है । इन सारी बातों को सुनकर मैंने बार-बार विचार किया और आपके पास आया हूँ ॥६३॥ रसभंग के भय से ही मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया । आपकी आज्ञा के बिना मैं बहुत अधिक प्रयास कैसे कर सकता था ॥६४॥ हे राजन् ! वह नारी बलवती होने के कारण मत्त बन गयी है । मुझे भवितव्यता का ज्ञान तो है नहीं कि क्या होने वाला है ॥६५॥ आप ही इस विषय में प्रमाण हैं । मैं तो इस विषय में अपनी राय भी नहीं दे सकता हूँ कि क्या करना चाहिए । युद्ध करना चाहिए अथवा स्वर्ग को छोड़कर पलायन कर जाना चाहिए ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

* * *

एकादशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः । मन्त्रिवृद्धान् समाहूय राजा वचनमब्रवीत् ॥१॥** राजोवाच– **मन्त्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम् । आगता देवविहिता मायेयं शाम्बरीव किम् ॥२॥ कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषु विचक्षणाः । सामादिषु च कर्तव्यः कोऽत्र मह्यं ब्रुवंतु च ॥३॥** मन्त्रिण: ऊचु:– **सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियं च नृपसत्तम । कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल ॥४॥ सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत् । यथौषधं नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम् ॥५॥ सत्यस्य श्रोता मंता च दुर्लभः पृथिवीपते । वक्ताऽपि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः ॥६॥ कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह । शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि को वेत्ति भुवनत्रये ॥७॥** राजोवाच– **स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवंत्वद्य पृथक्पृथक् । येषां हि यादृशो भावस्तच्छ्रुत्वा चिंतयाम्यहम् ॥८॥ बहूनां मतमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः । यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः ॥९॥** व्यास उवाच– **तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः । उवाच तरसा वाक्यं रंजयन्पृथिवीपतिम्॥१०॥**

दैत्यों की आपस में मन्त्रणा और ताम्र का युद्ध करने के लिए जाना

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– इस तरह से अपने मन्त्री की बात को सुनकर मदमत्त महिषासुर ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा ॥१॥ मन्त्रिगण! आपलोग शीघ्र इस बात का विचार करके बतलाइये कि अब हमलोगों को क्या करना चाहिए । शाम्बरी माया के समान किसी माया की रचना करके देवताओं ने तो उसे नहीं भेजा है ?॥२॥ आपलोग मन्त्रणा का कार्य करने में पूर्णरूप से निपुण हैं । अतएव आपलोग यह बतलाइये कि इस समय साम, दान आदि की नीतियों में से किस नीति का सहारा लेना चाहिए ॥३॥ **मन्त्रियों ने कहा**– राजन् ! मन्त्रियों को चाहिए कि वे सदा सत्य और प्रिय बातों को ही करें और राजा को भी चाहिए कि वह सदा सत्य तथा प्रिय बात को ही स्वीकार करे । जिससे कि राजा का कल्याण हो ॥४॥ राजन् ! सदा सत्य ही हितकारी होता है और प्रिय बातें अकल्याणकारी होती हैं । उदाहरणार्थ लोक में देखा जाता है कि अच्छी नहीं लगने वाली दवा ही हितकारिणी होती है । वही रोग को नष्ट करने वाली होती हैं ॥५॥ हे राजन् ! सत्य को सुनने वाले और उसका मनन करने वाले लोग दुर्लभ हैं । सत्य को कहने वाले भी दुर्लभ हैं, क्योंकि चाटुकारिता करने वालों की संख्या बहुत अधिक है ॥६॥ राजन् ! इस गहन विषय के बारे में हमलोग कह ही क्या सकते हैं ? इस संसार में कौन ऐसा प्राणी है जो भावी शुभ अथवा अशुभ को जानता हो ॥७॥ **महिषासुर ने कहा**– आपलोग अपना-अपना विचार अलग-अलग बतलायें । जिसका जैसा विचार होगा उसको सुनने के बाद मैं विचार करूँगा ॥८॥ कार्य निपुण पुरुषों को चाहिए कि पहले वे बहुत से लोगो के विचारों

राजन्नारी बराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता । विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया ॥११॥ को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्ते रणदुर्मदैः । अनृतं साहसं
चेति जान्नारीविचेष्टितम् ॥१२॥ जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कांताभयेन वै । दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत् ॥१३॥ तस्माद्याम्यहमेकाकी
युद्धाय चंडिकां प्रति । हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव सांप्रतम् ॥१४॥ सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल । निषूदयामि दुर्मर्षां चंडिकां
चंडविक्रमाम् ॥१५॥ बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवांतिकम् । वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन्बलं मम ॥१६॥ व्यास उवाच—
विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत् । सत्यमुक्तं वचो राजन्विरूपाक्षेण धीमता ॥१७॥ ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया ।
कामातुरैषा सुदती लक्ष्यतेऽप्यनुमानतः ॥१८॥ भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता । भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति ॥१९॥
हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः । वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम् ॥२०॥ वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः।
यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि ॥२१॥ हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः । बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः ॥२२॥

को जानें उसके बाद वह उस पर अच्छी तरह से विचार करे और जो उसमें कल्याणकारी विचार हो उसी के अनुसार कार्य करे ॥८॥ **व्यासजी ने कहा—**
महिषासुर की बात को सुनकर महाबलवान् विरूपाक्ष ने राजा को प्रसन्न करते हुए कहा ॥१०॥ राजन् ! वह बेचारी नारी मद के कारण गर्वित हो गयी है।
इसीलिए वह इस प्रकार की बातें कर रही है । यह उसकी केवल धमकी है ॥११॥ उसकी इस प्रकार की रजोगुण के मद से भरी हुई बात को सुनकर
कौन डरेगा ? क्योंकि सबको यह मालुम है कि स्त्रियों में मिथ्याभाषित और साहस दोनों विद्यमान रहते हैं ॥१२॥ राजन् ! आपने त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त
किया है; अतएव आप उस नारी की धमकी को सुनकर मत डरिए । उसकी अधीनता स्वीकार कर लेने पर तो आप जैसे वीर का बहुत अधिक अपयश
फैलेगा॥१३॥ अतएव मैं अकेले ही उस चंडिका से युद्ध करने के लिए जा रहा हूँ । हे महाराज ! मैं उसको मार दूँगा अतएव आप अब निर्भय हो
जाइये॥१४॥ मैं अपनी सेना के साथ जाकर अनेक प्रकार के शस्त्रों तथा अस्त्रों के द्वारा उस प्रचण्ड पराक्रम वाली चण्डिका को मार दूँगा ॥१५॥ उसको
नागपाश में बाँधकर मैं उसे आपके पास लाऊँगा । वह आपकी सदा के लिए वशवर्तिनी बन जायेगी आप मेरे पराक्रम को देखें ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा—**
विरूपाक्ष की बातों को सुनकर दुर्धर नामक दैत्य ने कहा महाराज ! बुद्धिमान विरूपाक्ष ने बिल्कुल ठीक कहा है ॥१७॥ आपको मेरी भी मनोहर बात को
सुनना चाहिए । अनुमान करने से तो यही लगता है कि वह सुन्दरी कामातुर है ॥१८॥ संसार में यह देखा जाता है कि इस प्रकार की सुन्दरी स्त्रियाँ अपने
प्रेमी को इसी प्रकार से धमका कर अपने वश में करना चाहती हैं । वह भी ऐसा ही कर रही हैं ॥१९॥ मानिनी स्त्रियों का ऐसा ही हाव-भाव
होता है, और इस बात को कोई रसज्ञ व्यक्ति ही जान पाता है । कामिनी की यह वक्रोक्ति अपने प्रिय व्यक्ति के प्रति परायण (आश्रय) होती है ॥२०॥

पुष्पांजलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च । का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव ॥२३॥ तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु । ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम् ॥२४॥ विपरीतं परिज्ञातं तेनारसविदा किल । पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव ॥२५॥ विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत् । करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया ॥२६॥ वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा । व्यंग्याधिक्येन वाक्येन वरयत्युत्तमा नृप ॥२७॥ तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः । इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम् ॥२८॥ सामदानद्वयं तस्या नान्योपायोऽस्ति भूपते । रुष्टा वा गर्विता वाऽपि वशगा मानिनी भवेत् ॥२९॥ तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवांतिकम् । किं बहूक्तेन मे राजन्कर्तव्या वशवर्तिनी ॥३०॥ गत्वा मयाऽधुनैवेयं किंकरीव सदैव ते । व्यास उवाच– **इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः ॥३१॥ उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम्।**

इस बात को कोई कामशास्त्र में निपुण व्यक्ति ही जानता है । उसने मैं रणभूमि में तुम्हे बाणों से मारूँगी इस बात का अभिप्राय रहस्यमय है ॥२१॥ इस बात में बहुत बड़ा रहस्य छिपा है । इसे हेतु शास्त्र (अनुमानशास्त्र) में चतुर व्यक्ति ही जानता है । मानिनियों का बाण तो उसके कटाक्षपात को ही कहा गया है ॥२२॥ उन सबों के दूसरे व्यंग्य वचन तो पुष्पाञ्जलि के समान होते हैं । राजन् ! इसके अतिरिक्त दूसरे तरह के बाणों को आपके ऊपर चलाने की उसमें शक्ति ही नहीं है ॥२३॥ जब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आप पर बाण नहीं चला सके तो वह अबला जाति की नारी आप पर क्या बाण चलायेगी। उसने मन्त्री जी से यह कहा है कि हे मन्द ! मैं तुम्हारे राजा पर नेत्रों का बाण चलाकर और उससे उसे मारूँगी ॥२४॥ लेकिन आपके मन्त्री रस के ज्ञाता नहीं हैं, उन्होंने उसका उलटा ही अर्थ समझ लिया । उसका अभिप्राय था कि मैं तुम्हारे स्वामी को रणस्वरूप शय्या पर गिरा दूँगी ॥२५॥ इस कथन के द्वारा उसने यह कहा है कि मैं महिषासुर के साथ विपरीत रति क्रीडा करूँगी । उसने यह जो कहा है कि मैं महिषासुर को प्राण हीन कर दूँगी, उसका अर्थ है कि वीर्य को ही प्राण कहा गया है । मैं महिषासुर को वीर्यहीन बना दूँगी । राजन् ! उत्तम कोटि की स्त्रियाँ व्यंग्य प्रधान वाक्य के द्वारा ही किसी पुरुष का वरण करती हैं ॥२६-२७॥ राजन् ! मैंने जो उसके वाक्यों का अर्थ बतलाया है उस अर्थ को तो कोई रसशास्त्र का ज्ञाता ही जान सकता है । अतएव इस बात पर विचार करके आप उसके साथ सरस व्यवहार कीजिए ॥२८॥ मानिनी स्त्रियों को वश में करने के दो ही उपाय है, साम (मधुर वाणी) तथा दान (प्रलोभन) इन दो उपायों के अतिरिक्त कोई तीसरा उपाय नहीं है । इन्ही दो उपायों से रुष्ट हुई अथवा गर्वित स्त्री वश में होती है ॥२९॥ मैं इसी प्रकार के मधुर वाक्यों के द्वारा उसको आपके पास लिवा लाऊँगा । राजन् ! अधिक मैं क्या कहूँ मैं उसको आपकी वशवर्तिनी बना दूँगा ॥३०॥ मैं जाकर ऐसा उपाय करूँगा कि वह सदा-सदा के लिए आपकी दासी बन जाय । **व्यासजी ने कहा–** उसकी इस तरह की बातों को सुनकर तत्त्वों के ज्ञाता ताम्र ने

हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम् ॥३२॥ नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा । व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद॥३३॥ चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी । निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा ॥३४॥ अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता। केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा ॥३५॥ आयुधान्यपि तावंति धृतानि बलवंति च । विपरीतमिदं मन्ये सर्वं कालकृतं नृप ॥३६॥ स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि । तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम् ॥३७॥ कृष्णाम्बरधरा नारी रुदती च गृहांगणे । दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिंतितव्यस्तदत्ययः॥३८॥ विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवंति गृहे गृहे । उत्पाता विविधा राजन्प्रभवंति गृहे गृहे ॥३९॥ तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किंचिदेव हि । यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया ॥४०॥ नैषाऽस्ति मानुषी नो वा गांधर्वी न तथाऽऽसुरी । देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो ॥४१॥ कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम् । कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥४२॥ को वेद दैवकर्तव्यं शुभं वाऽप्यशुभं तथा । अवलंब्य

कहा॥३१॥ राजन् ! आप हमारी बातों को सुनें जो हेतुयुक्त, धर्मानुकूल, और प्रेमपूर्ण हैं ॥३२॥ हे मानद ! वह बाला न तो कामातुर है और न तो उसका आपमें कोई अनुराग है । उसने कोई भी व्यंग्यार्थ युक्त वाक्य नहीं कहा है ॥३३॥ सबसे आश्चर्यमय बात यह है कि वह सुन्दरी है उसका सौन्दर्य विचित्र है, वह देखने में मनोहर है । वह किसी की सहायता लिए बिना अकेली ही यहाँ युद्ध करने के लिए आ गयी है ॥३४॥ अठारह भुजाओं वाली तथा पराक्रम सम्पन्न नारी त्रैलोक्य में न तो किसी के द्वारा देखी गयी है और न सुनी गयी है ॥३५॥ उसने उतने ही बल सम्पन्न आयुधों को भी धारण कर रखा है । मेरे विचार से तो यह काल की विपरीतता के कारण है ॥३६॥ मैंने रात्रि में अशुभ सूचक स्वप्न को देखा है, इससे मैं जानता हूँ कि युद्ध तो होगा ही ॥३७॥ आज प्रातःकाल मैंने स्वप्न में देखा है कि एक स्त्री काली-काली वस्त्र धारण किए आँगन में खड़ी होकर रो रही है, अतएव उससे होने वाले अनर्थ की सूचना मिलती है ॥३८॥ रात्रि में पक्षीगण प्रत्येक घरों में विकृत ध्वनि करते हैं और राजन् प्रत्येक घर में अनेक उत्पात होते हैं ॥३९॥ इसीसे मैं अनुमान करता हूँ कि कोई न कोई अनर्थ अवश्य होयेगा । यही कारण है कि यह स्त्री निर्भीकता पूर्वक आपको युद्ध करने के लिए ललकार रही है ॥४०॥ हे स्वामिन् ! यह न तो मानवी है, न तो कोई गन्धर्वी है औन न तो कोई असुर जाति की स्त्री है । निश्चय ही देवताओं ने किसी मोह को उत्पन्न करने वाली माया का निर्माण किया है ॥४१॥ अतएव मेरा विचार है कि इस समय हमलोगों को कायर नहीं बनना चाहिए । शीघ्र ही युद्ध की घोषणा कर देनी चाहिए । हमलोगों को युद्ध अवश्य करना चाहिए, जो होने वाला होगा वह तो होगा ही ॥४२॥ कोई भी इस बात को नहीं जानता है कि भविष्य

धिया धैर्यं स्थातव्यं विचक्षणैः ॥४३॥ जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप । कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये ॥४४॥ महिष उवाच– गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः । तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम् ॥४५॥ न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव । हंतव्या नान्यथा कामं माननीया प्रयत्नतः ॥४६॥ वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः । येन केनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी ॥४७॥ त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महता वृतः । तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः ॥४८॥ किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम् । कामाद्वा वैरभावाच्च माया कस्येयमित्युत ॥४९॥ आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम् । पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथायोग्यं यथाबलम् ॥५०॥ कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च । यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया ॥५१॥ व्यास उवाच– इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः । निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम् ॥५२॥ गच्छनमार्गे दुरात्माऽसौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान् । विस्मयं च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान् ॥५३॥ स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरि स्थिताम् । स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम् ॥५४॥ तामुवाच विनीतः

में विधाता शुभ करने वाला है या अशुभ करने वाला है । हमलोगों को धैर्य धारण करके समय की प्रतीक्षा करते रहना चाहिए ॥४३॥ राजन् ! जीवन तथा मृत्यु तो सर्वथा दैव के अधीन होते हैं । उनको त्रैलोक्य में कोई भी नही बदल सकता है ॥४४॥ **महिषासुर ने कहा–** हे महाभाग ! आप युद्ध करने के लिए निश्चय करके उसके पास जायँ और उस मानिनी सुन्दरी को धर्मपूर्वक जीतकर लाएँ ॥४५॥ जब देखना कि वह युद्ध में हारकर वशवर्तिनी नहीं हो सकती है तो तुम उसे मार डालना । अन्यथा उसका सामना करने की कोशिश करना ॥४६॥ हे सर्वज्ञ ! तुम वीर भी हो कामशास्त्र के ज्ञाता भी हो। उस सुन्दरी को किसी भी उपाय से जीतना आवश्यक है ॥४७॥ हे वीर ! तुम विशाल सेना लेकर जाओ और वहाँ जाकर बार-बार विचार करके यह जानने की कोशिश करना कि वह यहाँ किस प्रयोजन से आयी है । वह कामातुर होकर यहाँ आयी है, अथवा मुझसे वह वैरभाव रखती हैं । यह किसकी पत्नी अथवा पुत्री है ? इस बात का भी पता लगाना ॥४८-४९॥ इन सारी बातों का पता लगाने के पश्चात् तुम सोचना कि वह क्या करना चाहती है । फिर उसके बल को जानकर उसके साथ युद्ध करना ॥५०॥ उसके समक्ष तुम न तो अपनी कायरता दिखाना और न तो अत्यन्त निर्दयता । उसका जैसा मन देखना उसी तरह का कार्य करना ॥५१॥ **व्यासजी ने कहा–** महिषासुर की इस तरह की बातें सुनकर मृत्यु की बेला आ जाने के कारण ताम्र राजा महिषासुर को प्रणाम करके सेना के साथ चल पड़ा ॥५२॥ मार्गों में जाते समय वह दुष्ट भयंकर अपशकुनों को देखकर आश्चर्यित और भयभीत हो गया । वे सभी अपशकुन मृत्यु सूचक हो रहे थे ॥५३॥ उसने जाकर देखा कि देवी सिंह के ऊपर सवार हैं । उस समय वह समस्त आयुधों से समलंकृत थीं और देवतागण उसकी

सन्वाक्यं मधुरया गिरा । सामभावं समाश्रित्य विनयावनतः स्थित; ॥५५॥ देवि दैत्येश्वरः श्रृंगी त्वद्रूपगुणमोहितः । स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च ॥५६॥ भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये । पतिं तं प्राप्य मृद्वंगि नन्दने विहराद्भुते ॥५७॥ सर्वाङ्गसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम् । सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥५८॥ करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम् । पुष्पकंदुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः ॥५९। भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं प्रयोजनम् । कटाक्षा विशिखाः संति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः ॥६०॥ संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता । लोभासक्ताः प्रकुर्वंति संग्रामं च परस्परम् ॥६१॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः । भेदनं निजगात्राणां कस्य तज्जायते मुदे ॥६२॥ तस्मात्त्वमपि तन्वंगि प्रसादं कर्तुमर्हसि । भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम् ॥६३॥ स तेऽत्र वांछितं सर्वं करिष्यति मनोरथम् । त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नात्र संशयः ॥६४॥ वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम् । संग्रामे जयसंदेहः कष्टं प्राप्य न संशयः॥६५॥

स्तुति कर रहे थे ॥५४॥ सामनीति का अवलम्बन करके विनयावन ताम्र ने माधुर्यपूर्ण वाणी में देवी से कहा ॥५५॥ हे देवि ! श्रृङ्ग महाराज महिषासुर तुम्हारे रूप तथा गुण को सुनकर तुम पर मोहित हो गये हैं । वे आपके साथ विवाह करना चाहते हैं ॥५६॥ हे बड़े-बड़े नेत्रों वाली देवि ! आप उनसे प्रेम कीजिये। देवता भी उनको परास्त नहीं कर सकते हैं । हे कोमल अंगों वाली देवि ! उनको पति के रूप में प्राप्त करके आप अद्भुत नंदन वन में विहार करें ॥५७॥ हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! सभी सुखों के योग्य शरीर को प्राप्त करके हर प्रकार के सुखों को भोगना चाहिए तथा दुःख का परित्याग करना चाहिए ॥५८॥ हे करभोरु! आपने इन आयुधों को क्यों धारण कर रखा हैं ? आपके हाथ तो कमल के समान कोमल हैं । इन हाथों में तो पुष्प अथवा गेंद होना चाहिए ॥५९॥ जब आपके भौहें ही चाप का काम करते हैं तो फिर आपने धनुष तो व्यर्थ ही धारण कर रखा है । आपके कटाक्षपात हीं जब बाण हैं तो ये बाण व्यर्थ ही हैं ॥६०॥ ज्ञानी मनुष्य को संसार में युद्ध नहीं करना चाहिए; क्योंकि युद्ध तो दुःखद होता है । लोभी प्राणी ही परस्पर में युद्ध करते हैं ॥६१॥ युद्ध तो फूल के द्वारा भी नहीं करना चाहिए बाणों से युद्ध करने की क्या बात है ?। अपने शरीर का छेदन किसको सुख दे सकता है ?॥६२॥ अतएव हे देवि ! आप भी मेरे स्वामी के ऊपर कृपा करें । उनको आप अपना पति बना लें । देवता तथा दानव दोनों उनकी पूजा करते हैं ॥६३॥ वे आपके समस्त मनोरथों को पूरा कर देंगे । आप उनकी पटरानी बन जायेंगी, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥६४॥ हे देवि ! आप मेरी बातों को मान लें । ऐसा करने से आपको सर्वोत्तम सुख मिलेगा । संग्राम में तो कष्ट ही मिलता है किन्तु विजय प्राप्ति के विषय में संन्देह ही बना रहता है ॥६५॥ हे

जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वरवर्णिनि । भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम् ॥६६॥ पुत्रस्ते भविता कान्तः सोऽपि राजा भविष्यति । यौवने क्रीडयित्वाऽन्ते वार्धक्ये सुखामाप्स्यसि ॥६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदंम्बिका । मेघगंभीरया वाचा हसंती तमुवाच ह ॥१॥** देव्युवाच– **गच्छ ताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मंदचेतसम् । महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम् ॥२॥ यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी । नाहं तथा शृंगवती लंबपुच्छा महोदरी॥३॥ न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम् । धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम् ॥४॥ एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै। वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति ॥५॥ नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः । सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः ॥६॥**

वरवर्णिनि ! आप तो राजनीति को जानती ही हैं आप राज्य सुख का उपभोग कई हजार वर्षों तक करें ॥६६॥ आपका जो पुत्र होगा वह भी सुन्दर होगा। वह भी राजा बनेगा । अपनी युवावस्था में रति क्रीडजन्य सुख को प्राप्त करके आप वृद्धावस्था में भी सुख प्राप्त करेंगी ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

महिषासुर के मंत्रिमण्डल का युद्ध करने का निश्चय करना

व्यासजी ने कहा– ताम्र की उस वाणी को सुनकर हँसती हुई अम्बिका ने उससे कहा ॥१॥ **देवी ने कहा–** हे ताम्र ! तुम लौट जाओ । अज्ञानी तथा मुमूर्षु एवं कामार्त तथा महामूर्ख अपने स्वामी से कहो ॥२॥ जिस तरह तुम्हारी माँ घास खाने वाली, बड़े-बड़े सींगों वाली लम्बी पूँछ वाली तथा बड़े-पेट वाली थी, उस तरह की मैं नहीं हूँ ॥३॥ मैं न तो इन्द्र को चाहती हूँ, न विष्णु को न शंकर को, न कुबेर को, न वरुण को, न ब्रह्मा को और न तो अग्नि को जानती हूँ ॥४॥ सभी देवतओं को या पशु महिषासुर को मैं अपना पति क्यों बनाऊँगी । उसको पति बनाने के पश्चात् मेरी तो संसार

निर्गुणो निर्ममोऽनंतो निरालंबो निराश्रयः । सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥७॥ सर्वावासः क्षमः शांतः सर्वदृक्सर्वभावनः । तं त्यक्त्वा महिषं मंदं कथं सेवितुमुत्सहे ॥८॥ प्रबुध्य युध्यतां कामं करोति यमवाहनम् । अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम् ॥९॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै । समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि संगरे ॥१०॥ कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत् । अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः ॥११॥ मूर्खस्त्वमसि यद्ब्रूषे पतिं मे भज भामिनी । क्वाहं क्व महिषः श्रृंगी सम्बंधः कीदृशो द्वयोः॥१२॥ गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येऽहं सबांधवम् । यज्ञभागं देवलोकं नोचेत्त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम् । कल्पांतसदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम् ॥१४॥ चकंपे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः । गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्त्रंसुर्गर्जितस्वनात् ॥१५॥ ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा । पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषांतिकम् ॥१६॥ नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन् । बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप ॥१७॥ तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्सटः । तेन नादेन दैतेया भयं**

में बड़ी निन्दा होगी ॥५॥ मैं पति का वरण करने वाली नही हूँ । मेरे स्वामी तो सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले, सबों के साक्षी, कर्तृत्व से रहित, निस्पृह, स्थिर ॥६॥ निर्गुण, निर्मम, अनंत, आलम्ब निरपेक्ष, आश्रय निरपेक्ष, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्व साक्षी, पूर्ण, पूर्णाशय (अवाप्तसमस्तकाम) शिव, सबों के भीतर रहने वाले, समर्थ, शांत, सर्वदृक्, और सर्वभावन हैं । उनको छोड़कर मैं तुम जैसे अज्ञानी, भैंस को क्यों अपना पति बनाऊँगी?॥७-८॥ अतएव तुम तैयार हो जाओ । मैं तुम्हें या तो यमलोक भेज दूँगी । अथवा मनुष्यों के लिए पानी ढोने वाली गाड़ी का वाहन भैंसा बना दूँगी ॥९॥ हे पापी ! तुम्हारी यदि जीने की इच्छा हो तो शीघ्र पाताल चले जाओ । अन्यथा मैं तुम्हें सभी दानवों के साथ समरस्थल में मार दूँगी ॥१०॥ संसार में दो सदृश जीवों को एक साथ मिलना सुखप्रद होता है । अज्ञानवशात् किया गया विसदृश व्यक्तियों का मिलन दुःखप्रद होता है ॥११॥ तुम मूर्ख हो । अतएव ही कह रहे हो कि मुझे तुम अपना पति बना लो कहाँ तो मैं और कहाँ सिंग वाले पशु तुम । हमदोनों का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ॥१२॥ या तो तुम चले जाओ या युद्ध करो । मैं तुम्हारे बान्धवों के साथ तुम्हारा वध करूँगी । नहीं तो तुम स्वर्ग लोक तथा यज्ञ के भाग का परित्याग करके सुखी बन जाओ ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर देवी ने जोर से अद्भुत प्रकार की गर्जना किया । उससे प्रलयकालीन ध्वनि के समान ध्वनि हुई जो दैत्यों को भयभीत कर देने वाली थी ॥१४॥ उसके फलस्वरूप पृथिवी काँप गयी । पर्वत बार-बार काँपने लगे । उस गर्जना की ध्वनि से दैत्यों की पत्नियों का गर्भपात हो गया ॥१५॥ ताम्र उस गर्जना को सुनकर भयभीत हो गया और भागता हुआ वह महिषासुर के पास पहुँच गया ॥१६॥ उसके नगर में जो दैत्य थे वे भी चिन्तित हो गये । वे भागने लगे । उनके कान बहरे हो गये ॥१७॥ उस समय देवी के वाहन सिंह ने भी अपने आयाल को फडफड़ाते

जग्मुरपि स्फुटम् ॥१८॥ ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः । चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम् ॥१९॥ दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः । पलायने कृते श्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः ॥२०॥ बुद्धिमंतो दुराधर्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः । मंत्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये ॥२१॥ मंत्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः । मंत्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः ॥२२॥ मंत्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा । तस्माद्भेदभयाद्गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥२३॥ तदत्र मंत्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम् । कालदेशानुसारेण विचिंत्य नीतिनिर्णयम्॥२४॥ या योषाऽत्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता । एकाकिनी निरालंबा कारणं तद्विचिंत्यताम् ॥२५॥ युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम् । श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये ॥२६॥ न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः । दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपराजयौ ॥२७॥ उपायवादिनः प्राहुर्दैवं कि केन वीक्षितम् । अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदंति मनीषिणः ॥२८॥ तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलंबनम् । न समर्थजनानां हि दैवं कुत्रापि लक्ष्यते ॥२९॥ उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकातरयोर्मतम् । विचिंत्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात् ॥३०॥ व्यास उवाच– इति राज्ञो वचः

हुए घोर गर्जना किया । उस नाद से दैत्य भयभीत हो गये ॥१८॥ ताम्र को आये हुए देखकर महिषासुर भी मोहित होकर मंत्रियों के साथ विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिए ॥१९॥ हमलोगों को अपने किले में प्रवेश करना चाहिए अथवा निकलकर युद्ध करना चाहिए । हे दानवोत्तमो ! अथवा भाग जाने में ही हमलोगों का कल्याण हैं ॥२०॥ आपलोग तो बुद्धिमान हैं किसी से अभिभूत नहीं होने वाले, तथा सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं । कार्य की सिद्धि के लिए इस विषय पर गुप्तरीति से मंत्रणा (विचार) करना चाहिए ॥२१॥ राज्य का मूल मंत्रणा हैं । मंत्रणा के सुरक्षित रहने पर राज्य भी सुरक्षित रहता है । विद्वानों को चाहिए कि वे सदाचारी को ही मंत्री बनायें ॥२२॥ मंत्र खुल जाने पर तो राजा और राज्य दोनों का ही विनाश हो जाता है । अतएव कल्याण चाहने वाले राजा को गुप्तरीति से ही मन्त्रणा करनी चाहिए ॥२३॥ इस समय आपलोग इस बात पर विचार करें कि हमलोगों को कौन सी नीति अपनानी चाहिए । काल एवं देश के अनुसार कल्याणकारी निर्णय करके आपलोग बतलाएँ कि हमें क्या करना चाहिए ॥२४॥ जो नारी यहाँ आयी है, वह प्रबल है, देवताओं के द्वारा वह निर्मित है । अकेली है, उसका कोई भी अवलम्ब नहीं है । अतएव आपलोग उसके यहाँ आने के कारण पर विचार करें ॥२५॥ इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा कि वह स्त्री युद्ध करना चाहती है । इस त्रैलोक्य में कौन ऐसा प्राणी है जो अपने होने वाले कल्याण तथा अकल्याण को जानता हो ॥२६॥ यह कोई नियम नहीं है कि जो बहुत होते हैं उनकी ही विजय होती हो और जो अकेले हो उसको पराजय मिलता हो। युद्ध में होने वाले जय एवं पराजय तो दैवाधीन होते हैं ॥२७॥ उपाय का महत्त्व देने वालों का कहना है कि दैव क्या होता है, किसने आज तक दैव को देखा है । उसी को मनीषीगण अदृष्ट शब्द से कहते हैं ॥२८॥ यदि कोई कहे कि भाग्य है तो उसके होने में क्या प्रमाण

श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः । बिडालाक्षो महाराजमित्युवाच कृतांजलिः ॥३१॥ राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः । किमर्थमिह संप्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः ॥३२॥ मरणं ते परिज्ञाय स्त्रिया सर्वात्मना सुरैः । प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसा ॥३३॥ तेऽपि छन्नाः स्थिताः खेऽत्रसर्वे युद्धदिदृक्षवः । समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यंति युयुत्सवः ॥३४॥ पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः । वधिष्यन्ति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति ॥३५॥ एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप । भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा ॥३६॥ योद्धव्यं न त्वयाऽद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो । प्रामाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते ॥३७॥ त्वदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात् । विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम् ॥३८॥ विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनी नृप । युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्बलदर्पितैः ॥३९॥ दुर्मुख उवाच– **राजन् युद्धे जयं नोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल । पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम् ॥४०॥ इन्द्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम् ।**

हैं ? भाग्य तो कायरों के लिए एक सहारा है । उसी की आशा पर कायर पुरुष पड़े रहते हैं । जो सामर्थ पुरुष होते हैं उनका दैव (भाग्य) कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता है ॥२९॥ जो वीर पुरुष होता है वह उद्योग पर विश्वास करता है और कायर पुरुष भाग्य का सहारा लेता हैं । इन सारी बातों पर विचार करके आपलोग आदर पूर्वक कार्य करें ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा–** महिषासुर की इस तरह की युक्तियुक्त वाणी को सुनकर विडालाक्ष नामक महायशस्वी दैत्य हाथ जोड़कर महिषासुर से कहने लगा ॥३१॥ हे राजन् ! इस बात का पता पूरी तरह से लगाना चाहिए कि यह विशालनयनी कहाँ से आयी है, क्यों आयी है ? यह किसकी पत्नी है ?॥३२॥ देवताओं ने यह जान लिया है कि आपकी मृत्यु स्त्री से ही हो सकती है; अतएव सबो ने अपने तेज से उत्पन्न करके इस कमलनयनी को भेजा है ॥३३॥ वे देवता भी आकाश में युद्ध देखने के लिए छिपकर स्थित हैं । युद्ध करने की इच्छा वाले देवता भी समय आने पर इसकी सहायता करेंगे ॥३४॥ इस नारी को आगे करके वे विष्णु आदि देवता हमलोगों का वध करेंगे और यह कामिनी आपका वध करेगी ॥३५॥ राजन् ! मेरे मत में तो देवताओं का यही अभिप्राय समझ में आता है, मुझको भविष्य का कोई ज्ञान नहीं है ॥३६॥ अतएव मैं यह कहने में समर्थ नहीं हूँ कि आज आप युद्ध न करें । अब आप स्वामी हैं जो आदेश दें वही किया जाय ॥३७॥ हमलोग आपके इस गौरवपूर्ण कार्य करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे; क्योंकि अनुजीवियों का यही धर्म है । यदि आपको इस युद्ध में सफलता मिल गयी तो हम आपके साथ ही विहार करेंगे ॥३८॥ सबसे अधिक विचार करने की बात है कि अकेली यह स्त्री, हमलोगो की सेना के साथ युद्ध करना चाहती है । यह अपने बल के दर्प से दृप्त हो गयी है ॥३९॥ इसके बाद दुर्मुख नामक दैत्य ने कहा– राजन् ! हम यह जानते हैं कि आज हमलोग युद्ध में नहीं जीतेंगे । किन्तु हमलोगों को पलायन भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि उससे हमलोगो का यश समाप्त होगा ॥४०॥ इन्द्र आदि देवताओं के साथ जब हमलोग पलायन नहीं किए तो

एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम् ॥४१॥ तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः । यद्भावि तद्भवत्येव काऽत्र चिंता विपश्यतः॥४२॥
मरणेऽत्र यशः प्राप्तिर्जीवेन च तथा सुखम् । उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै ॥४३॥ पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये । तस्माच्छोको
न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा ॥४४॥ व्यास उवाच– **दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत् । प्रणतः प्रांजलिर्भूत्वा राजानं**
वाक्यकोविदः ॥४५॥ बाष्कल उवाच– **राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातरप्रिये । अहमेको हनिष्यामि चंडीं चंचललोचनाम् ॥४६॥**
उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च । भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम ॥४७॥ तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्धमद्भुतम् ।
नयिष्यामि नरेन्द्राहं चंडिकां यमसादनम् ॥४८॥ न बिभेमि यमादिंद्रात्कुबेराद्वरुणादपि । वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शंकराच्छशिनो रवेः ॥४९॥
एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता । अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितः ॥५०॥ पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम् ।
भवताऽत्र न गंतव्यं संग्रामेऽप्यनया समम् ॥५१॥ व्यास उवाच– **एवं ब्रुवति राजेन्द्रं बाष्कले मदगर्विते । प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्॥५२॥**

फिर इस अकेली स्त्री के साथ युद्ध करने में कौन भगेगा ?॥४१॥ अतएव अब हमलोगों को युद्ध प्रारम्भ ही कर देना चाहिए । युद्ध में चाहे मृत्यु मिले अथवा विजय; इस बात की कोई भी चिन्ता नहीं करनी है । जो होना होगा वह तो होयेगा ही ॥४२॥ युद्ध में मरने पर यश की प्राप्ति होगी और यदि जीवित बचे तो फिर सुख भोगेंगे । इन दोनों बातों को मन में रखकर आज युद्ध करना है ॥४३॥ पलायन कर जाने में तो हमलोगों का यश घटेगा । आयु के समाप्त होने पर ही मृत्यु होती है । अतएव जीवन तथा मृत्यु के विषय में किसी भी प्रकार का शोक नहीं करना है ॥४४॥ **व्यासजी ने कहा–** दुर्मुख की बातों का सुनकर; झुककर महिषासुर को प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर बोलने में चतुर वाष्कल ने कहा ॥४५॥ **बाष्कल ने कहा–** राजन् ! इस कातरप्रिय कार्य के विषय में आपको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए । मैं अकेले ही उस चञ्चलनेत्र वाली चण्डिका को मार दूँगा ॥४६॥ वीररस का स्थायिभाव उत्साह है और भयानक नामक स्थायिभाव वीररस का वैरी है । अतएव हमलोगों को भय नहीं करके उत्साह करना चाहिए । मैं भय का परित्याग करके अद्भुत युद्ध करूँगा और उस चण्डिका को यमलोक पहुँचा दूँगा ॥४७-४८॥ जब मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु, शंकर, सूर्य एवं चन्द्रमा से भी नहीं डरता हूँ ॥४९॥ तो फिर मद में गर्वित बनी हुई अकेली नारी से क्या डरना है; मैं शाण पर चढ़ाए गये बाणों से उसे मार डालूँगा ॥५०॥ आज आप मेरे बाहुबल को देखें और सुखपूर्वक विहार करें । आपको उसके साथ युद्ध करने के लिए नहीं जाना है ॥५१॥ **व्यासजी ने कहा–** जिस समय मदमत्त वाष्कल इस तरह की बातें महिषासुर से कह रहा था; उसी समय महिषासुर को प्रणाम करके दुर्धर नामक दैत्य ने कहना प्रारम्भ

दुर्धर उवाच– **महिषाहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम् । अष्टादशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम् ॥५३॥ राजन्भीषयितुं त्वां वै प्रायैषा निर्मिता सुरैः । विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम् ॥५४॥ राजनीतिरियं राजन्मंत्रिकृत्यं तथा शृणु । सात्त्विका राजसा केचित्तामसाश्च तथापरे॥५५॥ मंत्रिणस्त्रिविधा लोके भवंति दानवाधिप । सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयंति स्वशक्तिभिः ॥५६॥ आत्मकृत्यं प्रकुर्वन्ति स्वामिकार्याविरोधतः । एकचिता धर्मपरा मंत्रशास्त्रविशारदाः ॥५७॥ राजसा भिन्नचिताश्च स्वकार्यानिरताः सदा । कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया ॥५८॥ तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा । प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते ॥५९॥ समये ते विभिद्यंते परैस्तु परिवंचिताः । स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशंति गृहस्थिताः ॥६०॥ कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्तासिवत्सदा । संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा ॥६१॥ विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन्कदाचन । विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मंत्रहानिः सदैव हि ॥६२॥ खलाः किं किं न कुर्वन्ति विश्वस्ता लोभतत्पराः । तामसाः**

किया । **दुर्धर ने कहा–** हे महिषासुर ! देवताओं के द्वारा निर्मित उस अठारह भुजाओं वाली, देखने में मनोहर, तथा रहस्यमय ढंग से आयी हुई, देवी को मैं परास्त करूँगा ॥५३॥ राजन् ! देवताओं ने आपको डराने के लिए इसका निर्माण किया है । इसे केवल विभीषिका समझकर आप अपने मन की व्याकुलता का परित्याग कर दें ॥५४॥ राजन् ! यहाँ तक तो राजनीति की बात हुई अब आप मन्त्रियों के कृत्य को सुनें । हे दानवराज ! मन्त्री तीन प्रकार के होते हैं । सात्त्विक, राजस और तामस । सात्त्विक मन्त्री अपनी शक्ति से अपने स्वामी के कार्य को सम्पन्न करते हैं ॥५५-५६॥ वे अपने स्वामी के कार्य में किसी भी प्रकार की बाधा डाले बिना कर्तव्य करते हैं । ऐसे मन्त्री एक चित्तवाले, धर्मपरायण और मन्त्रशास्त्र के ज्ञाता होते हैं ॥५७॥ राजस स्वभाव के मन्त्रियों का मन चंचल बना रहता है । वे अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे रहते हैं । वे समयानुसार कभी-कभी अपने स्वामी के कार्य को कर दिया करते हैं ॥५८॥ जो तामस मन्त्री होते हैं वे लोभी होते हैं । सदा अपने स्वार्थ की ही सिद्धि करते रहते हैं । यहाँ तक कि वे स्वामी के कार्य को भी को विनष्ट करके भी अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं ॥५९॥ समय आने पर वे शत्रुपक्ष से उत्कोच लेकर राजा के रहस्य को खोल देते हैं और अपने घर में बैठकर ही शत्रु को राजा की कमजोरी को बतलाते रहते हैं ॥६०॥ जिस प्रकार म्यान में तलवार छिपी रहती है, उसी प्रकार वे छिपकर ही अपने स्वामी का काम बिगाड़ते रहते हैं । युद्ध की बेला आने पर वे अपने स्वामी को भयभीत करते रहते हैं ॥६१॥ हे राजन् ! ऐसे मन्त्रियों पर कभी भी विश्वांस नहीं करना चाहिए । विश्वास करने पर उनसे सदा कार्य की हानि और मन्त्र की हानि होती रहती है ॥६२॥ विश्वास करने पर लोभ परायण पापी, मूर्ख तथा शठ प्रकृति के वे दुष्ट सभी प्रकार के अनर्थों को कर डालते हैं ॥६३॥ अतएव हे राजवर्य ! मैं स्वयं रणभूमि में जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा ।

पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा ॥६३॥ तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाऽहं रणमस्तके । चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम ॥६४॥ गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरम् । पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा तो महाबाहू दैत्यौ बाष्कलदुर्मुखौ । जग्मतुर्मददिग्धांगौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ॥१॥ तौ गत्वा समरे देवीमूचतुर्वचनं तदा । दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगंभीरया गिरा ॥२॥ देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना । वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम् ॥३॥ स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम् । भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल ॥४॥ त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचिस्मिते । महिषे परमं भावं कुरु कांते मनोगतम् ॥५॥ कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम् । त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वांछितम् ॥६॥** श्रीदेव्युवाच–

आप इसके विषय में बिल्कुल चिन्ता न करें ॥६४॥ मैं उस दुराचारिणी को पकड़ कर आपके पास शीघ्र ही लाऊँगा । आप मेरे बल, धैर्य और स्वामी के कार्य करने की शक्ति को देखें ॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

देवी द्वारा वाष्कल तथा दुर्मुख का वध

व्यासजी ने कहा– इस तरह से मदमत्त तथा महाबाहु सभी शस्त्रों तथा अस्त्रों को जानने वाले वाष्कल तथा दुर्मुख युद्ध करने के लिए निकल पड़े॥१॥ युद्धभूमि में जाकर मदोन्मत्त उन दोनों दानवों ने देवी से मेघ के समान गंभीर वाणी में कहा ॥२॥ हे देवि ! जिन्होंने सभी देवताओं को जीत लिया है, उन महाराज महिषासुर का आप पति के रूप में वरण कर लीजिये । वे समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न मनुष्य का रूप बनाकर तथा दिव्य अलंकारों से अलंकृत होकर एकान्त में आपसे मिला करेंगे ॥४॥ हे सुन्दरि ! तुम महिषासुर में अपने श्रेष्ठ भाव को बनाओ । ऐसा करके हे शुचिस्मिते ! तुम त्रैलोक्य के

जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता । मंदबुद्धिबलाऽत्यर्थं भजेयं महिषं शठम् ॥७॥ कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजंति कुलस्त्रियः । अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः ॥८॥ का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम् । पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी ॥९॥ गच्छ तं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मुखौ । वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम् ॥१०॥ पातालं गच्छ वाऽभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया । रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम् ॥११॥ हत्वाऽहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम । इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे यथेच्छसि तथा कुरु ॥१२॥ मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन । भविष्यति चतुष्पाद दिवि वा गिरिकंदरे ॥१३॥ व्यास उवाच– इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ । धनुर्बाणधरौ वीरौ बभूवतुः ॥१४॥ कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता । उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह ॥१५॥ भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति । कृत्वाऽतिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये ॥१६॥ ययोस्तु वाष्कलस्तूर्णं संमुखोऽभूद्रणांगणे । दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः ॥१७॥ तयोर्युद्धमभूद्धोरं देवीबाष्कलयोस्तदा । बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मंदचेतसाम् ॥१८॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा

ऐश्वर्य को प्राप्त कर लोगी ॥५॥ हे पिकवयनी ! जिसे नारियाँ चाहती हैं, उस संसार के उत्तम सुख को तुम इस महावीर को अपना पति बनाकर प्राप्त कर लोगी ॥६॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे जाल्म ! तुमने क्या मुझे कामातुर नारी समझ रखा है ? क्या मेरा बुद्धिबल लुप्त हो गया है कि मैं शठ महिषासुर को अपना पति बना लूँगी ॥७॥ कुलस्त्रियाँ तो उसे ही अपना पति बनाती हैं जो समान कुल, समान शील तथा समान गुण वाला होने के साथ अधिक रूप, चतुरता, बुद्धि तथा शील एवं क्षमा आदि गुणों वाला हो ॥८॥ वह कौन सी कामातुर स्त्री होगी जो पशु के शरीर वाले को अपना पति बनायेगी ? कोई देवस्वरूपिणी नारी अधम पशु महिष को अपना पति बनायेगी ?॥९॥ हे वाष्कल और दुर्मुख मेरे कहने से हाथी के समान दाँत वाले महिषासुर को जाकर कह दो कि वह या तो पाताल लोक में चला जाय अथवा आकर मेरे साथ संग्राम करे । युद्ध होने पर इन्द्र निर्भय हो जायेंगे यह निश्चित है॥१०-११॥ मैं उसे मार कर ही जाऊँगी । उसे मारे बिना मैं नहीं जा सकती हूँ । हे मूर्ख ! इस बात को जानकर जैसा चाहो वैसा करो ॥१२॥ मुझे जीते बिना उसके लिए पृथिवी पर कोई भी स्थान नहीं मिलेगा । न तो उसे स्वर्ग में और न ही पर्वत की कन्दराओं में स्थान मिलेगा ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वाष्कल तथा दुर्मुख दोनों क्रुद्ध हो गये । वे दोनों वीर धनुष धारण करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥१४॥ उन दोनों ने घोर गर्जना की; किन्तु देवी निर्भय रूप से खड़ी रहीं । उन दोनों ने देवी के ऊपर तीव्र बाणों की वर्षा की ॥१५॥ देवी ने भी उन दोनों पर बाणों को बरसाया । देवी ने देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए मधुर नाद किया ॥१६॥ उन दोनों दैत्यों में से पहले वाष्कल युद्ध करने के लिए आया और दुर्मुख प्रेक्षक रूप से देवी के सामने खड़ा रहा ॥१७॥ उस समय देवी तथा वाष्कल में बाण, कृपाण और परिघ के प्रहार से घोर युद्ध हुआ; जिस को देखकर

तं युद्धदुर्मदम् । जघान पंचभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥१९॥ दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः । सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरि स्थिताम् ॥२०॥ साऽपि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम् । जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः ॥२१॥ अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम् । बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हंतुमुपाययौ ॥२२॥ आगच्छंतं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम् । चंडिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले ॥२३॥ बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः । चिक्षेप च गदां सोऽपि चंडिकां चंडविक्रमः ॥२४॥ तमागच्छंतमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि । जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः ॥२५॥ पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं दुरात्मनः । जयेति च मुदा देवाश्चुक्रुशुर्गगने स्थिताः ॥२६॥ तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः । आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२७॥ तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः । धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः ॥२८॥ तमगच्छंतमालोक्य देवी शंखमवादयत् । कोपयन्ती दानवं तं ज्याघोषं च चकार ह॥२९॥ सोऽपि बाणान्मुमोचाशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान् । स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च ॥३०॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं

अज्ञानी भयभीत हो जाते हैं ॥१८॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर जगन्माता ने अपने कानों तक प्रत्यंचा को खींच कर शाण पर तीव्र किये गये पाँच बाणों का प्रहार वाष्कल पर किया ॥१९॥ वाष्कल ने भी देवी के बाणों को काटकर गिरा दिया और सिंह पर बैठी हुई देवी के ऊपर सात बाणों को चलाया ॥२०॥ देवी ने भी उसके बाणों को काटकर अपने अत्यन्त तीक्ष्ण दश बाणों से वाष्कल के ऊपर प्रहार किया और बार-बार अट्टहास किया ॥२१॥ इसके बाद देवी ने अर्द्धचन्द्र बाण से उसके धनुष को काट दिया । वाष्कल भी गदा लेकर देवी को मारने के लिए उनके पास आया ॥२२॥ आते हुए मद से गर्वित वाष्कल को देखकर देवी ने उसके ऊपर अपनी गदा का प्रहार किया और वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२३॥ वाष्कल पृथिवी पर गिरने के पश्चात तुरत उठकर खड़ा हो गया और भयंकर विक्रम सम्पन्न उसने चण्डिका के ऊपर अपनी गदा फेंकी ॥२४॥ इसके बाद आते हुए वाष्कल को देखकर देवी ने क्रुद्ध होकर उसके वक्षःस्थल में अपने शूल से प्रहार किया उसके कारण वह गिर कर मर गया ॥२५॥ वाष्कल के मरते ही उस दुष्ट की सेना भाग चली और आकाश में स्थित देवताओं ने देवी का जय-जयकार मनाया ॥२६॥ वाष्कल के मरने के बाद अत्यन्त बलवान दुर्मुख क्रोध से अपनी आँखें लाल करके युद्ध करने के लिए देवी के सामने आया ॥२७॥ रथ पर सवार और कवच पहने हुए, धनुष-बाण धारी देवी को ठहरो-ठहरो कहकर उसने बार-बार ललकारा ॥२८॥ दुर्मख को आते हुए देखकर देवी ने उस दानव को क्रुद्ध करते हुए अपना शंख बजाया तथा धनुष का टंकार किया ॥२९॥ दुर्मुख ने सर्पों के समान विषैले तीक्ष्ण बाणों को चलाया । महामाया ने अपने बाणों से उन बाणों को काट दिया औंर गर्जना किया ॥३०॥ राजन् इसके पश्चात् दुर्मुख तथा देवी में बाण, शक्ति

नृप। बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा ॥३१॥ रणभूमौ तदा जाता रुधिरौघवहा नदी । पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा ॥३२॥ यथा
संतरणार्थाय यमकिंकर नायकैः । तुंबीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा ॥३३॥ रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा । शरीरैः पतितैर्भूमौ
खाद्यमानैर्वृकादिभिः ॥३४॥ गोमायुसारमेयाश्च काकाः कंका अयोमुखाः । गृध्राः श्येनाश्च खादंति शरीराणि दुरात्मनाम् ॥३५॥ ववौ वायुश्च
दुर्गंधो मृतानां देहसंगतः । अभूत्किलकिलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम् ॥३६॥ तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः कालमोहितः । देवीमुवाच गर्वेण
कृत्वा चोर्ध्वकरं शुभम् ॥३७॥ गच्छ चंडि हनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे । दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम् ॥३८॥ देव्युवाच–
आसन्नमरणः कामं प्रलपस्यद्य मोहितः । अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथाऽयं बाष्कलो हतः ॥३९॥ गच्छ वा तिष्ठ वा मन्द मरणं यदि रोचते । हत्वा
त्वां वै वधिष्यामि बालिशं महिषीसुतम् ॥४०॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः । मुमोच बाणवृष्टिं तु चंडिकां प्रति दारुणम् ॥४१॥
साऽपि तां तरसा छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः । जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥४२॥ तयोः परस्परं युद्धं संजातं चातिकर्कशम् ।
भयदं कातराणां च शूराणां बलवर्धनम् ॥४३॥ देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम् । तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभञ्ज रथमुत्तमम् ॥४४॥ रथे

तथा गदा के प्रहार से तथा मुसल एवं तोमर से भयंकर युद्ध हुआ ॥३१॥ उस समय युद्धभूमि में खून की नदी बह चली और उसमें कट कर गिरे हुए
शिर बहने लगे । लगता था जैसे नवीन तैरना सिखाने वालों के लिए यमदूतों ने उसमें लाकर तुम्बी फल लाकर डाल दिया हो ॥३३॥ उस समय रणभूमि
अत्यन्त भयंकर बन गयी; क्योंकि पृथिवी पर शरीर गिरे हुए थे और उन सबों को भेड़िये आदि खा रहे थे ॥३४॥ उऩ पापियों के शरीर को स्यार, कुत्ते,
कौए, कंकपक्षी, लोहचंचु, गृध्र तथा बाज, नोच-नोचकर खा रहे थे । मरे हुओं के शरीर से होकर चलने वाली दुर्गन्धि पूर्ण हवा चल रही थी । माँसभक्षी
पक्षी कल-कल शब्द कर रहे थे ॥३६॥ उस समय काल से मोहित होकर दुर्मुख क्रुद्ध हो गया । उसने अपनी भुजा उठाकर गर्वपूर्वक देवी से कहा ॥३७॥
हे मूर्ख चण्डि ! तुम युद्धभूमि से भग जाओ अन्यथा आज मैं तुम्हें मार डालता हूँ । अथवा मद से गर्वित मेरे महाराज महिषासुर की सेवा करो ॥३८॥
देवी ने कहा– तुभ कालमोहित हो गये हो, इसीलिए बड़बड़ा रहे हो । आज ही मैं तुमको उसी तरह मारूँगी जिस तरह मैंने वाष्कल को मारा है ॥३९॥
हे मूर्ख ! यदि तुम चाहो तो भाग जाओ । यदि मरना ही चाहते हो तो खड़े रहो । तुम्हें मारने के पश्चात् मैं मूर्ख महिषासुर को मारूँगी ॥४०॥ देवी की
बातों को सुनकर मरने के लिए तैयार दुर्मुख ने देवी चण्डिका के ऊपर बाणों की भयंकर वर्षा की ॥४१॥ देवी ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों के द्वारा दुर्मुख
के बाणों को विफल बनाकर उसके ऊपर उसी तरह से वज्र का प्रहार किया जिस तरह इन्द्र ने वृत्रासुर के ऊपर व्रज का प्रहार किया था ॥४२॥ उसके

भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा । गदां गृहीत्वा दुर्धर्षां जगाम चण्डिकां प्रति ॥४५॥ चकार स गदाघातं सिंहमौलौ महाबलः । न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः ॥४६॥ अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरः स्थितम् । खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत् ॥४७॥ छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः । जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम् ॥४८॥ तुष्टवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः पुष्पवृष्टिं तथा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥४९॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः । जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्छितः । उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत् ॥१॥ निहतौ दानवौ शूरौ रणे**

बाद देवी तथा दुर्मुख के बीच अत्यन्त कर्कश युद्ध हुआ । जिसको देखकर कायर पुरुषों को भय होता था और वीर पुरुषों को उत्साह होता था ॥४३॥ देवी ने शीघ्रता से दुर्मुख के हाथ में विद्यमान धनुष को काट दिया । और पाँच बाणों के प्रहार से दुर्मुख के रथ को तोड़ दिया ॥४४॥ रथ के टूट जाने पर महाबाहु दुर्मख अपने हाथ में दुर्धर्ष गदा को लेकर पैदल ही देवी के पास पहुँचकर उनके सिंह के सिर पर गदा का प्रहार किया, किन्तु गदा के आघात के पश्चात् भी महाबलवान् वह सिंह अपने स्थान से हिला भी नहीं ॥४५॥ अम्बिका ने गदा लिए हुए सामने खड़े दुर्मुख को देखकर अपने खड्ग से उसके शिर को काट दिया ॥४७॥ मस्तक के कट जाने पर दुर्मुख मरकर पृथिवी पर गिर पड़ा । उस समय प्रसन्न होकर देवतओं ने देवी का जय-जयकार मनाया॥४८॥ दुर्मुख के मर जाने पर देवताओं ने देवी की स्तुति की । आकाश में स्थित देवताओं ने देवी के ऊपर फूलों की वर्षा की तथा उनका जय-जयकार मनाया ॥४९॥ दुर्मुख को रणभूमि में मरे हुए देखकर ऋषियों; सिद्धों तथा गन्धर्वों ने प्रसन्नता का अनुभव किया ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

भगवती द्वारा ताम्र तथा चिक्षुर का वध

व्यासजी ने कहा– दुर्मुख की मृत्यु का समाचार सुनकर महिषासुर क्रोध से पागल हो गया । वह सभी दैत्यों से पूछने लगा कि यह क्यों हो गया?॥१॥

दुर्मुखबाष्कलौ । तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यन्तु दैवचेष्टितम् ॥२॥ कालो हि बलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः । नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः॥३॥ निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् । ब्रुवन्तु मिलिताः सर्वे यद्युक्तं कार्यसङ्कटे ॥४॥ एवं ब्रुवति राजेन्द्रे महिषेऽतिबलान्विते । चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः ॥५॥ राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने । इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः ॥६॥ द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् । महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः ॥७॥ तमागच्छन्तमालोक्य देवी भगवती शिवा । चकार शङ्खज्याघोषं घण्टानादं महाद्भुतम् ॥८॥ तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः । किमेतदिति भाषन्तो दुद्रुवुर्भयकम्पिताः ॥९॥ चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान्। उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम् ॥१०॥ अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम् । तिष्ठन्त्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि॥११॥ इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः । आगत्य सङ्गरे देवीमित्युवाच गतव्यथः ॥१२॥ किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान् । नाहं बिभेमि तन्वङ्गि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम् ॥१३॥ स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम् । उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने ॥१४॥ स्त्रीणां

उस अत्यन्त दुबली-पतली देवी के द्वारा मेरे शूर वीर दानव वाष्कल तथा दुर्मुख मारे गये । देखो यह तो भाग्य का ही खेल है ॥२॥ काल सबसे बलवान् होता है, वही किसी को भी सुख अथवा दुःख प्रदान करने का काम करता है । मनुष्य तो पुण्य-पाप रूपी कर्मों के जाल में फँसा हुआ है ॥३॥ ये हमारे दो श्रेष्ठ दानव मार दिये गये इस सङ्कट की बेला में इसके बाद क्या करना चाहिए यह आप सबलोग मिलकर विचार करके मुझे बतलायें ॥४॥ महाबलवान् महिषासुर के इस प्रकार से कहने पर उसके सेनापति महारथी चिक्षुर ने कहा ॥५॥ राजन् मैं उस स्त्री को मार दूँगा । स्त्री को मारने के लिए कौन सी चिन्ता करनी है ? यह कहकर वह रथ पर सवार होकर तथा सेना लेकर युद्ध करने के लिए गया ॥६॥ उसने पार्श्वरक्षक के रूप में ताम्र को भी ले लिया । वह अपनी सेना की ध्वनि से आकाश और दिशाओं को ध्वनित कर रहा था ॥७॥ चिक्षुर को आते हुए देखकर देवी ने अपना शंख बजाया, अपने धनुष की प्रत्यंचा का टङ्कार किया और घण्टा की अद्भुत ध्वनि की ॥८॥ उस शब्द को सुनकर दैत्य असुर भयभीत हो गये । यह किसकी ध्वनि है ? इस तरह से कहते हुए भयभीत होकर भाग चले ॥९॥ भागते हुए असुरों को देखकर अत्यन्त क्रुद्ध चिक्षुर ने कहा— तुमलोग इस तरह से भयभीत कैसे हो गये ॥१०॥ मैं उस मद से उद्धत बनी हुई सुन्दरी को आज ही बाणों से मार दूँगा । तुमलोग निर्भय होकर युद्ध के मैदान में डट जाओ ॥११॥ इस तरह से कहकर वह महाबलवान् दानव हाथ में धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में आकर बिना किसी कष्ट के देवी से कहने लगा ॥१२॥ हे विशालाक्षि ! इन सामान्य लोगों को भयभीत करके तुम क्या गर्जना कर रही हो ? तुम्हारी इन चेष्टाओं को देखकर मुझे भय नहीं लगता है ॥१३॥ सुन्दरि ! स्त्रियों का वध करने

युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुन्दरि । न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन ॥१५॥ पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः । भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम् ॥१६॥ धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम् । लालितोऽयं प्रियो देहः कृन्तनीयः शितैः शरैः ॥१७॥ तैलाभ्यंगैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः । पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः परेषुभिः ॥१८॥ देहं छित्त्वाऽसिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः । धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत् ॥१९॥ त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकांक्षसे यतः । सुखं संभोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि संगरे ॥२०॥ खड्गपातं गदाघातं भेदनं च शिलीमुखैः । मरणांते तु संस्कारो गोमायुमुखकर्षणम् ॥२१॥ तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम् । रणे मृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः ॥२२॥ तस्माद्गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः । भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम् ॥२३॥ एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदंबिका। किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पंडितः ॥२४॥ नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा । न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते॥२५॥ मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एव हि । राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः ॥२६॥ संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।

से पाप होता है और अपयश मिलता है । अतएव मेरा मन तुमको मारने का नहीं करता है ॥१४॥ हे सुन्दरि ! स्त्रियों का युद्ध तो कटाक्षपात तथा हाव भावों से होता है । तुम जैसी सुन्दरी स्त्री का शस्त्राशस्त्रों से युद्ध करना मैंने नहीं सुना है ॥१५॥ तुम्हें तो पुष्पों से भी युद्ध नहीं करना चाहिए फिर तीक्ष्ण बाणों से युद्ध करने की कौन सी बात है ? तुम जैसी सुन्दरियों का शरीर तो मालती पुष्प से भी कष्टित होने लगता है ॥१६॥ इस मनुष्यलोक में क्षात्रधर्म का पालन करने वालों को धिक्कार है । उसके कारण बड़े प्रेम से पाले गये शरीर को लोग तीक्ष्ण बाणों से छेदवाते हैं ॥१७॥ तेल की मालिश, पुष्पों की हवा तथा मधुरभोजन के द्वारा पोषे गये प्रिय शरीर को वे शत्रु के बाणों से छेदवाते हैं ॥१८॥ कहा जाता है कि तलवार की धार से शरीर को कटवा कर मनुष्य धनवान बनता है । किन्तु इस प्रकार के धन को धिक्कार है जिसके लिए इतना कष्ट उठाना पड़ता हो । शरीर के कट जाने के पश्चात् कौन सा सुख धन से मिलेगा ॥१९॥ हे सुन्दरि ! तुम भी अज्ञ ही हो कि युद्ध करना चाहती हो । सम्भोगजन्य सुख का त्याग करके युद्ध करने से तुमको कौन सा लाभ होगा ॥२०॥ युद्ध में तो तलवार की मार सहनी पड़ती है । गदा की चोट खानी पड़ती है, बाणों से शरीर को छेदवाना पड़ता है । मर जाने के बाद स्यार आदि मुँह नोचते हैं और अंत में शरीर का संस्कार होता है ॥२१॥ उस युद्ध की ही कवियों आदि धूर्तों ने खूब प्रशंसा की है । युद्ध में मरने वालों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, यह कथन अर्थवाद मात्र है ॥२२॥ अतएव हे सुन्दरि ! तुम्हारा जहाँ मन लगता हो वहाँ चली जाओ अथवा देवताओं का मर्दन करने वाले महिषासुर की सेवा करो ॥२३॥ इस तरह से बोलने वाले चिक्षुर को जगदम्बिका ने कहा– अरे मूर्ख ! बुद्धिमान पण्डित के समान यह झूठ क्या बोल रहे हो ॥२४॥ तुम न तो नीतिशास्त्र को जानते हो और न तो तुम्हे आन्विक्षिकी विद्या का ही ज्ञान है । तुमने तो वृद्ध पुरुषों

यशः स्तंम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम् ॥२७॥ देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम् । हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव॥२८॥ जीवितेच्छाऽस्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव । तदा गच्छंतु पातालं दानवाः सर्व एव ते ॥२९॥ मुमूर्षा यदि वश्चिते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः । सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना ॥३०॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः दानवो बलदर्पितः । मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमिवापराम्॥३१॥ चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा । जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः ॥३२॥ युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम् । गदया पातयामास तं रथाज्जगदंबिका ॥३३॥ मूर्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाऽभिहतो भृशम् । मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः॥३४॥ तं तथा मूर्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः । आजगाम रणे योद्धुं चंडिकां प्रति चापलात् ॥३५॥ आगच्छंतं तु तं वीक्ष्य हसंती प्राह चंडिका । एह्येहि दानवश्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम् ॥३६॥ किं भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषैः । महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम् ॥३७॥ किं भवद्भिर्हतैर्मंदैर्ममापि विफलः श्रमः । अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि ॥३८॥ तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयंत्विह। पश्येन्मां सोऽपि मंदात्मा यादृशीं तादृशीं**

की सेवा भी नहीं की है और न तो तुम्हारी धार्मिकबुद्धि ही है ॥२५॥ तुम मूर्ख महिषासुर की सेवा करते हो; अतएव तुम मूर्ख ही हो । तुम राजधर्म भी नहीं जानते हो तो मेरे सामने क्या बोल रहे हो ॥२६॥ मैं महिषासुर का वध करके उसके खून से कीचड़ बनाकर तथा यशः स्तम्भ की स्थापना करके स्वयं चली जाऊँगी ॥२७॥ देवताओं को दुःख देने वाला; मद से गर्वित दानव दुराचारी महिषासुर का मैं वध करूँगी । तुम स्थिर होकर युद्ध करो ॥२८॥ हे मूर्खं तुम तथा महिषासुर दोनों यदि जीना चाहते हो तो तुम सभी दानव पातल लोक में चले जाओ ॥२९॥ यदि तुम लोग के मन में मरने की इच्छा है तो शीघ्र युद्ध करो । मैं तुम सबों का वध कर दूँगी । यही मेरा निश्चय है ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा**– देवी की उस वाणी को सुनकर बल से दृप्त बने हुए उस दानव ने देवी के ऊपर बाणों की वृष्टि उसी प्रकार से की जिस तरह मेघ जल की वर्षा करता है ॥३१॥ उस समय देवी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से चिक्षुर के बाणों को काट गिराया और अपने सर्प के समान विषैले बाणों से उसको मारा ॥३२॥ उसके बाद चिक्षुर तथा देवी में परस्पर में आश्चर्यकारी युद्ध हुआ । रथ पर बैठे हुए चिक्षुर के ऊपर जगदम्बिका ने गदा का प्रहार किया ॥३३॥ गदा की मार खाकर चिक्षुर मूर्छित हो गया और दो मूहुर्त तक वह रथ के पिछले भाग में ही पड़ा रहा ॥३४॥ चिक्षुर को मूर्छित देखकर शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला अपनी चपलता दिखलाता हुआ ताम्र देवी के साथ युद्ध करने के लिए आया ॥३५॥ आते हुए ताम्र को देखकर देवी ने हँसते हुए कहा हे दानव श्रेष्ठ ! आओ मैं तुम्हें यमलोक भेज देती हूँ ॥३६॥ तुमलोग तो निर्बल हो । तुमलोग की आयु समाप्त हो गयी है । अतएव तुमलोगों के आने से क्या लाभ है ? मूर्ख महिषासुर अपने घर में बैठकर जीने के लिए कौन सा उपाय कर रहा है ?॥३७॥ तुमलोगों का जीवन मंद पड़ गया है । तुमलोगों को मारने से कौन सा लाभ है ? इस कार्य में तो मेरा

स्थिताम् ॥३९॥ ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह । चंडिकां प्रति कोपेन कर्णाकृष्टशरासनः ॥४०॥ भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शरासनम् । बाणान्मुमोच तरसा हंतुकामा सुराहितम् ॥४१॥ चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्छां त्यक्त्वोत्थितः पुनः । गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्संमुखः क्षणात् ॥४२॥ चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ । युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणांगणे ॥४३॥ कुपिता च महामाया ववर्ष शरसंततिम् । चकार दानवान्सर्वान्बाणक्षतततनुच्छदान् ॥४४॥ असुराः क्रोधसंमूढा बभूवुः शरताडिताः । चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रति रुषान्विताः ॥४५॥ बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः । शिलीमुखक्षताः सर्वे वसन्ते च वने रणे ॥४६॥ बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे । विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः ॥४७॥ ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणं दृढम् । जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च॥४८॥ नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषान्विता । खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा ॥४९॥ छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली। बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके ॥५०॥ पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः । खड्‌गमादाय तरसा दुद्राव चण्डिकां प्रति ॥५१॥

भी श्रम व्यर्थ हो रहा है जबतक मैं देवताओं के शत्रु महिषासुर को नहीं मार लेती हूँ तब तक मेरा प्रयास व्यर्थ ही है ॥३८॥ अतएव तुमलोग अपने घर जाकर महिषासुर को भेजो, जिससे की वह भी देख ले कि मैं जैसे आयी थी वैसे ही खड़ी हूँ ॥३९॥ देवी की बात को सुनकर ताम्र भी अपने कानों तक धुनष की प्रत्यंचा खींचकर देवी पर बाणों की वर्षा करने लगा ॥४०॥ क्रोध से लाल बनी आँखों वाली भगवती ने भी धनुष को खीचकर उस राक्षस को मारने की इच्छा से बाणों को छोड़ा ॥४१॥ बलवान् चिक्षुर भी मूर्छा को छोड़कर उठ खड़ा हुआ और क्षण भर में धनुष बाण धारण करके देवी के सामने युद्ध करने के लिए आ खड़ा हुआ ॥४२॥ चिक्षुर तथा ताम्र ये दोनों बल से उत्कट बने हुए महावीर देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४३॥ क्रुद्ध होकर महामाया ने भी बाणसमूह की वर्षा की और सभी दानवों के शरीर को बाण से क्षतविक्षत कर दिया ॥४४॥ असुर भी क्रोध से पागल हो गये और क्रुद्ध होकर देवी के ऊपर बाण समूह से प्रहार करने लगे ॥४५॥ उस समय वे सभी राक्षस विकसित पलाशवृक्ष के समान लाल दिखायी देते थे । उनका शरीर बाणों से बिंध गया था । उनकी शोभा वसन्त कालीन वन के समान हो रही थी ॥४६॥ देवी का ताम्र के साथ घोर युद्ध हुआ । आकाश में दर्शक रूप से स्थित देवता उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥४७॥ ताम्र ने लौह निर्मित भयंकर मुसल को लेकर सिंह के मस्तकर पर प्रहार करके गर्जना किया ॥४८॥ गर्जना करते हुए ताम्र को देखकर क्रोध से युक्त होकर देवी ने अपने तीक्ष्ण धार वाली तलवार से उसके शिर को काट दिया ॥४९॥ शिर के कट जाने पर भी शिर से रहित ताम्र अपने हाथ में मुसल धारण किए हुए क्षणभर धूमता रहा और पृथिवी पर गिर पड़ा ॥५०॥ ताम्र को गिरे हुए देखकर महाबलवान् ्चिक्षुर अपने हाथ में खडग धारण करके तेजी से देवी की ओर दौड़ा ॥५१॥ भगवती ने भी हाथ में खड्ग धारण करके आते

भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम् । दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे ॥५२॥ एकेन पातितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः । कण्ठाच्च मस्तकं तस्य कृन्तितं चापरैः शरैः ॥५३॥ एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ । भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु संत्रस्तमानसम् ॥५४॥ देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे । पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः ॥५५॥ ऋषयो देवगन्धर्वा बेतालाः सिद्धचारणाः । ऊचुस्ते जय देवीति चाम्बिकेति पुनः पुनः ॥५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते पञ्चमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः । प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान् ॥१॥ असिलोमबिडालाक्ष प्रमुखान् युद्धदुर्मदान् । सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥२॥ ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम् । अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीम्॥३॥**

हुए चिक्षुर को देखकर उस पर पाँच बाणों से प्रहार किया ॥५२॥ बाण के प्रहार से उसके हाथ से खड्ग छूटकर गिर पड़ा । दूसरे बाण ने उसके हाथ को काट कर गिरा दिया । अन्य बाणों ने कण्ठ से काटकर उसके शिर को गिरा दिया ॥५३॥ इस तरह से वे दोनो ताम्र तथा चिक्षुर नामक रणदुमर्द दानव मारे गये । इसके बाद भयभीत होकर उन दोनों की सेना भाग गयी ॥५४॥ उन दोनों के युद्ध में मारे गये देखकर देवतागण प्रसन्न हो गये । वे आकाश में स्थित होकर देवी के ऊपर फूलों की वर्षा किए तथा देवी का जय-जयकार किए ॥५५॥ ऋषिगण, देवता, गन्धर्व, बेताल, सिद्ध एवं चारण बार-बार देवी का जय-जयकार किए ॥५६॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

देवी द्वारा असिलोम तथा विडाल का वध

व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया– कि देवी के द्वारा उन दोनों दानवों का वध सुनकर महिषासुर विस्मयान्वित हो गया और उसने दूसरे दैत्यों को देवी का वध करने के लिए भेजा । वे दैत्य महा बलवान् थे ॥१॥ उन दैत्यों में असिलोमा तथा विडालाक्ष आदि प्रमुख थे । उन सबों के साथ बहुत

असिलोमाऽग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव । विनयावनतः शांतो देवीं दैत्यवधोद्यताम् ॥४॥ असिलोमोवाच– देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुन्दरि । आगताऽसि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः ॥५॥ कारणं कथयाद्य त्वं त्वया सन्धिं करोम्यहम् । काञ्चनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च ॥६॥ यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम् । किमर्थं युद्धकामाऽसि दुःखसन्तापवर्धनम् ॥७॥ कथयन्ति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम्। कोमलेऽतीव ते देहे पुष्पघातासहे भृशम् ॥८॥ किमर्थं शस्त्रसम्पातान्सहसीति विसिष्मये । चातुर्यस्य फलं शांतिः सततं सुखसेवनम् ॥९॥ तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि । संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥१०॥ तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः । आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम् ॥११॥ नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिंतकैः । सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने ॥१२॥ तथापि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् । परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि ॥१३॥ स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले । अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत् ॥१४॥ परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः । अविरोधेन कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम् ॥१५॥ तस्मात्त्वमपि

बड़ी सेना, आयुध तथा अन्य युद्ध की सामग्री थी ॥२॥ उन सबों ने देखा कि देवी सिंह पर सवार होकर बैठी हैं । उनकी दिव्य अठारह भुजाएँ थीं । वे खड्ग तथा खेटक धारण किए हुई थीं ॥३॥ असिलोमा सबके आगे आकर हँसते हुए शान्त तथा विनयावनत होकर दैत्यों का वध करने के लिए तैयार देवी से कहा ॥४॥ **असिलोमा ने कहा–** हे देवि ! तुम सत्य बतलाओ कि यहाँ किस लिए आयी हो ? और निरपराध दैत्यों को क्यों मार रही हो ?॥५॥ तुम इसका कारण बतलाओ । मैं तुम्हारे साथ संधि करना चाहता हूँ । सुवर्ण, मणि, रत्न उत्तमकोटि के पात्र ॥६॥ तुम जो कुछ भी चाहो वह ले लो और यहाँ से चली जाओ । तुम दुःख तथा सन्ताप को बढ़ाने वाले युद्ध को क्यों करना चाहती हो ॥७॥ महापुरुष कहते हैं कि युद्ध तो समस्त सुखों को विनष्ट कर देने वाला होता है । तुम्हारा शरीर इतना कोमल है कि उसे फूल के प्रहार से भी बहुत अधिक चोट लगेगी ॥८॥ मुझे आश्चर्य है कि तुम क्यों शस्त्रों के प्रहार को वर्दास्त कर रही हो । चतुरता का फल यही है कि उससे शान्ति मिले और उससे निरन्तर सुख प्राप्त होता रहे ॥९॥ तो फिर तुम दुःख देने वाले संग्राम को क्यों करना चाहती हो । इस संसार में सुख को ही अपनाना चाहिए और दुःखद वस्तुओं का परित्याग कर देना चाहिए॥१०॥ वह सुख दो प्रकार का बतलाया गया है नित्य सुख और अनित्य सुख । ज्ञान जन्य सुख नित्य सुख है और भोगजन्य सुख अनित्य सुख है ॥११॥ वंदों तथा शास्त्रों के अर्थ का चिन्तन करने वालों का कहना है कि अनित्य भोगजन्य सुख का परित्याग कर देना चाहिए । यदि तुम परलोक पर विश्वास नहीं करने वाले बौद्धों के सिद्धान्त में आस्था रखती हो तो तुम्हें इस तरह की सुन्दर जवानी प्राप्त करके सर्वोत्तम भोगों को भोगना चाहिए ॥१२-१३॥

**कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु । अपराधं बिना दैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके ॥१६॥ दया धर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः । तस्माद्दया
तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः ॥१७॥ कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव ।** देव्युवाच– **त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता ॥१८॥
तदहं संप्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम् । विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा ॥१९॥ न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यंती साक्षिरूपिणी । न मे
कदाऽपि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता ॥२०॥ धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम् । व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा ॥२१॥ साधूनां
रक्षणं कार्यं हंतव्या येऽप्यसाधवः । वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः ॥२२॥ युगे युगे तानेवाहमवतारान्बिभर्मि च । महिषस्तु दुराचारो देवान्वै
हंतुमुद्यतः ॥२३॥ ज्ञात्वाऽहं तद्वधार्थं भोः प्राप्ताऽस्मि राक्षसाधुना । तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम् ॥२४॥ गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं
सत्यमेतदुदाहृतम् । ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम् ॥२५॥ किमन्यान्प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह । संधिश्चेत्कर्तुमिच्छाऽस्ति राज्ञस्तव
मया सह ॥२६॥ सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथासुखम् । देवद्रव्यं तु यत्किंचिद्धृतं जित्वा रणे सुरान् ॥२७॥ तद्दत्त्वा यांतु पातालं प्रह्लादो**

हे भामिनि ! तुम इस भूतल पर ही नित्य ही स्वर्ग के सुखों को भोगो । देह अनित्य है, इस बात को जानने वाले को पुण्य कर्मों को करना चाहिए ॥१४॥
जिन कार्यों को करने से दूसरो को कष्ट होता है, उन कार्यों को त्याग देना चाहिए । चाहिये यह कि उचित रीति से धर्म, अर्थ एवं काम का सेवन किया
जाय ॥१५॥ अतएव हे कल्याणि ! तुम भी अपनी बुद्धि को धर्म में लगाओ । हे अम्बिके ! निरपराध दैत्यों को आप क्यों मार रही हैं ?॥१६॥ सभी
प्राणियों के शरीर में दया नामक धर्म रहता है सत्य के ही ब्ल पर प्राण टिके रहते हैं । अतएव बुद्धिमान पुरुषों को सदा सत्य तथा दया की रक्षा करते
रहना चाहिए ॥१७॥ हे सुन्दरि ! तुम उस कारण को बतलाओ जिसके चलते दानवों को मार रही हो । **देवी ने कहा–** हे महाबाहो ! तुमने पूछा है कि
मैं किसलिए यहाँ आयी हूँ ॥१८॥ तो मैं दानवों को मारने का प्रयोजन बतला रही हूँ । हे दैत्य ! मैं सर्वदा सभी लोकों में विचरण करती रहती हूँ ॥१९॥
मैं साक्षी रूप से जीवों के साथ किए जाने वाले न्याय और अन्याय को देखती रहती हूँ । मुझे कभी भोगों को भोगने की इच्छा नहीं होती है । न तो मुझमें
कोई लोभ है और न तो किसी से वैर है ॥२०॥ मैं इस संसार में धर्म तथा सज्जनों की रक्षा करने के लिए विचरण करती रहती हूँ । मैं अपने इस निश्चित
व्रत का पालन सर्वदा करती रहती हूँ ॥२१॥ सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए तथा असज्जनों का वध कर देना चाहिए । अनेक प्रकार के अवतारों के द्वारा भी
वेदों की रक्षा करनी चाहिए ॥२२॥ मैं प्रत्येक युगों में अवतार धारण करती हूँ । महिषासुर दुराचारी है वह देवताओं को मारने के लिए उद्यत रहता है ॥२३॥
हे राक्षस ! इन सारी बातों को जानकर मैं यहाँ पर उसका वध करने के लिए आयी हूँ । उस महाबलवान् देवताओं के शत्रु का मैं बध करूँगी॥२४॥
अतएव अब तुम यहाँ रहो या चले जाओ । मैंने तुमको सत्य बतला दिया । अथवा तुम जाकर उस महिषी के पुत्र को मेरा सन्देश सुनाओ कि तुम युद्धभूमि

यत्र तिष्ठति । व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असिलोमा पुरः स्थितः ॥२८॥ बिडालाक्षं महावीरं प्रपच्छ प्रीतिपूर्वकम् ।** असिलोमोवाच– **श्रुतं तेऽद्य बिडालाक्ष भवान्या कथितं च यत् ॥२९॥ एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः संधिरेव वा ।** बिडालाक्ष उवाच– **न संधिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन् । दृष्ट्वा हतान्प्रेरयते तथाऽस्मान्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥३०॥ (दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां धर्मः सदा मानविवर्जितानाम् । आज्ञापराणां वशवर्तिकानां पांचालिकानामिव सूत्रभेदात् ।) गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च मयाऽपि वक्तव्यमिदं कठोरम् । गच्छंतु पातालमितश्च सर्वे दत्त्वाऽथ रत्नानि धनं सुराणाम् ॥३१॥ (प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम् । सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम् ।) न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम् ॥३२॥ न नूनं तत्र गंतव्यं हितं वा वक्तुमादरात् । प्रष्टुं वाऽपि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति ॥३३॥ इति संचिन्त्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये । स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा ॥३४॥** व्यास उवाच– **इति संचिंत्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ । धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसंगतौ ॥३५॥ प्रथमं तु बिडालाक्षः**

में दूसरे दैत्यों को क्यों भेजते हो स्वयं आकर युद्ध करो । यदि तुम्हारे राजा की मेरे साथ सन्धि करने की इच्छा हो तो ॥२५-२६॥ वे आनन्द पूर्वक पाताल लोक चले जायँ । उन्होंने युद्ध में देवताओं को जीतकर जितना धन छिन लिया है वह सब लौटाकर प्रह्लाद के पास पाताल लोक में चले जायँ ॥२७॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी की बातों को सुनकर असिलोमा ने अपने सामने स्थित महावीर विडालाक्ष से प्रेमपूर्वक पूछा । हे विडालाक्ष ! भवानी ने जो कुछ भी कहा है उसे तुमने सुना है ॥२९॥ ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ? युद्ध या सन्धि **विडालाक्ष ने कहा–** यद्यपि महाराज यह जानते हैं कि युद्ध में मृत्यु का होना निश्चित है, किन्तु अभिमानी होने के कारण वे सन्धि करना नहीं चाहते हैं । वे मारे गये दैत्यों को देखकर भी हमलोगों को भेजते रहते हैं। दैव का अतिक्रमण कौन कर सकता है ?॥३०॥ (सेवकों का धर्म अत्यन्त कठिन होता है । सेवकजन तो सदा मानापमान से रहित होते हैं । वे अपने स्वामी के वशवर्ती रहकर उसी तरह उनकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं जिस तरह कोई कठपुतली सूत्रधार के सूत्र के इशारे पर नाचती रहती है ।) मैं अथवा तुम महिषासुर के समक्ष जाकर कैसे कह सकते हैं कि पहले आपने देवताओं का जो कुछ भी धन और रत्न छिन लिया है; उसे देवताओं को लौटाकर पाताल चले जायँ ॥३१॥ राजा के समाने तो प्रिय ही बोलना पड़ता है, चाहे वह असत्य ही क्यों न हो । हितकारी बातें नहीं कही जाती हैं । राजा के सामने प्रिय सत्य भी नहीं बोलना होता है इसलिए इस विषय में मौन रहना ही चाहिए ।) नीति यही बतलाती है कि वीरों को कभी राजा को छोटी बातें नहीं कहनी चाहिए यही नीतिशास्त्र है ॥३२॥ अतएव इन कल्याणकारी बातों को कहने कें लिए राजा के पास जाकर कहने की कोई आवश्यकता नहीं है । राजा के पास पूछने के लिए भी जाने पर वे क्रुद्ध हो जायेंगे ॥३३॥ अतएव प्राणसंशयापन्न होने पर भी मृत्यु को तृण के समान मानकर

सप्त बाणान्मुमोच ह । असिलोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित् ॥३६॥ चिच्छेद तांस्तथा प्राप्तानम्बिका स्वशरैः शरान् । बिडालाक्षं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः ॥३७॥ प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समरांगणे । मूर्छितोऽथ ममाराशु दानवो दैवयोगतः ॥३८॥ बिडालाक्षं मृतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः । असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः ॥३९॥ ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः । देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्मनाम् ॥४०॥ तथापि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया । महिषो मन्दबुद्धिश्च न जानाति प्रियाप्रिये ॥४१॥ तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया । मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाऽप्यशुभं भवेत् ॥४२॥ दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् । पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि ॥४३॥ इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः । देवी चिच्छेद तान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजान्तिके ॥४४॥ अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः। वीक्षिताऽमरसंघैश्च कोपपूर्णानना तदा ॥४५॥ शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल । स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा ॥४६॥ असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः । दुद्राव चण्डिकां कोपात्सिंहं मूर्ध्नि जघान ह ॥४७॥ सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजांतरे । अगणय्य

और स्वामी का कार्य मानकर युद्ध ही करना चाहिए ॥३४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस प्रकार से वे दोनों वीर आपस में विचार करके धनुष धारण करके रथ पर सवार हो गये और युद्ध करने के लिए शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर तैयार हो गये ॥३७॥ पहले विडालाक्ष ने सात बाणों को चलाया और असिलोमा युद्ध द्रष्टा के रूप में दूर खड़ा रहा ॥३६॥ अम्बिका ने अपने बाणों से बिडालाक्ष के उन बाणों को काट दिया और अपने शिलाशित (शाप पर चढाकर तीक्ष्ण किए गये) तीन बाणों से विडालाक्ष पर प्रहार किया ॥३७॥ उस बाण की व्यथा को प्राप्त करके दैत्य विडालाक्ष युद्ध भूमि में गिर पड़ा और दैव योग से मूर्छित होकर मर गया ॥३८॥ विडालाक्ष को मरा हुआ देखकर असिलोमा धनुष-बाण धारण करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥३९॥ उसने अपनी दाहिनी भुजा ऊपर उठाकर कहा देवि ! मैं जानता हूँ कि दानव दुराचारी हैं ॥४०॥ फिर भी मैं पराधीन हूँ अतएव मुझे युद्ध करना ही चाहिए । महिष मन्द बुद्धि वाला है, न तो अपना प्रिय समझता है और न अप्रिय ॥४१॥ अतएव उसके समक्ष मैं अप्रिय कल्याणकारी बातों को नहीं कह सकता हूँ । वीरों का धर्म मरना ही है, चाहे वह शुभ हो अथवा अशुभ ॥४२॥ मैं दैव को ही बलवान् मानता हूँ । पौरुष तो अनर्थक है । अतएव उसको धिक्कार है । तुम्हारे बाणों से मारे गये दैत्य शीघ्र ही पृथिवी पर गिर पड़ते हैं ॥४३॥ इस तरह से कहकर उस दानवश्रेष्ठ ने देवी के ऊपर बाणों की वर्षा की और देवी ने भी अपने पास पहुँचे उन बाणों को काट दिया ॥४४॥ फिर देवी ने अपने शीघ्रगामी बाणों से असिलोमा पर प्रहार किया देवताओं ने देखा कि उस समय देवी का मुखड़ा क्रोध से लाल हो गया था ॥४५॥ उस दानव का शरीर बाणों से बिंध गया था और खून बह रहा था । उसकी शोभा उस पलाश वृक्ष के समान हो रही थी जो फूलों से भर जाता है ॥४६॥ असिलोमा अपने लौहनिर्मित भारी गदा को उठाकर देवी के पास पहुँचा और सिह

गदाघातं कृतं तेन बलीयसा ॥४८॥ उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः । सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयाऽम्बिकाम् ॥४९॥ कृतं तेन प्रहारं तु वञ्चयित्वा विशांपते । खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कण्ठतः ॥५०॥ छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ । हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः ॥५१॥ जय देवीति देवास्तं तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् । देवदुन्दुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः ॥५२॥ निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणांगणे । निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात् ॥५३॥ भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्गणं कृतम् । भग्नाः केचिद्गता मन्दा महिषं प्रति दुःखिताः ॥५४॥ चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः । असिलोमबिडालाक्षौ निहतौ नृपसत्तम ॥५५॥ अन्ये ये सैनिका राजन्सिंहेन भक्षिताश्च ते । एवं ब्रुवन्तो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम् ॥५६॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा । बभूव चिन्ताकुलितो विमना दुःखसंयुतः ॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

पर अपनी गदा से प्रहार किया ॥४७॥ सिंह ने भी अपने नंखों के आघात से असिलोमा की भुजाओं को चीर दिया । उस गदा के प्रहार की परवाह किए बिना उस सिंह ने इस काम को किया ॥४८॥ इसके बाद गदा धारण किए हुए असिलोमा सिंह के सिर पर चढ़ गया और अपनी गदा से देवी के ऊपर प्रहार किया ॥४९॥ देवी ने उसके उस प्रहार को विफल बना दिया और अपने खड्ग से उसके शिर को काट कर उसके कण्ठ से अलग कर दिया॥५०॥ शिर के कट जाने पर वह दैत्य पृथिवी पर गिर पड़ा । उसके कारण असिलोम की सेना में घोर हाहाकर मच गया ॥५१॥ देवता भी देवी का जय-जयकार करके उनकी स्तुति करने लगे । राजन् ! देवताओं ने अपनी दुन्दुभि बजायी और किन्नरगण नृत्य करने लगे ॥५२॥ युद्धभूमि में उन दोनों दैत्यों को मरे देखकर देवी के सिंह ने उसकी सेना को बलपूर्वक मार दिया ॥५३॥ कुछ दैत्यों को उसने खा लिया । इस तरह सारी सेना मारी गयी । बचे हुए कुछ सैनिक भयभीत और दुःखी होकर महिषासुर के पास पहुँचे ॥५४॥ वे रो चिल्ला रहे थे और मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो ! कह रहे थे । हे राजन् ! असिलोमा और विडालाक्ष दोनों मारे गये ॥५५॥ राजन् ! आपके अन्य सैनिकों को देवी का सिंह खा गया । इस तरह से कहकर महिषासुर के सामने वे रोने लगे॥५६॥ सैनिको की उस बात को सुनकर महिषासुर चिन्ता से व्याकुल होकर दुःखी तथा उदास हो गया ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः । दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम् ॥१॥ सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम्। आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचकं चारुकूबरम् ॥२॥ सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः । राजन्रथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः ॥३॥ सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः । आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥४॥ मानुषं देहमास्थाय संग्रामं गन्तुमुद्यतः । विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम् ॥५॥ शृङ्गिणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति । नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि ॥६॥ तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति । यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति ॥७॥ ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः । इति संचिंत्य मनसा दानवेन्द्रो महाबलः ॥८॥ त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः । सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥९॥ दिव्यांबरधरः कांतः पुष्पबाण इवापरः। रथोपविष्टः केयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥१०॥ सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः । मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम् ॥११॥ तमागतं**

देवी का महिषासुर से संवाद

व्यासजी ने कहा– कि इस तरह से सैनिकों की बात सुनकर राजा महिषासुर क्रुद्ध हो गया और अपने सारथि दारुक को रथ लाने का आदेश दिया॥१॥ उस रथ में एक हजार गधे जुते थे । वे ध्वजाओं और पताकाओं से समलंकृत थे । उसमें हर प्रकार के शस्त्रास्त्र रखे हुए थे । उस रथ के चक्के तथा जुए देखने में बड़े ही सुन्दर थे ॥२॥ सूत भी उस रथ को शीघ्र लाकर महिषासुर से कहा राजन् आपका समलंकृत रथ आ गया है, द्वार पर खड़ा है ॥३॥ वह सभी आयुधों तथा सुन्दर विस्तर से युक्त है । रथ आ गया है इसबात को जानकर महाबलवान् महिषासुर मानव का शरीर धारण करके युद्ध में जाने के लिए तैयार हो गया । उसने मन में विचार किया कि यदि मैं सींग वाले महिष के रूप में जाऊँ तो देवी मुझसे घृणा करेगी । स्त्रियों को तो रूप और चतुरता प्रिय होती है ॥६॥ अतएव मैं अपने सुन्दर रूप तथा चातुर्य को धारण करके ही उसके पास जाऊँ जिससे कि वह सुन्दरी मुझको देखते ही मुझपर मोहित हो जाय ॥७॥ उसी रूप में मुझे भी सुख मिलेगा अन्य रूप में नहीं । इस तरह से महाबलवान् दैत्यों का स्वामी ॥८॥ अपने महिषरूप का परित्याग करके सुन्दर मनुष्य का रूप धारण कर लिया । उसने समस्त आयुधों को धारण किया और सभी अलंकारों से अलंकृत हो गया ॥९॥ सुन्दर वस्त्र धारण करके वह दूसरे कामदेव के समान लगता था । वह रथ पर बैठकर केयूर, माला तथा धनुष एवं बाण को धारण किए हुए था ॥१०॥ इस तरह से सेना से घिरा हुआ वह देवी के पास आया । मानिनियों के मन को मोह लेने वाले मनोज्ञ रूप को धारण किए हुए वह मद से मत्त बना हुआ था ॥११॥

समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा । बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शंखमवादयत् ॥१२॥ स शंखनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम् । समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव ॥१३॥ देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल । नरो वाऽथ तथा नारी सुखं वांछति सर्वथा ॥१४॥ सुखं संयोगजं नृणां नासंयोगे भवेदिह । संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह ॥१५॥ भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः । तत्र प्रीतिभवानादौ कथयामि यथामति ॥१६॥ मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः । भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः ॥१७॥ उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः । तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः ॥१८॥ नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः । विविधावृतचित्तानां प्रसंगपरिवर्तिनाम्॥१९॥ अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः । अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे सुखदुःखदः ॥२०॥ नारीपुरुषयोः कान्ते समानवयसोः सदा । संयोगो यः समाख्यातः स एवात्युत्तमः स्मृतः ॥२१॥ अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः । चातुर्यरूपवेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा ॥२२॥ परस्परसमुत्कर्षः

अनेक वीरों से घिरे हुए दैत्यों के स्वामी महिषासुर को आये हुए देखकर देवी ने अपना शंख बजाया ॥१२॥ दैत्यों को विस्मित कर देने वाली शंख ध्वनि को सुनकर महिषासुर देवी के समीप जाकर हँसते हुए कहने लगा ॥१३॥ हे देवि इस संसार चक्र में रहने वाला चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री हो, सबलोग सुख प्राप्त करना चाहते हैं ॥१४॥ सुख तो परस्पर में होने वाले संयोग से ही प्राप्त होता है, संयोग के बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है । वह संयोग भी अनेक प्रकार का है, उसे मैं बतला रहा हूँ । उसे तुम सुनो ॥१५॥ पहला सुप्रीति संयोग है । वह संयोग प्रेम से उत्पन्न होता है । दूसरे प्रकार का संयोग हेतूत्थसंयोग होता है । वह किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए होने वाला संयोग हैं । स्वाभाविक संयोग तीसरे प्रकार का संयोग है । यह संयोग अपने आप उत्पन्न हो जाता है । इन तीनों प्रकार के संयोगों में सुप्रीति संयोग का वर्णन मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कर रहा हूँ ॥१६॥ माता-पिता का पुत्र के साथ होने वाला संयोग सुप्रीति संयोग है । यह उत्तम कोटि का संयोग है । एक भाई का दूसरे भाई के साथ किसी कारणवशात् होने वाला संयोग हेतूत्थसंयोग है । यह मध्यम कोटि का संयोग है ॥१७॥ उत्तम संयोग से उत्तम कोटि का सुख प्राप्त होता है । उसकी अपेक्षा कम सुख प्रदान करने वाला हेतूत्थसंयोग मध्यम कोटि का संयोग है ॥१८॥ कहीं पर जाते समय नौका आदि में जो लोगों का संयोग होता है वह स्वाभाविक संयोग है। क्योंकि इस संयोग में अनेक प्रकार के व्यवहार वाले तथा चित्त वाले लोगों का संयोग होता है । यह जो संयोग है वह प्रसंगतः प्राप्त होता है ॥१९॥ इस प्रकार के संयोग से अधम सुख की प्राप्ति होती है अतएव यह संयोग कनिष्ठ कोटि का संयोग होता है । संसार में अत्यन्त उत्तम कोटि का संयोग अत्यन्त उत्तम कोटि के सुख तथा अत्यन्त उत्तम कोटि का दुःख देने वाला होता है ॥२०॥ हे प्रिये ! समान अवस्था वाले स्त्री तथा पुरुष का जो संयोग होता है, वही अति उत्तम संयोग है ॥२१॥ क्योंकि उस संयोग से अत्युत्तम सुख की प्राप्ति होती है । उस संयोग में चतुरता, रूप, वेष, कुल, शील आदि समस्त

कथ्यते हि परस्परम् । तं चेत्करोषि संयोगं वीरेण च मया सह ॥२३॥ अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्तिः स्यात्ते न संशयः । नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये ॥२४॥ इन्द्रादयः सुराः सर्वे संग्रामे विजिता मया । रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना ॥२५॥ भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा तथा । पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि ॥२६॥ वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः । यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाऽहं करवाणि वै ॥२७॥ आज्ञापय विशालाक्षि तथाऽहं प्रकरोम्यथ । चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि ॥२८॥ आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल । प्रपन्नं पाहि रंभोरु कामबाणैः प्रपीडितम् ॥२९॥ धर्माणामुत्तमो धर्मः शरणागतरक्षणम् । त्वदीयोऽस्म्यसितापांगि सेवकोऽहं कृशोदरि ॥३०॥ मरणांतं वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम् । पादौ नतोऽस्मि तन्वंगि त्यक्त्वा नानायुधानि ते॥३१॥ दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणैः । जन्मप्रभृति चार्वंगि दैन्यं नाचरितं मया ॥३२॥ ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम्। चरितं मम जानंति रणे ब्रह्मादयः सुराः ॥३३॥ सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि । व्यास उवाच– **इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी**

गुणों का सन्निवेश होता है ॥२२॥ उस संयोग में पुरुष तथा नारी एक दूसरे के गुण की प्रशंसा करते हैं । मैं वीर पुरुष हूँ । तुम यदि उस प्रकार का संयोग मेरे साथ करती हो तो तुम को निश्चित रूप से उत्तम कोटि का सुख प्राप्त होगा । प्रिये ! मैं अपनी इच्छा के अनुसार अनेक प्रकार का रूप बना लेता हूँ ॥२३-२४॥ मैंने संग्राम में इन्द्र आदि सभी देवताओं को पराजित किया है । मेरे पास जो दिव्य रत्न मेरे भवन में हैं ॥२५॥ उन सबों का तुम स्वयं उपभोग करो तथा जिसको चाहो उसे प्रदान भी करो । तुम मेरी पटरानी बन जाओ । हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास हूँ ॥२६॥ तुम्हारे कहने पर मैं देवताओं के साथ वैर को त्याग दूँगा । तुम जैसा चाहोगी में वैसा ही कार्य करूँगा ॥२७॥ हे विशालाक्षि ! तुम मुझे आज्ञा दो मैं उसका पालन करूँगा । हे मधुरभाषिणि ! तुम्हारे रूप पर मेरा चित्त मोहित हो गया है ॥२८॥ हे वरारोहे ! मैं अतुर हो गया हूँ तुम्हारे शरण में आया हूँ । हे रंभोरु ! मैं काम पीड़ित हूँ । मुझ शरणागत की तुम रक्षा करो ॥२९॥ शरणागत की रक्षा करना सभी धर्मो से बढ़कर उत्तम धर्म है । हे कृशोदरि ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं मृत्युकाल पर्यन्त तुम्हारी किसी बात को नहीं टालूँगा । मैं अपने आयुधों का परित्याग करके तुम्हारे चरणों पर गिर रहा हूँ ॥३१॥ हे विशालाक्षि ! तुम मेरे ऊपर दया करो । मैं काम के बाणों से संतप्त हूँ । हे सुन्दरि ! जन्म से लेकर आज तक मैंने किसी के समक्ष दीनता का प्रकाशन नहीं किया है ॥३२॥ ब्रह्मा आदि ईश्वरों के भी समक्ष नहीं, केवल तुम्हारे ही समक्ष दीनता को प्रकाशित कर रहा हूँ । ब्रह्मा इत्यादि देवता युद्ध के मैदान में मेरे चरित्र को खूब जानते हैं ॥३३॥ ऐसा होकर भी मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ । तुम मेरे मुख की ओर देखो । **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से बोलने वाले दैत्य

भगवती हि सा ॥३४॥ प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी । देव्युवाच– **नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना ॥३५॥ तस्य चेच्छाऽस्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत् । स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा ॥३६॥ तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् । जडाऽहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना ॥३७॥ अयस्कांतस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा । न ग्राम्यसुखवांछा मे कदाचिदपि जायते ॥३८॥ मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन् यत्स्त्रीसङ्गं चिकीर्षसि । नरस्य बन्धनार्थाय शृंखला स्त्री प्रकीर्तिता ॥३९॥ लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते । किमिच्छसि च मन्दात्मन्मूत्रागारस्य सेवनम् ॥४०॥ शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि । नारीसंगे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि ॥४१॥ त्यज वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावनौ । पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥४२॥ अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि सांप्रतम् । प्रेषिताऽहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव ॥४३॥ सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृदम् । दर्शितं तेन तुष्टाऽस्मि जीवन्गच्छ यथासुखम् ॥४४॥ सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुंचामि जीवितम् । मरणेच्छाऽस्ति चेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम् ॥४५॥ हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः ।** व्यास उवाच– **इति**

से दिव्यगुणों वाली भगवती ने ॥३४॥ अट्टहास करके मुस्कुराते हुए कहा **देवी ने कहा**– मैं परमपुरुष को छोड़कर किसी भी दूसरे पुरुष को नहीं चाहती हूँ॥३५॥ हे दैत्य ! उस परम पुरुष की ही इच्छा से मैं सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करती हूँ । सम्पूर्ण जगत् की आत्मा वे परमपुरुष ही मुझे देखते हैं । मैं उनकी कल्याणकारिणी प्रकृति हूँ ॥३६॥ उनका सर्वदा सान्निध्य बने रहने के कारण ही मुझमें शाश्वत ज्ञान है । मैं यद्यपि जडा हूँ किन्तु उस परमपुरुष के ही संयोग से चेतन बन जाती हूँ ॥३७॥ यह उसी तरह से होता है जिस तरह अयस्कान्तमणि के संयोग से लौहे में भी चेतना आ जाती है । मुझ को कभी भी ग्राम्य सुख प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं होती है ॥३८॥ हे मन्दात्मन् ! तुम मूर्ख हो कि स्त्री का सङ्ग प्राप्त करना चाहते हो । स्त्री को तो पुरुष को बाँधने वाली शृंखला (जंजीर) बतलाया गया है ॥३९॥ लोहे के जंजीर में बँधा हुआ पुरुष छूट जा सकता है, किन्तु स्त्री रूपी जंजीर में बँधा पुरुष नहीं मुक्त हो सकता है । हे मूर्ख ! तुम मूत्रागार का सेवन करना क्यों चाहते हो ॥४०॥ यदि सुख प्राप्त करना हो तो अपनी इन्द्रियों को वश में करो, उसीसे तुम्हें सुख मिलेगा । स्त्री का सम्बन्ध ही महादुःख है । इस बात को जानकर भी क्यों मूर्ख बनते हो ?॥४१॥ तुम देवताओं के साथ अपने वैर का त्याग कर अपनी इच्छा के अनुसार पृथिवी पर विचरण करो । यदि तुम्हें जीने की इच्छा हो तो पाताल लोक में चले जाओ ॥४२॥ यदि बलवान हो तो युद्ध करो, मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ । दानव ! तुम्हारा नाश करने के ही लिए मुझे देवताओं ने भेजा है ॥४३॥ तुम्हारी वाणी की सुहृदता के ही कारण मैं सत्य बातें कह रही हूँ । मेरी बात मानकर तुम पाताल लोक में चले जाओ; मैं तुम से प्रसन्न हूँ ॥४४॥ सत्पुरुषों ने कहा है कि सात डग भी साथ चलने से मैत्री सम्बन्ध हो जाता है; अतएव मैं तुम्हें जीवित छोड़ दे रही हूँ । यदि तुम्हें मरने की इच्छा हो तो सुखपूर्वक मुझसे युद्ध करो ॥४५॥

तस्यावचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः ॥४६॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः । बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने ॥४७॥ कोमलां चारुसर्वांगीं नारीं नरविमोहिनीम् । जित्वा हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वश; ॥४८॥ किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने । रोचते यदि चार्वंगि विवाहं कुरु मां भज ॥४९॥ नोचेद्गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता । नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया ॥५०॥ हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद्गच्छ यथासुखम् । का शोभा मे भवेदन्ते हत्वा त्वां चारुलोचनाम् ॥५१॥ स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया । गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने ॥५२॥ तथापि मे फलं न स्याद्बलाद्भोगसुखं कुतः । प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः ॥५३॥ पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कांतामुखाम्बुजात् । तत्तथैव हि नारीणां तस्माच्च पुरुषं विना ॥५४॥ संयोगे सुखसम्भूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः । कांताऽसि रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥५५॥ चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो । तवोपदिष्टं केनेदं भोगानां परिवर्जनम् ॥५६॥ वञ्चिताऽसि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह । मुंचाग्रहमिमं कांते कुरु कार्यं सुशोभनम् ॥५७॥ सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल । विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति

हे महाबाहो ! मैं निश्चित रूप से तुम्हारा वध करूँगी । इसमें किसी प्रकार का संशय नही है । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवी की बातों को सुनकर काम मोहित होकर महिषासुर ॥४६॥ ने अपनी मधुरवाणी में कहा हे वरारोहे ! हे वरानने ! तुम पर प्रहार करने में मैं डरता हूँ ॥४७॥ कोमल, सर्वाङ्ग सुन्दरी नारी, पुरुष को मोह में डाल देने वाली होती है । उन सबों ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा समस्त लोकपालों को पूर्ण रूप से जीत लिया है॥४८॥ हे कमलनयने ! तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा क्या ? यदि तुम को अच्छा लगे तो तुम मेरे साथ विवाह कर लो और मेरी सेवा करो ॥४९॥ यदि तुम को अच्छा न लगे तो तुम जहाँ से आयी हो वहीं चली जाओ । मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करूँगा, क्योंकि तुमने मेरे साथ मित्रता कर ली है॥५०॥ यह मैंने तुम्हारे कल्याण की बात बतलायी है । सबसे अच्छा यही है कि तुम जहाँ से आयी हो वहीं चली जाओ । तुम सुन्दरनेत्रों वाली का वध करने से भी मेरी कौन सी शोभा बढ़ेगी ?॥५१॥ स्त्री की हत्या, बालक की हत्या तथा ब्राह्मण की हत्या ये अत्यधिक पापकारी हैं । हे वरानने ! यदि मैं चाहूँ तो तुम्हे बलपूर्वक पकड़कर अपने साथ ले जा सकता हूँ ॥५२॥ किन्तु ऐसा करने से मुझे कोई फल नहीं मिलेगा, क्योंकि बलपूर्वक किए गये भोग से कोई सुख नहीं मिलता है । अतएव हे सुकेशि ! मैं नम्र होकर तुमसे कहता हूँ ॥५३॥ जिस तरह पुरुषों को प्रियतमा का मुख देखे बिना चैन नहीं मिलता है, उसीतरह स्त्रियाँ भी अपने प्रियतम का मुख देखे विना व्याकुल रहती हैं ॥५४॥ प्रियतमा तथा प्रियतम के संयोग में ही सुख की प्राप्ति होती है और वियोग हो जाने पर दुःख होता है । तुम देखने में सुन्दर हो, रूपवती और समस्त अलंकारों से अलंकृत हो ॥५५॥ किन्तु न जाने तुममें चतुरता क्यों नहीं है कि तुम मेरा वरण नही कर रही हो । तुमको भोगों का परित्याग करने के लिए किसने उपदेश दिया है ॥५६॥ प्रिय बोलने वाले तुम्हारे

सावित्र्या च सहात्मभूः ॥५८॥ रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा । का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥५९॥ येन त्वमसितापांगि न करोषि पतिं शुभम् । कामः क्वाद्य गतः कांते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः ॥६०॥ मादनैः पञ्चभिः कामं न ताडयति मन्दधीः। मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुन्दरि ॥६१॥ अबलेति च मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान् । मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया मह ॥६२॥ तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुञ्चति शिलीमुखान् । अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः ॥६३॥ सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि । त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यासि ॥६४॥ मन्दोदरीव तन्वङ्गि परित्यज्य शुभं नृपम् । अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम् । कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलांतरा ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

किसी शत्रु ने तुम्हारे साथ प्रवंचना की है । हे कान्ते ! तुम अपने आग्रह का परित्याग कर दो । सुन्दर कार्य करो । विवाह कर लो ॥५७॥ विवाह कर लेने पर तुम्हें तथा मुझें दोनों को ही सुख मिलेगा । भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ सुशोभित होते हैं और ब्रह्मा जी सरस्वती के साथ सुशोभित होते हैं ॥५७॥ भगवान् शंकर पार्वती के साथ सुशोभित होते हैं तथा इन्द्र शची के साथ । कौन ऐसी नारी है जो पति से हीन होकर शाश्वत सुख को प्राप्त करती हो ॥५९॥ जिसके कारण हे सुन्दर कटाक्षों वाली तुम पति का वरण नहीं कर रही हो । हे कान्ते ! आज वह मूर्ख काम कहाँ चला गया जो अपने अत्यन्त कोमल मादक पाञ्च बाणों से तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करता है । लगता है जिस तरह मैं तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया हूँ उसी तरह कामदेव भी तुम्हारे विषय में दयालु हो गया है ॥६०-६१॥ अथवा वह तुमको अबला मानकर ही तुम पर बाणों को नहीं चलाता है । अथवा काम का मुझसे कोई बैर है जिसके कारण हे टेढ़ी भृकुटि वाली सुन्दरि ! तुम्हारे ऊपर काम अपने बाणों को नहीं चलाता है, अथवा मेरे बैरी देवताओं ने कामदेव को तुम्हारे ऊपर बाण चलाने से मना कर दिया है ॥६२-६३॥ ये देवता मेरे सुख का विध्वंस करने वाले हैं । इसीलिए काम भी तुम्हारे ऊपर बाणों को नहीं छोड़ता है । हे मृगशावकनयनि! मेरा परित्याग करके बाद में तुम पश्चात्ताप ही करोगी ॥६४॥ जिस तरह मन्दोदरी ने पहले किसी अनुकूल पुरुष को अपना पति नहीं बनाया, किन्तु जब वह काम की पीड़ा से सन्तप्त हो गयी तो शठ पुरुष चारुदेष्ण को ही उसने अपना पति बना लिया ॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

सप्तदशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम् । का सा मन्दोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तो नृपस्तया ॥१॥ शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम् । विस्तरेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः ॥२॥** महिष उवाच– **सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले । घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान् ॥३॥ चन्द्रसेनाभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः । न्यायदण्डधर शांतः प्रजापालनतत्परः ॥४॥ सत्यवादी मृदुः शूरस्तिंतिक्षुर्नीतिसागरः । शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥५॥ तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा । सदाचाराऽतिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा ॥६॥ नाम्ना गुणवती कांता सर्वलक्षणसंयुता । सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम् ॥७॥ पिता चातीव सन्तुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम् । मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः ॥८॥ इन्दोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिने दिने । दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा ॥९॥ वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने । मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः ॥१०॥ तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कम्बुग्रीवोऽतिविश्रुतः।**

मन्दोदरी की कथा

व्यासजी ने कहा– महिषासुर की वाणी को सुनकर देवी ने उससे पूछा मन्दोदरी नाम की नारी कौन थी उसने किस राजा का परित्याग किया था ॥१॥ बाद में उसने किस शठ राजा को अपना पति बनाया था इन सारी बातों को तुम मुझे विस्तार पूर्वक बतलाओ कि किस तरह उस नारी ने दुःख प्राप्त किया॥२॥ **महिषासुर ने कहा–** भूलोक में सिंहल नामक विख्यात देश है । वहाँ पर अत्यधिक घने वृक्ष हैं और वह देश धन-धान्य से समृद्ध है ॥३॥ वहाँ पर चन्द्रसेन नामक धार्मिक राजा राज्य करता था । वह शान्त स्वभाव वाला तथा प्रजा के पालन में तत्पर रहता था । वह न्यायपूर्वक राज्य करता था॥४॥ वह सत्यवक्ता, मृदु स्वभाव वाला, शूरवीर, सहिष्णु, नीति शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ तथा धनुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता था ॥५॥ उसकी पत्नी सुन्दरी, रूपवती, कल्याणमयी, सदाचारिणी, सुन्दर मुखड़े वाली तथा पति की भक्ति से सम्पन्न थी ॥६॥ उसका नाम गुणवती था । वह कान्ता के सभी लक्षणों से युक्त थी । उसने अपने प्रथम गर्भ में अत्यन्त सुन्दरी पुत्री को जन्म दिया ॥७॥ अपने अत्यन्त मनोहर पुत्री को प्राप्त करके उसके पिता भी सन्तुष्ट हुए । उन्होंने अपनी उस पुत्री का नाम मन्दोदरी रखा ॥८॥ वह चन्द्रमा की कला के समान प्रतिदिन बढ़ने लगी । जब वह कन्या दश वर्ष की हुई तो उसके पिता उसके विवाह के लिए प्रतिदिन चिन्तित होने लगे ॥९॥ वर प्राप्ति के लिए पिता प्रतिदिन चिन्ता करते थे । उस समय मद्र देश के राजा शूरवीर थे। उनका नाम सुधन्वा था ॥१०॥ उस राजा का पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान था उसका नाम कम्बुग्रीव था । ब्राह्मणों ने राजा चन्द्रसेन से कहा कि मन्दोदरी के

ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे संयुक्तोऽस्या वरः शुभः ॥११॥ सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वविद्यार्थपारगः । राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया ॥१२॥
कम्बुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम् । सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम् ॥१३॥ विवाहं ते पिता कर्तुं कम्बुग्रीवेण वांछति।
तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा ॥१४॥ नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे । कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा ॥१५॥
स्वातन्त्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि । पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे ॥१६॥ स्वातन्त्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः ।
तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम् ॥१७॥ विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ । वक्तव्यं वचनं सम्यक्त्वदधीनाऽस्मि सर्वदा॥१८॥
श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये । पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखाद्दुःखतरं स्मृतम् ॥१९॥ कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि । तदा महत्तरं
दुःखं सपत्नीसंभवं भवेत् ॥२०॥ तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ । संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः ॥२१॥ स्वभावात्परतन्त्राणां
संसारे स्वप्नधर्मिणि । श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः ॥२२॥ उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः । पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम्॥२३॥
अपराधं विना कांतां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम् । एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि ॥२४॥ कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद्दुःखभाजनम् ।

लिए योग्य वर कम्बुग्रीव हैं ॥११॥ वह सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा सभी विद्याओं का ज्ञाता है । तब राजा चन्द्रसेन ने उसके विषय में अपनी रानी गुणवती
से कहा ॥१२॥ मैं अपनी पुत्री का विवाह कम्बुग्रीव से करूँगा । अपने पति की बात को सुनकर गुणवती ने अपनी पुत्री से कहा ॥१३॥ तुम्हारे पिता तुम्हारा
विवाह कम्बुग्रीव से करना चाहते हैं । इस बात को सुनकर मन्दोदरी ने अपनी माता से कहा ॥१४॥ मैं अपना विवाह नहीं करना चाहती हूँ । मैं कौमार
व्रत को धारण करके ही अपना समय बिताऊँगी ॥१५॥ मैं स्वतन्त्रता पूर्वक निरन्तर तीव्र तपस्या करूँगी । हे माँ इस संसार रूपी सागर में परतन्त्रता से
बढ़कर कोई कष्ट नहीं हैं ॥१६॥ शास्त्रों के जानकार पण्डितों ने बतलाया है कि स्वतन्तत्रा से ही मुक्ति मिलती है । अतः मैं मुक्त बनूँगी । मुझे पति से
कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥१७॥ विवाह की बेला में तो अग्नि के समक्ष प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि मैं सदा पति के अधीन रहूँगी । ससुराल में सदा सासु
तथा देवरों की दासी बनकर रहना पड़ता है । सदा पति के मनोनुकूल रहना पड़ता है । यह बहुत बड़ा कष्ट है ॥१९॥ यदि पति ने किसी दूसरी स्त्री से
विवाह कर लिया तो सौत से कष्ट झेलना पड़ता है ॥२०॥ फिर तो पति के प्रति ईर्ष्या हो जाती है और उसके कारण कष्ट भी होता है । हे माँ ! संसार
में कोई सुख नहीं है । विशेषकर स्त्रियों को तो कोई सुख नहीं हैं । यह संसार तो स्वप्न के समान मिथ्या है और स्त्रियाँ स्वभाव से परतंत्र होती हैं । माँ
मैंने सुना है कि प्राचीन काल में उत्तानपाद नामक राजा के पुत्र का नाम उत्तम था । वह सभी धर्मों को जानने वाला तथा ध्रुव से छोटा था । उसने अपनी धर्मिणी

वैधव्यं परमं दुःखं शोकसंतापकारकम् ॥२५॥ परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे । मदनाग्निविदग्धायाः किं सुखं पतिसंगजम् ॥२६॥ तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम । एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा ॥२७॥ न च वांछति भर्तारं कौमरव्रतधारिणी । व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा ॥२८॥ न कांक्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा । भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः ॥२९॥ विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम् । वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता ॥३०॥ यौवनस्यांकुरा जाता नारीणां कामदीपकाः । तथापि सा वयस्याभिः प्रेरिताऽपि पुनः पुनः ॥३१॥ चकमे न पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी । एकदोद्यानदेशं सा विहर्तुं बहुपादपे ॥३२॥ जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरंध्रीगणसेविता । रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमिता लताः ॥३३॥ पुष्पाणि चिन्वती रम्या वयस्याभिः समावृता । कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैववशात्तदा ॥३४॥ आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः । एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः ॥३५॥ सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति

तथा पति की भक्ति करने वाली पत्नी को बिना किसी अपराध के वन में छोड़वा दिया था । इस तरह पति के रहने पर भी कभी-कभी पत्नी को बहुत अधिक कष्ट उठाना पड़ता है ॥२३-२४॥ मृत्यु की बेला आ जाने पर पति के मर जाने पर पत्नी को बहुत कष्ट होता है । वैधव्य शोक तथा संताप उत्पन्न करने वाला बहुत बड़ा दुःख है ॥२५॥ यदि पति परदेश चले जायँ तो भी पत्नी को अकेले घर में रहकर अत्यधिक कष्ट सहना पड़ता है । पत्नी कामाग्नि में जलती रहती है । उसको पति के संयोग से कौन सा सुख प्राप्त होता है ?॥२६॥ अतएव मेरा तो विचार है कि नारी को विवाह नही करना चाहिए। इस प्रकार से पुत्री के कहने पर रानी ने उस बात का अपने पति को बतलाया ॥२७॥ कि पुत्री विवाह करना नहीं चाहती है । वह कौमारव्रत धारण करके रहना चाहती है । वह सदा व्रत एवं जप करती रहती है । इस तरह वह सदा संसार से पराङ्मुख रहती है ॥२८॥ वह विवाह के अनेक दोषों को जानने में निपुण है अतएव विवाह नहीं करना चाहती है । अपनी पत्नी की बात को सुनकर राजा चन्द्रसेन भी चुप लगा गये॥२९॥ राजा ने जब यह जान लिया कि मेरी पुत्री श्रैङ्गारिक भाव से रहित है तो उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह नही किया। अपनी माता तथा पिता से रक्षित वह अपने घर में ही रहने लगी ॥३०॥ कुछ दिनों के बाद काम को उद्दीप्त करने वाले उसके शरीर में जवानी के चिह्न उत्पन्न हो गये । उसकी सखियाँ उसे बार-बार विवाह कर लेने के लिए प्रेरित करती थीं ॥३१॥ किन्तु उसने उन सबों से ज्ञान तथा वैराग्य की बातें करके विवाह करने से इन्कार कर दिया । एक बार वह अपनी सैरंध्रियों के साथ अनेक वृक्षों से परिपूर्ण उद्यान में विहार करने के लिए गयी । वहाँ पर घूमती हुई वह सुन्दरी वहाँ पर कुछ विकसित लताओं को देखी ॥३३॥ वह सुन्दरी अपनी सखियों के साथ फूल को चुन रही थी । दैववशात् कही जाता हुआ मार्ग में भटक कर कोसल देश का राजा वहाँ आया। वह प्रख्यात महाबलवान था । उसका नाम वीरसेन था । वह अकेले रथ पर बैठा था । उसके साथ उसके सेवक

शनैः शनैः । दृष्टस्तस्या वयस्याभिर्दूरतः पार्थिवस्तदा ॥३६॥ मंदोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरः पथि । रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः॥३७॥
मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह । एवं ब्रुवन्त्यां तत्रादौ कोसलेन्द्रः समागतः ॥३८॥ दृष्ट्वा तामसितापांगीं विस्मयं प्राप भूपतिः ।
उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ परिचारिकाम् ॥३९॥ केयं बाला विशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे । एवं पृष्टा तु सैरंध्री तमुवाच शुचिस्मिता ॥४०॥
प्रथमं ब्रूहि मे वीर पृच्छामि त्वां सुलोचन । कोऽसि त्वं किमिहायातः कि कार्यं वद सांप्रतम् ॥४१॥ इति पृष्टस्तु सैरंध्र्या तामुवाच महीपतिः।
कोसलो नाम देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः ॥४२॥ तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये । वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा॥४३॥
मार्गभ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम् । सैरंध्र्युवाच– च्रंद्रसेनसुता राजन्नाम्ना मंदोदरी किल ॥४४॥ उद्याने रंतुकामेयं प्राप्ता कमललोचना।
श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम् ॥४५॥ सैरंध्रि चतुराऽसि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय । ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजाऽस्मि चारुलोचने ॥४६॥
गांधर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि । न मे भार्याऽस्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवना ॥४७॥ वांछामि रूपसम्पन्नां सुकुलां कामिनीं किल।

थे ॥३४-३५॥ उसके पीछे उसकी सेना थी और उसके सेवक थे ॥३४-३५॥ उसके पीछे उसकी सेना धीरे-धीरे आ रही थी । मन्दोदरी की सखियों ने उस राजा को दूर से ही देखा और मन्दोदरी से कहा कि रास्ते में कोई राजा आ रहा है । वह महाबाहु रथ पर बैठा है तथा दूसरे कामदेव के समान रूप वाला हैं॥३७॥ भाग्यवशात् कोई राजा यहाँ आया है । जब इस प्रकार मन्दोदरी कह रही थी उसी समय कोसलदेश का राजा वहाँ आ गया ॥३८॥ उस राजा ने उस सुन्दरी मन्दोदरी को देखा और उसे देखकर आश्चर्यित हो गया । वह अपने रथ से उतरकर परिचारिका से पूछा ॥३९॥ तुम यह बतलाओ कि यह सुन्दरी कौन है ? यह किसकी पुत्री है । यह सुनकर उस सुन्दर मुस्कान वाली परिचारिका ने कहा ॥४०॥ हे सुन्दर वीर ! पहले मैं आप से पूछती हूँ कि आप कौन है ? यहाँ क्यों आये हैं ? इस समय आपके यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ?॥४१॥ सैरन्ध्री के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर राजा ने कहा भूतल पर कोसल नामक अत्यन्त अद्भुत देश है ॥४२॥ हे प्रिये ! उस देश का मैं राजा हूँ । मेरा नाम वीरसेन है । मेरी चारो प्रकार की सेना पीछे से आ रही है ॥४३॥ मैं रास्ता भूलकर यहाँ आ गया हूँ । मैं कोसल देश का स्वामी हूँ । इसके बाद सैरन्ध्री ने कहा- हे राजन् ! यह महाराज चन्द्रसेन की पुत्री है । इसका नाम मन्दोदरी है ॥४४॥ यह कमलनयनी यहाँ पर विहार करने के लिए आयी है । उसकी वाणी को सुनकर राजा ने सैरन्ध्री से कहा ॥४५॥ हे सैरन्ध्री ! तुम तो चतुर हो । तुम राजकुमारी को बतलाओं कि मैं ककुत्स्थ वंश का राजा हूँ । अतएव गांधर्व विवाह की विधि से मुझे अपना पति बना लो । डसे बतलाओ कि मैंने अभी विवाह नहीं किया है ॥४७॥ मैं चाहता हूँ कि मेरी पत्नी सुन्दर वंश में उत्पन्न और रूपवती हो । अथवा तुम्हारे पिता

अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति ॥४८॥ अनुकूलः पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः । महिष उवाच– इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरन्ध्री प्राह तां तदा ॥४९॥ प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा । मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः ॥५०॥ रूपवान्बलवान्कांतो वयसा त्वत्समः पुनः । प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुन्दरि सर्वथा ॥५१॥ पिताऽपि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा । विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम्॥५२॥ इत्याहास्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः । पुत्रीं प्रबोधयंत्वेतां सैरन्ध्र्यः सेवने रताः ॥५३॥ वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः । भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोऽब्रवीन्मनुः ॥५४॥ भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात् । तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम् ॥५५॥ मन्दोदर्युवाच– नाहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तप अद्भुतम् । निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः ॥५६॥ सैरंध्र्युवाच– दुर्जयो देवि कामोऽसौ कालोऽसौ दुरतिक्रमः । तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुंदरि ॥५७॥ अन्यथा व्यसनं नूनमापतेदिति निश्चयः । इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्योवाचाथ तां सखीम् ॥५८॥ यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् । न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके ॥५९॥ महिष उवाच– इति

मेरे साथ सविधि विवाह कर सकते हैं ॥४८॥ मैं इसका अनुकूल पति होऊँगा । इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । **महिषासुर ने कहा**– राजा की बात को सुनकर सैरन्ध्री ने मन्दोदरी से कहा ॥४९॥ सैरन्ध्री कामशास्त्र में निपुण थी । उसने हँसकर **मन्दोदरी से कहा**– मन्दोदरि ! सूर्यवंशीय राजा आया है ॥५०॥ यह देखने में रूपवान, बलवान तथा सुन्दर हैं । इसकी अवस्था भी तुम्हारे ही समान है । हे सुन्दरि ! तुमको देखकर इस राजा को तुमसे प्रेम हो गया है ॥५१॥ तुम्हारे पिता भी तुम्हारे विवाह के विषय में सोचकर संतप्त रहते हैं । वे तुम्हारे विवाह के समय तथा तुम्हारे वैराग्य को सोचकर दुःखी रहते हैं । इस तरह से महाराज ने लम्बी श्वास लेकर मुझसे बार-बार कहा है । उन्होंने कहा है कि हे राजकुमारी की सेवा करने वाली सैरन्ध्री ! मेरी इस पुत्री को तुमलोग समझाओ ॥५३॥ तुम तो हठ धर्मिणी हो, इसीलिए हमलोग तुमसे नहीं कह सकीं । मनु ने कहा है कि स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म अपने पति की सेवा करना है ॥५४॥ अपने पति की सेवा करने वाली नारी स्वर्ग को प्राप्त करती है । अतएव हे विशालाक्षि ! तुम विधिपूर्वक अपना विवाह कर लो ॥५५॥ **मन्दोदरी ने कहा**– मैं विवाह नही करूँगी । मैं अद्भुत तपस्या करूँगी । तुमलोग राजा को दूर ले जाओ । यह निर्लज्ज मुझे क्या देख रहा है ॥५६॥ **सैरन्ध्री ने कहा**– हे देवी काम पर विजय प्राप्त करना बड़ा कठिन है । स्त्रियों को यह युवावस्था भी पार करना बड़ा कठिन होता है । अतएव मेरी उचित सलाह को आप मान लीजिये ॥५७॥ यदि आप मेरी बात नहीं मानेंगी तो आपको अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ेगा यह निश्चित है । सैरन्ध्री की बात सुनकर मन्दोदरी ने उससे कहा ॥५८॥ हे परिचारिके ! जो होने वाला होगा वह तो होगा ही; किन्तु मैं विवाह नही कर सकती हूँ ॥५९॥

तस्यास्तु निर्बन्धं ज्ञात्वा प्राह नृपं पुनः । गच्छ राजन्यथाकामं नेयमिच्छति सत्पतिम् ॥६०॥ नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया । कोसलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः ॥६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

महिष उवाच– **तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेंदुमती शुभा । विवाहयोग्या संजाता सुरूपाऽवरजा यदा ॥१॥ तस्या विवाहः संवृत्तः सञ्जातश्च स्वयम्बरः । राजानो बहुदेशीयाः संगतास्तत्र मण्डले ॥२॥ तया वृतो नृपः कश्चिद्बलवान्रूपसंयुतः । कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः॥३॥ तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृपं तु सा । चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम् ॥४॥ पितरं प्राह तन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः । इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह ॥५॥ चन्द्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः । प्रसन्नेन च मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत् ॥६॥ तमाहूय नृपं**

महिषासुर ने कहा– इस तरह से मन्दोदरी के निश्चय को जानकर सैरन्ध्री ने राजा से कहा आपको जहाँ जाना है, वहाँ जाइये यह किसी को अपना पति बनाना नहीं चाहती हैं ॥६०॥ उसकी बात सुनकर राजा अपनी सेना के साथ मन्दोदरी के प्रति उदास होकर कोसल देश चला गया ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

महिषासुर के वध की कथा

महिषासुर ने कहा– मन्दोदरी की छोटी बहन का नाम इन्दुमती था । जब वह विवाह करने के योग्य हुई ॥१॥ उस समय उसके विवाह के स्वयम्बर का आयोजन हुआ । उस मण्डप में अनेक देश के राजा आये ॥२॥ इन्दुमती ने किसी रूपवान् तथा बलवान् राजा का वरण कर लिया । वह राजा कुल तथा शील से सम्पन्न तथा सभी पुरुष के लक्षणों से सम्पन्न था ॥३॥ उसी समय मन्दोदरी एक धूर्त राजा को देखकर कामातुर हो गयी । दैवयोग से उसने उस शठ तथा चातुर्य युक्त राजा को पति बनाना चाहा ॥४॥ उसने अपने पिता से कहा कि आप मेरा विवाह कर दीजिये । इस मद्राधिप को देखकर

गेहे विवाहविधिना ददौ । कन्यां मन्दोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु ॥७॥ चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत् । जगाम स्वगृहं तुष्टो
राजाऽपि सहितः स्त्रिया ॥८॥ रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान् । कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल ॥९॥ सैरन्ध्र्या कथितं तस्यै
तथा दृष्टः पतिस्तथा । उपालम्भं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषान्विता ॥१०॥ कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः । क्रीडयँल्लालयन्दृष्टः खेदं प्राप
तदैव सा ॥११॥ न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयम्बरे । किं कृतं तु मया मोहाद्वंचिताऽहं नृपेण ह ॥१२॥ किं करोम्यद्य सन्तापं निर्लज्जे
निर्वृणे शठे । का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम् ॥१३॥ अद्यप्रभृति संसारे सुखं त्यक्तं मया खलु । पतिसंभोगजं सर्वं सन्तोषोऽद्य मया
कृतः ॥१४॥ अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम । देहत्यागः क्रियते चेद्धत्याऽतीव दुरत्यया ॥१५॥ पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्रापि न सुखं
भवेत् । हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः ॥१६॥ तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया । कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं
पुनः॥१७॥ महिष उवाच– **इति संञ्चिंत्य सा नारी दुःखशोकपरायणा । स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः ॥१८॥ तस्मात्त्वमपि**

मेरी इच्छा इससे विवाह करने की हो गयी है ॥५॥ चन्द्रसेन भी अपनी पुत्री की बात एकान्त में सुनकर प्रसन्न हो गये और उसका विवाह करने के लिए तैयार हो गये ॥६॥ उन्होंने उस राजा को अपने घर बुलाकर उसके साथ मन्दोदरी का विवाह विधिपूर्वक कर दिया और उसको अपनी पुत्री तथा बहुत अधिक दहेज प्रदान किया ॥७॥ चारुदेष्ण भी उस सुन्दरी को अपनी पत्नी के रूप में पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और प्रसन्न होकर वह अपनी पत्नी के साथ अपने घर चला गया ॥८॥ उस राजा ने मन्दोदरी के साथ बहुत दिनों तक रमण किया ॥९॥ एकबार जब वह एकान्त में अपने नौकर की स्त्री के साथ रमण कर रहा था ॥९॥ तो सैरन्ध्री ने उसे मन्दोदरी को बतला दिया और मन्दोदरी ने अपने पति को देख लिया । उसके पश्चात् उसने गुस्से में भरकर मुस्कुराते हुए उसे उलाहना दिया ॥१०॥ इतने पर भी उसकी गंदी आदत नहीं छूटी । एकबार पुनः मन्दोदरी ने देखा कि उसका पति किसी सुन्दरी युवती के साथ क्रीडा कर रहा है और उसको दुलरा रहा है । उसके कारण उसे बहुत कष्ट हुआ ॥११॥ वह अपने मन में सोचने लगी कि जब मैने इसे स्वयम्बर में देखा तो उस समय यह ऐसा शठ यह नहीं प्रतीत हुआ । यह मैने क्या कर लिया । इस राजा ने मुझे धोखा दे दिया है ॥१२॥ मैं इस निर्लज्ज, निर्दय तथा शठ के विषय में क्या करूँ ? ऐसे पति से प्रेम करना व्यर्थ है । धिक्कार है मेरे जीवन को ॥१३॥ आज से मैं सांसारिक सुख का परित्याग कर रही हूँ । आज से पति के संयोग से होने वाले सम्पूर्ण सुख से मैं संतोष कर ले रही हूँ ॥१४॥ जो कार्य मुझे नहीं करना चाहिए था वह कार्य तो मैं कर ही चुकी हूँ । वही आज मेरे लिए दुःखद बन गया है । यदि मैं अपना देह त्याग कर देती हूँ तो वह बहुत बड़ा पाप है ॥१५॥ यदि मैं अपने पिता के भी घर चली जाऊँ तो मुझे वहाँ भी सुख नहीं मिलेगा, मेरी सखियाँ मेरी उपहास करेंगी ॥१६॥ अतएव यहीं पर मुझे वैराग्य धारण करके रहना

कल्याणि मामनादृत्य भूपतिम् । अन्यं कापुरुषं मन्दं कामार्ता संश्रयिष्यसि ॥१९॥ वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम् । अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः ॥२०॥ देव्युवाच– मन्दात्मन्गाच्छ पातालं युद्धं वा कुरु सांप्रतम् । हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम् ॥२१॥ यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव । तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम् ॥२२॥ अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च । सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम् ॥२३॥ सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताऽहं सुरैः किल । त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वा स्थास्यामि निश्चला ॥२४॥ तस्माद्युध्यस्य वा गच्छ पातालमसुरालयम् । सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥२५॥ व्यास उवाच– इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः । युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामांगणभूमिषु ॥२६॥ मुमोच तरसा बाणान्कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान् । देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः॥२७॥ तयोः परस्परं युद्धं संबभूव भयप्रदम् । देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥२८॥ मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच च शिलीमुखान् । देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान् ॥२९॥ ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः । दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृंगवत् ॥३०॥ तं तथा निहतं

चाहिए और पति संयोग का परित्याग करके मुझे समय बिताना चाहिए ॥१७॥ **महिषासुर ने कहा–** इस तरह से विचार करके वह स्त्री अपने पति के घर में ही सांसारिक सुख का परित्याग करके दुःख एवं शोक पूर्वक अपना समय बिताने लगी ॥१८॥ अतएव हे कल्याणि ! तुम भी मुझ राजा का अनादर करके कामार्त होकर किसी दूसरे पुरुष को अपनाओगी जो शठ कोटि का होगा ॥१९॥ मेरे सत्य वचन को तुम मानो । स्त्रियों के लिए यह परम हितकारी है । मेरी बात नहीं मानकर तुम अत्यधिक कष्ट उठाओगी । इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥२०॥ **देवी ने कहा–** हे मूर्ख ! या तो तुम पाताल चले जाओ अथवा तुम मेरे साथ युद्ध करो । तुम को तथा सभी असुरों को मारकर मैं अपनी इच्छानुसार चली जाऊँगा ॥२१॥ हे दानव ! जब-जब सज्जनों को कष्ट होता है, तब-तब मैं उन सबों की रक्षा करने के लिए अवतार ग्रहण करती हूँ ॥२२॥ यद्यपि मेरा कोई रूप नहीं है फिर भी मेरा रूप हो जाता है । मैं जन्म लेने वाली नहीं हूँ फिर भी मैं भक्तों की रक्षा के लिए जन्म लेती हूँ । हे दैत्य ! तुम निश्चित रूप से यह जानो कि मैं यह सब कुछ देवताओं की रक्षा करने के लिए करती हूँ ॥२३॥ मैं तुम को सत्य बतलाती हूँ कि देवताओं ने तुम्हारा वध करने के लिए मेरी प्रार्थना की है । अतएव मैं तुम्हारा वध करके निश्चिन्त हो जाऊँगी ॥२४॥ तुम अब मेरे साथ युद्ध करो अथवा असुरों को लेकर पाताल में चले जाओ । मैं तुम्हारा वध करूँगी, यह मै सत्य कह रही हूँ ॥२५॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी के इस प्रकार से कहने पर दानव महिषासुर हाथ में धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया ॥२६॥ उसने अपने कानों तक धनुष की डोरी खींचकर शाण तर तीक्ष्ण किए गये बाणों को छोड़ा । देवी ने क्रोध पूर्वक छोड़े गये अपने अयोमुख बाणों से उन बाणों को काट गिराया ॥२७॥ देवी तथा महिषासुर का भयंकर युद्ध हुआ । उस समय देवता तथा दानव परस्पर में एक दूसरे पर विजय प्राप्त

दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित् । आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम् ॥३१॥ अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान् । त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदंबिका ॥३२॥ अन्धकस्त्वाजगामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् । गदया लोहमय्याशु सिंहं विव्याध मस्तके ॥३३॥ सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम् । चछाद तरसा मांसमंधकस्य रुषान्वितः ॥३४॥ तान्रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः । चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान्॥३५॥ द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः । गदया ताडयामास दैत्यं वक्षसि चांबिका ॥३६॥ स गदाऽभिहतो मूर्छामवापामरबाधकः । विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः ॥३७॥ जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः । सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम् ॥३८॥ विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह । नखैर्विदारयामास देवीसिंह मदोत्कटम् ॥३९॥ तं च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः । शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः क्रूरैराशीविषैरिव ॥४०॥ त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजो भूत्वा मदस्रवः । शैलशृङ्गं करे कृत्वा चिक्षेप चण्डिकां प्रति ॥४१॥ आगच्छन्तं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः । चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदम्बिका ॥४२॥ उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि

कर लेना चाहते थे ॥२८॥ युद्ध के बीच में ही आकर दुर्धर विषैले बाण को देवी के ऊपर छोड़ने लगा ॥२९॥ उस समय देवी ने दुर्धर को अपने तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से मार दिया । दुर्धर मरकर पृथिवी पर पर्वत शिखर के समान गिर पड़ा ॥३०॥ दुर्धर को मरे देखकर अस्त्रों का परमज्ञाता त्रिनेत्र आकर देवी को सात बाणों से मारा । किन्तु उन बाणों को अपने तक पहुँचने से पहले ही देवी ने अपने बाणों से मारकर गिरा दिया । और अपने त्रिशूल के प्रहार से उन्होंने त्रिनेत्र को मार दिया ॥३२॥ त्रिनेत्र को मरे देखकर युद्ध करने के लिए शीघ्र अन्धकासुर आया । और अपनी लोहे की गदा से सिंह के शिर के ऊपर प्रहार किया ॥३३॥ और सिंह ने अपने नख के प्रहार से अन्धकासुर को मार दिया । अत्यन्त क्रुद्ध होकर सिंह अन्धकासुर के माँस को नोच लिया॥३४॥ युद्ध में उन सबों को मरे हुए देखकर महिषासुर विस्मित हो गया । और अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों का प्रहार वेग से करने लगा ॥३५॥ अपने पास पहुँचने से पहले देवी ने अपने बाणों से महिषासुर के बाणों को दो-दो टुकड़े कर दिए । अम्बिका ने अपंनी गदा से दैत्य महिषासुर के वक्षःस्थल में प्रहार किया ॥३६॥ उस गदा के प्रहार से महिषासुर मूर्छित हो गया । वह पापी उस पीड़ा को बर्दास्त करके शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ और आकर क्रोध में भरकर अपनी गदा से सिंह के शिर पर प्रहार किया । सिंह ने भी अपने नख के प्रहार से उसके शरीर को चीर-फाड़ दिया ॥३८॥ उस समय महिषासुर अपने मानव रूप को छोड़कर स्वयं सिंह बन गया । और मदोत्कट उसने अपने नखों से देवी के सिंह के शरीर को चीर दिया ॥३९॥ उस सिंह बने महिषासुर के ऊपर देवी ने भी सर्प के समान विषैले तथा तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥४०॥ उस समय महिषासुर अपने सिंह के रूप को छोड़कर

व्यवस्थितः । नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम् ॥४३॥ बिहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा । हंतुकामो हरिं कोपाद्दारुणो बलवत्तरः॥४४॥ तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सा रुषान्विता । उत्तमांगे जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा ॥४५॥ तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् । माहिषं रूपमास्थाय शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा ॥४६॥ पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृङ्गाघातैर्महासुरः । ताडयामास तन्वंगीं घोररूपो भयानकः ॥४७॥ पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात् । प्रेरयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा ॥४८॥ तामुवाच बालोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणांगणे । अद्याहं त्वां हनिष्यामि रूपयौवनभूषिताम् ॥४९॥ मूर्खाऽसि मदमत्ताद्य यन्मया सह सङ्गरम् । करोषि मोहिताऽतीव मृषा बलवती खरा ॥५०॥ हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपंडितान् । ये नारी पुरतः कृत्वा जेतुमिच्छंति मां शठाः ॥५१॥ देव्युवाच— मा गर्वं कुरु मंदात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे । करिष्यामि निरातंकान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान् ॥५२॥ पीत्वाऽद्य माधवीं मिष्टां शातयामि रणेऽधम । देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भयकारकम् ॥५३॥ व्यास उवाच— इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम् । पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धंतुकामा महासुरम् ॥५४॥ पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा।

मदमत्त हाथी का रूप धारण कर लिया और अपने सूंड में पर्वत शिखर को लपेट कर देवी के ऊपर फेंका ॥४१॥ उस आते हुए पर्वत शिखर को देखकर देवी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसे तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर दिया और अट्टहास किया ॥४२॥ उसी समय सिंह भी उछलकर उस हाथी के शिर पर चढ़ गया और गजरूपधारी महिषासुर को अपने नखों से विदीर्ण कर दिया ॥४३॥ उस समय महिषासुर अपने हाथी के रूप को छोड़कर सिंह को मारने के लिए आठ पैर वाले बलवान शरभ का रूप धारण कर लिया ॥४४॥ उस शरभ को देखकर देवी क्रुद्ध हो गयीं । उन्होंने अपने खड्ग से उसके शिर पर प्रहार किया और उस शरभ ने भी देवी पर प्रहार किया ॥४५॥ इसके बाद देवी और महिषासुर में भयंकर युद्ध हुआ । महिषासुर पुनः महिष का रूप धारण करके अपने सींग से प्रहार करने लगा ॥४६॥ भयंकर घोर रूप धारण किए हुए महिषासुर अपनी पूँछ घुमा-घुमाकर तन्वंगी देवी पर अपने सींगों से प्रहार कर रहा था ॥४७॥ अपनी पूँछ में पर्वतों को लपेट कर वह पापी उसे घुमा-घुमाकर जोर-जोर से हँसता हुआ प्रसन्न होकर फेंक रहा था । उसने देवी से कहा कि तुम युद्ध भूमि में ठहरी रहो रूप और यौवन से समलंकृत तुमको मैं आज मार डालूँगा ॥४९॥ तुम मूर्ख हो कि मेरे साथ मदमत्त होकर युद्ध कर रही हो । तुम अपने को बलवती समझकर व्यर्थ ही डींग मारती हो ॥५०॥ तुम्हे मारने के बाद मैं कपटी देवताओं का वध करूँगा । वे शठ ही स्त्री को आगे करके मुझपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं ॥५१॥ **देवी ने कहा—** हे मन्दात्मन् ! गर्व मत करो । युद्धभूमि में डटे रहो मैं तुम को मारकर देवताओं को निर्भय बना दूँगी । मैं मधु निर्मित मीठी मदिरा का पान करके देवताओं को दुःख देने वाले और मुनियों को भय देने वाले तुमको काट दूँगी ॥५३॥

दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान् ॥५५॥ देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम् । जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ॥५६॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पिशाचोरगचारणाः । किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः ॥५७॥ सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः। मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपंडितः ॥५८॥ चंडिकाऽपि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि । ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना ॥५९॥ ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्छामाप मुहूर्तकम् । पुनरुत्थाय चामुंडां पद्भ्यां वेगादताडयत् ॥६०॥ विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः । रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम् ॥६१॥ ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम् । करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम् ॥६२॥ पश्य चक्रं मदांधाद्य तव कंठनिकृंतनम् । क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना ॥६३॥ इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका । शिरश्छिन्नं रथांगेन दानवस्य तदा रणे ॥६४॥ सुस्राव रुधिरं चोष्णं कंठनालद्गिरेर्यथा । गैरिकाद्यरूणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम् ॥६५॥ कबंधस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ । जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः ॥६६॥ सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ । दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव संगरे ॥६७॥

व्यासजी ने कहा– यह कहकर देवी ने स्वर्णनिर्मित मदिरा भरे प्याले को लेकर उससे क्रोध पूर्वक महिषासुर को मारने की इच्छा से बार-बार मदिरा का पान किया ॥५४॥ उन्होंने द्राक्षासव का पान किया और शीघ्र ही अपना त्रिशूल लेकर देवताओं को हर्षित करते हुए महिषासुर की ओर दौड़ी ॥५५॥ उस समय देवताओं ने देवी की स्तुति की और फूलों की देवी के ऊपर वर्षा की । उन सबों ने दुन्दुभि बजाया और देवी का जय-जयकार किया ॥५६॥ आकाश में स्थित ऋषिगण, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, उरग, चारणगण तथा किन्नरगण उस युद्ध को देखकर प्रसन्न हो गये ॥५७॥ अनेक प्रकार के शरीर को बार-बार धारण करके कपट करने में निपुण महिषासुर ने भी देवी पर प्रहार किया ॥५८॥ देवी भी क्रोध के मारे आँखें लाल करके उस पापी के हृदय में तीक्ष्ण त्रिशूल से प्रहार कीं ॥५९॥ उस प्रहार से वह मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । मुहूर्त भर के बाद फिर उठकर उसने देवी पर अपने दोनों पैरों से वेग पूर्वक प्रहार किया ॥६०॥ अपने पैरों से प्रहार करके महिषासुर बार-बार जोर से हँसने लगा । उसने देवताओं को भयभीत करने वाले भयंकर शब्द किया॥६१॥ इसके बाद देवी ने अपने हाथ में सुन्दर चक्र लेकर महिषासुर से जोर से कहा ॥६२॥ हे मदान्ध ! अब इस चक्र को देखो । यह तुम्हारे गले को काट देगा। क्षणभर तुम स्थिर रहकर यमलोक चले जाओगे ॥६३॥ इस तरह से कहकर जगदम्बा ने अपना चक्र महिषासुर पर चलाया और उसने महिषासुर के शिर को काट दिया ॥६४॥ जिस तरह वर्षा के दिनों में गेरु के पर्वत से पानी का झरना गिरता है उसी तरह महिषासुर के गले से गर्म खून की धारा बहने लगी॥६५॥ उसका शरीर नाचकर पृथिवी पर गिर पड़ा । उस समय देवताओं ने सुख को समृद्ध करने वाली देवी का जयकार के शब्द का उच्चारण

मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः । मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप ॥६८॥ आनंदं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते । मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ ॥६९॥ चंडिकाऽपि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता । देवास्तत्रcraftयुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम् ॥७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदंबिकाम् ॥१॥** देवा ऊचुः– **ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्त्या तवैव हरते ननु चांतकाले । ईशा न तेऽपि च भवंति तया विहीनास्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री ॥२॥ कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च । पुष्टिः कलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं तुष्टिः प्रभा त्वमसि**

किया॥६६॥ सिंह ने भी भागते हुए दैत्यों को भूखे हुए के समान खा लिया ॥६७॥ महिषासुर के मर जाने पर भयभीत होकर बचे हुए दूसरे दैत्य पाताल लोक में चले गये ॥६८॥ महिषासुर के मर जाने पर देवताओं ने परमानंद का अनुभव किया । पृथिवी पर विद्यमान मुनिगण, मनुष्य तथा दूसरे सज्जन पुरुषों ने भी परमानंद की अनुभूति की ॥६९॥ उसके पश्चात् देवी भी रणभूमि से हटकर एक सुन्दर स्थान में चली गयी और देवता भी उनकी स्तुति करने के लिए वहाँ आ गये ॥७०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

व्यासजी ने कहा– इसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हुए इन्द्र इत्यादि देवता महिष को मरे हुए देखकर जगदम्बिका की स्तुति करने लगे ॥१॥ **देवताओं ने कहा–** हे देवि ! आपकी ही शक्ति को प्राप्त करके ब्रह्माजी सृष्टि करने का काम करते हैं, विष्णु इस जगत् की रक्षा करते हैं और शंकर जी प्रलय काल के आने पर संहार करने का काम करते हैं । आपकी उस शक्ति के बिना वे लोग अपना कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं; अतएव आप ही

बुद्धिरुमा रमा च ॥३॥ विद्या क्षमा जगति कांतिरपीह मेधा सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन् । आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं को वा क्षमः सकललोकनिवासभूमे ॥४॥ त्वं धारणा ननु च चेदसि कूर्मनागौ धर्तुं क्षंमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् । पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्थास्यत्येतदंब निखिलं बहुभारयुक्तम् ॥५॥ ये वा स्तुवंति मनुजा अमरान्विमूढा मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान् । शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्किं त्वामृते जननि ते प्रभवंति कार्ये ॥६॥ ते जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञे वह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविः समृद्धम् । स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा त्वामेव किं न हि यजंति ततो हि मूढाः ॥७॥ भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम् । स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्वत्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः ॥८॥ मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदाद्वंध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान्। नोच्छेदयंति पुरुषा निपुणाः कथंचित्तस्मात्त्वमत्यतितरां परिपासि दैत्यान् ॥९॥ यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैररातीन्देवांगनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ।

जगत् की रक्षा तथा नाश करने वाली हैं ॥२॥ आप ही कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, जया, पुष्टि, कला, विजया, गिरजा, जया, तुष्टि, प्रभा, बुद्धि, उमा, रमा, विद्या, क्षमा, कान्ति, मेधा इत्यादि सभी रूपों में विद्यमान हैं यह त्रैलोक्य में प्रख्यात है । आपकी इन शक्तियों के बिना त्रैलोक्य में कोई भी कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकता है ॥३-४॥ यदि धारणा शक्ति स्वरूप आप नहीं होतीं तो कच्छप भगवान् तथा शेष नाग इस पृथिवी को धारण करने में कैसे समर्थ हो सकते थे ? आप पृथिवी स्वरूपा नहीं होती तो हे अम्ब यह अत्यधिक भार से युक्त जगत् आकाश में कैसे स्थिर रह सकता था ?॥५॥ हे माँ ! आपकी माया के गुण से मोहित होकर मूर्ख मनुष्य ही ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश, सूर्य, अग्नि, यम वायु तथा गणेश आदि देवताओं की स्तुति करते हैं । क्योंकि ये सभी देवता आपकी शक्ति के बिना कोई भी कार्य कर सकते हैं क्या ?॥६॥ हे माँ ! यदि आप स्वाहा स्वरूपिणी नहीं होती तो जो अज्ञानी जीव अपने बड़े-बड़े यज्ञों में अग्नि में अत्यधिक हविष्य के द्वारा तत्-तत् देवताओं के उद्देश्य से होम करते हैं, वे देवता उस हविष्य को प्राप्त कर सकते थे क्या ? अतएव वे अज्ञानी जीव आपकी ही आराधना क्यों नहीं करते हैं ?॥७। हे माँ ! आप ही सम्पूर्ण चराचर के भोगों को प्रदान करने वाली हैं और उन्हें अपने अंशों से जीवन प्रदान करती हैं । जिस तरह आप अपने भक्त देवताओं का पोषण करती हैं, उसी तरह आप दैत्यों का भी पालन करती हैं ॥८॥ हे माँ ! जिस तरह किसी व्यक्ति के द्वारा अपने उद्यान में लगाये गये वृक्षों में से यदि कोई वृक्ष पत्ते से रहित तथा बन्ध्या हो जाय, तथा कड़वे रस वाला हो जाय तो भी कोई विज्ञ पुरुष उन वृक्षों को काटकर फेंक देने के लिए तैयार नहीं होता हैं, उसी तरह आप भी अपने ही बनाये हुए दैत्यों के दोषों को देखकर भी उनका विनाश कर देने के लिए तैयार नहीं होतीं । और उन दैत्यों की रक्षा

देहांतरेऽपि करुणारसमाददाना तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥१०॥ चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न संति त्वच्चिंवितितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः । येषां कृते जननि देहनिबंधनं ते क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः ॥११। प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले न त्वां भजंति मनुजा ननु वंचितास्ते। धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥१२॥ ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च ये वै भजंति भुवि भावयुता निमग्नान् । धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते कूपे पतंति मनुजा विजलेऽतिघोरे ॥१३॥ विद्या त्वमेव सुखदाऽसुखदाऽप्यविद्या मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम् । मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मंदधीभिर्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥१४॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं पादांबुजं तव भजंति सुरास्तथाऽन्ये । तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजंति भ्रांताः पतंति सततं भवसागरे ते ॥१५॥ चंडि त्वदंघ्रिजलजोत्थरजः

करती हैं ॥९॥ हे माँ ! आप का हृदय सर्वदा करुणा से परिपूर्ण रहता है । आप रणस्थल में जो दैत्यों का वध करती है, उसमें भी आपका दैत्यों के प्रति करुणा का भाव ही निहित रहता हैं । क्योंकि वे दैत्य भी चाहते हैं कि मरने के पश्चात् मैं देवांगनाओं के साथ सुरतक्रीडा के आनन्द का अनुभव करूँ॥१०॥ यह आश्चर्य की बात है कि ये दैत्य आपके सत्यसंकल्प मात्र से ही नहीं मर जाते हैं । और आप अवतार धारण करके उनका वध करती हैं। उसका कारण यही है कि आप अवतार धारण करके लीलारस का अनुभव करना चाहती हैं । इसके अतिरिक्त आपके अवतार ग्रहण का कोई भी दूसरा कारण नहीं है ॥११॥ इस भयंकर कलियुग के आ जाने पर भी लोग आपकी आराधना जो नहीं करते हैं; उसका कारण यही प्रतीत होता है कि पुराण आदि की रचना करके चतुर धूर्तों ने उन मनुष्यों ने आपके ही द्वारा बनाये गये ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओं की आराधना में उलझाकर उन अज्ञानी मुनष्यों के साथ धोखा किया है ॥१२॥ जो लोग यह जानते हैं कि देवता दैत्यों के द्वारा सताये जाते हैं । वे देवता आपके ही रहते हैं । इस बात को जानकर भी वे अज्ञानी जीव जो आपकी आराधना नहीं करते तत्-तत् देवताओं की आराधना करते रहते हैं वे उसीतरह संसार रूपी कूप में पड़े रहते हैं; जिसतरह से कोई व्यक्ति अपने हाथ में प्रकाश लिए हो और प्यास से व्याकुल होकर किसी जल रहित कूप में जाकर गिर जाय ॥१३॥ हे मातः ! आप ही सुखप्रद विद्या स्वरूपिणी और दुःखप्रद अविद्या स्वरूपिणी भी हैं । हे माँ आप ही अपने भक्तों के जन्म जरा मरणादि के भय को दूर करने वाली हैं। मुक्ति चाहने वाले जीव आपकी ही आराधना करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं और भोग परायण जीव आपके चरण कमलों की सेवा से दूर रहा करते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों की बुद्धि मारी गयी है ॥१४॥ ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिवजी आपके चरण कमलों की आराधना नित्य ही किया करते हैं । इसी तरह अन्य देवता भी आपके ही चरण कमलों की आराधना करते हैं । जो अल्पबुद्धि वाले जीव आपके चरणों की आराधना नहीं करते हैं, वे भ्रमित हैं और इस संसार सागर में ही पड़े रहते हैं ॥१५॥ हे चण्डि देवि ! आपके चरणकमलों की कृपा को ही प्राप्त करके ब्रह्माजी सृष्टिकाल के आ जाने पर जगत् की सृष्टि

प्रसादैर्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ । शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ॥१६॥ वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवंति शक्ताः । त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां यस्माद्भवंति मनुजा न हि तद्विहीनाः ॥१७॥ शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु । पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां तां सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात् ॥१८॥ शंभोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य । तं ये नरा भुवि भजंति कपालिनं तु तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥१९॥ योऽभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्तं ये भजंति मनुजा वितथप्रपन्नाः । जानंति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम्॥२०॥ चित्रं त्वयाऽरिजनताऽपि दयार्द्रभावाद्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम् । नोचेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितांतं दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा॥२१॥ ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावाज्जानंति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम् । केऽन्ये भवंति मनुजा विचितुं समर्थाः संमोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः॥२२॥ क्लिश्यंति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं पादांबुजं न हि भजंति विमूढचित्ताः । सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम्॥२३॥

करने का काम किया करते हैं । आपके चरणों की ही कृपा से भगवान् विष्णु रक्षा करने का काम करते हैं और शंकरजी संसार का संहार प्रलय काल आ जाने पर आपकी कृपा से ही करते हैं । जो लोग आपके चरणों की सेवा नहीं करते हैं वे निश्चित रूप से आभागे हैं ॥१६॥ हे देवि ! आप ही देवताओं तथा दैत्यों की वाक्शक्ति हैं । यदि आप उनके मुख में प्रवेश करके उन्हें वाक्य शक्ति नहीं प्रदान करें तो फिर वे कुछ भी नहीं बोल सकते हैं । जब देवताओं की यह स्थिति है तो फिर सामान्य मनुष्य आपके द्वारा वाक्य शक्ति को प्राप्त किए बिना कैसे कुछ बोल सकते हैं ?॥१७॥ हे माँ क्रुद्ध भृगुमुनि के शाप से अभिशप्त होकर जिस भगवान् विष्णु को संसार में मत्स्य, कच्छप, सूकर, नृसिंह तथा वामन होना पड़ा उनकी सेवा करने वालों को संसार का भय न हो यह कैसे संभव है ?॥१८॥ हे मातः ! यह बात सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध है कि जब भगवान् शंकर काम से संतप्त होकर भृगु वन में नंगे घूम रहे थे उस समय क्रुद्ध होकर भृगु महर्षि उन्हें शाप दे दिया और उनका लिङ्ग पृथिवी पर गिर पड़ा । उनकी सेवा करने वालों को इस लोक में अथवा परलोक में सुख कैसे मिल सकता है ॥१९॥ हे माँ ! शंकर जी के पुत्र गणेश जी की जो लोग आराधना किया करते हैं, वे लोग भी भ्रम में पड़े हुए हैं, क्योंकि उनलोगों को इसबात का ज्ञान नहीं है कि समस्त फलों को प्रदान करने वाली तो केवल आप ही हैं, क्योंकि आप सम्पूर्ण जगत् की माता हैं और आपकी आराधना सुखपूर्वक की जा सकती हैं ॥२०॥ यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आप दया के भाव से आर्द्र होकर युद्ध के मैदान में आपने जिन शत्रुओं का वध किया उनको भी अपने बाणों से मारकर आपने स्वर्ग में भेज दिया । अन्यथा वे अपने किए हुए पाप कर्मों का फल भोगने के लिए नरक में ही पड़े रहते और कठोर से कठोर यमयातना को भोगते रहते ॥२१॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव अपने गर्व से दृप्त रहने के कारण आपकी महिमा को जब नहीं जान पाते हैं; तब

मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात् । लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च विष्ण्वीशभास्करगणेशपरान्विधाय॥२४॥ कुर्वन्ति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्र्यान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः । तेषां न कुप्यसि दयां कुरुषेऽम्बिके त्वं तान्मोहमंत्रनिपुणान्प्रथयस्यलं च॥२५॥ तुर्ये युगे भवति चातिबलं गुणस्य तुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि । त्वां गोपयंति निपुणाः कवयः कलौ वै त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवन्ति ॥२६॥ ध्यायंति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां विद्यां परां च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः । ते नाप्नुवंति जननीजठरे तु दुःखं धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥२७॥ चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि येन सोऽपि व्यक्तो जगत्सु विदितो भवकृत्यकर्ता । कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुं विहर्तुमपि संचलितुं स्वशक्त्या ॥२८॥ तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं किं वा क्षमाणि जगदम्ब यतो जडानि । किं चेन्द्रियाणि

कौन ऐसा मनुष्य है जो आपके प्रभाव को जान सकता है ? क्योंकि मनुष्य तो निस्सीम प्रभाव वाली आपकी माया से मोहित हैं ॥२२॥ जो मुनिगण आपके चरणों का ध्यान नहीं करते हुए भ्रमवशात् आपकी उपासना न करके सूर्य, अग्नि आदि देवताओं की उपासना किया करते हैं वे भी जो वेदों का सार हैं, जिसका प्रतिपादन सैकड़ों श्रुतियाँ किया करती हैं उस आपके चरण कमलरूपी परमार्थ तत्त्व को नहीं जान सके हैं ॥२३॥ मेरा तो मानना है कि प्रख्यात प्रभाव वाले जो सत्त्व आदि गुण हैं वे मनुष्य को मोहित करके आपकी भक्ति भावना से विमुख बना देते है और मानवबुद्धि से निर्मित अनेक आगमों के माध्यम से उन्हें विष्णु, शंकर, सूर्य, तथा गणेश आदि का भक्त बना देते हैं ॥२४॥ हे माँ ! जो लोग अपने से बनाये गये आगमों का उपदेश देकर मनुष्यों को आपके चरणों की आराधना से विमुख बनाकर हरि तथा हर आदि देवताओं के आराधक बना देते हैं, उन मोहन, मारण आदि अभिचार कर्म करने वाले जीवों पर भी आप क्रोध न करके दया ही करती हैं और उन्हें संसार में प्रख्यात बना देती हैं ॥२५॥ सत्ययुग में सत्त्व गुण का अत्यधिक प्रभाव होता है । उसके कारण उस युग में असदागमों का लोप हो जाता है; किन्तु कलियुग में तो कवियों को अपनी कविता का अत्यधिक अभिमान होता है, अतएव वे आपको भूलकर आपके द्वारा निर्मित ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं की ही आराधना में लग जाते हैं ॥२६॥ इस कलियुग में जो सिद्ध मुनिगण हैं वे ही आपका योगसिद्ध विद्या रूप से ध्यान करते हैं । जो मुनिजन आपके ध्यान में मग्न रहा करते हैं , वे मुक्त हो जाते हैं, उनको फिर माता के गर्भ में नहीं आना पड़ता है ॥२७॥ परमात्मा में जो चित् शक्ति है, वह भी आप ही हैं । आप ही चित् शक्ति बनकर परमात्मा में निवास करती हैं । उसी से वे संसार में व्यक्त होते हैं । उसके पश्चात् वे संसार में जगद् व्यापार (सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय) करने वाले के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्मा से भिन्न दूसरा कौन हो सकता है जो आपसे शक्ति प्राप्त किए बिना ही अपनी ही शक्ति से इस संसार की सृष्टि कर सके तथा उसमें विहार कर सके और चला भी सके ॥२८॥ क्या आपकी चैतन्य शक्ति से रहित तत्वों के द्वारा जगत् की सृष्टि आदि कार्य हो सकते हैं ? क्योंकि तत्त्व तो जड़

**गुणकर्मयुतानि संति देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥२९॥ देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं गृह्णणीयुरम्ब विधिवत्प्रतिपादितं किम् ।
स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम् ॥३०॥ सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान्।
कालेऽत्सि विश्वमपि ते चरितं भवाद्ये जानंति नैव मनुजाः क्व नु मंदभाग्याः ॥३१॥ हत्त्वाऽसुरं महिषरूपधरं महोग्रं मातस्त्वया सुरगणः किल
रक्षितोऽयम् । कां ते स्तुतिं जननि मंदधियो विदामो वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः ॥३२॥ कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा वैरी हतो
भुवनकंटकदुर्विभाव्यः । कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेयाऽप्यस्मांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे ॥३३॥** व्यास उवाच– **एवं स्तुता सुरैर्देवी
तानुवाच मृदुस्वरा । अन्यत्कार्यं च दुःसाध्यं ब्रुवंतु सुरसत्तमाः ॥३४॥ यदा यदा हि देवानां कार्यं स्यादतिदुर्घटम्। स्मर्तव्याऽहं तदा शीघ्रं
नाशयिष्यामि चापदम् ॥३५॥** देवा ऊचुः– **सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु सांप्रतम् । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥३६॥
स्मरिष्यामो यथा तेऽम्ब सदैव पदपङ्कजम् । तथा कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचंचलाम् ॥३७॥ अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा । इति ज्ञात्वा**

हैं । हे जगदम्ब ! गुणों तथा कर्मों से युक्त इन्द्रियाँ क्या आपकी शक्ति से रहित होकर फल प्रदान करने में समर्थ हो सकती हैं ॥२९॥ हे माँ ! यदि आप
स्वाहा रूप से प्रधान साधन नहीं बनती तो हम देवता लोग भी मुनियों द्वारा सविधि यज्ञों में होम किए गये अपने भाग को प्राप्त कर सकते थे क्या ?
इसी से सिद्ध हो जाता है कि आप ही सम्पूर्ण विश्व का पालन करने वाली हैं ॥३०॥ हे देवि ! सृष्टि के आरम्भ काल में आप ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि
करती हैं । आप ही विष्णु तथा शंकर आदि दिशाओं के स्वामियों की रक्षा करती हैं । प्रलय काल की बेला आ जाने पर आप ही इस सम्पूर्ण संसार को
उदरस्थ कर लेती हैं । इस तरह के आपके चरित को जब देवता ही नहीं जान पाते हैं तो मन्दभाग्य वाले मनुष्य उसे कैसे जान पायेंगे ॥३१॥ हे मातः!
इस महादुष्ट महिषासुर का वध करके आपने देवताओं की रक्षा की है। हे माँ जब वेद भी आपकी गति को ठीक से नहीं जान पाते हैं तो हमलोग आपकी
कौन सी स्तुति कर सकते हैं ॥३२॥ हे मातः ! हे प्रख्यात प्रभाव वाली जगदम्बे ! आपने इस संसार के लिए कंटक स्वरूप तथा आतंक फैला देने वाले
देवताओं के बैरी दुष्ट महिषासुर का वध करके हम देवताओं का बहुत बड़ा उपकार किया । आपका यश सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया है । अब आप
संसार पर कृपा करें और हम देवतों की रक्षा करें ॥३३॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने पर देवी ने उन सबों से कोमल
स्वर में कहा देवताओं ! आपलोग अपने उस दूसरे कार्य को बतलायें जो आपलोगों के लिए दुःसाध्य हो ॥३४॥ जब कभी भी आप देवताओं के ऊपर
कोई विपत्ति आये उस समय आपलोग हमारा स्मरण करेंगे । मैं उस विपत्ति को अत्यन्त शीघ्र ही विनष्ट कर दूँगी ॥३५॥ **देवताओं ने कहा–** हे देवि ! इस

जगद्योनिं न भजंते कुतो जनाः ॥३८॥ द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरंतरम् । नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि ॥३९॥ तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति । पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु ॥४०॥ प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः । मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः ॥४१॥ सुखे वाप्यथ वा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम् । पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः॥४२॥ अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पदांबुजरेणुतः । व्यास उवाच– **एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवांतरधीयत । विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम् ॥४३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

समय आपने हमलोगों का सारा कार्य हमलोगों के शत्रु महिषासुर को मारकर कर दिया है ॥३६॥ हे जगन्मातः ! आप हमलोगों की भक्ति को आप इस तरह से अचल बना दें कि हम निरन्तर आपका स्मरण करते रहें ॥३७॥ माता ही अपने पुत्रों के असंख्य अपराधों को सदा सहती रहती हैं, इस बात को जानने वाला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो जगत् के कारण स्वरूप आपकी आराधना नहीं करेगा ?॥३८॥ इस शरीर रूपी वृक्ष पर दो सुपर्णों (जीवात्मा तथा परमात्मा रूपी पक्षियों) का निवास हैं उन दोनों में सदा मित्रता का भाव बना रहता है । उन दोनों के अतिरिक्त कोई तीसरा नहीं है जो अपराध को सहे ॥३९॥ अतएव जीव सखा स्वरूप आपको छोड़कर किसका भजन करेगा । आप को छोड़कर वह पापी और अभागा जीव मनुष्य तथा देवताओं की योनि में बार-बार जन्म लेता रहेगा और मरता रहेगा ॥४०॥ इस दुर्लभ मानव शरीर को प्राप्त करके जो मनुष्य आपकी आराधना नहीं करता है, वह नराधाम है । इस सत्य बात को हम मनसा, वाचा तथा कर्मणा बारम्बार कहते हैं ॥४१॥ चाहे सुख मिले अथवा दुःख इन दोनों ही दशाओं में आप हम देवताओं के लिए अद्भुत रक्षक हैं । अतएव हे देवि ! आप अपने सम्पूर्ण श्रेष्ठ आयुधों से हमारी रक्षा करें ॥४२॥ आपके चरण कमलों की धूलि से भिन्न हमलोगों क़ा दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं । देवी के इस तरह से अन्तर्धान होते देखकर सभी देवता आश्चर्य चकित हो गये ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **अथाद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं देव्या जगच्छांतिकरं परं च । न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः कथाऽमृतं ते मुखपद्म जातम्॥१॥ अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते । देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥२॥ कस्तृप्तिमाप्नोति कथामृतेन भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरंध्रः । पीतेन येनामरतां प्रयाति धिक्तान्नरान् ये न पिबंति सादरम् ॥३॥ लीलाचरित्रं जगदंबिकाया रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम् । संसारवार्धेस्तरणं नराणां कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः ॥४॥ मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च संसारिणो रोगयुताश्च केचित् । तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति ॥५॥ तथा विशेषेण मुने नृपाणां धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम् । मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबंति कथं न पेयं रहितैश्चतेभ्यः ॥६॥ यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी सत्कुन्दपुष्पैरथ चंपकैश्च । बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता नृपा भवन्तीत्यनुमेयमेवम् ॥७॥ ये भक्तिहीनाः**

भूलोक के स्वामी राजा शत्रुध्न के राज्य की सुख सम्पत्ति का वर्णन

राजा जनमेजय ने महर्षि व्यास से कहा– हे मुने ! देवी के सम्पूर्ण जगत् को अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले अद्भुत प्रभाव को देखकर तथा हे द्विजवर्य ! आपके मुख से निस्सृत कथामृत को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ अब आप हमें बतलाएँ कि देवी के अन्तर्धान हो जाने पर वे प्रधान देवता क्या किए ? देवी का चरित्र अत्यन्त पवित्र है । कम पुण्य वाले मनुष्यों के लिए यह बहुत मुश्किल से सुनने को मिलता है । जिनके कान शब्दों को सुनने में समर्थ हैं ऐसे अल्पभाग्य जीवों को छोड़कर इस कथा रूपी अमृत को पीने से कौन तृप्त होता है । जिस कथामृत का श्रवण करने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त करके अमरत्व को प्राप्त कर लेता है उस कथा का आदर-पूर्वक श्रवण नहीं करने वाले मनुष्य को धिक्कार है ॥३॥ देवी की लीलाएँ और उनके चरित्र देवताओं तथा महामुनियों की रक्षा के अमोघ साधन हैं । इस संसार रूपी सागर के संतरण के लिए यह जहाज के समान है । जो कृतज्ञ पुरुष हैं वे देवी की लीलाओं तथा चरित्रों का परित्याग कैसे कर सकते हैं ?॥४॥ वेदों के ज्ञाता पुरुषों का कहना है कि जो जीव मुक्त हो चुके हैं, जो मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, अथवा संसारी हैं, या रोगी है, उन सबों को देवी के चरित्र का सदा श्रवण करते रहना चाहिए, क्योंकि यह समस्त अभिलषित पदार्थों को देने वाला है ॥५॥ हे मुने ! विशेष रूप से धर्म, अर्थ तथा काम परायण राजाओं को तो इसका श्रवण करना ही चाहिए, क्योंकि जब जीवन्मुक्त पुरुष इस कथामृत का सदा पान करते रहते हैं तो जो मुक्त नहीं हैं, उन जीवों को तो इसका श्रवण करते ही रहना चाहिए ॥६॥ अनुमान जन्य ज्ञान से इस बात का पता चलता है कि जिन लोगों ने अपने पूर्वजन्म में कुन्द के पुष्पों से, या चम्पा के पुष्पों से, अथवा विल्वदलों से देवी की अर्चना की है,

समवाप्य देहं तं मानुषं भारतभूमिभागे । यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना रोगान्विताः संततिवर्जिताश्च ॥८॥ भ्रमंति नित्यं किल दासभूता आज्ञाकराः केवलभारवाहाः । दिवानिशं स्वार्थपराः कदाऽपि नैवाप्नुवंत्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥९॥ अन्धाश्च मूका वधिराश्च खंजाः कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः। तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं नाराधिता तैः सततं भवानी ॥१०॥ ये राजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाः संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः । दृश्यंति ये वा विभवैः समेतास्तैः पूजिताऽम्बेत्यनुमेयमेव ॥११॥ तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरितमुत्तमम् । कथयस्व कृपां कृत्वा दयावानसि सांप्रतम् ॥१२॥ हत्वा तं महिषं पापं स्तुता संपूजिता सुरैः । क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजःसमुद्भवा ॥१३॥ कथितं ते महाभाग गतांतर्धानमाशु सा । स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी ॥१४॥ लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे वा समाश्रिता । अथवा हेमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना ॥१५॥ व्यास उवाच– **पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम् । क्रीडास्थानं सदा देव्या वल्लभं परमं स्मृतम् ॥१६॥ यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे । पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे ॥१७॥ यः सुधासिन्धुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः । नानारूपैः सदा तत्र विहारं**

वे लोग इस जन्म में राजा हुए हैं ॥७॥ जो लोग इस भारत वर्ष में मानव शरीर प्राप्त करके भगवती की भक्ति भावना से रहित हैं और कभी भी देवी की अर्चना भी नहीं किए हैं, वे संसार में धन सम्पत्ति से रहित, रोगी तथा निःसन्तान हैं ॥८॥ ऐसे लोग सदा दूसरों के आज्ञाकारी दास बनकर, भार ढोने वाले नौकर बने रहते हैं । वे रात-दिन अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते हैं । उनको अपना पेट भरना भी मुश्किल होता है ॥८॥ संसार में जितने भी अन्धे, गूँगे, लंगड़े, कोढ़ी तथा अन्य प्रकार के दुःखों से दुःखी जीव हैं, उनको देखकर कवियों को अनुमान कर लेना चाहिए कि इन लोगों ने अपने पूर्वजन्म में कभी भी देवी की आराधना नहीं की है ॥१०॥ संसार मे जो लोग राजभोग करने वाले समृद्धि सम्पन्न अनेक मनुष्यों के द्वारा संसेवित होते रहने वाले अथवा ऐश्वर्य सम्पन्न रूप से दिखायी देते हैं, उनलोगों ने अपने पूर्वजन्म में अम्बा की पूजा की है, इस तरह से अनुमान कर लेना चाहिए ॥११॥ अतएव हे माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ! आप मुझे देवी के उत्तम चरित्र को सुनाइये । आप तो बहुत बड़े दयालु हैं ॥१२॥ समस्त देवताओं के तेज से उत्पन्न होने वाली महालक्ष्मी पापी महिषासुर का वध करने के पश्चात् तथा देवताओं द्वारा स्तुति कर लिए जाने के पश्चात् कहाँ चली गयीं ॥१३॥ आपने बतलाया है कि वे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं । तो मैं पूछता हूँ के वे भुवनेश्वरी मर्त्यलोक में ही कहीं जाकर स्थित हो गयीं अथवा स्वर्ग लोक में चली गयीं ॥१४॥ या वे वहीं पर विलीन हो गयीं अथवा वैकुण्ठ धाम में चली गयीं । अथवा वे सुमेरु पर्वत पर चली गयी, इन सारी बातों को आप मुझे तत्त्वतः बतलाइये ॥१५॥ **व्यासजी ने कहा–** पहलें मैं बतला चुका हूँ कि मनोहर मणिद्वीप देवी का अत्यन्त प्रिय धाम है । वह उनका सदा क्रीडा स्थान

कुरुतेऽम्बिका ॥१८॥ स्तुता संपूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा । यत्र संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी ॥१९॥ देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा । रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम् ॥२०॥ अयोध्याऽधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम् । सर्वलक्षणसंपन्नं महिषस्यासने शुभे॥२१॥ दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः । स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते ॥२२॥ गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते। धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा ॥२३॥ पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता । पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा ॥२४॥ गावश्च क्षीरसंपन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम् । नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः ॥२५॥ ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा । क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः ॥२६॥ शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः । न्यायदंडधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः ॥२७॥ अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां संबभूव ह । आकरा धनदा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः ॥२८॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम । देवीभक्तिपराः सर्वे संबभूवुर्धरातले ॥२९॥ सर्वत्र यज्ञयूपाश्च मंडपाश्च मनोहराः । मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः ॥३०॥ पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः

बना रहता है ॥१६॥ जहाँ पर जाकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव स्त्री भाव को प्राप्त कर लिए थे । उसके पश्चात् पुरुषत्व को प्राप्त करके उनलोगों ने अपने सृष्टि आदि के कार्य को किया है ॥१७॥ वह द्वीप अमृत सागर के बीच में स्थित हैं । वहाँ पर जगदम्बिका अनेक रूपों को धारण करके बिहार करती रहती हैं ॥१८॥ देवताओं द्वारा स्तुति तथा पूजन कर लेने के बाद देवी वहीं चली गयीं । वहाँ पर सनातनी माया शक्ति निरन्तर क्रीडा करती रहती हैं ॥१९॥ देवी को चली गयी देखकर देवताओं ने पृथिवी पर सूर्यवंश में उत्पन्न महाबलवान शत्रुघ्न को राजा बनाया ॥२०॥ अयोध्या के राजा और वीर शत्रुघ्न महिषासुर के स्थान पर अभिषिक्त हुए । वे राजा के समस्त लक्षणों से सम्पन्न थे ॥२१॥ उनको पृथिवी का राज्य देकर इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वाहनों से अपने-अपने घर चले गये ॥२२॥ हे राजन् ! उन देवों के चले जाने पर पृथिवी पर धर्मराज्य स्थापित हो गया और प्रजाएँ सुखी हो गयीं॥२३॥ उस समय मेघ समय से वर्षा करने लगा । पृथिवी धन्य-धान्य से परिपूर्ण हो गयी । फलों तथा पुष्पों से परिपूर्ण सभी वृक्ष सदा सुखद रहने लगे ॥२४॥ बड़ी-बड़ी स्तनों वाली गायें जिसकी जितनी इच्छा होती थी उतना दूध देने लगीं । नदियाँ सीधे मार्ग से बहने लगीं । उनका जल शीतल तथा स्वच्छ हो गया। नदियों का तट पक्षियों से भर गया ॥२५॥ ब्राह्मण गण वेद के तत्त्वों के ज्ञाता हो गये और निरन्तर यज्ञकर्म करने लगे । धार्मिक क्षत्रियगण दान करने तथा अध्ययन करने में संलग्न रहने लगे ॥२६॥ वे सदा शस्त्रविद्या में संलग्न रहकर प्रजाओं की रक्षा करने के कार्य में लगे रहते थे, सभी राजा न्याय पूर्वक प्रशासन करते थे और जितेन्द्रिय थे ॥२७॥ सभी जीव परस्पर में किसी का भी विरोध नहीं करते थे । खानों से लोगों को अपार धनराशि मिलने लगी । गोशालाएँ गौओं के समूह से भर गयीं ॥२८॥ भूलोक के सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र देवी के भक्त बन गये ॥२९॥ सर्वत्र यज्ञों के मनोहर स्तम्भ तथा मण्डप दिखायी देने लगे । ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के द्वारा किये गये यज्ञों से पृथिवी भर गयी ॥३०॥ नारियाँ पातिव्रत्य

सत्यसंयुताः । पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः ॥३१॥ न पाखण्डं न वाऽधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले । वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाऽभवत् ॥३२॥ कलहो नैव केषांचिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः । सर्वे सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा ॥३३॥ सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन । नोऽनावृष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम् ॥३४॥ न रोगो न च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम् । सर्वत्र सुखसंपन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः ॥३५॥ क्रीडंति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव । न चोरा न च पाखण्डा वंचका दंभकास्तथा ॥३६॥ पिशुना लम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप । न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते ॥३७॥ सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः । त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः ॥३८॥ सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथाऽपरे । सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृतयः ॥३९॥ प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः । यज्ञास्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः ॥४०॥ पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन । दानमध्ययनं चैव यजनं तु तृतीयकम्॥४१॥ त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप । राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥४२॥ षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः। यजनं याजनं

धर्म का पालन करने वाली तथा सत्य बोलने वाली सुशील हो गयीं । सभी पुत्र अपने पिता के भक्त और धार्मिक हो गये ॥३१॥ पृथिवी पर कहीं भी पाखण्ड और अधर्म का नामोनिशान नहीं रहा । पृथिवी पर केवल वेद विषयिणी एवं शास्त्र विषयिणी ही चर्चायें होती थी । इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरी चर्चा नहीं होती थीं ॥३२॥ किसी का परस्पर में कोई भी कलह नहीं होता था । कोई गरीब भी नहीं था और न तो किसी की भी अशुभ मति होती थी। सब जगह लोग सुखी थे किसी की भी अकालमृत्यु नहीं होती थी ॥३३॥ कहीं पर मित्रों का वियोग नहीं होता था और न तो किसी पर कोई विपत्ति ही आती थी । कहीं भी मनुष्यों को दुःख देने वाली अनावृष्टि नहीं होती थी और न तो दुर्भिक्ष ही होता था और न तो कलरा आदि बिमारी होती थी ॥३४॥ न तो किसी को रोग होता था । कोई किसी से द्वेष भी नहीं करता था, और न तो किसी का परस्पर में किसी के साथ विरोध ही होता था । सभी स्त्री पुरुष सुखी थे और सुख तथा सम्पत्ति से सम्पन्न थे ॥३५॥ जिस तरह स्वर्ग में देवगण सुख का अनुभव करते हुए क्रीडा करते हैं, उसीतरह पृथिवी पर सबलोग सुखपूर्वक क्रीड़ा करते थे । कहीं भी कोई चोर, पाखण्डी, वञ्चक अथवा दम्भी नहीं था ॥३६॥ राजन् उस समय न तो कोई चुगलखोर होता था, न लम्पट होता था और न तो जड प्रकृति का ही होता था । हे राजन् ! कोई भी मनुष्य वेद से द्वेष करने वाला नहीं था ॥३७॥ सबलोग धार्मिक हो गये थे और सदा ब्राह्मणों की सेवा करते थे । चूकि सृष्टि के धर्म तीन प्रकार के (सात्त्विक, राजस एवं तामस) होते हैं अतएव ब्राह्मण भी तीन प्रकार की प्रकृति वाले थे । सात्त्विक वृत्ति वाले ब्राह्मण वेदज्ञ थे ॥३८-३९॥ वे कभी भी दान नहीं लेते थे, दया करते थे और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने के कारण दमगुण से सम्पन्न थे । धर्म का पालन करते हुए वे सात्त्विक अन्नों से यज्ञ करते थे । वे दान, अध्ययन तथा यज्ञ इन तीनों कर्मों को सदा पुरोडाश

दानं तथैव च प्रतिग्रहः ॥४३॥ अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट् । तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः ॥४४॥ राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः । महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः ॥४५॥ बभूवुर्बतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा । क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः॥४६॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे । एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते ॥४७॥ अनुद्वेगः प्रजानां वै सम्बभूव धनागमः । बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः ॥४८॥ वृक्षा बहुफलाश्चासन्मानवा रोगवर्जिताः । नाधयो नेतयः क्वापि प्रजानां दुःखदायकाः ॥४९॥ न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव । निगमविहितधर्मे तत्पराश्चंडिकायाश्चरणसरसिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

से सम्पन्न करते थे पशु हिंसा करके कभी भी नहीं करते थे ॥४१॥ वे इन तीनों प्रकार के कर्मों को सदैव सात्त्विक ही करते रहते थे । हे राजन् ! जो राजस प्रकृति के ब्राह्मण थे वे क्षत्रियों के यहाँ पौरोहित्य कर्म को करते थे । वे विधि-विधान का पालन करते हुए ही माँस भक्षण करते थे । वे षट्कर्म (यज्ञ करना, यज्ञ कराना दान लेना-दान देना, अध्ययन करना अध्ययन कराना) परायण थे । इन्हीं कर्मों को षट्कर्म कहते हैं । जो ब्राह्मण तमास प्रकृति के थे वे क्रोध करते थे तथा परस्पर में एक दूसरे से राग-द्वेष रखते थे ॥४२-४३॥ वे थोड़ा पढ़ लिखकर राजाओं के यहाँ नौकरी करते थे । महिषासुर के मारे जाने के पश्चात् सबलोग सुखी हो गये तथा वैदिक धर्म का पालन करते थे ॥४५॥ सबलोग व्रत करते थे, दान तथा धर्म करने में सदा लगे रहते थे । क्षत्रिय प्रजाओं का पालन करते थे तथा वैश्य व्यापार करते थे ॥४६॥ दूसरे लोग कृषि, व्यापार, गोरक्षा तथा सूद पर धन देकर उससे धन कमाने के कार्य में लगे थे। इस तरह महिषासुर के मारे जाने से सारा संसार अत्यन्त प्रसन्न था ॥४७॥ प्रजाओं में कहीं भी उद्वेग नहीं था धन का आगम बना रहता था । गायें बहुत अधिक दूध देती थीं और नदियों में बहुत अधिक जल रहता था ॥४८॥ वृक्षों में बहुत अधिक फल लगते थे सभी मनुष्य निरोग रहते थे । प्रजाओं को कहीं भी दुख देने वाली मानसिक अशान्ति नहीं होती थी और सर्वत्र इतियों का भय समाप्त था । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी खेती को नुकसान पहुँचाने वाले चूहों की बहुलता, अन्न को खा जाने वाले पक्षियों की बहुलता, तथा दंगे-फसाद ये ही ईति कहलाते हैं ॥४९॥ किसी भी प्राणी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। सबलोग सभी प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न थे तथा रोग हीन थे । सबलोग शास्त्र विहित धर्मों का पालन करते थे तथा भगवती जगदम्बिका के चरणों की सेवा करने में संलग्न रहा करते थे ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् । सुखदं सर्वजंतूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥१॥ यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ । बभूवतुर्महावीरौ अवध्यौ पुरुषैः किल ॥२॥ बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा । दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ ॥३॥ हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे । देवानां च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह ॥४॥ चंडमुंडौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः । धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे ॥५॥ तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम् । स्तुता संपूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे ॥६॥** राजोवाच– **कथितावसुरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ । केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ ॥७॥ तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ । कथं च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम् ॥८॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् । देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम् ॥९॥ पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमंडले । पातालतश्च संप्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ ॥१०॥ तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् । अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे**

तपस्या करके शुम्भ निशुम्भ द्वारा स्वर्ग पर विजय प्राप्ति का वर्णन

व्यासजी ने कहा– हे राजन् ! आप सुनें मैं देवी के उत्तम चरित को सुना रहा हूँ । जो सभी जीवों के पापों को विनष्ट करने वाला तथा सुख देने वाला है ॥१॥ प्राचीन काल में शुम्भ तथा निशुम्भ नाम के दो भाई थे वे बहुत बड़े बलवान् और महावीर थे । उन दोनों को कोई भी पुरुष नहीं मार सकता था ॥२॥ उन दोनों की सेना बहुत अधिक थी । वे दोनों देवताओं को दुःख देते थे । वे दुराचरी मदमत्त और बहुत अधिक दानवों के साथ थे ॥३॥ माता भगवती ने अत्यन्त भयंकर युद्ध करके उन दोनों का सपरिकर वध देवताओं का कल्याण करने के लिए किया ॥४॥ उस युद्ध में महाबलवान् चण्ड तथा मुण्ड, रक्तबीज तथा धूम्रलोचन नामक दैत्य भी मारे गये ॥५॥ उन सबों का वध करके देवी ने देवताओं के भय को विनष्ट किया । उसके बाद देवताओं ने देवी की हिमालय पर्वत पर स्तुति करके पूजा की ॥६॥ **राजा जनमेजय ने व्यासजी से पूछा–** जिन शुम्भ तथा निशुम्भ नामक दैत्यों को आपने कहा है वे कौन थे ? वे कैसे अत्यन्त बलवान् हो गये ? उन दोनों को राजा किसने बनाया ? वे कैसे स्त्री के वध्य हो गये ॥७॥ तपस्या करके वे किसके वरदान को पाकर महाबलवान् हो गये ? और वे दोनों कैसे मारे गये इन सारी बातों को आप विस्तारपूर्वक बतलाएँ ॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप सभी पापों को विनष्ट करने वाली इस कथा को सुनें । यह कथा देवी के चरित वाली है और सभी फलों को प्रदान करने वाली होने के कारण शुभ है ॥९॥ प्राचीन काल में पाताल से शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्य पृथिवी पर आये । वे देखने में मनोहर थे ॥१०॥ उनकी युवावस्था थी उन दोनों ने घोर तपस्या

लोकपावने ॥११॥ वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ । एकत्रैवासनं कृत्वा तेपाते परमं तपः ॥१२॥ तयोस्तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः। तत्रागतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम् ॥१३॥ तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ । उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल ॥१४॥ वाञ्छितं वा वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह । कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम् ॥१५॥ व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ । प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा ॥१६॥ दंडवत्प्रणिपातं च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती । ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा॥१७॥ देवदेव दयासिंधो भक्तानामभयप्रद । अमरत्वं च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो ॥१८॥ मरणादपरं किंचिद्भयं नास्ति धरातले । तस्माद्भयाच्च संत्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ ॥१९॥ त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे । परिस्फोटय विश्वात्मन्सद्यो मरणजं भयम् ॥२०॥** ब्रह्मोवाच– **किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा । अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये ॥२१॥ जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल ॥२२॥ मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः । अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वांछितम् ॥२३॥**

की । उन दोनों ने पवित्र पुष्कर क्षेत्र में जाकर अन्न और जल का परित्याग करके तपस्या की ॥११॥ वे योगविद्या में पारंगत थे । उन दोनों ने एक ही स्थान पर आसन लगाकर दश हजार वर्ष तक घोर तपस्या की ॥१२॥ उनदोनों की तपस्या से सर्वलोक पितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये । वे हंस पर चढ़कर वहाँ आये ॥१३॥ उन दोनों को ध्यान करते हुए देखकर उन दोनों से ब्रह्माजी ने कहा– हे महाभाग ! तुम दोनों उठो । तुमलोगों की तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ ॥१४॥ मैं तुमलोगों को मनोवाँछित वरदान देने के लिए आया हूँ । वरदान माँगों । तुम दोनों की तपस्या का बल देखकर मैं तुमदोनो की कामना पूरी करने के लिए आया हूँ ॥१५॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से ब्रह्मा जी की वाणी सुनकर वे दोनों समाधि से जग गये । उसके पश्चात् ब्रह्मा जी की प्रदक्षिणा करके उन दोनों ने प्रणाम किया ॥१६॥ ब्रह्माजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके दुर्बल शरीर वाले उन दोनों ने दीन होकर मधुर वाणी से गद्गद होकर कहा ॥१७॥ हे देवताओं के भी आराध्य ! हे दया के सागर ! हे भक्तों को अभय प्रदान करने वाले ! हे विभो ! यदि आप प्रसन्न हैं तो आप हमलोगों को अमर बना दीजिये ॥१८॥ संसार में मृत्यु से बढ़कर कोई भी दूसरा भय नहीं है । उस मृत्यु के ही भय से भयभीत होकर हमदोनों आपके शरण में आये हैं ॥१९॥ हे जगत् के कर्ता ! हे क्षमासागर ! हे देवदेवेश ! आप हम दोनों की रक्षा करें । हे विश्वात्मन् ! आप शीघ्र ही मृत्यु से होने वाले भय को विनष्ट कर दें ॥२०॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** तुमलोग यह क्या विपरीत वरदान माँगते हो । त्रैलोक्य में कोई भी इस प्रकार का वरदान नहीं दे सकता है ॥२१॥ जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जो मरता है उसका जन्म होना भी निश्चित है । सृष्टि के पूर्व ही

व्यास उवाच– तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ । ऊचतुः प्रणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम् ॥२४॥ पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः। अवध्यत्वं कृपासिंधो देहि नौ वांछितं वरम् ॥२५॥ नारी बलवतीकाऽस्ति या नौ नाशं करिष्यति । न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे॥२६॥ अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पंकजोद्भव । भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा ॥२७॥ व्यास उवाच– इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वांछितं वरम् । ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम् ॥२८॥ गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ । भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा ॥२९॥ शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयंशुभम् । कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः ॥३०॥ शुम्भाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम् । सेवनार्थं तदैवाशु संप्राप्ता दानवोत्तमाः ॥३१॥ चंडमुंडौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ । संप्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ॥३२॥ धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चंडविक्रमः । शुम्भं च भूपतिं श्रुत्वा तदाऽगाद्बलसंयुतः ॥३३॥ रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः । अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य संगतः ॥३४॥ तस्यैकं कारणं राजन्संग्रामे युध्यतः सदा । देहाद्रुधिरसंपातस्तस्य शस्त्राहतस्य च ॥३५॥ जायते च यदा

परमात्मा ने इस मर्यादा को बना दिया है ॥२२॥ इस संसार के सभी प्राणियों को मरना पड़ता है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । तुमलोग दूसरा वरदान माँगो जो तुमलोग चाहो । उसे मैं प्रदान करूँगा ॥२३॥ **व्यासजी ने कहा–** ब्रह्मा जी की उस बात को सुनकर उन दोनों ने अच्छी तरह से विचार करके ब्रह्माजी को प्रणाम करके कहा ॥२४॥ हे कृपासिंधो ! आप हमलोगों को यह वर दीजिये कि पुरुष जाति का कोई देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी हमलोगों को न मार सके ॥२५॥ क्योंकि वह नारी कौन हो सकती है जो हमदोनों को मार सकेगी । हमदोनों सचराचर त्रैलोक्य में किसी भी स्त्री से नहीं डरते हैं ॥२६॥ हे ब्रह्माजी ! हमलोग पुरुष जाति के जीवों के लिए अबध्य हो जायँ । स्वभावतः बलहीन नारी से हमलोगों को कोई भी भय नहीं है ॥२७॥ **व्यासजी ने कहा–** उनदोनों की बात सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न मन से उन दोनों को अभिलषित वरदान देकर अपने लोक में चले गये ॥२८॥ ब्रह्माजी के चले जाने पर वे दोनों दानव अपने घर चले गये और भृगुवंशीय शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाकर उनकी पूजा किए ॥२९॥ शुक्राचार्य ने शुभदिन को शुभनक्षत्र मे राज्य के लिए सुवर्ण का दिव्य सिंहासन बनवाकर प्रदान किया ॥३०॥ उन दोनों में से बड़े भाई शुम्भ को उन्होंने राज्यासन प्रदान किया । उसी समय उसकी सेवा करने के लिए उत्तम कोटि के दास भी उपस्थित हो गये ॥३१॥ बल के दर्ष से दृप्त चण्ड और मुण्ड अपनी सेना तथा रथ, घोड़े तथा हाथी के साथ शुंभ से आकर मिल गये ॥३२॥ धूम्रलोचन नामक प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य अपनी सेना के साथ आकर शुम्भ निशुम्भ से मिल गया; क्योंकि वह शुम्भ और निशुम्भ के वरदान का समाचार सुन चुका था ॥३३॥ वरदान के बल से सम्पन्न रक्तबीज नामक वीर अपनी

भूमावुत्पद्यंते ह्यनेकशः । तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः ॥३६॥ संभवंति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः । युद्धं पुनस्ते कुर्वंति पुरुषा रक्तसंभवाः ॥३७॥ अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः । अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः ॥३८॥ अन्ये च बहवः शूराश्चतुरंगसमन्विताः। शुम्भं च नृपतिं मत्त्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः ॥३९॥ असंख्याता तदा जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः । पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया॥४०॥ सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा । जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च ॥४१॥ चकारासौ महायुद्धं लोकपालैः समं ततः । वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि ॥४२॥ स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः । भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्य महात्मनः ॥४३॥ भ्रातरं मूर्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः । तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः ॥४४॥ कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा । निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्च सर्वशः ॥४५॥ ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया । कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम् ॥४६॥ त्रैलोक्यं यज्ञभागश्च हृतास्तेन महात्मना । नन्दनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः ॥४७॥ सुधायाश्चैव पापेन सुखमाप महासुरः । कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार

दो अक्षैहिणी सेना के साथ आकर मिल गया ॥३४॥ राजन् उसके अपराजेय होने का एक कारण यह था कि जब वह युद्ध करते समय घायल हो जाता था, उस समय उसके शरीर से रक्त के जितने बिन्दु पृथिवी पर गिरते थे उतने ही उसके समान बलवान् वीर उत्पन्न हो जाते थे । वे बलवान् क्रूर तथा शस्त्रधारी होते थे ॥३५-३६॥ उनका आकार और पराक्रम भी रक्तबीज के ही समान होता था । और खून से उत्पन्न होने वाल वे वीर युद्ध करने लगते थे ॥३७॥ अतएव वह महाबलवान् रक्तबीज युद्ध मे दुर्जय हो गया था । रक्तबीज नामक वह महाअसुर सभी जीवों के लिए अबध्य हो गया था ॥३८॥ दूसरे भी बहुत से वीर दानव शुम्भ को राजा मानकर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ उसके सेवक बन गये ॥३९॥ इस तरह शुम्भ और निशुम्भ की सेना असंख्य हो गयी । उसने सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य अपने अधिकार मे कर लिया ॥४०॥ उस समय सेना जुटाकर शत्रुओं की सेना का वध करने वाले निशुम्भ ने इन्द्र को परास्त करने के लिए स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया ॥४१॥ वहाँ उसने लोकपालों के साथ महायुद्ध किया । इन्द्र ने अपने वज्र से निशुम्भ की छाती पर प्रहार किया ॥४२॥ वज्र के प्रहार से घायल होकर निशुम्भ भूमि पर गिर पड़ा । निशुम्भ की यह स्थिति देखकर उसकी सेना भाग चली ॥४३॥ अपने भाई को मूर्छित सुनकर शत्रु की सेना के संहारक शुम्भ ने सभी देवताओं के ऊपर बाण से प्रहार किया ॥४४॥ इस तरह से युद्ध से कभी भी नहीं घबराने वाले शुम्भ ने महान् युद्ध किया और इन्द्र के साथ-साथ सभी लोकपालों को जीत लिया ॥४५॥ उस समय उसने इन्द्र के पद, कल्पवृक्ष तथा कामधेनु को अपने अधीन कर लिया ॥४६॥ उसने सम्पूर्ण यज्ञों के भाग को देवताओं से छीन लिया ॥ नन्दन वन को प्राप्त करके वह महाअसुर प्रसन्नता

ह॥४८॥ अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह । यमं चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा ॥४९॥ वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च। वायोः कार्यं निशुम्भश्च चकार स्वबलान्वितः ॥५०॥ ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्य हृतश्रियः । संत्यज्य नंदनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥५१॥ हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने । निरालंबा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः ॥५२॥ विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च । उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च ॥५३॥ न प्रापुस्ते सुखं क्वापि स्थानभ्रष्टा विचेतसः । लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल ॥५४॥ बलवंतो महाभाग बहुज्ञा धनसंयुताः । काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवंति नराधिप ॥५५॥ चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम् । यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः ॥५६॥ दातारं याचकं चैव बलवंतं तथाऽबलम् । पंडितं विकलं कामं शूरं चातीव कातरम् ॥५७॥ मखानां च शतं कृत्वा प्राप्येंद्रासनमुत्तमम् । पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी ॥५८॥ कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम् । तमेवातीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम्॥५९॥

का अनुभव किया ॥४७॥ अमृत का पान करके वह सुखी हो गया । उसने कुबेर को भी पराजित करके उनका भी राज्य ले लिया ॥४८॥ उसने सूर्य तथा चन्द्रमा के भी अधिकार को छिन लिया । यम को भी परास्त करके वह यम के भी पद को ले लिया ॥४९॥ उसने वरुण के भी राज्य को अपने अधीन कर लिया और अग्नि के भी कार्य को करने लगा । वायु के कार्य को अपनी सेना के साथ निशुम्भ करने लगा ॥५०॥ इस तरह से महाराज पराजित, राज्यहीन तथा हतश्री देवता नंदनवन को छोड़कर पर्वतों की कन्दराओं मे चलें गये ॥५१॥ जिन देवताओं का अधिकार छिन गया था वे देवता निर्जन वन में घूमने लगे । उनका न तो कोई सहारा था, न कोई अधार था । वे तेजहीन हो गये थे और उनके पास आयुध भी नहीं रह गया था ॥५२॥ इस प्रकार के देवगण पर्वतों की गुफाओं में, निर्जन उद्यानों में, तथा नदियों के तट में निवास करने लगे ॥५३॥ इस तरह से स्थानभ्रष्ट तथा उदास लोकपाल देवताओं को कहीं भी सुख चैन नहीं मिलता था और सुख तो दैव के अधीन होता है ॥५४॥ हे महाराज ! इस तरह से बलवान्, तथा धन धान्य से सम्पन्न महापुरुष भी बुरे समय के आ जाने पर दुःख एवं दीनता भोगते हैं ॥५५॥ हे महाराज ! काल की चेष्टायें विचित्र होती हैं । वह मनुष्य को कभी राजा बना देता है तथा उन्हें कभी भिक्षुक बना देता है ॥५६॥ वह दानी को भी याचक बना देता है तथा बलवान् को भी निर्बल बना देता है। वह कभी पंडित को भी विकल बना देता है तथा शूरवीर को भी कायर बना देता है ॥५७॥ इन्द्र ने सौ अश्वमेघ यज्ञों को करके इन्द्रासन को प्राप्त किया था, किन्तु उसी इन्द्र ने इस शुंभासुर के राज्य में भयंकर दुःख को प्राप्त किया । काल की गति ऐसी ही है ॥५८॥ काल ही किसी पुरुष को धार्मिक तथा ज्ञानी बनाता है और उसी पुरुष को काल पुनः पापी और अज्ञानी बना देता है ॥५९॥ काल की इस तरह की चेष्टाओं के विषय में आश्चर्य नहीं करना

न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते । ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम् ॥६०॥ विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु । हरः कपाली संजातः कालेनैव बलीयसा ॥६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह । एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम ॥१॥ भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिंतामापुः सुदुस्तराम् । गुरुं दुःखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः ॥२॥ किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः । उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्यापि निवृत्तये॥३॥ उपचारपरा नूनं वेदमंत्राः सहस्रशः । वांछितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल ॥४॥ इष्टयो विविधाः प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः। ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः ॥५॥ विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे । तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः ॥६॥**

चाहिए । काल ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जी को भी इस तरह की विपत्ति में डाल दिया करता है ॥६०॥ काल से ही प्रेरित होकर विष्णु को सूकर आदि योनियों में जन्म लेना पड़ता है । बलवान काल के ही प्रभाव से शंकर जी कपाली हो गये । अतएव काल की महिमा बड़ी ही विचित्र है ॥६१॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

हिमालय पर्वत पर देवताओं द्वारा की गयी देवी की स्तुति और देवी का प्रादुर्भाव

व्यासजी ने कहा– हे राजवर्य ! सभी देवताओं के पराजित हो जाने पर शुम्भ नामक दैत्य एकछत्र राज्य करने लगा और इस तरह एक हजार वर्ष बीत गये ॥१॥ अपने राज्य से भ्रष्ट हुए सभी देवता उस समय अत्यधिक चिन्तित हो गये । अत्यधिक आतुर होकर देवताओं ने आचार्य बृहस्पति से पूछा॥२॥ हे आचार्य ! आप सर्वज्ञ तथा महामुनि हैं । इस दुःख को दूर करने का कौन सा उपाय है, यह आप बतलायें ॥३॥ हमलोगों ने सुना है कि ऐसे हजारों मन्त्र हैं जो उपचार का उपदेश करते हैं । उनसे अभिलषित अर्थ की प्राप्ति होती है । इस तरह का ज्ञान सूत्रों को देखने से होता है ॥४॥

भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि । दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति ॥७॥ बृहस्पतिरुवाच– **सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते। न स्वतन्त्राः सुराधीश तथैकान्तफलप्रदाः ॥८॥ मंत्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम् । जाताः स्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम् ॥९॥ इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु । ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यंति किमिष्टयः ॥१०॥ अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते । उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम् ॥११॥ दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः । उपायवादिनो दैवं प्रवदंति निरर्थकम् ॥१२॥ दैवं चैवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौ नृणाम् । केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन ॥१३॥ उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः । तस्माद्ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनः पुनः ॥१४॥ पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम् । युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ ॥१५॥ आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि । यदा यदा वो देवेशा आपदो दैवसम्भवाः ॥१६॥ प्रभवंति तदा कामं स्मर्तव्याऽहं सुरैः सदा । स्मृताऽहं नाशयिष्यामि**

ऐसी अनेक प्रकार की इष्टियाँ हैं, जिनका अनुष्ठान करने से भी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है । हे मुने ! आप उन सबों का अनुष्ठान करें क्योंकि उन सभी क्रियाओं को आप जानते हैं ॥५॥ सदागमों में शत्रु के विनाश के जो उपाय बतलाये गये हैं, उसका आप अनुष्ठान करें जिससे कि हमलोगों के दुःख का क्षय हो सके ॥६॥ हे आङ्गिरस ! दानवों का विनाश करने के लिए आप आज से ही अभिचार कर्म करना प्रारम्भ कर दें । इस कार्य को आप अपनी बुद्धि के अनुसार करें ॥७॥ **आचार्य बृहस्पति ने कहा–** समस्त वेदोक्त मन्त्रों का फल दैवाधीन रहता है । वे स्वतन्त्र रूप से फल देने में समर्थ नहीं हैं । और यह भी सम्भव नहीं है कि वे फल प्रदान करें ही ॥८॥ उन मन्त्रों के अधिष्ठातृ देवता तो आपलोग ही है । और आपलोग स्वयं इस समय विपत्ति में पड़े हुए हैं तो फिर मैं कौन सा अनुष्ठान करूँ । अनुष्ठान का फल ही क्या होगा ?॥९॥ यज्ञ कर्मों में इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं की पूजा की जाती है कि उससे प्रसन्न होकर वे फल प्रदान करते है । इस समय आपलोग स्वयं विपत्ति में पड़े हैं । ऐसी स्थिति में उन इष्टियों को करने से कौन सा लाभ होगा?॥१०॥ जो भवितव्यता होती है, वह तो अवश्य होती है । उसको कोई भी अन्यथाकृत नहीं कर सकता है । शिष्ट पुरुषों का उपदेश हैं कि उपाय करते रहना चाहिए । कुछ मनीषियों का कहना हैं कि दैव ही बलवान् होता है । किन्तु पुरुषार्थ की महत्ता देने वाले उपायवादी महापुरुषों का कहना है कि दैव क्या होता है ? उपाय करना चाहिए ॥१२॥ मनुष्यों के लिए कल्याणकारी दैव तथा उपाय दोनों केवल दैव को ही महत्त्व देकर उसके सहारे नहीं बैठे रहना चाहिए ॥१३॥ अपनी बुद्धि से विचार करके उपाय अवश्य करना चाहिए । अतएव मैं बार-बार विचार करके आपलोगों से कह रहा हूँ ॥१४॥ प्राचीन काल में प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बा ने महिषासुर का वध किया था । आपलोगों के द्वारा स्तुति किए जाने पर देवी ने आपलोगों को वरदान भी दिया था ॥१५॥ ज़ब कभी भी आपलोग मेरा स्मरण करेंगे उस समय मैं आपलोगों की विपत्ति का नाश करूँगी । हे देवताओं ! जब कभी भी आपलोगों

युष्माकं परमापदः ॥१७॥ तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे । आराधनं चंडिकायाः कुरुध्वं प्रेमपूर्वकम् ॥१८॥ मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः । जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति ॥१९॥ दुःखस्यांतोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशयः । तस्मिच्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम् ॥२०॥ स्तुता सम्पूजिता सद्यो वांछितार्थान्प्रदास्यति । निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै ह्रिमालयम् ॥२१॥ सुराः सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति । व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम् ॥२२॥ हिमालयं महाराज देवीध्यानपरायणाः। मायाबीजं हृदा नित्यं जपंतः सर्व एव हि ॥२३॥ नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम् । तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्च भक्त्या परमया युताः ॥२४॥ नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानंदरूपे सुरानन्ददे ते । नमो दानवांतप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे ॥२५॥ न ते नामसंख्या न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवादिरूपे । त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव ॥२६॥ स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धिर्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कांतिशांती । सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम् ॥२७॥ यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं सुराणां च तेभ्यो**

के ऊपर दैवकृत विपत्ति आयेगी । तब आपलोग हमें स्मरण करेंगे । स्मरण करते ही मैं आपलोगों की बड़ी-से-बड़ी विपत्ति को नष्ट कर दूँगी ॥१७॥ अतएव आपलोग हिमालय पर्वत पर जाकर प्रेमपूर्वक देवी की आराधना करें ॥१८॥ मैंने अपने योग के बल से इस बात को जान लिया है कि यदि आपलोग मायाबीज के विधान को जानकर उसका अनुष्ठान करेंगे तो भगवती आपलोगों पर अवश्य प्रसन्न होंगी ॥१९॥ मुझे यह दिखायी पड़ता है कि आपलोगों के दुःख की समाप्ति हो जायेगी । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । मैंने सुना है कि देवी हिमालय पर्वत पर सदैव निवास करती हैं ॥२०॥ स्तुति करने तथा पूजा करने से वे शीघ्र ही अभिलषित फल प्रदान करती हैं । आपलोग सुदृढ़ निश्चय करके हिमालय पर्वत पर जायँ ॥२१॥ हे देवताओं ! वे देवी आपलोगों के समस्त कार्यों को पूरा कर देंगी । **व्यासजी ने कहा–** बृहपति की उस वाणी को सुनकर वे सभी देवता हिमालय पर्वत पर चले गये ॥२२॥ और उस पर्वत पर जाकर सभी देवता देवी का ध्यान करने लगे । सभी देवता अपने हृदय में माया बीज का जप कर रहे थे ॥२३॥ देवताओं ने भक्तों को अभय प्रदान करने वाली महामाया को नमस्कार किया । और परमाभक्ति से संपन्न होकर देवता देवी की स्तुति स्तोत्र मन्त्रों से करने लगे ॥२४॥ हे देवि! हे विश्वेश्वरि ! हे प्राणों की स्वामिनि ! हे सर्वदानंद स्वरूपिणि ! हे देवताओं को आनन्ददायिनि ! हे दानवों का विनाश करने वाली ! हे मनुष्यों को अनेक पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली हे भक्तिस्वरूपे ! आपको नमस्कार है ॥२५॥ आपके नाम अनन्त हैं अतएव उनकी कोई भी संख्या नहीं हैं । यह कोई नहीं जानता है कि आपका रूप किस प्रकार का है । हे वेदादि ! (प्रणवस्वरूपे) हे देवादिस्वरूपे ! आप ही प्रजाओं की सृष्टि तथा संहार की बेला में सबों के भीतर शक्ति रूप से विद्यमान रहती हैं ॥२६॥ आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, तुष्टि, पुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी,

नमामोऽद्य शांत्यै । क्षमा योगनिद्रा दया त्वां विवक्षा स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥२८॥ कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतोऽसौ महारिर्मदांधोहयारिः । दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता ॥२९॥ किमत्रास्ति चित्रं यदंबा सुतं स्वं मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव। यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम् ॥३०॥ न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववंद्ये । कृपापात्रमित्येव मत्वा तथाऽस्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे ॥३१॥ बिना बाणपातैर्विना मुष्टिघातैर्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदंडैः । रिपून्हंतुमेवासि शक्ता विनोदात्तथाऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥३२॥ इदं शाश्वतं नैव जानंति मूढा न कार्यं विना कारणं संभवेद्वा वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं त्वमेवासि कर्तास्य विश्वस्य चेति ॥३३॥ अजः सृष्टिकर्ता मुकुंदोऽविताऽयं हरो नाशकृद्वा पुराणे प्रसिद्धः । न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता ॥३४॥ त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि दत्ता त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा । त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति

गति, कीर्ति, मेघा तथा सम्पूर्ण जगत् के प्राचीनतम कारण स्वरूपिणी हैं ॥२७॥ आप जब जिन रूपों से देवताओं के कार्यों को करती हैं हम आपके उन रूपों को नमस्कार करते हैं । आप ही आदि शक्ति स्वरूपिणी हैं । आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया, विवक्षा, आदि उत्कृष्ट रूपों से सभी जीवों के भीतर स्थित हैं ॥२८॥हे देवि ! आपने पहले जो महिषासुर का वध करके देवताओं का कार्य किया है, उससे सभी पुराणों में यह बात प्रसिद्ध हो गयी हैं कि आपकी देवताओं पर कृपा सदैव बनी रहती है ॥२९॥ इसमें कौन सा आश्चर्य है कि कोई माता अपने पुत्र का प्रेम से पालन-पोषण करती है । चूकि आप देवताओं की माता हैं, सहायिका हैं, अतएव आप एकचित्त होकर देवताओं के समस्त कार्यों को सम्पन्न कर दें ॥३०॥ हे विश्ववंद्ये ! देवि ! हमलोग न तो यह जानते हैं कि आपके कितने गुण हैं और न तो हमलोगों को आपके स्वरूप का ही ठीक-ठीक ज्ञान है । आप हमलोगों को अपनी कृपा का पात्र मानकर ही हमारी रक्षा करें । आप ही हमलोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं ॥३१॥ बाणों के प्रहार, मुष्टिका घात के बिना ही त्रिशूल और खड्ग से रहित तथा शक्ति एवं दण्ड आदि से रहित होकर भी आप लोक का कल्याण करने के लिए तथा अपने मनोविनोद के लिए लीलापूर्वक ही हमलोगों के शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हैं ॥३२॥ अज्ञानी जीव इस बात को नहीं जानते हैं कि यह जगत् नित्य नहीं है । वे यह भी नहीं जानते हैं कि बिना कारण के कार्य नहीं होते हैं । हमलोग अनुमान प्रमाण के बल पर इस तरह से तर्क करके जानते हैं कि आप ही इस जगत् की सृष्टि करने वाली हैं ॥३३॥ पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा जी जगत् की सृष्टि करने वाले हैं तथा भगवान् विष्णु ही रक्षा करने वाले हैं, एवं रुद्र जगत् का संहार करते हैं । किन्तु क्या कल्प के प्रारम्भ में वे तीनों आप से ही उत्पन्न नहीं हुए हैं ?। अतएव आप ही सम्पूर्ण विश्व की माता हैं ॥३४॥ हे देवि ! प्राचीनकाल में इन तीनों

कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥३५॥ ते किं न मंदमतयो यतयो विमूढास्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयंति । विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृंदसुवन्दितांघ्रिम् ॥३६॥ ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा दंभास्त एव प्रतिभांति नूनम् । ध्यायन्ति न त्वां कमलां च लज्जां कांतिं स्थितिं कीर्तिमथापि पुष्टिम् ॥३७॥ हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा । भुवि भजन्ति न येऽल्पधियो नरा जननि ते विधिना खलु वंचिता ॥३८॥ जलधिजापदपंकजरंजनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् । त्रिनयनोऽपि धराधरजांघ्रिपङ्कजपरागनिषेवणतत्परः ॥३९॥ किमपरस्य नरस्य कथानकैस्तव पदाब्जयुगं न भजंति के । विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतधियो मुनयोऽपि भजंति ते ॥४०॥ देवि त्वदंघ्रिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी । ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवन्ति दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः ॥४१॥ य काष्ठभारवहने यवसावहारे कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः । जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदंघ्रिसेवा पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदाऽपि ॥४२॥

देवताओं ने आपकी आराधना की तो आपने उन तीनों देवताओं को उग्र शक्ति प्रदान किया । आपकी ही शक्ति से सम्पन्न होकर वे तीनों देवता क्रमशः जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करने का काम करते हैं ॥३५॥ हे मातः ! वे यतिजन क्या अत्यन्त अज्ञानी नहीं है जो सम्पूर्ण जगत् की जननी आपकी शरणागति नहीं करते हैं । आपके चरण कमलों की बन्दना करने मात्र से सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । आप ही मुक्ति प्रदान करने वाली हैं तथा परा विद्या स्वरूपिणी है । सभी देवता तथा विद्वान् आपके चरण कमलों की वन्दना करते हैं ॥३६॥ जो वैष्णव, पाशुपतमतानुयायी तथा सूर्योपासक, लक्ष्मी, लज्जा, कांति, स्थिति, कीर्ति तथा पुष्टि स्वरूपा आपकी उपासना नहीं करते हैं वे भी ढोंग करने वाले ही प्रतीत होते हैं ॥३७॥ माँ ! आपकी आराधना ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि देवता एवं दूसरे बड़े-बड़े देवता तथा असुर किया करते हैं । हे माँ ! ऐसा लगता है कि जो संसारी जीव आपकी आराधना नहीं करते हैं, उन सबों को तो भाग्य ने ही धोखा दे दिया हैं ॥३८॥ भगवान् विष्णु सर्वदा समुद्रपुत्री लक्ष्मी जी के चरणों को लाक्षारस से रंजित करते रहते हैं और भगवान् शिव पार्वती जी के चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हैं ॥३९॥ दूसरे लोगों की चर्चा करने से कौन सा लाभ है; संसार का कौन सा ऐसा प्राणी है जो आपके दोनों चरण कमलों की आराधना न करे । जिन मुनिजनों ने गृह के विषय में होने वाले राग का परित्याग कर दिया है वे भी आपके दया, क्षमा आदि रूपों की उपासना किया करते हैं ॥४०॥ हे देवि जो लोग आपके चरणों की आराधना प्रेमपूर्वक नहीं किया करते हैं, ऐसे लोग सर्वदा इस संसार रूपी कूप में ही पड़े रहते हैं । वे सदा कुष्ठ, गुल्म, शिरदर्द आदि रोगों से दुःखी तथा दारिद्र्य रोग से ग्रस्त बने रहते हैं । उन्हें कभी भी सुख नहीं मिलता है ॥४१॥ हे मातः ! जो लोग धन और पत्नी आदि से हीन हैं, सदा लकड़ी ढोने और घास छीलने का काम करके अपना पेट पालते रहते हैं, उनलोगों के विषय में मेरा अनुमान है कि उन अज्ञानी लोगों ने अपने अनेक पूर्वजन्मों में कभी भी आपके चरणों की सेवा नहीं की है ॥४२॥ व्यासजी

व्यास उवाच– **एवं स्तुता सुरैः सर्वैरंबिका करुणान्विता । प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता ॥४३॥ दिव्यांबरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता । दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचन्दनचर्चिता ॥४४॥ जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता । अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता ॥४५॥ जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात् । दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी ॥४६॥ देवान्स्तुतिपरानाह मेघगंभीरया गिरा । प्रेमपूर्णं स्मितं कृत्वा कोकिलामंजुवादिनी ॥४७॥** देव्युवाच– **भो भोः सुरवराः काऽत्र भवद्भिः स्तूयते भृशम् । किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिंताविष्टाः कुतः पुनः ॥४८॥** व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसंपदा । प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः ॥४९॥** देवा ऊचुः– **देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताःस्म कृपार्णवे । पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान् ॥५०॥ पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकंटकम् । महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याऽहं सदाऽऽपदि ॥५१॥ स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम् । तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि ॥५२॥ अद्य शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ । उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल ॥५३॥ रक्तबीजश्च बलवांश्चंडमुंडौ तथाऽसुरौ । एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं**

ने कहा– इस तरह से देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने पर रूप तथा यौवन से सम्पन्न; करुणा करने वाली जगदम्बिका शीघ्र ही प्रकट हो गयीं ॥४३॥ देवी दिव्य वस्त्र को धारण किए हुयीं थीं, दिव्य भूषणों से समलंकृत थीं, वे दिव्यमाला धारण की थीं तथा दिव्य चन्दन से चर्चित थी ॥४४॥ उनका सौन्दर्य सम्पूर्ण विश्व को मोहित करने में समर्थ था । वे समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न थीं । उनका स्वरूप अद्वितीय था । इस तरह से जगदम्बिका प्रकट होकर देवताओं को दर्शन दीं । वे पर्वत की कन्दरा से गंगा में स्नान करने की कामना से निकलीं । विश्वमोहिनी देवी दिव्य वस्त्र को धारण किए हुई थीं ॥४६॥ उन्होंने स्तुति करने वाले देवताओं से मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा । उस समय वे प्रेमपूर्वक मुस्कुरा रही थीं और उनकी वाणी कोयल के समान मनोहर थी ॥४७॥ **देवी ने कहा–** हे देवताओं ! आपलोग किस की स्तुति कर रहे हैं ? किसलिए कर रहे हैं ? आपलोग अपना कार्य बतलाएँ । आपलोग चिन्तित क्यों हैं ?॥४८॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी के रूप को देखकर एवं देवी की बाणी को सुनकर मोहित हुए देवताओं ने हृदय के उत्साह से सम्पन्न होकर प्रेमपूर्वक कहा ॥४९॥ **देवताओं ने कहा–** हे देवि ! हे विश्व की स्वामिनि ! हमलोग आपकी ही स्तुति कर रहे हैं । हे कृपासागर स्वरूपिणि ! हमलोग आपके शरणागत हैं । हमलोग दैत्यों द्वारा संतप्त किए गये हैं । आप हमलोगों की रक्षा करें ॥५०॥ प्राचीन काल में महिषासुर को मारकर हमलोगों को आपने वरदान दिया था कि विपत्ति के आने पर तुमलोग सदा मेरा स्मरण करना ॥५१॥ मेरा स्मरण करने से मैं दैत्यों से उत्पन्न की गयी पीड़ा को शीघ्र ही नष्ट कर दूँगी । अतएव हे देवि ! इसी कारण से हमलोग आपका स्मरण कर रहे हैं ॥५२॥ यहाँ पर शुम्भ और निशुम्भ नाम के दो भयंकर दैत्य उत्पन्न हो गये हैं । उनदोनों को कोई भी पुरुष जाति का जीव नहीं मार सकता है । वे ही दोनों हमलोगों को दुःख दे रहें हैं ॥५३॥ बलवान् रक्तबीज तथा

महाबलैः ॥५४॥ गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले । कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे ॥५५॥ देवास्त्वदंघ्रिभजने निरताः सदैव ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः । तान्देवि दुःखरहितान्कुरु भक्तियुक्तान्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम् ॥५६॥ सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाऽद्य स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद्युगादौ । जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः ॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः । स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह ॥१॥ पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चांबिका यदा । कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते ॥२॥ निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वतीतनुव्यत्ययात् । कृष्णारूपाऽथ संजाता कालिका**

चण्डमुण्ड नामक दैत्य और दूसरे महाबलवान् दैत्य देवताओं का राज्य छिन लिये है ॥५४॥ हे महाबलवती देवि ! आप को छोड़कर कोई भी दूसरा हमलोगों का रक्षक नहीं है । हे सुन्दरि ! आप हम देवताओं का काम पूरा करें ॥५५॥ देवता सदा आपके चरणों की आराधना किया करते हैं । वे देवता दैत्यों द्वारा भयंकर विपत्ति में डाल दिए गये हैं । हे मातः ! आपकी भक्ति करने वाले उन देवताओं को आप सुखी बना दें और दुःखी देवताओं के लिए आप शरण बन जायँ ॥५६॥ हे देवि ! चूकि युग के प्रारम्भ में आपने ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की है । अतएव आप ही आज इस विश्व की रक्षा करें। हे मातः अपने बल के मद से मदमत्त बने हुए घमण्डी दैत्य इस समय संसार को पीड़ित कर रहे हैं ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

कौशिकी देवी का आविर्भाव और चण्ड-मुण्ड के द्वारा उनकी शुम्भ निशुम्भ को सूचना

व्यासजी ने कहा– शत्रुओं के द्वारा सताये गये देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर देवी ने अपने शरीर से दूसरे रूप को प्रकट किया ॥१॥ पार्वती के शरीर से अम्बिका के प्रादुर्भूत होने के कारण उनके उस शरीर को सम्पूर्ण संसार में कौशिकी देवी कहा जाता है ॥२॥ पार्वती जी के शरीर से उत्पन्न

सा प्रकीर्तिता ॥३॥ मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी । कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥४॥ अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम् । सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम् ॥५॥ ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता । तिष्ठंतु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह ॥६॥ कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे । निशुंभादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे ॥७॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा । कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः ॥८॥ सा गत्वोपवने तस्थावंबिका कालिकान्विता । जगावथ कलं तत्र जगन्मोहनमोहनम् ॥९॥ श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः । मुदं च परमामापुरमरा गगने स्थिताः ॥१०॥ तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भसेवकौ । चण्डमुण्डाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया ॥११॥ आगतौ ददृशाते तु तौ तदा दिव्यरूपिणीम् । अंबिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम् ॥१२॥ दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च दानवौ विस्मयान्वितौ । जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुंभस्य नृपसत्तम ॥१३॥ तौ गत्वा तं समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे । ऊचतुर्मधुरां वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम् ॥१४॥ राजन्हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी । संप्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥१५॥ नेदृशी दैवलोकेऽस्ति

होते ही अम्बिका का रूप काला हो गया अतएव वे कालिका कहलायीं ॥३॥ कालिका का रूप बिल्कुल काला था । अतएव उनका वह रूप भयावना लगता था । उनको देखकर दैत्य भयभीत हो गये अतः वे कालरात्रि शब्द से कही गयीं । वे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं ॥४॥ सभी आभूषणों से भूषित तथा सौन्दर्य सम्पन्न अम्बिका का दूसरा रूप अत्यन्त मनोहर लगने लगा ॥५॥ इसके बाद अम्बिका ने मुस्कुराते हुए देवताओं से कहा– तुमलोग निर्भय हो जाओ। मैं तुमलोगों के शत्रुओं का वध कर दूँगी ॥६॥ तुमलोगों के सभी कार्यों को मैं युद्ध में विचरण करती हुई करूँगी । तुमलोगों को सुख प्रदान करने के लिए मैं निशुम्भ आदि का बध करूँगी ॥७॥ इस तरह से देवताओं को कहकर सिंह पर सवार होकर मद से उत्कट बनी हुई देवी अपने साथ कालिका को लेकर शत्रुओं के नगर में चली गयीं ॥८॥ अम्बिका देवी कालिका देवी के साथ नगर के एक उपवन में जाकर रुक गयीं और संसार को मोहित कर देने वाले गीत को गाने लगीं ॥९॥ उस मनोहर गीत को सुनकर उपवन में रहने वाले पशु तथा पक्षी मोहित हो गये और आकाश में स्थित देवताओं ने भी उस गीत को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया ॥१०॥ उसी समय वहाँ पर शुम्भ तथा निशुम्भ के चण्ड तथा मुण्ड नामक दो भयंकर आकार वाले सेवक स्वभावतः घूमते हुए आ गये । उन दोनों ने दिव्यरूप धारण करने वाली तथा गीत गाने वाली अम्बिका देवी को देखा और यह भी देखा कि अम्बिका देवी के आगे कालिका देवी स्थित हैं ॥११-१२॥ दिव्य रूप वाली उस अम्बिका देवी को देखकर दोनों दैत्य आश्चर्यचकित हो गये । हे राजन् ! वे दोनों शीघ्र ही शुम्भ के पास गये । अपने भवन में बैठे हुए शुम्भ के पास जाकर उन दोनों ने प्रणाम किया और मधुरवाणी में कहने

न गंधर्वपुरे तथा । न दृष्टा न श्रुता क्वापि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा ॥१६॥ गानं च तादृशं राजन्करोति जनरंजनम् । मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वे मधुरस्वरमोहिताः ॥१७॥ ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता । गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्याऽस्ति कामिनी ॥१८॥ ज्ञात्वाऽऽनय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम् । निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवंविधा किल ॥१९॥ देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप । कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृहणासि नृपोत्तम ॥२०॥ इन्द्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा । गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल ॥२१॥ विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम् । त्वयाऽऽत्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम् ॥२२॥ कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन्समाहृतः । छत्रं जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात् ॥२३॥ पाशश्चापि निशुंभेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम । गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च ॥२४॥ अम्लानपंकजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ । भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च ॥२५॥ मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः । त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यद्वर्ण्यते नृप ॥२६॥ कामधेनुर्गृहीताऽद्य वर्तते सागरोद्भवा । मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः ॥२७॥ एवं सर्वाणि रत्नानि

लगे ॥१४॥ हे राजन् ! हिमालय से एक स्त्री आयी है । वह इतना सुन्दर है कि उसको देखकर कामदेव भी मोहित हो जा सकते हैं । वह नारी के समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न है और सिंह पर बैठी हुई हैं ॥१५॥ इतना सुन्दर कोई भी स्त्री न तो देवलोक में है और न जो गन्धर्वों के लोक में हैं । उसतरह की सुन्दर कोई भी स्त्री मर्त्यलोक में न तो देखी गयी है औन न सुनी गयी है ॥१६॥ हे राजन् ! वह इतना मधुर गीत गा रही है कि उसके गीत की मधुरता से मोहित होकर मृग उसके पास में बैठें हुए हैं ॥१७॥ अतएव आप इस बात का पता लगायें कि वह किसकी पुत्री है, और यहाँ किसलिए आयी है ? हे राजन् ! आप उसे अपना बना लीजिये वह आपके योग्य स्त्री है ॥१८॥ इन सारी बातों को जानकर आप उसे अपने घर लाइये और उस कमलनयनी को अपनी पत्नी बना लीजिये । यह निश्चित है कि संसार में उसके समान सुन्दर कोई भी नारी नहीं है ॥१९॥ राजन् आपने देवताओं के समस्त रत्नों को ले लिया है । अतएव आप इस उत्तम नारी रत्न को क्यों नहीं अपनाते हैं ?।'२०॥ राजन् ! आपने बलपूर्वक इन्द्र के ऐरावत नामक हाथीं को तथा सात मुख वाले उच्चैःश्रवा घोड़े को एवं पारिजात वृक्ष को ले लिया है ॥२१॥ हे राजन् ! आपने ब्रह्माजी के हंस ध्वज से युक्त रत्नस्वरूप विमान को बलपूर्वक उनसे छिन लिया ॥२२॥ आपने कुबेर के पद्म नामंक निधि को अपने यहाँ लाया हैं । आपने वरुण के श्वेतछत्र को बलपूर्वक ले लिया ॥२३॥ हे राजन् ! आपके छोटे भाई निशुम्भ ने वरुण के पाश को वरुण को परास्त करके उनसे छिन लिया है ॥२४॥ वरुण ने आपको कभी भी नहीं कुम्हलाने वाले कमलों की माला समर्पित की है । आपसे भयभीत होकर वरुण ने आपको अनेक प्रकार के रत्नों को समर्पित किया ॥२५॥ राजन् ! मैं आपके दूसरी बातों का क्या

त्वयाऽऽत्तानि बलादपि । कस्मान्न गृह्यते कांतारत्नमेषा वराङ्गना ॥२८॥ सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ । अनया सम्भविष्यन्ति रत्नभूतानि भूपते ॥२९॥ त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तति प्रिया । तस्मात्तामानयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम् ॥३०॥ व्यास उवाच– इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् । प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम् ॥३१। गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण । वक्तव्यं च तथा तत्र यथाऽभ्येति कृशोदरी ॥३२॥ उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कांतासु सुविचक्षणैः । सामदाने इति प्राहुः शृंगाररसकोविदाः ॥३३॥ भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते । निग्रहे रसभंगः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः ॥३४॥ सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा । का न याति वशे दूत कामिनी कामपीडिता ॥३५॥ व्यास उवाच– सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुंभोक्तं सुप्रियं पटु । जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदम्बिका ॥३६॥ सोऽपश्यत्सुमुखीं कांतां सिंहस्योपरि संस्थिताम् । प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम् ॥३७॥ दूत उवाच– वरोरु त्रिदशारातिः शुंभः सर्वाङ्गसुन्दरः । त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः ॥३८॥ तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना । त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनातिविदूयता ॥३९॥ वचनं

वर्णन करूँ । आपने यमराज को परास्त करके उनसे उनकी शक्ति तथा यमदण्ड को ले लिया ॥२६॥ समुद्र से उत्पन्न होने वाली कामधेनु को आपने अपने पास रखा है । आपके ही वश में मेनका आदि अप्सराएँ रहती हैं ॥२७॥ आपने जब सभी रत्नों को अपने वश में कर रखा है तो फिर आप इस स्त्री रूपी उत्तम रत्न को क्यों नहीं अपनाते हैं ॥२८॥ आपके घर में सभी अच्छे रत्न विद्यमान हैं । इस स्त्रीरत्न के ही द्वारा उन रत्नों में रत्नत्व आ जायेगा॥२९॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण त्रैलोक्य में आपको इस तरह की स्त्री नहीं मिल सकती हैं; अतएव आप उसको शीघ्र लाएँ और उसको अपनी पत्नी बना लें ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से चण्ड तथा मुण्ड की बातों को सुनकर शुम्भ ने प्रसन्न होकर अपने सन्निकट में ही विद्यमान सुग्रीव नामक दैत्य से मधुर वाणी में कहा ॥३१॥ हे सुग्रीव ! तुम मेरा दूत बनकर जाओ और मेरा काम करो । उससे इस तरह से बातें करना कि वह मेरे पास आ जाय॥३२॥ श्रृङ्गाररस को जानने वालों का कहना है कि प्रियतमाओं को अनुकूल बनाने के लिए साम (शान्ति) तथा दान इन दो ही उपायों का प्रयोग करना चाहिए ॥३३॥ भेदनीति का प्रयोग करने पर तो रस नहीं रहकर रसाभास हो जाता है और निग्रह नीति का प्रयोग करने पर रसभङ्ग ही हो जाता है । अतएव बालाओं के प्रति भेद तथा निग्रह नीति का प्रयोग दोषयुक्त है ॥३४॥ साम और दान प्रधान वाक्यों से तथा मधुर प्यार भरी बातों से कौन ऐसी कामपीड़ित कामिनी होगी जो वश में नहीं हो जाय ॥३५॥ **व्यासजी ने कहा–** चतुर सुग्रीव ने शुम्भ की प्रिय तथा शुभ बातों को सुना और वह शीघ्र ही जगदम्बिका के पास चला गया ॥३६॥ वहाँ जाकर उसने सुन्दर मुख वाली तथा देदीप्यमान देवी को सिंह पर बैठे हुए देखा । उसने जगदम्बिका को प्रणाम करके मधुर वाणी में कहा ॥३७॥ **दूत ने कहा–** हे सुन्दरि ! देवताओं के शत्रु हमारे राजा शुंभ सर्वाङ्गसुन्दर हैं । वे त्रैलोक्य के स्वामी, शूरवीर तथा सबों

तस्य तन्वंगि श्रृणु प्रेमपुरःसरम् । प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधिपस्त्वयि ॥४०॥ देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम् । यज्ञभागानहं कान्ते गृह्णामीह स्थितः सदा ॥४१॥ हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता । यानि रत्नानि देवानां तानि चाहृतवानहम् ॥४२॥ भोक्ताऽहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनी । वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः ॥४३॥ त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयांतरम् । त्वदधीनः कृतः कामं किंकरोऽस्मि करोमि किम् ॥४४॥ त्वमाज्ञापय रंभोरु तत्करोमि वशानुगः । दासोऽहं तव चार्वंगि रक्ष मां कामबाणतः ॥४५॥ भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम् । त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥४६॥ तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि । अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः ॥४७॥ सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने । यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुंदरि ॥४८॥ इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमंथरे । वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद्ब्रूहि मधुरं वचः ॥४९॥ शुम्भाय चंचलापांगि तद्ब्रवीम्यहमाशु वै । व्यास उवाच— **तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम् ॥५०॥ तं प्राह मधुरां वाचं देवी देवार्थसाधिका ।** श्रीदेव्युवाच— **जानाम्यहं निशुम्भं च शुम्भं चातिबलं**

को जीत लेने वालें हैं ॥३८॥ उन्होंने अपना दूत बनाकर मुझको आपके पास भेजा है । किसी से आपके अनुपमेय सौन्दर्य को सुनकर वे आप पर मोहित हो गये हैं । वे आपको पाने के लिए बेचैन हैं ॥३९॥ हे तन्वंगि ! आप उन की बातों को प्रेमपूर्वक सुनें । वे दैत्यों के स्वामी हैं और आपको प्रणाम करके उन्होंने कहा है ॥४०॥ मैंने समस्त देवताओं को परास्त कर दिया है । मैं त्रैलोक्य का स्वामी हूँ । हे कान्ते ! यहाँ पर स्थित रहकर मैं समस्त यज्ञों के भाग को स्वीकार करता हूँ ॥४१॥ स्वर्गलोक में देवताओं के पास जो रत्न थे उन सभी रत्नों को मैं स्वयं अपने पास लाया हूँ । अतएव स्वर्गलोक तो सार वस्तुओं से रहित हो गया है ॥४२॥ मैं ही समस्त रत्नों का उपभोग करने वाला हूँ । सभी देवता, दैत्य तथा मनुष्य मेरे वश में हैं ॥४३॥ तुम्हारे गुण मेरे पास आकर मेरे कानों के मार्ग से मेरे हृदय में प्रवेश कर गये । अब मैं तुम्हारे वश में रहने वाला तुम्हारा दास बन गया हूँ । मैं अब क्या करूँ?॥४४॥ हे रम्भोरु ! तुम मुझे आज्ञा दो और मैं तुम्हारे वश में रहकर तुम्हारी आज्ञाओं का पालन करूँगा । हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ । मुझे काम के बाणों से बचा लो ॥४५॥ हे सुन्दर अंगों वाली ! तुम मेरे पास आ जाओ मैं काम से आकुल हूँ । तुम्हारे अधीन रहने वाला हूँ । तुम त्रैलोक्य की स्वामिनी बनकर सर्वोत्तम भोगों को भोगो ॥४६॥ हे कान्ते ! मैं अपने मृत्युकाल पर्यन्त तुम्हारा आज्ञाकारी बना रहूँगा । हे वरारोहे ! मैं देवता, असुर तथा मनुष्यों के लिए अवध्य हूँ ॥४७॥ हे सुन्दर मुखड़े वाली ! तुम सदैव सौभाग्यवती बनी रहोगी । तुम्हारा जहाँ मन लगे वहीं पर क्रीडा करना॥४८॥ हे मद के कारण मंथरगतिवाली ! मेरे स्वामी की इन बातों का अपने मन में विचार करके तुम्हें जो कुछ भी प्रेमपूर्वक कहना हो उसे अपनी मंथर वाणी में कहो॥४९॥ तुम जो कुछ भी कहोगी उसे मैं शीघ्र जाकर महाराज शुम्भ को बतला दूंगा । **व्यासजी ने कहा—** दूत की उस बात को सुनकर देवी ने मधुर

नृपम् ॥५१॥ जेतारं सर्वदेवानां हंतारं चैव विद्विषाम् । राशिं सर्वगुणानां च भोक्तारं सर्वसंपदाम् ॥५२॥ दातारं चातिशूरं च सुंदरं मन्मथाकृतिम्। द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं सुरमानुषैः ॥५३॥ ज्ञात्वा समागताऽस्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम् । रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये ॥५४॥ तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवागताऽस्मि वै । दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः ॥५५॥ गंधर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः । सर्वे शुम्भभयाद्भीता वेपमाना विचेतसः ॥५६॥ श्रुत्वा शुभगुणानत्र प्राप्ताऽस्म्यद्य दिदृक्षया । गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भं महाबलम् ॥५७॥ निर्जने श्लक्ष्णया वाचा वचनं वचनान्मम । त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुन्दरम् ॥५८॥ दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम् । जेतारं सर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम् ॥५९॥ भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम् । पतिकामाऽस्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप ॥६०॥ स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायाता महामते । ममास्ति कारणं किंचिद्विवाहे राक्षसोत्तम ॥६१॥ बालभावाद्व्रतं किंचित्कृतं राजन्मया पुरा । क्रीडंत्या च वयस्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया ॥६२॥ स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः । मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम् ॥६३॥ तं वरिष्याम्यहं

मुस्कान किया ॥५०॥ देवताओं के प्रयोजन को सिद्ध करने वाली देवी ने मधुर वाणी में कहा **श्रीदेवी ने कहा**— मैं अत्यन्त बलवान् राजा शुम्भ तथा निशुम्भ को जानती हूँ ॥५१॥ मैं यह भी जानती हूँ कि उन्होंने सभी देवताओं पर विजय प्राप्त किया है और अपने शत्रुओं को मार दिया है । वे समस्त गुणों की राशि स्वरूप हैं तथा समस्त सम्पदाओं के भोक्ता हैं ॥५२॥ वे दानी, अत्यन्त शूरवीर तथा कामदेव के समान सुन्दर हैं । बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष तथा देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के लिए अवध्य हैं ॥५३॥ इन सारी बातों को जानकर ही मैं उनको देखने के लिए यहाँ आयी हूँ । जिस तरह रत्न अपनी शोभा बढ़ाने के लिए सुवर्ण के पास आता है ॥५२॥ मैं अपने पति को देखने के लिए दूर से आयी हूँ । मैंने स्वर्ग के सभी देवतओं और भूलोक के सभी मनुष्यों को देख लिया हैं ॥५५॥ गन्धर्वों तथा राक्षसों में भी जितने सुन्दर पुरुष हैं उन सबों को मैनें देखा है । मैंने देखा कि वे सबके सब शुम्भ के भय से भयभीत होकर काँपते रहते हैं ॥५६॥ शुम्भ में शुभगुणों को सुनकर मैं यहाँ पर उनको देखने के लिए आयी हूँ । हे दूत महाभाग ! आप जाइये और महाबलवान् शुम्भ से एकान्त में मधुर वाणी में मेरी आज्ञा से कहिए कि आपको सबसे बलवान् तथा सबसे सुन्दर जानकर, दानी, गुणी, शूरबीर तथा सभी विद्याओं में विशारद सभी देवताओं को जीतने वाला, कार्यकुशल, कुलीन, समस्त रत्नों का भोग करने वाला, पूर्णरूप से स्वतंत्र राजा तथा अपने पराक्रम से उन्नति करने वाला महापुरुष जानकर मैं यहाँ आयी हूँ । मैं पति की खोज में हूँ । यह सत्य है कि मैं आपके योग्य पत्नी हूँ ॥५७-६०॥ हे महामते ! म अपनी इच्छा सें आपके नगर में आयी हूँ । किन्तु हे राक्षसोत्तम ! मेरे विवाह में कुछ अड़चनें हैं ॥६१॥ हे राजन् ! मैं जब छोटी बच्ची थी उस समय मैंने कुछ प्रतिज्ञा की है । मैं अपनी सखियों के साथ खेल रही थी; उसी समय मैंने एक प्रतिज्ञा कर ली ॥६२॥ वह प्रतिज्ञा मैं अपने शरीर में विद्यमान

कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम् । जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः ॥६४॥ किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै । तस्मात्त्वमपि राजेंद्र ज्ञात्वा मे हीदृशं बलम् ॥६५॥ जित्वा मां स्वबलेनात्र वांछितं कुरु चात्मनः । त्वं वा तवानुजो भ्राता समेत्य समरांगणे । जित्वा मां समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः । किं ब्रूषे रुचिरापांगि स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात् ॥१॥ इन्द्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथाऽपरे । तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनि ॥२॥ त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुम्भं समरे जयेत् । का त्वं कमलपत्राक्षि**

बल के दर्प में भरकर कर ली और अपनी सखियों के समक्ष की । जो मेरे सदृश बलवान्, शूरवीर पुरुष मुझको युद्ध में जीत लेगा ॥६३॥ उसे ही मैं उसके बलाबल को जानकर अपना पति बनाऊँगी । मेरी इस बात को सुनकर मेरी सखियाँ अश्चर्यित होकर हँस पड़ीं ॥६४॥ इसके बाद उन सबों ने कहा एकवाएक इसने इस प्रकार के अत्यन्त क्रूर व्रत क्यों ले लिया ? अतएव हे राजेन्द्र ! तुम भी मेरे इस प्रकार के बल को जान लो, मुझे अपने बल पर इतना घमण्ड है । अपने पराक्रम से मुझको परास्त करके अपनी मनःकामना पूरी कर लो । तुम अथवा तुम्हारा छोटा भाई निशुम्भ युद्ध के मैदान में आकर मुझे युद्ध में परास्त कर ले और उसके पश्चात् मेरे साथ विवाह कर ले ॥६६॥

इस तरह से श्रीमद् देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

देवी तथा दूत का संवाद

व्यासजी ने कहा– देवी की उस बात को सुनकर दूत ने विस्मित होकर कहा– हे सुन्दरि ! तुम यह क्या कह रही हो । स्त्री का स्वभाव होने के कारण ही तुम इस तरह की साहसपूर्ण बातें कर रही हो ॥१॥ जिन्होंने इन्द्र आदि देवताओं तथा दूसरे दैत्यों को परास्त कर दिया है; हे भामिनि ! उन महाराज

तस्याग्रे युधि सांप्रतम् ॥३॥ अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुन्दरि । बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम् ॥४॥ त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भस्तव रूपेण मोहितः । त्वां च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये ॥५॥ त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं सम्मान्य वचनं मम । भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद्ब्रवीमि ते ॥६॥ शृङ्गारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा । सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः ॥७॥ नागमिष्यसि चेद्बाले संक्रुद्धः पृथिवीपतिः । अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति सांप्रतम् ॥८॥ केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः । त्वां नयिष्यंति वामोरु तरसा शुम्भसन्निधौ ॥९॥ स्वलज्जां रक्ष तन्वङ्गि साहसं सर्वथा त्यज । मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै ॥१०। क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसंगजम् । सारासारं परिच्छेद्य कुरु मे वचनं पटु ॥११॥ भज शुम्भं निशुंभं वा लब्धाऽसि परमं सुखम् । देव्युवाच– **सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि ॥१२॥ निशुम्भशुम्भौ जानामि बलवंताविति ध्रुवम् । प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत् ॥१३॥ तस्माद्ब्रूहि**

शुम्भ को तुम किस प्रकार से जीतने के लिए इच्छा कर रही हो ॥२॥ त्रैलोक्य में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो कि युद्ध में शुम्भ को जीत सके । कमलनयनि ! तुम उनके सामने क्या युद्ध कर सकोगी ॥३॥ हे सुन्दरि ! कहीं भी बिना विचार किए नहीं बोलना चाहिए । अपने तथा अपने से भिन्न दोनों के बल को जानकर समयानुकुल ही कुछ भी कहना चाहिए ॥४॥ शुम्भ त्रैलोक्य के स्वामी हैं, वे तुम्हारे रूप पर मोहित हो गये हैं । वे तुमको प्राप्त करना चाहते हैं । तुम उनके मनोनुकूल कार्य करो ॥५॥ तुम अपने मूर्खतापूर्ण स्वभाव को छोड़ दो । मैं तुम्हें कुछ बातें बतलाता हूँ । तुम्हें मेरी बातों का सम्मान करना चाहिए । तुम्हारा इसी में कल्याण है कि तुम शुम्भ तथा निशुम्भ इन दोनों में से किसी एक को अपना पति बना लो ॥६॥ सभी प्राणियों को अपनी युवावस्था में आनन्द-पूर्वक श्रृंगार का सेवन करना चाहिए, क्योंकि युवावस्था के लिए शृङ्गार रस सर्वोत्तम माना जाता है ॥७॥ हे बाले ! यदि तुम अपने से उनके पास नहीं जाओगी तो वे अपने दूसरे सेवकों को भेजकर तुम्हें बलपूर्वक ले जायेंगे ॥८॥ हे वामोरु सुन्दरि ! बल के दर्प से दृप्त वे दानव तुम्हारे बाल को पकड़कर तुम्हें घसीटते हुए बलपूर्वक महाराज शुम्भ के पास ले जायेंगे ॥९॥ हे सुन्दरि ! तुम अपनी लज्जा की रक्षा करो । इस साहस को पूर्णरूप से त्याग दो । तुम सम्मान पूर्वक महाराज शुम्भ के पास चलो, क्योंकि तुम सम्मान के योग्य हो ॥१०॥ कहाँ तो तीक्ष्ण बाणों से युद्ध करना और कहाँ रतिक्रीडा जन्य सुखानुभूति ? इन दोनों में कोई समता नही है । ये परस्पर विरोधी कार्य हैं । तुम सार एवं असार का विचार करके मेरी बात को मान लो ॥११॥ तुम शुम्भ अथवा निशुम्भ इन दोनों में से किसी एक को अपना पति बना लो, इससे तुम्हें बहुत सुख मिलेगा । **देवी ने कहा–** हे दूत महाभाग! तुम्हारा कहना बिल्कुल यथार्थ है । तुम बोलने में बहुत चतुर हो ॥१२॥ मैं निशुम्भ तथा शुम्भ दोनों को जानती हूँ । यह भी जानती हूँ कि वे दोनों महाबलवान् हैं । किन्तु मैंने अपनी बाल्यावस्था में जो प्रतिज्ञा कर ली है उसे मैं कैसे व्यर्थ बना सकती हूँ ?॥१३॥ अतएव महाबलवान् शुम्भ तथा निशुम्भ

निशुम्भं च शुम्भं वा बलवत्तरम् । बिना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात् ॥१४॥ जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु सांप्रतम् । युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप ॥१५॥ युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर । बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ माचिरम् ॥१६॥ त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते । इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात् ॥१७॥ स विचार्य यथा युक्तं करिष्यति महाबलः संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यं भाषणं किल ॥१८॥ शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम् । व्यास उवाच– अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद्बलसंयुतम् ॥१९॥ हेतयुक्तं प्रगल्भं च विस्मितः प्रययौ तदा । गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनः पुनः ॥२०॥ प्रणम्य पादयोः प्राह्वः प्रत्युवाच नृपं च तम् । राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः ॥२१॥ दूत उवाच– सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिंतातुरो ह्यहम् । सत्यं प्रियं च राजेन्द्र वचनं दुर्लभं किल ॥२२॥ अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा । साक्षात्कुतः समायाता कस्य वा किंबलाऽबला ॥२३॥ न ज्ञानगोचरं किंचित्किं ब्रवीमि विचेष्टितम् । युद्धकामा मम दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी ॥२४॥ तया यत्कथितं सम्यक्तच्छृणुष्व महामते । मया

को जाकर तुम बतला दो कि बिना युद्ध किए कोई भी मेरा स्वामी अपनी सुन्दरता के बल पर नहीं बन सकता है ॥१४॥ अतएव मुझे बलपूर्वक जीत कर वे अपने मनोकूल रूप से मेरा पाणिग्रहण कर लें । राजन् मैं अबला हूँ । मैं युद्ध करने की इच्छा से यहाँ आयी हूँ ॥१५॥ यदि तुम समर्थ हो तो मेरे साथ युद्ध करो । वीरधर्म का आश्रय ग्रहण करो । यदि मेरे त्रिशूल को देखकर डरते हो तो पाताललोक में चले जाओ ॥१६॥ यदि तुम्हारी जीने की इच्छा हो तो स्वर्गलोक तथा भूलोक को छोड़कर पाताललोक में चलो जाओ । हे दूत ! तुम जाकर अपने स्वामी से मेरी इन बातों को आदर पूर्वक सुना दो ॥१७॥ वे महाबलवान् हैं । अतः विचार करके जो उचित होगा वह करेंगे । दूत का यही धर्म है कि वह सत्य बातें कह दे ॥१८॥ चाहे शत्रु को कहना पड़े अथवा अपने स्वामी से कहना पड़े उसे सत्य ही कहना चाहिए । तुम दूतधर्म को जानते हो । तुम शीघ्र इस काम को करो । **व्यासजी ने कहा–** देवी के नीतियुक्त तथा बल के दर्प से युक्त, सारयुक्त तथा युक्तियुक्त बातों को सनुकर वह दूत विस्मित हो गया और चला गया । दैत्याधिपति के पास जाकर बार-बार विचार करके ॥२०॥ अपने स्वामी को प्रणाम करके उसने नम्रतापूर्वक राजनीति युक्त मधुर वाणी में कहा ॥२१॥ **दूत ने कहा–** महाराज ! दूत को चाहिए कि वह सत्य तथा प्रिय बोले । अतएव मैं चिन्तित हो गया हूँ । हे राजन् ! ऐसी बातों का होना दुर्लभ हैं ॥२२॥ अप्रिय बातों को कहने पर राजा क्रुद्ध हो जाते हैं । फिर भी मैं सत्य बातें कह रहा हूँ । वह नारी कहाँ से आयी हैं ? क्यों आयी है ? किसकी पुत्री हैं ? यह प्रबल है कि निर्बल है? इन सारी बातों को मैं नहीं जान सका हूँ । उसकी ऐसी कोई चेष्टा मैंने नहीं देखी है; अतएव मैं कैसे जान सकता हूँ । मैंने यही देखा

बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः ।।२५।। सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा । यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पं च विधुनोति वै ।।२६।। तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल । न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम ।।२७।। तस्माद्युद्धयस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु । तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाऽहं समुपागतः ।।२८।। यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम् । सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी ।।२९।। निश्चला वर्तते भूप उद्योगं तद्विधीयताम् । व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः ।।३०।। पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम् ।** शुम्भ उवाच– **भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते ।।३१।। नार्येका योद्धुकामाऽस्ति मामाह्वयति सांप्रतम् । अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः ।।३२।। यद्रोचते निशुम्भात्र तत्कर्तव्यं मया किल ।** निशुम्भ उवाच– **न मया न त्वया वीर गन्तव्यं रणमूर्धनि ।।३३।। प्रेषयस्व महाराज त्वरितं धूम्रलोचनम् । स गत्वा तां रणे जित्वा गृहीत्वा चारुलोचनाम् ।।३४।। आगमिष्यति शुम्भोत्र विवाहः संविधीयताम् ।** व्यास उवाच– **तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः ।।३५।। कोपात्संप्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् ।** शुम्भ उवाच– **धूम्रलोचन गच्छाशु**

है कि वह युद्ध करना चाहती है और कटु बोलती है । वह गर्वीली है ।।२४।। हे महामते ! उसने जो कुछ भी कहा है उसे आप सुन लें । उसने कहा है कि मैंने अपनी बाल्यावस्था में विनोदपूर्वक एक प्रतिज्ञा अपने विवाह के विषय में सखियों के समक्ष कर ली है कि जो मुझे युद्ध में पराजित करके मेरे दर्प का दलन कर देगा ।।२५-२६।। अपने समान बल वाले उसको ही अपना पति बनाऊँगी । राजन् ! मैं अपनी प्रतिज्ञा को मिथ्या नहीं बना सकती हूँ।।२७।। अतएव हे धर्मज्ञ आप मेरे साथ युद्ध करके मुझे अपने वश में कर लीजिये । उसकी इन बातों को सुनकर मैं आपके पास आया हूँ ।।२८।। हे महाराज! अब आपको जो अच्छा लगे वही कार्य करें । वह युद्ध करने के लिए विल्कुल उद्यत है । सिंह पर बैठी है और आयुध धारण किए हुई है।।२९।। हे राजन्! वह अपने वचन पर अडिग है; अतएव उसके अनुकूल आप प्रयास कीजिये । **व्यासजी ने कहा–** राजा शुम्भ ने सुग्रीव की इस तरह की बातों को सुना ।।३०।। इसके बाद उसने अपने सन्निकट में विद्यमान अपने छोटे भाई निशुम्भ से पूछा **शुम्भ ने कहा–** हे महामते भ्रातः ! आप बतलाइये कि इस विषय में क्या किया जाय ?।।३१।। वह स्त्री युद्ध करना चाहती है और वह मुझको युद्ध करने के लिए बुला रही है । या तो मैं संग्राम करने जाता हूँ अथवा तुम सेना लेकर संग्राम करने जाओ ।।३२।। हे निशुम्भ तुम्हें जो अच्छा लगे वही मैं करूँगा । निशुम्भ ने कहा हे वीर ! न तो मुझे युद्ध करने जाना चाहिए और न आपको ।।३३।। महाराज आप धूम्रलोचन को भेज दीजिये । वह युद्ध में जाकर उसको हराकर उस सुन्दरी को पकड़कर ले आयेगा। उसके साथ हे शुम्भ ! आप विवाह कर लीजिये ।।३४।। **व्यासजी ने कहा–** अपने छोटे भाई की उस बात को सुनकर शुम्भ ने ।।३५।। क्रुद्ध होकर अपने सन्निकट में विद्यमान धूम्रलोचन को भेजा।

सैन्येन महताऽऽवृतः ॥३६॥ गृहीत्वाऽऽनय तां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम् । देवो वा दानवो वाऽपि मनुष्यो वा महाबलः ॥३७॥ तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हंतव्यस्तरसा त्वया । तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः ॥३८॥ शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा कार्यमनुत्तमम् । रक्षणीया त्वया साध्वी मुंचंती मृदुमार्गणान् ॥३९॥ यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी । तत्सहायाश्च हंतव्या ये रणे शस्त्रपाणयः ॥४०॥ सर्वथा सा न हंतव्या रक्षणीया प्रयत्नतः । व्यास उवाच– इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः ॥४१॥ प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे । असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा ॥४२॥ स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम् । दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः ॥४३॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम् । शृणु देवि महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहातुरः ॥४४॥ दूतं प्रेषितवान्पार्श्वं तव नीतिविशारदः । रसभंगभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम् ॥४५॥ तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने । वचसा तेन मे भर्ता चिंताविष्टमना नृपः ॥४६॥ बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः । दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव ॥४७॥ यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः । न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु

शुम्भ ने कहा– हे धूम्रलोचन ! इस विशाल सेना के साथ जाओ ॥३६॥ अपने बल के दर्प से दृप्त उस सुन्दरि को तुम पकड़ करके ले आओ । यदि कोई देवता, या दानव या मनुष्य उसकी सहायता करने आता है ॥३७॥ तो उसका तुम वध कर देना । उसके पश्चात् साथ में रहनी वाली उस काली को मारकर तुम उस अम्बिका को पकड़ कर लाना ॥३८॥ यह कार्य सर्वोत्तम है; अतएव इस कार्य को करके तुम शीघ्र लौट आओ । कोमल बाणों का प्रहार करने वाली उस देवी की भी रक्षा करना मारना मत ॥३९॥ हे वीर ! उसकी रक्षा तुम हर उपाय से करना; क्योंकि वह कोमल शरीर वाली कृशोदरी है। उसके सहायक जितने भी शस्त्रधारी हों उनका वध कर देना ॥४०॥ इस बात पर ध्यान रखना कि उसे तुम मारना मत उसकी रक्षा हर प्रकार से करना। **व्यासजी ने कहा–** राजा के द्वारा आदेश पाकर धूम्रलोचन शीघ्रतापूर्वक ॥४१॥ शुम्भ को प्रणाम करके सेना के साथ युद्ध करने के लिए चला गया । उसके साथ साठ हजार दुष्ट दानवों की सेना थी ॥४२॥ उसने देवी को देखा कि वे मनोहर उपवन में बैठी हैं । उस मृगनयनी को देखकर बड़ी ही नम्रता के साथ॥४३॥ वह युक्तियुक्त रस भरी बातों को कहने लगा । हे महाभागे ! देवि ! आप मेरी बात सुनें । महाराज शुम्भ आपके वियोग में व्याकुल हैं ॥४४॥ वे नीतियों के जानकार हैं । उन्होंने आपके पास मुझे अपना दूत बनाकर भेजा है । वे रसभंग के भय से उद्विग्न हैं अतएव आपके विषय में शान्ति नीति का उपयोग करते हैं ॥४५॥ वह दूत आपकी बातों को नहीं समझ सकने के कारण विपरीत बातें किया । उसकी बातों ने हमारे स्वामी चिन्तित हो गये हैं । हे रस के मर्म को जानने वाली सुन्दरि ! शुम्भ काम से मोहित हो गये हैं । वह दूत आपके हेतुगर्भित बात को नहीं समझ सका ॥४६॥ आपने जो

मानिनि ॥४८॥ रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः । रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः ॥४९॥ सुखदः प्रथमः कांते दुःखदश्चान्तिमः स्मृतः । जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल ॥५०॥ रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते । इति तज्ज्ञं विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः ॥५१॥ प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महताऽऽवृतम् । चतुराऽसि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु ॥५२॥ भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम् । पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥५३॥ जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित् । विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति ॥५४॥ भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी । एवं संगरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित् ॥५५॥ जित्वा त्वां सुखशय्यायां परिश्रांतां करिष्यति । रक्तदेहां नखाघातैर्दन्तैश्च खंडिताधराम् ॥५६॥ स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः । भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव ॥५७॥ दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये । वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम् ॥५८॥ भज शुम्भं गणाध्यक्षं माननीयातिमानिनी । मंदभाग्याश्च ते

यह कठिन बात कहा है जो मुझे संग्राम में जीत सकेगा उसी से मैं विवाह करूँगी ॥४७॥ वह उसके अभिप्राय को नहीं जान पाया । वह नहीं जानता था कि संग्राम दो प्रकार का होता है ॥४८॥ पात्र के भेद के कारण रतिजन्य संग्राम तथा उत्साहजन्य संग्राम । रतिजन्य संग्राम तो तुम्हारे साथ होगा और उत्साह जन्य संग्राम शत्रु के साथ ॥४९॥ पहले प्रकार का संग्राम सुखप्रद होता है और शत्रु के साथ किया जाने वाला संग्राम दुःखप्रद होता है । हे वरारोहे! आपके मन को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ॥५०॥ आपके हृदय में तो रतिजन्य संग्राम का ही संचार हो रहा है । स्त्रियों के अभिप्राय को जानने में निपुण ही समझकर महाराज शुम्भ ने मुझे आपके पास इतनी बड़ी सेना के साथ भेजा है ।. हे महाभागे ! आप तो चतुर हैं आप मेरी मृदु बातों को सुनें॥५१-५२॥ आप देवताओ के दर्प को विनष्ट करने वाले महाराज शुम्भ को अपना लें । आप उनकी पटरानी बनकर सर्वोत्तम सुखों को भोगें ॥५३॥ महाराज कामशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हैं । वे रतियुद्ध में आपको अवश्य परास्त करेंगे । आप अनेक प्रकार के हावों को अभिव्यक्त करें वे भी अपने भावों को अभिव्यक्त करेंगे॥५४॥ आपकी नर्मक्रीड़ा की साक्षिणी यह कालिका बनेगी और आपके साथ रहेगी । इसतरह कामशास्त्र के परमार्थ को जानने वाले हमारे महाराज आपको रतियुद्ध में परास्त करके आपके थक जाने पर आपको सुखशय्या पर शयन करायेंगे । वे अपने नखक्षत के द्वारा आपके शरीर पर लाल-लाल चिह्न बना देंगे । तथा दन्तक्षत के द्वारा आपके अधरों को खण्डित कर देंगे ॥५५-५६॥ महाराज जब आपको पसीने सें तर-बतर कर देंगे तो आपकी रतिसंग्राम की इच्छा पूर्ण हो जायेगी ॥५७॥ हे प्रिये ! महाराज शुम्भ ! आपको देखते ही आपके वशवर्ती हो जायेंगे । अतएव आप मेरी कल्याणकारी उचित सलाह को अवश्य मान लें ॥५८॥ आप अत्यधिक मानवती महिला हैं । अतएव दैत्यगणों के स्वामी महाराज शुम्भ को अपना पति बनाकर आप माननीयों की भी मान्या हो

नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये ॥५९॥ न तदर्हाऽसि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे । अशोकं कुरु राजानं पादाघातविकासितम् ॥६०॥ बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु ।

इति श्रीमद्देवीभागवते पंचमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः । प्रत्युवाच तदा काली प्रहस्य ललितं वचः ॥१॥ विदूषकोऽसि जाल्म त्वं शैलूष इव भाषसे । वृथा मनोरथांश्चित्ते करोषि मधुरं वदन् ॥२॥ बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना । कुरु युद्धं वृथा वादं मुंच मूढमतेऽधुना ॥३॥ हत्वा शुम्भं निशुम्भं च त्वदन्यान्वा बलाधिकान् । देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम् ॥४॥ क्वासौ मंदमतिः शुम्भः**

जायेंगी । जो लोग अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करना चाहते हैं वे लोग मन्दभाग्य हैं ॥५९॥ आप शस्त्रों से युद्ध करने योग्य नहीं है । आप तो सुरतक्रीडा प्रिया हैं । आप सुन्दरियों के पैरों के प्रहार से विकसित होने वाले अशोक वृक्ष के समान महाराज शुम्भ को काम पीडाजन्य शोक रहित बना दें ॥६०॥ सुन्दरियों के मदिरा के कुल्ले से विकसित होने वाली मौलश्री तथा अलिंगन से विकसित होने वाले कुरबक के समान महाराज आपके मुख की मदिरा को प्राप्त करके धन्य हो जायेंगे ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

भगवती द्वारा धूम्रलोचन का वध

व्यासजी ने कहा– हे महाराज धूम्रलोचन इतनी बातों को देवी से कहकर चुप हो गया ॥१॥ उस समय अट्टहास करके भगवती कालिका ने मधुरवणी में कहा– हे जाल्म ! तुम तो विदूषक हो । इसीलिए तुम शैलूष (नट) के समान बोल रहे हो । मधुर वाणी बोलकर तुम व्यर्थ ही मनोरथों को करते हो॥२॥ तुम बलवान् हो तथा सेना के साथ दुष्ट शुम्भ के द्वारा भेजे गये हो । मूर्ख ! तुम इन व्यर्थ की बातों को बन्द करो और युद्ध करो ॥३॥ शुम्भ, निशुम्भ

क्व वा विश्वविमोहिनी । अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः ॥५॥ सिंही किं त्वतिकामार्ता जंबुकं कुरुते पतिम् । करिणी गर्दभं वापि गवयं सुरभिः किमु ॥६॥ गच्छ शुम्भं निशुम्भं च वद सत्यं वचो मम । कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाऽधुना ॥७॥ व्यास उवाच— **कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः । तामुवाच महाभागः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥८॥ दुर्दर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहं च मदगर्वितम् । गृहीत्वैतां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल ॥९॥ रसभङ्गभयात्कालि बिभेमि त्विह सांप्रतम् । नोचेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये ॥१०॥** कालिकोवाच— **किं विकत्थसि मंदात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम् । स्वशक्त्या मुंच विशिखान्गंताऽसि यमसंसदि ॥११॥** व्यास उवाच— **तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम् । कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः ॥१२॥ देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः । तां स्तुवन्तो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः॥१३॥ तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चातिदारुणम् । बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥१४॥ कालिका बाणपातैस्तु हत्वा पूर्वं खरानथ । बभञ्ज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः ॥१५॥ स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव । बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत ॥१६॥ साऽपि चिच्छेद**

तथा तुम्हारा एवं अन्य बलवान् दैत्यों का वध करके देवी अपने घर चली जायेंगी । क्रुद्ध होकर देवी अपने बाणों के प्रहार से तुम सबों का वध करेंगी।।४।। कहाँ तो वह मूर्ख शुम्भ और कहाँ विश्वमोहिनी देवी । इन दोनों का विवाह तो संसार में अत्यन्त अनुचित होगा ।।५।। क्या सिंहनी अत्यन्त कामार्त होकर स्यार के साथ विवाह कर सकती है । क्या करिणी (मादा हाथी) गधे से अथवा कामधेनु गवय नीलगाय से व्याह करेगी ।।६।। तुम शुम्भ और निशुम्भ के पास चले जाओ और उन दोनों से मेरी बातें सत्य-सत्य सुना दो कि या तो वह युद्ध करे अथवा शीघ्र पाताललोक में चला जाय ।।७।। **व्यासजी ने कहा—** कालिका की बातों को सुनकर दैत्य धूम्रलोचन क्रोध से अपनी आँखें लाल करके कहा ।।८।। अरी काली ! अभी-अभी मैं तुमको तथा इस मदमत्त सिंह को मार कर इसको पकड़कर राजा के पास ले जाता हूँ ।।९।। अरी काली ! मैं तो इस बात के लिए डर रहा हूँ कि कहीं रसभङ्ग न हो जाय । अन्यथा मैं तुमको तीक्ष्ण बाणों से मार देता क्योंकि तुमको तो कलह करना ही प्रिय है ।।११।। **कालिका ने कहा—** मूर्ख ! तुम क्या बड़बडा रहे हो । धनुर्धारियों का यह धर्म नहीं है । अपनी शक्ति के अनुसार बाणों का प्रयोग कर लो, अब तुम यमलोक जाने वाले हो ।।११।। **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा—** कालिका की उस बात को सुनकर धूम्रलोचन ने एक सुदृढ धनुष को लेकर कालिका के ऊपर शाण पर तीक्ष्ण किये गये बाणों की वर्षा करने लगा ।।१२।। देवगण अपने श्रेष्ठ विमान पर बैठकर उसे देख रहे थे और इन्द्र आदि देवों ने देवी का जय-जयकार मनाया ।।१३।। इधर कालिका तथा धूम्रलोचन में बाण, खड्ग, गदा, शक्ति तथा मुसल आदि से भयंकर युद्ध हो रहा था ।।१४।। कालिका ने अपने बाणों के प्रहार से धूम्रलोचन के रथ में जुते हुए खच्चरों को मार दिया।

तरसा तस्य बाणानसङ्गतान् । मुमोचान्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका ॥१७॥ तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः । बभंज च रथं वेगात्सूतं
हत्वा खरानपि ॥१८॥ चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः । मुदं चक्रे सुराणां सा शङ्खनादं तथाऽकरोत् ॥१९॥ विरथः परिघं गृह्य
सर्वलोहमयं दृढम् । आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः ॥२०॥ वाचा निर्भर्त्सयनकालीं करालः कालसन्निभः । अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपे
पिगंलोचने ॥२१॥ इत्युक्त्वा सहसाऽऽगत्य परिघं क्षिपते यदा । हुंकारेणैव तं भस्म चकार तरसाऽम्बिका ॥२२॥ दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका
भयविह्वलाः । चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेति ब्रुवन्पथि ॥२३॥ देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम् । मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने
स्थिताः ॥२४॥ रणभूमिस्तदा राजन्दारुणा समपद्यत । निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा ॥२५॥ गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जंबुकास्तथा।
ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान्रणभूमिषु ॥२६॥ अंबिका तद्रणस्थानं त्यक्त्वा दूरस्थलांतरे । गत्वा चकार चाप्युग्रं शङ्खनादं भयप्रदम् ॥२७॥
तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुम्भः सद्मानि संस्थितः । दृष्ट्वाऽथ दानवान्भग्नानागतान्रुधिरोक्षितान् ॥२८॥ छिन्नपादकराक्षांश्च मञ्चकारोपितानपि ।

उसके बाद उसके सुदृढ रथ को तोड़ दिया और बार-बार अट्टहास किया ॥१५॥ हे भारत ! धूम्रलोचन दूसरे रथ पर चढ़कर क्रोध के मारे मानो जल रहा
था । उसने कालिका के ऊपर बाणों की भयंकर वर्षा की ॥१६॥ कालिका ने भी शीघ्रतापूर्वक उसके बाणों को बीच में ही अपने बाणों से काट दिया और
दूसरे भयंकर बाणों का प्रहार धूम्रलोचन के ऊपर किया ॥१७॥ उन बाणों के प्रहार से धूम्रलोचन के हजारो सहायक दैत्य मारे गये । उसी समय कालिका
ने धूम्रलोचन के दूसरे रथ को तथा उसके खच्चरों तथा सारथि को भी मार दिया ॥१८॥ उसके बाद कालिका ने अपने सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों का प्रहार
करके धूम्रलोचन के धनुष को भी काट दिया । उससे देवता प्रसन्न हो गये और देवी ने अपना शंख बजाया ॥१९॥ रथ के नष्ट हो जाने पर कुपित धूम्रलोचन
एक लौह निर्मित सुदृढ परिघ लेकर, अपनी वाणी से काली को डाँटता हुआ रथ के पीछले भाग में आ गया । काल के समान भयंकर **धूम्रलोचन ने कहा—**
अरी पीली आँखों वाली कुरूपे ! मैं आज ही तुम्हें मार डालता हूँ ॥२०-२१॥ इस तरह से कहकर सहसा आकर धूम्रलोचन ने देवी पर जब परिघ का
प्रहार किया तो अम्बिका ने अपने हुंकार मात्र से धूम्रलोचन को भस्म कर दिया ॥२२॥ भस्म हुए धूम्रलोचन को देखकर सभी सैनिक भयभीत होकर भाग
चले । वे रास्ते में हाय तात ! हाय तात ! कह रहे थे ॥२३॥ धूम्रलोचन को मरे हुए देखकर देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की॥२४॥ हे
राजन्! उस समय रणभूमि भयंकर हो गयी थी । क्योंकि वहाँ मारे गये दानव, घोड़े, खच्चर तथा हाथी मरे पड़े थे ॥२५॥ गिद्ध, कौंए, वट, बाज,
शृगाल, पिशाच और प्रेत युद्ध भूमि में पड़े हुए शवों को देखकर नाचते हुए चिल्लाने लगे ॥२६॥ अम्बिका उस रणभूमि से हटकर दूर दूसरे स्थान पर

भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रन्दमानाननेकशः ॥२९॥ वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः । कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना ॥३०॥ सैन्यं कुत्र गतं मन्दाः कथयन्तु यथोचितम् । कस्यायं शङ्खनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः ॥३१॥ गणा ऊचुः— बलं च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः । कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम् ॥३२॥ शङ्खनादोऽम्बिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते । हर्षदः सुरसङ्घानां दानवानां च शोककृत् ॥३३॥ यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो । रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः ॥३४॥ गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः । दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम् ॥३५॥ निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति । विचारं कुरु राजेन्द्र मन्त्रिभिर्मंत्रवित्तमैः॥३६॥ विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका । भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता ॥३७॥ निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढा मदोत्कटा । चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमंजसा ॥३८॥ सन्धिर्वा विग्रहो वाऽद्य स्थानं निर्याणमेव च । मन्त्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि ॥३९॥

चली गयी । उन्होंने अपने शंख की भयंकर ध्वनि की ॥२७॥ उस शख की ध्वनि को सुनकर ~~भवन में बैठा हुआ~~ शुंभ भागकर आये हुए लहुलुहान हुए दैत्यों को देखकर तथा कटे हाथ पैर वाले तथा खाट पर लदकर आये हुए दैत्यों को देखा तथा अनेक ऐसे दैत्यों को देखा जिनकी पीठ कटि तथ गर्दन टूट गये थे और चिल्ला रहे थे ॥२८-२९॥ उन सबों को देखकर शुम्भ तथा निशुम्भ ने पूछा वह धूम्रलोचन कहाँ गया ? तुमलोग भागकर कैसे चले आये और उस सुन्दर अंगों वाली को नहीं लाये ॥३०॥ हे मूर्खो ! बतलाओ कि सेना कहाँ चली गयीं ? यह भय को बढ़ाने वाली शंख की ध्वनि किसकी सुनायी दे रही है ?॥३१॥ **गणों ने कहा**— सम्पूर्ण सेना मारी गयी और धूम्रलोचन भी मारा गया । कालिका ने रणभूमि में अतिमानुष कर्म को किया है॥३२॥ अम्बिका के शंखनाद की ध्वनि सुनायी दे रही है । यह देवताओं को प्रहर्षित करने वाली तथा दानवों के शोक को बढ़ाने वाली है ॥३३॥ हे राजन् ! जब उस सिंह ने तथा कालिका की बाणों की वर्षा ने समस्त दैत्य सैनिकों को मार दिया, रथों को तोड़ डाला और घोड़े मार दिए गये ॥३४॥ उस समय आकाश में स्थित मरे हुए धूम्रलोचन तथा भागती हुई सेना को देखकर प्रसन्न होकर देवताओं ने फूलों की वर्षा की ॥३५॥ यह देखकर हमलोगों ने विचार किया कि हमलोगों की विजय नहीं हो सकती है । अतएव हे राजेन्द्र ! आप मन्त्रों के ज्ञाता मन्त्रियों के साथ विचार कीजिए ॥३६॥ महाराज यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अकेली जगदम्बिका बिना सेना की सहायता के ही आपलोगो के साथ युद्ध करने के लिए तैयार है ॥३७॥ वह अकेली नारी निर्भय है । बल के मद से दृप्त है सिंह पर सवार है । हे महाराज ! यह अद्भुत बात है । हमलोगों को उस देवी की सारी बातें अद्भुत प्रतीत होती हैं ॥३८॥ हे राजन् ! आप अपने मंत्रियों के साथ विचार कर लीजिये कि उसके साथ क्या किया जाय, सन्धि या युद्ध या पलायन । इन सारी बातों को आप विचार करके अपनी रुचि के अनुसार करें ॥३९॥ यद्यपि उस देवी के पास कोई सेना नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि उस देवी के ऊपर किसी भी विपत्ति के आने पर सभी

तत्सन्निधौ बलं नास्ति तथापि शत्रुतापन । पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यन्ति किलापदि ॥४०॥ समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशङ्करौ । लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः ॥४१॥ रक्षोगणाश्च गन्धर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा । तत्सहायाश्चमन्तव्याः समये सुरतापन ॥४२॥ अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम् । अम्बिकायाः सहायाशा तत्कार्याशा न काचन ॥४३॥ एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम् । का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः ॥४४॥ इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु । हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः ॥४५॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुम्भः परबलार्दनः । कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः ॥४६॥ भ्रातः कालिकयाऽद्यैव निहतो धूम्रलोचनः । बलं च शातितं सर्वं गणाः भग्नाः समागताः ॥४७॥ अम्बिका शंखनादं वै करोति मदगर्विता । ज्ञानिनां चैव दुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा ॥४८॥ तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते । बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी ॥४९॥ पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमतः परम् । अभोग्या चाम्बिका नूँनं कारणादत्र चागता ॥५०॥ युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम् । लघुं ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्यसंकटे ॥५१॥** निशुंभ उवाच– **न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा । युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयाऽनघ ॥५२॥ ससैन्योऽहं गमिष्यामि**

देवता उसकी सहायता करने के लिए आ जायेंगे ॥४०॥ समय आने पर उसके सन्निकट में ही विद्यमान श्रीहरि और शंकरजी उसकी सहायता करने के लिए आ जायेंगे । सभी लोकपाल उसके सन्निकट आकाश में स्थित हैं ॥४१॥ हे देवताओं को संतप्त करने वाले राजन् ! समय आने पर सभी देवता, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर तथा मनुष्य उस देवी के सहायक हो जायेंगे ॥४२॥ हमलोगों को तो लगता है कि अम्बिका इस युद्ध के कार्य में किसी की भी सहायता नहीं लेना चाहती है ॥४३॥ यह निश्चित है कि अकेले ही वह समस्त चराचर का विनाश करने में समर्थ है । केवल दैत्यों का विनाश करने के विषय में क्या कहना है ?॥४४॥ हे महाराज इन सारी बातों को जानकर आपका जैसा मन हो वैसा करें । अनुचरों को चाहिए कि वे अपने स्वामी को हितकारी, सत्य तथा सीमित बातों को बतला दें ॥४५॥ **व्यासजी ने कहा–** उन सैनिकों की बातों को सुनकर शुम्भ ने एकान्त में अपने भाई निशुम्भ से कहा ॥४६॥ हे भ्रात: आज ही कालिका ने धूम्रलोचन का वध कर दिया है । उसक. सारी सेना को उसने मार दिया और बचे हुए सैनिक वहाँ से पलायन करके यहाँ आ गये हैं ॥४७॥ मद से गर्विली बनी हुई कालिका अपने शंख की ध्वनि कर रही है । काल की गति को ठीक-ठीक रूप से ज्ञानी पुरुष भी नहीं जान पाते हैं ॥४८॥ दैव की ऐसी गति है कि वह तृण को भी वज्र के समान सुदृढ़ बना देता है, और वज्र को भी वह तृण के समान बलहीन बना देता है। दैव के विपरीत होने पर बलवान भी बलहीन हो जाता है ॥४९॥ अब तुम यह बतलाओ कि हमलोगों को क्या करना चाहिए । अम्बिका तो यहाँ किसी उद्देश्य से आयी है । अतएव वह हमलोगों के लिए भोग्या नहीं है ॥५०॥ यद्यपि तुम मेरे छोटे भाई हो, किन्तु मैं तुम्हें अपना बड़ा भाई मानता हूँ । इस

रणे तु प्रवराश्रितः । हत्वा तामगमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम् ॥५३॥ अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति । मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥५४॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा शुम्भः प्रोवाच चानुजम् । तिष्ठ त्वं चंडमुंडौ द्वौ गच्छेतां बलसंयुतौ ॥५५॥ शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम्। चण्डमुण्डौ महावीरौ तां हंतुं सर्वथा क्षमौ ॥५६॥ इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भः संभाष्य च महाबलौ । उवाच वचनं राजा चंडमुंडौ पुरःस्थितौ ॥५७॥ गच्छतं चंडमुंडौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ । हंतुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम् ॥५८॥ गृहीत्वाऽथ निहत्याजौ कालिकां पिंगलोचनाम् । आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम् ॥५९॥ सा नायाति गृहीताऽपि गर्विता चाम्बिका यदि । तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याऽऽहवमंडिता ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

संकट की घड़ी में हमलोग को क्या करना उचित है ? युद्ध अथवा पलायन ॥५१॥ शुम्भ की बातों को सुनकर **निशुम्भ ने कहा–** हे अनघ ! इस समय न तो पलायन करना उचित होगा आर न तो दुर्ग का संश्रय ग्रहण करना ठीक होगा । सबसे उत्तम मार्ग यही है कि उसके साथ युद्ध ही किया जाय ॥५२॥ मैं अपने बड़े-बड़े सैनिकों के साथ युद्ध करने जाऊँगा और कालिका का वध करके उस अम्बिका को बाँध करके लाऊँगा ॥५३॥ अथवा भाग्य के विपरीत होने के कारण यदि मैं मारा जाऊँ तो फिर आप उसके बाद जो उचित समझेंगे वह करेंगे ॥५४॥ इस तरह से निशुम्भ की बातों को सुनकर शुम्भ ने अपने अनुज से कहा तुम अभी नहीं जाओ, अभी मैं पहले चण्ड-मुण्ड को भेज रहा हूँ । वे अपनी सेना के साथ जायँ ॥५५॥ क्योंकि खरगोश को पकड़ने के लिए हाथी को नहीं भेजा जाता है । चण्ड और मुण्ड महाबलवान् हैं । वे दोनों उसको मारने में सर्वथा समर्थ हैं ॥५६॥ इस तरह निशुम्भ को कहकर शुम्भ ने चण्ड और मुण्ड से बात की । उसने अपने सामने उपस्थित चण्ड और मुण्ड से कहा ॥५७॥ हे चण्ड और मुण्ड ! आपदोनों अपनी सेना के साथ उस निर्लज्ज और मद के गर्व से गर्वीली स्त्री को मारने के लिए जाइये ॥५८॥ युद्ध में उस पीली आँखों वाली कालिका का वध करके आप दोनों उस अम्बिका को लेकर मेरे पास आइये । यह बहुत बड़ा कार्य है, इसे करके आपलोग आइये । यदि पकड़ लिए जाने पर भी वह मेरे पास नहीं आना चाहती है तो आपलोग अपने तीक्ष्ण बाणों से उसका वध कर दें ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ । जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महताऽन्वितौ ॥१॥ दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम् । ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः ॥२॥ बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम् । निशुम्भं च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम् ॥३॥ त्वमेकाऽसि वरारोहे कालिकासिंहसंयुता । जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम् ॥३॥ मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वाऽपि नरोऽपि वा । देवास्त्वां प्रेरयंत्येव विनाशाय तवैव ते ॥५॥ विमृश्य कुरु तन्वंगि कार्यं स्वपरयोर्बलम् । अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वं च कुरुषे मृषा ॥६॥ किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः । शुंभस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः ॥७॥ ऐरावतकरच्छेत्तुर्दंतिदारणकारिणः । जयिनः सुरसंघानां कार्यं कुरु मनोगतम् ॥८॥ वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम् । हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम् ॥९॥ दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधैः । सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः ॥१०॥ चतुराऽसि पिकालापे पश्य शुंभबलं महत् ।**

चण्ड तथा मुण्ड का देवी द्वारा वध

व्यासजी ने कहा– इस तरह से शुम्भ के द्वारा आज्ञा दिऐ जाने पर चण्ड और मुण्ड ये दोनों महाबलवान् वीर बहुत बड़ी सेना लेकर शीघ्र ही युद्ध करने के लिए चले गये ॥१॥ वहाँ उन दोनों ने देवताओं का कल्याण करने वाली देवी को देखा । उन दोनों ने शान्तिपूर्ण वाणी में देवी से कहा ॥२॥ हे बाले ! क्या तुम देवताओं की सेना को विनष्ट करने वाले इन्द्र पर भी विजय प्राप्त करने वाले शुम्भ तथा निशुम्भ को नहीं जानती हो ?॥३॥ हे बाले! आप तो कालिका और सिंह के साथ अकेले आयी हो और तुम सभी प्रकार की सेना से सम्पन्न शुम्भ पर विजय प्राप्त करना चाहती हो । यह तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है ॥४॥ तुमको सलाह देने वाली कोई स्त्री अथवा पुरुष तो है, नहीं और देवता तुम्हारा विनाश कर देना चाहते हैं । इसीलिए तुमको युद्ध करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं ॥५॥ हे सुन्दरि ! तुम अपने तथा शत्रु के बल का विचार करके काम करो । तुम अपनी अठारह भुजाओं का मिथ्याभिमान मत करो ॥६॥ बहुत अधिक व्यर्थ भुजाओं और भारप्रद आयुधों से देवताओं पर भी विजय प्राप्त करने वाले शुम्भ के सामने कौन सा लाभ होगा ?। वे युद्ध करने में अत्यन्त निपुण हैं ॥७॥ उन्होंने ऐरावत हाथी के सूँड को काट दिया था । और उसके दाँत को तोड़ दिया था । वे देव समूह को परास्त कर देने वाले हैं । इन सारी बातों को जानकर तुम्हारे मन में जो आये वह करो ॥८॥ हे कान्ते ! तुम व्यर्थ ही घमण्ड करती हो, मेरी बातों को तुम मान लो। हे सुन्दरि ! मेरी बातें तुम्हारी ही कल्याण के लिए है मेरी बात मान लेने से तुम्हारा दुःख दूर हो जायेगा और सुख मिलेगा ॥९॥ बुद्धिमान को चाहिए

प्रत्यक्षं सुरसंघानां मर्दनेन महोदयम् ॥११॥ प्रत्यक्षं च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल । संदेहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते ॥१२॥ शत्रुः सुराणां परमः शुंभः समरदुर्जयः । तस्मात्त्वां प्रेरयंत्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः ॥१३॥ तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वंचिताऽसि शुचिस्मिते । दुःखया तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका ॥१४॥ कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत् । देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यमब्रवम् ॥१५॥ भज शुम्भं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम् । चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम् ॥१६॥ ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुम्भशासनात् । निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम् ॥१७॥ व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा चंडस्य जगदम्बिका । मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीत् ॥१८॥ गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वंचकं वचः । त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भं कस्माद्भजे पतिम् ॥१९॥ न मे कश्चित्पतिः कार्यो न कार्यं पतिना सह। स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय ॥२०॥ शुम्भा मे बहवो दृष्ट्वा निशुम्भाश्च सहस्रशः । घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः ॥२१॥

कि वह दुःख देने वाले कार्यों को त्याग दे । शास्त्रज्ञों को चाहिए कि वे सुखप्रद कार्यों को ही करें ॥१०॥ हे कोकिल बयनि ! तुम चतुर हो, तुम शुम्भ के बल को प्रत्यक्षतः देख लो । उन्होंने देवताओं की सेना का मर्दन करके कितनी अधिक उन्नति की है ॥११॥ प्रत्यक्ष का परित्याग करके किसी बात का अनुमान से ज्ञान प्राप्त करना व्यर्थ होता है । कोई भी विद्वान् प्रत्यक्ष का परित्याग करके संदेह युक्त कार्य को करने के लिए नहीं तैयार होता है ॥१२॥ शुम्भ देवताओं के परम शत्रु हैं । उनको युद्ध में कोई भी परास्त नहीं कर सकता है । अतएव दैत्यों के स्वामी से पीड़ित देवता तुमको युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं ॥१३॥ हे सुन्दर मुसुकान करने वाली ! देवताओं ने तुम्हें धोखा दिया है । वे मीठी बातें करना जानते हैं । देवता तुम्हे दुःख देने के लिए तुम्हें सिखाते हैं । वे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं ॥१४॥ मनुष्य को चाहिए कि अपना काम करने वाले मित्रों का परित्याग करके धर्म मित्र का आश्रय ग्रहण करे । मैंने तुम्हे यह सत्य बातें बतलाया है । देवता अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं ॥१५॥ अतएव तुम इन्द्र विजेता शुम्भ का आश्रय ग्रहण कर लो । वे चतुर, शूरबीर, देखने में सुन्दर तथा कामशास्त्र के ज्ञाता हैं ॥१६॥ तुम शुम्भ की आज्ञा से सम्पूर्ण लोकों के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लोगी । तुम सर्वोत्तम निश्चय करके अपने सुन्दर पति का वरण कर लो ॥१७॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह से चण्ड की बातें सुनकर जगदम्बिका ने मेघ के समान गंभीर ध्वनि में जोर से गर्जना की और कहा ॥१८॥ हे धूर्त ! तुम यहाँ से चले जाओ । व्यर्थ की धूर्तताभरी बातें क्यों करते हो ? मैं श्रीहरि तथा शंकर आदि को छोड़कर शुम्भ को क्यों अपना पति बनाऊँगी ?॥१९॥ मुझे किसी को अपना पति नहीं बनाना है और न तो मुझे पति की आवश्यकता ही है । सुन लो । मैं ही सभी जीवों की स्वामिनी हूँ ॥२०॥ मैंने कई हजार शुम्भों तथा निशुम्भों को देखा है । मैंने प्राचीन काल में सैकड़ों दैत्यों का और दानवों का वध किया है ॥२१॥ मेरे ही सामने प्रत्येक युगों में देवसमूह विनष्ट हो जाते हैं । उसी तरह दैत्यों के समूह भी नष्ट हो जाते

ममाग्रे देववृन्दानि विनष्टानि युगे युगे । नाशं यास्यन्ति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै ॥२२॥ काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्यसंहारकारकः । वृथा त्वं
कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसन्ततेः ॥२३॥ कुरु युद्धं वीरधर्म रक्षायै त्वं महामते । मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः ॥२४॥ किं ते कार्यं
निशुंभेन शुम्भेन च दुरात्मना । वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम् ॥२५॥ शुंभो निशुंभश्चैवान्ये ये चात्र तव बांधवाः । सर्वे तवानुगाः
पश्चादागमिष्यन्ति सांप्रतम् ॥२६॥ क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम् । विषादं त्यज मन्दात्मन्कुरु युद्धं विशांपते ॥२७॥ त्वामहं
निहनिष्यामि भ्रातरं तव सांप्रतम् । ततः शुम्भं निशुम्भं च रक्तबीजं मदोत्कटम् ॥२८॥ अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाऽहं समरांगणे । गमिष्यामि
यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम् ॥२९॥ गृहाणास्त्रं वृथा दुष्ट कुरु युद्धं मयाऽधुना । किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम् ॥३०॥
व्यास उवाच– **तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चंडमुण्डौ क्रुधान्वितौ । ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ ॥३१॥ साऽपि शङ्खस्वनं चक्रे पूरयन्ती दिशो दश।
सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद्बली ॥३२॥ तेन नादेन शक्राद्या जहर्षुरमरास्तदा । मुनयो यक्ष गन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः॥३३॥ युद्धं
परस्परं तत्र जातं कातरभीतिदम् । चण्डिकाचण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः ॥३४॥ चण्डमुक्ताञ्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः । मुमोच पुनरुग्रान्सा**

हैं । आज भी वही समय आ गया है । इस समय दैत्यों के संहार का समय है । तुम अपने सन्तानों की रक्षा करने के लिए युद्ध करो । मरण तो निश्चित
है इसीलिए महापुरुष अपने यश की रक्षा करते हैं ॥२४॥ तुमको शुम्भ और निशुम्भ से क्या लेना-देना है तुम वीर धर्म को प्राप्त करके देवताओं के
स्वर्गलोक में चले जाओ ॥२५॥ शुम्भ, निशुम्भ आदि जितने भी तुम्हारे बान्धव हैं वे सभी मरकर तुम्हारे पीछे स्वर्गलोक में जायेंगे । मैं आज क्रमशः सभी
दैत्यों का विनाश करूँगी । मूर्ख विषाद का परित्याग करके हमारे साथ युद्ध करो ॥२७॥ इस समय मैं तुम्हें तथा तुम्हारे भाई को मारूँगी । उसके बाद मदमत्त
शुम्भ, निशुम्भ तथा रक्तबीज को मारूँगी ॥२८॥ दूसरे भी दैत्यों को समराङ्गण में मारकर मैं अपने स्थान पर चली जाऊँगी । अतएव तुम तो युद्ध करो
अथवा जल्दी से भग जाओ ॥२९॥ अरे दुष्ट ! तुम अपना शस्त्र उठाओ और मेरे साथ युद्ध करो । तुम कायरों को प्रिय लगने वाली इन बातों को क्या
बोल रहे हो ?॥३०॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी के द्वारा इस प्रकार से प्रेरित किए जाने पर चण्ड और मुण्ड दोनों दैत्य क्रुद्ध हो गये । बल से दृप्त बने
हुए वे दोनों अपने धनुष की प्रत्यञ्चा से घोर शब्द किये ॥३१॥ देवी ने भी दशो दिशाओं को ध्वनित करते हुए अपने शंख को बजाया । उसी समय
बलवान् सिंह ने भी क्रुद्ध होकर घोर गर्जना किया ॥३२॥ उस ध्वनि से इन्द्र इत्यादि देवता प्रसन्न हो गये । मुनिगण, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध
तथा साध्यगण प्रसन्न हो गये ॥३३॥ उसी समय चण्डिका तथा चण्ड में परस्पर में बाण, खड्ग, तथा गदा आदि से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया जो

बाणांश्च पन्नगानिव ॥३५॥ गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा । शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः ॥३६॥ मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं
पपात तरसा रणे । मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः ॥३७॥ बाणजालं महद्दृष्ट्वा क्रुद्धा तत्राम्बिका भृशम् । कोपेन वदनं तस्या बभूव
घनसन्निभम् ॥३८॥ कदलीपुष्पनेत्रं च भ्रुकुटीकुटिलं तदा । निष्क्रान्ता च तदा काली ललाटफलकाद् द्रुतम् ॥३९॥ व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा
गजचर्मोत्तरीयका । मुंडमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा ॥४०॥ खड्गपाशधराऽतीव भीषणा भयदायिनी । खट्वांगधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा॥४१॥
विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयंती मुहुर्मुहुः । विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान् ॥४२॥ करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता । मुखे चिक्षेप
दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः ॥४३॥ गजान्घंटान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे । सारोहान्भक्षयित्वाऽऽजौ साऽट्टहासं चकार ह ॥४४॥ तथैव
तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह । निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्बयन्यतिभैरवम् ॥४५॥ हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ। छादयामासतुर्देवीं
बाणासारैरनन्तरैः ॥४६॥ चण्डश्चण्डकरच्छायं चक्रं चक्रधरायुधम् । चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः ॥४७॥ नदंतं वीक्ष्य तं काली रथांगं

कायरों को भयभीत कर देने वाला था ॥३४॥ देवी ने चण्ड तथा मुण्ड के बाणों को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया । सर्प के समान अपने भयंकर
बाणों से उन दोनों पर प्रहार किया ॥३५॥ उस समय बाणों से आकाश उसी तरह से भर गया जिस तरह वर्षा के बाद कृषकों को भय देने वाले टिड्डियों
से आकाश भर जाता है ॥३६॥ मुण्ड भी अपने सैनिकों के साथ शीघ्रतापूर्वक युद्ध में कूद पड़ा । परम भयंकर वह दैंत्य क्रुद्ध होकर बाणों की वर्षा करने
लगा ॥३७॥ बाण समूह को देखकर अम्बिका अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं । क्रोध के कारण उनका मुख मेघ के समान श्यामवर्ण का हो गया ॥३८॥ उनकी
भृकटी टेढी हो गयी और आँखें कदली पुष्प के समान लाल हो गयीं । उसी समय उनके ललाट से काली का प्रादुर्भाव हो गया ॥३९॥ वे बाघ का चर्म
पहने थी और हाथी के चर्म को ओढे हुई थी । वे मुण्डों की माला पहने हुई थीं और उनका पेट सुखे हुए तलाब के समान था ॥४०॥ वे खड्ग और
पाश धारण किए हुयी थीं उनका भयंकर आकार था । उनको देखकर भय उत्पन्न हो जाता था । वे दूसरी कालरात्रि के समान अपने हाथ में खड्ग धारण
किए हुयी थीं ॥४१॥ वे मुँह खोलकर अपनी जीभ लपलपा रही थीं । विस्तृत जंघों वाली वे देवी उस समय वेगपूर्वक दैत्यों को मारने लगीं ॥४२॥ वे
देवी बड़े-बड़े वीरों को पकड़कर शीघ्र अपने मुख में डाल देती थीं । अपने दाँतों से उन सबों को पीस देती थीं ॥४३॥ घण्टा वाले हाथियों को पकड़कर
वे अपने मुख में रख लेती थीं और सवारों के साथ उन हाथियों को खाकर अट्टहास करती थीं ॥४४॥ उसी तरह घोड़ो ऊँटो को सारथियों के साथ
अपने मुख में डालकर अत्यन्त भयंकर रूप से चबा रही थीं ॥४५॥ अपनी सेना को विनष्ट होते हुए देखकर चण्ड और मुण्ड दोनों ने बाणों की वर्षा

च रविप्रभम् । बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम् ॥४८॥ तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डं चंडी शिलाशितैः । मूर्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो
भृशम् ॥४९॥ पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा । चकार शरवृष्टिं च कालिकोपरि कोपतः ॥५०॥ चंडिका मुंडनिर्मुक्तां शरवृष्टिं
सुदारुणाम् । ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकार तिलशः क्षणात् ॥५१॥ अर्धचंद्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः । पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां
मदवर्जितः॥५२॥ हाहाकारो महानासीद्दानवानां बले तदा । जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः ॥५३॥ विहाय मूर्छां चंडस्तु संगृह्य महतीं
गदाम् । तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे ॥५४॥ वंचयित्वा गदाघातं तं बबंध महासुरम् । तरसा बाणपाशेन मंत्रमुक्तेन कालिका ॥५५॥
उत्थितस्तु तदा मुण्डो बद्धं दृष्ट्वाऽनुजं बलात् । आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम् ॥५६॥ आगच्छंतं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम्।
बबंध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम् ॥५७॥ गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चंडमुंडौ शशाविव । कुर्वती विपुलं हासमाजगामांबिकां प्रति ॥५८॥
आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये । रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ ॥५९॥ तावानीतौ तदा वीक्ष्य चंडिका तौ वृकाविव । अम्बिका

करके देवी को ढँक दिया ॥४६॥। चण्ड ने भी सूर्य के समान चमकते हुए भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र को उठाकर देवी पर बड़े वेग से चलाया और
बार-बार गर्जना करने लगा ॥४७॥ गरजते हुए चण्ड को देखकर देवी ने अपने एक ही बाण से उस चमकते हुए सुन्दर चक्र को काटकर गिरा दिया ॥४८॥
और शाण पर चढाकर तीक्ष्ण किये गये बाणों से उसके ऊपर प्रहार किया । उससे चण्ड मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा; क्योंकि देवी के बाणों से बहुत
अधिक पीड़ित हो गया था ॥४९॥ अपने भाई को गिरे हुए देखकर मुण्ड दुःखी हो गया और उसने क्रुद्ध होकर कालिका के ऊपर बाणों की वर्षा की ॥५०॥
चण्डिका ने भी भयंकर बाणों की वर्षा की और देवी ने बलपूर्वक छोड़े गये अपने ईषिकास्त्र के द्वारा उन बाणों को तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर
दिया॥५१॥ उसके पश्चात् उन्होंने अपने अर्द्धचन्द्र बाण के द्वारा उसके ऊपर प्रहार किया और मद से रहित होकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥५२॥ उस
समय दानवों की सेना में हाहाकार मच गया आकाश में स्थित देवगण व्यथारहित होकर प्रसन्न हो गये ॥५३॥ मूर्छा से जगकर चण्ड अपने हाथ में विशाल गदा
लेकर वेगपूर्वक कालिका की दाहिनी भुजा पर प्रहार किया ॥५४॥ उस गदा के प्रहार को विफल बनाकर कालिका ने मंत्र पढ़कर अपने बाणपाश से चण्ड को
बलपूर्वक बाँध लिया ॥५५॥ मुण्ड ने जब अपने छोटे भाई को पाश में बँधे हुए देखा तो वह मूर्छा से उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ में सुदृढ शक्ति लेकर
कालिका की ओर दौड़ पड़ा ॥५६॥ काली ने जब मुण्ड को आते हुए देखा तो उस दूसरे भाई को भी उन्होंने पाश में बाँध लिया ॥५७॥ उन दोनों को खरगोश
के समान पकड़कर प्रचुरमात्रा में हास करती हुई काली अम्बिका के पाश आयीं ॥५८॥ आकर काली ने चण्डिका से कहा– हे प्रिये ! युद्ध रूपी यज्ञ की

कालिकां प्राह माधुरीसंयुतं वचः ॥६०॥ वधं मा कुरु मा मुंच चतुराऽसि रणप्रिये । देवानां कार्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया ॥६१॥ व्यास उवाच– इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः । युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते ॥६२॥ आलंभं च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते । इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन सिरसी तयोः ॥६३॥ चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा । एवं दैत्यौ हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चांबिका ॥६४॥ कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम् । चंडमुंडौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिका । चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः । पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति ॥१॥ भिन्नांगा विशिखैः

पूर्णाहुति के लिए युद्ध में दुर्जय इन दो पशुओं को लेकर मैं आयी हूँ । इन दोनो को तुम स्वीकार करो ॥५९॥ भेड़िये के समान उन दोनो को उपस्थित देखकर अम्बिका ने कहा हे रणप्रिये ! तुम तो चतुर हो । तुम इन दोनों को न मारो और न छोड़ो । तुम्हें देवताओं के कार्य की सिद्धि शीघ्र करना चाहिए॥६१॥ **व्यासजी ने कहा–** अम्बिका की इस वाणी को सुनकर कालिका ने कहा कि युद्ध रूपी यज्ञ में खड्ग को स्तम्भ बतलाया गया है ॥६२॥ मैं इन दोनों की बलि चढ़ाऊँगी जिससे कि हिंसा न हो । यह कहकर कालिका ने अपने खड्ग से दोनों के शिर को काट दिया और प्रसन्नता पूर्वक उनदोनों के खून को पी गयी । इस तरह देवी ने उन दोनों दानवों को मार दिया । अम्बिका ने प्रसन्न होकर कहा ॥६४॥ तुमने यह देवताओं का कार्य किया है अतएव प्रसन्न होकर मैं तुम्हें एक वरदान दे रही हूँ । हे कालिके ! चूकि तुमने चण्ड और मुण्ड का वध किया है अतएव तुम्हारा लोक में चामुण्डा नाम विख्यात होगा॥६५॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२६॥

रक्तबीज का युद्ध करने के लिए प्रस्थान

व्यासजी ने कहा– उन दोनों को मरा हुआ देखकर मरने से बचे हुए जो सैनिक थे भागकर राजा शुम्भ के पास चले गये ॥१॥ उनमें से कुछ सैनिकों

केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा । रुधिरस्त्रावदेहाश्च रुदंतोऽभिययुः पुरे ॥२॥ गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चकुर्बुंबारवं मुहुः । रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य
कालिका ॥३॥ तया हतौ महावीरौ चंडमुंडौ सुरार्दनौ । भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः ॥४॥ भीतिदं च रणस्थानं कृतं कालिकया
प्रभो । पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥५॥ शोणितौघवहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा । केशशैवलिनी भग्नरथचक्रविराजिता ॥६॥
छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुंबीफलान्विता । भयदा कातराणां वै सुराणां मोदवर्धिनी ॥७॥ कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम् । क्रुद्धा
देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः ॥८॥ सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर । तथैव कालिका देवी हन्ति बाणैरनेकधा ॥९॥ तस्मात्त्वमपि
राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम् । करोषि सहितो भ्रात्रा शुम्भेन कुपिताशयः ॥१०॥ किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी । यस्या हेतोर्महाराज
हन्तुमिच्छसि बांधवान् ॥११॥ दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ । अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत् ॥१२॥ चित्रं पश्य विधेः कर्म
यदधीनं जगत् प्रभो । निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयाऽनया ॥१३॥ जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि सांप्रतम् । एका प्रार्थयते बाला

के अङ्ग बाणों से कट गये थे, तो कुछ के हाथ कट गये थे । इस तरह से वे खून से लथपथ होकर रोते हुए गये ॥२॥ शुम्भ के पास जाकर उन सैनिकों
ने घिघियाते हुए कहा– हे महाराज ! आप हमलोगों को बचाइये । कालिका हमलोगों को खाये जा रही है ॥३॥ उसने देवताओं को परास्त करने वाले
चण्ड और मुण्ड दोनों को मार दिया । सभी सैनिकों को उसने खा लिया । भयभीत होकर भाग जाने के कारण हमलोग बचे हुए हैं ॥४॥ कालिका ने
रणभूमि को भयंकर बना दिया है । उसने हाथीसवार ऊँटसवार तथा पैदल सैनिकों को काटकर रणभूमि को मूर्दों से पाट दिया है । अतएव रणभूमि डरावनी
हो गयी है ॥५॥ उस रणभूमि में खून की नदी प्रवाहित हो रही है । उस नदी के माँस ही कीचड़ हैं । मरे सैनिकों के केश ही सेवार हैं और टूटे हुए
रथ के चक्के ही आवर्त हैं ॥६॥ कटी हुई भुजाएँ आदि ही उसके मत्स्य हैं । कटे हुए सैनिकों के शिर ही तुम्बीफल हैं । उसको देखकर कायर पुरुषों
को भय लगता है और देवताओं को प्रसन्नता होती है ॥७॥ हे महाराज ! आप अपने वंश की रक्षा करें । शीघ्र ही पाताल चल चलें । अन्यथा क्रुद्ध होकर
देवी हमलोगों का विनाश कर देगी इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥८॥ हे दानवेश्वर ! देवी का सिंह भी दानवों को खाता है । उसी तरह से
कालिका भी अनेक प्रकार के बाणों का प्रयोग करती है । हे महाराज ! आप भी क्रुद्ध होकर अपने भाई निशुम्भ के साथ मरने के लिए व्यर्थ ही तैयार
हैं ॥१०॥ इस नारी से आपको कौन सा लाभ होने वाला है कि इस कुलविनाशिनी से आप अपने बान्धवों का वध करवाना चाहते हैं ॥११॥ विजय और
पराजय तो भाग्याधीन होते हैं । कोई भी बुद्धिमान् थोड़े से लाभ के लिए बहुत अधिक दुःख के साधन को नहीं प्राप्त करना चाहता है ॥१२॥ आप विधि

युद्धायेति सुसंभ्रमः ॥१४॥ पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने । वरदानाय संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१५॥ धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत । तदा त्वयाऽमरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल ॥१६॥ देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम । सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंलिङ्गवाचकादपि ॥१७॥ तस्मात्त्वां हन्तुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो । युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विचार्यैवं धियाऽधुना ॥१८॥ देवी ह्येषा महामाया प्रकृतिः परमा मता । कल्पांतकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी ॥१९॥ उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा । त्रिगुणा तामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता ॥२०॥ अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता । वेदमाता च गायत्री सन्ध्या सर्वसुरालया ॥२१॥ निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धिप्रदाऽव्यया । आनन्दाऽऽनन्ददा गौरी देवानामभयप्रदा ॥२२॥ एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावं त्यजानया । शरणं व्रज राजेन्द्र देवी त्वां पालयिष्यति ॥२३॥ आज्ञाकारी भवैतस्याः संजीवय निजं कुलम् । हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवन्तु चिरायुषः ॥२४॥ व्यास उवाच– **इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः । उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्य गुणान्वितम् ॥२५॥** शुम्भ उवाच– **मौनं कुर्वन्तु भो मन्दा यूयं भग्ना रणाजिरात् । शीघ्रं गच्छत**

के विचित्र कर्म को देखिए जिसके अधीन यह सम्पूर्ण जगत् है । इस एक ही स्त्री के द्वारा अनेक दानव मार दिए गये ॥१३॥ आपने लोकपालों को जीत लिया है और सेना के साथ हैं; किन्तु अकेली यह नारी आपको युद्ध करने के लिए ललकार रही है ॥१४॥ आपने प्राचीन काल में पुष्कर तीर्थ में जाकर तपस्या की है । आपको वरदान देने के लिए लोकपितामह ब्रह्माजी आये ॥१५॥ आपसे ब्रह्माजी ने वरदान माँगने के लिए कहा । उस समय आपने ब्रह्माजी से अपने अमर होने का वरदान माँगा ॥१६॥ आपने कहा कि देवताओं, दैत्यों और मनुष्यों से मेरी मृत्यु न हो । किञ्च पुल्लिङ्ग शब्दों के वाच्यभूत सर्प, किन्नर तथा यक्षों से भी मेरी मृत्यु न हो ॥१७॥ इसीलिए यह श्रेष्ठ नारी आपको मारने की इच्छा से यहाँ आयी है । हे राजन् ! इस समय आप विचार कीजिये और युद्ध मत कीजिये ॥१८॥ यह देवी महामाया है यह परा प्रकृति है । हे राजेन्द्र ! कल्पान्तर की बेला आने पर यही जगत् का संहार करती है ॥१९॥ यही लोकों की सृष्टि करती हैं और देवताओं की स्वामिनी है । यह तीनों गुणों (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) से युक्त रहने वाली तामसी देवी है और सभी शक्तियों से सम्पन्न है ॥२०॥ यह देवी अजेय, अक्षय्य, नित्य, सर्वज्ञ, वेदमाता, गायत्री, सन्ध्या तथा समस्त देवताओं को आश्रय प्रदान करने वाली है ॥२१॥ यह निर्गुण, सगुण, सिद्ध, अव्यय तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली है । यही आनन्द देने वाली गौरी तथा आनन्द प्रदायिनी है । यह सभी देवताओं को अभय प्रदान करने वाली है ॥२२॥ हे महाराज ! इसबात को जानकर आप अपने वैराग्य का परित्याग कर दें । हे महाराज ! आप इसके शरण में चले जाइये यह आपका पालन अवश्य करेगी ॥२३॥ आप इसकी आज्ञा का पालन करने वाले बन जायँ और अपने वंश को विनष्ट होने से बचा लें । मरने से जो दैत्य बच गये हैं वे ही दीर्घायु बन जायेंगे ॥२४॥ **व्यासजी ने कहा**– उन सैनिकों की बात

पातालं जीविताशा बलीयसी ॥२६॥ दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिन्ताऽत्र जये मम । देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीना वयं यथा ॥२७॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽथ यमोऽग्निर्वरुणस्तथा । सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल ॥२८॥ का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति । उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता ॥२९॥ सर्वथैवं विचार्यैव न शोचन्ति बुधाः क्वचित् । स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात् ॥३०॥ सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम् । काले भवति संप्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम् ॥३१॥ ब्रह्मा पतति काले स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः । नाशङ्गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः ॥३२॥ तथाऽहमपि कालस्य वशगः सर्वथाऽधुना । नाशं जयं वा गन्ताऽस्मि स्वधर्मपरिपालनात् ॥३३॥ आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल । कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम् ॥३४॥ करिष्याम्यद्य संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह । जयो वा मरणं वाऽपि स्वीकरोमि यथा तथा ॥३५॥ दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः । युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानंत्यभिभाषितुम् ॥३६॥ उद्यमेन विना कामं न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः । कातरा एव जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥३७॥ अदृष्टं बलवन्मूढाः प्रवदन्ति न पण्डिताः । प्रमाणं तस्य सत्त्वे

को सुनकर वीरवर्य शुम्भ ने तड़प कर कहा ॥२५॥ **शुम्भ ने कहा**— मूर्खों ! तुमलोग युद्धभूमि से भागकर आये हो । तुमलोग चुप रहो । तुमलोगों को जीवित रहने की अत्यधिक इच्छा है, अतएव तुमलोग भागकर पाताललोक में चले जाओ ॥२६॥ यह सारा संसार दैवाधीन है, अतएव मुझे विजय के विषय में क्या चिन्ता हो सकती है ? हमलोगों के ही समान ब्रह्मा आदि-देवता भी दैवाधीन हैं ॥२७॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्रमा तथा इन्द्र भी दैवाधीन ही हैं ॥२८॥ अतएव मूर्खों ! मुझको कौन सी चिन्ता हो सकती है ? जो होने वाला है वह तो होयेगा ही । उद्योग भी उसी तरह का होने लगता है जैसी भवितव्यता होती है ॥२९॥ इसी तरह से विचार करके विद्वान् पुरुष चिन्ता नहीं करते हैं । ज्ञानी पुरुष मृत्यु के भय से अपने धर्म का त्याग नहीं करते हैं ॥३०॥ समय के आने पर दैव द्वारा निर्धारित, सुख, दुःख, आयु, जीवन तथा मरण आदि की प्राप्ति होती है ॥२१॥ आयु के समाप्त हो जाने पर ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि सभी देवताओं का विनाश हो जाता है । उसी तरह मैं भी काल के अधीन हूँ । अतएव अपने वीरधर्म का पालन करते हुए या तो मर जाऊँगा अथवा मुझे विजय श्री की प्राप्ति होगी ॥३३॥ इस स्त्री के द्वारा युद्ध करने के लिए आहूत किये जाने पर भागकर मैं सैकड़ो वर्ष तक कैसे जीवित रह सकता हूँ ॥३४॥ मैं आज संग्राम करूँगा, जो होने वाला होगा वह होकर ही रहेगा । मुझे विजय मिले या मृत्यु, उसे मैं स्वीकार करूँगा ॥,३५॥ उद्योगवादियों का कहना है कि दैववाद मिथ्या है जो लोग उनके कथन का तात्पर्य समझते हैं वे उनकी बातों को युक्तियुक्त मानते हैं ॥३६॥ उद्यम के बिना मनोरथ की सिद्धि नहीं होती है; जो कायर व्यक्ति होता है, वही कहता है कि जो होने वाला होगा वह होयेगा

किमदृश्यं दृश्यते कथम् ॥३८॥ अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका । अवलम्बम्विनैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा ॥३९॥ चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी । उद्यमेन बिना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा ॥४०॥ उद्यमे च कृते कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा । कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि ॥४१॥ देशं कालं च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम् । कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा ॥४२॥ व्यास उवाच– **इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजं महासुरम् । प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महताऽऽवृतम् ॥४३॥** शुंभ उवाच– **रक्तबीज महाबाहो गच्छ त्वं समरांगणे । कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम् ॥४४॥** रक्तबीज उवाच– **महाराज न ते कार्या चिन्ता स्वल्पतराऽपि वा । अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव ॥४५॥ पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया । दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात् ॥४६॥** व्यास उवाच– **इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः । जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः । निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरि स्थिताम् ॥४८॥ तमागतं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् । भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम् ॥४९॥ श्रुत्वा शंखस्वनं चोग्रं**

ही ॥३७॥ मूर्खलोग ही अदृष्ट को बलवान् बतलाते हैं । पण्डित पुरुष ऐसा नहीं मानते हैं । उस अदृष्ट में प्रमाण ही क्या है ? जो अदृश्य है, वह दिखायी कैसे पड़ेगा । आज तक अदृष्ट को किसी ने देखा है क्या ?। अदृष्ट मूर्खों के लिए एक विभीषका मात्र है । उसे किसी ने भी नहीं देखा है । अदृष्ट का कोई भी आधार नहीं है। विपत्ति पड़ने पर मन के सन्तोष के लिए वह एक सहारा अवश्य बन जाता है ॥३९॥ कोई चक्की चलाने वाली स्त्री चक्की के समीप भाग्य का भरोसा करके यदि बैठ जाय तो वह चक्की आँटा तो नहीं पीस देगी ॥४०॥ किन्तु यह अवश्य देखा जाता है कि प्रयत्न करने पर कार्य की सिद्धि अवश्य होती है । कभी-कभी प्रयास में कमी रह जाने पर कार्य की सिद्धि नहीं भी होती है ॥४१॥ आचार्य बृहस्पति का कहना है कि देश, काल, अपना बल तथा शत्रु का बल इन सारी बातों को जानकर युद्ध किया जाय तो सफलता अवश्य मिलती है ॥४२॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से निश्चय करके शुम्भ ने रक्तबीज नामक महादैत्य को विशाल सेना के साथ युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए भेजा ॥४३॥ **शुम्भ ने कहा–** महाबाहो रक्तबीज तुम युद्धभूमि में जाओ और अपने बल के अनुसार युद्ध करो ॥४४॥ **रक्तबीज ने कहा–** महाराज ! आपको चिन्ता थोड़ी सी भी नहीं करनी चाहिए । मैं ही इस जगदम्बिका को मारकर उसको आपकी वशवर्तिनी बना दूँगा ॥४५। आप मेरी युद्ध की चतुरता को देखें । मेरे सामने वह देवताओं की प्रिय नारी क्या है ?। उसको युद्ध में परास्त करके मैं आपकी दासी बना दूँगा ॥४६॥ **व्यासजी ने कहा–** हे कुरुश्रेष्ठ जनमेजय ! इस तरह से कहकर महादैत्य रक्तबीज रथ पर बैठकर अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए गया ॥४७॥ उसके साथ हाथी, घोड़े तथा पैदल सेनायें थीं । वह रथ पर बैठकर युद्ध करने के

रक्तबीजोऽतिवेगवान् । गत्वा समीपे चामुण्डां बभाषे वचनं मृदु ॥५०॥ रक्तबीज उवाच– **बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल । शङ्खनादेन तन्वङ्गि वेत्सि किं धूम्रलोचनम् ॥५१॥ रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाऽहंत्वत्सकाशमिहागतः । युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे॥५२॥ पश्याद्य मे बलं कान्ते दृष्टा ये कातरास्त्वया । नाहं पंक्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि ॥५३॥ वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया । पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठीकृताऽथ वा ॥५४॥ साहित्यतंत्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि । शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम् ॥५५॥ रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ । शृंगारकः शांतिरसो विद्वज्जनसभासु च ॥५६। तयोः शृंगार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः । विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः ॥५७॥ शच्येंद्रः शैलसुतया शंकरः सह शेरते । वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः॥५८॥ एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम् । अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः ॥५९॥ भवन्ति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वंचिताः । असंसाररसज्ञास्ते वञ्चिता वञ्चनापरैः ॥६०॥ मधुरालापनिपुणै रताः शांतिरसे हि ते । क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे॥६१॥**

लिए निकला । उस समय देवी पर्वत के शिखर पर बैठी थीं ॥४८॥ उसको युद्ध करने के लिए आये हुए देखकर देवी ने अपना शंख बजाया । वह शंख ध्वनि सभी दैत्यों को भय तथा देवताओं को हर्ष प्रदान करने वाली थी ॥४९॥ उस शंख की ध्वनि को सुनकर रक्तबीज वेगपूर्वक देवी के पास गया और मधुर शब्दों में कहने लगा ॥५०॥ **रक्तबीज ने कहा–** हे बाले ! तुम मुझे कायर समझकर अपने शंख की ध्वनि से डराना चाहती हो क्या ? क्या तुम मुझे धूम्रलोचन समझ रही हो ॥५१॥ मेरा नाम रक्तबीज है और मै यहाँ पर युद्ध करने के लिए आया हूँ । हे पिकवयनि ! यदि युद्ध करने की इच्छा हो तो तुम तैयार हो जाओ । मुझे तुम से कोई भय नहीं है ॥५२॥ हे कान्ते ! तुम मेरा बल देखना । जिन लोगो को तुमने देखा है वे तो कायर थे । मैं उनलोगों की पंक्ति में नहीं हूँ । जिस तरह से चाहो मेरे साथ युद्ध करो ॥५३॥ किन्तु यदि तुमने वृद्धपुरुषों की सेवा की है और नीतिशास्त्र का श्रवण किया है । अर्थ विज्ञान का अध्ययन किया है तथा विद्वानों की गोष्ठी में भाग लिया है ॥५४॥ यदि तुमको साहित्य शास्त्र का ज्ञान है तो हे सुन्दरि ! तुम मेरी कल्याणकारी सत्य तथा प्रामाणिक बातों को सुनो ॥५५॥ नवरसों में दो ही रस प्रधान हैं, शृङ्गार रस तथा शान्त रस । यंही विद्वानों की सभा में निर्णीत अर्थ है ॥५६॥ उन दोनों में शृङ्गार को ही रसराज माना जाता है । इसीलिए विष्णु सदा लक्ष्मी के साथ तथा ब्रह्मा जी सावित्री देवी के साथ रहा करते हैं ॥५७॥ इन्द्र शची के साथ, शंकरजी पार्वती के साथ सोते हैं । इसी तरह वृक्ष लता के साथ मृग मृगी के साथ तथा कपोत कपोती के साथ सोते है॥५८॥ इस तरह सभी प्राणी संयोग के रसिक हैं । जो लोग भोग को नहीं भोग पाये हैं तथा कायर हैं, वे ही संन्यासी बनते हैं । वे मूर्ख हैं भाग्य ने उन्हें धोखा दिया है । वे संसार रस के जानकार नहीं हैं उनलोगों को धूर्तों ने धोखा दे दिया है ॥६०॥ वे मधुर बोलने में निपुण हैं तथा शान्तरस में

लोभे क्रोधे च दुर्धर्षे मोहे मति विनाशके । तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कांतं मनोहरम् ॥६२॥ शुंभं सुराणां जेतारं निशुंभं वा महाबलम् । व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरः स्थितः । श्रुत्वा जहास चामुंडा कालिका चांबिका तथा ॥६३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते । मेघगंभीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः ॥१॥ पूर्वमेव मया प्रोक्तं मंदात्मन्किं विकत्थसे । दूतस्याग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम् ॥२॥ सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च । त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम् ॥३॥ ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता । तस्माद्युद्ध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु ॥४॥ त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य**

संलग्न रहते हैं । कामदेव के सामने ज्ञान तथा वैराग्य का क्या महत्व है । वे रह नही सकते हैं ॥६१॥ लोभ और मोह दुर्धर्ष बुद्धि विनाशक हैं । अतएव हे कल्याणि ! तुम भी अपना मनोहर पति बना लो ॥६२॥ या तो देवताओं पर विजय प्राप्त करने वाले शुंभ को अपना पति बना लो अथवा निशुम्भ को अपना पति बना लो । इस तरह से कहकर रक्तबीज चुप हो गया । उसकी बातों को सुनकर कालिका और अम्बिका दोनों जोर-जोर से हँसने लगीं ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥

रक्तबीज का मूर्छित होना तथा मातृकाओं द्वारा असुर सेना का संहार

व्यासजी ने कहा– हँस लेने के पश्चात् देवी ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में युक्ति-युक्त वचनों को कहा ॥१॥ मूर्ख मुझे जो उचित और हितकारी बातें कहनी थी वह मैंने तुम्हारे दूत से कह दिया है । अब फिर क्या बकबकाते हो ?॥२॥ यदि त्रिलोकीं में कोई मेरे सदृश ऐश्वर्य सम्पन्न रूपवान् तथा बलवान् हो तो उसे मैं अपना पति बनाऊँ ॥३॥ तुम शुम्भ और निशुम्भ से कह दो कि मैं पहले प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ । अतएव वह मेरे साथ पहले मुझे परास्त करके विधिपूर्वक मुझसे विवाह कर ले ॥४॥ तुम तो उसकी आज्ञा से उसका काम करने के लिए आये हो । अतएव तुम मेरे साथ या तो युद्ध

कार्यार्थसिद्धये । संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह ॥५॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः । मुमोच तरसा बाणान् सिंहस्योपरि दारुणान् ॥६॥ अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान् । चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात् ॥७॥ अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम् । अम्बिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥८॥ देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि । पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत् ॥९॥ सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन् । ततो वुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम् ॥१०॥ उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ।** शुंभ उवाच– **निर्यांतु दानवाः सर्वे कांबोजाः स्वबलैर्वृताः ॥११॥ अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः ।** व्यास उवाच– **इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुंभेन च चतुर्विधम् ॥१२॥ निर्जगाम मदाविष्टं देवी समरमण्डले । तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम्॥१३॥ घण्टानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः। ज्यास्वनं शङ्खनादं च चकार जगदम्बिका ॥१४॥ तेन नादेन सा जाता काली विस्तारितानना । श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम् ॥१५॥ जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन् भयमद्भुतम् । तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्छिताः ॥१६॥ सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः । तस्मिन्नेवायते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥१७॥ ब्रह्मादीनां च देवानां शक्तयश्चंडिकां**

करो अथवा अपने स्वामी के साथ पाताललोक में चले जाओ ॥५॥ **व्यासजी ने कहा–** देवीं की बातों को सुनकर रक्तबीज क्रोध के मारे व्याकुल हो गया और वेगपूर्वक सिंह के ऊपर भयंकर बाणों का प्रहार किया ॥६॥ अम्बिका ने सर्प के समान विषैले उन बाणों को आकाश में ही देखकर बड़ी ही शीघ्रता से उन बाणों को अपने बाणों से काटकर गिरा दिया ॥७॥ दूसरे बाणों से उन्होंने रक्तबीज के ऊपर प्रहार किया । शिला पर तीक्ष्ण किये गये तथा अम्बिका के धनुष से छोड़े गये उन बाणों के प्रहार से वह दैत्य रक्तबीज अपने रथ पर ही मूर्छित हो गया । रक्तबीज के गिरते ही दैत्यों की सेना में हाहाकार मच गया ॥८-९॥ हम सभी सैनिक तो मारे गये इस तरह से कहकर चिल्लाने लगे । सैनिकों के करुण-कन्दन को सुनकर शुम्भ ने सभी दैत्य योद्धाओं को आदेश दिया कि वे शस्त्रास्त्र से सजकर तैयार हो जायँ ॥१०॥ **शुम्भ ने कहा–** कम्बोज देश के सभी दानव वीर अपनी-अपनी सेना लेकर युद्ध भूमि में पहुँच जायँ ॥११॥ उनके अतिरिक्त दूसरे जो अत्यन्त बलवान् विशेष रूप से कालकेय जाति के दैत्य वीर हैं वे भी युद्धभूमि की ओर प्रस्थान कर दें। **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से शुम्भ के आदेश को पाकर सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना ॥१२॥ देवी के साथ युद्ध करने के लिए समराङ्गण के लिए निकल पड़ी। दानवों की आयी हुई उस मदमत्त सेना को देखकर ॥१३॥ देवी ने भयंकर भय उत्पन्न करने वाली घंटा की ध्वनि बार-बार की । साथ ही जगदम्बिका ने अपने धनुष का टङ्कार किया एवं शंख बजाया ॥१४॥ उस ध्वनि को सुनकर कालिका ने अपना मुँह फैला दिया । उस ध्वनि को सुनकर देवी के वाहन सिंह

यमुः । यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥१८॥ तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समरांगणे । ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्रकमंडलुः ॥१९॥ आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता । वैष्णवी गरुडारूढा शंखचक्रगदाधरा ॥२०॥ पद्महस्ता समायाता पीतांबरविभूषिता । शांकरी तु वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥२१॥ अर्धचन्द्रधरा देवी तथाऽहिवलया शिवा । कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता वरानना ॥२२॥ युद्धकामा समायाता कार्तिकेयस्वरूपिणी । इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना ॥२३॥ वज्रहस्ताऽतिरोषाढ्या संग्रामाभिमुखी ययौ । वाराही सूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता ॥२४॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः । याम्या च महिषारूढा दण्डहस्ता भयप्रदा ॥२५॥ समायाताऽथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता । तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा ॥२६॥ एवंविधास्तथाकारायमुः स्वस्वबलैर्वृताः । आगतास्ता समालोक्य देवी मुदमवाप च ॥२७॥ स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः । ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करो लोकशङ्करः ॥२८॥ समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच

ने भी घोर नाद किया ॥१५॥ उसने भी अद्भुत भय को उत्पन्न करने वाली गर्जना की । उस ध्वनि को सुनकर सभी दानव अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥१६॥ सभी महाबलवान् दैत्यों ने देवी के ऊपर अस्त्रों का प्रहार किया । उस भयंकर तथा लोमहर्षक (रोंगटे खड़े कर देने वाले) युद्ध में ॥१७॥ ब्रह्मा आदि देवताओं की शक्तियाँ भी आ गयीं । जिस देवता का जैसा रूप वाहन और आभूषण था उस देवता की उसी बाहन उसी आभूषण तथा उसी रूप वाली शक्ति वहाँ आयी । ब्रह्माजी की शक्ति वरटा (हंसी) पर सवार थी । वह अपने हाथ में रुद्राक्ष की माला और कमण्डलू धारण किए हुई थी ॥१९॥ इस तरह से आयी हुई ब्रह्माजी की शक्ति का नाम ब्रह्माणी था । भगवान् विष्णु की शक्ति गरुड पर सवार होकर शंख, चक्र, और गदा धारण किए हुयी हाथ में कमल लिए हुयी और पीताम्बर धारण किए हुयी थी । शंकरजी की शक्ति शांकरी थी । वह वृष पर सवार थी तथा श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किए हुयी थी ॥२०-२१॥ वह शिवाशक्ति अपने मस्तक पर अर्द्धचन्द्रमा को धारण किए हुयी थी और हाथ में सर्प का कंगन धारण किये हुयी थी । कुमार कार्तिकेय की शक्ति कौमारी मयूर पर सवार थी हाथ में शक्ति धारण किये हुयी थी वह कार्तिकेय स्वरूपिणी थी और युद्ध करने की कामना से आयी थी । इन्द्र की शक्ति का मुखमण्डल मनोहर था और वह उजले हाथी पर सवार थी ॥२३॥ वह अपने हाथ में वज्र धारण करके, अत्यधिक क्रोध करके युद्धभूमि में पहुँच गयी। वाराही शक्ति सूकर के आकार की थी तथा प्रौढ प्रेत पर सवार थी ॥२४॥ नृसिंह की नारसिंही शक्ति का शरीर नृसिंह भगवान् के ही समान था । यम की याम्या शक्ति भैंसे पर सवार थी । वह अपने हाथ में दण्ड धारण किए हुयी थी और भयंकर थी ॥२५॥ वह यम का रूप धारण करके युद्ध में आयी । वह मुस्कुरा रही थी । उसी तरह वारुणी और कौबेरी शक्ति भी मदमत्त होकर आयी थी ॥२६॥ इस तरह सभी शक्तियाँ तत्-तत् देवताओं के समान तथा अपने-अपने बल से सम्पन्न थीं । उन आयी हुई शक्तियों को देखकर देवी प्रसन्न हो गयीं ॥२७॥ देवता भी स्वस्थ होकर प्रमोद का अनुभव किए तथा

ह । हन्यन्तामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ॥२९॥ निशुम्भं चैव शुम्भं च ये चान्ये दानवाः स्थिताः । हत्वा दैत्यबलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत् ॥३०॥ स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः । देवा यज्ञभुजः सन्तु ब्राह्मणा यजने रताः ॥३१॥ प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वे स्थावरजंगमाः । शमं यांतु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः ॥३२॥ घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा । व्यास उवाच– **एवं ब्रुवति देवेशे शङ्करे लोकशङ्करे ॥३३॥ चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्तिरद्भुता । भीषणाऽतिप्रचंडा च शिवाशतनिनादिनी ॥३४॥ घोररूपाऽथ पंचास्यमित्युवाच स्मितानना । देवदेव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति ॥३५॥ दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुंभं स्मराकुलम् । निशुंभं च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शङ्कर॥३६॥ मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै । देवाः स्वर्गे सुसंयांतु तुराषाट् स्वासनं शुभम् ॥३७॥ प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञभागाँश्च देवताः । जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा ॥३८॥ तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः । अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत् ॥३९॥ तदाऽऽगच्छंतु तृप्यंतु मच्छिवाः पिशितेन वः ।** व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः ॥४०॥ गत्वाऽऽह दैत्यराजानं शुंभं सदसि संस्थितम् ।** शिव उवाच– **राजन्दूतोऽहमंबायास्त्रिपुरांतकरो हरः ॥४१॥ त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाखिलम् ।**

दैत्य भयभीत हो गये । उन सबों से घिरे हुए लोक कल्याणकारी भगवान शंकर ॥२८॥ संग्राम में आकर चण्डिका से कहे– देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए असुरों का शीघ्र विनाश कर दीजिये ॥२९॥ शुम्भ, निशुम्भ तथा दूसरे दानव जो यहाँ पर विद्यमान है, उन सबों का सेना के साथ वध करके सम्पूर्ण जगत् को निर्भय बनाकर ॥३०॥ सभी शक्तियाँ अपने-अपने घर चली जायँ । देवता पुनः यज्ञभाग के भोक्ता बन जायँ और ब्राह्मण यज्ञकर्म करने लगें ॥३१॥ सभी स्थावर एवं जंगम प्राणी सन्तुष्ट हो जायँ । किञ्च सभी उत्पात तथा ईतियाँ शान्त हो जायँ ॥३२॥ मेघ समय से वर्षा करे और कृषि में बहुत अन्न पैदा हो । **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से लोककल्याणकारी भगवान् शङ्कर के कहने पर ॥३३॥ चण्डिका के शरीर से अद्भुत शक्ति प्रकट हुयी। वह शक्ति भीषण तथा प्रचण्ड थी । वह सैकड़ों सियारिन के समान निनाद करने वाली थी ॥३४॥ उस का रूप भयंकर था और उसके पाँच मुँह थे । उसने मुस्कुरा कर कहा– हे देवाधिदेव ! आप दैत्यों के स्वामी शुंभ के पास जायँ ॥३४॥ आप दूत बनकर काम से व्याकुल बने हुए शुंभ तथा मदमत्त निशुम्भ से मेरा संदेश सुना दें कि ॥३६॥ तुमलोग स्वर्ग छोड़कर शीघ्र पाताल लोक में चले जाओ जिससे कि देवगण स्वर्गलोक में सुखपूर्वक निवास कर सकें और इन्द्र को अपना आसन मिल जाय ॥३७॥ देवता स्वर्ग लोक तथा यज्ञभाग को प्राप्त करने लग जायँ । यदि तुमलोगों की जीने की प्रबल इच्छा हो तो सभी दानव शीघ्र पाताल लोक में चले जायँ और यदि मरने की इच्छा हो तो तुमलोग अपने बल के सहारे ॥३९॥ युद्धांगण में आओ और मेरी

त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम् ॥४२॥ पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः । अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम्॥४३॥ संग्रामे वो हनिष्यामि सवनिवाहमाशु वै । इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे ॥४४॥ व्यास उवाच– इति दैत्यवरान्देवीवाक्यं पीयूषसन्निभम्। हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत् ॥४५॥ ययाऽसौ प्रेरितः शंभुर्दूतत्वे दानवान्प्रति । शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले ॥४६॥ तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शङ्करोक्तं तु दुष्करम् । युद्धाय निर्ययुः शीघ्रं दंशिताः शस्त्रपाणयः ॥४७॥ तरसा रणमागत्य चंडिकां प्रति दानवाः। निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥४८॥ कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान् । कुर्वंती व्यचरत्तत्र भक्षयन्ती च दानवान्॥४९॥ कमण्डलुजलाक्षेपगतप्राणान् महाबलान् । ब्रह्माणी चाकरोत्तत्र दानवान्समरांगणे ॥५०॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा । जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले ॥५१॥ वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेन दानवान् । गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमांगविवर्जितान् ॥५२॥ ऐन्द्रीवज्रप्राहारेण पातयामास भूतले । ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुंगवान् ॥५३॥ वराही तुण्डघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च । जघान क्रोधसंयुक्ता शतशो दैत्यदानवान् ॥५४॥

शिवाशक्ति को अपने माँसों से तृप्त करो । चण्डिका की उस वाणी को सुनकर शीघ्र ही भगवान् शंकर ॥४०॥ जाकर अपनी सभा में बैठे हुए दैत्यराज से कहे । **शिवजी ने कहा–** हे राजन् ! मैं त्रिपुर का वध करने वाला शङ्कर अम्बा का दूत बनकर आया हूँ ॥४१॥ मैं आपका हर प्रकार का कल्याण करना चाहता हूँ । आपलोग स्वर्गलोक तथा मर्त्यलोक को छोड़कर शीघ्र जहाँ पर प्रह्लादजी तथा राजा बलि हैं उनके पास पाताल लोक में चले जाइये । यदि आप लोग मरना चाहें तो शीघ्र आकर युद्ध करें ॥४३॥ युद्ध में मैं आप लोगों का शीघ्र ही वध करूँगी । इस तरह से महारानी ने आपलोगों का कल्याण करने के लिए कहा है ॥४४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवी के अमृत के समान वाणी को त्रिशूलधारी शङ्करजी सभी दैत्यों को सुनाकर लौट आये । जिस देवी ने भगवान् शङ्कर को दूत के कार्य में नियुक्त किया था उसका त्रैलोक्य में शिवदूती नाम प्रसिद्ध हो गया ॥४६॥ दानवों ने भी शङ्कर जी के मुख से देवी के संदेश को सुना, उससे वे क्रुद्ध हो गये और हाथ में शस्त्र ग्रहण करके युद्ध करने के लिए निकल पड़े ॥४७॥ वे शीघ्र युद्ध भूमि में आकर देवी के ऊपर अपने कानों तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करने लगे ॥४८॥ कालिका भी उन दैत्यों को गदा तथा शक्ति से मारकर उनका भक्षण करती हुई युद्ध में विचरण करने लगी ॥४९॥ ब्रह्माणी ने अपने कमण्डलू के जल को छिड़कर महाबलवान् दानवों को समरांगण में प्राण रहित बना दिया॥५०॥ बैल पर सवार माहेश्वरी ने अपने अत्यन्त वेग सम्पन्न त्रिशूल से मारकर युद्ध के मैदान में दानवों को पृथिवी पर गिरा दिया ॥५१॥ वैष्णवी शक्ति तथा गदा के प्रहार से दानवों को शिर से हीन बनाकर प्राणरहित बना दिया ॥५२॥ ऐन्द्री शक्ति ने ऐरावत हाथी के सूंड से प्रहार के कारण पीड़ित दानवों पर वज्र का प्रहार करके बड़े-बड़े दानवों को पृथिवी पर गिरा दिया ॥५३॥ वाराही शक्ति क्रुद्ध होकर अपने थूथुन तथा दाँतों के प्रहार

नारसिंही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुङ्गवान् । भक्षयन्ती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः ॥५५॥ शिवदूती साट्टहासैः पातयामास भूतले । तांश्चखादाथ चामुण्डा कालिका च त्वरान्विता ॥५६॥ शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः । निजघान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै ॥५७॥ वारुणी पाशसंबद्धान्दैत्यान्समरमस्तके । पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान् ॥५८॥ एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम् । मर्दितं दानवं सैन्यं पालयनपरं ह्यभूत् ॥५९॥ वुम्बारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे । पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्चक्रुर्देव्या गणोपरि ॥६०॥ तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः । रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान् ॥६१॥ गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः । रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा॥६२॥ सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् । आजगाम तदा देवीं क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

से सैकड़ों दानवों को मार दिया ॥५४॥ नारसिंही शक्ति अपने तीव्र नखों से फाड़े गये बड़े-बड़े दैत्यों का भक्षण करती हुई रणभूमि में विचरण करने लगी और उसने बार-बार गर्जना भी किया ॥५५॥ शिवदूती अपने अट्टहासों के द्वारा दैत्यों को भूमि पर गिरा दिया और उन गिरे हुए दैत्यों को चामुण्डा और कालिका दोनों शीघ्रता से खा गयीं ॥५६॥ मयूर पर बैठी हुई कौमारी शक्ति अपने शिलाशित बाणों के प्रहार से देवताओं का कल्याण करने के लिए युद्ध में देवशत्रुओं को मार दिया ॥५७॥ वारुणी शक्ति ने युद्ध के मैदान में दैत्यों को पाश मे बाँधकर उन्हें मूर्छित करके पृथिवी पर गिरा कर मार दिया ॥५८॥ इस तरह मातृगणों से मर्दित होकर अत्यन्त पराक्रम सम्पन्न दैत्यों की सेना भागने लगी ॥५९॥ उस सेना रूपी सागर में चारों ओर चित्कार का स्वर जोर-जोर से गूँजने लगा; और देवता लोग उन शक्तियों के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे ॥६०॥ दैत्यों के हाहाकार; देवताओं के जय-जयकार को सुनकर और दैत्यों का पलायन देखकर युद्ध के मैदान में महाबलवान् रक्तबीज आ गया ॥६२॥ आयुध धारण करके रथ में बैठकर प्रत्यञ्चा से धनुष का टङ्कार करते हुए रक्तबीज क्रोध के मारे अपनी आँखें लाल किए हुए देवी के समक्ष आया ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम् । अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम् ॥१॥ तस्य देहाद्रक्तबिंदुर्यदा पतति भूतले। समुत्पतंति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥२॥ असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः । प्रभवन्त्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः ॥३॥ स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः । अभ्यगात्तरसा संख्ये हन्तुं देवीं सकालिकाम् ॥४॥ स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरि संस्थिताम् । शक्त्या जघान दैत्येंद्रस्तां वै कमललोचनाम् ॥५॥ गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता । अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम् ॥६॥ रथांगक्षतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् । वज्राहतगिरेः शृंगान्निर्झरा इव गैरिकाः ॥७॥ यत्र यत्र यदा भूमौ पतंति रक्तबिंदवः । समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः ॥८॥ ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च । रक्तबीजं क्रुधाविष्टा निःससार च शोणितम् ॥९॥ ततस्तत्क्षतजाज्जाता रक्तबीजा ह्यनेकशः । तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मदाः ॥१०॥ ब्रह्माणी ब्रह्मदण्डेन कुपिता ह्यहनद्भृशम् । माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम्॥११॥**

देवी द्वारा रक्तबीज का बध

व्यासजी ने कहा– राजन् जनमेजय ! एक बार शिवजी ने रक्तबीज को अत्यन्त अद्भुत वरदान दे दिया था उसे मैं आपको सुना रहा हूँ उसे आप सुनें ॥१॥ उसके शरीर से जब रक्त की बूंद पृथिवी पर गिरती थी उससे उसी समय उसके ही समान पराक्रम वाला दैत्य उत्पन्न हो जाता है ॥२॥ रुद्र ने उसे यह अद्भुत वरदान दे रखा था कि उसे असंख्य रक्तजन्य महाबलवान् दानव उत्पन्न हो गये ॥३॥ उस वरदान के कारण दृप्त बना हुआ वह महाबलवान् रक्तबीज कालिका के साथ देवी का वध करने के लिए युद्ध के मैदान में आ गया ॥४॥ उसने वैष्णवी शक्ति को गरुड पर बैठी हुई देखा और कमलनयनी देवी के ऊपर अपनी शक्ति से प्रहार किया ॥५॥ शक्ति से सम्पन्न उस वैष्णवी शक्ति ने अपनी गदा से उसके प्रहार को विफल बना दिया और अपने चक्र से महा असुर रक्तबीज के ऊपर प्रहार किया ॥६॥ चक्र के द्वारा कटे हुए रक्तबीज के शरीर से बहुत अधिक खून उसी तरह गिरा जिस तरह वज्र के प्रहार से गेरु के पर्वत शिखर से गैरिक झरना का पानी गिरता है ॥७॥ उसके शरीर से जहाँ-जहाँ पर रक्त के विन्दु गिरे उससे उसी के समान आकार वाले हजारों दैत्य उत्पन्न हो गये ॥८॥ क्रुद्ध होकर ऐन्द्री शक्ति ने उस पर वज्र का प्रहार किया और उसके कारण भी उसके शरीर से खून निकला ॥९॥ इस तरह उसके खून से हजारों रक्तबीज पैदा हो गये । वे सबके सब महाबलवान्; उसी के समान पराक्रम वाले और भयंकर युद्ध करने वाले थे ॥१०॥

नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम् । अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम् ॥१२॥ कौमारी च तथा शक्त्या वक्षस्येनमताडयत् । सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्विभेद निशितैश्च ताः ॥१३॥ गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातृ सर्वाः पृथक्पृथक् । शक्तयस्तं शराघातैर्विव्यधुस्तत्रकोपिताः ॥१४॥ तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चंडिका स्वशरैः शितैः । जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम् ॥१५॥ तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत् । तस्मात्तत्सदृशाः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः ॥१६॥ रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः । सन्नादैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥१७॥ प्रहरन्तश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननकेशः । भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः शोककर्षिताः ॥१८॥ कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यन्ति सहस्रशः । महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसंभवाः ॥१९॥ एकैव चण्डिकाऽत्रास्ति तथा काली च मातरः । एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत्॥२०॥ निशुम्भो वाऽथ शुम्भो वा सहसा बलसंवृतः । आगमिष्यति संग्रामे ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥२१॥ व्यास उवाच– **एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिंतामापुर्महत्तराम् । यदा तदांबिका प्राह कालीं कमललोचनाम् ॥२२॥ चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम् । मच्छस्त्रपातसंभूतं रुधिरं पिब सत्वरा ॥२३॥ भक्षयंती चर रणे दानवानद्य कामतः । हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदाऽसिमुसलैस्तथा ॥२४॥ तथा कुरु विशालाक्षि पानं**

ब्रह्माणी ने क्रुद्ध होकर रक्तबीज को ब्रह्मदण्ड से मारा । माहेश्वरी ने उसे अपने त्रिशूल से चीर दिया ॥११॥ नारसिंही शक्ति ने अपने नखों के आघात से उसे फाड़ दिया और उस राक्षसाधम पर अपने तुण्ड से प्रहार किया ॥१२॥ कौमारी शक्ति ने अपनी शक्ति से उसके वक्षस्थलः पर प्रहार किया । वह रक्तबीज भी अपने बाणों की वर्षा से उन शक्तियों को छेद दिया ॥१३॥ क्रोध करके अन्य शक्तियों ने भी रक्तबीज के ऊपर अपनी गदा तथा शक्ति से अलग-अलग प्रहार किया ॥१४॥ चाण्डिका ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके शस्त्रों को काट डाला और अत्यंत क्रोध में भरकर देवी ने उसके ऊपर दूसरे बाणों से प्रहार किया ॥१५॥ इसतरह उसके शरीर से जो बहुत अधिक खून निकला उससे रक्तबीज के ही समान अनेक बीर प्रादुर्भूत हो गये ॥१६॥ खून से उत्पन्न हुए रक्तबीजों के द्वारा यह जगत् व्याप्त हो गया । वे सबके सब नाद करते हुए अपने आयुधों से अद्भुत युद्ध कर रहे थे ॥१७॥ प्रहार करते हुए उन रक्तबीजों को देखकर देवता भयभीत तथा उदास हो गये । वे शोक करते हुए दु:खी हो गये थे । रक्त से उत्पन्न हुए हजारों महाबलवान् दैत्यों का नाश होना आज कैसे संभव है ?॥१९॥ यहाँ पर काली के साथ चण्डिका माता तो अकेली ही हैं । अतएव इन सभी शक्तियों के द्वारा दानवों पर विजय प्राप्त करना तो अत्यन्त कठिन है ॥२०॥ शीघ्र ही शुम्भ और निशुम्भ भी अपनी सेना लेकर जब आ जायेंगे उस समय तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा ॥२१॥ **व्यासजी ने कहा–** इसतरह भय से उद्विग्न बने हुए देवता अत्यन्त चिन्तित हो गये । उस समय अम्बिका ने कमल के सदृश नेत्र वाली काली से कहा ॥२२॥ हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख खूब फैला दो । और मेरे शस्त्र से उत्पन्न खून को शीघ्रता से पी जाओ ॥२३॥ इस तरह से आज

तद्रुधिरस्य च । बिंदुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि सांप्रतम् ॥२५॥ भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चापरे । एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा ॥२६॥ घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा । पिबंती क्षतजं सर्वं यतमानाऽरिसंक्षये ॥२७॥ इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम् । इन्द्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम् ॥२८॥ इत्युक्ताऽम्बिकया देवी चामुंडा चंडविक्रमा । पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम्॥२९॥ अंबिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च । चखाद देहशकलांश्चामुंडा तान्कृशोदरी ॥३०॥ सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुंडां समघातयत् । तथापि सा पपावाशु क्षतजं तमभक्षयत् ॥३१॥ येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः । तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गतशोणिताः ॥३२॥ कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनाति विखण्डितः ॥३३॥ रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवारणे । पलायनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकम्पितः ॥३४॥ हाहेति विब्रुवंतस्ते शुम्भं प्रोचुः सुविह्वलाः । रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः ॥३५॥ राजन्नंबिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः । चामुण्डा तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम् ॥३६॥ ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा । सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे ॥३७॥ वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम् । चरितं च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम् ॥३८॥

तुम अपनी इच्छानुसार दानवों का भक्षण करती हुई युद्ध में विचरण करो । मैं इसको अपने तीक्ष्ण बाणों गदा कृपाण एवं मुसल से मारूँगी ॥२४॥ विशालाक्षि! तुम इस तरह इसके खून को पी जाओ । जिससे की इसका एक बूंद भी खून पृथिवी पर न गिरने पाये ॥२५॥ तुम्हारे द्वारा खाये जाने से दूसरे दैत्य नहीं पैदा होंगे । ऐसा करने से इन सबों का नाश अवश्य हो जायेगा । इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥२६॥ मैं दैत्य को मार रही हूँ तुम शीघ्रता से खाने का काम करो । सम्पूर्ण खून पी जाने से शत्रु का विनाश हो जायेगा ॥२७॥ इस तरह दैत्यों का विनाश करके, देवताओं को उनका राज्य और स्वर्ग उन्हें प्रदान करके तथा इन्द्र को सुस्थिर करके हमलोग अपने घर चली जायेंगी ॥२८॥ इस तरह से अम्बिका के द्वारा कहे जाने पर प्रचण्ड पराक्रम वाली काली ने रक्तबीज के शरीर से निकले हुए सम्पूर्ण खून को पी लिया ॥२९॥ अम्बिका ने उसको अपने खड्ग तथा मुसल के प्रहार से मार डाला और कृशोदरी चामुण्डा ने उसके शरीर के टुकड़ों को खा लिया ॥३०॥ क्रुद्ध होकर रक्तबीज भी चामुण्डा पर अपनी गदा से प्रहार किया फिर भी वह उसके खून को पी लिया ॥३१॥ दूसरे जो खून से उत्पन्न दैत्य थे वे भी शोणित से रहित होने के कारण खा लिए जाने के कारण मर गये ॥३२॥ कृत्रिम सभी दैत्य चामुण्डा के द्वारा खा लिए गये और स्वाभाविक असुर रक्तबीज भी खड्ग के द्वारा काट दिये जाने के कारण मर गया ॥३३॥ रक्तबीज के मार दिये जाने के बाद रणभूमि में जो दूसरे दानव थे वे भयभीत होकर भाग गये ॥३४॥ हाहाकार करते हुए वे विह्वल होकर शुम्भ के पास चले गये । उस समय उन दैत्यों का शरीर खून से लाल हो गया था । वे अस्त्र रहित और घबराए हुए शुम्भ से कह रहे थे ॥३५॥ हे राजन् ! अम्बिका ने रक्तबीज का वध कर दिया है । चामुण्डा उसके शरीर से निकले हुए सम्पूर्ण खून को पी गयी ॥३६॥ दूसरे जो दानव वीर थे वे सब देवी के अत्यन्त वेगवान् वाहन सिंह के द्वारा मार दिये गये और बचे हुए

अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः । गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः ॥३९॥ अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखा भृशम् । युध्यमाना
महाराज वाहनैरायुधैर्युताः ॥४०॥ ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः । रक्तबीजोऽपि राजेंद्र तरसा विनिपातितः ॥४१॥ एकाऽपि दुःसहा
देवी किं पुनस्ताभिरन्विता । सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥४२॥ अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् । न वैरमनया युक्तं
संधिरेव सुखप्रदः ॥४३॥ आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हन्ति राक्षसान् । रक्तबीजोऽपि निहतः पीतं तस्यापि शोणितम् ॥४४॥ अन्ये निपातिता दैत्याः
संग्रामेऽम्बिकया नृप । चामुंडया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे ॥४५॥ वरं पातालगमनं तस्याः सेवाऽथवा वरा । न तु युद्धं महाराज
कार्यमम्बिकया सह ॥४६॥ न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी । मायेयं प्रबला देवी क्षपयंतीयमुत्थिता ॥४७॥ व्यास उवाच– **इति तेषां**
वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः । मुमुर्षुः प्रत्युवाचेदं शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ॥४८॥ शुम्भ उवाच– **यूयं गच्छत पातालं शरणं वा भयातुराः ।**
हनिष्याम्यहमद्यैव तां च ताश्च समुद्यतः ॥४९॥ जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम् । कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम्॥५०॥
निहत्य पार्षदान्सर्वान्रक्तबीजमुखान्रणे । प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः ॥५१॥ मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम् । तद्भयं

दानववीर को काली ने खा लिया ॥३७॥ हमलोग आपके पास युद्ध का समाचार बतलाने के लिए आये हैं । संग्राम में उस देवी की चेष्टाएँ अत्यन्त अद्भुत हैं ॥३८॥ महाराज वह अजेय है । उसको दैत्य और दानव नहीं पराजित कर सकते हैं । गन्धर्व, असुर, यक्ष, पन्नग, उरग तथा राक्षसों के लिए भी वह अजेय हैं ॥३९॥ हे महाराज दूसरी भी इन्द्राणी आदि देवियाँ अपने वाहनों तथा आयुधों के साथ वहाँ आकर युद्ध कर रही हैं ॥४०॥ उन सबों ने अपने श्रेष्ठ आयुधों के द्वारा दानवों की सेना का वध किया है । रक्तबीज भी मार दिया गया है ॥४१॥ अकेली ही देवी का सामना करना कठिन हैं; उनसबों के साथ उसके विषय में क्या कहना है ?। निःसीम कान्ति सम्पन्न सिंह भी संग्राम में दानवों को मार रहा है ॥४२॥ अतएव मन्त्रियों के साथ विचार करके आप जो उचित हो उसे करें । उसके साथ वैर करना उचित नहीं है सन्धि करना ही सुखप्रद है ॥४३॥ यह आश्चर्य की बात है कि यह अकेली नारी राक्षसों को मार रही है । रक्तबीज भी मार दिया गया और उसका खून पी लिया गया ॥४४॥ दूसरे दैत्य वीरों को अम्बिका ने मार गिराया है और चामुण्डा ने उन सभी दैत्य वीरों के माँस को खा लिया ॥४५॥ पाताल में चले जाना अथवा उसकी सेवा करना ही श्रेष्ठ हैं । महाराज ! अम्बिका के साथ युद्ध करना ठीक नहीं है ॥४६॥ यह सामान्य नारी नहीं है । यह देवताओं के कार्य को सिद्ध करने वाली है । यह प्रबल माया है और दैत्यवंश का विनाश करने के ही लिए उत्पन्न हुयी है ॥४७॥ **व्यासजी ने कहा–** उन सैनिकों की सत्य वाणी को सुनकर काल के द्वारा मोहित, मरने के लिए तैयार शुम्भ के ओष्ठ क्रोध से काँपने लगे ॥४८॥ **शुम्भ ने कहा–** तुमलोग डरपोक हो । तुमलोग चाहे पाताल चले जाओ अथवा उसके सेवक बन जाओ । आज मैं उस अम्बिका और अन्य देवियों का युद्ध करके वध कर दूँगा ॥४९॥ सभी देवताओं को परास्त करके अपना राज्य पुष्कल बनाकर मैं किसी नारी के भय से पाताल

जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः ॥५२॥ निशुम्भाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे । हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा ॥५३॥ त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे । तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये ॥५४॥ निशुंभ उवाच— **अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टां च कालिकाम् । आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथांबिकाम् ॥५५॥ मा चिंतां कुरु राजेंद्र वराकायास्तु कारणे । क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशंकरम् ॥५६॥ त्यक्त्वार्तिं विपुलां भ्रातर्भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान् । आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम् ॥५७॥ मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे । गत्वाऽहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम् ॥५८॥** व्यास उवाच— **इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः । रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः ॥५९॥ जगाम तरसा तूर्णं सङ्गरे कृतमंगलः । संस्तुतो वन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः ॥६०॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

में नहीं जा सकता हूँ ॥५०॥ युद्ध में रक्तबीज आदि प्रमुख पार्षदों का वध कराकर तथा अपने पर्याप्त यश का परित्याग करके मैं अपना प्राण बचाने के लिए पाताल में कैसे जा सकता हूँ ?॥५१॥ काल ने सबों के लिए इसतरह का विधान कर दिया है कि सबको किसी न किसी दिन मरना निश्चित है । जन्म के साथ ही मृत्यु का भय लग जाता है। अतएव मृत्यु के भय से दुर्लभ यश का त्याग कौन कर सकता है ?॥५२॥ निशुम्भ ! मैं रथ पर सवार होकर युद्धस्थल में जाऊँगा और मैं उसका वध करके ही लौटूँगा, अन्यथा नहीं लौटँगा ॥५३॥ हे वीर तुम अपनी सेना के साथ मेरे पार्षद बन जाओ और वेगपूर्वक अपने बाणों के द्वारा उस नारी को यमलोक भेज दो ॥५४॥ **निशुम्भ ने कहा**— आज मैं युद्धस्थल में जाकर उस दुष्टा कालिका का वध करके और उस अम्बिका को पकड़कर लाऊँगा ॥५५॥ उस तुच्छ महिला के विषय में आप चिन्ता छोड़ दीजिये । कहाँ तो वह नारी और कहाँ तो सम्पूर्ण विश्व को वशवर्ती बनाने वाला मेरी भुजाओं का बल । इनदोनों में कोई तुलना है क्या ?॥५६॥ हे भ्रातः ! आप सम्पूर्ण चिन्ताओं को छोड़कर सर्वोत्तम भोगों का उपभोग करें। मैं उस मानवती मानिनी को अवश्य लाऊँगा ॥५७॥ हे राजन् ! मेरे रहते आपको युद्धस्थल में जूझना उचित नहीं है । मैं स्वयं युद्ध स्थल में जाकर आपके लिए विजय श्री को लाऊँगा ॥५८॥ **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से अपने भाई को कहकर छोटा भाई निशुम्भ जो अपने बल के दर्प से दृप्त था रथ पर बैठकर, अपनी सेना को सुसज्जित करके सेना के साथ जाने के लिए तैयार हुआ ॥५९॥ उस समय उसका मंगल किया गया और निशुम्भ शीघ्र ही आयुध धारण करके चल पड़ा । उस समय बन्दीगण उसकी स्तुति कर रहे थे ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

त्रिंशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय च । सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ ॥१॥ तमाजगाम शुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः । प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा संग्रामरसपण्डितः ॥२॥ गगने संस्थिता देवास्तदाभ्रपटलावृताः । दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रा यक्षगणास्तथा ॥३॥ निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम् । चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम् ॥४॥ मुंचंतं शरजालानि निशुम्भं चण्डिका रणे । वीक्ष्यादाय धनुः श्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः ॥५॥ उवाच कालिका देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः । मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना ॥६॥ दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा । जयाशं कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया ॥७॥ आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित् । भग्नं हतं बलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम् ॥८॥ आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धाय समुपागतौ । निहन्तव्यौ मया कालि रणे शुम्भनिशुंभकौ ॥९॥ आसन्नमरणावेतौ संप्राप्तौ दैवमोहितौ । पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ ॥१०॥** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा कालिकां चंडी कर्णाकृष्टशरोत्करैः । छादयामास**

देवी द्वारा निशुम्भ का वध

व्यासजी ने कहा– मरण अथवा विजय का निश्चय करके शूरवीर निशुम्भ पूरी तैयारी तथा सेना के साथ देवी से युद्ध करने के लिए चल पड़ा ॥१॥ निशुम्भ के चलने के पश्चात् शुम्भ भी अपनी सेना के साथ निकल पड़ा और संग्रामरस का पण्डित वह युद्ध देखने लगा ॥२॥ आकाश मण्डल के बादल की ओट में आकाश में स्थित इन्द्र तथा यक्षों के साथ देवता भी संग्राम देख रहे थे ॥३॥ युद्धस्थल में जाकर निशुम्भ ने अपना शर्ङ्ग धनुष लेकर जगदम्बिका को भयभीत करते हुए बाणों की वर्षा किया ॥४॥ युद्ध में निशुम्भ को बाण समूह का प्रहार करते हुए देखकर चण्डिका ने धनुष उठाया और बार-बार जोर से प्रहास किया ॥५॥ उन्होंने कहा हे काली ! इन दोनों की मूर्खता को देखो ये इस समय यहाँ मेरे पास मरने के लिए आये हैं ॥६॥ इनदोनों ने रक्तबीज जैसे दैत्य का वध देखकर भी मेरी माया से मोहित होने के कारण विजय प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ॥७॥ आशा अत्यन्त बलवती होती है। वह मनुष्य का साथ कभी नहीं छोड़ती है । अपनी सेना को मरे हुए, नष्ट हुए, पलायन किए हुए एवं अचेत हुए देखकर ये दोनों आशा के पाश में बँधकर ये दोनों युद्ध करने के लिए आये हैं । हे कालि ! मैं आज इन दोनों को अवश्य मार दूँगी ॥८-९॥ इन दोनों की मृत्यु सन्निकट आ गयी है, अतएव देवमाया से मोहित होकर ये दोनों आये हुए हैं । सभी देवताओं के सामने ही आज मैं इन दोनों का वध करूँगी ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस

तरसा निशुंभं पुरतः स्थितम् ॥११॥ दानवोऽपि शरांस्यस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः । तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम् ॥१२॥ केसरी केशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम् । गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा ॥१३॥ नखैर्दन्तप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान् । चखाद च विशीर्णाङ्गान् गजानिव मदोत्कटान् ॥१४॥ एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा । अन्वधावन्निशुम्भोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः ॥१५॥ अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवीं हन्तुमुपाययुः । सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः ॥१६॥ तत्राजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः । निहत्य कालिकां कोपाद्ग्रहीतुं जगदम्बिकाम् ॥१७॥ तत्रागत्य ददर्शाजावंबिकां च पुरः स्थिताम् । रौद्ररसयुतां कांतां शृंगाररससंयुताम् ॥१८॥ तां वीक्ष्य विपुलापांगीं त्रैलोक्यवरसुंदरीम् । सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा ॥१९॥ विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा । मरणे निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः ॥२०॥ तं तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदं वचः । बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके ॥२१॥ गच्छध्वं पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम् । जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वाऽत्रैवायुधानि च ॥२२॥ अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे । प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे

तरह से कालिका को कहकर चण्डी देवी ने अपने धनुष की डोरी को कानों तक खीचकर बाणों के समूह से अपने समक्ष उपस्थित निशुम्भ को शीघ्र ही ढँक दिया ॥११॥ निशुम्भ ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से देवी के बाणों को काट दिया । इस तरह देवी तथा निशुम्भ में अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ ॥१२॥ बलवान् सिंह भी अपने आयालों को फड़फड़ाकर उस सेना रूपी सागर में उसी तरह से कूद पड़ा जैसे कोई हाथी सरोवर में प्रवेश कर जाता है ॥१३॥ सिंह अपने सामने विद्यमान् दैत्यों को उसी तरह से अपने नख और दाँत के प्रहार से फाड़ने लगा जैसे कोई सिंह मदमत्त हाथियों को चीरफाड़ डालता है॥१४॥ इस तरह से सिंह के द्वारा अपनी सेना को मारे जाते हुए देखकर निशुम्भ अपने श्रेष्ठ धनुष तानकर दौड़ पड़ा ॥१५॥ क्रुद्ध हुए दूसरे भी बड़े-बड़े दैत्य देवी को मारने के लिए उनके सन्निकट पहुँच गये । क्रोध के मारे वे सब अपनी आँखें लाल किए हुए थे और ओठ को चबा रहे थे ॥१६॥ उसी समय शुंभ भी तेजी के साथ अपनी सेना के साथ आ गया । वह कालिका का वध करके जगदम्बिका को पकड़ लेना चाहता था ॥१७॥ वहाँ पर आकर उसने युद्धस्थल में विद्यमान जगदम्बिका को अपने सामने देखा । वे शृङ्गार रस से युक्त होती हुयी रौद्ररस से युक्त थीं ॥१८॥ विशाल नेत्रों वाली, त्रैलोक्यसुन्दरी, स्वभाविक रूप से अरुण वर्ण के नेत्रो वाली तथा क्रोध के कारण अधिक लाल हुए नेत्रों वाली इस देवी को देखकर शुम्भ ने विवाह तथा विजय दोनों की आशा को दूर से ही त्याग दिया । उसने अपने मरण का निश्चय कर लिया तथा धनुष धारण करके खड़ा हो गया ॥२०॥ युद्ध के मैदान में देवी ने सभी दैत्यों तथा शुम्भ को सुनाकर मुस्कुराते हुए कहा ॥२१॥ हे मूर्खों ! तुमलोग यही पर अपने आयुधों का त्याग करके और

क्रीडंतु विगतज्वराः ॥२३॥ कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा । ददाम्यभयदानं वै यांतु सर्वे यथासुखम् ॥२४॥ व्यास उवाच– इत्याकर्ण्य
वचस्तस्या निशुम्भो मदगर्वितः । निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचंद्रकम् ॥२५॥ धावमानस्तु तरसाऽसिना सिंहं मदोत्कटम् । जघानातिबलान्मूर्ध्नि
भ्रामयञ्जगदम्बिकाम् ॥२६॥ ततो देवी स्वगदया वंचयित्वाऽसिपातनम् । ताडयामास तं बाह्वोर्मूले परशुना तदा ॥२७॥ खड्गेन निहतः सोऽपि
बाहुमूले महामदः । संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चण्डिकां तदा ॥२८॥ साऽपि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम् । पपौ पुनः पुनः पानं निशुंभं
हन्तुमिच्छती ॥२९॥ एवं परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम् । देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥३०॥ पलादाः पक्षिणः क्रूराः सारमेयाश्च
जम्बुकाः । ननृतुश्चातिसन्तुष्टा गृध्राः कंकाश्च वायसाः ॥३१॥ रणभूर्भाति भूयिष्ठपतितासुरवर्ष्मकैः । रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला ॥३२॥
पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः । प्रययौ चण्डिकां तूर्णङ्गदामादाय दारुणाम् ॥३३॥ सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः ।
प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत् ॥३४॥ साऽपि तं कुपिताऽतीव निशुम्भं पुरतः स्थितम् । प्रहरन्तं समीक्ष्याथ देवी वचनमब्रवीत् ॥३५॥

जीवन की आशा सुदृढ़ करके पाताल में अथवा समुद्र में चले जाओ ॥२२॥ अथवा युद्ध के मैदान में मेरे बाणों के प्रहार से मरकर स्वर्ग में जाकर सुखपूर्वक
वहाँ निर्भय होकर क्रीड़ा करो ॥२३॥ कायरता और वीरता दोनों एक साथ नहीं रहती हैं । मैं तुम सबों को अभयदान प्रदान करती हूँ । तुमलोग आराम
से चले जाओ ॥२४॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा**– देवी की वाणी को सुनकर मदमत्त निशुम्भ अपनी तीक्ष्ण तलवार तथा ढाल लेकर दौड़ पड़ा॥२५॥
वेग से दौड़ता हुआ वह अपनी तलवार से पहले सिंह के मस्तक पर प्रहार किया और उसके बाद जगदम्बिका पर भी प्रहार किया ॥२६॥ उस समय देवी
ने अपनी गदा से उसके तलवार के प्रहार को विफल बना दिया और उसके भुजमूल में अपने फरसे से प्रहार किया ॥२७॥ भूजमूल में चोट लगने पर
भी महाबलवान् निशुम्भ उस वेदना को वर्दास्त करके चण्डिका के ऊपर पुनः प्रहार किया ॥२८॥ देवी ने भी लोगों को भयभीत कर देने वाली घण्टा को
बजाया तथा निशुम्भ का वध करने की इच्छा से बार-बार मदिरा का पान किया ॥२९॥ इस तरह देवताओं एवं दानवों में एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने
की इच्छा से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥३०॥ मांसभक्षी क्रूरपक्षी, कुत्ते तथा स्यार, गृध्र, कंक तथा कौए सन्तुष्ट होकर नृत्य करने लगे ॥३१॥ रणभूमि भी
बहुत अधिक कटकर गिरे हुए असुर शरीर से तथा रधिरस्राव से युक्त शरीर वाले हाथी और घोड़ों के शरीरों से पट गयी ॥३२॥ मरे हुए दानवों को देखकर
अत्यन्तक्रुद्ध होकर निशुम्भ भयङ्कर गदा लेकर चण्डिका के पास पहुँचा ॥३३॥ मद से गर्वित उसने सिंह के शिर पर उस गदा का प्रहार किया । प्रहार करके
वह मुस्कुराया और उसके बाद उसने गदा से देवी पर प्रहार किया ॥३४॥ अत्यन्त कुपित होकर देवी ने भी सामने खड़े तथा प्रहार करने वाले निशुम्भ को देखकर

श्रीदेव्युवाच– **तिष्ठ मंदमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव । ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद्गन्ताऽसि यमसादनम् ॥३६॥** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा तरसा देवी कृपाणेन समाहिता । चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुम्भस्याथ चण्डिका ॥३७॥ स छिन्नमस्तको देव्या कबन्धोऽतीव दारुणः । बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥३८॥ देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ । पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः ॥३९॥ तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे । हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकंपिते ॥४०। त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सैनिकाः पर्वतोपमाः ॥३९॥ जग्मुर्वुम्बारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम् ॥४१॥ तानागतान्सुसंप्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः । प्रपच्छ क्व निशुम्भोऽसौ कथं भग्नाः पलायिताः ॥४२॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम् । राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि ॥४३॥ तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः । वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तांतं समुपागताः ॥४४॥ निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाऽधुना । न हि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन्रणांगणे ॥४५॥ देवकार्यं समुद्दिश्य काऽपीयं परमांगना । हन्तुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिंतय ॥४६॥ नैषा प्राकृतयोषैव दैवी शक्तिरनुत्तमा । अचिंत्यचरिता क्वापि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि ॥४७॥ नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा । विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा ॥४८॥ गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा ।**

कहा॥३५॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे मूर्ख ! तुम तब तक ठहरे रहो जब तक मैं तुम्हारे गले पर इस खड्ग से प्रहार नहीं करती हूँ । उसके पश्चात् तुम यहाँ से यमलोक पहुँच जाओगे ॥३६॥ **व्यासजी ने कहा–** इसके पश्चात् देवी ने अत्यन्त वेग पूर्वक तलवार से निशुम्भ के शिर को काट दिया ॥३७॥ देवी के द्वारा मस्तक के काट देने पर भी भयङ्कर निशुम्भ का शरीर अपने हाथ में गदा लेकर देवताओं को त्रस्त करता हुआ घूमता रहा ॥३८॥ देवी ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके दोनो पैरों और हाथों को भी काट दिया । उसके पश्चात् वह पापी पर्वत के समान पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३९॥ उस भयंकर पराक्रमी निशुम्भ के मर जाने पर उसकी भयभीत सेना में घोर हाहाकार मच गया ॥४०॥ खून से लथपथ सभी सैनिक अपने सभी आयुधों को छोड़कर शुम्भ की गुहार लगाते हुए उसके भवन की ओर भाग चले ॥४१॥ उन सबों को आते हुए देखकर शत्रुओं का वध करने वाले शुम्भ ने पूछा निशुम्भ कहाँ है ? तुमलोग भाग कैसे आये ?॥४२॥ शुम्भ की बातों को सुनकर सैनिकों ने उसे प्रणाम करके कहा– राजन् ! आपके भ्राता युद्ध में मारे गये तथा गिरे हुए पड़े है ॥४३॥ उनके अनुगामी दूसरे दैत्य भी मारे जा चुके हैं । हमलोग तो आपको युद्ध का समाचार बतलाने के लिए आपके पास आ गये हैं ॥४४॥ निशुम्भ को चण्डिका ने मार दिया है अतएव यह आपकी युद्ध करने की बेला नहीं है ॥४५॥ यह अनिर्वचनीय सुन्दरी देवताओं का कार्य करने के लिए तथा दैत्य वंश का विनाश करनें के लिए आयी हुयी है । इसबात पर आप विचार करें ॥४६॥ यह कोई साधारण नारी नहीं है । यह कोई उत्तमोत्तम दैवीशक्ति है।

अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता ॥४९॥ अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवंत्यकुतोभयाः । देवकार्यं च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम् ॥५०॥
पलायनं परो धर्मः सर्वथा देहरक्षणम् । रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्मत्सुखताङ्गते ॥५१॥ संग्रामे विजयो राजन्भविता ते न संशयः । कालः
करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित् ॥५२॥ तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि । दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित् ॥५३॥
भिक्षुकं धनदातारं करोति समयांतरे । विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः ॥५४॥ इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम् ।
तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना ॥५५॥ संमुखो देवतानां च दैत्यानां नाशहेतुकः । एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते ॥५६॥
नानारूपधरोऽप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम् । कदाचित्संभवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा ॥५७॥ उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथाऽपरः ।
प्रत्यक्षं ते महाराज देवाः सर्वे सवासवाः ॥५८॥ करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च । तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोऽबलयाऽसुराः ॥५९॥

इसके चरित को कोई जान नहीं सकता है । इसको देवता भी नहीं जान सकते हैं ॥४७॥ यह अनेक रूपों को धारण करती हैं तथा माया के मूल को जानती हैं । यह विचित्र आभूषणों तथा सभी प्रकार की आयुधों को धारण किए हुयी हैं ॥४८॥ उनके गूढ़ चरित अत्यन्त गहन हैं । यह दूसरी कालरात्रि के समान हैं । यह समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं । अपने आप में परिपूर्ण हैं यह अपार पारंगत हैं । अन्तरिक्ष में स्थिर होकर देवगण निर्भय होकर उसकी स्तुति करते हैं । यह श्रीदेवी, देवताओं के कार्य को कर रही हैं । यह अत्यन्त अद्भुत नारी हैं ॥५०॥ हे राजन् ! इस समय पलायन करके शरीर की रक्षा कर लेना ही सबसे बड़ा धर्म है । इस समय अपने शरीर की रक्षा कर लेने पर जब हमलोगों के अनुकूल समय आयेगा ॥५१॥ उस समय आपकी विजय होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है । समय ही कहीं पर किसी को बली तथा किसी को निर्बल बनाने का काम करता है ॥५२॥ फिर वही किसी को सबल बनाकर उसे विजयी भी बना देता है । कहीं पर काल ही किसी दाता को याचक बना देता है ॥५३॥ वह दूसरे समय में किसी भिक्षुक को धन प्रदान करने वाला बना देता है । यह निश्चित है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र आदि सभी देवता काल के अधीन रहते हैं । काल चूकि सबका स्वामी है अतएव आप काल की प्रतीक्षा कीजिये । इस समय काल आपके विपरीत है ॥५४-५५॥ इस समय काल देवताओं के अनुकूल तथा दैत्यों के प्रतिकूल है । वह दैत्यों का नाश करने वाला हो गया है । राजन् ! काल सदा एक ही समान नहीं रहता है ॥५६॥ वह अनेक प्रकार के रूपों को धारण करता रहता है। अतएव धैर्यपूर्वक उसकी गतिविधि को देखते रहना चाहिए । मनुष्यों की कभी उत्पत्ति होती है तो कभी उनका प्रलय भी होता है ॥५७॥ उत्पत्ति का कारण बनने वाला काल दूसरा होता है और क्षय का कारण बनने वाला काल दूसरा होता है । यह आप प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे होंगे कि ये इन्द्र आदि देवता वे ही हैं । जब आपका अनुकूल समय था तो वे आपको कर प्रदान करते थे । आपके वशवर्ती थे । वह समय जब आपके प्रतिकूल हो गया है तो निर्बल भी

निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम् । नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः ॥६०॥ यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च । कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः ॥६१॥ त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः । तथा विष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः॥६२॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र वीक्ष्य कालवशं जगत् । पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि ॥६३॥ मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः । मंगलानि प्रगायंतो विचरिष्यंति सर्वतः ॥६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भो दैत्यपतिस्तथा । उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः ॥१॥** शुम्भ उवाच– **जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे । निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम् ॥२॥ कालः कर्ता शुभानां वाऽशुभानां बलवत्तरः । का चिंता**

देवता बलवान् हो गये हैं ॥५८-५९॥ सभी असुर इस समय मारे गये हैं । अतएव सिद्ध है कि काल ही किसी को अच्छा और बुरा बनाता है । इसमें कारण न तो काली है और न तो ये सनातन देवता हैं ॥६०॥ राजन् ! आपको जैसा अच्छा लगे वैसा विचार करके कीजिये । किन्तु यह निश्चित है कि इस समय काल दैत्यों के अनुकूल नहीं है ॥६१॥ ये इन्द्र युद्ध में आपसे परास्त होकर कभी अपना आयुध छोड़कर भाग गये थे । उसीतरह विष्णु, रुद्र, कुबेर तथा यम भी आपसे परास्त हो गये थे । उसीतरह आप भी हे राजेन्द्र ! संसार को काल के अधीन जानकर शीघ्र ही पाताल चले जाइये । जीवित रहकर आप कल्याण प्राप्त करेंगे ॥६२-६३॥ हे महाराज आपके मर जाने पर आपके शत्रुगण मंगलगान करते हुए संसार में विचरण करेंगे ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

शुम्भ वध की कथा

व्यासजी ने कहा– इस तरह से उन सैनिकों की बातों को सुनकर दैत्यों के स्वामी शुम्भ क्रोध के कारण व्याकुल नेत्र वाला होकर उन सैनिकों से कहे॥१॥ **शुम्भ ने कहा–** अरे धूर्तों ! यह तुमलोग क्या कह रहे हो । जैसा तुमलोग कह रहे हो वैसा मैं कभी नहीं कर सकता हूँ । वैसा करके मैं अपनी जान

मम दुवरि तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके ॥३॥ यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत् । न मे चिंताऽस्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा ॥४॥ स कालोऽप्यन्यथा
कर्तुं भावितो नेशते क्वचित् । न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वदा ॥५॥ कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने । अकाले वर्षतीवाशु
तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम् ॥६॥ कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम् । दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः ॥७॥ दैवमेव परं मन्ये
धिक्पौरुषमनर्थकम् । जेता यः सर्वदेवानां निशुम्भोऽप्यनया हतः ॥८॥ रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा । तदाऽहं कीर्तिमुत्सृज्य
जीविताशां करोमि किम् ॥९॥ प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसंमिते । निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयं प्रभुः ॥१०॥ चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो
दिवसे किल । पतंति भवनात्पंच नव चेन्द्रास्तथा पुनः ॥११॥ तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोपकल्पते । तथैव द्विगुणे काले शंकरः शांतिमेति
च॥१२॥ का चिंता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते । महीमहीधराणां च नाशः सूर्यशशांकयोः ॥१३॥ जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

नहीं बचाना चाहता हूँ । अपने मंत्रियों तथा भाइयों को मरवाकर मैं निर्लज्ज बनकर विचरण करूँ क्या ?॥२॥ शुभ तथा अशुभ का कर्ता काल ही है ।
वह सबसे अधिक बलवान् है । जब सबों का स्वामी काल ही है तो फिर उसके विषय में चिन्ता करने से कौन सा लाभ है ॥३॥ जो होने वाला है वह
हो जाय। काल को जो करना है वह कर ले । मुझे अपने मरण अथवा जीवन की कोई भी चिन्ता नहीं है ॥४॥ कहीं-कहीं देखा जाता है कि विधि के
विधान को काल भी नहीं बदल पाता है । कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि सावन का महीना आने पर भी वर्षा नहीं होती है ॥५॥ कभी-कभी यह
भी देखा जाता है कि मार्गशीर्ष, पौष, माघ अथवा फाल्गुन में भी वर्षा होने लगती है । बिना समय के भी वर्षा होने लगती है । अतएव केवल काल
ही सब कुछ करने वाला नहीं है ॥६॥ काल तो निमित्तकारण हैं । वस्तुत: काल से भी बलवान दैव (भाग्य) है। दैव के द्वारा जो निर्मित होता है, वही
होकर रहता है, उसके विपरीत कुछ भी नहीं होता है ॥७॥ मैं दैव को ही श्रेष्ठ मानता हूँ । पौरुष को तो धिक्कार है । वह व्यर्थ ही है । जो सभी देवताओं
को जीत लिया था वह निशुम्भ इस नारी के द्वारा मारा गया ॥८॥ महाशूरवीर रक्तबीज भी जब मारा गया तो फिर मैं क्यों कीर्ति का परित्याग करके जीवन
की आशा करूँ ? ॥९॥ जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी स्वयं दो परार्द्ध तक जीने के पश्चात् कालकवलित हो जाते हैं ॥१०॥ उसी तरह चार हजार
युगों का ब्रह्माजी का एक दिन होता है । उतने में ही चौदह इन्द्र मर जाते हैं ॥११॥ ब्रह्माजी के जीवन के दो गुना समय बीत जाने पर विष्णु और विष्णु
के दो गुना समय बीत जाने पर शंकरजी की भी मृत्यु हो जाती है ॥१२॥ मूर्खों दैव के निश्चय के विषय में मुझे क्या चिन्ता करनी है पृथिवी तथा
पर्वतों का एवं सूर्य तथा चन्द्रमा का भी नाश हो जाता है ॥१३॥ जब यह निश्चित है कि जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जो मरता

अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम् ॥१४॥ रथा मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे । जयो वा मरणं वापिं भवत्वद्यैव दैवतः॥१५॥ इत्युक्त्वा सैनिकाञ्छुम्भो रथमास्थाय सत्वरः । प्रययावम्बिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले ॥१६॥ सैन्यं प्रचलितं तस्य सङ्गे तत्र चतुर्विधम् । हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतं सायुधं बहु ॥१७॥ तत्र गत्वाऽचले शुम्भः संस्थितां जगदम्बिकाम् । त्रैलोक्यमोहिनीं क्रांतामपश्यत्सिंहवाहिनीम् ॥१८॥ सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्वलक्षणसंवृताम् । स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गंधर्वयक्षकिन्नरैः ॥१९॥ पुष्पैश्च पूज्यमानां च मन्दारपादपोद्भवैः । कुर्वाणां शङ्खनिनदं घंटानादं मनोहरम् ॥२०॥ दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुम्भः कामविमोहितः । पञ्चबाणाहतः कामं मनसा समचिंतयत् ॥२१॥ अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम् । सौकुमार्यं च धैर्यं च परस्परविरोधि यत् ॥२२॥ सुकुमाराऽतितन्वङ्गी सद्यः प्रकटयौवना । चित्रमेतदसौ बाला कामभवविवर्जिता ॥२३॥ कामकांतासमा रूपे सर्वलक्षणलक्षिता । अम्बिकेयं किमेतत्तु हन्ति सर्वान्महाबलान् ॥२४॥ उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत् । न मन्त्रा वा मरालाक्षीसाधने सन्निधौ मम ॥२५॥ सर्वमन्त्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता । सुन्दरीयं कथं मे स्याद्वशगा

है उसका जन्म अवश्य होता है । अतएव यह शरीर अनित्य है । इस अनित्य शरीर से स्थिर रहने वाले यश की रक्षा करनी चाहिए ॥१४॥ शीघ्र ही मेरा रथ तैयार करो, मैं युद्ध के मैदान में जाऊँगा । भाग्यानुसार चाहे मुझे विजय मिले अथवा मृत्यु ॥१५॥ इस तरह से सैनिकों से कहकर शुम्भ शीघ्र ही रथ पर बैठ गया । और वहाँ चला गया जहाँ पर अम्बिका विद्यमान थीं ॥१६॥ उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना भी थी । अनेक प्रकार के आयुधों तथा हाथी, घोड़ा, रथ तथा पैदल सैनिकों से वह सेना सम्पन्न थी ॥१७॥ वहाँ पर जाकर शुम्भ ने त्रैलोक्यमोहिनी, अत्यन्तसुन्दर, सिंहवाहिनी देवी को पर्वत पर स्थित देखा ॥१८॥ देवी सभी आभूषणों से भूषित थीं । वे सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न थीं । स्वस्थ मन वाले देवता, गन्धर्व, यक्ष तथा किन्नर उनकी स्तुति कर रहे थे ॥१९॥ वे देवी की पारिजात पुष्पों से पूजा कर रहे थे । देवी भी शंख तथा घण्टा की मनोहर ध्वनि कर रही थीं ॥२०॥ देवी को देखकर कामपीड़ित शुम्भ मोह में पड़ गया । वह काम के पाञ्चो बाणों से पीड़ित होकर मन में सोचने लगा ॥२१॥ इस देवी के ये रूप तथा चतुरता दोनों सराहनीय हैं । इनमें परस्पर विरोधी सौकुमार्य तथा धैर्य विद्यमान हैं ॥२२॥ इन देवी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुकुमार एवं दुर्बल हैं । इनके शरीर में अभी जवानी आयी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस बाला में काम की भावना उद्भूत भी नहीं हो पायी है ॥२३॥ काम. की पत्नी रति के समान इसमें सुन्दरी के सभी लक्षण विद्यंमान हैं । क्या बात है कि यह अम्बिका सभी बलवानों को मार रही है ?॥२४॥ मैं कौन सा उपाय करूँ कि यह मेरी वशवर्तिनी हो जाय ? मैं तो वशीकरणमन्त्र भी नहीं जानता हूँ कि उसका प्रयोग करके इसको अपने वश में कर लूँ ॥२५॥ यह मद से गर्वीली बनी हुयी मोहिनी, सर्वमन्त्र

वरवर्णिनी ।।२६।। पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समरांगणात् । सामदानविभेदैश्च नेयं साध्या महाबला ।।२७।। किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं विषमे समुपस्थिते । मरणं नोत्तमं नात्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत् ।।२८।। मरणं ऋषिभिः प्रोक्तं सङ्गरे मङ्गलास्पदम् । यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल।।२९।। प्राप्तेयं दैवरचिता नारी नरशतोत्तमा। नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथाऽति बलाऽबला ।।३०।। वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि सांप्रतम् । हननायागता ह्येषा किं नु साम्ना प्रसीदति ।।३१।। न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्रविभूषिता । भेदस्तु विफलः कामं सर्वदेववशानुगा।।३२।। तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम् । जयो वा मरणं वाऽद्य भवत्वेव यथाविधि ।।३३।। व्यास उवाच– **इति संचिंत्य मनसा शुम्भः सत्त्वाश्रितोऽभवत् । युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरः स्थिताम् ।।३४।। देवि युध्यस्व कान्तेऽद्य वृथाऽयं ते परिश्रमः । मूर्खाऽसि किल नारीणां नायं धर्मः कदाचन ।।३५।। नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम् । हावभावास्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्यं विचक्षणः ।।३६।। सन्नाहश्चांगरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः । मन्दप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचन ।।३७।। अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम् । लज्जैव**

स्वरूपिणी है । यह सुन्दरी किस प्रकार मेरे वश में हो सकती है ?।।२६।। इस युद्धभूमि से मेरा पाताल में जाना उचित नहीं है । यह महाबलवती है । अतएव यह साम, दान तथा भेद नीतियों से तो मेरे वश में महीं हो सकती है ।।२७।। इस परिस्थिति में मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इसके हाथों मेरा मर जाना भी अच्छा नहीं है । स्त्री के हाथों मरने से तो अपयश ही होगा । ऋषियों ने बतलाया है कि स्त्री के हाथों मरने से अपयश होता है और युद्ध करके मरने से मङ्गलमय होता है । किन्तु वह मरण दो समान बल वालों के युद्ध करने से होना चाहिए ।।२९।। यह नारी सैकड़ो नरों से भी उत्तम है । यद्यपि यह अबला है; किन्तु अत्यन्त प्रबल है । यह हमारे वंश का विनाश करने के लिए यहाँ आयी है ।।३०।। यह तो हमें मारने के लिए ही आयी है । अतएव इससे सामनीति की बातें करना व्यर्थ है ।।३१।। यह अनेक शस्त्रों से समलंकृत है अतएव दान नीति से भी यह मेरे वश में नहीं हो सकती है । सभी देवता इसके वशवर्ती हैं अतएव भेदनीति भी इसके साथ काम नहीं कर सकती है ।।३२।। अतएव इसके साथ युद्ध करके मर जाना ही ठीक है, युद्ध से पलायन करना ठीक नहीं है । भाग्यानुसार विजय अथवा मरण जो होना है, हो जाय । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से विचार करके शुम्भ ने धैर्य धारण किया । युद्ध करने का निश्चय करके उसने समक्ष विद्यमान देवी से कहा ।।३४।। हे देवि ! अब तुम मुझसे युद्ध करो, किन्तु तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ ही है । वस्तुतः तुम मूर्ख हो । नारियों का युद्ध करना धर्म नहीं है ।।३५।। नारियों के दोनों नेत्र ही बाण हैं, भौहें ही उसके धनुष हैं । श्रृङ्गारिक हावभाव ही उसके शस्त्रास्त्र हैं, और चतुर पुरुष ही उसके लक्ष्य है ।।३६।। अपने अंगों को अलंकृत करना ही उसका कवच है और मनोरथ ही उसका रथ है।

भूषणं कान्ते न च धाार्ष्ट्यं कदाचन ॥३८॥ युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते । स्तनौ सङ्गोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम् ॥३९॥ क्व मन्दगमनं कुत्र गदामादाय धावनम् । बुद्धिदा कालिका तेऽत्र चामुंडा परनायिका ॥४०॥ चण्डिका मन्त्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा । वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयङ्करः ॥४१॥ वीणानादं परित्यज्य घंटानादं करोषि यत् । रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि ॥४२॥ यदि ते संगरेच्छाऽस्ति कुरूपा भव भामिनि । लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचना ॥४३॥ लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः । ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव ॥४४॥ कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम् । ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति ॥४५॥ हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि कामकांतोपमे मृधे । व्यास उवाच– इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका ॥४६॥ स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम। देव्युवाच– किं विषीदसि मन्दात्मन्कामबाणविमोहितः ॥४७॥ प्रेक्षिकाऽहं स्थिता मूढ कुरु कालिकया मृधम् । चामुण्डया वा कुर्वेति तव योग्ये रणांगणे ॥४८॥ प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे । इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवी मधुरया गिरा ॥४९॥ जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे।

मधुर-मधुर बातें करना ही भेरी के शब्द हैं इसके अतिरिक्त नहीं ॥३७॥ हे देवि ! इन स्वाभाविक अस्त्रों के रहने पर भी स्त्रियों का दूसरे अस्त्रों को धारण करना उनकी विडम्बना मात्र है । स्त्रियों का भूषण लज्जा है, धृष्टता नहीं ॥३८॥ युद्ध करने वाली श्रेष्ठ नारी भी कर्कश के ही समान प्रतीत होती है । धनुष की डोरी खींचने के समय वे अपने स्तनों को कैसे छिपा सकती है ?॥३९॥ कहाँ तो नारियों का स्वाभाविक मन्दगमन और कहाँ गदा उठाकर दौड़ना? तुमको तो बुद्धि देने वाली कालिका है । और चामुण्डा परनायिका है ॥४०॥ मन्त्र देने के समय चण्डिका मध्यस्था रहती है । उस शिवा का स्वर अत्यन्त कर्कश है । वह आपका लालन कैसे कर सकती है ?। तुम्हारा वाहन भी सिंह है जो सभी जीवों को भयभीत करने वाला है ॥४१॥ तुम स्वयं वीणा बजाना छोड़कर घण्टानाद करती हो । हे सुन्दरि ! ये सबके सब रूप और जवानी के विरोधी हैं ॥४२॥ यदि तुम्हारी युद्ध करने की इच्छा है तो पहले तुम कुरूप बन जाओ । तुम्हारे ओठ लम्बे, नख काले-काले, क्रूरस्वभाव, कौए के समान काले रंग की आँखें होनी चाहिये ॥४३॥ तुम्हारे पैर लम्बे-लम्बे, दाँत टेढ़े मेढे और आँखें विडाल के समान पीली-पीली होनी चाहिए । इसी तरह का रूप धारण करके तुम युद्ध करो ॥४४॥ तुम कर्कश वाणी में बोलो तब मैं तुम्हारे साथ युद्ध करता हूँ । इस तरह के सुन्दरी को देखकर हमारे हाथ युद्ध करने के लिए उद्यत ही नहीं होते हैं ॥४५॥ जिससे कि युद्ध के मैदान में हे रति के समान मनोहर रूपवाली तुम्हारा मैं बध कर सकूँ । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह बोलने वाले तथा कामार्त शुंभ को देखकर जगदम्बिका ॥४६॥ ने मुस्कुराकर उससे कहा **देवी ने कहा–** हे मूर्ख ! काम के बाणों से अत्यन्त मोहित होकर क्यों विषाद करते हो ?॥४७॥ मैं युद्ध देखने का काम करती हूँ । तुम कालिका के साथ युद्ध करो । अथवा चामुण्डा के साथ युद्ध करो ये दोनों तुम्हारे साथ युद्ध करने योग्य हैं ॥४८॥ तुम इन दोनों पर अपनी इच्छा

व्यास उवाच– **इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी ॥५०॥ गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा । तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम्॥५१॥ पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनां च महात्मनाम् । गदामुद्यम्य शुम्भोऽथ जघान कालिकां रणे ॥५२॥ कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद्भृशम् । बभंजास्य रथं चण्डी गदया कनकोज्ज्वलम् ॥५३॥ खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना । स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधान्वितः ॥५४॥ कालिका भुजयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा । वंचयित्वा गदाघातं खड्गमादाय सत्वरा ॥५५॥ चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम् । स छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः ॥५६॥ अचिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा । काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम् ॥५७॥चिच्छेद प्रहसन्ती सा सगदं किल सांगदम् । कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात् ॥५८॥ काली चिच्छेद चरणौ खङ्गेनास्य त्वरान्विता । स च्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन् ॥५९॥ धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव । तमागच्छंतमालोक्य कालिका कमलोपमम् ॥६०॥ चकर्त मस्तकं कंठाद्रुधिरौघवहं भृशम् । छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः ॥६१॥ प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम् । गतासुं**

के अनुसार प्रहार करो मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करना चाहती हूँ । इस तरह से कहकर देवी ने कालिका से मधुर वाणी में कहा ॥४९॥ हे क्रूर कालिके! कुरूप को पसन्द करने वाले इस शुम्भ को तुम मारो । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से देवी के द्वारा कहे जाने पर काल स्वरूपिणी कालिका गदा उठाकर युद्ध के मैदान में तैयार हो गयीं । इसके बाद कालिका और शुम्भ में अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ ॥५१॥ सभी देवताओं, मुनियों तथा महात्माओं के समक्ष ही शुम्भ ने गदा उठाकर युद्ध के मैदान में कालिका के ऊपर प्रहार किया ॥५२॥ कालिका ने भी दैत्यों के राजा शुम्भ को गदा से अत्यधिक मारा । उसने उसके सुवर्ण के समान चमकते हुए रथ को अपनी गदा के प्रहार से तोड़ दिया ॥५३॥ दारुण ध्वनि करने वाली कालिका ने शुम्भ के रथ में जुते हुए खच्चरों को तथा रथ के सारथि दारुक को भी मार दिया । शुंभ भी पैदल ही भारी गदा लेकर क्रोध में भरकर ॥५४॥ हँसते हुए कालिका की भुजाओं के बीच में प्रहार किया । कालिका भी उस गदा के प्रहार को विफल बनाकर खड्ग लेकर शीघ्रता से शुंभ के चंदन चर्चित सायुध बायीं भुजा को काट दिया। भुजा के कट जाने पर विरथ बना हुआ तथा खून से लथपथ शुम्भ गदा लेकर शीघ्र आकर कालिका के ऊपर गदा से प्रहार किया । हँसती हुई काली ने भी तलवार लेकर उसकी दाहिनी भुजा को ॥५६-५७॥ काट दी उसकी उस दाहिनी भुजा में गदा और विजाइठ विद्यमान थे । इसके बाद वह कालिका पर अपने पैर से प्रहार करने के लिए क्रुद्ध होकर वेग से दौड़ा ॥५८॥ काली ने शीघ्रता करते हुए अपने खड्ग से उसके दोनों पैरों को भी काट दिया। हाथ और पैर के कट जाने पर भी तिष्ठ-तिष्ठ कहते हुए शुम्भ दौड़ता हुआ कालिका को भयभीत करता हुआ उनके पास पहुँच गया । शुम्भ

पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥६२॥ तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुंडां कालिकां तथा । ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम् ॥६३॥ बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः । हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदम्बिकाम् ॥६४॥ त्यक्त्वाऽऽयुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप । एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥६५॥ शुम्भादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा । एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः ॥६६॥ शृण्वंति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवंति हि । अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु ॥६७॥ रोगी च मुच्यते रोगात्सर्वानकामान्वाप्नुयात् । शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम् । शृणोति पठते नित्यं मुक्तिमाञ्जायते नरः ॥६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

को आते हुए देखकर कालिका ने अपने खड्ग से उसके मस्तक को कमल के समान काट दिया और शुम्भ के गले से खून की धारा बह चली । मस्तक के कट जाने पर शुम्भ पर्वत के समान पृथिवी पर गिर पड़ा ॥६०-६१॥ उसके शरीर से शीघ्र ही प्राण निकल गये और मरकर गिरे हुए दैत्य शुम्भ को देखकर इन्द्र आदि देवता ॥६२॥ देवी अम्बिका, चामुण्डा और कालिका की स्तुति किये । उस समय कल्याणमयी वायु चलने लगी । दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥६३॥ होमकाल में अग्नियाँ दक्षिणावर्त ज्वाला वाली हो गयीं । मारने से बचे हुए दैत्य अम्बिका को प्रणाम करके ॥६४॥ अपने आयुधों का परित्याग करके पाताल लोक मे चले गये । हे महाराज ! आपको देवी के इस उत्तम और अद्भुत चरित को मैंने सुनाया ॥६५॥ शुम्भ आदि के वध तथा देवताओं की रक्षा का वर्णन मैंने किया । जो मनुष्य भूलोक में देवी के इस चरित का पाठ अथवा श्रवण करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं । पुत्रहीन मनुष्य पुत्र को प्राप्त कर लेता है, और निर्धन बहुत अधिक सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है ॥६६-६७॥ रोगी रोग से मुक्त होकर अपने सभी अभिलषित पदार्थों को प्राप्त कर लेता है । उस मनुष्य को शत्रु का कोई भय नहीं रह जाता है, जो इस शुम्भ चरित को पढ़ता अथवा सुनता उसे अन्त में मुक्ति मिल जाती है ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच— **महिमा वर्ण्यते सम्यक्चण्डिकायास्त्वया मुने । केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः ॥१॥ प्रसन्ना कस्य वरदा केन प्राप्तं फलं महत् । आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे ॥२॥ उपासनविधिं ब्रह्मँस्तथा पूजाविधिं वद । विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः ॥३॥** सूत उवाच— **इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः । प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम् ॥४॥** व्यास उवाच— **स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः । बभूव परमोदरः प्रजापालनतत्परः ॥५॥ सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानां च पूजकः । गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः ॥६॥ दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः । एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः ॥७॥ बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम् । हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः ॥८॥ कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः । सुरथः सैन्यमादाय संमुखः समपद्यत ॥९॥ युद्धं समभवद्धोरं तस्य तैरतिदारुणैः । म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम् ॥१०॥ तथापि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा पराजितः । भग्नश्च स्वपुरं**

राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य की कथा

जनमेजय ने कहा— हे मुने ! आप चण्डिका देवी की महिमा का वर्णन बहुत अच्छी तरह से कर रहे हैं । अब आप यह बतलायें कि देवी के तीनों चरित्रों का चिन्तन करके उस देवी की आराधना किसने की ॥१॥ वरदान देने वाली वे देवी किस पर प्रसन्न हुयीं और उन्होंने किसको कौन सा महान फल प्रदान किया । हे कृपानिधे ! आप इन बातों को मुझे बतलायें ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! आप विस्तार पूर्वक देवी की उपासना की विधि तथा पूजा की विधि बतलायें और होम की भी विधि का वर्णन करें ॥३॥ **सूतजी ने शौनक महर्षियों से कहा—** राजा जनमेजय की इस तरह की वाणी को सुनकर व्यास जी ने राजा जनमेजय को महामाया की प्रकृष्ट पूजा की विधि को बतलाया ॥४॥ **व्यासजी ने कहा—** स्वारोचिष् मन्वन्तर में सुरथ नामक एक राजा हुए । वे अत्यन्त उदार तथा प्रजा के पालन में सदा तत्पर रहते थे ॥५॥ वे सत्यवक्ता, कर्मठ तथा ब्राह्मणों की पूजा करने वाले थे । वे गुरु की भक्ति करने वाले तथा अपनी पत्नी में अनुरक्त रहने वाले थे ॥६॥ वे दान करने वाले, किसी से विरोध नहीं करने वाले तथा केवल धनुर्वेद में निष्ठित थे । इस तरह से जब वे प्रजाओं का पालन कर रहे थे उसी समय पर्वतवासी म्लेच्छ ॥७॥ अपनी चतुरङ्गिणी सेना तैयार करके उनसे शत्रुता करने लगे । उन मदमत्त पर्वतवासियों ने अपनी हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सेना को लेकर उन राजा के ऊपर आक्रमण कर दिया । वे कोलाविध्वंसी नामक राजा सुख को विध्वस्त करके सम्पूर्ण पृथिवी पर अपना राज्य बनाने की इच्छा से राजा सुरथ के राज्य में आ गये । राजा सुरथ भी अपनी सेना लेकर उन सबों का सामना किये ॥९॥

प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमंडितम् ॥११॥ चिंतयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः । प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान् ॥१२॥ स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमंडितम् । कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम् ॥१३॥ मंत्रिणः शत्रुवशगा मंत्रयोग्या न ते किल । किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिंतयत् ॥१४॥ कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः । शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति ॥१५॥ पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन । किं न ते वै प्रकुर्वंति ये लोभवशगा नराः ॥१६॥ भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बांधवं तथा । गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः ॥१७॥ तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाऽधुना । मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥१८॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः । एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः ॥१९॥ असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः । चिंतयामास मेधावी क्व गंतव्यं मया पुनः ॥२०॥ योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम् । ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥२१॥ बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम् । निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमंडितम् ॥२२॥ शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम् । नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम् ॥२३॥ होमधूमसुगंधेन

राजा का उन पर्वतवासी म्लेच्छो के साथ घोर युद्ध हुआ । म्लेच्छों की सेना थोड़ी सी थी और राजा की सेना अद्भुत थी । फिर भी भाग्यवशात् वे उन म्लेच्छों से पराजित हो गये । तब राजा भागकर अपनी दुर्ग से मण्डित राजधानी में चले गये । नीतिनिपुण तथा बुद्धिमान् राजा ने देखा कि उनके प्रधानमन्त्री म्लेच्छों से मिल गये हैं ॥१२॥ तब वे सोचने लगे कि खाईं तथा किले से मण्डित किसी विस्तृत स्थान को लेकर समय की प्रतीक्षा की जाय अथवा युद्ध किया जाय । दोनों में कौन सा पक्ष अच्छा होगा ?॥१३॥ मेरे मन्त्री तो शत्रुओं के वश में हो गये हैं; अतएव उन सबों से मन्त्रणा करना उचित नहीं है। राजा सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ ?॥१४॥ मुझको पकड़कर यदि ये पापी शत्रुओं के हाथ में दे देंगे तो फिर क्या होगा ?॥१५॥ इन पापियों पर विश्वास कभी भी नहीं किया जा सकता है । जो मनुष्य लोभी हो गया है, वह कौन सा पाप नहीं कर सकता है ?॥१६॥ लोभी मनुष्य सदैव ही भाई, पिता, मित्र, हितैषी, बान्धव, पूज्य, गुरुजन, से भी सदा द्वेष करते हैं ॥१७॥ इस समय इन सबों पर मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं करना चाहिए; क्योंकि मेरा मन्त्रिवर्ग अत्यन्त पापी तथा शत्रु के पक्ष को अपना लिया है ॥१८॥ इस तरह से सोचकर वे अत्यन्त उदास हो गये और अकेले ही वे घोड़े पर सवार होकर उस नगर से निकल गये ॥१९॥ सहायक विहीन वे नगर से निकलकर घोर जंगल मे चले गये । इसके बाद वे मेधावी राजा सोचने लगे कि मुझे अब कहाँ जाना चाहिए ॥२०॥ यहाँ से तीन योजन की दूरी पर मुनि का आश्रम विद्यमान है, इसबात को जानकर वे राजा सुमेधा नामक तपस्वी के आश्रम में चले गये ॥२१॥ उस आश्रम में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे, वहाँ नदी का किनारा था । वहाँ के जीव परस्पर में किसी से बैर नहीं करते थे। कोयल की ध्वनि वहाँ सुनायी पड़ रही थी ॥२२॥ महर्षि के शिष्यों के अध्ययन के शब्द से वह आश्रम ध्वनित होता था । सैकड़ों मृगों का समूह वहाँ

प्रीतिदं प्राणिनां सदा । वेदध्वनिसमाक्रातं स्वर्गादपि मनोहरम् ॥२४॥ दृष्ट्वा तमाश्रमं राजा बभूवासौ मुदान्वितः । भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे
विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥२५॥ आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः । दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥२६॥ मृगाजिनासनं शांतं
तपसाऽतिकृशं ऋजुम् । अध्यापयंतं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम् ॥२७॥ रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् । आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं
शमसंयुतम् ॥२८॥ तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा । तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥२९॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः।
शिष्यो ददौ वृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा ॥३०॥ उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया । अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम् ॥३१॥
पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिंतापरः कथम् । कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विति ॥३२॥ किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम् ।
करिष्ये वांछितं काममसाध्यमपि यत्तव ॥३३॥ राजोवाच– **सुरथो नाम राजाऽहं शत्रुभिश्च पराजितः । त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं**
गतः ॥३४॥ यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः । करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले ॥३४॥ शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य

पर विद्यमान था । वहाँ नीवार खूब पका हुआ था वृक्ष फूलों तथा फलों से भरे थे ॥२३॥ होम की धूम की सुगन्धि से जीवों को प्रसन्नता होती थी । वहाँ
सदा वेद की ध्वनि होती रहती थी इस तरह वह आश्रम स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर था ॥२४॥ उस आश्रम को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे भय
का परित्याग करके उसी आश्रम में विश्राम करने के लिए विचार बनाये ॥२५॥ वृक्ष में घोड़े को बाधँकर वे नम्रतापूर्वक आश्रम के भीतर गये । वहाँ पर
उन्होंने साल वृक्ष की छाया में बैठे हुए मुनि को देखा । ऋषि मृगचर्म पर बैठे थे उनका आकार अत्यन्त ऋजु था । तपस्या करने के कारण उनका शरीर
दुबला पतला था । वे अपने शिष्यों को वेदों तथा शास्त्रों को पढ़ा रहे थे ॥२७॥ ऋषि क्रोध तथा लोभ आदि द्वन्द्वों से रहित तथा मत्सर (द्वेष) रहित थे।
वे आत्मज्ञान से सम्पन्न, सत्य वक्ता तथा शुभगुण से सम्पन्न थे ॥२८॥ उन सुमेधा मुनि को देखकर राजा ने दण्ड के समान पृथिवी पर गिर कर साष्टाङ्ग
प्रणाम किया । उन ऋषि को देखकर राजा के आँखों में आँसू का जलभर गया ॥२९॥ तब मुनि ने कहा उठिये ! उठिये !! आपका कल्याण हो आचार्य
के द्वारा प्रेषित शिष्य ने राजा को बैठने के लिए आसन प्रदान किया ॥३०॥ राजा उठकर महर्षि की आज्ञा से उस आसन पर बैठ गये । सुमेधा
महर्षि ने राजा का अर्घ्य पाद्य आदि से विधिवत् सत्कार किया ॥३१॥ इसके बाद मुनि सुमेधा ने पूछा कि आप कहाँ से आये हैं ? आप कौन है ?
चिन्तित क्यों हैं ? आप अपने आने का प्रयोजन बतलाइये ॥३२॥ आपके मन में जो कुछ भी हो वह प्रयोजन बतलाइये । मैं आपकी असाध्य
अभिलाषा को भी पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा ॥३३॥ **राजा ने कहा**– मैं सुरथ नाम का राजा हूँ । मुझे शत्रुओं ने पराजित कर दिया है । मैं अपने राज्य,

तवांतिकम् । त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागतवत्सल ॥३६॥ ऋषिरुवाच– निर्भयं वस राजेन्द्र नात्र ते शत्रवः किल । आगमिष्यंति बलिनो निश्चयं तपसो बलात् ॥३७॥ नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम । कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः ॥३८॥ व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा । उवासाश्रम एवासौ फलमूलाशनः शुचिः ॥३९॥ कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः । चिंतयामास चिंतार्तो गृह एव गताशयः ॥४०॥ राज्यं मे शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा । संपीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः ॥४१॥ गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः । जाताः स्युर्नात्र संदेहः शत्रुणा परिपीडिताः ॥४२॥ सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः । दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा ॥४३॥ धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः । द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्प्रापितं किल ॥४४॥ कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः । न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे ॥४५॥ इति चिन्तापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा । तदाऽऽजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा ॥४६॥ नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः । पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम् ॥४७॥ कोऽसि कस्माच्च

गृह तथा पत्नी आदि को छोड़कर आपके शरण मे आया हूँ ॥३४॥ हे ब्रह्मन् ! आप जो कुछ भी आज्ञा देंगे वह मैं भक्तिपूर्वक करूँगा । आपको छोड़कर मेरा कोई दूसरा रक्षक नहीं है ॥३५॥ मुझे शत्रुओं से अत्यन्त भय है; अतएव मैं आपके पास आया हूँ । हे शरणागतवत्सल ! आप मेरी रक्षा कीजिये॥३६॥ **ऋषि ने कंहा–** हे राजेन्द्र ! आप यहाँ निर्भय होकर निवास करें यहाँ आपका कोई भी शत्रु मेरी तपस्या के प्रभाव से नहीं आ सकता है ॥३७॥ आप यहाँ किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं कीजियेगा । उत्तम नीवार तथा फलमूल से जीवन का निर्वाह कीजियेगा ॥३८॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह की महर्षि की बातों को सुनकर राजा भी निर्भय हो गये और फलमूल आदि का भोजन करते हुए आश्रम में ही रहने लगे ॥३९॥ एक बार किसी वृक्ष की छाया में बैठे हुए राजा अपने घर गृहस्थी के बारे में सोचते हुए चिंतित हो गये ॥४०॥ मेरे राज्य को तो शत्रुओं ने ले लिया । पापी शत्रुओं ने मेरा राज्य छीन लिया वे निर्लज्ज और दुराचारी मेरी प्रजा को अत्यधिक सताये होंगे ॥४०॥ भोजनके अभाव में मेरे हाथी घोड़े अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे ॥४२॥ इसमें सन्देह नहीं कि शत्रु उन सबों को अत्यन्त कष्ट दिये होंगे ॥४३॥ मेरे जो सेवक थे जिनका मैंने पालन किया था वे शत्रुओं के वश में होकर दुःखी हो गये होंगे॥४३॥ वे दुराचारी मेरा सारा धन जूआ, मदिरा तथा वेश्यागमन में अपव्यय कर दिए होंगे ॥४४॥ वे म्लेच्छ तथा मेरे मन्त्री भी पापी हैं। वे मेरे धन को बुरे कामों में व्यय कर दिए होंगे । सत्पात्रों को दान देने वाले वे नहीं हैं ॥४५॥ इस तरह से चिन्ता करते हुए राजा जब वृक्ष के मूल में बैठे हुए थे उसी समय वहाँ पर अत्यन्त दुःखी कोई वैश्य आ गया ॥४६॥ राजा ने उस वैश्य को अपने सामने देखा और अपने बगल में

दीनोऽसि हरितः शोकपीडितः । ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री सप्तपदी मता ॥४८॥ व्यास उवाच– **तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः । उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम् ॥४९॥** वैश्य उवाच– **मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः । धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः॥५०॥ पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसाधुभिः । (कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम्) । स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै ॥५१॥ कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना ।** राजोवाच– **सुरथो नाम राजाऽहं दस्युभिः पीडितोऽभवम् ॥५२॥ प्राप्तोस्मि गतराज्योऽत्र मंत्रिभिः परिवंचितः । दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम ॥५३॥ सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे । शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम ॥५४॥ (अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह)** । वैश्य उवाच– **कुटुम्बं मे निरालंबं मया हीनं सुदुःखितम् । भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम् ॥५५॥ भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम् । इति चिन्तातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप ॥५६॥ कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च । स्वस्थं न मन्मनो राजन्गृहचिन्ताकुलं भृशम् ॥५७॥** राजोवाच– **यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः ।**

बैठा लिया । राजा ने उस वैश्य से पूछा कि आप कौन हैं ? और कहाँ से इस वन में आयें हैं ?॥४७॥ क्यों इतना दुःखी हैं ? शोक करने के कारण आप पीले पड़ गये हैं । हे महाभाग ! आप इन बातों को बतलाइये । मित्रता तो सात पग साथ-साथ चलने मात्र से ही हो जाती है ॥४८॥ **व्यासजी ने कहा–** राजा की उस बात को सुनकर वह श्रेष्ठ वैश्य सज्जन पुरुष की संगति समझकर स्थिर होकर बैठ गया ॥४९॥ **वैश्य ने कहा–** हे मित्र ! मैं वैश्य जाति का हूँ । मेरा प्रख्यात नाम समाधि है । मैं धनवान तथा धर्म करने में निपुण हूँ । सत्य बोलता हूँ और किसी से द्वेष नहीं करता हूँ ॥५०॥ मेरे धन के लोभी तथा दुष्ट प्रकृति के पुत्रों और पत्नियों ने मुझे घर से निकाल दिया है । उन लोगों ने कृपण होने का बहाना बनाकर मुझे अत्यन्त कठिनाई से छोड़े जाने वाले मायाके बन्धन को तोड़ दिया । अपने लोगों के द्वारा त्याग दिये जाने के कारण मैं वन में आ गया हूँ ॥५१॥ हे प्रिय ! आप यह बतलायें कि आप कौन हैं ? देखनें में तो आप भाग्यवान् प्रतीत होते हैं । **राजा ने कहा–** मैं सुरथ नामक राजा हूँ । अपने शत्रुओं के द्वारा पीड़ित हूँ॥५२॥ अपने मंत्रियो से धोखा खाने के कारण मेरा राज्य चला गया और मैं वन में आ गया हूँ । हे वैश्यवर्य ! भाग्यवशात् आप यहाँ पर मुझसे मिल गये॥५३॥ सुन्दर वृक्षों वाले इस वन में हम दोनों सुखपूर्वक विचरण करेंगे । हे महाबुद्धे ! आप शोक का परित्याग करके स्वस्थ हो जायँ ॥५४॥ (यहाँ पर सुखपूर्वक मेरे साथ निवास करें) **वैश्य ने कहा–** मेरे बिना आलम्बन हीन होकर मेरा परिवार अत्यन्त दुःखी होगा । इसी चिन्ता के कारण मैं अधिक शोकसन्प्त हूँ॥५५॥ मेरी पत्नी को न तो सुख मिलेगा और न मेरे पुत्र को सुख मिलेगा । हे राजन् ! इसी चिन्ता के कारण मेरा चित्त शान्त नहीं हो रहा है ॥५६॥ हे राजन् ! घर की चिन्ता के कारण मेरा चित्त व्याकुल है । मन में होता है कि मैं अपने पुत्र, पत्नी, गृह तथा स्वजनों को कैसे देख पाऊँगा ॥५७॥

तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते ॥५८॥ हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः । तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह॥५९॥ वैश्य उवाच– **मनो मे न स्थिरं राजन्भवत्यद्यसुदुःखितम् । चिन्तयाऽत्रकुटुम्बस्य दुस्त्यजस्यदुरात्मभिः ॥६०॥** राजोवाच– **ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम् । पृच्छावोऽद्य मुनिं शान्तं शोकनाशनमौषधम् ॥६१॥** व्यास उवाच– **इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः । मुनिं तौ विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम् ॥६२॥ गत्वा तं प्रणिपत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम् । आसीनं सम्यगासीनः शांतः शान्तिमुपागतः ॥६३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

राजोवाच– **मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः । पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम सङ्गमम् ॥१॥ कुटुम्बविरहेणासौ दुःखितोऽतीव**

राजा ने कहा– हे महामते ! जिन मूर्ख तथा असद्वृत्त पुत्रों आदि के द्वारा आप अपने घर से निकाल दिये गये हैं, उन सबों को देखने से आपको कौन सा सुख मिलेगा ?॥५८॥ कल्याण करने वाला शत्रु दुःख देने वाले सुहृदों से अच्छा होता है । अतएव आप अपने मन को स्थिर करके मेरे साथ विहार करें ॥५९॥ **वैश्य ने कहा–** हे राजन् ! आज भी मेरा मन स्थिर नहीं है । उन दुरात्मा कुटुम्बी लोगों में ही मेरा मन लगा है । कुटुम्ब का त्याग करना बड़ा ही कठिन है ॥६०॥ **राजा ने कहा–** मेरा भी राज्य विषयक कष्ट मन को दुःखी बना रहा है । हमदोनों आज शान्त मन वाले मुनि से शोक नाश करने का उपाय पूछेंगे ॥६१॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह से निश्चित करके राजा और वैश्य दोनों नम्रतापूर्वक शोक के कारण के विषय में पूछने के लिए सुमेधा मुनि के पास गये ॥६२॥ मुनि के पास जाकर राजा ने मुनि को प्रणाम किया और शान्तिपूर्वक बैठे हुए मुनि के पास बैठकर शान्ति का अनुभव किए ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

देवीमाहात्म्य, ब्रह्मा और विष्णु का विवाद, शिवलिङ्ग के अन्त का पता लगाने का प्रयास तथा ब्रह्माजी का झूठ बोलना

राजा ने कहा– हे मुने ! यह वैश्य है । इसके साथ वन में मेरी मित्रता हो गयी है । अपने पुत्रों तथा पत्नी के द्वारा घर से निकाल दिये जाने के

दुर्मनाः । न शांतिमुपयात्येष तथैव मम सांप्रतम् ॥२॥ गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते । निष्कारणं च मे चिंता हृदयान्न निवर्तते । हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशं गताः ॥३॥ भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना । कोशक्षयं करिष्यंति रिपवोऽतिबलात्क्षणात्॥४॥ इत्येवं चिंतयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम् । जानामीदं जगन्मिथ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि ॥५॥ जानतोऽपि मनो भ्रान्तं न स्थिरं भवति प्रभो । कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः ॥६॥ न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम् । भ्रमोऽयमिति जानामि तथापि मम मानसः॥७॥ मोहो नैवापसरति किं तत्कारणमद्भुतम् । स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत् ॥८॥ कारणं ब्रूहि मोहस्य ममास्य च दयानिधे । व्यास उवाच– **इति पृष्टस्तदा राज्ञा सुमेधा मुनिसत्तमः ॥९॥ तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम् ।** ऋषिरुवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कारणं बंधमोक्षयोः ॥१०॥ महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह । ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड्वरुणोऽनिलः ॥११॥ सर्वे देवा मनुष्याश्च गंधर्वोरगराक्षसाः। वृक्षाश्च विविधा बल्ल्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥१२॥ मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बंधमोक्षयोः । तया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥१३॥**

कारण इनकी मुझसे भेंट हुयी ॥१॥ अपने परिवार के विप्रयोग के कारण ये अत्यन्त दुःखी हैं । इस समय न तो इनको शान्ति मिल रही है और न मुझको॥२॥ हे महामते ! राज्य के चले जाने के कारण मैं शोकार्त हूँ । यद्यपि कोई भी कारण नहीं है, फिर भी मेरे मन से चिन्ता नहीं निकलती हैं । मुझे चिन्ता हो रही है कि शत्रुओं के अधीन होने के कारण मेरे हाथी, घोड़े कमजोर तो नहीं हो गये होंगे ॥३॥ मेरे बिना मेरे सेवक दुःखी होंगे । मेरे शत्रु मेरे कोश का भी क्षय क्षणभर में कर देंगे ॥४॥ यद्यपि मैं इस बात को जानता हूँ कि यह संसार स्वप्न के समान मिथ्या है, फिर भी इन चिन्ताओं के कारण न तो रात में नींद आती है और न शरीर को सुख मिलता है ॥५॥ इन बातों को जानकर मेरा मन भ्रम में पड़ा है । मेरा मन स्थिर नहीं रहता है । मैं कौन हूँ ? ये हाथी, घोड़े कौन हैं ? ये मेरे लोग कौन है ? सहोदर भाई अपने नहीं है ॥६॥ ये पुत्र और मित्र भी मेरे अपने नहीं है । फिर भी इन सबों का दुःख मुझे दुखी बनाता है । मैं जानता हूँ कि यह सबकुछ भ्रम है । फिर भी मोह मेरे मन से नहीं निकलता है । न जाने इसका कारण क्या है ?। हे स्वामिन् ! आप सर्वज्ञ हैं । सभी संशयों का नाश करने में समर्थ हैं । हे दयासागर ! आप यह बतलायें कि इस प्रकार से होने वाली चिन्ता का कारण क्या है । **व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया–** राजा के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर मुनियों में श्रेष्ठ सुमेधा मुनि ॥९॥ ने शोक तथा मोह को विनष्ट करने वाले सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश दिया । **ऋषि ने कहा–** हे राजन् ! मैं संसार के बन्धन और संसार से मोक्ष का कारण बतला रहा हूँ । उसे आप सुनें । हे राजन् ! सभी प्राणियों के बंधन का कारण महामाया है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, वायु ॥११॥ सभी

तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यंत्रितम् । त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाऽऽविलः ॥१४॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा । ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः ॥१५॥ तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमंति परिमोहिताः । पुरा सत्ययुगे राजन्विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥१६॥ श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः । वर्षाणामयुतं यावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥१७॥ अनश्वरसुखायासौ चिंतयानस्ततः परम् । एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्माऽपि परमाद्भुते ॥१८॥ स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये । कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलांतरमतिर्हरिः ॥१९॥ तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यद्दिदृक्षया । चतुर्मुखोऽपि राजेंद्र तथैव निःसृतः स्थलात् ॥२०॥ मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ । अन्योन्यं पृष्टवंतौ तौ कस्त्वं कस्त्वमिति स्म ह ॥२१॥ ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताऽहं जगतः किल । विष्णुस्तमाह भो मूर्ख जगत्कर्ताऽहमच्युतः ॥२२॥ त्वं कियान्बलहीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः । सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम् ॥२३॥ मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम् । शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः ॥२४॥ मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ । कथं गर्वायसे मंद मोहोऽयं त्यज सांप्रतम् ॥२५॥ न मत्तोऽप्यधिकः

देवता सभी मनुष्य, गन्धर्व, उरग (सर्प) राक्षस, वृक्ष, अनेक प्रकार की लतायें, पशु, मृग, पक्षी ये सबके सब माया के अधीन हैं । ये सब संसार के बन्धन और मोक्ष के साधन हैं । माया ने ही इस सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् की रचना की है ॥१३॥ यह सारा संसार उसी के अधीन है और मोह रूपी जाल में बँधा हुआ है । ऐसी स्थिति में आप ही मोह से कैसे बच सकते हैं ? आप एक मनुष्य हैं और क्षत्रिय जाति के है । आपका मन रजोगुण से मलिन बना हुआ है ॥१४॥ वह बड़े-बड़े ज्ञानियों के भी हृदय को सदा मोह में डाले रहती है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश ज्ञानी होकर भी उसके वशवर्ती होने के कारण अत्यन्त मोहित होकर संसार में चक्कर काटते रहते हैं । हे राजन् ! प्राचीन काल में सत्ययुग में स्वयं नारायण विष्णु ॥१५-१६॥ श्वेत द्वीप में जाकर ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए दश हजार वर्ष तक तप किए ॥१७॥ वे इस प्रकार की तपस्या अविनाशी सुख प्राप्त करने के लिए किए थे। उसके पश्चात् ब्रह्माजी भी अपना अज्ञान दूर करने के लिए एक निर्जन स्थान में तपस्या करने लगे । उसके पश्चात् भगवान् विष्णु दूसरे स्थान पर जाकर तपस्या करने का मन बनाये ॥१८-१९॥ वे उस स्थान से उठकर दूसरा स्थान देखने की इच्छा से गये । ब्रह्माजी भी उसी तरह से सोच कर अपने स्थान से उठकर चल दिये ॥२०॥ ब्रह्मा और विष्णु दोनों परस्पर में एक दूसरे से बीच रास्ते में ही मिल गये । वे परस्पर में एक दूसरे से पूछे कि आप कौन हैं ? ॥२१॥ ब्रह्माजी ने बतलाया कि मैं जगत् की सृष्टि करने वाला हूँ । इस पर विष्णु ने कहा अरे मूर्ख ! जगत् का कर्ता तो मैं हूँ ॥२२॥ तुम कैसे हो सकते हो ।' तुम तो बलहीन और रजोगुणी प्रकृति के हो । सत्त्वगुण सम्पन्न मैं वासुदेव हूँ । भयंकर युद्ध करके आज ही मैंते तुम्हारी रक्षा की है । दो दानवों से पीड़ित होकर तुम मेरे शरण में आये थे ॥२४॥ मैंने उन दोनों मधु और कैटभ का वध किया । अतएव हे मूर्ख ! तुम क्यों इस प्रकार

कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते । ऋषिरुवाच– एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥२६॥ स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः । प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः ॥२७॥ मध्ये लिंगं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् । आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥२८॥ तौ संबोध्य महाभागौ विवदंतौ परस्परम् । ब्रह्मन्विष्णो विवादं मा कुरुतां वां परस्परम् ॥२९॥ लिंगस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम् । यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि ॥३०॥ एकः प्रायातु पातालमाकाशमपरोऽधुना । प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम् ॥३१॥ मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह । ऋषिरुवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ ॥३२॥ जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिङ्गमद्भुतदर्शनम् । पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माऽप्याकाशमेव च ॥३३॥ परिमातुं महालिंगं स्वमहत्त्वविवृद्धये । विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रांतः सर्वात्मना यतः ॥३४॥ न प्रापान्तं स लिंगस्य परिवृत्य ययौ स्थलम् । ब्रह्माऽगच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम् ॥३५॥ शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदावृतः । आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम् ॥३६॥ दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः । लिंगस्य मस्तकादेतद्गृहीतं केतकीदलम् ॥३७॥ अभिज्ञानाय

का गर्व करते हो । तुम अपना मोह त्याग दो ॥२५॥ इस संसार में मुझसे बढ़कर कोई भी बड़ा नहीं है । **ऋषि ने कहा–** इस तरह ब्रह्मा और विष्णु परस्पर में विवाद करने लगे ॥२६॥ उनके क्रोध से ओठ काँपने लगे । उन दोनों की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं । विवाद करने वाले ब्रह्मा और विष्णु के बीच एक अद्भुत अमृत के समान श्वेत वर्ण का विशाल लिंग पैदा हो गया और वहाँ जोर से आकाशवाणी हुयी ॥२७-२८॥ उन दोनों विवाद करने वाले ब्रह्मा और विष्णु को संबोधित करके आकाशवाणी ने कहा कि हे ब्रह्मा और विष्णु तुम लोग विवाद न करो ॥२९॥ इस लिङ्ग के ऊपरी अथवा नीचले भाग का पता लगाने में जो सफल हो जायेगा वहीं श्रेष्ठ सदा के लिए हो जायेगा ॥३०॥ अब तुम दोनों में एक ऊपर की ओर जाय और दूसरा नीचे पाताल की ओर जाय । अब विवाद का परित्याग करके मेरी बात को ही तुम लोग प्रमाण मान लो ॥३१॥ इस विवाद में आपलोग किसी को अपना मध्यस्थ मान लें । **ऋषि सुमेधा ने कहा–** उस आकाशवाणी को सुनकर वे दोनों देवता उसी लिङ्ग के छोर के अन्त का पता लगाने के लिए उद्यत हो गये ॥३२॥ उसके पश्चात् वे दोनों उस अद्भुत लिंग के छोर का पता लगाने के लिए चल पड़े । विष्णु पाताल की ओर गये और ब्रह्मा आकाश की ओर गये । उस लिङ्ग को मापने के लिए तथा अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए वे दोनों गये थे । कुछ दूर जाने के बाद विष्णु बिल्कुल थक गये ॥३४॥ वे लिङ्ग के अन्त का पता नहीं लगा सके और लौटकर अपने स्थान पर आ गये । ब्रह्माजी ऊपर की ओर गये । कुछ दूर जाने पर उन्हें शिवजी के शिर से गिरा हुआ एक केतकी का फूल मिला । वे उसको लेकर प्रसन्नतापूर्वक लौट आये । आकर ब्रह्मा ने विष्णु से उस केतकी (केवड़ा) के फूल को दिखाया ॥३६॥ और अज्ञान मोहित होकर उन्होंने झूठे ही कहा कि मैंने इस लिङ्ग के मस्तक से केतकी दल को प्राप्त किया है ॥३७॥ तुम्हारे

चानीतं तव चित्तप्रशांतये । श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम् ॥३८॥ हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना । यथार्थवादी मेधावी सदाचारः शुचिः समः ॥३९॥ साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते । ब्रह्मोवाच– **दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना ॥४०॥ यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति । इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम् ॥४१॥ वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणं प्रत्यबोधयत् । शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः ॥४२॥ संदेहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन । मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारं गतोऽस्य ह ॥४३॥ गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम् । केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव ॥४४॥ महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत्।** ऋषिरुवाच– **तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः ॥४५॥ कुपितः केतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद । गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम ॥४६॥ मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैव हि । ब्रह्मा लज्जापरो भूत्वा ननाम मधुसूदनम् ॥४७॥ शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै । एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम् ॥४८॥ अन्येषां प्राणिनां राजन्का वार्ता विभ्रमं प्रति । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः ॥४९॥ दैत्यान्वंचयते चाशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः । अवतारकरो देवो नानायोनिषु माधवः ॥५०॥ त्यक्त्वाऽऽनंदसुखं दैत्यैर्युद्धं**

विवाद के लिए प्रमाण रूप से इसे मैंने लाया है । ब्रह्मा जी के उस वाक्य को सुनकर तथा केतकी दल को देखकर ॥३८॥ श्रीहरि ने पूछा कि इसमें साक्षी कौन है, उसे बतलाओ । क्योंकि विवाद के होने पर साक्षी वही होता है जो यथार्थवक्ता, बुद्धिमान, सदाचारी, पवित्र तथा समान बुद्धिवाला (पक्षपात रहित) होता है । **ब्रह्माजी ने कहा–** इस समय उतने दूर से साक्षी कौन आयेगा ॥३९-४०॥ जो सत्य बात होगी उसे यह केतकी ही कह देगी । इसके बाद ब्रह्मा ने केतकी को प्रेरित किया ॥४१॥ तो केतकी ने विष्णु से कहा मैं शिव के मस्तक पर थी वहाँ से ही ये मुझे लेकर आये हैं ॥४२॥ हे विष्णो ! इस विषय में आपको कभी भी सन्देह नहीं करना चाहिए । ब्रह्मा इस शिवलिङ्ग के अन्तिम छोर तक गये थे इस विषय में मेरा वाक्य ही प्रमाण है ॥४३॥ शिव भक्तों द्वारा शिव को समर्पित मुझको ये लेकर आये हैं । केतकी की बात को सुनकर मुस्कुराते हुए श्रीहरि ने कहा ॥४४॥ मै तो शिव जी को ही साक्षी मानता हूँ । वे यदि कहें तो उसे मैं मान लूँगा । **ऋषि ने कहा–** श्रीहरि की बात को सुनकर सनातन महादेव ॥४५॥ कुपित हो गये और वे केतकी से कहे ऐ झूठ बोलने वाली केतकी तुम झूठ मत बोलो, तुम मेरे शिर से गिरी थी और ब्रह्मा ने बीच मार्ग में ही तुम्हें प्राप्त किया है ॥४६॥ हे मिथ्यावादिनि ! मैं तुमको सदा सर्वदा के लिए त्याग दे रहा हूँ । ब्रह्माजी लज्जित हो गये और मधुसूदन को प्रणाम किए ॥४७॥ उसी दिन से शिव जी ने केतकी पुष्प का परित्याग कर दिया । अतएव तुम समझो माया का बल ऐसा है कि वह ज्ञानियों को भी मोह में डाल देता है ॥४८॥ अतएव हे राजन् ! जब ब्रह्माजी की यह

चैवाकरोद्विभुः । नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ ॥५१॥ सर्वज्ञे देवकार्यांशे का वार्ताऽन्यस्य भूपते । ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल ॥५२॥ बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते । यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम् ॥५३॥ मोहदा ज्ञानदा सैव बंधमोक्षप्रदा सदा। राजोवाच– **भगवन्ब्रूहि मे तस्या स्वरूपं बलमुत्तमम् ॥५४॥ उत्पत्तिकारणं वापि स्थानं परमकं च यत् ।** ऋषिरुवाच– **न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन ॥५५॥ नित्यैव सा परा देवी कारणानां चकारणम् । वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ॥५६॥ शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा । चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि ॥५७॥ आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये । यदा स्तुवंति तां देवा मनुजाश्च विशांपते ॥५८॥ प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चांबिका । नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता ॥५९॥ आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी । दैवाधीना न सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप ॥६०॥ न कालवशगा नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी । अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत्॥६१॥**

हालत है तो दूसरे जीवों की कौन सी बात है । वे तो मोह में पड़ ही जाते हैं । देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए रमापति (लक्ष्मीपति) श्रीहरि सर्वदा दैत्यों को धोखा देते हैं । वे उससे होने वाले पाप की भी परवाह नहीं करते हैं । श्रीहरि देवताओं का कार्य करने के लिए अनेक अवतारों को धारण करते हैं ॥४९-५०॥ वे आनन्दजन्य सुख का परित्याग करके दैत्यों के साथ युद्ध भी किए । जगद्गुरु माधव के इस कार्य को करने में माया ही कार्य करती है।॥५१॥ सर्वज्ञ श्रीहरि के देवताओं के कार्य करने में जब माया का प्रभाव बना रहता है तो हे राजन् ! दूसरे जीवों के विषय में क्या कहना है ?। परमा प्रकृति माया ज्ञानियों के भी अन्तःकरण को बलपूर्वक पकड़कर उसे मोहग्रस्त बना देती हैं । उन्हीं भगवती के द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है ॥५३॥ वे ही मोह, ज्ञान, बन्ध तथा मोक्ष प्रदान करने का कार्य करती रहती हैं । राजा ने पूछा हे भगवन् ! आप उस देवी महामाया के उत्तम स्वरूप तथा बल का वर्णन सुनायें ।॥५४॥ उनकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा उनका सर्वोत्तम स्थान हमें बतलाइये । **ऋषि ने कहा**– उनकी उत्पत्ति कभी भी नहीं होती है, क्योंकि वे अनादि हैं ॥५५॥ वे परादेवी नित्य हैं तथा सभी कारणों का भी कारण हैं । उनकी ही शक्ति सभी प्राणियों में विद्यमान है ॥५६॥ शक्तिविहीन प्राणी शव के समान हो जाता है । वे चित् शक्ति के रूप में सभी प्राणियों के रूप में विद्यमान रहती हैं । वे ही ब्रह्मस्वरूपा हैं ॥५७॥ उनका आविर्भाव तथा तिरोभाव देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए होता है । हे राजन् ! जब देवता और मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं ॥५८॥ उस समय मनुष्यों के दुःख का नाश करने के लिए अम्बिका आविर्भूत हो जाती हैं । वे देवी अनेक रूपों को धारण करने वाली हैं और वे अनेक प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न हैं।॥५९॥ वे अपनी इच्छा के अनुसार ही आविर्भूत होती हैं । जिस तरह से सभी देवता दैवाधीन हैं उस तरह से वे देवी दैवाधीन नहीं है ॥६०॥ वे काल के अधीन नहीं है। वे अपने पुरुषार्थ शक्ति के द्वारा ही समस्त कार्यों को करती हैं । यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य है, और पुरुष द्रष्टा है । वह अकर्ता है । इस दृश्य जगत् की

दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका । पुरुषं रंजयत्येका कृत्वा ब्रह्मांडनाटकम् ॥६२॥ रंजिते पुरुषे सर्वं संहरत्यंतिरंहसा । तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६३॥ कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी । स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः ॥६४॥ दताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा । ते तां ध्यायंति देवेशाः पूजयंति परां मुदा ॥६५॥ ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम् । एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । मम बुद्ध्यनुसारेण नांतं जानामि भूपते ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

राजोवाच– **भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम् । पूजाविधिं च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद ॥१॥** ऋषिरुवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि**

जननी वे जगदम्बिका ही है । वे देवी सत् स्वरूप तथा असत् स्वरूप भी हैं । वे ही जगत् रूपी नाटक की रचना करके पुरुष को रञ्जित (प्रसन्न) करने का काम करती हैं ॥६२॥ जब पुरुष का रञ्जन हो जाता है तो ये सम्पूर्ण जगत् का संहार कर देती हैं । इस जगत् रूपी कार्य में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर तो निमित्त कारण स्वरूपा हैं ॥६३॥ इन तीनों की रचना करके देवी ने ही लीलारस की पूर्ति के लिए अपने अंश को आरोपित कर दिया है उसी से वे तीनों देवता अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक बलवान् हो गये ॥६४॥ देवी ने उन तीनों देवों में ब्रह्माजी को सरस्वती, विष्णु को लक्ष्मी और शंकरजी को पार्वती नामक शक्तियों को प्रदान किया । वे तीनों देव उस देवी का ही ध्यान करते हैं और प्रसन्नता पूर्वक उनकी ही पूजा करते हैं ॥६५॥ क्योंकि वे तीनों देव जगदम्बिका को ही सर्वेश्वरी शक्ति जानते हैं । हे राजन् ! इस तरह से मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें देवी के उत्तम माहात्म्य को सुनाया । किन्तु हे राजन् मैं भी देवी के महात्म्य को पूर्णरूप से नहीं जानता हूँ ।

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३३॥

भगवती की आराधना पूजा तथा होम की विधि

राजा सुरथ ने कहा– हे भगवन् आप मुझे देवी की आराधना की विधि की सम्यक् रूप से विधि बतलायें ॥१॥ तथा देवी की पूजा की विधि, उसके

तस्याः पूजाविधिं शुभम् । कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम् ॥२॥ आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लांबरो नरः । आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम् ॥३॥ ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्यासनमुत्तमम् । तत्रोपविश्य विधिवत्त्रिराचम्य मुदान्वितः ॥४॥ पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः । प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च ॥५॥ कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु संभारं प्रोक्ष्य मंत्रतः । कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥६॥ शुभे ताम्रमये पात्रे चन्दनेन सितेन च । षट्कोणं विलिखेद्यंत्रं चाष्टकोणं ततो बहिः ॥७॥ नवाक्षरस्य मंत्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः । कृत्वा यंत्रप्रतिष्ठां च वेदोक्तां संविधाय च ॥८॥ अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामंत्रैः शिवोदितैः । पूजनं पृथिवीपाल भगवत्याः प्रयत्नतः ॥९॥ कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः । जपेन्नवाक्षरं मंत्रं सततं ध्यानपूर्वकम् ॥१०॥ होमं दशांशतः कुर्याद्दशांशेन च तर्पणम्। भोजनं ब्राह्मणानां च तद्दशांशेन कारयेत् ॥११॥ चरित्रत्रयपाठं च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत् । नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम् ॥१२॥ आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप । नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥१३॥ होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमंत्रैः सुपायसैः । शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैः सुसंस्कृतैः ॥१४॥ छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः । हयारिकुसुमै रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः ॥१५॥

मंत्र तथा होम की विधि को बतलायें । **ऋषि सुमेधा ने कहा–** हे राजन् ! आप सुनें मैं आपको देवी की पूजा की विधि को बतलाता हूँ । वह मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली, मोक्ष प्रदान करने वाली तथा ज्ञान प्रदान करने वाली है और दुःखो का विनाश करने वाली हैं ॥२॥ सबसे पहले विधि पूर्वक स्नान करके पवित्र उजला वस्त्र धारण करें । फिर आचमन करके पूजा स्थल को पवित्र करे ॥३॥ उसके बाद लिपी हुई भूमि पर उत्तम आसन बिछाये। उस आसन पर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक तीन बार आचमन करे ॥४॥ तदनंतर पूजा की सामग्री अपनी शक्ति के अनुसार रखे । उसके बाद प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे ॥५॥ उसके पश्चात् सामग्री का मंत्र से प्रेक्षण करके देवी की प्राणप्रतिष्ठा करे और इसके बाद मास तिथि आदि काल का उच्चारण करके विधिपूर्वक न्यास करे ॥६॥ फिर ताम्बे के शुद्ध पात्र में उजले चन्दन से षट्कोण बनाये और उसके बाहर अष्टकोण बनाये ॥७॥ उसके बाद नवाक्षर मंत्र के बीज मंत्रों को लिखे । उसके पश्चात वेदोक्त विधि से यंत्र की प्रतिष्ठा करके धातु की मूर्ति बनाकर भगवान् शंकर के द्वारा उपदिष्ट मंत्रों से भगवती की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥९॥ अथवा आगमोक्त विधि से पूजा करके देवी का ध्यान करते हुए नवार्णमंत्र का जप करे ॥१०॥ जप के दशांश होम करना चाहिए ॥११॥ प्रतिदिन तीनों चरित्रों का पाठ करके देवी का विसर्जन कर देना चाहिए । विधिपूर्वक नवरात्रव्रत भी करना चाहिए ॥१२॥ हे राजन्! आश्विन तथा चैत्रमास के शुक्ल पक्ष में इस व्रत को करना चाहिए । कल्याण चाहने वाले को नवरात्रव्रत में उपवास करना चाहिए ॥१३॥ जपे जाने वाले मंत्र से अच्छे से अच्छे

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां च विशेषतः । कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥१६॥ निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते । अपुत्रो लभते पुत्राञ्छुभांश्च वशवर्तिनः ॥१७॥ राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम् । शत्रुभिः पीडितो हन्ति रिपुं मायाप्रसादतः ॥१८॥ विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेन्द्रियः । अनवद्यां शुभां विद्यां विंदते नात्र संशयः ॥१९॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः । पूजयेज्जगतां धात्रीं स सर्वसुखभाग्भवेत् ॥२०॥ नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः । वांछितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः ॥२१॥ आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम् । करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२२॥ विधिवन्मंडलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत् । कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमंत्र विधानतः ॥२३॥ यन्त्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि । वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान् ॥२४॥ कृत्वोपरि वितानं च पुष्पमालासमावृतम्। धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम् ॥२५॥ त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चण्डिकायाश्च पूजने ॥२६॥ धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः । गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥२७॥ उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः । कन्यकानां पूजनं च

हविष्य (क्षीरान्न) से होम करना चाहिए । उस हविष्य में चीनी, घी तथा शुद्ध शहद मिले रहना चाहिए ॥१४॥ अथवा बकरे के मांस या विल्वपत्र से होम करना चाहिए । या लाल कनैल या चीनी मिलाकर तिल से होम करे ॥१५॥ अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमी के दिन देवी की विशेष रूप से पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिए ॥१६॥ ऐसा करने से निर्धन व्यक्ति धन प्राप्त कर लेता है, रोगी रोग से मुक्त हो जाता है । पुत्रहीन सुन्दर पुत्रों को प्राप्त कर लेता है; जो अपने पिता के वशवर्ती रहते हैं । जिस राजा का राज्य चला गया रहता है, वह सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य प्राप्त कर लेता है । शत्रुओं से पीड़ित व्यक्ति महामाया की कृपा से अपने शत्रुओं का वध कर देता है ॥१८॥ जो विद्यार्थी जितेन्द्रिय रहकर देवी की पूजा करता है । वह निस्संदेह रूप से निर्दोष विद्या को प्राप्त कर लेता है ॥१९॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र भक्तिपूर्वक देवी की पूजा करता है; वह सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष भक्तिभाव पूर्वक नवरात्र व्रत करता है तो उसे अपने मनोभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥२१॥ जो मनुष्य अश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नवरात्र का व्रत भक्तिपूर्वक करता है उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥२२॥ विधिपूर्वक मण्डल का निर्माण करके पूजा के स्थान की कल्पना करनी चाहिए और वैदिक मन्त्रों के विधान पूर्वक कलशस्थापन करना चाहिए ॥२३॥ सुन्दर यन्त्र का निर्माण करके उसकी स्थापना कलश के ऊपर करनी चाहिए । उसके चारों ओर सुन्दर यव बो देना चाहिए ॥२४॥ ऊपर से चाँदनी लगाकर उसे फूलों की माला से सजाना चाहिए । धूप, दीप इत्यादि से सम्पन्न चण्डिका का गृह बनाये ॥२५॥ वहाँ पर अपनी शक्ति के अनुसार तीनों समय (प्रातः, दोपहर और शाम) पूजा करनी चाहिए । पूजन में वित्तशाठ्य (कंजूसी) नहीं करना चाहिए ॥२६॥ इस कार्य में धूप, दीप सुन्दर नैवेद्य अनेक प्रकार के फल तथा पुष्प, गीत, वाद्य,

विधेयं विधिपूर्वकम् ॥२८॥ चंदनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा । सुगंधतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः ॥२९॥ एवं संपूजनं कृत्वा होमं
मंत्रविधानतः । अष्टम्यां वा नवम्यां च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥३०॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने । कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः॥३१॥
एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं नरः । नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता ॥३२॥ इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान् ।
देहांते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः ॥३३॥ जन्मांतरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी । जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः ॥३४॥
नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । आराधनां शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम् ॥३५॥ अनेन विधिना राजन्समाराधय चंडिकाम् । जित्वा
रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥३६॥ सुखं च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः । पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः ॥३७॥
वैश्योत्तम त्वमप्यद्य समाराधय कामदाम् । देवीं विश्वेवरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥३८॥ स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहं गतः । सुखं
सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः ॥३९॥ देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः । नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः ॥४०॥ इह

स्तोत्रपाठ तथा वेदों के पारायण इत्यादि के द्वारा उत्सव मनाना चाहिए । उसमें अनेक वाद्यों को भी होना चाहिए । कन्याओं का भी विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए ॥२७-२८॥ चन्दन, आभूषण, वस्त्र तथा अनेक प्रकार के नैवेद्य, सुगन्धित तेल, मालाएँ जो मन को अच्छी लगें इन सबों से पूजा करके मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक होम करे । इस कार्य को नवरात्र की अष्टमी और नवमी तिथि को विधिपूर्वक करना चाहिए ॥३०॥ उसके बाद दशमी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयम् पारण करे । भक्तिपूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए ॥३१॥ जो नर अथवा सधवा या विधवा पतिव्रता नारी देवी की इस प्रकार से नवरात्र व्रत करती है ॥३२॥ वइ इस लोक में ही अपने अभिलिषत भोगों को प्राप्त करती है और मृत्यु के पश्चात् सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त करती है ॥३३॥ उसकी अगले जन्म में देवी में अनन्या भक्ति होती है । उसका जन्म उत्तम कुल में होता है तथा वह सदाचारी होता है ॥३४॥ नवरात्र व्रत को सर्वोत्तमव्रत कहा गया है । भगवती की आराधना सभी प्रकार के कल्याण को प्रदान करने वाली है ॥३५॥ हे राजन् ! आप भी इस प्रकार से चण्डिका देवी की आराधना करें । ऐसा करके आप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके सुदृढ राज्य को प्राप्त कर लेंगे ॥३६॥ राजन् इस व्रत के करने से अपने देह में तथा घर में परम सुख की प्राप्ति होती है । निश्चित रूप से आप अपने पुत्रों तथा पत्नी को प्राप्त कर लेंगे ॥३७॥ हे वैश्योत्तम आप भी अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए चण्डिका देवी की आराधना करें । ये देवी ही माया हैं, सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी तथा सृष्टि एवं संहार को करने वाली हैं ॥३८॥ तुम अपने घर जाने पर अपने लोगों के लिए सम्मान्य हो जाओगे । और अपने मनोऽनुकूल सांसारिक सुख को प्राप्त करके अन्त में तुम्हारा निवास देवी के लोक में होगा । जिनलोगों ने देवी की आराधना नहीं की है वे लोग नरक में जाते हैं ॥३९-४०॥ वे लोग इस लोक में अत्यधिक

लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः । भवंति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः ॥४१॥ निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः । बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चंपकैः ॥४२॥ अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः । भवंति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः ॥४३॥ धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवंतः सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः । निगमपठितमंत्रैः पूजिता यैर्भवानी नृपतितिलकमुख्यास्ते भवंतीह लोके॥४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ । प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम् ॥१॥ हर्षेणोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ। कृतांजलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ ॥२॥ भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ । तव सूक्तिसरस्वत्या गंगयेव भगीरथः ॥३॥ साधवः**

दुःखों से आर्त बने रहते हैं और अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं । हे राजन् ! ऐसे लोग अपने शत्रुओं से पराजित हो जाते हैं ॥४१॥ वे लोग स्त्री तथा पुत्र से रहित होते हैं । उन्हें सदा तृष्णा (लालच) घेरे रहती है और उनकी बुद्धिभ्रष्ट हो जाती है । जो लोग देवी की पूजा विल्वफल, करवीर, कमल तथा चम्पा के फूलों से करते हैं । वे लोग अत्यन्त विलासी होते हैं । वे पुण्यवान पुरुष शक्ति की भक्ति से सम्पन्न होते हैं ॥४३॥ हे राजन् ! जो लोग तंत्रोक्त मंत्रों के द्वारा देवी की पूजा करते हैं वे इस जगत् में हर प्रकार की धन-सम्पत्ति को प्राप्त करके सुखी हो जाते हैं । वे संसार में समादृत तथा समस्त सद्गुणों से सम्पन्न होते हैं । और वे दूसरे जन्म में सर्वश्रेष्ठ राजा होते हैं ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके पाँचवे स्कन्ध के चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३४॥

राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य के द्वारा देवी का साक्षात् दर्शन और वर की प्राप्ति

व्यासजी ने कहा– महर्षि सुमेधा की वाणी को सुनकर अत्यन्त दुःखी राजा सुरथ तथा समधि वैश्य ने प्रेमपूर्वक मुनि को प्रणाम किया और वे विनयावनत हो गये ॥१॥ बोलने में चतुर उन दोनों के नेत्र प्रसन्नता से विकसित हो गये । उन दोनों ने हाथ जोड़कर तथा शान्तमना होकर भक्तिपूर्वक हृदय से कहा– ॥२॥

संभवंतीह परोपकृतितत्पराः । अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम् ॥४॥ पूर्वपुण्यप्रसंगेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः । तवावाभ्यां महाभाग
महादुःखविनाशकः ॥५॥ भवंति मानवा भूमौ बहवः स्वार्थतत्पराः । परार्थसाधने दक्षाः केचित्त्वापि भवादृशाः ॥६॥ दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ
वैश्योऽयं चातिदुःखितः । उभौ संसारसंतप्तौ तवाश्रमपदे मुदा ॥७॥ दर्शनादेव हे विद्वन्गतं दुःखमिहावयोः । देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव
सांप्रतम् ॥८॥ धन्यावावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात् । पावितौ भवता ब्रह्मन्कृपया करुणार्णव ॥९॥ गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं
भवार्णवे । मग्नौ श्रांताविति ज्ञात्वा मंत्रदानेन सांप्रतम् ॥१०॥ तपः कृत्वाऽतिविपुलं समाराध्य सुखप्रदम् । संप्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो
निजमंदिरम् ॥११॥ वदनात्तव संप्राप्य देवीमंत्रं नवाक्षरम् । स्मरणं च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ ॥१२॥ व्यास उवाच– **इति संचोदितस्ताभ्यां**
सुमेधा मुनिसत्तमः । ददौ मंत्रं शुभं ताभ्यां ध्यनबीजपुरःसरम् ॥१३॥ तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं संमंत्र्य गुरुदैवतौ । जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम्॥१४॥

हे भगवन् ! आपकी सूक्ति रूपी सरस्वती के द्वारा अत्यन्त दुःखी हमदोनों उसी तरह से पवित्र बना दिए गये हैं, जिस तरह गंगा की धारा से राजा भगीरथ पवित्र हो गये थे ॥३॥ संसार में सज्जन पुरुष तो सदा परोपकार करने में ही लगे रहते हैं । उनके स्वाभाविक गुण सभी शरीरधारियों के लिए सुख देने वाले होते हैं ॥४॥ पूर्वजन्म के पुण्य के फंलस्वरूप ही हम इस आश्रम में आ गये हैं । हे महाभाग ! आपका यह आश्रम हमदोनों के दुःख को विनष्ट कर देने वाला है ॥५॥ संसार में अपने स्वार्थ की सिद्धि करने में लगे रहने वाले लोग बहुत हैं । दूसरों का कल्याण करने वाले आपके जैसे महापुरुष तो कोई-कोई और कहीं-कहीं पर ही मिलते हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं और यह वैश्य दोनों ही अत्यन्त दुःखी हैं । हमदोनों सांसारिक दुःखों से संतप्त हैं । किन्तु इस आश्रम में आपका दर्शन करने मात्र से ही हम दोनों का दुःख विनष्ट हो गया । आपके वाक्यों को सुनने मात्र से ही हमदोनों के शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कष्ट विनष्ट हो गये ॥७-८॥ आपकी सूक्ति रूपी अमृत के रस से हमदोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये । हे ब्रह्मन् ! आप तो करुणा के सागर हैं । अतएव आपने अपनी कृपा से हमदोनों को पवित्र बना दिया है ॥९॥ हमदोनों को इस संसार सागर में डूबते हुए तथा थके हुए जानकर आप हमदोनों का हाथ पकड़कर मंत्र प्रदान करके इस संसारसागर से पार लगा दीजिये ॥१०॥ हमदोनों अत्यधिक तपस्या करके तथा भगवती को अपनी आराधना से प्रसन्न करके, उनका सुखप्रद दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् ही अपने घर जायेंगे ॥११॥ आपके मुख से नव अक्षरों वाले देवीमंत्र को प्राप्त करके हमदोनों देवी की आराधना निराहार रहकर व्रत करते हुए करेंगे ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से उनदोनों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर मुनियों में श्रेष्ठ सुमेधा ने उन्हें देवी के ध्यान तथा बीजमंत्र पूर्वक नवाक्षर मंत्र का उपदेश दिया ॥१३॥ वे दोनों राजा और वैश्य मुनि सुमेधा से मंत्र प्राप्त करके आपस में विचार किए और सर्वोत्तम नदी के तट में चले गये ॥१४॥ एकान्त में निर्जन स्थान पर आसन लगाकर वे दोनों स्थित

एकांते विजने स्थाने कृत्वासनपरिग्रहम् । उपविष्टौ स्थितप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ ॥१५॥ मंत्रजाप्यरतौ शांतौ चरित्रत्रयपाठकौ । निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ ॥१६॥ तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा । पादांबुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाप्यलम् ॥१७॥ कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः । कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने ॥१८॥ नान्यकार्यपरौ क्वापि बभूवतुः कदाचन । देवीध्यानपरौ नित्यं जपमंत्ररतौ सदा ॥१९॥ एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप । बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशिनौ नृप ॥२०॥ वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ । शुष्कपर्णाशिनौ दांतौ जपध्यानपरायणौ ॥२१॥ पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनं च तौ । प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम् ॥२२॥ रक्तांबरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम् । कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम् ॥२३॥ वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवीं प्रीतियुक्तौ बभूवतुः । जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ ॥२४॥ एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ । चक्रतुस्तौ तदा चिंतां चित्ते दर्शनलालसौ ॥२५॥ प्रत्यक्षदर्शनं देव्या न प्राप्तं शांतिदं नृणाम् । देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ ॥२६॥ इति संचिन्त्य मनसा राजा कुण्डं चकार ह ।

प्रज्ञ बैठ गये और तपस्या करने से वे अत्यन्त क्षीणकाय हो गये ॥१५॥ वे दोनों शान्तमन से मन्त्र का जप करते थे । तथा तीनों चरित्रों (प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र तथा उत्तम चरित्र) का पाठ करते थे । इस तरह ध्यान करते हुए उन दोनों को एक महीना बीत गया ॥१६॥ इस एक महीने का व्रत करने से ही उनदोनों के मन में भगवती के चरणों में सर्वोत्तम प्रीति उत्पन्न हो गयी और वे अत्यधिक स्थिर बुद्धिवाले हो गये ॥१७॥ एक बार वे दोनों महात्मा सुमेधा मुनि के चरणों के सन्निकट जाकर उन्हें प्रणाम किए और लौट कर पुनः अपने कुशासन पर बैठ गये ॥१८॥ वे कभी भी कोई दूसरा कार्य नहीं करते थे सदा देवी का ध्यान करते थे और निरंतर देवी के मंत्र को जपते रहते थे ॥१९॥ इस तरह उनदोनों के पूरे एक वर्ष बीत गये । इसके बाद वे दोनों फलाहार करना छोड़ दिये और सुखे पत्ते को ही खाकर रहने लगे ॥२०॥ सूखे पत्ते का भोजन करते हुए जितेन्द्रिय रहकर देवी का जप तथा ध्यान करते हुए उनदोनों के तपस्या करते हुए एक वर्ष फिर बीत गये ॥२१॥ दो वर्ष पूरा हो जाने पर वे दोनों एक दिन स्वप्न में देवी का मनोहर दर्शन प्राप्त किए ॥२२॥ एक बार राजा ने भी स्वप्न में लालवस्त्र धारण किए हुए तथा सुन्दर आभूषणों से समलंकृत देवी का दर्शन किया॥२३॥ वे दोनों स्वप्न में देवी का दर्शन करके देवी के प्रति अत्यधिक प्रीति से सम्पन्न हो गये और तीसरे वर्ष में वे दोनों जल का ही आहार करके रहने लगे ॥२४॥ इस तरह तीन वर्षों तक वे दोनों राजा सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य देवी का दर्शन करने की लालसा से चिन्तन करने लगे ॥२५॥ वे सोच रहे थे कि देवी हमदोनों को शान्ति प्रदान करने वाला अपना प्रत्यक्ष दर्शन अवश्य देंगी । अन्यथा अत्यन्त दुःखी हमदोनों अपने शरीर का त्याग कर देंगे ॥२६॥

त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः ॥२७॥ संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान् । जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः ॥२८॥ तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा । रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ ॥२९॥ तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः । प्राह प्रीतिभरोद्भ्रांतौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम् ॥३०॥ श्रीदेव्युवाच– वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वांछितम् । तुष्टाऽहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम ॥३१॥ वैश्यं प्राह ततो देवी प्रसन्नाऽहं महामते । किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम् ॥३२॥ व्यास उवाच– तच्छुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदान्वितः । देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥३३॥ तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन्निजं गृहम् । शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यंति पराजिताः ॥३४॥ मंत्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यंति पादयोः । कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम् ॥३५॥ कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप । देहान्ते जन्म संप्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः ॥३६॥ व्यास उचाच– वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृतांजलिपुटः शुचिः। न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा ॥३७॥ सर्वं बंधकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम् । ज्ञानं मे देहि विशदं मोक्षदं वंधनाशनम् ॥३८॥

इस तरह से सोचकर राजा ने कुण्ड का निर्माण किया । वह कुण्ड त्रिकोण, सुस्थिर, सुन्दर तथा एक हाथ लम्बा चौड़ा और गहरा था ॥२७॥ उसमें उन दोनों ने अग्नि की स्थापना की तथा राजा अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने शरीर का मांस काट-काटकर बार-बार होम करने लगे ॥२८॥ उसी तरह से वैश्य भी प्रदीप्त अग्नि में अपने मांस की आहुति देने लगे । वे दोनों प्रयास पूर्वक अपने खून से बलि प्रदान करते थे ॥२९॥ उसी समय भगवती ने उन दोनों को प्रत्यक्ष दर्शन दिया और प्रेम से परिपूर्ण उन दोनों को दुःखी देखकर भगवती ने उन दोनों से कहा ॥३०॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे राजन् ! तुम अपने मन में जो चाहते हो वह वरदान माँगो । मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम मेरे प्रिय भक्त हो ॥३१॥ इसके बाद उन्होंने समाधि नामक वैश्य से भी कहा हे महामते! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम्हारे मन में जो भी अभिलाषा हो तुम उस वरदान को माँगो मैं उसे देने के लिए तैयार हूँ ॥३२॥ **व्यासजी ने कहा–** देवी की वाणी को सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर कहा हे माँ ! आप मुझे यह वरदान दें कि मैं शत्रु को परास्त करके अपने खोए हुए राज्य को प्राप्त कर सकूँ ॥३३॥ तब देवी ने कहा राजन् ! तुम अपने धर जाओ । आपके शत्रुओं की शक्ति क्षीण हो जायेगी । वे पराजित हो जायेंगे ॥३४॥ तुम्हारे मंत्रीगण आकर तुम्हारे पैरों पर गिरेंगे । तुम अपने नगर में सुखपूर्वक राज्य करो ॥३५॥ दश हजार वर्ष तक विशाल राज्य करके मृत्यु के पश्चात् तुम्हारा जन्म सूर्य के पुत्र के रूप में होगा और तुम मनु होओगे ॥३६॥ **व्यासजी ने कहा–** उस पवित्र वैश्य ने भी हाथ जोड़कर देवी से कहा माँ मुझे न तो गृह से मतलब है और न पुत्र से और न धन से ॥३७॥ हे माँ यह सबकुछ स्वप्न के समान नश्वर है और संसार के बन्धन में बाँधने वाला है । आप मुझे विशद ज्ञान

असारेऽस्मिश्च संसारे मूढ़ा मज्जंति पामराः । पण्डिताः संतरंतीह तस्मान्नेच्छंति संसृतिम् ॥३९॥ व्यास उवाच– **तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरःस्थितम् । वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः ॥४०॥ इति दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवांतरधीयत । अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम्॥४१॥ प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे । तदैव तस्य सचिवास्तत्रागत्य नृपं प्रजाः ॥४२॥ प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्रांजलिस्थिताः। राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे ॥४३॥ राज्यं निष्कंटकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः । तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥४४॥ आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मंत्रिभिः परिवारितः । संप्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वजनबांधवान् ॥४५॥ बुभुजे पृथिवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम् । वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसंगः समंततः ॥४६॥ कालाऽतिवाहनं तत्र मुक्तबंधश्चकार ह । तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ ॥४७॥ एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम् । आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः ॥४८॥ दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः । एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा ॥४९॥ यः श्रृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् । संप्राप्नोति नरः सत्यं संसारसुखमद्भुतम् ॥५०॥ ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं**

प्रदान करें कि मेरा संसार का बन्धन समाप्त हो जाय और मुझे मुक्ति मिल जाय ॥३८॥ इस संसार में अज्ञानी जीव डूबते रहते हैं और ज्ञानी पुरुष इस संसार सागर को पार कर जाते हैं । वे इसमें डूबते नहीं हैं ॥३९॥ **व्यासजी ने कहा–** उस बात को सुनकर अपने समाने विद्यमान उस वैश्य से महामाया ने कहा हे वैश्यवर्य तुम्हें ज्ञान हो जायेगा । इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥४०॥ इस तरह से उन दोनों को वरदान देकर देवी वहीं पर अन्तर्धान हो गयी। देवी के अन्तर्धान हो जाने पर राजा ने उन मुनि श्रेष्ठ को प्रणाम किया और घोड़े पर चढ़कर अपने नगर जाने का मन बनाये । उसी समय उस राजा के मंत्री और प्रजाएँ वहाँ आ गयीं ॥४१-४२॥ उन सबों ने राजा को प्रणाम किया और राजा के सामने हाथ जोड़कर कहने लगे । हे राजन् ! अपने ही पाप के कारण आपके सभी शत्रु युद्ध में मारे गये ॥४३॥ हे राजन् ! आप अपने नगर में रहकर निष्कंटक राज्य करें । उस बात को सुनकर राजा ने सुमेधा मुनि को प्रणाम किया ॥४४॥ और उनसे आज्ञा लेकर अपने मंत्रियों के साथ वहाँ से प्रस्थान किये । अपने राज्य, पत्नी तथा बाँधवों को प्राप्त करके ॥४५॥ सागर पर्यन्त पृथिवी के राज्य का राजसुख उपभोग किए । समाधि वैश्य को निर्मल ज्ञान की प्राप्ति हो गयी और ममता रहित होकर तीर्थों में विचरण करते हुए तथा भगवती के गुणों का गायन करते हुए संसार के बन्धन से मुक्त हो गये ॥४६-४७॥ इस तरह से मैंने आपको देवी के अद्भुत चरित्र को सुनाया, तथा जिस प्रकार राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य को देवी की आराधना का फल प्राप्त हुआ उसे भी सुनाया ॥४८॥ मैंने आपको दैत्यों के वध तथा देवी के प्रादुर्भाव की कथा सुनायी । देवी इस तरह के प्रभाव से सम्पन्न हैं और अपने भक्तों को अभय प्रदान करने वाली हैं ॥४९॥

सुखदं तथा । पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम् ॥५१॥ अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं परमं मतम् ॥५२॥ सूत उवाच– **जनमेजयेन राज्ञाऽसौ पृष्टः सत्यवतीसुतः । उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित् ॥५३॥ चरितं चंडिकायास्तु शुंभदैत्यवधाश्रितम्। कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः ॥५४॥ इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः ।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

व्योमांकाभ्रद्विसंख्यातैः २०९० श्लोकैर्व्यासेन धीमता । देवीभागवतस्यास्य पञ्चमस्कन्ध ईरितः ॥१॥

॥ समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ॥

◆

जो मनुष्य देवी के इस कथानक का नित्य ही श्रवण करता है, वह संसार के समस्त अद्भुत सुखों को प्राप्त करता है ॥५०॥ यह अद्भुत आख्यान ज्ञान प्रदान करने वाला, मोक्ष देने वाला, कीर्ति देने वाला तथा सुख देने वाला है । तथा यह सुनने वालों को पवित्र बना देता है । यह समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । तथा इसमें सभी धर्मों का सन्निवेश है । यह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट साधन है ॥५२॥ **सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा–** राजा जनमेजय को समस्त अर्थ तत्त्वों के ज्ञाता व्यासजी ने इस दिव्य संहिता का उपदेश दिया । करुणा करने वाले महर्षि व्यास ने शुम्भ दैत्य क्रे वध विषयक देवी के चरित को उन्हे सुनाया ॥५४॥ हे मुनीश्वरों ! मैंने इस प्रकार से आपलोगों को पुराणों का सार सुनाया है ।

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३५॥

महर्षि व्यास ने देवीभागत महापुराण के इस पाँचवे स्कन्ध में दो हजार नब्बे (२०९०) श्लोकों को कहा है ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण का पाँचवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

◆

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

षष्ठः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

ऋषय उचुः– **सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम् । न तृप्ताःस्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम् ॥१॥ पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् । वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥२॥ वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः । स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना ॥३॥त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः । शक्रेण घातितः कस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः ॥४॥ देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः । तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः पुराणागमवादिभिः ॥५॥ विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह । छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः ॥६॥ विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः । प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान्प्रभुः ॥७॥ सन्धिं विधाय स ह्येवं मंत्रितोऽसौ महाबलः । हरिभ्यां सत्यमुत्सृज्य जल फेनेन शातितः ॥८॥ कृतमिंद्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम् । महान्तोऽपि च मोहेन वंचिताः पापबुद्धयः॥९॥ अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवंति सुरसत्तमाः । यदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः ॥१०॥ एवंविशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः । हत्वा वृत्रं**

विश्वरूप तथा त्रिशिरा की तपस्या में इन्द्र द्वारा विघ्न

ऋषियों ने सूतजी से पूछा– हे महाभाग सूतजी ! महर्षि द्वैपयान द्वारा वर्णित देवीभागवत की मधुर कथा को सुनकर हमलोगों को तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ अतएव हमलोग आप से पुनः पुराण कथा को पूछ रहे हैं । वह वेद में भी वर्णित होने के कारण मनोहर है और पापों की प्रसिद्ध विनाशिका है ॥२॥ त्वष्टा का पुत्र जो वृत्रासुर था उसको इन्द्र ने कैसे मारा ?॥३॥ त्वष्टा तो देवपक्षीय थे । उनका ही पुत्र वृत्रासुर था महाबलवान् उस ब्राह्मण वंशीय वृत्रासुर को इन्द्र ने क्यों मारा ?॥४॥ पुराणों तथा आगमों के जानकारों का कहना है कि देवता सात्त्विक प्रकृति के होते हैं, मनुष्य राजस प्रकृति के होते हैं और पशु-पक्षी तामस प्रकृति वाले होते हैं ॥५॥ इस कथन में विरोध की प्रतीति होती है कि इन्द्र ने छल करके बलवान् वृत्रासुर का वध किया ॥६॥ भगवान् विष्णु सत्त्वगुण सम्पन्न हैं; और उन्होंने ही इन्द्र को वृत्रासुर का वध करने के लिए प्रोत्साहित किया । सबों के स्वामी वे स्वयं इन्द्र के वज्र में छलपूर्वक प्रवेश कर गये ॥७॥ जब देवताओं और दैत्यों में सन्धि हो गयी थी तो भी इन्द्र और विष्णु ने आपस में विचार करके सत्य का परित्याग कर दिया और छल करके जल के फेन से वृत्रासुर को मार दिया ॥८॥ हे सूत ! इन्द्र और विष्णु दोनों ने इस प्रकार का साहसिक पापमय कार्य क्यों किया? लगता है महापुरुषों को भी लोभ नहीं छोड़ता है । उनकी भी पाप बुद्धि हो जाती हैं ॥९॥ बड़े-बड़े देवता भी अन्यायी हो जाते हैं । सदाचारी ही होने के कारण देवताओं को शिष्ट कहा गया है ॥१०॥ जब देवता भी इस तरह के पाप का कार्य करते हैं तो फिर उनमें शिष्टता है ही कहाँ ? विश्वस्त वृत्रासुर

तु विश्वस्तं शक्रेण छद्मना पुनः ॥११॥ प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् । किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः कृतः ॥१२॥ श्रीदेव्या इति तत्रापि चित्तं मोहयतीह नः । सूत उवाच– श्रृण्वन्तु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥१३॥यथेन्द्रेण च संप्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम् । एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१४॥ पारीक्षितेन राज्ञाऽपि स यदाह च तद्ब्रुवे । जनमेजय उवाच । कंथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो मघवता मुने॥१५॥ सहायं विष्णुमासाद्य छद्मना सात्त्विकेन ह । कथं स देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना ॥१६॥ कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुंगव । तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥१७॥ महतां चरितं श्रृण्वन्को विरज्येत मानवः । कथयाम्बावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम्॥१८॥ व्यास उवाच– धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा । पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाः प्रभवन्ति वै पुनः॥१९॥ दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः । श्रोता यदैकप्रवणः श्रृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति ॥२०॥ युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे । दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव ॥२१॥ चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां यच्छद्मना

का वध करके इन्द्र ने अपने उस पाप कर्म का फल प्राप्त किया कि नहीं ?॥११॥ क्योंकि इन्द्र को तो इस पाप कर्म के करने से ब्रह्महत्या लग गयी होगी और आप पहले बतला चुके हैं कि श्रीदेवी ने वृत्रासुर का वध किया ॥१२॥ यह बात भी मन में शङ्का उत्पन्न करती है । **सूतजी ने कहा–** हे मुनियों ! आपलोग मुझसे वृत्रासुर के वध विषयक कथा सुनें ॥१३॥ किस प्रकार से इन्द्र ने ब्रह्महत्या के पाप के कारण दुःख प्राप्त किया इस बात को भी सुनें । इसी प्रकार महाराज परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय ने सत्यवती के पुत्र व्यासजी से प्रश्न किया था और व्यासजी ने जो जनमेजय को बतलाया वहीं मैं आपलोगों को बतला रहा हूँ । **जनमेजय ने पूछा–** हे मुने ! इन्द्र ने वृत्रासुर को क्यों मारा ?॥१५॥ इन्द्र ने सत्त्वगुण सम्पन्न भगवान् विष्णु को इस कार्य में अपना सहायक बनाया और किस प्रकार और क्यों देवी ने वृत्रासुर नामक दैत्य का वध किया ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक ही वध किस तरह से दो व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है ? इस बात को मैं आपसे सुनना चाहता हूँ । मुझको इस विषय में अत्यन्त उत्कण्ठा है ॥१७॥ महापुरुषों का चरित्र सुनने से किसको विरक्ति हो सकती है । आप वृत्रासुर के वध से सम्बद्ध अम्बा के ऐश्वर्य को बतलायें ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप धन्य हैं कि आपकी बुद्धि पुराणों का श्रवण करने के, लिए इतना आदर से परिपूर्ण है । देवता तो एक बार अमृत का पान करके अमृतपान के विषय में विरक्त हो जाते हैं । किन्तु प्रशंसनीय यश वाले आपकी कथाओं को सुनने में हमारी भक्ति-भावना प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है । जब कोई भी व्यक्ति एकाग्रमना होकर कथा का श्रवण करता है तो कथा करने वाला भी प्रसन्नतापूर्वक कथा का वर्णन करता है ॥२०॥ वेदों तथा पुराणों में यह प्रसिद्ध कथा है कि इन्द्र और

विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः । मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते चक्रुश्च निंद्यमनिशं किल पापभीताः ॥२२॥ विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कायम् । कोन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसाऽपि जेतुं शक्तःसमस्तजनमोहकरीं भवानीम् ॥२३॥ मत्स्यादियोनिषु सहस्त्रयुगेषु सद्यः साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र । नारायणो नरसखो भगवाननंतः कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित् ॥२४॥ देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयाः पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः । पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत् ॥२५॥ न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित् । विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम् ॥२६॥ अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम् । जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ ॥२७॥तदहं संप्रवक्ष्यामि वृत्तांतमवनीपते । कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः॥२८॥ त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः । देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः ॥२९॥ स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलासृजत् । विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम् ॥३०॥ त्रिभिः स वदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः । त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः ॥३१॥ वेदानेकेन

वृत्रासुर में प्राचीन काल में युद्ध हुआ । किञ्च त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर का वध करके इन्द्र को बहुत अधिक दुःख भोगना पड़ा ॥२१॥ हे राजन् ! इसमें कौन सा आश्चर्य है कि श्रीहरि तथा वज्रधारी इन्द्र दोनों छलपूर्वक त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर का वध किये । माया से मोहित होकर तो पापों से डरने वाले मुनिगण भी पाप करने लगते हैं जो कि अत्यन्त निंदित कर्म है ॥२२॥ भगवान् विष्णु साक्षात् सत्त्वगुण की मूर्ति हैं । वे भी माया से मोहित होकर छलपूर्वक सदा दैत्यों को मारने का काम किया करते हैं । समस्त जीवों को मोहित करने वाली भवानी को कोई मन से भी कैसे जीत सकता है ?॥२३॥ उन महामाया जगदम्बिका से ही प्रेरित होकर भगवान् विष्णु भी हजारों युगों में साक्षात् मत्स्य आदि योनियों में जाकर अवतीर्ण हो जाया करते हैं । वे नर के सखा नारायण अनन्त हैं, फिर भी वे देवी की प्रेरणा से ही शास्त्रविहित तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को भी किया करते हैं ॥२४॥ माया सर्वाधिक बलवती है । उसी के द्वारा मोहित होकर सभी लोग यह सोचकर मोहित हो जाते हैं कि यह देह, धन, गृह, स्वजन, पुत्र, कलत्र (पत्नी) ये सब के सब मेरे हैं । यह सोचकर सबलोग इन्हीं सबों के लिए पुण्य तथा पाप कर्मों को किया करते हैं । क्योंकि वे सब माया के सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक गुणों के कारण विकल बना दिये गये रहते हैं ॥२५॥ हे राजन ! कोई परावरतत्त्व (जीवात्म एवं परमात्मा) का ज्ञाता पुरुष भी अपने मोह को विनष्ट करने में समर्थ नहीं है; क्योंकि संसार के सभी जीव मूलतः माया के तीनों गुणों के द्वारा अत्यन्त मोहित हैं ॥२६॥ ये इन्द्र और विष्णु दोनों ही माया से अत्यन्त मोहित होकर अपने स्वार्थ की सिद्धि करने के लिए छलपूर्वक वृत्रासुर को मारे ॥२७॥ हे राजन् जनमेजय ! उस वृत्तांत को मैं तुम्हे बतला रहा हूँ । मैं यह भी बतला रहा हूँ कि इन्द्र तथा वृत्रासुर में परस्पर में वैर क्यों हुआ ?॥२८॥ देवताओं में श्रेष्ठ तथा महातपस्वी त्वष्टा प्रजापति थे । वे देवताओं के कार्य करने में निपुण तथा ब्राह्मणों

सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपिबत् । तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च्व निरीक्षते ॥३२॥ त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम् । तपस्वी स मृदुर्दांतो धर्ममेव समश्रितः ॥२३॥ पंचाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम् । जलमध्ये निवासं च हेमंते शिशिरे तथा ॥३४॥ निराहारो जितात्माऽसौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः । तपश्चचार मेधावी दुष्करं मंदबुद्धिभिः ॥३५॥ तं च दृष्ट्वा तपस्यंतं खेदमाप शचीपतिः । विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति ॥३६॥ दृष्ट्वा तस्य तपोवीर्य सत्यं चामिततेजसः । चिंतां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः । ३७॥ विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति । नोपेक्ष्यः सर्वथा शुत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः ॥३८॥ तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय सांप्रतम् । कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः ॥३९॥ तथैवात्र प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा । इति संचिंत्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः ॥४०॥ आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने। उर्वशीं मेनकां रंभां घृताचीं च तिलोत्तमाम् ॥४१॥समाहूयाब्रवीच्छक्रस्तास्तास्तदा रूपगर्विताः । प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥४२॥

के प्रिय थे ॥२९॥ इन्द्र के प्रति द्वेष होने के कारण उन्होंने अत्यन्त सुन्दर तथा तीन शिरों वाले विश्वरूप नामक प्रख्यात पुत्र उत्पन्न किए ॥३०॥ वे विश्वरूप अपने तीन मुखों से सुशोभित होते थे और एक ही समय में वे अपने तीनों मुखों से तीन भिन्न-भिन्न कार्यों को किया करते थे ॥३१॥ वे एक मुख से वेद पढ़ते थे । दूसरे मुख से मदिरा पान करते थे और तीसरे मुख से वे चारों दिशाओं का अवलोकन किया करते थे ॥३२॥ वे त्रिशिरा मुनि धर्म को ही अपनाकर तथा भोगों का परित्याग करके घोर तपस्या करने लगे । वे स्वभाव से तपस्वी, कोमल स्वभाव वाले और जितेन्द्रिय थे ॥३३॥ गर्मी के दिनों में पञ्चाग्नि तापते रहते थे । बरसात के दिनों में अपना पैर पेड़ में बाँध कर नीचे मुँह करके लटके रहते थे और हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में जल में खड़े रहकर तपस्या करते रहते थे ॥३४॥ तपस्या करते हुए विश्वरूप ने आहार त्याग दिया और अपने मन को वश में कर लिया । सभी प्रकार के परिग्रहों (दान लेना) को त्याग दिया । अर्थात् वे किसी से कुछ भी नहीं लेते थे । इस तरह से उन्होंने ऐसी तपस्या की कि कोई भी मन्दबुद्धि व्यक्ति उस तरह की तपस्या नहीं कर सकता है ॥३५॥ विश्वरूप को इस प्रकार से तपस्या करते हुए देखकर इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई । वे यह सोचने लगे कि कहीं यह विश्वरूप हमारे स्वर्ग का राज्य न ले ले और इन्द्र बन जाय ॥३६॥ अमित तेजस्वी विश्वरूप की तपस्या के बल तथा सत्य को देखकर पाक नामक दैत्य को मारने वाले इन्द्र रात-दिन चिन्तित रहने लगे ॥३७॥ वे सोचने लगे कि इस तरह से बढ़ने वाला त्रिशिरा मेरा भी प्रशासन करने लगेगा । अतएव बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥३८॥ ऐसा कोई उपाय करना चाहिए जिससे कि इसकी तपस्या नष्ट हो जाय । तपस्वियों का सबसे बड़ा शत्रु काम है । वह तपस्वियों की तपस्या को नष्ट कर देने का काम किया करता है ॥३९॥ अतएव मुझे कोई ऐसा काम करना चाहिये जिससे यह भोग पारायण हो जाय । इस तरह से मन में विचार करके बुद्धिमान इन्द्र ने ॥४०॥ उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची तथा तिलोंत्तमा आदि अपसराओं को बुलाकर यह आदेश

यतो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः । कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम् ॥४३॥ शृंगारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः । प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥४४॥ अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम् । बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलंबितम् ॥४५॥ भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताबलाः । उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते ॥४६॥ तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः । मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने ॥४७॥ यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते । नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने ॥४८॥ कटाक्षैरंगभेदैश्च मोहयित्वा cegfeb ellelY ees **। लोलुपं वशमस्माकं करिष्यामो नियंत्रितम् ॥४९॥** व्यास उवाच– **इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् । कुर्वंत्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोदितानपि ॥५०॥ गायंत्यस्तालभेदैस्ता नृत्यंत्यः पुरतो मुनेः । तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वरांगनाः ॥५१॥ नापश्यत्स तपोराशिरंगनानां बिडंम्बनम् । इन्द्रियाणि वशे कृत्वा मूकांधबधिरः स्थितः ॥५२॥ दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे । कुर्वन्त्यो गाननृत्यादि**

दिया कि तुमलोग जाकर त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को मोहित करने का काम करो । ये सभी अप्सरायें अत्यन्त रूपवती हैं । इन्द्र ने उन सबों से कहा कि यह विषम परिस्थिति आ गयी है । अतएव तुमलोग जाकर मेरे लिए इस कार्य को करो ॥४१-४२॥ क्योंकि मेरा शत्रु विश्वरूप घोर तपस्या कर रहा है। अतएव तुमलोग शीघ्र जाओं और मेरा काम करो । उसको भ्रष्ट बना दो ॥४३॥ तुमलोग अनेक प्रकार की शृंगार पूर्ण चेष्टाओं तथा श्रैंगारिक हाव भावों को अविष्कृत करके उसको मोहित कर दो जिससे कि मेरी चिन्ता समाप्त हो जाय । तुमलोगों का कल्याण हो ॥४४॥ हे महाभागाओं मैं विश्वरूप की तपस्या का बल देखकर चिन्तित हो गया हूँ । वह तपस्या के बल से बलवान् होकर मेरे पद पर अपना कब्जा जमा लेगा ॥४५॥ हे अप्सराओं ! मेरे ऊपर आयी हुई इस विपत्ति को तुमलोग शीघ्र नष्ट कर दो । इस कार्य को तुम सबलोग एक साथ मिलकर सम्पन्न करो ॥४६॥ इन्द्र की बातों को सुनकर इन्द्र के समक्ष झुककर अप्सराओं ने प्रणाम किया और कहा हे देवेश ! आप भयभीत नही होंयें । हमलोग उसको मोहिंत करने का प्रयास करने जा रही हैं ॥४७॥ हे महातेजस्वि ! विश्वरूप जिस प्रकार से मोहित हो सकेंगे हमलोग वैसा ही कार्य करेंगीं जिससे कि आपका भय दूर हो जाय । हमलोग नृत्य, गीत तथा विहार के द्वारा उस मुनि विश्वरूप को लुभाने का प्रयत्न करेंगी ॥४८॥ हे स्वामिन् ! कटाक्षपात तथा अङ्गों के प्रदर्शन से उस मुनि विश्वरूप को मोहित करके हमलोग उस लोलुप को अपने वश में कर लेंगी ॥४९॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से इन्द्र से कहकर वे अप्सराएँ त्रिशिरा विश्वरूप के पास गयीं और कामशास्त्रमें वर्णित अनेक प्रकार के हाव-भावों का प्रकाशन करने लगीं ॥५०॥ वे सभी वाराँगनाएँ (वेश्यायें) अनेक प्रकार के तालों के साथ मुनि विश्वरूप के समक्ष गीत तथा नृत्य करने लगीं । जिससे कि विश्वरूप उन सबों की ओर आकृष्ट हों ॥५१॥ किन्तु तपोराशि (महातपस्वी) विश्वरूप ने उन सबों की अनेक प्रकार की भावभंगिमाओं पर ध्यान ही नहीं दिया । उन्होंने उन सबों की ओर देखा भी नहीं । वे अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करके मूक, अन्धे

प्रपंचानतिमोहदान् ॥५३॥ न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः । परावृत्य तदा देव्यः पुनःशक्रमुपस्थिताः ॥५४॥ कृतांजलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन् । श्रांता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम् ॥५५॥ देवदेव महाराज यत्नश्च परमः कृतः । न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो ॥५६॥ उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन । नास्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेंद्रिये ॥५७॥ दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना । मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि ॥५८॥ विसृज्याप्सरसः शक्रश्चिंतयामास मन्दधीः । तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसांप्रतम्॥५९॥ विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम् । चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

तथा बधिर के समान बैठे रहे ॥५२॥ वे अप्सराएँ गायन तथा नृत्य आदि अनेक प्रकार के मोहकारक हाव-भावों को करती हुयी उस श्रेष्ठ आश्रम में निवास करती रहीं ॥५३॥ किन्तु मुनि त्रिशिरा उन सबों की ओर जब आकृष्ट नहीं हुए और ध्यान हीं करते रहे ते वे लौटकर इन्द्र के पास चली गयीं ॥५४॥ वे सब श्रान्त, दीन और उदास हो गयी थीं । उन सबों ने हाथ जोड़कर इन्द्र से कहा ॥५५॥ हे देवाधिदेव ! महाराज इन्द्र हमलोगों ने बहुत अधिक प्रयास किया । हे स्वामिन् ! वे विश्वरुप अत्यन्त धैर्य सम्पन्न मुनि हैं । उनको डिगाया नहीं जा सकता है ॥५६॥ हे पाकशासन ! अब उनके लिए कोई दूसरा उपाय करना चाहिए । वे जितेन्द्रिय तपस्वी हैं । उन पर हम लोगों का बल कोई काम नहीं कर पा रहा है ॥५७॥ यह हमारा सौभाग्य था कि उन्होंने हमलोगों को शाप नहीं दिया । वे मुनि अग्नि के समान अपनी तपस्या से प्रकाशित हो रहे हैं ॥५८॥ इसके पश्चात् इन्द्र ने अप्सराओं को भेज दिया और वे त्रिशिरा का वध करने का उपाय सोचने लगे; क्योंकि अब उनकी बुद्धि पापमयी हो गयी थी जो अनुचित भी है ॥५९॥ हे राजन् ! वे लोक की लज्जा तथा पाप के भय का परित्याग कर दिए । और उन्होंने त्रिशिरा का वध करने का निश्चय कर लिया ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

द्वितीयोऽध्याय:

व्यास उवाच– **अथ स लोकमुपेत्य सुराधिपः समधिगम्य गजासनसंस्थितः । त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥१॥ तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम् । रविविभावसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥२॥ कथमसौ विनिहंतुमहो मया मुनिरपापमतिः किल सम्मतः । रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः कथमुपेक्ष्य इहासनकामुकः ॥३॥ इति विचिंत्य पविं परमायुधं प्रतिमुमोच मुनिं तपसि स्थितम् । शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं त्रिशिरसं सुरसंघपतिः तदा ॥४॥ तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः । शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि चाद्भुतदर्शनम् ॥५॥ तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः । हा हतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥६॥ विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा । फलं किलायं तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य॥७॥ तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमंदिरमाशु । स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥८॥ तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ**

इन्द्र द्वारा त्रिशिरा का वध

व्यासजी ने कहा– हे राजन् ! अपने राज्य के लोभ के कारण इन्द्र अपने हाथी पर चढ़कर त्रिशिरा के पास गये । उनकी बुद्धि उस समय पापमयी हो गयी थी । और वहाँ जाकर उन्होंने अमेय पराक्रम सम्पन्न त्रिशिरा को देखा ॥१॥ इन्द्र ने देखा कि मुनि त्रिशिरा सुदृढ आसन से बैठे हुए हैं । उन्होंने अपनी वाणी पर विजय प्राप्त कर लिया है । वे समाधिस्थ हो गये हैं उनका तेज सूर्य और अग्नि के समान देदीप्यमान था । उनको देखकर इंन्द्र असमंजस में पड गये ॥२॥ अरे मैं इनको कैसे मारूँ । इनमें कोई भी पाप नहीं दिखता है, किन्तु ये मेरे शत्रु हैं । इनका तपोबल बढ़ता जा रहा है । ये मेरा पद अवश्य ले लेंगे । अतएव इनको छोड़ना भी नहीं चाहिए ॥३॥ इस तरह से विचार करने के पश्चात् उन तपस्या करने वाले मुनि के ऊपर इन्द्र ने अपने वज्र से प्रहार किया । वह वज्र शीघ्रगामी था और देव समूह के द्वारा छोड़ा गया था । वह त्रिशिरा के पास पहुँच गया ॥४॥ उस वज्र के प्रहार से त्रिशिरा मुनि गिर पड़े और मर गये जिस तरह व्रज के प्रहार से पर्वत विदीर्ण हो गये थे उसी तरह वज्र के प्रहार से त्रिशिरा मुनि गिरे पड़े हुए थे ॥५॥ त्रिशिरा मुंनि को मारकर इन्द्र प्रसन्न हो गये किन्तु वहाँ पर विद्यमान अन्य तपस्वी चिल्लाने लगे कि इस पापी इन्द्र ने यह क्या कर दिया ? । इन मुनि को इसने मार दिया ॥६॥ पापी और दुष्ट इन्द्र ने बिना किसी अपराध के इन तपोनिधि को मारा है अतएव इस हत्या का फल उसे अवश्य मिलना चाहिए ॥७॥ त्रिशिरा को मार कर इन्द्र तो शीघ्र अपने घर चले आये किन्तु मरने के पश्चात् भी त्रिशिरा मुनि का शरीर चमक रहा था । लग रहा था कि तेजोनिधि त्रिशिरा

जीवंतमिव वृत्रहा । चिंतामापातिखिन्नांगः किं वा जीवेदयं पुनः ॥९॥ विमृश्य मनसाऽतीव तक्षाणं पुरतः स्थितम् । मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः ॥१०॥ तक्षंश्छिंधि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम । मा जीवतु महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम् ॥११॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् । तक्षोवाच– **महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति ॥१२॥ ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम् । त्वया वै निंदितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम् ॥१३॥ अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे । मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृंतनेन किम् ॥१४॥ भयं किं तेऽत्र संजातं पाकशासन कथ्यताम् । इंद्र उवाच । सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥१५॥ तस्माद्बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शुत्ररयं मम।** तक्षोवाच– **नात्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणानेन कर्मणा ॥१६॥ ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम् । इन्द्र उवाच । प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥१७॥ शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते ।** तक्षोवाच– **त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥१८॥ तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो ।** इन्द्र उवाच– **मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥१९॥ शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यंति मानवाः। शुल्केनानेन छिंधि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम् ॥२०॥** व्यास उवाच– **एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षा मुदान्वितः । कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त**

जीवित हैं मरे नहीं है ॥८॥ त्रिशिरा मुनि को जीवित के समान भूमि पर पड़े हुए देखकर यह सोचकर इन्द्र अत्यन्त चिंतित हो गये कि कहीं ये जीवित न हो जायँ ॥९॥ इस तरह से सोचकर अपने सामने एक बढई को विद्यमान देखकर इन्द्र ने उनसे कहा कि तुम मेरी बात मानो और इस मुनि का शिर काट डालो । वे तेजस्वी अभी जीवित के समान प्रतीत हो रहे हैं ॥११॥ इन्द्र की बात को सुनकर उनकी निन्दा करते हुए उस बढई ने कहा । **बढ़ई ने कहा–** इनकी गर्दन अतीव मोटी है । इसे मेरी कुल्हाड़ी नहीं काट सकती हैं ॥१२॥ अतएव मैं इस निंदित कर्म को नहीं कर सकता हूँ । तुमने ही सज्जनों के द्वारा निंदनीय इस कार्य को किया है । अतएव तुम इस काम को करो ॥१३॥ मैं पाप से डरता हूँ मरे हुए को मारना पाप है । ये मुनि मर तो गये ही हैं । अब इनके शिर को काटने से कौन सा लाभ होगा ?॥१४॥ हे इन्द्र ! तुम यह बतलाओ कि तुमको इनसे किस प्रकार का भय है ? **इन्द्र ने कहा–** इनका आकार अब भी निर्मल है और ये जीवित जैसे दिखायी पड़ते हैं ॥१५॥ ये मुनि मेरे शत्रु हैं, और जीवित जैसे दिखायी देते है । इसीलिए मैं डर रहा हूँ कि कहीं ये जी न जायँ **बढई ने कहा–** हे विद्वन् ! आपको इस क्रूर कर्म को करने में लज्जा नहीं होती है क्या ?॥१६॥ **इन्द्र ने कहा–** इनके मर जाने के बाद मैं इस हत्या का प्रायश्चित कर लूगाँ जिससे कि मेरा पाप विनष्ट हो जायेगा ॥१७॥ हे महामते ! शत्रु को तो छलपूर्वक भी किसी प्रकार वध कर देना चाहिए । **बढई ने कहा–** इन्द्र ! तुम अत्यन्त लोभी हो गये हो अतएव इस प्रकार का पाप कर रहे हो ॥१८॥ मुझको कोई लोभ नहीं है अतएव मैं इस पाप के काम को क्यों करूँ ?। **इन्द्र ने कहा–** तुम यदि इस काम को कर दोगे तो मैं ऐसा कर दूँगा कि तुम्हें यज्ञों में हमेशा भाग मिलता रहेगा।।१९।।

सुदृढेन हि ॥२१॥ छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि । तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुःसहस्रशः ॥२२॥ कलविंकास्तित्तिरयस्तथैव च कपिंजलाः । पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा ॥२३॥ येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा । तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिंजलाः ॥२४॥ येन सर्वादिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते । तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः ॥२५॥ यत्सुरापं तु तद् वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल। विनिष्पेतुस्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप ॥२६॥ एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाऽण्डजान् । मुमोद मनसा राजञ्जगाम त्रिदिवं पुनः॥२७।गते शक्रे तु तक्षाऽपि स्वगृहं तरसा ययौ । यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते ॥२८।इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम्। मेने कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिन्तयन् ॥२९॥ तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम् । चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत् ॥३०॥ अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम । तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः ॥३१॥ सुराः पश्यंतु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा । जानातु सर्वं पापात्मा स्वकृतस्य फलं महत् ॥३२॥ इत्युक्त्वाऽग्निं जुहावाथ मंत्रैराथर्वणोदितैः । पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः ॥३३॥ कृते होमेऽष्टरात्रं तु

यज्ञों में लोग यज्ञ पशु का शिर तुम्हें प्रदान करेंगे । तुम मेरा प्रिय कार्य कर दो । उसके बदले में मैं तुम्हें यज्ञ में भाग शुल्क के रूप में दे रहा हूँ ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र के इस बात को सुनकर उस बढ़ई ने शीघ्र ही अपनी कुल्हाड़ी से त्रिशिरा के शिर को काट कर धड़ से अलग कर दिया ॥२१॥ वे कटे हुए शिर जब पृथिवी पर गिर पड़े तो उन शिरों से शीघ्र ही हजारो पक्षी निकल पड़े ॥२३॥ उसके अलग-अलग शिरों से निकले हुए कलविकं (गौरेया) तित्तिर तथा कपिञ्जल (वया) जाति के पक्षी थे ॥२३॥ जिस मुख से त्रिशिरा मुनि वेद का अध्ययन करते थे तथा सोम रस का पान करते थे उस मुख से कपिञ्जल पक्षी निकले ॥२४॥ जिस मुख से वे सदा दिशाओं को देखते रहते थे उस मुख से तित्तिर जाति के पक्षी निकले । वे पक्षी बड़े तेजस्वी थे ॥२५॥ जिस मुख से वे मदिरा का पान करते थे उस मुख से चटका (गौरेया) पक्षी निकले । इस तरहसे त्रिशिरा के तीनों शिरों से तीन जातियों के पक्षी निकले ॥२६॥ उन मुखों से निकले हुए उन पक्षियों को देखकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे स्वर्गलोक में चले गये ॥२७॥ इन्द्र के चले जाने पर वह बढ़ई भी शीघ्र अपने घर चला गया । और वह यज्ञ में अपने भाग को प्राप्त करके प्रसन्नता का अनुभव किया ॥२८॥ अपने महाबलवान् शत्रु का वध करके अपने घर जाकर इन्द्र प्रसन्नता का अनुभव किये । ब्रह्महत्या की चिन्ता किए बिना अपने को वे कृतकृत्य माने ॥२९॥ त्वष्टा ने जब यह सुना कि इन्द्र ने मेरे परम धार्मिक पुत्र का वध कर दिया है तो वे मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने कहा ॥३०॥ चूकि इन्द्र ने मेरे निरपराध तथा तपस्वी पुत्र का वध किया है अतएव मैं इन्द्र का वध करने के लिए पुनः अपने दूसरे पुत्र को उत्पन्न करूँगा ॥३१॥ देवता मेरे पराक्रम तथा तपस्या के बल को देख लें । वह पापी अपने किए हुए कर्मों का फल प्राप्त कर ले ॥३२॥ इस तरह से कहकर क्रुद्ध होकर त्वष्टा ने अथर्ववेद में पठित मंत्रों से अग्नि में

संदीप्ताच्च विभावसोः । प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः ॥३४॥ तं दृष्ट्वाऽग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम् । वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवानलम्॥३५॥ उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरःस्थितम् । इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम ॥३६॥ इत्युक्ते वचने त्वष्टुः क्रोधप्रज्वलितेन च । सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः ॥३७॥ जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट् । किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम् ॥३८॥ कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत । चिंतातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम् ॥३९॥ नाशयाम्यद्य ते शोकमिति मे व्रतमाहितम् । तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः ॥४०॥ पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान् । उद्यंतं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम् ॥४१॥ हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतांतरम् । क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम् ॥४२॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम् । प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम् ॥४३॥ बृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक । तस्माद्वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥४४॥ भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः । त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन् वीर्यवंति च ॥४५॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः।

पुत्र को उत्पन्न करने के लिए होम किया ॥३३॥ आठ रात्रियों तक होम करने के बाद देदीप्त अग्नि से अग्नि के ही समान तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हो गया॥३४॥ देदीप्यमान अग्नि से अग्नि के ही समान तेजस्वी उत्पन्न हुए तथा बलवान् पुत्र को अपने सामने देखकर त्वष्टा ने कहा हे इन्द्रशत्रो तुम मेरी तपस्या के प्रभाव से खूब अधिक बढ़ो ॥३५-३६॥ क्रोध पूर्वक त्वष्टा के द्वारा इस तरह से कहते ही वह पुत्र बढने लगा और वह इतना बढा कि वह आकाश को छूने लगा । अग्नि के समान तेजस्वी था ॥३७॥ वह बढ़कर पर्वत के समान आकार वाला हो गया । वह काल के समान अथवा मृत्यु के समान भयंकर आकार वाला हो गया । उसने अपने आतुर पिता से पूछा कि मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ ॥३८॥ आप पहले मेरा नामकरण करें । उसके पश्चात् हे सुव्रत आप मेरे लिए कार्य बतलाइये । आप चिन्तातुर क्यों हैं ? आप अपनी चिन्ता का कारण मुझे बतलाइये ॥३९॥ मैं आज ही आपके शोक के कारण को मिटा देता हूँ । यही मेरा व्रत है । उस उत्पन्न हुए पुत्र से कौन सा लाभ जिसका पिता दुःखी हो ॥४०॥ आपकी आज्ञा को पाकर मैं समुद्र को पी जाऊँगा ॥४१॥ मैं इन्द्र को अथवा यम को अथवा किसी अन्य देवता को मार दूँगा । आपकी आज्ञा होगी तो मैं सम्पूर्ण पृथिवी को उठा कर समुद्र में फेंक दूँगा ॥४२॥ त्वष्टा ने जब अपने पुत्र की इस तरह की सुन्दर वाणी को सुना तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और अपने उस पर्वताकार पुत्र से कहे ॥४३॥ हे पुत्र ! चूकि तुम मुझे इस समय विपत्ति से बचा सकते हो अतएव तुम्हारा लोक में प्रसिद्ध नाम वृत्र होगा ॥४४॥ तुम्हारे बड़े भाई त्रिशिरा थे । उनके अत्यन्तवीर्य सम्पन्न तीन शिर थे ॥४५॥ वे तुम्हारे बड़े भाई वेदों तथा वेदांगों के तत्त्वों के ज्ञाता थे । वे प्रायः तपस्यारत रहते

संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥४६॥ शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्राघातेन साम्प्रतम् । विनाऽपराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च ॥४७॥ तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम् । ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम् ॥४८॥ इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः । आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥४९॥ ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च । खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै ॥५०॥ शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा । चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥५१॥ तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुंदरम्। रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम् ॥५२॥ युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव । दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

थे उसके कारण त्रैलोक्य विस्मित था ॥४६॥ तुम्हारे उस भाई को इन्द्र ने अपने व्रज के प्रहार से मार दिया । यद्यपि त्रिशिरा ने इन्द्र का कोई भी अपराध नहीं किया था । फिर भी इन्द्र ने उसके तीन शिरों को काट दिया ॥४७॥ अतएव हे पुरुष व्याघ्र ! अपराधी इन्द्र का वध कर दो । उसको ब्रह्महत्या लगी है, फिर भी वह निर्लज्ज है । कुटिल हृदय वाले शठ इन्द्र को मार दो ॥४८॥ इस तरह से कहकर त्वष्टा ने पुत्र के शोक से व्याकुल होकर वृत्रासुर के लिए अनेक प्रकार के दिव्य आयुधों का निर्माण किया ॥४९॥ और उन आयुधों को उसने वृत्रासुर को प्रदान किया । जिससे कि वह इन्द्र का वध कर सके। उन्होंने वृत्रासुर को दिव्य खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर इत्यादि प्रबल शस्त्रों को प्रदान किया ॥५०॥ शार्ङ्गधनुष, बाण, परिघ, पट्टिश तथा हजार अरों वाला सुदर्शन के समान चमकते हुए चक्र उसे प्रदान किया ॥५१॥ दो दिव्य तुणीर, अत्यन्त सुन्दर कवच, मेघ के समान श्याम वर्ण, अत्यधिक भार सहने वाला तथा तीव्र गति वाला रथ प्रदान किया ॥५२॥ हे राजन् जनमेजय ! युद्ध के सभी दिव्य उपकरणों का निर्माण करके उसे अपने पुत्र वृत्रासुर को देकर क्रुद्ध त्वष्टा ने उसे इन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए प्रेरित किया ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तृतीयोऽध्याय:

व्यास उवाच– **कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । निर्जगाम रथारूढो हंतुं शक्रं महाबलः ॥१॥ तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा**
देवपराजिताः । समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम् ॥२॥ इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम् । वेगादागत्य वृत्तांतं शशंसुस्तस्य
चेष्टितम् ॥३॥ दूता ऊचुः– **स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव । बलवान्स्यंदने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥४॥ अभिचारेण नाशार्थं**
तव क्रोधान्वितेन वै । पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥५॥ यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति सांप्रतम् । मेरुमंदरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः॥६॥
एतस्मिन्नंतरे तत्र भीता देवगणा भृशम् । आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वंतं दूतभाषितम् ॥७॥ गणा ऊचुः– **मघवन्दुर्निमित्तानि भवंति त्रिदशालये ।**
बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च ॥८॥ काकगृध्रास्तथा श्येनाः कंकाद्या दारुणाः खगाः । रुदंति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि ॥९॥
चीचीकूचीति निनदान्कुर्वंति विहगा भृशम् । वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतंत्यधः ॥१०॥ श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च । राक्षसीनां

देवताओं के साथ वृत्रासुर का युद्ध और इन्द्र की पराजय

व्यासजी ने कहा– वेद में पारंगत ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्त्ययन किए जाने के बाद महाबलवान् वृत्रासुर रथ पर बैठकर इन्द्र को मारने के लिए प्रस्थान किया ॥१॥ उसी समय पूर्वकाल में देवताओं द्वारा पराजित किए गये क्रूर प्रकृति के राक्षस वृत्रासुर को महाबली जानकर उसकी सेवा करने के लिए आ गये ॥२॥ जब इन्द्र के दूतों ने देखा कि वृत्रासुर आक्रमण करने के लिए उद्यत है तो वे वेग पूर्वक आकर इन्द्र को सारा समाचार बतलाये ॥३॥ **दूतों ने कहा–** हे स्वामिन् ! आपका शत्रु वृत्रासुर शीघ्र यहाँ आक्रमण करने वाला है । उसको त्वष्टा ने उत्पन्न किया है, तथा वह रथ पर सवार होकर आ रहा है ॥४॥ पुत्र को मार दिये जाने के कारण दुःखी त्वष्टा ने क्रुद्ध होकर आपका वध करने के लिए उसको उत्पन्न किया है । वह बलवान् वृत्रासुर राक्षसों के साथ आ रहा है ॥५॥ हे महाराज ! आप भी शीघ्र तैयारी कीजिये वह शीघ्र ही आने वाला है । उसका शरीर देखने में सुमेरु पर्वत अथवा मन्दराचल के समान भयंकर है । वह भयंकर वृत्रासुर घोर ध्वनि करता है ॥६॥ जिस समय इन्द्र अपने दूतों की बातें सुन रहे थे उसी समय अत्यन्त भयभीत होकर आये हुए देवताओं ने इन्द्र से कहा ॥७॥ **देवगण ने इन्द्र से कहा–** हे मघवन् ! इस स्वर्गलोक में भय को प्रकट करने वाले पक्षियों के शब्द सुनायी देते हैं और अनेक प्रकार के अपशकुन हो रहे हैं ॥८॥ भवनों के ऊपर कौए, गिद्ध, बाज, चील आदि क्रूर पक्षी बैठकर विकृत स्वरों में रुदन करते हैं ॥९॥ दूसरे पक्षी चीची कुची जैसे शब्द कर रहे हैं और हमारे वाहनों की आखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होती रहती है ॥१०॥ हे महाभाग ! हमारे भवनों

महाभाग भवनोपरि दारुणः ॥११॥ प्रपतंति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद । प्रभवंति महोत्पाता दिवि भूम्यंतरिक्षजाः ॥१२॥ कृष्णांबरधरा नार्यो
भ्रमंति च गृहे गृहे । यांतु यांतु गृहात्तूर्णं कुर्वंत्यो विकृताननाः ॥१३॥ रात्रौ स्वप्नेषु कांतानां सुप्तानां निजमंदिरे । केशाँल्लुनंति राक्षस्यो भीषयंत्यो
भृशातुराः ॥१४॥ एवंविधानि देवेश भूकंपोल्कादयस्तथा । गोमायवो रुदंतिस्म निशायां भवनांगणे ॥१५॥ सरटानां च जालानि प्रभवंति गृहे
गृहे । अंगप्रस्फुरणादीनि दुर्निमत्तानि सर्वशः ॥१६॥ व्यास उवाच– **इति तेषां वचः श्रुत्वा चिंतामाप सुरेश्वरः। बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च**
मनोगतम् ॥१७॥ इन्द्र उवाच– **ब्रह्मन्किमुत घोराणि निमित्तानि भवंति वै । वाताश्च दारुणा वांति प्रपतंत्युलकाः स्वतः ॥१८॥ सर्वज्ञोऽसि**
महाभाग समर्थो विध्ननाशने । बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञः देवतानां गुरुस्तथा ॥१९॥ कुरु शांतिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम्। यथा मे न भवेद्दुःखं
तथा कार्यं विधीयताम् ॥२०॥ बृहस्पतिरुवाच– **किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् । अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम्॥२१॥**
अत्युग्रं पुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् । विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमच्छता ॥२२॥ परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन । न सुखं विंदते

के ऊपर रात्रि में रोती हुई राक्षसियों का भयंकर शब्द सुनायी देता है ॥११॥ विना हवा के ही हमारे ध्वज टूटकर गिर पड़ते हैं । हे मानद इन्द्र ! स्वर्गलोक,
अन्तरिक्ष तथा मर्त्यलोक मे अनेक प्रकार के अशुभ सूचक उत्पात हो रहे हैं ॥१२॥ प्रत्येक घरों में काला वस्त्र पहनकर नारियाँ घूमती रहती हैं । वे अपना
मुँह टेढा करके कहती रहती हैं कि तुमलोग घर से भग जाओ ॥१३॥ रात्रि में सोते समय हमलोगों की नारियाँ ऐसा स्वप्न देखती हैं कि राक्षसियाँ उनके
बालों को नोच रही हैं और उन्हें भयभीत कर रही हैं ॥१४॥ हे देवेश ! बार-बार भूकम्प होता है तथा उल्कापात होता हैं । शृगालों (स्यारों) का समूह
रात्रि में आकर हमारे घर के आँगन में रोने का काम करता है ॥१५॥ प्रत्येक गृह में गिरगिटों का समूह दिखायी देता है और दुर्निमित्त के सूचक अंगस्फुरण
इत्यादि होते रहते हैं ॥१६॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** देवताओं की बातों को सुनकर इन्द्र चिन्तित हो गये और उन्होंने आचार्य बृहस्पति को
बुलाकर अपने मन की बातों को पूछा ॥१७॥ **इन्द्र ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! क्या कारण है कि इस तरह से दुर्निमित्त के सूचक अपशकुन हो रहे है ?। इस
समय रुक्ष हवा चलती है और बिना किसी कारण के उल्कापात होते रहते हैं ॥१८॥ हे महाभाग ! आप तो सर्वज्ञ हैं विघ्नों का विनाश करने में आप
समर्थ हैं । आप बुद्धिमान तथा शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाले हैं एवं आप देवताओं के गुरु भी हैं ॥१९॥ हे विधानों के ज्ञाता आचार्य ! आप ऐसे शान्ति
कर्म करें जिससे कि शत्रुओं का नाश हो जाय और मुझको कोई कष्ट नहीं भोगना पड़े ॥२०॥ **बृहस्पति ने कहा–** हे इन्द्र मैं क्या करूँ ? तुमने तो स्वयं
पाप किया है । निरपराध मुनि त्रिशिरा का वध करके तुमने कौन सा फल प्राप्त किया ?॥२१॥ किये गये अत्यन्त उग्र पुण्य अथवा पाप कर्मों का फल

प्राणी परपीडापरायणः ॥२३॥ मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाऽधुना । तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम् ॥२४॥ अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः । हंतुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः ॥२५॥ आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव । त्वष्ट्रा दत्तानि शस्त्राणि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥२६॥ समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् । देवेन्द्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति ॥२७॥ कोलाहलस्तदा जातम्तथां ब्रुवति वाक्पतौ । गधर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥२८॥ सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः । तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिंतापरायणः ॥२९॥ आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान् । आनयध्वं वसून्रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान् ॥३०॥ पूषाणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् । विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥३१॥ समागच्छंतु तरसा शत्रुरायाति सांप्रतम् । इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥३२॥ बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमंदिरात् । तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥३३॥ युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः । वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम् ॥३४॥ पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् । इन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे॥३५॥

शीघ्र ही मिलता है । अतएव कल्याणकामी पुरुष को कोई भी काम विना विचारे नहीं करना चाहिए ॥२२॥ दूसरों को दुःख देने वाला कोई भी काम नहीं करना चाहिए । दूसरों को पीडित करने वाला प्राणी कभी भी सुख नहीं प्राप्त करता है ॥२३॥ हे इन्द्र ! तुम लोभ से आविष्ट होकर अज्ञानमय ब्रह्महत्या का कार्य किये हो इसीलिए सहसा उसी का फल प्रकट हो गया है ॥२४॥ यह वृत्र नामक दैत्य सभी देवताओं के लिए अवध्य है । वह अनेक दानवों के साथ तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने के लिए आ रहा है ॥२५॥ त्वष्टा ने उसको सभी दिव्य आयुधों को प्रदान किया है । वज्र के समान सुदृढ हैं । उन समस्त आयुधों को धारण करके वृत्र आ रहा है ॥२६॥ प्रतापी वृत्रासुर दुर्धर्ष है और रथारुढ होकर आ रहा है । हे देवेन्द्र ! यदि इस समय प्रलय काल भी उपस्थित कर दिया जाय तो भी वह नहीं मर सकता है ॥२७॥ जिस समय इस प्रकार से देवगुरु बृहस्पति कह रहे थे उसी समय स्वर्ग लोक में आकर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा तपस्वी मुनिगण कोलाहल करने लगे ॥२८॥ सभी देवता अपना भवन छोड़कर पलायन करने लगे । उस आश्चर्य की बात को देखकर इन्द्र अत्यन्त चिन्तित हो गये ॥२९॥ उन्होंने अपने सेवकों के माध्यम से देवसेना को तैयार हो जाने का आदेश दिया । उन्होंने सेवकों से कहा कि तुमलोग वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों तथा सूर्य को पुषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण तथा यम से कहो कि वे लोग अपने विमानों पर बैठकर आ जायँ इस समय शत्रु आक्रमण करने के लिए आ रहा है । इस तरह के आदेश देकर इन्द्र हाथी पर बैठकर ॥३०-३२॥ आचार्य बृहस्पति को आगे करके वे अपने भवन से निकल पड़े । उसी समय दूसरे सभी देवता अपने-अपने वाहन पर सवार होकर युद्ध करने के लिए निश्चय करके तथा हाथ में आयुध धारण करके अपने-अपने भवन से निकल पड़े । उसी समय वृत्रासुर अपनी दानवी सेना के साथ मानसरोवर के उत्तर तट पर आ गया ॥३३-३४॥ वह पर्वत

पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः । तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥३६॥ गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः । मानुषेण प्रमाणेन
संग्रामः शरदां शतम् ॥३७॥ बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् । वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगण; किल ॥३८॥ यमो विभावसुः
शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात् । पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिंद्रपुरोगमान् ॥३९॥ वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदान्वितम् । प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितः
कार्यं मया कृतम् ॥४०॥ देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः समरसंस्थिताः । विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥४१॥ इन्द्रः
पदातिरगमन्मयाऽऽनीतो गजोत्तमः । ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाण द्विरदोत्तमम् ॥४२॥ न हतास्ते मया यस्मादयुक्तं भीतमारणम् । आज्ञापय पुनस्तात
किं करोमि तवेप्सितम् ॥४३॥ निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः । इन्द्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः ॥४४॥ व्यास उवाच–
इति पुत्रवच; श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदान्वितः । पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम् ॥४५॥ त्वयाऽहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः ।
निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम् ॥४६॥ शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय । तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः॥४७॥

देवताओं का निवास स्थान था । अतएव अत्यन्त सुन्दर था वहाँ सुन्दर वृक्ष लगे थे इन्द्र भी मानसरोवर के उत्तरी तट पर आकर युद्ध करने लगे ॥३५॥
उसी पर्वत पर बृहस्पति के साथ दूसरे देवता भी आ गये । उस समय इन्द्र तथा वृत्रासुर में भयंकर युद्ध हुआ ॥३६॥ वह युद्ध गदा, कृपाण, परिघ, पाश
बाण फरसा एवं शक्ति से हुआ । और मानवों के मान से वह युद्ध सौ वर्ष तक चलता रहा ॥३७॥ वह युद्ध मनुष्यों तथा भावुक हृदय वाले ऋषियों के
लिये भय प्रदान कर देने वाला था । उस युद्ध में सर्वप्रथम वरुण पलायन कर गये उसके बाद देवतागण भाग गये ॥३८॥ फिर यम, अग्नि, इन्द्र इत्यादि
क्रमशः सभी देवता युद्धस्थल से पलायन कर गये । इन्द्र आदि सभी देवताओं को भागते हुए देखकर ॥३९॥ वृत्रासुर प्रसन्न होकर अपने पिता के आश्रम
में आ गया । उसने त्वष्टा को प्रणाम करके कहा– पिताश्री मैंने अपका कार्य कर दिया ॥४०॥ युद्ध करने वाले इन्द्र आदि सभी देवता परास्त हो गये ।
वे मुझसे पराजित होकर उसी प्रकार भाग गये जैसे किसी सिंह को देखकर दूसरे पशु तथा हाथी आदि भाग जाते हैं ॥४१॥ इन्द्र तो पैदल ही भागे मैं उनके
ऐरावत हाथी को पकड़ कर लाया हूँ । आप इस उत्तम हाथी को स्वीकार कीजिये ॥४२॥ मैंने इन्द्र आदि को इसलिए नहीं मारा कि किसी भयभीत को
मारना उचित नहीं होता है । हे तात ! आप पुनः आज्ञा दें कि मैं आपके लिए कौन सा प्रिय कार्य करूँ ॥४३॥ सभी देवता श्रान्त हो गये थे और भयभीत
हो गये थे । भयभीत इन्द्र तो हाथी को छोड़कर भाग गये ॥४४॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह से अपने पुत्र की बात सुनकर त्वष्टा प्रसन्न
हो गये । और कहने लगे आज मैं पुत्रवान् हो गया । मेरा जीवन सफल हो गया ॥४५॥ पुत्र तुमने मुझे पवित्र बना दिया मेरी मानसिक चिन्ता समाप्त
हो गयी । तुम्हारे अद्भुत पराक्रम को देखकर मेरा मन निश्चल हो गया है ॥४६॥ हे वत्स ! तुम मेरी बात को सावधानी से सुनो । मैं तुम्हारे कल्याण के

विश्वासो नैव कर्तव्यः केषांचित्पाकशासनः । शत्रुस्ते छलकर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥४८॥ तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् । तपसा
बलवृद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा ॥४९॥ आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुमत्तमम् । जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमावृतम् ॥५०॥
सावधानःस्थिरो भूत्वा दातारं भज शङ्करम् । वांछितं स वरं दद्यात्संतुष्ट श्चतुराननः ॥५१॥ तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ।
अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥५२॥ वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् । न शांतिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह ॥५३॥
तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः । न विंदामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम् ॥५४॥ व्यास उवाच– तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः
क्रोधयुतस्तदा । आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा ॥५५॥ गंधमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् । स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च
स्थिरासनः ॥५६॥ त्यक्त्वाऽन्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः । ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने ॥५७॥ मघवा तं तपस्यंतं ज्ञात्वा

लिए कह रहा हूँ । तुम स्थिर आसन लगाकर सावधानी पूर्वक तपस्या करो ॥४७॥ तुम किसी पर भी विश्वास मत करना । तुम्हारा शत्रु इन्द्र जीवित है।
वह अनेक प्रकार से छल करने में निपुण है । वह विभिन्न प्रकार से छल करता है ॥४८॥ तपस्या से ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और तपस्या से ही
उत्तम राज्य की प्राप्ति होती है । तपस्या से ही बल की वृद्धि होती है और तपस्या से ही विजय की प्राप्ति होती है ॥४९॥ तुम ब्रह्माजी की आराधना करो
और उनसे सर्वोत्तम वरदान प्राप्त करो । तुम दुराचारी इन्द्र का वध कर दो । उसको ब्रह्महत्या लगी हुयी है ॥५०॥ ब्रह्माजी कल्याण करने वाले हैं । उनकी
तुम सावधानी पूर्वक आराधना करो । जब ब्रह्माजी तुम्हारी तपस्या से संतुष्ट हो जायेंगे तो वे तुम्हें मनोऽभिलषित वरदान प्रदान करेंगे ॥५१॥ निःसीम ओजः
सम्पन्न सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी को प्रसन्न करके तुम अमरता का वरदान प्राप्त करो और अपराधी इन्द्र का वध कर दो ॥५२॥ मेरे पुत्र
के मारे जाने के कारण मेरे मन में वैर बना हुआ है । उसके कारण न तो मुझे शान्ति मिलती है और न तो मैं सुखपूर्वक सोता ही हूँ ॥५३॥ उस पापी
इन्द्र ने मेरे तपस्वी तथा निरपराध पुत्र का वध कर दिया अतएव उसके शोक के कारण मुझे सुख की प्राप्ति नहीं होती है, तुम मेरा इस दुःखसे उद्धार
करो । मैं अत्यन्त दुःखी हूँ ॥५४॥ **व्यासजी ने कहा–** अपने पिता की उस बात को सुनकर क्रोध से युक्त वृत्रासुर अपने पिता से आज्ञा लेकर तपस्या करने
के लिए चला गया ॥५५॥ गन्धमादन पर्वत पर आकर तथा पवित्र गंगानदी में स्नान करके कुश के आसन पर सुदृढ आसन लगाकर बैठ गया ॥५६॥
उसने अन्न तथा जल का परित्याग कर दिया और योगाभ्यास में लग गया । वह अपने मन में ब्रह्माजी का ध्यान करते हुए स्थिर आसन पर बैठ गया ॥५७॥
वृत्रासुर को तपस्या करते हुए जानकर इन्द्र चिन्तित होकर घबरा गये । उन्होंने वृत्रासुर की तपस्या में विघ्न करने के लिए गन्धर्वों, यक्षों, पन्नगों, सर्पों,

चिंतातुरो ह्यभूत् । गंधर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः ॥५८॥ यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः । विद्याधरानप्सरसो देवदूताननेकशः॥५९॥ उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः । न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

व्यास उवाच– **निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः । निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम् ॥१॥ जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः । तत्राजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः ॥२॥ आगत्य तमुवाचेदं त्वाष्ट्रपुत्र सुखी भव । त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वांछितम्॥३॥ तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चातिकर्शितम् । वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव ॥४॥ व्यास उवाच । वृत्रस्तदाऽतिविशदां**

किन्नरों, विद्याधरों अप्सराओं को तथा अनेक देवदूतों को भी भेजा ॥५८-५९॥ उन मायावियों ने वृत्रासुर की तपस्या में विघ्न करने के लिए अनेक उपायों को किया किन्तु परम तपस्वी वृत्रासुर अपने आसन से डिगा नहीं ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

ब्रह्माजी से वृत्रासुर को वर की प्राप्ति, देवताओं का पराजय तथा वृत्रासुर का स्वर्ग पर राज्य

व्यासजी ने कहा– वृत्रासुर की तपस्या में विघ्न करने वाले देवता तो लौट गये; क्योंकि उन सबों ने देखा कि वृत्रासुर अपने निश्चय पर सुदृढ है । अतएव वे निराश हो गये ॥१॥ तपस्या करते हुए वृत्रासुर के सौ वर्ष बीत जाने पर लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्माजी हंस पर सवार होकर आये ॥२॥ उन्होंने आकर कहा हे त्वष्टा के पुत्र ! तुम सुखी हो जाओ । तुम ध्यान करना छोड़कर वरदान माँगो । मैं तुम्हें अभिलषित वरदान दूँगा ॥३॥ तुम्हारी तपस्या को देखकर तथा तुम्हे अत्यन्त कृश देखकर मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ । तुम को जो अभिलषित हो वरदान माँगो । **व्यासजी ने कहा–** वृत्रासुर ने देखा कि उसके

पुरतो निशाम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः । संत्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठत्संजातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः ॥५॥ पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातुर्बद्धांजलिः पुरत एव समाससाद । प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रसन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः ॥६॥ प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् । वाञ्छाऽस्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम् ॥७॥ मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः । बृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥८॥ व्यास उवाच– इत्थं संप्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव । उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वांछितं सफलं सदा ॥९॥ न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा । भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥१०॥ इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् । वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ ॥११॥ शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः । त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥१२॥ स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम । हत्वा गच्छ त्रिशिरसो हंतारं पापसंयुतम् ॥१३॥ भव त्वं त्रिदशाधीशः संप्राप्य विजयं रणे । ममाधिं छिंधि विपुलां पुत्रनाशसमुद्भवाम् ॥१४॥ जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे

सामने सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी खड़े हैं । उसने ब्रह्माजी की अमृत के समान अत्यन्त मधुर वाणी को सुना । उसने ध्यान करना बन्द कर दिया और सहसा उठकर खड़ा हो गया । हर्षातिरेक के कारण उसके नेत्र आश्रुपूर्ण हो गये थे ॥५॥ उसने ब्रह्माजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वह ब्रह्माजी के समक्ष खड़ा हो गया । अपनी तपस्या से प्रसन्न होकर मनोनुकूल वरदान देने वाले ब्रह्माजी से उसने गद्गद वाणी में नम्रता पूर्वक कहा ॥६॥ हे ब्रह्माजी ! मेरे मन में जो भाव है, उसको तो आप जानते ही हैं । आज तो आपका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ है उसी से मैंने समस्त देवताओं के पद को प्राप्त कर लिया है । हे ब्रह्माजी ! मेरे मन में जो इच्छा है, वह अत्यन्त दुर्लभ है ॥७॥ मैं चाहता हूँ कि मैं लोहा, या काष्ठ, या सूखे अथवा गीले वांस या दूसरे किसी शस्त्र से मेरी मृत्यु न हो । युद्ध में मेरा पराक्रम अत्यधिक बढ़ जाय जिससे कोई भी देवता मुझे जीत न सके॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** वृत्रासुर के द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर ब्रह्माजी ने उसे हँसते हुए कहा तुम अपनी तपस्या से उठो तुम्हारी अभिलाषा सफल हो गयी । तुम्हारा कल्याण हो ॥९॥ मैं यह सत्य कह रहा हूँ कि तुम्हारी न तो सूखी वस्तु से न गीली वस्तु से और न तो भयंकर पत्थर से ही मृत्यु होगी ॥१०॥ इस प्रकार से वृत्रासुर को वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये । इस वरदान को प्राप्त करके वृत्रासुर भी अपने घर चला गया॥११॥ उस महाबुद्धिमान वृत्रासुर ने वरदान की बात को अपने पिता त्वष्टा से बतलाया । अपने पुत्र को वरदान प्राप्त जानकर त्वष्टा भी बहुत प्रसन्न हुए ॥१२॥ उन्होंने अपने पुत्र वृत्रासुर से कहा हे महाभाग ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम मेरे पुत्र त्रिशिरा को मारने वाले तथा मेरे शत्रु इन्द्र के पास जाकर उस पापी का वध कर दो ॥१३॥ युद्ध में विजय प्राप्त करके तुम देवताओं के स्वामी बन जाओ । अपने पुत्र के मर जाने से जो

भूरिभोजनात् । गयायां पिंडदानच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥१५॥ तस्मात्पुत्र ममात्यर्थं दुःखं नाशितुमर्हसि । त्रिशिरा मम चित्तात्तु नापसर्पति कर्हिचित् ॥१६॥ सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः । अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥१७॥ व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा वृत्रः परमदुर्जयः । रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥१८॥ रणदुन्दुभिनिर्घोषं शंखनादं महाबलम् । कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥१९॥ निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन् । हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकण्टकम् ॥२०॥ इत्युक्त्वा निर्जगामाशु स्वसैन्यपरिवारितः । महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम् ॥२१॥ तमागच्छंतमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः । सेनोद्योगं भयत्रस्तः करायामास भारत॥२२॥ सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः ॥२३॥ गृध्रव्यूहं ततो कृत्वा संस्थितः पाकशासनः । तत्राजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः ॥२४॥ देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् । वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः ॥२५॥ एवं परस्परं युद्धे संदीप्ते भयदे भृशम् । आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम् ॥२६॥ तोमरैर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः । जघ्नुः परस्परं

मुझे कष्ट हुआ उस कष्ट को तुम विनष्ट कर दो ॥१५॥ किसी भी पुत्र में पुत्रत्व की पूर्ति तीन कार्यों से होती है– १. जब तक माता-पिता जीवित रहें तब तक उनकी आज्ञा का बिना किसी प्रकार के विचार किए पालन करना । २. माता-पिता की मृत्यु की तिथि पर ब्राह्मणों को भरपूर भोजन कराना तथा ३. गया तीर्थ में जाकर अपने माता-पिता के लिए पिण्ड दान करना ॥१५॥ अतएव हे पुत्र ! तुम मेरे होने वाले अत्यन्त कष्ट को दूर कर दो । त्रिशिरा मेरे मन से कभी निकलता ही नहीं है ॥१६॥ वह सुशील, तपस्वी, सत्यवक्ता तथा सर्वोत्तम वेदज्ञ था । किन्तु पापी इन्द्र ने उस निरपराध त्रिशिरा का वध कर दिया था ॥१७॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से त्वष्टा की बात को सुनकर परम दुर्जय वृत्रासुर रथ पर आरूढ होकर अत्यन्त वेग से अपने पिता के गृह से निकला ॥१८॥ मद से गर्वित बने हुए वृत्रासुर ने दूर तक सुनायी पड़ने वाली दुन्दुभि तथा शंख की ध्वनि कराकर युद्ध के लिए प्रस्थान किया ॥१९॥ नीतिपूर्वक उसने अपने सेवकों से कहा मैं इन्द्र का वध करके मैं देवताओं के अकंण्टक राज्य को ले लूँगा ॥२०॥ इस तरह से कहकर वृत्रासुर अपनी सेना के साथ सेना के घनघोर नाद से अमरावती को भयभीत करता हुआ अपनी नगरी से निकल पड़ा ॥२१॥ युद्ध करने के लिए आते हुए वृत्रासुर को जानकर इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होंने शीघ्र ही सेना की तैयारी करायी ॥२२॥ समस्त लोकपालों को बुलाकर शत्रुओं का दमन करने वाले इन्द्र, उन सबों को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हुए अत्यन्त सुशोभित हुए ॥२३॥ इन्द्र गृध्रव्यूह बनाकर युद्ध करने के लिए तैयार थे । वहीं पर वेग पूर्वक वृत्रासुर भी आ गया ॥२४॥ उसके पश्चात् देवताओं और दानवों में तथा वृत्रासुर एवं इन्द्र में घनघोर युद्ध हुआ । वे दोनों एक दूसरे पर विजय प्राप्त करना चाहते थे ॥२५॥ इस प्रकार जब युद्ध बढ़ते-बढ़ते अपना भीषण रूप धारण कर लिया उस समय देवता भयभीत हो गये और दैत्य प्रसन्न हो गये ॥२६॥ देवता

देवदैत्याः स्वस्ववरायुधैः ॥२७॥ एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे । शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥२८॥ अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम् । मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥२९॥ शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण संभ्रांता निर्जरास्तदा । चक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः ॥३०॥ अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः । बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः ॥३१॥ किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः । शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतांतरैः ॥३२॥ विना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः । अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये ॥३३॥ बृहस्पतिरुवाच– **किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः । वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठांतरे रिपोः ॥३४॥** व्यास उवाच– **देवाश्चिंतातुराः सर्वे तुरासाहं तथाकृतम् । दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये ॥३५॥ असृजंत महासत्त्वा जृम्भिकां रिपुनाशिनीम्। ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥३६॥ विजृम्भाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवापतत् । स्वान्यंगान्यपि संक्षिप्य निष्क्रांतो बलसूदनः ॥३७॥ ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंस्थिता । जह्षुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम् ॥३८॥ ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम् । वर्षाणामयुतं**

और दैत्य दोनों परस्पर में एक दूसरे को तोमर, भिन्दिपाल, खड्ग, फरसा तथा पट्टिश इत्यादि अपने-अपने आयुधों से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे।।२७।। जब इस प्रकार से भयंकर युद्ध हो रहा था उसी समय वृत्रासुर ने सहसा इन्द्र को पकड़ लिया । क्रोधी वृत्रासुर ने इन्द्र को नग्न कर दिया और उनको अपने मुख में डाल दिया और अपने पहले के वैर को स्मरण करके प्रसन्न हो गया ।।२९।। वृत्रासुर के द्वारा इन्द्र के निगल लिए जाने पर सभी देवता भयभीत हो गये । वे अत्यन्त दुःखी होकर हाय इन्द्र ! हाय इन्द्र !! कहकर चिल्लाने लगे ।।३०।। वृत्रासुर के मुख में समाये हुए इन्द्र को जानकर सभी देवता अत्यधिक दुःखी होकर बृहस्पति को प्रणाम करके कहने लगे ।।३१।। हे द्विजश्रेष्ठ ! अब क्या किया जाय ! आप ही हमलोगों के गुरु हैं । दूसरे देवताओं से रक्षित इन्द्र को वृत्रासुर ने निगल लिया है ।।३२।। इन्द्र के बिना हमलोग क्या कर सकते हैं ?, हमलोग तो हीन पराक्रम वाले हैं । अतएव हे गुरो! आप कोई ऐसा अभिचार कर्म करें कि इन्द्र को मुक्ति मिल जाय ।।३३।। **बृहस्पति ने कहा**– हे देवताओं अब क्या किया जाय ? वृत्रासुर के मुख में भी इन्द्र जीवित हैं मरे नहीं है । यद्यपि वृत्र ने तो उन्हें विनष्ट कर दिया है । किन्तु वे किसी कोने में जी रहे हैं ।।३४।। **व्यासजी ने कहा**– इन्द्र को उस प्रकार से विपत्तिग्रस्त देखकर देवता चिन्तातुर हो गये थे । बहुत विचार करने के बाद देवताओं ने इन्द्र की मुक्ति के लिए एक उपाय किया ।।३५।। सबों ने अत्यन्त बलवती तथा शत्रुओं का विनाश करने वाली जम्भाई की सृष्टि की । उसके पश्चात् वृत्रासुर को जम्भाई आने लगी । उस समय वृत्रासुर का मुँह खुल गया।।३६।। जब वृत्रासुर जम्भाई ले रहा था उसी समय इन्द्र अपने अंगों को अत्यन्त छोटा बनाकर वृत्रासुर के मुख से बाहर निकल गये ।।३७।। उसी समय से जम्भाई प्राणियों के शरीर में रहने लगी । इन्द्र को बाहर निकले हुए देखकर देवता प्रसन्न हो गये ।।३८।। उसके बाद इन्द्र और वृत्रासुर में सबों को

यावद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥३९॥ एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः । एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत ॥४०॥ यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः । पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥४१॥ विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम् । विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम् ॥४२॥ जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा ॥४३॥ देवोद्यानानि सर्वाणि भुंक्तेऽसौ दानवो बलात् । ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः ॥४४॥ विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशांपते । उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा॥४५॥ कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा । गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वाष्ट्रसुतेन ह ॥४६॥ स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः। दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात् ॥४७॥ वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः । त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥४८॥ अमंत्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत । किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः ॥४९॥ जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः । महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाःप्राञ्जलयो भृशम् ॥५०॥ देवदेव महादेव कृपासिन्धो महेश्वर । रक्षास्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणातिपराजितान् ॥५१॥ गृहीतं देवसदनं

रहे और एक ओर बलवान् वृत्रासुर युद्ध करता रहा ॥४०॥ जब ब्रह्माजी के वरदान के प्रभाव से वृत्रासुर युद्ध में बढ़ने लगा तो उसके तेज से अभिभूत होकर इन्द्र पराजित हो गये ॥४१॥ उस पराजय को प्राप्त करके इन्द्र दुःखी हो गये । इन्द्र को पराजित देखकर देवता भी विषण्ण हो गये ॥४२॥ इन्द्र आदि सभी देवता युद्ध करना छोड़कर चले गये और वृत्रासुर अत्यन्त वेगसे आकर देवताओं के राज्य पर अधिकार कर लिया ॥४३॥ अब वृत्रासुर देवताओं के उद्यानों का उपभोग स्वयं बलपूर्वक करने लगा । ऐरावत नामक श्रेष्ठ हाथी का भी उपयोग वृत्रासुर ही करने लगा ॥४४॥ हे राजन् ! जनमेजय ! उसने सभी विमानों को ले लिया और उच्चैःश्रवा नामक श्रेष्ठ अश्व उसी के अधीन हो गया ॥४५॥ उस वृत्रासुर ने कामधेनु, पारिजातवृक्ष, तथा अप्सराओं के समूह तथा समस्त रत्नों को अपने वश में कर लिया ॥४६॥ अपने पद से भ्रष्ट होकर सभी देवता पर्वतों की कन्दराओं मे रहने लगे । यज्ञ के भाग तथा स्वर्गलोक से भ्रष्ट देवताओं को अत्यधिक कष्ट होने लगा ॥४७॥ वृत्रासुर देवताओं के पद को प्राप्त करके मदमत्त हो गया । त्वष्टा को अपने पुत्र को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई और वे अपने पुत्र के साथ ही रहने लगे ॥४८॥ देवता मुनियों की मण्डली में जाकर इस बात का विचार- विमर्श करने लगे कि अब क्या किया जाय । वे विचार तो करते थे किन्तु वृत्रासुर के भय से इस बात का निर्णय नहीं कर पाते थे कि अब उन सबों को क्या करना चाहिए?॥४९॥ इन्द्र के साथ सभी देवता कैलास पर्वत पर गये और बड़ी ही विनम्रता के साथ शंकरजी को प्रणाम किए और शंकरजी से पूछने लगे है

तेन देवबलीयसा । कि कर्तव्यमतः शंभो ब्रूहि सत्यं शिवाद्य नः ॥५२॥ किं कुर्मःक च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर । दुःखस्य नाधिगच्छामि विनाशोपायमीश्वर ॥५३॥ साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे । वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलवद्विभो ॥५४॥ शिव उवाच– **ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम् । गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिंतयामो वधोद्यमम् ॥५५॥ स शक्तश्च छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः । शरण्यश्च दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः ॥५६॥ विना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति । तस्मात्तत्र च गंतव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥५७॥** व्यास उवाच– **इति संचित्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशंकरः । जम्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥५८॥ गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुःपरमेश्वरम् । हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥५९॥ प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः सम्मान्य च सुरान् सर्वानित्युवाच पुरः स्थितः ॥६०॥ किमागताः**

भयभीत करने वाला युद्ध प्रारम्भ हो गया । वह भयंकर युद्ध दश हजार वर्षों तक चलता रहा ॥५०॥ सभी देवता युद्ध करने के लिए डटे तैयार वृत्रासुर से पराजित होने के कारण भयभीत हैं । आप हमलोगों की रक्षा करें । आप तो कृपासागर हैं ॥५१॥ उसने देवताओं के राज्य को अपने अधीन कर लिया है । हे शिव ! आप हमलोगों को बतलाइये कि अब हमलोग क्या करें ?॥५२॥ हे महेश्वर ! हमलोग स्थान भ्रष्ट हो गये हैं अतएव न तो हमलोग कुछ कर पा रहे हैं और न तो कहीं जा पा रहे हैं । हे शंकरजी ! इस दुःख को विनष्ट करने का कोई भी उपाय हमलोग सोच नहीं पा रहे हैं ॥५३॥ हे सभी प्राणियों के स्वामिन् ! आप हमलोगों की सहायता करें । हे कृपानिधि ! वरदान के प्रभाव से दृप्त वृत्रासुर मदमत्त हो गया है । आप उसका वध कर दें॥५४॥ **शिवजी ने कहा–** हमलोग ब्रह्माजी को मुखिया बनाकर श्रीहरि के पास चल रहे हैं और उनसे मिल करके ही वृत्रासुर की मृत्यु उपाय सोचेंगे ॥५५॥ भगवान् विष्णु शक्तिसम्पन्न तथा छल करने में निपुण हैं । वे सबों से अधिक बुद्धिमान भी हैं । वासुदेव जनार्दन हैं । वे सबों की रक्षा करने वाले तथा दया के सागर हैं ॥५६॥ उन भगवान् विष्णु के बिना कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती है । अतएव सभी कार्यों की सिद्धि के लिए उन्हीं के पास चलना चाहिए ॥५७॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से विचार करके वे सभी देवता ब्रह्मा, इन्द्र तथा शंकरजी के साथ शरण्य तथा भक्तवत्सल भगवान् विष्णु के लोक मे आये॥५८॥ वे देवता भगवान् विष्णु के पद में चल गये और भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे । जगद्गुरु भगवान् श्रीहरि की स्तुति वैदिक पुरुष सूक्त से किए ॥५९॥ उस समय जगन्नाथ भगवान् विष्णु उन देवताओं के समक्ष प्रकट हो गये । उन्होंने सभी देंवताओं का सम्मान किया और उसके बाद कहा ॥६०॥ हे देवताओं ! क्या कारण है कि आप सबलोग ब्रह्माजी तथा शंकरजी के साथ यहाँ आये हैं । आप लोग अपने आने का कारण बतलायें।।६१॥

स्मलोकेशा हरब्रह्म समन्विताः । कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः ॥६१॥ व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम् । चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्रांजलयस्तदा** ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठकन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित् । प्राह प्रेमभरोद्भ्रांतान्माधवो मेदिनीपते** ॥१॥ विष्णुरुवाच– **किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवंतु कारणं सुराः । सदसद्वाऽपि तच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे** ॥२॥ देवा ऊचुः– **किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते । सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः** ॥३॥ **त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः । वामनं वपुरास्थाय क्रांतं त्रिभुवनं पदैः** ॥४॥ **अमृतं त्वयाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः । त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे** ॥५॥ विष्णुरुवाच– **न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसंमतम् ।**

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– भगवान् की उस वाणी को सुनकर देवता कुछ भी बोल न सके । वे चिन्तामग्न होकर भगवान् के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े रहे ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भगवान् विष्णु का वृत्रासुर के वध का उपाय बतलाना और देवों को देवी के वरदान की प्राप्ति

व्यासजी ने कहा– हे राजन् ! देवताओं को उस प्रकार से चिन्तित देखकर सभी अर्थतत्त्वों को जानने वाले भगवान् विष्णु ने उस तरह से व्याकुल सभी देवताओं से प्रेमपूर्वक कहा ॥१॥ **भगवान् विष्णु ने कहा–** हे देवताओं ! आपलोग मौन क्यों हैं ? आपलोग जो कारण हो उसे बतलाएँ ॥२॥ **देवताओं ने कहा–** हे विभो ! तीनों लोकों में कौन सी ऐसी बात है जो आपको ज्ञात नहीं है । आप तो सबकुछ जानते हैं बार-बार क्या पूछ रहे हैं ?॥३॥ आपने प्राचीन काल में वामनावतार धारण करके, अपने पैरों से ही त्रिभुवन को नाप लिया, बलि को बाँध दिया और इन्द्र को देवताओं का राजा बनाया ॥४॥

तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति ॥६॥ अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना । बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केन बलेन वा ॥७॥ उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः । सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः ॥८॥ ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽराधितेन च । दुर्जयत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥९॥ अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः । ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरंजयः ॥१०॥ दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना सामप्रतारणम् । प्रलोभ्य वशमानेयो हन्तव्यस्तु ततः परम् ॥११॥ गच्छध्वं देवगन्धर्वा यत्रास्ति बलवत्तरः । साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ ॥१२॥ संगम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि । मित्रत्वं च समाधाय हंतव्यः प्रबलो रिपुः ॥१३॥ अदृश्यः संप्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम् । साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः ॥१४॥ समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये । मरणं विबुधास्तस्य नान्यथा संभविष्यति॥१५॥ गच्छध्वमृषिभिः सार्धंगन्धर्वाः कपटावृताः । इन्द्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः ॥१६॥ यथा स याति विश्वासं तथा

हे प्रभो ! आपने दैत्यों का वध करके अमृत देवताओं को पिलाया । देवताओं पर आयी हुयी सभी विपत्तियों को विनष्ट करने में आप ही समर्थ हैं ॥५॥

भगवान् विष्णु ने कहा– देवताओं आपलोगों को भयभीत नहीं होना चाहिए । मैं वृत्रासुर के वध का सुसस्मत उपाय जानता हूँ । मैं वृत्रासुर के वध के उस उपाय को बतलाऊँगा जिससे आपलोगों का कल्याण होगा ॥६॥ मुझे स्वयं आपलोगों का कल्याण करना होगा । चाहे वह उपाय मुझे बुद्धि से, बल से, धन से अथवा किसी दूसरे प्रकार से क्यों न करना पड़े ॥७॥ तत्त्वज्ञ पुरुषो ने चार प्रकार के उपायों को बतलाया है साम, दान, भेद और दण्ड । इन सबों का प्रयोग अपने सुहृदों के प्रति भी करना चाहिए और शत्रुओं के प्रति तो इन सबों का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए ॥८॥ वृत्रासुर ने कठोर तपस्या करके ब्रह्माजी के ही प्रभाव से अजेय हो गया है ॥९॥ पहले ही त्वष्टा ने इसको उत्पन्न करके सभी प्राणियों के लिए अजेय बना दिया । उसके पश्चात् दूसरों की नगरियों पर विजय प्राप्त करने वाले वृत्रासुर सेना के बल को प्राप्त करके और बलवान हो गया ॥१०॥ सामनीति का उपयोग करके इसको धोखा दिये विना इसका वध नहीं किया जा सकता है । अतएव सर्वप्रथम इसको लोभ दिखाकर अपने वश में करना होगा और उसके बाद उसका धोखे से वध करना होगा ॥११॥ इस नीति के अनुसार सभी गन्धर्व वहाँ जायँ जहाँ पर वृत्रासुर रहता है । वे सामनीति का प्रयोग करके उसको पहले अपने अनुकूल बना लें ॥१२॥ वे वृत्रासुर से मिलकर उसकी बातों को मान लें और उससे सन्धि कर लें । फिर वृत्रासुर को मित्र बना लें । तदनन्तर ही उसका वध किया जा सकेगा । वह शत्रु अत्यन्त प्रबल है ॥१३॥ मैं स्वयं अदृश्य रूप से इन्द्र के वज्र में प्रवेश कर जाऊँगा । देवताओं ! मैं उसका वध करने में इन्द्र की सहायता करूँगा ॥१४॥ आपलोग समय की प्रतीक्षा करें । उसकी आयु का जब क्षय हो जायेगा । तब ही उसकी मृत्यु हो पायेगी ॥१५॥ अतएव सभी गन्धर्व अपना वेष बदल कर ऋषियों के साथ उसके पास जायँ और वचनवद्ध होकर आपलोग तथा इन्द्र सभी लोग उसके साथ मित्रता कर लें ॥१६॥

कार्यं प्रतारणम् । गुप्तोऽहं संप्रवेक्ष्यामि पविं संछादितं दृढम् ॥१७॥ विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा । विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः ॥१८॥ मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम् । न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः ॥१९॥ नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते । वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वञ्चितो बलिः ॥२०॥ कृत्वा च मोहिनीवेषं दैत्याः सर्वेऽपि वञ्चिताः । भवन्तः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥२१॥ गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमंत्रैः सुरोत्तमाः । साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति ॥२२॥ वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् । सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥२३॥इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे । मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम् ॥२४॥ मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति । प्रसन्नायां पराम्बायां सर्वं साध्यं भविष्यति ॥२५॥ नोचेन्मनोरथावप्तिर्न कस्यापि भविष्यति । अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणम् ॥२६॥ तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः । भजध्वं सात्त्विकैर्भावैःशुत्रनाशाय सत्तमाः ॥२७॥ पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् । पंचवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥२८॥ स्तुता मया तदाऽत्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः

उसको आप लोग इस प्रकार से प्रतारित करें कि वह आपलोगों पर विश्वास करने लग जाय । उस समय मैं इन्द्र के सर्वश्रेष्ठ अस्त्र व्रज में प्रवेश कर जाऊँगा॥१७॥ ऐसा ही करके इन्द्र अपने शत्रु का वध कर पायेंगे । इस समय इन्द्र विश्वासघातजन्य पाप को अपने में न लायें ॥१८॥ इसके बाद इन्द्र मेरी सहायता से उस पापी का वध कर पायेंगे । इस शठ शत्रु के साथ इस प्रकार की शठता करने में किसी तरह का पाप भी नहीं होगा ॥१९॥ वह बलवान् शत्रु वृत्रासुर धर्मपूर्वक नहीं मारा जा सकता है । मैंने भी वामन का रूप धारण करके बलि के साथ धोखा किया था ॥२०॥ मैंने मोहिनी का रूप बनाकर सभी दैत्यों के साथ छल किया आप सभी लोग भगवती जगदम्बा के शरण में चले जायँ ॥२१॥ और हे देववर्यों आप लोग उनकी स्तुति करें । वे योगमाया आपलोगों की सहायता करेंगी ॥२२॥ हमसब लोग सत्त्वगुण की अधिष्ठात्री देवी परा प्रकृति की स्तुति करें । वे सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं । पापी लोग उन भगवती का दर्शन नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥२३॥ इन्द्र भी उनकी आराधना करके युद्ध में अपने शत्रु का वध कर पायेंगे । वे महामाया मोह उत्पन्न करने वाली हैं । वे उस दानव को मोहित कर देंगी ॥२४॥ वृत्रासुर के मोहित हो जाने पर उसका वध करना आसान हो जायेगा । पराम्बा के प्रसन्न हो जाने पर सारा काम आसानी से बन जायेगा ॥२५॥ इनकी प्रसन्नता के बिना किसी के भी मनोरथ की सिद्धि नहीं हो सकती है । वे सबों के अन्तर्यामी स्वरूपिणी हैं समस्त कारणों के भी कारण हैं ॥२६॥ अतएव हे देवतागण ! सम्पूर्ण जगत् की माता उस पराम्बा का यजन भक्ति भावना पूर्वक करें । जिससे कि शत्रु का नाश हो सके ॥२७॥ प्राचीन काल में मैंने भी पाँच हजार वर्ष तक लगातार युद्ध करके मधु एवं कैटभ का वध किया था ॥२८॥ उस समय मैंने उस परा प्रकृति की स्तुति की थी । उस समय भगवती ने प्रसन्न होकर उन दोनों शत्रुओं को मोहित

परा। मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥२९॥ विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ । तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥३०॥
सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः । एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥३१॥ जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम् । एकान्ते
संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः ॥३२॥ तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम् । भक्तकामदुघामम्बां संसारक्लेशनाशिनीम् ॥३३॥ देवा
ऊचुः— देवि प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च । दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे प्राप्तांस्त्वदंघ्रिकमलं शरणं सदैव ॥३४॥
त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्पुत्रानिवातिपातितान्रिपुसंकटेऽस्मिन् । मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान्॥३५॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः । कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभंगचालनवशाद्विहरन्ति कामम्॥३६॥
माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् । कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधानस्मांस्त्वदंघ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥३७॥
नूनं मदंघ्रिभजनाप्तपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः । नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा॥३८॥

कर दिया और मैंने छल पूर्वक उन दोनों का वध कर दिया ॥२९॥ उस समय उन दोनों मदमत्त दैत्यों को छल पूर्वक ही मैं मार कर सका । अतएव आपलोग भावपूर्वक देवी की आराधना करें ॥३०॥ देवताओं वे आपलोगों के कार्य की सिद्धि अवश्य करेंगी । इस तरह से समर्थ भगवान् विष्णु के द्वारा उपदेश दिए जाने पर सभी देवता सुमेरु पर्वत के शिखर पर चले गये । वह शिखर पारिजात के वृक्ष से समलंकृत था । वे देवता एकान्त में जप, तप तथा ध्यान करते हुए बैठ गये ॥३२॥ वे जगत् की माता, जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार को करने वाली भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली पराम्बा की स्तुति करने लगे । क्योंकि वे ही संसार के कष्टों का विनाश करने वाली हैं ॥३३॥ देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए कहा— हे देवि ! आप प्रसन्न हो जायँ । आप वृत्रासुर के द्वारा पीड़ित तथा युद्ध में अत्यन्त सताये गये हम देवताओं की रक्षा करें । हे दीन जीवों के दुःख को दूर करने वाली परमार्थतत्त्व स्वरूपिणि हमलोग तो सदैव आपके चरण कमलों के शरण में रहते हैं ॥३४॥ हे माँ ! आप तो सम्पूर्ण विश्व की जननी हैं । हमलोग आपके पुत्र हैं । हमलोग शत्रु के द्वारा उत्पन्न किये गये भयंकर कष्ट में पड़े हैं । अतएव आप हमलोगों की रक्षा करें । हे माँ त्रैलोक्य की कोई भी ऐसी बात नहीं है जो आपको मालुम न हो । हे माँ ! आप हमलोगों की क्यों उपेक्षा कर रही है ? हमलोगों को असुर ने अत्यन्त सताया है ॥३५॥ हे माँ! आपने ही इस त्रैलोक्य की रचना की है । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ये तीनों आपके ही संकल्प से उत्पन्न होते हैं । वे स्वतन्त्र रहकर सृष्टि आदि का कार्य नहीं करते हैं । वे तो आपके भ्रुकुटि के विलास मात्र की प्रतीक्षा करते रहते हैं ॥३६॥ हे करुणारस के सागर स्वरूपिणि ! आपने ही इस नियम का निर्माण किया है कि जब कोई अपराधी पुत्र भी विपत्ति में पड़ जाता है तो उस समय सभी प्रकार से माता उन अपने अपराधी पुत्रों की रक्षा करती है । हमलोग

दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः । मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ नस्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न ॥३९॥ पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाजौ । अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः ॥४०॥ शुम्भस्तथाऽतिबलवाननुजो निशुम्भस्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च । वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथाऽसौ ॥४१॥ त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः संतापितानतितरां भयविह्वलांश्च । नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहंता यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या ॥४२॥ वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च । पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना नोचेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥४३॥ ते प्रापिताः सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते । त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसि वृत्रम् ॥४४॥ जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः ।

तो निरपराध हैं । शत्रुओं ने हमलोगों को सताया है । आपके चरणों के शरण में आये हुए हैं । अतएव आप हमलोगों की रक्षा करें क्यों नहीं कर रही हैं ?॥३७॥ हे मातः ! यदि आप यह सोचती हैं कि मेरा भजन करके ये देवतागण मेरे पद को प्राप्त कर लेंगे । यदि ये मेरी भक्ति करना छोड़ देंगे तो केवल सुखों के ही भोगों में लगे रहेंगे अतएव इन सबों पर मुझे कृपा कटाक्ष नहीं करना चाहिए तो हे मातः ! इस तरह का विचार किसी भी माता का अपने पुत्र के विषय में नहीं देखा जाता है ॥३८॥ हे माँ ! हमलोग यदि आपकी भक्ति करना छोड़कर ऐश्वर्य जन्य सुख को भोगने में लगे हुए हैं तो इसमें कोई दोष नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि अज्ञान का निर्माण भी आपने ही किया है । उस अज्ञान से मोहित होकर यदि हमलोग स्वाभाविक रूप से ऐसा करते हैं तो फिर आप हमलोगों पर कृपा क्यों नहीं करती हैं ?॥३९॥ हे माँ ! आपने प्राचीन काल में महिष रूप धारी दैत्य महिषासुर का युद्ध में वध किया था तो फिर हमलोगों का कल्याण करने के लिए आप इस भयंकर वृत्रासुर का वध क्यों नहीं करती हैं ?॥४०॥ जिस तरह से आपने अत्यन्त बलवान् शुम्भ तथा निशुम्भ इन दो असुरों का वध किया तथा उन दोनों के अनुयायी दैत्यों का वध किया, हे दया की भावना से आर्द्र बनी हुयी माँ । आप प्रबल खल तथा मदमत्त वृत्रासुर को क्यों नहीं मार डालती हैं ॥४१॥ हे मातः ! असुर वृत्रासुर से अत्यन्त सताये गये तथा अत्यन्त भयभीत हम देवताओं की आप रक्षा करें । आपको छोड़कर त्रैलोक्य में कोई भी ऐसा नहीं हैं जो देवताओं पर आयी हुयी इस विपत्ति को विनष्ट कर दे और अपनी शक्ति से इस सम्पूर्ण विपत्ति जाल को जला कर भस्म कर दे ॥४२॥ हो सकता है कि आप वृत्रासुर को भी अपना पुत्र समझकर उस पर दया कर रही हों तो भी हे माँ ! आप हम लोगों को दुःख देने वाले उस खल का विनाश कर दीजिये उसे अपने बाणों के प्रहार से पवित्र बना दीजिये अन्यथा वह पापी नरकों में चला जायेगा ॥४३॥ हे मातः ! आपने जिन दैत्यों का वध अपने बाणों के प्रहार से पवित्र करके किया वे तो स्वर्गलोक में चले गये । हे दयार्द्रे मातः!

यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किन्त्वत्पादपंकजरतान्ननु पीडयेद्वा ॥४५॥ कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽम्ब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात्। मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम् ॥४६॥ धन्यास्त एव मनुजा हि भजंति भक्त्या पादांबुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् । यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरंति मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः ॥४७॥ ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरंति सततं किल होमकाले । स्वाहां तु तृप्तिजननीमसुरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥४८॥ मेधाऽसि कांतिरसि शांतिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम् । सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ॥४९॥ व्यास उवाच– एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा । चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥५०॥ पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया । रणत्किंकिणिकाजालरशनाबद्धसत्कटिः ॥५१॥ कलकंठीरवा कांता क्वणत्कंकणनूपुरा । चन्द्रखंडसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥५२॥ मंदस्मिताऽरविन्दास्या

इस तरह से आपने उन दैत्यों की नरकपात के भय से बचाकर उनकी रक्षा नहीं की है क्या ? अतएव आप शत्रु वृत्रासुर को नहीं मारती हैं ॥४४॥ हमलोग जानते हैं कि वृत्रासुर आपका भक्त नहीं है अपितु वह आपका वैरी है, क्योंकि वह पापी हमलोगों को सदा सताया करता है । आपके चरण कमलों के भक्त हम देवताओं को सताने वाला वह वृत्रासुर आपका सेवक कैसे हो सकता है ॥४५॥ हे जननि ! हमलोग आपकी पूजा कैसे करें ? क्योंकि फूल आदि की भी रचना तो आपने ही की है । मन्त्र और हमलोग सबके सब आपकी पराशक्ति स्वरूप हैं । अतएव हे मातः हमलोग आपके ही चरणों के शरण में आये हुए हैं ॥४६॥ हे माँ ! वे मनुष्य धन्य हैं, जो आपके चरण रूपी भव सागर से पार करने के लिए नौका स्वरूप आपके चरणों की ही सेवा किया करते हैं । आपके उन चरणों को योगिजन अपने मन में ध्यान किया करते हैं और राग तथा मोह से रहित होकर मोक्ष चाहने वाले जीव आपके उन चरण कमलों का निरन्तर स्मरण किया करते हैं ॥४७॥ जो यज्ञ करने वाले याज्ञिक हैं सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता होकर भी निरन्तर आपका ही स्मरण किया करते हैं । वे होम की बेला में देवताओं को तृप्त करने वाले आपके स्वाहा नाम का तथा पितृगणों को तृप्त करने वाले स्वधा नाम का श्राद्ध की बेला में स्मरण करते हैं ॥४८॥ आप ही कान्ति, शान्ति, मेधा तथा मनुष्यों के लिए सभी अर्थों को प्रकाशित करने वाली बुद्धिस्वरूपिणी हैं । इस सम्पूर्ण त्रैलोक्य में आप ही ऐश्वर्यों को उत्पन्न करके अपने भजन करने वाले भक्तों को सदा प्रदान करती रहती हैं ॥४९॥ **व्यासजी ने कहा–** इस प्रकार से देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर देवी उन देवताओं के समक्ष प्रकट हो गयीं । उस समय वे मनोहर रूप धारण किए हुयी थीं और समस्त अलंकारों से अलंकृत थीं ॥५०॥ वे अपनी भुजाओं में पाश तथा अंकुश धारण किए हुयी थीं । उनकी तीसरी भुजा में वरदान की मुद्रा तथा चौथी भुजा में अभय प्रदान की मुद्रा सुशोभित हो रही थीं । उनके कमर में सुन्दर करधनी सुशोभित हो रही थी जिसके घुंघुरुओं से मधुर आवाज आ रही थी ॥५१॥ उनकी आवाज कोयल के समान

नेत्रत्रयविभूषिता । पारिजातप्रसूनाच्छनीलवर्णसमप्रभा ।।५३।। रक्तांबरपरीधाना रक्तचंदनचर्चिता । प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा ।।५४।। सर्वशृंगारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा । सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठनरूपिणी ।।५५।। सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानंदरूपिणी । प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम् ।।५६।। तानाह प्रणतानंबा किं वः कार्यं ब्रुवन्तु माम् । देवा ऊचुः– **मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम्।।५७।। यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम् । आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः ।।५८।।** व्यास उवाच– **तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवांतरधीयत । स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदान्विताः ।।५९।।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ।।५।।

मीठी थी । वे अत्यन्त मनोहर थी । उनके कंकण (कंगन) तथा नुपूर ध्वनित हो रहे थे । उनके शिर पर चन्द्रमा की कला सुशोभित हो रही थी ।।५२।। उनका मुख कमल मन्द मुसुकान से सुशोभित हो रहा था । उनके तीन नेत्र थे । पारिजात पुष्प की डंठल के समान उनकी स्वच्छ नीलवर्ण की कान्ति थी।।५३।। वे लाल वस्त्र धारण किए हुयी थीं तथा लाल चन्दन से चर्चित उनका शरीर था । प्रसन्नता के कारण उनका मुख देखने में अत्यन्त सुन्दर था वे करुणा रस के सागर स्वरूप थी ।।५४।। उनका वेष समस्त शृंगारों से समलंकृत था और वे भेदबुद्धि के अरणि स्वरूप थीं । वे सर्वज्ञ, सम्पूर्ण जगत् की कर्त्री तथा सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूप थीं ।।५५।। समस्त वेदान्तों में वर्णित स्वरूप वाली वे सच्चिदानन्द स्वरूपिणी थीं । इस प्रकार की देवी को अपने समक्ष देखकर देवताओं ने उन देवी को प्रणाम किया ।।५६।। उन प्रणत देवताओं से अम्बा ने पूछा आपलोगों का कौन सा कार्य है ?। **देवताओं ने कहा–** हे माँ ! देवताओं को अत्यन्त दुख देने वाले वृत्रासुर को आप मोहित कर दें ।।५७।। उसको आप इस तरह से मोहित कर दें कि वह देवताओं पर विश्वास करने लग जाय । आप हमलोगों के आयुध में ऐसा बल भर दें कि वह उन सबों से मारा जा सकें ।।५८।। **व्यासजी ने कहा** देवी ने देवताओं से कहा कि ऐसा ही होगा और वे अन्तर्धान हो गयीं । देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चले गये ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के पाँचवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

व्यास उवाच– **एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः । (जग्मुः सर्वे च संमंत्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ।) ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलंतमिव तेजसा॥१॥ धक्ष्यंतमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसंतमिव चामरान् । ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः ॥२॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम्।** ऋषय ऊचुः– **वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयंकर ॥३॥ व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्मांडमखिलं किल । शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम्॥४॥ युवयोर्दुःखदं कामं चिंतावृद्धिकरं परम् । न त्वं स्वपिषि संतुष्टो न चापि मघवा तथा ॥५॥ सुखं स्वपिति चिन्तार्तो द्वयोर्यद्वैरजं भयम् । युवयोर्युध्यतोः कालो व्यतीतस्तु महानिह ॥६॥ पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः । संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥७॥ न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः । संग्रामरसिकाः शूरान्प्रशंसंति न पंडिता; ॥८॥ युद्धं शृङ्गारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम् । पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥९॥ युद्धे विजयसंदेहो निश्चयं बाणताडनम् । दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥१०॥ दैवाधीनाविति ज्ञात्वा**

इन्द्र का वृत्रासुर को विश्वस्त बनाकर उसका वध करना

व्यासजी ने कहा– इस तरह से वरदान प्राप्त करके देवता तथा ऋषिगण आपस में विचार करके वृत्रासुर के उत्तम आश्रम में गये । उन्होंने देखा कि वहाँ पर वृत्रासुर अपने तेज से देदीप्यमान हो रहा था ॥१॥ लग रहा था कि वह अपने तेज से त्रैलोक्य को जला देगा और देवताओं को खा जायेगा । इसके बाद उसके सन्निकट में आकर ऋषियों ने प्रियवाणी में कहा ॥२॥ वे देवताओं का कार्य करने के लिए साम नीति पूर्वक मधुर शब्दों का प्रयोग कर रहे थे । **ऋषियों ने कहा–** हे महाभाग वृत्रासुर ! आप समस्त लोकों के लिए भयंकर हैं ॥३॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप से व्याप्त हो गया है । इन्द्र के साथ जो आपका वैर है वह आपके सौख्य को विनष्ट करने वाला है ॥४॥ वह आप दोनों को दु;ख देने वाला और चिन्ता को अत्यधिक बढ़ाने वाला है । उसके कारण न तो आप शान्तिपूर्वक सो पाते हैं और न तो इन्द्र ही ॥५॥ सुखपूर्वक तो आप दोनों के वैर से उत्पन्न होने वाला वैर ही सोता है । आपदोनों के युद्ध करते हुए महान् काल बीत गया ॥६॥ उसके कारण देवता, असुर तथा मानव सबके सब दुःखी होंते हैं । वास्तविकता यह है कि इस संसार में सुख का ही संग्रह करना चाहिए और दुःख का परित्याग करना चाहिए ॥७॥ किन्तु यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति वैर करता है उसको कभी भी सुख नहीं मिलता है । जो संग्राम देखते रहना चाहते हैं वे ही वीरों की प्रशंसा करते हैं किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति उनकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥८॥ विद्वान लोग तो शृङ्गाररस में चतुर होते हैं और युद्ध शृंगाररस का विघातक है । वे तो मानते हैं कि युद्ध तो पुष्पोंसे भी नहीं करना चाहिए बाणों से युद्ध करने की

न योद्धव्यं कदाचन । कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥११॥ परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् । किं सुखं युध्यतः संख्ये
बाणवृष्टिभयंकरे ॥१२॥ खड्गपातातिरौद्रे च तथाऽरातिसुखप्रदे। संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥१३॥ प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं
निरर्थकम् । छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य श्रृगालकरटादिभिः ॥१४॥ पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वांछति मंदधीः । सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण
सह नित्यदा ॥१५॥ अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरंतरम्। वयं च तापसाः सर्वे गंधर्वाश्च निजाश्रमे ॥१६॥ सुखवासं गमिष्यामः शांते
वैरेऽधुनैव वाम् । संग्रामे युवयोर्वीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥१७॥ पीड्यन्ते मुनयः सर्वे गंधर्वाः किन्नरा नराः । सर्वेषां शांतिकामानां
सख्यमिच्छामहे वयम् ॥१८॥ मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवंतु सुखं किल । मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥१९॥शपथं कारयित्वाऽत्र
योजयामो मिथः प्रियम् । शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः॥२०॥ चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु सांप्रतम् । सत्याधारा धरा नूनं

कौन सी बात है ? युद्ध में विजय होगी कि नहीं इस विषय में सन्देह बना रहता है किन्तु शरीर को तो बाणों से विधवाना ही पड़ता है । यह सारा संसार तथा विजय एवं पराजय ये सबके सब दैवाधीन हैं ॥१०॥ जय और पराजय को दैवाधीन जानकर कभी भी युद्ध नहीं करना चाहिए । संसार में सुख के साधन समय से भोजन करना, स्नान करना, शय्या पर शयन करना और सेवा करने वाली पत्नी का होना इन सबों को ही बतलाया गया है । जिसमें बाणों की भयंकर वर्षा की जाती है उस युद्ध को करने में कौन सा सुख है ॥११-१२॥ खड्ग के प्रहार से अत्यन्त भयंकर होने वाले युद्ध से तो युद्ध करने वालों के शत्रुओं को सुख मिलता है । यह जो कहा गया है कि युद्ध में मरने वालों को स्वर्ग मिलता है ॥१३॥ किन्तु यह कथन तो केवल प्रलोभन है । जिससे व्यर्थ के युद्ध करने को बढ़ावा मिलता है । देह को कटवाकर तथा स्यार एवं कौओं द्वारा अपने शरीर को नोचवाने से यदि स्वर्ग मिलता है तो फिर कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस प्रकार के स्वर्ग को प्राप्त करना चाहेगा ?। अतएव हे वृत्रासुर ! हमलोगों की इच्छा है कि आपकी इन्द्र से साथ स्थायी रूप से मित्रता हो जाय ॥१४-१५॥ ऐसा करने से आपको तथा इन्द्र को दोनों को सदा सुख प्राप्त होता रहेगा । जब आप दोनों में वैर समाप्त हो जायेगा तो हम ऋषिगण तथा गन्धर्व भी अपने-अपने आश्रम में सुख पूर्वक निवास करेंगे । हे वीर ! जब तक आप दोनों में वैर है तब तक हमलोग भी कष्ट का अनुभव करते हैं । सभी मुनिगण गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य ये सबके सब दुःखी होते हैं । अतएव सबों का सुख चाहने वाले हम ऋषिगण चाहते हैं कि आपलोगों में मित्रता हो जाय ॥१६-१८॥ मुनिगण, इन्द्र और आप सुख का अनुभव करें यही हम चाहते हैं । हे वृत्रासुर ! आप दोनों की मित्रता कराने में हम ऋषिगण ही मध्यस्थ रहेंगे । हमलोग आप दोनों को शपथ कराकर परस्पर में मित्र बना देंगे । आप जैसा चाहेंगे उसी प्रकार की शपथ इन्द्र आपके समक्ष करेंगे ॥१९-२०॥ ऐसा करके इन्द्र निस्सन्देह आपके हृदय में प्रेम भर देंगे । सत्य के आधार पर यह पृथिवी टिकी है । सत्य के ही बल

सत्येन च दिवाकरः ॥२१॥ तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वाप्यथ । उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुंचति ॥२२॥ तस्मात्सत्येन सख्यं वां
भवत्वद्य यथासुखम् । एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम् ॥२३॥ युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च । व्यास उवाच ।
महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥२४॥ अवश्यं भगवंतो मे माननीयास्तपस्विनः । भवंतो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम्॥२५॥
सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम् । कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्विषि ॥२६॥ निर्लज्जे नैव कर्त्तव्यं सख्यं मतिमता सदा ।
निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लंपटः शठः ॥२७॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने । भवंतो निपुणा; सर्वे न द्रोहमतयःसदा ॥२८॥
अनभिज्ञास्तुशांतत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् । मुनय ऊचुः— **जंतुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥२९॥ द्रोहं कृत्वा कुतः शांतिमाप्नुयान्नष्टचेतनः।**
विश्वासघातकर्तारो नरकं यांति निश्चयम् ॥३०॥ दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः । निष्कृतिर्ब्रह्महंतृणां सुरापानां च निष्कृतिः ॥३१॥
विश्वासघातिनां नैव मित्र द्रोहकृतामपि । समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम् ॥३२॥ तेनैव समयेनाद्य संधिः स्यादुभयोः किल । वृत्र उवाच—

पर सूर्य चमकते रहते हैं । यह वायु भी समयानुसार सत्य के ही बल पर चलती रहती है । सत्य के ही कारण समुद्र भी अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करता है ॥२१-२२॥ अतएव आप दोनों की मित्रता भी आज सत्य के आधार पर होनी चाहिए । जिससे कि इन्द्र और आप दोनों एक साथ ही सोयें; क्रीड़ा करे, जलविहार करें तथा एक साथ बैठें ॥२३॥ अतएव आप दोनों को परस्पर में मित्रता अवश्य कर लेनी चाहिए । **व्यासजी ने कहा—** उन महर्षियों की बातों को सुनकर महा बुद्धिमान वृत्रासुर ने कहा ॥२४॥ ठीक है आपलोग तो हमारे समादरणीय हैं, तपस्वी हैं, यह भी निश्चत है कि आपलोग मुनि हैं अतएव कहीं भी मिथ्याभाषण नहीं करते हैं ॥२५॥ आपलोग सदाचारी हैं और अत्यन्त शान्त प्रकृति के हैं । कभी छल करना जानते भी नहीं है । किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह जिसके साथ वैर हो गया हो, जो शठ प्रकृति का हो, कामी हो, कलंकित हो, और निर्लज्ज हो उसके साथ मित्रता न करे । यह इन्द्र निर्लज्ज, दुराचारी, ब्रह्मघाती, लम्पट और शठ है ॥२६-२७॥ ऐसे लोगों पर तो विश्वास नहीं ही करना चाहिए । आप सबलोग तो शान्त बुद्धि वाले हैं । आपलोग किसी से भी कभी द्रोह नहीं करना चाहते हैं । आपलोग शान्त प्रकृति के होने के कारण छली-प्रपञ्ची, वकवादियों के हृदय को नहीं जानते हैं । **मुनियों ने कहा—** मनुष्य को अपने किए हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥२९॥ कोई भी किसी से द्रोह करके नष्ट ज्ञान वाला व्यक्ति कैसे शान्ति का अनुभव कर सकता है । यह निश्चित है कि जो विश्वासघात करता है, उसको नरक में जाना पड़ता है ॥३०॥ यह भी निश्चित है कि विश्वासघात करने वाले को दुःख भोगना ही पड़ता है । ब्रह्महत्या करने वाले तथा सुरापान करने वाले, के लिए तो प्रायश्चित बतलाया गया है किन्तु जो अपने मित्र के साथ विश्वासघात करता है, उसके लिए कोई भी प्रायश्चित नहीं है । अतएव हे सर्वज्ञ वृत्रासुर ! तुम अपनी शर्त बतलाओं

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा ॥३३॥ न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च । वध्यो भवेयं विप्रेंद्राः शक्रस्य सह दैवतैः॥३४॥ एवं मे रोचते संधिः शक्रेण सह नान्यथा । व्यास उव.च– **ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥३५॥ समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम्। इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः ॥३६॥साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल । वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा॥३७॥ बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः । कदाचिन्नंदने चोभौ कदाचिद्गंधमादने ॥३८॥ कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः । एवं कृते च संधाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत् ॥३९॥ शक्रोऽपि वधकामस्तुतदुपायानचिंयत् । रंध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदासीन्मघवा भृशम् ॥४०॥ एवं चिंतयतस्तस्य कालः समभिवतति । विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे ॥४१॥ एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते । वृत्रस्य मारणोपायान्मनसींद्रोऽप्यचिंतयत्॥४२॥ त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने । पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम् ॥४३॥ न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथंचन । मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥४४॥ लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः । परदारलंपटः स पापबुद्धिः प्रतारकः ॥४५॥ रंध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः । यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह ॥४६॥ सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रंदमानमनातुरः । तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु**

कि तुम क्या चाहते हो ?॥३१-३२॥ तुम जिस शर्त को चाहते हो उसीके अनुसार आप दोनों की सन्धि हो जाय । **वृत्रासुर ने कहा**– हमारी यही शर्त है कि इन्द्र के साथ मिलकर देवता लोग न तो किसी शुष्क पदार्थ से, न गीले पदार्थ से न काष्ठ से न पत्थर से, न वज्र से न दिन में और न रात में मेरा वध कर सकें ॥३३-३४॥ मुझे इसी प्रकार की सन्धि अभिप्रेत है, अन्य किसी दूसरे प्रकार से नहीं । **व्यासजी ने कहा**– वृत्रासुर की शर्त को सुनकर ऋषियों ने कहा बहुत अच्छा ॥३५॥ वे लोग इन्द्र को वृत्रासुर के समक्ष लाकर उस शर्त को सुनवाया । शान्त होकर इन्द्र ने भी उस शर्त को स्वीकार कर लिया॥३६॥ इन्द्र ने इस सन्धि के कार्य में अग्नि तथा मुनियों को साक्षी बनाया । इन्द्र की बातों को सुनकर वृत्रासुर विश्वास में आ गया ॥३७॥ इसके बाद इन्द्र तथा वृत्रासुर एक साथ रहने लगे । वे दोनों एक साथ नन्दन वन में जाते थे तो कभी गन्धमादन पर जाते थे ॥३८॥ कभी वे समुद्र के तट पर प्रसन्नता पूर्वक विचरण करते थे । इस तरह से मित्रता हो जाने पर वृत्रासुर प्रसन्न हो गया था ॥३९॥ इन्द्र तो वृत्रासुर का वध करना चाहते थे अतएव वे उसका वध करने के उपायों के विषय में सोचते रहते थे । इन्द्र हमेशा अवसर पाने की चिन्ता में रहकर अत्यन्त उदास रहते थे ॥४०॥ इन्द्र के इस तरह से सोचते हुए वृत्रासुर की मृत्यु की बेला आ गयी । पापी इन्द्र के विषय में वृत्रासुर अत्यन्त विश्वस्त हो गया था ॥४१॥ इस तरह प्रतिज्ञा किए जाने के बाद कुछ वर्ष बीत गये । तब इन्द्र ने भी वृत्रासुर को मारने का उपाय मन ही मन सोच लिया ॥४२॥ त्वष्टा ने एक बार इन्द्र के ऊपर विश्वास करने वाले वृत्रासुर से कहा– हे पुत्र ! मेरी हितकारी बातों को तुम सुनो ॥४३॥ जिससे वैर हो जाय उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए । इन्द्र से तुम्हारा वैर हो चुका है । इन्द्र हमेशा दूसरों को देखकर जलता रहता है ॥४४॥ वह हमेशा लोभ से मत्त बना रहता है, द्वेष करता रहता है । दूसरों के दुःख को देखकर प्रसन्न होता है । दूसरों की स्त्री के विषय में लम्पट है, पापी है और छली है ॥४५॥ हमेशा अवसर देखा करता है, द्रोही है, मायावी है और

कथंचन ॥४७॥ कृतपापस्य का लज्जा पुन; पुत्र प्रकुर्वतः । व्यास उवाच– एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥४८॥ न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल । स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम् ॥४९॥ संध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीव दारुणे । ततः संचिंत्य मघवा वरदानं महात्मनाम् ॥५०॥ संध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिदिवसो न च । हंतव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न संशयः ॥५१॥ एकाकी विजने चात्र संप्राप्तः समयोचितः । एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम् ॥५२॥ तत्राजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः । वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः॥५३॥ इन्द्रो बुद्धि चकाराशु तदा वृत्रवधं प्रति ।इति संचिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे ॥५४॥ अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा । यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वंचयित्वा महाबलम् ॥५५॥ न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात् । अपां फेनं तदाऽपश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम् ॥५६॥ नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा । अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥५७॥ परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः । स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत् ॥५८॥ वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् । फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥५९॥ सहसा निपपाताशु

मदमत्त है । जो अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करके उसके आतुर गर्भ को उनचास टुकड़ों में काट दिया । हे पुत्र ! उस पर तुम कभी भी विश्वास मत करना ॥४७॥ हे पुत्र ! जो एक बार पापकर्म कर लेता है, उसे पुनः पाप करने में लज्जा नहीं आती है । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह अपने पिता के द्वारा युक्तियुक्त वचनों से समझाये जाने पर भी ॥४८॥ वृत्रासुर उनकी बातों से सावधान नहीं हुआ क्योंकि उसकी मृत्यु सन्निकट आ गयी थी । एक दिन इन्द्र ने वृत्रासुर को समुद्र के तट पर खड़ा देखा ॥४९॥ उस समय अत्यन्त भयंकर संध्या काल आ गया था । उसी समय इन्द्र को महात्माओं का वरदान वृत्रासुर के विषय में याद आ गया ॥५०॥ इन्द्र ने सोचा यह न तो दिन का समय है और न रात्रि की बेला है, यह तो अत्यन्त भयंकर संध्या काल है। अतएव इस समय मैं इसे अपनी शक्ति से मार डालूँगा । इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥५१॥ इस समय यह अकेले है । एकान्त में और अनुकूल समय भी है । इस तरह से विचार करके इन्द्र ने मन ही मन भगवान् विष्णु का स्मरण किया ॥५२॥ इन्द्र के स्मरण करते ही भगवान् विष्णु वहाँ पर आ गये । किन्तु वे अदृश्य ही रहे । वे भगवान् इन्द्र के वज्र में प्रवेश करके स्थित हो गये ॥५३॥ उसी समय इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने का मन बना लिया । वे सोचने लगे कि मैं अपने इस शत्रु का युद्ध में कैसे वध करूँ ॥५४॥ यह तो सभी देवों तथा दानवों के लिए अजेय हैं । यदि मैं इस महाबलवान् वृत्रासुर को छलपूर्वक बध नहीं करता हूँ और यह जीवित रह जाता है तो फिर मेरा कल्याण कभी नहीं होगा । उसी समय इन्द्र की दृष्टि समुद्र में विद्यमान फेन के ऊपर पड़ी वह वहाँ पर पर्वत के समान ऊँचा था ॥५६॥ उन्होंने सोचा कि यह न तो शुष्क है और न गीला है । यह कोई शस्त्र भी नहीं है। उस समय इन्द्र ने बड़ी आसानी से उस समुद्र के फेन को उठा लिया ॥५७॥ इसके बाद में इन्द्र ने बड़ी भक्ति भावना से पराशक्ति जगदम्बा का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवती ने उस फेन में अपनी शक्ति का आधान कर दिया ॥५८॥ इसके बाद इन्द्र ने उस फेन को वज्र में लपेट दिया । फेन में लपेटे

वज्राहत इवाचलः । वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा ॥६०॥ ऋषयश्च महेंद्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः । हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः ॥६१॥ देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः । प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥६२॥ देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः । पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ॥६३॥ त्रिकालं महतीं चक्रुः पूजां सर्वेऽपि निर्जराः । तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ॥६४॥ विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः । ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयंकरे ॥६५॥ प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा । हते तस्मिन्सगंधर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥६६॥ इत्थं वृत्रः पराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः । तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥६७॥ ततो वृत्रनिहंत्रीति देवी लोकेषु गीयते । शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हुए वज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर के ऊपर प्रहार किया ॥५९॥ उस वज्र के प्रहार से एक-वा-एक वृत्रासुर पृथिवी पर पर्वत के समान गिर पड़ा । वृत्रासुर के मर जाने से इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥६०॥ ऋषियों ने भी इन्द्र की अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति की । शत्रु का वध करके, प्रसन्न हुए इन्द्र ने प्रसन्न होकर देवताओं के साथ देवी की अच्छी तरह से पूजा की क्योंकि देवी की ही कृपा से वृत्रासुर मारा गया था । इन्द्र ने अनेक प्रकार से देवी की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया ॥६१-६२॥ इन्द्र ने अपने नन्दनवन में देवी के लिए मन्दिर बनवाया और उसमें पद्मरागमणि से निर्मित देवी की मूर्ति की स्थापना की ॥६३॥ सभी देवताओं ने देवी की त्रिकाल पूजा की । उसी समय से देवी देवताओं की कुल देवता हो गयी ॥६४॥ इसके बाद इन्द्र ने त्रैलोक्य में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु की पूजा की । देवताओं को भयभीत करने वाले महाबलवान् वृत्रासुर के मारे जाने पर ॥६६॥ कल्याणकारी हवा चलने लगी तथा देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये । वृत्रासुर के मारे जाने पर गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा राक्षस जाति के जीव प्रसन्न हो गये ॥६६॥ इस तरह पराशक्ति के प्रवेश से युक्त फेन के द्वारा तथा देवी के द्वारा मोहित किए जाने के कारण इन्द्र के द्वारा सहसा वृत्रासुर मार दिया गया ॥६७॥ इसीलिए लोक में देवी को वृत्रासुर को मारने वाली कहा जाता है और इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा अतएव इन्द्र को वृत्रासुर को मारने वाला कहा जाता है ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ । मनसा शंकमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम् ॥१॥ इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविंद्रपुरीं ततः । मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ ॥२॥ किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वंचितः किल । मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च संगमात् ॥३॥ अस्माकं वचनाद्वृत्रो विश्वासमगमत्किल । विश्वासघातिनः संगाद्वयं विश्वासघातकाः ॥४॥ धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् । यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वंचितोऽसुरः ॥५॥ मंत्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् । पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च ॥६॥ विष्णुनाऽपि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान् । वज्रे प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना ॥७॥ नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्त्रासमश्नुते । हरिणा हरिसंगेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम् ॥८॥ द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ । प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ ॥९॥ अर्थकामौ**

ब्रह्महत्या के भय से भागकर इन्द्र का कमलनाल में प्रवेश करना तथा नहुष को इन्द्रत्व की प्राप्ति

व्यासजी ने कहा– वृत्रासुर को मरे हुए देखकर भगवान् विष्णु विष्णुपुरी में चले गये । क्योंकि उनके मन में वृत्रासुर के वध जन्य हत्या का भय था॥१॥ इन्द्र भी वृत्रासुर के मर जाने के बाद भयभीत हो गये और वे इन्द्रपुरी में चले गये । शत्रु वृत्रासुर के मर जाने के बाद मुनिगण भी हत्या के भय से भयभीत थे ॥२॥ वे लोग सोच रहे थे कि इस वृत्रासुर को धोखा देकर हम लोगों ने बहुत बड़ा पाप किया है । इन्द्र के सहायक बन जाने के कारण हमलोगों के लिए मुनि शब्द व्यर्थ हो गया है ॥३॥ हमलोगों के ही कहने से वृत्रासुर विश्वस्त हो गया था । इस विश्वासघात करने वाले इन्द्र के साथ रहने के कारण हमलोग भी विश्वासघाती हो गये हैं ॥४॥ इस ममता को धिक्कार है यह सभी पापों का मूल है तथा अनर्थकारिणी है; क्योंकि हमलोगों ने शपथ (प्रतिज्ञा) करने के पश्चात् भी वृत्रासुर के साथ धोखा किया है ॥५॥ शास्त्र बतलाता है कि पाप करने वालों को सलाह देने वाले, उस पाप का रास्ता बताने वाले तथा पाप करने की प्रेरणा देने वाले तथा पाप करने वालों का पक्ष लेने वाले ये चारो पाप करने वाले के समान ही पाप के भागी होते हैं ॥६॥ इस कार्य में सहायता करने के कारण विष्णु ने भी पाप किया है; क्योंकि सत्त्वगुण स्वरूप होकर भी वज्र में प्रवेश करके वे वृत्रासुर को मारे ॥७॥ यह निश्चित है कि जो स्वार्थी जीव होता है वह पाप करने से नहीं डरता है । अतएव इन्द्र के संग में रहने के कारण श्रीहरि ने पाप किया है, यह बात निश्चित है ॥८॥ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये जो चार पदार्थ बतलाये गये हैं, उनमें से अर्थ और काम ये दो ही पदार्थ बचे हैं और उनमें से पहला धर्म और चौथा मोक्ष ये दोनों लुप्त हो गये हैं । क्योंकि वे दोनों त्रैलोक्य में दुर्लभ पदार्थ हैं और विनष्ट हो गये हैं ॥९॥ अब तो सबलोग अर्थ और काम इन दो

प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां संमतो प्रियो । धर्माधर्मेति वाग्वादो दम्भोऽयं महतामपि ॥१०॥ मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः । जग्मुः
स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः ॥११॥ त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिंद्रेण भारत । रुरोद दुःखसंतप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥१२॥ यत्रासौ
पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् । संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥१३॥ स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् ।
शशापेंद्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥१४॥ यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम् । तथेंद्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम् ॥१५॥
इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः । मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥१६॥ जनमेजय उवाच– **हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ**
कामवस्थामवाप्तवान् । सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१७॥ व्यास उवाच– **किं पृच्छसि महाभाग संदेहः कीदृशस्तव । अवश्यमेव**
भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१८॥ बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् । सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः ॥१९॥ शक्रायेत्थं

ही पुरुषार्थों को प्रशस्त मानते हैं, ये ही दोनों सबको प्रिय लगते हैं, धर्म तथा अधर्म की चर्चा तो इस समय केवल दम्भमात्र हो गयी है । महापुरुष में
भी ये दोनों दम्भ मात्र ही बनकर रह गये हैं ॥१०॥ इस तरह से विचार करके मुनिगण भी उदास होकर अपने-अपने आश्रमों में चले गये । अब वे
तेजस्विता से रहित हो गये थे ॥११॥ त्वष्टा ने जब यह सुना कि इन्द्र ने हमारे पुत्र वृत्रासुर को मार दिया तो वे दुःख से संतप्त हो गये और बाद में
उन्हें संसार से वैराग्य हो गया ॥१२॥ इसके बाद त्वष्टा वहाँ गये जहाँ पर वृत्रासुर मरा पड़ा था । उसको उस प्रकार से पड़े हुए देखकर त्वष्टा ने उसका
विधि पूर्वक पारलौकिक संस्कार करवाया ॥१३॥ स्नान करके त्वष्टा ने उसे जलदान (तर्पण) किया । उसके बाद उन्होंने वृत्रासुर की और्ध्वदैहिक क्रिया की।
इसके पश्चात् अत्यन्त पापी तथा मित्र के साथ घात करने वाले इन्द्र को शाप दिया ॥१४॥ जिस प्रकार इन्द्र ने मेरे पुत्र वृत्रासुर को अनेक प्रकार के शपथों
से भुलवा देकर मारा है, उसी तरह वह भी दैवनिर्मित महान कष्ट को प्राप्त करे ॥१५॥ इस तरह से इन्द्र को शाप देकर त्वष्टा अत्यन्त दुःखी होकर सुमेरु
पर्वत के शिखर पर जाकर कठोर तपस्या करने लगे ॥१६॥ **जनमेजय ने महर्षि व्यास से कहा–** हे पितामह ! आप मुझे यह बतलायें कि वृत्रासुर का वध
करके इन्द्र किस अवस्था को प्राप्त किये । वे सुख को प्राप्त किए अथवा दुःख को ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा–** हे महाभाग ! आप यह क्या पूछ रहे हैं ?
आपको सन्देह क्यों हो रहा है ? प्राणी जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, उसे अपने उस किए हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता
है॥१८॥ यह कर्म फल भोग का नियम देवता, असुर तथा मानव सबों के लिए समान रूप से है । कर्म करने वाला चाहे बलवान हो या दुर्बल, वह चाहे
बहुत पापादि कर्म किया हो या कम, अपने किए हुए कर्म का फल तो अवश्य भोगना पड़ता है ॥१९॥ इन्द्र को इस प्रकार का कर्म करने की सलाह

मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने । प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत ॥२०॥ न चापदि सहायोऽभूद्वायुदेवः कथंचन । समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप ॥२१॥ दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यास्ति सहायवान् । पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥२२॥ सेवको वाऽपि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः । प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम् ॥२३॥ भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा । वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः ॥२४॥ शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः । को नाम शपथान्कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः ॥२५॥ जिघांसति सुविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम् । देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गंधर्वाणां समागमे ॥२६॥ सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल । किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता ॥२७॥ वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् । वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं मतम् ॥२८॥ यदयं निहतः शत्रुर्वंचयित्वाऽतिसाहसात् । को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत् ॥२९॥ विना शक्रं हरिं वाऽऽपि यथाऽयं विनिपातितः । एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥३०॥ शुश्रावेंद्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारका; । यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवनम् ॥३१॥

श्रीहरि ने दिया था । उन्होंने इन्द्र के वज्र में प्रवेश करके उसकी सहायता की ॥२०॥ किन्तु जब इन्द्र पर विपत्ति आयी तो वे उसके सहायक नहीं हुए । हे राजन् ! अच्छे समय में सब सहायक बन जाते हैं ॥२१॥ किन्तु जब दैव प्रतिकूल हो जाता है उस समय, पिता, माता, पत्नी तथा सहोदर भाई, सेवक, मित्र तथा अपना खास पुत्र कोई भी सहायक नहीं होता है ॥२२-२३॥ किए हुए पुण्य अथवा पाप कर्मों का फल तो स्वयं ही भोगना पड़ता है । वृत्रासुर को मारकर सब तो चले गये किन्तु इन्द्र तेज रहित हो गये ॥२४॥ सभी देवता इन्द्र को ब्रह्मघाती कहकर शाप देने लगे । वे कहते थे कि कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो सत्यप्रतिज्ञा करने का वचन देकर भी ॥२५॥ अपने मित्र बने हुए मननशील तथा अत्यन्त विश्वासप्राप्त व्यक्ति का वध करना चाहेगा ?। इस तरह की बातें देवताओं की गोष्ठी में, नन्दन वन में, तथा गन्धर्वों के समागम में चलने लगीं ॥२६॥ इन्द्र के द्वारा किए गये कर्म की चर्चा सब जगह विस्तार से चलने लगीं । इस वृत्रासुर का वध करने वाले इन्द्र ने न जाने कौन सा पाप कर दिया ?॥२७॥ जिसको मुनियों ने घोखा देकर अत्यन्त विश्वास्त बना दिया था; उस वृत्रासुर को इन्द्र ने छल से मारकर वेदों के प्रमाण्य का परित्याग कर दिया है और बौद्धों के अभिमत के नास्तिक्य को स्वीकार कर लिया है ॥२८॥ इन्द्र ने जो अपने शत्रु वृत्रासुर को धोखे से मारा है, वह उसने बहुत बुरा काम किया है । कौन ऐसा होगा जो प्रतिज्ञा करके भी उसके विपरीत आचरण करे ॥२९॥ इस काम को तो छलपूर्वक व्यवहार करने वाले इन्द्र और श्रीहरि को छोड़कर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता है । इस तरह की विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ समाज में चलने लगीं ॥३०॥ इन बातों को इन्द्र ने भी सुना जो इन्द्र की कीर्ति के लिए हानिकारक थीं । जिस व्यक्ति का यश नष्ट हो जाता है उसके उसके कुत्सित जीवन को धिक्कार है ॥३१॥ ऐसे व्यक्ति को मार्ग में जाते हुए देखकर एक शत्रु भी मुस्कुरा देता है । यश

**यं दृष्ट्वा पथि गच्छंतं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत् । इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात् ॥३२॥ स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते।
स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल ॥३३॥ नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टदशैव तु । भृगुपत्निशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः ॥३४॥
बह्मशापात्पशोर्योनौ संजातो मकरादिषु । विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे ॥३५॥ गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृतो नरः । रामोऽपि
वनवासेषु सीताविरहजं बहु ॥३६॥ दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत । तथेंद्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥३७॥ न स्वास्थ्यं प्राप
गेहेऽसौ सर्वसिद्धिसमन्विते । पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम् ॥३८॥ निःश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतसम् । किं प्रभोऽद्य
भायार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः ॥३९॥ का चिंता वर्तते कांत तव शत्रुनिषूदन । कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा ॥४०॥
नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिंतापरो भवान् ।** इन्द्र उवाच– **नारातिर्बलवान्मेऽस्ति न शांतिर्न सुखं तथा ॥४१॥ ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं
गृहे । न नंदनं सुखकरं नामृतं न गृहं वनम् ॥४२॥ गंधर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः । न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः ॥४३॥**

के नष्ट हो जाने पर राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी स्वर्ग से गिरा दिये गये ॥३२॥ यद्यपि उन्होंने कोई पाप भी नहीं किया था । जब ऐसी बात है तो क्या पाप करने वाले स्वर्ग से नहीं गिरा दिये जायेंगे । राजा ययाति ने बहुत थोड़ा अपराध किया था किन्तु वे भी स्वर्ग से गिरा दिए गये ॥३३॥ ऐसे ही एक राजा हुए जो अठारह युगो तक केकड़ा बनकर पड़े रहे । महर्षि भृगु की पत्नी का शिर भगवान् विष्णु ने काट दिया था ॥३४॥ और उसके फलस्वरूप उनको घड़ियाल आदि की योनियों में जाना पड़ा । अपनी माता का शिर परशुरामजी ने अपने पिता की आज्ञा पाकर काट दिया था । उसी के फलस्वरूप उनको घड़ियाल होना पड़ा । वे ही विष्णु वामन होकर राजा बलि के यहाँ भिक्षा माँगने के लिए गये ॥३५॥ जब भगवान् विष्णु की यह हालत है तो सामान्य जीवों को अपने पाप कर्मों के फलस्वरूप पाप नहीं भोगना पड़ेगा क्या ? रामावतार में भगवान् विष्णु को सीता के हरण से बहुत कष्ट सहना पड़ा । वे महर्षि भृगु के शाप के कारण घोर कष्ट को सहे । उसी तरह से इन्द्र भी बाह्मण वृत्र का वध करके अत्यन्त भयभीत हो गये ॥३७॥ वे समस्त सिद्धियों से सम्पन्न अपने गृह में भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके । शची ने सभा से रहित इन्द्र को देखा तो इन्द्र से पूछा ॥३८॥ उस समय इन्द्र लम्बी श्वास ले रहे थे, भयत्रस्त थे और अचेत से हो गये थे । **शची ने कहा–** हे प्रभो ! आज आप भयभीत क्यों हैं ? आपका भयंकर शत्रु वृत्र तो मर चुका है ॥३९॥ हे कान्त! हे शत्रुओं को मारने वाले लोकेश ! आपको अब कौन सी चिन्ता है कि आप शोक कर रहे हैं ? और सामान्य प्राणी के समान दीर्घश्वास ले रहे हैं ॥४०॥ अब तो आपका कोई बलवान् शत्रु भी नहीं है फिर भी चिन्तित क्यों हैं ? **इन्द्र ने कहा–** मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है फिर भी मुझे न तो कोई सुख है और न तो शांति ॥४१॥ हे रानी ! मैं अपने घर में भी रहकर ब्रह्महत्या के भय से भयभीत हो रहा हूँ । इस समय मुझे नन्दन वन, अमृत अथवा

न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः । किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते ॥४४॥ इति चिंतापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि । व्यास उवाच– इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥४५॥ निर्जगाम गृहान्मंन्दो मानसं सर उत्तमम् । पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्शितः ॥४६॥ न प्राज्ञायत देवेन्द्र स्त्वभिभूतश्च कल्मषैः । प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥४७॥ असहायस्तुराषाडैच्चिन्तार्तो विकलेंद्रियः । ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयादिति ॥४८॥ सुराश्चिंतातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाभवन्नथ । ऋषयः सिद्धगन्धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम्॥४९॥ अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः । अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा ॥५०॥ विच्छिन्नस्त्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै । एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा ॥५१॥ विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः । संप्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥५२॥ बभूव विषयासक्तः पंचबाणशराहतः । अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत ॥५३॥ शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः । ऋषीनाह किमिंद्राणी नोपगच्छति मां किल ॥५४॥ भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह । प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम् ॥५५॥ प्रियं

गृह किसी से भी सुख नहीं मिल रहा है ॥४२॥ इस समय गन्धर्वों के गायन अप्सराओं के नृत्य, तुम तथा देवताओं की नारियाँ, इनमें से किसी से भी सुख नहीं मिल पा रहा है ॥४३॥ कामधेनु, कल्पवृक्ष भी मुझे सुखद नहीं प्रतीत होते हैं । मैं क्या करूँ ? कहाँ चला जाऊँ ? कहाँ मुझे शान्ति मिलेगी?॥४४॥ हे कान्ते ! इस तरह से चिन्तित रहने के कारण मुझे कोई सुख नहीं है । **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र अपनी अत्यन्त भयभीत पत्नी से इस तरह से कहकर घर से निकल कर मानसरोवर के उत्तरी तट पर चले गये । भयभीत तथा शोकार्त थे वे कमल के नाल में प्रवेश कर गये ॥४६॥ अपने पाप कर्म से भयभीत होने के कारण इन्द्र को कुछ भी पता नहीं चल वे जल के भीतर छिपकर उसी तरह अपना समय बिताने लगे जैसे कोई साँप चेष्टायें करता है ॥४७॥ वहाँ पर इन्द्र का कोई भी सहायक नहीं था चिन्ता के कारण इन्द्र व्याकुल थे, उनकी इन्द्रियों में क्षोभ उत्पन्न हो गया था । ब्रह्महत्या के भय से भयभीत होकर इन्द्र भग गये थे ॥४८॥ उस समय सभी देवता चिन्तित हो गये थे । अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे थे । उसके कारण ऋषिगण, सिद्ध तथा गन्धर्व अत्यधिक भयभीत हो गये थे ॥४९॥ राजा से रहित सम्पूर्ण जगत् उपद्रवों के कारण अभिभूत हो गया था । मेघों ने वर्षा करना बन्द कर दिया । पृथिवी का वैभव क्षीण हो गया ॥५०॥ नदियों का जलस्त्रोत समाप्त हो गया और सरोवर सुख गये । इस तरह से अराजकता फैल जाने पर देवता तथा मुनिगण ॥५१॥ बहुत विचार किये और अन्त में देवताओं ने राजा नहुष को इन्द्र का पद प्रदान कर दिया । यद्यपि राजा नहुष धार्मिक थे फिर भी इन्द्र का पद प्राप्त करके वे रजोगुण से सम्पन्न हो गये ॥५२॥ वे काम के बाणों से आहत होकर विषयासक्त हो गये । हे जनमेजय ! वह राजा देवताओं के उद्यानों में जाकर अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते थे ॥५३॥ उन्होंने जब इन्द्र की पत्नी शची के गुणों को सुना तो उसे भी प्राप्त करना चाहा । उसने

चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः । अहमिद्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः ॥५६॥ आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् । इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा ॥५७॥ गत्वा चिन्तातुराः प्रोचुः पौलौमीं प्रणतास्ततः । इन्द्रपत्नि दुराचारी नहुषस्त्वामिहेच्छति ॥५८॥ कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह । किं कुर्मस्तदधीनाः स्मो येनेन्द्रोऽयं कृतः किल ॥५९॥ तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह । रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्त्वास्मि शरणं गता ॥६०॥ बृहस्पतिरुवाच– **न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहितात् । न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥६१॥ शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः । स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् । स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन ॥६२॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

ऋषियों से पूछा कि क्या कारण है कि इन्द्राणी मेरे पास नहीं आती है ॥५४॥ आप सभी ऋषियों तथा देवताओं ने मुझे इन्द्र तो बना दिया अब आपलोग मेरी सेवा करने के लिए शची को मेरे पास भेजें ॥५५॥ अब तो देवताओं और ऋषियों के मेरे आदेश का पालन अच्छी तरह से करना चाहिए । मैं देवताओं का इन्द्र और लोकों का स्वामी हूँ ॥५६॥ अतएव इन्द्राणी भी शीघ्र मेरे घर में आ जाय । नहुष की इन बातों को सुनकर देवता तथा देवर्षि ॥५७॥ चिन्तित होकर शची के पास गये और नम्रता पूर्वक शची से कहे कि हे इन्द्राणि ! नहुष दुराचारी है । वह आपको प्राप्त करना चाहता है ॥५८॥ उसने क्रोध करके हमलोगों से कहा है कि तुमलोग शची को भेजो । अब हमलोग क्या करें ? हमलोग तो उसके अधीन हैं । क्योंकि उसको इन्द्र बना दिया गया है ॥५९॥ ऋषियों की बात सुनकर शची उदास हो गयी और उसने बृहस्पति से कहा हे ब्रह्मन् ! मैं आपके शरणागत हूँ । आप मेरी नहुष से रक्षा कीजिये ॥६०॥ **बृहस्पति ने कहा–** हे देवि ! मैं सनातन धर्म का त्याग करके तुमको उसे नहीं दे सकूँगा ॥६१॥ आर्त शरणागत का जो नराधम परित्याग कर देता है अथवा किसी को दे देता है, वह प्रलय काल पर्यन्त नरक में निवास करता है ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम् । चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमांगिरसमाशु वै ॥१॥ देवानाहांगिरासूनुर्हंतव्योऽयं मया किल । इतींद्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम् ॥२॥ इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः । अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा ॥३॥ क्रोधं संहर राजेन्द्र त्यज पापमतिं प्रभो । निंदन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम् ॥४॥ शक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः । कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता ॥५॥ त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो । त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम् ॥६॥ सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम् । वारमुख्यश्च शतशो वर्तन्तेऽत्र शचीसमाः ॥७॥ रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृंगारस्य महात्मभिः । रसहानिर्बलात्कारे कृते सति तु जायते ॥८॥ उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम । तदा वै सुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥९॥ तस्माद्भावमिमं मुंच परदाराभिमर्शनि। सद्भावं कुरु देवेन्द्र पदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम् ॥१०॥ ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम् । तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव ॥११॥**

देवताओं का बृहस्पति से परामर्श

व्यासजी ने कहा– नहुष ने जब यह सुना कि शची आचार्य बृहस्पति के शरणागत हो गयी हैं । तब वह कामार्त होकर आचार्य बृहस्पति पर बहुत क्रोध किया ॥१॥ **उसने देवताओं से कहा**– अंगिरा महर्षि के पुत्र बृहस्पति को मुझे मार देना चाहिए; क्योंकि मैंने सुना है कि वह मूर्ख इन्द्र के घर में जाकर इन्द्राणि की रक्षा करता है ॥२॥ इस तरह से नहुष को क्रुद्ध होते देखकर ऋषियों तथा देवताओं ने शान्ति पूर्वक उससे कहा ॥३॥ हे राजेन्द्र ! आप अपने क्रोध को शान्त कीजिये, आप अपनी पापमयी बुद्धि का परित्याग कर दें । शास्त्रों में दूसरे की पत्नी को स्वीकार करने की निन्दा की गयी है ॥४॥ इन्द्र की पत्नी सदा साध्वी प्रकृति की रही है । अपने पति के जीवित रहने पर वह दूसरे पति को कैसे स्वीकार कर सकती हैं ? । वह प्रतिव्रता नारी है ॥५॥ इस समय आप त्रिलोक के स्वामी हैं, आप धार्मिक राजा हैं । यदि आप ही इस तरह के अधर्म का आचरण करेंगे तब तो सारी प्रजा ही विनष्ट हो जायेगी॥६॥ राजा को चाहिए कि वह सर्वदा शिष्टाचार की रक्षा करे और यहाँ तो शची के ही समान सैकड़ों वेश्याएँ हैं ॥७॥ महापुरुषों ने तो रति को शृङ्गार का कारण बतलाया है । बलात्कार करने पर तो सारा आनन्द ही समाप्त हो जायेगा ॥८॥ हे राजन् ! यदि स्त्री और पुरुष दोनों में एक समान प्रेम हो तब ही दोनों को सुख की प्राप्ति होती है ॥९॥ अतएव आपकी यह जो शची को अपनाने की इच्छा हुई है, उसको आप त्याग दें । शची दूसरे की पत्नी हैं । आपने सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त किया है अतएव अपने मन में अच्छे भाव को स्थान दें ॥१०॥ पाप से तो समृद्धि का नाश होता है

नहुष उवाच– गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः । वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा ॥१२॥ परोपदेशे कुशलाः प्रभवंति नराः किल । कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत् ॥१३॥ मामागच्छतु सा देवी हितं स्यादद्भुतं हि वः । एतस्याः परमं देवाः सुखमेव भविष्यति ॥१४॥ अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद्ब्रवीमि वः । विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशु प्रापयंत्विह ॥१५॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा । तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम् ॥१६॥ इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवांतिकम् । इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम्॥१७॥ व्यास उवाच– ते गत्वांगिरसः पुत्रं प्रोचुः प्रांजलयः सुराः । जानीमः शरणं प्राप्तामिंद्राणीं तव वेश्मनि ॥१८॥ सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृनो यतः । वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी ॥१९॥ बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वादारुणं वचः । नाहं त्यक्ष्ये तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम् ॥२०॥ देवा ऊचुः– उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति । अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति ॥२१॥ गुरुरुवाच– तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् । करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे ॥२२॥ इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्यं करोम्यहम् ।

और पुण्य से समृद्धि की वृद्धि होती है । अतएव हे राजन् ! अपनी पाप की बुद्धि का परित्याग करके आप अपनी सात्त्विक बुद्धि को बनाइये ॥११॥ **नहुष ने कहा–** हे देवताओं ! जिस समय इन्द्र ने गौतम की पत्नी अहल्या के साथ दुराचार किया और चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के साथ दुराचार किया उस समय आपलोग कहाँ गये थे कि हमको इस प्रकार का आपलोग उपदेश दे रहें हैं ॥१२॥ अपने से भिन्न लोगों को उपदेश देने वाले लोग बहुत अधिक हैं किन्तु स्वयं अपने उस उपदेश का पालन करने वाले लोग विरले ही होते हैं ॥१३॥ तुमलोग उस देवी को मेरे पास भेजो । ऐसा करने से तुमलोगों का परम कल्याण होगा और ऐसा करने से शची को भी परम सुख की प्राप्ति होगी ॥१४॥ मैं सत्य कह रहा हूँ कि ऐसा नहीं करने से मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । अतएव आपलोग उसको विनय पूर्वक अथवा बलपूर्वक यहाँ पर लाइये ॥१५॥ इस तरह से नहुष की बातों को सुनकर देवता और मुनिगण अत्यन्त संत्रस्त होकर उस कामुक बने हुए नहुष से कहे ॥१६॥ हमलोग सामनीति का सहारा लेकर इन्द्राणी को आपके पास लायेगें । इस तरह से कहकर वे देवता बृहस्पतिजी के पास गये ॥१७॥ **व्यासजी ने कहा** वे देवता और ऋषिगण बृहस्पति के पास जाकर हाथ जोड़कर कहे कि हमलोग जानते हैं कि इन्द्राणी आपके घर में शरणागत होकर रह रही हैं ॥१८॥ किन्तु आप उसे आज नहुष को समर्पित कर दें क्योंकि नहुष इन्द्र बना दिये गये हैं और यह सुन्दरी इन्द्राणी उस नहुष को अपने पति के रूप में वरण कर ले ॥१९॥ उस कठोर वाणी को सुनकर बृहस्पति ने देवताओं से कहा पुलोम की पुत्री शची सती नारी है । मैं उसका परित्याग नहीं कर सकता हूँ । वह मेरे शरण में आयी है ॥२०॥ **देवताओं ने कहा–** तो फिर आपको कोई दूसरा उपाय करना चाहिए जिससे कि नहुष प्रसन्न हो जाय अन्यथा वह कुपित होकर अनर्थ कर देगा ॥२१॥ देवताओं की बात सुनकर बृहस्पति ने कहा इसका

अन्वेषणार्थं गंतव्यं मया तस्य महात्मनः ॥२३॥ इति सा समयं कृत्वा वंचयित्वा च भूपतिम् । भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः ॥२४॥
इति संचिंत्य ते सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः । नहुषं सहिता जग्मुरिंद्रपत्न्या दिवौकसः ॥२५॥ तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः । जहर्ष च
मुदायुक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत् ॥२६॥ अद्यास्मि वासवः कांते भज मां चारुलोचने । पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः ॥२७॥
इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता । वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर ॥२८॥ किंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ।
इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति संदेहो मे हृदि स्थितः ॥२९॥ ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि । तावत्क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीमि
ते॥३०॥ न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः । एवमुक्तः स इन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत् ॥३१॥ व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा
मुदान्वितः । सा विसृष्ट नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती ॥३२॥ इन्द्रस्यागमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः । श्रुत्वा तद्वचनं देवा इन्द्राण्या रसवच्छुचि॥३३॥

यही उपाय है कि शची एक बार नहुष के समक्ष जाय और कहे कि मैं पहले एक बार यह पता लगा लूँ कि इन्द्र जीवित हैं कि नहीं, जब मुझको इस
बात का पता चल जोयगा कि इन्द्र की मृत्यु हो गयी हे तो फिर मैं आपको अपना पति बना लूँगी । इस तरह से नहुष को प्रलोभित करके शची उसको
अपनी वाणी से प्रसन्न करके तथा प्रतिज्ञा करके आ जाय ॥२२॥ वह नहुष से कहे कि पति के जीवित होने पर मैं दूसरे को पति कैसे बना सकती हूँ ?।
अतएव इन्द्र का पता लगाने के लिए मुझे एक बार तो लौटना आवश्यक है ॥२३॥ इस तरह से शची नहुष के सामने प्रतिज्ञा करके और उसको घोखा
देकर मेरे कथनानुसार उसे इन्द्र को लाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ॥२४॥ इस तरह से वे सभी देवता बृहस्पति को आगे करके इन्द्राणी को अपने
साथ लेकर राजा नहुष के पास गये ॥२५॥ उन सबों को आये हुए देखकर कृत्रिम रूप से इन्द्र बने हुए नहुष प्रसन्न हो गये और उन्होंने कहा ॥२६॥
हे कान्ते ! मैं अब इन्द्र हो गया हूँ । तुम मुझे अपना पति बना लो । देवताओं ने मुझे सम्पूर्ण लोकों का स्वामी तथा पूज्य बना दिया है ॥२७॥ नहुष
के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर काँपती हुई लज्जायुक्त शची ने कहा– हे इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित महाराज ! मैं आपसे एक वरदान चाहती हूँ ॥२८॥
हे राजन् ! आप थोड़े समय तक और मेरी प्रतिक्षा कर लें; क्योंकि मेरे हृदय में अभी भी सन्देह बना हुआ है कि इन्द्र जीवित हैं कि नहीं ?। जब मैं
इस बात का निर्णय कर लूँ कि इन्द्र जीवित नहीं है तब मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी । हे राजन् ! तब तक के लिए आप मुझे क्षमा कर
दें, यह मैं आपके समक्ष सत्य प्रतिज्ञा कर रही हूँ ॥२९-३०॥ अभी तक इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है कि इन्द्र जीवित हैं या कहीं चले
गये हैं । शची की इस बात को सुनकर राजा नहुष प्रसन्न हो गया । उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा ठीक है ऐसा ही हो । यह कहकर नहुष ने इन्द्राणी को
लौट जाने की आज्ञा प्रदान कर दी । इन्द्राणी भी वहाँ से लौटकर देवताओं के पास चली गयी और उन सबों से कहा ॥३२॥ आपलोग अत्यन्त उत्साही

मंत्रयामासुरेकाग्राः शक्राय नृपसत्तम । ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥३४॥ आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम्। ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना
वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥३५॥ देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः । अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तष्ठति वासवः ॥३६॥ त्वद्धिया निहते विप्रे
ब्रह्महत्यावृतः प्रभो । त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि ॥३७॥ त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश । देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं
विष्णुरब्रवीत् ॥३८॥ यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये । पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥३९॥ पुनरेष्यति देवानामिंद्रत्वमकुतोभयः।
हयमेधेन संतुष्टा देवी श्रीजगदंबिका ॥४०॥ ब्रह्मत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् । यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥४१॥ किं
पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च । इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम् ॥४२॥ आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति । नहुषोऽपि
जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥४३॥ विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनेसा सुराः । पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम् ॥४४॥ प्राप्स्यत्यचिरकालेन

हैं, अतएव आपलोग जाकर इन्द्र को लौटा लाने का प्रयत्न करें । इन्द्राणी की प्रेम भरी बातों को देवताओं ने सुना ॥३३॥ हे राजन् ! उन सबों ने इन्द्र के विषय में सावधानी पूर्वक मन्त्रणा की । वे भगवान् विष्णु के लोक में गये और भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥३४॥ भगवान् विष्णु तो सबसे प्रधान देवता; जगत् के स्वामी तथा शरणागतवत्सल हैं । वे अत्यन्त उद्विग्न होकर श्रीभगवान् से कहने लगे । देवता तो स्वभावतः बोलने में चतुर होते हैं ॥३५॥ देवताओं ने भगवान् से कहा देवताओं के स्वामी इन्द्र को ब्रह्महत्या ने बहुत सताया है । अतएव इन्द्र सबों से अदृश्य होकर न जाने कहाँ पर इस समय रह रहें हैं ॥३६॥ आपकी सलाह से जब इन्द्र ने वृत्रासुर को मार दिया तो इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी । हे प्रभो ! आप ही इन्द्र तथा हमलोगों के एकमात्र आश्रय हैं ॥३७॥ आप हमलोगों की रक्षा करें । हमलोग बहुत बड़ी विपत्ति में पड़े हुए हैं और उस उपाय को आप बतलायें जिससे कि इन्द्र को ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल सके । देवताओं की इस प्रकार की कायरतापूर्ण वाणी को सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा ॥३८॥ आपलोग इन्द्र के पाप को विनष्ट करने के लिए अश्वमेध याग कीजिये । उस पवित्र अश्वमेध याग के करने से इन्द्र पवित्र हो जायेंगे ॥३९॥ और वे पुनः देवताओं के इन्द्र बन जायेंगे। उनको किसी भी प्रकार का भय नहीं रह जायेगा । अश्वमेध यज्ञ के करने से देवी जगदम्बिका प्रसन्न हो जायेंगी ॥४०॥ और प्रसन्न होकर जगदम्बा इन्द्र के ब्रह्महत्या आदि पापों को विनष्ट कर देंगी, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । उन देवी के तो स्मरण करने मात्र से सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४१॥ और देवी की प्रसन्नता के लिए किये गये अश्वमेध याग के करने पर फिर क्या कहना है । इन्द्राणी को चाहिए कि वे प्रतीदिन देवी की भक्तिपूर्वक सविधि पूजन करें ॥४२॥ इसतरह से कल्याणकारिणी जगदम्बा की आराधना सुखप्रद होगी और नहुष भी जगन्माता की माया से मोहित हो जायेगा ॥४३॥ अपने किए हुए पापों के कारण वह शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा । इन्द्र भी अश्वमेध याग करने के कारण पवित्र होकर शीघ्र ही अपने वैभव को प्राप्त कर

स्वमासन्नमनुत्तमम् । ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः ॥४५॥ जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः । तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥४६॥ कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम् । विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च ॥४७॥ पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपद्विभुः । तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः ॥४८॥ विज्वरः समभूद्भूयः कालाकांक्षी स्थितो जले । अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥४९॥ देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम् । पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला ॥५०॥ कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरंदरः । कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे ॥५१॥ बृहस्पतिरुवाच– त्वमाराधय पौलीमि देवीं भगवतीं शिवाम् । दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम् ॥५२॥ आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति । मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चांबिका ॥५३॥ इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप । जग्राह मंत्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः ससाधनम् ॥५४॥ विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् । सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः ॥५५॥ त्यक्तान्यभोगसंभारा तापसीवेषधारिणी । चकार पूजंन देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥५६॥ कालेन

लेंगे । वे अपने पद को भी प्राप्त कर लेंगे । देवताओं ने भगवान् विष्णु की वाणी को सुना ॥४४-४५॥ उसके पश्चात् वे देवता उस स्थान पर गये जहाँ पर इन्द्र रहते थे । बृहस्पति इत्यादि देवताओं ने इन्द्र को आश्वस्त किया ॥४६॥ उसके पश्चात् देवताओं ने अश्वमेध नामक महायज्ञ का अनुष्ठान सविधि किया । अश्वमेध यज्ञ के सविधि सम्पन्न हो जाने पर भगवान् स्वयं आकर ब्रह्महत्या को पाँच भागों में विभक्त करके पृथिवी, पर्वतों, नंदियों, वृक्षों तथा स्त्रियों में बाँट दिया । ब्रह्महत्या का परित्याग करके इन्द्र अब इन्द्र पाप रहित हो गये थे । इन्द्र अब संताप रहित होकर समय की प्रतीक्षा करते हुए जल के भीतर ही पड़े रहे । वे सभी भूतों के लिए अदृश्य होकर कमल के नाल में हि छिपे रहे ॥४९॥ देवता भी उस अद्भुत कार्य को करके अपने स्थान पर चले गये । उधर दुःखी शची ने अपने पति के वियोग में व्याकुल होकर आचार्य बृहस्पति से पूछा ॥५०॥ यज्ञ कर लेने के पश्चात् भी मेरे स्वामी इन्द्र अदृश्य क्यों बने हुए हैं ? आप मुझे उस उपाय को बतलाइये जिसके द्वारा मैं अपने स्वामी इन्द्र का दर्शन कर सकूँ ॥५१॥ **बृहस्पति ने कहा–** हे पुलोम पुत्रि ! तुम देवी की आराधना करो । वे तुम्हें तुम्हारे निष्पाप पति का दर्शन करा देंगी ॥५२॥ तुम्हारे द्वारा आराधित होकर जगन्माता भगवती नहुष की शक्ति को क्षीण कर देंगी । वे राजा नहुष को मोहित करके उसे उसके पद से भ्रष्ट कर देंगी ॥५३॥ इस तरह से आचार्य बृहस्पति के द्वारा कहे जाने पर पुलोम की पुत्री शची ने देवी की आराधना के मन्त्र तथा विधि को भी जान लिया ॥५४॥ अपने आचार्य से विद्या को प्राप्त करके शची देवी ने श्रीभुवनेश्वरी देवी की बलि तथा फूलों से अच्छी तरह से अर्चना की ॥५५॥ उन्होंने भोग के सारे साधनों का परित्याग कर दिया और तपस्विनी का वेष बना लिया। इस तरह से शची अपने प्रियतम के दर्शन की लालसा से देवी की पूजा करने लगी ॥५६॥ कुछ समय बीत जाने पर सौम्य रूप को धारण किए हुए

कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥५७॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा चंद्रकोटिसुशीतला । विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता ॥५८॥ पाशांकुशाभयवरान्दधतीः निजबाहुभिः । आपादलंबिनीं स्वच्छां मुक्तामालां च बिभ्रती ॥५९॥ प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता। आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥६०॥ अनंतकोटिब्रह्मांडनायिका परमेश्वरी । सौम्यानंतरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥६१॥ सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी । तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम् ॥६२॥ मेघगंभीरशब्देन मुदमाददती भृशम् । देव्युवाच– **वरं वरय सुश्रोणि वांछितं शक्रवल्लभे ॥६३॥ ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मि पूजिता सुभृशं त्वया । वरदाऽहं समायता दर्शनं सहजं न मे ॥६४॥ अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुंजैर्हि लभ्यते । इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणतां सुरः ॥६५॥ शक्रपत्नीं भगवती प्रसन्नां परमेश्वरीम् । वांछामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम्॥६६॥ नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा ।** देव्युवाच– **गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥६७॥ यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता ।**

तथा हंस पर सवार देवी ने शची देवी को प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥५७॥ उनके शरीर से करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान कान्ति निकल रही थी और करोड़ों चन्द्रमा के समान उनमें शीतलता थी । उनके शरीर से करोड़ों विजलियों के चमकने के समान चमक निकल रही थी और वे चारों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न थीं ॥५८॥ अपने हाथ में पाश तथा अंकुश धारण किए हुयी थीं तथा उनके नीचे के एक हाथ में अभय मुद्रा थी तथा दूसरे हाथ में वरदमुद्रा थी । वे पैरों तक लटकने वाली स्वच्छ मोती की माला को धारण किए हुयीं थी ॥५९॥ प्रसन्नतापूर्वक उनका मुख मुस्कान से सुशोभित था और उनके तीन नेत्र थे । वे ब्रह्मा से लेकर एक कीट पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् की माता थी और करुणा रूपी अमृत के सागर के समान दीख रही थीं ॥६०॥ वे परमेश्वरी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की स्वामिनी थीं । उनके दोनों स्तन अनन्त सौम्य रसों से परिपूर्ण थे और वे उनसे सुशोभित थीं ॥६१॥ वे सबों की स्वामिनी, सभी प्रकार के ज्ञानों से परिपूर्ण, कृटस्थ तथा अक्षर स्वरूपिणी थीं । प्रसन्न होकर प्रयत्न; करने वाली इन्द्र की पत्नी शची से ॥६२॥ मेघ की ध्वनि के समान गंभीर ध्वनि से अत्यधिक आनन्द प्रदान करती हुयी वे कहने लगीं । **देवी ने कहा–** हे अपने सुन्दर कटि भाग से सुशोभित शची हे इन्द्रपत्नी ! तुम अपने मनोनुकूल वरदान माँगो ॥६३॥ तुमने मेरी बहुत अधिक पूजा की है । मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । मैं तुम्हें वरदांन देने के लिए आयी हूँ । मेरा दर्शन आसान नहीं है ॥६४॥ मेरा दर्शन तो अनेक करोड़ जन्मों में किए गये पुण्य समूह से ही प्राप्त होता है । उस समय इन्द्र की पत्नी देवी के समक्ष हाथ जोड़कर खड़ी थी । देवी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर शची उन प्रसन्न हुयी परमेश्वरी से कहने लगी । हे माँ ! मुझे अपने पति का दर्शन दुर्लभ हो गया है । मैं उनका ही दर्शन प्राप्त करना चाहती हूँ ॥६५॥ मैं चाहती हूँ कि नहुष से प्राप्त होने वाला मेरा भय विनष्ट हो जाय और मुझे अपने पद की प्राप्ति हो जाय । **देवी ने कहा–** तुम्हें मैं अपनी एक दूती को दे रही हूँ । तुम मेरी इसी दूती के साथ मानसरोवर के तट पर चली जाओ ॥६७॥ वहाँ पर मेरी एक

तत्र द्रक्ष्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम् ॥६८॥ मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः । स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम्॥६९॥ भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् । व्यास उवाच– **देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नी त्वरान्विता ॥७०॥ प्रापयामास सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम् । सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेश गुप्तसंस्थितम् । मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवांछितम् ॥७१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तां वीक्ष्य विपुलापांगीं रहः शोकसमन्विताम् । आखण्डलः प्रियां भार्या विस्मितश्चाब्रवीत्तदा ॥१॥ कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम् । दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने ॥२॥** शच्युवाच– **देव देव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह । पुनस्तस्याः**

विश्वकाम नाम की मूर्ति विद्यमान है । वह मेरी अचल मूर्ति है और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है । वहाँ पर दुःखी तथा भयभीत इन्द्र का दर्शन कर पाओगी ॥६८॥ थोड़े ही दिन में मैं राजा नहुष को मोहित कर दूँगी । हे विशालाक्षि ! तुम स्वस्थ हो जाओ । मैं तुम्हारे मनोनुकूल काम को कर दे रही हूँ ॥६९॥ मैं उस राजा को अज्ञानी बनाकर उसको इन्द्रासन से पतित कर दूँगी । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** वह देवी की दूती भी शीघ्र ही इन्द्र की पत्नी को लेकर अपनी स्वामिनी परमेश्वरी के पास पहुँचा दिया । शची ने भी गुप्त रूप से रहने वाले इन्द्र का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया. क्योंकि उसकी बहुत दिनों से अपने पति का दर्शन करने की इच्छा थी ॥७१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

नहुष का इन्द्रासन से पतन

व्यासजी ने कहा– इन्द्र ने एकान्त में अपनी विशाल नेत्रों वाली पत्नी को देखा । उस समय शची शोकान्वित थी । इन्द्र अपनी पत्नी को वहाँ पर देखकर आश्चर्य में पड़ गये ॥१॥ उन्होंने शची से पूछा कि हे कान्ते ! मेरे विषय में तुमने कैसे जाना कि मैं यहाँ पर हूँ ?। हे शुभानने ! यह तो सभी

प्रसादेन प्राप्ताऽस्मि त्वां दिवस्पते ॥३॥ नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने । त्रिदशैर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः ॥४॥ पतिं मां कुरु चार्वंगि तुरासाहं सुराधिपम् । एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन ॥५॥ इन्द्र उवाच– **कालाकांक्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया । तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥६॥** व्यास उवाच– **इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनाऽतिप्रशंसिना । निःश्वसंत्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता॥७॥ कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम् । करिष्यति मदोन्मतो वरदानेन गर्वितः ॥८॥ देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः । तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम् ॥९॥ बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः । कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा ॥१०॥ तस्माच्चिंताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी । अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो ॥११॥ नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चिन्ताऽतिपतिव्रता । नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥१२॥** इन्द्र उवाच– **उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने । शीलं ते दुःखिते काले परित्राणं भविष्यति ॥१३॥**

जीवों के लिए दुर्ज्ञेय स्थान है ॥२॥ **शची ने कहा–** हे देव ! देवीजी की कृपा से मैं यह जान सकी हूँ कि आप यहाँ पर विद्यमान हैं । हे स्वर्गलोक के स्वामिन् ! मैं जगदम्बिका की ही कृपा से आपको पुनः प्राप्त कर सकूँगी ॥३॥ देवताओं और मुनियों ने आपके स्थान पर नहुष नामक राजर्षि को इन्द्र बना दिया है, और वह मुझको सर्वदा कष्ट दे रहा है ॥४॥ हे बल नामक दैत्यों को मारने वाले ! वह पापी मुझसे कहता है कि हे सुन्दरि ! तुम मुझको अपना पति बना लो, क्योंकि मैं ही इन्द्र हूँ । मैं देवताओं का स्वामी हूँ । अब आप ही बतलाइये कि मैं क्या करूँ ? मुझको तो अपना समय बिताना कठिन हो गया है ॥५॥ शची की बात को सुनकर **इन्द्र ने कहा–** हे वरारोहे ! जिस तरह मैं अपने अनुकूल समय की प्रतीक्षा करते हुए अपना समय बिता रहा हूँ, उसी तरह तुम भी धैर्य धारण करके अपना समय बिताओ । हे कल्याणि ! तुम अपने मन को अत्यन्त सुस्थिर बना लो ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** अपने समादरणीय पति इन्द्र के इस तरह से कहने पर भी शची के मन का कष्ट समाप्त नहीं हुआ । वह लम्बी श्वांस लेकर काँपती हुई अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगी ॥७॥ हे महाभाग ! मैं कैसे अपना समय बिताऊँ वह अपने वरदान के गर्व से गर्वीला बन गया है । वह मदोन्मत्त है । वह पापी अवश्य मुझको बलपूर्वक अपने वश में कर लेगा ॥८॥ उस नहुष के भय से भयभीत होकर ऋषियों तथा देवताओं ने आकर मुझसे कहा कि हे सुन्दरि ! यह नहुष नामक इन्द्र, काममोहित हो गया है, अतएव आप उसे ही अपना पति बना लें ॥९॥ अपने शत्रुओं को मारने वाले बृहस्पति ! ब्राह्मण हैं और बलहीन हैं । वे कैसे मेरी रक्षा कर सकते हैं, क्योंकि वे भी देवताओं के वश में है ॥१०॥ अतएव हमको अत्यन्त चिन्ता है । मैं आपकी वशवर्तिनी पत्नी हूँ । हे विभो ! मैं अनाथ हूँ । मेरा कोई भी रक्षक नहीं है । इस विपरीत काल में मैं कुछ भी करने में असमर्थ हूँ ॥११॥ मैं कोई कुलटा नारी तो हूँ नहीं। सर्वदा आपकी ही चिन्ता मुझे बनी रहती है । मैं एक पतिव्रता नारी हूँ । वहाँ पर मेरे लिए कोई भी ऐसा शरण नहीं है जो मुझ दुखिया की रक्षा कर

**परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता । उपायैः कोटिभिः कामं भिन्नचित्ताऽतिचंचला ॥१४॥ शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ।
तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते ॥१५॥ यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः । तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वंचय
भूपत्तिम्॥१६॥ एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे । ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते ॥१७॥ एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम्।
इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः॥१८॥ कामांधः स मुनीन् याने योजयिष्यति पार्थिवः । अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥१९॥
साहाय्यं जगदंबा ते करिष्यति न संशयः । जगदंबापदस्मर्तुः संकटं न कदाचन ॥२०॥ यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम्॥२१॥ भज त्वं भुनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ।** व्यास उवाच– **इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति॥२२॥
तथेत्युक्ताऽतिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा । नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि ।**

सके ॥१२॥ **इन्द्र ने कहा**– हे वरानने ! मैं तुमको एक उपाय बतलाता हूँ तुम उसी उपाय को करो । उस उपाय को करने से इस विपत्ति काल में तुम्हारे शील की सुरक्षा हो जायेगी ॥१३॥ दूसरे के द्वारा जिसकी रक्षा की जानी है वह स्त्री पतिव्रता नहीं रह सकती है । चाहे उसके लिए करोड़ों उपाय क्यों नहीं किए जायँ । उसका कारण यह हैं कि स्त्रियों का चित्त अत्यन्त चंचल होता है ॥१४॥ स्त्री का शील ही उसको सदा पाप करने से बचाता रहता है। अतएव हे शुचिस्मिते ! तुम अपने शील को ही अपनाकर स्थिर रहो ॥१५॥ पापी राजा नहुष बहुत बड़ा खल है । वह जब तुम्हें बल पूर्वक अपने वश में करना चाहे तो तुम उसे चालाकी से धोखा दे देना ॥१६॥ हे मदालसे ! तुम एकान्त में जाकर उससे कहना कि हे महाराज ! यदि आप मुझको प्राप्त करना चाहते हैं तो आप ऋषियों के दिव्य यान पर सवार होकर मेरे पास आइये । यदि आप ऋषियों के द्वारा ढोयी जाने वाली पालकी पर चढ़कर मेरे पास आते हैं तो मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी । यही मेरी प्रतिज्ञा है । हे सुश्रोणि ! जब तुम इस प्रकार से कहोगी तब वह तुम्हारी बातों से मोहित हो जायेगा॥१८॥ वह काम से अन्धा होकर मुनियों को अपनी पालकी ढोने के काम में लगायेगा । जब वह ऐसा करेगा तो तपस्वी मुनिगण उसे शाप देकर अवश्य भस्म कर देंगे ॥१९॥ इस काम में निश्चित रूप से जगदम्बा भी तुम्हारी सहायता करेंगी; क्योंकि जो कोई भी जगदम्बा का स्मरण करता है, उसके ऊपर कोई विपत्ति नहीं आती है ॥२०॥ कदाचित् उस व्यक्ति के ऊपर कोई विपत्ति आये भी तो यही समझना चाहिए कि उससे उसका कल्याण ही होने वाला है । अतएव तुम सर्वदा मणिद्वीप में रहने वाली पराम्बा का ही भजन करो । वे जगत् की स्वामिनी हैं । अतएव तुम बृहस्पतिजी के उपदेशानुसार देवी की पूजा करती रहो । **व्यासजी ने कहा**– इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर इन्द्राणी राजा नहुष के पास गयीं । अत्यन्त विश्वास के साथ जब

दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया ॥२४॥ यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि । न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते॥२५॥ कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम् । शच्युवाच– **सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव ॥२६॥ मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो । वांछितं कुरु कल्याण त्वद्वशाऽहमतः परम् ॥२७॥ ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहार्हसि ।** नहुष उवाच– **कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वांछितम् ॥२८॥ अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम् ।** शच्युवाच– **कथं ब्रवीमि राजेंद्र प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥२९॥ शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव । राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले ॥३०॥ पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्येन यंत्रितम्। कृते चेद्वांछिते भूप सदा ते वशवर्तिनी ॥३१॥ भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम ।** नहुष उवाच– **अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुंदरि॥३२॥ शपामि सुकृतेनाहं यज्ञदानकृतेन वै ।** शच्युवाच– **इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥३३॥ गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा।**

शची राजा नहुष के पास गयीं तो उसको देखकर राजा नहुष प्रसन्न हो गया और **इन्द्राणी से कहा–** ॥२३॥ हे कामिनि ! तुम्हारा मेरे यहाँ स्वागत है; क्योंकि तुम सत्य बोलने वाली हो । तुमने जैसा कहा है, उसी तरह से किया भी है । अब तो मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ ॥२४॥ हे बहुत नहीं बोलने वाली शची, तुम स्वेच्छा से ही मेरे पास आ गयी हो अतएव मैं तुम्हारे इस व्यवहार से सन्तुष्ट हूँ । हे सुन्दर मुसुकान वाली, तुम किसी प्रकार की लज्जा मत करों । मैं तुम्हारा भक्त हो गया हूँ, तुम मुझे अपने पति के रूप में अपना लो ॥२५॥ हे विशालाक्षि ! तुम अपना कार्य बतलाओ । मैं तुम्हारे प्रिय काम को अवश्य करूँगा । राजा नहुष की बात को सुनकर शची ने कहा हे राजेन्द्र ! मैं आपको कोई काम कैसे बतलाऊँ ? क्योंकि आपके प्रति मेरे मन में पूरा विश्वास नहीं है । हे विभो ! जो बात मेरे मन में है, उसे आप सुनें । हे कल्याणकारी राजन् ! यदि आप मेरे मनोऽनुकूल उस कार्य को करते हैं तो उसके बाद मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी ॥२६-२७॥ अब जो बात मेरे मन में है, उस बात को मैं आप से कह रही हूँ । शची की बातों को सुनकर नहुष ने कहा हे चन्द्रवदने ! तुम अपने अभिलषित कार्य को बतलाओ मैं तुम्हारे अभिप्रेत कार्य को अवश्य करूँगा ॥२८॥ जो वस्तु अलभ्य भी होगी उसे भी मैं तुम्हे प्रदान कर दूँगा । तुम उसे बतलाओ । **शची ने कहा–** हे राजन् ! मैं उस बात को आपसे कैसे कहूँ ? मुझे अभी आप पर विश्वास नहीं है ॥२९॥ पहले आप यह प्रतिज्ञा करें कि तुम जो कहोगी उसे मैं अवश्य करूँगा । क्योंकि भूतल पर सत्य बोलने वाले राजाओं की बहुत कमी है ॥३०॥ आप प्रतिज्ञा करके जब सत्य के बन्धन में बँध जायेंगे तो उसके बाद मैं अपनी बात बताऊँगी । यदि आप मेरे मनोवांछित कार्य कर देंगे तो मैं आप की सदा के लिए वशवर्तिनी हो जाऊँगी ॥३१॥ हे तुराषाड् ! मेरी भी यह सत्य प्रतिज्ञा है । इन्द्राणी की बात को सुनकर **राजा नहुष ने कहा–** हे सुन्दरि ! मैंने जो यज्ञ तथा दान किया है, उससे उत्पन्न पुण्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारा मनोवांछित कार्य अवश्य करूँगा । नहुष की बात सुनकर

वृषभः शंकरस्यापि ब्रह्मणो वरटापतिः ॥३४॥ मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः । इन्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप॥३५॥ यन्न विष्णोर्न न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम् । वहंतु त्वां महाराज मुनयः शंसितव्रताः ॥३६॥ सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वांछितम् । सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप ॥३७॥ तेन ते तेजसो वृद्धिं वांछाम्यहमतंद्रिता । व्यास उवाच– तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः॥३८॥ मोहितस्तु महादेव्या कृतं मोहेन तत्क्षणम् । उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम् ॥३९॥ नहुष उवाच– सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम । करिष्यामि सुकेशांते वचनं तव सर्वथा ॥४०॥ न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन् । अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते ॥४१॥ सप्तर्षयो मां वक्ष्यंति सर्वे देवर्षयस्तथा । समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाऽधिकम् ॥४२॥ व्यास उवाच– इत्युक्त्वा तां सुसंतुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् । मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥४३॥ नहुष उवाच– अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिससमन्वितः । कार्यमत्र प्रकुर्वन्तु भवंतो विगतस्मयाः ॥४४॥ इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेंद्राणी मामुपैति च । आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं

शची ने कहा– हे सुराधिप इन्द्र के वाहन, रथ, घोड़े तथा हाथी हैं । भगवान् विष्णु का वाहन गरुड है । यमराज का वाहन भैंसा है । शंकरजी का वाहन वृषभ है; ब्रह्माजी का वाहन हंस है ॥३३-३४॥ कार्तिकेय का वाहन मयूर है और गणेशजी का वाहन मूषक (चूहा) है । अब आपका वाहन ऐसा होना चाहिए जो आज तक किसी का भी वाहन न हुआ हो ॥३५॥ जो न तो विष्णु का वाहन हो, न रुद्र का, न असुरों का और न राक्षसों का । अतएव मैं चाहती हूँ कि आपके वाहन वे प्रधान ऋषिगण हों जो सदा अपने व्रत में अटल रहते हों ॥३६॥ वे सभी ऋषिगण आपकी शिविका (पालकी) को ढोने वाले बन जायँ यही मेरी इच्छा है । क्योंकि हे राजन् ! आपकी महिमा मैं सभी देवताओं से अधिक समझती हूँ ॥३७॥ मैं समझती हूँ कि ऐसा करने से आपका तेज और बढ़ जायेगा । शची की उन बातों को सुनकर अज्ञानी नहुष ने जोर से हँसकर ॥३८॥ महादेवी के द्वारा मोहित होने के कारण तुरन्त इन्द्र की पत्नी शची की प्रशंसा करते हुए कहने लगा ॥३९॥ **नहुष ने कहा**– हे सुन्दरि ! तुमने सत्य ही कहा है यह मेरा वाहन मनोहर होगा । सुन्दरि! मैं तुम्हारे वचनों का पालन अच्छी तरह से करूँगा ॥४०॥ जो कम पराक्रम वाला होगा वह मुनियों को अपने वाहन में नहीं लगा सकता है । किन्तु मैं ऐसा नहीं हूँ । अतएव मैं तुम्हारे कहे कि अनुसार उसी सवारी पर आरूढ होकर तुम्हारे पास आऊँगा ॥४१॥ सभी सप्तर्षि और देवर्षिगण मुझको ढोने का काम करेंगे; क्योंकि वे जानते हैं कि त्रैलोक्य में मैं सबसे अधिक तपस्वी हूँ तथा सबसे अधिक सामर्थ्य सम्पन्न हूँ ॥४२॥ **व्यास महर्षि ने कहा**– इस तरह से कहकर नहुष सन्तुष्ट होकर इन्द्र की पत्नी को जाने की आज्ञा दे दिये । इसके बाद कामी नहुष ने सभी मुनियों को बुलाया और उसने कहा ॥४३॥

वचः ॥४५॥ मुनियानेन देवेंद्र मामुपौहि सुराधिप । देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद ॥४६॥ एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममात्यंत दुरासदम् । भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः ॥४७॥ मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् । भवंतः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम् ॥४८॥ अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम् । अंगीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः ॥४९॥ अंगीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमीकृतमानसः ॥५०॥ आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः । वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्प सर्पेति चाब्रवीत् ॥५१॥ कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम् । अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा ॥५२॥ वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम् । कशया ताडयामास पंचबाणशराहतः ॥५३॥ इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् । तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥५४॥ सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान् । बहुवर्षसहस्राणि तत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥५५॥ विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि । दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम

नहुष ने कहा– हे विप्रों ! आज इन्द्र मैं हो गया हूँ । मैं सर्वशक्तिमान हूँ । आपलोगों को गर्व से रहित होकर हमारा काम करना है ॥४४॥ मैंने इन्द्रासन को तो प्राप्त कर लिया है; किन्तु इन्द्राणी मेरी सेवा में नहीं आती है । जब मैं उसको बुलवाता हूँ तो वह प्रेमपूर्वक मुझसे कहती है ॥४५॥ हे सुराधिप! यदि आपको मुझे प्राप्त करना है तो आप मुनियों को ही अपना वाहन बनाकर मेरे पास आयें । हे देवेदेव ! यही मुझको प्रिय है । अतएव आप उसी तरह से मेरे पास आयें ॥४६॥ हे श्रेष्ठ मुनिजन ! मेरा यह कार्य अत्यन्त कठिन है । आपलोग तो दयालु हैं । अतएव कृपा करके मेरे इस कार्य को अवश्य कर दें ॥४७॥ इन्द्र के पत्नी के विषय में मेरा मन लगा हुआ है और कामदेव मेरे मन को सदा संतप्त करता रहता है । इस कार्य में आपलोग ही शरण हैं । अतएव आपलोग मेरे इस अद्भुत कार्य को सम्पन्न करें ॥४८॥ उन ऋषियों में अगस्त्य महर्षि प्रमुख थे । दयालु स्वभाव के होने के कारण अथवा भावीवशात् इस बुरी बात को सुनकर भी उन महर्षियों ने इस कार्य को करने के लिए स्वीकार कर लिया ॥४९॥ इन तत्त्वज्ञ मुनियों के द्वारा नहुष की बात को स्वीकार कर लिए जाने के कारण राजा नहुष को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई । उसका मन तो सदा शची में ही लगा रहता था ॥५०॥ राजा शीघ्र ही एक सुन्दर शिविका (पालकी) में बैठ गया और मुनियों को उसे ढोने में लगाकर सर्प ! सर्प ! (शीघ्र चलो शीघ्र चलो) कहने लगा ॥५१॥ कामार्त बना हुआ मूर्ख राजा नहुष ने अगस्त्य मुनि के शिर पर पैर से प्रहार किया । ये अगस्त्य महर्षि तपस्वियों में श्रेष्ठ तथा लोपामुद्रा के पति हैं ॥५२॥ वे वातापि नामक राक्षस को खा गये थे और समुद्र को भी सोख गये थे । काम के बाण से आहत नहुष ने अगस्त्य महर्षि पर कोड़े से प्रहार किया कि वे शीघ्र चलें॥५३॥ उसका मन इन्द्राणी में लगा हुआ था । अतएव बार-बार सर्प सर्प कह रहा था । उस कोड़े के प्रहार से मुनि क्षुब्ध हो गये । और क्रुद्ध होकर

तव मोक्षो भविष्यति ।।५६।। प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः । व्यास उवाच– एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ।।५७।। स्वर्गत्यपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् । बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति ।।५८।। इन्द्राय सर्ववृत्तांतं कथयामास विस्तरात् । तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम् ।।५९।। मुदितोऽभून्महाराज स्थितस्तत्रैव वासवः । देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि ।।६०।। जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेंद्रः सरसि स्थितः । तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तदा ।।६१।। स्वर्गं समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् । समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः ।।६२।। स्थापयित्वाऽऽसने पश्चदिभिषेकं दधुः शिवम् । इन्द्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये ।।६३।। चिक्रीड नंदने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया । व्यास उवाच– एवमिंद्रेण संप्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ।।६४।। हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं महामुनिम् । पुनर्देव्याः

उसको वे शाप दे दिए ।।५४।। अरे दुराचारी ! तुम वन में जाकर भयंकर सर्प का शरीर धारण करके भयंकर क्लेश को वर्दास्त करते हुए अनेक हजार वर्षों तक विचरण करते रहोगे । जब तुमको महापुरुष युधिष्ठर का दर्शन होगा तब तुम पुनः स्वर्गलोक में आ पाओगे । उसी समय तुमको मेरे इस शाप से मुक्ति मिलेगी ।।५६।। तुम उनके ही मुख से अपने प्रश्नों का उत्तर पाओगे । उसी के फलस्वरूप तुम्हें इस शाप से मुक्ति पाओगे । **व्यासजी ने कहा–** महर्षि अगस्त्य के द्वारा इस प्रकार से शाप दिये जाने के पश्चात् राजर्षि नहुष मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य महर्षि की स्तुति करके स्वर्ग से गिर पड़े और सर्परूपधारी बन गये । उसके पश्चात् आचार्य बृहस्पति शीघ्र ही मानसरोवर पर गये ।।५७-५८।। वे विस्तारपूर्वक इन्द्र को सारा समाचार सुनाये। इन्द्र नहुष के स्वर्ग से पतन सम्बन्धी सारे वृतान्त को सुनकर ।।५९।। हे महाराज बहुत प्रसन्न हुए । किन्तु वे वहीं पर स्थिर रहे आये नहीं । जब देवों तथा मुनियो ने देखा कि नहुष का पतन हो गया है ।।६०।। वे सब भी वहीं गये जहाँ पर इन्द्र विद्यमान थे । मुनियों के साथ सभी देवताओं ने इन्द्र को आश्वस्त किया ।।६१।। उसके पश्चात् वे लोग इन्द्र को सम्मान पूर्वक स्वर्गलोक में लाए । आये हुए उस इन्द्र को सभी देवता और मुनिगण मिलकर ।।६२।। इन्द्रासन पर बैठाये और उसके पश्चात् उनलोगों ने उस पद पर इन्द्र का मङ्गलमय अभिषेक किया । इन्द्र भी अपने पद को प्राप्त करके देवलोक में तथा नंदनवन में प्रेम-पूर्वक शची के साथ क्रीडा किए ।।६२-६३।। **व्यासजी ने कहा–** इस तरह अपने मनोऽनुकूल रूप धारण करने वाले महामुनि विश्वरूप का वध करके इन्द्र ने अत्यधिक दुःख प्राप्त किया । दुःख प्राप्त करने के पश्चात् इन्द्र ने देवी की कृपा से अपने स्वर्ग के राज्य को प्राप्त कर लिया ।।६५।। हे राजन् ! आपने जो मुझसे प्रश्न किया था उसके अनुसार मैंने वृत्रासुर के वध से सम्बन्धित सर्वोत्तम कथानक को आपको

प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप ॥६५॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् । यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥६६॥ यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याद्भुतकर्मणः । स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः ॥१॥ यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमाऽतीव वर्णितः । संदेहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः ॥२॥ देवाधिपत्यमासाद्य दुःसहं दुःखमन्वभूत् । मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तं स्थानमनुत्तमम् ॥३॥ देवेशत्वं च संप्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम् । एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे ॥४॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां**

सुनाया ॥६६॥ प्राणीं जिस प्रकार का कार्य करता है, उसे उसी प्रकार का फल भोगना पड़ता है । सभी प्राणियों को अपने किए हुए अच्छे बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥६७॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

अनेक प्रकार के कर्मों तथा युगधर्मों का वर्णन

जनमेजय ने कहा– हे ब्रह्मन् ! आपने मुझे अद्भुत कर्म करने वाले इन्द्र का चरित सुनाया । विशेष रूप से आपने मुझे इन्द्र के अपने पद से पतित होने तथा उनको दुख की प्राप्ति की कथा सुनायी ॥१॥ आपने इसी प्रसङ्ग में देवताओं की अधिष्ठात्री देवी तथा उनके आराध्य देवी की महिमा का वर्णन किया; किन्तु मुझे इस बात का सन्देह हो रहा है कि इन्द्र तो महातपस्वी हैं । उन्होंने सौ अश्वमेघ यज्ञ करके इन्द्रासन को प्राप्त किया था । ऐसी स्थिति में इन्द्र भी उस तरह से दुःख के जाल में फँस गये । देवेन्द्र होकर भी उन्होंने यह कैसे उठाया ॥२-३॥ ये देवेश होकर भी अपने स्थान से कैसे भ्रष्ट हो गये । हे करुणानिधे ! आप मुझे इन सारी बातों को बतलाइये ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप तो सर्वज्ञ हैं । पुराणों की रचना करने वाले हैं । जो महापुरुष

प्रवर्तकः । नावाच्यं महतां किञ्चिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥५॥ तस्मात्कुरु महाभाग मत्संदेहापनोदनम् । सूत उवाच– **इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥६॥ तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ।** व्यास उवाच– **निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम् ॥७॥ कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः । संचितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः ॥८॥ अनेकजन्मसंजातं प्राक्तनं संचित स्मृतम् । सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः ॥९॥ शुभं वाऽप्यशुभं भूप संचितं बहुकालिकम् । अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा ॥१०॥ जन्मजन्मनि जीवानां संचितानां च कर्मणाम् । निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥११॥ क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते । देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वा समाचरेत्॥१२॥ संचितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल । देहारंभे च समये कालः प्रेरयतीव तत् ॥१३॥ प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः । प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः ॥१४॥ पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च । अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः ॥१५॥ दैवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगंधर्वकिन्नरैः । कर्मैव हि महाराज देहारंभस्य कारणम् ॥१६॥ कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः ।**

होते हैं, उनको तो अपने शिष्यों के लिए कोई भी ज्ञान अदेय नहीं होता है । यह दूसरी बात है कि शिष्य को श्रद्धालु अवश्य होना चाहिए । तो मैं तो श्रद्धा सम्पन्न हूँ ॥५॥ अतएव हे महाभाग ! आप मेरे सन्देह को दूर कीजिये । **सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा–** इस तरह से राजा जनमेजय के द्वारा पूछे जाने पर सत्यवतीनंन्दन व्यासजी ॥६॥ अत्यन्त प्रसन्न हो गये और जनमेजय के प्रश्नों के क्रम से ही उत्तर देना प्रारम्भ किये । **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! इसका कारण अत्यन्त अद्भुत है । उसे आपको मैं सुनाता हूँ आप सुनें ॥७॥ तत्त्वों के श्रेष्ठ जानकारों ने कर्मों की तीन प्रकार की गतियों को बतलाया है । संचितकर्म, वर्तमानकर्म तथा प्रारब्धकर्म ॥८॥ उस कर्म को संचितकर्म कहते हैं जो अनेक जन्म में किये गये हैं, उनका फल नहीं भोगा गया है और वे कर्म वैसे ही पड़े हुए हैं । वे संचितकर्म भी तीन प्रकार के होते हैं– सात्त्विक, राजस एवं तामस ॥९॥ वे संचित कर्म अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के रहते हैं । और बहुत समय से संचित रहते हैं । उन कर्मों का फल नहीं भोगा गया रहता है । कर्म चाहे पाप हों अथवा पुण्य उनका फल तो भोगना ही पड़ता है ॥१०॥ प्राणी तो प्रत्येक जन्मों में कर्म करते रहते हैं । और उन समस्त कर्मों का फल पूर्णरूप से भोगे बिना करोड़ो जन्म बीत जाते हैं ॥११॥ वर्तमान कर्म वह कर्म कहलाता है जो किया जा रहा हो । जीव पुण्य अथवा पाप योनियों को प्राप्त करके उन कर्मों को करता रहता है । ऐसे कर्म वर्तमान कर्म हैं । किन्तु संचित कर्मों में से ही कुछ कर्मों को लेकर देह की प्राप्ति होती है । उस समय उस शरीर के ही अनुसार कर्म करने के लिए काल प्रेरित करता है ॥१३॥ उन कर्मों को प्रारब्ध कर्म कहते हैं । और उन कर्मों का फल भोग लेने से उन का क्षय हो जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्राणियों को प्रारब्ध कर्म तो भोगना ही पड़ता है ॥१४॥ प्राचीन काल में किए गये पुण्य अथवा पाप जो कर्म हैं, उन कर्मों का फल भोगा

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्चा सुरास्तथा ॥१७॥ दानवा यक्षगंधर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल । अन्यथा देहसंबंधः कथं भवति भूपते ॥१८॥
कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुः खयोः । तस्मादनेकजन्मोत्थसंचितानां च कर्मणाम् ॥१९॥ मध्ये वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः ।
तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥२०॥ पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च । तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ । जातौ
कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ । पुराणे पीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता ॥२२॥ देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः । नानृषिः
कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चति ॥२३॥ नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः । इन्द्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते ॥२४॥ प्रभुत्वं च प्रभावं
कोपं चैव पराक्रमम् । आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः ॥२५॥ यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् । विद्यावान्दानवान्वाऽपि स
स देवांशः प्रपठ्यते ॥२६॥ तथैवैते समाख्याताः पाण्डवाः पृथिवीपते । देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः ॥२७॥ शरीरं प्राणिनां नूनं

नहीं गया है, यह निश्चित है ॥१५॥ चाहे वे देवता हों, या मनुष्य हों, या असुर हों या यक्ष हों, या गन्धर्व हों या किन्नर हों । हे महाराज ! किसी भी शरीर की प्राप्ति का कारण कर्म ही है ॥१६॥ यह भी निश्चित है कि जब सभी कर्मों का नाश हो जाता है तो फिर जन्म की प्राप्ति नहीं होती है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्र आदि देवता ॥१७॥ दानव, यक्ष, गन्धर्व ये सभी प्रकार के जीव कर्म के अधीन रहते हैं । हे राजन् ! कर्म के विना देह का सम्बन्ध ही कैसे सम्भव है ॥१८॥ शरीरधारी जीव जो सुख तथा दुःखों को भोगते हैं, उसका कारण अनेक जन्म में संचित किए गये कर्म ही है ॥१९॥ उन संचित कर्मों में से काल के अनुसार कर्मों का पाक हो जाने पर बीच-बीच में एक-एक कर्म सामने आते जाते हैं । और उस प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही जीव जैसे पुण्य अथवा पाप कर्मों को करता है, उसी के अनुसार उसे देवता मनुष्य आदि योनियों के शरीर भी प्राप्त होते हैं । उसी के फलस्वरूप इन्द्र को भी कष्ट उठाना पड़ा । यही नहीं नर और नारायण जो धर्म के पुत्र हुए ॥२०-२१॥ वे ही कृष्ण और अर्जुन ये दोनों नारायण के अंश थे । इस बात को मुनियों ने इस पुराण की पूर्व पीठिका के रूप में बतलाया है ॥२२॥ जो अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होता है उसे देवता का ही अंश समझना चाहिए। जो ऋषि नहीं होता है, वह काव्य की रचना नहीं कर सकता है । जिसमें रुद्र का अंश नहीं होता हे वह रुद्र की अर्चना नहीं कर सकता है ॥२३॥ जिसमें देवता का अंश नहीं होता है, वह अन्न का दान नहीं कर सकता है । जिसमें भगवान् विष्णु का अंश नहीं होता है, वह पृथिवीपति नहीं हो सकता है । हे राजन् इन्द्र से प्रभुत्व की प्राप्ति अग्नि से प्रभाव की प्राप्ति, यम से कोप की प्राप्ति, विष्णु से पराक्रम की प्राप्ति, तथा कुबेर से पराक्रम की प्राप्ति करके ही शरीर का निर्माण होता है । यह निश्चित है ॥२४-२५॥ संसार में मनुष्य में कोई बलवान होता है, कोई भाग्यवान होता है, कोई भोग सम्पन्न होता है, कोई विद्यावान होता है, अथवा कोई दान करने वाला होता है, वह सब कुछ तत्-तत् देवताओं के अंश से ही होता है, ऐसा मैंने कहा है ॥२६॥

भाजनं सुखदुःखयोः । शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखं दुःखमनन्तरम् ॥२८॥ देही नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि । जननं मरणं दुःखं सुखं
प्राप्नोति चावशः ॥२९॥ पांडवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः । स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयं क्रतूत्तमम् ॥३०॥ वनवासं पुनः प्राप्ता
बहुदुःखकरं परम् । अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेन्द्रियैः ॥३१॥ संतुष्टैस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् । नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं
वनवासजम्॥३२॥ नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे । नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं स बभूव ह ॥३३॥ प्राणिनां देहसंबधे गहना कर्मणो गतिः।
दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा ॥३४॥ वासुदेवोऽपि संजातः कारागारेऽतिसङ्कटे । नीतोऽसौ वासुदेवेन नंदगोपस्य गोकुलम् ॥३५॥
एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत । पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात् ॥३६॥ मोचयामास पितरौ बंधनाद्भृशदुःखितौ । उग्रसेनं च
राजानं चकार मथुरापुरे ॥३७॥ जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः । सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत् ॥३८॥ कृत्वा कार्याण्यनेकानि

हे पृथिवीपते जनमेजय ! मैंने यह भी बतलाया है कि पाण्डव भी ऐसे ही थे । उनमें भी देवताओं का अंश था । स्वयं नारायण के समान कान्ति वाले
वासुदेव श्रीकृष्ण भी देवांश थे ॥२७॥ प्राणियों का शरीर ही सुख तथा दुःख की प्राप्ति का पात्र है । सुख और दुख भोगने के ही लिए शरीर प्राप्त होता
है । शरीर प्राप्त होने के बाद में ही सुख और दुःख की प्राप्ति होती है ॥२८॥ कोई भी शरीरधारी अपने वश में नहीं रहता है, वह सदा दैवाधीन ही
रहा करता है । वह दैवाधीन ही रहकर जन्म, मरण, दुःख तथा सुख आदि को प्राप्त करता रहता है ॥२९॥ पाण्डव वन में गये उसके बाद वे अपने
घर लौटे । उनलोगों ने अपने बाहुबल के आधर पर राजसूय नामक उत्तम यज्ञ किया ॥३०॥ इसके बाद उन लोगों को पुनः वन में जाना पड़ा जिसमें
उन्हें बहुत अधिक कष्ट भोगना पड़ा । अर्जुन ने कठोर तपस्या की । उस प्रकार की तपस्या करना किसी भी अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए असंभव था ॥३१॥
उस तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं ने उन्हें वरदान दिया । उन्होंने नर शरीर को प्राप्त करके जो तपस्या किया था और वनवास काल में जो उन्होंने तपस्या
की इन दोनों तपस्याओं से उत्पन्न पुण्य कहाँ चला गया ॥३२॥ उन्होंने नर शरीर से बदरिकाश्रम में कठोर तप किया था । उस तपस्या का फल उन्हें अर्जुन
शरीर में नहीं मिला ॥३३॥ प्राणियों के शरीर प्राप्त करने में जो कर्म कारण बनता है, उसकी गति अत्यन्त गहन है, उसे समझ पाना बड़ा ही कठिन
है । उसको तो देवता भी नहीं जान पाते हैं, मनुष्यों की कौन सी बात है ॥३४॥ भगवान् श्रीकृष्ण का भी जन्म अत्यन्त संकटमय कंस के कारागार में
हुआ था । और वे वसुदेव के द्वारा गोकुल में नन्दगोप के घर पहुँचा दिये गये ॥३५॥ वहाँ भी वासुदेव श्रीकृष्ण ग्यारह वर्ष ही रह सके । फिर वे मथुरा
जाकर उग्रसेन के पुत्र कंस का वध किए ॥३६॥ उन्होंने अपने अत्यन्त दुःखी माता-पिता को बन्धन से छुडाया । फिर उन्होंने मथुरापुरी का राजा उग्रसेन
को बनाया । उसके बाद वे म्लेच्छराज कालयवन के भय से द्वारकापुरी में चले गये । भवितव्यता के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त महान कर्मों को

द्वारवत्यां जनार्दनः । देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुंबो दिवंगतः ॥३९॥ पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा । प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥४०॥ एवं ते कथिता राजन्कर्मणो गहना गतिः। वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः ॥४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– भारावतारणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः । संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति ॥१॥ पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता । द्वापरान्तेऽतिदीनाऽऽर्ता गुरुभारप्रपीडिता ॥२॥ वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः । भूभारोत्तारणार्थाय साधूनां रक्षणाय च॥३॥ भगवान्भारते खंडे देवैः सह जनार्दनः । अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो ॥४॥ एवं सम्प्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः । बभूव सह

किया ॥३८॥ उन जनार्दन ने द्वारका में अनेक कार्यों को किया । इसके पश्चात् अपने पूरे परिवार के साथ प्रभास क्षेत्र में अपने शरीर का त्याग करके वे स्वर्गलोक चले गये ॥३९॥ ब्राह्मणों के शाप के कारण पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, भाइयों तथा बहनोइयों के साथ सभी यादव प्रभास क्षेत्र में विनष्ट हो गये । इस तरह से हे राजन् ! मैंने कर्म की गहनगति का वर्णन किया । वासुदेव की भी मृत्यु एक व्याध के बाण से हुई ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

युग धर्म का वर्णन

राजा जनमेजय ने महर्षि व्यास से कहा-- हे द्विजश्रेष्ठ ! व्यासजी ! आपने कहा है कि पृथिवी का भार उतारने के लिए श्रीकृष्ण और बलराम का अवतार हुआ था । किन्तु इसके विषय में मेरे मन में एक शंका है ॥१॥ द्वापर युग के अन्त में पापों के भार से दबी हुई पृथिवी गौ का रूप धारण करके ब्रह्माजी के पास गयी ॥२॥ उस समय ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से पृथिवी का भार उतारने के लिए तथा सज्जनों की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की लक्ष्मीजी के पति भगवान् विष्णु से ब्रह्माजी ने प्रार्थना करते हुए कहा हे विभो ! हे भगवन् ! आप शीघ्र ही भारतवर्ष में वसुदेवजी के घर में अवतार ग्रहण करें ॥३-४॥

रामेण भूभारोत्तारणाय वै ॥५॥ कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः । ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह ॥६॥ हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा । बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥७॥ यैर्लुंठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः । कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले ॥८॥ आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशास्तथा । भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता ॥९॥ संदेहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः । कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥१०॥ व्यास उवाच– राजन् यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः । नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम् ॥११॥ ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन् । धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन् ॥१२॥ धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे । अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवंति हि ॥१३॥ युगधर्मस्तु राजेन्द्र न याति व्यत्ययं पुनः । कालः कर्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः ॥१४॥ राजोवाच– ये तु सत्ययुगे जीवा भवंति धर्मतत्पराः । कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठंति पुण्यभागिनः ॥१५॥ त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः । वर्तन्ते मुनयः श्रेष्ठाः कुत्र ब्रूहि पितामह ॥१६॥ कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः । आद्ये युगे क्व यास्यंति पापिष्ठा

ब्रह्माजी के इस प्रकार से प्रार्थना किये जाने पर देवकी माता के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण पृथिवी का भार उतारने के लिए बलरामजी के साथ अवतार ग्रहण किए ॥५॥ उसके पश्चात् दुराचारी तथा अत्याचारी अनेक राजाओं का वध करके उन्होंने पृथिवी के कितने भारों को उतारा ॥६॥ इसी प्रसङ्ग में महाभारत युद्ध में भीष्म, द्रोण, विराट्, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त, कर्ण तथा वैकर्त नामक राजा मारे भी गये ॥७॥ किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सबों का वध क्यों नहीं किया जिन सबों ने उनके खजाने को लूट लिया । भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों को लूट लिया । वे सभी पृथिवी पर ही क्यों छोड़ दिये गये ॥८॥ करोडों आभीर जातीय, शक, म्लेच्छ तथा निषाद जब पृथिवी पर रह ही गये तो भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथिवी के कितने भार को उतारा ॥९॥ हे महाभाग! मेरे मन से यह संदेह नहीं निकलता है । वे जानते थे कि कलियुग की सारी प्रजा पापबुद्धि वाली हो जायेगी ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! जिस युग में कालानुसार जैसी प्रजा होती है उसमें कोई भी परिवर्तन इसलिए नहीं हो सकता है कि युग का धर्म ही ऐसा है । उसी के कारण वैसी प्रजा हो जाती है ॥११॥ जो जीव धार्मिक हैं वे सत्ययुग में उत्पन्न हुए । जो धर्म तथा अर्थ दोनों को चाहने वाले हैं वे त्रेतायुग में उत्पन्न हुए ॥१२॥ धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनों प्रकार के पुरुषार्थों को चाहने वाले जीव द्वापर युग में उत्पन्न हुए । अर्थ और काम इन दो पुरुषार्थों को ही चाहने वाले जीव कलियुग में उत्पन्न होते हैं ॥१३॥ हे राजन् ! युगों के धर्म का कभी भी उलट-फेर नहीं हो सकता है । धर्म और अधर्म इन दोनों को काल ही करवाता है ॥१४॥ **राजा जनमेजय ने पूछा–** हे महाभाग ! सत्ययुग में जो धार्मिक जीव हुए वे पुण्यवान् जीव इस कलियुग में कहाँ रहते हैं ॥१५॥ अथवा त्रेता एवं द्वापर युग में जो दान एवं व्रत करने वाले जीव थे वे मुनिश्रेष्ठ कहाँ हैं ? हे पितामह उसे आप बताइये ॥१६॥ इस कलियुग में जो निर्लज्ज दुराचारी जीव हैं वे

देवनिन्दकाः ॥१७॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते । सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम् ॥१८॥ व्यास उवाच– **ये वै कृतयुगे**
राजन्संभवंतीह मानवाः । कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजंति वै ॥१९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम । स्वधर्मनिरताा यांति
लोकान्कर्मार्जिजितान्किल ॥२०॥ सत्यं दया तथा दानं स्वदारमनं तथा । अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु ॥२१॥ एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा
सत्ययुगे पुनः । स्वर्गं यांतीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः ॥२२॥ तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा । कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यांति
मानवाः ॥२३॥ तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः । पुनश्च मानुषे लोके भवन्ति भुवि मानवाः ॥२४॥ यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरंतश्च
पार्थिव । तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायन्ते किल मानवाः ॥२५॥ यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा । नरकात्पापिनः सर्वे भवन्ति भुवि
मानवाः॥२६॥ एवं कालसमाचारो नान्यथाऽभूत्कदाचन । तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा ॥२७॥ कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो
भवेत् । कलौ ये साधवः केचिद्द्वापरे संभवन्ति ते ॥२८॥ तथा त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा । दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवन्ति कलावपि॥२९॥

देवों के निन्दक तथा पापी जीव सत्ययुग में कहाँ चले जायेंगे ॥१७॥ हे महामते ! इन सारी बातों को आप मुझे विस्तार पूर्वक बतलाइये । मैं इस धर्म
के निर्णय की बात को आपसे सुनना चाहता हूँ ॥१८॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! जो लोग सत्ययुग में उत्पन्न होते हैं वे पुण्य कर्मों को करके देवलोक
में चले जाते हैं ॥१९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वे अपने वर्णाश्रम धर्म के पालन से अर्जित लोको में चले जाते हैं ॥२०॥ सत्यभाषण, दया,
करना, दान करना, स्वैरगमन तथा किसी से द्रोह नहीं करना तथा सभी जीवों के प्रति समता की दृष्टि ये सभी जीवों के लिए सामान्य धर्म हैं । सत्ययुग
में इन धर्मों का पालन करके रजक (धोबी) इत्यादि शूद्र जाति के जीव भी स्वर्गलोक में चले जाते हैं ॥२२॥ हे राजन् इसी तरह से त्रेतायुग और द्वापर
युग में उपर्युक्त सामान्य धर्मों का पालन करके जीव शरीर त्याग के बाद स्वर्गलोक में चले जाते हैं । कलियुग के जो पापकर्म परायण जीव हैं, वे नरक
में जाते हैं ॥२३॥ वे जीव उन नरकों में तब तक पड़े रहते हैं । जब तक कि युग बदल नहीं जाता है । उसके बाद इस संसार मे वे मनुष्य रूप से
पृथिवी पर जन्म लेते हैं ॥२४॥ जिस समय सत्ययुग का प्रारम्भ और कलियुग का अन्त होने वाला होता है उस समय स्वर्ग में रहने वाले पुण्यवान् जीव
पृथिवी पर मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं ॥२५॥ जब द्वापर का अन्त तथा कलियुग का प्रारम्भ होने वाला होता है उस समय नरक से निकल कर सभी
पापी जीव पृथिवी पर मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं ॥२६॥ यह काल की प्रथा है, इसके विपरीत कभी नहीं होता है । चूकि कलि असत की ओर प्रवृत्त होता
है अतएव उस समय प्रजाएँ भी उसीतरह की हो जाती हैं ॥२७॥ कभी-कभी दैवयोग से प्राणियों को असाधरण परिवर्तन भी होता है । कलियुग में जो साधु
प्रकृति के जीव होते हैं वे भी द्वापर में जन्म लेते हैं ॥२८॥ इसी तरह कलियुग के सज्जन पुरुष त्रेतायुग तथा सत्ययुग में भी भी जन्म लेते हैं । जो सत्ययुग

कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवंत्यसुखानि च । पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वंति युगभावतः ॥३०॥ जनमेजय उवाच– युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः। यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा ॥३१॥ व्यास उवाच– निबोध नृपशार्दूल दृष्टांतं ते ब्रवीम्यहम् । साधूनामपि चेतांसि युगभावाद्भवंति हि ॥३२॥ पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने । कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥३३॥ अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसंभवः । तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत् ॥३४॥ सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता । प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः ॥३५॥ नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः । पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥३६॥ गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः । गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः ॥३७॥ ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः । स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥३८॥ त्र्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः । अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥३९॥ वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा । शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप ॥४०॥ परांबापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे । तथा त्रेतायुगे किंचिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः ॥४१॥ द्वापरे च विशेषेण न्यूना

में दुष्ट प्राणी रहते हैं व कलियुग में भी जन्म लेते हैं ॥२९॥ और अपने किए हुए कर्मों के प्रभाव से दुःख भी उन्हें भोगना पड़ता है । युग के प्रभाव से वे जीव पुनः उसीतरह का कर्म किया करते हैं ॥३०॥ **जनमेजय ने कहा**– हे महाभाग ! आप युगों के समस्त धर्मों को मुझे सुनाएँ जिस युग में धर्म जिस प्रकार का होता है उसे हम जानना चाहते हैं ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजवर्य ! मैं आपको युगों के धर्मों का वर्णन सुना रहा हूँ उसे आप मुझसे सुनें । युग के प्रभाव से साधु पुरुषों का भी चित्त परिवर्तित हो जाता है ॥३२॥ उदाहरण के लिए तुम्हारे पिता परीक्षित् को लिया जा सकता है । कलियुग के प्रभाव के कारण आपके पिता ने ऋषियों का अपमान कर दिया । यद्यपि तुम्हारे पिता धर्म को जानते थे, वे स्वभावतः महात्मा थे । फिर भी उनकी बुद्धि को कलियुग ने विकृत कर दिया ॥३३॥ यदि ऐसी बात नहीं होती तो आपके पिता तो क्षत्रिय थे । महाराज ययाति के वंश में उत्पन्न हुए थे वे तपस्वी ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प कैसे लपेट देते ॥३४॥ ज्ञानी आदमी को इस बात को जानना चाहिए कि यह सब युग के प्रभाव से हो रहा है । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह प्रयत्न पूर्वक धार्मिक कार्यों को करे ॥३५॥ राजन् ! सत्ययुग में सभी ब्राह्मण वेदों के विषय में पारङ्गत होते थे । वे सदा परा शक्ति की अर्चना करते थे और देवी के दर्शन की लालसा रखते थे ॥३६॥ वे गायत्री तथा प्रणव के ही ज़प में आसक्त रहते थे और गायत्री का ध्यान करते थे । गायत्री मंत्र का जप करते थे तथां प्रधान रूप से मायाबीज का जप करते थे ॥३७॥ वे प्रत्येक गावों में पराम्बा का मन्दिर बनवाते थे । अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुकूल कर्मों को करते रहते थे । वे सत्य, शौच तथा दया का पालन करते थे ॥३८॥ ऋक्, यजुः एवं सामवेद में वर्णित अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे तथा तत्त्वज्ञान में निपुण होते थे । सत्ययुग में क्षत्रिय अपनी प्रजाओं का पालन करते थे ॥३९॥ वैश्यगण, कृषि, वाणिज्य

सत्ययुगस्थितिः । पुर्वं ये राक्षसा राजँस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥४२॥ पाखंडनिरताः प्रायो भविन्त जनवंचकाः । असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः ॥४३॥ दांभिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः । शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः ॥४४॥ वेदनिन्दाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः। यथा यथा कलिर्वृद्धिं याति राजँस्तथा तथा ॥४५॥ धर्मस्य सत्यमूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत् । तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः॥४६॥ असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ । शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः ॥४७॥ भविष्यंति कलौ राजन्युगे वृद्धिंगताः किल । कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥४८॥ पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप । स्वभर्तृवंचका नित्यं धर्मभाषणपंडिताः ॥४९॥ भवंत्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे । आहारशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते ॥५०॥ शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम । वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥५१॥ धर्मस्य संकरे जाते नूनं स्याद्वर्णसंकरः । एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥५२॥ स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते ।

तथा गोसेवा करते थे । हे राजन् ! सत्ययुग में शुद्र त्रैवर्णिकों की सेवा करते थे ॥४०॥ उस युग में सभी वर्णों के मनुष्य पराम्बा की पूजा करते रहते थे। इसी तरह त्रेतायुग में भी धर्म की स्थिति थी; किन्तु सत्ययुग की अपेक्षा इस युग में धर्म की स्थिति कुछ कम हो गयी । द्वापर युग में सत्ययुग की अपेक्षा धर्म की स्थिति अत्यधिक कम हो गयी । हे राजन् ! इन युगों में जो राक्षस थे वे ही कलियुग में आकर ब्राह्मण हो गये ॥४२॥ वे सब ब्राह्मण पाखण्ड करने वाले, तथा प्रायः लोगों को धोखा देने वाले, आसत्य भाषण करने वाले, तथा वैदिक धर्म से रहित होते हैं ॥४३॥ वे दम्भ करने वाले, ही लोक में चतुर तथा अभिमानी तथा वेद के ज्ञान से रहित होते हैं । उनमें से कुछ ब्राह्मण तो शूद्रों की सेवा करने वाले, तथा कुछ विभिन्न प्रकार के धर्मों का प्रवर्तन करने वाले (चलाने वाले) होते हैं ॥४४॥ वे वेदों की निन्दा करने वाले; क्रूर प्रकृति के धर्मभ्रष्ट तथा वकवाद करने वाले होते हैं । हे राजन् ! जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता है वैसे ही वैसे ॥४५॥ सत्य जिसका मूल है उस धर्म का भी उसी क्रम से क्षय होता जाता है । उसी तरह से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी धर्म से रहित होते जाते हैं ॥४६॥ कलियुग में दूसरे वर्णों के लोग भी झूठ बोलने वाले तथा पापी हो जाते हैं । ब्राह्मण भी शूद्रों के धर्म का पालन करने वाले तथा दान लेने में अत्यन्त निपुण होते हैं ॥४७॥ हे राजन् ! कलियुग के बढ़ जाने पर सभी लोग अपने मनोऽनुकूल आचरण करने वाले तथा स्त्रियाँ स्वैरिणी हो जाती हैं । वे काम तथा लोभ से ग्रस्त होकर ॥४८॥ पाप करने वाली, झूठ बोलने वाली तथा सर्वदा क्लेश करने वाली होती हैं । वे अपने पतियों से धोखा करने वाली तथा धर्म की बातों की चर्चा करने में अत्यन्त निपुण होती हैं ॥४९॥ हे राजन् ! कलियुग में इसी प्रकार की पाप करने वाली स्त्रियाँ होती हैं । हे राजन् ! आहार की शुद्धि हो जाने पर चित्त की शुद्धि होती है ॥५०॥ हे राजवर्य ! जब मनुष्य का चित्त शुद्ध होता है तब ही उसमें धर्म का प्रकाश होता है । वर्णाश्रमध[illegible] हो जाता है ॥५१॥ धर्म का सांकर्य हो जाने पर वर्णसांकर्य

महांतोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप ॥५३॥ कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित् । तस्मादत्रमनुष्याणां स्वभावात्पापकर्मणाम् ॥५४॥ निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र समान्योपायतो भवेत् । जनमेजय उवाच– भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥५५॥ कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत् । यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥५६॥ व्यास उवाच– एक एव महाराजतत्रोपायोऽस्ति नापरः । सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदांबुजम् ॥५७॥ न सन्त्यघानि तावंति यावती शक्तिरस्ति हि । नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥५९॥ अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि । किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥५९॥ प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः । तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥६०॥ निरंतरं परांबाया नामसंस्मरणं चरेत् । छित्वा भित्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥६१॥ देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते । रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥६२॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदांबुजम् । अजपां नाम गायत्रीं जपंति निखिला

होता है । हे राजन् ! इस प्रकार से कलियुग में सभी धर्म के मिट जाने पर कही पर सभी अपने वर्ण तथा आश्रम के धर्म का त्याग करने लगते हैं ॥५२-५३॥ कलियुग का यही स्वभाव है । इसका कोई भी दूसरा परिहार नहीं है । अतएव इसको किसी भी साधन से मिटाया नहीं जा सकता है । अतएव कलियुग में स्वाभाविक रूप से पापकर्म करने वाले मनुष्यों का पाप से छूटकारा किसी भी सामान्य उपाय से नहीं हो सकता है । **राजा जनमेजय ने कहा–** हे सभी शास्त्रों में विशारद तथा सभी धर्मों को जानने वाले भगवन् व्यासजी ॥५५॥ अधर्म से व्याप्त इस कलियुग में मनुष्यों की कौन सी गति होगी ? यदि कोई उपाय हो तो कृपा करके आप उसे मुझे बतलाइये ॥५६॥ **व्यासजी ने कहा–** हे महाराज कलियुग में पापों से छूटकारा पाने का एक ही उपाय है, उससे भिन्न कोई भी दूसरा उपाय नहीं है । इस युग में पापों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्यों को देवी के चरण कमलों का ध्यान करना चाहिए ॥५७॥ देवी के नामों में जितने पापों को भस्म कर देने की शक्ति है, पापों की संख्या उतनी नहीं है । यदि कोई असमर्थ व्यक्ति भी देवी का नाम अनायास ही लेता है तो वह नाम स्मरण करने वाले को क्या-क्या प्रदान कर देता है ? इस बात को ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता भी नहीं जानते हैं ॥५९॥ किए गये पापों का यही प्रायश्चित्त है कि श्रीदेवी के नामों का स्मरण किया जाय । अतएव हे राजन् ! कलियुग में पाप के भय से मनुष्य को पुण्यक्षेत्र में निवास करना चाहिए ॥६०॥ पुण्यक्षेत्र में रहकर निरन्तर पराम्बा के नामों का स्मरण करते रहना चाहिए । ऐसा करने वाला व्यक्ति किसी के अंगों को काट देता है, या किसी का शिर काट देता है, या सम्पूर्ण विश्व की यदि हत्या भी कर देता है तो उसको उसका पाप नहीं लगता है ॥६१॥ जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक देवी के नामों का स्मरण करता है, उसको किसी भी प्रकार का पाप नहीं लगता है । हे राजन् ! मैंने यह आपको सभी शास्त्रों के रहस्यमय अर्थ को बतला दिया ॥६२॥ इन सारी बातों का विचार करके तुम देवी के चरण कमलों की सेवा करो । सबलोग अजपा नामक गायत्री का जप करते रहें ॥६३॥ किन्तु

जनाः ॥६३॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत् । गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपंति हृदयांतरे ॥६४॥ महिमानं न जानंति मायाया वैभवं महत्। एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप । युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

राजोवाच– **तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम । गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्था ॥१॥ फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः । विधिं तु तीर्थयात्राया नियमांश्च विशेषतः ॥२॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च । येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्ययनानि च ॥३॥ नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती । नर्मदा गंडकी सिंधुर्गोमती तमसा तथा ॥४॥ काबेरी चंद्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा । चर्मणवती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा ॥५॥ एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः । तासां समुद्रगाःपुण्याः स्वल्पुण्या**

वे लोग माया के वैभव तथा उसकी महिमा को नहीं जानते हैं । हे राजन् ! आपने जो प्रश्न किया था मैं उन सभी प्रश्नों का उत्तर आपको दे दिया । अतएव युगों के धर्मों की व्यवस्था के विषय में और क्या सुनना चाहते हो ?॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भूलोक के तीर्थों का माहात्म्य वर्णन

राजा जनमेजय ने व्यासजी से कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझे भूलोक के उन तीर्थों, क्षेत्रों तथा नदियों को बतलाइये जहाँ पर मनुष्यों को तीर्थयात्रा के प्रसंग में जाना चाहिए ।।१।। उन तीर्थों में किए जाने वाले स्नानों तथा दानों से होने वाले फल की प्राप्ति को तथा तीर्थयात्रा के नियमों तथा विधियों को आप मुझे विशेष रूप से बतलाएँ ।।२।। **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप सुनें ! मैं आपको अनेक तीर्थों को बतलाऊँगा । तथा जिस तीर्थ में देवी के जो श्रेष्ठ मन्दिर हैं उन सबों को भी बतलाऊँगा ।।३।। हे राजन् ! नदियों में गंगानदी, यमुनानदी, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, काबेरी,

ह्यनब्धिगाः ॥६॥ समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः । मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः ॥७॥ भवंति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा।
पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥८॥ प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च । विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा ॥९॥ श्रीशैलश्च
सुमेरुश्च पर्वतो गंधमादनः । सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम् ॥१०॥ तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् । आश्रमास्तु तथा पुण्या
मुनीनां भावितात्मनाम् ॥११॥ विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः । नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः ॥१२॥ वामनाश्रम आख्यातः
शतयूपाश्रमस्तथा । येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नाऽतिविश्रुतः ॥१३॥ एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले । मुनिभिः परिगीतानि पावनानि
महीपते ॥१४॥ एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते । दर्शनात्पापहारीणि वसंति नियमेन च ॥१५॥ कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसंगेन च
कानिचित्। तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा ॥१६॥ तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते । द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य
च ॥१७॥ पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च । कदाचिद्द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥१८॥ दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां

चन्द्रभागा, वेत्रवती, चर्मण्वती, सरयू, तापी, तथा साभ्रमती ये सभी नदियाँ श्रेष्ठ हैं ॥४-५॥ इन सबों के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों श्रेष्ठ नदियाँ है । इन
नदियों में जो नदियाँ समुद्र पर्यन्त जाती हैं, अधिक पुण्यमयी हैं । जो नदियाँ समुद्र पर्यन्त नहीं जाती हैं वे उन सबों की अपेक्षा कम पुण्यवती हैं ॥६॥
समुद्र पर्यन्त जाने वाली नदियों में वे नदियाँ अधिक पुण्यवती हैं जिनकी धारा कभी सुखती नहीं है । वे सभी नदियाँ श्रावण एवं भाद्रपद इन दो मासों
में रजस्वला रहती हैं ॥७॥ कुछ नदियाँ केवल वर्षा ऋतु में ही बहती हैं और गावों को ही जल प्रदान करने वाली होती हैं । पुष्कर क्षेत्र, कुरुक्षेत्र और
धर्मारण्य क्षेत्र ये अत्यन्त पवित्र हैं ॥८॥ प्रभास क्षेत्र, प्रयाग क्षेत्र, नैमिषारण्य क्षेत्र तथा प्रख्यात अर्वुदारण्य क्षेत्र ये सभी पवित्र क्षेत्र है । इसी तरह पवित्र पर्वत
हैं ॥९॥ वे हैं श्रीशैल, सुमेरुपर्वत और गंधमादन पर्वत । इसीतरह से पवित्र सरोवर हैं । उन सबों में मानसरोवर सबसे अधिक पवित्र सरोवर हैं ॥१०॥
इसी तरह विन्दुसरोवर, अच्छोदसरोवर भी पवित्र सरोवर हैं । इसी तरह अनेक आत्मतत्त्ववेत्ता महर्षियों के आश्रम भी अत्यन्त पवित्र हैं ॥११॥ उन आश्रमों
में बदरिकाश्रम अपनी पवित्रता के लिए सदा से प्रख्यात है । बदरिकाश्रम में ही नर एवं नारायण इन दो मुनियों ने कठोर तपस्या की थी ॥१२॥ इसी तरह
वामनाश्रम तथा शतयूपाश्रम भी अपनी पवित्रता के लिए प्रख्यात हैं । जिस ऋषि ने जहाँ पर तपस्या किया वह आश्रम उसी ऋषि के नाम से प्रख्यात हो
गया ॥१३॥ इस तरह इस भूतल पर असंख्य पवित्र स्थान हैं, जिन सबों की गणना मुनियों ने की है ॥१४॥ हे राजन् ! इन स्थानों पर विद्यमान देवी
के जो स्थान हैं, उनका दर्शन करने मात्र से ही समग्र पाप विनष्ट हो जाता है । इन स्थानों में देवी के भक्त नियमपूर्वक निवास करते हैं ॥१५॥ मैं प्रसङ्गतः
प्राप्त कुछ तीर्थों का भी आगे सातवें स्कन्ध में वर्णन करूँगा । इसी तरह दानों, व्रतों तथा यज्ञों का भी वर्णन करूँगा ॥१६॥ हे राजन् ! तपस्या तथा

सर्वदा नृप । मनस्तु चंचलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥१९॥ कथं शुद्धं भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् । कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहंकारो मदस्तथा॥२०॥ सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च । अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥२१॥ स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् । नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥२२॥ व्यर्थं तीर्थाभिगमनं पापमेवावशिष्यते । क्षालयंति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम् ॥२३॥ मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप । शक्तानि यदि चेत्तानि गंगातीरनिवासिनः ॥२४॥ मुनयो द्रोहसंयुक्तः कथं स्युर्भावितेश्वराः । वसिष्ठसदृशाः प्रख्या विश्वामित्रादयः किल॥२५॥ रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा । चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम् ॥२६॥ यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यांतरं मलम् । विशेषेण तु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते ॥२७॥ न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न । न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम्॥२८॥ वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः । रागद्वेषान्वितःकामं गंगातीरसमाश्रितः ॥२९॥ आडीबकं महायुद्धं

पुण्यकर्म बुद्धिसापेक्ष होते हैं । तीर्थ, तपस्या तथा व्रत ये सबके सब द्रव्यशुद्धि, क्रिया शुद्धि तथा मनःशुद्धि सापेक्ष होते हैं । इन सबों में कहीं पर द्रव्य की शुद्धि होती है और कहीं पर क्रिया की शुद्धि होती है । मन की शुद्धि तो सबों के लिए सर्वत्र दुर्लभ होती है । अर्थात् मनः शुद्धि होना अत्यन्त कठिन होता है । क्योंकि हे राजन् ! मन अत्यन्त चञ्चल है और वह अनेक वस्तुओं को अपना विषय बनाता रहता है । अतएव हे राजन् ! वह कैसे शुद्ध हो सकता है । काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और मद ये सबके सब सभी तपस्याओं, तीर्थों तथा व्रतों में विघ्न करने वाले होते हैं । अहिंसा का पालन, सत्यभाषण, चोरी न करना, पावित्र्य का पालन तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखना ॥२०-२१॥ हे राजन् ! अपने वर्ण तथा आश्रम के लिए विहित धर्म का पालन सभी तीर्थों का फल प्रदान करने वाला होता है । यदि तीर्थ यात्रा के प्रसंग में संसर्गदोष के कारण मार्ग में नित्यकर्म का परित्याग करना पड़ता है ॥२२॥ तो फिर तीर्थ यात्रा करना व्यर्थ ही है, क्योंकि उससे पाप ही लगता है । किञ्च तीर्थ तो शरीर को ही धोने का काम करते हैं, वे मानसिक मलों का प्रक्षालन करने में समर्थ नहीं हैं । यदि वे मानसिक मल का प्रक्षालन करने में समर्थ होते तो फिर गंगा के तट पर रहने वाले ॥२४॥ तथा सदा ईश्वर का ध्यान करने वाले मुनिजन भी कैसे दूसरों से द्रोह करने वाले हो जाते । वसिष्ठ और विश्वामित्र इत्यादि प्रख्यात महर्षि भी परस्पर में एक दूसरे से द्रोह करने वाले हो गये ॥२५॥ ये महर्षि भी राग और द्वेष करने वाले, काम तथा क्रोध से व्याकुल हो गये थे । अतएव चित्त की शुद्धि रूपी तीर्थ गंगा आदि तीर्थों से भी अधिक पवित्र है ॥२६॥ यदि सौभाग्यवशात् चित्त की शुद्धि हो गयी तो वह अन्तःकरण के भी दोष का प्रक्षालन कर देती है । हे राजन् ! विशेष रूप से ज्ञानी पुरुष के साथ किये जाने वाले सत्सङ्ग मानसिक मल को विनष्ट करने का काम करते हैं ॥२७॥ वेदाध्ययन करने, शास्त्राध्ययन करने, व्रत करने तथा तपस्या करने से या यज्ञ करने अथवा दान करने से चित्त की शुद्धि नहीं होती है ॥२८॥ महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माजी के पुत्र

विश्वामित्रवसिष्ठयोः । जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम् ॥३०॥ विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः । शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चंद्रस्य
कारणात् ॥३१॥ कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाऽऽडीदेहभाक्कृतः । शापादडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥३२॥ निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो
मानसस्य च । चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचंचुप्रताडनैः ॥३३॥ वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ ।युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम् ॥३४॥
राजोवाच– कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ । परस्परं वैरपरौ संजातौ केन हेतुना ॥३५॥ शापं परस्परं केन कारणेन महामती । दत्तवंतौ
मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम् ॥३६॥ व्यास उवाच– हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा । बभूव रविवंशीयो रामचंद्रस्य पूर्वजः ॥३७॥
अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् । प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम् ॥३८॥ वरुणस्तस्य संतुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते । दधार गर्भं राज्ञस्तु
भार्या परमसुंदरी ॥३९॥ राजा बभूव संतुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् । चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम् ॥४०॥ सुषुवे तनयं नारी
सर्वलक्षणसंयुतम् । मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशांपते ॥४१॥ कृतवाञ्जातकर्मादि संस्कारविधिमुत्तमम् । ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो
विशेषतः ॥४२॥ जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसां पतिः । आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तदा ॥४३॥ पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम्।

थे वेद विद्याओं में निपुण थे तथा गंगा के तट पर निवास करते थे फिर भी वे राग तथा द्वेष करने वाले हो गये । बक तथा आडी का रूप धारण करके युद्ध करने वाले वसिष्ठ और विश्वामित्र का देवताओं को भी आश्चर्यित करने वाला महायुद्ध निरर्थक ही द्वेषवशात् हुआ ॥३०॥ राजा हरिश्चन्द्र को लेकर महर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र को शाप दे दिया उसके कारण वे बक का शरीर धारण कर लिए ॥३१॥ और विश्वामित्र ने वसिष्ठ को शाप दे दिया उसके कारण वे आडी पक्षी का शरीर धारण कर लिए । इस तरह शाप ग्रस्त होकर दोनों आड़ी (शरारि) और बक होकर मानसरोवर के तट पर निवास करने लगे। द्वेष वशात् इन दोनों महर्षियों ने अपनी चोंच और नख के प्रहार के द्वारा घोर युद्ध करते रहे ॥३२-३३॥ उन दोनों का पूरे दश हजार वर्ष तक युद्ध चलता रहा । वे परस्पर में मदोन्मत्त दो सिंहों के समान युद्ध कर रहे थे ॥३४॥ **राजा जनमेजय ने पूछा–** हे महर्षे ! वे दोनों तो मुनियों में श्रेष्ठ थे, तपस्वी और धर्म का पालन करने वाले थे । वे किस कारण से परस्पर में एक दूसरे से वैर करने लगे ॥३५॥ वे दोनों महाबुद्धिमान थे । उनलोगों ने मनुष्य को दुःख देने वाले शाप को परस्पर में एक दूसरे को क्यों प्रदान किया ॥३६॥ **व्यासजी ने कहा–** प्राचीन काल में श्रीरामचन्द्र के पूर्वज सूर्यवंशीय महाराज त्रिशंकु के पुत्र हरश्चिचन्द्र हुए ॥३७॥ उनकी कोई सन्तान नहीं थी । पुत्र प्राप्ति की कामना से राजर्षि हरिश्चन्द्र ने वरुण की प्रसन्नता के लिए नरमेध यज्ञ करने की प्रतिज्ञा की ॥३८॥ उन्होंने विधिपूर्वक गर्भाधान संस्कार किया । उसके फलस्वरूप राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी ने समस्त लक्षणों से सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया । हे राजन् ! पुत्र के उत्पन्न होने से राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥४१॥ उन्होंने जातकर्म आदि संस्कारों को विधिपूर्वक किया । विशेष रूप से उन्होंने

कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम् ॥४४॥ कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् । सत्यवाग्भव राजेंद्र संकल्पस्तु त्वया कृतः ॥४५॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः । संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृतांजलिः ॥४६॥ स्वामिन्करोमि तं यज्ञं सर्वथा विधिपूर्वकम् ।
मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्यवागहम् ॥४७॥ पूर्णे मासे विशुद्ध्येत धर्मपत्नी सुरोत्तम । विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः स पशोर्मखः ॥४८॥
व्यास उवाच– **इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः । राजा बभूव संतुष्टः किंचिच्चिंतातुरस्तथा ॥४९॥ पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं**
नृपालये । आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः ॥५० । कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् । उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा॥५१॥
असंस्कृतं सुतं स्वामिन् यूपे बध्नामि तं कथम् । संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥५२॥ दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम्।
असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥५३॥ वरुण उवाच– **प्रतारयसि राजेन्द्र कृत्वा समयमग्रतः । दुस्त्यजस्तव जानामि**
सुतस्नेहोह्यपुत्रिणः॥५४॥ गृहंब्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात् । कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम् ॥५५॥ भवितव्यं त्वया तात तदा

ब्राह्मणों को सुवर्ण, पृथिवी तथा दुधारु गायों का दान दिया ॥४२॥ जब राजा के घर में पुत्रजन्म का उत्सव पूरा हो गया उस समय ब्राह्मण का वेष बनाकर वरुण आये ॥४३॥ राजा ने उनका सविधि पूजन करके उन्हें विधिपूर्वक आसन पर बैठाया । राजा ने जब उन ब्राह्मणश्रेष्ठ से आने का प्रयोजन पूछा तो वरुण ने उन्हें बतलाया कि मैं वरुण हूँ ॥४४॥ तुम अपने इस पुत्र को ही यज्ञ का पशु बनाकर अत्यन्त पवित्र यज्ञ करो । क्योंकि आपने नरपशु वाले यज्ञ को करने की प्रतिज्ञा की है आप अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करें ॥४५॥ वरुण की बातों को सुनकर राजा दुःख के मारे व्याकुल हो गये । अपने मन के कष्ट को रोक कर राजा ने हाथ जोड़कर वरुण से कहा ॥४६॥ हे स्वामिन् ! मैं उस यज्ञ को अवश्य करूँगा और विधिपूर्वक करूँगा । मैंने जो प्रतिज्ञा की है उस प्रतिज्ञा को पूरा करूँगा । किन्तु मेरी पत्नी एक महीने में जननाशौच से शुद्ध होयेगी ॥४७॥ हे देवोत्तम ! पशु का यज्ञ तो पत्नी के पवित्र होने पर ही करना चाहिए ॥४८॥ **व्यासजी ने कहा–** राजा के इस प्रकार कहने पर वरुण अपने घर चले गये । उससे राजा भी सन्तुष्ट हो गये; किन्तु उनको कुछ चिन्ता तो बनी ही हुई थी ॥४९॥ महीना पूरा होने पर वरुण सुन्दर बोलने वाले ब्राह्मण का रूप बनाकर राजा के घर राजा की परीक्षा करने के लिए आये ॥५०॥ पूजा करने के बाद सुख-पूर्वक बैठे हुए वरुण से राजा नम्रता पूर्वक युक्ति-युक्त वाणी में कहे ॥५१॥ हे स्वामिन् ! संस्कार रहित अपने पुत्र को यज्ञ स्तम्भ में कैसे बाँध सकता हूँ । उसको संस्कार युक्त क्षत्रिय बनाकर मैं उस उत्तम यज्ञ को करूँगा ॥५२॥ ऐसा मैं तब ही करूँगा जबकि आप मुझे दीनसेवक जानकर मेरे ऊपर दया करेंगे । संस्कारहीन बालक का तो किसी भी कर्म में अधिकार नहीं है ॥५३॥ **वरुण ने राजा ने कहा–** राजेन्द्र समय को आगे बढ़ाकर तुम मुझसे धोखा कर रहे हो । मैं समझता हूँ कि तुम पुत्र रहित थे । अब पुत्र मोह के कारण अपने इस पुत्र को त्यागना तुम्हें दुष्कर

सत्यवचोऽन्वितम् । अन्यथा त्वयि मुंचामि कोपं शापसमन्वितम् ।।५६।। राजोवाच— समावर्तनकर्मांते सर्वथा यादसांपते । कृत्वा पुत्रपशुं यज्ञे
यजिष्ये विधिपूर्वकम् ।।५७।। व्यास उवाच । तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञोवरुणः प्रीतमानसः । तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ।।५८।।
रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान् । संजातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः ।।५९।। यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम् ।
भयभीतस्ततः सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः ।।६०।। कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे । अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः ।।६१।।
प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम् । गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते ।।६२।। प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेंद्रियः । किं करोमि
गतः क्वापि सुतो मे सुरसत्तम ।।६३।। श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसांपति । शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम् ।।६४।। जलोदराभिधो
व्याधिर्देहे भवतु ते नृप । यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपंडित ।।६५।। इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा । राजा चिंतातुरस्तस्थौ भवने
व्यधिपीडित; ।।६६।। यदातिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह । तदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम् ।।६७।। पांथिकः प्राह पुत्रं हि पिता

हो रहा है ।।५४।। राजेन्द्र मैं तुम्हारी इस कोमल वाणी के कारण लौटकर घर जा रहा हूँ । कुछ समय तक प्रतीक्षा करने के बाद मैं तुम्हारे घर पुनः
आऊँगा।।५५।। हे तात ! आपको सत्यवक्ता बनना चाहिए । यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं क्रोध करके तुम्हें शाप दे दूँगा ।।५६।। **राजा ने कहा**— हे वरुण
इस बालक के समावर्तन संस्कार के बाद मैं अपने इस पुत्र को यज्ञ का पशु बनाकर आपकी विधिपूर्वक पूजा करूँगा ।।५७।। **व्यासजी ने कहा**— राजा की
उस बात को सुनकर वरुण प्रसन्न हो गये । ठीक हैं, ऐसा ही करो । यह कहकर वे शीघ्र ही अपने घर लौट गये और राजा भी स्थिर चित्त वाले हो
गये।।५८।। राजा का रोहित नामक पुत्र बढ़ने लगा । वह अत्यन्त चतुर तथा सभी विद्याओं में दक्ष हो गया ।।५९।। उसने यज्ञ के समस्त कारणों को जान
लिया सारी बातें विस्तार पूर्वक जानकर वह भी मृत्यु के भय से भयभीत हो गया ।।६०।। उसके बाद रोहित घर से भागकर पर्वत की गुफा में चला गया।
वह ऐसी गुफा थी वहाँ राजा भी नहीं जा सकते थे वह भयभीत होकर वहीं रहने लगा ।।६१।। जब समय पूरा हो गया तो यज्ञ की अभिलाषा से वरुण
राजा के घर आये और कहे राजन् ! अब आप यज्ञ कीजिये । दुःखी होकर राजा ने अपना मुखमलीन करके वरुण से कहा हे देवश्रेष्ठ ! मैं क्या करूँ?
मेरा पुत्र न जाने कहाँ चला गया ।।६३।। राजा की उस बात को सुनकर वरुण कुपित हो गये और उस असत्यवक्ता राजा को अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने
शाप दे दिया ।।६४।। राजन् ! तुमको जलोदर नामक रोग हो जाय । तुम कपट करने में पंडित हो और कपट करके ही तुमने मुझे धोखा दिया है ।।६५।।
इस तरह से शाप देकर वरुण अपने धाम में चले गये और चिंतातुर राजा व्याधि से पीड़ित होकर अपने घर में ही रहने लगे ।।६६।। जब राजा शापजन्य
व्याधि से अत्यन्त पीड़ित हो गये तो उस बात को उनका पुत्र भी सुना कि उसके पिता व्याधि से अत्यधिक पीड़ित हैं ।।६७।। पथिकों ने उसे बतलाया कि तुम्हारे

ते भृशदुःखितः । जलोदारविकारेण शापजेन नृपात्मज ।।६८।। विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते । यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम् ।।६९।। किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम् । देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम ।।७०।। प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः । त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रंदति व्याधिपीडितः ।।७१।। व्यास उवाच– **तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पांथिकाद्धर्मसंयुतम् । यदा चक्रे मनो गंतुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम् ।।७२।। तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत् । रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव भारत ।।७३।। मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा । करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम् ।।७४।।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

त्रयोदशोऽध्यायः

इन्द्र उवाच– **साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितो मखः । वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम् ।।१।। गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा**

पिता अत्यन्त दुःखी हैं । हे राजकुमार ! उनको शाप के कारण जलोदर नामक रोग हो गया है ।।६८।। हे मूर्ख ! इस तरह से तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होकर विनष्ट हो जायेगा । क्योंकि तुम अपने दुःखी पिता को त्याग कर इस पर्वत की गुफा में रहते हो ।।६९।। तुमने अपने इस शरीर से अपने जन्म का कौन सा फल प्राप्त किया ? हे पुत्राधाम ! तुम अपने शरीर प्रदान करने वाले पिता को दुःखी बनाकर यहाँ पर रहते हो ।।७०।। यह शास्त्र बतलाता है कि पुत्र अपने पिता के लिए अपने प्राणों का भी त्याग कर दे । किन्तु तुम्हारे कारण तुम्हारे पिता अत्यन्त पीड़ित हैं और व्याधिजन्य कष्ट से चिल्लाते रहते हैं ।।७१।। **व्यासजी ने कहा–** उस पथिक के सत्य बातें सुनकर रोहित अपनी व्यथा से आतुर बने हुए पिता को देखने के लिए जब मन बनाया ।।७२।। उसी समय ब्राह्मण का वेष बनाकर वहाँ इन्द्र आये और दयावान् के समान उससे वे कल्याणकारी बातें बतलाये ।।७२।। **इन्द्र ने कहा–** हे राजकुमार ! तुम मूर्ख हो तुम्हारे जाने की तैयारी व्यर्थ है । तुम नहीं जानते हो क्या कि तुम्हारे पिता कष्ट में है ।।७४।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के कलह का वर्णन

इन्द्र ने कहा– प्राचीन काल में तुम्हारे पिता राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से जो यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने पुत्र को यज्ञ का पशु बनाकर आपका

यूपेऽघृणः पुनः । पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति व्यथातुरः ॥२॥ इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा । स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम् ॥३॥ यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितंर रोगपीडितम् । गमनाय मतिं चक्रे तदेंद्रः प्रत्यषेधयत् ॥४॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तः पप्रच्छ गुरुमंतिके। स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम् ॥५॥ राजोवाच– भगवन्किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुलः । त्राहि मां दुःखमनसं महाव्याधिभयातुरम्॥६॥ वसिष्ठ उवाच– शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुतः । त्रयोदशविधाः पुत्राः कथिता धर्मसंग्रहे ॥७॥ तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम् । द्रव्यं दत्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम् ॥८॥ एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति । वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम् ॥९॥ व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा प्रोवाच मंत्रिणम् । अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्वतियत्नतः ॥१०॥ कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता । समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥११॥ सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालकः । न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहितवे ॥१२॥ प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद्वेदवादिनः । द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशुः किल ॥१३॥ इति संचोदितस्तेन

यज्ञ करूँगा, यह उनका अत्यन्त साहसिक कार्य था ॥१॥ अब तुम्हारे पिता कष्ट से आतुर बने हुए हैं । तुम यदि जाओगे तो तुम्हारे पिता उस यज्ञ का तुम्हें पशु बना देंगे । वे तुम्हें यज्ञस्तम्भ में बाँधकर तुम्हारा वध कर देंगे ॥२॥ इस तरह से अमित तेजस्वी इन्द्र के द्वारा रोक दिए जाने पर रोहित देवी की माया से मोहित हो गया और वह वहीं पड़ा रहा वह अपने पिता के पास नहीं गया ॥३॥ इस तरह से जब कभी भी वह अपने रोग से पीड़ित पिता के विषय में सुनता था तो उस समय इन्द्र बार-बार उसे रोक देते थे ॥४॥ हरिश्चन्द्र भी कष्ट से अत्यन्त दुःखी होकर अपने सर्वज्ञ गुरु वसिष्ठ से एकान्त में अपने कल्याण के लिए उपाय पूछे ॥५॥ **राजा ने वसिष्ठ महर्षि से कहा–** हे भगवन् ! मैं क्या करूँ मैं दुःख से अत्यन्त व्याकुल हूँ । इस महाव्याधि के भय से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ आप मेरी रक्षा करें ॥६॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा–** रोग नाश के विषय में राजा के द्वारा स्तुति किए जाने पर वसिष्ठ महर्षि ने कहा कि हे राजन् ! धर्मशास्त्रों में तेरह प्रकार के पुत्र बतलाये गये हैं ॥७॥ अतएव किसी खरीदे गये व्यक्ति को अपना पुत्र बनाकर तुम यज्ञ कर लो। तुम किसी ब्राह्मण को अभिलषित धन देकर लाओ ॥८॥ हे राजन् ! ऐसा करके यदि तुम यज्ञ करोगे तो तुम्हारे रोग का नाश हो जायेगा । और प्रसन्न होकर वरुण भी सुखी हो जायेंगे ॥९॥ **व्यासजी ने कहा–** महर्षि वसिष्ठ की बातों को सुनकर राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि तुम पूरे प्रयत्न के साथ अपने राज्य में ऐसे व्यक्ति का पता लगाओ ॥१०॥ हो सकता है कोई लोभी पिता अपने पुत्र को इस तरह से दे दे । वह जितना धन चाहे उसे उतना धन दे दो ॥११॥ हर प्रकार से तुम किसी ब्राह्मण के बालक को यज्ञ के लिए लाओ । मेरे इस काम के लिए तुम किसी प्रकार की कृपणता मत करना ॥१२॥

सचिवः कार्यहेतवे । अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥१४॥ एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुरः । निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः॥१५॥ तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मंत्रिसत्तमः । आनयामास दत्त्वाऽर्थं प्रार्थितं तद्धनं तदा ॥१६॥ समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः। राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम् ॥१७॥ राजाऽतिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः । कारयामास संभारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान्॥१८॥ प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः । बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा ॥१९॥ राजन्मा साहसं कार्षीर्मुंचैनं द्विजबालकम् । प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखं तेऽद्य भविष्यति ॥२०॥ क्रन्दत्ययं शुनः शेपः करुणा मां दुनोत्यपि । दयावान्भव राजेंद्र कुरु मे वचनं नृप ॥२१॥ परदेहस्य रक्षायै स्वदेहं ये दयापराः । ददति क्षत्रियाः पूर्व स्वर्गकामाः शुचिव्रताः ॥२२॥ त्वं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात् । पापं मा कुरु राजेंद्र दयावान्भव बालके ॥२३॥ सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप । मुंचैनं बालकं तस्मात्प्रमाणं यदि मे वचः ॥२४॥ व्यास उवाच– **अनादृत्य च तद्वाक्यं**

तुम सभी ब्राह्मणों से प्रार्थना करना कि तुम धन लेकर राजा का यज्ञ पूर्ण करने के लिए अपने पुत्र को मुझे दे दो । उसे यज्ञ का पशु बनाना है ॥१३॥ राजा के द्वारा इस प्रकार से प्रेरित किये जाने पर मन्त्री ब्राह्मण के बालक को नगरों तथा ग्रामों में खोजने लगा ॥१४॥ इस प्रकार से जब मन्त्री खोज रहा था उस सयम उसके राज्य में एक अजीगर्त नामक ब्राह्मण मिला । उसके तीन पुत्र थे । वह अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण था ॥१५॥ उस ब्राह्मण ने जितना धन चाहा उतना उसे धन देकर मन्त्री उसके मध्यम पुत्र को यज्ञपशु बनाने के लिए लाया ॥१६॥ कार्य करने में तत्पर रहने वाला मन्त्री ब्राह्मण पुत्र शुनःशोप को लाकर जो यज्ञ के योग्य पशु था उसको राजा को समर्पित कर दिया ॥१७॥ उससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गया और वह सभी स्थानों से वेदज्ञ ब्राह्मणों तथा यज्ञ की सामग्री को मँगा कर यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥१८॥ यज्ञ जब प्रारम्भ हो गया उस समय महामुनि विश्वामित्र वहाँ पर विद्यमान थे, वे यूप में बाँधे हुए शुनः शेप को देखकर राजा को यज्ञ करने से रोक दिये ॥१९॥ उन्होंने राजा से कहा– हे राजन् ! यह साहसिक कार्य मत करो, इस ब्राह्मण बालक को छोड़ दो । मैं इस कार्य के लिए तुमसे प्रार्थना करता हूँ । ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥२०॥ यह शुनः शेप चिल्ला रहा है उसको देखकर मुझे दया के कारण कष्ट हो रहा है । राजन् आप दयालु बन जाइये आप मेरी बात मान लीजिये ॥२१॥ पहले के शुचिव्रत तथा स्वर्ग चाहने वाले क्षत्रिय ऐसे दयालु होते थे कि वे दूसरों के शरीर की रक्षा करने के लिए अपना प्राण दे देते थे ॥२२॥ तुम एक ऐसे क्षत्रिय हो कि अपने शरीर की रक्षा के लिए बलपूर्वक ब्राह्मण के पुत्र को मार रहे हो । हे राजेन्द्र ! आप ऐसा पाप न करें इस बालक पर दया करें ॥२३॥ राजन् ! आप भी स्वयं जानते हैं कि सबों को अपने शरीर पर एक समान प्रेम होता है । अतः यदि मेरी वाणी प्रामाणिक है तो आप इस बालक को छोड़ दें ॥२४॥ **व्यासजी ने कहा**– कि राजा ने महर्षि विश्वामित्र की बातों का समादर नहीं किया क्योंकि वह दुःख के कारण अत्यन्त आतुर था । उसने बालक को नहीं छोड़ा ।

राजादुःस्त्रातुरो भृशम् । न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः ॥२५॥ उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः। मंत्रं पाशाधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः ॥२६॥ शुनःशेपोऽपि तं मत्रंमसकृद्वधकर्शितः । प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम्॥२७॥ स्तुवंतं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः । तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः ॥२८॥ रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ । विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः॥२९॥ न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः । रोषं दधार मनसा राजोपरि स गधिजः ॥३०॥ एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः। सूकरं हंतुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे ॥३१॥ वृद्धब्राह्मणवेषेण विश्वामित्रेण वंचितः । सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम् ॥३२॥ पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् । वसिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥३३॥ क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे बृथा ब्राह्मणवेषभृत् । वकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं बहसि दांभिक ॥३४॥ कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ । अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम् ॥३५॥ बकवद्ध्यायसे यस्मात् तस्मात्त्वं वै बको भव । इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः ॥३६॥ त्वमप्याडिर्भवायुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि । व्यास उवाच– एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ ॥३७॥ अंडजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी । एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ

यह देखकर विश्वामित्र महर्षि राजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥२५॥ दयालु विश्वामित्र महर्षि वेदज्ञों में श्रेष्ठ थे । वे शुन:शेप को ऐक मन्त्र का उपदेश दे दिए, जो वरुण को प्रसन्न करने वाला था ॥२६॥ वध के भय से भयभीत शुनः शेप ने भी उस मन्त्र का बार-बार जप वरुण का स्मरण करते हुए प्लुत स्वर से किया ॥२७॥ वरुण ने जब यह जाना कि मुनि अजीगर्त का पुत्र उनकी स्तुति कर रहा है, तो वे करुणासागर वहाँ पर आकर शुन:शेप को यज्ञ स्तम्भ सें खोल दिये ॥२८॥ और रजा को रोग से रहित करके अपने घर चले गये विश्वामित्र भी उस मुनि बालक को मृत्यु से बचाकर उसको अपना पुत्र बना लिये ॥२९॥ राजा हरिश्चन्द्र महर्षि विश्वामित्र की बात को नहीं माने इसके कारण महर्षि के मन में राजा के प्रति क्रोध बना रहा ॥३०॥ एक बार राजा घोड़े पर सवार होकर वन में सूकर का वध करने के लिए कौशिकी नदी के तट पर गये ॥३१॥ विश्वामित्र महर्षि ने ब्राह्मण का वेष बनाकर राजा से छल करके उनसे माँगकर उनका सब कुछ तथा अद्भुत राज्य ले लिया ॥३२॥ महर्षि वसिष्ठ के यजमान हरिश्चन्द्र को महर्षि विश्वामित्र ने बहुत कष्ट दिया, अतएव उस वन में आये हुए विश्वामित्र से महर्षि वसिष्ठ ने कहा ॥३३॥ हे दुर्बुद्धि क्षत्रियाधम तुम व्यर्थ के ब्राह्मण का वेष धारण करते हो । हे दम्भी तुम बक के धर्म वाले हो व्यर्थ के गर्वित हो रहे हो ॥३४॥ हे जाल्म ! तुम निरपराध तथा मेरे यजमान राजा को इतना अधिक कष्ट क्यों दिये ॥३५॥ चूकि तुम बक पक्षी के समान झूठमुठ का ध्यान करते हो अतएव तुम बक हो जाओ । इस तरह से अभिशप्त होकर महर्षि विश्वामित्र ने महर्षि वसिष्ठ से कहा जब तक मैं बक पक्षी का शरीर धारण करूँगा तब तक तुम भी आडि (शरारी) हो जाओ । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से वे दोनों एक दूसरे को शाप देकर

बकरूपभाक् ॥३८॥ विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे । अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम् ॥३९॥ आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ । दिने दिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ ॥४०॥ दुःखदं सर्वलोकानां क्रंदमानावुभौ भृशम् । चंचुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम्॥४१॥ जघ्नतू रुधिरक्लिनने पुष्पिताविव किंशुकौ । एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी ॥४२॥ स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यंत्रितौ । राजोवाच– **कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥४३॥ तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे ।** व्यास उवाच– **युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४४॥ तत्राजगामानिमिषैवृतः सर्वैर्दयापरैः । तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्ध्यतोः विनिवार्य च ॥४५॥ शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् । ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥४६॥ सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् । विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥४७॥ मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः । मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥४८॥ कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् । को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥४९॥ अहंकारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् । तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि**

अपने क्रोध के कारण पीड़ित हो गये ॥३७॥ वे दोनों शीघ्र ही पक्षी हो गये । मानसरोवर के तट पर आडि तथा बक का रूप धारण करके रहने लगे। विश्वामित्र महर्षि बक का रूप धारण करके एक वृक्ष पर अपना घोसला बनाकर उस मानसरोवर के तट पर रहने लगे । वसिष्ठ महर्षि भी आडि का रूप धारण करके दूसरे वृक्ष पर अपना घोसला बनाकर रहने लगे । वे दोनों एक दूसरे से द्वेष करते थे और प्रतिदिन वे क्रोध करके एक-दूसरे से युद्ध करते थे ॥३८-४०॥ वे दोनों समस्त प्राणियों को दुःख देने वाले उस युद्ध को अपनी चोंच, पंख तथा नख के प्रहार से कर रहे थे ॥४१॥ खून से लथपथ वे एक दूसरे पर प्रहार करते थे और देखने में वे विकसित पलास वृक्ष के समान लगते थे । इस तरह से हे महाराज ! पक्षी का रूप धारण करके रहते हुए उन दोनों मुनियों के बहुत वर्ष बीत गये ॥४२॥ क्योंकि वे शाप के बन्धन से बन्धे थे । **राजा जनमेजय ने व्यासजी से पूछा–** वे दोनों महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र शाप से मुक्ति कैसे प्राप्त किए ॥४३॥ हे व्यासजी ! आप मुझे इसी बात को बतलाइये । मुझे इस विषय में अत्यधिक उत्कण्ठा है । **व्यासजी ने कहा–** उन दोनों को युद्ध करते हुए देखकर लोक पितामह ब्रह्माजी ॥४४॥ वहाँ पर देवताओं के साथ आये और युद्ध करने वाले उन दोनों को जगत् के कर्ता ब्रह्माजी ने रोका ॥४५॥ उन दोनों द्वारा परस्पर में दिये गये शाप को उन्होंने समाप्त कर दिया । उसके बाद सभी देवता अपने-अपने निवास स्थान पर चले गये और प्रताप सम्पन्न ब्रह्माजी हंस पर सवार होकर अपने लोक में चले गये । फिर विश्वामित्र तथा वसिष्ठ महर्षि भी अपने-अपने आश्रम पर चले गये ॥४६-४७॥ ब्रह्माजी के द्वारा उपदेश प्राप्त करके विश्वामित्र तथा वसिष्ठ ये दोनों महर्षि परस्पर में स्नेहपूर्वक रहने लगे । इस तरह से मैत्रावरुणि (वसिष्ठजी) ने भी अकारण ही विश्वामित्र महर्षि के साथ युद्ध किया । यह युद्ध दुःखप्रद था । अतएव संसार में कौन ऐसा मनुष्य अथवा देव या दानव

दुर्लभा ॥५०॥ यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् । तीर्थदानतपःसत्यं यत्किंचिद्धर्मसाधनम् ॥५१॥ (श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा । तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥१॥ सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा । तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता॥२॥ तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः । कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥३॥) वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना । तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥५२॥ देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् । ध्यायंस्तस्याः पदांभोजं कलिदोषभयार्दितः ॥५३॥ एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् । अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच— **मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् । वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह ॥१॥ किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा।**

है ॥४९॥ जो अहंकार पर विजय प्राप्त करके सर्वदा सुखी रह सकता है । अतएव हे राजन् चित्त की शुद्धि महापुरुषों के लिए भी दुर्लभ है ॥५०॥ प्रयास पूर्वक चित्त की शुद्धि प्राप्त करनी चाहिए । चित्त की शुद्धि किए बिना तीर्थयात्रा, दान तथा तपस्या ये सबके सब जो भी धर्म के साधन हैं, व्यर्थ हो जाते हैं ॥५१॥ (श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती है— सात्त्विक, राजस एवं तामस । वह सभी शरीर धारियों के शरीरों में धर्म करते समय रहा करती है ॥१॥ उनमें सात्त्विकी श्रद्धा लोक में दुर्लभ है । वह शास्त्रोक्त समस्त फलों को देने वाली होती है । विधि से सम्पन्न राजसी श्रद्धा सात्त्विकी श्रद्धा के आधा फल प्रदान करती है ॥२॥ हे राजन् ! तामसी श्रद्धा पूर्वक किए गये तीर्थ आदि से कोई भी फल नहीं मिलता है । उससे यश भी नहीं प्राप्त होता है । क्योंकि तामसी श्रद्धा वाले मनुष्य काम तथा क्रोध से अभिभूत रहा करते हैं ॥३॥) मनुष्यों को चाहिए कि वह अपने चित्त को वासना से रहित बनाकर श्रवण आदि करते हुए तीर्थ में निवास करे और सदा देवी की पूजा करे ॥५२॥ वह वाणी से देवी के नामों का उच्चारण करे और ध्यान करे ॥५३॥ इसतरह आचरण करने वाले को कभी कलि का भय नहीं होता है और पापी मनुष्य भी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

वसिष्ठजी के मैत्रावरुणि नाम पड़ने का कारण

राजा जनमेजय ने व्यासजी से पूछा— हे मुने ! वसिष्ठजी का नाम मैत्रावरुणि क्यों हुआ ? वे तो ब्रह्माजी के पुत्र थे ॥१॥ उनका यह नाम किसी कर्म

ब्रूहि मे वदतां श्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम् ॥२॥ व्यास उवाच– **निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः । निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः ॥३॥ मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम् । मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव ॥४॥** राजोवाच– **कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञो ब्रह्मात्मजो मुनिः । चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः ॥५॥ अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने । कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः ॥६॥** व्यास उवाच– **कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् । संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल ॥७॥ धर्मं करोतु भूपालश्चरन्ति तापसास्तपः । सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह ॥८॥ कामोक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा । लोभाहंकारसंयुक्ताश्चरन्ति दुश्चरं तपः ॥९॥ भवंति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः । ब्राह्मणास्तु तथा राजन्न कोऽपि सत्त्वसंयुतः ॥१०॥ ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः । दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात् ॥११॥ द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला । दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके ॥१२॥ पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित् । यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात् ॥१३॥ महांतोऽपि न मुच्यंते**

विशेष के कारण पड़ा अथवा किसी गुण विशेष के कारण पड़ा । हे तपस्विवर्य ! उनके इस नाम का कारण मुझे आप बतलाइये ॥२॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! आप सुनिये । वसिष्ठ महर्षि ब्रह्माजी के पुत्र हैं । वे महाराज निमि के शाप के कारण अपने पूर्वशरीर का त्याग करके पुनः शरीर को ग्रहण किए । चूकि वे मित्रावरुण नामक देवता से इस शरीर को प्राप्त किए अतएव उनका लोक में मैत्रावरुणि नाम प्रख्यात हुआ ॥४॥ **राजा ने पूछा**– महाराज निमि ने उनको क्यों शाप दे दिया ?। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि महर्षि वसिष्ठ को राजा निमि का अत्यन्त भयंकर शाप लग गया ॥५॥ मुनि वसिष्ठ किसी का अपराध तो करते नहीं थे । फिर भी उन निरपराध मुनि को राजा ने शाप क्यों दे दिया ? हे महर्षे आप उस शाप का प्रारम्भ से कारण बतलाइये ॥६॥ **व्यासजी ने कहा**– उसका निश्चित कारण तो यह संसार ही है इस बात को मैं तुम्हें बतला चुका हूँ । हे राजन् ! यह संसार माया के सत्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से व्याप्त है ॥७॥ चाहे राजा धर्म करें अथवा तपस्वी तप करें, किन्तु ये सबके सब मायिक गुणों से दूषित होने के कारण पूर्णरूप से निर्दोष नहीं हो पाते हैं ॥८॥ सभी राजागण और मुनिगण काम एवं क्रोध से युक्त हैं । मुनिगण लोभ तथा अहंकार से युक्त होकर कठोर तपस्या करते हैं ॥९॥ हे राजन् क्षत्रिय रजोगुण से भरे पड़े हैं । हे राजन् ! इसी प्रकार कोई ब्राह्मण भी सात्त्विक नहीं है ॥१०॥ महर्षि वसिष्ठ ने राजा निमि को पहले शाप दिया उसके पश्चात् राजा निमि ने ऋषि वसिष्ठ को शाप दे दिया । भाग्य के विपरीत होने के कारण दोनों राजा और ऋषि ने अत्यधिक कष्ट प्राप्त किया ॥११॥ हे राजन् ! त्रिगुणात्मक संसार में द्रव्य की शुद्धि, क्रिया की शुद्धि तथा मन की शुद्धि ये तीनों अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥१२॥ यह पराशक्ति का प्रभाव है इसका कोई भी और कही भी उल्लंघन नहीं कर सकता । वह पराशक्ति जिस पर कृपा करना चाहती हैं, उसको क्षण भर में ही मुक्त बना

हरिब्रह्महरादयः । पामरा अपि मुच्यंते यथा सत्यव्रतादयः ॥१४॥ तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये । तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम् ॥१५॥ तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च । रागदंभादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत् ॥१६॥ इक्ष्वाकुकुलसंभूतो निमिर्नाम नराधिपः । रूपवान्गुणसंपन्नो धर्मज्ञो लोकरंजकः ॥१७॥ सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः । द्वादशस्तनयो धीमन्प्रजापालनतत्परः॥१८॥ पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ । जयंतपुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः ॥१९॥ बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना यजेयमिति राजसी । यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च ॥२०॥ इक्ष्वाकुं पितरं दृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिवः । कारयामास संभारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः ॥२१॥ भृगुमंगिरसं चैव वामदेवं च गौतमम् । वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम् ॥२२॥ मुनीनामंत्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान् । यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान् वेदवित्तमान्॥२३॥ राजा संभृतसंभारः संपूज्य गुरुमात्मनः । वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः ॥२४॥ यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे । गुरुस्त्वं सर्ववेत्ताऽसि कार्यं मे कुरु सांप्रतम् ॥२५॥ यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम् । पंचवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे ॥२६॥ यस्मिन्यज्ञे

देती है ॥१३॥ पराम्बा के नहीं चाहने पर महान् श्रीहरि, ब्रह्मा तथा शंकरजी भी नहीं मुक्त हो पाते हैं और देवी की कृपा होने पर सत्यव्रत आदि सामान्य मनुष्य भी मुक्त हो जाते हैं ॥१४॥ देवी के हृदय में क्या है ? इस बात को त्रैलोक्य में कोई भी नहीं जानता है । फिर भी यह सुनिश्चित है कि देवी पराम्बा अपने भक्तों के वश में हो जाया करती हैं ॥१५॥ अतएव दोषों का विनाश करने के लिए देवी की भक्ति करनी चाहिए । यदि वह भक्ति राग, द्वेष एवं दम्भ से युक्त हुयी तो वह भक्त को विनष्ट कर देती है ॥१६॥ इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न एक निमि नामक राजा थे । वे देखने में सुन्दर समस्त सद्गुणों से सम्पन्न, धर्म के जानकार और प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले थे ॥१७॥ वे सत्य बोलते थे, दान करते थे, यज्ञ करते थे, ज्ञानवान् थे तथा पावित्र्य का पालन करने वाले थे । वे महाराज इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र थे । वे प्रजाओं का पालन करने वाले तथा बुद्धिमान थे ॥१८॥ उन्होंने गौतम ऋषि के आश्रम के सन्निकट अपनी नगरी बसायी । उनकी नगरी को बसाने का उद्देश्य ब्राह्मणों का कल्याण करना था । उनकी नगरी का नाम जयन्त पुर था ॥१९॥ उनके मन में यह बात अयी कि मैं यज्ञ करूँ । उनके मन में ऐसा यज्ञ करने की इच्छा थी कि जो यज्ञ बहुत दिन तक चले तथा उसमें बहुत दक्षिणा दी जाय॥२०॥ उस यज्ञ को करने के लिए उन्होंने अपने पिता इक्ष्वाकु से आज्ञा ली तथा महात्माओं ने जैसा कहा उसके अनुसार उन्होंने सारी सामग्री भी एकत्रित कर ली ॥२१॥ उन्होंने उस यज्ञ में भृगु, अंगिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह तथा क्रतु इत्यादि ऋषियों को आमन्त्रित किया। ये सब मुनि सर्वज्ञ तथा वेदपारंगत थे । ये सभी तपस्वी वेदों के श्रेष्ठ ज्ञाता थे और यज्ञविद्या में प्रवीण थे ॥२३॥ धर्मज्ञ राजा ने सभी यज्ञ की सामग्रियों को एकत्रित करके तथा अपने गुरु वसिष्ठ महर्षि की पूजा करके विनय पूर्वक कहा ॥२४॥ हे कृपानिधे ! हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, आप

समाराध्या देवी श्रीजगदम्बिका । तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम् ॥२७॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम् । इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥२८॥ पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः । स दीक्षां गमितो देवः पंचवर्षशतात्मिकाम् ॥२९॥ तस्मात्त्वमंतरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव । इन्द्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः ॥३०॥ आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय । राजोवाच– **मया निमंत्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥३१॥ संभाराः संभृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो । इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः ॥३२॥ कथं त्यक्त्वाऽद्य मे कार्यमुद्यतो गंतुमाशु वै । न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम ॥३३॥ गंताऽसि धनलोभेन लोभाकुलितचेतनः । निवारितोऽपि राज्ञा सजगामेंद्रमखं गुरुः ॥३४॥ राजाऽपि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत् । इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः ॥३५॥ दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि । निमिना पंचसाहस्री दीक्षा तत्र कृता नृप ॥३६॥ ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युतः । शक्रयज्ञसमाप्ते तु पंचवर्षशतात्मके ॥३७॥ आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया ।आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च ॥३८॥ तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयाऽपहृतो**

मेरा यज्ञ करवा दीजिये । आप मेरे गुरु हैं तथा सर्वज्ञ हैं, अतएव आप मेरे इस कार्य को पूरा कर दें ॥२५॥ मैंने यज्ञ की सारी सामग्री को जुटा लिया है और उसे संस्कार सम्पन्न भी कर लिया है । पाँच हजार वर्ष तक की यज्ञ की दीक्षा लेने का मेरा मन है ॥२६॥ जिस यज्ञ में श्री जगदम्बिका देवी समाराध्य हैं, उसी यज्ञ को मैं जगदम्बा की प्रसन्नता के लिए विधिपूर्वक करना चाहता हूँ ॥२७॥ महाराज निमि के वाक्य को सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ने महाराज निमि से कहा राजन् ! पहले से ही इन्द्र ने यज्ञ कराने के लिए मेरा वरण कर लिया है ॥२८॥ इन्द्र भी पराशक्ति का यज्ञ करने के लिए तैयार हैं । उन्होंने भी पाँच सौ वर्ष तक चलने वाले यज्ञ की दीक्षा ले ली है ॥२९॥ अतएव हे राजन् ! आप उतने दिन के अन्तराल की प्रतीक्षा करें इन्द्र का यज्ञ समाप्त हो जाने पर इन्द्र का कार्य पूरा करके ॥३०॥ मैं यहाँ चला आऊँगा । अतएव आप तब तक प्रतिक्षा करें । **राजा ने कहा**– कि मैंने यज्ञ करने के लिए दूसरे ऋषियों को बुला लिया है ॥३१॥ सम्पूर्ण सामग्री भी मैंने जुटा ली है, अतएव मैं कैसे इतने दिन तक प्रतीक्षा कर सकता हूँ । हे ब्रह्मन् ! आप इक्ष्वाकुवंशीयों के कुलगुरु हैं और वेदज्ञों में सर्वश्रेष्ठ है ॥३२॥ अतएव आज मेरा काम छोड़कर कैसे जाने के लिए तैयार हो गये हैं ? हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे यज्ञ को छोड़कर आपका जाना उचित नहीं है ॥३३॥ धन के लोभ से व्याकुल अन्तःकरण वाले आप धन के लोभ से ही वहाँ जाना चाहते हैं । राजा ने महर्षि वसिष्ठ को बहुत रोका किन्तु वे इन्द्र के यज्ञ में चले गये ॥३४॥ राजा निमि भी उदास हो गये और उन्होंने महर्षि गौतम की पूजा की और हिमालय के बगल में सागर के समीप यज्ञ करना आरम्भ कर दिया ॥३५॥ उस यज्ञ के कार्य में उन्होंने दक्षिणा भी बहुत अधिक प्रदान की । महाराज निमि ने पाँच हजार वर्षों के लिए यज्ञ की दीक्षा ग्रहण की ॥३६॥ धन और गौओं के द्वारा ऋत्विक् गण भी बहुत अधिक पूजित किए गये जिससे कि सभी ब्राह्मण प्रसन्न हो

भूशम् । नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः ॥३९॥ वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भुताऽवमानतः । अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः ॥४०॥ शापं च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः । यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वाऽन्यं गुरुमात्मनः ॥४१॥ दीक्षितोऽसि बलान्मंद मामवज्ञाय पार्थिव। वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ॥४२॥ पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते । व्यास उवाच– इति तद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः ॥४३॥ सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम् । कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः ॥४४॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत् । मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाऽऽकुलः ॥४५॥ हित्वा मां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम् । न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥४६॥ संतोषं ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम् । पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षद्वेदवेदांगवित्तमः ॥४७॥ न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् । आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि ॥४८॥ त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चंडालादधिको यतः । वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः

गये । जब पाँच सौ वर्षों वाला इन्द्र का यज्ञ समाप्त हो गया तो ॥३७॥ राजा निमि के यज्ञ को देखने की इच्छा से महर्षि वसिष्ठ आये । आने के पश्चात् वे वहाँ पर राजा से मिलने के लिए रुक गये । उस समय राजा निमि गहरी नींद में सोए हुए थें अतएव सेवकों ने उन्हें नहीं जगाया । राजा मुनि वसिष्ठ के पास नहीं आ सके ॥३९॥ महर्षि वसिष्ठ ने सोचा कि राजा मेरा अपमान कर रहा है, वे क्रुद्ध हो गये । वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गये ॥४०॥ और अपने क्रोध के अधीन होकर उन्होंने राजा निमि को शाप दे दिया । मैं तुम्हारा गुरु था तुमने अपने गुरु का परित्याग कर दिया और दूसरे को गुरु बना लिया॥४१॥ हे मूर्ख ! तुमने उस नये गुरु से यज्ञ की दीक्षा ले ली है । यद्यपि मैंने तुमको रोका था किन्तु तुम मेरी बात नहीं माने अतएव तुम देह रहित (विदेह) हो जाओगे ॥४२॥ हे राजन् तुम्हारा यह शरीर विनष्ट हो जाय । तुम विदेह हो जाओ । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** महर्षि वसिष्ठ की इस वाणी को राजा के सेवकों ने सुना ॥४३॥ वे शीघ्र ही जाकर राजा को जगाये और उनको बतलाये कि महर्षि वसिष्ठ क्रुद्ध हो गये हैं । राजा तो निरपराध थे। उनका कोई दोष नहीं था । वे मुनि वसिष्ठ के पास आये ॥४४॥ उन्होंने मधुर शब्दों में महर्षि वसिष्ठ से युक्तियुक्त शब्दों में कहा हे धर्मज्ञ ! आप ही धन के लोभ में चले गये थे । इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं है । आपका मैं यजमान हूँ; किन्तु आपने मेरा परित्याग किया । मैंने आपको रुकने के लिए बहुत अधिक प्रार्थना भी किया था । किन्तु आप इस निन्दित कर्म को करके भी लज्जित नहीं हो रहे हैं ॥४६॥ आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं । साक्षात् आप वेदों तथ वेदांगों के सर्वश्रेष्ठ जानकार भी हैं । हे ब्राह्मणवर्य ! आप इस बात को भी जानते हैं कि ब्राह्मण का सबसे बड़ा धर्म सन्तोष है ॥४७॥ आप ब्राह्मण धर्म की अत्यन्त सूक्ष्म गति (स्वरूप) को नहीं जानते हैं । इस धर्म को नहीं जानने के कारण मुझको अपना अपराधी समझकर शाप देना चाहते हैं ॥४८॥ क्रोध तो चाण्डाल से भी अधिक नीच है । अतएव क्रोध का बिल्कुल परित्याग कर देना चाहिए और व्यर्थ के ही क्रोध से अभिभूत होकर आपने मुझे शाप

प्रपातितः ॥४९॥ तवपि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः । एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा ॥५०॥ परस्परं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ
बभूवतुः । वसिष्ठस्त्वतिचिंतार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः ॥५१॥ निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत् । वसिष्ठ उवाच– **राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं**
पतत्वद्य तवेति वै ॥५२॥ किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम् । अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद सांप्रतम् ॥५३॥ तथा मे देहसंयोग;
पूर्ववत्समपद्यताम् । यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः ॥५४॥ समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि । वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच
तं सुतम् ॥५५॥ मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव । तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः ॥५६॥ पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो
भविष्यसि । भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥५७॥ एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् । कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च
पितामहम् ॥५८॥ विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोः किल । जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम् ॥५९॥ कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता
वरुणालयम् । यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता ॥६०॥ दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम् । जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप॥६१॥

दे दिया है ॥४९॥ जिस तरह से मेरा शरीर विनष्ट हो जायेगा उसी तरह क्रोध से भरा हुआ आपका भी यह शरीर विनष्ट हो जाय । इस तरह से राजा
ने मुनि वसिष्ठ को तथा वसिष्ठ ने राजा निमि को शाप दे दिया ॥५०॥ परस्पर में एक दूसरे से शाप प्राप्त करके वे दोनों दुःखी हो गये । वसिष्ठ तो
अत्यधिक चिन्ता से ग्रस्त हो गये । वे जाकर ब्रह्माजी के शरणागत हो गये ॥५१॥ उन्होंने राजा के द्वारा दिये गये शाप के विषय में ब्रह्माजी को बतलाया।
वसिष्ठ महर्षि ने ब्रह्माजी से कहा– राजा ने मुझे शाप दे दिया है कि आपका यह शरीर आज ही विनष्ट हो जाय ॥५२॥ हे पिताजी ! अब मैं क्या करू?
मुझे देह के नाश जन्य कष्ट प्राप्त होने वाला है । अब दूसरा देह धारण करने में मेरे दूसरे पिता कौन होंगे ? उसे आप बतलायें ॥५३॥ मैं चाहता हूँ
कि दूसरा शरीर धारण करने पर भी मेरी ज्ञान सम्पत्ति पहले के ही समान बनी रहे । अतएव हे पिताजी ! मेरे इस शरीर में मुझे जिस तरह का ज्ञान
है, उसी तरह का ज्ञान उस नये शरीर में भी बना रहे ॥५४॥ हे महाराज ! आप इस कार्य को करने में समर्थ हैं । अतएव आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।
वसिष्ठजी की बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहा ॥५५॥ तुम मित्रवरुण के तेज (वीर्य) में प्रवेश करके स्थित हो जाओ । तुम उससे अयोनिज
के रूप में जन्म लोगे ॥५६॥ फिर दूसरा देह प्राप्त करके भी तुम धार्मिक ही होओगे । सभी प्राणियों के तुम सुहृद वेदों के ज्ञाता, सर्वज्ञ तथा सबों से
पूजित होओगे ॥५७॥ ब्रह्माजी द्वारा इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त करके महर्षि वसिष्ठ वरुण महर्षि के आश्रम में चले गये । जाने से पहले उन्होंने ब्रह्माजी
को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा भी की ॥५८॥ वहाँ पर जाकर महर्षि मित्र तथा वरुण महर्षि के शरीर में अपने शरीर का परित्याग करके केवल जीवांश
से ही प्रवेश कर गये ॥५९॥ एक बार उर्वशी नाम की अप्सरा स्वेच्छा से उस आश्रम में अपनी सखियों के साथ आयी । उन दोनों ऋषियों ने दिव्य रूप

विवशौ चारुसर्वांगीं देवकन्यां मनोरमाम् । आवां त्वमनवद्यांगि वरयस्व समाकुलौ ॥६२॥ विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि । तथोक्ता
सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थिताऽवशा ॥६३॥ कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे । सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना ॥६४॥
तयोस्तु पतितं वीर्यं कुंभे दैवादनावृते । तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ ॥६५॥ अगस्त्यः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चापरस्तथा ।
मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥६६॥ प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः । इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं बव्रे पुरोहितम् ॥६७॥
वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव । विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह ॥६७॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम्।
शापाद्देहांतरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

तथा यौवन से सम्पन्न उस अप्सरा को देखा । उस अप्सरा को देखकर वे दोनों ऋषि कामातुर हो गये । उन दोनों ऋषियों ने काम मोहित होकर सर्वाङ्ग
सुन्दरी देवकन्या अप्सरा उर्वशी से कहा– हे सुन्दर अङ्गों वाली ! हमदोनों कामाकुल हैं । अतएव तुम हम दोनों को अपने पति के रूप में वरण करो ॥६२॥
और हे सुन्दरि ! तुम यहीं रहकर अपनी इच्छा के अनुसार हमलोगों के साथ बिहार करो । उन दोनों ऋषियों से इस प्रकार कहे जाने पर अप्सरा उर्वशी
विवश होकर वहाँ रुक गयी ॥६३॥ उसने मित्र तथा वरुण इन दोनों एक साथ रहने वाले महर्षियों के घर में भी अपनत्व का भाव स्थिर कर लिया । उसने
सुन्दरी ने उन दोनों महर्षियों के भाव को अच्छी तरह से जान लिया ॥६४॥ संयोगवशात् उन दोनों महर्षियों का वीर्य एक खुले मुख वाले घड़े में गिर
पड़ा । उसी से हे राजन् ! दो सुन्दर मुनि कुमार प्रकट हो गये ॥६५॥ पहले बालक का नाम अगस्त्य हुआ और दूसरे का नाम वसिष्ठ हुआ । मित्रावरुण
के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण ये दोनों ऋषिकुमार ऋषियों में श्रेष्ठ हो गये ॥६६॥ पहला बालक महातपस्वी था और वह वन में चला गया । राजा
इक्ष्वाकु ने वसिष्ठ नामक उस बालक को अपना पुरोहित बना लिया ॥६७॥ हे राजन् ! तुम्हारा वंश सुखी रहे एतदर्थ राजा ने वसिष्ठ नामक ऋषि का
पालन पोषण किया । खासकर उस बालक को मुनि जानकर वे उस बालक से अत्यधिक प्रेम करते थे ॥६७-६८॥ इस तरह से मैंने तुम्हें शाप के कारण
महर्षि वसिष्ठ के देहान्त की प्राप्ति तथा मित्रवरुण के वंश में उत्पन्न होने से संबद्ध सारी बातों को बतलाया ॥६९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

पञ्चदशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल । निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद ॥१॥ व्यास उवाच । वसिष्ठेन च संप्राप्तः पुनर्देहो नराधिप । निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनंतरम् ॥२॥ यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्रह्माणः क्रतौ । ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिंतयन् ॥३॥ किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः । अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥४॥ किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल । अवश्यंभाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे ॥५॥ मंत्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः । रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम्॥६॥ गंधैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः । मंत्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपुजितम् ॥७॥ समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः । ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप ॥८॥ विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् । प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत ॥९॥ यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते । देववदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वांछितम् ॥१०॥ दृप्तः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् ।**

निमि का नेत्रों की पलकों में निवास का वर्णन

राजा जनमेजय ने कहा– आपने महर्षि वसिष्ठ के देहान्तर की प्राप्ति का वर्णन किया अब आप मुझे यह बतलाइये कि निमि ने कैसे देहान्तर को प्राप्त किया ॥१॥ **व्यासजी ने कहा–** राजन् ! वसिष्ठ ने तो दूसरे देह को धारण कर लिया किन्तु राजा निमि ने शाप के पश्चात् दूसरा शरीर नहीं धारण किया॥२॥ जब महर्षि वसिष्ठ ने राजा निमि को शाप दे दिया उस समय जो ब्राह्मण क्रतु में वृत्त थे वे सबके सब सोचने लगे ॥३॥ कि अब हमलोगों को क्या करना चाहिए ? क्योंकि शाप के कारण राजा तो दग्ध हो चुके हैं । यह यज्ञ अभी सम्पूर्ण भी नहीं हो पाया है । वे धार्मिक महाराज यज्ञ की दीक्षा भी ले चुके हैं ॥४॥ अब क्या किया जाय ? ठीक दीक्षा के विपरीत कार्य हो चुका है । किन्तु भवितव्यता ही ऐसी थी । उसको कोई रोक भी नहीं सकता है ॥५॥ उसके बाद महात्माओं ने राजा निमि के शरीर को अनेक प्रकार के मंत्रों से सुरक्षित करके रखा । उसमें थोड़ी-थोड़ी श्वांस आती थी ॥६॥ वे उस शरीर की अनेक प्रकार के गन्धों और माला से पूजित करते थे । मन्त्र की शक्ति से उस शरीर को सुरक्षित किया गया था । अतएव उसमें कोई विकार नहीं आता था और उसकी प्रतिदिन पूजा भी की जाती थी ॥७॥ जब यज्ञ समाप्त हो गया तो वहाँ पर सभी देवता आये । सभी ऋत्विजों ने उन देवताओं की प्रार्थना की और उससे सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥८॥ ऋत्विजों ने देवताओं से प्रार्थना करके उनको बतलाया कि राजा की स्थिति कैसी है । उस समय उदास राजा को देखकर देवताओं ने कहा हे राजन् ! हमलोग आप से प्रसन्न हैं । आप जो चाहें उस वरदान को माँग ले ॥९॥ इस यज्ञ के प्रभाव से आपको

एवमुक्तो निमेरात्मा संतुष्टस्तानुवाच ह ॥११॥ न देहे मम वांछाऽस्ति सर्वदैव विनश्वरे । वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टावस्तु सुरोत्तमाः ॥१२॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम् । एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥१३॥ प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् । मखेनानेन संतुष्टा सा तेऽभीष्टं विधास्यति ॥१४॥ स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम् । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा ॥१५॥ प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम् ॥१६॥ दृष्ट्वा प्रमुदिता सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि । प्रसन्नायां देवतायां राजा बव्रे वरं नृप ॥१७॥ ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि । नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति ॥१८॥ ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदंबिका । ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः ॥१९॥ नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति । निमिषं यांति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम् ॥२०॥ तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा । पतंगाश्च भविष्यंति पुनश्चानिमिषाः सुराः ॥२१॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता । आमंत्र्य व

इस शरीर की अपेक्षा उत्तम शरीर मिल सकता है । आप चाहे देवता का शरीर अथवा मनुष्य का शरीर जो आपको अभिप्रेत हो उसको हमलोग दे सकते हैं ॥१०॥ जिस तरह से आपके दृप्त (गर्वयुक्त) पुरोहित इस संसार में सुखपूर्वक हैं उसी तरह आप भी नया शरीर प्राप्त करके रहिये । इस तरह देवताओं के कहने पर राजा निमि की आत्मा सन्तुष्ट हो गयी और देवताओं से बोली ॥११॥ देह तो हमेशा विनष्ट होता रहता है । अतएव मैं शरीर धारण नहीं करना चाहता हूँ । अतएव हे देववर्यों मेरा निवास सभी शरीर धारियों की दृष्टि में हो जाय ॥१२॥ मैं सबों के नेत्रों में वायु बनकर विचरण किया करूँ। इस तरह से कहे जाने पर देवताओं ने निमि की आत्मा से कहा हे महाराज इसके लिए तो आप सर्वेश्वरी सर्वकल्याणकारिणी जगदम्बा की प्रार्थना करें । वे आपके इस यज्ञ से सन्तुष्ट हैं । वे आपके अभीष्ट अर्थ की सिद्धि प्रदान करेंगे। ॥१४॥ देवताओं द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा ने उस परा देवता की स्तुति अनेक प्रकार के दिव्य स्तोत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी गद्गद वाणी से की ॥१५। उससे प्रसन्न होकर देवी ने राजा को प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय देवी के शरीर से करोड़ों सूर्य की दीप्ति निकल रही थी उनका शरीर उत्तम सौन्दर्य से मण्डित था ॥१६॥ देवी का दर्शन करके सभी लोग अपना जन्म सफल मानने लगे और अत्यन्त प्रसन्न हुए । उस परा देवता जगदम्बा के प्रसन्न हो राजा जाने पर राजा ने उनसे वरदान माँगा ॥१७॥ हे माँ ! आप हमें वह ज्ञान प्रदान कीजिये जिससे कि मेरी मुत्ति हो जाय और मेरा निवास सभी जीवों के नेत्रों में हो जाय ॥१८॥ उसके बाद प्रसन्न होकर देवताओं की स्वामिनी जगदम्बिका ने कहा तुम्हें वह निर्मल ज्ञान तब प्राप्त होयेगा जब तुम्हारा प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जायेगा । अभी तो तुम्हारा प्रारब्ध बचा हुआ है॥१९॥ तुम्हारा निवास सभी प्राणियों के नेत्रों में होगा । तुम्हारे ही कारण सभी प्राणियों का पक्ष्मपात (पलक गिरना) होगा ॥२०॥ मनुष्यों तथा पशुओं के नेत्रों में तुम्हारा निवास होने के ही कारण ये सभी जीव निमिष (पलक गिराने वाले) कहलायेंगे । कीड़े मकोड़े भी ऐसे ही होंगे । किन्तु

मुनीन्सर्वांस्तत्रैवांतर्हिताऽभवत् ॥२२॥ अंतर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः । विचिंत्य विधिवत्सर्वं निमेर्देहं समाहरन् ॥२३॥ अरणिं तत्र
संस्थाप्य ममंथुर्मन्त्रवत्तदा । मंत्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥२४॥ अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा । सर्वलक्षणसंपन्नः साक्षान्निमिरिवापरः॥२५॥
अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः । येनायं जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत् ॥२६॥ विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ।
समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥२७॥ एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् । नगरी निर्मिता तेन गंगातीरे मनोहरा ॥२८॥
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता । धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता ॥२९॥ वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा । विख्याता
ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥३०॥ एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् । शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया ॥३१॥ राजोवाच—
भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् । श्रुत्वा संदेहमापन्नं मनो मेऽतीव चञ्चलम् ॥३२॥ वसिष्ठो ब्राह्मणश्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः । पुत्रः
पंकजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः ॥३३॥ गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा । यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः ॥३४॥

देवता निमिष नहीं होंगे । वे अनिमिष कहलायेंगे ॥२१॥ इस तरह से निमि को वरदान देकर श्रीदेवी सभी मुनियों से मिलने के पश्चात् अन्तर्धान हो
गयीं॥२२॥ देवी के अन्तर्धान हो जाने के बाद जो वहाँ पर मुनिजन थे उन सबों ने विचार करके निमि के शरीर को सुरक्षित कर लिया ॥२३॥ उसके
बाद उस शरीर पर अरणि को रखकर उस शरीर का मन्थन इसलिए करने लगे कि उससे राजा का कोई पुत्र उत्पन्न हो जाय । अरणि मन्थन मन्त्र पूर्वक
होम करते हुए होता था ॥२४॥ जब अरणि मन्थन हुआ तो उससे एक पुत्र पैदा हुआ । वह राजा के सभी लक्षणों से सम्पन्न और देखने में दूसरे निमि
के समान प्रतीत होता था ॥२५॥ चूकि उसकी उत्पत्ति अरणि मन्थन से हुई अतएव उसका नाम मिथि हुआ । चूकि उसकी उत्पंत्ति जनक (अपने पिता)
से हुयी । अतएव वह जनक के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२६॥ चूकि निमि विदेह हो गये थे अतएव उनके वंश में उत्पन्न होने वाले सभी राजा विदेह कहलाने
लगे ॥२७॥ इस तरह से महाराज निमि का पुत्र जनक के नाम से प्रख्यात हुआ । उसने गंगा के तट पर अपनी मनोहर नगरी बसाया ॥२८॥ वह गोपुर
तथा अट्टालिकाओं वाली नगरी मिथिला के नाम से प्रख्यात हुयी । वह नगर धन धान्य से सम्पन्न बड़े-बड़े बाजारों वाली थी ॥२९॥ इस वंश में जो दूसरे
भी राजा हुए वे भी जनक ही कहलाये वे सबके सब प्रख्यात ज्ञानी हुए तथा विदेह शब्द से अभिहित किए जाते थे । हे राजन् ! इस प्रकार से मैंने आपको
महाराज निमि की उत्तम कथा सुनायी । मैंने आपको विस्तार पूर्वक बतलाया कि शाप के कारण ही वे विदेह हो गये थे ॥३१॥ **राजा जनमेजय ने कहा—**
हे भगवन् ! आपने निमि के शाप का कारण मुझे बतलाया । किन्तु इस आख्यान को सुनकर मेरा मन चञ्चल और हो गया है ॥३२॥ महर्षि वसिष्ठ तो
ब्रह्माजी के पुत्र थे, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ थे तथा राजा निमि के पुरोहित थे फिर उनको राजा ने क्यों शाप दे दिया ॥३३॥ उनको गुरु तथा ब्राह्मण जानकर

ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसंभवः । क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम् ॥३५॥ व्यास उवाच– क्षमाऽतिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः। क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥३६॥ सर्वसंगपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः । निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः ॥३७॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहंकारश्चतुर्थकः । दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा ॥३८॥ न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना । भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान् ॥३९॥ न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे । कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान् ॥४०॥ मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्ये तापसोत्तमाः । तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि ॥४१॥ कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः । तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धा सगरात्मजाः ॥४२॥ तस्माद्राजन्नहंकारात्संजातं भुवनत्रयम् । कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत् ॥४३॥ ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चैवाथ शंकरः । प्रभवन्ति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक् ॥४४॥ मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकांतव्यवस्थितौ । गुणानां संकरो राजन्सर्वत्र

राजा निमि ने उन्हें क्षमा क्यों नहीं किया । शुभ यज्ञ कर्म को करने पर भी वे क्रोध कैसे करने लगे ॥३४॥ इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होने वाले धर्म विज्ञान के ज्ञाता होकर भी राजा निमि ने क्रोध के वश में आकर ब्राह्मण तथा गुरु वसिष्ठजी को कैसे शाप दे दिया ?॥३५। **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उसके लिए क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है । इस संसार में क्षमा करने वाले व्यक्ति दुर्लभ हैं । विशेष रूप से जो व्यक्ति समर्थ है, उसमें तो क्षमा का होना और कठिन है ॥३६॥ तपस्वी तथा मुनि को ऐसा होना चाहिए कि उसकी किसी में भी आसक्ति न हो । जो व्यक्ति भूख तथा निद्रा पर विजय प्राप्त कर लिया है, उसे योगाभ्यास में निष्ठित होना चाहिए ॥३७॥ काम, क्रोध, लोभ तथा अहंकार इन चारों को समझ पाना अत्यन्त कठिन है । ये अपने शरीर के भीतर रहने वाले शत्रु हैं ॥३८॥ संसार में कोई न तो ऐसा कभी हुआ, न है और न होने वाला है, जो इन चारो शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके ॥३९॥ न तो स्वर्ग लोक में, न भूलोक में, न ब्रह्मलोक में, न वैकुण्ठ लोक में और न तो कैलास में रहने वाला कोई ऐसा जीव है जो इन शरीरान्तर्वर्ती चारो शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके ॥४०॥ जब मुनिगण, ब्रह्माजी के पुत्र तथा दूसरे श्रेष्ठ तपस्वी ये सबके सब इन तीनों गुणों से संयुक्त हैं तो मनुष्यों की कौन सी बात है ? वे तो भूलोक में रहने वाले जीव है ही ॥४१॥ महर्षि कपिल सांख्यशास्त्र के ज्ञाता, हमेशा योग के अभ्यास में संलग्न रहने वाले एवं पवित्र हैं । वे भी दैववश क्रोध के आवेश में आ गये और सगर के पुत्रों को अपने क्रोध से जलाकर भस्म कर दिये॥४२॥ हे राजन् ! यह संसार अहंकार से ही उत्पन्न है । अतएव संसार तथा अहंकार में कार्य कारण भाव है । चूकि कार्य एवं कारण में द्रव्य की अभेदता होती है । अतएव यह संसार अहंकार से रहित कैसे हो सकता है ॥४३॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर ये तीनों, तीनों गुण से युक्त हैं । इसीलिए इन तीनों में सत्त्वादि

समवस्थितः ॥४५॥ कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल । कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥४६॥ निर्गुणः परमात्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः । अलक्ष्यः सर्वसत्त्वानामप्रमेयः सनातनः ॥४७॥ तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता । दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः॥४८॥ परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि । अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥४९॥ तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदांतडिंडिमः । यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥५०॥ ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम् । वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद्बुन्द्रियोगतः॥५१॥ विकल्पास्तत्र बहवो भवन्ति मतिकल्पिताः । (कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः परे । वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद्बुद्धिभ्रंशता । बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः ॥१॥) अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद्दुर्लभं नृप ॥५२॥ तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः संगो यदा भवेत् । शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत ॥५३॥ तस्मान्नानुभवज्ञानं संभवत्यतिमानुषम् । अंतर्गतं तमश्छेत्तुं

गुणों के कार्य अलग-अलग होते हैं ॥४४॥ ऐसी स्थिति में मनुष्य में केवल सत्त्व गुण ही बना रहे यह कैसे सोचा जा सकता है ? हे राजन्! सर्वत्र गुणों का परस्पर में सांकर्य रहता है ॥४५॥ उनमें कभी सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तो कभी रजोगुण की वृद्धि होती है । कभी उनमें तमोगुण की वृद्धि होती है और कभी ये तीनों गुण समान मात्रा में रहते हैं ॥४५॥ परमात्मा निर्गुण हैं । इन गुणों के संस्पर्श से रहित हैं । वे निर्लेप और अविनाशी हैं । वे अप्रमेय और सनातन हैं । वे समस्त जीवों के लिए परोक्ष रहा करते हैं ॥४७॥ उसी तरह से पराशक्ति जगदम्बिका भी निर्गुण, ब्रह्म स्वरूपिणी, अज्ञानी जीवों के लिए दुर्ज्ञेय हैं । तथा वे सभी जीवों के भी अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हैं ॥४८॥ वे परमात्मा की शक्ति हैं । इसीलिए परमात्मा से उनकी उसी तरह से एकता है जिस तरह शक्ति और शक्तिमान में एकता होती है । जो लोग पराम्बा को परमात्मा से अभिन्न स्वरूप जानते हैं वे संसार के सभी दोषों से मुक्त हो जाते हैं ॥४९॥ वेदान्तशास्त्र इस बात का डिंडिमघोष करता है कि उस पराम्बा के स्वरूप ज्ञान से ही मुक्ति होती है । जो व्यक्ति पराम्बा के उस स्वरूप को जानता है, वह इस त्रिगुणात्मक संसार में भी रहकर मुक्त ही है ॥५०॥ ज्ञान दो प्रकार का बतलाया गया है । उनमें पहला ज्ञान शाब्दिक ज्ञान है और दूसरे प्रकार का ज्ञान वेद तथा शास्त्र के अर्थ ज्ञान से उत्पन्न होने वाला ज्ञान है ॥५१॥ इस ज्ञान के भी बुद्धि के भेद के द्वारा अनेक विकल्पात्मक भेद होते हैं । उनमें से कुछ भेद तो कुतर्क कल्पित होते हैं और कुछ भेद सुतर्क कल्पित होते हैं । अनेक प्रकार के विशेष तर्कों के करने से प्राणियों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । बुद्धि के भ्रष्ट होने पर ज्ञान का नाश होता है दूसरे प्रकार का ज्ञान अनुभव नामक ज्ञान है । यह ज्ञान दुर्लभ होता है ॥५२॥ जब ज्ञाता पुरुष का संग होता है उसी समय वह अनुभव नामक ज्ञान उत्पन्न होता है । हे भारत ! शाब्दिक ज्ञान से किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती है ॥५३॥ अनुभव नामक

शाब्दबोधो हि न क्षमः ।।५४।। यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया । तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये ।।५५।। आयासायापरं कर्म विद्याऽन्या शिल्पनैपुणम् । शीलं परहितत्वं च कोपभावः क्षमा धृतिः ।।५६।। संतोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् । विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासेन भूपते ।।५७।। विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन । (मनस्तु चंचलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् । तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये ।।२।।) कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजाः परिकीर्तिताः ।।५८।। ते तदा न भवंत्येव यदा वै निर्जितं मनः । तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ ।।५९।। यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि । भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः ।।६०।। न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां

ज्ञान अतिमानुष ज्ञान है । वह शब्द ज्ञान से नहीं उत्पन्न होता है; क्योंकि जो शाब्दिक ज्ञान है वह हृदय के भीतर विद्यमान अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने में समर्थ नहीं होता है ।।५४।। जिस तरह दीपक की बात करने से अन्धकार नहीं विनष्ट होता है । अन्धकार को विनष्ट करने के लिए तो दीपक ही जलाना पड़ता है । वह कर्म कर्म नहीं है जो बन्धनकारक होता है । उसी तरह वस्तुतः वही विद्या (ज्ञान) विद्या कहने योग्य है जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती हो।।५५।। दूसरे प्रकार के कर्म केवल श्रमकारक ही हैं । उसी तरह मुक्तिप्रद से भिन्न ज्ञान केवल शिल्पों की निपुणता मात्र हैं । उससे मनुष्य को वास्तविक लाभ की प्राप्ति सम्भव नहीं है । शीलगुण सम्पन्नता, दूसरे का कल्याण करना मन में क्रोध का अभाव हो जाना, क्षमा करना, धैर्य धारण करना ।।५६।। और संतोष करना ये सभी ज्ञान के शुभ परिणाम हैं । हे राजन् ! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यास ।।५७।। इन सबों के बिना काम इत्यादि जो आभ्यन्तर (शरीर के भीतर के) शत्रु हैं, उनका नाश नहीं हो सकता है । हे राजन् ! मन अत्यन्त चञ्चल है । वह स्वभावतः ही वश में नहीं हो पाता है और त्रैलोक्य के सभी तीनों प्रकार (सात्त्विक, राजस एवं तामस) के प्राणी उस मन के ही वश में रहा करते हैं ।।२।।) काम और क्रोध इत्यादि मन के भाव हैं वे सभी चित्त से ही उत्पन्न होते हैं ।।५८।। जब मन अपने वश में हो जाता है तो फिर वे काम-क्रोध इत्यादि के भाव नहीं उत्पन्न होते हैं । मन के वश में नहीं होने के ही कारण निमि ने महर्षि वसिष्ठ को उस तरह से क्षमा नहीं किया ।।५९।। जिस तरह से अपराध करने वाले शुक्राचार्य को महाराज ययाति ने क्षमा कर दिया था । महर्षि भृगु के पुत्र शुक्राचार्य के द्वारा तुममें इसी समय बुढ़ापा आ जाय इस तरह के शाप दे दिए जाने पर भी राजा ययाति ने शुक्राचार्य को शाप नहीं दिया था, क्योंकि उनका मन वश में था ।।६०।। राजा ने शुक्राचार्य को शाप नहीं देकर स्वयं शुक्राचार्य के शाप जन्य बुढापे को स्वीकार कर लिया । संसार में कुछ राजा शान्त स्वभाव वाले होते हैं और कुछ राजा क्रूर प्रकृति वाले होते हैं ।।६१।। यह स्वभाव के भेद के कारण होता है ।

राजा गृहीतवान् । कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः ॥६१॥ स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते । हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ॥६२॥ ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः क्रोधमूर्च्छिताः । पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ते । ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये ॥१॥ वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह । निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वंति सत्तमाः ॥२॥ वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत । नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति॥३॥ अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः । बाहुजा बलवन्तोऽपि पापभीताः कथं न ते ॥४॥ स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्वाडवान्क्षत्रियर्षभः।**

हे राजन् ! इसमें किसके दोष को कहा जाय ? पहले हैहयवंशीय क्षत्रियों के पुरोहित भृगु वंशीय ब्राह्मण थे । किन्तु धन के लोभ के कारण हैहयवंशीय क्षत्रियों ने उन भृगुवंशीय ब्राह्मणों को मूल से ही उच्छिन्न कर दिया । वे सब ब्रह्महत्या से होने वाले पाप के विषय में बिल्कुल नहीं सोचे ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

हैहयवंशीय क्षत्रियों द्वारा भृगुवंशीय ब्राह्मणों के विनाश का वर्णन

राजा जनमेजय ने पूछा– हैहयवंशीय क्षत्रिय किसके वंश में उत्पन्न हुए थे ? जिन सबों ने ब्रह्महत्या की परवाह किए बिना [illegible] भृगुवंशीय ब्राह्मणों को मारा ॥१॥ हैहयवंशीय क्षत्रियों तथा भृगुवंशीय ब्राह्मणों में होने वाले वैर का कारण क्या था ? क्योंकि कोई भी बड़ा आदमी बिना किसी कारण के क्रोध नहीं कर सकता है ॥२॥ उन सबों का अपने पुरोहितों के साथ बैर कैसे हुआ ? क्योंकि क्षत्रियों का इस प्रकार का संहारक वैर किसी छोटे-मोटे कारण से होना सम्भव नहीं है ॥३॥ अन्यथा वे निरपराधी ब्राह्मणों को कैसे मारते ? वे ब्राह्मण तो उन क्षत्रियों के पूज्य थे । वे क्षत्रिय यद्यपि बलवान् थे, किन्तु उन सबों को पाप से क्यों नही भय हुआ ?॥४॥ थोड़े से अपराध के कारण कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय ब्राह्मणों का वध नहीं कर सकता है । हे मुनिश्रेष्ठ यही मेरा

संदेहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि ॥५॥ सूत उवाच– **इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः । उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा ॥६॥**
व्यास उवाच– **शृणु पारीक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम् । आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया ॥७॥ कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः**
पृथिवीपतिः । सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः ॥८॥ दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव । सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव
सः ॥९॥ यज्वा परमधर्मिष्ठः सदादानपरायणः । ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः ॥१०॥ धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः ।
हयरत्नसमृद्ध्याढ्याः संजाताः प्रथिता भुवि ॥११॥ स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः । हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप ॥१२॥
धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन । याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूँस्ते हैहया नृप ॥१३॥ विनयं क्षत्रियाः कृत्वाऽप्ययाचंत धनं बहु । न
ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीतिवादिनः ॥१४॥ भूमौ च निदधुः केचिद्भृगवो धनमुत्तमम् । ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम्॥१५॥
कृत्वा स्थानांतरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः । त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥१६॥ याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः।

संदेह है, अतएव आप इन ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में होने वाले वैर का कारण अवश्य बतलायें । **सूतजी ने शौनकादिक महर्षियों से कहा–** इस प्रकार से राजा जनमेजय के द्वारा पूछे जाने पर माता सत्यवती के पुत्र व्यासजी ने इससे सम्बन्धित कथा को स्मरण करके प्रेमपूर्वक कहा– हे जनमेजय हैहय वंशीय क्षत्रियों के विषय में यह पुरानी कथा आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है । उसको मैंने प्राचीन काल में अच्छी तरह से जाना है ॥७॥ हैहयवंशीय कार्तवीर्य राजा पृथिवी का स्वामी था । उसका नाम अर्जुन था । उस बलवान् राजा की एक हजार भुजायें थीं । वह धर्म का पालन करने में तत्पर रहता था ॥८॥ उसने दत्तात्रेय से मन्त्र की दीक्षा ली थी । दत्तात्रेय उस समय विष्णु के अवतार माने जाते थे । सहस्रार्जुन सिद्ध पुरुष था । वह सब कुछ दान करने वाला तथा शक्ति का उपासक था । भृगुवंशीय ब्राह्मण उसके पुरोहित थे ॥९॥ वह परम धार्मिक था, वह यज्ञ करता रहता था तथा सदा दान करता रहता था । उसने अनेक यज्ञों को करके भृगुवंशीय ब्राह्मणों को प्रभूत मात्रा में धन प्रदान किया ॥१०॥ राजा के दान से सम्पत्ति प्राप्त करके भृगुवंशीय ब्राह्मण धनिक हो गये थे। वे घोड़े तथा रत्न आदि की समृद्धि से सम्पन्न होकर धनिक रूप से भूलोक में प्रख्यात हो गये थे ॥११॥ जब कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की मृत्यु हो गयी तो हैहय वंशीय क्षत्रिय निर्धन हो गये ॥१२॥ जब हैहयवंशीय क्षत्रियों को धन की आवश्यकता हुई तो वे धन माँगने की इच्छा से भृगुवंशीय ब्राह्मणों के पास गये ॥१३॥ वे हैहयवंशीय क्षत्रिय बड़ी ही नम्रता के साथ भृगुवंशीय ब्राह्मणों से अधिक धन की याचना किए । किन्तु वे भृगुवंशीय ब्राह्मण अत्यन्त लोभी होने के कारण मेरे पास धन नहीं है, मेरे पास धन नहीं है, इस तरह से कहकर उन सबों को धन नहीं दिये ॥१४॥ उन भृगुवंशीय ब्राह्मणों ने अपने उत्तम कोटि के धन को पृथिवी में गाड़ दिए और कुछ भृगुवंशीयों ने हैहयवंशीय से संभावित भय के कारण धन का ब्राह्मणों को दान दे दिया ॥१५॥

पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः ॥१७॥ ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात् । भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥ भृगूँस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वा गृहानथ । चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम् ॥१९॥ खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद्भृगुवेश्मनि । ददृशुः क्षत्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः ॥२०॥ यत्र यत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्य महातलात् । तदा ते पार्श्वभागस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि ॥२१॥ निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया । ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः ॥२२॥ अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु । निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्बाडवाञ्छरणागतान् ॥२३॥ ययुस्ते गिरदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः । आगर्भादनुकृंतंतश्चेरुश्चैव महीमिमाम् ॥२४॥ प्राप्तान् प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः । आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम् ॥२५॥ एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गविषु यतस्ततः । हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम् ॥२६॥ रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्य इव दुःखिताः । गर्भाश्च कृंतिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः ॥२७॥ अन्येऽप्याहुश्च

हैहयवंशीय क्षत्रियों के भय से भयभीत वे भृगुवंशीय ब्राह्मण अपना धन दूसरे स्थान पर रखकर अपना आश्रम छोड़कर भाग गये क्योंकि वे सब धन के लोभी थे ॥१६॥ किन्तु अपने यजमानों को दुःखी देखकर उन्हें धन देने के लिए तैयार नहीं हुए वे सब लोभग्रस्त थे । सब-के-सब भागकर पर्वतों की कन्दराओं में जाकर छिप गये ॥१७॥ हे तात ! हैहयवंशीय क्षत्रिय दुःखी हो गये थे, अतएव कार्य की महत्ता के कारण वे भृगुवंशीय ब्राह्मणों के आश्रमों में द्रव्य प्राप्त करने के लिए गये ॥१८॥ उन सबों ने देखा कि सभी भृगुवंशीय भागकर चले गये हैं । उनका आश्रम शून्य हो गया है । अतएव उन सबों ने द्रव्य को प्राप्त करने के लिए वहाँ की पृथिवी को खोद डाला ॥१९॥ भूमि को खनकर किसी क्षत्रिय ने भृगु महर्षि के घर में धन को पाया । श्रम करने से श्रान्त बने हुए उन क्षत्रियों ने उस धन को देख लिया था ॥२०॥ अब जहाँ कहीं भी धन मिलता था वहाँ से जमीन खोदकर वे सारा धन ले लेते थे, जहाँ धन मिलता था उसके पास में विद्यमान ब्राह्मणों के घर को भी वे क्षत्रिय खोद डालते थे क्योंकि वे धन के लोभी थे ॥२१॥ इस तरह उन सबों ने प्रभूत मात्रा में धन प्राप्त कर लिया । अब वे ब्राह्मण रोने लगे और उन क्षत्रियों के शरणागत हो गये ॥२२॥ ब्राह्मणों के घर से निकले हुए धन को बिटोरने वाले उन क्षत्रियों ने क्रोध करके उन ब्राह्मणों को बाण से मार डाला ॥२३॥ इसके पश्चात् वे ब्राह्मण भागकर पर्वतों की उन कन्दराओं में चले गये, जहाँ पर वे पहले थे । किन्तु वे क्षत्रिय वहाँ भी पहुँच गये और गर्भ में भी विद्यमान भृगुवंश का विनाश करते हुए वे पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥२४॥ जो कोई भी भृगुवंशीय ब्राह्मण मिल जाता था उस पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके वे उसे मार डालते थे । वे पाप की परवाह किए बिना ही बालक वृद्ध सभी भृगुवंशीय ब्राह्मणों को मार रहे थे ॥२५॥ इस तरह से जब भृगुवंशियों का विनाश हो रहा था उस समय हैहय वंशीय क्षत्रिय नारियों को भी पकड़कर उनके गर्भों को भी वे विनष्ट कर देते थे ॥२६॥ दुःखी होकर वे नारियाँ कुररी पक्षी के समान रो रही थीं; क्योंकि पाप करने के लिए जिन सबों ने निश्चय

तान्दृप्तान्मुनयस्तीर्थवासिनः । मुंचंतु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम् ॥२८॥ अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् । यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां
निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥२९॥ अत्युग्रपुण्यपानानामिहैव फलमाप्नुयात् । तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता ॥३०॥ तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा
मुनीनथ दयापरान् । भवंतः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम् ॥३१॥ एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् । वंचयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे
पाटच्चरैरिव ॥३२॥ एते प्रतारका दंभास्तादृशा बकवृत्तयः । उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥३३॥ न ददुः प्रार्थितं विप्राः
पादवृद्ध्याऽपि याचिताः । नास्तीतिवादिनः स्तब्धा दुःखितान् वीक्ष्य याजकान् ॥३४॥ धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना । न कृताः क्रतवः
किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः ॥३५॥ न संचितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन । यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम् ॥३६॥ द्रव्ये चौरभयं
प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः । वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत् ॥३७॥ येन केनाप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम् । अथवाऽसौ मृतो याति द्रव्यं

कर लिया था उन हैहयों ने उनके गर्भ को भी मार डाला था ॥२७॥ तीर्थों में रहने वाले दूसरे मुनियों ने उन हैहय वंशीयों से कहा कि आपलोग ब्राह्मणों
पर क्रोध नहीं करें । क्योंकि ब्राह्मणों पर क्रोध करना अत्यन्त भयानक होता है ॥२८॥ आप लोगों ने यह अत्यन्त निन्दित कर्म करना प्रारम्भ कर दिया
है । आपने भृगुवंशीयों की पत्नियों के गर्भ को भी विनष्ट कर दिया है । आपलोग तो श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं ॥२९॥ मनुष्य को अपने द्वारा किए गये अत्यन्त
उग्र कर्मों का फल इस लोक में ही भोग लेना पड़ता है । अतएव कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह निन्दित कर्मों को करना छोड़ दे ॥३०॥
क्रोध में भरे हुए उन हैहयवंशीय क्षत्रियों ने उन दयालु ऋषियों से कहा कि आपलोग साधु हैं, अतएव आपलोग यह नहीं जानते हैं कि इस तरह का पापकर्म
क्यों किया जा रहा है ?॥३१॥ हमारे पूर्वज महात्मा थे इन ब्राह्मणों ने छल करके उन लोगों का सारा धन ले लिया । उन लोगों ने लुटेरों के समान
उन लोगों की सम्पत्ति लूटी है ॥३२॥ ये सबके सब अत्यन्त वंचक तथा दम्भी हैं । इनकी वृत्ति बक पक्षी की वृत्ति के समान है । जब हमें धन की बहुत
बड़ी आवश्यकता पड़ी तो हमलोग प्रार्थना करते हुए इन लोगो से धन माँगे ॥३३॥ हमलोगों ने सवाई सूद पर भी इन से धन माँगा । किन्तु ये लोग
हमलोगों को धन नहीं दिये । केवल ये लोग यही कहते रहे कि हमारे पास धन नहीं है और हम यज्ञ करने वाले यजमानो को दुःखी देखकर भी चुपचाप
देखते रहे ॥३४॥ हमलोग इनसे यह पूछना चाहते हैं कि इन लोगों ने कार्तवीर्य से प्राप्त धन सम्पत्ति को संचय करके क्यों रखा ?। इन लोगों ने तो उस
धन को किसी को न तो दान दिया और ना तो कोई यज्ञ ही किया; ये केवल बहुत अधिक धन विटोरकर रखते रहे ॥३५॥ शास्त्र बतलाता है कि ब्राह्मणों
को कभी भी धन बिटोरकर नहीं रखना चाहिए । उन्हें तो धन प्राप्त करके उससे यज्ञ करना चाहिए, या दान करना चाहिए अथवा अपनी इच्छा के अनुसार
उसका भोग करना चाहिए ॥३६॥ द्रव्य के रहने पर चोर का भय रहता है कि कहीं कोई चोर न चुरा ले अथवा उसे राजा छीन न ले । अथवा धन के

त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥३८॥ पादबृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः । तथापि लोभसंदिग्धैर्न दत्तं न पुरोहितैः ॥३९॥ दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी । दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल ॥४०॥ न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः । राज्ञाऽसौ सर्वथा दंड्यो वंचको दुःखभाङ्नरः ॥४१॥ तस्माद्वयं गुरूनेतान्वंचकान्ब्राह्मणाधमान् । हंतुं समुद्यताः सर्वे न क्रोद्धव्यं महात्मभिः ॥४२॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ । विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदाराननेकशः ॥४३॥ भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवंतं धराधरम् । प्रपेदिरे रुदंत्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम् ॥४४॥ एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनकामुकैः । निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः ॥४५॥ लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः । सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः ॥४६॥ सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः । विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तिः कारणं तथा ॥४७॥ लोभात्त्यजंति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि । मातरं भ्रातरं हंति पितरं बांधवं तथा ॥४८॥ गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं**

विषय में अग्नि से भयंकर भय रहता है, कि अग्नि उसे जला न दे अथवा कोई धूर्त व्यक्ति उस धन को ठग न ले ॥३७॥ धन का यह स्वभाव होता है कि वह अपनी रक्षा करने वाले को किसी-न-किसी उपाय से त्याग ही देता है अथवा वह धनी व्यक्ति धन को छोड़कर मर जाता है और उसकी सद्गति नहीं होती है ॥३८॥ हमलोगों ने इन अपने लोभी पुरोहितों से सवाई वृद्धि पर बड़ी ही नम्रता के साथ धन माँगा किन्तु ये लोग हमलोगों को धन नहीं प्रदान किए ॥३९॥ धन की तो तीन ही गतियाँ होती है, दान, भोग तथा नाश । साधु पुरुष तो अपने धन का या तो दान करते हैं अथवा उसका उपयोग करते हैं किन्तु दुष्टों की सम्पत्ति का तो नाश ही होता है ॥४०॥ जो धन का न तो दान करता है और न तो उसका भोग ही करता है । वह कृपण धन को छिपाकर उसे रखे रहता है राजा को चाहिए कि उस कृपण व्यक्ति को दण्डित करे; क्योंकि वह व्यक्ति वंचक होता है तथा दुःख भोगने के योग्य होता है ॥४१॥ इसीलिए हमलोग इन वंचक तथा अपने गुरु ब्राह्मणों को मारने के लिए उद्यत हुए, अतएव आपलोगों को इस विषय में क्रोध नहीं करना चाहिए॥४२॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया–** कि इस तरह से युक्ति युक्त वचनों के द्वारा उन मुनियों को आश्वस्त करके वे हैहयवंशीय क्षत्रिय भृगुवंशीय ब्राह्मणों की पत्नियों को खोजते हुए पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥४३॥ भयभीत होकर भृगुवंशीय ब्राह्मणों की पत्नियाँ हिमालय पर्वत पर रोती और काँपती हुई, अत्यन्त दुःखी होकर गयीं ॥४४॥ इस तरह से धन के लोभी उन हैहयों के द्वारा ब्राह्मण अत्यधिक सताये गये और पापी क्षत्रियों के द्वारा वे मार दिये भी गये ॥४५॥ लोभ ही मनुष्यों के शरीर में रहने वाला महान् शत्रु है । वह सभी दुःखों का खजाना बतलाया गया है । वह दुःख देने वाला तथा प्राणों का नाश करने वाला है ॥४६॥ लालची होना ही सभी पापों का मूल है । वह त्रैवर्णिकों का विरोधी है तथा आने वाली समस्त विपत्तियों का

च भगिनीं तथा । लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः ॥४९॥ क्रोधात्कामादहंकाराल्लोभ एव महारिपुः । प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम् ॥५०॥ पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः सत्पथे स्थिताः । पांडवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः ॥५१॥ यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः । भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ ॥५२॥ तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम् । कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह॥५३॥ हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पांडवात्मजाः । भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥५४॥ तस्माल्लोभामिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल । हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

कारण भी है ॥४७॥ लोभीलोग धर्म का त्याग कर देते हैं तथा कुलधर्म का भी त्याग कर देते हैं । लोभी व्यक्ति माता, पिता बन्धु, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा अपनी बहन को भी त्याग देता है । जो लोभी व्यक्ति होता है, वह पाप से मोहित होता है । वह सभी निषिद्ध कर्मों को कर बैठता है । उसके लिए कुछ भी करना असंभव नहीं है ॥४९॥ काम, क्रोध, अहंकार इन तीनों से बड़ा शत्रु लोभ ही है । लोभ के परतंत्र होकर व्यक्ति अपने प्राण का भी परित्याग कर देता है । अतएव उसकी कहाँ तक विशेषता बतलायी जाय ॥५०॥ हे महाराज ! जनमेजय आपके पूर्वज पाण्डव सन्मार्गगामी थे अतएव वे बचे रहे और लोभाविष्ट होने के ही कारण सभी क़ौरव मारे गये । महाभारत युद्ध में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य तथा बाह्लीक इत्यादि एक तरफ थे दूसरी तरफ भीम, युधिष्ठर, अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण थे ॥५२॥ सभी लोगों ने लोभाविष्ट होकर परस्पर में अपने ही कुटुम्ब को मार डाला । द्रोण मारे गये, भीष्म भी मारे गये । इसीतरह पाण्डवों के पुत्र भी मारे गये । युद्ध में भाई, पितृगण तथा पुत्रगण सबके सब मारे गये ॥५४॥ अतएव जो व्यक्ति लोभ से अभिभूत है, वह कौन सा पाप नहीं कर सकता है ? पापी हैहयों ने सभी भृगुवंशीयों को मार डाला ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

सप्तदशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात् । मुक्तो वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थितोऽभवत् ॥१॥ हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि । क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत् ॥२॥ न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते कथामृतम् । पावनं सुखदं नृणां परलोके फलप्रदम् ॥३॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्यात् ॥४॥ भृगुपत्न्यो यदा राजन्हिमवन्तं गिरिं गताः । भयत्रस्ता विभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम् ॥५॥ गौरीं तत्र सुसंस्थाप्य मृण्मयीं सरितस्तटे । उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति ॥६॥ स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ताः प्रमदोत्तमाः । युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥७॥ मदंशशक्तिसंभिन्नः स वः कार्यं विधास्यति । इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादंतर्हिताऽभवत् ॥८॥ जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वरांगनाः । काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम् ॥९॥ दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये । पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥१०॥ विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम्।**

किसी ब्राह्मण के जंघे से भार्गव ब्राह्मण की उत्पत्ति की कथा का वर्णन

राजा जनमेजय ने महर्षि व्यास से पूछा– हे महर्षे ! पुनः भृगुवंश की स्त्रियों का दुःख रूपी सागर से कैसे उद्धार हुआ ? उन ब्राह्मणों की वंश परम्परा संसार में कैसे प्रारम्भ हो गयी ?॥१॥ उन ब्राह्मणों को मारने के पश्चात् हैहयों ने कौन सा कार्य किया ? वे क्षत्रिय तों लोभी थे तथा पापाचरण करने वाले थे । इन सभी बातों को आप मुझे बतलाएँ ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! आपके द्वारा कही जाने वाली यह कथा ही अमृत है । उसका पान करने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है । यह कथामृत पवित्र, सुख देने वाला, और मनुष्यों को परलोक में फल प्रदान करने वाला है ॥३॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप पापों का विनाश करने वाले और मेरे द्वारा कही जाने वाली कथा को सुनो । मैं बतलाता हूँ कि किस प्रकार से स्त्रियाँ उस भयंकर दुःख से मुक्ति पा सकीं ॥४॥ हे राजन् ! भृगवंश की पत्नियाँ हिमालय पर्वत पर चली गयीं । वे अत्यन्त भयभीत थीं हैहयों के द्वारा अत्यन्त सताये जाने के कारण उनकी सारी आशायें समाप्त हो चुकी थीं ॥५॥ हे राजन् ! नदी के तट पर वहाँ मिट्टी की गौरीदेवी की मूर्ति बनाकर उसकी अच्छी तरह से स्थापना करके उन सबों ने उस मूर्ति के ही सामने उपवास करते हुए, मर जाने का निश्चय किया ॥६॥ उन सबों को देवी ने स्वप्न में कहा तुमलोगों में कोई एक स्त्री ऐसी होगी जिसके जंघे से किसी पुरुष का जन्म होगा ॥७॥ वह मेरी शक्ति से सम्पन्न होगा वही आप सबों का कार्य सम्पन्न करेगाा । इस तरह से संदेश देकर पराम्बा जगदम्बा तो अन्तर्धान हो गयीं ॥८॥ जगने पर वे सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं । उन सभी स्त्रियों में एक स्त्री ने अपने वंश की वृद्धि के लिए

गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा ।।११।। इति ब्रुवतः संप्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः । सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान्।।१२।। गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा । रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां प्राणविवर्जिताम् ।।१३।। निराधारां क्रंदमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम्। गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं यथा ।।१४।। साश्रुनेत्रां वेपमानां संक्रुध्य बालकस्तदा । भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः ।।१५।। मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः । दर्शनाद्बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः ।।१६।। बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मांधा इव क्षत्रियाः । चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति सांप्रतम् ।।१७।। सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात् । ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत् ।।१८।। क्षणाद्वाऽमोघसंकल्पाः किं करिष्यंति दुःखिताः । इति संचिंत्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ।।१९।। ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः । प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृतांजलिपुटाश्च ते ।।२०।। ऊचुश्चैनां भयोद्विग्ना दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः । प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल ।।२१।। कृतापराधा रंभोरु

अपने जंघे में गर्भधारण किया । वह अत्यन्त चतुर तथा भयभीत थी । वह वहाँ से भागने लगी । उस ब्राह्मणी को भागते हुए उन क्षत्रियों ने देखा ।।९-१०।। वह भयभीत थी और तेजः संपन्न थी । तब वे क्षत्रिय उसे दौड़ाने लगे । वे कह रहे थे कि इस स्त्री को पकड़कर इसे मार डालो । यह गर्भिणी है और तेजी से भागी जा रही है ।।११।। इस तरह से कहते हुए अपने हाथ में खड्ग लेकर वे उस स्त्री के पास आये । उन आये हुए क्षत्रियों को देखकर वह स्त्री भयभीत हो गयी और रोने लगी ।।१२।। वह अपने गर्भ की रक्षा करने के लिए अत्यधिक भयभीत होकर चिल्ला रही थी । अपनी रोती हुयी त्राण रहित, आधार रहित, और क्षत्रियों के द्वारा अत्यन्त सतायी गयी अपनी माता की ध्वनि को उस गर्भस्थ शिशु ने सुना । जिस तरह किसी गर्भिणी हरिणी को कोई सिंह पकड़ ले उसी तरह से उसकी माता की आँखों से आँसू उमड़ गये थे, वह काँप रही थी । उसकी ध्वनि सुनकर वह बालक क्रुद्ध हो गया और उसके जंघे का भेदन करके दूसरे सूर्य के समान वह बालक बाहर निकल आया ।।१३-१५।। उस सुन्दर बालक ने अपने तेज से उन क्षत्रियों के नेत्र की ज्योति को छिन ली । उस बालक को देखते ही वे सभी क्षत्रिय अन्धे हो गये ।।१६।। वे पर्वत की कन्दराओं में जन्मांध के समान इधर-उधर भटकने लगे । वे अपने मन में सोचने लगे कि हमलोगों को यह क्या हो गया ?।।१७।। उस बालक को देखते ही हम सब लोग अन्धे कैसे हो गये ? निश्चय ही यह उस ब्राह्मणी का ही प्रभाव है, क्योंकि सती नारियों में महान् बल होता है ।।१८।। उन सबों का संकल्प अमोघ होता है । वे दुःखी होकर क्षणभर में क्या नहीं कर सकती है ? इस तरह से मन में विचार करके नेत्रहीन तथा आश्रयहीन वे हैहयवंशीय क्षत्रिय उस पतिव्रता ब्राह्मणी के शरण में गये । भयभीत होकर उन सबों ने हाथ जोड़कर उस ब्राह्मणी को प्रणाम किया ।।२०।। भयभीत होने के कारण वे अपना सुध-बुध खो चुके थे । वे क्षत्रिय अपनी दृष्टि प्राप्त करने के लिए उस ब्राह्मणी से प्रार्थना करने लगे । हे माँ ! आप प्रसन्न हो जाइये । हमलोग आपके सेवक हैं ।।२१।। हे सुन्दरि हम लोगों ने बहुत बड़ा अपराध

क्षत्रियाः पापबुद्धयः । दर्शनात्तव तन्वङ्गि जाताः सर्वे विलोचनाः ॥२२॥ मुखं ते नैव पश्यामो जन्मांधा इव भामिनि । अद्भुतं ते तपोवीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥२३॥ शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे । अंधत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि ॥२४॥ पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु । उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥२५॥ अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् । भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल ॥२६॥ अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षंतव्यं तत्त्वयाऽधुना । वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्रियैः सह ॥२७॥ कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः । सपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणतास्मो वयं च ते ॥२८॥ प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन । व्यास उवाच– **इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥२९॥ तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान् । गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल ॥३०॥ नाहं रुषान्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत् । अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः ॥३१॥ चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तंभितानि रुषावता । स्वबंधून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः ॥३२॥ अनागसो धर्मपरां स्तापसान् धनकाम्यया । गर्भानपि यदा यूयं भृगून्निघ्नंस्तु पुत्रकाः ॥३३॥**

किया है । हे सुन्दरि ! आपको देखने मात्र से हम सबलोग अन्धे हो गये हैं ॥२२॥ हे स्वामिनि ! जनमांध के समान आपके मुख को भी नहीं देख पा रहे हैं । हमलोग पापी हैं । आपकी तपस्या का बल अद्भुत है ॥२३॥ हमलोग आपके शरण में आये हैं । आप हमलोगों को दृष्टि प्रदान कीजिये । यह अन्धा हो जाना तो मरने से भी अधिक कष्टप्रद है । अतएव आप हमलोगों पर अवश्य कृपा करें ॥२४॥ आप हमें दृष्टि प्रदान करके हम क्षत्रियों को अपना सेवक बना दें । अब हमलोग यह हिंसा करना बन्द करके अपने स्थान पर चले जायेंगे ॥२५॥ इसके बाद हमलोग कभी भी इस तरह का कर्म नहीं करेंगे। हमलोग तो सभी भृगुवंशीय ब्राह्मणों के सेवक हैं ॥२६॥ हमलोगों ने अज्ञान वशात् जो पाप किया है उसे आप क्षमा कर दें । आज के बाद कहीं भी हम क्षत्रियों का भृगुवंशीयों से कोई भी वैर नहीं रहेगा ॥२७॥ हम सब लोग यही शपथ करते हैं । हे सुन्दरि ! तुम पुत्रवाली हो जाओ हम सब लोग आपके शरण में हैं ॥२८॥ कल्याणि ! आप हमलोगों पर कृपा करें । हमलोग भविष्य में कभी भी द्वेष नहीं करेंगे । **व्यासजी ने कहा–** उन सबों की इस तरह से वाणी सुनकर वह ब्राह्मणी आश्चर्यित हो गयी ॥२९॥ उसने शरणागत, दुःखी तथा दृष्टिहीन उन क्षत्रियों को आश्वस्त करती हुई कहा हे क्षत्रियों ! मैंने आपलोगों की दृष्टि को नहीं लिया है ॥३०॥ मैं क्रुद्ध नहीं हूँ आपलोगों के दृष्टिहीन होने का कारण मैं बतला रही हूँ यह जंघा से उत्पन्न होने वाला भृगुवंशीय बालक आप सबों पर क्रुद्ध हो गया है । उसने क्रुद्ध होकर आप सबलोगों की दृष्टि को स्तभित कर दिया है । यह जान गया है कि आप सभी क्षत्रियों ने गर्भस्थ भी भृगुवंशीयों को मार दिया है ॥३२॥ वे भृगुवंशीय [illegible] निरपराध थे, तपस्वी थे तथा धार्मिक थे । धन प्राप्त करने की इच्छा से आपलोगों

तदाऽयमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः । षडंगश्चाखिलो वेदोगृहीतोऽनेन चांजसा ॥३४॥ गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये । सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हंतुमिच्छति ॥३५॥ भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः । तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः ॥३६॥ तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः । प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥३७॥ व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् । प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम् ॥३८॥ स संतुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः । गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः ॥३९॥ अवश्यंभाविभावास्ते भवंति दैवनिर्मिताः । नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता ॥४०॥ पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवंतु यथासुखम्। व्रजंतु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम् ॥४१॥ इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः । और्वमामंत्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि ॥४२॥ ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता । पालयामास भूपाल तेजस्विनमतंद्रिता ॥४३॥ एवं ते कथितं राजन्भृगूणां तु विनाशनम् । लोभाविष्टैः क्षत्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल ॥४४॥ जनमेजय उवाच– श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्रियाणां च दारुणम् । कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु

ने जब गर्भस्थ बच्चों को भी मार डाला तो मैं इस शिशु को अपनी जंघा में सौ वर्षों तक धारण किए रही । वहाँ रहकर इसने छहो अंगों के साथ सम्पूर्ण वेदों को धारण किया ॥३४॥ भृगुवंशीय की वृद्धि के लिए गर्भस्थ भी यह बालक इसके पितृगणों का वध करने वाले तुम क्षत्रियों का वध करने के लिए उद्यत है ॥३५॥ मेरा बालक भगवती की कृपा से उत्पन्न हुआ है । और इस बालक के ही तेज से आप सब लोगों की दृष्टि चली गयी ॥३६॥ अतएव तुमलोग मेरी जंघा से उत्पन्न होने वाले इस बालक से प्रार्थना करो मुझसे नहीं । साष्टाङ्ग प्रणिपात से प्रसन्न होकर मेरा यह बालक आपलोगों की दृष्टि को पुनः प्रदान कर देगा ॥३७॥ **व्यासजी ने कहा–** उस ब्राह्मणी की वाणी सुनकर हैहयों ने उस बालक की स्तुति की । और मुनियों में श्रेष्ठ उस जंघे से उत्पन्न होने वाले उस बालक को उन सबों ने नम्र होकर प्रणाम किया ॥३८॥ इसके बाद वह बालक संतुष्ट होकर उन दृष्टिहीनों से कहा क्षत्रियों आप लोग अपने घर चले जायँ । मेरी बातों पर तुम लोग विश्वास करना ॥३९॥ भवितव्यता होकर ही रहती है । वह तो दैवकृत है । अतएव ज्ञानी पुरुष को उसके विषय में शोक नहीं करना चाहिये ॥४०॥ सभी लोग पहले के ही समान सुखपूर्वक रहें । आपलोग भी क्रोध का परित्याग करके अपने घर में सुखपूर्वक रहें ॥४१॥ इस तरह पुनः प्राप्त नेत्रों वाले उस मुनि का आदेश प्राप्त करके हैहयवंशीय क्षत्रिय, उस और्व से आज्ञा लेकर अपने-अपने घर चले गये ॥४२॥ वह ब्राह्मणी भी अपने उस पुत्र को लेकर अपने आश्रम में चली गयी । और उस तेजस्वी बालक का सावधानी पूर्वक पालन करने लगी ॥४३॥ हे राजन् ! इस प्रकार से मैंने आपको भृगुवंशीयों के विनाश की कथा सुनायी, किञ्च लोभग्रस्त क्षत्रियों ने जो पाप किया उसे भी मैंने आपको सुनाया ॥४४॥ राजा जनमेजय ने

सः ॥४५॥ किंचित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत । हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः ॥४६॥ यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा। हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः ॥४७॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे । हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा॥४८॥ व्यास उवाच– **हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम् । पुरातनीं सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम् ॥४९॥ कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः । रेवन्तेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः ॥५०॥ उच्चैःश्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम् । जगाम विष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः॥५१॥ भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदाऽऽगतः । हयस्थस्तु तदा दृष्ट्वा लक्ष्म्याऽसौ रविनंदनः ॥५२॥ रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सगरोद्भवम् । रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तंभितलोचना ॥५३॥ भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम् । आगच्छन्तं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः ॥५४॥ कोऽयमायाति चार्वंगि हयारूढ इवापरः । स्मरतेजस्तनुः कान्ते मोहयन् भुवनत्रयम् ॥५५॥ प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः । नोवाच वचनं किंचित्पृष्टाऽपि च पुनः पुनः ॥५६॥** व्यास उवाच-- **अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम्। पश्यंतीं परमप्रेम्णा चंचलाक्षीं च चंचलाम्॥५७॥**

कहा कि मैंने आपसे क्षत्रियों के अत्यन्त दारुणकर्म की चर्चा सुनी । उस कार्य में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों दोनों का लोभग्रस्त होना ही कारण है । अतएव लोभ दुःखप्रद ही होता है ॥४५॥ हे व्यासजी ! मुझको इस विषय में यह संशय है कि वे क्षत्रिय हैहय क्यों कहलाये ॥४६॥ जिस तरह यदु से प्रवर्तित होने वाले क्षत्रिय यादव हैं, भरत से प्रवर्तित वंश के क्षत्रिय भारत कहलाते हैं । उसी तरह से कोई हैहय राजा हुए थे क्या कि वे क्षत्रियहैहय वंशीय कहलाते हैं ॥४७॥ अतएव हे करुणासागर मैं यह जानना चाहता हूँ कि किस कर्म के कारण वे क्षत्रिय हैहय कहलाते हैं ॥४८॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! आप हैहयों की उत्पत्ति की कथा विस्तार पूर्वक सुनें । यह कथा प्राचीन पापों को विनष्ट करने वाली तथा अत्यन्त पवित्र है ॥४९॥ एक बार अत्यन्त सुन्दर रूपवान् तथा अमित प्रभावशाली सूर्यपुत्र रेवन्त नामक विख्यात राजा हुए ॥५०॥ वे भास्करपुत्र उच्चैःश्रवा नामक मनोहर तथा श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर भगवान् विष्णु के धाम में गये ॥५१॥ श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए जब राजा घोड़े पर सवार थे उस समय लक्ष्मीजी ने उन्हें देखा ॥५२॥ लक्ष्मीजी अपने सहोदर तथा सागर से उत्पन्न होने वाले उस घोड़े के रूप को देखकर आश्चर्यित हो गयीं और उसे एकटक से देखती रहीं ॥५३॥ उस आते हुए तथा घोड़े पर सवार सूर्य के पुत्र को देखकर श्रीभगवान् ने प्रेमपूर्वक लक्ष्मी से पूछा ॥५४॥ हे कान्ते ! दूसरे कामदेव के सदृश सुन्दर शरीर वाला, त्रैलोक्य को मोहित करते हुए, घोड़े पर सवार होकर कौन आ रहा है ॥५५॥ उस समय लक्ष्मीजी उस घोड़े को एकाग्रचित्त से देख रही थीं अतएव श्रीभगवान् के बार-बार पूछने

तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने । मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे।।५८।। सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि । चंचलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ।।५९।। प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चंचला । तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन ।।६०।। त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता । बडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे ।।६१।। इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः । रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता ।।६२।। तमुवाच रमानाथं शंकिता चारुहासिनी । प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता ।।६३।। देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव । स्वल्पेऽपराधे गोविंद कस्माच्छापं ददासि मे ।।६४।। न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो । क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः ।।६५।। वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने । सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता ।।६६।। प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द पश्यतोऽद्य तवाग्रतः । कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता ।।६७।। प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात् । कदा

पर भी वे नहीं बोलीं ।।५६।। **व्यासजी ने कहा—** भगवान् अश्व में ही जिनका मन लगा हुआ था, अतएव मोहग्रस्त, अत्यन्त प्रेमपूर्वक उस अश्व को ही देखने वाली चंचलनयनी तथा स्वभावतः चंचल अपनी पत्नी लक्ष्मीजी को देखकर ।।५७।। क्रुद्ध हो गये और उन्होंने कहा हे सुन्दरनेत्रों वाली क्या देख रही हो? उस घोड़े को देखकर तुम मोहित हो गयी हो, इसीलिए पूछने पर भी नहीं बोलती हो ।।५८।। चूकि सर्वत्र रमण करने लगती हो अतएव तुम्हारा नाम रमा होगा । चंचल होने के कारण तुम चला होओगी ।।५९।। जिस तरह कोई सामन्य स्त्री स्वभावतः चंचल होती है, उसी तरह हे कल्याणि तुम भी कभी स्थिर नहीं रहती हो ।।६०।। मेरे समीप रहकर भी तुम यदि घोड़े को देखकर मोहित हो गयी तो हे सुन्दरि ! तुम अत्यन्त भयंकर मर्त्यलोक में जाकर बडवा (घोड़ी) हो जाओ ।।६१।। दैवयोग के कारण श्रीभगवान् के द्वारा शापग्रस्त होकर लक्ष्मीजी अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं । वे भयभीत होकर काँप रही थीं ।।६२।। सुन्दर हँसी वाली लक्ष्मीजी अपने परित्याग की शंका से आशंकित थीं । उन्होंने नम्रतापूर्वक अपने पति श्रीभगवान् को प्रणाम किया और उनसे वे कहने लगीं ।।६३।। हे देवाधिदेव, जगत् के स्वामिन्, हे करुणासागर, भगवन् केशव इस छोटे से अपराध के कारण आप मुझे शाप क्यों दे रहे हैं ?।।६४।। हे प्रभो ! मैंने आपके ऐसे क्रोध को कभी भी नहीं देखा है । आपका स्वभाविक तथा नित्य मेरे विषय में होने वाला स्नेह कहाँ चला गया ।।६५।। वज्रपात तो अपने शत्रुओं पर किया जाता है अपने सुहृदों पर नहीं । मैं तो सदा आपके वरदान के योग्य रही हूँ आपके शाप के योग्य मैं नहीं हूँ।।६६।। हे भगवन् ! आपके सामने ही मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी । आपकी वियोगाग्नि में संतप्त होकर मैं आपके बिना कैसे जी सकती हूँ ।।६७।।

मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो ॥६८॥ हरिरुवाच– **यदा ते भविता पुत्रः पृथिव्यां मत्समः प्रिये । तदा मां प्राप्य तन्वंगि सुखिता त्वं भविष्यसि ॥६९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **इति शप्ता भगवता सिंधुजा कोपयोगतः । कथं सा बडवा जाता रेवंतेन च किं कृतम् ॥१॥ कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी बडवारूपधारिणी । संस्थितैकाकिनी बाला परोषित्पतिका यथा ॥२॥ कालं कियंतमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा । संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः ॥३॥ समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिंधुजा । पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया ॥४॥ एतद्वृत्तांतमार्येश कथयस्व सविस्तरम्।**

हे भगवन् ! आप मेरे ऊपर कृपा करें और यह बतलायें कि इस भयंकर शाप से मुक्त होकर मैं पुनः आपके सुखद चरणों में कब पहुँच पाऊँगी।।६८।। **श्रीहरि ने कहा**– हे प्रिये ! मेरे ही समान भूलोक में जब तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होयेगा, हे सुन्दरि उसी समय तुम मुझको प्राप्त कर सुखी हो जाओगी ।।६९।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

शंकरजी द्वारा लक्ष्मीजी को वरदान की प्राप्ति का वर्णन

जनमेजय ने व्यासजी से कहा– हे महर्षे ! इस प्रकार से कोप करके भगवान् विष्णु ने जब लक्ष्मींजी को शाप दे दिया तो वे किस तरह से घोड़ी बनीं और रेवन्त ने क्या किया ?।।१।। घोड़ी का रूप धारण करके सिन्धुपुत्री अपने पति श्रीभगवान् के दूसरे देश में रहने के कारण उनके वियोग में संतप्त लक्ष्मी जी ने किस देश में अकेले रहकर समय बिताया ?।।२।। हे आयुष्मन् ! अपने पति से अलग रहकर लक्ष्मीजी ने कितने समय तक विजनवन में अकेले रहीं और श्रीभवगान् को प्राप्त करने के लिए उन्होंने क्या किया ?।।३।। फिर सिन्धुपुत्री लक्ष्मीजी से समागम कैसे हुआ ? नारायण से अलग रहकर भी उन्होंने पुत्र को कैसे प्राप्त किया ?।।४।। हे आर्यवर्य ! इस वृत्तान्त को आप मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये । हे विप्रेन्द्र ! मैं इस सर्वोत्तम आख्यान को मैं

श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेंद्र कथाख्यानमनुत्तमम् ॥५॥ सूत उवाच– इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै । कथयामास भो विप्रा कथामेतां सुविस्तराम् ॥६॥ व्यास उवाच– शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् । पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम् ॥७॥ रेवंतस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् । भयतः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम् ॥८॥ पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः । निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम् ॥९॥ दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम् । आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना ॥१०॥ सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् । तत्रैव सा ययावाशु बडवारूपधारिणी ॥११॥ कालिंदीतमसासंगे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे । सर्वकामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमंडिते॥१२॥ तत्र स्थिता महादेवं शंकरं वांछितप्रदम् । दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चंद्रशेखरम् ॥१३॥ पञ्चाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम् । कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम् ॥१४॥ व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् । कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१५॥ सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् । तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः ॥१६॥ ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता । दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते ॥१७॥

सुनना चाहता हूँ ॥५॥ **सूतजी ने शौनकादिक महर्षियों से कहा**– इस तरह से जनमेजय के द्वारा पूछे जाने पर इस विस्तृत कथा को व्यासजी ने सुनाया ॥६॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! आप सुनें इस पवित्र, सुख देने वाली तथा कानों में अच्छी लगने वाली इस पौराणिक कथा को मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥७॥ रेवंत ने जब देखा कि भगवान् विष्णु ने लक्ष्मीजी को शाप दे दिया तो वह भयभीत हो गया । उसने दूर से ही भगवान् विष्णु को प्रणाम किया और चला गया॥८॥ वह वहाँ से लौटकर जगत्पति श्रीभगवान् के क्रोध को देखकर शीघ्र ही अपने पिता सूर्य के पास चला गया और लक्ष्मीजी के शाप विषयिणी बात को सूर्य को बतलाया ॥९॥ लक्ष्मीजी दुःखी होकर जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से आज्ञा प्राप्त करके, उनको प्रणाम करके मनुष्यलोक में चली आयीं और जहाँ पर सूर्य की पत्नी ने कठोर तपस्या की थीं वहीं पर घोड़ी का रूप बनाकर निवास करने लगीं ॥११॥ सुपर्णाक्ष नामक स्थान की उत्तर दिशा में यमुना और तमसा के संगम स्थल पर अत्यन्त मनोहर वन से सुशोभित स्थान पर वे रहने लगीं ॥१२॥ वहीं पर रहकर अभिलषित वर प्रदान करने वाले त्रिशूलधारी चंद्रशेखर महादेव शंकरजी का एकाग्रमन से ध्यान करने लगीं ॥१३॥ भगवान् शंकर पाँच मुख वाले, दश भुजाओं वाले तथा पार्वती का आधा शरीर धारण करने वाले हैं । उनके शरीर की कान्ति कर्पूर के समान गौर वर्ण की है । उनका कण्ठ नील वर्ण का है और वे तीन नेत्रों वाले हैं॥१४॥ व्याघ्रचर्म धारण करने वाले हैं, गजचर्म ही उनका उत्तरीय है । वे कपाल माला से मण्डित भगवान् शंकर नाग का ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं ॥१५॥ सिन्धुपुत्री मनोहर घोड़ी का रूप बनाकर उस तीर्थ में कठोर तपस्या करने लगीं ॥१६॥ वे भगवान् शंकर का ध्यान करती हुयी वैराग्य से सम्पन्न

ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः । प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः ॥१८॥ तत्रैत्य सगणः शम्भुस्तामाह हरिवल्लभाम् । तपस्यंतीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम् ॥१९॥ किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे । सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः ॥२०॥ हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम् । वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२१॥ वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः । नान्यस्मिन्सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥२२॥ पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः । यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया॥२३॥ नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि । तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिंधुजे ॥२४॥ लक्ष्मीरुवाच– आशुतोष महेशान शप्ताऽहं पतिना शिव । मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे ॥२५॥ तदोक्तं हरिणा शम्भो शापानुग्रहकारणम् । विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना॥२६॥ यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् । भविष्यति च वैकुण्ठवासस्ते कमलालये ॥२७॥ इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागताऽस्मि तपोवने । आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः ॥२८॥ पतिसंगं बिना पुत्रं देवदेव लभे कथम् । स तु तिष्ठति वैकुण्ठे त्यक्त्वा वामामनागसाम्॥२९॥

हो गयीं । इस तरह से उनको तपस्या करते हुए देवताओं का एक हजार वर्ष बीत गया ॥१७॥ उनकी तपस्या से प्रसन्न तीन नेत्रों वाले बैल पर सवार भगवान् शंकर पार्वतीजी के साथ उनको साक्षात् दर्शन दिए ॥१८॥ अपने गणों के साथ वहाँ आकर शंकरजी अश्विनी का रूप धारण करके तपस्या करने वाली महाभाग लक्ष्मीजी से कहे ॥१९॥ हे जगन्मातः कल्याणि ! आप किसलिए तपस्या कर रही हैं आपके पति तो सम्पूर्ण लोकों के कर्ता और सभी अर्थों को प्रदान करने वाले हैं ॥२०॥ हे देवि ! श्रीहरि को छोड़कर आप हमारी स्तुति क्यों कर रही हैं ? भगवान् तो जगत् के स्वामी, वासुदेव तथा भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं ॥२१॥ आपको वेदोक्त वचनों का अनुसरण करना चाहिए । स्त्रियों के आराध्य तो उनके पति ही होते हैं । अपने पति को छोड़कर स्त्रियों को कभी भी और कहीं भी किसी दूसरे की आराधना नहीं करनी चाहिए ॥२२॥ स्त्रियों का सनातन धर्म अपने पति की सेवा करना ही है। जैसे भी पति हों कल्याण प्राप्ति की कामना से उन्हीं की आराधना स्त्रियों को करना चाहिए ॥२३॥ भगवान् नारायण तो सबों के लिए सदैव ही सेवनीय हैं । हे सिन्धुजे ! उन श्रीभगवान् को छोड़कर आप मेरी आराधना क्यों कर रही हैं ॥२४॥ **लक्ष्मीजी ने कहा**– हे शिवे ! हे आशुतोष !! हे महेश !!! मेरे पति ने मुझे शाप दे दिया है । हे देवेश ! हे दयानिधे !! आप इस शाप से मेरा उद्धार कीजिये ॥२५॥ हे शम्भो ! मेरे द्वारा प्रार्थना किए जाने पर दयालु भगवान् विष्णु ने शाप से मुक्ति पाने का उपाय भी बतला दिया है ॥२६॥ उन्होंने मुझे बतलाया है कि जब तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हो जायेगा उसी समय तुम्हारी शाप से मुक्ति मिलेगी । हे कमलालये उसके पश्चात् ही तुम वैकुण्ठ में निवास कर पाओगी ॥२७॥ इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा कहे जाने पर मैं वैकुण्ठ को छोड़कर इस तपोवन में तपस्या करने के लिए आ गयी हूँ । हे देव आप सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं । अतएव मैंने आपकी

वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शङ्कर । तव तस्य द्विधाभावो नास्ति नूनं कदाचन ॥३०॥ मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर । यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥३१॥ एकत्वं च मया ज्ञात्वा सम्यक् ते स्मरणं कृतम् । अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव ॥३२॥ शिव उवाच– **कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुंदरि । ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे ॥३३॥ एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा। ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल ॥३४॥ मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा । विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः॥३५॥ भवन्ति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः । कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः ॥३६॥ सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः ।** व्यास उवाच– **इति सा शम्भुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥३७॥ वृत्तांतं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे । शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम् ॥३८॥** लक्ष्मीरुवाच– **एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः । दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥३९॥ तदाऽहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल।**

आराधना की है ॥२८॥ हे देव ! पति के संयोग के बिना मैं पुत्र को कैसे प्राप्त कर सकती हूँ ? वे तो निरपराध अपनी पत्नी का परित्याग करके वैकुण्ठ में बैठे हैं ॥२९॥ हे देवेश ! हे शङ्कर !! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप मुझे वरदान दें । मैं जानती हूँ कि आप में और श्रीहरि में कोई भी भेद नहीं हैं ॥३०॥ हे गिरिजाकान्त ! हे महादेव !! जब मैं अपने पति के पास थी उसी समय मैंने इस रहस्य को जाना कि जो आप हैं, वही श्रीहरि हैं, और जो श्रीहरि हैं वही आप हैं । इस बात में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥३१॥ आप और श्रीहरि के एकत्व को ही जानकर मैंने आपकी आराधना की है । यदि ऐसी बात नहीं होती तब तो मेरी यह आराधना दोषमयी होती ॥३२॥ **शिवजी ने कहा**– हे सुन्दरि ! मुझमें और श्रीहरि में एकत्व की बात तुमने कैसे जाना ? मुझमें और श्रीहरि में अभेद को जानने की बात को तुम मुझे बतलाओ ॥३३॥ मुझमें और श्रीहरि में अभेद अवश्य है किन्तु इस बात को न तो देवता जानते हैं और न ऋषिगण जानते हैं, क्योंकि कुतर्क करने के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी है । यद्यपि वे ज्ञानी तथा वेदतत्त्व के ज्ञाता हैं॥३४॥ मेरे बहुत से ऐस भक्त हैं जो वासुदेव की निन्दा करते हैं और बहुत से ऐसे वासुदेव के भी भक्त हैं जो मेरी निन्दा करने में निपुण हैं ॥३५॥ हे देवि ! विभिन्न कालों में ऐसे लोग होयेंगे भी और कलियुग में तो ऐसे लोग विशेष रूप से होयेंगे । हे देवि ! हमारे और श्रीहरि में होने वाले अभेद को तो अज्ञानी जीवों को जानना बड़ा कठिन है । इस बात को आपने कैसे जान लिया ?॥३६॥ मुझमें और श्रीहरि में होने वाले अभेद का ज्ञान तो पूर्णरूप से दुर्लभ है । **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर के द्वारा पूछे जाने पर श्रीहरि की पत्नी ॥३७॥ उस बात से संबद्ध वृत्तान्त को लक्ष्मीजी ने प्रसन्नता पूर्वक शंकरजी को बतलाना प्रारम्भ किया ॥३८॥ **लक्ष्मीजी ने कहा**– एकबार देवों के भी आराध्य श्रीहरि एकान्त में ध्यान कर रहे थे । उस समय पद्मासन पर बैठकर वे तपस्या कर रहे थे । मैंने उन्हें देखा ॥३९॥ उनको देखकर मैंने आश्चर्य चकित होकर अपने पति श्रीहरि से पूछा उस समय श्रीहरि

प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम् ॥४०॥ देवदेव जगन्नाथ यदाऽहं निर्गताऽर्णवात् । मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो ॥४१॥
वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा । वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात् ॥४२॥ त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम ।
प्रियोऽसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम् ॥४३॥ विष्णुरुवाच— **शृणु कांते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् । आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं**
हृदि ॥४४॥ कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः । ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम् ॥४५॥ शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा
मम । उभयोरंतरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः ॥४६॥ नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् । भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥४७॥
इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना । एकांते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिया ॥४८॥ तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम् । तथा
कुरु महेशान यथा मे प्रियसंगमः ॥४९॥ व्यास उवाच— **इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः । तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः॥५०॥**
स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा तव । समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः ॥५१॥ अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः । आगमिष्यति

ध्यान से उठ गये थे और प्रसन्न थे । मैंने उनसे नम्रतापूर्वक पूछा ॥४०॥ हे देवताओं के आराध्य ! जगत् के स्वामिन् ! जब मैं दैत्यों तथा ब्रह्मा आदि देवताओं से मथे जाने वाले समुद्र से प्रकट हुयी थी ॥४१॥ उस समय अपना पति बनाने की इच्छा से मैंने सभी देवताओं को देखा और मैंने इस बात का निर्णय किया कि आप ही सभी देवताओं से श्रेष्ठ हैं । अतएव मैंने आपका वरण अपने पति के रूप में किया ॥४२॥ हे देवों के स्वामिन् ! आप किसका ध्यान करते हैं ? यह मुझको अत्यन्त संशय हो रहा है । हे कैटभ नामक असुर के शत्रो ! आप मेरे प्रियतम हैं । आप मुझे इस रहस्य को बतलाइये। आप अपने मन की बात बतलाइये ॥४३॥ मेरी बात सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा— हे देवि ! तुम सुनो मैं जिस देवता का ध्यान करता हूँ वे आशुतोष, महेश हैं । उन गिरिजाकान्त का ही मैं अपने हृदय में ध्यान करता हूँ ॥४४॥ अमितविक्रम सम्पन्न वे भगवान् शंकर मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं उन त्रिपुरान्तक भगवान् शंकर का ध्यान करता हूँ ॥४५॥ शंकरजी को मैं प्राण के समान प्रिय हूँ और वैसे ही शंकरजी मुझे प्राण के समान प्रिय हैं । हमदोनो का मन एक दूसरे में लगा रहता है । अतएव हम दोनों में कोई भी भेद नहीं है ॥४६॥ हे विशालाक्षि ! मैं तुमको यह सत्य बतलाता हूँ कि जो मेरे भक्त शंकरजी से द्रोह करते है वे नरकगामी होते हैं ॥४७॥ हे पार्वतीप्रिय जब मैंने एकान्त में उनसे पूछा था तो समर्थ भगवान् विष्णु ने इस तरह से बतलाया था ॥४८॥ अतएव मैंने आपको भगवान् विष्णु का प्रिय जानकर आपका ध्यान किया । अतएव हे शंकरजी आप ऐसा कोई उपाय करें जिससे मेरा अपने प्रियतम से संगम हो सके ॥४९॥ **व्यासजी ने कहा—** इस प्रकार से लक्ष्मीजी की बातों को सुनकर बोलने में निपुण, भगवान् शंकर ने लक्ष्मीजी को प्रिय वाक्यों द्वारा आश्वस्त करके कहा हे प्रथुश्रोणि ! तुम स्वस्थ होओ । मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ । तुम्हारा अपने पति श्रीहरि से समागम अवश्य होगा । इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है ॥५१॥ मेरे द्वारा प्रेरित किए जाने पर यहाँ पर ही आपकी कामना पूर्ण करने के लिए श्रीहरि अश्व का

ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥५२॥ तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् । यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः ॥५३॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ । भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः ॥५४॥ सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह । गंताऽसि दिवि वैकुण्ठं प्रिया तस्य भविष्यसि ॥५५॥ एकवीरेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः । तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति ॥५६॥ परन्तु विस्मृताऽसि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम् । मदांधा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम् ॥५७॥ अतस्तद्दोषशांत्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम् । शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते ॥५८॥ अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे । व्यास उवाच– इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥५९॥ अंतर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः । साऽपि तत्रैव चार्वंगी संस्थिता कमलासना ॥६०॥ ध्यायंती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम् । देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमंडलम् ॥६१॥ प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः । प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

रूप बनाकर आयेंगे ॥५२॥ मैं उनको इस तरह से प्रेरित करूँगा कि कामातुर होकर भगवान् मधुसूदन घोड़े का रूप धारण करके आपके पास आयेंगे ॥५३॥ हे सुन्दरि ! आपका पुत्र भूलोक में नारायण के समान ही होगा । वह राजा होगा सबलोग उसको नमस्कार करेंगे ॥५४॥ तुम अपने उस पुत्र को प्राप्त करके अपने पति के साथ वैकुण्ठ लोक में चली जाओगी और अपने पति की प्रियतमा होओगी ॥५५॥ तुम्हारा वह पुत्र संसार में एकवीर के नाम से विख्यात होगा और उसी से पृथिवी पर हैहयवंश का विस्तार होगा ॥५६॥ किन्तु इस समय आप मदांध होकर मेरा ध्यान करने के कारण अपने हृदय में विद्यमान परमेश्वरी को भूल गयी हैं, इसीलिए आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा ॥५७॥ अतएव उस दोष की शान्ति करने के लिए हे सिन्धुपुत्रि ! आप परमेश्वरी जगदम्बा की भक्तिपूर्वक शरणगति करें ॥५८॥ यदि आप पहले ही परमेश्वरी का ध्यान की होतीं तो फिर आपका मन उस उत्तम घोड़े में कैसे रमता ? **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह से लक्ष्मीजी को वरदान देकर पार्वतीजी के साथ प्रकट हुए भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये । उसके पश्चात् जिनके चरण कमलों का नख देवताओं तथा दैत्यों के प्रणाम करते समय उनके मुकुट का स्पर्श करता रहता है, उन देवी के चरण कमल का ध्यान करती हुई, कमल के आसन पर बैठने वाली सुन्दराङ्गी लक्ष्मीजी भी वहीं रहने लगीं ॥६०-६१॥ वे अश्वरूपधारी श्रीहरि की प्रतीक्षा करती हुई अपने प्रेम भरी गद्गदवाणी से देवी की बार-बार स्तुति की॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके छठे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

एकोनविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच— **तस्यै दत्त्वा वरं शंभुः कैलासं त्वरितो ययौ । रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मंडितम् ॥१॥ तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम् । प्रेषयामास वैकुंठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥२॥** शिव उवाच— **चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम । यथाऽसौ दुःखितां पत्नीं विशोकां च करिष्यति ॥३॥ इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः । वैकुंठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम् ॥४॥ नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम् । संवृतं हंसकारंडमयूरशुककोकिलैः ॥५॥ उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम् । नृत्यगीतकलापूर्णं मंदारद्रुमसंयुतम् ॥६॥ बकुलाशोकतिलकचंपकालिविमंडितम् । कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम् ॥७॥ संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वाःस्थौ प्राह प्रणम्य च । जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ ॥८॥** चित्ररूप उवाच— **भो निदेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने । दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥९॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान् । गत्वा हरिं प्रणम्याह कृतांजलिपुटः पुरः ॥१०॥ देवदेव रमाकांत करुणाकर केशव । द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शंकरस्य समागतः ॥११॥ आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज । चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम् ॥१२॥ इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः।**

बडवा (घोड़ी) का रूप धारण करने वाली लक्ष्मीजी को घोड़े का रूप धारण करने वाले श्रीहरि से पुत्र की प्राप्ति का वर्णन

व्यासजी ने कहा— लक्ष्मीजी को वरदान देकर भगवान् शंकर शीघ्र ही देवसमूह से सेवित तथा अप्सराओं से समलंकृत मनोहर कैलास पर्वत पर चले गये ॥१॥ वहाँ जाकर भगवान् शंकर ने अपने चित्ररूप नामक गण; जो किसी भी कार्य को करने में बुद्धिमान था; को लक्ष्मीजी का कार्य करने के लिए वैकुण्ठ भेजा ॥२॥ **शिवजी ने कहा—** हे चित्ररूप तुम श्रीहरि के पास जाओ और उन्हें मेरी ओर से कहो कि वे अपनी दुःखिनी पत्नी श्रीलक्ष्मीजी को दुःख से रहित बना दें ॥३॥ भगवान् शंकर के इस तरह से कहने पर दूत शीघ्र ही वहाँ से चल पड़ा और वैष्णव समूह से व्याप्त वैकुण्ठ लोक में गया ॥४॥ वहाँ उन्होंने अनेक प्रकार के वृक्ष समूह से सुशोभित, अनेक वावलियों से विराजित, हंस, कारंडव, मयूर, शुक तथा कोयल नामक पक्षियों से सेवित, ऊँचे-ऊँचे भवनों से युक्त, ध्वजा पताकाओं से समलंकृत, नृत्य कला तथा गीत कला से परिपूर्ण, पारिजात वृक्षों से परिपूर्ण, मौलिश्री, अशोक, तिलक, चम्पा तथा भ्रमरों से मण्डित, कानों को सुख देने वाली ध्वनि करने वाले पक्षियों की ध्वनि से मण्डित भगवान् विष्णु के भवन के द्वार पर विद्यमान जय और विजय नामक द्वारपालों को प्रणाम करके कहा ॥५-८॥ **चित्ररूप ने कहा—** आप दोनों जाकर श्रीभगवान् को शीघ्र बतला दें कि त्रिशूलपाणि शंकरजी से भेजा गया उनका दूत आया है ॥९॥ उसकी बात को सुनकर परम बुद्धिमान जय ने भगवान् के समक्ष जाकर उनको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा ॥१०॥ हे देवों के आराध्य

प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम् ॥१३॥ इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम् । एहीत्याकारयामास जयः शंकरसेवकम् ॥१४॥ प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः । प्रणम्य दंडवद्विष्णुं कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१५॥ दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान्गारुडध्वजः । चित्ररूपधरं शम्भोः सेवकं विनयान्वितम् ॥१६॥ पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः । कुशलं देवदेवस्य सकुटुम्बस्य चानघ ॥१७॥ कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम् । अथवा देवतानां च किंचित्कार्यं समुत्थितम् ॥१८॥ दूत उवाच– **किमज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज। वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै ॥१९॥ प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तं त्वां जनार्दन । हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो ॥२०॥ तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया । तपस्तपति कालिंदीतमसासंगमे विभो ॥२१॥ हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी । ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥२२॥ विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेन्न हि । तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्राप्नोति किं सुखं हरे ॥२३॥**

लक्ष्मीपते ! हे करुणासागर !! हे केशव !!! भगवान् शंकर का भेजा हुआ दूत द्वार पर आया हुआ है ॥११॥ हे गरुडध्वज ! आप बतलायें कि उसको भीतर लाया जाय कि नहीं । वह चित्र विचित्र रूप वाला है उसका कौन सा कार्य है यह ज्ञात नहीं है ॥१२॥ भगवान् विष्णु तो उसके आने का कारण जानते ही थे । जय की बात को सुनकर उन्होंने कहा ठीक है समय से आया है । उसको तुम भीतर ले आओ । वह भगवान् शंकर का दूत है ॥१३॥ श्रीभगवान् की वाणी सुनकर जय शीघ्रता से जाकर उस अद्भुतरूपधारी भगवान् शंकर के सेवक से कहा कि तुम भीतर आ जाओ । इस तरह वे बुलाकर जय ने अपने नामानुकूल आकार वाले चित्ररूप को भीतर प्रवेश कराया । चित्ररूप ने भी भगवान् विष्णु को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर भगवान् विष्णु के समक्ष खड़ा हो गया ॥१४-१५॥ भगवान् विष्णु भी विचित्ररूप धारी भगवान् शंकर के दूत, विनयान्वित चित्ररूप को देखकर आश्चर्यित हो गये॥१६॥ उसे देखकर भगवान् विष्णु ने मुस्कुराकर चित्ररूप से पूछा कि हे अनघ ! देवाधिदेव ! सपरिवार भगवान् शंकर का कुशल तो है न ॥१७॥ तुम्हें भगवान् शंकर ने यहाँ किसलिए भेजा है । भगवान् शंकर का कार्य बतलाओ । देवताओं का कोई कार्य तो नहीं आ गया है ॥१८॥ **दूत ने कहा–** हे गरुडध्वज ! आपसे संसार की कोई भी बात छिपी तो नहीं है । आप तो त्रिकालज्ञ है । भूत भविष्यत् तथा वर्तमान की सभी बातों को जानते हैं । फिर भी जो बात है वह मैं आपसे कह रहा हूँ ॥१९॥ मैं भगवान् शंकर से भेजा हुआ यहाँ आया हूँ । उन्होंने जो आपसे कहने के लिए मुझे कहा है, उसे ही मैं कह रहा हूँ ॥२०॥ भगवान् शंकर ने कहा है कि आपकी पत्नी लक्ष्मीजी यमुना और तमसा के संगम स्थल पर तपस्या कर रही हैं ॥२१॥ वे समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । उन्होंने अपना घोड़ी का रूप बनाया है । वे देवताओं, मनुष्यों यक्षों एवं किन्नरों द्वारा ध्यान करने योग्य हैं ॥२२॥ लक्ष्मीजी के बिना कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता है । हे पुण्डरीकाक्ष ! उन लक्ष्मीजी को त्यागकर आप कौन सा सुख प्राप्त कर रहे हैं ?॥२३॥

दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते । विनाऽपराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी ॥२४॥ दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो ।
धिक्तस्य जीवितं लोके निंदितं त्वरिमंडले ॥२५॥ सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःखितां भृशम् । त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यंति
दिवानिशम्॥२६॥ रमां रमय देवेश त्वदुत्संगगतां कुरु । सर्वलक्षणसंपन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम् ॥२७॥ सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां
चारुहासिनीम् । कांताविरहजं दुःखं स्मराम्यहमनातुरः ॥२८॥ मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा । तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानंबुजेक्षण॥२९॥
संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि माभून्मत्सदृशोऽपरः । मनसाऽ करवं शोकं कान्ता विरहपीडितः ॥३०॥ कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः ।
तपस्तप्त्वाऽतिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाऽध्वरे ॥३१॥ हरे किं सुखमापन्नं त्वया संत्यज्य कामिनीम् । एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम्॥३२॥
गत्वाऽऽश्वास्य महाभागां समानय निजालयम् । माभूत्कोऽपीह संसारे विमुक्तो रमया तया ॥३३॥ कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतां कमलालयाम् ।
उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥३४॥ व्यास उवाच– **हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत । तथेत्युक्त्वा तु तं दूतं प्रेषयामास**
शंकरम् ॥३५॥ गते दूतेऽथ भगवान्वैकुंठात्कामसंयुतः । जगाम धृत्वा तत्राशु वाजिरूपं मनोहरम् ॥३६॥ यत्र सा वाडवारूपं कृत्वा तपति

हे जगत् के स्वामिन् ! दुर्बल तथा निर्बल व्यक्ति भी अपनी पत्नी का पालन करता है । हे विभो ! आप निरपराध उन जगदीश्वरी का क्यों त्याग किए
हैं?॥२४॥ हे जगद्गुरो संसार में जिस व्यक्ति की पत्नी दुःखी रहती है उसके जीवन को धिक्कार है । शत्रु भी उसकी निन्दा करते हैं ॥२५॥ लक्ष्मीजी को
दुःखी देखकर आपके शत्रुगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये हैं और आपको भी लक्ष्मी से वियुक्त देखकर वे रात-दिन हँसेंगे ॥२६॥ हे देवेश ! आपके वक्षःस्थल
में निवास करने वाली उस लक्ष्मी को आप प्रसन्न करें । लक्ष्मीजी समस्त लक्षणों से युक्त, सुशील तथा सुन्दर रूप वाली हैं ॥२७॥ आप अपनी चारुहासिनी
पत्नी को प्राप्त करके सुखी हो जायँ । स्त्री के वियोग में कितना कष्ट होता है, इस बात को मैं जानता हूँ ॥२८॥ हे विष्णो ! दक्ष के यज्ञ में मेरी पत्नी
सती मर गयी थी । हे कमलनेत्र ! मैंने उस समय असह्य कष्ट का अनुभव किया ॥२९॥ अपनी पत्नी के विरह से पीड़ित होकर मैं मन ही मन इस बात
को मनाया करता था कि संसार में मेरे समान पत्नी के वियोग से व्याकुल कोई भी दूसरा आदमी न होए ॥३०॥ फिर बहुत दिनों के पश्चात् मुझे पार्वती
की पत्नी के रूप में प्राप्ति हुयी । क्रोध करके सती दक्ष के यज्ञ में मर गयी थी । उसने दुःसाध्य तपस्या करके मुझे पति के रूप में प्राप्त किया ॥३१॥
हे श्रीहरे ! आपने अपनी पत्नी का परित्याग करके कौन सा सुख प्राप्त किया है । एक हजार वर्ष तक आप अकेले रहे ॥३२॥ आप जाइये, लक्ष्मीजी
को आश्वासन देकर उन्हें अपने घर लिवा लाइये । इस संसार में कोई भी लक्ष्मीजी से रहित न हो ॥३३॥ अश्व का रूप बनाकर लक्ष्मीज़ी के पास जाइये।
उनमें आयुष्मान् पुत्र को उत्पन्न करके उन्हें लाइये ॥३४॥ **व्यासजी ने कहा–** हे भरतवंशी राजन् जनमेजय ! उस चित्ररूप की बातों को सुनकर ऐसा ही होगा;

सिंधुजा । विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम् ॥३७॥ साऽपि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरं पतिम् । ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥३८॥ तयोस्तुसङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः । कालिन्दीतमसासंगे पावने लोकविश्रुते ॥३९॥ सगर्भा सा तदा जाता बडवा हरिवल्लभा । सुषुवे सुंदरं बालं तत्रैव सगुणोत्तरम् ॥४०॥ तामाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् । त्यजाद्य बाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना॥४१॥ गमिष्यावः स्ववैकुण्ठमावां कृत्वा निजं वपुः । तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने ॥४२॥ लक्ष्मीरुवाच— स्वदेहसंभवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम् । स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ ॥४३॥ का गतिः स्यादमेयात्मन्बालस्यास्य नदीतटे । अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह॥४४॥ अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गंतुं मनो मम । समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदम्बुजलोचन ॥४५॥ दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनारायणावुभौ । विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि ॥४६॥ गंतुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम् । गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्ताऽस्मि हापितुम् ॥४७॥ प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कांत्या त्वत्सदृशः प्रभो । गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुण्ठं मधुसूदन ॥४८॥ हरिरुवाच— मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि

यह कहकर भगवान् ने शंकरजी के उस दूत को शंकरजी के पास लौटा दिया ॥३५॥ दूत के चले जाने पर भगवान् विष्णु कामुक होकर मनोहर घोड़े का रूप धारण करके वहाँ गये ॥३६॥ जहाँ पर बडवा (घोड़ी) का रूप धारण करके लक्ष्मीजी तपस्या कर रही थीं । वहाँ पर आकर भगवान् विष्णु ने बडवा के रूा में स्थित लक्ष्मीजी को देखा ॥३७॥ लक्ष्मीजी ने श्रीभगवान् को घोड़े का रूप बनाये हुए देखकर उन्हें पहचान लिया और आँखों में आँसू भरकर आश्चर्यित होकर वहीं खड़ी रहीं ॥३८॥ इस तरह कामार्त बने हुए लक्ष्मी तथा विष्णु का संयोग लोक विख्यात यमुना और तमसा के संगम स्थल पर हुआ॥३९॥ उसके बाद बडवा रूप धारिणी लक्ष्मीजी गर्भवती हो गयीं । वहीं उन्होंने एक अनुपम गुण सम्पन्न गुण वाला पुत्र उत्पन्न किया ॥४०॥ इसके बाद भगवान् ने जोर से हँसकर कहा कि अब तुम अपना बडवा रूप त्याग करके पहले वाले शरीर को धारण कर लो ॥४१॥ अपना पहले वाला रूप धारण करके हमदोनों अपने वैकुण्ठ लोक में चलेंगे । हे सुलोचने ! यह कुमार इस भूलोक में ही रहे ॥४२॥ **लक्ष्मीजी ने कहा—** मैं अपने पुत्र का त्याग करके कैसे यहाँ से जा सकती हूँ । हे देववर्य ! अपने पुत्र का मोह तो ऐसा होता कि उसको त्यागना बड़ा कठिन होता है ॥४३॥ हे अभेयात्मन् ! इस नदी के तट पर यह बच्चा कैसे रहेगा ? । अभी तो यह अनाथ, असमर्थ तथा छोटे शरीर वाला है । इसकी यहाँ कौन सी गति होगी ?॥४४॥ अपने पुत्र को निराश्रित छोड़कर जाने का मेरा मन कैसे करेगा ? । हे कमलनयन स्वामिन् ! यह समर्थ तथा सदय हो जाय ॥४५॥ उसी समय लक्ष्मी और नारायण दोनों दिव्य देहों वाले हो गये । वे दोनों दिव्य विमान में बैठ गये और आकाश में देवता उनकी स्तुति करने लगे ॥४६॥ लक्ष्मीजी ने भगवान् विष्णु से कहा— हे नाथ ! आप इस बच्चे को ले लीजिये । इस बच्चे को मैं यहाँ छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ ॥४७॥ हे प्रभो ! यह पुत्र मुझे प्राणों के समान प्रिय

वरानने । तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह ॥४९॥ कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम् । निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने॥५०॥ तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि । हरिवर्मेति पित्राऽस्य कृतं नाम सुविश्रुतम् ॥५१॥ स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने । तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः ॥५२॥ तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये । तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि सांप्रतम् ॥५३॥ तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामस्य कामिनी । गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम् ॥५४॥ व्यास उवाच– **इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके । विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह ॥५५॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

है और इसके शरीर की कान्ति आपके शरीर की कान्ति के समान है । हे मधुसूदन इसको लेकर ही हमदोनों वैकुण्ठ जायेंगे ॥४८॥ **श्रीहरि ने कहा–** हे वरानने ! तुम विषाद न करो । इसकी रक्षा की व्यवस्था मैंने यहीं पर कर दी है । अतएव यह यहीं पर सुखपूर्वक रहे ॥४९॥ हे सुन्दरि ! इस बालक को यहाँ छोड़ने का कुछ उद्देश्य है और वह अद्भुत उद्देश्य है । उसे मैं तुम्हे बतला रहा हूँ ॥५०॥ महाराज ययाति का एक तुर्वसु नामक पुत्र है । उसके पिता ने उसका नाम हरिवर्म रखा है । उसका हरिवर्म ही नाम प्रसिद्ध है ॥५१॥ वह राजा पवित्र तीर्थ में तपस्या कर रहा है । उसको कोई सन्तान नहीं है । उसको तपस्या करते हुए सौ वर्ष बीत गये हैं ॥५२॥ हे लक्ष्मी ! उसीके लिए मैंने इस पुत्र को बनाया है । वहाँ जाकर मैं इस राजा को बतला दूँगा॥५३॥ हे सुन्दरि ! मैं इस पुत्र को उस राजा को ही दूँगा । वह पुत्र चाहता है । वह राजा इस बालक को लेकर अपने घर चला जायेगा ॥५४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से श्रीभगवान् ने लक्ष्मीजी को आश्वस्त कर दिया और उस बालक की रक्षा की व्यवस्था कर दी । इसके पश्चात् श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ श्रेष्ठ विमान पर बैठकर वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

विंशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा । मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने ॥१॥ का गतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवतीसुत । व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतो नातिबालकः ॥२॥** व्यास उवाच– **लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा । तदैव तत्र चंपाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल ॥३॥ विमानवरमारुढः कामिन्या सहितो नृप । मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया ॥४॥ विलोक्य तं शिशुं भूमावेकाकिनमनुत्तमम् । देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम् ॥५॥ विमानात्तरसोत्तीर्य चंपकस्तं शिशुं जवात् । जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाऽधनः ॥६॥ गृहीत्वा चंपकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् । मदालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम् ॥७॥ सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमांचा सविस्मया । मुखं चुचुम्ब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम् ॥८॥ आलिंगितश्चुंबितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् । उत्संगे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत॥९॥ कृत्वांके तौ समारूढौ विमानं दम्पती मुदा । पतिं पप्रच्छ चार्वंगी प्रहस्य मदनालसा ॥१०॥ कस्यायं बालकः कान्तः त्यक्तः केन च**

तुर्वसु को पुत्रप्राप्ति का वर्णन

राजा जनमेजय ने व्यासजी से पूछा– मुझको इस बात का संशय है कि उस सद्योजात शिशु को विजन वन में छोड़कर भगवान् और लक्ष्मीजी तो चले गये । उस बालक को फिर किसने प्राप्त किया ॥१॥ हे सत्यवती पुत्र ! व्यासजी उस बालक की कौन सी गति हुयी । उस बालक को कोई बाघ सिंह तो नहीं खा लिया ॥२॥ **व्यासजी ने कहा**– जब वहाँ से लक्ष्मी तथा नारायण चले तो वहाँ पर उसी समय चम्पक नामक एक विद्याधर आ गया । वह अपनी पत्नी के साथ श्रेष्ठ विमान पर आरुढ था । उसकी पत्नी का नाम मदालसा था उसके साथ मनोरंजन करता हुआ वह आया ॥४॥ उसने वहाँ पर देवपुत्र के समान, प्रसन्नता पूर्वक खेलते हुए तथा अकेले भूमि पर पड़े हुए उस बालक को देखा ॥५॥ चम्पक शीघ्रता से विमान से उतरा और उस बालक को उठा लिया । जिस तरह कोई निर्धन व्यक्ति किसी धन को प्राप्त करके प्रसन्न होता है, उसी तरह वह प्रसन्नता का अनुभव करने लगा ॥६॥ कामदेव के सदृश सुन्दर उस नवजात बालक लेकर चम्पक उसे अपनी पत्नी मदालसा को हाथों में दे दिया ॥७॥ रोमांचित तथा आश्चर्यचकित मदालसा उस बालक को लेकर प्रेम से उस बालक का मुख चूमने लगी और उसे अपने हृदय से लगा लिया ॥८॥ उस बालक को अपने हृदय से लगाने तथा चुम्बन करने के बाद मदालसा ने उस बच्चे में अपने पुत्र का भाव बना लिया ॥९॥ उस बच्चे को अपने गोद में लेकर वे दोनों पति-पत्नी विमान पर बैठ गये तो सुन्दरी मदालसा ने हंसकर अपने पति से पूछा ॥१०॥ हे प्रियतम ! यह किसका बालक है ? और किसने इसे वन में छोड़ दिया है ? लगता है त्रिनेत्र भगवान्

कानने । पुत्रोऽयं मम देवेन दत्तस्त्र्यंबकधारिणा ॥११॥ चंपक उवाच– प्रिये गत्वाऽद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै । देवो वा दानवो वाऽपि गंधर्वो वा शिशुः किल ॥१२॥ तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् । अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किंचिन्मया ध्रुवम् ॥१३॥ इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चंपकः । ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥१४॥ प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चंपकस्तु शचीपतिम् । निवेद्यबालकं प्राह कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१५॥ देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने । कालिंदीतमसासंगे बालकोऽयं स्मरप्रभः ॥१६॥ कस्यायं बालकः कांतः कस्मात् त्यक्तः शचीपते । आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम् ॥१७॥ अतीव सुंदरो बालः प्रियाया बल्लभः सुतः । कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा ॥१८॥ इन्द्र उवाच– पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह । हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्यां जातः परंतपः ॥१९॥ उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः । दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥२०॥ हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः । आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥२१॥ तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम् । यावन्न याति नृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः ॥२२॥ गत्वा तत्र विमुंचैनं विलंबं मा कृथा वर । अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति ॥२३॥ तस्माच्चंपक मुंचैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् । एकवीरेति नाम्नाऽयं

शंकर ने हमें इस बालक को पुत्र रूप में प्रदान किया है ॥११॥ उसकी बात को सुनकर चम्पक ने कहा– हे प्रिये ! आज शीघ्र ही जाकर मैं सब कुछ जानने वाले इन्द्र से पूछूँगा कि यह बालक देवता है या दानव है या गन्धर्व है ?॥१२॥ उनकी आज्ञा प्राप्त करके हीं मैं इस वन में प्रांप्त बालक को अपना पुत्र बनाऊँगा । इन्द्र से पूछे बिना हमलोगों को कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए ॥१३॥ इस तरह से अपनी पत्नी को कहकर चम्पक उस बालक को लेकर प्रसन्नता पूर्वक इन्द्र की नगरी में चला गया ॥१४॥ चम्पक ने प्रेम पूर्वक इन्द्र के चरणों में प्रणाम किया और उस बालक को इन्द्र को निवेदित करके हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा होकर कहने लगा ॥१५॥ हे देवदेव ! मैंने इस कामदेव के समान सुन्दर कान्ति वाले बालक को परम पवित्र तीर्थ यमुना और तमसा के संगम स्थल पर पाया है ॥१६॥ हे शचीपते ! यह सुन्दर बालक किसका है और उसने इसे क्यों त्याग दिया है ? हे देवेश ! यदि आपकी आज्ञा हो तो इस बालक को मैं अपना पुत्र बना लूँ ॥१७॥ यह बालक अत्यन्त सुन्दर है और यह मेरी पत्नी को अत्यन्त प्रिय है । धर्मशास्त्रों में तो कृत्रिम पुत्रों का भी विधान है ही ॥१८॥ **इन्द्र ने कहा–** यह बालक अश्व रूपधारी भगवान् वासुदेव का है । हे महाभाग इसका नाम हैहय है और यह परंतप बालक लक्ष्मी देवी में उत्पन्न हुआ है ॥१९॥ भगवान् वासुदेव ने इस बालक को ययाति के पुत्र को देने के लिए उत्पन्न किया है ॥२०॥ भगवान् श्रीहरि से प्रेरित होकर वे परम धार्मिक राजा उस मनोहर वन में अपने पुत्र को प्राप्त करने के लिए आयेंगे ॥२१॥ तुम इस बालक को लेकर उसी तीर्थ में चले जाओ जब तक कि श्रीभगवान् से प्रेरित वे राजा अपने पुत्र को लेने वहाँ आ नहीं जाते हैं ॥२२॥ तुम वहीं जाकर इस बालक को वहीं पर रख

ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥२४॥ व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा चंपकस्त्वरयान्वितः । जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते ॥२५॥ मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत् । आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममंडलम् ॥२६॥ तदैव कमलाकांतो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः । विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति ॥२७॥ दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात् । जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दंडवच्च ॥२८॥ उतिष्ठ वत्सेति हरिः पतंतमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् । सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥२९॥ देवाधिदेवाखिललोकनाथ कृपानिधे लोकगुरो रमेश । मंदस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम् ॥३०॥ ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् । आशापरोऽहं भगवन्ननन्त योग्यो न ते दर्शने देवदेव ॥३१॥ इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णुस्तमाह वाक्येन सुधामयेन। वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति ॥३२॥ ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रोवाच विष्णुं पुरतः स्थितं च । तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे ॥३३॥ श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तमाह राजानममोघवाक्यम् । ययातिसूनो व्रज तेऽथ तीर्थे कलिंदकन्यातमसाप्रसंगे॥३४॥**

आओ देर मत करो । बालक को नहीं देखने पर राजा दुःखी होयेंगे ॥२३॥ अतएव हे चम्पक तुम इस बालक को छोड़ दो और राजा इस बालक को प्राप्त कर लें । यह बालक भूलोक में एकबीर के नाम से प्रसिद्ध होगा ॥२४॥ **व्यासजी ने कहा–** इन्द्र की बात को सुनकर चम्पक उस बालक को लेकर उसी स्थान पर चला गया जहाँ से वह उस बालक को प्राप्त किया था ॥२५॥ जहाँ पर वह बालक पहले था वहीं पर उस बालक को उसने रख दिया और विमान पर चढ़कर वह अपने आश्रम में चला आया ॥२६॥ उसी समय जगद्गुरु भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी के साथ राजा के पास श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर गये ॥२७॥ उस समय उस राजा ने देखा कि भगवान् विष्णु विमान से उतर रहे हैं । श्रीहरि का दर्शन पाकर राजा प्रसन्न हो गये । और वे भूमि पर दण्ड के समान गिरकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किये ॥२८॥ श्रीहरि ने अपने भक्त को आश्वासन देते हुए तथा भूमि पर पड़े हुए उस राजा से कहा हे वत्स ! उठो वे राजा भी अत्यन्त उत्सुक होकर अपने सामने स्थित भगवान् वासुदेव की मुखर होकर स्तुति करने लगे ॥२९॥ राजा ने स्तुति करते हुए कहा हे देवाधिदेव ! हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! हे कृपानिधे ! हे लोकगुरो ! हे रमेश ! जो योगियों के लिए भी अलभ्य है, आपने मुझ जैसे मन्द व्यक्ति को भी दर्शन प्रदान किया है । आपका दर्शन तो अत्यन्त दुर्लभ है ॥३०॥ आपका दर्शन तो वे ही लोग प्राप्त कर पाते हैं जो विषयों से विरक्त हैं तथा जिनकी सारी आकांक्षाएँ समाप्त हो चुकी हैं । हे भगवन् ! मैं आपके दर्शन की आशा लगाये हुए बैठा था । हे अनन्त ! हे देवदेव ! मैं आपका दर्शन पाने के योग्य नहीं था ॥३१॥ इस तरह से राजा के द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् विष्णु ने उस राजा से अमृत के समान मधुर वाक्यों से कहा । हे राजन्! तुम अपना अभिलषित वरदान माँगो मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हो गया हूँ ॥३२॥ उसके बाद उस राजा ने श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करके अपने

मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः । लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन् ॥३५॥ श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं संतुष्टचित्तः प्रबभूव राजा । हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुण्ठलोकं रमया युतश्च ॥३६॥ गते हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्ययावनुद्धातरथेन राजा। प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्येति जनार्दनस्य ॥३७॥ स तत्र गत्वाऽतिमनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् । मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णं पदांगुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥३८॥ तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं नारायणांशं कमलाप्रसूतम् । हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपंकजोऽभूत्॥३९॥ गृह्णन्सुवेगात्करपंकजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः । मूर्धन्युपाघ्राय मुदान्वितोऽसौ ननंद राजा सुतमालिलिंग ॥४०॥ मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं तमुवाच नेत्रांबुनिरुद्धकंठः । दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥४१॥ तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम्। तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥४२॥ माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता । धन्या तु सा या

सामने स्थित विष्णु भगवान् से कहा– हे मुरारे ! मैंने तपस्या तो पुत्र की प्राप्ति के लिए की है । आप अपने ही समान मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥३३॥ राजा की प्रार्थना को सुनकर आदिदेव भगवान् विष्णु ने उस राजा को अमोघ वाक्य से कहा । हे ययातिपुत्र ! तुम यमुना तथा तमसा के संगम स्थल पर जाओ ॥३४॥ तुमको जैसा पुत्र चाहिए उसी तरह का अमित प्रभाव सम्पन्न पुत्र मैंने वहीं पर रख दिया है । वह मेरे वीर्य से लक्ष्मीदेवी में उत्पन्न हुआ है। मैंने तुम्हारे लिए ही उसे उत्पन्न किया है, उसे तुम ले लो ॥३५॥ श्रीहरि के अत्यन्त मधुर वाक्य को सुनकर राजा संतुष्ट हो गये । श्रीहरि भी राजा को वरदान देकर लक्ष्मीजी के साथ वैकुण्ठलोक में चले गये ॥३६॥ श्रीहरि के चले जाने पर राजा भी प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् की बात सुनकर एक सुदृढ़ रथ पर सवार होकर वहाँ गये जहाँ पर वह बालक विद्यमान था ॥३७॥ वहाँ पर जाकर राजा ने देखा कि बालक पृथिवी पर पड़ा हुआ खेल रहा है । वह अपने एक हाथ से अपने पैर के अंगूठे को आपने मुख में डालकर चूस रहा था । उस बालक की शोभा कामदेव के समान थी । वह नारायण का अंश तथा लक्ष्मी देवी में उत्पन्न हुआ था । उसमें भी श्रीहरि के ही समान प्रभाव था । उस बालक को देखकर हरिवर्मा का मुखकमल विकसित हो गया ॥३९॥ उन्होंने शीघ्रता से उस बालक को अपने दोनों हाथों से उठा लिया और वे प्रेम सागर में मग्न हो गये । उन्होंने उस बालक के शिर को सूंघा और अत्यन्त प्रसन्न हो गये । वे उस बालक का आलिंगन करके अत्यधिक आनन्द का अनुभव किए ॥४०॥ उस बालक के अत्यन्त मनोहर मुख को देखकर आँसुओं के निकलने से रुद्धकण्ठ वाले राजा ने कहा– तुम्हें, भगवान् जर्नादन ने और माता लक्ष्मी ने पुत्र हीनता के दुःख से रक्षा करने के लिए हमदोनों को प्रदान किया है ॥४१॥ हे पुत्र ! तुम्हें प्राप्त करने के लिए मैंने सौ वर्ष तक कठोर तपस्या की है । उसके कारण लक्ष्मीपति भगवान् सन्तुष्ट हो गये और मेरे सांसारिक सुख के उदय के लिए उन्होंने मुझे तुमको प्रदान किया है ॥४२॥ माता लक्ष्मी मेरे लिए ही तुमको यहाँ छोड़कर श्रीहरि के साथ चली गयीं।

प्रहसंतमंके कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात् ॥४३॥ त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीधरेण । इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥४४॥ पुरीसमीपे नृपमागतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः । ययुः समीपं नृपतेश्चलोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च॥४५॥ बंदीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः संमुखमाशुराज्ञः । नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या ॥४६॥ संपूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् । मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समंताद्विकीर्यमाणे नृपतिर्जगाम ॥४७॥ गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् । राज्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं सद्यः प्रसूतं च मनोभवाभम् ॥४८॥ राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिंदिता सा । राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥४९॥ केनैष दत्तः कथयाशुकान्त चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन । नृपस्तदोवाच मुदान्वितोऽसौ प्रिये रमेशेन सुतो हि मह्यम् ॥५०॥ लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः । सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥५१॥ ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः । कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम् ॥५२॥ सुखं

वह स्त्री तो धन्य हो जायेगी जो हँसते हुए तुमको अपनी गोद में लेकर प्रसन्न होयेगी ॥४३॥ हे पुत्र ! मेरे लिए संसार रूपी समुद्र के संतरण के लिए भगवान् विष्णु ने तुमको ही नौका बनाया है । इस तरह से कहकर राजा उस पुत्र को लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने घर चले गये ॥४४॥ नगरी के सन्निकट में आये हुए राजा को सुनकर राजा के सभी मन्त्री तथा राजा की प्रजायें अपने हाथ में उपहार लेकर पुरोहित के साथ राजा के पास गये ॥४५॥ सभी वंदीजन, गायक तथा सूत शीघ्र ही राजा के सामने आये । राजा भी अपने नगर में आकर सामने आए हुए लोगों को मिट्ठी बातों को कहकर तथा प्रेमयुक्त दृष्टि से देखकर आश्वस्त किया ॥४६॥ नागरिकों द्वारा पूजित होकर राजा अपने पुत्र के साथ नगरी में प्रवेश किये । डाले गये लावा और फूलों से युक्त मार्ग से होकर राजा नगर में गये ॥४७॥ इसके बाद राजा अपने दोनों हाथों से पुत्र को पकड़े हुए मंत्रियों के साथ अपने समृद्ध गृह में आकर उस मनोहर बालक को अपनी रानी को सौप दिये । उस बालक की कान्ति कामदेव के समान सुन्दर थी वह नव प्रसूत बालक था ॥४८॥ उस नवीन पुत्र को लेकर अनिन्दित रानी ने राजा से पूछा– हे राजन् ! इस सुन्दर जन्म वाले तथा कामदेव के समान रूप वाले इस सुन्दर बालक को आपने कहाँ से पाया है?॥४९॥ हे कान्त ! आप शीघ्र बतलाइये कि इस बालक को आपको किसने प्रदान किया है ? इस पुत्र ने तो मेरे मन को ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया है । रानी की बात को सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने कहा– हे प्रिये ! भगवान् विष्णु ने इस पुत्र को मुझे प्रदान किया है ॥५०॥ हे चंचल नेत्रों वाली प्रिये! इस महान पराक्रमी बालक में भगवान् जनार्दन का अंश है । इसकी माता साक्षात् लक्ष्मीजी हैं । इसके बाद रानी उस बालक को लेकर अत्यन्त प्रसन्न हुयी और राजा ने भी अद्भुत उत्सव मनाया ॥५१॥ उन्होंने याचकों को दान दिया और बहुत अधिक बाजे बजवाये गये । राजा ने उस पुत्र का बहुत

च संप्राप्य मुदान्वितोऽसौ ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः । पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं संप्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥५३॥ इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं
तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा । विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमाने व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

◆

एकविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा । दिने दिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥१॥ नृपः संसारजं प्राप्य सुखं**
पुत्रसमुद्भवम् । ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना ॥२॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि । तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम्॥३॥
चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः संपूज्य विविधैर्धनैः । गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि ॥४॥ वर्षे चैकादशे तस्य मौंजीबंधनकर्म वै । कारयित्वा

अधिक उत्सव मनाया और उस बालक का नाम एकवीर रखा ॥५२॥ राजा उस पुत्र को प्राप्त करके सुखी हो गये । इन्द्र के समान पराक्रम वाले राजा ने अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया । श्रीहरि के रूप तथा गुण के समान रूप तथा गुण वाले उस पुत्र को प्राप्त करके राजा वंश के ऋण से भी मुक्त हो गये ॥५४॥ इस तरह से समस्त देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु के द्वारा समस्त गुण समूह से सम्पन्न पुत्र को प्राप्त करके अनेक प्रकार के सुखद विनोदों के द्वारा तथा अपनी पत्नी के द्वारा सेवित अपने घर में इन्द्र के समान पराक्रम वाले राजा विहार करने लगे ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

◆

एकवीर चरित्र का वर्णन

व्यासजी ने कहा– उस समय राजा ने जब उस बालक के जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न किया । अच्छी तरह से पालित पोषित वह बालक भी शीघ्र ही बढ़ने लगा ॥१॥ पुत्र के उत्पन्न होने के कारण होने वाले सांसारिक सुखों को प्राप्त करके राजा अनुभव करने लगे कि वे देवऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण इन तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त हो गये हैं ॥२॥ पुत्र प्राप्ति के छठे मास में राजा ने उस बालक का अन्नप्राशन संस्कार विधिपूर्वक किया और

धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥५॥ अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् । दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः ॥६॥ पुष्यार्कयोगसंयुक्ते दिवसे नृपसत्तमः । कारयामास संभारानभिषेकार्थमादरात् ॥७॥ द्विजानाहूय वेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् । अभिषेकं चकारासौ विधिवत्स्वात्मजस्य ह॥८॥ जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः । स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने ॥९॥ धनं दत्त्वाऽथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः। जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः ॥१०॥ एकवीरं नृपं कृत्वा संमान्य सचिवानथ । भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी ॥११॥ मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम् । नित्यं पत्रफलाहारश्चिंतयामास पार्वतीम् ॥१२॥ एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टांते सह भार्यया । मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा ॥१३॥ इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः । चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदैहिकम् ॥१४॥ कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनन्दनः । राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसंमतम् ॥१५॥ एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम् । बुभुजे विविधान्भोगान्सचिवैश्च सुमानितः ॥१६॥ एकस्मिन्दिवसे राजा मंत्रिपुत्रैः समन्वितः जगाम जाह्नवीतीररे हयारूढः प्रतापवान् ॥१७॥

बालक का तृतीय वर्ष में चूडाकरण संस्कार किया ॥३॥ इस अवसर पर राजा ने ब्राह्मणों की द्रव्यों से तथा अनेक प्रकार के धन से पूजा की । इसके साथ दूसरे याचकों को गौ इत्यादि अनेक प्रकार के दानों से संतुष्ट किया ॥४॥ ग्यारहवें वर्ष में बालक का मौञ्जी बन्धन संस्कार कराकर स्वयं धनुर्वेद की शिक्षा राजा देने लगे ॥५॥ वेदाध्ययन कर लेने के पश्चात् राजधर्म में निपुण अपने पुत्र को देखकर राजां ने उसका अभिषेक करने का मन बनाया ॥६॥ जब पुष्यार्क का मुहूर्त आया तो राजा आदरपूर्वक अपने उस पुत्र के अभिषेक की तैयारी कराये ॥७॥ उन्होंने सभी शास्त्रों में निपुण वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर विधिपूर्वक अपने पुत्र का अभिषेक कराया ॥८॥ तीर्थों तथा सागर से जल मँगाकर राजा ने स्वयं शुभदिन को अपने पुत्र का अभिषेक किया ॥९॥ राजा ने ब्राह्मणों को धन दान किया और अपने पुत्र को राजा बनाकर स्वर्ग प्राप्ति की कामना से वे वन में चले गये ॥१०॥ एकवीर को राजा बनाकर तथा मंत्रियों का सम्मान करके जितेन्द्रिय राजा अपनी पत्नी के साथ वन में चले गये ॥११॥ राजा ने मैनाक पर्वत के शिखर पर अपना तृतीय वानप्रस्थ आश्रम बनाया। वे नित्य ही फलाहार करते थे और पार्वतीजी का ध्यान करते रहते थे ॥१२॥ इस तरह अपनी पत्नी के साथ दिनचर्या चलाते हुए प्रारब्ध कर्म के समाप्त हो जाने पर राजा मरकर अपने पुण्यकर्म के द्वारा इन्द्र के लोक में चले गये ॥१३॥ जब एकवीर ने यह सुना कि उनके पिता की मृत्यु हो गयी है तो वे वेदविहित विधि से अपने पिता की और्ध्वदैहिक कर्म को सम्पन्न किए ॥१४॥ वे पार्थिवनन्दन अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् की जाने वाली समस्त क्रियाओं को करके अपने पिता से प्राप्त राज्य की प्रजाओं के अनुकूल रीति से पालन करने लगे ॥१५॥ धर्मों के ज्ञाता एकवीर उत्तम राज्य को प्राप्त करके अपने मन्त्रियों से सम्मानिज होकर अनेक प्रकार राज्य सुखों का भोग किए ॥१६॥ एकदिन प्रातापी राजा एकवीर अपने मन्त्री के पुत्रों के साथ घोड़े पर सवार

संपश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंयुतान् । पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजितान् ॥१८॥ मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदाध्ययननादिताः । होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान् ॥१९॥ केदाराञ्छालिसम्पक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् । प्रफुल्लपङ्कजारामान्निकुञ्जांश्च मनोरमान् ॥२०॥ प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान्पनसद्रुमान् । बकुलांस्तिलकान्नीपान्मन्दारांश्च प्रफुल्लितान् ॥२१॥ शालांस्तालांस्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान् । स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥२२॥ पंकजं चाऽतिगंधाढ्यमपश्यदवनीपतिः । दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमलोचनाम् ॥२३॥ कनकाभां सुकेशीं च कंबुग्रीवां कृशोदरीम् । बिंबोष्ठीं सुदंरीं किंचित्समुद्यत्सुपयोधराम् ॥२४॥ सुनासां चारुसर्वांगीमपश्यत्कन्याकां नृपः । रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥२५॥ साश्रुनेत्रां क्रंदमानां विजने कुररीमिव । संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम् ॥२६॥ सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वं कस्य पुत्री शुभानने । गांधर्वी देवकन्याऽथ कथं रोदिषि सुंदरि ॥२७॥ कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे । पतिस्ते क्व गतः कांते पिता वा ब्रूहि सांप्रतम् ॥२८॥ किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्यममांतिके । करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि ॥२९॥ न राज्ये मम

होकर गंगातट पर गये ॥१७॥ वहाँ पर वे मनोहर वृक्षों को देखे कि उन पर कोयलें कूज रही है । वृक्षों में फल फूल लगे हुए हैं और उन पर भौरों का समूह मँडरा रहा है ॥१८॥ वहाँ पर मुनियों के अनेक दिव्य आश्रम थे । उन आश्रमों में वेद की ध्वनि हो रही थी । वहाँ का आकाश होम के धूएँ से भरा हुआ था और इधर-उधर मृगों के बच्चे विचरण कर रहे थे ॥१९॥ खेतों में धान की फसल पक गयी थीं, गोपिकाएँ फसलों की रक्षा करने का काम कर रहीं थी । निकुञ्जों और उद्यानों में मनोहर कमल खिले हुए थे ॥२०॥ इन सबों के साथ प्रियाल, चम्पक, पनस (कटहल) बकुल, तिलक, नीप (कदम्ब) तथा विकसित मन्दार के वृक्षों को देखते हुए तथा शाल, ताल एवं तमाल के वृक्षों को देखते हुए तथा जामुन, एवं आम्र समूह को देखते हुए राजा ने देखा कि गंगा के जल में कमल विकसित हुए हैं ॥२१-२२॥ राजा ने अत्यधिक सुंगधि से युक्त कमलों को देखा । उस कमल की दक्षिण दिशा में राजा ने देखा कि कोई कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, सुवर्ण के समान गौर वर्ण की कान्ति वाली, सुन्दर केशपाशों वाली, शंख के समान सुन्दर ग्रीवा वाली पतली कमर वाली, तथा विम्बाफल के समान लाल-लाल ओष्ठों वाली सुन्दरी विद्यमान है । उसके सुन्दर स्तन कुछ उभड़ आये थे ॥२३-२४॥ उसकी नाक बड़ी ही सुन्दर थी, उसके प्रायः सभी अङ्ग सुन्दर थे । ऐसे किसी कन्या को उस राजा ने देखा । वह अपने को छोड़कर आयी थी । दुःख से दुःखी थी और रो रही थी ॥२५॥ उसकी आँखों में आँसू भरा हुआ था, वह उस निर्जन वन में रो रही थी । उस कन्या को रोती हुयी देखकर राजा ने उसके शोक का कारण पूछा ॥२६॥ राजा ने उस कन्या से पूछा हे सुन्दरि ! बतलाओ तुम कौन हो ? हे सुन्दर मुखड़े वाली तुम किसकी पुत्री हों ? हे सुन्दरी तुम क्यों रो रही हो ? तुम कोई गन्धर्वी हो या देवकन्या हो ? ॥२७॥ हे बाले ! तुम अकेली क्यों हो, हे कोकिलवयनी तुमको किसने त्याग दिया है ?

तन्वंगि पीडां कोऽपि करोत्यलम् । न भयं चौरजं कांते न राक्षसभयं तथा ॥३०॥ मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणा भुवि । भयं न व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत् ॥३१॥ वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे । करोषि त्राणहीनाऽत्र किं ते दुःखं वदस्व मे ॥३२॥ हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले । दैवं च मानुषं कांते व्रतमेतममाद्भुतम् ॥३३॥ विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिंतितम् । इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना ॥३४॥ शृणु राजेंद्र वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् । विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते ॥३५॥ प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् । तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः ॥३६॥ रैभ्यो नाम महाराजः संतानरहितो भृशम् । तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः ॥३७॥ सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षणसंयुता । अपुत्रा दुःखिता कांतमित्युवाच पुनः पुनः ॥३८॥ किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम । वंध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले ॥३९॥ इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् । चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय

हे कान्ते ! तुम्हारे पति कहाँ चले गये हैं ? अथवा तुम्हारे पिता कहाँ हैं ? इन सारी बातों को तुम बतलाओ ॥२८॥ हे टेढ़ी भौंह वाली तुम्हें कौन सा कष्ट है ? इन सारी बातों को तुम मुझे बतलाओ । हे कृशोदरि मैं अभी-अभी तुम्हारी समस्त कष्टों को दूर कर देता हूँ ॥२९॥ मेरे राज्य में कोई भी ऐसा नहीं है जो इस प्रकार से दुःखी हो । हमारे राज्य में न तो चोरों का भय है और न राक्षसों का भय है ॥३०॥ इस भूमण्डल का मेरे प्रशासन करते रहने पर कोई भयंकर उत्पात नहीं हो सकता है ? मेरे राज्य में न तो व्याघ्रों एवं सिंहों से भय है और न किसी दूसरे से भय है ॥३१॥ हे वामोरु ! बतलाओ तुम इस गंगातट में क्यों विलाप कर रही हो ? लग रहा है कि यहाँ तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है । तुमको कौन सा दुःख है ? मुझे बतलाओ ॥३२॥ मैं पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों के कठिन से कठिन दुःख को विनष्ट करने में समर्थ हूँ । चाहे वह कष्ट दैविक हो अथवा मानुषिक हो, उसे दूर करने का मेरा अद्भुत व्रत है ॥३३॥ हे बड़ी-बड़ी नेत्रों वाली, तुम जो चाहती हो, उसे मैं पूरा कर दूँगा । इस तरह से कहने वाले राजा की वाणी को सुनकर कोमल स्वरों वाली उस कन्या ने कहा– ॥३४॥ हे राजेन्द्र ! आप मेरे शोक के कारण को सुनें । उसे मैं आपको सुना रही हूँ । हे राजन् ! जिस पर कोई विपत्ति नहीं आयी हो वह व्यक्ति क्यों रोएगा ?॥३५॥ हे महाबाहो ! मैं जिसके कारण रो रही हूँ उसे बतला रही हूँ । आपके देश से भिन्न देश में एक परम धार्मिक राजा थे ॥३६॥ उनका नाम रैभ्य था । उनकी कोई सन्तान नहीं थी । उनकी पत्नी का नाम रुक्मरेखा था । वह अपने इसी नाम से विख्यात थी ॥३७॥ उस रानी का सुन्दर रूप था, वह चतुर थी, साधु प्रकृति की थी और नारी के समस्त लक्षणों से सम्पन्न थीं । उनको कोई पुत्र नहीं था । उसने अपने पति से बार-बार कहा ॥३८॥ हे नाथ ! मैं बन्ध्या हूँ । सुख से रहित हूँ क्योंकि मुझको कोई पुत्र नहीं है । मेरा पृथिवी पर जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है । मेरे जीवन को धिक्कार है ॥३९॥ इस तरह से पत्नी के द्वारा प्रेरित होकर राजा ने वेदों तथा यज्ञों के जानकर ब्राह्मणों को

विधिवत्तदा ।।४०।। पुत्रकामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम् । हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ।।४१।। आविर्बभूव चार्वङ्गी कन्यका शुभलक्षणा । बिंबोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचन्द्रनिभानना ।।४२।। कनकाभा सुकेशांता रक्तपाणितला मृदुः । सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम्।।४३।। हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा । होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ।।४४।। राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम्। एकावलीव संभूता हूयमानाद्धुताशनात् ।।४५।। नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति । सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया ।।४६।। संतोषं कुरु राजेन्द्र दत्ता देवेन विष्णुना । होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम् ।।४७।। जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसंमताम् । गृहीत्वा नृपतिस्तां तु ददौ पत्न्यै वराननाम् ।।४८।। आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुताम् । सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम्।।४९।। जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् । चकार मंगलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम् ।।५०।। पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः । समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम् ।।५१।। दत्त्वा विसृज्य विप्रेंद्रान्मुदं प्राप महीपतिः । दिने दिनेऽसितापांगी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ ।।५२।। मुदं

बुलाकर विधिपूर्वक उत्तम यज्ञ किया ।।४०।। उस यज्ञ को राजा ने पुत्र प्राप्ति की कामना से किया । उस यज्ञ में राजा ने शास्त्रोक्त प्रकार से धन भी ब्राह्मणों को दिया । जब घी की अत्यधिक आहुति दी जाती थी तो उस समय देदीप्त अग्नि से एक सुन्दर तथा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त कन्या प्रकट हुई । उसके ओष्ठ विम्बाफल के समान लाल-लाल थे । दाँत तथा भौहें सुन्दर थी । उसका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान आह्लादक था ।।४२।। उसका सुवर्ण के समान गौर वर्ण था । सुन्दर केश थे उसके हाथ के तलवे लाल और कोमल थे । उसके नेत्र सुन्दर और अरुणवर्ण के थे । उस तन्वी के पैर के तलवे भी लाल थे ।।४३।। वह चूकि अग्नि से उत्पन्न हुयी इसलिए उसे होता ने ग्रहण कर लिया । उस सुन्दरी को ग्रहण करके होता ने राजा से कहा ।।४४।। हे राजन् ! आप समस्त लक्षणों से सम्पन्न इस पुत्री को स्वीकार करें । चूकि यह होम की जाती हुई अग्नि से एकावली के समान पैदा हुई है, अतएव इसका नाम एकावली ही होगा । हे राजन् ! यह पुत्री भी पुत्र के ही समान है । अतएव इसको ही प्राप्त करके सुखी हो जायँ ।।४६।। हे राजन् ! आप सन्तोष करें । इसे भगवान् विष्णु ने आपको प्रदान किया है । होता की बातों को सुनकर तथा उस सुन्दरी कन्या को देखकर ।।४७।। राजा होता से उस पुत्री को प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हो गये । राजा ने उस कन्या को लेकर उसे अपनी पत्नी को दे दिया ।।४८।। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि हे रुक्मरेखे! तुम इस पुत्री को लो । रानी ने भी कमल के समान नेत्रों वाली उस मनोरम कन्या को प्राप्त करके ।।४८।। अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किया । उसे उसी तरह से प्रसन्नता हुयी जिस तरह से उसे पुत्र को प्राप्त करने से प्रसन्नता होती । राजा ने भी उसके लिए जातकर्म आदि मङ्गलमय शुभकर्मों को किया ।।५०।। पुत्रजन्म के समय किए जाने वाले समस्त कर्मों को राजा ने विधिपूर्वक सम्पन्न किया । यज्ञ समाप्त करके राजा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान किया ।।५१।।

च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता । उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः ॥५३॥ पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल । राज्ञो मंत्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते ॥५४॥ यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः । वयस्याऽहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह ॥५५॥ सदा सहचारी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम् । एकावली गंधवंति यत्र पद्मानि पश्यति ॥५६॥ तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात् । सुदूरे जाह्नवीतीरे भवंति कमलान्यपि ॥५७॥ रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता । मया निवेदितं राजन्पुत्री ते कमलाकरान् ॥५८॥ प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने । निषेधिताऽथ पित्राऽसौ गृहे कृत्वा जलाशयान् ॥५९॥ कमलान्वापयित्वाऽथ पुष्पितान्भ्रमरावृतान् । तथापि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना॥६०॥ तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः । एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता । क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

ब्राह्मणों को दक्षिणा देने के बाद राजा ने उन लोगों को विदा किया और प्रसन्नता का अनुभव किया । वह राजकुमारी भी प्रतिदिन बढ़ने लगी । शरीर वृद्धि के साथ उसकी सुन्दरता भी बढ़ने लगी ॥५१-५२॥ अपनी पुत्री के साथ रानी भी प्रसन्न हो गयीं । उस दिन उन्हांने अपने पुत्रजन्म का उत्सव मनाया ॥५३॥ वह पुत्री भी अपने माता-पिता को पुत्र के ही समान प्रिय हुयी । हे कामदेव के समान सुन्दर महाबुद्धिमान राजन् ! मैं राजा के मन्त्री की पुत्री हूँ ॥५४॥ मेरा नाम यशोवती है । हमदोनों सखियों की अवस्था भी एक समान है । राजा ने मुझे उसके साथ खेलने के लिए उस राजकुमारी की सखी बना दिया॥५५॥ मैं उसके साथ रात-दिन प्रेम पूर्वक रहती हुई उसकी सहचरी बन गयी । राजकुमारी एकावली सदा सुगन्धित कमलों को ही देखती थी ॥५६॥ वह बाला उन कमलों से ही खेलती थी, उसको किसी भी दूसरी वस्तु से सुख नहीं मिलता था । कमल भी जाह्नवी तट में ही होते थे ॥५७॥ मैं उसकी सखी थी। वह मेरे ही साथ वहाँ जाती थी । मैंने राजा से कहा कि राजन् आपकी यह पुत्री कमलों को देखने के लिए निर्जन वन में दूर तक चली जाती है । यह सुनकर राजा ने अपने गृह में ही जलाशयों को बनवाकर उसे दूर जाने से रोका ॥५९॥ राजा ने उन जलाशयों में विकसित तथा भ्रमरों से गुञ्जित कमलों को भी लगवा दिया । फिर भी उस बाला का कमलों में ही मन लगे रहने के कारण वह चली जाती थी ॥६०॥ तब राजा ने उसकी रक्षा करने के लिए उसके लिए शस्त्रधारी रक्षकों को नियुक्त कर दिया । इस तरह से सुन्दरी मुझ सखी के साथ रक्षकों से युक्त होकर गंगा के जल में क्रीडा करने के लिए प्रतिदिन आती-जाती रहती थी ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

द्वाविंशोऽध्याय:

यशोवत्युवाच– **प्रातरुत्थाय तन्वंगी चलिता च सखीयुता । चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः ॥१॥ सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी । क्रीडार्थमत्र राजेन्द्र संप्राप्ता नलिनीं शुभाम् ॥२॥ अहमप्यनया सार्धं गंगातीरे समागता । अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया॥३॥ एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा । सहसैव तदाऽऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥४॥ कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः । परिघासिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः ॥५॥ दृष्टा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी । द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपंकजैः ॥६॥ मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः । गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पंकजलोचने ॥७॥ विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात् । मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज ॥८॥ कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः । गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः ॥९॥ रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहांबुजलोचनाम् । त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रंदमानां कृशोदरीम् ॥१०॥ त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः । न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥११॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो रक्षकास्तं महाबलम् । प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥१२॥ तस्यापि राक्षसाः क्रूराः**

राजकुमारी एकावली का चरित्र वर्णन

यशोवती ने कहा– एक दिन प्रात:काल उठकर अपनी सखियों के साथ चल पड़ी उसको चमर झला जा रहा था । अनेक रक्षक उसकी रक्षा करने के लिए उसके साथ थे ॥१॥ वे सावधानी पूर्वक आयुध धारण किए हुए थे । हे राजेन्द्र ! वह क्रीडा करने के लिए इस गंगातट पर आयीं ॥२॥ मैं भी उसके साथ इस गंगातट आयी । उसके साथ अनेक अप्सराएँ थीं । वह कमलों से खेल रही थीं । जब एकावली और मैं दोनों क्रीड़ा कर रही थी उसी समय सहसा वहाँ पर एक बलवान् दानव आया ॥३-४॥ उसके साथ बहुत से राक्षस थे । वे अपने हाथ में परिघ, तलवार, गदा, धनुष-बाण तथा तोमर आदि आयुधों को लिए हुए थे ॥५॥ उसने रूप तथा यौवन से सुशोभित एकावली को देखा । वह देखने में कामपत्नी रति के समान सुन्दर थी और कमलों के साथ वह क्रीड़ा कर रही थी ॥६॥ हे राजन् ! मैंने एकवली से कहा यह कौन सा दैत्य आया है ? हे कमलनयने ! हम दोनों रक्षकों के बीच में चल चलें ॥७॥ इस तरह से विचार करके भयभीत होकर वहाँ से शीघ्र ही शस्त्रधारी रक्षकों के बीच में चली गयी ॥८॥ हे राजन् ! कालकेतु ने उस सुन्दरी को देखा और वह कामातुर हो गया । वह अपनी भारी गदा को लेकर दौड़ता हुआ वहाँ आ गया ॥९॥ उसने रक्षकों को वहा से दूर भगा दिया । और उस कमलनयनी को पकड़ लिया । उस समय कृशोदरी एकावली भयभीत होकर काँप रही थी तथा रो रही थी ॥१०॥ मैंने उस दानव से कहा कि तुम

सर्वतः शस्त्रपाणयः । युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्ये कृतोद्यमाः ॥१३॥ संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे । निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां
महाबलः ॥१४॥ युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति । वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु ॥१५॥ पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी
मम । विक्रोशंती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा ॥१६॥ साऽपि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा । गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः
पुनः ॥१७॥ सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तंभस्वेदसमाकुला । कंठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता ॥१८॥ स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं
वचः । समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चंचललोचनाम् ॥१९॥ प्राप्तं ममाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये । दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रंदसि
कातरा॥२०॥ कथयैनां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने । इत्युक्त्वा मां सखीं पार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे ॥२१॥ जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य
मनोहरे । सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनांबुजः ॥२२॥ एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे । राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामास
कोटिशः॥२३॥ द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृप । प्रबोधय सखीं बालां शोचंतीं विरहातुराम् ॥२४॥ पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुंक्ष्व

इसको छोड़ दो और मुझे पकड़ लो । लेकिन वह कामार्त बना हुआ दानव मुझको नहीं पकड़ा और एकावली को पकड़कर चला गया ॥११॥ रक्षकों ने
उसे तिष्ठ-तिष्ठ कहकर ललकारा और उस दानव के साथ विस्मयकारी युद्ध किया ॥१२॥ उस दानव के जो राक्षस थे वे भी अपने स्वामी के लिए प्रयास
करते हुए उन रक्षकों के साथ युद्ध किए ॥१३॥ उस समय कालकेतु के साथ रक्षकों ने युद्ध किया किन्तु उसने सभी रक्षकों को मार दिया और इस एकावली
को पकड़कर अपनी राक्षससेना के साथ अपनी नगरी में चला गया । उस दानव के द्वारा पकड़ी गयी तथा रोती हुई एकावली को देखकर मैं भी उसके पीछे-
पीछे वहाँ चली गयी जहाँ पर मेरी सखी को ले गया जिससे कि वह मुझे अपनी सहचरी को देख सके ॥१६॥ एकावली ने भी मुझे जब देखा तो वह
कुछ स्वस्थ हुयी । मैं उसके साथ बातें बार-बार करती हुई उसके समीप गयी ॥१७॥ स्तम्भ तथा स्वेद से व्याकुल दुःखी एकावली ने जब मुझे देखा तो
वह मेरे गले से लिपटकर बहुत रोयी ॥१८॥ कालकेतु ने मुझसे प्रेमपूर्वक कहा तुम अपनी चंचल नेत्रों वाली सखी को आश्वस्त करो ॥१९॥ मेरा नगर
देवलोक के समान है । अब तुम इस नगर में आ गयी हो । मैं तुमसे प्रेम करने के कारण तुम्हारा दास बन गया हूँ तुम क्यों रो रही हो ॥२०॥ तुम
अपनी सखी से कहो कि हे सुलोचने ! अब तुम स्वस्थ हो जाओ । इस तरह से कहकर मुझे अपनी सखी के पास सुन्दर रथ पर बैठाकर ॥२१॥ वह
दुष्ट अपने सुन्दर नगर में प्रसन्न होकर अपनी सेना के साथ चला गया ॥२२॥ उसने मुझे तथा एकावली को एक सुन्दर भवन में रख दिया और उस गृह
की रक्षा करने के लिए करोड़ों रक्षकों को नियुक्त कर दिया ॥२३॥ हे राजन् ! उसने दूसरे दिन एकान्त में मुझसे कहा तुम शोक करने वाली, वियोग से

यथेप्सितम् । राज्यं त्वदीयं चंद्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव ॥२५॥ पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं स्वरम् । नाहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथया प्रभो ॥२६॥ इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः । उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम् ॥२७॥ कृशोदरि त्वया मंत्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि । तेन मे हृदयं कांते हृतं ते वशतां गतम् ॥२८॥ तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः । भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम् ॥२९॥ यौवनं याति रंभोरु चंचलं दुर्लभं तथा । सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च ॥३०॥ एकावल्युवाच– **पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै । हैहयस्तु महाभागः स मया मनसा वृतः ॥३१॥ कथमन्यं भजे कांतं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् । कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥३२॥ यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात् । परतंत्रा सदा कन्या न स्वातंत्र्यं कदाचन ॥३३॥ इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः । न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥३४॥ पातालविवरे तस्य पुरं परमसंकटे । राक्षसै रक्षितं दुर्गं मंडितं परिखावृतम् ॥३५॥ तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा । तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि सुदुःखिता ॥३६॥** एकवीर उवाच– **कथं त्वमत्र**

व्याकुल सखी को सन्तोष दिलाओ ॥२४॥ मेरी ओर से तुम एकावली से कहों कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ अपने मनोनुकूल सुखों को भोगो । हे चन्द्रवदने! यह राज्य तुम्हारा है । मैं तुम्हारा सेवक हूँ ॥२५॥ उसकी बातों को सुनकर मैंने उससे कहा मैं इस अप्रिय बात को उससे नहीं कह सकती हूँ, आप ही उससे यह बात कहिए ॥२६॥ मेरे द्वारा इस तरह से कहे जाने पर कामी बना हुआ वह दुष्ट उस एकावली से विनयपूर्वक कहा ॥२७॥ हे कुशोदरि तुमने मेरे ऊपर मन्त्र का प्रयोग कर दिया है । उस मंत्र ने मेरा हृदय चुरा लिया है और मेरा मन तुम्हारे अधीन हो गया है ॥२८॥ उसी के कारण मैं तुम्हारा दास बन गया हूँ । मैं कामपीड़ित होने के कारण विवश हूँ । तुम मुझे स्वीकार कर लो ॥२९॥ हे रम्भोरु ! तुम्हारी यह जवानी बीती जा रही है । यौवन अत्यन्त चंचल एवं दुर्लभ है । हे कल्याणि ! मेरा आलिगंन करके मुझे अपना पति बना कर मेरे जीवन को सफल बना दो ॥३०॥ **एकावली ने कहा–** मेरे पिता ने पहले ही मुझे राजकुमार हैहय को देने के लिए संकल्प कर लिया है । मैंने भी उनको ही अपने मन से अपना पति बना लिया है ॥३१॥ अब सनातन धर्म को छोड़कर मैं किसी दूसरे को अपना पति कैसे बना सकती हूँ ? मैं कन्या का धर्म का परित्याग कैसे कर सकती हूँ ?॥३२॥ शास्त्र का यह निर्णय है कि पिता जिसको प्रदान करे कन्या उसी को अपना पति बनाये । कन्या तो सदा परतंत्र रहती है । वह कभी भी स्वतंत्र नहीं होती है॥३३॥ इस तरह से एकावली के द्वारा कहे जाने पर भी पापी कालकेतु न तो उसको छोड़ा औन न तो उसके साथ रहने वाली मुझको ॥३४॥ कालकेतु का नगर पाताल के एक अत्यन्त गहरी गुफा में हैं । वहाँ जाने में अत्यन्त कठिनाई है । दैत्य उसके किला की रक्षा करते हैं । उसके चारों ओर गहरी खाईं हैं ॥३५॥ वहीं पर मेरी प्राणप्रिय सखी विद्यमान है । वह दुःखी है । उसी के दुःख से दुःखी होकर इस प्रकार विलखकर रो रही हूँ ॥३६॥ यशोवती की बात सुनकर

संप्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः । विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं बूहि वरानने ॥३७॥ त्वया च कथितं वाक्यं सन्दिग्धं भाति भामिनि । हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम सांप्रतम् ॥३८॥ हैहयो नाम राजाऽहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः । मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना ॥३९॥ एतन्मे संशयं सुभ्रु छेत्तुमर्हसि भामिनि । अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम् ॥४०॥ स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते । राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता ॥४१॥ यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् । नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥४२॥ बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः । असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम् ॥४३॥ त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान् । सख्याः पङ्कजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम् ॥४४॥ कदा पश्यामि तां कांतां मोचयित्वाऽतिसङ्कटात् । इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥४५॥ ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे । कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद ॥४६॥ यशोवत्युवाच– बालभावान्मया मंत्रो भगवत्या विशांपते । प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥४७॥ तत्रावस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् । आराधयामि सततं चंडिकां चंडविक्रमाम् ॥४८॥

एकवीर ने कहा तुम उस दुष्ट की नगरी से यहाँ कैसे आ गयी ? इसी बात को तुम मुझे बतलाओ, इस विषय में मुझे आश्चर्य हो रहा है ॥३७॥ हे सुन्दरि! तुम जिन बातो को कह रही हो उसके विषय में सन्देह हो रहा है कि एकाबली ने यह जो कहा है कि मेरे पिता ने मेरा विवाह हैहय के साथ करने का निश्चय कर लिया है ॥३८॥ हैहय नाम का राजा मैं ही हूँ । तुम्हारी सखी ने मेरे लिए क्या कहा है ?॥३९॥ हे सुभ्रु ! मेरे इस संशय को तुम दूर करो। मैं उस राक्षसाधम को मार कर एकावली को लाऊँगा ॥४०॥ यदि तुम जानती हो तो मुझे उस राक्षस का स्थान दिखा दो । उसने अपने पिता के लिए क्या कहा है ? क्योंकि वह अत्यन्त दुःखी होगे ॥४१॥ उसके पिता इस बात को नहीं जानते हैं कि उसका अपहरण हो गया है ? और यदि वे जानते हैं तो उन्होंने उसको छुड़ाने के लिए प्रयास क्यों नहीं किया ?॥४२॥ वे अपनी पुत्री को बन्दी बनायी गयी जानकर भी शान्तिपूर्वक क्यों बैठे हैं ? क्या वे राजा उसको छुड़ाने में असमर्थ हैं । इसका कारण तुम शीघ्र बताओ ॥४३॥ तुमने अपनी सखी के अतिमानुष गुणों का वर्णन करके मेरे चित्त को चुरा लिया है । हे कमलनयनि ! मैं अत्यन्त काम पराधीन हो गया हूँ ॥४४॥ मैं उस प्रियतमा को घोर संकट से छुडा कर उसे कब देख पाऊँगा ? इस तरह से मेरा हृदय अत्यधिक मनोरथ कर रहा है ॥४५॥ तुम मुझको उस दुर्गम नगर में पहुँचने के उपाय को बतलाओ । पहले तुम यह बतलाओं कि तुम उस संकट से बचकर कैसे आ पायी हो ?॥४६॥ **यशोवती ने कहा–** हे राजन् ! जब मैं बालिका थी उस समय मैंने एक सिद्ध ब्राह्मण से ध्यान एवं बीजमंत्र पूर्वक देवी का मन्त्र प्राप्त कर लिया था ॥४७॥ जब मैं उस दानव के यहाँ बन्दिनी थी तो मन में मैने विचार किया कि महापराक्रम सम्पन्न चण्डिका की मैं आराधना करूँ ॥४८॥ उस देवी का भजन करने पर वे मुझे इस बंधन से अवश्य मुक्त करायेंगी । वे तो अपने भक्तों पर कृपा करने वाली शक्ति हैं

सा देवी सेविता कामं बन्धमोक्षं करिश्यति । भक्तानुकम्पिनी शक्तिः समर्था सर्वसाधने ॥४९॥ या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः । कल्पान्ते संहरत्येव निराकारा निराश्रया ॥५०॥ इति संचिंत्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् । ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि ॥५१॥ संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रजाप्यपराऽभवम् । उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना ॥५२॥ स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता । मामाहामृतया वाचा किं सुप्ताऽसीति चंडिका ॥५३॥ उत्तिष्ठ याहि तरसा गंगातीरं मनोहरम् । आगामिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुंगवः ॥५४॥ एकबीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः । दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः ॥५५॥ दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः । मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः ॥५६॥ मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः । स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः ॥५७॥ मासुतो विहरंस्तत्र तव त्राता भविष्यति । हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम् ॥५८॥ एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः । पाश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः ॥५९॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी प्रबुद्धाऽहं तदैव हि । कथितं स्वप्नवृत्तान्तं देव्याश्चाराधनं तथा ॥६०॥ प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा । विशेषेण च सन्तुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता ॥६१॥ गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये । सत्यवाक्या भगवती साऽऽवां

और सभी कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ हैं ॥४९॥ वे देवी ही जगत् की सृष्टि करती हैं और सृष्टि करने के बाद उसका पालन करती हैं । कल्प का अन्त होने पर वे ही इस जगत् का संहार करती हैं । वे आकार तथा आश्रय रहित हैं ॥५०॥ इसतरह से मन में विचार करके कल्याणकारिणी विश्वेश्वरी जगदम्बा का ध्यान किया । रक्तवस्त्र धारण करने वाली तथा लाल नेत्रों वाली उन देवी का मैंने अपने हृदय में ध्यान किया ॥५१॥ इस तरह से देवी के रूप का ध्यान करके मैं मन्त्र का जप करने लगीं । मैंने एक महीने तक देवी की वहाँ उपासना की ॥५२॥ मेरी भक्तिभावना से संतुष्ट देवी ने स्वप्न में मेरे पास आकर अपनी अमृतवाणी से कहा उठो क्या सोयी हो ॥५३॥ शीघ्र तुम गंगा के मनोहर तट पर जाओ । वहाँ पर नृपश्रेष्ठ हैहय आयेंगे । उनका दूसरा नाम एकबीर है । वे महाबाहु सभी शत्रुओं का मर्दन करने वाले हैं । दत्तात्रेय महर्षि ने उनको महाविद्यामन्त्र का उपदेश दे दिया है ॥५५॥ वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी उपासन करते हैं । वे सदा मेरी पूजा करते रहते हैं, और उनका ध्यान हमेशा मायाशक्ति में ही लगा रहता है ॥५६॥ वे मेरे भक्त हैं और सभी जीवों में मेरा ही ध्यान करते हैं । वे महामति हैं । वे ही तुम्हारे दुःख का विनाश करेंगे ॥५७॥ वे लक्ष्मीजी के पुत्र हैं । वे वहीं पर घूमते हुए आयेंगे और तुम्हारे रक्षक हो जायेंगे । वे उस भयंकर राक्षस का वध करके इस मानिनी एकावली को मुक्त करायेंगे । एकबीर सभी शास्त्रों में निपुण हैं । उसके बाद उन्हीं को एकावली को अपना पति बनाना चाहिए ॥५८-५९॥ इस तरह से कहकर देवी तो अन्तर्धान हो गयी और मैं उसके बाद जग गयीं । मैंने एकावली को सारा वृत्तान्त सुनाया और देवी की आराधना की बात सुनायी ॥६०॥ इन सारी बातों को सुनकर एकावली प्रसन्न हो गयी । वह शुचिस्मिता

मोक्षं विधास्यति ॥६२॥ इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया । मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप ॥६३॥ चलिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः । मार्गज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज ॥६४॥ इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् । कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान् । प्रफुल्लवदनाम्भोजस्तामुवाच विशाम्पते ॥१॥** राजोवाच– **रम्भोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तान्तो विशदाक्षरः । हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिन्धुसुतासुतः ॥२॥ मनो मे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतं किल । किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः ॥३॥ प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया । तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः ॥४॥ ततस्तस्य गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु**

विशेष रूप से सन्तुष्ट होकर मुझको कही ॥६१॥ हे सखि तुम शीघ्र जाओ और मेरा कार्य करो । भगवती सत्य बोलती हैं । वे ही हमदोनों को बन्धन से मुक्त करेंगी ॥६२॥ मेरी सखी ने प्रेमपूर्वक मुझे यहाँ आने का आदेश दिया तो मैंने सोचा कि इसी समय यहाँ से चल पड़ना उचित है ॥६३॥ उसके बाद मैं वहाँ से देवी की कृपा से चल पड़ी । हे राजकुमार देवी की कृपा से मुझे मार्ग का ज्ञान तथा शीघ्र गति प्राप्त हो गयी ॥६४॥ इस तरह से मैंने अपने दुःख का कारण आपको बतला दिया । आप यह बतलायें कि आप कौन हैं ? और आपके पिता का नाम क्या है ?॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

कालकेतु के वध का वर्णन

व्यासजी ने कहा– यशोवती की बात को सुनकर प्रतापी लक्ष्मीपुत्र का मुख कमल विकसित हो गया और उन्होंने यशोवती से कहा ॥१॥ **राजा ने कहा–** हे रम्भोरु ! तुमने जो मेरा विशद रूप से वृतान्त पूछा है, उसे मैं कह रहा हूँ सुनो । मैं ही हैहय हूँ । मेरा नाम एकवीर है । मेरी माता लक्ष्मीजी हैं ॥२॥ तुमने तो मेरे मन को परतन्त्र बना दिया है । मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? मैं तो एकावली के वियोग में अत्यन्त पीड़ित हूँ ॥३॥ पहले तो तुमने उसके

चित्तं हृतं पुनः । यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत् ॥५॥ एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः । हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः ॥६॥ तेन वाक्येन तन्वंगि भृत्योऽहमधुना कृतः । त्वया तस्याः सुकेशांते ब्रूहि किं करवाणि वाम् ॥७॥ स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः । गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने ॥८॥ वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा । प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी ॥९॥ हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि सांप्रतम् । विवशां शोकसन्तप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम् ॥१०॥ विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम् । पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम् ॥११॥ पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजा पुत्र्याः परन्तपः । एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे ॥१२॥ भविष्यति स सम्पूर्णः साधनेन तवाधुना । दर्शयाशु पुरं तस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम् ॥१३॥ यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम् । तथा कुरु प्रियङ्कर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि ॥१४॥ मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च । व्यास उवाच– **तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥१५॥ तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् । मन्त्रं गृहाण राजेंद्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम् ॥१६॥ दर्शयिष्यामि तस्याद्य**

सर्वलोकातिशायी रूप का वर्णन किया उसके कारण मेरा मन काम के बाणों से आहत होकर अत्यन्त अधीर हो गया ॥४॥ इसके बाद तुमने उसके गुणों का वर्णन किया उस वर्णन ने मेरा चित्त ही चुरा लिया । उसके बाद जो तुम बतलायी उससे मुझे आश्चर्य हुआ ॥५॥ एकावली ने जो उस दानव से यह कहा है कि मैंने हैहय को अपना पति बना लिया है । अतएव मैं दूसरे का वरण नहीं कर सकती हूँ ॥६॥ हे सुन्दरि ! उसके उस वाक्य से तो मैं उसका दास हो गया हूँ । हे सुन्दर केशवाली ! तुम ही बतलाओं मैं तुम दोनों के लिए क्या करूँ ॥७॥ मैं तो उस दुष्ट राक्षस का स्थान नहीं जानता हूँ । हे सुन्दर नेत्रों वाली ! स्वयं मैं वहाँ पहुँच नहीं सकता हूँ ॥८॥ तुम मुझे वहाँ पहुँचाने में पूर्ण रूप से समर्थ हो । मुझे वहाँ शीघ्र पहुँचाओं जहाँ तुम्हारी सुन्दरी सखी है ॥९॥ मैं उस क्रूर राक्षस का वध करके एकावली को बन्धन से मुक्त कराऊँगा । वह विवश होकर शोक से संतप्त है और तुम्हारी प्रिय सखी है॥१०॥ मैं उसको शीघ्र ही दुःख से मुक्त कराकर उसे तुम्हारी नगरी में पहुँचा दूँगा । मैं उसके पिता को एकावली को समर्पित कर दूँगा ॥११॥ उसके बाद वे परन्तप राजा उसका विवाह करेंगे । हे प्रियंवदे ! इस तरह से तुम्हारी तथा मेरी दोनों की कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी ॥१२॥ हमदोनों की इच्छाएँ साधन के ही द्वारा सम्पन्न होंगी । तुम मुझे उसके नगर को दिखाओ तब मेरा पराक्रम देखना ॥१३॥ कि मैं उस दूसरे की पत्नी का अपहरण करने वाले को किस तरह मारता हूँ । हे सुन्दरि ! तुम मेरी सहायता करने में समर्थ हो ॥१४॥ उस दुर्गम नगरी का मार्ग तुम मुझे दिखाओ **व्यासजी ने कहा–** राजा एकवीर की बात को सुनकर यशोवती प्रसन्न हो गयी ॥१५॥ लक्ष्मीपुत्र एकवीर को वहाँ पहुँचने का उपाय बतलाती हुई उसने कहा हे राजेन्द्र ! पहले आप सिद्धि प्रदान करने वाले भगवती के मन्त्र की दीक्षा ग्रहण कर लें ॥१६॥ आज ही मैं आपको उस राक्षसों से सुरक्षित नगरी को आपको दिखा दूँगी । हे

पुरं राक्षसपालितम् । सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह ॥१७॥ सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति । कालेकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः॥१८॥ तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह । दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः ॥१९॥ हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाशु च मे सखीम् । श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मन्त्रञ्जग्राह सत्वरः ॥२०॥ दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् । योगेश्वरीमहामंत्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥२१॥ तेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता तथा । तया सह जगामाशु पुरं तस्य सुदुर्गमम् ॥२२॥ रक्षितं राक्षसैर्घोरै पातालमिव पन्नगैः । यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः ॥२३॥ तमायांतं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः । क्रोशंतोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥२४॥ तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम् । एकावलीसमीपस्थं कुर्वन्तं विनयान्बहून ॥२५॥ दूता ऊचुः— **राजन् यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी । आयाति सह सैन्यैन राजपुत्रेण संयुता ॥२६॥ जयन्तो वा महाराज कार्तिकियोऽथवा नु किम् । आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥२७॥ संयतो भव राजेन्द्र संग्रामः समुपस्थितः । देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज वा कमलेक्षणाम् ॥२८॥ इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः । सज्जो भव महीपाल दुंदुभिं**

महाराज ! आप मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जायँ ॥१७॥ आप अपने साथ एक बड़ी सेना भी ले लें क्योंकि वहाँ जाने पर युद्ध अवश्य होगा । कालकेतु महाबलवान् है उसके साथ बलवान राक्षस भी रहते हैं ॥१८॥ अतएव आप मन्त्र लेकर ही मेरे साथ वहाँ चलें । मैं उस दुष्ट के नगर का मार्ग दिखाऊँगी ॥१९॥ उस दुष्ट का वध करके आप शीघ्र मेरी सखी को मुक्त करायें । यशोवती की बात को सुनकर एकवीर ने देवी का मन्त्र ले लिया, क्योंकि उसी समय ज्ञनियों में श्रेष्ठ दत्तात्रेय महर्षि भी वहाँ आ गये और उन्होनें ही उस मन्त्र को एकवीर को प्रदान किया । वह योगेश्वरी का महामन्त्र त्रिलोकी तिलक के नाम से अभिहित किया जाता है ॥२१॥ उसके कारण एकवीर में सर्वज्ञता तथा सब के भीतर प्रवेश करने की शक्ति आ गयी और राजा एकवीर यशोवती के साथ शीघ्र ही उस दानव की दुर्गम नगरी मे गये ॥२२॥ जिस तरह पन्नग (सर्प विशेष) पाताल की रक्षा करते हैं उसी तरह वह नगरी भी भयंकर राक्षसों से सुरक्षित थी । राजा एकवीर यशोवती तथा विशाल सेना के साथ थे ॥२३॥ इस तरह से आते हुए एकवीर को देखकर कालकेतु के दूत भयभीत हो गये और चिल्लाते हुए महाबलवान् कालकेतु के पास जाकर ॥२४॥ उसे काममोहित जानकर उससे कहे । उस समय कालकेतु एकावली के समीप में जाकर उससे अनेक प्रकार की प्रार्थना कर रहा था ॥२५॥ **दूतों ने कहा—** हे राजन् ! इस कामिनी के साथ रहने वाली यशोवती नाम की नारी सेना तथा राजकुमार के साथ आ रही है ॥२६॥ हो सकता है कि वह इन्द्र का पुत्र जयन्त हो या शंकरजी के पुत्र कार्तिकेय हों । वे बल से उन्मत्त होकर सेना के साथ आ रहे हैं ॥२७॥ हे राजेन्द्र ! आप सावधान हो जाइये युद्ध उपस्थित हो गया है । या तो आप उस देवता के साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनी को बन्धन से मुक्त कर दीजिये ॥२८॥ वह सेना यहाँ से केवल तीन योजन की दूरी पर है । हे राजन् ! आप तैयार हो जायँ तथा दुन्दुभि घोष कराकर युद्ध

घोषयाशु वै ॥२९॥ व्यास उवाच **तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्छितः । राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून् ॥३०॥ गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः । तानाज्ञाप्या कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः ॥३१॥ एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम् । कोऽयमायाति तन्वङ्गि पिता ते वाऽपरः पुमान् ॥३२॥ त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि । पिता ते यदि संप्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः ॥३३॥ ज्ञात्वा ते पितरं सम्यक्संग्रामं न करोम्यहम् । आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः ॥३४॥ करोमि तस्य चातिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा । अन्यश्चेद्यदि संप्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥३५॥ आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना । तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मंदधीः ॥३६॥ अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ।** एकावल्युवाच– **न जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः ॥३७॥ न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बंधने । नायं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥३८॥ किमर्थमिह चायाति नाहं वेद विनिश्चयम् ।** दैत्य उवाच– **एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती ॥३९॥ समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा । क्व गता सा सखी कान्ते विदग्धा कार्यनिश्चये ॥४०॥ नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ।** व्यास उवाच– **एतस्मिन्नंतरे दूतास्तत्रान्ये वै समागतः ॥४१॥ ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ।**

की घोषणा कर दें ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा–** अपने दूतों की उस बात को सुनकर कालकेतु क्रोध से व्याकुल हो गया । उसने बहुत से आयुध तथा सेना से सम्पन्न अनेक राक्षसों को आदेश दिया कि हे राक्षसों आपलोग हाथ में शस्त्र लेकर उस राजकुमार के समक्ष जायँ । उन राक्षसों को आदेश देकर वह राक्षस प्रेम पूर्वक, विवश होकर अपने सन्निकट में बैठी हुयी तथा दुःखी एकावली से पूछा हे सुन्दरि ! यह कौन आ रहा है ? तुम्हारे पिता हैं अथवा अन्य कोई पुरुष है ॥३२॥ हे कृशोदरि ! सत्य बतलाओ यदि तुम्हारे पिता तुम्हारे वियोग से व्याकुल होकर सेना लेकर तुम्हें लाने के लिए आ रहे होंगे तो फिर उनको तुम्हारा पिता जानकर मैं युद्ध नहीं करूँगा । उनको अपने घर लाकर मैं उनकी पूजा, रत्न, वस्त्र तथा घोड़े प्रदान करके करूँगा ॥३३-३४॥ उनका अपने घर में मैं अतिथि सत्कार करूँगा । यदि कोई दूसरा व्यक्ति आता होगा तो मैं उसे अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डालूँगा ॥३५॥ मैं समझूँगा कि उसे मरने के लिए काल ने प्रेरित करके लाया है । अतएव हे विशालाक्षि तुम बतलाओ कि कौन अज्ञानी पुरुष यहाँ आ रहा है ?॥३६॥ वह अज्ञानी महाबलवान् तथा काल स्वरूप मुझको नहीं जानता होगा । **एकावली ने कहा–** हे महाभाग ! मैं यह नहीं जानती हूँ कि कौन शीघ्रता पूर्वक आ रहा है ॥३७॥ मैं तो आपके यहाँ बन्दी बनी पड़ी हूँ । अतएव मुझको कोई भी पता नहीं है । यह न तो मेरे पिता हैं और न तो मेरा कोई भाई ही है । कोई दूसरा ही महाबलवान् आ रहा है ॥३८॥ वह किसलिए आ रहा है इस बात को मैं भी नहीं जानती हूँ । **दैत्य कालकेतु ने कहा–** ये दूत बतलाते हैं कि तुम्हारी सखी यशोवती उस वीर को लेकर तैयारी के साथ आ रही है । हे कान्ते ! वह तुम्हारी सखी कहाँ गयी है । वह कार्य को करने में बहुत चतुर है ॥४०॥

किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्यमागतम् ॥४२॥ निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महता वृतः । इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः ॥४३॥
रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद्बहिः । एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान् ॥४४॥ आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः । युद्धं
तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव ॥४५॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तरादीपितदिगन्तरम् । वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥४६॥ गदया ताडयामास दैत्यं
सिंधुसुतासुतः । स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाचलः ॥४७॥ पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः । यशोवती ततो गत्वा
वेगादेकावलीं तदा ॥४८॥ उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम् । एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः ॥४९॥ एकवीरेण धीरेण युद्धं
कृत्वा सुदारुणम् । स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः ॥५०॥ दर्शनं कांक्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव । पश्य तं कुटिलापांगि मनोभवसमं
नृपम् ॥५१॥ कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याग्रे जाह्नवीतटे । पूर्णानुरागः संजातस्तेनासौ विरहातुरः ॥५२॥ वांछति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनन्दनः।
सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे ॥५३॥ लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारं प्राप्तया तया । कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥५४॥

कोई भी मेरा दूसरा शत्रु नहीं है जो मेरे साथ युद्ध कर सके । **व्यासजी ने कहा–** उसी समय वहाँ पर दूसरे दूत आ गये ॥४१॥ वे अत्यन्त भयभीत थे। उन सबों ने अपने घर में बैठे हुए कालकेतु से कहा महाराज आप चुपचाप क्यों बैठे हैं ? सेना सन्निकट में आ गयी है ॥४२॥ आप भी बड़ी सेना लेकर शीघ्र ही नगर के बाहर निकल जाइये दूतों की उस बात को सुनकर महाबलवान् कालकेतु ॥४३॥ शीघ्रता से रथ पर बैठकर नगर से बाहर निकला । उसी समय घोड़े पर सवार प्रतापी एकवीर भी एकावली के विरह से व्याकुल बना हुआ वहाँ आ पहुँचा । वहाँ पर कालकेतु तथा एकवीर में परस्पर में इन्द्र तथा वृत्रासुर के युद्ध के समान युद्ध हुआ ॥४४-४५॥ अनेक प्रकार के छोड़े गये शस्त्रास्त्र से दिशाएँ चमकने लगीं । वह युद्ध कायरों के लिए भयप्रद था ॥४६॥ उस युद्ध में लक्ष्मीजी के पुत्र एकवीर ने गदा के प्रहार से कालकेतु को मार दिया । वह मरकर पृथिवी पर उसीतरह से गिर पड़ा जैसे इन्द्र के वज्र के प्रहार से कोई पर्वत गिरा हो ॥४७॥ कालकेतु के मरते ही शेष राक्षस भागकर कहीं छिप गये । उसके बाद यशोवती एकावली के पास गयी ॥४८॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर वह आश्चर्यित हुई एकावली से मधुर वाणी में कहने लगीं । हे सखि ! आओ । राजकुमार ने उस राक्षस को मार दिया है ॥४९॥ धैर्यसम्पन्न एकवीर ने भयंकर युद्ध करके उसे मारा है । थका हुआ राजा इस समय अपने शिविर में विश्राम कर रहे हैं ॥५०॥ उन्होंने तुम्हारे रूप तथा गुण के विषय में सुन लिया है अतएव हे टेढी कटाक्षों वाली कामदेव के समान सुन्दर लगने वाले उस राजा को तुम देखो ॥५१॥ मैंने गंगा के तट पर तुम्हारे विषय में बतला दिया है । उस राजा का तुममें पूर्णरूप से अनुराग हो गया है अतएव वह राजा तुम्हारे विरह में व्याकुल है ॥५२॥ वे राजकुमार सुन्दर रूप वाली तुमको देखना चाहते हैं । यशोवती की बात को सुनकर एकावली ने वहाँ जाने का मन बना लिया ॥५३॥ वह कुमारी की अवस्था में थी अतएव

स मां गृह्णाति कामार्त इति चिंताकुला सती । यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिंता ययौ ॥५५॥ स्कंधावारेऽतिमलिना मलिनांबरधारिणी । तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत् ॥५६॥ दर्शनं देहि तन्वंगि तृषिते नयने मम । कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम् ॥५७॥ नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती । राजपुत्र पिताऽप्यस्यास्त्वामेनां दातुमिच्छति ॥५८॥ एषाऽपि त्वद्वशा नूनं भविता संगमस्तव । कालं प्रतीक्ष्य राजेन्द्र नयैनां पितुरन्तिकम् ॥५९॥ स विवाहविधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः । स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥६०॥ समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम् । राजपुत्रीं तथाऽऽयातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः ॥६१॥ प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः । बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा ॥६२॥ यशोवत्या तु वृत्तान्तः कथितो विस्तरात्पुनः । एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चादरात् ॥६३॥ पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम् । पारिबर्हं ततो दत्त्वा संपूज्य विधिवत्तदा ॥६४॥ पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम् । एवं

अत्यन्त भयभीत तथा लज्जित हो रही थीं । वह इस बात का संकोच कर रही थीं कि मैं तो कुमारी कन्या हूँ उस राजकुमार का मुख कैसे देख सकूँगी॥५४॥ कामार्त होकर वह राजकुमार कहीं मुझे पकड़ न ले । वह यशोवती के साथ एक पालकी पर बैठकर शिविर में गयी । उसका शरीर तथा उसके वस्त्र दोनों मलिन हो गये थे । उस विशालाक्षी को आयी हुयी देखकर राजकुमार ने कहा ॥५५-५६॥ हे सुन्दरि ! तुम मुझे दर्शन दो । मेरे नेत्र तुम्हारे दर्शन के लिए प्यासे हुए हैं । राजकुमार को कामार्त तथा एकावली को लज्जित देखकर ॥५७॥ नीति तथा शिष्ट पुरुषों के मार्ग को जानने वाली यशोवती ने राजकुमार से कहा राजकुमार एकावली के पिताजी इसको आपको ही प्रदान करना चाहते हैं ॥५८॥ यह भी आपकी वशवर्तिनी है । अतएव आप दोनों का संयोग होगा ही । हे राजेन्द्र ! आप समय की प्रतीक्षा करें और पहले आप इसके पिता के पास पहुँचा दें ॥५९॥ इसके पिता विवाह की विधि करके इसे आपको प्रदान करेंगे । यह निश्चित है । यशोवती की बात को सुनकर एकवीर उसे स्वीकार कर लिये तथा अपनी सेना तथा एकावली एवं यशोवती के साथ उसके पिता के घर गये । राजा ने जब यह सुना कि राजकुमारी आ रही हैं तो प्रेमपूर्वक ॥६०-६१॥ वे अपने मन्त्रियों के साथ एकवीर की अगवानी करने के लिए उनके समक्ष गये । राजा ने मलिन वस्त्रों को धारण करने वाली अपनी पुत्री को बहुत दिनों के बाद देखा ॥६२॥ यशोवती ने विस्तार पूर्वक सारी बातें बतायी । उससे मिलकर राजा रैभ्य आदर पूर्वक एकवीर को अपने घर लिवा लाये ॥६३॥ इसके बाद राजा ने किसी पवित्र दिन को एकावली और एकवीर का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न किया । उन्होंने विधिपूर्वक पूजा करके दहेज दिया ॥६४॥ उसके बाद राजा ने यशोवती के साथ ही अपनी पुत्री एकावली

विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥६५॥ गृहं प्राप्य बहून्भोगानबुभुजे प्रियया समम् । बभूव तस्याः पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल । तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

रजोवाच– **भगवंस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम् । न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम् ॥१॥ विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम । हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा ॥२॥ परं कौतूहलं मेऽत्र यद्विष्णुः कमलापतिः । देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यंतकारकः ॥३॥ सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः । परतंत्रः कथं जातः स्वतंत्रः पुरुषोत्तमः ॥४॥ एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् । सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तान्तमद्भुतम् ॥५॥** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि संदेहस्यास्य निर्णयम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात् ॥६॥**

को विदा कर दिया । इस तरह से विवाह हो जाने पर लक्ष्मीजी के पुत्र प्रसन्नता पूर्वक ॥६५॥ अपने घर आकर अनेक प्रकार के भोगों को अपनी प्रियतमा के साथ भोगे । एकावली को कृतवीर्य नामक पुत्र हुआ । कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्य सहस्रार्जुन हुए । इस वंश का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

व्यासजी की आत्मकथा

राज जनमेजय ने कहा– हे भगवन् ! आपके मुख से निकली हुई अमृत के समान दिव्य कथा के रस का पान करने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥१॥ आपने हैहयों की उत्पत्ति से सम्बन्द्ध इस विचित्र कथा को विस्तार से बतलाया । इसको सुनकर ही आश्चर्य होता है ॥२॥ मुझको इस बात को जानने की अत्यन्त उत्कण्ठा है कि देवताओं की आराध्य, जगत् के स्वामी, लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु तो जगत् की सृष्टि, उसका पालन तथा उसका संहार करने वाले हैं ॥३॥ श्रीहरि भगवान् अच्युत भी अश्व कैसे हो गये ? वे तो पुरुषोत्तम तथा स्वतंत्र हैं । ऐसा होकर भी वे परतंत्र कैसे हो गये ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ आप तो सर्वज्ञ हैं । आप मेरे इस संशय को दूर कीजिये और इस अद्भुत वृत्तान्त को बतलाइये ॥५॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् इस संदेह का निर्णय मैं बताता

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः । सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः ॥७॥ स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् । वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम् ॥८॥ बृहद्रथंतरादीनां साम्नां भेदाननेकशः । गायन्गायत्रममृतं संप्राप्तोऽथ ममाश्रमम् ॥९॥ शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् । निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा ॥१०॥ तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् । अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥११॥ अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्यासनस्थितस्य च । उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः ॥१२॥ दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम् । तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ॥१३॥ असारेऽस्मिस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने । न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्क्वचित्॥१४॥ द्वीपे जातो जनन्याऽहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि । अनाश्रमो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः ॥१५॥ तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् । पुत्रकामेन देवर्षे शंकरः समुपासितः ॥१६॥ ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः । पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥१७॥ स त्यक्त्वा मां गतः क्वापि रुदन्तं विरहातुरम् । लोकाल्लोकांतरं साधो वचनात्तव बोधितः ॥१८॥ ततोऽहं पुत्रसंतप्तस्त्यक्त्वा

हूँ, उसे आप सुनें । इस बात का श्रवण मैंने मुनिश्रेष्ठ नारदजी से किया था ॥६॥ तपस्वी नारदजी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं । वे सर्वज्ञ, सर्वत्र जाने वाले, शान्त, सभी लोगों के प्रिय एवं कवि (ब्रह्मज्ञानी) हैं ॥७॥ वे मुनिश्रेष्ठ पृथिवी पर स्वर एवं तान से समन्वित अपनी महती नाम की वीणा पर बृहद् रथान्तर आदि सामवेद के अनेक गायनों को बजाते हुए, तथा गायत्री का गान करते हुए विचरण करते-करते मेरे आश्रम आये ॥८-९॥ मेरा आश्रम सरस्वती के तट पर स्थित, प्रधान मुनियों के निवास स्थान, कल्याण एवं ज्ञान को प्रदान करने वाले महानतीर्थ शम्याप्रास में था ॥१०॥ ब्रह्माजी के पुत्र, महाकान्तिसम्पन्न, नारदजी को आये हुए देखकर खड़ा होकर मैंने उनका स्वागत किया और उनकी पूजा मैंने की ॥११॥ अर्ध्य, पाद्य इत्यादि करने के बाद आसन पर बैठे हुए नारदजी के समीप में बैठ गया । वे मुनि अमित तेजस्वी थे ॥१२॥ जब मैंने देखा कि नारदजी विश्राम करके शान्त बैठे हैं तो ज्ञान में पारङ्गत नारदजी से मैंने उसी प्रश्न को पूछा जो प्रश्न आपने इस समय मुझसे किया है ॥१३॥ मैंने नारदजी से निवेदन किया कि हे मुने ! इस असार संसार में प्राणियों को कहीं पर भी कभी भी क्या सुख मिलता है, इस बात को विचार करके भी मैं नहीं निश्चित कर पाता हूँ ॥१४॥ मेरा जन्म द्वीप में हुआ, और उसी क्षण मेरी माता ने मेरा परित्याग कर दिया । आश्रय विहीन मैं अपने कर्मों के अनुसार बड़ा हुआ ॥१५॥ बहुत वर्षों तक पर्वत पर रहकर मैंने कठोर तप किया । पुत्र की प्राप्ति की इच्छा से मैने भगवान् शंकर की उपासना की ॥१६॥ उसके बाद मुझे ज्ञानियों में अग्रगण्य शुक नामक पुत्र की प्राप्ति हुयी । मैंने उनको अच्छी तरह से वेदों के सार आदि का अध्ययन कराया ॥१७॥ वह भी मुझे रोते हुए छोड़कर कहीं चला गया । वह विभिन्न लोक में गया, क्योंकि आपने उसको ज्ञान का उपदेश दे दिया था ॥१८॥ उसके बाद मैं अपने पुत्र के शोक से बेचैन होकर अपनी माता के विषय

मेरुं महागिरिम् । मातरं मनसा कृत्वा संप्राप्तः कुरुजांगलम् ॥१९॥ पुत्रस्नेहाददतितरां कृशांगः शोकसंयुतः । जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियंत्रितः॥२०॥ ततो राज्ञा वृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् । स्थितोऽत्रैवाश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥२१॥ शंतनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता। पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालितः ॥२२॥ चित्रांगदः कृतो राजा गंगापुत्रेण धीमता । कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः ॥२३॥ ततः सत्यवती माता निमग्ना शोकसागरे । चित्रांगदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥२४॥ संप्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् । आश्वासिता मयात्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥२५॥ विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः । कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्रीराज्यविमुखेन ह ॥२६॥ काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन् । भीष्मेणानीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥२७॥ सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाऽहं सुखितोऽभवम् ॥२८॥ पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम् । अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत्॥२९॥ काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा । पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ संबभूवतुः ॥३०॥ ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम् । पतिना

में सोचते हुए कुरुजांगल प्रदेश में चला गया ॥१९॥ उस समय मैं अपने पुत्र के शोक से संतप्त होने के कारण उत्यन्त दुर्बल हो गया था । मैं इस बात को जानता था कि यह संसार मिथ्या है । फिर भी माया के बन्धन में बंधे होने के कारण मैं शोक कर रहा था ॥२०॥ इसके बाद जब मैंने यह जाना कि मेरी माता वासवी के साथ राजा शन्तनु ने विवाह कर लिया है तो मैं सरस्वती नदी के शुभ तट पर आश्रम बनाकर वहीं निवास करने लगा ॥२१॥ राजा शन्तनु भी काल कवलित हो गये और मेरी माता भी विधवा हो गयी ॥ उस समय उसके दो पुत्र थे विचित्रवीर्य तथा विचित्रांगद । गंगापुत्र भीष्म के द्वारा पालित चित्रांगद राजा बनाये गये । और कामदेव के समान कान्ति वाला यह मेरा भाई चित्रांगद भी काल कवलित हो गया ॥२३॥ अपने चित्रांगद नामक मरे हुए पुत्र के शोकसागर में निमग्न मेरी माता सत्यवती अत्यन्त रुदन करने लगीं ॥२४॥ अपनी माता को अत्यन्त दुःखी जानकर मैं उनके पास गया । हे महाभाग ! मैं तथा भीष्म दोनों ने उनको सान्त्वना प्रदान किया ॥२५॥ स्त्री तथा राज्य दोनों से विमुख रहने वाले भीष्म ने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को राजा बनाया । विचित्रवीर्य भी पराक्रमी राजा हुए ॥२६॥ सभी राजाओं को जीतकर भीष्म ने काशिराज की दो मनोहर कन्याओं को बलपूर्वक लाकर माता सत्यवती को समर्पित किया कि वे शुभ मुहूर्त में उन दोनों का विवाह विचित्रवीर्य से कर दें ॥२७॥ सत्यवती ने शुभ मुहूर्त में विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया । इस बात को जानकर मैं सुखी हो गया । उसके बाद राजयक्ष्मा (टी०वी०) नामक रोग से अत्यन्त पीड़ित होकर युवक, धनुर्धारी मेरा वह भाई भी निस्सन्तान ही मर गया । उसके कारण मेरी माता दुःखी हो गयीं ॥२९॥ काशिराज की दोनों पुत्रियाँ अपने पति को मरे हुए देखकर वे दोनों बहनें पतिव्रत धर्म का पालन करने लगीं ॥३०॥ उन दोनों ने अपनी सासु से कहा कि हम दोनों अग्नि में जलकर अपने पति के साथ सती हो

सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने ॥३१॥ पुत्रेण सह ते श्वश्रूः स्वर्गे गत्वाऽथ नंदने । सुखेन विहरिष्याव: पतिना सह संयुते ॥३२॥ निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् । स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥३३॥ गांगेयेन च मात्रा मे संमंत्र्य च परस्परम् । कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं संस्मृतोऽहं गजाह्वये ॥३४॥ स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् । तरसैवागतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम् ॥३५॥ प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृतांजलिः । तामब्रुवं सुतप्तांगीं पुत्रशोकेन कर्शिताम् ॥३६॥ मातस्त्वया किमाहूतो मनसाऽहं तपस्विनि । आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥३७॥ त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः परः । आगतश्चिंतितश्चातः ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम् ॥३८॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वाऽहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने । तदा सा मामुवाचेदं पश्यती भीष्ममंतिके ॥३९॥ पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मण । तेनाहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह ॥४०॥ तस्मात्त्वमद्य मेधाविन्मयाऽऽहूतः समाधिना । गांगेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये ॥४१॥ कुलं स्थापय नष्टं त्वं शंतनोर्नामकारणात् । रक्ष मां दुःखतः कृष्ण वंशच्छेदोद्भवाद्भुतम् ॥४२॥ काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः । साध्वेर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते ॥४३॥ ताभ्यां संगम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु । रक्ष त्वं भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित् ॥४४॥** व्यास उवाच– **इति**

जायेंगी ॥३१॥ आपके पुत्र के साथ स्वर्ग में जाकर अपने पति के साथ नंदनवन में विहार करेंगी ॥३२॥ यह देखकर मेरी माता ने अपनी दोनों बहुओं को बड़े प्रयास से ऐसा करने से रोका । वे अपने बहुओं को अपने स्नेहभाव के द्वारा तथा भीष्म के वचन के प्रभाव से रोक पायीं ॥३३॥ विचित्रवीर्य की और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न हो जाने के बाद भीष्म और माता सत्यवती ने आपस मे विचार करके मुझे हस्तिनापुर में बुलाया ॥३४॥ माता के स्मरण करने मात्र से ही मैं उनके मनोगत भाव को जान गया और मैं शीघ्र हस्तिनापुर आ गया ॥३५॥ मैंने अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया । मैंने अपने पुत्र के शोक में अत्यन्त संतप्त अङ्गों वाली अपनी माता से कहा ॥३६॥ हे तपस्विनि मातः ! आपने मुझे अपने मन से स्मरण किया है क्या ? आप आज्ञा दे मैं आपका कौन सा कार्य करू ? मैं तो आपका दास हूँ ॥३७॥ हे माँ ! आप ही मेरे लिए सबसे बड़ा तीर्थ और सबसे बड़ा देव हैं । आपके चिन्तन करते ही मैं आ गया आप अपना प्रिय कार्य बतलाइये ॥३८॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर जब मैं अपनी माता के समक्ष खड़ा था तो अपने सन्निकट में विद्यमान भीष्म को देखती हुई मेरी माता ने मुझे कहा हे मुने !॥३९॥ हे पुत्र ! आज तुम्हारा भाई राजयक्ष्मा के कारण पीड़ित होकर मर गया है । अतएव अपने वंश के विच्छेद के भय से मैं अत्यन्त दुःखी हो गयी हूँ ॥४०॥ हे पाराशर्य ! हे मेधाविन्! इसी कारण मैने अपने कार्य की सिद्धि के लिए समाधिपूर्वक आपका स्मरण किया है । इस कार्य में गंगापुत्र भीष्म की भी सहमति है ॥४१॥ महाराज शन्तनु का नाम चलता रहे एतदर्थ तुम इस वंश को नष्ट होने से बचाओ । वंश नष्ट होने के भय से मैं दुःखी हूँ । तुम मेरी इस कष्ट से रक्षा करो ॥४२॥ तुम्हारे

मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिन्तातुरो ह्यहम् । लज्जयाऽऽकुलचित्तस्तामब्रवं विनयानतः ॥४५॥ मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम् । ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात् ॥४६॥ तथा यवीयसो भ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता । व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥४७॥ अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम् । न तरंति हि संसारात्पितरः पापकारिणः ॥४८॥ लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः । स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम् ॥४९॥ पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमंतिके । पुत्रशोकातितप्ताया वंशरक्षणकाम्यया ॥५०॥ पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक । गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥५१॥ कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः । वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद ॥५२॥ पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् । विशेषेण तु संतप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत ॥५३॥ इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः । मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये ॥५४॥ द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ । मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम्॥५५॥

छोटे भाई की दो पत्नियाँ है जो काशिराज की पुत्रियाँ हैं । विचित्रवीर्य की वे दोनों पत्नियाँ रूप एवं यौवन से सम्पन्न है ॥४३॥ हे मेधाविन् ! उन दोनों से संयोग करके पुत्र उत्पन्न करो । तुम राजर्षि भरत के वंश की रक्षा करो । ऐसा करने से तुम्हें कोई भी पाप नहीं लगेगा ॥४४॥ **व्यासजी ने कहा–** इसतरह से अपनी माता की बात को सुनकर मैं अत्यन्त चिन्तित हो गया । मेरा चित्त लज्जा से व्याकुल हो गया । विनयावनत होकर मैंने कहा ॥४५॥ हे माँ ! दूसरे की पत्नी का स्पर्श करना ही बहुत बड़ा पाप है । मैं धर्म के मार्ग को अच्छी तरह से जानता हूँ । अतएव आपकी बातों का समादर कैसे कर सकता हूँ ?॥४६॥ किञ्च छोटे भाई की पत्नी को कन्या के तुल्य बतलाया गया है । वेदों का अध्ययन करके भी मैं इस तरह का व्यभिचार कैसे कर सकता हूँ॥४७॥ अन्यायपूर्वक कुल की रक्षा नहीं करनी चाहिए । पाप करने वालों के पितृगण का उद्धार नहीं होता है ॥४८॥ जो लोगों को उपदेश करने वाला व्यक्ति है, पुराणों का प्रवर्तन करने वाला है, वह व्यक्ति जानबूझ करके इस प्रकार का अद्भुत कर्म कैसे कर सकता हैं ?॥४९॥ उसके बाद बहुत रोती हुयी मेरी माता ने मुझसे पुनः कहा । वे पुत्र के शोक से अत्यन्त सन्तप्त थीं और अपने वंश की रक्षा करना चाहती थीं ॥५०॥ उन्होंने कहा हे पुत्र ! पाराशर्य! मेरे कथनानुसार काम करने के कारण तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा; क्योंकि गुरुजनों की दोष युक्त भी आज्ञा मनुष्यों को प्रामाणिक माननी चाहिए ॥५१॥ चिष्टाचार प्रमाण के अनुसार उसपर विना विचार किए ही मनुष्यों को करना चाहिए । हे मानद ! हे पुत्र !! तुम मेरी आज्ञा का पालन करो इसमें तुम्हें कोई भी पाप नहीं लगेगा ॥५२॥ इसलिए पुत्र को उत्पन्न करके अपनी माता को सुखी बना दो । विशेष रूप से ऐसी माता को जो शोक सागर में मग्न होकर संतप्त हो रही हो ॥५३॥ इस तरह से कहती हुई सत्यवती की बातों को सुनकर सूक्ष्मधर्म के विशेषज्ञ निर्णय करते हुए भीष्म ने कहा ॥५४॥ हे द्वैपायन! हे निष्पाप !! इस विषय में आपको विचार नहीं करना चाहिए । अपनी माता की बात को मानकर सुखपूर्वक विहार कीजिये ॥५५॥ **व्यासजी ने कहा–**

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा । निःशंकोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिन्जुगुप्सिते ॥५६॥ अम्बिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि । तस्यां मयि विमनस्कायां तापसे कुत्सिते भृशम् ॥५७॥ शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसंगे प्रथमे तदा । अंधस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते ॥५८॥ द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः । भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे ॥५९॥ मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह । विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि ॥६०॥ तथा निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने । कथं पुत्र त्वया शप्तः पुत्रस्तेऽन्धो भविष्यति॥६१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम् । दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा ॥१॥ अम्बालिका वधूर्धन्या काशिराजसुता सुत । भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता ॥२॥ सर्वलक्षणसंपन्ना रूपयौवनशालिनी । तस्यां जनय संगं त्वं कृत्वा पुत्रं**

इस तरह से भीष्म की बातों को तथा माता की प्रार्थना को सुनकर, उस निन्दित कार्य को भी करने के लिए मैं निःशङ्क हो गया ॥५६॥ और जब अम्बिका ऋतुमती हुई तो मैं उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक रात्रि में भोग करने लगा । किन्तु अम्बिका का मुझमें प्रेम नहीं था, क्योंकि तपस्वी होने के कारण मैं कुरूप था ॥५७॥ इसलिए प्रथम प्रसङ्ग में ही मैंने उसे शाप दे दिया कि तुमने मुझे देखकर चूकि अपनी आँखें बन्द कर ली है, अतएव तुम्हारा पुत्र अन्धा होयेगा॥५८॥ दूसरे दिन एकान्त में मेरी माता सत्यवती ने पूछा कि हे पुत्र ! काशिराज की पुत्री के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होयेगा क्या ?॥५९॥ तो लज्जा के कारण नीचे मुख करके मैंने कहा कि मेरे ही शाप के कारण उसका पुत्र अन्धा जन्म लेगा ॥६०॥ इस पर मेरी माता ने कठोर वाणी में डाँटते हुए कहा कि पुत्र तुने अन्धा पुत्र होने का शाप क्यों दे दिया ?॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

व्यासजी की आत्मकथा (२)

व्यासजी ने कहा– मेरी इस तरह की वाणी सुनकर दासराज की पुत्री वासवी मेरी माता आश्चर्य चकित हो गयीं और पुत्र की प्राप्ति के लिए अत्यन्त

सुसंमतम् ॥३॥ नान्धो राज्याधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् । उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद ॥४॥ इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये । यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने ॥५॥ एकांते शयनागारे प्राप्ता सा मम सन्निधौ । लज्जमाना सुकेशांता स्वश्वश्रुवचनात्तदा ॥६॥ दृष्ट्वा मां जटिलं दांतं तापसं रसवर्जितम् । सा स्वेदवदना जाता पांडुरा विमना भृशम् ॥७॥ कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि संगताम् । वेपमानां स्थितां पार्श्वे ह्यब्रवं तामहं रुषा ॥८॥ दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पांडुवर्णा समावृता । अतस्ते तनयः पांडुर्भविष्यति सुमध्यमे ॥९॥ इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितो बालिकया युतः । भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम् ॥१०॥ ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावंधपांडुरौ । धृतराष्ट्रश्च पांडुश्च प्रथितौ संबभूवतुः ॥११॥ माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ । ततः संवत्सरस्यांते मामाहूय तदाऽब्रवीत् ॥१२॥ द्वैपायन सुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ । अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम् ॥१३॥ तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा । अंबिकां

आतुर होकर मुझसे कहीं ॥१॥ हे पुत्र ! काशीराज की दूसरी पुत्री अम्बालिका है । वह देखने में सुन्दर है । वह विचित्रवीर्य की विधवा पत्नी है । वह पुत्र को प्राप्त करन चाहती है ॥२॥ वह नारी के सभी लक्षणों से सम्पन्न है । वह रूप तथा यौवन से सम्पन्न है । हे पुत्र ! तुम उसके साथ सहगमन करके सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो ॥३॥ क्योंकि अन्धा राज्य का अधिकारी नहीं होता है । अतएव हे सम्मान देने वाले ! उस राजपुत्री में मनोहर पुत्र उत्पन्न करो ॥४॥ अपनी माता की बात को सुनकर मैं हस्तिनापुर में ही ठहर गया और मैं वहाँ तब तक ठहरा रहा जब तक कि काशिराज की दूसरी पुत्री ऋतुमती नहीं हुई। अपनी सासु के कहने से वह सुन्दरी एकान्त में मेरे शयनागार में मेरे पास आयी किन्तु वह मुझको देखकर लज्जित हो गयी ॥५-६॥ वह मुझे जटाधारी, इन्द्रियों को वश में करने वाला, तपस्वी तथा शृङ्गार रस से अनभिज्ञ देखकर पसीना-पसीना हो गयी और बहुत उदास हो गयी । उसका शरीर पीला पड़ गया । वह अत्यन्त उदास हो गयी ॥७॥ उस कामिनी को जो रात्रि में मेरे साथ सहगमन के लिए आयी थी, उसको अपने बगल में बैठी हुई तथा काँपती हुई देखकर मैंने क्रोध से कहा ॥८॥ यदि तुम मुझको देखकर गर्व के कारण पीली पड़ गयी तो तुम्हारा पुत्र भी पाण्डुरोग से ग्रस्त होगा ॥९॥ इस तरह से मैं रात्रि में उस अम्बालिका के ही साथ निवास किया और रात्रि में उसके साथ सहगमन भी किया । प्रात:काल राजमहल से निकल कर मैं अपनी माता से आज्ञा लेकर अपने आश्रम पर चला अया ॥१०॥ उसके बाद उन दोनों से समयानुसार अन्धा तथ पाण्डुवर्ण के पुत्र उत्पन्न हुए । उन दोनों का नाम क्रमशः धृतराष्ट्र और पाण्डु हुआ ॥११॥ उन दोनों पुत्रों को क्रमश: अन्धा तथा पाण्डुरोग ग्रस्त देखकर मेरी माता उदास हो गयी । उसके पश्चात् एक वर्ष बीत जाने पर मेरी माता ने मुझे बुलाकर कहा ॥१२॥ हे द्वैपायन ! ये दोनों बच्चे पैदा तो हुए किन्तु राजा होने के योग्य ये नहीं है । तुम दूसरे पुत्र को उत्पन्न करो जो मुझको प्रिय तथा देखने में सुन्दर हो ॥१३॥ मैंने कहा कि ठीक है, ऐसा ही होगा । मेरी बात सुनकर मेरी माता प्रसन्न हो गयीं । उन्होंने

प्रार्थयामास सुतार्थे काल आगते ॥१४॥ पुत्रि व्यासं समालिंग्य पुत्रमुत्पादयाद्भुतम् । कुरु वंशस्य कर्तारं राज्ययोग्यं वरानने ॥१५॥ वधूर्लज्जान्विता किंचिन्नोवाच वचनं तदा । गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि ।:१६। दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता । प्रेषिताऽम्बिकया त्वत्र विचित्राभरणांबरा॥१७॥ चंदनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता । आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी ॥१८॥ पर्यंके मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता । प्रसन्नोऽहं तदा तस्या विलासेनाभवं मुने ॥१९॥ रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मया भृशम् । वरो दत्तः पुनस्तस्यै प्रसन्नेन तु नारद॥२०॥ सुभगे भविता पुत्र सर्वलक्षणसंयुतः । सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥२१॥ स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाऽभवन्। माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम ॥२२॥ विस्मृतः शुकसंबन्धी विरहः शोककारणम् । दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं बलिनो वीर्यसंमतान्॥२३॥ माया बलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः । अरूपा च निरालंबा ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥२४॥ मातरि स्नेहसंबद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम् । न मे चित्तं वने शांतिमगान्मुनिवरोत्तम ॥२५॥ दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे । पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः ॥२६॥ कदाचिच्चिंतयन् ज्ञानं

समय आने पर अम्बिका से कहा ॥१४॥ हे पुत्रि ! तुम व्यासजी का आलिंगन करके सुन्दर पुत्र को उत्पन्न करो । पुत्र ऐसा हो जो वंश को बढ़ाने वाला तथा राज्य करने के योग्य हो ॥१५॥ मेरी माता की बात को सुनकर अम्बालिका कुछ भी नहीं बोली वह अत्यन्त लज्जित हो गयी थी । मैं अपनी माता की बात को मानकर रात्रि में शयनागार में गया ॥१६॥ तो वहाँ पर अम्बिका ने विचित्रवीर्य की एक दासी को भेज दिया । वह परम सुन्दरी, सुन्दर वस्त्र धारण की हुयी थी । उसने अपने शरीर पर लाल चन्दन लगा रखा था और फूल की माला से वह अलंकृत थी । वह श्रैङ्गारिक हावभाव के साथ आयी। उसके केश सुन्दर और वह हंस के समान चल रही थी ॥१८॥ वह पलंग पर मुझे बैठाकर प्रेमपूर्वक मेरे साथ लिपट गयी । हे मुने ! नारदजी ! मैं उसके विलास से प्रसन्न हो गया । रात्रि में उसके साथ खूब रतिक्रीडा की । हे नारदजी ! मैंने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया ॥२०॥ हे सुन्दरि ! तुम्हारा पुत्र सभी शुभ लक्षणों से युक्त होगा । वह सुन्दर रूपवाला, सभी धर्मों का ज्ञाता, सत्यवादी और शान्त प्रकृति का होगा ॥२१। वही बालक विदुर हुआ । इस तरह मुझसे तीन पुत्र हुए । इस तरह दूसरे के क्षेत्र में पुत्र उत्पन्न करने के कारण मुझमें माया की वृद्धि हो गयी ॥२२॥ उसके कारण शुक के विरह के कारण होने वाले शोक को मैं तीन बलवान् तथा पराक्रम से सम्पन्न पुत्रों को देखकर भूल गया ॥२२-२३॥ हे ब्रह्मन् ! माया अत्यन्त बलवान् है । अजितेन्द्रिाय व्यक्ति उसका त्याग नहीं कर सकता है । उसका न तो कोई रूप है और न कोई आलम्बन ही हैं, किन्तु वह ज्ञानी पुरुषों को भी मोहित कर देती है ॥२४॥ हे मुनिवरोत्तम नारदजी ! अपनी माता के स्नेह में बंधे हुए तथा पुत्रों में सिमटे हुए मेरे मन को वन में शान्ति नहीं मिलती थी ॥२५॥ मेरा मन आन्दोलित हो गया था । कभी तो वह हस्तिनापुर में जाता था और फिर कभी सरस्वती नदी के तट पर अपने आश्रम में जाता था । वह किसी एक स्थान में रुकता

मानसे प्रतिभाति वै । केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे ॥२७॥ व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल । माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥२८॥ जानन्मोहांधकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने । इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः ॥२९॥ राज्यं प्राप ततः पांडुर्बलवान्भीष्मसंमतः । तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥३०॥ कुंती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः । शूरसेनसुता कुंती मद्रराजसुताऽपरा ॥३१॥ स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः । पांडुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः ॥३२॥ तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम् । गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥३३॥ तमाश्वास्य वने पांडुं पुनः प्राप्तो गजाह्वये । धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे ॥३४॥ क्षेत्रजान्पंचपुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे । धर्मतो वायुतः शक्रादश्विभ्यां पंच पांडवान् ॥३५॥ युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि । कुंतीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः ॥३६। नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ । कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिंग्य महीपतिः ॥३७॥ मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे । माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥३८॥ स्थिता पुत्रयुता कुन्ती ज्वलिते जातवेदसि । मुनयः

ही नहीं था । दोनों स्थानों पर आता जाता रहता था ॥२६॥ जब मैं कभी ज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करता था तो लगता था कि यह तो मेरा केवल मोह है । ये पुत्र हमारे कौन है ? यदि मैं मर भी जाऊँ तो ये सब मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकते हैं ॥२७॥ ये तो मेरे व्यभिचार से उत्पन्न हुए पुत्र हैं । इन पुत्रों से मुझे कौन सा सुख मिल सकता है ? माया बलवान् है, वही मेरे मन में मोह का विस्तार कर रही है ॥२८॥ हे मुने ! इन सारी बातों को जानकर भी मिथ्या ही मोह के कूप में गिर पड़ा इस प्रकार से मैं कभी एकान्त में बैठकर संताप भी करता था ॥२९॥ उसके बाद भीष्म के मतानुसार बलवान् पाण्डु ने राज्य प्राप्त कर लिया । उस समय अपने पुत्र के कारण मेरा मन प्रसन्न हो गया ॥३०॥ पाण्डु की दो पत्नियाँ हुईं कुन्ती और माद्री । कुन्ती शूरसेन की पुत्री थी और माद्री मद्र देशाधिपति की पुत्री थी ॥३१॥ पाण्डु ब्राह्मण के शाप से ग्रस्त होकर राज्य से उदासीन हो गये और अपनी दोनो पत्नियों को साथ लेकर वन में चले गये ॥३२॥ जब मैंने यह सुना कि मेरे पुत्र पाण्डु वन में रह रहे हैं तो फिर मैं शोक संतप्त हो गया मैं वहाँ गया जहाँ पर पाण्डु अपनी पत्नियों के साथ रहते थे ॥३३॥ मैंने पाण्डु को आश्वासन दिया और लौटकर मैं हस्तिनापुर आ गया । मैंने वहाँ धृतराष्ट्र के साथ बातचित की और वहाँ से मैं सरस्वती नदी के तट पर लौटकर आ गया ॥३४॥ वन में रहते हुए पाण्डु ने धर्मराज, वायु, इन्द्र तथा अश्विनीकुमारों से पाँच अपने क्षेत्रज पुत्रों को उत्पन्न कराये । ये पाँचों पाण्डव कहलाये । इनमें से कुन्ती के धर्मराज, वायु तथा इन्द्र से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन ये तीन पुत्र हुए॥३६॥ माद्री के भी दो पुत्र हुए नकुल और सहदेव । एक बार राजा पाण्डु ने माद्री का एकान्त में आलिङ्गन किया ॥३७॥ और मुनि के शाप से ग्रस्त होने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी । उनका दाह संस्कार जब हुआ उस समय अग्नि में अपने पति के ही साथ माद्री प्रवेश करके सती हो गयी ॥३८॥ अग्नि

सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा ॥३९॥ दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये । समर्पिताऽथ भीष्माय विदुराय महात्मने ॥४०॥ श्रुत्वाऽहं
सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः । भीष्मेण पालिताः पुत्राः पांडोरिति विचिन्त्य ते ॥४१॥ विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता ।
दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः ॥४२॥ एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम् । द्रोणाचार्यस्तु सम्प्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः ॥४३॥
अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः । कर्णः कुन्त्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा ॥४४॥ सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह ।
दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतमस्तथा ॥४५॥ परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु । धृतराष्ट्रस्तु संचिंत्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च ॥४६॥ निवासं
कल्पयामास पांडवाना महात्मनाम् । विरोधशमनायैव नगरे वारणावते ॥४७॥ दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै । कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य
मित्रं पुरोचनम् ॥४८॥ श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पांडवान्पृथया युतान् । पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नाऽहं व्यसनार्णवे ॥४९॥ शोकातुरो भृशं शून्ये वने
पश्यन्नहर्निशम् । दृष्ट्वा मयैकचक्रायां पांडवा दुःखकर्शिताः ॥५०॥ ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च । प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं

के प्रज्वलित हो जाने पर अपने पुत्रों के साथ कुन्ती बची रही । मुनिजनों ने कुन्ती को उसके पुत्रों के साथ हस्तिनापुर लाया ॥३९॥ कुन्ती पति विहीन तथा
दुःखी थी । मुनिजनों ने कुन्ती और उसके पुत्रों को भीष्म तथा विदुर को समर्पित कर दिया ॥४०॥ इन सारी बातों को जब मैंने सुना तो दूसरों के पुत्र
पाण्डवों के सुख तथा दुःख के कारण मैं भी दुःखी हो गया । ये पाण्डु के पुत्र भी मेरे ही पुत्र हैं इस तरह सोंचकर भीम, विदुर तथा बुद्धिमान धृतराष्ट्र
प्रेमपूर्वक पाण्डवों का पालन-पोषण किए । किन्तु धृतराष्ट के जो दुर्योधन इत्यादि पुत्र थे वे अत्यन्त क्रूर प्रकृति के थे ॥४१-४२॥ एक साथ पाण्डवों के
रहने के कारण वे पाण्डवों से अत्यधिक वैर करने लगे । उन सभी पुत्रों का अध्यापन करने के लिए भीष्म ने द्रोणाचार्य को नियुक्त कर दिया । भीष्म ने
द्रोणाचार्य को हस्तिनापुर में ही वसा दिया । कुन्ती ने उत्पन्न होते ही अपने पुत्र कर्ण को त्याग दिया ॥४३-४४॥ कर्ण को अधिरथ नामक शूद्र ने नदी
से प्राप्त किया और उसका पालन-पोषण किया । कर्ण शूरवीर था वह दुर्योधन का प्रियमित्र हो गया ॥४५॥ भीम के साथ दुर्योधन आदि का जब अत्यधिक
वैर बढ़ गया तो पाण्डवों तथा कौरवों में बढ़ते हुए वैरजन्य कष्ट का विचार करके पाण्डवों के रहने के लिए धृतराष्ट्र ने वारणावत में व्यवस्था कर दी ॥४७॥
द्रोह के कारण दुर्योधन ने अपने मित्र पुरोचन को वारणावत भेजकर वहाँ पर लाह का दिव्यभवन बनवा दिया ॥४८॥ हे मुने नारदजी ! जब मैंने यह
सुना कि कुन्ती पाण्डवों के साथ लाक्षागृह में जल गयी तो पाण्डवों में पौत्र का भाव होने के कारण मैं भी शोकसागर में मग्न हो गया ॥४९॥
पाण्डवों के शोक में व्याकुल होकर जब मैं रात-दिन पाण्डवों को वन में खोजता रहा तो एक दिन मैंने दुःख के कारण अत्यन्त कृश पाण्डवों को एकचक्रा

प्रति ॥५१॥ ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः । मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा ॥५२॥ कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम् । चक्रुर्विवाहं मानिन्या पञ्चैव मातृवाक्यतः ॥५३॥ दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा । ततो नागाह्वये प्राप्ताः पाञ्चलीसहिता मुने ॥५४॥ निवासं खांडवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम् । पांडवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै ॥५५॥ तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना । राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥५६॥ दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम् । दुर्योधनोऽतिसंतप्तो दुरोदरमथाकरोत्॥५७॥ दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः । हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता ॥५८॥ वने द्वादश वर्षाणि पांडवास्ते विवासिताः । पाञ्चलीसहितास्तेन दुःखं मे जनितं भृशम् ॥५९॥ एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् । निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम् ॥६०॥ कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः । येन मे हृदयं मोहाद्भ्रमतीति दिवानिशम् ॥६१॥ किं करोमि क्व गच्छामि

नगरी में देखा ॥५०॥ पृथा के पुत्रों को देखकर मैं सन्तुष्ट हो गया । मैंने उन सबों को इस बात की प्रेरणा दी कि वे शीघ्र द्रुपद की नगरी में चले जायँ॥५१॥ वे दुःखी पाण्डव ब्राह्मण का वेष बनाकर द्रुपद की नगरी में चले गये । जब वे मृगचर्म धारण करके दुपद की सभा में स्थित थे उस समय॥५२॥ अर्जुन ने अपने पराक्रम का प्रदार्शन करके द्रुपद की पुत्री द्रौपदी को जीत लिया । और अपनी माता कुन्ती की बात को मानकर वे पाँचो द्रौपदी के साथ विवाह कर लिए ॥५३॥ उन सबों का विवाह देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ । उसके बाद पाण्डव द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर में आये ॥५४॥ उसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के निवास की व्यवस्था खाण्डव प्रस्थ में कर दी । वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के साथ मिलकर अर्जुन ने अग्नि का प्रीणन किया । इसके बाद पाण्डवों ने श्रीकृष्ण की सहायता से राजसूययज्ञ किया, उस समय मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥५६॥ वहाँ पर पाण्डवों के ऐश्वर्य तथा मयनामक दानव रचित अद्भुत सभा को देखकर मैं प्रसन्न था । किन्तु पाण्डवों के उस वैभव को देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हो गया । उसने द्यूतक्रीडा का आयोजन किया ॥५७॥ उसमें दुर्योधन की ओर से खेलने वाला शकुनि कपटपूर्वक द्यूतक्रीडा का जानकार था और युधिष्ठिर द्यूतक्रीडा के ज्ञाता नहीं थे । दुर्योधन ने युधिष्ठिर के राज्य के साथ-साथ द्रौपदी को भी जीत लिया और उसने द्रौपदी को बहुत कष्ट भी दिया ॥५८॥ उसके बाद द्रौपदी के साथ-साथ पाण्डवों को बारह वर्ष तक वन में रहने के लिए निर्वासित कर दिया गया उसके कारण मुझे बहुत अधिक कष्ट हुआ ॥५९॥ हे नारदजी ! इस तरह से इस सुख दुःखात्मक संसार में भ्रम के कारण पड़ा हुआ मैंने बहुत कष्ट को भोगा; जबकि मैं सनातन धर्म का ज्ञाता हूँ ॥६०॥ मैं कौन हूँ ? ये किसके पुत्र हैं ? माता कौन है ? सुख का स्वरूप क्या है ? इन सबों के कारण मेरा मन रात-दिन भ्रमित होता रहता है ॥६१॥ मैं क्या करूँ ? कहाँ चला जाऊँ ?

संतोषो नाधिगच्छति । दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरं भवेत् ॥६२॥ सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे निवर्तय । तथा कुरु यथाऽहं स्यां सुखितो विगतज्वरः ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित् । मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छन्तं मोहकारणम् ॥१॥** नारद उवाच– **पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चितम् । संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान् ॥२॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा । मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमंति भववर्त्मनि ॥३॥ ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रांतोऽहं सर्वलोकवत् । शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम् ॥४॥ दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम् । स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत ॥५॥ एकदा पर्वतश्चाहं देवलोकान्महीतलम् । प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं**

मेरा मन सदा अशान्त बना रहता हैं । कभी भी शान्ति नहीं मिल रही है ॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप तो सर्वज्ञ हैं । आप मेरे संदेह को दूर करें । आप मुझे ऐसा बना दें कि मुझे किसी भी प्रकार की चिन्ता न रहे ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

नारद मुनि को पर्वत मुनि का शाप

राजा जनमेजय से व्यासजी ने कहा– इसतरह से मेरी वाणी को सुनकर परमार्थ के ज्ञाता नारदजी ने मुस्कुराते हुए मोहग्रस्त होकर पूछने वाले मुझसे कहा ॥१॥ **नारदजी ने कहा–** हे पुराणों के ज्ञाता महर्षि पराशर के पुत्र व्यासजी ! आप मुझसे क्या पूछ रहे हैं । इस संसार में कोई भी ऐसा शरीरधारी नहीं है जो मोहग्रस्त न हो । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सनकादिक महर्षि तथा महर्षि कपिल ये सबके सब माया से मोहित होकर संसार में भ्रमित हो रहे हैं ॥३॥ संसार के लोग मुझे ज्ञानी जानते हैं, किन्तु मैं भी अन्य संसारियों के ही समान भ्रान्त हूँ । आप को मैं अपना पहले का वृत्तान्त बतला रहा हूँ ॥४॥ मैं

खंडमुत्तमम् ॥६॥ भ्रमंतौ सहितावुर्व्यां पश्यंतौ तीर्थमण्डलम् । पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥७॥ शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् । चलितौ समयं चेमं संमंत्र्य निश्चयेन वै ॥८॥ चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते । शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि न गोप्तव्या कदाचन ॥९॥ भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि । यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥१०॥ इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ । एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया ॥११॥ एवं भ्रमंतौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्ते समुपागते । संजयस्य पुरं रम्यं संप्राप्तौ नृपतेः पुनः ॥१२॥ तेन संपूजितौ भक्त्या राज्ञा संमानितौ भृशम् । स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥१३॥ वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा । तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः ॥१४॥ अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद्द्विजः । वर्षाकाले न गंतव्यं प्रवासे सुखमिच्छता ॥१५॥ इति संचिंत्य मनसा संजयस्य गृहे तदा । संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना ॥१६॥ दमयंतीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः । आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम् ॥१७॥ विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्री कृतोद्यमा । सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि॥१८॥

आपको यह बतला रहा हूँ कि मैंने किस प्रकार से अत्यधिक कष्ट का अनुभव किया । हे व्यासजी ! मैंने अपनी पत्नी के लिए मोहित होकर कष्ट का अनुभव किया ॥५॥ एक बार मैं और पर्वत महर्षि देवलोक से इस उत्तम भरतखण्ड को देखने के लिए भूलोक में आये ॥६॥ हमलोग परस्पर में यह प्रतिज्ञा करके देवलोक से चले थे कि हमदोनों एक साथ ही भूलोक के तीर्थों तथा मुनियों के पवित्र आश्रमों का दर्शन करेंगे । हमलोग कभी अलग नही होयेंगे ॥७-८॥ और उस भ्रमण काल में जिसकी जैसी चित्त की वृत्ति होगी वह अपने उस चित्त की वृत्ति को एक-दूसरे को बतायेगा । उसे कभी छिपायेगा नहीं । चाहे वह चित्त की वृत्ति अच्छी हो अथवा बुरी ॥९॥ भोजन की इच्छा, धन प्राप्त करने की इच्छा अथवा प्रेम करने की इच्छा जो भी इच्छा हो, जैसी भी चित्त में इच्छा उत्पन्न हो उसको परस्पर में कहना होगा ॥१०॥ इस तरह से हम दोनों प्रतिज्ञा करके स्वर्गलोक से भूलोक में आये । हम दोनों का चित्त एक ही समान था और हमलोग अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करने लगे ॥११॥ इस तरह से भ्रमण करते हुए हम दोनों ग्रीष्म ऋतु के अन्त में संजय नामक राजा के नगर में आये ॥१२॥ राजा ने हमदोनों का भक्ति भावना पूर्वक सत्कार किया और हमदोनों उसी राजा के घर में चातुर्मास्य व्रत विताने के लिए रुक गये ॥१३॥ क्योंकि यह शास्त्रों में बतलाया गया है कि वर्षाकाल के चार महिनों में रास्ते में चलने मे अत्यधिक कठिनाई होती है । अतएव ज्ञानियों को चाहिये कि वे उन महीनों में कहीं भी एक स्थान पर रहें ॥१४॥ वर्ष के आठ महीनों में ब्राह्मण कहीं भी कार्यवशात् आ जा सकते हैं । प्रवास में सुख चाहने वाले को वर्षा के समय में कहीं नहीं जाना चाहिए ॥१५॥ यही सोचकर हमदोनों राजा संजय के घर में रुक गये और राजा ने भी हमदोनों का खूब सत्कार पूर्वक अतिथि सत्कार किया ॥१६॥ उस राजा की दमयन्ती नाम की पुत्री देखने में अत्यन्त सुन्दर थी । राजा ने अपनी उसी पुत्री को हमलोगों की

**स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम् । मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा ॥१९॥ मनोऽभिलाषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ।
व्यजनासनशय्यादीन्वांछितानप्यकल्पयत् ॥२०॥ एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल । वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ ॥२१॥ अहं
वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम् । गायत्रं साम सुखदमगां कर्णरसायनम् ॥२२॥ राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम् । बभूव मयि
रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा ॥२३॥ दिने दिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः । ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम् ॥२४॥ मम तस्य
च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित् । अकरोदंतरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता ॥२५॥ स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम् । दधि मह्यं तथा
तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत् ॥२६॥ शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत् । प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥२७॥ विलोकयति मां प्रेम्णा
सुंदरी न च पर्वतम् । ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥२८॥ मनसा चिंतयामास किमेतदिति विस्मितः । पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि
नारद सर्वथा ॥२९॥ राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम् । ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समंततः ॥३०॥ न तथा मयि भेदोऽत्र सन्देहं**

सेवा में लगा दिया ॥१७॥ वह राजकुमारी विवेक को जानने वाली, बड़े-बड़े नेत्रों वाली, तथा उद्यम स्वभाव वाली थी अतएव वह हमदोनों की सर्वदा सेवा करती रहती थी ॥१८॥ वह समय से ही हमदोनों को स्नान करने के लिए जल, समय से अच्छा-अच्छा भोजन, मुखवास तथा अन्य वस्तुएँ जो हमलोगों को अभिप्रेत होती थीं उन्हें देती रहती थी ॥१९॥ वह कन्या हमदोनों के अभिप्रेत वस्तुओं को देती थी और हमलोगों के मनोनुकूल ही व्यजन, आसन तथा शय्या (सोने) की व्यवस्था करती थी ॥२०॥ इस तरह से वेदों का अध्ययन करने के स्वभाव वाले तथा वेदव्रत का पालन करने वाले हमदोनों राजा के घर में सत्कार पूर्वक ठहरे हुए थे ॥२१॥ हम अपने हाथ में वीणा लेकर तथा स्वर की साधना करके, सुनने वालों के कानों को सुख देने वाले गायत्र साम का गायन किया करते थे ॥२२॥ राजकुमारी उस मनोहर सामगान को सुनकर मुझसे अधिक प्रेम करने लगी क्योंकि वह स्वयं रागों को जानती थी॥२३॥ इस तरह उसका मुझमें अनुराग बढ़ता गया और उस प्रेम करने वाली राजकुमारी में मेरा भी मन प्रेमान्वित होकर उसे चाहने लगा ॥२४॥ अत्यन्त प्रेमयुक्त होने के कारण वह कन्या हमदोनों के भोजन में भी कुछ फेर-बदल कर देती थी तथा सेवा मे भी कुछ अन्तर कर देती थी ॥२५॥ वह मुझे स्नान करने के लिए गर्म जल तथा पर्वत मुनि को ठंढा जल और भोजन में मुझको दधि और पर्वत मुनि को छाँछ देने लगी ॥२६॥ वह जिस तरह से मेरी शय्या के चादर को वह साफ-सुथरी रखती थी उस तरह से पर्वत मुनि के चादर को वह साफ नहीं रखती थी ॥२७॥ वह सुन्दरी जिस तरह से मुझको प्रेमपूर्वक देखती थी उस तरह से पर्वत मुनि को नहीं देखती थी । उसके पश्चात् उसके उस तरह के भेदपरक प्रेम को देखकर पर्वत मुनि उसके कारण का विचार अपने में करने लगे । वे सोचने लगे कि इसका कारण क्या है ? उन्होंने एकान्त में मुझसे पूछा कि नारद बतलाओ इसका कारण क्या है ? उसे मुझे

जनयत्यसौ । मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथा संजयात्मजा ।।३१।। तवापि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम् । नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम्।।३२।। सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने । स्वर्गतः समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना ।।३३।। नारद उवाच– पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा । तदाऽहं ह्रीसमाक्रातः संजातश्चाब्रवं पुनः ।।३४।। पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता । ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः।।३५।। तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः । मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः ।।३६।। प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः । भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रध्रुक् ।।३७।। इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना । सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा।।३८।। मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते । सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल ।।३९।। स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत। तस्मात्त्वमपि मन्दात्मन्मृत्युलोके स्थितिः किल ।।४०।। पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम् । अहं वानरवक्त्रस्तु संजातस्तत्क्षणादपि ।।४१।। दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विचक्षणा । विमनाऽतीव संजाता वीणाश्रवणलालसा ।।४२।। व्यास उवाच– ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापो

बतलाओ ।।२८-२९।। राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक तुमसे प्रेम करती है । तुमको खाने-पीने की वस्तुएँ प्रेमपूर्वक देती है ।।३०।। वह उस तरह से मुझसे प्रेम नहीं करती है । इस भेद के कारण मुझे सन्देह हो रहा है । यह निश्चित है कि राजा संजय की पुत्री तुमको अपना पति बनाना चाहती है ।।३१।। तुम्हारे लक्षणों को देखकर मुझे लगता है कि तुम्हारा भी उसमें उसी प्रकार का भाव है । तुम दोनों के नेत्रों तथा मुख के विकार को देखकर मुझे ऐसा लग रहा है ।।३२।। हे मुने ! आप सत्य-सत्य बतलाओ । झूठ मत बोलना । हम दोनों स्वर्ग से जिस प्रतिज्ञा को करके चले थे उस प्रतिज्ञा को तुम स्मरण करो।।३३।। **नारदजी ने कहा**– जब पर्वत मुनि ने हठपूर्वक इसका कारण पूछा तो मैं भी लज्जित हो गया और पर्वत मुनि से कहा– हे पर्वत ! यह विशाल नेत्रों वाली राजकुमारी मुझको अपना पति बनाना चाहती है और मेरा भी इस राजकुमारी के विषय में अधिक प्रेम युक्त मन का भाव है ।।३५।। मेरी उस सत्य वाणी को सुनकर पर्वत मुनि क्रुद्ध हो गये । उन्होंने मुझे बार-बार धिक्कारा ।।३६।। चूकि पहले प्रतिज्ञा करके तुमने मेरे साथ धोखा किया है अतएव तुम्हारा मुख वानर का हो जायेगा; क्योंकि तुम मित्र से द्रोह करने वाले हो ।।३७।। उस महात्मा के द्वारा अभिशप्त होने के कारण मेरा मुख बन्दर के समान क्रूर हो गया ।।३८।। यद्यपि पर्वत मुनि मेरी वहन के पुत्र थे किन्तु मैंने भी उनको क्षमा नहीं किया । मैंने भी अत्यन्त क्रोध करके उनको शाप दे दिया कि तुम अब स्वर्ग में नहीं जा सकोगे ।।३९।। क्योंकि मेरे अत्यन्त छोटे से अपराध के कारण तुमने मुझे शाप दिया है । अतएव हे मूर्ख अब तुम मर्त्यलोक में ही रहोगे, स्वर्गलोक में नहीं जा सकोगे ।।४०।। पर्वत मुनि तो अत्यन्त उदास होकर उस नगर से बाहर चले गये और मैं उसी क्षण वानर के समान मुख वाला हो गया ।।४१।। राजकुमारी अत्यन्त विदुषी थी उसने जब बन्दर के मुख के समान मेरा मुख देखा तो वह उदास हो गयी लेकिन उसकी वीणा सुनने

निवर्तितः । मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि ॥४३॥ पर्वतः क्व गतो भूयः संगमो युवयोरभूत् । कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ह ॥४४॥ नारद उवाच– **किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत् । दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते ॥४५॥ पुनः सेवापराऽत्यर्थं राजपुत्री ममाभवत् । गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि ॥४६॥ अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः । विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिंतयन् ॥४७॥ संजयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किञ्चित्प्रकटयौवनाम् । विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा ॥४८॥ विवाहकालः संप्राप्तः सुताया मम सांप्रतम् । योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसंमतम् ॥४९॥ रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसंभवम् । विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल सांप्रतम् ॥५०॥ प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः । वर्तंते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सुर्वगुणान्विताः ॥५१॥ यस्मिन् रुचिस्ते राजेंद्र तमाहूय नृपात्मजम् । देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥५२॥** नारद उवाच– **पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयंती तदा नृपम् । धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहः स्थितम् ॥५३॥** धात्र्युवाच– **दमयंती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत् । पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम् ॥५४॥ मया**

की लालसा बनी रहती थी ॥४२॥ **व्यासजी ने नारदजी से पूछा–** हे ब्रह्मन् ! उसके बाद क्या हुआ ? शाप फिर किस तरह से दूर हुआ ? आप फिर मनुष्य के मुख वाले कैसे हुए ? आप इन सारी बातों को बतलायें ॥४३॥ वहाँ से पर्वत मुनि कहाँ चले गये ? फिर आलोगों की एक दूसरे से भेंट कहाँ हुयी और कैसे हुयी ? इन सभी बातों को आप विस्तार के साथ बतलायें ॥४४॥ **नारदजी ने कहा–** हे महाभाग ! मैं माया के चरित्र को क्या बतलाऊँ ? पर्वत के क्रुद्ध होकर चले जाने पर मैं बहुत दुःखी हुआ ॥४५॥ राजकुमारी फिर हमारी बहुत अधिक सेवा करने लगी । अतएव पर्वत ऋषि के चले जाने पर भी मैं उसी भवन में रुका रहा ॥४६॥ मैं दुःखी और दीन था । मेरा मुख वानर के समान हो गया था मैं विशेष रूप से इस चिन्ता से दुःखी था कि अब मेरा क्या होगा ? ॥४७॥ राजा ने भी देखा कि उसकी पुत्री युवती हो रही हैं उसमे जवानी के चिह्न आविर्भूत हो गये हैं । उसने राजकुमारी के विवाह के विषय में अपने मन्त्री से पूछा ॥४८॥ उन्होंने मन्त्री से कहा कि अब मेरी पुत्री की विवाह की बेला हो गयी है । अतएव तुम किसी ऐसे वर को बतलाओ जो इसके योग्य हो तथा शुभ गुणों एवं सुन्दर रूप वाला हो उसे वीर तथा सद्वंश में उत्पन्न होना चाहिए । मैं अब अपनी पुत्री का विधिवत् विवाह करूँगा॥५०॥ प्रधानमन्त्री ने राजा से कहा कि हे राजन् ! इस पृथिवी पर अनेक ऐसे राजकुमार हैं जो सभी गुणों से समन्वित तथा आपकी पुत्री के योग्य हैं ॥५१॥ हे राजेन्द्र ! आपकी जिसमें रुचि हो उसको बुलाकर उसे आप हाथी, घोड़े, तथा रथ के साथ प्रभूत मात्रा में धन देकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दें । **नारदजी ने व्यासजी से कहा–** अपने पिता के अभिलषित अर्थ को जानकर दमयन्ती ने धाई के द्वारा एकान्त में स्थित राजा को कहलवा दिया ॥५३॥ **धाई ने कहा–** हे महाराज आपकी पुत्री दमयन्ती ने कहा है कि मेरे सुख सम्पन्न पिता जी से कहो कि ॥५४॥ मैंने मेधावी नारदजी को अपने

वृतोऽथ मेधावी नारदो महतीयुतः । नादमोहितया कामं नान्यः कोऽपि प्रियो मम ॥५५॥ कुरु मे वांछितं तात विवाहं मुनिना सह । नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना ॥५६॥ मग्नाहं नादसिंधौ वै नक्रहीने रसात्मके । अक्षारे सुखसंपूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते ॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः । भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥१॥** राजोवाच– **यदुक्तं वचनं कांते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम् । वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक् ॥२॥ किमिदं चिंतितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम् । कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा ॥३॥ क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयंती ममात्मजा । विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन ॥४॥ तामेकान्ते सुकेशांते**

पति के रूप में चुन लिया है । मैं उनकी महती नामक वीणा की ध्वनि से अत्यन्त मोहित हूँ । उनको छोड़कर कोई भी दूसरा मुझे प्रिय नहीं है ॥५५॥ हे तात ! आप मेरा विवाह नारदजी से कर दें । हे धर्मज्ञ ! नारद को छोड़कर मैं किसी भी दूसरे का वरण नहीं कर सकती हूँ ॥५६॥ मैं नाद रूपी उस सागर में मग्न हूँ जिसमें न तो किसी घड़ियाल का भय है और न तो किसी तिमिंगिल का भय है । इस नादसिंधु का जल भी खारा नहीं है ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

दमयन्ती और नारद के विवाह का वर्णन

नारदजी ने महर्षि व्यास से कहा– अपनी पुत्री की धाई के माध्यम से बात सुनकर राजा ने अपने समीप में बैठी हुई कैकेयी नामक सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी से कहा ॥१॥ **राजा ने कहा–** हे प्रियतमे ! धाई ने जो कहा है उसको तो तुमने सुना ही है मेरी पुत्री ने वानर के समान मुख वाले नारद का वरण कर लिया है ॥२॥ न जाने पुत्री ने यह क्या सोच लिया है ? यह तो उसका मूर्खतापूर्ण व्यवहार है । उस वानर के समान मुख वाले के साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह कैसे कर सकता हूँ ॥३॥ कहाँ तो भिक्षु तथा कुरूप नारद और कहाँ मेरी पुत्री दमयन्ती ? दोनों में कोई समता नहीं है । इस तरह का

निवारय हठात्सुताम् । युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया ।।५।। इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत् । क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः ।।६।। कथं मोहमवाप्ताऽसि भिक्षुके चतुरा पुनः । लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूपतनुस्त्वयम् ।।७।। वार्ता वानरवक्त्रेण कथं युक्ता तवानघे । का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते ।।८।। वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा हठम् । पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः ।।९।। लग्नां बुब्बूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम् । दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति ।।१०।। दासेरकाय ताम्बूदलानि कोमलानि कः । ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले ।।११।। वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः । विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति ।।१२।। कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः । आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्तवयाऽमुना ।।१३।। नारद उवाच– इति मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा । मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया ।।१४।। किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम् । किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च ।।१५।। हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः । मातः प्राणान्प्रयच्छंति धिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि ।।१६।। नारदो वेत्ति

विपरीत कार्य तो कभी नहीं किया जा सकता है ।।४।। हे प्रियतमे ! तुम एकान्त में अपनी पुत्री को उसके हठ से युक्तिपूर्वक रोको । उसे शास्त्रीय मर्यादा तथा वृद्धपुरुष की आज्ञा का उपदेश दो ।।५।। इस तरह से अपने पति की बात को सुनकर रानी ने एकान्त में राजकुमारी से कहा कि कहाँ तो तुम सुन्दरी और कहाँ यह वानर के समान मुख वाला निर्धन नारद ? दोनों में कोई मेल नहीं है ।।६।। तुम तो चतुर हो इस भिक्षुक के विषय में तुम्हारा कैसे मोह हो गया है ? तुम्हारा शरीर लता के समान कोमल है और इसका शरीर तो भस्म से रुक्ष बना हुआ है ।।७।। हे अनघे ! इस वानर के मुख के समान मुखवाले के साथ तुम्हारा विवाह कैसे शोभा पा सकता है ? हे शुचिस्मिते ! उस कुरूप व्यक्ति में तुम्हारा प्रेम कैसे हो सकता है ?।।८।। तुम किसी राजकुमार के साथ विवाह कर लो, और अपना हठ छोड़ दो । धाई के माध्यम से तुम्हारी बात सुनकर तुम्हारे पिता दुःखी हो गये हैं ।।९।। भला किसी बबूल के पेड़ से लिपटी हुई किसी कोमल लता को देखकर किसी का मन दुःखी नहीं होगा ?।।१०।। संसार का कोई मूर्ख व्यक्ति भी किसी ऊँट को खाने के लिए कोमल ताम्बूल देता है क्या ?।।११।। जब विवाह के समय तुम नारद के साथ बैठोगी और नारद के हाथ में तुम्हारा हाथ होगा तो उसे देखकर किसी का जी नहीं जल उठेगा ?।।१२।। देखने में खराब मुख वाले के साथ बातचित करने में भी कोई रुचि उत्पन्न नहीं होती है । ऐसी स्थिति में जीवन भर तुम अपना समय कैसे बिताओगी ?।।१३।। नारदजी ने व्यासजी से आगे बतलाया कि दमयन्ती तो मेरे साथ विवाह करने का निश्चय कर चुकी थी, अतएव अपनी माता की बात को सुनकर उसने अत्यन्त दुःखी होकर कहा ।।१४।। किसी मूर्ख के रूप, अथवा मुख अथवा धन, सम्पत्ति या राज्य से कौन सा लाभ हो सकता है ? क्योंकि मूर्ख को तो रसमार्ग का ज्ञान होता नहीं है ।।१५।। हे माँ ! नारद की वीणा की ध्वनि से मोहित होकर अपना प्राण दे देने

यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम् । तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥१७॥ मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे ।
रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा ॥१८॥ धिङ्मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्वसमन्विते । गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी ॥१९॥
स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् । दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥२०॥ यथा नयति कैलासं गंगा चैव सरस्वती । तथा नयति
कैलासं स्वरज्ञानविशारदः ॥२१॥ स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् । सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि ॥२२॥ मूर्छनातानमार्गं
तु श्रुत्वा मोदं न याति यः । स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि ॥२३॥ वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम् । अश्रोत्रोऽपि मुदं
याति धिक्सकर्णांश्च मानवान् ॥२४॥ बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः । जायते किंतु ते वृद्धा न जानंति धिगस्तु तान् ॥२५॥ पिता मे
किं न जानाति नारदस्य गुणान्बहून् । द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः ॥२६॥ तस्मादसौ मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात् ।
पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः ॥२७॥ किन्नरा न प्रियाः कस्य भवंति तुरगाननाः । गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह ॥२८॥

वाली वन की हरिणियाँ भी धन्य हैं संसार के मूर्ख मनुष्यों को धिक्कार है ॥१६॥ हे मातः ! नारदजी सात स्वरों से समलंकृत जिस विद्या को जानते हैं, उसको नारद तथा शिवजी को छोड़कर कोई तीसरा पुरुष नहीं जानता है ॥१७॥ मूर्ख के साथ सम्बन्ध हो जाने पर तो हरक्षण मरते रहना पड़ता है, गुणों से हीन व्यक्ति यदि रूपवान तथा धनवान भी हो तो भी उसका त्याग कर देना चाहिए ॥१८॥ व्यर्थ के गर्व करने वाले मूर्ख राजा के साथ की जाने वाली मित्रता को धिक्कार है और बातों के द्वारा सुख प्रदान करने वाली गुणवान् व्यक्ति के साथ की जाने वाली मित्रता श्रेष्ठ है ॥१९॥ स्वरों को जानने वाला, ग्रामों का वेत्ता तथा मूर्छनाओं में होने वाले भेद का ज्ञाता तथा आठो रसों का ज्ञाता दुर्बल पुरुष भी संसार में दुर्लभ है ॥२०॥ जिस तरह से गंगा और सरस्वती अपने सेवकों को कैलास पहुँचा देती हैं, उसी तरह स्वर के ज्ञान में विशारद (निपुण) व्यक्ति अपने लोगों को कैलास पहुँचा देता है अर्थात् शिवलोक प्राप्त करने में सफल बना देता है ॥२१॥ उस मनुष्य को भी देवता मानना चाहिए जो स्वर के प्रमाण को जानता है । स्वरों के सात भेदों के ज्ञान से रहित इन्द्र भी पशु के समान अनादरणीय हैं ॥२२॥ जो मनुष्य मूर्छना तथा तान के मार्ग को सुनकर भी प्रसन्न नहीं होता है, वह उसी व्यक्ति को पशु मानना चाहिए हरिण इत्यादि को पशु नहीं मानना चाहिए ॥२३॥ वह विषैला सर्प भी श्रेष्ठ है जो श्रोत्रेन्द्रिय से रहित होकर भी मनोहर ध्वनि को सुनकर प्रसन्न हो जाता है, और नाद से उदासीन रहने वाले श्रोत्रेन्द्रिय सम्पन्न मनुष्यों को धिक्कार है ॥२४॥ कोई बालक भी सुन्दर स्वर वाले तथा गेय ध्वनि को सुनकर प्रसन्न हो जाता है । किन्तु जो वृद्ध पुरुष भी उन मूर्छना आदि को नहीं जानते हैं उनको धिक्कार है ॥२५॥ क्या मेरे पिता नारदजी के अनेक गुणों को नहीं जानते हैं ? क्या उनको इस बात का पता नहीं है कि उनके समान सामगान करने वाला त्रैलोक्य में दूसरा कोई नहीं है ॥२६॥ अतएव मैंने

पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः । तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा ॥२९॥ नारद उवाच– **इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् । आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुनौ ॥३०॥ विवाहं कुरु राजेन्द्र दमयन्त्याः शुभे दिने । मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसाऽनया ॥३१॥** नारद उवाच– **इति संचोदितो राज्ञ्या संजयः पृथिवीपतिः । चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः ॥३२॥ एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परंतप । स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम् ॥३३॥ यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ । अभवं दुःखसंतप्तस्तदाऽहं वानराननः ॥३४॥ दमयंती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनांबुजा । शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन ॥३५॥ एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः । कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥३६॥ मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि । आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत् ॥३७॥ कृतदारं वानरास्यं दीनं चितातुरं भृशम् । दयावान्मामुवाचेदं पर्वतो मातुलं कृशम् ॥३८॥ मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम। निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥३९॥ भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद । दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता**

खूब सोच-समझकर इनका समागम से पहले ही वरण किया है । इनका वानर का मुख तो बाद में पर्वत मुनि के शाप के कारण हो गया है । ये साक्षात् गुणों के खजाना है ॥२७॥ किन्नरों का मुख तो घोड़े का होता है । वे गान विद्या में प्रवीण होने के कारण किसको प्रिय नहीं होते हैं । अच्छे मुख से क्या होता है ?॥२८॥ अतएव तुम पिताजी से कहो कि मैंने मुनिवर्य नारदजी का वरण कर लिया है । वे अपना आग्रह छोड़कर उनसे ही मेरा विवाह कर दें ॥२९॥ **नारदजी ने कहा–** सुन्दरी रानी ने अपनी पुत्री के आग्रह को नारदजी के विषय में जानकर उसके कथनानुसार राजा से निवेदन कर दिया ॥३०॥ और कहा हे राजेन्द्र ! आप किसी अच्छे दिन को दमयन्ती का विवाह नारदमुनि के साथ कर दें, क्योंकि उसने नारदमुनि को अपने मन से पति के रूप में वरण कर लिया है ॥३१॥ इस तरह से रानी के द्वारा प्रेरित होकर राजा संजय ने सम्पूर्ण वैवाहिक विधि को विधिपूर्वक सम्पन्न कर दिया ॥३२॥ हे परंतप ! इस तरह से विवाह हो जाने के बाद भी वानर के मुख वाला मैं प्रतिदिन मन ही मन संतप्त होते हुए वहीं रुका रहा ॥३३॥ जब राजकुमारी मेरे पास मेरी सेवा करने के लिए आयी तो वानर के मुख वाला मैं अत्यन्त दुःखी हो गया ॥३४॥ दमयन्ती जब कभी भी मुझे देखती थी उसका मुख कमल के समान विकसित हो जाता था वह कभी भी मेरे वानर के मुख को देखकर दुःखी नहीं होती थी ॥३५॥ इस तरह से कुछ समय बीत जाने पर पर्वत मुनि तीर्थों को करने के बाद मुझे देखने के लिए वहाँ आयें ॥३६॥ मैंने अत्यधिक सम्मान पूर्वक उनकी सविधि पूजा की । वे जब आसन पर बैठ गये तो मुझे देखकर अत्यन्त दुःखी हो गये ॥३७॥ विवाह किए हुए, दीन तथा अत्यन्त चिन्तातुर अपने मामा और मुझको देखकर दया द्रवित होकर पर्वत मुनि ने कहा॥३८॥ हे मुनिश्रेष्ठ नारदजी क्रोध करके मैंने जो शाप आपको दे दिया उस शाप को मैं दूर कर दे रहा हूँ उसे आप देखें ॥३९॥ हे नारदजी! इस

ममाधुना॥४०॥ नारद उवाच– **मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् । अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥४१॥ भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि । शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना ॥४२॥** नारद उवाच– **जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः । राजपुत्री तु संतुष्टा मातरं प्राह सत्वरम् ॥४३॥ मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः । वचनात्पर्वतस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत् ॥४४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्तु राजनि । ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र संजयः प्रीतिमांस्तदा ॥४५॥ धनं समर्पितं राज्ञा संतुष्टेन तदा महत् । मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना ॥४६॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् । मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया ॥४७॥ संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते। तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥४८॥ कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा । अहंकारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः॥४९॥ सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल । कारणं प्राणिनां देहसंभवे सर्वथा मुने ॥५०॥ कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह । गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं गमितः क्षणात् ॥५१॥ राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः । पुत्राः प्रसूता बहवो गृहेतस्य नृपस्य ह ॥५२॥ व्यास**

राजकुमारी को देखकर मेरे चित्त में दया का संचार हो गया है, अतएव मेरे पुण्य के प्रभाव से आप सुन्दर मुख वाले हो जायँ ॥४०॥ नारदजी ने पर्वत की बातों को सुना और कहा मेरा भी चित्त आर्द्र हो गया है और उसी क्षण अपने द्वारा दिए गये शाप का अनुग्रह करते हुए कहा ॥४१॥ हे पर्वत मैंने भी अपने शाप का अनुग्रह कर दिया हे भागिनेय अब आपकी भी गति देवलोक पर्यन्त हो सकेगी ॥४२॥ मैं उनके सामने ही सुन्दर मुख वाला हो गया। इससे राजकुमारी सन्तुष्ट हो गयी और उसने जाकर अपनी माता को बतलाया कि ॥४३॥ हे मातः ! आपके महाकान्ति सम्पन्न जमाई सुन्दर मुख वाले हो गये हैं । पर्वत मुनि के शापानुग्रह करने के कारण नारद मुनि सुन्दर मुख वाले हो गये हैं ॥४४॥ अपनी पुत्री की बात सुनकर रानी ने उस बात को राजा को बतलाया । उस बात को सुनकर प्रसन्न हुए राजा संजय देखने के लिए गये ॥४५॥ उस घटना से प्रसन्न होकर राजा ने पारिवर्ह (दहेज) के रूप में मुझको तथा पर्वत मुनि को बहुत अधिक धन सम्पत्ति प्रदान किया ॥४६॥ इस तरह से मैंने अपने जीवन की सारी घटनाओं को बतलाया । मेरे विचारानुसार तो माया अत्यन्त बलवती है । उसका प्रभाव और महिमा अत्यधिक है । जैसा कि मैंने अपने जीवन में स्वयं अनुभव किया है ॥४७॥ हे महाभाग ! माया के गुणों से निर्मित इस मिथ्या संसार में कोई भी जीव सुखी नहीं है । न पहले कभी हुआ और न भविष्य में होगा ही ॥४८॥ काम, क्रोध, लोभ, मत्सर, ममता, अहंकार तथा मद ये सबके सब महाबलवान् हैं, इन सबों पर कोई भी विजय नहीं पा सकता है ॥४९॥ हे मुने ! सत्त्व, रजस्, एवं तामस् ये तीनों गुण ही शरीर को प्राप्त करने के कारण हैं ॥५०॥ हे व्यासजी ! एक बार मैं भगवान् विष्णु के साथ वन में जाकर हास्य तथा विनोद के प्रसंग में स्त्रीत्व को क्षण भर मैं ही प्राप्त कर लिया ॥५१॥ माया के बल से मैं राजा की पत्नी बन गया । उस राजा के घर में मैंने अनेक पुत्रों

उवाच– **संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल । कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम् ॥५३॥ कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः। कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा ॥५४॥ एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् । मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजंगमम् ॥५५॥ न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम् । सर्वग्रंथार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम् ॥५६॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच **निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम् । मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः ॥१॥ मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्। ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतमजया दुर्विभाव्यया ॥२॥ कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे । गतोऽहं दर्शनाकांक्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥३॥ वादयन्महतीं वीणां**

को जन्म भी दिया ॥५२॥ **व्यासजी ने कहा–** आपकी इस वाणी को सुनकर मुझे अत्यधिक संशय हो रहा है । हे मुने ! आप तो ज्ञानवान् है फिर भी नारी कैसे हो गये ?॥५३॥ उसके बाद आप फिर पुरुष कैसे बने ? इन सारी बातों को आप बतलाइये । आपके पुत्र किस राजा के घर में उत्पन्न हुए और कैसे हुए ?॥५४॥ माया के इस अद्भुत चरित्र को आप अवश्य बतलायें । जिस माया के द्वारा यह सारा स्थावर जंगमात्मक जगत् मोहित है ॥५५॥ सभी ग्रंथों के सारांश स्वरूप तथा सभी संदेहों को मिटाने वाले आपके इस कथारूपी अमृत का पान करने से मुझको तृप्ति होती ही नहीं ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

नारदजी को स्त्रीत्व की प्राप्ति

नारदजी ने व्यासजी से कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं एक विचित्र कथा सुना रहा हूँ । उसे आप सुनिये । उससे स्पष्ट है कि माया का बल मुनियों तथा योगियों के लिए भी दुर्ज्ञेय है ॥१॥ आया अजेय है तथा [illegible] नहीं जा सकता है । ब्रह्माजी से लेकर एक स्तम्ब तक स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् माया के ही अधीन है ॥२॥ एकबार में सत्यलोक से अद्भुत कर्म करने वाले श्रीहरि का दर्शन करने के लिए श्वेतद्वीप में गया।।३।।

स्वरतानविभूषिताम् । गायनं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम् ।।४।। दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः । कौस्तुभोद्भासितोरस्को .मेघश्यामश्चतुर्भुजः।।५।।
पीतांबरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः । लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः ।।६।। वीक्ष्य मां कमला देवी गताऽन्तर्धानमंतिकात् ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वभूषणभूषिता ।।७।। नारीणां प्रवरा कांता रूपयौवनगर्विता । सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ।।८।। अंतर्गृहं गतां दृष्ट्वा
सिंधुजां व्यञ्जनान्विताम् । मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः ।।९।। भगवन्देवदेवेश पद्मनाथ सुरारिहन् । कथं च मा गता दृष्ट्वा
मामागच्छंतमंतिकात् ।।१०।। नाहं विटो न वा धूर्तः तापसोऽहं जगद्गुरो । जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन ।।११।। नारद उवाच– निशम्य
वचनं किंचिद्गर्वयुक्तं जनार्दनः । उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम् ।।१२।। विष्णुरुवाच– नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन । पतिं
विनाऽन्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित् ।।१३।। माया सुदुर्जया विद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः । सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्च जितेन्द्रियैः ।।१४।।

मैं स्वर तथा तान से समलंकृत अपनी महती नाम की वीणा को बजाते हुए तथा सातों स्वर के साथ सामगान करते हुए गया ।।४।। मैंने वहाँ जाकर देखा कि चक्र तथा गदा धारण किए हुए देवाधिदेव भगवान् विष्णु प्रसन्नता पूर्वक अपनी प्रियतमा लक्ष्मीजी के साथ क्रीडा कर रहे हैं । उस समय उनका वक्षस्थल कौस्तुभमणि से सुशोभित हो रहा है । उनका रूप मेघ के समान श्याम वर्ण का था । उनकी चार भुजायें थीं । पीताम्बर धारण किए हुये तथा मुकुट एवं अंगदादि अलंकारों से वे सुशोभित थे ।।५-६।। नारी के समस्त लक्षणों से सम्पन्न, तथा सभी अलंकारों से अलंकृत श्रीलक्ष्मीजी मुझ को देखकर वहाँ से हटकर भीतर चली गयीं ।।७।। लक्ष्मीजी नारियों में सर्वश्रेष्ठ, मनोहर तथा रूप एवं यौवन के गर्व से गर्वित थीं । श्रीभगवान् वासुदेव की प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजी की कान्ति श्रेष्ठ सुवर्ण की कान्ति के समान गौरवर्ण की थी ।।८।। श्रीलक्ष्मीजी को भवन के भीतर गयी हुई देखकर मैंने वनमाला धारण करने वाले देवताओं के आराध्य जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से पूछा ।।९।। हे देवाधिदेव, भगवन् पद्मनाभ ! हे राक्षसों का वध करने वाले भगवन् ! मुझको आते हुए देखकर श्रीलक्ष्मीजी भीतर क्यों चली गयीं ?।।१०।। हे जगद्गुरो ! मैं तो कोई विट नहीं हूँ और न धूर्त हूँ । मैं तो तपस्वी हूँ । जितेन्द्रिय तथा क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला हूँ । हे जनार्दन मैंने तो माया को भी जीत लिया है ।।११।। **नारदजी ने कहा–** श्रीभगवान् ने मेरी गर्व से युक्त वाणी को सुना और उसे सुनकर वे मुझसे वीणा के समान मधुर वाणी .में बोले ।।१२।। **भगवान् विष्णु ने कहा–** हे नारदजी नीति यह बतलाती है कि नारी को चाहिए कि वह अपने पति को छोड़कर किसी दूसरे पुरुष के सन्निकट न रहे ।।१३।। माया को तो जीतना बड़ना कठिन है । जिन योगियों ने अपने श्वास पर भी विजय प्राप्त कर लिया वे भी माया पर विजय नहीं प्राप्त कर पाते हैं । जो योगी सांख्य तत्त्ववेत्ता हैं, निराहार रहते हैं, तपस्वी हैं तथा जितेन्द्रिय हैं वे भी माया से पार नहीं पाते हैं ।।१४।। हे मुनिश्रेष्ठ ! देवता भी माया से हार जाते हैं । अतएव हे गीतों को जानने वाले नारदजी अपने यह जो कहा है कि मैंने

देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना । जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन ॥१५॥ नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम् ।
मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥१६॥ देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा । बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥१७॥
त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत् । वेदविद्योगविद्वाऽपि सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः ॥१८॥ कामोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत्त्।
तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥१९॥ कामः करोति धर्मज्ञं कदाचिद्विकलं पुनः । स्वभावात्कर्मतो वाऽपि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम् ॥२०॥
नारद उवाच– **इत्युक्त्वाविरतो विष्णुरहं विस्मितमानसः । तमब्रवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् ॥२१॥ रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः।**
कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्वमे ॥२२॥ द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर । ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते॥२३॥
विष्णुरुवाच **त्रिगुणासाऽखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसंमता । अजेयाऽनेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत् ॥२४॥ दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं**
कुरु । गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र सांप्रतम् ॥२५॥ दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः । दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं मा विषादे मनः

तो माया पर भी विजय प्राप्त कर लिया ऐसा आपको कभी भी नहीं कहना चाहिए ।।१५।। महामाया तो अजा है उसको मैं, या ब्रह्माजी या शिवजी भी नहीं जीत सकते हैं । सनकादिक महर्षिगण भी नहीं । तो फिर आप अथवा कोई व्यक्ति उस पर कैसे विजय प्राप्त कर सकता है ।।१६।। जो कोई भी देवता का शरीर या मनुष्य का शरीर या पशु पक्षी का शरीर आदि शरीरों में से कोई शरीर धारण करता है, वह व्यक्ति अजा (नहीं जन्म लेने वाली) माया पर विजय कैसे प्राप्त कर सकता है ?।।१७।। चाहे कोई वेदों का ज्ञाता हो या योगी हो या जितेन्द्रिय हो या सर्वज्ञ हो, वह सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से युक्त होने के कारण उस अजा माया पर कैसे विजय प्राप्त कर सकता है ।।१८।। काम भी माया का ही एक रूप हैं, वह रूपरहित है, उसका अपना स्वरूप नहीं है । उस काम के ही अधीन, विद्वान्, या मूर्ख या कोई मध्यम कोटि का जीव रहा करता है ।।१९।। कभी-कभी तो काम धर्मज्ञ पुरुष को भी व्याकुल बना देता है । उस काम की चेष्टाओं को स्वाभाविक कर्म के द्वारा कैसे जाना जा सकता है ? उसकी चेष्टायें दुर्ज्ञेय हैं ।।२०।। **नारदजी ने कहा–** इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये । और मेरा मन अत्यन्त विस्मित हो गया । मैंने उन सनातन पुरुष जगत् के स्वामी भगवान् वासुदेव से कहा ।।२१।। हे रमापते उस माया का रूप क्या है ? वह कैसी है ? । उसका बल कितना है । उसके अङ्ग कैसे है ? उसका आधार क्या है ? आप इन सारी बातों को मुझे बतलाइये ।।२२।। मैं उस मायाको देखना चाहता हूँ । हे धरणीधर आप मुझे उस माया को दिखलाइये । मैं उसको अच्छी तरह से जानना चाहता हूँ । आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।।२३।। **भगवान् विष्णु ने कहा** वह सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों वाली है । वही सम्पूर्ण जगत् का आधार है, सर्वज्ञ है तथा सबों को प्रिय है । वह अजेय है, अनेक रूपों वाली है, तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रूप से विद्यमान है ।।२४।।

कृथाः ॥२६॥ इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम् । स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदाऽगाद्धरिसन्निधौ ॥२७॥ आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः । समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः ॥२८॥ चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् । प्रेरितो यत्र कृष्णेन गन्तुकामेन काननम्॥२९॥ महावनानिदिव्यानि सरांसि सरितस्तथा । पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान् ॥३०॥ मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्च सुमनोहराः । पल्वलानि विशालानि ह्रदान्पंकजभूषितान् ॥३१॥ मृगाणं च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च । गतावावां कान्यकुब्जसमीपं गरुडासनौ ॥३२॥ तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पंकजमंडितम् । हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥३३॥ नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पंकजैरूपरंजितम् । शुचि मिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम्॥३४॥ मामाह भगवान्वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम् । स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः ॥३५॥ श्रीभगवानुवाच– **पश्य नारद गंभीरं सरः सारसनादितम् । सर्वत्र पंकजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम् ॥३६॥ अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् । इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत् ॥३७॥ विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् । स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः ॥३८॥ विश्रम्य तटभागे**

हे नारदजी, यदि आप उसे देखना चाहते हैं तो आइये मेरे साथ इस गरुड पर बैठ जाइये । इस समय कहीं हम दोनों अन्यत्र चलते हैं ॥२५॥ मैं आपको उस माया का दर्शन कराऊँगा, जिसको कोई भी अजितेन्द्रिय व्यक्ति जीत नहीं सकता है । हे ब्रह्माजी के पुत्र उस माया का दर्शन करके आप विषाद नहीं करेंगे ॥२६॥ इस प्रकार से मुझसे कहकर भगवान् विष्णु ने गरुड का स्मरण किया । स्मरण करते ही गरुड श्रीहरि के सन्निकट आ गये ॥२७॥ आये हुए गरुड को देखकर भगवान् विष्णु गरुड पर बैठ गये और मुझे भी गरुड पर बैठाकर वे कहीं अन्यत्र जाने का मन बना लिए ॥२८॥ वायु के समान वेगवाले गरुड वैकुण्ठ से उस कानन (वन) की ओर चल पड़े जहाँ पर जाने के लिए भगवान् ने उन्हें प्रेरित किया था ॥२९॥ दिव्य बड़े-बड़े वन, सरोवर, नदियों, नगरों, गावों, खलिहानों, गोशालाओं, मुनियों के मनोहर आश्रमों, मनोहर वावलियों, छोटी-छोटी वावलियों, मनोहर कमलों से सुशोभित विशाल जलाशयों॥३०-३१॥ मृगों तथा वराहों के समूहों को देखते हुए हमदोनों कान्यकुब्ज के समीप गरुड पर बैठे हुए पहुँच गये ॥३२॥ वहाँ कमलों से सुशोभित हंस तथा कारण्डव पक्षियों से परिपूर्ण एवं चकवा चकई से युक्त अनेक प्रकार के विकसित कमलों से सुशोभित, पवित्र तथा मीठे जल वाला, एवं भ्रमर समूह के गुञ्जन से गुञ्जित दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा ॥३३-३४॥ उस अद्भुत तडाग को देखकर भगवान् ने मुझसे कहा इस सरोवर का जल अपनी मिठास के कारण क्षीरसागर के जल से स्पर्धा करता है, श्रीभगवान् ने कहा हे नारद सारसों की ध्वनि से ध्वनित इस गंभीर सरोवर को देखो । इसमें सर्वत्र कमल भरे हुए हैं, तथा यह स्वच्छ जल से परिपूर्ण है ॥३६॥ हम दोनों इस सरोवर में स्नान करके कान्यकुब्ज नामक उत्तम नगर में चलेंगे । इस तरह से कहकर भगवान् मुझे गरुड से नीचे उतारे ॥३७॥ इसके बाद भगवान् जोर से हँसकर मेरी तर्जनी अंगुलि पकड़कर उस सरोवर की प्रशंसा करते हुए उस सरोवर

तु स्निग्धच्छाये मनोहरे । मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले ॥३९॥ पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने । साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥४०॥ सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः । इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम् ॥४१॥ स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः । पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम् ॥४२॥ कृताऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले । यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः ॥४३॥ विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् । हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम् ॥४४॥ आरुह्य गरुडं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् । ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥४५॥ तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः । विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः ॥४६॥ संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः । अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम् ॥४७॥ किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः । एवं चिन्तयमानस्य नारीरूपधरस्य मे ॥४८॥ सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः । गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः॥४९॥ युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः । वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम् ॥५०॥ राकाचंद्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः । पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा ॥५१॥ मानुषस्य च वा कान्ते गंधर्वस्योरगस्य च । एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता ॥५२॥

के तट पर लाये ॥३८॥ मनोहर घनी छाया मे सरोवर के तट पर विश्राम करके भगवान् ने कहा कि हे मुने ! आप इस स्वच्छ जल में स्नान कीजिये॥३९॥ उसके बाद मैं इस पवित्र सरोवर में स्नान करूँगा । इस सरोवर का जल साधु पुरुषों के हृदय के समान स्वच्छ है ॥४०॥ विशेष रूप से कमलों के पराग से सुगन्धित हैं । श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मैं अपनी वीणा और मृगचर्म रखकर ॥४१॥ स्नान करने के लिए प्रेमपूर्वक उस सरोवर के तट पर गया । अपने दोनों पैरों तथा हाथों को धोकर, शिखा को बाँधकर, कुश लेकर आचमन करके ॥४२॥ उस पवित्र जल में स्नान करने लगा। श्रीभगवान् के सामने ही मैंने जब स्नान किया ॥४३॥ उसी समय अपने पुरुष के रूप को त्याग कर स्त्री बन गया । श्रीभगवान मेरी वीणा और मृगचर्म लेकर ॥४४॥ गरुड पर चढ़कर शीघ्र ही वैकुण्ठ लोक में चले गये । उसके बाद सुन्दर आभूषणों से भूषित स्त्री बना हुआ मैं ॥४५॥ अपने पहले के शरीर को भी भूल गया । मैं भगवान् तथा अपनी महती वीणा को भी भूल गया ॥४६॥ मोहिनी रूप प्राप्त करके मैं सरोवर से बाहर निकला और उस स्वच्छ जल वाले तथा कमलों से सुशोभित सरोवर को देखा ॥४७॥ मुझे इस बात का अत्यधिक आश्चर्य हो रहा था कि यह सब क्या है ? इस तरह से नारी का रूप धारण करके जब मैं सोच रहा था ॥४८॥ उसी समय मैंने हाथी, घोड़े तथा रथ के समूह से घिरा हुआ रथ पर सवार तालध्वज नामक राजा को देखा॥४९॥ वह युवक तथा आभूषणों से भूषित था देखने में कामदेव के समान सुन्दर था । आभूषणों से भूषित पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली स्त्री मुझको देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यित हुआ और मुझसे पूछा हे सुन्दरि ! तुम कौन हो ? तुम किसी देवता की पुत्री हो अथवा ॥५०-५१॥

विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने । किं पश्यसि सुकेशांते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे ॥५३॥ चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनी । भुंक्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि । वांछितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥५४॥ चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनी ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च । विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाच विशांपते ॥१॥ राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् । पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥२॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् । निराधाराऽस्मि राजेन्द्र चिंतयामि चिकीर्षितम् ॥३॥ दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम । धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु ॥४॥ तवाधीनाऽस्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति**

किसी मनुष्य की पुत्री हो अथवा किसी गन्धर्व या उरग (सर्प) की पुत्री हो । तुम तो रूप तथा जवानी से सुशोभित सुन्दरी हो यहाँ पर अकेली क्यों आयी हो ॥५२॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम सत्य बतलाओं कि तुम विवाहित हो अथवा कन्या हो । हे सुन्दर केशों वाली इस सरोवर में तुम क्या देख रही हो ?॥५३॥ हे कामदेव को भी मोहित कर देने वाली सुन्दरि हे कोयल के समान बोलने वाली ! तुम अपने अभिलषित अर्थ को बतलाओ । हे हँस के नेत्रों के समान सुन्दर नेत्रों वाली कृशोदरि ! तुम मेरे साथ अभिलषित भोगों को मुझे अपना पति बनाकर भोगो ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

स्त्रीरूपधारी नारदजी का राजा तालध्वज के साथ विवाह का वर्णन

नारदजी ने कहा– इस तरह से उस तालध्वज नामक राजा के द्वारा कहे जाने पर मैंने मन में बहुत अधिक विचार करके कहा हे राजन् !॥१॥ मैं निश्चित रूप से इस बात को नहीं जानती हूँ कि मैं किसकी पुत्री हूँ । मेरे माता-पिता कौन है । मुझे किसने इस सरोवर पर लाया है ॥२॥ मैं क्या करूँ? कहा जाऊँ ? मेरा कैसे कल्याण हो ? हे राजेन्द्र ! मैं निराधार हूँ इन सारी बातों की चिन्ता मुझे हो रही है ॥३॥ हे राजन् ! इस विषय में तो भाग्य ही जो कुछ करे कर सकता है । मेरा तो कोई पौरुष है नहीं । हे राजन् ! आप धर्मज्ञ हैं जैसा चाहें वैसा करें ॥४॥ हे राजन् ! मैं आपके अधीन हूँ

पालकः । न पिता न च माता च न स्थानं न च बांधवाः ॥५॥ इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः । मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह ॥६॥ नरयानमानयध्वं चतुर्बाह्यं मनोहरम् । आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयांबरवेष्टितम् ॥७॥ मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम्। चतुरस्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम् ॥८॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः । आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम् ॥९॥ आरूढोऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया । मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥१०॥ विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने । उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः ॥११॥ तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी । सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम ॥१२॥ रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः । नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा ॥१३॥ राजकार्याणि संत्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् । नासौ विवेद गच्छंतं कालं कामकलारतः ॥१४॥ उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च । हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च ॥१५॥ वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे । विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह ॥१६॥ व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशी कृता । स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च ॥१७॥ ममैवायं पतिर्योषाऽहं पत्नीषु प्रिया सती । पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम ॥१८॥ इति चिंतयती तस्मिन्प्रेमबद्धा

मेरा कोई भी दूसरा रक्षक नहीं है । मेरा यहाँ न कोई माता है, न पिता है, न बन्धु है और न तो मेरा कोई स्थान है ॥५॥ इस तरह से मेरे कहने पर वह राजा कामासक्त हो गया । मुझ बड़े-बड़े नेत्रों वाली को देखकर उसने अपने सेवकों से कहा ॥६॥ चार लोगों द्वारा ढोयी जाने योग्य सुन्दर पालकी लाओ । उसमें यह बैठेगी । उसे सुन्दर रेशमी वस्त्र से वेष्टित होना चाहिये ॥७॥ उसमें कोमल विस्तर होना चाहिए । वह मोतियों की माला से सजायी गयी हो । उसको चौकोर तथा बड़ी होनी चाहिए और उसे सुवर्ण की बनी होनी चाहिए ॥८॥ राजा की बातों को सुनकर उसके शीघ्रगामी सेवक मेरे लिए वस्त्रों से ढँकी हुए दिव्य पालकी लाये ॥९॥ राजा को प्रसन्न करने के लिए मैं उस पालकी पर चढ़ गयी । राजा भी मुझे अपने घर लाकर बहुत प्रसन्न हुआ॥१०॥ उसके बाद राजा शुभ दिन को शुभ लग्न में अग्नि के समक्ष वैवाहिक विधि से मेरा पाणिग्रहण किया ॥११॥ अब मैं उस राजा की प्राणप्रिया पत्नी बन गयी । उस राजा ने मेरा नाम सौभाग्यसुन्दरी रखा ॥१२॥ कामशास्त्र मे वर्णित अनेक प्रकार के विलासों पूर्वक मेरे साथ रमण करता हुआ वह राजा अत्यधिक सुख का अनुभव करता था ॥१३॥ काम कला में रत रहने वाला वह राजा रात-दिन कामक्रीड़ा में ही आसक्त रहता था । राज्य का सारा कार्य छोड़ दिया था । उसे बितते हुए समय का पता नहीं चलता था ॥१४॥ मदिरा की नशा में चूर रहने वाला वह राजा, मनोहर उद्यानों, वावलियों, महलों, श्रेष्ठ पर्वतो तथा दीर्घिकाओं में विहार करते रहने वाला वह राजा पूर्ण रूप से मेरे अधीन हो गया था ॥१५-१६॥ उस समय राजा तालध्वज में मेरा असीम अनुराग हो गया था । क्रीडा रस में व्यस्त होने के कारण मेरी विवेकशक्ति समाप्त हो गयी थी । मुझे इस बात की बिल्कुल यादगारी नही थी कि पहले मेरा पुरुष

दिवानिशम् । क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥१९॥ विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानं च शाश्वतम् । धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता ॥२०॥ एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु । गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने ॥२१॥ जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा। कारयामास विधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥२२॥ अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः । नाब्रवं लज्जमानाऽहं नृपं प्रीतमना भृशम् ॥२३॥ संपूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम । शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥२४॥ बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्ममहोत्सवः । राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥२५॥ सूतकांते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह । अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परंतप ॥२६॥ ततो वर्षद्वयांते वे पुनर्गर्भो मया धृतः। द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥२७॥ सुधन्वेति सुतस्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा । वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम् ॥२८॥ एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसंमताः । मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालन लालने ॥२९॥ पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः सरूपिणः । गार्हस्थ्यं

का शरीर था । मैं नारद था । मेरा जन्म मुनिकुल में हुआ था ॥१७॥ मैं तो केवल यही समझ रहा था कि ये राजा मेरे पति हैं । मैं इनकी सभी पत्नियों में प्रियतमा पत्नी हूँ । मैं इनकी पतिव्रता पत्नी हूँ । मैं इनकी पटरानी हूँ । विलास की कलाओं को जानने वाली हूँ । अतएव मेरा जीवन सफल है ॥१८॥ इस प्रकार से मैं रात-दिन सोचता रहता था और मेरा चित्त उस राजा में ही, प्रेम पूर्वक लगा रहता था । मैं तो हमेशा क्रीडा करने में ही लगा रहता था और सुख भोग का मैं लोभी हो गया था । मै सदा महाराज तालध्वज की वशवर्तिनी पत्नी बना रहता था ॥१९॥ मेरा सारा शाश्वतब्रह्मविज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान विस्मृत हो गया था । मेरा धर्मशास्त्रों का भी ज्ञान भूल गया था । मेरा मन तो सदा राजा में ही लगा रहता था ॥२०॥ इस तरह से राजा के साथ विहार करते हुए मेरे बारह वर्ष क्षण भर के समान बीत गये । क्योंकि मेरा मन तो सदैव कामक्रीड़ा में ही लगा रहता था ॥२१॥ इसके बाद मैं गर्भवती हो गया। इस बात को जानकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने विधिवत् मेरा गर्भाधान संस्कार कराया ॥२२॥ राजा मेरे दोहद (गर्भ कालिक इच्छा) के विषय में बार-बार पूछा करते थे । जिसके कारण मुझे भी प्रसन्नता होती थी ॥२१॥ किन्तु लज्जित होने के कारण मैं कुछ कह नहीं पाता था । उसके कारण राजा और प्रसन्न होते थे ॥२३॥ उसके बाद जब गर्भ का दशवाँ महीना पूरा हुआ तो मेरे पुत्र का जन्म हुआ । मेरे पुत्रजन्म के दिन, ग्रह, नक्षत्र, लग्न, तारा इत्यादि का बल उत्तम था ॥२४॥ राजा के घर में पुत्र जन्म का महोत्सव मनाया गया । पुत्रजन्म होने के कारण राजा को अत्यन्त सन्तोष हुआ ॥२५॥ पुत्र जन्म का सूतक समाप्त होने पर राजा अपने पुत्र का मुख देखकर प्रसन्न हो गये । हे परंतप ! मैं राजा की प्रियतमा पत्नी बन गया ॥२६॥ फिर दो वर्ष के बाद मुझे पुनः गर्भ हो गया । मेरा दूसरा पुत्र भी सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न था ॥२७॥ ब्राह्मणों की प्रेरणा से राजा ने बड़े पुत्र का नाम वीरवर्मा और दूसरे लड़के का नाम सुधन्वा रखा ॥२८॥ इस तरह से मुझमें राजा के बारह पुत्र उत्पन्न हुए । वे सबके सब राजा के अनुकूल रहने वाले थे । मैं

मे ततः पूर्णं सम्पन्नं सुखसाधनम् ॥३०॥ तेषां दारक्रियाः काले कृता राज्ञा यथोचिताः । स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत् ॥३१॥ ततः पौत्रादिसंभूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः । आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥३२॥ कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम् । पुत्रेषु रोगजनितं देहसंतापकारकम् ॥३३॥ परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः । पुत्राणां वा वधूनां च तेन संतापसंभवः ॥३४॥ सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् । संकल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम ॥३५॥ विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् । योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा ॥३६॥ अहंकारस्तु संजातो भृशं मोहविवर्धकः । एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः सुकुलसंभवाः ॥३७॥ एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडंति मम वेश्मसु । धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥३८॥ नारदोऽहं भगवता वंचितो मायया किल । न कदाचिन्मयाप्येवं चिन्तितं मनसा किल ॥३९॥ राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता । धन्याऽहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम् ॥४०॥ अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान् । अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥४१॥ कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् । आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिंतयत् ॥४२॥

भी उन सबों का प्रेम पूर्वक पालन करने के मोह में पड़ा रहा ॥२९॥ उसके बाद मैं फिर मेरे आठ पुत्र समय-समय से होते रहे । वे सबके सब एक समान रूप वाले थे । उसके बाद मेरा गृहस्थ जीवन सुख के साधनों से परिपूर्ण हो गया था ॥३०॥ राजा ने उन सभी लड़कों का समयानुसार विवाह कर दिया। इस तरह मेरा परिवार पुत्रों तथा पुत्रबधुओं से बहुत बड़ा हो गया ॥३१॥ उसके बाद उन पुत्रों के भी पुत्र हुए और वे सभी भी क्रीडा रस के रसिक थे। वे सबके सब अनेक प्रकार के भोगों को भोगने वाले थे । उससे हमारा मोह और बढ़ गया । कभी तो सुख तथा ऐश्वर्य का अनुभव होता था और कभी पुत्रों के रोगग्रस्त हो जाने पर शरीर को संताप देने वाला दुःख का अनुभव होता था ॥३३॥ कभी-कभी पुत्रों तथा बहुओं के बीच झगड़ा होने के कारण मन में भयंकर कष्ट होता था ॥३४॥ हे मुनिश्रेष्ठ व्यासजी ! इस तरह से मैं मिथ्याचार उत्पन्न करने वाले, संकल्पजन्य, सुख-दुःखात्मक इस क्षुद्र संसार में मग्न हो गया था ॥३५॥ इस तरह मेरा पहले का जो ज्ञान था अथवा जो शास्त्र का ज्ञान था वह पूर्ण रूप से भूल गया था । मैं अपने स्त्रीत्व के भाव में पूर्ण रूप से विलीन हो गया था । रात-दिन घर के कार्यों में लगा रहता था ॥३६॥ मोह को बहुत अधिक बढ़ाने वाला मुझे इस बात का बहुत अधिक अहंकार हो गया था कि ये मेरे पुत्र बलवान् हैं, और बहुएँ सद्वंश में उत्पन्न हैं ॥३७॥ ये सभी मेरे पुत्र खूब सज धजकर मेरे घर में खेलते रहते हैं । संसार की जितनी भी नारियाँ हैं, मैं उन सबों में धन्य हूँ । यह मेरा अहोभाग्य है ॥३८॥ मैंने कभी भी इस बात की चिन्ता नहीं की कि भगवान् ने मुझे ठग लिया है । मैं वस्तुतः नारद हूँ ॥३९॥ हे व्यासजी ! मैं सदा मोहित होकर यही सोचता रहता था कि राजा की पत्नी हूँ, मेरा आचरण उत्तम कोटि का है । मेरे बहुत से पुत्र हैं। मैं पतिव्रता नारी हूँ । संसार में मैं धन्य हूँ ॥४०॥ इसके बाद कोई दूर देश का महान राजा था । हे मानद व्यासजी ! उसकी

वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च । मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा ॥४३॥ संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः । हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः ॥४४॥ राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः । श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे ॥४५॥ स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः । क्रंदमाना ह्यहं तत्र गता समरमण्डले ॥४६॥ दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता । विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे ॥४७॥ हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हताऽस्मि दुरात्मना । दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारिणातिपापिना ॥४८॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवान्मधुसूदनः । कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद्वृद्धः परमशोभनः ॥४९॥ सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः । मामुवाचातिदीनां संक्रंदमानां रणाजिरे ॥५०॥ ब्राह्मण उवाच– **किं विषीदसि तन्वंगि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः । मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके ॥५१॥ का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिंतयात्मगतिं पराम् । उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने ॥५२॥ स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि।**

मेरे पति के साथ शत्रुता की भावना थी ॥४१॥ वह हाथियों तथा रथों से अपनी सेना को सजाकार युद्ध करने की इच्छा से कान्यकुब्ज नगर पर आक्रमण कर दिया ॥४२॥ उसने अपनी सेना लेकर नगरी को चारो ओर से घेर लिया । उस समय मेरे पुत्र तथा पौत्र युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकले॥४३॥ उसने मेरे पुत्रों तथा पौत्रों के साथ घोर संग्राम किया । कालयोग के कारण उस युद्ध में मेरे सभी पुत्र तथा पौत्र मारे गये ॥४४॥ राजा तालध्वज उत्साह भंग हो जाने के कारण युद्ध स्थल से लौट आये । मैने यह सुना कि इस भयंकर संग्राम में मेरे सभी पुत्र तथा पौत्र मारे गये ॥४५॥ वह राजा मरे पुत्रों तथा पौत्रों का वध करके अपनी सेना के साथ लौट गया तो रोते हुए मैं उस समरभूमि में गया ॥४६॥ जब मैंने देखा कि मरे हुए सभी पुत्र तथा पौत्र पड़े हैं दुःख से अत्यन्त पीड़ित होकर मैं विलाप करने लगा और शोकसागर के प्रवाह में प्रवाहित होने लगा ॥४७॥ मैं चिल्ला रहा था कि हाय मेरे पुत्र! मर कर कहाँ चले गये । भवितव्यता अत्यन्त बलवान् है । उसको कोई रोक नहीं सकता है । वह अत्यन्त पापी है ॥४८॥ उसी समय भगवान् मधुसूदन वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर वहाँ पर आये । उनका रूप बड़ा ही मनोहर था ॥४९॥ वे सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए थे तथा पूर्णरूप से वेदों के ज्ञाता थे । वे भगवान् मेरे समीप आये और उस युद्धभूमि में अत्यन्त दीन बनकर रोने वाले मुझसे कहने लगे ॥५०॥ **ब्राह्मणरूपधारी श्रीभगवान् ने कहा–** हे सुन्दरि! तुम विषाद क्यों कर रही हो । इससे तो तुम्हारा अज्ञान ही प्रकट होता है । हे कोकिलवयनि अज्ञान के कारण प्रकट होने वाले इस घर में तुम कौन है ? किसके ये पुत्र हैं ? ये कौन है ? तुम अपने स्वरूप का विचार करो । रोना बन्द करो । हे सुलोचने ! उठो स्वस्थ होओ ॥५१-५२॥

परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै ॥५३॥ कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित् । मृतानां किल बन्धूनां धर्मशास्त्रविनिर्णयः ॥५४॥ नारद उवाच– **इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता । उत्थिताऽहं नृपेणाथ युक्ता बंधुभिरावृता ॥५५॥ अग्रतो द्विजरूपेण भगवान् भूतभावनः। चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम् ॥५६॥ हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः । नीत्वा मां भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः॥५७॥ स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने गजगामिनि । त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम् ॥५८॥ कोटिशस्ते मृताः पुत्रा अन्यजन्मसमुद्भवाः । पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा ॥५९॥ केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे । वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह ॥६०॥** नारद उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके । प्रविष्टा स्नातुकामाऽहं प्रेरिता तत्र विष्णुना ॥६१॥ मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि । हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान् ॥६२॥ उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः । प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम ॥६३॥ संचिंतितं**

हे सुन्दरि ! तुम स्नान करके अपने पुत्रों को तिलाञ्जलि दान करो । ऐसा ही करने से परलोक जाने वाले जीवों की मर्यादा की रक्षा होती है ॥५३॥ इस कार्य के पश्चात् सर्वथातीर्थ में ही स्नान करना चाहिए घर में नहीं मरे हुए, बान्धवों के विषय में शास्त्र का यही निर्णय है ॥५४॥ **नारदजी ने कहा–** इस तरह से कहकर उस वृद्धब्राह्मण के द्वारा समझाये जाने पर मैं उठ गया और राजा तथा बान्धवों के साथ ॥५५॥ जीवों पर कृपा करने वाले ब्राह्मण का वेष बनाये हुए भगवान् को आगे करके मैं चल पड़ा और शीघ्र ही अत्यन्त पवित्र तीर्थ में आ गया ॥५६॥ कृपा करके श्रीभगवान् मुझे उस पुंतीर्थ में लाये और द्विजरूप धारी भगवान् ने मुझसे कहा ॥५७॥ तुम इस पवित्र सरोवर में स्नान करो । हे गजगामिनि तुम अपने पुत्रों के विषय में निरर्थक शोक करना छोड़ दो ॥५८॥ दूसरे जन्मों में उत्पन्न होने वाले तुम्हारे करोड़ो पुत्र मर चुके हैं । इस तरह तुम्हारे पिता, पति, भाई और दामाद भी मर चुके हैं ॥५९॥ तुम उनमें से किसका-किसका शोक मनाओगी । यह सब कुछ मन से उत्पन्न होने वाला, व्यर्थ, स्वप्न के समान तथा शरीरधारियों को सन्ताप उत्पन्न करने वाला है ॥६०॥ **नारदजी ने कहा–** इस तरह से भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर और उनके द्वारा प्रेरित होकर उस पुरुष संज्ञक तीर्थ में स्नान करने के लिए मैंने प्रवेश किया॥६१॥ उस तीर्थ में स्नान करते ही मेरा शरीर पुरुष का हो गया और मैंने देखा कि श्रीहरि मेरी वीणा को लेकर तीर पर खड़े हैं॥६२॥ स्नान करके निकलने पर मैंने तट पर खड़े कमलनयन श्रीभगवान् का दर्शन किया । हे द्विजोत्तम ! उसी समय मुझे पिछली बातें याद आ गयी ॥६३॥ मैंने अनुभव किया कि मैं तो नारद हूँ और यहाँ श्रीहरि के साथ आया था । माया से मोहित होकर स्त्री हो गया था ॥६४॥ इस तरह से जब मैं सोच रहा था उसी समय श्रीहरि

मया तत्र नारदोऽहमिहागतः । हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः ॥६४॥ इति चिंतापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः । मामाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः ॥६५॥ विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् । पुनः पुरुषभावश्च संपन्नः केन हेतुना ॥६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः । क्व गता मम भर्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः ॥१॥ विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः । क्व गता मां परित्यज्य विलपन्तं वियोगिनम् ॥२॥ विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम् । राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते ॥३॥ न प्राणा मे बहिर्यान्ति विरहेण तवाधुना । गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात् ॥४॥ विलपामि विशालाक्षि देहि**

ने मुझसे कहा– नारद जल्दी आओ । जल में खड़े होकर क्या कर रहे हो ? उस समय मैं अपने भयंकर स्त्रीत्व को स्मरण करके इस बात को सोचकर आश्चर्यित हो रहा था कि यह किस कारण से हुआ और मैं पुनः पुरुष कैसे हो गया ?॥६६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

महामाया की महिमा का वर्णन

नारदजी ने व्यासजी को बतलाया– मुझ नारद नामक ब्राह्मण को देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया । वह कह रहा था कि मेरी पत्नी कहाँ चली गयी । ये मुनिश्रेष्ठ नारदजी कहाँ से आ गयें ?॥१॥ राजा हा प्रिये ! हा प्रिये !! बार-बार कहकर विलाप कर रहा था । वह कह रहा था मैं वियोग ग्रस्त हो गया हूँ विलाप करते हुए मुझको छोड़कर तुम कहाँ चली गयी ॥२॥ हे सुन्दरि ! तुम्हारे विना तो मेरा जीवन तथा मेरा घर सब कुछ व्यर्थ है। हे सुन्दर मुसुकान वाली प्रियतमें तुम्हारे विना इस राज्य को लेकर मैं क्या करूँगा ?॥३॥ इस समय तुम्हारे वियोग से व्याकुल होकर मेरे प्राण निकल क्यों नहीं जाते हैं । तुम्हारे विना भी मैं जीवित हूँ इससे प्रेम की परिपाटी ही मिट गयी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तुम्हारे वियोग में मैं विलाप कर रहा हूँ तुम मेरी

प्रत्युत्तरं प्रियम् । क्व गता सा मयि प्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसङ्गमे ॥५॥ निमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः । गृहीता वरुणेनाथ मम दौर्भाग्ययोगतः ॥६॥ धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वं पुत्रैः समागता । अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि ॥७॥ न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता । विलपन्तं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यन्त्रिता ॥८॥ उभयं मे गतं कान्ते पुत्रस्त्वं प्राणवल्लभे । तथापि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये॥९॥ किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले । रामाविरहजं दुःखञ्जानाति रघुनन्दनः ॥१०॥ विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतम्भुवि। दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः ॥११॥ उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल । यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह ॥१२॥ एवं विलपमानं तं राजानम्भगवान्हरिः । निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ॥१३॥ श्रीभगवानुवाच— किं विषीदसि राजेंद्र क्व गता ते प्रियाऽङ्गना। न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ॥१४॥ का सा कस्त्वं क्व संयोगः वियोगः कीदृशस्तव । प्रवाहरूपे संसारे नृणां नौतरतामिव ॥१५॥ गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम् । संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ॥१६॥ अनया सह ते राजन्संयोगस्त्विह

बातों का उत्तर दो । हे प्रिये ! तुमने जो प्रथम संयोग में प्रेम प्रदर्शित किया था वह तुम्हारा प्रेम कहाँ चला गया ॥५॥ क्या मेरी प्रियतमा जल में डूब गयी ? और उसे मछलियों तथा कच्छपों ने खा लिया । अथवा मेरे दुर्भाग्य के कारण वरुण ने उसे पकड़ लिया ॥६॥ हे अमृत के समान मधुर बोलने वाली ! हे सर्वाङ्ग सुन्दरि ! तुम धन्य हो कि तुम अपने पुत्रों के साथ चली गयी । तुम्हारा अपने पुत्रों के प्रति स्वाभाविक प्रेम था ॥७॥ किन्तु तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं है कि तुम विलाप करने वाले दीन अपने पति को छोड़कर पुत्र स्नेह के कारण स्वर्ग लोक चली गयी ॥८॥ हे प्रियतमे ! मेरे तो दोनों चले गये । मेरे पुत्र तथा मेरी पत्नी दोनों । किन्तु हे प्रिये ! अत्यन्त दुःखी होने पर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है ॥९॥ मैं क्या करूँ । कहाँ जाऊँ। इस समय तो भूतल पर श्रीराम भी नहीं है । पत्नी के विरह के कारण होने वाले दुःख को श्रीराम जानते हैं । निष्ठुर ब्रह्मा ने भूलोक में यह विपरीत काम किया है कि एक समान चित्त वाले पति-पत्नी को एक साथ मृत्यु न देकर भिन्न-भिन्न काल में वे मृत्यु देते हैं ॥११॥ मुनियों ने धर्मशास्त्रों में पति के साथ ही पत्नी की मृत्यु का विधान करके नारियों का तो उपकार किया है ॥१२॥ इस तरह से विलाप करने वाले राजा को भगवान् श्रीहरि ने अपने युक्तियुक्त वचनों से समझाया ॥१३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे राजेन्द्र क्या विषाद कर रहे हो ? तुम्हारी प्रियतमा कहाँ गयी ? क्या तुमने कभी शास्त्रों का श्रवण अथवा विद्वानों की सङ्गति नहीं की है ?॥१४॥ वह कौन थी ? तुम उसके कौन हो ? तुम्हारा कैसा संयोग और कैसा वियोग ? यह सब तो संसार रूपी सागर के प्रवाह में प्रवाहित होने वाली नौका के समान हैं ॥१५॥ राजन् अब तुम अपने घर जाओ । व्यर्थ रोने से कौन सा लाभ है ? मनुष्यों का संयोग तथा

संवृतः । भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा ॥१७॥ न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे । काकतालीप्रसंगेन यद्भूतं तत्तथा गतम्॥१८॥ मा शोकं कुरु राजेन्द्र कालोऽतिदुरतिक्रमः । कालयोगं समासाद्य भुंक्ष्व भोगान्गृहे यथा ॥१९॥ यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी । यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो ॥२०॥ रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी । वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना ॥२१॥ भोगः कालवशादेति तथैव प्रतियाति च । नात्र शोकस्तुकर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि ॥२२॥ नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः । घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः ॥२३॥ मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम् । अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय सांप्रतम् ॥२४॥ दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभंगुरः । तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम् ॥२५॥ जिह्वोपस्थरसो राजन्पशुयोनिषु वर्तते। ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु ॥२६॥ तस्माद्गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम् । मायेयं भगवत्यास्तु यया संमोहितं जगत् ॥२७॥ नारद उवाच– इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् । कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमंदिरम् ॥२८॥ दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य

वियोग ये सदा दैव की अधीन हुआ करते हैं ॥१६॥ इस नारी के साथ तुम्हारा संयोग पूरा हो गया । तुमने उस सुन्दरी के साथ भोगे जाने वाले भोगों को भोग लिया ॥१७॥ तुमने इस सरोवर पर उसके माता-पिता को कभी भी नहीं देखा । जिस तरह काकतालीयन्याय (अचानक) से तुम्हारा उसके साथ संयोग हुआ था, उसी तरह आचानक तुम्हारा उससे वियोग भी हो गया ॥१८॥ राजेन्द्र शोक मत करो कोई भी काल का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। काल के संयोगानुसार तुम अपने घर में जाकर भोगों को भोगो ॥१९॥ वह सुन्दरी जैसे आयी थी उसी तरह वह चली गयी अब तुम भी अपने घर जाकर पहले के ही समान कार्यों को करो ॥२०॥ तुम्हारे रोने से वह कामिनी आज ही चली तो आयेगी नहीं । राजन् व्यर्थ के शोक कर रहे हो अब तुम संसार से उदास होकर योगी बन जाओ ॥२१॥ जिस तरह समयानुसार भोगों की प्राप्ति होती है, उसी तरह समयानुसार भोग दूर भी हो जाते हैं । व्यर्थ के संसार मार्ग में शोक करने का कोई भी फल नहीं मिल सकता है ॥२२॥ किसी को भी केवल सुख ही नहीं मिलता है, और न तो केवल दुःख ही मिलता है। सुख और दुःख दोनों घटीयन्त्र के समान आते जाते रहते हैं ॥२३॥ राजन् अपने मन को तुम स्थिर करो और सुखपूर्वक राज्य करो । अथवा अपने किसी बन्धु को राज्य को सौंप कर तुम वन में चले जाओ ॥२४॥ प्राणियों को मनुष्य का यह क्षणभंगुर शरीर प्राप्त करना बड़ा ही दुर्लभ है । यदि यह मानव शरीर प्राप्त हो जाय तो फिर आत्मकल्याण के साधनों का प्रयास करना चाहिए ॥२५॥ हे राजन् ! जिह्वा तथा उपस्थेन्द्रिय (लिङ्ग) का भोग तो पशु आदि योनियों में प्राप्त होता रहता है । किन्तु ज्ञान की प्राप्ति तो मनुष्य योनि में ही होती है, इससे भिन्न कुयोनियों में ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है ॥२६॥ अतएव अपनी पत्नी के वियोग से उत्पन्न इस शोक का परित्याग करके तुम अपने घर जाओ । यह भगवती की माया है । इस माया ने सम्पूर्ण जगत् को मोहित

निर्वेदमद्भुतम् । वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च ॥२९॥ गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवन्तमधोक्षजम् । तमब्रुवं जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः॥३०॥ वञ्चितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत् । स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया ॥३१॥ ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे। विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरेः ॥३२॥ योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो । पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठ पुलोमी वासवं यथा ॥३३॥ मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः । लिंगं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरे ॥३४॥ विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो । कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत् ॥३५॥ नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः । सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम् ॥३६॥ मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम् । जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा ॥३७॥ श्रीभगवानुवाच– **पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते । देहेषु सर्वजंतूनां दशाभेदा ह्यनेकशः ॥३८॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा । तथा देहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः ॥३९॥ सुप्तो नरो**

कर रखा है ॥२७॥ **नारदजी ने व्यास महर्षि से कहा–** श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से समझाये जाने पर राजा तालध्वज ने श्रीहरि को प्रणाम करके, विधिपूर्वक स्नान विधि को किया और उसके बाद वह अपने घर चला गया ॥२८॥ उसको अद्भुत निर्वेद प्राप्त हो गया था, अतएव उसने अपने पौत्र को राज्य समर्पित कर दिया । स्वयं वन में चला गया और वहाँ जाकर उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया ॥२९॥ राजा के चले जाने पर कमलनयन भगवान् को देखकर मेरे ऊपर देखकर बार-बार हँसते हुए श्रीभगवान् से मैंने कहा ॥३०॥ हे भगवन् आपने तो मुझे खूब धोखा दिया । मैंने माया के महान बल को जान लिया । मैं उन सभी चरितों का स्मरण कर रहा हूँ जो कुछ मैंने स्त्रीदेह धारण करके किया था ॥३१॥ हे भगवन् ! जब मैं सरोवर में प्रवेश किया, उस समय स्नान करते ही मेरा सारा पहले का ज्ञान विज्ञान क्यों नष्ट हो गया ?॥३२॥ हे जगद्गुरो ! स्त्री का शरीर प्राप्त करके मैं मोहित हो गया था और उसी तरह से राजा को अपने पति के रूप में प्राप्त करके आनन्द का अनुभव किया जिस तरह शची ने इन्द्र को अपने पति के रूप में प्राप्त करके किया ॥३३॥ हे देवेश ! हे श्रीहरि ! मेरा मन, चित्त तथा शरीर एवं लिङ्ग शरीर भी वही पुराना था किन्तु मेरी स्मृति क्यों नष्ट हो गयी थी ?॥३४॥ हे प्रभो ! आपने उस ज्ञान नाश के विषय में मुझे बहुत अधिक विस्मय है । हे रमाकान्त ! उस ज्ञान के नाश होने का जो सबसे प्रधान कारण है, उसे आप मुझे बतलाइये ॥३५॥ स्त्री का शरीर प्राप्त करके मैंने अनेक प्रकार के भोगों को भोगा । मैं प्रतिदिन शराब पीता था और अविहित भोजन भी करता था ॥३६॥ उस समय मुझको इस बात का भी पता नहीं चलता था कि मैं नारद हूँ । इस समय मुझको जैसे सब याद है, उस तरह से उस समय नहीं पता चलता था ॥३७॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे महामते नारद ! यह विलास तो मायाकृत है । सभी जीवों के शरीर में उस माया के ही अनेक प्रकार की दशाएँ होती रहती हैं ॥३८॥ जिस तरह वर्तमान शरीर में मनुष्य की जग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया ये दशाएँ होती हैं, उसी तरह से देहान्तर की प्राप्ति

न जानाति न शृणोति वदत्यपि । पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञातमशेषतः ॥४०॥ निद्रया चाल्यते चित्तं भवन्ति स्वप्नसंभवाः । नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः ॥४१॥ गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने । किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥४२॥ मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् । संयोगस्तेन वार्ता न भोजनं सह मन्यते ॥४३॥ प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने दृष्टं सुखासुखम् । स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि ॥४४॥ स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः । तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल ॥४५॥ नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम् । गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः ॥४६॥ कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानवो मन्दधीः पुनः । मायागुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह ॥४७॥ गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । विना गुणैर्न संसारो वर्तते किंचिदप्यदः ॥४८॥ अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमस्समन्वितः । न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः ॥४९॥ तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः । तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल ॥५०॥ शिवस्तथा तपोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः । गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः ॥५१॥ तस्मान्मोहो न कर्तव्यः

होने पर भी ये दशाएँ होती रहती हैं । इसमें सन्देह का तो कोई अवसर ही नहीं है ॥३९॥ सोया हुआ मनुष्य न तो कुछ जानता है और न तो वह कुछ सुनता है । किन्तु वह जग जाने पर पुन अपने समस्त ज्ञात वस्तुओं को जानने लग जाता है ॥४०॥ निद्रा नामक दोष के कारण उसका चित्त चंचल हो जाता है और वह सोया हुआ मनुष्य स्वप्न देखने लगता है । उसके मन में मनोजन्य अनेक प्रकार के चित्त के भेद हो जाते हैं ॥४१॥ वह स्वप्न देखता है कि हाथी मुझको मारने के लिए आ रहा है । किन्तु मैं भागने में समर्थ नहीं हूँ । मैं क्या करूँ ? कोई भी ऐसा स्थान नहीं हैं, जहाँ कि भागकर मैं चला जाऊँ ॥४२॥ स्वप्न में देखता है कि मेरे मरे हुए पितामह मेरे घर आये हैं । उनके साथ मेरी बातें हो रही हैं और मैं उनके साथ भोजन भी कर रहा हूँ ॥४३॥ किन्तु जगने पर वह जानता है कि वे सुख-दुःख सम्बन्धी बाते स्वप्न में मैंने देखी थी । उस स्वप्न में देखी गयी बातों को स्मरण करके लोगों को वह विस्तार पूर्वक बतलाता भी है ॥४४॥ स्वप्न में कोई भी यह निश्चय नहीं कर पाता है कि यह भ्रम है । उसी तरह अज्ञानी जीव को इस बात का पता नहीं चलता है कि यह सब कुछ माया का ही विलास है ॥४५॥ हे नारदजी ! माया के अत्यन्त दुर्घट गुणों के पार को न तो मैं जानता हूँ, न ब्रह्माजी जानते हैं और न शिवजी ही ॥४६॥ जब हम देवताओं की स्थिति ऐसी है तब तो मनुष्य तो अज्ञानी है । वह कैसे माया के गुणों को पूर्ण रूप से जान सकता है । इस संसार में माया के गुणों का परिज्ञान किसी को भी नहीं होता है ॥४७॥ यह स्थावर जंगमात्मक संसार त्रिगुणकृत है । इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो इन तीनों गुणों से रहित हो ॥४८॥ मैं भुवन का स्वामी हूँ । मुझमें प्रधान रूप से सत्त्वगुण है । किन्तु रजोगुण एवं तमोगुण अप्रधान रूप से है । मैं त्रिगुण से हीन कभी भी नहीं होता हूँ ॥४९॥ इस तरह आपके पिताजी रजोगुण प्रधान है । किन्तु उनमें भी अप्रधान

संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर । माया विनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे ॥५२॥ दृष्टा माया त्वयाऽद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः । किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम् ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम् । माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम् ॥१॥ मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः । श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम् ॥२॥ ब्रूहि नारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा । क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः॥३॥** नारद उवाच– **इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे । आरुह्य गरुडं गन्तुं वैकुण्ठं च मनो दधे ॥४॥ मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं**

रूप से सत्त्वगुण और तमोगुण रहते हैं । वे तमोगुण, सत्त्वगुण से रहित कभी भी नहीं रहते हैं ॥५०॥ इसी तरह शिवजी भी तमोगुण प्रधान हैं । अर्थात् उनमें तमोगुण की प्रधानता रहती है । किन्तु उनमें भी सत्त्वगुण एवं रजोगुण अप्रधान रूप से रहते हैं । इस संसार में कोई भी गुणत्रय से रहित नहीं होता है ॥५१॥ अतएव हे मुनीश्वर इस संसार के विषय में मोह नहीं करना चाहिये । यह संसार माया से निर्मित है । यह सारहीन तथा अपार है । यह दुर्घट संसार है ॥५२॥ हे नारद ! आपने माया को आज ही देखा है और अनेक प्रकार के भोगों को भी भोगा है । अतएव हे महाभाग नारद उस महामाया के अद्भुत चरित के विषय में आप क्या पूछ रहे हैं ?॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।

भगवती का माहात्म्य वर्णन

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– हे महाराज मैंने जो नारदजी से महामाया का माहात्म्य सुना है, उसे मैं स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ; उसे आप सुनें ॥१॥ इसके बाद मैंने आपके नारी के शरीर की प्राप्ति से संबन्धित कथा श्रवण करने के बाद पुनः सब कुछ जानने वालों में श्रेष्ठ नारदजी से पूछा॥२॥

गच्छ नारद । एहि वा मम लोकं त्वं यथा रुचि तथा कुरु ॥५॥ ब्रह्मलोकं गतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम् । भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः॥६॥
वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् । ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने ॥७॥ चिंतयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम् । गत्वा प्रणम्य
पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः ॥८॥ तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिंतातुरं तु माम् । ब्रह्मोवाच– **क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिंतातुरः सुत ॥९॥**
स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम । केनापि वञ्चितोऽसि त्वं दृष्टं वा किंचिदद्भुतम् ॥१०॥ विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत ।
नारद उवाच– **इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥११॥ तमब्रुवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम् । वञ्चितोऽहं पितः कामं विष्णुना**
प्रभविष्णुना ॥१२॥ स्त्रीभावङ्गमितःकामं वर्षाणि सुबहून्यपि । अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥१३॥ प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च।
पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान् ॥१४॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मन् यन्मोहमगमं तदा । विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥१५॥

हे नारदजी आप यह बतलायें कि उसके पश्चात् श्रीहरि ने आपसे क्या कहा ? और वे जगत् के स्वामी आपके साथ कहाँ गये ॥३॥ **नारदजी ने कहा–**
उपर्युक्त बातों के कहने के पश्चात् श्रीहरि गरुड़ पर सवार होकर वैकुण्ठ जाने के लिए तैयार हो गये ॥४॥ मुझसे लक्ष्मीपति श्रीभगवान् ने कहा हे मुने !
आपको जहाँ जाने का विचार हो वहाँ आप जाइये, अथवा आप मेरे साथ मेरे लोक में चलें । आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करें ॥५॥ इसके बाद श्रीहरि
से आज्ञा लेकर मैं ब्रह्मलोक में चला गया और देवताओं के स्वामी श्रीहरि भी शीघ्रता पूर्वक गरुड पर बैठ गये ॥६॥ और मुझको आदेश देकर अपने
मनोनुकूल वैकुण्ठ लोक में चले गये । भगवान् के चले जाने पर मैं अपने पिता ब्रह्माजी के लोक में चला गया ॥७॥ उस समय मैं अपने भोगे हुए अद्भुत
सुखों तथा दुःखों को सोच रहा था । ब्रह्माजी के पास जाकर मैंने उनको प्रणाम किया और उनके सामने खड़ा हो गया । मुझको अत्यधिक चिन्तित देखकर
मेरे पिता ब्रह्माजी ने मुझसे पूछा **ब्रह्माजी ने कहा–** हे महाभाग ! आप कहाँ गये थे ? और आप इतना चिन्तित क्यों हैं ?॥९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं देख रहा
हूँ कि आज आपका मन स्वस्थ नहीं है । किसी ने तुम्हें ठग लिया है क्या ? अथवा तुमने आज किसी अद्भुत वस्तु को देखा है ॥१०॥ हे पुत्र ! आज
मैं तुमको उदास तथा विज्ञानरहित रूप से क्यों देख रहा हूँ ? ब्रह्माजी की बातों को सुनकर नारदजी ने कहा पिताजी से इस प्रकार पूछे जाने पर मैने मृगचर्म
पर बैठकर माया के बल से उत्पन्न अपने वृतान्त को बतलाया । हे पिजाजी ! सब कुछ करने में समर्थ भगवान् विष्णु ने आज मुझे ठग लिया ॥१२॥
उसके कारण मैं कई वर्षों तक स्त्री ही बना रहा और पुत्रों के शोक से उत्पन्न अनेक प्रकार के अत्यधिक दुःखों को मैंने भोगा ॥१३॥ उसके बाद वे ही
विष्णु भगवान् उस सरोवर के तट पर आकर मुझको प्रबोधित किये । उसके बाद मैं उसी सरोवर में पुरुष का शरीर प्राप्त करके नारद बन गया । हे ब्रह्माजी
किस कारण से मेरा सारा ज्ञान-विज्ञान भूल गया था ? मैं अज्ञानी बन गया था । और मैं पूर्ण रूप से स्त्री हो गया था ॥१५॥ हे ब्रह्मन् ! मैं यह नहीं

एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् । ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम् ॥१६॥ अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञानं सर्वं शुभाशुभम् । कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे ॥१७॥ नारद उवाच– **विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् । मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत॥१८॥** ब्रह्मोवाच– **दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः । तापसै र्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः ॥१९॥ नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम् । विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शंभुरुमापतिः ॥२०॥ दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यंतकारिणी । कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता॥२१॥ शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले । न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः ॥२२॥** नारद उवाच– **पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः । आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च ॥२३॥ तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम् । कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरु सत्तम ॥२४॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम् ॥२५॥** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा नारदो राजन्गतो मां प्रतिबोध्य च । अहं तच्चितयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा ॥२६॥ स्थितः**

जानता था कि माया में इतना बल है । माया के बल से कोई पार नहीं पा सकता है वह माया ही मोह को उत्पन्न करने वाली है । ज्ञान को विनष्ट करने वाली है ॥१६॥ मैंने खूब अच्छी तरह से इस बात का अनुभव किया उसका अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का फल भी मैंने भोगा है । हे तात ! आपने माया को कैसे जीता है, उस उपाय को आप मुझे बतलाइये ॥१७॥ **नारदजी ने कहा–** हे व्यासजी ! ब्रह्माजी को जब मैंने उपर्युक्त सारी बातें बतलाया तो उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने मुस्कुराकर मुझसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा ॥१८॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** माया तो सभी देवताओं, मुनियों, महात्माओं, तपस्वियों, ज्ञानियों तथा वायु का आहार करके जीने वाले योगियों के लिए भी दुर्जय है । उस पर कोई भी विजय नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१९। माया महाबलवती है । उसको मैं विल्कुल नहीं जानता हूँ । उसको जानने में समर्थ न तो विष्णु है और न शंकरजी हैं ॥२०॥ महामाया स्वरूपतः दुर्ज्ञेय है । वही जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार को करने वाली है । वह काल, कर्म तथा स्वभाव आदि निमित्त कारणों से युक्त होती है ॥२१॥ अतएव हे मेधाविन् ! उस महाबलवती माया के विषय में आप शोक न करें । उसके विषय में कोई आश्चर्य करने की भी बात नहीं है । क्योंकि हम सभी संसारी माया के द्वारा मोहित हैं ॥२२॥ **नारदजी ने कहा–** अपने पिताजी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने के बाद हे व्यासजी ! उनसे आज्ञा लेकर तथा अहंकार रहित मैं श्रेष्ठ तीर्थों का दर्शन करते हुए यहाँ पर आया हूँ ॥२३॥ अतएव हे व्यासजी ! आप भी कौरवों का नाश हो जाने के कारण जो शोक उत्पन्न हो गया है उसका परित्याग करके सुखपूर्वक रहते हुए समय बितायें ॥२४॥ आप अपने हृदय में यह निश्चय कर लें कि किए हुए अच्छे तथा बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है आप भी सुखपूर्वक विचरण करें ॥२५॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् जनमेजय ! इस तरह से मुझको उपदेश देकर नारदजी को जहाँ जाना था वहाँ वे

सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे । कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मया ॥२७॥ पुराणमुत्तमं भूप सर्वसंशयनाशनम् । नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥२८॥ सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम । यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पांचालीं दारवीं करे ॥२९॥ कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम् । तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजंगमम् ॥३०॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सदेवासुरमानुषम् । पंचेन्द्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम्॥३१॥ गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः । कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः ॥३२॥ भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः । शांतो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु त्रिविधा यतः ॥३३॥ तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत् । न भवत्येव संसारे रहितस्तंतुभिः पटः ॥३४॥ तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः । देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप ॥३५॥ गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा । ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः ॥३६॥ कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथाऽप्रीतियुताः पुनः । तथा विषादयुक्तास्ते भवन्ति गुणयोगतः ॥३७॥ ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शांतः समाधिमान् । प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥३८॥ पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः । तदा भवेद्घोररूपः सर्वत्रापीतिसंयुतः ॥३९॥ यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः । तदा विषादसम्पन्नो मूढो भवति नान्यथा ॥४०॥ माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः

चले गये । मैं भी देवर्षि नारदजी के द्वारा कहे गये वाक्यों का मन में विचार करते हुए इस सारस्वत कल्प में सरस्वती नदी के तट पर स्थित हूँ । समय के ही बिताने के लिए मैंने इस श्रीमद्देवीभागवत नामक महापुराण की रचना की है ॥२७॥ हे राजन् ! यह उत्तम पुराण है । हर प्रकार के संशयों को विनष्ट करने वाला है । इसमें अनेक प्रकार के आख्यान हैं और यह वेद के प्रमाण से प्रमाणित है ॥२८॥ हे राजवर्य ! इसके विषय में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए । जैसे कोई इन्द्रजाल करने वाला व्यक्ति काठ की बनी हुई कठपुतली को अपने हाथ में लेकर उसे नचाता रहता है ॥२९॥ और वह उसकी इच्छा के अधीन रहकर नाचती रहती है । उसी प्रकार माया भी स्थावर जंगमात्मक जगत् को अपने मनोनुकूल नचाती रहती है ॥३०॥ ब्रह्माजी से लेकर स्तम्बपर्यन्त जितने भी पञ्चेन्द्रिय सम्पन्न, देवता, मनुष्य तथा असुर हैं, मन तथा चित्त का अनुगमन करते हैं ॥३१॥ हे राजन तीनों गुण ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं । यह भी निपम है कि कार्य हमेशा कारण द्रव्य से युक्त रहता है ॥३२॥ ये माया से उत्पन्न होने वाले गुण भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव वाले होते हैं । वे शान्त, घोर एवं मूढ स्वभाव वाले होते हैं ॥३३॥ उन गुणों से युक्त होने के कारण जीव भी शान्त, घोर तथा मूढ स्वभाव के होते हैं । संसार में जैसे तन्तुविहीन पट नहीं होता है ॥३४॥ उसी तरह से तीनों गुणों से रहित कोई शरीरधारी नहीं हो सकता है । हे राजन् ! वह चाहे देवता हो, या मनुष्य हो या पशुपक्षी हो ॥३५॥ जैसे कोई घड़ा मिट्टी से रहित नहीं होता है, उसी तरह कोई भी त्रिगुण से रहित नहीं होता है । ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये तीनों गुणाश्रित हैं ॥३६॥ कभी तो वे देवता प्रसन्न रहते हैं, कभी वे द्वेषपूर्ण हो जाते हैं और कभी विषादग्रस्त हो जाते हैं । उन देवताओं का ऐसा होने का कारण उनकी गुणयुक्तता ही है ॥३७॥ जब ब्रह्माजी में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है तब वे शान्त तथा समाधि से युक्त होते हैं । ज्ञान

सर्वथा भवेत् । यदा शांतः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानशमान्वितः ॥४१॥ स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् । घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः ॥४२॥ रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छांतिमान्भवेत् । रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥४३॥ तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् । एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥४४॥ सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि । मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगे युगे॥४५॥ अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम । मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४६॥ तस्माद्राजन्न कर्तव्यः संदेहोऽत्र कदाचन । देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥४७॥ सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽपि सर्वदा । तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा ॥४८॥ ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम् । मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानंरूपिणीम् ॥४९॥ ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि । तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम् ॥५०॥ स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः । भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥५१॥ भुवनेशी ततः

सम्पन्न होने के कारण वे उस समय सभी प्राणियों पर प्रसन्न रहते हैं ॥३८॥ जब वे सत्त्वगुण की प्रधानता से रहित तथा रजोगुण की अधिकता ये युक्त होते हैं, उस समय वे घोर रूप वाले हो जाते हैं और वे सभी प्राणियों पर क्रोध से युक्त होते हैं ॥३९॥ जब वे तमोगुणाविष्ट होते हैं, अर्थात् उनमें जब तमोगुण उद्रिक्त हो जाता है तब वे विषण्ण हो जाते हैं । उस समय वे मूढ होते हैं ॥४०॥ इसी तरह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु भी जब सत्त्वगुण से सम्पन्न रहते हैं, उस समय वे शान्त तथा सभी प्राणियों पर प्रसन्न होते हैं ॥४१॥ उनमें जब रजोगुण की मात्रा अधिक हो जाती है, उस समय वे अप्रसन्न हो जाते हैं । वे उस समय गुणों के अधीन होने के कारण भी प्राणियों के विषय में घोर हो जाते हैं ॥४२॥ इसी तरह रुद्र भी जब सत्त्वगुण सम्पन्न होते हैं उस समय वे प्रीति तथा शान्ति से युक्त रहते हैं । जब वे रजोगुण की अधिकता से युक्त होते हैं तो उस समय वे भी घोर हो जाते है तथा प्रीति से रहित हो जाते हैं ॥४३॥ जब उनमें तमोगुण की अधिकता होती है तो वे भी मूढ तथा विषाद युक्त हो जाते हैं । जिस तरह ये ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि गुणों के अधीन होते हैं ॥४४॥ उसी तरह प्रत्येक युग में सूर्यवंश तथा सोमवंश में उत्पन्न होने वाले मनुष्य मनु आदि (चौदह मनु बतलाये गये हैं) वे भी गुणों के अधीन रहते हैं ॥४५॥ हे राजन् ! इन सबों से भिन्न जो इस संसार में रहने वाले मनुष्य हैं, उनके विषय में क्या कहना है ? राजन् ! देवता मनुष्य तथा असुरों से युक्त सम्पूर्ण जगत् भी माया के ही अधीन है ॥४६॥ अतएव हे राजन् ! इस जगत् के विषय में कोई भी संदेह नहीं करना चाहिए । शरीरधारी जीव माया के अधीन रहने के कारण उसके वशवर्ती होकर ही चेष्टाओं को करता है ॥४७॥ वह माया भी ज्ञान स्वरूप परंतत्व में सर्वदा विद्यमान रहती है । वह उस परंतत्त्व परं ब्रह्म के अधीन रहकर उसी के द्वारा प्रेरित होती है और उसी के कारण वह सर्वदा जीवों में विद्यमान भी रहती है ॥४८॥ अतएव माया से विशिष्ट, ज्ञान स्वरूपिणी, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी माया की स्वामिनी परमेश्वरी भगवती ॥४९॥ का ही ध्यान तथा आराधना करनी चाहिए और उनको प्रणाम करना चाहिए । ऐसा करने से दयापूर्वक भगवती शरीरधारी जीव को माया के बन्धन से मुक्त कर देती हैं ॥५०॥ वह अपनी अनुभूति को

प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी । तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा ॥५२॥ मायया किं भवेत्तत्रसदसद्भूतया नृप । तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्दै देवतान्तरम् ॥५३॥ समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानंदरूपिणीम् । तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत् ॥५४॥ किंतु भानुप्रभाचंद्रविद्युद्वह्निप्रभादयः। तस्मान्मायेश्वरीमम्बां स्वप्रकाशां तु संविदम् ॥५५॥ आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये । इति सम्यङ्मयाऽऽख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥५६॥ यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत ॥५७॥ यत्रदेव्यास्तु महिमा विस्तरेणोपपादितः । एतद्रहस्यं श्रीमातुर्नदेयं यस्य कस्यचित् ॥५८॥ देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च । शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च ॥५९॥ इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम् । पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र ॥६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः । देवीभागवतस्यास्य षष्ठस्कन्धः समाप्तवान् ॥६॥

प्रदान करके अपनी माया को संवृत कर लेती हैं । यह सारा जगत् माया है, और जगदीश्वरी भुवन की स्वामिनी हैं ॥५१॥ इसीलिए त्रैलोक्यसुन्दरी देवी भुवनेश्वरी हैं। हे राजन् ! यदि उस भुवनेश्वरी के रूप में चित्त लगा रहता है ॥५२॥ तो फिर हे राजन् ! सत् असत् स्वरूपिणी माया उस व्यक्ति का क्या कर सकती है ? अतएव माया का निराश करने के लिए देवी को छोड़कर कोई भी दूसरा देवता समर्थ नहीं है ॥५३॥ केवल सच्चिदानन्द स्वरूपिणी देवी ही समर्थ हैं । क्योंकि अन्धकार समूह को समाप्त करने में अन्धकार नहीं समर्थ हो सकता है ॥५४॥ अन्धकार को दूर करने में तो सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् अथवा अग्नि ही समर्थ हो सकती है । अतएव माया के गुण की निवृत्ति के लिए स्वप्रकाश स्वरूपा, ज्ञान स्वरूपा मायेश्वरी अम्बा की ही अत्यन्त प्रेम पूर्वक आराधना करनी चाहिए । इस तरह से मैंने आपको वृत्रासुर के वध इत्यादि की कथा को अच्छी तरह से सुनाया ॥५५-५६॥ क्योंकि हे राजन् ! आपने उसीके विषय में पूछा था । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? हे राजन् ! मैंने इस तरह से आपको पुराण का पूर्वार्द्ध सुना दिया ॥५७॥ इस पूर्वार्द्ध में देवी की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । श्रीमाता के विषय में इस रहस्य को सबको नहीं बतलाना चाहिए ॥५८॥ इसे उसी को बतलाना चाहिए जो भक्त हो, शान्त प्रकृति का हो तथा देवी की भक्ति में सदा रत रहने वाला हो। उसे अपना शिष्य होना चाहिए, या ज्येष्ठपुत्र होना चाहिए तथा गुरु की भक्ति से सम्पन्न होना चाहिए ॥५९॥ सम्पूर्ण कथाओं के सारस्वरूप, सम्पूर्ण वेद के समान प्रामाणिक इस पुराण को जो व्यक्ति अत्यन्त भक्ति के साथ पढ़ता है, या सुनता है वह इस लोक में धनवान तथा ज्ञानवान हो जाता है ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

महर्षि व्यास प्रणीत एक हजार आठ सौ अठासी श्लोकों के द्वारा इस देवीभागवत महापुराण का छठा स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

सप्तमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्याय:

सूत उवाच– **श्रुत्वैतां तापसाद्दिव्यां कथां राजा मुदान्वितः । व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः ॥१॥** जनमेजय उवाच– **स्वामिन्सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम् । तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥२॥ कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम् । चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः ॥३॥ ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम् । देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक् ॥४॥ इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः । तमुवाच मुनिश्रेष्ठं प्रसन्नवदनो मुनिः ॥५॥** व्यास उवाच– **निशामय महाराज विस्तराद्वदतो मम। सोमसूर्यान्वयानां च तथाऽन्येषां समुद्भवम् ॥६॥ विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माऽभूच्चतुराननः । तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम् ॥७॥ तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः । नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः ॥८॥ विचिंत्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः । न विस्तारं जगामाशु रचिताऽपि महात्मना ॥९॥ (ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः)। मरीचिरंगिराऽत्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः । पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः ॥१०॥ रुद्रो रोषात्समुन्नोऽप्युत्संगान्नारदोऽभवत् । दक्षोंऽगुष्ठात्तथाऽन्येपि मानसाः सनकादयः ॥११॥ वामांगुष्ठाद्दक्षपत्नी जाता**

जनमेजय के सृष्टिविषयक प्रश्न

सूतजी ने शौनकादि महर्षियों से कहा– हे तपस्वियों ! इस दिव्यकथा को सुनकर धार्मिक राजा जनमेजय ने प्रसन्न होकर व्यासजी से पुनः पूछा ॥१॥ **जनमेजय ने कहा–** हे स्वामिन् ! सूर्य के वंश में जन्म लेनेवाले तथा सोम के वंश में जन्म लेनेवाले राजाओं का मैं विस्तारपूर्वक वर्णन सुनना चाहता हूँ॥२॥ हे अनघ ! हे सर्वज्ञ ! इन दोनों वंशों के राजाओं के चरित को विस्तार से वर्णन से संबद्ध सर्वपापविनाशिनी कथा को आप मुझे सुनाइये ॥३॥ मैनें सुना है कि ये सभी राजा पराशक्ति के भक्त थे । देवी के भक्तों के चरित को सुनने से किसका मन उब सकता है ?॥४॥ इस तरह से राजर्षि जनमेजय के पूछने पर माता सत्यवती के पुत्र तथा मुनियों में श्रेष्ठ व्यासजी ने प्रसन्नतापूर्वक राजा से कहा ॥५॥ **व्यासजी ने कहा–** हे महाराज ! मैं सोमवंशीय तथा सूर्यवंशीयों एवं अन्य राजाओं के चरित का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ उसे आप सुनें ॥६॥ भगवान 'विष्णु के नाभिकमल से चतुरानन ब्रह्माजी प्रकट हुए । उन्होने तपस्या करके दुर्गा देवी की आराधना की ॥७॥ देवी से वरदान प्राप्त करके ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करने के लिए तैयार हुए । किन्तु लोकपितामह ब्रह्माजी मनुष्यों की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सके ॥८॥ चार मुखों वाले ब्रह्माजी सृष्टि करने के लिए मन में बहुत अधिक विचार करके भी अपने द्वारा की गयी मनुष्यों की सृष्टि बढ़ा नही सके ॥९॥ उन्होनें मन से सात मानस पुत्रों की सृष्टि की जो प्रजापति हुए । मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, क्रतु तथा

सर्वांगसुंदरी । वीरिणी नाम विख्याता पुराणेषु महीपते ॥१२॥ असिक्नीति च नाम्ना सा यस्यां जातोऽथ नारदः । देवर्षिप्रवरः कामं ब्रह्मणो मानसः सुतः ॥१३॥ जनमेजय उवाच– **अत्र मे संशयो ब्रह्मन् यदुक्तं भवता वचः । वीरिण्यां नारदो जातो दक्षादिति महातपाः ॥१४॥ कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः । जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः ॥१५॥ विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च । दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम् ॥१६॥ पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मनः । नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने ॥१७॥** व्यास उवाच– **ब्रह्मणाऽसौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः । प्रजाःसृजेति सुभृशं वृद्धिहेतोः स्वयंभुवा ॥१८॥ ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान् । दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान् ॥१९॥ दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्विवर्धयिषून्प्रजाः उवाच प्रहसन् वाचं देवर्षिः कालनोदितः॥२०॥ पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्रष्टुकामाः प्रजाः कथम् । लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः ॥२१॥ बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम् । समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं समुद्यमः। कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः ॥२२॥**

पुलह ये उनके मानस पुत्रों के नाम विख्यात हुए ॥१०॥ ब्रह्माजी के रोष से रुद्र की उत्पत्ति हुई, उनकी गोद से नारदजी की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजी के अंगुष्ठ से दक्ष की उत्पत्ति हुई और सनकादिक महर्षियों की उनके मन से उत्पत्ति हुई ॥११॥ ब्रह्माजी के दाहिने हाथ के अंगूठे से सर्वाङ्गसुन्दरी दक्ष की पत्नी की उत्पत्ति हुई। पुराणों में वह वीरिणी के नाम से प्रख्यात हुई ॥१२॥ दक्ष की पत्नी का ही नाम असिक्नी है । उनके ही उदर से नारदजी की उत्पत्ति हुई। नारदजी ही देवर्षियों में श्रेष्ठ तथा ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं ॥१३॥ **जनमेजय ने कहा–** हे भगवन् ! मुझको एक संशय है कि आपने यह जो कहा है कि वीरिणी के गर्भ से महातपस्वी नारद दक्षपुत्र के रुप में उत्पन्न हुए ॥१४॥ ब्रह्माजी के मानस पुत्र धर्मज्ञ तथा तापसोत्तम, नारदजी दक्ष की पत्नी वीरिणी में कैसे उत्पन्न हुए ? इस बात को आप हमें बतलाइये ॥१५॥ आपने यह विचित्र बात बतलायी है कि नारदजी का जन्म दक्ष की पत्नी वीरिणी के गर्भ से हुआ । उसे आप विस्तार से बतलाइये ॥१६॥ उन्होनें किसके शाप के कारण अपना पहले के शरीर का त्याग कैसे किया ? नारदजी तो बहुज्ञ हैं, फिर उन्होनें जन्म क्यों लिया ॥१७॥ **व्यासजी ने कहा–** पहले ब्रह्मजी ने दक्ष को आदेश दिया था कि तुम सृष्टि करो जिससे कि सृष्टि की खूब समृद्धि हो सके।॥१८॥ ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके दक्षप्रजापति ने अपनी पत्नी वीरिणी में अपने पाँच हजार अत्यंत बलवान् पुत्रों को उत्पन्न किया।॥१९॥ दक्षप्रजापति के उन समस्त वर्धिष्णु पुत्रों को काल से प्रेरित होकर देवर्षि नारदजी ने जोर से हँसते हुए कहा ॥२०॥ तुमलोगों ने जब यह पता नहीं लगाया है कि पृथिवी का प्रमाण क्या है फिर भी सृष्टि करने में तत्पर हो गये हो ऐसा करने से तो तुमलोगो का लोक में अत्यंत उपहास होगा । इसमें तुमलोगों को सफलता नही मिल सकती है ॥२१॥ पहले पृथिवी के प्रमाण को (लम्बाई-चौड़ाई इत्यादि) को जानकर के जो व्यक्ति सृष्टि-कार्य करने का प्रयास करता है, उसको ही अपने कार्य में सफलता मिलती है; अन्यथा नहीं मिलती है ॥२२॥ निश्चित रुप से तुमलोग मूर्ख हो कि भूतल को जाने बिना प्रजा की सृष्टि करने के

सिद्धिर्भविष्यति ॥२३॥ व्यास उवाच– **नारदेनैवमुक्तास्तेहर्यश्वा दैवयोगतः । अन्योन्यमूचुःसहसा सम्यगाह मुनिः किल ॥२४॥ ज्ञात्वा प्रमाणमुर्व्यास्तु सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः । इति संचिन्त्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः ॥२५॥ तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च । प्राच्यां केचिद्गताः कामं दक्षिणस्यां तथाऽपरे ॥२६॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समंततः । दक्षः पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम् ॥२७॥ अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः । तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः ॥२८॥ नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः । बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल ॥२९॥ प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना । श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः ॥३०॥ जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रांताश्चलितास्तथा । तान् सुतान् प्रस्थितान् दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः ॥३१॥ शशाप नारदं रोषात् पुत्रशोकसमुद्भवात् ।** दक्ष उवाच– **नाशिता मे सुता यस्मात् तस्मान्नाशमवाप्नुहि ॥३२॥ पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च । पुत्रो मे भव कामंत्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः ॥३३॥ इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः । षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम् ॥३४॥ शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित् । तासां**

लिए तैयार हो गये, तुमलोगों को सिद्धि कैसे मिल सकती है ?॥२३॥ **व्यासजी ने कहा–** नारदजी की इस तरह की वाणी को सुनकर दक्षप्रजापति के पुत्र हर्यश्वों ने आपस में विचार किया कि नारदजी ठीक कहते हैं। पहले हमलोगों को पृथिवी के प्रमाण का पता लगा लेना चाहिए, उसके बाद सृष्टि का कार्य करना चाहिए। इस तरह से सोचकर वे पृथिवी का पता लगाने के लिए चल पड़े ॥२४-२५॥ नारदजी के कथनानुसार पृथिवी का पता लगाने के लिए कुछ दक्षकुमार पूर्व दिशा में, कुछ दक्षिण दिशा में, कुछ पश्चिम दिशा में और कुछ उत्तर दिशा में गये । दक्ष ने जब जाना कि उनके पुत्र पृथ्वी का पता लगाने के लिए गये हैं तो उनको बड़ा कष्ट हुआ ॥२७॥ इसके बाद प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए निश्चित करके दक्ष ने दूसरे पुत्रों को उत्पन्न किया । वे भी दक्षप्रजापति के पुत्र प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए तैयार हो गये ॥२८॥ उन सबों को सृष्टि करने के लिए तैयार देखकर नारदजी ने उसी बात को कहा जो उन्होंने पहले कहा था । तुम लोग मूर्ख हो कि पृथिवी के प्रमाण को जाने बिना ही प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए तैयार हो । उन सबों ने उनकी की बात सुनकर उसे सत्य माना और वे उस वाक्य से मोहित होकर ॥२९-३० ॥ जिस तरह से उन सबों के पहले भाई चले गये थे उसी तरह से वे भी पृथिवी का पता लगाने के लिए चले गये । अपने उन पुत्रों को गये हुए देखकर दक्ष क्रुद्ध हो गये ॥३१॥ **दक्ष ने कहा–** जिस तरह से तुमने मेरे पुत्रों का नाश किया है, उसी तरह से तुम्हारा भी नाश हो जाय ॥३२॥ हे मूर्ख ! इस पापकर्म को करने के कारण तुम्हें गर्भ में निवास करना होगा । तुमने मेरे पुत्रों को नष्ट किया है अतएव तुम्हें भी मेरा पुत्र बनना होगा ॥३३॥ इस तरह से दक्षप्रजापति के शाप से ग्रस्त होकर नारदजी वीरिणी के गर्भ में चले गये । इसके बाद दक्ष ने साठ कन्याओं को वीरिणी के गर्भ से उत्पन्न किया ऐसा हमने सुना है ॥३४॥ धर्मों के ज्ञाता दक्ष ने पुत्रों के शोक का परित्याग

त्रयोदश प्रादात्कश्यपाय महात्मने ॥३५॥ दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते । द्वे चैव भृगवे प्रदाच्चतस्रोऽरिष्टोमिने ॥३६॥ द्वे चैवांगिरसे कन्ये तथैवांगिरसे पुनः । तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा ॥३७॥ जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः । रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः । सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नतिमायिनः ॥३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सविस्तरम् । सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः ॥१॥** व्यास उवाच– **शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम् । यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात् ॥२॥ एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे । आजगामाश्रमे पुण्ये**

करके अपनी तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप महर्षि से कर दिया ॥३५॥ दस कन्याओं का विवाह धर्म से किया और सत्ताइस कन्याओं का विवाह चन्द्रमा से किया । उन्होनें अपनी दो कन्याओं का विवाह भृगु महर्षि से किया और चार कन्याओं का विवाह अरिष्टनेमी के साथ किया ॥३६॥ उन्होनें अपनी दो कन्याओं का विवाह अंगिरा महर्षि के साथ किया और बची दो कन्याओं को भी अंगिरा महर्षि को ही दे दिया । ये सभी देवता एवं दानव उन्हीं सबों के पुत्र तथा पौत्र हैं ॥३७॥ वे सभी बलवान तथा परस्पर में एक दूसरे के विरोधी हो गये । वे सब के सब राग एवं द्वेष से युक्त तथा परस्पर में एक दूसरे के विरोध करते रहते थे । वे सबके सब मोहयुक्त, वीर तथा अत्यंत मायावी हुए ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

राजा शर्याति की कथा

राजा जनमेजय ने कहा– हे महाभाग ! आप मुझे सूर्यवंश में उत्पन्न धर्मज्ञ राजाओ के वंश का वर्णन विस्तार पूर्वक सुनायें ॥१॥ **व्यास जी ने राजा जनमेजय से कहा–** हे भरतवंशीय राजन् जनमेजय ! मैं सूर्य के वंश का विस्तार से वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें । इस कथा को मैनें ऋषि श्री नारदजी से पहले सुना था ॥२॥ एक बार नारदजी भ्रमण करते हुए अपनी इच्छा से सरस्वती नदी के तटपर विद्यमान मेरे आश्रम में आये । उस समय मैं, अपने आश्रम

विरचन्स्वेच्छया मुनिः ॥३॥ प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा । ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वाऽर्हणमथादरात् ॥४॥ विधिवत्पूजयित्वा
तमुक्तवान्वचनं त्विदम् । पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै ॥५॥ कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम् । राजानो ये समाख्याताः
सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले ॥६॥ तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम् । श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन्सूर्यवंशस्य विस्तरम् ॥७॥ मामाख्याहि मुनिश्रेष्ठ
समासव्यासपूर्वकम् । इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित् ॥८॥ उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदाऽन्वयम् । नारद उवाच– शृणु
सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम् ॥९॥ पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम् । ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपंकजसम्भवः ॥१०॥ विष्णोरिति
पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः । सर्वज्ञः सर्वकर्ताऽसौ स्वयंभूः सर्वशक्तिमान् ॥११॥ तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा । सृष्टिकामः शिवां
ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् ॥१२॥ पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्शुभलक्षणान् । मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि ॥१३॥ तस्य
पुत्रोऽतिविख्यातःकश्यपः सर्वसम्मतः । त्रयोदशैव तस्यासन्भार्या दक्षसुताः किल ॥१४॥ देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः । पशवः
पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी ॥१५॥ देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु । तस्य पुत्रःस विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृप ॥१६॥ तस्य

में ही था । मैनें उनके चरणों पर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया । इसके बाद मैनें उन्हें आसन दिया और
उनका समादर पूर्वक पूजन किया ॥३-४॥ सविधि उनका पूजन करके मैनें उनसे कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके आगमन से मैं पवित्र हो गया हूँ ॥५॥ हे
सर्वज्ञ आप उन राजाओं के चरित्रविषयक कथा मुझे सुनायें जो राजा इस सातवें मनु के वंश में प्रख्यात हुए ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! मैं उन सूर्यवंशीय राजाओं
की उत्पत्ति और अत्यन्त अद्भुत चरित को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उन राजाओं के चरित को समास तथा व्यास दोनों शैलियों
को मिलाकर मुझे सुनायें । हे राजन् जनमेजय । इस तरह से मेरे द्वारा पूछे जाने पर परमार्थवेत्ता नारदजी जोर से हँसते हुए प्रसन्नता पूर्वक मुझ से कहने
लगे । **नारदजी ने कहा**– हे सत्यवतीनंदन ! राजाओं के सर्वश्रेष्ठ वंश का वर्णन सुनिये ॥९॥ यह पवित्र वर्णन कानों को सुख देने वाला तथा धर्मज्ञान
आदि से युक्त है। सर्वप्रथम भगवान विष्णु की नाभि से ब्रह्मजी की उत्पत्ति हुई ॥१०॥ इस अर्थ का प्रतिपादन पुराणों में किया गया है। ये ब्रह्माजी, सर्वज्ञ,
सम्पूर्ण जगत् के कर्ता और सर्वशक्तिमान हैं ॥११॥ सृष्टि करने की इच्छा से उन्होनें दश हजार वर्षो तक तप करके भगवती का ध्यान किया और उनसे
सर्वोत्तम शक्ति प्राप्त किया ॥१२॥ इसके बाद ब्रह्माजी ने शुभ लक्षणों वाले अपने मानस पुत्रों को उत्पन्न किया । उन मानस पुत्रों में सर्वप्रथम मरीचि उत्पन्न
हुए ॥१३॥ मरीचि के विख्यात पुत्र कश्यप महर्षि हुए । दक्ष की तेरह पुत्रियाँ उनकी पत्नियां हुई ॥१४॥ कश्यप महर्षि से ही सभी देवता, दैत्य, यक्ष,

पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशविवर्धनः । नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः ॥१७॥ तेषां नामानि राजेन्द्र शृणुष्वैकमनाः पुनः । इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥१८॥ नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः । करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥१९॥ इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत । तस्यपुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान् ॥२०॥ नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय । शूराणां मनुपुत्राणां मनोरंतरजन्मनाम् ॥२१॥ नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदम्बरीषः प्रतापवान् । धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजापालनतत्परः ॥२२॥ धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत। संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा ॥२३॥ शर्यतिस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः । सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्य संयुता ।।२४।। च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाऽप्यन्धाय सुन्दरी । मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह ।।२५।। विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम् । जनमेजय उवाच– **संदेहोऽयं महान्ब्रह्मन्कथायां कथितस्त्वया ॥२६॥ यद्राज्ञा मुनयेऽन्धाय दत्ता पुत्री सुलोचना । कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता॥२७॥ पुत्री यदा भवेद्राजा तदांधाय प्रयच्छति । ज्ञात्वाऽन्धं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः ॥२८॥ कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा ।** सूत उवाच–

पन्नग, पशु और पक्षी उत्पन्न हुए। इसीलिए इस सृष्टि को काश्यपी सृष्टि कहा जाता है ॥१५॥ देवता में सूर्य प्रख्यात हुए। उनका ही विवस्वान् नाम है। हे राजन् ! उन्हीं के पुत्र का नाम वैवस्वत मनु है ॥१६॥ वैवस्वत मनु के पुत्र का नाम इक्ष्वाकु हुआ । ये सूर्य वंश को बढ़ाने वाले हुए । मनु के नव पुत्र हुए । उन सबों के पूर्वज इक्ष्वाकु ही थे ॥१७॥ उन नवों मनु पुत्रों के नाम इसप्रकार हैं । इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशुनृग और सांतवा दिष्ट करुष एवं पृषध्र । ये नवो मनु के पुत्र हैं ॥१८-१९॥ मनु के ज्येष्ठ पुत्र कां नाम इक्ष्वाकु हुआ । इक्ष्वाकु के सौपुत्र हुए और उन सबों में बड़े विकुक्षि थे ॥२०॥ मनु के नवों पुत्र के वंश का विस्तार मैं संक्षेप में बता रहा हूँ । ये सभी मनु के पुत्र शूरवीर थे । मनु के बाद सबों का जन्म हुआ था ॥२१॥ नाभाग के प्रतापी पुत्र अंबरिष हुए । वे सत्य पालन करने वाले, धार्मिक और प्रजा के पालन में सदा तत्पर रहते थे॥२२॥ धृष्ट के पुत्र का नाम धार्ष्ट हुआ । ये यद्यपि क्षत्रिय थे किन्तु संग्राम नहीं करना चाहते थे अतएव ब्राह्मण हो गये और सदा ब्राह्मकर्म में ही संलग्न रहते थे ॥२३॥ शर्याति के पुत्र का नाम आनर्त हुआ । उनकी पुत्री का नाम सुकन्या था । यह रूप एवं लावण्य से सम्पन्न थी ॥२४॥ इसके सुन्दरी होने पर भी इसका विवाह अन्धे च्यवन महर्षि से हुआ । सुकन्या के शीलगुण के कारण च्यवन महर्षि सुन्दर नेत्र वाले हो गये ॥२५॥ च्यवन महर्षि को सूर्य के जुड़वे पुत्र अश्विनीकुमारों ने सुन्दर नेत्रों वाला बनाया ऐसा हमने सुना है ॥ **जनमेजय ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! आपने अपनी कथा में बतलायी है कि राजा ने अन्धे च्यवन के साथ अपनी पुत्री सुकन्या का विवाह कर दिया । ऐसा क्यों उन्होंने किया ? यही मुझ को संदेह है । यदि पुत्री कुरूप और गुणहीन होती है तो ऐसी पुत्री का विवाह राजा किसी अन्धे के साथ कर देता है ॥२६-२७॥ किन्तु सुकन्या तो रूपवती, सुन्दरी और शीलगुण से सम्पन्न थी । फिर

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै ॥२९॥ द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव । व्यास उवाच— **वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः॥३०॥ तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः । राजपुत्र्यःसरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः ॥३१॥ पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुमंमताः । एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुन्दरी ॥३२॥ पितुः प्रिया च मातृणां सर्वासां चारुहासिनी । नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम् ॥३३॥ बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम् । हंसकारंडवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥३४॥ दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपक्षिगणावृतम्। पंचधा कमलोपेतं चंचरीक-सुसेवितम् ॥३५॥ पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः । सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमंडितम् ॥३६॥ वटाश्वत्थकदंबैश्च कदलीखंडराजितम् । जंबीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥३७॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः कांचनद्रुमैः । यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः ॥३८॥ जंब्वाम्रतितिणीभिश्च करंजकुटजावृतम् । पलाशनिंबखदिरबिल्वामलकमंडितम् ॥३९॥ बभूव कोकिलारावः केकास्वनविराजितम् । तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते ॥४०॥ भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः । ज्ञात्वाऽसौ विजनं स्थानं**

भी च्यवन महर्षि को अन्धा जानकर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह उनके साथ कैसे कर दिया ॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! आप कृपा करके इसका कारण बतलाइये। **सूतजी ने शौनकादिक महर्षियों से कहा—** इस तरह से परीक्षित के पुत्र जनमेजय के प्रश्न को सुनकर महर्षि व्यास अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा । **व्यासजी ने कहा—** वैवस्वत मनु के पुत्र राजा शर्याति थे ॥ २९-३०॥ उन राजा की चार हजार पत्नियां थी । वे सब के सब राजाओं की पुत्रियां, सुन्दर रूप वाली तथा नारी के समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न थी ॥३१॥ वे सभी पत्नियाँ राजा शर्याति को प्रिय थीं तथा आपस में प्रेमपूर्वक रहती थीं। उन सबों की एक पुत्री का नाम सुकन्या था । वह सुन्दर रूपवाली थी ॥३२॥ वह अपनी सभी माताओं और अपने पिता को प्रिय थी । राजा की राजधानी के सन्निकट ही मानसरोवर के समान सरोवर था ॥३३॥ उसमें सीढ़ियां बनी थीं और वह सुन्दर एवं स्वच्छ जल से परिपूर्ण था । वह हंस, कारण्डव, तथा चक्रवाक नामक पक्षियों से सुशोभित था ॥३४॥ उसमें दात्यूह (कौए) तथा सारस आदि पक्षी भरे रहते थे । उसमें पांच प्रकार के कमल पुष्प लगे थे और उन सबों पर भौरें मँडराते रहते थे ॥३५॥ सरोवर के पास वृक्ष भरे पड़े थे । इस तरह वह सरोवर वृक्षों से घिरा हुआ था । वह सरोवर ताल, तमाल, सरल, पुन्नाग तथा अशोक वृक्षों से समलंकृत था ॥३६॥ बट, पिपल, कदम्ब, तथा केला के वृक्षों से सुशोभित था । जंबीर, बीजपूर, खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल, केतकी, कचनार, जूही और मालती इत्यादि वृक्षों तथा सुन्दर लताओं से वह सरोवर सुशोभित था ॥३७-३८॥ जामुन, आम, इमली, करंज, कुटज, पलाश, निम्ब, खैर विल्ब, तथा आंवला इत्यादि के वृक्ष उस सरोवर की शोभा बढ़ा रहे थे ॥३९॥ वहाँ कोयल की ध्वनि सुनायी पड़ती थी और मयूर पक्षी वहाँ बोलते रहते थे । उस सरोवर के सन्निकट में वृक्ष समूह से घिरे हुए ॥४०॥ भृगु महर्षि के वंश में उत्पन्न महर्षि च्यवन रहते थे।

तपस्तेपे समाहितः ॥४१॥ कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः । इन्द्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः ॥४२॥ जलपानादिरहितो
ध्यायन्नास्ते पराम्बिकाम् । सवल्मीकोऽभवद्राजँल्लताभिः परिवेष्टितः ॥४३॥ कालेन महता राजन्समाकीर्णः पिपीलिकैः । तथा स संवृतो
धीमान्मृत्पिंड इव सर्वतः ॥४४॥ कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः । आजगाम सरो राजन्विहर्तुमिदमुत्तमम् ॥४५॥ शर्यातिः सुंदरीवृंदसंयुतः
सलिलेऽमले । क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे ॥४६॥ सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता । सुमनांसि विचिन्नवंती चञ्चला
चञ्चलोपमा ॥४७॥ सर्वाभरणसंयुक्ता रणच्चरणनूपुरा । चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समीपगा ॥४८॥ क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य
समीपतः । ददर्श चास्य रंध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी ॥४९॥ किमेतदिति संचिन्त्य समुद्धर्तुं मनो दधे । गृहीत्वा कंटकं तीक्ष्णं त्वरमाणा
कृशोदरी॥५०॥ सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा । विचरंती सुकेशांता मन्मथस्येव कामिनी ॥५१॥ तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकंठस्तपोनिधिः।
तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः ॥५२॥ दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने । मा भिंदस्वाद्य वल्मीकं कंटकेन कृशोदरि ॥५३॥
तेनेदं प्रोच्यमानाऽपि सा चास्य न शृणोति वै । किमु खल्विदमित्युक्ता निर्बिभेदास्य लोचने ॥५४॥ दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका ।

वे शान्त स्वभाव के तपस्वी थे । इस स्थान को निर्जन जानकर वे यहाँ पर समाधिस्थ रहकर तपस्या करते थे ॥४१॥ सुदृढ़ आसन लगाकर, मौन धारण
करके तथा अपने श्वास को रोककर, अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा आहार का त्याग करके, तपोनिधि महर्षि च्यवनसंयम पूर्वक रहा करते थे ॥४२॥
वे जलपान इत्यादि कुछ नहीं करते थे और निरन्तर पराम्बा का ध्यान करते रहते थे । उनके शरीर में दीमक लग गये थे । वे लताओं से घिरे हुए थे॥४३॥
बहुत अधिक समय बीत जाने के कारण उनके शरीर में चीटियाँ लग गयी थीं । इस तरह से ढंके हुए वे महर्षि मिट्टी के पिण्ड के समान लगते थे ॥४४॥
एक बार राजा अपनी पत्नियों के साथ उस स्थान को उत्तम समझकर वहाँ पर विहरण करने के लिए आये ॥४५॥ राजा शर्याति सुन्दरियों के साथ कमलों
से परिपूर्ण सरोवर के स्वच्छ जल में जलक्रीडा करने लगे ॥४६॥ सुकन्या भी अपनी सखियों के साथ उस वनं में विचरण करने लगी । अत्यंत चंचल
बनी हुई वह पुष्प चुन रही थी । वह समस्त अलंकार से अलंकृत थी तथा उसके पैरों के नूपुर बज रहे थे । वह च्यवन ऋषि के समीप में ही खेल रही
थी ॥४८॥ बल्मीक के समीप में ही वह बैठकर वह खेल रही थी । उसने उस बल्मीक के छिन्द्रों में जुगनू के समान चमकते हुए दो प्रकाशों को देखा॥४९॥
यह क्या है, यह सोचकर उसने उसे निकालना चाहा । उस सुन्दरी ने शीघ्रतापूर्वक तीक्ष्ण कांटा लेकर निकालाना चाहा ॥५०॥ उन्होनें उस सुन्दरी
सुकन्या को देखा कि यह बाला प्रयास कर रही है। यह देखने में कामदेव की पत्नी रति के समान सुन्दर है ॥५१॥ उस सुन्दरी को देखकर महर्षि
च्यवन ने गला के सूखा हुआ होने के कारण धीरे से कहा यह क्या कर रही हो ?॥५२॥ हे सुन्दरि ! तुम यहाँ से दूर चली जाओ मैं तपस्वी हूँ ।
हे कृशोदरि ! कांटो से छेद मत करो ॥५३॥ इस तरह से महर्षि के द्वारा कहे जाने पर भी वह सुकन्या उनकी आवाज को नहीं सुन पायी । यह क्या

क्रीडंती शंकमाना सा किं कृतं तु मयेति च ॥५५॥ चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान् । वेदनायर्दितः कामं परितापं जगाम ह ॥५६॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात् । विशेषेणतु भूपस्य सामात्यस्य समंततः ॥५७॥ गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा । ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत् ॥५८॥ सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम् । चिंतयामास भूपालः कारणं दुःखसंभवे ॥५९॥ विचिंत्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा । गृहमागत्य चिंतार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥६०॥ सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः । च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम् ॥६१॥ केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे । तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः ॥६२॥ तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः । केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः ॥६३॥ ज्ञातं वा यदि वाऽज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम् । कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह ॥६४॥ इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः । मनोवाक्कायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम् ॥६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

है, यह कहकर उसने उनकी दोनों आखों को कांटे से छेद दिया ॥५४॥ दैव प्रेरित राजकुमारी सुकन्या उनको छोड़ करके चली गयी । वह सोच रही थी कि मैनें यह क्या कर दिया ॥५५॥ आंखों के फूट जाने के कारण महर्षि अत्यंत क्रोध किए । उनको तीव्र वेदना हो रही थी । अतएव वे संतप्त हो रहे थे ॥५६॥ उसके फलस्वरुप राजा के सैनिकों के मलमूत्र का निरोध हो गया । विशेष रुप से राजा और उसके मंत्रियों के भी मलमूत्र का निरोध हो गया । हाथी, घोड़े, ऊँट, इत्यादि सभी प्राणियों की यही दशा हो गयी। मलमूत्र के निरोध के कारण राजा शर्याति दुखी हो गये । सैनिकों ने भी राजा को मलमूत्र के निरोध की बात को बतलाया । इस बात को सुनकर राजा सोचने लगे कि इस दुःख का कारण क्या है ? ॥५७-५९॥ बहुत विचार करके राजा ने अपने सैनिकों तथा अपने लोगों से पूछा कि किसी ने कोई पाप कर्म किया है क्या ?॥६०॥ सरोवर के पश्चिम दिशा में महर्षि च्यवन कठोर तपस्या कर रहे हैं ॥६१॥ लगता है कि किसी ने अग्नि के समान कान्ति सम्पन्न ऋषि का कोई अपराध किया है, उसी के कारण सबों को यह पीड़ा हो रही है ॥६२॥ तपोवृद्ध तथा सबों में वृद्ध, भार्गव महर्षि च्यवन का किसी ने अपराध अवश्य किया है ॥६३॥ चाहे वह अपराध ज्ञात हो अथवा अज्ञात हो उसी का यह फल है। किन दुष्टों ने उन तपस्वी का अपराध किया है ?॥६४॥ इस तरह से राजा के द्वारा पूछे जाने पर दुखी सैनिकों ने कहा- हम लोगों ने वाणी, तथा शरीर किसी भी प्रकार का अपराध नहीं किया है।॥६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति पप्रच्छ तान्सर्वान्राजा चिंताकुलस्तथा । पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयाऽपि च ॥१॥ पीड्यमानं जनं वीक्ष्य पितरं दुःखितं तथा । विचिन्त्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत् ॥२॥ वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः । क्रीडंत्या सुद्धो दृष्टश्छिद्रद्वयसमन्वितः॥३॥ तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया । सूच्या विद्धे महाराज पुनः खद्योतशंकया ॥४॥ जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल । हाहेति च श्रुतः शब्दो मन्दो वल्मीकमध्यतः ॥५॥ तदाऽहं विस्मता राजन्किमेतदिति शंकया । न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमण्डले ॥६॥ राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु । मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात् ॥७॥ तत्रापश्यत्तपोवृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम् । स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं ततः ॥८॥ प्रणम्य दंडवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति । तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृतांजलिः ॥९॥ पुत्र्या मम महाभाग क्रीडंत्या दुष्कृतं कृतम् । अज्ञानाद्बालया ब्रह्मन्कृतं तत्क्षंतुमर्हसि ॥१०॥ अक्रोधना हि मुनयो भवंतीति मयाश्रुतम् । तस्मत्वमपि बालायाः क्षंतुमर्हसि सांप्रतम् ॥११॥** व्यास उवाच– **इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत् । विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम् ॥१२॥** व्यास उवाच–

महर्षि च्यवन तथा सुकन्या का विवाह वर्णन

व्यासजी ने कहा– इस तरह से चिन्ता से व्याकुल होकर राजा ने सबों से पूछा उन्होनें अपने सुहृदों से भी शान्तिपूर्वक तथा कठोरता पूर्वक पूछा ॥१॥ सुकन्या ने अपनी प्रजाओं, अपने पिता तथा स्वयं को भी कष्ट का अनुभव करते हुए देखकर अपने पिता से कहा ॥२॥ हे पिताजी ! वन में खेलते समय मैंने लताओं से घिरे हुए एक बड़े बल्मीक को देखा । उसमें छिद्र थे उन छिद्रों में जुगनू के समान मैने दो प्रकाशों को देखा । मैने समझ लिया कि यह कोई जुगनू नहीं है । मैंने उसे सूई से छेद दिया । हे पितः ! मैने देखा कि वह सूई जल से भीगी हुई है। उस बल्मीक के भीतर से मैंने हाय ! हाय!! की मन्द ध्वनि को सुना ॥५॥ हे राजन् ! मैं शंकित हो गयी कि यह क्या है ? मैने उस बल्मीक के भीतर की किस वस्तु को छेद दिया । यह मुझे ज्ञात नहीं है ॥६॥ सुकन्या के मृदुवचन को सुनकर राजा ने जान लिया कि निश्चित ही मुनि का अपराध हुआ है । उसके बाद राजा शीघ्र ही उस बल्मीक के पास गये ॥७॥ वहाँ उन्होनें देखा कि तपोवृद्ध महर्षि च्यवन अत्यंत दुखी हैं। उनके शरीर पर दीमक की मिट्टी चढ़ी हुई थी राजा ने मुनि के शरीर से उस मिट्टी को हटाया ॥८॥ राजा ने महर्षि च्यवन को साष्टांग प्रणाम किया । उन्होंने नम्रतापूर्वक महर्षि की स्तुति की और हाथ जोड़कर कहा ॥९॥ महाराज! खेलते-खेलते मेरी पुत्री ने अपराध किया है । उसने अज्ञानवशात् आपका अपराध किया है । आप उसे क्षमा कर दें ॥१०॥ मैनें सुना है कि मुनिजन

राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि । न मयाऽद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते ॥१३॥ नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः । तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते ॥१४॥ अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य को जनः । सुखं लभेत यदपि भवेत्त्राता शिवः स्वयम् ॥१५॥ किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः । अन्धस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव ॥१६॥ राजोवाच– सेवका बहवः सेवां करिष्यंति तवानिशम् । क्षमस्व मुनिशर्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः ॥१७॥ च्यवन उवाच– अन्धोऽहं निर्जनो राजँस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः । त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यंति मम प्रियम् ॥१८॥ क्षमापयसि चेन्मा त्वं कुरु मे वचनं नृप । देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम् ॥१९॥ तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते । करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति ॥२०॥ एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति । संतुष्टे मयि राजेन्द्र सैनिकानां न संशयः॥२१॥ विचिंत्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर । न चात्र दूषणं किंचित्तापसोऽहं यतव्रतः ॥२२॥ शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिन्तातुरोऽभवत्। न दास्येऽप्यथवा दास्ये किंचिन्नोवाच भारत ॥२३॥ कथमंधाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम् । देवकन्योपमां दत्वा सुखी स्यामात्मसंभवाम्॥२४॥

क्रोध रहित होते हैं । अतएव आप भी उस बालिका को क्षमा कर दें ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा–** महर्षि च्यवन ने राजा से कहा हे राजन् ! मैं कभी भी थोड़ा सा भी क्रोध नहीं करता हूँ । तुम्हारी पुत्री ने मुझे कष्ट अवश्य पहुँचाया । किन्तु मैनें उसको शाप नहीं दिया ॥१३॥ मुझ निरपराध के नेत्र में पीड़ा उत्पन्न हो गयी है मैं जानता हूँ कि उसी पाप के कारण तुम दुःखी हो ॥१४॥ देवी के भक्त का अपराध करके कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता है, चाहे उसके रक्षक साक्षात् शंकर ही क्यों न हों ॥१५॥ राजन् मैं क्या करुँ मैं बूढ़ा और नेत्रहीन हो गया हूँ । राजन् अन्धे की सेवा भी कोई क्यों करेगा॥१६॥ **राजा ने कहा–** महाराज ! बहुत से सेवक आपकी सेवा रात-दिन करेंगे । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप क्षमा कर दें । मुनियों का क्रोध तो अत्यंत अल्प होता है ॥१७॥ **च्यवन महर्षि ने कहा–** हे राजन् ! मैं अन्धा हूँ । अकेले में रहकर अपनी तपस्या में कैसे सफल हो सकता हूँ। तुम्हारे सेवक मेरे साथ प्रिय बातें कैसे कर सकते हैं ॥१८॥ यदि तुम अपने अपराध की क्षमा करा रहे हो तो मेरी बात मानो । मेरी सेवा करने के लिए तुम मुझे अपनी कमललोचनी पुत्री को दे दो ॥१९॥ राजन् ! मैं तुम्हारी इस पुत्री को प्राप्त करके सन्तुष्ट हो जाऊँगा । राजन् ! मैं तपस्या करुँगा और वह मेरी सेवा करेगी॥२०॥ ऐसा करने से मुझको भी सुख होगा और तुम्हारा भी कल्याण होगा । राजन् ! मेरे सन्तुष्ट हो जाने से तुम्हारे सैनिकों का भी कल्याण होगा ॥२१॥ हे राजन् ! तुम विचार करके अपनी कन्या का दान कर दो । तुम्हें ऐसा करने में कोई दोष नहीं होगा । मैं व्रतनिष्ठ तपस्वी हूँ ॥२२॥ मुनि की बातों को सुनकर राजा शर्याति चिन्तित हो गये । उन्होनें कुछ भी नहीं कहा कि मैं कन्या को दूँगा या नहीं दूँगा। राजा ने सोचा ॥२३॥ मैं वृद्ध, अंधे, तथा कुरूप मुनि को अपनी पुत्री को कैसे दे सकता हूँ । मेरी पुत्री देवकन्या के समान सुन्दर है उसे इन मुनि

को वाऽऽत्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम् । हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम् ॥२५॥ प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता। अंधं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति ॥२६॥ यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया । आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम् ॥२७॥ गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता । अहल्या वासवेनाशु वंचिता वरवर्णिनी ॥२८॥ शप्ता च पतिना पश्चायज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम् । तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम् ॥२९॥ इति संचिन्त्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ । सचिवाँश्च समादाय मंत्रं चक्रेऽतिदुःखितः ॥३०॥ भो मंत्रिणो ब्रुवंत्वद्य किं कर्तव्यं मयाऽधुना । पुत्री देयाऽथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा ॥३१॥ विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम् । मंत्रिण ऊचुः— **किं ब्रूमोऽस्मिन् महाराज संकटेऽति दुरासदे ।।३२।। दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयाऽतिसुन्दरी ।** व्यास उवाच— **तदा चिन्ताकुलं वीक्ष्य पितरं मंत्रिणस्तथा ॥३३॥ सुकन्या त्विङ्गितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह । पितः कस्माद्भवानद्य चिंताव्याकुलितेन्द्रियः ॥३४॥ मत्कृते दृःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै । अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वस्य भयार्दितम् ॥३५॥ करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः । इति राजा वचः श्रुत्वा**

को देकर मैं कैसे सुखी हो सकता हूँ ॥२४॥ ऐसा कौन सा मूर्ख और पापी होगा जो अपने सुख के लिए अपनी पुत्री के सुख को छिन लेगा । यदि उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान है तो वह ऐसा नहीं कर सकता है ॥२५॥ वह अंधे तथा वृद्ध च्यवन को पति के रुप में प्राप्त करके काम के बाणों से संतप्त होकर अपना समय कैसे बितायेगी ॥२६॥ युवावस्था में काम को जीत पाना कठिन होता है और सुन्दर स्त्री को तो और कठिन होता है । अपने सदृश पति को भी प्राप्त करके यह स्थिति होती है और वृद्ध तथा अन्धे पति को प्राप्त करने पर तो वह समय नही ही बिता सकती है ॥२७॥ रूप एवं युवावस्था से सम्पन्न सुन्दरी अहल्या को तपस्वी गौतम महर्षि को पति के रुप में प्राप्त होने के कारण इन्द्र ने उसके साथ धोखा किया ॥२८॥ जब गौतम ऋषि को उसके भ्रष्टाचार का पता चला तो गौतम ऋषि ने उसे शाप दे दिया । अतएव मुझे भले ही कष्ट हो किन्तु मैं सुकन्या को इन्हें नहीं दे सकता हूँ ॥२९॥ यह सोचकर शर्याति उदास होकर अपने घर लौटकर गये और दुःखी होकर मंत्रियों को बुलाकर उन्होनें विचार किया ॥३०॥ उन्होनें मंत्रियों से कहा कि आप लोग बतलाइये कि मुझे अब क्या करना चाहिए । मैं स्वयं कष्ट भोग लूँ अथवा महर्षि के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दूँ ॥३१॥ आप सब लोग मिलकर विचार करें कि मेरा कल्याण कैसे होगा ? **मंत्रियों ने कहा**— महाराज ! इस विषय में हमलोग क्या कह सकते हैं। हम लोगों पर तो बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी है ॥३२॥ कुरूप महर्षि को यह अत्यंत सुन्दरी सुकन्या कैसे दी जा सकती है ? **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा**— सुकन्या ने जब अपने पिता तथा मंत्रियों को चिन्तित देखा तो ॥३३॥ उसने ओर से हँसकर कहा— पिताजी आप इतना चिन्तित और दुखी क्यों है ?॥३४॥ आप मेरे ही विषय में सोचकर दुखी और चिन्तित हैं। मैं भयभीत मुनि के पास जाकर उनको आश्वस्त करके ॥३५॥ तथा उन्हें अपने को समर्पित करके उनको प्रसन्न कर

भाषितं यत्सुकन्यया ॥३६॥ तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम् । कथं पुत्रि त्वमंधस्य परिचर्यां वनेऽबला ॥३७॥ करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः । कथमन्धाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम् ॥३८॥ ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवांछया । पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयो ज्ञातिबलाय च ॥३९॥ धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन । क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः ॥४०॥ कथं देया मया पुत्री तस्मै चातिवराय च । उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे ॥४१॥ कथमंबुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव । मरणं वै वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च॥४२॥ न ते प्रदानमंधाय रोचते पिकभाषिणि । भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम् ॥४३॥ सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येऽन्धाय कर्हिचित् । राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे ॥४३॥ न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके । सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः ॥४५॥ प्रसन्नवदनाऽतीव स्नेहयुक्तमिदं वचः । सुकन्योवाच– न मे चिंता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना ॥४६॥ सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि । सेवयिष्यामि संतुष्टा पतिं परमपावनम् ॥४७॥ भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने । सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसंमतम् ॥४८॥ न भोगेच्छाऽस्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ । व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मंत्रिणो विस्मयं गताः ॥४९॥ राजा

लूँगी । सुकन्या की इस बात को राजा शर्याति ने सुना ॥३६॥ उन्होनें सभी मंत्रियों के समक्ष सुकन्या से कहा हे पुत्रि ! तुम अबला हो वन में अन्धे महर्षि की कैसे सेवा करोगी ॥३७॥ वे महर्षि अत्यन्त वृद्ध हैं और विशेष रूप से क्रोधी हैं । मैं उन अन्धे महर्षि को तुम्हें कैसे दे सकता हूँ । तुम काम की पत्नी रति के समान सुन्दरी हो ॥३८॥ उनका शरीर जरा से ग्रस्त है। पिता को चाहिए कि पुत्री को सुंख देने के लिए किसी भी व्यक्ति की अवस्था, परिवार, तथा बल जानकर उसे प्रदान करे ॥३९॥ उसे धन-धान्य से समृद्ध होना चाहिए निर्धन को अपनी पुत्री नहीं देनी चाहिए । हे विशालाक्षि ! कहाँ तो तुम्हारा रूप और कहाँ वृद्ध तथा वन में रहने वाले महर्षि ?॥४०॥ अतएव मैं उस अयोग्य महर्षि के साथ तुम्हारा विवाह कैसे कर सकता हूँ । हे सुन्दरि ! जो व्यक्ति केवल झोपड़ी में ही रहता है ॥४१॥ उस व्यक्ति के साथ हे कमलनयनि ! मैं तुम्हारा विवाह कैसे कर सकता हूँ उससे तो मैं और अपने सैनिकों की मृत्यु को ही अच्छा समझता हूँ ॥४२॥ हे कोकिलवयनि ! अन्धे महर्षि के साथ तुम्हारा विवाह करना मुझे अच्छा नहीं लगता है। जो भवितव्यता होती है, वह तो होकर ही रहती है, उसके लिए मैं अपना धैर्य नहीं त्यागता हूँ ॥४३॥ हे सुश्रोणि ! तुम स्थिर रहो मैं तुम्हारा विवाह अन्धे महर्षि के साथ कभी भी नहीं कर सकता हूँ मेरा राज्य तथा मेरा शरीर रहे या विनष्ट हो जाय ॥४४॥ हे बालिके ! मैं उस अन्धे को तुम्हें नहीं दे सकता हूँ । उसके बाद सुकन्या ने अपने पिता की बात को सुनकर कहा ॥४५॥ उस समय उसका मुख प्रसन्न था । उसने स्नेहपूर्वक कहा **सुकन्या ने कहा–** हे पितः ! आप मेरी चिन्ता न करें मेरा विवाह मुनि के साथ कर दीजिये ॥४६॥ मेरे ही चलते सब लोगों को सुख मिल जाय । मैं सन्तुष्ट होकर अपने परम पवित्र पति

च परमप्रीतो जगाम मुनिसन्निधौ । गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम् ॥५०॥ स्वामिन्गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो । इत्युक्त्वाऽस्मै ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृपः ॥५१॥ प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत् । पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह ॥५२॥ कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः । प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा ॥५३॥ राज्ञश्च परमाह्लादः संजातस्तत्क्षणादपि । दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा गमनाय गृहं प्रति ॥५३॥ मतिं चकार तन्वंगी तदोवाच नृपं सुता । सुकन्योवाच– **गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः ॥५५॥ वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम् । वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम् ॥५६॥ करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता । भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले ॥५७॥ परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम्। दत्त्वांधाय च वृद्धाय सुन्दरीं युवतीं तु माम् ॥५८॥ चिंता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा । अरुन्धती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथा भुवि ॥५९॥ तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा । अनसूया यथा साध्वी भार्याऽत्रेः प्रथिता भुवि ॥६०॥ तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव । सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परमधर्मवित् ॥६१॥ दत्त्वाऽजिनं रुरोदाशु**

की सेवा करुँगी ॥४७॥ संतों के धर्म का पालन करती हुई मैं निर्जन वन में अपने वृद्धपति की सेवा सद्धर्म का पालन करती हुई करुँगी ॥४८॥ हे तात! मेरा चित्त स्वस्थ है मेरी भोग करने की इच्छा नहीं है । **व्यासजी ने कहा–** सुकन्या की उस बात को सुनकर सभी मन्त्री आचंभित हो गये ॥४९॥ राजा भी अत्यंत प्रसन्न होकर महर्षि च्यवन के पास जाकर प्रणाम करके उन तपोधन से कहे ॥५०॥ हे विभो ! आप विधिपूर्वक मेरी कन्या को अपनी सेवा के लिए स्वीकार कीजिए । इस तरह से कहकर राजा ने वैवाहिक विधिपूर्वक अपनी पुत्री को समर्पित कर दिया ॥५१॥ च्यवन महर्षि भी उस कन्या को स्वीकार करके प्रसन्न हो गये । राजा मुनि को दहेज दे रहे थे किन्तु मुनि ने उसे नहीं स्वीकार किया ॥५२॥ उन्होनें अपनी सेवा के लिए केवल सुकन्या को ही स्वीकार किया । मुनि के प्रसन्न हो जाने पर सभी सैनिक सुखी हो गये ॥५३॥ राजा को भी उसी क्षण अत्यंत आनन्द की प्राप्ति हो गयी । जब कन्यादान करके राजा अपने घर जा रहे थे, उस समय सुन्दरी सुकन्या ने अपने पिता से कहा । **सुकन्या ने कहा–** हे पिताजी ! आप मेरे वस्त्रों तथा भूषणों को ले लीजिए ॥५४-५५॥ मुझे पहनने के लिए उत्तम कोटि के बल्कल तथा मृगचर्म दीजिए । मैं मुनिपत्नियों का वेष बनाकर तपस्वी की सेवा ॥५६॥ इस तरह से करुँगी कि मेरा शाश्वत यश फैल जायेगा । मेरा यश भूलोक, स्वर्गलोक, तथा पाताललोक तक व्याप्त हो जायेगा ॥५७॥ मैं रात दिन परलोक में प्राप्त होने वाले सुख के लिए आचरण करुंगी । मुझ सुन्दरी तथा युवती को अन्धे महर्षि को कन्यादान करके आप चिन्ता नहीं कीजियेगा, क्योंकि ऐसा होने से मेरे शीलनाश की सम्भावना नहीं है। जिस तरह अरुंधती महर्षि वसिष्ठ की धर्मपत्नी है ॥५८-५९॥ उसी तरह मैं आपकी कीर्ति को संसार में बढ़ाऊँगी । सुकन्या के वचन को सुनकर परम धर्म के ज्ञाता शर्याति ने ॥६१॥ सुकन्या को मृगचर्म प्रदान करके एवं उसे देखकर बहुत रुदन किया । उस

वीक्ष्य तां चारुहासिनीम् । त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम् ॥६ २॥ विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः । राज्ञ्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा बल्कलाजिनधारिणीम् ॥६ ३॥ रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन् । तामापृच्छ्य महीपालो मंत्रिभिः परिवारितः । ययौ स्वनगरं राजन्मुक्त्वा पुत्रीं शुचाऽर्पिताम् ॥६ ३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

व्यास उवाच– **गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा । बभूंव च तथाऽग्नीनां सेवने धर्मतत्परा ॥१॥ फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि विविधानि च । ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा ॥२॥ पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा । परिवेष्ट्य शुभायां तु वृस्यां स्थापितवत्यापि॥३॥ तिलान् यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमंडलुम् । तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम ॥४॥ तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि वृस्यां वा संस्तरे**

समय सुकन्या ने अपने भूषणों एवं वस्त्रों का परित्याग करके मुनि का वेष धारण कर लिया था ॥६२॥ उदासीन एवं दुःखी होकर राजा वहीं खड़े रहे । सुकन्या को मृगचर्म धारण किए हुए देखकर सभी रानियाँ बहुत रोयीं ॥६३॥ वे सब उस समय रोती हुई शोकार्त होकर कांप रही थीं । इसके बाद सुकन्या से आज्ञा लेकर शर्याति अपनी पुत्री को वही छोड़कर मन्त्रियों के साथ अपने नगर में चले गये ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

सुकन्या द्वारा महर्षि च्यवन की सेवा

व्यासजी ने कहा– राजा शर्याति के चले जाने पर धर्मनिष्ठ सुकन्या अपने पति महर्षि च्यवन तथा उनकी अग्नियों की सेवा में तत्पर रहने लगी ॥१॥ अपने पति की सेवा में संलग्न वह बाला अनेक प्रकार के स्वादिष्ट मूलों तथा फलों को लाकर महर्षि को प्रदान करती थी ॥२॥ वह महर्षि च्यवन को गर्म जल से स्नान कराकर उन्हें मृगचर्म में लपेटकर पवित्र आसन पर बैठाती थी ॥३॥ वह मुनि के समक्ष तिल, कुश, यव एवं कमण्डलु को रखकर उनसे कहती थी कि मुनिश्रेष्ठ आप नित्यकर्मों को कीजिए ॥४॥ जब मुनि का नित्यकर्म पूरा हो जाता था तो वह उनका हाथ पकड़कर उन्हें उठाती थी और

बाला भर्तारं संन्यवेशयत् ॥५॥ पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा । भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम् ॥६॥ भुक्तवंतं पतिं तृप्तं
दत्त्वाऽऽचमनमादरात् । पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता ॥७॥ गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने । गृहीत्वाज्ञां शरीरस्य चकार साधनं
ततः ॥८॥ फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ । प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयसे प्रभो ॥९॥ पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे ।
एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा ॥१०॥ सायं होमावासाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी । अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च ॥११॥ ततः
शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया । सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा ॥१२॥ सुप्ते सुखं प्रिये कांता पादसंवाहनं तदा । चकार पृच्छती
धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी ॥१३॥ पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा । निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणांतिके ॥१४॥ शुचौ प्रतिष्ठितं
वीक्ष्य तालवृंतेन भामिनी । कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषेवे स्वपतिं तदा ॥१५॥ हेमंते काष्ठसंभारे कृत्वाऽग्निज्वलनं पुरः । स्थापयित्वा
तथाऽपृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत् ॥१६॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम् । समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया ॥१७॥
स्थानाद्दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराऽभवत् । कृतशौचं पतिं ज्ञात्वा गत्वा जग्राह तं पुनः ॥१८॥ आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे ।

उनको मृगचर्म अथवा चटाई पर बैठाती थी ॥५॥ उसके पश्चात वह पके हुए फलों को लाकर तथा सिद्ध नीवारान्न को लाकर महर्षि को भोजन कराती थी॥६॥
भोजन करके तृप्त हुए मुनि को आचमन कराकर सुकन्या उन्हें आदरपूर्वक पान खिलाती थी । मुखवास को खा लेने के बाद महर्षि को शुभ आसन पर
बैठाकर सुकन्या उनसे आज्ञा लेकर अपनी शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती थी ॥८॥ स्वयं फलाहार करने के बाद वह महर्षि के सन्निकट में जाकर उनसे कहती
थी कि हे प्रभो ! आपकी मेरे लिए कौन सी आज्ञा है ?॥९॥ यदि आप कहें तो मैं आपका पैर दबा दूँ । इस तरह से सुकन्या अपने पति की सेवा में
नित्य ही लगी रहती थी ॥१०॥ सायंकाल जब होम संपन्न हो जाता था तो वह सुन्दरी कोमल तथा स्वादिष्ट फलों को लाकर ऋषि को समर्पित करती
थी॥११॥ ऋषि के भोजन करने के बाद जो फल बच जाते थे, उन सबों को वह मुनि से आज्ञा लेकर भोजन करती थी । वह कोमल शय्या बनाकर ऋषि
को प्रेमपूर्वक सुलाती थी ॥१२॥ पति के सो जाने पर सुन्दरी सुकन्या उनका पैर दबाती थी और मुनि से कुलस्त्रियों के धर्म को पूछकर जानकारी प्राप्त करती
थी ॥१३॥ भक्तिपूर्वक ऋषि के पैरों को दबाकर जब वह जानती थी कि ऋषि सो गये हैं तो वह उनके चरणों के समीप सो जाती थी ॥१४॥ गर्मी के
दिनों में अपने पति को बैठे हुए देखकर वह ताड़ के पंखों से शीतल हवा करती हुई अपने पति की सेवा करती थी ॥१५॥ हेमन्त ऋतु में वह लकड़ी
जलाकर उनके सामने रख देती थी और बार-बार पूछती रहती थी कि आप सुख से हैं न ॥१६॥ प्रातःकाल ब्राह्ममूहर्त में उठकर उन्हें जलपात्र तथा मिट्टी
देकर उन्हें शौच के लिए उठाकर आश्रम से कुछ दूर ले जाकर बैठा देती थी और स्वयं वहाँ से कुछ दूर हटकर उनकी प्रतिक्षा करती थी । जब वह जान

मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि ॥१९॥ दत्त्वाऽऽचमनपात्रं तु दंतधावनामाहरत् । समर्प्य दंतकाष्ठं च यथोक्तं नृपनंदिनी ॥२०॥ चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम् । स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता ॥२१ ॥ किमाज्ञापयसे ब्रह्मन्कृतं वै दंतधावनम् उष्णोदकं सुसंपन्नं कुरु स्नानं समंत्रकम् ॥२२॥ वर्तते होमकालोऽयं संध्या पूर्वा प्रवर्तते । विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु ॥२३॥ एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिंदिता । नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च ॥२४॥ अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा । आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना ॥२५॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ । च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ ॥२६॥ जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वश्रमं प्रति । गच्छंतीं चारुसर्वांगीं रविपुत्रावपश्यताम् ॥२७॥ तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चांतिकमादरात् । ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ ॥२८॥ क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि । आवां देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते ॥२९॥ पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता । एकाकिनी तडागेऽस्मिन्स्नानार्थं चारुलोचने ॥३०॥ द्वितीया श्रीरिवाभासि कांत्या कमललोचने । इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने ॥३१॥ कोमलौ चरणौ कांते स्थितौ भूमावनावृतौ । हृदये कुरुतः पीडां चलंतौ चललोचने ॥३२॥ विमानार्हासि तन्वंगि

जाती थी कि पतिदेव शौच कर लिए हैं तो वह उनके पास जाकर उन्हें पकड़ लेती थी ॥१७-१८॥ उन्हें शान्तिपूर्वक आश्रम में लाकर अच्छे आसन पर बैठाकर, उनके पैरों को मिट्टी तथा जल से विधिपूर्वक धोती थी ॥१९॥ उनको आचमन पात्र देकर दतौन लाती थी और वह उन्हें समर्पित करती थी ॥२०॥ उसके बाद पवित्र जल लाकर वह उसे गर्म करती थी और स्नान करने के लिए जल लाकर प्रेमपूर्वक कहती थी ॥२१॥ हे ब्रह्मन् ! आपने दन्तधावन कर लिया है ? आपकी क्या आज्ञा है ? गर्म जल तैयार है, आप मंत्रपूर्वक स्नान कर लें ॥२२॥ यह होम करने की बेला है प्रातः संध्या हो रही है। आप विधिपूर्वक होम करके देवता की पूजा करें ॥२३॥ इस तरह से सुकन्या तपस्वी च्यवन मुनि को पति के रूप में प्राप्त करके तपस्या तथा नियमपूर्वक प्रतिदिन उनकी प्रेमपूर्वक सेवा करती थी ॥२४॥ वह ऋषि की अग्नियों तथा अतिथियों की सदा सेवा करती रहती थी । इस तरह से उसने महर्षि च्यवन की आराधना की ॥२५॥ एक दिन सूर्य के पुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीडा करते हुए महर्षि च्यवन के आश्रम के सन्निकट में आ गये ॥२६॥ उन दोनों सूर्य पुत्रों ने जल में स्नान करके आश्रम में लौटती हुई सर्वांगसुन्दरी सुकन्या को देखा ॥२७॥ देवकन्या के समान कान्ति वाली सुकन्या को देखकर वे दोनों सुकन्या के सन्निकट में जाकर अत्यंत मोहित होकर कहा ॥२८॥ हे गजगामिनि ! सुन्दरि ! तुम क्षणभर रुको तुम से कुछ पूछने के लिए हम दोनों तुम्हारे पास आये हैं ॥२९॥ तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारे पति कौन हैं ? इस उद्यान के सरोवर में अकेले ही स्नान करने के लिए कैसे आयी हो ॥३०॥ हे कमलनयनि ! तुम तो दूसरी लक्ष्मी के समान लग रही हो । हमलोग तुमसे इन बातों को जानना चाहते हैं । तुम सत्य-सत्य बतलाओ ॥३१॥

कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः । अनावृताऽत्र विपिने किमर्थं गमनं तव ।।३ ३।। दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता । राजपुत्र्यप्सरा वाऽसि वद सत्यं वरानने ।।३ ३।। धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव । वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे ।।३ ५।। देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने। प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य संपावयति भूतलम् ।।३ ६।। सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यन्ति वै वने । ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना ।।३ ७।। स्तुत्याऽलं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने । पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छाऽस्ति सादरम् ।।३ ८।। व्यास उवाच– **तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्याऽतिसुंदरी । तावुवाच त्रपाक्रांता देवपुत्रौ नृपात्मजा ।।३ ९।। शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह । च्यवनस्य सतीं कान्तां पित्रा दत्तां यदृच्छया ।।४ ०।। पतिरंधोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः । तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतमानसा ।।४ १ ।। कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे । तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम् ।।४ २।। तदाकर्ण्य वचो दस्रावूचतुस्तां नराधिप । कथं त्वमसि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने ।।४ ३।। भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामनी यथा । न देवेष्वपितुल्या हि तव दृष्टाऽस्ति भामिनी ।।४४।। त्वं दिव्यांबरयोग्याऽसि**

हे कान्ते ! तुम्हारे पृथ्वी पर पड़ने वाले कोमल नंगे पैर देखकर हम लोगों के मन में कष्ट होता है ।।३२।। हे सुन्दरि ! तुम तो विमान पर चलने योग्य हो पैदल कैसे चल रही हो । इस वन में तुम्हारे नंगे पैर चलने के कौन से कारण हैं ।।३३।। तुम अपने घर से सैकड़ो दासियों के साथ क्यों नहीं चली हो । तुम कोई राजकुमारी हो अथवा कोई अप्सरा हो । सत्य-सत्य हम लोगों को बतलाओ ।।३४।। तुमको पैदा करने वाले तुम्हारे माता-पिता धन्य हैं। तुम्हारे पतिदेव के भाग्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है ।।३५।। हे सुन्दर नेत्रोंवाली ! यह भूमि तो आज देवभूमि से भी अधिक भाग्यवती है । पृथ्वी पर पड़ने वाले तुम्हारे पैर पृथ्वी को पवित्र बना रहे हैं ।।३६।। वन में रहने वाले वे मृग भी भाग्यशाली हैं जो तुम्हें इस वन में देखते हैं तथा वे पक्षी भी धन्य हैं और यहाँ की पृथ्वी अत्यंत पवित्र है ।।३७।। हे सुन्दरि ! तुम्हारी अधिक प्रशंसा करना व्यर्थ है। यह तुम सत्य बतलाओ कि तुम्हारे पिता और पति कौन हैं । हम लोग उनका दर्शन करना चाहते हैं ।।३८।। **व्यासजी ने कहा–** उन दोनों की बातों को सुनकर अत्यंत सुन्दरी राजकुमारी ने. लज्जित होकर उन दोनों देवपुत्रों से कहा ।।३९।। मैं महाराज शर्याति की पुत्री, और च्यवन महर्षि की पत्नी हूँ । मैं महर्षि की पतिव्रता पत्नी हूँ । मेरे पिता ने मुझे इनको प्रदान किया है ।।४०।। मेरे पति अंधे और वृद्ध हैं। वे तपस्वी हैं । मैं रात-दिन उनकी सेवा प्रेमपूर्वक करती हूँ ।।४१।। आप दोनों कौन हैं ? यहाँ कैसे आये है ? मेरे पति देव आश्रम में हैं । उस आश्रम में पधार कर आपलोग उसे पवित्र बना दें ।।४२।। सुकन्या की बातों को सुनकर ***अश्विनी कुमारों ने कहा–*** तुम्हारा विवाह तुम्हारे पिता ने इस तपस्वी से क्यों कर दिया ।।४३।। हे सुन्दरि ! तुम इस वनप्रदेश में बिजली की चमक के समान सुशोभित हो रही हो । तुम्हारे समान तो किसी देवता की भी पत्नी सुन्दर नहीं है ।।४४।। इन मृगचर्मों से तुम नहीं सुशोभित होती हो । तुम सभी अलंकारों से अलंकृत

शोभसे नाजिनैर्वृता । सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी ॥४५॥ अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं यदत्र रम्भोरु वने विषीदसि । विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम् ॥४६॥ वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपण्डिते । मनोभवेनाशु शराः सुसंधिताः पतंति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव ॥४७॥ त्वमंधभार्या नवयौवनान्विता कृताऽसि धात्रा ननु मंदबुद्धिना । न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने ॥४८॥ वृथैव ते जीवितमम्बुजेक्षणे पतिं च सम्प्राप्य मुनिं गतेक्षणम् । वने निवासं च तथाऽजिनांवरप्रधारणं योग्यतरं न मन्महे॥४९॥ अतोऽनवद्यांग्युभयोस्त्वमेकं वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने । किं यौवनं मानिनि संकरोषि वृथा मुनिं सुन्दरि सेवमाना ॥५०॥ किं सेवसेऽभाग्यविवर्जितं तं समुज्झितं पोषणरक्षणाभ्याम् । त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं भजानवद्यांग्युभयोस्त्वमेकम् ॥५१॥ त्वं नंदने चैत्ररथे वने च कुरुष्व कांते प्रथितं विहारम् । अंधेन वृद्धेन कथं हि कालं विनेष्यसे मानिनि मानहीनम् ॥५२॥ नृपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च जानासि संसारविहारभावम् । भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र कालं कथं वाहयसे वृथा च ॥५३॥ तस्माद्व्रजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे एकं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे ।

तथा काले घुंघराले केशों वाली हो और दिव्य वस्त्रों को धारण करने योग्य हो ॥४५॥ यह ब्रह्मा की बुद्धि कुण्ठित होने का ही परिणाम है। तुम इस वन में कष्ट भोग रही हो । हे विशाल नेत्रोंवाली, ब्रह्मा ने तुम्हें अन्धे और अत्यंत वृद्ध पति प्रदान किया है ॥४६॥ हे सुन्दर नृत्य करने वाली ! तुमने व्यर्थ ही उस वृद्ध मुनि को अपना पति बना लिया । इस युवावस्था में तुम उसके साथ सुशोभित नहीं हो रही हो । कामदेव के द्वारा अच्छी तरह से संधान करके चलाये गये बाण तुम्हारे ऐसे पति पर गिरकर व्यर्थ ही होंगें ॥४७॥ निश्चित रुप से ब्रह्मा अज्ञानी हैं, कि उन्होनें इस जवानी में तुम्हें इस अन्धे की पत्नी बना दिये है । हे सुन्दर नेत्रोवाली ! तुम अपने इस पति के योग्य नहीं हो । तुम किसी दूसरे को अपना पति बना लो ॥४८॥ इस अन्धे पति को प्राप्त करके हे कमलनयनि । तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जायेगा । तुम्हारा वन में निवास करना तथा मृगचर्म धारण करना हमलोगों को अच्छा नहीं लग रहा है ॥४९॥ हे सुलोचने ! तुम सावधानी से विचार करके हमदोनों में से किसी एक को अपना पति बना लो । हे सुन्दरि ! हे मानिनि ! इस मुनि की सेवा करके तुम अपनी जवानी को क्यों व्यर्थ बना रही हो ?॥५०॥ वह तुम्हारा पति तो तुम्हारी रक्षा तथा पोषण भी करने में समर्थ नहीं है । वह तो भाग्यहीन है । अतएव सभी सुखों से रहित मुनि का परित्याग करके तुम हम दोनों में से किसी एक को अपना पति बना लो ॥५१॥ उसके बाद चाहे तुम इन्द्र के नन्दन वन में विहार करो अथवा कुबेर के चैत्ररथ वन में विहार करो । हे मनिनि ! तुम इस अन्धे और वृद्ध के साथ अपने मानहीन जीवन को कैसे बिताओगी ॥५२॥ तुम राजा की पुत्री हो, शुभ लक्षणों से सम्पन्न हो । संसार में विहार करने की विधि को भी जानती हो, शुभ लक्षणों से सम्पन्न हो । इस निर्जन वन में भाग्यविहीन बनकर तुम अपना समय व्यर्थ में क्यों बिता रही हो ?॥५३॥ अतएव हे कोकिलवयनि ! हे सुन्दर मुखवाली ! हे विशाल

देवालयेषु च कृशोदरि भुंक्ष्व भोगांस्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेन्द्र पुत्रि ॥५४॥ किन्ते सुखं चात्र वने सुकेशि वृद्धेन सार्द्धं विजने मृगाक्षि। सेवा तथान्धस्य नवं वयश्च किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम् ॥५५॥ नववयः सुखभोगसमीहितं चटुलपक्ष्मधरे वरवर्णिनि । शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला फलजलाहरणं तव नोचितम् ॥५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा । धैर्यमालंव्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी ॥१॥ देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसंमतौ । सतीं मां धर्मशीलां च नैवं वेदितुमर्हथ ॥२॥ पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे । कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम् ॥३॥**

नेत्रों वाली ! तुम हम दोनों मे से किसी एक को अपना पति अवश्य बना लो । हे राजवर्य शर्याति की पुत्रि ! तुम शीघ्र ही इस बूढ़े मुनि का परित्याग करके देवताओं के घर में रहकर भोगों का उपभोग करो ॥५४॥ हे मृगनयनि ! वृद्ध के साथ इस निर्जन वन में तुमको कौन सा सुख मिलता है ? यहाँ तो तुम्हें अन्धे की सेवा करनी पड़ती है और तुम्हारी नयी जवानी है। हे राजकुमारी ! क्या तुमको दुःख भोगना ही अच्छा लगता है ?॥५५॥ हे चंचल नेत्रों वाली सुन्दरि ! नयी जवानी में तो सुख भोग करना ही अभिप्रेत होता है । हे चन्द्रवदने ! तुम तो अत्यंत कोमल हो तुम्हें फल और जल ढ़ोना अच्छा नहीं लगता है ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

अश्विनी कुमारों की दया से च्यवन ऋषि को युवावस्था की प्राप्ति .

व्यासजी ने कहा– उन दोनों अश्विनीकुमारों की बात को सुनकर बहुत कम बोलने वाली राजकुमारी सुकन्या ने उन दोनों से धैर्यधारण करके कहा॥१॥ आप दोनों देवता हैं। आप दोनों देवताओं के प्रिय एवं सर्वज्ञ हैं। मैं धर्म का पालन करने वाली सती नारी हूँ। आप लोग हमें वैसा नहीं समझें ॥२॥ मेरे पिता ने योगी पति से मेरा विवाह किया है । अतएव मैं कुलटाओं के द्वारा सेवित मार्ग को कैसे अपना सकती हूँ ॥३॥ भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकों को

द्रष्टाऽयं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः । कश्यपाच्चैव संभूतो नैवं भाषितुमर्हथः ॥४॥ कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम् । असारेऽस्मिन्हि संसारे जानंतौ धर्मनिर्णयम् ॥५॥ यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वाऽनघौ । सुकन्याऽहं च शर्यातिः पतिभक्तिपरायणा ॥६॥ व्यास उवाच– इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः नासत्यौविस्मतौ भृशम् । तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शंकमानौ भयं मुनेः ॥७॥ राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि । वरंवरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव ॥८॥ जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ । युवानं रूपसंपन्नं प्रकुर्याव पतिं तव ॥९॥ ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु । समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपंडिते ॥१०॥ सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा । गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम् ॥११॥ सुकन्योवाच– स्वमिन्सूर्यसुतौ देवौ संप्राप्तौ च्यवनाश्रमे । दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनंदन ॥१२॥ वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ । कथितं वचनं स्वामिन्पतिं ते नवयौनवम् ॥१३॥ दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मंतं मुनिं किल । एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम् ॥१४॥ समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव । तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु ॥१५॥ तच्छ्रुत्वाऽहमिहायाता

देखते रहने वाले कर्मों के साक्षी हैं। वे भी कश्यप महर्षि के पुत्र हैं। अतएव आप दोनों हमसे ऐसी बातें नहीं करें ॥४॥ कोई भी सदवंश में उत्पन्न होने वाली कन्या अपने पति का परित्याग करके किस प्रकार किसी दूसरे को अपना पति बना सकती है ? यह संसार तो सारहीन है। आप दोनों धर्म के निर्णय को जानने वाले हैं ॥५॥ हे देवताओं ! आप दोनों यहां से चले जाइये अन्यथा मैं आप दोनों को शाप दे दूँगी । पति की ही भक्ति में लगी रहने वाली मैं महाराज शर्याति की पुत्री सुकन्या हूँ ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** सुकन्या की इस तरह की बातों को सुनकर दोनों अश्विनी कुमार भयभीत तथा आश्चर्य चकित हो गये । उन लोगों ने सुकन्या से कहा ॥७॥ हे राजपुत्रि ! हे सुन्दरि ! तुम्हारे पतिव्रत धर्म से हम दोनों प्रसन्न हैं। तुम वरदान मांगों तुम्हारे कल्याण का हम दोनों वरदान देंगे ॥८॥ हे प्रमदे ! तुम यह जान लो कि हम दोनों देवताओं के श्रेष्ठ चिकित्सक हैं। हम दोनों आप के पति को युवक, रूपवान बना देंगे ॥९॥ उसके बाद तुम हम तीनों में से किसी एक को ही अपना पति बना लेना । हम तीनों का शरीर और रूप एक ही समान रहेगा । तुम तो चतुरता करने में निपुण हो ॥१०॥ उन दोनों अश्विनीकुमारों की बातों को सुनकर आश्चर्यचकित सुकन्या अपने पति कें पास गयी और उसने सारी बातों को बतलाया जो कि उन दोनों ने कहा था ॥११॥ **सुकन्या ने कहा–** हे स्वामिन् ! सूर्य के पुत्र दो देवता इस च्यवनाश्रम में आये हैं। हे भृगुनन्दन ! उन दिव्य शरीरधारी देवताओं को मैनें देखा । हमको देखकर वे दोनों कामार्त हो गये । उन दोनों ने मुझसे कहा कि हमलोग तुम्हारे पति को नवीन जवानी वाला बना देंगे॥१३॥ उनका शरीर दिव्य हो जायेगा वे नेत्रयुक्त हो जायेंगें । किन्तु इसमें जो शर्त होगी उसे तुम सुनो ॥१४॥ हम तीनों के रूप, अवस्था, अंङ्ग एक समान होंगे और हम तीनों में से किसी एक को तुम्हें अपने पति के रूप में चुनना होगा ॥१५॥ उस अद्भुत कार्य को करने के लिए मैं आपसे यह

प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम् । किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसंकटे ॥१६॥ देवामायाऽपि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः । यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम् ॥१७॥ च्यवन उवाच– गच्छ कांतेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते । आनयस्व समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ ॥१८॥ क्रियतामाशु मद्वाक्यं नात्र कार्या विचरणा । व्यास उवाच । एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत् ॥१९॥ क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ । तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ ॥२०॥ उचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः । रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽम्भः प्रतिवेश ह॥२१॥ अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम् । ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः ॥२२॥ तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल । दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तदा ॥२३॥ तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि । अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने ॥२४॥ यस्मिन्वाऽप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने । व्यास उवाच– सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा ॥२५॥ एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान् । सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन् ॥२६॥ अजानंती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिंयत् । किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि

पूछने के लिए आयी हूँ कि इस विपत्ति युक्त कार्य के विषय में हमें क्या करना चाहिए । हे ब्रह्मन् ! इस विषय में आप मुझे बतलाइए ॥१६॥ देवताओं की गाथा को जानना कठिन होता है । उन दोनों के कपट को मैं नहीं जानती हूँ । हे सर्वज्ञ ! आप जो आज्ञा देंगे वही मैं करुँगी ॥१७॥ **च्यवन महर्षि ने कहा–** हे कान्ते ! तुम मेरी आज्ञा से उन दोनों अश्विनीकुमारों के पास जाओ और उन श्रेष्ठ वैद्यों को तुम मेरे पास लाओ ॥१८॥ तुम मेरी इस आज्ञा का शीघ्र पालन करो, इसमें विचार मत करो । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह महर्षि की आज्ञा प्राप्त करके सुकन्या अश्विनीकुमारों के पास गयी और उन दोनों से कही ॥१९॥ हे देवश्रेष्ठ ! अश्विनीकुमारों आप लोगों की शर्त मैं स्वीकार करती हूँ । आपलोग अपना कार्य शीघ्र करें । सुकन्या की बातों को सुनकर अश्विनीकुमार उस आश्रम में आये ॥२०॥ उन दोनों ने सुकन्या से कहा कि तुम्हारे पति इस जल में प्रवेश करें । सौन्दर्य प्राप्त करने के लिए च्यवन महर्षि उस जल के भीतर प्रवेश कर गये ॥२१॥ उसके बाद दोनों अश्विनीकुमार भी उस सरोवर में प्रवेश कर गये । उसके बाद वे तीनों उस सरोवर से एक साथ निकले ॥२२॥ उन तीनों के रूप, दिव्यदेह और युवावस्था एक समान हो गये । वे तीनों दिव्य कुण्डल और भूषण धारण किए हुए थे । उन तीनों के अंग भी एक समान थे ॥२३॥ उन तीनों ने एक साथ कहा हे सुन्दरि ! अब तुम वरण करो । हे सुन्दरि ! हम तीनों में से अपने अभिप्रेत पति को चुन लो। ॥२४॥ अथवा जिसमें तुम्हारा अधिक प्रेम हो उसका ही वरण कर लो । **व्यासजी ने कहा–** सुकन्या ने उन तीनों को एक समान रूप तथा अवस्था वाला देखा ॥२५॥ उन सबों का स्वर भी एक समान था, वेष भी एक समान था वे तीनों देखने में देवपुत्र मालूम पड़ते थे । उन तीनों की एक समान आकृति वाले देखकर सुकन्या संशय से ग्रस्त हो गयी ॥२६॥ वह अच्छी तरह से अपने पति को पहचान नहीं रही थी । वह सोचने लगी

न वेद्म्यहम् ॥२७॥ पतिं देवसुता ह्येते संशये पतिताऽस्म्यहम् । इन्द्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम् ॥२८॥ कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम् । न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथंचन ॥२९॥ देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा । इति संचिंत्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम् ॥३०॥ दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी । सुकन्योवाच– शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्ताऽस्मि भृशदुःखिता ॥३१॥ रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव । नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शंकरबल्लभे ॥३२॥ विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति । इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजंगमम् ॥३३॥ पासि त्वमिदमव्यग्रा तथाऽत्सि लोकशांतये । ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसंमता ॥३४॥ बुद्धिदाऽसि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा । अजा त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शने ॥३५॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाऽसि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम् । अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना ॥३६॥ सिद्धिदा योगिनामंब जयदा कीर्तिदा पुनः । शरणं त्वां प्रपन्नाऽस्मि विस्मयं परमं गता ॥३७॥ पतिं दर्शय मे मातर्मग्नाऽस्मि शोकसागरे । देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता ॥३८॥ पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम् । व्यास उवाच– एवं

कि मैं क्या करूँ । इन तीनों का रूप तो एक ही तरह का है । मैं किसका पति के रुप में वरण करूँ यह नहीं समझ पा रही हूँ ॥२७॥ ये तीनों देवपुत्र मालूम पड़ते हैं । मैं तो संशय में पड़ गयी हूँ। दोनों देवताओं ने यहाँ जादू कर दिया है ॥२८॥ अब मुझे क्या करना चाहिए। मेरे लिए तो यह मृत्यु आ गयी है। मुझे अपने पति को छोड़कर किसी दूसरे का वरण नहीं करना चाहिए ॥२९॥ मेरी तो धारणा है कि कोई देवता आधुनिक है। इस तरह से सोचकर सुकन्या ने विश्वेश्वरी शिवा का ध्यान किया ॥३०॥ वह भगवती का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करने लगी । **सुकन्या ने कहा–** हे जगन्मात:! मैं आपके शरण में आयी हूँ । मैं अत्यंत दुखी हूँ । मैं आपके चरणों में नतमस्तक हूँ । आप मेरे सतीधर्म की रक्षा करें । हे कमलवन से उत्पन्न होने वाली देवि ! हे शंकरजी की प्राण बल्लभे ! आपको नमस्कार है ॥३२॥ हे वेदमात: ! हे विष्णुप्रिये ! हे लक्ष्मि ! हे सरस्वती स्वरूपिणि ! आपने स्थावर जंगमात्मक जगत की सृष्टि की है ॥३३॥ आप इस जगत की रक्षा शान्त मन से करती हैं और संसार की शान्ति के लिए आप इस जगत का संहार करती है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की जननी हैं ॥३४॥ आप अज्ञानियों को बुद्धि प्रदान करती हैं और ज्ञानियों को मोक्ष प्रदान करने वाली हैं। आप ही बुद्धि स्वरुपिणी तथा परम पुरुष को प्रिय लगने वाली प्रकृति स्वरुपिणी हैं ॥३५॥ आप स्वच्छ अन्तःकरण वाले जीवों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। आप अज्ञानी पुरुषों को दुख प्रदान करती है तथा सात्त्विक पुरुषों को सुख प्रदान करती हैं ॥३६॥ आप योगियों को सिद्धि प्रदान करके विजय तथा यश प्रदान करती है । मैं अत्यंत आश्चर्य में पड़ी हुई आपके शरण में आयी हूँ ॥३७॥ हे माँ ! मैं शोक सागर में डूब रही हूँ । आप मुझे पति को दिखा दीजिये । देवताओं ने माया कर दी है मैं उससे अत्यंत मोहित हो गयी हूँ । मुझे इस बात का पता नहीं चलता है कि मैं किसका वरण करूँ ॥३८॥.

स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥३९॥ हृदयेऽस्यास्तदा ज्ञानं ददावाशु सुखोदयम् । निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती ॥४०॥ प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम् । वृतेऽथ च्यवने देवौ संतुष्टौ तौ बभूवतुः ॥४१॥ सतीधर्मं समालोक्य संप्रीतौ ददतुर्वरम् । भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ ॥४२॥ मुनिमामंत्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ । लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम् ॥४३॥ हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः । उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ ॥४३॥ किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे । प्राप्य भार्यां सुकेशांतां दुःखं मेऽभवदन्वहम् ॥४५॥ अंधस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने । युवांभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूपमद्भुतम् ॥४६॥ संपादितं ततः किंचिदुपकर्तुमहं ब्रुवे । उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथंचन ॥४७॥ तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि । तस्माद्वां वांछितं किंचिद्दातुमिच्छामि सांप्रतम्॥४८॥ आत्मनो ऋण मोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च । प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः ॥४९॥ ब्रुवाथां वां मनोद्दिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम् । श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमंत्र्य परस्परम् ॥५०॥ तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम् । मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम्॥५१॥

सर्वज्ञे मातः मेरे पातिव्रत्य धर्म को देखकर मुझे अपने पति का ज्ञान करा दीजिये । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** इस तरह से स्तुति किए जाने पर त्रिपुरसुन्दरी भगवती ने सुकन्या के हृदय में शीघ्र सुख उत्पन्न करने वाले ज्ञान को उत्पन्न कर दिया । उसने समान अवस्था तथा रूप को धारण करने वाले उन तीनों को अच्छी तरह से देखा और उसके बाद अपने पति को ही पति के रूप में वरण कर लिया । च्यवन महर्षि का वरण कर लिए जाने पर दोनों अश्विनीकुमार संतुष्ट हो गये ॥३९-४१ ॥ वे दोनों सुकन्या के पतिव्रताधर्म को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उसे वरदान दिये । भगवती की कृपा से वे दोनों देवश्रेष्ठ प्रसन्न हुए थे ॥४२॥ वे दोनों मुनि च्यवन से विदा लेकर शीघ्र जाने के लिए तैयार हो गये । च्यवन महर्षि भी रूप, नेत्र तथा अपनी पत्नी एवं जवानी को प्राप्त करके ॥४३॥ प्रसन्न हो गंये । वे महातेजस्वी अश्विनी कुमारों से कहे-आप दोनों देवश्रेष्ठों ने मेरा उपकार किया है ॥४४॥ मैं क्या बतलाऊँ इस सर्वोत्तम संसार में मैने कौन सा सुख प्राप्त कर लिया है। इस सुन्दरी पत्नी को प्राप्त करके मैं प्रतिदिन कष्ट का अनुभव करता था॥४५॥ अंधे, अत्यंत वृद्ध तथा भोगविहीन एवं वन में रहने वाले मुझकों आप दोनों ने नेत्र प्रदान किया है एवं जवानी एवं अद्भुत रूप प्रदान किया है ॥४६॥ अतएव मैं चाहता हूँ कि मैं भी आप लोगों का कोई उपकार करुँ । अतएव आप लोग बतलाएँ कि मैं आप लोगों का कौन सा उपकार करूँ। उपकार करने वाले मित्र का जो व्यक्ति कोई भी उपकार नहीं करता है ॥४७॥ उस मनुष्य को धिक्कार है। यदि ऐसा व्यक्ति कोई देवता हो तो ऋणी होकर भूलोक में भी ऋणी होता है । अतएव मैं भी चाहता हूँ कि मैं भी आप लोगों को कोई अभिलषित वस्तु प्रदान करूँ ॥४८॥ हे देवेशों ! आप लोगों के द्वारा प्रदत्त नवीन शरीर का ऋण मैं चुकाना चाहता हूँ । जो वस्तु किसी देवता अथवा असुर से भी लभ्य नही है, उस वस्तु को भी मै आपलोगों को प्रदान करुँगा ॥४९॥ आप

उत्कण्ठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह । भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसग्रहे ॥५२॥ शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले । तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस ॥५३॥ कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वांछितं नौ सुसंमतम् । एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वा सोमपायिनौ ॥५३॥ पिपासाऽस्ति सुदुष्प्रापा त्वत्तः समुपयास्यति । च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु ॥५५॥ यदहं रूपसंपन्नो वयसा च समन्वितः । कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति ॥५६॥ तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याऽहं सोमपायिनौ। मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्॥५७॥ राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातिरमितद्युतेः । इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रति जग्मतुः । च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममंडलम् ॥५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

लोग अपने मनोकूल वस्तु को बतलायें । आप दोनों के इस पुण्य कार्य से मैं प्रसन्न हो गया हूँ । मुनि की बात को सुनकर उन दोनों अश्विनीकुमारों ने आपस में विचार करके ॥५०॥ सुकन्या के साथ बैठे हुए मुनि से कहा- हे मुने ! हम लोगो को अपने पिता की कृपा से सभी मनोभिलषित वस्तु प्राप्त है ॥५१॥ हम दोनो को इस बात की उत्कण्ठा है कि हम लोग देवताओं के साथ सोमपान करें । क्योंकि यज्ञों में जब हमलोग सोमरस पीने के लिए उद्यत होते हैं, उस समय देवता हमें वैद्य कहकर सोमरस का पान करने से मना कर देते हैं ॥५२॥ जब सुमेरु पर्वत पर ब्रह्माजी का यज्ञ हो रहा था उस समय इन्द्र ने हम दोनों को सोमरस का पान करने से मना कर दिया था । अतएव हे धर्मज्ञ तपस्वी ! यदि आप समर्थ हैं तो आप हम दोनों को सोमरस पायी बना दीजिए। यही हम दोनों को अभिप्रेत है । आप हमलोगों का यही कार्य कर दीजिये ॥५३-५४॥ हम लोगों की सोमरस का पान करने की इच्छा हमारे लिए दुष्प्राप्य है। उस सोमरस का पान कर लेने से हमारी वह पिपासा समाप्त हो जायेगी । उन दोनों अश्विनीकुमारों की बात को सुनकर महर्षि च्यवन ने मधुरवाणी में उन दोनों से कहा ॥५५॥ मैं तो वृद्ध था किन्तु आप दोनों ने हम दोनों को रुपवान तथा युवक बना दिया । मुझे पत्नी की भी प्राप्ति हो गयी ॥५६॥ उसके कारण मैं प्रसन्न हो गया हूँ और आप दोनों को मैं सोमरसपायी बना दूंगा और यह कार्य मैं इन्द्र के सामने करुँगा यह मेरी वाणी सत्य है ॥५७॥ इस कार्य को राजा शर्याति के यज्ञानुष्ठान की बेला पर मैं करुँगा । महर्षि च्यवन की बात को सुनकर दोनों अश्विनी कुमार प्रसन्न होकर स्वर्ग चले गये । महर्षि च्यवन भी अपनी पत्नी सुकन्या को लेकर अपने आश्रम में चले गये ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ । वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः ॥१॥ मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति । निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ ॥२॥ धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो । चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा ॥३॥** व्यास उवाच– **निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम् । च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातिर्भुवि भारत ॥४॥ सुकन्यां सुन्दरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः । विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवापरः ॥५॥ कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिंतातुरा भृशम् । पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया ॥६॥ राजन्पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽन्धाय कानने । मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया ॥७॥ गच्छ नाथ मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात् । किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम् ॥८॥ पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धाऽस्मि सर्वथा हृदि । तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदंतिके ॥९॥ पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशांगीं बल्कलावृताम् । अंधं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरी ॥१०॥** शर्यातिरुवाच– **गच्छामोऽद्य**

युवक च्यवन महर्षि को देखकर शर्याति का सन्देह

राजा जनमेजय ने महर्षि व्यास से कहा– महर्षि च्यवन ने किस प्रकार अश्विनी कुमारों को सोमरसपायी बनाया । उन महर्षि का वचन सत्य कैसे हुआ॥१॥ इन्द्र के बल के सामने किसी मनुष्य का बल कैसे काम कर सकता है ? सोमपान करने के विषय में निषिद्ध अश्विनीकुमारों को किस प्रकार सोमरसपायी महर्षि च्यवन ने बनाया ॥२॥ हे धर्मनिष्ठ प्रभो ! महर्षि च्यवन के अद्भुत चरित को आप विस्तार के साथ बतलायें, उसे मैं सुनना चाहता हूँ॥३॥ **महर्षि व्यास ने कहा–** आप महाराज; महर्षि च्यवन के उस चरित को सुनें जो महाराज शर्याति के यज्ञ के समय घटित हुआ। सुन्दरी सुकन्या को प्राप्त करके महर्षि च्यवन प्रसन्न होकर देवता के समान बिहार करने लगे जैसे वे किसी देवकन्या के साथ बिहार कर रहे हों ॥४-५॥ एक बार महाराज शर्याति की पत्नी अत्यधिक चिन्ता से व्याकुल हो गयी । रोती तथा कांपती हुई उसने महाराज शर्याति से कहा ॥६॥ हे महाराज ! आपने वन में अपनी पुत्री को अन्धे मुनि को प्रदान कर दिया किन्तु आपको इस बात का पता तो लगाना ही चाहिए कि वह जी रही है, अथवा मर गयी ॥७॥ हे नाथ ! आप अपनी पुत्री को देखने मुनि के आश्रम में जाएँ और देखें कि उस तरह से पति को प्राप्त करके सुकन्या क्या कर रही है ?॥८॥ हे राजर्षि! अपनी पुत्री के दुःख का विचार करके मेरा हृदय सदा जलता रहता है । आप उस विशालाक्षि पुत्री को मेरे पास लिवा लायें ॥९॥ मैं चाहती हूँ कि कृश बनी हुई तथा बल्कल वस्त्र धारण करने वाली अपनी उस पुत्री को देखूँ । वह तो अपने अंधे पति को प्राप्त करके अत्यंत दुखी हो गयी होगी ॥१०॥

विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात् । प्रियांपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं सशितव्रतम् ॥११॥ व्यास उवाच– **एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम्। जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाश्रमं मुनेः ॥१२॥ गत्वाऽऽश्रमसमीपे तु तमपश्यन्महीपतिः । नवयौवनसंपन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम् ॥१३॥ तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः । किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम् ॥१४॥ निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयाऽन्यः पतिः कृतः । कामपीडितया कामं प्रशांतोऽप्यतिनिर्धनः ॥१५॥ दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने । कुले कलंकः सुमहाननया मानवे कृतः ॥१६॥ धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता । सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम् ॥१७॥ मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये । वृद्धयांधाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल ॥१८॥ कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल । तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया ॥१९॥ हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम् । स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः ॥२०॥ मनुवंशस्तु विख्यातः सकलंकः कृतो मया । लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहश्रृंखला ॥२१॥ कि करोमीति चिंताऽब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः । सुकन्यया तदा दैवाद्दृष्टश्चिंताकुलः पिता ॥२२॥ सा**

अपनी पत्नी की बात को सुनकर **शर्याति ने कहा–** हे विशालाक्षि ! मैं आज सुकन्या को देखने के लिए जा रहा हूँ । वहाँ जाकर मैं अपनी प्रिय पुत्री तथा व्रतनिष्ठ महर्षि का दर्शन करुँगा ॥११॥ **व्यासजी ने कहा–** राजा अपनी शोक से व्याकुल पत्नी को इस तरह से कहकर शीघ्र ही रथ पर बैठकर आश्रम में गये ॥१२॥ आश्रम के समीप जाकर राजा ने नवयौवन प्राप्त तथा देवपुत्र के समान सुन्दर महर्षि च्यवन को देखा ॥१३॥ देवता के समान आकार वाले महर्षि च्यवन को देखकर राजा शर्याति आश्यर्यचकित हो गये । वे सोचने लगे कि मेरी पुत्री ने अत्यंत निन्दित यह कौन सा कर्म कर डाला ॥१४॥ कामपीड़ित होकर इसने उस वृद्धि मुनि को मार कर इस नवीन पति का वरण कर लिया है वे मुनि तो निर्धन तथा अत्यंत शान्त प्रकृति के थे ॥१५॥ युवावस्था में तो काम के वेग को बर्दाश्त करना अत्यंत कठिन है । मेरी पुत्री ने इस मनु वंश में कलंक लगा दिया ॥१६॥ जिसकी पुत्री निन्दित चरित्र वाली हो जाय उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है। शरीरधारियों के सभी पापों का फल यह होता है कि उसकी पुत्री दुख देने वाली हो जाय ॥१७॥ मैनें भी तो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अनुचित कर्म किया था कि वृद्ध तथा अंधे महर्षि के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था ॥१८॥ पिता को चाहिए कि वह अपनी पुत्री का विवाह योग्य वर के साथ करें । मैनें जैसा कर्म किया है उसी का फल मुझको मिला है ॥१९॥ यदि मैं अपनी पापिनी तथा दु:शील पुत्री का वध कर देता हूँ तो मुझे स्त्री के वध करने का पाप लगेगा उसके अतिरिक्त पुत्री के भी वध करने का पाप मुझे लगेगा ॥२०॥ मैनें मनु के विख्यात वंश को कलंकयुक्त बना दिया । एक तरफ तो लोकापवाद है और दूसरी ओर सन्तान का दुस्त्याज्य मोह का बंधन है ॥२१॥ मुझे यह नहीं समझ में आ रहा है कि मैं क्या करुँ। इस तरह से जब राजा चिन्तामग्न हो रहे थे; उसी समय सुकन्या ने अपने व्याकुल पिता को देख लिया ॥२२॥

दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरंतिके । गत्वा प्रप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा ॥२३॥ किं विचारयसे राजंश्चिन्ताव्याकुलिताननः । उपविष्टं मुनिं
वीक्ष्य युवानमंबुजेक्षणम् ॥२४॥ एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम । मा विषादं नृपश्रेष्ठ सांप्रतं कुरु मानव ॥२५॥ व्यास उवाच– **इति पुत्र्या**
वचः शृत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः । प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः ॥२६॥ राजोवाच– **क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽन्धस्तापसोत्तमः।**
कोऽयं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् । मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि । नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि ॥२८॥
सोऽहं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम् । किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल ॥२९॥ निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना ।
दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम् ॥३०॥ विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः । गृहीत्वाऽऽनीय पितरं भर्तुरंतिकमादरात् ॥३१॥
च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः । अश्विभ्यामीदृशः कांतः कृतः कमललोचनः ॥३२॥ यदृच्छयाऽत्र संप्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम ।
ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः ॥३३॥ नाहं तव सुता तात तथा स्यां पापकारिणी । यथात्वं मन्यसे राजन्विमूढो रूपसंशये ॥३४॥

अपने पिता को देखकर सुकन्या उनके पास गयी और वह प्रेमपूर्वक अपने पिता से पूछने लगी ॥२३॥ हे पिताजी ! आप युवक तथा कमल के समान मनोहर नेत्रवाले मुनि च्यवन को बैठे हुए देखकर चिन्ता व्याकुल मन से क्या विचार कर रहे हैं ?॥२४॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप आइये और इन मुनि च्यवन को प्रणाम कीजिए। ये मेरे पति हैं । हे मनुवंशीय राजन् ! आप विषाद न करें ॥२५॥ **व्यासजी ने कहा–** अपनी पुत्री की इस तरह की वाणी सुनकर क्रोध से व्याकुल महाराज शर्याति ने अपने सामने खड़ी पुत्री से पूछा ॥२६॥ राजा ने कहा हे पुत्रि ! वृद्ध तथा अन्धे एवं तपस्वियों में श्रेष्ठ महर्षि च्यवन कहाँ है ? मुझे अत्यधिक सन्देह हो रहा है कि यह मदोन्मत्त युवा पुरुष कौन है ॥२७॥ हे पापिनी ! तुमने मुनि को मार दिया क्या? हे कुल को विनष्ट करने वाली तुमने अपनी इच्छा से इस युवक को अपना पति बना लिया है ॥२८॥ इसीलिए मैं चिन्तित हूँ । मैं इस आश्रम में च्यवन मुनि को नहीं देख रहा हूँ । तुमने कुलटा के समान आचरण करके बहुत बड़ा पाप किया है ॥२९॥ तुम्हारे द्वारा किये गये दुराचार जन्य शोक के सागर में मैं डूब रहा हूँ । यहाँ पर युवक को देखकर और च्यवन मुनि को नहीं देखकर मैं चिन्तित हूँ ॥३०॥ अपने पिता की बात को सुनकर सुकन्या जोर से हंसकर उनसे कहने लगी। पहले वह अपने पिता को पकड़कर अपने पति के सन्निकट लायी और फिर बतलायी ॥३१॥ हे पिताजी ! ये महर्षि च्यवन ही हैं। ये ही आपके जामाता हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है। अश्विनीकुमारों ने इनको कमल के समान नेत्र वाला और सुन्दर बना दिया है ॥३२॥ एक दिन घूमते हुए दोनों अश्विनी कुमार मेरे आश्रम में आये । इन दोनों ने कृपा करके च्यवन महर्षि को इस तरह का बना दिया ॥३३॥ हे तात ! मैं आपकी पुत्री हूँ। मैं ऐसा कोई भी पाप कर्म नही कर सकती हूँ, जैसा कि इनके रूप को देखकर मोहित होकर आप सोच रहे हैं ॥३४॥ हे पिताजी ! आप इन भृगुवंशीय महर्षि

प्रणम त्वं मुनिं राजन्भार्गवं च्यवनं पितः । आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम् ॥३५॥ इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा । प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम् ॥३६॥ राजोवाच– **कथयस्व स्ववृत्तांतं भार्गवाशु यथोचितम् । नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः ॥३७॥ संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वाऽतिसुन्दरम् । वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छुत्वाऽहं सुखमाप्नुयाम् ॥३८॥** च्यवन उवाच– **नासत्यावत्र संप्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ । उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम ॥३९॥ मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे । करिष्यामि मखे राज्ञो भवन्तौ सोमपायिनौ ॥४०॥ एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा । स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे ॥४१॥ इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः । सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना ॥४२॥ अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसांत्वयन् । याजयिष्यामि राजंस्त्वां संभारानुपकल्पय ॥४३॥ मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम् । तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे ॥४४॥ इन्द्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं तेजोबलेन वै । पाययिष्यामि राजेन्द्र सोमं सोममखे तव ॥४५॥ ततः परमसंतुष्टः शर्यातिः पृथिवीपतिः च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत्॥४६॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति । सभार्यश्चातिसंतुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल ॥४७॥ संमान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति । सभार्यश्चातिसंतुष्टः**

च्यवन को प्रणाम कीजिए । आप इनसे ही पूछिये । इस रूप की प्राप्ति का सारा वृतान्त ये स्वयं बतलायेगें ॥ ३५॥ अपनी पुत्री की इस प्रकार की बात को सुनकर राजा शर्याति शीघ्र आकर मुनि को प्रणाम किये और उन महर्षि से आदरपूर्वक पूछे ॥३६॥ **राजा ने कहा–** हे भार्गव ! आप मुझे इस बात को बतलाने की कृपा करें कि आपको ये आँखे कैसे प्राप्त हुईं तथा आपका बार्द्धक्य कहाँ चला गया ?॥३७॥ आपके इस सुन्दर रूप को देखकर मुझको अत्यधिक सन्देह हो रहा है । हे ब्रह्मन् ! आप इस बात को विस्तार के साथ बतलायें जिसे सुनकर मुझे सुख की प्राप्ति हो जाय ॥३८॥ **च्यवन महर्षि ने कहा–** यहाँ पर देवताओं के वैद्य दोनों अश्विनीकुमार आये । उन दोनों ने कृपा करके यह मेरा उपकार किया है ॥३९॥ इस उपकार के बदले में मैनें उन दोनों अश्विनीकुमारों को वरदान दिया है कि मैं राजा शर्याति के यज्ञ में आप दोनों को सोमरसपायी बना दूँगा ॥४०॥ इस प्रकार से मैनें यह अवस्था प्राप्त की है और इन दोनों नेत्रों को प्राप्त किया है। हे महाराज ! आप स्वस्थ होकर आसन पर बैठिये ॥४१॥ महर्षि च्यवन के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा शर्याति अपनी पत्नी के साथ बैठकर उनके साथ कल्याणकारी वार्ता करने लगे ॥४२॥ उसके बाद राजा को सान्त्वना देते हुए **महर्षि च्यवन ने कहा–** हे राजन् ! आप सामग्रियों को तैयार कीजिए मैं आपका यज्ञ कराऊँगा । हे राजन् ! आपके विस्तृत यज्ञ में मुझे उस कार्य को करना है।॥४४॥ मेरे इस कार्य को देखकर यदि इन्द्र क्रुद्ध हो जायेंगे तो मैं अपनी तपस्या के तेज से उनको शान्त कर दूँगा और आपके मख (यज्ञ) में अश्विनीकुमारों को सोमपान कराऊँगा ॥४५॥ इन सारी बातों को जानकर राजा शर्याति अत्यंत सन्तुष्ट हो गये और उन्होनें महर्षि च्यवन की इस बात का समर्थन किया ॥४६॥

कुर्वन्वार्तां मुनेः किल ॥४७॥ प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान् । कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥४८॥ समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ। भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम् ॥४९॥ वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः । आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः ॥५०॥ इन्द्रस्तु शंकितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ । पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ ॥५१॥ चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च । नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे ॥५२॥ अगृहणाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा । शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥५३॥ तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ । न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते ॥५४॥ न संकरौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः । केन दोषेण देवेन्द्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ ॥५५॥ निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यः सर्वदैवतैः । ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया ॥५६॥ प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मधवन्किल । एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो ॥५७॥ आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः । तस्मात्प्रत्युपकारस्तु कर्तव्यः सर्वथा मया ॥५८॥ इन्द्र उवाच— **चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निंदितौ सुरैः । उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम् ॥५९॥**

राजा च्यवन महर्षि की बात को मानकर अपनी नगरी में चले गये । वे अपनी पत्नी के साथ अत्यंत सन्तुष्ट थे और रास्ते में महर्षि च्यवन की बात कर रहे थे ॥४७॥ किसी शुभ दिन को सभी समृद्धकामनाओं वाले राजा शर्याति यज्ञशाला का निर्माण कराये ॥४८॥ भृगुवंशीय महर्षि च्यवन वसिष्ठ इत्यादि महर्षियों को सम्मान पूर्वक बुलाकर राजा शर्याति का यज्ञ प्रारम्भ कराये ॥४९॥ यज्ञ के प्रारम्भ हो जाने पर उस यज्ञ में इन्द्र इत्यादि सभी देवता आये। वहाँ पर सोमरस का पान करने के लिए दोनों अश्विनीकुमार भी आये ॥५०॥ दोनों अश्विनीकुमारों को आये हुए देखकर इन्द्र को शंका हुई । वे सभी देवताओं से पूछे कि ये दोनों किस काम के लिए यहाँ आये हैं ?॥५१॥ ये दोनों तो चिकित्सक हैं, अतएव सोमपान करने योग्य नही हैं । किन्तु राजा के उस यज्ञ में कोई भी देवता कुछ भी नहीं कहा ॥५२॥ उस समय महर्षि च्यवन ने उन दोनों अश्विनीकुमारों को सोमपान करने के लिए दिया । इन्द्र ने उनको रोकते हुए कहा आप इन दोनों को सोमरस मत दीजिये ॥५३॥ च्यवन महर्षि ने इन्द्र से कहा कि ये तो सूर्य के पुत्र हैं अतएव ये दोनों अश्विनी कुमार सोमग्रहण करने के योग्य क्यों नही है ? आप सत्य बतलाइये ॥५४॥ ये दोनों कोई वर्णसंकर नहीं हैं अपितु ये सूर्य की धर्मपत्नी में उत्पन्न हैं । अतएव हे देवेन्द्र ! ये दोनों वैद्यश्रेष्ठ सोमपान करने के योग्य क्यों नहीं हैं ?॥५५॥ हे इन्द्र ! इस यज्ञ में सभी देवता इस बात का निर्णय करें । मैं इन दोनों को सोमपान कराऊँगा । मैंने इन दोनों को सोमपायी बनाने का वचन दिया है ॥५६॥ इसीलिए मैने राजा शर्याति को यज्ञ करने के लिए प्रेरणा की है । हे इन्द्र ! मैं अपनी बात सत्य अवश्य करुँगा ॥५७॥ इन दोनों ने मेरा उपकार किया है । मुझे नवीन अवस्था प्रदान किया हैं। अतएव मैं इन दोनों का प्रत्युपकार अवश्य करुँगा ॥५८॥ **इन्द्र ने कहा—** ये दोनों निंदित देवता हैं, क्योंकि ये वैद्य हैं । अतएव ये दोनों सोमपान करने के योग्य नहीं है । आप इन्हें

च्यवन उवाच– **अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम् । वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ ॥६०॥ एवं विवादे समुपस्थिते च न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप । ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः संग्राहयामास तपोबलेन ॥६१॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **दत्ते ग्रहे तु राजेन्द्र वासवः कुपितो भृशम् । प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः ॥१॥ मा ब्रह्मबन्धो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि । वधिष्यामि द्विषं तं त्वां विश्वरूपमिवापरम् ॥२॥** च्यवन उवाच– **मावमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा । यौ चक्रतुर्मां मघवन्वृन्दारकमिवापरम् ॥३॥ ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाऽऽददते ग्रहम् । अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि परन्तपौ ॥४॥** इन्द्र उवाच– **भिषजौ नार्हतः**

चमस मत दीजिए ॥५९॥ **च्यवन महर्षि ने कहा**– इन्द्र ! तुमने तो अहल्या के साथ जारकर्म किया है। अतएव तुम अपने क्रोध को रोको तुम्हारा क्रोध निरर्थक है । हे वृत्रासुर को मारने वाले ! देवता के पुत्र ये दोनों सोमपान करने योग्य क्यों नही है ॥६०॥ हे राजन् ! इस प्रकार से विवाद होने पर कोई भी उसके बीच में नही बोल सका और अत्यधिक तेजस्वी महर्षि च्यवन ने उन दोनों अश्विनीकुमारों को उन्हें सोमरस का चमस प्रदान कर दिया ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

महर्षि च्यवन का अश्विनीकुमारों को सोमपायी बनाना

व्यासजी ने कहा– हे राजेन्द्र ! अश्विनी कुमारों को चमस देने पर इन्द्र अत्यधिक कुपित हो गये और उन्होनें अपना बल प्रदर्शित करते हुए महर्षि च्यवन से कहे ॥१॥ हे ब्रह्मबन्धों ! आप ऐसी मर्यादा मत बनाइये । मुझसे द्वेष करने वाले आपका मैं विश्वरुप के ही समान वध कर दूँगा ॥२॥ **च्यवन महर्षि ने कहा**– आप इन अश्विनी कुमारों का अपमान मत कीजिये । इन दोनों ने मुझे देवताओं के ही समान बना दिया है। इन लोगों ने मुझे रुप प्रदान किया है ॥३॥ आपको छोड़कर ऐसा कोई भी देवता नहीं है जो इन दोनों के चमस को ले ले । हे इन्द्र ! इन दोनों को भी आप देवता समझिये ॥४॥

कामं ग्रहं यज्ञे कथंचन । यदि दित्ससि मंदात्मन्शिरश्छेत्स्यामि सांप्रतम् ॥५॥ व्यास उवाच– अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः । ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम् ॥६॥ सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया । समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत् ॥७॥ आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम् । वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम् ॥८॥ वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः । जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान्॥९॥ इन्द्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम् । पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१०॥ प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवनस्तपसा ततः । स्तंभयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः ॥११॥ कृत्यया स महाबाहुरिन्द्रं हंतुमिहोद्यतः । जुहावाग्नौ श्रृतंहव्यं मंत्रेण मुनिसत्तमः ॥१२॥ तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात् । प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः ॥१३॥ मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह । शरीरः पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः ॥१४॥ चतस्त्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम् । इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः॥१५॥ बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ । जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम् ॥१६॥ ग्रीवा तु गिरिश्रृङ्गाभा कठिना भीषणा भृशम् । नखा

इन्द्र ने महर्षि च्यवन से कहा– यज्ञ में ये दोनो चिकित्सक ग्रह प्राप्त करने योग्य नहीं है । यदि आप इन दोनों को सोमरस का चमस देना चाहते हैं तो मैं आपका शिर काट दूँगा ॥५॥ **व्यासजी ने कहा–** च्यवन महर्षि इन्द्र की बात को अनसुनी करके उनका अपमान करते हुए सम्मान पूर्वक उन दोनों अश्विनीकुमारों को चमस पकड़ा दिए ॥६॥ पिपासा के कारण जब अश्विनी कुमारों ने चमस को पकड़ा तो उसे देखकर **इन्द्र ने कहा–** ॥७॥ यदि आपने इन सबों के लिए सोमरस प्रदान किया तो जिस तरह मैनें विश्व-रुप के ऊपर वज्र का प्रहार किया था उसी तरह मैं आपके ऊपर भी वज्र का प्रहार करुँगा॥८॥ इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भी अत्यंत क्रोध करने वाले च्यवन महर्षि ने विधिपूर्वक अश्विनी कुमारों को सोमरस प्रदान कर दिया ॥९॥ इन्द्र ने भी कोप करके सभी देवताओं के समक्ष करोडों सूर्य के समान तेजस्वी अपने आयुध व्रज का प्रहार महर्षि च्यवन के ऊपर किया ॥१०॥ प्रहार किये गये व्रज को देखकर महर्षि च्यवन ने अपनी तपस्याजन्य तेज के द्वारा इन्द्र तथा उनके व्रज दोनों को स्तम्भित कर दिया ॥११॥ वे कृत्या के द्वारा इन्द्र को मार डालने के लिए अग्नि में सिद्ध हविष्य का होम मन्त्रपूर्वक किए ॥१२॥ वहाँ पर च्यवन महर्षि के तपोबल से कृत्या उत्पन्न हो गयी । वह प्रबल पुरुष स्वरूप था । उसका आकार क्रूर था । शरीर बहुत बड़ा था । यह असुर रूप था ॥१३॥ उसका नाम मद था । अत्यंत भयंकर था वह । सभी प्राणियों को भयभीत बना देने वाला था । उसका शरीर पर्वत के समान ऊँचा था । उसके भयानक तीक्ष्ण दांत थे ॥१४॥ उसके चार दाँत सौ सौ योजन लम्बे थे । उसके और दाँत दश-दश योजन लम्बे थे ॥१५॥ उसकी भुजाएं पर्वत के समान लम्बी थीं और भंयकर थीं । उसकी भयंकर जीभ आकाश तक लपलपा रही थी ॥१६॥ उसकी गर्दन पर्वत के शिखर के समान कठोर और अत्यंत भयंकर थी । व्याघ्र के नख के समान उसके नख थे और उसके केश अत्यंत

व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीव भीषणाः ॥१७॥ शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम् । नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणेऽतिभयानके ॥१८॥ हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता । एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः ॥१९॥ तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा । इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे ॥२०॥ दैत्योऽपि वदने कामं वज्रमादाय संस्थितः । व्याप्तं तमो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ॥२१ ॥ स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत् । चुक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः ॥२२॥ इन्द्रः स्तंभितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमंतिकात् । न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः ॥२३॥ वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम् । सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम् ॥२४॥ स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः । गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिसदृशं महत् ॥२५॥ विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम् । दुःसाध्योऽयं महामंत्रैस्त्वयं वज्रेण वासव ॥२६॥ असुरो मदसंज्ञस्तु यज्ञकुण्डात् समुत्थितः । तपोबलमृषेः सम्यक् च्यवनस्य महाबल ॥२७॥ अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया । शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः ॥२८॥ स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल । न निवारयितुं शक्तः शक्तिभक्तरुषं क्वचित्॥२९॥

डरावने थे ॥१७॥ उसका शरीर काजल के समान काला था और उसका मुंह भी भयानक था । उसके दोनों नेत्र दावाग्नि के समान अत्यंत भयानक थे ॥१८॥ उसके मुख का एक जबड़ा भूमि को छूता था और दूसरा आकाश को छू रहा था । उस कृत्या के प्रयोग से इसी तरह का मद नामक विशालकाय पुरुष पैदा हो गया ॥१९॥ उसको देखकर सभी देवता भयभीत हो गये । भयभीत होकर अब इन्द्र भी युद्ध नहीं करना चाहते थे ॥२०॥ वह दैत्य भी अपने मुख में वज्र को लिए सामने खड़ा था । त्रैलोक्य में उस समय अन्धकार छा गया लगता था कि वह त्रैलोक्य को खा जायेगा ॥२१॥ वह इन्द्र को खा जाने की इच्छा से इन्द्र की ओर चल पड़ा । उसे देखकर वहाँ पर विद्यमान सभी देवता चिल्ला पड़े कि अब तो हमलोग भी मारे गये ॥२२॥ इन्द्र उस पर वज्र का प्रहार करना चाहते थे किन्तु उनकी भुजायें स्तम्भित हो गयी थीं । अतएव इन्द्र उस पर वज्र का प्रहार नही कर सके ॥२३॥ वज्र धारण किये हुए इन्द्र काल के समान उस राक्षस को देखकर शास्त्रों को जानने वाले आचार्य बृहस्पति का स्मरण किए ॥२४॥ स्मरण करते ही वहाँ बृहस्पति शीघ्र आ गये । आचार्य बृहस्पति ने उस अत्यंत विपत्ति से युक्त समय को देखकर ॥२५॥ अपने कर्तव्य का विचार करके **इन्द्र से कहा–** हे इन्द्र ! यह मद नामक राक्षस मंत्रों के प्रयोग से अथवा वज्र से नही मर सकता है ॥२६॥ यह मद नामक असुर यज्ञ के कुण्ड से उत्पन्न हुआ है । यह ऋषि च्यवन की तपस्या के बल के कारण महाबलवान् है ॥२७॥ इस शत्रु को न तो आप रोक सकते है और न तो कोई देवता रोक सकता है और मै भी नही रोक सकता हूँ। अतएव हे देवेन्द्र ! आप महर्षि च्यवन के ही शरण में जाइये ॥२८॥ वे ही अपनी कृत्या को रोक सकते हैं। कोई भी देवी के भक्त के क्रोध को नही रोक सकता है ॥२९॥ **व्यासजी ने कहा–** आचार्य बृहस्पति के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर इन्द्र च्यवन महर्षि के पास जाकर उनको प्रणाम

व्यास उवाच– **इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदाऽगच्छन्मुनिं प्रति । प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः ॥३०॥ क्षमस्व मुनिशर्दूल शमयासुरमुद्यतम्।**
प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम् ॥३१॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव । भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे।।३२॥ मिथ्या ते
नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन । जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि ॥३३॥ सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि। भविष्यतश्च शर्यातिः
कीर्तिस्तु विपुला भवेत् ॥३४॥ मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम । परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम् ॥३५॥ प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन्मदं
संहर चोत्थितम् । कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम् ॥३६॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित् । संजहार ततः कोपं समुत्पन्नं
विरोधजम् ॥३७॥ देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः । व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च ॥३८॥ मदं विभज्य देवेन्द्रमाश्वास्य चकितं
भिया । संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत् ॥३९॥ ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने । अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास
भार्गवः॥४०॥ एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ । विहितौ सोमपौ राजन्सर्वथा तपसो बलात् ॥४१॥ सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमंडितम्।
आश्रमस्तु मुनेः सम्यक्पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत् ॥४२॥ शर्यातिरपि संतुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा । यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः ॥४३॥ राज्यं

करके भयभीत होकर नम्रतापर्वूक कहे ॥३०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप हमें क्षमा कर दें । इस उत्पन्न हुए असुर को आप शान्त कर दें। हे सर्वज्ञ! आप प्रसन्न
हो जाइये, मैं आपकी आज्ञा को मानता हूँ ॥३१॥ हे भार्गव ! आज से ये दोनों अश्विनीकुमार सोमपान करने के योग्य माने जायेगें । यह मेरी सत्य वाणी
है। हे ब्राह्मण ! आप प्रसन्न हो जाइये ॥३२॥ हे तपोधन ! आपका यह प्रयास व्यर्थ नहीं होगा । हे धर्मज्ञ ! मैं समझता हूँ कि आप भी निष्प्रयोजन कोई
कार्य नहीं करेंगे ॥३३॥ आपके द्वारा सोमपायी बनाये गये ये दोनों अश्विनीकुमार सदैव ही सोमपायी रहेगें और इसके द्वारा शर्याति का भी यश बढेगा।।३४॥
हे मुनिश्रेष्ठ ! मैने यह सारा कार्य आपकी शक्ति की परीक्षा करने के लिए किया है । इससे आपका पराक्रम ही प्रकाशित होगा ॥३५॥ हे ब्रह्मन् ! आप
मेरे ऊपर कृपा कीजिये । मद को शान्त कर दीजिये । और आप सभी देवताओं का कल्याण कीजिए ॥३६॥ इस तरह से इन्द्र के द्वारा कहे जाने पर परमार्थ
के ज्ञाता महर्षि च्यवन ने उस विरोध से उत्पन्न हुए क्रोध को शान्त कर दिया ॥३७॥ व्याकुल इन्द्र को आश्वासन प्रदान करके तथा मद को शान्त करके
महर्षि ने उसको चार स्थानों में बाँट दिया । स्त्रियों में, जहाँ पर मदिरा पी जाती हो, द्युतक्रीडा में तथा आखेट में ॥३८॥ उपर्युक्त चारों स्थानों में मद का
विभाग करके तथा भयभीत एवं आश्चर्य चकित इन्द्र को आश्वस्त करके एवं देवताओं में अश्विनीकुमारों को स्थापित करके महर्षि च्यवन ने उस यज्ञ को पूरा
किया ॥३९॥ उसके बाद उस यज्ञ में जो संस्कार सम्पन्न सोमरस था उसको महर्षि च्यवन ने इन्द्र को पिलाया उसके बाद अश्वीनकुमारों को पिलाया।।४०॥
इस तरह सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमारों को महर्षि च्यवन ने अपनी तपस्या के बल पर सोमपायी बनाया ॥४१॥ यज्ञस्तम्भ से सुशोभित वह सरोवर भी विख्यात

चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान् । आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानतद्रिवतोऽभवत् ॥४३॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् । आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदमः ॥४५॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् । पुत्री च रेवती नाम्ना सुन्दरी शुभ लक्षणा ॥४६॥ वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः । चिंतयामास राजेन्द्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान् ॥४७॥ रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः । चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः ॥४८॥ विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता । गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ॥४९॥ इति संचिन्त्य भूपालः सुतामादाय रेवतीम् । ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम् ॥५०॥ यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छन्दांसि पर्वतास्तथा । अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः ॥५१॥ ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा । तस्थुः प्रांजलयः सर्वे स्तुवंतश्च पुरातनाः ॥५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

हो गया और महर्षि च्यवन का वह आश्रम भी संसार में विख्यात हो गया ॥४२॥ उस यज्ञकर्म से राजा शर्याति भी सन्तुष्ट हो गये । वे यज्ञ को पूरा करके अपने मंत्रियों के साथ अपने नगर मे गये ॥४३॥ मनु के प्रतापी पुत्र शर्याति ने धर्मपूर्वक राज्य किया । उनके पुत्र आनर्त हुए और आनर्त के पुत्र रेवत हुए ॥४४॥ अपने शत्रुओं का दमन करने वाले रेवत ने समुद्र के भीतर अपनी कुशस्थली नाम की नगरी वसायी और अपने अभिलषित भोगों को भोगा॥४५॥ आनर्त के सौ पुत्र हुए उन सबों में ककुद्मी सबसे बड़े थे । उनकी पुत्री का नाम रेवती था । वह सुन्दरी तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न थी ॥४६॥ जब वह विवाह करने के योग्य हुयी उस समय राजा रेवत उसके लिए योग्य तथा सद्वंश में उत्पन्न वर का विचार करने लगे ॥४७॥ राजा रेवत रैवत नामक पर्वत पर रहकर राज्य करते थे । आनर्त देश के बलवान् राजा रेवत राज्य करते थे ॥४८॥ उन्होनें इस बात का बहुत विचार किया कि मैं किसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करुँ । अन्त में उन्होनें निश्चित किया कि रेवती के लिए योग्य पति के विषय में मैं चलकर ब्रह्माजी से ही पूछ लूँ । क्योंकि वे देवताओं से पूजित तथा सर्वज्ञ हैं ॥४९॥ इस तरह से विचार करके राजा अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मलोक में पूछने के लिए चले गये ॥५०॥ वहाँ पर उन्होनें देखा कि ब्रह्मलोक में देवता, यज्ञ, छन्द, पर्वत, समुद्र तथा नदियाँ दिव्य रूप धारण करके विद्यमान थे ॥५१॥ ऋषिगण, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग तथा चारण ये सब के सब ब्रह्माजी के सामने हाथ जोड़कर खड़े थे और उनकी स्तुति कर रहे थे ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्वर्तते मम मानसे । ब्रह्मलोकगतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम् ॥१॥ मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथान्तरे । ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥२॥ राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम् । सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः ॥३॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः । (मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिः कथम्) । स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः ॥४॥ एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि सांप्रतम् । यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम् ॥५॥** व्यास उवाच– **मेरोस्तु शिखरे राजन्सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः । इन्द्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी ॥६॥ तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः । वैकुण्ठश्च पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते ॥७॥ यथाऽर्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः । पञ्च वर्षाणि कौंतेयः स्थितस्तत्र सुरालये ॥८॥ मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ । तथैवान्येऽपि भूपालाः ककुत्स्थप्रमुखाः किल ॥९॥ स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः । जित्वेन्द्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः ॥१०॥ महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट् । आगच्छंतीं नृपो गंगामपश्यच्चातिसुन्दरीम् ॥११॥ वायुनाम्बरमस्यास्तु**

रेवती तथा बलराम का विवाह

राजा जनमेजय ने व्यासजी से कहा– हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में यह बहुत बड़ा सन्देह है कि राजा रेवत रेवती के साथ स्वयं ब्रह्मलोक में चले गये यह कैसे सम्भव हुआ ॥१॥ क्योंकि मैं पुराणों की कथाओं में अनेक बार सुन चुका हूँ कि निर्मल तथा शान्त स्वभाव वाले ब्राह्मण ही मरने के बाद ब्रह्मलोक में जाते हैं ॥२-३॥ सत्यलोक में जाना अत्यंत कठिन है। मनुष्य शरीर से सत्यलोक में जाना कैसे संभव हो पाया और सत्यलोक के बाद पुनः मर्त्यलोक में आना कैसे सम्भव हो पाया ॥४॥ अतएव हे विद्वन् ! आप मेरे इसी सन्देह को दूर कीजिये कि राजा किस तरह ब्रह्माजी से पूछने के लिए सत्यलोक में चले गये । **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! सभी लोक सुमेरु पर्वत के शिखर के ऊपर विद्यमान हैं । इसी लोक में इन्द्रलोक, अग्नि का लोक तथा संयमनी पुरी भी है । उसी तरह सत्यलोक तथा कैलास भी है। उसके बाद वैकुण्ठलोक है, जो भगवान् विष्णु का लोक है ॥७॥ जिस तरह से धनुर्धारी अर्जुन इन्द्र के लोक में गये थे और वे देवताओं के लोक में पांच वर्षों तक मानव शरीर से ही इन्द्र के सन्निकट में निवास किए । इसी तरह ककुत्स्थ इत्यादि दूसरे राजा भी ॥८-९॥ स्वर्ग लोक में जाते थे । उसके बाद दैत्य भी इन्द्र के गृह पर विजय प्राप्त करके अपनी इच्छा के अनुसार निवास किए ॥१०॥ प्राचीन काल में महाभिष नामक राजा भी ब्रह्माजी के लोक में गये थे । और वहाँ पर आयी हुई अत्यंत सुन्दरी गंगा को उन्होनें देखा था । उस समय वायु के कारण

दैवादपहृतं नृप । किञ्चिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्टा सा सुन्दरी तथा ॥१२॥ स्मितं चकार कामतः सा च किञ्चिज्जहास वै । ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ
जातौ वसुंधराम् ॥१३॥ वैकुण्ठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः । गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम् ॥१४॥ सन्देहो नात्र कर्तव्यः
सर्वथा नृपसत्तम । गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप ॥१५॥ अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप । पुण्यसद्भाव एवात्र गमने
कारणं नृप ॥१६॥ तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम् । जनमेजय उवाच– रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम् ॥१७॥ ब्रह्मलोकं
गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा । ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः ॥१८॥ तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन् कथय त्वं ममाधुना । व्यास उवाच
निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल ॥१९॥ पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा । आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥२०॥
श्रृण्वन्नतृप्यद्धृष्टत्मा सभायां तु सकन्यकः । समाप्ते तत्र गान्धर्वे प्रणम्य परमेश्वरम् ॥२१॥ दर्शयित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
राजोवाच– वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका ॥२२॥ देया कस्मै मया ब्रह्मन्प्रष्टुं त्वां समुपागतः । बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसंभवाः॥२३॥

गंगा का वस्त्र किसी अंग से गिर गया था और राजा महाभिष ने गंगा के नग्न अंग को देख लिया था ॥११-१२॥ उसको देखकर राजा कामार्त होकर
मुस्कुराने लगे और वह सुन्दरी भी हँस पड़ी । ब्रह्माजी ने उन दोनों को इस तरह से देखा तो उन्होनें उन दोनों को शाप दे दिया । जिसके फलस्वरुप उन
दोनों को भूलोक में आना पड़ा था ॥१३॥ इसी तरह दैत्यों तथा दानवों से पीडित होकर देवता भी भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ लोक में जाकर जगत के
स्वामी तथा लक्ष्मीजी के पति भगवान् की स्तुति किए ॥१४॥ अतएव हे रांजन् ! इस विषय में कोई भी संदेह नहीं करना चाहिए । मनुष्य सभी लोकों
में जाने में समर्थ हो जाते हैं ॥१५॥ उन लोकों में मनुष्यों के जाने का साधन उनके द्वारा किया गया पुण्य कर्म तथा उनकी तपस्या है। अतएव तत्-
तत् लोकों में पहुँचने का साधन पुण्य को ही समझना चाहिए ॥१६॥ उसी तरह यज्ञ करके कृतकृत्य बने हुए यजमानों के भी तत्-तत् लोकों में जाने
का साधन उनका पुण्य ही हैं । **जनमेजय ने कहा–** महाराज रेवत जब अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मलोक मे गये तो उसके बाद वे राजा क्या किए ।
ब्रह्माजी ने उनको क्या आदेश दिया और उन्होनें अपनी पुत्री का विवाह किसके साथ किया ॥१७-१८॥ हे ब्रह्मन् ! इन सारी बातों को आप मुझे विस्तार
पूर्वक बतलाएँ । **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! इस बात को आप सुनें । राजा रेवत ॥१९॥ अपने पुत्री के लिए योग्यवर के विषय में पूछने के लिए जब
ब्रह्मलोक में गये उस समय वहाँ पर संगीत का कार्यक्रम चल रहा था । उसके कारण वे वहाँ पर वे कुछ देर तक रुक गये ॥२०॥ उस संगीत को सुनकर
राजा रेवत तृप्त हो गये । और वे अपनी पुत्री के साथ वहीं रुके रहे। जब संगीत समाप्त हो गया तब ब्रह्माजी को प्रणाम करके ॥२१॥ महाराज रेवत
ने ब्रह्माजी को अपनी पुत्री को दिखाया और उनके समक्ष अपने अभिप्राय को प्रकट किया । **राजा ने कहा–** हे देवेश ! यह मेरी प्रिय पुत्री है । आप इसके लिए

कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चंचलम् । तत्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम् ॥२४॥ तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम् । कुलीनं
बलवंतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥२५॥ दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश । व्यास उवाच– तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा ॥२६॥
तमुवाच हसन् वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम् । ब्रह्मोवाच– राजपुत्रास्त्वया राजन्वरा ये हृदये कृताः ॥२७॥ ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे
सपितृपौत्रबांधवाः । सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते ॥२८॥ वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुंठिता । सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं
प्रशस्ति हि ॥२९॥ उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल । ययातिवंशसंभूतो राजा माथुरमंडले ॥३०॥ उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी
महाबलः। दैत्येशः पितरं सोऽपि कारागारे न्यवेशयत् ॥३१॥ स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः । मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं
गता ॥३२॥ दुष्टराजन्यसैन्यानां भारेणातिसमाकुला । अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः ॥३३॥ वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः ।
देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः ॥३४॥ तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः । गङ्गातीरे नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥३५॥

योग्य वर को बतलाएँ ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे यह जानने के लिए आया हूँ कि मैं इसका विवाह किसके साथ करुँ । मैनें सद्वंश में उत्पन्न अनेक राजकुमारों को देखा है ॥२३॥ किन्तु मेरा चंचल मन किसी के भी विषय में स्थिर नहीं हो पा रहा है । हे देवदेवेश ! इसीलिए मैं आपसे पूछने के लिए यहाँ पर आ गया हूँ ॥२४॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! आप इसके लिए योग्य वर के विषय में मुझे आज्ञा दें । वर ऐसा होना चाहिए जो कुलीन, बलवान् तथा सभी सद्गुणों से युक्त हो ॥२५॥ आप दानी, तथा धार्मिक किसी राजकुमार को बतलाएँ । व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया राजा की बात सुनकर ब्रह्माजी ने बीते हुए काल का विचार करके उनसे कहा **ब्रह्माजी ने कहा**– राजन् ! आपने जिन राजकुमारों को अपने हृदय में निश्चित किया है ॥२६-२७॥ वे सब के सब अपने पिता, बाँधव, तथा पौत्रों के साथ मर चुके हैं। आज सत्ताइसवां द्वापर प्रारम्भ हो रहा है ॥२८॥ आपके सभी वंशज भी मर चुके हैं और आपकी नगरी पर दैत्यों का अधिकार हो गया है। इस समय वहाँ के राजा सोमवंशीय राजा उग्रसेन हैं ॥२९॥ वे ही इस समय मथुरा के स्वामी है। मथुरा मण्डल में ययाति नाम के राजा हुए थे । उन्हीं के वंश में ये राजा उत्पन्न हुए थे ॥३०॥ उग्रसेन का पुत्र कंस था । वह महाबलवान तथा देवताओं से द्वेष करने वाला था । वह दैत्यों का स्वामी था । उसने अपने पिता को कैदी बनाकर कारागार में डाल दिया था ॥३१॥ मद से मत्त बना हुआ कंस सभी राजाओं पर प्रशासन स्वयं कर रहा है। इस तरह पाप के भार से पृथिवी अत्यंत दुःखित हो गयी और ब्रह्माजी के शरण में गयी ॥३२॥ वह दुष्ट राजाओं के पाप के भार से व्याकुल थी । तो श्रेष्ठ देवताओं ने पृथिवी को बतलाया कि भगवान का अंशावतार होने वाला है ॥३३॥ उसके बाद देवस्वरुपिणी देवकी के गर्भ से नारायण मुनि ही वासुदेव श्रीकृष्ण के रुप में अवतार ग्रहण किए ॥३४॥ सनातन तथा धर्म के पुत्र नर के मित्र नारायण मुनि ने बदरिकाश्रम

सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः । तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तम ॥३६॥ उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम् । कंसस्य श्वशुरः पापो जरासंधो महाबलः ॥३७॥ आगम्य मथुरां क्रोधाच्चकार संगरं मुदा । कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासंधो महाबलः ॥३८॥ प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः । श्रुत्वायांतं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम् ॥३९॥ (कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारवतीमगात् । प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह संगतैः ॥१॥ कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमंडिताम् । जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान् । उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम् ॥२॥) यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः । वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बांधवैःसह ॥४१॥ तस्याग्रजःस विख्यातो बलदेवो हलायुधः । शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव संमतः ॥४२॥ संकर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम् । रेवतीं बलभद्राय विवाहविधना ततः ॥४३॥ दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम् । तपस्तप्तुं सुरारामं पावनं कामदं नृणाम् ॥४४॥ व्यास उवाच– इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना । जगाम तरसा राजन्द्वारकां कन्ययाऽन्वितः ॥४५॥ ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम् । ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपति कालपर्यये ॥४६॥ जगाम त्रिदशावासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे । राजोवाच– भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम् ॥४७॥ रेवतस्तु

में गंगा के तटपर घोर तपस्या किया था ॥३५॥ वे ही यदुवंश में वासुदेव श्रीकृष्ण के रुप में अवतार लिए । उन श्रीकृष्ण ने कंस का बध कर दिया है॥३६॥ उन्होनें उग्रसेन के दुष्ट पुत्र कंस का वध करके उग्रसेन को राज्य प्रदान किया है । कंस का श्वसुर पापी जरासंध ने क्रोध करके मथुरा पर आक्रमण करके युद्ध किया । युद्ध में श्रीकृष्ण ने जरासंध को परास्त कर दिया ॥३८॥ उसके बाद जरासंध ने प्रेरित करके कालयवन को सेना के साथ युद्ध करने के लिए भेजा॥३९॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने जब देखा कि महावीर यवन राज अपनी सेना लेकर युद्ध करने के लिए आ रहा है (तो भगवान् श्रीकृष्ण ने मथुरा को छोड़ दिया और वे द्वारावती (द्वारका) चले गये । उस समय वह नगरी टूट-फूट गयी थी । उन्होनें शिल्पियों के द्वारा द्वारका का जिर्णोद्धार कराया ॥१॥ वहाँ के किले को बाजारों तथा भवनों से सुसज्जित बनवा दिया । उस नगरी का उद्धार करके वासुदेव वहाँ का राजा अपने वंश में रहने वाले उग्रसेन को बनाया ॥२॥) यदुश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण ने यादवों को द्वारका में स्थापित कर दिया । इस समय वासुदेव अपने बांधवों के साथ द्वारका में ही हैं ॥४१॥ उनके बड़े भाई का नाम बलदेव है। उनका आयुध हल और मुसल है । वे शेष के अंशावतार हैं । वे वीर हैं, वे ही आपकी पुत्री के लिए अनुकूल वर हैं ॥४२॥ आप शीघ्र जायँ और बलरामजी के ही साथ अपनी इस कमल के समान नेत्रों वाली पुत्री का विवाह वैवाहिक विधि से कर दें ॥४३॥ हे राजन्! आप अपनी पुत्री का विवाह करके स्वयं बदरिकाश्रम चले जाइये । वह देवों का उद्यान है, अत्यंत पवित्र स्थान है और मनुष्यों की सभी कामनाओं को पूर्ण कर देने वाला स्थान है । वहाँ जाकर आप तपस्या करें ॥४४॥ **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा–** पद्मयोनि ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार से आदेश पाकर हे राजन् ! राजा रेवत अपनी कन्या के साथ शीघ्र द्वारका गये ॥४५॥ और उन्होनें शुभलक्षणों से युक्त अपनी कन्या का विवाह बलदेवजी

स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः । युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल ॥४८॥ कन्या वृद्धा न संजाता राजा वाऽतितरां नु किम् । एतावंतं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम् ॥४९॥ व्यास उवाच– **न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः । न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ॥५०॥ मेरुं गतस्य शर्यातिः संतती राक्षसैर्हता । गताः कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः ॥५१॥ मनोश्च क्षुवतःपुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः । इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः ॥५२॥ वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरंतरम् । नारदस्योपदेशेन प्राप्त दीक्षामनुत्तमाम्॥५३॥ तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम् । विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः ॥५४॥ अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः । शकुनिप्रमुखाः पुत्रा पंचाशद्बलवत्तराः ॥५५॥ उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल । दक्षिणस्यांय तथा राजन्नादिष्टस्तेन ते सुताः ॥५६॥ चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना । अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः ॥५७॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

के साथ कर दिया । उसके बाद तीव्र तपस्या करने के कारण समयानुसार राजा रेवत अपना शरीर गंगातट पर त्याग कर स्वर्गलोक चले गये । **राजा जनमेजय ने कहा–** हे भगवन् ! आपने बड़े ही आश्चर्य की बात बतलायी ॥४६॥ कि राजा रेवत अपनी पुत्री के लिए ब्रह्मलोक में एक सौ आठ युगों तक रुके रह गये ॥४७॥ क्या इतने समय में वह कन्या वृद्धा नहीं हो गयी तथा राजा भी अत्यंत वृद्ध नहीं हो गये । इतने दिनों तक उन दोनों की आयु कैसे बनी रही ॥४८॥ राजा की बात को सुनकर **व्यासजी ने कहा–** हे अनघ ! ब्रह्मलोक में रहने वाले जीवों को न भूख लगती है, न प्यास लगती है, न मृत्यु का भय होता है और न तो वहाँ पर किसी प्रकार की थकान ही होती है ॥४९॥ राजा शर्याति के भी सुमेरु पर्वत पर चले जाने पर उनकी सन्तति को राक्षसों ने मार डाला । और उनकी सन्तान भयभीत होकर कुशस्थली को छोड़करा जिधर-तिधर भाग गयी ॥५०॥ उसके पश्चात क्षुव नामक मनु से एक बलवान पुत्र पैदा हुआ । उसका नाम इक्ष्वाकु हुआ । वही सूर्य वंश का प्रवर्तक हुआ ॥५१॥ वह पुत्र की प्राप्ति के लिए नारद जी से दीक्षा लेकर निरन्तर देवी का ध्यान करता था ॥५२॥ हे राजन् ! उस इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए । उनमें सबसे बड़े विकुक्षि थे । वे बलवान् तथा पराक्रमी थे ॥५३॥ राजा इक्ष्वाकु अयोध्या के विख्यात राजा हुए । उनके शकुनि इत्यादि पचास पुत्र अत्यंत बलवान थे ॥५४॥ उन सबों को राजा इक्ष्वाकु ने उत्तरापथ का रक्षक बना दिया। उसी तरह से दक्षिणापथ की रक्षा करने के लिए राजा ने अपने अड़तालिस पुत्रों को भेज दिया । अवशिष्ट उनके पास दो पुत्र ही राजा की सेवा करने के लिए रहे ॥५५-५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

नवमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः । आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम् ॥१॥ मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा सुतादरात् । इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत् ॥२॥ गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान् । शशाँश्चापि परिश्रांतो बभूवाथ बुभुक्षितः ॥३॥ विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाददसौ वने । शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमुनत्तमम् ॥४॥ प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा। अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः ॥५॥ भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः । राज्ञे निवेदयामास वसिष्ठः पाकदूषणम् ॥६॥ पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम् । चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निःसारयत्ततः ॥७॥ शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः । गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसंभ्रमः ॥८॥ वन्येन वर्तयन्कालं नीतिमान्धर्मतत्परः । पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना ॥९॥ शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम् । यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे ॥१०॥ शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः । तस्यैव नामभेदाद्वै इन्द्रवाहः पुरंजयः॥११॥** जनमेजय उवाच– **नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ । कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत् ॥१२॥** व्यास उवाच– **शशादे स्वर्गते**

सूर्यवंश के राजाओं के नाम का वर्णन तथा राजा मान्धाता के जन्म वृतान्त का वर्णन

व्यासजी ने कहा– एक बार राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को अष्टका श्राद्ध में शीघ्र मांस लाने के लिए आदेश दिया ॥१॥ उन्होने कहा हे पुत्र ! वन में जाकर श्राद्ध के योग्य मेध्य (पवित्र) मांस लाओ । विकुक्षि भी उस आदेश को स्वीकार करके भस्म धारण करके वन में चले गये ॥२॥ वन में जाकर उन्होनें, वराहों,सूकरों, एवं मृगों तथा खरगोशों को मारा । उसके बाद थके हुए विकुक्षि को भूख लग गयी ॥३॥ वे अष्टकाश्राद्ध की बात भूल गये और मारे हुए खरगोशों में से एक खरगोश को उन्होनें खा लिया । बचे हुए मांस को लाकर उन्होनें अपने पिता को निवेदित किया ॥४॥ प्रोक्षण के लिए लाये गये उस मांस को श्राद्ध कर्म के लिए अयोग्य जानकर गुरु वसिष्ठ क्रुद्ध हो गये ॥५॥ वसिष्ठ महर्षि ने राजा इक्ष्वाकु से कहा कि जिस मांस को खा लिया गया हो वह मांस श्राद्ध में प्रोक्षण के योग्य नहीं होता है; क्योंकि वह पाक के लिए दूषित होता है ॥६॥ राजा ने जान लिया कि इस काम को मेरे पुत्र विकुक्षि ने किया है, अतएव विधि का लोप हो जाने के कारण इक्ष्वाकु ने उसे अपने देश से निकाल दिया ॥७॥ उसी समय से उस पुत्र का नाम शशाद हो गया। पिता के क्रोध के कारण शशाद वन में चले गये ॥८॥ वे नीति के जानकार तथा धार्मिक थे । वे वन में ही अपना समय बिताते रहे और पिता इक्ष्वाकु की मृत्यु हो जाने पर वे राजा बने ॥९॥ अयोध्याधिपति शशाद राज्य करते हुए सरयू के तट पर अनेक यज्ञों को पूर्ण किए ॥१०॥ शशाद के पुत्र ककुत्स्थ

राजा ककुत्स्थ इति चाभवत् । राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात् । एतस्मिन्नंतरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः ॥१३॥ जगमुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम् । तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः ॥१४॥ विष्णुरुवाच– पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयन्तु शशादजम् । स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तम ॥१५॥ आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः । पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चातुलम् ॥१६॥ हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः । अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति ॥१७॥ तानागतान्सुरान्राजा पूजयामास धर्मतः । पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतंद्रितः॥१८॥ राजोवाच– धन्योऽहं पावितश्चास्मि जीवितं सफलं मम । यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत् ॥१९॥ ब्रुवंतु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः। करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत् ॥२०॥ देवा ऊचुः– सहाय्यं कुरु राजेन्द्र सखा भव शचीपतेः । संग्रामे जय दैत्येन्द्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि॥२१॥ पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित् । विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ ॥२२॥ राजोवाच– पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः। इन्द्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः ॥२३॥ संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना । आरुह्येंद्रं गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥२४॥ तदोचुर्वासवं

हुए । उनका ही दूसरा नाम इन्द्रवाह तथा पुरञ्जय था ॥११॥ **जनमेजय ने महर्षि व्यास से पूछा–** हे अनघ ! राजकुमार के दूसरा नाम क्यों हुआ ? किस कारण उनका नाम बदला उस कारण को आप मुझे बतलाएँ ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा–** शशाद की मृत्यु हो जाने पर ककुत्स्थ राजा हुए । वे बलपूर्वक अपने पिता तथा पितामहों के राज्य का प्रशासन करते थे । इसी बीच सभी देवताओं को दैत्यों ने पराजित कर दिया ॥१३॥ सभी देवता त्रैलोक्याधिपति भगवान विष्णु की शरण में गये । उस समय सनातन भगवान विष्णु ने देवताओं से कहा ॥१४॥ **भगवान् विष्णु ने कहा–** देवताओं ! आप लोग शशाद के पुत्र ककुत्स्थ को उनसे देवताओं की सहायता करने के लिए कहें । वे ही संग्राम में दैत्यों का वध करेंगे ॥१५॥ वे धनुर्धारी महापुरुष हैं। वे देवताओं की सहायता करने के लिए अवश्य आयेंगे । पराम्बा की कृपा प्राप्त होने के कारण उनका पराक्रम अतुलनीय है ॥१६॥ श्री हरि की बातों की मानकर देवता शशाद के पुत्र ककुत्स्थ के पास अयोध्या गये ॥१७॥ आये हुए उन देवताओं की राजा ने धर्मानुसार अच्छी तरह से पूजा की। सावधान रहने वाले राजा ने देवताओं से उनके आने का प्रयोजन पूछा ॥१८॥ **राजा ने कहा–** आप सभी देवता मेरे घर पधार कर मुझे दर्शन दिये इसके कारण मैं धन्य और पवित्र हो गया। मेरा जीवन ही सफल हो गया ॥१९॥ हे देवगण ! आप लोग अपने आने का प्रयोजन बतलायें । यदि वह कार्य मनुष्यों के लिए दुःसाध्य होगा तो भी मैं उस कार्य को करुँगा ॥२०॥ **देवताओं ने कहा–** हे राजेन्द्र ! आप हम देवताओं की सहायता करें और इन्द्र के मित्र बन जायँ । आप संग्राम में देवताओं के लिए भी दुर्जय दैत्यों पर विजय प्राप्त करें ॥२१॥ पराशक्ति की कृपा से आपके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है । हमलोगों को भगवान विष्णु ने आपके पास भेजा है ॥२२॥ **राजा ककुत्स्थ ने कहा–** हे देववर्यो ! मै आप लोगों का सहायक बनूँगा। किन्तु यदि इन्द्र ही मेरा वाहन बन जायँ तब ॥२३॥

देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम् । पत्रं भव नरेंद्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते ॥२५॥ लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम् । बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान् ॥२६॥ तमारुरोह राजाऽसौ संग्रामगमनाय वै । स्थितः ककुदि येनास्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत् ॥२७॥ इन्द्रो वाहः कृतो येन तेन नाम्नेन्द्रवाहकः । पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाभूच्च पुरंजयः ॥२८॥ जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान् । पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह ॥२९॥ ककुत्स्थश्चातिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजः । काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥३०॥ ककुत्स्थस्याभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबलः । अनेना विश्रुतस्तस्य पृथुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥३१॥ विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः । विश्वरंधिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥३२॥ चंद्रस्तस्य सुतः श्रीमान्राजा वंशकरः स्मृतः । ततत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥३३॥ शावंतो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः । शावंती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥३४॥ वृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावंतस्य महात्मनः । कुबलाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः॥३५॥ धुंधुनामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले । धुंधुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम् ॥३६॥ पुत्रस्तस्य दृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् । दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः ॥३७॥ निकुंभस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः । बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥३८॥ प्रसेनजित्कृशाश्वस्य

मैं देवताओं के लिए दैत्यों के साथ युद्ध करुँगा । मैं इन्द्र पर चढ़कर जाऊँगा। यह मैं आप लोगों को सत्य बतला रहा हूँ ॥२४॥ इसके बाद देवताओं ने इन्द्र से कहा कि आपको इस अद्भुत कार्य को करना चाहिए। आप लज्जा का परित्याग करके राजा का वाहन बन जायँ ॥२५॥ इन्द्र तो ऐसा करने में बहुत लज्जित हो रहे थे किन्तु श्रीहरि की प्रेरणा प्राप्त करके इन्द्र भगवान् शंकर के बैल के समान बैल बन गये ॥२६॥ संग्राम में जाने के लिए राजा भी उसी पर चढ़ गये । चूंकि वे बैल के कुकुद पर बैठ गये अतएव उनका नाम ककुत्स्थ हुआ ॥२७॥ चूंकि उन्होने इन्द्र को अपना वाहन बनाया अतएव उनका नाम इन्द्रवाह हुआ। चूकि उन्होनें दैत्यों की नगरी पर विजय प्राप्त किया। अतएव उनका नाम पुरञ्जय हुआ ॥२८॥ दैत्यों को परास्त करके ककुत्स्थ ने उनकी सम्पत्ति देवताओं को ही सौंप दी, इस तरह उनकी इन्द्र के साथ मित्रता हो गयी ॥२९॥ राजा ककुत्स्थ अत्यंत विख्यात राजा हुए। अतएव उनके वंश में उत्पन्न होने वाले राजा ककुत्स्थ कहलाये ॥३०॥ ककुत्स्थ के पुत्र महाबलवान् अनेना उनकी धर्मपत्नी के गर्भ से पैदा हुए । अनेना के पराक्रमी पुत्र पृथु हुए ॥३१॥ पृथु को भगवान् विष्णु का अंशावतार कहा जाता है । ये पराशक्ति के चरणों की अर्चना करते थे । पृथु के पुत्र विश्वरंधि के वंश को बढ़ाने वाले उनके पुत्र चन्द्र हुए । चन्द्र के तेजस्वी तथा बलवान पुत्र युवनाश्व हुए ॥३२-३३॥ युवनाश्व के पुत्र शवंत हुए। वे परम धार्मिक राजा थे। उन्होने इन्द्र की नगरी अमरावती के समान शावन्ती नाम की अपनी नगरी बसायी ॥३४॥ शावन्त के पुत्र बृहदश्व हुए । बृहदश्व के पुत्र राजा कुवलाश्व हुए ॥३५॥ कुवलाश्व ने धुन्धुनामक दैत्य का वध किया अतएव उनका नाम भूलोक में धुन्धुमार प्रसिद्ध हुआ ॥३६॥ धुन्धुमार के पुत्र दृढ़ाश्व पृथ्वीपति हुए । दृढ़ाश्व के

बलवान्सत्यविक्रमः । तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥३९॥ यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मांधातेति महीपतिः । अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥४०॥ भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद । मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥४१ ॥ निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः । राजोवाच– न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता यदुदाहृतम् ॥४२॥ असंभाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम् । विस्तरेण वदस्वाद्य मांधातुर्जन्मकारणम् ॥४३॥ राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वाङ्गसुन्दरः । व्यास उवाच– यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥४४॥ भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप । राजा चिंतापरः प्रायश्चिंतयामास नित्यशः ॥४५॥ अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः । ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः ॥४६॥ मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम् । दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः ॥४७॥ तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव । किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम् ॥४८॥ प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा । यौवनाश्व उवाच– राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तन्ते मुनयो मम ॥४९॥ भार्याणां शतं शुद्धं वर्तति विशदप्रभम् । नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यास्तिबलवान्मम॥५०॥

प्रख्यात पुत्र हर्यश्व हुए ॥३७॥ हर्यश्व के पुत्र निकुंभ पृथ्वी के स्वामी बने । निकुम्भ के पुत्र बर्हणाश्व हुए और वर्हणश्व के पुत्र कृशाश्व हुए ॥३८॥ कृशाश्व के पुत्र प्रसेनजित् हुए। वे बलवान् तथा सत्य पराक्रम वाले हुए। प्रसेनजित् के पुत्र महाभाग यौवनाश्व हुए ॥३९॥ यौवनाश्व के पुत्र श्रीमान् मान्धाता हुए। इन्हानें भगवती की कृपा प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े तीर्थों में भगवती के एक हजार आठ मन्दिरों का निर्माण कराया। ये अपनी माता के गर्भ से नही अपितु अपने पिता के पेट से उत्पन्न हुए थे ॥४०-४१॥ **राजा ने कहा–** ये अपने पिता के पेट को फाड़कर उत्पन्न हुए थे, ऐसा न तो किसी ने देखा है और न तो सुना ही है ॥४२॥ आपने मान्धाता का जैसा जन्म बतलाया है, वैसा जन्म होना तो असंभव है। आप मान्धाता के जन्म का कारण विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥४३॥ आप यह बताएँ कि वह सर्वाङ्ग सुन्दर बालक अपने पिता के पेट से कैसे उत्पन्न हुआ । **व्यासजी ने कहा–** राजा यौवनाश्व परमधार्मिक थे किन्तु उनकी कोई सन्तान नहीं थीं ॥४४॥ उन राजा की सौ पत्नियां थीं। किन्तु राजा सदा सन्तान के लिए चिन्तित रहा करते थे ॥४५॥ सन्तान के लिए दुःखी राजा संसार से उदास होकर वन में ऋषियों के आश्रम में चले गये ॥४६॥ वे दुखी होकर तपस्वियो के सामने ही गर्म-गर्म, श्वास लेने लगे। राजा को दुःखी देखकर ब्राह्मण उन पर दयालु हो गये ॥४७॥ ब्राह्मणों ने उनसे पूछा कि राजन् आप चिन्तित क्यों है ? हे महाराज ! आपको कौन सा कष्ट है आप अपने मन की बात सत्य-सत्य बतलाइये ॥४८॥ हमलोग आपके दुःख को दूर करने का हर प्रकार से प्रयास करेंगे । **यौवनाश्व ने कहा–** हे मुनिजन ! मेरे पास राज्य, धन तथा अच्छे घोड़े इत्यादि सब हैं ॥४९॥ हमारी सुन्दरी सौ पत्नियां हैं । मेरा त्रैलोक्य में भी कोई प्रबल शत्रु नहीं है ॥५०॥

आज्ञाकरास्तु सामंता वर्तन्ते मंत्रिणस्तथा । एकं संतानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः ॥५१॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । तस्माच्छोचामि विप्रेन्द्राः संतानार्थं भृशं ततः ॥५२॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः । इष्टिं संतानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशंतु मे ॥५३॥ कुर्वंतु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः । व्यास उवाच— तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः ॥५४॥ कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिंद्रदैवताम्। कलशः स्थापितस्तत्र गलपूर्णस्तुबाडवैः ॥५५॥ मंत्रितोवेदमन्त्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः । राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि ॥५६॥ विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मन्त्रजलं स्वयम् । भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मंत्रितं विधिनोद्धृतम् ॥५७॥ पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम । व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशंकिताः ॥५८॥ पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः । राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत् ॥५९॥ इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान् । गर्भं दधार नृपतिस्ततो मंत्रबलादथ ॥६०॥ ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं भित्त्वाऽस्य दक्षिणाम् । पुत्रं

हमारे सामन्त तथा हमारे मंत्रीगण मेरी आज्ञा का ठीक-ठीक पालन करते हैं । हे तपस्वियों ! मुझे केवल सन्तान का ही दुःख है, इसके अतिरिक्त दूसरा मुझे कोई भी दुःख नही हैं ॥५१॥ चूकि निःसन्तान की सद्गति होती ही नहीं है, अतएव हे ब्राह्मणवर्यो! मैं अपने सन्तान की प्राप्ति के ही विषय में सदा चिन्तित रहता हूँ ॥५२॥ हे तपस्वीजन ! आप लोग ने बहुत अधिक परिश्रम करके वेदों एवं शास्त्रों के तत्वज्ञान को ज्ञान प्राप्त किया है। मैं सन्तान को प्राप्त करनाा चाहता हूँ अतएव उसके लिए उचित यज्ञ को मानकर आप लोग मुझे उसको करने के लिए आदेश दीजिए ॥५३॥ यदि आपलोगों की मेरे ऊपर कृपा है तो आपलोग मेरा यही कार्य कर दें । **व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा—** राजा की उस बात को सुनकर ऋषियों का अन्तः करण दया से परिपूर्ण हो गया ॥५४॥ उन लोगों ने राजा से एक ऐसा यज्ञ कराया जिसमें प्रधान देवता इन्द्र हैं । उन लोगों ने गले तक जल से भरे हुए एक कलश की स्थापना मन्त्रपूर्वक की ॥५५॥ उस कलश की स्थापना का उद्देश्य राजा को पुत्र प्राप्ति कराना था। राजा को रात्रि में जोर से प्यास लगी, किन्तु उस समय सभी ब्राह्मण सो गये थे । राजा यज्ञशाला में प्रवेश कर गये ॥५६॥ और उस मंत्र के जल को स्वयं पी गये । उस जल को ब्राह्मणों ने राजा की पत्नी को संस्कार संस्कृत करके रखा था ॥५७॥ किन्तु अज्ञानवशात् उस जल को राजा ने पी लिया था । ब्राह्मणों ने जब देखा कि कलश में जल ही नहीं है तो वे अत्यंत शंकित हो गये ॥५८॥ ब्राह्मणों ने राजा से पूछा कि कलश के जल को किसने पी लिया है और जब उन लोगों ने जान लिया कि राजा ने ही उस जल को पी लिया है तो उन लोगों ने सोचा कि सब से अधिक बलवान भाग्य ही है ॥५९॥ ऋषियों ने उस इष्टि को समाप्त कर दिया और वे अपने घर चले गये । उसके बाद मन्त्र के बल के कारण राजा ने उस गर्भ को धारण किया ॥६०॥ उसके बाद समय पूरा होने पर वह गर्भ राजा की दाहिनी

निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः ॥६१॥ देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः । कं धास्यति कुमारोऽयं मंत्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम् ॥६२॥ तदेंद्रो देशिनीं प्रादान्मां धातेत्यवदद्वचः । सोऽभवद्बलवान्राजा मान्धाता पृथिवीपतिः । तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात् ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसंगरः । मांधाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः ॥१॥ दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरि गुहासु च । इन्द्रेणास्य कृतं नाम त्रसद्दस्युरिति स्फुटम् ॥२॥ तस्य बिंदुमती भार्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् । पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षणसंयुता ॥३॥ तस्यामुत्पादयामास मांधाता द्वौ सुतौ नृप। पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुन्दं तथाऽपरम्॥४॥ पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परमधार्मिकः। पितृभक्तिरतश्चाभूद्बृहदश्वस्तदात्मजः॥५॥**

कुक्षि को फाड़कर उत्पन्न हो गया । उस राजा के मंत्रियों ने राजा के पेट से उस बालक को निकाल लिया ॥६१॥ देवताओं की कृपा होने के कारण राजा उस समय नहीं मरे । मंत्रियों ने बहुत अधिक कहा कि यह बालक किसका दूध पियेगा ॥६२॥ उस समय इन्द्र ने अपनी तर्जनी अंगुलि को बालक के मुख में डालकर कहा, यह मेरा दूध पियेगा। वह एक बलवान राजा हुआ और उसका नाम मान्धाता हुआ । हे राजन् ! मैंने आपको मान्धाता की उत्पत्ति की कथा को विस्तार पूर्वक सुनाया ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

राजा सत्यव्रत के त्रिशंकु नाम पड़ने के कारण का निरुपण

व्यासजी ने कहा– मान्धाता एक चक्रवर्ती राजा हुए, वे सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर उसके स्वामी बन गये । उनके भय से भयभीत होकर लुटेरे तथा डकैत पर्वतों की गुफाओं में जाकर छिप गये । इसीलिए इन्द्र ने मान्धाता का नाम त्रसदस्यु रखा ॥२॥ मान्धाता की पत्नी का नाम विन्दुमती था । वह शशबिन्दु की पुत्री थी। पत्नी के समस्त लक्षणों से सम्पन्न वह सुन्दरी पतिव्रता थी। मान्धाता ने उसमें दो पुत्रों को उत्पन्न किया प्रख्यात पुरुकुत्स को तथा मुचकन्द को ॥४॥ पुरुकुत्स के पुत्र का नाम अरण्य हुआ । अरण्य अत्यंत धार्मिक थे, वे अपने पिता की ही भक्ति में लगे रहते थे, अरण्य के

हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित् । तस्यात्मजस्त्रिधन्वाऽभूदरुणस्तस्य चात्मजः ॥६॥ अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः । सोऽभूदिच्छाचरः
कामो मंदात्मा ह्यतिलोलुपः ॥७॥ स पापात्मा विप्रभार्यां ह्यतवान्काममोहितः । विवाहे तस्य विघ्नं स चकार नृपतेः सुतः ॥८॥ मिलिता
ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप । ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताःस्मेति चासकृत् ॥९॥ पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः । किं कृतं मम
पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः ॥१०॥ तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम् । तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम् ॥११॥ ब्राह्मणा
ऊचुः– **राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल । विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनांवर ॥१२॥** व्यास उवाच-- **श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा**
परमधार्मिकः । पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा ॥१३॥ गच्छ दूरं सुमन्दात्मन् दुराचार गृहान्मम । न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम
सर्वथा॥१४॥ कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामीति वै मुहुः । अरुणस्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय ॥१५॥ श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम्।
तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम् ॥१६॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन । यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन्कीर्तिनाशः कृतस्त्वया ॥१७॥

पुत्र बृहदश्व हुए ॥५॥ बृहदश्व के पुत्र धार्मिक तथा परमार्थ के ज्ञाता हर्यश्व हुए । हर्यश्व के पुत्र त्रिधन्वा हुए और त्रिधन्वा के पुत्र अरुण हुए ॥६॥ अरुण के पुत्र श्रीमान् सत्यव्रत हुए वे स्वेच्छाचारी, कामुक, अज्ञानी तथा अत्यंत लोभी हुए ॥७॥ पापी होने के कारण सत्यव्रत ने कामार्त होकर एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण कर लिया । जब उस ब्राह्मण कन्या का विवाह हो रहा था उसी समय सत्यव्रत ने उसका अपहरण कर लिया ॥८॥ सभी ब्राह्मण एक साथ मिलकर राजा अरुण के पास गये और दुःख से अत्यंत व्याकुल होकर बार-बार कहने लगे हाय ! हम मारे गये ॥९॥ उन दुःखी तथा नगर निवासी ब्राह्मणों से **राजा ने कहा–** हे ब्राह्मणों ! मेरे पुत्र ने आप लोगों का कौन सा अपराध किया है ?॥१०॥ राजा की विनययुक्त उस वाणी को सुनकर ब्राह्मणों ने राजा अरुण को आशीर्वाद देकर कहा ॥११॥ **ब्राह्मणों ने कहा–** हे बलवानों में श्रेष्ठ राजन् ! आपके पुत्र ने आज विवाह के समय एक ब्राह्मण की विवाहिता कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर लिया है ॥१२॥ **व्यासजी ने कहा–** उन ब्राह्मणों की सत्यवाणी को सुनकर अत्यंत धार्मिक राजा ने अपने पुत्र से कहा– दुष्ट कर्म करने वाले तुमने मेरा नाम व्यर्थ बना दिया है ॥१३॥ हे मदात्मन् ! हे दुराचारी ! तुम मेरे घर से बहुत दूर चले जाओ । अरे पापी! तुम मेरे राज्य में मत रहो ॥१४॥ अपने क्रुद्ध हुए पिता से सत्यव्रत ने बार-बार कहा । आप बतलाइए कि मैं कहाँ चला जाऊँ ? तो राजा ने कहा कि तुम जाकर चाण्डालों के साथ निवास करो ॥१५॥ ब्राह्मण की पत्नी के अपहरण करने का काम चाण्डाल ही करते हैं । अतएव तुम चाण्डालों के साथ सम्बन्ध करके उनके साथ सुखपूर्वक निवास करो ॥१६॥ हे कुल को विनष्ट करने वाले ! मैं तुम जैसे पुत्र से पुत्रवान नहीं होना चाहता । तुमने मेरे यश का नाश किया है ॥१७॥ सत्यव्रत भी अपने कुपित पिता की बात सुनकर उस नगर से बाहर निकल गया और चाण्डालों के पास गया । उस समय सत्यव्रत

स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः । निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान् ययौ ॥१८॥ सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते । धनुर्बाणधरः
श्रीमान्कवची करुणालयः ॥१९॥ यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना । गुरुणाऽथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः ॥२० ॥
तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः । वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे ॥२१॥ केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः । पुत्रार्थेऽसौ
तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः ॥२२॥ न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः । समा द्वादश राजेंद्र तेनाधर्मेण सर्वथा ॥२३॥ विश्वामित्रस्तदा
दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप । संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः ॥२४॥ कातरा तत्र संजाता भार्या वै कौशिकस्य ह । कुटुम्बभरणार्थाय
दुःखिता वरवर्णिनी ॥२५॥ बालकान्क्षुधयाऽऽक्रांतान्रुदतः पश्यती भृशम् । याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता ॥२६॥ चिंतयामास दुःखार्ता
तोकान्वीक्ष्य क्षुधातुरान् । नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम् ॥२७॥ न मे त्राताऽस्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ । रुदंति बालकाः
कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै ॥२८॥ धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः । न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम् ॥२९॥ बालानां
भरणं केन करोमि पतिना विना । मरिष्यन्ति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम् ॥३०॥ एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः । पालयामि

चाण्डालों के ही साथ रहने लगा । वह करुणावान् था, वह सदा धनुष बाण धारण करके कवच पहने रहता था । वह स्वभाव से कारुणिक था ॥१९॥
राजा अरुण अपने गुरुवसिष्ठ से प्रेरित होकर ही उसे अपने राज्य से निकाल दिये थे ॥२०॥ अतएव राजा सत्यव्रत का महर्षि बसिष्ठ पर क्रोध था । क्योंकि
महर्षि वसिष्ठ तो धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हैं, फिर भी मेरे पिता को उन्होने रोका नहीं ॥२१॥ किसी कारण वशात् राजा पुत्र प्राप्त करने के लिए गृह का त्याग
करके वन में तपस्या करने के लिए चले गये ॥२२॥ सत्यव्रत के द्वारा किए गये उस अधर्म के कारण इन्द्र ने बारह वर्षो तक वर्षा ही नहीं किया । अतएव
उस राज्य में भयंकर आकाल पड़ गया ॥२३॥ उस समय महर्षि विश्वामित्र भी अपनी पत्नी का परित्याग करके कौशिकी नदी के तट पर कठोर तपस्या
करने लगे ॥२४॥ उस समय विश्वामित्र महर्षि की पत्नी अत्यन्त दुःखी हो गयी । वह सुन्दरी अपने परिवार के पालने के साधन के अभाव के कारण दुःखी
थी ॥२५॥ अपने भूखे बच्चों को देखकर वह अत्यंत दुःखी होती थीं । वे अपने खाने के लिए नीवारों को माँगते थे किन्तु उस पतिव्रता को नीवार बड़ी
ही मुश्किल से किसी तरह मिलता था ॥२६॥ महर्षि विश्वामित्र की पत्नी बच्चों को भूखे देखकर सोचने लगी इस समय तो राजा भी इस नगर में नही
हैं । मैं किस से याचना करुँ तथा क्या करुँ ?॥२७॥ मेरे पुत्रों की रक्षा करने वाला कोई नही है । यहाँ मेरे पति भी नहीं है । बच्चे भूख से रोते रहते
हैं मेरे जीवन को धिक्कार है ॥२८॥ मेरे पति भी मुझे धनहीन छोड़कर तपस्या करने चले गये। यद्यपि वे बच्चों का पालन करने में समर्थ हैं किन्तु मुझ धनहीन
के विषय में उनको कोई जानकारी भी नहीं है ॥२९॥ पति के विना मैं किस साधन से बच्चों का भरण-पोषण कर सकती हूँ। भूख से पीड़ित होकर मेरे

सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः ॥३१॥ सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये । कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथात्मजम् ॥३२॥ हृदयं
कठिनं कृत्वा संचिंत्य मनसा सती । सा दर्भरज्ज्वा बद्ध्वाऽथ गले पुत्रं विनिर्गता ॥३३॥ मुनिपत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शेषस्य
भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात् ॥३४॥ दृष्टा सत्यव्रतेनार्ता तापसी शोकसंयुता । पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने ॥३५॥ रुदंतं
बालकं कंठे बद्ध्वा नयसि काऽधुना । किमर्थं चारुसर्वांगि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः ॥३६॥ ऋषिपत्न्युवाच– विश्वामित्रस्य भार्याऽहं पुत्रोऽयं मे
नृपात्मज । विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम् ॥३७॥ अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित् । विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय
वै ॥३८॥ राजोवाच– पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव । तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवागमिष्यति ॥३९॥ वृक्षे तवाश्रमाभ्याशे भक्ष्यं
किञ्चिन्निरंतरम् । बंधयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥४०॥ इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी । विबंधं तनयं कृत्वा जगामाश्रममंडलम्॥४१॥
सोऽभवद्गालवो नाम गलबंधान्महातपाः । सा तु स्वस्याश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता ॥४२॥ सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः ।

बच्चे मर जायेंगे ॥३०॥ इसलिए मैं अपने एक बच्चे को बेच दूँगी । उससे जो धन मिलेगा उसी से बच्चों का पालन करुँगी । हमारे भाग्य में यही लिखा
है ॥३१॥ इस विपत्ति के समय में सभी बच्चों को मार डालना ठीक नहीं है । समय बिताने के लिए ही मैं अपने एक पुत्र को बेच रही हूँ ॥३२॥ इस
तरह से अपने मन में सोचकर महर्षि विश्वामित्र की पत्नी ने अपना कलेजा कठोर बना लिया । उन्होंने अपने पुत्र के गले में कुश की रस्सी बांधकर घर
से बाहर निकलीं । महर्षि विश्वामित्र की पत्नी ने अपने मध्यम पुत्र के गले में रस्सी बांधा था । बचे हुए पुत्रों का भरण-पोषण करने के लिए वे घर से
बाहर निकली थीं ॥३३-३४॥ उसी समय सत्यव्रत ने उस दुखी तपस्विनी को शोक संतप्त होते हुए देखा । उन्होनें ऋषि पत्नी से पूछा– हे शोभने ! तुम
क्या करना चाहती हो ?॥३५॥ इस रोते हुए बालक को गले में रस्सी बांधकर कहाँ ले जा रही हो । हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! ऐसा तुम क्यों कर रही हो ?
मुझे सत्य-सत्य बतलाओ ॥३६॥ **ऋषिपत्नी ने कहा–** हे राजकुमार ! मैं महर्षि विश्वामित्र की पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है । मैं अपने इस मध्यम पुत्र को
विपत्ति के कारण बेच रही हूँ ॥३७॥ घर में अन्न बिल्कुल नही है । मेरे पति तपस्या करने के लिए कहीं चले गये हैं । इस पुत्र को दूसरे बच्चों का भरण-
पोषण करने के लिए बेचने जा रही हूँ ॥३८॥ **राजा सत्यव्रत ने कहा–** हे पतिव्रते ! तुम अपने पुत्र की रक्षा करो । भरण-पोषण की व्यवस्था मैं कर दे
रहा हूँ। जब तक तुम्हारे पति भी वन से लौट आयेंगे ॥३९॥ मैं प्रतिदिन तुम्हारे आश्रम के सन्निकट कुछ खाने योग्य वस्तु बांधकर चला जाया करुँगा,
यह बात मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ ॥४० ॥ उस राजा सत्यव्रत के कहने पर महर्षि विश्वामित्र की पत्नी अपने पुत्र को बन्धन से खोलकर आश्रम में चली
गयी ॥४१॥ चूंकि उस बालक के गले में रस्सी बांधा गया था अतएव वह गालव के नाम से प्रसिद्ध हो गया । वह अपने आश्रम में जाकर अपने पुत्रों

विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद्बभार ह ॥४३॥ वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा । विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबंध ह ॥४४॥
ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः । निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम् ॥४५॥ अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवांतःपुरं मुनिः । गते तप्तुं
नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत ॥४६॥ सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद्बहिः । पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने ॥४७॥ सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च
कस्यचित्कारणान्नृपः । वसिष्ठे चाधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा ॥४८॥ त्यज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम् । न वारयामास
मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह ॥४९॥ पाणिग्रहणमंत्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे ॥५०॥ कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये
मृगाभावे महीपतिः । वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम् ॥५१॥ तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत् । वृक्षे बबंध तन्मांसं नीत्वा
स्वयमभक्षयत् ॥५२॥ ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा । शंकमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रत ॥५३॥ वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा
क्रुद्धस्तमब्रवीत् । दुरात्मन्किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत् ॥५४॥ एवं ते शंकवः क्रूराः पतंतु त्वरितास्त्रयः । गोवधाद्दारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा

के साथ आनन्द का अनुभव की ॥४२॥ भक्ति तथा कृपा से सराबोर होकर सत्यव्रत भी विश्वामित्र की पत्नी का भरण-पोषण करने लगे ॥४३॥ वे वन के मृगों, वराहों तथा महिषों को मारकर विश्वामित्र के आश्रम के सन्निकट के वृक्ष में कुछ मांस बांध आते थे ॥४४॥ वहाँ से उस मांस को लेकर ऋषि की पत्नी अपने पुत्रों को देती थी । इस तरह से श्रेष्ठ भक्ष्य पदार्थ को प्राप्त करके वह परम सुख को प्राप्त करती थी ॥४५॥ राजा के तपस्या करने के लिए राजा के चले जाने पर महर्षि वसिष्ठ अयोध्या के अन्तः पुर की रक्षा का कार्य करते थे ॥४६॥ राजा सत्यव्रत भी नगर से बाहर ही रहते थे । वे अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन में पशुओं को मारने का काम करते थे ॥४७॥ सत्यव्रत अकस्मात् किसी कारण से वसिष्ठ महर्षि के प्रति अत्यधिक क्रोध करते थे ॥४८॥ उनके मन में यह बात बनी रहती थी कि जब मेरे पिता मेरा परित्याग कर रहे थे उस समय ये महर्षि उनको ऐसा करने से रोके नहीं ॥४९॥ विवाह के मन्त्रों द्वारा सप्तपदी करा लेने पर ही विवाह पूरा होता है । इस बात को जानते हुए मैने यदि विप्र कन्या का अपहरण किया तो वह विप्रपत्नी का अपहरण कैसे हो सकता है ?॥५०॥ एक दिन राजा सत्यव्रत को वन में कोई मृग नहीं मिला । उन्होनें वन में चरती हुई वसिष्ठ की गौ को देखा ॥५१॥ उन्होनें भूख, क्रोध तथा अज्ञान के कारण डकैत के समान उस गौ को मार दिया और गौ के मांस का कुछ भाग वृक्ष में बांधकर शेष भाग स्वयं खा गये ॥५२॥ महर्षि विश्वामित्र की पत्नी ने भी उस गौ के मांस को अपने बच्चों को खिला दिया । क्योंकि वे यह समझती थी कि यह मृग का मांस है, गौ का मांस नहीं ॥५३॥ वसिष्ठ महर्षि ने जब यह जाना कि उनकी गौ मार दी गयी है तो क्रुद्ध होकर उन्होनें सत्यव्रत से कहा— अरे दुष्ट ! तुमने पिशाच के समान इस गौ को मारकर बहुत बड़ा पाप किया है ॥५४॥ इसलिए तुम्हारे ललाट पर, गौ वध करने के कारण, ब्राह्मण की पत्नी का

भृशम् ॥५५॥ त्रिशंकुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि । पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम् ॥५६॥ व्यास उवाच– **एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः । चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः ॥५७॥ कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मंत्रमनुत्तमम् । ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम् ॥५८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशंकुनृपतेः सुतः । कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते ॥१॥** व्यास उवाच– **सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान् । तस्मिन्नेवाश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः ॥२॥ कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मंत्रं नवाक्षरम् । होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा**

अपहरण करने के कारण तथा अपने पिता के क्रोध के कारण तीन क्रूर शंकुओं के चिन्ह बन जाँय ॥५५॥ तुम भूलोक में त्रिशंकु के नाम से प्रसिद्ध होओगे। तुम सभी शरीर धारियों को पिशाच के समान भयंकर दिखाई दोगे ॥५६॥ **व्यासजी ने कहा**– महर्षि वसिष्ठ के द्वारा इस प्रकार से अभिशप्त होने के कारण राजा सत्यव्रत उसी आश्रम में रहते हुए कठोर तपस्या करने लगे ॥५७॥ उन्होनें किसी मुनि पुत्र से उत्तम मन्त्र प्राप्त करके कल्याणकारिणी परमाप्रकृति देवी का ध्यान करते हुए तीव्र तपस्या कर रहे थे ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

सत्यव्रतोपाख्यान

राजा जनमेजय ने व्यासजी से कहा– हे महामते ! आप मुझे यह बात बतलाइए कि महर्षि वसिष्ठ से अभिशप्त राजकुमार त्रिशंकु उस शाप से कैसे मुक्ति प्राप्त किए ॥१॥ **व्यासजी ने कहा**– महर्षि वसिष्ठ के शाप के कारण राजा सत्यव्रत ने पिशाचत्व की प्राप्ति कर ली और वे उसी आश्रम में रहकर देवी की भक्ति करने लगे ॥२॥ एक बार राजा सत्यव्रत देवी के नवाक्षर मंत्र का जप करके उसका होम कराने के लिए ब्राह्मणों के पास गये और प्रणाम करके

प्रणम्योवाच भक्तितः ॥३॥ भूमिदेवाः श्रृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे । ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवंतः प्रभवंतु ह ॥४॥ जपस्य च दशांशेन होमः
कार्यो विधानतः । भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः ॥५॥ सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदांवराः । कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा
सुखहेतवे ॥६॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम् । शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाऽधुना ॥७॥ न यागार्होऽसि तस्मात्त्वं
वेदेष्वनधिकारतः । पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम् ॥८॥ व्यास उवाच– तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह । धिग्जीवितमिदं मेऽद्य
किं करोमि वने स्थितः ॥९॥ पित्रा चाहं परित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम् । राज्याद्भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम् ॥१०॥ तदा पृथुतरां
कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः । सस्मार चंडिकां देवीं प्रवेशमनुचिंतयन् ॥११॥ स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः । कृत्वा स्नात्वा
प्रवेशार्थं स्थितः प्रांजलिरग्रतः ॥१२॥ ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम् । आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः ॥१३॥ दत्त्वाऽथ
दर्शनं देवी तमुवाचनृपात्मजम् । सिंहारूढा महाराज मेघगंभीरया गिरा ॥१४॥ देव्युवाच– किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज । स्थिरो
भव महाभाग पिता ते जरसान्वितः ॥१५॥ राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गंताऽस्ति तपसे किल । विषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते ॥१६॥ नेतुं

उन्होनें कहा– हे ब्रह्मणों ! मैं आप लोगों के शरण में हूँ । आपलोग मेरी बात सुनें । आपलोग मेरे ऋत्विज बन जायँ ॥४॥ आपलोग मेरे द्वारा किये
गये मंत्र के जप का दशांश होम विधिपूर्वक करा दीजिये । आप सब लोग वेदों के ज्ञाता एवं कृपालु हैं ॥५॥ हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ! मैं सत्यव्रत नाम का
राजा का पुत्र हूँ । आपलोग सुखप्राप्ति के लिए मेरे इस कार्य को करा दीजिये ॥६॥ सत्यव्रत की बातों को सुनकर ब्राह्मणों ने राजकुमार सत्यव्रत से कहा–
तुम अपने गुरु से अभिशप्त हो । और तुमने पिशाचत्व को प्राप्त भी कर लिया है ॥७॥ अतएव तुम याग करने के अधिकारी नहीं हो । पिशाचत्व को
प्राप्त करने वाला प्राणी सम्पूर्ण संसार में निन्दित होता है ॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** उन ब्राह्मणों की बात को सुनकर सत्यव्रत अत्यंत दुःखी हो गये । मेरे
इस जीवन को धिक्कार है। मैं वन में रहकर क्या करुँ ॥९॥ पिता ने मेरा परित्याग कर दिया है। मुनि ने मुझे शाप दे दिया है। मैं राज्य का अधिकारी
नही हूँ । इस पिशाचत्व को भी मैंने प्राप्त कर लिया है । अतएव अब मैं क्या कर लूँ ॥१०॥ उस राजकुमार सत्यव्रत ने लकड़ियों को एकत्रित करके
बहुत बड़ी चिता बनायी और उस चिता में प्रवेश कर जाने की इच्छा से उसने देवी का स्मरण किया ॥११॥ उसने पहले स्नान किया उसके बाद उस चिता
को अपने सामने प्रज्ज्वलित किया । और चिता में प्रवेश करने की इच्छा से हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा हो गया ॥१२॥ देवी ने जान लिया कि यह
अब मर जाना चाहता है तो वे उसके सामने ही आकाश में प्रकट हो गयी ॥१३॥ राजकुमार को दर्शन देकर सिंहवाहिनी, देवी ने मेघ के समान गंभीर
वाणी में सत्यव्रत से कहा ॥१४॥ **देवी ने कहा–** हे राजकुमार ! तुम यह क्या कर रहे हो ? अग्नि में अपने शरीर को मत जलाओ तुम शान्त होओ । तुम्हारे

त्वामागमिष्यन्ति सचिवाश्च पितुस्तव । मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने ।।१७।। जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः । व्यास उवाच– इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवांतरधीयत ।।१८।। राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः । अयोध्यायां तदाऽऽगत्य नारदेन महात्मना ।।१९।। वृत्तांतः कथितः सर्वो राज्ञे सत्वरमादितः । श्रुत्वा राजाऽथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम् ।।२०।। खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः । सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः ।।२१।। ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम् । त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम ।।२२।। आज्ञयाऽसौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित् । स्थितस्तत्रैव विपिने धनहीनः क्षमान्वितः ।।२३।। वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाच सदृशः कृतः । सोऽद्य दुःखेन संतप्तः प्रवेष्टुं च हुताशनम् ।।२४।। उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः । तस्माद्गच्छन्तु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम्।।२५।। आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयंत्विह ।। अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम् ।।२६।। वनं यास्यामि शांतोऽहं तपसे कृतनिश्चयः । इत्युक्त्वा मंत्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः ।।२७।। तस्यैवानयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः । ते गत्वा तं समाश्वास्य मन्त्रिणः पार्थिवात्मजम् ।।२८।। अयोध्यायां

पिता बृद्ध हो गये हैं ।।१५।। वे तुमको राज्य प्रदान करके तपस्या करने के लिए वन में जाने वाले हैं । हे राजन् ! तुम विषाद करना छोड़ दो । परसों दिन तुम्हारे पिता के मंत्रीगण तुम्हें लेने के लिए आने वाले हैं । मेरी कृपा से तुम्हारे पिता तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे ।।१६-१७।। वे अपनी सारी कामनाओं पर विजय प्राप्त करके ब्रह्मलोक चले जायेंगें । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से राजकुमार सत्यव्रत को कहकर देवी अर्न्तध्यान हो गयीं ।।१८।। राजकुमार भी अग्नि में जलकर मर जाने का निश्चय छोड़ दिये । उसी समय शीघ्र ही नारदजी अयोध्या जाकर राजा को सारा वृतान्त सुनाये । राजा ने अपने पुत्र की आत्महत्या के प्रयास का वृत्तांत सुना ।।१९-२०।। उसको सुनकर राजा को मन ही मन बड़ा ही कष्ट हुआ । वे अनेक प्रकार से विचार किये । अपने पुत्र के शोक से संतप्त राजा ने अपने मंत्रियों से कहा ।।२१।। आप लोग मेरे पुत्र के अत्यंत उग्र कार्य को तो जानते ही हैं । मैनें अपने बुद्धिमान पुत्र सत्यव्रत का वन मे परित्याग कर दिया है ।।२२।। यह वह सत्यव्रत राज्य के योग्य था, और परमार्थ को जानने वाला था किन्तु वह मेरी आज्ञा से वन में चला गया । क्षमाशील वह धनहीन होकर वन में ही रहने लगा ।।२३।। वसिष्ठजी ने उसे शाप देकर पिशाच के समान बना दिया है । वह आज दुःख से दुःखी होकर अग्नि में प्रवेश करने के लिए तैयार था किन्तु महादेवी के द्वारा उसे ऐसा करने से रोक दिया गया । वह अभी जीवित है, अतएव आपलोग मेरे उस बलवान पुत्र के पास शीघ्र जायँ ।।२४-२५।। उसको अपनी वाणी से आश्वस्त करके आपलोग शीघ्र लिवा लायें । वह मेरा औरस पुत्र है । प्रजा का पालन करने में समर्थ है । मैं उसका अभिषेक करके ।।२६।। शान्त मन से तपस्या करने के लिए जाऊँगा । ऐसा मैनें निश्चय कर लिया है । इस तरह से कहकर राजा ने अपने मंत्रियों को राजकुमार सत्यव्रत के पास उसको लाने के लिए प्रेमपूर्ण मन से भेजा । वे मंत्रिगण उस राजकुमार के

महात्मानं मानपूर्वं समानयन् । दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनांबरम् ॥२९॥ जटाजूटधरं क्रूरं चिंतातुरमचिंतयत् । किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः ॥३०॥ राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम् । इति संचिंत्य मनसा तमालिंग्य महीपतिः ॥३१॥ आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत्। उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह ॥३२॥ प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्रविशारदः । राजोवाच– पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया मुखोद्भवाः॥३३॥ न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः । नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित् ॥३४॥ शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीयास्तपस्विनः । हन्तव्या दस्यवः क्रूरा इन्द्रियाणां तथा जयः ॥३५॥ कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि । मंत्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैः सह॥३६॥ नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत । न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम् ॥३७॥ चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा । धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः ॥३८॥ शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसंगं च वर्जयेत् । यष्टव्याः विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः ॥३९॥ न विश्वसेत्स्त्रियं क्वापि स्त्रैणद्यूतरतं नरम् । अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन ॥४०॥ द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु

पास जाकर उसको आश्वस्त किए ॥२७-२८॥ और सम्मान पूर्वक उसे अयोध्या लाए। राजा ने दुर्बल तथा मलीन वस्त्र पहने हुए सत्यव्रत को देखकर॥२९॥ तथा उसे जटाजूट धारण किए हुए क्रूर एवं चिन्तित देखकर सोचने लगे कि मैनें कितना निष्ठुर कर्म किया है। मैनें अपने पुत्र को वन में भेज दिया ॥३०॥ यह राज्य करने के योग्य, मेधावी तथा धर्म के स्वरूप को जानने वाला है। इस तरह से विचार करके राजा ने सत्यव्रत का अलिङ्गन किया ॥३१॥ और उसको आश्वस्त करके अपने समीप के आसन पर बैठाया । बैठे हुए पुत्र से राजा ने प्रेमपूर्वक कहा ॥३२॥ नीतिशास्त्र में निपुण राजा अरुण ने उससे प्रेम से गद्‌गद बनी वाणी में कहा **राजा ने कहा–** हे पुत्र ! तुम्हारी बुद्धि धर्म में स्थिर होनी चाहिए, ब्राह्मणों का तुम्हें सम्मान करना चाहिए ॥३३॥ तुम्हें न्याय पूर्वक प्राप्त धन को ही स्वीकार करना चाहिए और सर्वदा प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए । कभी भी झूठ नही बोलना चाहिए, कभी कुमार्गगामी नहीं होना चाहिए ॥३४॥ तुम्हें शिष्ट पुरुषों के द्वारा उपदिष्ट कार्यों को ही करना चाहिए । तपस्वियों की पूजा करनी चाहिए । क्रूर डकैतों का वध करना चाहिए और अपने इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए ॥३५॥ हे पुत्र ! अपने कार्य की सिद्धि के लिए सदा उद्योग करना चाहिए। अपने मंत्रियों के साथ गुप्तरीति से ही मन्त्रणा करनी चाहिए ॥३६॥ हे पुत्र ! अपने छोटे से भी शत्रु की कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि कोई मंत्री नम्र हो किन्तु शत्रु से मिला हुआ हो तो उस पर विश्वास कभी नहीं करना चाहिए ॥३७॥ चाहे अपना शत्रु हो अथवा मित्र किन्तु उसकी गतिविधि जानने के लिए उस पर गुप्तचर लगाये रखना चाहिए । हमेशा धार्मिक बुद्धि बनाये रखना चाहिए और प्रतिदिन दान करना चाहिए ॥३८॥ कभी व्यर्थ के विवाद नहीं करना चाहिए और दुष्टों की संगति से सदा दूर रहना चाहिए । अनेक प्रकार के यज्ञों को करना चाहिए और महर्षियों की पूजा करनी चाहिए ॥३९॥ कभी भी

च । स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत् ॥४१॥ ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्मुत्थानं सर्वथा सदा। स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवत्तथा ॥४२॥ पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः । पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम् ॥४३॥ सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन् । न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः ॥४४॥ सर्वं दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि । इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा ॥४५॥ कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गंतव्यं सदसि द्विजान् । समाहूय च प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः । कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥४६॥ संपूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदांगपारगान् । गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा ॥४७॥ अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन । अहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित् ॥४८॥ न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलंघनम् । अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम् ॥४९॥ ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः । कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः ॥५०॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् । तेषां सर्वत्रगं तेजः

स्त्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए औन. न तो स्त्रीप्रेमी तथा जुआ खेलने वालों पर विश्वास करना चाहिए । कभी भी आखेट में अत्यधिक समादर युक्त नहीं होना चाहिए ॥४०॥ जुआ, मदिरा, अश्लील गायन, तथा वेश्या इन सबों से बचना चाहिए और अपनी प्रजा को इन सबों से बचाना चाहिए ॥४१॥ हमेशा ब्राह्ममुहूर्त में जगना चाहिए और स्नान आदि सभी नित्य कृत्यों को सम्पन्न करके ॥४२॥ दीक्षा ग्रहण करके भक्तिपूर्वक पराम्बा के चरणों की पूजा करनी चाहिए । हे पुत्र ! इस मानव जीवन की सफलता पराम्बा की पूजा करने में ही है ॥४३॥ एक बार देवी की पूजा करके उनके चरणों का जल पीने वाला व्यक्ति कभी माता के गर्भ में नही जाता है, वह मुक्त हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥४४॥ यह सम्पूर्ण संसार दृश्य है । और महादेवी ही द्रष्टा हैं, साक्षी हैं । इस तरह की भावना से भूषित होकर सदा निर्भय रहना चाहिए ॥४५॥ नित्यविधि अच्छी तरह से सम्पन्न करके सभा में जाना चाहिए । वहाँ पर ज्ञानी ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रीय निर्णयों को जानना चाहिए ॥४६॥ वेदों तथा वेदान्तो में पारङ्गत ब्राह्मणों की अच्छी तरह से पूजा करके योग्य पात्रों को गौ, भूमि तथा सुवर्ण का दान देना चाहिए ॥४७॥ किसी भी अज्ञानी ब्राह्मण की पूजा नहीं करनी चाहिए । मूर्ख को कभी भी भोजन आवश्यकता से अधिक नहीं देना चाहिए ॥४८॥ हे पुत्र ! किसी प्रकार के लोभ के कारण धर्म का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । इसके बाद तुम कभी भी ब्राह्मणों का अपमान मत करना ॥४९॥ ब्राह्मण भूलोक के देवता हैं । उनका सदा सम्मान करना चाहिए । यह भी निश्चित है कि क्षत्रियों की उन्नति के कारण ब्राह्मण ही हैं ॥५०॥ जल से अग्नि ब्रह्म से क्षत्रिय की तथा पत्थर से लोहे की उत्पत्ति हुई है। उन कार्य द्रव्यों के तेज की शान्ति

स्वासु योनिषु शाम्यति ॥५१॥ तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः । दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता ॥५२॥ दंडनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः । कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह ॥५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

व्यास उवाच— **एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिंशकुः प्रणतो नृपः । तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्गदया गिरा ॥१॥ विप्रानाहूय मंत्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान्। अभिषेकाय संभारान्कारयामास सत्वरम् ॥२॥ सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः । प्रकृतीश्च समाहूय सामंतान्भूपतींस्तथा ॥३॥ पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम् । अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिंशकुं विधिवत्पिता ॥४॥ तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया युतः । वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः ॥५॥ काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि । इन्द्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा ॥६॥** राजोवाच— **पूर्वं भगवता प्रोक्तं**

अपने कारण द्रव्य में ही होती है ॥५१॥ अतएव कल्याण कामी क्षत्रियों को चाहिए कि वे विशेष रुप से ब्राह्मणों का सम्मान दान, एवं विनय के द्वारा करें ॥५२॥ सर्वदा धर्मशास्त्र के अनुसार ही दण्डनीति का व्यवहार करना चाहिए एवं न्यायानुकूल ही कोष का संग्रह करना चाहिए ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

राजा त्रिशंकु की कथा

व्यासजी ने कहा— हे राजन् ! अपने पिता अरुण द्वारा इस प्रकार से उपदिष्ट होने पर प्रेमपूर्ण वाणी से राजा त्रिशंकु ने अत्यंत नम्रता पूर्वक कहा— पिताजी मैं ऐसा ही करुँगा ॥१॥ इसके बाद महाराज अरुण ने वेद एवं शास्त्रों में पारङ्गत मंत्रों के जानकार ब्रह्मणों को बुलाकर शीघ्र ही अभिषेक की तैयारी की ॥२॥ राजा ने सभी तीर्थों का जल मंगवाकर तथा प्रजाओं, सामन्तों तथा राजाओं को बुलाकर ॥३॥ शुभ दिन को विधिपूर्वक त्रिशंकु को सिंहासन प्रदान कर दिया । वे विधिपूर्वक त्रिशंकु का राज्याभिषेक करके ॥४॥ अपनी पत्नी के साथ पवित्र वानप्रस्थ आश्रम को स्वीकार कर लिये और वन मे जाकर गंगानदी के तटपर कठोर तपस्या करने लगे ॥५॥ मृत्यु की बेला आने पर राजा देवताओं द्वारा सम्मानित होकर स्वर्ग चले गये और

कथायोगेन सांप्रतम् । सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल ॥७॥ कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः । कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयःप्रभो॥८॥ न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः । मुनिना मोचितः शापात्केनान्येन च कर्मणा ॥९॥ एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षस्य कारणम् । आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः ॥१०॥ व्यास उवाच– वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः । दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयंकरः ॥११॥ यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्यव्रतेन ह । तया प्रसन्नया राजन्दिव्यदेहः कृतः क्षणात् ॥१२॥ पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम् । विपाप्मा चातितेजस्वी संभूतस्तत्कृपाऽमृतात् ॥१३॥ वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः । पिताऽपि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात् ॥१४॥ राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः । ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम् ॥१५॥ तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चन्द्रः सशोभनः । लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुन्दरः ॥१६॥ युवराजं सुतं कृत्वा त्रिंशकुः पृथिवीपतिः । मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे ॥१७॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः । उवाच वचनं प्रीतःकृतांजलिपुटस्तदा ॥१८॥ राजोवाच–

सूर्य के समान ही इन्द्र के सिंहासन के समीप ही सुशोभित होने लगे ॥६॥ **राजा जनमेजय ने व्यासजी से कहा–** पहले कथा के प्रसंग में आपने कहा है कि गौ का वध करने के कारण वसिष्ठ ने सत्यव्रत को क्रुद्ध होकर शाप दे दिया था और उसके फलस्वरुप वे पिशाचत्व की प्राप्ति कर लिये थे । अतएव हे प्रभो! मुझे इस बात की शङ्का है कि उन्हें पिशाचत्व से मुक्ति कैसे मिली ?॥७-८॥ हे प्रभो ! अभिशप्त व्यक्ति राज्यसिंहासन के योग्य नहीं होता है। क्या मुनि वसिष्ठ ने उन्हें आशीर्वाद देकर शाप से मुक्त कर दिया अथवा वे किसी दूसरे कर्म के कारण शाप से मुक्त हो गये ॥९॥ ब्रह्मर्षि ! आप राजा सत्यव्रत के शाप की मुक्ति का कारण मुझे बताइए। किञ्च उनके पिता अरुण उस प्रकार के भयंकर आकार वाले सत्यव्रत को कैसे अपने घर लाए ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** महर्षि वसिष्ठ के द्वारा शापग्रस्त होकर राजा सत्यव्रत शीघ्र ही पिशाच हो गये । उनका वेष खराब हो गया उनका आकार सभी प्राणियों के लिए भयंकर और दुर्घर्ष हो गया ॥११॥ जब राजा सत्यव्रत ने देवी की उपासना की तो उनकी आराधना से देवी ने प्रसन्न होकर उनका शरीर दिव्य कर दिया॥१२॥ देवी की कृपा के फलस्वरूप सत्यव्रत का पिशाचत्व समाप्त हो गया और उसका कारणभूत पाप भी विनष्ट हो गया । देवी की कृपा रुप अमृत के द्वारा वे पापरहित और अत्यंत तेजस्वी हो गये ॥१३॥ देवी की ही कृपा के फलस्वरुप महर्षि वसिष्ठ जी भी प्रसन्न हो गये । देवी की ही कृपा से सत्यव्रत के पिता उनसे प्रेम करने लगे ॥१४॥ अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर सत्यव्रत ने धर्मपूर्वक राज्य का प्रशासन किया । उन्होनें अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके देवों की भी आराध्या एवं सनातनी देवी की पूजा की ॥१५॥ राजा सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चचन्द्र हुए वे अत्यंत सुन्दर थे । वे शास्त्रों के सभी लक्षणों से सम्पन्न तथा देखने में अत्यंत सुन्दर थे ॥१६॥ पृथिवीपति त्रिशंकु ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र को युवराज बना दिया और उनके मन में यह बात आयी की मैं इस मानव शरीर

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमंत्रविशारद । विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस ॥१९॥ इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च । अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान् ॥२०॥ अपसरोभिश्च संवासःक्रीडितुं नंदने वने । देवगंधर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल ॥२१॥ याजय त्वं मखेनाशु तादृशेन महामुने । यथाऽनेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम् ॥२२॥ समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना । प्रापयाशु मखं कृत्वा देवलोकं दुरासदम्॥२३॥ वसिष्ठ उवाच– **राजन्मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः । मृतस्य हि ध्रुवं स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा ॥२४॥ तस्माद्बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात् । अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः ॥२५॥ कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि ।** व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः ॥२६॥ उवाच वचनं भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम् । न त्वं याजयसे ब्रह्मन्गर्वविशाच्च मां यदि ॥२७॥ अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल सांप्रतम् । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः ॥२८॥ शशाप भूपतिं चेति चंडालो भव दुर्मते । अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम् ॥२९॥ स्वर्गकृन्तन पापिष्ठ सुरभिवधदूषित । ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्नधर्ममार्गविदूषक ॥३०॥ न ते स्वर्गगतिः पाप**

से ही स्वर्ग में चला जाऊँ ॥१७॥ वे महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में गये और विधिपूर्वक महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम करके प्रेमपूर्वक तथा हाथ जोड़कर महर्षि से कहे ॥१८॥ **राजा ने कहा–** हे ब्रह्माजी के पुत्र ! हे महाभाग !! आप सभी मंत्रों में निपुण हैं । आप प्रसन्नता पूर्वक मेरी प्रार्थना को सुनें ॥१९॥ आज मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई है कि मैं इस मानव शरीर से ही देवताओं को प्राप्त होने वाले भागों तथा स्वर्ग के सुखों को भोगूँ ॥२०॥ मेरा मन चाहता है कि मैं अप्सराओं के साथ नन्दन वन में क्रीडा करुँ और मधुर देव संगीत का श्रवण करुँ ॥२१॥ हे महामुने ! आप मेरे द्वारा ऐसा ही यज्ञ कराइये कि मैं इस मानव शरीर से ही स्वर्गलोक में निवास करुँ ॥२२॥ हे मुने ! आप इस कार्य को करने में पूर्ण रुप से समर्थ हैं, अतएव आप मेरे इस कार्य को अवश्य करायें । और यज्ञ करके मुझे शीघ्र ही दुष्प्राप्य स्वर्गलोक की प्राप्ति करा दें ॥२३॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा–** हे राजन् । मनुष्य शरीर से स्वर्ग लोक में निवास करना अत्यंत दुर्लभ है। यह अवश्य बतलाया गया है कि मरे हुए व्यक्ति द्वारा किए गये उसके पुण्य कर्म के फल स्वरूप स्वर्गलोक की प्राप्ति अवश्य होती है ॥२४॥ अतएव हे सर्वज्ञ ! दुर्लभ मनोरथ से मैं डर रहा हूँ । जीवित व्यक्ति का अप्सराओं के साथ निवास करना भी दुर्लभ है ॥२५॥ हे महाभाग ! आप यज्ञ करें और उसके फलस्वरुप मृत्यु के पश्चात आप स्वर्ग में निवास करें **व्यासजी ने कहा–** महर्षि वसिष्ठ की इतना ही बात को सुनकर राजा अत्यंत दुखी हुए ॥२६॥ और पहले से ही कुद्ध महर्षि वसिष्ठ से राजा ने पुनः कहा– हे ब्रह्मन् ! यदि आप अपने गर्व के आवेश में आकर मुझसे वैसा यज्ञ नहीं करायेंगे ॥२७॥ तो फिर मैं इस समय दूसरे को अपना पुरोहित बनाकर इस प्रकार का यज्ञ करुँगा । राजा की उस बात को सुनकर महर्षि वसिष्ठ क्रुद्ध हो गये ॥२८॥ उन्होनें राजा सत्यव्रत को शाप दे दिया कि हे दुष्ट तुम चण्डाल हो जाओ । तुम इसी शरीर से शीघ्र

मृतस्यापि कथंचन । व्यास उवाच– **इत्युक्तो गुरुणा राजंस्त्रिशंकुस्तत्क्षणादपि ॥३१॥ तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः । कुण्डलेऽश्ममये वापि जाते तस्य च तत्क्षणात् ॥३२॥ देहे चंदनगंधश्च विगंधो ह्यभवत्तदा । नीलवर्णेऽथ संजाते दिव्ये पीताम्बरे तनौ ॥३४॥ गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः । शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप ॥३५॥ तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन । गायत्री जपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥३५॥ दृष्ट्वा निन्द्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान् । न जगाम गृहे दीनो वनमेवाभितो ययौ ॥३६॥ चिंतयामास दुःखार्तस्त्रिशंकुः शोकविह्वलः । किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निंदितः ॥३७॥ कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः । गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति ॥३८॥ भर्याऽपि श्वपचं दृष्ट्वा नांगीकारं करिष्यति । सचिवा नादरिष्यंति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः ॥३९॥ ज्ञातयो बंधुवर्गश्च सङ्गतो न भविष्यति । सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं ज़ीवितान्मरणं वरम् ॥४०॥ विषं वा भक्षयित्वाऽद्य पतित्वा वा जलाशये । कृत्वा वा कंठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम् ॥४१॥ अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद्बलात् । कृत्वा वाऽनशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम् ॥४२॥ आत्महत्या**

ही चण्डाल हो जाओ ॥२९॥ हे पापिष्ठ ! तुम स्वर्ग को नष्ट करने वाले हो तथा गौ का वध करने के कारण दोषग्रस्त हो । तुम ब्रह्मण की पत्नी का अपहरण करने के कारण धर्म के मार्ग को दूषित करने वाले हो ॥३०॥ हे पापी ! तुम मर कर भी स्वर्ग में नहीं जाओंगे । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से गुरु वसिष्ठ के कहते ही त्रिशंकु तत्क्षण ही ॥३१॥ उसी शरीर से चण्डाल के आकार वाले हो गए । उनके कुण्डल भी उसी क्षण पत्थर के हो गये॥३२॥ शरीर में लगा हुआ चन्दन दुर्गन्धित हो गया । उनके शरीर पर विद्यमान पीताम्बर काले वर्ण का हो गया ॥३३॥ महर्षि वसिष्ठ के शाप के कारण उनका शरीर हाथी के शरीर के रूप वाला हो गया । हे राजन् ! यह सब कुछ शक्ति की उपासना करने वाले महर्षि वसिष्ठ के क्रोध के कारण हो गया ॥३४॥ अतएव किसी को भी जल्दी शक्ति के उपासक का अपमान नहीं करना चाहिए । महर्षि श्रेष्ठ वसिष्ठ निरन्तर गायत्री का जप करने वाले हैं॥३५॥ राजा अपने निन्दित शरीर को देखकर दुखित हो गये। वे अपने घर में नहीं गये अपितु वे वन मे हीं इधर-उधर घूमने लगे ॥३६॥ दुःख से आर्त एवं शोक से व्याकुल बने हुए सोचने लगे अब मैं क्या करुँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरा देह अत्यंत निन्दित हो गया है ॥३७॥ मुझे ऐसे किसी भी कार्य का पता नही है जिससे कि मेरे दुःख का विनाश हो सके । यदि मैं अपने घर जाता हूँ तो मुझे देखकर मेरा पुत्र हरिश्चन्द्र दुखी हो जायेगा ॥३८॥ मुझे इस रूप में देखकर मेरी पत्नी भी मुझे नहीं स्वीकार करेगी । मुझे इस प्रकार का देखकर मेरे मंत्रीगण भी मेरा समादर नहीं करेंगे ॥३९॥ मेरे साथ मेरे दायाद तथा बान्धव भी नहीं रहेंगे । इस तरह से सबों से परित्यक्त होने के कारण मेरे लिए जीने की अपेक्षा मर जाना ही श्रेष्ठ है ॥४०॥ मैं या तो विष खाकर अथवा जलाशय में कूदकर अथवा गले में फांसी लगाकर अपना शरीर त्याग दूँगा ॥४१॥ यह भी संभव है कि मैं विधिपूर्वक अपने इस शरीर का अग्नि में होम

भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि । श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि ।।४३।। पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिंतयत् । आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाऽधुना ।।४३।। भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहेनानेन कानने । भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः ।।४५।। प्रारब्धकर्मणां भेगादन्यथा न क्षयो भवेत् । तस्मान्मयाऽत्र भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम् ।।४६।। कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा । स्मरणं चाम्बिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा ।।४७।। एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन् । भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः ।।४८।। इति संचिंत्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः । गंगातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः ।।४९।। हरिश्चन्द्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम् । दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः ।।५० ।। सचिवास्तत्र गत्वाऽऽशुतमूचुः प्रश्रयान्विताः । प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसंतं मुहुर्मुहुः ।।५१।। राजन्पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान् । अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चन्द्राज्ञया स्थितान् ।।५२।। युवराजसुतः प्राह तच्छृणुष्व नराधिप । आनयध्वं नृपं यूयं संमान्य पितरं मम ।।५३।। तस्माद्राजन्समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः । सेवां सर्वे करिष्यंति सचिवाश्च प्रजास्तथा ।।५४।। गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा

कर दूँ । अथवा इस अत्यंत दूषित शरीर से अनशन करके अपने प्राणों का परित्याग कर दूँ ।।४२।। इसके बाद राजा ने पुनः सोचा कि यदि मैं इस समय आत्महत्या कर लेता हूँ तो उससे मुझे मुक्ति तो मिलेगी नहीं प्रत्येक जन्म में मेरे साथ चण्डालत्व और शापजन्य पाप बने रहेगें ।।४३।। इस तरह से फिर से बिचार करके राजा ने सोचा कि मुझे इस समय आत्महत्या करना उचित नहीं है ।।४४।। अच्छा तो यही है कि मैं वन मे ही रहकर अपने किए हुए कर्म का फल भोग लूँ । भोग के द्वारा ही इस कर्म का क्षय हो सकेगा ।।४५।। फल भोगने के अतिरिक्त दूसरे किसी भी प्रकार से प्रारब्ध कर्म का क्षय नहीं होता है। अतएव यहीं वन मे ही रहकर मुझे अपने पुण्य तथा पाप कर्मों का फल भोग लेना चाहिए ।।४६।। पवित्र आश्रमों के सन्निकटों में तीर्थो की यात्रा करके अम्बिका का स्मरण करके तथा सज्जन पुरुषों की सेवा करते हुए मुझे अपने कर्मों का क्षय करना चाहिए ।।४७।। अतएव इस वन में निवास करते हुए मैं अपने कर्मो का नाश करुँगा । हो सकता है कि सौभाग्यवशात् कहीं साधु पुरुषों का समागम भी हो जाय ।।४८।। इस तरह से विचार करके राजा अपने नगर को छोड़कर गंगा के तट पर चले गये और शोक करते हुए वहीं पर रुक गये ।।४९।। उसी समय हरिश्चन्द्र अपने पिता के शाप के कारण को जानकर दुखी हो गये और वे अपने मंत्रियो को अपने पिता के पास भेजे ।।५०।। मन्त्रिगण राजा त्रिशंकु के पास जाकर देखे कि राजा का आकार चण्डाल का हो गया है, और वे बारम्बार लम्बी श्वास ले रहे हैं । मंत्रियों ने राजा को प्रणाम करके कहा— ।।५१।। हे राजन् ! हमलोगों को आप के पुत्र हरिश्चन्द्र ने आपके पास भेजा है । हमलोग राजा हरिश्चन्द्र के मंत्री हैं । उनकी ही आज्ञा से हमलोग आये हैं ।।५२।। हे राजन् ! आप के युवराज पुत्र ने जो कहा है उसे आप सुनें । उन्होने कहा है कि आपलोग मेरे राजा पिता को सम्मान पूर्वक लाइये ।।५३।। अतएव आप अपनी व्यथा का परित्याग कर दें

तु दयेत वै । प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥५५॥ इति पुत्रेण ते राजन्कथितं बहुधा किल । तस्माद्गमनमेवाशु रोचतां निजसद्मनि॥५६॥ व्यास उवाच– इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः । स्वगृहं गमनायासौ न मतिं कृतवानतः ॥५७॥ तानुवाच तदा वाक्यं व्रजन्तु सचिवाः पुरम्। गत्वा पुरं महाभागा ब्रुवंतु वचनाच्च मे ॥५८॥ नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतंद्रितः । मानयन्ब्राह्मणान्देवान् यजन् यज्ञैरनेकशः ॥५९॥ नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः । नागमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छंतु माचिरम् ॥६०॥ पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चंद्रं महाबलम् । कुर्वंतु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया ॥६१॥ इत्यादिष्टास्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुराभृशम् । सचिवा निर्ययुस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमम् ॥६२॥ अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वक्रम् । अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चंद्रस्य मूर्ध्नि ते ॥६३॥ अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया । राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिंतयन्भृशम्॥६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

* * *

और अपने राज्य में चलें । आपके सभी मंत्री तथा प्रजाएँ आपकी सेवा करेंगें ॥५४॥ हमलोग गुरु वसिष्ठ को ऐसे प्रसन्न करेंगे कि वे दया अवश्य करेंगे। वे महातेजस्वी प्रसन्न होकर इस दुःख का अंत अवश्य करेंगे ॥५५॥ हे राजन् ! आपके पुत्र ने अत्यधिक आग्रह पूर्वक आपसे कहा है अतएव आप शीघ्र अपने घर चलें ॥५६॥ **व्यासजी ने कहा**– इस तरह से उन मंत्रियों की बात को सुनकर चण्डाल के आकार वाले राजा अपने घर लौटने के लिए नहीं तैयार हुए ॥५७॥ उन्होने अपने मन्त्रियों से कहा कि आपलोग अपने नगर में लौट जाइये । और नगर में लौटकर हरिश्चन्द्र से मेरी ओर से कहें कि ॥५८॥ हे पुत्र! मैं नहीं आ सकता हूँ । तुम सावधानी पूर्वक राज्य करो । ब्राह्मणों को देवता के तरह सम्मान करना और अनेक प्रकार के यज्ञों को करना महापुरुषों के द्वारा निन्दित इस चण्डाल वेष से मैं अयोध्या में नहीं आऊँगा । आपलोग शीघ्र यहाँ से लौट जाइये ॥६०॥ मेरी आज्ञा है कि आप लोग मेरे महाबलवान् पुत्र हरिश्चन्द्र को सिंहासन पर स्थापित करके राज्य के कार्यों को करें ॥६१॥ इस तरह से त्रिशंकु के कहने पर मंत्री अत्यधिक रोने लगे और उनको प्रणाम करके तथा वानप्रस्थाश्रम को प्रणाम करके वहां से लौट आये ॥६२॥ अयोध्या में लौटकर उन मंत्रियों ने शुभ दिन को हरिश्चन्द्र का विधिपूर्वक मूर्धाभिषेक किया ॥६३॥ अपने पिता की आज्ञा से मंत्रियों द्वारा अभिषिक्त होकर धार्मिक तथा तेजस्वी राजा हरिश्चन्द्र अपने पिता की चिन्ता करते हुए राज्य करने लगे ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

* * *

त्रयोदशोऽध्यायः

राजोवाच– **हरिश्चंद्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात् । त्रिशंकुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चंडालदेहतः ॥१॥ मृतो वा वनमध्ये तु गंगातीरे परिप्लुतः । गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः ॥२॥ एतद्वृत्तांतमखिलं कथयस्व ममाग्रतः । चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥३॥** व्यास उवाच– **अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा संतुष्टमानसः । कालातिक्रमणं तत्र चकार चिंतयञ्छिवाम् ॥४॥ एवं गच्छति काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः । द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदाऽगात्कौशिको मुनिः ॥५॥ आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान् । भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया ॥६॥ दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने । अन्नं विना त्विमे बालाः पालिताः केन तद्वद ॥७॥ अहं तपसि संनद्धो नागतः शृणु सुन्दरी । किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने ॥८॥ मया चिंता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम् । नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः ॥९॥ अहमप्यति वामोरु पीडितः छुधया वने ॥ प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये ॥१०॥ श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम् । महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः ॥११॥ यदा भांडं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम् । गृहणामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन**

त्रिशंकु के ऊपर विश्वामित्र की कृपा

राजा ने कहा– राजा की आज्ञा पाकर मंत्रियों ने हरिश्चन्द्र को राजा बना दिया । किन्तु त्रिशंकु उस चण्डाल के देह से कैसे मुक्ति पायें ॥१॥ अथवा वे गंगा के तट पर वन में रहते हुए मर गये । अथवा गुरुवसिष्ठ ने कृपा करके उन्हें उस शाप से मुक्त कर दिया ॥२॥ आप इस सम्पूर्ण वृतान्त को मुझे बतलायें । मैं राजा त्रिशंकु के चरित को सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **व्यासजी ने कहा–** अपने पुत्र को सिंहासन पर अभिषिक्त करके राजा संतुष्ट हो गये और वहीं पर जगदम्बा का स्मरण करते हुए अपना समय बिताने लगे ॥४॥ इस तरह कुछ समय बीतने के बाद महर्षि विश्वामित्र अपनी तपस्या पूर्ण करके अपनी पत्नी तथा पुत्रों को देखने के लिए अपने आश्रम में आये ॥५॥ वहाँ आकर तथा अपने लोगों को अच्छी तरह से रहते हुए देखकर महर्षि बहुत प्रसन्न हुए । उन्होनें पूजा करने के लिए खड़ी अपनी पत्नी से पूछा ॥६॥ हे सुलोचने ! दुर्भिक्ष के समय तुमने किस तरह अपना समय बिताया ? अन्न के अभाव में तुमने इन बच्चों को कैसे पाला यह बतलाओ ॥७॥ हे सुन्दरि ! मैं उस समय तपस्या में लगा था अतएव नहीं आ सकता था । हे शोभने ! द्रव्य के अभाव में तुमने क्या किया ?॥८॥ इस अद्भुत दुर्भिक्ष के विषय में सुनकर मैंने चिन्ता तो की किन्तु मैं यह सोचकर नहीं आया कि मैं तो निर्धन हूँ जाकर भी क्या करुँगा ?॥९॥ हे वामोरु ! भूख के कारण मैं भी अत्यंत पीड़ित हो गया तो चोर के रुप में किसी चण्डाल के घर में प्रवेश

वै ॥१२॥ पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम् । ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्धाटयसि भांडकम् ॥१३॥ इत्युक्तःश्वपचेनाहं क्षुधया पीडितो भृशम् । तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा ॥१४॥ ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयाऽर्दितः । चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भांडके॥१५॥ चौरभावेन सम्प्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते । क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम् ॥१६॥ विश्वामित्र उवाच– श्वपचस्तु वचःश्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम् । भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम् ॥१७॥ दुर्लभं खलुमानुष्यं तत्रापि च द्विजन्मता । द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि ॥१८॥ दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता । अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चांत्यजाः ॥१९॥ त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नात्र संशयः । निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनांजसा द्विज ॥२०॥ वर्णसंकरदोषोऽयं मा यातु त्वां द्विजोत्तम । विश्वामित्र उवाच– सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदाऽन्त्यज ॥२१॥ तथाप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम् । देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद॥२२॥ पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये । दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चापदि ॥२३॥ मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः।

कर गया ॥१०॥ उस चण्डाल को सोये हुए देखकर भूख के कारण अत्यंत दुखी मैं रसोई घर को पहचान कर खाने के लिए उसमें प्रवेश कर गया ॥११॥ जब बर्तन को खोलकर एक कुत्ते के बच्चे के मांस को खाने के लिए मैनें उठाया तो उसने मुझे देख लिया ॥१२॥ उसने मुझसे आदरपूर्वक पूछा कि आप कौन हैं ? मेरे घर में रात्रि में कैसे प्रवेश किए हुए हैं ? बतलाइये कि किस लिए इस भांड को खोल रहे हैं ?॥१३॥ उस चण्डाल के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर भूख से अत्यंत व्याकुल मैनें उससे गिड़गिड़ाते हुए कहा– ॥१४॥ हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण तपस्वी हूँ । भूख से अत्यंत व्याकुल हूँ । मैं चोर के रूप में यहाँ आया हूँ और इस भांड में कुछ खाने की वस्तु देख रहा हूँ ॥१५॥ हे महामते ! मैं चोर के रूप में आया हूँ किन्तु आपका अतिथि हूँ । मैं भूखा हूँ । आप मुझे आज्ञा दे दें । जिससे कि मैं इस सिद्ध मांस को खा लूँ ॥१६॥ उस श्वपचने मेरी वाणी सुनकर कहा– हे ब्राह्मण! इसे मत खाइये । यह चण्डाल का घर है ॥१७॥ मनुष्य का जन्म मिलना कठिन है । उसमें भी द्विज होना और दुर्लभ है । द्विजों में भी ब्राह्मण होना सबसे दुर्लभ है । क्या इस बात को आप नहीं जानते हैं ?॥१८॥ कल्याण चाहने वाले को कभी दूषित आहार नहीं करना चाहिए । मनु ने सात प्रकार के अन्त्यजों के यहाँ भक्ष्य पदार्थ को अग्राह्य बतलाया है ॥१९॥ हे विप्र ! मैं चण्डाल हूँ अतएव कर्म से मैं त्याज्य हूँ । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नही है। मैं सत्य बोलकर इस भक्ष्य से आप को रोक रहा हूँ किसी लोभ के कारण नहीं ॥२०॥ हे द्विजोत्तम ! आप को वर्णसंकर का दोष न लगे यह मैं चाहता हूँ । उस पर **विश्वामित्र महर्षि ने कहा–** हे अन्त्यज ! आप सत्य बोल रहे हैं, आपकी बुद्धि स्वच्छ है ॥२१॥ फिर भी मैं आपको आपद्धर्म के सूक्ष्ममार्ग को बता रहा हूँ । हे मानद् ! किसी प्रकार से शरीर की रक्षा करनी चाहिए । पाप के हो जाने पर उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त कर लेनी

तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता ॥२४॥ तेनाहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथांत्यज । अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः ॥२५॥ यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति । विश्वामित्र उवाच– इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसाऽपतत् ॥२६॥ गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकांक्षितः। मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षंतं विद्युता सह ॥२७॥ तदाऽहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा । कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम् ॥२८॥ कांतारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह । व्यास उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा ॥२९॥ यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः । गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम् ॥३०॥ अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिताः । क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने ॥३१॥ भ्रांताऽहं चिंतयाऽऽविष्ट किंचित्प्राप्तं फलं तदा । एवं च कतिचिन्मासान् नीवारेणातिवाहिताः ॥३२॥ तदभावे मया कांत चिंतितं मनसा पुनः । न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने ॥३३॥ न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि धरातले । क्षुधया पीडिता बाला रुदन्ति भृशमातुराः ॥३४॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान् । एवं विचिंत्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः ॥३५॥ पुत्रमेकं ददाम्यद्य

चाहिए । किसी भी प्रकार की आपत्ति न रहने पर भी पाप करने से दुर्गति होती है, आपत्तिकाल में पाप कर्म के कारण दुर्गति नहीं होती है ॥२३॥ भूख के कारण मर जाने से बढ़कर कोई दूसरा नरक नहीं है । अतएव कल्याण चाहने वाले को चाहिए कि वह किसी प्रकार से अपनी भूख मिटाये ॥२४॥ इसीलिए हे अन्त्यज ! मैं चोरी करके अपने शरीर की रक्षा करता हूँ । वर्षा नहीं होने पर चोरी करने से जो विद्वानों ने पाप बतलाया है वह पाप उसको लगता है जो वर्षा नहीं करता है, वह पाप चोरी करने वाले को नहीं लगता । **विश्वामित्र महर्षि ने कहा–** हे कान्ते ! जिस समय मैंने ऐसा कहा उसी समय वर्षा होने लगी ॥२६॥ आकाश से हाथी के सूड़ के समान जल की धारा गिरने लगी । बिजली की चमक के साथ बरसते हुए मेघ को देखकर मैं प्रसन्न हो गया ॥२७॥ उसी समय मैं उस घर को छोड़कर उस से बाहर निकल गया । मुझे बड़ी प्रसन्नता थी उस समय । हे वरारोहे ! तुम बतलाओ कि तुमने किस प्रकार से प्राणियों को विनष्ट करने वाले अत्यंत क्रूर इस वन में समय बिताया । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से अपने पति की बात को सुनकर उस प्रिय बोलने वाली ने अपने पति से कहा– ॥२९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके चले जाने पर मैने इस दुर्भिक्ष वाले भयंकर समय को कैसे बिताया इसको आप सुनिये ॥३०॥ उस समय अन्न के लिए ये मेरे पुत्र अत्यंत दुखी हो गये । भूखे बालकों को देखकर नीवार प्राप्त करने के लिए मैं वन-वन में ॥३१॥ चिन्ता ग्रस्त होकर भटकती रहती थी। और कोई फल पा जाती थी । इस तरह से मैने नीवार के द्वारा कुछ महीनों को बिताया ॥३२॥ जब नीवार भी नहीं मिला तो मैने मन में सोचा कि इस समय वन में न तो भिक्षा मिलती है और न नीवार ॥३३॥ न तो वृक्षों पर कोई फल है और न तो भूमि में कोई मूल । भूख से व्याकुल होकर सदा बच्चे रोते रहते हैं ॥३४॥ अब मैं क्या करुँ ? कहाँ जाऊँ ? इन भूखे बच्चों को मैं क्या कहूँ ? इस तरह से सोचकर

कस्मैचिद्धनिने किल । गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान् ॥३६॥ पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तु नान्योपायोऽस्ति पालने । इति संचिंत्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया ॥३७॥ विक्रयार्थं महाभाग क्रंदमानो भृशातुरः । क्रंदमानं गृहीत्वैनं निर्गताऽहं गतत्रपा ॥३८॥ तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुराम् । पप्रच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः ॥३९॥ तदाऽहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम । विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप ॥४०॥ श्रुत्वा मे वचनं राजा दयार्द्रहृदयस्ततः । मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम् ॥४१॥ भोजनार्थे कुमाराणामामिषं विहितं तव । प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः ॥४२॥ अहन्यहनि भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान् । विन्यंस्य याति हत्वाऽसौ प्रत्यहं दययाऽन्वितः ॥४३॥ तेनैव बालकाः कांत पालिता वृजिनार्णवात् । वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात् ॥४४॥ कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने । हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः ॥४५॥ त्रिशंकुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना । कुपितेन वधाद्धेतोश्चांडालश्च कृतो नृपः ॥४६॥ तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक । श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः ॥४७॥ येन केनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल । तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह ॥४८॥ व्यास उवाच– इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः । तामाह कामिनीं दीनां

मैनें अपने मन में निश्चित किया ॥३५॥ कि इन में से एक बच्चे को मैं किसी धनी व्यक्ति को बेंच दूँ और उससे जो मूल्य मिलेगा उसी से शेष बच्चों का पालन करुँगी ॥३६॥ इन क्षुधार्त बालकों का पालन करने का कोई भी दूसरा मार्ग नहीं हैं । इस तरह से सोचकर हे महाभाग ! मैं एक पुत्र को लेकर बेचने के लिए चली वह बालक उस समय बहुत रो रहा था । रोते हुए ही उस बालक को निर्लज्ज मैं लेकर निकल पड़ी ॥३८॥ उसी समय सत्यव्रत ने मुझको बहुत आतुर बनी हुई देखा । उस राजर्षि ने मुझसे पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है ॥३९॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय मैनें उस राजर्षि से कहा हे राजन् मैं इस बालक को बेचने के लिए ले जा रही हूँ ॥४०॥ मेरी बात सुनकर राजा के हृदय में दया आ गयी । उन्होनें मुझसे कहा कि इस बालक को लेकर आप अपने घर जाइये ॥४१ ॥ जब तक महर्षि विश्वामित्र लौट कर नहीं आ जाते हैं तब तक इन बालकों के भोजन के लिए मैं प्रतिदिन मांस का प्रबंध कर दिया करुँगा ॥४२॥ वे दयालु राजा प्रतिदिन मृगों तथा सूकरों को मारकर उनका मांस इस वृक्ष में बांध जाते थे ॥४३॥ हे कान्त ! उसी मांस से मैने इस भारी विपत्ति में अपने बालकों को पाल पायी । मेरे ही कारण इन राजा को महर्षि वसिष्ठ ने शाप दे दिया ॥४४॥ वे एक दिन वन में मांस नहीं पाये उन्होनें वसिष्ठ की गाय को ही मार दिया । उसके चलते महर्षि वसिष्ठ कुपित हो गये ॥४५॥ उन्होनें उस राजा का नाम त्रिशंकु कर दिया और गौ का वध करने के कारण उस राजा को चाण्डाल बना दिया ॥४६॥ हे कौशिक ! उस राजा के दुःख के कारण मैं भी दुखी हो गयी।

सान्त्वपूर्वमरिंदम ॥४९॥ विश्वामित्र उवाच– **मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने । उपकारःकृतो येन कांताराद्रक्षिताऽसि वै ॥५०॥ विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम् । इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित् ॥५१॥ चिंतयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम् । संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः ॥५२॥ त्रिशंकुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः । आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ नराधिपः॥५३॥ दंडवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः । गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा ॥५४॥ उत्थाप्योवाच वचनं सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमः । मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः ॥५५॥ वांछितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम् ।** राजोवाच– **मया संप्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे ॥५६॥ मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम् । यथेष्टं कुरु विप्रेंद्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम् ॥५७॥ अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम् । कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते ॥५८॥ मानुषेण हि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव । पुनर्मयोक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ॥५९॥**

वे राजा मेरे ही कारण चाण्डालत्व को प्राप्त कर लिए ॥४७॥ आपको चाहिए कि चाहे जिस किसी भी उपाय से हो सके अपनी प्रबल तपस्या के द्वारा उस राजा की रक्षा करें ॥४८॥ **व्यासजी ने जनमेजय से कहा–** हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले राजन् ! अपनी पत्नी की बातों को सुनकर मुनिश्रेष्ठ कौशिक ने उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा ॥४९॥ **विश्वामित्र महर्षि ने कहा–** हे कमल के सदृश नेत्रों वाली ! मैं राजा को शाप से मुक्त करुँगा । जिस राजा ने वन के भयंकर कष्टों से तुम्हारी रक्षा की हैं ॥५० ॥ मैं उस राजा के दुःख का नाश विद्या तथा तपस्या के बल से करुँगा । इस तरह से अपनी पत्नी को आश्वासन देकर परमार्थ के ज्ञाता महर्षि कौशिक ॥५१ ॥ सोचने लगे कि किस तरह से राजा के दुःख का नाश संभव है। अच्छी तरह से विचार करके महर्षि विश्वामित्र राजा त्रिशंकु जहाँ थे वहाँ गये ॥५२॥ दीन बने हुए चाण्डाल के आकार वाले राजा त्रिशंकु किसी झोपड़ी में दिन काट रहे थे । आते हुए मुनि को देखकर राजा आश्चर्य चकित हो गये ॥५३॥ वे शीघ्रता पूर्वक मुनि के चरणों पर दण्ड के समान गिरकर उनको साष्टांग प्रणाम किए। उस गिरे हुए राजा का हाथ पकड़कर मुनिश्रेष्ठ कौशिक उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए कहे, राजन् ! चूंकि वसिष्ठ महर्षि ने आपको मेरे कारण शाप दिया है ॥५४-५५॥ अतएव आपको जो अभिप्रेत हो मैं उस कार्य को करुँगा । अतएव आप बतलाइये कि मैं आपके लिए कौन सा कार्य करुँ । **राजा ने कहा–** मैनें पहले वसिष्ठ महर्षि से यज्ञ कराने के लिए प्रार्थना किया था ॥५६॥ मैनें महर्षि से कहा था हे मुने ! मैं उत्तम यज्ञ करना चाहता हूँ आप मेरा यज्ञ कराइये । आप ऐसा यज्ञ कराइये कि उसके फलस्वरुप मैं इसी शरीर से उस स्वर्ग लोक में चला जाऊँ जहाँ इन्द्र का सुखमय गृह है। इस पर क्रोध करके वसिष्ठ ने मुझे कहा हे दुर्मते ॥५७-५८॥ मनुष्य शरीर से तुम स्वर्गलोक कैसे जा सकते हो ? हे अनघ ! स्वर्ग प्राप्ति के लोभ के कारण मैनें उनसे फिर कहा ॥५९॥

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम् । तदा तेनैव शप्तोऽहं चांडालो भव पामर ॥६०॥ इत्येत्कथितं सर्वं कारणं शापसंभवम्। मम दुःखविनाशय समर्थोऽसि मुनीश्वर ॥६१॥ इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःखरुजार्दितः । कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिंतयत्॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **विचिंत्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः । प्रकल्प्य यज्ञसंभारान्मुनीनामंत्रयत्तदा ॥१॥ मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमंत्रिताः। नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः ॥२॥ गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः । आजगामाश्रमं तत्र यत्रासौ नृपतिः स्थितः ॥३॥ तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः । नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम ॥४॥ पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा त्वां सुरसद्मनि । प्रापयामि**

यदि ऐसी बात है तो मैं दूसरे को पुरोहित बनाकर उस उत्तम मख को करुँगा । इस पर उन्होने मुझे शाप दे दिया कि हे मूर्ख ! तुम चण्डाल हो जाओ॥६०॥ इस तरह से मैंने आपको शाप के कारणभूत बात को बतला दिया । हे मुनीश्वर ! आप मेरे दुःखं का विनाश करने में समर्थ हैं ॥६१॥ इतनी बात कहकर दुख से व्याकुल राजा चुप हो गये । महर्षि विश्वामित्र भी उस शाप को विनष्ट करने के उपाय का विचार करने लगे ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवं प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

महर्षि विश्वामित्र की तपस्या के प्रभाव से त्रिशंकु का सदेह स्वर्ग गमन

व्यासजी ने कहा– महर्षि विश्वामित्र ने मन से इस बात का विचार करके कि इस कार्य के लिए मुझे क्या करना है, यज्ञ की सामग्री जुटाकर वे मुनियों को आमंत्रित किये ॥१॥ महर्षि विश्वामित्र के द्वारा उस मख में आमंत्रित किए गये मुनिगण इसलिए नहीं गये कि महर्षि वसिष्ठ ने उन लोगों को उस यज्ञ में जाने से रोक दिया था ॥२॥ उस बात को जब विश्वामित्र जाने तो दुखी होकर उदास हो गये । उसके बाद वे उस आश्रम में आये जहाँ पर राजा विद्यमान थे ॥३॥ विश्वामित्रं महर्षि ने राजा से कहा कि राजवर्य ! यज्ञ कराने के लिए मेरे द्वारा निमंत्रित ब्राह्मण इसलिए नहीं आये कि क्रुद्ध होकर

महाराज वांछितं ते करोम्यहम् ॥५॥ इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः । ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसम्भवम् ॥६॥ दत्त्वाऽथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम् । यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतन्द्रितः ॥७॥ पुण्येन मम राजेंद्र बहुकालार्जितेन च । याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेस्तु सुरालये ॥८॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे त्रिशंकुस्तरसा ततः । उत्पपात यथा पक्षीवेगवांस्तपसो बलात् ॥९॥ उत्पत्य गगने राजा गतः शक्रपुरीं यदा ॥ दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चाण्डालवेषभाक् ॥१०॥ कथितोऽसौ सुरेन्द्राय कोऽयमायाति सत्वरः । गगने देववद्वा यो दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः ॥११॥ सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम् । ज्ञात्वा त्रिशंकुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाऽब्रवीत् ॥१२॥ श्वपच क्व समायासि देवलोके जुगुप्सितः । याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम् ॥१३॥ इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन ॥ निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथाऽमरः ॥१४॥ पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत् । पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम् ॥१५॥ तस्य तत्क्रंदितं राजन्पततः कौशिको मुनिः । श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पततं वीक्ष्य भूपतिम् ॥१६॥ वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृप । मुनेस्तपःप्रभावेण चलितोऽपि**

वसिष्ठ ने उन्हें रोक दिया है । किन्तु हे महाराज ! आप मेरा तपोबल देखिए । आप को मैं इसी शरीर से स्वर्ग भेजकर आपकी आशा पूर्ण करुँगा ॥४-५॥ इस तरह से कहकर मुनियों में श्रेष्ठ विश्वामित्र महर्षि ने हाथ में जल लेकर गायत्री के जप से उत्पन्न पुण्य को राजा को प्रदान कर दिया ॥६॥ राजा को पुण्य प्रदान करके उन्होंने कहा, हे राजन् ! आप सुखपूर्वक स्वर्गलोक जाइये ॥७॥ मैनें जो बहुत समय तक जप करके पुण्य अर्जित किया था उसी के प्रभाव से आप इन्द्र की नगरी स्वर्ग में चले जाइये ॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह विश्वामित्र महर्षि के कहने पर महाराज त्रिशंकु आकाश में उसी तरह से उड़ने लगे जैसे कोई पक्षी आकाश में उड़ता है। यह महर्षि विश्वामित्र की तपस्या का प्रभाव था ॥९॥ ऊपर की ओर उठकर राजा जब इन्द्र की नगरी में गये तो देवताओं ने क्रूर तथा चण्डाल वेष वाले राजा को देखा ॥१०॥ देवताओं ने इन्द्र से पूछा कि देखने में कुरूप तथा चण्डालवेष वाला कौन देवता के समान आकाश में बड़े वेग से आ रहा है ?॥११॥ यह सुनकर इन्द्र बड़े ही वेग से उठे और उस पुरुषाधम त्रिशंकु को देखकर जान गये कि ये त्रिशंकु हैं, फिर भी वे उनकी भर्त्सना करके कहे ॥१२॥ हे निन्दित श्वपच ! इस देवलोक में कहाँ आ रहे हो । तुम शीघ्र भूलोक में लौट जाओ, तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है ॥१३॥ हे अपने शत्रुओं को विनष्ट करने वाले राजन् जनमेजय ! इन्द्र के ऐसा कहते ही त्रिशंकु स्वर्ग से उसी प्रकार से गिरे जिस तरह से पुण्य के समाप्त हो जाने पर किसी देवता का स्वर्ग से पतन हो जाता है ॥१४॥ उसके बाद राजा त्रिशंकु बार-बार विश्वामित्र-विश्वामित्र कहकर चिल्लाने लगे । उन्होंनें कहा, आप मेरी रक्षा कीजिए । मैं शीघ्रता से स्वर्ग से गिर रहा हूँ ॥१५॥ त्रिशंकु की चिल्लाने की ध्वनि को सुनकर तथा उन्हें गिरते हुए देखकर महर्षि विश्वामित्र ने कहा रुक जाओ ॥१६॥ ऋषि की वाणी सुनकर राजा यद्यपि स्वर्गलोक से गिर पड़े थे किन्तु ऋषि की तपस्या

सुरालयात् ॥१७॥ विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम् । विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम् ॥१८॥ तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः । तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम् ॥१९॥ किं ब्रह्मन्क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः । अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते ॥२०॥ कौशिक उवाच– स्वं निवासं महीपालं च्युतं त्वद्भवनाद्विभो । नयस्व प्रीतियोगेन त्रिंशकुं चातिदुःखितम् ॥२१॥ व्यास उवाच– तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशंकितः । तपोबलं विदित्वोग्रमोमित्युवाच वासवः ॥२२॥ दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसंस्थितम्। आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा ॥२३॥ गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशंकुसहिते ततः । विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत्॥२४॥ हरिश्चंद्रोऽथतच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम् । पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात् ॥२५॥ अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया। रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः ॥२६॥ अतीतकाले युवती न सा गर्भवती ह्यभूत् ॥ तदा चिन्तातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः ॥२७॥ वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम् । अनपत्यत्वजां चिंतां गुरवे समवेदयत् ॥२८॥ दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मंत्रविद्याविशारदः । उपायं कुरु धर्मज्ञ संततेर्मम मानद ॥२९॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विजसत्तम । कस्मादुपेक्षसे जानन्दुःखं मम च शक्तिमान् ॥३०॥ कलबिंकास्त्विमे

के प्रभाव से वहीं आकाश में ही रुक गये ॥१७॥ विश्वामित्र ने भी अपने हाथ में जल लेकर दूसरी सृष्टि तथा दूसरे स्वर्गलोक को बनाने के लिए अत्यंत विस्तृत यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया ॥१८॥ जब इन्द्र ने महर्षि विश्वामित्र के द्वारा किए जाने वाले उस तरह के प्रयास को जाना तो वे शीघ्र महर्षि विश्वामित्र के पास आये और कहे ॥१९॥ हे महापुरुष ! आप यह क्या कर रहे हैं ? आप इतना क्रुद्ध क्यों हैं? आप दूसरी सृष्टि मत कीजिए । आप यह बतलाइये कि मैं आपके लिए कौन सा कार्य करूँ ॥२०॥ **कौशिक महर्षि ने कहा–** देवेन्द्र ! तुम्हारे देवलोक से गिरकर महाराज त्रिशंकु अपना निवास खो दिये हैं, आप उनको प्रेम पूर्वक स्वर्गलोक ले जाइये । वे अत्यंत दुःखी हैं ॥२१॥ **व्यासजी ने कहा–** कि महर्षि विश्वामित्र के निश्चय को जानकर इन्द्र अत्यंत भयभीत हो गये थे अतएव महर्षि विश्वामित्र के उग्र तपोबल को जानकर उन्होनें कहा ठीक है, मैं ऐसा ही कर रहा हूँ ॥२२॥ उन्होनें राजा को दिव्य देह वाला बना दिया और श्रेष्ठ विमान पर बैठाकर महर्षि कौशिक से आज्ञा लेकर इन्द्र अपनी नगरी में आ गये ॥२३॥ जब इन्द्र त्रिशंकु के साथ स्वर्ग चले गये, महर्षि विश्वामित्र सुखी हो गये और अपने आश्रम में सुस्थिर हो गये ॥२४॥ राजा हरिश्चन्द्र ने जब उपकार करने वाले महर्षि विश्वामित्र के विषय में सुना कि उन्होंने मेरे पिता को स्वर्ग भेज दिया है; तो अत्यंत प्रसन्न होकर वे अपने राज्य का प्रशासन करने लगे ॥२५॥ अयोध्याधिपति महाराज हरिश्चन्द्र क्रीडा करने लगे । इस तरह पत्नी के साथ विहार करते-करते राजा हरिश्चन्द्र के बहुत दिन बीत गये, किन्तु उनको कोई सन्तान नहीं हुई । तब चिन्ता से आतुर बने हुए राजा अत्यंत दुखी हो गये ॥२६-२७॥ वे महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जाकर उनको प्रणाम किए और अपनी अनपत्यता विषयिणी चिन्ता महर्षि वसिष्ठ को बतलाये ॥२८॥

धन्या ये शिशुं लालयंति हि । मंदभाग्योऽहमनिशं चिंतयामि दिवानिशम् ॥३१॥ व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः । संचिंत्य मनसा सम्यक्तमुवाच विधेःसुतः ॥३२॥** वसिष्ठ उवाच– **सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते । अनपत्यत्वजं दुःखं यत्तथा दुःखमद्भुतम् ॥३३॥ तस्मात्त्वमपि राजेंद्र वरुणं यादसां पतिम् । समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति ॥३४॥ वरुणादधिको नास्ति देवः संतानदायकः । तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति ॥३५॥ दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः । उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः संजायते कथम्॥३६॥ न्यायतस्तु नरैः कार्यं उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः । कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नान्यथा नृपसत्तम ॥३७॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः। प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः ॥३८॥ गंगातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः । ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः ॥३९॥ एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः । कृपयाऽभून्महाराज प्रसन्नमुखपंकजः ॥४०॥ हरिश्चंद्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः । वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव ॥४१॥** राजोवाच– **अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम् । ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः ॥४२॥ नृपस्य वचनं श्रुत्वा**

हे मानद महर्षे ! आप दैवज्ञ हैं तथा मंत्रविद्या में निपुण हैं । आप ऐसा उपाय करें कि मेरी कोई संतान हो ॥२९॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! आप जानते हैं कि जिसको पुत्र नहीं होता है, उसकी सद्गति नहीं होती है, इस बात को जानकर भी आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? आप तो शक्ति सम्पन्न हैं ॥३०॥ ये कलविंक पक्षी भी धन्य हैं, जो आपने बच्चों का पालन करते हैं । मेरा भाग्य ही मंद है कि मैं सन्तान की प्राप्ति के लिए रात दिन चिन्तित रहता हूँ॥३१॥ **व्यासजी ने कहा–** महर्षि वसिष्ठ ने राजा हरिश्चन्द्र की इस प्रकार की निर्वेदभरी वाणी को सुना । उन्होंने अच्छी तरह से विचार करके कहा ॥३२॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा–** राजन् ! आप सत्य कह रहे हैं कि जिस प्रकार का निःसन्तानता जन्य कष्ट होता है, उस प्रकार का संसार में दूसरा कोई भी कष्ट नहीं है । यह सबसे बड़ा कष्ट है ॥३३॥ अतएव हे राजेन्द्र ! आप वरुण की यत्नपूर्वक आराधना करें, वे ही आपकी इच्छा पूरी करेंगें ॥३४॥ वरुण से बढ़कर कोई भी देवता सन्तान देने वाला नहीं है । हे धार्मिक ! आप उन्हीं वरुण देवता की आराधना करें ऐसा करने से आपके कार्य की सिद्धि होयेगी॥३५॥ मनुष्यों को चाहिए कि वे दैव तथा पुरुषार्थ दोनों को महत्व दें । भला आप बतायें कि बिना पुरुषार्थ के कार्य की सिद्धि का होना कैसे संभव है ?॥३६॥ नियम तो यह है कि मनुष्य को किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए । पुंरुषार्थ के करने पर ही कार्य में सिद्धि मिलती है। दूसरे प्रकार से नहीं ॥३७॥ इस तरह से अत्यंत तेजस्वी अपने गुरु महर्षि वसिष्ठ की वाणी को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने उनको प्रणाम किया और तपस्या करने का निश्चय करके वहाँ से चले आये ॥३८॥ राजा गंगाजी के तट पर पद्मासन लगाकर बैठ गये और अपने मन में वरुण का ध्यान करते हुए कठोर तप करने लगे ॥३९॥ इस तरह से तपस्या करने वाले राजा हरिश्चन्द्र को वरुण ने साक्षात् दर्शन दिया । उनकी कृपा को देखकर राजा का मुख प्रसन्नता के कारण

प्रगल्भं दुःखितस्य च । स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम् ॥४३॥ वरुण उवाच– **पुत्रो यदि भवेद्राजन्गुणी मनसि वांछितः । सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम् ॥४४॥ यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथाविशंकितः । पशुबंधेन तेनैव ददामि नृपते वरम् ॥४५॥** राजोवाच– **देव मे मास्तु वंध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिप । पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥४६॥ वंध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद । शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम् ॥४७॥** वरुण उवाच– **भविष्यति सुतः कामं राजन्गच्छ गृहाय वै । सत्यं तद्वचनं कार्यं यद्ब्रवीषि ममाग्रतः ॥४८॥** व्यास उवाच– **इत्युक्तो वरुणेनासौ हरिश्चन्द्रो गृहं ययौ । भार्यायै कथयामास वृत्तांतं वरदानजम् ॥४९॥ तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम् । पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता ॥५०॥ काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी । बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम् ॥५१॥ कारयामास विधिवत् संस्कारान्नृपतिस्तदा । मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे सा शुभे दिने ॥५२॥ ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम्।**

विकसित हो गया ॥४०॥ **वरुण ने राजा हरिश्चन्द्र से कहा–** हे राजन् ! आप वर मांगिये मैं आपकी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ ॥४१॥ **राजा हरिश्चन्द्र ने कहा–** हे देवेश ! मैं निःसन्तान हूँ अतएव आप मुझे सुखप्रद सन्तान प्रदान कीजिए । मैंने अपने तीनों प्रकार के ऋणों को उतारने के लिए यह प्रयत्न किया है ॥४२॥ अपने सामने स्थित तथा दुखी राजा की वाणी को सुनकर वरुण ने मुस्कुराते हुए प्रगल्भ वाणी में कहा, **वरुण ने कहा–** हे राजन् ! आपके मन के अभिलाषित गुणवान् पुत्र की प्राप्ति यदि आपको हो जाय तो फिर आप मेरी प्रसन्नता के लिए क्या करेंगे ?॥४४॥ हे राजन् ! यदि आप अपने उस पुत्र को ही यज्ञ का बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ कर दें तो फिर मैं आपको वैसा पुत्र प्रदान कर दूँ ॥४५॥ **राजा ने कहा–** हे जलाधिप ! मेरा बंध्यात्वदोष समाप्त हो जाय ! मैं वैसा ही करुँगा । यज्ञ करुँगा । उस यज्ञ का बलिपशु उस पुत्र को ही बना दूँगा यह मेरी सत्य वाणी है ॥४६॥ हे मानद ! संसार में बंध्यात्व बहुत बड़ा दुःख है । वह असह्य होता है। अतएव मनुष्यों के शोक को शान्त कर देने वाला पुत्र आप मुझे प्रदान कीजिए ॥४७॥ **वरुण ने कहा–** राजन् ! आपको पुत्र अवश्य होगा, आप अपने घर जाइये । किन्तु आप अपनी उस वाणी को अवश्य सत्य कीजियेगा जो आपने मेरे सामने कहा है ॥४८॥ **व्यासजी ने कहा–** वरुण के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने के बाद राजा हरिश्चन्द्र अपने घर चले आये और वरदान विषयक वृतान्त उन्होनें अपनी पत्नी को सुनाया ॥४९॥ राजा हरिश्चन्द्र की अत्यंत मनोहर सौ पत्नियां थीं । उनकी पट्टमहिषी शैव्या थी । वह पतिव्रता थी ॥५०॥ कुछ समय बीत जाने पर शैव्या ने गर्भ धारण किया । राजा ने रानी की दोहद विषयिणी चेष्टाओं के विषय में जब सुना तो उन्हें प्रसन्नता हुई ॥५१॥ राजा ने विधिपूर्वक सभी संस्कारों को भी कराया । दशवें महीने के पूर्ण होने पर रानी ने शुभ दिन को पुत्र को जन्म दिया ॥५२॥ ताराबल एवं ग्रहबल से युक्त वह बालक देवता

पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः ॥५३॥ चकार जातकर्मादीन् ददौ दानानि भूरिशः । राज्ञश्चातिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः॥५४॥ बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः । विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः ॥५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पंचदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे । आजगाम तदा पार्श्वे विप्रवेषधरःशुभः ॥१॥ स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय । पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशुमाम् ॥२॥ सत्यं कुरु वचो राजन्यत्प्रोक्तं भवता पुरा । वंध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल॥३॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिंतां चकार ह । कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम् ॥४॥ लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान्। न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता ॥५॥ पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा । किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं संततिसंभवम्॥६॥**

के समान था । पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा ने स्नान करके जातकर्म आदि संस्कारों को कराया और खूब दान दिया । पुत्र के उत्पन्न होने के कारण राजा को भी खूब प्रसन्नता हुई ॥५४॥ परम उदार वे राजा धनधान्य से समृद्ध हो गये । उन्हानें विशेष प्रकार का दान किया तथा गीत एवं वाद्य का आयोजन किया॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

हरिश्चन्द्रोपाख्यान

व्यासजी ने कहा– जिस समय राजा के घर में महोत्सव मनाया जाता था उसी समय वरुण देव ब्राह्मण का वेष बनाकर आ गये ॥१॥ उन्होंने राजा को आर्शीवाद देकर कहा कि मैं वरुण हूँ । हे राजन् ! आपको पुत्र की प्राप्ति हो गयी अब आप इसके द्वारा मेरा यजन कर दें ॥२॥ राजन् ! आपने पहले जो कहा था उस बात को आप सत्य कीजिए । मेरे वरदान के कारण आपका बंध्यात्व तो समाप्त हो गया ॥३॥ इस तरह की वरुण की बात को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र चिन्तित हो गये । वे सोचने लगे कि कमल के समान मुख वाले इस बालक को मैं कैसे मारुँ । अभी तो यह बालक उत्पन्न हुआ है ॥४॥ लोकपाल वरुण स्वयं ब्राह्मण का वेष बनाकर आ गये हैं । कल्याण चाहने वाले को देवता का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए ॥५॥ किन्तु प्राणियों

धैर्यमालंब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च । उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम् ॥७॥ देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे। वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम् ॥८॥ पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता । मासेन शुद्ध्येज्जननी दंपती तत्र कारणम्॥९॥ सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम् । कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर ॥१०॥ व्यास उवाच– इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम् । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव ॥११॥ आगमिष्यामि मासांते यष्टव्यं सर्वथा त्वया । कृत्वोत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृपसत्तम ॥१२॥ इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः । हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः ॥१३॥ कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोध्नीर्हेमपूरिताः । विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान् ॥१४॥ राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम् । नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम् ॥१५॥ पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः । आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः ॥१६॥ वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे । प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृताञ्जलिः ॥१७॥ दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो । मखं करोमि वारीश विधिवद्वांछितं तव ॥१८॥ अदन्तो न पशुः

के लिए अपने पुत्र का स्नेह त्यागना बड़ा कठिन होता है । मैं क्या करुँ ? पुत्र प्राप्तिजन्य सुख मुझ को कैसे मिल सकता है ?॥६॥ इसके बाद राजा ने धैर्य धारण करके वरुण देव की बातों का समर्थन करते हुए उनसे नम्रतापूर्वक मधुर वाणी में कहा ॥७॥ हे देवाधिदेव ! आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है । इस यज्ञ को वैदिक विधि से करना है, इसमें बहुत अधिक दक्षिणा दी जायेगी । इस यज्ञ को करने के योग्य पिता पुत्रोत्पति के दश दिन के बाद होता है और पुत्र की माता एक मास में पवित्र होती है। यज्ञ पति-पत्नी दोनों एक साथ करते हैं ॥८-९॥ हे वरुणदेव ! आप तो सर्वज्ञ हैं । शाश्वतधर्म को जानते हैं। अतएव हे वारीश ! आप मेरे ऊपर कृपा करें । हे परमेश्वर ! आप मुझे इस समय क्षमा करें ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से राजा के कहने पर वरुण ने उनसे कहा- राजन् आपका कल्याण हो । इस समय मैं लौट जा रहा हूँ। आप इन सब कार्यो को सम्पन्न करें ॥११॥ मैं मास बीत जाने पर आऊँगा उस समय आप यज्ञ अवश्य कीजियेगा ॥१२॥ जलाधिपति वरुणदेव के इस तरह से मधुरवाणी कहकर चले जाने पर राजा हरिश्चँन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥१३॥ वे वेदज्ञ ब्रह्मणों को बुलाकर उन्हें तिल पर्वतों का दान दिए तथा घड़े के समान स्तन वाली एवं सुवर्ण से अलंकृत करोड़ों गौओं का दान दिया ॥१४॥ राजा ने अपने पुत्र का दशवें दिन अवलोकन करके बहुत अधिक सुख का अनुभव किया और उन्होंने उस पुत्र का विधिपूर्वक नाम रोहित रखा ॥१५॥ जब महीना पूरा हो गया तो वरुण विप्र का वेष बनाकर पुनः राजा के घर आ गये और बार-बार कहने लगे कि अब मेरा यज्ञ करो॥१६॥ आये हुये वरुणदेव को देखकर राजा शोकसागर मे डूब गये । उन्होंने साष्टांग प्रणाम करके उनका अतिथि सत्कार किया । फिर हाथ जोड़कर उन्होंने वरुणदेवता से कहा ॥१७॥ हे देव ! आप मेरे सौभाग्य के कारण मेरे घर पधारे हैं । आपके आने से मेरा घर पवित्र हो गया ।

श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः । तस्माद्दंतोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम् ॥१९॥ व्यास उवाच– **इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ । हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे ॥२०॥ पुनर्दन्तोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान् । आजमगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन् ॥२१॥ भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम् । प्रणम्यासनसम्मानैः पूजयामास सादरम् ॥२२॥ स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकंधरः । करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम् ॥२३॥ बालोऽप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न संमतः । यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम् ॥२४॥ तावत्क्षमस्व वरीश विधिं जानासि शाश्वतम् । कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुंडनांते शिशोः किल ॥२५॥ तस्येति वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः– । प्रतारयसि मां राजन्पुनः पुनरिदं ब्रुवन् ॥२६॥ अपि ते सर्वसामग्री वर्तति नृपतेऽधुना । पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वंचयस्येव सांप्रतम् ॥२७॥ क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्ताऽसि मखं यदि । तदाऽहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः ॥२८॥ अद्य गच्छामि राजेंद्र वचनात्तव मानद । न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव ॥२९॥ इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात् । राजा परमसंतुष्टो ननंद भवने तदा ॥३०॥ चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे।**

हे वारीश ! मैं आपका यज्ञ विधिपूर्वक करना चाहता हूँ ॥१८॥ वेदज्ञों का कहना है कि दांत से रहित यज्ञपशु प्रशस्त नहीं होता । अतएव जब इसके दांत निकल आयें तब मैं आपका महायज्ञ इसके द्वारा करुँगा ॥१९॥ **व्यासजी ने कहा–** राजा के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वरुण, ठीक है कहकर चले गये । हरिश्चन्द्र भी प्रसन्न होकर गृहाश्रम में विहार करने लगे ॥२०॥ दांतो के जम जाने पर फिर वरुण ब्राह्मण का रुप धारण करके राजा के घर आये और कहे कि अब यज्ञ करो ॥२१॥ राजा ने भी वरुण को ब्राह्मण के वेष में आये हुए देखकर उनका सम्मान पूर्वक पूजन किया॥२२॥ उन्होनें वरुण की स्तुति करके विनयावनत होकर कहा– मैं बहुत अधिक दक्षिणा दिए जाने वाले इस मख को करने वाला हूँ ॥२३॥ इस बालक का अभि चौलकर्म संस्कार नहीं हुआ है । यज्ञ के लिए पशु बनाने मे गर्भ के केश अच्छे नहीं माने जाते हैं । ऐसा मैंने वृद्धों के मुख से सुना है ॥२४॥ अतएव हे जलाधिनाथ। आप अभी क्षमा करें । आप तो शाश्वत नियमों के ज्ञाता हैं । मैं इस बालक के मुण्डन संस्कार के बाद अवश्य यज्ञ कर दूँगा ॥२५॥ राजा की इस तरह की बात सुनकर वरुण ने कहा-राजन् ! बार-बार इस तरह की बातें कहकर आप मुझे धोखा दे रहे हैं ॥२६॥ राजन् आपके घर में यज्ञ की सारी सामग्री हैं; किन्तु पुत्र के स्नेह में बंधकर आप मुझसे धोखा कर रहे हैं ॥२७॥ यदि तुम क्षौरकर्म संपन्न करने के बाद भी यज्ञ नहीं किए तो मैं क्रुद्ध होकर तुम्हें भयंकर शाप दे दूँगा ॥२८॥ हे राजन् ! आज तो मैं आपकी बात मानकर लौट जा रहा हूँ । तुम इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हो, अतएव तुम्हे मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए ॥२९॥ इस तरह से कहकर वरुण शीघ्रता से राजा के घर से चले गये और राजा भी सन्तुष्ट होकर अपने घर में आनन्दानुभव करने लगे ॥३०॥ जब चूड़ाकरण संस्कार की वेला आयी तो राजा के घर में धूम-धाम से उत्सव मनाया जा रहा था । उसी समय

संप्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः ॥३१॥ यदांके सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ । उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात् ॥३२॥ कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम् । विप्ररूपधरः श्रीमान्प्रत्यक्ष इव पावकः ॥३३॥ नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः । नमश्चकार तं भीत्या कृतांजलिपुटः पुरः ॥३४॥ विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान् । स्वामिन्कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम् ॥३५॥ वक्तव्यमस्ति तत्रापि शृणुष्वैकमना विभो । युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद्ब्रवीमि तवाग्रतः ॥३६॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः ॥३७॥ तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः । उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः ॥३८॥ राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम् । अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां द्वादशे किल ॥३९॥ दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव । तदोपनीय कर्ताऽस्मि पशुना यज्ञमुत्तमम् ॥४०॥ लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । मन्यसे मद्वचः सत्यं तद्गच्छ भवनं विभो ॥४१॥ व्यास उवाच— इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान् यादसां पतिः । ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः ॥४२॥ गतेऽथ वरुणे राजा बभूवातिमुदान्वितः । सुखं प्राप्य सुतस्यैवं

वरुण भी राजा के घर आ गये ॥३१॥ जब चूड़ाकरण के समय रानी अपनी गोद में बालक को लेकर राजा के सन्निकट में बैठी थी उसी समय वरुण आ गये ॥३२॥ उन्होनें राजा से कहा कि अब तो यज्ञकर्म करो । उस समय वरुण ब्राह्मण का रूप बनाये थे और उनका तेज साक्षात् अग्नि के समान था ॥३३॥ वरुण को देखकर राजा अत्यंत विह्वल हो गये । उन्होने वरुण को नमस्कार किया और भयभीत होकर वे वरुण के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥३४॥ राजा ने वरुण की सविधि पूजा की और नम्रतापूर्वक बोले— हे स्वामिन् ! आज मैं यज्ञ का कार्य सविधि करने वाला हूँ ॥३५॥ किन्तु उसके विषय में मुझे आप से कुछ कहना है, उसे आप सुन लें । हे स्वामिन् ! यदि उस बात को आप उचित माने तो मैं उसे आप से कहूँ ॥३६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, इन तीनों वर्णों के मनुष्य द्विजाति कहलाते हैं । किन्तु ये तीनों यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होने पर द्विजाति होते हैं । अन्यथा ये शूद्र ही रहते हैं, ऐसा वेदज्ञों का कहना है ॥३७॥ अतएव यह मेरा पुत्र अभी तो शूद्र के समान है। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने पर ही यह यज्ञपशु बनने के योग्य होगा । यह वेदों का निर्णय है ॥३८॥ क्षत्रियों का सदा ग्यारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार होता है। आठवें वर्ष में ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है तथा वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार बारहवें वर्ष में होता है ॥३९॥ हे देवेश ! मैं तो दीन तथा आपका सेवक हूँ । यदि आप मेरे ऊपर कृपा करें तो फिर मैं आपके यज्ञ के इस पशु का यज्ञोपवीत संस्कार करके इससे आपका यज्ञ सम्पन्न करुँ ॥४०॥ हे लोकपाल ! आप तो धर्म के ज्ञाता हैं । सभी शास्त्रों में आप निपुण हैं । यदि आप मेरी बात सत्य मानें तो इस बार आप लौट जायँ ॥४१॥ **व्यासजी ने कहा—** राजा की इस तरह की बात सुनकर दयालु वरुण ठीक ही है; यह कहकर प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही चले गये ॥४२॥ वरुण के लौट जाने पर राजा बहुत प्रसन्न हुए । अपने पुत्र को सुखी पाकर

राजा मुदमवाप ह ॥४३॥ चकार राजकार्याणि हरिश्चन्द्रस्तदा नृपः । कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः ॥४४॥ तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः । चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा ॥४५॥ एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबंधविधौ नृपः । विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिन्तातुरः पुनः ॥४६॥ वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके । आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा ॥४७॥ तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः । कृतांजलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम् ॥४८॥ देवदत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः । प्रसादात्तव मे शोको गतो वंध्यापवादजः॥४९॥ कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूत वरदक्षिणम् । समये श्रृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम् ॥५०॥ समावर्तनकर्मांते करिष्यामि तवेप्सितम् । ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षंतुमर्हसि ॥५१॥ वरुण उवाच– **प्रतारयसि मां राजन्पुत्रप्रेमाकुलो भृशम् । मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते ॥५२॥ गच्छाम्यद्य महाराज वचसा तव नोदितः । आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि ॥५३॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते । राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम् ॥५४॥ आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः । यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिंतातुरोऽभवत् ॥५५॥ शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः । ज्ञात्वाऽऽत्मवधमायुष्मन्गमनाय मतिं दधौ ॥५६॥ निश्चयं परमं कृत्वा संमंत्र्य सचिवात्मजैः । प्रययौ**

राजा को प्रसन्नता हुई ॥४३॥ राजा हरिश्चन्द्र राज्य का कार्य करते रहे । समय बीतता गया और उनका पुत्र दश वर्ष का हो गया ॥४४॥ अपनी विभूति के अनुसार राजा ने यज्ञोपवीत की सामग्रियों को एकत्रित किया । उन्होंने अपने मंत्रियों तथा शिष्ट ब्राह्मणों के साथ मिलकर उपनयन की सामग्री जुटायी । ग्यारहवें वर्ष के प्रारम्भ होते ही राजा ने अपने पुत्र का व्रतबंधविधि विधिपूर्वक सम्पन्न किया । किन्तु मन में तो अत्यंत चिन्तातुर थे ॥४६॥ यज्ञोंपवीत संस्कार जब किया जा रहा था उसी समय ब्राह्मण का वेष धारण करके वरुण आ गये ॥४७॥ वरुण को देखकर राजा शीघ्र ही उनको प्रणाम किये और वरुण के समक्ष खड़े हो गयें । उन्होनें हाथ जोड़कर प्रेम से वरुण से कहा ॥४८॥ हे देव ! मैनें अपने पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कर लिया है । अब यह यज्ञ के लिए योग्य पशु भी हो गया है । आपकी ही कृपा से मेरा बंध्यात्व दोष भी दूर हो गया है ॥४९॥ अब मैं चाहता हूँ कि प्रभूत मात्रा में दक्षिणा देकर आपका यज्ञ कर दूँ । अतएव हे धर्मज्ञ ! मैं किसी शुभ दिन को आपका यज्ञ करना चाहता हूँ । मैं आपसे यह सत्य बात कह रहा हूँ ॥५०॥ उसके समावर्तन संस्कार के समय मैं आप का यज्ञ अवश्य कर दूंगा । आप मेरे ऊपर दया करके तब तक के लिए मुझे क्षमा कर दें ॥५१॥ **वरुण ने कहा–** राजन् ! तुम अपने पुत्र प्रेम के कारण अत्यंत व्याकुल हो और बार-बार तुम युक्तिसंगत बातें कहकर मुझे धोखा दे रहे हो ॥५२॥ राजन् आज मैं आपकी बात मानकर लौट रहा हूँ । मैं पुनः समावर्तन काल में आ जाऊँगा ॥५३॥ हे राजन् जनमेजय ! इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र से कहकर वरुण देवता चले गये और राजा भी पहले के ही समान प्रसन्न होकर कार्य करने लगे ॥५४॥ उस समय आये हुए वरुण को देखकर अत्यंत बुद्धिमान वह बालक यज्ञ का समय जानकर अत्यंत चिन्तित हो गया ॥५५॥ वह इधर-उधर के लोगों से राजा के शोक का कारण पूछकर जान लिया कि अब मेरा बध हो

नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ ॥५७॥ गते पुत्रे नृपःकामं दुःखितोऽभूद्भृशं तदा । प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया ॥५८॥ एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः । राजानं शोकसंतप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन् ॥५९॥ राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम् । न जाने क्वापि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः ॥६०॥ सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च । अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते ॥६१॥ आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते । न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा ॥६२॥ व्यास उवाच– **इति भूपवचः श्रुवा प्रचेताः कुपितो भृशम् । शशाप च नृपं क्रोधाद्वंचितस्तु पुनः पुनः ॥६३॥ नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवंचितः । तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः ॥६४॥** व्यास उवाच– **इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा । पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु ॥६५॥ एवं शप्त्वा नृपं पाशी जगाम निजमास्पदम्। राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः ॥६६॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

जायेगा तो वह घर से बाहर भाग जाने का मन बनाया ॥५६॥ उसने निश्चय करके मंत्रियों के पुत्रों के साथ मंत्रणा किया और वह अपने नगर से निकल कर वन में भाग गया ॥५७॥ पुत्र के वन में भाग जाने पर राजा अत्यंत दुखी हो गये । उन्होनें उसको खोज लाने की इच्छा से दूतों को भेजा ॥५८॥ इस तरह से कुछ समय बीत जाने पर वरुण राजा के घर गये । उन्होनें शोकसंतप्त राजा से कहा कि अब तुम यज्ञ करो ॥५९॥ राजा ने वरुण को प्रणाम करके कहा– हे देवाधिदेव ! मैं क्या करुँ भयभीत होकर न जाने कहाँ मेरा पुत्र भाग गया । मेरे दूतो ने उसको पर्वत की कन्दराओं में तथा मुनियों के आश्रम में सर्वत्र खोजा किन्तु वह कहीं नहीं मिला ॥६१॥ हे महाराज ! आप आज्ञा करें कि मैं क्या करुँ । पुत्र तो भग गया। हे सर्वज्ञ ! इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है । सर्वत्र भाग्य का दोष ही काम करता है ॥६२॥ **व्यासजी ने कहा–** राजा की इस तरह की बातें सुनकर वरुण अत्यंत कुपित हो गये । वे बार-बार धोखा खाने के कारण क्रुद्ध होकर राजा को शाप दे दिये । उन्होने कहा कि इसके बदले में तुम्हें जलोदर हो जायेगा और तुम्हें उससे बहुत अधिक कष्ट होगा ॥६४॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह क्रोध करके दिये गये वरुण के शाप के कारण उस दुःखद रोग के कारण राजा अत्यंत पीड़ित हुए।।६५॥ इस तरह से राजा को शाप देकर वरुण अपने भवन चले गये और राजा भी उस महाव्याधि से दुखी होकर अत्यंत दुखी हो गये ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणातीव पीडितः । दुःखाद्दुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद्भृशं तदा ॥१॥ कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम् । गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयंत्रितः ॥२॥ संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात् । गन्तुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह॥३॥ वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः । वारयास युक्त्या वै कुमारं गंतुमुद्यतम् ॥४॥** इन्द्र उवाच– **राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम्। अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा ॥५॥ पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ ॥६॥ आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु । तदर्थे वल्लभाः संति पुत्रदारधनादयः ॥७॥ आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां बल्लभं सुतम् । हवनं कारयित्वाऽसौ रोगमुक्तो भविष्यति ॥८॥ तस्मात्त्वया न गंतव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे । मृते पितरि गंतव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः ॥९॥ एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः । वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृपः ॥१०॥ अत्यंतं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चंद्रं तदाऽऽत्मजः । गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः ॥११॥ तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम् । निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः पुनः ॥१२॥ हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं**

हरिश्चन्द्रोपाख्यान (२)

व्यासजी ने कहा– वरुण के चले जाने पर राजा हरिश्चन्द्र रोग के कारण अत्यंत पीड़ित हो गये, उनका दुख प्रतिदिन बढ़ता ही गया, अतएव वे अत्यंत दुखी हो गये ॥१॥ कुमार रोहित ने जब सुना कि हमारे पिता रोग के कारण अत्यंत पीड़ित हैं, तो वह स्नेहातिरेक के कारण घर लौटने का निश्चय कर लिया ॥२॥ एक वर्ष वन में रहते बीत गया था अतएव अपने पिता का दर्शन करने के लिए जाने के लिए उद्यत रोहित को जानकर उसके पास इन्द्र आये ॥३॥ इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर आये थे और उन्होनें युक्तिपूर्वक राजकुमार को जाने से रोक दिया ॥४॥ **इन्द्र ने कहा**– राजकुमार तुम जानते नही हो राजनीति बड़ी भयंकर होती है । अतएव तुम मूर्ख हो कि जाना चाहते हो ॥५॥ हे महाभाग ! तुम्हारे पिता वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा तुम्हारा अग्नि में होम करवा देंगें । हे तात ! सभी प्राणियों को अपनी आत्मा प्रिय होती है । उस आत्मा के ही लिए पुत्र, पत्नी, और धन इत्यादि प्रिय होते हैं ॥६-७॥ अपने शरीर की रक्षा के लिए राजा तुम जैसे प्रिय पुत्र को भी होम करवा करके रोग मुक्त होयेगें ॥८॥ अतएव हे राजकुमार ! तुम अपने पिता के घर मत जाओ । जब तुम्हारे पिता मर जायँ तब तुम अपना राज्य प्राप्त करने के लिए जाना ॥९॥ इस तरह इन्द्र के द्वारा निषेध कर दिये जाने के कारण राजकुमार रोहित फिर एक वर्ष तक वन में ही निवास किए ॥१०॥ इसके बाद हरिश्चन्द्र को अत्यंत दुखी सुनकर उनके पुत्र रोहित ने निश्चित किया कि

स्वपुरोहितम् । प्रपच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम् ॥१३॥ तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम । क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति॥१४॥ पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्रह्मणैर्वेदपारगैः । द्रव्येणानीय तत्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम ॥१५॥ वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति । लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः ॥१६॥ एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना । प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया ॥१७॥ अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः । तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः ॥१८॥ प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलो द्विजः । गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै ॥१९॥ शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी । तेषामेकतमं देहि ददामि तु गवां शतम् ॥२०॥ अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम् । पुत्रं चैकतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे ॥२१॥ कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम् । कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इति वादिनी ॥२२॥ मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च । आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः ॥२३॥ रुदन्तं दुःखितं

अब मुझे घर जाना ही ठीक है, और वह घर जाने के लिए तैयार हो गया ॥११ उसी समय ब्राह्मण के रुप में उसके सामने इन्द्र आ गये और अपनी युक्तियुक्त वाक्यों के द्वारा रोहित को जाने से रोक दिये ॥१२॥ दुःख से अत्यंत आर्त बने हुए हरिश्चन्द्र अपने पुरोहित से दुःख के नाश होने का निश्चित उपाय पूछे ॥१३॥ **हरिश्चन्द्र को ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ ने कहा–** राजेन्द्र ! तुम अपने खरीदे हुए पुत्र से यज्ञ करो, उससे तुम्हारा रोग विनष्ट हो जायेगा॥१४॥ वेदों में पारङ्गत ब्राह्मणों ने कहा है कि पुत्र दश प्रकार के होते हैं अतएव हे राजश्रेष्ठ ! तुम द्रव्य के द्वारा पुत्र खरीद कर लाओ ॥१५॥ उससे वरुण भी प्रसन्न हो जायेंगे और तुम्हारे लिए सुखद हो जायेगें । इस राष्ट्र में उत्पन्न कोई ऐसा भी ब्राह्मण होगा जो लोभ के कारण अपना पुत्र बेंच देगा ॥१६॥ महर्षि वसिष्ठ की बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने प्रधानमंत्री से वैसे किसी ब्राह्मण का पता लगाने के लिए कहे जो दरिद्र हो और धन लेकर अपने पुत्र को दे सके ॥१७॥ राजा हरिश्चन्द्र के राज्य में एक अजीगर्त नामक ब्राह्मण थे । वे अत्यंत निर्धन थे । उनके तीन पुत्र थे ॥१८॥ प्रधानमंत्री ने उस निर्धन ब्राह्मण से पुत्र देने के लिए कहा । मंत्री ने कहा कि तुम यज्ञ पशु के लिए अपने पुत्र को दे दो और उसके बदले में मैं सौ गायों को दूँगा ॥१९॥ **प्रधानमंत्री ने कहा–** शुनः पुच्छ, शुनः शेप, शुनोलाङ्गूल इन तीन पुत्रों में से तुम अपने एक पुत्र को दे दो उसके बदले मे मैं तुम्हें सौ गायें दे रहा हूँ ॥२०॥ अजीगर्त ने प्रधानमंत्री की बातों को सुना । वह भूख के कारण अत्यंत पीड़ित था । उसने अपने तीन पुत्रों में से एक पुत्र को बेचने का मन बना लिया ॥२१॥ उसने अपने बड़े पुत्र को इसलिए नहीं दिया कि वह उसको अपना कार्याधिकारी मानता था । अर्थात बड़ा पुत्र ही अपने पिता के और्ध्वदैहिक कार्यों को करने का अधिकारी होता है । माता ने सबसे छोटे पुत्र को यह कहकर नहीं दिया कि यह छोटा है अतएव यह मेरा कार्याधिकारी है ॥२२॥ इसलिए अजीगर्त ने सौ गायों के बदले में अपने मध्यम पुत्र शुनःशेप को बेच दिया । उसको लाकर नरमेघ यज्ञ में राजा ने उसे अपने यज्ञ

दीनं वेपमानं भृशातुरम् । यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा ॥२४॥ शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः । शामिता माददे शस्त्रं तमालंभयितुं शिशुम् ॥२५॥ नाहं द्विजसुतं दीनं रुदंतं करुणं भृशम् । हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा ॥२६॥ इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ । राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः ॥२७॥ जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा । क्रंदमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम् ॥२८॥ अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम् । राजन्कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव ॥२९॥ वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल । कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना ॥३०॥ दुःखितस्य धनार्थस्य सदाऽसूया प्रसूयते । व्यास उवाच– तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चन्द्रो मुदान्वितः ॥३१॥ तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम् । तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हन्तुं समुद्यतः ॥३२॥ लोभेनाकुलचित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः । समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः ॥३३॥ चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः । पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः ॥३४॥ यत्स्वयं स्वसुतं हन्तुमुद्यतः कुलपांसनः । धिक्चांडाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम् ॥३५॥ हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं

का पशु बनाया ॥२३॥ रोते हुए, दुखी कांपते हुए तथा अत्यंत आतुर शुनः शेप को जब यूप में बांधा गया तो उसको देखकर सभी ऋषि गण भी चिल्लाने लगे ॥२४॥ राजा ने उसको अपने नरमेध में पशु बनाकर उसका वध करने के लिए उसे शामिता (वधकर्ता) को दे दिया । किन्तु उस शिशु का वध करने के लिए शामिता ने अपना शस्त्र नहीं उठाया ॥२५॥ उस समय शामिता ने कहा मैं अपने लोभ की पूर्ति के लिए दीन बने हुए तथा करुण रुदन करते हुए इस ब्राह्मण के पुत्र का वध नहीं करुँगा ॥२६॥ इस तरह से कहकर वह वधिक उस दुष्कर कर्म को करने से मना कर दिया । इस पर राजा ने सभासदों से पूछा कि अब क्या किया जाय ॥२७॥ सभा में जोर से चिल्ला-चिल्ला कर अत्यधिक रोते हुए शुनः शेप को देखकर जनता भी हाहाकार करने लगी ॥२८॥ उसी समय अजीगर्त उस सभा में उठकर खड़ा हो गया और उसने राजा हरिश्चन्द्र से कहा, राजन् ! आप घबराएँ नहीं । आपका कार्य मैं करुँगा ॥२९॥ आप मुझे दो गुना पशु का मूल्य दीजिए मैं आपके यज्ञ के पशु का वध करुँगा । मैं धन का अर्थी हूँ । अतएव मैं आपके यज्ञ का कार्य करुँगा ॥३०॥ क्योंकि जो मनुष्य दुखी तथा धनार्थी होता है, उसमें असूया की बुद्धि सदैव बनी रहती है । **व्यासजी ने कहा–** उस अजीगर्त की बात को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र प्रसन्न हो गये ॥३१॥ उन्होनें अजीगर्त से कहा कि इस कर्म के लिए मैं तुम्हें एक सौ सर्वोत्तम गायों को प्रदान करुँगा । राजा हरिश्चन्द्र को सुनकर शुनः शेप का पिता अजीगर्त अपने पुत्र का वध करने के लिए तैयार हो गया ॥३१-३२॥ उसका मन लोभ के कारण व्याकुल था अतएव वह उस यज्ञ में शामित्र कर्म करने के लिए तैयार हो गया । उसको तैयार देखकर सभासदों ने हाहाकार किया ॥३३॥ सबलोग अत्यत दुखी होकर हाय ! हाय !! करने लगे । लोग कहने लगे कि इस महापापी का आकार केवल द्विज का है । यह क्रूरकर्म करने वाला है ॥३४॥ यह अपने ही

ते भविष्यति । आत्मा वै जायते पुत्र अंगाद्वै वेदभाषितम् ॥३६॥ तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हन्तुमिच्छसि । एवं कोलाहले तत्र जाते
कुशिकनन्दनः॥३७॥ समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः । विश्वामित्र उवाच– राजन्नमुं शुनःशेपं रुदंतं भृशदुःखितम् ॥३८॥ क्रतुस्ते भविता
पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा । दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि ॥३९॥ रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय । आत्मदेहस्य रक्षार्थं
परदेहनिकृंतनम् ॥४०॥ न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता । दयया सर्वभूतेषु संतुष्टो येन केन च ॥४१॥ सर्वेन्द्रियोपशांत्या च तुष्यत्याशु
जगत्पतिः । आत्मवत्सर्वभूतेषु चिंतनीयं नृपोत्तम ॥४२॥ जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल । त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहं हत्वा त्वमुं
द्विजम्॥४३॥ कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम् । पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सह ते नृप ॥४४॥ येनामुं हंतुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम् । यो
यं हन्त विना वैरं स्वकामः सततं पुनः ॥४५॥ हंतारं हंति तं प्राप्य जननं जननान्तरे । जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनाऽसौ ते समर्पितः ॥४६॥

वंश का विनाश करने वाला है, क्योंकि यह स्वयं अपने पुत्र को मारने के लिए तैयार हो गया है । अरे चाण्डाल ! तुमको धिक्कार है । यह क्या पाप कर्म
करना चाहते हो ॥३५॥ अपने पुत्र को मारकर धन प्राप्त करने से तुमको कौन सा सुख प्राप्त होगा ? वेद बतलाता है कि आत्मा ही पुत्र के रूप में उत्पन्न
होता है ॥३६॥ अरे पापी ! तुम अपनी आत्मा को ही कैसे मार देना चाहते हो ? इसतरह से जब कोलाहल हो रहा था उस समय **महर्षि. विश्वामित्र ने
कहा**—॥३७॥ वे दयार्द्र होकर राजा के समीप में जाकर कहे **विश्वामित्र ने कहा**— हे राजन् ! यह शुनः शेप रो रहा है । यह अत्यंत दुःखी है । इसे आप छोड़
दें । ऐसा करने से आपका यज्ञ भी पूरा हो जायेगा और आपके रोग का भी नाश हो जायेगा । दान के समान कोई पुण्य नहीं है और न तो हिंसा के समान
कोई पाप है ॥३८-३९॥ जिह्वास्वाद के लोलुप लोगों के ही लिए यह विधिवाक्य बना है । आप ही विचार कीजिए । अपने शरीर की रक्षा करने के लिए दूसरे
के शरीर को काटना उचित है क्या ?॥४०॥ हे महाराज ! कल्याण चाहने वाले को यह नहीं करना चाहिए । जो व्यक्ति जीवों पर दया करता है, जो कुछ
भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहता है ॥४१॥ तथा जो अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता है उस पर शीघ्र ही परमात्मा प्रसन्न हो जाते हैं । हे राजन्!
सभी जीवों के ऊपर अपने ही शरीर के समान दया करनी चाहिए ॥४२॥ सभी जीवों को अपना जीवन सदा प्रिय होता है। तुम इस ब्राह्मण के शरीर को काटकर
सुख प्राप्त करना चाहते हो ॥४३॥ हे राजन् ! आपके ही समान यह ब्राह्मण शिशु भी अपने सुखप्रद शरीर की रक्षा करना क्यों नहीं चाहेगा ? हे राजन् !
आपका इस ब्राह्मण बालक के साथ पूर्वजन्म का कोई वैर तो है नहीं कि उसके कारण तुम इस निरपराध बालक को मार डालना चाहते हो । जो व्यक्ति
बिना किसी वैर के केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी को मारता है, तो उस मारने वाले को वह मारा जाने वाला व्यक्ति दूसरा जन्म लेकर अवश्य
मारता है । इसका पिता अत्यंत दुष्ट स्वभाव वाला है, कि उसने अपने इस पुत्र को बेंच दिया ॥४५-४६॥ वह पापी अत्यंत दुष्ट बुद्धि वाला है कि उसने

स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः सुदुर्मतिः । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥४७॥ यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् । देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत् ॥४८॥ षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुंक्ते न संशयः । निषेधनीयो राज्ञाऽसौ पापं कर्तुं समुद्यतः ॥४९॥ न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः । सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशंकुतनयः शुभः ॥५०॥ आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव । मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे ॥५१॥ तव देहे सुखं राजन्भविष्यत्यविचारणात् । पिता ते शपयोगेन चांडालत्वमुपागतः ॥५२॥ मयाऽसौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल । तेनैव प्रीतियोगेन कुरु मे वचनं नृप ॥५३॥ मुंचैनं बालकं दीनं रुदंतं भृशमातुरम् । याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन्राजसूयके॥५४॥ प्रार्थनाभंगजं दोषं कथं त्वं नावबुध्यसे । प्रार्थितं सर्वदा देयं मखेऽस्मिन्नृपसत्तम ॥५५॥ अन्यथा पापमेव स्यात्तत्र राजन्न संशयः । व्यास उवाच— **इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः ॥५६॥ प्रत्युवाच महाराजः कौशिकं मुनिसत्तमम् । जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने ॥५७॥**

धन के लोभ से अपने पुत्र को आपको बेंचा । मनुष्य को अनेक पुत्रों को प्राप्त करने की इच्छा इसलिए प्राप्त करना चाहिए कि हो सकता है उसमें कोई पिता को पिण्डदान करने के लिए गया जाय । हो सकता है कि कोई पिता के नाम पर कोई नीला वृषभ (सांड) छोड़े अथवा कोई अश्वमेघ यज्ञ करे। देश में जो कोई भी पापकर्म करता है उसके उस पाप के छठे भाग को राजा को ही भोगना पड़ता है । इसलिए राजा को चाहिए कि उस पापी को पाप करने से रोके ॥४७-४९॥ हे राजन् ! आप सूर्यवंश में उत्पन्न त्रिशंकु के पुत्र हैं, अतएव अपने पुत्र को बेचने के लिए उद्यत उस ब्रह्मण को आपने रोका क्यों नहीं ॥५०॥ आप आर्य हैं, अनार्य के समान कर्म क्यों करना चाहते है ? मुनि पुत्र को बन्धन मुक्त करके मेरी बात को मानने से आप के शरीर में सुख की उत्पत्ति अवश्य होगी । इसमें कोई भी विचार करने की बात नही हैं । तुम्हारे पिता शापग्रस्त होने के कारण चण्डाल हो गये थे ॥५१-५२॥ मैंनें उनको उसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा दिया । आप उसी संबंध का विचार करके मेरी बातों को मान लें ॥५३॥ आप इस आतुर तथा दीन बने हुए बालक को बन्धन से मुक्त कर दें। मैं आपके इस राजसूय यज्ञ में इसके प्राणों की भीख माँग रहा हूँ ॥५४॥ मेरे द्वारा की गयी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करने पर आपको जो पाप लगेगा उसे आप क्यों नहीं समझ रहे है । हे राजवर्य ! इस यज्ञ में जो कोई भी वस्तु किसी के द्वारा मांगी जाय उसे आपको अवश्य देनी चाहिए ॥५५॥ यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो निश्चय ही आपको केवल पाप ही लगेगा । **व्यासजी ने कहा—** कौशिक महर्षि की इस बात को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने ॥५६॥ मुनिश्रेष्ठ कौशिक से कहा— हे गाधिपुत्र कौशिक ! मैं जलोदर रोग के कारण अत्यन्त कष्ट में हूँ ॥५७॥ अतएव हे मुनिवर्य! मैं

तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक । न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा ॥५८॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपनः । बभूव दुःखसंतप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम् ॥५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **रुदंतं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः । शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम् ॥१ ॥ मंत्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन् । जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया ॥२॥ विश्वामित्रवचः श्रृत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः । मंत्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम् ॥३॥ जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः। प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृप बालके ॥४॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः । तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनिन ते ॥५॥ राजाऽतिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः । बद्धांजलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम् ॥६॥** हरिश्चन्द्र

इसको बन्धन मुक्त नहीं कर सकता हूँ । आपको यदि कोई दूसरी वस्तु मांगनी हो तो माँग लीजिये । मेरे इस कार्य में आपको किसी भी प्रकार का कलह नहीं उत्पन्न करना चाहिए ॥५८॥ राजा की उस बात को सुनकर अत्यन्त क्रोधी महर्षि विश्वामित्र उस दीन बने हुए ब्राह्मण पुत्र को देखकर अत्यन्त दुखी हो गये ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

हरिश्चन्द्रोपाख्यान (३)

व्यासजी ने कहा– रोते हुए बालक को देखकर दया से आतुर बने हुए महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त दुःखी उस शुनःशेप के पास जाकर उससे कहे ॥१॥ हे पुत्र ! मेरी आज्ञा है कि तुम मेरे द्वारा बतलाये गये वरुण के मन्त्र का मन से स्मरण करो ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण वरुण अवश्य करेंगे ॥२॥ विश्वामित्र महर्षि के द्वारा इस तरह कहे जाने पर शोक से व्याकुल शुनःशेप महर्षि के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र का मन से जप करने लगा ॥३॥ शुनःशेप के द्वारा मन्त्र जप करते ही वहाँ पर कृपालु वरुण प्रकट हो गये । वे राजा और बालक दोनों पर प्रसन्न थे ॥४॥ वरुण को आये हुए देखकर सब लोग

उवाच– **देवदेव कृपासिंधो पापात्माऽहं सुमंदधीः । कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना ॥७॥ मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम् । कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदर्मतेः ॥८॥ अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया । वंचितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो ॥९॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम् ॥१०॥ नाज्ञस्य दूषणं चिंत्यं नूनं ज्ञानवता विभो । दुःखितोऽहं रुजाक्रांतो वंचितः स्वसुतेन ह ॥११॥ न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो । वंचयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे ॥१२॥ प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः । यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये ॥१३॥ दर्शनं तव संप्राप्य गतं दुःखं ममाद्भुतम् । जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि सांप्रतम् ॥१४॥** व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च । दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम् ॥१५॥** वरुण उवाच– **मुंच राजञ्छुनःशेपं स्तुवन्तं मां भृशातुरम् । यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना ॥१६॥ इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा । चकार**

आश्यर्चित हो गये । वरुण का दर्शन करके सब लोग प्रसन्न हो गये और उन लोगों ने वरुण की स्तुति भी की ॥५॥ अत्यन्त आश्चर्यित राजा ने वरुण के चरण कमलों में प्रणाम किया । वे रोग के कारण अत्यन्त आतुर थे । राजा ने सामने विद्यमान वरुण की हाथ जोड़कर प्रार्थना की ॥६॥ **हरिश्चन्द्र ने कहा–** हे देवाधिदेव ! हे कृपासिंधो ! मैं अज्ञानी एवं पापी हूँ । मैंने अपराध किया था तो ब्रह्माजी ने मुझे पवित्र बना दिया ॥७॥ मैं निःसन्तान था किन्तु पुत्र के अभाव में मैंने आपकी बातों की परवाह नहीं की । मैंने आपका अपराध किया किन्तु मैं तो अज्ञानी हूँ । अज्ञानी व्यक्ति के द्वारा कौन सा अपराध नहीं हो जाता है ॥८॥ अर्थी व्यक्ति को होने वाले पाप का पता नहीं चलता है । इसीलिए पुत्रार्थी होने के कारण मैंने आप से धोखा किया क्योंकि मुझे नरक में जाने का डर था ॥९॥ चूंकि पुत्रहीन की सद्गति नहीं होती है, और न तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है । अतएव मैं उस वाक्य को लेकर भयभीत हूँ जिस वाक्य के द्वारा मैंने आपकी अवहेलना की थी ॥१०॥ हे विभो ! आप तो ज्ञानी हैं । ज्ञानी को अज्ञानी के दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए। मैं रोगी हो गया हूँ, अत्यन्त दुःखी हूँ । मेरे पुत्र ने मुझे धोखा दे दिया है ॥११॥ हे प्रभो ! हे महाराज ! मुझे इस बात का विल्कुल पता नहीं है कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया । वह अपनी मृत्यु से भयभीत होकर मुझे धोखा देकर वन में चला गया । मैंने धन देकर ब्राह्मण के बालक को धन से खरीद कर लाया हूँ और उसी के द्वारा आपको प्रसन्न करने के लिए इस यज्ञ को मैंने प्रारम्भ किया है ॥१३॥ आपका दर्शन करके मेरा अद्भुत दुःख समाप्त हो गया है । क्योंकि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं अतएव जलोदर जन्य कष्ट विलकुल समाप्त हो गया है ॥१४॥ **व्यासजी ने कहा–** उसके पश्चात् रोग से व्याकुल बने हुए राजा की वाणी सुनकर दयालु देवश्रेष्ठ वरुण ने राजा से कहा ॥१५॥ **वरुण ने कहा–** हे राजन् ! अत्यन्तु आतुर तथा मेरी स्तुति करने वाले शुनः शेप को बन्धन से आप खोल दें । आपका यह यज्ञ पूरा हो गया स्वयं आप भी रोग मुक्त हो जायँ ॥१६॥ इस तरह से कहकर वरुण शीघ्र ही सभी

पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम् ॥१७॥ विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना । जयशब्दस्ततस्तत्र संजातो मखमण्डपे ॥१८॥ राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात् । यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः ॥१९॥ राजा स्विवयं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः । शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृतांजलिः ॥२०॥ भो भो सभ्याः सुधर्मज्ञा ब्रुवंतु धर्मनिर्णयम् । वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल ॥२१॥ पुत्रोऽहं यस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम् । भवतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम् ॥२२॥ इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम् । सभ्या ऊचुः– **अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ ॥२३॥ अंगादंगात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः । अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः ॥२४॥ तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः । विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किल ॥२५॥ पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः । अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै ॥२६॥ अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः । तथा वित्तप्रदश्चैव पंचैते पितरः स्मृताः॥२७॥ तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथाऽपरे । वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च ते ॥२८॥ इत्थं संदेहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।**

सदस्यों के सामने ही राजा हरिश्चन्द्र को रोग से मुक्त कर दिए ॥१७॥ वरुण के द्वारा पाश के बन्धन से वह ब्राह्मण भी मुक्त कर दिया गया । इस समय उस यज्ञ मण्डप में जय-जय कार की ध्वनि व्याप्त हो गयी ॥१८॥ राजा भीं शीघ्र ही भयंकर रोग से मुक्त होकर प्रसन्न हो गये । यूप के बन्धन से मुक्त होकर शुनः शेप भी स्थिर हो गये,उनकी व्याकुलता समाप्त हो गयी ॥१९॥ विनयावनत राजा ने इस यज्ञ को पूर्ण कर दिया शुनःशेप ने भी हाथ जोड़ कर सभी सदस्यों से नम्रता पूर्वक कहा ॥२०॥ हे सभ्यों ! आपलोग धर्म के ज्ञाता हैं आपलोग धर्म का निर्णय बतलाइये । क्योंकि आपलोग जो कुछ भी कहते हैं, वेदों तथा शास्त्रों के अनुसार कहते हैं, तथा आपलोग यथार्थ वक्ता हैं ॥२१॥ हे सर्वज्ञ महापुरुषों ! मैं किसका पुत्र हूँ ? मेरा पिता कौन है? आपलोग जिसको मेरा पिता बतलायेंगे मैं उसी के शरण में जाऊँगा ॥२२॥ शुनःशेप के इस प्रकार से कहने पर सभी सभ्य पुरुष आपस में विचार करने लगे। **सभ्यों ने कहा–** यह तो अजीगर्त का पुत्र है, यह दूसरे किसका पुत्र हो सकता है ?॥२३॥ वह अपने पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ है और उन्होंने ही इसे पाला-पोसा भी है । ऐसी स्थिति में यह किसी दूसरे का पुत्र कैसे हो सकता है ?॥२४॥ यह सुनकर महर्षि वामदेव ने उन सभ्यों से कहा– अजीगर्त ने तो धन के लोभ में आकर पुत्र को बेंच दिया है ॥२५॥ अतएव यह धन देने वाले राजा का पुत्र हो गया। अथवा यह वरुण का पुत्र होगा क्योंकि वरुण ने ही इसे पाश के बन्धन से मुक्त किया है ॥२६॥ क्योंकि पाँच प्रकार के पिता बतलाये गये हैं– १. अन्नदाता, २. भय से रक्षा करने वाले, ३. विद्यादाता, ४, धनदाता और ५, उत्पन्न करने वाले माता-पिता ॥२७॥ उस समय कुछ सदस्य उसके पिता अजीगर्त को ही उस का पिता बतलाये; कुछ धन देने वाले राजा को उसका पिता बतलाये । दूसरे सभासदों ने शुनः शेप का पिता वरुण को बतलाया इस तरह विवाद हो जाने के कारण पिता का वे सब निर्णय

सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः ॥२९॥ शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसंमतम् । निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः ॥३०॥ सम्बन्धस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात् । हरिश्चन्द्रस्य संजातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च ॥३१॥ यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः । वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः ॥३२॥ तस्मान्नायं महाभाग ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः । यो यं स्तौति महामन्त्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च ॥३३॥ धनं प्राणान्पशून्राज्यं तथा मोक्षं निजेप्सितम् । कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः ॥३४॥ मन्त्रं दत्त्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसङ्कटे । व्यास उवाच– श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य वाढमूचुः सभासदः ॥३५॥ विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा । एहि पुत्र गृहे मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः ॥३६॥ शुनःशेपो जगमाशु तेनैव सह सत्वरः । वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम् ॥३७॥ ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा । राजाऽपि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदान्वितः ॥३८॥ प्रजास्तु पालयामास सुप्रसन्नेन चेतसा । रोहिताख्यस्तु तच्छुत्वा वृतांतं वरुणस्य ह ॥३९॥ आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्वनपर्वतात् । दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम् ॥४०॥ मुदितोऽसौ जगामाशु सम्मुखः कोसलाधिपः । दृष्ट्वा पितरमायांतं

नहीं कर पा रहे थे ॥२८॥ इस तरह से संदेह का विषय बन जाने पर सर्वज्ञ तथा सबों से पूजित वसिष्ठ महर्षि ने विवाद करने वाले उन सबों से कहा–॥२९॥ हे महाभागों ! आप लोग वेद सम्मत इस निर्णय को सुनें । जब स्नेह हीन होकर पिता ने अपने इस बालक पुत्र को बेंच दिया ॥३०॥ तो उसी समय धन ले लेने के साथ-साथ उसका संबन्ध समाप्त हो गया । और उसी समय खरीद लिए जाने के कारण यह हरिश्चन्द्र का पुत्र बन गया ॥३१॥ किन्तु जब राजा ने इसे यूप में बाँध दिया उस समय यह हरिश्चन्द्र का भी पुत्र नहीं रह गया । इसने वरुण की स्तुति की और उस स्तुति से प्रसन्न होकर वरुण ने इसे बन्धन से मुक्त कर दिया ॥३२॥ अतएव यह महाभाग वरुण का भी पुत्र नहीं रह गया । जो जिसकी स्तुति करता है, वह उसको उसके द्वारा की गयी स्तुति के बदले में कुछ देता ही है । वह उसको धन या प्राण, पशु, या राज्य, अथवा राज्य । जो कुछ भी स्तुति करने वाले को अभिप्रेत होता है वह उसे देता है वस्तुतः यह पुत्र कौशिक का है, क्योंकि उन्होनें ही इसे इस विपत्ति से बचाया है ॥३३-३४॥ उन्होंने ही इस घोर संकटकाल में शुनः शेप को वरुण का मन्त्र प्रदान किया है । **व्यासजी ने कहा–** महर्षि वसिष्ठ की वाणी को सुनकर सभी सभासदों ने कहा-बहुत अच्छा निर्णय हुआ ॥३५॥ महर्षि वसिष्ठ का निर्णय सुनकर महर्षि विश्वामित्र का हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो गया उन्होंने शुनःशेप से कहा– आओ पुत्र ! अब तुम मेरे यहाँ चलों । ऐसा कहकर उन्होंन शुनः शेप का दाहिना हाथ पकड़ लिया ॥३६॥ और शुनःशेप भी शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्र के साथ चला गया । वरुण भी प्रसन्न होकर अपने घर चले गये ॥३७॥ इसके बाद ऋत्विक् तथा सभासद भी अपने घर चले गये। रोग से मुक्त होकर राजा भी अत्यधिक प्रसन्न हो गये ॥३८॥ और वे प्रसन्न मन से अपनी प्रजाओं का पालन करने लगे । रोहित ने जब उस वरुण से संबद्ध वृतान्त को सुना तो ॥३९॥ उस दुर्गम वन तथा पर्वत से निकलकर

प्रेमोद्रिक्तः सुसंभ्रमः ॥४१॥ दण्डवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा । राजाऽपि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदान्वितः ॥४२॥ समाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः । उत्संगे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः ॥४३॥ उष्णैर्नेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाकरोत् । राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च ॥४४॥ वृत्तांतं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात् । राजसूयं क्रतुवरं चकार नृप सत्तमः ॥४५॥ वसिष्ठं पूजयित्वाऽथ होतारमकरोद् विभुः । समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः ॥४६॥ शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात् विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च संगतः ॥४७॥ मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदने मुनिसत्तम । विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रतिपूजितम् ॥४८॥ वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः । विश्वामित्र उवाच— क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम ॥४९॥ कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममांतिके । वसिष्ठ उवाच— यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥५०॥ राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः । नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः ॥५१॥ दाता च धर्मशीलश्च प्रजारञ्जनतत्परः । तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनन्दन ॥५२॥ किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विजः । हरिश्चन्द्रसमो

अपने घर चला आया । दूतों ने राजा के सन्निकट आकर रोहित के घर आने की सूचना राजा को दी ॥४०॥ अपने पुत्र के आगमन की बात को जब राजा हरिश्चन्द्र ने सुना तो वे उस की अगवानी करने के लिए गये । अपने पिता को आते हुए देखकर रोहित के हृदय में सहसा प्रेम का उद्रेक हो गया॥४१॥ उसने दण्डे के समान भूमि पर सोकर अपने पिताको साष्टाङ्ग प्रणाम किया । दुःख के कारण रोहित का मुख आँसुओं से भर गया था । राजा ने भी अपने पुत्र को उठाकर उसे प्रेम पूर्वक अपने गले से लगा लिया ॥४२॥ उन्होंने अपने पुत्र रोहित के शिर का आघ्राणन किया और उससे कुशल प्रश्न किया । प्रसन्नता पूर्वक राजा ने रोहित को अपनी गोद में बैठाया ॥४३॥ उन्होंने अपने आंसुओं के गर्म-गर्म जल से उसके शिर को धो दिया । उसके बाद वे अपने अत्यन्त प्रिय पुत्र के साथ राज्य का प्रशासन करने लगे ॥४४॥ उसके बाद राजा ने उस नरमेध की सारी बातें अपने पुत्र को विस्तार के साथ बतलाया। उसके पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र ने श्रेष्ठ राजसूययज्ञ का आयोजन किया ॥४५॥ उन्होंने महर्षि वसिष्ठ की पूजा की और उनको अपने यज्ञ का होता बनाया॥४६॥ इसके बाद महर्षि वसिष्ठ अत्यन्त आदर पूर्वक इन्द्र के घर गये। वहीं पर महर्षि वसिष्ठ से महर्षि विश्वामित्र की भेंट हुई ॥४७॥ वे दोनों महर्षि देवलोक में एक साथ बैठे हुए थे । विश्वामित्र महर्षि ने अत्यधिक पूजित वसिष्ठ महर्षि को देखकर पूछा ॥४८॥ वे महर्षि वसिष्ठ को उस तरह से पूजित देखकर आश्चर्यान्वित हो गये थे अतएव वे इन्द्र की सभा में महर्षि वसिष्ठ से पूछे— **विश्वामित्र ने कहा—** हे मुनिश्रेष्ठ ! अपने इस महान पूजा को आपने कहाँ पर प्राप्त किया ॥४९॥ महाभाग ! इस बात को आप मुझे सत्य-सत्य बतलाइये । **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** मेरा यजमान प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हैं ॥५०॥ उन्होंने राजसूय यज्ञ किया और उस में उन्होंने बहुत अधिक दक्षिणा दी । इस समय उनके समान सत्य बोलने का व्रत धारण करने वाला कोई भी दूसरा

राजा न भूतो न भविष्यति । सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः ॥५३॥ व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः । बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम् ॥५३॥** विश्वामित्र उवाच– **एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियय् । वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः ॥५५॥ मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च । त्वदीयं वाऽतितपसो ग्लहं कुरु महामते ॥५६॥ अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम् । असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम् ॥५७॥ आजन्म संचितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु । अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे ॥५८॥ ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदंतौ मुनी तदा । स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ ॥५९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

नहीं है ॥५१॥ उनके समान दान देने वाला धर्म का पालन करने वाला तथा प्रजाओं का रञ्जन करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है । हे कौशिक नन्दन! मैंने उनके ही यज्ञ में यह महती पूजा प्राप्त की है ॥५२॥ हे द्विज ! आप बार-बार सत्य बोलने के लिए क्या कर रहे हैं ? मैं सत्य कह रहा हूँ कि राजा हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी, दानी, शूरवीर और परम धार्मिक राजा न तो कोई हुआ और न भविष्य में कोई होगा ॥५३॥ **व्यासजी ने कहा**– महर्षि वसिष्ठ की बात सुनकर अत्यन्त क्रोधी महर्षि विश्वामित्र की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं और उन्होंने उनसे कहा ॥५४॥ **विश्वामित्र ने कहा**– आप मिथ्यावादी तथा कपटी राजा हरिश्चन्द्र की इस तरह से झूठी प्रशंसा कर रहे हैं ? उन्होंने तो वरुण से प्रतिज्ञा करके उन्हें धोखा दे दिया था ॥५६॥ हम दोनों अपने इस जन्म में की गयी तपस्या तथा वेदाध्ययन से अर्जित अपने पुण्य की शर्त लगा दें । जिस हरिश्चन्द्र की आप इतनी प्रशंसा कर रहे हैं उसको यदि मैं असत्यवादी; दान नहीं देने वाला तथा महाखल नहीं सिद्ध कर दूँ तो मेरे इस जन्म के सञ्चित सारे पुण्य विनष्ट हो जायँ । यदि मैंने उसे वैसा सिद्ध कर दिया तो फिर आपके इस जन्म के अर्जित सारे पुण्य विनष्ट हो जायँ । यह हम दोनों की शर्त रहेगी ॥५७-५८॥ इस तरह से परस्पर में शर्त लगा कर अत्यन्त क्रोधी दोनों महर्षिं परस्पर में विवाद करते हुए स्वर्ग लोक से अपने-अपने आश्रम में चले गये ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

अष्टादशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **कदाचित्तु हरिश्चन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । अपश्यद्रुदतीं बालां सुन्दरीं चारुलोचनाम् ॥१॥ तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापरः । पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने ॥२॥ केनासि पीडिताऽत्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे । का च त्वं विजने घोरे कस्ते भर्ता पिताऽथवा ॥३॥ न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि परांगनाम् । तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुन्दरि बाधते ॥४॥ ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि । विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे ॥५॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम् । प्रमृज्याश्रूणि वदनाद्धरिश्चन्द्रं नृपोत्तमम्॥६॥** नार्युवाच– **राजन्मां बाधतेऽत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः । तपः करोति यद्धोरं मदर्थं कौशिको वने ॥७॥ तेनाहं दुःखिता राजन्विषये तव सुव्रत । विद्धि मां कमनां कांतां पीडितां मुनिना भृशम् ॥८॥** राजोवाच– **स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति । तमहं वारयिष्यामि मुनिं तपपरायणम् ॥९॥ इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ । गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः ॥१०॥ स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं**

हरिश्चन्द्रोपाख्यानम (४)

व्यासजी ने राजा जनमेजय से कहा– एक बार राजा हरिश्चन्द्र आखेट करने के लिए वन में गये वहाँ पर उन्होंने किसी सुन्दर नेत्रों वाली सुन्दरी बाला को रोते हुए देखा ॥१॥ करुणा करने वाले राजा हरिश्चन्द्र ने उस नारी से पूछा हे वरानने ! हे कमल दल के समान सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम क्यों रो रही हो ॥२॥ तुम मुझे यह शीघ्र बतलाओ कि तुम्हें किसने दुःख दिया है और तुमको कौन सा कष्ट है ? तुम कौन हो ? और इस निर्जन घोर वन में क्यों आयी हो ? तुम्हारे पति अथवा पिता कौन हैं ?॥३॥ मेरे राज्य में तो कोई राक्षस भी दूसरे की पत्नी को दुःख नहीं देता है । हे वरारोहे ! तुम अपना दुःख बतलाओ और हे कृशोदरि ! तुम स्वस्थ हो जाओ । हे सुन्दरि ! मेरे राज्य में कोई भी पापी नहीं रहता है ॥४-५॥ इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र की बात सुनकर उस नारी ने अपने आँखों से आँसू को पोंछकर राजवर्य हरिश्चन्द्र से कहा– ॥६॥ हे राजन् ! मुझको महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त दुःख दे रहे हैं । वे मुझको प्राप्त करने के लिए वन में घोर तपस्या कर रहे हैं ॥७॥ अतएव हे सुव्रत ! मैं आपके राज्य में भी रहकर अत्यन्त दुःखी हूँ । आप मेरे बारे में यही जानें की मैं अत्यन्त मनोहर नारी हूँ और उन मुनि के द्वारा अत्यन्त पीड़ित हूँ ॥८॥ **राजा हरिश्चन्द्र ने कहा–** हे विशालाक्षि ! तुम स्वस्थ हो जाओं । तुम को कोई भी कष्ट नहीं होगा । मैं उन तपस्वी मुनि को ऐसा करने से रोक दूँगा ॥९॥ इस तरह से उस स्त्री को आश्वासन देकर राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्र के पास गये । उन्होंने झुककर महर्षि विश्वामित्र को प्रणाम किया उसके बाद उनसे **राजा ने कहा–** ॥१०॥ हे स्वामिन् ! आप इस घोर

तपसा देहपीडनम् । किमर्थं ते समारम्भो ब्रूहि सत्यं महामते ।।११।। वांछितं तव गाधेय करोमि सफलं किल । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसाऽलमतः परम् ।।१२।। विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम् । लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित् ।।१३।। इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ । मनसा क्रोधमाधाय गतोऽसौ कौशिको मुनिः ।।१४।। स गत्वा चिन्तयामास नृपकृत्यमसांप्रतम् । वसिष्ठस्य च सम्वादं तपसः प्रतिषेधनम्।।१५।। कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत् । विचिंत्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम् ।।१६।। प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम्। सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम् ।।१७।। राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन्रक्षकांस्तदा । मालतीनां च खंडानि कनकानां तथैव च ।।१८।। यूथिकानां च वृंदानि कंपयंश्च मुहुर्मुहुः । दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान् ।।१९।। चम्पकान्केतकीखंडान्मल्लिकानां च पादपान् । करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून् ।।२०।। मुचुकुन्दानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा । उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने ।।२१।। वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः हाहेति चुक्रशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः ।।२२।। बाणैः संताड्यमानोऽपि यदात्रस्तो नवै मृगः । रक्षकान्पीडयामास

तपस्या के द्वारा अपने शरीर को क्यों पीड़ित कर रहे है ? हे महामते ! आप सत्य बतलाइये कि आपका यह घोर प्रयास किस लिए है ?।।११।। हे गाधि पुत्र ! आप जो चाहते हों उसको मैं पूरा कर देता हूँ । आप तपस्या करना छोड़ दें । आप उठें आपने बहुत अधिक तपस्या कर ली है ।।१२।। हे सर्वज्ञ! मेरे राज्य में संसार को दुःख देने वाली घोर तपस्या किसी को भी नहीं करनी चाहिए ।।१३।। इस तरह से तपस्या करने से महर्षि विश्वामित्र को रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने घर चले गये । और महर्षि विश्वामित्र भी अपने मन में क्रोध धारण किए हुए अपने घर चले गये ।।१४।। वे घर जाकर सोचने लगे कि राजा हरिश्चन्द्र ने मुझे तपस्या करने से रोककर अत्यन्त अनुचित कार्य किया है । वे वसिष्ठ महर्षि के साथ हुयी बात तथा तपस्या से प्रतिषेध की बात सोच रहे थे ।।१५।। वे अपने क्रोध भरे मन से उसका प्रतिकार करना चाहते थे । उन्होंने बहुत विचार करके एक घोर आकार वाले दानव को ।।१६।। सूकर का आकार वाला बनाकर हरिश्चन्द्र के पास भेजा । वह बहुत बड़े शरीर वाला सूकर महाकाल के समान प्रतीत होता था । वह भंयकर ध्वनि कर रहा था।।१७।। वह राजा के उपवनों में आया और उपवन के रक्षकों को भयभीत करने लगा । मालती के झाड़ियों तथा जूही की झाड़ियों के समूह को बार-बार कँपाया और अपने दाँत से वहाँ की भूमि को खोद दिया । बड़े-बड़े वृक्षों को उसने उखाड़ दिया ।।१८-१९।। उसने चम्पा तथा केवड़ा की झाड़ियों को मल्लिका के वृक्षों को तथा कोमल खस को खोद डाला ।।२०।। वह सूकर उस वन में मुचकुन्द, अशोक, बकुल (मौलिश्री) तथा तिलक के वृक्षों को उखाड़ कर विनष्ट कर दिया ।।२१।। शस्त्रधारण करने वाले सभी उस वाटिका की रक्षा करने वाले रक्षक भाग गये और माला बनाने वाले मालीगण भयभीत होकर

कोलः कालसमद्युतिः ॥२३॥ ते तदाऽतिभयाक्रांता राजानं शरणं ययुः । त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः ॥२४॥ तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा । पप्रच्छ कि भयं कस्मान्मां ब्रुवंतु समागताः ॥२५॥ नाहं बिभेमि देवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः । कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद्ब्रुवंतु ममाग्रतः ॥२६॥ हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल । यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः ॥२७॥ देवो वा दानवो वापि तं निहन्मि शरैः शितैः । क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः ॥२८॥ मालाकारा ऊचुः– **न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः । कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने ॥२९॥ पुष्पवृक्षानतिमृदून्दंतेनोन्मूलयत्यसौ । विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा ॥३०॥ विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा । न विभेति महाराज हन्तुमस्मानुपाद्रवत् ॥३१॥** व्यास उवाच– **इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः। अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति ॥३२॥ सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः । पदातिवृंदसहितः प्रययौ वनमुत्तमम् ॥३३॥ तत्रापश्यन्महाकोलं घुर्घुरंतं भयानकम् । वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत् ॥३४॥ चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम् । तं हंतुं सूकरं पापं तरसा**

हाय ! हाय ! चिल्लाने लगे ॥२२॥ जब बाणों से मारे जाने पर भी वह सूकर भयभीत नहीं हुआ और काल के समान आकार वाला वह सूकर रक्षकों को पीड़ित कर दिया ॥२३॥ इसके बाद वे भयभीत होकर राजा हरिश्चन्द्र के शरण में गये । काँपते हुए भयभीत होकर उन सबों ने कहा– हमारी रक्षा कीजिये, हमारी रक्षा कीजिए ॥२४॥ भयभीत होकर उन रक्षकों को आये हुए देखकर राजा ने पूछा तुमलोग यह बतलाओ कि किससे तुमलोगों को किस प्रकार का भय है ? यह बतलाओ ॥२५॥ मैं न तो देवताओं से डरता हूँ और न राक्षसों से डरता हूँ । तुम लोगों को जिससे भय पैदा हो गया है, उसे मुझे बातलाओ ॥२६॥ जो पापी तथा खल मेरे शत्रु के रूप में उत्पन्न हो गया है मैं अपने उस अभागे शत्रु को अपने एक ही बाण से मार दे रहा हूँ॥२७॥ चाहे वह देवता हो अथवा दानव, उसे मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से मार डालता हू ँ। वह कहाँ पर है,उसका रूप कैसा है ? तथा वह कितना बलवान है॥२८॥ **मालाकारों ने कहा–** वह न तो देवता है न दैत्य, न यक्ष है और न किन्नर । हे राजन् ! वह कोई विशालकाय सूकर है और जो उद्यान में विद्यमान है। उसने अपने दाँतों से फूलों के कोमल पौधों को उखाड़ दे रहा है । उस अत्यन्त वेगवान सूकर ने सम्पूर्ण उपवन को उजाड़ दिया है ॥२९-३०॥ हम लोगों ने उसको बाणों, पत्थरों तथा लाठियों से मारा है किन्तु हे महराज ! वह उससे भयभीत नहीं हुआ, बल्कि वह हमलोगों को ही मारने के लिए दौड़ा । **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! उन रक्षकों की बात को सुनकर महाराज हरिश्चन्द्र क्रुद्ध हो गये और घोड़े पर सवार होकर वे उस उपवन में गये ॥३२॥ राजा के साथ हाथी, घोड़े तथा रथ की विशाल सेना भी थी । राजा पैदल सेना के साथ उस वन में गये ॥३३॥ राजा ने वहाँ जाकर उस विशालकाय सूकर को घुर्घुराते हुए देखा । उस उद्यान को विनष्ट हुआ देखकर राजा क्रोध में आ गये ॥३४॥ उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर धनुष को खींचकर उस पापी सूकर

समुपाक्रमत् ।।३५।। समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाकुलम् । संमुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम् ।।३६।। तमायान्तं समालोक्य वराहं
विकृताननम् । मुमोच विशिखं तस्मिन्हंतुकामो महीपतिः ।।३७।। वंचयित्वाऽथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात् । निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं
तदा ।।३८।। गच्छन्तं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः । मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्य यत्नतः ।।३९।। क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं
गतः । कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत् ।।४०।। हरिश्चन्द्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह। । अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम् ।।४१।।
इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनान्तरम् । एकाकी नृपतिः कोलं व्रजन्तं समुपाद्रवत् ।।४२।। मध्याह्नसमये राजा सम्प्राप्तो विजने वने । तृषितः
क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रांतवाहनः ।।४३।। सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिंतातुरोऽभवत् । मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः ।।४४।। किं
करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने । अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिंतयत् ।।४५।। एवं चिंतयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते । राजा
चिंतातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम् ।।४६।। वीक्ष्य तां मुदितो राजा पाययित्वा तुरङ्गकम् । अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम् ।।४७।। जलं

को मारने का वेगपूर्वक प्रयास किया ।।३५।। उस सूकर ने हाथ में धनुष धारण किए हुए तथा क्रुद्ध राजा को देखा और वह शीघ्र ही भयंकर शब्द करता
हुए राजा के सामने ही तेजी से दौड़ा ।।३६।। अपना विकृत मुँह करके आते हुए सूकर को अपनी ओर आते हुए देखकर, राजा ने उसे मारने की इच्छा
से उस पर बाण चलाया ।।३७।। सूकर ने उस बाण को बलपूर्वक विफल बना दिया और राजा के ऊपर से वेग से कूद कर भागा ।।३८।। भागते हुए
सूकर को देखकर क्रुद्ध हुए राजा ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचकर तीक्ष्ण बाणों को छोड़ा ।।३९।। वह सूकर राजा को कभी दिखायी पड़ता था तो
कभी आँखों के सामने से ओझल हो जाता था । अनेक प्रकार की ध्वनि करते हुए सूकर भाग चला ।।४०।। अत्यन्त क्रुद्ध हुए राजा हरिश्चन्द्र भी उस सूकर
का वायु के वेग के समान घोड़े पर सवार होकर तथा धनुष को चढ़ाकर उसका पीछा करने लगे । राजा की सेना भी इधर-उधर दूसरे वन में चली गयी।
अकेले राजा ही भागते हुए उस सूकर का पीछा कर रहे थे ।।४२।। दोपहर की बेला में राजा एक निर्जन वन में पहुँच गये । उन्हें बहुत अधिक भूख तथा
प्सास लगी थी । उनका घोड़ा भी थक गया था ।।४३।। वह सूकर भी न जाने कहाँ चला गया और राजा भी चिन्तित हो गये । वे उस वन में रास्ता भूल
गये थे अतएव वे अत्यन्त दुःखी हो गये थे ।।४४।। वे मन ही मन सोचने लगे मैं अब क्या करुँ ? कहाँ मैं जाऊँ ? इस वन में मेरा कोई सहायक
भी नहीं है । मुझे अपना रास्ता भी ज्ञात नहीं है,अतएव मैं कहाँ जाऊँ ?।।४५।। इस तरह से राजा जब उस निर्जन वन में चिन्ता कर रहे थे उसी समय
अत्यन्त चिन्तित राजा ने स्वच्छ जल से परिपूर्ण एक नदी को देखा ।।४६।। उस नदी को देखकर राजा प्रसन्न हो गये, उन्होंने अपने घोड़े को पानी पिलाया।
फिर घोड़े से उतर कर उन्होंने स्वयं जल पिया ।।४७।। पृथिवीपति राजा ने जल पीकर सुख का अनुभव किया । अब वे अपने नगर में जाना चाहते थे

पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः । इयेष नगरं गंतुं दिग्भ्रमणातिमोहितः ॥४८॥ विश्वामित्रस्तु संप्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् । ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम् ॥४९॥ तमुवाच गाधिराजः प्रणमंतं नृपोत्तमम् । स्वास्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः ॥५०॥ एकाकी विजने राजन्किं चिकीर्षितमत्र ते । ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम ॥५१॥ राजोवाच– **सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम् । समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान् ॥५२॥ तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम् । ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम ॥५३॥ गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापिवेगवान् । पृष्ठतोऽहमति प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम ॥५४॥ क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्टस्त्विहागतः । न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने॥५५॥ पंथानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति । ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने ॥५६॥ अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चन्द्रोऽतिविश्रुतः । राजसूयस्य कर्ता च वांछितार्थप्रदः सदा ॥५७॥ धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन्यज्ञार्थं द्विजसत्तम । आगन्तव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम् ॥५८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

किन्तु दिग्भ्रम होने के कारण वे अत्यन्त मोहित थे ॥४८॥ उसी स्थान पर वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर महर्षि विश्वामित्र पहुँच गये । उन द्विजोत्तम को देखकर राजा ने प्रेम से उनको प्रणाम किया ॥४९॥ प्रणाम करने वाले राजवर्य हरिश्चन्द्र को प्रणाम करते हुए देखकर महाराज गाधि के पुत्र **विश्वामित्र महर्षि ने कहा**– महाराज ! आपका कल्याण हो । आप यहाँ कैसे आ गये ? आप स्थिर होकर यहाँ आने का कारण बतलाइये ॥५१॥ **राजा हरिश्चन्द्र ने कहा**– एक विशालकाय सूकर मेरे पुष्पोद्यान में आकर पुष्पों के कोमल पौधों को रौंद डाला है ॥५२॥ हे मुनिवर्य ! उस दुष्ट सूकर को भगाने के लिए हाथ में धनुष धारण करके अपनी सेना के साथ मैं अपने नगर से निकल पड़ा ॥५३॥ किन्तु वह पापी तथा मायावी सूकर मेरी आँखों के सामने से न जाने कहाँ चला गया । मैं उसका पीछा करता हुआ यहाँ तक आ गया हूँ और मेरी सेना भी न जाने कहाँ चली गयी है ॥५४॥ अपनी सेना से भूलकर भूखा तथा प्यासा हुआ हूँ । हे मुने ! न तो मुझे अपने नगर जाने का रास्ता ज्ञात है और न तो इस बात का ज्ञान है कि मेरी सेना किधर चली गयी ॥५५॥ हे विभो ! आप मुझे अपने नगर का रास्ता बतला दीजिये मैं अपने नगर में जाना चाहता हूँ । मेरा सौभाग्य है कि इस निर्जन वन में यहाँ पर आप मिल गये ॥५६॥ मैं अयोध्या का राजा हूँ मेरा प्रख्यात नाम हरिश्चन्द्र है । मैंने राजसूययज्ञ किया है और अपने याचकों को उनके मनोनुकूल धन प्रदान करने वाला हूँ ॥५७॥ हे ब्रह्मन् ! यदि आप यज्ञ करने के लिए धन प्राप्त करना चाहत हों तो आप अयोध्या आ जाइयेगा, आप जितना धन चाहेंगे मैं उतना धन आपको प्रदान करूँगा॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्याय:

व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः । प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चंद्रं तदा नृप ॥१॥ राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम् । स्नानं कुरु महाभाग पितृणां तर्पणं तथा ॥२॥ कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते । दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने ॥३॥ प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति । स भवेदात्महा भूप इति स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥४॥ तस्मात्तीर्थवरे राजन्कुरु पुण्यं स्वशक्तितः । दर्शयिष्यामि मार्गं ते गन्ताऽसि नगरं ततः ॥५॥ आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ । त्वया सहाद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः ॥६॥ तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमंडितम् । वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम् ॥७॥ बंधयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः । अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाऽभवत् ॥८॥ राजा स्नानविधिं कृत्वा संतर्प्य पितृदेवताः । विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन्दानं ददामि ते॥९॥ यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि सांप्रतम् । गावो भूमिर्हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम् ॥१०॥ नादेयं मे किमप्यस्ति कृतमेतद्व्रतं पुरा । राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि ॥११॥ तस्मात्त्वमिह सम्प्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने । यत्तेऽस्ति वांछितं ब्रूहि ददामि तव वांछितम् ॥१२॥**

हरिश्चन्द्र द्वारा विश्वामित्र को अपने राज्य का दान करना

व्यासजी ने राजा जनमेजय को बतलाया– इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र की बात को सुनकर महर्षि विश्वामित्र जोर से हँसकर उनसे कहे ॥१॥ हे राजन्! यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ है, सभी पापों का प्रणाश कर देने वाला है । हे महाभाग ! आप यहाँ स्नान कीजिये तथा अपने पितरों का तर्पण कीजिये ॥२॥ हे राजन् ! यह अत्यन्त शुभ है, अतएव इस तीर्थ में स्नान करके इस पवित्र तीर्थ में आकर स्नान किए बिना यदि कोई चला जाता है तो वह आत्म घाती होता है, ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ॥४॥ अतएव हे राजन् ! इस श्रेष्ठतीर्थ में आप अपनी शक्ति के अनुसार पुण्य कीजिये । उसके पश्चात् मैं आपको रास्ता बतला दूँगा, आप अपने नगर में चले जाइयेगा ॥५॥ हे अनघ ! मैं आपको रास्ता दिखाने के लिए आपके साथ आऊँगा । पहले मैं चाहता हूँ कि मैं आपके द्वारा दिए गये दान से सन्तुष्ट हो जाऊँ ॥६॥ उस मुनि की कपट पूर्ण बातों को सुनकर राजा अपना वस्त्र उतार कर नदीं में स्नान करने के लिए गये ॥७॥ मुनि के वाक्यों से मोहित होकर राजा ने घोड़े को वृक्ष में बाँध दिया । भवितव्यता के अवश्य होने के कारण राजा उन मुनि के वशवर्ती हो गये ॥८॥ उन्होंने स्नान किया इसके बाद में उन्होंने पितृगणों का तर्पण किया । उसके बाद उन्होंने विश्वामित्र से कहा– हे स्वामिन् ! मैं आपको दान देना चाहता हूँ ॥९॥ हे महाभाग ! आप जो चाहें वह माँगे; मैं उसे आपको प्रदान करूँगा । गौ, भूमि, सोना, हाथी, घोड़े, रथ और वाहन आप जो माँगे

विश्वामित्र उवाच– मया पूर्वं श्रुता राजन्कीर्तिस्ते विपुला भुवि । वसिष्ठेन च सम्प्रोक्ता दाता नास्ति महीतले ॥१३॥ हरिश्चंद्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः । तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति ॥१४॥ पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशंकुतनयो यथा । अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव॥१५॥ पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम् । राजोवाच– विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव ॥१६॥ यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम् । व्यास उवाच– इत्युक्तः कौशिकस्तेन वंचनातत्परो मुनिः ॥१७॥ उद्भाव्य मायां गांधर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत् । कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी ॥१८॥ एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम । राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः ॥१९॥ भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः । तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः ॥२०॥ तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा । तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रति जग्मिवान् ॥२१॥ विश्वामित्रोऽपि राजानं वंचयित्वाऽऽश्रमं ययौ । कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥२२॥ वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम् । राजोवाच– किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वांछितं किल ॥२३॥ अदेयमपि संसारे यशः कामोऽस्मि सांप्रतम् । व्यर्थं हि

वह मैं दूँगा ॥१०॥ मैंने पहले राजसूय यज्ञ के अवसर पर मुनियों के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे लिए कुछ भी अदेय नहीं होगा ॥११॥ हे मुने! आप इस श्रेष्ठ तीर्थ में मिले हैं । आपके मन में जो कुछ भी अभिप्रेत हो उसे आप माँगें मैं उसे दूँगा ॥१२॥ **विश्वामित्र ने कहा–** हे राजन् ! मैं पहले ही इस भूलोक में आपका प्रख्यात यश सुन चुका हूँ । महर्षि वसिष्ठ ने मुझसे कहा है कि पृथिवी पर राजा हरिश्चन्द्र सबसे श्रेष्ठ दानी राजा हैं । उनके समान इस भूलोक में कोई भी दानी राजा नहीं है । उन्होंने कहा कि महाराज त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र के समान दानी न तो कोई आज तक हुआ और न होने वाला है ॥१३-१५॥ अतएव हे ! राजन् मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आज मेरे पुत्र का विवाह होने वाला हैं उसके लिए आप मुझे धन दे दें। **राजा ने कहा–** विप्रेन्द्र ! आप विवाह करें मैं आपको अभिलषित धन दे रहा हूँ ॥१६॥ आप जितना धन चाहें मैं उतना धन दूँगा । **व्यासजी ने कहा–** राजा के इस तरह कहने पर राजा को धोखा देने में तत्पर मुनि ने ॥१७॥ गान्धर्वी माया के द्वारा राजा को सुकुमार कुमार तथा दश वर्ष की कन्या को दिखा दिया ॥१८॥ उसके बाद मुनि ने कहा कि हे राजन् ! आज ही इन दोनों का विवाह कार्य सम्पन्न करना है । किसी गृहस्थ का विवाह कराने से राजसूय यज्ञ करने की अपेक्षा अधिक पुण्य होता है ॥१९॥ आज आप यदि ब्राह्मण के पुत्र का विवाह कराते हैं तो उससे आपको राजसूययज्ञ की अपेक्षा अधिक पुण्य मिलेगा । उस बात को सुनकर राजा मुनि की माया से मोहित हो गये थे ॥२०॥ उन्होंने कहा कि ठीक है उसमें कुछ भी कम करने के लिए उन्होंने नहीं कहा । इसके बाद मुनि के द्वारा दिखाये गये मार्ग से राजा अपने नगर में चले गये ॥२१ ॥ विश्वामित्र भी राजा को धोखा देकर अपने आश्रम में चले गये । विवाह की विधि को सम्पन्न करके विश्वामित्र ने राजा से कहा– ॥२२॥ हे राजन् ! वेदी में जो आपने दान देने के लिए कहा था उसे आप

जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै ॥२४॥ नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम् । विश्वामित्र उवाच– **राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम्॥२५॥ गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने ।** व्यास उवाच– **मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः ॥२६॥ दत्तमित्युक्तवान्राज्यमविचार्य यदृच्छया। गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः ॥२७॥ दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यां महामते । दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत्॥२८॥ तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम् । इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः ॥२९॥ ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन्मयाऽधुना । दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम् ॥३०॥ दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन । विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम् ॥३१॥ हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि साम्प्रतम् । दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजाऽतिविस्मितः ॥३२॥ तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः । दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः ॥३३॥** व्यास उवाच– **श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किंचिच्छुभाशुभम् । चिंतयन्स्वकृतं कर्म ययावंतःपुरे ततः ॥३४॥ किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम् । वंचितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव ॥३५॥ राज्यं सोपस्करं तस्मै मया**

मुझे दे दीजिये । **राजा ने कहा**– हे मुने ! आप क्या चाहते हैं, उसे आप बतलाइये । उसे मैं देने के लिए तैयार हूँ ॥२४॥ यदि वह वस्तु अदेय होगी तो उसे भी मैं दूँगा । मैं अपना यश प्राप्त करना चाहता हूँ । उस व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है जिसने ऐश्वर्य प्राप्त करके भी ॥२४॥ शुद्ध यश को नहीं कमाया है । यह यश ही परलोक में सुख देने वाला है । **विश्वामित्र ने कहा**– हे महाराज ! आप इस विवाह के अवसर पर हाथी, घोड़े, रथ तथा रत्नों के साथ अपना सारा राज्य वर को दहेज के रूप में दे दीजिये । **व्यासजी ने कहा**– मुनि की माया से मोहित उनकी बात को राजा ने सुनकर ॥२६॥ कहा दे दिया मैंने, इस तरह से उन्होंने विना विचार किए ही कह दिया। और उस वाक्य को सुनकर अत्यन्त निष्ठुर विश्वामित्र महर्षि ने कहा ठीक है मैंने ले लिया ॥२७॥ इसके बाद महर्षि ने कहा राजन् ! अपने द्वारा दिए गये इस दान के योग्य आप दक्षिणा भी दीजिए । मुनि ने कहा कि दक्षिणा दिए बिना दिया गया दान व्यर्थ होता है । उसका कोई भी फल नहीं होता है॥२८॥ अतएव दान का फल प्राप्त करने के लिए आप उसी के अनुसार दक्षिणा भी दीजिये । इस तरह से विश्वामित्र के कहने पर अत्यन्त आर्श्चयचकित होकर राजा ने कहा ॥२९॥ हे स्वामिन् ! दक्षिणा के रूप में मुझे आपको कितना धन देना है ? आप उसका प्रमाण बतलाइये ॥३०॥ हे तपोधन ! आप शान्त रहें दान की पूर्ति करने के लिए मैं उसे भी दूँगा । राजा की बात सुनकर **विश्वामित्र ने कहा**– ॥३१॥ हे राजन् ! दक्षिणा के रूप में आप ढाई मन स्वर्ण मुझे दे दीजिये। अत्यन्त विस्मित राजा ने कहा मैं दूँगा ॥३२॥ उसी समय राजा को व्यग्र देखकर उन सैनिकों ने भी प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की ॥३३॥ **व्यासजी ने कहा**– उन सैनिकों की वाणी सुनकर राजा कुछ भी नहीं बोले । वे अपने द्वारा किए गये कर्म पर विचार करते हुए अन्तःपुर में चले गये ॥३४॥

सर्वं प्रतिश्रुतम् । भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः ॥३६॥ किं करोमि मतिर्भ्रष्टा न ज्ञातं कपटं मुनेः । प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना ॥३७॥ न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति । इति चिन्तापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः ॥३८॥ पतिं चिंतापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम् । किं प्रभो विमना भासि का चिंता ब्रूहि सांप्रतम् ॥३९॥ वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा । कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद ॥४०॥ नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा । वरुणोऽपि सुसंतुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥४१॥ चिंतया क्षीयते देहो नास्ति चिंतासमा मृतिः । त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥४२॥ तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः । प्रोवाच किंचिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥४३॥ भोजनं न चकारासौ चिंताविष्टस्तथा नृपः । सुप्त्वाऽपि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥४४॥ प्रातरुत्थाय चिंतार्तो यावत्संध्यादिकाः क्रियाः । करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥४५॥ क्षत्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः । आगत्योवाच राजानं प्रणमंतं पुनः पुनः ॥४६॥ विश्वामित्र उवाच– राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम् । सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र सत्यवाग्भव साम्प्रतम्॥४७॥

वे सोच रहे थे कि न जाने मैंने क्या दान देने के लिए स्वीकार कर लिया कि मैंने अपना सर्वस्व दान देने के लिए कह दिया । जैसे वन में लूटेरे किसी को लूट लेते हैं उसी तरह से उस ब्राह्मण ने मुझे ठग लिया ॥३५॥ मैंने सम्पूर्ण सामग्री के साथ राज्य ही देने की प्रतिज्ञा कर ली है । उसके बाद ढाई मन सुवर्ण भी दक्षिण के रूप में देने को कह दिया है ॥३६॥ मैं क्या करूँ ? मेरी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी थी । मैं मुनि के कपट को नहीं जान सका था । इस तपस्वी ब्राह्मण ने मुझे अचानक ही ठग लिया ॥३७॥ मैं अपनी भवितव्यता को नहीं जान सकता । न जाने अब क्या होगा? इस तरह से चिन्ता मग्न हुए राजा अत्यन्त व्याकुल होकर अपने घर आ गये ॥३८॥ अपने पति को चिन्तातुर देखकर रानी ने उनकी चिन्ता का कारण पूछा । स्वामिन्! आप उदास क्यों लग रहे हैं ? आपको कौन सी चिन्ता है ?॥३९॥ वन से पुत्र भी लौट आया है । उसके बाद आपने राजसूय यज्ञ भी कर लिया है। हे राजन् ! आप क्यों चिन्तित हैं ? आपके शोक का कारण क्या है ॥४०॥ इस समय आपका कोई भी बलवान अथवा दुर्बल शत्रु भी नहीं है । वरुण देवता भी सन्तुष्ट हो गये हैं । आप तो भूलोक में कृतकृत्य हो गये हैं ॥४१॥ चिन्ता करने से तो शरीर क्षीण हो जाता है । चिन्ता के समान कोई शत्रु भी नहीं है । हे राजवर्य ! आप अपनी चिन्ता का परित्याग करके स्वस्थ होएँ । आप तो बुद्धिमान हैं।॥४२॥ अपनी पत्नी के उस प्रेमभरी बात को सुनकर राजा ने चिन्ता का जो कारण था उसको थोड़ा बतलाया ॥४३॥ वे चिन्ताग्रस्त ही होकर भोजन भी किए । स्वच्छ शय्या पर सोने पर भी उनको रात में नींद नहीं आयी ॥४४॥ चिन्ता से आर्त बने हुए राजा प्रातःकाल जब तक सन्ध्या इत्यादि क्रियाओं को कर रहे थे तब तक महर्षि विश्वामित्र उनके यहाँ आ गये ॥४५॥ द्वारपाल ने आकर मुनि के आने की सूचना दी और

हरिश्चन्द्र उवाच– स्वामिन्राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना । त्यक्त्वाऽन्यत्र गमिष्यामि मा चिंतां कुरु कौशिक ।।४८।। सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन्गृहीतं विधिवद्विभो । सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तोऽस्म्यधुना द्विज ।।४९।। दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः । पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम् ।।५०।। इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम् । राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम् ।।५१।। हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम् । त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम् ।।५२।। त्यक्त्वाऽयोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद् वनगह्वरे । गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत् ।।५३।। इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमंदिरात् । विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम् ।।५४।। व्रजंतं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि । चिंतातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा ।।५५।। हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा । चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः ।।५६।। हा राजन्किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः । वंचितोऽसि महाराज विधिनाऽपंडितेन ह ।।५७।। सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम् । विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना ।।५८।। निनिंदुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः । धूर्तोऽयमिति भाषंतो

सर्वस्वापहारी मुनि ने बार-बार प्रणाम करने वाले राजा से कहा– ।।४६।। **विश्वामित्र महर्षि ने कहा**– हे राजन् ! आप अपना राज्य छोड़ दें क्योंकि आपने उसे मुझे देने की प्रतिज्ञा की है । हे राजन् ! उसकी दक्षिणा का सुवर्ण भी आप दे दें, इस तरह से आप सत्यवक्ता हो जायँ ।।४७।। **हरिश्चन्द्र ने कहा**– हे स्वामिन् ! यह राज्य आपका है, मैं इसे आपको दे रहा हूँ । इस राज्य को छोड़कर मैं अन्यत्र जा रहा हूँ । हे कौशिक ! आप चिन्ता न करें ।।४८।। हे ब्रह्मन् ! आपने मेरा सब कुछ विधिपूर्वक ले लिया है । द्विज इस समय मैं सुवर्ण की दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ ।।४९।। ज्यों ही मेरे पास धन आ जायेगा उसी समय मैं आपकी दक्षिणा भी दे दूँगा ।।५०।। इस तरह से कहकर राजा ने अपनी पत्नी माधवी तथा पुत्र से कहा कि मैंने वेदी पर ही इन ब्राह्मण देवता को अपना राज्य दान में दे चुका हूँ । उसके साथ-साथ हाथी, घोड़े तथा रथ इत्यादि को भी दे चुका हूँ । केवल तीन वस्तुएँ पत्नी, पुत्र और अपने को छोड़कर सब कुछ दान में दे चुका हूँ ।।५२।। मैं अयोध्या को छोड़कर वन की किसी कन्दरा में चला जाऊँगा । हर प्रकार की समृद्धि से सम्पन्न इस राज्य को ये मुनि ले लें ।।५३।। इस तरह अपने पुत्र तथा पत्नी को कहकर अत्यन्त धर्मात्मा राजा हरिश्चन्द्र उन महर्षि का सम्मान करते हुए अपने भवन से निकल गये ।।५४।। जाते हुए राजा को देखकर उनकी पत्नी तथा पुत्र भी चिन्ताग्रस्त तथा दीन होकर राजा के पीछे-पीछे चल दिए ।।५५।। उन तीनों को इस तरह से नगर से जाते हुए देखकर नगर में घोर हाहाकार मच गया । साकेत पुरवासी सभी लोग चिल्लाने लगे ।।५६।। वे कह रहे थे हाय राजन्! आपने यह क्या कर दिया, यह विपत्ति कहाँ से आ गयी । मूर्ख ब्रह्मा ने आपको ठग लिया है ।।५७।। सभी वर्णों के लोग अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ राजा को देखकर दुःखी थे ।।५८।। सभी नगरवासी उस दुराचारी ब्राह्मण की निन्दा करने लगे । दुःख से आर्त होकर ब्राह्मणों आदि ने कहा कि यह

दुःखार्ता ब्राह्मणादयः ॥५९॥ निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम् । गच्छंतं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः ॥६०॥ दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप । नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम् ॥६१॥ राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धि विवर्तते । दत्तं चेन्मन्यसे राजन्देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम् ॥६२॥ एवं ब्रुवंतं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः । प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृतांजलिपुटोऽब्रवीत् ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभावगते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

हरिश्चन्द्र उवाच– **अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम् । प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत ॥१॥ सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः । राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वांछितदो नृषु ॥२॥ कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया । अवश्यमेव दातव्यमृणं ते द्विजसत्तम ॥३॥ स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम् । कंचित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम् ॥४॥** विश्वामित्र उवाच– **कुतस्ते**

धूर्त है ॥५९॥ अयोध्या नगर से बाहर निकल कर विश्वामित्र ने जाते हुए राजा से अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक कहा– ॥६०॥ राजन् ! मुझे दक्षिणा का सुवर्ण देकर के जाओ । अथवा यह कह दो कि मैं नहीं दूँगा तो मैं उस सुवर्ण को आप के लिए छोड़ दूँगा ॥६१॥ आप को लोभ हो तो आप अपना राज्य भी ले लो । यदि देना चाहते हो तो सुवर्ण भी दे दीजिये जिसकी आपने प्रतिज्ञा की है ॥६२॥ इस तरह से कहने वाले गाधिपुत्र से राजा हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त दीन होकर प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर कहा ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

राजा हरिश्चन्द्र का काशी जाना

हरिश्चन्द्र ने कहा– जब तक मैं आपका सुवर्ण नहीं दे लूँगा । तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा । हे मुनिश्रेष्ठ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है । अतएव आप अपना विषाद छोड़ दें ॥१॥ मैं सूर्यवंश में उत्पन्न क्षत्रिय राजा हूँ । मैंने राजसूय यज्ञ किया है । मैं अपने याचकों को अभिप्रेत अर्थ प्रदान करने वाला हूँ॥२॥ हे स्वामिन् ! संयोगवशात् दान करके उसे देने से मैं इनकार कैसे कर सकता हूँ । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपका ऋण अवश्य चुकाऊँगा ॥३॥ आप प्रसन्न

भविता राजन्धनप्राप्तिरतः परम् । गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थसाधनम् ॥५॥ वृथाऽऽशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम् । निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप ॥६॥ तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति सांप्रतम् । त्यक्त्वाऽऽशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम् ॥७॥ यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः । सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना ॥८॥ व्यास उवाच– गच्छन्वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः । प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन्धैर्यं कुरु ददाम्यहम् ॥९॥ मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः । क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज ॥१०॥ ग्राहकं पश्य विप्रेंद्र वाराणस्यां पुरि प्रभो ॥ दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः ॥११॥ गृहाण कांचनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने । मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः संतुष्टो भव भूधर ॥१२॥ इति ब्रुवञ्जगामथ सह पत्न्या सुतान्वितः । उमया कांतया सार्धं यत्रास्ते शंकरः स्वयम् ॥१३॥ यां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम् । उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम् ॥१४॥ ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वादेवादितर्पणम् । देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान्दिग्विलोकनम् ॥१५॥ प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् । नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः ॥१६॥ जगाम

रहें । मैं आपको अभिलषित सुवर्ण अवश्य दूँगा । आप उतने समय तक प्रतीक्षा अवश्य करें जब तक कि मैं धन प्राप्त नहीं कर लेता हूँ ॥४॥ विश्वामित्र ने पूछा कि अब कहाँ पर आप को धन मिलेगा ?। आप का राज्य, कोश, सेना, तथा धन के सभी साधन ये सब चले गये ॥५॥ हे राजन् ! अब आपको धन प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ है । अब मैं क्या करुँ । तुम जैसे निर्धन व्यक्ति को धन के लोभ से पीड़ित करना भी ठीक नहीं है॥६॥ अतएव हे राजन् ! आप ही कह दीजिये कि मैं नहीं दे पाऊँगा । तो मैं भी अपनी आशा का परित्याग करके यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँ । इस तरह से कहकर आपको अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ यथेष्ट रूप से चले जाना चाहिए । आप यही कह दीजिये कि सुवर्ण मेरे पास नहीं है आप को कहाँ से दूँ ॥८॥ **व्यासजी ने कहा–** जाते हुए राजा ने मुनि की इस बात को सुनकर कहा– मुने आप धैर्य धारण करें । मैं आपको अवश्य दूँगा ॥९॥ अभी हमारा हमारी पत्नी का तथा हमारे पुत्र का निरोग देह बचा हुआ है । तीनों अपना शरीर बेंचकर आपका ऋण चुकायेंगे ॥१०॥ हे विप्रवर्य ! आप वाराणसी में किसी ग्राहक को देखिये मैं अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ दास बन जाऊँगा ॥११॥ हम सबों को बेंचकर आप ढाई भार सुवर्ण स्वीकार कर लें । हे ब्राह्मण आप हम सबों के मूल्य से संतुष्ट हो जायँ ॥१२॥ इस तरह से कहकर महाराज हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ उस काशी नगरी में चले गये जहाँ पर भगवान शंकर अपनी पत्नी पार्वती के साथ स्वयं विराजमान रहते हैं ॥१३॥ इस आनन्दप्रद तथा सुन्दर नगरी को देखकर राजा ने कहा इस दीप्यमान नगरी को देखकर मैं कृतार्थ हो गया ॥१४॥ उसके पश्चात् गंगातट पर जाकर राजा हरिश्चन्द्र ने देवताओं आदि का तर्पण किया । फिर देवताओं की पूजा करके उन्होंने अपने चारों ओर देखा ॥१५॥ महाराज हरिश्चन्द्र दिव्य वाराणसी में जाकर सोचे इस नगरी का स्वामी कोई मनुष्य नहीं, अपितु इसके

पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः । पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा ॥१७॥ ददर्शाथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम् । तं दृष्ट्वा
समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥१८॥ प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् । इमे प्राणाः सुतश्चाथ प्रिया पत्नी मुने मम ॥१९॥ येन ते
कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम । यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥२०॥ विश्वामित्र उवाच– पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम
दक्षिणाम् । पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥२१॥ राजोवाच– ब्रह्मन्नाद्यापि संपूर्णो मासो ज्ञानतपोबल । तिष्ठत्येकदिनार्धं
यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम् ॥२२॥ विश्वामित्र उवाच– एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः । शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि ॥२३॥
इत्युक्त्वाऽथ ययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा । कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥२४॥ कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थं साम्प्रतं मम । प्रतिग्रहः
प्रदुष्टो मे तत्र याच्ञा कुतो भवेत् ॥२५॥ राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तम् धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् । यदि प्राणन्विमुञ्चामि ह्यप्रादाय च दक्षिणाम् ॥२६॥ ब्रह्मस्वहा
कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः । अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः ॥२७॥ सूत उवाच– राजानं व्याकुलं दीनं चिंतयानमधोमुखम् । प्रत्युवाच

स्वामी भगवान शंकर हैं ॥१६॥ दुःख से व्याकुल अपनी पत्नी के साथ पैदल ही उस नगरी में प्रवेश करके महाराज हरिश्चन्द्र का मन आश्वस्त हो गया॥१७॥
उसी समय दक्षिणा चाहने वाले ब्राह्मण विश्वामित्र को उन्होंने देखा । महर्षि विश्वामित्र को देखकर राजा उनके सामने विनयावनत हो गये ॥१८॥ राजा हरिश्चन्द्र
ने हाथ जोड़कर महामुनि विश्वामित्र से कहा– हे मुने मेरे प्राण, प्रियतमा पत्नी तथा पुत्र हम तीनों हैं । इनमें जिसे आपका काम चले उसको आप ले लें।
अथवा हमसबों से यदि आपका दूसरा कोई कार्य हो सके तो आप मुझे उसे बतलाएँ ॥२०॥ **विश्वामित्र ने कहा–** राजन्! आपका कल्याण हो । आज महीना
पूरा हो रहा है । यदि आपको अपनी पहले की प्रतिज्ञा याद हो तो आज आप दक्षिणा दे दीजिये ॥२१॥ **राजा ने कहा–** हे ज्ञान तथा तपोबल से सम्पन्न
महर्षे ! आज महीना पूरा तो हो रहा है, किन्तु अभी आधा दिन बाकी है । अतएव तब तक आप प्रतीक्षा करें । इसके बाद आप प्रतीक्षा नहीं
कीजियेगा॥२२॥ **विश्वामित्र ने कहा–** ठीक है महाराज, आज मैं फिर आऊँगा । यदि आपने आज नहीं दिया तो मैं शाप दे दूँगा ॥२३॥ इस तरह से कहकर
विश्वामित्र तो चले गये और राजा भी सोचने लगे कि विश्वामित्र को जो मैंने प्रतिज्ञा की है । वह दक्षिणा कैसे दूँ ॥२४॥ मेरे धनधान्य सम्पन्न मित्र कहाँ
से आयेंगे । और कहाँ से मुझे इस समय धन मिल पायेगा । मैं दान ले नहीं सकता हूँ और कहीं से भीख भी नहीं माँग सकता हूँ । धर्मशास्त्रों में राजाओं
के लिए तीन वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं । यदि मैं दक्षिणा चुकाये बिना प्राण को त्याग देता हूँ तो ब्राह्मण की वृत्ति का अपहरण करने के कारण मुझे अत्यन्त
अधम कीट योनि में जन्म लेना पड़ेगा । अथवा मुझे प्रेत योनि में जन्म लेना पड़ेगा । इससे तो यही अच्छा है कि मैं अपने को बेंच दूँ ॥२५-२६॥
राजा को चिन्तित तथा नीचे मुखकर के व्याकुल देखकर उनकी पत्नी ने अपने रुँधे कण्ठ से कहा– ॥२७॥ हे महाराज ! आप चिन्ता का परित्याग करके

तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥२८॥ त्यज चिंतां महाराज स्वधर्ममनुपालय । प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः ॥२९॥ नातः परतरं धर्मं वदंति पुरुषस्य च । यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम् ॥३०॥ अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः । भवंति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत् ॥३१॥ सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् । तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥३२॥ शताश्वमेधानादृत्य राजसूयं च पार्थिवः । कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गाद्यसत्यवचनाच्च्युतः ॥३३॥ राजोवाच– **वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः । उच्यतां वक्तुकामाऽसि यद्वाक्यं गजगामिनि ॥३४॥** पत्न्युवाच– **राजन्माभूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः । तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥३५॥** व्यास उवाच– **एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः । प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः ॥३६॥ महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे । किं तवस्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥३७॥ हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते । दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि ॥३८॥ इत्युक्त्वा नृपतिश्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये । निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाऽतिपरिलुप्तः ॥३९॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयाऽपि महीपतिम् ।**

अपने धर्म का पालन करें । जो मनुष्य सत्य का पालन नहीं करता है, वह प्रेत के समान त्याज्य होता है ॥२८-२९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! सत्य का पालन करना जिस तरह का श्रेष्ठ धर्म है, उससे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है ॥३०॥ जो व्यक्ति सत्य का पालन नहीं करता है, उसके द्वारा किये गये दान आदि तथा अग्निहोत्र आदि सारी क्रियाएँ व्यर्थ होती हैं । उनका कोई भी फल नहीं होता है ॥३१॥ धर्मशास्त्रों में जैसे सत्य के पालन को मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया गया है, उसी तरह मिथ्या भाषण को भी पतन का सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया गया है ॥३२॥ शास्त्रों में बतलाया गया है कि तामसी राजा के सौ अश्वमेध यज्ञों को तथा राजसूययज्ञ करने के पश्चात् भी उसका स्वर्ग से पतन असत्य भाषण के कारण हो गया ॥३३॥ **राजा ने कहा**– हे गजगामिनि! अपने वंश की वृद्धि करने वाला मेरा पुत्र विद्यमान है, अतएव तुम्हारी जो इच्छा हो वह बतलाओं उसे मैं अवश्य करूँगा ॥३४॥ **पत्नी ने कहा**– हे राजन्! स्त्रियों का जीवन तो पुत्र को उत्पन्न करके सफल हो जाता है, अतएव मैं चाहती हूँ कि आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिए । अतएव आप धन लेकर मुझको बेंच दें और ब्राह्मण को दक्षिणा दे दें ॥३५॥ **व्यासजी ने कहा**– अपनी पत्नी की इस बात को सुनकर राजा मूर्छित हो गये । उसके बाद वे होश में आने पर अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥३६॥ उन्होंने कहा हे कल्याणकारिणि ! तुम जो ऐसी बात कह रही हो यही सबसे बड़ा दुःख है। मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि तुम जो मुस्कुराकर हर बातें करती थी उसे मैं भूल गया हूँ ॥३७॥ हे शुचिस्मिते ! तुम्हें ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए । यह बात कहने योग्य नहीं है । हे कामिनि ! तुम ऐसी बात क्यों बोल रही हो ?॥३८॥ इस तरह से कहकर राजा अपनी पत्नी को बेंचने के लिए तैयार नहीं थे, वे अत्यन्त मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥३९॥ मूर्छित होकर पृथिवी पर पड़े हुए राजा हरिश्चन्द्र को देखकर उनकी

उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता ॥४०॥ हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम् । यस्त्वं निपतितो भूमौ रंकवच्छरणोचितः ॥४१॥ येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् । स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः ॥४२॥ हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता । यद्रिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतःपापामिमां दशाम् ॥४३॥ इत्युक्त्वा साऽपि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह । भर्तुर्दुःखमहाभारेणासह्येनातिपीडिता ॥४४॥ शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः । तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम् ॥४५॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति ॥४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

सूत उवाच– **एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः । अन्तकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा ॥१॥ तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः । स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥२॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम् । ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि**

पत्नी अत्यन्त दुःखी होकर कही ॥४०॥ हे महाराज ! यह किस की असावधानी के कारण इस तरह की विपत्ति आपके ऊपर आ गयी है ? जो आप रंक के समान पृथिवी पर पड़े हुए हैं ॥४१॥ जो हमारे पति करोड़ों की सम्पत्तियों को ब्राह्मणों को दक्षिणा में दे देते थे वही पृथिवी पति आज पृथिवी पर पड़े हुए हैं ॥४२॥ हा दैव ! मेरे पति ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि इन्द्र तथा विष्णु के समान ये महाराज आज इस दशा को प्राप्त कर गये हैं ॥४३॥ इस तरह से कहती हुई वह सुन्दरी भी मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ी । क्योंकि अपने पति के दुःख रूपी असह्य कष्ट को वह बर्दास्त नहीं कर पा रही थी ॥४४॥ अत्यन्त दुःखी भूखा हुआ बालक भी इस तरह से अपने माता पिता को देखकर कहने लगा हे पिताजी ! आप मुझे अन्न दीजिये । हे माँ ! मुझे भोजन दे दो ॥४५॥ मुझे बहुत जोर से भूख लगी है । मेरी जीभ सूखी जा रही है ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी और पुत्र के विक्रय विषयक चर्चा

सूतजी ने शौनकादि महर्षियों से कहा– इसी के बीच में वहाँ महातपस्वी विश्वामित्र अपना धन माँगने के लिए आ गये । उस समय उनका आगमन

वर्धते ॥३॥ आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा । अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥४॥ पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः। समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥५॥ विश्वामित्र उवाच– दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे । सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ॥६॥ सत्ये चोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः । अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम् ॥७॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते। अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥८॥ मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि । अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम् ॥९॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः । दुःखीभूतोऽवनौ निःस्वो नृशंसं मुनिनाऽर्दितः ॥१०॥ सूत उवाच– एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः । ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद्बहिः ॥११॥ ततोराज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयांतं तापसं स्थितम् । उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा ॥१२॥ त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते । पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः ॥१३॥ तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः । राजोवाच– नाहं प्रतिग्रहं कांक्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे ॥१४॥ याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते । गुरुर्हि विप्रो

यमराज के समान अत्यन्त क्रूर था वे क्रुद्ध थे ॥१॥ उनको देखते ही हरिश्चन्द्र मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गये । विश्वामित्र ने उनको जल के छिंटो से सीञ्चित किया । और राजा के होश में आने पर उन्होंने उनसे कहा ॥२॥ राजन् ! होश में आओ और अपनी अभिप्रेत दक्षिणा मुझे प्रदान करों । ऋण धारण करने वाले का ऋण प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है ॥३॥ बर्फ के समान ठण्ढे जल से सीञ्चित किए जाने वाले राजा होश में आ गये और महर्षि विश्वामित्र को देखकर पुनः बेहोश हो गये । इसे देखकर मुनि विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये । उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र को आश्वस्त करके उनसे कहा ॥४-५॥ **विश्वामित्र ने कहा**– राजन् ! यदि तुम धैर्य धारण कर सको तो मुझे दक्षिणा दो । सत्य का पालन करो । सत्य के ही बल पर सूर्य तपते हैं । पृथिवी सत्य के ही बल पर टिकी हुई हैं ॥६॥ सत्य को ही सब से बड़ा धर्म बतलाया गया है । सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है । एक हजार अश्वमेध यज्ञ का फल तुला के एक पलड़े पर रखा जाय और सत्य को तुला के दूसरे पलड़े पर तो ॥७॥ एक हजार अश्वमेध की अपेक्षा सत्य का पलड़ा भारी होगा । अथवा मेरे इस तरह की बातों को कहने से कौन सा प्रयोजन है ॥८॥ राजन् ! यदि आप मेरी दक्षिणा नहीं देंगे और सूर्यास्त हो गया तो मैं निश्चित रूप से शाप दे दूँगा ॥९॥ इस तरह से कहकर विश्वामित्र महर्षि तो चले गये और राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त भयभीत हो गये । इस तरह से विश्वामित्र महर्षि के द्वारा सताये जाने पर निर्धन राजा दुःखी होकर पृथिवी पर गिर गये और छटपटाने लगे ॥१०॥ **सूतजी ने कहा**– उसी समय कोई वेदज्ञ ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणों के साथ अपने घर से बाहर निकला ॥११॥ उसके बाद आते हुए उस ब्राह्मण को देखकर रानी ने धर्मयुक्त वाणी राजा से कहा तीनों वर्णों क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का पिता (रक्षक) ब्राह्मण को कहा गया है। पुत्र को चाहिए कि वह पिता का द्रव्य ले ले ॥१३॥ इसलिए मेरा विचार है कि इनसे धन के लिए प्रार्थना की जाए।

वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा ॥१५॥ तस्माद्गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः । यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते ॥१६॥ शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम् । न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः ॥१७॥ ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः । अर्जितं कुत्रचिद्द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम् ॥१८॥ पत्न्युवाच– **कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः । कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च ॥१९॥ विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा ॥ राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम् ॥२०॥** राजोवाच– **असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता । न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम् ॥२१॥ क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किंचिदप्यहम् । ददामि वाऽहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम् ॥२२॥** पत्न्युवाच– **यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः । अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः ॥२३॥ अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते । मन्मौल्यं संगृहीत्वाथ गुर्वर्थः संप्रदीयताम् ॥२४॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः । कष्टं कष्टमिति प्रोच्य**

राजा ने ,कहा– हे सुन्दरि ! मैं क्षत्रिय हूँ अतएव किसी से भी माँगना नहीं चाहता हूँ ॥१४॥ माँगने का धर्म ब्राह्मणों का है क्षत्रियों का नहीं । ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरु होता है, अतएव वह सदा पूजनीय होता है ॥१५॥ इसलिए गुरु से कभी याचना नहीं करनी चाहिए खास कर क्षत्रियों को तो कभी नहीं। यज्ञ करना, वेद पढ़ना और दान करना ये तीन ही ब्राह्मण के धर्म हैं ॥१६॥ इसके अतिरिक्त शरणागत जीवों को अभय प्रदान करना तथा प्रजाओं का पालन करना भी क्षत्रियों का धर्म है । मुझे दो; इस प्रकार की कृपणतायुक्त बात क्षत्रियों को कभी नहीं करना चाहिए ॥१७॥ हे देवि ! मेरे हृदय में तो मैं दे रहा हूँ यही बात स्थित है । मैं कहीं से भी अर्जित धन ब्राह्मण को दूँगा ॥१८॥ **राजा की पत्नी ने कहा–** महाराज ! काल ही सुख तथा दुःख देने वाला है । वही अपमान तथा सम्मान प्रदान करता है । काल ही मनुष्य को पाचक तथा दानी बना देता है ॥१९॥ आप काल की चेष्टाओं को देखिए कि विद्वान तथा अत्यन्त क्रुद्ध ब्राह्मण ने आपको राज्य से तथा सुख सम्पत्ति से बाहर निकाल दिया है ॥२०॥ **राजा ने कहा–** तीक्ष्ण धार वाली तलवार से जीभ को दो टुकड़ों में काट देना ठीक है,किन्तु अपने सम्मान का परित्याग करके दो-इस शब्द का उच्चारण करना ठीक नहीं है ॥२१॥ हे महाभागे ! मैं क्षत्रिय हूँ । मैं किसी से भी कुछ नहीं माँग सकता हूँ । मैं अपनी भुजाओं से अर्जित धन को ही देता हूँ ॥२२॥ **राजा की पत्नी ने कहा–** हे राजन् ! यदि आपका मन माँगने में समर्थ नहीं है तो मुझको तो इन्द्र आदि देवताओं ने आपको न्यायपूर्वक समर्पित किया है ॥२३॥ हे महाकान्ति सम्पन्न राजन्! मैं तो अपने पति के द्वारा प्रशास्य तथा रक्ष्य हूँ । आप मेरा मूल्य लेकर अपने गुरु विश्वामित्र महर्षि को प्रदान करें ॥२४॥ पत्नी की इस तरह की बात

विललापातिदुःखितः ॥२५॥ भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम । विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥२६॥ न द्युतहेतोर्न च मद्यहेतो न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः । ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं सत्यव्रतं त्वं सफलं कुरुष्व ॥२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः । प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः ॥१॥ नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् । यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम् ॥२॥ एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः । अवतार्य तदा रंगे तां भार्यां नृपसत्तमः॥३॥ बाष्पगद्गदकंठस्तु ततो वचनमब्रवीत् । भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम ॥४॥ कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया**

को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र कष्ट-कष्ट कहकर विलाप करने लगे ॥२५॥ पत्नी ने फिर हरिश्चन्द्र से कहा- आप मेरी बात मान लें, अन्यथा ब्राह्मण का शापजन्य अग्नि से दग्ध होकर नीचता को प्राप्त हो जायेंगे ॥२६॥ राज्य के लिए अथवा जूआ के लिए या मदिरापान के लिए नहीं अपितु ब्राह्मण को देने के लिए आप मुझ को बेंचकर अपने सत्यव्रत को सफल कर लें ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी तथा उनके पुत्र का विक्रय

व्यासजी ने कहा– पत्नी के द्वारा बार-बार प्रेरित किए जाने पर राजा **हरिश्चन्द्र ने कहा–** हे प्रिये ! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हारा विक्रय कर रहा हूँ ॥१॥ जिस कार्य को कोई निर्दय व्यक्ति भी नहीं कर सकता है उस कार्य को मैं करने जा रहा हूँ । क्योंकि तुम्हारी वाणी इसी तरह का कार्य करने के लिए सुशोभित हो रहा है ॥२॥ इस तरह से कहकर राजा नगर में गये और उन्होंने विक्रय स्थल पर अपनी पत्नी को खड़ा कर दिया ॥३॥ इसके बाद राजा ने अपने गद्गगद् कण्ठ से कहा– हे नागरिकों आप लोग मेरी बात सुनिये ॥४॥ यदि किसी को मेरी प्राणप्यारी पत्नी को दासी के लिए आवश्यकता

मम । स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम् ॥५॥ तेऽब्रुवन्पण्डिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः । राजोवाच– किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥६॥ राक्षसो वाऽस्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम् ॥ व्यास उवाच– तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक् ॥७॥ वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्द्रमभाषत । समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥८॥ अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया । गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥९॥ अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम् । एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥१०॥ विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किं चिदब्रवीत् । विप्र उवाच– कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः ॥११॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् । धर्मशास्त्रेषु यद्दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च ॥१२॥ द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता । कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम् ॥१३॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः । दुःखेन महताविष्टो न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥१४॥ ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि । धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत् ॥१५॥ राज्ञ्युवाच– मुंच मुंचार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम् । दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति ॥१६॥ पश्येह पुत्र

हो तो वह शीघ्रता से मेरे मर जाने से पहले ही मुझे बतलाये ॥५॥ **उन पंडितो ने कहा–** तुम कौन हो ? अपनी पत्नी को बेंचने के लिए क्यों आये हो?। **राजा ने कहा–** यह आप क्या पूछ रहे हैं कि मैं कौन हूँ ? मैं अत्यन्त निर्दय हूँ । मैं मनुष्य नहीं हूँ ॥६॥ अथवा मैं निर्दय राक्षस हूँ अतएव इस पाप कर्म को कर रहा हूँ । **व्यासजी ने कहा–** उस बात को सुनकर विश्वामित्र स्वयं ब्राह्मण का रूप बनाकर वहाँ आ गये ॥७॥ उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके हरिश्चन्द्र से कहा– मुझे इस दासी को समर्पित कर दो । मैं इसके बदले में धन दे रहा हूँ । मैं खरीदने वाला हूँ ॥८॥ मेरे पास अतुल सम्पत्ति है किन्तु मेरी पत्नी अत्यन्त सुकुमारी है । वह घर का काम करने में समर्थ नहीं है । अतएव इसे मुझे दे दो ॥९॥ मैं दासी को खरीद रहा हूँ । बतलाओ मैं इसके लिए कितना धन दूँ । ब्राह्मण के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर राजा हरिश्चन्द्र का मन विदीर्ण हो गया वे कुछ भी नहीं बोल सके । **ब्राह्मण ने कहा–** तुम्हारी स्त्री के कर्म, अवस्था, रूप तथा शील के अनुसार मैं यह धन तुम्हें दे रहा हूँ ॥११॥ इस धन को तुम ले लो और अपनी पत्नी को मुझे समर्पित कर दो । धर्मशास्त्रों में स्त्रियों तथा पुरुषों का जो मूल्य बतलाया गया है, उसे मैं बतला रहा हूँ ॥१२॥ यदि किसी स्त्री में रहने वाले बतीसों लक्षण हों वह कार्यकाल में दक्ष तथा शीलगुण वाली हो तो उसका मूल्य एक करोड़ सुवर्ण मुद्रा होता है । और ये सभी लक्षण यदि किसी पुरुष में हो तो उसका मूल्य दश करोड़ स्वर्ण मुद्रा होता है ॥१३॥ उस ब्राह्मण की बात को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखी हो गये और कुछ भी नहीं बोल सके॥१४॥ उसके बाद उस ब्राह्मण ने राजा के सामने बल्कल के ऊपर मूल्य रख दिया और रानी का केश पकड़कर खींचा ॥१५॥ **रानी ने कहा–** हे आर्य! मुझे छोड़िये मैं अपने पुत्र को देख लूँ । हे विप्र ! इसके बाद तो इसका दर्शन भी मेरे लिए दुर्लभ हो जायेगा ॥१६॥ **रानी ने कहा–** हे पुत्र ! मुझे देख

मामेवं मातरं दास्यतां गताम् । मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याऽहं त्वयाऽधुना ॥१७॥ ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कष्टां तु मातरम् ।
समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः ॥१८॥ हस्ते वस्त्रं समाकर्षन्काकपक्षधरः स्खलन् । तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमभ्यहनत्तदा ॥१९॥
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुंचति मातरम् । राज्युवाच– **प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम् ॥२० ॥ क्रीताऽपि नाहं भविता विनैनं**
कार्यसाधिका । इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥२१ ॥ ब्राह्मण उवाच– **गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः । स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः**
कृतमेव हि वेतनम् ॥२२॥ शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः । द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता ॥२३॥ कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं
पुरुषस्य तथाऽर्बुदम् ॥ सूत उवाच– **तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः ॥२४॥ प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबंधयत् । प्रतस्थे स गृहं**
क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः ॥२५॥ प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता । बाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत् ॥२६॥ यदि दत्तं
यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि । तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः ॥२७॥ पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । हाहेति च

लो । मैं अब दासी हो गयी हूँ । राजकुमार मुझे अब मत छुओ । अब मैं तुम्हारे लिए अस्पृश्य हो गयी हूँ ॥१७॥ उसके बाद वह बालक अचानक अपनी माँ के कष्ट को देखकर माँ ! माँ !! कहते हुए रानी के पीछे दौडने लगा । उस बालक की आँखों में आँसू भरा था ॥१८॥ काले-काले केशों वाले अपनी माँ का वस्त्र पकड़कर खींचते हुए तथा गिरते हुए उस बालक को देखकर उस ब्राह्मण ने क्रोध करके उसे पीटा ॥१९॥ फिर भी वह बालक अपनी माँ को छोड़ नहीं रहा था, माँ ! माँ !! कह रहा था उस समय **रानी ने कहा**– हे स्वामिन् ! आप कृपा करके इस बालक को भी खरीद लीजिये ॥२०॥ खरीद लिए जाने पर भी मैं इसके बिना कार्य करने योग्य नहीं रह पाऊँगी । अतएव हे प्रभो ! मैं दुर्भागिनी हूँ । आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये इस बालक को भी खरीद लीजिये ॥२१॥ **ब्राह्मण ने कहा**– लो यह धन, मुझे इस बालक को दे दो । धर्मशास्त्रों के जानकारों ने स्त्री तथा पुरुष दोनों का वेतन तो पहले से ही निर्धारित ही कर दिया है ॥२२॥ सौ, हजार लाख तथा करोड़ यही मूल्य निर्धारित है । बतीस लक्षणों से सम्पन्न दक्ष तथा शील गुणसम्पन्न स्त्री का मूल्य एक करोड़ तथा पुरुष का दश करोड़ मूल्य बतलाया गया है । **सूतजी ने कहा**– उतना ही उस बालक का भी मूल्य उस कपड़े पर रखकर ॥२४॥ ब्राह्मण ने बालक को भी पकड़ लिया तथा उसको भी उसकी माता के साथ बाँध दिया । इसके बाद वह ब्राह्मण उस रानी के साथ खुशी-खुशी अपने घर की ओर चल दिया ॥२५॥ रानी ने राजा हरिश्चन्द्र की प्रदक्षिणा की फिर घुटनों से झुककर दीन बनी हुई अपनी आँखों में आँसू भरकर कही ॥२६॥ यदि मैंने दान किया है, होम किया है तथा ब्राह्मणों को तृप्त किया है तो उससे उत्पन्न पुण्य के फलस्वरूप मुझे दूसरे जन्म में भी हरिश्चन्द्र ही पति के रूप में प्राप्त हों ॥२७॥ अपने चरणों पर गिरकर प्रणाम करती हुई अपने प्राणों से भी प्रियतमा पत्नी को देखकर राजा हरिश्चन्द्र हाय ! हाय !! करते हुए अपनी व्याकुल

वदन्राजा विललापाकुलेन्द्रियः ॥२८॥ वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता । वृक्षच्छायाऽपि वृक्षं तं न जहाति कदाचन ॥२९॥ एवं भार्यां वदित्वाऽथ सुसंबद्धं परस्परम् । पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि ॥३०॥ कां दिशं प्रति यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत् । राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज ॥३१॥ यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः । सद्भर्तृभोग्या हि सदा लोके भार्या भवंति हि॥३२॥ मया त्यक्ताऽसि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता । इक्ष्वाकुवंशसंभूतं सर्वराज्यसुखोचितम् ॥३३॥ मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि । इदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे ॥३४॥ को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यान विस्तरैः । सूत उवाच– पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः ॥३५॥ घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे । नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः ॥३६॥ विललापातिदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः । यां न वायुर्न वाऽऽदित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः ॥३७॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता । सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥३८॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् । हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः ॥३९॥ दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् । व्यास उवाच– एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत ॥४०॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ।

बनी इन्द्रियों से विलाप करने लगे ॥२८॥ सत्य, तथा शीलगुण से युक्त मेरी यह पत्नी आज मुझ से अलग हो गयी । वृक्ष की भी छाया वृक्ष को यदि उसे नहीं छोड़ती है तो यह कैसे मुझे छोड़ दी ॥२९॥ इस तरह से पत्नी से कहकर माता के साथ बाँधे गये अपने पुत्र को उन्होंने कहा कि तुम मुझको छोड़कर कहाँ जा रहे हो ॥३०॥ अब मैं किस दिशा में जाऊँगा ? मेरे दुःख को कौन दूर करेगा । हे द्विज ! मुझे अपने राज्य का त्याग करने अथवा वनवास का उतना कष्ट नहीं है, जितना कष्ट मुझे अपने पुत्र का वियोग होने से है । इस तरह से राजा ने उस ब्राह्मण से कहा । लोक में देखा जाता है कि पत्नी सद्भर्तृ भोग्या होती है ॥३१-३२॥ इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न तथा सभी प्रकार के सुखों को भोगने योग्य मुझको पति प्राप्त करके भी तुम आज दासी बन गयी हो । इस प्रकार महान् शोकसागर में डूबते हुए मेरा उद्धार हे देवि ! कौन करेगा ? हे देवि ! मैं इस बात को इतिहासों तथा पुराणों के आख्यानों के अनुसार कह रहा हूँ । **सूतजी ने शौनकादि ऋषि से कहा–** इस तरह से जब राजा कह ही रहे थे उसी समय उस ब्राह्मण ने रानी को भयंकर कोड़े से मारकर उन दोनों को ले जाने लगा । राजा ने ले जाते हुए अपनी पत्नी तथा पुत्र को देखा तो उनको उस समय अत्यन्त कष्ट हुआ ॥३३-३५॥ वे बार-बार गर्म श्वास ले लेकर विलाप करते हुए आर्त हो गये । जिस रानी को न तो सूर्य न वायु, न चन्द्रमा और न तो दूसरा कोई इससे पहले देख पाया था ॥३७॥ वही मेरी पत्नी आज दासी बन गयी है । यह हाथ की सुकुमार अंगुलियों वाला बालक सूर्यवंश में अद्भुत है ॥३८॥ वही आज बिक गया है, ऐसे दुष्ट बुद्धिवाले मुझको धिक्कार है । हाय प्रिये ! हाय वत्स ! यह सब कुछ मुझ अनार्य की दुर्नीत का दुष्परिणाम है ॥३९॥ अपने दैव के

अत्रांतरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः ॥४१॥ सशिष्यः कौशिकेंद्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः । विश्वामित्र उवाच– **या त्वयोक्ता पुरा राजन्राजसूयस्य दक्षिणा ॥४२॥ तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम् ।** हरिश्चन्द्र उवाच– **नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम् ॥४३॥ राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुराऽनघ ।** विश्वामित्र उचाच– **कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते ॥४४॥ एतदाचक्ष्च राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयाऽर्जितम्।** राजोवाच– **किमनेन महाभाग कथितेन तवानघ ॥४५॥ शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत ।** ऋषिरुवाच– **अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे ॥४६॥ द्रव्यस्यागमनं राजन्कथयस्व यथातथम् ।** राजोवाच– **मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः ॥४७॥ निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया । विप्रैकादश कोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे ॥४८॥** सूत उवाच– **तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसंभवम् । शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥४९॥** ऋषिरुवाच– **राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा । अन्यदुत्पादय क्षिप्रं संपूर्णा येन सा भवेत् ॥५०॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम् । मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम् ॥५१॥ तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य**

कारण मैं उस दशा को प्राप्त हो गया हूँ, फिर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है । ऐसे मुझको धिक्कार है । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से राजा जब विलाप कर रहे थे तो उसी समय उनकी आँखों के सामने से ही वह ब्राह्मण अन्तर्धान हो गया ॥४०॥ वह रानी तथा राजकुमार को लेकर ऊँचे-ऊँचे वृक्षों तथा भवनों की ओट में जाकर शीघ्र ही ओझल हो गया । उसके ठीक बाद मुनि श्रेष्ठ महातपस्वी विश्वामित्र वहाँ आ गये ॥४१॥ उस समय महर्षि विश्वामित्र के साथ उनके शिष्य थे । वे देखने में क्रूर प्रकृति के तथा निष्ठुर स्वभाव के थे । **विश्वामित्र ने राजा हरिश्चन्द्र से कहा–** हे राजन् ! आपने जो राजसूय की दक्षिणा बतलायी थी वह दे दीजिये । यदि आपको सत्य प्रिय हो तो उस दक्षिणा को आप दे दीजिये । **हरिश्चन्द्र ने कहा–** हे राजर्षे ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप अपनी दक्षिणा ले लीजिये ॥४२॥ जिस दक्षिणा को राजसूय की दक्षिणा के रूप में मैंने कहा था । **विश्वामित्र महर्षि ने कहा–** तुमने इस द्रव्य को कहाँ से प्राप्त किया है ? जिसे तुम दक्षिणा के रूप में दे रहे हो ॥४४॥ हे राजेन्द्र ! आपने जैसे इस द्रव्य को प्राप्त किया है, उसे आप बतलाइये। **राजा ने कहा–** हे अनघ ! इस बात को बतलाने से कौन सा लाभ होगा ॥४५॥ हे सुन्दर व्रतवाले प्रिय ! उसको सुनने से तो केवल शोक ही बढ़ता है। **ऋषि ने कहा–** मैं निन्दित द्रव्य नहीं ले सकता हूँ, अतएव आप मुझे प्रशस्त ही द्रव्य दें ॥४६॥ अतएव हे राजन् ! आप ठीक-ठीक बतलाइये कि यह द्रव्य आपको कहाँ से मिला । **राजा ने कहा–** मैंने अपनी पत्नी को दासी के रूप में एक करोड़ सुवर्ण रूपये में बेंच दिया है ॥४७॥ और मैंने अपने पुत्र रोहित को दश करोड़ रुपयों में बेंचा है । अतएव आप ग्यारह करोड़ मुद्रा [illegible] ॥४८॥ **सूतजी ने कहा–** पत्नी के बेंचने से मिले हुए निष्कों को अत्यल्प देखकर विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र से कहा– ॥४९॥ **ऋषि ने कहा–** राजसूय यज्ञ की इतनी ही दक्षिणा नहीं होती है ।

च । मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥५२॥ राजोवाच– **अन्यद्दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् । अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥५३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः । तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥१॥ विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः । श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥२॥ वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति । स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः ॥३॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चांडालरूपधृक् । दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दंतुरोऽघृणी ॥४॥ कृष्णो लम्बोदरःस्निग्धः करालः**

और धन कमाओं जिससे यह दक्षिणा पूरी हो जाय ॥५०॥ हे क्षत्रबंधो ! क्या मेरे और तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल यही दक्षिणा है ?। यदि तुम मानते हो तो फिर मेरी तपस्या का बल तुम देख लो ॥५१॥ मैं एक तपस्वी हूँ । मैंने घोर तपस्या की है । मैं एक शुद्ध ब्राह्मण हूँ । मेरे शुद्ध वेदाध्ययन का प्रभाव अत्यन्त उग्र है । उसे तुम देखो ॥५२॥ **राजा ने कहा–** हे भगवन् ! मैं और भी दक्षिणा दूँगा । आप थोड़ी और प्रतीक्षा कीजिये । मैंने अभी-अभी अपनी पत्नी और पुत्र को बेंचा है ॥५३॥ **विश्वामित्र ने कहा–** राजन् ! अब दिन का चौथाई भाग बचा हुआ है । बस इतने ही देर तक । मैं प्रतीक्षा करुँगा। इसके बाद मुझे प्रतीक्षा करने के लिए मत कहना ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

राजा हरिश्चन्द्र का चण्डाल के हाथ बिकना

व्यासजी ने कहा– इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र को निर्दय तथा निष्ठुरवाणी कहकर कुपित महर्षि विश्वामित्र उस धन को लेकर चले गये ॥१॥ विश्वामित्र के चले जाने पर राजा अत्यन्त शोकग्रस्त हो गये । वे लम्बी-लम्बी श्वास लेकर तथा नीचे मुख करके जोर-जोर से बार-बार कहने लगे ॥२॥ मैं धन से विक जाने वाला प्रेत हो गया हूँ । जिसको मेरी आवश्यकता हो वह सूर्यास्त होने से पहले मुझसे बात कर ले ॥३॥ उसी समय चाण्डाल का रूप बनाये

पुरुषाधमः । हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥५॥ चाण्डाल उवाच– **अहं गृह्णामिदासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम । क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते**
संप्रदीयते ॥६॥ व्यास उवाच– **तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम् । वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥७॥** चांडाल उवाच–
चांडालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम । शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः ॥८॥ एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो
वापि गृह्णात्विति मतिर्मम ॥९॥ उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः । अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०॥ चांडाल उवाच– **एवमेव**
त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम । अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः ॥११॥ विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः । सामान्यमेव
तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयाऽनघ ॥१२॥ यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः । हरिश्चन्द्र उवाच– **असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः॥१३॥**
ततश्चाण्डालतासाध्वी न वरा मे ह्यसत्यता । व्यास उवाच– **तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥१४॥ क्रोधामर्ष विवृताक्षः प्राह चेदं**

हुए वहाँ धर्म आ गये । उस चण्डाल के शरीर से दुर्गन्धि निकल रही थी । उसकी छाती भयंकर थी । उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी । उसके दाँत बड़े-बड़े
थे और वह देखने में निष्ठुर प्रतीत हो रहा था ॥४॥ उसका रंग काला था । पेट लम्बा था । उसका आकार भयंकर था और वह पुरूषाधम लगता था।
उसके हाथ में पुरानी लाठी थी जिसमें मुर्दों की मालाएँ लिपटी थीं ॥५॥ **चाण्डाल ने कहा–** मुझे नौकर की बहुत अधिक आवश्यकता है । मैं तुम्हें दास
के रूप में खरीदता हूँ । तुम शीघ्र अपना मूल्य बतलाओं । तुमको मूल्य के रूप में कितना धन दे दूँ ॥६॥ **व्यासजी ने कहा–** उस क्रूर दृष्टि वाले, निष्ठुर
बोलने वाले तथा शीलहीन रूप से बोलने वाले चाण्डाल को देखकर राजा ने उससे पूछा कि तुम कौन हो ?॥७॥ राजा की बात सुनकर उस **चाण्डाल**
ने कहा– हे राजवर्य ! मैं चाण्डाल हूँ । यहाँ मैं प्रवीर के नाम से विख्यात हूँ । आपको सदा मेरे प्रशासन में रहना होगा और मुर्दों का कपड़ा उतारकर
रखना होगा ॥८॥ चाण्डाल के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर **राजा ने उससे कहा–** मैं तो यह चाहता हूँ कि कोई ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय मुझे अपना दास
बना ले ॥९॥ मनीषियों का कहना है कि उत्तम पुरूष का उत्तम पुरूष के साथ, मध्यम पुरुष का मध्यम पुरूष के साथ और अधम पुरुष का अधम पुरुष
के ही साथ धर्म निभता है ॥१०॥ राजा की बात सुनकर **चाण्डाल ने कहा–** हे राजन् ! अभी आपने जो मेरे सामने धर्म बतलाया है, वह आपने बिना
विचार किए कहा है ॥११॥ जो व्यक्ति विचार करके कोई बात कहता है, वही अपने अभिप्रेत फल को प्राप्त करता है । आपने बिना विचार किएं ही समान्य
धर्म को बतलाया है ॥१२॥ यदि आप सत्य को ही प्रमाण मानते है तो यह सत्य बोलने वाला व्यक्ति नराधम होता है और वह भयंकर नरक में जाता
है ॥१३॥ अतः असत्यता की अपेक्षा मेरे लिए चाण्डाल का दास हो जाना ही ठीक है । **व्यासजी ने कहा–** जब राजा हरिश्चन्द्र इस तरह से चाण्डाल से
बातें कर रहे थे उसी समय तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ गये ॥१४॥ क्रोध के वेग के कारण उनके आँखे चढ़ी हुई थीं, उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र से कहा–

नराधिपम् । चाण्डालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः ॥१५॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा । राजोवाच– **भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥१६॥ कथं चांडालदासत्वे गमिष्ये वित्तकामतः ।** विश्वामित्र उवाच– **यदि चांडालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥१७॥ न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम् । चांडालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम् ॥१८॥ विना चांडालमधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः । धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः ॥१९॥ इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप । दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे ॥२०॥** व्यास उवाच– **हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रुतजीवितः । प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः ॥२१॥** हरिश्चन्द्र उवाच– **दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः । प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चांडालसंकरः ॥२२॥ भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः । तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः ॥२३॥** विश्वामित्र उवाच– **एवमस्तु महाराज ममैव भव किंकरः । किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप ॥२४॥** व्यास उवाच– **एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः । अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम् ॥२५॥ तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः।**

जब यह चाण्डाल तुम्हारे मनोनुकूल धन देने के लिए आ गया है ॥१५॥ तो फिर तुम मुझे यज्ञ की पूरी दक्षिणा क्यों नहीं दे रहे हो । **राजा ने कहा–** मैं जानता हूँ कि मैं सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ हूँ ऐसी स्थिति में ॥१६॥ मैं धन प्राप्त करने के लिए चाण्डाल का दास कैसे बन सकता हूँ ? **विश्वामित्र ने राजा से कहा–** यदि तुम अपने को इस चाण्डाल के हाथों बेचकर मुझे पूरी दक्षिणा नहीं चुकाते हो तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा । चाहे चाण्डाल से अथवा ब्राह्मण से धन प्राप्त करके तुम मुझे दक्षिणा का धन दे दो ॥१८॥ चाण्डाल को छोड़कर दूसरा कोई तुम्हें धन देने वाला नहीं है । हे राजन् ! धन लिए बिना मैं नहीं जाऊँगा ॥१९॥ राजन् अब आधा घड़ी दिन बचा है, यदि इतने समय में तुम मुझे धन नहीं दोगे तो फिर मैं अपने शाप की अग्नि से भस्म कर दूँगा ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा–** उस समय राजा हरिश्चन्द्र मृतक के समान निश्चेष्ट जीवन वाले हो गये । उन्होंने महर्षि विश्वमित्र का पैर पकड़ लिया और विह्वल होकर उनसे कहा– आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥२१॥ **हरिश्चन्द्र ने कहा–** मैं आपका आर्तदास हूँ और दीन हूँ । विशेष रूप से आपका भक्त हूँ । हे विप्रर्षि ! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये । चाण्डाल के सम्पर्क में रहना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद है । बची हुई धनराशि के बदले में आप ही मुझको अपना दास बना लीजिए । मैं आपकी ही सेवा करूँगा । हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपका ही सेवक और आपके चित्त का अनुगमन करने वाला रहूगाँ ॥२३॥ **विश्वामित्र ने कहा–** ठीक है हे महाराज ! आप मेरा ही सेवक बन जाइये । किन्तु आपको सर्वदा मेरी आज्ञा माननी होगी ॥२४॥ **व्यासजी ने कहा–** महर्षि विश्वामित्र के इस तरह से कहने पर राजा अत्यन्त हर्षित हो गये । उन्हें लगा कि जैसे उनका नया जन्म हो गया हो उन्होंने महर्षि विश्वामित्र से कहा– ॥२५॥

आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ ॥२६॥ विश्वामित्र उवाच– **चांडालागच्छ मद्दासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि । गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना ॥२७॥ नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम ।** व्यास उवाच– **एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः ॥२८॥ आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत ।** चांडाल उवाच– **दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले ॥२९॥ भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम । अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया ॥३०॥** व्यास उवाच– **ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः । चांडालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः ॥३१॥ हरिश्चंद्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत् । अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः ॥३२॥ तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति । अथांतरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी ॥३३॥ अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया । ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि ॥३४॥ साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेंद्रा महौजसः । हर्षेण महताऽऽविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत् ॥३५॥ त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बंधुर्महामते । यदर्थं**

महर्षे ! मैं आपके आदेश का पालन सदैव करता रहूँगा । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । महर्षे ! आदेश दीजिये मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ ?॥२६॥ **विश्वामित्र ने कहा–** चाण्डाल आओ ! तुम मेरे इस दास का कितना मूल्य दोगे ? तुम मूल्य देकर मेरे इस दास को खरीद लो । मैं इसे तुम्हें दे रहा हूँ ॥२७॥ मुझे दास की कोई आवश्यकता नहीं है । मुझे धन चाहिए **व्यासजी ने कहा–** महर्षि विश्वामित्र के ऐसा कहने पर वह चाण्डाल प्रसन्न हो गया ॥२८॥ वह शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्र के पास आया और **चाण्डाल ने कहा–** प्रयाग मण्डल यहाँ से दश योजन है ॥२९॥ हे द्विजोत्तम! मैं इसके बदले में वहाँ की भूमि रत्नमयी करके आपको प्रदान कर दूँगा । आपने इस दास को बेचकर मेरा बहुत बड़ा कष्ट दूर कर दिया है ॥३०॥ **व्यासजी ने कहा–** उसके बाद उस चाण्डाल ने महर्षि विश्वामित्र को सुवर्ण मणि तथा मोतियों के साथ कई हजार रत्न प्रदान किया । और ब्राह्मण विश्वामित्र ने उसे स्वीकार कर लिया ॥३१॥ किन्तु इससे राजा हरिश्चन्द्र का मुख विकृत नहीं हुआ । वे धैर्य धारण करके यही मानते रहे कि मेरे स्वामी तो विश्वामित्र ही हैं ॥३२॥ अतएव मुझे वही करना है जो ये मुझसे करायेंगे । उसके बाद आकाशवाणी हुई हे महाभाग ! अप ऋण रहित हो गये । आपने पूरी दक्षिणा चुका दी । उसके बाद राजा के शिर पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई ॥३४॥ इन्द्र आदि सभी देवताओं ने साधुवाद दिया । महान् हर्ष से युक्त होकर राजा ने महर्षि विश्वामित्र से कहा– ॥३५॥ हे महामते ! आप मेरे माता, पिता तथा बन्धु हैं । क्योंकि आपने मुझे ऋण से मुक्त कर दिया है । मेरा ऋण से उद्धार हो गया ॥३६॥ हे महाबाहो ! मुझे क्या करना होगा ? आपका वचन ही मेरे लिए कल्याणकारी है । राजा के इस तरह से कहने पर मुनि विश्वामित्र

मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः ॥३६॥ किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव । एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत ॥३७॥ विश्वामित्र उवाच– **चांडालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप । स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ ॥३८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

चतुर्विंशोऽध्यायः

शौनक उवाच– **ततः किमकरोद्राजा चांडालस्य गृहे गतः । तद्ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे ॥१॥** सूत उवाच– **विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः । विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥२॥ असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दण्डेनाताडयत्तदा । दंडप्रहारसंभ्रांतमतीवव्याकुलेंद्रियम्॥३॥ इष्टबंधुवियोगार्तमानीय निजपक्वणे । निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः ॥४॥ निडस्थस्ततो राजा वसंश्चांडालपक्वणे । अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत् ॥५॥ तन्वी दीनमुखी दृष्टा बालं दीनमुखं पुरः । मां स्मरंत्यसुखाविष्टा**

ने कहा ॥३७॥ **विश्वामित्र ने कहा**– राजन् ! आज से आपको इस चाण्डाल की आज्ञा माननी होगी । आपका कल्याण हो इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र को कहकर विश्वामित्र उस धन को लेकर चले गये ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

राजा हरिश्चन्द्र की श्मशान घाट पर नियुक्ति

शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा– उसके पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के घर क्या किए ? हे सूतजी ! मैं आप से पूछ रहा हूँ । उसे आप मुझे बतलाइये ॥१॥ **सूतजी ने कहा**– महर्षि विश्वामित्र के चले जाने पर प्रसन्न होकर उस चाण्डाल ने महर्षि विश्वामित्र को वह धन चुकाकर और राजा हरिश्चन्द्र को बाँधकर ॥२॥ यह कहकर डंडे से मारा कि अब फिर कभी झूठ बोलोगे । राजा तो अत्यन्त व्याकुल थे, क्योंकि उन्हें अपने प्रिय व्यक्ति का वियोग हो गया था । उनको वह अपने घर लाया और कारागार में डाल दिया। राजा हरिश्चन्द्र को हथकड़ी तथा वेणी में बाँधकर सुखपूर्वक स्वयं सो गया ॥३-४॥ उस चाण्डाल के घर में कारागार में पड़े हुए राजा अन्न-जल छोड़कर सदा अपनी पत्नी तथा पुत्र के विषय में सोचते रहे ॥५॥ राजा सोचते थे कि मेरी

मोक्षयिष्यति नौ नृपः ॥६॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम् । रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च सम्बोधयिष्यति ॥७॥ तातपार्श्वं व्रजामीति रुदंतं बालकं पुनः । तात तातेति भाषंतं तथा संबोधयिष्यति ॥८॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चांडालतां गतम् । राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥९॥ ततश्चांडालता चेयमहो दुःखपरंपरा । एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम् ॥१०॥ निनाय दिवसान्राजा चतुरो विधिपीडितः । अथाह्नि पंचमे तेन निगडान्मोचितो नृपः ॥११॥ चांडालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे । क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ॥१२॥ काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत् । तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित् ॥१३॥ इमं च जर्जरं दंडं गृहीत्वा याहि मा चिरम् । वीरबाहोरयं दंड इति घोषस्व सर्वतः ॥१४॥ सूत उवाच– कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः । हरिश्चंद्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥१५॥ चांडालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा । राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमंदिरम् ॥१६॥ पुर्यास्तु दक्षिणे देशे विद्यमानं भयानकम् । शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम् ॥१७॥ श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् । गृद्ध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ॥१८॥ अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम्।

पत्नी दुःखी बनकर दुखी बालक को अपने सामने देखकर मेरा स्मरण करके यही सोचती होगी कि महाराज मुझको मुक्त करायेंगे ॥६॥ वह यह भी सोचती होगी की राजा धन प्राप्त करके ब्राह्मण को अपनी प्रतिज्ञात दक्षिणा देकर अपने रोते हुए पुत्र को देखकर मुझे धैर्य धारण करायेंगे ॥७॥ वह मृगनयनी यह तो जानती नहीं है कि मैं इस समय चाण्डाल हो गया हूँ। कितनी भयंकर मेरी दुःख की श्रृंखला है ? पहले तो राज्य का नाश हुआ, फिर अपने सृहदों का त्याग करना पड़ा । उसके बाद मुझे अपनी पत्नी और पुत्र को बेंचना पड़ा । मुझे चाण्डालता की प्राप्ति हुई । इसी तरह से रहते हुए राजा नित्य ही अपनी पत्नी तथा पुत्र के विषय में सदा सोचा करते थे ॥८-१०॥ इस तरह से सोचते हुए राजा के चार दिन बीत गये । पाँचवें दिन उसने राजा की हथकड़ी और बेड़ी खोलकर कारागार से निकाला ॥११॥ उसके बाद उसने राजा को श्मशान घाट पर मरे हुये व्यक्तियों के वस्त्र को उतारने की आज्ञा दी। पहले तो उसने क्रुद्ध होकर राजा को कठोर बातों से बार-बार डाँटा उसके बाद ॥१२॥ उसने कहा काशी के दक्षिण दिशा में बड़ा श्मशान है उसकी रक्षा तुम न्यायानुसार करना । किसी को वस्त्र दिए बिना दाह कर्म करने की छूट मत देना ॥१३॥ इस फटे हुए पुराने डंडे को ले लो । और वहाँ शीघ्र चले जाओं। सबों को यह मेरी घोषणा सुना देना कि यह वीरबाहु का दण्ड है । इसे सबको देना है ॥१४॥ **सूतजी ने कहा–** उसके बाद राजा हरिश्चन्द्र वीरबाहु के आदेश का पालन करने लगे ॥१५॥ वे वहाँ के कफन विटोरने वाले हो गये । उनको यही कार्य करने के लिए चाण्डाल ने आज्ञा दिया था और उसी की आज्ञा से वे शमशान घाट पर गये थे ॥१६॥ वह काशी नगरी की दक्षिण दिशा में विद्यमान अत्यन्त भयानक श्मशान घाट था । वहाँ चारों ओर शवों की मालाएँ बिखरी रहती थीं और दुर्गन्धियुक्त बहुत अधिक धुआँ निकलता रहता था ॥१७॥ वहाँ रोने वालों का चित्कार सुनायी पड़ता था । सैकड़ों

अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दंतपंक्तिभिः ॥१९॥ हसंतीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः । नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम् ॥२०॥ हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे । हाप्यते भागिनेयाहं हा मातुल पितामह ॥२१॥ मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बांधव । इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम् ॥२२॥ ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमिति ध्वनिसंकुलम् । अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते ॥२३॥ कल्पांतसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम् । स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखादेवमशोचत ॥२४॥ हा भृत्या मंत्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम् । हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मंद भाग्यकम् ॥२५॥ ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः । बिना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित् ॥२६॥ यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि । इत्येवं चिंतयंस्तत्र चांडालोक्तं पुनः पुनः ॥२७॥ मलेन दिग्धसर्वांगः शवानां दर्शनं व्रजन् । लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ॥२८॥ अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः । इदं मम इदं राज्ञ इदं चांडालकस्य च ॥२९॥ इत्येवं चिन्तयन्राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः । जीर्णैकपटसुग्रंथिकृतकंथापरिग्रहः ॥३०॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः । नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यंगुलिः

सियारिने वहाँ भरी रहती थी । गृध्र तथा गोमायु (श्रृंगाल) से वह श्मशान भरा रहता था । चारो ओर मुर्दे ही दिखायी देते थे ॥१७-१८॥ अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त हड्डियाँ चारों ओर विखरी रहती थीं । आधे जले मूर्दों के मुख की दँतपंक्ति स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती थी ॥१९॥ उन दंत पंक्तियों को देखकर लगता था कि वे मुर्दे जैसे हँस रहे हैं । इसी तरह की अग्नि के बीच शरीर की स्थिति थी। वह श्मशान मरे हुए लोगों के संबन्धियों के चित्कारपूर्ण कोलाहल से परिपूर्ण था॥२०॥ हाय ! पुत्र ! हाय ! मित्र ! हाय बन्धो ! हायः भ्रातः ! हा वत्स ! हाय प्रिय ! हाय भाँजे ! हाय मामा ! हाय पितामह ! हाय! हाय मातामह ! हाय पितः ! हाय पौत्र ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये । हे बाँधव अब भी आ जाओ । इस तरह से चिल्ला-चिल्लाकर कहने वाले लोगों की भयंकर आवाज से वह श्मशान घाट भरा रहता था ॥२१-२२॥ जलते हुए मांस, वसा तथा मेद से छूँ-छूँ की ध्वनि निकलती रहती थी । वहाँ पर आग से चट-चट की भयंकर ध्वनि निकलती थी ॥२३॥ वह शमशान कल्पांत काल के समान भयंकर था । राजा हरिश्चन्द्र वहाँ जाकर दुःखपूर्वक सोचा करते थे। हाय मेरे सेवकों, मेरे मंत्रियों, मेरा वंशोचित राज्य, मेरी प्रियतमा, मेरे बालक पुत्र ! तुम सब मुझ अभागे को त्याग कर कहाँ चले गये ॥२४-२५॥ ब्राह्मण के क्रोध के कारण तुम सबके सब मुझसे दूर चले गये । बिना धर्म के मुनष्यों का कभी कल्याण नहीं होता है ॥२६॥ अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह प्रयत्न पूर्वक धर्म को धारण किये रहे इस तरह से सोचते हुए बार-बार चाण्डाल की आज्ञा पाकर ॥२७॥ मैल से भरे हुए अंग वाले राजा शवों को देखने जाते थे । वे इधर-उधर दौड़ते हुए लकुट के आकार वाले प्रतीत होते थे ॥२८॥ इस शव से इतना मूल्य मिला, और आगे मैं सौ रूपये प्राप्त करूँगा। इसमें इतना हिस्सा मेरा हुआ,यह राजा का हिस्सा है, और इतना चाण्डाल का हिस्सा है ॥२९॥ इस तरह से सोचते हुए राजा उस दुस्तर व्यवस्था में

श्वसन् ॥३१॥ नानाशवौदनकृतछुन्निवृतिपरायणः । तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमंडनः ॥३२॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः । एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

सूत उवाच– **एकदा तु गतो रंतुं बालकैः सहितो बहिः । वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः ॥१॥ क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान्गृहीतुमुपचक्रमे । कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः ॥२॥ आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः । सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम् ॥३॥ पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात् । मस्तके भारकं कृत्वा भिद्यमानः पद पदे ॥४॥ उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषान्वितः ।**

व्यस्त रहते थे । उनका कपड़ा फटा हुआ था । उसमें कई जगह गाँठे लगी थीं । ओढ़ने के लिए उनके पास एक कथरी थी ॥३०॥ उनके मुँह, भुजा तथा पैर में चिता की राख लिपटी रहती थी । उनके हाँथों की अंगुलियाँ, अनेक प्रकार के मेदा, वसा तथा मज्जा से सनी रहती थीं । वे लम्बी श्वास लेते रहते थे ॥३१॥ अनेक शवों को पिण्ड दान करने के लिए जो भात बनता था उसीसे अपनी भूख मिटाते थे । शवों की माला लपेटकर वे अपने मस्तक को अलंकृत करते थे ॥३२॥ वे बार-बार हाय ! हाय !! चिल्लाया करते थे । वे न तो रात में सो पाते थे और न दिन में सोते थे । इस तरह उनके वर्ष के बारह महीने सौ वर्ष के समान बड़े कष्ट से बीते ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

सर्प के काटने से रोहित की मृत्यु

सूतजी ने कहा– एक दिन राजकुमार रोहित वाराणसी के सन्निकट ही बालकों के साथ खेलने के लिए बाहर गया ॥१॥ खेलने के बाद उसने कोमल तथा छोटी जड़ वाले कुशों को अपनी शक्ति के अनुसार जड़ सहित उखाड़ना शुरू किया ॥२॥ इसको देखकर मेरे स्वामी प्रसन्न होयेंगे, यह सोचकर उसने दोनों हाथों से प्रयास करके कुशों को जड़ से उखाड़ा । उसने लक्षण युक्त सामिधाओं को, कुशों को तथा लक्षणानुसार पलाश की लकड़ियों को अग्निहोत्र के

भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः ॥५॥ कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम् । वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे ॥६॥ विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः । महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा ॥७॥ तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह । रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम् ॥८॥ त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः । हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः ॥९॥ अस्माभिःसहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः । इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा ॥१०॥ पपात मूर्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा। अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिंचत ॥११॥ महूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत् । ब्राह्मण उवाच– **अलक्ष्मीकारकं निंद्यं जानती त्वं निशामुखे ॥१२॥ रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम् । ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ॥१३॥ रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता । अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्द्धजा ॥१४॥ अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत । धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुंपसि ॥१५॥ अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम् । एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः ॥१६॥ रुदती कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा । स्वामिन्मम सुतो बालः सर्पदष्टो**

लिए इकट्ठा किया । उन सबो को उसने अपने शिर पर रख लिया और बार-बार गिरते हुए ॥३-४॥ जलाशय के समीप आया । वहाँ आते-आते उसे प्यास लग गयी थी ।उसने पृथिवी पर बोझ रख दिया, और जलाशय में जाकर अपनी इच्छा के अनुसार जल पिया । उसके बाद थोड़ी देर तक विश्राम करके बल्मीक के ऊपर रखे हुए बोझ को उठाने लगा ॥५-६॥ उसी समय विश्वामित्र की आज्ञा से अत्यन्त भयंकर महाविषैला भयावह एक काला सर्प उस बल्मीक के भीतर से निकला ॥७॥ उसने उस बालक को काट लिया और उसी क्षण वह रोहित नामक बालक गिरकर मर गया । मरे हुए रोहित को देखकर दूसरे लड़के ब्राह्मण के घर शीघ्र ही गये ॥८॥ वे सबके सब भयभीत थे और सारा समाचार रोहित की माँ को बतलाये । **उन सबों ने कहा**– हे विप्रदासि! तुम्हारा पुत्र खेलने के लिए बाहर गया था ॥९॥ वह हम लोगों के साथ खेलने गया था ? किन्तु उसको साँप ने काट लिया और वह मर गया है । वज्र के समान दुःखद उन बालकों की बात को सुनकर उसकी माता मूर्छित होकर उसी प्रकार पृथिवी पर गिर पड़ी जिस तरह कटा हुआ कदली का पेड़ पृथिवी पर गिर पड़ता है । उसको गिरे हुए देखकर ब्राह्मण रुष्ट हो गया । उसके ऊपर ब्राह्मण ने जल का छींटा दिया तो वह होश में आयी । उसके बाद ब्राह्मण उससे कहने लगा । **ब्राह्मण ने कहा**– सायंकाल की बेला में द्वारिद्र्य कारक निन्दनीय रुदन को जानकर भी ॥१०-१२॥ रो रही हो। दुष्टे ! तुमको लज्जा नहीं आ रही है ? ब्राह्मण के द्वारा इस तरह से कहने पर भी रानी कुछ बोली नहीं । वह पुत्र के शोक से अत्यन्त पीड़ित होकर दीन बनी हुई करुण क्रन्दन कर रही थी । मुख आँसू से भरा हुआ था । वह धूल-धूसरित थी । उसके केश खुले हुए थे ॥१३-१४॥ इसके बाद क्रुद्ध हुए ब्राह्मण ने रानी से कहा– दुष्टे तुमको धिक्कार है । तुमने अपना मूल्य तो ले लिया । किन्तु घर के कामों को नहीं कर रही हो । यदि तुम काम नहीं कर सकती हो तो तुमने मेरे

मृतो बहिः ॥१७॥ अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम् । दुर्लभं दर्शनं तेन संजातं मम सुव्रत ॥१८॥ इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह । पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत ॥१९॥ ब्राह्मण उवाच– **शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम् । यत्स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पसि ॥२०॥ नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके । उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत् ॥२१॥ किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे । यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः ॥२२॥ तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन् भवेद्बीजमिवोषरे । एहि ते विद्यते किञ्चित्परलोकभयं यदि ॥२३॥ एवमुक्ताऽथ सा विप्रं वेपमानाऽब्रवीद्वचः । कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव ॥२४॥ प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद्द्रक्ष्यामि बालकम् । एवमुक्त्वाऽथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥२५॥ रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता । अथावकुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२६॥** विप्र उवाच– **किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे । किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥२७॥ एवमुक्ता स्थिता धैर्याद्गृहकर्म चकार ह । अर्धरात्रौ गतस्तस्याः पादाभ्यंगादिकर्मणा ॥२८॥ ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना । तस्य दाहादिकं**

उस धन को क्यों लिया । इस तरह ब्राह्मण द्वारा क्रूर वाक्यों से डाँटी जाती हुई रानी ने ब्राह्मण से गिड़गिड़ाते हुए कहा– हे स्वामिन् ! साँप के काटने के कारण मेरा पुत्र मरा हुआ बाहर पड़ा है ॥१५-१७॥ आप मुझे आज्ञा दे दें, मैं उसे देखने के लिए बाहर जाना चाहती हूँ । हे सुव्रत ! अब तो उसका दर्शन भी दुर्लभ हो गया ॥१७-१८॥ इस तरह से ब्राह्मण से कहकर रानी पुनः करुणक्रन्दन करने लगी । उसे रोते हुए देखकर क्रोध करके ब्राह्मण ने रानी से फिर कहा ॥१९॥ **ब्राह्मण ने कहा**– अरे दुष्टे ! तुम्हारा व्यवहार ठीक नहीं है । तुम्हें इस बात का पता नहीं है क्या कि स्वामी से मूल्य लेकर उसका काम ठीक से नहीं करने पर कितना पाप होता है और तुम मेरा काम नहीं कर रही हो ?॥२०॥ ऐसे व्यक्ति को महारौरव इत्यादि नरकों में जाना पड़ता है। एक कल्प तक नरक में रहने के बाद वह व्यक्ति मूर्गा होता है ॥२१॥ अथवा जो पापी, मूर्ख, क्रूर, नीच तथा भ्रष्ट है, उसके समक्ष मेरे इस प्रकार के धर्मोपदेश करने से कौन सा लाभ है ?॥२२॥ उसके सामने तो यह सारा उपदेश उसी तरह से व्यर्थ होता है । जिस तरह से उषर में बोया गया बीज व्यर्थ होता है । यदि तुमको परलोक से थोड़ा सा भी भय हो तो तुम आकर अपना काम करो ॥२३॥ ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर काँपती हुई रानी कहने लगी । हे नाथ ! मेरे ऊपर आप दया कीजिये । आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये ॥२४॥ मुझे थोड़ी देर के लिए छुट्टी दे दीजिये कि मैं बालक को देख आऊँ । इस तरह से कहकर रानी उस ब्राह्मण के पैरों पर गिरकर ॥२५॥ पुत्र के शोक से पीड़ित होकर करुणक्रन्दन करने लगी। उसके बाद क्रोध से आँखें लाल करके ब्राह्मण बोले ॥२६॥ **ब्राह्मण ने कहा**– तुम्हारे पुत्र से मेरा कौन मतलब है, तुम घर का काम करो । तुम मेरे क्रोध को नहीं जानती हो क्या ? मैं क्रुद्ध होकर कोड़े से पीटता हूँ ॥२७॥ इस तरह कहे जाने पर रानी धैर्य धारण करके घर के कार्यों को करने लगी । पैर

कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥२९॥ न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च । ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपंती जगाम ह ॥३०॥ दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता । यूथभ्रष्टा कुरंगीव विवत्सा सौरभी यथा ॥३१॥ वाराणस्या बहिर्गत्वा क्षणाद्दृष्ट्वा निजं सुतम् । शयानं रंकवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥३२॥ विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम् । एहि मे संमुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥३३॥ आयास्यभिमुखो नित्यमंबेत्युक्त्वा पुनः पुनः । गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥३४॥ पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिंग्य बालकम् । तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥३५॥ कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च । हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥३६॥ हा राजन्क्व गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम् । प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥३७॥ तदाऽपश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशंकया । निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह ॥३८॥ हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत । शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम् ॥३९॥ निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम् । भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥४०॥ मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः । सूत उवाच– एवमुक्त्वा

दबाने इत्यादि के काम करते हुए आधी रात की बेला हो गयी ॥२८॥ इसके बाद **ब्राह्मण ने रानी से कहा–** अच्छा तो अब अपने पुत्र के पास जाओ । उसके दाह आदि कर्मों को करके शीघ्र लौट आना ॥२९॥ ऐसा करना कि प्रातःकाल के कर्मों को करने में देर न हो । इसके बाद रोती हुई रानी अकेले रात्रि में वहाँ गयी ॥३०॥ मरे हुए पुत्र को देखकर वह शोक संतप्त होकर जोर-जोर से रोने लगी । जिस तरह से समूह से विछड़कर कोई मृगी दुःखी होती है, अथवा अपने बछड़े से अलग होकर कोई गौ दुःखी होती है ॥३१॥ उसी तरह वाराणसी से बाहर जाकर उसने क्षणभर अपने पुत्र को काठ और कुश पर मरे हुए तथा रंक के समान भूमि पर पड़े हुए देखकर ॥३२॥ दुःख से अत्यन्त आर्त बनकर जोर-जोर से रोने लगी । वह कह रही थी । अरे पुत्र मेरे सामने आओ क्यों नाराज हो । मुझसे बातें करो ॥३३॥ तुम तो मुझे माँ ! माँ !! कहकर मेरे सामने बार-बार आते थे । इस तरह से कहकर कुछ डग आगे बढ़ी कि मूर्छित होकर उसी के ऊपर गिर पड़ी ॥३४॥ जब रानी होश में आयी तो वह उस बालक को अपनी भुजाओं में उठा ली और उस मरे बालक के मुख पर अपना मुख रखकर आर्त स्वर में रोने लगी ॥३५॥ वह अपने दोनों हाथों से अपने शिर तथा मस्तक को पीट रही थी । और वह कह रही थी हाय ! बालक ! हाय ! हाय ! हाय ! शिशो ! सुन्दर कुमार ! हाय ! राजन् ! आप कहाँ चले गये आप कहाँ चले गये । आप अपने इस बालक को आकर देख लीजिये । जो आपको अपने प्राणों से भी प्यारा था । वह मरकर पृथिवी पर पड़ा है ॥३६-३७॥ इस समय उस बालक के मुख को देखिये । पुनः उसके जीवित होने की आशंका हुई फिर उसको मरा हुआ जानकर रानी मूर्छित होकर गिर पड़ी ॥३८॥ रानी ने उस बालक के मुख को हाथ से पकड़कर कहा– अरे बालक सोना बन्द करो, शीघ्र जग जाओ ॥३९॥ आधी रात हो गयी है । सैकड़ों सियारिनें बोल रही है । अएतव रात

पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह ॥४१॥ हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक । हे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि ॥४२॥ तवाहं
जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम् । देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात् ॥४३॥ यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम् ।
ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम् ॥४४॥ दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः । शौर्यदानरतः सत्त्वी गुरुदेवद्विजार्चकः ॥४५॥ मातापित्रोस्तु
प्रियकृत्सत्यवादी जितेन्द्रियः । इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत ॥४६॥ चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः । तव पाणितले पुत्र
कलशश्चमरं तथा ॥४७॥ लक्षणानि तथाऽन्यानि त्वद्धस्ते यानि संति च । तानि सर्वाणि मोघानि संजातान्यधुना सुत ॥४८॥ हा राजन्पृथिवीनाथ
क्व ते राज्यं क्व मंत्रिणः । क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम् ॥४९॥ क्व साऽयोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः ।
सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे ॥५०॥ हा कांत हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम् । येन ते रिंगता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम्॥५१॥

भयंकर हो रही है । भूत, प्रेत, पिशाच तथा डाकिनियों की ध्वनि सुनाई दे रही है ॥४०॥ तुम्हारे सभी मित्र सूर्यास्त होते ही अपने घर चले गये, तुम यहाँ अकेले कैसे हो । **सूतजी ने कहा**— इस तरह से कहती हुई वह रानी करुण क्रन्दन करने लगी ॥४१॥ वह चिल्ला रही थी अरे बच्चे ! अरे बालक! अरे वत्स रोहित कुमार ! हे पुत्र ! तुम मेरी बातों का उत्तर दो । तुम मेरा उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो ?॥४२॥ अरे बेटे ! मैं तुम्हारी माँ हूँ क्या तुम मुझे पहचान नहीं रहे हो । मुझे देखो तो; हे पुत्र ! देश के त्याग तथा राज्य का नाश होने एवं अपने पति के द्वारा बेंच दिये जाने के पश्चात् भी मैं केवल तुमको ही देखकर जीवित हूँ । तुम्हारे जन्म के समय ब्राह्मणों ने जो भविष्यवाणी की थी वह तो कुछ भी नहीं हुआ ॥४३-४४॥ उन लोगों ने कहा था कि यह बालक लम्बी आयु वाला, पृथिवी का राजा अपने पुत्रों तथा पौत्रों से सम्पन्न महापराक्रमी, दान करने वाला, सात्त्विक प्रवृत्ति वाला महाबीर अपने आचार्य देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला ॥४५॥ अपने माता-पिता को प्रिय लगने वाले कार्यों को करने वाला, सत्यवक्ता तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला होगा । ये सारी भविष्यवाणियाँ आज असत्य हो गयीं ॥४६॥ तुम्हारी हथेली में विद्यमान चक्र, मछली, छत्र, श्रीवत्सचिह्न,स्वस्तिक तथा ध्वजा के चिह्न तथा कलश एवं चमर के चिह्न हैं ॥४७॥ इसके अतिरिक्त जो तुम्हारे हाथ में सद्लक्षण के चिह्न हैं वे सब-के-सब अब व्यर्थ हो गये हैं ॥४८॥ हे राजन् ! हे पृथिवीनाथ ! आपका राज्य कहाँ चला गया ? आपका खड्ग कहाँ चला गया ? और आपका धन कहाँ चला गया ?॥४९॥ कहाँ गयी आपकी अयोध्या ? कहाँ गये आपके वे भवन ? कहाँ चले गये वे हाथी, घोड़े और प्रजाएँ ? इन सारी वस्तुओं तथा मुझको छोड़कर हे पुत्र तुम कहाँ चले गये ॥५०॥ हे मेरे पतिदेव ! राजन् आप आइये और अपने इस प्रिय पुत्र को देखिये । यह वही पुत्र है जो खेलते-खेलते आपके वक्षःस्थल को अपने पैरों के लाल रंगों से रंग देता था ॥५१॥ वह अपने शरीर में लगी हुई धूल से आपके विशाल वक्षःस्थल को मलिन बना देता था । यह वही पुत्र है

स्वशरीररजः पंकैर्विशालं मलिनीकृतम् । येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः ।।५२।। भ्रंशितो भालतिलकस्तवांकस्थेन भूपते । यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहाद्वै चुम्बितं त्वया ।।५३।। तन्मुखं मक्षिकालिंग्य पश्य कीटैर्विदूषितम् । हा राजन्पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रंकवन्मृतम् ।।५४।। हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे । तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये ।।५५।। हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुंदर । एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः ।।५६।। जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः । जना ऊचुः– **का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति।।५७।। एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि । एवमुक्ताऽथ सा तन्वी न किंचिद्वाक्यमब्रवीत् ।।५८।। भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह। विललापातिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना ।।५९।। अथ ते शंकितास्तस्यां रोमांचिततनूरुहाः । संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपाणयः ।।६०।। नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किंचिन्न भाषते । तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी ।।६१।। शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः । भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः ।।६२।। इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम् । भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा ।।६३।।**

जो आपकी गोद में बैठकर कौतूहल वश आपके ललाट पर लगे हुए कस्तूरी मिश्रित चन्दन को मिटा दिया करता था । यह वही पुत्र है जिसके मुख में धूल लगी रहती थी फिर भी आप स्नेहवशात् उसके मुख को चूम लेते थे ।।५२-५३।। आज आपके उसी पुत्र के मुख पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, और कीड़े उसे दूषित कर रहे हैं । इसे आकर आप देखिये । हे राजन् ! आपका वही पुत्र मरकर रंक के समान पृथिवी पर पड़ा हुआ है ।।५४।। हा दैव ! मैंने पूर्वजन्म में कौन सा ऐसा पाप कर्म किया था जिसके परिणाम स्वरूप इतनी विपत्ति में पड़ी हुई हूँ और लगता है कि इस विपत्ति का कभी अन्त नहीं होने वाला है ।।५५।। इसके बाद रानी हाय पुत्र ! हा शिशो ! हाय सुन्दर राजकुमार ! इत्यादि कह-कह कर विलाप करने लगी । इस तरह के उस रानी के विलाप को सुनकर नगर की रक्षा करने वाले ।।५६।। जग गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर रानी के पास आये । उन लोगों ने रानी से पूछा– तुम कौन हो ? यह बालक कौन है ? यह किसका पुत्र है ? तुम्हारा पति कहाँ रहता है ?।।५७।। तुम अकेले इस रात्रि में यहाँ आकर क्यों रो रही हो? तुम्हें भय नहीं लगता है क्या ? इस तरह से पूछे जाने पर भी रानी कुछ बोल न सकी ।।५८।। फिर पूछने पर भी रानी तो स्तब्ध सी हो गयी थी चुप रही । उसकी आँखों में शोक के आँसू भरे हुए थे । दुःख से अत्यन्त आर्त बनी हुई रानी विलाप करने लगी ।।५९।। रानी को इस तरह से देखकर वे लोग उसके विषय में शंका करने लगे । उन सबों को रोमाञ्च होने लगा । और वे डर गये । वे अपने हाथ में आयुध उठा लिए परस्पर में बातें करने लगे ।।६०।। निश्चय ही यह कोई स्त्री नहीं है । यह बालकों को मारने वाली पिशाचिनी है । क्योंकि यह कुछ भी बोल नहीं रही है । अतएव इसका वध कर देना चाहिए ।।६१।। यह यदि कोई अच्छी स्त्री होती तो आधी रात को नगर के बाहर यहाँ क्यों रहती । निश्चित रूप से अपने खाने के लिए किसी

खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः । आकृष्य पक्वणे नीता चांडालाय समर्पिता ॥६४॥ हे चांडाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी । वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले ॥६५॥ चांडालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता । न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिंभान्यनेकधा ॥६६॥ भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम् । ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम् ॥६७॥ द्विजस्त्रीबालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः। अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः ॥६८॥ महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः । द्विजस्यापि स्त्रियो वाऽपि न दोषो विद्यते वधे ॥६९॥ अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबन्धनैः । बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत् ॥७०॥ हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया तदा । रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय ॥७१॥ तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा । वेपमानोऽथ चांडालं प्राह स्त्रीवधशंकितः ॥७२॥ न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममावरम् । असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥७३॥ श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत् । माभैषीस्त्वं गृहाणासिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः ॥७४॥ बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥७५॥ स्त्रियो

बालक को उठा लायी है ॥६२॥ इस तरह से उनलोगों ने आपस में बातें करके रानी के केशों को जोर से पकड़ लिया कुछ लोगों ने उसकी भुजाओं को पकड़ लिया और कुछ लोगों ने उसके गले को पकड़ लिया ॥६३॥ कुछ शस्त्रधारियों ने कहा सावधान रहो नहीं तो यह आकाश में उड़ जायेगी । उन सबों ने रानी को घसीट कर चाण्डाल के घर लाया और उसे चाण्डाल को समर्पित कर दिया ॥६४॥ उन लोगों ने चाण्डाल से कहा— हे चाण्डाल यह बच्चों को मार डालने वाली पिशाचिनी है । इसको हमलोगों ने नगर के बाहर देखा । इसको बाहर ले जाओ और शीघ्र ही इसका वध कर दो ॥६५॥ उसको देखाकर **चाण्डाल ने कहा**— मैं इसको जानता हूँ । लोगों ने इसके विषय में मुझे बतालाया है किन्तु कोई आज तक इसको देख नहीं पाया था । यह लोगों के अनेक बच्चों को खा गयी है ॥६६॥ इस काम को करके आप लोगों ने बहुत अधिक पुण्य कमाया है । आप लोगों की संसार में बहुत अधिक ख्याति होगी । अब आप लोग जाइये ॥६६-६७॥ ब्राह्मण, स्त्री, बालक तथा गौ को मारने वाले, सुवर्ण चुराने वाले, आग लगाने वाले जो किसी को रास्ता में घेर कर मार डालता हो, मदिरा पीता हो तथा अपने गुरु की शय्या पर सोता हो । किसी श्रेष्ठ पुरुष का विरोध करता हो ऐसे प्राणियों को मार डालने से पुण्य ही होता है पाप नहीं होता । यदि ऐसी किसी द्विज की भी स्त्री का वध करना पड़ता है तो उसको मारने से कोई पाप नहीं लगता है ॥६८-६९॥ अतएव इसका वध कर देने योग्य ही है । यह कहकर उस चाण्डाल ने रानी को रस्सी से कसकर बाँध दिया । उसके बाद उनका केश पकड़कर वह उन्हें रस्सी से पीटने लगा ॥७०॥ उसके बाद उसने कठोर वाणी में हरिश्चन्द्र से कहा— अरे दुष्ट दास तुम इसका वध कर दो इसमें विचार न करो ॥७१॥ राजा हरिश्चन्द्र उसके उस वज्र के समान कठोर वाक्य को सुनकर काँपने लगे । उसके बाद स्त्री के वधजन्य पाप के भय से भयभीत होकर चाण्डाल से कहे—

रक्ष्या प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन । स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः ॥७६॥ पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपर्वके ॥७७॥ चांडाल उवाच– **मा वदासिं गृहाणैनं तीक्ष्णं विद्युत्समप्रभम् । यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत् ॥७८॥ तस्य हिंसा कृता नूनं बहुपुण्यप्रदा भवेत् । भक्षितान्यनया भूरि लोके डिंभानि दुष्टया ॥७९॥ तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति ।** राजोवाच– **चांडालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम् ॥८०॥ आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव ।** चांडाल उवाच– **स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यतेऽपरम् ॥८१॥ गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि । यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति ॥८२॥ नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि ।** राजोवाच– **चांडालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम् ॥८३॥ स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम् । घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम् ॥८४॥ देवदेवोरगैः सिद्धैर्गंधर्वैरपि संयुतम् । देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः ॥८५॥ एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं**

मैं इस कार्य को करने में समर्थ नहीं हूँ । मुझे कोई दूसरा काम दे दीजिये । यदि आपका दूसरा कोई असाध्य कार्य भी होगा तो मैं उसे करुँगा ॥७२-७३॥ हरिश्चन्द्र की बात को सुनकर **चाण्डाल ने कहा**– तुम डरो मत, इसका वध करने से पुण्य ही होगा पाप नहीं होगा ॥७४॥ यह बालक को खाने वाली है, अतएव इसकी कभी भी रक्षा नहीं करनी चाहिए । चाण्डाल की बातों को सुनकर **राजा ने कहा**– ॥७५॥ किसी भी स्त्री की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए । उसको कभी भी मारना नहीं चाहिए । धर्म का निर्णय करने वाले मुनिजनों ने स्त्री का वध करने से पाप बतलाया है ॥७६॥ कोई भी पुरुष जानकर अथवा बेजाने हुए भी यदि किसी स्त्री का वध कर देता है तो वह महारौरव आदि नरको में जाकर भयंकर यातना को भोगता है ॥७७॥ **चाण्डाल ने कहा**– बोलो मत इस बिजली के समान चमकती हुई तलवार को तुम ले लो और इसका वध कर दो । यदि किसी एक व्यक्ति का वध कर देने से बहुत लोगों को सुख मिलता है ॥७८॥ तो उसका वध कर देना बहुत अधिक पुण्य रूपी फल को प्रदान करने वाला होता है इसने तो बहुत से लोगों के बच्चों को खा लिया है । यह दुष्टा है ॥७९॥ अतएव तुम शीघ्र ही इसका वध कर दो इस कार्य से लोगों को शान्ति मिलेगी । **राजा ने कहा**– हे चाण्डालों को स्वामिन् ! स्त्रियों का वध करने से बचना बहुत बड़ा व्रत है ॥८०॥ अतएव मैं अपने जन्मकाल से इस बात का प्रयास करता हूँ कि मुझे किसी भी स्त्री का वध करना न पड़े । **चाण्डाल ने कहा**– अरे दुष्ट ! अपने स्वामी के कार्य को छोड़कर उससे बड़ा दूसरा कौन सा कार्य हो सकता है ? तुमने जब मुझसे अपना वेतन ले लिया है तो फिर मेरा काम क्यों नहीं करते हो ?। जानते हो जो व्यक्ति अपने स्वामी से वेतन तो ले लेता है, किन्तु उसका कार्य नहीं करता है तो॥८२॥ उस व्यक्ति का नरकों से उद्धार हजारो कल्पों में भी नहीं हो पाता है । **राजा ने कहा**– हे चाण्डालनाथ ! आप मुझे अत्यन्त भयंकर कोई काम बतलाइये॥८३॥ आप आपने शत्रु को बतला दीजिये मैं उसका वध कर दूँगा । उसके विषय में कुछ भी नहीं सोचूँगा । आपके शत्रु का वध करके मैं इस

हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । चांडालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम् ॥८६॥ चांडाल उवाच– **(नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम् ।) चांडालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः । दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः ॥८७॥ निर्लज्ज तव चेदस्ति किंचित्पापभयं हृदि । किमर्थं दासतां यातश्चांडालस्य तु वेश्मनि ॥८८॥ गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम् । एवमुक्त्वाऽथ चांडालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत्॥८९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

सूत उवाच– **ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः । अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम ॥१॥ शिरस्ते छेदयिष्यामि हन्तुं शक्नोति चेत्करः । एवमुक्त्वा समुद्यम्य खंड्गं हंतुं गतो नृपः ॥२॥ न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम् । अब्रवीद्भृशदुःखार्ता**

सम्पूर्ण पृथिवी को आपको प्रदान कर दूँगा ॥८४॥ देवताओं, सर्पों, सिद्धों तथा गन्धर्वो के साथ इन्द्र को भी तीक्ष्ण बाणों से मारकर मैं उन पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ ॥८५॥ राजा हरिश्चन्द्र के इस बात को सुनकर वह चाण्डाल कुपित हो गया और उसने काँपते हुए राजा से कहा– ॥८६॥ **चाण्डाल ने कहा–** नौकरों के लिए जो बात बतलायी गयी है, तुम्हारा वैसा व्यवहार नहीं है । तुम करते हो चाण्डाल की दासता और देवताओं की वाणी बोलते हो । तुमको मुझे बहुत नहीं कहना है, तुम दास हो तुम मेरी बात सुनो ॥८७॥ अरे निर्लज्ज ! यदि तुमको थोड़ा सा भी पाप का भय है तो फिर चाण्डाल के घर में दासता क्यों किये हो ?॥८७॥ अतएव लो इस खड्ग को और इसका शिर काट दो । यह कहकर चाण्डाल ने राजा हरिश्चन्द्र को खड्ग दे दिया ॥८९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२५॥

राजा हरिचन्द्र का शैव्या को पहचानना

सूतजी ने कहा– इसके बाद राजा हरिश्चन्द्र नीचे मुख करके बैठ गये और रानी से कहे– हे बाले ! मैं पापी हूँ । तुम मेरे सामने यहाँ बैठो ॥१॥ यदि मेरा हाथ काम कर सकेगा तो मैं तुम्हारा शिर काटूँगा । इस तरह कहकर राजा ने अपना खड्ग उठाया और उसको मारने के लिए गये ॥२॥ न तो

स्वमृत्युमभिकांक्षती ॥३॥ स्त्र्युवाच– चांडाल शृणु मे वाक्यं किंचित्त्वं यदि मन्यसे । मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात् ॥४॥ तं दहामि
हतं यावदानयित्वा तवांतिकम् । तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम् ॥५॥ तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति । सा जगामातिदुःखार्ता
विलपन्ती सुदारुणम् ॥६॥ भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् । हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः ॥७॥ कृशा विवर्णा मलिना
पांसुध्वस्तशिरोरुहा । श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि ॥८॥ राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले । रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना
मृतम् ॥९॥ तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः । शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा ॥१०॥ सापि तं चारुकेशांतं पुरो दृष्ट्वा
जटालकम्। नाभ्यजानन् नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम् ॥११॥ भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाऽऽशीविषपीडितम् । नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिंतयदसौ नृपः॥१२॥
अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम् । दर्पणप्रतिमोत्तुङ्गकपोलयुगशोभितम् ॥१३॥ नीलान्केशान्कुञ्जिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरंगिणः । राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ

राजा यह जानते थे कि मेरी पत्नी है और न तो रानी जानती थी के ये महाराज हरिश्चन्द्र हैं । रानी तो अपनी मृत्यु चाहती ही थी क्योंकि वह दुःख से
अत्यन्त आर्त थी । **रानी ने कहा**– हे चाण्डाल ! आप मेरी बात सुनें, यदि आपकी कृपा हो तो मैं कहूँ । मेरा मरा हुआ बच्चा बाहर सन्निकट में ही पड़ा
हुआ है ॥४॥ जब तक मैं उसको आपके पास लाकर जला नहीं लेती हूँ आप तब तक हमारी प्रतीक्षा कीजिये और उसके बाद आप मुझे तलवार से मार
दें ॥५॥ राजा हरिश्चन्द्र ने उसकी बात को स्वीकार कर ली और दुःख से आर्त बनी हुई वह घोर विलाप करती हुई गयी ॥६॥ वह राजा हरिश्चन्द्र की
पत्नी हाय पुत्र ! हाय शिशो ! हाय वत्स ! इस तरह से चिल्लाती हुई सर्प के द्वारा दंशे गये बालक के पास गयी ॥७॥ उसका शरीर दुबला, बदरंग
और मलिन हो गया था । उसके केश धूल से भरे हुए थे । वह शमशान भूमि में आकर बालक को रख दी और पृथिवी पर बैठ गयी ॥८॥ वह कह
रही थी हे राजन् ! आज आप अपने इस बालक को आकर क्यों नहीं देख लेते है । यह अपने मित्रों के साथ खेलने के लिए गया था । वहाँ पर सर्प
ने काट लिया उसके फल स्वरूप इसकी मृत्यु हो गयी है । यह मरा हुआ यहाँ पर भूमि पर पड़ा हुआ है ॥९॥ राजा हरिश्चन्द्र ने रानी के उस विलाप
के शब्दों को सुना उसके बाद वे उस बालक के शव के समीप आये और उस शब के ऊपर पड़े हुए वस्त्र को उन्होंने उघारा ॥१०॥ राजा अपनी रोती
हुई पत्नी को पहचान नहीं पाये थे क्योंकि दीर्घकाल पर्यन्त प्रवास में रहने के कारण अत्यन्त सन्तप्त थी । अत्यन्त दुःखी होने के कारण उसका नवीन
जैसे रूप हो गया हो । वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी थी ॥११॥ राजा जो पहले सुन्दर केश कलापों वाले थे, उनके बाल अब जटा में बदल गये थे ।
उनको अपने सामने देखकर भी रानी उन्हें पहचान नहीं रही थी । राजा का शरीर सूख कर सूखे हुए वृक्ष के छाल के समान हो गया था ॥१२॥ राजा
ने देखा कि वह बालक मरा हुआ भूमि पर पड़ा हुआ है । उसको सर्प ने काट लिया था । किन्तु उसमें वे सारे लक्षण विद्यमान थे जो किसी राजा में

बिंबफलोपमौ ॥१४॥ विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः । विशालपादो गंभीरः सूक्ष्मांगुल्यवनीश्वरः ॥१५॥ मृणालपादो गंभीरनाभिरुद्धतकंधरः। अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः ॥१६॥ जातो नीतः कृतांतेन कालपाशाद्दुरात्मना । सूत उवाच– एवं दृष्ट्वाऽथ तं बालं मातुरंके प्रसारितम् ॥१७॥ स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत् । सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः ॥१८॥ नीतो यदि च घोरेण कृतांतेनात्मनो वशम् । विचारयित्वा राजाऽसौ हरिश्चंद्रस्तथा स्थितः ॥१९॥ ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत । राज्ञ्युवाच– हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत् ॥२०॥ दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते । हा नाथ राजन्भवता मामपास्य सुदुःखिताम् ॥२१॥ कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना । राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥२२॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया । इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा ॥२३॥ प्रत्यभिज्ञाय देवीं च तां पुत्रं निधनं गतम् । कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चापि मे सुतः ॥२४॥ ज्ञात्वा पपात संतप्तो

पाये जाते हैं । उस बालक को देखकर राजा सोचने लगे ॥१३॥ वे उस बालक को देखकर सोच रहे थे इस बालक का मुख मण्डल पूर्ण चन्द्रमा के समान अह्लादक है । इसकी नख देखने में सुन्दर और उठे हैं । इसके दोनों गाल दर्पण के समान चमकते हुए, उन्नत होने के कारण सुशोभित हो रहे है ॥१४॥ इसके बाल काले हैं, इन बालों का अग्रभाग घुंघराला है । ये बाल कुछ भींग कर मस्तक के चारो ओर फैल गये है । और ये लहरदार हैं । इसके दोनों नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं और दोनों ओष्ठ विम्बफल के समान लाल-लाल हैं ॥१५॥ इसका वक्षःस्थल विस्तृत है, नेत्र बड़े-बड़े हैं, भुजाएँ लम्बी हैं और इसके कन्धे उठे हुए हैं। इसके विशाल पैरों की अंगुलियाँ छोटी-छोटी हैं और किसी राजा के समान गंभीर प्रतीत होती हैं ॥१६॥ इसका पैर कमल नाल के समान है, नाभि गहरी हैऔर कंधे इसके मोटे हैं । देखने से लगता है कि यह किसी राजा के वंश का शिशु है । इसकी मृत्यु बड़ी ही कष्टदायिनी है ॥१७॥ राजवंश का बालक होकर भी इसको दुष्ट मृत्यु अपने मृत्युपाश में बाँधकर लाया है । **सूतजी ने कहा–** इस तरह से उसकी माता के पास सुलाये गये इस बालक को देखकर राजा को याद आ गयी । हाय ! हाय !! करते हुए उनकी आँखों से आँसू बहने लगा । **राजा ने कहा–** अरे ! कहीं मेरा ही बालक इस दशा को तो नहीं प्राप्त कर गया ?॥१८-१९॥ कहीं क्रूर काल ने तो उसको अपने अधीन नहीं कर लिया । इस तरह से विचार करके राजा हरिश्चन्द्र वहाँ खड़े रहे ॥२०॥ उसी समय रानी ने भी इस महाकष्ट के अवेश में आकर **रानी ने कहा–** हाय वत्स ! न जाने किस पाप के फलस्वरूप इतनी बड़ी विपत्ति हमारे उपर आयी है । इस विपत्ति का कोई भी कारण नहीं प्रतीत हो रहा है । हा नाथ ! हा राजन् ! मुझ दुःखनी को छोड़कर आप न जाने किस स्थान में किस कारण से शान्ति पूर्वक बैठे हैं । आपके राज्य का नाश हो गया । आपके मित्र छूट गये । आपने अपनी पत्नी तथा पुत्र को भी बेंच दिया ॥२१-२३॥ अरे विधाता ! तुमने राजर्षि हरिश्चन्द्र के सामने यह कितनी बड़ी विपत्ति उपस्थित कर दी । रानी की इस बात को सुनकर राजा

मूर्च्छामतिजगाम ह । सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥२५॥ मूर्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले । चेतनां प्राप्य राजेंद्रो राजपत्नी च
तौ समम् ॥२६॥ विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारेण पीडितौ । राजोवाच– हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम् ॥२७॥ पश्यतो मे मुखं दीनं
हृदयं किं न दीर्यते । तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥२८॥ उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्स वत्सेति सौहृदात् । कस्य जानुप्रणीतेन पिंगेन
क्षितिरेणुना ॥२९॥ ममोत्तरीयमुत्संगं तथांगं मलमेष्यति । न वाऽलं मम संभूतं मनो हृदयनन्दन ॥३०॥ मयाऽसि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन
वस्तुवत् । गतं राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् ॥३१॥ हीनदैवान्नृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः । अहं महाहिदष्टस्य पुत्रास्याननपङ्कजम् ॥३२॥
निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाधिकृतोऽधुना । एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥३३॥ परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्छया निपपात ह । ततस्तं पतितं
दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिंतयत् ॥३४॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चंद्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥३५॥ तथाऽस्य नासिका
तुङ्गा तिलपुष्पोपमा शुभा । दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥३६॥ श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः । विहाय पुत्रशोकं सा

अपने स्थान से उठकर रानी के सन्निकट में आ गये ॥२४॥ उन्होंने अपनी पत्नी को पहचान लिया और अपने मरे हुए पुत्र को भी देखा । वे कहने लगे
इतनी बड़ी विपत्ति । यह पत्नी भी मेरी है और यह बालक भी मेरा ही पुत्र है ॥२५॥ इस बात को जानकर वे गिर पड़े । और दुख से संतप्त होकर
मूर्छित हो गये । रानी भी राजा को पहचान कर मूर्छित हो गयी ॥२६॥ मूर्छित होकर आर्त बनी हुई वह पृथिवी पर गिरकर निश्चेष्ट हो गयी । जब राजा
और रानी दोनों होश में आये तो दोनो अत्यधिक संतप्त होकर और शोक के भार से पीड़ित होकर विलाप करने लगे । **राजा ने कहा–** हाय पुत्र ! तुम्हारे
घुंघराले बालों से सुशोभित एवं दीन मुख को देखकर मेरा हृदय फट क्यों नहीं जाता है ? पिताजी ! पिताजी !! इस मधुर वाणी को कहकर स्वयं आये
हुए तुमको॥२९॥ मैं कब प्रेमपूर्वक कहो वत्स, कहो; कहकर तथा अपनी छाती से लगाकर पूछूँगा । अब किसके घुटनों में लगी हुई पीली धूलि के
द्वारा?॥३०॥ मेरी चादर तथा मेरी गोद मैली होयेगी । मेरे मन तथा हृदय को प्रसन्न करने वाले तुम मेरे मनोरथ को पूरा नहीं कर सके ॥३१॥ हे पुत्र!
तुम मुझ जैसे पिता से पितृमान हो जिसने तुमको किसी वस्तु के समान बेंच दिया अपने बान्धवों तथा धन के साथ मेरा सम्पूर्ण राज्य चला गया ॥३२॥
मेरा भाग्य ही छोटा है । मैं पापी हूँ अपना राज्य चले जाने के बाद ही महासर्प से दंसे गये अपने पुत्र का मुख कमल देख सका ॥३३॥ आज मैं घोर
विष से व्याप्त अपने पुत्र के मुख को देखकर अत्यन्त घोर परिस्थिति में पड़ गया हूँ । उस समय राजा का गला रुँध गया था । उन्होंने इस बालक को
अपनी गोद में उठा लिया ॥३४॥ उन्होंने उसका आलिङ्गन किया और मूर्छित होकर पृथिवी पर गिरकर निश्चेष्ट हो गये । उसके बाद राजा को गिरे हुए देखकर
शैव्या सोचने लगी ॥३५॥ निश्चित रूप से ये विद्वज्जनों के मनको आह्लादित करने वाले पुरुषश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र ही हैं । यह इनकी आवाज से मालुम पड़ रहा है॥३६॥

पश्यन्ती पतितं पतिम् ॥३७॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता । वीक्षन्ती सा तदाऽपतन्मूर्च्छया धरणीतले ॥३८॥ प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत । धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगप्सित ॥३९॥ येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् । राज्यनाशंसुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम्॥४०॥ प्रापयित्वाऽपि येनाद्य चांडालोऽयं कृतो नृपः । नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथापि वा ॥४१॥ चामरव्यजने वाऽपि कोऽयं विधिविपर्ययः । यस्यास्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः ॥४२॥ स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वंति विरजस्कं महीतलम् । सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे ॥४३॥ मृतनिर्माल्यसूत्रांतर्लग्नकेशसुदारुणे । वसानिष्पंदसंशुष्कमहापटलमण्डिते ॥४४॥ भस्मांगारार्धदग्धास्थिमज्जा संघट्टभीषणे । गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टछुद्रविहंगमे ॥४५॥ चिताधूमायतपटे नीलीकृतदिगन्तरे । कुणपास्वादनमुदा संप्रकृष्टनिशाचरे ॥४६॥ चरत्यमेध्ये राजेंद्रः श्मशाने

इनकी तिल के पुष्प के समान सुन्दर वही नाक है और प्रख्यात कीर्ति वाले महाराज के दाँत कुन्दकुड्मल के समान हैं ॥३७॥ ये महाराज इस श्मशान में क्यों आये हैं, यदि ये वे ही महाराज हैं, हरिश्चन्द्र हैं तो फिर ये श्मशान में क्यों आये हैं । वह अपने पुत्र के शोक का परित्याग करके अपने पति को देखने लगी ॥३८॥ अपने पति एवं पुत्र के शोक के कारण अत्यन्त दुखी कभी अपने पुत्र के शोक के कारण दीन हो जाती थी तो कभी अपने पति का दर्शन पा जाने के कारण आश्चर्य के कारण प्रसन्न हो जाती थी । इस तरह से वह अपने पति हरिश्चन्द्र और मृत पुत्र को देखकर मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ी ॥३९॥ जब रानी को धीरे-धीरे होश आया तो वह अपनी गदगद वाणी में बोली अरे दैव धिक्कार है तुमको । तुम बड़े निष्ठुर तथा बेहद निन्दित हो ॥४०॥ तुमने इन महाराज को जो देवता के समान थे उनको चाण्डाल बना दिया है । तुम्हारे ही कारण इन महाराज के राज्य का नाश हो गया । इनके सभी सुहृद (हितैषी) छूट गये। इनको अपनी पत्नी और पुत्र को भी बेंचना पड़ा ॥४१॥ तुमने इतना करने के बाद इनको चाण्डलत्व को प्राप्त करा दिया । हे महाराज ! आज मैं न तो आपके छत्र को देख रही हूँ और न चमर को देख रही हूँ । यहाँ आपका सिंहासन भी नहीं दिखायी दे रहा है ॥४२॥ यह कितनी भाग्य की विडम्बना है ? जब पहले आप चलते थे तो दूसरे राजागण आपके सेवक का काम करते थे ॥४३॥ वे अपने उत्तरीय से आपके आगे-आगे पृथिवी की धूलि झाड़ते चलते थे । हे राजेन्द्र ! वही आप आज इस दुःख से पीड़ित होकर इस अपवित्र श्मशान भूमि में घूम रहे हैं । यह ऐसी श्मशान भूमि है जिसमें फूटे हुए घड़े तथा छूटे कपड़े पड़े हुए है ॥४४॥ मुर्दे के शरीर से उतारे गये कपड़े तथा उसमें लिपटे हुए केश के कारण यह श्मशान अत्यन्त भयंकर हैं । कहीं पर यहाँ चर्बी सुखकर गिरी पड़ी हुई है । ऐसी चर्बियों का यहाँ समूह पड़ा हुआ है । यह श्मशान राख की ढेर, जलते हुए अंगारों तथा आधी जली हुई हड्डियाँ मज्जाओं के समूह से भरा हुआ है । यहाँ गृध्र एवं श्रृंगालों की ध्वनि सुनायी पड़ रही है तथा पुष्ट छोटे-छोटे पक्षी भी यहाँ दिखायी पड़ रहे हैं ॥४५-४६॥ चिता से निकलने वाले धुएँ की यहाँ विस्तृत चादर बिछी हुई है और उसके कारण दिशाएँ

दुःखपीडितः । एवमुक्त्वाऽथ संश्लिष्य कंठे राज्ञो नृपात्मजा ॥४७॥ कष्ट शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा । राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥४८॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम । यद्येतदेव धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥४९॥ तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने । नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंशता ॥५०॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः । सूत उवाच– इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥५१॥ कथयामास तन्वंग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम् । रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥५२॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत् । श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥५३॥ मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः । हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैव्यां गद्गदया गिरा ॥५३॥ कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम । स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य माऽसत्यो भव भूपते ।।५४।। माऽसत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम् । एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ।।५५।। क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः । राजोवाच– कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ।।५६।। यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम् । पत्न्युवाच– मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ।।५७।। भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो । श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ।।५८।। मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब

काली-काली हो गयी हैं । मूर्दा खाकर प्रसन्न होने वाले यहाँ बड़े-बड़े निशाचर हैं ॥४७॥ इस तरह के श्मशान भूमि में आप सञ्चरण कर रहे हैं । इस तरह से कहकर रानी हरिश्चन्द्र के गले से लिपट गयी ॥४८॥ कष्ट एवं शोक से परिपूर्ण रानी आर्त वाणी में विलाप करने लगी । हे राजन् ! आप इस दृश्य को वास्तविक मान रहे हैं अथवा मैं स्वप्न देख रही हूँ ॥४९॥ हे महाराज् ! आप इस बात को बतलाइये । इस समय मेरा मन मोहित हो रहा है। मैं बहुत घबराई हुई हूँ । यदि यह सत्य है तब तो हे धर्मज्ञ ! स्पष्ट हो गया कि धर्म करने से कोई लाभ नहीं है । धर्म से किसी को भी कोई सहायता नहीं मिलती है ॥५०॥ उसी तरह से ब्राह्मणों एवं देवताओं की पूजा करने से कोई धर्म नहीं होता है । सत्य का पालन करने से भी कोई लाभ नहीं है! धर्म, सत्य, अनृशंसता आदि का पालनं करना व्यर्थ है ॥५१॥ जब आप जैसे धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति अपने राज्य को खो बैठा तो धर्म का क्या महत्त्व है ? **सूतजी ने कहा–** इस तरह से अपनी पत्नी की बात को सुनकर उसको राजा ने बतलाया कि वे किस प्रकार से चाण्डाल बन गये । उन्होंने अपनी आप बीती को गद्गद स्वर में बतलाया । उसे सुनकर रानी देर तक रोती रही उसने दुःख के साथ गर्म श्वाँस लिया ॥५२-५३॥ उसके बाद में रानी ने राजा को बतलाया कि उसके पुत्र की मृत्यु कैसे हुई । राजा उन सारी बातों को सुनकर बेहोश होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥५४॥ अपने मरे हुए पुत्र को लेकर रानी अपनी जीभ से बार-बार चाटने लगी और उन्होंने, अपनी गद्गद वाणी में राजा से कहा– ॥५५॥ अब आप मेरा शिर काट कर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन कीजिये । आप अपने स्वामी से द्रोह न करें राजन् ! आप सत्यवादी बनें ॥५६॥ राजन् ! आपके स्वामी से द्रोह तथा असत्य

दुःखितो मुखम् । राजोवाच– **प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाऽशितुम् ।।५९।। नात्मायत्तोऽहं तन्वंगि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ।
चांडालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ।।६०।। चांडालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि । नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम्।।६१।।
तापं प्राप्स्यामि संप्राप्य महारौरवरौरवे । मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम् ।।६२।। एकोऽपि बाल्लको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः । मम
दैवानुयोगेन मृतः सोऽपि बलीयसा ।।६३।। कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः । तथापि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम्।।६४।।
त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा । वैतरण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे ।।६५।। सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने । निपतिष्यामि
तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाधुना ।।६६।। न वक्तव्यं त्वया किंचिदतः कमललोचने । मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधाहतमानसा ।।६७।।
अनुज्ञाताऽध गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते । यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ।।६८।। संगमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया । इह लोके
कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम् ।।६९।। यन्मयाहसता किञ्चिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते । अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम यास्यतः ।।७०।। राजपत्नीति**

भाषण का पाप न लगे । उस बात को सुनकर राजा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।।५७।। क्षण भर के बाद जब उनको चेतना आयी तो वे अत्यन्त
दुःखित होकर विलाप करने लगे । **राजा ने कहा–** प्रिये ! तुम ऐसी निष्ठुर वाणी क्यों बोलती हो ।।५८।। जिस बात का मैं अपने मुख से उच्चारण भी
नहीं कर सकता हूँ।उस काम को मैं कैसे कर सकता हूँ । राजा की बात सुनकर **रानी ने कहा–** मैंने देवताओं की तथा गौरी की पूजा करके यह वरदान माँगा
है कि आप अगले जन्म में भी मेरे पति होंगे । उस बात को सुनकर राजा पुनः मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।।५९-६०।। वे दुःखी होकर अपने मरे
हुए पुत्र के मुख को बार-बार चूमने लगे । **राजा ने कहा–** हे प्रिये ! अब मैं बहुत अधिक समय़ तक कष्ट को नहीं भोगना चाहता हूँ ।।६१।। किन्तु हे
तन्वंगी ! मेरे भाग्य की मन्दता देखो कि मैं स्वतंत्र नहीं हूँ । यदि मैं चाण्डाल की आज्ञा नहीं लेकर अग्नि में प्रवेश कर जाऊँ तो फिर मुझे अगले जन्म
में भी चाण्डाल का दास होना पड़ेगा । मुझे बड़े-बड़े नरकों में पड़कर भयंकर कष्ट को भी प्राप्त करना होगा ।।६३।। महारौरव नामक नरक में मुझे भयंकर
यातना भोगनी होगी। किन्तु इस दुःख सागर में पड़े रहने की अपेक्षा मुझे इस समय मर जाना ही अच्छा लगता है ।।६४।। मेरा यह एकलौता पुत्र ही मेरे
वंश को बढ़ाने वाला था किन्तु वह भी मेरे बलवान दैव के योग के कारण मर गया ।।६५।। मुझे यह नहीं समझ में आता है कि हम आपने प्राणों का
परित्याग कैसे करें क्योंकि मैं तो पराधीन हूँ और दुर्गति प्राप्त हूँ । फिर भी अत्यन्त कष्ट प्राप्त करने के कारण मैं अपना शरीर त्याग दूँगा ।।६६।। इस
पुत्र के मर जाने के कारण जैसा दुःख है, वैसा दुःख वैतरणी नदी में नहीं प्राप्त होता है ।।६७।। अतएव मैं जलती हुई अग्नि में अपने पुत्र के शरीर के
ही साथ प्रवेश कर जाऊँगा । अतएव तुम मुझे क्षमा कर देना ।।६८।। अतएव हे कमललोचने ! तुम इस विषय में कुछ मत बोलना । अब तुम मेरी बात को

गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः । सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे ॥७१॥ राज्युवाच– **अहमप्यत्रराजर्षे निपतिष्ये हुताशने । दुःखभारासहादेव सह यास्यामि वै त्वया ॥७२॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत् । सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद । श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥७३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे षड्विंशोऽध्याय: ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्याय:

सूत उवाच– **ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् । भार्यया सहितो राजा बद्धांजलिपुटस्तदा ॥१॥ चिंतयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम् । पञ्चकोशांतरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥२॥ रक्तांबरपरीधानां करुणारससागराम् । नानायुधधरामंबां जगत्पालनतत्पराम् ॥३॥ तस्य**

अपने मन को स्थिर करके सुन लो ॥६९॥ अब मैं तुमको आज्ञा दे रहा हूँ तुम ब्राह्मण के घर चली जाओ । यदि तुमने होम और दान किया है तथा अपने गुरुजनों को प्रसन्न किया है ॥७०॥ तो फिर तुम्हारा मुझसे तथा अपने पुत्र से परलोक में संयोग होगा । इसलोक में तो हमलोगों को अत्यन्त अभीप्सित हम दोनों का मिलन नहीं हो सकता ॥७१॥ यदि मैंने एकान्त में कोई ऐसी बात हँसी के प्रसंग में कह दिया हो और उस कार्य को नहीं किया है, तो उन सारी बातों को तुम क्षमा कर देना क्योंकि अब तो मैं जा रहा हूँ ॥७२॥ हे शुभे ! तुम यह सोचकर कि मैं राजा की पत्नी हूँ, अपने स्वामी का कभी भी अपमान मत करना क्योंकि स्वामी को देवता के समान प्रसन्न रखना चाहिए ॥७३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२६॥

राजा हरिश्चन्द्र के स्वर्गारोहण का वर्णन

सूतजी ने कहा– उसके बाद राजा ने चिता बनाकर उसके ऊपर अपने पुत्र को रखा । उसके बाद अपनी पत्नी के साथ वे हाथ जोड़कर ॥१॥ सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी सौ नेत्रों वाली, सम्पूर्ण जगत् का नियमन करने वाली, पञ्चकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय क्रोश) के भीतर निवास करने वाली, पूच्छ ब्रह्मस्वरूपिणी ॥२॥ लाल रंग के वस्त्र को धारण करने वाली, कृपासागर स्वरूपिणी, अनेक प्रकार के अयुधों को धारण करने

चिंतयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः । धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥४॥ आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो । अहं पितामहः
साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥५॥ साध्याः सविश्वेमरुतो लोकपालाः सचारणाः । नागाः सिद्धा सगंधर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥६॥ एते चान्येऽथ
बहवो विश्वामित्रस्तथैव च । विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः ॥७॥ विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति । धर्म उवाच– मा
राजन्साहसं काषीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥८॥ तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः । इन्द्र उवाच– हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि
तेऽन्तिकम्॥९॥ त्वयाऽद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः । आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमान्वितः ॥१०॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः।
सूत उवाच– ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥११॥ इन्द्रः प्रामृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ । पुष्पवृष्टिश्च महती दुन्दुभिस्वन एव
च॥१२॥ समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः । सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः ॥१३॥ ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा।
सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्यांबरावृतः ॥१४॥ स्वस्थः संपूर्णहृदयो मुदा परमया वृतः । बभूव तत्क्षणादिंद्रो भूपं चैवमभाषत ॥१५॥ सभार्यस्त्वं

वाली, निरन्तर जगत् के पालन में तत्पर रहने वाली जगदम्बा का ध्यान करने लगे ॥३॥ जिस समय राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार से ध्यान कर रहे थे उसी समय
धर्म को प्रधान बनाकर उसे आगे करके इन्द्र के साथ देवता वहाँ शीघ्रता से आ गये ॥४॥ वहाँ आकर सभी **देवताओं ने कहा–** हे राजन् ! आप हमलोगों की
बात सुनें । ये साक्षात् ब्रह्माजी, ऐश्वर्य सम्पन्न साक्षात् भगवान धर्म ॥५॥ सभी साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, सभी लोकपाल, चारणों, नागों, सिद्धों, गन्धर्वों,
रुद्रों, दोनों अश्विनी कुमारों ॥६॥ ये सभी तथा अन्य देवता भी, साथ ही त्रैलोक्य के साथ मैत्री करने की इच्छा वाले महर्षि विश्वामित्र, सब के सब आये हुए
है ॥७॥ ये महर्षि विश्वामित्र आपका हर प्रकार से धर्म के माध्यम से कल्याण करना चाहते हैं । **धर्म ने कहा–** हे राजन् ! आप यह साहसिक कार्य न करें, मैं
धर्म हूँ और स्वयं आपके पास आया हूँ ॥८॥ मैं आपके तितिक्षा (सहिष्णुता) दम (इन्द्रियों को अपने वश में रखना) इत्यादि सद् गुणों से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ।
इन्द्र ने कहा– हे राजन् हरिश्चन्द्र ! मैं स्वयं इन्द्र हूँ और आपके पास आया हूँ ॥९॥ आप तथा आपकी पत्नी एवं पुत्रों ने सनातन लोकों को जीत लिया है।
अतएव हे राजन् ! आप अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ स्वर्गलोक चलें ॥१०॥ वह अन्य मनुष्यों को प्राप्त होना अत्यन्त कठिन स्वर्गलोक है । किन्तु आपने
अपने कर्मों के द्वारा उसे जीत लिया है । **सूतजी ने कहा–** उसके बाद चिता में पड़े हुए बालक के ऊपर इन्द्र ने आकाश से अमृत की वर्षा की । वह अमृत
की वर्षा अपमृत्यु को विनष्ट करने वाली थी । उसी समय देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की तथा देवताओं ने दुन्दुभि बजायी ॥११-१२॥ उसी
समय राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र उठकर खड़ा हो गया और राजा ने अपने पुत्र का आलिङ्गन किया । राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी के साथ दिव्य वस्त्र धारण
किए हुए थे और अपने ऐश्वर्य से सम्पन्न थे ॥१३-१४॥ उनका सम्पूर्ण हृदय स्वस्थ हो गया । वे परम प्रेम से युक्त हो गये । उसी समय इन्द्र ने राजा

सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम् । समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम् ॥१६॥ हरिश्चन्द्र उवाच– देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि । अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम् ॥१७॥ धर्म उवाच– तवैवं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया । आत्माश्वपचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्वणम् ॥१८॥ इन्द्र उवाच– प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि । तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥१९॥ हरिश्चन्द्र उवाच– देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे । मच्छोकमग्नमनसः कोसले नगरे नराः ॥२०॥ तिष्ठंति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम् । ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥२१॥ तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम् । भजंतं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात् कथं सुखम् ॥२२॥ तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज । यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यांति सुरेश्वर ॥२३॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वाऽपि तैःसह । इन्द्र उवाच– बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप ॥२४॥ कथं संघातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि । हरिश्चन्द्र उवाच– भुंक्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम् ॥२५॥ यजते च महायज्ञैः कर्म पूर्तं करोति च । तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥२६॥ उपदादान्न संत्यक्ष्ये तानहं

हरिश्चन्द्र से कहा– हे महाराज ! आप अपने किए हुए कर्मों के फलस्वरूप अपने पुत्र तथा पत्नी के साथ सर्वोत्तम सद्गति स्वरूप स्वर्गलोक में चलें ॥१५-१६॥ **हरिश्चन्द्र ने कहा**– देवराज इन्द्र ! चाण्डाल मेरा स्वामी है, उससे आज्ञा लिए बिना मैं स्वर्गलोक नहीं जा सकता हूँ ॥१७॥ हरिश्चन्द्र की बातें सुनकर **धर्म ने कहा**– हे राजन् ! आपको होने वाले क्लेश का विचार करके मैंने ही चाण्डाल का रूप धारण कर लिया, और यह कहकर धर्म ने राजा हरिश्चन्द्र को अपना वह घर दिखा दिया ॥१८॥ **इन्द्र ने कहा**– राजन् ! संसार के सभी मानव जिस स्वर्ग लोक को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पुण्यवान् पुरुष को प्राप्त होने वाले स्थान स्वर्गलोक में आप आरोहण करें ॥१९॥ **हरिश्चन्द्र ने कहा**– हे देवराज ! आपको नमस्कार है । अयोध्या के सभी लोग मेरे शोक में मग्न हैं ॥२०॥ उन सभी लोगों को त्यागकर मैं ऐसे ही स्वर्गलोक में कैसे चल सकता हूँ ?। अपने भक्तों को त्यागने का जो पाप होता है, उसके सदृश ब्रह्महत्या, सुरापान, गौ का वध तथा स्त्री का वध ये सभी पाप मिलकर नहीं होते हैं । अपनी सेवा करने वाले भक्तों का त्याग नहीं करना चाहिए । इन सबों का त्याग करने वाले को सुख नहीं मिल सकता है ॥२१-२२॥ अतएव उन अपने भक्तों के बिना मैं अकेले स्वर्गलोक नहीं जा सकता हूँ । हे देवराज! आप स्वर्गलोक जायँ । ये अयोध्या के लोग भी मेरे साथ स्वर्गलोक जाते हैं तो मैं भी उन लोगों के साथ स्वर्गलोक चलूँगा । यदि वे नरकलोक में जाते है तो मैं भी नरकलोक में चलूगाँ । **इन्द्र ने राजा हरिश्चन्द्र से कहा**– उन लोगों के अनेक प्रकार के पुण्य तथा पाप कर्म हैं॥२३-२४॥ अतएव आप उन सबों के लिए स्वर्गलोक की प्राप्ति को क्यों चाहते हैं ?। **हरिश्चन्द्र ने इन्द्र से कहा**– हे इन्द्र ! कोई भी राजा अपनी प्रजाओं के ही द्वारा राज्य का सुख प्राप्त करता है ॥२५॥ उन प्रजाओं की सहायता से ही यज्ञों तथा इष्टापूर्त कर्मों को भी करता है । मैंने भी अपनी प्रजाओं की ही सहायता

स्वर्गलिप्सया । तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥२७॥ दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः । बहुकालोपभोग्यं च फलं यन्मम कर्मगम् ॥२८॥ तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः । सूत उवाच– एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥२९॥ प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः । गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम् ॥३०॥ हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः । आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥३१॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु । हरिश्चंद्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः ॥३२॥ प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति। सूत उवाच– तदिंद्रस्य वचःश्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः ॥३३॥ ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै । कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः॥३४॥ विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः । तदा संभूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥३५॥ राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः । अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते ॥३६॥ तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनंद्य च । पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम् ॥३७॥ संप्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः । आसांचक्रे कामगमे छुद्रघंटाविराजिते ॥३८॥ ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमंत्रं तदा जगौ । दैत्याचार्यो महाभागः

से उन कर्मों को किया है ॥२६॥ अतएव स्वर्ग प्राप्ति के लोभ में पड़कर मैं समयानुसार भेंट प्रदान करने वाली अपनी प्रजाओं को नहीं छोड़ सकता हूँ। अतएव जो कुछ भी मेरे द्वारा किया गया दान इष्टापूर्त कर्म, जप ये सबके सब मेरे कर्म सामान्य हो जायँ । वे सबके सब फल मेरी उन प्रजाओं को भी मिलें । मेरे कर्मों के फलस्वरूप जिन फलों को मैं बहुत दिनों तक प्राप्त करने का अधिकारी बनूँ । वह चाहे एक दिन के लिए ही भोगना पड़े सबों को समान रूप से प्राप्त होए । **सूतजी ने कहा–** इन्द्र ने भी राजा हरिश्चन्द्र की बात सुनकर कहा-ऐसा ही होगा ॥२७-२९॥ प्रसन्न अन्तःकरण वाले धर्म तथा महर्षि विश्वामित्र चारों वर्णों के लोगों से भरी हुई अयोध्या नगरी में गये ॥३०॥ राजा हरिश्चन्द्र के सामने ही सभी लोगों से कहे- लोगों आप सब लोग परम दुर्लभ स्वर्गलोक चलें ॥३१॥ धर्म की कृपा से आप सबलोगों ने स्वर्गलोक को प्राप्त किया है । हरिश्चन्द्र ने भी अयोध्या नगर के सभी निवासियों से कहा **धर्म परायण राजा ने कहा–** आप सब लोग स्वर्ग लोक चलें । **सूतजी ने कहा–** इन्द्र की तथा राजा हरिश्चन्द्र की वाणी को सुनकर ॥३२-३३॥ जो लोग संसार से उदासीन हो गये थे वे लोग भी अपने पुत्रों को घर का भार सौंपकर स्वर्गारोहण किए ॥३४॥ सूर्य के समान देदीप्यमान शरीर वाले वे सभी लोग श्रेष्ठविमानों पर चढ़कर स्वर्गलोक चले गये ॥३५॥ राजा हरिश्चन्द्र भी अपने पुत्र रोहित को हृष्ट-पुष्ट लोगों से परिपूर्ण अयोध्या का राज्य सौंप दिए॥३६॥ उन्होंने अपने पुत्र रोहित और प्रजाओं का सम्मान करके उनका अभिनंदन किया । फिर पुण्य के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले निस्सीम यश को प्राप्त करके राजा हरिश्चन्द्र विमान पर बैठ गये । वह विमान उनकी इच्छा के अनुसार चलने वाला था । उसमें छोटी-छोटी घंटियाँ लगी थीं ॥३७-३८॥ उस समय

सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥३९॥ शुक्रउवाच– **अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् । यदागतो हरिश्चन्द्रो महेंद्रस्य सलोकताम्** ॥४०॥ सूत उवाच– **एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम् । यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम्** ॥४१॥ **स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात् । भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्** ॥४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्याः ॥२७॥

अष्टाविंशोध्यायः

जनमेजय उवाच– **विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम् । शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च ॥१॥ शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा । तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु ॥२॥ को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते॥३॥**

राजा हरिश्चन्द्र को देखकर सभी शास्त्रों के तत्वों को जानने वाले दैत्यों के आचार्य महाप्राण शुक्राचार्य इस श्लोक मन्त्र को कहे- **शुक्राचार्य ने कहा–** सहिष्णुता की महिमा धन्य है, तथा दान का फल सराहनीय है । उसीके फलस्वरूप राजा हरिश्चन्द्र इन्द्र लोक में पधारे ॥३९-४०॥ **सूतजी ने कहा–** राजन् जनमेजय! मैंने आपको महाराज हरिचन्द्र की सम्पूर्ण कथा सुनायी । यदि कोई दुःखी प्राणी इस कथा को सुनता है तो वह प्रतिदिन सुख प्राप्त करता है ॥४१॥ स्वर्ग चाहने वाले को स्वर्ग मिलता है और पुत्र चाहने वाले को पुत्र मिलता है । सुशीला पत्नी चाहने वाले को पत्नी की प्राप्ति होती है और राज्य चाहने वाले को राज्य की प्राप्ति होती है ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥

भगवती दुर्गा के शताक्षी तथा शाकम्भरी इत्यादि नामों के इतिहास का वर्णन

राजा जनमेजय ने कहा– भगवन् ! आपने भगवती शताक्षी के चरणों के भक्त तथा राजर्षि हरिश्चन्द्र के दिव्य आख्यान का वर्णन किया है ॥१॥ अब आप मुझे यह बतलायें कि कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बा शताक्षी कैसे बन गयीं । हे मुने ! उसका कारण मुझे बतलाकर आप मेरे जन्म को सफल बना दें ॥२॥ कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो देवी जगदम्बा के गुणों को सुनकर तृप्त हो जायेगा ? उसके श्रवण करने मात्र से पद-पद पर अश्वमेध

व्यास उवाच– **श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि शताक्षीसंभवं शुभम् । तवावाच्यं न मे किंचिद्देवीभक्तस्य विद्यते ॥४॥ दुर्गमाख्यो महादैत्यःपूर्वं परमदारुणः। हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः ॥५॥ देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि । नंक्ष्यंत्येव न संदेहो चकार परमं तपः । तेजसा तस्य लोकास्तु संतप्ताः ससुरासुराः ॥८॥ ततः प्रसन्नो भगवान्हंसारूढश्चतुर्मुखः । ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपङ्कजः ॥९॥ समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः । वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥१०॥ तवाद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः । श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणी व्युत्थितः स समाधितः । पूजयित्वा वरं वव्रे वेदान्देहि सुरेश्वर । त्रिषु लोकेषु ये मन्त्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि ॥१२॥ विद्यन्ते ते तु सान्निध्ये मम सन्तु महेश्वर । बलं च देहि येन स्यादेवानां च पराजयः ॥१३॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचो वदन् । जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः ॥१४॥ ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः । स्नानसंध्यानित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः ॥१५॥ विलुप्ता धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत् । किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम् ॥१६॥ वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम् । इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे ॥१७॥**

यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥३॥ **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! मैं आपको शताक्षी देवी की उत्पत्ति की कथा सुनाता हूँ उसे आप सुनें । तुम चूंकि देवी के भक्त हो इसलिए तुम्हारे लिए मुझको कुछ भी अवाच्य नहीं है ॥४॥ प्राचीन काल में अत्यन्त भयंकर दुर्ग नामक एक दैत्य हुआ । वह हिरण्याक्ष नामक राक्षस के वंश में उत्पन्न रुरु नामक दैत्य का पुत्र था तथा स्वभाव से वह महाखल था ॥५॥ उसने अपने मन में विचार किया कि देवताओं का बल वेद है। वेद के नष्ट हो जाने पर देवता भी नहीं रह सकते है । अतएव सबसे पहले वेदों को विनष्ट करना चाहिए । ऐसा करने से देवता स्वयं विनष्ट हो जायेंगें॥६॥ इस तरह से विचार करके वह दुर्गम तपस्या करने के लिए हिमालय नामक पर्वत पर चला गया । वह ब्रह्माजी का ध्यान करता था और वायु ही पीकर रहता था॥७॥ उसने एक हजार वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की ! उसकी तपस्याजन्य तेज के कारण सभी सुर तथा असुर सन्तप्त हो गये। उसके बाद प्रसन्न मन से हंस पर सवार होकर उसे वरदान देने के लिए ब्रह्माजी गये ॥८-९॥ उस समय दुर्गम समाधिस्थ था । उसकी आँखें बन्द थीं । ब्रह्माजी ने उसे स्पष्ट रूप से कहा– हे भद्र दुर्गम ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारे मन में जो अभिलाषा हो तुम उसका वरदान माँग लो ॥१०॥ तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर आज मैं तुम्हें वरदान देने के लिए आया हूँ । ब्रह्माजी के मुख की वाणी सुनकर दुर्गम समाधि से जग गया ॥११॥ **उसने कहा**– हे ब्रह्माजी! आप मुझे वेदों को दे दीजिये । हे महेश्वर ! भूलोक में तथा देवताओं के पास जो मन्त्र हैं, वे सबके सब मेरे ही पास रहें । मुझे आप इतना बल प्रदान कर दें कि उससे देवता भी परास्त हो जायँ ॥१३॥ दुर्गम की वाणी को सुनकर **ब्रह्माजी ने कहा**– ऐसा ही होगा । इस तरह से उसे वरदान प्रदान करके चारों वेदों के स्वामी ब्रह्माजी अपने सत्यलोक में चले गये ॥१४॥ उसी समय से ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदों को भूल गये । स्नान, संध्या, नित्यहोम, सिद्धि, यज्ञ तथा जप आदि सबों का लोप हो गया और पृथिवी पर महान हाहाकार मच गया । सभी ब्राह्मण आपस में यह बातें करने लगे कि हमलोगों को यह क्या हो गया है ?॥१५-१६॥

**निर्जराःसजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः । रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम् ॥१८॥ अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च । पलायनं तदा
कृत्वा निर्गता निर्जराःक्वचित् ॥१९॥ निलयं गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च । संस्थिताःपरमां शक्तिं ध्यायंस्ते परांबिकाम् ॥२०॥ अग्नौ
होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप । वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम् ॥२१॥ कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः । अनावृष्टिरियं
राजन्नभूच्च शतवार्षिकी ॥२२॥ मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमहिष्यादयस्तथा । गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः ॥२३॥ अनर्थे त्वेवमुद्भूते
ब्राह्मणाःशांतचेतसः । गत्वा हिमवतः पार्श्वे रिराधयिषवः शिवाम् ॥२४॥ समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम् । निराहारास्तदासक्तास्तामेव
शरणं ययुः ॥२५॥ दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि । सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवांबिके ॥२६॥ कोपं संहर देवेशि सर्वांतर्यामिरूपिणि।
त्वया यथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः ॥२७॥ नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्यसि पुनः पुनः । यथेच्छसि तथा कर्तुं समर्थाऽसि
महेश्वरि॥२८॥ समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात् । जीवनेन विनाऽस्माकं कथं स्यात्स्थितिरंबिके ॥२९॥ प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके।**

वेद के अभाव में हमलोग कुछ कर ही क्या सकते हैं ? इस प्रकार से भूलोक में जब महान् अनर्थ हो गया ॥१७॥ उस समय हविर्भाग के नहीं मिलने
के कारण कभी बूढे नहीं होने वाले देवगण जराग्रस्त हो गये । उसी समय दुर्गम नामक उस दैत्य ने जाकर अमरावती नाम की नगरी को घेर लिया ॥१८॥
देवतागण वज्र के समान शरीर वाले उस असुर के साथ युद्ध करने में असमर्थ थे और वे सभी देवता उस अमरावती नामक नगरी से भगकर जहाँ-तहाँ
जाकर छिप गये ॥१९॥ वे पर्वत की कन्दराओं में तथा सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में जाकर रहने लगे ॥२०॥ हे राजन् ! अग्नि में होम नहीं होने के
कारण अब पृथिवी पर वर्षा भी नहीं हो रही थी । वृष्टि के अभाव में सारी पृथिवी शुष्क हो गयी ॥२१॥ कुएँ, बावलियाँ, सरोवर, नदियाँ ये सबके सब
जलाशय सूख गये । इस तरह यह सौ वर्ष की अनावृष्टि हो गयी ॥२२॥ उस समय बहुत अधिक प्रजायें तथा गौ, भैंस इत्यादि मर गये । मनुष्यों के घर
में केवल शव ही पड़े हुए थे ॥२३॥ इस तरह के अनर्थ हो जाने पर शान्त चित्त वाले ब्राह्मण कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बा की अराधाना करने के
लिए हिमालय के पास चले गये ॥२४॥ और समाधि, ध्यान तथा पूजा के द्वारा देवी की प्रतिदिन निराहार रहकर तथा उनकी अराधना में ही मन लगाकर
उनकी शरण में चले गये ॥२५॥ उनकी स्तुति करते हुए कहने लगे– हे महेशानि ! आप इन अज्ञानी जीवों पर कृपा करें । हे मातः ! हम हर प्रकार
से अपराधी हैं, फिर भी आपका हमलोगों पर कृपा नहीं करना शोभा नहीं देता है ॥२६॥ हे सबों के अन्तर्यामि स्वरूपिणि देवि ! आप अपना क्रोध रोकें। आप
जैसी प्रेरणा देती है, संसारी जीव वैसा ही करता है ॥२७॥ आपको छोड़कर हमलोगों की रक्षा करने वाला कोई नहीं है, आप बार-बार क्या देख रही हैं ?।
हे महेश्वरि ! आप जैसा चाहेंगी वैसा करने में समर्थ हैं ॥२८॥ हे महेश्वरि ! इस उत्पन्न हुए घोर संकट से हमलोगों रक्षा करें । हे अम्बिके ! जब हमारा

अनन्तकोटिब्रह्मांडनायिके ते नमो नमः ।।३०।। नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमौ नमः । नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्वर्यै नमो नमः ।।३१ ।। नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः । तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः ।।३२।। इति संप्रार्थिता देवीभुवनेशी महेश्वरी । अनंताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती ।।३३।। नीलांजनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम् । सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनम् ।।३४।। बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान्। शाकादीन्फलसंयुक्ताननन्तरससंयुतान् ।।३५।। क्षुत्तृड्जरापहान्हस्तैर्बिभ्रतीच महाधनुः । सर्वसौंदर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम् ।।३६।। कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम् । दर्शयित्वा जगद्धात्री साऽनंतनयनोद्भवा ।।३७।। मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः । नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः।।३८।। दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती । तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि ।।३९।। नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैःसमभवन्नृप । निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः ।।४०।। मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः । नमोवेदांतवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि ।।४१।। स्वमायया

जीवन ही नहीं रहेगा तो हमारी स्थिति कैसे रह सकती है ?।।२९।। हे महेशानि ? हे जगदम्बे ! आप प्रसन्न हो जाइये । हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की स्वामिनि ! आपको बार-बार नमस्कार है ।।३०।। आप कूटस्थ स्वरूग्णिी तथा चित्स्वरूपिणी हैं । आपको बार-बार नमस्कार है वेदान्तवेद्य तथा भुवनेश्वरी आप ही है । आपको बारम्बार नमस्कार है ।।३१।। सारे वेद 'नेति-नेति' इस वाक्य के द्वारा जिसका प्रतिपादन करते हैं, वह उन सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूपिणी देवी के हम हर प्रकार से शरणागत हैं ।।३२।। इस तरह से अच्छी तरह से प्रार्थना किए जाने पर महेश्वरी तथा भुवनेश्वरी देवी ने अपना अनन्त नेत्रों से युक्त रूप दिखाया ।।३३।। उनका रूप काले आँजन के समान काला था । आँखें नील कमल के समान थीं । उनके स्तन कठोर, तथा समान रूप से उन्नत थे । विशाल वक्षःस्थल था । वे अपने हाथों में धनुष तथा बाणसमूह, कमलपुष्प, पल्लव, तथा मूल धारण किए हुई थीं । वे शाक भूख, प्यास तथा बूढ़ापे को विनष्ट कर देने वाले थे । उनका वह रूप समस्त सौन्दर्यों के साथ स्वरूप तथा लावण्य से सुशोभित था ।।३४-३६।। करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान तथा करुणरस के सागर के समान अपने रूप को दिखाकर जगन्माता दुर्गा ने अपने अनन्त नेत्रों से संसार में जल की हजारों धाराएँ बहा दी। उनके नेत्रों से उत्पन्न होने वाली यह वृष्टि नव रात्रियों तक होती रही ।।३७-३८।। सभी जीवों को दुःखी देखकर अपने नेत्रों से आँसू बहाती हुई जगदम्बा ने सम्पूर्ण संसार को तथा औषधियों को तृप्त कर दिया ।।३९।। हे राजन् ! उस जल से नदियाँ और नद प्रवाहित होने लगे । जो देवता छिप करके अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे वे कन्दराओं से बाहर निकल आये ।।४०।। सभी देवताओं और ब्राह्मणों ने एक साथ मिलकर देवी की स्तुति की । उन लोगों ने स्तुति करते हुए कहा— हे वेदान्तवेद्य ! हे ब्रह्मस्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है ।।४१।। अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण जगत को बनाने वाली आपको बार-बार नमस्कार

सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः । भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि ॥४२॥ नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमो नमः । अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं
लोचनानां सहस्रकम् ॥४३॥ त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव । क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चास्ति नः ॥४४॥ कृपां कुरु
महेशानि वेदानप्याहरांबिके । व्यास उवाच– इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान् ॥४५॥ स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा।
नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च ॥४६॥ काम्यानंतरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ । शाकंभरीति नामापि तद्दिनात्समभून्नृप ॥४७॥ ततः
कोलाहले जाते दूतवाक्येन बोधितः । ससैन्यःसायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ ॥४८॥ सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुंचंस्त्वरान्वितः । रुरोध
देवसैन्यं तद्यद्देव्यग्रे स्थितं पुरा ॥४९॥ तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः । ततः किलकिलाशब्दः समभूद्देवमंडले ॥५०॥ त्राहि त्राहीति
वाक्यानि प्रोचुः सर्वे द्विजामराः । ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा ॥५१॥ चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद्बहिःस्थिता । ततः समभवद्युद्धं
देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥५२॥ शरवर्षसमाच्छन्नं सूर्यमंडलमद्भुतम् । परस्परशरोद्धर्षसमुद्भताग्निसुप्रभम् ॥५३॥ कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम्।

है । हे देवि ! आप अपने भक्तों के लिए कल्पद्रुम के समान हैं तथा अपने भक्तों के कार्यों को करने के लिए आप देह धारण करती हैं ॥४२॥ हे सदा तृप्त रहने वाली, अनुपमेय देवि ! हे भुवनेश्वरि ! आपको नमस्कार है । देवि आपने चूकि हमलोगों की शान्ति के लिए हजारों नेत्रों को धारण किया है, अतएव आपका नाम शताक्षी हो जाय । हे मातः ! हमलोग भूख से पीड़ित हैं । अतएव हमलोगों में स्तुति करने की शक्ति नहीं है ॥४३-४४॥ हे महेशानि! आप कृपा करके वेदों को लाइये । **व्यासजी ने कहा**– उन देवताओं तथा ब्राह्मणों की वाणी सुनकर जगदम्बा ने अपने हाथ में विद्यमान स्वादिष्ट मूलों, फलों तथा शाकों को उन्हें खाने के लिए दिया । अनेक प्रकार के अन्नों तथा पशुओं के भोजन को नवीनतया उत्पन्न करके दिया, अतएव उसी दिन से उनका नाम शाकम्भरी हो गया ॥४५-४७॥ उसके पश्चात् जब चारो ओर देवी के विषय में कोलाहल मच गया । दूतों के द्वारा देवी के विषय में समाचार पाकर दुर्गम दिव्य आयुध धारण करके युद्ध करने के लिये देवी के सन्निकट में आ गया ॥४८॥ उसके पास एक हजार अक्षौहिणी सेना थी। वह शीघ्रता पूर्वक बाणों का प्रहार कर रहा था । उसने देवी के सामने विद्यमान देवताओं की सेना को रोक दिया ॥४९॥ उसने उसी तरह से ब्राह्मणों को भी हर प्रकार से रोक दिया । उस समय देवताओं के समूह में कोलाहल मच गया ॥५०॥ सभी देवता त्राहि-त्राहि की गुहार लगाने लगे । उस समय देवी ने देवताओं के चारों ओर एक तेजोमय चक्र लगा दिया । और वे स्वयं उस चक्र के बाहर रहीं । उस समय देवी तथा दैत्य दुर्गम दोनों में भयंकर युद्ध हुआ ॥५१-५२॥ बाणों की वृष्टि से सूर्यमण्डल ढँक गया है । जब दोनों तरफ के बाण टकराते थे तो उनसे अग्नि के चिन्गारियाँ निकलती थीं । धनुष की प्रत्यंचा से निकलने वाली टंकार की ध्वनि से सारी दिशाएँ बधिर सी हो गयीं । कुछ भी दूसरी ध्वनि नहीं सुनायी पड़ती थीं । उसके बाद देवी

ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीब्रशक्तय: ॥५४॥ कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा । बगला चैव मातंगी तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥५५॥ कामाक्षी तुलजा देवी जंभिनी मोहिनी तथा । छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका ॥५६॥ द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुःषष्टिमिताः पराः । असंख्यातास्ततो देव्यःसमुद्भूतास्तु सायुधाः ॥५७॥ मृदंगशंखवीणादिनादितं संगरस्थलम् । शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते ॥५८॥ अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः । शक्तिभिःसह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः ॥५९॥ महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी । अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः ॥६०॥ तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे । रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगंधानुलेपनः । ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः ॥६३॥ प्रहरद्वयपर्यंतं हृदयत्रासकारकम् । ततः पंचदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह ॥६४॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम् । द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥६५॥ पंचभिर्हृदयं तस्य विव्याधजगदंबिका । ततो वमन्स रुधिरं ममार पुर ईशितुः ॥६६॥ तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह । हते तस्मिन्महावीर्ये शांतमासीज्जगत्त्रयम् ॥६७॥ ततो ब्रह्मादयःसर्वे तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् । पुरस्कृत्य हरीशानौ

के शरीर से तीव्र शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ । उनके नाम हैं १.कालिका, २. तारिणी, ३. बाला, ४. त्रिपुराभैरवी, ५. रमा, ६. बगला, ७. मातङ्गी, ८. त्रिपुरसुन्दरी, ९. कामाक्षी, १०. तुलजादेवी, ११. जंभिनी, १२. मोहिनी, १३. छिन्नमस्ता, १४. गुह्यकाली और १५. दशसाहस्रबाहुका ॥५३-५६॥ इसके अतिरिक्त बत्तीस दूसरी शक्तियाँ एवं चौसठ दूसरे प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न हुईं । उसके बाद असंख्य देवियाँ अपना आयुध धारण किए हुए प्रकट हुईं ॥५७॥ उन शक्तियों के द्वारा दैत्यों के सौ अक्षौहिणी सेना का नाश कर दिए जाने पर, मृदंग शंख तथा वीणा के नाद से वह युद्ध स्थल ध्वनित हो गया ॥५८॥ इसके बाद सेनापति दुर्गम सम्पूर्ण सेना के आगे रहकर शक्तियों के साथ घोर युद्ध करने लगा ॥५९॥ वहाँ इतना घोर युद्ध हुआ कि खून की नदी बह चली और दश दिन में शत्रु की सेना की सारी अक्षौहिणियाँ विनष्ट हो गयीं ॥६०॥ उसके बाद युद्ध का अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन आ गया । उस दिन दुर्गम नामक दैत्य ने बहुत बड़ा उत्सव मनाया वह लाल माला और वस्त्र धारण किए हुए था और उसके शरीर में लाल चन्दन लेपा गया था । वह अपने वेग के द्वारा सभी शक्तियों को जीत कर ॥६१-६२॥ महादेवी के रथ के सामने अपना रथ लाकर खड़ा कर दिया। उसके बाद देवी तथा उस दैत्य दोनों में भयंकर युद्ध हुआ ॥६३॥ दोपहर तक हृदय में भय उत्पन्न कर देने वाला वह युद्ध चलता रहा । उसके पश्चात् देवी ने एक ही साथ पन्द्रह बाणों को चलाया। उनमें से चार बाणों के द्वारा उसके रथ के बाहनों को, एक बाण से सारथि को, दो बाणों से उसके दोनों नेत्रों को दो बाणों से उसकी दोनों भुजाओं को एक बाण से उसके ध्वज को तथा पाँच बाणों से उस दैत्य के हृदय को देवी ने छेद दिया । उसके बाद दैत्य खून का वमन करता हुआ मर कर पृथिवी पर देवी के सामने ही गिर पड़ा ॥६४-६६॥ उसके शरीर से उसका तेज निकलकर देवी के शरीर में प्रवेश कर गया । उस महापराक्रमी दैत्य के मर जाने

भक्त्या गद्गदया गिरा ॥६८॥ देवा ऊचुः– जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि । नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते शतलोचने ॥६९॥ सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि । नमो माहेश्वरि शिवे पंचकोशांतरस्थिते ॥७०॥ चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायंति मुनीश्वराः । प्रणवार्थस्वरूपां तां भजामो भुवनेश्वरीम् ॥७१॥ अनन्तकोटिब्रह्मांडजननीं दिव्यविग्रहाम् । ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्वभावैर्नतावयम् ॥७२॥ कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनंसकलेश्वरः। सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना ॥७३॥ व्यास उवाच– इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः । पूजिता विविधैर्द्रव्यैः संतुष्टाऽभूच्च तत्क्षणे ॥७४॥ प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ । ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी ॥७५॥ ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः । यया विनाऽनर्थ एव जातो दृष्टोऽधुनैव हि ॥७६॥ पूज्याऽहं सर्वदा सेव्या युष्माभिःसर्वदैव हि । नातः परतरं किंचित्कल्याणायोपदिश्यते॥७७॥ पठनीयं ममैतद्धि महात्म्यं सर्वदोत्तमम् । तेन तुष्टा भविष्यामि हरिष्यामि तथाऽऽपदः ॥७८॥ दुर्गमासुरहंत्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः । गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ ॥७९॥ किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः । संसेव्याऽहं सदा देवाः सर्वैरपि सुरासुरैः ॥८०॥ व्यास

पर सम्पूर्ण त्रैलोक्य में शन्ति फैल गयी ॥६७॥ उसके बाद ब्रह्मा आदि देवताओं ने जगदम्बिका की स्तुति भगवान् श्रीहरि तथा शंकरजी को आगे करके गद्गद वाणी से की ॥६८॥ **देवताओं ने कहा–** हे शाकम्भरि ! हे शिवे ! आपको नमस्कार है ॥६९॥ हे देवि ! सारी उपनिषदें आपका ही प्रतिपादन करती हैं। हे दुर्गमासुर का नाश कग्ने वाली देवि ! हे महेश्वरी ! हे शिवे ! हे पञ्चकोश के भीतर विराजमान रहने वाली जगदम्बे ! आपको नमस्कार है ॥७०॥ बड़े-बडे मुनिजन अपने निर्विकल्पक अन्तःकरण के द्वारा जिस देवी का ध्यान करते हैं, उन प्रणव के अर्थस्वरूपा भुवनेश्वरी की हम सेवा करते हैं ॥७१॥ अनन्त कोटि बह्माण्डों को उत्पन्न करने वाली, दिव्य विग्रह स्वरूपिणी तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि की जननी के समक्ष हम संपूर्ण भाव से नतमस्तक हैं।॥७२॥ दयालु, तथा परमेशानी शताक्षी माता को छोड़कर कौन ऐसा सम्पूर्ण जगत् का स्वामी होगा गौ पामर तथा अज्ञानी जीवों को देखकर प्यार से द्रवित होकर रो देगा ॥७३॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि श्रेष्ठ देवताओं के द्वारा, अनेक प्रकार के द्रव्यों द्वारा पूजित होकर देवी उसी क्षण सन्तुष्ट हो गयीं ॥७४॥ उसके बाद प्रसन्न होकर देवी ने वेदों को लाकर प्रदान किया । खासकर ब्राह्मणों को विशेष रूप से पिकवयनी **देवी ने कहा–** ये श्रुतियाँ हमारा सर्वोत्कृष्ट शरीर हैं । अतएव इन वेदों की रक्षा विशेष रूप से करनी चाहिए । इस वेद रूपी मेरे शरीर के अभाव में भूलोक में अनर्थ हो गया । इस बात को आप लोगों ने देखा है ॥७५-७६॥ मैं पूज्या हूँ अतएव आपलोगों को हमारे वेद रूपी शरीर की सदा रक्षा करनी चाहिए। इस वेद रूपी कल्याण के साधन को छोड़कर इसके अतिरिक्त कोई भी इतना उपकारक साधन नहीं है ॥७७॥ मेरे इस सर्वोत्तम माहात्म्य को सर्वदा पढ़ते रहना चाहिए । इसका पाठ करते रहने से सन्तुष्ट होकर मैं आपलोगों की सारी विपतियों को दूर करती रहूँगी ॥७८॥ दुर्गमासुर का वध करने के कारण जो मेरा

उवाच– **इत्युक्त्वांन्तर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम् । संतोषं जनयंत्येवं सच्चिदानंदरूपिणी ॥८१॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत् । गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम् ॥८२॥ य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तितत्परः । सर्वान्कामान्वाप्नोति देवीलोके महीयते ॥८३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कंधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम् । सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत् ॥१॥ पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे । राजन्सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः ॥२॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यशसंभवम् ॥३॥ एते**

दुर्गा नाम है उसको जो जपता है, अथवा मेरे शताक्षी नाम को जो जपता है वह माया को पार करके मुक्त हो जाता है ॥७९॥ इस विषय में बहुत अधिक कहने से कौन सा लाभ है ? मैं इसका तात्त्विक सार बतलाती हूँ । हे देवताओं असुरों तथा सुरों ! दोनों के द्वारा मैं सेवनीय हूँ ॥८०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर देवी देवताओं को देखते-ही-देखते वहाँ से अन्तर्धान हो गयीं । सच्चिदानंद स्वरूपिणी देवी इस प्रकार से अपने भक्तो के हृदय में संतोष उत्पन्न करती हैं ॥८१॥ राजन् ! मैंने देवी के सम्पूर्ण रहस्यों को सुना दिया । यह सबों का कल्याण करने वाला रहस्य है । इसकी रक्षा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए ॥८२॥ जो व्यक्ति इस अध्याय को भक्तिपूर्वक सुनता है, वह इस लोक में अपने सभी अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करके शरीर त्याग के पश्चात् देवी के लोक में जाता है ॥८३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२८॥

भगवती का तिरोहित होकर पुनःप्रकट हो जाना

व्यासजी ने कहा– इस तरह से मैंने सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं के कुछ चरितों का वर्णन किया अब इससे अधिक राजाओं के चरित का वर्णन करना व्यर्थ है ॥१॥ उन राजाओं ने पराशक्ति की ही कृपा से महत्त्व को प्राप्त किया है राजन् ! आप इस बात को निश्चित समझें कि पराशक्ति की ही कृपा से कोई भी महत्त्व को प्राप्त करता है । संसार में जितने भी ऐश्वर्य सम्पन्न जीव हैं अथवा श्रीसम्पन्न हैं उन सबों को तुम पराशक्ति के अंश से उत्पन्न

चान्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः । संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप ॥४॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्या भुवनेश्वरी । पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः ॥५॥ आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप । पराशक्तिपदांभोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः ॥६॥ पंचब्रह्मासनारूढा नास्त्यन्या काऽपि देवता । तत एव महादेव्या पंचब्रह्मासनं कृतम् ॥७॥ पंचभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यति । यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी॥८॥ तामविज्ञाय राजेंद्र नैव मुक्तो भवेन्नरः । यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥९॥ तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यांतो भविष्यति । अतएव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः ॥१०॥ ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे ॥११॥ लज्जया वा भयेनापि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया । सर्वसंगं परित्यज्य मनो हृदि निरुध्य च ॥१२॥ तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिंडिमः । येन केन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि ॥१३॥ कीर्तयेत्सततं देवीं स वै मुच्येत बंधनात् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन्महेश्वरीम् ॥१४॥ विराड्रूपां सूत्ररूपां तथांतर्यामिरूपिणीम् । सोपानक्रमतः पूर्वं ततःशुद्धे तु चेतसि ॥१५॥ सच्चिदानन्दलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम् । आराधय परां शक्तिं

समझो ॥३॥ ये सभी राजा जिनका वर्णन मैं कर चुका हूँ तथा इनके अतिरिक्त जो राजा हुए वे सबके सब पराशक्ति के उपासक थे और संसार रूपी वृक्ष के मूल को काटने के लिए कुठार के सदृश थे । अतएव हर प्रकार के प्रयास को करके भुवनेश्वरी की सेवा करनी चाहिए । जिस तरह से धान चाहने वाला व्यक्ति पुआल को त्याग देता है, उसी तरह अन्य सभी वस्तुओं को त्याग देना चाहिए ॥५॥ हे राजन् ! पराशक्ति के चरणकमल रूपी रत्न को मैंने वेद रूपी क्षीरसागर का मन्थन करके प्राप्त किया है, और उसके चलते मेरा जीवन सफल हो गया है ॥६॥ महादेवी को छोड़कर कोई भी देवता पंचब्रह्मासन पर बैठने के लिए उद्यत नहीं हुआ तो इस पञ्चब्रह्मासन पर महादेवी आसीन हुईं ॥७॥ एक बार ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा ईश्वर ये चारो देवता खम्भे के तरह खड़े हुए । उन पर सदाशिव का छत लगा था ! इसी को पञ्चब्रह्मासन कहते हैं । जो इन पाँचों से श्रेष्ठ तत्त्व है, उसी को वेदों में अव्यक्तशब्द से कहा गया है। सारा संसार जिसमें ओत-प्रोत है, उसे ही श्रीभुवनेश्वरी कहते हैं ॥८॥ हे राजेन्द्र ! उन श्रीभुवनेश्वरी तत्त्व को जाने बिना कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है। यदि कोई मनुष्य सम्पूर्ण आकाश को चमड़े के समान समेट ले तो हो सकता है कि वह श्री भुवनेश्वरी तत्त्व को जाने विना भी मुक्त हो जाय । इसीलिए श्वेताश्वतर शाखा का अध्ययन करने वाले वैदिकों ने कहा है कि उनलोगों ने ध्यान तथा योग का अनुसरण करके अपने ही गुणों से छिपी हुई देवी की शक्ति का साक्षात्कार किया ॥९-११॥ अतएव जन्म की सफलता के लिए हर प्रकार से प्रयास करना चाहिए । प्रेमपूर्ण होकर संसार की सभी वस्तुओं के प्रति होने वाली आसक्ति का परित्याग करके तथा मन को अपने हृदय में निरोध करके ॥१२॥ भगवती में निष्ठित तथा भगवती की भक्ति में लीन हो जाना चाहिए यह वेदान्त वाक्यों का डिण्डिम घोष है । जिस किसी भी बहाने से सोते, बैठते तथा चलते हुए भी ॥१३॥ जो व्यक्ति सदा देवी का कीर्तन

प्रपंचोल्लासवर्जिताम् ॥१६॥ तस्यां चित्तलयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम् । राजन्राज्ञां पराशक्तिभक्तानां चरितं मया ॥१७॥ धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम् । पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्गतिप्रदम् ॥१८॥ कथितं पुण्यदं पश्चात् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि । जनमेजय उवाच– **गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं परांबया ॥१९॥ हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च । तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम् ॥२०॥ क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरिति स्मृतम् । मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः ॥२१॥ असंभाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महामुने । छिंधि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्परः ॥२२॥** व्यास उवाच– **श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । देवीभक्तस्य ते किंचिदवाच्यं न हि विद्यते॥२३॥ देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्पराम्बिका । तदाप्रभृति ते देवाःसृष्टिकार्याणि चक्रिरे ॥२४॥ कस्मिंश्चित्समये राजन्दैत्या हालाहलाभिधाः। महापराक्रमा जाता स्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात् ॥२५॥ ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम् । रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथावैकुण्ठमेव च ॥२६॥ कामारिः**

करता रहता है वह निश्चित रूप से संसार के बंधन से मुक्त हो जाता है । अतएव हे राजन् ! आप समस्त प्रयत्नों के द्वारा महेश्वरी की सेवा करें ॥१४॥ हे राजन् ! विराट् स्वरूपिणी, सूत्रस्वरूपिणी, तथा अन्तर्यामिस्वरूपिणी, पहले इसी सोपान क्रम से देवी की अराधना करके अन्त में अपने शुद्ध अन्तःकरण में सच्चिदानन्द स्वरूपिणी, लक्ष्यार्थ स्वरूपिणी पराशक्ति देवी की तुम आराधना करो । वही परंब्रह्म स्वरूपिणी हैं । वे सम्पूर्ण प्रपञ्चों से रहित हैं ॥१५-१६॥ उस परादेवी में ही चित्त का लय हो जाना उस देवी की अराधना बतलायी गयी है । हे राजन् ! मैंने पराशक्ति के भक्त, सोम तथा सूर्यवंश में उत्पन्न होने वाले, मनस्वी राजाओं का पवित्र, यश प्रदान करने वाला, धार्मिकबुद्धि उत्पन्न करने वाला तथा सद्गति प्रदान करने वाला चरित्र आपको सुनाया ॥१७-१८॥ उस पुण्यप्रद चरित्र को सुनने के पश्चात् अब तुम क्या सुनना चाहते हो । **राजा जनमेजय ने कहा–** इसबात की चर्चा पहले आ चुकी है कि परम्बा ने शंकरजी के लिए गौरी को, भगवान् विष्णु के लिए लक्ष्मीजी को तथा ब्रह्माजी के लिए सरस्वती को शक्ति के रूप में प्रदान किया, किन्तु यह भी कहा गया है कि गौरी हिमालय की तथा दक्ष की पुत्री थीं ॥२०॥ इसी तरह से लक्ष्मीजी के विषय में कहा गया है कि वे क्षीरसागर की पुत्री थीं। अब प्रश्न है कि यदि ये दोनों देवियाँ (गौरी तथा लक्ष्मी) जब मूलतः देवी से उद्भूत हैं तो फिर ये पर्वत और समुद्र की पुत्री कैसे हो सकती हैं ?॥२१॥ ये बातें असंभव सी प्रतीत होती हैं । अतएव इसके विषय में मुझे संदेह है । हे महामुने ! आप अपने ज्ञान रूपी तलवार से मेरे संशय को काट डालें॥२२॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आप सुनें मैं आपको अत्यन्त अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ । आप चूंकि देवी के भक्त हैं, अतएव आपके लिए कुछ भी अवाच्य नहीं है। जब पराशक्ति अम्बिका ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर इन तीनों देवताओं को तीनों देवियों को प्रदान किया उस समय से ये तीनों देवता सृष्टि के कार्य को करने लगे ॥२४॥ हे राजन् ! एक बार महापराक्रमी हालाहल नामक दैत्यों ने त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त कर लिया ॥२५॥ ब्रह्माजी के वरदान से दृप्त

कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः । षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम् ॥२७॥ हाहाकारो महानासीद्देवदानवसेनयोः । महताऽथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः ॥२८॥ स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः । स्वशक्त्योर्निकटे राजन्यद्वशादेव ते हताः ॥२९॥ अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा छलहास्यं च चक्रतुः । महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ ॥३०॥ देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया । दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम् ॥३१॥ ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः । अंतर्हिते चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत् ॥३२॥ निस्तेजस्कौ च निःशक्तौ विक्षिप्तौ च विचेतनौ । अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौहरिहरौ तदा ॥३३॥ ब्रह्मा चिन्तातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम् । प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू॥३४॥ अकाण्डे किं निमित्तेन संकटं समुपस्थितम् । प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः ॥३५॥ निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया। इति चिंतातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः ॥३६॥ पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह । जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम ॥३७॥

होकर उन सबों ने रजताचल तथा वैकुण्ठ को चारो ओर से घेर लिया ॥२६॥ उस समय भगवान् शंकर तथा भगवान् विष्णु दोनों युद्ध करने लगे और वह अत्यन्त भयंकर युद्ध साठ हजार वर्षों तक चलता रहा ॥२७॥ दैत्यों तथा देवताओं की सेना में हाहाकार मचा था । भगवान् शंकर तथा भगवान् विष्णु दोनों देवता बहुत बड़ा प्रयास करके दैत्यों को मार पाये ॥२८॥ इसके बाद जब वे देवता अपने-अपने स्थान पर गये तो उनको दैत्यों का वध करने का अभिमान हो गया । यद्यपि वे पराम्बा की कृपा से ही उन दैत्यों का वध कर पाये थे; किन्तु उनको अपनी शक्ति का अभिमान हो गया ॥२९॥ उन दोनों देवों के अभिमान को जानकर महागौरी तथा महालक्ष्मी ये दोनो देवियों ने जब उन दोनों देवों के अभिमान को देखा तो वे उनके साथ छल पूर्वक हास्य करने लगीं ॥३०॥ उन देवियों के द्वारा किये गये उपहास को देखकर ये दोनों देव आदिमाया भगवती के द्वारा मोहित हो गये और उन देवों ने उन देवियों का अपमान पूर्वक उत्तर दिया ॥३१॥ उन देवों के द्वारा दिये गये अपमान पूर्वक उत्तर को सुनकर ये दोनों देवियाँ (महागौरी और महालक्ष्मी) उन देवताओं का परित्याग कर दीं और वे अन्तर्धान हो गयीं । उन देवियों के अन्तर्धान होते ही हाहाकार मच गया ॥३२॥ उन दोनों शक्तियों का अपमान करने के कारण वे दोनों देव (भगवान विष्णु तथा भगवान शङ्कर) निस्तेज और शक्तिहीन हो गये । वे दोनों देव विक्षिप्त से हो गये ॥३३॥ भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु की इस स्थिति को देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त चिन्तित होकर सोचने लग गये कि यह विपत्ति कैसे आ गयी । ये तो दोनों प्रधान देवता हैं । ये कार्य करने में असमर्थ कैसे हो गये ?॥३४॥ विना अवसर के ही यह संकट कैसे उपस्थित हो गया । यह जगत् तो निरपराध है । इसका प्रलय होने वाला है क्या ?॥३५॥ जब इस प्रकार की विपत्ति का कोई कारण ही नहीं दिखायी देता है तो फिर इसका प्रतिकार कैसे किया जा सकता है ?। इस तरह से चिन्ता से व्याकुल होकर ब्रह्माजी ध्यान करते हुए समाधिस्थ हो गये ॥३६॥ उन्होंने ध्यान करके जान लिया कि पराशक्ति के प्रकोप के कारण यह

ततस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाकरोत्तदा । स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः ॥३८॥ ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ । आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः ॥३९॥ उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः । कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः ॥४०॥ पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम् । शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः ॥४१॥ तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं संतोषयंत्वथ । अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः ॥४२॥ यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि । यथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः ॥४३॥ कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम् । पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत् ॥४४॥ व्यास उवाच– **पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे वनांतरे। रिराधयिषवःसर्वे दक्षाद्या विमलांतराः ॥४५॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

परिस्थिति आयी है । हे राजन् ! इस बात को जानकर ब्रह्माजी सावधान हो गये ॥३७॥ उसके बाद उन दोनों देवताओं का जो कार्य था, उसको स्वयं बह्माजी करने लगे । वे अपनी शक्ति के प्रभाव से उस कार्य को कुछ समय तक किए ॥३८॥ उसके पश्चात् उन दोनों देवों का कल्याण करने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्रों मनुओं आदि तथा सनकादि ऋषियों आदि को बुलाया ॥३९॥ वे सब आकर ब्रह्माजी को प्रणाम किये । उसके बाद ब्रह्माजी ने उन समस्त ऋषियों तथा मनुओं से कहा कि इस समय मैं अत्यन्त कार्य व्यस्त हूँ । तपस्या नहीं कर सकता हूँ ॥४०॥ इस समय संसार का सारा भार मेरे ऊपर आ गया है । पराशक्ति के प्रकोप के कारण शिव तथा विष्णु दोनों विक्षिप्त हो गये हैं ॥४१॥ अतएव आप सब तपस्या करके पराशक्ति को प्रसन्न करें । आप सब अत्यन्त भक्तिपूर्वक तपस्या करके पराम्बा को प्रसन्न करें ॥४२॥ जिससे कि भगवान शंकर और भगवान् विष्णु ये दोनों देव पहले के समान ही शक्ति और तेज से सम्पन्न हो जायँ । हे मेरे पुत्रों ! आप लोगों के ऐसा करने से आप सबों के यश की वृद्धि होगी ॥४२॥ जिसके वंश में महागौरी तथा महालक्ष्मी इन दोनों शक्तियों का जन्म होगा, वह वंश स्वयं तो धन्य हो ही जायेगा, साथ ही वह संसार को भी पवित्र बना देगा ॥४५॥ **व्यासजी ने कहा–** ब्रह्माजी की बातों को सुनकर वे सब सनकादिक तथा मन्वादिक पराम्बा की आराधना करने की इच्छा से वन में चले गये। उन सबों का अन्तःकरण पवित्र था ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः । मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः ॥१॥ ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप। ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥२॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना । करुणारससम्पूर्णा सच्चिदानन्दरूपिणी ॥३॥ दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः । नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये ॥४॥ नमस्तैजसरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः । यस्मिन्सर्वे लिंगदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः ॥५॥ नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये । नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये ॥६॥ नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये । इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा ॥७॥ प्रणेमुश्चरणांभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः । ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी ॥८॥ वरं ब्रूत महाभागा वरदाऽहं सदा मता । तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरिविष्ण्वोस्तनोः शमम् ॥९॥ तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम । दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम ॥१०॥ भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति । जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च ॥११॥ वद मे**

सिद्धपीठ में विराजमान अष्टोत्तरशत शक्तियों के नाम

व्यासजी ने कहा– उसके बाद वे (मन्वादि तथा सनकादि) हिमालय पर्वत की सन्निकट के वन में सावधानी पूर्वक मायाबीज का जप करते हुए तपस्या करने लगे ॥१॥ इस तरह पराशक्ति का ध्यान करते हुए उनके एक लाख वर्ष बीत गये । उससे प्रसन्न होकर देवी ने उन सबों को प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥२॥ पाश, अंकुश, वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा से उनकी चारों भुजायें सुशोभित थीं । उनके तीन नेत्र थे। करुणरस से परिपूर्ण देवी ब्रह्मस्वरूपिणी थीं ॥३॥ सम्पूर्ण जगत् की माता देवी का दर्शन पाकर उन निर्दोष अन्तःकरण वाले मुनियों ने उनकी स्तुति करते हुए कहा– विश्वस्वरूपिणी तथा वैश्वानरस्वरूपिणी आप देवी को हम लोगों का नमस्कार है । आप तेजः स्वरूपिणी तथा सूत्रात्मा हैं । आपको हम नमस्कार करते हैं । आपके उस सूत्रात्मारूप में सभी लिङ्ग देह ओत-प्रोत हैं ॥४-५॥ हे प्रज्ञास्वरूपिणी, हे अव्याकृतस्वरूपिणी देवि ! आपको नमस्कार है । हे प्रत्यक्स्वरूपिणी ! हे ब्रह्ममूर्ति देवि ! आपको हम नमस्कार करते हैं । सर्वस्वरूपिणी तथा सर्वलक्ष्यस्वरूपिणी आपको नमस्कार है ॥६॥ इस तरह से भक्तिपूर्वक जगन्माता पराम्बा की स्तुति करके निर्मल अन्तःकरण वाले दक्ष आदि मुनिगण उनके चरणों में प्रणाम किए । उसके बाद प्रसन्न होकर कोयल के समान वाणी वाली देवी ने ॥७-८॥ उन सबों से कहा– हे महाभागों ! आपलोग वरदान माँगें मैं सदा वरदान देने के लिए उद्यत रहती हूँ । हे राजन् ! देवी की वाणी को सुनकर उन दक्षादिकों ने देवी से वरदान माँगा कि भगवान शंकर तथा भगवान विष्णु को शान्ति प्राप्त हो जाय ॥९॥ तथा उन दोनों देवों को शक्ति का लाभ हो जाय । इसके बाद दक्षा

परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम् । देव्युवाच– **मच्छक्त्योरवमानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः ॥१२॥ नैतादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन । अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः ॥१३॥ भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे । जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया ॥१४॥ मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यःप्रियकरः सदाः । ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम् ॥१५॥ सच्चिदानन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम। युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा ॥१६॥** व्यास उवाच– **इत्युक्त्वांतर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी । दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः ॥१७॥ ब्रह्मणे सर्ववृत्तांतं कथयामासुरादरात् । हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप ॥१८॥ जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ तदा । कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत् ॥१९॥ दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत् । देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥२०॥ नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप । मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम् ॥२१॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः। मंगलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मङ्गलम् ॥२२॥ तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः । ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत्॥२३॥**

ने देवी से यह वरदान माँगा कि हे देवि मेरे वंश में आपका जन्म हो ॥१०॥ जिससे कि मैं इस संसार में कृतकृत्य हो जाऊँ । आप अपने मुख से अपने जप, पूजा तथा अपने स्थान को बतलायें । **देवी ने कहा–** उन दोनों शंकर और विष्णु की यह दशा मेरी शक्तियों (महालक्ष्मी तथा महागौरी) का अपमान करने के कारण हुई ॥११-१२॥ मेरा इस प्रकार का अपराध कभी नहीं करना चाहिए । अब मेरी कृपा के लेशमात्र से उन दोनों के शरीर स्वस्थ हो जायेंगे॥१३॥ उन दोनों की शक्तियों का जन्म तुम्हारे तथा क्षीरसागर में मेरी ही प्रेरणा से होगा ॥१४॥ मेरा सबसे मुख्य मन्त्र मायाबीज है । वह मुझको अत्यन्त प्रिय है । मेरे विराट्स्वरूप का अथवा इस समय जो मेरा रूप तुम्हारे सामने है,उसका ध्यान करना चाहिए ॥१५॥ अथवा मेरे सच्चिदानन्द रूप का ध्यान करना चाहिए । सम्पूर्ण संसार ही मेरा निवास स्थान है । आप लोगों को सर्वदा मेरा पूजन तथा ध्यान करना चाहिए ॥१६॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से कहकर मणिद्वीप में निवास करने वाली देवी अन्तर्धान हो गयीं । इसके बाद दक्ष इत्यादि मुनि ब्रह्माजी के पास लौटकर आ गये ॥१७॥ उन लोगों ने समादरपूर्वक ब्रह्माजी को सारा वृत्तान्त सुनाया । हे राजन् ! पराम्बा की कृपा से हरि तथा हर दोनों देव स्वस्थ हो गये । वे अपना कार्य करने में समर्थ हो गये । अब वे दोनों देव गर्व से रहित हो गये थे । उसके कुछ समय बीत जाने पर पराशक्ति का तेज दक्ष के वंश में अवतरित हुआ ॥१८-१९॥ हे महाराज ! दक्ष के गृह में उत्सव मनाया गया । प्रसन्न होकर देवताओं ने फूलों की वर्षा की ॥२०॥ स्वर्गलोक में हाथ तथा कोण से प्रताड़ित होकर दुन्दुभियाँ बजायी गयीं । स्वच्छ अन्तःकरण वाले सज्जनों का मन प्रसन्न हो गया ॥२१॥ नदियाँ अपने मार्ग से प्रवाहित होने लगीं और सूर्य की कान्ति सुन्दर प्रभा से सम्पन्न हो गयी । उस मंगल स्वरूपिणी देवी का अवतार होते ही सर्वत्र मङ्गल होने लगा ॥२२॥ परज्ञान का अंग होने के कारण उनका नाम सती रखा गया।

सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप । जनमेजय उवाच-- **अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं मुने ॥२४॥ एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने । यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि ॥२५॥ केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि ।** व्यास उवाच– **शृणु राजन्पुरा वृत्तं सतीदाहस्य कारणम्॥२६॥ कदाचिदथ दुर्वासा गतो जाम्बूनदेश्वरीम् । ददर्श देवीं तत्रासौ मायाबीजं जजाप सः ॥२७॥ ततः प्रसन्ना देवेशी निजकण्ठगतां स्रजम् । भ्रमद्भ्रमरसंसक्तां मकरंदमदाकुलाम् ॥२८॥ ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः । ततो निर्गत्य तरसा व्योम मार्गेण तापसः ॥२९॥ आजगाम स यत्रास्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता । संदर्शनार्थमम्बाया ननाम च सतीपदे ॥३०॥ पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्यास्त्यलौकिकी । कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः ॥३१॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः । देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितान्तरः ॥३२॥ प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता । अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमंडले ॥३३॥ इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत् । गृहीता शिरसा माला मनुना निजमंदिरे ॥३४॥ स्थापिता शयनं यत्र दंपत्योरतिसुन्दरम् । पशुकर्मरतो रात्रौ मालागंधेन मोदितः ॥३५॥ अभवत्स महीपालस्तेन**

शक्ति का जो अवतरण हुआ उसका दक्ष ने शिव के साथ विवाह किया ॥२३॥ हे राजन् ! दैव के योगवशात् सती ने दक्ष के यज्ञ में अपने उस शरीर को अग्नि में भस्म कर दिया । **राजा जनमेजय ने कहा**– हे मुने ! आपने तो यह अनर्थकारी बात बतलायी ॥२४॥ इस तरह की महान् वस्तु अग्नि में कैसे जल पायी ? उन शक्ति का नाम स्मरण करने मात्र से तो संसाराग्नि का नाश हो जाता है, वे भला अग्नि में कैसे जल गयीं ॥२५॥ मनु दक्ष के किस कर्म के परिणाम स्वरूप अग्नि में जल गयीं । **व्यासजी ने कहा**– हे राजन् ! प्राचीन काल में जो सती जल गयीं उसका कारण आप सुनिये ॥२६॥ एक बार महर्षि दुर्वासा जाम्बूनदेश्वरी देवी का दर्शन करने के लिऐ गये । वहाँ उन्होंने देवी का दर्शन करके माया बीज का जप किया । उससे देवी प्रसन्न होकर अपने गले की माला महर्षि दुर्वासा को प्रदान कीं । वह माला पराग से परिपूर्ण थी और उसके इर्द-गिर्द में भौंरे मँडरा रहे थे ॥२८॥ उस प्रसाद स्वरूप माला को लेकर महर्षि ने शिरोधार्य कर लिया और वहाँ से मुनि दुर्वासा आकाश मार्ग से शीघ्र वहाँ आये जहाँ पर सती के पिता दक्ष विद्यमान थे । उन्होंने अम्बा सती का दर्शन करके उनके चरणों में प्रणाम किया ॥२९-३०॥ मुनि से दक्ष ने पूछा कि यह दिव्य माला किसकी है ? हे नाथ ! आपने इसे कहाँ प्राप्त किया ? संसार के मनुष्यों के लिए तो ऐसी माला दुर्लभ है ॥३१॥ दक्ष की बात को सुनकर मुनि की आँखों में प्रेमाश्रु आ गये । उनका अन्तःकरण प्रेम से गद्गद हो गया । उन्होंने कहा यह देवी का प्रसाद है ॥३२॥ मुनि की बातों को सुनकर सती के पिता ने कहा– कि इस माला को आप मुझे दे दें । उनकी बात को सुनकर मुनि ने सोचा कि दक्ष शक्ति के भक्त हैं । शक्ति के भक्त के लिए तो माला क्या कोई भी वस्तु अदेय नहीं होती है ॥३३॥ यह सोचकर मुनि ने उस माला को दक्ष को समर्पित कर दिया । दक्ष ने अपने घर में उस माला को शिरोधार्य करके पहन लिया ॥३४॥ उसके पश्चात् उन्होंने

पापेन शङ्करे । शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां तथा नृप ॥३६॥ राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च । सत्या योगाग्निना दग्धःसतीधर्मदिदृक्षया॥३७॥ पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः । जनमेजय उवाच- **दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः ॥३८॥ प्राणाधिका सती यस्य तद्वियोगेन कातरः ।** व्यास उवाच– **ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते ॥३९॥ त्रैलोक्य प्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप । वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः ॥४०॥ त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत् । ब्रह्मादयस्तदा देवाः शङ्करं शरणं ययुः ॥४१॥ जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः । अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तवक्त्रेण तं मनुम् ॥४२॥ अजीवयन्महात्माऽसौ ततः खिन्नो महेश्वरः । यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः ॥४३॥ अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानांतु चित्कलाम् । स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः ॥४४॥ बभ्राम भ्रांतचित्तः सन्नानादेशेषु शंकरः । तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिंतामापुरनुत्तमाम् ॥४५॥ विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः । चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन् ॥४६॥ तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः । उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम् । भजंति परया भक्त्या तेषां किंचिन्न दुर्लभम्।**

उस माला को उन्होंने वहाँ रख दिया जहाँ पर दक्षदम्पती की सुन्दर शय्या थी । उस माला की सुगन्धि से मोहित होकर दक्ष रात्रि में पशुकर्म (रति क्रीड़ा) में लग गये । उसके कारण जो पाप हुआ उसके कारण दक्ष का भगवान् शिव में अत्यधिक द्वेषमयी बुद्धि हो गयी और उसी तरह की उनकी बुद्धि सती देवी के भी विषय में हो गयी ॥३६॥ हे राजन् ! दक्ष के उसी अपराध के कारण सती ने दक्ष से उत्पन्न अपने शरीर को सतीधर्म का अनुभव करके योगाग्नि में जला दिया ॥३७॥ उसके पश्चात् पराम्बा का वह तेज हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में उद्भूत हुआ । **जनमेजय ने पूछा**– सती तो भगवान् शंकर की प्राण प्रिया थीं । उनके योगाग्नि में भस्म हो जाने पर शंकरजी ने क्या किया ?। **व्यासजी ने कहा**– उसके पश्चात् जो कार्य हुआ उसका वर्णन तो मैं भी नहीं कर सकता हूँ ॥३८-३९॥ हे राजन् ! उस समय शिवजी की कोपाग्नि से वीरभद्र उत्पन्न हो गये और अपने साथ भद्रकाली को लेकर वे त्रैलोक्य का प्रलय करने के लिए तैयार हो गये । उस समय ब्रह्मा आदि सभी देवता शंकरजी के शरण में गये ॥४०-४१॥ भगवान् शंकर सर्वस्वनाश हो जाने पर भी ब्रह्मा इत्यादि देवताओं को अभय प्रदान कर दिये और मंनु दक्ष प्रजापति को बकरे का मुखवाला बना कर जीवित कर दिये ॥४२॥ उसके पश्चात् शंकरजी खिन्न हो गये । वे यज्ञशाला के स्थान में जाकर अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे ॥४३॥ उन्होंने चित्कला स्वरूपिणी सती को अग्नि में जलते हुए देखा और उस सती के शरीर को हाय सती ! हाय सती !! कहते हुए अपने कन्धे पर उठा लिये ॥४४॥ इसके पश्चात् विक्षिप्त चित्त वाले होकर शंकरजी सती के शरीर को अपने कंधे पर रखकर अनेक देशों में घूमने लगे । शंकरजी की उस स्थिति को देखकर ब्रह्मा आदि देवता अत्यधिक चिन्तित हो गये ॥४५॥ भगवान विष्णु ने अपने धनुष को उठाया और अपने बाणों से सती के उस शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर दिया । सती के शरीर

नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिका ॥४८॥ स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः । तेषां मंत्राः प्रसिद्ध्यंति मायाबीजं विशेषतः ॥४९॥ इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः । कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः ॥५०॥ जनमेजय उवाच– कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ । कतिसंख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद ॥५१॥ तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर । कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने ॥५२॥ व्यास उवाच– शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम् । येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः ॥५३॥ येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकांक्षिभिः । भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥५४॥ वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी । क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी ॥५५॥ प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने । मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा ॥५६॥ विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी । गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी ॥५७॥ मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे । गौरी प्रोक्ता

के टुकड़े विभिन्न स्थानों पर गिरे ॥४६॥ उन सभी स्थानों पर शंकरजी अपने विभिन्न शरीर को धारण करके स्थित हो गये । उसके पश्चात् उन्होंने देवताओं से कहा कि इन स्थानों पर जो लोग शिवा की ॥४७॥ परम भक्ति सम्पन्न होकर पूजा करेंगे, उन लोगों के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा । वहाँ पराम्बा अपने अंगों में निवास करेंगी ॥४८॥ इन स्थान पर जो मनुष्य पुरश्चरण करेंगे उनको उन मंत्रों की सिद्धि मिल जायेगी और मायाबीज की सिद्धि तो विशेष रूप से होगी ॥४९॥ इस तरह से देवताओं से कहकर शंकरजी सती के वियोग में व्याकुल होकर जप, ध्यान तथा समाधि के द्वारा अपना समय बिताये ॥५०॥ **जनमेजय ने कहा–** हे अनघ ! व्यासजी ! वे सिद्धपीठ कौन-कौन से हैं ? उन सिद्धपीठों की संख्या कितनी है ? तथा उन सबों का नाम आप हमें बतलाइये ॥५१॥ हे महामुने ! वहाँ पर विद्यमान देवियों का नाम भी हमें बतलाइये जिन सबों को सुनकर मैं कृतार्थ हो जाऊँ ॥५२॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! मैं इस समय आपको देवीपीठों को बतला रहा हूँ । जिन सबों को सुनने मात्र से मनुष्य पापहीन हो जायेगा ॥५३॥ जिन जिन पीठों में सिद्धि चाहने वाले मनुष्यों के द्वारा देवी उपास्य हैं तथा ऐश्वर्य चाहने वालों को उनका ध्येय है । उन सब सिद्ध पीठों को मैं तत्त्वतः बतलाता हूँ ॥५४॥ वाराणसी में सती का मुख गिरा था अतएव उस स्थान पर विशालाक्षी नामक देवी का ध्यान करना चाहिए । विशालाक्षी रूप से देवी के रूप में वहाँ देवी प्रकट हुई थीं । नैमिषारण्य में विराजमान देवी का नाम लिङ्गधारिणी है ॥५५॥ प्रयाग में निवास करने वाली देवी का नाम ललिता देवी है । गन्धमादन पर्वत पर निवास करने वाली देवी का नाम कामुकी देवी है । मानसरोवर पर निवास करने वाली देवी का नाम कुमुदादेवी है । मानसरोवर के दक्षिण ओर विश्वकामा देवी का निवास है और मानसरोवर के उत्तर की ओर विश्वकामप्रपूरणी देवी हैं । गोमन्त तीर्थं में गोमती देवी का निवास है और मन्दराचल पर्वत पर कामचारिणी देवी हैं ॥५६-५७॥ चैत्ररथ में मदोत्कटा देवी हैं और हस्तिनापुर में जयन्ती देवी का निवास है । कान्यकुब्ज में गौरी देवी

कान्यकुब्जे रम्भा तु मलयाचले ।।५८।। एकाम्रपीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि । विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे ।।५९।। केदारपीठे
सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी । मन्दाहिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ।।६०।। स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका । श्रीशैले माधवी
प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा ।।६१।। वाराहशैले तु जया कमला कमलालये । रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा ।।६२।। शालग्रामे महादेवी
शिवलिंगे जलप्रिया । महालिंगे तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी ।।६३।। मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललितांबिका । गयायां मंगला प्रोक्ता विमला
पुरुषोत्तमे ।।६४।। उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला । विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने ।।६५।। नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्र
सुन्दरी। विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले ।।६६।। सह्याद्रौ एकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका । रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती।।६७।।
कोटवी कोटतीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने । गोदावर्यां त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया ।।६८।। शिवकुंडे शुभानंदा नंदिनी देविकातटे ।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा बृन्दावने वने ।।६९।। देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी । चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विंध्याधिवासिनी ।।७०।।

हैं और मलयाचल पर रमादेवी हैं ।।५८।। एकाम्रपीठ पर रहने वाली देवी का नाम कीर्तिमती है और विश्वपीठ में वे विश्वेश्वरी के नाम से अभिहित की जाती हैं । पुष्कर में देवी पुरुहुता के नाम से विख्यात हैं ।।५९।। केदार में विद्यमान देवी का नाम सन्मार्गदायिनी है, हिमावान पीठ में विद्यमान देवी का नाम मन्दा है और गोकर्ण पीठ में विद्यमान देवी का नाम भद्रकर्णिका है ।।६०।। स्थानेश्वरपीठ में भवानी देवी विद्यमान हैं । वे ही स्थानेश्वरी हैं । विल्वपीठ में विल्वपत्रिका देवी का निवास है । श्रीशैल पर माधवी देवी का निवास है तथा मद्रेश्वर पीठ में विद्यमान देवी का नाम मद्रेश्वरी है ।।६१।। वराह पर्वत पर जया देवी विद्यमान हैं जब कि कमलालय में कमला देवी विद्यमान हैं । रुद्र कोटि में रुद्राणी देवी हैं और कालंजर में काली देवी का निवास है ।।६२।। शालग्राम में महादेवी हैं और शिवलिङ्ग पीठ में जलप्रिया देवी हैं । महालिङ्ग पीठ मे कपिला देवी हैं और माकोट पीठ में मुकुटेश्वरी देवी हैं ।।६३।। मायापुरी में कुमारी देवी हैं, सन्तान पीठ में ललिताम्बिका देवी हैं । गया में मंगला देवी हैं, पुरुषोंत्तम पीठ जगन्नाथ पुरी में विमला देवी हैं । सहस्राक्ष पीठ में उत्पलाक्षी देवी हैं, और हिरण्याक्ष क्षेत्र में महोत्पलादेवी हैं । विपाशा क्षेत्र में अमोघाक्षीदेवी हैं, पुण्ड्रवर्धन क्षेत्र में पाडला देवी हैं ।।६५।। सुपार्श्वक्षेत्र में नारायणी देवी हैं और त्रिकूट पर्वत पर रुद्रसुन्दरी देवी हैं । विपुल क्षेत्र में विपुलादेवी हैं,और मलयाचल पर कल्याणी देवी हैं ।।६६।। सह्याद्रि पर एकवीरदेवी हैं । और हरिश्चन्द्र पीठ पर चन्द्रिकादेवी हैं । रामतीर्थ में रमणा देवी हैं और यमुना तीर्थ में मृगावतीदेवी हैं ।।६७।। कोटतीर्थ में कोटवी देवी हैं, और माधव वन मे सुगन्धा देवी हैं । गोदावरी तीर्थ में त्रिसन्ध्या देवी हैं । और गङ्गासागर में रतिप्रिया देवी है ।।६८।। शिवकुण्ड में शुभानंदा देवी हैं और देविका नदी के तट पर नंदिनी देवी हैं । सरस्वती द्वारिका में रुक्मिणी देवी है और वृन्दावन में राधा देवी हैं ।।६९।। मथुरा में देवकी देवी हैं, और पाताल में परमेश्वरी देवी हैं । चित्रकूट में सीता देवी हैं और विन्ध्य पर्वत पर विन्ध्यवासिनी देवी हैं ।।७०।। कटवीर क्षेत्र में महालक्ष्मी का निवास है और विनायक क्षेत्र में उमा देवी

करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके । आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥७१॥ अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विंध्यपर्वते । मांडव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे ॥७२॥ छगलण्डे प्रचण्डा तु चंडिकाऽमरकण्टके । सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥७३॥ देवमाता सरस्वत्यां पारावारातटे स्मृता । महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥७४॥ सिंहिका कृतशैचै तु कार्तिके त्वतिशांकरी । उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे ॥७५॥ माता सिद्धवने लक्ष्मीरनंगा भरताश्रमे । जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किंधपर्वते ॥७६॥ देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले। भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा ॥७७॥ कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे । शंखोद्धारे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा ॥७८॥ कला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी । वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥७९॥ औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका । मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी ॥८०॥ अश्वत्थे वंदनीयातु निधिर्वैश्रवणालये । गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ॥८१॥ देवलोके तथेंद्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती । सूर्यबिंबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता ॥८२॥ अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा । चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः

है । वैद्यनाथ पीठ में आरोग्या देवी हैं और महाकाल उज्जैनी में माहेश्वरी देवी हैं ॥७१॥ उष्णतीर्थ में अभयादेवी हैं और विन्ध्यपर्वत पर नितम्बादेवी हैं । माण्डव्यतीर्थ में माण्डवी देवी हैं और माहेश्वरीपुर में स्वाहा देवी हैं ॥७२॥ छगलण्ड में प्रचण्डा देवी हैं और अमरकण्टक में चण्डिका देवी हैं । सोमेश्वर में बरारोहा देवी हैं और प्रभास क्षेत्र में पुष्करावती देवी हैं ॥७३॥ सरस्वती तीर्थ में देवमाता देवी हैं और समुद्रतट पर पारावारा देवी हैं । महालय में महाभागादेवी हैं, पयोष्णीतीर्थं में पिंगलेश्वरी देवी हैं ॥७४॥ कृतशौचतीर्थ में सिद्धिका देवी हैं, कीर्ति क्षेत्र में अतिशाङ्करी देवी हैं और उत्पलावर्तक क्षेत्र में अतिलोला देवी हैं। शोणसङ्गम क्षेत्र में सुभद्रा देवी हैं ॥७५॥ सिद्धवन में लक्ष्मी देवी हैं और भरताश्रम में अनंगा देवी हैं । जालन्धर तीर्थ में विश्वमुखी देवी हैं, और किष्किन्धा पर्वत पर तारा देवी हैं ॥७६॥ देवदारु वन में पुष्टि देवी है और काश्मीर मण्डल में मेधा देवी हैं । हिमाद्रि पर भीमा देवी हैं । विश्वेश्वर क्षेत्र में तुष्टि देवी हैं ॥७७॥ कपालमोचन तीर्थ में शुद्धि देवी हैं और कायावरोहण तीर्थ में माया देवी हैं । शंखोद्धार क्षेत्र में धरा देवी हैं, और पिण्डारक तीर्थ में धृति देवी हैं ॥७८॥ चन्द्रभागा तीर्थ में कला देवी हैं । अच्छोद सरोवर पर शिवधारिणी देवी हैं । वेणातीर्थ में अमृता देवी हैं, वदरिकाश्रमतीर्थ में उर्वशी देवी हैं ॥७९॥ उत्तरकुरु में औषधि देवी हैं और कुशद्वीप में कुशोदका देवी हैं । हेमकूट पर्वत पर मन्मथा देवी हैं, कुमुदतीर्थ में सत्यवादिनी देवी है ॥८०॥ अश्वरथ क्षेत्र में वंदनीया देवी हैं, और वैश्रवणालय क्षेत्र में निधि देवी हैं । वेदवदन क्षेत्र में गायत्री देवी हैं । भगवान् शंकर के सन्निकट में रहने वाली पार्वती देवी हैं ॥८१॥ देवलोक में इन्द्राणी देवी ब्रह्मलोक में सरस्वती देवी, सूर्य के बिंब में प्रभा देवी और मातृकाओं में वैष्णवी देवी के रूप में देवी विद्यमान हैं ॥८२॥ सतियों में अरुन्धती, अप्सराओं में तिलोत्तमा,

**सर्वशरीरिणाम् ॥८३॥ इमान्यष्ट शतानि स्युः पीठानि जनमेजय । तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः ॥८४॥ सतीदेव्यंगभूतानि
पीठानि कथितानि च । अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले ॥८५॥ यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं
परं व्रजेत् ॥८६॥ एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः । सन्तर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च ॥८७॥ कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या
विधानतः । क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः ॥८८॥ कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय । भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥८९॥
सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप । तस्मिन् क्षेत्रे स्थिता ये तु चांडालाद्या अपि प्रभो ॥९०॥ देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते।
प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत् ॥९१॥ यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मंत्रस्य सत्तमः । मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम् ॥९२॥
पूजयेदनिशं राजन्पुरश्चरणकृद्भवेत् । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः ॥९३॥ य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः । सहस्रकल्पपर्यंतं
ब्रह्मलोके महत्तरे ॥९४॥ वसंति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा । अंते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः ॥९५॥ नामाष्टशतजापेन बहवः**

और समस्त शरीरधारियों में शक्ति.रूप से देवी विद्यमान हैं ॥८३॥ हे जनमेजय ! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ हैं । और उन सभी सिद्धपीठों में रहने वाली
देवी की संख्या एक सौ आठ ही है ॥८४॥ सती देवी के अंग रूप से ये सभी सिद्धपीठ बतलाये गये हैं । इन सबों के अतिरिक्त पृथिवी पर और भी
देवी के सिद्धपीठ बतलाये गये हैं ॥८५॥ जो व्यक्ति इन एक सौ आठ सिद्धपीठों के नाम का स्मरण अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापों से रहित होकर
शरीर त्याग के बाद देवी के लोक में जाता है ॥८६॥ इन सभी सिद्धपीठों में तीर्थयात्रा की विधि से जाना चाहिए।वहाँ जाकर पितृगणों का तर्पण और उनका
श्राद्ध आदि भी करना चाहिए ॥८७॥ उसके बाद देवी की महापूजा विधिपूर्वक करनी चाहिए। जगदम्बा से बार-बार क्षमा प्रार्थना भी करना चाहिए।।८८॥
इस तरह से करने वाले व्यक्ति का जीवन सफल हो जाता है । उसके बाद चाहिए कि भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों से बाह्मणों को तृप्त किया जाय ॥८९॥
फिर सौभाग्यवती स्त्रियों, कुमारियों और ब्रह्मचारियों को भी भोजन कराना चाहिए । उन क्षेत्रों में रहने वाले चाण्डाल आदि भी ॥९०॥ देवी के रूप बतलाये
गये हैं अतएव उनकी भी पूजा करनी चाहिए । उन सिद्ध क्षेत्र में किसी भी प्रकार का दान लेना वर्जित है ॥९१॥ वहाँ पर रहकर श्रेष्ठ मन्त्र का पुरश्चरण
करना चाहिए। विभिन्न सिद्धपीठों में रहने वाली जगदम्बा की मायाबीज से निरन्तर पूजा करनी चाहिए और उसी मन्त्र का पुरश्चरण भी करना चाहिए । देवी
की भक्ति करने वाले मनुष्य को कंजूसी नहीं करनी चाहिए ॥९२-९३॥ जो व्यक्ति श्रीदेवी के इस प्रकार से इन सिद्धपीठों की
यात्रा करता है, उस व्यक्ति के पितृगण एक हजार कल्प पर्यन्त महान् ब्रह्मलोक में निवास करते हैं । और वह तीर्थ यात्रा करने वाला व्यक्ति देवी के लोक

सिद्धतां गताः । यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति ॥९६॥ ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि । सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः ॥९७॥ न तस्य दुर्लभं किचिन्नामाष्टशतजापिनः । कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्ति परायणः ॥९८॥ नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः । सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ॥९९॥ श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम् । तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम् ॥१००॥ इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च । सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः ॥१०१॥ पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः । रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

में निवास करता है और उसके अन्त में परंज्ञान प्राप्त करके संसार सागर से मुक्त हो जाता है ॥९४-९५॥ देवी के अष्टोत्तरशतनाम का जप करने वाले जीव सिद्ध हो गये । जहाँ पर यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुस्तक रहता है ॥९६॥ वहाँ पर ग्रहों तथा महामारी का भय नहीं रहता है । जिस तरह पूर्णिमा के दिन समुद्र बढ़ता है, उसी तरह उस व्यक्ति की भी नित्य ही वृद्धि होती है ॥९७॥ देवी के इस अष्टोत्तरशतनाम का जप करने वाले व्यक्ति के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है देवी की भक्ति करने वाला व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है ॥९८॥ वह स्वयं देवी स्वरूप हो जाता है और देवता भी उसको नमस्कार करते हैं । वह श्रेष्ठ देवताओं से भी सदा पूजित होता रहता है, तो फिर मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ?॥९९॥ श्राद्ध के समय इन अष्टोत्तरशत नामों का पाठ करना चाहिए । उससे उसके पितृगण तृप्त होकर परमगति को प्राप्त कर लेते हैं ॥१००॥ ये अष्टोत्तरशत तीर्थ मुक्तिक्षेत्र हैं और साक्षात् ज्ञानस्वरूप हैं । हे राजेन्द्र ! पापी व्यक्ति को चाहिए कि वह इन सिद्धिक्षेत्रों में जाकर निवास करे ॥१०१॥ हे राजन् ! आपने जो महेश्वरी के विषय में पूछा था वह मैंने तुम्हें बतला दिया अब तुम क्या जानना चाहते हो ?॥१०२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्याय:

जनमेजय उवाच— **धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः । यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे ॥१॥ को विरज्येत मतिमान्पिबञ्छक्तिकथामृतम्। सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत् ॥२॥** व्यास उवाच— **धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः । भाग्यवानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते ॥३॥ शृणु राजन्पुरावृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते । भ्रांतः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत् ॥४॥ प्रपञ्चभानरहितः समाधिगतमानसः । ध्यायन्देवीस्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान् ॥५॥ सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम् । शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम् ॥६॥ आनन्दः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयांतरे । उदासीनाः सर्वलोकाश्चिंताजर्जरचेतसः ॥७॥ सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाऽभवन्। ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम् ॥८॥ अधिभूताधिदैवानां सत्यभावान्नृपाभवन् । अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः ॥९॥ ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः । शिवौरसस्तु यः पुत्रःस ते हंता भविष्यति ॥१०॥ इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः । शिवौरससुताभावाज्जगर्ज**

तारकासुर के द्वारा सताये गये देवताओं द्वारा देवी की स्तुति

राजा जनमेजय ने पूछा— हे महर्षे ! आपने कहा था कि हिमालय पर्वत के शिखर पर तेज उत्पन्न हुआ था उसको आप मुझे विस्तार से बतलाइये॥१॥ कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो पराशक्ति की कथा रूपी अमृत का पान करने से विरक्त हो जाय । अमृत का पान करने वाले देवताओं की तो मृत्यु होती है, किन्तु कथामृत का पान करने वाले व्यक्ति की तो मुक्ति हो जाती है ॥२॥ **व्यासजी ने कहा—** जनमेजय तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तुम्हें महापुरुषों ने शिक्षा दी है । तुम धन्य हो इसलिए तुम में देवी की स्वाभाविक भक्ति है ॥३॥ हे राजन् ! मैं आपको एक प्राचीन इतिहास बतलाता हूँ । सती के शरीर के जल जाने पर उद्विग्न होकर घूमते हुए शिवजी जाकर एक स्थान पर स्थिर हो गये ॥४॥ उस समय उनको प्रपञ्च की प्रतीति नहीं हो रही थी। वे समाधिस्थ हो गये । आत्मज्ञ शंकरजी देवी के स्वरूप का ध्यान करते हुए अपना समय बिताने लगे ॥५॥ चराचरात्मक त्रैलोक्य सौभाग्य बिहीन हो गया। समुद्र द्वीप तथा पर्वतों से युक्त सम्पूर्ण जगत् शक्तिहीन हो गया ॥६॥ सबों के हृदय में रहने वाला आनन्द शुष्क हो गया । सभी लोग चिन्ता से जर्जर अन्तःकरण वाले और उदासीन हो गये ॥७॥ सर्वदा दुःख के सागर में मग्न सब लोग रोगग्रस्त हो गये । ग्रहों एवं देवताओं की गति विपरीत हो गयी ॥८॥ सत्य के अभाव के कारण सभी राजा उच्छृंखल प्रवृत्ति के हो गये । उसी समय एक तारक नामक असुर उत्पन्न हो गया । ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके वह त्रैलोक्य का स्वामी बन गया । उसकी मृत्यु को बड़े-बड़े देवताओं ने निश्चित करते हुए कहा कि— जो शङ्करजी का औरस पुत्र होगा, वही तुम्हारा वध

च ननाद च ॥११॥ तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः । शिवौरससुताभावाच्चिंतामापुर्दुरत्ययाम् ॥१२॥ नांगना शंकरस्यास्ति कथं तत्सुतसंभवः । अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति ॥१३॥ इति चिंतातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठ मण्डले । शशंसुर्हरिमेकांते स चोपायं जगाद ह ॥१४॥ कुतश्चिंतातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा । जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी ॥१५॥ अस्माकमनयादेव तदुपेक्षाऽस्ति नान्यथा । शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृताऽस्मच्छिक्षणाय च ॥१६॥ लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथाऽर्भके । तद्वदेव जगन्मातुर्नियंत्र्याः गुणदोषयोः॥१७॥ अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे । कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना ॥१८॥ तस्माद्यूयं पराम्बां तां शरणं यात मा चिरम् । निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति ॥१९॥ इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया । संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः ॥२०॥ आजगाम महाशैलं हिमवंतं नगाधिपम् । अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः ॥२१॥ अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञं च चक्रिरे । तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप ॥२२॥ केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः। केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः ॥२३॥ मंत्रपारायणपराः

करेगा । चूँकि शङ्करजी का कोई औरस पुत्र नहीं था, अतएव वह जोर-जोर से गर्जना करने लगा ॥९-११॥ उस तारकासुर से उपद्रुत होकर सभी देवता अपने-अपने स्थान से हट गये । शिवजी के औरस पुत्र के अभाव के कारण सभी देवता अत्यन्त चिन्तित हो गये ॥१२॥ वे सोच रहे थे कि शङ्करजी की पत्नी तो है ही नहीं तो उनका औरस पुत्र कहाँ से होगा ? हम सब भाग्यहीन हैं । हमलोगों का कार्य कैसे होगा ?॥१३॥ इस तरह से चिन्तित होकर वे सभी देवता वैकुण्ठ में गये और वे एकान्त में सारा वृतान्त भगवान् को बतलाये तो उस समय उपाय को बतलाते हुए **भगवान् ने कहा**— देवताओं ! आप लोग क्यों चिन्तातुर बने हुए हैं । सबों की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए जगदम्बा शिवा कल्पद्रुम के समान हैं । वे अभी हमलोगों की रक्षा करने के लिए हैं ही ।वे सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी हैं तथा मणिद्वीप में निवास करती हैं ॥१५॥ हम लोगों के अत्याचार के ही कारण वे हमलोगों की उपेक्षा कर रही हैं । जगन्माता हमलोगों को शिक्षा देने के ही लिए यह हम लोगों की उपेक्षा कर रही हैं ॥१६॥ जिस तरह कोई माता अपने बालक को पालती हुई उसे कभी-कभी पीटती भी है और उसके उस पीटने में उसकी दया अपने पुत्र पर नहीं रहती हो ऐसी कोई बात नहीं रहती हैं, उसी तरह जगत् की माता भी हम देवताओं के गुण तथा दोष आदि का नियमन करती हैं ॥१७॥ बच्चा तो पद-पद पर अपराध करता है, उसको माता ही सहती है दूसरा कोई नहीं ॥१८॥ अतएव आपलोग शीघ्र पराम्बा के शरण में जाइये। देर न कीजिये जगदम्बा जरूर कृपा करने वाली हैं । वे ही आपलोगों का कार्य करेंगी ॥१९॥ इस तरह से देवताओं को आदेश देकर भगवान् महाविष्णु भी अपनी पत्नी महालक्ष्मीजी को साथ लेकर अपने घर से निकल पड़े ॥२०॥ वे सबके सब महान् पर्वत हिमालय पर आये । वहाँ पर आकर सभी देवताओं ने देवी के मन्त्र का पुरश्चरण किया ॥२१॥ वे अम्बायज्ञ की विधि को जानते थे अतएव उन सबों ने अम्बायज्ञ का अनुष्ठान किया । सभी देवता शीघ्र ही तृतीया

केचित्कृच्छ्रादिकारिणः । अन्तर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः ॥२४॥ हृल्लेखया पराशक्तेःपूजां चक्रुरतंद्रिताः । इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेज़य॥२५॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने । प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम् ॥२६॥ चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम्। कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥२७॥ विद्युत्कोटिसमानाभमरुणं तत्परं महः । नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत् ॥२८॥ आद्यंतरहितं तत्तु न हस्ताद्यंगसंयुतम् । न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथोभयम्॥२९॥ दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते । पुनश्च धैर्यमालंब्य यावत्ते ददृशुः सुराः ॥३०॥ तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभादिव्यं मनोहरम् । अतीव रमणीयांगीं कुमारीं नवयौवनाम् ॥३१॥ उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिंदितांभोजकुड्मलाम्। रणत्किकिणिकाजालशिंजन्मञ्जीरमेखलाम् ॥३२॥ कनकांगदकेयूरग्रैवेयकविभूषणाम् । अनर्घ्यमणिसंभिन्नगलबंधविराजिताम् ॥३३॥ तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुंतलाम् । नितम्बबिम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम् ॥३४॥ कर्पूरशकलोन्मिश्रतांबूलपूरिताननाम्।

आदि का व्रत करने लगे ॥२२॥ उन देवताओं में से कुछ देवता समाधि लगाने में निपुण थे । कुछ देवता देवी के नामों का स्मरण करने लगे ॥२३॥ कुछ देवता देवी के मंत्रों का जप करने लगे कुछ देवता व्रतोपवास इत्यदि करने लगे । कुछ देवता अन्तर्याग करने लगे और कुछ देवता देवी के मन्त्रों का न्यास करने लगे ॥२४॥ कुछ देवता माया बीज के द्वारा उन पराशक्ति की सविधि पूजा करने लगे । हे जनमेजय ! इस तरह से देवी की अराधना करते हुए बहुत वर्ष बीत गये ॥२५॥ अकस्मात् चैत्रमास की नवमी तिथि शुक्रवार के दिन देवी का देवताओं के समक्ष प्राकट्य हो गया । उन देवी का ही प्रतिपादन सभी वेद परा देवता के रूप में करते हैं ॥२६॥ उस समय चारों दिशाओं में चारों वेद खड़ा होकर देवी की स्तुति कर रहे थे । उनका तेज करोड़ों सूर्य के समान था और करोड़ों चन्द्रमा के समान अत्यन्त शीतल था ॥२७॥ उनकी कान्ति करोड़ों बिजलियों के समान थी । उस तेजः स्वरूप देवी का वर्ण गौरवर्ण के समान है । वह कान्ति न तो ऊपर थी न नीचे थी और न तिरछी थी और बीच में विराजमान थी ॥२८॥ देवी का वह तेज आदि और अन्त से रहित था । वह हाथ आदि अंगों से रहित था । उसका रूप न तो स्त्री का था और न तो पुरुष का था और न तो स्त्री पुरुष दोनों का था ॥२९॥ हे राजन् ! तेजः स्वरूप देवी की कान्ति से उन देवताओं की आँखे बन्द हो गयीं । फिर धैर्य धारण करके देवताओं ने देवी के रूप को देखा ॥३०॥ उसी समय वह तेज स्त्री के रूप में परिणत हो गया । उनके अंग अत्यन्त मनोहर थे नवीन जवानी से युक्त उनका कुमारी का रूप था॥३१॥ कमल की कली के समान उनके दोनों पयोधर अभी उभड़ ही रहे थे । बजते हुए घुंघुरूओं से युक्त उनके पैरों का नूपुर तथा कमर की करधनी मधुर ध्वनि कर रहे थे ॥३२॥ वे सुवर्ण के विजाइठ, केयूर तथा कण्ठहार धारण किए थे । बहुमूल्य मणि से समलंकृत चमकता हुआ हार गले से नीचे लटक रहा था ॥३३॥ केवड़ा के पत्तों के समान गौरवर्ण की गालों पर लटके हुए काले-काले केश भ्रमर के समान प्रतीत हो रहे थे । उनका नितम्ब प्रदेश

कनत्कनकताटंकविटंकवदनांबुजाम् ॥३५॥ अष्टमीचन्द्रबिंबाभललाटामायतभ्रुवम् । रक्तारविंदनयनामुन्नसां मधुराधराम् ॥३६॥ कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम् । रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखावतंसिनीम् ॥३७॥ मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् । काश्मीरबिन्दुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम्॥३८॥ पाशांकुशवराभीतिचतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् । रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ॥३९॥ सर्वश्रृङ्गारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम्। सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम् ॥४०॥ प्रसादसुमुखीमम्बां मन्दस्मितमुखांबुजाम् । अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः ॥४१॥ दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सादरं सुराः । वक्तुं नाशक्नुवन् किंचिद्बाष्पपूरितलोचनाः ॥४२॥ कथंचित्स्थैर्यमालंव्य भक्त्यावनतकंधराः । प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥४३॥ देवा ऊचुः– नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्म ताम्॥४४॥ तामग्निवर्णां तपसा ज्वलंतीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम् । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः ॥४५॥ देवीं वाचमजनयन्तदेवास्तां

अत्यन्त मनोहर था और (रोमावली से सुशोभित था) ॥३४॥ कर्पूर के टुकड़े से युक्त ताम्बूल से उनका मुख भरा हुआ था । उनके मुखकमल पर सुवर्ण निर्मित कुण्डल ध्वनि कर रहा था । उनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान तथा, भौहा से सुशोभित था । उनके नेत्र लाल-कमल के समान थे । नाक ऊँची उठी थी और अधर अत्यन्त मनोहर था ॥३५-३६॥ उनके दाँतों का अग्रभाग कुन्दकली के समान था और वे मोती की माला से समलंकृत थीं । उनके मुकुट में विभिन्न प्रकार के रत्न जटित थे जो चन्द्रमा की कला से सुशोभित हो रहे थे ॥३७॥ वे अपने केशपाश में जूही और मालती की माला को धारण किए हुयी थीं । उनके ललाट पर केशर का तिलक लगा था । उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे थे । उनकी चारो भुजाएँ क्रमशः पाश, अंकुश, वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा से सुशोभित थीं । वे तीन नेत्रों वाली थीं । वे लाल रङ्ग के वस्त्र को धारण किए हुईं थीं और उनके शरीर की कान्ति अनार के फूल की कान्ति के समान थी ॥३८-३९॥ उनका वेष सभी प्रकार के श्रृङ्गार से सुशोभित था और सभी देवता उनको नमस्कार कर रहे थे । वे अपने भक्तों की सभी प्रकार की आशाओं को पूर्ण करने वाली थी, सबों की माता थीं और सबों को मोहित करने वाली थीं ॥४०॥ उन जगदम्बा का मुख प्रसन्नता से सुशोभित था । वे मन्द-मन्द मुस्कुरा रही थीं । वे स्वाभाविक रूप से करुणा स्वरूपिणी थीं । इस प्रकार की देवी का देवताओ ने अपने सामने ही दर्शन किया।॥४१॥ करुणामूर्ति देवी का दर्शन करके सभी देवताओं ने उनको प्रणाम किया । वे कुछ भी नहीं बोल पा रहे थे । उन देवताओं के नेत्र प्रेमाश्रु से परिपूर्ण थे॥४२॥ देवताओं ने किसी प्रकार से धैर्य धारण किया । भक्ति के कारण उनका कंधा झुका हुआ था । प्रेमाश्रु से उनके नेत्र परिपूर्ण थे। ऐसे देवताओं ने देवी की स्तुति प्रारम्भ कर दी ॥४३॥ **देवताओं ने कहा–** देवी को नमस्कार है शिवा महादेवी को नमस्कार है । हम कल्याणकारिणी प्रकृति स्वरूप देवी को नमस्कार करते हैं । हम उनके नित्य शरणागत हैं । अग्नि के समान वर्णवाली, ज्ञान से जगमगाने वाली, विशेष रूप से प्रकाशित होने वाली, कर्म के फलों

विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥४६॥ कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम् । सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ॥४७॥ महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥४८॥ नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये । नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये ॥४९॥ यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत् । यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्॥५०॥ नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम् । अखंडानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम् ॥५१॥ पञ्चकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम् । नुमस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम् ॥५२॥ नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये । नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः ॥५३॥ इति स्तुता तदा देवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी । प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना ॥५४॥ श्रीदेव्युवाच— **वदंतु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह संगताः । वरदाऽहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमाऽस्मि च ॥५५॥ तिष्ठन्त्यां मयि का चिंता युष्माकं भक्तिशालिनाम् । समुद्धरामि मद्भक्तान्दुखःखसंसारसागरात् ॥५६॥ इति**

से प्रसन्न होने वाली दुर्गा देवी की हम शरणागति करते हैं । आप संसार सागर से पार कराने वाली हैं आपको बारम्बार नमस्कार है ॥४४-४५॥ देवताओं ने जिस वैखरी वाणी को उत्पन्न किया । उसी को संसार के सभी प्राणी बोलते हैं । वे देवी कामधेनु स्वरूपिणी हैं, अन्न तथा बल को प्रदान करने वाली वाणी स्वरूपिणी हैं वे हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे पास आयें ॥४६॥ कालरात्रि स्वरूपिणी, जिनकी ब्रह्माजी ने स्तुति की, वैष्णवी तथा स्कन्द की माता, सरस्वती स्वरूपा, अदिति तथा दक्ष की पुत्री पवित्र शिवा देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥४७॥ हम महालक्ष्मी को जानते है, हम विष्णु भगवान् की पत्नी का ध्यान करते हैं, वे देवी हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में लगायें ॥४८॥ विराट् स्वरूपिणी देवी को नमस्कार है, सूत्रात्मा स्वरूपा देवी को नमस्कार है । अव्याकृत स्वरूपादेवी को नमस्कार है, श्री ब्रह्ममूर्ति देवी को नमस्कार है ॥४९॥ जिनके स्वरूप का ज्ञान नहीं होने के कारण ही यह संसार उसी तरह से प्रतीत होता है, जिस तरह से रज्जू में भ्रम के कारण सर्प की अथवा माला आदि की प्रतीति होती है । जिन देवी के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर संसार का लय हो जाता है, उस भुवनेश्वरी देवी को हम नमस्कार करते हैं । 'तत्त्वमसि' वाक्य के तत् पद के लक्ष्यार्थ स्वरूपा देवी को हम नमस्कार करते हैं । जो ज्ञानमात्र स्वरूपिणी हैं, उनको हम नमस्कार करते हैं । हम अखण्ड आनन्द स्वरूपा तथा वेदों की तात्पर्य भूमि स्वरूपा देवी को नमस्कार करते हैं ॥५१॥ जो पञ्चकोशों से अतिरिक्त तत्त्व हैं तथा अवस्थात्रय की साक्षि स्वरूपा है उनको हम नमस्कार करते हैं । हम 'त्वम्' पद के लक्ष्यार्थ स्वरूपा तथा प्रत्यगात्मा स्वरूपा देवी को नमस्कार करते हैं ॥५२॥ प्रणवस्वरूपा, साक्षात् ह्रींकार स्वरूपिणी अनेक मन्त्र स्वरूपा तथा करुणामूर्ति देवी को हमलोग नमस्कार करते हैं ॥५३॥ देवताओं द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये जाने पर मणिद्वीप में निवास करने वाली तथा मदमत्त कोकिल के समान मधुर वाणी वाली देवी ने अपनी मधुर वाणी से देवताओं से कहा ॥५४॥ **श्रीदेवी ने कहा—** *हे देवताओं ! आपलोग जिस कार्य के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं उस कार्य*

प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः । इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा संतुष्टमानसाः ॥५७॥ निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम् । देवा ऊचुः– नाज्ञातं किंचिदप्यत्र भवत्याऽस्ति जगत्त्रये ॥५८॥ सर्वज्ञयासर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि । तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम्॥५९॥ शिवाङ्गजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे । शिवाङ्गना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥६०॥ सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः । एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयाम्बिके ॥६१॥ सर्वदा चरणांभोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला । प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥६२॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी । मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥६३॥ शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति । भक्तिर्मच्चरणांभोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥६४॥ हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः । ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥६५॥ व्यास उवाच– हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वाऽत्यनुग्रहकरं वचः । बाष्पैःसंरुद्धकंठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥६६॥ महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि। नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क्व त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥६७॥ असंभाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे । अश्वमेधादिपुण्यै र्वा पुण्यै र्वा तत्समाधिजैः॥६८॥

को बतलायें । मैं वरदान देने वाली तथा अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए कल्पद्रुम के समान हूँ ॥५५॥ मेरे रहते आप लोगों को कौन सी चिन्ता है । आपलोग तो मेरी भक्ति करने वाले हैं। मैं अपने भक्तों का दुःखस्वरूप संसार सागर से उद्धार करती हूँ ॥५६॥ हे देवताओं ! मेरी इस प्रतिज्ञा को सत्य समझें। इस तरह से देवी की प्रेमभरी वाणी सुनकर देवताओं का मन सन्तुष्ट हो गया ॥५७॥ सभी देवता निर्भय हो गये और उन लोगों ने देवी को अपने दुःख का कारण बतलाया । **देवताओं ने देवी से कहा–** हे देवि ! त्रैलोक्य की कोई भी ऐसी बात नहीं है जो आपको अज्ञात हो ॥५८॥ हे परमेश्वरि ! आप तो सर्वज्ञ हैं, और सबों के साक्षि स्वरूपा हैं । असुरों का स्वामी तारकासुर हम लोगों को सदा सताता रहता है ॥५९॥ हे शिवे ! ब्रह्माजी ने उसका वध भगवान शंकर के औरस पुत्र से किया है । हे महेश्वरि ! आप तो जानती ही हैं, कि शिवजी की पत्नी नहीं हैं ॥६०॥ हमलोग तो अज्ञानी जीव हैं अतएव आप सर्वज्ञ के समक्ष हमलोग और क्या कहें । हे अम्बिके ! हम लोगों ने तो यह संक्षिप्ततम रूप से कहा है, आगे की बातें आप स्वयं जान लें ॥६१॥ किञ्च हे मातः ! हमलोगों की आपके चरण कमलों में सदा निश्चल भक्ति बनी रहे । अपने देह की रक्षा के लिए हमारी यही प्रार्थना है ॥६२॥ देवताओं की इस प्रकार की वाणी को सुनकर **देवी ने कहा–** मेरी शक्ति गौरी हिमालय में अवतीर्ण होगी ॥६३॥ उसका विवाह शिव से कर देना चाहिए । वह आप लोगों का कार्य कर देगी । मेरा आशीर्वाद है कि आपलोगों की भक्ति मेरें चरणकमलों में बनी रहे ॥६४॥ हिमालय स्वयं भी भक्ति पूर्वक मेरी उपासना करते हैं । अतएव उनके घर में जन्म लेना मुझे प्रिय है ॥६५॥ **व्यासजी ने जनमेजय से कहा–** हिमालय ने भी देवी के उस अनुग्रहमयी वाणी को सुनकर प्रसन्नता का अनुभव किया उनका प्रेमातिरेक के कारण गला रुँध गया । उन्होंने प्रेम पूर्वक देवी महारानी से कहा– हे देवि ! आप जिस

अद्य प्रपंचे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताऽभवत् । अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥६९॥ यस्यास्तु जठरे संति ब्रह्माण्डानां च कोटयः । सैव यस्य कुले जाता को वा स्यात् तत्समो भुवि ॥७०॥ न जानेऽस्मत् पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मिंत परम् । एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः ॥७१॥ इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया । सर्ववेदान्तसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा ॥७२॥ योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसम्मतम् विदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवेः ॥७३॥ व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजा । वक्तुमारभतां वा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम् ॥७४॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

पर कृपा करती हैं उसे महान् बना देती हैं । अन्यथा कहाँ तो मैं जड़ एवं स्थाणु और कहाँ ज्ञान स्वरूपिणी आप दोनों में किसी प्रकार की समता ही नहीं है ॥६७॥ हे अनघ स्वरूपिणि ! सैकड़ों जन्म प्राप्त करके भी मैं आपका पिता नहीं हो सकता था । अश्वमेध आदि यज्ञों अथवा समाधि के द्वारा प्राप्त पुण्यों से भी मैं उस गौरव को नहीं प्राप्त कर सकता था ॥६८॥ अब तो सम्पूर्ण जगत् में मेरा यश फैल जायेगा कि जगन्माता मेरी पुत्री बन गयीं । सभी लोग यही कहेंगे कि हिमालय का कितना बड़ा सौभाग्य है । धन्य हो गये हिमालय ॥६९॥ जिसके उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड रहते हैं, वे ही जगदम्बा जिसकी पुत्री बनें उसके समान संसार में किसका भाग्य हो सकता है ॥७०॥ मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि मेरे पितृगणों के निवास के लिए कैसा उत्कृष्ट स्थान निर्मित होगा । जिन लोगों के वंश में मुझ जैसा भाग्यवान जीव है ॥७१॥ आपने अपनी प्रेमपूर्ण कृपा से जैसे यह वरदान प्रदान किया है, उसी तरह से आप अपने रूप को मुझे बतलाएँ ॥७२॥ आप मुझे भक्ति सहित योग का उपदेश दें और श्रुतिसम्मत ज्ञान प्रदान करें । जिससे कि हे महेशानि मैं आपका ही हो जाऊँ ॥७३॥ **व्यासजी ने कहा**– हिमालय की इस बात को सुनकर देवी का मुख कमल विकसित हो गया और पराम्बा ने वेदों में निहित ज्ञानों का उपदेश करना प्रारम्भ किया ॥७४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच– शृण्वन्तु निर्जराःसर्वे व्याहरंत्या वचो मम । यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥१॥ अहमेवास पूर्वं तु नान्यात्किंचिन्नगाधिप। तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम् ॥२॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम् । तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता ॥३॥ न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः । एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूताऽस्ति सर्वदा ॥४॥ पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः । चन्द्रस्य चन्द्रिकैवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा ॥५॥ तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च संचरे । अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत् ॥६॥ स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता । स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम् ॥७॥ चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते । प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते ॥८॥ केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे । ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम् ॥९॥ विमर्श्य इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः । अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः ॥१०॥ एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु । तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती॥११॥

भगवती द्वारा हिमालय को ज्ञानोपदेश

श्री देवी ने कहा– हे देवताओं ! मैं जिस बात का उपदेश कर रही हूँ उसे आपलोग सुनें । उसके सुनने मात्र से ही जीव मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥१॥ हे नगाधिराज हिमालय ! सृष्टि में पूर्व मैं ही थी मुझ से भिन्न कोई भी दूसरी वस्तु नहीं थी । उस समय मेरा रूप सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप था ॥२॥ मेरा वह रूप तर्क से परे, किसी भी प्रकार से निर्देश से परे तथा किसी भी प्रकार की उपमा से रहित तथा निर्दोषा था । मेरे उसी रूप से एक माया नामक शक्ति प्रकट हो गयी । वह न तो सत् स्वरूप थी न असत् स्वरूप थी और न तो सदसत् स्वरूप थी । क्योंकि सत् एवं असत् में सहानवस्थान रूप दोष के कारण परस्पर मे विरोध है । यह विलक्षण अनिर्वचनीय वस्तु सर्वदा रहती है ॥४॥ जिस तरह से अग्नि की उष्णता स्वाभाविक धर्म है, सूर्य की किरणें स्वाभाविक हैं, चन्द्रमा की चन्द्रिका स्वाभाविक होती है उसी तरह यह माया भी हमारी स्वाभाविक शक्ति है वह नित्य है ॥५॥ उसके भीतर ही जीवों; जीवों के कर्म तथा सभी जीव उसी तरह से विलीन हो जाते हैं जिस तरह से सुषुप्तिकाल में सभी व्यवहार समाप्त हो जाते है ॥६॥ अपनी शक्ति के ही संयोग से मैं बीज बन गयी । माया को ही अपना आधार बनाने के कारण मुझ में कुछ दोष भी आ गये ॥७॥ ज्ञान का संयोग होने के कारण मैं सम्पूर्ण जगत् का निमित्त कारण हूँ । प्रपञ्च के रूप में परिणत होने के कारण मुझ में जगत् के प्रति समवायीकारणत्व आ गया ॥८॥ कुछ लोगों ने उस माया को तप शब्द से अभिहित किया कुछ ने तमस् शब्द से और कुछ ने जड़ शब्द से । उसे विचारकों ने ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति तथा ऊर्जा

चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् । स्वप्रकाश्यं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम् ॥१२॥ अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम् ।
कर्मकर्त्रीविरोधःस्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम् ॥१३॥ प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत । अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम ॥१४॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ
दृश्यस्य व्यभिचारतः । संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित् ॥१५॥ यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा । अनुभूतः स एवात्र शिष्टः
संविद्वपुः पुरा ॥१६॥ अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः । आनन्दरूपता चास्याः परंप्रेमास्पदत्वतः ॥१७॥ मा न भूवं हि भूयासमिति
प्रेमात्मनि स्थितम् । सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसंगत्वं स्फुटं मम ॥१८॥ अपरिच्छिन्नताऽप्येवमत एव मता मम । तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे
जडतात्मनः ॥१९॥ ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च संभवि । चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि विद्यते ॥२०॥ तस्मादात्मज्ञानरूपःसुखरूपश्च
सर्वदा । सत्यःपूर्णोऽप्यसंगश्च द्वैतजालविवर्जितः ॥२१॥ स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया । पूर्वानुभूतसंस्कारात्कालकर्मविपाकतः ॥२२॥

भी कहा ॥९॥ इस तरह से शैवशास्त्र के ज्ञाताओं ने विचार करके माया को कहा । दूसरे वेद के तत्त्वार्थ का चिन्तन करने वालों ने माया को अविद्या
कहा॥१०॥ इस तरह से मेरी उस शक्ति के वेदों में अनेक नाम हैं । वह माया शक्ति दृश्य होने के कारण जड़ है और ज्ञान के द्वारा उसका नाश होने
के कारण वह असत् है ॥११॥ चैतन्य तो कभी दृश्य हो नहीं सकता है । यदि वह दृश्य हो जाता तो फिर उसे जड़ मानना होगा । वह ज्ञान स्वप्रकाश
होता है । वह किसी दूसरे प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित नहीं होता है । वह अपने से भी प्रकाशित इसलिए नहीं होता है, कि ऐसा मानने पर अनवस्था दोष
होगा। जिस तरह से एक ही वस्तु कर्म और कर्ता दोनों नहीं हो सकती हैं, उसी तरह प्रदीप के समान चैतन्य को सबों का प्रकाशक जानो ॥१३॥ हे
हिमालय! उस चैतन्य को तुम स्वरूपतः प्रकाशमान, और दूसरों का प्रकाशक जानो । अतएव मेरी ज्ञानस्वरूपता की नित्यता भी सिद्ध हो जाती है।॥१४॥
जाग्रत,स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में दृश्य वस्तुओं का व्यभिचार देखा जाता है । क्योंकि उनकी कभी प्रतीति होती है, और कभी प्रतीति नहीं होती
है, किन्तु ज्ञान (संवित्) का किसी भी अवस्था में व्यभिचार नहीं अनुभूत होता है ॥१५॥ यदि संवित् का भी अनुभव होता है तो वह जिस साक्षी के द्वारा
अनुभूत होता है, वह भी तो ज्ञान शरीरक ही होता है ॥१६॥ अतएव सच्छास्त्र के ज्ञाता पुरुष संवित् को नित्य मानते हैं । चूँकि यह संविदात्मा अत्यन्त
प्रिय होता है । अतएव उसे श्रुति आनन्द स्वरूप बतलाती है ॥१७॥ आत्मा से भिन्न जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे मिथ्या है, अतएव उन सबों में किसी प्रकार
की संगति नहीं होती हैं । मेरा न तो कभी अभाव था और न तो है और न होगा; अतएव मैं सबों से भिन्न ही हूँ ॥१८॥ सभी कालों तथा स्थानों में
व्यापक होने के कारण मेरी अनन्तता भी सिद्ध होती है । यह जो ज्ञान है वह आत्मा का धर्म नहीं है, क्योंकि धर्म होने पर आत्मा जड़ रूप रसादि
के समान जड़ सिद्ध हो जायेगा ॥१९॥ आज तक किसी ने भी ज्ञान को जड़ वस्तुओं के धर्म रूप से न तो देखा है, और न उसमें जड़ का धर्म

अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते । अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप ॥२३॥ एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम् । अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि ॥२४॥ प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम् । तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥२५॥ सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् । ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते ॥२६॥ तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः । भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः ॥२७॥ जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गंधात्मिका धरा । शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः ॥२८॥ शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः । शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः ॥२९॥ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैःपञ्च गुणा धरा । तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिंगं परिचक्षते ॥३०॥ सर्वात्मकं तत्संप्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः । अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि ॥३१॥ यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिंगोद्भवो यतः । ततः स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः ॥३२॥ पञ्चसंख्यानि जायंते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते । पूर्वोक्तनि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद्द्विधा ॥३३॥ एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद्गिरे । स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते ॥३४॥ तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः।

होना संभव ही है । ज्ञान के आत्मा के धर्मत्व की सिद्ध इसलिए नहीं हो सकती है कि किसी भी ज्ञान का कोई भी ज्ञान धर्म नहीं होता है ॥२०॥ अतएव आत्मा ज्ञान स्वरूप और सुख स्वरूप है । वह द्वैत (भेद) समूह से रहित होने के कारण सत्य, पूर्ण तथा असङ्ग है ॥२१॥ उस आत्मा में सृष्टि करने की इच्छा अपनी काम तथा कर्म आदि से युक्त माया के द्वारा पूर्वानुभूत संस्कारों के कारण, काल तथा कर्म के परिणाम के कारण तथा तत्त्वों का विवेक नहीं होने के कारण होती है । हे नगाधिप हिमालय ! यह सृष्टि अज्ञान के ही कारण होती है ॥२२-२३॥ यह मैंने अपने दिव्य रूप का उपदेश तुम्हें दिया । वह अव्याकृत ही अव्यक्त कहलाता हैं । वही पुनः माया से मिश्रित हो जाता है ॥२४॥ सभी शास्त्रों में उसको ही सभी कारणों का कारण बतलाया गया है । वही सभी तत्त्वों का मूल है और सच्चिदानन्द स्वरूप है ॥२५॥ वह आदि तत्त्व ही सभी कर्मों का समुदाय रूप है, इच्छा ज्ञान तथा क्रियाओं का आश्रय है, तथा ह्रींकार मन्त्र का वाच्यार्थ है । वही आदि तत्त्व कहलाता ॥२६॥ उससे ही शब्दतन्मात्र स्वरूप आकाश उत्पन्न हुआ स्पर्श तन्मात्रात्मक वायु उत्पन्न हुयी, रूप तन्मात्रात्मक तेज उत्पन्न हुआ ॥२७॥ उसके बाद रसतन्मात्रात्मक जल की उत्पत्ति हुई और उसके पश्चात् गन्धतन्मात्रात्मक पृथिवी की उत्पत्ति हुई । आकाश में केवल शब्दनामक गुण होता है । वायु में दो गुण होते हैं, शब्द तथा स्पर्श ॥२८॥ तेज में तीन गुणों को विद्वानों ने बतलाया है । शब्द, स्पर्श और रूप । जल में चार गुण बतलाये गये हैं– शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस ॥२९॥ पृथिवी में पाँच गुण बतलाये गये हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध । इन सबों महान् सूत्रात्मा उत्पन्न हुआ, उसे ही लिङ्ग कहते हैं । यही आत्मा का सूक्ष्मशरीर कहलाता है । यह सर्वात्मक है । अव्यक्त को ही कारणशरीर कहते हैं । इसको पहले ही बतलाया जा चुका है ॥३१॥ उस कारण शरीर में जगत् बीज रूप से स्थित रहता है, और उसी से लिङ्ग शरीर की उत्पति हुई । उसीसे स्थूल भूतों की उत्पत्ति पञ्चीकरण प्रक्रिया से

पञ्चभूतस्थतत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः ॥३५॥ ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः । अन्तःकरणमेकं स्याद्वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम् ॥३६॥ यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम् । स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति सुनिश्चितं संशयहीनरूपम् ॥३७॥ अनुसंधानरूपं तच्चितं च परिकीर्तितम् । अहंकृत्यात्मवृत्त्या तु तदहंकारतां गतम् ॥३८॥ तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च । प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पंचधा ॥३९॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः । कंठदेशेऽप्युदानः स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥४०॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव पंच कर्मेंद्रियाणि च । प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः ॥४१॥ एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिंगं यदुच्यते । तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता ॥४२॥ सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता । स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते ॥४३॥ तस्यां यत्प्रतिबिंबं

हुई ॥३२॥ उन पाँचों स्थूल भूतों की उत्पत्ति का प्रकार बतलाया जाता है । पूर्वोक्त जो पाँच भूत बतलाये गये हैं, उन सबों को परमात्मा ने दो-दो भागों में विभक्त किया ॥३३॥ उन प्रत्येक भूतों के एक-एक भाग को परमात्मा ने चार-चार भागों में विभक्त किया । और उन चारों भागों को अपने से भिन्न चारों भूतों के आधे-आधे भागों में मिला देने से प्रत्येक भूत पञ्चभूतात्मक हो गये । इसको इस तरह से जाना जा सकता है पृथ्वी=१/२ पृथिवी+१/८जल+१/८ तेज+१/८ वायु+१/८ । आकाश। जल=१/२ जल+१/८ तेज+१/८ वायु+१/८ आकाश+१/८ पृथिवी । तेज=१/२ तेज+१/८ वायु+१/८ आकाश+१/८पृथिवी+१/८ जल आकाश=१/२ आकाश+१/८ पृथिवी+१/८ जल+१/८ तेज+१/८ वायु। इसी को पञ्चीकरण प्रक्रिया कहा जाता है ॥३४॥ उसी का कार्य विराट् शरीर है । यही आत्मा का स्थूल शरीर है । पाँचों भूतों में जो सत्त्वगुण के अंश होते हैं उसी से श्रोत्र आदि (त्वक्, चक्षु, रसना, और नासिका) इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई ॥३५॥ ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती है । उन पाँचो ज्ञानेन्द्रियों के संयोग से एक अन्तः करण की उत्पत्ति हुई । वह अपनी वृत्तियों के भेद के कारण चार प्रकार का होता है ॥३६॥ जब अन्त:करण संकल्प तथा विकल्प करने का काम करता है तो वह मन कहलाता है। जब वह किसी वस्तु को निश्चित रूप से जानने का काम करता है तो उसे ही बुद्धि कहते है । बुद्धि के द्वारा निश्चित किये जाने पर किसी प्रकार का संशय नहीं रहता है ॥३७॥ जब वह किसी वस्तु का अनुसन्धान करता है तो वह चित्त कहलाता है और जब अन्त:करण अभिमान करता है तो वही अहंकार कहलाता है ॥३८॥ उन भूतों में विद्यमान रजोगुण के अंश से कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । उन सबों के सम्मिलित अंशों से पाञ्च प्रकार का प्राण उत्पन्न होता है ॥३९॥ हृदय प्रदेश में प्राण वायु रहती है । गुद प्रदेश में अपान वायु रहती है । नाभि प्रदेश में उदान वायु रहती है । कण्ठ प्रदेश में उदान वायु रहती है और व्यान नामक प्राणवायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहती है ॥४०॥ ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच ही है और कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं । प्राण आदि भी पाञ्च ही हैं । इन सबों के साथ बुद्धि और मन ॥४१॥ इन सबों से निर्मित सूक्ष्म शरीर होता है और इसी को लिङ्ग शरीर भी कहते हैं । हे राजन् ! जिसको

स्याद्बिंबभूतस्य चेशितुः । स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः ॥४४॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः । अविद्यायां तु यत्किंचित्प्रतिबिंबं नगाधिप ॥४५॥ तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः । द्वयोरपीह संप्रोक्तं देहत्रयमविद्यया ॥४६॥ देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभून्नामत्रयं पुनः । प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः ॥४७॥ स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः । एवमीशोऽपि संप्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः॥४८॥ प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः । स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया ॥४९॥ करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः । मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन्प्रकल्पितः ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते सप्तमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

प्रकृति कहा जाता है, उसके दो भेद है ॥४२॥ जो प्रकृति सत्त्वस्वरूपा होती है, उसे ही माया कहते हैं और जो प्रकृति गुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) से मिश्रित होती है उसको अविद्या कहते हैं । जो प्रकृति अपने आश्रय की रक्षा करती है, उसे माया कहते हैं ॥४३॥ विम्ब स्वरूप नियामक का जो प्रतिबिम्ब होता है, उसको ही ईश्वर कहा जाता है । वह अपने को ही अपना आश्रय बनाता है तथा परंज्ञानवान् हैं ॥४४॥ वह सर्वज्ञ, है, वह सम्पूर्ण जगत् का कर्ता है और सबों पर अनुग्रह करने वाला है । हे पर्वतराज हिमालय ! उसका जो अविद्या में प्रतिबिम्ब पड़ा ॥४५॥ उसी को जीव कहते हैं। वही सभी दुःखों को भोगने वाला है । ईश्वर तथा जीव इन दोनों का स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर तीनों से संबन्ध अविद्या के कारण होता है ॥४६॥ इन तीनों प्रकार के शरीरों का अभिमानी होने के कारण चेतन के तीन नाम हो गये । जब चेतन कारण शरीराभिमानी होता है तो वह प्राज्ञ कहलाता हैं जब वह सूक्ष्म शरीराभिमानी होता है तो वह तैजस कहलाता है ॥४७॥ वही जब स्थुल देहाभिमानी होता है तो वह विश्व कहलाता है । इसी तरह ईश्वर भी तीन प्रकार के नामों से अभिहित किया जाता है । ईश, सूत्र तथा विराट् ॥४८॥ इनमें जीव व्यष्टि रूप तथा ईश्वर समष्टि रूप है । ईश्वर चूँकि सभी जीवों पर कृपा करते हैं, अतएव वे सर्वेश्वर हैं ॥४९॥ ईश्वर ही अनेक रूपों तथा अनेक भोगों से युक्त सम्पूर्ण विश्व की रचना करते हैं । हे राजन् ! मेरी (देवी की) ही शक्ति से प्रेरित तथा मुझमें ही प्रकल्पित वे सर्वदा सृष्टि का करते रहते हैं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

देव्युवाच– **मन्मायाशक्तिसंकलृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् । साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः ॥१॥ व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता । तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥२॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः प्रविशाम्यहम् । माया कर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा ॥३॥ लोकान्तरगतिर्नोचेत्कथं स्यादिति हेतुना । यथा यथा भवंत्येव मायाभेदास्तथा तथा ॥४॥ उपाधिभेदाद्भिन्नाऽहं घटाकाशादयो यथा । उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा ॥५॥ न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न । मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वं मध्यस्यैवापरे जनाः ॥६॥ वदंति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः । अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा ॥७॥ जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु । घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा ॥८॥ तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः । यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः ॥९॥ तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः । देहेन्द्रियादिसंघातवासनाभेदभेदिता ॥१०॥ अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः । गुणानां वासनाभेदाभेदिता या धराधर॥११॥**

भगवती द्वारा विराट् रूप का प्रदर्शन

देवी ने कहा– सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् मेरी ही शक्ति से व्याप्त है । वस्तुतः माया भी मेरी शक्ति से कोई भिन्न पदार्थ नहीं है ॥१॥ व्यवहार की दृष्टि से उसे ही माया तथा विद्या के नाम से अभिहित किया जाता है । तत्त्व की दृष्टि से देखने पर पता चलेगा कि माया वस्तुतः है ही नहीं केवल तत्त्व पदार्थ ही है ॥२॥ मैं ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करके उसके भीतर हूँ हे पर्वतराज ! माया तथा कर्मों के साथ प्राणों को पुरस्कृत करके मैं उस चरा-चरात्मक जगत् के भीतर प्रवेश कर जाती हूँ ॥३॥ यदि ऐसी बात नहीं होती तो फिर लोकान्तरों में प्राणियों की गति कैसे हो सकती है । माया के ही भेद के कारण मेरे भिन्न-भिन्न भेद हो जाते हैं । जिस तरह घट, पट आदि उपाधियों के भेद से आकाश के घटाकाश, पटाकाश आदि भेद होते हैं,उसी तरह से मेरे भी भेद होते हैं । जिस तरह सूर्य सदा ऊँच तथा नीच वस्तुओं को समान रूप से प्रकाशित करते हैं ॥४-५॥ फिर भी सूर्य में जिस तरह से उन वस्तुओं का दोष नहीं लगता है, उसी तरह मुझमें भी कभी उन उपाधियों के दोष नहीं लगते हैं । अज्ञानी जीव मुझ में ही कर्तृत्व आदि की बुद्धि का अध्याहार करके कहते हैं कि आत्मा कर्ता है, किन्तु ज्ञानी पुरुष इस तरह की बातें नहीं करते हैं । जिस तरह अज्ञान के भेद के कारण ही इस तरह के व्यवहार होते हैं उसी तरह माया के ही भेद के कारण ॥६-७॥ जीव तथा ईश्वर का भेद है। यह भेद माया के ही द्वारा कल्पित है। यह जीव और ईश्वर का भेद उसी तरह माया कल्पित है जिस तरह घटाकाश और महाकाश का भेद अज्ञान कल्पित है । जीवों का बहुत्व ही उसी तरह से माया कल्पित ही हैं । यह भेद स्वाभाविक नहीं है ॥८-९॥

**माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन । मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर ॥१२॥ ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च । ब्रह्माऽहं
विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ॥१३॥ सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथाऽस्म्यहम् । पशुपक्षिस्वरूपाऽहं चांडालोऽहं च तस्करः ॥१४॥
व्याधोऽहं क्रूरकर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः । स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः ॥१५॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहंसर्वदा स्थिता ॥१६॥ न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किंचिच्चराचरम् । यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वन्ध्यापुत्रोपमं हि तत्॥१७॥
रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि । तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः ॥१८॥ अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते ।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत् ॥१९॥** हिमालय उवाच– **यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम् । तवैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि
कृपा मयि ॥२०॥** व्यास उवाच– **इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः । ननन्दुर्मुदितात्मानः पूजयंतश्च तद्वचः ॥२१॥ अथ देवमतं**

अनेक ईश्वरों की कल्पना भी मायाकृत है । यह कल्पना स्वाभाविक नहीं है । देह इन्द्रियाँ, इन्द्रियों का समूह इन सबों की वासना की कल्पना भी अविद्या ही करती है ॥१०॥ जीवों के भेद की भी प्रतीति का कारण भी अविद्या ही है, उस प्रतीति का दूसरा कोई भी कारण नहीं है । हे पर्वतराज ! गुणों के भेद के कारण जिस माया के भेद होते है ॥११॥ वह माया ही स्व एव पर इत्यादि भेदों को उत्पन्न करने वाली है । माया को छोड़कर उस भेद का कोई दूसरा कारण नहीं है । हे धरणीधर ! यह सम्पूर्ण जगत् मुझमें ही ओत-प्रोत है ॥१२॥ मैं ही ईश्वर हूँ । सूत्रात्मा हूँ, विराट् स्वरूपा भी मैं ही हूँ । मैं ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हूँ और गौरी सरस्वती तथा वैष्णवी लक्ष्मी हूँ ॥१३॥ सूर्य, तारे और चन्द्रमा भी में ही हूँ । मैं ही पशुस्वरूपा तथा पक्षी स्वरूपा हूँ । चाण्डाल और चोर स्वरूपा भी मैं ही हूँ ॥१४॥ मैं ही क्रूरकर्म करने वाला व्याघ्र हूँ और सत्कर्मों को करने वाला महाजन भी मैं ही हूँ । स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक का मेरा ही आकार है ॥१५॥ जो कुछ भी कहीं भी दिखायी अथवा सुनायी पड़ता है, उन सभी वस्तुओं के भीतर तथा बाहर व्याप्त होकर मैं ही स्थित हूँ ॥१६॥ संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें मैं व्याप्त नहीं होऊँ । यदि कोई ऐसी वस्तु है तो उसकी सत्ता उसी प्रकार से नहीं है, जिस तरह से बन्ध्या के पुत्र की सत्ता नहीं होती है ॥१७॥ जैसे एक ही रस्सी अज्ञानादि दोषों के कारण माला, सर्प आदि अनेक रूपों में प्रतीत होने लगती है, उसी तरह अकेली भी मैं ईश्वर, जीव आदि अनेक रूपों में प्रतीत होने लगती हूँ ॥१८॥ अधिष्ठान स्वरूपा मुझमें ही यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित होने के कारण प्रतीत होता है । अतएव सम्पूर्ण जगत् की सत्ता, मेरी ही सत्ता के कारण है ॥१९॥ **हिमालय ने कहा–** हे देवि ! आप जैसे बतला रही हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् आपका ही शरीर है, मैं आपके उस समष्ट्यात्मक रूप को देखना चाहता हूँ । यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो आप उसे मुझे दिखा दें ॥२०॥ **व्यासजी ने कहा–** हिमालय की इस तरह की बात को सुनकर विष्णु आदि सभी देवता प्रसन्न होकर उसकी बातों का समर्थन

ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा । अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरणी ॥२२॥ अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम् । द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ॥२३॥ दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः । विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम् ॥२४॥ नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम् । महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनलोको मुखं स्मृतम् ॥२५॥ तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः । इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः ॥२६॥ नासत्यदस्रौनासे स्तो गंधो घ्राणं स्मृतो बुधैः । मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी ॥२७॥ ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तितः । रसो जिह्वा समाख्याता यमा दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः ॥२८॥ दंताः स्नेहकला यस्य हासो मायाप्रकीर्तिता। सर्गस्त्वपांगमोक्षः स्याद्व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः ॥२९॥ लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्या धर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः । प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः स्रष्टा जगतीतले॥३०॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्यामहेशितुः । नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः ॥३१॥ कौमारयौवनजरा वयोऽस्या गतिरुत्तमा। बलाहकास्तु केशाः स्युः संध्ये ते वाससी विभोः ॥३२॥ राजञ्छ्रीजगदंबायाश्चंद्रमास्तु मनः स्मृतम् । विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम्॥३३॥ अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः । अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः॥३४॥ एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः।

किए ॥२१॥ देवताओं की अभिलाषा जानकर भक्तों की कामनाओं को पूरा करने वाली भगवती ने अपना रूप दिखाया ॥२२॥ वे सभी देवता देवी के विराट् रूप का दर्शन किए । द्युलोक ही उनका शिर था, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र थे ॥२३॥ दिशाएँ उनके श्रोत्र हैं,वेद ही उनकी वाणी है । वायु ही प्राण है विश्व ही हृदय है और पृथिवी को ही उनकी जंघा कहा गया है । आकाश ही उनकी नाभि का छिद्र है और ज्योतिश्चक्र ही उनका वक्षस्थल है । यह लोक ही उनकी ग्रीवा है और जनलोक मुख है ॥२५॥ तपोलोक ही उनका ललाट है उनका वह रूप सत्यलोक के नीचे है । इन्द्र आदि देवता उनकी भुजाएँ हैं और शब्द ही उनका श्रोत्र है ॥२६॥ दोनों अश्विनी कुमार ही उनकी दोनों नासिकाएँ हैं और विद्वानों ने गन्ध को ही उनका ध्राणेन्द्रिय कहा है। अग्नि को ही उनका मुख कहा गया है । दिन और रात्रि उनकी आँखों की दोनों पुतलियाँ हैं ॥२७॥ ब्रह्माजी ही उनके भौंहे हैं जल को ही उनका तालु कहा गया है । रस ही उनकी जिह्वा है और यम ही उनके दाढ़ हैं ॥२७॥ स्नेह कला ही उनके दाँत हैं और हँसी ही माया है । सृष्टि ही उनके कटाक्षपात हैं और लज्जा ही उनका ऊपरोष्ठ ॥२९॥ लोभ ही उनका अधरोष्ठ है अधर्म ही उनका पीठ है । प्रजापति ही उस रूप के मेढ्र हैं । जो जगत् के स्रष्टा कहे जाते हैं ॥३०॥ समुद्र ही उनके पेट हैं, और पर्वत ही देवी की हड्डियाँ हैं । नदियाँ ही नाड़ियाँ हैं वृक्ष ही केश है ॥३१॥ कौमारावस्था, युवावस्था और वार्धक्य ही उनकी उत्तम गतियाँ हैं । मेघ ही उनके केश हैं । दोनों सन्ध्यायें ही उनके दो वस्त्र हैं ॥३२॥ हे राजन् जनमेजय ! श्री जगदम्बा का चन्द्रमा ही मन है । श्रीहरि ही उनकी विज्ञान शक्ति हैं, और रुद्र को ही उनका अन्तःकरण कहा गया है ॥३३॥ श्रीजगदम्बा के श्रोणी प्रदेश (कमर) में ही सभी

ज्वालमालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया ॥३५॥ दंष्ट्राकटकटारावं वमंतं वह्निमक्षिभिः । नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं च यत् ॥३६॥ सहस्त्रशीर्षनयनं सहस्त्रचरणं तथा । कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥३७॥ भयंकरं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम् । ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे ॥३८॥ विकंपमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम् । स्मरणं च गतं तेषां जगदंबेयमित्यपि ॥३९॥ अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः । बोधयामासुरत्युग्रं मूर्छातो मूर्च्छितान्सुरान् ॥४०॥ अथ ते धैर्यमालंब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम् । प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकंठास्तु निर्जराः॥४१॥ बाष्पगदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे । देवा ऊचुः– अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान् ॥४२॥ कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात् । का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह ॥४३॥ स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः । तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत् ॥४४॥ नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके । सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये ॥४५॥ यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः। यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४६॥ यस्माच्च देवाः संभूताः साध्याः पक्षिण एव च । पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः॥४७॥

अश्व आदि जातियाँ स्थित हैं । अतललोक से लेकर महातल तक उनकी कमर के नीचे व्यवस्थित हैं ॥३४॥ वे देवता श्रेष्ठ जगदम्बा के इस प्रकार के रूप का दर्शन किए । उनका वह रूप उनके आकार की ज्वालाओं से मण्डित था और वे अपनी जीभ से अपने ओठ को चाट रही थीं ॥३५॥ उनके दाँतों से कटकट की ध्वनि निकलती थी और उनकी आँखों से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी । वे अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुयी थी और ब्राह्मण क्षत्रियोंपलक्षित सम्पूर्ण जगत् ही उनका हाथ था ॥३६॥ उनके उस रूप के अनेक शिर, नेत्र और चरण थे । करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान तथा करोड़ो विद्युतों के समान कान्तिमान् था उनका वह रूप ॥३७॥ उनका वह भयंकर और घोर रूप हृदय तथा नेत्रों में भय उत्पन्न कर रहा था । देवी के उस रूप को देखकर सभी देवता हाहाकार करने लगे ॥३८॥ भयभीत होकर सभी देवता काँप रहे थे और अत्यधिक मूर्छित हो गये । वे यह भी भूल गये कि ये जगदम्बा हैं ॥३९॥ उसके बाद देवी के उस रूप की चारों दिशाओं में चार वेद विद्यमान थे उन सबों ने मूर्छित देवताओं को उनकी मूर्छा से जगाया॥४०॥ उसके बाद वे सभी देवता धैर्य धारण करके तथा उत्तम श्रुति को याद किये । इसके बाद उन देवताओं के नेत्र प्रेमाश्रु से परिपूर्ण हो गये और उनका गला रुँध गया ॥४१॥ देवताओं ने अपने रुधे गले से देवी की स्तुति की । **देवताओं ने कहा–** हे माँ ! आप हम लोगों के अपराधों को क्षमा करें। हमलोग तो आप से ही उत्पन्न हुए है । आप हमलोगों की रक्षा करें ॥४२॥ हे देवेशि ! आप अपने क्रोध को समाप्त करें आपके इस रूप को देखकर हमलोग भयभीत हो गये हैं । हमलोग तो अज्ञानी देवगण हैं । यह भी नहीं जानते हैं कि आपकी स्तुति कैसे करें ॥४३॥ आप स्वयं यह नहीं जानती है कि आपका पराक्रम कितना है और कैसा है ? अतएव आपके पश्चात् उत्पन्न होने वाले हमलोगों को उसका ज्ञान कैसे हो सकता हैं ?॥४४॥ हे भुवनों की स्वामिनि ! आपको नमस्कार है । हे प्रणवस्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है । आपका ही वर्णन समस्त वेदान्त करते हैं और आप ह्रींकार की मूर्ति स्वरूपा

प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा । ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः ॥४८॥ सप्त प्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च ।
होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः ॥४९॥ यस्मात्समुद्रा गिरयः सिंधवः प्रचरंति च । यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः॥५०॥
यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः । ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः ॥५१॥ नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः । अध
ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः ॥५२॥ उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम् । तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम् ॥५३॥ व्यास उवाच–
इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदंबा कृपार्णवा । संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम् ॥५४॥ पाशांकुशवराभीतिधरं सर्वांगकोमलम् । करुणापूर्णनयनं
मंदस्मितमुखांबुजम् ॥५५॥ दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः । शांतचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः ॥५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते सप्तमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

हैं । आपसे ही अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त औषधियाँ उत्पन्न हुयी हैं, ऐसे सर्वस्वरूप आपको नमस्कार है ॥४५-४६॥ आप से ही सभी देवता, उत्पन्न
हैं, साध्य देवगण उत्पन्न हैं, पक्षीगण, पशु तथा सभी मनुष्य उत्पन्न हैं । ऐसे सर्वस्वरूप आपको नमस्कार है ॥४७॥ प्राण, अपान, ब्रीहि यव, तपस्या, श्रद्धा,ऋत
(कर्म) ब्रह्मचर्य विधि आप से ही उत्पन्न हैं,ऐसे आपको नमस्कार है । आपसे ही सातो प्राण, सातो समिधाएँ, सातो होम तथा सातो लोक उद्भूत हैं उस
सर्वात्मा स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४९॥ जिस आप से सभी समुद्र, सभी पर्वत, सभी नदियाँ, सभी औषधियाँ तथा सभी रस उत्पन्न होते हैं,उस आपको
बारम्बार नमस्कार है ॥५०॥ जिस आप से यज्ञ उत्पन्न हुए, दीक्षाएँ, यूप, दक्षिणाएँ, ऋक्, यजुः तथा सामवेद उद्‌भूत हैं, उस सर्वात्मस्वरूप आपको नमस्कार
है ॥५१॥ हे मातः ! आपको सामने से, पीछे, से दोनों, पार्श्वों से ऊपर से तथा चारों दिशाओं से बारम्बार नमस्कार है ॥५२॥ दे देवेशि! आप अपने
इस दिव्य रूप को उपसंहृत करें और आपका जो पहले वाला अत्यन्त सुन्दर रूप है, उसे हमलोगों को दिखाइये ॥५२॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से भयभीत
देवताओं को देखकर कृपा के सागर स्वरूपा जगदम्बा ने अपने उस भयंकर रूप को समेट कर अपने सुन्दर रूप को दिखाया ॥५४॥ इस रूप में देवी के चारों
हाथों में पाश अंकुश वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा सुशोभित हो रहे थे । उनके सभी अंग अत्यन्त कोमल थे । उनके नेत्र करुणा से परिपूर्ण थे तथा उनका मुख मन्द
मुसुकान से सुशोभित था ॥५५॥ देवी के उस सुन्दरता को देखकर भयरहित गदगद वाणी वाले सभी देवता शान्तचित होकर देवी को प्रणाम किए॥५६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के तैंतिसवें अध्याय का शिव प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच– **क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम् । तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया ॥१॥ न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया । रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना ॥२॥ प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्माऽत्र जीवताम् । उपाधियोगात्संप्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत॥३॥ क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः । नानायोनिस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते ॥४॥ पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा । नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते ॥५॥ घटीयंत्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि । अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः ॥६॥ तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतं नरः । एतद्धि जन्मसाफल्यं यदाऽज्ञानस्य नाशनम् ॥७॥ पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशाऽपि च । अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी॥८॥ न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे । प्रत्युताशा ज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम् ॥९॥ अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशंति हि । ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत् ॥१०॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं संपादयेन्नरः । कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यावश्यकम् ॥११॥**

(देवी गीता– ४) देवी द्वारा ज्ञानोपदेश

श्रीदेवी ने कहा– कहाँ तो मन्द भाग्य वाले आप सभी देवता और कहाँ तो मेरा यह अत्यन्त अद्भूत रूप फिर भी अपने भक्त वत्सल नामक गुण से प्रेरित होकर मैंने अपना यह रूप दिखाया है ॥१॥ मेरी कृपा के विना वेदाध्ययन, योग, दान, तपस्या तथा यज्ञ के द्वारा मेरे इस रूप का दर्शन नहीं हो सकता है ॥२॥ हे राजन् ! आप जो पहले प्रसंग चल रहा था उसे सुनें । उपाधि के संबंध के ही कारण ही जीवों को कर्तृत्व आदि गुण प्राप्त हैं ॥३॥ जीव अनेक प्रकार के पाप-पुण्य के कारण रूप कर्मो को करता है और अपने उन किए हुए कर्मों के ही कारण वह अनेक योनियों में जाकर सुख दुःख इत्यादि भोगों को प्राप्त करता है ॥४॥ पुनः वह अपने कर्मो के संस्कार के ही कारण अनेक प्रकार के कर्मों को करते हुए और उसके फलरूप से सुख-दुःख आदि भोगों को भोगता रहता है ॥५॥ वह घटी यंत्र के समान निरन्तर इस संसार में चलता ही रहता है, उसको विश्राम कभी भी प्राप्त नहीं होता है । इस संसार का मूल अज्ञान ही है और उसी के कारण उसे काम तथा कर्मों को करना पड़ता है ॥६॥ अतएव अज्ञान का ही नाश करने के लिए मनुष्य को सदा प्रयत्न करना चाहिए । मानव जीवन की यही सफलता है कि वह अपने अज्ञान का नाश कर दे ॥७॥ श्रेष्ठ विद्या ही पुरुषार्थों की समाप्ति, जीवन्मुक्ति की प्राप्ति की दशा प्रदान करने तथा अज्ञान को नष्ट करने में समर्थ है ॥८॥ हे हिमालय ! अज्ञान से उत्पन्न कर्म अथवा उपासना उस अज्ञान को विनष्ट करने में समर्थ नहीं हैं; किञ्च कर्म के द्वारा आशा तथा अज्ञान का नाश संभव नहीं है ॥९॥ अनर्थों को उत्पन्न करने वाले कर्म बार-बार होते रहते

ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः । सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च ॥१२॥ इति केचिद्वदंत्यत्र तद्विरोधान्न संभवेत् । ज्ञानाद्धृद्ग्रंथिभेदः
स्याद्धृद्ग्रथौ कर्मसंभवः ॥१३॥ यौगपद्यं न संभाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः । तमः प्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न संभवि ॥१४॥ तस्मात्सर्वाणि कर्माणि
वैदिकानि महामते । चित्तशुद्ध्यंतमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः ॥१५॥ शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसंभवः । तावत्पर्यंतमेव स्युःकर्माणि न
ततः परम् ॥१६॥ तदंते चैव संन्यस्य संश्रयेद्गुरुमात्मवान् । श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः ॥१७॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतंद्रितः।
तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत् ॥१८॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम् । ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते ॥१९॥
पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः । तत्पदस्य च वाच्यार्थो गिरेऽहं परिकीर्तितः ॥२०॥ त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः ।
उभयो रैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः ॥२१॥ वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह । लक्षणाऽतः प्रकर्तव्या तत्त्वयोः श्रुतिसंस्थयोः ॥२२॥

हैं । कर्मों से ही राग उत्पन्न होता है । राग से द्वेष उत्पन्न होता है और द्वेष से महान् अनर्थ होता है ॥१०॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह हर प्रकार
से ज्ञान का सम्पादन करे । 'कुर्वन्नेवेहकर्माणि' इस श्रुति के अनुसार कर्मों को भी करना आवश्यक है ॥११॥ ज्ञान से ही कैवल्य पद की प्राप्ति होती है।
अतएव ज्ञान का सहायक होने के कारण हितकारी कर्म और ज्ञान दोनों हि कैवल्य पद की प्राप्ति में अपेक्षित होते हैं ॥१२॥ इस तरह से कुछ लोग कहा
करते हैं, किन्तु ज्ञान और कर्म में परस्पर में विरोध है । अतएव दोनों के समुच्चय का होना संभव नहीं है । ज्ञान के द्वारा हृदय की ग्रन्थि का नाश होता
है और हृदय की ग्रंथि के रहने पर ही कर्मों का होना संभव है ॥१३॥ अतएव विरोध के ही कारण कर्म तथा ज्ञान के समुच्चय का होना संभव नहीं है।
कर्म और ज्ञान का यौगपद्य उसी तरह संभव नहीं है जिस तरह अन्धकार तथा प्रकाश का यौगपद्य का होना संभव नहीं है ॥१४॥ अतएव हे महामते !
कर्मों के द्वारा केवल अन्तःकरण की ही शुद्धि होती है । अतः अन्तःकरण की शुद्धि के लिए समस्त वैदिक कर्मों को प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ॥१५॥
शम, दम, तितिक्षा,वैराग्य तथा अन्तःकरण की शुद्धि इतने ही मात्र कर्मों के प्रयोजन हैं । उसके पश्चात् कर्मों का कोई भी प्रयोजन नहीं रह जाता है ॥१६॥
अन्तःकरण की शुद्धि हो जाने के पश्चात् ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह संसार से विरक्त होकर गुरु की शरण में जाय । आचार्य को श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ
होना चाहिए ऐसे गुरु की निर्व्याज भक्ति के द्वारा सेवा करें ॥१७॥ वह सावधानी पूर्वक वेदान्तशास्त्र का श्रवण करे और सदैव 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य का
विचार करे ॥१८॥ 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं। ऐक्य का ज्ञान हो जाने पर अधिकारी निर्भय होकर मेरे स्वरूप
को ही प्राप्तकर लेता है ॥१९॥ हे हिमालय ! पदार्थज्ञान पूर्वक ही वाक्यार्थ ज्ञान होता है । तत्त्वमसि इस वाक्य के 'तत्' का वाच्यार्थ
मैं ही हूँ ॥२०॥ 'त्वम्' पद का वाच्यार्थ जीव ही है । और विद्वानों का कहना है कि इन दानों की एकता 'असि' पद के द्वारा बतलायी जाती है ॥२१॥

चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य संभवः । तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत् ॥२३॥ देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता । स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म संपद्यते नरः ॥२४॥ पञ्चीकृतमहाभूतसंभूतः स्थूलदेहकः । भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम् ॥२५॥ मिथ्याभूतोऽयमाभाति

चूँकि 'तत्' एवं 'त्वम्' इन दोनों के वाच्यार्थ परस्पर में विरुद्ध हैं । अतएव दोनों की एकता संभव नहीं है । अतएव श्रुति के तत् एवं त्वम् दोनों पदों में लक्षणा करनी चाहिए ॥२२॥ उन दोनों का लक्ष्यार्थ चिन्मात्र है । इस तरह दोनों चिन्मात्रों की एकता होने में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । इस तरह दोनों चिन्मात्रों की एकता को जानकर उन दोनों में अभेद हो जाता है और ज्ञाता पुरुष और मुझमें अभेद हो जाता है ॥२३॥ जिस तरह से सोऽयं देवदतः इस वाक्य में लक्षणा होती है, उसी तरह की लक्षणा 'तत्त्वमसि' वाक्य के 'तत्' एवं 'त्वम्' पद में भी जाननी चाहिए । इस जीव और ब्रह्म की एकता को जानकर जीव स्थूल शरीर से रहित होकर ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ॥२४॥

विशेष– 'सोऽयं देवदतः' इस वाक्य में लक्षणा का प्रकार इस प्रकार होती है । मुख्यार्थ का वाध होने पर ही शब्द की लक्षणाशक्ति की प्रवृति होती है । अतएव सः पदका वाच्यार्थ अतीत देश कालावच्छिन्न देवदत्त, और अयं पद का वाच्यार्थ है वर्तमान देश कालावछिन्न देवदत्त । किन्तु जो देवदत्त अतीत देशकालावच्छिन्न होगा वह वर्तमान देशकालावच्छिन्न नहीं हो सकता है । अतएव उन दोनों वाच्यार्थों की एकता नहीं हो सकती है । किन्तु जो सामानाधिकरण्य वाक्य होता है, वह एक ही अर्थ का बोधक होता है । 'भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन् अर्थे वृत्तिः समानाधिकरण्यम्।' यही समानाधिकरण्य का लक्षण है । अतएव इस वाक्य के अर्थ की एकता का प्रतिपादन करने के लिए यहाँ भागत्याग लक्षण की प्रवृत्ति होती है । इस लक्षणा के द्वारा दोनों पदों के वाच्यार्थ के अतीत देशकालावच्छिन्न तथा वर्तमानदेशकालावच्छिन्न' रूप अंश का परित्याग हो जाता है, दोनों पदों के लक्ष्यभूत अर्थ देवदत्त मात्र अवशिष्ट रह जाता है । उन दोनों देवदत्तों की एकता स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का विरोध भी नहीं है। इस तरह इस वाक्य के लक्ष्यार्थ देवदत्त की एकता की सिद्धि हो जाती है ।

इसी तरह 'तत्त्वमसि' इस सामानाधिकरण्य वाक्य के द्वारा जीव तथा ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया जाता है । इस वाक्य के 'तत्' पद का वाच्यार्थ सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चिन्मात्र है । और 'त्वम्' पद का वाच्यार्थ है आल्पज्ञत्वादि विशिष्ट चिन्मात्र है । इन दोनों के परस्पर में विरोधी होने के कारण उनकी एकता नहीं हो सकने के कारण मुख्यार्थ का बाध होने के कारण यहाँ भागत्यागलक्षण की प्रवृत्ति होती है । उसके फलस्वरूप दोनों पदों के वाच्यार्थ के विशेषणांश 'सर्वज्ञत्वदि विशिष्ट' तथा 'अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट रूप अर्थ का परित्याग हो जाता है । और अवशिष्ट लक्ष्यार्थभूत दोनों 'चिन्मात्रों' की एकता इस लक्षणा वृत्ति के द्वारा हो जाती है । इस तरह सिद्ध होता है कि 'तत्त्वसि' वाक्य के द्वारा ब्रह्म और जीव की एकता का प्रतिपादन किया जाता है ।

स्फुटंमायामयत्वतः । सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर ॥२६॥ ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चकसंयुतम् । मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः ॥२७॥ अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः । द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः ॥२८॥ अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः। देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर ॥२९॥ उपाधिविलये जाते केवलात्माऽवशिष्यते । देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाःसंति सर्वदा ॥३०॥ पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते । नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते ॥३१॥ न जायते म्रियते तत्कदाचिन्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥३२॥ हतं चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥३३॥ अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जंतोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमस्य ॥३४॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३५॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । आत्मेंद्रियमनोयुक्तं

पञ्चीकृत महाभूतों से यह स्थूल शरीर उत्पन्न होता है । यही सभी कर्मों के फल के भोग का आश्रय है तथा यही जरा व्याधि इत्यादि दुःखों से ग्रस्त होता है।।२५।। चूँकि यह शरीर मायामय है अतएव मिथ्या है । हे नगेश्वर (हिमालय) ! यह मेरी आत्मा की स्थूल उपाधि है । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण मन तथा बुद्धि इन सत्रह अवयवों वाले शरीर को तत्त्वज्ञ पुरुषों ने सूक्ष्म शरीर बतलाया है ।।२६-२७।। यह सूक्ष्म शरीर अपञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न होता है । यह आत्मा की दूसरी उपाधि है । यही शरीर सुख तथा दुःख का अवबोधक होता है ।।२८।। यह जो आनन्द और अनिर्वचनीय अविद्या नामक उपाधि है, हे नगेश्वर! यही आत्मा की तृतीय उपाधि है । इसीको कारण शरीर कहते है ।।२९।। जब इन समस्त उपाधियों का नाश हो जाता है तो केवल आत्मा ही बच जाता है। इन तीनों शरीरों के भीतर पञ्चकोश सदा ही बने रहते हैं । (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय ये पञ्चकोश कहलाते हैं) ।।३०।। जब पञ्चकोश का परित्याग हो जाता है तो ब्रह्मपुच्छ की प्राप्ति होती है । ब्रह्म पुच्छ ही मेरा रूप है । 'नेति नेति' कहकर उस रूप का वर्णन करने में असमर्थ श्रुति मौन हो जाती है ।।३१।। आत्मा न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न तो यह किसी काल में उत्पन्न हुआ और न होगा । यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत, प्राचीन और शरीरों के विनष्ट होते रहने पर भी नहीं विनष्ट होने वाला है ।।३२।। यदि किसी मारने वाले को कोई मारने वाला मारता है और मारे गये को मृत मानता है तो यह दोनों तत्त्वज्ञ नहीं हैं । क्योंकि आत्मा न तो किसी को मारता है और न तो किसी के द्वारा मारा जाता है ।।३३।। यह आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और महान से भी महान है । यह आत्मा प्राणी की हृदय गुफा में रहता है । परमेश्वर की कृपा से संकल्प विकल्प से रहित पुरुष इसका साक्षात्कार करके शोक से रहित हो जाते हैं ।।३४।। आत्मा को ही रथी जानों और शरीर को रथ जानों । बुद्धि को ही सारथि जानो और मन को लगाम

भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥३६॥ यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कश्च सदाऽशुचिः । न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥३७॥ यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥३८॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः । सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम् ॥३९॥ इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना । भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च ॥४०॥ योगवृत्तः पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम्। देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः ॥४१ ॥ हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः । ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम्॥४२॥ एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात् । समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः ॥४३॥ समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः । ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरीम् ॥४४॥ प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ । निवृत्तविषयाकांक्षो वीतदोषो विमत्सरः ॥४५॥ भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले । हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ॥४६॥ रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत् । ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ॥४७॥ वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम् । अखंडं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखांतरे ॥४८॥ इति ध्यानेन मां

समझो॥३५॥ इन्द्रियों को ही इस शरीर रूपी रथ का घोड़ा बतलाया गया है और रूप, रस आदि विषयों को ही गोचर भूमि बतलाया गया है । मनीषियों ने इन्द्रिय और मन से युक्त आत्मा को भोक्ता बतलाया है ॥३६॥ जिन अज्ञानी जीवों का मन वश में नहीं रहता है, ऐसे अपवित्र जीव उस कैवल्य पद को नहीं प्राप्त करके संसार में ही संचरण करते रहते हैं ॥३७॥ अपने मन को वश में रखने वाला और पवित्रपुरुष उस कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है जिसके कारण उसे पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है ॥३८॥ जिसका विज्ञान ही सारथि है और मन रूपी लगाम जिसके वश में है वह इस संसार मार्ग को पार करके मेरे परात्पर पद को प्राप्त कर लेता है ॥३९॥ इस तरह से श्रुति तथा मति के द्वारा आत्मा के स्वरूप का निश्चय करके, उपासक को चाहिए कि वह अपनी आत्मा रूप से मेरा ध्यान करे ॥४०॥ पहले योगाभ्यास करके उपासक को तीन अक्षरों और उनके अर्थ का ध्यान करना चाहिए । इसे ही देवी प्रणव कहते है ॥४१॥ देवी प्रणव का हकार स्थूल शरीर का बोधक है रकार सूक्ष्म शरीर का बोधक है । इसका इकार कारण शरीर को बतलाता है। ह्रींकर तुरीयावस्था को बतलाता है ॥४२॥ इस तरह से समष्टि शरीर में भी तीन बीजों को जानकर बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह समष्टि तथा व्यष्टि इन दोनों की एकताका चिन्तन करे ॥४३॥ समाधिकाल से पहले प्रेमपूर्वक इस तरह से ध्यान करके उसके पश्चात् आँखें बन्द करके जगदीश्वरी रूप से मेरा ध्यान करना चाहिए ॥४४॥ नासिका के भीतर संचरण करने वाले प्राण तथा अपान को एक साथ मिलाकर उपासक विषयों की आकांक्षा से रहित होकर, दोषों तथा मत्सर से रहित हो जाता है ॥४५॥ देवी की भक्ति से युक्त होकर पर्वत की कन्दरा में अथवा शब्द रहित किसी एकान्त स्थान में बैठकर विश्वस्वरूप हकार को रकार में विलीन करके तैजस रकार को ईकार में मिलाये और प्राज्ञस्वरूप ईकार को ह्रींकार में मिला दे ॥४६-४७॥ उसके पश्चात् उपासक वाच्य

राजन्साक्षात्कृत्य नरोत्तमः । मद्रूपएव भवति द्वयोरप्येकता यतः ॥४९॥ योगयुक्त्याऽनया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम् । अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत् ॥५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चविंशोऽयायः

हिमालय उवाच— **योगं वद महेशानि सांगं संवित्प्रदायकम् । कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने ॥१॥** श्रीदेव्युवाच— **न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले । ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ॥२॥ तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ । कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ ॥३॥ योगांगैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः । यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ॥४॥ प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं**

और वाचक से रहित, अखण्ड तथा द्वैतभाव से रहित मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करे ॥४८॥ हे हिमालय ! इस तरह से वह उत्तम पुरुष मेरे ध्यान के द्वारा मेरा साक्षात्कार करके मेरा स्वरूप प्राप्त कर लेता है । इस तरह से मेरे तथा उपासक की एकता हो जाती है ॥४९॥ योग के द्वारा मेरे परात्पर रूप का साक्षात्कार करने से उसी क्षण अज्ञान तथा उसके कार्य स्वरूप संसार का नाश हो जाता है ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के चौतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३४॥

(देवी गीता— ५) देवी द्वारा अनेक योगों का वर्णन

हिमालय ने कहा— हे महेश्वरी ! आप मुझे ज्ञान प्रदान करने वाले योग का उपदेश दें । जिस योग को करके मैं तत्त्वदर्शन करने के योग्य हो जाऊँ॥१॥ **श्रीदेवी ने कहा—** हे हिमालय ! योग न तो आकाश में है न पृथिवी पर है और न पाताल में ही है । योग तत्त्व के ज्ञाताओं ने जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता को ही योग कहा है ॥२॥ हे अनघ ! योग में बाधा उत्पन्न करने वाले छह दोष हैं उनके नाम हैं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य ॥३॥ योगीजन योग के अंगों द्वारा उन सबों का विनाश करके योग को प्राप्त कर लेते हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम ॥४॥ प्रत्याहार, धारण, ध्यान तथा

सार्धं समाधिना । अष्टांगान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने ।।५।। अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयाऽऽर्जवम् । क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ।।६।। तपः संतोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् । सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ।।७।। दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक। पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा ।।८।। वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपंचकम् । ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे ।।९।। अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः । पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ।।१०।। जानूर्वोरंतरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे । ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।।११।। सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम् । वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत् ।।१२।। भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम् । ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ।।१३।। करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ।। एकं पादधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे ।।१४।। ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् । इडयाऽऽकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ।।१५।। धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया । सुषुम्नामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।।१६।। नाड्या पिङ्गलयाचैव रेचयेद्योगवित्तमः । प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।।१७।। भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत् । मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ।।१८।। जपध्यानादिभिः सार्धं

समाधि ये योग के आठ अंग बतलाये गये हैं ।।५।। यम दश हैं अहिंसा का पालन, सत्य भाषण, किसी की वस्तु को नहीं चुराना (अस्तेय), ब्रह्मचर्य का पालन, दया, ऋजुता, क्षमा, धैर्य, मिताहार तथा शौच ।।६।। तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, सिद्धान्त का श्रवण, असत् कार्यों में लज्जा, सद्बुद्धि, मन्त्रका जप और होम ।।७।। हे पर्वतराज ! ये दश नियम मेरे द्वारा बतलाये गये हैं । पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन तथा वीरासन ये क्रमशः पाँच आसन बतलाये गये । दोनों पैरो के तालुओं को जंघे पर रखकर हाथ को पीठ की ओर से ले जाकर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को और बाँयें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ने को ही पद्मासन कहते हैं । इससे योगी के हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न होती है ।।८-१०।। जंघा और घुटनों के बीच में पैर के तालुओं को अच्छी तरह से स्थापित करके शरीर को सीधा करके बैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं ।।११।। अण्डकोश की शिरा के नीचे सीवन के दोनों ओर एड़ियों को अच्छी तरह अण्डकोश के नीचे रखकर तथा दोनों पैरों को हाथों से पकड़कर बैठने को भद्रासन कहते हैं । योगिजन इस आसन का बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । दोनों पैरों के दोनों जंघों पर दोनों घुटनों के नीचे के भाग में सीधी अंगुलि वाले दोनों हाथों को स्थापित करके बैठने को वज्रासन कहते हैं ।।१२-१३।। एक जाँघ के नीचे एक पैर को रखकर तथा शरीर को सीधा करके बैठने को योगीजन वीरासन कहते है ।।१४।। षोडशमात्रा के द्वारा बाहर की वायु को वायीं नाक से खींचे इसको पूरक प्राणायाम कहते हैं । फिर चौसठ मात्रा पर्यन्त उसको सुषुम्णा में रोके रखे इसको कुम्भक प्राणायाम कहते है । इसके बाद योगी को चाहिए कि वह उस वायु को बत्तीस मात्र के द्वारा दाहिनी नाक से छोड़े । इसे ही रेचक प्राणायाम कहते है । इन तीनों

सगर्भं तं विदुर्बुधाः । तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः ।।१९।। क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः । मध्यमः कंपसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ।।२०।। उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते । इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् ।।२१।। बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते। अङ्गुष्ठांगुलजानूरुमूलाधोलिंगनाभिषु ।।२२।। हृद्ग्रीवाकंठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि । भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशांते यथाविधि ।।२३।। धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते । समाहितेन मनसा चैतन्यांतरवर्तिना ।।२४।। आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते । समन्वयभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।।२५।। समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टांगलक्षणम् । इदानीं कथये तेऽहं मंत्रयोगमनुत्तमम् ।।२६।। विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग । चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।।२७।। तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः । तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः ।।२८।। प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी । इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी ।।२९।। शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा । दक्षिणे या पिंगलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।।३०।। सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी । तस्या मध्ये विचित्राख्ये

प्रकार के प्राणायामों को करने को योगिजन प्राणायाम कहते है ।।१५-१७।। इसकी क्रमशः अधिक मात्रा बढ़ाता रहे । पहले बारह बार प्राणायाम करे। फिर सोलह बार प्राणायाम करे ।।१८।। जिस प्राणायाम में जप और ध्यान आदि भी किए जाते हैं वह सगर्भ प्राणायाम कहलाता है । जप और ध्यान से रहित जो प्राणायाम होता है, उसे विगर्भ प्राणायाम कहते हैं ।।१९।। इस तरह से प्राणायाम करते समय जब शरीर से पसीना निकलने लगे तो वह अधम कोटि का प्राणायाम होता है । जब शरीर काँपने लगे तो वह मध्यम कोटि का प्राणायाम होता है । प्राणायाम करते समय यदि योगी जमीन छोड़कर ऊपर उठ जाय तो वह सर्वश्रेष्ठ प्राणायाम होता है ।।२०।। प्रणायाम का तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए जब तक उत्तम प्राणायाम की प्राप्ति न हो जाय। स्वच्छतापूर्वक अपने विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को ।।२१।। उनके विषयों से बलपूर्वक रोकने को ही प्रत्याहार कहते हैं । अंगूठे, एड़ी, घूटना, जंघा, गुदा, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य तथा मस्तक इन बारह स्थानों में विधिपूर्वक प्राणवायु को धारण करने को धारणा कहते हैं ।।२२।। चैतन्य के अन्तरवर्ती मन के द्वारा अपने अभीष्ट देवता का ध्यान करने को ही ध्यान कहते हैं । आत्मा तथा परमात्मा के समत्व की सदा भावना करने को ही ।।२३-२५।। मुनियों ने समाधि कहा है । इसी को अष्टाङ्ग योग कहते हैं । तुम्हें सर्वोत्तम मन्त्रयोग को बतलाता हूँ ।।२६।। हे हिमालय ! पञ्चभूतात्मक शरीर को ही विश्व कहा जाता है । चन्द्रनाड़ी सूर्यनाड़ी तथा अग्निनाड़ी के तेज से जीव और ब्रह्म की एकरूपता होती है ।।२७।। सम्पूर्ण शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों की स्थिति बतलायी जाती हैं। उन सबों में दश नाड़ियाँ प्रधान है । उनमें भी तीन नाड़ियाँ प्रधानतम हैं ।।२८।। ये तीनों नाड़ियाँ प्रधान हैं और उन सबों की स्थिति मेरुदण्ड में हैं । ये तीनों नाड़ियाँ चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि स्वरूपा है । मेरुदण्ड के वामभाग में इडा नाड़ी है । वह चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण की

इच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ॥३१॥ मध्ये स्वयंभूलिंगं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् । तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्मा बिंदुनादकम् ॥३२॥ तदूर्ध्वं तु शिखाकारा
कुण्डली रक्तविग्रहा । देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप ॥३३॥ तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसांतचतुर्दलम् । द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र
विचिंतयेत् ॥३४॥ तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् । वादिलांतषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम् ॥३५॥ मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो
विदुः । स्वशब्देन परं लिंगं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥३६॥ तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम् । मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः ॥३७॥
मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते । दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफांताक्षरान्वितम् ॥३८॥ विष्णुनाऽधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम् ।
तदूर्ध्वेनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥३९॥ कादिठांतदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् । तन्मध्ये बाणलिंगं तुसूर्यायुतसमप्रभम् ॥४०॥ शब्दब्रह्ममयं
शब्दानाहतं तत्र दृश्यते । अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥४१॥ आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् । तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं

है और चन्द्रस्वरूपिणी है ॥२९॥ जो नाड़ी साक्षात् अमृतस्वरूपिणी तथा शक्तिस्वरूपिणी है मेरुदण्ड की दाहिनी ओर पिङ्गला नाम की नाड़ी है । वह पुरुष
स्वरूपा तथा सूर्य स्वरूपा है ॥३०॥ इन दोनों नाड़ियों की बीच में सुषुम्णा नाड़ी है और वह अग्निस्वरूपा है । सुषुम्णा नाड़ी के बीच में विचित्रा नाम
की नाड़ी है । उसके बीच में इच्छा ज्ञान तथा क्रिया स्वरूप स्वयम्भु लिङ्ग है । वह करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाला है । उसके ऊपर माया
बीज 'ह्रीं' है वह शिवस्वरूप है । वह विन्दुनाद वाला है ॥३१-३२॥ उसके ऊपर लाल रंग की शिखा के आकार वाली कुण्डलिनी है । उसको देवीस्वरूप
बतलाया गया है । हे पर्वतराज ! वह मुझ से अभिन्न है ॥३३॥ उसके बाहरी भाग में स्वर्णिम कमल का ध्यान करना चाहिए । उसमें चार दल हैं । उन
पर व, श, ष, स, का ध्यान करना चाहिए ॥३४॥ उसके ऊपर छह दल वाले कमल का ध्यान करे उस कमल का वर्ण अग्नि के समान है। उससे हीरे
के समान कान्ति निकलती है । वह ब, भ, म, य, र, ल, इन छह अक्षरों से युक्त स्वाधिष्ठान चक्र है ॥३५॥ मूल आधार छह कोणों वाला है,. इसीलिए
उसे मूलाधार कहते हैं । स्वशब्द से परंलिङ्ग को कहा जाता है । इसीलिए उसे स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं ॥३६॥ उसके ऊपर नाभि प्रदेश में अत्यधिक कान्ति
सम्पन्न मणिपूरक चक्र है । मेघ तथा विद्युत के समान कान्ति वाला वह अत्यधिक तेजःसम्पन्न है ॥३७॥ मणि के समान कान्ति वाला होने के कारण
उस पद्म को मणिपद्म कहा जाता है । उस पद्म के दश दल हैं और वह ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ इन दश अक्षरों से युक्त है ॥३८॥
यह पद्म विष्णु के द्वारा अधिष्ठित है और विष्णु के साक्षात्कार का कारण है । उसके ऊपर अनाहत नामक पद्म है । उसकी कान्ति उगते हुए सूर्य के
समान है ॥३९॥ इस पद्म में बारह दल है । वे क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट तथा ठ इन बारह अक्षरों से युक्त हैं उसके बीच में
बाणलिङ्ग है उसकी कान्ति दश हजार सूर्य की कान्ति के समान है ॥४०॥ वह शब्दब्रह्म स्वरूप है और उसमें अनाहत शब्द सुनायी पड़ता है ।

षोडशपङ्कजम् ॥४२॥ स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम् । विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ॥४३॥ विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् । आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाऽधिष्ठितं परम् ॥४४॥ आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम् । द्विदलं हक्ष संयुक्तं पद्मं तत् सुमनोहरम्॥४५॥ कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः । एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ॥४६॥ सहस्त्रारयुतं बिंदुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् । इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम् ॥४७॥ आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः । गुदमेढ्रांतरे शक्तिस्तामाकुंच्य प्रबोधयेत्॥४८॥ लिंगभेदक्रमेणैव बिंदुचक्रं च प्रापयेत् । शंभुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिंतयेत् ॥४९॥ तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम् । पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम् ॥५०॥ षट्चक्रदेवतास्तत्र संतर्प्यामृतधारया । आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः ॥५१॥ एवमभ्यस्यामानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम् । पूर्वोक्ता दूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥५२॥ जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् । ये गुणाः संति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा ॥५३॥ ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा । इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम् ॥५४॥ इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम।

इसीलिए मुनियों ने उसे अनाहत पद्म कहा जाता है ॥४१॥ वह आनन्द सदन है और परम पुरुष के द्वारा अधिष्ठित उसके ऊपर विशुद्धि नामक पद्म है। उसमें सोलह दल है । वे दल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, और अः । इन सोलह स्वरों से युक्त हैं । उसकी धूम्रवर्ण की अत्यधिक कान्ति है । हंस स्वरूप परमात्मा का दर्शन कराकर यह जीव को विशुद्ध कर देता है, अतएव इसे विशुद्धिचक्र कहते हैं ॥४२-४३॥ विशुद्धिपद्म को आकाशचक्र भी कहते है, इसके ऊपर परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित आज्ञाचक्र हैं । वह दो दलों वाला अत्यन्त मनोहर चक्र है तथा 'ह एवं क्ष' इन दो वर्णों से युक्त है ॥४५॥ उसके ऊपर कैलास नामक चक्र है और उसके ऊपर रोहिणीचक्र है । हे सुव्रत ! इस प्रकार से आपको आधार चक्रों को मैंने बतलाया ॥४६॥ उसके ऊपर सहस्रारचक्र है और उसके ऊपर बिन्दुस्थान है । इस तरह से मैंने आपको सर्वोत्तम योगमार्ग का उपदेश दिया॥४६॥ सर्वप्रथम पूरक प्राणायाम के द्वारा आधारचक्र में मन को लगाना चाहिए । उसके बाद गुदा और लिङ्ग के बीच में विद्यमान कुण्डलिनी की वायु को समेटकर जगाना चाहिए ॥४८॥ उसके बाद लिङ्ग भेदन क्रम से बिन्दु चक्र को प्राप्त करना चाहिए । उसके बाद उस पराशक्ति को शम्भु के समान एकता प्राप्त के रूप में ध्यान करना चाहिए ॥४९॥ वहाँ शिवशक्ति के सम्मिलन से लाक्षारस के समान प्रवाहित होने वाले अमृत रस को लेकर योग की सिद्धि को प्रदान करने वाली माया नाम की शक्ति को पान कराये ॥५०॥ वहाँ पर अमृत की धारा से षट्चक्र के देवता को तृप्त करके उसे उसी मार्ग से मूलाधार में लाये।॥५१॥ इस तरह से प्रतिदिन अभ्यास करने वाले साधक के पहले से दूषित सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते है ॥५२॥ वह साधक जरा तथा मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है । जगत् की माता में जो गुण हैं, वे सभी गुण उस श्रेष्ठ साधक में आ जाते हैं । हे तात ! इस तरह से मैंने आपको उत्तम

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च ॥५५॥ तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात् । अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति ॥५६॥ तदाऽवयवयोगेनयोगी योगान्समभ्यसेत् । मदीयहस्तपादादावंगे तु मधुरे नग ॥५७॥ चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः । विशुद्ध चित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः ॥५८॥ यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत । तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत् ॥५९॥ मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते । न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ॥६०॥ द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् । तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ॥६१॥ एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः । इति योगविधिः कृत्स्नः सांगः प्रोक्तो मयाऽधुना । गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पंत्रत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

◆

वायुधारण योग को बतलाया ॥५३-५४॥ अब सावधानी पूर्वक आप धारणा नामक योग को सुनें । साधक को चाहिए कि देश तथा काल की सीमा से रहित अनन्त स्वरूपा देवी में वह अपने मन को लगाये ॥५५॥ जीव और ब्रह्म की एकता करने के कारण वह साधक शीघ्र ही तन्मय हो जाता है । अथवा यदि मल से युक्त मन शीघ्र नहीं सिद्ध होता है तो वह मेरे मनोहर हाथ, पैर अंगों में अपने मन को लगाता हुआ योगी योग का अभ्यास करे ॥५७॥ एक स्थान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् दूसरे स्थान में अपने चित्त को लगाये । जब उसका चित्त विशुद्ध हो जाय तब वह मेरे सम्पूर्ण रूप में अपने मन को लगाये॥५७॥ हे हिमालय ! उस मन्त्र के साधक का मन जब तक मेरे रूप में लीन न हो जाय तब तक उसे मन्त्र का जप और होम करते रहना चाहिए॥५९॥ मन्त्र के अभ्यास तथा योग के द्वारा ही ज्ञेय ब्रह्म का ज्ञान होता है । न तो योग के विना मन्त्र सहायक होता है और न तो मन्त्र के विना योग ब्रह्म की प्राप्ति में सहायक होता है ॥६०॥ दोनों का अभ्यास ही ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है । जिस तरह अन्धकार व्याप्त गृह में दीपक के द्वारा घट दिखायी देता है ॥६१॥ उसी तरह माया से आच्छन्न आत्मा मन्त्र के द्वारा दिखायी देने लगता है । इस तरह से मैंने अङ्गों के साथ सम्पूर्ण योग की विधि का उपदेश तुम्हें दिया है ॥६२॥ योग की इस विधि को गुरु के ही उपदेश से जाना जा सकता है, करोड़ो शास्त्रों के पढ़ने से इसे नहीं जाना जा सकता है॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३५॥

◆

षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच– **इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम् । भक्तया निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः ॥१॥ आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम् । अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणमिषच्च यत् ॥२॥ एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् । यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च यस्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च ॥३॥ यदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः । तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि ॥४॥ धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥५॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥६॥ यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चांतरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः । तमेवैकं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथा अमृतस्यैष सेतुः ॥७॥ अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः । स एषोंतश्चरते बहुधा जायमानः ॥८॥ ओमित्येव ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः तमसः परस्तात् । दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा संप्रतिष्ठितः ॥९॥ मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय । तद्विज्ञानेन**

(देवी गीता– ६) देवी के द्वारा ब्रह्म का निरूपण

श्रीदेवी ने कहा– हे राजन् ! इस तरह के योग से युक्त होकर आसन पर बैठकर अपनी स्वाभाविक भक्ति से मेरे ब्रह्म स्वरूप का ध्यान करे ॥१॥ मेरा वह ब्रह्म स्वरूप अत्यन्त सन्निकट भक्तों के हृदय रूपी गुफा में संचरण करने वाला परमपद स्वरूप है मेरे उस ब्रह्म रूप में ही समस्त चलने फिरने वाले, अपनी आँखें खोलने वाले, तथा श्वास लेने वाले जीव हैं, उसमें सब-के-सब समर्पित हैं ॥२॥ मेरा यह रूप समस्त चेतनों तथा अचेतनों से भी अणु है। उसी में समस्त लोक और उन लोकों में निवास करने वाले स्थित हैं। ऐसा तुम जानों ॥३॥ मेरा वही रूप अक्षर ब्रह्म है, सबों के प्राण, वाणी और मन स्वरूप है । वह सत्य स्वरूप, अमृत स्वरूप तथा ध्यान के द्वारा बेधने योग्य है । यह जानो ॥४॥ हे सौम्य ! उपनिषदों में वर्णित महास्त्रस्वरूप धनुष को लेकर उपासना रूपी तीक्ष्ण बाण का संधान करे । और भक्ति पूर्ण अन्तःकरण से धनुष को चढ़ाकर उस अक्षर ब्रह्म को लक्ष्य बनाये ॥५॥ प्रणव ही वह धनुष है, आत्मा ही बाण है, और ब्रह्म ही उसका लक्ष्य है । बाण के समान तन्मय होकर सावधानी पूर्वक उसका बेधन करना चाहिए ॥६॥ जिसमें पृथिवी और अन्तरिक्ष, सभी प्राणों के साथ मन भी ओत-प्रोत है उसी को तुम आत्मा रूप से जानो । अन्य सारी बातों को त्याग दो । यही संसार रूपी सागर को पार कर मोक्ष प्राप्ति कराने वाले सेतु के समान है ॥७॥ रथ के चक्के में लगे हुए आरों के समान सभी नाड़ियाँ लगी हुयी हैं, वही अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाला सबों के भीतर संचरण करता है ॥८॥ प्रणवोच्चारण पूर्वक आत्मा का तुम ध्यान करो । इस संसार-सागर को पार करने के लिए वही कल्याणकारी

परिपश्यंति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।।१०।। भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।११।। हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।१२।। न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः । तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।१३।। ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम् ।।१४।। एतादृगनुभवो यस्यस कृतार्थो नरोत्तमः । ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।।१५।। द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद्बिभेति न । न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न ।।१६।। अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत । मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम ।।१७।। नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित् । वसामि किंतु मज्ज्ञानिहृदयांभोजमध्यमे ।।१८।। मत्पूजाकोटिफलदं

है वह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुरी आकाश में स्थित है ।।९।। वह प्राणमय है प्राण तथा शरीर का नियमन करने वाला है। वह अत्यन्त भोग्य हृदय में स्थित है। ज्ञानी पुरुष उसका ही अपने विज्ञान के द्वारा साक्षात्कार करते है । वह मेरा रूप आनन्द स्वरूप तथा अमृत स्वरूप है तथा ज्ञानी पुरुषों को ही उसकी प्रतीति होती है ।।१०।। उस स्वेतर समस्त वस्तुओं से श्रेष्ठ परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की वासना रूपी ग्रन्थि विनष्ट हो जाती है । सभी प्रकार के संशय समाप्त हो जाते है और सभी कर्मों का नाश हो जाता है ।।११।। वह विरज तथा निष्कल बह्म हिरण्मय परमकोश में विराजमान है । वह अत्यन्त देदीप्यमान है ! वही सभी प्रकाशों को प्रकाशित करने वाला है । उसी को आत्मज्ञ पुरुष इस प्रकार से जानते हैं ।।१२।। उसके समक्ष न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न तो चन्द्रमा और न तो तारों का वहाँ प्रकाश होता है । वहाँ ये बिजलियाँ भी नहीं प्रकाशित होती हैं, तो यह अग्नि कहाँ से प्रकाशित होगा । उसी अक्षर ब्रह्म के प्रकाशित होने पर सब कुछ प्रकाशित होता है । उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है ।।१३।। यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, वह ब्रह्म ही पीछे है। वही सबों के बायें तथा दायें विद्यमान है । ब्रह्म ही नीचे और ऊपर भी फैला हुआ है । यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है । इस तरह का अनुभव जिस मनुष्य को होता है । वही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ है । उसका जीवन कृतार्थ है । वह सदा प्रसन्न रहने वाला ब्रह्मस्वरूप हो जाता है । वह न तो किसी प्रकार का शोक करता है और न तो किसी भी प्रकार की आकांक्षा करता ।।१५।। हे राजन् ! अपने से भिन्न से ही भय होता है । अपने से भिन्न किसी के न रहने के कारण उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है । वह कभी न तो मुझसे अलग होता है और न तो मैं उससे कभी भी अलग होती हूँ ।।१६।। हे हिमालय! वह ही मैं हूँ और मैं ही वह है ऐसा तुम निश्चित रूप से जानो मेरा ज्ञानी भक्त जहाँ पर रहता है, वहीं पर मेरा ज्ञान होता है ।।१७।। मैं न तो तीर्थ में हूँ न कैलास में हूँ, न बैकुण्ठ में रहती हूँ और न तो कहीं अन्यत्र रहती हूँ । मैं तो ज्ञानीभक्त के हृदय कमल में निवास करती हूँ ।।१८।। जिस भक्त को

सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम् । कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका ॥१९॥ विश्वंभरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः । ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम ॥२०॥ कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि । इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने ॥२१॥ शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित् । यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥२२॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः । येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः ॥२३॥ यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी । पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः ॥२४॥ पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन। तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग ॥२५॥ तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरुः परः । शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शंकरः॥२६॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग । कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत् ॥२७॥ अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः । इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया ॥२८॥ अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा । अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा

मेरा ज्ञान हो गया है, उसकी एक बार पूजा करने से मेरी करोड़ बार पूजन करने का फल मिलता है । उस ज्ञानी का वंश पवित्र हो जाता है । उसकी माता का जीवन सफल हो जाता है ॥१९॥ उसको धारण करने वाली भूमि पवित्र जो जाती है । जहाँ पर मेरा भक्त निवास करता है । हे पर्वत श्रेष्ठ ! जिसके विषय में तुमने पूछा है, वह सब कुछ मैंने तुम्हें सुना दिया । इस ज्ञान को आपने शीलवान भक्तियुक्त ज्येष्ठ पुत्र को बतलाना चाहिए ॥२०-२१॥ अथवा उपर्युक्त गुण से युक्त अपने शिष्य को बतलाना चाहिए किसी दूसरे को नहीं । जिसकी परंब्रह्म में सर्वोत्कृष्ट भक्ति होती है और परंब्रह्म के ही समान अपने आचार्य में भक्ति होती है ॥२२॥ उसी के हृदय में इन समस्त अर्थों का प्रकाश होता है । जो इस विद्या का उपदेश देने वाला होता है वही परमेश्वर है॥२३॥ इस विद्या का दान देने वाले गुरु का ऋण नहीं चुकाया जा सकता है, अतएव शिष्य सदा गुरु के सामने ऋणी ही बना रहता है । ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाले गुरु का महत्त्व जन्म देने वाले माता-पिता से भी अधिक होता है ॥२४॥ हे हिमालय ! पिता के द्वारा मिलने वाला जन्म तो नष्ट होता रहता है, किन्तु गुरु से प्राप्त होने वाला ब्रह्मजन्म कभी भी नष्ट नहीं होता है । इसलिए वेद भी बतलाता है कि कभी भी गुरु से द्रोह नहीं करना चाहिए॥२५॥ इसीलिए शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञान प्रदाता गुरु श्रेष्ठ है । शिवजी के रुष्ट हो जाने पर गुरु शिष्य की रक्षा कर लेते हैं किन्तु आचार्य के रुष्ट हो जाने पर शंकरजी उसकी रक्षा नहीं करते हैं ॥२६॥ अतएव शिष्य को चाहिए कि वह अपने हर प्रकार के प्रयत्न के द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करे । वह मन, वाणी तथा शरीर से गुरु की सेवा करने में तत्पर रहे ॥२७॥ यदि शिष्य ऐसा नहीं करता हैं तो वह कृतघ्न हो जाता है और कृतघ्न के लिए कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है । इन्द्र ने अथर्वा ऋषि को इस प्रतिज्ञा के साथ ब्रह्मविद्या प्रदान की थी कि यदि वे उसे किसी दूसरे को उस विद्या को प्रदान करेंगे तो इन्द्र उनका शिर काट देंगें ॥२८॥ अश्विनी कुमारों ने जब आकर अथर्वा ऋषि से उस ब्रह्मविद्या को माँगा तो अथर्वा ऋषि ने कहा कि यदि मैं तुम लोगों

वैद्यौ सुरोत्तमौ ॥२९॥ पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा । इति संकटसंपाद्या ब्रह्मविद्या नराधिप । लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर॥३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हिमालय उवाच– **स्वीयां भक्तिं वदस्वांब येन ज्ञानं सुखेन हि । जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः ॥१॥** श्रीदेव्युवाच– **मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप । कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तिसेगश्च सत्तम ॥२॥ त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा । सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात्॥३॥**

को वह विद्या प्रदान करुँगा तो इन्द्र हमारा शिर काट देंगे । अश्विनी कुमारों ने कहा कि इन्द्र यदि आपका शिर काट देंगे तो हमलोग आपके उस शिर को फिर से जोड़ देंगे । अश्विनी कुमारों ने पहले अथर्वा ऋषि के शिर को काटकर उसको कहीं सुरक्षित छिपा दिया और उनके धड़ से घोड़े के शिर को जोड़ दिया । महर्षि अथर्वा ने उस घोड़े के शिर से अश्विनीकुमारों को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया । उसके बाद इन्द्र ने आकर ऋषि के उस शिर को काट दिया । अश्विनीकुमारों ने देखा कि वह अश्व का शिर नष्ट हो गया तो उन लोगों ने महर्षि के वास्तविक शिर को उनके धड़ से जोड़ दिया । हे राजन्!॥२९॥ इस तरह से संकट सहकर भी ब्रह्मविद्या को प्राप्त करना चाहिए । हे हिमालय ! जिसने उस ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर लिया वह मनुष्य धन्य है । उस का जीवन सफल है ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३६॥

(देवी गीता– ७) भक्ति के भेद तथा ज्ञान की महिमा का वर्णन

हिमालय ने कहा– हे माँ ! मैं तो विरागहीन हूँ । मुझ जैसे स्वार्थी को भी सुखपूर्वक ज्ञान उदित हो जाय आप उस भक्ति को बतलाएँ ॥१॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे पर्वतराज ! मोक्ष की प्राप्ति के तीन मार्ग अत्यन्त विख्यात हैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग ॥२॥ उन तीनों में भक्तियोग अत्यन्त सुकर है । इसको आसानी से किया जा सकता है क्योंकि यह अत्यन्त सुलभ है, मन से ही करना पड़ता है और इसमें शरीर और चित्त को कोई पीड़ा भी

गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता । परपीडां समुद्दिश्य दंभं कृत्वा पुरःसरम् ॥४॥ मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी । परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च ॥५॥ नित्यं सकामो हृदयं यशोर्थी भोगलोलुपः । तत्तत्फलसमावाप्त्यै मानुषस्तेऽतिभक्तितः ॥६॥ भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः । तस्य भक्तिःसमाख्याता नगाधिप तु राजसी ॥७॥ परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च । वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयाऽनिशम् ॥८॥ इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः । करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नगसात्त्विकी ॥९॥ परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलंबनात् । पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते ॥१०॥ अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे । मद्गुणश्रवणं नित्यं ममनामानुकीर्तनम् ॥११॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम् । चेतसा वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा ॥१२॥ हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि । सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा ॥१३॥ मत्सेवातोऽधिकं किञ्चिन्नैव जानाति कर्हिचित् । सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वांछति ॥१४॥ परानुरक्त्या मामेव चिंतयेद् योह्यतंद्रितः । स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥१५॥ मद्रूपत्वेन जीवानां चिंतनं

नहीं होती है ॥३॥ मनुष्यों में विद्यमान गुणों के भेद के कारण यह भक्ति भी तीन प्रकार की होती है । जो व्यक्ति दूसरों को दुःख देनें के लिए अभिमान पूर्वक मात्सर्य एवं क्रोध से युक्त होकर भक्ति करता है, उसकी भक्ति तामसी होती है । जो व्यक्ति दूसरों को दुःख देने के लिए नहीं अपितु अपने ही कल्याण के लिए ॥४-५॥ किसी कामनाविशेष को हृदय में रखकर यश प्राप्त करने के लिए तथा भोगों को प्राप्त करने की इच्छा से विभिन्न प्रकार के फलों को प्राप्त करने के लिए मेरी भक्ति पूर्वक उपासना करता है ॥६॥ अपनी भेदबुद्धि के कारण मुझको अपने से भिन्न समझता है, वह अज्ञानी है । हे पर्वतराज! उसकी भक्ति राजसी भक्ति कहलाती है ॥७॥ हे पर्वतराज ! जो व्यक्ति अपने कर्मों को परमात्मा को समर्पित करता रहता है । जो यह समझता है कि मुझे अपने पापों को विनष्ट करने के लिए वेदोक्त कर्मों को अवश्य करना चाहिए ॥८॥ इस प्रकार अपने मन में निश्चित करके भेदबुद्धि को अपनाकर मेरी प्रसन्नता के लिए कर्मों को करता है, उसकी भक्ति सात्त्विक भक्ति है ॥९॥ भेदबुद्धि का अवलम्बन करने के कारण यह भक्ति परमाभक्ति को प्राप्त करा देने वाली होती है । पहले कही गयी दोनों (राजसी एवं तामसी) भक्ति परमाभक्ति को प्राप्त कराने वाली नहीं होती हैं ॥१०॥ अब मैं तुम्हें परमाभक्ति को बतला रहा हूँ, उसे तुम सुनो । मेरे गुणों को सदा सुनना मेरे नामों का कीर्तन करना ॥११॥ कल्याणकारी गुणों के आकारस्वरूपिणी मुझ में मन से सदा तेल की धारा के समान निरवच्छिन्न रूप से मेरा चिन्तन करना ही परमाभक्ति है ॥१२॥ इस भक्ति का प्रयोजन कभी भी दूसरा कुछ भी नहीं होता है । उसको मेरे सायुज्यसार्ष्टि सामिप्य तथा सालोक्य नाम की मुक्तियों में से किसी को भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती है ॥१३॥ उसमें सेव्य-सेवक भाव ही बना रहता है। वह मेरी सेवा से अधिक कुछ भी नहीं प्राप्त करना चाहता है । वह मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है ॥१४॥ अपने श्रेष्ठ भक्ति के द्वारा जो

कुरुते तु यः । यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥१६॥ चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः । सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा॥१७॥ नमते जयते चैवाप्याचांडालांतमीश्वरः । न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात् ॥१८॥ मत्स्थानदर्शनश्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा । मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतंत्रादिषु प्रभो ॥१९॥ मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा । प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिःस्वनः ॥२०॥ अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप । मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ॥२१॥ व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि । नित्यं यःकुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२२॥ मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सव कृतिस्तथा । जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर ॥२३॥ उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति । अहंकारादिरहितोदेहतादात्म्यवर्जितः ॥२४॥ प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् । न मे चिंतास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु॥२५॥ इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता । यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥२६॥ इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः। तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥२७॥ भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम् । वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥२८॥

निरन्तर मेरा चिन्तन करता रहता है । वह अपने से अभिन्न रूप से ही मुझको जानता है । कोई भेद बुद्धि नहीं रखता है ॥१५॥ वह सभी जीवों को मेरे ही रूप में देखता है । जैसा उसका अपने आत्मा के प्रति प्रेम होता है वैसा ही प्रेम वह परमात्मा से भी करता है ॥१६॥ चैतन्य की समानता के कारण जो भेदबुद्धि नहीं रखता है जो सर्वत्र वर्तमान वस्तुओं में मुझे सबों के रूप में देखकर ॥१७॥ मुझे सदा प्रणाम करता है, पूजन करता है, हे पर्वतराज! चाण्डाल आदि सभी जीव मेरा ही रूप हैं । भेदबुद्धि के नहीं होने के कारण वह किसी से भी द्रोह नहीं करता है ॥१८॥ उसकी मेरे स्थानों के देखने में मेरे भक्तों का दर्शन करने में, मेरे विषयक शास्त्रों का श्रवण करने में, तथा मेरे मंत्रों तथा तंत्रों आदि में श्रद्धा होती है ॥१९॥ उसकी बुद्धि मेरी भक्ति में व्याकुल रहती है, उसके शरीर में रोमाञ्च होता रहता है, उसकी आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होती रहती है और मुझमें प्रेम के कारण उसका कण्ठ रुँधा सा रहता है ॥२०॥ हे पर्वतराज् ! जो भक्त सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी, जगत् के कारणस्वरूपा, समस्त कारणों के भी कारणस्वरूपा मेरी अनन्या भक्ति से मेरी पूजा करता है ॥२१॥ तथा जो कंजूसी छोड़कर मेरे दिव्य नित्य-नैमितिक आदि व्रतों को सदा करता रहता है ॥२२॥ हे भूधर! जिसकी मेरे उत्सवों को देखने तथा स्वयं मेरे उत्सवों को करने की इच्छा सदा बनी रहती है ॥२३॥ जो देहाभिमान से रहित भक्त अहंकार से रहित होकर मेरे नामों को जोर-जोर से गा-गा कर नाचने लगता है ॥२४॥ मैंने जैसा कर्म किया है, उसी के अनुसार मुझे फल प्राप्त हो रहा है यह सोचकर उसको अपने शरीर आदि की रक्षा की भी चिन्ता नहीं रहती है ॥२५॥ इस तरह से जो मेरी भक्ति बतलायी गयी है, वही मेरी पराभक्ति है । मेरी उस भक्ति में मुझसे भिन्न कोई भी दूसरी वस्तु नहीं होती है ॥२६॥ हे भूधर ! जिसमें यह मेरी पराभक्ति वास्तविक रूप से उत्पन्न हो जाती है, उसी समय वह मेरे ज्ञान स्वरूप में लीन हो जाता

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग । न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं न गच्छति ॥२९॥ तत्र गत्वाऽखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति । तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग ॥३०॥ तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा । इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः ॥३१॥ मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजंति न । ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः ॥३२॥ कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम् । ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते ॥३३॥ विदिताऽविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम । यथादर्शे तथाऽऽत्मनि यथा जले तथा पितृलोके ॥३४॥ छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि । मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम् ॥३५॥ यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत् । ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम् ॥३६॥ शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः । करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते ॥३७॥ अनेकजन्मभी राजञ्ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना । ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् ॥३८॥ नोचेन्महान्विनाशः स्याज्जन्मैतद्दुर्लभं पुनः । तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा ॥३९॥ शमादिषट्कसंपत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च । तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम् ॥४०॥ तथेंद्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं

है ॥२७॥ भक्ति की जो पराकाष्ठ होती है, उसी को ज्ञान कहते हैं । वैराग्य की भी पराकाष्ठ को ज्ञान ही कहते हैं । इस तरह ये दोनों ही मेरा ज्ञान हैं॥२८॥ भक्ति के करने पर भी जिसको प्रारब्धवशात् ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है, वह शरीर त्यागने के बाद मणिद्वीप में जाता है ॥२९॥ वहाँ जाकर नहीं चाहकर भी समस्त भोगों को वह प्राप्त कर लेता है और अपने भोगों को भोग लेने पर उसे मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ॥३०॥ उस ज्ञान के द्वारा उसकी मुक्ति हो जाती है । मुक्ति ज्ञान से ही होती है किसी दूसरे साधन से नहीं । जिसको अपने हृदय में विद्यमान आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ॥३१॥ मेरे ही ज्ञान में उसका मन लगा रहता है, अतएव उसका उत्क्रमण नहीं होता है । वह ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्म स्वरूप होकर मुझे प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ ज्ञान तो गले में बँधे हुए सुवर्ण के समान है । अज्ञान के कारण उसका स्वरूप छिप जाता है । जब ज्ञान से अज्ञान का जो नाश होता है, वह पूर्व प्राप्त ज्ञान की प्राप्ति के ही समान है ॥३३॥ हे पर्वतराज ! मेरा शरीर ज्ञात तथा अज्ञात दोनों से भिन्न प्रकार का ही है । जिस तरह से दर्पण में प्रतिविम्ब पड़ता है । उसी तरह आत्मा में भी प्रातिविम्ब पड़ता है । जैसे जल में प्रतिवम्ब स्पष्ट दिखायी देता है, उसी तरह पितृलोक में भी वह दिखायी पड़ता है॥३४॥ जैसे छाया और धूप दोनों एक दूसरे से पृथक् हैं, उसी तरह मेरे लोक मणिद्वीप में जो ज्ञान प्राप्त होता है वह द्वैत की भावना से रहित होता है ॥३५॥ यदि वैराग्यवान व्यक्ति ज्ञान हुए बिना ही मर जाता है, तो वह एक कल्प तक ब्रह्मलोक में निवास करता है । उसके पश्चात् ॥३६॥ उसका जन्म पवित्र धनवानों के घर में होता है । वहाँ पर वह साधन करता है और उसको अन्त में ब्रह्मज्ञान हो जाता है ॥३७॥ हे राजन् ! अनेक जन्मों में जाकर कहीं ज्ञान उत्पन्न होता है । एक जन्म में ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है । अतएव साधक को ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदा प्रयासरत रहना चाहिए ॥३८॥ यदि मनुष्य

तनोस्तथा । अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः ॥४१॥ साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः । ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम्॥४२॥ तस्माद्राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत् । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥४३॥ घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम् । सततं मंथयितव्यं मनसा मंथानभूतेन ॥४३॥ ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थःस्यादिति वेदांतडिंडिमः । सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

हिमालय उवाच– **कानि स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले । मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च ॥१॥ व्रतान्यपि तथा यानि**

ऐसा नहीं करता है तो फिर उसकी बहुत बड़ी क्षति हो जाती है, क्योंकि मानव का जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है । उसमें भी ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न होकर वेद का ज्ञान दुलर्भ होता है ॥३९॥ उसी तरह शम आदि षट्क की प्राप्ति दुर्लभ होती है । उसी तरह से योग की सिद्धि भी दुलर्भ होती है । उसी तरह से उत्तम गुरु की प्राप्ति का होना ये सब के सब संसार में दुलर्भ हैं । उसी तरह से इन्द्रियों की पटुता तथा शरीर का संस्कार युक्त होना दुर्लभ है। अनेक जन्मों के पुण्य के एकत्रित होने पर मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है ॥४१॥ इस तरह से साधना के सफल होने पर भी जो मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता है, उसका जन्म लेना व्यर्थ है ॥४२॥ अतएव हे राजन् ! अपनी शक्ति के अनुसार ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है ॥४३॥ जिस तरह दुग्ध में घी छिपा रहता है, उसी तरह प्रत्येक मनुष्य में ज्ञान छिपा रहता है । उसको प्राप्त करने के लिए मन रूपी मथानी से मंथन का कार्य करते रहना चाहिए ॥४४॥ वेदान्तशास्त्र का यह डिंडिमघोष है कि ज्ञान की प्राप्ति करके मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है । इस तरह से मैंने सब कुछ संक्षेप में दिया अब क्या सुनना चाहते हो ?॥४५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सैतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३७॥

(देवी गीता– ८) देवी के तीर्थ, व्रत, उत्सव तथा पूजन के प्रकार का वर्णन

हिमालय ने पूछा– हे देवेशि ! भूलोक में मुख्य, पवित्र तथा देवी को अत्यन्त प्रिय कौन-कौन से तीर्थ द्रष्टव्य है ॥१॥ हे मातः ! आपको सन्तुष्ट

तुष्टिदान्युत्सवा अति । तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः ॥२॥ श्रीदेव्युवाच— **सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः । उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी ॥३॥ तथापि भक्तवात्सल्यत्किंचित्किंचिदथोच्यते । शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराजवचो मम ॥४॥ कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता । मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम् ॥५॥ तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथैव च । हिंगुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च ॥६॥ शाकंभर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम् । श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च ॥७॥ विंध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम् । अन्नपूर्णामहास्थानं कांचीपुरमनुत्तमम् ॥८॥ भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च । श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च ॥९॥ नीलांबायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके ॥ जांबूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम् ॥१०॥ गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम्। मदालसा परं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे ॥११॥ वेदारण्यं महास्थानं सुंदर्या समधिष्ठितम् । एकांबरं महास्थानं पराशक्त्या प्रतिष्ठिम् ॥१२॥ मादलसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च । तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम् ॥१३॥ वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम् । श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम् ॥१४॥ श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम् । भूमंडले क्षेत्ररत्नं महामायाऽधिवासितम् ॥१५॥**

करने वाले व्रत, उत्सव, आदि जो है, उन्हें भी हमें कृपा करके बतलाइये जिससे कि मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥२॥ **श्रीदेवी ने कहा—** मैं सर्वस्वरूपिणी हूँ अतएव मेरे सभी स्थान दर्शनीय हैं, सभी काल मेरे लिए व्रतात्मक हैं, और मेरे उत्सव सभी कालों में होते रहते हैं ॥३॥ फिर भी भक्तवत्सलता के कारण मैं कुछ-कुछ बतला रही हूँ । हे पर्वतराज ! सावधानी पूर्वक मेरी बात को सुनें ॥४॥ कोलापुर नामक मेरा महास्थान है, जहाँ पर लक्ष्मी का महानिवास होता है। दूसरे स्थान का नाम मातृपुर है जहाँ रेणुका देवी का स्थान है । मेरा तीसरा स्थान तुलजापुर है । ऐसे ही सप्तशृङ्ग हिंगुलादेवी का स्थान, तथा ज्वालादेवी का स्थान ॥६॥ शाकम्भरी देवी का स्थान, भ्रामरी देवी का उत्तम स्थान रक्तदन्तिका देवी का स्थान, दुर्गादेवी का स्थान ॥७॥ विन्ध्याचल पर रहने वाली विन्ध्याचली देवी का स्थान सर्वोत्तम है । इसी तरह अन्नपूर्णा देवी का स्थान काशी तथा काञ्चीपुरी का स्थान ये दोनों अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥८॥ भीमादेवी तथा विमला देवी के स्थान भी दशनीय हैं ॥९॥ नील पर्वत के ऊपर नीलाम्बा का स्थान है । जाम्बूनदेश्वरी का स्थान तथा श्रीनगर भी शुभ स्थान है ॥१०॥ नेपाल में मेरा गुह्यकाली का स्थान प्रतिष्ठित स्थान है । चिदम्बर में मेरा श्रेष्ठ मदालसा देवी का स्थान है ॥११॥ सुन्दरी देवी के द्वारा अधिष्ठित मेरा वेदारण्य में बहुत बड़ा स्थान है । पराशक्ति का प्रतिष्ठित स्थान एकाम्बर है ॥१२॥ मदालसा देवी तथा योगेश्वरी देवी का स्थान प्रतिष्ठित है । चीन देश में नील सरस्वती का स्थान प्रख्यात है । वैद्यनाथ में बगला देवी का स्थान सर्वोत्तम है । भुवनेश्वरी देवी का स्थान मणिद्वीप है ॥१४॥ त्रिपुराभैरवी देवी का स्थान तथा कामाक्ष्या देवी का योनिमण्डल स्थान है । पृथिवी पर क्षेत्ररत्न नामक स्थान महामाया के द्वारा अधिष्ठित है ॥१५॥ इससे बढ़कर पृथिवी पर कोई दूसरा

नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले । प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला ॥१६॥ तत्रत्या देवता सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः । पर्वतेषु वसंत्येव महत्यो देवता अपि ॥१७॥ तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः । नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात् ॥१८॥ गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमतुष्करमीरितम् । अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी ॥१९॥ नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिंगधारिणी । पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढी चरितस्तथा ॥२०॥ चण्डमुण्डीमहास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी । भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी ॥२१॥ चन्द्रिका तु हरिश्चंद्रे श्रीगिरौ शांकरी स्मृता । जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरी ॥२२॥ शांकरी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे । केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी ॥२३॥ भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मंगला स्मृता । स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायंभुव्यपि नाकुले ॥२४॥ कनखले भवेदुग्रा विश्वेशी विमलेश्वरे । अट्टहासे महानन्दा महेंद्रे तु महातका ॥२५॥ भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः । भवानी शांकरी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके ॥२६॥ अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये । गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भाद्रकर्णकि ॥२७॥ उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे

स्थान नहीं है । वहाँ प्रत्येक महीने में देवी रजस्वला होती हैं ॥१६॥ वहाँ के सभी देवता पर्वत स्वरूप हैं । पर्वतों में बड़े-बड़े देवताओं का निवास है॥१७॥ विद्वानों ने वहाँ की सम्पूर्ण पृथिवी को देवी स्वरूप बतलाया है । कामाक्ष्या देवी के योनि मण्डल से श्रेष्ठ देवी का कोई स्थान नहीं है ॥१८॥ गायत्री देवी का सर्वश्रेष्ठ स्थान पुष्करक्षेत्र है । अमरकण्टक में चण्डिका देवी का निवास है और प्रयागक्षेत्र में पुष्करेक्षिणी देवी का निवास है ॥१९॥ नैमिषक्षेत्र नामक महास्थान में लिङ्गधारिणी देवी का स्थान है । उन्हीं का नाम ललितादेवी है । पुष्कराक्ष में पुरुहुता देवी तथा आषाढी में रति देवी बिराजती हैं ॥२०॥ चण्डमुण्डी नामक स्थान में चण्ड और मुण्ड का विनाश करने वाली परमेश्वरी दण्डिनी का स्थान है । भारभूति में भूतिदेवी और नाकुल में नकुलेश्वरीदेवी का स्थान है ॥२१॥ हरिश्चन्द्र में चन्द्रिका देवी और श्रीगिरिशांकरी देवी विराजती हैं । जप्येश्वर में त्रिशूला देवी का स्थान है और आम्रातकेश्वर में सूक्ष्मादेवी का स्थान है ॥२२॥ महाकाल क्षेत्र में शांकरी देवी विराजती हैं और मध्यम नामक स्थान में शर्वाणी देवी विराजती हैं । केदार नामक महाक्षेत्र में मार्गदायिनी देवी विराजमान हैं ॥२३॥ भैरव नामक स्थान में भैरवीदेवी विराजमान हैं और गया में मंगला देवी का स्थान है । कुरुक्षेत्र में स्थाणुप्रिया देवी का स्थान है और नाकुल नामक स्थान में स्वायम्भुवीदेवी विराजमान हैं ॥२४॥ कनखल में उग्रादेवी विराजमान हैं और विमलेश्वर नामक स्थान में विश्वेशीदेवी विराजमान हैं । अट्टहास नामक स्थान में महानन्दादेवी का स्थान है और महेन्द्र नामक स्थान में महातका देवी विराजमान हैं ॥२५॥ भीमापर्वत पर भीमेश्वरदेवी बतलायी गयी हैं और 'वस्त्रापथ' मं शांकरी देवी बतालयी गयी हैं । अर्द्धकोटि में रुद्राणी देवी विराजती हैं ॥२६॥ अविमुक्त (काशी) क्षेत्र में विशालाक्षी देवी बतलायी जाती हैं और महालय में महामाया देवी का स्थान है । गोकर्ण तीर्थ में 'भद्रकर्णी' देवी का स्थान है और 'भ्रदकर्णक क्षेत्र में भद्रकर्णी देवी का

स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके । कमलालयेतुकमला प्रचण्डा च छलंडके ।।२८।। कुरण्डले त्रिसंख्या स्यान्माकोटेमुकुटेश्वरी । मंडलेशे शांडकी
स्यात्काली कालंजरे पुनः ।।२९।। शंकुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे । ज्ञानिनां हृदयांभोजे हृल्लेखा परमेश्वरी ।।३०।। प्रोक्तानीमानि
स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च । तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम ।।३१।। तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवींप्रपूजयेत् । अथवा सर्वक्षेत्राणि
काश्यां संति नगोत्तम ।।३२।। अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवी भक्तिपरायणः । तानि स्थानानि संपश्यञ्जपन्देवीं निरन्तरम् ।।३३।। ध्यायंस्तच्चरणांभोजं
मुक्तो भवति बंधनात् । इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।।३४।। भस्मीभवंति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम् । श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि
द्विजाग्रतः ।।३५।। मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयांति परमां गतिम् । अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत ।।३६।। नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि
प्रयत्नतः । व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम् ।।३७।। आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत् । शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी।।३८।।
भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च । यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे ।।३९।। नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे । तत्रोपोष्य रजन्यादौ

स्थान है ।।२७।। 'सुवर्णाक्ष' नामक स्थान में 'उत्पलाक्षी' देवी हैं और 'स्थाणु' संज्ञक स्थान में 'स्थाण्वीशा' देवी हैं । 'कमलालय' में 'कमला' देवी हैं और 'छगलण्डक' में 'प्रचण्डा' देवी हैं ।।२८।। 'कुरण्डल' में 'त्रिसन्ध्या' देवी हैं और 'माकोट' नामक स्थान में 'मुकुटेश्वरी' देवी हैं । 'मण्डलेश' नामक स्थान में 'शाण्डकी' देवी हैं और 'कालञ्जर' में 'काली' देवी विराजमान है ।।२९।। 'शङ्कुकर्ण' नामक स्थान में 'ध्वनि' देवी बतलायी गयी हैं और 'स्थूलकेश्वर' में 'स्थूला' देवी हैं । ज्ञानियों के हृदय में 'हृल्लेखा' देवी विराजमान रहती हैं ।।३०।। ये जो स्थान बतलाये गये हैं वे देवी को अत्यन्त प्रिय हैं । हे पर्वतोत्तम! उन क्षेत्रों का पहले माहात्म्य सुनकर, उसके बाद उस माहात्म्य में बतलायी गयी विधि से देवी का पूजन करना चाहिए । अथवा हे नगोत्तम! सभी क्षेत्रकाशी में विद्यमान हैं ।।३२।। अतएव देवी की भक्ति करने वाले को काशी क्षेत्र में सदा निवास करना चाहिए और सदा देवी का निरन्तर जप करते हुए उन स्थानों का दर्शन करना चाहिए ।।३३।। देवी के चरण कमलों का ध्यान करने वाला व्यक्ति संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । प्रातःकाल उठकर देवी के इन नामों का जो पाठ करता है ।।३४।। हे पर्वत श्रेष्ठ ! उस व्यक्ति के सभी पाप उसी क्षण भस्म हो जाते हैं । श्राद्ध के समय ब्राह्मण के समक्ष इन पवित्र नामों को पढ़ना चाहिए ।।३५।। ऐसा करने वाले के पितृगण मुक्त होकर परमगति को प्राप्त कर लेते हैं । हे सुव्रत! हिमालय अब मैं आपको सुन्दर व्रतों को बतला रही हूँ ।।३६।। उन व्रतों को स्त्रियों और पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । 'अनन्त तृतीय' नामक व्रत 'रस कल्याणिनी नामक' व्रत ।।३७।। 'आर्द्रानन्दका' व्रत 'शुक्रवार' का व्रत और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का व्रत देवी के व्रत हैं ।।३८।। मङ्गलवार का व्रत तथा प्रदोषव्रत ये देवी के व्रत है । जिस समय भगवान शंकर अपने प्रियतमा को आसन पर बैठाकर उनके सामने देवताओं के साथ नृत्य करते हैं; उस

प्रदोषे पूजयेच्छिवाम् ॥४०॥ प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम् । सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग ॥४१॥ तत्रापि देवीं संपूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत् नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम ॥४२॥ एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च । व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः॥४३॥ प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तःस मे प्रियः । उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो ॥४४॥ शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तदा जागरणोत्सवम् । रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च ॥४५॥ पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम् । मम भक्तः सदा कुयदिवमन्यान्महोत्सवान्॥४६॥ मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः । कुमारीर्बटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या मद्गतांतरः ॥४७॥ वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः । य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतंद्रितः॥४८॥ स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमंजसा । सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम् । नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ॥४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

दिन उपवास करके सांयकाल के प्रदोष में देवी की पूजा करनी चाहिए ॥३९-४०॥ देवी को प्रसन्न करने के लिए यह व्रत प्रत्येक पक्ष में किया जाता है। हे हिमालय ! सोमवार का व्रत मुझको अत्यन्त प्रिय है । उस दिन भी देवी की पूजा करके रात्रि में भोजन करना चाहिए । दोनो नवरात्रों में व्रत करने से मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होती है ॥४१-४२॥ इसी तरह जो व्यक्ति मेरी प्रसन्नता के लिए नित्य नैमित्तिक व्रतों को करता है ॥४३॥ वह भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय होता है । वह मेरे सायुज्य को प्राप्त कर लेता है । हे विभो ! दोलोत्सव आदि भी उत्सवों को करना चाहिए ॥४४॥ इसी तरह शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव, दमनोत्सव आदि उत्सवों को करना चाहिए ॥४५॥ श्रावण के महीनों में 'पवित्रोंत्सव' करने से मुझको प्रसन्नता होती हैं इसी तरह से मरे भक्त को अन्य महोत्सवों को भी मनाना चाहिए ॥४६॥ उस समय प्रेमपूर्वक मेरे भक्तों को, सुवासिनियों को, कुमारियों को, बटुकों को भोजन मेरे ही समान समझकर कराना चाहिए ॥४७॥ कंजूसी न करे और उन सबों की पूजा फल आदि से करे । जो सावधानीपूर्वक प्रतिवर्ष ऐसा करता है ॥४८॥ वह मेरी प्रसन्नता का पात्र होकर धन्य तथा कृतकृत्य जो जाता है । मैंने उन सारी बातों को संक्षेप में बतलाया जिन सबों से मेरी प्रसन्नता होती है । इस ज्ञान को उस व्यक्ति को नहीं बतलाना चाहिए जो शिष्य अथवा भक्त न हो ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके सातवें स्कन्ध के अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३८।।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

हिमालय उवाच– **देवदेवि महेशनि करुणासागरेऽम्बिके । ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम् ॥१॥** श्रीदेव्युवाच– **वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नंबिकाया यथा प्रियम् । अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुंगव ॥२॥ द्विविधा मम पूजा स्याद्बाह्या चाभ्यन्तराऽपि च । बाह्याऽपि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तांत्रिकी तथा ॥३॥ वैदिक्यर्चाऽपि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर । वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः ॥४॥ तंत्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तांत्रिकी संश्रिता भवेत् । इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम् ॥५॥ करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा । तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम् ॥६॥ यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर । अनंतशीर्षनयनमनंतचरणं महत् ॥७॥ सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम् । तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद्ध्यायेत्स्मरेदपि ॥८॥ इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग । शांतः समाहितमना दंभाहंकारवर्जितः ॥९॥ तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज । तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा ॥१०॥ अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः । यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेवं परितोषय॥११॥ इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात् । मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः ॥१२॥ प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु।**

(देवी गीता– ९) देवीपूजन के अनेक प्रसंग

हिमालय ने कहा– हे देवेश्वरि ! हे महेशानि ! हे करुणासागर अम्बिका आप मुझे अपनी पूजाविधि को बतलायें ॥१॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे राजन् ! मैं अपनी प्रिय पूजा विधि को बतला रही हूँ उसे आप श्रद्धापूर्वक सुनें ॥२॥ मेरी पूजा दो प्रकार की है– बाह्य एवं आभ्यान्तर । बाह्य पूजा भी दो प्रकार की है– वैदिकी और तांत्रिकी ॥३॥ वैदिकी पूजा भी मूर्ति के भेद से दो प्रकार की होती है । वैदिकी पूजा वैदिकों से करवानी चाहिए । जो वैदिक वेद की दीक्षा से समन्वित हों ॥४॥ जिनको तंत्र की दीक्षा प्राप्त हो उनसे तांत्रिकी पूजा करवानी चाहिए । पूजा के इस रहस्य को जाने विना पूजा करने से विपरीत फल भी होता है ॥५॥ वैसे जो अज्ञानी पूजा करते हैं वे नरकगामी होते हैं । उसमें भी मैं तुम्हे पहली वैदिकी पूजा बतलाती हूँ ॥६॥ हे हिमालय ! आपने जो मेरा अनंतशिरों, अनन्तनयनों तथा अनन्त चरणों वाला रूप देखा है ॥७॥ वह सब प्रकार की शक्तियों से समन्वित है । जो सर्वश्रेष्ठ रूप है । मेरे उस रूप की ही पूजा करें, नमस्कार करें तथा ध्यान करें एवं स्मरण करें ॥८॥ हे पर्वतराज ! यह मैंने आपको प्रथम अर्चा का रूप बतलाया । शान्त एवं समाहितमना होकर तथा दम्भ एवं अहंकार से रहित होकर ॥९॥ मेरी पूजा में लग जाओ और मेरी ही शरणागति करो । मुझे अपने मन से देखो, उसीका जप करो और ध्यान करो ॥१०॥ प्रेमपूर्वक अनन्याभक्ति से मुझको ही अपना आश्रय बनाकर यज्ञों से मेरा यजन करो तथा तप एवं दान से मुझे संतुष्ट

ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः ॥१३॥ प्राप्याहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः । धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संजायते परम् ॥१४॥
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः । अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते ॥१५॥ सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः ।
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ॥१६॥ स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः । मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते ॥१७॥
क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थं कटाक्षेण परोदितम् । धर्मं वदन्ति सोंशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः ॥१८॥ अन्येषां शास्त्रकर्तृणामज्ञानं प्रभवत्वतः ।
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता ॥१९॥ तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वदा वेदमाश्रयेत् । राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन ॥२०॥ सर्वेशान्या
ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः । मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः ॥२१॥ मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः । यदा यदा हि
धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर ॥२२॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम् । देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप ॥२३॥ ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं
तच्छिक्षार्थं मया सदा । संपादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत् ॥२४॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत् । राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः॥२५॥

करो ॥११॥ ऐसा करके तुम मेरी कृपा से संसार-सागर से मुक्त हो जाओगे । जिन श्रेष्ठ भक्तों का मन मुझमें लगा रहता है, जो मुझमें ही लगे रहते हैं॥१२॥
मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं उनका शीघ्र ही संसार से उद्धार कर देती हूँ । मैं ध्यान से अथवा कर्मयोग युक्त भक्ति के द्वारा प्राप्य हूँ । केवल कर्म से मेरी
प्राप्ति नहीं होती है । धर्म से भक्ति उत्पन्न होती है । भक्ति परंब्रह्म की प्राप्ति का मुख्य साधन है ॥१३-१४॥ श्रुतियों तथा स्मृतियों में वर्णित कर्म ही धर्म
कहलाता है । श्रुति स्मृति से अतिरिक्त शास्त्रों में वर्णित धर्म धर्माभास है ॥१५॥ सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान मुझ से ही वेद उत्पन्न है । मुझमें किसी भी प्रकार
का अज्ञान नहीं है । अतएव श्रुति में अप्रमाणिकता नहीं है ॥१६॥ श्रुति के ही अर्थ को लेकर स्मृतियों का निर्माण हुआ है, अतएव मन्वादि स्मृतियों का
प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है ॥१७॥ श्रुतियों तथा पुराणों में मंत्रों के अर्थों पर कहीं-कहीं पर कटाक्ष भी किया गया है और उसे भी धर्म कहा गया है।
किन्तु वैदिकों को उसे नहीं स्वीकार करना चाहिए ॥१८॥ दूसरे शास्त्रों के कर्ताओं में विद्यमान अज्ञान के प्रभाव से वे अज्ञान के दोष से दूषित हैं । अतएव
उनकी प्रामाणिकता नहीं है ॥१९॥ मुमुक्षुपुरुष को धर्म को जानने के लिए सदा वेद का सहारा लेना चाहिए । जिस तरह से लोक में राजा की आज्ञा का
उल्लंघन नहीं किया जाता हैं ॥२०॥ उसी तरह मेरी आज्ञा स्वरूप श्रुतियों का कभी त्याग नहीं करना चाहिए । श्रुतियाँ सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी मेरी आज्ञा
स्वरूप हैं । अपनी आज्ञा की सुरक्षा करने के ही लिए मैंने ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जातियों की सृष्टि की है ॥२१॥ अतएव ब्राह्मणों से ही मेरी वाणी श्रुति
के रहस्य को जानना चाहिए । हे हिमालय ! जब-जब धर्म का ह्रास होता है ॥२२॥ और अधर्म की अभिवृद्धि होती है, तब तब मैं शरीर
धारण करती हूँ । हे राजन् ! इसी के कारण देवता और दानव का विभाग होता है ॥२३॥ जो लोग धर्म का आचरण नहीं करते हैं, उन लोगों को शिक्षा

ब्राह्मणैर्न च संभाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः । अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च ॥२६॥ श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः। वामं कापालकं चैव कौलकंभैरवागमः ॥२७॥ शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः । दक्षशापाद्भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः॥२८॥ दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः । तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा ॥२९॥ शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च । गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शंकरेण तु ॥३०॥ तत्र वेदविरुद्धांशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित् । वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित् ॥३१॥ सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत् । वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान् ॥३२॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत् । धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥३३॥ सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः । सर्वभूतदयावंतो मानाहंकारवर्जिताः ॥३४॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः । संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः ॥३५॥ उपासंते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम् । तेषां नित्यावियुक्तानामहमज्ञानजं तमः ॥३६॥ ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः । इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप ॥३७॥ स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद्द्वितीयाया अथो ब्रुवे।

देने के लिए मैंने नरकों का विधान किया है जिससे कि लोगों में भय पैदा हो सके ॥२४॥ जो कोई वैदिक धर्म का परित्याग करके दूसरे धर्म का आचरण करता है, उसको राजा को चाहिए कि अपने देश से निकाल दे क्योंकि ऐसे लोग अधार्मिक हैं ॥२५॥ ब्राह्मणों को चाहिए कि वे उन अधार्मिकों को न तो अपनाएँ और न तो अपनी पंक्ति में बैठायें । संसार में वेद से भिन्न जो श्रुतियों तथा स्मृतियों के विरुद्ध शास्त्र हैं, वे पूर्णरूप से तामसिक हैं । वामागम, कपालागम,कौलागम तथा भैरवागम ॥२७॥ इन सबों का निर्माण शिव ने अज्ञानियों को मोहित करने के लिए बनाया है । उन सबों का प्रयोजन मोहन के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है । दक्ष के शाप से, महर्षि भृगु के शाप से तथा दधीच महर्षि के शाप से ॥२८॥ जो ब्राह्मणवर्य दग्ध हो गये वे ही वेद के मार्ग से बहिष्कृत हैं । उनका ही उद्धार करने के लिए सोपान के क्रम से ॥२९॥ शंकर ने क्रमशः शैवागम, वैष्णवागम, सौरागम, शाक्तागम तथा गाणपत्यागम का निर्माण किया ॥३०॥ इन आगमों में कहीं-कहीं वेद के विरुद्ध अंश भी विद्यमान हैं । अतएव वैदिकों को उन आगमों को स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है ॥३१॥ आगमों के जो अंश पूर्ण रूप से भिन्न है, उन सबों के अधिकारी ब्राह्मण नहीं हो सकते है । वेद विहीन ब्राह्मण ही उन अर्थों को स्वीकार करने के अधिकारी हैं ॥३२॥ अतएव वैदिकों को चाहिए कि वे वेदमार्ग को ही अपनाएँ । धर्म से युक्त जो ज्ञान होता है, वह ब्रह्मको प्रकाशित कर देता है ॥३३॥ जो भक्त सभी प्रकार की कामनाओं का परित्याग करके मेरे शरण में आ गये हैं, वे सभी जीवों पर दया करने वाले तथा मान एवं अहंकार से रहित होते हैं ॥३४॥ उनका चित्त मुझमें ही लगा रहता है, तथा मुझमें ही उनके प्राण बसते हैं, मेरी कथा का वर्णन करते हैं । चाहे वे संन्यासी हों या वानप्रास्थ, गृहस्थ हों या ब्रह्मचारी ॥३५॥ वे मेरे ऐश्वर्ययोग की उपासना करते हैं ऐसे भक्त कभी भी मुझसे अलग नहीं होते हैं । मैं उनके अज्ञानान्धकार को ॥३६॥ निश्चित रूप से ज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा विनष्ट कर देती हूँ । हे नगाधिप ! मैंने आपको वैदिक पूजा का ॥३७॥ संक्षेप में स्वरूप बतलाया।

मूर्तौ वा स्थंडिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले ॥३८॥ जलेऽथवा बाणलिंगे यन्त्रे वाऽपि महापटे । तथा श्रीहृदयांभोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम्॥३९॥ सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम् । सौंदर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुंदरीम् ॥४०॥ श्रृङ्गाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम् । प्रसादसुमुखीमंबां चंद्रखंडशिखंडिनीम् ॥४१॥ पाशांकुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम् । पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः ॥४२॥ यावदांतरपूजायामधिकारो भवेन्न हि । तावद्बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत् ॥४३॥ आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः । संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम॥४४॥ अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम् । संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत् ॥४५॥ अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्। भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा ॥४६॥ अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया । सावधानेन मनसा श्रृणु पर्वतसत्तम ॥४७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अब मैं दूसरी वैदिक पूजा का वर्णन करती हूँ । अर्चक को चाहिए कि वह, मूर्ति में या वेदी पर या सूर्य मण्डल में या चन्द्रमण्डल में या जल में, या बाण के आकर वाले चिह्न में, या यन्त्र में या बड़े चित्रपट पर या हृदय कमल में परात्पर देवी का ध्यान करे ॥३८-३९॥ कि देवी गुणों से युक्त और करुणा से परिपूर्ण हैं सूर्योदय काल के समान उनका लाल वर्ण है । वे युवती हैं । उनमें सौन्दर्य की पराकाष्ठा है और उनके सभी अंग अत्यन्त सुन्दर है॥४०॥ वे शृंङ्गार रस से परिपूर्ण हैं, भक्तों के कष्टों को विनष्ट करने के लिए कातर रहती हैं । उनका सुन्दर मुख प्रसन्न रहता है । उनके शिर पर चन्द्रमा की कला विराजमान है ॥४१॥ उनके हाथों में पाश, अंकुश, वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा विद्यमान हैं । वे आनन्दरस रूपिणी हैं । उनकी पूजा अपनी चित्शक्ति के अनुसार करनी चाहिए ॥४२॥ जब तक आभ्यन्तर पूजा का अधिकार प्राप्त न हो जाय तब तक इसी तरह से बाह्य पूजा ही करनी चाहिए । जब आभ्यन्तर पूजा का अधिकार प्राप्त हो जाय तो उसे त्याग दे ॥४३॥ ज्ञान के लय को ही आभ्यन्तर पूजा कहते हैं । मेरा निरुपाधिक तथा सर्वश्रेष्ठ रूप संवित् ही है । अतएव अर्चक को मेरे ज्ञानस्वरूप रूप में अपने अपने मन को स्थापित कर देना चाहिए । मेरे संवित् रूप से अतिरिक्त जो कुछ भी है वह मायामय होने के कारण मिथ्या है ॥४५॥ अतएव संसाके बन्धन का नाश करने के लिए साक्षि स्वरूप और आत्मस्वरूप मेरा अपने योगयुक्त तथा निर्मनस्क अन्तःकरण से ध्यान करना चाहिए ॥४६॥ हे पवर्तश्रेष्ठ ! अब इसके बाद मैं विस्तार से बाह्य पूजा का वर्णन करती हूँ उसे आप सावधानीपूर्वक सुनें ॥४७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

देव्युवाच– **प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम् । कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम् ॥१॥ सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम्। नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद्बुधः ॥२॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् । अन्तः पदव्यामनुसंचरंतीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥३॥ ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम् । मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत् ॥४॥ अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः । होमांते स्वासने स्थित्वा पूजासंकल्पमाचरेत् ॥५॥ भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च । हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत्॥६॥ मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम् । भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत् ॥७॥ तत्तन्मंत्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत्। कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः ॥८॥ ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भिते । हृदंभोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः ॥९॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । एते पंच महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः ॥१०॥ पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि । अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा**

(देवी गीता– १०) पूजन का विधान तथा फलश्रुति

देवी ने कहा– प्रातः काल जगकर ऐसा ध्यान करना चाहिए कि हमारे ब्रह्मरंध्र पर उजला कमल हैं उसकी कान्ति कर्पूर के समान है । उस कमल के ऊपर श्रीगुरुदेव विराजमान हैं ॥१॥ वे अत्यन्त प्रसन्न हैं । वे समस्त अलंकारों से अलंकृत हैं । वे शक्ति से सम्पन्न हैं। उनको नमस्कार करके कुण्डलिनी देवी का स्मरण करना चाहिए ॥२॥ इसके बाद ऐसा ध्यान करना चाहिए कि ये देवी जब कुण्डलिनी में पधारीं उस समय उनका रूप प्रकाश स्वरूप था जब वे वहाँ से लौटीं तो उनका रूप अमृतमय हो गया । जब वे सुषम्णा के भीतर संचरण करने लगीं तो उनका रूप आनन्दमय अबला का हो गया । ऐसी देवी की मैं शरणागति करता हूँ ॥३॥ इस तरह से उस शिखा के भीतर ध्यान करके फिर सच्चिदानन्द स्वरूपिणी मुझ जगदम्बा का ध्यान करना चाहिए। उसके पश्चात् शौचादि क्रिया को करना चाहिए ॥४॥ उसके पश्चात् वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मेरी प्रसन्नता के लिए अग्नि में होम करे । होम करने के पश्चात् अपने आसन पर बैठकर पूजा का संकल्प करे ॥५॥ फिर पहले भूतशुद्धि करके मातृका न्यास करे । मातृका न्यास में 'रं' इस माया बीज का उल्लेख आवश्यक है । पूजन में मातृका न्यास प्रतिदिन करना चाहिए ॥६॥ मूलाधार में हकार का न्यास करे, हृदय में रकार का न्यास करे । भ्रूमध्य में ईकार का न्यास करे फिर मस्तक में ह्रींकार का न्यास करें ॥७॥ विभिन्न मन्त्रों में बतलाये गये न्यासों को करना चाहिए । इसके पश्चात् अपने शरीर में ही धर्मादिपीठों की कल्पना करनी चाहिए ॥८॥ उसके पश्चात् प्राणायामों के द्वारा विकसित कमल के समान अपने हृदय कमल में पाँच प्रेतों के ऊपर मेरा ध्यान करें ॥९॥

तदतीताऽस्मि सर्वदा ॥११॥ ततो विष्टरतां याताः शक्तितंत्रेषु सर्वदा । ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि ॥१२॥ जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत् । पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत् ॥१३॥ जलेन तेन मनुना चास्त्रमंत्रेण देशिकः । दिग्बन्धं च पुरा कृत्वा गुरून् नत्वा ततः परम् ॥१४॥ तदनुज्ञांसमादाय ब्राह्मपीठैः ततः परम् । हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम् ॥१५॥ आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया । आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा ॥१६॥ स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः । गंधं पुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः ॥१७॥ यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत् । प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते ॥१८॥ मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्तव्या अंगदेवताः। तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिंतयेत् ॥१९॥ पुनरावृत्ति सहितां मूलदेवीं च पूजयेत् । गंधादिभिः सुगंधैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः ॥२०॥ नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव तांबूलैर्दक्षिणादिभिः । तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्त्रकेण च ॥२१॥ कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो । देव्यथर्वशिरोमंत्रैर्हल्लेखोपनिषद्भवैः॥२२॥ महाविद्यामहामंत्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः। क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः॥२३॥ पुलकांकितसर्वांगैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः।

ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, ईश्वर और सदाशिव ये ही पञ्च महाप्रेत हैं । ये मेरे चरणों के मूल में विद्यमान रहते हैं ॥१०॥ ये पञ्चभूत स्वरूप हैं तथा पाञ्चवस्था स्वरूप हैं। मैं तो अव्यक्त ज्ञानस्वरूप हूँ तथा इन अवस्थाओं से ऊपर उठी हुयी हूँ ॥११॥ शक्तितन्त्र में ब्रह्मा आदि का विस्तार के रूप में परिणत होना प्रसिद्ध है । इस तरह से ध्यान करके मानसिक भोगों से मेरी पूजा करके मन्त्र का जप करना चाहिए ॥१२॥ जप को फिर देवी को समर्पित करके अर्ध्य की स्थापना करें । फिर पात्रों को विछाकर पूजा के द्रव्यों का शोधन करे ॥१३॥ फिर देशिक (आचार्य) को चाहिए कि वे जल से मन्त्र पढ़कर अस्त्रमन्त्र से दिग्बन्धन करे । इसके बाद अपने गुरु को प्रणाम करें ॥१४॥ उनकी आज्ञा प्राप्त करके उसके बाद बाहर के पीठ पर अपने हृदय में विद्यमान मेरी दिव्य मनोहर मूर्ति का आवाहन करें । उसके पश्चात् प्राणस्थापनविद्या के द्वारा देवी का आवाहन, आंसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन ॥१५-१६॥ स्नान, दो वस्त्र, तथा समस्त भूषणों को समर्पित करना चाहिए। फिर भक्तिपूर्वक देवी को चन्दन, तथा पुष्प समर्पित करे ॥१७॥ उसके पश्चात् यन्त्र के आवरणों में स्थापित देवताओं की सविधि पूजा करनी चाहिए । यह पूजा प्रतिदिन करनी चाहिए । किन्तु जो प्रतिदिन इस पूजा को करने में असमर्थ हो उसे भी शुक्रवार को अवश्य करना चाहिए ॥१८॥ आवरण के देवताओं में पहले मूल देवी की भावना करे । ये देवी परमप्रकाश स्वरूपा हैं । उन मूलदेवी की पूजा चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों से करनी चाहिए ॥२०॥ नैवेद्य, तर्पण, ताम्बूल तथा दक्षिणा आदि से मुझे सन्तुष्ट करे। उसके पश्चात् तुम्हारे द्वारा प्रणीत मेरे सहस्त्र नाम स्तोत्र से अहं 'रुद्रेभिः' इत्यादि सूक्त से, फिर देव्यथर्वशीर्ष के मन्त्रों तथा महाविद्या के विभिन्न मन्त्रों से मुझे बार-बार प्रसन्न करना चाहिए । फिर प्रेम परिपूर्ण हृदय से देवी से क्षमा प्रार्थना करे ॥२३॥ उस

नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥२४॥ वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि । प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ॥२५॥ निजं सर्वस्वमपिमे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् । नित्यहोमं ततः कुर्याद्ब्राह्मणांश्चसुवासिनीः ॥२६॥ वटुकान्यामरान्नयान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् । नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ॥२७॥ सर्वं हृल्लेखया कुर्यात्पूजनं मम सुव्रत । हृल्लेखा सर्वमंत्राणां नासिका परमा स्मृता ॥२८॥ हृल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिम्बिता । तस्माद्धृल्लेखयाः दत्तं सर्वमंत्रैः समर्पितम् ॥२९॥ गुरुं संपूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् । य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुंदरीम् ॥३०॥ न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि । देहांते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥३१॥ ज्ञेयो देविस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमंति तम् । इति ते कथितं राजन्महादेव्याः प्रपूजनम् ॥३२॥ विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः । कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥३३॥ इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत्क्वचित् । नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥३४॥ एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः। तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा ॥३५॥ देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि । सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च ॥३६॥ श्राद्धकाले पठेदेतद्ब्राह्मणानां समीपतः । तृप्तास्तत्पिरः सर्वे प्रयांति परमं पदम् ॥३७॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत ।**

समय सम्पूर्ण अंगों में रोमाञ्च हो जाना चाहिए। आँखों में प्रेमाश्रु तथा गला के रुँध जाने से गद्‌गद वाणी से देवी की स्तुति करे । नृत्य, वाद्य आदि की ध्वनि से मुझे सन्तुष्ट करे ॥२४॥ वेदों के पाठ तथा समस्त पुराणों के द्वारा चूँकि मेरा ही प्रतिपादन किया गया है, अतएव उन सबों के पाठ से मुझे सन्तुष्ट करें ॥२५॥ प्रतिदिन अपने देह के साथ अपनी सारी वस्तुओं को मुझे समर्पित करे । उसके बाद प्रतिदिन होम करे और उसके पश्चात् ब्राह्मणों, सुवासनियों, बटुओं अज्ञानियों तथा दूसरे लोगों में भी मेरी ही बुद्धि करके उन्हें भोजन कराये। फिर उन्हें प्रणाम करके उनका आवाहन के विपरीत क्रम से विसर्जन करे ॥२६-२७॥ हे सुव्रत ! मेरा सम्पूर्ण पूजन हृल्लेखा (ह्रीं) मंत्र से ही करे । ह्रीं मंत्र को सभी मन्त्रों की नाक बतलाया गया है ॥२८॥ इस हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र रूपी दर्पण में मैं नित्य ही प्रकाशित होती रहती हूँ । अतएव इस हृल्लेखा (ह्रीं) मंत्र से अर्चक मुझे जो कुछ भी समर्पित करता है, वह सभी मंत्रों से समर्पित हो जाता है ॥२९॥ अर्चक को चाहिए कि वह अपने आचार्य की भूषण आदि से पूजा करके कृतकृत्य हो जाय। इस तरह से जो भुवनसुन्दरी देवी की पूजा करता है ॥३०॥ उसके लिए कोई भी वस्तु कभी भी दुर्लभ नहीं होती है और शरीर त्याग के पश्चात् वह मेरे मणिद्वीप में में जाता ही है॥३१॥ उस अर्चक को देवी स्वरूप समझना चाहिए । सभी देवता उसको प्रणाम करते हैं । हे राजन् ! इस तरह से मैंने आपको देवी की सर्वोत्तम पूजा को बतलाया ॥३२॥ इन सारी बातों का विचार करके तुम अपने अधिकारानुसार मेरी पूजा करोगे । ऐसा करके तुम कृतार्थ हो जाओगे॥३३॥ मेरे इस गीताशास्त्र को अपने शिष्य से भिन्न किसी दुष्ट को नहीं बतलाना चाहिए ॥३४॥ इसका प्रकाशन करना माता के स्तनों को उघाड़ने के समान है । अतएव इसको अवश्य ही यत्नपूर्वक छिपाये रखना चाहिए ॥३५॥ इसको अपने ज्येष्ठ पुत्र तथा शिष्य को ही बतलाना चाहिए । उस पुत्र

देवाश्च मुदिताःसर्वे देवीदर्शनतोऽभवन् ॥३८॥ ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा । या गौरीति प्रसिद्धाऽऽसीद्दत्ता सा शंकराय च ॥३९॥ ततः स्कंदः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः । समुद्रमंथने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप ॥४०॥ तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात् । तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः ॥४१॥ वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत् । इति ते कथितं राजन्देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥४२॥ गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम् । न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः ॥४३॥ गीता रहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः । सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं त्वयानघ । पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

खशरद्व्यक्षि (२२५०) पद्यैस्तु द्वैपायनमुखच्युतैः । श्रीमद्भागवतस्यास्य सप्तमस्कन्ध ईरितः ॥७॥

* * *

को सुशील, सुन्दरवेष वाला तथा देवी का भक्त होना चाहिए ॥३६॥ श्राद्ध के समय इस देवी गीता को ब्राह्मणों के सामने पढ़ना चाहिए । ऐसा करने से पितृगण तृप्त होकर परमपद में चले जाते हैं ॥३७॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से हिमालय को उपदेश देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं और सभी देवता भी देवी का दर्शन करके प्रसन्न हो गये ॥३८॥ उसके पश्चात् हिमालय के घर हैमवती देवी का जन्म हुआ उनका प्रसिद्ध नाम गौरी हुआ और उनका विवाह शङ्कर जी से हुआ ॥३९॥ उसके पश्चात् स्कन्द का जन्म हुआ जिन्होंने तारकासुर का वध किया । हे राजन् ! जब समुद्र मंथन हुआ उस समय समुद्र से अनेक रत्न निकले ॥४०॥ वहाँ पर लक्ष्मी जी को प्राप्त करने के लिए देवताओं ने स्तुति की। उससे लक्ष्मी जी का देवताओं पर कृपा करने के लिए प्राकट्य हुआ ॥४१॥ देवताओं ने लक्ष्मीजी को श्री भगवान विष्णु को समर्पित कर दिया उससे उनको शान्ति मिली । हे राजन् ! इस प्रकार से मैंने आपको देवी का माहात्म्य सुनाया ॥४२॥ यह माहात्म्य गौरी तथा लक्ष्मी की उत्पत्ति विषयक है और समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । यह मैंने आपको रहस्योपदेश दिया। इसे किसी दूसरे को नहीं बतलाना चाहिए ॥४३॥ यह गीता रहस्य स्वरूप है इसको प्रयत्न पूर्वक छिपाना चाहिए । हे अनघ ! आपने जो पूछा था उसे मैंने बतलाया । यह पवित्र तथा दिव्य है। अब क्या सुनना चाहते हो ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४०॥

महर्षि द्वैपायन के मुख से निकले हुए २२५० श्लोकों वाला यह श्रीमद्देवीभागवत का सातवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।

* * *

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

अष्टमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्याय:

जनमेजय उवाच– **सूर्यचंद्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम् । चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम् ।।१।। अधुना श्रोतुमिच्छामि सा देवी जगदम्बिका । मन्वंतरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते ।।२।। यस्मिन्यस्मिश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा । (शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा । येनैव मंत्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते) । देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम् ।।३।। येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः । तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ।।४।।** व्यास उवाच– **शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम् । यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विंदते ।।५।। एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा । तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रवर्तकः ।।६।। एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् । नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान् ।।७।। तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः । पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवताऽनघ ।।८।।** नारद उवाच– **देवदेव महादेव पुराणपुरुषोत्तम । जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण ।।९।। जगतस्तत्त्वमाद्यं यत्तन्मे वद यथेप्सितम् । जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम्।।१०।।**

सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु द्वारा देवी की स्तुति

जनमेजय ने कहा– आपने सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं के चरित को सुनाया और मैंने उस अमृत के समान कथाओं को सुना भी ।।१।। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि देवी विभिन्न मन्वन्तरों में किन-किन रूपों से पूजी जाती हैं ।।२।। जिस-जिस स्थान पर देवी जिस-जिस कर्म के द्वारा अथवा शरीर के द्वारा पूजनीय होकर फल प्रदान करती हैं और जिस-जिस बीजमंत्र से पूजी जाती हैं) उसका वर्णन आप मुझे सुनाइये । आप देवी के विराट् रूप को भी यथार्थ रूप से सुनायें ।।३।। जिस ध्यान के द्वारा उनके सूक्ष्म स्वरूप में मति की गति हो सके, हे विप्रर्षे ! आप उन सारी बातों को सुनाइये, जिससे कि मेरा कल्याण हो सके ।।४।। **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आपको मैं देवी की उत्तम आराधना को सुनाता हूँ जिसके सुनने अथवा कहने से मनुष्य का इस लोक में कल्याण होता है ।।५।। इसी तरह से एक बार नारद जी द्वारा पूछे जाने पर योगमार्ग के प्रवर्तक श्रीभगवान् नारायण ने जो बतलाया उसे मैं सुना रहा हूँ ।।६।। एकबार नारदजी पृथिवी पर घूमते हुए बदरिकाश्रम (नारायणाश्रम) में गये थकान मिटाने के पश्चात् वे बैठ गये ।।७।। योगस्वरूप भगवान् नारायण को नमस्कार करके नारद जी ने श्रीभगवान् से उसी प्रश्न को किया जो प्रश्न तुमने किया है ।।८।। **नारदजी ने कहा–** हे देवताओं के भी आराध्य महादेव पुराण पुरुषोत्तम ! हे जगदाधार ! हे सर्वज्ञ ! आपके सद्गुण प्रशंसनीय हैं ।।९।। जगत् के आद्यतत्त्व को आप मुझे बतलाइये । यह संसार किससे उत्पन्न होता है और किसमें प्रतिष्ठित है ?।।१०।। प्रलयकाल के आने पर यह संसार किसमें लीन हो जाता है और किस समय कर्मों के फल उदित होते

कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः । केन ज्ञातेन मायैषा मोहभूर्नाशमाप्नुयात् ॥११॥ कयाऽर्चया किं जपेन किं ध्यानेनात्महृत्कजे ।
प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा ॥१२॥ एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः । यथा लोकस्तरेदंधतमसं त्वंजसैव हि ॥१३॥ व्यास
उवाच– **एवं देवर्षिणा पृष्टः प्राचीनो मुनिसत्तमः । नारायणो महायोगी प्रतिनंद्य वचोऽब्रवीत् ॥१४॥** नारायण उवाच– **शृणु देवर्षिवर्यात्र**
जगतस्तत्त्वमुत्तमम् । येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे ॥१५॥ जगतस्तत्त्वमित्येव देवी प्रोक्ता मयाऽपि हि । ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरन्यैश्चापि
मनीषिभिः ॥१६॥ सा जगत्सृजते देवी तया च प्रतिपाल्यते । तया च नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात् ॥१७॥ तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः
सिद्धर्षिपूजितम् । स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं तथा ॥१८॥ मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यः ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् । शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वन्तराधिपः॥१९॥
स मनुः पितरं देवं प्रजापतिमकल्मषम् । भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम् ॥२०॥ पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम् । तत्प्रसादेन ते
तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति ॥२१॥ एवमुक्तः प्रजास्रष्टा मनुः स्वायम्भुवो विराट् । जगद्योनिं तदा देवीं तपसाऽतर्पयद्विभुः ॥२२॥ तुष्टाव देवीं

हैं ?॥११॥ किस पूजा अथवा जप अथवा ध्यान के द्वारा हृदय कमल में ज्ञान का उदय उस तरह होता है जैसे अन्धकार में सूर्य का प्रकाश होता है ॥१२॥ हे देव ! आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें । जिससे कि संसारी जीव इस संसार के अज्ञानाअन्धकार को आसानी से पार कर सकें ॥१३॥ **व्यासजी ने कहा–** देवर्षि नारद के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर प्राचीन मुनि महायोगी भगवान् नारायण ने नारदजी की वाणी का समादर करते हुए कहा ॥१४॥ **भगवान् नारायण ने कहा–** हे देवर्षिवर्य ! आप जगत् के उत्तम तत्त्व के विषय में श्रवण करें । उसका श्रवण कर लेने के बाद मानव इस जगत् रूपी भ्रम में नहीं पड़ता है ॥१५॥ मैंने तथा देवी ने, जगत् का तत्त्व यही बतलाया है । उसे ही ऋषियों, देवगन्धर्वों ने तथा दूसरे मनीषियों ने भी बतलाया है ॥१६॥ देवी ही जगत् की सृष्टि करती हैं और उसका पालन भी करती हैं । और अपने तीनों गुणों के कारण इस जगत् का नाश भी ही जो जाता है ॥१७॥ मैं देवी के सिद्धों तथा ऋषियों के द्वारा पूजित उस रूप को बतला रहा हूँ जो स्मरण करने वालों के समस्त पापों को विनष्ट करने वाला कामनाओं को पूर्ण करने वाला, तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । ब्रह्माजी के पुत्र तथा प्रतापी स्वायम्भुव मनु हुए । वे शतरूपा के पति तथा सभी मन्वन्तरों के स्वामी थे ॥१९॥ वे प्रेमपूर्वक अपने निर्दोष पिता की सेवा कर रहे थे । ब्रह्माजी ने अपने पुत्र मनु से कहा ॥२०॥ हे पुत्र ! तुम्हें देवी की उत्तम आराधना करनी चाहिए। उनकी कृपा से ही तुम्हारी प्रजाओं की सृष्टि अच्छी तरह से चल सकेगी ॥२१॥ ब्रह्माजी के द्वारा इस तरह से कहने पर प्रजाओं की सृष्टि करने वाले विराट् स्वायम्भुव मनु ने जगत् के कारण स्वरूप देवी को अपनी तपस्या से सन्तुष्ट किया ॥२२॥ उन्होंने समाहित मन से सर्वशक्ति सम्पन्न, समस्त कारणों

देवेशीं समाहितमतिः किल । आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम् ॥२३॥ मनुरुवाच– नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते ॥२४॥ वेदमूर्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि । वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे ॥२५॥ महेश्वरि महाभागे
महामाये महोदये । महादेवप्रियावासे महादेवप्रियङ्करि ॥२६॥ गोपेंद्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महोत्सवे । महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते ॥२७॥
सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२८॥ यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वथा ।
चैतन्यमेकमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम् ॥२९॥ ब्रह्मा तदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा । पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात् ॥३०॥
मधुकैटभसंभूतभयार्तः पद्मसंभवः । यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः ॥३१॥ त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कांतिः कमला गिरिजा सती ।
दाक्षायणी वेदगर्भा सिद्धिदात्री सदाऽभया ॥३२॥ स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च । ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद
मे॥३३॥ ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः । त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसांपतिरुत्तमः ॥३४॥ कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट्।

के भी कारण स्वरूप आद्यमाया की स्तुति की ॥२३॥ **मनु ने कहा–** हे देवेशि ! हे जगत् के कारण स्वरूपिणि, अपने हाथों में शंख, चक्र और गदा धारण
करने वाली, भगवान् नारायण के हृदय में निवास करने वाली, वेदमूर्ते ! जगन्मातः तथा कारण स्थान स्वरूपिणि ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥२४-२५॥
हे महेश्वरि ! हे महाभागे ! हे महामाये ! हे महोदये ! हे महादेव के प्रिय आवास हे स्वरूपिणि ! हे महादेव की प्रियङ्करी !॥२६॥ हे गोपेन्द्रप्रिये ! हे ज्येष्ठे!
हे महानन्दे ! हे महोत्सव स्वरूपिणि ! हे महामारी के भय को दूर करने वाली ! हे देवताओं आदि से पूजित होने वाली ॥२७॥ हे सभी मङ्गलों का मङ्गल
करने वाली, हे शिवे ! हे सभी पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली ! हे सबों की रक्षा करने वाली ! हे तीन नेत्रों वाली ! हे गौरि ! हे नारायणि ! आपको
नमस्कार है ॥२८॥ यह सम्पूर्ण विश्व जिससे उत्पन्न है, जिसमें यह सारा विश्व ओत-प्रोत है, जो आदि तथा अन्त से रहित तेजों के आकर स्वरूप एकमात्र
चैतन्य स्वरूप हैं; जिनकी प्रेरणा प्राप्त करके ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, श्रीहरि जिनकी प्रेरणा से जगत् का पालन करते हैं और विश्वेश हैं
संहार करने वाले शङ्कर जी जिनकी ही कृपा को प्राप्त करके जगत् का संहार करते हैं ॥२९-३०॥ जिन देवी की स्तुति करके ब्रह्माजी भयङ्कर मधु तथा
कैटभ नामक दैत्यों के भय से त्राण प्राप्त कर सके, उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३१॥ आप ही कीर्ति, ह्री, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती,
दाक्षायणी, वेदगर्भा, सिद्धिदात्री तथा अभया नाम से प्रसिद्ध हैं ॥३१॥ मैं आपकी स्तुति करता हूँ । आपको नमस्कार करता हूँ । आपकी पूजा करता हूँ और
आपका जप करता हूँ । आपका ध्यान करता हूँ, आपकी भावना करता हूँ । आपका दर्शन करता हूँ तथा श्रवण करता हूँ । हे देवि आप प्रसन्न होइये ॥३२॥
आपकी ही कृपा प्राप्त करके ब्रह्माजी वेदनिधि हो गये, भगवान् विष्णु लक्ष्मीपति हो गये, इन्द्र त्रैलोक्याधिपति हो गये, वरुण जलाधिपति हो गये ॥३३-३४॥

नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः ॥३५॥ त्रिलोकवंद्ये लोकेशि महामाङ्गल्यरूपिणि । नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः॥३६॥ नारायण उवाच एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा । प्रसन्ना प्राह देवेर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः ॥३७॥ श्रीदेव्युवाच– वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि । प्रसन्नाऽहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च ॥३८॥ मनुरुवाच– यदि देवि प्रसन्नाऽसि भक्त्या कारुणिकोत्तमे । तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाज्ञया ॥३९॥ श्रीदेव्युवाच– प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः किल । निर्विघ्नेन च राजेंद्र वृद्धिश्चायुत्तरोत्तरम् ॥४०॥ यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा । तेषां विद्या प्रजासिद्धिः कीर्तिः कांत्युदयः खलु ॥४१॥ जायन्ते धनधान्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम् । सर्वत्र विजयो राजन्सुखं शत्रुपरिक्षयः ॥४२॥ नारायण उवाच– एवं दत्त्वा वरान्देवी मनवे ब्रह्मसूनवे । अन्तर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः ॥४३॥ अथ लब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान् । ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः ॥४४॥ यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्रक्ष्यामि पुष्कलाः । यक्ष्यामि यज्ञैर्देवेशं तत्समादिश माचिरम् ॥४५॥ इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः । चिंतयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम्॥४६॥

कुबेर निधियों के स्वामी हो गये और यमराज प्रेतों के स्वामी हो गये; निऋृति राक्षसों के स्वामी हो गये और चन्द्रमा रसों के स्वामी हो गये ॥३५॥ हे त्रैलोक्यवंद्य लोकों की स्वामिनि, महामाङ्गल्यस्वरूपिणि, हे जगन्मातः ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥३६॥ **नारायण ने कहा–** हे नारदजी ! इस तरह से मनु के द्वारा स्तुति किए जाने पर पराम्बा नारायणी दुर्गा देवी प्रसन्न होकर कही ॥३८॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे राजेन्द्र ! हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आप जो चाहें वरदान माँगें । आपकी स्तुति, भक्ति तथा आराधना से मैं प्रसन्न हूँ ॥३८॥ **मनु ने कहा–** हे देवि ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो आपकी ही आज्ञा से मेरे द्वारा की जाने वाली सृष्टि सुचारू रूप से चलती रहे । उसमें कोई विघ्न नहीं आये ॥३९॥ **श्रीदेवी ने कहा–** मेरी कृपा के प्रभाव से आपके द्वारा की जाने वाली सृष्टि निर्विघ्न रूप से चलती रहे और इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे ॥४०॥ तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुति को जो कोई भी भक्तिपूर्वक पढ़े, उसकी विद्या, प्रजाओं की सिद्धि, कीर्ति तथा कान्ति बढ़ती रहे ॥४१॥ उस पाठ करने वाले व्यक्ति के धन-धान्य की समृद्धि होए, सदा उसकी शक्ति बढ़े । हे राजन् ! वह सर्वत्र विजयी हो, उसे सुख मिले । उसके शत्रुओं का नाश हो जाय ॥४२॥ **नारायण भगवान् ने नारदजी से कहा–** इस तरह से ब्रह्माजी के पुत्र मनु को वरदान देकर जगदम्बा उनके देखते ही देखते उनके सामने से अन्तर्धान हो गयीं ॥४३॥ उसके बाद ब्रह्माजी के प्रतापी पुत्र मनु वरदान प्राप्त करके, ब्रह्माजी से कहे हे तात ! आप मुझे एकान्त में स्थान दीजिये ॥४४॥ जहाँ पर रहकर मैं प्रभूत मात्रा में प्रजाओं की सृष्टि कर सकूँ । देवेश्वर की पूजा करूँगा । अतएव आप मुझे शीघ्र उस स्थान को बतलाएँ ॥४५॥ इस तरह से अपने पुत्र की वाणी को सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी ने दीर्घ काल तक सोचा

सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनंतसंख्यकः । धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताऽखिलाश्रया ॥४७॥ इदं मच्चिंतितं कार्यं भगवानादिपूरुषः । करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽहमाश्रितः ॥४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारायण उवाच– **एवं मीमांसतस्तस्य पद्मयोनेः परन्तप । मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समन्ततः ॥१॥ ध्यायतस्तस्य नासाग्राद्विरिंचेः सहसाऽनघ । वराहपोतो निरगादेकांगुलप्रमाणतः ॥२॥ तस्यैवं पश्यतः स्वस्थः क्षणेन किल नारद । करिमात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत् ॥३॥ मरीचिमुख्यैर्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद । तद् दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः ॥४॥ किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम् । अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम् ॥५॥ दृष्टोंगुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः । आहोस्विद्भगवान्किं वा यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥६॥ इति तर्कयतस्तस्य**

कि यह कार्य कैसे हो ॥४६॥ सृष्टि करते हुए मेरा बहुत अधिक समय बीत गया । पृथिवी जल में डूब गयी है । वही सबों को धारण करने वाली है ॥४७॥ मेरे इस कार्य में मेरी सहायता वे आदि पुरुष परमात्मा ही करेंगे, जिनके आदेश का मैं पालन करता हूँ ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

वराहावतार की संक्षेप में कथा

भगवान् नारायण ने कहा– हे परन्तप नारदजी ! इस तरह से जब ब्रह्माजी विचार कर रहे थे, मनु तथा मरीचि आदि ऋषि उनके चारो ओर विद्यमान थे; उसी समय उनकी नासिका के अग्रभाग से एक छोटा सा वराह निकला । उसका प्रमाण एक अङ्गुल का था ॥२॥ ब्रह्माजी के देखते ही देखते वह वराह बढ़कर हाथी के समान आकार वाला हो गया । यह सबों को बड़े आश्चर्य की बात लगी ॥३॥ मरीचि आदि तथा सनकादिकों के साथ विद्यमान ब्रह्माजी ने उस सूकर के रूप को देखकर विचार किया ॥४॥ सूकर के व्याज से यह कौन सा दिव्य जीव उपस्थित हो गया है ? यह अत्यन्त आश्चर्यमय है और

ब्रह्मणः परमात्मनः । वराहरूपो भगवाञ्जगर्जाचलसन्निभः ॥७॥ विरिंचिं हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान् । स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रांतमनुनादयन्॥८॥
ते निशम्य स्वखेदस्य क्षयिष्णुं घुर्घुरस्वनम् । जनस्तपः सत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः ॥९॥ छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसंभवैः । वचोभिः
पुरुषं त्वाद्यं द्विजेंद्राः पर्यवाकिरन् ॥१०॥ तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान्हरिरीश्वरः । कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाऽप आविशत् ॥११॥ तस्यांतर्विशतः
क्रूरसटाघातप्रपीडितः । समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणार्तिहन् ॥१२॥ इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरिरीश्वरः । विदारयञ्जलचराञ्जगामांतर्जले
विभुः ॥१३॥ इतस्ततोऽभिधावन्स विचिन्वन्पृथिवीं धराम् । आघ्रायांघ्राय सर्वेशो धरामासादयच्छनैः ॥१४॥ अन्तर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वाश्रयां
तदा । भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम् ॥१५॥ तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः । शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम् ॥१६॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरिंचिः समनुः स्वराट् । तुष्टाव वाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धराम् ॥१७॥ ब्रह्मोवाच– **जितं ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन।**
खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद ॥१८॥ इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव । पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतङ्गजकरोद्धृता ॥१९॥ इदं च ते शरीरं

मेरी नाक से निकला हुआ है ॥५॥ यह पहले तो अङ्गूठे के अग्रभाग के समान था किन्तु क्षणभर में पर्वत के समान हो गया । अथवा ये यज्ञ भगवान् ही मेरे मन को आश्चर्यित कर रहे हैं ॥६॥ इस तरह से जब ब्रह्माजी सोच ही रहे थे, उसी समय पर्वत के समान आकार वाले वराह भगवान् ने गर्जना किया ॥७॥ उसको सुनकर द्विजोतमों के साथ विद्यमान ब्रह्माजी को प्रसन्नता हुयी । श्रीभगवान् की उस गर्जना से सारी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गयीं ॥८॥ अपने मन के खेद को विनष्ट करने वाला घुर्घुर ध्वनि को जनोलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक में निवास करने वाले सभी देवता । ऋग्यजुः तथा सामवेद के वैदिक स्तोत्र मन्त्रों से स्तुति करते हुए उन आद्य पुरुष परमात्मा को चारों ओर से घेरकर उनकी स्तुति करने लगे और उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगे ॥९-१०॥ सबों की स्तुतियों को सुनकर आद्यपुरुष श्रीहरि अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से उन सबों को देखे और प्रलयकालीन जल के भीतर प्रवेश कर गये॥११॥ जब श्रीवराह भगवान् जल के भीतर प्रवेश कर रहे थे, उस समय उनके सटाओं (आयालो) से प्रताडित होकर समुद्र ने चिल्लाया, हे शरणागतों के कष्ट को विनष्ट करने वाले भगवन् ! आप हमारी रक्षा करें ॥१२॥ समुद्र की उस वाणी को सुनकर श्रीभगवान् जलचरों को विनष्ट करते हुए समुद्र के जल के भीतर प्रवेश कर गये ॥१३॥ इधर-उधर चलते हुए, पृथिवी को खोजते हुए; बार-बार सूंघते हुए वे पृथिवी को प्राप्त कर लिए ॥१४॥ सभी जीवों के आश्रयभूत जल के भीतर गयी हुई पृथिवी को श्रीभगवान् ने अपने दाँतो के ऊपर उठा लिया ॥१५॥ पृथिवी को अपने दाँत पर उठाकर यज्ञशरीर वाले श्रीवराह भगवान् उसी तरह से सुशोभित हुए जैसे कोई दिग्गज अपने सूँढ पर कमल के पुष्प को उठाये हुए हो ॥१६॥ अपने दांतों पर पृथिवी को उठाये हुए भगवान् को देखकर मनु के साथ देवेश्वर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की ॥१७॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाले पुण्डरीकाक्ष भगवन्!

वै शोभते भूमिसङ्गमात् । उद्धृतांबुजशुण्डाग्रकरींद्रतनुसन्निभम् ॥२०॥ नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक । दानवानां विनाशाय कृतनानाकृते प्रभो ॥२१॥ अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः । सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते ॥२२॥ त्वयाऽहं च प्रजासर्गे नियुक्तः शक्तिबृंहितः। त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च ॥२३॥ त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे । सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालं यथाबलम् ॥२४॥ इन्द्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवांस्त्वन्निदेशतः । भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः ॥२५॥ वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः । देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यायनं तथा ॥२६॥ धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक् । कर्मणां फलदाताऽसौ त्वन्नियोगादधीश्वरः ॥२७॥ नैर्ऋतो रक्षसामीशो यज्ञो विघ्नविनाशनः । सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते ॥२८॥ वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः । त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः ॥२९॥ वायुर्गंधवहः सर्वभूतप्राणनकारणम् । जातस्तव निदेशेन लोकपालो जगद्गुरुः ॥३०॥ कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः । त्वदाज्ञांतर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्यभूः ॥३१॥ ईशानः सर्वरुद्राणामीश्वरांतकरः प्रभुः । जातो लोकेशवंद्योऽसौ

आपकी जय हो । आपके सामने सभी देवता नगण्य हैं । आप सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥१८॥ हे देव ! आपके दाँतों पर विराजमान पृथिवी उसी तरह शोभा पा रही है, जैसे कोई गजराज पत्रों से पूर्ण कमलिनी को अपनी सूंढ पर उठाये हुए हो ॥१९॥ पृथिवी के संसर्ग से आपका यह शरीर उसी तरह सुशोभित हो रहा है जैसे किसी कमलिनी को उखाड़कर अपनी सूंढ में लिए हुए कोई गजराज सुशोभित हो रहा हो ॥२०॥ हे सृष्टि और संहार को करने वाले, दानवों का विनाश करने के लिए अनेक रूपों को धारण करने वाले भगवन् ! आपकी जय हो ॥२१॥ हे प्रभो ! आपको आगे से नमस्कार है तथा आपको पीछे से नमस्कार है । हे सभी देवताओं के आधारभूत ! हे बृहद्धाम ! आपको नमस्कार है ॥२२॥ आपने ही मेरी शक्ति को बढ़ाकर मुझे सृष्टि करने के कार्य में नियुक्त किया है । मैं आपकी ही आज्ञा से सृष्टि करना प्रारम्भ करता हूँ और उसे पुनः बन्द करता हूँ ॥२३॥ आपकी ही सहायता से सभी देवता अपने समय तथा बल के अनुसार अमृत का विभाजन किए ॥२४॥ आपकी ही आज्ञा से इन्द्र ने त्रिलोकी के राज्य को प्राप्त किया और देवताओं के समुदाय के साथ वे उस समृद्ध राज्य का उपभोग करते हैं ॥२५॥ उसी तरह अग्नि भी पावकत्व को प्राप्त करके जाठराग्नि इत्यादि के भेद से, देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों को आप्यायित (तृप्त) करते हैं ॥२६॥ पितृगणों के स्वामी समस्त कर्मों को देखने वाले धर्मराज भी आपके ही आदेश से कर्मों का फल प्रदान करने का काम करते हैं ॥२७॥ राक्षसों के स्वामी तथा यज्ञों में होने वाले विघ्न को दूर करने वाले निर्ऋति देवता भी आपके ही आदेश से सभी कर्मों के साक्षी हैं ॥२८॥ आपकी ही आज्ञा के बल को प्राप्त करके वरुण देवता जलचरों के स्वामी हैं और उनको लोकपालत्व और जगद्गुरुत्व प्राप्त है ॥३०॥ आपकी आज्ञा के ही अन्तर्गत रहने वाले कुबेर भी सम्पूर्ण लोकों में किन्नरों तथा यक्षों के स्वामी रूप से मान्य हैं ॥३१॥ आपकी

सर्वदेवाधिपालकः ॥३ २॥ नमस्तुभ्यं भगवते जगदीशाय कुर्महे । यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवाः सहस्त्रशः ॥३ ३॥ नारायण उवाच– **एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुषः । लीलावलोकमात्रेणाप्यनुग्रहमवासृजत् ॥३ ४॥ तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम् । रुन्धानमध्वो भीमं गदयाऽताडयद्धरिः ॥३ ५॥ तद्रक्तपंकदिग्धांगो भगवानादिपूरुषः । उद्धृत्य धरणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाऽप्सु ताम् ॥३ ६॥ निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः । एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम् ॥३ ७॥ शृणुयाद्यः पुमान्यश्च पठेच्चरितमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात्॥३ ८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

नारायण उवाच– **महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथास्थाने च नारद । वैकुण्ठलोकमगमद्ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम् ॥१॥ स्वायंभुव महाबाहो पुत्र**

आज्ञा से ही शङ्करजी भी सभी रुद्रों के स्वामी, सभी देवताओं के अधिपालक तथा लोकेशवंद्य बने हुए है ॥३२॥ हे भगवन् जगदीश ! आपको हम नमस्कार करते हैं । आपके अंश स्वरूप हजारों देवता बने हुए हैं ॥३३॥ **नारायण ने कहा**– इस तरह से ब्रह्माजी द्वारा स्तुति किए जाने पर आदि पुरुष वराह भगवान् ने लीलापूर्वक देवताओं को देखकर उन पर कृपा की ॥३४॥ उसी समय वहाँ पर हिरण्याक्ष नामक महान् असुर भगवान् का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। उसे देखकर श्रीभगवान् ने उस पर गदा का प्रहार किया ॥३५॥ उस दैत्य के खून से भगवान् का शरीर रंग गया और अपने दाँतों पर पृथिवी को उठाकर भगवान् ने जल के ऊपर उसे स्थापित किया ॥३६॥ पृथिवी को जल के ऊपर स्थापित करके वराह भगवान् अपने लोक में चले गये । यह भगवान् के द्वारा पृथिवी के उद्धार की कथा अत्यन्त अद्भुत है ॥३७॥ जो व्यक्ति इस उत्तम चरित को पढ़ता अथवा सुनता है उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं और वह वैष्णवी गति को प्राप्त करता है ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

मनु की कन्याओं का संक्षिप्त परिचय

भगवान् नारायण ने कहा– हे नारदजी ! श्रीभगवान् पृथिवी को यथास्थान स्थापित करके वैकुण्ठलोक में चले गये । उसके बाद ब्रह्माजी ने अपने पुत्र

तेजस्विनांवर । स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम् ॥२॥ देशकालविभागेन यज्ञेशं पुरुषं यज । उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो ॥३॥
धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबंधनम् । एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति ॥४॥ पुत्रानुत्पाद्य गुणतः कीर्त्या कांत्याऽऽत्मरूपिणः ।
विद्याविनयसंपन्नान्सदाचारवतां वरान् ॥५॥ कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः समाहितः । मनः सम्यक्समाधाय प्रधानपुरुषे परं ॥६॥ भक्तिसाधनयोगेन
भगवत्परिचर्यया । गतिमिष्टां सदा वंद्यां योगिनां गमिता भवान् ॥७॥ इत्याश्वास्य मनुं पुत्रं पद्मयोनिः प्रजापतिः । प्रजासर्गे नियम्यामुं स्वधाम
प्रत्यपद्यात ॥८॥ प्रजाः सृजत पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत् । स्वायंभुवः प्रजासर्गमकरोत्पृथिवीपतिः ॥९॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ।
कन्यास्तिस्त्रः प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु ॥१०॥ आकूतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका । तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी॥११॥
आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम् । दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः ॥१२॥ रुचेः प्रजज्ञे भगवान्यज्ञो नामादिपूरुषः ।
आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात् ॥१३॥ सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः । दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे

स्वायम्भुव मनु से कहा ॥१॥ हे महाबाहो स्वायम्भुव मनो ! हे पुत्र ! तुम तेजस्वियों में श्रेष्ठ हो । तुम इस पृथिवीमय स्थान पर रहो और यथोचित प्रजाओं
की सृष्टि करो ॥२॥ देश तथा काल का विभाग पूर्वक तुम यज्ञेश पुरुष की आराधना विभिन्न प्रकार के पदार्थों को एकत्रित करके करो ॥३॥ अपने वर्ण
एवं आश्रम के अनुसार शास्त्रोक्त कर्मों का पालन करो । इस तरह के कार्यक्रम के अनुसार तुम्हारी प्रजाओं की वृद्धि होगी ॥४॥ गुणों, कीर्ति तथा कान्ति
से युक्त तुम पुत्रों को उत्पन्न करो । पुत्रों को विद्या तथा विनय से सम्पन्न तथा श्रेष्ठ सदाचारी होना चाहिए ॥५॥ तुम सावधानी पूर्वक अपनी कन्याओं का
विवाह गुणी पुरुषों के साथ करना और प्रधान पुरुष परमात्मा में अपने मन को लगाये रखना ॥६॥ भक्तियोग रूप साधन के द्वारा तथा भगवान् की सेवा
के द्वारा तुम योगियों के लिए वन्दनीय और अभिप्रेत गति को प्राप्त करो ॥७॥ इस तरह से अपने पुत्र मनु को आश्वस्त करके ब्रह्माजी उन्हें प्रजाओं की
सृष्टि करने के कार्य में नियुक्त करके अपने लोक में चले गये ॥८॥ हे पुत्र ! प्रजाओं की सृष्टि करो उस तरह की अपने पिता की आज्ञा को ध्यान में रखकर
महाराज स्वायम्भुव मनु प्रजाओं की सृष्टि करने में लग गये ॥९॥ उनके महातेजस्वी दो पुत्र हुए प्रियव्रत तथा उत्तानपाद । उनकी तीन कन्याएँ भी हुई ।
आप उन सबों का नाम सुनें ॥१०॥ लोकपावनी पहली पुत्री का नाम आकूति था, दूसरी का नाम देवहूति था और तीसरी का नाम प्रसूति था ॥११॥ मनु
ने आकूति का विवाह रूचि नामक प्रजापति के साथ किया, देवहूति का विवाह कर्दम महर्षि के साथ किया और प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ किया ।
इन्हीं तीनों की संतान संसार की सारी प्रजाएँ हैं ॥१२॥ आदि पुरुष यज्ञ भगवान् रुचि प्रजापति के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए । देवहूति के गर्भ से महर्षि
कर्दम के पुत्र के रूप में भगवान् कपिल उत्पन्न हुए ॥१३॥ भगवान् कपिल सम्पूर्ण संसार में सांख्याचार्य के रूप में प्रख्यात हैं । दक्ष की प्रसूति में बहुत

प्रजाः ॥१४॥ यासां संतानसंभूता देवतिर्यङ्नरादयः । प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्गप्रवर्तकाः ॥१५॥ यज्ञश्च भगवान्स्वायंभुवमन्वंतरे विभुः। मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः ॥१६॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्स्वाश्रमे स्थितः । देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम् ॥१७॥ सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् । कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम् ॥१८॥ उपदिश्य महायोगी संययौ पुलहाश्रमम् । अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महायशाः ॥१९॥ यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति । तं वंदे कपिलं योगाचार्यं सर्ववरप्रदम् ॥२०॥ एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णनमुत्तमम् । पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापविनाशनम् ॥२१॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम् । यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात् ॥२२॥ द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता । व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये ॥२३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

◆

सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥१४॥ उन सबों की ही सन्तान पशु, पक्षी, देवता तथा मनुष्य हैं । वे ही सब सृष्टि के प्रवर्तक रूप से प्रख्यात हैं ॥१५॥ स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ भगवान् ही याम संज्ञक देवताओं के साथ मिलकर मनु की राक्षसों से रक्षा किए ॥१६॥ भगवान् कपिल भी अपने आश्रम में स्थित रहकर सभी अज्ञानों को विनष्ट करके ज्ञान का उपदेश अपनी माता देवहूति को दिए ॥१७॥ सविशेष ध्यान योग तथा आध्यात्मज्ञान का निश्चय करने वाला, एवं समस्त अज्ञान को विनष्ट करने वाले शास्त्र के रूप से कापिलशास्त्र प्रख्यात हैं ॥१८॥ अपनी माता को इस ज्ञान का उपदेश करके महायोगी कपिल पुलहाश्रम में चले गये और आज भी वे सांख्याचार्य वहाँ पर विद्यमान हैं ॥१९॥ भगवान् कपिल का स्मरण करने मात्र से भी सांख्ययोग का ज्ञान हो जाता है, सभी वरों को प्रदान करने वाले योगाचार्य की मैं वन्दना करता हूँ ॥२०॥ इस तरह से मैंने मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन किया । इसके पढ़ने तथा सुनने वालों के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥२१॥ इसके बाद मैं मनु के पुत्रों का वर्णन करूँगा जिसका श्रवण करने मात्र से परमपद की प्राप्ति हो जाती है॥२२॥ मनु के ही पुत्रों ने द्वीपों, वर्षों तथा समुद्रों आदि की व्यवहार की प्रसिद्धि तथा सभी जीवों को सुख की प्राप्ति के लिए व्यवस्था की है ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

चतुर्थोऽध्यायः

नारायण उवाच— **मनोः स्वायंभुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः । पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः ॥१॥ प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः । बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः ॥२॥ तस्यां पुत्रान्दश गुणैरन्वितान्भावितात्मनः । जनयामास कन्यां चोर्जस्वतीं च यवीयसीम्॥३॥ आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः । महावीरश्चतुर्थस्तु पंचमो रुक्मशुक्रकः ॥४॥ घृतपृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः । वीतिहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः ॥५॥ एतेषां दशपुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः । कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः ॥६॥ आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः । आश्रमे परमहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदा ॥७॥ अपरस्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चेति विश्रुताः॥८॥ मन्वंतराधिपतय एते पुत्रा महौजसः । प्रियव्रतः स राजेन्द्रो बुभुजे जगतीमिमाम् ॥९॥ एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेंद्रियः । यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथमेऽतपम् ॥१०॥ भागे द्वितीये तत्रासीदंधकारोदयः किल । एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम् ॥११॥ प्रशास्ति मयि भूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम् । एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च ॥१२॥ एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायंभुवस्य सः ।**

सात द्वीपों के उत्थान का उपक्रम

भगवान् नारायण ने कहा— स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र का नाम प्रियव्रत था । वे सध्यधर्म का पालन करने वाले तथा पिता की सेवा में लगे रहने वाले थे ।।२।। उनका विवाह विश्वकर्मा नामक प्रजापति की सुन्दरी तथा समान शील तथा कर्म वाली पुत्री वर्हिष्मती के साथ हुआ ।।२।। महाराज प्रियव्रत की वर्हिष्मती में दश गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए और उनकी सबसे छोटी एक पुत्री भी हुई जिसका नाम उर्जस्वती था ।।३।। प्रियव्रत के पुत्रों के नाम क्रमशः आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महाबीर, रुक्मशुक्र, घृतपृष्ठ, सवन, मेघातिथि, वीतिहोत्र तथा कवि थे । इन सबों के नाम अग्नि से संबद्ध थे । इनमें कवि, सवन और महावीर ये तीन पुत्र विरागी थे ।।५-६।। ये तीनों आत्मविद्या में निष्णात तथा प्रख्यात ऊर्ध्वरिता थे ।।इन तीनों ने प्रसन्नता पूर्वक संन्यासाश्रम को स्वीकार कर लिया ।।७।। प्रियव्रत की दूसरी पत्नी में उनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम थे उत्तम, तामस तथा रैवत ।।८।। वे महाप्रतापी थे और प्रत्येक एक-एक मन्वन्तर के अधिपति बने । राजा प्रियव्रत ने इस पृथिवी का उपभोग किया ।।९।। अव्याहत बल तथा इन्द्रिय वाले राजा प्रियव्रत ने ग्यारह अर्बुद वर्ष तक राज्य किया । इनके ही राज्य में सूर्योदय होता था और दूसरे तरफ जाकर इनके ही राज्य में सूर्यास्त भी हो जाता था । राजा ने देखा कि मेरे राज्य के एक भाग मे जब प्रकाश रहता है तो दूसरे भाग में अन्धकार रहता है ।।१०-११।। यह कैसे सम्भव है कि मेरे राज्य में अन्धकार रहे । अतएव

रथेनादित्यवर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन् ॥१३॥ तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः । पतितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोकहेतवे ॥१४॥
जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः । रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्त सिंधवः ॥१५॥ यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः।
जंबुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः ॥१६॥ कुशद्वीपः क्रौंचद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः । तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम् ॥१७॥
समंततश्चोपक्लृप्तं बहिर्भागक्रमेण च । क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः ॥१८॥ क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः । सप्तैते
प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिंधवस्तथा ॥१९॥ प्रथमो जम्बुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः । तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम् ॥२०॥
प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते । जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः ॥२१॥ शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते । यज्ञबाहुं तदधिपं
करोतिस्म प्रियव्रतः ॥२२॥ कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते । हिरण्यरेता राजाऽभूत्प्रियव्रततनूजनिः ॥२३॥ क्रौंचद्वीपे पंचमे तु क्षीरोदधिपरिप्लुते।
प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः ॥२४॥ शाकद्वीपे चारुतरे दधिमण्डोदसंकुले । मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः ॥२५॥ पुष्करद्वीपके

मैं अपने योग के बल से पृथिवी पर अन्धकार को नहीं रहने दूँगा ॥१२॥ इस तरह से सोचकर मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत ने सूर्य के समान प्रकाशमान
रथ पर चढ़कर पृथ्वी को प्रकाशित करते हुए पृथिवी की सात परिक्रमा की ॥१३॥ प्रियव्रत के चक्कर लागने के कारण पृथिवी में जो उनके रथ के चक्के
से गढ़े हो गये वे ही सात समुद्र हो गये ॥१४॥ परिक्रमा के बीच की जो भूमि थी वही सात द्वीप हो गयी । रथ के पहिये से जो समुद्र बने वे ही उन
द्वीपों की खाईं का काम करने लगे ॥१५॥ चूकि ये द्वीप हो गये अतएव वे पृथिवी के सात द्वीप के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन द्वीपों के नाम हैं १. जम्बूद्वीप,
२. प्लक्ष द्वीप, ३. शाल्मली द्वीप ॥१६॥ ४. कुशद्वीप, ५. क्रौञ्चद्वीप, ६. शाकद्वीप और ७. पुष्करद्वीप । इन द्वीपों का उत्तरोत्तर दोगुना परिमाण बड़ा
है॥१७॥ द्वीपों के चारो ओर बाहर बाहर जो सात समुद्र हैं वे क्रमशः १. क्षारोदसमुद्र, २. इक्षुरसोद समुद्र, ३. सुरोद समुद्र, ४. घृतोद समुद्र ॥१८॥ ५.
क्षीरोद समुद्र, ६. दधिमण्डोद समुद्र एवं ७. शुद्धोद समुद्र हैं । इस तरह पृथिवी पर विख्यात सात समुद्र हैं ॥१९॥ इनमें पहला जम्बूद्वीप है जो क्षारोद
समुद्र से धिरा है । उस द्वीप का स्वामी राजा ने आग्नीध्र नामक अपने पुत्र को बनाया ॥२०॥ दूसरा प्लक्ष नामक द्वीप इक्षुरसोद समुद्र से घिरा है उसके
स्वामी इध्मजिह्व नामक प्रियव्रत के पुत्र हुए ॥२१॥ शाल्मली द्वीप सुरोद समुद्र से घिरा है । प्रियव्रत ने उसका स्वामी यज्ञबाहु नामक अपने पुत्र को बनाया॥२२॥
घृतोद समुद्र से घिरे हुए अत्यन्त सुन्दर कुशद्वीप के स्वामी प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरेता हुए ॥२३॥ पाँचवें क्षीरोदसमुद्र से घिरे हुए क्रौञ्चद्वीप के स्वामी महाराज
प्रियव्रत के पुत्र महाबलवान् घृतपृष्ट हुए ॥२४॥ दधिमण्डोद से घिरे हुए अत्यन्त सुन्दर शाकद्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि हुए ॥२५॥

शुद्धोदकसिंधुसमाकुले । वीतिहोत्रो बभूवासौ राजा जनकसंमतः ॥२६॥ कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः । आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता ॥२७॥ एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान्प्रियव्रतः । विवेकवशगो भूत्वा योगामार्गाश्रितोऽभवत् ॥२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः । भूमण्डलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम् ॥१॥ समासात्संप्रवक्ष्यामि नालं विस्तरतः क्वचित् । जंबुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः ॥२॥ विशालो वर्तुलाकारो यथाऽब्जस्य च कर्णिका । नव वर्षाणि यस्मिश्च नवसाहस्रयोजनैः ॥३॥ आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः । अष्टभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः ॥४॥ धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे । दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम् ॥५॥ इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः । सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः॥६॥**

शुद्धोदक समुद्र से घिरे हुए पुष्कर द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र हुए ॥२६॥ महाराज प्रियव्रत ने अपनी पुत्री उर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य से किया उनमें शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी नामक पुत्री उत्पन्न हुयी ॥२७॥ इस तरह से महाराज प्रियव्रत ने अपने पुत्रों में सात द्वीपों को बाँट दिया और स्वयं वे विवेक सम्पन्न होकर योगी हो गये ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भूमण्डल का विस्तृत वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– हे देवर्षि नारदजी ! अब आप द्वीपों के देवताओं द्वारा किए गये देश विभाजन को विस्तार पूर्वक सुनें ॥१॥ उसे मैं संक्षेप में ही कहूँगा बहुत अधिक विस्तार से नहीं कहूँगा । पहला द्वीप जम्बूद्वीप है । इसका एक लाख योजन विस्तार है ॥२॥ इस विशाल वर्तुलाकार द्वीप की आकृति कमल की कर्णिका के समान है । इस द्वीप में नव हजार योजन में फैले हुए नव वर्ष हैं । ये सभी वर्ष पर्वतों से चारो ओर से घिरे हुए हैं । इन पर्वतों की संख्या आठ है । इन पर्वतों का आकार भी बहुत बड़ा है । इन पर्वतों से ये वर्ष विभक्त होते हैं । दो वर्ष धनुष के समान आकार वाले हैं दक्षिण

कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च । मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्साहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम् ॥७॥ मूले षोडशसाहस्रस्तावतांतर्गतः क्षितौ । इलावृतस्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृङ्गवान् ॥८॥ त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु । रम्यकाख्ये तथा वर्षे द्वितीये च हिरणमये ॥९॥ कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादां व्यंजयंति त्रे । प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा ॥१०॥ द्विसहस्रपृथुतरास्तथा एकैकशः क्रमात् । पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः॥११॥ दैर्ध्यं एव ह्रसन्तीमे नानानदनदीयुताः । इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः ॥१२॥ हिमालयश्चेति त्रयः प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः । अयुतोत्सेधभाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः ॥१३॥ हरिवर्षं किंपुरुषं भारतं च यथातथम् । विभागात्कथयंत्येते मर्यादागिरयस्त्रयः ॥१४॥ इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नामपर्वतः। पूर्वेण च ततः श्रीमान्गान्धमादनपर्वतः ॥१५॥ आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ द्विसहस्रतः । योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी ॥१६॥ केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ । मन्दरश्च तथा मेरुमंदरश्च सुपार्श्वकः ॥१७॥ कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः । योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम् ॥१८॥ अवष्टम्भकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः । एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजंबुनी ॥१९॥ कदंबन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः

से उत्तर तक । वहीं पर चार वर्ष हैं । इलावृत वर्ष चतुरस्र (चौकोर) है ॥३-५॥ इलावृत वर्ष बीच का वर्ष है इलावृत वर्ष के बीच में सुमेरु पर्वत है। यह सुवर्ण का पर्वत है । यह एक लाख योजन ऊँचा है ॥६॥ यह भूगोल रूपी कमल की कर्णिका स्वरूप है । यह पर्वत अपने शिखर पर बत्तीस हजार योजन में फैला हुआ है ॥७॥ मूल में यह सोलह हजार योजन में फैला है और सोलह हजार योजन यह पृथिवी के भीतर है । इलावृत उत्तर की ओर तीन पर्वत हैं । नील पर्वत, श्वेत पर्वत और शृङ्गवान पर्वत ॥८॥ ये तीनों पर्वत इलावृत वर्ष की सीमा स्वरूप हैं । दूसरा वर्ष रम्यकवर्ष है जो सुवर्णमय है । तीसरा वर्ष कुरुवर्ष हैं । पूर्वोक्त तीनों पर्वत इन वर्षों की सीमा को विभाजित करते हैं । वे वर्ष आगे की ओर फैले हुए हैं । इनकी दोनों ओर की सीमा क्षारोद समुद्र है ॥१०॥ वे वर्ष दो-दो हजार योजन चौड़े हैं और पूर्व-पूर्व दिशा की ओर फैले हुए हैं । उनकी उत्तर दिशा में एक-एक दशांश का अन्तर होता गंया है और उनकी चौड़ाई घटती गयी है । ये वर्ष अनेक नदियों और समुद्रों से युक्त हैं । इलावृत वर्ष की दक्षिण दिशा में निषध, हेमकूट तथा हिमालय नामक विशाल पर्वत विद्यमान हैं । ये आगे की ओर फैले हुए हैं तथा देखने में सुन्दर हैं । ये पर्वत दश हजार योजन ऊँचे हैं ॥११-१३॥ हरिवर्ष, किम्पुरुष वर्ष तथा भारतवर्ष इन तीन वर्षों का ठीक-ठीक विभाग ये तीन मर्यादा पर्वत बतलाते हैं ॥१४॥ इलावृतवर्ष की पश्चिम दिशा में माल्यवान् नामक पर्वत हैं । और उसकी पूर्वदिशा में गन्धमादन नामक पर्वत है ॥१५॥ ये दोनों पर्वत नीलगिरि से लेकर निषध पर्वत पर्यन्त दो हजार योजन पर्यन्त की दूरी में फैले हुए हैं । ये दोनों पर्वत केतुमालवर्ष तथा भद्राश्ववर्ष की मर्यादा पर्वत के रूप में प्रख्यात हैं । मन्दराचल, मेरुमन्दराचल, सुपार्श्व ॥१६-१७॥ एवं कुमुदपर्वत ये सुमेरु पर्वत के पाये का काम करते हैं । ये सुमेरु पर्वत के चारो ओर दश हजार योजन ऊँचे हैं ॥१८॥ और सुमेरु पर्वत के अवरोधक के रूप में विराजमान हैं । इन चारो पर्वतों पर चार वृक्ष हैं- वे हैं आम, जामुन ॥१९॥ कदम्ब और बट । ये चारो वृक्ष इन चारो पर्वतों की पताका

स्थिताः । केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः ॥२०॥ तावद्विटपविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः । चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षुसज्जलाः॥२१॥ यदुपस्पर्शिनो देवा यौगैश्वर्याणि विंदते । देवोद्यानानि चत्वारि भवंति ललनासुखाः ॥२२॥ नंदनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम् । येषु स्थित्वाऽमरगणा ललनायूथसंयुताः ॥२३॥ उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः । विहरंति स्वतंत्रास्ते यथाकामं यथासुखम् ॥२४॥ मंदरोत्संगसंस्थस्य देवचूतस्य मस्तकात् । एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभांजि च ॥२५॥ गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च । तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च॥२६॥ अरूणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवर्तते । नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता ॥२७॥ अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी । पूजयंति च तां देवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥२८॥ नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्यभयप्रदाम् । तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजंति ते ॥२९॥ आद्या मायाऽतुलाऽनंता पुष्टिरीश्वरमालिनी । दुष्टनाशकरी कान्तिदायिनीति स्मृता भुवि ॥३०॥ अस्याः पूजाप्रभावेण जाम्बूनदमुदावहत् ॥३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

के समान हैं । उन सबों की लम्बाई ग्यारह सौ योजन है ॥२०॥ उन वृक्षों की जितनी ऊँचाई है, उतना ही उनका विस्तार (फैलाव) भी है । उन चारो पर्वतों के ऊपर चार सरोवर भी हैं । वे क्रमशः दुग्ध, मधु, इक्षुरस तथा स्वच्छ जल के सरोवर हैं ॥२१॥ उन सरोवरों का स्पर्श करके ही देवगण योग के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं । उन सबों के ऊपर रमणियों को सुख देने वाले चार उद्यान भी हैं ॥२२॥ उन सबों के नाम क्रमशः नन्दनवन, चैत्ररथवन, वैभ्राजवन और सर्वतोभद्र वन हैं । उन वनों में देवगण रमणियों के साथ रहते हैं ॥२३॥ उपदेव गणों के द्वारा जिनके यश का गायन किया जाता है, ऐसे देवगण अपने मनोऽनुकूल रूप से विहार करते हैं । मन्दराचल पर्वत के ऊपर देवताओं का आम्रवृक्ष है। उसके फल ग्यारह सौ योजन ऊपर से अमृत के समान तथा पर्वत के समान परिमाण वाले गिरते हैं । वे फल अत्यन्त स्वादिष्ट और मृदु होते हैं । उन फलों के फट जाने से उनके स्वादिष्ट रस से ॥२६॥ अरुणोदय के समय के समान रूपवाली अरुणोदा नदी प्रवाहित होती है । उस नदी के जल का महत्त्व देवता तथा दैत्य दोनों देते हैं ॥२७॥ अरुणादेवी सभी पापो को विनष्ट करने वाली हैं । सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली उस देवी की सब पूजा करते हैं ॥२८॥ अनेक प्रकार की पूजाओं तथा उपहारों से प्रसन्न होकर पापों को विनष्ट करके अभय प्रदान करती हैं । उनके कृपापूर्वक देखने मात्र से वहाँ के जीवों को कल्याण और नैरुज्य प्राप्त होता है ॥२९॥ वे देवी भूमण्डल पर आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरी मालिनी, दुष्टनाशकरी, तथा कान्तिप्रदायिनी आदि नामों से विख्यात हैं ॥३०॥ उन्हीं देवी की पूजा के प्रभाव से संसार में सुवर्ण उत्पन्न हुआ ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

षष्ठोऽध्याय:

श्रीनारायण उवाच– **अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद । मन्दरान्निपतंती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत् ॥१॥ यज्जोषणाद्भवान्याश्चानुचरीणां**
स्त्रियामपि । यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगन्धवहोऽनिलः ॥२॥ वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया । एवं जंबूफलानां च तुङ्गदेशनिपातनात् ॥३॥
विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जरांगप्रमाणिनाम् । रसेन च नदी जंबूनाम्नी मेर्वाख्यमंदरात् ॥४॥ पतन्ती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता । देवी
जम्बूफलास्वादतुष्टा जंब्वादिनी स्मृता ॥५॥ तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम् । पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी ॥६॥ पावनी पापिनां
रोगनाशिनी स्मरतामपि । कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम् ॥७॥ कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता । कठोरविग्रहा धन्या
नाकिमान्या गभस्तिनी ॥८॥ एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम् । जम्बूनदीरोधसोर्या मृत्तिका तीरवर्तिनी ॥९॥ जम्बूरसेनानुविद्ध्यमाना
वाय्वर्कयोगतः । विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत् ॥१०॥ जाम्बूनदं सुवर्णं च प्रोक्तं देवविनिर्मितम् । यत्सुवर्णं च विबुधा योषिद्भिः

गङ्गा तथा अन्य नदियों की उत्पत्ति का वर्णन

भगवान् श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! मैंने जिसे उरुणोदा नदी बतलाया है, वह मन्दराचल पर्वत के पूर्वभाग से निकलकर इलावृत वर्ष को प्लावित करती है ॥१॥ भगवती की अनुचरी स्त्रियों के द्वारा सेवन किए जाने के कारण तथा गन्धर्वों की पत्नियों द्वारा सेवित किए जाने के कारण, उनकी देह की सुगन्धि को लेकर चलने वाली हवा दश योजन पर्यन्त की भूमि को सगुन्धित बनाती रहती है । इसी तरह जामुन के हाथी के समान बड़े-बड़े फलों के भी अत्यन्त ऊपर से गिरने के कारण ॥२-३॥ तथा गुठली रहित फलों के फट जाने के कारण उससे जो नदी प्रवाहित होती है, उसका नाम जम्बू है। वह नदी मेरुमन्दर से प्रवाहित होती है ॥४॥ वह पृथिवी पर गिरकर इलावृत वर्ष के दक्षिण भाग में प्रवाहित होती हैं । जम्बु के फल के स्वाद से सन्तुष्ट रहने वाली देवी का नाम जम्ब्वादिनी है ॥५॥ वे देवी वहाँ की प्रजाओं, देवताओं, नागों, ऋषियों तथा राक्षसों के द्वारा पूजित होती हैं । वे उनकी मान्या हैं और सभी जीवों पर दया करने वाली हैं ॥६॥ वे पापियों को भी पवित्र बना देती हैं । स्मरण करने वालों रोगियों के रोग को विनष्ट कर देती हैं । वे अपना कीर्तन करने वालों के विघ्न का संहार करती हैं । देवताओं क लिए भी सम्माननीय हैं ॥७॥ वे मनुष्यों द्वारा कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या तथा गभस्तिनी ॥८॥ इन नामों से जपने योग्य है । जम्बू नदी के तटों की जो मिट्टी है ॥९॥ वह जामुन के रस से और वायु तथा सूर्य के योग से सुख जाती है । उसी से देवताओं और विद्याधरों की स्त्रियाँ अपने आभूषणों का निर्माण करती हैं ॥१०॥ उसी को

कामुकाः सदा ॥११॥ मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वते । महाकदम्बः संप्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः ॥१२॥ तस्य कोटरदेशेभ्यः पंच धाराश्च याः स्मृताः । सुपार्श्वगिरिमूर्ध्नीह पतंत्येता भुवं गताः ॥१३॥ मधुधाराः पंच तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः । याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत्॥१४॥ वायुः समंततो गच्छञ्छतयोजनवासनः । धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी ॥१५॥ देवपूज्या महोत्साहा कालरूपा महामना । वसते कर्मफलदा कांतारग्रहणेश्वरी ॥१६॥ करालदेहा कालांगी कामकोटिप्रवर्तिनी । इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी ॥१७॥ एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः । तत्स्कन्धेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुदमूर्धतः ॥१८॥ पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरादिभिः । शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते ॥१९॥ उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयंति समंततः । मीनाक्षी तत्तले देवी देवासुरनिषेविता ॥२०॥ नीलाम्बरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा । नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा ॥२१॥ अतिमान्याऽतिपूज्या च मत्तमातंगगामिनी । मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियान्तरा ॥२२॥ मारवेगधरा मारपूजिता मारमार्दिनी । मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभूः ॥२३॥ एभिर्नामपदैर्वंद्या देवी सा मीनलोचना । जपतां स्मरतां मानदात्री

जाम्बूनद (सुवर्ण) कहते हैं । उसी सुवर्ण से देवगण अपनी पत्नियों के लिए ॥११॥ सदा मुकुट, करधनी और केयूर आदि आभूषणों को बनवाते हैं । सुपार्श्व नामक पर्वत के ऊपर महाकदम्ब का वृक्ष है ॥१२॥ उस वृक्ष के कोटर से पाँच धारायें निकलती हैं और सुपार्श्वगिरि के शिखर के ऊपर गिरती हैं । उसके पश्चात् वे पृथिवी पर गिरती हैं ॥१३॥ पाँचो मधु की धारायें हैं और इलावृत वर्ष के पश्चिमी भाग को प्लावित करती हैं । उसका सेवन करने वाले देवताओं के मुख से निकलने वाली सुगन्धि से युक्त वायु उसके चारों तरफ सौ योजन पर्यन्त की दूरी को सुगन्धित करती है । भक्तों की कामनाओं को सिद्ध करने वाली धारेश्वरी देवी वहाँ विराजमान रहती हैं ॥१५॥ उन देवी के नाम हैं– देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महामना, कर्मफलप्रदा, कांतारग्रहणेश्वरी ॥१६॥ कराल देहा, कालांगी, कामकोटि प्रवर्तिनी । सभी देवताओं की स्वामिनी उस देवी की पूजा इन नामों से करनी चाहिए ॥१७॥ इसी तरह से कुमुद नामक पर्वत के ऊपर जो शतबल नामक बट का वृक्ष है उसकी शाखाओं से अनेक नद एवं नदियाँ कुमद गिरि के शिखर पर गिरती हैं फिर वे पृथिवी पर प्रवाहित होती हैं ॥१८॥ ये धारायें, दूध, दधि, मधु, घी, गुड़ तथा अन्न एवं वस्त्र आदि की हैं । वे धारायें शय्या, आसन तथा भूषण आदि के द्वारा वहाँ के जीवों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं ॥१९॥ वे इलावृत वर्ष के उत्तरी भाग को प्लावित करती हैं । उसके नीचे मीनाक्षी देवी विद्यमान है । उस देवी की सेवा देवता तथा असुर दोनों करते हैं ॥२०॥ स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस देवी के नाम इस प्रकार हैं नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, इस देवी के वस्त्र नील वर्ण के हैं, उनका मुख भयंकर है । उनके केश काले-काले हैं । वे स्वर्ग में रहने वाले देवताओं के समूह को समस्त फलों को प्रदान करती हैं ॥२१॥ उनके नाम हैं– अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातंगगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा॥२२॥

चेश्वरसंगिनी ॥२४॥ तेषां नदानां पानीयपानानुगतचेतसाम् । प्रजानां न कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम् ॥२५॥ क्लमस्वेदादिदौर्गंध्यं जराभयमृतिभ्रमाः। शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः ॥२६॥ नापदश्चैव जायंते यावज्जीवं सुखं भवेत् । नैरन्तर्येण तत्स्माद्वै सुखं निरतिशायकम्॥२७॥ तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संनिवेशं च तद्गिरेः । सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक् ॥२८॥ गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेह ते । केसरीभूय सर्वेऽपि मेरोर्मूलविभागके ॥२९॥ परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः । कुरङ्गः कुरगश्चैव कुसुम्भोऽथो विकंकतः ॥३०॥ त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा । निषधश्च शिनीवासः कपिलः शंख एव च ॥३१॥ वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च । नागः कालञ्जरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः ॥३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

मारवेगधरा, मारपूजिता, मारमर्दिनी, मयूरवरशोभाढ्या, शिखिवाहनगर्भभूः ॥२३॥ वे मीनाक्षी देवी इन्हीं नामों से स्तुति किए जाने योग्य हैं । वे अपने नामों का जप करने वालों तथा स्मरण करने वालों के सम्मान को बढ़ाती हैं वे परब्रह्म के साथ रहती हैं ॥२४॥ उन नदों के जलों को पीने वाली प्रजाओं के बाल कभी नहीं झड़ते हैं ॥२५॥ उनके शरीर में श्रान्तिजन्य स्वेद (पसीने) की दुर्गन्धि नहीं आती है । और न तो उनको वृद्धापे का भय होता है और न मृत्यु का ही भय होता है । उनके मुख पर ठंढी, गर्मी अथवा वायु के विकार से किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है ॥२६॥ उन्हें अपने जीवन में किसी प्रकार की विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता है । वे जीवन भर सुखी रहते हैं । उन्हें जीवन भर निरन्तर सदा सर्वोत्कृष्ट सुख ही मिलता है ॥२७॥ इसके बाद उस पर्वत में दूसरे पर्वतों के सन्निवेश का वर्णन मैं करूँगा । वे पर्वत जो सुवर्ण के पर्वत सुमेरु गिरि से भिन्न हैं ॥२८॥ ऐसे पर्वतों की संख्या बीस है । वे सुमेरु पर्वत की कर्णिका के समान हैं । सुमेरु पर्वत के मूल में विद्यमान वे पर्वत सुमेरु पर्वत रूपी कमल की कर्णिका केसर (पराग) के समान हैं ॥२९॥ वे सबके सब सुमेरु पर्वत को चारो ओर से घेर रखे हैं । उन पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं— १. कुरङ्ग, २. कुरग, ३. कुसुम्भ, ४. विकंकत॥३०॥ ५. शिशिर, ६. त्रिकूट, ७. शिशिर, ८. पतङ्ग, ९. रुचक, १०. निषध, ११. शिनीवास, १२. कपिल, १३. शंख ॥३१॥ १४. वैदूर्य, १५. चारुधि, १६. हंस, १७. ऋषभ, १८. नाग, १९. कालञ्जर और २०. नारद ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः सहस्रैरायतौ चोदग्द्विसहस्रं पृथूच्चकौ ॥१॥ जठरो देवकूटश्च तावेतौ गिरवर्यकौ । मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथापरः ॥२॥ पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुङ्गविस्तरौ । मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकरबीरकौ॥३॥ प्रागायतौ पूर्ववृत्तौ महापर्वतराजकौ । एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिश्रृंगमकरौ गिरी ॥४॥ एतैश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः । सुमेरुः कांचनगिरिः परिभ्राजन्नविर्यथा ॥५॥ मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पंकजजन्मनः । मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः ॥६॥ समानचतुरस्रां च शातकौंभमयीं पुरीम् । वर्णयन्ति महात्मानः परावरविदो बुधाः ॥७॥ तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः । पुर्यः प्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम् ॥८॥ यथारूपं सार्धनेत्रसहस्रप्रमिताः कृताः । मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥९॥ तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगनाऽपरा । श्रद्धावती गंधवती तथा चान्या महोदया ॥१०॥ यशोवती च ब्रह्मेंद्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम् । तत्रैव यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्भगवतो विभोः ॥११॥ वामपादांगुष्ठनखनिर्भिन्नस्य**

गङ्गा की धाराओं का वर्णन

भगवान् श्रीनारायण ने कहा– सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा में दो पर्वत हैं उनकी लम्बाई अठारह हजार योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है ॥१॥ ये दोनों श्रेष्ठ पर्वत हैं इनके नाम जठर और देवकूट हैं । सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में दो पर्वत हैं पवमान और पारियात्र । इन पर्वतों की भी लम्बाई तथा चौड़ाई जठर एवं देवकूट पर्वत के ही समान हैं । सुमेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में भी दो पर्वत हैं- कैलास और करवीर ॥२-३॥ इनकी भी लम्बाई और चौड़ाई पूर्वोक्त पर्वतों के ही समान हैं । इसी तरह सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में दो पर्वत हैं त्रिश्रृंग और मकर ॥४॥ इस तरह सुमेरु पर्वत आठ पर्वतों से घिरा हुआ है । सुमेरु पर्वत को सुवर्ण पर्वत भी कहते हैं । यह सूर्य के समान चमकता है ॥५॥ सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्माजी की पुरी है । यह दश हजार योजन में फैली हुई पुरी है ॥६॥ इस स्वर्णमयी पुरी के चारो कोने बराबर हैं । ऐसा परावर तत्त्व को जानने वालों का कहना है ॥७॥ उस पुरी के सन्निकट में ही आठ लोकपालों की भी पुरियाँ है । वे सबके सब सुवर्णमयी हैं और आठ दिशाओं में हैं ॥८॥ जिस दिशा में जिस लोकपाल की पुरी होनी चाहिए वे उसी दिशा में हैं । उन नगरियों का रूप भी उन लोकपालों के अनुरूप ही हैं । इन सबों का विस्तार ढाई-ढाई हजार योजन है । इस तरह से सुमेरु पर्वत के ऊपर नव पुरियाँ हैं- इनके नाम हैं १. मनोवती, २. अमरावती, ३. तेजोवती, ४. संयमनी, ५. कृष्णाङ्गना, ६. श्रद्धावती, ७. गन्धवती, ८. महोदया, और ९. यशोवती । इन नगरियों में क्रमशः ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, तथा ईशान । इन लोकपालों का निवास

च नारद । अंडोर्ध्वभागरंध्रस्य मध्यात्संविशती दिवः ॥१२॥ मूर्धन्यवततारेयं गंगा संविशती विभो । लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला॥१३॥ इयं च साक्षाद्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता । कालेन महता सा तु युगसाहस्त्रकेण तु ॥१४॥ दिवो मूर्धानमागत्य देवी देवनदीश्वरी । यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१५॥ औत्तानपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावनः । भगवत्पाद युगलं पद्मकोषरजो दधत् ॥१६॥ अद्याप्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः । तत्र सप्तर्षयस्तस्य प्रभावज्ञा महाशयाः ॥१७॥ प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति सर्वलोकहितेप्सवः । आत्यंतिका सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी ॥१८॥ आद्रियन्ते च शिरसा जटाजूटोषितेन च । ततो विष्णुपदाद्देवी नैकसाहस्त्रकोटिभिः ॥१९॥ विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा । चन्द्रमण्डलमाप्लाव्य पतंती ब्रह्मसद्मनि ॥२०॥ चतुर्धा भिद्यमाना सा ब्रह्मलोके च नारद । चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिसृता ॥२१॥ सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत । सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रेति नामभिः ॥२२॥ सीता च ब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यः क्षमाभृताम् । केसराभिधनाम्ना च प्रस्त्रवन्ती च स्वर्णदी ॥२३॥ गंधमादनमूर्ध्नीह पतिता पापहारिणी । अन्तरेण तु भद्राश्ववर्षं प्राच्यां समागता ॥२४॥ क्षारोदधिं

है । वहीं भगवान् विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था ॥९-११॥ हे नारदजी ! उनके बायें पैर के नख से ब्रह्माण्ड का ऊर्ध्व भाग विदीर्ण हो गया और उसमें छिद्र हो गया ॥१२॥ उस पर्वत के ऊपर ही गङ्गा का अवतरण हुआ । इस गङ्गा का जल समस्त संसारियों के पाप को प्रणष्ट करने वाला है ॥१३॥ ये गङ्गा लोकों में साक्षात् विष्णुपदी के नाम से प्रख्यात हैं । गङ्गा कई हजार युगों तक चलकर इस सुमेरु पर्वत पर आयीं ॥१४॥ ये सभी देवनदियों की स्वामिनी हैं । देवी गङ्गा स्वर्गलोक के शिखर पर उस स्थान पर आयीं जो विष्णुपद के नाम से त्रैलोक्य में विख्यात है ॥१५॥ जहाँ पर अत्यन्त पवित्र, उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव का स्थान है । ध्रुव श्रीभगवान् विष्णु के दोनो चरणकमलों की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हैं ॥१६॥ आज भी राजर्षि ध्रुव उस अचल स्थान में विद्यमान हैं । वहीं पर ध्रुव के प्रभाव को जानने वाले सप्तर्षियों का स्थान है ॥१७॥ वे अत्यन्त उदार सप्तर्षि सम्पूर्ण लोकों के कल्याण की कामना से गङ्गाजी की परिक्रमा करते रहते हैं । ये गङ्गा तपस्वियों को सिद्धि प्रदान करने वाली हैं । ये तपस्वियों की सर्वोत्कृष्ट सिद्धि स्वरूपा हैं ॥१८॥ अतएव वे सप्तर्षि जटाजूट रखकर गङ्गाजी में स्नान करते हैं । उसके पश्चात् विष्णुपद से देवी गङ्गा अनेक हजार विमानों से व्याप्त देवयान (देवमार्ग) से उतरती हुई चन्द्रमण्डल को आप्लावित करके, ब्रह्मपुरी में आयीं ॥२०॥ वहाँ गङ्गा देवी के चार भाग हो गये और वे चार नामों से चार दिशाओं में प्रवाहित होने लगीं ॥२१॥ इस तरह से प्रवाहित होती हुयी नदियाँ नदियों के पति समुद्र में जाकर मिल गयीं । गङ्गाजी की चार धाराओं के नाम इस प्रकार हैं १. सीता, २. अलकनन्दा, ३. चक्षु और ४. भद्रा ॥२२॥ गङ्गाजी की सीता नाम की धारा ब्रह्मलोक से निकलकर पर्वत के शिखरों से होती हुई केसर नामक पर्वत

गता सा तु द्युनदी देवपूजिता । ततो माल्यवतः शृंगाद्द्वितीया परिनिर्गता ॥२५॥ ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता । चक्षुर्नाम्नी देवनदी प्रतीच्यां दिश्युपागता ॥२६॥ सरितां पतिमाविष्टा सा गङ्गा देववन्दिता । ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद ॥२७॥ पुण्या चालकनन्दा वै दक्षिणेनाब्जभूपदात् । वनानि गिरिकूटानि समतिक्रम्य चागता ॥२८॥ हेमकूटं गिरिवरं प्राप्ताऽतोपीह निर्गता । अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागता परा ॥२९॥ दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया सा सरिद्वरा । यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदे पदे ॥३०॥ राजसूयाश्वमेधादिफलं तु न हि दुर्लभम् । ततश्चतुर्थी धारा तु शृंगवत्पर्वतात्पुनः ॥३१॥ भद्राभिधा संस्रवंती कुरून्सन्तर्प्य चोत्तरान् । समुद्रं समनुप्राप्ता गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥३२॥ अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षे वर्षेऽपि संति हि ॥ बहुशो मेरुमन्दारप्रसूताश्चैव नारद ॥३३॥ तत्रापि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशंति हि । अन्यानि चाष्टवर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च ॥३४॥ स्वर्गिणां पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद । पुरुषाणां चायुतायुर्वज्रांगा देवसन्निभाः ॥३५॥ पुरुषा नागसाहस्रैर्दशभिः

पर गिरी ॥२३॥ उसके पश्चात् वे गंधमादन नामक पर्वत के ऊपर गिरीं । पापापहारिणी गङ्गाजी की वह धारा भद्राश्व वर्ष की पूर्वदिशा में आयी ॥२४॥ उसके पश्चात् वे देवनदी क्षार सागर में जाकर मिल गयीं । माल्यवान् नामक पर्वत से गङ्गाजी की दूसरी धारा निकली है ॥२५॥ वहाँ वेग सम्पन्न गङ्गाजी की वह चक्षु नाम की धारा, केतुमाल पर्वत पर गिरी । वह देवनदी की धारा पश्चिम दिशा में आयी और जाकर समुद्र में मिल गयी । इसके पश्चात् हे नारदजी ! अलकनन्दा नाम की गंङ्गाजी की धारा निकली । वह ब्रह्माण्ड की दक्षिण दिशा से होकर वनों, पर्वत समूहों को पार करती हुई हेमकूट नामक पर्वत पर आयीं । वहाँ से वे अत्यधिक वेग के साथ भारतवर्ष में आयीं ॥२६-२९॥ वह श्रेष्ठ नदी जाकर दक्षिण समुद्र में मिल गयी । उस नदी में स्नान करने के लिए जाने वाले मनुष्यों को पद-पद पर राजसूय तथा अश्वमेध आदि यज्ञों को करने का फल प्राप्त होता है । उसके पश्चात् गङ्गाजी की चौथी धारा शृङ्गवान पर्वत से प्रवाहित हुई ॥३०-३१॥ उस धारा का नाम भद्रा है । प्रवाहित होती हुई वह धारा उत्तर कुरुवर्ष देश में आयी और अन्त में समुद्र में जाकर मिल गयी । गङ्गा नदी त्रैलोक्य को पवित्र बनाने वाली है ॥३२॥ प्रत्येक वर्षों में दूसरी भी नदियाँ तथा नद हैं । हे नारदजी ! उनमें से बहुत सी नदियाँ सुमेरु पर्वत तथा मन्दराचल से प्रवाहित होती हैं ॥३३॥ इन सभी वर्षों में भारतवर्ष को कर्मक्षेत्र कहा गया है । इसको छोड़कर जम्बूद्वीप के जो अन्य आठ वर्ष है, वे जीवों को भौमस्वर्ग का सुख प्रदान करने वाले हैं ॥३४॥ वे स्वर्ग में गये हुए जीवों को भोगने से बचे हुए कर्मों का फल प्रदान करने वाले हैं । उन वर्षों में रहने वाले पुरुषों की आयु दश हजार वर्ष की होती है । उनके अंग वज्र के समान होते हैं ओर वे जीव देखने में देवताओं के समान सुन्दर

परिकल्पिताः । महासौरतसंतुष्टाः कलत्राढ्याः सुखान्विताः ।।३६।। एकवर्षोनके चायुष्याप्त गर्भाः स्त्रियोऽपि हि । त्रेतायुगसमः कालो वर्तते सर्वदैव हि ।।३७।।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा । पूजयन्ति महादेवीं जपध्यानसमाधिभिः ।।१।। सर्वर्तुकुसुमश्रेणीशोभिता वनराजयः । फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरन्तरम् ।।२।। तेषु काननवर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु । गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु ।।३।। विकचोत्पलमालासु हंससारससंचयैः । विमिश्रितेषु तेष्वेव पक्षिभिः कूजितेषु च ।।४।। जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयन्ति च । सुंदरीललितभ्रूणां विलासायतनेषु च ।।५।। तत्रत्या विहरन्त्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह । नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः ।।६।। (नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्)।**

होते हैं ।।३५।। वहाँ के पुरुषों में दश हजार हाथियों का बल होता है । वे कामक्रीडा के प्रेमी, पत्नियों से युक्त तथा सुखी होते हैं ।।३६।। वहाँ की स्त्रियों में आयु समाप्त होने के एक वर्ष पहले तक गर्भधारण की क्षमता होती है । वहाँ काल हमेशा त्रेतायुग के समान बना रहता है ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुरण के आठवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

इलावृत वर्ष में शिवजी द्वारा संकर्षण की तथा भद्राश्व वर्ष में भद्रश्रवा द्वारा हयग्रीव की स्तुति

भगवान् श्रीनारायण ने कहा– उन सभी वर्षों में बड़े-बड़े देवता पूर्वोक्त स्तुतियों से जप, ध्यान तथा समाधि के द्वारा महादेवी की पूजा करते रहते हैं।।१।। सभी ऋतुओं में वनों में अनेक प्रकार के पुष्प विकसित हुए रहते हैं । वहाँ फलों तथा पल्लवों की शोभा सदा बनी रहती है ।।२।। उन वर्षों के पर्वत शिखरों पर, श्रेष्ठ वनों में, पर्वत की गुफओं में स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवरों में ।।३।। तथा विकसित कमल समूहों में हंस तथा सारस पक्षियों के समूह तथा अन्य प्रकार के पक्षीगण सदा कूजन किया करते हैं ।।४।। उन सरोवरों में देवगण सुन्दर भौहों वाली अपनी सुन्दरियों के साथ जलक्रीडा किया करते हैं ।।५।। वहाँ के जीव युवतियों के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हैं । नवों वर्षो के जीवों पर कृपा करने की दृष्टि से भगवान् नारायण देवी की

देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते । आत्मव्यूहेनेज्ययाऽसौ सन्निधत्ते समाहितः ॥७॥ इलावृते तु भगवान्पद्मजाक्षिसमुद्भवः । एक एव भवो देवो नित्यं वसति सांगनः ॥८॥ तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च । भवान्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री भवति स्फुटम् ॥९॥ भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः । संरुध्यमानो देवेशो देवं संकर्षण भजन् ॥१०॥ आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूतहितेच्छया । तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः ॥११॥ उपधावते चैकाग्रमनसा भगवानजः । श्रीभगवानुवाच– **ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१२॥ भजे भजन्यारणपादपंकजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् । भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१३॥ न यस्य मायागुणकर्मवृत्तिभिर्निरीक्षितो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते । ईशे यथा नो जितमन्युरंहसा कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१४॥ असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेन मध्वासवताम्रलोचनः । न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेंद्रियाः ॥१५॥ यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं**

आराधना करते रहते हैं और सभी जीव उनकी पूजा करते रहते हैं । आगे भी पूजा पद्धति चलती रहे, एतदर्थ श्रीभगवान् अपनी अलग-अलग मूर्तियों के रूप में विराजमान रहते हैं ॥६-७॥ इलावृत वर्ष में भगवान् रुद्र के रूप में विद्यमान रहते हैं । उनका प्रादुर्भाव ब्रह्माजी के नेत्र से हुआ है । वे सदा अपनी पत्नी के साथ वहाँ निवास करते हैं ॥८॥ उनके उस क्षेत्र में कोई भी दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता है । वहाँ जाने वाला पुरुष भी पार्वतीजी के शाप के कारण स्त्री हो जाता है ॥९॥ पार्वतीजी की सेवा में असंख्य स्त्रियों का समूह रहता है । वहाँ पर शंकरजी भगवान् संकर्षण की आराधना इन सभी स्त्रियों से घिरे हुए रहकर करते हैं ॥१०॥ सभी जीवों का कल्याण करने की इच्छा से वे अपने ध्यानयोग के द्वारा अपनी चौथी तामसी मूर्ति की आराधना एकाग्र मन से किया करते हैं । **श्रीभगवान् ने कहा–** शङ्करजी 'ओम् नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानाय अनन्ताय अव्यक्ताय नमः' इस मन्त्र से संकर्षण को प्रणाम करते हैं । इस मन्त्र का अर्थ है कि महापुरुष, सभी गुणों की उत्पत्ति के स्थान, अनन्त तथा अव्यक्त भगवान् संकर्षण को नमस्कार है ॥११-१२॥ हे सेवनीय प्रभो ! आपका चरण कमल समस्त ऐश्वर्यों के सर्वश्रेष्ठ आश्रय स्वरूप, अपने भक्तों पर अत्यधिक कृपा करने वाले, संसार के बन्धन को विनष्ट करने वाले, तथा अभक्तों को संसार के बन्धन में डाल देने वाले हैं । हे ईश्वर ! आपकी मैं आराधना करता हूँ ॥१३॥ प्रभो ! आपने अपने क्रोध के वेग पर विजय प्राप्त कर लिया है । अतएव माया के गुण तथा कर्म से युक्त व्यवहार करने वाले जीवों को देखकर भी आप उन सबों से कभी भी संपृक्त नहीं होते हैं । कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपने मन को वश में करना चाहे और आपकी आराधना न करे ॥१४॥ मदपान करने के कारण मदमत्त व्यक्ति की आँखें जैसे लाल हो जाती हैं और वह भयंकर दीखने लगती हैं, उसी तरह माया के कारण आपकी दृष्टि भयंकर दिखती है । ऐसे आपकी मूर्ति को देखकर नागपत्नियाँ मोहित हो जाती हैं और आपके चरण स्पर्श के अतिरिक्त किसी भी दूसरे प्रकार की पूजा नहीं कर पाती हैं ॥१५॥ ऋषिगण सृष्टि, स्थिति

त्रिभिर्विहीनं यमनंतमृषयः । न वेदसिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥१६॥ यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल । तत्संवृतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥१७॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयंत्रिताः । महानहंवैकृततामसेंद्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥१८॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः । न वेद निस्तारणयोगमंजसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥१९॥ नारायण उवाच– **एवं स भगवान्रुद्रो देवं संकर्षणं प्रभुम् । इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः ॥२०॥ तथैव धर्मपुत्रोऽसौ नाम्ना भद्रश्रवा इति । तत्कुलस्यापि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः ॥२१॥ भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम् । हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदांकिताम् ॥२२॥ परमेण समाध्यन्यवारकेण नियंत्रताम् । एवमेव च तां मूर्तिं गृणंत उपयांति च ॥२३॥** भद्रश्रवस ऊचुः– **ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति । अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नंतं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति। ध्यायन्न सद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्र पितरं जिजीविषुः ॥२४॥ वदंति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः । तथापि**

तथा संहार का विषय नहीं होने के कारण आपको अनन्त कहते हैं । अतएव वेद सिद्ध अर्थ के समान आप नहीं हैं । आपके हजारों शिर पर यह भूमण्डल एक सरसों के दाने के समान है ॥१६॥ जिनका प्रथम गुण विग्रह महत् तत्त्व स्वरूप, विज्ञान के आश्रय ब्रह्माजी हैं । उन्हीं से उत्पन्न होकर अहंकार अपने त्रिगुणात्मक तेज से सात्त्विक और तामस अहंकार एवं इन्द्रियों की सृष्टि करता है ॥१७॥ महान् अहंकार, सात्त्विक एवं तामस अहंकार इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता तथा हम सभी, आपकी क्रिया के वश में उसी तरह से हैं जिस तरह से डोरी से बँधा हुआ पक्षी उसके वश में रहता है । हम सभी आपके ही वश में रहकर आपकी ही कृपा से सृष्टि आदि का कार्य करते हैं ॥१८॥ आपके ही द्वारा की गयी त्रिगुणात्मिका सृष्टि से मोहित होकर जीव आपके द्वारा निर्मित, कर्मों के बँधन में बाँधने वाली माया को तो कभी जान भी लेता है किन्तु वह इस बात को नहीं जान पाता है कि वह इस माया के बन्धन से बाहर कैसे निकले । ऐसे सृष्टि तथा संहार करने वाले आपको नमस्कार है ॥१९॥ **भगवान् नारायण ने कहा–** इस तरह से भगवान् रुद्र इलावृत वर्ष में रहकर अपनी देवी के गण के साथ भगवान् संकर्षण की उपासना करते रहते हैं ॥२०॥ उसी तरह से धर्म के पुत्र, भद्रश्रवा उस वंश के स्वामिगण, पुरुषगण तथा उसके सेवक गण ॥२१॥ भद्राश्व वर्ष में हयग्रीव शब्द से कही जाने वाली भगवान् वासुदेव की प्रख्यात मूर्ति की अनन्याभक्ति से स्तुति करते हैं और उनकी आराधना करते हैं ॥२२-२३॥ **भद्रश्रवा आदि ने कहा–** नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः । अर्थात् आत्मा को शुद्ध करने वाले भगवान् धर्म को नमस्कार है । यह भगवान् की लीला विचित्र है । जिसके कारण यह जीव सबको मारने वाले इस काल को देखकर भी उसको नहीं देख पाता है । वह

मुह्यंति तवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥२५॥ विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः । युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥२६॥ वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः । प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्ते वितथेहिताय ते ॥२७॥ एवं स्तुवंति देवेशं हयशीर्षं हरिं च ते । भद्रश्रवसनामानो वर्णयंति च तद्गुणान् ॥२८॥ एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः । यापकंचुकमुत्तृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः ॥२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्याय·

श्रीनारायण उवाच– **हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः । वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः ॥१॥ तस्य तद्दयितं रूपं महाभागवतोऽसुरः।**

असत् कर्मों का ही नित्य ध्यान करता रहता है तथा अपने पुत्रों तथा पिता को जलाकर स्वयं जीवित रहना चाहता है ॥२४॥ सभी ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस संसार को विनष्ट होने वाला बतलाते हैं और आत्मज्ञानी पुरुष इस जगत् को ऐसा देखते भी हैं । हे अजन्मा प्रभो ! ऐसा होने पर भी वे सभी लोग आपकी माया से मोहित होते रहते हैं । ऐसे आश्चर्यकारी कार्य को करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ प्रलयकाल में तमोगुण प्रधान दैत्यगण जब वेदों को चुरा लिए थे उस समय ब्रह्माजी के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर हयग्रीव शरीर धारण करके आपने उस दैत्य का वध करके वेदों को लाकर ब्रह्माजी को प्रदान किया ऐसे आपको नमस्कार है ॥२६-२७॥ इस तरह से वे सबके सब हयग्रीव भगवान् की स्तुति करते हैं । उन सबों का नाम भद्रश्रवा है । भगवान् की स्तुति करते हुए वे सबके सब हयग्रीव भगवान् के गुणों का वर्णन करते हैं ॥२८॥ इन सबों के इस चरित को जो कोई भी पढ़ता है अथवा दूसरों को सुनाता है वह अपने पाप रूपी केंचुल से मुक्त होकर देवी के लोक में चला जाता है ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

हरिवर्ष में प्रह्लाद द्वारा नृसिंह भगवान् की केतुमाल वर्ष में लक्ष्मी जी द्वारा कामदेव स्वरूप श्रीभगवान् की और रम्यक् वर्ष में मनु के द्वारा मत्स्यरूपधारी श्रीहरि की स्तुति

भगवान् नारायण ने कहा– हरिवर्ष में पापों को विनष्ट करने वाले तथा अपने भक्तों पर कृपा करने वाले योगयुक्त भगवान् नृसिंह विराजते हैं ॥१॥

पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौति तद्गुणतत्त्ववित् ॥२॥ प्रह्लाद उवाच– ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः । ॐ क्ष्रौ स्वस्त्यस्तुविश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया। मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्य हैतुकी ॥३॥ माऽंगारदारात्मजवित्तबंधुषु संगो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः । यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥४॥ यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् । हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥५॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः । हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥६॥ हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् । हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम्॥७॥ तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् । हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम् ॥८॥ एवं दैत्यपतिः

भगवान् के उस अत्यन्त प्रिय रूप को महान् असुर प्रह्लाद दर्शन करते हैं, और श्रीभगवान् की स्तुति करते रहते हैं । क्योंकि प्रह्लाद भगवान् के गुणों को जानने वाले हैं ॥२॥ **प्रह्लादजी ने कहा**— ओं नमो भगवते नरसिंहाय, नमस्तेजस-तेजसे, आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रंधय रंधय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा । अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः ओं क्षौम् । अर्थात् भगवान् नृसिंह को नमस्कार है । अग्नि आदि तेजों के भी तेजः स्वरूप आप को नमस्कार है । आप प्रकट हो जायँ । मेरे कर्मों की वासनाओं को जला डालिए । मेरे अज्ञानान्धकार को आप विनष्ट कर दें । ॐ स्वाहा । मेरे अन्तःकरण में अभय उत्पन्न हो जाय ओम क्षौं । संसार का कल्याण होए । दुष्टजीव भी सात्त्विक हो जायँ । सभी जीव एक साथ कल्याण स्वरूप आपका चिन्तन करें । मेरा मन कल्याण को प्राप्त कर ले । हमलोगों की निष्कामबुद्धि श्रीभगवान् में लग जाय ॥३॥ हमारी बुद्धि घर, पत्नी, पुत्र, धन तथा बान्धवों में न लगे । हमारी बुद्धि भगवद् भक्तों में लगे । जो भगवद् भक्त अपने प्राणधारण के लिए अपेक्षित अनादिकाल से सन्तुष्ट रहते हैं ऐसे लोगों को जितनी शीघ्रता से सिद्धि होती है, उतनी शीघ्रता से इन्द्रियलोलुपों को नहीं होती है ॥४॥ जिनकी संगति से तीर्थ के समान पवित्र कारक भगवत चरित्र को श्रवण करने का अवसर प्राप्त होता है। तथा वह कानों के मार्ग से अन्तःकरण में प्रवेश करके समस्त पापों को विनष्ट करता है, इस प्रकार के श्रीभगवान् के चरित्रों को कौन सुनना नहीं चाहेगा॥५॥ जिसकी श्रीभगवान् में निष्काम भक्ति होती है, उस व्यक्ति के भीतर ही सभी गुणों के साथ सभी देवता प्रवेश कर जाते हैं । जिसकी श्रीभगवान् में भक्ति नहीं है, उसमें महापुरुषों के गुण कहाँ से आ सकते हैं ? वह तो अपने मन रूपी रथ के द्वारा बार-बार असद् वस्तुओं में ही दौड़ता रहता है ॥६॥ जिस तरह से मछलियों को उनको अत्यन्त प्रिय जल ही जीवन होता है, उसी तरह श्रीभगवान् भी समस्त शरीर धारियों की आत्मा स्वरूप हैं । श्रीहरि को छोड़कर यदि किसी महान् व्यक्ति का मन गृह में ही लगता है तो उस व्यक्ति का महत्त्व केवल पति-पत्नी के लिए तथा पक्षियों के लिए ही है ॥७॥

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि । समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे ॥१६॥ भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते । अधा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥१७॥ भगीरथेन सा नीता गंगा यास्यति भारते । पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥१८॥ तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यंति दुर्लभम् । ततः स्वभावतः मूताऽप्यतिपूता भविष्यति ॥१९॥ कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ॥२०॥ कलेः पंचसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् । युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ ॥२१॥ संपदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत् ॥२२॥ मन्मंत्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् । युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥२३॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि संत्यसख्यानि सुन्दरि । भविष्यंति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२४॥ मन्मंत्रोपासका भक्ता विश्रमंति च भारते । पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥२५॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठंति पादं प्रक्षालयंति च । तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥२६॥ स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२७॥ एकादशीविहीनश्च

अतएव रजोगुण जन्य राग, विषाद, क्रोध, मान, स्पृहा, भय, दैन्य तथा आधिव्याधि के मूल स्वरूप एवं संसारचक्र के मूल गृह का परित्याग करके जो महापुरुष भगवान् नृसिंह के चरणों की आराधना करते हैं उनको किसी भी प्रकार का कोई भी भय नहीं होता है ॥८॥ इस प्रकार दैत्यों के स्वामी प्रह्लाद भी हृदय के भीतर रहने वाले पाप रूपी गजराज को विनष्ट करने वाले भगवान् नृसिंह की प्रतिदिन स्तुति करते रहते हैं ॥९॥ केतुमाल वर्ष में श्रीभगवान् कामदेव का रूप धारण करके रहते हैं । उस वर्ष के स्वामिगण सर्वदा उनकी पूजा करते रहते हैं ॥१०॥ उस वर्ष की स्वामिनी सिन्धुपुत्री लक्ष्मीजी हैं । वे महापुरुषों को सम्मान देने वाली हैं । वे निम्नांकित स्तोत्र मन्त्र से श्रीभगवान् की उपासना करती हैं ॥११॥ **रमादेवी ने कहा**– ओं ह्रां ह्रीं हूँ समस्त गुण समूहों से समलंकृत अन्तःकरण के गुण स्वरूप समस्त गुणों के अधिपति, सोलह कलाओं से सम्पन्न, छन्दोमय, अन्नमय, अमृतमय, सर्वस्वरूप, तेजः स्वरूप, ओजः स्वरूप, बलस्वरूप, देदीप्यमान, कामस्वरूप भगवान् हृषीकेश को नमस्कार है । भगवान् लोक एवं परलोक दोनों में कल्याणकारी होएँ । इन्द्रियों के स्वामी तथा स्वाभाविक रूप से आराध्य आपकी आराधना करके जो स्त्रियाँ आपसे भिन्न पति को लोक में प्राप्त करना चाहती हैं उनके परतंत्र होने के कारण वे आयु, धन, प्रियजन, पुत्र तथा पति उन सबों की (उन स्त्रियों की) रक्षा नहीं कर पाते हैं ॥१२॥ पति वही हो सकता है जो स्वाभाविक रूप से निर्भय रहे । और जो भयभीत जीवों की हर प्रकार से रक्षा करता हो । ऐसे पति केवल आप ही हैं । यदि कोई दूसरा हो भी तो दोनों को एक-दूसरें से भय हो सकता है । इसीलिए आप अपनी प्राप्ति से बढ़कर कोई भी दूसरा लाभ नहीं मानते हैं ॥१३॥ जो स्त्री आपके चरण कमलों से भिन्न वस्तु को प्राप्त करना चाहती है, उसे आप उसी वस्तु को प्रदान कर देते हैं जो नष्ट हो जाने वाली होती है । अतएव अन्त में उसे पछताना ही पड़ता है ॥१४॥

विभुः ॥१६॥ एवं कामं स्तुवंत्येव लोकबंधुस्वरूपिणम् । प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये ॥१७॥ रम्यके नाम वर्षे च मूर्तिं भगवतः पराम् । मात्स्यां देवासुरैर्वंद्यां मनुः स्तौति निरंतरम् ॥१८॥ मनुरुवाच– **ॐ नमो मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः। अंतर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः । स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥१९॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतंतोऽपि पृथक् समेत्य च । पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणुवदत्र दृश्यते ॥२०॥ भवान् युगांतार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् । मया सहोरुक्रम तेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः ॥२१॥ एवं स्तौति च**

हे अजित (कभी भी पराजित नहीं होने वाले प्रभो ! मुझको प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा, शिव, देव तथा दानव उग्र तपस्या करते हैं । उन सबों की बुद्धि ऐन्द्रियिक सुख की प्राप्ति में लगी रहती है । किन्तु मैं तो आपके वक्षःस्थल में निवास करने वाली हूँ, अतएव उन जीवों को मैं आसानी से प्राप्त नहीं होती हूँ जो आपके चरण कमलों से भिन्न पदार्थ को प्राप्त करना चाहते हैं ॥१५॥ हे अच्युत ! आप अपने वंदनीय ज़िन कर कमलों को अपने भक्तों के शिर पर रखते हैं अपने उन कर कमलों को आप मेरे शिर पर भी रख दें । आप अपने ही वत्सचिह्न के द्वारा मुझे अपनी माया से अपने वक्षःस्थल में धारण करते हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं । आपके अभिप्रेत अर्थ का पता लगाने में कौन समर्थ हो सकता है ॥१६॥ इस तरह से लोकबन्धु स्वरूप भगवान् कामदेव की उस वर्ष के स्वामी प्रजापति आदि स्तुति अपनी कामना की सिद्धि के लिए करते रहते हैं ॥१७॥ रम्यक नामक वर्ष में वहाँ के अधिपति मनु श्रेष्ठतम मत्स्य मूर्ति की निरन्तर स्तुति करते रहते हैं । श्रीभगवान् की यह मत्स्यमूर्ति देवताओं तथा असुरों से वंदनीय है ॥१८॥ मनु कहते हैं सर्वप्रधान प्राण स्वरूप, सत्त्व प्रधान प्राण स्वरूप, ओजस् स्वरूप, बलस्वरूप महामत्स्य स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है । हे प्रभो ! कोई भी लोकपाल आपको देख नहीं पाता है । आप कठोर ध्वनि करने वाले हैं, तथा सम्पूर्ण जगत् के भीतर तथा बाहर संचरण करते रहते हैं । आप ही वह स्वामी हैं, जो इस सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में रखकर उसको उसी तरह से प्रेरित करते रहते हैं, जिस तरह से कोई कठपुतली को नचाने वाला व्यक्ति कठपुतली को जैसे चाहता है, वैसे नचाता है ॥१९॥ लोकपाल गणों को आपके प्रति डाह हो गया था इसीलिए वे अलग-अलग होकर भी संघटित होकर मनुष्यों पशुओं, सर्पदिकों, तथा स्थावरों से युक्त जगत् की रक्षा करना चाहे तो भी नहीं कर सके ॥२०॥ प्रलयकालीन लहरियों से युक्त समुद्र में हे त्रिविक्रम ! हे अज ! आप अपने तेज से मेरे साथ ओषधियों तथा वृक्षों के आकर स्वरूप इस पृथिवी की रक्षा किए । इस प्रकार के जगत् के प्राणस्वरूप आपको नमस्कार है॥२१॥

देवेशं मनुः पार्थिवसत्तमः । मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारकम् ॥२२॥ ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः । आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः ॥२३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **हिरणमये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक् । आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते ॥१॥** अर्यमोवाच– **ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते । यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् । संख्या न यस्यास्त्ययथोपलंभनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥२॥ जरायुजं स्वेदजमंडजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैंद्रियम् । द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रं द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३॥, यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् । संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते**

इस प्रकार से राजाओं में श्रेष्ठ मनुजी देवताओं के स्वामी, सभी प्रकार के संशयों को विनष्ट करने वाले स्तुति करते रहते हैं ॥२२॥ श्रीभगवान् का ध्यान करने के कारण जिनके समस्त पाप विनष्ट हो गये हैं भागवतों में श्रेष्ठ मनुजी भगवान् की भक्तिपूर्वक सेवा करते रहते हैं ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

हिरण्मय किं पुरुष तथा उत्तरकुरुवर्षों में भगवान् की आराधना का वर्णन

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा– हिरण्मय नामक वर्ष में कूर्मरूपधारी श्रीभगवान् विराजमान हैं । वहाँ उनकी पूजा तथा वन्दना अर्यमा करते हैं ॥१॥ अर्यमा कहते हैं श्री भगवान् सभी सात्त्विक गुणों से सम्पन्न हैं । वे सर्वव्यापक हैं, अतएव उनके स्थान को कोई नहीं जान सकता है । वे सर्वशरीरक तथा विपुल स्वरूप हैं । वे अवस्थान स्वरूप हैं । श्रीभगवान् जगत् स्वरूप हैं । वे अपनी माया से इस जगत् को रूप प्रदान करते हैं । वे अनेक रूपों को धारण करने वाले हैं । ऐसे कच्छप रूपधारी श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है । उनके रूपों की गणना नहीं की जा सकती है । जिसको वे जिस रूप में प्राप्त होते हैं, उसके द्वारा वे उसी नाम से अभिहित किए जाते हैं ॥२॥ अकेले ही वे भगवान् जरायुज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज रूप वाले चराचरात्मक

तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते ॥४॥ एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः । गायते चापि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम् ॥५॥ तथोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञपूरुषः । आदिवाराहरूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा ॥६॥ संपूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्याऽऽर्द्रार्द्रहृत्कजा । भूतिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम् ॥७॥ भूरुवाच– ॐ नमो भगवते मंत्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥८॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् । मथ्नंति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥९॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने । अन्वीक्षयांगातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते ॥१०॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः । माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥११॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः । कृत्वाऽग्रदंष्ट्रं निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुम् ॥१२॥ किंपुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवंतं दाशरथिं च सर्वेशम् ।

जगत् स्वरूप है । देवता, ऋषि, पितृगण, इन्द्रियाँ, द्युलोक, आकाश, पृथिवी, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, द्वीप, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि नामों से कहे जाते हैं ।।३।। उस परमात्मा के ही कवियों ने असंख्य नाम तथा रूप वाली आकृति में विभिन्न प्रकार की कल्पना की है; किन्तु तत्त्वज्ञपुरुष अपनी जिस ज्ञानदृष्टि से उस संख्या को अपाकृत कर लेते हैं; उस ज्ञान दृष्टि से निर्दिष्ट किए जाने वाले श्रीभगवान् को नमसकार है ।।४।। इस तरह अर्यमा उस हिरण्मय वर्ष का पालन करने वालों के साथ सम्पूर्ण भूतों को उत्पन्न करने वाले श्रीभगवान् की स्तुति तथा भजन करते हैं ।।५।। उसीतरह से उनरकुरुवर्ष में यज्ञ पुरुष भगवान् आदि वाराहरूप से विद्यमान हैं । वहाँ उनकी पूजा सदा भूदेवी करती रहती हैं ।।६।। श्रीभगवान् की विधिपूर्वक पूजा करके भगवद्भक्ति से परिपूर्ण हृदय वाली वे दैत्यों का मर्दन करने वाले भगवान् यज्ञवाराह के गुणों का संकीर्तन करती रहती हैं ।।७।। भगवान् की आराधना करते समय वे कहती हैं मन्त्रतत्व के द्वारा ही जिनको जाना जा सकता है, जो यज्ञ स्वरूप तथा क्रतुस्वरूप हैं । बड़े-बड़े यज्ञ ही जिनके अङ्ग हैं, जो पुण्य कर्म स्वरूप हैं, जो त्रिकालवर्ती हैं, ऐसे वराह भगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।।८।। जिस तरह से काठ में छिपी हुई अग्नि को प्रकाश में लाने के लिए अज्ञानी पुरुष अरणीमन्थन करते हैं, उसी तरह बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष श्रीभगवान् का दर्शन प्राप्त करने के लिए मन रूपी मथानी तथा सार्थक यज्ञादि क्रियाओं के द्वारा अपने हृदय का मन्थन करते हैं । इस प्रकार के श्रीहरि को नमस्कार है ।।९।। द्रव्य, क्रिया, हेतु, अयन, ईश तथा कर्ता ये सबके सब भगवान् की माया के गुण हैं । तत्त्वज्ञ पुरुष इन सबों के माध्यम से जिनके स्वरूप को जान पाते हैं तथा जो स्वयं माया से रहित हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।१०।। सृष्टि काल के आ जाने पर जिन श्रीभगवान् के सत्यसंकल्प मात्र से ही जडा माया उसी तरह से जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने का काम करने लगती है जिस तरह से चुम्बक के सम्पर्क में आते ही लोहे में गति आ जाती है । इस तरह के गुणों से युक्त गुणों तथा कर्मों के साक्षी श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।११।। जो

सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपुरुषं स्तौति ॥१३॥ हनुमानुवाच— ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति । आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः । साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नम इति । यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् । प्रत्यक् प्रशातं सुधियोपलंभनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥१४॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभो । कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥१५॥ न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः । न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥१६॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः। तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥१७॥ सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् । भजेत रामं

श्रीवराह भगवान् अपने विरोधी दैत्य हिंरण्याक्ष को युद्ध में मारकर क्रीडा व्यापृत गजराज के समान मुझे अपने दाँतों के अग्रभाग में रखकर समुद्र से बाहर लाये उन आदिवराह श्रीभगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ ॥१२॥ किंपुरुष नामक वर्ष में सबों के स्वामी अनादि पुरुष महाराज दशरथ के पुत्र श्रीसीतारामजी की स्तुति श्रीहनुमानजी करते हैं । श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए श्रीहनुमानजी कहते हैं कि उत्तम श्लोक श्रीभगवान् को नमस्कार हैं । श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षणशील, और व्रत से युक्त भगवान् श्रीराम को मेरा नमस्कार है । लोक रंजक भगवान् श्रीराम को नमस्कार है । साधुत्व के लिए कसौटी स्वरूप भगवान् श्रीराम को नमस्कार है । जो ब्राह्मणों को देवता के समान मानते हैं, ऐसे महापुरुष महाभाग भगवान् श्रीराम को नमस्कार है ॥१३॥ जो श्रीभगवान् विशुद्ध आत्म स्वरूप हैं, जो अपने तेज से प्राकृतिक गुणों को विनष्ट कर देने वाले हैं जो प्रत्येक तत्त्व स्वरूप तथा परमशान्त स्वरूप हैं । ज्ञानी पुरुष ही जिन्हें प्राप्त कर पाते हैं, जो नाम और रूप से रहित हैं । जो निरहंकार हैं, ऐसे भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥१४॥ हे जगत् व्यापक प्रभो ! आपका मर्त्यावतार संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए होता है, केवल दैत्यों का वध करने के लिए ही नहीं । अन्यथा अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले आपको सीताजी के विप्रयोगजन्य क्लेश होना कैसे सम्भव था ? आप तो सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं ॥१५॥ आप समस्त शरीरधारियों के सर्वोत्तम मित्र तथा सबों की अन्तरात्मा हैं । आप भगवान् वासुदेव हैं । आप त्रिलोकी में कहीं भी आसक्त नहीं हो सकते हैं । आपको कभी पत्नी के वियोगजन्य कष्ट न तो हो सकता है और न आप कभी लक्ष्मणजी का त्याग कर सकते हैं ॥१६॥ आपका न तो जन्म होता है, और न तो कभी आपको सुख होता है। आपके संतोष के साधन वाणी; बुद्धि तथा आकार आदि नहीं हैं । आप लक्ष्मणजी के अग्रज होकर भी वाणी, बुद्धि तथा आकार से रहित वन में रहने वाले वानरों से मित्रता किए ॥१७॥ देवता, दानव, नर या नारी, कोई भी; कृतज्ञों में सर्वोत्तम समस्त उत्तरकोसलवासियों को स्वर्ग लोक ले जाने वाले, मानवाकृति श्रीहरि श्रीराम की उपासना करने के अधिकारी हैं । इस तरह से किंपुरुष वर्ष में सत्यवक्ता, दृढव्रत, कमलनयन श्रीराम की वानरों में श्रेष्ठ

मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवम् ॥१८॥ नारायण उवाच– **एवं किंपुरुषे वर्षे सत्यसंधं दृढव्रतम् । रामं राजीवपत्राक्षं हनुमन्वानरोत्तमः ॥१९॥ स्तौति गायति भक्त्या च संपूजयति सर्वशः । य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचन्द्रकथानकम् । सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम् ॥२०॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादिजपूरुषः । तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम् ॥१॥** नारद उवाच– **ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति । कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः । द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥२॥ इदं हि**

श्रीहनुमानजी स्तुति करते हैं, उनका गायन करते हैं तथा भक्तिपूर्वक उनकी हर प्रकार से पूजा करते हैं । जो व्यक्ति भगवान् श्रीराम के इस अद्भुत कथानक का श्रवण करता है, वह समस्त पापों से रहित होकर भगवान् श्रीराम के लोक में जाता है ॥१९-२०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

नारदजी द्वारा भगवान् नारायण की स्तुति तथा भारतवर्ष की महिमा

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा– इस भारत वर्ष में आदि अज पुरुष मैं आपके साथ निवास करता हूँ । और आप मेरी निरन्तर स्तुति करते रहते हैं।।१।। **नारदजी कहते हैं–** तपस्यारत आप श्रीभगवान् कों मेरा नमस्कार है । जो सर्वथा अहंकार से रहित हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है अकिञ्चन पुरुषों की सम्पत्ति स्वरूप, ऋषियों में अग्रगण्य भगवान् नरनारायण को नमस्कार है । जो परमहंसों में सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा आत्मराम महापुरुषों के स्वामी हैं, ऐसे श्रीभगवान को नमस्कार है । जो श्रीभगवान् जगत् की सृष्टि करने वाले हैं, जो जगत् की सृष्टि आदि के बन्धनों में नहीं बंधते हैं । यद्यपि भगवान् सबों के देह में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं, किन्तु उनको कोई भी मार नही सकता है; सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा होने पर भी जो दृश्य पदार्थों के गुणों से कभी भी दूषित नहीं होते हैं; जों किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होते हैं तथा जो ऐकान्तिक साक्षी हैं । ऐसे भगवान् को नमस्कार है ॥२॥ भगवान्

योगेश्वरयोगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् । यदंतकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥३॥ यथैहिकामुष्मिककामलंपटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिंतयन् । शंकेत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥४॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वं मायया ऽहंममतामधोक्षज। भिंद्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजम् ॥५॥ एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम् । नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक् ॥६॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तु संति हि । तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षे शृणुष्वैकाग्रमानस ॥७॥ मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकश्च त्रिकूटकः । ऋषभः कुटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा ॥८॥ ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो वेंकटाद्रिर्महिंद्रकः । वारिधारश्च विंध्यश्च मुक्तिमानृक्षपर्वतः॥९॥ पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा । गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलपर्वतः ॥१०॥ गौरमुखश्चेंद्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा । एते चान्येऽप्यसंख्याता गिरयो बहुपुण्यदाः ॥११॥ एतदुत्पन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः । पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि ॥१२॥ नाशयंति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम् । ताम्रपर्णी चन्द्रवंशा कृतमाला वटोदका ॥१३॥ वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी । तुङ्गभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा॥१४॥

ब्रह्माजी ने कहा है कि योगेश्वर की योग की यही निपुणता है कि वह अन्तिम समय में अपने इस शरीर का त्याग करते समय परमात्मा के निर्गुण स्वरूप में अपने मन को भक्तिपूर्वक लगाये रखे ॥३॥ जिंस प्रकार लौकिक तथा पारलौकिक वस्तुओं की कामना करने वाले जीव पत्नी तथा धन की चिन्ता करते हुए अपने शरीर का त्याग कर देते हैं, उसी तरह से यदि कोई विद्वान् व्यक्ति भी शरीरत्याग के भय से भयभीत रहता है तो उसका विद्याध्ययन केवल श्रम ही है । हे प्रभो ! आप हमें अपनी ऐसी भक्ति प्रदान करें कि उसके द्वारा मैं मायाकृत सुदृढ अहङ्कार तथा ममकार को विनष्ट कर सकूँ ॥५॥ इस तरह से मुनियो में अग्रगण्य तथा सम्पूर्ण सारतत्त्व के ज्ञाता देवर्षि नारदजी सर्वदा समस्त पापों से रहित भगवान् नर-नारायण की स्तुति करते रहते हैं ॥६॥ हे नारदजी ! इस भारतवर्ष में विद्यमान जो नदियाँ और पर्वत हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ । आप उन सबों को सावधानी पूर्वक सुनें ॥७॥ मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कटाद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान, ऋक्षपर्वत ॥९॥ पारियात्रपर्वत, द्रोणपर्वत, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक पर्वत, ककुभपर्वत, नीलपर्वत ॥१०॥ गौरमुखपर्वत, इन्द्रकीलपर्वत कामगिरि । ये सभी तथा इन सबों से भिन्न भी असंख्य पर्वत हैं, जो अत्यधिक पुण्य प्रदान करते हैं ॥११॥ इन पर्वतों से सैकड़ों तथा हजारों नदियाँ निकलती हैं । जिन सबों का जल पीने से; जिनमें स्नान करने से, तथा जिन सबों का नाम स्मरण करने से भी ॥१२॥ शरीरधारियों के तीनों प्रकार के पाप विनष्ट हो जाते हैं । वे नदिया हैं ताम्रपर्णी, चन्द्रवंशा, कृतमाला, वटोदका ॥१३॥ वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुङ्गभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका ॥१४॥ गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी,

गोदावरी भीमरथी निर्विन्ध्या च पयोष्णिका । तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती ॥१५॥ चर्मण्वती च सिंधुश्च अंधशोणौ महानदौ । ऋषिकुल्या त्रिसामा च वेदस्मृतिर्महानदी ॥१६॥ कौशिकी यमुना चैव मंदाकिनी दृषद्वती । गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा ॥१७॥ सुषोमा च शतद्रुश्च चंद्रभागा मरुद्वृधा । बितस्ता च असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिताः ॥१८॥ अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषैः स्वस्वकर्मभिः । शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥१९॥ भवंति विविधा भोगाः सर्वेषां च निवासिनाम् । यथावर्णविधानेनापवर्गो भवति स्फुटम् ॥२०॥ एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धितः । वदंति मुनयो वेदवादिनः स्वर्गवासिनः ॥२१॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषांस्विदुत स्वयं हरिः । यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२२॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना । न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२३॥ कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् । क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयांत्यभयं पदं हरेः ॥२४॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः । न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२५॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जंतवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् । न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते भूयो

तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती ॥१५॥ चर्मण्वती तथा सिन्धु । अन्ध तथा शोण नामक दो नद हैं । ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति तथा महानदी॥१६॥ कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती तथा सप्तवती ॥१७॥ सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रप्रभा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विश्वा। ये सभी भारतवर्ष की प्रख्यात नदियाँ हैं ॥१८॥ इस भारतवर्ष में जन्म लेने वाले मनुष्यों को अपने पूर्वकृत, सात्त्विक, राजस एवं तामस कर्मों के ही अनुसार उन्हें, देवताओं, मनुष्यों एवं नारकीय योनियाँ प्राप्त होती हैं ॥१९॥ भरतवर्ष में निवास करने वालों को उनके कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के भोग भोगने पड़ते हैं । अपने वर्णों एवं आश्रमों के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान करने पर उन्हें मुक्ति भी मिल जाती है ॥२०॥ स्वर्ग में निवास करने वाले देवगण, मुनिगण तथा वैदिक पुरुष इस देश की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि यह माया के जाल से मुक्ति का साधनभूत देश है ॥२१॥ वे भारतवासियों की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि यहाँ के निवासियों ने न जाने कौन सा पुण्य किया है, जिसके कारण प्रसन्न होकर स्वयं श्रीहरि भी उन सबों पर प्रसन्न हो गये । और इन जीवों ने भारतवर्ष में जन्म पाया । यहाँ पर रहकर भगवान् की सेवा की जा सकती है । ऐसे जन्म की कामना तो हमलोग भी करते हैं ॥२२॥ दुष्कर यज्ञों, तपस्याओं तथा व्रतों एवं दानादि कर्मों के द्वारा यदि इस तुच्छ स्वर्ग को प्राप्त कर लिया तो उससे कौन सा लाभ हुआ ?। वहाँ तो सतत् ऐन्द्रियिक भोगों के भोग में व्यापृत रहने के कारण कभी भगवान् नारायण के चरणों की स्मृति भी नहीं होती है ॥२३॥ कल्प पर्यन्त की आयु प्राप्त करने वालों को स्वर्गलोक के सुख भोग के बाद भी जन्म लेना ही पड़ता है । उसकी अपेक्षा तो क्षणभर के लिए भारतवर्ष में जन्म लेना श्रेष्ठ है । यहाँ के मर्त्य मनस्वी पुरुष क्षणभर भी निष्काम होकर श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए कर्म करके श्रीहरि के लोक के अधिकारी हो जाते हैं ॥२४॥ जहाँ पर न तो श्रीभगवान्

वनौका इव यांति बंधनम् ॥२६॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमंत्रवस्तुतः । एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२७॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः । स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥२८॥ (यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम् । तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्भजतां शं तनोति ॥१॥) नारायण उवाच– **एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः । प्रवदंति च माहात्म्यं भारतस्य सुशोभिनम् ॥२९॥ जम्बुद्वीपस्य चाष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे। हयमार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः ॥३०॥ स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनरमाणकौ । मन्दरोपाख्यहरिणः पाञ्चजन्यस्तथैव च ॥३१॥ सिंहलश्चैव लंकेति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम् । जंबुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च ॥३२॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम् ॥३३॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

* * *

की कथा रूपी नदी प्रवाहित होती है और न जहाँ पर भागवत साधु पुरुषों का निवास है, न तो जहाँ पर श्रीभगवान् के यज्ञ किए जाते हैं ऐसे इन्द्र का लोक भी सेवनीय नहीं है ॥२५॥ मानव का जन्म उत्तम ज्ञान, क्रिया तथा द्रव्य रूपी आभूषणों से समलंकृत है । उस मानव योनि में जन्म लेकर भी जो लोग मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करते हैं वे पुनः वन्य जीवों के समान इस संसार के बन्धन में पड़ जाते हैं ॥२६॥ जिन भारतवासियों द्वारा विधि तथा मन्त्र पूर्वक अलग-अलग एक ही परमात्मा को अनेक नाम से कुश के ऊपर हविष्य प्रदान किया जाता हैं, उनके द्वारा प्रदत्त उस हविष्य को स्वयं परमात्मा ग्रहण करते हैं ॥२७॥ यह सत्य है कि याचना करने पर श्रीभगवान् उन जीवों को अभिप्रेत वस्तु प्रदान कर देते हैं; किन्तु उनका वह वास्तविक दान इसलिए नहीं हैं कि उसके पश्चात् भी उस याचक की याचकता बनी रहती है । जो भक्त भगवान् से कभी भी कुछ भी नहीं याचना करते हैं, उन भक्तों की इच्छा को ही रोक देने वाले अपने चरणों को ही श्रीभगवान् प्रदान कर देते हैं ॥२८॥ (अपने पूर्वकृत पुण्यों, यज्ञों तथा यज्ञकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त इस स्वर्ग सुख को भोगने से यदि हमारा कुछ भी कर्म बचा हो तो हमें उस भारतवर्ष में जन्म प्राप्त होए जहाँ पर श्रीभगवान् अपने भक्तों को धन्य बना देते हैं ॥१॥) **नारायण भगवान् ने नारदजी से कहा**– स्वर्ग में रहने वाले देवता, सिद्ध और परमर्षि इसी प्रकार से भारत वर्ष की महिमा का वर्णन करते हैं॥२९॥ जम्बूद्वीप के दूसरे आठ उपद्वीप बतलाये गये हैं जिन सबों का निर्माण, राजा सगर के घोड़े को खोजते हुए उनके पुत्रों ने किया । वे हैं स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मन्दर, हरिणी, पाञ्चजन्य और सिंहल । इस तरह से जम्बूद्वीप का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया ॥३१-३२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

द्वादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **जंबुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः । तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः ॥१॥ जंब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च । क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः ॥२॥ यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्ट्यते । प्लक्षाख्यश्च स्वयं जंबुप्रमाणो द्वीपरूपधृक् ॥३॥ हिरण्मयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः । प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः ॥४॥ अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः स्वं द्वीपमेव च । विभज्य सप्त वर्षाणिस्व पुत्रेभ्यो ददौ विभुः ॥५॥ स्वयमात्मविदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः । तेनैव चात्मयोगेन भगवंतमुपागतः॥६॥ शिवं च यवसं भद्रं शांतं क्षेमामृते तथा । अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम् ॥७॥ तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि । अरुणा नृम्णांगिरसी सावित्री सुप्रभातिका ॥८॥ ऋतंभरा सत्यंभरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः । मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनस्तथैव च ॥९॥ ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हिरण्यष्ठीव एव च । मेघमाल इति ख्याता प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः ॥१०॥ नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्शनादिभिः । निर्धूताशेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा ॥११॥ हंसश्चैव पतंगश्च ऊर्ध्वायन इतीव च । सत्यांगसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके ॥१२॥ सहस्रायुःप्रमाणाश्च**

प्लक्ष, शाल्मलि तथा कुश द्वीप का वर्णन

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा– यह जम्बूद्वीप जितने परिमाण वाला है वह उतने ही विस्तार वाले क्षारसमुद्र से यह घिरा हुआ है । जिस तरह से सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीप तथा क्षारसमुद्र से घिरा हुआ है । उसी तरह जम्बूद्वीप भी अपने दो गुणे विस्तार वाले प्लक्षद्वीप से घिरा हुआ है ॥२॥ उपवन से घिरी हुई खाईं के समान यह समुद्र से घिरा हुआ है । जम्बूद्वीप में जितना बड़ा जामुन का वृक्ष है उसके दो गुना बड़ा पाकड़ का वृक्ष प्लक्षद्वीप में हैं ॥३॥ उस द्वीप में हिरण्मय नामक अग्नि रहती है । वहाँ पर रहने वाले महाराज प्रियव्रत के पुत्र का नाम सप्तजिह्व है ॥४॥ उस द्वीप के स्वामी अग्नि हैं । और उनका नाम इध्मजिह्व है । वे ही प्लक्षद्वीप के स्वामी हैं । उन्होंने इस द्वीप को अपने सात पुत्रों में बाँट कर उन्हें प्रदान कर दिया ॥५॥ उसके बाद वे आत्मज्ञानियों के लिए समादरणीय योगचर्या में लग गये । आत्मयोग के ही द्वारा वे श्रीभगवान् को प्राप्त कर लिए ॥६॥ प्लक्षद्वीप के सात वर्षों के नाम इस प्रकार हैं शिववर्ष, यवसवर्ष, भद्रवर्ष, शान्तवर्ष, क्षेमवर्ष, अमृतवर्ष तथा अभयवर्ष । ये सभी वर्ष दर्शनीय हैं ॥७॥ उन द्वीपों की प्रधान सात नदियों के नाम इस प्रकार हैं अरुणा, नृम्णा, आंगीरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतंभरा तथा सत्यंभरा । इसी तरह इन वर्षों के प्रधान पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाल । ये प्लक्षद्वीप के प्रख्यात सात पर्वत हैं ॥८-१०॥ इन नदियों के जल का

विविधोपमदर्शनाः । स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविधिनाऽर्कं यजंति ते ॥१३॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च ब्रह्मणः । अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि ॥१४॥ प्लक्षादिषु च सर्वेषु पंचद्वीपेषु नारद । आयुरिंद्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च ॥१५॥ विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पत्तिकी सदा । प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरितांपतिः ॥१६॥ प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते । शाल्मल्याख्यस्ततो द्वीपश्चास्माद्द्विगुणविस्तरः॥१७॥ समानेन सुरोदेन सिंधुना परिवेष्टितः । यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षायामः प्रकीर्तितः ॥१८॥ स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः । तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात् ॥१९॥ जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम् । तद्वर्षाणां च नामानि कथितानि निबोधत ॥२०॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणं देववर्षकम् । पारिभद्रं तथा चाप्यायनं विज्ञातनामकम् ॥२१॥ तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः । सरसः शतश्रृंगश्च वामदेवश्च कंदकः ॥२२॥ कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्रश्रुतिरेव च । एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते॥२३॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा । रजनी चैव नंदा च राकेति परिकीर्तितः ॥२४॥ तद्वर्षपुरुषाः सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाह्वयाः।

केवल स्पर्श करने तथा दर्शन आदि करने से वहाँ की सारी प्रजाओं के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११॥ इस द्वीप में चार वर्णों के लोग रहते हैं । उनके वर्णों (जातियों) के नाम है हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन तथा सत्यांग ॥१२॥ वहाँ के लोगों की आयु एक हजार वर्ष की होती है । वे देखने में अनेक प्रकार के हैं । वे त्रयीविद्या (ऋग् यजु० तथा सामवेद) में वर्णित विधि के अनुसार स्वर्गप्राप्ति के द्वारभूत भगवान् सूर्य की आराधना करते हैं ॥१३॥ सूर्य की आराधना करते हुए वे कहते हैं- सत्य, ऋत, ब्रह्म, अमृत तथा मृत्यु रूप भगवान् विष्णु की मूर्ति स्वरूप भगवान् का हम ध्यान करते हैं ॥१४॥ हे नारद ! प्लक्ष आदि सभी पाँच द्वीपों में जन्म लेने वाली सभी प्राणियों की आयु, इन्द्रिय, ओज, बल, बुद्धि तथा तेज एवं पराक्रम ये सबके सब उत्पत्ति काल से ही प्राप्त रहते हैं । प्लक्ष द्वीप के बाद उसके चारो ओर इक्षुरस का समुद्र विद्यमान है ॥१५-१६॥ यह समुद्र प्लक्षद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए है । प्लक्ष द्वीप के बाद शाल्मलि नामक द्वीप है । उसका विस्तार प्लक्षद्वीप से दो गुना बड़ा है ॥१७॥ शाल्मलिद्वीप भी अपने सदृश ही परिमाण वाले सुरासमुद्र से घिरा हुआ है । शाल्मलिद्वीप में भी प्लक्षद्वीप के पाकड़ वृक्ष के सदृश ही विस्तार वाला शाल्मलि (सेमर) का वृक्ष है ॥१८॥ वह महात्मा गरुडजी का स्थान है । इस द्वीप के स्वामी यज्ञबाहु हैं ॥१९॥ ये महाराज प्रियव्रत के पुत्र हैं । उन्होंने वहाँ की भूमि को अपने सात पुत्रों को बाँट कर दे दिया । उस द्वीप के वर्षों का नाम मैं बतला रहा हूँ । उसे आप जानें ॥२०॥ सुरोचनवर्ष, सौमनस्यवर्ष, रमणवर्ष, देववर्ष, पारिभद्रवर्ष, आप्यायनवर्ष तथा विज्ञातवर्ष ॥२१॥ उन सातो वर्षों में सात पर्वत तथा सात ही नदियाँ हैं । उन पर्वतों के नाम हैं- सरस, शतशृंग, वामदेव, कन्दक, ॥२२॥ कुमुद,

श्रुतधरो वीर्यधरो वसुंधर इषुन्धरः ॥२५॥ भगवंतं वेदमयं यजंते सोममीश्वरीम् । स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्ण शुक्लयोः ॥२६॥ सर्वासां च प्रजानां च राजा सोमः प्रसीदतु । एवं सुरोदाद्द्विगुणः स्वमानेन प्रकीर्तितः ॥२७॥ घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते । यस्मिन्नास्ते कुशस्तम्बो द्वीपाख्यकरणो ज्वलन् ॥२८॥ स्वशष्परोचिषा काष्ठा भासयन्परितिष्ठते । हिरण्यरेतास्तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट् ॥२९॥ स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्यस्तद्द्वीपं सप्तधाऽभजत् । वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः ॥३०॥ नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौ विविक्तनामदेवकौ । तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः ॥३१॥ नद्यः सप्तैव संतीह तन्नामानि निबोधत । चक्रस्तथा चतुःशृंगः कपिलश्चित्रकूटकः ॥३२॥ देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः । रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा तथैव च ॥३३॥ श्रुतविंदा देवगर्भा घृतच्युन्मंदमालिके । यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते ॥३४॥ कुशलः कोविदश्चैवाप्यभियुक्तस्तथैव च । कुलकश्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥३५॥ जातवेदसरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः।

पुष्पवर्ष तथा सहस्रश्रुति । ये इन सातों वर्षों के पर्वत हैं तथा नदियों के नाम इस प्रकार है ॥२३॥ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहु, रजनी, नंदा और राका ॥२४॥ इस वर्ष के सभी पुरुषों के वर्णों के नाम श्रुतधर, वीर्यधर, वसुंधर तथा इषुन्धर हैं ॥२५॥ वे लोग वेदस्वरूप चन्द्रमा को भगवान् मानकर उनकी उपासना करते हैं । वे सोम की स्तुति करते हुए कहते हैं जो अपनी किरणों से पितरों के लिए कृष्ण एवं शुक्ल मार्ग का विभाजन करते हैं ॥२६॥ जो समस्त प्रजाओं के राजा हैं, वे सोम प्रसन्न होएँ । इसी तरह मदिरा के समुद्र के चारो ओर उसके दो गुने परिमाण वाला कुशद्वीप है ॥२७॥ यह द्वीप भी अपने सदृश परिमाण वाले घृतसमुद्र से घिरा हुआ है । इस द्वीप में सघन कुश का झाड़ी है । उसी के कारण इस द्वीप का नाम कुशद्वीप है ॥२८॥ वह अपने कुश घास की ज्योति से प्रकाशित होते रहता है । इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र हिरण्यरेता हैं ॥२९॥ उन्होंने अपने सात पुत्रों में इस द्वीप को सात वर्षों में विभक्त करके बाँट दिया । उनके पुत्रों के नाम वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और नामदेव है । उन सातों के सीमा पर्वत के रूप में सात पर्वत हैं ॥३०-३१॥ इसी तरह से उन वर्षों की नदियाँ भी सात हैं, उन सबों को मैं बतला रहा हूँ । पर्वतों के नाम इस तरह है- चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवाननीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण । ये सात पर्वतों के नाम हैं । रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा ॥३२-३३॥ श्रुतिविंदा, श्रुतिगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमालिका ये सातो नदियों के नाम हैं। इन नदियों के जल से ही इस द्वीप के सभी लोग ॥३४॥ कुशल, कोविद, अभियुक्त तथा कुलक संज्ञक चार वर्णों के होते हैं ॥३५॥ वहाँ के सभी लोग सर्ववेत्ता होते हैं । वे अग्नि को ही भगवान् श्रीहरि का रूप मानकर उनकी उपासना यज्ञादि कर्मों के माध्यम से करते हैं ॥३६॥ वे अग्निदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं- हे जातवेदस् ! आप साक्षात् परंब्रह्म के स्वरूप हैं । आप

यजंते देववर्याभाः सर्वं सर्वविदो जनाः ॥३६॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसिहव्यवाट् । देवानां पुरुषांगानां यज्ञेन पुरुषं यज । एवं यजंते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः ॥३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच– **शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन । येन विज्ञातमात्रेण परानंदमयो भवेत् ॥१॥** श्रीनारायण उंवाच– **कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत् । ततो बहिः क्रौंचद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः ॥२॥ क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौंचाद्रिरस्ति च । नामनिर्वर्तकः सोऽयं द्वीपस्य परिवर्तते ॥३॥ योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराऽभवत् । क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः ॥४॥ घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः । प्रियव्रतात्मजः श्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥५॥ स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ । पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन्॥६॥**

श्रीभगवान् को साक्षात् हविष्य पहुँचाते हैं । अतएव परमपुरुष के अंगभूत देवताओं के द्वारा उन परमपुरुष का हम यजन करें । उस द्वीप में निवास करने वाले इसी प्रकार से अग्नि का यजन करते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

क्रौंच, काक तथा पुष्कर आदि द्वीपों का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे सर्वज्ञ भगवन् नारायण ! आप अवशिष्ट द्वीपों के प्रमाण को बतलायें जिसके जान लेने मात्र से परमानंद की प्राप्ति होती है।।१।। **श्रीनारायण ने कहा–** कुश द्वीप के चारो ओर घृतोदसागर का विशाल आवरण है । उसके बाहर चारो ओर से वह क्रौञ्च द्वीप से घिरा हुआ है । उसका विस्तार कुशद्वीप से दो गुना है । वह क्षीरसागर से घिरा हुआ है इस द्वीप में क्रौञ्च नामक पर्वत है । इस पर्वत के ही नाम पर इस द्वीप का नाम क्रौञ्च द्वीप पड़ा है ।।३।। कार्तिकेय ने इस पर प्राचीनकाल में शक्ति का प्रहार किया था उसके कारण इस पर्वत का पेट विदीर्ण हो गया और वरुण ने क्षीरसागर के जल

स्वयं भगवतस्तस्य शरणं संजगाम ह । आमो मधुरूहश्चैव मेघपृष्ठः सुधामकः ॥७॥ भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वनस्पतिरितीव च । नगा नद्यश्च सप्तैव विख्याता भुवि सर्वतः ॥८॥ शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः । नन्दश्च नन्दनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः ॥९॥ अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च । वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवर्तिका तथा ॥१०॥ एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्येन पीयते । पुरुषऋषभौ तद्द्रविणाख्यश्च देवकः ॥११॥ एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसन्ति हि । तत्रत्याः पुरुषा आपोमयं देवमपां पतिम् ॥१२॥ पूर्णेनांजलिना भक्त्या यजंते विविधक्रियाः । आपः पुरुवीर्या स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वः ॥१३॥ ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः । इति मंत्रजपांते च स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः ॥१४॥ एवं परस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः । द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः ॥१५॥ स्वमानेन च द्वीपोऽयं दधिमण्डोदकेन च । शाकद्वीपो विशिष्टोऽयं यस्मिञ्छाको महीरुहः ॥१६॥ स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारणं स हि नारद । प्रैयव्रतोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति स्मृतः॥१७॥ विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु च । सप्त पुत्रान्निजान्स्थाप्य स्वयं योगगतिं गतः ॥१८॥ पुरोजवो मनःपूर्वजवोऽथ पवमानकः।

से इसको सिंचकर इसकी रक्षा की ॥४॥ इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र घृतराष्ट हुए । उनको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं ॥५॥ उन्होंने इस द्वीप को सात वर्षों में विभक्त करके अपने सात पुत्रों में बाँट दिया । उन्होंने अपने पुत्रों के नाम पर इस द्वीप के वर्षों का नाम रखा ॥६॥ उसके बाद वे स्वयं श्रीभगवान् की शरणागति कर लिए । उनके सात पुत्रों के नाम आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधाम ॥७॥ भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति हैं । इस द्वीप में सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं ॥८॥ पर्वतों के नाम शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन तथा सर्वतोभ्रद हैं ॥९॥ नदियों के नाम अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला तथा पवित्रवर्तिका हैं ॥१०॥ इन नदियों का पवित्र जल चारो वर्णों के लोग पीते हैं । यहाँ पर रहने वाले लोगों के पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक वर्ण हैं ॥११॥ इन चार वर्णों के लोग यहाँ निवास करते हैं । वहाँ के पुरुष वरुणदेव की उपासना करते हैं और अपनी अंजलि भरकर भक्तिपूर्वक अनेक प्रकार की क्रियाओं से वरुण की आराधना करते हैं । वे वरुणदेव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं, हे जलस्वरूप वरुणदेव ! आपको असीम शक्ति प्राप्त है । आप भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक तीनों को पवित्र करते हैं ॥१३॥ सम्पूर्ण पापों को आप विनष्ट करने वाले हैं । हम आपका अपने शरीर से स्पर्श करते हैं । इस मन्त्र का जप करने के बाद वे अनेक प्रकार की वरुणदेव की स्तुति करते हैं ॥१४॥ क्षीरसमुद्र के बाद शाक समुद्र है । यह क्षीरसमुद्र को चारो ओर से घेरे हुए है और इसका विस्तार बत्तीस लाख योजन हैं ॥१५॥ इसी के बारबार परिमाण वाला मण्डोदसागर उसे घेरे हुए है । इस द्वीप में शाक नाम का एक विशाल वृक्ष है । उसी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम शाकद्वीप हुआ है । इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि हैं ॥१७॥ इन्होंने अपने सात पुत्रों में इस द्वीप को विभक्त करके बाँट दिया था । अपने सात पुत्रों को राज्य पर स्थापित

धूम्रानीकश्चित्ररेखो बहुरूपोऽथ विश्वधृक् ॥१९॥ मर्यादागिरयः सप्त नद्यः सप्तैव कीर्तिताः । ईशान ऊरुश्रृंगोऽथ बलभद्रः शतकेसरः ॥२०॥ सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यन्ते महासनः । एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताः सरिन्नामानि सप्त च ॥२१॥ अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च । अपराजिता पंचपदी सहस्रश्रुतिरेव च ॥२२॥ ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्त नद्यो महोज्ज्वलाः । तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥२३॥ दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः । भगवंतं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुताः ॥२४॥ यजंति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम् । अन्तः प्रविश्य भूतानि यो विभर्त्यात्मकेतुभिः ॥२५॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम् । परस्ताद्दधिमण्डोदात्ततस्तु बहुविस्तरः ॥२६॥ पुष्करद्वीपनामाऽयं शाकद्वीपद्विसंगुणः। स्वसमानेन स्वादूदकेनायं परिवेष्टितः ॥२७॥ यत्रास्ते पुष्करं भ्राजदग्निचूडानिभानि च । पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥२८॥ श्रीमद्भगवतश्चेदमासनं परमेष्ठिनः । कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोक सिसृक्षया ॥२९॥ तद्द्वीप एक एवायं मानसोत्तरनामकः । अर्वाचीनपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः॥३०॥ उच्छ्रायायामयोः संख्याऽयुतयोजनसंमिता । यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥३१॥ इन्द्रादिलोकपालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः । मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्भानुः

करके वे स्वयं योगगति को प्राप्त कर लिए ॥१८॥ मेधातिथि के पुत्रों के नाम हैं— पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेख, बहुरूप तथा विश्वधृक्॥१९॥ इस द्वीप के मर्यादा पर्वत सात हैं तथा नदियाँ भी सात ही हैं । पर्वतों के नाम हैं— ईशान, ऊरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर ॥२०॥ सहस्रस्रोतक, देवपाल तथा महासन । इस द्वीप की नदियों के नाम हैं ॥२१॥ अनघा, आयुर्दा, उभ स्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति॥२२॥ इस द्वीप के सभी पुरुष अत्यन्त प्रतापी होते हैं । उन पुरुषों के ये चार वर्ण हैं— सत्यव्रत, क्रतुव्रत ॥२३॥ दानव्रत और अनुव्रत । प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणवायु को रोककर ये लोग भगवान् वासुदेव की उपासना करते रहते हैं । वे भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं । जो परमात्मा सभी प्राणियों के भीतर प्रवेश करके विराजमान हैं और प्राणादि वृत्तियों के द्वारा प्राणियों को धारण करके उनका पोषण करते हैं ॥२४-२५॥ जिनके वश में सम्पूर्ण जगत् है वे अन्तर्यामी श्रीभगवान् हम सबों की रक्षा करें । दधिमण्डोद सागर के बाहर अत्यन्त विस्तृत पुष्कर द्वीप है । इसका विस्तार शाकद्वीप से दो गुना अधिक है । यह द्वीप स्वादिष्ट जल वाले समुद्र से घिरा है ॥२७॥ इस द्वीप में एक विशाल कमल है । इसकी पंखुडियाँ अग्नि की ज्वाला के समान चमकती रहती हैं । यह दश हजार दलों वाला कमल है ॥२८॥ यह ब्रह्माजी का आसन है । लोकगुरु श्रीभगवान् ने इस कमल की कल्पना की है ॥२९॥ इस पुष्कर द्वीप में मानसरोवर नाम का एक ही पर्वत हैं । यह पर्वत पूर्वी तथा पश्चिमी वर्षों की सीमा रूप हैं ॥३०॥ इसकी ऊँचाई और विस्तार दोनों दश-दश हजार योजन हैं । इसकी चारों दिशाओं में चार पुरियाँ हैं ॥३१॥ ये इन्द्र आदि लोकपालों की पुरियाँ है । इन पुरियों के ऊपर से सूर्य सुमेरु पर्वत की परिक्रमा

पर्येति यत्र हि ॥३२॥ संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन् । प्रैयव्रतोऽधिपो वीतिहोत्रः स्वात्मजकद्वयम् ॥३३॥ वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षनामधरं क्रमात् । रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥३४॥ कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः । तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वरम् ॥३५॥ सकर्मकेन योगेन यजन्ति परिशीलिताः । यत्तत्कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् । एकांतमद्वयं शांतं तस्मै भगवते नमः॥३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **ततः परस्तादचलो लोकालोकेति नामकः । अंतराल च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः ॥१॥ यावदस्ति च देवर्षे ह्यंतरं मानसोत्तरात् । सुमेरोस्तावती शुद्धा कांचनी भूमिरस्ति हि ॥२॥ दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता । यस्यां पदार्थः प्रहितो न किंचित्प्रत्युदीयते॥३॥**

करते हैं ॥३२॥ सूर्य के रथ का चक्र संवत्सरात्मक है । यह देवताओं के दिन और रात्रि में भ्रमण करता रहता है । इस द्वीप के अधिपति महाराज प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र हैं । वे अपने दो पुत्रों को ॥३३॥ उनके नाम वाले ही वर्षों में स्थापित किए । उनके नाम क्रमशः रमण और धातकी हैं । वे ही इन वर्षों के स्वामी हैं ॥३४॥ इस द्वीप में रहने वाले लोग ब्रह्माजी को साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप मानकर उनकी उपासना करते हैं । वे अपने पूर्वजों के ही समान भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करते हैं ॥३५॥ वे सकाम कर्मों के द्वारा उनकी आराधना करते हैं । वे ब्रह्माजी की स्तुति करते हुए कहते हैं जो कर्ममय ब्रह्म के विग्रह स्वरूप हैं, जो केवल एवं अद्वैत स्वरूप हैं, शान्तस्वरूप वाले उन ब्रह्माजी को हमारा नमस्कार है ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

लोकालोक पर्वत का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा— उसके बाद लोकालोक नाम का पर्वत है यह लोक तथा आलोक दोनों के बीच में व्यवस्थित हैं । मानसोत्तर पर्वत तथा सुमेरु पर्वत के बीच अन्तराल की भूमि सुवर्णमयी है ॥२॥ वह दर्पण के मध्य भाग के समान तथा सभी प्राणियों से रहित है । इस भूमि पर यदि कोई पदार्थ गिर जाता है, तो फिर वह उस भूमि से अलग नहीं होता है ॥३॥ हे नारद ! वह सभी प्राणियों के समूह से रहित हैं । इसीलिए इसका नाम लोकालोक

अतः सर्वप्राणिसंघरहिता सा च नारद । लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता ॥४॥ लोकालोकांतरे चाऽस्य वर्तते सर्वदा स्थितिः । ईश्वरेण स लोकानां त्रयाणामंतगः कृतः ॥५॥ सूर्यादीनां ध्रुवांतानां रश्मयो यद्वशादिह । अर्वाचीनाश्च त्रींल्लोकानातन्वाना: कदापि हि ॥६॥ पराचीनत्वभाजो हि न भवन्ति च नारद । तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदयः ॥७॥ एतावाँल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानलक्षणैः । कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिभिर्गणितस्य च ॥८॥ भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने । तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना ॥९॥ निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत । ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः ॥१०॥ एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः । तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम् ॥११॥ विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान्हरिः ॥ आस्ते सिद्ध्यष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः ॥१२॥ निजायुधैः परिवृत्तो भुजदण्डैः समन्ततः । आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः ॥१३॥ आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः । स्वमायारचितस्यास्य गोपीथायात्मसाधनः ॥१४॥ योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम् । व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचल इतीरणात् ॥१५॥ ततः परस्ताद्योगेशगतिं शुद्धां वदन्ति हि । अण्डमध्यगतः

करते हैं ॥४॥ सूर्य जिसको प्रकाशित करें तथा जिसे नहीं प्रकाशित करें इस प्रकार के दो स्थानों के बीच में यह पर्वत है । श्रीभगवान् ने तीनों लोकों के ऊपर की सीमा निर्धारित करने के लिए इस पर्वत को बनाया है ॥५॥ सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त के सभी ग्रहों कि किरणें इस पर्वत के अधीन हैं । इन ग्रहों की किरणें इस पर्वत के पीछे ही रहने वाले लोकों को प्रकाशित करती हैं । वे कभी भी उसके बाद के लोकों तक नहीं पहुँच पाती हैं । हे नारदजी! यह पर्वत जितना ही ऊँचा है उतना ही लम्बा भी है । यह पर्वतों का राजा है ॥७॥ भूगोलशास्त्र के विद्वान् इतना ही लोक का विस्तार प्रमाण तथा व्यवस्था बतलाते हैं । गणित के विज्ञ इस लोक का विस्तार पचास करोड़ योजन बतलाते हैं ॥८॥ हे मुने ! सम्पूर्ण पृथिवी के एक चौथाई भाग में लोकालोक पर्वत विद्यमान है । उस पर्वत के ऊपर स्वयम्भू ब्रह्मा ने चारो दिशाओं में ॥९॥ दिग्गजों को स्थापित किया है उनके नामों को आप सुनें । उनके नाम हैं ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित ॥१०॥ ये चारो दिग्गज सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के कारण स्वरूप हैं । उन दिग्गजों तथा अपनी विभूतियों का अनेक पराक्रमों से बढ़ाने वाली तथा नित्य विभूति के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले भगवान् श्रीहरि हैं । वे सदा विष्वक्सेन आदि से घिरे हुए रहते हैं तथा आठ प्रकार की जो सिद्धियाँ है, उनसे सम्पन्न हैं ॥११-१२॥ अपने आयुधों तथा चारो भुजाओं से युक्त श्रीहरि सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करते रहते हैं ॥१३॥ सनातन भगवान् कल्पपर्यन्त इसीवेष में यहाँ विराजते हैं । वे अपनी माया से रचित इस जगत् की रक्षा करने के लिए यहाँ स्थित रहते हैं ॥१४॥ इस लोकालोक पर्वत की भूमि के भीतर जितना विस्तार है उतना ही उसका विस्तार भूमि से ऊपर भी है । ऐसा कहा जाता है ॥१५॥ हे नारदजी ! उसके आगे की भूमि

सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥१६॥ सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः । मृतेण्ड एव एतस्मिञ्जातो मार्तण्डशब्दभाक्॥१७॥ हिरण्यगर्भ
इति यद्धिरण्यांडसमुद्भवः । सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्महीभिदा ॥१८॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः । देवतिर्यङ्मनुष्याणां
सरीसृपसवीरुधाम् ॥१९॥ सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः । एतावान्भूमण्डलस्य सन्निवेश उदाहृतः ॥२०॥ एतेन हि दिवो मानं
वर्णयन्ति च तद्विदः । द्विदलानां च निष्पावादीनां च दलयोर्यथा ॥२१॥ अन्तरेण तयोरंतरिक्षं तदुभयसंधितम् । यन्मध्यगश्च भगवान्भानुर्वै तपतां
वरः ॥२२॥ आतपेन त्रिलोकी च प्रतपत्येव भासयन् । उत्तरायणमासाद्य गतिमांद्यं वितन्वते ॥२३॥ आरोहणस्थानमसौ गत्वाऽहोर्दैर्ध्यमाचरेत् ।
दक्षिणायनमासाद्य गतिशैघ्र्यं वितन्वते ॥२४॥ अवरोहस्थानमसौ गच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत् । विषुवत्संज्ञमासाद्य गतिसाम्यं वितन्वते ॥२५॥
समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च । यदा च मेषतुलयोः संचरेद्धि दिवाकरः ॥२६॥ समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयीमयः । वृषादिपंचसुयदा

में कोई योगेश्वर ही जा सकता है । द्युलोक तथा भूलोक के बीच में जो अन्तराल है उसी के माध्य में सूर्य स्थित हैं ॥१६॥ सूर्य तथ भूलोक के बीच का अन्तराल पच्चीस करोड़ योजन है । मृत अण्ड अर्थात् चैतन्य रहित अण्ड में रहने के कारण सूर्य को मार्तण्ड कहा जाता है ॥१७॥ सूर्य हिरण्मय ब्रह्माण्ड से प्रकट हुए हैं, इसीलिए सूर्य को हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है । सूर्य ही दिशाओं, आकाश, द्युलोक तथा भूलोक का विभाग करते हैं ॥१८॥ स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, और पाताल लोक का देवता, तिर्यक् मनुष्य, सरीसृप तथा वृक्ष ॥१९॥ इन सबों की आत्मा सूर्य ही हैं । भूमण्डल का इतना ही सन्निवेश (विस्तार) बतलाया गया है ॥२०॥ द्युलोक का भी इतना ही परिमाण उसके ज्ञाता पुरुष बतलाते है । जैसे मटर के दाल के एक भाग को जान लेने के बाद उसी के आधार पर दूसरे भाग का भी परिमाण ज्ञात हो जाता है उसी तरह भूलोक के विस्तार का ज्ञान हो जाने पर उसी के द्वारा द्युलोक के विस्तार का भी ज्ञान हो जाता है ॥२१॥ द्युलोक तथा भूलोक के बीच के भाग को अंतरिक्ष कहते हैं । वह इन दोनों लोकों को मिलाता है । अन्तरिक्ष में ही विद्यमान रहकर भगवान् सूर्य अपनी धूप से त्रिलोक को प्रतप्त एवं प्रकाशित करते हैं । उत्तरायण होने पर सूर्य की गति मंद हो जाती है ॥२२-२३॥ उनका यह उत्तरायण स्थान बहुत ऊँचा हैं । सूर्य के इस स्थान पर आने पर दिन बड़ा होने लगता है । जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं तो उनकी गति तीव्र हो जाती है ॥२४॥ उनका यह स्थान नीचा है । इस स्थान पर सूर्य के आने पर दिन छोटा होने लगता है । सूर्य के विषुवत् रेखा पर आने पर सूर्य की गति एक समान हो जाती है ॥२५॥ इस स्थान पर सूर्य के आने पर दिन और रात दोनों बाराबर हो जाते हैं । जिस समय सूर्य मेष तथा तुला राशि पर आते हैं, उस समय

राशिष्वर्को विरोचते ॥२७॥ तद्राऽहानि च वर्धंते रात्रयोऽपि ह्रसंति च । वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदा संचरते रविः ॥२८॥ तदाऽपीमान्यहोरात्राणि भवन्ति विपर्ययात् ॥२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तमम् । शीघ्रमंदादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः ॥१॥ सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि सुरसत्तम । स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम् ॥२॥ वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः । अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता॥३॥ रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते । पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता ॥४॥ एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते । तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता ॥५॥ हस्तश्चित्रा तथा स्वामी गोवीथीति तु शब्दिता । ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मंता ॥६॥**

दिन और रात्रि दोनों प्रायः बराबर रहते हैं । सूर्य के वृष से लेकर तुला राशि तक पाँच राशियों पर रहने पर दिन बड़ा और रात्रि छोटी होती है । जब सूर्य वृश्चिक से लेकर मीन राशि तक रहते हैं ॥२७॥ उस समय भी दिन और रात्रि में विपरीतता आ जाती है ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

सूर्य की गति का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– अब मैं सूर्य की उत्तम गति का वर्णन करूँगा । सूर्य की शीघ्र मन्द तथा मध्यम ये तीन गतियाँ हैं ॥१॥ हे मुनिवर्य ! सभी ग्रहों के स्थान तीन ही हैं– जारद्गव वैश्वानर तथा ऐरावत ! जारद्गव मध्य में हैं । ऐरावत उत्तर में है और वैश्वानर दक्षिण में है । प्रत्येक स्थान में तीन बीथियाँ हैं । अश्विनी, भरणी और कृत्तिका यह दक्षिण में रहने वाली नागवीथी है ॥३॥ रोहिणी, मृगशिर तथा आर्द्रा इन सबों को गजबीथी कहते हैं । पुनर्वसु, पुष्य तथा अश्लेषा इन तीनों को ऐरावती वीथी कहते हैं ॥४॥ इन तीनों बीथियों को उत्तरमार्ग कहते हैं । मघा पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफल्गुनी

एतास्तु वीथयस्तिस्त्रो मध्यमो मार्ग उच्यते । मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता ॥७॥ श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक् तथा । वैश्वानरो
भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता ॥८॥ एतास्तु वीथयस्तिस्त्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते । उत्तरायणमासाद्य युगाक्षांतर्निबद्धयोः ॥९॥ कर्षणं पाशयोर्वायुबद्धयो
रोहणं स्मृतम् । तदाभ्यंतरगान्मंडलाद्रथस्य गतेर्भवेत् ॥१०॥ मांद्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम् । रात्रिह्रासश्च भवति सौम्यायनक्रमो ह्ययम्॥११॥
दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम् । बहिर्मंडलवेशेन गतिशैघ्र्यं तदा भवेत् ॥१२॥ तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता । वैषुवे पाशसाम्यात्तु
समावस्थानतो रवेः ॥१३॥ मध्यमंडलवेशश्च साम्यं रात्रिदिनादिके । आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठतौ ॥१४॥ तदाभ्यंतरतः सूर्यो भ्रमते
मंडलानि च । ध्रुवेण मुच्यमानेन पुनः रश्मियुगेन तु ॥१५॥ तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि च । तस्मिन्मेरो पूर्वभागे पुर्यैन्द्री देवधानिका॥१६॥
दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महापुरी । पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी ॥१७॥ तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी । ऐन्द्रपुर्या
रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः ॥१८॥ संयमन्यां च मध्याह्ने निम्लोंचन्यां निमीलनम् । विर्भावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः ॥१९॥

इन तीनों को आर्षभी वीथी कहते हैं ॥५॥ हस्त, चित्रा तथा स्वाती इन तीनों को गोवीथी कहते हैं । ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा इन तीनों को जारद्गवी वीथी कहते हैं ॥६॥ इन तीनों वीथियों को मध्यम मार्ग कहते हैं । मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा इन तीनों को अजवीथी कहते हैं ॥७॥ श्रवण, धनिष्ठा तथा शतभिषा इन तीनों को मृगवीथी कहते हैं । पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन तीनों को वैश्वानर वीथी कहते हैं । अजवीथी, मृगवीथी और वैश्वानर वीथी इन तीनों को दक्षिण मार्ग कहते हैं । जब सूर्य का रथ उत्तरायण मार्ग पर रहता है और उनके रथ के दोनों चक्के वायु रूपी पाश में बाँधकर ध्रुव के द्वारा खींचे जाते हैं उस समय सूर्य की आरोहण गति होती है । इस समय मण्डलो के भीतर रथ चलता है ॥९-१०॥ उस समय सूर्य की गति मंद होने के कारण दिन बढ़ने लगता है और रात घटने लगती है । यही सौम्यायन क्रम कहलाता है ॥११॥ इसी तरह जब दक्षिणायन के मार्ग पर सूर्य का रथ पाश द्वारा खींचा जाता है वह अवरोहण मार्ग है । उस समय रथ मण्डल के बाहर चलता है, अतएव गति की शीघ्रता होती है ॥१२॥ उस समय दिन घटता है और रात बड़ी होती है । विषुव मार्ग पर सूर्य का रथ पाश द्वारा किसी ओर नहीं खींचा जाता है अतएव सूर्य की गति में साम्य होता है॥१३॥ सूर्य मण्डल के मध्य भाग में विराजमान रहते हैं और रात एवं दिन के मान में भी समता रहती है । ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित पवन और पाश सूर्य के रथ को खींचते हैं ॥१४॥ उस समय सूर्य भीतर के मण्डल में ही चक्कर लगाते हैं । ध्रुव की दोनों रश्मियों से मुक्त होने पर पहले के ही समान सूर्य का रथ मण्डल के भीतर और बाहर घूमने लगता है । सुमेरु पर्वत के पूर्वभाग में इन्द्र की नगरी देवधानी है ॥१५-१६॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिण भाग में यम की संयमनी नाम की नगरी है । सुमेरु के पश्चिम भाग में वरुण की निम्लोचनी नाम की नगरी हैं ॥१७॥ सुमेरु के उत्तर भाग में चन्द्रमा की विभावरी

प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि सर्वशः । मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तितानि मया मुने ॥२०॥ मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि । सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्ण पर्वतम् ॥२१॥ उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सन्मुखे । दिशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च ॥२२॥ यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः । तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः ॥२३॥ नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥२४॥ शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम् । विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा ॥२५॥ सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितिः । यैर्यत्र दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते ॥२६॥ तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः । यदि चैंद्र्याः प्रचलते घटिका दशपंचभिः ॥२७॥ याम्यां तदा योजनानां सपादं कोटियुग्मकम् । सार्धद्वादशलक्षाणि पंचनेत्रसहस्त्रकम् ॥२८॥ प्रक्रामति सहस्त्रांशुः कालमार्ग प्रदर्शकः । एवं ततो वारुणीं च सौम्यामैद्रीं सहस्त्रदृक् ॥२९॥ पर्येति कालचक्रात्मा द्युमणिः कालबुद्धये । तथा चान्ये ग्रहाः सोमादयो ये दिवि चारिणः ॥३०॥ नक्षत्रैः सह चोद्यंति सह चास्तं व्रजंति ते । एवं मुहूर्तेन रथो भानोरष्टशताधिकम् ॥३१॥ योजनानां चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भ्रमति

नाम की नगरी है । ब्रह्मवादियों ने इन्द्र की नगरी में सूर्य का उदय बतलाया है । संयमनी पुरी में सूर्य मध्याह्न में रहते हैं और निम्लोचनीपुरी में जाकर सूर्यास्त होता है । इसी तरह विभावरी नगरी में सूर्य के पहुँचने पर आधी रात होती है ॥१९॥ हे मुने ! सूर्य के नियमन को ही मानकर सभी प्राणी अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं । मैंने आपको सूर्य की सुमेरु पर्वत की चारो दिशाओं में होने वाली गति को बतलाया ॥२०॥ सुमेरु पर्वत पर रहने वालों को सदा मध्याह्न ही प्रतीत होता है । सूर्य का रथ सुमेरु पर्वत को बायें करके ही चलता है ॥२१॥ उदय एवं अस्त होने के समय सूर्य सदा सबके सामने ही रहते हैं । इसके अतिरिक्त जितनी भी दिशाएँ और विदिशाएँ हैं, वहाँ के प्राणी जब सूर्य को देखते हैं तब उनके लिए वही सूर्योदय काल होता है । जहाँ और जब सूर्य छिप जाते हैं वहीं सूर्य का अस्तकाल होता है ॥२४॥ जिस समय सूर्य इन्द्र आदि की नगरियों में रहते हैं, उस समय इनका प्रकाश त्रैलोक्य में फैल जाता है । दो विकर्ण हैं । उन विकर्णों के तीन कोण तथा दो नगरियाँ हैं इन सबों में सूर्य का प्रकाश फैल जाता है ॥२५॥ सभी द्वीप तथा वर्ष सुमेरु पर्वत के उत्तर में हैं, जो लोग सूर्य को जहाँ देखते हैं, उनके लिए वही पूर्वदिशा है ॥२६॥ उसकी ठीक वाम भाग में सुमेरु पर्वत है । इन्द्रपुरी से संयमनी पुरी तक पहुँचने में सूर्य को पन्द्रह घड़ी में सवा दो करोड़ बारह लाख पचहत्तर हजार योजन की दूरी तय करनी पड़ती है ॥२७-२८॥ भ्रमण करने वाले सूर्य कालमार्ग के प्रदर्शक हैं । इतना ही समय और दूरी सूर्य को वरुणलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोक में पहुचने में लगता है ॥२९॥ कालचक्र स्वरूप सूर्य समय का ज्ञान कराने के लिए भ्रमण करते रहते हैं । इसी तरह द्युलोक में संचरण करने वाले अन्य ग्रह सोम आदि भी ॥३०॥ नक्षत्रों के साथ उदित

प्रभुः । त्रयीमयश्चतुर्दिक्षु पुरीषु च समीरणात् ॥३२॥ प्रवहाख्यात्सदा कालचक्रं पर्येति भानुमान् । यस्य चक्रं रथस्यैकं द्वादशारं त्रिनाभिकम्॥३३॥ षण्नेमि कवयस्तं च वत्सरात्मकमूचिरे । मेरुमूर्धनि तस्याक्षो मानसोत्तरपर्वते ॥३४॥ कृतेतरविभागो यः प्रोतं तत्र रथांगकम् । तैलकारकयन्त्रेण चक्रसाम्यं परिभ्रमन् ॥३५॥ मानसोत्तरनाम्नीह गिरौ पर्येति चांशुमान् । तस्मिन्नक्षे कृतं मूलं द्वितीयोऽक्षो ध्रुवे कृतः ॥३६॥ तुर्यमानेन तैलस्य यंत्राक्षवदितीरितः । कृतोपरितनो भागः सूर्यस्य जगतांपतेः ॥३७॥ रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः । तत्तुर्यभागतः सोऽयं परिणाहेन कीर्तितः ॥३८॥ तावानर्करथस्यात्र युगस्तस्मिन्हयाः शुभाः । सप्तच्छंदोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः ॥३९॥ वहंति देवमादित्यं लोकानां सुखहेतवे । पुरस्तात्सवितुः सूतोऽरुणः पश्चान्नियोजितः ॥४०॥ सौत्ये कर्मणि संयुक्तो वर्तति गरुडाग्रजः । तथैव वालखिल्याख्या ऋषयोंगुष्ठपर्वकाः॥४१॥ प्रमाणेन परिख्याताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः । स्तुवंति पुरतः सूर्यं सूक्तवाक्यैः सुशोभनैः ॥४२॥ तथा चान्ये च ऋषयो गंधर्वा अप्सरोरगाः ।

होते हैं और अस्त भी हो जाते हैं । इसी तरह सूर्य का रथ एक मुहूर्त में चौंतिस लाख आठ सौ हजार योजन भ्रमण करता है । ये सूर्य स्वयं त्रयी स्वरूप हैं और प्रवह नाम की वायु इनके रथ के चक्र को घुमाया करती है । इनके मार्ग में सुमेरु पर्वत की चारो पुरियाँ पड़ जाती हैं । सूर्य के रथ के चक्र में बारह आर और तीन नाभियाँ हैं ॥३१-३३॥ उसमें छह नेमि (चक्र) हैं । ज्ञानियों ने उसे संवत्सर स्वरूप बतलाया है । उसके एक धुरी सुमेरु पर्वत पर है और दूसरी मानसोत्तर पर्वत पर है ॥३४॥ दूसरे विभागों को करने पर जो रथ का चक्का है वह इस प्रकार घूमता है जैसे तेल पेरने का कोल्हू घूमता है ॥३५॥ इस तरह सूर्य मानसोत्तर पर्वत पर भ्रमण करते हैं । इसका एक और भी धूरा है जो इस धूरे से चार गुना बड़ा है । और तैल यंत्र के समान वह ध्रुव पर्यन्त घूमता रहता है । इस तरह से जगत् के स्वामी सूर्य के ऊपर वाले भाग का विभाग किया गया ॥३६-३७॥ रथ पर बैठने का स्थान छत्तिस लाख योजन विस्तृत है । और अपने चौथाई भाग के बाराबर यह मोटा है ॥३८॥ सूर्य के रथ का इस तरह से वर्णन किया गया । गायत्री आदि सात छन्द ही इस रथ के सात घोड़े हैं और उनके रथ के सारथि अरुण हैं ॥३९॥ ये सभी सूर्य को लोककल्याण के लिए वहन करते हैं । अरुण गरुड के बड़े भाई हैं । सूर्य ने इन्हें अपने सारथि के काम में नियुक्त कर रखा है । ये सूर्य के आगे बैठते हैं और सूर्य की ओर मुख करके बैठते हैं । उसी तरह अंगूठे के पोर के समान आकार वाले साठ हजार बाल्यखिल्य ऋषिगण सूर्य की ओर अपना मुँह करके इनकी स्तुति करते रहते हैं ॥४०-४२॥ इसी तरह दूसरे ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस और देवताओं के गण हैं; जो सूर्य की स्तुति करते हैं ॥४३॥ एक-एक महीने में एक-एक देवताओं आदि

ग्रामण्यो यातुधानाश्च देवाः सर्वे परेश्वरम् ॥४३॥ एकैकशः सप्त सप्त मासि मासि विरोचनम् । सार्धलक्षोत्तरं कोटिनवकं भूमिमण्डलम् ॥४४॥ द्विसहस्रं योजनानां स गव्यूत्युत्तरं क्षणात् । पर्येति देवदेवेशो विश्वव्यापी निरन्तरम् ॥४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम् । तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना ॥१॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह । तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादीनां भवेत् ॥२॥ एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च । मेरुं ध्रुवं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा॥३॥ ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्यैव दृश्यते । नक्षत्रांतरगामित्वाद्भांतरे गमनं तथा ॥४॥ गतिद्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः । स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः ॥५॥ नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन् । कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम् ॥६॥ कविभिश्चैव**

का गण सूर्य की स्तुति करते हैं । इस तरह सात महीनों में सात देवताओं आदि का गण सूर्य की स्तुति करता हैं । ये नव करोड़ पचास लाख योजन विस्तृत भूमण्डल में नित्य भ्रमण करते हैं और प्रत्येक क्षण में दो हजार योजन की दूरी तय करते हैं ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

चन्द्र आदि ग्रहों की गति का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! अब चन्द्रमा आदि की विचित्र गति का वर्णन सुनें । इन ग्रहों की गति के अनुसार ही मनुष्यों के शुभ और अशुभ काल का ज्ञान होता है ॥१॥ जिस तरह चारों ओर घूमने वाले कुम्हार के चाक के ऊपर बैठे हुए कीड़े आदि की गति भी उस चाक की गति के साथ ही होती है ॥२॥ उसी तरह राशि समूह रूप कालचक्र के साथ सुमेरु तथा ध्रुव की प्रदक्षिणा करने वाले सूर्यादिग्रहों की एक दूसरी गति भी दिखती है । उन सबों की यह गति नक्षत्रों की गति पर निर्भर होती है ॥३-४॥ यह सर्वमान्य निर्णय है कि इन दोनों गतियों में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ।

वेदेन विजिज्ञास्योऽर्कधाऽभवत् । षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसंतादिषु च स्वयम् ॥७॥ यथोपजोषमृतुजान्गुणान्वै विदधाति च । तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा ॥८॥ वर्णाश्रमाचारपथा तथाऽऽम्नातैश्च कर्मभिः । उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः ॥९॥ अंजसा च यजंते ये श्रेयो विन्दंति ते मतम् । अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यंतरेण च ॥१०॥ कालचक्रगतो भुंक्ते मासान्द्वादशराशिभिः । संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा ॥११॥ नक्तं चेति स पादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते । यावता षष्ठमंशं स भुंजीत ऋतुरुच्यते ॥१२॥ संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः। यावताऽर्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः ॥१३॥ तं प्राक्तना वर्णयंति अयनं मुनिपूजिताः । अथ यावन्नभोमंडलं सह प्रतिगच्छति ॥१४॥ कात्स्न्र्येन सह भुञ्जीत कालं तं वत्सरं विदुः । संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च ॥१५॥ अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पंचकमीरितम् । भानोर्मांद्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः ॥१६॥ एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चन्द्रादीनां निबोधत । एवं चन्द्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्षयोजनमूर्ध्वतः ॥१७॥ उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुजिं च सः । पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुंक्ते मासभुजिं च सः ॥१८॥ सपादमाभ्यां दिवसभुक्तिं पक्षभुजिं चरेत् ।

लोककल्याणकारी आदिपुरुष, सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूप, भगवान् नारायण ही, संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए भ्रमण करते हैं । वे कर्मों की शुद्धि के कारणभूत, आत्मा स्वरूप त्रयीमय हैं ॥५-६॥ कवियों तथा वेदों के द्वारा वे ही विशेष रूप से जिज्ञास्य हैं । वे ही अपने को बारह महीनों तथा वसन्त आदि ऋतुओं के रूप में विभाग करते हैं । वे ही ऋतुओं के अनुसार गुणों को व्यवस्थित करते हैं । जो लोग इन नारायण भगवान् की उपासना सदा त्रयीविधा के द्वारा या वर्णाश्रम धर्म के रूप में विहित कर्मों के द्वारा अपनी श्रद्धा के द्वारा या योगमार्ग के द्वारा करते रहते हैं, वे निश्चय ही कल्याण प्राप्त करते हैं । भगवान् ही सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, इनकी गति द्युलोक तथा भूलोक के बीच से होती है ॥८-१०॥ कालचक्र में विद्यमान रहने वाले सूर्य बारह राशियों के द्वारा.इन बारह महीनों को भोगते हैं । संवत्सर के बारह महीने अङ्ग हैं । प्रत्येक मास में दो पक्ष होते हैं शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। पितृमान के अनुसार ये पक्ष ही पितरों के दिन और रात होते हैं ॥११॥ सूर्य जितने समय तक संवत्सर के छठे अंश का भोग करते हैं, उतने समय की एक ऋतु होती है ॥१२॥ ऋतुओं को भी संवत्सर का अंग कहा गया है । जितने समय में सूर्य आकाशवीथी के आधे भाग में आकाश मंडल में भ्रमण करते हैं उतने समय को मुनियों से समादृत प्राचीन पुरुष अयन कहते हैं ॥१३-१४॥ जितने समय में सूर्य आकाशमार्ग से सम्पूर्ण आकाशमण्डल का भोग करते हैं, उतने समय को संवत्सर कहते हैं । वत्सर पाँच प्रकार का होता है संवत्सर, परिवत्सर और इडावत्सर ॥१५॥ अनुवत्सर और इद्वत्सर सूर्य की गति भी शीघ्र, मन्द और सम के भेद से तीन प्रकार की होती है । यह कालतत्त्व के अभिज्ञों का कहना है ॥१६॥ इस तरह से सूर्य की गति बतलायी गयी। अब आप चन्द्र आदि ग्रहों की गति को जानें.। सूर्यलोक से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रलोक है ॥१७॥ चन्द्रमा औषधियों के स्वामी हैं । ये सूर्य के एकवर्ष

एवं शीघ्रगतिः सोमो भुंक्ते नूनं भचक्रकम् ॥१९॥ पूर्यमाणकलाभिश्चामराणां प्रीतिमावहन् । क्षीयमाणकलाभिश्च पितृणां चित्तरंजकः ॥२०॥
अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसुघस्त्रकैः । सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हि ॥२१॥ भुंक्ते चैकैकनक्षत्रं मुहूर्तत्रिंशता विभुः । स एव
षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तमः ॥२२॥ मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः । देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥२३॥ प्राणाप्यायनशीलत्वात्स
सर्वमय उच्यते । ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः ॥२४॥ मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु । अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि
सहाभिजित्॥२५॥ ततः शुक्रो द्विलक्षेण योजनानामथोपरि । पुरः पश्चात्सहैवासावर्कस्य परिवर्तते ॥२६॥ शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ।
लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः ॥२७॥ वृष्टिविष्टंभशमनो भार्गवः सर्वदा मुने । शुक्राद्बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः॥२८॥
शीघ्रमंदसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा । यदाऽर्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यः प्रायेण तत्र तु ॥२९॥ अतिवाताभ्रपातानावृष्ट्यादिभयसूचकः । उपरिष्ठात्ततो
भौमो योजनानां द्विलक्षतः ॥३०॥ पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुंक्ते राशीनथैकशः । द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते ॥३१॥ प्रायेणाशुभकृत्सोऽयं
ग्रहौघानां च सूचकः । ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः ॥३२॥ एकैकस्मिन्नयो राशौ भुंक्ते संवत्सरं चरन् । यदि वक्रो भवेन्नैवानुकूलो

के मार्ग को दो पक्षों में, एक महीने के मार्ग को सवा दो दिन में और एक पक्ष के मार्ग को एक दिन में पार कर जाते हैं । इस तरह शीघ्र गति वाले
चन्द्रमा नक्षत्रचक्र का भोग करते हैं ॥१८-१९॥ ये अपनी पूर्ण होने वाली कलाओं के द्वारा देवताओं को तथा क्षीण होने वाली कलाओं के द्वारा पितरों
को प्रसन्न करते हैं । ये अपने पूर्व तथा उत्तर पक्षों के द्वारा क्रमशः देवताओं के दिन और रात्रि का विभाजन करते हैं । ये ही सम्पूर्ण जीव समूह के जीव
और प्राण है ॥२१॥ ये तीस मुहूर्त में एक नक्षत्र का भोग करते हैं । इनकी सोलह कलाएँ हैं । ये अनादि उत्तम पुरुष हैं ॥२२॥ देवताओं, पितरों, मनुष्यों,
सरीसृपों तथा वृक्षों के प्राण का आप्यायन करने के कारण ही ये, मनोमय, प्राणमय, अमृतधामा तथा सुधाकर कहे जाते हैं । ये सर्वमय भी कहे जाते हैं।
चन्द्रमण्डल से तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्र मण्डल विद्यमान है ॥२३-२४॥ इन नक्षत्रों को परमेश्वर ने सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा के लिए बनाया है ।
अभिजित् को लेकर अठाइस नक्षत्र हैं ॥२५॥ नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र का स्थान है । शुक्र सूर्य के साथ चलते हैं । कभी ये सूर्य से आगे
रहते हैं और कभी पीछे ॥२६॥ शुक्र की भी तीन प्रकार की गतियाँ हैं, शीघ्र, मन्द और सम । यह ग्रह लोकों के अनुकूल तथा शुभ कारक है ॥२७॥
शुक्र हमेशा वृष्टि के विध्नों को दूर करते हैं । शुक्र से दो लाख योजन ऊपर बुध का स्थान है ॥२८॥ ये भी सदा शुक्र के ही समान शीघ्र, मन्द और
सम गति वाले रहते हैं । जिससमय ये शुक्र को लांघ कर चलते हैं ॥२९॥ उस समय आँधीं आती है, उसके कारण बादल बिखर जाते हैं उससे सूखे
की सूचना मिलती है । बुध से दो लाख योजन ऊपर भौम हैं ॥३०॥ यदि ये वक्री न हों तो तीन-तीन पक्षों में एक-एक राशि का भोग करते हैं ॥३१॥ अमंगल

ब्रह्मवादिनाम् ॥३३॥ ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरोमितः । योजनैः सूर्यपुत्रोऽयं त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन् ॥३४॥ एकैकराशौ पर्येति सर्वान्राशीन्महाग्रहः। सर्वेषामशुभो मन्दः प्रोक्तः कालविदां वरैः ॥३५॥ तत उत्तरतः प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः । योजनैः परिसंख्यातं सप्तर्षीणां च मण्डलम् ॥३६॥ लोकानां शं भावयन्ति मुनयः सप्त ते मुने । तद्विष्णुपदं स्थानं दक्षिणं प्रक्रमन्ति ते ॥३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथर्षिमण्डलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः । लक्षैस्त्रयोदशमितैः परमं वैष्णवं पदम् ॥१॥ महाभागवतः श्रीमान्वर्तते लोकवंदितः । औत्तानपादिरिन्द्रेण वह्निना कश्यपेन च ॥२॥ धर्मेण स चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः । बहुमानं दक्षिणतः । कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा॥३॥**

सूचक होने के कारण मंगल सबों के लिए अनिष्ट ही होते हैं । मंगल से दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति का स्थान है ॥३२॥ यदि वे वक्री न हों तो एक-एक राशि पर एक-एक वर्ष रहते हैं । ये ब्रह्मवादियों के लिए अनुकूल ग्रह है ॥३३॥ बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि ग्रह का स्थान है । ये सबों के लिए भयंकर ग्रह हैं । ये एक-एक राशि पर तीस-तीस महीने भ्रमण करते हैं । शनि महान् ग्रह हैं । ये सबों के लिए अशुभ कहे गये हैं ॥३५॥ उसके उत्तर दिशा में ग्यारह लाख योजन दूर सप्तर्षि मण्डल है । हे मुने ! ये सातो मुनि लोकों का कल्याण चाहते हैं । सप्तर्षि मण्डल विष्णुपद शब्द से कहे जाने वाले ध्रुवलोक की परिक्रमा करते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

शिशुमार चक्र का वर्णन

भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा– सप्तर्षिमण्डल से तेरह लाख योजन ऊपर भगवान् विष्णु का परमपद है ॥१॥ वहाँ पर इन्द्र, अग्नि, कश्यप तथा धर्म के साथ उत्तानपाद के पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न महाभागवत ध्रुव विराजमान रहते हैं । ध्रुव को सारा संसार नमस्कार करता है । ये सबके सब (इन्द्र आदि) ध्रुव को देखते हुए सदा इनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥२-३॥ ये कल्पभर जीने वाले प्राणियों के जीवन का आधार बनकर श्रीभगवान् की उपासना करते

आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम् । ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम् ॥४॥ कालेनानिमिषेणायं भ्राम्यता व्यक्तरंहसा । अवष्टंभस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः ॥५॥ भाषते भासयन्भासा स्वीयया देवपूजितः । मेढिस्तंभे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः ॥६॥ मण्डलानि चरंतीमे सवनत्रितयेन च । एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम् ॥७॥ अन्तर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः । ध्रुवमेवावलंब्याशु वायुनोदीरिताश्च ते ॥८॥ आकल्पांतं च क्रामंति खे श्येनाद्याः खगा इव । कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते ॥९॥ एवं ज्योतिर्गणाः सर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च । संयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतंति च ॥१०॥ ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम् । सोपयोगं भगवता योगधारणकर्मणि ॥११॥ यस्यावाक्शिरसः कुंडलीभूतवपुषो मुने । पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः ॥१२॥ लांगूलेऽस्य च संप्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः । अग्निरिंद्रश्च धर्मश्च तिष्ठन्ति सूरपूजिताः ॥१३॥ धाता विधाता पुच्छांते कट्यां सप्तर्षयस्ततः । दक्षिणावर्तभोगेन कुण्डलाकारमीयुषः ॥१४॥ उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च । दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च ॥१५॥ कुण्डलाभोगवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि । समसंख्याश्चावयवा

हैं । सभी ज्योतिर्गणों, सभी ग्रहों एवं नक्षत्रों आदि की आयु कल्पभर की होती है ॥४॥ काल कभी नही सोता है । इसकी गति को कोइ जान नहीं पाता है । भगवान् ने ध्रुव को स्थाणुस्तम्ब के समान बनाया है ॥५॥ देवताओं के द्वारा पूजित ध्रुव अपने ही तेज से प्रकाशित होते हैं । जैसे गाड़ी खींचने वाले बैलों को मेढीस्तंभ में नाँध दिया जाता है, उसी तरह तारे तथा सभी ग्रह आदि भीतरी एवं बाह्य विभाग पूर्वक कालचक्र से बँधे हुए हैं । ध्रुव के ही आधार पर प्रवह वायु के द्वारा प्रेरित वे सभी ॥७-८॥ बाज आदि पक्षियों के समान कल्प पर्यन्त आकाश में परिक्रमा करते रहते हैं । उन सबों का सारथि कर्म है तथा वे वायु रूपी रथी के अधीन रहते हैं ॥९॥ इसी तरह समस्त ज्योतिर्गण प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से अनुगृहीत होने के कारण कभी भी पृथिवी पर गिरते नहीं है ॥१०॥ हे नारदजी ! कुछ लोग भगवान् श्रीहरि की योगमाया के आधार पर स्थित इस ज्योतिश्चक्र को शिशुमार चक्र के रूप में वर्णन करते हैं ॥११॥ वे कहते हैं कि यह शिशुमार अपने शिर को नीचे करके कुण्डली मारे बैठा है । उसके पूंछ के स्थान पर ध्रुव हैं ॥१२॥ उसके पूछ के मूल भाग में पवित्र प्रजापति हैं । वे अग्नि, इन्द्र तथा धर्म नामक देवताओं से पूजित होकर विराजते हैं ॥१३॥ पूछ के अन्त में धाता और विधाता का स्थान है । कटिप्रदेश में सप्तर्षि विराजते हैं । यह शिशुमार दाहिनी ओर अपने शरीर को मोड़कर बैठा है ॥१४॥ उत्तरायण वाले चौदह नक्षत्र इस शिशुमार के दाहिने भाग में हैं । दक्षिणायन वाले नक्षत्र इसके वामभाग में हैं ॥१५॥ जैसे लौकिक शिशुमार भी बैठता है तो उसके दोनों पार्श्व में समान संख्या वाले

भवन्ति कजनंदन ॥१६॥ अजवीथीपृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे । पुनर्वसुश्च पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः ॥१७॥ आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः।अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः ॥१८॥ यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा । कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः॥१९॥ धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः । मघादीन्यष्ट भानीह दक्षिणायनगानि च ॥२०॥ युञ्जीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने । तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि ॥२१॥ दक्षपार्श्वे वंक्रितेषु प्रातिलोम्येन योजयेत् । शततारा तथा ज्येष्ठा स्कन्धयोर्दक्षजामयोः ॥२२॥ अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः । मुखेष्वंगारकः प्रोक्तो मंदः प्रोक्त उपस्थके ॥२३॥ बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः । नारायणश्च हृदये चन्द्रो मनसि तिष्ठति ॥२४॥ स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः । बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः ॥२५॥ सर्वांगेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृताः । एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः ॥२६॥ सन्ध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः । निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठेन्मन्त्रेणानेन

अंग होते हैं; वैसी ही स्थिति इस शिशुमार की भी है । इसके पृष्ठ भाग में अजवीथी संज्ञक नक्षत्र मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा हैं । उदर में आकाशगंगा हैं । दाहिने और वायें श्रोणीभाग में पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र हैं ॥१७॥ पीछे के दायें और वायें पैर में क्रमशः आर्द्रा तथा अश्लेषा नक्षत्र हैं । दाहिनी और वायीं नाकों में अभिजित् और उत्तराषाढा नक्षत्र हैं ॥१८॥ कल्पना करने में चतुर लोगों ने इसकी दायीं और वायीं आखों में श्रवण तथा पूर्वाषाढा नक्षत्र की कल्पना की है ॥१९॥ इसके दाहिने ओर बायें कानों में क्रमश धनिष्ठा और मूल नक्षत्र को बतलाया गया है । दक्षिणायन के मघा आदि जो आठ नक्षत्र हैं ॥२०॥ उन सबों को इसके बायें पार्श्व की हड्डियों में जोड़ना चाहिए । उसी तरह उत्तरायण के मृगशिर आदि जो आठ नक्षत्र है ॥२१॥ उन सबों को इसके दाहिने भाग की हड्डियों से जोड़ना चाहिए । शतभिषा और ज्येष्ठा को इसके दोनों (दाहिने और बाँये) कन्धों से जोड़ना चाहिए । ऊपर के ठोढी में अगस्त्य का और नीचे की ठोढी में यम का स्थान है । इसके मुख में भौम तथा उपस्थ में शनि का स्थान है ॥२३॥ इसके ककुद प्रदेश में बृहस्पति तथा वक्षस्थल में ग्रहाधिप सूर्य का स्थान है । इसके हृदय में नारायण और मन में चन्द्रमा रहते हैं ॥२४॥ इसके दोनों स्तनों में दोनों अश्विनी कुमारों तथा नाभि में सूर्य कहे गये हैं । इसके प्राण तथा अपान में बुध तथा गले में राहु एवं केतु हैं ॥२५॥ इसके सभी अंगों तथा रोमों में तारागण बतलाये गये हैं । यह भगवान् विष्णु का सर्वदेवमय शरीर है ॥२६॥ संयमी पुरुष को चाहिए कि वह सायंकाल मौन होकर प्रतिदिन श्रीभगवान् के इस रूप का ध्यान करे। इस समय नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि' इस मन्त्र का जप करना चाहिए । इस मन्त्र का अर्थ है कि हम ज्योतिर्लोक स्वरूप कालस्वरूप, देवताओं के स्वामी महापुरुष का ध्यान करते हैं । उनको नमस्कार है । ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं के रूप में श्रीभगवान् का जो यह

श्रीधरः ॥२७॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥२८॥ ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मंत्रकृतां त्रिकालम्। नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुमण्डलम् । नक्षत्रवच्चरति च सैंहिकेयोऽतदर्हणः ॥१॥ सूर्याचन्द्रमसोरेव मर्दनः सिंहिकासुतः । अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्णवनुग्रहात् ॥२॥ यददस्तरणेर्बिम्बं तपतो योजनायुतम् । तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम्॥३॥ त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः । यः पर्वसमये वैरानुबंधी छादकोऽभवत् ॥४॥ सूर्याचन्द्रमसोर्दूराद्धवेच्छादनकारकः । तन्निशम्योभयत्रापि**

आधिदैविक रूप है उसका मन्त्र तीनों कालों में जपने वाले व्यक्ति के पाप विनष्ट हो जाते हैं । इस रूप का तीनों कालों में स्मरण करने वाले तथा नमस्कार करने वाले व्यक्ति के सारे पाप तत्काल विनष्ट हो जाते हैं ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

राहुमण्डल आदि का वर्णन

भगवान् नारायण ने कहा– सूर्यमण्डल से दश हजार योजन नीचे राहु मण्डल को बतलाया गया है । राहु सिंहिका का पुत्र है और अयोग्य होकर भी नक्षत्र के समान सञ्चरण करता है ।।१।। यह राहु, सूर्य तथा चन्द्रमा का मर्दन करने वाला है । भगवान् विष्णु ने कृपा करके उसको अमरत्व तथा खेटत्व (ग्रहत्व) दोनों प्रदान किया है ।।२।। सूर्य का तपने वाला जो विम्ब दिखायी दे रहा है उसका विस्तार दश हजार योजन है । यह सूर्य मण्डल को ढँक देने वाला असुर है । यह बारह हजार योजन दूर हैं ।।३।। चन्द्र मण्डल को अच्छादित करने वाला ग्रह केतु चन्द्रमा से तेरह हजार योजन नीचे है । वह वैर के कारण आच्छादक बन गया ।।४।। सूर्य तथा चन्द्रमा को ढँकने का काम यह दूर से ही करता है । इस बात को जब भगवान् विष्णु ने सुना तो वे सूर्य

विष्णुना प्रेरितं स्वकम् ॥५॥ चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम् । तत्तेजसा दुःसहेन समंतात्परिवारितम् ॥६॥ मुहूर्तो द्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः । आरान्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह ॥७॥ उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम् । ततोऽधस्तात्समाख्याता लोकाः परमपावनाः ॥८॥ सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम । योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्यनिषेविताः ॥९॥ ततोऽप्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम् । पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम् ॥१०॥ अन्तरिक्षं चलत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि । यावन्मेघास्तथोद्यन्ति तत्प्रोक्तं ज्ञानकोविदैः॥११॥ ततोऽधस्ताद्योजनानां शतं यावद्द्विजोत्तम । पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः ॥१२॥ हंसादयः प्रोत्पतंति पार्थिवाः पृथिवीभवाः । भूसन्निवेशावस्थानां यथावदुपवर्णितम् ॥१३॥ अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः । एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः ॥१४॥ अयुतांतरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः । अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा ॥१५॥ तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम् । महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम् ॥१६॥ सप्तमं विप्र पातालं सप्त ते विवराः स्मृताः । एतेषु विलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च ॥१७॥ कामभौगेश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च । नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते ॥१८॥ दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः । नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबंधुभिः ॥१९॥

और चन्द्रमा के पास अपने चक्र को भेज दिए ॥५॥ उस सुदर्शन चक्र से भयंकर ज्वाला निकलती है । चक्र के असह्य तेज के द्वारा सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही आवृत हैं ॥६॥ उसको देखकर राहु आश्चर्यचकित होकर उद्विग्न हो जाता है । वह उनसे दूर से ही लौट जाता है । हे देवर्षे ! लोक में इसी को उपराग (ग्रहण) शब्द से अभिहित किया जाता है । उसके नीचे के लोकों को अत्यन्त पवित्र बतलाया गया है ॥७-८॥ ये लोक सिद्धों, चारणों और विद्याधरों के हैं । इन लोकों का विस्तार दश हजार योजन है । इन लोकों में पुण्यवान् पुरुष रहते हैं ॥९॥ हे देवर्षे ! उसके नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, प्रेतों और भूतों का श्रेष्ठ विहारस्थल है । उसके नीचे अन्तरिक्ष लोक है । जहाँ तक वायु चलती है और मेघ दिखायी देते हैं, वहाँ तक अन्तरिक्षलोक है, ऐसा उसके जानकारों ने बतलाया है ॥११॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके नीचे सौ योजन पर्यन्त पृथिवी बतलायी गयी है जहाँ तक गरुड, बाज, सारस, ॥१२॥ हंस आदि पृथिवी से उत्पन्न होने वाले पक्षीगण उड़ा करते हैं, वहाँ तक भूलोक है । इसतरह से ठीक-ठीक पृथिवी का आकार बतलाया गया ॥१३॥ हे देवर्षे ! पृथिवी के नीचे सात पाताल बतलाये गये हैं । प्रत्येक पाताल का विस्तार तथा ऊँचाई एक-एक हजार योजन हैं । ये सभी पाताल एक दूसरे से दश-दश हजार योजन की दूरी पर हैं । ये सभी ऋतुओं में सुखद रहते हैं । इनमें पहला अतल है, दूसरा वितल है, तीसरा सुतल है चौथा तलातल बतलाया गया है । पाँचवाँ महातल है, छठा रसातल हैं ॥१५-१६॥ हे विप्र ! सातवाँ पाताल है । इस तरह से सात विवर (सप्तपाताल) हैं ये पाताल नामक स्वर्ग हैं । इनमें स्वर्ग

सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः । ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्च ते ॥२०॥ निवसंति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः । मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः ॥२१॥ पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवरशालिनः । विचित्रभवनाट्टाला गोपुराद्याः सहस्रशः ॥२२॥ सभाचत्वरचैत्यादिशोभाढ्याः सुरदुर्लभाः । नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः ॥२३॥ कीर्णकृत्रिमभूमिश्च विवरेशगृहोत्तमैः । अलङ्कृताश्चकासन्ति उद्यानानि महांति च॥२४॥ मनःप्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः । ललानानां विलासार्हस्थानैः शोभितभांजि च ॥२५॥ नादैर्विहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः । स्वच्छार्णः पूरितह्रदैः पाठीनसमलङ्कृतैः ॥२६॥ जलजंतुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः । कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥२७॥ तेषु कृतनिकेतानां विहारैः संकुलानि च । इन्द्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः ॥२८॥ अमराणां च परमां श्रियं चातिशयन्ति च । यत्र नैव भयं क्वापि कालाङ्गर्दिनरात्रिभिः ॥२९॥ यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थैर्मणिरश्मिभिः । नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकांतिभिः ॥३०॥ न वा एतेषु वसतां

से भी अधिक सुखद काम्य पदार्थ तथा भोग्य पदार्थों की समृद्धि है । यहाँ नित्य ही उद्यानों में विहार करने का आनन्द प्राप्त होता रहता है ॥१८॥ इन पातालों में बलशाली दैत्य, कद्रू के पुत्र और दानव अपने पत्नी, पुत्रों तथा बान्धवों के साथ आनन्द पूर्वक रहते हैं ॥१९॥ वे अपने गृह के स्वामी होते हैं । वे अपने मित्रों तथा अनुचरों से सम्पन्न होते हैं । ईश्वर की कृपा के कारण उनकी कोई भी इच्छा अधूरी नहीं रहती है तथा वे मायावी होते हैं ॥२०॥ इस तरह वे सदा प्रसन्नता का अनुभव करते हुए सभी कालों में सुखी रहते हैं । उनके शिल्पीं महामायावी मय है । उसने अनेक श्रेष्ठ मणियों से देदीप्यामान अनेक नगरियों का निर्माण किया है । उन नगरियों में हजारों गोपुरों वाले, भवन तथा अट्टालिकायें हैं ॥२२॥ ये नगर सभाभवन, मन्दिर तथा प्राङ्गण से सुशोभित हैं । ये देवताओं को भी दुर्लभ हैं । नाग तथा असुर अपनी पत्नियों के साथ यहाँ विहार करते हैं । ये पुरियाँ कबूतरों तथा सारिकाओं से सुशोभित हैं ॥२३॥ इन पातालों के स्वामी विशाल भवन बनवा रखें हैं । यहाँ बड़े-बड़े तथा अलंकृत उद्यान प्रकाशित होते हैं ॥२४॥ ये फलों तथा पुष्पों आदि से मन को प्रसन्न करने वाले हैं तथा स्त्रियों के विलास के योग्य स्थानों से सुशोभित हैं ॥२५॥ पक्षीसमूह की ध्वनि से युक्त जलों से परिपूर्ण स्वच्छ जल से भरे हुए अनेक जलाशय हैं । उन जलाशयों में पाठीन नामक मछलियाँ हैं ॥२६॥ जब उन जलाशयों में रहने वाले जलचरों से जल क्षुब्ध होता है तो जल में उत्पन्न होने वाले जलाशय के कुमुद, उत्पल (नीलकमल) तथा रक्तकमल आन्दोलित हो उठते हैं ॥२७॥ जलाशयों में रहने वाले अनेक प्रकार के सुन्दर ध्वनि करने वाले पक्षियों से वे जलाशय भरे पड़े हैं ॥२८॥ यहाँ देवताओं के भी ऐश्वर्य से अधिक ऐश्वर्य है । वहाँ दिन और रात में कभी भी किसी प्रकार का भय नहीं है ॥२९॥ यहाँ के नागों के शिरों में रहने वाली मणियों की किरणों के प्रकाश के कारण किसी भी प्रकार का अन्धकार होता ही नहीं है ॥३०॥ इन नगरियों में रहने वाले जीवों को दिव्य औषधियों तथा रसायनों; अन्नों तथा जलों का सेवन करने से कभी भी किसी प्रकार का रोग

दिव्यौषधिरसायनैः । रसान्नपानस्नानाद्यैर्नाधयो न च व्याधयः ॥३१॥ वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगंधताः । अनुत्साहवयोऽवस्था न बाधन्ते कदाचन ॥३२॥ कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः । भगवत्तेजसोन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात् ॥३३॥ यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भराशयः । प्रायो भयात्पतन्त्येव स्रवन्ति ब्रह्मपुत्रक ॥३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे । मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्वकृत् ॥१॥ षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिका । मायाविनो याश्च सद्यो धारयन्ति च काञ्चन ॥२॥ जृम्भमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः । स्त्रीगणा उत्पद्यंते लोकत्रयविमोहनाः॥३॥ पुंश्चल्यश्चैव स्वैरिण्यः कामिन्यश्चेति विश्रुताः । या वै विलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः ॥४॥ रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः ।**

नहीं होता है ॥३१॥ बालों का झड़ना, बुढापा, झुरी पड़ना पसीने की दुर्गन्धि, तथा अनुत्साह युक्त अवस्था आदि किसी को वहाँ बाधित नहीं करते हैं॥३२॥ वे सदा कल्याणमय बने रहते हैं, उनको मृत्यु का भय नहीं रहता है । उन्हें केवल भगवान् के तेजस्वी चक्र से ही भय रहता है ॥३३॥ इन पातालों में जब भगवान् का सुदर्शन चक्र प्रवेश करता है तो भय के कारण दैत्यपत्नियों का गर्भपात हो जाता है ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

अतल, वितल एवं सुतल लोकों का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! पहला अतल नामक विवर अत्यन्त मनोहर है । इसका स्वामी मय नामक दानव का पुत्र बल है । वह महा अभिमानी है ॥१॥ उसने सभी कार्यों को सिद्ध करने वाली छियानबे मायाओं का निर्माण किया है । मायावी जीव उनमें से कुछ मायाओं को शीघ्र हो समझ लेते हैं ॥२॥ बल जब जम्हाई लेता है, उसी समय त्रैलोक्य को मोहित कर देने वाली हजारो स्त्रियों का समूह उत्पन्न हो जाता है ॥३॥ वे स्त्रियाँ पुंश्चली,

स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥५॥ संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयंत्यपि ताः स्त्रियः । यस्मिन्नुपयुक्तो जनो मनुते बहुधा स्वयम् ॥६॥ ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान् । आत्मा मन्यमानः सन्मदांध इव कत्थते ॥७॥ एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद । द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत ॥८॥ भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः । हाटकेश्वरनामाऽयं स्वपार्षदगणैर्वृतः ॥९॥ प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च । भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः ॥१०॥ भवयोर्वीर्यसंभूता हाटकी सरिदुत्तमा । समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि ॥११॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम् । दैत्यांगना भूषणार्हं सदा तं धारयंति हि ॥१२॥ तद्विलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम् । पुण्यश्लोको बलिर्नाम आस्ते वैरोचनिर्मुने ॥१३॥ महेन्द्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम् । त्रिविक्रमोऽपि भगवान्सुतले बलिमानयत् ॥१४॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्य स्थापितः किल दैत्यराट् । इन्द्रादिष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते ॥१५॥ तमेव देवदेवेशमाराधयति भक्तितः । व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः ॥१६॥ भूमिदानफलं ह्येतत्पात्रभूतेऽखिलश्वरे । वर्णयन्ति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद ॥१७॥ वासुदेवे

स्वैरिणी तथा कामिनी के नाम से प्रसिद्ध हैं । वे उस अतललोक में प्रवेश करने वाले पुरुषों को एकान्त में ले जाती हैं ॥४॥ वे उन पुरुषों को सुवर्ण रसायन खिला देती हैं । इसके बाद वे उन पुरुषों को अपने हाव, भाव तथा विलासों के प्रयोग से ॥५॥ वार्तालाप के द्वारा तथा विभ्रमों के द्वारा आकृष्ट करके उन्हें रमण कराती हैं । उस औषधि का सेवन करने वाला अपने को बहुत बलवान् मानने लगता है । वह अपने को ईश्वर, सिद्ध तथा दश हजार हाथियों के बलवाला मानता है । वह मदान्ध होकर अपनी आत्मश्लाघा करता है ॥७॥ हे नारदजी ! मैं आपको इस तरह से अतल लोक की स्थिति बतलायी । अब आप दूसरे वितल लोक का वर्णन सुनें ॥८॥ यह अतल लोक के नीचे है । यहाँ पर हाटकेश्वर नाम के भगवान् शङ्कर अपने पार्षदों के साथ विराजमान हैं । ब्रह्माजी द्वारा की गयी सृष्टि को संवर्द्धित करने के लिए भवानी के साथ संसक्त होकर देवताओं के द्वारा पूजित भगवान् शङ्कर रहते हैं । यहीं भगवान् शङ्कर के वीर्य से हाटकी नाम की नदी प्रवाहित होती है । वायु की प्रेरणा से प्रचण्ड बने अग्निदेव उसके जल को पीते रहते हैं ॥११॥ जल पीते समय अग्निदेव जो जल थूक देते है वह हाटक नामक सुवर्ण बन जाता है । वह दैत्यों को अत्यन्त प्रिय है । दैत्यों की पत्नियाँ उसका आभूषण बनवाकर धारण करती हैं ॥१२॥ वितल नामक पाताल के नीचे सुतल नामक लोक है । वहाँ पर विरोचन के पुत्र बलि विराजमान हैं ॥१३॥ वे इन्द्र का अत्यन्त प्रिय कार्य करते रहते हैं । त्रिविक्रम भगवान् बलि को सुतल लोक में लाये थे ॥१४॥ भगवान् ने त्रैलोक्य की लक्ष्मी के साथ बलि को सुतल लोक में स्थापित किया था । सुतललोक में जो ऐश्वर्य हैं वह इन्द्र आदि को भी नहीं उपलब्ध हैं । बलि श्रीभगवान् की ही भक्तिपूर्वक सदा आराधना करते है। वे सदा पापों से रहित होते हैं । वे आज भी सुतललोक में निवास करते हैं ॥१६॥ महात्माजन वर्णन करते हैं कि जब सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान्

भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ । एतद्दानफलं विप्र सर्वथा न हि युज्यते ॥१८॥ यस्यैव देवदेवेस्य नामापि विवशो गृणन् । स्वकीयकर्मबंधीयगुणान्विधुनुतेऽञ्जसा॥१९॥ तत्क्लेशबंधहानाय सांख्ययोगादिसाधनम् । कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे ॥२०॥ न चायं भगवानस्माननुजग्राह नारद । मायामयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम् ॥२१॥ सर्वक्लेशाधिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम् । यं साक्षाद्भगवान्विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥२२॥ याच्ञाछलेनापहृतं सर्वस्वं देहशोषकम् । अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसंभवैः ॥२३॥ बंधयित्वाऽवमुच्यापि गिरिदर्यामिवाब्रवीत् । असाविन्द्रो महामूढो यस्य मन्त्री बृहस्पतिः ॥२४॥ प्रसन्नमिमत्यर्थमयाचल्लोकसम्पदम् । त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यं कियदेवातितुच्छकम्॥२५॥ आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसम्पदि । अस्मत्पितामहः श्रीमान्प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥२६॥ दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः । पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना ॥२७॥ पितर्युपरते वीरे नैवैच्छद्भगवत्प्रियः । तस्यातुलानुभावस्य सर्वलोकोपधीमतः ॥२८॥ अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति । एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः ॥२९॥ सुतले वर्तति यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम् । एकदा दिग्जये राजा

याचक बन गये तो बलि ने जो उन्हें भूमिदान दिया उसी का फल बलि को प्राप्त हुआ है । किन्तु यह कथन उचित नहीं है ॥१७॥ समस्त पुरुषार्थ प्रदान करने वाले भगवान् वासुदेव को दान देने का फल इसे कहना बिल्कुल उचित नहीं है ॥१८॥ विवश होकर भी जिन श्रीभगवान् का नाम उच्चारण करने मात्र से जीव अपने कर्म के बन्धन को विनष्ट कर देता है ॥१८॥ उन कर्म के बन्धनों को तोड़ने के लिए यतिजन अखिलेश्वर भगवान् की आराधना योग साधन के द्वारा करते हैं ॥२०॥ हे नारदजी ! यह उन श्रीभगवान् की उदारता का फल नहीं माना जा सकता है । मायामय भोगों के ऐश्वर्य को प्रदान करके उन्होंने कोई कृपा नहीं की है ॥२१॥ ऐश्वर्य तो समस्त क्लेशों का कारण है । उससे तो भगवत् स्मरण का विस्मरण हो जाता है । भगवान् विष्णु साक्षात् ईश्वर हैं । सभी उपायों के ज्ञाता हैं ॥२२॥ उन्होंने छलपूर्वक याचना करके बलि का सब कुछ ले लिया बलि का केवल देह अवशिष्ट था । वे बलि को वरुणपाश में बाँधकर उन्हें सुतल लोक में ले जाकर वहाँ वसा दिये । उस समय अपना उद्ग्रार प्रकट करते हुए बलि ने कहा बृहस्पति जिनके मन्त्री हैं, वे इन्द्र महामूर्ख हैं ॥२३-२४॥ इसीलिए उन्होंने श्रीहरि को प्रसन्न करके स्वर्गलोक की सम्पत्ति माँगा । त्रैलोक्य की सम्पत्ति तो अत्यन्त तुच्छ पदार्थ है ॥२५॥ भगवान् के आशीर्वाद को त्यागकर लोक सम्पत्ति को चाहने वाला मूर्ख ही होता ! हमारे पितामह प्रह्लादजी थे उनको श्रीभगवान् ही प्रिय थे ॥२६॥ वीर पिता के मर जाने पर भगवान् विष्णु जब उनको उनके पिता का राज्य दे रहे थे तो वे लोक कल्याणकारी श्रीभगवान् से उनकी दासता की याचना किये॥२७॥ श्रीभगवान् की महिमा अतुलनीय है । वे सम्पूर्ण लोक की उपाधि से युक्त हैं ॥२८॥ समस्त दोषों के आगार हम जैसे लोग उनके प्रभाव को कैसे जान

रावणो लोकरावणः ॥३०॥ प्रविशन्सुतले तेन भक्तानुग्रहकारिणा । पादांगुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि ॥३१॥ एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक् । आस्ते सुतलराज्यस्थो देवदेवप्रसादतः ॥३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम् । दानवेन्द्रो मयो नाम त्रिपुराधिपतिर्महान् ॥१॥ त्रिलोक्याः शंकरेणायं पालितो दग्धपूस्त्रयः । देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः ॥२॥ आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः । पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये॥३॥ ततोऽधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम् । सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान् ॥४॥ अनेकशिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते ।**

सकते हैं । इस तरह से अत्यन्त पूजित दैत्याधिपति बलि ॥२९॥ सुतल लोक में हैं । स्वयं श्रीहरि उनके द्वारपाल हैं । एक बार अपने दिग्विजय के प्रसंग में संसार को दुःख देने वाला रावण सुतल लोक में गया ॥३०॥ उस समय भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् ने रावण को अपने अङ्गूठे से दश हजार योजन दूर फेंक दिया था ॥३१॥ राजा बलि सभी सुखों को भोगने वाले परंप्रतापी हैं और श्रीभगवान् की कृपा से सुतल का राज्य करते हैं ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

तलातल, महातल, रसातल तथा पताल लोकों का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– सुतललोक के नीचे तलातल लोक हैं । वहाँ पर दानवों का स्वामी तथा त्रिपुर नामक नगरों का अधिपति मय है ॥१॥ उसके तीनों नगरों को जलाकर शंकरजी ने त्रिलोकी की रक्षा की । भगवान् शंकर की कृपा से ही वह राज्य सुख को प्राप्त किया था ॥२॥ वह माया करने वालों का आचार्य और अनेक प्रकार की माया करने में निपुण था । भयंकर राक्षस अपने सभी कार्यों की समृद्धि के लिए उसकी पूजा करते हैं ॥३॥ तलातल के नीचे महातल नामक लोक है । अत्यन्त क्रोधी कद्रू के पुत्र सर्पो का समूह वहाँ निवास करता है । वे सर्प अनेक शिरो वाले हैं । उन सर्पो में प्रधान

कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा ॥५॥ महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः । पतत्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाः सर्व एव ते ॥६॥
स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बस्य च संगताः । प्रमत्ता विहरन्त्येव नानाक्रीडाविशारदाः ॥७॥ ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलसमाह्वये । दैतेया निवसंत्येव
पणयो दानवाश्च ये ॥८॥ निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः । कालेया इति च प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजाम् ॥९॥ महौजसश्चोत्पत्त्यैव
महासाहसिनस्तथा । सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः ॥१०॥ बिलेशया इव सदा विवरे निवसंति हि । ये वै वाग्भिः सरमया शक्रदूत्या
निरन्तरम् ॥११॥ मंत्रवर्णाभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह । ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधिपालकाः ॥१२॥ वासुकिप्रमुखाः शंखःचुलिकः
श्वेत एव च । धनञ्जयो महाशंखो धृतराष्ट्रस्तथैव च ॥१३॥ शंखचूडः कंबलाश्वतरो देवोपदत्तकः । महामर्षा महाभोगा निवसन्ति विषोल्बणाः॥१४॥
पंचमस्तकवंतश्च फणासप्तकभूषिताः । केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथाऽपरे ॥१५॥ सहस्रशिरसः केऽपि रोचिष्णुमणिधारकाः । पातालरंध्रतिमिरनिकरं
स्वमरीचिभिः ॥१६॥ विधमन्ति च देवर्षे सदा संजातमन्यवः । अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिंशत्साहस्रकेऽन्तरे ॥१७॥ योजनैः परिसंख्याते तामसी
भगवत्कला । अनंताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता ॥१८॥ अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं प्रचक्षते । संकर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः॥१९॥

सर्पों को मैं बतलाता हूँ कुहक, तक्षक, सुषेण तथा कालिय ॥४-५॥ इनके फन बड़े हैं । इनके शरीर में असीम शक्ति है । ये अत्यन्त भयंकर हैं । इनकी जाति भी भयंकर है । ये पक्षिराज गरुड से भयभीत रहते हैं ॥६॥ वहाँ ये सभी अपनी पत्नी, पुत्र तथा कुटुम्ब के साथ मदमत्त होकर विहार कहते हैं । ये अनेक प्रकार की क्रीडा करने में निपुण हैं ॥७॥ उसके नीचे के विवर रसातल में दैत्यों का निवास है । जो पणिनामक दानव हैं ॥८॥ जिनको निवातकवच कहते हैं हिरण्यपुर वासी कालेय कहते हैं । ये देवताओं के शत्रु हैं ॥९॥ ये सभी जन्म से अत्यन्त ओजस्वी तथा महासाहसी होते हैं । सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् के तेज से इनकी शक्ति कुण्ठित रहती है ॥१०॥ ये सर्पों के समान सदा उस रसातल नामक विवर में ही रहते हैं । ये रमण नाम की दूती की वाणी से सदा ताड़ित होकर भयभीत रहते हैं । उसके नीचे का विवर पाताल है । वहाँ पर नागलोक के स्वामियों का निवास है ॥११-१२॥ उन नागों में प्रमुख वासुकि हैं । शंख, चुलिक, श्वेत, धनञ्जय, महाशंख तथा धृतराष्ट्र ॥१३॥ शंखचूड, कंबलाश्वतर, देवदत्त आदि नाग वहाँ रहते है । ये सभी बड़े फन वाले, क्रोधी तथा भयंकर विष वाले सर्प वहाँ निवास करते हैं ॥१४॥ इन सर्पों में कुछ पाँच फणों वाले कुछ दश फणों वाले तथा कुछ सौ शिरों वाले सर्प हैं ॥१५॥ कुछ हजार फणों वाले हैं । ये सभी [illegible] हुई मणियों को धारण करते हैं । ये अपनी मणियों की किरणों से पाताल के अन्धकार को ॥१६॥ विनष्ट करते रहते हैं । हे देवर्षि ! ये अत्यन्त क्रोधी हैं । हे देवर्षे ! पाताल से नीचे तीस हजार योजन की दूरी पर श्रीभगवान् की तामसी

इदं भूमंडलं यस्य सहस्रशिरसः प्रभोः । अनन्तमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके ॥२०॥ पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते । यस्य कालेन देवस्य संजिहीर्षोः समं विभोः ॥२१॥ चराचरं भ्रुवोरन्तर्विवरादुदपद्यत । संकर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैकादशशोभितः ॥२२॥ त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तंभयन्स्वयम् । उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयङ्करः ॥२३॥ यस्यांघ्रिकमलद्वंद्व शोणाच्छनभमण्डले । विराजन्मणिबिम्बेषु महाहिपतयोऽनिशम्॥२४॥ एकांतभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुङ्गवैः । प्रणमन्तः स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते ॥२५॥ स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामंडलभांज्यपि । सुकपोलानि चारूणि गंडस्थलद्युतिमंति च ॥२६॥ नागराजकुमार्योऽपि चार्वंगविलसत्त्विषः । विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा ॥२७॥ रुचिरैर्भुजदंडैश्च शोभमाना इतस्ततः । चंदनागुरुकाश्मीरपङ्कलेपेन भूषिताः ॥२८॥ तदभिमर्षसंजातकामवेशसमायुताः । ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयन्ति च॥२९॥ अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् । करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाशिषः ॥३०॥ सोऽनन्तो भगवान्देवोऽनन्तसत्त्वो महाशयः। अनंतगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः ॥३१॥ संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च । आस्ते महासत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः ॥३२॥ ध्यायमानः

कला रहती है । उसको अनन्त शब्द से अभिहित किया जाता है । सभी देवता उसकी पूजा करते हैं ॥१८॥ ये अहंकारात्मक अभिमान स्वरू हैं । ये द्रष्टा और दृश्य को खीचंकर एक कर देते हैं ॥१९॥ हजार शिरों वाले अनन्त मूर्ति शेष अपने शिर पर भूमण्डल को धारण करते हैं ॥२०॥ इनके शिर पर सम्पूर्ण भूगोल सरसो के एक दाने के समान प्रतीत होता है । संहार काल के आने पर जब ये जगत् का संहार करना चाहते हैं तो इनकी दोनों भौहों के विवर से ग्यारह रुद्रों से सुशोभित संकर्षण नामक रुद्र का प्रादुर्भाव होता है ॥२२॥ ये संकर्षण तीन नेत्रों वाले हैं । ये तीन शिरों वाले त्रिशूल को उठाये हुए स्वयं उठकर खड़े हो जाते हैं । ये सभी महाभूतों का संहार करने वाले तथा महाशक्ति सम्पन्न हैं ॥२३॥ शेषनाग के दोनों चरणों के नख लाल मणि के समान अत्यन्त मनोहर है । बड़े-बड़े नागाधिपति ऐकान्तिक भक्तिपूर्वक, अपना शिर झुकाकर इन्हें प्रणाम करते हैं तो अपना मुख ही देखते हैं ॥२४-२५॥ वहाँ नागराज की कुमारियाँ भी रहती हैं वे उनके सुन्दर शरीर की कान्ति को बढाती हैं वे अपने विशद, विशाल, धवल तथा सुन्दर भुजदण्डों से सुशोभित होते हैं । चमकते हुए कुण्डलों की मणियों की कान्ति से उनके सुन्दर कपोल तथा मनोहर गाल चमकते रहते है । वे चन्दन कस्तूरी तथा अगरु के लेप से अपने को अलंकृत रखती हैं ॥२६-२८॥ भगवान् संकर्षण के स्पर्श मात्र से वे नागकन्यायें कामातुर हो जाती हैं और वे मनोज्ञ मुस्कान करती हुई उन्हें लज्जा पूर्वक देखती हैं ॥२९॥ अनुराग के मद से उन्मत्त होकर उनके नेत्र विघूर्णित होते रहते हैं । वे भगवान् शेष की कृपा दृष्टि और आशीर्वाद की आशा से वहाँ बैठी रहती हैं ॥३०॥ भगवान् अनन्त का हृदय उदार है । उनका बल एव पराक्रम अनन्त है । वे अनन्त गुणों के सागर हैं । वे महाकान्ति से सम्पन्न आदिदेव हैं ॥३१॥ वे संसार का कल्याण करने के लिए अपने रोष तथा आमर्ष के वेग को रोके रहते हैं । वे महाशक्तिसम्पन्न हैं तथा सभी देवता

सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा । विद्याधरैश्च गंधर्वैर्मुनिसंघैश्च नित्यशः ॥३३॥ अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः । वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षदगणानपि॥३४॥ आप्यायमानः स विभुर्वैजयन्तीं स्रजं दधत् । अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदलसंचयैः ॥३५॥ माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुता सदा । नीलवासा देवदेव एककुण्डलभूषितः ॥३६॥ हलस्य ककुदि न्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययः । महेन्द्रः कांचनीं यद्वद्वरत्रां च मतंगमः ॥३७॥ उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच— **तस्यानुभावं भगवान्ब्रह्मपुत्रः सनातनः । सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते ॥१॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः**

उनकी पूजा करते हैं ॥३२॥ देवता, सिद्ध, असुर, नाग, विधाधर, गन्धर्व, तथा मुनिसमूह उनका नित्य ही ध्यान करते है ॥३३॥ निरन्तर संसार को प्रेमपूर्वक देखने के कारण उनके नेत्र प्रेमविह्वल बने रहते हैं । वे अपनी वाणी रूपी अमृत से देवताओं तथा अपने पार्षदों को ॥३४॥ सन्तुष्ट करते रहते हैं । वे वैजयन्तीमाला को धारण करते हैं । उनकी माला कभी भी नहीं कुम्हलाने वाली तुलसी के दल से सुशोभित रहती है ॥३५॥ वह सदा मत वाले भौरों के समूह की गुञ्जार ध्वनि से सुशोभित होती है । भगवान् अनन्त नीलवस्त्र धारण करते हैं तथा अपने एक कान में कुण्डल धारण करते हैं ॥३६॥ वे अपनी मोटी भुजा को हल के ककुद् पर रखते हैं । सुवर्ण मयी पृथिवी उनके ऊपर उसी तरह सुशोभित होती है जैसे किसी हाथी पर हौदा रखा हो॥३७॥ भागवत श्रेष्ठ उनकी उदार लीलाओं का वर्णन करते हैं ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

भगवान् अनन्त का यशोगान तथा नरकों की नामावली

भगवान् नारायण ने कहा— नारदजी ब्रह्माजी के मानसपुत्र और सनातन हैं । वे ब्रह्माजी की सभा में भगवान् अनंत का यशोगान करते हुए उनकी

सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् । यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकनामात्मन्नानाधात्कथमुह वेद तस्य वर्त्म ॥२॥ मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र । यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥३॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्त्तो वा यदि
पतितः प्रलम्भनाद्वा । हंत्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥४॥ मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम्।
आनंत्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥५॥ एवं प्रभावो भगवाननंतो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः मूले रसायाः स्थित
आत्मतंत्रो यो लीलयाक्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥६॥ एताह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम । गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः ॥७॥ यथोपदेशं च
कामान्सदा कामयमानकैः । एतावतीर्हि राजेंद्र मनुष्यमृगपक्षिषु ॥८॥ विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगास्तथा । उच्चावचां विसदृशा यथाप्रश्नं
निबोधत ॥९॥ नारद उवाच– विचित्रमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम् । समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥१०॥ नारायण उवाच–
कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः । त्रिगुणत्वात्सदा तासां फलं विसदृशं त्विह ॥११॥ सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुःसुखित्वं जायते सदा ।

उपासना करते हैं ॥१॥ जिन भगवान् अनन्त की इच्छा से ही प्रकृति के सत्त्व आदि गुण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने में समर्थ हो जाते हैं,
जिनका रूप अनन्त अनादि है । जो अपने शिर पर अनेक प्रकार के प्रपञ्चों वाले जगत् को धारण किए हुए हैं । उन भगवान् संकर्षण के रहस्य को कौन
जान सकता है ?॥२॥ हमलोगों के ऊपर अत्यधिक कृपा करने के कारण जो चेतनाचेतनात्मक इस जगत् को धारण किए हुए हैं । जिनकी निर्दोष लीला
को स्वजनों के मन को अपने वश में करने के लिए सिंह ने धारण किया है । वे ही भगवान् संकर्षण शुद्ध सात्त्विक शरीर को धारण किए हुए है ॥३॥
कोई आर्त अथवा पतित व्यक्ति भी उनका नाम एक बार भी हंसी के बहाने भी ले लेता है तो उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । उन भगवान् का
कौन सा मुमुक्षु व्यक्ति आश्रयण करना नहीं चाहेगा ?॥४॥ पर्वत, समुद्र तथा नदियों से युक्त यह सम्पूर्ण भूगोल हजार शिरों वाले शेष के शिर पर अणु
के समान स्थित है । उन असीम पराक्रम सम्पन्न प्रभु के पराक्रम का वर्णन कोई हजार जिह्वा वाला भी व्यक्ति कैसे कर सकता है ॥५॥ इस प्रकार के प्रभाव
वाले, अनुपम शक्ति से सम्पन्न भगवान् अनन्त के गुणों तथा प्रभाव की कोई सीमा नहीं है । वे स्वतंत्र रूप से पृथिवी के मूल में स्थित हैं और पृथिवी
को स्थिर रखने के लिए उसे अनायास ही धारण करते हैं ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य के जैसे अच्छे बुरे कर्म होते हैं वैसी ही उन्हें गति प्राप्त होती है।॥७॥
राजन् सकाम मनुष्यों के जैसे कर्म होते हैं वैसी ही उन्हें गति प्राप्त होती है । सभी जीव अपने कर्मों के अनुसार ही मनुष्य तथा पक्षी आदि की गतियों
को प्राप्त करते हैं । आपके प्रश्न के अनुसार मैंने उन सबों का वर्णन कर दिया ॥८-९॥ **नारदजी ने कहा–** कर्मों के एक समान होने पर भी परमात्मा ने
इस विचित्र जगत् की सृष्टि क्यों की ? इसे आप मुझे ठीक-ठीक बतलायें ॥१०॥ **नारायण भगवान् ने कहा–** कर्मों को करने वालों की श्रद्धा जैसी होती है

**दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्या श्रद्धया भवेत् ॥१२॥ दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम् । तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवैचित्र्यमीरितम्॥१३॥
अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः । सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुङ्गव ॥१४॥ तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचुर्येण द्विजोत्तम । त्रिजगत्या
अन्तराले दक्षिणस्यां दिशीह वै ॥१५॥ भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद । अग्निष्वात्ताः पितृगणा वर्तन्ते पितरश्च ह ॥१६॥ वसंति यस्यां
स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः । सत्याः समाधिना शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै ॥१७॥ पितृराजोऽपि भगवान्संपरेतेषु जंतुषु । विषयं प्रापितेष्वेषु
स्वीकीयैः पुरुषैरिह ॥१८॥ सगणो भगवत्प्रोक्ताज्ञापरो दमधारकः । यथाकर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक् ॥१९॥
स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान्। सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान् ॥२०॥ नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयन्ति हि ।
अष्टविंशमितान्केचित्ताननुक्रमतो ब्रुवे ॥२१॥ तामिस्र अंधतामिस्रो रौरवोऽपि तृतीयकः । महारौरवनामा च कुंभीपाकोऽपरो मतः ॥२२॥
कालसूत्रं तथा चासिपत्रारण्यमुदाहृतम् । सूकरस्य मूखं चांधकूपोऽथ कृमिभोजनः ॥२३॥ संदंशस्तप्तसूर्मिश्च वज्रकंटक एव च । शाल्मली चाथ
देवर्षे नाम्ना वैतरणी तथा ॥२४॥ पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम् । लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम् ॥२५॥ अवीचिरप्ययः पानं**

उनकी उसी प्रकार की गतियाँ होती हैं । तीनों गुणों के अनुसार श्रद्धाओं के होने के कारण कर्मों के फल भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ॥११॥ सात्त्विक श्रद्धा से कर्मों को करने वाले सदा सुखी होते हैं, राजसी श्रद्धा से कर्म करने वाले सदा दुःखी होते हैं ॥१२॥ तामसी श्रद्धा से कर्म करने वाले दुःखी और अज्ञानी होते हैं । श्रद्धा के तारतम्य के कारण ही कर्म के फल में विचित्रता (भिन्नता) आती है ॥१३॥ हे द्विजपुंगव ! अनादि अविद्या के कारण किए जाने वाले कर्मों के परिणाम स्वरूप हजारों प्रकार की गतियाँ जीवों को प्राप्त होती हैं ॥१४॥ हे द्विजोत्तम ! मैं उन गतियों का विस्तार से वर्णन कर रहा हूँ । त्रिलोकी के भीतर ही उसके दक्षिण दिशा में पृथिवी के नीचे और तलातल के ऊपर अग्निष्वाता नामक पितरों का गण और अन्य पितृगण विद्यमान है ॥१५-१६॥ ये पितृगण सत्य हैं, समाधिस्थ रहते हैं, और अपने वंश वालों को कल्याण का आशीर्वाद देते रहते हैं ॥१७॥ वहीं पर पितरों के स्वामी यमराज भी हैं। जब यमदूत जीवों को उनके समक्ष लाते हैं तो यमराज भगवान् की आज्ञा से दण्ड धारण करते हैं । वे उन जीवों के कर्मों तथा पापों के अनुसार उन्हें दण्ड का विचार करते हैं ॥१८-१९॥ वे धर्मतत्त्व को जानने वाले तथा अपनी आज्ञा का पालन करने वाले गणों को दण्ड देने के लिए प्रेरित करते रहते हैं ॥२०॥ हे नारदजी ! वहाँ विद्यमान नरकों की संख्या इक्कीस बतलायी गयी है । कुछ लोग नरकों की संख्या अठाइस बतलाते हैं । मैं उन सबों का क्रमशः नाम बतलाता हूँ ॥२१॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव और कुम्भीपाक ॥२२॥ कालसूत्र, असिपत्रारण्य, सूकरमुख, अंधकूप और

क्षारकर्दम एव च । रक्षोगणाख्यसंभोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम् ॥२६॥ दंदशूकोऽवटारोधः पर्यावर्तनकः परम् । सूचीमुखमिति प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः॥२७॥ इत्येते नरका नाम यातनाभूमयः पराः । कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसंभव ॥२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **कर्मभेदाः कतिविधाः सनातनमुने मम । श्रोतव्यः सर्वथैवैते यातनाप्राप्ति भूमयः ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि । हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः ॥२॥ कालपाशेन संबद्धो याम्यैरतिभयानकैः । तामिस्रनामनरके पात्यते यातनास्पदे ॥३॥ ताडनं दण्डनं चैव सन्तर्जनमतः परम् । याम्याः कुर्वन्ति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि ॥४॥ मूर्च्छामायाति विवशो नारकी**

कृमिभोजन ॥२३॥ संदंश तप्तसूर्मि, वज्रकंटक, शाल्मली तथा वैतरणी नदी ॥२४॥ पूयोद, प्राणरोध, तथा विशसन, लालाभक्ष तथा सारमेयादन ॥२५॥ अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत ॥२६॥ दन्दशूक, अवटारोध पर्यावर्तन और सूचीमुख । इस तरह अठाइस नरक बतलाये गये हैं॥२७॥ ये नरक ही यातना प्राप्त करने के स्थान हैं । इन स्थानों में जीव अपने कर्मों के अनुसार जाते हैं ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

तामिस्र आदि नरकों का वर्णन

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा– हे सनातन मुने ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कर्मों के कितने भेद हैं । जिनके कारण जीवों को विविध यातनाएँ मिलती हैं ॥१॥ भगवान् नारायण ने कहा हे नारद ! जो लोग दूसरों की सम्पत्ति पत्नी तथा पुत्रों का अपहरण करके ले जाते हैं, उनको यमदूत पकड़कर ले जाते हैं ॥२॥ अत्यन्त भयानक यमदूत उन्हें कालपाश में बाँधकर तामिस्र नामक नरक में डाल देते हैं ॥३॥ उसके बाद वे उन्हें मारते हैं, दण्ड देते हैं और डाँटते हैं । उनको अनेक प्रकार का वे कष्ट देते हैं ॥४॥ हे नारदजी ! वे जीव मूर्छित हो जाते हैं । जो किसी व्यक्ति को धोखा देकर उसकी पत्नी

पद्मभूसुत । यः पतिं वंचयित्वा तु दारादीनुपभुज्यति ॥५॥ अन्धतामिस्त्रनरके पात्यते यमकिंकरैः । पात्यमानो यत्र जंतुर्वेदनापरवान्भवेत् ॥६॥
नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाविलम्बतः । वनस्पतिर्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह ॥७॥ तस्मादप्यंधतामिस्त्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः । एतन्ममाहमिति यो
भूतद्रोहेण केवलम् ॥८॥ पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयं कुटुम्बं कार्यलंपटः । एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह ॥९॥ रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे।
इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जंतवः पुरा ॥१०॥ त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयंति तम् । तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः ॥११॥ रुरुः
सर्पादतिक्रूरो जंतुरुक्तः पुरातनैः । एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः ॥१२॥ यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसंभवः । क्रव्यादा नाम
रुरवस्तं क्रव्ये घातयंति च ॥१३॥ य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि । उपरंधयते मूढो याम्यास्तं रंधयंति च ॥१४॥ कुंभीपाके तप्ततैले
उपर्यपि च नारद । यावंति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्त्रकम् ॥१५॥ पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके । अग्न्यर्काभ्यां तप्यमाने नारकी
विनिवेशितः ॥१६॥ क्षुप्तिपासादह्यमानोऽन्तःशरीरस्तथा बहिः । आस्ते शेते चेष्टते चावतिष्ठति च धावति ॥१७॥ निजवेदपथाद्यो वै पाखंडं

का उपभोग करता है ॥५॥ उसको यमदूत अन्धतामिस्त्र नामक नरक में डाल देते हैं । नरक में गिराये जाने के समय उस जीव को अत्यधिक कष्ट होता
है ॥६॥ शीघ्र ही उसकी नेत्र ज्योति और ज्ञान दोनों नष्ट हो जाते हैं । वह कटे जड़ वाले वृक्ष के समान उस नरक में वह गिर जाता है ॥७॥ इसीलिए
उसको अन्धतामिस्त्र कहा जाता है ।। जो अहंकार और ममकार से युक्त होकर, जीवों से द्रोह करके अपने कुटुम्ब का पालन करता है । कार्यलंपट होता
है । वह इस संसार को त्यागने के बाद ही ॥८-९॥ रौरव नामक नरक में गिराया जाता है । वहाँ अत्यन्त भयंकर जीव उसे कष्ट देते हैं.। जो लोग इस
लोक में जिन जीवों को मारने का काम करते हैं ॥१०॥ वे ही मरे हुए जीव रुरु बनकर उस मारने वाले को कष्ट देते हैं । इसीलिए पुराणज्ञ मनीषी उस
नरक को रौरव कहते हैं ॥११॥ प्राचीनों ने बतलाया है कि रुरु सर्प से भी अधिक क्रूर जीव होता है । इसी प्रकार महारौरव नाम का भी नरक है ॥१२॥
यातना भोगने के लिए सूक्ष्म शरीर पाकर जीव उस नरक में जाता है । मांस खाने वाले रुरु उसके मासं में भयंकर चोट पहुँचाते हैं ॥१३॥ जो उग्र पुरुष
क्रूर होकर पशुओं को अपने खाने के लिए पकाते हैं उनको वहाँ पर यमदूत भी पकाने का काम करते हैं ॥१४॥ उसको यमदूत कुंभीपाक नरक में डाल
देते हैं । मारे जाने वाले जीवों के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने हजार वर्ष तक उस मारने वाले को यमदूत खौलते हुए तेल में पकाते रहते हैं ॥१५॥
जो अपने पिता तथा ब्राह्मण से द्रोह करता है, उसको यमदूत कालसूत्र नामक नरक में डालते हैं और वह जीव अग्नि तथा सूर्य से संतप्त होता रहता
है ॥१६॥ वह भूख तथा प्यास से व्याकुल होकर उसी नरक में रहता है, सोता है, दौड़ता है और विभिन्न प्रकार की चेष्टा करता है ॥१७॥ हे नारदजी

चोपयाति च । अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः ॥१८॥ असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयंति च । कशया प्रहरंत्येव नारकी तद्गतस्तदा ॥१९॥ इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगितः । असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः ॥२०॥ संछिद्यमानसर्वांगो हा हतोऽस्मीति मूर्च्छितः । वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदे पदे ॥२१॥ स्वधर्मानुगतंभुंक्ते पाखंडफलमल्पधीः । यो राजा राजपुरुषो दंडयेद्वै त्वधर्मतः ॥२२॥ द्विजे शरीरदंडं च पापीयान्नारकी च सः । नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिंकरैः ॥२३॥ विनिष्पिष्टावयवको बलवद्भिस्तथेक्षुवत् । आर्तस्वरेण स्वनयन्मूर्च्छितः कश्मलं गतः ॥२४॥ स पीड्यमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि । विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम् ॥२५॥ ईश्वरांकितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम् । स चांधकूपे पतति तदभिद्रोहयंत्रिते ॥२६॥ तत्रासौ जंतुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः । सरीसृपैश्च मशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः ॥२७॥ मक्षिकाभिश्च तमसि दंदशूकैश्च पीड्यते । परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जंतुवत् ॥२८॥ यस्तु संविहितैः पंचयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः । अश्नाति चासंविभज्य यत्किंचिदुपपद्यते ॥२९॥ स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने । नरकाधमके दुष्टकर्मणा परिपात्यते ॥३०॥ लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयङ्करे । कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम् ॥३१॥ अप्रत्ताऽप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै । यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं

जो विना विपत्तिकाल के भी अपने मार्ग से हटकर पाखंड का आश्रय ग्रहण करता है उस व्यक्ति को यमदूत ॥१८॥ असिपत्र नामक वन में डाल देते हैं और वहाँ पर उसे कोड़े से पीटते हैं ॥१९॥ जब वे उसे कोड़ों से पीटते हैं वह घबराकर इधर-उधर भागता है, और दोनो ओर धार वाले असिपत्र से उसका शरीर छिद जाता है । वह अरे मैं तो मर गया कहकर मूर्छित होकर गिर जाता है । इस तरह से उसे पद-पद पर अत्यन्त वेदना प्राप्त होती है ॥२०-२१॥ इस प्रकार से वह अपने पाखण्ड का फल भोगता है जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मपूर्वक ॥२२॥ किसी को दण्ड देता हैं, अथवा ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देता है वह पापी नारकी होता है और यमदूतों द्वारा सूकरमुख नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥२३॥ वहाँ उसके अंगों को यमदूत ईख के समान कोल्हू में पेरते हैं । वह आर्तस्वर करते हुए चिल्लाता है और मूर्छित हो जाता है ॥२४॥ अनेक प्रकार से पीड़ित होकर वह अत्यधिक कष्ट को प्राप्त करता है । जो लोग अपने कष्ट को तो समझते हैं पर दूसरों के कष्ट को नहीं समझते हैं और दूसरों को पीड़ित करते हैं, उनको यमदूत अन्धकूप नामक नरक में डाल देते हैं ॥२५-२६॥ उस नरक में उसे क्रूर जीव पशु, पक्षी, सांप, मच्छर, जोंक (यूका) खटमल, मक्खी आदि घोर अन्धकार में पीडित करते रहते हैं । उसे सांप काटते हैं । वह इधर-उधर छटपटाता है और भागता रहता है ॥२७-२८॥ जो कुछ भी वस्तु प्राप्त हो उसे, पंचयज्ञ करने के बाद ही खाना चाहिए ॥२९॥ यदि कोई ऐसा नहीं करके उसे खाता है तो यमदूत उसे कृमिभोजन नरक में डाल देते हैं । यहाँ एक लाख योजन विस्तृत

रत्नमेव च ॥३२॥ ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित् । अनापदि च देवर्षे तममुत्र यमानुगाः ॥३३॥ अयस्मयैरग्निपिडैः संदंशैर्निष्कुषंति च । योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यं पुरुषं च या ॥३४॥ तावमुत्रापि कशया तांडयंतो यमानुगाः । तिग्मया लोहमय्या च सूर्म्याऽप्यालिंगयंति तम्॥३५॥ तां चापि योषितं सूर्म्याऽऽलिंगयंति यमानुगाः । यस्तु सर्वाभिगमनः पुरुषः पापसंचयी ॥३६॥ निरयेऽमुत्र तं याम्याः शाल्मलीं रोपयंति तम् । वज्रकंटकसंयुक्तां शाल्मलीं तामयस्मयीम् ॥३७॥ राजन्या राजपुरुषा ये वा पाखंडवर्तिनः । धर्मसेतुं विभिंदंति ते परेत्य गता नराः॥३८॥ वैतरण्यां पतंत्येव भिन्नमर्यादपातकाः । नद्यां निरयदुर्गस्य परिखायां च नारद ॥३९॥ यादोगणै समंतात्तु भक्ष्यमाणा इतस्ततः । नात्मना वियुजंत्येव नासुभिश्चापि नारद ॥४०॥ स्वीयेन कर्मपाकेनोपतपंति च सर्वतः । विण्मूत्रपूयरक्तैश्च केशास्थिनखमांसकैः ॥४१॥ मेदोवसासंयुतायां नद्यामुपपतंति ते । वृषलीपतयो ये च नष्टशौचा गतत्रपाः ॥४२॥ आचारनियमैस्त्यक्ताः पशुचर्यापरायणाः । तेऽत्रातिकष्टगतयो विण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः॥४३॥ श्लेष्ममलसमापूर्णे निपतंति दुराग्रहाः । तदेव खादयन्त्येतान् यमानुचरवर्गकाः ॥४४॥ ये श्वानगर्दभादीनां पतयो वै द्विजातयः । मृगयारसिका

कृमि कुण्ड है । उस कुण्ड में विद्यमान कृमि उसको खाने लग जाते हैं । उस कुण्ड में उसका भी कृमि का रूप हो जाता है और दूसरे कृमि उसको खातें हैं ॥३०-३१॥ जो व्यक्ति विना दिये ही किसी ब्राह्मण का या किसी अन्य का सोना चुराता है या छिन लेता है; उसके मरने पर यमदूत उसे संदंश नामक नरक में डाल देते हैं ॥३२-३३॥ वहाँ वे उसे अग्नि के समान संतप्त लोहे से दागते हैं और गर्म संडसी से उसके मांस को नोचते हैं । जो पुरुष अगम्या नारी के पास गमन करता है अथवा कोई नारी अगम्य पुरुष के पास जाती है ॥३४॥ उस स्त्री तथा पुरुष को यमदूत तप्तसूर्मि नामक नरक में डाल देते हैं । वहाँ वे उसे कोड़े से पीटते हैं और लोहे के बने संतप्त स्त्री तथा पुरुष का आलिङ्गन कराते है ॥३५॥ जो पापी पुरुष या स्त्री समस्त प्राणियों के साथ व्यभिचार करते है ॥३६॥ उस स्त्री या पुरुष को यमदूत शाल्मली नामक नरक में डाल देते हैं । वहाँ वज्र के समान कांटे वाला शाल्मली का पेड़ होता है उसी पेड़ पर वे उसे टाँग देते हैं ॥३७॥ हे नारदजी ! जो राजा अथवा राजपुरुष पाखण्ड के कारण धर्म की मर्यादा को भङ्ग करते हैं उनके मरने पर यमदूत उन्हें वैतरणी नामक नरक में डाल देते हैं । वह नदी नरक की खाईं के समान प्रतीत होती है ॥३८-३९॥ वहाँ पर जलजंतु उसे खाते रहते हैं वह छटपटाता है, किन्तु अपने को छुड़ा नहीं पाता है ॥४०॥ वहाँ वे जीव मरते नहीं हैं, अपने कर्मों के फल को भोगते हैं । वह नदी टट्टी, पेशाब, खून, पीब, हड्डी, नख और मांस से भरी रहती है ॥४१॥ मेदा, तथा वसा से भरी हुई नदी में यमदूत उस मनुष्य को डालते हैं जो वेश्यागामी होता है और शौचाचार को नष्ट करके निर्लज्ज हो जाता है ॥४२॥ सदाचार के नियमों का परित्याग करके पशु के तरह आचरण करने वाला वह पुरुष इस लोक में

नित्यमतीर्थे मृगघातकाः ।।४५।। परेतांस्तान् यमभटा लक्षीभूतान्नराधमान् । इषुभिश्च विभिंदंति तांस्तान्दुर्नयमागतान् ।।४६।। ये दंभा दंभयज्ञेषु पशून्घ्नंति नराधमाः । तानमुष्मिन्यमभटा नरके वैशसे तदा ।।४७।। निपात्य पीडयंत्येव कशाघातैर्दुरासदैः । यो भार्यां च सवर्णां वै द्विजो मदनमोहितः ।।४८।। रेतः पातयते मूढोऽमुत्र तं यमकिंकराः । रेतःकुण्डे पातयंति रेतः संपाययंति च ।।४९।। ये दस्यवोऽग्निदाश्चैव गरदाः सार्थघातकाः । ग्रामान्सार्थान्विलुंपंति राजानो राजपूरुषाः ।।५०।। तानपरेतान्यमभटा नयन्ति श्वानकादनम् । विंशत्यधिकसंख्याताः सारमेया महाद्भुताः ।।५१।। सप्तशत्या समाख्याता रभसं खादयंति ते । सारमेयादनं नाम नरकं दारुणं मुने ।।५२।। अतः परं प्रवक्ष्यामि अवीचिप्रमुखान्मुने।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

* * *

ही अत्यधिक कष्ट भोगता है और मरने के बाद पूयोद नामक नरक में जाता है । वह नरक पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मल से भरा रहता है । यमदूत उसको उन्हीं वस्तुओं को खिलाते हैं ।।४३-४४।। जो ब्राह्मण होकर भी कुत्ते तथा गधे को पालते हैं । नित्य ही शिकार करते हैं तथा तीर्थ में भी जाकर मृगों को मारते हैं ।।४५।। उन नराधमों को यमदूत मरने के बाद प्राणरोध नामक नरक में डालकर बाणों से छेदते हैं और उस दुर्नीत पर चलने वाले व्यक्ति की अत्यधिक दुर्दशा करते हैं ।।४६।। जो दम्भी पुरुष दम्भ यज्ञ में पशुओं का वध करते हैं, उस पुरुष के मरने पर यमदूत उसे विशसन नामक नरक में डाल देते हैं और वहाँ उसे कोड़े से पीट-पीटकर उसकी दुर्दशा करते हैं । जो काममोहित पुरुष अपने समान गोत्र वाली स्त्री के साथ समागम करते हैं ।।४७-४८।। उसको यमदूत वीर्य से भरे हुए कुण्ड में डाल देते हैं और उसे वीर्य पिलाते है ।।४९।। जो चोर या राजपुरुष किसी के घर में आग लगाते हैं, या किसी को विष देते हैं, दूसरे की सम्पत्ति को नष्ट करते हैं, गाँवों तशा धनों को लूटते हैं ।।५०।। उन सबों के मरने पर यमदूत उन्हें सारमेयादन नामक नरक में डाल देते हैं । उस नरक मे सात सौ बीस अद्भुत कुत्ते रहते हैं ।।५१।। वे उन्हे वहाँ नोच-नोचकर खाते हैं । हे मुने ! वह सारमेयादन नरक अत्यन्त भयंकर है ।।५२।। हे मुने ! इसके बाद मैं आपको अवींचि आदि नरकों का वर्णन सुनाऊँगा ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

* * *

त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **ये नराः सर्वदा साक्ष्ये अनृतं भाषयन्ति च । दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षे पापबुद्धयः ॥१॥ ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे । योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः पतंति हि ॥२॥ अनाकाशेऽधः शिरसस्तदवीचीतिनामके । यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम् ॥३॥ अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिन्नविग्रहः । म्रियते नैव देवर्षे पुनरेवावरोप्यते ॥४॥ यो वा द्विजो वा राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसंभव । सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिबतीव हि ॥५॥ प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम् । कुर्वन्ति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने ॥६॥ वह्निना द्रवमाणस्य नितरां ब्रह्मसंभव । संभावनेन स्वस्यैव योऽधमोपि नराधमः ॥७॥ विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान् । वरीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः ॥८॥ स नीयते चममटैः क्षारकर्दम नामकै । निरयेऽर्वाक्शिरा छोरा दुरंतयातनाऽश्नुते ॥९॥ ये वै नरा यजंत्यन्यं नरमेधेन मोहिताः । स्त्रियोऽपि वा नरपशुं खादंत्यत्र महामुने ॥१०॥ पशवो निहतास्ते तु यमसद्मनि संगताः । सौनिका इव ते सर्वे विदार्य शितधारया॥११॥ असृक्पिबन्ति नृत्यन्ति गायन्ति बहुधा मुने । यथेह मांसभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः ॥१२॥ अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे या ब्रह्मपुत्रक ।**

अवीचि आदि नरकों का वर्णन

श्रीनारायण ने नारदजी को बतलाया– जो पापी पुरुष धन के लेने तथा देने में झूठी गवाही साक्षी बनकर देते हैं ॥१॥ उनके मरने पर यमदूत उन्हें अवीचि नामक भयंकर नरक में सौ योजन ऊँचे पर्वत से गिरा देते हैं ॥२॥ इस आधार शून्य नरक में प्राणियों को नीचे शिर करके गिरना पड़ता है । इस नरक की पत्थरीली भूमि जल के समान दिखती है ॥३॥ इसीलिए इस नरक को अवीचि कहते हैं । इस नरक में केवल पत्थर ही बिछे रहते हैं । वहाँ गिरकर उन प्राणियों का सारा शरीर तिल के समान टूट कर छितरा जाता है, किन्तु वे मरते नहीं है । वहाँ पड़े-पड़े वे कष्ट भोगते रहते हैं । उसके बाद उन्हें पुनः वैसे ही गिराया जाता है ॥४॥ जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य प्रमादवश मदिरा पीते हैं, उन्हे यमदूत नरक में डालकर गर्म-गर्म लोहा पिलाते हैं ॥५-६॥ जो व्यक्ति नीच कुल में उत्पन्न होकर भी अभिमानवश, जन्म, तप, विद्या आचार तथा वर्ण या आश्रम में अपने से श्रेष्ठ पुरुष का सम्मान नहीं करता है, ॥७-८॥ उस पुरुष को यमदूत क्षारकर्दम नामक नरक में डाल देते हैं और उस नरक में उसे भयंकर यातना देते हैं ॥९॥ जो मनुष्य नर बलि के द्वारा यक्ष अथवा भैरव की आराधना करते हैं; अथवा जो स्त्रियाँ नर पशु का मास खाती हैं ॥१०॥ उनको यमलोक मे ही मारे गये पशु मिलते हैं और

वैश्रंभकैरुपसृतान्विश्रंभाय जिजीविषून् ॥१३॥ शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव । पातयंति च ते प्रेत्य शूलपाते पतंति ह ॥१४॥ शूलादिषु
प्रोतदेहाः क्षुतृड्भ्यां चातिपीडिताः । तिग्मतुंडैः कंकबकैरितश्चेतश्च ताडिताः ॥१५॥ पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरंति हि । ये भूतानुद्वेजयंति
नरा उल्बणवृत्तयः ॥१६॥ यथा सर्पादिकास्तेऽपि नरके निपतंति हि । दंदशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठन्ति सर्वतः ॥१७॥ पंचाननाः सप्तमुखा ग्रसंति
नरकागतान् । यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः ॥१८॥ येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुन्धते । तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरिसेवकाः॥१९॥
तेष्वेवोपविशित्वा च सगरेण च वह्निना । धूमेन च निरुन्धन्ति पापकर्मरतान्नरान् ॥२०॥ योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा । पानेनेहालोकयेच्च
स्वयं गृहपतिर्द्विजः ॥२१॥ तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिंकराः । अक्षिणी वज्रतुंडा ये कंकाः काकवटादयः ॥२२॥ गृध्राः क्रूरतराश्चापि
प्रसह्योत्पाटयंति हि । य आढ्याभिमतिर्याति अहंकृत्यातिगर्वितः ॥२३॥ तिर्यक्प्रेक्षणएवात्राभिविशंकी नराधमः । चिंतयाऽर्थस्य
सर्वत्रायतिव्ययस्वरूपया॥२४॥ शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति । ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिंकरैः ॥२५॥ सूचीमुखे च नरके पात्यते

उन सबों को कसाई के समान तीक्ष्ण धार वाले हथियार से काटकर उसका खून पीकर नाचते और गाते रहते हैं । वे वहाँ मांस खाने वाले भयंकर राक्षस
के समान होते हैं ॥१२॥ जो निष्पाप जीव वन में या ग्राम में, विश्वस्त व्यक्तियों पर विश्वास करके जीवित रहना चाहते हैं ॥१३॥ उन प्राणियों को अपने
पास बुलाकर जो उन्हें काँटा चुभाते हैं अथवा रस्सी में बाँधते हैं उन मनुष्यों के मरने पर यमदूत उन्हें शूलप्रोत नरक में डाल देते हैं ॥१४॥ वे उनके
शरीर में शूल गड़ाते हैं और भूखे प्यासे रखकर अत्यधिक दुःख देते हैं । उनको कंक तथा बक नामक पक्षी अपने तीक्ष्ण चोंच से मारते है ॥१५॥ उस
समय पीड़ित होकर वे अपने पापों का बार-बार स्मरण करते हैं । जो उग्र स्वभाव वाले लोग दूसरों को सर्पों के समान दुःख देते हैं वे भी नरकों में जाते
हैं । वे दन्दशूक नामक नरक में जाते हैं ॥१६-१७॥ वह नरक पाँच और सात मुखों वाले सर्पों से भरा रहता है । वे नरक में आये हुए जीवों को सर्पों
के समान काटते रहते हैं । वे सर्प क्रूर बुद्धि वाले होते हैं ॥१८॥ जो व्यक्ति किसी कों अन्धेरी कोठरी अथवा गढे में छिपाकर रखते हैं, वे मरने के बाद
अवटारोध नामक नरक में जाते हैं । उनको यमदूत अन्धेरी जगह में रखकर विषैला धुआँ सुंघाते हैं । और वहाँ वे अपने पापकर्म के फल को भोगते
हैं ॥१९-२०॥ जो द्विज गृहस्वामी होकर भी समय पर आये हुए अतिथि को इस प्रकार से देखता है जैसे वह उसे जला ही डालेगा ॥२१॥ उस पापदृष्टि
वाले को भी यमदूत नरक में डालते हैं । उन नरकों के कंक, वक, कौए तथा गृध्र आदि क्रूर पक्षी अपने वज्र के समान तीक्ष्ण चोंच से मारकर उसकी
आँखें निकाल लेते हैं । इसी कारण उस नरक को पर्यावर्तन कहा जाता है ॥२२॥ जो इस जन्म में अपने को धनी मानकर दूसरों को टेढी नजर से देखता
है । सबों के विषय में शंका करता है । वह धन कमाने और अतिव्यय की चिन्ता में लगा रहता है ॥२४॥ उसके कारण उसका हृदय और मुख सुखता

निजकर्मणा । वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः ॥२६॥ किंकराः सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयंति हि । एते बहुविधा विप्र नरकाः पापकर्मणाम् ॥२७॥ नराणां शतशः संति यातनास्थानभूमयः । सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तास्तथापि हि ॥२८॥ विशंति नरकानेतान् यातनाबहुलान्मुने। तथा धर्मपराश्चापि लोकान् यान्ति सुखोद्भतान् ॥२९॥ स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने । देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः ॥३०॥ येनानुष्ठितमात्रेण न नरो नरकं व्रजेत् । सा देवी भवपाथोधेरुद्धर्त्री पूजिता नृणाम् ॥३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः । कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम् ॥१॥ आराधनविधिः को वा कथमाराधिता**

रहता है वह कभी शांति नहीं पाता है । वह यक्ष के समान धन की रक्षा करता रहता है ॥२५॥ ऐसे जीवों को यमदूत सूचीमुख नामक नरक में डाल देते हैं । और यमूदत वहाँ उसके सारे शरीर को जुलाहे के समान सी देते है । हे नारदजी ! इस तरह से पापियों को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए अनेक नरक हैं ॥२६-२७॥ इस तरह से सैकड़ों पापियों के लिए यातना भूमि हैं । उन सबों का कितना वर्णन किया जाय ॥२८॥ नारकीय जीव इन यातनामय नरकों में जाते हैं । धार्मिक पुरुष सुखमय लोकों में जाते हैं ॥२९॥ हे महामुने ! आपने जैसा कि स्वधर्म का वर्णन किया है, वह देवी पूजन तथा देवी के आराधन स्वरूप हैं ॥३०॥ उस धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य को नरकों में नहीं जाना पड़ता है । वे देवी संसार रूपी सागर से मनुष्यों का उद्धार करने वाली हैं ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

देवी की उपासना का वर्णन

नारदजी ने नारायण भगवान् से पूछा– हे तात ! देवी की आराधना रूपी धर्म कैसा है ? किस प्रकार से आराधना करने पर देवी भक्तों को परमपद

कदा । केन सा दुर्गनरकाद्दुर्गा त्राणप्रदा भवेत् ॥२॥ श्रीनारायण उवाच– देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषां वर । यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम् ॥३॥ स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद । अनादाविह संसारे देवी संपूजिता स्वयम् ॥४॥ परिपालयते घोरसङ्कटादिषु सा मुने । सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु ॥५॥ प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत । घृतं दद्याद् ब्राह्मणाय रोगहीनो भवेत्सदा ॥६॥ द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदंबिकाम् । शर्करां प्रददेद्विप्र दीर्घायुर्जायते नरः ॥७॥ तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि । क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्र्याय सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥८॥ चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च । अपूपा एव दातव्या न विघ्नैरभिभूयते ॥९॥ पंचम्यां कदलीजातफलं देव्यै निवेदयेत् । तदेव ब्राह्मणे देयं मेधावान्पुरुषो भवेत् ॥१०॥ षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि । ब्राह्मणाय च दातव्यं मधुकांतिर्यतो भवेत् ॥११॥ सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च । गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम ॥१२॥ नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयेत् । ब्राह्मणाय प्रदातव्यं तापहीनो भवेन्नरः ॥१३॥ नवम्यां लाजमंबायै चार्पयित्वा द्विजाय च । दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च ॥१४॥ दशम्यामर्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने । ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं न हि ॥१५॥ एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु

प्रदान करती हैं ॥१॥ उनकी आराधना की विधि क्या है ? उनकी आराधना कब करनी चाहिए ? किस विधि से आराधना करने पर देवी भयंकर नरक रूपी दुर्ग से रक्षा करती हैं ॥२॥ **श्रीनारायण ने कहा**– हे विद्वानों में श्रेष्ठ देवर्षे ! आप सावधानी पूर्वक मेरी बात सुनें । मैं बतलाता हूँ कि किस तरह से आराधना करने पर देवी प्रसन्न होती हैं ॥३॥ स्वधर्म जैसा है उसे आप मुझसे जान लें । इस अनादि संसार में पूजित होकर देवी स्वयं घोर संकट आदि में रक्षा करती हैं । देवी संसारी जीवों से जैसे पूजी जाती हैं उसकी विधि मैं बतला रहा हूँ ॥४-५॥ प्रतिपद् तिथि को देवी की पूजा घी से करनी चाहिए। उस दिन ब्राह्मण को घी प्रदान करे । ऐसा करने वाला सदा निरोग रहता है ॥६॥ द्वितीया तिथि को देवी की पूजा चीनी से करनी चाहिए और ब्राह्मण को चीनी दान देना चाहिए ऐसा करने वाला मनुष्य दीर्घायु होता है ॥७॥ तृतीया तिथि को देवी की पूजा दूध से करनी चाहिए और ब्राह्मण को दूध दान देना चाहिए ऐसा करने वाला मनुष्य सभी दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥८॥ चतुर्थी तिथि को देवी की पूजा पूआ से करे तथा ब्राह्मण को पूआ प्रदान करें ऐसा करने से निर्विघ्नता की प्राप्ति होती है ॥९॥ पञ्चमी तिथि को देवी को केले का फल चढ़ाये और ब्राह्मण को केला ही दान में दे । ऐसा करके मनुष्य मेधावी होता है ॥१०॥ षष्ठी तिथि को देवी की पूजा मधु (शहद) से करे और ब्राह्मण को मधु ही दान करें । ऐसा करने वाले की मधु के समान कान्ति हो जाती है ॥११॥ सप्तमी तिथि को देवी को गुड़ का नैवेद्य लगाये और ब्राह्मण को गुड दान करे । ऐसा करने वाला शोकरहित हो जाता है ॥१२॥ अष्टमी तिथि को देवी को नारियल का भोग लगाये और ब्राह्मण को भी नारियल प्रदान करे । ऐसा करके वह ताप रहित हो जाता है ॥१३॥ नवमी तिथि

यः । ददाति ब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत् ॥१६॥ द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाऽऽचार्याय यो ददेत् । तानेव च मुनिश्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत्॥१७॥ त्रयोदश्यां च दुर्गायै चणकान्प्रददाति च । तानेव दत्त्वा विप्राय प्रजासंततिमान्भवेत् ॥१८॥ चतुर्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति। तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत् ॥१९॥ पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रयच्छति । ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान् ॥२०॥ तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने । तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम् ॥२१॥ रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम् । सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम् ॥२२॥ बुधवारे च संप्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज । गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे ॥२३॥ शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम् । सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने ॥२४॥ घृतं तिलं शर्करां च दधि दुग्धं किलाटकम् । दधिकूर्चौ मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम्॥२५॥ कंसारं वटपत्रं च घृतपूरमतः परम् । वटकं केकरसकं पूरणं मधु सूरणम् ॥२६॥ गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम्। अपूपं नवनीतं च मुद्गं मोदकमेव च ॥२७॥ मातुलुंगमिति प्रोक्तं भनैवेद्यं च नारद । विष्कंभादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम् ॥२८॥ पदार्थानां

को देवी को लावा का भोग लगाये और ब्राह्मण को भी लावा दान करे । ऐसा करने वाला इस लोक में तथा परलोक में अधिक सुख प्राप्त करता है ॥१४॥ दशमी तिथि को देवी को काली तिल का भोग लगाकर और ब्राह्मण को काली तिल दान करके मनुष्य यमलोक के भय से रहित हो जाता है ॥१५॥ एकादशी तिथि को जो व्यक्ति देवी को दही का भोग लगाता है और ब्राह्मण को दही दान देता है, वह देवी का प्रियतम हो जाता है ॥१६॥ द्वादशी तिथि को जो व्यक्ति देवी को चिउड़े का भोग लगाता है और ब्राह्मण को चिउड़ा दान में देता है वह देवी का प्रिय होता है ॥१७॥ त्रयोदशी तिथि को देवी को चने का भोग लगाकर और ब्राह्मण को चना दान में देकर मनुष्य प्रजाओं और सन्तान से सम्पन्न होता है ॥१८॥ चतुर्दशी तिथि को देवी को सत्तू का भोग लगाये और ब्राह्मण को सत्तू का ही दान दे । ऐसा करने वाला शिव को प्रिय होता है ॥१९॥ जो व्यक्ति पूर्णिमा तिथि को पायस (खीर) का भोग देवी को लगाता है और ब्राह्मण को खीर प्रदान करता है, वह अपने समस्त पितरों का उद्धार कर देता है ॥२०॥ हे महामुने ! जिस तिथि को जिस चीज का भोग देवी को लगाये उस तिथि को उस वस्तु से होम भी करे । ऐसा करने से समस्त अरिष्टों का नाश होता है ॥२१॥ रविवार को देवी को खीर का भोग लगायें । सोमवार को दूध का भोग देवी को लगाना चाहिए और भौमवार को केले के फल का भोग बतलाया गया है ॥२२॥ बुधवार को ताजे मक्खन का भोग बतलाया गया है । गुरुवार को खाँड का भोग लगाये और शुक्रवार को चीनी का भोग लगाना चाहिए ॥२३॥ शनिवार को गाय के घी का भोग बतलाया गया है । हे मुने ! सत्ताइस नक्षत्रों मे देवी को लगाये जाने वाले भोगों को आप सुने ॥२४॥ हे नारद जी ! सत्ताइसो नक्षत्रों में क्रमशः घी, तिल, खांड, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, तारफेनी, घृतमण्ड, कसार, पापड़, घेवर, पकौड़ी, केकरस, घृतमिश्रित चने का चूर्ण, मधु, सूरण, गुड़, चिउड़ा,

कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदम्बिका । गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम् ॥२९॥ नवनीतं कर्कटीं च कूष्मांडं चापि मोदकम् । पनसं कदलीं जंबुफलमाम्रफलं तिलम् ॥३०॥ नारंगं दाडिमं चैव बदरीफलमेव च । धात्रीफलं पायसं च पृथुकं चणकं तथा ॥३१॥ नारिकेलं जंभफलं कसेरुं सूरणं तथा । एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च ॥३२॥ विष्कंभादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः । अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने ॥३३॥ कंसारं मण्डकं फेणीं मोदकं वटपत्रकम् । लड्डूकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु ॥३४॥ करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात्। अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि देवीप्रीतिकरं परम् ॥३५॥ विधानं नारद मुने शृणु तत्सर्वमादृतः । चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम् ॥३६॥ पूजयेत्पंचखाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत् । एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात् ॥३७॥ शुद्धपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे । वैशाखमासे नैवेद्यं गुडयुक्तं च नारद॥३८॥ ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु । आषाढ़े नवनीतं च मधूकस्य निवेदनम् ॥३९॥ श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा। आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्तिके पय उत्तमम् ॥४०॥ मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधिकूर्चिका । माघे मासि न नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत् ॥४१॥

दाख, खजूर, तक, पूआ, माखन, मूंग के वेसन का लड्डू और अनार ये सत्ताइस वस्तुएँ भोग की वस्तु हैं ॥२५-२७॥ विष्कम्भ आदि योगों में देवी के भोगों को मैं बतला रहा हूँ ॥२८॥ जिन पदार्थों का भोग लगाने से जगदम्बा प्रसन्न होती हैं । वे हैं गुड, मधु, घी, दूध, दही, मट्ठा, पूआ, नवनीत, ककड़ी, कोंहड़ा मोदक, कटहल, केला, जामुन का फल, आम का फल, तिल ॥२९-३०॥ नारंगी, अनार, वैर का फल, आँवला, पायस, चिउडा और चना॥३१॥ नारियल, नीबू, कसार और सूरण । हे विप्र ! इन सबों का क्रमशः निवेदन शुभकारक होता है ॥३२॥ मनीषियों ने विष्कम्भ आदि योगों में इन वस्तुओं के भोग का निर्णय किया है । हे मुने ! अब मैं भिन्न-भिन्न करणों में लगाये जाने वाले भोगों को बतलाता हूँ ॥३३॥ कसार, मण्डक, फेनी, मोदक, पापड़, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी और मधु । करणों में क्रमशः इन्हीं वस्तुओं का आदर पूर्वक भोग लगाना चाहिए । अब मैं आपको देवी को अत्यन्त प्रसन्न करने वाला ॥३५॥ विधान बतलाता हूँ । उसे आप सुनें । चैत्र शुक्ल तृतीया को मनुष्य महुआ के वृक्ष की ॥३६॥ पूजा करे और पाँच प्रकार के खाद्य पदार्थों का उसे भोग लगाये । इसी तरह बारहों महीनों के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को महुए के वृक्ष की पूजा करे जिन वस्तुओं का भोग लगाये; उसे मैं बतला रहा हूँ । वैशाखमास में गुड से युक्त भोग लगाये ॥३७-३८॥ ज्येष्ठ मास में मधु से युक्त भोग लगाये । इससे देवी प्रसन्न होती हैं । आषाढमास में महुए और नवनीत का भोग लगाये ॥३९॥ श्रावण मास में दही का नैवेद्य तथा भाद्रपदमास में खाँड का भोग लगाये । आश्विन मास में पायस का भोग कहा गया है और कार्तिक मास में दूध का भोग उत्तम बतलाया गया है ॥४०॥ मार्गशीर्ष मास में फेनी के भोग को उत्तम बतलाया गया है और पौष मास में लस्सी का भोग लगाना चाहिए । माघ के महीने में गौ के घृत का भोग लगाये ॥४१॥ फाल्गुन मास में नारियल का भोग बतलाया

नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम् । एवं द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत् ॥४२॥ मंगला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया । महामाया मातंगी च काली कमलवासिनी ॥४३॥ शिवा सहस्रचरणा सर्वमङ्गलरूपिणी । एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत् ॥४४॥ ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम् । सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥४५॥ नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते । माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये॥४६॥ परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी । परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ॥४७॥ मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता । मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी ॥४८॥ जय लोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयांबुदसन्निभे । महामोहविनाशार्थं पूजिताऽसि सुरासुरैः ॥४९॥ यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा । यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः ॥५०॥ समस्वभावा सर्वेशी सर्वसंगविवर्जिता । संगनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा॥५१॥ कंकालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी । माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता ॥५२॥ महामंत्रवती मंत्रगम्या मंत्रप्रियंकरी । मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी ॥५३॥ अश्वत्थवटनिंबाम्रकपित्थबदरीगते । पनसाऽर्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणी ॥५४॥ दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके।

गया है । बारह महीनें में बारह प्रकार का नैवेद्य देवी को अर्पित करे ॥४२॥ मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मातंगी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा, और सर्वमङ्गलरूपिणी । इन्हीं नामों से देवी की महुए के पेड़ में पूजा करनी चाहिए ॥४३-४४॥ उसके बाद महुए के पेड़ में निवास करने वाली देवी की स्तुति करनी चाहिए । जिससे कि सभी कामनाओं की समृद्धि और व्रत की पूर्ति हो सके ॥४५॥ कमल के समान नेत्र वाली और जगत् की रक्षा करने वाली देवी को नमस्कार है । माहेश्वरी, महादेवी तथा महामंगलमूर्ति पापों का विनाश करने वाली, श्रेष्ठ मार्ग को प्रदान करने वाली, हे लोकेश्वरि ! हे प्राज्ञे ! आपकी जय हो । हे प्रलयकालीन मेघ के सदृश आकार वाली देवि ! महामोह को विनष्ट करने के लिए आपकी पूजा देवता और असुर दोनों करते हैं ॥४६-४९॥ यमलोक का अभाव करने वाली, यम के द्वारा पूजित, यम की अग्रजा, यम का निग्रह करने वाली, तथा पूजनीय आपको बारम्बार नमस्कार है ॥५०॥ समान स्वभाव वाली, सबों की स्वामिनी, सभी आसक्तियों से रहित, आसक्तियों का नाश करने वाली, कमनीय रूप वाली, करुणा स्वरूपिणी ॥५१॥ कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधूर्य रूपशील तथा मधुरस्वर से पूजित होने वाली ॥५२॥ महामंत्रवती, मंत्रगम्या, मंत्रपियंकरी, मनुष्य मानसगमा, मन्मथारिपियङ्करीं, [illegible] तथा बैर में निवास करने वाली, कटहल, मंदार, करील, जामुन तथा महुआ आदि क्षीरी वृक्ष स्वरूपिणी आप हैं ॥५४॥ हे दुग्ध वाली लता में निवास करने वाली देवि ! आप परम दयालु और दया के सागर

दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे ।।५५।। एवं स्तवेन देवेशीं पूजनांते स्तुवीत ताम् । व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः ।।५६।। नित्यं
यः पठते स्तोत्रं देवीप्रतिकरं नरः । आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि ।।५७।। अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।।५८।।
ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत् । वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिकः ।।५९।। स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः ।
पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी ।।६०।। एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम् । यः करोति नरो भक्त्या स देवीलोकभाग्भवेत् ।।६१।।
देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवन्ति हि । सर्वपापहतिः शुद्धा मतिरंते प्रजायते ।।६२।। यत्र तत्र भवेत्पूज्यो मान्यो मानधनेषु च । जायते
जगदंबायाः प्रसादेन विरिञ्चज ।।६३।। नरकाणां न तस्यास्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित् । महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः ।।६४।। देवीभक्तो
भवत्येव नात्र कार्या विचारणा । इत्येव ते समाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम् ।।६५।। पूजनं हि महादेव्याः सर्वमंगलकारकम् । मधूकपूजनं तद्वन्मासानां

हैं । हे दाक्षिण्य तथा करुणा स्वरूपिणि ! हे सर्वज्ञप्रिये ! आपकी जय हो ।।५५।। पूजन के अन्त में इसी प्रकार से देवी की स्तुति करनी चाहिए । इस
प्रकार से पूजन करने वाला मनुष्य व्रत के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है ।।५६।। जो व्यक्ति देवी को प्रसन्न करने वाली इस स्तुति को सुनता है, वह आधि
और व्याधि से रहित होकर शत्रुओं के भय से रहित हो जाता है ।।५७।। अर्थ चाहने वाले को अर्थ की प्राप्ति होती है, धर्म चाहने वाले को धर्म की प्राप्ति
होती है ।।५८।। ब्राह्मण वेद के ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है और क्षत्रिय विजयी होता है । वैश्य धन-धान्य से सम्पन्न हो जाता है और शूद्र सुखी हो जाता
है ।।५९।। जो व्यक्ति श्राद्ध के समय सावधानी पूर्वक इस स्तोत्र को पढ़ता है, उसके पितरों को कल्पपर्यन्त अक्षय तृप्ति होती है ।।६०।। इस तरह से मैंने
देवताओं से पूजित देवी की आराधना का प्रकार बतलाया । इस आराधना को जो करता है वह देवी के लोक में जाता है ।।६१।। हे विप्र ! देवी की पूजा
से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है । मृत्यु के समय उसकी सभी पापों से रहित शुद्धमति हो जाती है ।।६२।। हे नारदजी ! देवी की पूजा करने वाला
जहाँ कही भी रहता है वह देवी की कृपा से मान और धन से सम्पन्न होकर पूज्य बन जाता है ।।६३।। उसको स्वप्न में भी नरक का भय नहीं होता है।
महामाया की कृपा से उसके पुत्र-पौत्र आदि की समृद्धि होती है ।।६४।। देवी का भक्त इस प्रकार का ही बन जाता है, इस विषय में विचार करने की कोई
आवश्यकता नहीं है । इस तरह मैंने आपको नरकों से उद्धार करने वाला ।।६५।। देवी की पूजा के विधान को बतलाया देवी की पूजा सभी प्रकार के मंगलों
को करने वाला है । हे मुने ! उसी प्रकार प्रत्येक मास में महुए का पूजन भी जो पूर्ण रूप से करता है उसको रोग तथा बाधा आदि का भय नहीं होता

क्रमतो मुने ॥६६॥ सर्वं समाचरद्यस्तु पूजनं मधुकाह्वयम् । न तस्य रोगबाधादिभयमुद्भवतेऽनघ ॥६७॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पंचकं परम्। नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या जगदानंददायकम् ॥६८॥ साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पंचकं मुने । कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम्॥६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

नंदाग्निवसुभिः (८३९) पद्यैर्द्वैपायनमुखच्युतैः । देवीभागवतस्यास्याष्टमस्कंध उदीरितः ॥१॥

है ॥६६-६७॥ अब मैं आपको प्रकृति पञ्चक का प्रसंग सुनाता हूँ । यह प्रसङ्ग अपने नाम तथा रूप के आख्यान मात्र से जगत् को आनन्द प्रदान करने वाला है ॥६८॥ हे मुने ! कुतूहल उत्पन्न करने वाले इस प्रकृति पंचक की व्याख्या को और आख्यान तथा माहात्म्य के साथ सुनें ॥६९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

द्वैपायन महर्षि के मुख से निस्सृत आठ सौ उनतालिस (८३९) श्लोक से युक्त देवीभागवत का आठवाँ स्कन्ध कहा गया है ।।

आठवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

नवमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्याय:

श्रीनारायण उवाच– **गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥१॥** नारद उवाच– **आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनां वर । किं वा तल्लक्षणं साधो बभूव पंचधा कथम् ॥२॥ सर्वासां चरितं पूजाविधानं गुण ईप्सितः । अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥** श्रीनारायण उवाच– **प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत् । किंचित्तथापि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥४॥ प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥५॥ गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः । मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥६॥ त्रिगुणात्मकस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता । प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥७॥ प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेरादौ च सा देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥८॥ योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः । पुमांश्च दक्षिणार्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ॥९॥ सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी । यथाऽऽत्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता ॥१०॥ अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुंभेदो न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद ॥११॥ स्वेच्छामयस्येच्छया**

पञ्चविध प्रकृति का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– सृष्टि के कार्य में पाँच प्रकृतियाँ बतलायी गयी हैं- गणेश की माता दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री ॥१॥ **नारदजी ने पूछा–** हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! वह प्रकृति किससे प्रकट हुई ? वह कौन है ? उसका लक्षण क्या है ? वह पाँच प्रकार की क्यों हो गयी ? आप मुझे उन सबों का चरित, उनके पूजा का विधान तथा अभिप्रेत गुण बतलायें । उनका किससे और कहाँ अवतार हुआ ? यह सब बतलाएँ ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** हे वत्स ! प्रकृति का लक्षण बतलाने में कौन समर्थ हो सकता है ? फिर भी मैं कुछ लक्षण बतलाऊँगा जिसे मैंने अपने पिता धर्म के मुख से सुना है ॥४॥ प्रकृति का प्रशब्द प्रकृष्ट का वाचक है और कृति शब्द सृष्टि का वाचक है । सृष्टि में जो देवी प्रकृष्ट है उसे प्रकृति कहते हैं ॥५॥ सर्वोत्तम सत्त्व गुण का बोधक प्रशब्द है, मध्यम रजो गुण बोधक कृ शब्द है और ति शब्द तमोगुण का बोधक है ॥६॥ जो देवी तीनों गुणों से युक्त हैं वे ही प्रकृति कहलाती हैं । वही सृष्टि के कार्य में प्रधान हैं । अतएव उन्हें प्रकृति कहा गया है ॥७॥ प्र शब्द प्रथम का वाचक है, कृति सृष्टि का वाचक है। सृष्टि के प्रारम्भ में जो देवी रहती हैं, उन्हें ही प्रकृति कहते हैं ॥८॥ उन देवी ने आत्मयोग के द्वारा अपने को दो भागों में विभक्त कर दिया । उनका दाहिना भाग पुरुष और बायाँ भाग प्रकृति कहलाता है ॥९॥ वे प्रकृति ब्रह्मस्वरूप हैं नित्य हैं और सनातनी हैं । पुरुष में परमात्मा के सभी गुण हैं । और उसकी

च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया । साऽऽविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥१२॥ तदाज्ञया पंचविधा सृष्टिकर्मविभेदिका । अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा ॥१३॥ गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी ॥१४॥ ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता । सर्वाधिष्ठात्री देवी सा सर्वरूपा सनातनी ॥१५॥ धर्मसत्यपुण्यकीर्तिर्यशोमंगलदायिनी । सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी॥१६॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा । तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता ॥१७॥ सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य संततम् । सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धरीश्वरी ॥१८॥ बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तंद्रा दया स्मृतिः । जातिः क्षांतिश्च भ्रांतिश्च शांतिः कांतिश्च चेतना ॥१९॥ तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च । सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥ उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् । गुणोऽस्त्यनंतोऽनंताया अपरां च निशामय ॥२१॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः । सर्वसंपत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता ॥२२॥ कांताऽतिदांता शांता च

शक्ति उसी तरह से है, जैसे अग्नि में उसकी दाहिकाशक्ति विद्यमान रहती है ॥१०॥ इसीलिए बड़े-बड़े योगी स्त्री और पुरुष के भेद को नहीं मानते हैं । हे नारदजी ! सब कुछ ब्रह्मस्वरूप तथा शाश्वत है ॥११॥ भगवान् श्रीकृष्ण स्वतन्त्र हैं । उनकी सृष्टि करने की इच्छा से ही सबों की स्वामिनी प्रकृति सहसा प्रकट हो गयी ॥१२॥ भगवान् की आज्ञा से ही सृष्टि के कर्म का भेद करने वाली प्रकृति पाँच प्रकार की हो गयी । भगवती प्रकृति भक्तों के अनुरोध से उन पर कृपा करने के लिए अनेक शरीरों को धारण करती हैं ॥१३॥ वे ही गणेश की माता दुर्गा हैं, भगवान शंकर की प्रियतमा शिवा हैं, विष्णु भगवान् की माया तथा पूर्णब्रह्म स्वरूपिणी नारायणी भी वे ही हैं ॥१४॥ ब्रह्मा आदि देवता, मुनिजन तथा मनुगण उनकी पूजा करते हैं तथा स्तुति करते हैं । देवी ही सबों की अधिष्ठात्री, सर्वस्वरूपिणी तथा सनातनी हैं ॥१५॥ वे धर्म, सत्य, पवित्रकीर्ति, यश तथा मंगल प्रदान करने वाली हैं । वे सुख, मोक्ष तथा हर्ष प्रदान करने वाली एवं शोक, आर्ति एवं दुःख का विनाश करने वाली हैं ॥१६॥ वे शरणागत होकर दीन बने हुए जीवों की रक्षा करती रहती हैं । वे परम तेजः स्वरूपा तथा तेज की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥१७॥ वे सर्वशक्ति स्वरूपिणी हैं तथा परमात्मा की शाश्वत शक्ति हैं । वे सिद्धेश्वरी, सिद्धिस्वरूपा, सिद्धिप्रदान करने वाली एवं सिद्धों की स्वामिनी हैं ॥१८॥ जिन्हें भगवान् कृष्ण की सर्वशक्ति स्वरूपिणी कहा गया है । वे ही बुद्धि, निद्रा, भूख, प्यास, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षांति, भ्रांति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, धृति तथा माया स्वरूपिणी हैं ॥१९-२०॥ श्रुतियों में तथा आगमों में इनके अत्यल्प गुणों को बतलाया गया है । किन्तु इनके गुण अनन्त हैं । उस अनन्त स्वरूपा प्रकृति के दूसरे गुणों को आप सुनें ॥२१॥ जो शुद्धसत्त्व स्वरूपा देवी हैं वे परमात्मा की पद्मा देवी हैं । वे सर्व संपत्स्वरूपा हैं । वे सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवी हैं ॥२२॥ वे परम सुन्दरी, अत्यन्त दान्त

सुशीला सर्वमंगला । लोभमोहकामरोषमदाहंकारवर्जिता ॥२३॥ भक्तानुरक्ता पत्युश्चसर्वाभ्यश्च पतिव्रता । प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा॥२४॥ सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी । महालक्ष्मीश्च वैकुंठे पतिसेवारता सती ॥२५॥ स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥२६॥ सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा । कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२७॥ वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहांकुरा । दयारूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसंमता ॥२८॥ सर्वपूज्या सर्ववंद्या चान्यां मत्तो निशामय । वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः ॥२९॥ सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती । सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम् ॥३०॥ नानाप्रकारसिद्धांतभेदार्थकलना मता । व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसंदेहभंजिनी ॥३१॥ विचारकारिणी ग्रंथकारिणी शक्तिरूपिणी । स्वरसंगीतसंधानतालकारणरूपिणी ॥३२॥ विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी । व्याख्यावादकरी शांता वीणापुस्तकधारिणी ॥३३॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरिप्रिया । हिमचंदनकुंदेंदुकुमुदांभोजसन्निभा ॥३४॥ यजंती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया । तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम् ॥३५॥ सिद्धिविद्यास्वरूपा

स्वरूपा, शान्त स्वरूप वाली, सुशीला, समस्त मंगलों से सम्पन्न हैं तथा लोभ, मोह, रोष, मद तथा अहंकार से रहित हैं ॥२३॥ भक्तों पर कृपा करना तथा अपने पति परमात्मा से प्रेम करने वाली और सभी पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हैं । ये श्रीभगवान् को प्राण के समान प्रिय उनकी प्रेयसी तथा प्रियवंदा हैं ॥२४॥ वे सम्पूर्ण सस्य स्वरूपिणी तथा जीवन के उपाय स्वरूपिणी देवी हैं । वैकुण्ठ में रहकर अपने पति की सेवा में संलग्न रहने वाली हैं ॥२५॥ स्वर्ग में वे स्वर्गलक्ष्मी स्वरूपा तथा राजाओं में राजलक्ष्मी स्वरूपा हैं । संसार के गृहस्थों के घर में गृहलक्ष्मी स्वरूपा हैं ॥२६॥ सभी प्राणियों तथा द्रव्यों में वे मनोहर शोभा स्वरूपिणी हैं । पुण्यवान पुरुषों में कीर्तिस्वरूपा और राजाओं में प्रभास्वरूपिणी हैं ॥२७॥ व्यापार करने वालों में वे वाणिज्यस्वरूपा हैं तथा पापी पुरुषों में कलह के मूल स्वरूपा हैं । वेदों में उनको सर्व सम्मत रूप से दया स्वरूपा बतलाया गया है ॥२८॥ वे सर्वपूज्य तथा सर्ववंद्या हैं । अब मैं देवी के दूसरे प्रसंग को सुनाता हूँ । इस रूप में वे परमात्मा के ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं । वाणी, बुद्धि तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥२९॥ वे सर्वविद्या स्वरूपिणी सरस्वती देवी हैं । वे मनुष्यों को बुद्धि कविता, मेघा, प्रतिभा तथा स्मृति देने वाली हैं ॥३०॥ अनेक सिद्धान्तों को वेदार्थ स्पष्ट करने वाली वे व्याख्या तथा ज्ञानस्वरूपा हैं । सभी सन्देहों को विनष्ट करने वाली हैं ॥३१॥ वे विचार उत्पन्न करने वाली ग्रन्थ का निर्माण करने वाली, शक्ति स्वरूपिणी, स्वर, संगीतसंधान, के ज्ञान के कारण स्वरूपिणी हैं ॥३२॥ वे विषय ज्ञान तथा वाणी स्वरूपा, प्रसिद्ध वाद-विवाद की अधिष्ठात्री देवी, व्याख्या तथा वाद करने वाली, शान्तस्वरूपा वीणा एवं पुस्तक को धारण करने वाली हैं ॥३३॥ वे शुद्धस्वरूपा, सुशीला तथा श्रीहरि की प्रिया हैं।

च सर्वसिद्धिप्रदा सदा । यया विना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा ॥३६॥ देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदंबिका । यथागमं यथा किंचिदपरां त्वं निबोध मे ॥३७॥ माता चतुर्णां वर्णनां वेदांगानां च छंदसाम् । संध्यावंदनमंत्राणां तंत्राणां च विचक्षणा ॥३८॥ द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी ॥३९॥ पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्राह्मणप्रिया । तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वांछंति ह्यात्मशुद्धये॥४०॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । परमानंदरूपा च परमा च सनातनी ॥४१॥ परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी । ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥४२॥ यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद । देवी चतुर्थी कथिता पंचमीं वर्णयामि ते ॥४३॥ पंचप्राणाधिदेवी या पंचप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुंदरी परा ॥४४॥ सर्वयुक्ता च सौभाग्यमानिनी गौरवान्विता । वामांगार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥४५॥ परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी । परमानंदरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४६॥ रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः । रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता ॥४७॥ रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी । गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका ॥४८॥

हिम (वर्फ) चन्दन, कुन्द, कुमुद तथा श्वेत कमल के समान उनका रंग है ॥३४॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा रत्न की माला से करती हैं । वे तपः स्वरूपिणी तपस्वियों की तपस्या का फल देने वाली हैं ॥३५॥ वे सिद्धि विद्यास्वरूपा तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं । उन सरस्वती देवी के विना ब्राह्मण समूह मूक तथा मृत के समान बना रहता है । तीसरी देवी जगदम्बिका हैं । इनका वर्णन श्रुतियों में है । मैं अपने ज्ञान के अनुसार उनका वर्णन करता हूँ । उसे आप जानें । वे चारो वर्णों, वेदाङ्गों, छन्दो, संध्यावंदन के मन्त्रों की तथा तंत्रों की विचक्षण माता हैं ॥३८॥ वे द्विजातियों की जाति स्वरूपा, जप स्वरूपा तथा तपस्विनी हैं । वे ब्रह्मण्य तेजो रूपा तथा सर्वसंस्कार स्वरूपा हैं ॥३९॥ वे पवित्र स्वरूपा, सावित्री, गायत्री तथा ब्राह्मण प्रिया हैं । तीर्थ अपनी शुद्धि के लिए उनके ही स्पर्श को प्राप्त करना चाहते हैं ॥४०॥ शुद्ध स्फटिक के समान उनका रूप हैं, वे शुद्ध सत्त्वगुण स्वरूपा हैं । वे परमानंद स्वरूपा, तथा परम सनातनी हैं ॥४१॥ पखब्रह्म स्वरूपा वे मुक्ति प्रदान करने वाली हैं, वे ब्रह्मतेजः स्वरूपा शक्ति है तथा ब्रह्मतेज की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥४२॥ हे नारद ! उनके ही चरणकमलों की धूलि से यह संसार पवित्र होता है । इस तरह से मैंने आपको चौथी देवी का वर्णन सुनाया। अब मैं आपको पाँचवीं शक्ति का वर्णन सुनाता हूँ ॥४३॥ जो पञ्च प्राणों की अधिष्ठात्री देवी तथ पञ्चप्राण स्वरूपिणी हैं । वे प्राणों से भी अधिक प्रिय तथा सबों से अधिक सुन्दरी हैं ॥४४॥ उनमें सभी गुण विद्यमान हैं । वे परम सौभाग्यवती हैं । वे गौरव सम्पन्न हैं । वे परावर तत्त्वस्वरूपा, सारस्वरूपा, आद्या परमसनातनी हैं । परमानन्द स्वरूपिणी वे, धन्य, मान्य और सबों से पूजित हैं ॥४५-४६॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण की रासक्रीडा की अधिष्ठात्री देवी हैं । इनका रासमण्डल में ही आविर्भाव हुआ है । रासमण्डल से अलंकृत है ॥४७॥ ये रासेश्वरी हैं और सुरसिका के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये रास में

परमाह्लादरूपा च संतोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी ॥४९॥ निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । वेदानुसारिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥५०॥ दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः । वह्निशुद्धांशुकधरा नानालंकारभूषिता ॥५१॥ कोटिचंद्रप्रभापुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा। श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसंपदाम् ॥५२॥ अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या । यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुंधरा ॥५३॥ ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते । स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थले स्थिता ॥५४॥ यथांबरे नवघने लोला सौदामनी मुने । षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा ॥५५॥ यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये । न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥५६॥ तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृंदावने वने । कथिता पंचमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता ॥५७॥ अंशरूपाः कलारूपा याः कलांशांशसंभवाः । प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः ॥५८॥ परिपूर्णतमाः पंच विद्यादेव्यः प्रकीर्तिताः । या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥५९॥ प्रधानांशस्वरूपा सा गंगा भुवनपावनी । विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥६०॥ पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी । सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी॥६१॥

ही निवास करती हैं । ये देवी गोलोक में निवास करती हैं । ये गोपी का वेष बनाये रहती हैं ॥४८॥ ये परम आह्लाद स्वरूपा तथा संतोष एवं हर्ष स्वरूपिणी हैं । ये निर्गुण, निराकार, निर्लिप्त तथा आत्मस्वरूपा हैं ॥४९॥ वे निरीह, अहंकार से रहित, तथा भक्तों, पर कृपा करने वाली हैं । निर्गुण पुरुष वेद विहित ध्यान के द्वारा इनका ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं ॥५०॥ सुरेन्द्र और मुनिश्रेष्ठ भी इनका साक्षात्कार अपने चर्मचक्षुओं से नहीं कर पाते हैं । अग्नि की शुद्ध कान्ति के समान इनके लाल-लाल ओष्ठ हैं । अनेक अलंकारों से ये अलंकृत हैं ॥५१॥ करोड़ो चन्द्रमा की कान्ति के समान इनकी कान्ति हैं । इनका श्रीविग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त है । वे केवल भगवान् श्रीकृष्ण के ही दास्य में प्रेम रखती हैं और उसीको वे अपनी सम्पूर्ण संपदा मानती हैं ॥५२॥ जो वाराहावतार मे वृषभानु की पुत्री हुई थीं । उनके चरण कमल के स्पर्श से यह पृथिवी पवित्र हो गयी ॥५३॥ ब्रह्मा आदि देवता भी इनका साक्षात्कार नहीं कर पाते हैं और भारतवर्ष में सभी प्राणी इनका दर्शन किए हैं । ये स्त्रीरत्न के सारस्वरूपिणी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में निवास करती हैं ॥५४॥ जिस तरह आकाश में उमड़े हुए नवीन मेघ में चमकने वाली विजली सुशोभित होती है उसी तरह से ये भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षः स्थल में सुशोभित होती हैं । प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने साठ हजार वर्ष तक तपस्या की ॥५५॥ उनकी तपस्या का उद्देश्य श्रीराधाजी के चरण नखों का दर्शन करके अपनी आत्मा को शुद्ध करना था । फिर भी वे उनका दर्शन स्वप्न में भी नहीं कर पाये प्रत्यक्ष दर्शन की कौन सी बात है ॥५६॥ उसी तपस्या के प्रभाव से ब्रह्माजी राधाजी का दर्शन वृन्दावन में कर पाये वे ही पाँचवी देवी हैं । उनका नाम राधा है ॥५७॥ इन देवी के अंश, कला, कलांश तथा कलांशांश आदि के अनेक भेद हैं । प्रत्येक विश्व में सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनका ही रूप मानी जाती हैं ॥५८॥ इस तरह से ये पाँच विद्या देवियाँ अत्यन्त पूर्ण बतलायी

गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी । पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परावरा ॥६२॥ शंभुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी । तपःसंपादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम् ॥६३॥ चंद्रपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । निर्मला निरहंकारा साध्वी नारायणप्रिया ॥६४॥ प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥६५॥ तपःसंकल्पपूजादिसंघसंपादिनी मुने । सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥६६॥ दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी । कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी ॥६७॥ यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुंधरा । यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छंति तीर्थानि शुद्धये ॥६८॥ यया विना च विश्वेषु सर्वकर्म च निष्फलम् । मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनी सर्वकामदा॥६९॥ कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी । भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता ॥७०॥ प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा । शंकरप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥७१॥ नागेश्वरस्यानंतस्य भगिनी नागपूजिता । नागेश्वरी नागमाता सुंदरी नागवाहिनी॥७२॥

गयी हैं ॥५९-६०॥ ये पापियों के पाप रूपी इन्धन को जला देने के लिए जलती हुई अग्नि के समान मानी गयी है । इनका स्पर्श करने, स्नान करने तथा पान करने से ये निर्वाण पद को प्रदान करने वाली हैं । गोलोक नामक धाम में प्रस्थान करने के लिए सुखप्रद सोपान स्वरूपिणी हैं । ये समस्त तीर्थों तथा नदियों को पवित्र करने वाली तथा परावरतत्त्व स्वरूपिणी हैं ॥६१-६२॥ ये भगवान् शंकर की जटा रूपी सुमेरु पर्वत की मुक्ता पंक्ति स्वरूपिणी हैं। भारत में तपस्या करने वाले तपस्वियों की तपस्या को शीघ्र संपन्न करने वाली हैं ॥६३॥ चन्द्रमा, श्वेतकमल तथा दुग्ध के समान ये शुद्ध सत्त्व स्वरूपिणी हैं । ये निर्मल, अहंकाररहित, साधु स्वभाव की तथा भगवान् नारायण की प्रियतमा हैं ॥६४॥ प्रकृति के अंश स्वरूपा, तुलसी तथा भगवान् विष्णु की कामिनी हैं । भगवान् विष्णु के भूषणस्वरूपा, तथा भगवान् विष्णु के चरणों में स्थित रहने वाली हैं ॥६५॥ हे मुने ! ये तपस्या, संकल्प तथा पूजा को सम्पन्न करने वाली हैं । ये पुष्पों के सारतत्त्व स्वरूप, पवित्र तथा पुण्य प्रदान करने वाली हैं ॥६६॥ दर्शन करने तथा स्पर्श करने से सद्यःमुक्ति को प्रदान करने वाली हैं । कलियुग के पाप रूपी शुष्क इन्धन को जला डालने के लिए ये अग्नि स्वरूपा हैं ॥६७॥ उनके पादपद्म के स्पर्श से ही पृथिवी देवी भी पवित्र हो गयीं । सभी तीर्थ अपनी शुद्धि के लिए उनका दर्शन और स्पर्श करना चाहते हैं ॥६८॥ उनकी आराधना के बिना संसार के सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं । मुमुक्षु जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाली कामिनी तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं ॥६९॥ भारतवर्ष में वृक्षरूप से रहने वाली वे कल्पवृक्ष स्वरूपिणी हैं । भारती जनता को प्रसन्न करने के लिए वे परा देवता स्वरूपिणी हो गयीं ॥७०॥ प्रकृति के अंश स्वरूपा वे महर्षि कश्यप की मानसी पुत्री हैं । वे भगवान् शंकर की प्रियतमा शिष्या हैं तथा महाज्ञान में निपुण हैं ॥७१॥ वे नागों के स्वामी अनंत की बहन तथा नागों से पूजित हैं। वे नागेश्वरी, नागमाता, सुन्दरी तथा नागवाहिनी हैं ॥७२॥ नागेन्द्र गण से सम्पन्न वे नागों के भूषण से भूषित रहने वाली हैं । नागेन्द्र उनकी वन्दना करते

नागेंद्रगणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता । नागेंद्रवंदिता सिद्धा योगिनी नागशायिनी ॥७३॥ विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायणा । तपःस्वरूपा
तपसां फलदात्री तपस्विनी ॥७४॥ दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा च या हरेः । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥७५॥ सर्वमंत्राधिदेवी
च ज्वलंती ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥७६॥ जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता । आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य
तपस्विनाम् ॥७७॥ प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद । मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता ॥७८॥ पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां
सती । षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता ॥७९॥ स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी । पूजा द्वादशमासेषु यस्या विश्वेषु संततम्॥८०॥
पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः । एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी ॥८१॥ मुनिभिर्नमिता चैषा नित्यकामाऽप्यतः परा । मातृका
च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी ॥८२॥ जले स्थले चांतरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे । प्रधानांशस्वरूपा च देवीमङ्गलचंडिका ॥८३॥ प्रकृतेर्मुखसंभूता
सर्वमंगलदा सदा । सृष्टौ मंगलरूपा च संहारे कोपरूपिणी ॥८४॥ तेन मंगलचंडी सा पंडितैः परिकीर्तिता । प्रतिमंगलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता॥८५॥

हैं, सिद्ध स्वरूपिणी, योगिनी तथा नाग पर शयन करने वाली हैं ॥७३॥ विष्णु स्वरूप भगवान् विष्णु की भक्ता तथा भगवान् विष्णु की पूजा में संलग्न
रहने वाली हैं । तपः स्वरूपिणी वे, तपस्याओं का फल प्रदान करने वाली तपस्विनी हैं ॥७४॥ श्रीभगवान् को प्राप्त करने के लिए उन्होंने तीन लाख
देवताओं के वर्ष से तपस्या की । भारत वर्ष के सभी तपस्वियों तथा तपस्विनियों में वे श्रेष्ठ हैं ॥७५॥ वे सभी मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा ब्रह्मतेज
से प्रकाशित रहने वाली हैं । परंब्रह्म स्वरूपा वे निरन्तर परंब्रह्म के चिन्तन में संलग्न रहने वाली हैं ॥७६॥ भगवान् कृष्ण के अंश स्वरूप जरत्कारु मुनि
की पतिव्रता पत्नी हैं । तपस्वियों में श्रेष्ठ आस्तिक मुनि की माता हैं ॥७७॥ हे नारदजी ! वे प्रकृति (प्रधान) के अंश स्वरूपा देवसेना हैं । मातृकाओ में
षष्ठी देवी तथा सर्वाधिक पूज्या हैं ॥७८॥ वे त्रैलोक्य वासियों को पुत्र तथा पौत्र प्रदान करने वाली तथा पालन करने वाली हैं । वे प्रकृति के षष्ठ अंश
स्वरूपा है अतएव इनको षष्ठी देवी कहा जाता है ॥७९॥ पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर षष्ठी देवी की पूजा अभ्युदय के लिए की जाती है । सम्पूर्ण विश्व में
इनकी सदाबहार ही महीनों में पूजा की जाती है ॥८०॥ सूतिकागार में पुत्रोत्पत्ति के छठे दिन तथा इक्कीसवें दिन इनकी पूजा कल्याणप्रद होती है ॥८१॥
मुनिजनों द्वारा प्रणाम किए जाने पर ये उनकी कामना को पूर्ण करती हैं । ये दया स्वरूपिणी मातृका तथा निरन्तर रक्षा करने वाली हैं ॥८२॥ जल में,
स्थल में तथा अन्तरक्षि में शिशुओं की रक्षा करती है । प्रकृति के एक अंश मङ्गलचण्डिका देवी हैं ॥८३॥ ये प्रकृति के मुख से उत्पन्न हैं । सभी मंगलों
को प्रदान करने वाली हैं । सृष्टिकाल में मंगल स्वरूपिणी तथा संहार काल में कोपस्वरूपिणी हैं ॥८४॥ इसीलिए पण्डितों ने इन्हें मंगलचण्डी कहा है ।

पुत्रौपौत्रधनैश्वर्ययशोमंगलदायिनी । परितुष्टा सर्ववांछाप्रदात्री सर्वयोषिताम् ॥८६॥ रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी । प्रधानांशस्वरूपा सा काली कमललोचना ॥८७॥ दुर्गाललाटसंभूता रणे शुंभनिशुंभयोः । दुर्गार्धांशस्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा ॥८८॥ कोटिसूर्यसमाजुष्टपुष्टजाज्वलविग्रहा। प्रधाना सर्वशक्तीनां बाला बलवती परा ॥८९॥ सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा योगरूपिणी । कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः ॥९०॥ कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी । संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः ॥९१॥ रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया । धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता ॥९२॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः । प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुंधरा ॥९३॥ आधाररूपा सर्वेषां सर्वशस्या प्रकीर्तिता । रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया ॥९४॥ प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वंदिता सदा । सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसंपद्विधायिनी ॥९५॥ यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम् । प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ॥९६॥ यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते । स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥९७॥ यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः । दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा

सम्पूर्ण विश्व में इनकी पूजा मंगलवार को होती है ॥८५॥ ये पुत्र, पौत्र, धन तथा यश को प्रदान करने वाली हैं । ये प्रसन्न होकर सभी स्त्रियों की सभी कामनओं को पूर्ण करती हैं ॥८६॥ रुष्ट हो जाने पर ये सम्पूर्ण विश्व का क्षणभर में संहार करने में समर्थ हैं । प्रकृति के अंश स्वरूप वे कमल के समान नेत्रों वाली काली देवी हैं ॥८७॥ इनकी उत्पत्ति दुर्गा देवी के ललाट से हुई हैं । उन्होंने युद्ध में शुंभ और निशुंभ का वध किया । वे दुर्गाजी के आधा अंश स्वरूपा तथा गुण एवं तेज के विषय में उनके ही समान हैं ॥८८॥ करोड़ों सूर्य के समान पुष्टि ज्वाला के समान विग्रह वाली हैं । ये सभी शक्तियों में प्रधान हैं, बलवती बाला हैं ॥८९॥ ये सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाली देवी हैं । परंयोग स्वरूपिणी हैं । ये भगवान् कृष्ण की भक्ता है । तेज तथा पराक्रम के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान हैं ॥९०॥ निरन्तर भगवान् कृष्ण का चिन्तन करती रहती हैं, कृष्ण वर्णवाली और सनातनी देवी हैं । ये अपने नि:श्वास मात्र से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संहार करने में समर्थ हैं ॥९१॥ वे दैत्यों के साथ युद्ध तो मनोरंजन तथा लोकशिक्षण के लिए करती हैं । पूजित होने पर वे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने में समर्थ हैं ॥९२॥ उनकी स्तुति ब्रह्मा आदि देवता मुनिजन तथा मनु आदि मनुष्य करते हैं । प्रकृति का एक अंश पृथिवी स्वरूप है ॥९३॥ इस रूप में ये सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं । ये सर्वशस्य स्वरूपिणी हैं । वे रत्नकार, रत्नगर्भा तथा सर्वरत्नाकराश्रया हैं ॥९४॥ सभी प्रजाएँ तथा प्रजाओं के स्वामी उनकी पूजा और वन्दना करते हैं । वे ही सबों के उपजीव्य तथा सभी सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली हैं ॥९५॥ पृथिवी के विना सारा संसार निराधार हो जायेगा । हे मुनीश्वर ! प्रकृति की जो कलाएँ हैं उन्हें मैं आपको बतलाता हूँ ॥९६॥ जिसकी जिसकी जो पत्नी हैं उन सबों को मैं बतला रहा हूँ । स्वाहा देवी अग्नि की पत्नी हैं और सम्पूर्ण संसार में पूजित

सर्वत्र पूजिता ॥९८॥ यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम् । स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ॥९९॥ पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना । स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता ॥१००॥ आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना । पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले ॥१०१॥ यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च । अनंतपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वंदिता भवेत् ॥१०२॥ यया विना न संतुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः । ईशानपत्नी संपत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः ॥१०३॥ सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना । धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता ॥१०४॥ सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना । सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता च जगत्प्रिया ॥१०५॥ यया विना भवेल्लोको बंधुतारहितः सदा । मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया ॥१०६॥ सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना । पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा ॥१०७॥ यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने । सुकर्मपत्नी संसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता ॥१०८॥ यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा । क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसंमता ॥१०९॥ यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद । अधर्मपत्नी मिथ्या

हैं ॥९७॥ उनके विना कोई भी देवता हविष्य का ग्रहण नहीं कर सकता हैं । दक्षिण देवी यज्ञ की पत्नी हैं । दीक्षा रूप से सर्वत्र पूजित हैं ॥९८॥ दक्षिणा देवी के विना सम्पूर्ण कर्म व्यर्थ हो जाता है । स्वधा देवी पितरों की पत्नी हैं । उनकी पूजा मुनिगण, मनुगण तथा मनुष्य करते हैं ॥९९॥ उनके विना पित्तरों को प्रदत्त सब कुछ निष्फल होता है । स्वस्ति देवी वायु की पत्नी हैं । संसार का प्रत्येक व्यक्ति उनकी पूजा करता है ॥१००॥ स्वस्ति के विना सारा आदान-प्रदान निष्फल होता है । पुष्टि देवी गणपति की पत्नी हैं । वे संसार भर में पूजित हैं ॥१०१॥ पुष्टि देवी के विना स्त्री तथा पुरुष सबके सब दुर्बल हो जाते हैं । तुष्टि देवी अनन्त की पत्नी रूप से पूजित एवं वन्दित हैं । तुष्टि देवी के विना संसार का कोई भी व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं हो सकता है । सम्पत्ति देवी ईशान की पत्नी हैं । उनकी पूजा देवता और मनुष्य करते हैं ॥१०३॥ उनके विना संसार के सभी लोग दरिद्र हो जा सकते हैं । धृति देवी कपिल महर्षि की पत्नी हैं उनकी पूजा सबलोग सर्वत्र करते हैं ॥१०४॥ उनके विना संसार के सभी लोग धैर्य हीन हो जा सकते हैं । सत्य की पत्नी सती देवी हैं । वे जगत् को प्रिय हैं । मुक्त जीव भी उनकी पूजा करते हैं ॥१०५॥ उनके विना सारा संसार बन्धुत्व की भावना से रहित हो जा सकता है । जगत् प्रिया दया मोह की पत्नी हैं और सबों से पूजित हैं ॥१०६॥ उसके विना सभी जीव सर्वत्र निष्फल हैं । प्रतिष्ठा देवी पुण्य की पत्नी हैं । उनकी पूजा करने से पुण्य की प्राप्ति होती है ॥१०७॥ हे मुने ! प्रतिष्ठा के विना जीवित भी सम्पूर्ण जगत् मरे के समान होता है । कीर्ति देवी सुकर्म की पत्नी हैं, और धन्य पुरुष उनका समादर करते हैं ॥१०८॥ कीर्ति के विना यशोहीन जगत् मृत के समान हैं । क्रिया देवी उद्योग की पत्नी हैं वे सबों के द्वारा पूजित हैं॥१०९॥ हे नारद ! उनके विना यह सारा जगत् विधिहीन है । मिथ्या देवी अधर्म की पत्नी है । उनका पूजन सभी धूर्त करते हैं ॥११०॥ उनके विना

स सर्वधूर्तैश्च पूजिता ॥११०॥ यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम् । सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी ॥१११॥ अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता । कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिका बलात् ॥११२॥ कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहे गृहे । शांतिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ॥११३॥ याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद । ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधा धृतिस्तथा ॥११४॥ याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा । मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कांतिरूपा मनोहरा ॥११५॥ परमात्मा च विश्वौघो निराधारो यया विना । सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती ॥११६॥ श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्याऽतिपूजिता । कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी ॥११७॥ सर्वे लोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु । कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥११८॥ याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्तुं न शक्यते। क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते ॥११९॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिन्तातुरं भवेत् । प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा॥१२०॥ याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः । कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये ॥१२१॥ याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मितं विधौ । निद्रा कन्या च तंद्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिया ॥१२२॥ याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ । वैराग्यस्य च द्वे

यह ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित जगत् नष्ट हो जाता है । सत्ययुग में उस देवी का दर्शन नहीं होता था । त्रेतायुग में उसका सूक्ष्म रूप था ॥१११॥ द्वापरयुग में वह अपने आधे रूप वाली हो गयी और कलियुग में वह सर्वव्यापक हो गयी ॥११२॥ वह अपने कपट नामक भाई के साथ प्रत्येक गृह में घूमती हैं। शान्ति तथा लज्जा ये दोनों सुशील की पत्नियाँ हैं ॥११३॥ इन दोनों के विना यह सारा जगत् उन्मत्त के समान प्रतीत होता है । ज्ञान की तीन पत्नियाँ है, बुद्धि, मेधा और धृति ॥११४॥ इन तीनों के विना सारा जगत् उन्मत्त और पागल के समान प्रतीत होता है । मूर्ति देवी धर्म की पत्नी हैं । वे मनोहर कान्ति स्वरूपिणी हैं ॥११५॥ मूर्ति देवी के विना विश्व की व्यवस्था करने में परमात्मा निराधार रहते हैं । मूर्ति देवी के ही आधार पर लक्ष्मी देवी सर्वत्र शोभा स्वरूपिणी हैं ॥११६॥ श्रीरूपिणी, मूर्तिरूपिणी, धन्या तथा मान्या रूप से पूजित होती हैं । रुद्र की पत्नी का नाम कालाग्नि हैं । वे ही योगद्रि और सिद्धयोगिनी हैं ॥११७॥ रात्रियों में सभी लोग योगनिन्द्रा से आच्छन्न रहते हैं । काल की तीन पत्नियाँ हैं संध्या, रात्रि और दिन ॥११८॥ इन तीनों के विना विधाता गिनने का काम नहीं कर सकते हैं । लोभ की दो पत्नियाँ हैं भूख और प्यास । ये सब लोगों द्वारा पूजित धन्य तथा मान्य हैं ॥११९॥ इन दोनों के द्वारा व्याप्त जगत् चिन्ता से व्याकुल रहा करता है । तेज की दो पत्नियाँ हैं प्रभा और दाहिका ॥१२०॥ इन दोनों के विना जगत्स्रष्टा भी अपने कार्य को नहीं कर सकते हैं । ज्वर की दो पत्नियाँ हैं जरा और मृत्यु । ये दोनों काल की पुत्रियाँ हैं । ये किसी को भी प्रिय नहीं हैं ॥१२१॥ ब्रह्मा के

भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ॥१२३॥ याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यज्जीवन्मुक्तिमन्मुने । अदितिर्देवमाता च सुरभी च गवां प्रसूः ॥१२४॥ दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः । उपयुक्ता सृष्टिविधौ एतास्तु कीर्तिताः कलाः ॥१२५॥ कला अन्याः संति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे । रोहिणी चंद्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी ॥१२६॥ शतरूपा मनोर्भार्या शचींद्रस्य च गेहिनी । तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥१२७॥ अहल्या गौतमस्त्री साऽप्यनसूयाऽत्रिकामिनी । देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी ॥१२८॥ पितृणां मानसी कन्या मेनका साऽम्बिकाप्रसूः । लोपामुद्रा तथा कुन्ती कुबेरकामिनी तथा ॥१२९॥ वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विन्ध्यावलिस्तथा । कांता च दमयंती च यशोदा देवकी तथा॥१३०॥ गांधारी द्रौपदी शैव्या सा च सत्यवती प्रिया । वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा ॥१३१॥ मंदोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा । रेवती सत्यभामा च कालिंदी लक्ष्मणा तथा ॥१३२॥ जांबवती नाग्नजितिर्मित्रविन्दा तथाऽपरा । लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ॥१३३॥ काली योजनगंधा च व्यासमाता महासती । बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी ॥१३४॥ प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती । रेणुका च भृगोर्माता राममाता च रोहिणी ॥१३५॥ एकानंदा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती । बह्व्यः सत्यः कलाश्चैव

द्वारा सृष्ट जगत् को ये विनष्ट करने का काम करती हैं । निद्रा की पुत्री का नाम तन्द्रा है । तन्द्रा और प्रीति सुख की पत्नियाँ हैं ॥१२२॥ हे नारदजी सारा जगत् इन दोनों से व्याप्त हैं । वैराग्य की दो पत्नियाँ है श्रद्धा और भक्ति ये सबों से पूजित हैं ॥१२३॥ इनकी कृपा से सम्पूर्ण जगत् मुक्त हो सकता है । देवताओं की माता अदिति, गौओं की माता सुरभि ॥१२४॥ दैत्यों की माता दिति और क्रदू, विनता एवं दनु, ये सभी सृष्टि के कार्य के लिए उपयोगी हैं । ये सभी प्रकृति की कलाएँ हैं ॥१२५॥ दूसरी भी बहुत सी कलाएँ हैं उनसबों में से कुछ को मैं बतला रहा हूँ । रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी हैं और संज्ञा सूर्य की पत्नी हैं ॥१२६॥ शतरूपा मनु की पत्नी हैं, शची इन्द्र की पत्नी हैं । तारा बृहस्पति की पत्नी है आरुन्धती वसिष्ठ महर्षि की पत्नी हैं॥१२७॥ अहल्या गौतम महर्षि की पत्नी हैं, अनसूया महर्षि अत्रि की पत्नी हैं और प्रसूति दक्ष की पत्नी हैं ॥१२८॥ पितरों की मानसी कन्या मैना अम्बिका (पार्वती) को उत्पन्न करने वाली हैं । लोपामुद्रा, कुन्ती, कुबेर की पत्नी ॥१२९॥ वरुण की पत्नी, बलि की पत्नी विन्ध्यावली, कान्ता, दमयन्ती, यशोदा, देवकी ॥१३०॥ गांधारी, द्रौपदी, शैव्या, सत्यवती शन्तनु की प्रिया, साध्वी वृषभानु की पत्नी तथा राधा की माता है ॥१३१॥ मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कौरवी, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी तथा लक्ष्मणा ॥१३२॥ जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, रुक्मिणी सीता जो साक्षात् लक्ष्मी कही गयी हैं॥१३३॥ महासती, योजनगन्धा व्यासजी की माता काली, बाणसुर की पुत्री उषा और उसकी सखी चित्रलेखा ॥१३४॥ प्रभावती, मायावती, परशुरामजी की माता रेणुका, महर्षि भृगु की माता, और रोहिणी, ॥१३५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बहन एकानंदा और दुर्गा । इस तरह से भारतवर्ष में प्रकृति की बहुत

प्रकृतेरेव भारते ॥१३६॥ या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः ॥१३७॥ योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः । ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती ॥१३८॥ प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालंकारचंदनैः । कुमारी चाष्टवर्ष या वस्त्रालंकारचंदनैः॥१३९॥ पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता । सर्वाः प्रकृतिसंभूता उत्तमाधममध्यमाः ॥१४०॥ सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः । मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः ॥१४१॥ सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्ये तत्पराः सदा । अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसंभवाः ॥१४२॥ दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतंत्राः कलहप्रियाः । पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः ॥१४३॥ प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः। एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम् ॥१४४॥ ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते । पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥१४५॥ ततः श्रीरामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना । तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥१४६॥ जाताऽद्रौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान् । ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निंदया ॥१४७॥ जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् । गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः ॥१४८॥

सी कलायें उत्पन्न हुई हैं ॥१३६॥ ग्रामों की जो जो देवियाँ हैं, वे सबके सब प्रकृति की कलाएँ हैं । सम्पूर्ण विश्व में प्रकृति देवी के कलांशांश से उद्भूत हुई हैं ॥१३७॥ नारियों का अपमान करने से प्रकृति का अपमान होता है । पति और पुत्र के साथ साध्वी ब्रह्माजी की पत्नी सरस्वती की वस्त्र, अलंकार और चन्दन से जो पूजन करता है, वह स्वयं भगवती की पूजा करता है । जो ब्राह्मण की आठ वर्ष की कुमारी कन्या का वस्त्र एवं अलंकार से पूजन करता है ॥१३८-१३९॥ वह प्रकृति का ही पूजन करता है । प्रकृति से उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ, उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि की है ॥१४०॥ प्रकृति के सत्त्वांश से उत्पन्न स्त्रियों को उत्तम जानना चाहिए, वे सुशील और पतिव्रता होती हैं । मध्यम कोटि की स्त्रियाँ प्रकृति के रजोगुण के अंश से उद्भूत हैं। वे भोग प्रिया होती हैं॥१४१॥ वे सदा सुख भोगने में तथा संभोग में लगी रहती हैं । वे सदा अपने कार्य में तत्पर रहती हैं । प्रकृति के तमोगुण के अंश से उत्पन्न स्त्रियाँ अधम कोटि की होती है । उनके कुल का कोई पता नहीं होता है ॥१४२॥ उनका मुख कुरूप होता है । वंश को विनष्ट करने वाली होती हैं । धूर्त, स्वतंत्र तथा कलह करने वाली होती हैं । वे लोक में कुलटा कहलाती हैं और स्वर्ग में अप्सरा कहलाती हैं ॥१४३॥ पुंश्चली नारियाँ भी प्रकृति के तमोगुण अंश से उद्भुत होती हैं । इस तरह से आपको मैंने प्रकृति के सम्पूर्ण रूपों का वर्णन सुनाया ॥१४४॥ सभी स्त्रियाँ भारत के पवित्र क्षेत्र में पूजित होती हैं । महाराज सुरथ ने सर्वप्रथम कष्ट को विनष्ट करने वाली दुर्गा की पूजा की थी ॥१४५॥ उसके बाद रावण का वध करने की इच्छा से श्रीरामचन्द्र ने उनकी पूजा की । उसके पश्चात् जगन्माता तीनों लोकों में पूजित हुयीं ॥१४६॥ पहले वे दक्ष के यहाँ प्रकट हुयीं थीं । वहाँ दैत्यों का वध करके वे अपने पति का अपमान देखकर दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर का परित्याग करके ॥१४७॥ हिमवान् की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुयीं और शंकरजी को उन्होंने अपने पति के रूप में प्राप्त

बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद । लक्ष्मीर्मंगलभूपेन प्रथमं परिपूजिता ॥१४९॥ त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः । सावित्री चाश्वपतिना प्रथमं परिपूजिता ॥१५०॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुंगवैः । आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता ॥१५१॥ तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः । प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले ॥१५२॥ पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना । गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः ॥१५३॥ गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः । तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा ॥१५४॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वंदिता सदा । पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता ॥१५५॥ शंकरेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते । त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः ॥१५६॥ पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा । कला या याः समुद्भूताः पूजितास्ताश्च भारते ॥१५७॥ पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने । एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् ॥१५८॥ यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

किया । गणेशजी भगवान् कृष्ण के अंश है और स्कन्द भगवान् विष्णु की कला से उद्भूत हैं ॥१४८॥ वे ही पीछे चलकर पार्वती के पुत्र बने । सर्वप्रथम राजा मंगल ने लक्ष्मी की पूजा की ॥१४९॥ उसके पश्चात् त्रैलोक्य में देवताओं मुनियों और मनुष्यों ने लक्ष्मी जी की पूजा की । सावित्री की सर्वप्रथम पूजा राजा अश्वपति ने की ॥१५०॥ उसके बाद त्रैलोक्य के देवताओं तथा मुनिवर्यों ने उनकी पूजा की । सरस्वती देवी की सर्वप्रथम पूजा ब्रह्माजी ने की ॥१५१॥ उसके पश्चात् त्रैलोक्य के देवताओं तथा मुनिपुंगवों ने उनकी पूजा की । राधा जी की सर्वप्रथम पूजा गोलोक के रासमण्डल में हुयी ॥१५२॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी पूजा कार्तिक पूर्णिमा को की थी । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की आज्ञा से गोपियों, गोपों, बालिकाओं, बालकों गोसमूह और सुरभि ने राधाजी की पूजा की । उस समय ब्रह्मा आदि देव तथा मुनियों ने परम प्रसन्नता से ॥१५३-१५४॥ पुष्प, धूप के द्वारा भक्तिपूर्वक राधाजी की पूजा तथा वन्दना की। भूलोक में सर्वप्रथम राजा सुयज्ञ ने भगवान् शंकर द्वारा पुण्य तीर्थ में उपदेश प्राप्त करके देवी की पूजा की थी । उसके बाद श्रीभगवान् देवी की सदैव धूप आदि से पूजा करते हैं । भारत में प्रकृति की जो कलाएँ उत्पन्न हुयी और पूजित हुयी ॥१५७॥ हे मुने उन देवियों की ग्रामों तथा नगरों में पूजा हुयी । इस तरह से मैंने आपको प्रकृति के शुभचरित को अपने ज्ञान के अनुसार उनका लक्षण भी बतलाया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥१५८-१५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच— **समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो । विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि ॥१॥ सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह । कथं वा पंचधा भूता वद वेदविदाम्वर ॥२॥ भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे । व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥३॥ तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध । स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम् ॥४॥** श्रीनारायण उवाच— **नित्य आत्मा नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा । विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥५॥ तदेकदेशो वैकुण्ठो नम्रभागानुसारकः । तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी ॥६॥ यथाऽग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ । शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा यथा प्रकृतिरात्मनि ॥७॥ विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुंडलं कर्तुमक्षमः । विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि न हीश्वरः ॥८॥ न हि क्षमस्तथाऽऽत्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना । सर्वशक्तिस्वरूपा सा यया च शक्तिमान्सदा ॥९॥ ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च । तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता ॥१०॥ ज्ञानं समृद्धिः संपत्तिर्यशश्चैव**

श्रीराधाकृष्ण से प्रकट होने वाले देवता और देवियों का चरित

नारदजी ने कहा— हे प्रभो मैंने संक्षेप में देवियों को सुन लिया किन्तु ज्ञान को बढ़ाने के लिए आप उसका विस्तार से वर्णन करें ॥१॥ सृष्टि के प्रारम्भ में आद्या देवी कैसे प्रकट हुयी ? हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ! आप यह बतलाइये कि वे कैसे पाँच प्रकार की हो गयीं ?॥२॥ आपने बतलाया है कि वे त्रिगुणमयी हैं । उनके ही अंश एवं कला से संसार के सभी प्राणी उद्भुत हैं मैं उन सबों का चरित विस्तार से सुनना चाहता हूँ ॥३॥ आप उन सबों की मङ्गलमय, जन्म की कथा, पूज़ा विधि, ध्यान विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और शौर्य का वर्णन करें ॥४॥ **श्रीनारायण भगवान् ने कहा—** आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, कला नित्य है, दिशाएँ नित्य है, विश्वगोल नित्य है तथा गोलोक नित्य है ॥५॥ उसी का एक भाग वैकुण्ठ हैं । वहाँ नम्र पुरुष जाते हैं । उसी तरह ब्रह्म की सनातनी लीलास्वरूपिणी प्रकृति भी नित्य है ॥६॥ जिस तरह अग्नि की दाहिका शक्ति, चन्द्रमा तथा कमल में शोभा, सूर्य में उनकी कान्ति, सदा बनी रहती है और उन सबों से अभिन्न हैं, उसी तरह से परमात्मा से प्रकृति भी अभिन्न है ॥७॥ जिस तरह सुवर्ण के विना स्वर्णकार कुण्डल नहीं बना सकता है, कुम्भकार मिट्टी के विना घट नहीं बना सकता है ॥८॥ उसी तरह परमात्मा भी प्रकृति के विना सृष्टि नहीं कर सकते हैं । प्रकृति सब प्रकार की शक्तिस्वरूपा है, और उसी से परमात्मा शक्तिमान हैं ॥९॥ 'श' शब्द ऐश्वर्य का वाचक है और 'क्ति' शब्द पराक्रम का वाचक है । परमात्म स्वरूपिणी प्रकृति देवी उन दोनों को ऐश्वर्य और (पराक्रम को) देने वाली बतलायी गयी हैं वे ही परमात्मा की शक्ति हैं ॥१०॥ ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बल

बलं भगः । तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥११॥ तया युक्तः सदाऽऽत्मा च भगवांस्तेन कथ्यते । स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः ॥१२॥ तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा । वदन्ति च परं ब्रह्म परमानन्दमीश्वरम् ॥१३॥ अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते ॥१४॥ वदन्ति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना । तेजोमंडलमध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम्॥१५॥ स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् । अतीव सुन्दरं रूपं विभ्रतं सुमनोहरम् ॥१६॥ किशोरवयसं शांतं सर्वकांतं परात्परम् । नवीननीरदाभासधामैकं श्यामविग्रहम् ॥१७॥ शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् । मुक्ताच्छविविनिंद्यैकदंतपंक्तिमनोरमम् ॥१८॥ मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमंडितम् । सुनसं सस्मितं कांतं भक्तानुग्रहकारणम् ॥१९॥ ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥२०॥ सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् । सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वस्वतंत्रं सर्वमङ्गलम् ॥२१॥ परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम् । ध्यायंते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम् ॥२२॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् । ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते ॥२३॥ स चात्मा स परं ब्रह्म कृष्ण

इन सबों को भग कहते हैं । इसीलिए भगवती प्रकृति भग स्वरूपा हैं ॥११॥ उन भगस्वरूपा प्रकृति से युक्त होने के कारण परमात्मा को भगवान् कहा जाता है । वे भगवान् स्वाधीन हैं और साकार तथा निराकार दोनों हैं ॥१२॥ योगिजन निराकार परमात्मा को तेज रूप से धारण करते हैं । उन्हीं को परंब्रह्म, परमानन्द और ईश्वर कहते हैं ॥१३॥ योगिजन उनको अदृश्य सबों को देखने वाले, सर्वज्ञ, सर्वकारण, सब कुछ देने वाले और सर्वस्वरूप मानते हैं । किन्तु वैष्णव लोग उसे नहीं मानते हैं । वे कहते हैं कि तेजस्वी के बिना तेज किसका होगा । तेज तो किसी का होता है । तेजोमंडल के भीतर परमतेजस्वी॥१५॥ स्वतंत्र सर्वस्वरूप, समस्त कारणों के भी कारण, अत्यन्त सुन्दर रूप वाले, अत्यन्त मनोहर ॥१६॥ किशोरावस्था वाले, शान्त प्रकृति वाले, सभी कान्तियों से युक्त, सर्वश्रेष्ठ, नवीन मेघ के समान कान्ति वाले, श्याम शरीर वाले तेजः स्वरूप परमात्मा विद्यमान हैं । उनके नेत्र शरत्काल के दोपहर में विकसित कमल की शोभा के समान सुन्दर हैं, उनके दाँतों की शोभा मोती की भी कांति को तिरस्कृत करने वाली है ॥१८॥ उनका मुकुट मयूर पिच्छ से सुशोभित है । वे मालती की माला धारण किए हुए है । उनका नाम सुन्दर है, वे मनोहर मुस्कान करते हैं, अपने भक्तों पर कृपा करने वाले हैं ॥१९॥ जलती हुई अग्नि की कान्ति के समान कान्ति वाले पीताम्बर को वे धारण करते हैं । उनकी दो भुजाएँ है । वे हाथ में मुरली धारण करते हैं । वे रत्नों के आभूषणों से अलंकृत हैं ॥२०॥ वे ही सबों के आधार हैं, सबों के स्वामी हैं सभी प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है व्यापक हैं । वे सभी ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले हैं । सबों से स्वतंत्र है तथा हर प्रकार के मङ्गलों से युक्त हैं ॥२१॥ वे अपने आप में परिपूर्ण हैं सिद्ध तथा सिद्धों का स्वामी एवं सिद्धि प्रदान करने वाले हैं । इसी प्रकार के शाश्वत देव का श्रीवैष्णव जन ध्यान करते हैं ॥२२॥ वे जन्म, मृत्यु, व्याधि शोक का विनाश करने वाले परंब्रह्म का ध्यान करते हैं।

इत्यभिधीयते । कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः ॥२४॥ भक्तिदास्यप्रदाता यः स च कृष्णः प्रकीर्तितः । कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजमेव च ॥२५॥ स कृष्णः सर्वस्त्रष्टाऽऽदौ सिसृक्षन्नेक एव च । सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ॥२६॥ स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह । स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः ॥२७॥ तां ददर्श महाकामी कामाधारं सनातनः । अतीव कमनीयां च चारुपंकजसन्निभाम् ॥२८॥ चंद्रबिम्बविनिंद्यैकनितंबयुगलां पराम् । सुचारुकदलीस्तंभनिंदितश्रोणिसुंदरीम् ॥२९॥ तां युक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्। पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम् ॥३०॥ अतीव सुन्दरीं शांतां सस्मितां वक्रलोचनाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥३१॥ शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबंतीं सततं मुदा । कृष्णस्य मुखचंद्रं च चंद्रकोटिविनिंदितम् ॥३२॥ कस्तूरी बिंदुना सार्धमधश्चन्दनबिदुना । समं सिंदूरबिंदुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम् ॥३३॥ वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेंद्रसारहारं च दधतीं कांतकामुकीम् ॥३४॥ कोटिचंद्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम्। गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम् ॥३५॥ दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडां चकार ह ॥३६॥

ब्रह्माजी की आयु उनकी दृष्टि में निमेष मात्र की होती हैं ॥२३॥ वैष्णवजन बतलाते हैं कि वे ही परमात्मा हैं, परंब्रह्म ही कृष्ण शब्द से अभिहित किए जाते हैं। कृष् शब्द उस परमात्मा की भक्ति का वाचक है और ण उसकी दासता को बतलाता है ॥२४॥ जो अपनी भक्ति और दास्य को प्रदान करे उसे कृष्ण कहते हैं । कृष् शब्द सम्पूर्ण जगत् का वाचक है और ण उसके बीज का वाचक है ॥२५॥ वे कृष्ण ही सृष्टि की इच्छा होने पर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं । सृष्टि करने के लिए उद्यत अपने अंशभूत काल के द्वारा प्रेरित होकर परमात्मा ॥२६॥ अपनी इच्छामात्र से ही दो रूपों को धारण कर लिए। उनके वाम भाग वाला अंश स्त्री रूप हो गया और दाहिना भाग पुरुष हो गया ॥२७॥ महाकामी उस परमात्मा ने अत्यन्त मनोहर कमल के सदृश सुन्दर अंगों वाली उस स्त्री रूप को देखा ॥२८॥ उसके दोनो नितम्ब चन्द्रमण्डल के समान मनोहर थे । उसकी दोनों श्रोणी (जंघे) कदली के स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर थे ॥२९॥ उनके दोनों स्तन श्रीफल के आकार वाले अत्यन्त मनोहर थे । उसका उदरप्रान्त पुष्पों के हार से समलंकृत था । उसका क्षीण कटिप्रदेश परमात्मा के मन को मुग्ध कर रहा था ॥३०॥ अत्यन्त सुन्दरी, शान्त आकृति वाली वह मुस्कुराती हुई अपने वक्र नेत्र से श्रीहरि को देख रही थी । वह अग्नि के समान देदीप्यमान वस्त्र तथा रत्नों के आभूषणों से समलंकृत थी ॥३१॥ वह अपने चकोर रूपी नेत्रों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के मुख रूपी चन्द्रमा का निरन्तर पान कर रही थी । भगवान् श्रीकृष्ण का मुख करोड़ों चन्द्रमा से भी सुन्दर था ॥३२॥ उनके ललाट के बीच में कस्तूरी की विन्दु के नीचे चन्दन की विन्दु लगा था तथा सिन्दूर का भी विन्दु लगा था ॥३३॥ उनके केश पाश घुंघराले थे । मालती की वह माला पहन रखी थी । श्रेष्ठ रत्नों के हार से सुशोभित अपने पति की कामना करने वाली थी ॥३४॥ करोड़ों चन्द्रमा की शोभा के समान वह सौन्दर्य सम्पन्न थी । उसकी चाल राजहंस तथा गजराज

नानाप्रकारश्रृंगारं श्रृंगारो मूर्तिमानिव । चकार सुखसंभोगं यावद्वै ब्रह्मणो दिनम् ॥३७॥ ततः स च परिश्रांतस्तस्यां योनौ जगत्पिता । चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दे शुभक्षणे ॥३८॥ गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतांते च सुव्रत । निःससार श्रमजलं श्रांतायास्तेजसा हरेः ॥३९॥ महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह । तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम् ॥४०॥ स च निश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह । निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च ॥४१॥ बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामांगात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पंच च जीविनाम् ॥४२॥ प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः । बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च ॥४३॥ घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा॥४४॥ अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह । शतमन्वंतरं यावज्ज्वलती ब्रह्मतेजसा ॥४५॥ कृष्णप्रणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया। कृष्णस्य संगिनी शश्वत्कृष्णवक्षः स्थलस्थिता ॥४६॥ शतमन्वन्तरांते च कालेऽतीते तु सुन्दरी । सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम्॥४७॥ दृष्ट्वा डिंभं च सा देवी हृदयेन व्यदूयत । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्मांडगोलके जले ॥४८॥ दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह । शशाप

की भी चाल से अधिक सुन्दर थी ॥३५॥ उसको देखकर रास के उल्लास से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण ने रासमण्डल में उसके साथ रासक्रीडा किया ॥३६॥ मूर्तिमान शृंगार स्वरूप श्रीभगवान् ने उनका अनेक प्रकार से शृंगार किया और उनके साथ ब्रह्माजी के एक दिन काल पर्यन्त सुख भोग किया । उसके बाद थककर जगत् पिता ने उस प्रकृति देवी रूपी योनि में नित्यानन्दमय शुभक्षण में वीर्य का आधान किया ॥३८॥ सुरतक्रीडा के अंत में श्रीहरि के तेज से श्रान्त हुई उस नारी के शरीर से पसीना और निःश्वास निकला । वह पसीना ही विश्वगोल के रूप में परिणत हो गया ॥३९-४०॥ वह जो निःश्वास वायु था वह सबों के आधारस्वरूप हो गया और जीवित रहने वाले सभी प्राणियों का निःश्वास वायु बन गया ॥४१॥ उसके बाद वह मूर्तरूप धारण कर लिया उसके बाये अंग से प्राण के समान प्यारी स्त्री प्रकट हो गयी । उसके पाँच पुत्र हुए जो सबके शरीर में पँचप्राण के रूप में परिणत हो गये ॥४२॥ उनके क्रमशः नाम हैं प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ॥४३॥ जो श्रमजल (पसीना) निकला था वह जल का अधिष्ठातृ देव वरुण हो गया । उनके वायें अङ्ग से उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं ॥४४॥ उसके पश्चात् भगवान् कृष्ण की चित् शक्ति ने गर्भ धारण किया । वह सौ मन्वंतरकाल पर्यन्त ब्रह्म के तेज से प्रकाशित होती रही ॥४५॥ वह कृष्ण के प्राणों की अधिकारिणी देवी थी और श्रीकृष्ण को अत्यधिक प्रिय थी । वे कृष्ण की संगिनी तथा निरन्तर भगवान् कृष्ण के वक्षःस्थल में स्थित थीं ॥४६॥ सौ मन्वन्तर के अन्त में उस सुन्दरी ने सुवर्ण के समान कान्ति वाले तथा विश्व के परमाश्रय बालक को जन्म दीं ॥४७॥ उस बालक को देखकर देवी का हृदय दुःखी हो गया । उन्होंने क्रोध करके उस बालक को ब्रह्माण्ड गोलक के जल में छोड़ दिया ॥४८॥

देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम् ॥४९॥ यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे । भव त्वमनपत्याऽपि चाद्यप्रभृति निश्चितम् ॥५०॥ या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः । अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः ॥५१॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात्सहसा ततः । आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥५२॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५३॥ अथ कालांतरे सा च द्विधारूपो बभूव ह । वामार्धांगाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका ॥५४॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः । दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः ॥५५॥ उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव । अत्रैव मानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति ॥५६॥ एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च । स जगाम च वैकुण्ठे ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः ॥५७॥ अनपत्ये च ते द्वे च जाते राधांशसंभवे । भूता नारायणांगाश्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥५८॥ तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः । बभूव कमलांगाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः ॥५९॥ अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने । भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः ॥६०॥ रूपेण च गुणेनैव बलेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रियाः

उस बालक के त्याग को देखकर श्रीकृष्ण हाहाकार करने लगे और उन्होंने उस देवी को यथोचित शाप भी दे दिया ॥४९॥ क्रोध करने वाली निष्ठुर तुमने चूकि बच्चे को त्याग दिया है अतएव आज से तुम निःसन्तान हो जाओ ॥५०॥ तुम्हारे अंशस्वरूप जितनी भी देवस्त्रियाँ होंगी वे भी निःसन्तान होंगी और तुम्हारे ही समान नित्य युवती बनी रहेंगी ॥५१॥ उसी समय उस देवी की जिह्वा के अग्रभाग से एक कन्या उत्पन्न हुई । वह गौरवर्ण की तथा मनोहर थी॥५२॥ वह श्वेत वस्त्र धारण किए थी तथा वीणा एवं पुस्तक धारण किए थी । रत्नों के आभूषणों से समलंकृत वह समस्त शास्त्रों की अधिष्ठात्री देवता थी ॥५३॥ कालान्तर में उसके दो रूप हो गये उसके वामार्ध से कमला की उत्पत्ति हुई और दक्षिणार्धाङ्ग से राधा की उत्पत्ति हुई ॥५४॥ उसी समय श्रीकृष्ण के भी दो रूप हो गये । उनका दक्षिणार्ध दो भुजाओं वाला और वामार्ध चार भुजाओं वाला था ॥५५॥ भगवान् कृष्ण ने सरस्वती से कहा तुम विष्णु की पत्नी बन जाओ यह मानिनी राधा यहाँ ही रहेगी ॥५६॥ इस तरह से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी को नारायण को दे दिया । इसके बाद जगत्पति विष्णु लक्ष्मी और सरस्वती के साथ वैकुण्ठ में चले गये ॥५७॥ प्रकृति स्वरूपा राधा के अंश से उत्पन्न होने के कारण वे दोनों देवियाँ निःसन्तान ही रहीं । उसके बाद नारायण के अंग से उनके अनेक पार्षद उत्पन्न हुए । वे सबके सब चतुर्भुज थे ॥५८॥ उन सबों की अवस्था रूप तथा गुण नारायण के ही समान थे । लक्ष्मी के अंगो से उनकी करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हुई । वे सब एक ही समान थीं ॥५९॥ हे मुने ! उसके पश्चात् ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण के रोमों से असंख्य गोप प्रकट हुए । उन सबों की अवस्था और तेज एक समान थे ॥६०॥ वे सभी भगवान् कृष्ण के प्राणप्रिय पार्षद थे और रूप, गुण, बल

सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥६१॥ राधांगलोमकूपेभ्यो बभवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याश्च ताः सर्वा राधादास्यः प्रियम्वदाः ॥६२॥ रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन संततम् ॥६३॥ एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेवता । आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी ॥६४॥ देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बुद्ध्यधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६५॥ देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥६६॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता॥६७॥ नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना । वह्निशुद्धांशुकाधानारत्नभूषणभूषिता ॥६८॥ यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः । सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया ॥६९॥ सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम् । कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी ॥७०॥ मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मीर्गृहिषु च ॥७१॥ तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च । या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे ॥७२॥ शोभारूपा च चंद्रे च सा पद्मेषु च शोभना । सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥७३॥ यया च शक्तिमानात्मा

तथा विक्रम से सम्पन्न थे ॥६१॥ राधा के रोमकूपों से गोपियाँ उत्पन्न हुयीं । वे सब राधा के ही समान थीं वे राधा की प्रिय बोलने वाली दासियाँ हो गयीं॥६२॥ वे सब रत्नों के आभूषणों से समलंकृत तथा सुस्थिर यौवन वाली थीं । वे परमात्मा के शाप के कारण सदा निस्संतान रहीं ॥६३॥ हे विप्र ! उसी समय सहसा कृष्ण की आराध्य भगवान् विष्णु की सनातनी माया प्रकट हुयीं ॥६४॥ वे देवी नारायणी, ईशानी और सर्वशक्ति स्वरूपिणी हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥६५॥ देवियों के मूल स्वरूप मूल प्रकृति और स्वामिनी हैं । वे परिपूर्णतम हैं तेजः स्वरूपिणी तथा त्रिगुणात्मिक हैं ॥६६॥ उनका सन्तप्त सुवर्ण के समान रूप था तथा करोड़ों सूर्य के समान उनकी कान्ति थी । मन्द मुसुकान से उनका मुख प्रसन्न था और उनकी हजारों भुजाएँ थीं । अनेक शस्त्रों को धारण करने वाली देवी दुर्गा के तीन नेत्र थे । देदीप्यमान अग्नि की कान्ति के समान कान्ति वाले वस्त्र को धारण किए थीं तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित थीं । उन्हीं के अंशांश कलाओं से सभी नारियाँ उद्भूत हुयीं । संसार के सभी मनुष्य माया से मोहित होते हैं ॥६९॥ वे कामना करने वाले गृहस्थों को सभी प्रकार के ऐश्वर्य को प्रदान करने वाली हैं तथा वैष्णवों को कृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाली हैं वे वैष्णवी हैं ॥७०॥ वे मुमुक्षुओं को मोक्ष प्रदान करती हैं, सुख चाहने वालों को सुख देती हैं । वे स्वर्ग में स्वर्गलक्ष्मी के रूप में तथा गृहों में गृहलक्ष्मी के रूप में रहती हैं ॥७१॥ तपस्वियों में तपस्या रूप में, राजाओं में श्रीरूप में, अग्नि में दाहिका शक्ति के रूप में तथा सूर्य में कान्ति रूप में रहती हैं ॥७२॥ चन्द्रमा और कमल में वे सुन्दर शोभा के रूप में रहती हैं । भगवान श्रीकृष्ण में वे देवी सर्वशक्ति स्वरूप में रहती हैं ॥७३॥ उस देवी के द्वारा परमात्मा और

यया च शक्तिमज्जगत् । यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥७४॥ या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी । स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥७५॥ क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तंद्रा क्षमा मतिः । शांतिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रांतिकांत्यादिरूपिणी ॥७६॥ सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह । रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥७७॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः । पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निःससार महामुने॥७८॥ कमंडलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः । चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥७९॥ सा तदा सुन्दरी सृष्टा शतचंद्रसमप्रभा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा ॥८०॥ रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् । उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा ॥८१॥ एतस्मिन्नंतरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः । वामार्धांगो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः ॥८२॥ शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः । त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्माम्बरो हरः । तप्तकांचनवर्णाभो जटाभारधरः परः । भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥८४॥ दिगम्बरो नीलकंठः सर्पभूषणभूषितः । विभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ॥८५॥ प्रजपन्पंचवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥८६॥ कारणं कारणानां च

जगत् दोनों शक्तिमान हैं । उनके विना जीवित भी सम्पूर्ण जगत् मृत के समान रहता है ॥७४॥ वे संसार रूपी वृक्ष के सनातन बीज स्वरूपा हैं और वे स्थिति रूपा, बुद्धि स्वरूपा तथा फल स्वरूपा हैं ॥७५॥ वे ही भूख, प्यास, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रांति तथा कान्ति आदि स्वरूपा भी हैं ॥७६॥ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके उनके सामने स्थित हुयीं । राधिका पति ने उन्हें रत्न सिंहासन प्रदान किया ॥७७॥ उस समय वहाँ पर पद्मनाभ भगवान् के नाभिकमल से अपनी पत्नी के साथ चतुर्मुख ब्रह्माजी निकले ॥७८॥ वे तपस्वी तथा कमण्डलु धारण किए थे । वे ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे । उन्होंने श्रीभगवान् की अपने चारो मुखों से स्तुति की ॥७९॥ उसी समय उत्पन्न हुई सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाली जो सुन्दरी, अत्यन्त चमकते वस्त्र को धारण किए हुए थी रत्नों के आभूषणों से भूषित थी, सम्पूर्ण जगत् के कारण भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके अपने स्वामी के साथ उस मनोहर रत्न सिंहासन पर भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष बैठ गयी ॥८१॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण के दो रूप हो गये । वे अपने वामांग से महादेव स्वरूप हो गये और दाहिना अंग गोपिका पति श्रीकृष्ण स्वरूप हो गया ॥८२॥ महादेव की कान्ति शुद्ध स्फटिक के समान थी । वे असंख्य सूर्य के समान देदीप्यमान थे । अपनी भुजाओं में वे त्रिशूल और पट्टिश धारण किये थे तथा बाधम्बर धारण किए थे ॥८३॥ उनकी जटाओं की कान्ति संतप्त सुवर्ण के समान थी । उनका शरीर भस्म से सुशोभित था । उनके शिर पर चन्द्रमा विराजमान थे और मुख पर मुसुकान सुशोभित था ॥८४॥ वे दिगम्बर थे । उनका गला नीला था और वे सभी आभूषणों से भूषित थे । वे अपने दाहिने हाथ में संस्कारयुक्त रत्न की माला धारण किए थे ॥८५॥ वे

सर्वमङ्गलमङ्गलम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम् ॥८७॥ संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युंजयाभिधः । रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः ॥८८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथ डिंभो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह ॥१॥ तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः । क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनांधः पीडितः क्षुधा ॥२॥ पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः । ब्रह्मांडासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥३॥ स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट् । परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ ॥४॥ तेजसा षोडशांशोऽयं**

अपने पाँचों मुखों से सनातन ब्रह्म, ज्योति सत्य स्वरूप, परमात्मा सबों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का जप कर रहे थे ॥८६॥ भगवान् ही सम्पूर्ण कारणों के कारण तथा सभी मंगलों से श्रेष्ठ मङ्गल स्वरूप हैं । वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा भय को दूर करने वाले हैं ॥८७॥ मृत्युंजय भगवान् शंकर मृत्यु के भी मृत्यु स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करके, श्रीभगवान् के समक्ष ही सुन्दर रत्न सिंहासन पर बैठ गये ॥८८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवे स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥ २॥

राधा से प्रकट हुए विराट् स्वरूप बालक का वर्णन

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा– वह बालक जिसे प्रकृति देवी ने जल में डाल दिया था वह ब्रह्माजी की आयु पर्यन्त जल में पड़ा रहा । इसके पश्चात् वह दो भागों में विभक्त हो गया ॥१॥ उसमें से एक शिशु के रूप में परिणत हो गया । उसकी कान्ति सौ करोड़ सूर्य की कान्ति के समान थी । वह छोटा बालक भूख के कारण रो रहा था ॥२॥ वह पिता तथा माता से परित्यक्त होकर जल में [illegible] रहा । उसका रक्षक कोई नहीं था । वह असंख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी था । उसने अनाथ के समान ऊपर की ओर देखा ॥३॥ वह अत्यन्त स्थूल था अतएव उसका नाम महाविराट् हुआ । जिस तरह परमाणु जैसे

कृष्णस्य परमात्मनः । आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥५॥ प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । अस्यापि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः ॥६॥ संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन । ब्रह्मविष्णुशिवादीना तथा संख्या न विद्यते ॥७॥ प्रतिविश्वेषु संत्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । पातालाद्ब्रह्मलोकांतं ब्रह्मांडं परिकीर्तितम् ॥८॥ तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्मांडाद्बहिरेव सः । तत ऊर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः ॥९॥ नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाऽप्ययम् । सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता ॥१०॥ ऊनपंचाशदुपद्वीपाऽसंख्यशैलवनान्विता । ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः ॥११॥ पातालानि च सप्ताधश्चैव ब्रह्मांडमेव च । ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम् ॥१२॥ ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथापरः । ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः ॥१३॥ ततः परं ब्रह्मलोकस्तप्तकांचनसन्निभः । एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यंतरमेव च ॥१४॥ तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद । जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम् ॥१५॥ नित्यौ गोलोकवैकुंठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ । प्रत्येकं लोमकूषेषु ब्रह्मांडं परिनिश्चितम् ॥१६॥ एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा । प्रत्येकं प्रतिब्रह्मांडं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१७॥ तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक । दिगीशाश्चैव दिक्पाला

अत्यन्त सूक्ष्म होता है उसी तरह से वह परम स्थूल था ॥४॥ उस भगवान् कृष्ण के तेज का सोलहवाँ भाग था । वह सम्पूर्ण जगत् का आधार था । वही महाविष्णु कहा जाता है ॥५॥ उसके प्रत्येक रोमकूपों में सारा संसार था । उसके रोमकूप में विद्यमान विश्वों की संख्या श्रीकृष्ण भी नहीं बतला सकते हैं।।६॥ हो सकता है कि धूलि कणों की संख्या हो किन्तु ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशों की कोई संख्या नहीं है । पाताललोक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त को ब्रह्माण्ड कहते हैं ॥८॥ ब्रह्माण्ड के ऊपर तथा ब्रह्माण्ड के बाहर वैकुण्ठ है । उसके ऊपर गोलोक है । उसका विस्तार पचास करोड़ योजन है ॥९॥ जिस तरह भगवान् श्रीकृष्ण नित्य तथा सत्य स्वरूप हैं उसी तरह गोलोक भी सत्य तथा नित्य है । सात द्वीपों वाली पृथिवी तथा सप्त सागरों से युक्त हैं ॥१०॥ वह उनचास उपद्वीपों असंख्य पर्वत तथा वनों से युक्त है । पृथिवी से ऊपर ब्रह्मलोक के साथ सात स्वर्गलोक हैं ॥११॥ पृथिवी के नीचे सात पाताल हैं । इन सबों को मिलाकर एक ब्रह्माण्ड कहलाता है । पृथिवी के ऊपर भूलोक है । उसके ऊपर भुवर्लोक है ॥१२॥ उसके ऊपर स्वर्लोक है और उसके ऊपर जनलोक हैं । उसके बाद तपोलोक है तथा उसके ऊपर सत्यलोक है ॥१३॥ उसके बाद ब्रह्मलोक है । उस लोक की कान्ति संतप्त सुवर्ण के समान है। इस तरह ये सब के सब भीतर बाहर कृत्रिम ही हैं ॥१४॥ हे नारद ! ब्रह्माण्ड का विनाश होने पर ये सब विनष्ट हो जाते हैं । ये सभी विश्व समूह जल में उठने वाले बुलबुले के समान अनित्य हैं ॥१५॥ गोलोक और वैकुण्ठ ये दोनों अकृत्रिम तथा नित्य हैं । महाविष्णु के प्रत्येक रोमकूपों में ब्रह्माण्ड हैं ॥१६॥ इन ब्रह्माण्डों

नक्षत्राणि ग्रहादयः ॥१८॥ भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽप्यधो नागाश्चराचराः । अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥१९॥ डिंभांतरे च शून्यं च न द्वितीयं च किंचन । चिंतामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः ॥२०॥ ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम् । ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥२१॥ नवीनजलदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥२२॥ जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम्। वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम् ॥२३॥ मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पपासादिवर्जितः । ब्रह्मांडासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ॥२४॥ निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव । जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितो भव ॥२५॥ इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामंत्रं षडक्षरम् । त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदांगप्रवरं परम् ॥२६॥ प्रणवादिचतुर्थ्यंतं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । वह्निजायांतमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७॥ मंत्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः । श्रूयतां तदब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते ॥२८॥ प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः । तत्षोडशांशो विषयो विष्णोः

की संख्या कृष्ण भगवान् भी नहीं जानते हैं । दूसरों को जानने की क्या बात है ? प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इत्यादि अलग-अलग हैं॥१७॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में देवताओं की संख्या तीन करोड़ दिशाओं के स्वामी, दिक्पाल, नक्षत्र तथा ग्रह आदि है ॥१८॥ पृथिवी पर चार वर्ण हैं । पृथिवी के नीचे के नाग तथा चराचर हैं । उसके कुछ समय बाद उस विराट् ने बार-बार ऊपर की ओर देखा ॥१९॥ वहाँ पर शून्य तथा डिम्भ के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था । यह देखकर भूख के कारण वाले बार-बार रोने लगा ॥२०॥ ज्ञान प्राप्त करके वह परम पुरुष कृष्ण का ध्यान करने लगा और उसने वहीं पर सनातन ब्रह्म ज्योति को देखा ॥२१॥ वे नवीन मेध के समान श्याम वर्ण, दो भुजाओं वाले तथा पीताम्बर धारण किए थे । मुस्कुराते हुए वे हाथ में मुरली धारण किए थे । वे स्वभावतः भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर बने हुए थे ॥२२॥ वह बालक अपने पिता को देखकर सन्तुष्ट हो गया और जोर से हँसा । उस समय श्रीभगवान् ने उस बालक को समयोचित वरदान दिया ॥२३॥ उन्होंने कहा वत्स ! तुम मेरे ही समान ज्ञानवान्, भूख तथां प्यास से रहित तथा प्रलयकाल पर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डों में रहने वाले हो जाओ ॥२४॥ तुम निष्काम, निर्भय तथा सबों को वरदान देने वाला हो जाओ जरा, मृत्यु, रोग, शोक तथा पीडा से रहित होओ ॥२५॥ इस तरह कहकर श्रीभगवान् ने उसके कान में षडक्षर मंत्र का उपदेश कर दिया । उन्होंने इस मंत्र का उसके कान में तीन बार उपदेश दिया । वह मंत्र वेद का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है ॥२६॥ उसके आदि में ओम् है । बीच में चतुर्थी विभक्ति के साथ कृष्ण ये दो अक्षर हैं । उसके अन्त में अग्नि की पत्नी का नाम जुड़ जाता है । ओम् कृष्णाय स्वाहा यह मन्त्र सभी विघ्नों को विनष्ट करने वाला है ॥२७॥ मन्त्र देने के बाद श्रीभगवान् ने उसका आहार जो बनाया उसे आप सुनें मैं उसे बतलाता हूँ ॥२८॥ प्रत्येक विश्व में वैष्णवजन जो भगवान् को भोग लगाते हैं,

पंचदशास्य वै ॥२९॥ निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किंचित्प्रयोजनम् ॥३०॥ यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः । स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीनाथो विराट् तथा ॥३१॥ तं च मंत्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः । वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च ॥३२॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः । कृष्णं तं बालकस्तावद्वचनं समयोचितम् ॥३३॥ बालक उवाच– **वरो मे त्वत्पदांभोजे भक्तिर्भवतु निश्चला । सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा ॥३४॥ त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च संततम् । त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः ॥३५॥ किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च । व्रतेन चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥३६॥ कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा । येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते ॥३७॥ यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुतः । पश्चाद्यांति गते तस्मिन्स्वतंत्राः सर्वशक्तयः ॥३८॥ स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः । स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥३९॥ इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद । उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥४०॥** श्रीकृष्ण उवाच– **सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाऽहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते**

उसमें से सोलहवाँ भाग विष्णु को मिलता है और पन्द्रह भाग इस बालक के लिए होता हैं ॥२९॥ यह बालक पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण का विराट् रूप हैं । नैवेद्य से श्रीकृष्ण को कोई प्रयोजन नहीं है ॥३०॥ जो भक्त भगवान् को जो कुछ भी नैवेद्य अर्पित करता है, उसको श्रीलक्ष्मीनाथ और वह विराट् दोनों खाते हैं ॥३१॥ उस बालक को श्रेष्ठ वर प्रदान करके श्रीभगवान् ने पुनः कहा तुम्हें जो कुछ भी वर अभीष्ट हो उसे कहो मैं देने के लिए तैयार हूँ ॥३२॥ भगवान् वृष्ण की बातें सुनकर विराट् पुरुष ने भगवान् श्रीकृष्ण से समयोचित बातें कहा ॥३३॥ **बालक ने कहा**– आप मुझे अपने चरणों में निश्चल भक्ति का वरदान दें । चाहे मेरी आयु क्षणभर की हो अथवा दीर्घकाल तक की हो ॥३४॥ इस लोक में जिसकी आपमें भक्ति है वह जीव मुक्त हैं। जो आपकी भक्ति से हीन है, वह मूर्ख है, वह जीवित होकर भी मरा हुआ ही है ॥३५॥ कृष्ण की भक्ति से हीन व्यक्ति के द्वारा किए गये जप, तपस्या, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्यकार्य तथा तीर्थसेवन से कौन सा लाभ है ॥३६॥ कृष्ण की भक्ति नहीं करने वाले मूर्ख का जीवन व्यर्थ है । क्योंकि वह जिस परमात्मा श्रीकृष्ण से जीवन को प्राप्त करता है, उसको ही वह नहीं मानता है ॥३७॥ जब तक शरीर में आत्मा रहती है, तब तक वह शक्ति से युक्त रहता है । जिस आत्मा के शरीर से निकल जाने पर सभी शक्तियाँ शरीर से निकलकर स्वतंत्र हो जाती हैं ॥३८॥ हे महाभाग ! आप वही सबों की आत्मा हैं । प्रकृति से श्रेष्ठ हैं । अपनी इच्छामय, आदि पुरुष तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं ॥३९॥ हे नारदजी ! इतना कहकर वह बालक चुप हो गया। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण मधुर वाणी में उसको उत्तर देने लगे ॥४०॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**– वत्स ! मैं जिस तरह से स्थिर हूँ उसी तरह से तुम

च पातस्ते न भविष्यति ॥४१॥ अंशेन प्रतिब्रह्मांडे त्वं च क्षुद्रविराड् भव । त्वन्नाभिपद्माद्ब्रह्मा विश्वस्त्रष्टा भविष्यति ॥४२॥ ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते । शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै ॥४३॥ कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः । पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति ॥४४॥ मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे । ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम् ॥४५॥ मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम् । यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत ॥४६॥ गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शंकरं समुवाच ह । स्त्रष्टारं स्त्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम् ॥४७॥ श्रीभगवानुवाच– सृष्टिं स्त्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव । महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु ॥४८॥ गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव । अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप ॥४९॥ इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत । जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः ॥५०॥ महाविराड् लोमकूपे ब्रह्मांडगोलके जले । बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन सांप्रतम् ॥५१॥ श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके । ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः ॥५२॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः संभूय पद्मदंडे

भी दीर्घकाल तक स्थिर रहो । असंख्य ब्रह्माओं की मृत्यु हो जाने पर भी तुम्हारी मृत्यु नहीं होयेगी ॥४१॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डों में तुम अपने अंश से क्षुद्र (छोटा) विराट हो जाओ । तुम्हारे ही नाभि कमल से ब्रह्मा प्रकट होयेंगे जो विश्व की सृष्टि करेंगे ॥४२॥ ब्रह्मा के ललाट से ग्यारह रुद्र उत्पन्न होंगे । वे सृष्टि का संहार करने के लिए शिव के अंश से उत्पन्न होंगे ॥४३॥ उन रुद्र में एक कलाग्नि रुद्र होंगे जो विश्व का संहार करेंगे । विश्व की रक्षा करने के लिए रुद्र के अंश से उत्पन्न होंगे ॥४४॥ मेरे वर के प्रभाव से तुम्हारे मन में मेरी भक्ति सदा बनी रहेगी । ध्यानयोग के द्वारा तुम मेरे कमनीय रूप का दर्शन सर्वदा प्राप्त करोगे ॥४५॥ परम सुन्दरी और मेरे वक्षःस्थल में निवास करने वाली अपनी माता का भी दर्शन करोगे । हे वत्स ! तुम यहीं रहो। मैं अपने लोक में जा रहा हूँ । यह कहकर भगवान् अपने लोक में चले गये ॥४६॥ श्रीभगवान् अपने लोक में जाकर ब्रह्माजी तथा शंकरजी से क्रमशः सृष्टि करने के लिए तथा संहार करने का कार्य करने के लिए कहे ॥४७॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे वत्स ! तुम सृष्टि करने के लिए जाओ और नाभि पद्म से उत्पन्न होने वाला बन जाओ । हे विधे ! मेरी बात सुनो । महाविराट् के रोमकूप में छोटा विश्व है ॥४८॥ हे वत्स महादेव ! तुम ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न होने वाला बन जाओ हे महाभाग ! अपने एक अंश से तुम दीर्घकाल तक तपस्या करो ॥४९॥ हे नारदजी ! इस तरह से कहकर श्रीभगवान् चुप हो गये । उनकी आज्ञा सुनकर ब्रह्मा और शिव भी ॥५०॥ महाविराट् के रोम कूप में विद्यमान ब्रह्माण्ड गोलक के जल में चले गये । उस जल में एक क्षुद्र विराट् रहते हैं ॥५१॥ वे श्याम वर्ण वाले युवक, पीताम्बरधारी तथा जल की शय्या पर सोए हुए हैं । मन्द मुसुकान से उनका मुख प्रसन्न है । वे विश्वव्यापक जनार्दन हैं ॥५२॥ उनके ही नाभिकमल से ब्रह्माजी उद्भुत हुए । उसके बाद वे एक लाख युगों तक कमल की नाल में घूमते

च बभ्राम युगलक्षकम् ॥५३॥ नांतं जगाम दंडस्य पद्मनालस्य पद्मजः । नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पिता तव ॥५४॥ स्वस्थानं पुनरागत्य दध्यौ कृष्णपदांबुजम् । ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥५५॥ शयानं जलतल्पे च ब्रह्मांडगोलकाप्लुते । यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तत्कृतं परमीश्वरम् ॥५६॥ श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् । तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः ॥५७॥ बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः । ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः ॥५८॥ बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः । चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत् ॥५९॥ क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह । स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचराम् ॥६०॥ एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च । प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्कृष्णसंकीर्तनं शुभम् । सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

रहे॥५३॥ ब्रह्माजी को उस कमल नाल का पत्ता नहीं लग सका । इससे आपके (नारदजी के) पिता ब्रह्माजी चिन्तित हो गये ॥५४॥ इसके बाद वे अपने स्थान पर आकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करने लगे । वे ध्यान के द्वारा प्राप्त दिव्य नेत्र के द्वारा उस क्षुद्र विराट् का दर्शन किए । जो क्षुद्र विराट् ब्रह्माण्ड गोलक में जल की शय्या पर सोये थे । उसके बाद उन्होंने जिन परम प्रभु के रोमकूप में वह ब्रह्माण्ड था उन परमेश्वर का दर्शन किए॥५६॥ भगवान् श्रीकृष्ण, तथा गोपियों से युक्त गोलोक का भी वे दर्शन किए । उन्होंने भगवान् की स्तुति करके वरदान प्राप्त किया और उसके बाद सृष्टि की ॥५७॥ ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादिक महर्षि हुए । उसके बाद शिव के अंश से ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए ॥५८॥ छोटे विराट् के वाम पार्श्व से विष्णु भी उत्पन्न हुए । उनकी चार भुजाएँ थीं । वे श्वेतद्वीप में निवास किए ॥५९॥ क्षुद्र विराट् के नाभिकमल में ही ब्रह्मा ने विश्व की सृष्टि की । उस विश्व में ही उन्होंने स्वर्ग, मर्त्यलोक तथा पाताल इन तीनों लोकों और उसके अन्दर विद्यमान चराचर जीवों की सृष्टि की ॥६०॥ इसी तरह से सारी चीजें रोमकूपों में विद्यमान प्रत्येक विश्व में हैं । प्रत्येक विश्व में क्षुद्र विराट् तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि हैं ॥६१॥ हे नारदजी ! मैंने इस प्रकार से आपको सुख तथा मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की कथा सुनायी अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥६२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच— **श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम् । अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम् ॥१॥ कस्या पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता । केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो ॥२॥ तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम् । काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३॥** श्रीनारायण उवाच— **गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्री सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥४॥ आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥५॥ प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम् । सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानो निशामय ॥६॥ काली वसुन्धरा गंगा षष्ठी मङ्गलचण्डिका । तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥७॥ संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥८॥ दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत् । तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु ॥९॥ आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पंडितः ॥१०॥ आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥११॥ स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् । तामुवाच हितं सत्यं परिणामे**

सरस्वती पूजन विधि तथा सरस्वती कवच

नारदजी ने कहा— मैंने आपके मुख से अमृत के समान प्रकृतियों का वर्णन सुना । अब आप उन सबों की पूजा विधि को बतलायें ।।१।। किसने किस प्रकृति की पूजा की और उसका विश्व में किस प्रकार से प्रचार हुआ ? हे प्रभो ! उसके बाद में किसने पूजा की तथा किस स्तोत्र से उस प्रकृति की स्तुति की ?।।२।। उन प्रकृति के स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव तथा चरित को तथा किन प्रकृतियों ने किसको कौन सा वरदान दिया, इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ।।३।। **श्रीनारायण ने कहा—** गणेशजी की माता दुर्गा, राधाजी, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी तथा सावित्रीजी ये सृष्टि के कार्य में पाँच प्रकृतियाँ हैं ।।४।। इन सबों की पूजा और उसका अद्भुत प्रभाव प्रसिद्ध हैं । इन सबों का अमृत तुल्य चरित समस्त मङ्गलों को प्रदान करने वाला है ।।५।। इन प्रकृतियों के जो अंश तथा कलाएँ हैं उनके जो शुभचरित हैं हे ब्रह्मन् ! मैं इन सबों को आपको सुनाता हूँ उसे आप सावधानी पूर्वक सुनें ।।६।। उन सबों के नाम काली, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा तथा दक्षिणा है ।।७।। मैं इन सबों के सुन्दर और सुनने में मनोहर एवं पवित्र चरित को तथा कर्मों के फल को सुनाऊँगा ।।८।। दुर्गा और राधा का चरित विस्तृत है उसे मैं संक्षेप में सुना रहा हूँ ।।९।। सरस्वती की सर्वप्रथम पूजा भगवान् श्रीकृष्ण ने की । सरस्वती की कृपा प्राप्त करके मूर्ख भी पण्डित हो जाता है ।।१०।। ये देवी भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नी के मुख से प्रकट हुयी थीं । इन्होंने

सुखावहम् ।।१२।। श्रीकृष्ण उवाच– भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ।।१३।। कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम् । कोटिकंदर्पलावण्यं लीलालंकृतमीश्वरम् ।।१४।। कांते कांतं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि । त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति ।।१५।। यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः । कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ।।१६।। सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां बाधितुमक्षमः । तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च ।।१७।। प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः। प्राणतोऽपि प्रियः पुत्रः केषां वाऽस्ति न कश्चन ।।१८।। त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति । पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम्।।१९।। लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता । तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ।।२०।। तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालं प्रयास्यति । गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि ।।२१।। प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम् । माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारंभे च सुन्दरि।।२२।। मानवा मनवो देवा मुनींद्राश्च मुमुक्षवः । वसवो योगिनः सिद्धा नागा गंधर्वराक्षसाः ।।२३।। मद्वरेण करिष्यंति कल्पे-कल्पे लयावधि।

भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप में प्राप्त करने की कामना की ।।११।। सर्वज्ञ भगवान् ने सबों की माता उस देवी की भावना को जान लिया और सुखद परिणाम वाले हितकारी तथा सत्य बात उनसे कहा ।।१२।। **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**– हे देवि ! मेरे अंशभूत तथा चार भुजाओं वाले नारायण की आप सेवा करें । वे मेरे ही समान सुन्दर युवक तथा सभी गुणों से युक्त हैं ।।१३।। वे कामिनियों की कामना को जानकर उसको पूरा करने वाले हैं । वे करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर और लीला से समलंकृत ईश्वर हैं ।।१४।। हे कान्ते ! यदि तुम मुझे अपना पति बनाकर यहाँ रहना चाहती हो तो राधा तुमसे बलवती हैं, अतएव तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ।।१५।। हे सरस्वती ! जो जिससे बलवान् है, कोई अस्वतन्त्र व्यक्ति उसकी उससे रक्षा कैसे कर सकता है ?।।१६।। मैं सर्वेश हूँ सबों का प्रशासक हूँ, किन्तु मैं राधा की इच्छा को रोक नहीं सकता हूँ । उनमें मेरे ही समान, रूप, गुण और तेज है ।।१७।। वे मेरे प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हैं । कोई भी अपने प्राणों का त्याग कैसे कर सकता है ? किसको अपना पुत्र प्राण से भी प्रिय नहीं होता है ।।१८।। हे भद्रे ! तुम वैकुण्ठ चली जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा । नारायण को ही अपना पति बनाकर दीर्घकाल तक सुख का अनुभव करो ।।१९।। तुम्हारे ही समान तेज, रूप और गुण मे सम्पन्न, लोभ, मोह, काम, क्रोध, मन एवं हिंसा से रहित नारायण की पत्नी लक्ष्मी हैं ।।२०।। उसके साथ तुम्हारा दीर्घकाल तक सुख पूर्वक समय बीत जायेगा । श्रीहरि तुम दोनों का एक ही समान महत्त्व देंगे ।।२१।। प्रत्येक विश्व में माघ शुक्ल पञ्चमी के दिन विद्यारम्भ के समय तुम्हारी पूजा बड़े धूम-धाम से होगी ।।२२।। सभी मनुष्य, मनुगण, देवता, मुनीन्द्र मुमुक्षुपुरुष, वसुगण, योगिजन, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, तथा राक्षस ।।२३।।

भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश ॥२४॥ कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च । जितेंद्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च॥२५॥ कृत्वा सुवर्णगुटिकां गंधचन्दनचर्चिताम् । कवचं ते ग्रहीष्यंति कंठे वा दक्षिणे भुजे ॥२६॥ पठिष्यंति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते । इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम् ॥२७॥ ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः । अनंतश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥२८॥ सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः । बभूव पूजिता नित्यं सर्वलोकैः सरस्वती ॥२९॥ नारद उवाच– **पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरन्तरम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चन्दनादिकम् ॥३०॥ वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम । वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥३१॥** श्रीनारायण उवाच– **शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम् । जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्वितम् ॥३२॥ माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारंभदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः ॥३३॥ स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः । स्वशाखोक्तविधानेन तांत्रिकेणाथवा पुनः ॥३४॥ गणेशं पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत् । ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे ध्रुवम् ॥३५॥ ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्व्रती । पूजोपयुक्तनैवेद्यं यच्च वेदनिरूपितम् ॥३६॥ वक्ष्यामि सौम्य तत्किंचिद्यथाधीतं यथागमम् । नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम्॥३७॥**

तुम्हारी पूजा प्रलय काल पर्यन्त प्रत्येक कल्प में करेंगे, यह मेरा वरदान है । वे भक्ति पूर्वक षोडशोपचार समर्पित करेंगे ॥२४॥ जितेन्द्रिय पुरुष तुम्हारी पूजा कण्वशाखा में प्रोक्त विधि से कलश में तथा पुस्तक में करेंगे ॥२५॥ वे सुवर्ण की गुल्ली बनाकर उसमें गन्ध तथा चन्दन से तुम्हारी पूजा करके तुम्हारे कवच को अपने गले में तथा दाहिनी भुजा में धारण करेंगे ॥२६॥ और पूजित कवच का पूजा के समय पाठ करेंगे । इस तरह से भगवान् कृष्ण ने सबों से पूजित उस सरस्वती देवी की पूजा की ॥२७॥ उसके बाद सरस्वती की पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओं ने की । उसके बाद अनन्त, धर्म, मुनीन्द्र तथा सनकादिक महर्षियों ने की ॥२८॥ सभी देवता, मुनिगण, तथा मनु आदि राजाओं ने सरस्वती की पूजा की । इस तरह से सरस्वती सभी संसारियों से पूजित हुयीं ॥२९॥ **नारदजी ने कहा–** हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ! आप मुझे सरस्वती की पूजा के विधान, उनके कवच, ध्यान तथा सदा पूजोपयुक्त नैवेद्य, पुष्प एवं चन्दन आदि को बतलाये । मुझे इन सबों को जानने का कौतूहल है । मेरे मन में सर्वदा होता है कि ये सब कौन सी वस्तु हैं ॥३०-३१॥ **श्रीनारायण ने कहा–** आप सुनें ! मैं आपको कण्वशाखोक्त जगन्माता सरस्वती की पूजा विधि से युक्त पद्धति को बतला रहा हूँ ॥३२॥ माघ शुक्ल पञ्चमी को तथा विद्यारम्भ के दिन एक दिन पहले पूर्वाह्ण में नित्य कर्म [illegible] पवित्र रहे ॥३३॥ दूसरे दिन स्नान तथा नित्यक्रिया करके पहले गणेशजी की पूजा करे उसके बाद अपनी इष्ट देवता सरस्वती की पूजा करे । पहले आगे कहे जाने वाले ध्यान से सरस्वती का ध्यान करके बाह्य घट में देवी की स्थापना करे ॥३४-३५॥ देवी का ध्यान तथा उनकी षोडशोपचार पूजा करे और उनको पूजोपयुक्त वेदविहित नैवेद्य निवेदित करे ॥३६॥ हे सौम्य!

इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु । स्वस्तिकं शर्करा शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् ॥३८॥ अच्छिन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् । घृतसैन्धवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम् ॥३९॥ यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम् । पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च ॥४०॥ परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् । नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम् ॥४१॥ पक्वरंभाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् । कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लं च संस्कृतम् ॥४२॥ सुगंधं शुक्लपुष्पं च सुगन्धं शुक्लचंदनम् । नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुन्दरं मुने ॥४३॥ माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम् । यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुंदरम् ॥४४॥ तन्निबोध महाभाग भ्रमभंजनकारणम् । सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् ॥४५॥ कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥४६॥ रत्नसारेन्द्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम्। सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥४७॥ वंदे भक्त्या वंदितां च मुनींद्रमनुमानवैः । एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः ॥४८॥ संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दंडवद्भुवि । येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने ॥४९॥ विद्यारम्भे च वर्षान्ते सर्वेषां पञ्चमीदिने । सर्वोपयुक्तं मूलं

अध्ययनानुकूल शास्त्रोक्त नैवेद्यों को बतलाता हूँ । नवनीत, दधि, दुग्ध, लाजा, तिल का लड्डू ॥३७॥ ईख, ईख का रस, पका हुआ गुड़, खाँड, उजले धान का अक्षत ॥३८॥ उजले धान का समूचा चिउड़ा, उजली मिठाई, घी में बना हुमा नमकीन, तथा हविष्यान्न ॥३९॥ घृत यव एवं गेहूँ के आँटे से बना घृतमिश्रित चूर्ण, पके हुए स्वच्छ केले का पिष्टक, स्वस्तिक का चूर्ण, खीर, घी से बनी हुई स्वादिष्ट मिठाई, नारियल, नारियल का जल, कसार, मूली, अर्द्रक, पके केले का फल, सुन्दर श्रीफल, बैर का फल एवं देश एवं कालानुसार सुन्दर पका हुआ उजला फल ॥४०-४२॥ सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित श्वेत चन्दन, नवीन श्वेत वस्त्र तथा सुन्दर शङ्ख ॥४३॥ श्वेत पुष्पों से बनी माला, श्वेतहार, आभूषण, । ये सब वस्तुएँ सरस्वती को समर्पित करना चाहिए। वेदों में जैसा सुन्दर ध्यान वर्णित है ॥४४॥ हे महाभाग भ्रम को मिटाने वाले उस ध्यान को आप सुनें । शुक्ल वर्ण वाली, मुस्काती हुई, अत्यन्त मनोहर॥४५॥ करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त परिपुष्ट विग्रह वाली, अग्नि में नहीं जलने वाले वस्त्रों को धारण करने वाली, वीणा तथा पुस्तक को धारण करने वाली, रत्नसार निर्मित नवीन आभूषणों से समलंकृत, देवताओं एवं ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि से पूजित, मुनीन्द्रों, मनुओं एवं मानवों से वन्दित सरस्वती देवी की मैं वन्दना करता हूँ ॥४६-४७॥ इस तरह से ध्यान करके मूल मन्त्र से सारी वस्तुओं, को विद्वान पुरुष सरस्वती को समर्पित कर दे ॥४८॥ इस तरह से स्तुति करके कवच को धारण करना चाहिए और सरस्वती को साष्टाङ्ग प्रणाम करें । जिन लोगों को सरस्वती इष्ट देवी हैं, उनको यह काम प्रतिदिन करना चाहिए ॥४९॥ श्रीं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै स्वाहा; यह सरस्वती का वैदिक मूल मन्त्र है । यह विद्यारम्भ के दिन तथा माघशुक्ल पञ्चमी

च वैदिकाष्टाक्षरः परः ॥५०॥ येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च । सरस्वतीचतुर्थ्यंत वह्निजायांतमेव च ॥५१॥ लक्ष्मीमायादिकं चैव मंत्रोऽयं कल्पपादपः । पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ॥५२॥ प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते । भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥५३॥ चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा । भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे ॥५४॥ आस्तिकस्य जराकारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ । विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥५५॥ शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा । सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥५६॥ शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते । ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥५७॥ चतुर्लक्षजपेनैव मंत्रः सिद्धो भवेन्नृणाम् । यदि स्यान्मंत्रसिद्धो हि बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५८॥ कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा । विश्वस्रष्टा विश्वजयं भृगवे गंधमादने॥५९॥ भृगुरुवाच– **ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥६०॥ सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो । अयातयामं मंत्राणां समूहसंयुतं परम् ॥६१॥** ब्रह्मोवाच– **शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं**

को इसका जप करना सबों के लिए उपयोगी है ॥५०॥ अथवा जिसको मूलमन्त्र के रूप में जिस मन्त्र का उपदेश दिया गया हो, वही मन्त्र उसके लिए मूलमन्त्र हो जाता है उसके अन्त में सरस्वत्यै स्वाहा जोड़ देना चाहिए ॥५१॥ लक्ष्मी और माया आदि की आराधना के लिए यह मन्त्र कल्पवृक्ष के समान अभिलषित फल प्रदान करने वाला होता है । प्राचीन काल में महर्षि वाल्मीकि को इस मन्त्र का भगवान् नारायण ने गंगातट पर उपदेश प्रदान किया था॥५२॥ महर्षि भृगु ने सूर्यग्रहण के समय इस मन्त्र का शुक्राचार्य को पुष्कर क्षेत्र में उपदेश दिया था । चन्द्रग्रहण के अवसर पर महर्षि मारीच ने बृहस्पति को इस मन्त्र का उपदेश दिया था । प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने बदरिकाश्रम में इस मन्त्र का उपदेश भृगु महर्षि को दिया था ॥५४॥ जरत्कारु महर्षि ने इस मन्त्र का आस्तिक को क्षीरसागर के सन्निकट उपदेश दिया था । विभाण्डक महर्षि ने इस मन्त्र का उपदेश ऋष्यशृङ्ग को सुमेरु पर्वत पर दिया था ॥५५॥ भगवान् सूर्य ने महर्षि याज्ञवल्क्य तथा महर्षि कात्यायन को इस मन्त्र का उपदेश दिया था ॥५६॥ शेष ने इस मन्त्र का उपदेश महर्षि पाणिनि तथा महर्षि भारद्वाज को और शाकटायन महर्षि को सुतल लोक में बलि की सभा में दिया था ॥५७॥ चार लाख जप करने से मनुष्यों को यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है । जिसको यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, वह मनुष्य बृहस्पति के समान हो जाता है ॥५८॥ हे विप्रेन्द्र ! अब आप सरस्वती कवच को सुनें । इस कवच का उपदेश विश्वस्रष्टा ब्रह्मा जी ने भृगु महर्षि को गन्धमादन पर्वत पर दिया था । **भृगु महर्षि ने कहा–** हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञान में निपुण, सर्वज्ञ सबों को उत्पन्न करने वाले, हे सर्वेश ! सर्वपूजित, ब्रह्माजी ॥६०॥ आप मुझे विश्वविजय नामक सरस्वती कवच का उपदेश दें । यह अयातयाम (कभी भी विस्मृत नहीं होने वाले) मन्त्रों का श्रेष्ठ संग्रह स्वरूप हैं ॥६१॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे वत्स ! सुनो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले

श्रुतिपूजितम् ॥६२॥ उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने । रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले ॥६३॥ अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम् । अश्रुताद्भुतमंत्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६४॥ यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः । यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः ॥६५॥ पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवींद्रो वाल्मिको मुनिः । स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥६६॥ कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः । ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥६७॥ कृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च । चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥६८॥ शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः । यद्धृत्वा पठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥६९॥ ऋष्यशृंगो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा । जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजितः ॥७०॥ कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः । स्वयं छंदश्च बृहती देवता शारदाऽम्बिका॥७१॥ सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७२॥ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः । श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥७३॥ ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरंतरम् । ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं

कवच को मैं बतला रहा हूँ । यह कवच श्रुतियों के सार स्वरूप, सुनने में सुखद; श्रुतियों में प्रोक्त तथा श्रुतियों से पूजित है ॥६२॥ रासेश्वर तथा व्यापक भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक में रास मण्डल के रास में इसका उपदेश मुझे वृन्दावन नामक वन में दिया था ॥६३॥ कल्पवृक्ष के समान यह अत्यन्त गोपनीय है । यह अश्रुत तथा अद्भुत मन्त्रों के समूह से युक्त है ॥६४॥ इसको धारण करके इसके प्रभाव से ही शुक्राचार्य सभी दैत्यों में पूज्य हो गये । इसको धारण करके पढ़ने के कारण बृहस्पति सबसे अधिक बुद्धिमान हैं ॥६५॥ पढ़ने तथा धारण करने के कारण ही महर्षि वाल्मीकि वाग्मी और कवीन्द्र हो गये । इसको ही धारण करके वैवस्वत मनु सर्वपूज्य हो गये ॥६६॥ कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष एवं कात्यायन इस कवच को ही धारण करके ग्रन्थ निर्माण में सफल हुए ॥६७॥ स्वयं महर्षि कृष्णद्वैपायन भी इस कवच को ही धारण करके बिना प्रयास के ही वेदों का विभाग करके सम्पूर्ण पुराणों की रचना करने में सफल हुए ॥६८॥ शातातप संवर्त, वसिष्ठ, पराशर तथा याज्ञवल्क्य महर्षि इस कवच को ही धारण करके ग्रन्थ निर्माण करने में सफल हो सके ॥६९॥ इस कवच को धारण करने के कारण ही ऋष्यशृङ्ग भरद्वाज, आस्तिक, देवल, जैगीषव्य तथा ययाति सर्वत्र पूजित हुए ॥७०॥ हे विप्रेन्द्र इस कवच के ऋषि प्रजापति हैं, बृहती छन्द है तथा शारदाम्बिका इसके देवता हैं ॥७१॥ इसका विनियोग (उपयोग) सम्पूर्ण तत्त्वों के परिज्ञान पूर्वक सम्पूर्ण अर्थों के साधन तथा समस्त कविताओं के विवेचन में होता है ॥७२॥ श्रीं ह्रीं स्वरूपिणी सरस्वती देवी मेरे शिर की सब ओर से रक्षा करें । श्रीं स्वरूपिणी वाग्देवता सदा मेरे ललाट की रक्षा करें ॥७३॥ ओं ह्रीं स्वरूपिणी सरस्वती देवी सदा मेरे दोनों कानों की रक्षा करें । श्रीं ह्रीं स्वरूपिणी सरस्वती देवी मेरे

सदाऽवतु ॥७४॥ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु । ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ॥७५॥ ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दंतपंक्तिं सदाऽवतु । ऐमित्येकाक्षरो मंत्रो मम कंठं सदाऽवतु ॥७६॥ ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥७७॥ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् । ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदाऽवतु ॥७८॥ ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु । ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥७९॥ ॐ सर्वकंठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु । ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ॥८०॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा । सततं मंत्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥८१॥ ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मंत्रो नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु । ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥८२॥ ॐ सर्वांबिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु । ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ॥८३॥ ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु । ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ॥८४॥ ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु । ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥८५॥ इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममंत्रौघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥८६॥ पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गंधमादने।

दोनों नेत्रों की रक्षा करें ॥७४॥ वाग्वादिनी सरस्वती देवी मेरी नाक की रक्षा करें । विद्याधिष्ठात्री देवी सदा मेरे ओठों की रक्षा करें ॥७५॥ ब्राह्मीदेवी मेरे दंतपंक्ति की रक्षा करें । ऐम् यह एक अक्षर वाला मन्त्र मेरे कण्ठ की रक्षा करें ॥७६॥ श्रीं ह्रीं यह मन्त्र मेरी ग्रीवा तथा दोनों कन्धों की रक्षा करें । विद्याधिष्ठातृ देवी सदा मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करें ॥७६॥ विद्या की स्वामिनी मेरी नाभि की रक्षा करें । वाणी देवी मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें ॥७८॥ सर्ववर्णात्मिका सरस्वती देवी मेरे दोनों पैरों की रक्षा करें । वागधिष्ठातृ देवी मेरी सभी वस्तुओं की रक्षा करें ॥७९॥ मेरी पूर्व दिशा में सबों के कण्ठ में निवास करने वाली सरस्वती देवी रक्षा करें । अग्नि कोण में मेरी रक्षा सबों की जिह्वा के अग्रभाग में निवास करने वाली सरस्वती देवी करें ॥८०॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं बुधजनन्यै स्वाहा यह मन्त्रराज सदा दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करे ॥८१॥ ऐं ह्रीं श्रीं यह तीन अक्षरों वाला मन्त्र सदा नैर्ऋत्य कोण में मेरी रक्षा करे। ओं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा यह मंत्र मेरी पश्चिम दिशा में रक्षा करे ॥८२॥ ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा यह मंत्र वायव्यकोण मे मेरी रक्षा करे । ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा यह मंत्र मेरी रक्षा सदा उत्तर दिशा में करे ॥८३॥ ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा यह मन्त्र मेरी रक्षा ईशान कोण में करे । ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा यह मन्त्र मेरी रक्षा ऊपर की दिशा में करे ॥८४॥ ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा यह मन्त्र मेरी रक्षा नीचे की दिशा में करे । ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा यह मन्त्र मेरी रक्षा सभी दिशाओं में करें ॥८५॥ हे विप्र मैंने इस प्रकार से ब्रह्ममन्त्र समूह रूपी विश्वविजय नामक ब्रह्मस्वरूप

तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥८७॥ गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः । प्रणम्य दंडवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥८८॥ पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् । यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥८९॥ महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ॥९०॥ इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने । स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वंदनं शृणु ॥९१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् । महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥१॥ गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह । तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम् ॥२॥ संप्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे । तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद**

कवच आपको बतलाया ॥८६॥ इसको मैंने प्राचीन काल में गन्धमादन पर्वत पर धर्म के मुख से सुना था । आपके स्नेह के कारण मैंने इसे बतलाया । इसे किसी को नहीं बतलाना चाहिए ॥८७॥ बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह वस्त्र, अलंकार तथा चन्दन से गुरु की विधि पूर्वकपूजन करके, उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करे । उसके बाद इसका उपदेश ग्रहण करे ॥८८॥ पाँच लाख जप करने से यह कवच सिद्ध हो जाता है । यदि कवच सिद्ध हो जाय तो इसके धारण करने वाला बृहस्पति के समान सिद्ध हो जाता है ॥८९॥ वह महावाग्मी कवीन्द्र तथा त्रैलोक्य विजयी हो जाता है । कवच की कृपा से वह सब को जीत सकता है ॥९०॥ हे मुने ! यह मैंने आपको कण्वशाखोक्त कवच सुनाया । अब आप स्तोत्र, ध्यान तथा पूजा की विधि को सुनें ॥९१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुरण के नवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

याज्ञवल्क्य महर्षि द्वारा सरस्वती की स्तुति

श्रीनारायण ने कहा– सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली सरस्वती की स्तुति सुनें । प्राचीन काल में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसी स्तुति से सरस्वती की स्तुति की थी ॥१॥ वे मुनि अपने गुरु के शाप के कारण विद्याविहीन हो गये और अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् सूर्य के पास गये । उन्होंने तपस्या

च मुहुर्मुहुः ॥३॥ सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदाङ्गमीश्वरः । उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥ तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यंतर्धानं चकार सः । मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥५॥ याज्ञवल्क्य उवाच— **कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम् । गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥६॥ ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् । ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥७॥ प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् । लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥८॥ यथांकुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः । ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतिरूपा सनातनी ॥९॥ सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः । विसर्गबिंदुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ॥१०॥ तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यं नमो नमः । व्याख्यास्वरूपा सा देवी वाक्याधिष्ठातृरूपिणी ॥११॥ यया विना प्रसंख्यावान्संख्यां कर्तुं न शक्यते । कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१२॥ भ्रमसिद्धांतरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः । स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥१३॥ प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमोनमः । सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥१४॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः । तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः॥१५॥ उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते । स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥१६॥ चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धांतमुत्तमम्।**

करके लोलार्क कुण्ड पर सूर्य का दर्शन किया । वे बार-बार रोते हुए सूर्य की स्तुति किये ॥२-३॥ सूर्य ने महर्षि याज्ञवल्क्य को वेदों और वेदाङ्गों को पढ़ाया । उन्होंने महर्षि याज्ञवल्क्य से कहा कि स्मृति प्राप्त करने के लिए तुम भक्तिपूर्वक सरस्वती देवीं की स्तुति करो ॥४॥ इस तरह से याज्ञवल्क्य को कहकर दीनों के स्वामी भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये । मुनि ने स्नान करके अत्यन्त नम्रतापूर्वक सरस्वती की स्तुति की ॥५॥ **याज्ञवल्क्य ने कहा—** हे माँ! मैं तेजहीन हो गया हूँ । मेरे ऊपर आप कृपा करें । गुरु के शाप के कारण मेरी स्मृति भ्रष्ट हो गयी हैं । मै विद्याविहीन होने के कारण दुःखी हूँ ॥६॥ आप मुझे ज्ञान, स्मृति, विद्या तथा शिष्यों को शिक्षा देने योग्य शक्ति प्रदान करें । मुझे ग्रन्थ प्रणयन करने की शक्ति प्रदान करके आप मुझे शिष्य बना लें ॥७॥ सत्पुरुषों की सभा में विचार करने की क्षमता तथा प्रतिभा प्रदान करें ॥९॥ जो सभी विद्याओं की अधिष्ठातृ देवी हैं, उन सरस्वती देवी को बारम्बार नमस्कार हैं जो विसर्ग, विन्दु तथा मात्रा में अधिष्ठान स्वरूपा हैं । उन सरस्वती देवी को बारम्बार नमस्कार हैं । वे ही देवी व्याख्यास्वरूप तथा वाक्य की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥१०-११॥ जिनके विना गणितज्ञ व्यक्ति गणना करने में समर्थ नहीं होता है । जो काल तथा संख्या स्वरूपिणी हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ जो भ्रमरूपा तथा सिद्धान्तस्वरूपा दोनों हैं, उन देवी को नमस्कार है । स्मृतिशक्ति ज्ञानशक्ति तथा बुद्धिशक्ति स्वरूपिणी ॥१३॥ प्रतिभाशक्ति तथा कल्पनाशक्ति स्वरूपिणी हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है । एक बार महर्षि सनत्कुमार ने जब ब्रह्माजी से ज्ञान के विषय में पूछा तो उस समय ब्रह्माजी भी चुप रहे गये । वे सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में असमर्थ हो गये । उस समय वहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण आये ॥१४-१५॥ उन्होंने कहा

यदाऽप्यनंतं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा ॥१७॥ बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धांतं कर्तुमक्षमः । तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥१८॥ ततश्चकार सिद्धांतं निर्मलं भ्रमभंजनम् । व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा ॥१९॥ मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम् । तदा चकार सिद्धांतं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥२०॥ संप्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमांधध्वंसदीपकम् । पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः ॥२१॥ तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवींद्रो बभूव ह ॥२२॥ तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः । यदा महेंद्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥२३॥ क्षणं तामेव संचिंत्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेंद्रश्च बृहस्पतिम् ॥२४॥ दिव्यं वर्षसहस्त्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्त्रकम् ॥२५॥ उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् । अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥२६॥ ते च तां परिसंचिंत्य प्रवर्तंते सुरेश्वरीम् । त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ॥२७॥ दैत्येंद्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । जडीभूतः सहस्त्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ॥२८॥ यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः । इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च

प्रजापते ! आप सरस्वती की स्तुति करें । परमात्मा की आज्ञा प्राप्त कर ब्रह्माजी ने सरस्वती की स्तुति की ॥१६॥ उसके बाद सरस्वती की कृपा से वे सिद्धान्त का निरूपण कर सके । इसी तरह पृथिवी देवी ने एक ज्ञान के विषय में शेष से प्रश्न किया ॥१७॥ वे भी सिद्धान्त का निरूपण करने में असमर्थ होने के कारण मूक के समान हो गये । उस समय भयभीत बने हुए शेषजी महर्षि कश्यप की आज्ञा से सरस्वती की स्तुति किए ॥१८॥ उसके पश्चात् वे ज्ञान प्राप्त करके भ्रमनिवारक सिद्धान्त का निरूपण कर सके । महर्षि व्यास ने भी जब महर्षि वाल्मीकि से पुराणसूत्रों के विषय में पूछा तो ॥१९॥ वे भी मौन होकर सरस्वती देवी का स्मरण किए और सरस्वती के वरदान से सिद्धान्त का निरूपण कर सके ॥२०॥ भ्रमस्वरूप अंधकार के लिए दीपक के समान निर्मल ज्ञान को प्राप्त करके पुराण सूत्र का श्रवण करके, कृष्ण की कला से उत्पन्न व्यासजी ॥२१॥ पुष्कर क्षेत्र में जाकर सौ वर्ष तक ध्यान किए और सरस्वती जी का वरदान प्राप्त करके सत्कवीन्द्र बन गये ॥२२॥ उसके बाद उन्होंने वेदों का विभाग किया और पुराणों की रचना भी किया । जब इन्द्र ने सदाशिव से तत्त्वज्ञान के विषय में प्रश्न किया उस समय सदाशिव भी क्षणभर सरस्वती देवी का ही ध्यान करके इन्द्र को तत्त्वज्ञान प्रदान किए । इन्द्र ने जब व्याकरण शास्त्र के विषय में बृहस्पति से प्रश्न किया ॥२३-२४॥ उस समय बृहस्पति ने सौ दिव्यवर्षों तक सरस्वती का ध्यान किया । उस समय सरस्वतीजी से वरदान प्राप्त करके वे हजार दिव्यवर्षों तक इन्द्र को शब्दशास्त्र तथा उसके अर्थ का उपदेश करते रहे । बृहस्पति ने जिन शिष्यों को पढ़ाया तथा जिन मुनीश्वरों ने अध्ययन किया । वे सब के सब सुरेश्वरी सरस्वती देवी का ही ध्यान करके सफल हो सके । हे मातः ! आप मुनीन्द्रों तथा मनुओं से संस्तुत एवं पूजित हैं ॥२५-२७॥ दैत्येन्द्रों तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवताओं से भी आप पूजित हैं । जब हजार मुख वाले शेष, पाँच मुख

भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥२९॥ प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः । ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाऽप्युवाच तम् ॥३०॥ सुकवींद्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह । याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ॥३१॥ सुकवींद्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् । महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ॥३२॥ स पंडितश्च मेधावी सुकवींद्रो भवेद्ध्रुवम् ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **सरस्वती तु वैकुण्ठे स्वयं नारायणांतिके । गंगाशापेन कलहात्कलया भारते सरित् ॥१॥ पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥२॥ तपस्विनां तपोरूपा तपसः फलरूपिणी । कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥३॥**

वाले शिवजी, चार मुख वाले ब्रह्माजी आपकी स्तुति करने में जड़ीभूत हो गये तो एक मुख वाला मनुष्य मैं आपकी स्तुति क्या कर सकता हूँ ?। इस तरह से कहकर भक्तिपूर्वक कन्धा झुकाकर ॥२८-२९॥ याज्ञवल्क्य महर्षि सरस्वती देवी को प्रणाम किए और निराहार रहकर बार-बार रोते रहे । उस समय ज्योतिः स्वरूपिणी महामाया ने उन्हें दर्शन दिया और कहा ॥३०॥ कि तुम सुकवियों में श्रेष्ठ हो जाओ और उसके बाद वे वैकुण्ठ चली गयीं । महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत इस स्तोत्र को जो पढ़े ॥३१॥ वह सुकवियों में श्रेष्ठ और महावक्ता हो जाये । एक वर्ष तक पाठ करने वाला दुर्बुद्धि मनुष्य भी सुन्दर बुद्धि वाला हो जाय ॥३२॥ वह पण्डित, मेधावी तथा सुकवीन्द्र हो जाय ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा का परस्पर में शाप के कारण भारत वर्ष में अवतरण

श्रीनारायण ने कहा– सरस्वती स्वयं वैकुण्ठ में भगवान् नारायण के पास रहती हैं । कलह के कारण गङ्गा के शाप से वे अपनी एक कला से भारतवर्ष में ॥१॥ पवित्र तथा पुण्य प्रदान करने वाली, पुण्यतीर्थ स्वरूपिणी पुण्यवान् पुरुषों से सेवनीय नदी के रूप में परिणत हो गयीं ॥२॥ वे तपस्वियों के तपः

ज्ञानात्सरस्वतीतोये मृता ये मानवा भुवि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥ भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥५॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये । व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥६॥ अनुषंगेण यः स्नातो हेतुना श्रद्धयाऽपि वा । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥ सरस्वतीमनुं तत्रमासमेकं च यो जपेत् । महामूर्खः कवींद्रश्च स भवेन्नात्र संशयः ॥८॥ नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुंडयन्नरः । न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥९॥ इत्येवं कथितं किंचिद्भारते गुणकीर्तनम् । सुखदं कामदं सारं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥१०॥ सूत उवाच– **नारायणवचः श्रुत्वा, नारदो मुनिसत्तमः । पुनः पप्रच्छ संदेहमिमं शौनक सत्वरम् ॥११॥** नारद उवाच– **कथं सरस्वती देवी गङ्गाशापेन भारते । कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ॥१२॥ श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम । कथामृते न मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥ कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् । सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा ॥१४॥ तेजस्विनोर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् । सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१५॥** श्रीनारायण

स्वरूप तथा तपस्या के फलस्वरूप हैं । किए गये पाप रूपी इन्धन को जलाकर भस्म कर देने के लिए जलती हुयी अग्नि के समान हैं ॥३॥ संसार के जो लोग सरस्वती के तट में इनकी महिमा को जानकर अपने प्राण का त्याग करते हैं उनकी वैकुण्ठ लोक में दीर्घकाल पर्यन्त श्रीहरि की सभा में स्थिति होती है ॥४॥ भारत में यदि किसी ने पाप किया है तो उस पाप का विनाश स॰स्वती नदी में स्नान करने से विनष्ट हो जाता है । वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में दीर्घ काल तक निवास करता है ॥५॥ चातुर्मास्य में, पूर्णिमा तिथि को, अक्षय नवमी के दिन, किसी क्षयतिथि को,व्यतिपात योग में, ग्रहण के अवसर पर अथवा किसी अन्य पवित्र दिन को ॥६॥ यदि कोई आनुषंङ्गिक रूप से अथवा श्रद्धापूर्वक सरस्वती नदी में स्नान करता है तो वह वैकुण्ठलोक में जाकर श्रीहरि के सारूप्य को प्राप्त कर लेता है ॥७॥ सरस्वती नदी के तट पर जाकर यदि कोई एकमास तक सरस्वती के मन्त्र का जप करता है तो ऐसा महामूर्ख भी कवीन्द्र बन जाता है । इसमें कोई भी संशय नहीं हैं ॥८॥ जो व्यक्ति क्षौरकर्म कराकर निरन्तर सरस्वती नदी के जल में स्नान करता है, वह कभी माता के गर्भ में निवास नहीं करता है । हे नारदजी ! इस तरह से मैंने भारत के गुणों का वर्णन किया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?॥१०॥ **सूतजी ने शौनकादिक ऋषियों से कहा–** भगवान् नारायण की वाणी को सुनकर नारद मुनि ने शीघ्र ही यह पूछा ॥११॥ क्या कारण था कि सरस्वती देवी कलह के कारण गङ्गा के शाप से अपने एक अंश से पवित्र नदी हो गयीं ॥१२॥ श्रुतियों के सारभूत अर्थ को सुनने से मेरा कोतूहल बढ़ता ही जाता है । कथामृत का पान करने से मेरी तृप्ति नहीं होती है । कौन ऐसा व्यक्ति है जो कल्याण प्राप्त करने से तृप्त हो जाय ॥१३॥ गङ्गाजी ने पूजनीय सरस्वती देवी को क्यों शाप दे दिया ? सरस्वती देवी तो सत्त्व प्रकृति वाली, पुण्य प्रदान करने वाली, तथा सदा कल्याण करने वाली हैं ॥१४॥

उवाच– **शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥१६॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि। प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठंति सततं हरिसन्निधौ ॥१७॥ चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम् । सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥१८॥ विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा । क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥१९॥ बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता । क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शांता बभूव ह ॥२०॥ उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना । कुपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥२१॥**
सरस्वत्युवाच– **सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥२२॥ ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर । कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो ॥२३॥ गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चास्ति सुसंमता । क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया॥२४॥ किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम् । निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवंचिता ॥२५॥ त्वं सर्वे सत्त्वरूपं च ये वदंति मनीषिणः । ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानंति मतिं तव ॥२६॥ सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् । मनसा च समालोच्य स जगाम**

इन दोनों तेजस्वियों में होने वाले विवाद का कारण सुनने में मधुर तथा पुराणों में दुर्लभ है अतएव आप मुझे उसे बतलाइये ॥१५॥ **श्रीनारायण ने कहा–** हे नारदजी ! इस पुरानी कथा को मैं बतलाता हूँ, उसे आप सुनें । इस कथा को सुनने मात्र से प्राणी पाप मुक्त हो जाता है ॥१६॥ लक्ष्मी, सरस्वती तथा गङ्गा ये तीनों श्रीहरि की पत्नियाँ हैं । ये तीनों प्रेमपूर्वक श्रीहरि के सन्निकट रहती हैं ॥१७॥ एक बार की बात है कि गङ्गा देवी श्रीहरि के मुख को देखकर बार-बार मुस्कुराते हुए कामना पूर्वक उनपर कटाक्षपात कर रही थीं ॥१८॥ उस समय श्रीभगवान् गङ्गा के मुख को देखकर जोर से हँस पड़े । उसको देखकर भी लक्ष्मी ने क्षमा कर दिया किन्तु सरस्वती ने नहीं क्षमा किया ॥१९॥ सत्त्वगुण सम्पन्न लक्ष्मी ने सरस्वती को मुस्कुराते हुए समझाया, किन्तु क्रोधित सरस्वती शान्त नहीं हुईं ॥२०॥ सरस्वती के मुख और नेत्र दोनों क्रोध से लाल हो गये थे । काम के वेग से उत्पन्न क्रोध से उनके ओठ काँप रहे थे । उन्होंने भगवान् से कहा ॥२१॥ **सरस्वती ने कहा–** धार्मिक वरिष्ठ तथा अच्छे पति को अपनी पत्नियों के प्रति समान बुद्धि रखनी चाहिए और जो दुष्ट पति होता है, उसकी विषम बुद्धि होती हैं ॥२२॥ हे गदाधर ! इस बात का पता चल गया है कि आपका गङ्गा के प्रति अधिक प्रेम है । उसी तरह से आपका लक्ष्मी के प्रति भी प्रेम है । मेरे ऊपर आपका कोई प्रेम नहीं है ॥२३॥ लक्ष्मी का गङ्गा से प्रेम भी है । इसीलिए लक्ष्मी ने गङ्गा को क्षमा भी कर दिया ॥२४॥ मैं तो अभागिनी हूँ । मेरे जीने से क्या लाभ है ? जिस पर पति का प्रेम न हो उस नारी का जीवन व्यर्थ है ॥२५॥ जो लोग आपको सात्त्विक कहते हैं वे मूर्ख हैं । वे न तो आपकी बुद्धि को जानते हैं और न वे वेदज्ञ हैं ॥२६॥ सरस्वती की वाणी सुनकर और उन्हें क्रुद्ध जानकर श्रीहरि वहाँ से अन्यत्र

बहिः सभाम् ॥२७॥ गते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुषा । वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम् ॥२८॥ हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम् । अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥२९॥ मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ । किं करिष्यति ते कान्तो ममैव कांतवल्लभे ॥३०॥ इत्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशमाक्रष्टुमुद्यता । वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता ॥३१॥ शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती । वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥३२॥ विपरीतं ततो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि । संतिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥३३॥ शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह । तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥३४॥ अत्युन्नतां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम् । उवाच गंगा तां देवीं पद्मां चारक्तलोचनाम् ॥३५॥ श्रीगङ्गोवाच– त्वमुत्सृज महोग्रां च पद्मे किं मे करिष्यति । दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी ॥३६॥ वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया । यावती योग्यता चास्या यावती शक्तिरेव च ॥३७॥ तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी । स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति ॥३८॥ जानंतु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति । इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति ॥३९॥ सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह । अधोमर्त्यं सा प्रयातु संति यत्रैव पापिनः ॥४०॥ कलौ

चले गये ॥२७॥ नारायण के चले जाने पर सरस्वती ने क्रोध करके गङ्गा से निर्भय होकर कहा । सरस्वती ने गङ्गा से अत्यन्त कठोर बातों को कहा ॥२८॥ हे निर्लज्जे ! सकामे ! तुम स्वामी का गर्व करती हो क्या ? अपने ऊपर स्वामी का अधिक प्रेम बतलाना चाहती हो ॥२९॥ श्रीहरि के सामने ही मैं तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर दूँगी । तुम्हारे पति हमारा क्या बिगाड़ लेंगे ॥३०॥ यह कहकर सरस्वती ने गङ्गा की बाल खीचना चाहा कि बीच में आकर लक्ष्मी ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया ॥३१॥ इससे क्रुद्ध होकर सरस्वती ने लक्ष्मी को शाप दे दिया कि तुम नदी और वृक्ष हो जाओगी ॥३२॥ तुमने गङ्गा के विपरीत आचरण को देखकर भी उसे कुछ भी नहीं कहा अपितु तुम वृक्ष तथा नदी के समान जड़ हो गयीं ॥३३॥ शाप को सुनकर भी लक्ष्मी ने न तो शाप ही दिया और न क्रुद्ध हुयी । वे दुःखी होकर खड़ी रहीं और उन्होंने सरस्वती की हाथ को पकड़ रखा था ॥३॥ इस आचरण को गङ्गा नहीं देख सकीं । उन्होंने अत्यंत क्रुद्ध सरस्वती से कहा ॥३५॥ **श्रीगङ्गा ने कहा–** पद्मे ! तुम इस चण्डी को छोड़ दो, यह मेरा क्या कर लेगी ? यह दुःशील, मुखर और वाचाल है ॥३६॥ यह वाणी की अधिष्ठात्री देवी है । इसको कलह करना ही अच्छा लगता है । अपनी योग्यता के अनुसार यह मेरे साथ झगड़ा कर ले । यह मुझको अपना बल दिखाना चाहती है ॥३७-३८॥ आज संसार इसके तथा मेरे दोनों के पराक्रम को देख ले । यह कहकर गङ्गा देवी ने सरस्वती को शाप देते हुए कहा ॥३९॥ इसने तुमको नदी होने का शाप दिया है, यह भी नदी होकर पापियों के लोक मर्त्यलोक में चली जाय ॥४०॥

तेषां च पापानि ग्रहीष्यति न संशयः । इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ॥४१॥ त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि । एतस्मिन्नंतरे तत्र भगवानाजगाम ह ॥४२॥ चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः । सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि ॥४३॥ बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् । श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च ॥४४॥ उवाचदुःखितास्ताश्च वाचं सामयिकीं विभुः । श्रीभगवानुवाच– **लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे ॥४५॥ अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि । तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि ॥४६॥ मदंशस्यासुरस्यैव शंखचूडस्य कामिनी । भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः ॥४७॥ त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते । कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने ॥४८॥ भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव । गङ्गे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी ॥४९॥ भारतं भारतीशापात्पापदाहाय पापिनाम् । भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते ॥५०॥ नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले । मदंशस्य समुद्रस्य जाया जाये ममाज्ञया ॥५१॥ मत्कलांशस्य भूपस्य शंतनोश्च सुरेश्वरि । गङ्गा शापेन कलया भारतं गच्छ भारति ॥५२॥ कलहस्य फलं भुंक्ष्व**

कलियुग में यह उन पापियों के पाप को लेगी इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है । इस तरह से गङ्गा की बात सुनकर सरस्वती ने उसको भी शाप दिया। तुम ही पृथिवी पर जाओगी और पापियों के पाप को ग्रहण करोगी । उसी समय भगवान् नारायण वहाँ आ गये ॥४१-४२॥ उनकी चार भुजाएँ थीं और उनके चार भुजाओं वाले चार पार्षद भी थे । उन्होंने सरस्वती का हाथ पकड़कर अपने हृदय से लगाया ॥४३॥ सर्वज्ञ श्रीहरि ने उन सबों को ज्ञान का रहस्य समझाया । उन्होंने उन तीनों के शाप और कलह के कारण को सुना ॥४४॥ श्रीभगवान् ने उन दुःखी तीनों को सामयिक वाणी से सांत्वना प्रदान किया । **श्रीभगवान् ने कहा**– हे लक्ष्मि ! तुम अपने एक अंश से धर्मध्वज के घर चली जाओ ! मर्त्यलोक में तुम धर्मध्वज की त्रैलोक्य को पवित्र बनाने वाली अयोनिजा कन्या तुलसी होओगी । वहीं पर तुम भाग्य के दोष के कारण वृक्षत्व को प्राप्त करोगी ॥४६॥ मेरे अंशभूत शंखचूड की तुम पत्नी होओगी। उसके बाद तुम मेरी पत्नी हो जाओगी ॥४७॥ इस समय तुम अपने एक अंश से सरस्वती के शाप के कारण 'पद्मावती' नाम की नदी बनकर जाओ ॥४८॥ भारती का शाप होने के कारण तुम भारत में 'पद्मावती' बन जाओ । हे गङ्गे ! उसके बाद तुम अपने एक अंश से पापियों के पाप को जलाकर भस्म कर देने के लिए भारत वर्ष मे जाओगी । हे सकुल्पिते ! भगीरथ की तपस्या से प्रभावित होकर तुम्हें जाना होगा ॥४९-५०॥ भारत वर्ष में तुम भागीरथी नाम की पवित्र नदी होओगी । हे जाये ! मेरी आज्ञा से तुम मेरे अंशभूत समुद्र की पत्नी होओगी । मेरे एक अंश स्वरूप शन्तनु की तुम पत्नी बनोगी। उसके बाद श्रीहरि ने सरस्वती से कहा तुम गंगा के शाप के कारण अपने एक अंश से भारत में नदी बनकर चली जाओ ॥५१-५२॥ अपनी दोनों सौतों

सपत्नीभ्यां सहाच्युते । स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव ॥५३॥ गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु । शांता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी ॥५४॥ महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी । यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥५५॥ शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः । तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बांधवाः ॥५६॥ ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मंगलप्रदाः । स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान् ॥५७॥ निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदे पदे । मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया ॥५८॥ अरण्यं तेन गंतव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् । जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च ॥५९॥ सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च । वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्त्रजन्तूनां सन्निधौ सुखम् ॥६०॥ ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम् । व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने ॥६१॥ दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते । पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मांतं शौचमध्रुवम् ॥६२॥ यदह्नि कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् । निंदितोऽत्र परत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत् ॥६३॥ यशःकीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः । बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः ॥६४॥ एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः

के साथ कलह करने का फल भोगो । स्वयं तुम पूर्ण रूप से ब्रह्माजी के लोक में जाकर ब्रह्मा की पत्नी बनोगी ॥५३॥ गङ्गा शंकरजी के स्थान में चली जाय यहाँ पर केवल लक्ष्मी रहेंगी । वे सात्त्विक स्वरूप वाली, क्रोध रहित, शान्त तथा मेरी भक्ता हैं ॥५४॥ ये महासाध्वी, महाभाग, सुशील और धर्माचरण करने वाली हैं इसके अंश से उत्पन्न स्त्रियाँ धार्मिक, पतिव्रता ॥५५॥ शान्त स्वभाव वाली, सुशील और विश्व के सभी लोगों से पूजित होंयेंगी । तीन प्रकार के शील वाली तीन पत्नियाँ तीन भृत्य और तीन बान्धव ॥५६॥ का होना वेद के विरुद्ध हैं, और ये मङ्गलकारी नहीं होते हैं । जिसके घर में स्त्री पुरुष के समान हो जाय और पुरुष स्त्री के वश में रहने लगे ॥५७॥ उस पुरुष का पुरुषजन्म व्यर्थ है । उसके घर में पद-पद पर अमंगल होता है । जिसकी स्त्री मुँह से दुष्ट हो और भ्रष्ट आचरण वाली हो तथा कलह करने वाली हो, उसका घर ही महावन है । उसे घर छोड़कर वन मे चले जाना चाहिए । उसे जंगल में शान्तिपूर्वक जल, सोने के लिए स्थान और खाने के लिए फल तो मिल ही जायेंगे ॥५८-५९॥ उसके लिए ये सब वस्तुएँ वन में भी सुलभ हो जाती हैं किन्तु गृह में सुलभ नहीं होती हैं । अग्नि में तथा हिंसक जानवर के सन्निकट में रहना श्रेष्ठ है वहाँ उसको सुख मिल सकता है ॥६०॥ इन सबों से भी अधिक कष्ट दुष्ट स्त्री के सन्निकट रहने में होता है । हे वरानने ! पुरुषों के लिए व्याधि की ज्वाला और विष की ज्वाला ठीक है ॥६१॥ दुष्ट स्त्री के मुख की ज्वाला तो मरण से भी अधिक कष्टप्रद होती है । स्त्री के वश में रहने वाले की शुद्धि मरकर जल जाने के बाद भी होती है कि नहीं यह निश्चित नहीं है ॥६२॥ वह पुरुष जो दिन में कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता है । वह इस लोक में तथा परलोक मे निंदित होता है और

कदाचन । गच्छ गंगे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति ॥६५॥ अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया । सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता॥६६॥ इह स्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च । पतिव्रता यस्य पत्नी स च युक्त शुचिः सुखी ॥६७॥ जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखीदुःशीलापतिरेव च ॥६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद । अतीव रुरुदुर्देव्यः समालिंग्य परस्परम् ॥१॥ ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणोचुस्तदेश्वरम् । कंपिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च ॥२॥** सरस्वत्युवाच— **विशापं देहि दे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम् । सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुतो जीवंति ताः स्त्रियः ॥३॥ देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम् । अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम् ॥४॥** गंगोवाच—

अंत में नरक में ॥६३॥ यश और कीर्ति से हीन जीवित पुरुष भी मरा हुआ ही है । अनेक सौतों का एक साथ रहना कल्याणकारी नहीं होता है ॥६४॥ जिसकी एक पत्नी होती है, वह सुखी होता है । अनेक पत्नियों वाला कभी सुखी नहीं हो सकता है । हे गङ्गे ! तुम शिव के पास चली जाओ और सरस्वती ब्रह्माजी के पास चली जायँ ॥६५॥ मेरे यहाँ सुन्दर शील वाली लक्ष्मी रहें । जिसकी पत्नी सुशील, सुन्दर आचरण वाली और पतिव्रता होती है, उसको इस लोक में सुख तथा परलोक में मोक्ष मिलता है । जिसकी पत्नी पतिव्रता हो वही पवित्र तथा सुखी होता है ॥६६-६७॥ दुःशील पत्नी का पति जीते हुए भी मरा हुआ अपवित्र और दुःखी होता है ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भगवान् द्वारा भक्तों के लक्षण तथा महत्त्व का वर्णन

श्रीनारायाण ने कहा— हे नारद ! इस प्रकार से कहकर श्रीभगवान् शान्त हो गये । उसके बाद वे तीनों देवियाँ आपस में एक दूसरे का अलिंगन करके बहुत अधिक रोयीं ॥१॥ उन सबों के नेत्र आँसू से भर गये थे । वे भय तथा शोक के कारण काँप रही थीं । उन सबों ने श्रीभगवान् से क्रमशः कहा॥२॥ **सरस्वती ने कहा—** हे नाथ ! आप हमारे शाप से उद्धार को बतलाइये । शाप से दूषित रहने पर तो जीवन भर सोचना पड़ता है । अपने सच्चरित्र स्वामी

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते । देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥५॥ निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि । स याति नरकं घोरं किन्नुसर्वेश्वरोऽपि वा ॥६॥ पद्मोवाच– नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव । प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा ॥७॥ भारते भारतीशापाद्यास्यामि कलया ह्यहम् । कियत्यकालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥८॥ दास्यंति पापिनः पापं सद्यः स्नानावगाहनात्। केन तेन विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥९॥ कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती । भुक्त्वा कदा करिष्यामि त्वत्पादांबुजदर्शनम् ॥१०॥ वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृदेवतां । समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥११॥ गङ्गा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते । शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति ॥१२॥ गंगाशापेन वा वाणी यदि यास्यति भारतम् । कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥१३॥ तां वाणीं ब्रह्मसदनं गंगां वा शिवमन्दिरम् । गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः ॥१४॥ इत्युक्त्वा कमला कांतपादं धृत्वा ननाम सा । स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुदोद च पुनः पुनः ॥१५॥ (उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ॥१॥) श्रीभगवानुवाच–

से परित्यक्त होकर स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं ?॥३॥ भारत में मैं योग साधना करके अपने शरीर को त्याग दूँगी । उस समय तो आप मेरी रक्षा करेंगे ही ॥४॥ **गङ्गा ने कहा–** हे जगत् के स्वामिन् ! आपने मेरा त्याग किस अपराध के कारण किया है । मैं अपने शरीर का परित्याग कर दूँगी और आपको निर्दोष के वध का पाप लगेगा ॥५॥ निर्दोष पत्नी का परित्याग करने वाला नरक में जाता है वह सर्वेश्वर ही क्यों न हो ?॥६॥ **लक्ष्मी ने कहा–** हे नाथ ! आप तो सत्त्वस्वरूप हैं । आपको क्यों क्रोध आ गया ? आप अपनी इन दोनों पत्नियों को क्षमा कर दें । क्षमा तो अच्छे स्वामी का श्रेष्ठ गुण है । अपने एक अंश से भारती के शाप से मैं भारत में जाऊँगी । मैं वहाँ कितने दिनों तक रहूँगी ? पुनः मेरा आपके धाम में लौटना कब होगा?॥८॥ वहाँ पर मुझमें स्नान करके पापी लोग अपना पाप मुझे दे देंगे । किस तरह उस पाप से छूटकारा पाकर मै आपके लोक में आ सकूंगी ॥९॥ अपने एक अंश से धर्मध्वज की पुत्री होकर पुनः कब मैं आपके चरणों का दर्शन कर पाऊँगी ॥१०॥ मैं वृक्ष स्वरूपा हो जाऊँगी और आप मेरे अधिष्ठातृ देवता होंगे। प्रभो ! आप मेरा कब उद्धार करेंगें ?॥११॥ गङ्गा यदि सरस्वती के शाप से भारत वर्ष में जायेगी तो वह शाप से मुक्त होकर पुनः आपके लोक में कब आयेगी ॥१२॥ अथवा गङ्गा के शाप से जब सरस्वती भारत वर्ष में जायेगी तो शाप से मुक्त होकर वह पुनः आपके चरणों को कब प्राप्त करेगी ?॥१३॥ आप जो गङ्गा को शिवजी के भवन में तथा सरस्वती को ब्रह्माजी के पास जाने को कह रहे हैं, उसे तो आप क्षमा कर दें ॥१४॥ इस तरह से कहकर लक्ष्मी ने श्रीभगवान् के चरणों को पकड़कर प्रणाम किया और अपने बालों को भगवान् के चरणों में लपेट कर रोने लगीं ॥१५॥ यह देखकर श्रीभगवान्

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि । समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे ॥१६॥ भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते । अर्धा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्‌गृहे ॥१७॥ भगीरथेन सा नीता गंगा यास्यति भारते । पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्‌गृहे ॥१८॥ तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् । ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूता भविष्यति ॥१९॥ कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ॥२०॥ कलेः पंचसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् । युष्माकं सरितां चैव मद्‌गेहे चागमिष्यथ ॥२१॥ संपदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत् ॥२२॥ मन्मंत्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात् । युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥२३॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि संत्यसख्यानि सुन्दरि । भविष्यंति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२४॥ मन्मंत्रोपासका भक्ता विश्रमंति च भारते । पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम् ॥२५॥ मद्भक्ता यत्र तिष्ठंति पादं प्रक्षालयंति च । तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥२६॥ स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२७॥ एकादशीविहीनश्च

ने लक्ष्मी को अपने हृदय से लगा लिया और भक्तों पर कृपा करने के लिए आतुर रहने वाले वे मुस्कुराते हुए कहने लगे । **श्रीभगवान् ने कहा**— हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे और अपने; दोनों के वाक्यों का पालन करूँगा । अतएव मैं तुम तीनों में समता कर देता हूँ ॥१६॥ सरस्वती अपने एक अंश से नदी रूप में भारत वर्ष में जायँ । आधे अंश से ब्रह्मा जी के पास रहे और पूर्णरूप से मेरे पास रहें ॥१७॥ इसी तरह से गंगा भगीरथ के प्रयास से अपने एक अंश से नदी रूप में भारत वर्ष में जायँ, आधे अंश से शंकरजी के पास जायँ और स्वयं मेरे पास रहें ॥१८॥ वहाँ वे भगवान् शंकर के दुर्लभ शिर पर स्थान प्राप्त करेंगी । उसके कारण स्वभावतः पवित्र ये अत्यन्त पवित्र हो जायेंगी ॥१९॥ हे सुन्दरि ! तुम अपने एक कला से भारत में जाओ वहाँ तुम पद्मावती नदी और तुलसी के वृक्ष के रूप में रहोगी ॥२०॥ कलि के पाँच हजार वर्ष बीत जानें पर तुम सबों का मोक्ष हो जायेगा । और तुम सब मेरे धाम में आ जाओगी ॥२१॥ सभी देह धारियों के लिए मिलने वाली विपत्ति सारी सम्पत्तियों का कारण होती है । हे कमले ! विपत्ति के बिना किसी की भी महिमा नहीं बढ़ सकती है ॥२२॥ मेरे मन्त्रों की उपासना करने वाले सत्पुरुषों के दर्शन और स्पर्श तथा अवगाहन से तुम लोग सभी पापों से मुक्त हो जाओगी॥२३॥ हे सुन्दरि ! पृथिवी पर असंख्य तीर्थ हैं । वे सबके सब मेरे भक्तों के दर्शन मात्र से पवित्र हो जायेंगे ॥२४॥ मेरे मंत्र की उपासना करने वाले भक्त भारत वर्ष में पृथिवी को पवित्र करने और लोगो का उद्धार करने के लिए भारतवर्ष में रहते हैं ॥२५॥ मेरे भक्त जहाँ ठहरते हैं, अपना पैर धोते हैं वह स्थान महातीर्थ और अत्यन्त पवित्र हो जाता है ॥२६॥ स्त्री को मारने वाला गौ को मारने वाला, कृतघ्न, ब्राह्मण को मारने वाला तथा गुरु

सन्ध्याहीनोऽथ नास्तिकः । नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२८॥ असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः । वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥२९॥ विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः । स्थाप्याहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३०॥ अत्युग्रोपुंदूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३१॥ शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥३२॥ पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः कुलं च भगिनी चक्षुर्हीनं च बांधवम् ॥३३॥ श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुंदरि । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३४॥ अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तिनिंदकस्तथा । शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्॥३५॥ देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालौहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥३६॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकाः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥३७॥ श्रीमहालक्ष्मीरुवाच— भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर । येषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नराधमाः ॥३८॥

की शय्या पर सोने वाला भी पापी मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाता है ॥२७॥ एकादशीव्रत नहीं करने वाला, सन्ध्योपासन नहीं करने वाला, नास्तिक तथा मनुष्यों को मारने वाला भी मेरे भक्त का दर्शन तथा स्पर्श करके पवित्र हो जाता है । जो कमर में तलवार बाँधकर द्वारपाल का काम करके अपनी जीविका चलाता है, जो मुनीमी से अपनी जीविका चलाता है, जो धावक (डाकिया) का काम करता है, तथा गाँव-गाँव में भीख माँगकर अपनी जीविका चलाने वाला तथा हलवाहे का काम करने वाला ये सबके सब मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥२९॥ विश्वासघात करने वाला, मित्र को मारने वाला, झूठी गवाही देने वाला तथा धरोहर हड़पने वाला भी मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाता है ॥३०॥ अत्यन्त क्रूर पुरुष को बिगाड़ने वाला दोस्त, व्यभिचारिणी स्त्री का पति तथा व्यभिचारिणी का पुत्र भी मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाते है ॥३१॥ शूद्रों का रसोइया, देवान्न से जीविका चलाने वाला ग्रामयाजक (गाँव-गाँव में घूमकर पूजा कराने वाला) तथा दीक्षाविहीन ब्राह्मण भी मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाता है ॥३२॥ हे सुन्दरि ! माता, पिता, पत्नी, भाई, पुत्र, पुत्री, गुरु के वंश, बहन, अन्धा, बन्धु ॥३३॥ सासु तथा श्वसुर का जो पालन नहीं करता है, वह महापापी है । वह भी मेरे भक्त का दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाता है ॥३४॥ पीपल के पेड़ को विनष्ट करने वाला मेरे भक्तों की निन्दा करने वाला, शूद्र का अन्न खाने वाला, ऐसा ब्राह्मण भी मेरे भक्त का दर्शन करके पवित्र हो जाता है ॥३५॥ देवताओं के द्रव्य को चुराने वाला, ब्राह्मण के द्रव्य को चुराने वाला, लाह, लोहा तथा रस एवं अपनी पुत्री को बेचने वाला तथा शूद्रों के शव को जलाने का काम करने वाला ये सब महापातकी हैं । ये सब भी मेरे भक्त का दर्शन और स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥३६-३७॥ **श्रीमहालक्ष्मी ने पूछा—** हे भक्तों पर कृपा करने वाले भगवन् ! आप उन भक्तों का लक्षण बतलाइये जिनका दर्शन और स्पर्श करके नराधम भी पवित्र हो जाते हैं ॥३८॥ श्रीहरि की भक्ति से

हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुताः । स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्च साधुनिंदकाः ॥३९॥ पुनंति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥४०॥ येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वांछंति भारते । सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥४१॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनंत्यतिकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥४२॥ सूत उवाच– **महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा,लक्ष्मीकांतश्च सस्मितः। निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे ॥४३॥** श्रीभगवानुवाच– **भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः । पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम्॥४४॥ सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च । त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥४५॥ गुरुवक्त्राद्विष्णुमंत्रो यस्य कर्णे पतिष्यति । वदंति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम् ॥४६॥ पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात् ॥४७॥ यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जंतुषु । जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यांति काले हरेः पदम् ॥४८॥ मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च संततम् ॥४९॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानंदः पुलकान्वितः । स गद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥५०॥ न**

रहित, महाअहंकारी, अपनी ही प्रशंसा करते रहने वाले, धूर्त, शठ, सज्जनों की निन्दा करने वालें जिनका दर्शन एवं स्पर्श करके पवित्र हो जाते हैं ॥३९॥ जिनके स्नान करने से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, जिनके चरणों की धूलि से तथा पैर धोने के जल से पृथिवी पवित्र हो जाती है ॥४१॥ भारत वर्ष में जिनका दर्शन और स्पर्श करना लोग चाहते हैं, उन वैष्णवों का समागम होना ही परम लाभ है ॥४१॥ जलमय तीर्थ और पत्थर एवं मिट्टीमय देवता ही देवता नहीं हैं । ये तो बहुत समय के बाद अपने आश्रितों को पवित्र बनाते हैं और भगवान् विष्णु के भक्त क्षणभर में ही उन्हें पवित्र बना देते हैं ॥४२॥ **सूतजी ने कहा–** महालक्ष्मी की बातें सुनकर श्रीभगवान् मुस्कुराने लगे और अत्यन्त श्रेष्ठ तथा रहस्यमय तत्त्व को कहना प्रारम्भ किये ॥४३॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे लक्ष्मि ! वेदों तथा पुराणों में भक्तों का लक्षण गूढ है । वह स्वरूपतः पवित्र, पापों को विनष्ट करने वाला, सुखद एवं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥४४॥ वह शास्त्रों का सार है, गोपनीय है, दुष्टों को नहीं बतलाने योग्य है । तुम तो मेरे प्राण के समान प्रिय हो अतएव मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सुनों ॥४५॥ जिसके कान में गुरु के मुख से भगवान् विष्णु का मन्त्र पड़ता है, उसको वेद नरोत्तम तथा पवित्र बतलाते हैं ॥४६॥ ऐसा व्यक्ति जिसके वंश में जन्म लेता है, उसके पहले के सौ पीढी के पूर्वज चाहे स्वर्ग में हों या नरक में मुक्त हो जाते हैं ॥४७॥ ऐसे पूर्वजों का यदि कहीं पर किसी योनि में जन्म हो भी गया हो तो वे मृत्यु के पश्चात् भगवान् विष्णु के धाम में चले जाते हैं ॥४८॥ जिस व्यक्ति में मेरी भक्ति होती है वह मेरे गुणों से युक्त होकर मुक्त हो जाता है । जिसकी वृत्ति मेरे गुणों के अधीन होती है, जो सदा मेरी कथा में ही लगा रहता है ॥४९॥ जो मेरे गुणों को केवल

वांछति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वांछा मम सेवने ॥५१॥ इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम् । स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि न च वांछति ॥५२॥ भ्रमंति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम् । मद्गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः॥५३॥ ते यांति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममालयम् । इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम् । तदाज्ञया तास्तच्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **सरस्वती पुण्यक्षेत्रमाजगाम च भारते । गंगाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥१॥ भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया । वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता ॥२॥ सरोवाप्यां च स्त्रोतःसु सर्वत्रैव हि दृश्यते । हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना**

सुनकर ही रोमाञ्चित हो जाता है, उसकी वाणी गद्गद हो जाती है, उसकी आँखों में प्रेमाश्रु भर जाते हैं । वह अपने को भी भूल जाता है ॥५०॥ वह न तो सुख चाहता है और न चारो प्रकार की मुक्तियों में से कोई मुक्ति चाहता है । वह न तो ब्रह्मा बनना चाहता है और न देवता होना चाहता है । वह केवल मेरी सेवा करना चाहता है ॥५१॥ इन्द्रत्व, मनुत्व, ब्रह्मत्व ये अत्यन्त दुर्लभ हैं वह स्वर्ग का राज्य और स्वर्ग के भोगों को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है ॥५२॥ मेरे भक्त भारतवर्ष में भ्रमण करते रहते हैं । ऐसा जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है । मेरे भक्त केवल मेरा गुण ही श्रव्य गायनों के द्वारा सुनते रहते हैं और आनन्दित रहते हैं ॥५२॥ ऐसे मेरे भक्त पृथिवी को पवित्र बना कर मेरे धाम में चले जाते हैं । हे लक्ष्मी ! मैंने तुम्हें सब कुछ बतला दिया । अब तुम यथोचित कार्य करो । भगवान् की आज्ञा पाकर गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी ने उनकी आज्ञा का पालन किया और श्रीभगवान सुखासन पर विराजमान हो गये ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

कलियुग चरित्र का वर्णन तथा गोलोक में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– गङ्गा के शाप के कारण एक अंश से सरस्वती पुण्य क्षेत्र भारत में आयीं और स्वयं श्रीहरि के धाम में ही रहीं ॥१॥ भारत में आने से उनका नाम भारती हुआ, ब्रह्माजी को प्रिय होने के कारण उनका नाम ब्राह्मी हुआ । वाणी की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण उनका नाम वाणी

सरस्वती ॥३॥ सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपाऽतिपावनी । पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥४॥ पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भागीरथेन च । सा वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥५॥ तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः । वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः ॥६॥ पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी । भारते भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे ॥७॥ ततोऽन्या या सा कलया लेभे जन्म च भारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च ॥८॥ पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः । बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥९॥ कलेः पंचसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते । जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥१०॥ यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीवृंदावनं विना । यास्यंति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः ॥११॥ शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम् । कलेर्दशसहस्रांते त्यक्त्वा यांति निजं पदम् ॥१२॥ साधवश्च पुराणानि शंखानि श्राद्धतर्पणे । वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१३॥ देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम् । वेदांगानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१४॥ संतश्च सत्यधर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः । व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१५॥ वामाचाररताः

हुआ ॥२॥ सरोवर तथा वापी में सर्वत्र दिखायी देने के कारण श्रीहरि का एक नाम सरस्वान् है । उनकी प्रिया होने के कारण इनका नाम सरस्वती है ॥३॥ नदी रूपा सरस्वती अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्वरूपिणी हैं और पापियों के पापों को जलाकर भस्म कर देने के लिए जलती हुई अग्नि के समान है । कुछ दिनों पश्चात् भागीरथी को राजा भगीरथ पृथिवी पर लाये । हे नारदजी ! सरस्वती के शाप के कारण गङ्गा अपने एक अंश से पृथिवी पर आयीं ॥५॥ गङ्गा को शिवजी ने अपने शिर पर धारण किया । पृथिवी की प्रार्थना से शंकरजी गङ्गा के वेग को धारण करने में समर्थ हुए ॥६॥ लक्ष्मीजी सरस्वती के शाप के कारण अपने अंश से भारत में पद्मावती नदी होकर आयीं और स्वयं श्रीहरि के धाम में ही रहीं ॥७॥ उसके बाद वे अपनी दूसरी कला से धर्मध्वज की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुयीं । वहाँ उनका नाम तुलसी हुआ । उसके पश्चात् सरस्वती के शाप के कारण और बाद में श्रीहरि के शाप के कारण लक्ष्मी तुलसी के पावन वृक्ष स्वरूप हो गयीं ॥९॥ कलि के पाँच हजार वर्ष तक वे पृथिवी पर भारत में रहकर अपने नदी के रूप को छोड़कर श्रीहरि के लोक में चली गयीं ॥१०॥ काशी तथा वृन्दावन को छोड़कर जितने भी तीर्थ हैं वे सब उन तीनों के साथ श्रीहरि के वैकुण्ठ लोक में चले जायेंगे ॥११॥ शालग्राम, शक्ति तथा शिव कलि के दश हजार वर्ष बीत जाने पर भारत को छोड़कर अपने-अपने धाम चले जाते हैं ॥१२॥ साधु पुरुष, पुराण, शंख, श्राद्ध तथा तर्पण एवं वेदोक्त कर्म, उन सबों के साथ अपने लोक में चले जायेंगे ॥१३-१४॥ उन सबों के साथ ही, संतजन, सत्यधर्म, वेद, ग्रामदेवता, व्रत, तपस्या तथा उपवास ये सब भी अपने लोक में चले गये ॥१५॥ सबलोग वाममार्गी तथा मिथ्या कपट करने वाले हो जायेंगे । उसके बाद भगवान्

सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः । तुलसीरहिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥१६॥ शठाः क्रूरा दांभिकाश्च महाहंकारसंयुताः । चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यंति ततः परम् ॥१७॥ पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वाऽपि निर्भयः । स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम् ॥१८॥ सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे । तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च ॥१९॥ गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः । चेटीदाससमो बध्वाः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥२०॥ कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबंधिबान्धवाः । विद्यासंबंधिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते ॥२१॥ तथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः । सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥२२॥ ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा जात्याचारविवर्जिताः । संध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः ॥२३॥ म्लेच्छाचारा भविष्यंति वर्णाश्चत्वार एव च । म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय च ॥२४॥ ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ । सूपकारा धावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः ॥२५॥ सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी । फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः ॥२६॥ क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् । दंपती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिता ॥२७॥ प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः । जलहीना महानद्यो दीर्घिकाकंदरादयः ॥२८॥ धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च । लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि

की पूजा तुलसी के बिना ही होगी ॥१६॥ सबलोग शठ, क्रूर, दाम्भिक, महा अहंकारी, चोर तथा हिंसक हो जायेंगे ॥१७॥ उस समय पुरुषों का आपस में भेद तथा स्त्रियों का विशेष रूप से आपस में भेद हो जायेगा । निर्भय होकर कोई भी किसी स्त्री के साथ विवाह कर लेगा । वस्तुओं के विषय में स्वस्वामिभाव में भी भेद हो जायेगा ॥१८॥ सबलोग स्त्रियों के वश में हो जायेंगे । घर-घर में कुलटाएँ होंगी । स्त्रियाँ अपने पति को गर्जन एवं तर्जन करती हुई मारेंगी ॥१९॥ पत्नी ही घर की स्वामिनी होगी और गृहस्वामी तो नौकर से भी हीन हो जायेंगे । सास एवं श्वसुर बहू के लिए नौकर और नौकरानी के समान हो जायेंगे ॥२०॥ घर में कर्ता उसी को माना जायेगा जो बलवान् होगा । बान्धवों की सीमा स्त्री के परिवार तक सीमित हो जायेगी । विद्या संबन्ध वालों के साथ तो कोई बोलेगा भी नहीं ॥२१॥ पुरुष अपने ही परिवार वालों से अपरिचित के समान व्यवहार करेंगे । स्त्री की आज्ञा के बिना पुरुष किसी भी कार्य को कर नहीं पायेंगे ॥२२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने जातिगत आचरण को त्याग देंगे संध्या और यज्ञोपवीत का लोप हो जायेगा॥२३॥ चारो वर्णों के लोग म्लेच्छ की तरह आचरण करेंगे । सबलोग अपने शास्त्रों को छोड़कर म्लेच्छ शास्त्रों को पढ़ने लग जायेंगे ॥२४॥ कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों के वंश वाले शूद्रो के सेवक हो जायेंगे । वे रसोइया, धावक तथा हलवाहे हो जायेगें ॥२५॥ सबलोग झूठ बोलने वाले हो जायेगें । पृथिवी में कुछ भी पैदा नहीं होगा । वृक्ष बाँझ हो जायेंगे और स्त्रियाँ बन्ध्या हो जायेंगी । गायें निर्दुग्ध हो जायेंगी । दूध में घी नहीं होगा । पति-पत्नी में प्रेम नहीं रहेगा । गृहस्थ मृषाभाषी हो जायेंगे ॥२७॥ राजागण प्रताप रहित हो जायेंगे । प्रजायें कर के बोझ से दब जायेंगी, बड़ी-बड़ी नदियों में

न तिष्ठति ततः परम् ॥२८॥ कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः । कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम् ॥३०॥ केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः । केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः ॥३१॥ अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च । अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः ॥३२॥ सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च । प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥३३॥ अलीकवादिनो धूर्ता शठाश्चासत्यवादिनः । प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्यहीनानि नारद ॥३४॥ हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः । हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः ॥३५॥ वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः । स्वल्पायुषो गदैर्युक्ता यौवनै रहिताः कलौ ॥३६॥ पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ । अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी ॥३७॥ वत्सरांतप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता । पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वंध्याः कलौ युगे ॥३८॥ कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च । मातृजायावधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः ॥३९॥ कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्नजीविनः । हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यंति कलौ युगे ॥४०॥ स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे । ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लंघयिष्यति॥४१॥

जल नहीं होगा । बावलियों और कन्दरा में भी जल नहीं रहेगा ॥२८॥ चारो वर्ण के लोक धर्म एवं पुण्य से हीन होंगे । लाखों लोगों में कोई एक आदमी पुण्यवान मिलेगा ॥२९॥ नर, नारी और बालक निन्दित और विकृत आकार वाले हो जायेंगे । सर्वत्र वे खोटे शब्दों का प्रयोग करेंगे ॥३०॥ कुछ ग्राम और नगर मनुष्यों से रहित और भयंकर होंगे । कुछ ग्रामों में कुछ झोपडियाँ रहेंगी और उनमें लोग भी रहेंगे ॥३१॥ ग्रामों और नगरों में जंगल होंगे । अरण्यों में रहने वाले लोग भी करभार से पीडित होंगे ॥३२॥ नदियों और तलाबो में धान उगाये जायेंगे । उच्च कुल के लोग कलियुग में नीच प्रकृति के हो जायेंगे ॥३३॥ सबलोग झूठ बोलने वाले, धूर्त तथा शठ हो जायेंगे । हे नारद अच्छे खेत सस्यहीन हो जायेंगे ॥३४॥ अच्छे धनिक लोग हीन प्रकृति के हो जायेंगे और देवताओं के भक्त नास्तिक हो जायेंगे । नगर के लोग मनुष्यों को मारने वाले, हिंसक और निर्दय हो जायेंगे ॥३५॥ सर्वत्र स्त्री तथा पुरुष बौने, रोगी, अल्पायु तथा रोगयुक्त और जवानी से रहित होंगे ॥३६॥ सोलह वर्ष की अवस्था में ही उनके बाल गिरने लग जायेंगे और बीस वर्ष की अवस्था में महावृद्ध हो जायेंगे । आठ वर्ष की ही युवतियाँ रजस्वला और गर्भ धारण करने वाली होंगी ॥३७॥ प्रत्येक वर्ष वे बच्चा पैदा करेंगी और सोलह वर्ष की अवस्था में बूढी हो जायेंगी । कलियुग में प्रायः सभी स्त्रियाँ वन्ध्या होंगी । कुछ ही पति और पुत्र से युक्त होंगी ॥३८॥ चारो वर्णों के लोग कन्या का विक्रय करने वाले होंगे । वे माता, पत्नी तथा बहू से व्यभिचार कराकर अपनी जीविका चलायेंगे । अपनी बहन तथा कन्या के यार का दिया हुआ अन्न खायेंगे । कलियुग में भगवन्नाम बेचने वाले लोग होंगे ॥३९-४०॥ अपना यश बढ़ाने के लिए लोग दान देंगे और बाद में उस दान को वापस ले लेंगे॥४१॥

देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च । स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लंघयिष्यति ॥४२॥ कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः । केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः ॥४३॥ भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः । भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥४४॥ अगम्यागमनं चैव करिष्यंति गृहे गृहे । मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यंति सर्वतः ॥४५॥ पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तॄणां च कलौ युगे । प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः ॥४६॥ अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौराश्च लंपटाः । परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः ॥४७॥ ब्रह्मक्षत्रविशांवंशा भविष्यंति च पापिनः । लाक्षालोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च ॥४८॥ वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः । शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः॥४९॥ पञ्चयज्ञविहीनाश्च कुहूरात्रौ च भोजिनः । यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः ॥५०॥ पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला । विप्राणां रंधनागारे भविष्यति च पाचिका ॥५१॥ अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः । आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥५२॥ एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत् । हस्तप्रमाणे वृक्षे च अंगुष्ठे चैव मानवे ॥५३॥ विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः

वे देववृत्ति, ब्रह्मवृत्ति, गुरुकुल की वृत्ति, अपने से अथवा दूसरे द्वारा दी गयी वृत्ति का उल्लंघन करेंगे ॥४२॥ कुछ लोग अपनी पुत्री के साथ तथा कुछ लोग अपनी सासु के साथ व्यभिचार करेंगे । कुछलोग अपनी बहू के साथ तथा कुछ लोग सभी जीवों के साथ व्यभिचार करेंगे ॥४३॥ कुछलोग अपनी बहन के साथ व्यभिचार करेंगे तथा कुछ अपनी सौनेली माँ के साथ तथा कुछ लोग अपनी भाई की पत्नी के साथ व्यभिचार करेंगे ॥४४॥ कलियुग में प्रत्येक गृह में लोग अगम्यागमन करेंगे । वे अपनी माता को छोड़कर सभी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करेंगे ॥४५॥ कलियुग में इस बात का निर्णय नहीं हो पायेगा कि कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पति । प्रजाओं, ग्रामों तथा वस्तुओं का भी निर्णय नहीं हो पायेगा ॥४६॥ सबलोग झूठ बोलने वाले चोर और व्यभिचारी हो जायेंगे । एक-दूसरे की हिंसा करेंगे और मनुष्यों को मारेंगे ॥४७॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के वंश वाले पापी हो जायेगे । वे लाह, लोहा, रस तथा नमक का व्यापार करेंगे ॥४८॥ ब्राह्मणों के वंश वाले हलवाहे और शूद्रों के शव को जलाने का काम करेंगे । सब शूद्रों का अन्न खायेंगे और वेश्यागामी हो जायेंगे ॥४९॥ वे पञ्चयज्ञ नहीं करेंगे तथा अमावस्या की रात्रि में भोजन करेंगे । यज्ञोपवीत नहीं धारण करेंगे संध्या तथा पावित्र्य से हीन हो जायेंगे ॥५०॥ ब्राह्मणों के घर में पुंश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) सूद से जीविका चलाने वाली, कुट्टनी (चुगुलखोर स्त्री) और रजस्वला स्त्रियाँ भोजन बनाने का काम करेंगी ॥५१॥ कलियुग में अन्न, योनि तथा आश्रम का कोई भी नियम नहीं रह जायेगा । सब म्लेच्छ प्राय हो जायेंगे ॥५२॥ इस प्रकार से जब घोर कलियुग आ जायेगा संसार म्लेच्छ बहुल हो जायेगा । एक-एक हाथ के वृक्ष होंगे और मनुष्य अंगूठे भर के होने लग जायेंगे ॥५३॥ उसी समय

कल्किर्भविष्यति । नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनां वरः ।।५४।। दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः । म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ।।५५।। निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चांतर्धानं गमिष्यति । अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति ।।५६।। स्थूलाऽप्रमाणा षड्रात्रं वर्षधाराऽऽप्लुता मही । लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति ।।५७।। ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यंत्युदयं मुने । प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा ।।५८।। कलौ गते च दुर्धर्षे प्रवृत्ते च कृते युगे । तपःसत्त्वसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति ।।५९।। तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि । पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ।।६०।। राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः । प्रतापवंतो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा ।।६१।। वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः । शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः ।।६२।। विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः। देवीमंत्ररताः सर्वे देवीध्यानपरायणाः ।।६३।। श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञाः पुंमांस ऋतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णो धर्मः कृते युगे ।।६४।। धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे ततः । कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम् ।।६५।। वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः । तथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव च ।।६६।। द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् । चतुर्भि प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ।।६७।। वर्ष

विष्णुयश नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्कि उत्पन्न होंगे । वे भगवान् नारायण की कला स्वरूप होंगे और श्रेष्ठ बलवान् होंगे ।।५४।। वे विशाल तलवार धारण करके और घोड़े की सवारी करेंगे और सम्पूर्ण पृथिवी को तीन रात में ही म्लेच्छों से रहित बना देंगे ।।५५।। वे पृथिवी को म्लेच्छों से हीन बनाकर अन्तर्धान हो जायेंगे। तथा पृथिवी राजा से हीन हो जायेगी ।।५६।। छह रात्रियों तक लगातार मुसलाधार वर्षा होगी और पृथिवी पानी में डूब जायेगी । पृथिवी प्राणियों, वृक्षों तथा गृहों से रहित हो जायेगी ।।५७।। उसके बाद बारहो आदित्य उदित होंगे और उन सबों के तेज से सुखकर पृथिवी समतल, हो जायेगी ।।५८।। भयंकर कलियुग के बीत जाने पर और सत्ययुग के प्रारम्भ होने पर तपस्या एवं सत्त्वगुण से धर्मपूर्ण हो जायेगा ।।५९।। पृथिवी पर तपस्विगण धार्मिक और ब्राह्मण वेदज्ञ होंगे प्रत्येक घरों की स्त्रियाँ पतिव्रता और धार्मिक होंगी ।।६०।। सभी क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों के भक्त एवं मनस्वी होंगे । प्रतापी, धार्मिक तथा पुण्यकर्म करने वाले होंगे ।।६१।। वैश्य वाणिज्यकर्म करेंगे, ब्राह्मणों के भक्त होंगे और धार्मिक होंगे । शूद्र भी पुण्य कर्म करने वाले, धार्मिक तथा ब्राह्मणों की सेवा करने वाले रहेंगे ।।६२।। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के वंश वाले देवी की भक्ति करेंगे । सबलोग देवी का मंत्र जपेंगे तथा देवी का ध्यान करेंगे।।६३।। पुरुष श्रुति, स्मृति तथा पुराणों के ज्ञाता और ऋतुकाल में गमन करने वाले होंगे । सत्ययुग में कहीं भी अधर्म का लेश भी नहीं रहेगा । धर्म पूर्णरूप से रहेगा।।६४।। त्रेतायुग में धर्म तीन पैर वाला और द्वापर में दो पैर वाला होता है । कलियुग में उसका केवल एक पैर रहता है और कलियुग के अन्त में वह भी नष्ट हो जाता है ।।६५।। हे विप्र ! वार सात तथा सोलह तिथियाँ होती हैं । बारह महीने होते हैं और ऋतुएँ छह होती हैं ।।६६।। पक्ष दो होते

पञ्चविधं ज्ञेयं कालसंख्याविधिक्रमे । यथा ग्त्रायांति यांत्येव तथा युगचतुष्टयम् ।।६८।। वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम् । शतत्रये षष्ठ्यधिके नराणां च युगे गते ।।६९।। देवानां च युगं ज्ञेयं कालसंख्याविदां मतम् । मन्वंतरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।।७०।। मन्वंतरसमं ज्ञेयमायुष्यं च शचीपतेः । अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् ।।७१।। अष्टोत्तरशते वर्षे गते पातश्च ब्रह्मणः । प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुंधरा ।।७२।। जलाप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः । ऋषयो ज्ञानिनः सर्वे लीनाः सत्ये चिदात्मनि ।।७३।। तत्रैव प्रकृतिर्लीना तत्र प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके जाते पाते च ब्रह्मणो मुने ।।७४।। निमेषमात्रं कालश्च श्रीदेव्याः प्रोच्यते मुने । एवं नश्यंति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ।।७५।। निमेषांतरकालेन पुनः सृष्टिक्रमेण च । एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा ।।७६।। कति कल्पा गतायाताः संख्यां जानाति कः पुमान् । सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्मांडानां च नारद ।।७७।। ब्रह्मादीनां च ब्रह्माण्डे संख्यां जानाति कः पुमान् । ब्रह्मांडानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः ।।७८।। सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक् । ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट् ।।७९।।

हैं । चार प्रहर का दिन होता है । चार प्रहर की रात्रि भी होती है और तीस दिन एवं तीस रात्रि का एक मास होता है ।।६७।। वर्ष भी पाँच प्रकार के होते हैं । यह काल की संख्या का नियम है ।।६८।। मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन और एक रात्रि होती है । काल की संख्या को जानने वालों का कहना है कि मनुष्यों के तीन सौ साठ (३६०) युग बीत जाने पर देवताओं का एक युग होता है । देवताओं के एकहत्तर युग बित जाने पर एक मन्वन्तर होता है ।।६९-७०।। इन्द्र की आयु एक मन्वन्तर की होती है । अट्ठाइस मन्वतरों का ब्रह्माजी की एक दिन और एक रात होती है ।।७१।। ब्रह्माजी की आयु अपने वर्ष से एक सौ आठ वर्षों की होती है । ब्रह्माजी की मृत्यु हो जाने पर प्राकृत प्रलय होता है । उसमें पृथिवी नहीं दिखायी देती है ।।७२।। सारा संसार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवता, ऋषिगण तथा ज्ञानिजन सत्य चिदात्मा में लीन हो जाते हैं ।।७३।। चिदात्मा में ही प्रकृति भी लीन हो जाती है । इसी को प्राकृतिक लय कहते हैं । हे मुने ! ब्रह्माजी के मर जाने पर तथा प्राकृतलय हो जाने पर इतने ही समय श्रीदेवी का एक निमेष होता है । इसी तरह देवी के एक निमेष में सभी ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं ।।७४-७५।। पुनः देवी के निमेषकाल में ही सृष्टि हो भी जाती है । इस बात को कौन जानता है कि सृष्टि कितने प्रकार की होती है, लय कितने प्रकार के होते हैं ।।७६।। कितने कल्प बीत गये और कितने कल्प आये ? हे नारद इन सृष्टियों, लयों और ब्रह्माण्डों की संख्या कोई नहीं जानता हैं ।।७७।। ब्राह्माण्डों में ब्रह्मा आदि की संख्या को कौन जान सकता है ? सभी ब्रह्माण्डों का स्वामी अकेले परमात्मा ही हैं ।।७८।। वे सबों के परमात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप हैं । ब्रह्मा आदि देवता तथा महाविराट् उन परमात्मा श्रीकृष्ण के अंशमात्र

तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा । तस्याः सकाशात्संजातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः ॥८०॥ सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुंठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥८१॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥८२॥ एवंविधं सृष्टिहेतु सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥८३॥ निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहकातरम् । करोति ब्रह्मा ब्रह्मांडं यज्ज्ञानात्कमलोद्भवः ॥८४॥ शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित् । यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान् ॥८५॥ महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम् ॥८६॥ विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यद्भक्त्या यस्य सेवया । महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमयीश्वरी ॥८७॥ सैव प्रोक्ता भगवती सच्चिदानंदरूपिणी । यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥८८॥ सावित्री देवमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥८९॥ सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा । यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता ॥९०॥ सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी । सर्वेश्वरी सर्ववंद्या सर्वेषां पुत्रदायिनी ॥९१॥ सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गतिनाशिनी ।

ही हैं ॥७९॥ महाविराट् के अंश क्षुद्र विराट् हैं । वे जगदम्बा ही परा प्रकृति हैं । उस परा प्रकृति से ही अर्धनारीश्वर उद्भूत हुए ॥८०॥ वे ही अर्धनारीश्वर दो भागों में विभक्त होकर द्विभुज और चतुर्भुर्ज कृष्ण हो गये । चतुर्भुज वैकुण्ठ लोक में तथा द्विभुज गोलोक में स्थित हैं ॥८१॥ ब्रह्माजी से लेकर तृण पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् प्राकृतिक है । जो कुछ भी प्राकृतिक है वह सब के सब नश्वर है ॥८२॥ इस तरह सृष्टि का कारण नित्य एवं सनातन स्वेच्छामय और निर्गुण है । प्रकृति से परे परंब्रह्म हैं ॥८३॥ वे उपाधिरहित निराकार, तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए व्याकुल रहने वाले हैं । उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजी ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं ॥८४॥ शिव को मृत्युञ्जय और सर्व सत्त्ववित् कहा जाता है । वे सबों के स्वामी और महान तपस्वी हैं । परब्रह्म को जानकर अपनी तपस्या से ये संहार का कार्य करते हैं ॥८५॥ परंब्रह्म के ज्ञान से विष्णु महाविभूति से युक्त, सर्वज्ञ, सर्वदर्शन, सर्वव्यापक, सर्वरक्षक तथा सभी संपत्तियों को प्रदान करने वाले हैं ॥८६॥ परंब्रह्म की भक्ति एवं सेवा करने के ही कारण ये सर्वेश्वर हैं । उस परंब्रह्म के ही ज्ञान से तपस्या से तथा सेवा से प्रकृति महामाया, सर्वशक्तिमयी ईश्वरी और सच्चिदानंद स्वरूपिणी हैं, जिसके ज्ञान और तपस्या के प्रभाव से वह सावित्री, देवमाता और वेदों की अधिष्ठातृदेवी हैं । जिसके ज्ञान और तपस्या से ब्राह्मणों के पूज्य और वेदज्ञ हैं ॥८८-८९॥ जिसके ज्ञान तथा सेवा से सभी विद्याओं की अधिदेवता और विद्वानों के परंपूज्य तथा सभी विश्वों में प्रकृति पूजित हैं ॥९०॥ सभी ग्रामों की अधिदेवता, सभी सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली, सर्वेश्वरी, सर्ववंद्या, सबों को पुत्र देने वाली ॥९१॥ सबों से स्तुत, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण कष्टों को विनष्ट करने वाली, कृष्ण के वाम अंश से उद्भूत, कृष्ण की प्राणाधिदेवी राधिका,

कृष्णवामांशसंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता ॥९२॥ कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया । सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवे ॥९३॥ कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वे प्राप सेवया । तपश्चकार सा पूर्वं शतशृंगे च पर्वते ॥९४॥ दिव्यवर्षसहस्रं च पतिप्राप्त्यर्थमेव च । जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चंद्रकलोपमाम् ॥९५॥ कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः । वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥९६॥ मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता न शाश्वती । सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाऽथो गौरवेण च ॥९७॥ त्वं मे श्रेष्ठा च ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम् । वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया ॥९८॥ सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे । इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः ॥९९॥ सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम् । अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया ॥१००॥ तपस्तु यादृशं यासां तादृक्तादृक्फलं मुने। दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले ॥१०१॥ दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह । सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गंधमादने ॥१०२॥ लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववंद्या बभूव सा । लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे ॥१०३॥ सर्वसंपत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात् । सावित्री मलये तप्त्वा पूज्या वंद्या बभूव सा ॥१०४॥ षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम् । शतमन्वन्तरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो ॥१०५॥

शक्ति की सेवा से ही सबों से वे अधिक रूप, और सौभाग्य और गौरव से सम्पन्न हैं ॥९२-९३॥ उस शक्ति की सेवा तथा तपस्या से ही कृष्ण की पत्नी बनकर उनके वक्षःस्थल में स्थान प्राप्त कीं । उन्होंने प्राचीन काल में शतशृंगार नामक पर्वत पर पति को प्राप्त करने के लिए देवताओं के हजार वर्ष पर्यन्त तपस्या की । राधिका के ऊपर शक्ति की कृपा हो जाने पर, उनको चन्द्रमा की कला के समान सुन्दर देखकर ॥९४-९५॥ श्रीकृष्ण उनको हृदय से लगाकर तथा करुणान्वित होकर रो पड़े । उन्होंने राधिका को वरदान दिया कि तुम मेरे वक्षःस्थल में निवास करो तुम मेरी सखा भक्त हो । सौभाग्य, मान, प्रेम तथा गौरव से युक्त रहो ॥९६-९७॥ तुम मेरी सभी पत्नियों में श्रेष्ठ और ज्येष्ठ प्रेयसी हो ! वरिष्ठ तथा गरिष्ठ होने के कारण तुम मेरे द्वारा समादृत हो॥९८॥ हे प्राण बल्लभे ! मैं साध्य और वश्य हूँ । यह कहकर भगवान् श्रीकृष्ण राधा को अपनी पत्नी बनाये ॥९९॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने राधिका को सौत से रहित तथा प्राणबल्लभा बना दिया । राधा से भिन्न जो देवियाँ हैं वे भी शक्ति की ही सेवा करने से पूजित हुई हैं ॥१००॥ जिस देवी की जैसी तपस्या है उसको वैसा ही फल प्राप्त हुआ । देवताओं के सौ वर्ष तक हिमालय पर्वत पर तपस्या करके ॥१०१॥ तथा शक्ति के चरणों का ध्यान करके दुर्गा देवी सर्वपूज्य हो गयीं । देवताओं के एक हजार वर्ष पर्यन्त गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करके सरस्वती देवी सर्ववंद्य हो गयीं । लक्ष्मी देवी ने पुष्कर क्षेत्र में सौ युग तक तपस्या किया ॥१०२-१०३॥ और देवी की आराधना के फलस्वरूप वे सर्वसम्पत् प्रदात्री बन गयीं । सावित्री देवी ने साठ हजार

शतमन्वंतरं चेदं ब्रह्मा शक्ति जजाप ह । शतमन्वंतरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥१०६॥ दशमन्वन्तरं तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः । गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्यापि यत्र हि ॥१०७॥ दशमन्वंतरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः । सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः ॥१०८॥ एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः ॥१०९॥ एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम् । गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं कि भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

नारद उवाच– **देव्या निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्या पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥ प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्रादृष्टा**

दिव्यवर्ष पर्यन्त मलयाचल पर तपस्या करके तथा शक्ति के चरणों का ध्यान करके जगत् पूज्य तथा वन्दनीय हो गयीं । शंकरजी ने सौ मनवन्तर तक तपस्या की ॥१०४-१०५॥ ब्रह्माजी ने सौ मन्वन्तर तक शक्ति का जप किया । विष्णु भगवान् भी सौ मन्वन्तर तक जप करके रक्षक बन गये ॥१०६॥ दश मन्वन्तर पर्यन्त श्रीकृष्ण ने घोर तपस्या करके दिव्य गोलोक को प्राप्त किया और वहाँ वे आज भी आनन्दानुभव करते हैं ॥१०७॥ धर्म भी दश मन्वन्तर तक भक्ति पूर्वक घोर तपस्या करके सबों के प्राण, आधार तथा पूज्य हो गये ॥१०८॥ इस तरह से देवी की ही तपस्या करके सभी देवता पूजित हो गये॥१०८॥ मुनिजन, मनु, राजा और ब्राह्मण भी देवी की आराधना करके पूजित हुए ॥१०९॥ इस तरह मैने अपने गुरु के मुख से सुना था उसे आपको शास्त्रानुसार सुना दिया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?॥११०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

पृथिवी की उत्पत्ति उसका ध्यान एवं पूजन के प्रकार आदि का वर्णन

नारदजी ने कहा– देवी के एक निमेष में ही ब्रह्माजी की मृत्यु हो जाती है । ब्रह्माजी की मृत्यु को ही प्राकृत प्रलय कहा जाता है ॥१॥ प्राकृत प्रलय

वसुन्धरा । जलाप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि ।।२।। वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति । सृष्टिर्विधानसमये साऽऽविर्भूता कथं पुनः ।।३।। कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया । तस्याश्च जन्मकथनं वद मंगलकारकम् ।।४।। श्रीनारायण उवाच– **सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म देव्या इति श्रुतिः । आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ।।५।। श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलकारणम् । विघ्ननिघ्नकरं पापनाशन पुण्यवर्धनम् ।।६।। अहो केचिद्वदंतीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु ।।७।। ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा। आवां वधे न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च ।।८।। तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा साऽभवत्फुटम् । ततो बभूव मेदश्च मरणानंतरं तयोः ।।९।। मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु । जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः ।।१०।। कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमंगलम् । पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे ।।११।। महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् । मनो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापकं ध्रुवम् ।।१२।। तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च । कालेन महता पश्चाद्बभूव वसुधा मुने ।।१३।। प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा । आविर्भूता तिरोभूता सजला**

होने पर पृथिवी नहीं दिखायी देती है । सम्पूर्ण विश्व जल में डूब जाते हैं और परमात्मा में लीन हो जाते हैं ।।२।। अदृश्य हुई पृथिवी कहाँ रहती है और सृष्टिकाल के समय वह कैसे अविर्भूत हो जाती हैं ।।३।। वह पुनः धन्य, मान्य तथा सबों का आश्रय कैसे बनी । आप मुझे उसके मङ्गलकारक जन्म की कथा सुनायें ।।४।। **श्रीनारायण ने कहा–** सबसे पहले जो सृष्टि हुई वह देवी से ही सृष्टि हुई यह श्रुति बतलाती है । सभी प्राणियों का आविर्भाव और तिरोभाव देवी से ही होता है ।।५।। अब आप समस्त प्रकार के मङ्गल को प्रदान करने वाले पृथिवी के जन्म का प्रसंग सुनें । यह प्रसङ्ग समस्त विघ्नों को विनष्ट करने वाला, पापों का नाश करने वाला और पुण्य को बढ़ाने वाला है ।।६।। कुछ लोगों का कहना है कि पृथिवी का प्रादुर्भाव मधु और कैटभ के मेदस् से हुआ और उससे पृथिवी धन्य हुई ।।७।। मधु और कैटभ भगवान् विष्णु के विरोधी थे । वे विष्णु भगवान् के युद्ध और तेज से प्रसन्न होकर उनसे कहे कि आप हमदोनों का वध वहाँ करें जहाँ पृथिवी जल से आच्छन्न न हो ।।८।। उनदोनों के जीवन काल में पृथिवी प्रत्यक्ष नहीं थी । उसके बाद उन दोनों के मरने पर उनके शरीर से मेदस् निकला ।।९।। उसी के कारण मेदिनी यह नाम पृथिवी का विख्यात हुआ । वह पृथिवी जल से धुल गयी और मेदस् से ही बढ़ी ।।१०।। अब मैं आपको सार्थक तथा सर्वमङ्गल कारक पृथिवी का जन्म सुनाता हूँ । इसी को मैंने प्राचीन काल में अपने पिता धर्म के मुख से पुष्कर क्षेत्र में सुना था ।।११।। प्रलयकाल में महाविराट् का शरीर जल में पड़ा रहता है । उसके बाद उस शरीर में व्यापक मन उत्पन्न हुआ ।।१२।। वह उस शरीर के रोमकूपों में प्रवेश कर गया । उसके बहुत बाद उससे पृथिवी निकल आयी ।।१३।। वह महाविराट् के प्रत्येक रोमकूपों में जल के साथ पड़ी

च पुनः पुनः ॥१४॥ आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता । प्रलये च तिरोभूता जलस्याभ्यंतरे स्थिता ॥१५॥ प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता । सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता ॥१६॥ हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचंद्रार्कसंयुता । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया॥१७॥ पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्या भारतसंयुता । कांचनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता ॥१८॥ पातालसप्त तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः । ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै ॥१९॥ एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च । नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै ॥२०॥ प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने । महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना ॥२१॥ नित्यौ च स्थितिप्रलयौ काष्ठाकालेश्वरैः सह । नित्याधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः ॥२२॥ मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गंधर्वादिभिरेव च । विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता ॥२३॥ तत्पुत्रो मंगलो ज्ञेयो घटेशो मंगलात्मजः । नारद उवाच– पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही ॥२४॥ वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती । मूलप्रकृतिसंभूता पंचीकरणमार्गतः ॥२५॥ तस्याः पूजाविधानं चाप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः । मंगलं मंगलस्यापि जन्म व्यास वद प्रभो ॥२६॥ श्रीनारायण उवाच–

रहती हैं, और उसी से बार-बार उद्भूत और तिरोभूत होती रहतीं हैं ॥१४॥ सृष्टिकाल में वह आविर्भूत होकर उस जल के ऊपर स्थित हो जाती है । प्रलयकाल में वह तिरोहित होकर जल के भीतर स्थित रहती है ॥१५॥ प्रत्येक विश्व में पृथिवी पर्वतों एवं वनों से युक्त होती है । उस पर सात सागर रहते हैं तथा सात द्वीप रहते हैं ॥१६॥ हेमाद्रि (सुमेरु) पर्वत से वह युक्त होती है और वह ग्रह, चन्द्रमा और सूर्य से युक्त होती है । महाविराट की ही आज्ञा से उसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवलोको, भारत वर्ष, और उसके पवित्र तीर्थों से युक्त होती है । वह सुवर्णमयी भूमि से युक्त तथा सात स्वर्गों से युक्त होतीं हैं ॥१७-१८॥ पृथिवी के नीचे सात पाताल रहते हैं । और उसके ऊपर सात लोक होते हैं । उसी पर ध्रुवलोक है और सारे विश्व भी हैं॥१९॥ इस तरह सभी विश्व पृथिवी पर ही निर्मित हैं । ये सभी विश्व नश्वर है और कृत्रिमं हैं ॥२०॥ ब्रह्मा के शरीरपात हो जाने पर जब प्राकृत, प्रलय हो जाता है परमात्मा श्रीकृष्ण के द्वारा महाविराट् की सृष्टि हुई ॥२१॥ सृष्टि और प्रलय ये दोनों प्रवाह रूप से नित्य हैं । इस तरह, काष्ठा, कला, ईश्वर के भी प्रवाह नित्य हैं इनसबों की आधर रूपा पृथिवी भी प्रवाह से नित्य है, वाराह कल्प में देवताओं ने पृथिवी देवी की पूजा की ॥२२॥ मुनियों, मनुओं, विप्रों तथा गन्धर्वों आदि ने भी पृथिवी की पूजा की । वेद के अनुसार वराहरूपधारी भगवान् विष्णु की ये पत्नी हैं ॥२३॥ पृथिवी के पुत्र मङ्गल हैं । मङ्गल के पुत्र घटेश हैं । **नारदजी ने कहा**– वाराह कल्प में देवता पृथिवी की किस रूप में पूजा किए ॥२४॥ वाराह काल में वाराही देवी ही सबों के आश्रय स्वरूपा होती हैं ये मूल प्रकृति से उद्भूत हैं, और पंचीकरण प्रक्रिया से उद्भूत हैं ॥२५॥ हे प्रभो ! आप पृथिवी की जो ऊपर और नीचे के लोकों में पूजा का

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा । उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलम् ॥२७॥ जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे । तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम् ॥२८॥ दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः । वाराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥२९॥ कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम् । क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥३०॥ सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी । विदग्धाया विदग्धेन संगमोऽतिसुखप्रदः ॥३१॥ विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम् । वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥३२॥ पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया । पूजां चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥३३॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिंदूरैरनुलेपनैः । वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥३४॥ श्रीभगवानुवाच– सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सुखम् । मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः ॥३५॥ अंबुवाचीत्यागदिने गृहारंभे प्रवेशने । वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥ तव पूजां करिष्यंति मद्वरेण सुरादयः । मूढा ये न करिष्यंति यास्यंति नरकं च ते ॥३७॥ वसुधोवाच– वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया । लीलामात्रेण भगवान्विश्वं च सचराचरम् ॥३८॥ मुक्तां शुक्तिं

विधान है, उसे विस्तार से बतलायें । वह तो सभी मङ्गलों को प्रदान करने वाला है ॥२६॥ **श्रीनारायण ने कहा–** प्राचीन वाराह कल्प में ब्रह्माजी ने वराह भगवान् की स्तुति की तो वराह भगवान् ने रसातल लोक में जाकर हिरण्याक्ष का वध करके पृथिवी का उद्धार किया ॥२७॥ उसको जल के ऊपर उसी तरह से स्थापित किया जैसे सरोवर में उसी के ऊपर ब्रह्माजी ने मनोहर विश्व की रचना की ॥२८॥ उस पृथिवी की अधिष्ठात्री देवी को कामयुक्त देखकर श्रीहरि भी कामुक हो गये । वाराह रूपधारी श्रीभगवान् की कान्ति करोड़ों सूर्य के समान थी ॥२९॥ उन्होंने रतिकला के लिए उपयोगी अपना शरीर बना लिया और देवताओं के वर्ष पर्यन्त एकान्त में उस अधिष्ठात्री देवी के साथ रतिक्रीडा करते रहे ॥३०॥ सुन्दरी भूदेवी अखण्ड सम्भोग को प्राप्त करके जैसे अपने को ही भूल गयी क्योंकि रतिनिपुण नायिका का रतिनिपुण नायक के साथ संयोग अत्यधिक सुखप्रद होता है ॥३१॥ विष्णु भी भूदेवी के अंगों के संस्पर्श के कारण दिन और रात को ही भूल गये । एक वर्ष के बाद भगवान् को याद आया और उन्होंने भूदेवी को छोड़ दिया ॥३२॥ उन्होंने पहले ही के जैसे अपना वराह का रूप धारण कर लिया । और उन्होंने भूदेवी को धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, वस्त्र, पुष्प तथा उपहारों से पूजा की ॥३३-३४॥ उसके बाद **श्रीभगवान् ने कहा–** हे प्रिये ! तुम सबों का आधार बन जाओ । मुनिजन, मनुगण, देवता, सिद्ध एवं दानव सभी तुम्हारी पूजा करेंगे ॥३५॥ मेरे वरदान के प्रभाव से वे जल त्यागने के दिन, गृहारम्भ करते समय, गृहप्रवेश करते समय, वापी तथा तालाब के निर्माण के समय, खेती प्रारम्भ करते समय ॥३६॥ तुम्हारी पूजा करेंगे । जो लोग तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे वे नरकगामी होंगे ॥३७॥ **भूदेवी ने कहा–** आपकी आज्ञा के अनुसार मैं वाराह रूप धारण करके

**हरेरर्चां शिवलिंगं शिवां तथा । शंखं प्रदीपं यंत्रं च माणिक्यं हीरकं तथा ॥३९॥ यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम् । जपमालां पुष्पमालां
कर्पूरं च सुवर्णकम् ॥४०॥ गोरोचनचन्दनं च शालग्रामजलं तथा । एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु ॥४१॥** श्रीभगवानुवाच–
**द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यंति सुदंरि । यास्यन्ति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥४२॥ इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद । बभूव
तेन गर्वेण तेजस्वी मंगलग्रहः ॥४३॥ पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः । कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टवुश्च स्तवेन ते ॥४४॥ ददुर्मूलेन
मंत्रेण नैवेद्यादिकमेव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥** नारद उवाच– **किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमंत्रं च किं वद । गूढं
सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥४६॥** श्रीनारायण उवाच– **आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी
तदा ॥४७॥ ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः । ध्यानं च स्तवनं मंत्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥४८॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन
मंत्रेण विष्णुना पूजिता पुरा । श्वेतपंकजवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥४९॥ चन्दनोत्क्षिप्तसर्वांगीं रत्नभूषणभूषिताम् । रत्नाधारां रत्नगर्भां
रत्नाकरसमन्विताम् ॥५०॥ वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वंदितां भजे । ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताऽभवत् ॥५१॥ स्तवनं शृणु विप्रेंद्र**

सम्पूर्ण चराचर जगत् को अनायास ही धारण करूँगी ॥३८॥ किन्तु हे भगवन् ! मैं मोती, सीपी, श्रीभगवान् की अर्चा मूर्ति, शिवलिङ्ग, शंख, प्रदीप, यन्त्र,
मणिक्य तथा हीरा ॥३९॥ यज्ञोपवीत, फूल, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, कर्पूर तथा सोना ॥४०॥ गोरोचन, चन्दन, शालग्राम का जल इन सबों को
धारण करने में असमर्थ हूँ ॥४१॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** जो अज्ञानी इन वस्तुओं को तुम्हारे ऊपर रखेंगे वे कालसूत्र नामक नरक में सौ वर्ष तक पड़े
रहेंगे॥४२॥ हे नारद ! इस तरह से कहकर श्रीभगवान् मौन हो गये । उस गर्व से मङ्गल नामक ग्रह तेजस्वी हो गया ॥४३॥ उन सबों ने श्रीहरि की आज्ञा
से पृथिवी की पूजा की और कण्वशाखा में प्रोक्त स्तुति के द्वारा पृथिवी की स्तुति की ॥४४॥ उनसबों ने पृथिवी के मूलमंत्र से पृथिवी को नैवेद्य आदि
समर्पित किया । इस तरह से भूदेवी त्रैलोक्य में पूजित हो गयीं ॥४५॥ **नारदजी ने कहा–** आप मुझे बतलायें कि भूदेवी का मूल मंत्र, ध्यान तथा स्तुति
कौन है। वह सभी पुराणों में गूढ है, उसको सुनने का मेरे मन में कौतूहल हैं ॥४६॥ **श्रीनारायण ने कहा–** सर्वप्रथम पृथिवी देवी की पूजा वाराह भगवान्
ने की । उसके पश्चात् उनकी पूजा ब्रह्माजी ने की ॥४७॥ उसके बाद उनकी पूजा मुनीन्द्रो, मनुओं और मानवों ने की । मैं पृथिवी देवी का ध्यान, स्तुति
तथा मूल मन्त्र बतला रहा हूँ उसे आप सुनें ॥४८॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा इस मन्त्र से पृथिवी की पूजा भगवान् विष्णु ने की । पृथिवी का
वर्ण श्वेतकमल के समान है । मुख शरत्कालीन चन्द्रमा के समान आह्लादक है ॥४९॥ उनके सम्पूर्ण शरीर में चन्दन का लेप लगा है । वे रत्नों

कण्वशाखोक्तमेव च । श्रीनारायण उवाच– **जये जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे ।।५२।। यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे । मंगले मंगलाधारे मांगल्ये मंगलप्रदे ।।५३।। मङ्गलार्थं मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे । सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते ।।५४।। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे । पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि ।।५५।। पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे । सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये देवि**

सर्वेष्टं देहि मे भवे । पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि ।।५५।। पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे । सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये

सर्वसस्यदे ।।५६।। सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भव । भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे ।।५७।। भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे। इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।।५८।। कोटिजन्मसु स भवेद्बलवान्भूमिपेश्वरः । भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः ।।५९।। भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । अम्बुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम् ।।६०।। अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम् । परभूमिहरात्पापान्मुच्यते

के आभूषणों से भूषित हैं । वे रत्नों के आधार, रत्नगर्भा तथा रत्नाकार से युक्त हैं ।।५०।। अग्निशौच वस्त्र धारण किए हुई हैं तथा सदा मुस्कुराती रहती हैं । ऐसी पृथिवी देवी की मैं आराधना करता हूँ । इस ध्यान के द्वारा भूदेवी सबों से आराधित हुईं ।।५१।। हे विप्रेन्द्र ! आप पृथिवी की कण्वशाखोक्त स्तुति को सुनें । **श्रीनारायण ने कहा–** हे जलाधार स्वरूपिणि ! आप यज्ञसूकर श्रीभगवान् की पत्नी हैं । आप मुझे जय प्रदान करें । हे मंगल स्वरूपिणि! मङ्गल के आधार स्वरूपिणि ! तथा मङ्गल प्रदान करने वाली देवि ।।५३।। हे मङ्गल की स्वामिनी मैं मङ्गल के लिए आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ तत्त्वों के आधार स्वरूपिणि ! सर्वज्ञे ! तथा सभी शक्तियों से समन्वित देवि !।।५४।। हे सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली देवि ! आप मुझे सभी अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करें । हे पुण्यस्वरूपिणि पुण्यों के सनातन बीज स्वरूपिणि देवि ।।५५।। हे पुण्यों के आश्रय स्वरूपिणि ! आप पुण्यवान पुरुषों के गृह में पुण्य प्रदायिनी हों । हे समस्त सस्यों के आश्रय स्वरूपिणि । सभी सस्यों से सम्पन्न देवि ! सभी सस्यों (अन्नों) को देने वाली देवि ! सभी अन्नों को विनष्ट करने वाली, आप सम्पूर्ण सस्य स्वरूपिणि हो जायँ । हे भूमातत्त्व स्वरूपिणि ! हे सम्पूर्ण सर्वस्वरूपिणि, भूमिपालपरायणे ।।५६-५७।। हे राजाओं को सुख देने वाली देवि ! आप भूमि प्रदान करें । जो व्यक्ति प्रात:काल उठकर इस स्तोत्र को पढ़ता है ।।५८-५९।। वह करोड़ों जन्मों तक बलवान् भूमिस्वामी होता है । इस स्तोत्र के पढ़ने से भूमिदान करने का फल प्राप्त होता है । वह जलवाचक योग में भूमि के खनने से होने वाले पाप से मुक्त हो जाता है तथा दूसरे के कुएँ में कुआँ खनने के पाप से मुक्त हो जाता है । वह दूसरे की भूमि हड़पने के पाप से भी मुक्त हो जाता है ।।६०-६१।। वह पृथिवी पर वीर्यपात

नात्र संशयः ॥६१॥ भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात् । पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने ॥६२॥ अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः । भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

नारद उवाच– **भमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च । परभूहरणात्पापं कूपे कूपखनौ तथा ॥१॥ अंबुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च । दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥२॥ अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम् । यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर ॥३॥**
श्रीनारायण उवाच– **बितस्तिमात्रभूमिं च यो ददाति च भारते । संध्यापूताय विप्राय स याति शिवमन्दिरम् ॥४॥ भूमिं च सर्वसस्याढ्यां**

करने तथा पृथिवी पर दीपक स्थापना करने से उत्पन्न होने वाले पाप से इस स्तोत्र के पढ़ने से मुक्त हो जाता है ॥६२॥ इस स्तोत्र का पाठ करने से सैकड़ों अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । भूदेवी का यह महास्तोत्र सभी प्रकार के कल्याणों को करने वाला है ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

अनेक प्रकार के पापों का वर्णन

नारदजी ने कहा– आप मुझे भूमिदान करने से होने वाले पुण्य का तथा दूसरे की भूमि को हड़पने से होने वाले पाप का, दूसरे के कुएँ में कुआँ को खनने से होने वाले पाप को बतलाएँ ॥१॥ अम्बूवाची योग में पृथिवी को खनने से होने वाले पाप का, पृथिवी पर वीर्यत्याग करने से होने वाले पाप का तथा पृथिवी पर दीपस्थापन करने से होने वाले पाप को सुनायें मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ इसके अतिरिक्त पृथिवी से जो अन्य पाप होते हैं उनसबों को तथा उनके प्रतिकार को हमें बतलायें ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** जो व्यक्ति किसी सन्ध्या-वन्दन करने वाले ब्राह्मण को एक बिता भी भूमि दान देता है, वह मृत्यु के पश्चात् शंकरजी के लोक में जाता है ॥४॥ जो व्यक्ति सभी धान्यों से भरीपूरी भूमि ब्राह्मण को दान करता है वह उतने वर्ष तक वैकुण्ठ

ब्राह्मणाय ददाति च । भूमिरेणुप्रमाणाब्दमंते विष्णुपदे स्थितिः ॥५॥ ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरः स्थितौ ॥६॥ भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते । स च प्रयाति वैकुण्ठे मित्रगोत्रसमन्वितः ॥७॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥ तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च रौरवम् ॥९॥ गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति वै । दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति ॥१०॥ गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गे सस्यं ददाति यः। स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥११॥ पञ्चपिंडाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः । प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च ॥१२॥ कामी भूमौ रहसि च वीर्यत्यागं करोति यः । भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥१३॥ अंबुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः । स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥१४॥ परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः । पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः ॥१५॥ सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुण्डं व्रजेच्च सः । तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६॥ परकीये तडागे च पंकमुद्धृत्य चोन्मृजेत् । रेणुप्रमाणवर्षं च

लोक में निवास करता है जितनी संख्या उस भूमि के धूलिकणों की होती हैं ॥५॥ जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण को गाँव, भूमि तथा अन्नदान करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर पति पत्नी दोनों देवी के लोक में निवास करते है ॥६॥ जो व्यक्ति भूमिदान करने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहित करता है वह अपने मित्रों तथा अपने गोत्र वालों के साथ वैकुण्ठ लोक में जाता है ॥७॥ जो अपने से दी हुई अथवा दूसरे द्वारा दी गयी किसी ब्राह्मण की वृत्ति को हड़पता है वह कालसूत्र नामक नरक में तब तक निवास करता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा बने रहते हैं ॥८॥ उसके पुत्र और पौत्र सभी भूमिहीन और निर्धन होते हैं। वह पुत्रहीन, दरिद्र रहकर घोर रौरव नरक में जाता है ॥९॥ जो गोचर भूमि को जोतकर उससे अन्न उपजाता है वह देवताओं के सौ वर्ष तक कुम्भीपाक नामक नरक में निवास करता है ॥१०॥ जो व्यक्ति गोशाला तथा तालाब को जोतकर मार्ग में धान उपजाता है वह असिपत्र वन नामक नरक में तब तक रहता है जितनी चौदह इन्द्रों की आयु होती हैं ॥११॥ जो व्यक्ति दूसरे के खाये हुए अन्न का बदला नहीं चुकता है और दूसरे के कुएँ पर स्नान करता है । वह नरक में जाता है और उसका स्नान व्यर्थ हो जाता है ॥१२॥ जो कामी व्यक्ति एकान्त में भूमि पर अपना वीर्यपात करता है, वह उतने वर्ष तक रौरव नरक में रहता है जितना उस भूमि के कण होते हैं ॥१३॥ जो व्यक्ति अम्बुवाची योग में भूमि खनता है वह चार युगों तक कृमिदंश नामक नरक में रहता है ॥१४॥ दूसरे के द्वारा बनाये गये किन्तु लुप्त हो गये कुएँ में जो कुआँ बनवाता है तथा दूसरे के द्वारा निर्मित पुष्करिणी में पुष्करिणी बनाकर दान करता है ॥१५॥ उसका सारा फल दूसरे को मिलता है और वह स्वयं तप्तकुण्ड नामक नरक में जाता है । उस तप्तकुण्ड में वह उतने समय तक

ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१७॥ पिंडं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः । श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥१८॥ भूमौ दीपं योऽर्पयति स चांधः सप्तजन्मसु । भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत् ॥१९॥ मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा । पञ्च संस्थापयद्भूमौ स चान्धः सप्तजन्मसु ॥२०॥ शिवलिगं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले । शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षे स तिष्ठति ॥२१॥ शङ्खं यन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम् । यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम् ॥२२॥ जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा । यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ च याति नरकं ध्रुवम् ॥२३॥ भूमौ चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम् । संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वंतरावधि ॥२४॥ पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः । न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मांतरे जनिः ॥२५॥ ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम् । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः ॥२६॥ यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिंचति । स याति तप्तभूमिं च संतप्तः सप्तजन्मसु ॥२७॥ भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः । जन्मांतरे

निवास करता है जितनी बड़ी चौदह इन्द्रों की आयु होती है ॥१६॥ जो दूसरे के द्वारा निर्मित तडाग में पड़े हुए कीचड़ को निकलवाकर उसमें स्नान करता हैं, वह उतने वर्ष तक ब्रह्मलोक में निवास करता है जितनी संख्या उस पंक के धूलिकण की होती है ॥१७॥ जो मूर्ख व्यक्ति भूमिपति के पितरों को पिण्डदान किए विना उस भूमि पर पिण्डदान करता है वह निश्चित रूप से नरकगामी होता है ॥१८॥ जो भूमि पर दीपदान करता है वह सात जन्मों तक अंधा होता है । जो भूमि पर शंख को रखता है वह दूसरे जन्म में कोढ़ी होता है ॥१९॥ जो व्यक्ति मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण तथा मणि इन पाँच वस्तुओं को भूमि पर रखता है वह सात जन्मों तक अन्धा होता है ॥२०॥ जो व्यक्ति शिवलिङ्ग तथा शिव की मूर्ति को भूमि पर रखता है वह सौ मन्वन्तरों तक कृमिभक्ष नरक में रहता है ॥२१॥ जो व्यक्ति शंख, यन्त्र तथा शालग्राम शिला का जल, फूल तथा तुलसीदल को भूमि पर रखता है वह निश्चित रूप से नरक में जाता है ॥२२॥ जपमाला, फूलमाला, कपूर तथा गोरोचन को भूमि पर रखता है, वह भी निश्चित रूप से नरक में जाता है ॥२३॥ जो व्यक्ति चन्दन की लकड़ी, रुद्राक्ष तथा कुश की जड़ को भूमिपर रखता है वह मन्वन्तर पर्यन्त नरक में रहता है ॥२४॥ जो व्यक्ति पुस्तक तथा यज्ञोपवीत को भूमि पर रखता है वह ब्राह्मण के वंश में कभी भी जन्म नहीं लेता है ॥२५॥ उसको इस लोक में ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है । जिस यज्ञोपवीत में गाँठ लगी हो उसकी पूजा सबको करनी चाहिए ॥२६॥ जो यज्ञ करके के अन्त में दूध से भूमि को नहीं सींचता है वह सात जन्मों तक संतप्त रहकर 'तप्तभूमि' नामक नरक में जाता है ॥२७॥ भूकम्प के समय तथा ग्रहण के समय जो भूमि को खनता है वह महापापी दूसरे जन्म में अङ्गहीन होता है॥२८॥ चूंकि सबलोगो के भवन जमीन पर बने हैं अतएव पृथिवी भूमि कहलाती है । महर्षि कश्यप की पुत्री होने के कारण यह काश्यपी कहलाती है और स्थिर

महापापी गङ्गाहीनो भवेद्ध्रुवम् ॥२८॥ भवनं च सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता । काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थिररूपतः ॥२९॥ विश्वम्भरा धारणाच्चानंताऽनंतस्वरूपतः । पृथिवी पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने ॥३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

नारद उवाच– **श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गंगोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥ भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी। विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च ॥२॥ कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥३॥** श्रीनारायण उवाच– **राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः । तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥४॥ तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः । असमंज इति ख्यातः शैब्यायां कुलवर्धनः ॥५॥ अन्या चाराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह॥६॥**

होने के कारण यह अचला कहलाती है ॥२९॥ सम्पूर्ण जगत् को धारण करने के कारण यह विश्वम्भरा है और अनन्त रूपों वाली होने के कारण अनन्ता कहलाती है । हे महामुने ! महाराज पृथु की कन्या होने के कारण यह पृथ्वी कहलाती है, और विस्तृत होने के कारण भी इसे पृथिवी कहते हैं ॥३०॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे वेदज्ञों में सर्वश्रेष्ठ ! मैंने सरस्वती का मनोहर उपाख्यान सुना अब आप मुझे गङ्गा का उपख्यान सुनायें ॥१॥ सरस्वती के शाप से सुरेश्वरी गङ्गा भारत में गयीं । वे स्वयं विष्णु स्वरूपा हैं तथा विष्णुपदी कहलाती हैं ॥२॥ प्राचीन काल में किसने क्यों कहाँ पर गङ्गा जी की प्रार्थना करके उनको भारत में आने के लिए प्रेरित किया । उस पाप विनाशक पुण्यप्रद मङ्गलमयी कथा को मैं सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** सूर्यवंश के राजराजेश्वर महाराज सगर थे । उनकी दो सुन्दर पत्नियाँ थीं वैदर्भी और शैव्या ॥४॥ उनकी पत्नी शैव्या को एक पुत्र हुआ उसका नाम असमञ्ज था ॥५॥

गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिंड सुषाव सा । तद्दृष्ट्वा सा शिवं ध्यांत्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥७॥ शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत्पिंडं षष्टिसहस्त्रधा ॥८॥ सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टकलेवराः ॥९॥ कपिलस्य मुनेः शापाद्बभूवुर्भस्मसाच्च ते । राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने ॥१०॥ तपश्चकारासमंजो गंगानयनकारणात् । लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः ॥११॥ अंशुमांस्तस्य तनयो गंगानयनकारणात् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥ भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः । वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१३॥ तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणात् । ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥१४॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम् । गोपालसुन्दरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम् ॥१५॥ स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥१६॥ निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम् ॥१७॥ वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥१८॥ लीलया च वरं प्राप वांछितं वंशतारणम् । कृत्वा च स्तवनं दिव्यं

दूसरी पत्नी वैदर्भी ने पुत्रप्राप्ति की कामना से शंकरजी की आराधना की । शंकरजी के वरदान से वह गर्भवती हुई ॥६॥ एकवर्ष के बाद उसने एक मांसपिण्ड को जन्म दिया उसको देखकर वह जोर-जोर से रोने लगी ॥७॥ ब्राह्मण का वेष धारण करके शंकरजी उसके पास आये । उन्होंने उस मांसपिण्ड को साठ हजार भागों में विभक्त कर दिया ॥८॥ वे सब के सब महाबलवान् और महापराक्रमी पुत्र हो गये । उनकी कान्ति और शरीर ग्रीष्मकालिक सूर्य के समान थे ॥९॥ महर्षि कपिल के शाप से वे सब जलकर भस्म हो गये । यह सुनकर राजा असमंज रोने लगे और घोर वन में चले गये । वे गङ्गा को लाने के लिए घोर तपस्या किये और एक लाख वर्ष तक तपस्या करके काल कवलित हो गये ॥१०-११॥ उनके बाद उनके पुत्र अंशुमान गङ्गा जी को लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तपस्या करके मर गये ॥१२॥ उनके पुत्र भगीरथ महाभागवत और महाबुद्धिमान हुए । वे वैष्णव, गुणवान और अजर अमर थे ॥१३॥ वे भी गङ्गा जी को लाने के लिए एक लाख वर्ष तक तपस्या किये । उससे प्रसन्न होकर करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले भगवान् कृष्ण का दर्शन हुआ ॥१४॥ मुरलीधारी, दो भुजाओं वाले, किशोरावस्था वाले, गोपवेषधारी, भगवान् के साथ गोपाल सुन्दरी राधा भी थीं । वे भक्तों पर कृपा करने वाले थे ॥१५॥ स्वतंत्र परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता और मुनिगण कर रहे थे । सदा निर्लिप्त, साक्षी, निर्गुण तथा प्रकृति से परे उनका रूप था । भक्तों पर अनुग्रह करने वाले श्रीभगवान् का मुख मन्द मुसुकान से सुशोभित था ॥१६-१७॥ वे अग्निशौच, वस्त्र को धारण किए हुए थे, रत्नों के आभूषणों से समलंकृत थे । राजा ने श्रीभगवान् का दर्शन करके उनकी स्तुति की और उन्हें बार-बार

पुलकांकितविग्रहः ॥१९॥ श्रीभगवानुवाच– **भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि । सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया ॥२०॥ त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यंति मम मंदिरम् । विभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यंदनगामिनः ॥२१॥ मत्पार्षदा भविष्यंति सर्वकालं निरामयाः । समुच्छिद्य कर्मभोगान्कृताञ्जन्मनि जन्मनि ॥२२॥ कोटिजन्मार्जितं पाप्मं भारते यत्कृतं नृभिः । गंगाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् ॥२३॥ स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः । मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् ॥२४॥ शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम् । यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥२५॥ जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम् ॥२६॥ पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च । किंचिद्वदंति ते विप्र फलमेव यथागमम् ॥२७॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुंदरि॥२८॥ पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् । ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥२९॥ अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने। ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ॥३०॥ चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं पुण्यमेव च । अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम् ॥३१॥**

प्रणाम किया ॥१८॥ रोमाञ्चित शरीर वाले वे भगवान् की स्तुति करके विना प्रयास के ही अपने वंश का उद्धार करने का वरदान प्राप्त किये ॥१९॥ **श्रीभगवान् ने गङ्गा से कहा–** हे सुरेश्वरि ! तुम सरस्वती के शाप के कारण शीघ्र ही भारतवर्ष में चली जाओ । मेरी आज्ञा से तुम सगर के पुत्रों को पवित्र बना दो ॥२०॥ तुमसे स्पृष्ट वायु का स्पर्श पाकर ही वे सब मेरे लोक में चले जायेंगे । वे मेरे ही समान रूप धारण करके, दिव्य रथ पर सवार होकर मेरे लोक में चले जायेंगे ॥२१॥ वे अनेक जन्मों के अपने कर्मपाशों को विनष्ट करके सदा के लिए मेरे नित्यपार्षद हो जायेंगे ॥२२॥ वेद बतलाता है कि भारत वर्ष में मनुष्यों द्वारा किये गये पापों का गङ्गा की वायु के स्पर्श मात्र से नाश हो जाता है ॥२३॥ गङ्गा देवी के दर्शन और स्पर्श करने से उसके दश गुना पुण्य होता है । सामान्य दिनों में गङ्गा में स्नान करने से सामान्य पुण्य होता है ॥२४॥ श्रुति कहती है कि सैकड़ो जन्म में अर्जित ब्रह्महत्या इत्यादि पाप केवल सामान्य स्नान करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं ॥२५-२६॥ पवित्र दिन को गङ्गा में स्नान करने से जो पुण्य होता है, उसका वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते हैं । उसका कुछ वर्णन ब्राह्मण लोग शास्त्रानुसार करते हैं ॥२७॥ पुण्याह के दिन गङ्गा में स्नान करने के फल का वर्णन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता भी नहीं कर सकते हैं । हे सुन्दरि ! गङ्गे ! सामान्य स्नान का संकल्प सुनो ॥२८॥ सामान्य स्नान से मूसल स्नान का फल दश गुना होता है । उससे तीस गुना अधिक फल सूर्यग्रहण में स्नान करने से होता है । अमावस्या के दिन स्नान करने से भी उतना ही पुण्य होता है। दक्षिणायन में गङ्गा में स्नान करने से उसके दो गुना पुण्य होता है । उसके दश गुना फल उत्तरायण में स्नान करने से होता है ॥२९-३०॥ चातुर्मास की

**असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम् ॥३२॥ मन्वंतराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च । माघस्य
सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च ॥३३॥ अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः । ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नंदायां तव दुर्लभम् ॥३४॥
दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम् । नन्दासनं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम् ॥३५॥ ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति । पुण्यं कोटिगुणं
चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत् ॥३६॥ चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः । पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् ॥३७॥ इत्येवमुक्त्वा देवेशो
विरराम तयोः पुरः । तमुवाच ततो गङ्गा भक्तिनम्रात्मकंधरा ॥३८॥** गङ्गोवाच— **यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा । तवाज्ञया च राजेंद्र
तपसा चैव सांप्रतम् ॥३९॥ दास्यंति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च । तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो ॥४०॥ कतिकालपरिमितं
स्थितिर्मे तत्र भारते । कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४१॥ ममान्यद्वांछितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित् । सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं
वद प्रभो ॥४२॥** श्रीभगवानुवाच— **जानामि वांछितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि । पतिस्ते द्रवरूपाया लवणोदो भविष्यति ॥४३॥ स ममांशस्वरूपश्च**

पूर्णिमा को गङ्गा में स्नान करने से अनंत फल होता है । अक्षय नवमी अथवा अक्षय तृतीया को गङ्गा में स्नान करने से भी अनंत फल प्राप्त होता है यह वेद में बतलाया गया है ॥३१॥ इन तिथियों में स्नान करके दान करने का असंख्य फल होता है । सामान्य दिनों में स्नान करके दान करने के फल से सौ गुणा फल होता है ॥३२॥ मन्वन्तर आदि तिथियों युगादि तिथियों, माघ शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी तथा नंदा आदि तिथियों में गङ्गा में स्नान करने से उसके दो गुना फल होता है ॥३३-३४॥ गङ्गादशहरा के दिन गङ्गा स्नान करने से युगादि तिथि को स्नान करने के समान ही फल होता है । महावारुणी आदि तिथियों पर गङ्गा में स्नान करने से उसके चार गुना फल होता है ॥३५॥ महामहावारुणी पर्व पर गङ्गा स्नान करने से उसके भी चार गुना फल प्राप्त होता है । यह सामान्य गङ्गा स्नान से करोड़ गुना अधिक होता है ॥३६॥ चन्द्रग्रहण के अवसर पर गङ्गा स्नान करने से सूर्यग्रहण से दश गुना फल होता है और अर्धोदय स्नान करने से सौ गुना फल मिलता है ॥३७॥ इसतरह गङ्गा और भगीरथ से कहकर श्रीभगवान् चुप हो गये । इसके पश्चात् भक्तिपूर्वक गङ्गा ने श्रीभगवान् से कहा ॥३८॥ **गङ्गा ने कहा—** हे भगवन् ! सरस्वती के शाप के कारण और आपकी आज्ञा से तथा राजा भगीरथ की तपस्या के कारण मैं भारत वर्ष में जा रही हूँ ॥३९॥ किन्तु पापी लोग स्नान करके अपना पाप मुझमें जो छोड़ जायेंगे उन पापों का नाश कैसे होगा ?॥४०॥ मैं कितने काल पर्यन्त भारत में रहूँगी हे देवेश ! इसके बाद मैं आपके लोक में कब आऊँगी ॥४१॥ हे सर्वज्ञ ! मैं अन्य जिन बातों को चाहती हूँ, उन सारी बातों को आप जानते हैं । आप तो सबों की अन्तरात्मा और सर्वज्ञ हैं । अतएव आप उसका उपाय बतलायें ॥४२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** गङ्गे ! तम्हारे सभी अभीप्रेत अर्थों को जानता हूँ । तुम्हारा पति क्षारसमुद्र होगा ॥४३॥ वह समुद्र मेरा अंश है और तुम स्वयं लक्ष्मी

त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी । विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥४४॥ यावत्यः संति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते । सौभाग्या त्वं तास्वेव
लवणोदस्य सौरते ॥४५॥ अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पंचसहस्रकम् । वर्ष स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥४६॥ नित्यं त्वमब्धिना सार्धं
करिष्यसि रहो रतिम् । त्वमेव रसिका देवि रसिकेंद्रेण संयुता ॥४७॥ त्वां स्तोष्यंति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च । भारतस्था जनाः सर्वे
पूजयिष्यंति भक्तितः ॥४८॥ कण्वशास्त्रोक्तध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति । यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥४९॥ गंगा गंगेति
यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं च गच्छति ॥५०॥ सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति । प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव
तद्धि विनंक्ष्यति ॥५१॥ पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि । तन्मंत्रोपासकस्नानात्तदघं च विनंक्ष्यति ॥५२॥ तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम्।
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे ॥५३॥ तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र तद्गुणकीर्तनम् । त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी ॥५४॥
रेणुप्रमाणवर्षं च देवीलोके वसेद्ध्रुवम् । ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥५५॥ समुत्सृजंति प्राणांश्च ते गच्छंति हरेः पदम् ।
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यंति हरेश्चिरम् ॥५६॥ लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यंति चाप्यसंख्यकम् । मृतस्य बहुपुण्येन तच्छव त्वयि विन्यसेत् ॥५७॥

स्वरूपिणी हो । अतएव तुम निपुण हो और भूलोक में तुम्हारा संयोग निपुण सागर से होगा ॥४४॥ भारतवर्ष में सरस्वती इत्यादि जितनी भी नदियाँ हैं, उन सबों में तुम्हारा ही सर्वाधिक सौभाग्य होगा, क्योंकि तुम्हें सागर जैसा पति प्राप्त होगा ॥४५॥ सरस्वती के शाप के कारण आज से कलियुग के पाँच हजार वर्ष तक तुम्हारी स्थिति भारतवर्ष में होगी ॥४६॥ हे देवि ! समुद्र रसिकेन्द्र हैं । तुम नित्य ही समुद्र का स्नेह एकान्त में प्राप्त करोगी ॥४७॥ भारत में सभी लोग भगीरथ कृत स्तुति से तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥४८॥ जो व्यक्ति कण्वशाखोक्त विधि से तुम्हारी पूजा करेगा और तुम्हारी स्तुति करेगा वह अश्वमेघ याग का फल प्राप्त करेगा ॥४९॥ जो पुरुष सौ योजन दूर से भी गङ्गे-गङ्गे इस नाम का उच्चारण करेगा वह सभी पापों से रहित होकर विष्णुलोक में जायेगा॥५०॥ हजारो पापियों के स्नान करने से जो पाप तुमको लगेगा वह एक देवीभक्त का दर्शन कर लेने मात्र से विनष्ट हो जायेगा ॥५१॥ हजारो पापियों के शव का स्पर्श करने से जो पाप तुमको लगेगा वह देवी के मन्त्र की उपासना करने वाले भक्त का स्पर्श करने मात्र से ही विनष्ट हो जायेगा ॥५२॥ हे शुभे ! तुम भारत वर्ष में ही निवास करोगी । सरस्वती आदि सभी नदियाँ तुम्हारा साथ देंगी ॥५३॥ जहाँ पर तुम्हारे गुणों का कीर्तन होगा वही स्थान तीर्थ होगा । तुम्हारी धूलि का स्पर्श करने मात्र से पापी पवित्र हो जायेगा ॥५४॥ उस धूलि की संख्या के बराबर वर्षों तक वह देवी के लोक में निवास करेगा । जो लोग जानकर मेरा स्मरण करते हुए तुम्हारे तट में अपने प्राणों का परित्याग करेंगे वे श्रीहरि के लोक में जायेंगे और श्रीहरि के रूप. को प्राप्त

प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि । कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मकम् ॥५८॥ तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम्।
अज्ञानी त्वज्जलपर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् ॥५९॥ तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम् । अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥६०॥
तस्मै ददामि सलोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः । अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ॥६१॥ तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ।
रत्नेद्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥६२॥ सद्यः प्रयाति गालोक मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् । तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन ॥६३॥
मन्मंत्रोपासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् । पूतं कर्तुं सशक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् ॥६४॥ रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं संप्रयांति च । मद्भक्ता
बांधवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि ॥६५॥ प्रयांति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम् । यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिभिः सति ॥६६॥
जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तेः संविधानतः । इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च प्रत्युवाच भगीरथम् ॥६७॥ स्तुहि गंगामिमां भक्त्या पूजां च कुरु साम्प्रतम्।
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः ॥६८॥ कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेणापि पुनः पुनः । प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् ॥६९॥

कर लेंगे ॥५५-५६॥ वे असंख्य प्राकृतिक प्रलयकाल पर्यन्त वहीं निवास करेंगे । बडे ही पुण्य से किसी का शव गंङ्गा नदी में आयेगा ॥५७॥ उसकी स्थिति जितने दिन तक तुममें होगी उतने दिन तक वह जीव वैकुण्ठ लोक़ में निवास करेगा । इसके बाद अनेक शरीर धारण करके अपने कर्मों का फल भोगकर वह मेरे सारुप्य मुक्ति को प्राप्त कर लेगा और मेरा पार्षद बनेगा । यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति भी तुम्हारे जल का स्पर्श करके अपने प्राणों का परित्याग करे ॥५८-५९॥ उसको भी मैं अपनी सालोक्य मुक्ति देकर अपना पार्षद बना देता हूँ । यदि तुम्हारे नामों का स्मरण करते हुए वह कहीं अन्यत्र भी अपने प्राणों का परित्याग करे तो मैं उसे ब्रह्माजी की आयुपर्यन्त सालोक्यमुक्ति प्रदान करता हूँ ॥६०-६१॥ यदि कोई कही भी तुम्हारे नामों का स्मरण करते हुए शरीर त्यागता है तो वह मेरे सारुप्य को असंख्य प्राकृत प्रलय पर्यन्त प्राप्त करता है । वह श्रेष्ठ रत्न निर्मित विमान से मेरे पार्षदों के साथ सद्यः गोलोक को प्राप्त करता है और मेरे सदृश हो जाता है । वह चाहे तीर्थ में मरे या अतीर्थ में इससे कोई अन्तर नहीं होता है ॥६२-६३॥ जो व्यक्ति मेरे मन्त्र की उपासना करता हुआ मेरा प्रसाद ही भोजन करता है, वह विना प्रयास के ही त्रैलोक्य को पवित्र बनाने में समर्थ होता है ॥६४॥ जिसके बाँधव मेरे भक्त हैं, वे चाहे पशु ही क्यों नहीं हों वे सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमान से गोलोक में जाते हैं ॥६५॥ जहाँ कहीं भी मेरे ज्ञानी भक्त रहकर मेरा स्मरण करते हैं॥६६॥ वे मेरी भक्ति के प्रभाव से पवित्र होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं । इस तरह से कहकर श्रीहरि भगीरथ से कहे ॥६७॥ अब तुम भक्तिपूर्वक गङ्गा की स्तुति करो और उनकी पूजा करो । भगीरथ ने भी गङ्गा की स्तुति करके उनकी पूजा की ॥६८॥ कौथुमशाखोक्त स्तुति से प्रार्थना करके उन्होंने गङ्गा जी को बार-बार प्रणाम किया और परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥६९॥ इसके बाद भगीरथ और गङ्गा अपने अभीष्ट स्थान की ओर चल पड़े । नारदजी ने

भगीरथश्च गंगा च सोऽन्तर्धानं चकार ह । नारद उवाच– **केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च ॥७०॥ पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर।** श्रीनारायण उवाच– **स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी ॥७१॥ संपूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम् । गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥७२॥ संपूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने । गणेशं विघ्ननाशाय आरोग्याय दिवाकरम् ॥७३॥ वह्निं शौचाय विष्णुं च लक्ष्म्यर्थं पूजयेन्नरः । शिवं ज्ञानाय ज्ञानेशं शिवां च मुक्तिसिद्धये ॥७४॥ संपूज्यैतॉंल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा । दध्यावनेन ध्यानेन तद्ध्यानं शृणु नारद ॥७५॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **ध्यानं च कण्वशाखोक्तं सर्वपापप्रणाशनम् । श्वेतपंकजवर्णाभां गंगां पापप्रणाशिनीम् ॥१॥ कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां**

पूछा– हे वेदज्ञश्रेष्ठ ! आप बतलायें कि राजा भगीरथ ने किस ध्यान तथा किस स्तोत्र से तथा किस पूजा क्रम से गङ्गा की पूजा की ॥७०॥ **श्रीनारायण ने कहा–** स्नान करके नित्यक्रिया करके दो स्वच्छ वस्त्र धारण करके ॥७१॥ गणेश, दिनेश, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती की पूजा भक्तिपूर्वक करके राजा भगीरथ गङ्गा की पूजा करने के अधिकारी बन गये । विघ्नों का विनाश करने के लिए गणेशजी की, आरोग्य प्राप्ति के लिए सूर्य की ॥७२-७३॥ पवित्रता के लिए अग्नि की तथा लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए विष्णु की पूजा करनी चाहिए । ज्ञान प्राप्ति के लिए शिवजी की तथा मुक्ति प्राप्ति के लिए शिवा की पूजा करनी चाहिए ॥७४॥ इन देवताओं की पूजा करने से उपर्युक्त वस्तुओं की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं । हे नारदजी ! जिस ध्यानमन्त्र से भगीरथ ने ध्यान किया उसे आप सुनें ॥७५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

गङ्गाजी के ध्यान और स्तुति का तथा राधाकृष्ण के अङ्गों के प्रादुर्भाव का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– कण्वशाखा में प्रोक्त ध्यान सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । गङ्गाजी का वर्ण श्वेत कमल के समान है, वे सभी पापों को

परां सतीम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२॥ शरत्पूर्णेंदुशतकमृष्टशोभाकरां पराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥३॥
नारायणप्रियां शान्तां तत्सौभाग्यसमन्विताम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥४॥ सिंदूरबिंदुललितं सार्धं चदंनबिंदुभिः । कस्तूरीपत्रकं
गंडे नानाचित्रसमन्वितम् ॥५॥ पक्वबिंबविनिंद्याच्छचावोंष्ठपुटमुत्तमम् । मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदंतपंक्तिमनोरमम् ॥६॥ सुचारुवक्त्रनयनं सकटाक्षं मनोहरम्।
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम् ॥७॥ बृहच्छ्रोणिं सुकठिनां रभास्तम्भविर्निंदिताम् । स्थलपद्मप्रभामुष्टपदपद्मयुगं वरम् ॥८॥ रत्नपादुकसंयुक्तं
कुंकुमाक्तं सयावकम् । देवेंद्रमौलिमंदारमरंदकणारुणम् ॥९॥ सुरसिद्धमुनींद्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदा । तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम् ॥१०॥
मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम् । वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥११॥ श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ।
इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् ॥१२॥ दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश । आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम् ॥१३॥ धूपं
दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् । वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् ॥१४॥ मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश । दत्त्वा भक्त्या च

विनष्ट करने वाली हैं ॥१॥ वे भगवान् कृष्ण के विग्रह से उद्भूत हैं, भगवान् श्रीकृष्ण के समान सुयोग्य हैं । वे अग्निशौच वस्त्र को धारण करती हैं, रत्नों
के आभूषणों से भूषित हैं ॥२॥ सैकड़ों शरत् कालीन चन्द्रमा के समान परम मनोज्ञ शोभा से सम्पन्न हैं । मन्द मुसुकान से उनका मुख प्रसन्न है । उनका
यौवन सुस्थिर है ॥३॥ वे भगवान् नारायण की प्रिया हैं । शान्त स्वभाव वाली हैं, तथा भगवान् के सौभाग्य से सम्पन्न हैं । अपने केशों में मालती की
माला धारण करती हैं ॥४॥ उनका ललाट चन्दन की विन्दु के साथ सिन्दूर के विन्दु से मनोहर बना हुआ है । उनके कपोल पर कस्तूरी से अनेक प्रकार
की रेखायें बनी हैं ॥५॥ उनका मनोहर ओष्ठ विम्बफल से भी अधिक मनोहर है । उनके दाँतों की पंक्ति मोती की पंक्ति से भी अधिक सुन्दर हैं ॥६॥
कटाक्ष पात से मनोहर उनके नेत्रों से उनका मुखमण्डल मण्डित है । उनके दोनों स्तन श्रीफल के आकार वाले हैं और कठोर हैं ॥७॥ उनके विशाल तथा
कठोर जंघे केले के स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर हैं । उनके दोनों चरणकमल स्थलकमल की शोभा से भी सुन्दर है ॥८॥ रत्न निर्मित चरण चौकी से
समलंकृत पैरों में महावर लगा हुआ है । इन्द्र के मुकुट में लगे पारिजात पुष्प के पराग से गङ्गाजी के चारण लाल बने हुए हैं ॥९॥ देवता, सिद्ध, मुनीन्द्र
उनके चरणों में अर्घ्य प्रदान करते हैं । तपस्विसमूह रूप भ्रमरों से समन्वित हैं गङ्गा जी के चरण ॥१०॥ वे मुमुक्षुओं को मोक्ष तथा भोगियों को भोग प्रदान
करने वाली हैं । इस तरह के श्रेष्ठतम वरदान देने वाली विष्णुपदी, भक्तों पर कृपा करने वाली ॥११॥ भगवान् विष्णु के लोक को प्रदान करने वाली सती
शिरोमणी गङ्गाजी का मैं ध्यान करता हूँ । इस ध्यान के द्वारा त्रिपथगा गङ्गाजी का ध्यान करके, उनका षोडशोपचार से पूजन करना चाहिए ॥१२॥ आसन,
पाद्य, अर्घ्य, स्नान, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतलजल, वस्त्र, आभूषण, माला, गन्ध और आचमन ॥१३-१४॥ मनोहर शय्या ये सोलह

प्रणमेत्संस्तूय संपुटांजलिः ॥१५॥ संपूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् । नारद उवाच– श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥१६॥ विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् । श्रीनारायण उवाच– शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥१७॥ शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णांगसमुद्भवाम्। राधांगद्रव संयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥१८॥ यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले । सन्निधाने शंकरस्य तां गंगां प्रणमाम्यहम् ॥१९॥ गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे । कार्तिकीपूर्णिमायां च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२०॥ कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः । समावृताया गोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२१॥ षष्टिलक्षयोजनायामा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२२॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गा प्रणमाम्यहम् ॥२३॥ त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः । आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२४॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः । आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥२५॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२६॥ षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः ।

वस्तुएँ गङ्गाजी को निवेदित करनी चाहिए । उसके बाद भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और हाथ जोड़कर स्तुति करे ॥१५॥ इस तरह से गङ्गाजी की पूजा करके मनुष्य अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है । **नारदजी ने कहा–** हे देवेश ! हे लक्ष्मिकान्त ! हे जगत्पते !॥१६॥ हे विष्णो ! पुण्यप्रद और पाप विनाशक मैं गङ्गाजी की स्तुति को सुनना चाहता हूँ । **श्रीनारायण ने कहा–** हे नारदजी ! पाप विनाशक, पुण्यप्रदायक गङ्गा की स्तुति आप सुने ॥१७॥ गङ्गाजी शंकरजी के संगीत को सुनकर मुग्ध भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से उद्भूत हैं तथा राधाजी के अंगद्रव से सम्पन्न हैं, उन भगवती गङ्गा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१८॥ जिनका जन्म सृष्टि के प्रारम्भ में गोलोक में रास मण्डल में शंकरजी के सन्निकट में हुआ, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१९॥ मङ्गलमय राधामहोत्सव के अवसर पर गोपों तथा गोपियों के बीच कार्तिकमास की पूर्णिमा को जिनका जन्म हुआ उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ जो करोड़ योजन विस्तृत तथा लाख गुना लम्बी गोलोक में हैं, उन गङ्गा जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२१॥ जो वैकुण्ठ लोक में साठ लाख योजन चौड़ी तथा उसके चार गुना लम्बी रूप से विद्यमान है, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२२॥ जो ब्रह्मलोक में तीन लाख योजन चौड़ी और उसके पाँच गुना दीर्घ रूप से फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥ जो तीस लाख योजन चौड़ी और उसके चार गुना लम्बी होकर शिवलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२४॥ लाख योजन विस्तीर्ण तथा उसके सौ गुना लम्बी रूप से जो ध्रुवलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ॥२५॥ एक लाख योजन विस्तृत और उसके पाँच गुना लम्बी रूप से जो चन्द्रलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥ जो साठ हजार योजन

आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२७॥ लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥२८॥ सहस्त्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः । आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥२९॥ दशलक्षयोजनायामा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः । आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३०॥ सहस्त्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः । आवृता या च कैलासे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३१॥ शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः । मंदाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३२॥ पाताले भोगवती च विस्तीर्णा दशयोजना । ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३३॥ क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् । क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३४॥ सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिंदुसन्निभा । द्वापरे चंदनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३५॥ जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले । स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ॥३६॥ यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसंभवः । ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥३७॥ इत्येवं कथिता ब्रह्मन्गङ्गापद्यैकविंशतिः । स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ॥३८॥ नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् । सोऽश्वमेधफलं

विस्तृत और उसके दश गुना लम्बी रूप से सूर्यलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७॥ एकलाख योजन विस्तृत तथा उसके पाँच गुना लम्बी रूप से जो तपोलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥ हजार योजन विस्तृत और उसके दशगुना लम्बी रूप से जो जनलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को प्रणाम करता हूँ ॥२९॥ जो दशलाख योजन विस्तृत और उसके पाँच गुना लम्बी रूप से महर्लोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥ एकहजार योजन विस्तृत तथा उसके सौ गुना लम्बी जो कैलास पर्वत पर फैली हैं, उन गङ्गा जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३१॥ जो सौ योजन विस्तृत और उसके दशगुना लम्बी रूप में इन्द्रलोक में फैली हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३२॥ जो पाताल लोक में दश योजन विस्तृत तथा उसके दश गुना लम्बी होकर पाताल में भोगवती रूप में विद्यमान हैं उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३३॥ जो पृथिवी पर एक कोश चौड़ी तथा कहीं-कहीं उससे भी पतली होकर अलकनन्दा रूप से विद्यमान हैं, उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ जो सत्ययुग में दुग्ध के समान वर्ण वाली, त्रेतायुग में चन्द्रमा के समान कान्ति वाली, और द्वापर में चन्दन के समान कान्ति वाली होती हैं उन गङ्गा जी कौ मैं प्रणाम करता हूँ ॥३५॥ केवल पृथिवी पर ही जिनकी कान्ति जल की है, तथा स्वर्ग में सदा दुग्ध के समान कान्तिवाली रहती है, उन गङ्गाजी कौ मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जिनके जल का एक कण का भी स्पर्श हो जाने पर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तथा करोड़ों जन्म में किए गये ब्रह्महत्या जैसे पाप जलकर भस्म हो जाते हैं उन गङ्गाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह से गङ्गाजी की स्तुति रूप से इक्कीस पद्य कहे गये हैं, ये पापों को विनष्ट

नित्यं लभते नात्र संशयः ॥३९॥ अपुत्रा लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् । रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥४०॥ अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पंडितः । यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम् ॥४१॥ शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत् । श्रीनारायण उवाच– स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः ॥४२॥ जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः । वैकुंठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना ॥४३॥ भगीरथेन साऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता । इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम् ॥४४॥ पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । नारद उवाच– कथं गंगा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी ॥४५॥ कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो । तत्रस्थाश्च जना ये ये च किं चक्रुरुत्तमम् ॥४६॥ एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि । नारायण उवाच– कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः॥४७॥ कृष्णः संपूज्य तां राधामुवास रासमण्डले । कृष्णेन पूजितां तां तु संपूज्य हृष्टमानसाः ॥४८॥ ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः । एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीता च सरस्वती ॥४९॥ जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम् । तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेंद्रसारहारकम् ॥५०॥ शिवो

करने वाले तथा पुण्यों को देने वाले हैं ॥३८॥ जो व्यक्ति गङ्गाजी की पूजा करके इस स्तोत्र का पाठ करता है वह अश्वमेध याग का फल प्राप्त करता है ॥३९॥ जो व्यक्ति प्रात:काल उठकर भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र को पढता है वह ॥३९॥ पुत्रहीन हो तो पुत्र को प्राप्त कर लेता है, पत्नीहीन हो तो पत्नी को प्राप्त कर लेता है । रोगी रोग से मुक्त हो जाते हैं और बन्धन में पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धन मुक्त हो जाता है ॥४०॥ यशहीन व्यक्ति यशस्वी हो जाता है, मूर्ख पण्डित हो जाता है ॥४१॥ दु:स्वप्न का भी अच्छा फल होता है और उसे गंगा स्नान का फल प्राप्त होता है । **श्रीनारायण ने कहा–** इस स्तोत्र से गङ्गाजी की स्तुति करके राजा भगीरथ ॥४२॥ गङ्गाजी को लेकर वहाँ गये जहाँ पर राजा सगर के पुत्र भस्म हो गये थे । वे सब गङ्गा जी की वायु के ही स्पर्श मात्र से वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥४३॥ भगीरथ के द्वारा पृथिवी पर लाये जाने के कारण गङ्गाजी का एक नाम भागीरथी है । इस तरह से मैंने आपको गङ्गा जी की उत्तम कथा को सुनाया ॥४४॥ यह उपाख्यान पुण्य तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? **नारदजी ने कहा–** लोकों को पवित्र बनाने वाली गङ्गाजी किस तरह से त्रिपथगा हो गयीं ॥४५॥ ये कहाँ और किस प्रकार से त्रिपथगा हुयीं ? इसको आप मुझे सविधि सुनायें। उन लोकों में रहने वालों के कौन से उत्तमकोटि के पुण्य हैं ॥४६॥ इन सरी बातों को आप मुझे विस्तार से बतलायें । **श्रीनारायण ने कहा–** कार्तिक मास की पूर्णिमा को राधा महोत्सव था ॥४७॥ भगवान् श्रीकृष्ण राधा का पूजन करके रासमण्डल में विराजमान थे । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा पूजित राधा का पूजन ब्रह्मा आदि देवता तथा शौनकादिक ऋषियों ने किया ॥४८॥ और वे वहीं विराजमान हो गये । उसी समय सरस्वती देवी हाथ में वीणा लेकर सुन्दर ताल

मणींद्रसारं तु सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम् । कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम् ॥५१॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका । नारायणश्च भगवान्ददौ मालां मनोहराम् ॥५२॥ अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुण्डलम् । विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥५३॥ दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम् । धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे ॥५४॥ वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान् । एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्ब्रह्मणः प्रेरितो मुहुः ॥५५॥ जगौ श्रीकृष्णसङ्गीतं रासोल्लाससमन्वितम् । मूर्च्छामापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ॥५६॥ कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमंडले। स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् ॥५७॥ अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः । ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थमभीप्सितम् ॥५८॥ गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति । ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥५९॥ स्वमूर्तिं दर्शय विभो वांछितं वरमेव नः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥६०॥ तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम् । सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा॥६१॥ ममाप्यस्याश्च देहेन कर्त्तव्यं च किमावयोः । मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः ॥६२॥ मन्मंत्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यंति मत्पदम् । मूर्तिं द्रष्टुं

एवं स्वर से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण को संगीत सुनाने लगीं । उससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने सरस्वतीजी को श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित हार प्रदान किया ॥४९-५०॥ शङ्करजी ने सर्वश्रेष्ठ तथा ब्रह्माण्ड में दुर्लभ मणि प्रदान किया । भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें सभी रत्नों से श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि प्रदान किया ॥५१॥ राधिकाजी ने उन्हे अमूल्य रत्नों से निर्मित श्रेष्ठ हार प्रदान किया । भगवान् नारायण ने उन्हें मनोहर माला प्रदान की ॥५२॥ लक्ष्मीजी ने उन्हें बहुमूल्य रत्नों से निर्मित सुवर्ण का कुण्डल प्रदान किया । विष्णुमाया, दुर्गा, नारायणी, ईशाना आदि नाम से अभिहित की जाने वाली प्रकृति देवी ने उन्हें अत्यन्त दुर्लभ भगवद् भक्ति प्रदान की । धर्मदेव ने उनमें धर्मबुद्धि और संसार में विपुल यश प्रदान किया ॥५३-५४॥ अग्नि ने अग्निशौच वस्त्र प्रदान किया और वायु ने मणिनिर्मित नूपुर प्रदान किया । उसी समय ब्रह्माजी से प्रेरित होकर शंकरजी ने ॥५५॥ रास के उल्लास से युक्त संगीत भगवान् श्रीकृष्ण को सुनाया उसे सुनकर सभी देवता मूर्छित हो गये और चित्रलिखित से हो गये ॥५६॥ बड़ी मुश्किल से सबों को जब चेतना आयी तो सबों ने देखा कि सारा रास मण्डल जल से आप्लवित है और वहाँ राधा एवं कृष्ण भी नहीं हैं ॥५७॥ यह देखकर सभी गोप, गोपियाँ, देवता और ब्राह्मण अत्युच्च स्वर में रोने लगे । ब्रह्माजी ने ध्यान करके यह जान लिया कि भगवान् श्रीकृष्ण और राधा ही इस जल के रूप में परिणत हो गये हैं । उसके बाद सभी देवता परमेश्वर की स्तुति करने लगे ॥५८-५९॥ **देवताओं ने कहा—** हे भगवन् ! हमको यही अभिप्रेत है कि आप हमें दर्शन दें । उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई ॥६०॥ उस मधुर आकाशवाणी को सभी देवताओं ने सुना । **आकाशवाणी ने कहा—** मैं सबों की आत्मा हूँ । राधा मेरी भक्तों पर कृपा स्वरूपिणी शक्ति है ॥६१॥ हम दोनों

च सुव्यक्तां यदीच्छथ सुरेश्वराः ।।६३।। करोतु शंभुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् । स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम् ।।६४।। कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदांगं सुमनोहरम् । अपूर्वमंत्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः ।।६५।। स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः । मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपनम् ।।६६।। भवन्ति विमुखा येन जना मां तत्करिष्यति । सहस्त्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत् ।।६७।। जना मन्मंत्रपूताश्च गमिष्यंति च मत्पदम् । अन्यथा न भवष्यंति सर्वे गोलोकवासिनः ।।६८।। निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्मांडं चैव ब्रह्मणः । जनाः पंचप्रकाराश्च युक्ताः स्त्रष्टुं भवे भवे ।।६९।। पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः । इदं कर्तुं महादेवः करोतु देवसंसदि ।।७०।। प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति। इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः ।।७१।। तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा । ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः।।७२।। गङ्गातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः । संयुक्तं विष्णुमायाया मंत्रौघैः शास्त्रमुत्तमम् ।।७३।। वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च । गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः ।।७४।। स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः । इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि ।।७५।।

के शरीर से आपलोगों को क्या मतलब है ? मनु, मनुष्य तथा सभी वैष्णव मुनिगण ।।६२।। इस पवित्र जल में स्नान करके मेरा दर्शन करने के लिए गोलोक में अपनी इच्छा के अनुसार आयेंगे ।।६३।। शंकरजी वहीं रहकर मेरी आज्ञा का पालन करें । हे ब्रह्माजी स्वयं आप मेरी आज्ञा जगद्गुरु शंकरजी को सुना दीजिये ।।६४।। वे वेदों के अंगभूत विशेषतन्त्र शास्त्र का निर्माण करें और उसमें सभी अभीष्ट फल प्रदान करने वाले मन्त्रों का सन्निवेश कर दें।।६५।। उसमें स्तोत्र समूह, ध्यान, पूजाविधि, मन्त्र, कवच, तथा स्तोत्र का प्रयत्न पूर्वक सन्निवेश करें ।।६६।। उसमें ऐसे मन्त्रों को न दें जिससे कोई भी मुझसे विमुख हो जाय । हजारों तथा सैकड़ों में कोई एक भी यदि मेरे मन्त्र का उपासक होगा तो वह मेरे लोक में आयेगा । उसके बिना कोई भी गोलोकवासी नहीं हो पायेगा ।।६७-६८।। और ऐसा होने पर ब्रह्माजी का सारा ब्रह्माण्ड निष्फल हो जायेगा । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में पाञ्च प्रकार के जीवों का निर्माण उचित है ।।६९।। कुछ लोग पृथिवी पर निवास करें और कुछ स्वर्ग में निवास करें । इस तन्त्रशास्त्र का निर्माण करने के लिए शंकरजी देवताओं की सभा में प्रतिज्ञा करें। ऐसा करने पर उनको मेरा दर्शन प्राप्त हो जायेगा । इसतरह से कहकर आकाशवाणी समाप्त हो गयी ।।७०-७१।। उस आकाशवाणी को सुनकर ब्रह्माजी ने शंकरजी से कहा । ज्ञानियों में श्रेष्ठ शंकरजी ब्रह्माजी की वाणी को सुने ।।७२।। उसके बाद वे अपने हाथ में गंगा जल लेकर प्रतिज्ञा किए कि श्रीभगवान् की आज्ञा का पालन करने के लिए मैं तन्त्रशास्त्र का निर्माण करूँगा विष्णुमाया के मन्त्रों से युक्त वह उत्तम शास्त्र होगा ।।७३।। वेद के सार स्वरूप उस शास्त्र का निर्माण करूँगा । गंगाजल लेकर यदि कोई मिथ्या भाषण करता है,तो उसे कालसूत्र नामक नरक में जाना पड़ता है और जितनी बड़ी ब्रह्माजी की आयु होती है उतने समय तक उसमें रहना पड़ता है । गोलोक में देवताओं की सभा में जब शंकरजी ने इस तरह से कहा तो ।।७४-७५।। उसी समय

आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः । तं सुदृष्ट्वा च संहृष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥७६॥ परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम् । कालेन शंभुर्भगवान्मुक्तिदीपं चकार सः ॥७७॥ इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम् । सा एव द्रवरूपा च गङ्गा गोलोकसंभवा ॥७८॥ राधाकृष्णांगसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना । कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्मांडपूजिता ॥७९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच– **कलेः पंचसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर । क्व गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया । जगाम तत्र वैकुण्ठे शापान्ते पुनरेव सा ॥२॥ भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम् । पद्मावती च शापांते गङ्गा सा चैव नारद ॥३॥ गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥४॥** नारद उवाच– **केनोपायेन**

राधाजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । श्रीभगवान् के दर्शन से प्रसन्न होकर देवताओं ने उनकी स्तुति की ॥७६॥ परमानन्द से युक्त होकर वे पुनः उत्सव मनाये । समयानुसार भगवान् शंकर ने मुक्ति प्रदान करने वाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्र का निर्माण किया ॥७७॥ इस तरह मैंने आपको अत्यन्त दुर्लभ रहस्य को बतलाया । वही गोलोक से उत्पन्न होने वाली जल स्वरूपा गङ्गा कहलाती हैं ॥७८॥ भगवान् श्रीकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न होने वाली भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली राधाजी भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा स्थान-स्थान पर स्थापित हुयीं । वे सभी ब्रह्माण्डों में पूजित हैं और भगवान् श्रीकृष्ण स्वरूप ही हैं ॥७९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

राधा का गंगा पर क्रोध और गंगा का श्रीकृष्ण के चरणों में आश्रय ग्रहण करना

नारदजी ने कहा– हे सुरेश्वर कलि के पाँच हजार वर्ष बीत जाने पर गङ्गा जी कहाँ गयीं ?॥१॥ **श्रीनारायण ने कहा–** भगवान् की इच्छा से तथा सरस्वती के शाप के कारण गङ्गा भारत में आयीं । शाप के समाप्त हो जाने पर वे श्रीवैकुण्ठ में चली गयीं ॥२॥ सरस्वती भी भारत का त्याग करके श्रीहरि

सा देवी विष्णुपादाब्जसंभवा । ब्रह्माकमंडलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा ॥५॥ बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायण प्रिया । अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥ श्रीनारायण उवाच– **पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी । राधाकृष्णांगसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥७॥ द्रवाधिष्ठातृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि । नवयौवनसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥८॥ शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा । तप्तकांचनवर्णाभा शरच्चंद्रसमप्रभा ॥९॥ स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । सुपीनकठिनश्रोणिः सुनितंबयुगंधरा ॥१०॥ पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम् ॥११॥ वंक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । सिंदूरबिंदु ललितं सार्धं चन्दनबिंदुभिः ॥१२॥ कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गंडयुग्मं मनोरमम् । बंधूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥१३॥ पक्वदाडिमबीजाभदंतपंक्तिसमुज्ज्वलम् । वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४॥ सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता । वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥१५॥ निमेषरहिताभ्यां च पिबंती सततं मुदा । प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥१६॥ मूर्छिता प्रभुरूपेण पुलकांकितविग्रहा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका॥१७॥**

के लोक में चली गयीं । लक्ष्मी जी भा शाप के समाप्त हो जाने पर श्रीहरि के धाम में चली गयीं ॥३॥ गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी ये तीनों श्रीहरि की प्रियतमाएँ हैं, तुलसी को मिलाकर ये चार हो गयीं यह श्रुतियों में वर्णित है ॥४॥ **नारदजी ने पूछा–** भगवन् श्रीभगवान् के चरण कमल से निकलकर गङ्गा जी किस प्रकार ब्रह्माजी के कमण्डलु में निवास कीं । फिर कैसे वे शिवप्रिया हो गयीं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! वे तो भगवान् नारायण की प्रियतमा हैं ? यह सब कैसे हुआ यह मुझे आप बतलायें ॥५-६॥ **श्रीनारायण ने कहा–** प्राचीन काल में गङ्गाजी गोलोक में जल रूप में थीं । वे राधा और कृष्ण के अंग से उद्भूत, और उनके अंश स्वरूपिणी थीं ॥७॥ जल की अधिष्ठात्री देवी गंगा अत्यन्त सुन्दर रूप बनाकर पृथिवी पर आयीं । उनमें नवीन जवानी थी और वे सभी अलंकारों से अलंकृत थीं । शरत्काल के दोपहर में जैसी कमल की शोभा होती है वैसा ही सुन्दर उनका मुख मन्द मुसुकान से युक्त था । उनका रङ्ग संतप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान था और उनके शरीर की कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमा के समान थी ॥८-९॥ उनकी कान्ति अत्यन्त मनोहर थी और वे शुद्ध सत्त्व स्वरूपिणी थी । उनके नितम्ब मोटे और कठोर थे । उनके नितम्ब अत्यन्त सुन्दर थे ॥१०॥ उनके दोनों स्तन कठोर, उठे हुए और बड़े-बड़े थे । उनके दोनों नेत्र कुटिल कटाक्षों से सम्पन्न थे ॥११॥ उनके घुंघराले केशों में मालती पुष्प की माला लगी थी । चन्दन के विन्दु तथा सिन्दूर से उनका ललाट सुशोभित था ॥१२॥ उनके दोनों गालों पर कस्तूरी की चित्रावली बनी थी । उनका अधरोष्ठ दुपहरिया के पुष्प के समान लाल और मनोहर था ॥१३॥ पके अनार की बीजपंक्ति के समान उनकी दन्तपंक्ति थी । उनके दोनों वस्त्र बह्निशौच तथा नीवी से युक्त थे ॥१४॥ वे काम भाव से लज्जा से युक्त होकर भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट गयीं । वस्त्र से अपने मुख को ढँककर निर्निमेष नेत्रों से भगवान् के मुख को देख रही थीं ॥१५॥ नवीन संयोग की

गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचंद्रसमप्रभा । कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपंकजलोचना ॥१८॥ पीता चम्पकवर्णाभा गजेंद्रमंदगामिनी । अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता ॥१९॥ अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्निशौचकम् । पीतवस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥२०॥ स्थलपद्मप्रभाजुष्टं कोमलं च सुरंजितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यसंती पदांबुजम् ॥२१॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा । सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना॥२२॥ कस्तूरीबिंदुभिर्युक्तं चंदनेन समन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकारं सिंदूरं बिंदुशोभितम् ॥२३॥ दधती भालमध्ये च सीमांताधः स्थलोज्ज्वले । पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तं सुवंक्रिमम् ॥२४॥ सुचारुकबरीभारं कंपयंती सुकंपिता । सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कंपयती रुषा ॥२५॥ गत्वोवाच कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने शुभे । सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः प्रिया ॥२६॥ तां दृष्ट्वा च समुत्तस्थौ कृष्णश्चादरपूर्वकम् । संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः॥२७॥ प्रणेमुरतिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकंधराः । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥२८॥ उत्थाय गङ्गा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा । कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥२९॥ नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणांबुजे ॥३०॥

लालसा से संपन्न उनका मुखमण्डल हर्ष से युक्त तथा प्रसन्न था ॥१६॥ भगवान् श्रीकृष्ण के रूप को देखकर वे चेतनारहित हो गयीं और उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया । उस समय राधाजी श्रीभगवान् की सेवा में विद्यमान थीं । उनके साथ तीस करोड़ गोपियाँ थी, करोड़ों चन्द्रमा के समान उनकी कान्ति थी । गङ्गा को देखकर क्रोध के कारण उनका मुखकमल लाल हो गया । उनके नेत्रकमल भी लाल हो गये ॥१८॥ उनका सौन्दर्य सोनचम्पा के समान गौरवर्ण का था । वे मतगजेन्द्र के समान चलती थीं । अमूल्य रत्नों से निर्मित अनेक आभूषणों से वे भूषित थीं । अनर्घ्य रत्नों से जटित उनका बह्निशौच पीताम्बर नीवी से युक्त था । वे नीवी से युक्त दो वस्त्रों को धारण किए हुयी थीं ॥१९-२०॥ स्थल कमल की कान्ति से युक्त, सुरंजित, कोमल तथा भगवान् कृष्ण के द्वारा प्रदत्त अर्घ्य से सुशोभित अपने दोनों चरणों का वे धीरे-धीरे विन्यरत कर रही थीं ॥२१॥ अनर्घ्य रत्नों से निर्मित विमान पर से वहाँ उतरीं । ऋषिगण उनको श्वेतचमर कर रहे थे ॥२२॥ चन्दन के साथ कस्तूरी की विन्दु से तथा सिन्दूर की विन्दु से उनका ललाट चमक रहा था । वे पारिजात पुष्पों की माला को धारण किए हुई थीं ॥२३-२४॥ घुंघराले सुन्दर बाल उनके झूल रहे थे । इस प्रकार की राधाजी गंगा को देखकर क्रोध से काँपने लगीं । उनके ओष्ठ भी क्रोध से फड़फड़ाने लगे ॥२५-२६॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट जाकर रत्नसिंहासन पर बैठ गयीं ॥२७॥ राधा को आयी हुई देखकर उनके समादर में भगवान् श्रीकृष्ण उठकर खड़े हो गये वे मुस्कुराते हुए उनसे मधुर बातें करने लगे । राधाजी को देखकर सभी गोप भयभीत हो गये और उनको प्रणाम किए । वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे और श्रीभगवान् ने भी उनकी स्तुति की ॥२८॥ खड़ी होकर गङ्गा ने भी राधाजी की बहुत स्तुति की । अत्यन्त भयभीत होकर उन्होंने राधाजी से कुशल पूछा । वे राधा के डर से नीचे खड़ी और डरीं थीं तथा भगवान् के चरण कमल के अतिरिक्त उनका कोई दूसरा

तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ । बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥३१॥ ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गंगा ददर्श सा । सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥३२॥ असंख्यब्रह्मणः कर्त्रीमादिसृष्टेः सनातनीम् । सदा द्वादशवर्षीयां कन्याभिनवयौवनाम् ।३३॥ विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च । शांतां कांतामनंतां तामाद्यंतरहितां सतीम् ॥३४॥ शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् । सौंदर्यसुंदरीं श्रेष्ठां सर्वासु सुंदरीषु च ॥३५॥ कृष्णार्धांगां कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा । पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च ॥३६॥ प्रच्छाद्यमाना प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्तं च ताम्बूलं भुक्तवन्तीं च दुर्लभम् ॥३७॥ अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ॥३८॥ दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी । निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥३९॥ एतस्मिन्नंतरे राधा जगदीशमुवाच सा । वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ॥४०॥ राधोवाच– केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम् । पश्यंती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना ॥४१॥ मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा । वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षंती पुनः

आश्रय नहीं था ॥२९-३०॥ गङ्गा को अपने हृदय कमल में स्थित देखकर भगवान् ने उन्हें अभय प्रदान किया । सर्वेश्वर भगवान् के वरदान को पाकर गङ्गा का चित्त स्थिर हो गया ॥३१॥ ऊँचे सिंहासन पर बैठी हुई राधा को गङ्गा ने देखा कि राधाजी का रूप अत्यन्त मनोहर है, वे देखने में मनोहर, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हैं ॥३२॥ वे असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने वाली आदि सृष्टि की सनातनी देवी हैं । वे सर्वदा बारह वर्ष की कन्या एवं नवीन जवानी से सम्पन्न रहती हैं ॥३३॥ वे रूप और गुण के द्वारा विश्व की स्त्रियों से अधिक सुन्दर हैं । वे शान्त स्वभाव वाली, मनोहर, आदि एवं अन्त से रहित हैं ॥३४॥ वे अपने स्वामी के सौभाग्य से सम्पन्न, हैं तथा शुभा, सुभद्रा तथा सुभगा शब्द से अभिहित की जाती हैं । वे विश्व की समस्त सुन्दरियों से अधिक सुन्दर हैं ॥३५॥ भगवान् कृष्ण की वे अर्द्धांगिनी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान तेज, अवस्था तथा कान्ति से युक्त हैं । वे लक्ष्मी तथा लक्ष्मीश्वर से पूजित हैं ॥३६॥ वे अपनी कान्ति से भगवान् श्रीकृष्ण की सभा को आच्छादित करती हैं । सखी के हाथों से दिया गया दुर्लभ ताम्बूल को वे खाती हैं॥३७॥ स्वयं अयोनिजा होकर भी वे सम्पूर्ण विश्व की जननी धन्या, तथा मानिनी हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी तथा प्राणप्रिया पत्नी है॥३८॥ रासेश्वरी का दर्शन करने से गङ्गा देवी को तृप्ति नहीं हो रही थी । वे देर तक अपने निर्निमेष नेत्रों से उन्हें देखती रहीं ॥३९॥ हे मुने ! उसी समय मुस्कुराती हुई राधा देवी ने जगदीश्वर श्रीभगवान् से कहा ॥४०॥ **राधा ने कहा–** हे प्राणेश ! यह कौन है जो मुस्कुराती हुई आपके मुखकमल को देखती है जो सुन्दरी आपके पास में विद्यमान है ॥४१॥ आपके रूप को देखकर यह अचेत हो गयी है । इसका शरीर रोमाञ्चित है । वस्त्र से अपने मुख को ढँककर आपको

पुनः ॥४२॥ त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा । मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥४३॥ त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च । क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥४४॥ संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लंपट । अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर ॥४५॥ दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चंदनकानने । क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥४६॥ त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥४७॥ कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा । अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥४८॥ गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदंतिके । उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥४९॥ तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी । सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥५०॥ ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया । ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च ॥५१॥ दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने । सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५२॥ शोभा देहं परित्यजय जगाम चंद्रमंडले । ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥५३॥ संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता । रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किचिन्मणिवराय च ॥५४॥ किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन । किचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥५५॥ किंचित्फलेभ्यः पक्वेभ्यः सस्येभ्यश्चापि किंचन । नृपदेवगृहेभ्यश्च

बार-बार देख रही है ॥४२॥ आप उसको कामभाव से मुस्कुराते हुए देख रहे हैं । मेरे जीते जी गोलोक में ऐसी दुराचारिणी स्त्री कैसे आयी ?॥४३॥ आप भी दुर्वृत्ति पूर्वक उसको बार-बार देख रहे हैं । मैं स्त्रीं जाति की होने के कारण इसलिए क्षमा कर रही हूँ कि स्त्रियाँ स्वभावतः दयालु होती हैं ॥४४॥ हे ब्रजेश्वर ! आप लम्पट हैं । इसको लेकर गोलोक से चले जाइये अन्यथा आपका कल्याण नहीं होगा ॥४५॥ मैंने आपको चन्दन वन में विरजा के साथ भी देखा था और सखियों के कहने से मैंने उस समय आपको क्षमा कर दिया ॥४६॥ उस समय मेरे शब्द को सुनकर आपने उसको तिरोहित कर दिया था और विरजा भी अपना शरीर त्यागकर नदी हो गयी ॥४७॥ वह नदी आपकी सत्कीति रूप से करोड़ो योजन विस्तृत और उसके चार गुना लम्बी आज भी विद्यमान है ॥४८॥ जब मैं घर चली गयी तो आप उसके पास जाकर विरजे ! विरजे ! कहकर जोर-जोर से रोने लगे थे ॥४९॥ उस समय सिद्धयोगिनी विरजा जल से शरीर धारण करके आपको दर्शन दी ॥५०॥ उस समय आपने उसके साथ रति की और उसके समयानुसार सात समुद्र पैदा हुए । मैंने आपको शोभा नामक गोपी के साथ चम्पक वन में देखा था । मेरे पैरों की आहट पाकर आप वहाँ से तिरोहित हो गये थे ॥५१-५२॥ शोभा भी अपने शरीर का त्याग करके चन्द्र मण्डल में चली गयी । उसके बाद उसका शरीर स्निग्ध तेज बन गया ॥५३॥ हृदय से दुःखी बने हुए आपने उस तेज का कुछ अंश रत्नों को दे दिया, कुछ अंश सुवर्ण को दे दिया और कुछ अंश श्रेष्ठ मणियों को दे दिया ॥५४॥ उसका कुछ अंश स्त्रियों के मुखकमल को

संस्कृतेभ्यश्च किंचन ॥५६॥ किञ्चिन्नूतनपत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किञ्चन । दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने ॥५७॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया । प्रभा देहं परित्यज्य जगाम सूर्यमण्डले ॥५८॥ ततस्तस्याः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह । संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥५९॥ विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च । हुताशनाय किञ्चिच्च यक्षेभ्यश्चापि किञ्चन ॥६०॥ किञ्चित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किञ्चन ॥६१॥ ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन । स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किञ्चन ॥६२॥ तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं प्ररुदितं त्वया । शान्तिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमंडले ॥६३॥ वसंते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः । रत्नप्रदीपैर्युक्तं च रत्ननिर्माणमंदिरे ॥६४॥ रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह । तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो ॥६५॥ सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया । शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥६६॥ ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह । सम्विभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा ॥६७॥ विश्वे तु विपिने किञ्चिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो । शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै

दे दिया और कुछ अंश राजा को दिया । कुछ अंश किसलयों को दे दिया और कुछ अंश पुष्पों को आपने दे दिया ॥५५॥ उसका कुछ अंश पके फलों को कुछ अंश सस्यों को और कुछ अंश राजाओं के सुसज्जित भवनों को ॥५६॥ कुछ नवीन पत्तों को, कुछ अंश दुग्धों को दे दिया । आपको मैंने प्रभा नामक गोपी के साथ वृन्दावन में देख लिया था ॥५७॥ मेरे पैरों की आहट पाकर आपने शीघ्र ही उसे भी छिपा दिया । प्रभा भी अपना शरीर त्याग करके सूर्यमण्डल में चली गयी ॥५८॥ उसके बाद उसका शरीर तीव्र तेज बन गया । उस समय भी आपने उसके तेजोमय शरीर को बाँट दिया था । आपसे दूर हो जाने के बाद आपने प्रभा के शरीर को लज्जा तथा मेरे भय के कारण कुछ अग्नि को तथा कुछ यक्षों को दे दिया ॥५९-६०॥ कुछ अंश वृक्षों को कुछ वीरपुरुषों को कुछ अंश देवों को, कुछ वैष्णवों को तथा कुछ नागों को बाँट दिया ॥६१॥ कुछ अंश ब्राह्मणों मुनियों, तपस्वियों, सौभाग्यवती स्त्रियों को तथा यशस्वी पुरुषों को बाँट दिया ॥६२॥ उन सबों को बाँट कर आप बहुत रोए भी थे । इसी तरह मैंने आपको रासमंडल में शान्ति नामक गोपी के साथ प्रेम करते हुए देख लिया था । उस समय आप वासन्तिक पुष्पों की शय्या पर माला और चन्दन धारण किए हुए थे और रत्ननिर्मित भवन में आप उसके साथ थे ॥६३-६४॥ आप रत्नों के आभूषण से भूषित थे और वह भी रत्नों के आभूषणों को धारण किए हुयी थी और उसके द्वारा प्रदत्त ताम्बूल को आप खाये थे ॥६५॥ मेरे पैरों की ध्वनि सुनते ही आप उसे भी तिरोहित कर दिए थे । शान्ति भयभीत होकर अपना शरीर त्याग करके आप में ही लीन हो गयी ॥६६॥ उसके बाद उसका शरीर श्रेष्ठ गुण स्वरूप हो गया । प्रेम के कारण रोते हुए आपने उसके शरीर को विभाजित करके सम्पूर्ण

पुरा विभो ॥६८॥ त्वन्मंत्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किञ्चन । तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन ॥६९॥ मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह । सुवेषयुक्तो मालावान्गान्धचंदनचर्चितः ॥७०॥ रत्नभूषितया गंधचंदनोक्षितया सह । सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचंदनचर्चिते ॥७१॥ श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसंगमात् । मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥७२॥ गृहीतं पीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा । वनमालाकौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥७३॥ पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो । लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान्पापेन यः प्रभो ॥७४॥ क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता । ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥७५॥ संविभज्यत्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुनः । किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन ॥७६॥ धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन । तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पंडितेभ्यश्च किंचन ॥७७॥ एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो ॥७८॥ इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपंकजलोचना । गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥७९॥ गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी । तिरोभूय समामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा ॥८०॥ राधा

वनों में बाँट दिया था कुछ ब्रह्माजी को दे दिया और उसका कुछ अंश मुझमें कुछ निकुञ्जों में तथा कुछ अंश ब्राह्मणों में प्रविष्ट हो गया ॥६७-६८॥ कुछ आपके मन्त्रोपासकों में, कुछ शाक्तों में, कुछ तपस्वियों में, कुछ धर्म में और कुछ धार्मिकों में प्रविष्ट हो गया ॥६९॥ मैंने एकबार आपको क्षमा नामक गोपी से प्रेम करते हुए देख लिया था । उस समय आपका सुन्दर वेष था, आप माला धारण किए हुए थे और सुगन्धित चन्दन धारण किए थे वह गोपी भी सुगन्धित माला धारण किए हुयी थी । आप सुगन्धित चन्दन धारण किए थे । वह गोपी भी सुगन्धित चन्दन से चर्चित थी । पुष्प तथा चन्दन से समलंकृत शय्या पर सुखातिरेक के कारण अचेत पड़ी थी ॥७०-७१॥ वह नींद में थी और आपसे लिपटी हुई थी । नवीन संगम के कारण उसके साथ आप लिपटकर सोये थे । आप याद कीजिये मैंने आपको और उसको जगाया था ॥७२॥ मैंने आपकी मुरली और पीताम्बर दोनों को तथा वनमाला, कौस्तुभमणि और रत्न कुण्डल इन सबों को ले लिया था ॥७३॥ बाद में मैंने आपके प्रति प्रेम के कारण तथा सखी के कहने से उसे लौटा दिया था । हे प्रभो ! आप उसी पाप के कारण कृष्णवर्ण के हो गये थे ॥७४॥ क्षमा भी अपने उस शरीर को त्याग कर पृथिवी में विलीन हो गयी थी । उसके बाद उसका शरीर श्रेष्ठ गुण हो गया ॥७५॥ आप रोते हुए उसके उस शरीर को बाँट दिये । आप कुछ श्रीविष्णु को और कुछ वैष्णवों को दे दिये ॥७६॥ कुछ भाग धार्मिकों को कुछ भाग धाम को तथा कुछ दुर्बलों को दे दिये । उसका कुछ भाग आपने तपस्वियों, देवताओं तथा पण्डितों को दे दिया ॥७७॥ इस तरह से मैंने आपके सभी गुणों को सुना दिया और आप क्या सुनना चाहते हैं ? हे प्रभो ! आपके बहुत से गुणों को मैं जानती नहीं हूँ ॥७८॥ इस तरह से कहने के बाद क्रोध से लाल नेत्रों वाली राधा ने नीचे मुख करके लज्जित गङ्गा से कहना प्रारम्भ किया ॥७९॥ रहस्य की बातों को जानकर सिद्धयोगिनी गंगा

योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम् । पानं कर्तुं समारेभे गंडूषात्सिद्धयोगिनी ॥८१॥ गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी । श्रीकृष्णचरणांभोजे विवेश शरणं ययौ ॥८२॥ गोलोके सा च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा । ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा ॥८३॥ सर्वत्र जलशून्यं च शुष्कपंकं च गोलकम् । जलजंतुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥८४॥ ब्रह्मविष्णुशिवानंतधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः । मनवो मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः॥८५॥ गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः । सर्वे प्रणेमुर्गोविंदं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८६॥ वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् । गोपिकागोपवृन्दानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥८७॥ निरीहश्च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम् । निर्गुणं च निरुत्साहं निर्विकारं निरंजनम् ॥८८॥ स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम् । सत्त्वस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥८९॥ परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम् । प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥९०॥ सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकांकितविग्रहाः । सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवंतं परात्परम् ॥९१॥ ज्योतिर्मयं परं ब्रह्मसर्वकारणकारणम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९२॥ सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिकानृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं

भी सभा से तिरोहित होकर अपने जल में प्रवेश कर गयी ॥८०॥ राधा भी सिद्धयोगिनी थीं । वे जान गयीं कि गङ्गा अपने जल में प्रवेश कर गयी हैं और उन्होंने अपनी अंजलि में भरकर गङ्गा को पीना प्रारम्भ कर दिया ॥८१॥ सिद्धयोगिनी गङ्गा भी राधा के मन के बात अपने ध्यानयोग से जान गयीं और भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों के शरणागत हो गयीं ॥८२॥ राधा ने गङ्गा को गोलोक, वैकुण्ठ तथा ब्रह्मलोक आदि में सर्वत्र खोजा किन्तु वे कहीं भी गङ्गा को नहीं देख सकीं ॥८३॥ सारा ब्रह्माण्ड जल रहित सूखे कीचड़ से युक्त हो गया । सभी जलजंतु मर गये ॥८४॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनंत, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिगण, सभी देवता, सिद्ध तथा तपस्वी जन ॥८५॥ गोलोक में आये प्यास से उन के कण्ठ, ओष्ट और तालु सुख गये थे । सबों ने सबों के स्वामी, प्रकृति से श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ॥८६॥ भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ वरदान देने वाले, वरदान के कारण स्वरूप, गोपिकाओं और गोपों के श्रेष्ठ स्वामी ॥८७॥ निरीह, निराकार, निर्लिप्त रहने वाले, आधार निरपेक्ष रहने वाले निर्गुण, निरुत्साह, विकार रहित, निरञ्जन ॥८८॥ स्वेच्छामय, साकार, भक्तों पर कृपा करने वाले, सत्त्वगुण स्वरूप, सत्य के स्वामी, सनातन साक्षी हैं ॥८९॥ सबों से महान स्वामी, परमात्मा तथा ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण को सबों ने प्रणाम किया और भक्ति पूर्वक अपना शिर झुकाकर उनकी सबों ने स्तुति की ॥९०॥ उस समय उन सबों की वाणी गद्गद हो गयी थी । आँखों में आँसू भर गया था, शरीर रोमाञ्चित हो गया था । भगवान् की स्तुति करके सबों ने परात्परतत्त्व, भगवान्, ज्योतिः स्वरूप, परंब्रह्म, समस्त कारणों के भी कारण स्वरूप, अनर्घ्य रत्नों से निर्मित अद्भुत सिंहासन पर बैठे हुए श्रीभगवान् को देखा ॥९१-९२॥ उस समय गोपाल

मुदा ॥९३॥ प्राणाधिकप्रियतमं राधावक्षःस्थलस्थितम् । तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवंतं सुवासितम् ॥९४॥ परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम् । मुनयो मनवः सिद्धास्तापसाश्च तपस्विनः ॥९५॥ प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम् । परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम् ॥९६॥ निवेदितं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् । ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे ॥९७॥ वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसन्निधिम् । परमानंदयुक्तं च परमानंदरूपिणम् ॥९८॥ सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले । सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥९९॥ द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् । मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१००॥ अतीव कमनीयं च सुंदरं शांतविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०१॥ परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् । किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः ॥१०२॥ क्षणं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम् । निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥१०३॥ एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम् । प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥१०४॥ राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम् । किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ज्ञातुमक्षमः ॥१०५॥ हृत्पद्मस्थं च

श्वेत चमर से उनको व्यजन कर रहे थे । और भगवान् स्वयं मुस्कुराते हुए गोपियों के नृत्य को देख रहे थे ॥९३॥ प्राणों से भी प्रियतम राधा उनके वक्षःस्थल में विराजमान थीं । उनके द्वारा प्रदत्त सुगन्धित पान को वे चबा रहे थे ॥९४॥ मुनियों, मनुओं, सिद्धों और तपस्वियों ने प्रसन्न मन से परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण को देखा और आश्चर्यित हो गये । वे परस्पर में एक दूसरे को तथा ब्रह्माजी से अपने अभिप्राय को कहा ॥९५-९६॥ उन सबों के अभिप्राय को जानकर ब्रह्माजी अपनी दायीं ओर भगवान् विष्णु को करके तथा वायीं ओर शंकरजी को करके परमानंद स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट में गये ॥९७-९८॥ ब्रह्माजी ने उस रास मण्डल में देखा कि सबकुछ कृष्णमय था । सबों का वेष और आसन एक समान था ॥९९॥ सबों की दो भुजाएँ थीं । सब अपने हाथ में मुरली लिए थे । सब वनमाला से अलंकृत थे सबों के मुकुट में मयूरपिच्छ लगा था । सब कौस्तुभमणि धारण किए हुए थे ॥१००॥ सबों के शरीर सुन्दर कमनीय और शान्त स्वरूप था । सबों के गुण, भूषण, रूप, तेज और कान्ति एक समान थे ॥१०१॥ सबकुछ परिपूर्णतम और समस्त ऐश्वर्यों से समन्वित था । यह देखकर ब्रह्माजी यह नहीं जान पाये कि इसमें कौन सेव्य है और सेवक कौन हैं ॥१०२॥ क्षणभर में ही तेजः स्वरूप भगवान् वहाँ पर बैठे हुए तथा क्षण भर में वहाँ से अन्तर्धान दिखायी पड़ रहे थे । क्षणभर में ही भगवान् निराकार और साकार दोनों रूप में दिखते थे ॥१०३॥ एक ही क्षण में भगवान् राधा के साथ बैठे हुए और दूसरे क्षण में राधा से रहित दिखायी पड़ते थे ॥१०४॥ कभी राधा के रूप में श्रीकृष्ण दिखायी पड़ते थे और कभी कृष्ण के रूप में राधा दिखती थीं । ब्रह्माजी यह नहीं जान पा रहे थे कि इसमें भगवान् श्रीकृष्ण कौन हैं और राधा कौन हैं ?॥१०५॥ उन्होंने अपने

श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा । चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥१०६॥ ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया । ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥१०७॥ स्वपार्षदैः परिवृत्तं गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥१०८॥ तदभिप्रायमाज्ञाय तानुवाच रमेश्वरः । सर्वात्मा च स सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः ॥१०९॥ श्रीभगवानुवाच– आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते । इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥११०॥ आगता हि महाभागा गङ्गानयनकारणात् । गङ्गा च चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता ॥१११॥ राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः । दास्यमीमां च भवतां यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥११२॥ श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः । तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम् ॥११३॥ वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः । धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥११४॥ चतुरानन उवाच– गङ्गा त्वदंगसंभूता प्रभोश्च रासमण्डले । युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शङ्करस्वनात् ॥११५॥ कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया । त्वन्मंत्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥११६॥ भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः । भूस्थायाः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः ॥११७॥ गोलोकस्था च या गङ्गा सर्वत्रस्था तथान्तिके । तदंबिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा ॥११८॥ ब्रह्मणो वचनं

हृदय कमल में स्थित श्रीकृष्ण का ध्यान करके अनेक प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥१०६॥ उसके बाद अपने नेत्रों को खोलकर श्रीभगवान् की कृपा से उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन किया और राधाजी उनके वक्षःस्थल में विराजमान थीं ॥१०७॥ श्रीभगवान् को उनके पार्षद घेरे हुए थे वे गोपियों के समूह से समलंकृत थे । इसके बाद श्रीभगवान् का दर्शन करके अन्य देवताओं ने उनको प्रणाम किया ॥१०८॥ उसके बाद सबों की आत्मा स्वरूप, सर्वज्ञ, सबों के स्वामी तथा सबों पर कृपा करने वाले रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सबों से कहा ॥१०९॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! हे लक्ष्मिपते ! हे महादेव ! आपलोग यहाँ आइये । आपलोगों का नित्य कुशल बना रहे ॥११०॥ आपलोग गङ्गा को ले जाने के लिए आये हैं । भयभीत होकर गङ्गा मेरे चरण कमलों के शरण में हैं ॥१११॥ उसको मेरे सन्निकट में देखकर राधा उनको पी जाना चाहती थीं । उनको मैं आपलोगों को दे दे रहा हूँ आपलोग उनको निर्भय बनायें ॥११२॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर ब्रह्माजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूजित राधाजी की स्तुति की ॥११३॥ अपने चारो मुखों से स्तुति करके ब्रह्माजी ने चारो वेदों से राधाजी की स्तुति की । उसके बाद उन्होंने कहा ॥११४॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे राधे ! रास मण्डल में आपके और भगवान् श्रीकृष्ण के अंग द्रव से तथा शंकरजी के संगीत से गङ्गाजी प्रकट हुई थीं ॥११५॥ वे आपके तथा भगवान् के अंश से उत्पन्न और आपकी प्रिय पुत्री के समान हैं । वे आपके मंत्र को ग्रहण करके आपका पूजन करेंगी ॥११६॥ उसके पति चतुर्भुज भगवान् विष्णु होंगे । वे जब भूलोक

श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता । बहिर्बभूव सा कृष्णपादांगुष्ठनखाग्रतः ॥११९॥ तत्रैव सत्कृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२०॥ तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमंडलौ । किंचिद्दधार शिरसि चंद्रार्धकृतशेखरः ॥१२१॥ गङ्गायै राधिकामंत्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च ॥१२२॥ सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह ॥१२३॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने ॥१२४॥ अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः । सर्वकालस्य वृत्तांतं दुर्बोधमविपश्चितम् ॥१२५॥ श्रीकृष्णं उवाच– गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन्हे विष्णो हे महेश्वर । शृणु कालस्य वृत्तान्तं मतो ब्रह्मन्निशामय ॥१२६॥ यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा । सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥१२७॥ एते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते । जलाप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना ॥१२८॥ ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाऽधुना मयि । वैकुंठं च विना सर्वं जलमग्नंच पद्मज ॥१२९॥ गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् । स्वं ब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा प्रयास्यति ॥१३०॥ एवमन्येषु विश्वेषु

में रहेंगी तो उनके पति क्षारसागर होंगे ॥११७॥ हे मातः ! ये जैसे गोलोक में हैं वैसे ही इनको सर्वत्र रहना चाहिए । आप इनकी सदा माता रहेंगी और ये आपकी पुत्री रहेंगी ॥११८॥ ब्रह्माजी की बातों को सुनकर राधाजी ने उसे मुस्कुराती हुई स्वीकार किया और गङ्गाजी भी भगवान् के चरणों के अंगूठे से बाहर निकलीं ॥११९॥ उसके बाद सबों ने गङ्गाजी का सम्मान किया और जल के भीतर से निकलकर उसकी अधिष्ठात्री देवता गङ्गा उन सबों के बीच में विराजमान हो गयीं ॥१२०॥ उस जल के कुछ भाग को ब्रह्माजी ने अपने कमण्डलु में रख लिया । उसके कुछ भाग को शिवजी ने अपने शिर पर धारण कर लिया ॥१२१॥ ब्रह्माजी ने गङ्गाजी को राधिका मंत्र प्रदान किया । उन्होंने राधाजी के ध्यान, कवच और स्तोत्र का भी उपदेश दिया और पूजा का विधान बतलाया ॥१२२॥ वह सब कुछ सामवेदोक्त है । उस मन्त्र से गङ्गाजी ने राधाजी का पूजन किया और सबों के साथ वैकुण्ठ लोक चल गयीं॥१२३॥ हे मुने ! भगवान् नारायण की ही, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी ये चार स्त्रियाँ हैं । उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मुस्कुराते हुए ब्रह्माजी से दुर्बोध सभी कालों के वृत्तान्त को कहा ॥१२४-१२५॥ **भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा**– हे ब्रह्मन् ! आप गङ्गा को स्वीकार करें । हे विष्णो ! हे महेश्वर मैं समय की स्थिति को बतलाता हूँ । उसे आपलोग सुनें ॥१२६॥ आप सभी दूसरे देवता, मुनिगण, मनुगण, सिद्धगण और यशस्वी पुरुष जो यहाँ आये हैं ॥१२७॥ ये सबके सब कालचक्र से रहित गोलोक में सदा जीवित हैं । इस समय कल्प का नाश हो गया है सारा विश्व जलमग्न हो गया है ॥१२८॥ विश्व में रहने वाले दूसरे ब्रह्मा आदि भी मुझमें विलीन हो गये हैं । हे ब्रह्मन् ! वैकुण्ठ को छोड़कर सबकुछ जलमग्न हो गया है ॥१२९॥ आप यहाँ

सृष्टौ ब्रह्मादिकं पुनः । करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह ॥१ ३ १॥ गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः । गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः ॥१ ३ २॥ इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरे मुने । देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥१ ३ ३॥ गोलोके च स्थिता गंगा वैकुंठे शिवलोकके । ब्रह्मलोके स्थिताऽन्यत्र यत्र यत्र पुरः स्थिता ॥१ ३ ४॥ तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञया परमात्मनः । निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता ॥१ ३ ५॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गङ्गोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१ ३ ६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१ ३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

नारद उवाच– **लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति ॥१॥ गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव**

से जाकर ब्रह्मलोकादि संसार की सृष्टि करें । आप अपने ब्रह्माण्ड की रचना करें उसके बाद वहाँ गङ्गा चली जायेंगी ॥१३०॥ इसी तरह दूसरे विश्वों में भी मैं ब्रह्मा आदि की पुनः सृष्टि करता हूँ । आप देवताओं के साथ यहाँ से शीघ्र चले जायँ ॥१३१॥ आप लोगों के यहाँ आये हुए बहुत समय बीत गया है । कई ब्रह्माण्डों में कितने ब्रह्मा मर गये होंगे और कुछ ब्रह्मा होंगे ॥१३२॥ हे मुने ! इस तरह से कहकर राधिकापति भगवान् श्रीकृष्ण अपने अन्तःपुर में चले गये और देवगण लौटकर पुनः प्रयत्न पूर्वक सृष्टि किए ॥१३३॥ गोलोक में विद्यमान गङ्गा वैकुण्ठ, शिवलोक, ब्रह्मलोक तथा अन्य स्थानों पर जहाँ-जहाँ पहले रह चुकी थीं ॥१३४॥ वहाँ-वहाँ के लिए वे परमात्मा की आज्ञा से उन्होंने प्रस्थान किया । चूकि गङ्गाजी भगवान् विष्णु के चरण कमलों से निर्गत हुईं, इसीलिए उन्हें विष्णुपदी कहा जाता है ॥१३५॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह से मैंने सुखद तथ मोक्षप्रद गंगोपाख्यान का वर्णन किया । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?॥१३६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

गङ्गा और विष्णु का गान्धर्व विवाह

नारदजी ने भगवान् नारायण से कहा– विश्व को पवित्र करने वाली लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी ये चारो भगवान् नारायण की पत्नियाँ हैं ॥१॥

श्रुतं मया । कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम् ॥२॥ श्रीनारायण उवाच– **गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतां विधिः । गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥३॥** ब्रह्मोवाच– **राधा कृष्णांगसंभूता या देवी द्रवरूपिणी । नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुंदरी वरा ॥४॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता । तदंगसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना ॥५॥ तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा । समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् ॥६॥ विवेश चरणांभोजे कृष्णस्य परमात्मनः । सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा ॥७॥ गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये । सर्वान्तरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च ॥८॥ बहिश्चकार गंगां च पादांगुष्ठनखाग्रतः । दत्त्वाऽस्यै राधिकामंत्रं पूरयित्वा च गोलकम् ॥९॥ प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वाऽत्रागमं प्रभो । गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् ॥१०॥ सुरेश्वरेषु रसिको रसिकेयं समागता । त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती ॥११॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् । उपस्थितां स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान् ॥१२॥ तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः । यो भवेत्पंडितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ॥१३॥ सर्वे प्राकृतिकाः**

अभी मैंने यह सुना है कि गङ्गा वैकुण्ठ लोक चली गयीं, किन्तु मैंने यह नहीं सुना कि वे किस प्रकार भगवान् नारायण की पत्नी बनीं ॥२॥ **श्रीनारायण ने कहा**– गङ्गाजी जब वैकुण्ठ गयीं तो उसके पश्चात् ब्रह्माजी भी वैकुण्ठ गये और भगवान् नारायण को प्रणाम करके कहे ॥३॥ **ब्रह्मा ने कहा**– जो द्रवस्वरूपिणी गङ्गा राधा और कृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न हुईं । वे नवयौवन से सम्पन्न, सुशील श्रेष्ठ तथा सुन्दरी हैं । वे शुद्ध सत्त्वस्वरूपिणी तथा क्रोध एवं अहंकार से रहित हैं । उनके अङ्ग से उद्भूत होने के कारण यह उनको छोड़कर किसी दूसरे का वरण नहीं कर सकती हैं ॥४-५॥ वहाँ पर अत्यन्त मानिनी राधा इनको पी जाना चाहती थीं । वे अत्यन्त तेजस्विनी हैं । ये अत्यन्त भयभीत हो गयीं और श्रीभगवान् के चरण कमलों में प्रवेश कर गयीं । उसके कारण सारा ब्रह्माण्ड ही सूख गया । यह देखकर मैं गोलोक में ॥६-७॥ इसलिए गया कि वहाँ का सारा वृत्तान्त जान सकूँ । सबों की अन्तरात्मा हमसबों के अभिप्राय को जान गये ॥८॥ उन्होंने अपने पैर के अंगूठे के नख से गङ्गा को प्रकट किया । उसके बाद मैने गङ्गा को राधा का मंत्र प्रदान किया और ब्रह्माण्ड को जल से पूर्ण कर दिया ॥९॥ उसके बाद राधा और राधेश को प्रणाम करके और गङ्गा को लेकर मै लौट आया । हे प्रभो ! आप गङ्गा को गान्धर्व विवाह की विधि से स्वीकार करें ॥१०॥ आप तो सुरेश्वरों में रसिक हैं और गङ्गा भी रसिका हैं । आप पुरुषरत्न हैं और गङ्गा भी स्त्रीरत्न हैं ॥११॥ विदग्ध नारी का विदग्ध (चतुर) पुरुष से सम्बन्ध गुणकारी होता है । जो पुरुष आयी हुई कन्या को नहीं स्वीकार करता है ॥१२॥ उसको छोड़कर रुष्ट हुई महालक्ष्मी चली जाती हैं । जो ज्ञानी पुरुष होते हैं वे भी प्रकृति का अपमान नहीं करते हैं ॥१३॥ सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हैं और जितनी स्त्रियाँ

पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः । त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥१४॥ अर्धांगं द्विभुजः कृष्णो योऽर्धांगेन चतुर्भुजः । कृष्णवामांगसंभूता बभूव राधिका पुरा ॥१५॥ दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशा कमला तथा । तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा ॥१६॥ एकाङ्गं चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ । इत्येवमुक्त्वा धाता तां तं समर्प्य जगाम सः ॥१७॥ गान्धर्वेण विहाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् । नारायणः करं धृत्वा पुष्पचंदनचर्चितम् ॥१८॥ रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितो मुदा । गङ्गा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता ॥१९॥ निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च । मूर्च्छां संप्राप सा देवी नवसंगमलीलया ॥२०॥ रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता । तां दृष्ट्वा दुःखिता वाणी पद्मया वर्जिताऽपि च ॥२१॥ नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम् । गङ्गा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया ॥२२॥ गङ्गया सह तस्यैव तिस्त्र भार्या रमापतेः । सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्त्रश्चाभवन्मुने ॥२३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

हैं वे प्रकृति के अंश हैं । हे भगवन् ! आप सबों के स्वामी हैं, और प्रकृति से परे हैं ॥१४॥ आधे अंग मे दो भुजाओं वाले भगवान् कृष्ण हैं और आधे अंग से चतुर्भुज आप हैं । प्राचीनकाल में भगवान् कृष्ण के वायें अंग से राधिका उद्भूत हुईं ॥१५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के वाम भाग से राधा उत्पन्न हुई । उनके भी दो भाग हो गये । दाहिने भाग राधा के रूप में रह गया और वायाँ भाग कमला के रूप में परिणत हो गया । आपके ही अंग से उद्भूत होने के कारण गङ्गा भी आपका ही वरण करना चाहती हैं । प्रकृति और पुरुष के समान स्त्री और पुरुष भी एक ही शरीर हैं । इस तरह से कहकर ब्रह्माजी गङ्गा को भगवान् नारायण को समर्पित करके चले गये ॥१६-१७॥ श्रीहरि ने भी गान्धर्व विवाह के द्वारा गङ्गा को स्वीकार किया । भगवान् ने पुष्प और चन्दन से अलङ्कृत गङ्गा का हाथ पकड़कर प्रसन्नता पूर्वक गङ्गा के साथ रमण किया । जो गङ्गा भूलोक में गयी थीं वे शाप की समाप्ति के बाद श्रीहरि के लोक में आ गयीं ॥१८-१९॥ वे चूकि विष्णु के चरण से निकली थीं इसीलिए उन्हें विष्णुपदी कहते हैं । श्रीभगवान् के नवीन संगमजन्य आनंद के कारण वे अचेत हो गयीं ॥२०॥ रसिक स्वभाव की गंगा रसिकेश्वर श्रीहरि के नवीन संयोग के कारण मूर्छित हो गयीं । गङ्गा के प्रति सरस्वती के मन में जो द्वेष था । वह बना रहा लक्ष्मी ने सरस्वती को रोका भी था ॥२१॥ सरस्वती गङ्गा से हमेशा ईर्ष्या करती थी किन्तु गङ्गा सरस्वती से ईर्ष्या नहीं करती थीं । गङ्गा ने अन्त में क्रोध करके सरस्वती को भारत में नदी होकर जाने का शाप दिया था ॥२२॥ गङ्गा को मिलाकर भगवान् नारायण की तीन भार्याएँ थीं । बाद में तुलसी को मिलाकर उनकी चार भार्याएँ हो गयीं ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

पञ्चदशोऽध्यायः

नारद उवाच– **नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह । तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥१॥ कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या कुले सती । केन वा तपसा सा च संप्राप्ता प्रकृतेः परम् ॥२॥ निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम् । नारायणं परं ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम् ॥३॥ सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥४॥ कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह । कथं साऽप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥५॥ सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः । छेतुमर्हसि संदेहं सर्व संदेहभंजन ॥६॥** नारायण उवाच– **मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः । यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥७॥ तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः। तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥८॥ तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेन्द्रियः । तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः ॥९॥ तत्पुत्र इन्द्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः । वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः ॥१०॥ यस्याश्रमे स्वयं शंभुरासीद्देवयुगत्रयम् । पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च ॥११॥ न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम् । पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः ॥१२॥ भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां**

तुलसी की कथा के प्रसङ्ग में राजा वृषध्वज का चरित्र वर्णन

नारदजी ने कहा– तुलसी का जन्म कहाँ हुआ ?, वह पूर्व जन्म में कौन थी ? और वह साध्वी नारायण की प्रिया कैसे बन गयी ?॥१॥ किसके वंश में उत्पन्न हुई थी ? किसकी पुत्री थी ? कौन सी तपस्या करके वे प्रकृति से परे निर्विकार, निरीह, सम्पूर्ण जगत् स्वरूप परब्रह्म परमात्मा सबों के आराध्य, सबों के स्वामी, सर्वज्ञ, सबों के कारण स्वरूप, सबों के आधार, सर्वरूप, सबों का पालन करने वाले भगवान् नारायण को पति के रूप में प्राप्त कीं ?॥२-४॥ इस प्रकार की देवी वृक्ष कैसे बन गयीं ? वह तपस्विनी असुर के द्वारा कैसे ग्रस्त हो गयी ?॥५॥ हे मुने ! आप मेरे इस चंचल मन के संदेह को दूर करें आप तो सभी प्रकार के संदेहों को मिटाने वाले हैं ॥६॥ **नारायण ने कहा–** दक्षसावर्णि मनु धार्मिक, वैष्णव और जितेन्द्रिय थे । वे भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न यशस्वी और कीर्तिमान थे ॥७॥ उनके पुत्र ब्रह्मसावर्णि थे । वे पवित्र, धार्मिक तथा वैष्णव थे । उनके पुत्र का नाम धर्मसावर्णि था वे भी वैष्णव और जितेन्द्रिय थे ॥८॥ उनके पुत्र का नाम रुद्रसावर्णि था । वे भक्तिमान और जितेन्द्रिय थे । उनके पुत्र विष्णु व्रत परायण देवसावर्णि हुए ॥९॥ उनके पुत्र इन्द्र सावर्णि थे महाविष्णु के भक्त थे । उनके पुत्र वृषध्वज हुए वे भगवान् शंकर के भक्त थे ॥१०॥ उनके आश्रम में भगवान् शंकर तीन युगों तक निवास किए । उस राजा पर भगवान् शंकर का अपने पुत्र से भी अधिक प्रेम था ॥११॥ राजवृषध्वज की श्रद्धा, नारायण, लक्ष्मी तथा सरस्वती इन

मत्तो बभंज ह । तथा माघीयपंचम्यां विस्तृतां सर्वदैवतैः ॥१३॥ पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः । यज्ञं च विष्णुपूजां च निंदंतं तं दिवाकरः ॥१४॥ चुकोप देवो भूपेंद्र शशाप शिवकारणात् । भ्रष्टश्रीस्त्वं च भवेति तं शशाप दिवाकरः ॥१५॥ शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छंकरः स्वयम् । पित्रा सार्द्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१६॥ शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा । ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया॥१७॥ ब्रह्मकश्यपमार्तंडाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः । नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया ॥१८॥ मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः । सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ ॥१९॥ नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ । स्थिरा भवत हे भीता भयं किं च मयि स्थिते॥२०॥ स्मरंति ये यत्र यत्र मां विपत्तौ भयान्विताः । तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥२१॥ पाताऽहं जगतां देवाः कर्ता च सततं सदा । स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥२२॥ शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः । विधाय नानारूपं च करोमि सृष्टिपालनम् ॥२३॥ यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः । अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शंकरात् ॥२४॥ सर्वेशो वै स भगवाञ्छंकरश्च सतां पतिः । भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः ॥२५॥ सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः । ब्रह्माण्डेषु न

तीनों में से किसी के भी प्रति नहीं थी उसने सम्पूर्ण देवताओं का पूजन करना त्याग दिया था । वह यज्ञ और विष्णु की पूजा की निन्दा करता था, उसके कारण उससे भगवान् सूर्य रुष्ट हो गये ॥१२-१४॥ शिवजी के कारण नाराज होकर भगवान् सूर्य ने राजा को शाप दे दिया । उन्होंने शाप दिया कि तुम्हारा ऐश्वर्य नष्ट हो जाय ॥१५॥ यह सुनकर भगवान् शंकर अपना त्रिशूल उठाकर उनके ऊपर दौड़े । यह देखकर सूर्य अपने पिता के साथ ब्रह्माजी की शरणागति किए ॥१६॥ क्रुद्ध होकर त्रिशूल लिए हुए शंकरजी ब्रह्मलोक में गये तो भयभीत होकर ब्रह्माजी सूर्य को लेकर वैकुण्ठ में चले गये ॥१७॥ इस तरह ब्रह्मा, कश्यप तथा मार्तण्ड तीनों भयभीत थे और उनका मुख सूखा हुआ था । वे भयभीत होकर नारायण की शरणागति किए ॥१८॥ उनलोगों ने नारायण को प्रणाम किया और उनकी बार-बार स्तुति की । उनलोगों ने भय का सारा कारण श्रीहरि को बतलाया ॥१९॥ कृपालु भगवान् नारायण ने उन तीनों को अभय दान दे दिया । उन्होंने कहा आपलोग शान्त हो जाइये मेरे रहते आपलोगों को कौन सा भय है ?॥२०॥ विपत्ति आने पर जहाँ कहीं भी कोई भयभीत होकर मेरा स्मरण करता है, उस व्यक्ति की मैं वहीं जाकर चक्र धारण करके रक्षा करता हूँ ॥२१॥ हे देवों ! मैं सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाला हूँ; और ब्रह्मा रूप से मैं जगत् की सृष्टि करता और शिव रूप से मैं जगत् का संहार करता हूँ ॥२२॥ मैं त्रिगुणात्मक होने के कारण शिव स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप तथा सूर्य स्वरूप हूँ । अनेक रूपों को धांरण करके मैं सृष्टि का पालन करता हूँ ॥२३॥ आपलोग जाइये आपलोगों का कल्याण होगा । कोई भी भय करने

तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ॥२६॥ शक्तः स्त्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटि च लीलया । कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः ॥२७॥ बाह्यज्ञानं नैव किंचिद्ध्यायते मां दिवानिशम् । मन्मंत्रान्मद्गुणान्भक्त्या पंचवक्त्रेण गायति ॥२८॥ अहमेवं चिंतयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् । ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥२९॥ शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता । शिवं भवति तस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः ॥३०॥ एतस्मिन्नंतरे तत्र जगाम शंकरः स्थितः । शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ॥३१॥ अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः । ननाम भक्त्या तं शांतं लक्ष्मीकांतं परात्परम् ॥३२॥ रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् । किरीटिनं कुंडलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥३३॥ नवीननीरदश्यामं सुदंरं च चतुर्भुजम् । चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥३४॥ चन्दनोक्षितसंर्वांगं भूषितं पीतावाससम् । लक्ष्मीप्रदत्ततांबूलं भुक्तवंतं च नारद ॥३५॥ विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यंतं सस्मितं सदा । ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३६॥ तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा नमितश्च सः । ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चंदशेखरम् ॥३७॥ कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव न ननाम च । शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥३८॥ सुखासने सुखासीनं

की बात नहीं है । मेरा वरदान है कि आज से आपलोगों को शंकरजी से कोई भी भय नहीं होगा ॥२४॥ भगवान् शंकर सबों के स्वामी, सज्जनों के स्वामी, भक्तों के अधीन रहने वाले, भक्तों की आत्मा और भक्तवत्सल हैं ॥२५॥ सुदर्शन और शिव ये दोनों मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय हैं । हे ब्रह्मन् । उनदोनों से अधिक तेजस्वी ब्रह्माण्ड में कोई भी नहीं हैं ॥२६॥ शिव अनायास करोड़ों सूर्यों की सृष्टि करने में समर्थ हैं । वे करोड़ो ब्रह्मा की सृष्टि कर सकते हैं। उनके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है ॥२७॥ वे असम्प्रज्ञात समाधि में स्थित होकर रात-दिन मेरा ध्यान करते हैं । वे अपने पाञ्च मुखों से मेरे मन्त्रों तथा मेरे गुणों का भक्तिपूर्वक गायन करते हैं ॥२८॥ मैं भी इसी तरह उनके कल्याण कि लिए चिन्ता रात-दिन करता हूँ । जो व्यक्ति मेरी जैसी भक्ति करता है, मैं भी उसको उसी तरह से भजता हूँ ॥२९॥ भगवान् शिव कल्याण स्वरूप हैं । वे शिव के अधिष्ठातृ देवता हैं । चूकि वे कल्याणं करते हैं, इसीलिए विद्वान् उनको शिव कहते हैं ॥३०॥ उसी समय शंकर भी बैल पर सवार होकर, त्रिशूल हाथ में लिए हुए तथा क्रोध से लाल आँखें किए हुए वहाँ पहुँच गये ॥३१॥ शीघ्र ही अपने बैल से उतरकर और भक्तिपूर्वकं कन्धा झुकाकर उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् लक्ष्मीपति को प्रणाम किया ॥३२॥ उस समय भगवान् रत्नसिंहासन पर बैठे थे । वे कुण्डल, चक्र तथा वनमाला धारण किए हुए थे ॥३३॥ उनका श्रीविग्रह नवीन मेघ के समान श्यामवर्ण का था । उनकी सुन्दर चारभुजायें थीं । चारभुजाओं वाले पार्षद उनको श्वेत चम [illegible] समस्त अंगों में चन्दन लगा था । वे पीताम्बर धारण किए हुये थे और लक्ष्मीजी के द्वारा प्रदत्त ताम्बूल को खाये हुए थे ॥३५॥ मुस्कुराते हुए वे विद्याधारियों के नृत्य और गीत को देख रहे थे । वे नियामक परमात्मा तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाले थे ॥३६॥ ऐसे भगवान् नारायण को उन्होंने प्रणाम किया और ब्रह्माजी ने उनको प्रणाम किया । डरते हुए सूर्य ने भी

विश्रांतं चंद्रशेखरम् । श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥३९॥ पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम् । विष्णुरुवाच– **आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम् ॥४०॥** महादेव उवाच– **वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकं प्रियम् । सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम् ॥४१॥ पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हंतुं समुद्यतः । स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च च विधिस्त्वयि ॥४२॥ त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा । निरापदो विशंकास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः ॥४३॥ प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः । हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमंगलदा सदा ॥४४॥ किं मे भक्तस्य भविता तन्नो ब्रूहि जगत्प्रभो । श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥४५॥** विष्णुरुवाच– **कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः । वैकुण्ठं घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम् ॥४६॥ वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात् । रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया ततः॥४७॥ तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ । हृतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ परमवैष्णवौ ॥४८॥ राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातपसा रतौ । तयोश्च**

शंकरजी को प्रणाम किया ॥३७॥ कश्यपजी ने अत्यन्त भक्ति से उनको प्रणाम किया और स्तुति की । शंकरजी सर्वेश्वर भगवान् की स्तुति करके सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये ॥३८॥ शंकरजी के सुखद आसन पर सुख पूर्वक बैठकर विश्राम कर लेने पर जब भगवान् के पार्षद उनको चमर से वायु कर रहे थे उस समय भगवान् विष्णु ने अमृत के समान मधुर वाणी में उनसे पूछा । **भगवान् विष्णु ने कहा–** आप यहाँ कैसे आये । आपके कोप का कारण क्या है ?॥३९-४०॥ **महादेवजी ने कहा–** वृषध्वज मेरा भक्त है, मुझे प्राणों के समान प्रिय है, उसको सूर्य ने शाप दे दियाा । यही मेरे क्रोध का कारण है ॥४१॥ अपने पुत्र के प्रति वत्सल होने के कारण ,मैं क्रोध करके उसको मारने के लिए उद्यत हो गया हूँ । वह सूर्य ब्रह्माजी के शरण में चला गया और ब्रह्माजी आपके शरणागत हो गये ॥४२॥ जो जीव आपके शरण में ध्यान अथवा वाणी से भी चले जाते हैं वे आपत्ति रहित और भयरहित हो जाते हैं । वे जरा और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ॥४३॥ जो लोग साक्षात् आपकी शरणागति कर लेते हैं, उसका फल कितना होता है, और क्या होता है ? उसे मैं क्या बतलाऊँ । श्रीहरि का स्मरण ही अभय तथा सभी प्रकार का मङ्गल प्रदान करने वाला होता है ॥४४॥ हे प्रभो ! आप बतलाइये कि मेरे भक्त का क्या होगा ? वह सूर्य के शाप के कारण श्रीविहीन तथा मूढ हो गया है ॥४५॥ **भगवान् विष्णु ने कहा–** वैकुण्ठ में आधी घड़ी रहने के कारण देवताओं के इक्कीस युग बीत गये हैं आप शीघ्र अपने धाम में चले जाइये ॥४६॥ भयंकर काल दुर्निवार है । वृषध्वज की मृत्यु हो चुकी है । उसका पुत्र रथध्वज भी मर चुका है । वह भी नि:श्रीक हो गया । रथध्वज के दो पुत्र हुए धर्मध्वज और कुशध्वज । वे परम वैष्णव है, किन्तु सूर्य के शाप के कारण हतश्री हैं । वे राज्यभ्रष्ट और श्रीभष्ट होने के कारण लक्ष्मी की तपस्या कर रेंहे हैं । उनकी पत्नियों से लक्ष्मी अपने एक अंश से उत्पन्न होयेंगी ॥४७-४९॥ उसके

भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति ॥४९॥ संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः । मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥५०॥ इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः । देवा जग्मुः संप्रहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा । शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ॥५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने । वरमिष्टं च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ॥१॥ महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः । पुण्यवंतौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥२॥ कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती । सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ॥३॥ सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह । कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात् ॥४॥ वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका । तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदंति मनीषिणः ॥५॥ जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम् । सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥६॥**

बाद वे सम्पत्ति से सम्पन्न होकर श्रेष्ठ राजा हो जायेंगे । हे शम्भो ! आपका भक्त मर चुका है । आप जायँ और आपलोग भी जायँ ॥५०॥ इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी के साथ सभा से उठकर भीतर चले गये । देवता भी अत्यन्त प्रसन्न होकर चले गये और परिपूर्णतम शंकरजी भी चले गये॥५१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

वेदवती की कथा, सीताजी और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त वर्णन

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा— वे दोनों (धर्मध्वज और कुशध्वज) ने अपनी उग्र तपस्या के द्वारा लक्ष्मीजी की आराधना करके लक्ष्मीजी से अपने अभिलषित वरदान को प्राप्त कर लिये ॥१॥ लक्ष्मीजी के वरदान के कारण धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों पृथिवी के स्वामी हो गये, वे दोनों पुण्यवान और धार्मिक थे ॥२॥ कुशध्वज की पत्नी का नाम मालावती था । उसने लक्ष्मीजी के अंशभूत एक कन्या को जन्म दिया ॥३॥ उसको प्राचीन काल से अधिक ज्ञान था । जन्म लेते ही उस कन्या ने वेद के मन्त्र का उच्चारण किया ॥४॥ चूंकि उसने जन्म लेते ही वेद के मन्त्र का उच्चारण किया अतएव उसका

एकमन्वंतरं चैव पुष्करे च तपस्विनी । अत्युग्रां च तपस्यां च लीलया हि चकार सा ॥७॥ तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता । शुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम् ॥८॥ जन्मांतरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम् । ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुंदरि ॥९॥ इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः । अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गंधमादने ॥१०॥ तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा । ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥११॥ दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल । सुस्वादुभूतं च फलं जलं चापि सुशीतलम् ॥१२॥ तच्च भुक्त्वा च पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः । चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे ॥१३॥ तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम् । शरत्पद्मोत्सवास्या च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥१४॥ मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः । स करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्तुमुद्यतः ॥१५॥ सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तम्भितं च चकार ह । स जडो हस्तपादैश्च किंचिद्वक्तुं न च क्षमः ॥१६॥ तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम् । सा तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतं च चकार ह ॥१७॥ सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबांधवः । स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्बलं चाप्यवलोकय ॥१८॥ इत्युक्त्वा सा च

नाम वेदवती हुआ ऐसा मनीषियें का कहना है ॥५॥ उत्पन्न होते ही वह स्नान करके तपस्या करने के लिए वन में चली गयी । यद्यपि सबलोगों ने उसे रोका किन्तु भगवान् नारायण की भक्ता होने के कारण वह रुकी नहीं ॥६॥ उसने पुष्कर क्षेत्र में जाकर एक मन्वन्तर तक तपस्या किया । उसने आसानी से उस घोर तपस्या को किया ॥७॥ फिर भी उसका शरीर पुष्ट ही बना रहा । वह कृष नहीं हुई । उसे सहसा आकाशवाणी सुनायी पड़ी ॥८॥ दूससे जन्म में तुम्हारे पति स्वयं भगवान् होंगे । हे सुन्दरि ! ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए भी दुराराध्य श्रीहरि को तुम पति के रूप में प्राप्त करोगी ॥९॥ यह सुनकर वेदवती प्रसन्न होकर पुनः तपस्या करने लगीं । वह गन्धमादन पर्वत कें निर्जन स्थान में जाकर तपस्या कर रही थी ॥१०॥ वहीं पर दीर्घकाल तक तपस्या करके विश्वास पूर्वक रहने लगी । एक दिन उन्होंने अपने सामने दुष्ट रावण को देखा ॥११॥ उसको देखकर वेदवती ने रावण को भक्तिपूर्वक पाद्य आदि प्रदान करके खाने के लिए स्वादिष्ट फल और पीने के लिए शीतल जल प्रदान किया ॥१२॥ वह पापी खाने के बाद वहीं रुक गया और वेदवती से पूछा कि हे कल्याणि तुम कौन हो ?॥१३॥ सुन्दरी वेदवती के पीन पयोधारों को तथा मुस्कान से युक्त शरत्कालीन कमल के समान सुन्दर मुख को देखकर कामपीडित हो गया । उसने वेदवती को पकड़कर उसका शृङ्गार करने के लिए उद्यत हो गया ॥१४-१५॥ यह देखकर वेदवती क्रुद्ध हो गयी, उसने अपनी तपस्या के बल से रावण को स्तंभित कर दिया । उसके हाथ पैर जड़वत् हो गये । वह कुछ बोल भी नही पाता था ॥१६॥ उसने मन ही मन उस कमल के समान सुन्दर नेत्र वाली वेदवती की स्तुति की । प्रसन्न होकर वेदवती ने उसकी स्तुति को स्वीकार किया ॥१७-१८॥ वेदवती ने रावण को शाप दिया कि

योगेन देहत्यागं चकार सा । गंगायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ ॥१९॥ अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वाऽनयाऽधुना । इति संचिंत्य संचित्य विललाप पुनः पुनः ॥२०॥ सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा । सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः ॥२१॥ महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मतः । लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥२२॥ संप्राप तपसाऽऽराध्य दुराराध्यं जगत्पतिम् । सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुंदरी ॥२३॥ जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा । सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले ॥२४॥ नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती । संप्राप्य सुकुमारं तमतोव नवयौवना ॥२५॥ गुणिनं रसिकं शांतं कान्ती देवमनुत्तमम् । स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम् ॥२६॥ पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसंधो रघूद्वहः । जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा ॥२७॥ तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च । ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः ॥२८॥ रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह । उवाच किंचित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः ॥२९॥ द्विज उवाच– **भगवञ्छ्रूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः । सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः ॥३०॥ दैवं च दुर्निवार्यं**

मेरे ही चलते तुम्हारा सपरिवार नाश हो जायेगा, क्योंकि तुमने कामभाव से मेरा स्पर्श किया है । अब तुम मेरा बल देखो ॥१८॥ यह कहकर वेदवती ने योग द्वारा शरीर त्याग कर दिया । रावण भी वेदवती को गङ्गा में डालकर अपने घर चला गया ॥१९॥ वह सोच रहा था मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा इस देवी के द्वारा कैसी घटना घट गयी । इस तरह से सोचकर रावण ने बार-बार विलाप किया ॥२०॥ उसके बाद वह वेदवती ही आगे चलकर जानकी बनी और उनका नाम सीता देवी हुआ । सीता के ही कारण रावण मारा गया ॥२१॥ सीता तो पूर्वजन्म से महातपश्विनी थीं । उन्होंने परिपूर्णतम श्रीहरि श्रीराम को पति के रूप में प्राप्त किया ॥२२॥ तपस्या के द्वारा आराधना करके उन्होंने श्रीराम को पति के रूप में प्राप्त किया और उन्होंनें श्रीराम के साथ चिरकाल तक सुखभोग किया ॥२३॥ उन्हें पूर्वजन्म की बातें याद थीं किन्तु इस जन्म के सुख के कारण पूर्वजन्म के क्लेशों को नहीं स्मरण किया। वे सुख के कारण उस दुःख को भूल गयीं ॥२४॥ अनेक प्रकार के वैभवों का नवीन युवावस्था वाली सीता ने सुकुमार श्रीराम को प्राप्त करके उनका उपभोग किया॥२५॥ श्रीराम गुणों से सम्पन्न, रसिक, शान्त प्रकृति वाले, मनोहर कान्ति से सम्पन्न थे । उन्होंने अपने मनोनुकूल मनोहर सुन्दरी सीता को प्राप्त किया॥२६॥ कुछ दिनों के बाद पिता की सत्य प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए बलवान् काल से प्रेरित होकर वे वन में चले गये ॥२७॥ वे सीता और लक्ष्मण के साथ समुद्र के सन्निकट में ही रहते थे । उन्होंने अपने सामने ब्राह्मण वेषधारी अग्नि को देखा ॥२८॥ श्रीराम को दुःखी देखकर वे ब्राह्मण भी दुःखी हो गये। उन्होंने सत्य और इष्ट दुर्निवार्य सत्य को बतलाया । **ब्राह्मण ने कहा–** हे भगवन् श्रीराम, सीता के हरण का समय आ गया है ॥२९-३०॥ दैव

च न च दैवात्परो बली । जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षांतिकेऽधुना ॥३१॥ दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः । देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः ॥३२॥ रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम् । स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता ॥३३॥ वह्नियोंगेन सीताया मायासीतां चकार ह । तत्तुल्यगुणसर्वांगां ददौ रामाय नारद ॥३४॥ सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च । लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥३५॥ एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम् । सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम् ॥३६॥ संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने । स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च ॥३७॥ लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः । प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन् ॥३८॥ मृगदेहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च । रत्ननिर्मितयानेन वैकुंठं स जगाम ह ॥३९॥ वैकुण्ठलोकद्वार्यासीत्किंकरो द्वारपालयोः । पुनर्जगाम तद्द्वारमादेशाद्द्वारपालयोः ॥४०॥ अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विकल्वम् । तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ ॥४१॥ गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः । सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥४२॥ विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥४३॥ मूर्च्छां संप्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः । पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम्॥४४॥

ही बलवान् होता है, दैव से बलवान् कोई नहीं होता है । आप जगन्माता सीता को मुझमें (अग्नि में) स्थापित करके अपने पास छाया सीता को रखें ॥३१॥ जब आप सीता की अग्निपरीक्षा करेंगे तो मैं सीताजी को लौटा दूगाँ । मैं ब्रह्मण नहीं हूँ । मैं अग्नि हूँ । देवताओं ने मुझे भेजा है ॥३२॥ अग्नि की बातों को सुनकर श्रीराम उसे लक्ष्मण को नहीं बतलाये । हृदय में कष्ट होने पर भी उन्होंने अग्नि की बातों को मान लिया ॥३३॥ अग्नि ने योग के द्वारा माया सीता को बना दिया । माया सीता के भी अंग तथा गुण सीताजी के ही समान थे । उन्होंने श्रीराम को उस सीता को दे दिया ॥३४॥ अग्नि सीता को लेकर चले गये । उन्होंने श्रीराम से कहा कि वे इस बात को किसी को नहीं बतलायेंगे । इस बात को लक्ष्मण भी नहीं जान सकें दूसरे की कौन कहे॥३५॥ उसी समय श्रीराम ने सुवर्णमृग को देखा । सीता ने उसे यत्नपूर्वक लाने के लिए कहा ॥३६॥ सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण पर सौपकर श्रीराम शीघ्र चले गये और उस मृग को बाण से मारे ॥३७॥ वह मायावी लक्ष्मण शब्द का उच्चारण करके श्रीहरि के समक्ष ही उनका स्मरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥३८॥ वह अपने मृग शरीर का परित्याग करके तथा दिव्यरूप धारण करके रत्न निर्मित विमान में वैकुण्ठ चला गया॥३९॥ वह वैकुण्ठ के द्वारपालों का किंकर हो गया ॥४०॥ विकलता भरे लक्ष्मण शब्द को सुनकर सीता ने लक्ष्मण को श्रीराम के पास भेज दिया॥४१॥ लक्ष्मण के श्रीराम के पास चले जाने पर महापापी रावण बड़ी आसानी से सीता का अपहरण करके लङ्का चला गया ॥४२॥ वन में लक्ष्मण को आते देखकर

कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरीनदीतटे । सहायान्वानरान्कृत्वा बबंध सागरं हरिः ।।४५।। लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च । कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बांधवैः सह ।।४६।। तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम् । हुताशस्तत्र काले तु वास्तवी जानकीं ददौ ।।४७।। उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता । करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ।।४८।। श्रीरामाग्नी ऊचतुः– त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्। कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ।।४९।। सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह ।।५०।। सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा । कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ।।५१।। कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा । त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ।।५२।। तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा । त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ।।५३।। नारद उवाच– प्रियाः पंच कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव । इति मच्चित्तसंदेहं भंज संदेहभंजन ।।५४।। नारायण उवाच– लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद । रूपयौवनसंपन्ना छाया च बहुचिंतया ।।५५।। रामाग्न्योराज्ञया तप्तुमुपास्ते शङ्करं परम् । कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः ।।५६।। पतिं देहि

श्रीराम ने विषाद किया । वे शीघ्रता से अपने आश्रम में आयें और सीता को वहाँ नहीं पाये ।।४३।। वे देर तक मूर्छित रहे और उसके बाद विलाप करने लगें । वे बार-बार सीता को खोजने लगे ।।४४।। फिर उनको सीता विषयक समाचार गोदावरी नदी के तट पर मिला । श्रीहरि ने वानरों को सहायक बनाकर सागर को बाँध दिया ।।४५।। समयानुसार श्रीराम लङ्का में गये और बाँधवों सहित रावण का वध उन्होंने अपने बाण से किया ।।४६।। विजयी होकर श्रीराम ने सीता की अग्नि परीक्षा करायी । उसी समय अग्नि ने श्रीराम को वास्तविक सीता को दे दिया ।।४७।। उस समय छाया सीता ने अग्निदेव और श्रीराम के समक्ष खड़ा होकर पूछा अब आपलोग यह बतलाइये कि मैं क्या करूँ ?।।४८।। **श्रीराम और अग्नि ने कहा–** हे देवि ! आप पुष्कर क्षेत्र में जाकर तपस्या करें । वहाँ तपस्या करके तुम स्वर्गलक्ष्मी हो जाओगी ।।४९।। उन दोनों की वाणी को सुनकर छाया सीता पुष्कर में जाकर और वहाँ तीन लांख वर्ष तक तपस्या की । उसके बाद वह स्वर्ग लक्ष्मी हो गयी ।।५०।। समयानुसार वह तपस्या करके यज्ञकुण्ड से द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई और पाण्डवों की पत्नी बनी ।।५१।। सत्ययुग में वह कुशध्वज की पुत्री वेदवती हुई त्रेतायुग में वह जनकात्मजा सीता हुई और वह श्रीराम की पत्नी हुई ।।५२।। वह छाया सीता ही द्वापर युग में द्रुपदात्मजा हुई । वह तीन युगों में रही अतएव वह त्रिहायणी कही जाती हैं ।।५३।। **नारदजी ने कहा–** हे मुनिपुंगव उसके पाँच पति क्यों हुए ? आप तो संदेहों को दूर करने वाले हैं । मेरे संदेह को दूर करें ।।५४।। **नारायण ने कहा–** हे नारदजी लङ्का में वास्तविक सीता ने श्रीराम को प्राप्त किया । रूप तथा यौवन से छाया सीता को बहुत अधिक चिंता थी ।।५५।। श्रीराम और अग्नि की आज्ञा से वह शंकरजी की आराधना करती थी । कामातुर होने के कारण व्यग्रता पूर्वक उसने शंकरजी से वरदान माँगते हुए पाँच बार कहा पतिं देहि ।।५६-५७।। उसकी प्रार्थना सुनकर रसिकेश्वर शिव

पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा ॥५७॥ शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः । प्रिये तव प्रियाः पञ्च भविष्यन्ति वरं ददौ ॥५८॥ तेन सा पांडवानां च बभूव कामिनी प्रिया । इति ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु ॥५९॥ अथ सम्प्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् । विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥६०॥ एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते । जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च ॥६१॥ कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा । कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम् ॥६२॥ सततं मूर्तिमंतश्च वेदाश्चत्वार एव च । सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती श्रुता ॥६३॥ धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते ॥६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता । नृपेण सार्धं साऽऽरामे रेमे च गंधमादने ॥१॥ शय्यां रतिकरीं कृत्वा**

ने कहा तुम्हारे पाँच पति होंगे ॥५८॥ उसी के कारण वह छाया सीता पाञ्चों पाण्डवों की पत्नी बन गयी । इस तरह से मैंने आपको सारी बाते सुनायी अब आप वास्तविक सीता की कथा सुनें ॥५९॥ श्रीराम ने लङ्का में मनोज्ञ सीता को प्राप्त किया और लङ्का का राज्य विभीषण को देकर वे सीता को लेकर अयोध्या आये ॥६०॥ उन्होंने ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य किया इसके बाद वे सारी प्रजा के साथ वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥६१॥ लक्ष्मी के अंशभूत वेदवती लक्ष्मी में प्रवेश कर गयीं । मैंने आपको मङ्गलमय पुण्यप्रद कथा सुनायी ॥६२॥ निरन्तर मूर्तिमान अग्नि जिस के जिह्वा के अग्रभाग में चारो वेदों का निवास हो उसे वेदवती कहते हैं ॥६३॥ अब मैं आपको धर्मध्वज की कथा सुनाता हूँ उसे आप सुनें ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

तुलसी के प्रादुर्भाव की कथा

श्रीनारायण ने कहा— धर्मध्वज की पत्नी का नाम माधवी था । वह राजा के साथ गन्धमादन पर्वत के कुञ्जों में विहार करती थी । पुष्प तथा चन्दन

पुष्पचंदनचर्चिताम् । चंदनालिप्तसर्वांगीं पुष्पचंदनवायुना ॥२॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी रत्नभूषणभूषिता । कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता॥३॥ सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः । गतं देववर्षशतं न ज्ञातं च दिवानिशम् ॥४॥ ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च । कामुकी सुन्दरी किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा ॥५॥ दधार गर्भं सा सद्यो दैवादब्दशतं सती । श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ॥६॥ शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते । शुभलग्ने शुभांगे च शुभस्वामिग्रहान्विते ॥७॥ कार्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पद्मजा । सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम् ॥८॥ शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पक्वबिंबाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम् ॥९॥ हस्तापादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् । तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितम्बयुगवर्तुलाम् ॥१०॥ शीते सुखोष्णसर्वांगीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् । श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमंडलाम्॥११॥ पीतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुन्दरीम् । नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः ॥१२॥ तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्ति मनीषिणः । सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्यस्त्री प्रकृतिर्यथा ॥१३॥ सर्वैं निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् । तत्र देवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः ॥१४॥ मनसा

से शय्या बनाकर सुन्दर अंगो वाली वह कामुकी रत्नों के आभूषणों से भूषित होकर अपने पति के साथ रमण करने लगी । वह और उसके पति दोनों रसिक थे । वे दोनों रतिक्रिया के विज्ञ थे । उनकी रतिक्रिया कभी रुकती नहीं थी । इस तरह रतिक्रिया में व्याप्त उन दोनों को दिन और रात का पता ही नहीं चला और देवताओं के सौ वर्ष का समय बीत गया ॥२-४॥ इसके बाद चेतना प्राप्त करके राजा उस रतिक्रिया से विरत हो गये किन्तु कामुकी सुन्दरी को तृप्ति नहीं हुई ॥५॥ वह सौ वर्ष तक गर्भ को धारण किए रही । उसके गर्भ में लक्ष्मी का अंश था । अतएव प्रतिदिन उसका तेज बढ़ता गया ॥५-६॥ शुभदिन को शुभलग्न तथा शुभयोग के शुभक्षण के शुभअंश में उसने कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन लक्ष्मी के अंश से एक मनोहर बालिका को जन्म दिया ॥७-८॥ उसका मुख शरत् ऋतु के चन्द्रमा के समान सुन्दर तथा उसके ओष्ठ पके विम्बाफल के समान थे । वह सदा मुस्कुराती रहती थी ॥९॥ उसके हाथ और पैर के तलवे लाल-लाल थे । उसकी गहरी और मनोहर नाभि थी । उसके नीचे उसकी त्रिवली थी । उसके दोनों जंघे गोल थे ॥१०॥ वे शीतकाल में गर्म तथा ग्रीष्म काल में ठंढे रहते थे । उस सुन्दरी के केश सुन्दर और वटवृक्ष के समान सघन थे । उस सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी के शरीर का वर्ण सुवर्णचम्पा के पुष्प के समान गौरवर्ण का था । उसके सौन्दर्य की तुलना कोई नर अथवा नारी किसी वस्तु से नहीं दे पाता था ॥११-१२॥ इसीलिए उसका नाम तुलसी हुआ । भूमि पर ही रहकर वह प्रकृति देवी के समान योग्य हो गयी ॥१३॥ सबलोग उसको रोकते रहे किन्तु वह तपस्या करने के लिए बदरीवन में चली गयी । वहाँ पर उसने देवताओं के एक लाख वर्ष तक कठोर तपस्या किया ॥१४॥ उसने अपने मन में निश्चित किया कि भगवान् नारायण

नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता । ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयवस्त्रा च प्रावृषि ॥१५॥ आसनस्था वृष्टिधाराः सहंतीति दिवानिशम् । विंशत्सहस्त्रवर्षं च फलतोयाशना च सा ॥१६॥ त्रिंशत्सहस्त्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी । चत्वारिंशत्सहस्त्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी ॥१७॥ ततो दशसहस्त्राब्दं निराहारा बभूव सा । निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः ॥१८॥ समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् । चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् ॥१९॥ तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि । ब्रह्मोवाच– वरं वृणीष्व तुलसि यत्ते मनसि वांछितम् ॥२०॥ हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि । तुलस्युवाच– शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वांछितम् ॥२१॥ सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम्। अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ॥२२॥ कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया । गोविन्दरतिसंभुक्तामतृप्तां मां च मूर्छिताम्॥२३॥ रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले । गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता ॥२४॥ याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह । मामुवाच गोविन्दो मदंशं च चतुर्भुजम् ॥२५॥ लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् । इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यंतर्धानं चकार सः ॥२६॥ देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा प्राप्तं जन्म गुरो भुवि । अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुंदरविग्रहम् ॥२७॥ सांप्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं

ही मुझे पति के रूप में प्राप्त हों । वह ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तापती थीं । शीतकाल में जल के भीतर रहती थी और वर्षा के दिन में एक आसन पर बैठकर रातदिन वर्षा में रहती थी । उसने बीस हजार वर्षों तक फल़ और जल का आहार किया ॥१५-१६॥ तीस हजार वर्षों तक वह वृक्ष के पत्तों को खाकर रही और चालिस हजार वर्षों तक वायु पीकर रही ॥१७॥ उसके बाद वह दश हजार वर्षों तक निराहार रही । वह एक पैर पर खड़ी रहती थी। उसका दूसरा कोई लक्ष्य नहीं था । उसे देखकर ब्रह्माजी उसके पास वरदान देने के लिए आये । हंस वाहन और चारमुख वाले ब्रह्माजी को देखकर उसने प्रणाम किया ॥१८-१९॥ जगत् कर्त्ता ब्रह्माजी ने उस तुलसी से कहा **ब्रह्माजी ने कहा–** हे तुलसि ! तुमको जो वरदान अभिप्रेत हो उस वरदान को मांगो॥२०॥ श्रीभगवान् की भक्ति, श्रीहरि की दासता, अजरत्व अमरत्व जो चाहो सो माँगो । **तुलसी ने कहा–** हे तात ! जो मेरे मन में उसे आप सुनें ॥२१॥ आप तो सर्वज्ञ हैं अतएव आपसे मुझे कौन सी लज्जा हैं ? मैं तुलसी नाम की गोपी हूँ । मैं पहले गोलोक में थी ॥२२॥ मैं भगवान् कृष्ण की प्रिय, दासी थी । उनके अंश स्वरूप होने के कारण उनकी प्रिय सखी भी थी । गोविन्द के साथ रतिकाल में युक्त होकर मैं मूर्छित हो गयी ॥२३॥ उसी समय रासेश्वरी ने रास मण्डल में आकर मुझे देख लिया । उन्होंने गोविन्द को पहले डाँटा और क्रोधकर उन्होंने मुझे शाप दे दिया ॥२४॥ उन्होंने मुझे मनुष्य योनि में जाने का शाप दे दिया । उस समय भगवान् गोविन्द ने कहा मेरे ही अंश स्वरूप और चार भुजाओं वाले भगवान् नारायण को तुम ॥२५॥ भारत

च देहि मे । ब्रह्मदेव उवाच— **सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णांगसमुद्भवः ।।२८।। तदंशश्चातितेजस्वी लेभे जन्म च भारते । सांप्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः ।।२९।। शङ्खचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः । गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामान्मथितमानसः ।।३०।। विलम्भितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः । स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाऽभूच्च सागरे ।।३१।। जातिस्मरा त्वमपि सा सर्वं जानासि सुन्दरि। अधुना तस्य पत्नी त्वं संभविष्यसि शोभने ।।३२।। पश्चान्नारायणं शान्तं कांतमेव वरिष्यसि । शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः ।।३३।। भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी । प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः ।।३४।। त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत् । वृंदावने वृक्षरूपा नाम्ना वृंदावनीति च ।।३५।। त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यंति माधवम् । वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन संततम् ।।३६।। विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छंदं मद्वरेण च । इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा ।।३७।। प्रणनाम च ब्रह्माणं तं च किञ्चिदुवाच सा ।** तुलस्युवाच— **यथा मे द्विभुजे कृष्णे वांछा च श्यामसुन्दरे ।।३८।। सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे । अतृप्ताऽहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभंगतः ।।३९।।**

वर्ष में तपस्या करके ब्रह्माजी के वरदान को प्राप्त करके पति के रूप में प्राप्त करोगी । इस तरह से कहकर गोविन्द अन्तर्धान हो गये ।।२६।। राधा देवी के भय से मैंने अपने शरीर का परित्याग कर दिया । उसके बाद मैंने भूलोक में जन्म लिया है । मैं शान्त स्वभाव वाले तथा सुन्दर शरीर वाले भगवान् नारायण को ही पति के रूप में प्राप्त करना चाहती हूँ ।।२७।। मैं आपसे यही वरदान माँगती हूँ । आप मुझे यही वर दीजिये । **ब्रह्माजी ने कहा**— भगवान् श्रीकृष्ण के अंश से ही समुद्भूत सुदामा नामक गोप अत्यन्त तेजस्वी है । वह भगवान् का अंश है । उसने भारत में इस समय राधिकाजी के शाप के कारण दनुज वंश में जन्म लिया है ।।२८-२९।। वह शंखचूड के नाम से विख्यात है । इस समय उसके सामने त्रैलोक्य में कोई भी नहीं है । वह तुमको गोलोक में देखकर कामपीडित हो गया था ।।३०।। किन्तु राधिकाजी के प्रभाव के कारण तुम्हें नहीं प्राप्त कर सका । वह इस समय समुद्र में उत्पन्न हुआ है । उसको पूर्वजन्म की सारी बाते याद हैं ।।३१।। तुम भी जातिस्मरा हो, इन सारी बातों को जानती हो । इस समय तुम उसी की पत्नी होओगी ।।३२।। उसके बाद भगवान् नारायण ही तुम्हारा वरण करेंगे । उसके पश्चात् नारायण तुम्हें शाप भी दे देंगे ।।३३।। उसके कारण तुम संसार को पवित्र करने वाली वृक्ष हो जाओगी । सभी पुष्पों में प्रधान तथा भगवान् विष्णु की प्राणप्रिया होओगी ।।३४।। तुम्हारे बिना भगवान् की पूजा व्यर्थ हो जायेगी । तुम वृन्दावन में वृन्दावती होओगी । सभी गोप और गोपियाँ भगवान् माधव की पूजा करेंगी ।।३५।। तुम सदा वृक्ष की अधिष्ठात्री देवी होकर कृष्ण के साथ रहोगी ।।३६।। गोपवेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ तुम स्वच्छन्द विहार करोगी । ब्रह्माजी की इस बात को सुनकर तुलसी प्रसन्न हो गयी ।।३७।। उसने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और ब्रह्माजी से कहा **तुलसी ने कहा**— दो भुजाओं वाले श्याम सुन्दर को प्राप्त करने की जैसी मेरी इच्छा है ।।३८।। उतनी इच्छा चार भुजाओं वाले नारायण

गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम् । त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् ॥४०॥ ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय । ब्रह्मदेव उवाच– **गृहाण राधिकामंत्रं ददामि षोडशाक्षरम् ॥४१॥ तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि । शृंगारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञास्यति च राधिका॥४२॥ राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि । इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्यै षोडशाक्षरम् ॥४३॥ मन्त्रं चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् । सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् ॥४४॥ परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा । बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा यथा ॥४५॥ सिद्धं मंत्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम् । बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम् ॥४६॥ प्रसन्नमनसा देवी तत्याज तपसः क्लमम्। सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम् ॥४७॥ भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनं च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ॥४८॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

* * *

को प्राप्त करने की नहीं है, यह मैं सत्य कहती हूँ । भाग्यवशात् शृंगार के भंग हो जाने से मैं गोविन्द के विषय में अतृप्त हूँ ॥३९॥ अतएव गोविन्द की ही आज्ञा से मैं भगवान् नारायण से प्रार्थना करती हूँ कि गोविन्द ही मुझे मिल जायँ ॥४०॥ मैं उनको अवश्य प्राप्त करूँ और मुझे राधा का भय न हो । **ब्रह्मदेव ने कहा**– मैं तुम्हे राधिका का षोडशाक्षर मन्त्र देता हूँ, उसे तुम ग्रहण करो ॥४१॥ मेरे वरदान के प्रभाव से तुम राधा की प्राणप्रिया बन जाओगी। तुम्हारे और श्रीकृष्ण के गुप्तशृंगार को राधा नहीं जान सकेंगी ॥४२॥ तुम गोविन्द को राधा के ही समान प्रियतमा होओगी । इस तरह से कहकर और उस देवी को षोडशाक्षर मंत्र देकर ॥४३॥ ब्रह्माजी ने राधा कवच, उनकी पूजा का विधान और पुरश्चरण विधि को बतलाया ॥४४॥ उसके बाद तुलसी ने राधा की आराधना किया और लक्ष्मी देवी के ही समान वह भी सिद्ध हो गयी ॥४५॥ ब्रह्माजी के वरदान के अनुसार फल प्राप्त करके तुलसी ने संसार में दुर्लभ भोगों को भोगा ॥४६॥ प्रसन्न होकर तुलसी तपस्याजन्य कष्ट को भूल गयी क्योंकि फल की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्यों का दुःख ही सुख के रूप में परिणत हो जाता है ॥४७॥ तुलसी ने भगवान् श्रीकृष्ण के साथ खा पीकर उनके साथ पुष्प एवं चन्दन से सजायी गयी शय्या पर शयन किया ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवम स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

* * *

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारयण उवाच– **तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा । नवयौवनसंपन्ना वृषध्वजवरांगना ॥१॥ चिक्षेप पंचबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति । पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचंदनचर्चिता ॥२॥ पुलकांकितसर्वांगी कंपितारक्तलोचना । क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्छामवाप ह ॥३॥ क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तंद्रां सुखावहाम् । क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम् ॥४॥ क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम् । उत्तिष्ठंती क्षणं तल्पाद्गच्छंती निकटे क्षणम् ॥५॥ भ्रमंती क्षणमुद्वेगान्निवसंती क्षणं पुनः । क्षणमेव समुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा ॥६॥ पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवाति कंटकम् । विषहारि सुखं दिव्यं सुंदरं च फलं जलम् ॥७॥ निलयं च बिलाकरं सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः । सिंदूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥८॥ क्षणं ददर्श तंद्रायां सुवेषं पुरुषं सती । सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥९॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं रत्नभूषणभूषितम् । आगच्छंतं माल्यवंतं पिबंतं तन्मुखांबुजम् ॥१०॥ कथयंतं रतिकथां ब्रुवंतं मधुरं मुहुः । संभुक्तवंतं तल्पे च समाश्लिष्यंतमीप्सितम् ॥११॥ पुनरेव**

तुलसी तथा शंखचूड के विवाह का ब्रह्माजी का आदेश

श्रीनारायण ने कहा– धर्मध्वज की नवयुवती पुत्री तुलसी ब्रह्माजी के वरदान से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता पूर्वक सोयी ॥१॥ उसी समय कामदेव ने उसके ऊपर अपने पाञ्चों बाणों से प्रहार किया । पुष्प एवं चन्दन से सुसज्जित तुलसी को पुष्पबाण ने मानो जला दिया ॥२॥ उसके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया । वहाँ जैसे काँपने लगी । क्षणभर में वह सूखी सी हो गयी तो क्षणभर में ही वह मूर्छित हो जाती थी ॥३॥ क्षणभर में ही वह उद्विग्न (व्याकुल) हो जाती थी तो क्षणभर में ही उसे सुखद जंभाई आने लगती थी । क्षणभर में ही उसका शरीर जैसे जलने लगता था तो क्षणभर में वह प्रसन्न हो जाती थी ॥४॥ क्षणभर में उसमें चेतना आ जाती थी तो क्षणभर में ही वह उदास हो जाती थी । क्षणभर में वह अपनी शय्या से उठ जाती थी तो क्षणभर बाद वह शय्या के सन्निकट चली जाती थी ॥५॥ क्षणभर में वह उद्वेग के कारण घूमने लगती थी तो क्षणभर में ही वह बैठ जाती थी और उद्वेग के कारण क्षणभर में ही वह पुनः सो जाती थी ॥६॥ पुष्प एवं चन्दन की शय्या उसको काँटे के समान प्रतीत होती थी । दिव्य सुख, सुन्दर जल और फल उसे विष की तरह प्रतीत होते थे ॥७॥ उसका अपना भवन बिल के समान संकीर्ण और महीन वस्त्र अग्नि के समान उसे जलाने का काम करते थे । उसे अपने माथे की बिन्दी फोड़े के समान कष्टप्रद हो गयी ॥८॥ क्षणभर में उसने स्वप्न में एक सुन्दर वेष वाले पुरुष को देखा । वह सुन्दर युवा और श्रेष्ठ रसिक था ॥९॥ उसके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दन से चर्चित थे । रत्नों के आभूषण से वह भूषित था । उसे लगा कि वह मालाधारी उसके मुख कमल का जैसे पान कर रहा हो॥१०॥

तु गच्छंतमागच्छंतं च सन्निधौ । यांतं क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा ॥१ २॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः । एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद ॥१ ३॥ शंखचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम् । कृष्णमंत्रं च संप्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे ॥१ ४॥ कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमंगलमंगलम् । ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्ने मनसि वांछितम् ॥१ ५॥ आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं च समाययौ । आगच्छंतं शंखचूडं ददर्श तुलसी मुने ॥१ ६॥ नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम् । श्वेतचंपकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥१ ७॥ शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पंकजलोचनम्। रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् ॥१ ८॥ रत्नकुण्डलयुग्मेन गंडस्थलविराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालावंतं च सुस्मितम् ॥१ ९॥ कस्तूरीकुंकुमायुक्तं सुगंधिचन्दनान्वितम् । सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा ॥२ ०॥ सस्मिता तं निरीक्षंती सकटाक्षं पुनः पुनः । बभूवातिनम्रमुखी नवसंगमलज्जिता ॥२ १॥ शरदिंदुविनिंद्यैकस्वमुखेंदुविराजिता । अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता ॥२ २॥ मणींद्रसारनिर्माणक्वणन्मंजीररंजिता। दधती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥२ ३॥ अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुण्डला । चित्रकुण्डलयुग्मेन गंडस्थलविराजिता ॥२ ४॥ रत्नेंद्रसारहारेण

जैसे वह उससे बार-बार प्रेम भरी मधुर बातें कर रहा हो । उसकी शय्या पर सोकर उसका बार-बार आलिंगन कर रहा हो ॥११॥ स्वप्न में ही वह बार-बार उसके सन्निकट जाता और आता था । जाते हुए उस पुरुष को देखकर तुलसी ने स्वप्न में कहा हे प्राणनाथ ! आप कहाँ जा रहे हैं, ठहरिये ॥१२॥ उसके बाद वह जग गयी और बार-बार विलाप करने लगी । इस तरह से युवती तुलसी वहीं (गन्धमादन पर्वत पर ही) ठहरी रही ॥१३॥ शंखचूड महायोगी था । उसने जैगीषव्य महर्षि से कृष्ण मन्त्र की दीक्षा प्राप्त की और पुष्कर क्षेत्र में जाकर वह सिद्ध हो गया ॥१४॥ वह सर्वमङ्गलकारी कृष्ण यन्त्र को अपने गले में बाँध रखा था । वह ब्रह्माजी से अपने मनोभिलषित वस्तु की प्राप्ति का वरदान प्राप्त करने के लिए ॥१५॥ ब्रह्माजी की ही आज्ञा से बदरिकाश्रम आया । हे मुने ! आते हुए शंखचूड को तुलसी ने देखा ॥१६॥ वह नवीन जवानी से सम्पन्न था । उसकी कान्ति कामदेव के समान थी । उसका वर्ण श्वेत चम्पक के समान गौ वर्ण का था । वह रत्नों के आभूषणों से मण्डित था ॥१७॥ उसका मुख शरत् चन्द्रमा के समान आह्लादक था । शरत्कालीन कमल के समान मनोहर उसके नेत्र थे ॥१८॥ उसके गालों पर रत्न निर्मित कुण्डल सुशोभित होते थे । वह पारिजात पुष्पों की माला धारण किए हुए मुस्कुरा रहा था ॥१९॥ उसके अङ्गों में कस्तूरी और कुंकुम के लेप लगे थे । वह सुगन्धित चन्दन लगाये था । अपने सन्निकट में शंखचूड को देखकर तुलसी वस्त्र से अपने मुख को ढंककर ॥२०॥ उस पर कटाक्षपात करती हुई तथा मुस्कुराती हुई बार-बार उसे देख रही थी । नवीन संगम के कारण वह अत्यन्त लज्जित हो गयी थी उसने अपना मुख नीचे कर लिया था ॥२१॥ उसके मुखचन्द्र के समक्ष शरत्चन्द्र की शोभा फीकी थी । उस तुलसी के पैरों में लाल महावर लगा था ॥२२॥ उसके पैरों का नूपुर जो उत्तम रत्न से बना था मधुर ध्वनिकर रहा था । मालती की माला वह अपने बालों में लगा रखी थी ॥२३॥

स्तनमध्यस्थलोज्ज्वला । रत्नकंकणकेयूरशंखभूषणभूषिता ॥२५॥ रत्नांगुलीयकैर्दिव्यैरंगुल्यावलिराजिता । दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां
सुन्दरीं सतीम् ॥२६॥ उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः । शंखचूड उवाच– का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम् ॥२७॥
का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि । मौनीभूते किंकरे मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥२८॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना ।
सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥२९॥ तुलस्युवाच– धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने । तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ
यथासुखम् ॥३०॥ कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम् । न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम् ॥३१॥ लंपटोऽसत्कुले जातो
धर्मशास्त्रार्थवर्जितः । येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥३२॥ आपातमधुरां मत्तामंतकां पुरुषस्य ताम् । विषकुंभाकाररूपाममृतास्यां
च संततम् ॥३३॥ हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्यपरिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम् ॥३४॥ कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां
सदा । स्वांतर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥३५॥ श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमतिदूषितम् । तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः ॥३६॥

उसके मकराकृति कुण्डल अमूल्य रत्नों से निर्मित थे । विचित्र कुण्डलों से उसके कपोल सुशोभित थे ॥२४॥ उसके स्तनों के बीच में श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित
हार सुशोभित हो रहा था । वह रत्न निर्मित कंगन, केयूर तथा शंख के भूषणों से समलंकृत थी ॥२५॥ रत्नों की बनी अंगूठियाँ उसकी अंगुलियों को
सुशोभित कर रही थीं उस मनोज्ञ तथा सुशील सुन्दरी को देखकर ॥२६॥ शंखचूड उसके सन्निकट में आया और मधुर वाणी में कहने लगा । **शंखचूड ने
कहा–** तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम युवतियों में धन्य और सम्माननीय हो ॥२७॥ हे समस्त कल्याणों को देने वाली, कल्याणी मानिनि ! क्यों
चुप हो । मैं तो तुम्हारा दास हूँ । तुम मुझसे बातें करो ॥२८॥ उसकी उस वाणी को सुनकर वह कामपीडित सुन्दरी अपना मुख नीचे करके मुस्कुराती हुई
कामना पूर्वक उससे बोली ॥२९॥ **तुलसी ने कहा–** मैं तो धर्मध्वज की पुत्री हूँ । इस तपोवन में तपस्या करने वाली तपस्विनी हूँ । आप कौन हैं ? आपको
जहाँ जाना हो वहाँ जाइये ॥३०॥ हे सद्वंश में उत्पन्न महापुरुष ! मैंने यह वेदों में सुना है कि सद्वंश में उत्पन्न कोई सुन्दर पुरुष एकान्त में किसी स्त्री
से बातें नहीं करता है ॥३१॥ जो असद्वंश में उत्पन्न लम्पट होता है, जिसने धर्मशास्त्र और वेदार्थ को नहीं सुना है, वही किसी कामिनी को प्राप्त करना
चाहता है ॥३२॥ कामिनियों की वाणी ऊपर से तो मधुर होती है । वह पुरुष का अंत करने वाली होती है । वह उस विष भरे घड़े के समान होती है,
जिसके मुख पर अमृत रहता है ॥३३॥ स्त्रियों का हृदय छूरे के धार के समान भयानक होता है । वे ऊपर से मधुर बोल बोलती हैं । वे सदा अपना
कार्य सिद्ध करने में लगी रहती हैं ॥३४॥ वे अपना कार्य सिद्ध करने के लिए अपने स्वामी के वश में रहती हैं, अन्यथा वे सदा स्वतंत्र रहती हैं । भीतर
से उनका हृदय अत्यन्त मलिन होता है, केवल ऊपर से प्रसन्न बनी रहती हैं ॥३५॥ वेदों तथा पुराणों में उन सबों का चरित्र अत्यन्त दूषित बतलाया गया

तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयंति नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छंति हृदये सदा ॥३७॥ बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयंति प्रयत्नतः । शश्वत्कामा च रामा च कामाधारा मनोहरा ॥३८॥ बाह्ये छलात्खेदयंती स्वांतमैथुनमानसा । कान्तं हसंती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता ॥३९॥ मानिनी मैथुनाभावे कोपना कलहांकुरा । सुप्रीता भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता ॥४०॥ सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकांक्षंती च मानसे । सुन्दरं रसिकं कांतं युवानं गुणिनं सदा ॥४१॥ सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वती रसिकोपरि । प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥४२॥ पश्यंति रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वती शश्वत्तेन सार्धं सुकोपना ॥४३॥ वचसा भक्षयंती तं सर्प आखुमिवोल्बणम् । दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा॥४४॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी । तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका ॥४५॥ हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरंडिका । संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी ॥४६॥ इन्द्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्नरूपिणी । बिभ्रती बाह्यसौंदर्यमधोऽङ्गमतिकुत्सितम् ॥४७॥

है । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उनपर विश्वास नहीं कर सकता है । उनका अन्तःकरण अत्यन्त दूषित होता है ॥३६॥ उनका न तो कोई मित्र होता है और न शत्रु । वे सुन्दर वेष वाले पुरुष को देखकर हृदय से सदा नवीन पुरुषों को प्राप्त करना चाहती हैं ॥३७॥ बाहर से वे अपने सतीत्व को ख्यापित करती हैं, किन्तु भीतर से वे सदा कामुकी बनी रहती हैं । वे मनोहर काम का आधार हैं ॥३८॥ ऊपर से तो वे नहीं नहीं कहती हैं किन्तु भीतर से उनका मैथुन करने का मन हमेशा बना रहता है । बाहर से वे लज्जा का नाटक करती हैं, किन्तु एकान्त में वे अपने प्रेमी से खूब हँसती बोलती हैं ॥३९॥ मैथुन के अभाव में वे मानिनी बनकर अपने प्रेमी से कलह करती हैं । बहुत अधिक सम्भोग करने के लिए वे प्रसन्न रहती है और अल्प मैथुन से वे दुःखी होती हैं ॥४०॥ मन में वे अच्छा भोजन और शीतल जल को चाहती हैं । वे सुन्दर रसिक तथा युवा और गुणी पुरुष को चाहती हैं ॥४१॥ रसिक पुरुष की तो वे अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह रखती है । संभोग करने में कुशल पुरुष को तो वे अपने प्राण से अधिक प्रिय मानती हैं ॥४२॥ वृद्ध, मैथुन करने में असमर्थ पुरुष को वे शत्रु के समान देखती हैं । क्रोध करके वे उस व्यक्ति के साथ सदा कलह करती हैं ॥४३॥ जिस तरह सर्प चूहे को पकड़कर खा जाना चाहता है उसी तरह से वे अपनी वाणी से उस पुरुष को खा जाना चाहती हैं । दोषों के आश्रय स्वरूप वे दुःसाहस की मूर्ति होती हैं ॥४४॥ वे अज्ञान स्वरूपा होती हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता भी उन सबों को प्रसन्न नहीं रख पाते हैं । वे तपोमार्ग के लिए अर्गलादण्ड के समान बाधक होती हैं, और पुरुष के मोक्ष के मार्ग का तो द्वार ही बन्द कर देती हैं ॥४५॥ श्रीहरि की भक्ति से दूर रहती हैं और सभी प्रकार की मायाओं के लिए वे मञ्जूषा स्वरूपिणी होती हैं । संसार रूपी कारागार (जेल) में बाँधने के लिए सांकल स्वरूपा होती हैं ॥४६॥ वे इन्द्रजाल स्वरूपा तथा मिथ्या स्वप्न स्वरूप होती हैं । वे तो बाहरी सौन्दर्य को धारण करती हैं किन्तु भीतर से वे अत्यन्त कुत्सित होती हैं ॥४७॥ वे अनेक प्रकार के मल, मूत्र, पीब आदि का

नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् । दुर्गंधिदोषसंयुक्तं रक्तारक्तमसंस्कृतम् ॥४८॥ मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा । विषरूपा
मुमुक्षूणामदृश्याऽप्यभिवांछताम् ॥४९। इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद । सस्मितः शंखचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५०॥ शङ्खचूड
उवाच– त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् । किञ्चित्सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय ॥५१॥ निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं
सर्वमोहनम् । कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥५२॥ लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका । सृष्टिसूत्रस्वरूपा च
आद्यासृष्टिर्विनिर्मिता ॥५३॥ एतासामंशरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् । तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमंगलकारकम् ॥५४। शतरूपा देवहूती स्वधा
स्वाहा च दक्षिणा । छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा ॥५५॥ कुबेरस्य च पत्नी याऽप्यदितिश्च दितिस्तथा । लोपामुद्राऽनसूया च
कोटवी तुलसी तथा ॥५६॥ अहल्याऽरुंधती मेना तारा मन्दोदरी तथा । दमयन्ती वेदवती गंगा च मनसा तथा ॥५७॥ पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा
कालिका च वसुन्धरा । षष्ठी मंगलचंडी च मूर्तिश्च धर्मकामिनी ॥५८॥ स्वस्तिः श्रद्धा च शांतिश्च कान्तिः क्षांतिस्तथा परा । निद्रा तंद्रा क्षुत्पिपासा
संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥५९॥ संपत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा । यत्स्त्रीरूपं संभूतमुत्तमं तु युगे युगे ॥६०॥ कलाकलांशरूपं च स्वर्वेश्यादिकमेव

दूषित आश्रय हैं । रक्त से रञ्जित उनका शरीर कभी भी पवित्र नहीं रहता है । सृष्टिकाल में ब्रह्माजी ने मायावियों की माया के समान स्त्रियों को बनाया है। ये मुमुक्षु पुरुषों के लिए विष के समान होती हैं ॥४८-४९॥ हे नारदजी ! इसतरह से शंखचूड से कहकर तुलसी चुप हो गयी । शंखचूड भी मुस्कुराते हुए कहना प्रारम्भ किया ॥५०॥ **शंखचूड ने कहा–** हे देवि ! आपने जो कुछ भी कहा हैं वह पूर्ण रूप से मिथ्या नहीं है । उसमें कुछ सत्य हैं और कुछ मिथ्या है मेरी बातों को आप सुनें ॥५१॥ सबों को मोहित करने वाली दो प्रकार की स्त्रियों की रचना ब्रह्माजी ने की है । वास्तव स्वरूपा और अवास्तव स्वरूपा । उनका वास्तवरूप प्रशंसनीय है ॥५२॥ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधिका आदि सृष्टि के सूत्र स्वरूप है । वे आद्य सृष्टि स्वरूप हैं इन सबों ने ही सृष्टि की है ॥५३॥ इन सबों के जो अंश हैं वे स्त्रियों के वास्तवरूप हैं । वह सराहनीय, यशःस्वरूप, तथा सभी प्रकार के मंङ्गलों को करने वाला है ॥५४॥ शतरूपा, देवहूती, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी तथा शची ॥५५॥ कुबेर की पत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटवी तथा तुलसी ॥५६॥ अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दंमयन्ती, वेंदवती, गंगा तथा मनसा ॥५७॥ पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलाचण्डी, तथा धर्म की पत्नी, मूर्ति, [illegible] श्रद्धा, शान्ति, कान्ति क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुत् पिपासा, संध्या, रात्रि और दिन की अधिष्ठात्री देवी ॥५९॥ सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा तथा शिवा ये स्त्रियों के रूप में प्रत्येक युग में उत्तम रहती हैं ॥६०॥ जगदम्बाके

च । तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ॥६१॥ सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तं च प्रभावतः । तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ॥६२॥ तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदंति मनीषिणः । रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधं स्मृतम् ॥६३॥ मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः । सुखसंभोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा ॥६४॥ कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा । रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते॥६५॥ इदं मध्यमरूपं च प्रवदंति मनीषिणः । तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः ॥६६॥ न पृच्छति कुले जातः पंडितश्च परस्त्रियम् । निर्जने निर्जले वाऽपि रहस्यपि परस्त्रियम् ॥६७॥ आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना । गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥६८॥ अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः। दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाऽहं हरेः पुरा ॥६९॥ अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च । अधुना दानवेंद्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥७०॥ जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः । जातिस्मरां त्वं तुलसी संभुक्ता हरिणा पुरा ॥७१॥ त्वमेव राधिका कोपाज्जातासि भारते भुवि । त्वां संभोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयत्ततः ॥७२॥ इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महःमुने । सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥७३॥ तुलस्युवाच— एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः । कान्तमेवंविधं कांता शश्वदिच्छति कामतः ॥७४॥ त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता । स

अंश से उत्पन्न जो अप्सराएँ हैं वह कुलटा रूप है । वह संसार में निन्दित है ॥६१॥ स्त्रियों का जो सात्त्विक रूप है वही उचित है । और संसार में उसे उत्तम माना जाता है । वह उनका प्रशंसित साध्वी रूप है ॥६२॥ मनीषी पुरुष उसे ही वास्तव बतलाते हैं । कलाओं में रजोरूप तथा तमोरूप अनेक प्रकार का बतलाया गया है ॥६३॥ रजोगुण युक्त जो स्त्रियों का रूप हैं वह मध्यम कोटि का है । वे स्त्रियाँ भोग लोलुप होती हैं । वे सदा सुख भोगने में लगी रहती हैं और अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगी रहती हैं । वे कपट तथा मनोहर होती है, वे धार्मिक कार्यों को कभी करना नहीं चाहती हैं । रजोगुण प्रधान स्त्रियाँ कभी साध्वी नहीं हो सकती हैं ॥६४-६५॥ स्त्रियों के इस रूप को मनीषियों ने मध्यम बतलाया है । स्त्रियों का जो तमोगुण प्रधान रूप है वह दुर्निवार्य है । वह अधम रूप है ॥६६॥ सद्वंश में उत्पन्न पण्डित पुरुष परस्त्री से निर्जल, निर्जन तथा एकान्त मे बाते नहीं करते हैं ॥६७॥ मैं तो ब्रह्मा जी की आज्ञा से तुम्हारे पास आया हूँ । हे सुन्दरि ! तुम्हें गान्धर्व विवाह की विधि से ग्रहण करूँगा ॥६८॥ देवताओं को भी भगा देने वाला मैं ही शंखचूड हूँ। दनु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ । पहले मैं श्रीहरि के आठ पार्षदगोपों में सुदामा नामक गोप था । राधिकाजी के शाप के कारण मैं दानवेंन्द्र बना हुआ हूँ ॥६९-७०॥ भगवान् कृष्ण के मन्त्र के प्रभाव से मैं जातिस्मर हूँ । मैं जानता हूँ कि तुम भी जातिस्मरा हो । भगवान् श्रीकृष्ण ने तुम्हारा भोग किया था ॥७१॥ तुम भी राधिका के क्रोध के कारण भारतवर्ष में उत्पन्न हुयी हो । यहाँ राधा का कोई भय नहीं है । मैं तुम्हारा भोग करने के लिए उत्सुक

निंदितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः ॥७५॥ निन्दन्ति पितरो देवा बांधवाः स्त्रीजितं नरम् । स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निन्दति॥७६॥ शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा । भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहतः ॥७७॥ शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीनसंकरः । अशुचिः स्त्रीजितः शुद्ध्येच्चिताdahनकालतः ॥७८॥ न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम् । न गृह्णन्त्येव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम् ॥७९॥ किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः । किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ॥८०॥ विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः । कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम् ॥८१॥ वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा । दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥८२॥ अत्यन्तकोपयुक्ताय वाऽत्यन्तदुर्मुखाय च । पंगवे चांगहीनाय चांधाय बधिराय च ॥८३॥ जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने । ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः ॥८४॥ शांताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च । साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत् ॥८५॥ यः कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम् । विक्रेता धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति ॥८६॥ कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी । कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिंद्राश्चतुर्दश॥८७॥

हूँ ॥७२॥ हे महामुने ! नारदजी ! ऐसा कहकर शंखचूड मौन हो गया । उसकी बातों से सन्तुष्ट होकर तुलसी मुस्कुराती हुयी कहने लगी ॥७३॥ **तुलसी ने कहा–** इस तरह के बुद्धिमान पुरुष संसार में सदा प्रशंसित होते हैं । कोई भी नारी ऐसे ही पुरुष को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती है ॥७४॥ आपने अपने विचारों से मुझे पराजित कर दिया । जिस व्यक्ति को स्त्री जीत लेती हैं, वह पुरुष निन्दित और अपवित्र होता है ॥७५॥ ऐसे पुरुष की निन्दा, पितृगण देवता और बान्धव भी करते हैं । उसकी निन्दा उसके माता, पिता तथा भाई भी मन ही मन करते हैं ॥७६॥ जननांशौच तथा मृतकाशौच से ब्राह्मण दशादिन में शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय बारह दिन में शुद्ध होता है और वैश्य पन्द्रह दिन में शुद्ध होता है ॥७७॥ वेदों में शूद्र की शुद्धि एक मास में बतलायी गयी है । किन्तु जो पुरुष स्त्रीजित होता है, वह तो चिता में जला दिए जाने के बाद ही शुद्ध होता है ॥७८॥ उसके हाथ से उसके पितृगण इच्छापूर्वक पिण्ड नहीं लेते हैं और न तो उसके तर्पण का जल ही स्वीकार करते हैं । उसके द्वारा चढ़ाये गये पुष्प और जल आदि को देवता भी नहीं स्वीकार करते हैं ॥७९॥ जिसके मन को स्त्रियों ने जीत लिया है ऐसे व्यक्ति के ज्ञान, तपस्या, जप, होम, पूजन, विद्या तथा यश सबके सब व्यर्थ होते हैं ॥८०॥ मैंने आपकी परीक्षा आपकी विद्या, प्रभाव तथा ज्ञान को जानने के लिये किया है, पति की परीक्षा करके ही कोई भी कामिनी उसे अपने पति रूप से वरण करती है ॥८१॥ दरिद्र, मूर्ख, रोगी, कुरूप, गुणहीन वृद्ध तथा अज्ञानी ॥८२॥ अत्यन्त क्रोधी, कुरूप मुख वाले, लंगड़े, अंगहीन, अन्धे तथा बहरे ॥८३॥ जड, गूंगे, नपुंसक के समान, पापी, पुरुष को जो अपनी कन्या प्रदान करता है उसे ब्रह्महत्या का दोष लगता है ॥८४॥ शान्त स्वभाव वाले, गुणी, अथवा विद्वान व्यक्ति को अपनी कन्या प्रदान करने वाले को दश यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥८५॥ जो व्यक्ति अपनी कन्या का पालन करके उसको धन

तदन्ते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम् । विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम् ॥८८॥ इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे ।
ब्रह्मोवाच– **किं करोषि शंखचूड संवादमनया सह ॥८९॥ गांधर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु । पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियं**
सती॥९०॥ विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् । निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम् ॥९१॥ योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र
संशयः । किं परीक्षसि त्वं कांतमीदृशं गुणिनं सति ॥९२॥ देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम् । यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च
राधिका ॥९३॥ यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा । यथा धरा वराहे च दक्षिणा च यथाऽध्वरे ॥९४॥ यथाऽत्रेरनसूया च दमयंती
यथा नले । रोहिणी च यथा चंद्रे यथा कामे रतिः सती ॥९५॥ यथा दितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुंधती सती । यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्च
कर्दमे ॥९६॥ यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा । यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने ॥९७॥ यथा शची महेंद्रे च यथा
पुष्टिर्गणेश्वरे । देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती ॥९८॥ सौभाग्या सुप्रिया त्वं च शंखचूडे तथा भव । अनेन सार्धं सुचिरं सुंदरेण च

के लोभ से बेंचता है, वह कुम्भीपाक नामक नरक में जाता है ॥८६॥ वह पापी उस नरक में जाकर कन्या के मल-मूत्र को खाता है और चौदहों इन्द्रों
की जितनी बड़ी आयु होती है, उतने काल तक उसको कृमि तथा काकदंशित करते रहते हैं ॥८७॥ उसके बाद वह जन्म प्राप्त करके रोगी होता है और
जीवन भर मांस बेचकर अपना जीवन निर्वाह करता है ॥८८॥ हे तपोनिधे ! इस प्रकार से कहकर तुलसी मौन हो गयी । **ब्रह्माजी ने कहा**– शंखचूड इसके
साथ बातें क्या रहे हो ? तुम गांधर्वविवाह की विधि से इसको ग्रहण करो । तुम पुरुष में रत्न स्वरूप हो और यह स्त्रियों में रत्न स्वरूपा है ॥८९-९०॥ दाक्षिण्य
गुण सम्पन्न नारी का दाक्षिण्य गुण सम्पन्न पुरुष के साथ संयोग गुणकारी होता है । हे राजन् ! निर्विरोध रूप से प्राप्त होने वाले सुख को कोई नहीं त्यागता
है ?॥९१॥ इस संसार में जो निर्विरोध रूप से प्राप्त होने वाले सुख का परित्याग करता है; वह पशु के समान होता है । **ब्रह्माजी ने तुलसी से कहा**– तुम
अपने ऐसे गुणवान पति की परीक्षा क्या ले रही हो ?॥९२॥ यह देवताओं, असुरों तथा दानवों को पराजित करने वाला है जिस तरह लक्ष्मीजी
लक्ष्मीपति भगवान् से राधिकाजी भगवान् श्रीकृष्ण से ॥९३॥ सावित्री मुझसे, पार्वतीजी भगवान शंकर से, भूदेवी वराह भगवान् से तथा दक्षिणा देवी
यज्ञपुरुष से ॥९४॥ अनसूयाजी अत्रि महर्षि से; दमयन्ती, नल से, रोहिणी चन्द्रमा से तथा रति कामदेव से ॥९५॥ दिति देवी महर्षि कश्यप से,
अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ से, अहल्या गौतम महर्षि से तथा देवहूती कर्दम महर्षि से ॥९६॥ तारा देवी बृहस्पति से, शतरूपा मनु से, दक्षिणा देवी यज्ञ से,
और स्वाहा देवी अग्नि से ॥९७॥ शची देवी इन्द्र से, पुष्टिदेवी गणेशजी से, देवसेना देवी स्कन्द से, तथा मूर्ति देवी धर्म से प्रेम करती हैं, उसी तरह

सुन्दरि ॥९९॥ स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु संततम् । पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च । चतुर्भुजं च वैकुंठे शंखचूडे मृते सति ॥१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम् । श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदापि हि जायते ॥१॥ ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते ।** नारायण उवाच– **इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः ॥२॥ गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः । स्वर्गे दुंदुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥३॥ स रेमे रमया सार्धं वासगेहे मनोरमे । मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसङ्गमसङ्गता ॥४॥ निमग्ना निर्जले साध्वी संभोगसुखसागरे। चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम् ॥५॥ कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम् । अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् ॥६॥ तत्सर्वं**

से तुम इससे प्रेम करो ॥९८॥ तुम शंखचूड़ की सौभाग्यवती प्रियतमा बनो । इस सुन्दर शंखचूड के साथ हे सुन्दरि ! ॥९९॥ अपनी इच्छा के अनुसार स्थान-स्थान पर विहार करो । उसके बाद शंखचूड के मर जाने को बाद तुम गोलोक में चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण को पुनः प्राप्त करोगी ॥१००॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

शंखचूड और तुलसी के गान्धर्व विवाह का वर्णन

नारदजी ने कहा– भगवन् ! आपने मुझे यह विचित्र कथा सुनायी जिसको सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥१॥ हे महामते ! उसके बाद जो हुआ उसे आप मुझे बतलाने की कृपा करें । **नारायण ने कहा–** इस प्रकार आशीर्वाद देकर ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये ॥२॥ दानव शंखचूड ने गान्धर्व विवाह की विधि से तुलसी को अपनाया । उस समय स्वर्ग में बाजे बजे और पुष्पों की वृष्टि हुई ॥३॥ शंखचूड अपने मनोहर निवास गृह में तुलसी के साथ रहने लगा । पहले संगम में तुलसी मूर्छित हो गयी ॥४॥ वह जल रहित संभोग जन्य सुख सागर में पड़ गयी । कामशास्त्र की चौसठ कलाओं

रसश्रृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः । अतीव रम्यदेशे च सर्वजंतुविवर्जिते ।।७।। पुष्पचंदनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना । पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते।।८।। गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम् । भूषितो भूषणेनैव रत्नभूषणभूषिताम् ।।९।। सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः । जहार मानसं भर्तुर्लोलया लीलया सती ।।१०।। चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित् । वक्षसश्चन्दनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा ।।११।। स जहार च तस्याश्च सिंदूरं बिंदुपत्रकम् । स तद्वक्षस्युरोजे च नखरेखां ददौ मुदा ।।१२।। सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम् । राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम्।।१३।। तद्गंडयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् । आलिंगनं चुम्बनं च जङ्घादिमर्दनं तथा ।।१४।। एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ । सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम् ।।१५।। सुवेषं चक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वांछितम् । चंदनैः कुंकुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ ।।१६।। सर्वांगे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् । सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी ।।१७।। पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम् । अमूल्यरत्ननिर्माणमंगुलीयकमुत्तमम्।।१८।।

से होने वाले चौसठ प्रकार के सुख जो रसिकों के लिए बतलाये गये हैं वे अंगों और प्रत्यङ्गों के संश्लेष से होते हैं, और वे स्त्रियों के लिए अत्यन्त मनोहर होते हैं ।।५-६।। उस समस्त श्रृङ्गार रस के भेदों को रसिकेश्वर शंखचूड ने किया क्योंकि वह स्थान अत्यन्त मनोहर था और सभी जंतुओं से रहित था ।।७।। वे कभी नदीं के तीर में, कभी पुष्प के उद्यान में पुष्प एवं चन्दन की वायु से सेवित पुष्प एवं चन्दन की शय्या पर सोते थे ।।८।। पुष्प एवं चन्दन से अलंकृत तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित तुलसी के साथ रत्नों के आभूषणों से भूषित शंखचूड कभी रासक्रीडा करता था ।।९।। सुरतकला के अभिज्ञ उन दोनों की निरन्तर सुरतक्रीडा चलती ही रहती थी । अपनी चंचल लीला से तुलसी ने शंखचूड के मन को आकृष्ट कर लिया ।।१०।। रस एवं भाव को जानने वाले शंखचूड ने भी रसिका तुलसी का मन आकृष्ट कर लिया । तुलसी ने शंखचूड के वक्षःस्थल के तिलक को मिटा दिया और शंखचूड़ ने भी तुलसी के ललाट के सिन्दूर विन्दु को मिटा दिया । उसने तुलसी के स्तनों पर नखक्षत की रेख बना दी ।।११-१२।। तुलसी ने भी शंखचूड के वामपर्श्व में नखक्षत्र की रेखा बना दी । शंखचूड ने तुलसी के ओष्ठों पर दंतक्षत किया ।।१३।। तो तुलसी ने भी उसके दोनों गालों पर उसके चार गुना दन्तक्षत किया । इस तरह उन दोनों का परस्पर में आलिङ्गन, चूम्बन तथा जंघा आदि के मर्दन आदि का क्रम चलता रहा ।।१४।। वे दोनों कामशास्त्र के ज्ञाता थे और परस्पर में कामक्रीडा करते रहते थे । सुरत क्रीडा समाप्त हो जाने पर वे दोनों उठकर एक दूसरे को सजाते थे । तुलसी कुंकुम मिश्रित चन्दन का तिलक शंखचूड को लगाती थी ।।१५-१६।। वह उसके सारे अङ्गों में मनोहर लेप लगाती थी । सुन्दर गंध से युक्त पान खिलाती थी तथा अग्नि में नहीं जल सकने वाले वस्त्रों को पहनाती थी ।।१७।। उसके बाद वह जरा तथा रोग को दूर करने वाले पारिजात पुष्प की माला पहनाती थी । अमूल्य रत्न निर्मित

सुंदरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः ॥१९॥ ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् । सस्मिता तन्मुखांभोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः ॥२०॥ निमेषरहिताभ्यां चापश्यत्कामसुन्दरम् । स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् ॥२१॥ सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपंकजम् । चुचुम्ब कठिने गण्डे बिबोष्ठौ पुनरेव च ॥२२॥ ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् । तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥२३॥ ददौ मंजीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत् । केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ॥२४॥ अंगुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम् । शङ्खं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥२५॥ विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम् । भूषणानि च दत्त्वा स भूपो हासं चकार ह ॥२६॥ निर्ममे कबीरेभारे तस्या मांगल्यभूषणम् । सुचित्रं पत्रकं गंडमंडलेऽस्याः समं तथा ॥२७॥ चंद्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगंधिना । परीतं परितश्चित्तैः सार्धं कुंकुमाबिन्दुभिः ॥२८॥ ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिंदूरतिलकं ददौ । तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिंदिते ॥२९॥ चित्रालक्तक रागं च नखरेषु ददौ मुदा । स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणाम्बुजम् ॥३०॥ हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः । रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥३१॥ तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानांतरं ययौ । मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने ॥३२॥ स्थाने

अंगूठियों को पहनाती थी ॥१८॥ सुन्दर और त्रैलोक्य में दुर्लभ मणि पहनाती थी और बार-बार कहती थी कि मैं तो आपकी दासी हूँ ॥१९॥ वह अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने गुणवान पति को प्रणाम करती थी और कामदेव के समान सुन्दर अपने पति के मुखकमल को निर्निमेष नेत्रों से देखती रहती थी । शंखचूडं भी तुलसी को पकड़कर अपने हृदय में लगा लेता था ॥२०-२१॥ और मुसुकान मण्डित तथा वस्त्र से ढँके हुए अपनी प्रियतमा के मुख को देखकर उसके मुख और गाल का बार-बार चुम्बन करता था ॥२२॥ वरुण देवता से लाये गये दो वस्त्रों को उसने तुलसी को प्रदान किया । वरुण से ही लायी गयी दुर्लभ माला को पहनाया ॥२३॥ स्वाहा देवी के नूपुर को उसने पहनाया । छाया देवी के दोनों केयूरों (विजाइठों) तथा रोहिणी देवी के कुण्डल को उसने दिया । कामदेव की पत्नी रतिदेवी की अंगूठियों को, विश्वकर्मा के द्वारा प्रदत्त शंख को ॥२४॥ अद्भुत कमलों से निर्मित शय्या को तथा आभूषणों को तुलसी को प्रदान करके शंखचूड जोर से हँस पड़ा ॥२५-२६॥ इसके बाद उसने बालों में माला सजाया । मंगल सूत्र पहनाया । उसके गालों पर कस्तूरी से रेखायें बनाया ॥२७॥ फिर सुगन्धित चन्दन से रेखा बनाया । उसके चारो ओर कुंकुम की विन्दुओं से अलंकृत किया ॥२८॥ जलते हुए प्रदीप के समान सुन्दर सिन्दूर का विन्दु उसके ललाट में लगाया । स्थल कमल से भी सुन्दर तुलसी के दोनों पैरों में महावर लगाया । उसके पश्चात् प्रेमपूर्वक तुलसी के लाल-लाल पैरों को अपने वक्षःस्थल पर रख लिया ॥२९-३०॥ बार-बार हे देवि ! मैं आपका दास हूँ यह कहकर शंखचूड तुलसी को अपनी गोद में

स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने । कंदरे कंदरे सिंधुतीरे चैवातिसुंदरे ॥३३॥ पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे । पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥३४॥ मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते । विस्पंदने सुरसने नंदने गंधमादने ॥३५॥ देवोद्याने नन्दने च चित्रनन्दनकानने । चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥३६॥ कुन्दानां मालतीनां च कुमुदांभोजकानने । कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥३७॥ निर्जने कानने स्थाने धन्ये कांचनपर्वते । कांचीवने किंजलके कंचुके कांचनाकरे ॥३८॥ पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते । पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना॥३९॥ कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह । न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा ॥४०॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः । तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥४१॥ रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः । एवं स बुभुजे राज्यं शंखचूडः प्रतापवान् ॥४२॥ एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो महान् । देवनामसुराणां च दानवानां च सन्ततम् ॥४३॥ गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शांतिदः । हताधिकारा देवाश्चरन्ति भिक्षुका यथा ॥४४॥ ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम् । वृत्तांतं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहूः ॥४५॥ तदा ब्रह्मा सुरैः

बैठाया॥३१॥ इसके बाद तपोवन को छोड़कर शंखचूड तुलसी के साथ मलयाचल पर्वत पर, सुमेरु पर्वत पर, विभिन्न पर्वतो के तपोवनों में ॥३२॥ निर्जन उद्यानों के विभिन्न स्थानों में, कन्दराओं में मनोहर पुष्पभद्रा नदी के अत्यन्त मनोहर तट में, विभिन्न नदियों तथा नदों के तटों के विभिन्न स्थानों में जाकर आनन्दानुभव करने लगा ॥३३-३४॥ वह कभी वसन्त काल के भ्रमरों की मधुर ध्वनि से निनादित स्पन्द रहित किसी वन में, कभी नन्दन वन में कभी गंधमादन पर्वत पर कभी देवताओं के उद्यानों तथा कभी मनोहर नन्दन वन के चम्पा, केतकी तथा माधवी लता के वन में जाता था ॥३५-३६॥ कभी कुन्दों, मालतियों तथा कुमुदों और कमलों के वन में जाकर विहार करता था । कभी विभिन्न कल्पवृक्षों के तले तथा कभी विभिन्न पारिजात वन में तुलसी के साथ विहार करता था ॥३७॥ वह कभी सुमेरु पर्वत के मनोहर निर्जन स्थान में, कभी किंजल्क वन में, कभी कंचुक में, कभी कांचनाकर में, तुलसी के साथ जाकर॥३८॥ पुष्प की सुगन्धि मिश्रित वायु से सेवित पुष्पों एवं चन्दन से निर्मित शय्या पर विहार करता था, जहाँ कोयल की ध्वनि सुनायी पड़ती थी॥३९॥ वह कामुकी तुलसी के साथ रमण करता था । फिर भी न तो शंखचूड को और न तो तुलसी को रमण करने से तृप्ति हुई ॥४०॥ जिस तरह से हविष्य से अग्नि बढ़ती है, उसी तरह उन दोनों की कामाग्नि बढ़ती ही गयी । अन्त में तुलसी के साथ अपने भवन में आकर शंखचूड ॥४१॥ मनोहर क्रीडागृह में जाकर उसके साथ बार-बार रमण किया । इस तरह से प्रतापी शंखचूड़ ने राज्य का सुखभोग किया ॥४२॥ दानवेन्द्र शंखचूड ने पूरे एक मन्वन्तर पर्यन्त देवताओं, असुरों तथा दानवों का राजा बना रहा ॥४३॥ वह गन्धर्वों, किन्नरों तथा राक्षसों को शान्ति प्रदान करता था । अधिकार हीन हो जाने के कारण देवताओं की स्थिति भिक्षुकों के समान हो गयी थी ॥४४॥ सभी देवता अत्यन्त दुःखी होकर ब्रह्माजी की सभा में गये, और सारा वृत्तान्त सुनाकर बहुत

सार्धं जगाम शङ्करालयम् । सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् ।।४६।। ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह । दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ।।४७।। सम्प्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो । ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् ।।४८।। शोभितान्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान्। वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान् ।।४९।। शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् । सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ।।५०।। बह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम् । तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ।।५१।। एवं षोडश द्वाराणि निरीक्ष्य कमलोद्भवः । देवैः सार्धं ताननतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ।।५२।। देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः । नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ।।५३।। नवेंदुमण्डलाकारां चतुरस्त्रां मनोहराम् । मणींद्रहारानिर्माणां हीरासारसुशोभिताम् ।।५४।। अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः । माणिक्यमालाजालाभां मुक्तापंक्तिविभूषिताम् ।।५५।। मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः । विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ।।५६।। पद्मरागेंद्ररचितां रुचिरां मणिपङ्कजैः । सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः ।।५७।। पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः । इन्द्रनीलस्तम्भवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम् ।।५८।।

रोए ।।४५।। उसके बाद ब्रह्माजी देवताओं के साथ शंकरजी के धाम में गये और ब्रह्माजी ने सबों के स्वामी शंकरजी को सारा वृत्तान्त सुनाया ।।४६।। ब्रह्माजी तथा शिवजी देवताओं के साथ भगवान् विष्णु के लोक में गये । वह अत्यन्त दुर्लभ धाम है । वहाँ किसी को भी बुढ़ापा और मृत्यु नहीं होती है ।।४७।। श्रीहरि के वैकुण्ठ का द्वार अत्यन्त श्रेष्ठ है । वहाँ उन लोगों ने द्वारपालों को रत्नसिंहासन पर बैठे हुए देखा ।।४८।। वे पीताम्बर धारण किए हुए थे रत्नों के आभूषणों से भूषित थे । वे सब वनमाला धारण किए हुए तथा श्यामवर्ण के विग्रह वाले थे ।।४९।। वे शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किए हुए थे तथा सबके सब चतुर्भुज थे । उनके मुखपर मुस्कुराहट थी और नेत्र कमल के समान मनोहर थे ।।५०।। ब्रह्माजी ने उन सबों को अपने-आने का प्रयोजन बतलाया और उन सबों की आज्ञा पाकर सोलह द्वारों को पार करके वे श्रीभगवान् की सभा में देवताओं के साथ पहुँचे ।।५१-५२।। उस सभा में देवर्षि गण भरे थे और श्रीभगवान् के चार भुजाओं वाले पार्षद विद्यमान थे । वे सबके सब नारायण के ही समान स्वरूप वाले थे और कौस्तुभ मणि से विभूषित थे ।।५३।। वह सभा नवीन चन्द्रमण्डल के समान आकार वाली थी चतुरस्त्र और मनोहर थी । श्रेष्ठ मणियों से निर्मित थी । हीरे उसमें लगे थे ।।५४।। अनर्घ्य रत्न उसमें जड़े थे । वह श्रीहरि की इच्छा के अनुसार निर्मित थी । माणिक्य समूह के समान उसकी कान्ति थी और मुक्ताओं से समलंकृत थी ।।५५।। उसमें करोड़ों मण्डलाकार दर्पण लगे थे । अनेक प्रकार के अद्भुत रेखाचित्रों से वह सभा सुशोभित थी ।।५६।। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग मणियों से निर्मित वह सभा मणिनिर्मित कमलों से सुशोभित थी । स्यमन्तकमणि निर्मित उसमें सैकड़ों सीढ़ियाँ बनी थीं ।।५७।। रेशम के धागों में बँधे हुए चन्दन के मनोहर पल्लवों से निर्मित

सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् ॥५९॥ कस्तूरीकुंकुमारक्तैः सुगन्धिचन्दनद्रुमैः । सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना ॥६०॥ विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम् । सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः ॥६१॥ ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करश्च सुरैः सह । वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम् ॥६२॥ अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम् । किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्॥६३॥ चन्दनोक्षितसर्वांगं बिभ्रतं केलिपङ्कजम् । पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥६४॥ शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । लक्ष्म्या प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥६५॥ गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः । सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥६६॥ भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्मकन्धराः ॥६८॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि । वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥६९॥ हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् । प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम् ॥७०॥ श्रीभगवानुवाच– **शङ्खचूडस्य वृत्तांतं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥७१॥ शृणु तत्सर्ववृत्तांतमितिहासं पुरातनम् । गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम् ॥७२॥ सुदामा नाम गोपश्च**

वन्दनवार इन्द्रनील मणि के स्तम्भों में बँधे थे ॥५८॥ सुन्दर रत्नों से परिपूर्ण अनेक कलश स्थान-स्थान पर रखे गये थे । पारिजात पुष्पों की मालाओं से वह सभा सुशोभित हो रही थी ॥५९॥ कस्तूरी तथा कुंकुम से रंजित सुगन्धि चन्दनों के वृक्षों से तथा सुगन्धित वायु से वह सभा सुसंस्कृत थी ॥६०॥ विद्याधरियों के नृत्य से वह सभा सुशोभित होती थी । उस सभा का विस्तार हजार योजन था और सर्वत्र किंकर पुरुष विराजमान थे ॥६१॥ देवताओं के साथ ब्रह्माजी तथा शंकरजी ने श्रीभगवान् का दर्शन किया । सभा के बीच में श्रीहरि ऐसे बैठे थे जैसे तारों से घिरा हुआ चन्द्रमा हो ॥६२॥ अनर्घ्य रत्नों से निर्मित सिंहासन पर श्रीभगवान् विराजमान थे । वे किरीट, कुण्डल तथा वनमाला धारण किए हुए थे ॥६३॥ उनके सम्पूर्ण शरीर में चन्दन लगा था और वे अपने हाथों में लीलाकमल धारण किए हुए थे । मुस्कुराते हुए वे सामने होते हुए नृत्य और गीत को देख रहे थे ॥६४॥ शान्त स्वभाव वाली सरस्वती के पति श्रीभगवान् के चरण कमलों को लक्ष्मी जी पकड़े थीं । भगवान् लक्ष्मीजी के द्वारा प्रदत सुगन्धित ताम्बूल को वे खा रहे थे ॥६५॥ गङ्गादेवी अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनको श्वेत चमर कर रही थीं । सबके सब अपना शिर झुकाकर श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे ॥६६॥ इस तरह से विशेषता विशिष्ट परिपूर्णतम श्रीभगवान् को देखकर ब्रह्मा आदि देवता उनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥६७॥ उन देवताओं के शरीर में रोमाञ्च हो रहा था, वाणी गद्गद हो गयी थी और आँखों में आँसू भर गये थे । पराभक्ति से उनके कन्धे झुक गये थे ॥६८॥ ब्रह्माजी ने भी हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक सारा वृत्तान्त श्रीहरि को सुनाया ॥६९॥ ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर श्रीभगवान् जोर से हँसे और उसका रहस्य बतलाये ॥७०॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** ब्रह्माजी ! शंखचूड मेरा

पार्षदप्रवरो मम । स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात् ।।७३।। तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमंडलम् । विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा ।।७४।। सा मां विरजया साकं विज्ञाय किंकरीमुखात् । पश्चात्क्रुद्धा साऽऽजगाम न ददर्श च तत्र माम् ।।७५।। विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् । पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह ।।७६।। मां दृष्ट्वा मंदिरे देवी सुदाम्ना सहितं पुरा । भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतञ्च सुस्थिरम् ।।७७।। तच्छ्रुत्वाऽसहमानश्च सुदामा तां चुकोप ह । स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ ।।७८।। तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपंकजलोचना । बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि ।।७९।। सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्बणम् । बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः ।।८०।। सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह । याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः ।।८१।। तं गच्छन्तं शपंतं च रुदंतं मां प्रणम्य च । वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः ।।८२।। हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः । समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम् ।।८३।। गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः । ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ।।८४।।

परम तेजस्वी भक्त है । उसके समस्त वृत्तान्त को मैं जानता हूँ ।।७१।। उसके प्राचीन इतिहास को मैं बतलाता हूँ उसका गोलोक में जो चरित था वह पापों को विनष्ट करने वाला है और पुण्य को बढ़ाने वाला है ।।७२।। मेरा श्रेष्ठ पार्षद सुदामा भी राधाजी के भयंकर शाप के कारण दानवी योनि को प्राप्त किया है ।।७३।। एक बार मैं अपने भवन से रासमण्डल में आया मेरे साथ मेरे प्राण से भी प्रिय विरजा थी ।।७४।। राधा की दासी ने राधा को बतला दिया कि मेरे साथ विरजा भी आयी है । उसके बाद क्रुद्ध होकर राधा वहाँ आयी किन्तु उन्होंने वहाँ मुझे नहीं देखा ।।७५।। उन्होंने जान लिया की विरजा ने नदी का रूप धारण कर लिया है, और मैं वहाँ से तिरोहित हो गया हूँ । मुझको देखकर राधा अपनी सखी के साथ चली गयी ।।७६।। वहाँ उन्होंने मुझे सुदामा के साथ देखा और मौन धारण किए हुए सुदामा को खूब डाँटा ।।७७।। उसको सुनकर भी उनकी बातों को वर्दास्त करने वाला सुदामा क्रुद्ध हो गया और उसने मेरे सामने ही राधा की बहुत निन्दा की ।।७८।। सुदामा की बातों को सुनकर राधा की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं और उन्होंने आज्ञा दिया कि सुदामा को मेरी सभा से निकाल दिया जाय ।।७९।। आज्ञा पाते ही उनकी एक लाख तेजस्वी सखियों ने उठकर शीघ्र ही सुदामा को सभा से बाहर कर दिया । सुदामा भी क्रोध के आवेश में बड़बड़ा रहा था ।।८०।। इसके कारण समुद्दीर्ण रोष वाले सुदामा को राधा ने शाप दे दिया । अरे नीच ! तुम भयंकर दानवी योनि में जन्म लो ।।८१।। सभा से रोते हुए मुझको प्रणाम करके बाहर जाते हुए और बड़ बड़ाते हुए सुदामा को देखकर राधा को दया आ गयी । उनकी आँखों में आँसू भर गये । उन्होंने अपनी सखियों को रोका और कहा ।।८२।। हे वत्स ! ठहरो तुम कहाँ जाओगे । इस तरह से बार-बार कहकर वे व्याकुल हो गयी ।।८३।। यह देखकर सभी गोपियां रोने लगीं और गोप भी दुःखी हो गये । उन सबों को मैंने बाद में सान्त्वना प्रदान

आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम् । सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता ॥८५॥ गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वन्तरं भवेत्। पृथिव्यां जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम् ॥८६॥ इत्येवं शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति । महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः ॥८७॥ मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम् । शिवः करोतु संहारं ममशूलेन रक्षसः ॥८८॥ ममैव कवचं कंठे सर्वमङ्गलकारकम् । बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः ॥८९॥ तस्मिन्ब्रह्मन्स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः । तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥९०॥ सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति । तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥९१॥ तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् । तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥९२॥ पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया । इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥९३॥ शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरे मुदा । भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥९४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

करते हुए कहा– यह शाप का पालन करके आधे क्षण में ही लौट आयेगा । राधा ने सुदामा को अपने पास बुला लिया और उसे बाहर जाने से रोका॥८५॥ हे ब्रह्मन! गोलोक के आधे क्षण में पृथिवी पर का एक मन्वन्तर बीत जाता है ॥८६॥ शंखचूड महाबलवान् योगेश तथा सभी प्रकार की मायाओं का ज्ञाता है। वह पुन. गोलोक में ही जायेगा ॥८७॥ आप लोग मेरे त्रिशूल को लेकर भारत में जायँ और शंकरजी मेरे उस त्रिशूल से उस राक्षस का वध कर दें॥८८॥ चूंकि वह अपने कण्ठ में मेरे ही कवच को धारण करता है अतएव वह संसार में सर्वत्र विजयी होता है ॥८९॥ हे ब्रह्मन् ! वह कवच जब तक उसके पास रहेगा तब तक उसको कोई भी मार नहीं सकता है । ब्राह्मण का रूप धारण करके मैं उससे उस कवच को माँग लूँगा ॥९०॥ जब उसकी पत्नी का सतीत्व (पातिव्रत्य) भंग हो जायेगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी यह वरदान आपने ही उसे दिया है ॥९१॥ जब मैं उसकी पत्नी के गर्भ में अपने वीर्य का आधान करूँगा । उसी समय उसकी मृत्यु हो जायेगी ॥९२॥ उसके बाद उसकी पत्नी अपने शरीर का परित्याग करके मेरी पत्नी हो जायेगी । इस तरह से कहकर जगत् स्वामी ने अपना त्रिशूल शंकरजी को प्रदान किया ॥९३॥ त्रिशूल प्रदान करके श्रीहरि अपने भवन में चले गये और सभी देवता भी ब्रह्माजी तथा शंकरजी के साथ भारत वर्ष में आयें॥९४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च । जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः ॥१॥ चंद्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे । तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे ॥२॥ दूतं कृत्वा चित्ररथं गंधर्वेश्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शंखचूडांतिकं मुदा॥३॥ सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम् । महेंद्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥४॥ पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणं भवेत् । स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम् ॥५॥ सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् । ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः ॥६॥ युक्तं च बीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः। परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः ॥७॥ सिंदूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः । भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः ॥८॥ गत्वा ददर्श तन्मध्ये शंखचूडालयं परम् । अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमंडलम् ॥९॥ ज्वलदग्निशिखाक्ताभिः परिखाभिश्चतसृभिः । तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् ॥१०॥ अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिश्रृङ्गविराजितम् । राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम् ॥११॥ मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमंदिरैः।**

शिवजी द्वारा शंखचूड़ के पास दूत भेजना और शंखचूड़ द्वारा तुलसी को ज्ञानोपदेश

श्रीनारायण ने कहा– ब्रह्माजी शंखचूड का वध करने का काम शिवजी को सौपकर अपने भवन में चले गये और दूसरे देवता भी अपने स्थान पर चले गये ॥१॥ देवताओं का विस्तार करने के लिए शंकरजी चन्द्रभागा नदी के तट पर मनोहर वटवृक्ष के नीचे बैठ गये ॥२॥ शंकरजी ने अपने प्रिय तथा गन्धर्वों में श्रेष्ठ चित्ररथ को अपना दूत बनाकर उसे शंखचूड के पास भेजा ॥३॥ सबों के स्वामी शंकरजी की आज्ञा पाकर चित्ररथ इन्द्र की अमरावती नगरी से श्रेष्ठ और कुबेर के भी भवन से सुन्दर शंखचूड की नगरी में गया ॥४॥ वह नगरी पाँच योजन विस्तृत तथा दश योजन लम्बी थी । वह नगर स्फटिक मणियों से निर्मित थी उसके चारो ओर वाहन खड़े थे ॥५॥ वह नगर अत्यन्त दुर्गम सात खाइयों से वेष्टित था । वह जलती हुई अग्नि के समान चमकने वाले रत्नों से बना था ॥६॥ उसमें सैकड़ों वीथियाँ और अद्भुत मणि निर्मित वेदियाँ थीं । चारो ओर व्यापारियों के महल थे जो अनेक प्रकार की वस्तुओं से सुशोभित थे ॥७॥ वे महल सिन्दूर के आकार वाली मणियों से सुशोभित थे । वह नगर सैकड़ों करोड आश्रमों से समलंकृत था ॥८॥ पुष्पदन्त उन सबों के बीच में जाकर शंखचूड के भवन को देखा । वह पूर्ण चन्द्रमा के मण्डल के समान गोलाकार था ॥९॥ प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वाला को समान चार खाइयाँ उसे चारो ओर से घेरें हुयी थीं । वह शत्रुओं के लिए दुर्गम और दूसरों के लिए उस भवन में जाना बड़ा आसान था ॥१०॥ उस भवन में गगन चूम्बी मणि निर्मित अनेक शिखर बने हुए थे । उस भवन में बारह द्वार थे, और सबों पर द्वारपाल बैठे थे ॥११॥ शंखचूड का महल श्रेष्ठ

शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तंभविराजितम् ॥१२॥ तद्दृष्ट्वा पुष्पदंतोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः । द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम् ॥१३॥ तिष्ठंतं पिंगलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् । कथयामास वृत्तांतं जगाम तदनुज्ञया ॥१४॥ अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः । न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च ॥१५॥ गत्वा सोऽभ्यंतरद्वारं द्वारपालमुवाच ह । रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयत माचिरम् ॥१६॥ स च तं कथयित्वा च दूतो गंतुमुवाच ह । स गत्वा शंखचूडं तं ददर्श सुमनोहरम् ॥१७॥ राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम् । मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदंडसमन्वितम् ॥१८॥ रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा । भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥१९॥ सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः । सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०॥ माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने । दानवेंद्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः ॥२१॥ शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः । एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदंतः सविस्मयः ॥२२॥ उवाच स च वृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च । पुष्पदन्त उवाच– **राजेन्द्र शिवभृत्योऽहं पुष्पदंताभिधः प्रभो ॥२३॥ यदुक्तं शङ्करेणैव तद्ब्रवीमि निशामय । राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम्॥२४॥**

मणियों से निर्मित लाखों भवनों, रत्न से निर्मित सोपानों तथा रत्न निर्मित स्तम्भों से सुशोभित था ॥१२॥ उस महल को देखकर पुष्पदन्त ने श्रेष्ठ द्वार को देखा । उस द्वार पर हाथ में त्रिशूल लिए मुस्कुराते हुए पुरुष विराजमान था ॥१३॥ उसकी आँखें पीली थीं और रङ्ग ताम्रवर्ण का भयंकर था । पुष्पदन्त ने वृत्तान्त बतलाया और उस द्वारपाल की आज्ञा पाकर वे भीतर चले गये ॥१४॥ उस द्वार को पार करके वे भीतर गये । यह सुनकर कि युद्ध का समाचार लेकर दूत आया है कोई उन्हें रोकता नहीं था ॥१५॥ भीतर के द्वार में जाकर पुष्पदन्त ने द्वारपाल से कहा तुम शीघ्र युद्ध के समस्त समाचार को शंखचूड को बता दो ॥१६॥ दूत ने जाकर समाचार बतलाया और लौटकर उसने पुष्पदन्त को भीतर जाने के लिए कहा पुष्पदन्त ने भी जाकर मनोहर शंखचूड को देखा ॥१७॥ पुष्पदन्त ने देखा कि शंखचूड राजसमूह के बीच में रत्न के सिंहासन पर बैठे हुए था । श्रेष्ठमणि रत्ननिर्मित दण्ड को दण्डधारी पुरुष धारण किए हुए थे । रत्न निर्मित कृत्रिम श्रेष्ठ पुष्पों से उसकी सभा सुशोभित थी । उसके शिर पर भृत्य स्वर्णनिर्मित सुन्दर छत्र लगाये हुए था ॥१८-१९॥ उसके पार्षद उसे श्वेत चामर से सेवा कर रहे थे । शंखचूड सुन्दर वेष से तथा रत्नाभूषणों से सुशोभित था ॥२०॥ वह माला धारण किए था, चन्दन लगाये था, तथा महिन वस्त्र धारण किए हुए था । तीन करोड़ दानव उसके चारो ओर विराजमान थे ॥२१॥ सौ करोड़ दूसरे दानव हाथ में शस्त्र धारण करके चारो ओर घूम रहे थे । इस प्रकार के शंखचूड को देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यित हो गये ॥२२॥ उन्होंने सारा वृत्तान्त शंखचूड को बतलाया । **पुष्पदन्त ने कहा–** राजेन्द्र मैं शंकर का भृत्य हूँ मेरा नाम पुष्पदन्त हैं ॥२३॥ शंकरजी ने जो कहा है, उसे मैं कह रहा हूँ, उसे आप सुनें । आप देवताओं के राज्य और

देवाश्च शरणापन्ना देवेशं श्रीहरिं परम् । हरिर्दत्त्वाऽस्य शूलं च तेन प्रस्थापितः शिवः ॥२५॥ पुष्पभद्रानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः । विषयं देहि
तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम् ॥२६॥ गत्वा वक्ष्यामि किं शंभुमथ तद्वद मामपि । दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च ॥२७॥ प्रभातेऽहं
गमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह । स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम् ॥२८॥ शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम् । एतस्मिन्नंतरे स्कन्द
आजगाम शिवांतिकम् ॥२९॥ वीरभद्रश्च नंदी च महाकालः सुभद्रकः । विशालाक्षश्च बाणश्च पिंगलाक्षो विकंपनः ॥३०॥ विरूपो विकृतिश्चैव
मणिभद्रश्च बाष्कलः । कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः ॥३१॥ कालकंठो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः । बलोन्मत्तो रणश्लाघी
दुर्जयो दुर्गमस्तथा ॥३२॥ अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः । वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥३३॥ हुताशनश्च चंद्रश्च
विश्वकर्माश्विनौ च तौ । कुबेरश्च यमश्चैव जयंतो नलकूबरः ॥३४॥ वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मंगलस्तथा । धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च
वीर्यवान् ॥३५॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रचंडा कोटरा कैटभी तथा । स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी ॥३६॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ॥३७॥ नृत्यंती च हसंती च गायन्ती सुस्वरं मुदा । अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम् ॥३८॥

अधिकार को लौटा दें ॥२४॥ सभी देवता देवताओं के स्वामी श्रीहरि के शरणागत हो गये हैं । श्रीहरि ने अपना त्रिशूल प्रदान करके शिव को भेजा है॥२५॥ तीन नेत्रों वाले शिव पुष्पभद्रा नदी के तट पर विद्यमान हैं । उन्होंने कहा है कि आप या तो देवताओं का राज्य लौटा दें या युद्ध करें ॥२६॥ आप यह भी मुझे बतला दें कि शिवजी को जाकर मैं क्या कहूँ ? दूत की बात सुनकर शंखचूड जोर से हँसा ॥२७॥ उसने कहा तुम जाओ मैं सबेरे शंकरजी के पास आऊँगा । पुष्पदन्त भी लौटकर सारा समाचार वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए शङ्करजी को सुना दिये ॥२८॥ पुष्पदन्त के मुख से शंखचूड की बातें शंकरजी ने सुना । उसी समय स्वामी कार्तिकेय शंकरजी के पास आये ॥२९॥ उनके साथ वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन ॥३०॥ विरूप, विकृति, मणिभद्र, वाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन ॥३१॥ कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रण में प्रशंसित दुर्जय, दुर्गम ॥३२॥ आठो भैरव, ग्यारहो रुद्र, आठ वसुगण, इन्द्र, द्वादशादित्य ॥३३॥ अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर ॥३४॥ वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान, वीर्यवान (पराक्रमी) कामदेव ॥३५॥ उग्रदंष्ट्र, उग्र चंडा, कोटरा, कैटभी तथा स्वय आठ भुजाओं वाली अत्यन्त भयंकर भद्रकाली ॥३६॥ आयीं । वे श्रेष्ठ मणि निर्मित विमान पर आयी थीं । उन का परिधान लाल था. रक्तमाला और रक्त चन्दन धारण किए थीं ॥३७॥ वे स्वभावतः खुशी से हँसती, नाचती और गाती थीं । वे अपने भक्तों को अभय प्रदान करती हैं और शत्रुओं को भय ॥३८॥

बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम् । शङ्खचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुःशरान् ॥३९॥ खर्परं बर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम् । त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायतम् ॥४०॥ मुद्गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम् । वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वाह्नेयं नागपाशकम् ॥४१॥ नारायणास्त्रं गांधर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा । पार्जन्यास्त्रं पाशुपातं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम् ॥४२॥ माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं संमोहनं तथा । अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥४३॥ आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः । सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः॥४४॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्मांडा ब्रह्मराक्षसाः । वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः ॥४५॥ ताभिश्चैव सह स्कंदः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे सहायार्थं समुवास तदाज्ञया ॥४६॥ अथ दूते गते तत्र शंखचूडः प्रतापवान् । उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाऽभ्यंतरमेव च ॥४७॥ रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककंठोष्ठतालुका । उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता ॥४८॥ तुलस्युवाच— हे प्राणबन्धो हे नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्। हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम् ॥४९॥ भुंक्ष्व जन्म समासाद्य यन्मे मनसि वांछितम् । पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां च सादरम्॥५०॥ आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनो दग्धं च संततम् । दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि ॥५१॥ तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा

उनकी एक योजन लम्बी चंचल जीभ लपलपाती रहती हैं । वे शंख, चक्र, गदा पद्म, खड्ग, चर्म (ढाल) धनुष् तथा बाण ॥३९॥ एक योजन विस्तृत, गहरा और गोल खप्पर धारण किए हुयी थीं । उनका त्रिशूल आकाश को छू रहा था और शक्ति नामक आयुध एक योजन विस्तृत था ॥४०॥ मुद्गल, मुसल, वज्र, खेट तथा देदीप्यमान फलक, वैष्णवास्त्र, वरुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा नागपाश ॥४१॥ नारायणस्त्र गान्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुडास्त्र, पार्जन्यास्त्र, पाशुपातास्त्र, जृम्भणास्त्र तथा पार्वतास्त्र ॥४२॥ माहेश्वरास्त्र वायव्यास्त्र, दण्डास्त्र, संमोहनास्त्र इन सभी कभी नहीं विफल होने वाले अत्यन्त दिव्य सैकड़ो अस्त्रों को वे धारण किए थीं ॥४३॥ वे भी अपने तीन करोड़ योगिनियों के साथ आकर वहाँ स्थित हो गयीं । उनके साथ तीन करोड़ डाकीनियाँ भी थीं ॥४४॥ स्कन्द ने भी भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कुष्माण्ड, वेताल, राक्षस, यक्ष राक्षस एवं किन्नरों के साथ आकर शंकरजी को प्रणाम किए और अपने पिता शंकरजी की आज्ञा पाकर उनके बगल में बैठ गये ॥४५-४६॥ इसके बाद दूत के चले जाने पर शंखचूड ने भीतर जाकर सारी बात अपनी पत्नी तुलसी को सुनाया ॥४७॥ रण का समाचार सुनकर तुलसी के कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये । उसने दुःखी हृदय से मधुर वाणी में शंखचूड को कहा ॥४८॥ **तुलसी ने कहा**— हे प्राणनाथ ! आप क्षणभर के लिए मेरे वक्षःस्थल में प्रवेश कर जायँ । हे मेरे प्राणों के स्वामी आप मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये ॥४९॥ जो मेरे मन में अभिप्रेत हैं, उसे आप इस जन्म को प्राप्त करके भोगें । मैं कुछ क्षणों तक अपने नेत्रों से आपको प्रेमपूर्वक देखना चाहती हूँ ॥५०॥ मेरे प्राण चंचल

नृपेश्वरः । उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम् ॥५२॥ शंखचूड उवाच— **कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबंधनम् । शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मंगलम् ॥५३॥ काले भवंति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः । क्रमेण पुष्पवंतश्च फलवंतश्च कालतः ॥५४॥ तेषां फलानि पक्वानि प्रभवंत्येव कालतः । ते सर्वे फलिताः काले पातयंति च कालतः ॥५५॥ काले भवंति विश्वानि काले नश्यंति सुन्दरि । कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः ॥५६॥ संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण संचरंति ते । ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा ॥५७॥ स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा कालनर्तकः । काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः ॥५८॥ निर्माय कृतवान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् । सर्वेशः सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः ॥५९॥ जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः । जनं जनेन हरते तं देवं भज सांप्रतम् ॥६०॥ यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सांप्रतम् । यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥६१॥ यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जंतुषु । यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति शीतवान् ॥६२॥ मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम् । विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे ॥६३॥ संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं**

हो रहे हैं, मेरा मन जल रहा है । रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने आज दुःस्वप्न देखा है ॥५१॥ तुलसी की बातों को सुनकर शंखचूड ने भोजन किया, जल पिया, और उसने हितकारी सत्य एवं यथोचित बातों को कहना प्रारम्भ किया ॥५२॥ **शंखचूड ने कहा**— कर्मों के फलभोग स्वरूप होने वाले शुभ, सुख, दुख, भय, शोक तथा मंगल सबकुछ काल के अधीन ही होते हैं ॥५३॥ समय से ही वृक्ष उत्पन्न होते हैं, समयानुसार ही उनकी शाखाएँ फैलती हैं, और समयानुसार ही वे पुष्पों तथा फलों से समन्वित होता हैं ॥५४॥ समय से ही उनके फल पकते हैं और पके हुए सभी फल समय से ही गिर जाते हैं ॥५५॥ समय से ही कभी ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है, और समय से ही वे नष्ट हो जाते हैं । समय से सृष्टि करने वाले ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, और समय से ही रक्षक श्रीभगवान् उसकी रक्षा करते हैं ॥५६॥ संहार करने वाले शङ्कर भी जगत् का संहार समय से ही करते हैं । ये सब के सब समयानुसार ही हुआ करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इत्यादि का नियमन पराप्रकृति करती हैं ॥५७॥ समयानुसार जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करने वाले काल को भी नचाने का काम परमात्मा ही करते हैं । वे ही समयानुसार अपने से अभिन्न प्रकृति को अपनी इच्छानुसार सम्पूर्ण विश्वों की रचना करके और उन विश्वों में चराचरों की रचना किया करते है । वे सबों के स्वामी, सर्वरूप, सर्वात्मा और परमेश्वर हैं ॥५८-५९॥ जो परमात्मा एक मनुष्य के माध्यम से उत्पन्न करते हैं, रक्षा करते हैं, और संहार करते हैं, उन परम प्रभु परमात्मा की तुम आराधना करो ॥६०॥ जिस परमात्मा की आज्ञा से ही शीघ्रगामी वायु चलती रहती है । उन्हीं की आज्ञा से अग्नि समयानुसार जलाने का काम करती हैं ॥६१॥ इन्द्र भी उसी परमात्मा की आज्ञा से वर्षा करने का काम करते हैं और मृत्यु जीवों में संचरण करने का काम करती हैं । उस परमात्मा की ही आज्ञा से अग्नि जलाने का काम करती हैं, और शीतल चन्द्रमा चलते रहते हैं ॥६२॥

व्रज । को वा बंधुश्च केषां वा सर्वबंधुं भज प्रिये ॥६४॥ अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा । त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥६५॥ अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पंडितः । सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च ॥६६॥ नारायणं तं सर्वेशं कांतं यास्यसि निश्चितम् । तपः कृतं यदर्थं च पुरा बदरिकाश्रमे ॥६७॥ मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च । हर्यर्थे यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥६८॥ वृंदावने च गोविंदं गोलोके त्वं लभिष्यसि । अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥६९॥ तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वां च सांप्रतम् । अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥७०॥ पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये । त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥७१॥ तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कांते कातरा भव । इत्युक्त्वा च दिनांते स तया सार्धं मनोहरम् ॥७२॥ सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते । नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे ॥७३॥ रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम् । निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमंगलैः॥७४॥ कृत्वा वक्षसि तां कांतां रुदतीमतिदुःखिताम् । कुशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥७५॥ पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानावित् । पुरा

जो परमात्मा काल के भी काल हैं, मृत्यु के भी मृत्यु हैं तथा यम से बड़े यम हैं । व्यापक हैं स्रष्टा ब्रह्मा की भी सृष्टि करने वाले और माता की भी माता हैं ॥६३॥ संहार करने वाले शिव का भी संहार करते हैं, उन्ही परमात्मा की शरणागति करो । यहाँ कौन किसका बंधु हैं तुम सबों के बन्धु परमात्मा की शरणागति करो ॥६४॥ मैं कौन हूँ और तुम कौन हो ? हम दोनों को तो भाग्य ने मिला दिया है । हमारे कर्मों के अनुसार विधि ने तुम्हारे साथ रखा और वह पुनः हम दोनों को अलग कर दिया है ॥६५॥ शोक तथा विपत्ति के समय अज्ञानी जीव ही कातर होते हैं, पण्डित नहीं ! काल का चक्र तो सुख और दुःख दोनों में घूमता रहता है ॥६६॥ यह निश्चित है कि तुम अपने पति नारायण को प्राप्त करोगी । उनके लिए ही तुमने बदरिकाश्रम में तपस्या किया है ॥६७॥ तुमने मुझको भी तपस्या और ब्रह्माजी के वरदान के ही कारण प्राप्त किया था । हे कामिनि ! तुमने श्रीहरि को प्राप्त करने के लिए जो तप किया है उसके फल स्वरूप श्रीहरि को प्राप्त करोगी ॥६८॥ तुम गोलोक के वृन्दावन में गोविन्द को प्राप्त करोगी । मैं इस दानव शरीर को त्याग करके श्रीभगवान् के ही लोक में जाऊँगाा ॥६९॥ वहाँ तुम मुझको देखोगी और मैं तुमको देखूंगा । राधिका के ही शाप के कारण मैं इस दुर्लभ भारतवर्ष में आया था ॥७०॥ पुनः मैं गोलोक में ही पहुँच जाऊँगा इसमें कौन सा शोक करना है ? तुम इस शरीर का त्याग करके अपना दिव्य रूप धारण करके॥७१॥ तत्काल श्रीहरि के पास पहुँचोगी, अतएव शोक मत करो । इस तरह से तुलसी के साथ बातें करके शंखचूड दिन बीत जाने पर रात्रि में तुलसी के साथ॥७२॥ पुष्प एवं चन्दन से सुशोभित शय्या पर सोया । उस रत्न निर्मित तथा रत्न प्रदीप वाले भवन में सुन्दरी स्त्रीरत्न को प्राप्त करके अनेक प्रकार के वैभव की बातें की । उसने क्रीडा तथा कौतुक मङ्गल के द्वारा रात्रि को बिताया ॥७३-७४॥ रोती हुई, अत्यन्त दुःखी अपनी प्रेयसी को अपने हृदय

कृष्णेन यद्दतं भांडीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥७६॥ स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम् । ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥७७॥ क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम् । तौ दंपती च क्रीडंतौ निमग्नौ सुखसागरे ॥७८॥ पुलकांचितसर्वाङ्गौ मूर्छितौ निर्जने मुने । अंगप्रत्यंगसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ ॥७९॥ एकांगौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा । प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥८०॥ प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम् । तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तंद्रितौ सुन्दरौ समौ ॥८१॥ सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयंतौ रसाश्रयात् ॥८२॥ कथां मनोरमां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः । क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ ॥८३॥ सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपंडितौ । सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं चैव पराजितौ ॥८४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

से लगा लिया । उसकी पत्नी शोक सागर में निमग्न और निराहार थी ॥७५॥ इसके बाद उसने अपनी पत्नी को उस दिव्य ज्ञान से समझाया जिस ज्ञान को उसे भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे भाण्डीर वट के तले दिया था ॥७६॥ उसने सभी शोकों को विनष्ट कर देने वाले उस ज्ञान को अपनी पत्नी को दिया। उस ज्ञान को प्राप्त करके तुलसी के मन और नेत्र प्रसन्न हो गये ॥७७॥ उसने सम्पूर्ण जगत् को नश्वर समझकर शंखचूड के साथ क्रीडा किया । क्रीडा करते हुए दोनों पति-पत्नी आनन्दसागर में निमग्न हो गये ॥७८॥ उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया था । उन दोनों ने उत्साह पूर्वक सुरत क्रीडा की । उनदोनों के अंग प्रत्यङ्ग एक दूसरे से संश्लिष्ट थे । उस समय अंगों के एक में मिल जाने के कारण वे अर्धनारीश्वर के समान प्रतीत हो रहे थे । तुलसी ने अपने प्राणेश्वर को प्राणों से भी अधिक प्रिय माना ॥७९-८०॥ शंखचूड ने भी उस अपनी प्राणेश्वरी को अपने प्राणों से अधिक माना । वे दोनों सुखपूर्वक सोये हुए समान रूप से सुन्दर प्रतीत होते थें ॥८१॥ उन दोनों के वेष सुन्दर थे और सुखपूर्वक संभोग करने के कारण निश्चेष्ट होने के कारण और सुन्दर लगते थे । जब वे सचेत होते थे तो प्रेमपूर्वक बातें करते थे ॥८२॥ वे क्षण भर में मनोहर बातें करते थे और हंसते हुए श्रृङ्गार रस के आवेश में क्रीडा में संलग्न हो जाते थे ॥८३॥ वे दोनों सुरत क्रीडा के अभिज्ञ थे उनकी सुरत क्रीडा लगातार चल रहा था । वे क्षण में विजयी और क्षणभर में पराजित हो जाते थे ॥८४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः । ब्राह्मे मूहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥१॥ रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मंगलवारिणा । धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥२॥ चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववंदनम् । दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मंगलम् ॥३॥ रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्तुश्रेष्ठं च कांचनम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥४॥ अमूल्यरत्नं यत्किञ्चिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम् । ददौ विप्राय गुरवे यात्रामंगलहेतवे ॥५॥ गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम् । ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मंगलाय च ॥६॥ भांडाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम् । ग्रामाणां शतकोटि च ब्राह्मणाय ददौ मुदा ॥७॥ पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च। पुत्रं समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसम्पदम् ॥८॥ प्रजानुचरसंघं च भांडारं वाहनादिकम् । स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥९॥ भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसंचयम् । अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम् ॥१०॥ रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः । त्रिकोटिभिर्वर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः ॥११॥ कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद । तस्याः सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः ॥१२॥ महारथः स विज्ञेयो**

शंखचूड का पुष्पभद्रा नदी के तट पर जाना और वहाँ उसकी शिवजी से विशद वार्ता

श्रीनारायण ने कहा– राक्षस शंखचूड भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त था । वह भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्त में ही मनोहर पुष्पमयी शय्या से जग गया ॥१॥ उसने रात्रि के कपड़े को छोड़कर शुद्ध जल से स्नान किया । उसने स्वच्छ दो वस्त्रों को धारण करके चमकते हुए तिलक को लगाया॥२॥ उसने आवश्यक आह्निक क्रिया को करके अपने इष्टदेवता की वन्दना की । दही, घी, मधु, लावा इत्यादि मङ्गलमय वस्तुओं को उसने देखा ॥३॥ पुनः उसने श्रेष्ठरत्न, श्रेष्ठ मणि और सुवर्ण निर्मित श्रेष्ठ वस्तुओं को देखा और नित्य के ही समान उसने ब्राह्मणों को दान दिया ॥४॥ उसने यात्रा में मङ्गल प्राप्त करने के लिए अपने ब्राह्मण गुरु को कुछ अमूल्य रत्न, मुक्ता तथा माणिक्य का दान दिया ॥५॥ दरिद्र ब्राह्मण को गजरत्न, अश्वरत्न तथा मनोहर धनरत्न का दान मङ्गल प्राप्त करने के लिए दिया ॥६॥ उसके बाद उसने ब्राह्मणों को हजारों भण्डारों दो लाख और सौ करोड़ ग्रामों का दान दिया ॥७॥ उसने अपने पुत्र को सभी दानवों का राजा बनाया और अपनी पत्नी तथा राज्य को अपने पुत्र को सौंप दिया ॥८॥ प्रजाओं, अनुचर समूह, भंडार तथा वाहन आदि को भी अपने पुत्र को सौंप दिया । स्वयं वह कवच धारण करके हाथ में धनुष उठाया ॥९॥ उसने भृत्य को भेजकर सेना को एकत्रित किया। हे नारदजी ! उसने तीन लाख घुड़सवार, एक लाख हाथी सेना, दश हजार सेना, तीन करोड़ धनुर्धारी सेना, तीन करोड़ कवच धारी सेना, तीन करोड़

रथिनां प्रवरो रणे । त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥१३॥ त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भाण्डौघं च चकार ह ॥ बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१४॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः । गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम् ॥१५॥ पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः। सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नारद ॥१६॥ कपिलस्य तपः स्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते । पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥१७॥ श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥१८॥ शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा । शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥१९॥ लवणाब्धिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता । शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् ॥२०॥ गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ । तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम् ॥२१॥ वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् । कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम् ॥२२॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् ॥२३॥ भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥२४॥ आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च

त्रिशूलधारी सेना को जुटाया ॥१०-११॥ इस तरह से उसने अपनी अपरिमित सेना जुटायी । इसके बाद उसने एक महारथी वीर को उस सेना का सेनापति बना दिया । वह युद्ध शास्त्र में दक्ष था । जो रथियों में श्रेष्ठ होता है उसे महारथी कहते हैं । उसको शंखचूड ने तीन लाख अक्षौहिणी सेना का स्वामी बनाया ॥१२-१३॥ वह सेनापति अपनी सेना को तीस हजार अक्षौहिणी सेना के प्रहार से बचाने में समर्थ था । इसके बाद वह श्रीहरि को अपने मन में स्मरण करते हुए अपने शिविर से बाहर निकला ॥१४॥ हे नारदजी ! वह श्रेष्ठ मणि से निर्मित विमान पर बैठा और अपने गुरुजनों को आगे करके शंकरजी के पास गया ॥१५॥ जहाँ पर पुष्पभद्रा नदी के तट पर अक्षय वट था । वह सिद्धों का सिद्धिक्षेत्र सिद्धाश्रम था ॥१६॥ वह भारत वर्ष में महर्षि कपिल की तपस्या का स्थान है । वह स्थान पश्चिम समुद्र के पूर्व में मलयाचल से पश्चिम दिशा में श्रीशैल के उत्तर भाग में तथा गन्धमादन पर्वत के दक्षिण भाग में हैं । पाँच योजन चौड़ी, उसके सौ गुना लम्बी, शुद्ध स्फटिक के समान धवलवर्ण वाली, अत्यन्त पुष्पमयी, निरन्तर जल से भरी रहने वाली पुष्पभद्रा नदी है ॥१७-१९॥ वह नदी क्षार समुद्र में मिलती है और सदैव सौभाग्य से सम्पन्न रहती है । वह शरावती नदी के साथ मिलकर हिमालय से निकली है ॥२०॥ गोमती को बायें तरफ करके वह पश्चिम समुद्र में मिलती है । वहीं पर जाकर शंखचूड ने भगवान् शंकर का दर्शन किया ॥२१॥ वे वटवृक्ष के नीचे बैठे थे, करोड़ों सूर्य के समान उनकी कान्ति थी । वे योगासन लगाकर मुद्रा से युक्त मुस्कुरा रहे थे ॥२२॥ शुद्ध स्फटिक मणि के समान ब्रह्मतेज से वे प्रकाशित हो रहे थे । त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किए हुए थे । तथा बाघाम्बर पहने थे ॥२३॥ भक्तों की मृत्यु को विनष्ट करने वाले, शान्त तथा

विश्वजम् ॥२५॥ विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम् । कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥२६॥ ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्। अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥२७॥ सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः । वामतो भद्रकाली च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम्॥२८॥ आंशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः । उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥२९॥ परस्परं च भाषन्ते चक्रुस्तत्र च सांप्रतम् । राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसन्निधौ ॥३०॥ प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह । महादेव उवाच– विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ॥३१॥ मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः । कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः ॥३२॥ दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश । तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता ॥३३॥ चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः । तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः ॥३४॥ तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः । जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् ॥३५॥ शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः । तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् ॥३६॥ पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः । अधुना राधिकाशापाद्भारते

मनोहर श्रीशंकरजी को उसने देखा । शंकरजी तपस्या के फल को तथा सभी सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले हैं ॥२४॥ आशुतोष प्रसन्न मुख वाले, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, विश्व के स्वामी, विश्व स्वरूप, तथा विश्व को उत्पन्न करने वाले ॥२५॥ विश्वम्भर, विश्व में श्रेष्ठ तथा विश्व का संहार करने वाले कारणों के भी कारण स्वरूप, नरक रूपी सागर से उद्धार करने वाले ॥२६॥ ज्ञान प्रदान करने वाले, ज्ञान के बीज स्वरूप, तथा शाश्वत ज्ञानानंद स्वरूप, शंकरजी को शंखचूड ने देखा । वह दानवेश्वर अपने विमान से उतरकर सबों के साथ भक्तिपूर्वक शंकरजी को शिर झुकाकार प्रणाम किया । शंकरजी के वामभाग में विद्यमान भद्रकाली और स्कन्द को भी प्रणाम किया ॥२७-२८॥ उसको भद्रकाली, स्कन्द और शंकरजी ने आशीर्वाद दिया । शंखचूड को आये हुए देखकर नन्दीश्वर आदि खड़े हो गये ॥२९॥ वे सब परस्पर में बातें करने लगे । उसके बाद राजा शंखचूड शंकरजी के सन्निकट बैठा ॥३०॥ प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने शंखचूड से कहा **महादेव ने कहा–** हे धर्मज्ञ ! सम्पूर्ण जगत् के रचयिता ब्रह्माजी हैं । उनके पुत्र धर्म हैं ॥३१॥ उनके पुत्र मरीचि है, जो वैष्णव और धार्मिक हैं । उनके धार्मिक पुत्र कश्यप महर्षि हैं ॥३२॥ प्रसन्न होकर दक्ष प्रजापति ने महर्षि कश्यप के साथ अपनी तेरह पुत्रियों का विवाह किया । उनमें से दक्ष की एक पुत्री का नाम दनु था जो महर्षि कश्यप से सौभाग्य सम्पन्न थी ॥३३॥ दनु के परम तेजस्वी तथा परम बलवान् चालिस पुत्र हुए उनसबों में महाबली तथा महापराक्रमी एक पुत्र का नाम विप्रचित्ती था ॥३४॥ उनके पुत्र का नाम दम्भ था । दम्भ भगवान् विष्णु के भक्त तथा जितेन्द्रिय थे । वे पुष्कर क्षेत्र में जाकर लाख वर्षों तक भगवान् कृष्ण के मंत्र का जप किए ॥३५॥ उन्होंने शुक्राचार्य को अपना गुरु बनाया । उसके फलस्वरूप उन्होंने भगवान् कृष्ण के भक्त आपको पुत्र के रूप में प्राप्त किये ॥३६॥ पहले आप भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षद गोप थे और अत्यन्त धार्मिक

दानवेश्वरः ॥३७॥ आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं तुच्छं मेने च वैष्णवः । सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि ॥३८॥ दीयमानं न गृहणंति वैष्णवाः सेवनं विना । ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः ॥३९॥ इन्द्रत्वं वामनत्वं वा न मेने गणनासु च । कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमः ॥४०॥ देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप । सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठंतु वै पदे ॥४१॥ अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः । यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥४२॥ ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हंति षोडशीम् । स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे ॥४३॥ सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा । ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा ॥४४॥ आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावादीश्वरेच्छया । ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम् ॥४५॥ करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च । परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रये सदा ॥४६॥ त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः । एकभागः कलौ पूर्वं तदंशश्च क्रमेण च ॥४७॥ कलानां कलेः शेषे कुह्वां चंद्रकला यथा । यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः ॥४८॥ दिनेषु यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् । उदयं याति कालेन बालतां

थे । राधिकाजी के शाप के कारण भारत में दानवेश्वर हुए हैं ॥३७॥ आप वैष्णव हैं और ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सबको तुच्छ मानते हैं । वैष्णवों का स्वभाव होता है कि वे भगवान् की सेवा से भिन्न सालोक्य, सामिप्य, सार्ष्टि और सायुज्य नामक मुक्तियों को भी नहीं लेना चाहते हैं । वैष्णव तो ब्रह्मत्त्व तथा अमरत्व को भी तुच्छ मानते हैं ॥३८-३९॥ वे इन्द्रत्व तथा वामनत्व को भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं । जो भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त होता है, वह देवताओं का राज्य भी नहीं चाहता है ॥४०॥ हे राजन् ! आप देवताओं के राज्य को लौटा दें और मेरे प्रेम की रक्षा करें । आप अपने राज्य में सुखपूर्वक रहें और देवता अपने पद पर सुखपूर्वक रहें ॥४१॥ किसी भी जीव का विरोध करना उचित नहीं है, सबके सब महर्षि कश्यप की सन्तान हैं। संसार में ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप हैं वे ज्ञातिद्रोहके सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है । ज्ञाति द्रोह सबों से बड़ा पाप है । हे राजेन्द्र ! यदि आप इसे अपनी सम्पत्ति की हानि समझते हो तो आप ही बतलाइये कि संसार में कौन ऐसा प्राणी है, जिसकी स्थिति सर्वदा एक ही समान रहे । प्राकृतिक लय हो जाने पर तो ब्रह्माजी का भी तिरोभाव हो जाता है ॥४२-४४॥ उसके बाद परमात्मा की इच्छा से ब्रह्माजी का जन्म होता है तपस्या के ही कारण उनके ज्ञान की वृद्धि होती है स्मृति का लोप होता है ॥४५॥ जगत् स्त्रष्टा ब्रह्माजी भी क्रमशः जगत् की सृष्टि करते हैं । सत्ययुग में तथा सत्ययुग के जीवों में धर्मपूर्ण रूप से विद्यमान रहता है ॥४६॥ त्रेता युग में धर्म तीन भागों वाला और द्वापर में दो भागों वाला रहता है । कलियुग में धर्म अपने एक भाग से युक्त रहता है । उत्तरोत्तर उसका एक अंश कम होता जाता है ॥४७॥ जिस तरह अमावस्या के दिन चन्द्रमा की एक कला ही अवशिष्ट रह जाती है उसी तरह कलियुग में धर्म की एक ही कला अवशिष्ट रह जाती है । ग्रीष्म में जितना तेज सूर्य में होता है, उतना तेज शिशिर ऋतु में नहीं होता है ॥४८॥

च क्रमेण च ॥४९॥ प्रकांडतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः । दिने प्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने ॥५०॥ राहुग्रस्ते कंपितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् । परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च जायते ॥५१॥ तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने । पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिने दिने॥५२॥ संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा । राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते ॥५३॥ काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः कालभेदतः । भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना ॥५४॥ कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा । काले जले निमग्ना सा तिरोभूताम्बुविप्लुता ॥५५॥ काले नश्यंति विश्वानि प्रभवंत्येव कालतः । चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवंति च ॥५६॥ ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः । अहं मृत्युंजयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥५७॥ अदर्शं चापि द्रक्ष्यामि बारं बारं पुनः पुनः । स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः ॥५८॥ स चात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः । करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम् ॥५९॥ काले मृत्युं स जयति जन्मरोगभयं जराम् । स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत् ॥६०॥ अहंकृतश्च संहर्ता वयं विषयिणः कृताः । कालाग्निरुद्रं संहारे

दिन में भी सूर्य का जितना तेज दोपहर में होता है उतना तेज प्रातःकाल और सायंकाल में नहीं होता है । सूर्य समय से उदित होता है, फिर बाल होता है । उसके बाद वह प्रचण्ड हो जाता है फिर अस्त हो जाता है । बादल से घिर जाने पर वह दिन में भी छिप जाता है ॥४९-५०॥ जब वह राहु से ग्रस्त होता है तो भयभीत हो जाता है और उसके पश्चात् प्रसन्न हो जाता है । चन्द्रमा भी पूर्णिमा के दिन पूर्णतम रहता है ॥५१॥ वह सदा एक समान नहीं रहता हैं, प्रतिदिन क्षीण होता जाता है । अमावस्या के बाद वह प्रतिदिन बढ़ने लगता है ॥५२॥ वह शुक्लपक्ष में सम्पत्ति से सम्पन्न होता है और कृष्णपक्ष में मलिन हो जाता है । राहु से ग्रस्त हो जाने पर वह भी मलिन हो जाता है और दुर्दिन में वह भी शोभा नहीं पाता है ॥५३॥ शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा भी समयानुसार भ्रष्ट ऐश्वर्य वाला हो जाता है । भ्रष्टश्री बलि इस समय सुतल लोक के इन्द्र होंगे ॥५४॥ सबों के आधार स्वरूपा पृथिवी सस्यसम्पत्ति से सम्पन्न हो जाती है और समय आने पर वह प्रलय कालीन जल में डूब जाती है ॥५५॥ सम्पूर्ण जगत् समयानुसार नष्ट हो जाता है और समय आने पर वह पुनः उत्पन्न हो जाता है । काल चराचर को नष्ट करता है और उत्पन्न करता है ॥५६॥ काल की समता ईश्वर से ही की जा सकती है । वह ही परमेश्वर हैं उस काल की ही कृपा से मैं मृत्युंजय हूँ असंख्य प्राकृत प्रलयों को देख चुका हूँ ॥५७॥ मैं असंख्य प्राकृत प्रलय को देखूँगा भी काल ही प्रकृति स्वरूप हैं, उसी को परमपुरुषार्थ कहा जाता है ॥५८॥ अनेक रूपों को धारण करने वाला वह ही परमात्मा और जीवात्मा भी है । जो व्यक्ति उस परमात्मा रूपी काल के नामों और गुणों का कीर्तन करता है ॥५९॥ वह काल, मृत्यु, रोग तथा जरा के भय से रहित हो जाता है । उस काल

नियोज्य विषये नृप ॥६१॥ अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम् । तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः ॥६२॥ मृत्युर्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः । इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः ॥६३॥ विरराम च शंभुश्च सभामध्ये च नारद । राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः ॥६४॥ उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम् । शंखचूड उवाच– त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम् ॥६५॥ तथापि किंचिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम् । ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ॥६६॥ गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः । मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर ॥६७॥ सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः । सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ॥६८॥ शुंभादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः । पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ॥६९॥ क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः । क्रीडाभांडमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः॥७०॥ यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा । देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा ॥७१॥ पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च । तदाऽऽवयोर्विरोधे वाऽऽगमनं निष्फलं परम् ॥७२॥ समसंबंधिनो बंधोरीश्वरस्य महात्मनः । इयं ते महती लज्जा युद्धेऽस्माभिः सहाधुना॥७३॥ जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये । इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः ॥७४॥ यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम् । महादेव उवाच–

ने ब्रह्माजी को स्रष्टा बनाया है, विष्णु को रक्षक बनाया है ॥६०॥ मुझको उसने ही संहार करने वाला बनाया है । उसके विषय हम सब हैं । इस समय कालाग्नि रुद्र को संहार के कार्य में नियुक्त करके परमात्मा के नामों और गुणों का मैं कीर्तन करता हूँ । इस ज्ञान के प्रभाव से मैं मृत्युंजय होकर निर्भय हूँ ॥६१-६२॥ इसी के कारण मुझसे मृत्यु उसी तरह से डरती है जिस तरह गरुड को देखकर सर्प भयभीत हो जाते हैं । इस तरह से कहकर भगवत् परायण भगवान् शंकर ॥६३॥ सभा के बीच में चुप हो गये । भगवान् शंकर की बातों को सुनकर राजा शंखचूड ने उनकी बार-बार प्रशंसा की ॥६४॥ उसके बाद अत्यन्त नम्रता पूर्वक उसने कहना प्रारम्भ किया । **शंखचूड ने कहा**– हे देव ! आपने जो कुछ भी कहा है वह पूर्णरूप से सत्य है । फिर भी आप मेरा कुछ यथार्थ निवेदन सुनें । आपने अभी कहा है कि अपने बन्धुओं से द्रोह करना सबसे बड़ा पाप है ॥६५-६६॥ मैं ही बली के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को उठाकर यहाँ लाया हूँ । अतएव उसपर मेरा पूर्ण रूप से अधिकार है ॥६७॥ सुतललोक से उसका उद्धार करने में भगवान् गदाधर भी समर्थ नहीं हैं। देवताओं ने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का वध क्यों किया ॥६८॥ देवताओं ने शुम्भ आदि दैत्यों को क्यों मारा ? प्राचीनकाल में देवताओं ने ही क्यों अमृत पी लिया ?॥६९॥ उस समय हमलोग केवल परिश्रम किए और उसका फल देवताओं ने ही भोगा । यह सम्पूर्ण जगत परमात्मा का क्रीडास्थल है॥७०॥ वह जिसको जो देता है वह उसका हो जाता है । सदा से देवताओं और दानवों का कलह होता आया है ॥७१॥ समयानुसार कभी देवताओं का पराजय और हमलोग की विजय होती है और कभी देवताओं की विजय होती है और हमलोगों का पराजय होता है । ईश्वर तो देवताओं और दैत्यों दोनों

युष्माभिः सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः ॥७५॥ का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये । युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च ॥७६॥
हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप । हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता ॥७७॥ त्रिपुरैः च सह युद्धं च मयाऽपि च पुरा कृतम् ।
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह ॥७८॥ सह शुंभादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः । पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥७९॥ ये ये
हताश्च दैतेया नहि केऽपि त्वया समाः । का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह ॥८०॥ सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो । देहि राज्यं
च देवानामिति मे निश्चितं वचः ॥८१॥ युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम् । इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद । उत्तस्थौ
शंखचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम् ॥८२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुगणे नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

* * *

के समान रूप से सम्बन्धी हैं । अतएव हमदोनों विरोधियों के बीच में आपका आना उचित नहीं है । हमलोगों के साथ आपका युद्ध करना आपके लिए अत्यन्त लज्जास्पद है ॥७२-७३॥ आपको चाहे विजय मिले अथवा पराजय दोनों से आपकी ही कीर्ति का नाश होगा । शंखचूड की इसबात को सुनकर त्रिलोचन भगवान् शंकर ने जोर से हँसकर ॥७४॥ उस दानवेश्वर को यथोचित उत्तर दिया । **महादेव ने कहा—** तुमलोग भी ब्रह्माजी के ही वंशज हो अतएव तुमलोगों के साथ युद्ध करने में मुझे कौन सी लज्जा है ?। प्राचीन काल में श्रीहरि ने मधु और कैटभ के साथ युद्ध किया था ॥७५-७६॥ भगवान् ने भी हिरण्यकशिपु के साथ युद्ध किया था और गदाधारी श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष के साथ भी युद्ध किया था ॥७७॥ मैं भी प्राचीन काल में त्रिपुर नामक दैत्यों से युद्ध कर चुका हूँ यही नहीं सम्पूर्ण जगत् की माता सर्वेश्वरी जगदम्बा का भी ॥७८॥ प्राचीन काल में शुम्भ आदि के साथ युद्ध हो चुका है । तुम तो भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षद हो । प्राचीन काल में जितने भी दैत्य मारे गये उनमें से कोई भी तुम जैसे बलवान नहीं था । अतएव हे राजन् ! तुम्हारे साथ युद्ध करने में कोई भी लज्जा नहीं है ॥७९-८०॥ सभी देवता श्रीहरि के शरण में गये थे । श्रीभगवान् ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । मेरी यह निश्चित वाणी है कि तुम देवताओं का राज्य लौटा दो ॥८१॥ अथवा मेरे साथ युद्ध करो । बहुत अधिक बातें करने से कौन सा लाभ है ? हे नारदजी ! शंकरजी इतना कहकर चुप हो गये और शंखचूड भी अपने मंत्रियों के साथ शीघ्र ही वहाँ से उठ गया ॥८२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद समपूर्ण हुआ ।।२१।।

* * *

द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेंद्रः प्रतापवान् । समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः ।।१।। शिवः स्वसैन्यं देवाँश्च प्रेरयामास सत्वरम् । दानवेंद्रः ससैन्यश्च युद्धारम्भे बभूव ह ।।२।। स्वयं महेंद्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः।।३।। दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार परमं रणम् । कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ।।४।। कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ।।५।। विकङ्कणेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः । बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ।।६।। जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः। अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः ।।७।। धुरन्धरेण धर्मश्च उषाक्षेण च मङ्गलः ।। शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः ।।८।। गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च । काञ्चीमुखेन पिंडेन धूम्रेण सह नंदिना ।।९।। विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे। एकादश च रुद्रा वै एकादश भयङ्करैः ।।१०।। महामारी च युयुधे चोग्रचंडादिभिः सह । नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ।।११।। एकादश महायुद्धे प्रलयेऽपि भयङ्करे । वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ।।१२।। सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने । रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः**

शंकरजी तथा शंखचूड की सेनाओ में घोर युद्ध

श्रीनारायण ने कहा– प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूड शंकरजी को प्रणाम करके शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ विमान पर जाकर बैठ गया ।।१।। शिव ने अपनी सेना तथा देवताओं को युद्ध करने के लिए प्रेरित किया और शंखचूड भी अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ।।२।। स्वयं इन्द्र वृषपर्वा के साथ युद्ध करने लगे और सूर्य विप्रचित्ती के साथ युद्ध करने लगे ।।३।। दम्भ के साथ चन्द्रमा युद्ध करने लगे, कालस्वर के साथ काल तथा गोकर्ण के साथ अग्नि युद्ध करने लगे ।।४।। कुबेर कालकेय के साथ, विश्वकर्मा मय के साथ, मृत्यु भयंकर के साथ और यम संहार के साथ युद्ध करने लगे ।।५।। वरुण विकङ्कण के साथ, वायु चञ्चल के साथ, बुध घृतपृष्ठ के साथ, और शनैश्चर रक्ताक्ष के साथ ।।६।। जयन्त रत्नसार के साथ, वसुगण वर्चसगणों के साथ, दोनो अश्विनी कुमार दीप्तिमान के साथ और नलकूबर धूम्र के साथ युद्ध करने लगे ।।७।। धर्म धुरन्धर के साथ, मङ्गल उषाक्ष के साथ, भानु शोभाकर के साथ और कामदेव पिठर के साथ युद्ध कर रहे थे ।।८।। आदित्य आदि द्वादशादित्य गोधामुख, चूर्ण, खड्ग, ध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी तथा पलाश के साथ युद्ध करने लगे । ग्यारह भयंकर राक्षसों के साथ ग्यारह रुद्रों का युद्ध होने लगा ।।९-१०।। महामारी देवी उग्रचण्ड आदि के साथ युद्ध करने लगीं । नन्दीश्वर आदि दानव समूह के साथ युद्ध करने लगे ।।११।। यह युद्ध ग्यारह महायुद्धों तथा प्रलयकाल से भी भयंकर था । शंकरजी

सह ॥१३॥ उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः । शङ्करस्य च के योधा दानवैश्च पराजिताः ॥१४॥ देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः ।
चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥१५॥ बलं च स्वगणानां च वर्धयामास तेजसा । सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥१६॥
अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः । असुरान्पातयामास काली कमललोचना ॥१७॥ पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः परम् ।
दशलक्षगजेन्द्राणां शतलक्षं च कोटिशः ॥१८॥ समादायैकहस्तेन मुखेचिक्षेप लीलया । कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥१९॥ स्कन्दस्य
शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः । पीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः ॥२०॥ वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंभश्चापि विकङ्कणः । स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते
सर्वे विक्रमेण च ॥२१॥ महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी । बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः ॥२२॥ न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे
पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं समुल्बणम् ॥२३॥ दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः । राजा विमानमारुह्य चकार
बाणवर्षणम् ॥२४॥ नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा । महाघोरांधकारश्च बह्न्युत्थानं बभूव च ॥२५॥ देवाः प्रदुद्रवुः सर्वेऽप्यन्ये
नन्दीश्वरादयः । एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि ॥२६॥ पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा । नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च

काली तथा कार्तिकेय के साथ वटमूल में बैठे रहे ॥१२॥ सारी सेनाएँ निरन्तर युद्ध कर रही थीं रत्नभूषणों से भूषित शंखचूड भी करोड़ों दानवों के साथ
रत्न सिंहासन पर बैठा था । शंकरजी के बहुत से योद्धाओं को दानवों ने पराजित कर दिया ॥१३-१४॥ शरीर के कट-पिट जाने से भयभीत होकर देवता
भाग चले । यह देखकर स्कन्द क्रुद्ध हो गये और उन्होंने देवताओं को अभय प्रदान किया ॥१५॥ उन्होंने अपने तेज से अपने गणों के बल को बढ़ा दिया।
वे अकेले ही दानव समूहों के साथ युद्ध करने लगे ॥१६॥ उन्होंने युद्ध में सौ अक्षौहिणी दैत्यों की सेना का वध कर दिया उधर कमल के समान नेत्रों
वाली काली ने दानवों को धराशायी कर दिया ॥१७॥ अत्यन्त क्रुद्ध होकर दैत्यों का रक्त पी गयीं । वे दशलाख हाथियों और करोड़ों सैनिकों को पकड़कर
अपने मुख में डाल देती थीं । युद्ध में हजारों कबन्ध नृत्य करने लगे ॥१८-१९॥ स्कन्ध के बाण समूह से दानवों के शरीर क्षतविक्षत हो गयें । वे भयभीत
होकर अत्यन्त पराक्रमी होकर भी युद्ध से भग चले ॥२०॥ वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ तथा विकङ्कण स्कन्द के तथा पराक्रम के साथ युद्ध कर रहे थे ॥२१॥
महामारी भी युद्ध कर रही थीं, वे युद्ध से विरत नहीं हुईं । स्कन्द की शक्ति से पीडित होकर दैत्य क्षुब्ध हो गये ॥२२॥ किन्तु वे रणभूमि से भगे नहीं।
कार्तिकेय की शक्ति से प्रभावित देवता पुष्पों की वृष्टि करने लगे ॥२३॥ वे प्राकृत प्रलय के समान दैत्यों का विनाश करके भयंकर युद्ध कर रहे थे । उसके
बाद राजा शंखचूड विमान पर चढ़कर बाणों की वर्षा करने लगे ॥२४॥ शंखचूड बाणों की ऐसी वर्षा कर रहे थे जैसे मेघ से वर्षा हो रही हो । चारो
ओर भयंकर अंधकार फैल गया, और आग लग गयी ॥२५॥ नन्दी इत्यादि सभी देवता भी भाग चले । अकेले कार्तिकेय युद्धभूमि में युद्ध कर रहे थे॥२६॥

भयङ्करीम् ॥२७॥ नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनन्दनः । नीहारेण च सान्द्रेण च प्रहितो भास्करो यथा ॥२८॥ धनुश्चिच्छेद स्कंदस्य दुर्वहं च भयङ्करः । बभंज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान् ॥२९॥ मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः । शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य यक्षस्य घातिनीम् ॥३०॥ क्षणं मूर्च्छां च संप्राप बभूव चेतनः पुनः । गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा ॥३१॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानमारुह्य कार्त्तिकः । शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम् ॥३२॥ सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥३३॥ वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥३४॥ सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ॥३५॥ मूर्च्छां संप्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह । आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः ॥३६॥ चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः । गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद ॥३७॥ जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम्। प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसाऽऽवृताम् ॥३८॥ चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके । पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला॥३९॥ मूर्छां संप्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः । काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ॥४०॥ शिवस्तं चापि ज्ञानेज जीवयामास लीलया।

शंखचूड पर्वतों, सर्पों शिलाओं तथा वृक्षों की वर्षा करने लगे । वह अत्यन्त भयंकर वर्षा थी ॥२७॥ शंखचूड की बाण वृष्टि से कार्तिकेय उसी तरह ढँक गये जैसे घने कुहरे से सूर्य ढँक जाते हैं ॥२८॥ उसने कार्तिकेय के धनुष् को काट दिया, रथ को तोड़ दिया और बैठने के स्थान को छिन्न-भिन्न कर दिया॥२९॥ उसने दिव्यास्त्र के द्वारा मयूर को घायल कर दिया और वीरघातिनी शक्ति को स्कन्द के ऊपर चला दिया ॥३०॥ उसके कारण स्कन्द क्षणभर तक मूर्छित रहे और उसके बाद होश में आ गये । उन्होंने भगवान् विष्णु के द्वारा प्रदत्त धनुष को उठाया ॥३१॥ कार्तिकेय श्रेष्ठ रत्न निर्मित रथ पर बैठकर शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर भयंकर युद्ध करने लगे ॥३२॥ उन्होंने दिव्यास्त्र के द्वारा सर्पों, वृक्षों, पर्वतो और शिलाओं को विनष्ट कर दिया ॥३३॥ पार्जन्यास्त्र के द्वारा उन्होंने अग्नि को बुझा दी और शंखचूड के रथ तथा धनुष को काट दिया ॥३४॥ उन्होंने उसके कवच, सारथि, किरीट तथा मुकुट को काट दिया और शंखचूड के हृदय पर चमकती हुई शक्ति का प्रहार किया ॥३५॥ उसके कारण शंखचूड मूर्छित हो गया और बाद में होश में आया । वह शीघ्र ही दूसरे रथ पर बैठकर दूसरे धनुष को उठाया ॥३६॥ मायावियों में श्रेष्ठ शंखचूड माया के द्वारा बाणों का जाल बिछा दिया । उसने कार्तिकेय को बाण जाल से ढँक दिया ॥३७॥ उसने सौ सूर्यों के समान चमकती हुई शक्ति को उठाया । वह शक्ति भगवान् विष्णु के तेज से युक्त तथा प्रलयाग्नि की ज्वाला के समान चमक रही थी ॥३८॥ क्रोध करके उसने कार्तिकेय के ऊपर प्रहार किया और वह शक्ति कार्तिकेय के ऊपर अग्नि की ज्वाला के समान गिरी ॥३९॥

ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थौ प्रतापवान् ॥४१॥ काली जगाम समरं रक्षितुं कार्तिकस्य या । वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥४२॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ॥४३॥ सा च गत्वाऽथ संग्रामं सिंहनादं चकार च । देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥४४॥ अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः । दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि ॥४५॥ उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु । योगिनीडाकिनीनां च गणाः सुरगणादयः ॥४६॥ दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ । दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥४७॥ काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम् । राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया ॥४८॥ चिक्षेप वह्नि बाणं च प्रलयग्निशिखोपमम् । राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया ॥४८॥ चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम् । गांधर्वेण च चिच्छेद दानवेंद्रश्च लीलया ॥४९॥ माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम् । राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च्र लीलया ॥५०॥ नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् । राजा ननाम तद्दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ ॥५१॥ ऊर्ध्वं जगाम तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात शंखचूडश्च भक्त्या तं दंडवद्भुवि ॥५२॥ ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मंत्रपूर्वकम् । ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः ॥५३॥ तदा चिक्षेप दिव्यास्त्रं सा

उसके कारण कार्तिकेय मूर्छित हो गये और काली उनको अपनी गोद में उठाकर शिवजी के पास लायीं ॥४०॥ शिवजी ने बड़ी आसानी से कार्तिकेय को अपने ज्ञान के द्वारा जीवित कर दिया । उन्होंने कार्तिकेय को असीम् बल प्रदान कर दिया । कार्तिकेय फिर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥४१॥ काली भी कार्तिकेय की रक्षा करने के लिए युद्ध में गयीं । नन्दीश्वर आदि उनके पीछे गये ॥४२॥ उनके साथ सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर; युद्ध के बाजे बजाने वाले और मधुभाण्ड ढोने वाले सैकड़ों गये ॥४३॥ काली ने संग्राम में जाकर सिंहनाद किया । देवी के सिंहनाद से दानववीर मूर्छित हो गये॥४४॥ उन्होंने बार-बार अमङ्गलकारी अट्टहास किया । उसके बाद मदिरा पीकर युद्धभूमि में नृत्य करने लगी ॥४५॥ उसी समय उग्रदंष्ट्रा उग्रदण्डा तथा कोटवी देवियों ने भी मदिरा पान किया । योगिनियों, डाकिनियों के गणों ने तथा देवसमूह ने भी मदपान किया ॥४६॥ काली को देखकर शंखचूड शीघ्र ही समरभूमि में आ गया । दानव भयभीत हो गये थे । राजवर्य शंखचूड ने उन सबों को अभयदान दिया ॥४७॥ काली ने प्रलयाग्नि के समान धधकती अग्नि शंखचूड पर फेंका किन्तु शंखचूड ने उसे पार्जन्यास्त्र से बुझा दिया ॥४८॥ इसके बाद काली ने भयंकर वरुणास्त्र का प्रहार किया और दानवेन्द्र ने उसको आसानी से गान्धर्वास्त्र से काट दिया ॥४९॥ काली ने उसके ऊपर माहेश्वरात्र का प्रयोग किया और शंखचूड ने उसे वैष्णवास्त्र से काट दिया ॥५०॥ देवी ने मंत्रपूर्वक शंखचूड पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया उसको देखकर शंखचूड रथ से उतरकर उसे प्रणाम किया ॥५१॥ अग्नि शिखा के समान तेजस्वी

देवीमंत्रपूर्वकम् । राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च ॥५४॥ देवी चिक्षेप शक्तिश्च विशालां योजनायताम् । राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डां चकार ह ॥५५॥ जग्राह मंत्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा । निक्षेपणं निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी ॥५६॥ मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः । यावदस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति ॥५७॥ यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नवयोषितः । तावदस्य जरामृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः ॥५८॥ इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम् । शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ॥५९॥ ग्रस्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयङ्करी । दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः ॥६०॥ खड्ग चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं तथा । दिव्यास्त्रेण दानवेंद्रः शतखंडं चकार सः॥६१॥ पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम् । सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः ॥६२॥ वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयङ्करी । बभंज च रथं तस्य जघान सारथिं सती ॥६३॥ सा च शूलं प्रचिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् । वामहस्तेन जग्राह शंखचूडः स्वलीलया ॥६४॥ मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः । बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च ॥६५॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् । न चकार

वह अस्त्र ऊपर चला गया शंखचूड ने भक्तिपूर्वक पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर उस अस्त्र को प्रणाम किया ॥५२॥ इसके बाद काली देवी ने मन्त्रपूर्वक उसके ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया किन्तु शंखचूड ने ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से उसे शान्त कर दिया ॥५३॥ उस समय देवी ने शंखचूड पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया और शंखचूड ने भी उसे दिव्यास्त्र के प्रयोग से शान्त कर दिया ॥५४॥ उसके बाद देवी ने शंखचूड पर योजन परिमाण विस्तृत शक्ति का प्रयोग किया और राजा शंखचूड ने दिव्यास्त्र समूह से उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिया ॥५५॥ देवी ने मंत्र से पवित्र बने हुए पाशुपातास्त्र उठाया किन्तु आकाशवाणी ने उसका प्रयोग करने से रोक दिया ॥५६॥ **आकाशवाणी ने कहा**— जब तक शंखचूड के गले में श्रीहरि का मन्त्रकवच है तब तक उसकी मृत्यु पाशुपातास्त्र से नहीं हो सकती है ॥५७॥ जब तक इसकी पत्नी का सतीत्व बना रहेगा तब तक इसको जरा और मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती हैं, यह ब्रह्माजी का वरदान है ॥५८॥ इस आकाशवाणी को सुनकर भद्रकाली ने उस पर पाशुपातास्त्र का प्रहार नहीं किया । उन्होंने सौ लाख दानवों को भूख के कारण खा लिया॥५९॥ उस समय वे अत्यन्त भयङ्कर बन गयी थी । वे शंखचूड को खाने के लिए गयीं । किन्तु अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रों के प्रयोग से शंखचूड ने उनको रोक दिया ॥६०॥ इसके बाद काली ने ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान तेजोयुक्त खड्ग का प्रहार किया, किन्तु दानवराज ने दिव्यास्त्र के द्वारा उसके सौ टुकड़े कर दिया ॥६१॥ इसके बाद महादेवी उसको खाने के लिए फिर गयीं उस समय सभी सिद्धों में श्रेष्ठ दानवेश्वर ने अपना आकार बहुत बढ़ा लिया ॥६२॥ भयंकर आकार वाली काली ने क्रोध कर के अपनी मुष्टि के प्रहार से उसके रथ को तोड़ दिया और सारथी को मार दिया ॥६३॥ उन्होंने प्रलयाग्नि की ज्वाला के समान त्रिशूल को अपने वायें हाथ से प्रहार शंखचूड पर किया । किन्तु शंखचूड ने उसे अपने बायें हाथ से पकड़ लिया ॥६४॥

बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् ॥६६॥ देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा । नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः ॥६७॥ गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता ॥६८॥ ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् । निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥६९॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम् । आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रांतो महारणे ॥७०॥ दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा । पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शंकरांतिकम् ॥७१॥ उवाच रणवृत्तांतं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् । श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम्॥७२॥ लक्षं च दानवेंद्राणामवशिष्टं रणेऽधुना । भुंजंत्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर ॥७३॥ संग्रामे दानवेन्द्रं च हंतुं पाशुपतेन वै । अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी ॥७४॥ राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः । न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥७५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तब देवी ने शंखचूड पर अपने मुक्के से प्रहार किया, उसके कारण दैत्य शंखचूड क्षणभर के लिए मूर्छित हो गया ॥६५॥ और क्षणभर में होश में आकर खड़ा हो गया । उसने देवी के साथ बाहु युद्ध न करके उनको प्रणाम किया ॥६६॥ उसने अपने तेज से देवी के अस्त्र को काट दिया । मातृभक्ति से प्रेरित होकर उसने देवी के ऊपर अस्त्र का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि वह भगवान् विष्णु का भक्त था ॥६७॥ क्रुद्ध होकर देवी ने उस असुर को पकड़कर बार-बार घुमाया और ऊपर की ओर फेंक दिया ॥६८॥ शंखचूड बड़े ही वेग से ऊपर से गिरा और गिरकर भद्रकाली को प्रणाम करके खड़ा हो गया ॥६९॥ वह हर्षपूर्वक श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित विमान पर चढ़कर युद्ध करने लगा ॥७०॥ भूख के कारण देवी दैत्यों के खून को पी गयीं । दैत्यों को खाकर और उनका रक्त पीकर देवी भगवान् शंकर के पास गयीं ॥७१॥ उन्होंने युद्ध का सारा वृत्तान्त शंकरजी को सुनाया और उसे सुनकर शंकरजी जोर से हँसे । वह हँसी ही दैत्यों का विनाश करने वाली थी ॥७२॥ उन्होंने कहा अब युद्ध भूमि में एक लाख दैत्य बच गये हैं । मैं उन सबों को खा रही थी किन्तु जो निकल गये वे ही दैत्य बचे हैं ॥७३॥ मैं तो पाशुपातास्त्र के प्रयोग से दानवेन्द्र को मारना चाहती. थी किन्तु आकाशवाणी ने बतलाया कि दानवेन्द्र पाशुपतास्त्र से अबध्य हैं ॥७४॥ वह राजा भी महाज्ञानी, महाबली और महापराक्रमी है । उसने मेरे ऊपर अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया किन्तु मेरे बाण को उसने काट दिया ॥७५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद ॥१॥ शंख़चूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च । ननाम परया भक्त्या शिरसा दंडवद्भुवि ॥२॥ तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः । तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम्॥३॥ शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ ॥४॥ न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः । रथस्थः शंखचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥५॥ दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह । रणे ये ये मृताः शंभुर्जीवयामास तान्विभुः ॥६॥ एतस्मिन्नंतरे वृद्धब्राह्मणः परमातुरः । आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥७॥** बृद्धब्राह्मण उवाच– **देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय सांप्रतम् । त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वांछितम् ॥८॥ निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च सांप्रतम् । पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥९॥ ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः । कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया ॥१०॥ तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव च । शंखचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति ॥११॥ गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह । अथ शंभुर्हरिः शूलं जग्राह दानवं प्रति ॥१२॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम्।**

शिवजी और शंखचूड का युद्ध, शिव के त्रिशूल से शंखचूड का भस्म होना और सुदामा के रूप में गोलोक जाना

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! उन सारी बातों को सुनकर तत्त्वज्ञान में निपुण शिवजी अपने गणों के साथ युद्ध स्थल में गये ॥१॥ शिवजी को देखकर शंखचूड अपने विमान से उतरा और परम भक्ति के साथ शंकरजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥२॥ शंकरजी को प्रणाम करके वह पुनः विमान पर चढ़ गया । उसने शीघ्र ही कवच पहन कर धनुष धारण किया ॥३॥ इसके पश्चात् पूरे सौ वर्षों तक शंकरजी तथा शंखचूड का युद्ध चलता रहा । इन दिनों में दोनों में किसी का भी न जय हुआ और न पराजय ॥४॥ कभी भगवान् शंकर अपना शस्त्र रखकर वृषभ पर विश्राम कर लेते थे तो कभी शंखचूड़ अपना शस्त्र रखकर रथ पर ही विश्राम कर लेता था ॥५॥ शंकरजी ने सैकड़ों दैत्यों को मार दिया । देवपक्ष के जो योद्धा मरते थे शंकरजी उन्हें जिला देते थे ॥६॥ उस समय वहाँ एक परम दुःखी वृद्ध ब्राह्मण आये । युद्ध में आकर उन्होंने दानवेन्द्र से कहा ॥७॥ **वृद्ध ब्राह्मण ने कहा**– हे राजन् ! मुझे आप भिक्षा दीजिये । आप तो सभी संपत्तियों को प्रदान करने वाले हैं ॥८॥ मैं निरीह भूखा प्यासा ब्राह्मण हूँ । पहले तुम देने की प्रतिज्ञा करो तो मैं अपनी अभिलाषा व्यक्त करूँगा ॥९॥ राजेन्द्र शंखचूड प्रसन्न हो गये और देने के लिए स्वीकार कर लिए । उसके बाद ब्राह्मण ने कहा कि मैं आपका श्रीहरि कवच चाहता हूँ ॥१०॥ उसको सुनकर शंखचूड ने उस दिव्य कवच को श्रीहरि को प्रदान कर दिया । श्रीहरि उस कवच को लेकर शंखचूड के रूप में तुलसी

दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥१३॥ तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम् । शिवकेशवयोरन्यैर्दुर्वहं च भयंकरम् ॥१४॥ धनुः सहस्रं दैर्ध्येण प्रस्थेन शतहस्तकम् । सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्दिशम् ॥१५॥ संहर्तुं सर्वब्रह्मांडमलं तत्स्वीयलीलया । चिक्षेप तोलनं कृत्वा शंखचूडे च नारद ॥१६॥ राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणांबुजम् । ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया ॥१७॥ शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि । चकार भस्मसात्तं च सरथं चाथ लीलया ॥१८॥ राजा धृत्वादिव्यरूपं किशोरं गोपवेषकम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥१९॥ रत्नेंद्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः । गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ ॥२०॥ गत्वा ननाम शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुनि । भक्त्या च चरणांभोजं रासे वृन्दावने वने ॥२१॥ सुदामानं च तौ दृष्ट्वा प्रसन्नवेदनेक्षणौ । क्रोडे चक्रतुरत्यन्तं प्रेम्णाऽतिपरिसंयुतौ॥२२॥ अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम् । अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ॥२३॥ नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने । प्रशस्तं शंखतोयं च देवानां प्रीतिदं परम् ॥२४॥ तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंभुना विना । शंखशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा ॥२५॥ स स्नातः

के पास गये ॥११॥ वहाँ जाकर वे माया पूर्वक तुलसी में अपने वीर्य का आधान किए । उसके पश्चात् शंकरजी ने श्रीहरि के त्रिशूल को शंखचूड पर प्रहार करने के लिए उठाया ॥१२॥ वह त्रिशूल ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालिक सूर्य के समान देदीप्यमान था । उसको कोई रोक नहीं सकता था । शत्रुओं को मारने वाला वह अव्यर्थ त्रिशूल था ॥१३॥ उसमें चक्र के समान तेज था और वह सभी शस्त्रों में प्रधान था । वह इतना भयंकर था कि उसको शिव और विष्णु को छोड़कर कोई दूसर उठा नहीं सकता था ॥१४॥ वह हजार धनुष लम्बा और सौ हाथ चौड़ा था । वह सजीव ब्रह्म स्वरूप था और उसके रूप में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं था ॥१५॥ वह आसानी से सम्पूर्ण ब्रह्माड का संहार करने में समर्थ था । शंकरजी ने उस त्रिशूल को उठाकर शंखचूड पर फेंका॥१६॥ उस समय राजा शंखचूड ने योगासन लगा लिया और भगवान् विष्णु के चरणों का ध्यान करने लगा ॥१७॥ वह त्रिशूल भी चारो ओर भ्रमण करके उस दानवराज के ऊपर गिरा और बड़ी आसानी से रथ के साथ ही शंखचूड को भस्म कर दिया ॥१८॥ राजा शंखचूड दो भुजाओं वाले मुरली धारण किए हुए दिव्य किशोर गोप का वेष धारण करके रत्न के आभूषणों से भूषित होकर ॥१९॥ करोड़ो गोपों से परिवृत होकर गोलोक से आये हुए विमान पर बैठकर गोलोक चले गये ॥२०॥ उन्होंने जाकर राधाकृष्ण को प्रणाम किया । उस समय भगवान् गोलोक के वृन्दावन में थे उनके चरणों में उन्होंने भक्ति पूर्वक प्रणाम किया ॥२१॥ राधा और कृष्ण सुदामा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक अपनी गोद में बैठाये ॥२२॥ इसके बाद वह त्रिशूल अत्यन्त वेग के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के पास लौट गया । शंखचूड की हड्डियों से शंख की उत्पत्ति हुई ॥२३॥ शंख देवताओं के पूजन में अनेक प्रकार

सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शंखवारिणा । शंखो हरेरधिष्ठानं यत्र शंखस्ततो हरिः ॥२६॥ तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् । स्त्रीणां च शंखध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः ॥२७॥ भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः । शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह ॥२८॥ प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः । सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानंदसंयुताः ॥२९॥ नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः । बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् । प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनींद्रप्रवरादयः ॥३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

◆

से सदा पवित्र रहने वाला है । शंख का पवित्र जल देवताओं को प्रसन्न करने वाला होता है ॥२४॥ शंकरजी को छोड़कर जहाँ कही भी शंख का जल तीर्थ जल के समान रहता है, वहाँ पर लक्ष्मी स्थिर हो जाती हैं ॥२५॥ जो शंख के जल से स्नान करता है, उसको सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है । जहाँ पर शंख रहता है, वहाँ पर श्रीहरि का निवास होता है ॥२६॥ वहीं पर लक्ष्मीजी का भी निवास होता है सारे अमंगल नष्ट हो जाते हैं किन्तु स्त्रियों तथा शूद्रों द्वारा शंख की ध्वनि किए जाने पर लक्ष्मीजी वहाँ से हटकर दूर चली जाती हैं ॥२७॥ स्त्रियों तथा शूद्रों द्वारा की गयी शंखध्वनि को सुनकर लक्ष्मी भयभीत और रुष्ट होकर उस स्थान से बहुत दूर चली जाती हैं । शिवजी भी उस दानव का वध करके प्रसन्नता पूर्वक अपने गणों के साथ बैल पर सवार होकर शिवलोक चले गये और देवता भी परमानन्द सम्पन्न होकर अपने राज्य को प्राप्त कर लिए ॥२८-२९॥ स्वर्ग में दुन्दुभि नामक वाद्य बजाये गये । गन्धर्व और किन्नर गीत गाने लगे, और शंकरजी के ऊपर निरन्तर पुष्प की वृष्टि होती रही । देवताओं और श्रेष्ठ मुनियों ने शंकरजी की प्रशंसा की ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह । तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च । शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥२॥ पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम् । पातिव्रत्यस्य नाशेन शङ्खचूडजिघांसया ॥३॥ दुंदभिं वादयामस तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दं च तद्द्वारे बोधयामास सुन्दरीम् ॥४॥ तच्छ्रुत्वा च रवं साध्वी परमानन्दसंयुता । राजमार्गे गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥५॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मंगलम् । वंदिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ ॥६॥ अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ । अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥७॥ दृष्ट्वा च पुरतः कांतं सा तं क्रांतं मुदान्विता । तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥८॥ रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी । तांबूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥९॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह । रणे गतं च प्राणेशं पश्यंत्याश्च पुनर्गृहे ॥१०॥ सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकांकिता । पप्रच्छ रणवृत्तांतं कांतं मधुरया गिरा ॥११॥** तुलस्युवाच– **असख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो । कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥१२॥ तुलसीवचनं**

शंखचूडवेषधारी श्रीहरि के द्वारा तुलसी में वीर्याधान की कथा

नारदजी ने कहा– नारदजी ने पूछा कि किस प्रकार से श्रीहरि ने तुलसी में अपने वीर्य का आधान किया; इस बात को आप मुझे बतलाने की कृपा करें । **श्रीनारायण ने कहा–** भगवान् नारायण भी देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए अपनी माया से शंखचूड के कवच को ले लिए ॥१-२॥ उसके बाद शंखचूड को मारने की इच्छा से वे शंखचूड का रूप धारण करके उसकी पत्नी के पास गये । वे उसकी पत्नी के पातिव्रत्य धर्म का नाश करके शंखचूड का नाश करना चाहते थे । उन्होंने तुलसी के द्वार के सन्निकट दुन्दुभि बजवाया और उसके द्वार पर जयघोष होने लगा । उससे तुलसी को पता चला कि युद्ध में विजयी होकर उसके पति आ गये हैं ॥३-४॥ उस ध्वनि को सुनकर सुन्दरी तुलसी ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक खिड़की के रास्ते राजमार्ग पर शंखचूड को देखा ॥५॥ उसने ब्राह्मणों को धन दान दिया और उनका मंगल कराया । वन्दियों, भिक्षुकों तथा याचकों को धन दान दिया ॥६॥ भगवान् भी रथ से उतरकर देवी तुलसी के भवन में गये । तुलसी का भवन अमूल्य रत्न एवं अत्यन्त सुन्दर ढंग से बना था ॥७॥ सामने अपने पति को देखकर सुन्दरी तुलसी ने उनको प्रणाम किया,- उनके पैरों को धोया और रोने लगी ॥८॥ उनको रत्नसिंहासन पर बैठाया उन्हें कर्पूर आदि से सुगन्धित पान खाने के लिए दिया ॥९॥ उसने कहा आज मेरा जीवन और जन्म दोनों सफल हो गया, क्योंकि आप युद्ध में जाकर पुनः विजयी होकर घर आ गये हैं ॥१०॥

श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः । शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः ॥१३॥ श्रीभगवानुवाच— आवयोः समरः कांते पूर्णमब्दं बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥१४॥ प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः । देवानामधिकारश्च प्रदत्तस्तस्य चाज्ञया ॥१५॥ अहं प्राप्तः स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः । इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥१६॥ रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद । सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥१७॥ सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा । तुलस्युवाच— को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया॥१८॥ दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे । तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥१९॥ दधार लीलया ब्रह्मन्सुमूर्तिं सुमनोहराम् । ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥२०॥ नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम् ॥२१॥ ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम् । तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्छां संप्राप लीलया ॥२२॥ पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह । तुलस्युवाच— हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च ॥२३॥ छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः । पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो ॥२४॥

मुस्कुराकर कटाक्षपात करती हुई उसने युद्ध का वृत्तान्त मधुर वाणी में पूछा ॥११॥ **तुलसी ने कहा—** हे प्रभो ! आप मुझे बतलाइये कि असंख्य विश्वों का संहार करने वाले शंकरजी के साथ युद्ध में आपने किस प्रकार विजयश्री प्राप्त की ॥१२॥ तुलसी की वाणी सुनकर शंखचूड के रूप में श्रीहरि जोर से हँसकर कहने लगे ॥१३॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे कामिनि ! हमदोनों का युद्ध पूरे वर्ष पर्यन्त चलता रहा उसमें सभी दानवों का नाश हो गया ॥१४॥ उसके बाद ब्रह्माजी ने हमदोनों पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की । मैने उनकी ही आज्ञा से देवताओं के अधिकार को लौटा दिया ॥१५॥ उसके बाद मैं अपने भवन में चला आया और शिवजी शिवलोक चले गये । इस तरह कहकर श्रीभगवान् ने शयन किया ॥१६॥ उस समय श्रीभगवान् तुलसी के साथ रमण करने लगे । उस समय तुलसी ने अनुभव किया कि आज ये हमारे पति तो भिन्न ही प्रकार से रमण कर रहे हैं ॥१७॥ इस बात को जानकर उसने सोच लिया कि ये हमारे पति नहीं है । **तुलसी ने पूछा—** अरे धूर्त ! तुम कौन हो ? तुमने मेरे साथ धूर्तता से संभोग किया है ॥१८॥ तुमने मेरे सतीत्व को भङ्ग कर दिया है, अतएव मैं तुम्हें शाप देती हूँ । तुलसी की बात सुनकर श्रीहरि शाप के भय से भयभीत हो गये ॥१९॥ उन्होंने तुलसी के समक्ष अपना सुन्दर रूप प्रकट कर दिया ॥२०॥ देवी तुलसी ने अपने समक्ष श्रीभगवान् का दर्शन किया । उनका शरीर नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण का था शरत् कालीन कमल के समान उनके नेत्र थे करोड़ों कामदेव से भी अधिक उनका सौन्दर्य था । वे रत्नों के आभूषणों से भूषित थे ॥२१॥ उनका मुख मन्द मुस्कान से सुशोभित था । वे पीताम्बर धारण किए हुए थे उनको देखकर वह कामिनी मूर्छित हो गयी ॥२२॥ उसके बाद जब वह होश में आयी तो उसने कहा **तुलसी ने कहा—** हे नाथ ! आप तो पत्थर के समान हैं । आप में दया नहीं है ॥२३॥ छल पूर्वक मेरा धर्म भङ्ग करके आपने मेरे स्वामी को मारा है, क्योंकि

**तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना । ये वदंति च साधुं त्वां ते भ्रांता हि न संशयः ॥२५॥ भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः । भृशं
रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥२६॥ ततश्च करुणां दृष्टवा करुणारससागरः । नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥२७॥** श्रीभगवानुवाच–
**तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम् । त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥२८॥ कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात् ।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥२९॥ इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च । रामे रम मया सार्धं त्वं रमासदृशी भव ॥३०॥
इयं तनुर्नदीरूपा गंडकीति च विश्रुता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते ॥३१॥ तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति । तुलसीकेशसंभूता
तुलसीति च विश्रुता ॥३२॥ त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥३३॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके
मम सन्निधौ । भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरि ॥३४॥ गोलोके विरजातीरेरासे वृन्दावने वने । भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥३५॥
माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने । वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः ॥३६॥ तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम् । अधिष्ठानं च**

आपका हृदय पत्थर के समान है और आप निर्दय हैं ॥२४॥ अतएव आप पाषाण स्वरूप हो जायँ । जो लोग आपको साधु बतलाते हैं, वे भ्रम में है॥२५॥
आपने बिना किसी अपराध के अपने भक्त को क्यों मारा । इसके बाद शोकग्रस्त होकर वह विलाप करती हुई बहुत रोयी ॥२६॥ उसके बाद उसकी करुणा
को देखकर करुणा के सागर श्रीभगवान् उसको नीति पूर्वक समझाने लगे ॥२७॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे भद्रे ! तुमने मुझको प्राप्त करने के लिए बहुत समय
तक भारत वर्ष में तपस्या किया है और तुमको प्राप्त करने के लिए शंखचूड ने भी दीर्घकाल तक तपस्या की ॥२८॥ उसने तो तुमको प्राप्त करके दीर्घ
काल तक विहार कर लिया । अब तो तुम्हारी भी तपस्या का फल प्रदान करना उचित है ॥२९॥ तुम अपने इस शरीर का परित्याग करके और दिव्य
शरीर प्राप्त करके लक्ष्मीजी के समान मेरे साथ विहार करो ॥३०॥ तुम्हारा यह शरीर नदी रूप हो जायेगा । उसका नाम गंडकी होगा । यह नदी अत्यन्त
पवित्र तथा भारत में पुण्य प्रदान करने वाली होगी ॥३१॥ तुम्हारे केश पवित्र वृक्ष हो जायेंगे । तुलसी के केश से उत्पन्न होने के कारण वृक्ष का नाम तुलसी
होगा ॥३२॥ हे वरानने ! श्रीभगवान् की पूजा में तीनों लोकों में विद्यमान पुष्पों और पत्रों में तुलसी पत्र ही प्रधान होगा ॥३३॥ हे सुन्दरि ! स्वर्गलोक,
मर्त्यलोक और पाताल लोक तथा गोलोक में तुम सभी पुष्पों में श्रेष्ठ वृक्ष तुलसी बन जाओ ॥३४॥ गोलोक में, विरजा नदी के तट पर, रासमण्डल में,
वृन्दावन में, भाण्डीर वन में, मनोहर चम्पक वन में तथा वृन्दावन में ॥३५॥ माधवी, केतकी, कुन्द, मल्लिका तथा मालती के वन में तुम्हारा निवास होगा।
तुम्हारा पुण्य स्थानों पुण्यप्रद निवास होगा ॥३६॥ तुलसी वृक्ष के पवित्र मूल में सभी तीर्थों का निवास होगा । वहीं पर सभी देवताओं का तथा मेरा निवास

तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥३७॥ तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च । तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने ॥३८॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥३९॥ सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः । सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः॥४०॥ गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत् । तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति ॥४१॥ तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥४२॥ नित्यं यस्तुलसीतोयं भुंक्ते भक्त्या च मानवः । लक्षाश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति स मानवः ॥४३॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः । प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥४४॥ तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृहणाति यो नरः । पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥४५॥ तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति । स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४६॥ करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः । स याति कुंभीपाकं च यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥४७॥ तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत् । रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं प्राप्यते ध्रुवम् ॥४८॥ पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे । तैलाभ्यंगं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि संध्ययोः ॥४९॥ अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोन्विता नराः । तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥५०॥ त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति । श्राद्धे

होगा । और मैं अपने ऊपर तुलसी पत्र को चढ़वाना चाहूँगा ॥३७-३८॥ जो तुलसी के जल से मेरा अभिषेक करता है, उसे सभी तीर्थों में स्नान करने तथा सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त होता है ॥३९॥ हजारों घड़े अमृत के जल से अभिषेक करने का जो फल होता है, उतना ही फल मुझ पर तुलसी का दल चढ़ाने से होता है ॥४०॥ दश हजार गायों का दान करने का जो फल होता है, वही फल कार्तिक मास में मुझ पर तुलसी पत्र चढ़ाने स होता है ॥४१॥ मृत्यु के समय जिसको तुसली पत्र मिश्रित जल मिल जाता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में सम्मानित होता है ॥४२॥ जो मनुष्य तुलसी पत्र मिश्रित जल पीता है वह एक लाख अश्वमेघ याग करने का फल प्राप्त करता है ॥४३॥ जो व्यक्ति अपने हाथ में तथा अपने शरीर पर तुलसी पत्र रखकर अपना शरीर त्यागता है वह विष्णुलोक में जाता है ॥४४॥ जो व्यक्ति तुलसी के काष्ठ की माला को धारण करता है, वह पद-पद पर अश्वमेघयाग करने का फल प्राप्त करता है ॥४५॥ जो व्यक्ति तुलसी को हाथ में लेकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, वह उतने समय तक कालसूत्र नामक नरक में निवास करता है जब तक कि सूर्य और चन्द्रमा [illegible] रहते हैं । जो व्यक्ति तुलसी के सन्निकट में मिथ्या शपथ करता है, वह चौदह इन्द्रों के जीवनकाल पर्यन्त कुम्भीपाक नामक नरक में निवास करता हैं ॥४६-४७॥ मृत्यु के समय जो व्यक्ति तुलसी के जल का एक भी कण प्राप्त कर लेता है, वह रत्ननिर्मित विमान पर चढ़कर वैकुण्ठ में जाता है ॥४८॥ जो व्यक्ति पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी के दिन तथा सूर्यग्रहण के समय में तेल लगा करके

व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥५१॥ भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति । शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥५२॥ वृक्षाधिष्ठातृदेवी त्वं गोलोके च निरामये । कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यक्रीडां करिष्यसि ॥५३॥ नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा । लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यसि ॥५४॥ त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ । रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः ॥५५॥ अहं च शैलरूपेण गंडकीतीरसन्निधौ । अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥५६॥ कोटिसंख्यात्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः । तच्छिलाकुहरे छिद्रं करिष्यंति मदीयकम् ॥५७॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् । नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥५८॥ एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्। लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया ॥५९॥ द्वारद्वये चतुश्चकं गोष्पदेन विराजितम् । रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६०॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम् । तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६१॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम् । विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥६२॥ स्थूलं वर्तुलाकारं रहितं वनमालया । द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६३॥ मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं

दोपहर में, रात्रि में या दोनो सन्ध्याओं में, अशौच में, अपवित्रावस्था मे, रात्रि में पहने हुए वस्त्र को पहनकर तुलसी दल को उतारने का काम करते हैं उनको भगवान् श्रीहरि के शिर को काटने का पाप लगता है ॥४९॥ तीन दिनों तक तुलसी दल पवित्र रहता है । उसके द्वारा श्राद्ध, व्रत, दान तथा देवताओं की पूजा की जा सकती हैं ॥५०॥ पृथिवी पर अथवा जल में भी गिरा हुआ तुलसीदल शुद्ध रहता है । और उससे भिन्न कार्य में उस तुलसी दल को धो लेना चाहिए ॥५१॥ भगवान् पर तुलसीदल 'ॐ विष्णवे नमः' इस मंत्र से चढ़ाना चाहिए । हे वृक्ष की अधिष्ठातृ देवि, आप निष्पाप तथा निर्दोष गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ निवास करेंगी ॥५२-५३॥ तुम्हारा जो अंश अत्यन्त पुण्य प्रदान करने वाली भारत में गोमती नदी की अधिष्ठात्री देवी होगी उसका पति मेरे अंशभूत क्षारसागर (लवण समुद्र) होगा ॥५४॥ तुम स्वयं पूर्ण रूप से महासाध्वी हो, मेरे सन्निकट में, वैकुण्ठ में लक्ष्मी जी के ही समान मेरी पत्नी रूप में मेरे पास रहोगी ॥५५॥ तुम्हारे शाप के कारण मैं भारत में गंडकी नदी के तट पर पर्वत रूप में विद्यमान रहूँगा ॥५६॥ वहाँ पर तीक्ष्ण दाँतों वाले करोड़ कीट (कीड़े) अपने दाँतों से मेरे भीतर चक्र का निर्माण कर दिया करेंगे ॥५७॥ जो शिला एक द्वारवाली, चार चक्रों वाली और वनमाला के चिह्न से सुशोभित होगी उसका नाम लक्ष्मीनारायण होगा ॥५८॥ जिस शिला में एक द्वार और चार चक्र होंगे, किन्तु जो वनमाला से रहित होगी उस शिला का नाम लक्ष्मी जनार्दन होगा ॥५९॥ वनमाला के चिह्न से रहित, दो द्वारों वाली, चार चक्रों वाली तथा गौ के खुर के चिह्न से सुशोभित शिला का नाम रघुनाथ होगा ॥६०॥ वनमाला से रहित नवीन मेघ के सृदश वर्ण वाली तथा दो चक्रों वाली अत्यन्त छोटी शिला का नाम वामन होगा॥६१॥ अत्यन्त छोटी, दो चक्रों वाली, वनमाला से सुशोभित शिला का नाम श्रीधर होगा वह गृहस्थों को लक्ष्मी प्रदान करने वाली होगी ॥६२॥

बाणविक्षतम् । रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ।।६४।। मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रभूषणभूषितम् । राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम् ।।६५।।
द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम् । अनंताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।६६।। चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम् । सगोष्पदं मध्यमं
च विज्ञेयं मधुसूदनम् ।।६७।। सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम् । द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ।।६८।। अतीव विस्तृतास्यं च
द्विचक्रं विकटं सति । नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ।।६९।। द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम् । लक्ष्मीनृसिंह विज्ञेयं गृहिणां
च सुखप्रदम् ।।७०।। द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीक्रं च समं स्फुटम् । वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ।।७१।। प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च
नवीननीरदप्रभम् । सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ।।७२।। द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम् । संकर्षणं तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां
सदा ।।७३।। अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम् । सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ।।७४।। शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।

बड़ी गोल, वनमाला रहित, और दो चक्रों वाली शिला का नाम दामोदर जानना चाहिए ।।६३।। मध्यम आकार वाली गोल दो चक्रों वाली और बाण के चिह्न से सुशोभित शिला को बाण तथा तुणीर से समन्वित रणराम जानना चाहिए ।।६४।। मध्यम आकार वाली सात चक्रों वाली छत्र तथा भूषण के चिह्नों से समलंकृत शिला का नाम राजराजेश्वर जानना चाहिए यह मनुष्यों को राजा के समान सम्पत्ति प्रदान करने वाली होती है ।।६५।। चौदह चक्रों वाली नवीन मेघ के समान कान्ति वाली मध्यम आकार वाली शिला का नाम अनंत जानना चाहिए । यह शिला उपासकों को चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली होती है ।।६६।। जिस शिला का आकार चक्र के समान होता है, दो चक्रों, लक्ष्मी के चिह्नों वाली तथा मेघ के समान कान्ति वाली एवं गौ के खुर के चिह्नों वाली होती है उसका नाम मधुसूदन है ।।६७।। जिसमें एक चक्र होता है, उस शिला में चक्र का चिह्न गुप्त होता है, उसका नाम गदाधर है । दो चक्रों तथा अश्व के समान मुखवाली शिला का नाम हयग्रीव है ।।६८।। विस्तृत मुखवाली, दो चक्रों वालीं तथा विकट आकार वाली शिला का नाम नरसिंह है। यह मनुष्यों को शीघ्र ही संसार से वैराग्य प्रदान कर देती है ।।६९।। दो चक्रों वाली विस्तृत मुख वाली तथा वनमाला से सुशोभित शिला का नाम लक्ष्मीनृसिंह है । यह गृहस्थों को सुख प्रदान करने वाली होती है ।।७०।। जिस शिला के द्वारदेश में लक्ष्मी का चिह्न और दो चक्र होते हैं, उस सभी अभिलाषित फल प्रदान करने वाली शिला का नाम वासुदेव जानना चाहिए ।।७१।। नवीन मेघ के समान कान्ति वाले, सूक्ष्म चक्र वाले और अनेक छिद्रों वाले शालग्राम का नाम प्रद्युम्न जानना चाहिए । ये गृहस्थों को सुख प्रदान करने वाले हैं ।।७२।। जिसमें सटे हुए दो चक्र हों, और पृष्ठभाग विस्तृत हो वे शालग्राम गृहस्थ को सुख देने वाले संकर्षण नामक होते हैं ।।७३।। अनिरुद्ध भगवान् पीली कान्ति वाले गोल तथा सुन्दर होते हैं । इनको विद्वज्जन गृहस्थों को सुख प्रदान

तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता ॥७५॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । तानि सर्वाणि नश्यंति शालग्रामशिलार्चनात् ॥७६॥ छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः । दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥७७॥ विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिंगले हानिरेव च । भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥७८॥ व्रतं स्नानं प्रतिष्ठां च श्राद्धं च देवपूजनम् । शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति ॥७९॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च ॥८०॥ पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति । तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥८१॥ (शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं सदा चरेत् । सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा ॥१॥) शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुंक्ते च यो नरः । सुरेप्सितं प्रसादं च लभते नात्र संशयः ॥८२॥ तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च । जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥८३॥ तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम् । यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि ॥८४॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च । तं दृष्ट्वा च पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः ॥८५॥ तत्पादरजसा देवी सद्यःपूता बसुन्धरा । पुंसां लक्षं

करने वाला बतलाते हैं ॥७४॥ जहाँ पर शालग्राम की शिला होती हैं, वहाँ पर श्रीहरि का सन्निधान बना रहता है । वहीं पर सभी तीर्थों के साथ लक्ष्मीजी का निवास होता है ॥७५॥ शालग्राम शिला की अर्चना करने से ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप होते हैं, वे सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥७६॥ छत्राकार शिला की अर्चना से राज्य मिलता है, गोल शिला की अर्चना करने से लक्ष्मीजी की प्राप्ति होती है, गाड़ी के आकार वाली शिला की अर्चना से दुःख मिलता है, जिसके अग्रभाग में त्रिशूल का चिह्न हो उस शिला की अर्चना से मृत्यु मिलती हैं ॥७७॥ विकृत मुखवाली शिला से दारिद्र्य की प्राप्ति होती है, पीली शिला की पूजा से हानि होती है, टूटी हुई शिला से रोग होता है, फटी हुई शिला की पूजा से मृत्यु होती है ॥७८॥ शालग्राम के सन्निकट में व्रत, स्नान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन करने से अत्यन्त उत्कृष्टता होती है ॥७९॥ शालग्राम के सन्निकट में रहने वाले व्यक्ति को सभी तीर्थों में स्नान तथा सभी यज्ञों को करने का फल प्राप्त, हो जाता है ॥८०॥ चारो वेदों का पाठ करने तथा तपस्या करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उस फल की प्राप्ति शालग्राम की शिला की अर्चना करने से होती हैं ॥८१॥ जो जल से सदा शालग्राम शिला का अभिषेक करता है उसको सभी दानों को करने तथा पृथिवी की परिक्रमा करने का फल प्राप्त होता है जो व्यक्ति प्रतिदिन शालग्राम शिला का जल पीता है वह देवताओं की कृपा को प्राप्त करता है ॥८२॥ सभी तीर्थ उसका स्पर्श प्राप्त करना चाहते हैं । वह जीव मुक्त तथा पवित्र होकर श्रीभगवान् के लोक में जाता है ॥८३॥ वह श्रीभगवान् के लोक में असंख्य प्राकृत प्रलयकाल पर्यन्त श्रीभगवान् की दासता का सुअवसर प्राप्त करता है ॥८४॥ ब्रह्महत्या के समान जितने भी भयंकर पाप हैं उसको देखकर उसी तरह से पलायन कर जाते हैं जैसे गरुड को देखकर सर्प पलायन कर जाते हैं ॥८५॥ उसके चरणों की धूल से पृथिवी पवित्र हो जाती है । जिस वंश में उसका

तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः ॥८६॥ शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥८७॥
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगात्प्रमुच्यते । विष्णोः पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥८८॥ शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः । स
याति कुम्भीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥८९॥ शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत् । स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि ॥९०॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः । तस्य जन्मांतरे कांते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥९१॥ तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च ।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥९२॥ शालग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्र एव च । यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ॥९२॥
सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च । तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥९४॥ त्वं प्रिया शंखचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि । शंखेन
सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा ॥९५॥ इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां हि विरराम च नारद । सा तं देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥९६॥ यथा
श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि । स जगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः ॥९७॥ लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद । हरेः
प्रियाश्चतस्त्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥९८॥ सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गंडकी नदी । ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥९९॥ कुर्वंति तत्र

जन्म होता है, उस वंश के लाखों पितृगणों का उद्धार हो जाता है ॥८६॥ मृत्यु के समय जिसको शालग्राम शिला का जल प्राप्त हो जाता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में जाता है ॥८७॥ वह व्यक्ति निर्वाण मुक्ति को प्राप्त करता है, वह कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है और वह भगवान् विष्णु के चरणों में लीन हो जाता है ॥८८॥ ज्रो शालग्राम की शिला पकड़कर झूठ बोलता है; वह ब्रह्मांजी के जीवन पर्यन्त कुम्भीपाक नामक नरक में निवास करता है ॥८९॥ जो शालग्राम की शिला को पकड़कर प्रतिज्ञा करके उसका निर्वाह नहीं करता है वह लाखों मन्वन्तर तक असिपत्रवन नामक नरक में जाता है ॥९०॥ जो व्यक्ति तुलसी का पत्र तोड़कर शालग्राम की शिला पर चढ़ाता है, उसका अपनी पत्नी से विच्छेद हो जाता है ॥९१॥ जो तुलसी का पत्ता तोड़कर शंख पर चढ़ता है; वह पत्नी से रहित होकर सात जन्मों तक रोगी होता है ॥९२॥ जो शालग्राम तुलसी तथा शंख को एक साथ रखता है, वह महाज्ञानी श्रीहरि का प्रिय होता है ॥९३॥ जो व्यक्ति जिस नारी में एक बार भी अपने वीर्य का आधान कर लेता है उसका उससे वियोग होने पर उन दोनों को कष्ट होता है ॥९४॥ तुम तो एक मन्वन्तर तक शंखचूड की पत्नी रह चुकी हो अतएव शंखचूड के साथ तुम्हारा विलगाव दुःखद है ही॥९५॥ हे नारदजी ! श्रीहरि इतना कहकर चुप हो गये । तुलसी भी अपने उस शरीर को छोड़कर दिव्य रूप को धारण कर ली ॥९६॥ और लक्ष्मीजी के ही समान श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में निवास करने लगी । उसके साथ श्रीभगवान् वैकुण्ठ चले गये ॥९७॥ हे नारदजी ! इस प्रकार लक्ष्मी, गंगा, सरस्वती

कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने । जले पतन्ति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम् ॥१००॥ स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया । अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद सांप्रतम् ॥१॥ केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने । तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥२॥** सूत उवाच– **नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम् ॥३॥** नारायण उवाच– **हरिः संपूज्य तुलसीं रेमे च रम्या सह । रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥४॥ सेहे च लक्ष्मीर्गंगा**

और तुलसी श्रीभगवान् की चार पत्नियाँ हुईं ॥९८॥ तुलसी के देह से शीघ्र ही गण्डकी नदी प्रवाहित होने लगी और उसके तट पर श्रीहरि भी पर्वत का रूप धारण कर लिए ॥९९॥ हे मुने ! वहाँ पर कीटविशेष श्रीभगवान् की अनेक प्रकार की शिला का निर्माण करते हैं । वे शिलायें गंडकी के जल में गिरकर फल प्रदान करने वाली बन जाती हैं ॥१००॥ जो शिला पृथिवी पर ही रह जाती हैं, वे सूर्य के सन्ताप से पीली हो जाती हैं । इस तरह से मैंने आपको सारी बातें बतला दी अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?॥१०१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

तुलसी पूजन, तुलसी का ध्यान, तुलसीनामाष्टक और तुलसीस्तव इत्यादि का वर्णन

नारदजी ने कहा– जब श्रीभगवान् ने तुलसी को पूज्य बना दिया तो उस तुलसी की पूजा का विधान तथा उसका स्तोत्र आप मुझे बतलायें ॥१॥ सर्वप्रथम किसने तुलसी की पूजा की और किस स्तोत्र से तुलसी की स्तुति की । अथवा वे देवी किस प्रकार से पूजित हुयीं ॥२॥ **सूतजी ने कहा–** नारदजी की वाणी सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारायण जोर से हँसकर सभी पापों को नष्ट करने वाली पवित्र कथा को कहना प्रारम्भ किए ॥३॥ **नारायण ने कहा–** श्रीहरि ने

च तस्याश्च नवसंगमम् । सौभाग्यगौरवं कोपात्तं न सेहे सरस्वती ॥५॥ सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ । व्रीडया चापमानेन साऽन्तर्धानं चकार ह ॥६॥ सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धयोगिनी । जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो ॥७॥ हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्। तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम् ॥८॥ तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम् । पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह॥९॥ लक्ष्मी माया कामवाणी बीजपूर्वं दशाक्षरम् । वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायांतमेव च ॥१०॥ अनेन कल्पतरुणा मंत्रराजेन नारद । पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥११॥ घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च । नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद ॥१२॥ हरिस्तोत्रेण पुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात् । प्रसन्ना चरणांभोजे जगाम शरणं शुभा ॥१३॥ वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति । अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि ॥१४॥ सर्वे त्वां धारयिष्यंति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः । इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥१५॥ नारद उवाच– **किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम् । तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१६॥** नारायण उवाच– **अंतर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने**

तुलसी की पूजा की और लक्ष्मी एवं तुलसी के साथ आनन्दानुभव करने लगे और वे लक्ष्मीजी के ही समान तुलसी को भी सौभाग्यसम्पन्न और गौरवान्वित बना दिए ॥४॥ लक्ष्मी तथा गंगा ने भी श्रीभगवान् के साथ तुलसी के नवीन संयोग को वर्दास्त किया । किन्तु इस सौभाग्यजन्य गौरव को सरस्वती नहीं सह सकीं ॥५॥ उन्होंने श्रीहरि के सन्निकट ही तुलसी को पीट दिया । इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी वहाँ से अन्तर्धान हो गयीं ॥६॥ तुलसी समस्त सिद्धों की स्वामिनी और ज्ञानियों में सिद्धयोगिनी थीं । वे क्रोध के कारण श्रीहरि से भी अदृश्य हो गयीं ॥७॥ तुलसी को नहीं देखकर श्रीभगवान् ने सरस्वती को समझाया और उनसे अनुज्ञा लेकर वे तुलसी वन में गये ॥८॥ वहाँ जाकर स्नान करके उन्होंने तुलसी की पूजा की और भक्तिपूर्वक तुलसी की स्तुति किए ॥९॥ उन्होंने लक्ष्मीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) कामबीज (क्लीं) और वाणी बीज (ऐं) पूर्वक वृन्दावनी शब्द में चतुर्थी विभक्ति (ङे) लगाकर तथा अन्त में बह्नि पत्नी (स्वाहा) पद लगाकर (श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा) इस दशाक्षर मंत्र का उच्चारण किया ॥१०॥ हे नारद ! यह तुलसी का कल्पतरु मन्त्र है । इस मन्त्र से जो तुलसी की विधिपूर्वक पूजा करता है, उसको सब प्रकार की सिद्धि मिल जाती है ॥११॥ घी के दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प से श्रीभगवान् ने तुलसी की पूजा करके उनकी स्तुति की ॥१२॥ श्रीहरि के स्तोत्र से पुष्ट होकर तुलसी उस वृक्ष से प्रकट हुईं । प्रसन्न होकर वे श्रीभगवान् के चरण कमलों में चली गयीं ॥१३॥ श्रीभगवान् ने तुलसी को सबों का पूज्य होने का वरदान दिया । उन्होंने कहा हे सुन्दरि ! मैं तुम्हें अपने वक्षस्थल में तथा शिर पर धारण करूँगा ॥१४॥ सभी देवता तुमको अपने शिर पर धारण करेंगे । इस तरह से कहकर वे तुलसी को लेकर अपने भवन गये। नारदजी ने कहा– हे महाभाग ! आप मुझे तुलसी के ध्यान, स्तुति तथा पूजा के विधान को विस्तार के साथ बतलाएँ ॥१५-१६॥ नारायण ने कहा– जब

तदा । तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच– वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवंति च । विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम् ॥१८॥ पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने । तेन वृंदावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम् ॥१९॥ असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरंतरम् । तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च भजाम्यहम् ॥२०॥ असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा । तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम् ॥२१॥ देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना । तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः ॥२२॥ विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानंदो भवेद्ध्रुवम् । नंदिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह ॥२३॥ यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च । तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम् ॥२४॥ कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम् ॥२५॥ इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः । ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मनतां सतीम् ॥२६॥ रुदतीमवमानेन मानिनीं मानपूजिताम् । प्रिया दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि ॥२७॥ भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः । भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम् ॥२८॥ वरं विष्णुर्ददौ तस्यै सर्वपूज्या

तुलसी अन्तर्धान हो गयी तो तुलसी के विरह से व्याकुल होकर श्रीहरि तुलसीवन में जाकर तुलसी की स्तुति किए ॥१७॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** जहाँ पर वृन्द स्वरूप वृक्ष होते हैं इसीलिए विद्वज्जन उसे वृन्दा रूप से जानते है उन अपनी प्रियतमा की मैं सेवा करता हूँ ॥१८॥ जो देवी पहले वृक्ष में उद्भुत हुयी थीं इसीलिए सौभाग्य सम्पन्न वे वृन्दावनी के नाम से विख्यात हुईं मैं उनका भजन करता हूँ ॥१९॥ असंख्य विश्वों में जो सदा पूजित होती हैं उन विश्वपूजिता पूज्या की मैं सेवा करता हूँ ॥२०॥ हे देवि ! तुमने असंख्य विश्वों को पवित्र किया है ऐसी विश्वपावनी देवी का मैं विरह व्याकुल होकर स्मरण कर रहा हूँ ॥२१॥ जिसके बिना देवता पुष्पों के समूह से भी सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उन पुष्पों के सार स्वरूपिणी देवी को शोक संतप्त मैं देखना चाहता हूँ ॥२२॥ जिसकी प्राप्तिमात्र से भक्तों को आनन्द की प्राप्ति होती है, उसके कारण नन्दिनी नाम से विख्यात देवी मुझ पर प्रसन्न होएँ ॥२३॥ जिसकी समस्त विश्व में कोई भी तुलना नहीं है, उसके कारण तुलसी नाम से विख्यात देवी की मैं शरणागति करता हूँ ॥२४॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा और शाश्वत प्रियतमा हैं । अतएव कृष्ण के जीवन स्वरूपिणी देवी तुलसी मेरी रक्षा करें ॥२५॥ इस तरह से स्तुति करके लक्ष्मीपति भगवान् वहीं स्थित हो गये और उन्होंने अपने चरणों में प्रणाम करने वाली तुलसीदेवी का साक्षात्कार किया ॥२६॥ सम्मानित तथा मानिनी तुलसीदेवी को अपमान के कारण रोती हुई देखकर श्रीभगवान् ने शीघ्र ही उनको अपने वक्षःस्थल में बसा लिया ॥२७॥ इसके बाद श्रीभगवान् सरस्वती से आज्ञा लेकर तुलसी को अपने भवन में लाकर उनका सरस्वती से प्रेम कराये ॥२८॥ भगवान् विष्णु ने तुलसी को सर्वपूज्य होने का वरदान दिया और कहा कि तुम सबों के लिए शिरोधार्य, सबों

भवेरिति । शिरोधार्या च सर्वेषां वंद्या मान्या ममेति च ।।२९।। विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह । सरस्वती तामाकृष्य वासयामास
सन्निधौ।।३०।। लक्ष्मीर्गंगा सस्मिता च तां समाकृष्य नारद । गृहं प्रवेशयामास विनयेन सती तदा ।।३१।। वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नंदिनी च तुलसी कृष्णजीवनी ।।३२।। एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् । यः पठेत्तां सुसंपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।३३।।
कार्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मंगलम् । तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ।।३४।। तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या च
विश्वपावनीम्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।।३५।। कार्त्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च विष्णवे । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति
निश्चितम् ।।३६।। अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम् । बंधुहीनो लभेद्बन्धून्स्तोत्रश्रवणमात्रतः ।।३७।। रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत
बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी ।।३८।। इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं श्रृणु । त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव
च ।।३९।। तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना । तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम् ।।४०।। तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूता मनोहराम्।

के वन्दनीय और मेरी सम्मानिता पत्नी रहो ।।२९।। भगवान् विष्णु के वरदान से तुलसी सन्तुष्ट हो गयीं । सरस्वती ने तुलसी को पकड़कर उन्हें अपने साथ बैठाया।।३०।। मुस्कुराती हुई लक्ष्मी तथा गंगा विनय पूर्वक तुलसी को भवन में ले गयीं ।।३१।। वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी ।।३२।। ये तुलसी के आठ नाम हैं और यह स्तोत्र तुलसी के आठ नामों के अर्थ से युक्त हैं । जो व्यक्ति तुलसी की पूजा करके इस स्तोत्र का पाठ करता है वह अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है । कार्तिक पूर्णिमा के दिन तुलसी का जन्मदिन है, उसी दिन श्रीहरि ने तुलसी की पूजा की थी ।।३३-३४।। कार्तिक पूर्णिमा को तुलसी की पूजा करके जो व्यक्ति स्तुति करता है उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं, और वह भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ।।३५।। जो व्यक्ति कार्तिक मास में भगवान् विष्णु को तुलसीपत्र समर्पित करता है वह दशहजार गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है ।।३६।। पुत्रहीन पुत्र को प्राप्त कर लेता है और पत्नीविहीन पत्नी को प्राप्त कर लेता है । इस स्तोत्र के श्रवणमात्र से बन्धु रहित व्यक्ति अपने बन्धुओं को प्राप्त कर लेता है ।।३७।। रोगी रोग से मुक्त हो जाता है, बन्दी बन्धन से मुक्त हो जाता है, भयभीत व्यक्ति भय से रहित हो जाता है और पापी पाप मुक्त हो जाता है ।।३८।। मैंने आपको स्तोत्र बताया, अब आप तुलसी के ध्यान और पूजा विधि को सुनें । तुम भी जानते हो कि वेदों में काण्वशाखा है । उसके ही अनुसार तुलसी के वृक्ष में ही भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । तुलसी के वृक्ष में तुलसी का आवाहन करना चाहिए । तुलसी का ध्यान करके षोडश उपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिए । उनका पूजन पापों का विनाशक है ।।३९-४०।। पुष्पों में श्रेष्ठ मनोहर तुलसी की पूजा किए गये

कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥४१॥ पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम् । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥४२॥ शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी । जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥४३॥ इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत्सुधीः। उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नमवस्कन्धे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच— **तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुधोपमम् । ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥ पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः । केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे ॥२॥** नारांयण उवाच— **ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने । द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥ तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते । तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च ॥४॥** नारद उवाच— **को वा**

पाप रूप इन्धन को जला देने के लिए जलती हुई अग्नि की ज्वाला के समान है ॥४१॥ पुराणों में तथा वेदों में तुलसी की तुलना किसी से भी नहीं की गयी है । वे सबों से अधिक पवित्र हैं, इसीलिए उनको तुलसी कहा जाता है ॥४२॥ वे सबों के प्रिय, शिरोधार्य तथा विश्वपावनी हैं, इसीलिए उनको तुलसी कहते हैं । मैं जीव मुक्त तथा मुक्ति प्रदान करने वाली तथा श्रीहरि की भक्ति प्रदान करने वाली तुलसी की पूजा करता हूँ ॥४३॥ इस तरह से ध्यान करके, उनकी पूजा करके तथा स्तुति करके तुलसी को प्रणाम करना चाहिए । इस तरह से मैंने आपको तुलसी की कथा सुनायी, अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥४४॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

सावित्री देवी की पूजा तथा उनकी स्तुति का वर्णन

नारदजी ने कहा— मैंने अमृत के समान मनोहर तुलसी के उपाख्यान का श्रवण किया । अब आप मुझे सावित्री का उपाख्यान सुनायें ॥१॥ सुना गया है कि सावित्री देवी वेदमाता हैं, लोक में उनकी सर्व प्रथम पूजा किसने की और उसके पश्चात् किन लोगों ने किया ?॥२॥ **नारायण ने कहा—** वेदमाता सावित्री की सर्वप्रथम पूजा ब्रह्माजी ने की, उसके बाद वेदों ने उनकी पूजा की तथा उसके पश्चात् उनकी पूजा विद्वानों ने की ॥३॥ भारत में सर्वप्रथम अश्वपति नामक

सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता । सर्वपूज्या च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे ॥५॥ नारायण उवाच— **मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने । वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः ॥६॥ आसीत्तस्य महाराज्ञी महती धर्मचारिणी । मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः ॥७॥ सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः । चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद ॥८॥ प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम् । गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता ॥९॥ राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै । सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा ॥१०॥ तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम् । न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च ॥११॥ शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम् । गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद ॥१२॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम पराशरः । प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृपमुवाच च ॥१३॥** मुनिरुवाच— **सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत् । दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम् ॥१४॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् । सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम् ॥१५॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम् । सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद्विनश्यति ॥१६॥ करोति मुक्तिं**

राजा ने सावित्री की पूजा की । उसके पश्चांत् चारो वर्णों के लोगों ने सावित्री देवी की पूजा की ॥४॥ **नारदजी ने पूछा**— हे ब्रह्मन् ! अश्वपति कौन थे ? और उन्होंने किस द्रव्य से उनकी पूजा की ? उन सर्वपूज्या देवी की सर्वप्रथम भारत में किन लोगों ने उनकी पूजा की ?॥५॥ **नारायण ने कहा**— मद्रदेश के राजा अश्वपति वैरियों के बल को विनष्ट करने वाले तथा मित्रों के दुःख को दूर करने वाले हुए ॥६॥ उनकी महारानी बहुत अधिक धर्माचरण करने वाली थीं । जिस तरह श्रीभगवान् की पत्नी का नाम लक्ष्मी है, उसी तरह उनका नाम मालती था ॥७॥ उन रानी की कोई सन्तान नहीं थीं । उन्होंने महर्षि वसिष्ठ के उपदेश से सावित्री देवी की आराधना किया ॥८॥ किन्तु उस आराधना का फल रानी को नहीं मिला । अत्यन्त दुःखी होकर वे अपने घर चली गयीं॥९॥ अपनी रानी को दुःखी देखकर राजा ने नीति पूर्वक समझाया और तपस्या करने के लिए वे पुष्कर क्षेत्र में चले गये ॥१०॥ उन्होंने सौ वर्ष तक तपस्या की किन्तु उनको सावित्री का साक्षात्कार नहीं हुआ किन्तु आकाशवाणी हुई ॥११॥ राजा ने उस आकाशवाणी को सुना कि तुम गायत्री का दश लाख जप करो ॥१२॥ उसी समय वहाँ पर पराशर महर्षि आ गये । राजा ने मुनि को प्रणाम किया तो महर्षि ने राजा से कहा ॥१३॥ **मुनि ने कहा**— एक बार गायत्री का जप करने से दिनभर का पाप विनष्ट हो जाता है । दश बार गायत्री का जप करने से दिन और रात दोनों का पाप विनष्ट हो जाता है ॥१४॥ सौ बार गायत्री का जप करने से महीने भर का पाप नष्ट हो जाता है । एक हजार जप करने से वर्ष भर का पाप नष्ट हो जाता है ॥१५॥ एक लाख गायत्री का जप करने से जन्म भर का पाप नष्ट हो जाता है और दश लाख गायत्री का जप करने से दूसरे जन्मों के भी पाप नष्ट हो जाते हैं । सभी जन्मों

विप्राणां जपो दशगुणस्ततः । करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रन्ध्रमुद्रितम् ॥१७॥ आनम्रमूर्धमचलं प्रजप्रेत्प्राङ्मुखो द्विजः । अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च ॥१८॥ तर्जनीमूलपर्यंतं जपस्यैवं क्रमः करे । श्वेतपंकजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम् ॥१९॥ कृत्वा वै मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये। संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः । कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः । गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥२१॥ अथवा पंचगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम् । अथ गंगोदकेनैव स्नात्वा वाऽतिसुसंस्कृंताम् ॥२२॥ एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु । साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥२३॥ नित्यं संध्यां च हे राजन्करिष्यसि दिने दिने । मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा॥२४॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२५॥ नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥२६॥ यावज्जीवनपर्यन्तं त्रिः संध्यां यः करोति च । स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा ॥२७॥ तत्पादपद्मरजसासद्यः पूता वसुंधरा । जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः ॥२८॥ तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः । ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः ॥२९॥ न गृहणंति सुराः पूजां पितरः पिंडतर्पणम् । स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसंध्यारहितस्य

के पाप सौ लाख जप करने से विनष्ट हो जाते हैं ॥१६॥ यदि ब्राह्मण उसके दशगुना गायत्री का जप करे तो उसको मुक्ति मिल जाती है । ब्राह्मण को चाहिए कि वह पूर्वाभिमुख बैठकर हाथ को सर्प के फण के आकार का बना ले । वह निश्चल रहकर अपना शिर झुकाकर अनामिका अंगुलि के मध्य भाग से नीचे पर्वों पर वाम क्रम से तर्जनी अंगुलि के मूल पर्यन्त जप करे । अथवा श्वेत कमल के बीजों की माला पर जप करे । या स्फटिक की माला पर गायत्री का जप करे ॥१७-१८॥ जप किसी तीर्थ में अथवा देवमन्दिर में करना चाहिए । माला को किसी पिप्पल के पत्ते पर या कमल पर रखकर उसमें गोरोचन लगाये । फिर उसको गायत्री मंत्र से स्नान कराये । और उसी माला पर सौ बार विधि पूर्वक गायत्री का जप करे ॥२०-२१॥ अथवा माला को पञ्चगव्य से स्नान करके संस्कार युक्त करे या गंगाजल से माला को स्नान कराये ॥२२॥ हे राजर्षे ! इस क्रम से तुम दशलाख जप करो । ऐसा करने से तुम्हारे पूर्वजन्मों के पाप विनष्ट हो जायेंगे । और तुम सावित्री देवी का साक्षात् दर्शन करोगे ॥२३॥ हे राजन् ! तुम प्रतिदिन सन्ध्या करना, मध्याह्न तथा सायं काल भी संध्या करना और पवित्र रहना ॥२४॥ संध्याहीन व्यक्ति सभी कर्मों के लिए अयोग्य तथा अपवित्र होता है । वह दिन में जो कर्म करता है, उसका फल उसे नहीं मिलता है ॥२५॥ जो न तो प्रातः सन्ध्या करता है और न सायं सन्ध्या करता है, उसको सभी द्विजों के कर्म से शूद्र के समान बहिष्कृत कर देना चाहिए ॥२६॥ जो आजीवन तीन बार सन्ध्या करता है वह अपनी तपस्या और तेज के द्वारा सूर्य के समान तेजस्वी होता है ॥२७॥ उसके चरणों की धूलि से पृथिवी पवित्र हो जाती है । सन्ध्या से पवित्र बना हुआ ब्राह्मण जीवन्मुक्त तथा तेजस्वी होता है ॥२८॥ उसके स्पर्श मात्र से सभी

च ॥३०॥ मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मंत्रस्याप्यनर्चकः । तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥३१॥ विष्णुमंत्रविहीनश्च त्रिसंध्यारहितो द्विजः । एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥३२॥ हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः । शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥३३॥ शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः । शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः ॥३४॥ शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः । मसिजीवी असीजीवी विषहीनो यथोरगः ॥३५॥ यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी । यो विप्रऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः ॥३६॥ भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः । यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः ॥३७॥ सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः । शिवपूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः ॥३८॥ इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम् । तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥३९॥ दत्त्वा सर्वं नृपेंद्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने । राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥४०॥ नारद उवाच– **किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम् ।**

तीर्थ पवित्र हो जाते हैं । जिस तरह गरुड से सर्प डरता है उसी तरह उस व्यक्ति से पाप दूर भगे रहते हैं ॥२९॥ उसके द्वारा की गयी पूजा को देवगण तथा पितृगण पिण्ड तथा तर्पण को स्वीकार करते हैं जो ब्राह्मण स्वेच्छाचारी होता है, तीनों सन्ध्याओं में सन्ध्या नहीं करता है न तो मूल प्रकृति की भक्ति करता है तथा जो मूल प्रकृति के मन्त्र की भी उपासना नहीं करता है और न तो मूल प्रकृति का उत्सव करता है, वह उसी तरह से है जैसे विषहीन सर्प ॥३०-३१॥ विष्णु के मन्त्र से विहीन, त्रिकाल संध्या से रहित द्विज तथा एकादशी व्रत नहीं करने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान होता है ॥३२॥ जो ब्राह्मण श्रीहरि के प्रसाद को नहीं खाता है, धोबी का काम करता है, हल जोतता है, तथा शूद्र का अन्न खाता है वह विषहीन सर्प के समान होता है ॥३३॥ जो शूद्रों के शव को जलाने का काम करता है तथा वेश्यागामी होता हैं, शूद्रों का भोजन बनाता है वह विषहीन सर्प के समान होता है ॥३४॥ जो ब्राह्मण शूद्रों से दान लेता है तथा शूद्रों का यज्ञ कराता है, मुनीमी से अपनी जीविका चलाता है तथा पहरेदार का काम करता है वह विषहीन सर्प के समान होता है ॥३५॥ जो ब्राह्मण कन्या का विक्रय करता है तथा श्रीहरि के नाम का विक्रय करता है, जो पति और पुत्र से हीन ऋतुमती स्त्री के यहाँ भोजन करता है, वह विषहीन सर्प के समान निस्तेज होता है ॥३६॥ जो स्त्रियों को फँसाने का काम करता है वह ब्राह्मण विषविहीन सर्प के समान निस्तेज होता है । विद्या को बेचने वाला भी ब्राह्मण निस्तेज हो जाता है ॥३७॥ सूर्योदय काल में सोने वाला, मछली खाने वाला, तथा जो शंकरजी की पूजा नहीं करता है वह ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान निस्तेज हो जाता है ॥३८॥ इस तरह से कहकर पराशर महर्षि ने सावित्री की पूजा की विधि तथा ध्यान राजा अश्वपति को बतलाया ॥३९॥ इस तरह से पराशर महर्षि सब कुछ राजा अश्वपति को बतलाकर अपने आश्रम में चले गये । राजा ने सावित्री देवी की पूजा करके उनसे वरदान प्राप्त किया ॥४०॥ **नारदजी ने कहा–** सावित्री देवी का ध्यान क्या है ? तथा उनकी पूजा की विधि क्या है ? महर्षि ने राजा

स्तोत्रं मंत्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥४१॥ नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम् । वरं च कं वा संप्राप्य संपूज्य तु विधानतः ॥४२॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत् । रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः ॥४३॥ नारायण उवाच– ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः । व्रतमेवं चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥४४॥ व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम् । दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत्॥४५॥ वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम् । संस्थाप्य मंगलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥४६॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते द्विजः ॥४७॥ शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत् । स्तोत्रं पूजाविधानं च मंत्रं च सर्वकामदम् ॥४८॥ तप्तकांचनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्त्रसंमितप्रभाम् ॥४९॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहविग्रहाम् ॥५०॥ सुखदां मुक्तिदां शांतां कांतां च जगतां विधेः । सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम् ॥५१॥ वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् । वेदबीजस्वरूपां च भजे तां वेदमातरम् ॥५२॥ ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि । पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ॥५३॥ दत्त्वा षोडशोपाचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम् । संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः ॥५४॥

अश्वपति को कौन सा स्तोत्र तथा कौन सा मन्त्र दिया ?॥४१॥ राजा अश्वपति ने पूजन के किस विधि से वेदमाता की पूजा करके और किस वरदान को प्राप्त किया ?॥४२॥ इन सावित्री विषयक अत्यन्त रहस्यात्मक सारी बातों को जानना चाहता हूँ आप उन सबों को संक्षेप में बतलायें ॥४३॥ **नारायण ने कहा–** ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी के दिन नियम पूर्वक रहकर चतुर्दशी के दिन व्रत करके शुद्ध समय में सावित्री देवी की पूजा करनी चांहिए ॥४४॥ यह चौदह वर्ष का व्रत हैं । इसमें चौदह फल और चौदह प्रकार का नैवेद्य अर्पित करना चाहिए । पूजन में पुष्प, धूप आदि ॥४५॥ वस्त्र, यज्ञोपवीत, चढाकर विधि पूर्वक नैवेद्य चढ़ाना चाहिए । मंगल घट की स्थापना फल्लव इत्यादि के साथ करे ॥४६॥ पहले गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा शिवा की पूजा कर्के उसके बाद इष्ट देवता की पूजा करनी चाहिए ॥४७॥ सबसे पहले माध्यन्दिन शाखा में प्रोक्त ध्यान को, स्तोत्र को, पूजा की विधि को, तथा सर्व कामना पूरक मन्त्र को सुनें ॥४८॥ ब्रह्मतेज से सम्पन्न, तप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान ग्रीष्मकाल में दोपहर के सहस्त्रों सूर्य के समान कान्ति वाली ॥४९॥ मन्द मुस्कान के कारण प्रसन्नमुख वाली, रत्न के आभूषणों से समलंकृत रहने वाली, बह्निशौच वस्त्र को धारण करने वाली, भक्तों पर कृपा करने वाली,॥५०॥ संसार को सुख तथा मुक्ति देने वाली, शान्तस्वभाव वाली सावित्री देवी की मैं सेवा करता हूँ । इस तरह से ध्यान करके, ब्रह्माजी की प्रियतमा तथा सर्व सम्पत्ति स्वरूपा एवं सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली ॥५१॥ वेदों की अधिष्ठात्री देवी, वेदशास्त्र स्वरूपिणी, वेदों के बीज स्वरूपिणी, वेदमाता सावित्री की मैं अराधना करता हूँ ॥५२॥ इस ध्यान के द्वारा सावित्री देवी का ध्यान करके, उन्हें नैवेद्य समर्पित करके हाथ जोड़ना चाहिए।

आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम् । धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥५५॥ वसनं भूषणं माल्यं गंधमाचमनीयकम् । मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश ॥५६॥ दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा । देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५७॥ तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत् । पूजांगभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५८॥ पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पदलान्वितम् । पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥५९॥ सुगन्धं गन्धतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम् । मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥६०॥ गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगंधदम् । मया निवेदितं भक्त्त्या गंधतोयं तवांबिके ॥६१॥ सर्वमंगलरूपं च सर्वं च मंगलप्रदम् । पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि॥६२॥ सुगंधयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् । जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम् ॥६३॥ अंधकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम् । तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम् ॥६४॥ पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् । ताम्बूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥६५॥ तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम् । सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारकम् ॥६६॥ जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम् । देहशोभास्वरूपं

इसके बाद कलश में सावित्री देवी का ध्यान करके वैदिक मन्त्रों से उन्हें षोडशोपचार समर्पित करना चाहिए । देवी की पूजा एवं स्तुति करके उनको सविधि प्रणाम करे ॥५३-५४॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलोपन (चन्दन) धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल शीतल जल ॥५५॥ वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या देवी को समर्पित करना चाहिए ॥५६॥ **आसन का मन्त्र है–** हे देवि ! यह आसन देवदारु के काष्ठ और सुवर्ण से निर्मित है। यह देवताओं के आधार स्वरूप पवित्र आसन मैंने आपको निवेदित किया है ॥५७॥ **पाद्यमन्त्र–** यह तीर्थों का पवित्र जल मैंने आपको पाद्य के रूप में निवेदित किया है । यह पूजा का अंगभूत और आपको प्रसन्न करने वाला है ॥५८॥ **अर्घ्य मन्त्र–** दूर्वा तथा पुष्प से युक्त तथा शंख के जल से युक्त शुद्ध एवं सुगन्धित अर्घ्य मैंने आपको समर्पित किया है ॥५९॥ **स्नानीय मन्त्र–** सुगन्धित चन्दन मिश्रित जल को सुगन्धित करके आपको स्नानीय जल मैंने भक्तिपूर्वक समर्पित किया है । उसे आप स्वीकार करें ॥६०॥ **अनुलेपन मन्त्र–** सुगन्धित द्रव्य से उत्पन्न, पवित्र दिव्य चन्दन तथा सुगन्धित जल मैंने आपको निवेदित किया है, उसे आप स्वीकार करें ॥६१॥ हे परमेश्वरि ! आप को सर्वमंगल स्वरूप मंगल प्रदान करने वाला पवित्र धूप मैंने समर्पित किया है उसे आप स्वीकार करें॥६२॥ **दीप का मंत्र–** सुगन्ध से युक्त तथा संसारियों को देखने के लिए मैंने प्रकाश करने वाले प्रदीप को समर्पित किया है ॥६३॥ प्रदीप अन्धकार को विनष्ट करने वाला है मैंने आपको भक्तिपूर्वक निवेदित किया है । **नैवेद्य मन्त्र–** तुष्टि और पुष्टि प्रदान करने वाला भूख को मिटाने वाला ॥६४॥ पवित्र और स्वादिष्ट नैवेद्य मैंने आपको समर्पित किया है उसे स्वीकार करें । **शीतल जल–** यह शीतल जल प्यास मिटाने वाला है । संसारियों के लिए जीवन स्वरूप

च सभाशोभाविवर्धनम् ॥६७॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम् । काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा ॥६८॥ सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम् । नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम् ॥६९॥ फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम् । सर्वमंगलरूपं च सर्वमंगलमंगलम्॥७०॥ नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम् । प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥७१॥ पुण्यप्रदं च सुगंधाढ्यं गंधं देवि गृह्यताम् । सिंदूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम् ॥७२॥ भूषणानां च प्रवरं सिंदूरं प्रतिगृह्यताम् । विशुद्ध ग्रंथिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम् ॥७३॥ पवित्रं वेदमंत्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम् । द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः ॥७४॥ ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम् । सावित्रीति चतुर्थ्यंतं वह्निजायान्तमेव च ॥७५॥ लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः । माध्यंदिनोक्त स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम् ॥७६॥ विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते । कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥७७॥ नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद । ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम् ॥७८॥ तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम् । ब्रह्मोवाच— **सच्चिदानंदरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि ॥७९॥ हिरण्यगर्भरूपे त्वं**

है, इसे आप स्वीकार करें ॥६५-६६॥ **वस्त्र का मन्त्र—** देह तथा सभा की शोभा को बढ़ाने वाला कर्पास और रेशम निर्मित यह वस्त्र मैंने आपको समर्पित किया है, इसे आप स्वीकार करें ॥६७॥ **भूषण मन्त्र—** सुवर्ण आदि से निर्मित ऐश्वर्य एवं शोभा सम्पन्न, सुखद तथा प्रसन्नता देने वाला रत्नाभूषण मैंने समर्पित किया है, उसे आप स्वीकार करें ॥६८॥ **फल का मन्त्र—** अनेक वृक्षों से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के रस वाले फलस्वरूप इस फल को आप स्वीकार करें ॥६९॥ **माला चढ़ाने का मन्त्र—** सर्व मंगल स्वरूप, समस्त प्रकार के मंगलों को प्रदान करने वाली अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित सुन्दर और प्रसन्न करने वाली पवित्र माला को आप स्वीकार करें ॥७१॥ **सिन्दूर चढ़ाने का मन्त्र—** पावित्र्य प्रदान करने वाला, सुगन्धित श्रेष्ठ एवं मनोहर ललाट को सुशोभित करने वाला तथा सभी आभूषणों में श्रेष्ठ इस सिन्दूर को आप स्वीकार करें ॥७२॥ **यज्ञोपवीत चढ़ाने का मन्त्र—** परम पवित्र, विभिन्नसूत्रों से निर्मित तथा वैदिक मंत्रों से शुद्ध किया गया ग्रन्थि से युक्त यज्ञसूत्र आप स्वीकार करें । इन द्रव्यों को मूल मंत्र से समर्पित करके फिर स्तोत्र को पढ़ना चाहिए ॥७४॥ उसके बाद व्रत करने वाले ब्राह्मण को दक्षिणा ॐ सावित्र्यै स्वाहा इस मन्त्र से देना चाहिए ॥७५॥ लक्ष्मीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) कामबीज (कलीं) ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा यह अष्टाक्षर मन्त्र माध्यन्दिन शाखा में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला बतलाया गया है ॥७६॥ ब्राह्मणों के जीवन स्वरूप इस स्तोत्र को मैं आपको बतला रहा हूँ, उसे आप सुनें । भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक में विद्यमान थे । उन्होंने सावित्री को ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक में जाने को कहा ॥७७॥ किन्तु हे नारदजी ! ब्रह्माजी के साथ सावित्री ब्रह्मलोक में जाने के लिए उद्यत नहीं हुईं । उसके बाद भगर्वान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रह्माजी

प्रसन्ना भव सुंदरि । तेजः स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणी ॥८०॥ द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुंदरि । नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणी॥८१॥
सर्वमंगलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि । सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे ॥८२॥ सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि । विप्रपापेध्मदाहाय
ज्वलदाग्निशिखोपमे ॥८३॥ ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि । कायेन मनस वाचा यत्पापं कुरुते नरः ॥८४॥ तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं
भविष्यति । इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्र च संसदि ॥८५॥ सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा । अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः॥८६॥
ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् । स्तवराजमिमं पुण्यं सन्ध्यां कृत्वा च यः पठेत् । पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत् ॥८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

ने वेदमाता सावित्री की स्तुति की ॥७८॥ उससे सावित्री प्रसन्न होकर ब्रह्माजी को अपना पति बनाने के लिए तैयार हो गयीं । **ब्रह्माजी ने कहा—** हे सावित्री
देवी ! आप 'मूल प्रकृति स्वरूप हैं, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी हैं ॥७९॥ हे सुन्दरि ! मुझ हरिण्यगर्भ पर तुम प्रसन्न हो जाओ । आप तेजःस्वरूपा तथा
परमानन्दस्वरूपा हैं ॥८०॥ आप ब्राह्मणों की जातिस्वरूपा हैं । आप प्रसन्न हो जाइये । आप नित्य, नित्यप्रिय तथा नित्यानंद स्वरूपिणी हैं ॥८१॥ आप
सभी प्रकार के मङ्गल स्वरूपिणी हैं, आप मुझ पर प्रसन्न होइये । हे सर्व स्वरूपिणि ब्राह्मणों के मन्त्र के सार स्वरूप तथा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं ॥८२॥ हे सुख
तथा मोक्ष प्रदान करने वाली देवि ! हे सुन्दरि आप प्रसन्न हो जाइये । आप ब्राह्मणों के पाप रूपी इन्धन को जला देने के लिए जलती हुई अग्नि की
ज्वाला के समान हैं ॥८३॥ हे ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली देवि ! हे सुन्दरि ! आप प्रसन्न होएँ । शरीर, मन तथा वाणी से मनुष्य जो पाप करता है ॥८४॥
वह आपके स्मरण करने मात्र से भस्म हो जाता है । इस तरह से स्तुति करके ब्रह्माजी उस सभा में स्थित रहे ॥८५॥ सावित्री भी ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक
में चली गयी । राजा अश्वपति ने इसी स्तवराज से सावित्री की स्तुति की ॥८६॥ तो उनको सावित्री देवी का दर्शन हुआ और वे मनोभिलाषित वरदान प्राप्त
किए । जो कोई भी सन्ध्या करके इस स्तवराज़ का पाठ करता है उसको चारो वेदों का पाठ करने का फल प्राप्त होता हैं ॥८७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्याय:

श्रीनारायण उवाच– **स्तुत्वाऽनेन सोऽश्वपतिः संपूज्य विधिपूर्वकम् । ददर्श तत्र तां देवीं सहस्त्रार्कसमप्रभाम् ॥१॥ उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती । यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयंती दिशस्त्विषा ॥२॥** सावित्र्युवाच– **जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वांछितम् । वांछितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥३॥ साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी । त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च ॥४॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह । राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह ॥५॥ आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला परा । सावित्रीति च तन्नाम चकारश्वपतिर्नृपः ॥६॥ कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने । रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा ॥७॥ स वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा । सत्यवंतं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम् ॥८॥ राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम् । सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ॥९॥ स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः । जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ॥१०॥ जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः।**

राजा अश्वपति के द्वारा सावित्री की उपासना, उसके फलस्वरूप राजा को पुत्री की प्राप्ति

श्रीनारायण ने कहा– राजा अश्वपति ने सावित्री देवी की स्तुति करके उनकी सविधि पूजा की उसके फलस्वरूप उनको देवी सावित्री का दर्शन हुआ। उस समय सावित्री देवी की कान्ति सहस्त्रों सूर्य के समान थी ॥१॥ प्रसन्न होकर मुस्कुराती हुई सावित्री देवी दिशाओं को अपनी कान्ति से प्रकाशित करती हुई राजा को उसी तरह से कहने लगी जिस तरह कोई माता अपने पुत्र को कहती है ॥२॥ **सावित्री देवी ने कहा–** राजन् ! आपके मन में जो अभिलषित है, उसे मैं जानती हूँ और आपकी पत्नी को जो अभिप्रेत है मैं उसे प्रदान कर रही हूँ ॥३॥ आपकी साध्वी पत्नी कन्या प्राप्त करना चाहती है और तुम पुत्र को प्राप्त करना चाहते आप । तो दोनों की अभिलाषा क्रमशः पूर्ण होगी ॥४॥ इस तरह से कहकर देवी सावित्री ब्रह्मलोक चली गयीं । राजा भी अपने घर चले गये । पहले कन्या की प्राप्ति हुई ॥५॥ सावित्री की आराधना करने से उत्पन्न वह दूसरी लक्ष्मी के समान थी । राजा अश्वपति ने उसका नाम सावित्री रखा ॥६॥ वह बालिका प्रतिदिन बढ़ने लगी । शुक्ल पक्ष में बढ़ने वाली चन्द्रमा की कला के समान वह रूप तथा यौवन से सम्पन्न हो गयी ॥७॥ उसने अपने पति के रूप में द्युमत्सेन के पुत्र सत्यशील सत्यवान का वरण किया ॥८॥ राजा अश्वपति ने उसको रत्नभूषणों से भूषित करके सत्यवान् को प्रदान किया । सत्यवान् भी उसे लेकर अपने घर चले गये ॥९॥ एक वर्ष बाद सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से फल और काष्ठ लाने

निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ॥११॥ यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वांगुष्ठसमं मुने । गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती ॥१२॥ पश्चात्तां सुदतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः । उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ॥१३॥ धर्मराज उवाच– अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम् । यदि यास्यसि कांतेन सार्धं देहं तदा त्यज ॥१४॥ गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् । देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा ॥१५॥ भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति । स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम् ॥१६॥ कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते ॥१७॥ कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा । स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥१८॥ स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम् । लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥१९॥ सुरत्वं च मनुत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः । कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः । स्वकर्मणा जंगमत्वं शैलत्वं च स्वकर्मणा ॥२२॥ कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा।

के लिए वन में गये ॥१०॥ दैववशात् सावित्री भी उनके साथ गयी थी । किन्तु भाग्यवशात् सत्यवान् वृक्ष से गिर कर मर गये ॥११॥ अंगुष्ठमात्र परिमाण वाले सत्यवान् की आत्मा को बाँधकर यमराज ले जाने लगे । सावित्री भी यमराज के पीछे-पीछे चलने लगी ॥१२॥ उस सुन्दरी को आते हुए देखकर संयमनी नगरी के स्वामी और सज्जनों में श्रेष्ठ यमराज ने उससे मधुर वाणी में कहा ॥१३॥ **धर्मराज ने कहा**– सावित्रि तुम मानवी हो, कहाँ जा रही हो। यदि तुम्हें अपने पति के साथ जाना है तो पहले अपने शरीर का त्याग कर दो ॥१४॥ मर्त्यलोक का प्राणी अपने मर्त्य शरीर के साथ मेरे लोक में नहीं जा सकता है ॥१५॥ तुम्हारे पति का समय पूरा हो गया है अब यह अपने कर्मों का फल भोगने के लिए मेरे लोक में जा रहा है ॥१६॥ जीव अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेता है और अपने कर्मों के ही अनुसार जाता भी है । सुख, दुःख, भय और शोक की प्राप्ति कर्मों के ही अनुसार होती है ॥१७॥ अपने कर्म के अनुसार ही जीव इन्द्र होता है और ब्रह्माजी का पुत्र भी बन सकता है । अपने कर्मों के ही अनुसार भगवद्भक्त जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥१८॥ अपने कर्म से ही सभी प्रकार की सिद्धि तथा अमरत्व की प्राप्ति होती है । अपने कर्मों से ही भगवान् विष्णु के सालोक्य आदि चारो प्रकार की मुक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं ॥१९॥ अपने कर्म से ही मनुष्य, देवता, मनु तथा राजेन्द्र भी हो सकता है । वह अपने कर्मों से शिव और गणेश भी हो सकता है ॥२०॥ वह अपने कर्मों से मुनीन्द्र तथा तपस्वी भी हो सकता है । वह अपने कर्म से ही क्षत्रिय तथा वैश्य भी होता है ॥२१॥ वह अपने कर्म से ही म्लेच्छ हो जाता है । वह अपने कर्म से ही जंगम और पर्वत भी हो जाता है ॥२२॥ वह अपने कर्म से ही राक्षस तथा किन्नर भी

कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा ॥२३॥ कर्मणैव पशुत्वं च वनजीवी स्वकर्मणा । कर्मणा क्षुद्रजंतुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणा॥२४॥ दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा । इत्येतदुक्त्वा सावित्रीं विरराम स वै यमः ॥२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच-- **यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता । तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥१॥** सावित्र्युवाच– **किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च । को वा देही च देहः कः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥२॥ किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम्। कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥३॥ भोक्ता भोजयिता को वा को वा भोगश्च निष्कृतिः । को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥४॥** धर्म उवाच– **वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मंगलं परम् । अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥५॥ अहैतुकी देवसेवा**

हो जाता है । वह अपने कर्म से ही स्वामी तथा वृक्ष भी हो जाता है । वह अपने कर्म से वन में रहने वाला पशु हो जाता है । कर्म से ही जीव छोटा कृमि भी हो जाता है ॥२४॥ वह अपने कर्म से ही दैत्य, दानव तथा असुर भी हो जाता है । इस तरह से सावित्री से कहकर यमराज चुप हो गये ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवम स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

सावित्री और यमराज का संवाद

श्रीनारायण ने कहा– यमराज की बातों को सुनकर पतिव्रता सावित्री ने भक्तिपूर्वक यमराज की स्तुति की और वह मनस्विनी कहने लगीं ॥१॥ **सावित्री ने कहा–** आप मुझे बतलाएँ कि कर्म क्या है ? वह किससे होता है ? उसका कारण क्या है ? शरीरधारी कौन है ? शरीर क्या है ? कर्म करने वाला कौन है ? ज्ञान किसे कहते हैं ? बुद्धि का स्वरूप क्या है ? शरीरधारियों का प्राण कौन हैं ? इन्द्रियाँ कौन हैं ? उन सबों का लक्षण क्या है ? देवता कौन हैं ? ॥२-३॥ भोग करने वाला और भोग कराने वाला कौन हैं ? भोग क्या है ? उसका निदान क्या है ? जीव किसे कहते हैं ? और परमात्मा

संकल्परहिता सती । कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परभक्तिदा ॥६॥ को वा कर्मफलं भुंक्ते को वा निर्लिप्त एव च । ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ ॥७॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः । भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता ॥८॥ निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम् । हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वांछंति वैष्णवाः ॥९॥ अन्ये निर्वाणमिच्छंति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः । कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत्फलप्रदः ॥१०॥ कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा । सोऽपि तद्धेतुरुपश्च देहो नश्वर एव च ॥११॥ पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च । एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः ॥१२॥ कर्म कर्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा । भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥१३॥ सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत् । विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम् ॥१४॥ बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम् । वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् ॥१५॥ इन्द्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम् । प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम् ॥१६॥ अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम् । लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिंद्रियम् ॥१७॥ अंगिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् । रिपुरूपं

कौन है ? ॥४॥ **धर्मराज ने कहा—** वेद जिसका कर्तव्य रूप से विधान करता है, उसे ही धर्म कहते हैं । जो मंगल स्वरूप है वही कर्म है जो वेद विरोधी कर्म हैं वे अशुभ कर्म हैं ॥५॥ संकल्प रहित विना किसी कारण की सेवा तथा कर्म को निर्मूल करने वाली निष्काम भगवत् सेवा ही पर भक्ति प्रदान करने वाली है ॥६॥ कर्म फलों को भोगने वाला कौन है तथा कौन निर्लिप्त है इसके विषय में श्रुति कहती हैं कि जो परब्रह्म का भक्त होता है वह मुक्त हो जाता है ॥७॥ व जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा भय से रहित हो जाता है । हे साध्वि ! श्रुति बतलाती है कि भक्ति दो प्रकार की होती है । एक भक्ति निर्वाण पद को प्रदान करती है और दूसरे प्रकार की भक्ति श्रीहरि के स्वरूप को प्रदान करती है । श्रीहरि के स्वरूप को प्रदान करने वाली भक्ति श्रीवैष्णव जन करते हैं ॥९॥ दूसरे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ योगिजन निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं । कर्म ही बीज स्वरूप है । वह सदा फल प्रदान करता रहता है ॥१०॥ परा प्रकृति तथा कर्म स्वरूप परमात्मा हैं । परमात्मा ही कर्मों के कारण है । देह नश्वर है ॥११॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश ये सृष्टि के सूत्र स्वरूप हैं ॥१२॥ कर्म, कर्ता और शरीर का सदा आत्मा (परमात्मा) ही भोग कराने वाले हैं ॥१२॥ भोग ही ऐश्वर्य रूप होता है । मुक्ति ही उसका निदान है ॥१३॥ सत् एवं असत् का बीज (कारण) ज्ञान है वह अनेक प्रकार का होता है । ज्ञान को ही विषयों के भेद के ज्ञान का कारण बतलाया गया है॥१४॥ किसी अर्थ की विवेचना करने वाली बुद्धि है । वेद उसी को ज्ञान का बीज (कारण) बतलाता है । देह धारियों के प्राण स्वरूप तथा बल स्वरूप वायु ही है ॥१५॥ इन्द्रियों में श्रेष्ठ, ईश्वर के अंश स्वरूप, तर्क रहित, कर्मों का प्रेरक तथा जिसको रोक पाना प्राणियों के लिए बड़ा कठिन है ॥१६॥ वह मन

मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम् ॥१८॥ सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः । प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परकीर्तितः ॥१९॥ परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते ॥२०॥ इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यथागमम् । ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम् ॥२१॥ सावित्र्युवाच– त्यक्त्वा क्व यामि कांतं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम् । यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२२॥ कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः । केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः ॥२३॥ केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्गुरौ । केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा ॥२४॥ केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा । केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा ॥२५॥ अंगहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा । अंधो वा पंगुरपि च प्रमत्तः केन कर्मणा ॥२६॥ क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत् । केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥२७॥ केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं

है उसका निरूपण करना कठिन है । वह दिखायी नहीं पड़ता है वह ज्ञान के भेद स्वरूप है । शरीरधारियों के भोग्यस्वरूप, नेत्रेन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय तथा रसनेन्द्रियों का वह प्रेरक है । वह सभी कर्मों का प्रेरक है । मन सुखरूप, दुःखरूप, मित्ररूप तथा शत्रुरूप भी होता है ॥१७-१८॥ सूर्य, वायु, पृथिवी तथा ब्रह्मा आदि ही देवता हैं । जो प्राणधारी, देहधारी होता है, वही जीव कहलाता है ॥१९॥ ब्रह्म परम व्यापक, निर्गुण तथा प्रकृति से श्रेष्ठ है । वह पमात्मा समस्त कारणों का कारण है ॥२०॥ इस तरह से तुमने जो पूछा है उसका उत्तर मैंने वेदानुसार दे दिया । वह ज्ञानियों के लिए ज्ञान स्वरूप है अतएव हे वत्से ! तुम लौट जाओ ॥२१॥ **सावित्री ने कहा–** आप ज्ञान सागर हैं, आपको तथा अपने पति को छोड़कर मैं कहाँ जा सकती हूँ। आपसे जो पूछती हूँ उन सबों का मुझे उत्तर दें ॥२२॥ आप यह बतलायें कि जीव किन-किन कर्मों के फल स्वरूप किन-किन योनियों में जाता है । वह किन कर्मों से स्वर्ग में जाता है ? तथा किन कर्मों के कारण नरक में जाता है ?॥२३॥ किस कर्म को करने से उसको मुक्ति मिलती है तथा किन कर्मों के करने से उसे भक्ति मिलती है ? वह किस कर्म के कारण योगी होता है तथा किस कर्म के कारण रोगी होता है ?॥२४॥ किस कर्म के कारण वह दीर्घायु तथा किस कर्म के कारण सुखी होता है ?॥२५॥ वह किस कर्म के कारण अंगहीन, काना तथा बहरा होता है ? किस कर्म के कारण वह अन्धा और लंगड़ा होता है ? और किस कर्म के कारण पागल होता है ?॥२६॥ वह किस कर्म के कारण विक्षिप्त, लोभी और चोर होता है ? वह किस कर्म के द्वारा सालोक्य आदि चारो प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है ?॥२७॥ किस कर्म के कारण वह ब्रह्म तथा तपस्वी होता है ? । किस कर्म को क़रके वह स्वर्ग प्राप्त करता है अथवा वैकुण्ठ को प्राप्त करता है ?॥२८॥ हे ब्रह्मन् ! किस कर्म को करके जीव सर्वोत्कृष्ट निरामय गोलोक को प्राप्त करता है?

केन कर्मणा ॥२८॥ गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा ॥२९॥ को वा कं नरकं याति कियंतं तेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजापते । यद्यत्प्रियं मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम् ॥१॥** धर्म उवाच– **कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना । ज्ञानं ते पूर्वविदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम् ॥२॥ सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती । प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते ॥३॥ यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि । यथादितिः कश्यपे च यथाऽहल्या च गौतमे ॥४॥ यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी । यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने ॥५॥ यथा स्वधा च पितृषु यथा संध्या दिवाकरे । वारुणानी च वरुणे**

नरक कितने प्रकार के हैं ? उनके नाम क्या हैं ?॥२९-३०॥ कौन नरक में जाता है तथा वह उसमें कितने समय तक रहता है । पापी जीव किस कर्म के कारण किस नरक में जाते हैं ? वहाँ उनको कौन सी व्याधि होती है । मैंने आपसे अपने प्रिय वस्तुओं के विषय में पूछा है आप उन सबों की व्याख्या करें॥३०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

सावित्री के प्रश्नों का यमराज द्वारा उत्तर और सावित्री को वरदान

श्रीनारायण ने कहा– सावित्री की बातें सुनकर यमराज आश्चर्यित हो गये । वे हँसकर जीवों के कर्मों का परिणाम बतलाना प्रारम्भ किए ॥१॥ **धर्मराज ने कहा–** हे कन्ये ! इस समय तुम्हारी अवस्था बारह वर्ष की है और तुम्हें पहले के विद्वानों और योगियों से भी अधिक ज्ञान है ॥२॥ हे सावित्रि ! सावित्री देवी के वरदान से तुम्हारा जन्म हुआ है । राजा ने अपनी तपस्या के फलस्वरूप तुमको अपनी पुत्री रूप से प्राप्त किया है । जिसतरह से श्रीदेवी श्रीभगवान् के, भवानी भगवान् शंकर के, अदिति कश्यप महर्षि के, अहल्या गौतम महर्षि के, शची इन्द्र के, रोहिणी चन्द्रमा के, रति कामदेव के, स्वाहा अग्नि

यज्ञे च दक्षिणा यथा ॥६॥ यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्त्तिके । सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये ॥७॥ अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं च यथेप्सितम् । वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम् ॥८॥ सावित्र्युवाच– **सत्यव्रत औरसानां पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥९॥ मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी । राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम् ॥१०॥ अंते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो ॥११॥ जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम । विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१२॥** धर्मराज उवाच– **भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय ॥१३॥ शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुंजते जनः ॥१४॥ सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नराश्च सर्वजनका न सर्वे जीविनः सति ॥१५॥ विशिष्टजीविनः कर्म भुंजते सर्वयोनिषु । शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च ॥१६॥ विशेषतो जीविनश्च भ्रमन्ते सर्वयोनिषु । शुभाशुभं भुंजते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥१७॥ शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादिकमेव च । कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमंति नरकेषु च ॥१८॥ कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति । निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह ॥१९॥ रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी**

के ॥४-५॥ स्वधा पितरों के, संध्या सूर्य के, वरुणानी वरुण के और दक्षिणा यज्ञ के ॥६॥ पृथिवी वाराह के और देवसेना कार्तिकेय के सौभाग्य से सम्पन्न हैं और उनकी प्रिय पत्नी हैं, उसी तरह से तुम सत्यवान् की प्रिय पत्नी होओ ॥७॥ यह वरदान मैंने तुमको दिया और जो भी वरदान अभीष्ट हो उसे माँग लो । मैं तुम्हें अभीष्ट समस्त वरदानों को दे रहा हूँ ॥८॥ **सावित्री ने कहा–** मैं चाहती हूँ कि सत्यव्रत से मेरे सौ और पुत्र उत्पन्न हों । हे महाभाग! यह वरदान मुझको अभिप्रेत है ॥९॥ मेरे पिता को सौ पुत्र हों और मेरे श्वसुर की आँखें मिल जायँ । उनका अपना खोया हुआ राज्य मिल जाय यह वरदान मुझको अभिप्रेत है । हे प्रभो ! सौ लाख वर्ष के जीवन के अन्त में मैं सत्यव्रत के साथ ही श्रीहरि के लोक में जाऊँ ॥११॥ मुझे जीवों के कर्म का विपाक सुनने की उत्कण्ठा है । उसी से संसार के जीवों का उद्धार होता है उसे मुझे आप बतलायें ॥१२॥ **धर्मराज ने कहा–** हे साध्वि ! तुमको सभी अभिप्रेत वस्तुएँ प्राप्त हो जायेंगी । मैं तुम्हें जीवों के कर्मों का विपाक सुनाता हूँ उसे सुनो ॥१३॥ केवल पवित्र क्षेत्र भारत में ही जीवों को अपने किए हुए शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल प्राप्त होता है । अन्य स्थानों में तो जीवों को केवल भोग मिलता है ॥१४॥ देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, राक्षस आदि तथा मनुष्य ये सबके सब कर्म के अधिकारी हैं ॥१५॥ विशिष्ट जीव सभी योनियों में अपने कर्म फलों को भोगते हैं तथा स्वर्ग एवं नरक में भी शुभ तथा अशुभ कर्मों के फल को भोगते रहते हैं ॥१६॥ विशेष जीव तो सभी योनियों में भ्रमण करते रहते हैं और पूर्व कर्मार्जित सुख एवं दुःख भोगते रहते हैं ॥१७॥ शुभ कर्म करने

शुभकर्मणा । दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा ॥२०॥ अन्धादयश्चांगहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च । सिद्ध्यादिकमवाप्नोति
सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ॥२१॥ सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुंदरि । सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥२२॥ दुर्लभा मानुषी जातिः
सर्वजातिषु भारते । सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ॥२३॥ ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति । निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो
द्विविधः सति ॥२४॥ सकामाच्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च । कर्मयोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ॥२५॥ स याति देहं त्यक्त्वा च
पदं यत्तन्निरामयम् । पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥२६॥ सेवंते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । गोलोकं प्रति ते भक्ता
दिव्यरूपविधारिणः ॥२७॥ सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायांति तेषां जन्म द्विजातिषु ॥२८॥ काले गते च निष्कामा
भवंत्येव क्रमेण च । भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः ॥२९॥ ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु । न तेषां निर्मला
बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥३०॥ तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति । ते यांति ब्रह्मलोकं च पुनरायांति भारते ॥३१॥ स्वधर्मनिरता ये

वाला जीव स्वर्ग लोक आदि में जाता है और अशुभ (पाप) कर्म करने वाले जीव नरक में घूमते रहते हैं ॥१८॥ कर्मों को निर्मूल करने में समर्थ भक्ति ही है, वह दो प्रकार की होती है । निर्गुण ब्रह्म की भक्ति तथा सगुण ब्रह्म की भक्ति ॥१९॥ जीव निन्दित कर्मों को करने से रोगी होता है और शुभ कर्मों को करने वाला निरोग होता है । मनुष्य अपने कर्मों के ही अनुसार दीर्घायु और अल्पायु, सुखी और दुःखी होता है ॥२०॥ निन्दित कर्म करने के ही कारण, मनुष्य अंधा तथा अङ्गहीन होता है । सर्वोत्कृष्ट कर्मों को करने वाले सिद्धि आदि को प्राप्त कर लेते हैं । सुन्दरि ! मैंने यह सामान्य वर्णन किया है विशेष रूप से सुनो यह बात पुराणों तथा स्मृतियों में भी अत्यन्त गोपनीय ढंग से कही गयी है ॥२१-२२॥ भारतवर्ष में सभी जीवों में मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ है और सभी मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है और सभी विहित कर्मों को करने से वह श्रेष्ठ है ॥२३॥ भारत में ब्राह्मणों में वह ब्राह्मण श्रेष्ठ है जो ब्रह्मनिष्ठ है । ब्राह्मण भी दो प्रकार के होते हैं, निष्काम और सकाम ॥२४॥ सकामों की अपेक्षा निष्काम भक्त ब्राह्मण प्रधान हैं । सकाम भक्तों को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए संसार में जाना पड़ता है निष्काम भक्त निरुपद्रव होता है ॥२५॥ वह अपने शरीर का त्याग करके श्रीभगवान् के निरामय लोक में जाता हैं । उन निष्काम भक्तों को पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता है ॥२६॥ वे उस लोक में दो भुजाओं वाले तथा मुरली धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं । वे भक्त गोलोक में दिव्य रूप धारण करके विद्यमान रहते हैं ॥२७॥ सकाम वैष्णवभक्त वैकुण्ठ लोक में जाते है और फिर वे भारतवर्ष में आते हैं और उनका जन्म ब्राह्मणों के घर में होता है ॥२८॥ कुछ समय बाद में कालक्रम से वे निष्काम हो जाते हैं । फिर मैं उन लोगों को भी मैं निश्चल भक्ति प्रदान करता हूँ ॥२९॥ वैष्णव ब्राह्मण सभी जन्मों में सकाम होते हैं उनकी भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित निर्मल भक्ति नहीं

च तीर्थान्यत्रनिवासिनः । व्रजंति ते सत्यलोकं पुनरायांति भारते ॥३२॥ स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते । व्रजन्ति ते सूर्यलोकं पुनरायांति भारते ॥३३॥ मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः । मणिद्वीपं प्रयान्त्येव पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥३४॥ स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः । ते यांति शिवलोकं च पुनरायांति भारते ॥३५॥ ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताः सति । ते यांति सर्वलोकं च पुनरायांति भारते॥३६॥ हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः । ते यांति च हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो ॥३७॥ स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा । भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यांति नरकं ध्रुवम् ॥३८॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च । भवंत्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभागिनः॥३९॥ स्वकर्मरहिता ये च नरकं यांति ते ध्रुवम् । भारते न भवंत्येव कर्मणः फलभोगिनः ॥४०॥ स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च । स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मानिरताय च ॥४१॥ कन्यां ददति विप्राय चंद्रलोकं प्रायान्ति ते । वसंति तत्र ते साध्वि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥४२॥ सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते । सकामा यांति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः ॥४३॥ ते प्रयांति विष्णुलोकं फलसंघातवर्जिताः । गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं

होती है ॥३०॥ तीर्थों में रहने वाले तथा जो तपस्यारत हैं वे मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक में जाते हैं और कर्मफल भोगने के बाद पुनः भारत में कर्म करने के लिए जन्म लेते हैं ॥३१॥ जो भक्त अपने कर्म का पालन करते हैं तथा तीर्थ में नहीं रहते हैं वे सत्यलोक में जाते हैं, और वे कर्म करने के लिए पुनः भारत में जन्म लेते हैं । जो भक्त अपने धर्म का पालन करते हुए सूर्य के भक्त होते हैं वे मृत्यु के बाद सूर्यलोक में जाते हैं और पुनः कर्म करने के लिए भारत में आते हैं ॥३२-३३॥ जो निष्काम मूलप्रकृति के भक्त हैं वे पुनरावृत्ति रहित मणिद्वीप में जाते हैं ॥३४॥ अपने धर्म का पालन करने वाले जो भक्त, शैव, शाक्त अथवा गणेश जी के भक्त है वे मृत्यु के बाद शिवलोक में जाते हैं और कर्म फलों को भोगने के बाद भारत में जन्म लेते हैं ॥३५॥ जो ब्राह्मण दूसरे देवताओं के भक्त हैं तथा अपने धर्म का पालन करते हैं वे सभी लोकों में जाते हैं और पुनः भारत में आते हैं ॥३६॥ जो ब्राह्मण श्रीहरि की निष्काम भक्ति करते हैं, तथा अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं, वे अपनी भक्ति के बल पर श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥३७॥ जो ब्राह्मण अपने धर्म का पालन नहीं करते हैं तथा देवताओं से भिन्न की सेवा करते हैं, वे भ्रष्ट आचार वाले तथा भ्रष्ट कामना वाले होकर नरकों में जाते हैं ॥३८॥ अपने धर्म का पालन करने वाले ही चारो वर्णों के मनुष्य अपने शुभ कर्मों का फल प्राप्त करते हैं ॥३९॥ जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करते हैं वे नरकों में ही जाते हैं । वे भारत में अपने कर्मों का फल भोग नहीं करते हैं ॥४०॥ अपने धर्म का पालन करने वाले ही चारो वर्णों के लोग अपने कर्मों का फल भारत में भोगते हैं । जो अपने धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मण धर्मनिरत ब्राह्मण को अपनी कन्या प्रदान करते हैं वे चन्द्रलोक में जाते हैं और वे चतुर्दश इन्द्रों की आयु पर्यन्त वहाँ निवास करते हैं ॥४१-४२॥ अलंकारयुक्त कन्या का दान करने वाले उसके दो गुना

सर्पिः फलं जलम् ॥४४॥ ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चंद्रलोकं प्रयांति ते । वसंति ते च तल्लोके यावन्मन्वंतरं सति ॥४५॥ सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वन्ति तेन ते जनाः । ये ददति सुवर्णांश्च गाश्च ताम्रादिकं सति ॥४६॥ ते यांति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च । वसंति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति ॥४७॥ विपुले सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः । ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च ॥४८॥ स याति विष्णुलोकं च श्वेतदीपं मनोहरम् । तत्रैव निवसत्येव यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥४९॥ विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने । गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्॥५०॥ ते यांति विष्णुलोकं च सुचिरं सुखदायकम् । गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे ॥५१॥ विपुले विपुलं वासं कुर्वन्ति मानवाः सति । यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः ॥५२॥ स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च । सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम् ॥५३॥ प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः । यो ददाति तडागं च सर्वपापापनुत्तये ॥५४॥ स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च । वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा ॥५५॥ स तु वापी प्रदानेन तडागस्य फलं लभेत । धनुश्चतुस्सहस्रेण दैर्ध्यमानेन निश्चितम् ॥५६॥ न्यूना वा तावतो प्रस्थे

फल प्राप्त करते हैं । उस लोक में सकाम पुरुष ही जाते हैं निष्काम भक्त नहीं ॥४३॥ वे फल समूह से रहित विष्णु लोक में जाते हैं । जो लोग ब्राह्मणों को दूध, दही, चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घी, फल तथा जल का दान करते हैं वे चन्द्रलोक में जाते हैं, और वे उस लोक में एक मन्वन्तर पर्यन्त निवास करते हैं ॥४४-४५॥ उस दान के फलस्वरूप उनका उस लोक में अतिदीर्घकाल पर्यन्त निवास होता है । जो लोग किसी पवित्र ब्राह्मण को सुवर्ण, गौ तथा ताम्बा आदि का दान करते हैं, वे सूर्यलोक में जाकर वहाँ निर्भय रूप से दश हजार वर्ष तक निवास करते हैं । जो ब्राह्मणों को विपुल मात्रा में धन तथा भूमि प्रदान करते हैं ॥४७-४८॥ वे विष्णुलोक में श्वेतद्वीप में निवास करते है और वहाँ पर वे तब तक निवास करते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं॥४९॥ हे मुने ! वह पुण्यवान् पुरुष उस विस्तृत लोक में बहुत दिनों तक निवास करता है । जो लोग भक्तिपूर्वक किसी ब्राह्मण को गृहदान करते हैं ॥५०॥ वे लोग विष्णु लोक में जाते हैं तथा उस दिए गये गृह के जितने धूलिकण हो सकते हैं, उतने वर्षों तक वे विष्णुलोक में निवास करते हैं । मनुष्य जिस देवता के उदेश्य से दान करते हैं, उसी देवता के लोक में जाते हैं अपने घर पर दान करने से चार गुना फल होता है । किसी पवित्र तीर्थ में दान करने से सौ गुना फल होता है । और किसी श्रेष्ठ स्थान में दान करने से उसके दो गुना फल होता है यह ब्रह्माजी का वचन है । जो व्यक्ति अपने समस्त पापों का विनाश करने के लिए तड़ाग (सरोवर) दान करता है ॥५१-५४॥ वह उसके धूलिकण के बाराबर वर्षों तक जनलोक में निवास करता है । वापी का दान करने वाले व्यक्ति को उसके दशगुना फल होता है ॥५५॥ वापी का दान करने वाले को तड़ाग के दान करने का भी फल प्राप्त होता है । तडाग का

सा वापी परिकीर्तिता । दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते ॥५७॥ फलं ददाति द्विगुणं यदि साऽलंकृता भवेत् । यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम् ॥५८॥ वाप्याश्च पंकोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत् । अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोति च ॥५९॥ स प्रयाति तपोलोकं वर्षाणामयुतं सति । पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्री सर्वभूतये ॥६०॥ स वसेद्ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् । यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति ॥६१॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वतरं परम् । चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् ॥६२॥ तस्यार्धं शिविकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् । यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमंदिरम् ॥६३॥ विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् । राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते ॥६४॥ वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते । ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दानं समफलं लभेत् ॥६५॥ यद्धि दत्तं च तद्भुंक्ते न दत्तं नोपतिष्ठते । भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते ॥६६॥ लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु । भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम् ॥६७॥ पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च क्षत्रियादयः । क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च ॥६८॥ तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति

परिमाण चार हजार धनुष सोलह हजार हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा होता है । उससे कम परिमाण वाली वापी नही होती है । सत्पात्र को कन्यादान करने से वापी दान के दश गुना फल प्राप्त होता है ॥५६-५७॥ अलंकारों से अलंकृत करके सत्पात्र को कन्यादान करने से उसके दो गुना फल होता है तडाग का दान करने से जो फल होता है, उतना ही फल तड़ाग का जीर्णोद्धार कराने से भी होता है ॥५८॥ वापी के कीचड़ को निकाल कर उसका उद्धार करने से भी वापी दान करने का ही फल होता है । जो व्यक्ति पीपल का पेड़ रोप कर उसकी प्रतिष्ठा करता है ॥५९॥ वह तपोलोक में जाकर वहाँ दश हजार वर्ष तक निवास करता है ॥५९॥ हे सावित्रि ! जो व्यक्ति सबों के लिए पुष्प का उद्यान दान करता है ॥६०॥ वह ध्रुवलोक में दशहजार वर्षों तक निवास करता है । जो व्यक्ति भारतवर्ष में भगवान् विष्णु के विमान का दान करता है ॥६१॥ वह एक मन्वन्तर तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है । चित्रों से चित्रित करके यदि विस्तृत विमान दान किया जाय तो उसका चार गुना फल होता है ॥६२॥ शिविका (पालकी) दान करने पर विमान दान के आधा फल मिलता है । जो भगवान् श्रीहरि के लिए झूला दान करता है ॥६३॥ वह सौ मन्वन्तर तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है । हे पतिव्रते ! जो महलों से युक्त राजमार्ग दान करता है ॥६४॥ वह भी इन्द्रलोक में दशहजार वर्ष तक निवास करता है । ब्राह्मण तथा देवता दोनों को दान का बराबर ही फल होता है ॥६५॥ जो पूर्वजन्म में दिया गया है, उसी का फल मिलता है, जो नहीं दिया गया है, उसका फल कहाँ से मिलेगा। दान जन्य सुख का फल भोगने के बाद उस दान करने वाले व्यक्ति का भारतवर्ष में ही पवित्र जन्म होता है ॥६६॥ उसका ब्राह्मण इत्यादि के वंश में जन्म होता है । भारत वर्ष में पुण्य करने वाला ब्राह्मण स्वर्गलोक में फलों को भोगकर ॥६७॥ उसके बाद पुनः ब्राह्मण ही होता है । इसी तरह से क्षत्रिय

श्रुतौ श्रुतम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुद्धयति। एतत्ते कथितं किंचिर्त्कि भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच— **प्रयांति स्वर्गमन्यं च येनैव कर्मणा यम । मानवाः पुण्यवंतश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥** धर्मराज उवाच— **अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते ॥२॥ अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः । अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते ॥३॥ अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥४॥ देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा**

इत्यादि के भी विषय में होता है । वह चाहे क्षत्रिय होता है या वैश्य करोड़ों सैकड़ों कल्पों में होता है ॥६८॥ वेद बतलाता है कि कोई केवल तपस्या करने से ब्राह्मण नहीं होता है । करोड़ों कल्प बीत जाने पर भी कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है । फल भोगे बिना कर्मों का नाश नहीं होता है॥६९॥ पाप अथवा पुण्य कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है । देवता तथा तीर्थ की सहायता से अथवा कायव्यूह से शुद्धि होती है । (अनेक शरीरों को धारण करने का काम व्यूह कहते हैं ।) मैंने इस तरह से आपको सबकुछ बतलाया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥७०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

सावित्री के प्रश्न और धर्मराज द्वारा उसका उत्तर

सावित्री ने पूछा— हे यमराज ! मनुष्य जिन दूसरे [illegible] उन कर्मों को बतलाएँ ॥१॥ **धर्मराज ने कहा—** जो व्यक्ति भारतवर्ष में ब्राह्मण को अन्नदान करता है, वह उतने वर्ष तक शिवलोक में निवास करता है जितनी संख्या उस अन्न की होती है ॥२॥ अन्न दान महादान है । उसके समान दूसरा कोई भी दान नहीं है । इसमें न तो पात्र की परीक्षा करनी होती है और न समय की ॥३-४॥ जो देवताओं अथवा ब्राह्मणों को

ददाति चासनं यदि । महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥५॥ यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षं च विष्णु लोके महीयते ॥६॥ चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् । दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥७॥ गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम्। वर्षाणामयुतं चैव चंद्रलोके महीयते ॥८॥ यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते ॥९॥ यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥१०॥ विप्राय पीडितांगाय वस्त्रयुग्मं ददाति च । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥११॥ यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् । महीयते स वैकुण्ठे यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥१२॥ यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम् । महीयते चंद्रलोके यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥१३॥ यो ददाति प्रदीपं च देवेभ्यो ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वंतरं सोऽपि वह्निलोके महीयते ॥१४॥ करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते । यावद्रिंद्रो नरस्तावदिंद्रस्यार्धासने वसेत् ॥१५॥ भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥१६॥ प्रकृष्टां शिविकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिंद्राश्चतुर्दश॥१७॥

आसन दान करता है, वह दश हजार वर्षों तक विष्णुलोक में समादृत होता है ॥५॥ जो व्यक्ति ब्राह्मण को दूध देने वाली गौ दान करता है वह उतने वर्षों तक विष्णुलोक में रहता है, उस गौ के शरीर में जितने रोएँ होते हैं ॥६॥ पवित्र दिन को गोदान करके उसके चार गुना पुण्य होता है और तीर्थ में गोदान करने से उसके सौ गुना फल होता है । भगवान् नारायण के क्षेत्र में दान करने का करोड गुना फल होता है ॥७॥ जो व्यक्ति भारत वर्ष में ब्राह्मण को गोदान करता है वह दश हजार वर्ष तक चन्द्रलोक में निवास करता है ॥८॥ जो ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक गर्भवती गौ का दान देता है वह भी उस गौ के रोओं की संख्या के बराबर वर्षों तक विष्णुलोक में सम्मानित होता है ॥९॥ जो ब्राह्मण को श्वेतछत्र प्रदान करता है, वह दश हजार वर्ष तक वरुणलोक में पूजित होता है ॥१०॥ जो किसी पीड़ित शरीर वाले ब्राह्मण को धोती और चादर दोनों देता है, वह दश हजार वर्षों तक वायुलोक में सुशोभित होता है । जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण को वस्त्रयुक्त शालग्राम भगवान को देता है, वह तब तक विष्णुलोक में सुशोभित होता है, जब तक की चन्द्रमा और सूर्य आकाश में रहते हैं ॥१३॥ जो किसी देवता अथवा ब्राह्मण को प्रदीप दान करता है वह एक मन्वन्तर तक अग्निलोक में निवास करता है ॥१४॥ जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण को हाथी दान करता है, वह इन्द्र की आयु पर्यन्त इन्द्र के आधे आसन पर विराजमान होता है ॥१५॥ जो कोई भारतवर्ष में ब्राह्मण को अश्व दान में देता है वह चतुर्दश इन्द्रों की आयु पर्यन्त वरुणलोक में निवास करता है ॥१६॥ जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण को उत्तम कोटि की शिविका दान देता है वह वरुणलोक में चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त निवास करता है ॥१७॥ जो किसी ब्राह्मण को श्रेष्ठ वाटिका दान में देता है वह एक मन्वन्तर तक वायु

प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयते वायुलोके यावन्मन्वन्तरं सति ।।१८।। यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ।।१९।। धान्यं रत्नं यो ददाति चिरंजीवी भवेत्सुधीः । दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ ।।२०।। सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः । स च एव चिरंजीवी ततो मृत्युः पलायते ।।२१।। यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेत्सुधीः । पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।।२२।। इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते विष्णुमन्दिरम् । निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वंतरावधि ।।२३।। फलमुत्तरफाल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् । कल्पांतजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः ।।२४।। तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते । तिलप्रमाणवर्षं च मोदते शिवमन्दिरे ।।२५।। ततः सुयोनिं संप्राप्य चिरंजीवी भवेत्सुखी । ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत् ।।२६।। सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम् । यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम् ।।२७।। महीयते चन्द्रलोके यावदिंद्राश्चतुर्दश । तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम् ।।२८।। ततो गंधर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् । दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ।।२९।। ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम् । सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम् ।।३०।। प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः । फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते।।३१।।

लोक में निवास करता है ।।१८।। जो कोई ब्राह्मण को श्वेत चमर प्रदान करता है वह वायुलोक में दशहजार वर्षों तक निवास करता है ।।१९।। जो ब्राह्मण को धान्य या रत्न दान करता है वह चिरंजीवी होता है । दाता और दान लेने वाले दोनों वैकुण्ठगामी होते हैं ।।२०।। जो भारतवर्ष में निरन्तर श्रीहरि के नाम का स्मरण करता है, वह चिरंजीवी होता है मृत्यु उससे दूर भगी रहती है ।।२१।। जो व्यक्ति पूर्णिमा के दिन रात्रि में श्रीभगवान का दोलोत्सव करता है वह जीवन्मुक्त हो जाता है ।।२२।। वह इसलोक में सुखों को भोग करके अन्त में श्रीभगवान् के लोक में जाता है । ब्रह्माजी ने कहा है कि वह वहाँ कल्प के अन्त तक रहता है ।।२४।। वह श्रीविष्णुलोक में सौ मन्वन्तरों तक रहता है ।।२३।। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में यह उत्सव करने पर दो गुना फल मिलता है । ब्रह्माजी ने कहा है कि वह भी मनुष्य कल्पान्तजीवी होता है ।।२४।। जो मनुष्य भारत वर्ष में ब्राह्मण को तिलदान करता है; तिल की जितनी संख्या होती है, वह उतने वर्षों तक शिवलोक में निवास करता है ।।२५।। उसके बाद सुन्दर योनि प्राप्त करके वह चिरंजीवी और सुखी होता है । ताम्र पात्र में रखकर तिल का दान करने से उसके दो गुना पुण्य होता है ।।२६।। [illegible] अलंकृत सुन्दर पतिव्रता तथा सुन्दर वस्त्रों वाली स्त्री का दान करने वाला व्यक्ति चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त चन्द्रलोक में निवास करता है और वहाँ अप्सराओं के साथ रात-दिन रमण करता है ।।२७-२८।। उसके बाद वह गन्धर्वलोक में दश हजार वर्षों तक उर्वशी के साथ रात-दिन आनन्द करता रहता है ।।२९।। उसके बाद वह हजार जन्मों तक सुन्दर स्त्री को प्राप्त

पुनः सुयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम् ।।३२।। केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति यः । सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते ।।३३।। नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम् । ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम् ।।३४।। सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वंतरं शतम् । ततः सुयोनिं संप्राप्य स महाधनवान्भवेत् ।।३५।। यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति । ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते ।।३६।। महीयते च वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम् । पुनः सुयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत् ।।३७।। तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् । श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ।।३८।। यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद्द्विजाय च । लक्षमन्वंतरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ।।३९।। पुनः सुयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम् । न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च ।।४०।। सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ।।४१।। नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स कैलासे दशलक्षेंद्रकालकम्।।४२।। पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत् । नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः ।।४३।। धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्यसंयुक्तो

करता है । उसकी स्त्रियाँ भी सौभाग्य सम्पन्न, कोमल तथा प्रियवादिनी होती हैं ।।३०।। जो ब्राह्मण को सुन्दर फलों का दान करता है, वह जितने फलों को देता है, उतने वर्षों तक इन्द्रलोक में आनन्दानुभव करता है ।।३१।। उसके बाद वह सुन्दर योनि में जन्म पाकर उत्तमकोटि के पुत्रों को प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण को फल से युक्त एक हजार वृक्षों का दान करता है अथवा उन वृक्षों के केवल फलों का दान देता है वह स्वर्ग में अपने मनोनुसार निवास करके भारत वर्ष में जन्म पाता है ।।३२-३३।। जो व्यक्ति अनेक प्रकार के धन-धान्य से परिपूर्ण विस्तृत गृहों का दान ब्राह्मण को करता है ।।३४।। वह भी सौ मन्वन्तरों तक देवलोक में निवास करता है । उसके बाद सुन्दर योनि में जन्म प्राप्त करके महाधनी होता है ।।३५।। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक भारत वर्ष में किसी ब्राह्मण को फसल लगी हुई भूमि का दान देता है ।।३६।। वह वैकुण्ठलोक में सौ मन्वन्तरों तक सुशोभित होता है । उसके बाद वह सुन्दर योनि प्राप्त करके महान् राजा होता है ।।३७।। उसको सौ जन्मों तक भूमि नहीं त्यागती है । वह धनवान्, श्रीमान्, पुत्रवान् होकर प्रजाओं का स्वामी होता है ।।३८।। जो व्यक्ति ब्राह्मण को उत्तम गोशाला और ग्राम दान में देता है वह लाख मन्वन्तर तक वैकुण्ठ में आनन्दित होता है ।।३९।। उसके बाद वह सुन्दर योनि प्राप्त करके एक लाख ग्रामों का स्वामी होता है । उस व्यक्ति का साथ भूमि एक लाख जन्मों तक नहीं छोड़ती है ।।४०।। जो व्यक्ति सुन्दर प्रजाओं, पकी हुई फसल, अनेक पुष्करिणी, वृक्ष, फल तथा लताओं से युक्त नगर भारत वर्ष में ब्राह्मण को दान देता है वह दशलाख इन्द्र के समय पर्यन्त कैलास में सुशोभित होता है ।।४१-४२।। उसके ब्राद वह सुन्दर योनि में जन्म लेकर भारत में राजाओं का स्वामी होता है । उसके वश में लाखों नगर होते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ।।४३।। पृथिवी उसका दश हजार जन्मों तक साथ नहीं छोड़ती है । उसे पृथिवी पर हर प्रकार के ऐश्वर्य

भवेदेव महीतले ॥४४॥ नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये । सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च ॥४५॥ वापीतडागसंयुक्तं
नानावृक्षसमन्वितम् । महीयते च वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥४६॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य जंबुद्वीपपतिर्भवेत् । परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा
भुवि ॥४७॥ मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च । कल्पांतजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥४८॥ स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति
द्विजातये । चतुर्गुणं फलं चांते भवेत्तस्य न संशयः ॥४९॥ जंबुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने । फलं शतगुणं चांते भवेत्तस्य न
संशयः॥५०॥ जंबुद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः । सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वेषां वासकारिणः ॥५१॥ सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च ।
अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः ॥५२॥ असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यंति भुवनेशितुः । निवसन्ति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे ॥५३॥
देवीमन्त्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम् । विभूतिं दिव्यरूपां च जन्ममृत्युजराहराम् ॥५४॥ लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते । पश्यंति
ते मणिद्वीपे सखंडं लोकसंक्षयम् ॥५५॥ नश्यंति देवाः सिद्धाश्च विहाय मानवीं तनुम् । विभूतिं दिव्यरूपां च जन्ममृत्युजराहराम् ॥५६॥ कार्त्तिके
तुलसीदानं करोति हरये च यः । युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणां प्रवरः

प्राप्त रहते हैं ॥४४॥ उत्तम अथवा मध्यम कोटि की प्रजाओं से युक्त तथा वापी तडाग से युक्त अनेक वृक्षों से समन्वित सैकड़ों नगरों वाले देश का दान जो किसी ब्राह्मण को देता है वह करोड़ों मन्वन्तर तक वैकुण्ठ में निवास करता है ॥४६॥ उसके बाद सुन्दर योनि में जन्म लेकर जम्बूद्वीप का स्वामी होता है ॥४७॥ करोड़ों जन्मों तक पृथिवी उसका साथ नहीं छोड़ती है । वह कल्प पर्यन्त जीवित रहकर राजाओं का भी राजा होता है ॥४८॥ जो अपना सारा अधिकार किसी ब्राह्मण को दे देता है, उसके चार गुना फल प्राप्त होता है ॥४९॥ जो जम्बूद्वीप को ही किसी ब्राह्मण को दे देता है उसका उसके सौ गुना फल प्राप्त होता है ॥५०॥ जम्बुद्वीप की पृथिवी का दान करने वाले, सभी तीर्थों में निवास करने वाले, सभी प्रकार की तपस्याओं को करने वालें, सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानों में निवास करने वाले ॥५१॥ सभी प्रकार के दानों को करने वाले तथा सभी सिद्धों के स्वामी का भी पुनर्जन्म होता है किन्तु जो जगदम्बा का भक्त होता है, उसको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥५२॥ ऐसे पुरुष असंख्य ब्रह्माओं की मृत्यु को देखते हैं और भुवनेश्वरी जगदम्बा के परमपद मणिद्वीप में निवास करते हैं ॥५३॥ जो देवी के मन्त्र का उपासक होता है, वह मानवशरीर का परित्याग करके जन्म, मृत्यु तथा जरा को विनष्ट करने वाले दिव्य रूप को प्राप्त करके तथा देवी के सारूप्य को प्राप्त करके देवी की सेवा करता है । वे मणिद्वीप में रहकर सखण्ड प्रलय को देखतें हैं ॥५४-५५॥ सभी देवताओं, सिद्धों तथा सभी विश्वों का नाश होता है किन्तु देवी के भक्त का नाश नहीं होता है ॥५६॥ जो व्यक्ति कार्तिक के महीने में श्रीहरि को तुलसी

स भवेद्भारते भुवि ॥५८॥ मध्ये यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः । युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥५९॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् । त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥६०॥ नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले । करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च ॥६१॥ नित्यस्नायी च गंगायां स पूतः सूर्यवद्भुवि । पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥६२॥ तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा । मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६३॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत् ॥६४॥ स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेंद्रियः । मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः ॥६५॥ भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम्। स मोदते च कैलासे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥६६॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् । शिवभक्तश्च तेजस्वी वेदवेदांगपारगः॥६७॥ वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये । सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिवमन्दिरे ॥६८॥ करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥६९॥ वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुनः सुयोनिं संप्रात्य कृष्णे भक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥७०॥ इहैव भारते

दान करता है, वह तीन युगों तक श्रीहरि के लोक में आनन्दानुभव करता है ॥५७॥ उसके बाद वह सुन्दर योनि में जन्म प्राप्त करके श्रीहरि की भक्ति को प्राप्त करता है । वह भारतवर्ष में जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ होता है ॥५८॥ जो व्यक्ति अरुणोदय के समय गंगा में स्नान करता है, वह हजारों युगों तक श्रीहरि के लोक में आनन्दानुभव करता है ॥५९॥ उसके बाद सुन्दर योनि में जन्म प्राप्त करके वह, भगवान् विष्णु के मन्त्र को प्राप्त करता है । और वह मानव शरीर का परित्याग करके श्रीहरि के लोक में जाता है ॥६०॥ वह श्रीवैकुण्ठ लोक से कभी भी इस लोक में नहीं आता है । वह श्रीहरि के सदृश रूप प्राप्त करके श्रीहरि की दासता को करता है ॥६१॥ जो गंगा में नित्य ही स्नान करता है वह सूर्य के समान पवित्र होता है । वह पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥६२॥ उसके चरणकमल की धूलि से पृथिवी शीघ्र ही पवित्र होती है । सूर्य चन्द्रमा जब तक रहते हैं तब तक वह वैकुण्ठ लोक में विहार करता है ॥६३॥ उसके बाद वह पुनः सुन्दर योनि प्राप्त करके श्रीहरि की भक्ति को प्राप्त करता है । वह जीवन्मुक्त, अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वियों में श्रेष्ठ होता है ॥६४॥ वह अपने धर्म का पालन करने वाला जितेन्द्रिय विद्वान् होता है । मीन और कर्क राशि के बीच के समय में सूर्य बहुत अधिक तपते है ॥६५॥ उस समय जो व्यक्ति सुवासित जल का दान करता है वह चौदह इन्द्रों के आयु काल पर्यन्त कैलास में रहकर आनन्दानुभव करता है ॥६६॥ उसके पश्चात् सुन्दर योनि को प्राप्त करके वह रूपवान सुखी होता है । वह तेजस्वी शिवभक्त तथा वेदों एवं वेदाङ्गों में पारङ्गत होता है ॥६७॥ जो व्यक्ति वैशाख मास में ब्राह्मण को सत्तु का दान देता है । वह सत्तु के जितने कण होते हैं उतने वर्षों तक शिवलोक में रहकर आनन्दानुभव करता है।॥६८॥ जो भारत वर्ष में कृष्णाष्टमी व्रत करता है वह अपने सौ जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है ॥६९॥ वह वैकुण्ठ में चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त

वर्षे शिवरात्रिं करोति यः । मोदते शिवलोके स सप्तमन्वंतरावधि ॥७१॥ शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः । पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे ॥७२॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ॥७३॥ चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती । करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥७४॥ मासं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि च । दिनमानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥७५॥ श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान् । सप्तमन्वंतरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥७६॥ पुनः सुयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत् ॥७७॥ शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च । महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकासिभिः सति ॥७८॥ नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा । नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलम् ॥७९॥ शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि । पुनः सुयोनिं संप्राप्य नरो बुद्धिं च निर्मलाम् ॥८०॥ अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनीम् । महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥८१॥ राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः । ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥८२॥ नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते । दत्त्वा तस्यै

काल तक आनन्दित होता है । उसके बाद सुन्दर योनि प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति को प्राप्त करता है ॥७०॥ जो भारत वर्ष में ही शिवरात्रि का व्रत करता है वह शिवलोक में सात मन्वन्तरों तक आनन्दित होता रहता है ॥७१॥ जो शिवरात्रि के दिन शिवजी पर विल्वपत्र चढाता है, वह जितने पत्र चढ़ाता है उतने युगों तक शिवलोक में सुखपूर्वक रहता है ॥७२॥ उसके बाद सुन्दर योनि प्राप्त करके वह शिवजी की भक्ति प्राप्त करता है । तथा विद्या, पुत्र, श्री सम्पत्ति तथा प्रजा से सम्पन्न होता है ॥७३॥ जो व्यक्ति चैत्रमास में अथवा माघमास में शिवजी की पूजा नियमतः करता है और हाथ में वेत्र दण्ड लेकर रात-दिन नृत्य करता रहता है ॥७४॥ वह ऐसा पूरे महीने भर या आधे महीना या सत्रह दिन करता है, वह जितने दिन ऐसा करता है वह उतने युग तक शिवलोक में पूजित होता है ॥७५॥ जो व्यक्ति भारत वर्ष में रामनवमी का व्रत करता हैं वह सात मन्वन्तरों तक विष्णु लोक में निवास करता है । उसके पश्चात् वह सुन्दर योनि प्राप्त करके श्रीराम की भक्ति को प्राप्त करता है । वह जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ और महान धनिक होता है ॥७६-७७॥ जो भगवती की शरत्कालीन महापूजा महिष, छाग, मेष तथा गैंडा की बलि से से करता है ॥७८॥ नैवेद्यो, उपहारों तथा धूप दीपादिकों से पूजा करता है, नृत्य, गीता वाद्य आदि अनेक प्रकार के मङ्गल कार्यों को करता है ॥७९॥ सात मन्वन्तर के काल पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है । फिर वह सुन्दर योनि प्राप्त करके तथा निर्मल बुद्धि को प्राप्त करके ॥८०॥ पुत्र और पौत्र को बढ़ाने वाली अतुल सम्पत्ति को प्राप्त करता है । वह हाथी घोड़ों से सम्पन्न होकर महाप्रभावशाली होता है ॥८१॥ वह भी राजराजेश्वर होता है, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । उसमें भी आश्विन शुक्ल अष्टमी

प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥८३॥ गोलोके च वसेत्सोऽपि यावदिद्रांश्चतुर्दश । पुनः सुयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥८४॥ कार्त्तिकीपूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमंडलम् । गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥८५॥ शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह । भारते पूजयेद्भक्त्या चोपचाराणि षोडश ॥८६॥ गोलोकं वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः । भारतं पुनरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेध्रुव ॥८७॥ क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरहो । देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥८८॥ ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत् । पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत् ॥८९॥ शुक्लां वाऽप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः । वैकुंठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥९०॥ भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम् । क्रमेण भक्तिं सुदृढां करोत्येकां हरेरहो ॥९१॥ देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः । ततः कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत् ॥९२॥ पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत् । भाद्रे च शुक्लद्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः ॥९३॥ षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते । रविवारे च संक्रांत्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके ॥९४॥ संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते । महीयते सोऽर्कलोके

से पूरे पक्षभर देवी की अर्चना नित्य ही भक्तिपूर्वक और देवी को षडशोपचार से पूजन करता है । भारत वर्ष जो में भक्ति पूर्वक देवी को षोडशोपचार अर्पित करता है वह गोलोक में चौदह इन्द्रों की आयु काल पर्यन्त निवास करता है । उसके पश्चात् सुन्दर योनि प्राप्त करके वह राजराजेश्वर होता है ॥८२-८४॥ जो व्यक्ति कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को रासमण्डल सौ गोपों तथा सौ गोपियों के साथ करता है तथा शिला में या प्रतिमास श्रीराधा श्रीकृष्ण की षोडशोपचार से पूजन करता है ॥८५-८६॥ वह तीन ब्रह्माओं की आयु पर्यन्त गोलोक में रहता है । उसके बाद भारत में आकर वह भगवान् श्रीकृष्ण की सुदृढ भक्ति को प्राप्त करता है ॥८७॥ उसकी भक्ति धीरे-धीरे सुदृढ होती जाती है । अन्त में वह शरीर त्यागकर गोलोक में चला जाता है ॥८८॥ उसके बाद कृष्ण के समान रूप वाला होकर उनका श्रेष्ठ पार्षद हो जाता है । उसके बाद उसका पतन नहीं होता है, वह जरा और मृत्यु से रहित हो जाता है॥८९॥ जो व्यक्ति कृष्णपक्ष की अथवा शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत करता है, वह ब्रह्माजी की आयु पर्यन्त वैकुण्ठलोक में निवास करता है ॥९०॥ उसके बाद वह भारत वर्ष में भगवान् कृष्ण की भक्ति को प्राप्त करता है और वह श्रीहरि विषयिणी अपनी भक्ति को क्रमशः सुदृढ करता रहता है ॥९१॥ वह शरीरत्याग के पश्चात् गोलोक में जाता है । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही रूप को प्राप्त करके उनका श्रेष्ठ पार्षद हो जाता है ॥९२॥ उसके बाद उसका पतन नहीं होता है । वह जरा और मृत्यु से रहित हो जाता है । भाद्रमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी के दिन जो मनुष्य इन्द्र की पूजा करता है ॥९३॥ वह साठ हजार वर्ष तक इन्द्रलोक में पूजित होता है । रविवार के दिन संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्ष की सप्तमी के दिन ॥९४॥ सूर्य की

यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥९५॥ भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत् । ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत् ॥९६॥ महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि । पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः ॥९७॥ चिरंजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः । माघस्य शुक्लपंचम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम् ॥९८॥ संयुतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश । महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्म दिवानिशम् ॥९९॥ संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपंडितः । गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च ॥१००॥ नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते । गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे ॥१०१॥ मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः । तदन्ते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥१०२॥ श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी । भोजयेद्योऽपि मिष्टानं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते ॥१०३॥ विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे । ततः पुनरिहागत्य स सुखी धनवान्भवेत्॥१०४॥ विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः । यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते ॥१०५॥ युगं नामप्रमाणं च विष्णुलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य स सुखी धनवान्भवेत् ॥१०६॥ यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् । नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत् ॥१०७॥

पूजा करके हविष्यान्न का भोजन करता है, वह सूर्यलोक में चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त तक निवास करता है ॥९५॥ उसके बाद वह भारत वर्ष में आकर रोगरहित होकर धन-संपत्ति से सम्पन्न होता है । जो ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सावित्री की पूजा करता है ॥९६॥ वह सात मन्वतन्रों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है; फिर भूलोक में आकर वह श्रीमान, अतुल पराक्रमी ॥९७॥ चिरंजीवीं ज्ञानवान और सम्पत्ति से सम्पन्न होता है । जो व्यक्ति माघशुक्ल पञ्चमी के दिन सरस्वती की पूजा भक्ति से परिपूर्ण होकर षोडश उपचारों से करता है, वह शरीर त्याग के बाद देवी के मणिद्वीप में जाकर ब्रह्माजी के दिन और रात्रि पर्यन्त निवास करता है ॥९८-९९॥ इसके बाद भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके कवि और पण्डित होता है । जो व्यक्ति किसी ब्राह्मण को गौ तथा सुवर्ण का दान देता है ॥१००॥ वह जीवन पर्यन्त भारत में भक्तिभाव पूर्वक निवास करके गौ के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उसके दो गुने वर्षों तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥१०१॥ और श्रीहरि के लोक में श्रीहरि के साथ क्रीडा, कौतुक तथा मङ्गल से सम्पन्न होकर आनन्दित होता है । उसके बाद भारतवर्ष में आकर वह राजराजेश्वर होता है ॥१०२॥ वह श्रीमान्, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् होकर हर प्रकार से सुखी रहता है । भारत वर्ष में जो ब्राह्मणों को मिष्ठान्न खिलाता है ॥१०३॥ वह ब्राह्मण के शरीर में विद्यमान रोओं की संख्या के बराबर वर्षों तक श्रीविष्णुलोक में आनन्दानुभव करता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में आकर सुखी और धनवान् होता है ॥१०४॥ विद्वान्, चिरंजीवी तथा अतुल प्रतापी एवं श्रीमान् होता है । जो श्रीहरि के नामों का उच्चारण करता है अथवा किसी को उसका दान देता है ॥१०५॥ वह उस युग पर्यन्त वैकुण्ठलोक में पूजित होता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके सुखी और धनवान् होता है ॥१०६॥ नारायण क्षेत्र में श्रीहरि के नाम का जप करने से करोड़ गुना फल होता है ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुंठे स महीयते ॥१०८॥ लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत् । विष्णुभक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥१०९॥ शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम् । यावज्जीवनपर्यंतं स याति शिवमन्दिरम्॥११०॥ मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥१११॥ शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति । महीयते च वैकुंठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥११२॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम् । महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत् ॥११३॥ तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च । कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥११४॥ ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेंद्रो भारते भवेत् । ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥११५॥ यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम् । स तु निर्वाणतां याति न तन्जन्म भवेद्भुवि ॥११६॥ पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च । अश्वलोममिताब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत् ॥११७॥ चतुर्गुणं राजसूयफलमाप्नोति मानवः । सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः ॥११८॥ विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने । शंकरेण महेशेन त्रिपुरासुरनाशने ॥११९॥

जो नारायण क्षेत्र में श्रीभगवान् का एक करोड़ नाम जप करता है ॥१०७॥ वह निश्चित रूप से सभी पापों से छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है । वह पुनः जन्म नहीं लेता है और वैकुण्ठ लोक में पूजित होता है ॥१०८॥ वह भगवान् विष्णु के सारुप्य को प्राप्त करता है, उसका कभी भी पतन नहीं होता है। वह भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति को प्राप्त करता है तथा मृत्यु के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के सदृश ही रूप को प्राप्त कर लेता है ॥१०९॥ जो आजीवन प्रतिदिन भगवान् शिव का मिट्टी का लिङ्ग बनाकर उसका पूजन करता है, वह शिवलोक में जाता है ॥११०॥ वह उस पार्थिव की रेणु के परिमाण तुल्य वर्षों तक शिवलोक में पूजित होता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके राजेन्द्र होता है ॥१११॥ जो व्यक्ति भगवान् की शालग्राम शिला का पूजन करके उसका जल पीता है वह सौ ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वैकुण्ठलोक में निवास करता है ॥११२॥ उसके बाद वह भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके श्रीहरि की दुर्लभ भक्ति को प्राप्त करता है । उसके बाद वह भगवान् विष्णु के लोक में जाकर सुशोभित होता है । उसका पुनः जन्म नहीं होता है॥११३॥ जो सभी व्रतों तथा तपस्याओं को करता है, वह चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त वैकुण्ठलोक में निवास करता है ॥११४॥ उसके पश्चात् वह भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके राजेन्द्र होता है । उसके बाद वह मुक्त हो जाता हे, उसका पुनः जन्म नहीं होता है ॥११५॥ जो सभी तीर्थों में स्नान करके तथा पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है वह निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है, उसका भूलोक में जन्म नहीं होता है ॥११६॥ भारत वर्ष के पुण्यक्षेत्र में जो अश्मेध याग करता है, वह अश्व के शरीर में विद्यमान रोओं के बराबर इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त करता है ॥११७॥ राजसूययाग का फल उसके चार गुना होता है । सभी यागों में देवी का याग ही श्रेष्ठ है ॥११८॥ प्राचीनकाल में ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु ने भी देवीयाग किया था । और त्रिपुरासुर का नाश करने

शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि । नानेन सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१२०॥ दक्षेण कृतः पूर्वं महान्संभारसंयुतः । बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोः सति ॥१२१॥ शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नंदी विप्रांश्च कोपतः । यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभंज चंद्रशेखरः ॥१२२॥ चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः । धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि सकर्दमः ॥१२३॥ स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः । शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा ॥१२४॥ राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम् । देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः ॥१२५॥ वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह ॥१२६॥ देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां च नारदः । शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥१२७॥ तीर्थानां च यथा गंगा पवित्राणां शिवो यथा । एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा ॥१२८॥ नक्षत्राणां यथा चंद्रः पक्षिणां गरुडो यथा । यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुन्धरा ॥१२९॥ शीघ्राणां चेंद्रियाणां च चंचलानां मनो यथा । प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः ॥१३०॥ वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा । श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती ॥१३१॥ पतिव्रतानां

के लिए भगवान् शंकर ने भी उस याग को किया था ॥११९॥ हे सुन्दरि ! सावित्रि ! शक्तियज्ञ सभी यज्ञों में प्रधान है । इसके समान त्रैलोक्य में कोई भी यज्ञ नहीं है ॥१२०॥ हे पतिव्रते ! प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति और शंकरजी में कलह हो गया ॥१२१॥ उस समय ब्राह्मणों ने नन्दी को शाप दे दिया था और नन्दी ने भी ब्राह्मणों को शाप दे दिया था । उसी के कारण शंकरजी ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस कर दिया था ॥१२२॥ उसके बाद पुनः दक्ष प्रजापति ने देवी का यज्ञ किया । धर्म, कश्यप, शेष, कर्दममहर्षि, स्वायम्भुवंमनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिवजी, सनत्कुमार महर्षि, कपिल महर्षि तथा ध्रुव इन सबों ने देवीयज्ञ किया है ॥१२३-१२४॥ देवी यज्ञ का फल हजार राजसूय यज्ञ के फल के बराबर होता है । उससे बढ़कर कोई भी यज्ञ नहीं है ॥१२५॥ देवीयज्ञ करने वाला जीवन्मुक्त हो जाता है और सौ वर्षों तक जीवित रहता है । वह ब्रह्मा तथा विष्णु के समान ज्ञान और तेज से समन्वित होता है ॥१२६॥ हे वत्से ! जिसतरह देवताओं में भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं, वैष्णवों में नारद जी श्रेष्ठ हैं, शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ हैं, वर्णों में ब्राह्मण वर्णात श्रेष्ठ है, तीर्थों में गंगा श्रेष्ठ हैं, पवित्रों में शंकरजी श्रेष्ठ हैं, व्रतों में एकादशी व्रत श्रेष्ठ है, पुष्पों में तुलसी श्रेष्ठ हैं ॥१२७-१२८॥ नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, पक्षियों में गरुड श्रेष्ठ है, स्त्रियों में प्रकृति स्वरूपा राधा, सरस्वती तथा भूदेवी श्रेष्ठ हैं ॥१२९॥ शीघ्रगामी स्वभाव वाली इन्द्रियों में मन श्रेष्ठ, प्रजापतियों में ब्रह्मा जी श्रेष्ठ हैं, प्रजाओं में दक्ष प्रजापति श्रेष्ठ हैं ॥१३०॥ वनों में वृन्दावन श्रेष्ठ हैं, वर्षों में भारत वर्ष श्रेष्ठ हैं, श्रीमानों में श्रीदेवी श्रेष्ठ हैं, विद्वानों में सरस्वती श्रेष्ठ हैं ॥१३१॥ पतिव्रताओं में दुर्गा जी श्रेष्ठ हैं, सौभाग्य शालिनियों में राधाजी श्रेष्ठ हैं, उसी तरह सभी यज्ञों में देवीयज्ञ श्रेष्ठ

दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका । देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि ॥१३२॥ अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं च लभेद्ध्रुवम् । सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्तः पृथुरेव च ॥१३३॥ स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च ॥१३४॥ पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम् ॥१३५॥ पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितं सारभूतं देवीपादाम्बुजार्चनम्॥१३६॥ तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम् । तत्स्तोत्रस्मरणं चैव वंदनं जपमेव च ॥१३७॥ तत्पादोदकनैवेद्यं भक्षणं नित्यमेव च । सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥१३८॥ भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम् । गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मन्दिरे ॥१३९॥ अयं ते कथितः कर्मविपाको मङ्गलो नृणाम् । सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः ॥१४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

◆

हैं ॥१३२॥ सौ अश्वमेघ यज्ञ करने से इन्द्रत्व की प्राप्ति होती है । पृथु ने हजार अश्वमेघ यज्ञ करके विष्णुपद को प्राप्त किया ॥१३३॥ सभी तीर्थों में स्नान करने का जो फल होता है, सभी यज्ञों में दीक्षित होने का जो फल होता है, सभी व्रतों एवं तपस्याओं का जो फल होता हैं, चारो वेदों के पाठ से जिस फल की प्राप्ति होती है, अथवा पृथिवी की परिक्रमा करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उन सभी फलों की प्राप्ति शक्ति की आराधना से हो जाती है। इससे मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥१३४-१३५॥ पुराणों, वेदों तथा इतिहासों में देवी के चरणों की अर्चना को ही सबों का सार बतलाया गया है ॥१३६॥ देवी का वर्णन, देवी का ध्यान, उनके नामों और गुणों का कीर्तन, उनके स्तोत्रों का पाठ, उनकी वन्दना और उनके मन्त्र का जप ॥१३७॥ उनके चरणोदक का पान नैवेद्य को खाना, ही सर्व सम्मत है और सभी अभिप्रेत फलों को प्रदान करने वाला है ॥१३८॥ तुम सदा नित्य परंब्रह्म परा प्रकृति का भजन करो । तुम अपने पति को लो और अपने घर में सुखपूर्वक निवास करो ॥१३९॥ तुम्हें मैंने मनुष्यों को मङ्गल प्रदान करने वाला कर्मों का विपाक (परिणाम) सुनाया। यह सर्वसम्मत तथा सभी प्रकार के ज्ञानों को प्रदान करने वाला है ॥१४०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।

◆

एकत्रिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः । साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा ॥१॥** सावित्र्युवाच— **शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम् । श्रोतृणां चैव वक्तृणां जन्ममृत्युजराहरम् ॥२॥ दानवानां च सिद्धानां तपसां च परं पदम् । योगानां चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभो ॥३॥ मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च । श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हंति षोडशीम् ॥४॥ भजामि केन विधिना वद वेदविदां वर । शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम् ॥५॥ कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि । इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥६॥ तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ।** सावित्र्युवाच— **तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा ॥७॥ धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्। समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः ॥८॥ अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् । येनांतश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम् ॥९॥ कामानुरूपं कालेन तं कृतांतं नमाम्यहम् । बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे ॥१०॥ नमामि तं दंडधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम् विश्वं च कलयायेव**

सावित्री और यम का संवाद

श्रीनारायण ने कहा— यम के द्वारा शक्ति की महिमा सुनकर सावित्री के नेत्र आँसुओं से भर गये । उसके शरीर में रोमाञ्च हो आया । उसने पुनः कहा **सावित्री ने कहा**— हे धर्मराज शक्ति का वर्णन सबों का उद्धार करने वाला है । वह श्रोताओं और वक्ताओं के जन्म, मृत्यु तथा जरा को दूर करने वाला है ॥२॥ हे प्रभो ! देवी का कीर्तन और उनका सेवन, दानवों, सिद्धों, तपस्वियों का परमपद योगों का अनुष्ठान वेदों के पाठ और उनकी सेवा । मुक्ति की प्राप्ति, अमरत्व की प्राप्ति, सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति, ये सबके सब मिलकर भी शक्ति की सेवा के सोलहवी कला के भी तुल्य नहीं होते हैं ॥३-४॥ आप मुझे यह बतलायें कि किस तरह से शक्ति की आराधना करूँ । मनुष्यों के शुभ कर्मों के विपाक (परिणाम) का मनोहर वर्णन मैंने सुन लिया है ॥५॥ अब आप मुझे मनुष्यों के अशुभ कर्मों का परिणाम सुनायें । हे नारदजी ! इस तरह से कहकर सावित्री ने भक्ति पूर्वक शिर झुकाकर ॥६॥ धर्मराज की वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति की । **सावित्री ने कहा**— प्राचीन काल में सूर्य ने धर्म की उपासना पुष्कर क्षेत्र में की ॥७॥ तो प्रसन्न होकर सूर्य ने पुत्र के रूप में धर्मराज को प्राप्त किया उन धर्मराज को मैं प्रणाम करती हूँ । हे धर्मराज ! आपकी सबों के प्रति समान बुद्धि है और आप सबों के साक्षी हैं ॥८॥ इसीलिए आपका नाम शमन है । आपको मैं प्रणाम करती हूँ । जो समयानुसार अपनी इच्छा पूर्वक विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों का अंत करते हैं, प्राणियों का अन्त करने के कारण कृतान्त कहे जाते हैं, उन कृतान्त को मैं प्रणाम करती हूँ । जो पापी जीवों को शुद्ध करने के लिए दण्ड धारण करते हैं ॥९-१०॥ उन सभी जीवों के प्रशासक दण्डधारी

यः सर्वेषु च संततम् ॥११॥ अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम् । तपस्वी ब्रह्म निष्ठो यः संयमी संजितेन्द्रियः ॥१२॥ जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम् । स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत् ॥१३॥ पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यं मित्रं नमाम्यहम् । यज्जन्म ब्रह्मणोऽशेन ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥१४॥ यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम् । इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने ॥१५॥ यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाकमुवाच ह । इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥१६॥ यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते । महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः । यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥१७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

यमराज को मैं प्रणाम करती हूँ । जो विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों की सदा परिगणना करते रहते हैं ॥११॥ जिनको रोकपाना अत्यन्त कठिन हैं, उन काल स्वरूप धर्मराज को मैं प्रणाम करती हूँ । जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी और जितेन्द्रिय हैं ॥१२॥ जीवों को उनके कर्मों के अनुसार फल प्रदान करते हैं, उन यम को मैं प्रणाम करती हूँ । जो अपनी आत्मा में रमण करने के कारण आत्माराम हैं, सर्वज्ञ तथा पुण्यवान् जीवों के मित्र हैं ॥१३॥ और पापियों को कष्ट देने वाले हैं उन पुण्यमित्र को मैं प्रणाम करती हूँ । जिनका जन्म ब्रह्माजी के अंश से हुआ है तथा जो ब्रह्मतेज से प्रकाशित होते हैं ॥१४॥ जो सदा परंब्रह्म का ध्यान करते रहते हैं । उन ईश को मैं प्रणाम करती हूँ । इस तरह से कहकर सावित्री ने यम को नमस्कार किया ॥१५॥ यम ने सावित्री को भगवती जगदम्बा की उपासना का उपदेश दिया और कर्मों के विपाक को बतलाया । जो प्रातःकाल उठकर इस यामाष्टक का पाठ करता है ॥१६॥ उसको यम से किसी प्रकार का भय नहीं होता है । वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । यदि कोई महापापी भी प्रतिदिन भक्ति पूर्वक इसका पाठ करता है, तो निश्चित रूप से यमराज उसे कायव्यूह से शुद्ध बना देते हैं ॥१७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद संम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

द्वात्रिंशोध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **मायाबीजं महामन्त्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम् । कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः ॥१॥** धर्मराज उवाच— **शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः । कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय ॥२॥ नानापुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि । नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः ॥३॥ शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः । कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः ॥४॥ नरकाणां च कुण्डानि संति नानाविधानि च । नानाशास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च ॥५॥ विस्तृतानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम् । भयंकराणि धोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥६॥ षडशीति च कुंडानि एवमन्यानि सन्ति च । निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥७॥ वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम् । विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥८॥ गरकुंडं दूषिकुण्डं वसाकुंडं तथैव च । शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रु कुण्डं च कुत्सितम् ॥९॥ कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च । मज्जाकुण्डं नक्रकुंडं मांसकुण्डं च दुस्तरम् ॥१०॥ लोमकुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुस्तरम् । ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥११॥ चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम् । तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषोदं**

यमपुरी के भयंकर कुण्डों का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा— यमराज ने सावित्री को मायाबीज (ह्रीं) का विधिपूर्वक उपदेश देकर उसे पापों के परिणाम को बतलाया ॥१॥ मनुष्य अपने पुण्य कर्मों के विपाक से नरक में नहीं जाता है । अब तैं तुम्हें पाप कर्मों का परिणाम बतलाता हूँ उसे तुम सुनो ॥२॥ भिन्न-भिन्न पुराणों में उनके भिन्न-भिन्न नाम बतलाये गये है । ऐसे स्वर्ग में जीव अपने कर्मों के अनुसार जाते हैं । शुभकर्मों का विपाक होने पर जीव नरक में नहीं जाता है । वह अपने कुकर्मों के फलस्वरूप अनेक प्रकार के नरकों में जाता है ॥४॥ नरकों में कुण्ड अनेक प्रकार के हैं । अनेक शास्त्रों के प्रमाणानुसार तथा कर्मभेद के कारण में कुण्ड॥५॥ अत्यन्त विस्तृत तथा दुःखी जीवों को दुख देने वाले हैं । हे वत्से ! वे भयंकर और निन्दित हैं ॥६॥ उनमें प्रधान कुण्डों की संख्या छियासी हैं और उनसे भिन्न भी नरक कुण्ड हैं ॥७॥ अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, दुःसह ॥८॥ गर (विष) कुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्र (वीर्य) कुण्ड, असृक् (रक्त) कुण्ड, निन्दित अश्रुकुण्ड ॥९॥ गात्रमलकुण्ड, कर्णविट् कुण्ड, मज्जाकुण्ड, नक्र (घडियाल) कुण्ड, भयंकर मांसकुण्ड ॥१०॥ लोमकुण्ड, केशकुण्ड, अस्थिकुण्ड, दुस्तर ताम्रकुण्ड, प्रतप्त लोह कुण्ड यह अत्यधिक कष्ट देने वाला है ॥११॥

विषकुण्डकम् ॥१२॥ प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम् । कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम् ॥१३॥ मशंकुंडं दशंकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम् । कुण्डं च वज्रंदंष्ट्राणां बृश्चिकानां च सुव्रते ॥१४॥ शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम् । गोलकुण्डं नक्रकुंडं काककुण्डं शुचास्पदम् ॥१५॥ मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं वज्रकुण्डं च दुःसहम् । तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुंडकम् ॥१६॥ लालाकुंडं मसीकुंडं चूर्णकुंडं तथैव च । चक्रकुंडं वक्रकुंडं कूर्मकुंडं महोल्बणम् ॥१७॥ ज्वालाकुंडं भस्मकुंडं दग्धकुंडं शुचिस्मिते । तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरध्रं सुचीकामुखम्॥१८॥ गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम् । कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमितन्तुकम् ॥१९॥ पासुंभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम् । उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं ताडनं तथा ॥२०॥ जालरंध्रं देहचूर्णं दलनं शोषणं कषम् । शूर्पं ज्वालामुखं चैव धूमांधं नागवेष्टनम्॥२१॥ कुण्डान्येतानि सावित्री पापिनां क्लेशदानि च । नियुतैः किंकरगणैः रक्षितानि च संततम् ॥२२॥ दंडहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयंकरैः । शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः ॥२३॥ तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्च न सर्वतः । तेजस्विभिश्च निःशंकैराताम्रपिंगलोचनैः ॥२४॥ योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः । आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः ॥२५॥ स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः । अदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्च

चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्ण कण्टक (काँटों वाला) कुण्ड, विषके जल से भरा हुआ विषकुण्ड ॥१३॥ खौलते हुए तेल का कुण्ड, भयंकर कुन्त कुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड ॥१३॥ दंशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्र के समान डंक मारने वाली बिछुओं का कुण्ड ॥१४॥ शर (बाण) कुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, काककुण्ड ॥१५॥ मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, भयंकर वज्रकुण्ड, तप्त पाषाणकुण्ड और तीक्ष्ण पाषाणकुण्ड ॥१६॥ लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड ॥१७॥ ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड और सूचीमुखकुण्ड ॥१८॥ नक्रमुखंकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुम्भीपाक, कालसूत्र, मत्स्योद और कृमिकुण्ड ॥१९॥ पांशुभज्य, पांशुवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अंधकूप, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधनकुण्ड और ताडनकुण्ड॥२०॥ ज्वालारंध्र, देहचूर्ण, दलन, शोषण, कशाकुण्ड, शूर्पकुण्ड, ज्वालामुख, धूमांध और नागवेष्टनकुण्ड ॥२१॥ हे सावित्रि ! ये सभी कुण्ड पापियों को कष्ट देने वाले हैं । इन कुण्डों की रक्षा करोड़ों किंकर किया करते हैं । इन अनुचरों के हाथ में दण्ड रहता है । ये अपने हाथ में पाश लिए रहते हैं ये मदमत्त तथा भयंकर होते हैं । ये अपने हाथ में सदा शक्ति, गदा और तलवार लिए रहते हैं ॥२३॥ ये तमोगुणी और दयाहीन, होते हैं । इनको कोई रोक नहीं सकता है । ये तेजस्वी तथा निःशंक होते हैं । इनकी आँखें पीली होती हैं ॥२४॥ ये योगयुक्त, सिद्धियुक्त और अनेक रूपों वाले होते हैं । ये उन सभी

सिद्धैर्योगिभिरेव च ॥२६॥ स्वधर्मनिरतैर्वापि विततैर्वा स्वतन्त्रकैः । बलवद्भिश्च निःशंकैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥२७॥ एतत्ते कथितं साध्वि कुंडसंख्यानिरूपणम् । येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते ॥२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच— **हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धो व्रती सति । तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम् ॥१॥ कटुवाचा बांधवांश्च बललेपेन यो नरः । दग्धानकरोति बलवान्वह्निकुण्डं प्रयाति सः ॥२॥ स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने । पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रदग्धां त्रिजन्मनि ॥३॥ ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम् । न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः ॥४॥ तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च**

पापियों को दिखायी देते हैं जिनकी मृत्यु सन्निकट आ गयी रहती है ॥२५॥ जो जीव अपने कर्मों का पालन करते हैं देवी, सूर्य और गणपति के भक्तों को ये नहीं दिखायी देते हैं । इसी तरह पुण्यवान्, सिद्ध तथा योगियों को भी ये यमदूत नहीं दिखायी देते हैं ॥२६॥ जो अपने धर्म में लगे रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जो पूर्णरूप से स्वतंत्र हैं, बलवान् एवं निःशंक है, स्वप्न में भगवद् भक्तों को नही दिखते हैं, उनलोगों के भी समक्ष यमदूत नहीं जाते हैं॥२७॥ हे साध्वि ! इस तरह से मैंने कुण्डों की संख्या का निरूपण किया, जिन जीवों को जिस कुण्ड में जाना पड़ता हैं, उन सबों को मैं बतलाता हूँ ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बत्तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३२॥

नारकीय गति का वर्णन

धर्मराज ने कहा— श्रीहरि की सेवा करने वाला, शुद्ध योगसिद्ध तथा व्रतपरायण पुरुष, तपस्वी तथा ब्रह्मचारी को नरकों में नहीं जाना पड़ता है ॥१॥ जो व्यक्ति अपने बल के घमण्ड में आकर अपने बान्धवों को कटुवचनों से दुःख देता है, उसे अग्निकुण्ड में जाना पड़ता है ॥२॥ उसके शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षों तक उसको उसी कुण्ड में निवास करना पड़ता है । उसके बाद उसे तीन जन्मों तक पशुओं की योनि में जाना पड़ता है ॥३॥

दुःखदे । तप्तस्थले वह्निकल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु ॥५॥ रविवारे च संक्रांत्याममायां श्राद्धवासरे । वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः ॥६॥ स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च । स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥७॥ मूलप्रकृतिनिन्दां यः कुरुते मानवाधमः । वेदनिंदां शास्त्रनिंदां पुराणानां तथैव च ॥८॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा निंदापरो जनः । गौरीवाण्यादिदेवीनां तथा निंदापरो जनः ॥९॥ सर्वे ते निरये यांति तस्मिन्कुण्डे भयानके । नातः परतरं कुंडं दुःखदं तु भविष्यति ॥१०॥ तत्र स्थित्वाऽनेक कल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः । देवीनिन्दापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥११॥ स्वदत्तां परदत्तं वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः । षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डं च प्रयाति सः ॥१२॥ तावंत्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति । षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि ॥१३॥ परकीयतडागे च तडागं यः करोति च । उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥१४॥ तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत् ॥१५॥ एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च । पूर्णमशब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥१६॥ ततः पूर्णशताब्दं च स प्रेतो भारते भवेत् । श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुंक्ते ततः शुचिः ॥१७॥

जो मूर्ख भूखे-प्यासे, सन्तप्त, घर आये हुए ब्राह्मण को भोजन नहीं कराता है उसे तप्तकुण्ड में जाना पड़ता है ॥४॥ वह उस दुखद कुण्ड में उतने वर्षों तक निवास करता है, जितने रोएँ उसके शरीर में होते हैं । उसे संतप्त पाषाण कुण्ड में अग्नि की शय्या पर सोना पड़ता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक पक्षी होता है ॥५॥ जो व्यक्ति रविवार को संक्रान्ति के दिन, अमावस्या श्राद्ध के दिन अपने कपड़ों को क्षार पदार्थों से धोता है उसे उतने वर्षों तक क्षारकुण्ड में निवास करना पड़ता है जितनी संख्या उस वस्त्र के सूत्रों की होती है उसे उतने वर्ष तक उस कुण्ड में रहना पड़ता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक धोबी की योनि में जन्म लेता है ॥६-७॥ जो अधम मनुष्य, मूल प्रकृति, वेदों, शास्त्रों, पुराणों, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओं की निन्दा करता है । गौरी, सरस्वती आदि देवियों की निन्दा करता है ॥८-९॥ वे पापी भयंकर नारकीय कुण्डों में जाते हैं । उन कुण्डों से भयंकर कोई दूसरा कुण्ड नहीं है ॥१०॥ उस कुण्ड में अनेक कल्पों तक रहने के बाद वह जीव सर्पयोनि में चला जाता है । देवी की निन्दा रूपी अपराध का कोई भी प्रायश्चित नहीं है ॥११॥ अपने से दी हुई अथवा दूसरे द्वारा दी गयी ब्राह्मण अथवा देवता की वृत्ति का हरण करने वाला विट् कुण्डों में जाता है ॥१२॥ वह वहाँ पर साठ हजार वर्ष तक निवास करता है और विट् का ही भोजन करता है । इसके बाद वह विट् खाने वाले कीड़े के रूप में जन्म लेता है ॥१३॥ जो दूसरे के बनाये सरोवर में सरोवंर बनाता है । वह मरने के बाद मूत्रकुण्ड में जाता हैं ॥१४॥ वहाँ उसे खाने के लिए मल-मूत्र ही मिलते हैं । उसके बाद वह भारत वर्ष में सौ वर्षों तक बैल के रूप में जन्म लेता है ॥१५॥ जो व्यक्ति अकेले मिठ्ठी वस्तुएँ खाता है, वह मरने के बाद श्लेष्म (कफ) कुण्ड में जाता है और वहाँ सौ वर्ष तक श्लेष्म ही खाता है ॥१६॥ वहाँ के बाद पूरे सौ वर्ष तक प्रेत होता है और कफ, मूत्र तथा पीब खाता है ॥१७॥ जो

पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम् । यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुंडं प्रयाति सः ॥१८॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥१९॥ दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः । पितृदेवास्तस्य जलं न गृहणन्ति च पापिनः ॥२०॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्मत्यादिकानि च । इहैव लभते चांते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत् ॥२॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो वज्रेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः ॥२२॥ दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि । स तिष्ठति बसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२३॥ कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु । ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२४॥ पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वा पुमानथ । यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥२५॥ पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति । कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः ॥२६॥ संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत् । स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥२७॥ ततोलभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते । ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह ॥२८॥ योऽश्रुं तत्याज गायंतं भक्तं दृष्ट्वा सगद्गदम् । श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः ॥२९॥ स

अपनी माता-पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र तथा पुत्री का पालन नहीं करता है वह मरने के बाद विष के कुण्ड में जाता है ॥१८॥ वह वहाँ विष खाकर पूरे सौ वर्ष तक रहता है । उसके बाद वह सौ वर्ष तक के लिए भूतों की योनि में चला जाता है तब पवित्र होता है ॥१९॥ जो व्यक्ति आये हुए अतिथि को देखकर अपनी नजर टेढ़ी करता है, उस पापी के हाथ का पानी पितृगण तथा देवता नहीं स्वीकार करते हैं ॥२०॥ ब्रह्महत्या इत्यादि जितने भी पाप हैं उसे इस लोक में लग जाते हैं, और मरने के बाद वह दूषिकाकुण्ड में जाता है ॥२१॥ वहाँ पर वह दूषित पदार्थों का ही भोजन करके सौ वर्षों तक रहना पड़ता है, उसके बाद वह सौ वर्ष तक भूतयोनि में रहने के बाद पवित्र होता है ॥२२॥ यदि कोई किसी ब्राह्मण को द्रव्य दान करके दूसरे को दे देता है, वह सौ वर्ष तक वसा के कुण्ड में पड़ा रहता है और वह वहाँ उसी का भोजन करता है ॥२३॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक भारत में गिरगिट होता है । उसके बाद वह भयंकर दरिद्र और अल्पायु होता है ॥२४॥ यदि कोई पुरुष किसी नारी को अथवा नारी किसी पुरुष को अपना वीर्य पिलाता है, वह सौ वर्ष तक शुक्र (वीर्य) के कुण्ड में पड़ा रहता है और उसे वहाँ पर वीर्य ही खाने को मिलता है । इसके बाद सौ वर्षों तक वह कृमि की योनिं में रहता है, उसके बाद वह शुद्ध होता है ॥२५-२६॥ जो अपने गुरु अथवा किसी ब्राह्मण को मारकर उसका खून बहाता है वह मरने के बाद खून के कुण्ड में जाता है, और उसे वहाँ खाने क लिए खून ही मिलता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में व्याघ्रयोनि में जन्म लेता है । इस तरह वह क्रमशः मनुष्य योनि में जाता है ॥२७-२८॥ भक्ति पूर्वक भगवद् गुणगान करते समय भक्त को देखकर यदि किसी व्यक्ति के आखों से क्रोध पूर्वक आँसू निकलने

वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवर्षकम् । ततो भवेच्च चांडालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥३०॥ करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः । कुण्डं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम् ॥३१॥ ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि । त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥३२॥ बधिरं यो हसत्येव निंदत्येवाभिमानतः । स वसेत्कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥३३॥ ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु । सप्जजन्मन्यंगहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३४॥ लोभात्स्वभरणार्थाय जीवितं हंति यो नरः । मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम् ॥३५॥ ततो भवेच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु । त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु ॥३६॥ एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् । स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति च यो नरः ॥३७॥ अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः । कन्यालोमप्रमाणब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥३८॥ तस्य दंडप्रहारं च कुर्वंति यमकिकराः । मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा ॥३९॥ ततो हि भारते वापी कन्याविट्कृमिगो भवेत् । षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु ॥४०॥ त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु । मंडूको हि जलौकाश्च सप्तजन्मसु भारते ॥४१॥ सप्तजन्मसु काकश्च ततः

लगता है । वह उस भक्त का उपहास करता है, तो मरने के बाद उसे आँसू के ही कुण्ड में जाना पड़ता है । और आँसू का ही भोजन करते हुए सौ वर्षों तक उसे उस कुण्ड में निवास करना पड़ता है । इसके बाद वह तीन जन्मों तक चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है तब वह शुद्ध होता है ॥२९-३०॥ जो अपने सुहृद जनों के प्रति शठता करता है उसे मरने के बाद शरीर के मल के कुण्ड में सौ वर्षों तक जाना पड़ता है ॥३१॥ उसके बाद वह तीन जन्मों तक गदही का जन्म पाता है । उसके बाद तीन जन्मों तक वह स्यारिन होता है । उसके बाद शुद्ध होता है ॥३२॥ जो किसी बहरे आदमी को देखकर उसका उपहास करता है । वह मरने के बाद कान के मैले के कुण्ड में जाता है और उसे सौ वर्ष तक उसे ही खाकर निवास करना पड़ता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक बहरा और दरिद्र होता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक अंगहीन होता है । उसके बाद वह शुद्ध होता है ॥३३-३४॥ जो व्यक्ति अपने भरण-पोषण के लिए किसी जीव की हिंसा करता है वह सौ वर्षों तक मज्जा के कुण्ड में जाता है और उसे ही खाकर निवास करता है ॥३५॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक खरगोश तथा मछली होता है । तीन जन्म तक सूकर होता है और सात जन्मों तक मुर्गा होता है ॥३६॥ उसके बाद उसे अपने कर्मों के प्रभाव से मृग आदि होना पड़ता है, तब जाकर उसकी शुद्धि होती है । जो व्यक्ति अपनी कन्या का पालन करके उसे अर्थलोभ से बेंच देता है ॥३७॥ वह महामूर्ख माँस के कुण्ड में जाता है और कन्या के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्ष तक वह माँस खाते हुए उस कुण्ड में निवास करता है ॥३८॥ वहाँ उसे यमदूत दण्डे से पीटते हैं । उसे मांस और खून का भार ढोना पड़ता है और वही उसे खाना पड़ता है ॥३९॥ उसके बाद उसे कन्या के विट् का कीड़ा होना पड़ता है और उसे साठ हजार वर्षों तक विट् में ही कीड़ा होना पड़ता है । फिर वह सात जन्मों तक बहेलिया होता है ॥४०॥ फिर वह तीन

शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् । व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संगमे ॥४२॥ करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु । स च तिष्ठति कुण्डे च नखादीनां च सुंदरि ॥४३॥ तद्देवदिनमानाब्दं तद्भोजी दंडताडितः । सकेशं पार्थिवं लिंगं यो वाऽर्चयति भारते ॥४४॥ स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम्। तदंते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः ॥४५॥ शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद् ध्रुवम् । पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्यं नैव ददाति च ॥४६॥ स च तिष्ठत्यस्थिकुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्बणे । ततः सुयोनिं सम्प्राप्य कुखंजः सप्तजन्मसु ॥४७॥ भवेन्महाररिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः । यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम् ॥४८॥ प्रतप्ते ताम्रकुण्डे च शतवर्षं च तिष्ठति । अवीरन्नं च यो भुंक्ते ऋतुस्नातान्नमेव च ॥४९॥ लोहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके । स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु ॥५०॥ महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः। यो हि चर्मात्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् ॥५१॥ शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स तिष्ठति । यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुंक्ते शूद्रान्नमेव च॥५२॥ स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः । ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु ॥५३॥ शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् । वाग्दुष्टः

जन्मों तक वराह और सात जन्मों तक मुर्गा होता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक मेढ़क और जोंक होता है ॥४१॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक कौआ होता उसके बाद उसकी शुद्धि होती है । जो मनुष्य व्रतों, उपवासों तथा श्राद्ध आदि के अवसर पर क्षौरकर्म कराता है, वह सभी कर्मों के लिए अपवित्र माना जाता है । हे सुन्दरि सावित्रि ! वह नख आदि के कुण्डों में निवास करता है ॥४२-४३॥ देवताओं की गणना के अनुसार सौ वर्षों तक यमदूत उसे डंडों से पीटते रहते हैं और वह केश और नख को खाता है । जो केशयुक्त पार्थिव लिङ्ग की पूजा करता है उसको उस पार्थिव लिङ्ग में विद्यमान धूलिकण की संख्या के बराबर वर्षों तक केशकुण्ड में रहना पड़ता है । उसके पश्चात् शंकरजी के कोप के कारण उसे यवन की योनि में जाना पड़ता है ॥४४-४५॥ उसके बाद वह सौ वर्षों तक राक्षस होने के बाद शुद्ध हो पाता है । जो व्यक्ति विष्णुपद में जाकर अपने पितरों को पिण्डदान नहीं देता है ॥४६॥ उसके शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षों तक वह अस्थिकुण्ड में निवास करता है । उसके बाद वह मानव जन्म प्राप्त करके सात जन्मों तक लंगड़ा होता है ॥४७॥ वह महादरिद्र होता है, उसके बाद जाकर वह शुद्ध होता है । जो व्यक्ति अपनी गर्भवती स्त्री के साथ संभोग करता है ॥४८॥ वह प्रतप्त कुण्ड में सौ वर्षों तक रहता है । जो व्यक्ति सद्यः ऋतुस्नाता स्त्री के हाथ का भोजन करता है ॥४९॥ वह संतप्त लोहकुण्ड में सौ वर्ष तक निवास करता है। उसके बाद वह धोबी होता है और सात जन्मों तक कौआ होता है ॥५०॥ उस समय वह महादरिद्र होता है और उसके शरीर में बड़े-बड़े घाव होते हैं। जो व्यक्ति चमड़े से स्पृष्ट हाथ से देवता के द्रव्य को छूता है ॥५१॥ वह सौ वर्षों तक चर्मकुण्ड में रहता है । जो शूद्र की आज्ञा पाकर शूद्र का अन्न खाता है ॥५२॥ वह ब्राह्मण तप्त सुरा के कुण्ड में सौ वर्ष तक रहता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक शूद्र का यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण सात जन्मों तक होता है ॥५३॥ उसके बाद वह शूद्र के घर श्राद्धान्न भोजी ब्राह्मण होता है । उसके बाद वह शुद्ध होता है । जो तीक्ष्णवाणी के द्वारा अपने

कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा ॥५४॥ तीक्ष्णकंटककुण्डे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ताडितो यमदूतेन दंडेन च चतुर्गुणम् ॥५५॥ तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचि । विषेण जीवनं हंति निर्दयो यो हि मानवः ॥५६॥ विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति । ततो भवेन्नृघाती च व्रणी च शतजन्मसु ॥५७॥ सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः सुद्धो भवेद्ध्रुवम् । दण्डेन ताडयेद् गां हि वृषं च वृषवाहकः ॥५८॥ भृत्यद्वारास्वतंत्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । प्रतप्ते तैलकुण्डेऽग्नौ स तिष्ठति चतुर्युगम् ॥५९॥ गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् । कुन्तेन हंति यो जीवं वह्निलोहेन हेलया ॥६०॥ कुन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति । ततः सुयोनिं संप्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः ॥६१॥ जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः । यो भुंक्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः ॥६२॥ हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः । स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६३॥ ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः । ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥६४॥ शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद्ध्रुवम् । यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदंडेन सुव्रते ॥६५॥ ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्जन्मसु ॥६६॥ महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च । कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हन्ति यो नरः ॥६७॥ स्वलोममानवर्षं च सर्पकुंडं प्रयाति सः । सर्पेण

स्वामी को कष्ट पहुँचाता है ॥५४॥ वह तीक्ष्ण कण्टक कुण्ड में जाकर तीक्ष्ण काँटों को ही खाता है उसके चार गुना यमूदत उसे पीटते हैं ॥५५॥ उसके बाद वह सात जन्मों में उच्चैःश्रवा सात जन्मों तक होकर शुद्ध होता है । यदि कोई पुरुष किसी को विष खिलाकर उसे मारता है, वह विष कुण्ड में हजार वर्षों तक निवास करता है । उसके बाद वह मनुष्य सात जन्मों तक राजा को मारने वाला होता है, और उसके शरीर में घाव होते हैं । फिर उसको कुष्ठ हो जाता है, उसके बाद वह शुद्ध होता है । यदि कोई हलवाहा बैल को डण्डे से मारता है ॥५६-५८॥ वह इस काम को स्वतंत्र रूप से नौकर के द्वारा नहीं कराकर स्वयं करता है तो वह चार युगों तक प्रतप्ततेल के कुण्ड में निवास करता है ॥५९॥ उसके बाद बैल के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षों तक वह बैल होता है । जो किसी व्यक्ति को वर्छी से मार देता है अथवा उसे अग्नि में जलाकर मारता है ॥६०॥ वह दश हजार वर्षों तक कुन्तकुण्ड में निवास करता है । उसके बाद वह सुन्दर योनि में जाकर माता के गर्भ में ही रोगी हो जाता है ॥६१॥ इस तरह एक जन्म में रहकर वह शुद्ध होता है । जो द्विजाधम माँस का लोभी होता है, और बिना किसी कारण के माँस खाता है, श्रीहरि के नैवेद्य को नहीं खाता है, वह कृमि कुण्ड में जाता है। और उसके शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने वर्ष तक कृमियों को ही खाता है ॥६२-६३॥ उसके बाद वह तीन जन्मों तक म्लेछ होने के बाद फिर द्विज होता है । जो ब्राह्मण शूद्र का यज्ञ कराता है, शूद्र के श्राद्ध में उसका अन्न खाता है ॥६४॥ और शूद्रों के शव को जलाने का काम करता है, वह अपनी लोम संख्या के बराबर वर्षों तक पीब के कुण्ड में निवास करता हैं वहाँ उसे यमदूत मारने का काम करते हैं । फिर वह भारत वर्ष में आकर सात जन्मों तक

भक्षितः सोऽथ यमदूतेन ताडितः ।।६८।। वसेच्च सर्पविड्भोजी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् । ततो भवेन्मानवश्च स्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः ।।६९।। महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षिताद्ध्रुवम् । विधिप्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजन्तूंश्चं हंति यः ।।७०।। स दंशमशयोः कुण्डे जंतुमानाब्दमेव च । दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान् ।।७१।। हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः । ततो भवेत्क्षुद्रजंतुर्जातिश्च यावनी भवेत् ।।७२।। ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः । यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुमक्षिकाः ।।७३।। स एव गारले कुण्डे जीवमानाब्दकं वसेत् । भक्षितो गरलैर्दग्धो मम दूतेन ताडितः ।।७४।। ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः । दण्डं करोत्यदंड्ये च विप्रे दण्डं करोति च ।।७५।। स कुण्डे वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम् । स तल्लोमप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् ।।७६।। शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु मम दूतेन ताडितः । करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणे क्षणे ।।७७।। पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु । त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो भवेन्नरः ।।७८।। अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः । वृश्चिकानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ।।७९।। ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते । ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधिशुद्धो

शूद्र होता है ।।६५-६६।। इसके बाद वह महारोगी, दरिद्र, बहरा तथा गूंगा होता है । जिस सर्प के शिर पर कमल का चिह्न होता है, उस काले सर्प को जो मारता है ।।६७।। वह अपने शरीर के रोओं की संख्या के बराबर वर्षों तक सर्प कुण्ड में रहता है । वहाँ उसे सर्प काटते रहते है और यमदूत उसको पीटते रहते हैं ।।६८।। वहाँ वह सर्पो के विट को खाता है और अन्त में वह सर्प की योनि में जाता है । उसके बाद वह मनुष्य होता है और उसके शरीर में दाद होता है ।।६९।। उसकी मृत्यु सर्प के काटने से अत्यन्त क्लेश पूर्वक होती है । जो व्यक्ति भाग्यानुसार छोटे-छोटे जीवों को मारकर अपनी जीविका चलाता है । वह दंश और मशकों के कुण्ड में उतने वर्षों तक रहता है, जितने जीवों की वह हत्या किए रहता है । उसे खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता है, वह निराहार रहता है और भूख के मारे चिल्लाता रहता है ।।७०-७१।। वहाँ पर यमदूत उसके हाथ पैर को बाँधकर पीटते रहतें है । इसके बाद वह छोटा जीव होता है फिर वह यवन योनि में जन्म लेता है ।।७२।। उसके बाद वह अङ्गहीन मानव होता है । उसके बाद उसकी शुद्धि होती है। जो मूर्ख मधुमखियों को मारकर उन सबों के मधु को खा जाता है ।।७३।। वह मृत मधुमखियों की संख्या के बराबर वर्षों तक गरल कुण्ड में निवास करता है । उसको वहाँ विष खाना पड़ता है और मेरे दूत उसे पीटते हैं ।।७४।। उसके बाद वह मधुमखी होता है उसके बाद उसकी शुद्धि होती है । जो निरपराध व्यक्ति को तथा ब्राह्मण को दण्ड देता है ।।७५।। वह मरने के बाद वज्रदंष्ट्र कीटों के कुण्ड में जाता है । और उस दण्डित मनुष्य के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने वर्षों तक वह उस कुण्ड में निवास करता है ।।७६।। वज्रदंष्ट्र कीटों के काटने से तथा मेरे दूतों के पीटने से वह चिल्लाता रहता है । वह प्रत्येक क्षण हाय ! हाय !! करके रोता रहता है ।।७७।। उसके बाद वह सात जन्म तक सूकर की योनि में जन्म लेता है । फिर तीन जन्मों में वह कौआ

भवेद्ध्रुवम् ॥८०॥ ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत् । संध्याहीनश्च सो विप्रो हरिभक्तिविहीनकः ॥८१॥ स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु । विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥८२॥ कारागारे सांधकारे प्रणिहंति प्रजाश्च यः । प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः ॥८३॥ स पंकतप्ततोयाक्तं सांधकारं भयंकरम् । तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम् ॥८४॥ कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च । ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात् ॥८५॥ सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हंति यो नरः; । नक्रकंटकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः ॥८६॥ ततो नक्रादिजातीये भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम् । ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव पुनः पुनः ॥८७॥ वक्षः श्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः । कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥८८॥ स वसेत्काककुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः । ततः स्वलोममानाब्दं भवेद्दग्धस्त्रिजन्मनि ॥८९॥ स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः । स च मंथानकुण्डे वै स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९०॥ ताडितो यमदूतेन

होता है, उसके बाद उसकी शुद्धि होती है ॥७८॥ जो मूर्ख धन के लोभ से प्रजाओं को दण्ड देता है, वह प्रजाओं के शरीर में विद्यमान लोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक बिच्छुओं के कुण्ड में निवास करता है ॥७९॥ उसके बाद सात जन्मों तक वह विच्छु होता है । उसके बाद अङ्गहीन तथा रोगी मनुष्य होता है । तब जाकर उसकी शुद्धि होती है ॥८०॥ जो ब्राह्मण शस्त्रधारण करके, दूसरों के दूत का काम करता है न तो वह सन्ध्या करता है और न श्रीहरि की भक्ति ही करता है ॥८१॥ उतने वर्षों तक शरादि कुण्ड में निवास करता जितने उसके शरीर में रोएँ होते हैं । उस कुण्ड में विद्यमान, बाण, खड्ग इत्यादि उसके शरीर को छेदते रहते हैं ॥८२॥ जो मदमत्त व्यक्ति किसी को कारागार में अंधेरें में मारता है वह अपने पाप के कारण गोलकुण्ड में जाता है ॥८३॥ वह नरक कुण्ड अत्यन्त भयंकर है । उसमें चारो ओर खौलता हुआ पानी भरा रहता है । उसमें अंधकार बना रहता है । उसमें मरने वाले जीव व्याप्त रहते हैं । वे उसको सदा काटते रहते हैं । उस कुण्ड में उसको उतने वर्ष तक रहना पड़ता है, जितने रोएँ उन मारे जाने वाले मनुष्य के शरीर में रहते हैं । उसके बाद वह उन प्रजाओं का मृत्यु होता है । उसके बाद वह क्रमशः शुद्ध होता है ॥८४-८५॥ सरोवरों से निकले हुए घड़ियाल आदि को जो मारता है वह नक्रकुण्ड नामक कुण्ड में जाता है । उन नक्रों में जीतने काँटे होते हैं, उतने वर्षों तक उसे उस नरक कुण्ड में रहना होता है ॥८६॥ उसके बाद उसको नक्र की योनि मिलती है । इस तरह से वह बार-बार दण्डित होकर शुद्ध होता है ॥८७॥ पुण्यक्षेत्र भारत वर्ष में जो कामासक्त होकर किसी दूसरे की पत्नी के वक्षःस्थल जंघा, स्तन और मुख को देखता है ॥८८॥ वह काककुण्ड में निवास करता है और उस कुण्ड के कौए उसकी आँखों को फोड़ते रहते हैं । वह उस कुण्ड में अपने लोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक निवास करता है । उसके बाद वह तीन जन्मों तक जलता है ॥८९॥ जो मूर्ख किसी देवता अथवा ब्राह्मण का स्वर्ण चुराता है वह अपने लोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक मंथान कुण्ड में निवास

मंथानैश्छन्नलोचनः । तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चांधस्त्रिजन्मनि ॥९१॥ सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी । भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः ॥९२॥ यो भारते ताम्रचौरो लोहचौरश्च सुंदरि । स च स्वलोममानाब्दं बीजकुण्डे प्रयाति सः ॥९३॥ तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः । ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९४॥ भारते देवचोरश्च देवद्रव्यापहारकः । स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९५॥ देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत् । ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९६॥ रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चोरः सुरविप्रयोः । तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥९७॥ त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि । जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः ॥९८॥ ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवौ भवेत् । सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥९९॥ रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः । तीक्ष्णपाषाणकुंडे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः ॥१००॥ स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु । ततोऽधिकांगजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥१०१॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते पुंश्चलीजीव्यजीविनः । स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम् ॥१०२॥ ताडितो मम दूतेन तद्भोजी

करता है ॥९०॥ मेरे दूत उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे दण्डे से पीटते हैं । वह वहाँ उन सबों के विट् को ही खाता है उसके बाद वह तीन जन्मों तक अन्धा होता है ॥९१॥ इसके बाद वह सात जन्मों तक दरिद्र और महाक्रूर होता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में सोना चुराने वाला स्वर्णकार होता है ॥९२॥ हे सुन्दरि ! भारत में जो ताम्बा और लोहा चुराने का काम करता है, वह अपने लोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक बीजकुण्ड में निवास करता है ॥९३॥ वहाँ उसे बीज के कीड़े काटते रहते हैं । यमदूत उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे दण्डे से पीटते हैं । तब वह मनुष्य शुद्ध होता है।॥९४॥ जो भारत वर्ष में देवताओं की मूर्तियों तथा देवताओं के द्रव्य को चुराता है, वह निश्चित रूप से वज्रकुण्ड नामक नरक में निवास करता है । यमदूतों द्वारा वज्र के मार से उसका शरीर दग्ध हो जाता है, और वह चिल्लाता रहता है । उसके पश्चात् वह शुद्ध होता है ॥९५-९६॥ जो देवताओं और ब्राह्मणों की चाँदी, दूध, दही तथा वस्त्र को चुराता हैं, वह अपने रोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक तप्त पाषाण कुण्ड नामक नरक में निवास करता है ॥९७॥ वह तीन जन्मों तक कुष्ठी, फिर एक जन्म में कोढ़ी और उसके बाद तीन जन्म तक श्वेत पक्षी होता है ॥९८॥ उसके बाद वह रक्तविकार और शूल रोग का रोगी होकर कष्ट पाता है । फिर वह सात जन्मों तक अल्पायु होता है । उसके बाद वह शुद्ध होता है ॥९९॥ जो देवता तथा ब्राह्मण के पीतल तथा कांसे के पात्र को चुराता है वह अपने रोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड में निवास करता है । उसके बाद वह भारत वर्ष में ही सात जन्मों तक अश्व की जाति में जन्म लेता है । उसके बाद वह अधिकांग के रूप जन्म लेता है और पैरों का रोगी होता है ॥१००-१०१॥

तत्र दुःखितं । ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेणं सः ॥१०३॥ म्लेच्छसेवी मसीजीवी सो विप्रो भारते भुवि । वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुण्डे स दुःखभाक् ॥१०४॥ ताडितो मम दूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति ॥१०५॥ त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिजन्मनि । ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥१०६॥ धान्यादिसस्यं तांबूलं यः हरेत्सुरविप्रयोः । आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुंडे प्रयाति सः ॥१०७॥ शताब्दं तत्र निवसेन्मम दूतेन ताडितः । ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि ॥१०८॥ ततो भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि । वंशहीनो दरिद्रश्च अल्पायुश्च ततः शुचिः ॥१०९॥ करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः । स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दंडताडितः ॥११०॥ ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि । व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥१११॥ गोधनेषु च विप्रेषु करोति चक्रतां पुमान् । प्रयाति वक्रकुंडं स तिष्ठेद्युगशतं सति ॥११२॥ ततो भवेत्स वक्रांगो हीनांगः सप्तजन्मनि । दरिद्रो वंशहीनश्च भाग्यहीनस्ततः शुचिः ॥११३॥ ततो भवेद्गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः । त्रिजन्मनि विडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥११४॥ निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति । कूर्मकुंडे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः ॥११५॥ ततो भवेत्कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च सूकरः । त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः

जो व्यक्ति पुंश्चली नारी के अन्न से अपनी जीविका चलाता है, वह अपने लोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक मसी कुण्ड में निवास करता है ॥१०२-१०४॥ वहाँ मेरे दूत उसे पीटते हैं और उसे मसी का ही भोजन करना पड़ता है । उसके बाद वह तीन जन्मों तक काले रङ्ग का पशु होता है ॥१०५॥ उसके बाद वह तीन जन्मों तक काले रङ्ग का बकरा होता है । उसके बाद वह ताड़ का वृक्ष होता है । उसके बाद उसकी शुद्धि होती है ॥१०६॥ जो देवताओं और ब्राह्मणों के अन्न और आसन शय्या और पान इत्यादि को चुराता है, वह सौ वर्षों तक चूर्णकुण्ड में निवास करता है । उसके बाद वह बकरा होता है फिर तीन जन्मों तक मुर्गा होता है ॥१०७-१०८॥ उसके बाद वह वानर और कास का रोगी, वंशहीन, दरिद्र तथा अल्पायु होकर पवित्र होता है॥१०९॥ जो ब्राह्मण के धन को चुराकर चक्र का व्यापार (कोल्हू का व्यापार करता है) वह मेरे दूतों द्वारा दण्डे से पीटा जाता हुआ सौ वर्षों तक चक्रकुण्ड में निवास करता है ॥११०॥ उसके बाद वह तीन जन्मों तक तेली का जन्म पाता है । उस समय वह रोगी और वंशहीन होता है । जो व्यक्ति गौओं तथा ब्राह्मणों के प्रति वक्रदृष्टि रखता है वह सौ युगों तक वक्रकुण्ड नामक नरक में निवास करता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक वक्राङ्ग (टेढे अंगों वाला) तथा हीनाङ्ग (कम अंगों वाला) होता है । वह दरिद्र, वंशहीन तथा भाग्यहीन होता है । उसके बाद वह पवित्र होता है ॥१११-११३॥ उसके बाद वह गृध्र पक्षी होता है, फिर तीन जन्मों तक सूकर, तीन जन्मों तक विडाल, फिर तीन जन्मों तक मयूर होता है ॥११४॥ जो ब्राह्मण कूर्म का निषिद्ध मांस खाता है वह सौ वर्षों तक कूर्मकुण्ड में निवास करता है और वहाँ उसे कूर्म कछुए काटते रहते हैं ॥११५॥ उसके बाद वह तीन जन्मों में कूर्म, तीन जन्मों में सूकर, तीन

शुचिः ॥११६॥ घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः । स याति ज्वालाकुंडं च भस्मकुंडं च पातकी ॥११७॥ तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः । सप्तजन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः ॥११८॥ सुगंधितैलं धात्रीं वा गंधद्रव्यान्यदेव वा । भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥११९॥ स वसेद्दग्धकुंडे च भवेद्दग्धो दिवानिशम् । स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गंधिको भवेत् ॥१२०॥ दुर्गंधिकः सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि । सप्तजन्मसु मंथानस्ततो हि मानवो भवेत् ॥१२१॥ बलेनैव छलेनैव हिंसारूपेण वा सति । बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥१२२॥ स वसेत्तप्तसूचिं च भवेत्तापी दिवानिशम् । तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति संततम् ॥१२३॥ भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति । सप्तमन्वन्तरं पापी सन्तप्तस्तत्र तिष्ठति ॥१२४॥ शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः । षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः॥१२५॥ ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः । ततः स्वयोनिं संप्राप्य शुभं कर्माचरेत्पुनः ॥१२६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

जन्मों में बिल्ली और तीन जन्मों में मयूर होकर पवित्र होता है ॥११६॥ जो ब्राह्मणों और देवताओं का घी तथा तेल चुराता है । वह पापी ज्वालाकुण्ड तथा भस्मकुण्ड में सौ वर्षों तक निवास करता है । वहाँ उसको तप्ततेल में पकाया जाता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक मछली और सात जन्मों तक चूहा होता है ॥११७-११८॥ जो ब्राह्मण अथवा देवता के सुगन्धित तेल, या धायी, या अन्य सुगन्धित द्रव्य को चुराता है, वह अपने रोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक दग्धकुण्ड में निवास करता है और वहाँ उसको रात-दिन जलाया जाता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक दुर्गन्धिक होता है, और तीन जन्मों तक कस्तूरी मृग फिर सात जन्मों तक मन्थाल होकर मनुष्य का जन्म प्राप्त करता है ॥११९-१२१॥ यदि कोई बलवान् व्यक्ति किसी दूसरे की पैतृक भूमि को बलप्रयोग, छला तथा हिंसा के द्वारा हड़प लेता है तो ॥१२२॥ वह तप्तसूची कुण्ड में रात-दिन तप्त तैल में जलाया जाता है, किन्तु उससे उसका यातना शरीर भस्म नहीं होता है । और इस तरह से वह उस कुण्ड में सात मन्वन्तरों तक संतप्त होता रहता है ॥१२३-१२४॥ यमदूतों से पीटे जाते रहने के कारण हाय-हाय चिल्लाता रहता है । उसके बाद वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥१२५॥ उसके बाद वह भूमिहीन और दरिद्र होता है । उसके पश्चात् वह अपनी योनि में जाता है । उसके बाद वह शुभकर्मों को करता है ॥१२६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच– **छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः । नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥१॥ असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश। तेषु यो ब्राह्मणान्हंति शतमन्वंतरं वसेत् ॥२॥ छिन्नांगः संवसेत्सोऽपि खड्गधारेण सन्ततम् । अनाहारः शब्दमुच्चैर्यमदूतेन ताडितः ॥३॥ मन्थालः शतजन्मानि शतजन्मानि सूकरः । कुक्कुटः सप्त जन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥४॥ व्याघ्रश्च सप्त जन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु । सप्तजन्मसु मंडूको यमदूतेन ताडितः ॥५॥ स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः । ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च ॥६॥ क्षुरधारे वसेत्सोऽपि छिन्नांगस्त्रियुगं सति । ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम् ॥७॥ सप्तजन्मामेध्यभोजी कपोतः सप्तजन्मसु । ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि ॥८॥ सप्तजन्मगलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः । परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिंदां करोति यः ॥९॥ परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिदकः।**

नरक कुण्डों का वर्णन

यमराज ने कहा– जो दयाहीन व्यक्ति इस भारत वर्ष में धन के लोभ से प्रेरित होकर किसी को खड्ग से काट देता है वह मनुष्य को मारने वाला चौदह इन्द्रों की आयुकाल पर्यन्त असिपत्र नामक नरक कुण्ड में निवास करता है ॥१॥ उसमें भी जो ब्राह्मणों को मारता है उसके उस नरक में सौ मन्वन्तरों तक निवास करना पड़ता है ॥२॥ उस वन में उसके अङ्गों को खड्ग से काटा जाता रहता है, यमदूत उसे पीटते रहते हैं और वह जोर-जोर से चिल्लाता रहता है । उसे खाने के लिए कुछ भोजन भी नहीं मिलता है ॥३॥ उसके बाद वह सौ जन्मों तक मन्थान कीड़ा होता है, फिर सौ जन्मों तक सूकर होता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक शृगाल होता है और उसके बाद वह सात जन्मों तक मूर्गा होता है ॥४॥ फिर सात जन्मों तक व्याघ्र होता है, फिर तीन जन्मों में वृक (भेंडिया) होता है । फिर सात जन्मों तक मेढ़क होता है ॥५॥ उसके बाद वह भैंसा होता है, तब जाकर शुद्ध होता है । जो व्यक्ति गावों में अथवा नगरों में आग लगाने का काम करता है ॥६॥ वह तीन युगों तक क्षुरधार कुण्ड में निवास करता । वहाँ उसके अंग सदा क्षुरे के धार से कटते रहते हैं । उसके बाद वह प्रेतयोनि में चला जाता है । उसके मुख से अग्नि की ज्वाला निकलती रहती है और वह सदा पृथिवी पर घूमता रहता है ॥७॥ वह सात जन्मों तक अपवित्र वस्तुओं मल-मूत्र इत्यादि को खाता रहता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक कबूतर होता है । उसके बाद सात जन्मों तक मनुष्य होता है और उसके पेट में भयंकर शूल उठा करता है ॥८॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक गलित कुष्ठ का रोगी होता है । तब वह शुद्ध होता है । जो व्यक्ति दूसरे के कान में मुँह लगाकर दूसरे की निन्दा करता है ॥९॥ दूसरे के दोष को बढ़ा-चढ़ाकर कहता है, देवताओं और ब्राह्मणों

सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूचीविद्धो युगत्रयम् ॥१०॥ ततो भवेद्वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु । वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् ॥११॥ ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः । गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ॥१२॥ गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः । ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥१३॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः । त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि ॥१४॥ ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः । भार्याहीनो बन्धुहीनः सन्तापी च ततः शुचिः ॥१५॥ सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः । ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम् ॥१६॥ ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः । ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः ॥१७॥ हंति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा । स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम् ॥१८॥ ताडितो यमदूतेन नागदन्तेन संततम् । स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि ॥१९॥ गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः । जलं पिबंतीं तृषितां गां वारयति यः पुमान् ॥२०॥ नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् । तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वंतरावधि ॥२१॥ ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः । सप्तजन्मांत्यजातिश्च ततः शुद्धो

की निन्दा करता है वह तीन युगों तक सूचीमुख नामक नरककुण्ड में निवास करता है । वहाँ उसका मुख सूई से सिला रहता है ॥१०॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक विछू और सर्प होता है । उसके बाद वह सात जन्मों में वज्रकीट होता है और उसके बाद वह भस्मकीट होता है ॥११॥ उसके बाद वह महाव्याधि से ग्रस्त रहने वाला मनुष्य होता है । उसके बाद वह शुद्ध हो पाता है । जो व्यक्ति गृहस्थों के घर में सेंध लगाकर उनकी वस्तुओं को चुरा लेता है ॥१२॥ उनकी गौ, बकरी-बकरा इत्यादि को चुराता है वह गोकामुख नामक नरक में जाता है । वह उस नरक में तीन युगों तक निवास करता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं ॥१३॥ उसके बाद सात जन्मों तक रोगी गौ होता है । फिर तीन जन्मों में मेष होता है और तीन जन्मों में छाग होता है ॥१४॥ उसके बाद वह रोगी, दरिद्र, पत्नीविहीन बान्धवों से रहित सन्ताप युक्त मनुष्य होकर शुद्ध होता है ॥१५॥ सामान्य द्रव्यों को चुराने वाला नक्रमुख नामक नरक में जाकर तीन वर्षों तक निवास करता है । वहाँ उसे यमदूत पीटते रहते हैं ॥१६॥ उसके बाद वह सात जन्मों तक रोगी बैल होता है । उसके बाद वह महारोगी होता है । उसके पश्चात् उसकी शुद्धि होती है ॥१७॥ जो गौ, हाथी और घोड़ों को मारता है वह महापापी गजदंश नामक नरक में तीन युगों तक निवास करता है । उसको यमदूत हाथी के दाँत से मारते हैं । उसके बाद वह तीन जन्मों में हाथी और घोड़ा होता है ॥१८-१९॥ उसके बाद वह गौ होता है फिर म्लेक्ष होता है और उसके बाद वह शुद्ध होता है । जो मनुष्य जल पीती हुई गौ को मारकर भगा देता है ॥२०॥ वह मरने के बाट एक मन्वन्तर तक कृमि तथा गर्म जल वाले गोमुख नामक नरक में निवास करता है और दुःखी होता है ॥२१॥ उसके बाद वह गौ से हीन, महारोगी और

भवेन्नरः ॥२२॥ गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यतिदैशिकीम् । यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च ॥२३॥ भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते । कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥२४॥ ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च संततम् । क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कंटके ॥२५॥ क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम् । क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके ॥२६॥ गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः। काकश्च सप्त जन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥२७॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः । नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः॥२८॥ सावित्र्युवाच– **विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चातिदैशिकी । का वा नृणामगम्या च को वा सन्ध्याविहीनकः ॥२९॥ अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रही । द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः ॥३०॥ शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर ॥३१॥** धर्मराज उवाच– **श्रीकृष्णे च तदर्चायामन्येषां प्रकृतौ सति । शिवे च शिवलिंगे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥३२॥ गणेशे वाऽथ दुर्गायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥३३॥ स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि । करोति भेदबुद्धिं**

दरिद्र मनुष्य होता है । उसके बाद सात जन्मों तक शूद्र होकर वह शुद्ध हो जाता है ॥२२॥ जो मनुष्य शास्त्रों का अर्थ जानकर गौ की तथा ब्राह्मणों की हत्या करता है, जो अगम्यागमन करता है तथा स्त्री की हत्या करता है ॥२३॥ भिक्षुओं को मारता है, भ्रूणहत्या करता है । वह महापापी चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त, कुम्भीपाक नामक नरक में निवास करता है । वहाँ उसे यमदूत मार-मारकर चूर-चूर करते रहते हैं । वह कभी अग्नि में गिराया जाता है तो कभी काँटों पर गिराया जाता है ॥२४-२५॥ कभी वह संतप्त तेल में गिराया जाता है, कभी वह गर्म लोहे पर डाल दिया जाता है तो कभी गर्म ताम्बे पर डाला जाता है ॥२६॥ उसके बाद वह हजारों जन्म तक गृध्रपक्षी होता है, फिर सौ जन्मों तक सूकर होता है । फिर सात जन्मों तक कौआ होता है और सात जन्मो तक सर्प होता है ॥२७॥ फिर साठ हजार वर्षों तक विष्ठा का कृमि होता है । फिर अनेक जन्मों तक वह बैल होता है फिर दरिद्र कोढी होता है ॥२८॥ **सावित्री ने पूछा–** अतिदेशिकी मन्त्र और गोहत्या किसे कहते हैं ? अगम्या स्त्री कौन होती है ? सन्ध्याहीन कौन होता है ?॥२९॥ दीक्षा विहीन मनुष्य कौन है ? तीर्थप्रतिग्रह किसे कहते हैं ? ग्रामयाजी ब्राह्मण कौन है ? देवल ब्राह्मण कौन है ?॥३०॥ शूद्रों का रसोईया कौन होता है ? और वृषली पति कौन कहलाता है ? हे वेदज्ञ श्रेष्ठ ! यमराज ! आप मुझे इन सबों का स्वरूप बतलायें ॥३१॥ **धर्मराज ने कहा–** हे सुन्दरि ! सावित्रि! जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी मूर्ति में, अन्य देवताओं और उनकी मूर्ति में, शिवजी तथा शिवलिङ्ग में, सूर्य में तथा सूर्यकान्त मणि में ॥३२॥ गणेशजी में और उनकी मूर्ति में, दुर्गाजी और उनकी अर्चामूर्ति में भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । जो अपने आचार्य, अपने इष्टदेव

योो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।३४।। वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।३५।। विप्रपादोदके चैव शालग्रामोदके तथा । करोति भेदबुद्धि यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।३६।। शिवनैवेद्यके चैव हरिनैवेद्यके तथा । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।३७।। सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे । सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ।।३८।। मयायाऽनेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे। करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेतु सः ।।३९।। शक्तिभक्ते द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च । द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।४०।। पितृदेवार्चनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम् । यः करोति निषिद्धं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ।।४१।। यो निंदति हृषीकेशं तन्मंत्रोपासकं तथा । पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानंदं सनातनम् ।।४२।। प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम् । ये नार्चयंति निन्दंति ब्रह्महत्यां लभंति ते ।।४३।। ये निंदंति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम् । सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम् ।।४४।। सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वंदितां सदा । सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभंति ते ।।४५।। कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं च सुपुण्यदाम् । शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा ।।४६।। पंच पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वंति मानवाः । लभंति ब्रह्महत्यां ते चांडालाधिकपापिनः ।।४७।। अंबुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये । कुर्वंति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां

और अपनी माता में भेदबुद्धि करता है, उसे भी ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।।३३-३४।। जो वैष्णवों में, भक्तों में तथा दूसरे ब्राह्मणों में भेद बुद्धि करता है, उसको भी ब्रह्महत्या लगती है ।।३५।। जो ब्राह्मणों के चरणोदक में और शालग्राम और देवी के तीर्थ में भेदबुद्धि करता है उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।।३६।। शिवजी के नैवेद्य में तथा श्रीहरि के नैवेद्य में जो भेदबुद्धि करता है, उसको भी ब्रह्महत्या लगती है ।।३७।। सभी स्वामियों के स्वामी, सबों के कारण, सर्वज्ञ, सभी देवताओं के सेव्य, सर्वात्मा ।।३८।। माया से अनेक रूपों को धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में और भगवान् शंकर में भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ।।३९।। जो व्यक्ति देवी के भक्त तथा देवी के शास्त्र में द्वेषबुद्धि रखता है, उसको ब्रह्महत्या लगती है ।।४०।। जो वेदविहित पितरों की अर्चना और देवताओं की अर्चना को छोड़ देता है और निषिद्ध कार्यों को करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ।।४१।। जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण की और उनके मन्त्रों की उपासना करने वाले की निन्दा करता है, तथा सर्वापेक्षया पवित्र, ज्ञानानन्द स्वरूप ।।४२।। वैष्णवों तथा देवताओं के प्रधान सेव्य, स्वामी भगवान श्रीकृष्ण की पूजा नहीं करता है और उनकी निन्दा करता है, उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।।४३।। जो मनुष्य कारण ब्रह्म स्वरूपा, सर्वशक्तिस्वरूपा, सम्पूर्ण जगत् की माता प्रकृतिस्वरूपा ।।४४।। सर्वदेव स्वरूपा सबों के द्वारा वन्दितसर्वकारण स्वरूपा महादेवी की निन्दा करते हैं, उनको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ।।४५।। जो कृष्ण जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, और रविवार ।।४६।। इन पाँच पुण्य पर्वों पर व्रत नहीं करता है, उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है । ऐसे लोग चाण्डालों से भी अधिक पापी होते हैं ।।४७।। आषाढ़ कृष्णा दशमी से त्रयोदशी तक पृथिवी रजस्वला रहती हैं । इन दिनों

लभंति ते ॥४८॥ गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम् । अनिंद्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥४९॥ विवाहो यस्य न भवेन्न
पश्यति सुतं तु यः । हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥५०॥ हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत् । पुण्यं पार्थिवलिंगं च ब्रह्महाऽसौ
प्रकीर्तितः ॥५१॥ गोप्रहारं प्रकुर्वंतं दृष्ट्वा यो न निवारयेत् । याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां च लभेत्तु सः ॥५२॥ दंडैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो
वृषवाहनः । दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः ॥५३॥ ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद्बृषवाहकम् । भुनक्ति वृषवाहान्नं स गोहत्यां
लभेद्ध्रुवम् ॥५४॥ वृषलीपतिं याजयेद्यो भुंक्तेऽन्नं तस्य यो नरः । गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः ॥५५॥ पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च
पादेन ताडयेत् । गेहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात् ॥५६॥ यो भुंक्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धांघ्रिरेव च । सूर्योदये च यो भुंक्ते स
गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥५७॥ अवीरान्नं च यो भुंक्ते योनिजीव्यस्य च द्विजः । यस्त्रिसंध्याविहीनश्च गोहत्यां लभते तु सः ॥५८॥ स्वभर्तरि च देवे
वा भेदबुद्धिं करोति या । कटूक्त्या ताडयेत्कांतं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥५९॥ गोमार्गवर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा । तडागे वा तु दुर्गे वा

को अम्बुवाची कहते हैं । इन दिनों में पृथिवी का जो खनन करते हैं । जल में शौच करते हैं, उनलोगों को ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥४८॥ गुरु,
माता, पिता, साध्वी, पत्नी, पुत्र तथा निर्दोष पुत्री का जो भरण-पोषण नहीं करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥४९॥ जिसका विवाह न हुआ
हो, निःसन्तान हो तथा जो श्रीहरि का भक्त न हो उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥५०॥ जो श्रीहरि के नैवेद्य का भोजन नहीं करता है, भगवान् विष्णु
की पूजा नहीं करता है तथा पार्थिवार्चन नहीं करता है, उसको ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥५१॥ किसी गाय को मारते हुए मनुष्य को देखकर भी जो
उसे नहीं रोकता है, जो गौ और ब्राह्मण के बीच में से होकर चला जाता है, उसे गोहत्या का पाप लगता है ॥५२॥ जो मूर्ख ब्राह्मण दण्डे से गौ को
मारता है, बैल पर चढ़ता है, उसको प्रतिदिन गोहत्या का पाप लगता है ॥५३॥ जो गायों को जूठा भोजन देता है तथा बैलगाड़ी हाँकने वाले ब्राह्मण को
खिलाता है और गाड़ी हाँकने वाले ब्राह्मण के घर भोजन करता है उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥५४॥ जो ब्राह्मण वृषलीपति के यहाँ जाकर यज्ञ
करते हैं और उसका अन्न खाते हैं, उनको सौ गौओं की हत्या का पाप लगता है ॥५५॥ जो अग्नि के सामने पैर करता है, गौ को पैरों से मारता है,
स्नान करके आने के बाद बिना पैर धोए देव मन्दिरों में प्रवेश कर जाता है उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥५६॥ जो लोग गीले पैर से भोजन करते
हैं और गीले पैर सोते हैं तथा जो सूर्योदय के समय भोजन करता है उसको गोहत्या का पाप अवश्य लगता है ॥५७॥ जो ब्राह्मण पुत्रविहीन नारियों का
तथा कुटनी का काम करने वाली नारी का अन्न खाता है, तथा जो त्रिकाल सन्ध्या नहीं करता है उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥५८॥ जो नारी अपने

स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६०॥ प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम् । पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६१॥ राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न रक्षति । दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम् ॥६२॥ प्राणिनो लँघयेद्यो हि देवार्चामनलं जलम् । नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६३॥ शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः । देवद्वेषी गुरुद्वेषी सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६४॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति । संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६५॥ न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः । विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥६६॥ गोहत्या विप्रहत्या च कथिता चातिदैशिकी । गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते ॥६७॥ स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम् । अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः ॥६८॥ सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुंदरि । अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामि ताः ॥६९॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । अत्यगम्या च निंद्या च लोके वेदे पतिव्रते ॥७०॥ शूद्रश्च

पति तथा परमात्मा में भेद मानती है तथा अपने पति को कठोर वाणी से दुःखी बनाती हैं, उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥५९॥ जो मनुष्य गोचर भूमि को जोतकर उसमें अन्न उपजाता है तथा तड़ाग को सुखाकर उसमें धान बोता है या किलों को नष्ट करके उसमें अन्न उपजाता है, उसको गोहत्या का पाप लगता है ॥६०॥ यह जानकर के भी कि मेरे पुत्र ने गोवध किया है, फिर भी पुत्र स्नेह के कारण अथवा अज्ञान के कारण गोवध के प्रायश्चित को नहीं कराता है, उसे भी गोहत्या का पाप लगता है ॥६१॥ जो अराजकता के कारण अथवा दैवी विपत्ति के कारण गौ की रक्षा नहीं करता है, अथवा गौ को कष्ट देता है उसको भी गोहत्या का पाप लगता है ॥६२॥ जो व्यक्ति किसी प्राणी, देवमूर्ति, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प तथा भोजन को लाँघता है, उसको भी गोहत्या का पाप लगता है ॥६३॥ जो व्यक्ति सदा मिथ्या भाषण करता है, किसी को धोखा देता है, देवताओं से द्वेष करता है तथा गुरु से द्वेष करता हैं, उसको भी गोहत्या का पाप लगता है । जो देवता की मूर्ति, गुरु तथा ब्राह्मण को देखकर शीघ्रता से नमस्कार नहीं करता है, उसको भी गोहत्या का पाप लगता है ॥६५॥ जो ब्राह्मण क्रोध के कारण शरणागत जीव को आशीर्वाद नहीं देता हैं तथा विद्यार्थी को विद्या नहीं पढ़ाता है, उसको गो हत्या का पाप लगता है ॥६६॥ यहाँ तक मैंने आतिदेशिकी (शास्त्रानुमोदित) गोहत्या और विप्रहत्या का वर्णन किया । अब मैं अगम्यानारी का वर्णन करता हूँ उसे तुम सुनों ॥६७॥ वेदों की यही आज्ञा है कि अपनी स्त्री सबों के लिए गम्या होती है और उससे भिन्न जितनी भी स्त्रियाँ है, वे अग़म्या हैं यही वेदज्ञों का कहना है ॥६८॥ यह तो मैंने सामान्य रूप से बतलाया अब विशेष रूप से अगम्या का वर्णन सुनो । जो अत्यन्त अगम्या स्त्रियाँ हैं उन सबों को मैं बतलाता हूँ ॥६९॥ हे पतिव्रते ! लोक तथा वेद के अनुसार शूद्र के लिए ब्राह्मण की पत्नी और ब्राह्मण के लिए शूद्र की पत्नी अत्यन्त अगम्य है और निन्दित है ॥७०॥ यदि कोई शूद्र ब्राह्मणी में गमन करता है, तो उसे सौ ब्रह्महत्या का पाप लगता है और उस ब्राह्मणी को भी उसी तरह का

ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत् । तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं लभेद्ध्रुवम् ॥७१॥ शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः ॥७२॥ स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चांडालात्सोऽधमः स्मृतः । विष्ठासमश्च तत्पिंडो मूत्रं तस्य च तर्पणम् ॥७३॥ न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति । कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्यार्चा तपसाऽर्जिता ॥७४॥ द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः । ब्राह्मणश्च सुरापीतिर्विड्भोजी वृषलीपतिः ॥७५॥ तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलांकितस्तथा । हरिवासरभोजी च कुंभीपाकं व्रजेद्द्विजः ॥७६॥ गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम् । सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम् ॥७७॥ सहोदरभ्रातृजायां मातुलानीं पितुः प्रसूम् । मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीं भ्रातृकन्यकाम् ॥७८॥ शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम् । भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्यगम्या आह पद्मजः ॥७९॥ एताः कामेन कांता यो व्रजेद्वै मानवाधमः । स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं व्रजेत् ॥८०॥ अकर्मार्होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निन्दितः । स याति कुम्भीपाके च महापापी सुदुष्करे ॥८१॥ करोत्यशुद्धां संध्यां वा न संध्यां वा करोति च । त्रिसंध्यं वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥८२॥ वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम् । योऽहंकारान्न गृहणाति मंत्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥८३॥ प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः

पाप लगता है और उन सबों को कुम्भीपाक नामक नरक में जाना पड़ता है ॥७१॥ शूद्रों को ब्राह्मण की पत्नी और ब्राह्मण को शूद्र की पत्नी से सदा दूर रहना चाहिए । यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्रा में गमन करता है तो वह चाण्डाल से भी अधम वृषलीपति हो जाता है । उसके द्वारा किया गया पिण्डदान विष्ठा के समान होता है और तर्पण मूत्र के समान होता है ॥७२-७३॥ उसके द्वारा निवेदित वस्तु न तो पितरों को मिलता है और न देवताओं को ही मिलता है । करोड़ों जन्मों में की गयी तपस्या तथा अर्चा से प्राप्त पुण्य विनष्ट हो जाता है ॥७४॥ वृषली वेश्या के लोभ में ब्राह्मण के सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं । शराब पीने वाला ब्राह्मण भी वृषलीपति हो जाता है ॥७५॥ तप्त शंख, चक्रांकित तथा तप्त त्रिशूलांकित देह वाला ब्राह्मण यदि एकादशी व्रत नहीं करते हैं तो उनको कुम्भीपाक नामक नरक में जाना पड़ता है ॥७६॥ गुरु की पत्नी, राजा की पत्नी, सौत की माता, पुत्री, पुत्रवधू, शवश्रू, सहोदर बहन, सहोदर भाई की पत्नी, मामा की पत्नी, दादी, नानी, मौसी, भतीजी, शिष्या, शिष्य की स्त्री, भाँजे की स्त्री, भाई के पुत्र की स्त्री, इन सबों को ब्रह्माजी ने अगम्या बतलाया है ॥७७-७९॥ जो मनुष्य काम से पीड़ित होकर इन सबों के साथ यदि गमन करता है तो मातृगामी के समान पापी होता है और उसको सौ ब्रह्महत्या का पाप लगता है ॥८०॥ वह किसी भी कर्म को करने योग्य नहीं होता है, अछूत हो जाता है । उसकी लोक तथा वेद दोनों में निन्दा होती है । वह महापापी है । उसको भयंकर कुम्भीपाक नामक नरक में जाना पड़ता है ॥८१॥ जो शास्त्रोक्त विधि से सन्ध्या नहीं करता है अथवा जो सन्ध्या

स्वामी गङ्गागर्भांतरे वसेत् ॥८४॥ तत्र नारायणक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम् । वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसंगमे ॥८५॥ पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले । हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च ॥८६॥ सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने । गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले ॥८७॥ एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृहणाति कामतः । स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाके प्रयाति सः ॥८८॥ शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः । तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः ॥८९॥ शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः । संध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥९०॥ उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः । एतेमहापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति वै ॥९१॥ कुण्डान्यन्यानि ये यांति निबोध कथयमि ते ।

इति श्रीमद्देवीभागवते नवमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

करता ही नहीं है । त्रिकाल संन्ध्या नहीं करने वाला ब्राह्मण सन्ध्याहीन कहलाता है ॥८२॥ जो अहंकार में भरकर वैष्णव, या शैव, या शाक्त, या सौर, या गाणपत्य मन्त्र की दीक्षा नहीं लेता है वह अदीक्षित कहलाता है ॥८३॥ गङ्गाजी के प्रवाह के बाद चार हाथ चौड़ी जो जमीन होती है, उसमें भवगान् नारायण का निवास होता है । उसी को नारायण क्षेत्र कहते हैं । नारायण क्षेत्र में शरीर त्याग करने वाला वैकुण्ठ लोक में जाता है । वाराणसी, बदरीक्षेत्र, गंगासागर, संगम स्थल, पुष्करक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कामरूक्षेत्र, हरिद्वार, केदारक्षेत्र, मातृपुर (रेणुका क्षेत्र) सरस्वती नदी के किनारे, वृन्दावन, गोदावरी तट में, कौशिकी नदी के तट पर, त्रिवेणी क्षेत्र, हिमालय पर्वत, जो व्यक्ति इन स्थानों में जान बुझकर दान लेता है, वह तीर्थ प्रतिग्रही कहलता है । वह मुत्यु के बाद कुम्भीपाक नामक नरक में जाता है ॥८३-८८॥ शूद्र की सेवा करने वाला, शूद्र का यज्ञ करने वाला, ग्रामयाजी कहलाता है । देवद्रव्य से जीविका चलाने वाला देवल कहलाता है ॥८९॥ शूद्रों का रसोई बनाने वाला, संध्या पूजन नहीं करने वाला प्रमत्त पतित कहलाता है ॥९०॥ हे भद्रे ! मैंने वृषली पति का सारा लक्षण बतला दिया । ये सबके सब महापातकी हैं और कुम्भीपाक नामक नरक में जाते हैं ॥९१॥ जो दूसरे कुण्डों में जाते हैं, उनको मैं बतला रहा हूँ, उसे तुम सुनो ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चौंतीसवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच– **देवसेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृंतनम् । शुद्धकर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा ॥१॥ पुंश्चल्यन्नं च यो भुंक्ते योऽस्यां गच्छेत्पतिव्रते । स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम् ॥२॥ शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद्ध्रुवम् । अन्य जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद्द्विजः ॥३॥ पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता । तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीत्यपि ॥४॥ वेश्या च पंचमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे । तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥५॥ यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि । पुंगीं वेश्यां महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम् ॥६॥ शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम् । षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥७॥ पुंगीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः । महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत् ॥८॥ तत्रैव यातनां भुंक्ते यमदूतेन ताडितः । तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः॥९॥ कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः । पुङ्गीगामी शूकरश्च सप्तजन्मनि भारते ॥१०॥ महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः । यो**

नरक कुण्डों का वर्णन

यमराज ने कहा– हे साध्वि ! देवपूजन के बिना कर्मों का नाश नहीं होता हैं । शुद्ध कर्मों का शुद्ध फल मिलता है और कुकर्मों का फल नरक की प्राप्ति होती है ॥१॥ हे पतिव्रते ! जो पुंश्चली नारी का अन्न करता है तथा उसमें गमन करता है, वह ब्राह्मण मृत्यु के पश्चात् भयंकर कालसूत्र नामक नरक में जाता है ॥२॥ उस नरक में वह सौ वर्षो तक निवास करता है, उसके बाद वह जन्म प्राप्त करके रोगी होता है । उसके पश्चात् उसकी शुद्धि होती है॥३॥ जिस नारी का एक पति होता है, वह पतिव्रता कहलती है, दूसरे पति के होने पर वह कुलटा हो जाती है । तीसरे पति के होने पर वह धर्षिणी कहलाती है और चौथे पति के होने पर वह पुंश्चली होती है ॥४॥ पाँचवे एवं छठे पति के होने पर वह वेश्या हो जाती है और सातवें एवं आठवे पति के होने पर पुङ्गी होती है । उसके बाद के पतियों के होने पर वह महावेश्या हो जाती है और वह किसी भी जाति के लिए स्पृश्य नहीं रहती है ॥५॥ जो ब्राह्मण कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, पुंगी, वेश्या तथा महावेश्या में गमन करता है, वह मत्स्योद नामक नरक कुण्ड में जाता है ॥६॥ कुलटा गमन करने वाला उस कुण्ड में सौ वर्ष रहता है, धर्षिणीगामी उसके चार गुना (चार सौ वर्ष) रहता है । पुंश्चलीगामी छह सौ वर्ष, वेश्यागामी आठ सौ वर्ष, पुंगीगामी एक हजार वर्ष तक महावेश्या गामी दश हजार वर्ष तक उस नरक में निवास करता है ॥७-८॥ वह उसी कुण्ड में यमदूतों द्वारा पीटा जाता हुआ यमयातना को भोगता है । उसके बाद कुलटागामी तित्तिर होता है, धर्षिणीगामी कौआ होता है ॥९॥ पुंश्चलीगामी कोयल होता है । वेश्यागामी भेंड़िया होता है, पुंगीगामी सूकर

भुंक्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ॥११॥ अरुंतुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च । ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरे रोगपीडितः ॥१२॥ गुल्मयुक्तश्च काणश्च दंतहीनस्ततः शुचिः । वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च ॥१३॥ स वसेत्पांसुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम् । तद्द्रव्यहारो यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम् ॥१४॥ निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः । भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिंगं च पार्थिवम् ॥१५॥ स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् । स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु ॥१६॥ ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्म ततः शुचि । करोति कुण्ठितं विप्रं यद्भिया कंपते द्विजः ॥१७॥ प्रकंपने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च । प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति ॥१८॥ कटूक्तिं तं प्रवदति सोल्मुकं संप्रयाति हि । उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किंकरः ॥१९॥ दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम् । ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु ॥२०॥ सा भुक्त्वा चैव वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः । या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चांधकूपे प्रयाति सा ॥२१॥ तप्तशौचोदके ध्वांते तदाहारी दिवानिशम् । निवसेदतिसन्तप्ता मम दूतेन ताडिता ॥२२॥ शौचोदके निमग्ना सा यावदिंद्राश्चतुर्दश । काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि

होता है । और महावेश्यागामी सेमर का पेड़ होता है । जो अज्ञानी जीव चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण में खाते हैं ॥१०-११॥ वह जितने अन्नों को खाता हैं उतने ही वर्ष तक अरुंतुद नामक नरक में निवास करता है । उसके बाद में वह मनुष्य होता है और माता के उदर में ही रोगी हो जाता है ॥१२॥ वह शूलरोगी, काना तथा दाँत से रहित हो जाता है । उसके बाद वह शुद्ध होता है । जो व्यक्ति अपनी क़न्या का किसी को बग्दान करके फिर दूसरे को दे देता है ॥१३॥ वह पांसुकुण्ड में सौ वर्षों तक धूलफाँक कर निवास करता है । जो व्यक्ति अपनी कन्या को बेंच देता है, वह पांसुवेष्ट नामक नरक में सौ वर्षों तक निवास करता है ॥१४॥ वह वहाँ शरशय्या पर सोता है और हमारे दूत उसे पीटते रहते हैं । जो ब्राह्मण पार्थिव शिवलिङ्ग का भक्तिपूर्वक पूजन नहीं करता है ॥१५॥ वह शंकरजी का अपराध के कारण शूलप्रोत नामक नरक में जाता है । वहाँ पर सौ वर्ष रहने के बाद वह सात जन्मों तक कुत्ता होता है ॥१६॥ उसके बाद सात जन्मों तक देवल होने के बाद पवित्र होता है । जो व्यक्ति अपने तर्क से दूसरे ब्राह्मण को हराकर उसकी बुद्धि को कुण्ठित कर देता है ॥१७॥ वह उस ब्राह्मण के रोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक प्रकम्पन नामक नरक में निवास करता है जो स्त्री क्रोध के कारण आँखे लाल करके अपने पति को देखती है ॥१८॥ उसे डाँटती है वह उल्मुक होती है उसके मुख में मेरे दूत आग लगा देते हैं ॥१९॥ और उसके शरीर में विद्यमान रोमों की संख्या के बराबर वर्षों तक उसके शिर पर दण्डप्रहार करते रहते हैं । उसके बाद वह सात जन्मों तक विधवा स्त्री होती है ॥२०॥ वह अपने वैधव्य का भोग करके रोगिणी हो जाती है । उसके बाद उसकी शुद्धि होती है । जो ब्राह्मणी किसी शूद्र की भोग्या बन जाती है, वह अन्धकूप नामक नरक में जाती है ॥२१॥ वहाँ अंधकार में, गर्म शौच जल में पड़ी रहकर उसी का आहार करती है, मेरे दूतों द्वारा प्रताड़ित होती रहती है और

शूकरी ॥२३॥ शृगाली शतजन्मानि शतजन्मानि कुक्कुटी । पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु ॥२४॥ ततो भवेत्सा चांडाली सर्वभोग्या च भारते । ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली ॥२५॥ ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः । निवसेद्वेधने वेश्या पुंगी च दंडताडने॥२६॥ जलरंध्रे वसेद्वेश्या कुलटा देहचूर्णके । स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा ॥२७॥ निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता । विण्मूत्रभक्षा सततं यावन्मन्वंतरं सति ॥२८॥ ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः । ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वाऽपि क्षत्रियः ॥२९॥ वैश्यो वैश्यां च शूद्रां वा शूद्राश्चापि व्रजेद्यदि । सवर्णपरदारैश्च कषायं यांति ते जनाः ॥३०॥ भुक्त्वा कषायं तप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम् । ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः ॥३१॥ योषितश्चापि शुद्ध्यंतीत्येवमाह पितामहः । क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते ॥३२॥ मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत् । शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः ॥३३॥ प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः । तत्रैव यातनां भुंक्ते

अत्यन्त दुःखी होकर वहाँ निवास करती है ॥२२॥ वह चौदह इन्द्रों की आयु काल पर्यन्त उसी शौचोदक में पड़ी रहती है । उसके बाद वह हजारों जन्म तक मादा कौआ होती है और सौ जन्मों तक सूकरी होती है ॥२३॥ फिर सौ जन्मों तक शृगाली होती हैं और सौ जन्मों तक मुर्गी होती है । उसके बाद सौ वर्षों तक वह कबूतरी होती है और सात जन्मों तक वानरी होती है ॥२४॥ उसके बाद वह भारत वर्ष में सर्वभोग्या चाण्डाली होती है । उसके बाद वह यक्ष्मा रोग से ग्रस्त धोबिन होती है । उसके बाद वह पुश्चंली होती है ॥२५॥ उसके बाद वह कोढ़ रोग से ग्रस्त तेलिन होती है । उसके बाद उसकी शुद्धि होती है । वेश्या नारी मरने के बाद वेधनकुण्ड में जाती है, पुङ्गी दण्डताड़न कुण्ड में जाती है ॥२६॥ वेश्या जालरंध्र नामक नरक में जाती है और कुलटा देहचूर्णक नरक कुण्ड में जाती है । स्वेच्छाचारिणी नारी मरकर दलन कुण्ड में जाती है और कुलटा देहचूर्णक नरक कुण्ड में जाती है । धृष्टा (धर्षिणी) शोषण नामक नरक कुण्ड में जाती है ॥२७॥ वहाँ पर वह मेरे दूतों द्वारा प्रताड़ित होकर यातना भोगती रहती है । उन सबों को एक मन्वन्तर तक खाने और पीने को विष्ठा और मूत्र मिलता है ॥२८॥ उसके बाद वह नारी विष्ठा का कीड़ा एक लाख वर्ष तक होती है उसके बाद जाकर वह शुद्ध होती है । यदि कोई ब्राह्मण परायी ब्राह्मणी में गमन करे और क्षत्रिया में गमन करे ॥२९॥ वैश्य परायी वैश्या में ही गमन करे और शूद्र शूद्रा में ही गमन करे तो ऐसे लोग कषाय नामक नरक में जाते हैं ॥३०॥ वहाँ सौ वर्षों तक कषायगर्म जल का पान करके रहते हैं । उसके बाद उन ब्राह्मण क्षत्रिय आदि की शुद्धि हो जाती है ॥३१॥ उन स्त्रियों की भी ऐसे ही शुद्धि होती है यह ब्रह्माजी ने कहा है । हे पतिव्रते ! यदि कोई क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार करता है ॥३२॥ तो उसको मातृगमन का पाप लगता है और वह शूर्प नामक नरक कुण्ड में जाता है । और ब्राह्मणी के साथ उन दोनों को शूर्पाकार कीड़े निरन्तर काटते रहते हैं ॥३३॥ वहाँ वह मूत्र पीता है और मेरे दूत उसे पीटते रहते हैं । इस तरह से वे चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त

यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३४॥ सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः । करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥३५॥ मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् । दत्त्वा दक्षिण हस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥३६॥ शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत् । गङ्गातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत् ॥३७॥ स्थित्वा देवगृहे वाऽपि स च ज्वालामुखं व्रजेत् । अस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं निवेद्य च॥३८॥ न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत् । मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ॥३९॥ मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत् । एते तत्र वसंत्येव यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥४०॥ तथांगारप्रदग्धाश्च मम दूतेन ताडिताः । चांडालस्तुलसीं स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः ॥४१॥ म्लेच्छो गंगाजलस्पर्शी पंचजन्म ततः शुचिः । शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुंदरि ॥४२॥ अर्चास्पर्शी ब्रह्मकृमिः सप्तजन्म ततः शुचिः । दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु ॥४३॥ ततो भवेद्ब्रह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः । मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु ॥४४॥ विप्रादिस्पर्शकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद्ध्रुवम् । ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि ॥४५॥ भार्याहीनो बंधुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः ।

उन नरक कुण्ड में निवास करते हैं ॥३४॥ उसके बाद सात जन्मों तक वराह और सात जन्मों तक छाग होकर पवित्र होते हैं । जो हाथ में तुलसी लेकर कोई प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता है ॥३५॥ अथवा मिथ्या शपथ करता है तो ऐसे लोग ज्वालामुख नामक नरक में जाते हैं । जो हाथ में गंगा जल लेकर प्रतिज्ञा करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, अथवा शालग्राम या देवता की मूर्ति लेकर प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता है, वह भी ज्वालामुख नरक में जाता है। जो किसी मन्दिर में किसी का दहिना हाथ पकड़कर प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता है, वह भी ज्वालामुख नामक नरक में जाता है । जो किसी गौ अथवा ब्राह्मण का स्पर्श करकें प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता हैं वह ज्वालाबह्नि नामक नरक में जाता है ॥३६-३८॥ अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करने वाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न और विश्वासघात करने वाला ॥३९॥ झूठी गवाही देने वाला ये सबके सब ज्वालामुख नरक में जाते हैं और उस नरक में चौदह इन्द्रों की आयु पर्यन्त निवास करते हैं ॥४०॥ वहाँ पर ये सब आग के अंगार से जलाये जाते हैं और मेरे दूत उन्हें पीटते रहते हैं । तुलसी लेकर झूठी प्रतिज्ञा करने वाले सात जन्मों तक चाण्डाल होने के बाद पवित्र होते हैं ॥४१॥ गङ्गाजल लेकर झूठी प्रतिज्ञा करने वाला ब्राह्मण पाँच जन्मों तक म्लेच्छ होकर पवित्र होता है । शालग्राम शिला का स्पर्श करके झूठी प्रतिज्ञा करने वाला सात जन्मों तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥४२॥ देवमूर्ति का स्पर्श करके झूठ बोलने वाला सात जन्मों तक ब्रह्मकृमि होता है । दाहिना हाथ पकड़कर झूठ बोलने वाला सात जन्मों तक साँप होता है । उसके बाद वे सब ब्रह्मज्ञान विहीन ब्राह्मण होकर शूद्ध होते हैं । देवमन्दिर में झूठी प्रतिज्ञा करने वाले सात जन्मों तक देवल होते हैं ॥४३-४४॥ ब्राह्मण आदि का स्पर्श करके झूठी प्रतिज्ञा करने वाले, व्याघ्र

मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि खंडकः ॥४६॥ विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते । मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मंडूकः सप्तजन्मसु ॥४७॥ पूर्वान्सप्तापरान्सप्त पुरुषान्हंति चात्मनः । नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः ॥४८॥ यस्यानास्था वेदवाक्ये मंदं हसति संततम् । व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरनिंदकः ॥४९॥ धूम्रांधे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्रभक्षकः । जलजंतुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च ॥५०॥ ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः । यः करोत्युपहासं च देवब्रह्माणयोर्धने ॥५१॥ पातयित्वा स पुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान् । सोऽयं याति च धूम्रांधं धूमध्वांतसमन्वितम् ॥५२॥ धूम्रक्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम् । ततो मूषकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते ॥५३॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः । ततो नानाविधा वृक्षाः पशवश्च ततो नरः ॥५४॥ विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः । लाक्षालौहादिव्यापारी रसादिविक्रयी च यः ॥५५॥ स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च । वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः ॥५६॥ ततो नानाविधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः।

होते हैं । उसके बाद वे तीन-तीन जन्मों तक बहरे और गूँगे होते हैं ॥४५॥ उसके बाद पत्नी, बन्धु तथा वंशहीन होने के बाद वे पवित्र होते हैं । मित्रद्रोही मरने के बाद नेवला होता है और कृतघ्न गैंडा होता है ॥४६॥ विश्वासघाती सात जन्मों तक भारतवर्ष में व्याघ्र होता है । झूठी गवाही देने वाला सात जन्मों तक मेढ़क होता है ॥४७॥ नित्यक्रिया नहीं करने वाला तथा अज्ञानी ब्राह्मण को अपने पहले के सात पीढ़ियों को तथा अपने बाद के सात पीढ़ियों को मारने का पाप लगता है ॥४८॥ जिस ब्राह्मण को वेद वाक्यों में आस्था नहीं है, वह उसका उपहास करता है । व्रत और उपवास नहीं करता है तथा अच्छी बात करने वाले की निन्दा करता है ॥४९॥ वह सौ वर्षों तक धूम्रांध नामक नरक में रहकर धूमपान करके रहता है । उसके बाद वह सौ जन्मों तक जलजंतु होता है ॥५०॥ उसके बाद वह अनेक प्रकार की मछलियों की योनि में जाता है । उसके बाद उसकी शुद्धि होती है । जो देवोत्तर सम्पत्ति और ब्राह्मण की सम्पत्ति का उपहास करता है ॥५१॥ वह अपने पहले के दश तथा बाद के दश पीढ़ी के पितरों को नरक में डाल देने का पाप करता है । वह धूम के अंधकार से युक्त धूम्रांध नरक में जाता है ॥५२॥ वह वहाँ धुएँ के कारण कष्ट पाते हुए धूम का भोजन करके चार सौ वर्षों तक निवास करता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक चूहा होता है ॥५३॥ उसके बाद वह नाना प्रकार के पक्षी और कृमि होता है । उसके बाद वह अनेक प्रकार के वृक्ष और पशु होता है ॥५४॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषी, वैद्यक, चिकित्सा, लाह तथा लोहे आदि का व्यापारी होकर रस आदि का व्यापारी होता है, वह मरने के बाद नागों से भरे नागवेष्ट नामक नरक में जाता है । वह उस नरक में नागापाश में बँधकर अपने रोओं की संख्या के बराबर वर्षों तक निवास करता है ॥५५-५६॥ उसके बाद वह अनेक प्रकार का पक्षी और उसके बाद मनुष्य होता है । उसके बाद वह सात जन्मों तक मुन्शी तथा वैद्य होता है।॥५७॥ उसके बाद वह ग्वाला तथा रंगरेज होकर शुद्ध होता है । हे पतिव्रते ! मैंने तुम्हें प्रसिद्ध नरक कुण्डों को बतला दिया ॥५७॥ इसके अतिरिक्त

ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु ॥५७॥ गोपश्च कर्मकारश्च रंगकारस्ततः शुचिः । प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते ॥५८॥ अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि संति तत्र वै । संति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः । भ्रमंति नानायोनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते नवमस्कन्धे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच– **धर्मराज महाभाग वेदवेदांगपारग । नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय ॥१॥ सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् । कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम् ॥२॥ सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमंगलकारणम् । भयं दुःखं न पश्यन्ति येन वै सर्वमानवाः ॥३॥ कुण्डानि ते न पश्यन्ति तेषु नैव पतन्ति च । न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सांप्रतम् ॥४॥ किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च । के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः ॥५॥ स्वेदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकान्तरं नरः । केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम् ॥६॥ सुचिरं क्लेशभोगेन**

अन्य बहुत से अप्रसिद्ध नरक कुण्ड हैं पापी जीव उन्हीं नरक कुण्डों में अपने कर्मों का फल भोगने के लिए जाते हैं और अनेक योनियों में घूमते रहते है । तुम अब क्या सुनना चाहती हो ?॥५८-६०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पैंतीसवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

पञ्चदेवों के उपासकों के नरक में नहीं जाने का वर्णन

सावित्री ने कहा– हे वेदों तथा वेदागों में पारङ्गत, महाभाग धर्मराज ! आप मुझे पुराणों तथा इतिहासों के सार अर्थ को बतलाइये ।।१।। जो सभी पुराणों का सार स्वरूप है, सबों को इष्ट तथा सर्वसम्मत है, कर्मों के विनाश का मूलकारण है तथा मनुष्यों के लिए सुखप्रद है ।।२।। सबकुछ देने वाला और सबको सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करने वाला है, तथा जिसके कारण मनुष्यों को किसी प्रकार का दुःख नहीं होता है ।।३।। जिसके कारण मनुष्य किसी भी नरक कुण्ड में नहीं जाते हैं, तथा मनुष्य जिससे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है आप हमें उसी कर्म को इस समय बतलाइये ।।४।।

कथं देहो न नश्यति । देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥७॥ नारायण उवाच– **सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारेभे कर्मबंधनिकृंतनीम् ॥८॥** धर्मराज उवाच– **वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च ॥९॥ अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदांगेषु च सुव्रते । सर्वेष्टं सारभूतं च पञ्चदेवानुसेवनम् ॥१०॥ जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसंतापनाशनम् । सर्वमंगलरूपं च परमानंदकारणम्॥११॥ कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् । भक्तिवृक्षांकुरकरं कर्मवृक्षनिकृंतनम् ॥१२॥ विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम् । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम् ॥१३॥ कुण्डानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे । न हि पश्यन्ति स्वप्ने च पञ्चदेवार्चका नराः॥१४॥ देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यन्ति ममालयम् । यान्ति ये हरितीर्थं वा श्रयंति हरिवासरम् ॥१५॥ प्रणमंति हरिं नित्यं हर्यर्चां कल्पयंति च । न यांति तेऽपि घोरां च मम संयमनीं पुरीम् ॥१६॥ त्रिसन्धिपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । निर्वृतिं नैव लप्स्यंति देवीसेवां विना नराः ॥१७॥**

उन नरक कुण्डों में पापी जीव किस रूप में रहते हैं । उन कुण्डों का आकार कैसा निर्मित है ?॥५॥ अपने शरीर के भस्म हो जाने पर जीव किस प्रकार से लोकान्तर में जाता है, तथा किस शरीर में वह पुण्यों तथा पापों का फल भोगता है ॥६॥ दीर्घकाल तक क्लेश भोगने के कारण उसका यह देह क्यों नहीं विनष्ट होता है ? आप मुझे बतलाएँ कि वह देह कैसा होता है ? **नारायण ने कहा–** सावित्री की वाणी सुनकर धर्मराज ने श्रीहरि का स्मरण करते हुए कर्मों के बन्धन को विनष्ट करने वाली कथा को कहना प्रारम्भ किया । **धर्मराज ने कहा–** हे वत्से ! चारो वेदों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों तथा पञ्चरात्र आदि में ॥७-९॥ तथा दूसरे धर्मशास्त्रों एवं वेदांगों में पञ्चदेवों की सेवा को ही सबों का सारभूत तथा सर्वेष्ट बतलाया गया है ॥१०॥ उसको जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा सन्ताप को विनष्ट करने वाला बतलाया गया है । उसको सभी प्रकार के मङ्गल स्वरूप तथा परमानन्द की प्राप्ति का कारण बतलाया गया है ॥११॥ वह सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला तथा नरक सागर से पार करने वाला है । वह भक्ति रूपी वृक्ष को उत्पन्न करने वाला और धर्मरूपी वृक्ष को उत्पन्न करने वाला और कर्मरूपी वृक्ष को काटने वाला है । वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सोपान है तथा अविनाशी है । वह सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामिप्य नामक चारो प्रकार की मुक्तियों को प्रदान करने वाला है ॥१२-१३॥ हे शुभे ! उन कुण्डों की रक्षा सदा यमदूत किया करते हैं । पञ्चदेवोपासक स्वप्न में भी उन कुण्डों में नहीं जाते हैं ॥१४॥ जो जीव देवी की भक्ति नहीं करते हैं वे ही हमारे लोक में आते हैं । जो लोग एकादशी का व्रत करते हैं वे श्रीहरि के लोक में जाते हैं ॥१५॥ जो लोग सदा श्रीहरि को प्रणाम करते हैं तथा उनकी पूजा करते हैं, वे लोग मेरी भयंकर संयमनी पुरी में नहीं आते हैं ॥१६॥ जो ब्राह्मण त्रिकाल सन्ध्या से पवित्र रहते हैं, तथा शुद्धाचार से युक्त होते हैं, वे भी देवी की सेवा किए बिना कल्याण नहीं

स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मनिरतास्तथा । गच्छंतो मृत्युलोकं च दुर्दृशा मम किंकराः ॥१८॥ भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगाः । स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम् ॥१९॥ यास्यति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रयं विना । कृष्णमंत्रोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः ॥२०॥ देवीमंत्रोपासकानां नाम्नां चैव निकृंतनम् । करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् ॥२१॥ मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः । विलंघ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छंति ते सति ॥२२॥ दुरितानि च नश्यन्ति येषां संस्पर्शमात्रतः । ते महाभाग्यवन्तो हि सहस्रकुलपावनाः ॥२३॥ यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्कानि च तृणानि च । प्राप्नोति मोहः सम्मोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ॥२४॥ कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति । मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥२५॥ कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च । ये ये न यांति तां पीडां कथितास्ते मया सति ॥२६॥ शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम् । पृथिवी वायुराकाशस्तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥२७॥ देहिनां देहबीजं च स्रष्टृसृष्टिविधौ परम् । पृथिव्यादिपंचभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत् ॥२८॥ स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह । बद्धोंगुष्ठप्रमाणश्च यो जीवः पुरुषः कृतः ॥२९॥ बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपं

प्राप्त करते हैं ॥१७॥ जो लोग अपने धर्म तथा आचार का पालन करते हैं तथा अपने धर्म में ही लगे रहते हैं, उनलोगों को मृत्युलोक में जाने वाले मेरे दूत दिखायी नहीं देते हैं ॥१८॥ भगवान् शंकर के उपासकों से मेरे दूत उसी तरह से डरते हैं जिस तरह गरुड से सर्प डरते हैं जो मेरे दूत हाथ में पाश लेकर उनकी ओर जाते हैं, उन दूतों को मैं जाने से रोक देता हूँ ॥१९॥ श्रीहरि के दासों के आश्रम को छोड़कर मेरे दूत सर्वत्र जाते हैं । भगवान् कृष्ण के मन्त्र की उपासना करने वालों से मेरे भक्त उसी तरह डरते हैं, जैसे गरुड से सर्प डरते हैं ॥२०॥ देवी के मन्त्रों की उपासना करने वालों से भयभीत चित्रगुप्त अपने नखरूपी लेखनी से उनका नाम ही काट देते हैं ॥२१॥ वे देवी के भक्तों को देखकर उन्हें मधुपर्क आदि प्रदान करके उन्हें ब्रह्मलोक भेज देते हैं, कि देवी के भक्त ब्रह्मलोक को पार करके मणिद्वीप में चले जाते हैं ॥२२॥ जिनका स्पर्शमात्र हो जाने से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं, वे महाभाग्यावान् अपने कुल के हजारों पूर्व पुरुषों का उद्धार करने वाले होते हैं ॥२३॥ जलती हुई अग्नि में पड़ने वाले सूखे इन्धन के समान उन देवीभक्तों को देखकर मोह भी मोहित हो जाता है ॥२४॥ उन देवी को देखकर काम, लोभ, क्रोध, मृत्यु, रोग, जरा, शोक तथा भय, काल, पुण्य-पाप, हर्ष तथा भोग इनमें से कोई भी उस पर अपना प्रभाव नहीं जमा पाता है । जो जीव यमपुरी में नहीं जाते हैं । उन सबों को मैं पहले बता चुका हूँ ॥२५-२६॥ अब मैं नारकीय यातना को भोगने वाले देह के विषय में बतला रहा हूँ, उसे तुम सुनो । पृथिवी, वायु आकाश, तेज और जल ये ही पाँच तत्त्व शरीर धारियों के देहबीज की सृष्टि करते हैं । पृथिवी आदि पञ्चभूतों से जिस देह का निर्माण होता है ॥२७-२८॥ वह शरीर कृत्रिम, नश्वर तथा इस लोक में ही नष्ट हो जाता है । उस समय उस जीव का आकार वद्ध अंगूष्ठ के समान होता है ॥२९॥ नारकी जीव उसी शरीर को भोगों को भोगने के लिए धारण कर

भोगहेतवे । स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये ॥३०॥ जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते । न शस्त्रेण न वाऽस्त्रेण सुतीक्ष्णकंटके तथा ॥३१॥ तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च । प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च ॥३२॥ न दग्धो न च भग्नः स भुंक्ते संतापमेव च। कथितो देहवृत्तांतः कारणं च यथागमम् । कुण्डानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच– **पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वं कुण्डं च वर्तुलम् । निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति ॥१॥ न नश्वरं चाप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया । क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम् ॥२॥ ज्वलदंगाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम् । परितः क्रोशमानं च वह्निकुंडं प्रकीर्तितम्॥३॥**

लेता है । वह शरीर मेरे लोक में न तो जलता है ॥३०॥ और न तो जल से वह नष्ट हो सकता है । उसके ऊपर बहुत अधिक प्रहार करने पर भी वह नष्ट नहीं होता है । वह न तो शस्त्र से और न अस्त्र से नष्ट होता है । अत्यन्त तीक्ष्ण काँटे से भी नहीं कटता है ॥३१॥ वह खौलते हुए तेल में, तपते हुए लोहे से तथा तपते हुए पाषाण से भी नहीं नष्ट होता है । संतप्त प्रतिमा का अलिङ्गन करने पर भी वह न तो जलता है और न मरता है ॥३२॥ वह न तो जलता है और न टूटता है । वही शरीर यातना भोगता है । इस तरह से मैंने तुम्हें देह का वृत्तान्त शास्त्रानुसार सुनाया अब मैं तुम्हें कुण्डों का लक्षण बतलाता हूँ जिससे कि तुम जान सको ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३६॥

नरककुण्डों के लक्षण

धर्मराज ने कहा– सभी कुण्डों का स्वरूप पूर्णचन्द्र के समान गोल है । उसकी गहराई भी खूब है । वे विभिन्न प्रकार के पाषाणों से बने हैं ॥१॥ उसका प्रलयकाल पर्यन्त नाश नहीं होता है । वे परमात्मा की इच्छा से बने हैं । वे कुण्ड अनेक प्रकार के कष्ट देने वाले हैं ॥२॥ जलती हुई आग के अंगार के समान रूप वाला अग्निकुण्ड है । उसकी ज्वाला सौ हाथ ऊपर उठती रहती है । उसमें पड़े जीव सदा चिल्लाते रहते हैं ॥३॥ जोर-जोर से आवाज

महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् । रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि संततम् ।।४।। प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजंतुसमन्वितम् । महाघोरं काकुशब्दं
प्रहारेण दृढेन च ।।५।। क्रोशार्धमानं तद्दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदैः । तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनः काकैश्च संकुलम् ।।६।। संकुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं
भयानकम् । त्राहीति शब्दं कुर्वाद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः ।।७।। प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककंठोष्ठतालुकैः । विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च
कुत्सितम्।।८।। अतिदुर्गंधिसंसक्त व्याप्तं पापिभिरन्वहम् । ताडितैर्मम दूतैश्च तत्प्रहारैः सुदारुणैः ।।९।। रक्षेति शब्दं कुर्वाद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः ।
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् ।।१०।। युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैः सदा । गव्यूतिमानं ध्वांताक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ।।११।।
मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः । श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं सदा ।।१२।। तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा । क्रोशार्धं
गरकुंडं च गरभोजिभिरन्वितम् ।।१३।। गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च । ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः ।।१४।। सर्पाकारैर्वज्रदंष्टैः
शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः । नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धे कीटसंयुतम् ।।१५।। पापिभिः संकुलं शश्वद्भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः । वसारसेन संपूर्णं क्रोशतुर्यं

करने वाले पापियों से वह कुण्ड भरा रहता है । हमारे दूत उन कुण्डों की रक्षा करते रहते हैं और उन पापियों को पीटते रहते हैं ।।४।। उसमें हिंसक जन्तु भरे रहते हैं । वह नरक कुण्ड अत्यन्त भयंकर है और आधेकोश में फैला है । उसके बाद क्षार कुण्ड है वह खौलते हुए जल से भरा रहता है । वह कौओं से भरा रहता है । ऊपर से मेरे दूत उन जीवों पर प्रहार करते रहते हैं । उसमें विद्यमान जीव चिल्लाते रहते हैं । मेरी रक्षा करो । मेरी रक्षा करो कहते रहते हैं ।।५-७।। निराहार रहने के कारण उनके ओष्ठ, तालु और कण्ठ सूख जाते हैं । मेरे दूतों की मार खाकर वे इधर-उधर दौड़ते रहते हैं । वह नरक विष्ठा से ही बना रहता है । उससे दुर्गन्धि निकलती रहती है ।।८।। पापियों से वह नरक कुण्ड भरा रहता है । मेरे दूतों के भयंकर प्रहार के कारण वे रक्षा करो ! रक्षा करो !! चिल्लाते रहते हैं । उस कुण्ड के कीड़े उसे काटते रहते हैं । मूत्रकुण्ड तप्तमूत्र से भरा रहता है । मूत्र के कीड़ों से वह भरा रहता है ।।९-१०।। उस नरक में भी महापातकी जीव भरे रहते हैं । उस कुण्ड के कीड़े उन जीवों को काटते रहते हैं । यह नरक दो कोस में फैला हुआ है । चिल्लाते हुए जीव उसमें पड़े रहते हैं ।।११।। मेरे दूत उन जीवों पर भयंकर प्रहार करते रहते हैं । उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख जाते हैं । उसके बाद श्लेष्म (पीब) कुण्ड हैं । वह पीब से भरा रहता है । उसमें कीड़े भरे रहते हैं ।।१२।। उसमें रहने वाले पापी उसी को खाते हैं । उस कुण्ड के कीड़े उन सबों को काटते रहते हैं । उसके बाद विषकुण्ड है । वह आधे कोस में फैला है । उसमें रहने वाले पापी जीव उस विष को ही खाते हैं ।।१३।। उन पापी जीवों को वे विषैले कीड़े काटते रहते हैं । ऊपर से हमारे दूत उन सबों को मारते रहते हैं, और वे जीव चिल्लाते रहते हैं।।१४।।

सुदुःसहम् ॥१६॥ तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः । शुक्रकुंडं क्रोशमितं शुक्रकीटैश्च संयुतम् ॥१७॥ पापिभिः संकुलं शश्वद्द्रवद्भिः
कीटभक्षितैः । दुर्गंधिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम् ॥१८॥ तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितम् । पूर्णं नेत्राश्रुभिस्तप्तं बहुपापिभिरन्वितम्॥१९॥
वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः । नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥२०॥ ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः । कर्णविट्परिपूर्णं
च तद्भक्षैः पापिभिर्युतम् ॥२१॥ वापीतुर्यप्रमाणं च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः । मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम् ॥२२॥ महापातकिभिर्युक्तं
वापीतुर्यप्रमाणकम् । परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः ॥२३॥ पापिभिः संकुलं चैव वापीमानं भयानकम् । कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः
कीटभक्षितैः ॥२४॥ पाहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः । वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम् ॥२५॥ पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च
ताडितैः । प्रतप्तताम्रकुंडं च ताम्रोपर्युल्मुकान्वितम् ॥२६॥ ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैर्व्याप्तं सदा । प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्॥२७॥

सर्प के आकार वाले वज्र के समान दाँत वाले भूखे कीड़े उन जीवों को खाते रहते हैं । उस कुण्ड में नेत्रों का मल (कीचड़) भरा रहता है ॥१५॥ इधर-उधर
भागते हुए जिन सबों को कीड़े काटते रहते हैं, ऐसे जीव उस कुण्ड में भरे रहते हैं ॥१६॥ उसके बाद भयंकर वसा कुण्ड है । वह चार कोस में
फैला है । उसमें रहने वाले पापी जीव उस वसा को ही खाते हैं । उन जीवों को मेरे दूत पीटते रहते हैं । उसके बाद शुक्र (वीर्य) का कुण्ड है । वह
एक कोस में फैला है । पापी जीव उसमें भरे रहते हैं । वीर्य के कीड़े उन सबों को काटते रहते हैं, और वे भागते रहते हैं । उसके बाद रक्त का कुण्ड
है । उससे दुर्गन्ध आती रहती है । वह वापी के समान गहरा है । पापी जीव उसे ही खाते है और कुण्ड के कीड़े उन जीवों को काटते रहते हैं । उसके
बाद नेत्रों के आँसू का कुण्ड है । उसमें बहुत से पापी जीव भरे रहते हैं । इसका फैलाव चार वापियों के समान होता है । उस कुण्ड के कीड़े उन जीवों
को काटते रहते हैं । उसके बाद शरीर के मैल से भरा हुआ कुण्ड हैं । उसमें रहने वाले पापी जीव उसी को खाते हैं ॥१६-२०॥ उस कुण्ड के कीड़े
उन जीवों को काटते रहते हैं । ऊपर से मेरे दूत उन जीवों को पीटते रहते हैं । उसके बाद कान के मल (खोंट) का कुण्ड हैं, उसमें रहने वाले पापी
जीव उसी को खाते हैं । उस कुण्ड के कीड़े उन जीवों को काटते रहते हैं ॥२१॥ उसका फैलाव चार वापियों के समान है । उसके बाद मनुष्यों की मज्जा
का कुण्ड है । वह अत्यन्त दुर्गन्धिपूर्ण है ॥२२॥ उसका फैलाव चार वापी के समान है । उसमें भी महापापी जीव रहते हैं । उसके बाद सड़े मांस का
कुण्ड है । उसमें भी पापी जीव भरे रहते हैं । उन जीवों को मेरे दूत पीटते रहते हैं ॥२३॥ कन्या का विक्रय करने वाले पापी जीव उस कुण्ड में रहकर
कन्या के मांस को खाते हैं । कीड़े उन जीवों को काटते रहते हैं । वे बचाने के लिए गुहार लगाते रहते हैं । उसके बाद नख आदि का कुण्ड है ॥२४-२५॥
उसका भी विस्तार चारवापी के समान है । उसमें भरे हुए पापियों को मेरे दूत मारते रहते हैं । उसके बाद प्रतप्तताम्रकुण्ड है उसके ऊपर आग जलती रहती

गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः । प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदंगारसंयुतम् ॥२८॥ लोहानां प्रतिमाश्लिष्टै रुदद्भिः पापिभिर्युतम् । प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया ॥२९॥ रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः । महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥३०॥ भयानकं ध्वांतयुक्तं लोहकुण्डं प्रकीर्तितम् । चर्मकुंडं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च ॥३१॥ तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः । अतः शाल्मलिकुण्डं च वृक्षकंटकशोभितम् ॥३२॥ लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम् । धनुमनैः कंटकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥३३॥ प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम् । वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः ॥३४॥ जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः । महाभियाऽतिव्यग्रैश्च दण्डैः संभग्नमस्तकैः ॥३५॥ प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैलजीविभिरेव च । विषौदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम् ॥३६॥ तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः । प्रतप्ततैलचूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम् ॥३७॥ महापातकिभिर्युक्तं दग्धाङ्गारैश्च वेष्टितम् । काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः॥३८॥ ध्वांतयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम् । शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥३९॥ शस्त्रतल्पस्वरूपं च क्रोशतुर्यप्रमाणकम् ।

है ॥२६॥ उसमें ताम्बे की लाखों प्रतप्त मूर्तियाँ रहती हैं । उन पापी जीवों को उन मूर्तियों से सटा दिया जाता है और वे पापी जीव रोते-चिल्लाते रहते हैं ॥२७॥ वह कुण्ड दो कोस में फैला है । उन जीवों को ऊपर से मेरे दूत मारते रहते हैं । उसके बाद प्रतप्त लोहधार नामक कुण्ड है ॥२८॥ उसमें जलती हुई लोहे की मूर्तियों से पापियों को सटा दिया जाता है । वे पापी जीव रोते और चिल्लाते हैं वे उन जलती हुई प्रतिमा को आलिङ्गित करने के भय से भयभीत रहते हैं ॥२९॥ ऊपर से मेरे दूत उन सबों को पीटते हैं तो वे रक्षा करो ! रक्षा करो !! कहकर चिल्लाते हैं, उस कुण्ड का विस्तार चार कोस में हैं ॥३०॥ वह लोहे का कुण्ड अन्धकार व्याप्त है । उसके बाद चमड़े का कुण्ड है ॥३१॥ उसमें रहने वाले जीव उसी को खाते हैं । उसके बाद शाल्मलि वृक्ष का कुण्ड है । वे वृक्ष तीक्ष्ण काँटों से भरे रहते हैं ॥३२॥ उस वृक्ष की ऊँचाई लाख पोरसा है । वह एक कोश मोटा है । उसके काँटे भी एक-एक धनुष लम्बे हैं । ऐसे काँटे उस वृक्ष में भरे रहते हैं ॥३३॥ उसमें रहने वाले प्रत्येक पापियों का शरीर उन काँटों से छिद जाता है । उन पापियों को यमदूत वृक्ष के ऊपर से गिरा देते हैं ॥३४॥ उनके तालु सूख जाते हैं । वे पानी माँगते हैं तो यमदूत मारकर उन पापियों के शिर को फोड़ देते हैं ॥३५॥ उसके बाद खौलते हुए तेल का कुण्ड है । उसमें रहने वाले पापी जीवों को मेरे दूत मारते हैं, और उन सबों को वह खौलता हुआ तेल ही पीना पड़ता है । उसके बाद विषैला जल का कुण्ड है । उसका विस्तार एक कोश में हैं ॥३६॥ उन जीवों को यमदूत पीटते हैं और उन्हें वही पानी पीना पड़ता है । और संतप्त तेल का चूर्ण उन सबों को खाना पड़ता है । उसमें कीड़े नहीं रहते हैं ॥३७॥ उसके बाद आग के अंगारों का कुण्ड हैं । महापापी जीव उसमे रहते हैं । उनका सारा अंग झुलस जाता है । वह कुण्ड अन्धकार से व्याप्त रहता है । उन जीवों को मेरे दूत पीटते हैं ॥३८॥ यह

वेष्टितं यत्पातकिभिः कुन्तविद्धैश्च वेष्टितैः ॥४०॥ ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककंठोष्ठतालुकैः । कीटैश्च शंकुप्रमितैः सर्पमानैर्भयंकरैः ॥४१॥
तीक्ष्णदंतैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वांतयुतं सति । महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥४२॥ द्विग्व्यूतिप्रमाणं च पूयकुंडं प्रचक्षते । तद्भक्ष्यैः
प्राणिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः ॥४३॥ तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् । सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः ॥४४॥ संकुलं शब्दकृद्भिश्च
मम दूतैश्च ताडितैः । कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः ॥४५॥ सर्वं क्रोशार्धमानं च महापातकिभिर्युतम् । हस्तपाददिबद्धैश्च क्षतजौघेन
लोहितैः ॥४६॥ हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः । वज्रवृश्चिकयोः कुंडं ताभ्यां च परिपूरितम् ॥४७॥ वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः।
कुंडत्रयं मशादीनां तैरेव परिपूरितम् ॥४८॥ तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः । तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वांतं गोलकुण्डकम् ॥४९॥ कीटैः
शंकुसमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् । वाप्यर्धमानं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः ॥५०॥ रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः । अतिदुर्गंधिसंयुक्तं

अत्यन्त भयंकर और दुःखद कुण्ड है । उसके बाद कुन्तकुण्ड है । उसमें अत्यन्त तीक्ष्ण भाले भरे रहते हैं । उन भालों का आकार त्रिशूल के समान होता
है ॥३९॥ उसमें भालों की शय्या रहती है । उसका विस्तार चार कोस में है । वह कुण्ड भालों से विद्ध शरीर वाले नरकी जीवों से भरा होता है ॥४०॥
उन पापियों को मेरे दूत पीटते हैं उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं । उसमें त्रिशूल और सर्प के आकार के असंख्य कीड़े भरे रहते हैं ॥४१॥
उनके दाँत अत्यन्त तीव्र होते हैं । उनका विकृत आकार होता है । अधंकार व्याप्त होता है वह कुण्ड । अनेक महापापी उसमें रहते हैं और मेरे दूत उन
सबों को पीटते रहते हैं ॥४२॥ उसके बाद पूयकुण्ड (पीब) कुण्ड है । उसका फैलाव चार कोश में हैं । उस कुण्ड में रहने वाले प्राणी उस पूय को ही
खाते है । उस कुण्ड के कीड़े उन सबों को काटते रहते हैं और यमदूत उनको मारते रहते हैं ॥४३॥ उसके बाद सर्पकुण्ड है । वह ताड़ के वृक्ष के परिमाण
भर गहरा है । उसमें करोड़ों सर्प रहते हैं । उसमें रहने वाले पापियों के शरीर में वे सर्प लिपटे रहते हैं और उनको काटते रहते हैं ॥४४॥ यमदूत उनको
पीटते रहते हैं और वे चिल्लाते रहते हैं । उसके बाद वहाँ तीन कुण्ड हैं शरकुण्ड, शूलकुण्ड और खड्ग कुण्ड ॥४५॥ प्रत्येक कुण्ड का विस्तार आधे-आधे कोस में है । महापापी जीव उनमें रहते हैं । उन सबों का शरीर खून से लहुलुहान रहता है । उन सभी कुण्डों में बाण, शूल और खड्ग भरे पड़े
रहते हैं । उन सबों से विद्ध होने के कारण उन पापियों का शरीर लाल दिखता है ॥४६॥ मेरे दूतों के द्वारा पीटे जाने के कारण वे हाहाकार करते
रहते हैं । उसके बाद दो कुण्ड हैं, वज्रकुण्ड और वृश्चिक कुण्ड उन दोनों कुण्डों में वज्र और वृश्चिक भरे रहते हैं ॥४७॥ उन वज्रों और वृश्चिकों से
दंशे गये पापियों से भरे उन कुण्डों का विस्तार आधी वापी के बराबर होता है । उन पापियों से ही शर आदि की तीनों कुण्ड भरे रहते हैं ॥४८॥
उसके बाद गोलकुण्ड है । उसका विस्तार वापी के अर्धभाग के बराबर होता है । वह खौलते हुए गर्मजल से भरा रहता है । वह कुण्ड अन्धकार से व्याप्त

दुःखदं पापिनां सदा ॥५१॥ दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं पापिभिर्युतम् । वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः ॥५२॥ विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शतकोटिभिः । काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥५३॥ मंथानकुण्डं बीजकुण्डं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम् । भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥५४॥ धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः संकुलं सदा । शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सांद्रध्वांतमयं परम् ॥५५॥ वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलदंगार सदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥५६॥ क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं लालाकुण्डं च लोहितैः ॥५७॥ क्रोशमात्रं च गंभीरं मम दूतैश्च ताडितैः । तप्तांजनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् ॥५८॥ चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः । पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् ॥५९॥ तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः । कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानं च संततम्॥६०॥ सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम् । अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥६१॥ कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम् । महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजंतुभिः ॥६२॥ ज्वलद्भिश्च शब्दकृद्भिश्च ध्वांतयुक्तं भयानकम् । कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च

रहता है ॥४९॥ उसमें शंकु के समान कीड़े भरे रहते हैं । वे उनको काटते रहते हैं नक्रकुण्ड का विस्तार आधी वावली के बराबर है । मेरे दूतों के द्वारा मारे जाने से वे भयभीत होकर रोते और चिल्लाते हैं । उससे अत्यन्त खराब दुर्गन्ध निकलती रहती है ॥५०-५१॥ वे उन पापियों को खाते रहते हैं । करोड़ो भयंकर घड़ियाल उसमें भरे रहते हैं ॥५२॥ उसके बाद दो कुण्ड हैं 'मंथन कुण्ड' और 'बीजकुण्ड' इन दोनों का विस्तार सौ-सौ धनुष है । उन नरकों में रहने वाले पापियों को मल और मूत्र ही खाने-पीने पड़ते हैं । भयंकर कौए उनको नोचते रहते हैं । और वे पापी जीव चिल्लाते रहते हैं ॥५३-५४॥ उसके बाद वज्रकुण्ड है उसका विस्तार सौ धनुष है । पापियों से परिपूर्ण उस कुण्ड के वज्र के समान दाँत वाले जीव उनको काटते रहते हैं । और वे पापी जीव चिल्लाते रहते हैं । उस नरक में घोर अन्धकार रहता है ॥५५॥ जलते हुए पत्थर से निर्मित उस कुण्ड का विस्तार दो बावली के बराबर है। वह कुण्ड अंगार के समान जलते रहता है और संतप्त जीव उसमें इधर से उधर भागा करते हैं ॥५६॥ 'लाल कुण्ड' क्षुरो के धार के समान तीक्ष्ण पत्थरों से निर्मित हैं । महापापी जीव उसमें रहते हैं ॥५७॥ यह कुण्ड एक कोस गहरा है । मेरे दूत उन पापियों को पीटते रहते हैं । इसके बाद मसीकुण्ड है। उसमें रहने वाले यमूदतों का आकार अंजन के समान काला है । उसका विस्तार सौ धनुष है ॥५८॥ मेरे दूतों से मारे जाने के कारण वे पापी जीव इधर-उधर भागा करते हैं और चिल्लाते रहते हैं । वह कुण्ड चूर्ण द्रव्य से भरा रहता है ॥५९॥ उन पापियों को उसी को खाना पड़ता है । उसके बाद 'चक्रकुण्ड' है । वह कुम्हार के चाक के समान सदा घुमा करता है ॥६०॥ उसमें अत्यन्त तीव्र सोलह आरे लगे हुए हैं । उससे पापियों के अंग चूर-चूर होते रहते हैं । वह अत्यन्त टेढ़ा कुण्ड है । वह चार कोस में फैला है ॥६१॥ वह कन्दरा के आकार का है और गर्म जल से परिपूर्ण है । महापापी जीवों को उसमें

सुदारुणैः ॥६३॥ जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् । ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम् ॥६४॥ शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा । क्रोशमानं च गंभीरं तप्तभस्मभिरन्वितम् ॥६५॥ शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः । तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः ॥६६॥ पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तं च शुष्कतालुकैः । क्रोशमानं ध्वांतयुक्तं गंभीरमतिदारुणम् ॥६७॥ ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुंडं प्रकीर्तितम् । अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम् ॥६८॥ नानाप्रकारैर्विरूतैर्जलजंतुभिरन्वितम् । द्विगव्यूतिप्रमाणं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् ॥६९॥ तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजंतुभिः । ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम् ॥७०॥ प्रतप्तसूचीकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् । असीव धारापत्रस्याप्युच्चैस्तालतरोरधः ॥७१॥ क्रोशार्धमानं कुंडं च पतत्पत्रसमन्वितम् । पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां ध्रुवम् ॥७२॥ परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि । गंभीरं ध्वांतयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम् ॥७३॥ तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम् । धनुःशतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम् ॥७४॥ पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम् । सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् ॥७५॥ पंचाशद्धनुरायामं क्लेशदं

जलजंतु खाते रहते हैं ॥६२॥ वहाँ 'कूर्मकुण्ड' है जो करोड़ो भयंकर कच्छपों से भरा है ॥६३॥ वे उन जीवों को खाते रहते हैं और वे पापी जीव चिल्लाते रहते हैं । वहाँ पर जलता हुआ ज्वालाकुण्ड है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक कोस है ॥६४॥ उस कुण्ड में पातकी जीव भरे रहते हैं, और कष्ट के कारण चिल्लाते रहते हैं । उसके बाद एक कोस गहरा भस्म कुण्ड है ॥६५॥ वह सर्वत्र जलते हुए भस्म से भरा हुआ है । उस कुण्ड के पापी जीवों को भस्म ही खाना पड़ता है उसके कारण उन पापी जीवों के शरीर जलते रहते हैं । उसके बाद दग्ध कुण्ड है । वह जलते हुए लोहे और पत्थरों के समूह से भरा है ॥६६॥ उसके कारण पापियों के शरीर जल जाते हैं और प्यास के कारण तालु सूख जाता है । यह एक कोस में फैला है । अन्धकार से व्याप्त है । यह भयंकर गहरा है ॥६७॥ यमदूत उन पापी जीवों को मारते रहते हैं । 'प्रतप्तसूची मुख' कुण्ड जलते हुए क्षार जल और उसकी लहरियों से भरा है । अनेक प्रकार के जल जंतु उसमें भरे पड़े हैं । वह चार कोस में फैला है । यह गहरा कुण्ड अन्धकार से व्याप्त है ॥६८-६९॥ उसमें रहने वाले पापी जीवों को जलजंतु काटते रहते है । वे घबराकर जोर-जोर से चिल्लाते हैं और एक-दूसरे को नहीं देखते हैं ॥७०॥ 'प्रतप्तसूची कुण्ड' अत्यन्त भयानक है । वह ताल के पेड़ के बराबर गहरा है । तलवार के धार के समान उस ताल के वृक्ष के पत्ते ऊपर से गिरते रहते हैं ॥७१॥ उस कुण्ड का विस्तार आधा कोस में है । उन गिरे हुए पत्तों से पापियों के अंग कट जाते हैं । उनके रक्त से वह कुण्ड भरा हुआ है ॥७२॥ वे सभी जीव अपनी रक्षा के लिए चिल्लाते रहते हैं । उस कुण्ड में रक्त के कीड़े भरे रहते हैं । उस कुण्ड में घोर अन्धकार है ॥७३॥ 'असिपत्र कुण्ड' अत्यन्त भयानक है । वह सौ धनुष में फैला है । क्षुरे के समान धार वाले अस्त्रों से वह भरा हुआ है ॥७४॥ उसके बाद 'क्षुरधार कुण्ड' है । वह पापियों के रक्त से भरा रहता है । उसमें

च सूचीकामुखम् । कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति ॥७६॥ कूपरूपं च गंभीरं धनुर्विंशत्प्रमाणकम् । महापातकिनां चैव महाक्लेशप्रदं परम् ॥७७॥ तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च संततम् । कुंडं नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम् ॥७८॥ गंभीरं पापरूपं च पापिभि संकुलं सदा। धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम् ॥७९॥ धनुस्त्रिंशप्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति । पापिनां क्लेशदं शश्वद्गोमुखं परिकीर्तितम् ॥८०॥ कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वांतयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥८१॥ लक्षपौरुषमानं च गंभीरं विस्तृतं सति । कुत्रचित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुण्डमेव च ॥८२॥ पापिनां च प्रधानैश्च मूर्छितैः कृमिभिर्युतम् । परस्परं च नश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च संततम् ॥८३॥ ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा । घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्छितैश्च क्षणं क्षणम् ॥८४॥ पातितैर्यमदूतैश्च रुदन्त्यस्मात्क्षणं पुनः । यावंतः पापिनः संति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि ॥८५॥ ततश्चतुर्गुणाः संति कुम्भीपाके च दुःखदे । सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः ॥८६॥ सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् । कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः ॥८७॥ उत्थापिताश्च दूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः । निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः

भी वे ही अस्त्र भरे रहते हैं जो 'सूचीमुख कुण्ड' में रहते हैं ॥७५॥ नारकी जीव उसमें अत्यन्त कष्ट भोगते हैं किसी जीव का नाम गोकामुख है । गोकामुख कुण्ड का आकार गोका जन्तु के मुख के आकार का है ॥७६॥ सूचीमुख कुण्ड पचास धनुष विस्तृत है । वह कुएँ के आकार का है । बीस धनुष वह गहरा है । महापापियों को उस कुण्ड में बहुत कष्ट मिलता है ॥७७॥ गोका कीड़ों के काटने के कारण उन नारकी जीवों का मुँख नीचे लटका रहता है। 'नक्रमुख कुण्ड' का आकार नक्र के मुख के समान है । वह भयंकर पाप स्वरूप है । वह पापियों से भरा रहता है । वह सोलह धनुष विस्तृत है ॥७८॥ गजदंशन कुण्ड सौ धनुष विस्तृत और पापी जीवों से भरा है ॥७९॥ 'गोमुख कुण्ड' तीस धनुष विस्तृत है । गौ के मुख के समान उसका आकार है । वहाँ पापियों को बहुत कष्ट होता है ॥८०॥ 'कुम्भीपाक नरक' का आकार घोड़े के मुख के समान है । वह कालचक्र से युक्त है और सदा घूमता रहता है । वह चार कोस में फैला है । उसमें घोर अन्धकार रहता है ॥८१॥ उस कुण्ड की गहराई एक लाख पोरसा है । उसमें कहीं खौलते हुए तेल का कुण्ड है तथा कहीं संतप्त ताम्बे का कुण्ड है ॥८२॥ प्रधान पापी जीव उसमें मूर्छित होकर पड़े रहते हैं । कीड़ों से वह भरा हुआ है । वे पापी जीव चिल्लाते रहते हैं । वे परस्पर में एक-दूसरे को देख भी नहीं पाते हैं ॥८३॥ उन सबों को यमदूत मूसल और मुग्दर से मारते रहते हैं । उसके कारण वे गिरकर बार-बार मूर्छित होते रहते हैं ॥८४॥ उन पापियों को यमदूत उसी कुण्ड में गिरा दिया करते हैं । हे सुन्दरि सावित्रि ! जितने पापी जीव सभी कुण्डों में मिलकर है, उसके चार गुना वे केवल कुम्भीपाक नरक में हैं । वहाँ उसको बहुत [illegible] है । किन्तु उनका भोग शरीर होने के कारण वे मरते नहीं है ॥८५-८६॥ कुम्भीपाक सभी कुण्डों में प्रधान कुण्ड हैं । जिसमें काल निर्मित सुदृढ सूत्र से बँधे हुए पापी जीव पड़े रहते हैं ॥८७॥ उस कुण्ड का नाम कालसूत्र कुण्ड

पुनः ॥८८॥ अतीव क्लेशसंयुक्ता देहभोगेन सुंदरि । प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम् ॥८९॥ अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः ।
प्रतप्ततोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥९०॥ व्याप्तं महापापिभिर्व्यादग्धांगैश्च संततम् । मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम् ॥९१॥ यत्रोदस्पर्शमात्रेण
सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुण्डे धनुःशते ॥९२॥ अरुंतुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभिर्यच्च संकुलम् । हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवारुंतुदं
विदुः ॥९३॥ तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः । तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजैर्धनुःशतम् ॥९४॥ पापमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो
भवेत् । क्रोशमात्रेण कुण्डं च तत्पाशवेष्टनं विदुः ॥९५॥ पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत् । धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम्॥९६॥
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकंपनम् । अतीव हिमतोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकंपनम् ॥९७॥ ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे ।
धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसंकुलम् ॥९८॥ लक्षपौरुषमानं च गंभीरं च धनुःशतम् । नानाप्रकारैः कृमिभिः संयुक्तं च भयानकम् ॥९९॥
अत्यंधकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम् ॥१००॥ तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः ।

हैं । यमदूत उन जीवों को कभी उठाते हैं तो कभी उसी में डुबा देते हैं । वे लम्बी श्वास लेते हैं, और उसके बाद बेहोश हो जाते हैं ॥८८॥ वे वहाँ बहुत कष्ट पाते हैं । वह कुण्ड खौलते हुए जल से भरा रहता है ॥८९॥ 'मत्स्योद' कुण्ड को ही अवट कहते हैं । वह खौलते हुए जल से भरा रहता है । वह चौबीस धनुष में फैला है । उस कुण्ड में पापियों को मेरे दूतों से मार खानी पड़ती है ॥९०-९१॥ जिस कुण्ड के जल का स्पर्श होते ही पापियों को सभी रोग हो जाते हैं । वह अरुन्तुद नामक कुण्ड सौ धनुष में फैला है । अरुन्तुद जीव उन पापियों को काटते रहते हैं । ऐसे पापियों से वह कुण्ड भरा रहता है । वे पापी जीव सदा हाय ! हाय !! किया करते हैं ॥९२-९३॥ अत्यन्त सन्तप्त धूल से भरे कुण्ड को पांसु कुण्ड कहते हैं । उस नरक के पापी जीव तुषाग्नि में जलते रहते हैं । उस नरक के जीवों को वही धूल खानी पड़ती है। उसका विस्तार सौ धनुष में है ॥९४॥ जिस कुण्ड में गिरते ही पापी जीव शूल पाश में बँध जाते हैं, उस कुण्ड का नाम पाशवेष्टन है । वह एक कोश में फैला है । जिस नरक में गिरते ही पापी जीव त्रिशूल से बिंध जाते हैं उस कुण्ड का नाम शूलप्रोत है । वह बीस धनुष में फैला हुआ है ॥९५-९६॥ जिस कुण्ड में गिरते ही पापी जीव काँपने लगते हैं । वह कुण्ड वर्फ के समान ठंडे जल से भरा है । वह आधे कोस में फैला है । उस कुण्ड का नाम प्रकम्पन कुण्ड है ॥९७॥ जिस कुण्ड में यमदूत पापियों के मुख में आग जलाकर डाल देते हैं वह कुण्ड बीस धनुष में फैला हुआ तथा उल्काओं से व्याप्त है । उस कुण्ड का नाम उल्कामुख हैं ॥९८॥ 'अन्धकुण्ड' की गहराई एक लाख पोरसा है । वह सौ धनुष में फैला है । अनेक प्रकार के कृमियों से वह भरा हुआ है । वह अत्यन्त भयानक कुण्ड है ॥९९॥ वह कुएँ के समान गोल और गहरा है । अन्धकार से व्याप्त है । कीड़ों के काटने से व्याकुल होकर पापी जीव एक-दूसरे को खाने लगते हैं ॥१००॥

ध्वांतेन चक्षुषा चांधैरंधकूपः प्रकीर्तितः ॥१०१॥ नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम् ॥१०२॥ दंडेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दंडताडनम् ॥१०३॥ निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः । धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरंध्रं प्रकीतितम् ॥१०४॥ पततां पापिनां कुण्डे देहश्चूर्णो भवेदिह । लोहबंदीनिबद्धानां कोटिपौरुषमानकम् ॥१०५॥ गंभीरं ध्वांतसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम् । मूर्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम् ॥१०६॥ दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः । धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम् ॥१०७॥ पतनेनैव पापी च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । बालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ॥१०८॥ शतपौरुषमानं च गंभीरं ध्वांतसंयुतम् । शोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम् ॥१०९॥ नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःशतम् । दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः सङ्कुलं कषम् ॥११०॥ शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम् । तप्तलोहबालुकाभिः पूर्णं पातकिसंयुतम् ॥१११॥ दुर्गंधियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं सति । शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमात्रकम् ॥११२॥ प्रतप्तबालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम् । अंतरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा॥११३॥

जलते हुए पानी से वे जलते रहते हैं । कीड़े उन्हें काटते रहते हैं । अत्यन्त अन्धकार युक्त होने के कारण वह अन्धकूप कहलाता है ॥१०१॥ उस कुण्ड में पापी जीव अनेक प्रकार के शस्त्रों से बिंध जाते हैं । वह बीस धनुष में फैला हुआ है ॥१०२॥ उन पापियों को मेरे दूत दण्डे से पीटते रहते हैं । वह 'दण्ड ताडन' कुण्ड सोलह धनुष में फैला है ॥१०३॥ वे महाजाल में मछलियों की तरह फँसे रहते हैं । वह कुण्ड बीस धनुष में फैला है । उसे 'जालरंध्र कुण्ड' कहते हैं ॥१०४॥ देहचूर्ण कुण्ड वह है जिसमें गिरते ही पापियों का शरीर चूर-चूर हो जाता है । उन पापियों के पैर में लोहे की बेड़ी पड़ी रहती है । वह करोड़ पोरसा गहरा है ॥१०५॥ वह घोर अन्धकार से व्याप्त रहने वाला तथा बीस धनुष विस्तृत कुण्ड है । उन जड़ों तथा मूर्छित जीवों का शरीर चूर्ण हो जाता है । इसीलिए उसे देहचूर्ण कहते हैं ॥१०६॥ जहाँ पर मेरे दूतों द्वारा पीट-पीट कर पापियों का दलन किया जाता है, वह सोलह धनुष में विस्तृत दलन कुण्ड है ॥१०७॥ जहाँ संतप्त बालू में गिरने से ही पापियों के कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख जाते हैं । जो सौ पोरसा गहरा अन्धकार से व्याप्त है वह तीस धनुष में फैला हुआ वह 'शोषण' नामक कुण्ड है । वहाँ पापियों को अत्यधिक कष्ट मिलता है ॥१०८-१०९॥ अनेक प्रकार के चमड़ों के कारण जो काषय जल से जो भरा रहता है । जो सौ धनुष विस्तृत है । जहाँ दुर्गन्धि फैलती रहती है, और उसी को जहाँ पापियों को खाना पड़ता है, उस कुण्ड का नाम 'कषायकुण्ड' है ॥११०॥ शूर्पाकारमुखकुण्ड बारह धनुष विस्तृत है । वह प्रतप्त लोहे तथा बालू से परिपूर्ण है । दुर्गन्धि से जो युक्त है । वहाँ के पापी जीव उन्हीं वस्तुओं को खाकर जीते हैं । यह बारह धनुष में फैला है ॥१११-११२॥ वह प्रतप्त बालुका से परिपूर्ण है । जिसके

धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुन्दरि । ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च ॥११४॥ तन्महाक्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् । पातमात्राद्यत्र पापी मूर्छितो वै नरो भवेत् ॥११५॥ तप्तेष्टकाभ्यंतरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम् । धूम्रांधकारसंयुक्तं धूम्रांधैः पापिभिर्युतम् ॥११६॥ धनुःशतं श्वासरंध्रैर्धूम्रांधं परिकीर्तितम् । पातमात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् ॥११७॥ धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत् । षडशीति च कुंडानि मयोक्तानि निशामय । लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच– **देवीभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम् । पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम् ॥१॥ कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम् । दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघदारणम् ॥२॥ मुक्तिश्च कतिधाऽप्यस्ति किं वा तासां च लक्षणम् । देवीभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्यापि खंडनम् ॥३॥**

भीतर से अग्नि की ज्वाला निकलती रहती है ॥११३॥ हे सुन्दरि ! जो बीस धनुष में फैला हुआ है । उस नरक के पापियों का शरीर ज्वाला से जलता रहता है ॥११४॥ वह अत्यधिक कष्ट देने वाला 'ज्वालामुख' नामक कुण्ड है । जिसमें गिरते ही पापी जन मूर्छित हो जाते हैं ॥११५॥ जलते हुए ईंटों से बना हुआ जो आधी वापी के बराबर विस्तृत है उस कुण्ड का नाम 'जिह्म कुण्ड' है । जो धुएँ के अन्धकार से व्याप्त है । धुएँ के निरन्तर लगते रहने के कारण जहाँ के पापी जन अन्धे हो जाते हैं ॥११६॥ वह सौ धनुष परिमाण में विस्तृत है । उस कुण्ड का नाम 'धूमांधकुण्ड' है । जिसमें गिरते ही पापियों को नाग लपेट लेते हैं ॥११७॥ वह कुण्ड 'नागवेष्टन' कुण्ड कहलाता है । यह सौ धनुष विस्तृत है । इस तरह से मैंने तुमको छियासी कुण्डों का स्वरूप बतलाया । अब तुम क्या सुनना चाहती हो ?॥११८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सैंतीसवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

भुवनेश्वरी देवी के स्वरूप आदि का वर्णन

सावित्री ने यमराज से कहा– हे धर्मराज ! आप मुझे सर्वश्रेष्ठ सार देवी की भक्ति का उपदेश दें । वह नरकसागर से पार करने वाली तथा मुक्ति का

तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता किंचिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर ॥४॥ सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थं स्नानं व्रतं तपः । अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥५॥ पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम् । मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो ॥६॥ धर्मराज उवाच– **पूर्वं सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वांछितः । अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात् ॥७॥ श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम् । वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम् ॥८॥ शेषो वक्त्रसहस्रेण न हि यद्वक्तुमीश्वरः । मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पंचमुखेन च ॥९॥ धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि । ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित् ॥१०॥ कार्त्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम् । न गणेशः समर्थश्च योगींद्राणां गुरोर्गुरुः ॥११॥ सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च । कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये ॥१२॥ सरस्वती जडीभूता नालं तद्गुणवर्णने । सनत्कुमारो धर्मश्च सनंदनः सनातनः ॥१३॥ सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः । विचक्षणा न यद्वक्तुं किं**

द्वार है ॥१॥ वह सभी अशुभों को विनष्ट करने वाली, कर्म वृक्ष को विनष्ट करने वाली और किए हुए पाप समूह को विनष्ट करने वाली है ॥२॥ आप मुझे बतलाएँ कि मुक्ति कितने प्रकार की होती है ? उन सबों का स्वरूप क्या है ? देवी की भक्ति, भक्ति के भेद तथा कर्मवृक्ष को खण्डित करने वाला ज्ञान मुझे आप दें ॥३॥ ब्रह्माजी ने स्त्री जाति को तो तत्त्वज्ञान से विहीन बनाया है । अतएव हे वेदज्ञश्रेष्ठ ! आप मुझे जो सबका सार हो उस ज्ञान को प्रदान करें ॥४॥ सभी प्रकार के दान, तीर्थयात्रा, तीर्थों में स्नान, तपस्या तथा व्रत एवं तपस्या; अज्ञानियों को ज्ञानदान से उत्पन्न पुण्य के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकते हैं ॥५॥ यह निश्चित है कि माता का महत्त्व पिता से सौ गुना अधिक होता है । और ज्ञान देने वाले गुरु का महत्त्व माता से भी सौ गुना अधिक होता है ॥६॥ **धर्मराज ने कहा–** हे वत्से ! मैंने पहले ही तुमको सभी प्रकार के अभिलषित अर्थों की प्राप्ति का वरदान दिया है। अब मैं तुम्हें जगदम्बा की भक्ति की प्राप्ति का भी वरदान देता हूँ ॥७॥ हे कल्याणि ! तुम श्रीदेवी के गुणों का वर्णन सुनना चाहती हो । वह वर्णन वक्ता एवं श्रोता दोनों के वंशों का उद्धार कर देने वाला है ॥८॥ उसका पूर्णरूप से वर्णन तो अपने हजार मुखों से शेष भी नहीं कर सकते हैं । न तो शंकरजी अपने पाँच मुखों से ही उसका वर्णन कर सकते हैं ॥९॥ देवी के गुणों का वर्णन करने में जगत् के कर्ता तथा चारो वेदों के निर्माता न तो चार मुखों वाले ब्रह्माजी कर सकते हैं और न सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ही कर सकते हैं ॥१०॥ न तो छह मुखों वाले कार्तिकेय ही उसका वर्णन कर सकते हैं और न योगीन्द्र शिरोमणि गणेशजी उसका वर्णन कर सकते हैं ॥११॥ शास्त्रों के सार स्वरूप चारो वेद हैं, वे वेद तथा वैदिक विद्वान श्रीदेवी के गुणों के एक अंश को भी पूर्ण रूप से नहीं जान पाते हैं ॥१२॥ उन श्रीदेवी के गुणों का वर्णन करते समय सरस्वती भी जड हो जाती हैं । वर्णन करने में निपुण

चान्ये जडबुद्धयः ॥१४॥ न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनींद्रा योगिनस्तथा । के वा चान्ये वयं के वा श्रीदेव्या गुणवर्णने ॥१५॥ ध्यायंते यत्पदांभोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ॥१६॥ कश्चित्किंचिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् । अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः ॥१७॥ ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शंभुरेव सः ॥१८॥ तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना । अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोके रासमंडले ॥१९॥ तत्रैव कथितं किंचित्तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम् । धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥२०॥ धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा । यामाराध्य मत्पिताऽपि सप्राप तपसा सति ॥२१॥ पूर्वं त्वं विषयं चाहं न गृहणामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छति सुव्रते ॥२२॥ तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥२३॥ तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा । यथाकाशो न जानाति स्वांतमेव वरानने ॥२४॥ सर्वात्मा सर्वभगवान्सर्वकारणकारणः । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः ॥२५॥ नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानंदो निराकृतिः । निरंकुशो निराशंको निर्गुणश्च निरामयः ॥२६॥ निर्लिप्तः सर्वसाक्षी

सनत्कुमार, धर्म, सनन्दन, सनातन ॥१३॥ सनक, कपिल, सूर्य तथा ब्रह्माजी के दूसरे पुत्र भी श्रीदेवी के गुणों का वर्णन करने में जड बुद्धि हो जाते हैं॥१४॥ उसका वर्णन करने में समर्थ, सिद्ध मुनीन्द्र और योगिजन भी नहीं हो सकते हैं । अतएव मैं तथा दूसरे लोग भी श्रीदेवी के गुणों का वर्णन क्या कर सकते हैं ॥१५॥ जिस श्रीदेवी के चरण कमलों का ध्यान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव करते हैं, वह देवी भक्तों के लिए अत्यन्त सुलभ और दूसरे जीवों के लिए दुर्लभ हैं ॥१६॥ देवी के कुछ गुणों को कुछलोग ही जानते हैं, उसके अतिरिक्त जो देवी के गुण हैं उन सबों को तो ब्रह्मविशारद ब्रह्माजी ही जानते हैं ॥१७॥ उससे अधिक गुणों का ज्ञानियों में अग्रगण्य गणेशजी जानते हैं । श्रीदेवी के गुणों को सबसे अधिक सर्वज्ञ शंम्भु ही जानते हैं ॥१८॥ प्राचीन काल में भगवान् श्रीकृष्ण ने देवी के गुणों का उपदेश श्रीशंकरजी को गोलोक में रासमण्डल के अत्यन्त निर्जन वन में दिया था ॥१९॥ उसके पश्चात् शिवजी ने अपनी पुरी में श्रीदेवी के कुछ गुणों को धर्म को सुनाया था । धर्म की आराधना करके पिता सूर्य ने देवी के कुछ गुणों को सुना था ॥२०-२१॥ जब मेरे पिताश्री मुझे यमपुरी का राज्य दे रहे थे तो मैं उसे नहीं लेना चाहता था मैं संसार से विरक्त होकर तपस्या करने के लिए जाना चाहता था ॥२२॥ उस समय पिताजी ने मुझे देवी के कुछ गुणों का उपदेश दिया था । वह अत्यन्त दुर्गम है । मैं उसे तुम्हे आगम के अनुसार सुनाता हूँ ॥२३॥ स्वयं श्रीदेवी भी अपने गुणों को पूर्ण रूप से नहीं जानती हैं तो दूसरों की कौन सी बात है । जिस तरह आकाश स्वयं अपने विस्तार को नहीं जानता है, उसी तरह॥२४॥ जो सर्वात्मा, सबों के भगवान् सभी कारणों के कारण स्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वाद्य सबों का पालन करने वाले ॥२५॥ नित्य स्वरूप, नित्य शरीर

च सर्वाधारः परात्परः । मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः ॥२७॥ स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम् । यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नाऽस्त्येव कुत्रचित् ॥२८॥ सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी । रूपं बिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥ गोपालसुन्दरीरूपं प्रथमं सा ससर्ज ह । अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥३०॥ नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम् । कंदर्पकोटिलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् ॥३१॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचनम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥३२॥ अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् । सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा ॥३३॥ परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा । सुखदृश्यं च शांतं च राधाकांतमनन्तकम् ॥३४॥ गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिश्च संततम् । रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् ॥३५॥ वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् । कौस्तुभेन्द्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् ॥३६॥ कुंकुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् । चारुचंपकमालाक्तं मालतीमाल्यमंडितम् ॥३७॥ चारुचन्द्रकशोभाढ्यं

वाले, नित्यानंद स्वरूप, आकार रहित, निरंकुश, निःशंक, निर्गुण, निरामय ॥२६॥ निर्लिप्त, सबों के साक्षीगणों के आधार परात्पर तत्त्व माया से विशिष्ट परमात्मा हैं । वे ही सबों की प्रकृति है और प्राकृत वस्तुएँ जनके विकार हैं ॥२७॥ वे ही स्वयम् अपने से अभिन्न प्रकृति और पुरुष स्वरूप हैं । जिस तरह अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति परस्पर में अभिन्न हैं । उन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है उसी तरह दोनों आपस में अभिन्न हैं ॥२८॥ वही महामाया शक्ति स्वरूपा हैं । वे सच्चिदानंद स्वरूपिणी हैं । यद्यपि उनका कोई रूप नहीं है फिर भी भक्तों पर कृपा करने के लिए वे रूप को धारण करती हैं ॥२९॥ उन्होंने सर्वप्रथम अपने गोपालसुन्दरी रूप की सृष्टि की । उनका वह रूप अत्यन्त मनोहर और कमनीय है ॥३०॥ उसका वेष नवीन मेघ के समान श्याम वर्ण का किशोर अवस्था, गोप का रूप है । वह अत्यन्त लीला के धाम स्वरूप तथा करोड़ों कामदेव के समान सौन्दर्य स्वरूप हैं ॥३१॥ शरद् ऋतु के मध्याह्न काल में विकसित होने वाले कमल की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले उनके नेत्र हैं । उनका मुखमण्डल शरत् पूर्णिमा के करोड़ो चन्द्रमा की शोभा से भी अधिक सुन्दर है ॥३२॥ बहुमूल्य रत्नों से निर्मित आभूषणों से वे भूषित हैं । वे अमूल्य पीताम्बरधारी हैं और उनका मुख सदा मुस्कान से मण्डित रहता है ॥३३॥ उनका वह परंब्रह्म स्वरूप सदा ब्रह्मतेज से सुशोभित रहने वाला है । उनका वह रूप देखने में सुन्दर, शान्त तथा राधाजी को अत्यन्त प्रसन्न करने वाला है ॥३४॥ मुस्कुराती हुई गोपियाँ उनको सदा देखती रहती हैं । रासमण्डल के बीच में वे रत्नसिंहासन पर बैठे हैं ॥३५॥ वंशी बजाते हुए, दो भुजाओं वाला उनका वह रूप वनमाला से समलंकृत है । उनका वक्षःस्थल मणियों में श्रेष्ठ कौस्तुभमणि से सुशोभित है॥३६॥ उनका शरीर कुंकुम, अगरु और कस्तूरी मिश्रित चन्दन से चर्चित हैं । वे सुन्दर चम्पा की माला तथा मालती की माला से मण्डित हैं । वे सुन्दर

चूडावंक्रिमराजितम् । एवंभूतं च ध्यायंति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः ॥३८॥ यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च । कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम् ॥३९॥ तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया । विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति संततम् ॥४०॥ कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् । शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः ॥४१॥ यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः । परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः॥४२॥ यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम् । तपनश्च प्रतपति यद्भयात्सन्ततं सति ॥४३॥ यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु । यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम् ॥४४॥ दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया । भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च॥४५॥ भयात्फलंति वृक्षाश्च पुष्यंत्यपि च यद्भयात् । यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात् ॥४६॥ तथा जलस्थलस्थाश्च न जीवंति यदाज्ञया । अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च ॥४७॥ धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं तदाज्ञया । कूर्मोऽनंतं स च क्षोणीं च समुद्रान्सा च पर्वतान्॥४८॥ सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या । यतः सर्वाणि भूतानि स्थीयंते हंति तत्र हि ॥४९॥ इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।

चूडामणि से सुशोभित हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् के उस रूप का उनके भक्तजन भक्तिपूर्वक ध्यान करते हैं ॥३७-३८॥ उन्हीं के भय से ब्रह्माजी जगत् की सृष्टि करते हैं और कर्मों के अनुसार उन जीवों को फल प्रदान किया करते हैं ॥३९॥ उन्हीं के आज्ञा से ब्रह्माजी तपस्या का फल प्रदान किया करते हैं । उनके भय से ही भयभीत होकर भगवान् विष्णु संसार की सदा रक्षा किया करते हैं ॥४०॥ प्रलयकाल के आने पर कालाग्नि रुद्र सम्पूर्ण विश्वों में संहार करने का काम करते हैं । उनकी ही आज्ञा से ज्ञानियों में अग्रगण्य शिवजी मृत्युञ्जय हैं ॥४१॥ उनके ही ज्ञान से वे ज्ञानवान और योगीश हैं । वे परमानन्द से युक्त और भक्ति तथा वैराग्य से सम्पन्न हैं ॥४२॥ शीघ्रगामियों में श्रेष्ठ वायु उनके ही भय से सदा चलते रहते हैं । उनके ही भय से सूर्य सदा तपते रहते हैं ॥४३॥ उनके भय से ही भयभीत होकर इन्द्र वर्षा किया करते हैं और मृत्यु किसी जीव को काल कवलित करने का काम करती हैं। उनकी ही आज्ञा से अग्नि जलने का काम करती है और जल सदा सुशीतल रहता है ॥४४॥ उनके भय से ही भयभीत रहकर दिक्पाल अपनी-अपनी दिशाओं की रक्षा करने का काम किया करते हैं । जिनके भय से सभी राशिचक्र और ग्रहसमूह घूमते ही रहते हैं ॥४५॥ उस परमात्मा के ही भय से वृक्ष फल देते हैं फूलते हैं । उनकी ही आज्ञा को शिरोधार्य करके काल समय से किसी को मारने का काम करता है ॥४६॥ जिनकी आज्ञा के बिना कोई जलचर अथवा स्थलचर जी नहीं सकता है । राह में तथा विषम परिस्थिति में वद्ध भी जीव को जिसकी आज्ञा के बिना काल नहीं मारता है ॥४७॥ उन परमात्मा की आज्ञा से ही वायु जल समूह को, जल कूर्म को, कूर्म अनंत को, अनंत पृथिवी को तथा पृथिवी समुद्रों और पर्वतों को धारण करती है ॥४८॥ वह पृथिवी

अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम् ।।५०।। एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वापूभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः । ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम्।।५१।। ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः । चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः ।।५२।। प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः। लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपंकजे ।।५३।। विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुंठे यश्चतुर्भुजः । विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः।।५४।। यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञानाधीशः सनातनः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः ।।५५।। सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता। नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च ।।५६।। श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः । पद्माशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते।।५७।। गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोषितः । कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता ।।५८।। सावित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च । स्थिता वाणीं च जिह्वायां यस्य च परमात्मनः ।।५९।। गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु । तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः ।।६०।। जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः । वैष्णवाश्चरणांभोजे परमानन्दसंयुताः ।।६१।। सारात्सारतराभक्तिरसपीयूषपायिनः ।

सब तरह से क्षमा स्वरूपिणी हैं । परमात्मा की ही आज्ञा से पृथिवी अनेक रत्नों को धारण करती है । उनकी ही आज्ञा से पृथिवी पर सभी प्राणी स्थिर रहते हैं और विनष्ट भी होते हैं ।।४९।। इन्द्र की आयु इकहत्तर युगों की होती है । अठाइस इन्द्रों के मर जाने पर ब्रह्मा का एक दिन और एक रात होती है ।।५०।। इसी तरह के तीस दिनों का ब्रह्माजी का एक मास होता है और दो मासों की एक ऋतु होती है । छह ऋतुओं का एक वर्ष होता है । इसी तरह सौ वर्ष की ब्रह्माजी की आयु होती है ।।५१।। ब्रह्माजी की मृत्यु हो जाने पर श्रीहरि की आँख खुलती है । श्रीहरि की आँख खुलने पर प्राकृतिक लय होता है ।।५२।। उस प्राकृत प्रलय काल में सभी देवता आदि, धाता, विधाता, आदि श्रीभगवान् के नाभिकमल में लीन हो जाते हैं । वैकुण्ठ में रहने वाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शयन कर जाते हैं । परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के वामपार्श्व में लीन हो जाते हैं ।।५३-५४।। सनातन ज्ञानाधीश शिव भगवान् श्रीकृष्ण के ज्ञान में लीन हो जाते हैं । विष्णु की माया दुर्गा में सभी शक्तियाँ विलीन हो जाती हैं ।।५५।। दुर्गादेवी ज्ञान की अधिष्ठातृ देवी हैं, वे भगवान् की बुद्धि में लीन हो जाती हैं । नारायण के अंश स्कन्द भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में लीन हो जाते हैं ।।५६।। देवताओं के अधीश्वर गणेशजी भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं में लीन हो जाते हैं । लक्ष्मीजी के अंशभूत सभी देवियाँ लक्ष्मीजी में और लक्ष्मीजी राधाजी में लीन हो जाती हैं।।५७।। सभी गोपियाँ तथा सभी देवताओं की पत्नियाँ तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणाधीश्वरी श्रीराधा उनके (श्रीकृष्ण के) प्राणों में लीन हो जाती हैं । सावित्री देवी सभी वेद तथा शास्त्र सरस्वती में लीन हो जाती हैं । सरस्वती देवी भगवान् की जिह्वा में लीन हो जाती हैं ।।५८-५९।। गोलोक के सभी गोप भगवान् श्रीकृष्ण के रोमों में विलीन हो जाते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के ही प्राणों में सबों के प्राण, वायु और अग्नि भी लीन हो जाते हैं ।।६०।। और वे सब भगवान्

विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट् ॥६२॥ यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुषु उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत् ॥६३॥ चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः । यावत्कालो निमिषेण तावदुन्मीलनेन च ॥६४॥ ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते ॥६५॥ यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते । चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वांतरात्मनः ॥६६॥ उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया । स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि ॥६७॥ एकैव च परा शक्तिर्निर्गुणः परमः पुमान् । सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः ॥६८॥ मूलप्रकृतिरव्यक्ताऽप्यव्याकृतपदाभिधा । चिदभिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति ॥६९॥ तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः । मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः ॥७०॥ तत्प्रधानादेव भुक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा॥७१॥ सामीप्यदाऽथ निर्वाणप्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा । भक्तास्तां न हि वांछन्ति विना तत्सेवनं विभोः ॥७२॥ शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकं धनम् ॥७३॥ दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी॥७४॥

की जाठराग्नि में विलीन हो जाते हैं । जल भगवती जिह्वा के अग्रभाग में विलीन हो जाता है और परमानन्द सम्पन्न सभी वैष्णव श्रीभगवान् के चरण कमल में विलीन हो जाते हैं ॥६१॥ सारातिसार भक्ति रसरूपी अमृत का पान करने वाले विराट् के अंशभूत महाविराट् कृष्ण में लीन हो जाते है । वे ही महाविराट् हैं ॥६२॥ उनके ही रोमकूपों में सभी विश्व विद्यमान हैं । उनके ही नेत्र के खुलने पर प्राकृतप्रलय होता है ॥६३॥ और पुनः नेत्र खुलने पर उनकी ही इच्छा से सृष्टि होती है । जिनकी आँखें खुलने पर पुनः सृष्टि होती है । जितने समय में एक निमेष होता है, उतना ही समय आँख खुलने में लगता है॥६४॥ ईश्वर की ही इच्छा से पुनः आँख खुलने पर सृष्टि होती है । हे सुन्दर व्रतवाली ! ब्रह्मा की सृष्टि तथा लय असंख्य हैं ॥६५॥ जैसे पृथिवी के धूल कणों की कोई संख्या नहीं है । जिस परमात्मा की आँखों के झपकने से प्रलय होता है ॥६६॥ और पुनः जिनकी आँखें खुलने पर सृष्टि हो जाती है । वे श्रीकृष्ण भी प्रकृति में लीन हो जाते हैं ॥६७॥ पराशक्ति एक ही है । वे निर्गुण परमपुरुष हैं । वेदज्ञों का कहना है कि वे ही सर्वप्रथम सूत्र रूप से विद्यमान थे ॥६८॥ उसी को मूल प्रकृति, अव्यक्त तथा अव्याकृत रूप से कहा जाता है । प्रलय काल में वह चित् स्वरूप से रहता है ॥६९॥ उस चित् शक्ति के गुणों का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है । चारो वेद बतलाते हैं कि मुक्ति चार प्रकार की होती है ॥७०॥ उन चारों में देवता की भक्ति सभी मुक्तियों से भी श्रेष्ठ है । एक मुक्ति सालोक्य होती है, दूसरी सारूप्य ॥७१॥ तीसरी साम्य और चौथी भक्ति निर्वाण प्रदान करने वाली है । किन्तु भक्तपुरुष श्रीप्रभु की सेवा से भिन्न मुक्ति को नहीं प्राप्त करंना चाहते हैं ॥७२॥ वे भक्त शिवत्व, अमरत्व, ब्रह्मत्व, जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि, शोक, भय

भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखण्डनं शृणु । विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम् ॥७५॥ तत्खण्डनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं च लोकवेदयोः ॥७६॥ निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम् । इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम्॥७७॥ तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः । दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सा सावित्री प्रणम्य च ॥७८॥ रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता । सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः ॥७९॥ तामित्युवाच संतुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह । धर्म उवाच– **लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥८०॥ अन्ते यास्यसि तं लोकं यत्र देवी विराजते । गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु ॥८१॥ द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम् । ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम् ॥८२॥ शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथा व्रतम् । द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते ॥८३॥ करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम् । प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलदायिनीम् ॥८४॥ प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिनीम् । तथा चाषाढसंक्रांत्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम् ॥८५॥ राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम् । उपोष्य**

तथा धन की अवहेलना कर देते हैं ॥७३॥ दिव्यरूप धारण करके निर्वाण पद को प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है । भुक्ति सेवा से रहित होती है और भक्ति सेवा से युक्त होती है, यही मुक्ति तथा भक्ति में अन्तर है ॥७४॥ भक्ति और मुक्ति में होने वाले अन्तर को जानकर अब निषेक के खण्डन की बात सुनो। दिए हुए कर्मों के फल को भोगने को ही निषेक कहते हैं ॥७५॥ श्रीदेवी की सेवा ही उसको विनष्ट करने वाली है और कल्याण को प्रदान करने वाली है । हे साध्वि ! यह तत्त्व ज्ञान लोक और वेद दोनों में स्थिर है ॥७६॥ हे वत्से ! यही बिना किसी विघ्न के कल्याण करने वाला है । अब तुम चली जाओ । इस तरह से कहकर और सावित्री के पति को जीवित करके यमराज ॥७७॥ सावित्री को आशीर्वाद देकर जाने के लिए उद्यत हो गये । जाते हुए यमराज को देखकर सावित्री उनका पैर पकड़कर रोने लगी ॥७८॥ उसको कष्ट था कि उसका साधु पुरुष से वियोग हो रहा था । सावित्री की रुलाई सुनकर कृपासागर यमराज ने उससे कहा ॥७९॥ वे सन्तुष्ट होकर स्वयं रो पड़े । **धर्मराज ने कहा–** पुण्यक्षेत्र भारत वर्ष में एक लाख वर्ष तक सुख भोग कर ॥८०॥ अन्त में तुम देवी के लोक में जाओगी । हे कल्याणि ! तुम अपने घर जाकर सावित्री का व्रत करना ॥८१॥ चौदह वर्षों तक इस व्रत को करने से स्त्रियों को मुक्ति मिल जाती है । ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी के दिन सावित्री का व्रत करना शुभ है ॥८२॥ भाद्रशुक्ल अष्टमी के दिन महालक्ष्मी का व्रत होता है । हे शुचिस्मिते ! इस व्रत को सोलह वर्षों तक करना चाहिए ॥८३॥ इस व्रत को करने वाली नारी श्रीहरि के लोक में जाती है । प्रत्येक मङ्गलवार को मङ्गल चण्डी की उपासना करनी चाहिए ॥८४॥ प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को मङ्गल प्रदान करने वाली षष्ठी देवी का व्रत करना चाहिए । सभी आषाढ़ की संक्रान्ति को सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाली मनसा देवी की उपासना करनी चाहिए ॥८५॥ कार्तिक मास की पूर्णिमा को रास में भगवान्

शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम् ॥८६॥ विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । प्रकृतिं जगदम्बां च प्रतिमासं वर प्रदाम् ॥८७॥ पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च । या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे ॥८८॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीविभोः पदम् । एवं देव्या विभूतीश्च पूजयेत्साधकोऽनिशम् ॥८९॥ सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी । नातः परतरं किञ्चित्कृतकृत्यत्वदायकम् ॥९०॥ इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमंदिरम् । गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम् ॥९१॥ सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागतम् । अन्यांश्च कथयामास स्ववृत्तान्तं हि नारद ॥९२॥ सावित्रीजनकः पुत्रान्सम्प्राप्तः प्रक्रमेण च । श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान् वरेण च ॥९३॥ लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । जगाम स्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता ॥९४॥ सवितुश्चाधिदेवी या मंत्राधिष्ठातृदेवता । सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता ॥९५॥ इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम् । जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥९६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

◆

श्रीकृष्ण की प्राणप्यारी राधाजी की उपासना करनी चाहिए । प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को विष्णु भगवान् की माया दुर्गा देवी की उपासना करनी चाहिए॥८६॥ भगवान् विष्णु की माया भगवती दुर्गा देवी भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाली हैं । जो नारी धन और सन्तान प्राप्ति की कामना से, पुत्रवती पतिव्रता सौभाग्यवती स्त्रियों में, मन्त्रों तथा प्रतिमाओं में दुर्गादेवी की भावना करके उनकी पूजा करती है, वह इस लोक में सुखभोग कर अन्त में श्रीहरि के लोक में जाती है । इस तरह से साधक को चाहिए कि वह इस प्रकार से महादेवी की विभूतियों की पूजा करे ॥८७-८९॥ सदा सर्वस्वरूपिणी परमेश्वरी भगवती जगदम्बा की पूजा करनी चाहिए इससे बढ़कर कोई भी दूसरा साधन कृतकृत्य बनाने वाला नहीं है ॥९०॥ इस तरह से सावित्री को कहकर धर्मराज अपने लोक में चले गये । और अपने पति को लेकर सावित्री भी अपने घर चली आयी ॥९१॥ हे नारद सावित्री और सत्यवान् अपने घर आकर इस वृत्तान्त को दूसरों को सुनाये॥९२॥ सावित्री के पिता ने क्रमशः अपने पुत्रों को प्राप्त किया । वरदान के प्रभाव से उसके श्वशुर अपने नेत्रों तथा राज्य को प्राप्त कर लिए और सावित्री ने भी अपने पुत्रों को प्राप्त किया ॥९३॥ पुण्यक्षेत्र भारत में एक लाख वर्षों तक सुखभोग कर वह पतिव्रता अपने पति के साथ देवी के लोक में चली गयी ॥९४॥ इनका सावित्री नाम इसलिए पड़ा है कि ये सविता देवता की अधिष्ठात्री देवी है तथा वेदों के गायत्री मन्त्र की अधिष्ठात्री देवी हैं ॥९५॥ हे वत्स ! इस तरह से मैंने आपको सावित्री की कथा सुनायी तथा जीवों के कर्मों के विपाक को भी सुनाया । अब और क्या सुनना चाहते हो ?॥९६-९७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३८।।

◆

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निराकृतेः । सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः ॥१॥ तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मंगलानां च मंगलम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर ॥२॥ केनादौ पूजिता साऽपि किंभूता केन वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदां वर॥३॥** नारायण उवाच– **सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांससंभूता बभूव रासमंडले ॥४॥ अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमंडिता । यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ॥५॥ श्वेतचंपकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटींदुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६॥ शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना । सा देवी द्विविधा भूता सह सर्वेश्वरेच्छया ॥७॥ स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा । यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च ॥८॥ स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वाऽनुनयेन च । तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका ॥९॥ राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजं च परात्परम् । महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् ॥१०॥ कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह । दक्षिणांसश्च द्विभुजो**

महालक्ष्मी के जन्म की कथा

नारदजी ने कहा– हे भगवन् ! मूल प्रकृति देवी के गायत्री नामक शक्ति का निर्मलयश सावित्री तथा यम के संवदान्तर्गत सुन चुका हूँ ॥१॥ निश्चय ही उनके गुणों का कीर्तन करना सभी प्रकार के मंगलों को प्रदान करने वाला है । हे प्रभो ! अब मैं लक्ष्मी का उपाख्यान सुनना चाहता हूँ ॥२॥ सर्वप्रथम किसने लक्ष्मीदेवी की पूजा की ? उनका स्वरूप कैसा है ? तथा उनकी पूजा कैसे की जाती हैं ? हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ प्रभो ! आप इन सारी बातों को मुझे बतलाइये ॥३॥ **नारायण ने कहा–** हे ब्रह्मन् ! प्राचीन काल में रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण के वामअंग से राधा देवी प्रकट हुईं ॥४॥ उन परम सुन्दरी श्रीराधाजी के चारो ओर वट वृक्ष सुशोभित हो रहे थ । वे सदा बारह वर्ष की अवस्था वाली सुस्थिर यौवन वाली हैं ॥५॥ उनका श्वेत चम्पक के समान वर्ण देखने में सुन्दर और मनोज्ञ है । उनका मुखमण्डल करोडों शरद कालीन चन्द्रमा की शोभा से भी अधिक है ॥६॥ उनके नेत्रों की शोभा शरत् कालीन विकसित कमलों की शोभा से भी अधिक है । सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से उन देवी के दो रूप हो गये ॥७॥ इन दोनों रूपों में उनके तेज, रूप, अवस्था, कान्ति, यश, वस्त्र, कार्य, भूषण इत्यादि गुण ॥८॥ तथा मुस्कुराकर देखना, प्रेमपूर्वक और विनय पूर्वक देखना ये सभी गुण समान रूप से विद्यमान थे । उनका जो वामभाग था वह महालक्ष्मी तथा दक्षिणभाग राधिका हो गया ॥९॥ सर्वप्रथम राधा ने पतिरूप सेद्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण का वरणकर लिया उसके पश्चात् लक्ष्मी भी अपने पति को प्राप्त करना चाहीं ॥१०॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी महालक्ष्मी के गौरव के अनुसार दो रूपों में प्रकट

वामांसश्च चतुर्भुजः ॥११॥ चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा । लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययाऽनिशम् ॥१२॥ देवीभूता च महती
महालक्ष्मीश्च सा स्मृता । राधाकांतश्च द्विभुजो लक्ष्मीकांतश्चतुर्भुजः ॥१३॥ शुद्धसत्त्वस्वरूपा च गोपैर्गोपीभिरावृता । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ
पद्मया सह ॥१४॥ सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ वरौ । महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा ॥१५॥ वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः
परिपूर्णतमा रमा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता ॥१६॥ प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च
शक्रसंपत्स्वरूपिणी ॥१७॥ पाताले नागलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहलक्ष्मी गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः ॥१८॥ संपत्स्वरूपा गृहिणां
सर्वमंगलमंगला । गवां प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥१९॥ क्षीरोदसिंधुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च । शोभास्वरूपा चंद्रे च सूर्यमंडलमंडिता॥२०॥
विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च । नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च ॥२१॥ सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च । प्रतिमासु च देवानां
मंगलेषु घटेषु च ॥२२॥ माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा । मणीन्द्रेषु च हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च ॥२३॥ वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु

हो गये । उनका दाहिना भाग दो भुजाओं वाला और वायाँ भाग चार भुजाओं वाला हो गया ॥११॥ दो भुजाओं वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने महालक्ष्मी को चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु को प्रदान कर दिया । लक्ष्मी देवी सम्पूर्ण विश्व को स्नेहिल दृष्टि से निरन्तर देखती रहती हैं ॥१२॥ वे देवी स्वरूपिणी महालक्ष्मी कहलायीं । इसी तरह दो भुजाओं वाले भगवान् राधाकान्त हो गये और चार भुजाओं वाले भगवान् लक्ष्मीकान्त हो गये ॥१३॥ राधाजी शुद्धसत्त्व स्वरूपिणीं गोपों तथा गोपियों से घिरी हुई थीं । भगवान् चतुर्भुज महालक्ष्मी जी के साथ वैकुण्ठ चले गये ॥१४॥ ये कृष्ण तथा नारायण दोनों समान रूप से हर प्रकार से एक समान हुए । महालक्ष्मी ने अपने योगविद्या के द्वारा अनेक रूपों को धारण कर लिया ॥१५॥ महालक्ष्मी अपने परिपूर्ण रूप से वैकुण्ठलोक में रहने लगीं । वे शुद्ध सत्त्व स्वरूपा और सभी प्रकार के सौभाग्य से सम्पन्न थीं ॥१६॥ वे सभी प्राणियों में प्रेम-प्रधान रूप से रहने लगीं। स्वर्गलोक में वे इन्द्र की सम्पत्ति रूप से स्वर्ग लक्ष्मी होकर रहने लगीं ॥१७॥ पाताल में नागलक्ष्मी रूप से और राजाओं में राजलक्ष्मी रूप से । गृहस्थों के गृहों में गृहलक्ष्मी के रूप में अपने अंश मात्र से निवास करने लगीं । गृहस्थों के यहाँ सभी प्रकार के मंगल को प्रदान करने वाली वे सम्पत्ति स्वरूपिणी हो गयीं गौओं में वे सुरभि बन गयीं तथा यज्ञों में दक्षिणा रूप से विराजमान हो गयीं ॥१८-१९॥ पद्मिनी नायिकाओं में क्षीरसागर की पुत्री श्रीदेवी के रूप में विद्यमान हो गयीं । सूर्य मण्डल से समलंकृत श्रीदेवी चन्द्रमा में शोभा रूप से विराजमान हो गयीं ॥२०॥ हे मुने ! इस तरह से लक्ष्मीजी आभूषणों,रत्नों, फलों, जलों, राजाओं, राजपत्नियों, दिव्यस्त्रियों तथा गृहों ॥२१॥ सभी सस्यों, वस्त्रों, सुन्दरस्थानों, देवताओं की प्रतिमाओं तथा मङ्गलकलशों॥२२॥ माणिक्यों, मुक्ताओं, मालाओं, श्रेष्ठ मणियों, हीरों, दुग्धों तथा चन्दनों ॥२३॥ मनोहर वृक्षशाखाओं, नवीन मेघों तथा नवीन वस्तुओं

वस्तुषु । वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च ॥२४॥ द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शंकरेण च । विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने ॥२५॥ स्वायंभुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः । ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे ॥२६॥ गन्धर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता । शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा ॥२७॥ भक्त्या च पक्षपर्यंतं त्रिषु लोकेषु नारद । चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मंगलवासरे ॥२८॥ विष्णुना पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः । वर्षान्ते पौषसंक्रांत्या माघ्यामावाह्य मंगले ॥२९॥ मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये । पूजिता सा महेन्द्रेण मंगलेनैव मंगला ॥३०॥ केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च । ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा ॥३१॥ कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता । प्रियव्रतेन चंद्रेण कुबेरेणैव वायुना ॥३२॥ यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता । एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वंदिता सदा । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

में शोभारूप से विद्यमान रहने लगीं । सर्वप्रथम लक्ष्मी देवी की पूजा वैकुण्ठ में भगवान् नारायण ने की ॥२४॥ दूसरी बार उनकी पूजा ब्रह्माजी ने और तीसरी बार शंकरजी ने की । हे मुने ! भगवान् विष्णु ने उनकी पूजा क्षीरसागर तथा भारत में की ॥२५॥ उसके बाद मानवेन्द्र मनु ने सर्वत्र महालक्ष्मी की पूजा की । उसके बाद राजाओं, ऋषि श्रेष्ठों, मुनिश्रेष्ठों, सज्जन गृहस्थों तथा गन्धर्वों ने पूजा की । फिर पाताल लोक में नागों ने महालक्ष्मी की पूजा की। भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को ब्रह्माजी ने महालक्ष्मी की पूजा की ॥२६-२७॥ उसके बाद त्रैलोक्य में उनकी पूजा भाद्रमास के पूरे शुक्ल पक्ष में होने लगी । चैत्र, पौष तथा भाद्रपद मासों के पवित्र मङ्गलवार को उनकी पूजा होने लगी ॥२८॥ फिर भगवान् विष्णु ने महालक्ष्मी की पूजा की । उसके बाद महालक्ष्मीं त्रैलोक्य में पूजित हो गयीं । उसके बाद वर्ष के अन्त में पौष मास की संक्रान्ति और माघ की संक्रान्ति तथा मंगलवार को महालक्ष्मी की आवाहन करके मनु ने उनकी पूजा की । उसके बाद महालक्ष्मी की पूजा त्रैलोक्य में होने लगी । फिर इन्द्र ने तथा मंगल ने महालक्ष्मी की मंगलवार को पूजा की ॥२९-३०॥ तदनंतर राजा केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, इन्द्र, बलि तथा कश्यप ॥३१॥ दक्ष, कर्दम, विवस्वान, प्रियव्रत, चन्द्रमा, कुबेर तथा वायु ॥३२॥ यम, अग्नि तथा वरुण, ने महालक्ष्मी की पूजा की । इस तरह महालक्ष्मी सर्वत्र तथा सर्वदा पूजित और बन्दित होने लगीं । श्रीमहालक्ष्मी सभी संपत्तियों की अधिष्ठात्री देवी तथा सर्वसंपत् स्वरूपिणी हैं ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के उनचालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

चत्वारिंशोऽध्याय:

नारद उवाच– **नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१॥ कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका । पुरा केन स्तुताऽऽदौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥** श्रीनारायण उवाच– **पुरा दुर्वाससः शापाद्भ्रष्टश्रीश्च पुरंदरः । बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोके च नारद ॥३॥ लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता । गत्वा लीना च वैकुण्ठे महालक्ष्मीश्च नारद ॥४॥ तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम् । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥५॥ वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥६॥ तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया । बभूव सिन्धुकन्या सा सर्वसंपत्स्वरूपिणी ॥७॥ तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्राप्ताश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह ॥८॥ सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥९॥ देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद । तां संपूज्य च संभूय सर्वत्र च निरापदः ॥१०॥** नारद उवाच– **कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन । केन दोषेण वा ब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा ॥११॥ ममंथुः केन रूपेण जलधिं ते सुरादयः । केन स्तोत्रेण वा देवी**

लक्ष्मी के जन्म आदि के वृत्तान्त का वर्णन

नारदजी ने कहा– लक्ष्मीजी भगवान् नारायण की प्रियतमा और वैकुण्ठ में वास करने वाली हैं । सनातनी महालक्ष्मी वैकुण्ठ की अधिष्ठात्री देवी हैं॥१॥ आप मुझे बतलाएँ कि वे भूलोक में आकर सिन्धुकन्या कैसे हो गयीं ॥२॥ **श्रीनारायण ने कहा**– प्राचीन काल में महर्षि दुर्वासा के शाप से इन्द्र भ्रष्ट श्रीक हो गये । उसी तरह देवताओं का समूह और सभी मनुष्य भी लक्ष्मी विहीन हो गये ॥३॥ रुष्ट और अत्यन्त दुखी लक्ष्मी भी स्वर्गादि लोकों का परित्याग करके वैकुण्ठ लोक में जाकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥३-४॥ हे नारदजी ! सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्माजी की सभा में गये और वहाँ ब्रह्माजी को आगे करके वे सब वैकुण्ठ में गये ॥५॥ उन सबों ने वहाँ भगवान् नारायण की शरणागति की । उस समय दुःख के कारण उन देवताओं के ओष्ठ और तालु सूख गये थे ॥६॥ उस समय पुराण पुरुष नारायण की आज्ञा से सर्वसंपत् स्वरूपिणी श्रीमहालक्ष्मी अपने एक अंश से समुद्र की पुत्री बन गयीं ॥७॥ देवता दैत्यों के साथ मिलकर समुद्र का मन्थन किए । उससे लक्ष्मीजी प्रकट हुईं । भगवान् विष्णु ने उनका साक्षात्कार किया ॥८॥ महालक्ष्मी ने देवताओं को वरदान दिया और क्षीर सागर में शयन करने वाले भगवान् विष्णु को वरमाला पहनाया ॥९॥ देवताओं ने अपना राज्य असुरों से प्राप्त कर लिया । देवताओं ने लक्ष्मी की पूजा की और सर्वत्र निर्भय हो गये ॥१०॥ **नारदजी ने कहा**– महर्षि दुर्वासा तो मुनियों में श्रेष्ठ तथा तत्त्वों के ज्ञाता हैं । वे देवताओं के किस

शक्रं साक्षाद्बभूव सा ॥१२॥ को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो । श्रीनारायण उवाच– **मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिःपुरा ॥१३॥ क्रीडां चकार रहसि रंभया सह कामुकः । कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः ॥१४॥ तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः । कैलासशिखरे यांतं वैकुंठादृषिसत्तमम् ॥१५॥ दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥१६॥ प्रतप्तकांचनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम् । शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरदंडौ कमण्डलुम् ॥१७॥ महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रतं चेन्दुसन्निभम् । समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥१८॥ दृष्ट्वा ननाम शिरसा संप्रमत्तः पुरंदरः । शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम् ॥१९॥ मुनिना स सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः । विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम् ॥२०॥ तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम् । शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसंपदा ॥२१॥ पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके । हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च ॥२२॥ तेजसा वयसाऽकस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह । त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम् ॥२३॥ न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने । तत्पुष्पं त्यक्तवंतं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः॥२४॥ तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः ।** मुनिरुवाच– **अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे ॥२५॥ मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण**

दोष से ग्रस्त होकर इन्द्र को शाप दे दिये ॥११॥ देवताओं ने किस प्रकार से क्षीरसागर का मंथन किया ? इन्द्र के किस स्तोत्र से प्रसन्न होकर लक्ष्मी इन्द्र को दर्शन दीं ॥१२॥ उन दोनों में कौन सा संवाद हुआ ? उसे आप मुझे बतलाएँ । **श्रीनारायण ने कहा–** एक बार त्रैलोक्याधिपति इन्द्र मदिरा पान करके प्रमत्त हो गये ॥१३॥ और कामुक होकर वे एकान्त में रम्भा के साथ क्रीडा कर रहे थे । उसी में आसक्त मन वाले वे क्रीडा करके ॥१४॥ कामासक्त होकर उस महावन में स्थित थे । उसी समय ऋषियों में श्रेष्ठ दुर्वासा वैकुण्ठ से कैलास जा रहे थे ॥१५॥ ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ऋषि को इन्द्र ने देखा । उस समय महर्षि का तेज ग्रीष्म ऋतु के हजारों सूर्य के समान चमक रहा था ॥१६॥ संतप्त सुवर्ण के समान पीली-पीली उनकी जटा चमक रही थी । उनका यज्ञोपवीत उजला था । और वे चीर दण्ड तथा कमण्डलु धारण किए थे । उनके ललाट पर उजला चन्दन का विन्दु चन्द्रमा के समान चमक रहा था । उनके साथ वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत उनके लाखों शिष्य थे ॥१७-१८॥ प्रमत्त इन्द्र ने उनके शिष्यों को देखकर शिर झुकाकर प्रणाम किया । महर्षि और उनके शिष्यों ने इन्द्र को शुभाशीर्वाद दिया ॥१९॥ भगवान् विष्णु ने जो महर्षि को पारिजात पुष्प की सुन्दर माला दी थी ॥२०॥ वह जरा, रोग मृत्यु तथा शोक को विनष्ट करने वाली थी तथा मोक्ष प्रदान करने वाली थी । उस माला को उन्होंने इन्द्र को दे दिया । राज्य सम्पत्ति के कारण प्रमत्त इन्द्र ने ॥२१॥ उस माला को ले लिया और उसी समय उस माला को अपने हाथी के मस्तक पर रख दिया । उस माला के स्पर्श मात्र से तथा उसके सौन्दर्य और गुण

करिमस्तके । विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम् ॥२६॥ प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत् । भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु
सः ॥२७॥ यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम् । प्राप्तिमात्रेण यो भुंक्ते भक्तो विष्णुनिवेदितम् ॥२८॥ पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः
स्वयं भवेत् । नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम् ॥२९॥ पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत् । तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च
विशुध्यति ॥३०॥ तत्पादरजसा मूढ सद्यःपूता वसुन्धरा । पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥३१॥ यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम्।
शिवलिंगप्रदान्नं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना ॥३२॥ चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव च । कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम् ॥३३॥
उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम् । अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च ॥३४॥ अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम् । अगम्यागामिनां
चैव द्विजानामन्नमेव च ॥३५॥ मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम् । मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च ॥३६॥ एते सर्वे विशुध्यंति

के कारण ॥२२॥ वह हाथी अकस्मात् विष्णु के समान तेजस्वी और बलवान् हो गया । वह इन्द्र को छोड़कर घोर वन में प्रवेश कर गया ॥२३॥ हे मुने!
तेजस्वी इन्द्र उस समय उस हाथी को अपने वश में नहीं रख सके । उस पुष्प को त्यागे हुए इन्द्र को देखकर महर्षि दुर्वासा अत्यन्त रुष्ट होकर इन्द्र को
शाप दे दिए । **मुनि ने कहा**– अरे धन के मद में मदमत्त होकर तुम मेरा अपमान कर रहे हो ॥२४-२५॥ मैंने जिस माला को तुम्हें दिया था उसे हाथी
के शिर पर तुमने रख दिया । भगवान् विष्णु को निवेदित किया गया नैवेद्य, फल अथवा जल ॥२६॥ प्राप्त होते ही खा लेना चाहिए जो उसका त्याग
कर देता है, वह ब्रह्मघाती होता है । उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और उसका राज्य छिन जाता है ॥२७॥ भाग्यवशात्
प्राप्त भगवन् विष्णु के मंगलमय नैवेद्य को जो भक्त प्राप्त होते ही खा लेता है ॥२८॥ वह अपने सौ पीढ़ी के जीवों का उद्धार करने वाला और जीवन्मुक्त
हो जाता है । जो व्यक्ति भगवान् के नैवेद्य को खाकर श्रीभगवान् को प्रणाम करता है ॥२९॥ तथा भक्तिपूर्वक श्रीभगवान् की पूजा अथवा स्तुति करता है
वह भगवान् विष्णु के सदृश हो जाता है । उस व्यक्ति का स्पर्श करके आने वाली वायु से तीर्थ समूह भी शुद्ध हो जाता है ॥३०॥ उसके चरण कमलों
की धूल से पृथिवी सद्यः पवित्र हो जाती है । किसी पुंश्चली का अन्न, किसी निःसन्तान स्त्री का अन्न तथा शूद्र के श्राद्ध का अन्न ॥३१॥ तथा श्रीहरि को
भोग नहीं लगाया हुआ अन्न का खाना मांस भक्षण से भी अधिक दोषकारक है । शिवलिङ्ग के लिए दिया गया अन्न, शूद्र का यज्ञ करांने वाले के द्वारा
दिया गया अन्न ॥३२॥ चिकित्सा करने वाले ब्राह्मण का अन्न, देवल का अन्न, कन्या बेचने वाले का अन्न, योनिजीवी का अन्न ॥३३॥ उच्छिष्ट, वासी तथा
सबके खिलाने के बाद बचा हुआ अन्न, शूद्रपति ब्राह्मण का अन्न, हल जोतने वाले ब्राह्मण का अन्न ॥३४॥ अदीक्षित, ब्राह्मण का अन्न, मूर्दा जलाने का काम
करने वाले ब्राह्मण का अन्न, अगम्यागमन करने वाले ब्राह्मणों का अन्न, मित्र से द्रोह करने वाले तथा कृतघ्नों का अन्न, विश्वासघात करने वालों का अन्न झूठी

विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् । श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत् ॥३७॥ हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः । अज्ञानाद्यदि गृहणाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ॥३८॥ सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । ज्ञात्वा भक्त्या च गृहणाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च ॥३९॥ कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे । यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके ॥४०॥ तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीहरिः पदम् । नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः॥४१॥ कालान्मृत्योर्जरातश्च कानन्यान्गणयामि च । किं करिष्यति ते तातः कश्यपश्च प्रजापतिः ॥४२॥ बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशंकस्य च मे हरे । इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम् ॥४३॥ इति श्रुत्वा महेंद्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः । उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः ॥४४॥ महेन्द्र उवाच– **दत्तः समुचितः शापो मह्यं मायापहः प्रभो । हृतां न याचे संपतिं किञ्चिज्ज्ञानं च देहि मे ॥४५॥ ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम्। मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम् ॥४६॥** मुनिरुवाच– **जन्ममृत्युजरोशोकरागबीजांकुरं परम् । संपत्तितिमिरांधश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति॥४७॥**

गवाही करने वाले का अन्न तथा ब्राह्मण का अन्न ॥३५-३६॥ इन सभी अन्नों की तब शुद्धि होती है जब इन अन्नों को भगवान् को भोग लगाकर खाया जाय यदि कोई श्वपच भी, भगवान् विष्णु की भक्ति करता है तो वह, अपने करोड़ पुरुषों का उद्धार कर सकता है ॥३७॥ जो मनुष्य श्रीहरि का भक्त नहीं है, वह अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता है । यदि वह अज्ञानवशात् भी भगवान् विष्णु का प्रसाद ले लेता है ॥३८॥ तो अपने सात जन्मों में अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है जो व्यक्ति जानकर भगवान् विष्णु के प्रसाद को लेता है ॥३९॥ वह अपने करोड़ों जन्म के पापों से मुक्त हो जाता है । चूकि तुमने जानबूझकर श्रीहरि की माला को हाथी के शिर पर रख दिया है ॥४०॥ अतएव लक्ष्मी तुमलोगों के लोक का परित्याग करके वैकुण्ठ लोक में चली जायेंगी। मैं तो भगवान् नारायण का भक्त हूँ इसलिए किसी भी देवता से नहीं डरता हूँ ॥४१॥ मैं काल, मृत्यु तथा जरा से भी नहीं डरता हूँ इन सबों से भिन्न से डरने की कौन सी बात हो सकती है । तुम्हारे पिता कश्यप महर्षि मेरा क्या कर लेंगे ॥४२॥ इन्द्र ! तुम्हारे गुरु वृहस्पति भी मेरा कुछ नहीं विगाड़ सकते हैं । यह पुष्प जिसके शिर पर रहता है, उसी की पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है ॥४३॥ महर्षि की इस बात को सुनकर इन्द्र ने उनका पैर पकड़ लिया भयभीत तथा शोकार्त बने हुए इन्द्र जोर-जोर से रोए ॥४४॥ **महेन्द्र ने कहा–** हे मुनिवर ! आपने मुझे शाप देकर ठीक किया है । मैं अपनी सम्पत्ति की याचना नहीं करता हूँ आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश कर दें ॥४५॥ ऐश्वर्य तो विपत्ति का बीज है वह ज्ञान को ढँक देता है । वह मुक्तिमार्ग रूपी वृक्ष के लिए कुठार के समान है और भक्ति को दूर भगा देने वाला है ॥४६॥ **मुनि ने कहा–** देवराज इन्द्र सम्पत्ति; जन्म, मृत्यु, जरा, शोक तथा राग के बीज का श्रेष्ठ अंकुर है । सम्पत्ति रूपी अन्धकार से अन्धा बना हुआ जीव मुक्ति के मार्ग को नहीं देख पाता है ॥४७॥ इन्द्र ! सम्पत्ति से मदमत्त बने हुए को सुरापायी

संपन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च । बांधवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुत्वेनैव हे हरे ॥४८॥ संपत्तिमदमत्तश्च विषयांधश्च विह्वलः । महाकामो राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति ॥४९॥ द्विविधो विषयांधश्च राजसस्तामसः स्मृतः । अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः ॥५०॥ शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुंगव । प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम् ॥५१॥ चरंति जीविनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि । स्वच्छंदं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च संततम् ॥५२॥ आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः । परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५३॥ अनेकजन्मपर्यंतं कृत्वा च भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च ॥५४॥ ततश्चेशानुग्रहाश्च सत्संगं लभते च सः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धेःपारकारणम्॥५५॥ साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् । तदा करोति यत्नं च जीवो बंधनखंडने ॥५६॥ अनेकजन्मयोगेन तपसाऽनशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥५७॥ इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत्पृच्छसि पुरंदर । मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः ॥५८॥ वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन्दिने दिने । मुनेः स्थानाद्गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम् ॥५९॥ दैत्यैरसुरसंघैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् । विषमोपप्लवां पुत्रवंधुहीनां च

से अधिक मदमत्त समझना चाहिए उसको ही बान्धवजन बन्धु कहकर घेरे रहते हैं ॥४८॥ सम्पत्ति से मदमत्त बना हुआ विषयान्ध और विह्वल होता है । वह महाकामी, रजोगुणी होने के कारण मुक्ति के मार्ग को नहीं देख पाता है ॥४९॥ विषयान्ध जीव दो प्रकार के होते हैं, राजस एवं तामस । शास्त्रों को नहीं जानने वाला तामस होता है और शास्त्रों को जानने वाला राजसविषयान्ध होता है ॥५०॥ हे देवश्रेष्ठ ! शास्त्र भी दो प्रकार के मार्गों को दिखलाता है पहला प्रवृत्ति के बीज स्वरूप होता है और दूसरा निवृत्ति का कारण होता है ॥५१॥ पहले तो सभी जीव स्वच्छन्दता पूर्वक, प्रसन्नता पूर्वक तथा निर्विरोध रूप से प्रवृत्तिमार्ग पर प्रवृत्त होते हैं ॥५२॥ वे उसी तरह से उस मार्ग पर प्रवृत्त होते हैं जैसे मधु का लोभी भौरा मधु को सुखद मानकर क्लेश के साथ मधु पर गिर पड़ता है । इस प्रवृत्ति मार्ग का परिणाम नाश होता है । वह जन्म, मृत्यु तथा जरा का खजाना है ॥५३॥ वह अनेक जन्मों तक उसी मार्ग पर प्रसन्नता पूर्वक भ्रमण करता रहता है । वह अपने कर्मानुसार अनेक योनियों में जाता है ॥५४॥ उसके बाद परमात्मा की कृपा पाकर वह सत्सङ्ग को प्राप्त करता है । सैकड़ों तथा हजारों मनुष्यों में से किसी एक से सत्सङ्ग का अवसर प्राप्त करता है । जिससे कि वह संसार सागर से पार जा सकता है। साधु पुरुष उसको तत्त्वज्ञान रूपी प्रदीप के द्वारा मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं । उसके बाद जीव इस संसार के बन्धन को काटने का प्रयास करता है ॥५५-५६॥ अनेक जन्मों में की गयी तपस्या तथा उपवास के द्वारा वह सुखद तथा निर्विघ्न मुक्तिमार्ग को प्राप्त करता है ॥५७॥ हे इन्द्र ! मैंने इस बात को अपने गुरु के मुख से सुना है । महर्षि की बात को सुनकर इन्द्र वीतराग हो गये ॥५८॥ हे ब्रह्मन् ! इन्द्र का वैराग्य प्रतिदिन बढ़ने लगा । इन्द्र उस मुनि के स्थान से

कुत्रचित् ॥६०॥ पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचंचलाम् । शत्रुग्रस्तां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति ॥६१॥ शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम् । ध्यायमानं परं ब्रह्म गंगातोये स्थितं परम् ॥६२॥ सूर्याभिसंमुखं पूर्वमुखं च विश्वतोमुखम् । साश्रुनेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम्॥६३॥ वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितम् । प्रेष्ठं च बंधुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च ज्ञानिनाम् ॥६४॥ ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम् । दृष्ट्वा गुरुं जपंतं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः ॥६५॥ प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थित प्रणनाम सः । प्रणम्य चरणांभोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥६६॥ वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा । पुनर्वरोपलब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम् ॥६७॥ वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः । शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतां वरः ॥६८॥ बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः । गुरुरुवाच— **श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं शृणु ॥६९॥ न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन । संपत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा श्रमरूपिणी ॥७०॥ पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि । सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि ॥७१॥ चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना । उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते ॥७२॥ शुभाशुभं च यत्किंचित्स्वकर्मफलभुक्पुमान्।**

अपने धाम में जाकर अमरावती नगरी को देखे ॥५९॥ उन्होंने देखा कि अमरावती दैत्यों तथा असुरों से भरी पड़ी है तथा भयभीत है । वहाँ पर भयंकर उत्पात हो रहा था तथा वह अपने पुत्रों तथा बन्धुओं से विहीन थी ॥६०॥ पिता, माता, पत्नी आदि से विहीन अत्यन्त चंचल अमरावती को देखकर इन्द्र आश्चर्य पूर्वक बृहस्पति के पास गये ॥६१॥ इन्द्र ने बृहस्पति का दर्शन मन्दाकिनी नदी के तट में किया । उस सयम आचार्य बृहस्पति गंगा के जल में बैठकर परंब्रह्म का ध्यान कर रहे थे ॥६२॥ वे सूर्य के समान पूर्व की ओर मुख करके परंब्रह्म का ध्यान कर रहे थे । उनकी आँखों में आँसू भरा था, शरीर रोमाञ्चित था । वे परमानन्द मग्न थे ॥६३॥ वरिष्ठ तथा धर्मिष्ठ, श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित, अपने बान्धवों में श्रेष्ठ एवं ज्ञानियों में अग्रगण्य ॥६४॥ अपने भातृवर्ग में (देवताओं) में सबसे बड़े दैत्यों के वैरी गुरु (बृहस्पति) को मन्त्र जपते हुए देखकर इन्द्र चुपचाप रहे ॥६५॥ एक प्रहार के पश्चात् बृहस्पति को जप से निवृत्त हुए देखकर इन्द्र ने उनको प्रणाम किया । बृहस्पति को प्रणाम करके इन्द्र जोर-जोर से रोने लगे ॥६६॥ उन्होंने ब्राह्मण के शाप इत्यादि का वृत्तान्त सुनाया । उसके बाद उन्होंने वरदान की प्राप्ति और दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति की बात बतलायी ॥६७॥ तदनंतर उन्होंने बतलाया कि उनकी नगरी पर वैरियों का कब्जा हो गया है । अपने शिष्य की बात को सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बृहस्पति ॥६८॥ की आँखे क्रोध से लाल हो गयीं । **बृहस्पति ने कहा—** इन्द्र ! मैं इन सारी बातों को सुन चुका हूँ । तुम रोओ मत मेरी बात सुनो ॥६९॥ नीतिज्ञ पुरुष कभी भी विपत्ति में घबराते नहीं हैं । सम्पत्ति तथा विपत्ति दोनों नश्वर हैं, और श्रम स्वरूप हैं ॥७०॥ विपत्ति और सम्पत्ति दोनों अपने पूर्वजन्म के किए हुए कर्मों के फलस्वरूप हैं । ये सबों को निरन्तर प्रत्येक जन्म में प्राप्त होते रहते हैं ॥७१॥ ये दोनों चक्र की नेमि के समान सदा आते और जाते रहते हैं । कहा भी गया है सम्पूर्ण भारतवर्ष में किए

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥७३॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना ॥७४॥ सामवेदोक्तशाखायां संबोध्य कमलोद्भवम् । जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम् ॥७५॥ अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि । कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम् ॥७६॥ कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा । कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति ॥७७॥ न हि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरंदर । कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् ॥७८॥ न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा । वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिने दिने ॥७९॥ दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् । समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर ॥८०॥ देशभेदे कोटिगुणकसंख्यं वा ततोऽधिकम् । समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरिव च ॥८१॥ पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् । यथा फलंति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च ॥८२॥ कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा । सामान्यदिवसे विप्रदानं समफलं भवेत् ॥८३॥ अमायां रविसंक्रांत्यां

गये कर्मों का फल भोगना ही पड़ता ॥७२॥ पुण्य तथा पाप जितने भी कर्म होते हैं पुरुष को उन सभी कर्मों का फल भोगना ही पड़ता सैकड़ों कल्पों के बीत जाने पर भी फल भोगे विना कर्मों का नाश नहीं होता है ॥७३॥ पुण्य तथा पाप रूप किए गये कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है । इस तरह से वेदों में तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है । यह बात भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी को संबोधित करके सामवेद की शाखा में कहा है ॥७४॥ पहले के किए गये कर्मों का जो भाग अववशिष्ट रह जाता है उसको भारत वर्ष में अथवा भारत में अन्यत्र जन्म लेकर भोगना ही पड़ता है । कर्म के ही कारण ब्राह्मण का शाप मिलता है और कर्मानुसार ही आशीर्वाद प्राप्त होता है ॥७५-७६॥ कर्म के ही फलस्वरूप महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है, और कर्म के ही फलस्वरूप दरिद्रता की प्राप्ति होती है । करोड़ों जन्मों में किया गया कर्म मनुष्य का पीछा करता रहता है ॥७७॥ हे पुरन्दर ! जिस तरह छाया मनुष्य का साथ नहीं छोड़ती है, उसी तरह कर्म भी कभी साथ नहीं छोड़ता है । एक ही कर्म का; दिन के भेद के कारण, काल के भेद के कारण तथा दान के पात्र के भेद के कारण ॥७८॥ फल में कमी-वेशी हुआ करती है । जैसे साधारण समय में किसी वस्तु का दान करने से साधारण फल की प्राप्ति होती है ॥७९॥ किन्तु किसी पुण्य दिन को दान करने से उसका फल करोड़ गुना और असंख्य होता है या उससे भी अधिक होता है । सामान्य देश में दान करने का फल सामान्य होता है ॥८०॥ किन्तु किसी पवित्र देश में दान करने पर उसका करोड़ गुना या असंख्य या उससे भी अधिक होता है । दान के पात्र के भी सामान्य होने पर दान करने वाले को सामान्य फल मिलता है ॥८१॥ किन्तु किसी उत्तम पात्र को दान देने पर सौ गुना अथवा असंख्य या उससे भी अधिक फल की प्राप्ति होती है । जिस तरह कृषि का फल अधिक तथा कम हुआ करता है ॥८२॥ किन्तु खेत तथा पात्र के बदल जाने पर उसका फल अधिक मिलता है । सामान्य दिन में दिया गया ब्राह्मण को दान सामान्य फल देता है ॥८३॥ किन्तु अमावस्या अथवा सूर्य संक्रान्ति के

फलं शतगुणं भवेत् । चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनंतं फलमेव च ॥८४॥ ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमुच्येत । सूर्यस्य ग्रहणे वाऽपि ततो दशगुणं भवेत् ॥८५॥ अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते । एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति ॥८६॥ यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्यकर्मसु ॥ एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम् ॥८७॥ यथा दंडेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च । कुम्भं निर्मांति निर्माता कुंभकारो मृदा भुवि ॥८८॥ तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च । यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं च नारायणं भज ॥८९॥ स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये । स्त्रष्टुः स्त्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः ॥९०॥ महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् । विपत्तौ तस्य संपत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥९१॥ इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समालिंग्य सुरेश्वरम् । दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद ॥९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

दिन दान करने से उसका सौ गुना फल होता है । उसी तरह चातुर्मास्य में अथवा पूर्णिमा के दिन दिए गये दान का अनन्त फल होता है ॥८४॥ चन्द्रग्रहण के समय दान करने से करोड़ गुना फल प्राप्त होता है । सूर्यग्रहण के समय दान करने से उससे भी दश गुना अधिक फल प्राप्त होता है ॥८५॥ अक्षय तृतीया तथा अक्षय नवमी को दिए गये दान का फल असंख्य होता है । इसी प्रकार दूसरे भी पुण्य-दिन को दान करने से अधिक फल प्राप्त होता है ॥८६॥ दान के ही समान स्नान, तथा जप का भी फल होता है । इसी तरह मनुष्यों द्वारा किए गये कर्मों के फल के विषय में सर्वत्र जानना चाहिए ॥८७॥ जिस तरह कुम्भकार दण्ड, चक्र, चीवर तथा भ्रमण के सहारे घट का निर्माण करता है ॥८८॥ उसी तरह ब्रह्मा भी कर्मसूत्र के द्वारा कर्म के फलों को प्रदान करते रहते हैं । जिन भगवान् नारायण की आज्ञा से इस जगत् की सृष्टि हुई है, उनका ही तुम भजन करो ॥८९॥ वे भगवान् नारायण ही विधाता के भी विधाता है, रक्षकों के भी रक्षक संहार कर्ता के भी संहारक, स्त्रष्टा के भी स्त्रष्टा और काल के भी काल हैं ॥९०॥ संसार में जो व्यक्ति महाविपत्ति के समय भगवान् मधुसूदन का स्मरण करता है, उसको विपत्ति में सम्पत्ति मिल जाती है, यह शङ्करजी ने कहा है ॥९१॥ हे नारदजी ! इस प्रकार से कहकर बृहस्पति ने इन्द्र का अलिङ्गन किया और उनको आशीर्वाद देकर सान्त्वना प्रदान किया ॥९२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच– **हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मञ्जगाम ब्रह्मणः सभाम् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ॥१॥ शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेन्द्रा गुरुणा सह ॥२॥ वृत्तांतं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति । प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः ॥३॥** ब्रह्मोवाच– **वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः । बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम् ॥४॥ मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान् । कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥५॥ माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः । मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहंकृतो भवेत् ॥६॥ जनः पौतृकदोषण दोषान्मातामहस्य च । गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥ सर्वांतरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः। यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणो भवेत् ॥८॥ मनोऽहमिन्द्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शंकरः । विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥९॥ निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । आत्मनः प्रतिबिम्बश्च जीवो भोगशरीरभृत् ॥१०॥ आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यांति ससंभ्रमाः ।**

इन्द्र का ब्रह्मलोक जाना

नारायण ने कहा– कि इस तरह से श्रीहरि का ध्यान करके इन्द्र बृहस्पति को आगे करके देवताओं के साथ ब्रह्माजी की सभा में गये ॥१॥ शीघ्र ही ब्रह्मलोक में इन्द्र तथा बृहस्पतिजी के साथ जाकर सभी देवताओं ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया ॥२॥ बृहस्पतिजी ने सारा वृत्तान्त ब्रह्माजी को सुनाया । उनकी बात को सुनकर हँसते हुए ब्रह्माजी ने इन्द्र से कहा ॥३॥ **ब्रह्माजी ने कहा–** हे वत्स ! तुम मेरे वंश में उत्पन्न हुए हो, तुम मेरे प्रपौत्र हो । तुम्हारे आचार्य बृहस्पति हैं तथा स्वयं तुम देवताओं के स्वामी हो ॥४॥ तुम्हारे नाना दक्षप्रजापति भगवान् विष्णु के भक्त हैं । इस तरह से जिसके तीनों वंश शुद्ध हो वह अहंकारी कैसे हो सकता है ?॥५॥ जिसकी माता पतिव्रता हो, पिता शुद्ध हों, नाना और मामा भी जितेन्द्रिय हों वह अहंकारग्रस्त कैसे हो सकता है?॥६॥ कोई भी जीव तीन प्रकार के दोषों के कारण दोषी होता है पिता के दोष के कारण, नाना के दोष के कारण तथा गुरु के दोष के कारण वह श्रीहरि का दोषी हो जाता है ॥७॥ भगवान् सबों की अन्तरात्मा हैं वे सबों के शरीर में अन्तर्यामी रूप से स्थित हैं । वे जिसके शरीर से निकल जाते हैं, वह उसी क्षण शव (मूर्दा) हो जाता है ॥८॥ वे स्वामी हैं हम सबलोग उनके अनुचर हैं । मैं मनुष्य के शरीर में इन्द्रियों के स्वामी मन के रूप में रहता हूँ, शंकरजी ज्ञान रूप से रहते हैं । भगवान् के प्राण स्वरूपिणी लक्ष्मी प्रकृति रूप से अवस्थित रहती हैं । बुद्धि रूप से दुर्गा देवी रहती हैं ॥९॥ निद्रा आदि भगवती प्रकृति की कलाएँ हैं । परमात्मा का प्रतिबिम्ब जीवात्मा भोग शरीर को धारण करके रहता है ॥१०॥ आत्मा स्वरूप परमात्मा के शरीर से निकलते ही सबके

यथा वर्त्मनि गच्छंतं नरदेवमिवानुगाः ॥११॥ अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महाविराट् । यूयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया ॥१२॥ शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च । तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया ॥१३॥ तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् । सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजा पुरतो भवेत् ॥१४॥ दैवेन वंचितस्त्वं हि दैवं च बलवत्तरम् । भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः ॥१५॥ सा श्रीर्गताऽधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात् । अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह ॥१६॥ निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि मद्वरात् । एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह ॥१७॥ तत्र गत्वा परंब्रह्म भगवंतं सनातनम् । दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं च प्रज्वलंतं स्वतेजसा ॥१८॥ ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडशतकोटिसमप्रभम् । शान्तमनादिमध्यांतं लक्ष्मीकांतमनंतकम् ॥१९॥ चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम् । भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गंगया परिवेष्टितम् ॥२०॥ तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः । भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥२१॥ वृत्तांतं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृतांजलिः । रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः ॥२१॥ स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् । रत्नभूषणशून्यं

सब उस शरीर से शीघ्र ही निकल जाते हैं । जिस तरह से राजा के चले जाने पर सभी उसका अनुगमन करते हैं, उसी तरह आत्मा के निकल पर उसके पीछे-पीछे शरीर को छोड़कर ये सब चले जाते हैं ॥११॥ मैं शिव, शेष, विष्णु, धर्म, महाविराट् तथा आप सभी जिनके अंश और भक्त हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के पुष्प का तुमने अपमान किया है ॥१२॥ जिस पुष्प से शिव ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की पूजा की थी, भाग्यवशात् महर्षि दुर्वासा ने कृपा करके तुम्हें उसी पुष्प को दिया था और तुमने उसका अपमान कर दिया ॥१३॥ श्रीभगवान् के चरणों से गिरा हुआ वह पुष्प जिसके शिर पर चढता है, उसकी सभी देवताओं से पहले पूजा होती है ॥१४॥ भाग्य ने तुम्हे ठग लिया है । भाग्य तो सबसे अधिक बलवान् होता है । अज्ञानी भाग्य हीन व्यक्ति की रक्षा कौन कर सकता है ॥१५॥ भगवान् श्रीकृष्ण के निर्माल्य का अपमान करने के कारण तुम्हारी लक्ष्मी तो क्रुद्ध होकर वैकुण्ठ चली गयीं हैं । अतएव अब तुम मेरे और बृहस्पति के साथ वैकुण्ठ चलो ॥१६॥ तुम्हें वरदान देता हूँ कि लक्ष्मीपति की सेवा करके तुम लक्ष्मी को प्राप्त कर लोगे । इस तरह से कहकर ब्रह्माजी बृहस्पति, इन्द्र तथा देवताओं के साथ वैकुण्ठ गये ॥१७॥ वहाँ जाकर उन लोगों ने परंब्रह्म श्रीभगवान् का दर्शन किया । उस समय तेजः स्वरूप श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपने ही तेज से प्रकाशित हो रहा था ॥१८॥ उनकी कान्ति ग्रीष्मकाल के मध्याह्न के सैकड़ों सूर्य के समान थी । उनलोगों ने शान्त, आदि, मध्य तथा अन्त से हीन, अनन्त, लक्ष्मीपति का दर्शन किया ॥१९॥ चतुर्भुज पार्षदों तथा सरस्वतीजी के साथ प्रभु को उन लोगों ने देखा । वहाँ पर चार वेदों के साथ गंगाजी अपनी भक्ति का प्रदर्शन कर रही थीं ॥२०॥ ब्रह्मा इत्यादि के साथ सभी देवताओं ने शिर झुकाकर श्रीभगवान्

च वाहनादिविवर्जितम् ॥२३॥ शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं सभयं परम् । उवाच कातरं दृष्ट्वा भवभीतिविभञ्जनः ॥२४॥ श्रीभगवानुवाच– मा भैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं कि वो मयि स्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम् ॥२५॥ किं च मद्वचनं किञ्चिच्छ्रूयतां समयोचितम् । हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम् ॥२६॥ जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च संततम् । यथा तथाऽहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतंत्रकः ॥२७॥ यं यं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरंकुशः । तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥२८॥ दुर्वासाः शंकरांशश्च वैष्णवो मत्परायणः । तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात् ॥२९॥ यत्र शंखध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम् । न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति ॥३०॥ मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः । महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम् ॥३१॥ मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुंक्ते यो हरिवासरे । मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि ॥३२॥ मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् । यत्रातिथिर्न भुंक्ते न मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३३॥ यो विप्रः

को प्रणाम किया । वे भक्तिपूर्वक अपनी आँखों में आँसू भरकर श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥२१॥ स्वयं ब्रह्माजी ने हाथ ज़ोंड़कर श्रीभगवान् को सारा वृत्तान्त सुनाया । अपने अधिकार को खोए हुए सभी देवता रो रहे थे ॥२२॥ श्रीभगवान् ने देखा कि सभी देवता विपत्ति से ग्रस्त हो गये हैं तथा भय से व्याकुल बने हुए हैं । किसी भी देवता के शरीर पर रत्नों का आभूषण नहीं था तथा किसी के पास कोई वाहन नहीं था ॥२३॥ वे शोभा से रहित और निःश्रीक थे । उनकी कान्ति समाप्त हो गयी थी । तथा वे अत्यन्त भयभीत थे । देवताओं को कातर देखकर संसार के भय को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् ने कहना प्रारम्भ किया ॥२४॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे ब्रह्माजी, हे देवताओं ! आप लोग भयभीत न होइये, मेरे रहते आपलोगों को भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है । मैं आपलोगों के परम ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली अचला लक्ष्मी को प्रदान करूँगा ॥२५॥ किन्तु इस समय आप लोग मेरी समयोचित, हितकारिणी, सत्य तथा सुखद परिणाम वाली वाणी सुनें ॥२६॥ जिस तरह विश्व के सभी जीव सदा मेरे अधीन रहते हैं उसी तरह मैं भी अपने भक्तों के अधीन रहता हूँ ॥२७॥ मेरा सदैव चिन्तन करने वाला मेरा भक्त जिससे रुष्ट हो जाता है, उसके घर न तो मैं रह सकता हूँ और न लक्ष्मी रह सकती हैं । यह निश्चित समझें ॥२८॥ महर्षि दुर्वासा शंकरजी के अंश हैं और मेरे भक्त हैं । उनके शाप के ही कारण मैं तथा लक्ष्मी दोनों आपलोगों के घर से चले आये हैं ॥२९॥ जिस घर में न तो शंख की ध्वनि होती है, न तुलसी रहती हैं और न भगवान् शंकर की अर्चना होती है न तो ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है वहाँ पर लक्ष्मी नहीं रुकती हैं ॥३०॥ जिस घर में मेरे भक्तों की निन्दा की जाती है, उस घर से महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट हो जाती हैं, और उसके परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति पराभाव को प्राप्त करता है ॥३१॥ ज़ो मूर्ख जीव मेरी भक्ति से विहीन है, एकादशी के दिन भोजन करता है अथवा मेरे जन्मदिन (जन्माष्टमी तथा रामनवमी) को भोजन करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३२॥ जो मेरे नाम को बेचता है, अथवा अपनी कन्या

पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः । पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः ॥३४॥ महारुष्टा ततो याति मंदिरात्कमलालया । शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः ॥३५॥ याति रुष्टा तद्‌गृहाच्च देवाः कमलवासिनी । शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः ॥३६॥ तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्‌गृहात् । अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निंदको द्विजः ॥३७॥ ब्राह्मणः शूद्रायाजी च याति देवी च तद्‌गृहात् । अवीरान्नं च यो भुंक्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥३८॥ तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम् । निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्‌गृहाद्याति मत्प्रिया ॥३९॥ सूर्योदये द्विजो भुंक्ते दिवास्वापी च ब्राह्मणः । दिवा मैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया ॥४०॥ आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रतिग्रही । अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्वै याति मत्प्रिया ॥४१॥ स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः । शश्वद्वदति वाचालो याति सा तद्‌गृहात्सती ॥४२॥ शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्यांगं समुपस्पृशेत् । स्वांगं च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात् ॥४३॥ व्रतोपवासहीनो यः संध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया ॥४४॥ ब्राह्मणं निंदयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि संततम् । जीवहिंस्रो दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥४५॥

को बेंचता है, जिसके घर में आया हुआ अतिथि भोजन नहीं पाता है, उसके भी घर से लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३३॥ जो पुंश्चली ब्राह्मणी का पुत्र होता है, उस पुंश्चली का पति महापापी होता है, जो उस पापी के घर जाता है, तथा शूद्र के श्राद्ध का अन्न खाने वाले ब्राह्मण के घर से रुष्ट होकर लक्ष्मी चली जाती हैं । जो ब्राह्मण शूद्रों का शव जलाने का काम करता है, वह अधम ब्राह्मण भाग्यहीन है ॥३४-३५॥ हे देवताओं ! लक्ष्मी रुष्ट होकर उसके घर से चली जाती हैं । जो ब्राह्मण शूद्रों के रसोइया का काम करता है तथा हल चलाने का काम करता है ॥३६॥ उसके घर का पानी पीने के डर से लक्ष्मी उसके घर से चली जाती हैं । जो ब्राह्मण अशुद्ध हृदय वाला होता है, हिंसा करता है तथा दूसरों की निन्दा करता है ॥३७॥ शूद्र का यज्ञ कराता है उस ब्राह्मण के घर से लक्ष्मी चली जाती हैं । जो कायरों का अन्न खाता है उसके घर से जगन्माता लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३८॥ जो अपने नखों से तृण तोड़ता रहता है अथवा नख से पृथिवी को कुरेदते रहता है । जिसके घर से निराश होकर ब्राह्मण लौट जाता है, उसके घर से मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं ॥३९॥ जो ब्राह्मण सूर्योदय के समय भोजन करता है, अथवा दिन में जो सोता है अथवा दिन में मैथुन करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४०॥ जो आचारहीन ब्राह्मण शूद्रों से दान लेता है । वह जीवन में दीक्षा नहीं ग्रहण करता हैं, उसके घर से मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४१॥ जो अज्ञानी जीव अपना पैर गीला करके सोता है अथवा नंगे सोता है तथा जो वाचाल हमेशा बोलते ही रहता है, उसके घर से लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४२॥ जो शिर पर तेल लगा कर उसी हाथ से दूसरे अंगों को छूता है, तथा अपने अंगों को बाजे की तरह बजाता है, उसके घर से रुष्ट होकर लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४३॥ जो ब्राह्मण व्रत अथवा उपवास या सन्ध्या हीन होने के कारण अपवित्र रहता है, तथा जो विष्णु की भक्ति से रहित होता है, उसके घर

यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा । तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमंगलमंगला ॥४६॥ यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति संततम् ॥४७॥ यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम् । तत्सेवा वंदनं ध्यानं तत्र सा परितिष्ठति ॥४८। शिवलिंगार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम् । दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी ॥४९॥ विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती ॥५०॥ इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान् रमामाह रमापतिः । क्षीरोदसागरे जन्म कलया कलयेति च ॥५१॥ इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च । मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज ॥५२॥ इत्युक्त्वा कमलाकांतो जगामांतःपुरं मुने । देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम् ॥५३॥ मंथानं मंदरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् । कृत्वा शेषं मंथपाशं ममंथुरसुराः सुराः ॥५४॥ धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम्। नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनाम् ॥५५॥ वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती ॥५६॥ देवैः

से रुष्ट होकर लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४४॥ जो ब्राह्मणों की निन्दा करता है, तथा जो ब्राह्मणों से द्वेष करता रहता है । जीवों की हिंसा करता है और निर्दय है उसके घर से जगन्माता लक्ष्मी चली जाती हैं ॥४५॥ जहाँ पर श्रीहरि की पूजा होती है तथा जो सदा श्रीहरि का कीर्तन करता है । उस स्थान में सभी प्रकार के मंगलों को प्रदान करने वाली लक्ष्मी का निवास होता है ॥४६॥ हे ब्रह्माजी ! जिसके घर में भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा होती है । उस घर में भगवान् कृष्ण की प्रिया लक्ष्मी का निवास होता है ॥४७॥ जिस घर में शंख बजता है, शंख रहता है, शालग्राम शिला रहती है, तुलसी दल रहता है। जहाँ पर लक्ष्मी के सेवा ध्यान और स्तुति की जाती है ॥४८॥ जहाँ पर शिवलिङ्ग की पूजा होती है, उनका कीर्तन होता है, दुर्गाजी की पूजा होती है, वहाँ पर लक्ष्मी का निवास होता है ॥४९॥ जहाँ पर ब्राह्मणों की सेवा होती है तथा ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, तथा सभी देवताओं की पूजा होती है, वहाँ पर लक्ष्मी का निवास होता है ॥५०॥ इस तरह से देवताओं से कहने के बाद श्रीभगवान् ने लक्ष्मीजी से कहा तुम अपनी एक कला से समुद्र की पुत्री बनो ॥५१॥ इस तरह से लक्ष्मी से कहकर जगत् के स्वामी श्रीहरि ने ब्रह्माजी से कहा हे ब्रह्माजी ! आप समुद्र का मन्थन करके देवताओं को लक्ष्मी को दे दीजिये ॥५२॥ इस तरह कहकर लक्ष्मीपति अपने अंतःपुर में चले गये । देवता भी उसी समय क्षीरसागर की ओर चल पड़े ॥५३॥ देवताओं ने मन्दराचल को मथानी बनाया और कूर्म को उसका पात्र बनाया । शेष को उस मथानी की रस्सी बनाया और देवता तथा असुर क्षीरसागर का मंथन किए॥५४॥ उसके फलस्वरूप धन्वन्तरि वैद्य, अमृत, उच्चैःश्रवा अश्व, अनेक प्रकार के रत्न, हस्तीरत्न ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शन तथा वनमाला को प्राप्त किए ॥५५॥ सर्वेश्वर अत्यन्त मनोहर, क्षीरसागर श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी ने वनमाला पहना दिया ॥५६॥ इसके बाद देवताओं, ब्रह्माजी तथा शंकरजी ने लक्ष्मी

स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शंकरेण च । ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचनात् ॥५७॥ प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयंकरम् । महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥५८॥ इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् । ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो ॥१॥** नारायण उवाच– **स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी । घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड्देवान्पर्यपूजयत् ॥२॥ गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगंधादिभिस्तदा ॥३॥ आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम् । पूजां चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥४॥ पुरःस्थितेषु**

की पूजा की और उनकी वन्दना की । लक्ष्मीजी ने ब्राह्मण के शाप को समाप्त करने वाली दृष्टि से देवताओं के गृह को देखा । महालक्ष्मी की कृपा तथा वरदान के फलस्वरूप भयंकर रूप से दैत्यों से ग्रस्त अपने राज्य को देवताओं ने प्राप्त कर लिया ॥५७-५८॥ इस तरह से मैंने आपको लक्ष्मीजी के उत्तम उपाख्यान को सुनाया । यह शास्त्रों का सार तथा सुख प्रदान करने वाला है । इसके अतिरिक्त आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥५९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४१॥

महालक्ष्मी की पूजा विधि

नारदजी ने कहा– प्रभो मैंने श्रीहरि के मंगलमय गुणानुवाद को तथा उसके ज्ञान को सुना है अब आप मुझे लक्ष्मी की कथा, उनका ध्यान तथा स्तोत्र बतलाइये ॥१॥ **नारायण ने कहा–** प्राचीनकाल में इन्द्र ने तीर्थ में स्नान करके, दो वस्त्रों को धारण करके, क्षीरसागर में कलशस्थापन करके छह देवताओं की पूजा की ॥२॥ गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव एवं दुर्गा । उन्होंने भक्तिपूर्वक इन देवताओं की पुष्प तथा गन्ध इत्यादि से पूजन करके ॥३॥ इन्द्र ने ब्रह्माजी को पुरोहित बनाकर परम ऐश्वर्य स्वरूपिणी महालक्ष्मी का आवाहन करके उनका पूजन किया ॥४॥ उस समय पवित्र स्थान में मुनिगण, ब्राह्मण,

मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ । देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानंदे शिवे मुने ।।५।। पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम् । ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद ।।६।। ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दतं ब्रह्मणे पुरा । हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ।।७।। सहस्त्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटींदुप्रभामुष्टिकरां पराम् ।।८।। स्वतेजसा प्रज्वलंतीं सुखदृश्यां मनोहराम् । प्रतप्तकांचननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम् ।।९।। रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ।।१०।। सर्वसंपत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम् । ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम् ।।११।। संपूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपचाराणि षोडश । ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मंत्रपूर्वकम् ।।१२।। प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च । अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा ।।१३।। आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् । शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववंदितमीप्सितम् ।।१४।। पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये । पुष्पचंदनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् ।।१५।। शङ्खगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि । सुगंधिपुष्पतैलं च सुगंधामलकीफलम् ।।१६।। देहसौंदर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये । कार्पासं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्।।१७।। रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम् । शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम् ।।१८।। सर्वसौंदर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम् । वृक्षनिर्यासरूपं

गुरु, श्रीहरि, देवता आदि तथा ज्ञानानंद स्वरूप शंकरजी बैठे थे ।।५।। चन्दन मिश्रित पारिजात पुष्प लेकर इन्द्र ने देवी महालक्ष्मी का ध्यान करके उनका पूजन किया ।।६।। जिस सामवेदोक्त महालक्ष्मी के ध्यान का श्रीहरि ने ब्रह्माजी को उपदेश दिया था उसको मैं आपको बतला रहा हूँ ।।७।। सहस्त्रदल कमल की कर्णिका में निवास करने वाली, करोड़ो शरत् कालीन चन्द्रमा की कान्ति को भी तिरोहित करने वाली ।।८।। अपने तेज से प्रकाशित होने वाली, सुख पूर्वक देखी जाने वाली, मनोहर, प्रतप्त सुवर्ण की कान्ति के समान सौन्दर्य से सम्पन्न, मूर्तिवाली ।।९।। रत्नों के आभूषणों से समलंकृत, पीताम्बर धारण करने वाली, नित्य तथा स्थिर यौवन से सम्पन्न तथा मन्द मुस्कान से सुशोभित मुखमण्डल वाली ।।१०।। सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली महालक्ष्मी का मैं भजन करता हूँ । अनेक गुणों से युक्त महालक्ष्मी का इस मंत्र से ध्यान करके ।।११।। ब्रह्माजी के कथनानुसार इन्द्र ने लक्ष्मी की षोडशोपचार से पूजा की । इन्द्र ने मन्त्रपूर्वक सभी उपचारों को प्रदान किया ।।१२।। उत्तम कोटि की अनेक प्रकार की वस्तुओं को उन्होंने प्रदान किया । पूजा के मन्त्र इस प्रकार हैं– हे महालक्ष्मीजी ! अमूल्य रत्नों के सार स्वरूप विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित इस विचित्र आसन को आप स्वीकार करें ।।१३।। सबों के द्वारा वन्दित और अभिप्रेत इस गंगा जल को आप स्वीकार करें । यह पाप रूपी इन्धन को जलाकर भस्म कर देने वाला है । पुष्प, चन्दन तथा दूर्वा आदि से युक्त जो गंगाजल है ।।१४-१५।। जो शंख के भीतर स्थित है हे कमल में निवास करने वाली देवि ! आप इसे अर्घ्य के रूप में स्वीकार करें । सुगन्धियुक्त

च गंधद्रव्यादिसंयुतम् ॥१९॥ श्रीकृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम् । सुगंधियुक्तं सुखदं चंदनं देवि गृह्यताम् ॥२०॥ जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम् । प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि ॥२१॥ नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम् । अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥२२॥ अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥ शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम् । स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४॥ शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम् । स्वस्तिकं नाम नैवेद्यं गृहाण परमेश्वरि ॥२५॥ नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च । सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम् ॥२६॥ मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युतप्रिये । सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम्॥२७॥ अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम् । यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् ॥२८॥ सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् । सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम् ॥२९॥ मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् । शीतवायुप्रदं चैव दाहे

पुष्प से निर्मित तेल तथा सुगन्ध युक्त आँवले के फल को ॥१६॥ जो देह के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है, हे लक्ष्मी जी आप उसे स्वीकार करें । सूती तथा रेशमी इस वस्त्र को आप स्वीकार करें ॥१७॥ हे देवि ! रत्नों एवं सुवर्ण से निर्मित, जो देह के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला है हे देवि ! शोभा के लिए आप इस रत्नभूषण को स्वीकार करें ॥१८॥ सभी प्रकार के सौन्दर्य के बीज स्वरूप, सद्यः शोभा को बढ़ाने वाले, वृक्ष के रस स्वरूप इस गन्ध द्रव्य को आप स्वीकार करें ॥१९॥ हे श्रीकृष्ण भगवान् की कान्ते ! आप इस पवित्र धूप को स्वीकार करे । हे देवि ! सुगन्धि से युक्त सुख देने वाले चन्दन को आप स्वीकार करे ॥२०॥ जगत् की दृष्टि स्वरूप अन्धकार को विनष्ट करने वाले, सुख स्वरूप इस प्रदीप को आप स्वीकार करें ॥२१॥ अनेक प्रकार के उपहार स्वरूप अनेक रसों से युक्त, अत्यन्त स्वादिष्ट नैवेद्य को आप स्वीकार करें ॥२२॥ अन्न ब्रह्मस्वरूप है, प्राणों की रक्षा करने का साधन है । तुष्टि और पुष्टि को प्रदान करने वाला है । हे देवि ! उसे आप स्वीकार करें ॥२३॥ शालि के अन्न से निर्मित, अच्छी तरह से पके हुए; चीनी तथा दुग्ध से युक्त, स्वादिष्ट परमान्न (खीर) को हे देवि आप स्वीकार करें ॥२४॥ चीनी तथा गो दुग्ध में पके हुए स्वादिष्ट और सुन्दर स्वस्तिक नामक नैवेद्य को हे देवि! आप स्वीकार करें ॥२५॥ हे लक्ष्मीजी ! अनेक प्रकार के मनोहर तथा पके हुए अन्नों फलों तथा स्वादिष्ट अत्यन्त मनोहर; मर्त्यों के लिए अमृत स्वरूप इस गोदुग्ध को आप स्वीकार करें । स्वादिष्ट ईख के रस से निर्मित, अग्नि पर पका कर तैयार किए गये इस गुड़ को आप स्वीकार करें ॥२६-२७॥ यव तथा गेहूँ के आँटे से निर्मित, सुन्दर गुड़ एवं दुग्ध से निर्मित मिठाई को आप स्वीकार करें ॥२८॥ अन्न (सस्य) के आँटे से निर्मित स्वास्तिक आदि से युक्त ॥२९॥ मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक निवेदित नैवेद्य को आप स्वीकार करें । हे लक्ष्मीजी ठंढी हवा देने वाले; सन्ताप को शान्त करने वाले, व्यजन (पंखा)

च सुखदं परम् ॥३०॥ कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् । तांबूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥३१॥ जिह्वाजाड्यच्छेदकरं तांबूलं प्रतिगृह्यताम् । सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम् ॥३२॥ जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् । देहसौंदर्यबीजं च सदाशोभाविवर्धनम्॥३३॥ कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् । रक्तस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम् ॥३४॥ शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम् । नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम् ॥३५॥ सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् । शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमंगलमंगलम् ॥३६॥ गंधवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम् । पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा ॥३७॥ गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम् । रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनचर्चितम् ॥३८॥ वस्त्रभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम् । यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥३९॥ देवभूषार्हभोग्यं च तद्द्रव्यं देवि गृह्यताम् । द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च भूतेन देवपुंगवः ॥४०॥ मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः । जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह ॥४१॥ मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः । लक्ष्मीर्माया कामवाणी ङेन्ता कमलवासिनी ॥४२॥ वैदिको मन्त्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयाऽन्वितः । कुबेरोऽनेन मन्त्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान् ॥४३॥ राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च । मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः॥४४॥

को आप स्वीकार करें तथा श्वेत चमर को स्वीकार करे ॥३०॥ कर्पूर आदि से सुवासित ॥३१॥ जिह्वा के जाड्य को दूर करने वाले ताम्बूल को आप स्वीकार करें । सुगन्धित, शीतल, तथा प्यास को मिटाने वाले ॥३२॥ संसार के जीवन स्वरूप जल को आप स्वीकार करें । देह की शोभा को बढ़ाने वाले, तथा सौन्दर्य के कारण स्वरूप ॥३३॥ सूती तथा रेशमी वस्त्र को आप स्वीकार करें । लाल सुवर्ण से निर्मित तथा देह की शोभा को बढ़ाने वाले ॥३४॥ शोभा के आधार स्वरूप, सौन्दर्य को उत्पन्न करने वाले भूषण को हे देवि ! आप स्वीकार करें । अनेक ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पुष्पों से निर्मित तथा शोभा को बढ़ाने वाली ॥३५॥ देवताओं तथा राजाओं को प्रिय माला को आप स्वीकार करें । हे देवि ! शुद्धि को प्रदान करने वाले, शुद्ध समस्त मङ्गलों को प्रदान करने वाले ॥३६॥ सुगन्धित वस्तु से निर्मित इत्र को आप स्वीकार करें । पवित्र तीर्थों में उत्पन्न शुद्धि प्रदान करने वाले ॥३७॥ मनोहर आचमन जल को हे देवि ! आप स्वीकार करें । रत्नसार आदि से निर्मित पुष्प तथा चन्दन से चर्चित ॥३८॥ वस्त्र एवं भूषण से युक्त सुन्दर शय्या को हे देवि ! आप स्वीकार करें । जो द्रव्य पृथिवी में दुर्लभ तथा अपूर्व है ॥३९॥ देवताओं को अलंकृत करने योग्य हैं, हे देवि ! उन सभी द्रव्यों को आप स्वीकार करें । इन द्रव्यों को प्रदान करके इन्द्र ने मूलमन्त्र का दश लाख जप विधिपूर्वक किया । उसके कारण उस मन्त्र की सिद्धि हो गयी ॥४०-४१॥ उस मन्त्र को ब्रह्माजी ने इन्द्र को प्रदान किया था तथा सबों के लिए वह कल्पवृक्ष के समान है । लक्ष्मीबीज (श्रीं) मया बीज (ह्रीं) कामबीज (क्लीं) तथा वाणी बीज

प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च । एते सिद्धाश्च राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद ॥४५॥ सिद्धे मंत्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ । रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा ॥४६॥ सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयंती त्विषा च सा । श्वेतचंपकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता ॥४७। ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभाम् ॥४८॥ दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शांतां तुष्टावैतां पुरंदरः । पुलकांचितसर्वांगः साश्रुनेत्रः कृतांजलिः ॥४९॥ ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः । सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥५०॥ पुरंदर उवाच– **नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥५१॥ पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः । पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥५२॥ सर्वसंपत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः । हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः ॥५३॥ कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः । चंद्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने ॥५४॥ संपत्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः । नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः ॥५५॥ वैकुंठे**

(ऐं) उसके बाद कमलवासिनी शब्द के चतुर्थी एक वचनान्त (कमलावासिन्यै) ॥४२॥ स्वाहा शब्द से युक्त लक्ष्मीजी का वैदिक मन्त्रराज है । इस मन्त्र का ही जप करके कुबेर ने परम ऐश्वर्य को प्राप्त किया । 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐ कमलवासिन्यै स्वाहा' यही इस मन्त्र का स्वरूप है । इस मन्त्र के ही प्रभाव से दक्ष राजराजेश्वर हो गये, सावर्णि मनु हुए तथा मङ्गलमय सातों द्वीपों के स्वामी हो गये ॥४३-४४॥ हे नारदजी ! इसी मन्त्र के प्रभाव से प्रियव्रत तथा उत्तानपाद इस मन्त्र के द्वारा राजेन्द्र हो गये ॥४५॥ मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर लक्ष्मी ने इन्द्र को दर्शन दिया । उस समय वे श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित विमान पर बैठी थीं । उन्होंने इन्द्र को वरदान दिया ॥४६॥ उनकी कान्ति से सातो द्वीपों की कान्ति फीकी पड़ रही थी । उनका वर्ण श्वेत चंपक के समान था । वे रत्न निर्मित आभूषणों से भूषित थीं ॥४७॥ मन्द मुस्कान से उनका मुख प्रसन्न था । वे भक्तों पर कृपा करने के लिए कातर थीं । रत्नों की माला धारण किए हुई थी । करोड़ों चन्द्रों की कान्ति से युक्त थीं ॥४८॥ जगन्माता लक्ष्मी का दर्शन करके इन्द्र ने उनकी स्तुति की । उस समय उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया था, आँखे आँसू से पूर्ण थीं और वे हाथ जोड़े हुए थे ॥४९॥ ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त मन्त्रराज के साथ सभी अभिप्रेत अर्थों को प्रदान करने वाले वैदिक स्तोत्र के द्वारा इन्द्र ने स्तुति की ॥५०॥ **इन्द्र ने कहा–** कमल में निवास करने वाली नारायणी को बारम्बार नमस्कार है । सदा श्रीकृष्ण भगवान् की प्रियतमा महालक्ष्मी को मेरा नमस्कार है ॥५१॥ पद्म के समान नेत्रों वाली तथा कमल के समान मुख वाली लक्ष्मी देवी को मेरा नमस्कार है । पद्मासना, पद्मिनी तथा वैष्णवी को मेरा नमस्कार है ॥५२॥ सर्व संपत्स्वरूपिणी, सबो के आराध्य महालक्ष्मी को मेरा नमस्कार है । श्रीहरि की भक्ति तथा हर्ष प्रदान करने वाली लक्ष्मीजी को मेरा नमस्कार है । श्रीहरि की भक्ति तथा हर्ष प्रदान करने वाली लक्ष्मीजी को मेरा नमस्कार है । वृद्धि स्वरूपा तथा वृद्धि प्रदान करने वाली देवी को मेरा नमस्कार है ॥५३-५५॥ जो महालक्ष्मी वैकुण्ठ में रहने वाली तथा क्षीरसागर में जो लक्ष्मीजी रहती हैं इन्द्र के घर में रहने वाली तथा

**या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिंद्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये ॥५६॥ गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभिः सागरे जाता
दक्षिणा यज्ञकामिनी ॥५७॥ अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया । स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता ॥५८॥ त्वं हि विष्णुस्वरूपा
च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायण परायणा ॥५९॥ क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा । परमार्थप्रदा त्वं च
हरिदास्यप्रदा परा ॥६०॥ यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम् । जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना ॥६१॥ सर्वेषां च परा माता
सर्वबांधवरूपिणी । धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी ॥६२॥ यथा माता स्तनांधानां शिशूनां शैशवे सदा । तथा त्वं सर्वदा माता
सर्वबांधवरूपतः ॥६३॥ मातृहीनः स्तनांधस्तु स च जीवति दैवतः । त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम् ॥६४॥ सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं
मां प्रसन्ना भवांबिके । वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥६५॥ अहं यावत्त्वया हीनो बंधुहीनश्च भिक्षुकः । सर्वसंपद्विहीनश्च तावदेव
हरिप्रिये ॥६६॥ ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम् । प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च ॥६७॥ जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च।
इत्युक्त्वा च महेंद्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह ॥६८॥ प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः । ब्रह्मा च शंकरश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः ॥६९॥**

राजाओं के घर में रहने वाली राजलक्ष्मी ॥५६॥ गृहस्थों के घर में रहने वाली गृहलक्ष्मी, जो गृहों की देवता हैं । जो सागर से सुरभि के रूप में उत्पन्न
हुई, तथा यज्ञ की पत्नी जो दक्षिणा देवी हैं ॥५७॥ देवताओं की माता आदिति देवी आप हीं हैं । आप कमलालया कमला देवी हैं । हविष्य प्रदान के
समय आप स्वाहा स्वरूपिणी हैं, और कव्य प्रदान के समय स्वधास्वरूपिणी होती हैं ॥५८॥ आप ही विष्णु स्वरूपा तथा सबों के आधार पृथिवी स्वरूपा
हैं । आप शुद्ध स्वरूपा तथा नारायण परायण हैं ॥५९॥ आप क्रोध तथा हिंसा से रहित वरदायिनी शारदा स्वरूपा हैं । आप परमार्थ प्रदायिनी तथा श्रीहरि
की सेवा प्रदान करने वाली हैं ॥६०॥ आपके बिना यह सम्पूर्ण जगत् निस्सार तथा भस्मीभूत था । आपके विना सारा जगत् जीवित रहकर भी मृत के जैसा
था ॥६१॥ आप सम्पूर्ण जगत् की श्रेष्ठ माता हैं और सबों के बान्धव स्वरूपिणी हैं । आप ही धर्म, काम तथा मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं ॥६२॥
जिस तरह माता दूधमुहें बच्चे के लिए सब प्रकार से बान्धव होती है, उसी तरह आप भी सदा सबों की माता तथा सब प्रकार से बन्धु हैं ॥६३॥ जिस
तरह माता से रहित दूधमुहाँ बच्चा तो भाग्यवशात् जीवित भी रह सकता है किन्तु आपके विना तो कोई भी जीवित नहीं रह सकता है ॥६४॥ हे मातः!
आप मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होएँ । मेरा राज्य वैरियों के हाथ में चला गया है, उसे आप मुझे प्रदान करें ॥६५॥ जब तक मैं आपसे रहित था तब तक
बन्धुहीन तथा भिक्षुक हो गया था । उस समय तक मैं सभी सम्पत्तियों से रहित था ॥६६॥ हे मातः ! आप मुझे ज्ञान, धर्म, हर प्रकार के अभिप्रेत सौभाग्य,
प्रभाव, प्रताप, सर्वाधिकार ॥६७॥ युद्ध में जय, और पराक्रम तथा परम ऐश्वर्य प्रदान करें । इस तरह कहकर इन्द्र ने सभी देवताओं के साथ, आँखों में

सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः । देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम् ॥७०॥ केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि । ययुर्देवाश्च सन्तुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद ॥७१॥ देवी ययौ हरेः स्थानं दृष्ट्वा क्षीरोदशायिनः । ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद ॥७२॥ दत्त्वाशुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ॥७३॥ कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान् । पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥७४॥ सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं तु संततम् । महासुखी च राजेंद्रो भविष्यति न संशयः ॥७५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच— **नारायण महाभाग देवदेव मम प्रभो । रूपेणैव गुणेनैव महसा तेजसा त्विषा ॥१॥ त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां**

आँसू भरकर बार-बार प्रणाम किया । ब्रह्माजी, शंकरजी, धर्म तथा केशव ॥६८-६९॥ इत्यादि ने भी देवताओं की ओर से लक्ष्मी की प्रार्थना की । लक्ष्मीजी ने देवताओं को वरदान दिया और भगवान् केशव को प्रसन्न होकर देवताओं की सभा में मनोहर पुष्पों की माला पहनाया । हे नारदजी ! सभी देवता संतुष्ट होकर अपने-अपने घर चले गये ॥७०-७१॥ श्रीदेवी प्रसन्नता पूर्वक क्षीरसागरशायी श्रीहरि के स्थान में चली गयीं । हे नारदजी ! ब्रह्माजी तथा शंकरजी देवाताओं को शुभाशीर्वाद देकर अपने स्थान पर चले गये ॥७२॥ यह स्तोत्र अत्यन्त पुण्य देने वाला है, जो मनुष्य तीनों संध्याओं में इसका पाठ करता है ॥७३॥ वह कुबेर के समान राजराजेश्वर हो जाता है । पाँच लाख जप करने से यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है ॥७४॥ जो व्यक्ति इस सिद्ध स्तोत्र का एक मास तक पाठ करेगा वह महासुखी राजेन्द्र होगा इसमें कोई संशय नहीं हैं ॥७५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

भगवती की स्वहा शक्ति की कथा

नारदजी ने कहा— हे महाभाग नारायण ! आप भगवान् नारायण के समान हैं । आपमें नारायण के ही समान रूप, गुण, यश, तेज और कान्ति

मुने । तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदां वरः ॥२॥ महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् । अन्यत्किंचिदुपाख्यानं निगूढं वद सांप्रतम् ॥३॥ अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः । अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥४॥ श्रीनारायण उवाच– नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः। श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन्सुदुर्लभम् ॥५॥ तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि । तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः ॥६॥ नारद उवाच– स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु । पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा ॥७॥ एतासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च । श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदां वर ॥८॥ सूत उवाच– नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः । कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम्॥९॥ नारायण उवाच– सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा । ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम् ॥१०॥ गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहैतुकं मुने । ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम् ॥११॥ नारद उवाच– यज्ञरूपो हि भगवान्कलया च बभूव ह । यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः ॥१२॥ श्रीनारायण उवाच– हविर्ददति विप्राश्च अन्ये ये क्षत्रियादयः । सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव॥१३॥ देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः । गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम् ॥१४॥ ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं

विद्यमान है ॥१॥ आप ज्ञानियों में सिद्धों में योगियों में, तपस्वियों में, मुनियों में तथा वेदज्ञों में श्रेष्ठ हैं ॥२॥ मैंने अत्यन्त अद्भुत महालक्ष्मी की कथा को सुना है, अब आप किसी दूसरे रहस्यमय उपाख्यान को सुनायें ॥३॥ जो अत्यन्त गोपनीय तथा जो हर प्रकार से उपयुक्त हो, जो पुराणों में नहीं कहा गया हो तथा वेदोक्त हो उसे आप सुनायें । **नारायण ऋषि ने कहा–** अनेक प्रकार के उपाख्यान हैं, और पुराणों में नहीं वर्णित हैं । हे ब्रह्मन् ! मैंने उसे सुना है, किन्तु वह उपाख्यान अत्यन्त दुर्लभ है ॥४॥ उनमें से जो सारभूत हैं उनमें से कौन सा उपाख्यान आप सुनना चाहते हैं ? आप उसे बतलायें मैं उसे कहूँगा॥६॥ **नारदजी ने कहा–** सभी कर्मों में देवताओं को हविष्य प्रदान करने में स्वाहा देवी को प्रशस्त बतलाया गया है पितरों के श्राद्ध में स्वधा देवी और यज्ञों में दक्षिणा देवी प्रशस्त बतलायी गयी हैं ॥७॥ इन देवियों के चरित तथा जन्म के विषय में मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ ॥८॥ **सूतजी ने कहा–** नारदजी की वाणी को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ नारायण जोर से हँसकर पुराणों में कही गयी प्राचीन कथा को कहना प्रारम्भ किए । **नारायण ने कहा–** सृष्टि के प्रारम्भ में देवतागण ब्रह्माजी की अत्यन्त मनोहर सभा में ब्रह्मलोक में गये ॥९-१०॥ वहाँ पर जाकर उन सबों ने ब्रह्माजी से आहार के विषय में निवेदन किया । उन सबों की बात को सुनकर ब्रह्माजी आहार देने की प्रतिज्ञा करके श्रीहरि के पास गये ॥११॥ **नारदजी ने कहा–** हे मुने ! भगवान् श्रीहरि अपने एक अंश से यज्ञ रूप में प्रकट हो चुके थे । ब्राह्मण यज्ञ में जो हविष्य देते थे ॥१२॥ **नारायण ने कहा–** ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि (वैश्य) भक्ति पूर्वक

शरणं ययौ । पूजां चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया ॥१५॥ प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी । अतीव सुन्दरी श्यामा रमणीया मनोहरा॥१६॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं शृणु ॥१७॥ विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा संभ्रमात्समुवाच ताम् । प्रजापतिरुवाच– **त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव याऽतीव सुन्दरी ॥१८॥ दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया बिना । त्वन्नामोच्चार्य मंत्रांते यो दास्यति हविर्नरः ॥१९॥ सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवंति सुराः सानंदपूर्वकम् । अग्नेः संपत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी ॥२०॥ देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवांबिके । ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभवू ह ॥२१॥ तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयंभुवम् ।** स्वाहोवाच– **अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च ॥२२॥ ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किंचित्स्वप्नवद्भ्रममेव च । विधाता जगतस्त्वं च शंभुर्मृत्युञ्जयो विभुः ॥२३॥ विभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम् । सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः ॥२४॥ प्रकृतिः सर्वसंपूज्या यत्प्रसादात्पुराऽभवत् । ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया ॥२५॥ तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिंतयाम्यहम् । पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः ॥२६॥ जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं**

जो हविष्य देते थे वह देवताओं को नहीं प्राप्त होता था ॥१३॥ उसके कारण देवता दुःखी होकर ब्रह्माजी की सभा में गये थे । वहाँ जाकर देवताओं ने आहार नहीं मिलने को अपने आने का कारण बतलाया ॥१४॥ देवताओं की बातें सुनकर ब्रह्माजी ने भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान किया और श्रीभगवान् की आज्ञा से उन्होंने प्रकृति देवी की पूजा की ॥१५॥ उसके कारण प्रकृति के एक अंश से सर्वशक्तिस्वरूपिणी अत्यन्त सुन्दरी मनोहर युवती प्रकट हुई॥१६॥ उसके मुख पर मन्दमुस्कान थी । वह भक्तों पर कृपा करने के लिए उद्यत थी उसने ब्रह्माजी से वरदान माँगने के लिए कहा ॥१७॥ उसकी वाणी को सुनकर ब्रह्माजी ने कहना प्रारम्भ किया । **ब्रह्माजी ने कहा–** हे अत्यन्त सुन्दरी देवि ! आप अग्नि की दाहिका शक्ति बन जायँ । आपके विना अग्नि आहुतियों को जला नहीं पाते हैं । मन्त्र के अन्त में आपके नाम का उच्चारण करके जो मनुष्य आहुति देगा ॥१८-१९॥ वह देवताओं को आनन्दपूर्वक प्राप्त होए । आप अग्नि की संपत् स्वरूपिणी श्रीस्वरूपिणी पत्नी हों ॥२०॥ हे अंबिके ! आप देवताओं तथा मनुष्यों के पूज्य बनें । ब्रह्माजी की बात को सुनकर वे देवी उदास हो गयीं ॥२१॥ उस देवी ने ब्रह्माजी को अपना अभिप्राय बतलाया । **स्वाहा ने कहा–** मैं भगवान् श्रीकृष्ण की दीर्घकाल तक आराधना करूँगी॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! भगवान् से भिन्न जो कुछ भी है वह स्वप्न तथा भ्रम को ही समान है । आप जगत् की सृष्टि करने वाले तथा शम्भु मृत्युञ्जय हैं ॥२३॥ शेष सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं । धर्म, धार्मिकों के साक्षी बने हुए हैं । गणेशजी सभी देवों में आद्यपूज्य हैं ॥२४॥ उन्हीं की कृपा को प्राप्त करके प्रकृति सर्वपूज्या हो गयी । उनकी ही सेवा करके ऋषिगण और मुनिगण पूजित हुए हैं ॥२५॥ मैं उनके ही चरणकमलों का चिन्तन सदा किया करती हूँ । इस तरह से कमलमुखी स्वाहा देवी ब्रह्माजी से कहकर निरामय भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने के लिए चल पड़ीं और एक पैर पर खड़ा

निरामयम् । तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा ॥२७॥ तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च
रूपिणी॥२८॥ मूर्च्छां संप्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी । विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह ॥२९॥ समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणांगीं
तपसा चिरम् । श्रीभगवानुवाच– वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि ॥३०॥ नाम्ना नाग्नजिती कन्या कांते नग्नजितस्य च । अधुनाऽग्नेर्दाहिका
त्वं भव पत्नी च भामिनी ॥३१॥ मन्त्रांगरूपा पूज्या च मत्प्रसादाद्भविष्यसि । वह्निस्त्वां भक्तिभावेन संपूज्य च गृहेश्वरीम् ॥३२॥ रमिष्यति त्वया
सार्धं रामया रमणीयया । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीं संभाष्य नारद ॥३३॥ तत्राजगाम संत्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः । सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां
जगदम्बिकाम् ॥३४॥ संपूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मंत्रतः । तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह ॥३५॥ अतीव निर्जने देशे संभोगसुखदे
सदा । बभूव गर्भस्तस्यां तु हुताशस्य च तेजसा ॥३६॥ तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् । ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्॥३७॥
दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान् क्रमेण च । ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः ॥३८॥ स्वाहांतं मंत्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे । स्वाहायुक्तं

होकर उन्होंने एक लाख वर्ष तक तपस्या किया ॥२६-२७॥ उसके बाद सुन्दरी स्वाहा देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण के अत्यन्त मनोहर रूप का दर्शन
किया॥२८॥ भगवान् के उस रूप को देखकर स्वाहा देवी कामासक्त होकर मूर्छित हो गयीं । स्वाहा देवी के अभिप्राय को जानकर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण
भगवान्॥२९॥ तपस्या करने के कारण दुर्बल अंगों वाली उस स्वाहा देवी को अपनी गोद में बैठाकर कहे **श्रीभगवान् ने कहा–** हे कान्ते ! वाराह कल्प में
तुम अपने एक अंश से मेरी पत्नी बनोगी ॥३०॥ उस समय तुम महाराज नग्नजीत की नग्नजीती नाम की कन्या होओगी । हे भामिनि ! इस समय तो
तुम अग्नि की दाहिका शक्ति और उनकी पत्नी हो जाओ ॥३१॥ मेरी कृपा के कारण तुम मन्त्र के अङ्ग स्वरूपिणी और पूज्या होओगी । अग्नि भी
भक्तिभाव पूर्वक तुम्हारी पूजा करके तुम्हें अपनी पत्नी बनायेंगे ॥३२॥ और तुम अत्यन्त मनोहर पत्नी के साथ रमण करेंगे । हे नारदजी ! इस तरह से
स्वाहा को कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये ॥३३॥ ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर अग्नि भयभीत होकर वहाँ आये और उन्होंने सामवेद में पठित ध्यान
के द्वारा जगदम्बा का ध्यान किया ॥३४॥ उन्होंने स्वाहा देवी का पूजन करके उनकी स्तुति की और मन्त्रपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया । वे एकान्त स्थल
मे स्वाहा देवी के साथ देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त रमण करते रहे ॥३५॥ उसके बाद अग्निदेव के तेज से स्वाहा देवी गर्भवती हो गयी ॥३६॥ स्वाहा
देवी उस गर्भ को बारह वर्षों तक धारण किए रहीं । उसके बाद उन्होंने तीन पुत्रों को क्रमशः जन्म दिया ॥३७॥ दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि।
ऋषियों, मुनियों, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों आदि ने ॥३८॥ स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण करके हविष्य प्रदान किया । जो व्यक्ति स्वाहा युक्त श्रेष्ठ मन्त्र को ग्रहण

च मंत्रं च यो गृहणाति प्रशस्तकम् ।।३९।। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मंत्रग्रहणमात्रतः । विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः ।।४०।। पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान् । फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः ।।४१।। स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः । परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतीः ।।४२।। स्वाहांतेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च । इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् ।।४३।। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । नारद उवाच– **स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर ।।४४।। सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो ।** श्रीनारायण उवाच– **ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम् ।।४५।। वदामि श्रूयतां ब्रह्मन्सावधानो मुनीश्वर । सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा।।४६।। स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये । स्वाहां मन्त्रांगसंयुक्तां मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ।।४७।। सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम्। इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः ।।४८।। सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु । ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च।।४९।। यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं सम्भवेद्ध्रुवम् । स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया सन्तोषकारिणी ।।५०।। शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी**

करता है ।।३९।। उसको उस मंत्र के ग्रहण मात्र से सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिल जाती हैं । जिस तरह विषहीन सर्प तथा वेद विहीन ब्राह्मण ।।४०।। पति की सेवा नहीं करने वाली स्त्री; तथा विद्याविहीन पुरुष, फल एवं शाखा से विहीन वृक्ष निन्दित होते हैं ।।४१।। उसी तरह स्वाहा से हीन मन्त्र से होम करने से कोई भी फल नहीं होता है । उसके कारण ब्रह्मा प्रसन्न हो गये देवताओं ने भी आहुतियों को प्राप्त किया ।।४२।। स्वाहान्त ही मन्त्र से सभी फलों की प्राप्ति होती है । इस तरह मैंने आपको स्वाहा विषयक सम्पूर्ण उपाख्यान को सुनाया ।।४३।। यह उपाख्यान कल्याण तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है । यह सबों का सार है । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?। **नारदजी ने कहा–** हे मुनीश्वर ! आप मुझे स्वाहा की पूजा विधि, ध्यान तथा स्तोत्र को बतलाएँ । उस पूजा विधि और स्तोत्र को जिसके द्वारा अग्नि ने स्वाहा की पूजा करके स्तुति किया उसे आप मुझे बतलाएँ । **श्रीनारायण ने कहा–** सामवेद में पठित ध्यान पूजा विधान तथा स्तोत्र को ।।४४-४५।। मैं बतला रहा हूँ । आप उसे सावधानी पूर्वक सुनें । किसी भी यज्ञ के आरम्भ में शालग्राम शिला पर अथवा घट में ।।४६।। सावधानी पूर्वक स्वाहा देवी की पूजा करके फल प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए । मन्त्र रूपी अङ्ग से युक्त, मन्त्र की सिद्धिस्वरूपिणी, सिद्धिस्वरूपिणी, तथा मनुष्यों के कर्मों की सिद्धि प्रदान करने वाली स्वाहा देवी का इस तरह से ध्यान करके स्वाहा देवी के मूल मन्त्र से उन्हे पाद्य आदि उपचारों को समर्पित करना चाहिए ।।४७-४८।। हे मुने ! इस तरह से स्तुति करके मनुष्य हर प्रकार की सिद्धि को प्राप्त करता है । 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं बह्निजायायैदेव्यै स्वाहा' यह स्वाहा देवी का मूलमन्त्र है ।।४९।। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक स्वाहा देवी की पूजा करता है उसे सभी प्रकार के इष्ट अर्थ की प्राप्ति

ध्रुवा । गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥५१॥ संसारसाररूपा च घोरा संसारतारिणी । देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥५२॥ षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥५३॥ नांगहीनं भवेत्तस्य सर्वं कर्मं सुशोभनम् । अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् । रम्भोपमां स्वकान्तां च संप्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– श्रृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितृणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥१॥ सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः । चतुरश्च मूर्तिमन्तस्त्रींश्च तेजः स्वरूपिणिः ॥२॥ दृष्ट्वा सप्त पितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान् । आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥३॥ स्नानं तर्पणपर्यंतं श्राद्धं तु देवपूजनम् । आह्निकं च त्रिसन्ध्यांतं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥४॥ नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसन्ध्यं

होती है । स्वाहा वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, ॥५०॥ शक्तिः क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मनुष्यों की गति स्वरूपिणी, दाहिका, दहनक्षमा॥५१॥ संसारसाररूपा, घोरा, संसारतारिणी, देवजीवनरूपा, देवपोषणकारिणी ॥५२॥ स्वाहा देवी के इन सोलह नामों की जो भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसको इस लोक में तथा परलोक में हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है ॥५३॥ उसका कोई भी शुभकार्य अङ्गहीन नहीं होता है । पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र को प्राप्त कर लेता है और पत्नीहीन प्रिय पत्नी को प्राप्त कर लेता है । वह रम्भा के समान अपनी सुन्दर पत्नी को प्राप्त करके सुख प्राप्त करता है ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

भगवती स्वधा शक्ति की कथा

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! आप सुनें । मैं स्वधा शक्ति की कथा सुनाता हूँ । स्वधा शक्ति ही पितरों को तृप्त करने वाली तथा श्राद्ध के अन्न के फल को समृद्ध करने वाली हैं ॥१॥ जगत् कर्ता ब्रह्माजी ने सृष्टि के प्रारम्भ में पितृगणों की सृष्टि की । उनमें चार शरीरधारी थे और तीन तेजः स्वरूप थे । उन मनोहर पितृगणों को देखकर ब्रह्माजी ने उनके आहार के रूप में श्राद्ध तथा तर्पण बनाया ॥२-३॥ स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन, तथा त्रिकाल

श्राद्धतर्पणम् । बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥५॥ देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् । भस्मांतं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद॥६॥ ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे । न प्राप्नुवंति पितरो ददति ब्राह्मणादयः ॥७॥ सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम् । सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम् ॥८॥ ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम् । रूपयौवनसंपन्नां शतचन्द्रनिभाननाम् ॥९। विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम् । श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥१०॥ विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम् । स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम् ॥११॥ शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम् । पत्नीं पितॄणां पद्मास्या पद्मजां पद्मलोचनाम् ॥१२॥ पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् । ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम् ॥१३॥ स्वधान्तं मंत्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि । क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा ॥१४॥ स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता । सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हंत यज्ञमदक्षिणम् ॥१५॥ पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा । पूजां चक्रुः स्वधां शांतां तुष्टुवुः परमादरात् ॥१६॥ देवादयश्च संतुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण

सन्ध्या ये ब्राह्मणों के नित्य कर्म हैं ॥४॥ जो ब्राह्मण अपने श्राद्ध आदि नित्य कर्मों को तीनों संध्यायों में नहीं करता है, उसका किया हुआ पूजन तथा वेदाध्ययन विषहीन सर्प के समान व्यर्थ होता है ॥५॥ जो देवी की सेवा नहीं करता है तथा श्रीभगवान का नैवेद्य भोजन नहीं करता है, उसके यहाँ उसकी मृत्युकाल तक मरणाशौच बना रहता है । उसे कोई भी शुभ कार्य करने का अधिकार नहीं है ॥६॥ ब्रह्माजी पितरों के आहार रूप से श्राद्ध आदि की सृष्टि करके तो चले गये किन्तु ब्राह्मणों द्वारा श्राद्धादि में दी गयी वस्तुएँ पितरों को नहीं प्राप्त होती थीं ॥७॥ वे भूख से व्याकुल होकर ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी की सभा में गये और ब्रह्माजी ने उन सबों ने सारी बातें बतलायी ॥८॥ उस समय ब्रह्माजी मन से ही कल्पना करके एक सुन्दर कन्या की सृष्टि किए । वह रूप तथा यौवन से सम्पन्न थी । उसका मुख सैकड़ों चन्द्रमा के समान सुन्दर था ॥९॥ वह विद्या गुण, मति तथा रूप से युक्त थी । श्वेत चम्पक के समान उसका रूप था, रत्न निर्मित आभूषणों से वह समलंकृत थी । वह प्रकृति के अंश स्वरूपिणी, विशुद्ध थी । मुस्कुराती हुई तथा वरदान देने वाली थी । उसका नाम स्वधा था उसकी दन्तपंक्ति सुन्दर थी । लक्ष्मी के लक्षणों से वह युक्त थी ॥१०-११॥ वह अपने चरणों को शतदल कमल के ऊपर रखे हुई थी । उसके मुख तथा नेत्र विकसित कमल के समान सुन्दर थे । वह पितरों की पत्नी थी ॥१२॥ बह्माजी ने उसको पितरों को पत्नी के रूप में प्रदान करके ब्रह्मणों को गोपनीय उपदेश दिया ॥१३॥ श्राद्ध आदि में स्वधा शब्द का उच्चारण करके ही पितरों को कोई वस्तु प्रदान करना चाहिए । उसके बाद उसी क्रम से ब्रह्मणों ने पितरों को दान दिया ॥१४॥ सर्वत्र देवताओं को प्रदान करते समय स्वाहा शब्द का उच्चारण करना चाहिए, पितरों को देते समय स्वधा शब्द का उच्चारण करना चाहिए यज्ञों मे दक्षिणा देवी ही श्रेष्ठ है । दक्षिणा से हीन यज्ञ व्यर्थ होता है ॥१५॥ पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा

च॥१७॥ इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च । सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८॥ श्रीनारद उवाच– स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने । श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदां वर ॥१९॥ नारायण उवाच– ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वमंगलम् । सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥२०॥ शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे । स्वधां सम्पूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ॥२१॥ स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः । न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥२२॥ ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे ॥२३॥ इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मंगले घटे । दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥ ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने । समुच्चार्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद्द्विजः ॥२५॥ स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्ववांछाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥२६॥ श्रीनारायण उवाच– स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत् ।२७॥ स्वधा स्वधा स्वधेत्येयं यदि वारत्रयं स्मरेत् । श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च ॥२८॥ श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति

मनुओं ने बड़े आदर के साथ स्वधा देवी का पूजन किया और उनकी स्तुति की ॥१६॥ स्वधा देवी के वरदान से देवता आदि संतुष्ट हो गये । उनका मनोरथ पूर्ण हो गया । ब्राह्मण तथा पितृगण भी सन्तुष्ट हो गये ॥१७॥ इस तरह से मैंने आपको स्वधा देवी की कथा को सुनाया । यह सबों को सन्तोष प्रदान करने वाली है । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥१८॥ **नारदजी ने कहा**– हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ महामुने ! मैं स्वधा देवी का ध्यान और पूजा का विधान और स्तोत्र सुनना चाहता हूँ ॥१९॥ **नारायण ने कहा**– हे ब्रह्मन् ! स्वधा देवी का वेदोक्त ध्यान और स्तोत्र सबों का उपकार करने वाला है । आप तो सब कुछ जानते हैं । आप उसकी वृद्धि के लिए पूछ रहे हैं ॥२०॥ आश्विन मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी तिथि को मघानक्षत्र में श्राद्ध के दिन स्वधा देवी की पूजा अवश्य करनी चाहिए । उसके बाद श्राद्ध करना चाहिए ॥२१॥ जो अहंकारी ब्राह्मण स्वधादेवी की पूजा किए बिना ही श्राद्ध करता है वह अपने द्वारा किए गये श्राद्ध तथा तर्पण का फल नहीं प्राप्त करता है ॥२२॥ बह्माजी की सुस्थिर यौवन वाली मानसी कन्या स्वधा ही पितृदेवों तथा श्राद्धों का फल प्रदान करती हैं । उनकी मैं आराधना करता हूँ ॥२३॥ इस तरह से ध्यान करके शिला के ऊपर अथवा मङ्गलघट के ऊपर स्वधा देवी को पाद्य आदि उनके मूल मन्त्र से समर्पित करना चाहिए ॥२४॥ हे नारदजी ! ब्राह्मण को चाहिए कि वह 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा' इस तरह से उच्चारण करके स्वधा देवी को प्रणाम करे ॥२५॥ हे मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी ! आप स्वधा देवी के स्तोत्र को सुनें । यह स्तोत्र मनुष्यों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है । इसकी रचना ब्रह्माजी ने की है ॥२६॥ **नारायण ने कहा**– इस स्तोत्र का उच्चारण करने मात्र से ही मनुष्य को तीर्थ में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है । वह सभी पापों से मुक्त होकर वाजपेययज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ यदि कोई, स्वधा, स्वधा, स्वधा, इस तरह से

समाहितः । स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः ॥२९॥ स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रगुणान्विताम् ॥३०॥ पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा ॥३१॥ नित्या त्वं सत्यरूपाऽसि पुण्यरूपाऽसि सुव्रते । आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव ॥३२॥ ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा । निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः ॥३३॥ कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः । इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्म लोके स्वसंसदि ॥३४॥ तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साऽविर्बभूव ह । तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः । स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु वांछितं फलमाप्नुयात् ॥३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

तीन बार उच्चारण करता है तो वह श्राद्ध तर्पण और पूजन करने का फल प्राप्त कर लेता है ॥२८॥ श्राद्ध के समय यदि कोई सावधान होकर स्वधा स्तोत्र को सुनाता है तो वह निश्चित रूप से श्राद्ध के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है ॥२९॥ जो तीनों सन्ध्याओं में स्वधा शब्द का तीन-तीन बार उच्चारण करता है, वह विनीतपुत्र तथा गुणवती पत्नी को प्राप्त करता है ॥३०॥ हे स्वधा देवि ! आप पितरों को प्राण के समान प्रिय, ब्राह्मणों के जीवन स्वरूपिणी, श्राद्ध की अधिष्ठातृ देवी तथा श्राद्ध आदि का फल प्रदान करने वाली हैं ॥३१॥ हे सुव्रते ! आप नित्य, सत्यस्वरूपिणी, पुण्यस्वरूपिणी हैं, आप ही सृष्टि का आविर्भाव, तिरोभाव तथा प्रलय करने वाली हैं ॥३२॥ आप प्रणवस्वरूपिणी, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, देवी को मेरा नमस्कार है । चारो वेदों ने आपके इन चारों रूपों को कर्म करने वालों का कल्याण करने के लिए बनाया है ॥३३॥ ईश्वर ने कर्मों की पूर्ति के ही लिए आपके इन चारों रूपों को बनाया है । इस तरह से अपनी सभा में कहकर **सूतजी ने कहा**— जिस समय स्वधा देवी आविर्भूत हो गयीं, उसी समय ब्रह्माजी ने कमल के समान मुख वाली स्वधा देवी को पितरों को प्रदान कर दिया ॥३४-३५॥ स्वधा को प्राप्त करके प्रसन्न होकर पितृगण चले गये । इस स्वधा स्तोत्र को जो व्यक्ति समाहित होकर सुनता है । वह सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त करके अपने अभिलषित फल को प्राप्त कर लेता है ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय ॥१॥ गोपी सुशीला गोलोके पुराऽऽसीत्प्रेयसी हरेः । राधाप्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा ॥२॥ अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती । विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती ॥३॥ कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना । सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता ॥४॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता । श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना ॥५॥ कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी । भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी ॥६॥ रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका । उवासदक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा ॥७॥ संबभूवानम्रमुखी भयेन मधुसूदनः। दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम् ॥८॥ कामिनीं रक्तवदनां रत्नपंकजलोचनाम् । कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपेन स्फुरिताधराम् ॥९॥ वेगेन तां तु गच्छन्ती विज्ञाय तदनन्तरम् । विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं चकार सः ॥१०॥ पलायंतं च कान्तं च शांतं सत्त्वं सुविग्रहम् । विलोक्य**

दक्षिणा देवी की कथा

श्रीनारायण ने कहा– मैंने आपको स्वाहा तथा स्वधा के प्रशस्त आख्यानों को सुनाया, अब मैं आपको दक्षिणा देवी की कथा सुनाता हूँ । उसे आप सुनें ॥१॥ प्राचीन काल में गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण की एक प्रेयसी गोपी थी । उसका नाम सुशीला था । वह राधाजी की प्रधान सखी धन्या, मान्या तथा मनोहर आकार वाली थी ॥२॥ वह अत्यन्त सुन्दर नारी थी, उसकी दन्तपंक्ति सुन्दर थी । वह विद्या तथा गुण से सामान्य थी । उसका रूप अत्यन्त मनोहर था ॥३॥ वह कलाओं को जानने वाली थी । उसके अङ्ग कोमल थे । उसके नेत्र कमल के समान सुन्दर थे । उसके श्रोणी सुन्दर थी । वह सुस्तनी, युवती, तथा वटवृक्ष से मण्डित थी ॥४॥ रत्नों के अलङ्कार से अलङ्कृत उसके मुख पर मन्दमुस्कान था । उसका वर्ण श्वेतचम्पा के समान, ओष्ठ विम्बाफल के समान तथा नेत्र हरिणी के समान थे ॥५॥ वह कामशास्त्र में निपुण, कामिनी तथा कलहंस के समान गति वाली थी । वह भावानुरक्त, भावों को जानने वाली, तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया पत्नी थी ॥६॥ वह रसज्ञा, रसिका, रास में रसेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम को बढ़ाने वाली थी । वह एक दिन राधाजी के सामने ही श्रीभगवान् की दाहिनी जंघा पर बैठ गयी ॥७॥ यह देखकर राधा के डर से भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना मुख नीचे कर लिया । उन्होंने देखा कि गोपियों में श्रेष्ठ राधा सामने ही विद्यमान हैं ॥८॥ उस समय क्रोध के कारण राधा के मुख और नेत्र दोनों लाल हो गये थे । उनका शरीर क्रोध के कारण काँप रहा था और ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे । वे देखे की राधा वेग के साथ जा रही हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये । भगवान् राधा

कंपिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया ॥११॥ विलोक्य लंपटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । पुटांजलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥१२॥ रक्ष
रक्षेत्युक्तवंत्यो देवीमिति पुनः पुनः । ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपंकजे ॥१३॥ त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्भयेन शरणं
तत्पादाब्जे च नारद ॥१४॥ पलायन्तं च कान्तं च विज्ञाय परमेश्वरी । पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा ॥१५॥ अद्यप्रभृति गोलोकं सा
चेदायाति गोपिका । सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति ॥१६॥ इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा । रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव
ह ॥१७॥ नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा । युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८॥ हे कृष्ण प्राणनाथेशागच्छ प्राणाधिकप्रिय ।
प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यांति त्वया विना ॥१९॥ स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने । सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा ॥२०॥
पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदा गतिः । पर संपत्स्वरूपश्च मूर्तिमान्भोगदः सदा ॥२१॥ धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शांतिदः सदा ।
सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखण्डनः ॥२२॥ सारात्सारतरः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः । न च भर्तुः समो बन्धुर्बंधोर्बंधुषु दृश्यते ॥२३॥

से होने वाले विरोध के भय से भयभीत थे ॥९-१०॥ गोपियों ने देखा कि सुन्दर शरीर वाले शान्त भगवान् अन्तर्धान हो गये । यह देखकर सुशीला आदि
गोपियाँ भय के मारे काँपने लगीं, वहाँ पर विद्यमान लाखों गोपियाँ भयभीत होकर हाथ जोड़ लीं और भक्तिपूर्वक अपना शिर झुकाकर राधा से बार-बार
कहने लगीं की रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । और उन सबों ने भयभीत होकर राधा के चरण कमलों की शरणागति की ॥११-१३॥ सुदामा आदि तीन
लाख और तीन करोड़ जो गोप थे वे भी भयभीत होकर राधा के चरणों की शरणागति कर लिए ॥१४॥ भागते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और सखी सुशीला
को भागती हुई देखकर राधा ने शाप दे दिया ॥१५॥ आज से जब कभी भी सुशीला इस गोलोक में आयेगी तो आते ही वह भस्म हो जायेगी ॥१६॥
क्रोध से इस प्रकार कहकर देवदेवेश्वरी रासेश्वरी रास के बीच में रासेश भगवान् को बुलाने लगी ॥१७॥ भगवान् श्रीकृष्ण को अपने सामने नहीं देखकर राधा
विरह से कातर हो गयीं । उनके लिए एक-एक क्षण करोड़ों युग के समान लगने लगा ॥१८॥ वे कहने लगीं हे कृष्ण ! हे प्राणाधिक प्राणनाथ ! आप
आ जाइये । हे मेरे प्राणों के अधिष्ठातृ देवता आपके विना मेरे प्राण निकल रहे हैं ॥१९॥ पति के सौभाग्य से ही स्त्री का गर्व बढ़ता है । उसका सुख
भी पति से ही प्रतिदिन बढ़ता है । अतएव पत्नी को अपने पति की सेवा करनी चाहिए ॥२०॥ कुलस्त्री के लिए तो उसके पति ही बन्धु हैं, अधिदेवता
है, आश्रय हैं सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति हैं, और साक्षात् भोगप्रदान करने वाले हैं ॥२१॥ धर्म, सुख, शाश्वत प्रेम, तथा शान्ति देने वाले पति ही होते हैं । वे ही
मान देने वाले सम्मान से सदा प्रकाशित होने वाले और मान का खण्डन करने वाले होते हैं ॥२२॥ पत्नी के लिए उसके पति सर्वोत्तम वस्तु होते हैं,

भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते । शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कांत उच्यते ॥२४॥ बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः । ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः ॥२५॥ रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः । पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः ॥२६॥ शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा । असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा ॥२७॥ स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा । प्रदाक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि च ॥२८॥ सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च । उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च ॥२९॥ गुरुसेवा विप्रसेवा वेदसेवादिकं च यत् । स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हंति षोडशीम् ॥३०॥ गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः । विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः ॥३१॥ गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च । ब्रह्मांडानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च ॥३२॥ विश्वादिगोलकांतानामीश्वरी यत्प्रसादतः । अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः ॥३३॥ इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः । रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथनाथेति चाब्रवीत् ॥३४॥ दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता । अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने ॥३५॥ सुचिरं च तपस्तप्त्वा

और उसके बन्धुओं को बढ़ाने वाले होते हैं । पति के समान पत्नी का दूसरा कोई बन्धु नहीं होता है ॥२३॥ भरण करने के कारण पति भर्ता कहलाते हैं और पालन करने के कारण वे पति कहलाते हैं । पत्नी के शरीर का स्वामी होने के कारण वे स्वामी हैं और उसकी कामनाओं को पूर्ण करने के कारण वे कान्त कहलाते हैं ॥२४॥ सुख को बढ़ाने के कारण पति बन्धु हैं, और पत्नी से प्रेम करने के कारण वे प्रिय कहलाते हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने के कारण वे ईश हैं प्राणेश होने के कारण वे प्राणनायक हैं ॥२५॥ रति प्रदान करने के कारण रमण पति को कहा जाता है सर्वाधिक प्रिय होने के कारण परंप्रिय पति कहलाते हैं । पुत्र इसलिए प्रिय होता है कि वह पति के शुक्र (वीर्य) से उत्पन्न होता है ॥२६॥ कुलवंती स्त्रियों के लिए पति सौ पुत्रो से भी अधिक प्रिय होते हैं । जो नारी असद् वंश में उत्पन्न होती है, वह पति का सम्मान नहीं करती है ॥२७॥ सभी तीर्थों में स्नान करने, सभी यज्ञों में दक्षिणा देने, पृथिवी की प्रदक्षिण करने, सभी तपस्याओं को करने ॥२८-२९॥ जितने व्रत, तथा महादान बतलाये गये हैं, पवित्र उपवास बतलाए गये हैं ॥२९॥ गुरु की सेवा, ब्राह्मण की सेवा, तथा वेदों की सेवा करने से जितने फल मिलते हैं वे पति के चरणों की सेवा से प्राप्त होने वाले पुण्य के सोहलवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकते हैं ॥३०॥ पत्नी के लिए उसका पति आचार्य, ब्राह्मण तथा देवता इन सबों से श्रेष्ठ होता है । जिस तरह विद्या प्रदान करने वाले गुरु श्रेष्ठ होते हैं, उसी तरह सद्वंश में उत्पन्न होने वाली नारी के लिए उसका पति पूज्य होता है ॥३०॥ हे भगवन् ! आप असंख्य गोपियों तथा गोपो एवं असंख्य ब्रह्माण्डों एवं उन ब्रह्माण्डों में रहने वालों के स्वामी हैं ॥३२॥ आप की ही कृपा से मैं असंख्य ब्रह्माण्डों की स्वामिनी बनी हूँ । फिर भी मैं अपने स्त्री स्वभाव के कारण आप को नहीं जान पायी हूँ ॥३३॥ इस तरह से कहकर राधिका भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं और

विवेश कमलातनौ । अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम् ॥३६॥ नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम् । विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम् ॥३७॥ दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः । नारायणश्च भगवान्महालक्ष्म्याश्च देहतः ॥३८॥ विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ । ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम् ॥३९॥ यज्ञः सम्पूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा । तप्तकांचनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् ॥४०॥ अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम् । कमलास्यां कोमलांगीं कमलायतलोचनाम् ॥४१॥ कमलासनपूज्यां च कमलांगसमुद्भवाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां बिंबोष्ठीं सुदतीं सतीम् ॥४२॥ बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम् । ईषाद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥४३॥ सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम् । कस्तूरीबिंदुभिः सार्धं सुगंधिचन्दनेन्दुभिः ॥४४॥ सिंदूरबिंदुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम् । सुप्रशस्तनितंबाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् ॥४५॥ कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम् । तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह ॥४६॥ पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् । दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने ॥४७॥ यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह।

नाथ-नाथ कहकर रोने लगीं ॥३४॥ हे रमण ! आप मुझे दर्शन दीजिये आपके विरह से मैं दीन हो गयी हूँ । इसके बाद भगवान् प्रकट हो गये और जो सुशीला नाम की गोपी थी, गोलोक से ध्वस्त होकर दक्षिणा देवी के रूप में अवतीर्ण हुई ॥३५॥ दीर्घकाल तक तपस्या करके वह लक्ष्मीजी के शरीर में प्रवेश कर गयी । उसके बाद देवता आदि यज्ञ करके ॥३६॥ भी उसका फल नहीं प्राप्त कर सके । वे उदास होकर ब्रह्माजी के पास गये । देवताओं की प्रार्थना को सुनकर ब्रह्माजी ॥३७॥ दीर्घकाल तक जगत् स्वामी श्रीभगवान् का ध्यान करके श्रीभगवान् का आदेश प्राप्त किये । भगवान् ने महालक्ष्मी के शरीर से मर्त्यलक्ष्मी को प्रकट किया ॥३८-३९॥ और उसे दक्षिणा के रूप में ब्रह्माजी को समर्पित कर दिया । ब्रह्माजी ने उस दक्षिणा देवी को यज्ञ को समर्पित कर दिया ताकि वे कर्मों की पूर्ति कर सकें ॥३९॥ यज्ञ ने दक्षिणा देवी की सविधि पूजा करके उनकी स्तुति की । यज्ञ ने संतप्त सुवर्ण के समान वर्ण वाली, करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति वाली ॥४०॥ अत्यन्त मनोहर कमनीय सुन्दरी, कमल के समान मनोहर मुखवाली कोमलांगी तथा कमल दल के समान विस्तृत नेत्रोंवाली ॥४१॥ ब्रह्माजी से पूजित, लक्ष्मीजी के शरीर से उद्भूत, अग्निशौच वस्त्र धारण की हुई, विम्बफल के समान ओष्ठों वाली सुन्दर दन्तपंक्ति से सुशोभित ॥४२॥ केशकलाप को धारण करने वाली तथा मालती की माला को धारण किए हुई, मन्द मुस्कान से सुशोभित मुखवाली तथा रत्नों के आभूषणों को धारण किए हुई ॥४३॥ सुन्दर वेष वाली स्नान की हुई, मुनिजनों के भी मन को मोहित कर देने वाली, कस्तूरी मिश्रित चन्दन की विन्दु से अर्द्धचन्द्राकार तिलक जिनके ललाट पर सुशोभित हो रही थी, सुन्दर [illegible] बृहत् श्रोणी और विशाल वक्षःस्थल से सुशोभित ॥४४-४५॥ कामदेव के आधार स्वरूपिणी तथा काम के बाण से प्रपीडित रमणीय दक्षिणा देवी को देखकर यज्ञ मूर्छित हो गये ॥४६॥ बाद में ब्रह्माजी के आदेश को प्राप्त करके

गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम् ॥४८॥ ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम् । परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः ॥४९॥
यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥५०॥ यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम् । फलं
ददौ च सर्वेभ्यः कर्मिणां चैव नारद ॥५१॥ तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥५२॥ कृत्वा
कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥५३॥ कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणं यदि दक्षिणाम् । न
दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥५४॥ मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद्ध्रुवम् । एकरात्रे व्यतीते तु सा त्रिकोटीगुणा च सा ॥५५॥
त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः । मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते ॥५६॥ संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत् । कर्म
तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत् ॥५७॥ स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः । दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी ॥५८॥
तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम् । पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् ॥५९॥ एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम् । दत्तं न

यज्ञ ने उस दक्षिणा देवी को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया । उन दक्षिणा देवी को ग्रहण करके यज्ञ ने निर्जन स्थान में देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त॥४७॥ उनके साथ रमण किया । उसके कारण दक्षिणा देवी गर्भवती हो गयीं । वे देवताओं के बारह वर्ष तक उस गर्भ को धारण किए रहीं ॥४८॥ उसके बाद उन्होंने सभी कर्मों के फलरूपी पुत्र को जन्म दिया । कर्मों के पूर्ण हो जाने पर दक्षिणा के पुत्र ही उन कर्मों का फल प्रदान करते हैं ॥४९॥ वेदज्ञों का कहना है कि दक्षिणा देवी अपने पुत्र के साथ कर्म करने वाले लोगों को कर्मों का फल प्रदान करती हैं ॥५०॥ हे नारदजी ! दक्षिणा को तथा फल प्रदान करने वाले पुत्र को प्राप्त करके यज्ञ कर्म करने वाले सभी लोगों को फल प्रदान करते हैं ॥५१॥ उसके बाद सभी देवता इत्यादि सन्तुष्ट तथा पूर्ण मनोरथ वाले होकर अपने स्थान पर चले गये ऐसा मैंने अपने पिता धर्म के मुख से सुना है ॥५२॥ इसलिए यज्ञादि कर्म करने वालों को चाहिए कि वे कर्म करके शीघ्र ही दक्षिणा प्रदान करें । ऐसा करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही अपने कर्मों का फल प्राप्त करता है, यह वेदों में बतलाया गया है । कर्म के बाद एक रात बीत जाने पर दक्षिणा बढ़कर तीन गुणा हो जाती है ॥५३-५५॥ तीन रात बीत जाने पर वह सौ गुना हो जाती है और एक सप्ताह बीत जाने पर वह बढकर दो सौ गुना हो जाती है । ब्राह्मणों की दक्षिणा एक मास बीत जाने पर बढ़कर लाख गुना हो जाती है ॥५६॥ एक वर्ष बीत जाने पर वह तीन करोड़ गुणा हो जाती है । ऐसा होने पर यजमान के द्वारा किया गया कर्म पूर्ण रूप से निष्फल हो जाता है ॥५७॥ ऐसा करने वाले व्यक्ति को ब्रह्मस्व के अपहरण का पाप लगता है । वह अपवित्र हो जाता है और किसी भी कर्म को करने के योग्य नहीं रह जाता है । उस पाप के कारण वह रोगी तथा दरिद्र मानव होता है ॥५८॥ उसके घर से लक्ष्मी उसे शाप देकर चली जाती हैं । उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्ध तथा तर्पण को पितृगण स्वीकार

दीयते दानं गृहीता नैव याचते ।।६०।। उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः । नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम् ।।६१।। भवेद्ब्रह्मस्वापहारी
कुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् । वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः ।।६२।। ततो भवेत्स चांडालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः । पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्त
जन्मतः ।।६३।। इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । नारद उवाच– **यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुंक्ते तत्फलं मुने ।।६४।। पूजाविधिं**
दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद । श्रीनारायण उवाच– **कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने ।।६५।। सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते ।**
अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुङ्क्ते च बलिर्मुने ।।६६।। बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने । अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च ।।६७।।
वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत् । असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत् ।।६८।। गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुंक्ते न संशयः ।
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ।।६९।। तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय । पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम्।।७०।।

नहीं करते हैं ।।५९।। उसके द्वारा की गयी पूजा तथा अग्नि में दी गयी आहुति को देवतागण भी नहीं स्वीकार करते हैं । कर्म करते समय यदि कोई दक्षिणा का संकल्प करके उसे नहीं देता है और पूजा कराने वाला उसे नहीं माँगता है तो दोनों उसी प्रकार से नरक में गिर जाते हैं जिस तरह रस्सी के टूट जाने पर घड़ा कुएँ में गिर जाता है । यदि माँगने पर भी यजमान दक्षिणा को नहीं देता है तो ।।६०-६१।। वह ब्रह्मस्व का हरण करने वाला होकर कुम्भीपाक नामक नरक में जाता है । वह उस नरक में एक लाख वर्ष तक निवास करता है और यमदूत उसे वहाँ प्रताड़ित करते रहते हैं ।।६२।। उसके बाद वह रोगी तथा दरिद्र चाण्डाल की योनि में जन्म लेता है और वह जिसके वंश में जन्म लेता है उसके अपने से सात पीढ़ी पहले के तथा सात पीढी बाद के पुरुषों को नरक में गिरा देता है ।।६३।। हे ब्रह्मन् ! इस तरह मैंने आपको दक्षिणा का उपाख्यान सुनाया । इसके अतिरिक्त आप क्या सुनना चाहते हैं ?।।६४।। **नारदजी ने कहा–** जो दक्षिणा से हीन कर्म होता है, उसका फल कौन भोगता है ?।।६५।। प्राचीन काल में यज्ञ के द्वारा की गयी दक्षिणा की पूजा विधि को आप बतलाएँ । **नारायण ने कहा–** हे मुने ! दक्षिणाहीन कर्म का फल ही कैसे हो सकता है ?।।६६।। दक्षिणायुक्त कर्म में ही फल लगते हैं । दक्षिणारहित कर्म तो राजा बलि के पेट में चला जाता है । प्राचीन काल में वामन भगवान् ने उसे बलि को प्रदान कर दिया था । हे मुने ! अश्रोत्रिय तथा श्रद्धाहीन व्यक्ति के द्वारा किए गये कर्म का फल बलि को मिल जाता है ।।६७।। शूद्रों से सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मणों के पूजाद्रव्य, असद् ब्राह्मणों के द्वारा किया गया यज्ञ और अपवित्र मनुष्य के द्वारा किया गया पूजन ।।६८।। तथा गुरु की भक्ति नहीं करने वाले के द्वारा किया गया कर्म इन सबों का बलि भोग करते है । दक्षिणा देवी का काण्वशाखोक्त ध्यान तथा पूजाविधि के क्रम ।।६९।। इत्यादि सारी बातों को मैं आपको सुनाता हूँ, आप सुनें । प्राचीन काल में कर्मों में निपुण दक्षिणा को प्राप्त करके ।।७०।। कामाकुल यज्ञ ने दक्षिणा देवी की स्तुति की । **यज्ञ ने कहा–** हे दक्षिणा देवि ! आप प्राचीन काल

मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः । यज्ञ उवाच– **पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा वरा ॥७१॥ राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया । कार्त्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे ॥७२॥ आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा । पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने ॥७३॥ लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा । गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता ॥७४॥ कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु । कर्मिणा कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा ॥७५॥ त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम् । त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च न शोभते ॥७६॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७७॥ कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपो विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७८॥ फलदातृ परं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा । स्वयं कृष्णश्च भगवान्स च शक्तस्त्वया सह ॥७९॥ त्वमेव शक्तिः कांते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥८०॥ इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता । तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥८१॥ इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् । फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः ॥८२॥ राजसूये वापजेये गोमेधनरमेधके । अश्वमेधे लांगले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥८३॥ धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके ।**

में गोलोक में श्रेष्ठ गोपी थीं ॥७१॥ तुम भगवान् श्रीकृष्ण को राधा के ही समान प्रिया तथा प्रेयसी थी । जब कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन रास में राधा महोत्सव मनाया जा रहा था ॥७२॥ आप लक्ष्मीदेवी के दाहिंने कन्धे से उत्पन्न हुयी । इसीलिए आपका नाम दक्षिणा है । प्राचीन काल में शील सम्पन्न होने के कारण सुशीला के नाम से ख्यात थीं ॥७३॥ लक्ष्मी के दाहिने भाग से उत्पन्न होने के कारण और राधाजी के शाप के कारण दक्षिणा हुई । मेरे सौभाग्य के कारण आप गोलोक से भ्रष्ट होकर इस रूप में उपस्थित हुयी हैं ॥७४॥ हे महाभागे ! आप मेरे ऊपर कृपा करें । मुझको ही आप अपना पति बना लें । हे देवि ! आप कर्म करने वालों को सदा फल प्रदान करती हैं ॥७५॥ आपके विना सबों के सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं । आपके विना कर्म करने वालों के कर्म सुशोभित नहीं होते हैं ॥७६॥ आपको छोड़कर कर्मों का फल प्रदान करने में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी समर्थ नहीं हैं ॥७७॥ स्वयं ब्रह्माजी कर्मस्वरूप हैं । शंकरजी फल स्वरूप हैं । मैं विष्णु हूँ और यज्ञ स्वरूप हूँ और तुम इन सबों के सार स्वरूपिणी हो ॥७८॥ कर्मों का फल प्रदान करने वाले पराप्रकृति निर्गुण ब्रह्म हैं । तुम्हारे ही सहयोग से भगवान् श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं ॥७९॥ हे कान्ते ! आप ही प्रत्येक जन्म में मेरी शक्ति बनती हैं । हे वरानने ! तुम्हारे ही साथ रहकर मैं शक्तिमान हूँ ॥८०॥ इस तरह से कहकर यज्ञ-यज्ञ की अधिष्ठातृ देवता दक्षिणा के सामने स्थित रहे । उस स्तुति से लक्ष्मी के अंश स्वरूपा दक्षिणा भी प्रसन्न हो गयीं और यज्ञ को अपने पति के रूप में स्वीकार कीं ॥८१॥ जो व्यक्ति यज्ञ के समय इस दक्षिणा स्तोत्र

लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके ॥८४॥ शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बन्धुके । वृष्टौ वरुणयागे च कुण्डके वैरिमर्दने ॥८५॥ शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने । ब्रह्माणीकर्मयागे च योनियागे च भद्रके ॥८६॥ एतेषां च समारंभे इदं स्तोत्रं च यः पठेत् । निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम् ॥८७॥ इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु । शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः ॥८८॥ लक्ष्मीदक्षांससम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम् । सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम् ॥८९॥ विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम् । शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे ॥९०॥ ध्यात्वाऽनेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः । दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद ॥९१॥ ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् ॥९२॥ इत्येवं कथितं ब्रह्मन्दक्षिणाख्यानमेव च । सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् ॥९३॥ इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः । अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि ॥९४॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम् । भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ॥९५॥ वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् । पतिब्रतां च शुद्धां च

को पढ़ता है वह सभी यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है ॥८२॥ राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगल, यशस्प्रद विष्णुयज्ञ ॥८३॥ धनदान, भूमिदान, पूर्तकर्म (वावली) कूप आदि के निर्माण, फलदान गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ ॥८४॥ शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धुकयज्ञ, वृष्टिकारक वरुणयज्ञ, विनाशक कुण्ड यज्ञ ॥८५॥ शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचन यज्ञ, ब्रह्माणि कर्मयज्ञ, तथा कल्याणकारी अम्बायज्ञ ॥८६॥ इन यज्ञों के प्रारम्भ होने के समय यदि इस स्तोत्र का कोई पाठ करता है, तो उसके सभी कर्म निर्विघ्न रूप से सम्पन्न होते हैं ॥८७॥ मैंने आपको इस स्तोत्र को सुनाया अब आप दक्षिणा देवी की पूजा की विधि सुनें । विद्वान् को चाहिए कि वह शालग्राम अथवा कलश पर दक्षिणा देवी की पूजा करे ॥८८॥ लक्ष्मीजी के दाहिने कंधे से उत्पन्न लक्ष्मीजी के अंश स्वरूपिणी, सभी कर्मों में निपुण, सभी कर्मों का फल प्रदान करने वाली, भगवान् विष्णु की शक्ति स्वरूपिणी, सबों से पूजित तथा वन्दित शुद्धि प्रदान करने वाली तथा शुद्धि स्वरूपिणी, सुशीला तथा शुभ प्रदान करने वाली दक्षिणा देवी की मैं आराधना करता हूँ ॥८९-९०॥ वरदान देने वाली दक्षिणा देवी की इस प्रकार से ध्यान करके उनकी पूजा मूलमन्त्र से करे । हे नारदजी ! वेदोक्त विधि से पाद्य इत्यादि समर्पित करके, दक्षिणा देवी की पूजा ॐ श्रीं, क्लीं, ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा इस मन्त्र से करे । सबों के द्वारा पूजित दक्षिणा देवी की भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥९१-९२॥ हे ब्रह्मन् ! इस तरह से मैंने आपको दक्षिणा देवी की कथा सुनाया। यह स्तोत्र सुख, प्रसन्नता तथा सभी कर्मों का फंल प्रदान करने वाली है ॥९३॥ जो व्यक्ति इस दक्षिणा की कथा को सावधानी पूर्वक सुनता है । उसका भारत वर्ष में किया जाने वाला कोई भी कर्म अङ्गहीन नहीं होता है ॥९४॥ निश्चित रूप से पुत्रहीन मनुष्य पुत्र को प्राप्त कर लेता है । पत्नीहीन सुशील तथा सुन्दरी पत्नी को प्राप्त कर लेता है ॥९५॥ वह सुन्दरी पुत्र

कुलजां च वधूं वराम् ॥९६॥ विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम् । भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम् ॥९७॥ सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा । मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥९८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

षटचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् । अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदां वर ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **सर्वासां चरितं विप्र देवेषु च पृथक् पृथक् । पूर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि ॥२॥** नारद उवाच– **षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला। उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥३॥** श्रीनारायण उवाच– **षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता । बालकानामधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा ॥४॥ मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या । प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता ॥५॥ आयुःप्रदा च बालानां धात्री**

वाली, विनीत, प्रिय बोलने वाली, पतिव्रता, शुद्ध तथा सद्वंश में उत्पन्न पुत्रवधू को प्राप्त करता है ॥९६॥ विद्याविहीन विद्या प्राप्त कर लेता है और धनहीन धन को प्राप्त करता है । भूमिहीन भूमि को प्राप्त कर लेता है तथा सन्तान हीन सन्तान को प्राप्त कर लेता है ॥९७॥ संकट, बन्धु विच्छेद, विपत्ति तथा बन्धन के अवसर पर एकमास तक इसका श्रवण करके मनुष्य इन सभी विपत्तियों से मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥९८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

षष्ठी देवी की कथा

नारदजी ने कहा– मैंने अनेक देवियों के उत्तम आख्यानों का श्रवण किया है । हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ आप अन्य देवियों के चरित को सुनाइये । **श्रीनारायण ने कहा–** हे विप्र ! आप सभी देवियों के पृथक्-पृथक् चरित्रों में से किस देवी के चरित्र को सुनना चाहते हैं ?॥१-२॥ **नारदजी ने कहा–** भगवती षष्ठीदेवी, मङ्गलचण्डी तथा मनसा देवी ये तीन देवियाँ प्रकृति देवी की कला कही गयी हैं । मैं इन सबों का चरित सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** प्रकृति

रक्षणकारिणी । सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धयोगिनी ॥६॥ तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम्॥७॥ राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायम्भुवमनोः सुतः । योगीन्द्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥ ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह । सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने ॥९॥ पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः । मालिन्यैः तस्य कांतायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥१०॥ भुक्त्वा च तं चरुं तस्याः सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तं च सा देवी देवं द्वादशवत्सरम् ॥११॥ ततः सुषाव सा ब्रह्मन्कुमारं कनकप्रभम् । सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२॥ तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बांधवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन भूयसा ॥१३॥ श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । रुरोद तत्र कांतारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥१४॥ नोत्सृजद्बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात् ॥१५॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श सः । शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविनिर्मितम् ॥१६॥ तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम् ॥१७॥ ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतचंपकवर्णाभां

की छठी कला का नाम षष्ठी देवि है । वे बालकों की अधिष्ठातृ देवी, बालक प्रदान करने वाली; भगवान् विष्णु की माया स्वरूपिणीं हैं ॥४॥ ये मातृकाओं में प्रख्यात हैं इनका नाम देवसेना हैं; ये स्कन्द कर्तिकेय की प्राणप्रिया साध्वी भार्या हैं ॥५॥ ये बालकों को आयु प्रदान करने वाली, उनकी धात्री तथा रक्षा करने वाली हैं । ये सिद्धयोगिनी हैं तथा योग के कारण सदा शिशुओं के सन्निकट रहा करती हैं ॥६॥ हे ब्रह्मन् आप उन्हीं का इतिहास सुनें । यह पुत्र प्रदान करने वाली कथा है । इसे मैंने अपने पिता धर्म के मुख से सुना था ॥७॥ स्वाम्यम्भुव मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत हुए । वे सदा तपस्या में लीन रहते थे । योगीन्द्र थे । उन्होंने विवाह नहीं किया ॥८॥ उसके बाद ब्रह्माजी की आज्ञा से उन्होंने विवाह किया । विवाह करने के बाद बहुत दिनों तक उनको कोई पुत्र नहीं हुआ ॥९॥ उसके बाद महर्षि कश्यप ने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मुनि ने उनकी पत्नी मालिनी को यज्ञ का प्रसाद चरु प्रदान किया ॥१०॥ उस चरू को खाने से उनकी पत्नी को शीघ्र ही गर्भ हो गया और उस गर्भ को उनकी पत्नी दिव्य बारह वर्ष तक धारण किए रही ॥११॥ उसके बाद उन्होंने सुवर्ण के सदृश पुत्र को जन्म दिया । किन्तु वह बालक मरा हुआ था उसकी आँखे उलट गयी थीं ॥१२॥ उस मरे हुए बालक को देखकर सभी स्त्रियाँ रोने लगीं । पुत्रशोक के कारण उसकी माता मूर्छित हो गयी ॥१३॥ हे मुने ! उस बालक को लेकर राजा श्मशान भूमि में गये । वहाँ वन में जाकर उस बालक को अपने वक्षःस्थल पर रखकर राजा रोने लगे ॥१४॥ राजा उस बालक को त्याग नहीं रहे थे । वे अपना प्राण त्याग देना चाहते थे । भयंकर पुत्रशोक के कारण वे ज्ञानयोग भूल गये ॥१५॥ उसी समय वहाँ पर उन्होंने एक विमान को उतरते हुए देखा । वह विमान शुद्ध स्फटिक के समान चमक

शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥१८॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१९॥ दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात् । चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥२०॥ पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । तेजसा ज्वलितां शांतां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥ राजोवाच– **का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्ताऽसि सुव्रते । कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥ नृपेंद्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मंगलचंडिका । उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी ॥२३॥ देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥२४॥** श्रीदेवसेनोवाच– **ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाऽहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसा धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप॥२५॥ मातृकासु च विख्याता स्कन्दभार्या च सुव्रता । विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठान्शा प्रकृतेः परा ॥२६॥ अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियदात्री प्रियाय च । धनदाऽहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा ॥२७॥ सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मङ्गलमेव च । सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥२८॥ कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा । कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीवनः ॥२९॥ कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चाङ्गहीनकः।**

रहा था और श्रेष्ठ मणि से बना हुआ था ॥१६॥ वह विमान रेशमी वस्त्र से ढँका था और अपने तेज से प्रकाशित हो रहा था । अनेक प्रकार के उसमें चित्र बने थे तथा वह पुष्पों की माला से सुशोभित था ॥१७॥ राजा ने उस विमान में एक सुन्दर तथा कमनीय देवी को देखा उसका वर्णश्वेत चम्पा के समान था तथा यौवन स्थिर था ॥१८॥ मन्द मुस्कान से उसका मुख प्रसन्न था । उस कृपामयी तथा योगसिद्ध एवं भक्तों पर अनुग्रह करने वाली ॥१९॥ देवी को अपने सामने देखकर राजा ने अत्यन्त आदर पूर्वक उनकी स्तुति की । राजा ने भूमि पर बालक को रखकर उनकी पूजा की ॥२०॥ प्रसन्न ग्रीष्म ऋतु के समान कान्तिवाली तथा तेज से देदीप्यमान शान्त स्वभाव वाली एवं मनोहर देवसेना से राजा ने पूछा । **राजा ने कहा–** हे सुन्दरी कान्ते ! आप किसकी कान्ता हैं ? हे वरारोहे ! आप किसकी पुत्री हैं आप स्त्रियों में धन्य, मान्य तथा वदान्य हैं ॥२१-२२॥ उस श्रेष्ठ राजा की बात सुनकर जगत् का कल्याण करने वाली देवताओं के लिए युद्ध करने वाली मङ्गल चण्डिका **देवसेना ने कहा–** प्राचनीकाल में दैत्यों से आक्रान्त देवताओं की मैं सेना बन गयी थी । मैंने ही देवताओं को विजय दिलाया था । इसीलिए मेरा नाम देवसेना हुआ ॥२४॥ **श्रीदेवसेना ने कहा–** मैं ब्रह्मा की मानसी पुत्री हूँ, मैं सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी हूँ । मेरा नाम देवसेना है । ब्रह्माजी ने मेरी सृष्टि करके मुझे स्कन्द को पत्नी के रूप में प्रदान कर दिया ॥२५॥ मैं मातृकाओं में विख्यात हूँ तथा सुन्दर व्रत वाली स्कन्द की पत्नी हूँ । मैं विश्व में षष्ठी देवी के नाम से विख्यात हूँ क्योंकि मैं परा प्रकृति का षष्ठांश हूँ । मैं पुत्रहीनों को पुत्र तथा प्रिय पुरुषों को प्रिया पत्नी देती हूँ । दरिद्रों को मैं धन देती हूँ और कर्म करने वालों को उन्हें कर्म का फल प्रदान करने वाली हूँ । सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति तथा विपत्ति ये सब कर्मों के अनुसार मिलते हैं ॥२६-२८॥ कर्मानुसार ही कोई अनेक पुत्रों वाला तथा कोई वंशहीन होता

कर्मणा बहुभार्यश्च भार्याहीनश्च कर्मणा ॥३०॥ कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्वकर्मणा । कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणाऽऽरोग्यमेव च॥३१॥ तस्मात्कर्मपरं राजन्सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने ॥३२॥ महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया । राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् ॥३३॥ देवसेना च पश्यन्तं नृपमापृच्छ्य सा तदा । गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता ॥३४॥ पुनस्तुष्टाव तां राज शुष्ककंठोष्ठतालुकः । नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह ॥३५॥ उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्म निर्मितम् । देव्युवाच– **त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायम्भुवमनोः सुतः ॥३६॥ मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु । तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम् ॥३७॥ सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् । जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणकलात्मकम् ॥३८॥ शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम् । मत्तमातंगलक्षाणां धृतवंतं बलं शुभम् ॥३९॥ धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च । योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम् ॥४०॥ यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् । इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ ॥४१॥ राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः । जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा**

है । कर्म के ही अनुसार कोई मरे हुए पुत्र वाला तथा कोई चिरंजीवी पुत्रों वाला होता है ॥२९॥ कोई कर्म से ही गुणवान् और कोई अङ्गहीन होता है । कर्म से ही कोई अनेक पत्नियों वाला और कोई पत्नी से विहीन होता है ॥३०॥ कर्म से रोग होता हैं और कर्म से ही नैरुज्य प्राप्त होता है । अतएव हे राजन् ! वेदों में कर्म को ही सर्वप्रधान कहा गया है । इस तरह से कहकर उस देवी ने बालक को लेकर ॥३१-३२॥ अपने महाज्ञान के द्वारा उसको जीवित कर दिया । राजा ने देखा कि सुवर्ण के समान कान्ति वाला वह बालक मुस्कुरा रहा है ॥३३॥ देखते ही देखते राजा से यह कहकर देवसेना उस बालक को लेकर आकाश में जाने के लिए तैयार हो गयीं ॥३४॥ उसके बाद सूखे हुए ओष्ठ, कण्ठ तथा तालु वाले राजा ने उस देवी की पुनः स्तुति की । राजा की स्तुति से वे देवी प्रसन्न हो गयीं ॥३५॥ देवी ने राजा से वेद विहित कर्म को बतलाते हुए कहा हे स्वायम्भुव मनु के पुत्र ! तुम त्रैलोक्य के राजा हो ॥३६॥ मेरी पूजा सर्वत्र करवाते हुए तुम स्वयं मेरी पूजा करो । यदि ऐसा तुम करो तो मैं तुम्हारे वंश रूपी कमल के लिए तुम्हें पुत्र दूँगी। यह सुव्रत के नाम से विख्यात होगा, गुणवान् और पण्डित होगा । इसे अपने पूर्वजन्म की यादगारी बनी रहेगी । यह नारायण का अंश है ॥३७-३८॥ यह सौ यज्ञों को करने वाला और क्षत्रियों में वन्दित होगा । इसमें एक लाख मदमत्त हाथियों का बल होगा ॥३९॥ यह धनी, गुणी, शुद्ध तथा विद्वानों का प्रिय होगा । यह योगियों, ज्ञानियों तथा तपस्वियों की सिद्धिस्वरूप होगा ॥४०॥ यह संसार में यशस्वी और सभी सम्पत्तियों का दान करने वाला होगा। इस तरह से कहकर उस देवी ने उस राजा को वह बालक दे दिया ॥४१॥ राजा ने पूजा करने की बात स्वीकार कर ली । देवी भी राजा प्रियव्रत को शुभ

तस्मै शुभं वरम् ॥४२॥ आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः । आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥४३॥ श्रुत्वा बभूवुः सन्तुष्टा नरा नार्यश्च नारद । मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥४४॥ देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् ॥४५॥ षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः । बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् ॥४६॥ तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे। बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा ॥४७॥ सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह । ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय ॥४८॥ यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत । शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने ॥४९॥ भीत्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः । षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम् ॥५०॥ सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ॥५१॥ पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे । इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ॥५२॥ पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम् । पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धपुष्पप्रदीपकैः ॥५३॥ नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च । ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै च स्वाहेति विधिपूर्वकम् ॥५४॥ अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः । ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः ॥५५॥ स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम् । अष्टाक्षरं महामन्त्रं

वरदान देकर स्वर्गलोक में चली गयीं ॥४२॥ राजा भी प्रसन्न होकर मन्त्री के साथ अपने घर आये और पुत्र की प्राप्ति विषयक सारा वृत्तान्त उन्होंने सबों को सुनाया ॥४३॥ हे नारदजी ! उस वृत्तान्त से सभी पुरुष और स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं । राजा ने पुत्र के लिए सर्वत्र मङ्गल कराया ॥४४॥ उन्होंने देवीं की पूजा करके ब्राह्मणों को धन प्रदान किया । राजा प्रत्येक मास के शुक्लपक्ष की षष्ठी तिथि को प्रयत्न पूर्वक षष्ठी देवी का महोत्सव करवाता था । बालकों के सूतिका गृह में छठे दिन महोत्सव करता था ॥४५-४६॥ राजा षष्ठी देवी की पूजा बालक के जन्म के छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा शुभकार्य में अन्न प्राशन के दिन सर्वत्र करवाने लगा ॥४७॥ राजा ने षष्ठी देवी की पूजा सर्वत्र बढवाया तथा स्वयं भी किया । आप मुझसे षष्ठी देवी का ध्यान, पूजा का विधान और स्तोत्र सुनें ॥४८॥ हे सुव्रत ! उस कौथुम शाखोक्त विधि को मैंने धर्म के मुख से सुना था । हे मुने ! शालग्राम अथवा कलश के ऊपर अथवा वटवृक्ष के मूल में अथवा दिवाल पर प्रकृति के षष्ठ अंश षष्ठी देवी का चित्र बनाकर तथा उसकी प्रतिष्ठा करके ॥४९-५०॥ सुन्दर पुत्र तथा कल्याण करने वाली, दयास्वरूपिणी, जगन्माता, श्वेत चम्पक के समान कान्तिवाली तथा रत्नों के आभूषणों से समलङ्कृत ॥५१॥ परम पवित्र परमशक्ति देवसेना देवी की मैं आराधना करता हूँ । इस तरह से ध्यान करके बुद्धिमान व्यक्ति पुष्पाञ्जलि प्रदान करे ॥५२॥ उसके बाद षष्ठीदेवी के मूल मन्त्र से उनकी पूजा करे । पाद्य, अर्घ्य, आचमनीयक, गन्ध, पुष्प, दीप, अनेक प्रकार के नैवेद्य तथा अनेक प्रकार के सुन्दर फल से 'ओं ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा' इस मन्त्र से विधिपूर्वक पूजा

लक्षणं यो जपेत्ततः ॥५६॥ सुपुत्रं स लभेन्नूनमित्याह कमलोद्भवः । स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ॥५७॥ वांछाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद । नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शांत्यै नमो नमः ॥५८॥ शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः । वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः॥५९॥ सुखदायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः । सृष्ट्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ॥६०॥ मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः ॥६१॥ बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥६२॥ प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः । पूज्यायै स्कंदकांतायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ॥६३॥ देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा ॥६४॥ हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥६५॥ मानं देहि जयं देहि द्विषो जहि महेश्वरि । धर्मं देहि यशो देहि षष्ठी देव्यै नमो नमः ॥६६॥ देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते । कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६७॥ इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः । यशस्विनं च राजेन्द्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः ॥६८॥

करें ॥५३-५४॥ अपनी शक्ति के अनुसार इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र का जप करे । उसके बाद सावधानी पूर्वक स्तुति करके प्रणाम करे ॥५५॥ षष्ठी देवी का स्तोत्र सामवेद में पठित है और पुत्र प्रदान करने वाला है । जो व्यक्ति इस अष्टाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करता है ॥५६॥ वह निश्चित रूप से सुन्दर पुत्र को प्राप्त करता है । यह ब्रह्माजी ने कहा है । हे मुनिश्रेष्ठ सभीं कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा शुभप्रद उस स्तोत्र को आप सुनें ॥५७॥ वह सबों की इच्छा को पूर्ण करने वाला है और वेदों में छिपा हुआ है । देवी को नमस्कार है, महादेवी को नमस्कार है, तथा शान्ति स्वरूपिणी भगवती सिद्धि को नमस्कार है । मंगलमयी देवसेना षष्ठी देवी को बारम्बार नमस्कार है । वर देने वाली, पुत्र देने वाली तथा धन देने वाली सुख देने वाली, मोक्ष देने वाली षष्ठी देवी को बारम्बार नमस्कार है । सृष्टि स्वरूपिणी, प्रकृति के षष्ठांश स्वरूपिणी सिद्धि स्वरूपिणी षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥५८-६०॥ माया स्वरूपिणी, सिद्धयोगिनी, षष्ठी देवी को बारम्बार नमस्कार है । सार स्वरूपिणी परादेवी, शारदा को नमस्कार है ॥६१॥ बालकों की अधिष्ठातृ देवी षष्ठी देवी को बारम्बार नमस्कार है । कल्याण प्रदान करने वाली, कल्याण स्वरूपिणी कर्मों का फल प्रदान करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है ॥६२॥ अपने भक्तों को प्रत्यक्ष दर्शन देने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है । स्कन्दपत्नी तथा सभी कर्मों में सबों के लिए पूज्य ॥६३॥ देवताओं की रक्षा करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार है । शुद्ध सत्त्वस्वरूपिणी तथा मनुष्यों के द्वारा सदा पूज्य ॥६४॥ हिंसा तथा क्रोध से रहित षष्ठी देवी को नमस्कार है । हे सुरेश्वरि! आप मुझे धन, पत्नी और पुत्र प्रदान करें ॥६५॥ हे महेश्वरि ! आप मुझे मान, विजय दें, मेरे शत्रुओं का नाश करें । आप मुझे धन दें, यश दें । हे षष्ठी देवी आप को बारम्बार नमस्कार है ॥६६॥ हे सुपूजिते ! आप मुझे भूमि, सन्तान, और विद्या, कल्याण और विजय प्रदान करें । हे षष्ठी देवि ! आपको

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति तु वत्सरम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥६९॥ वर्षमेकं च यो भक्त्या संपूज्येदं शृणोति च । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ॥७०॥ वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावंतं यशस्विनम् । सुचिरायुष्यवंतं च सूते देवीप्रसादतः ॥७१॥ काकवंध्या च या नारी मृतवत्सा च या भेवत् । वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥७२॥ रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत् । मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते नवमस्कन्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय ॥१॥ तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्रेण यच्छ्रुतम् । श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि ॥२॥ दक्षा या वर्तते चण्डी कल्याणेषु च मंगला । मंगलेषु च या दक्षा सा च**

बारम्बार नमस्कार है ॥६७॥ इस तरह से षष्ठी देवी की स्तुति करके श्रेष्ठ राजा प्रियव्रत षष्ठी देवी की कृपा से यशस्वी पुत्र को प्राप्त किए ॥६८॥ हे नारदजी! जो व्यक्ति एक वर्ष तक इस षष्ठीस्तोत्र को सुनता है, वह पुत्रहीन भी पुत्र को प्राप्त करता है और चिरंजीवी पुत्र को प्राप्त करता है ॥६९॥ एक वर्ष तक षष्ठी देवी की पूजा करके इस स्तोत्र को सुनने वाली बन्ध्या स्त्री भी सभी पापों से मुक्त होकर पुत्र को जन्म देती है ॥७०॥ वह देवी की कृपा से वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी, तथा दीर्घायु पुत्र को जन्म देती है ॥७१॥ जो नारी बन्ध्या काकबन्ध्या अथवा मृतवत्सा होती है, वह भी एक वर्ष तक इस स्तोत्र का श्रवण करके षष्ठी देवी की कृपा से पुत्र प्राप्त करती है ॥७२॥ बालक के रोगी हो जाने पर यदि उसके माता-पिता एक मास तक इस स्तोत्र का श्रवण करें तो षष्ठीदेवी की कृपा से वह बालक रोगमुक्त हो जाता है ॥७३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के छियालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४६।।

मङ्गलचण्डी की कथा

श्रीनारायण ने कहा– हे ब्रह्मपुत्र नारदजी ! मैंने आपको आगमानुसार षष्ठीदेवी के उपाख्यान को सुनाया है । अब आप मङ्गलचण्डी के उपाख्यान को

मंगलचण्डिका ॥३॥ पूज्या या वर्तते चण्डी मंगलोऽपि महासुतः । मंगलाभीष्टदेवी या सा वै मंगलचण्डिका ॥४॥ मंगलो मनुवंश्यश्च
सप्तद्वीपधरापतिः । तस्य पूज्याऽभीष्टदेवी तेन मंगलचंडिका ॥५॥ मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृपारूपाऽतिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता॥६॥
प्रथमे पूजिता सा च शंकरेण परात्परा । त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७॥ ब्रह्मन्ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतिन च संकटे । आकाशात्पतिते याने
दैत्येन पातिते रुषा ॥८॥ ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शंकरः । सा च मङ्गलचण्डी या बभूव रूपभेदतः ॥९॥ उवाच पुरतः शम्भोर्भयं
नास्तीति ते प्रभो । भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति ॥१०॥ शुद्धशक्तिस्वरूपाऽहं भविष्यामि न संशयः । मयात्मना च हरिणा सहायेन
वृषध्वज ॥११॥ जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघातकम् । इत्युक्त्वांतर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूव सा ॥१२॥ विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान
तमुमापतिः । मुनींद्रपतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१३॥ तुष्टुवुः शंकरं देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः । सद्यः सिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव
ह॥१४॥ ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् । ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शंकरस्तथा ॥१५॥ पूजयामास तां भक्त्या देवीं मंगलचण्डिकाम्।

सुनें ॥१॥ मैंने मङ्गलचण्डी की पूजा आदि को धर्म के मुँह से सुना है । यह श्रुति सम्मत तथा समस्त विद्वानों को अभिप्रेत है ॥२॥ जो मङ्गला देवी सभी प्रकार के कल्याणों को करने में दक्ष हैं, सभी मंगलों में दक्ष हैं उन्हीं देवी का नाम मङ्गलचण्डिका है ॥३॥ अथवा भूमिपुत्र मङ्गल को भी जिनकी पूजा अभिप्रेत है, वे ही देवी मङ्गलचण्डी हैं । राजा मङ्गल मनुवंश के थे । वे सातद्वीपों के स्वामी थे । इसीलिए वे देवी मङ्गलचण्डी के नाम से विख्यात हुई ॥४-५॥ मूर्तिभेद के कारण जो दुर्गा कहलाती हैं, मूल प्रकृति तथा नियामिका हैं, कृपा स्वरूपिणी, तथा अत्यन्त प्रत्यक्ष है । जो नारियों की इष्ट देवता हैं । उनकी सर्वप्रथम पूजा भगवान् विष्णु से प्रेरित होकर त्रिपुरासुर का वध करने के लिए शंकरजी ने की जब त्रिपुरासुर ने शंकरजी के विमान को आकाश से नीचे गिरा दिया था उस समय शंकरजी संकट में पड़ गये थे और ब्रह्माजी के उपदेश से उन्हें प्रेरणा मिली ॥७-८॥ ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों के उपदेश से शंकरजी ने दुर्गा की स्तुति की । वे मङ्गलचण्डी ही थीं उन्होंने दुर्गा का रूप धारण कर लिया था ॥९॥ दुर्गाजी ने शंकरजी से कहा प्रभो ! आपको कोई भय नहीं है । सबों के स्वामी भगवान् आपके वाहन बैल बन जायेंगे और मैं आपकी शुद्ध शक्ति बन जाऊँगी । हे वृषध्वज !॥१०-११॥ मायामय श्रीहरि की सहायता प्राप्त करके इस देवताओं को पदच्युत करने वाले अपने शत्रु का वध करें । यह कहकर दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और शंकरजी की शक्ति बन गयीं ॥१२॥ उस समय भगवान् विष्णु ने एक शस्त्र भगवान् शंकर को दिया उसी से उन्होंने त्रिपुरासुर का वध किया । हे मुनीन्द्र ! उस दैत्य के मारे जाने पर महर्षियों ने शंकरजी की स्तुति की ॥१३॥ उनलोगों ने भक्ति से अपना सिर झुकाकर शंकरजी की स्तुति की । उसी समय शंकरजी के

पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि ॥१६॥ पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने । छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा ॥१७॥ वस्त्रालंकारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि । मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि ॥१८॥ संगीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः । ध्यात्वा माध्यंन्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्॥१९॥ ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके ॥२०॥ हुं हुं फट् स्वाहाप्येकविंशाक्षरो मनुः । पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः ॥२१॥ दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन्वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥२२॥ देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥२३॥ श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पललोचनाम् । जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम् ॥२४॥ संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे । देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने ॥२५॥ महादेव उवाच– **रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके । हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके ॥२६॥ हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलदायिके । शुभे मङ्गलदक्षे च शुभे मङ्गलचण्डिके ॥२७॥ मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले । सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये ॥२८॥ पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते।**

शिर पर पुष्प की वृष्टि हुई ॥१४॥ सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा तथा विष्णु ने उन्हें शुभाशीर्वाद दिया । ब्रह्मा तथा विष्णु के उपदेश से शंकरजी स्नान करके ॥१५॥ भक्तिपूर्वक देवी मङ्गलचण्डिका की पूजा की । पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अनेक प्रकार के वस्त्र ॥१६॥ पुष्प, चन्दन, अनेक प्रकार के नैवेद्य, छाग, मेष, महिष, नीलगाय, अनेक प्रकार के पक्षी ॥१७॥ वस्त्र, अलंकार माला, खीर, चूर्ण, मधु, सुधा अनेक प्रकार के फलों संगीत, वाद्य उत्सव तथा नाम कीर्तन के द्वारा देवी का ध्यान करके माध्यन्दिन शाखोक्त ध्यान के द्वारा ॥१८-१९॥ देवी के मूल मन्त्र से देवी को उन्होंने अर्पित किया । ओम् श्रीं ह्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हु हुं फट् स्वाहा' । यह इक्कीस अक्षरों वाला मूलमन्त्र कल्पवृक्ष के समान भक्तों की सारी कमनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥२०-२१॥ दशलाख जप करने से इस मंत्र की सिद्धि अवश्य हो जाती है । हे ब्रह्मन् ! आप सर्वसम्मत वेदोक्त ध्यान को सुनें ॥२२॥ सोलह वर्ष की अवस्था वाली, सदा स्थिर यौवन वाली, विम्बफल के समान ओष्ठों वाली, सुन्दर दन्तपंक्ति वाली, शरत् कालीन कमल के समान सुन्दर मुखवाली ॥२३॥ श्वेत चम्पक के समान वर्ण वाली, नीलकमल के समान नेत्र वाली, जगन्माता सबों को सभी प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करने वाली ॥२४॥ इस भयंकर संसार सागर में प्रकाश स्वरूपिणी मङ्गलचण्डी की मैं आराधना करता हूँ । इसी प्रकार का देवी का ध्यान है । अब आप देवी की स्तुति सुनें ॥२५॥ **महादेव ने कहा–** हे जगन्मातः मङ्गलचण्डिके आप रक्षा करें । आप विपत्ति समूह को विनष्ट करने वाली तथा हर्ष एवं मङ्गल करने वाली हैं ॥२६॥ आप हर्ष एवं मङ्गल में दक्ष तथा हर्ष एवं मङ्गल प्रदान करने वाली हैं । आप शुभ मङ्गल में दक्ष एवं शुभ मङ्गल चण्डी हैं ॥२७॥ हे मङ्गल स्वरूपिणी, मङ्गल के योग्य तथा समस्त मङ्गलों का भी मङ्गल करने वाली हैं । हे सज्जन पुरुषों को मङ्गल देने वाली देवि, सभी मङ्गलों के आश्रय स्वरूपिणि ॥२८॥ मङ्गलवार को पूजित होकर आप

पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम् ॥२९॥ मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले । संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥३०॥ सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम् । प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये शुभसुखप्रदे ॥३१॥ स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः ॥३२॥ प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला । द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च ॥३३॥ तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च । चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता ॥३४॥ पञ्चमे मंगलाकांक्षिनरैर्मंगलचण्डिका । पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा॥३५॥ ततः सर्वत्र सम्पूज्या बभूव परमेश्वरी । देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने ॥३६॥ देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः श्रृणोति समाहितः । तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम् । वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिने दिने ॥३७॥ श्रीनारायण उवाच– **उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्। श्रूयतां मनसाऽऽख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥३८॥ सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी । तेनैव मनसा देवी मनसा या च दीव्यति॥३९॥ मनसा ध्यायते या च परमात्मानमीश्वरम् । तेन सा मनसादेवी तेन योगेन दीव्यति ॥४०॥ आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी । त्रियुगं**

सभी अभीष्टों फलों को प्रदान करती हैं । हे मनुवंश के मङ्गल नामक राजा की पूज्ये !॥२९॥ मङ्गल की अधिष्ठातृ देवि, मङ्गलों के भी मङ्गलस्वरूपिणि हे संसार के मङ्गलों के आधार स्वरूपिणि ! हे मोक्ष तथा मङ्गल प्रदान करने वाली देवि !॥३०॥ हे सब के सारस्वरूपिणि ! मङ्गल के आधारभूत, सभी कर्मों से ऊपर उठी हुई, प्रतिमङ्गलवार को पूजित होने वाली हे मङ्गल तथा सुख प्रदान करने वाली देवि !॥३१॥ इस स्तोत्र के द्वारा मङ्गल चण्डिका की स्तुति करे । तथा प्रतिमङ्गलवार को पूजा करके शिवजी चले गये ॥३२॥ सर्वप्रथम शिवजी ने सर्वमङ्गला देवी की पूजा की । दूसरी बार मङ्गल ग्रह ने मङ्गलचण्डी की पूजा की ॥३३॥ तीसरी बार मङ्गल नामक राजा ने उनकी पूजा की और चौथी बार मङ्गलवार को सुन्दरियों ने उनकी पूजा की । पाँचवी बार मङ्गल चाहने वाले मनुष्यों ने प्रत्येक विश्वों में इनकी पूजा की । ये विश्वेश से पूजित हैं ॥३४-३५॥ उसके बाद ये परमेश्वरी सर्वत्र पूज्य हो गयीं । हे मुने ! इनकी पूजा देवता, मुनिगण, मानव तथा मनु करने लगे ॥३६॥ जो व्यक्ति समाहित होकर देवी के मङ्गल स्तोत्र को पढ़ता है, उसका मङ्गल ही होता है । उसका कभी भी अमङ्गल नहीं होता है । उसका पुत्रों तथा पौत्रों के द्वारा प्रतिदिन मङ्गल बढ़ता है ॥३७॥ **श्रीनारायण ने कहा–** मैने आपको षष्ठी देवी और मङ्गलचण्डिका की कथा आगम के अनुसार सुनाया । अब आप मनसा देवी की कथा सुनिये । उसे मैंने धर्म के मुख से सुना है ॥३८॥ मनसा देवी महर्षि कश्यप की मानसी कन्या हैं । इसीलिए ये मनसा कहलाती हैं । ये मन में ही क्रीडा करती हैं ॥३९॥ वे मन से ही परमात्मा ईश्वर का ध्यान करती हैं अतएव ये मनसा देवी कहलाती हैं और उसी योग (मनोयोग) के द्वारा प्रकाशित होती हैं ॥४०॥ वे देवी आत्माराम और सिद्धयोगिनी हैं । वे वैष्णवी और

च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ।।४१।। जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमीश्वरः । गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ।।४२।। वांछितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः । पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः ।।४३।। स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा ।।४४।। जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती । शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता ।।४५।। विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता । नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च ।।४६।। नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च । विषं संहर्तुमीशा या तेन विषहरी स्मृता ।।४७।। सिद्धयोगं हरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी । महाज्ञानं च योगं च मृतसंजीवनीं पराम् ।।४८।। महाज्ञानयुतां तां च प्रवदंति मनीषिणः । आस्तीकस्य मुनींद्रस्य माता साऽपि तपस्विनी ।।४९।। आस्तीकमाता विज्ञाता जगत्यां सुप्रतिष्ठिता । प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनींद्रस्य महात्मनः ।।५०।। योगिनी विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः । जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी ।।५१।। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा । जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेति च ।।५२।। महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता । द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत् ।।५३।। तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च । नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे ।।५४।। नागशोभे महादुर्गे

सिद्धयोगिनी हैं । इन्होंने भगवान् कृष्ण की तीन युगों तक तपस्या की ।।४१।। इनंके शरीर को दुबला पतला देखकर गोपीपति भगवान् श्रीकृष्ण ने इनका नाम जरत्कारु रखा ।।४२।। कृपानिधि श्रीभगवान् ने इनको अभिलषित वर प्रदान किया । उन्होंने स्वयं इनकी पूजा की और दूसरों से इनकी पूजा करायी।।४३।। ये स्वर्ग में, नागलोक में, पृथिवी में तथा ब्रह्मलोक में आयीं । मन को मुग्ध करने के कारण इनका नाम गौरी और सुन्दरी हुआ ।।४४।। ये जगद् गौरी के नाम से सम्पूर्ण जगत् में विख्यात हो गयीं । शिवजी की शिष्या होने के कारण इनका नाम शैवी है ।।४५।। ये निरन्तर भगवान् विष्णु की भक्ता रहती हैं । अतएव इनका नाम वैष्णवी है । इन्होंने ही जनमेजय के यज्ञ में जाकर नागों के प्राणों की रक्षा की इसीलिए इनका नाम नागेश्वरी हुआ। नागों की बहन होने के कारण ये नागभागिनी हैं । विष को विनष्ट करने में समर्थ होने के कारण ये विषहरि कहलाती है ।।४६-४७।। इन्होंने भगवान् शंकर से सिद्धयोग को प्राप्त किया था इसीलिए ये सिद्धयोगिनी हैं । इन्होंने भगवान् शिव से महाज्ञान तथा योग को प्राप्त किया था इसलिए मनीषी पुरुष इन्हें मृतसंजीवनी।।४८।। तथा महाज्ञान सम्पन्न कहते हैं । ये आस्तीक मुनीन्द्र की माता और तपस्विनी हैं ।।४९।। इसीलिए ये जगत् में आस्तीकमाता, के नाम से प्रतिष्ठित हैं । महात्मा तथा मुनीन्द्र जरत्कारु की ये प्रियतमा हैं ।।५०।। जरत्कारु की ये प्रियतमा है ।।५१।। जरत्कारु मुनि योगी और विश्व पूज्य थे । अतएव इनका नाम जरत्कारुप्रिया है । जरत्कारु, गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी ।।५२।। वैष्णवी नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी, महाज्ञानयुता

नागवेष्टितविग्रहे । इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः ॥५५॥ नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते । दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥५६॥ स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः । नागैश्च भूषणं कृत्वा सा भवेन्नागवाहनः ॥५७॥ नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः । अन्ते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम् ॥५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **मत्तः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुंगव । ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम् ॥१॥ श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥ महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम् । सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां**

तथा विश्वपूजिता । पूजा के समय इन बारह नामों का जो स्मरण करता है ॥५३॥ उसको तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वालों का नागों से भय नहीं होता है । नाग के भय से युक्त स्थान में तथा नागवेष्टित स्थान में भी जो व्यक्ति इस स्तोत्र का पाठ करता है । वह सर्प के भय से मुक्त हो जाता है ॥५४-५५॥ इस स्तोत्र का जो नित्य पाठ करता है उसको देखकर नाग भाग जाते है । दश लाख जप करने से मनुष्यों को यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है । वह विष को भी खा सकता है, नागों का भूषण बना सकता है और नाग वाहन हो सकता है ॥५६-५७॥ वह नाग पर बैठ सकता है, नाग की शय्या पर सो सकता है । वह मनुष्य महासिद्ध हो जाता है । अन्त में वह भगवान् विष्णु के साथ रात-दिन क्रीडा करता है ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४७।।

मनसा देवी की कथा

श्रीनारायण ने कहा– हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मनसा देवी की पूजा का विधान सुनें । मैं आपको सामवेदोक्त ध्यान बतलाता हूँ ॥१॥ मैं श्वेतचम्पा के सदृश वर्ण वाली, रत्नों के भूषणों से भूषित, वह्निशौच वस्त्र को धारण करने वाली, नागों का यज्ञोपवीत धारण करने वाली ॥२॥ महाज्ञान सम्पन्न, श्रेष्ठ ज्ञानियों

भजे ॥३॥ इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलनैव प्रपूजयेत् । नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगंधानुलेपनैः ॥४॥ मूलमंत्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वांछितप्रदः । मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥५॥ ॐ ह्रीं क्लीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहेति कीर्तितः । पंचलक्षजपेनैव मंत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥६॥ मंत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले । सुधासमं विषं तस्य धन्वंतरिसमो भवेत् ॥७॥ ब्रह्मन्स्नात्वा तु संक्रांत्यां गूढशालासु यत्नतः । आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः ॥८॥ पंचम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम् । धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद्ध्रुवम् ॥९॥ पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय । कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१०॥ पुरा नागभयाक्रांता बभूवुर्मानवा भुवि । गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुङ्गवम् ॥११॥ मंत्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणाऽन्वितः । वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ॥१२॥ मंत्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तदा । तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा ॥१३॥ कुमारी सा च संभूता जगाम शंकरालयम् । भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टाव चंद्रशेखरम्॥१४॥ दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषिवे च मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥१५॥ महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास

में श्रेष्ठ, सिद्धों की अधिष्ठातृदेवी, सिद्ध तथा सिद्धि प्रदान करने वाली मनसा देवी की आराधना करता हूँ ॥३॥ इस तरह से ध्यान करके मूल मन्त्रों से उनकी पूजा करनी चाहिए । नैवेद्य, अनेक प्रकार के धूप, सुगन्धित चन्दन के लेप ॥४॥ तथा वेदोक्त मूल मन्त्रों से पूजा करे । उससे भक्तों की वांछा की सिद्धि होती है । हे मुने ! देवी का बारह अक्षरों वाला सिद्ध मन्त्र हैं ॥५॥ 'ॐ ह्रीं क्लीं ऐं मनसा देव्यै स्वाहा' यही मूलमन्त्र है । इसका पाँच लाख जप करने से मन्त्र की सिद्धि हो जाती है ॥६॥ जिसको इस मन्त्र की सिद्धि हो जाती है वह मनुष्य संसार में सिद्ध हो जाता है । उसके लिए विष अमृत के समान तथा वह स्वयं धन्वन्तरि के समान हो जाता है ॥७॥ हे ब्रह्मन् ! संक्रान्ति के दिन गूढशालाओं में जगत् की स्वामिनी देवी का आवाह्न करके उनका पूजन जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक करता है ॥८॥ मन से मनसा देवी का ध्यान करके देवी को बलि चढ़ाता है, वह धनवान् तथा पुत्रों एवं पौत्रों से कीर्तिमान हो जाता है ॥९॥ इस तरह से मैंने मनसा देवी की पूजा का विधान आपको सुनाया अब आप इनके चरित को सुनिये । हे महाभाग जो मैंने अपने पिता धर्म के मुख से सुना है, उसे मैं कह रहा हूँ ॥१०॥ प्राचीन काल में पृथिवी के सभी मानव नागों के भय से भयभीत हो गये । वे सब के सब कश्यप मुनि की शरण में गये ॥११॥ यह सुनकर कश्यपजी भी भयभीत हो गये । उन्होंने ब्रह्माजी के साथ मन्त्रों की सृष्टि की । उसमें वेदबीज के अनुसार ब्रह्माजी उपदेश करने वाले थे॥१२॥ उन्होंने मन्त्र की अधिष्ठातृ देवी के रूप में मनसा देवी की मन से सृष्टि की । मन तथा तपस्या के द्वारा रची जाने के कारण इस देवी का नाम मनसा हुआ ॥१३॥ उत्पन्न होने के बाद ये देवी जब कुमारी थीं उसी समय शंकरजी के लोक में चली गयीं । कैलास पर इन्होंने चन्द्रशेखर भगवान् शंकर की पूजा करके स्तुति की ॥१४॥ मुनिकुमारी मनसा देवी ने देवताओं के एक हजार वर्ष तक शंकरजी की आराधना की । उसके कारण आशुतोष

साम च । कृष्णमंत्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१६॥ लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं ततः । त्रैलोक्यमंगलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ॥१७॥ पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसंमतम् । प्राप्य मृत्युंजयन्मंत्रं सा सती च मुनेः सुता ॥१८॥ जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शंकराज्ञया । त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥१९॥ सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् । दृष्ट्वा कृशांगीं बालां च कृपया च कृपानिधिः ॥२०॥ पूजा च कारयामास चकार च स्वयं हरिः । वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ॥२१॥ वरं दत्त्वा च कल्याण्यै ततश्चांतर्दधे हरिः । प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ॥२२॥ द्वितीये शंकरेणैव कश्यपेन सुरेण च । मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः ॥२३॥ बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता । जरत्कारुमुनींद्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा ॥२४॥ अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया । कृत्वोद्वाहोमहायोगी विश्रांतस्तपसा चिरम् ॥२५॥ सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे । निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् ॥२६॥ जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थिते । संचिंत्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता ॥२७॥ धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती । अकृत्वा पिश्चमां संध्यां नित्यां चैव

शंकरजी प्रसन्न हो गये ॥१५॥ उन्होंने मनसा देवी को ज्ञान प्रदान करके उन्हें सामवेद को पढ़ाया । उन्हें शंकरजी ने कल्पतरु के समान फल प्रदान करने वाले भगवान् कृष्ण का अष्टाक्षर मन्त्र दिया ॥१६॥ लक्ष्मीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) तथा कामबीज (क्लीं) के बाद चतुर्थी एकचनान्त कृष्ण शब्द के साथ (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः) इस मन्त्र को मनसा को प्रदान करके त्रैलोक्य मङ्गल नामक कवच पूजन का क्रम बतलाया ॥१७॥ उसके बाद वेदोक्त तथा सर्वसम्मत पुरश्चरण के क्रम से मृत्युञ्जय मन्त्र को प्राप्त करके मुनि पुत्री मनसा देवी ॥१८॥ भगवान् शंकर की आज्ञा से तपस्या करने के लिए पुष्कर क्षेत्र में चली गयीं । वहाँ उन्होंने तीन युगों तक भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या की ॥१९॥ उसके बाद मनसा देवी सिद्ध हो गयीं । उन्होंने अपने सामने श्रीहरि का दर्शन किया । श्रीभगवान् ने मनसा देवी के ऊपर अपनी कृपादृष्टि डाली ॥२०॥ श्रीहरि ने दूसरे लोगों से मनसा देवी की पूजा करायी और स्वयं भी उनकी पूजा की । फिर उन्होंने मनसा देवी को वरदान दिया कि तुम संसार में पूजित होओ ॥२१॥ कल्याणी मनसा देवी को वरदान देकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये । इस तरह मनसा देवी सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण से पूजित हुईं ॥२२॥ दूसरी बार वे शंकरजी के द्वारा तथा कश्यप महर्षि, देवता, मुनियों, मनु, नाग तथा मानवों आदि से पूजित हुईं ॥२३॥ इसके बाद मनसा देवी त्रैलोक्य में पूजित हो गयीं । इसके बाद कश्यप मुनि ने मनसा देवी का विवाह जरत्कारु मुनि से कर दिया । ब्रह्माजी की आज्ञा से जरत्कारु मुनि ने मनसा देवी को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया । विवाह करने के बाद महायोगी दीर्घकाल तक तपस्या करने के बाद एक दिन मनसा देवी के जंघे पर शिर रखकर पुष्कर तीर्थ में वटवृक्ष के नीचे सो रहे थे । वे निद्रा के स्वामी श्रीभगवान् का स्मरण करके सो गये ॥२५-२६॥ इतने में सायंकाल की बेला हो गयी और सूर्य अस्त हो गये । मनसा देवी परम साध्वी पतिव्रत नारी थीं ॥२७॥ महर्षि

द्विजन्मनाम् ॥२८॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम । नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥२९॥ स सर्वत्राशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत् । वेदोक्तमिति संञ्चिंत्य बोधयामास सुन्दरी ॥३०॥ स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने । मुनिरुवाच– **कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभंगः कृतस्त्वया ॥३१॥ व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी । तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् ॥३२॥ भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् । यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ॥३३॥ पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपो हरिः स्वयम् । सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ॥३४॥ सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत् । सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् ॥३५॥ तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् । पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या ॥३६॥ वैकुण्ठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम् । विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् ॥३७॥ असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति । कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥३८॥ ततो भवति चांडाली पतिपुत्रविवर्जिता । इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः ॥३९॥ चकंपे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम् ।** साध्व्युवाच– **संध्यालोपभयेनैव**

जरत्कारु के धर्मलोप के भय से विचार करने लगीं कि मेरे ब्राह्मण पति को सायंसन्ध्या नहीं करने से तो ब्रह्महत्या आदि का दोष लग जायेगा । जो ब्राह्मण न तो प्रातः सन्ध्या करता है और न सायंसन्ध्या करता है, उसको ब्रह्महत्या आदि का पाप लगता है ॥२८-२९॥ वह सभी कर्मों के लिए अपवित्र हो जाता है । इस वेद वाणी का विचार करके सुन्दरी मनसा देवी ने मुनि को जगा दिया ॥३०॥ जगने के बाद वे श्रेष्ठ मुनि मनसा देवी पर बहुत क्रोध किए । **मुनि ने कहा–** हे साध्वि ! जब मैं सुखपूर्वक सो रहा था तो तुमने मुझे क्यों जगा दिया ?॥३१॥ पति का अपकार करने वाली नारी के समस्त व्रत इत्यादि व्यर्थ होते हैं । उसके द्वारा की गयी तपस्या, उपवास, व्रत तथा दान सब व्यर्थ हो जाते हैं ॥३२॥ अपने पतिं के प्रतिकूल कार्य करने वाली का सब कुछ निष्फल होता है । जो नारी अपने पति की पूजा करती है, उसको भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने का फल प्राप्त होता है ॥३३॥ पतिव्रता नारी के लिए उसके पति ही भगवान् होते हैं । उनकी सेवा से उसे सभी दानों, सभी यज्ञों, सभी तीर्थों की सेवा करने का फल मिल जाता है ॥३४॥ जितने भी व्रत, तपस्या, उपवास है उन सबों का फल, सभी धर्मों का फल, सभी देवताओं की पूजा का फल ॥३५॥ भारत वर्ष में अपने पति की सेवा करने से सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होते हैं ॥३६॥ पतिव्रता नारी अपने पति के साथ वैकुण्ठ में जाकर श्रीहरि के चरण में स्थान प्राप्त करती है । अपने पति के प्रतिकूल आचरण करने वाली तथा पति को अप्रिय बातें कहने वाली नारी ॥३७॥ असद्वंश में जन्म लेती है । वह कुम्भीपाक नामक नरक में तब तक निवास करती है, जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं ॥३८॥ उसके बाद उसका जन्म चाण्डाल के घर में होता है और वह पुत्र तथा पति से विहीन होती

निद्राभंगः कृतस्तव ॥४०॥ कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत । शृंगाराहारनिद्राणां यश्च भंगं करोति हि ॥४१॥ स व्रजेत्कालसूत्रं वै यावच्चन्द्रदिवाकरौ । इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे ॥४२॥ पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः । कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् ॥४३॥ तत्राजगाम भगवान्संध्यया सह नारद । तत्रागत्य मुनिं सम्यगुवाच भास्करः स्वयम् ॥४४॥ विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम् । भास्कर उवाच– सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च ॥४५॥ बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः । क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन्मां शप्तुं नोचितं मुने ॥४६॥ ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा । तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च ततो भस्म भवेज्जगत् ॥४७॥ पुनः स्त्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः । ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा ॥४८॥ श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह ॥४९॥ सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् । तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च ॥५०॥ रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता । सा सस्मार गुरुं शंभुमिष्टदेवं विधिं हरिम् ॥५१॥ कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता । तत्राजगाम गोपीशो

है । इस तरह से कहने के बाद मुनि जरत्कारु का ओष्ठ क्रोध से काँपने लगा ॥३९॥ यह देखकर वह देवी भय से काँपने लगी और उन्होंने अपने पति से कहा । **साध्वी ने कहा–** आपकी संध्या के लोप के भय से मैंने आपको जगाया है ॥४०॥ शृङ्गार, आहार और निद्रा में जो संध्या को भंग करता है ॥४१॥ उस व्यक्ति को कालसूत्र नामक नरक में जाना पड़ता है । और उस नरक में उसे तब तक रहना पड़ता है, जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं । यह कहकर मनसा देवी अपने पति के चरणों पर गिर पड़ीं ॥४२॥ और भयभीत होकर बार-बार रोने लगीं । इसके बाद क्रुद्ध होकर मुनि सूर्य को शाप देने के लिए तैयार हो गये । उसी समय वहाँ श्रीभगवान् सन्ध्या देवी के साथ आ गये । और स्वयं सूर्य ने मुनि से नम्रता पूर्वक कहा ॥४३-४४॥ **सूर्य ने कहा–** हे विप्र ! सूर्यास्त के समय को देखकर साध्वी ने धर्म के भय से आपको जगाया है ॥४५॥ मैं आपकी शरणागति करता हूँ । अतएव हे ब्रह्मन् ! आप मुझे क्षमा करें । मुझे शाप देना उचित नहीं है ॥४६॥ ब्राह्मणों का हृदय तो नवनीत के समान कोमल होता है । ब्राह्मणों का क्षण भर के लिए भी क्रोध संसार को भस्म कर सकता है ॥४७॥ ब्राह्मण पुनः सृष्टि कर सकता है । ब्राह्मण से बढ़कर कोई तेजस्वी नहीं है । ब्रह्मतेज से प्रकाशित होने वाला ब्राह्मण ब्रह्म का वंश होता है ॥४८॥ उसे तो सनातन ब्रह्मज्योति श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए । सूर्य की बातें सुनकर मुनि जरत्कारु प्रसन्न हो गये ॥४९॥ ब्राह्मण का आशीर्वाद पाकर सूर्य अपने स्थान पर चले गये । जरत्कारु मुनि अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए रोती हुई शोकसंतप्त पत्नी का दुःखी मन से त्याग कर दिए । मनसा ने अपने इष्टदेव शंकरजी को तथा ब्रह्मा एवं श्रीहरि का स्मरण किया ॥५०-५१॥ पति के भय से दुःखी होकर उसने अपने

भगवाञ्छंभुरेव च ॥५२॥ विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिंतितः । दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥५३॥ तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः । नमश्चकार शंभुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा ॥५४॥ कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः । ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम् ॥५५॥ प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदांबुजम् । यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती ॥५६॥ कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्त्रीधर्मपालनाय वै । जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने ॥५७॥ अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम् । स्त्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथा जलम् ॥५८॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः । चकार नाभिसंस्पर्शं योगेन मंत्रपूर्वकम् ॥५९॥ मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम् । जरत्कारुरुवाच– **गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति ॥६०॥ जितेंद्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः । तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः ॥६१॥ वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा । स च पुत्रो विष्णुसक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत् ॥६२॥ नृत्यंति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा । पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी ॥६३॥ धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलस्त्रीः कुलपालिका । हरिभक्तिप्रदो बंधुर्न चाभीष्टसुखप्रदः ॥६४॥ यो बंधुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः । सा गर्भधारिणी या च गर्भावासविमोचनी ॥६५॥ दयारूपा च भगिनी**

पिता कश्यप मुनि का स्मरण किया । मनसा के याद करते ही श्रीकृष्ण, शंकरजी ॥५२॥ ब्रह्माजी तथा कश्यप महर्षि वहाँ पर आ गये । प्रकृति से परे निर्गुण अपने इष्टदेव को देखकर ॥५३॥ ब्राह्मण जरत्कारु मुनि ने परम भक्ति से उनकी स्तुति की और बार-बार नमस्कार किया । उन्होंने शंकरजी, ब्रह्माजी तथा कश्यप महर्षि को भी नमस्कार किया ॥५४॥ उन्होंने पूछा हे देवों ! आपलोगों का आगमन किस प्रयोजन से हुआ है ? ब्रह्माजी ने उस समयोचित प्रश्न को सुनकर सहसा ॥५५॥ श्रीहरि को नमस्कार करके कहा– यदि आपने अपनी धार्मिक पत्नी का परित्याग किया है ॥५६॥ तो आप स्त्रीधर्म का पालन करने के लिए उसमें पुत्र उत्पन्न कीजिये । हे मुने ! पहले पुत्र को उत्पन्न करके ही पत्नी का परित्याग करना चाहिए ॥५७॥ जो रागरहित व्यक्ति पुत्र उत्पन्न किए विना ही अपनी प्रियतमा पत्नी का परित्याग करता है उसका पुण्य उसी तरह से नष्ट हो जाता है । जिस तरह चलनी में रखा हुआ जल बह जाता है ॥५८॥ ब्रह्माजी की बात को सुनकर मुनीश्वर जरत्कारु ने मन्त्र पूर्वक मनसा की नाभि का स्पर्श किया ॥५९॥ और मनसा से उन्होंने कहा मनसे ! तुम्हारे इस गर्भ से तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा ॥६०॥ वह जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, धार्मिक तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण होगा । वह तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी तथा गुणी होगा ॥६१॥ वह वेदज्ञों, ज्ञानियों तथा योगियों में श्रेष्ठ होगा । वह तुम्हारा धार्मिक पुत्र अपने वंश का उद्धार करेगा ॥६२॥ ऐसे योग्य पुत्र के उत्पन्न होने से पितृगण आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगते हैं । जो स्त्री पतिव्रता तथा सुशीला तथा प्रियवादिनी होती है, वही प्रिया होती है ॥६३॥ पुत्र की धार्मिक माता कुल

यमभीतिविमोचनी । विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥६६॥ गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम् । आब्रह्मस्तंबपर्यंतं यतो विश्वं
चराचरम् ॥६७॥ आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः । वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम् ॥६८॥ तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडंबनम्।
दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः ॥६९॥ ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बंधदः । विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति हि यो
गुरुः॥७०॥ स रिपुः शिष्यघाती च यतो बंधान्न मोचयेत् । जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा ॥७१॥ न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि
बांधवः । परमानंदरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम् ॥७२॥ न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बान्धवो नृणाम् । भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च
निर्गुणम्॥७३॥ निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया । मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये ॥७४॥ क्षमायुतानां साध्वीनां सत्वात्क्रोधो
न विद्यते । पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम् ॥७५॥ श्रीकृष्णचरणांभोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः । जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा

स्त्री श्री और कुल का पालन करने वाली होती है । अभीष्ट सुख प्रदान करने वाला नहीं अपितु श्रीहरि को प्रदान करने वाला बन्धु कहलाता है ॥६४॥
श्रीहरि का मार्ग दिखाने वाला बन्धु ही पिता होता है । जो गर्भ में निवासजन्य कष्ट को दूर करने वाले गर्भ को धारण करे वही नारी वस्तुतः गर्भिणी होती
है । जो नारी यम के भय को दूर करे वही दया करने वाली भागिनी है । भगवान् विष्णु के मन्त्र को देकर भगवान् विष्णु की भक्ति को प्रदान करने वाला ही गुरु
होता है ॥६५-६६॥ जिस दान से भगवान् कृष्ण के चिन्तन की भावना उत्पन्न हो उस ज्ञान को ही देने वाला गुरु होता है । उनसे ही एक स्तम्ब से लेकर
ब्रह्मा तक सम्पूर्ण विश्व उद्भूत है ॥६७॥ उन भगवान् विष्णु में ही सारा जगत् तिरोहित होता है, अतएव उस ज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान कौन हो सकता
है ? श्रीहरि की सेवा करना ही वैदिक एवं यज्ञजन्य ज्ञान का सार है ॥६८॥ यही तत्त्वों का सार है । श्रीहरि को छोड़कर सबकुछ विडम्बना मात्र है ।
इस तरह से मैंने तुम्हें ज्ञान का उपदेश किया है । ज्ञानोपदेश करने वाला ही वस्तुतः स्वामी होता है ॥६९॥ ज्ञान से ही मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्त
होता है जिससे संसार का बन्धन हो वह तो शत्रु होता है जो भगवान् विष्णु की भक्ति से युक्त ज्ञान प्रदान करता है वही गुरु है ॥७०॥ जो गुरु शिष्य
को संसार के बन्धन से मुक्त नहीं करता है, वही शत्रु है और शिष्यघाती है । जो गर्भ में होने वाली क्लेश से मुक्ति नहीं दिलाता है, तथा यमयातना से
मुक्ति नहीं दिलाता है ॥७१॥ वह गुरु, बान्धव अथवा पिता कैसे हो सकता है ? जो परमानन्द स्वरूप भगवान् कृष्ण की प्राप्ति का मार्ग ॥७२॥ नहीं दिखाता
है वह मनुष्यों का बान्धव कैसे हो सकता है ? हे साध्वि तुम निर्गुण, अच्युत कृष्ण की आराधना करो ॥७३॥ उन भगवान् की सेवा करने से कर्म निर्मूल हो
जाता है। मैंने छल पूर्वक तुम्हारा त्याग किया है इसके लिए तुम मुझे क्षमा कर दो ॥७४॥ साध्वी स्त्रियाँ क्षमाशील होती हैं । उनमें सत्त्वगुण की प्रधानता होती
है अतएव उनमें क्रोध नहीं होता है । मैं तपस्या करने के लिए पुष्कर क्षेत्र जा रहा हूँ । तुम अब यहाँ से जा सकती हो ॥७५॥ निष्पृह व्यक्ति की एक मात्र

शोककातरा ॥७६॥ साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम् । मनसोवाच– **दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभंगेन ते प्रभो ॥७७॥ यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि । बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम् ॥७८॥ प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः । पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं प्रियः ॥७९॥ सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः । पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरो ॥८०॥ नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले । क्षुधितानां यथाऽन्ने च कामुकानां च मैथुने ॥८१॥ यथा परस्वे चोराणां यथा जारे कुयोषिताम् । विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ॥८२॥ तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभौ । इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे ॥८३॥ क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः । नेत्रोदकेन मनसा स्नापयामास तां मुनिः ॥८४॥ साश्रुनेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा । तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ संबभूवतुः ॥८५॥ स्मारं स्मारं पदांभोजं कृष्णस्य परमात्मनः । जगाम तपसे विप्रः स्वकान्तां संप्रबोध्य च ॥८६॥ जगाम मनसा**

स्पृहा श्रीभगवान् के चरण कमलों को प्राप्त करने की होती है । शोक से कातर बनी हुई मनसा ने जरत्कारु महर्षि की वाणी को सुना ॥७६॥ उसने अपनी आँखों में आँसू भरकर अपने पति से कहा । **मनसा देवी ने कहा–** आपके निद्राभंग के कारण मुझे त्यागने में मेरा कोई दोष नहीं है ॥७७॥ अतएव मैं जहाँ कहीं भी आपका स्मरण करूँगी वहाँ आप मेरे पास आ जायेंगे । अपने बन्धु का विलगाव कष्टप्रद होता है । पुत्र का विलगाव होना उससे भी अधिक कष्टप्रद होता है ॥७८॥ पतिदेव का विलगाव तो प्राण निकलने के समान होने के कारण सर्वाधिक कष्टप्रद होता है । अतएव पतिव्रता स्त्री के लिए उसका पति पुत्रों की अपेक्षा सौ गुना प्रिय होता है ॥७९॥ स्त्रियों के लिए सबसे अधिक प्रिय होने के कारण उसे विद्वानों ने पत्नी का प्रिय कहा है । हे प्रभो ! जिस तरह एक पुत्र वाले लोगों का अपने पुत्र में ही मन लगा रहता है, अथवा श्रीवैष्णवों का मन श्रीहरि में लगा रहता है ॥८०॥ या जिस तरह एक आँख वाले व्यक्ति को अपनी आँख के प्रति व्यामोह होता है, या जैसे प्यासे व्यक्ति को जल में प्रेम होता है, या भूखे व्यक्तियों को अन्न प्राप्त करने के लिए जिस तरह से अन्न में मन लगा रहता है, कामुकों का मन मैथुन में लगा रहता है ॥८१॥ जैसे चोरों का मन दूसरे की सम्पत्ति में लगा रहता है, अथवा जिस तरह कुलटा स्त्रियों का मन अपने जारपुरुष (प्रेमी) में लगा रहता है, या जिस तरह विद्वानों का मन सदा शास्त्र में लगा रहता है, या व्यापारियों का मन जैसे व्यापार में लगा रहता है ॥८२॥ उसी तरह साध्वी स्त्रियों का मन सदा अपने पति में ही लगा रहता है । इतना कहकर मनसा अपने पतिदेव के चरणों पर गिर पड़ी ॥८३॥ यह देखकर कृपासागर जरत्कारु महर्षि ने कुछ देर के लिए मनसा देवी को अपनी गोद में बैठा लिया और उन्होंने अपने आँसुओं के जल से उन्हें नहवा दिया ॥८४॥ विलगाव के भय से कातर बनी हुई मनसा देवी ने भी मुनि की गोद को अपने आँसुओं से सींच दिया । उसके बाद वे दोनों ज्ञान का आश्रय लेंकर शोक रहित हो गये ॥८५॥ उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का बार-बार स्मरण करके महर्षि जरत्कारु

शंभोः कैलासं मन्दिरं गुरोः । पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम् ॥८७॥ शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः । सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गलक्षणे ॥८८॥ नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम् । गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शंकरवक्त्रतः ॥८९॥ संबभूव च योगींद्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः । जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् ॥९०॥ वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः । मणिरत्नकिरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः ॥९१॥ पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च । शंभुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा ॥९२॥ बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युंजयं परम् । भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा ॥९३॥ यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च । जगाम तपसे विष्णो पुष्करं शंकराज्ञया ॥९४॥ संप्राप्य च महामन्त्रं ततश्च परमात्मनः । दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः ॥९५॥ आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम् । शंकरं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः ॥९६॥ सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितुः । तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः॥९७॥ शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने । ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः ॥९८॥ अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं

अपनी पत्नी को अश्वासन देकर तपस्या करने के लिए चले गये ॥८६॥ और मनसा देवी अपने गुरु भगवान् शंकर के निवास स्थान कैलास में चली गयी। शोक से संतप्त मनसा को पार्वतीजी ने सान्त्वना प्रदान किया ॥८७॥ भगवान् शंकर ने भी मनसा को ज्ञान प्रदान किया । इसके बाद जब शुभ दिन आया तो अत्यन्त प्रशस्त वेला में साध्वी मनसा ने अपने पुत्र को जन्म दिया ॥८८॥ वह बालक भगवान् नारायण का अंश था । वह योगियों तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ हुआ । वह अपनी माता के गर्भ में रहने के समय ही भगवान् शंकर के मुख से महाज्ञान की बातें सुन चुका था । वह योगीन्द्र तथा ज्ञानियों का भी गुरु बन गया । भगवान् शंकर ने उस बालक का जातकर्म संस्कार आदि कराकर उसका माङ्गलिक संस्कार कराया ॥८९-९०॥ उस बालक का कल्याण करने के लिए स्वयं भगवान् शंकर ने उसे वेदों को पढ़ाया और ब्राह्मणों को भगवान् शंकर ने मणि तथा रत्न निर्मित किरीट प्रदान किया ॥९१॥ पार्वती ने भी एक लाख गौ तथा अनेक प्रकार के रत्नों का दान किया । स्वयं भगवान् शंकर उसे वेदों तथा दूसरे वेदाङ्गों को पढ़ाते रहे ॥९२॥ मृत्युञ्जय शिव ने उस बालक को श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश दिया । उसके फलस्वरूप चूकि मनसा देवी की अपने पति, इष्टदेव तथा अपने गुरु में अत्यधिक भक्ति थी अतएव उसके पुत्र का नाम आस्तीक हुआ । वह बालक भगवान् शंकर की आज्ञा प्राप्त करके पुष्कर क्षेत्र में तपस्या करने के लिए चला गया ॥९३-९४॥ वह बालक भगवान् श्रीकृष्ण के महामन्त्र को प्राप्त करके देवताओं के तीन लाख वर्ष तक तपस्या किया ॥९५॥ इसके बाद वह महायोगी भगवान् शंकर को प्रणाम करने के लिए कैलास आया और भगवान् शंकर को प्रणाम करके वहीं ठहर गया ॥९६॥ उसको लेकर मनसा देवी अपने पिता महर्षि कश्यप के आश्रम में आयीं । मनसा को उनके पुत्र के साथ देखकर प्रजापति महर्षि कश्यप प्रसन्न हो गये ॥९७॥ उन्होंने ब्राह्मणों को सौ लाख रत्नों का दान दिया

प्राप परंतप । सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये तदा ॥९९॥ तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय । अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते॥१००॥ बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा । सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति ॥१०१॥ शशाप शृङ्गी तत्रैव कौशिक्याश्च जलेन वै । राजा श्रुत्वा तत्प्रवृतिं निर्वातस्थानमागतः ॥१०२॥ तत्र तस्थौ च सप्ताहं देहरक्षणतत्परः । सप्ताहे समतीते तु गच्छंतं तक्षकं पथि॥१०३॥ धन्वंतरिर्नृपं मोक्तुं ददर्श गामुकः पथि । तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम् ॥१०४॥ धन्वंतरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ। स ययौ तं गृहीत्वा तु संतुष्टो हृष्टमानसः ॥१०५॥ तक्षको भक्षयामास नृपं तं मञ्चके स्थितम् । राजा जगाम तरसा देहं त्यक्त्वा परत्र च॥१०६॥ संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः । राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने ॥१०७॥ प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा। तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ ॥१०८॥ सेन्द्रं च तक्षकं हंतुं विप्रवर्गः समुद्यतः । अथ देवाश्च सेंद्राश्च संजग्मुर्मनसान्तिकम् ॥१०९॥ तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः । तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया ॥११०॥ महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं परम् । ददौ वरं नृपश्रेष्ठः

और उस बालक के कल्याण के लिए असंख्य ब्राह्मणों को भोजन कराया ॥९८॥ हे परन्तप नारदजी ! उन दोनों को देखकर महर्षि कश्यप की अदिति तथा दिति नामक दोनों पत्नियाँ प्रसन्न हो गयीं । मनसा देवी भी अपने पिता के घर दीर्घकाल तक रहीं ॥९९॥ उसके विषय में मैं अभी दूसरी कथा सुना रहा हूँ उसे आप सुनें । उसके बाद अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को ब्राह्मण का शाप मिल गया ॥१००॥ हे ब्रह्मन् ! दुर्दैव के कारण वह शाप ऐसा हो गया कि परीक्षित उस शाप से शीघ्र ही ग्रस्त हो गये । सप्ताह बितते ही तक्षक तुमको जलाकर भस्म कर देगा । इस तरह से शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी के जल को लेकर राजा परीक्षित को शाप दे दिया था । इस शाप को सुनकर राजा परीक्षित अत्यन्त सुरक्षित स्थान पर चले गये ॥१०१-१०२॥ वे अपने देह की रक्षा में सदा सावधान रहकर एक सप्ताह तक वहीं बने रहे । एक सप्ताह बीतने पर धन्वन्तरि नामक वैद्य राजा को सर्प के विष से बचाने के लिए जा रहे थे । धन्वन्तरि ने रास्ते में जाते हुए तक्षक को देखा । उन दोनों में बातें हुयीं और दोनों में प्रेम भी हो गया ॥१०३-१०४॥ तच्छक ने अपनी इच्छा से धन्वन्तरि को मणि प्रदान कर दिया और उस मणि को लेकर धन्वन्तरि सन्तुष्ट होकर लौट गये ॥१०५॥ राजा जब अपनी आटारी पर ही बैठे थे उसी समय तक्षक ने उनको जाकर काट लिया राजा शीघ्र ही अपने शरीर का परित्याग करके परलोक चले गये ॥१०६॥ जनमेजय ने अपने पिता का दाह संस्कार कराया । हे मुने ! उसके बाद राजा जनमेजय ने सर्पसत्र किया ॥१०७॥ उस यज्ञ में अनेक सर्पों के प्राण चले गये । ब्रह्मतेज के कारण भयभीत होकर तक्षक इन्द्र के शरण में चला गया ॥१०८॥ ब्राह्मणों का समूह इन्द्र के साथ तक्षक को मारने के लिए उद्यत हो गया । इसके बाद देवता और इन्द्र

कृपया ब्राह्मणाज्ञया ॥१११॥ यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा । विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम् ॥११२॥ मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक् । शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥११३॥ मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात् । नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा ॥११४॥ प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया । संपूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते ॥११५॥ इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । नारद उवाच– **केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम् ॥११६॥ पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।** श्रीनारायण उवाच– **सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी ॥११७॥ रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः । स्वर्गंगाया जलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च ॥११८॥ स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः । वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे ॥११९॥ सर्वाङ्गे चन्दनं कृत्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः । गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ॥१२०॥ संपूज्यादौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम् । ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः ॥१२१॥ दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम् । दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायकः ॥१२२॥ पूजयामास**

मनसा देवी के पास गये । भयभीत होकर इन्द्र ने विह्वल होकर मनसा की स्तुति की । उसके बाद आस्तीक अपनी माता की आज्ञा से उस यज्ञ में आये ॥१०९-११०॥ उन्होंने राजा जनमेजय से इन्द्र और तक्षक के प्राण की याचना की । ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर राजा जनमेजय ने उसे देने के लिए स्वीकार कर लिया ॥१११॥ राजा ने उस यज्ञ को समाप्त करके ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक दक्षिणा दे दी । ब्राह्मण, मुनिजन तथा देवता मनसा देवी के सन्निकट गये ॥११२॥ मनसा देवी की सबलोगों ने पूजा की । इन्द्र ने पूजन सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक अत्यन्त आदर से मनसा देवी की पूजा किया और मनसा देवी को प्रसन्न करने के लिए बलि प्रदान किया ॥११४॥ उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की आज्ञा से मनसा देवी को बलि प्रदान करके तथा पूजा करके अपने घर चले गये ॥११५॥ इस तरह से मैंने आपको मनसा देवी की सम्पूर्ण कथा को सुनाया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?। **नारदजी ने कहा–** इन्द्र ने किस स्तोत्र के द्वारा मनसा देवी की स्तुति की ॥११६॥ मैं मनसा देवी की पूजा की विधि और उसके क्रम को सुनना चाहता हूँ । **नारायण ने कहा–** स्नान करके पवित्र होकर इन्द्र ने आचमन किया फिर दो वस्त्रों को धारण किया ॥११७॥ उन्होंने भक्तिपूर्वक मनसा देवी को रत्नसिंहासन पर बैठाया और रत्न के घड़े में स्थित स्वर्गङ्गा के जल से उनको स्नान कराया ॥११८॥ महेन्द्र ने वेदमन्त्र से मनसा देवी को स्नान कराया । उन्होंने मनसा देवी को अग्निशौच तथा मनोहर दो वस्त्रों को धारण कराया ॥११९॥ उनके सम्पूर्ण अङ्गों में चन्दन लगाकर भक्तिपूर्वक पाद्य तथा अर्ध्यप्रदान किया । उसके बाद उन्होंने गणेशजी, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव एवं शिवा ॥१२०॥ इन छः देवताओं की उसी तरह से पूजा की इसके बाद मनसा देवी की उन्होंने पूजा की । ॐ ह्रीं श्रीं मनसा देव्यै स्वाहा इस मन्त्र से उन्होंने पूजा की ॥१२१॥ इस दशाक्षर मन्त्र से उन्होंने पूजा की सारी वस्तुएँ प्रदान की । मनसा देवी

भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो मुदा । वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै ॥१२३॥ बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि । देवप्रियाज्ञया तत्र
ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया ॥१२४॥ तुष्टाव साश्रुनेत्रैश्च पुलकाङ्कितविग्रहः । पुरंदर उवाच– देवि त्वां स्तोतुमिच्छामिं साध्वीनां प्रवरां वराम् ॥१२५॥
परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना । स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम् ॥१२६॥ न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसादिवर्जिता ॥१२७॥ न च शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः । त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे
यथाऽदितिः॥१२८॥ दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः । त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि ॥१२९॥ अहं करोमि त्वत्पूजां
प्रीतिश्च वर्धतां सदा । नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिके ॥१३०॥ तथापि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि । ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां
पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥१३१॥ पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिन दिने । पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥१३२॥ यशस्विनः
कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः । ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निंदन्त्यज्ञानतो जनाः ॥१३३॥ लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा । त्वं स्वयं
सर्वलक्ष्मीश्च वैकुण्ठे कमलालया ॥१३४॥ नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः । तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥१३५॥ अस्माकं

को षोडश उपचार प्रदान करके इन्द्र ने ॥१२२॥ भगवान् विष्णु से प्रेरित होकर पूजा की । उसके बाद उन्होंने वहाँ पर अनेक प्रकार के वाद्यों को
बजवाया॥१२३॥ उस समय मनसा देवी के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा हुई । इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की आज्ञा को प्राप्त करके इन्द्र ने
मनसा देवी की स्तुति की । उस समय इन्द्र के शरीर में रोमाञ्च हो गया था और उनकी आँखों में आसू भर गये थे । **इन्द्र ने कहा–** हे साध्वियों में श्रेष्ठ
मनसे देवि मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ ॥१२४-१२५॥ आप परम परात्पर हैं, मैं आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हूँ । आपके विषय में उपाख्यान
वेदों में वर्णित हैं और स्तोत्र का लक्षण भी वेदों में वर्णित है ॥१२६॥ हे प्रकृति स्वरूपिणि ! आपके गुणों की गणना करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । आप
शुद्ध सत्त्व स्वरूपा तथा कोप एवं हिंसा से रहित हैं ॥१२७॥ मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु ! आपको त्यागने में असमर्थ थे इसीलिए उन्होंने आप से क्षमा प्रार्थना
की थी । मैंने आपकी पूजा अपनी माता अदिति के समान की है ॥१२८॥ आप ब्रह्म के समान दयास्वरूपिणी हैं और माता के समान क्षमास्वरूपिणी हैं।
हे सुरेश्वरि ! आपने मेरे प्राणों की, पुत्र की तथा पत्नी की रक्षा की हैं ॥१२९॥ मैं आपकी पूजा इसलिए करता हूँ कि आपमें मेरी श्रद्धा बढ़ती रहे । हे
जगदम्बिके ! आप यद्यपि सर्वत्र पूज्या हैं ॥१३०॥ फिर भी हे सुरेश्वरि ! मैं आपकी पूजा को बढ़ाऊँगा । जो व्यक्ति आषाढ की संक्रान्ति के दिन आपकी
पूजा करेगा ॥१३१॥ अथवा मनसा पञ्चमी को अथवा प्रति मास के अन्त में आपकी पूजा करेगा उसके पुत्र, पौत्र तथा धन आदि की वृद्धि होगी ॥१३२॥
ऐसे लोग संसार में यशस्वी, कीर्तिमान, विद्यावान् तथा गुणवान् होंगे । जो लोग अज्ञान के कारण आपकी पूजा न करके आपकी निन्दा करते हैं ॥१३३॥
वे लोग दरिद्र होगें और उनको सदा नागों से भय बना रहेगा । आप स्वयं सर्वलक्ष्मी स्वरूप हैं तथा वैकुण्ठ में लक्ष्मी स्वरूप है ॥१३४॥

रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा । मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥१३६॥ तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भव । ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् ॥१३७॥ तेन त्वां मनसां देवीं प्रवदन्ति मनीषिणः । सत्यस्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात् ॥१३८॥ यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्तोऽतितत्परः । इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम् ॥१३९॥ प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम् । पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे ॥१४०॥ भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः । गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम् ॥१४१॥ तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम् । ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम् ॥१४२॥ तथा देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ । इदंस्तोत्रं पुण्यबीजं मनसा पूजयेत्पठेत् ॥१४३॥ तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च । विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत्॥१४४॥ पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः । सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः ॥१४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

भगवान् जरत्कारु भगवान् नारायण के अंश हैं । आपके पिता ने आपकी सृष्टि तपस्या, तेज तथा मन से की थी ॥१३५॥ हमलोगों की रक्षा करने के ही लिए ही आप मनसा देवी के नाम से प्रसिद्ध हैं और आप अपनी मानसी शक्ति के द्वारा सिद्धयोगिनी हैं ॥१३६॥ अतएव हे मनसा देवि ! आप पूजित एवं वन्दित होएँ । जो देवता आप मनसा देवी की निरन्तर पूजा करते हों उनके द्वारा आप पूजित एवं वन्दित हों । इसलिए मनीषी पुरुष आपको मनसा देवी कहते हैं । हे देवि ! आप सत्यस्वरूपा सदा सत्य का सेवन करने के कारण हैं ॥१३७-१३८॥ जो लोग आपका ध्यान करते हैं उनको आप अतिशीघ्र प्राप्त हो जाती हैं । इन्द्र ने मनसा देवी की स्तुति करके और भागिनी का वरदान प्राप्त करके ॥१३९॥ अनेक प्रकार के अलंकारों से अलंकृत अपने भवन में चले गये । मनसा देवी भी अपने पुत्र के साथ ही बहुत दिनों तक अपने पिता के ही गृह में रहीं ॥१४०॥ वहाँ उनके भाई उन्हें सदा वन्द्या तथा मान्या रूप से उनकी पूजा करते थे । वहाँ गोलोक से सुरभि गौ आयी और उस पूजिता ॥१४१॥ मनसा देवी का अपने दुग्ध से अभिषेक किया । और सभी गोप्य एवं दुर्लभ ज्ञानों का उन्हें उपदेश दिया ॥१४२॥ उसके बाद सुरभि गौ तथा देवताओं से पूजित होकर मनसा देवी स्वर्गलोक चली गयीं । यह स्तोत्र पुण्य का बीज है । इसके द्वारा सदा मनसा देवी की पूजा करनी चाहिए ॥१४३॥ ऐसे व्यक्ति को तथा उसके वंश में उत्पन्न होने वालों को सर्पों का भय नहीं रहता है ॥१४४॥ पाँच लाख जप करने से यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है । ऐसा मनुष्य सर्प पर सोने वाला तथा सर्पवाहन हो जाता है ॥१४५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अड़तालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

नारद उवाच– **का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या । तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा ॥२॥ सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय । बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥३॥ एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी । गोपाङ्गनापरिवृतो पुण्यं वृन्दावनं ययौ ॥४॥ सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥५॥ ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सो नाम मनोरथः ॥६॥ दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च । क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥७॥ तदुत्थं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम् । सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च ॥८॥ दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः ॥९॥ गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा । रत्नेन्द्ररचिता पूर्णं भूता चापीश्वरेच्छया ॥१०॥ बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । यावंतस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः ॥११॥ तासां पुत्राश्च बहवः संबभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं**

सुरभि गौ की कथा

नारदजी ने कहा– जो गोलोक से आयीं वे सुरभि देवी कौन है ? हे ब्रह्मन् ! मैं उन सुरभि देवी के जन्म की कथा सुनना चाहता हूँ ॥१॥ **नारायण ने कहा–** गौओं की अधिष्ठातृ देवी, आदि गौ, गौओं की माता, गौओं में प्रधान सुरभि गोलोक में उत्पन्न हुई थीं ॥२॥ मै उस सुरभि की जन्मकथा को आपको सुनाता हूँ । सुरभि का जन्म प्राचीन काल में वृन्दावन में हुआ ॥३॥ एक बार कौतुकवशात् राधिकापति गोपाङ्गनाओं के साथ वृन्दावन में गये ॥४॥ अचानक वे एकान्त में विहार करने लगे, श्रीभगवान् तो स्वेच्छामय हैं । उनकी इच्छा दूध पीने की हुई ॥५॥ वे लीलापूर्वक अपने वामपार्श्व से सुरभि की सृष्टि कर दिये । सुरभि दुग्ध से युक्त थीं । उनके साथ उनका बछड़ा था उसका नाम मनोरथ था ॥६॥ वत्स के साथ सुरभि को देखकर श्रीदामा ने नवीन पात्र में उसको दूहा । वह दूध जन्म, मृत्यु तथा जरा को दूर करने वाला दूसरा अमृत ही था ॥७॥ वह दूध अत्यन्त स्वादिष्ट था उसको भगवान् श्रीकृष्ण ने पिया । अचानक दूध का पात्र हाथ से गिरकर फूट गया वही सरोवर बन गया ॥८॥ वह सरोवर सौ योजन लम्बा चौड़ा हो गया । गोलोक में वह क्षीर सरोवर के नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥९॥ वही गोपियों तथा श्रीराधा का क्रीडा सरोवर बन गया । श्रीभगवान् की इच्छा से उसके चारो ओर रत्नों से घाट बनाया गया ॥१०॥ उसके बाद वहाँ लाख करोड कामधेनुएँ उत्पन्न हो गयीं । सुरभि के रोमकूप से उतने ही वहाँ गोप भी उत्पन्न हो गये ॥११॥ उन सभी

जगत् ॥१२॥ पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥१३॥ दीपान्विताऽपरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया
हरेः । बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥१४॥ ध्यानं स्तोत्रं मूलमंत्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि
ते॥१५॥ ॐ सुरभ्यै नम इति मंत्रस्तस्याः षडक्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥१६॥ ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः।
ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा ॥१७॥ लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥१८॥
पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभिं भजे ॥१९॥ घटे वा धेनुशिरसि बंधस्तंभे गवामपि । शालग्रामे
जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद्द्विजः ॥२०॥ दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि ॥२१॥ एकदा त्रिषु
लोकेषु वराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सुरभिश्चिन्तिताश्च सुरादयः ॥२२॥ ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा । तदाज्ञया च सुरभिं
तुष्टाव पाकशासनः ॥२३॥ पुरंदर उवाच– **नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः । गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदंबिक ॥२४॥ नमो**

सुरभि गायों के बहुत से पुत्र भी हो गये । इस तरह से मैंने गायों की सृष्टि बतलायी । उसी से यह सारा संसार भर गया ॥१२॥ हे नारदजी सुरभि की
सर्वप्रथम पूजा भगवान् श्रीकृष्ण ने की उसके बाद तीनों लोकों में सुरभि की पूजा होने लगी ॥१३॥ मैंने अपने पिता धर्म के मुख से सुना है कि भगवान्
श्रीकृष्ण की आज्ञा से दीपावलि के दूसरे दिन सुरभि की पूजा की गयी ॥१४॥ सुरभि का ध्यान, उसकी पूजा, उसका मूलमन्त्र तथा पूजाविधि वेदों में वर्णित
है, उसे आप सुन लें में कह रहा हूँ ॥१५॥ 'ॐ सुरभ्यै नमः' यह सुरभि का छह अक्षरों का मूलमन्त्र हैं । एक लाख जप करने से यह मन्त्र सिद्ध हो
जाता है यह भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान है ॥१६॥ उसका ध्यान और पूजा यजुर्वेद में पठित है । वह पूजा ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति तथा सभी कामनाओं
को पूर्ण करने वाला है । ध्यान– लक्ष्मी स्वरूपा, राधाजी की परम सहचरी, गौओं की अधिष्ठातृदेवी, अदि गौ, तथा गौओं की माता ॥१७-१८॥ पवित्र स्वरूप
वाली, पवित्र भक्तों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाली, सुरभि देवी हैं । उन्हीं सुरभि देवी की मैं आराधना करता हूँ ॥१९॥ घट में अथवा गौ के
शिर पर अथवा गौ के बाँधने के खूंटे पर शालग्राम के ऊपर, जल में, या अग्नि में, ब्राह्मण को सुरभि की पूजा करनी चाहिए ॥२०॥ दीपावलि के एक
दिन बाद में पूर्वाह्ण काल में भक्तिपूर्वक जो सुरभि की पूजा करता है, वह भी पूज्य हो जाता है ॥२१॥ एक बार वाराह कल्प में भगवान् विष्णु की
माया से तीनों लोकों में सुरभि ने दुग्ध देना बन्द कर दिया । उसके कारण सर्वत्र दुग्ध का अभाव हो गया । उसके कारण देवगण चिन्तित हो गये ॥२२॥
वे सब के सब ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी की स्तुति करने लगे । ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर इन्द्र ने सुरभि की स्तुति की ॥२३॥ **इन्द्र ने कहा–**

राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः । नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः ॥२५॥ कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे । क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥२६॥ शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः । यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः ॥२७॥ स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः । आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी ॥२८॥ महेंद्राय वरं दत्त्वा वांछितं चापि दुर्लभम् । जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् ॥२९॥ बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद । दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च ॥३०॥ इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा ॥३१॥ स स्नातः सर्वेतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यंते कृष्णमंदिरे॥३२॥ सुचिरं निवेसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम् । न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनपंचाशोध्यायः ॥४९॥

महादेवी, सुरभि देवी का बारम्बार नमस्कार है । गायों के बीज स्वरूप जगदम्बा को बारम्बार नमस्कार है ॥२४॥ राधाजी को प्रिय तथा लक्ष्मी के अंश स्वरूप को नमस्कार है । कृष्णप्रिया तथा गौओं की माता सुरभि देवी को नमस्कार है ॥२५॥ कल्पवृक्ष स्वरूपिणी दुग्ध देने वाली, धन देने वाली तथा बुद्धि देने वाली सुरभि देवी को नमस्कार हैं ॥२६॥ शुभस्वरूपा, कल्याण स्वरूपा गौओं को प्रदान करने वाली, यश को देने वाली कीर्ति को देने वाली, धर्म को देने वाली सुरभि देवी को नमस्कार है ॥२७॥ स्तोत्र करने मात्र से ही प्रसन्न तथा सन्तुष्ट होकर सनातनी जगन्माता ब्रह्मलोक में ही प्रकट हो गयी॥२८॥ उन्होंने इन्द्र को दुर्लभ तथा अभिप्रेत वरदान दिया और स्वयं वे गोलोक में चली गयीं तथा देवता अपने लोक में चले गये ॥२९॥ सहसा सारा संसार दुग्ध से परिपूर्ण हो गया । दुग्ध से घी उत्पन्न हुआ । उससे यज्ञ हुआ । यज्ञ से देवताओं को प्रसन्नता हुई ॥३०॥ अत्यन्त पवित्र इस स्तोत्र को जो कोई भी भक्ति पूर्वक पढ़ता है वह गौओं वाला, धनवान, कीर्तिमान तथा पुत्रवान होता है ॥३१॥ उसे सभी तीर्थों में स्नान करने का तथा सभी यज्ञों में दीक्षित होने का फल प्राप्त होता है । वह इस लोक में सुखों को भोगकर अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के लोक में जाता है ॥३२॥ वह वहाँ दीर्घकाल तक रहकर भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करता है । वह इस लोक में नहीं आता है । वह ब्रह्माजी का पुत्र हो जाता है ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच– **श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते जंतुर्जन्मसंसारबंधनात् ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं वेदगोपितम् । राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम् ॥२॥ महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः । श्रुत्वा तं तद्गतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर॥३॥ ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नियम्यं चराचरम् । ययोर्भक्त्या भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाधुना ॥४॥** श्रीनारायण उवाच– **शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम् । यन्न कस्यापि चाख्यातं सारात्सारं परापरम् ॥५॥ श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम् । मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे ॥६॥ प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम् । जीवानां चैव सर्वेषां नियंतृ प्रेरकं सदा ॥७॥ तदधीनं जगत्सर्वं विराडादिचराचरम्। यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः ॥८॥ ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम् । तत्रादौ राधिकामंत्रं शृणु नारद भक्तितः ॥९॥ ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः । श्रीराधेति चतुर्थ्यंतं वह्नेर्जाया ततः परम् ॥१०॥ षडक्षरो महामंत्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः । मायाबीजादिकश्चायं**

श्रीराधाजी तथा श्रीदुर्गाजी के स्तोत्र आदि का वर्णन

नारदजी ने कहा– मैंने प्रकृतियों के उपाख्यानों को ठीक-ठीक सुन लिया उसके सुनने मात्र से मनुष्य जन्म तथा संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१॥ अब मैं श्रीराधाजी के तथा श्रीदुर्गाजी के वेदों के रहस्य भूत मन्त्रादि को जानना चाहता हूँ ॥२॥ आपने इन दोनों देवियों की महिमा का बहुत वर्णन किया है, उसको सुनकर हे मुनीश्वर ! किसका मन उसे जानना नहीं चाहेगा ?॥३॥ यह सारा जगत् जिनका अंश है, तथा जिनका नियाम्य है । जिन देवियों की भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है, आप उसे ही हमें बतलाइयें ॥४॥ **नारायण ने कहा**– हे नारदजी ! आप सुने, मैं वेदोक्त रहस्य को बतला रहा हूँ । जो शास्त्रों का सर्वश्रेष्ठ सार है जिसको किसी को नहीं बतलाया गया हैं । जो परात्पर तत्त्व हैं ॥५॥ जो अत्यन्त रहस्यमय है, जिसको सुनकर किसी को नहीं बतलाना चाहिए ·। उस मूलप्रकृति रूपिणी भुवनेश्वरी से जगत् की उत्पत्ति के समय ॥६॥ दो शक्तियाँ पैदा हुईं । राधा और दुर्गा । राधा भगवान् श्रीकृष्ण के प्राण की अधिष्ठातृदेवी हैं, और दुर्गा उनकी बुद्धि की अधिष्ठातृदेवी हैं, ये दोनों शक्तियाँ सभी जीवों की नियामिका और प्रेरिका हैं ॥७॥ उन्हीं के अधीन विराट् से लेकर सम्पूर्ण चराचर है । जब तक उन दोनों शक्तियों की कृपा नहीं होती तब तक किसी को मोक्ष नहीं मिलता है ॥८॥ अतएव उन दोनों शक्तियों की कृपा प्राप्त करने के लिए उन दोनों की सेवा करनी चाहिए । हे नारदजी ! सर्वप्रथम आप राधिकाजी के मन्त्र को भक्तिपूर्वक सुनिए।॥९॥ इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप ब्रह्मा विष्णु आदि श्रेष्ठ देवताओं ने किया था । श्रीराधायै स्वाहा इस छह अक्षरों का मन्त्र धर्म आदि समस्त पुरुषार्थों का प्रकाशक

वांछाचिंतामणिः स्मृतः ॥११॥ वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि । एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥१२॥ जग्राह प्रथमं मंत्रं श्रीकृष्णो भक्तितत्परः । उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमंडले ॥१३॥ विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा विराट् तथा । तेन धर्मस्तेन चाहमित्येषा हि परम्परा ॥१४॥ अहं जपामि तं मन्त्रं तेनाहमृषिरीडितः । ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायन्ति तां मुदा ॥१५॥ कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना । वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥१६॥ कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः । रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥१७॥ राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद्राधेति कीर्तिता । अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिरस्म्यहमेव च ॥१८॥ छंदश्च देवी गायत्री देवताऽत्र च राधिका । तारा बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता ॥१९॥ मूलवृत्त्या षडंगानि कर्तव्यानीतरत्र च । अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम् ॥२०॥ पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे विगीतया । श्वेतचम्पकवर्णाभां शरदिंदुसमाननाम् ॥२१॥ कोटिचन्द्रप्रतीकाशां शरदांभोजलोचनाम्। बिंबाधरां पृथुश्रोणीं काञ्चीयुतनितंबिनीम् ॥२२॥ कुंदपंक्तिसमानाभदंतपंक्तिविराजिताम् । क्षौमाम्बरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् ॥२३॥ ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां

है । यदि इसके प्रारम्भ में मायाबीज 'ह्रीं' का प्रयोग करें तो यह राधाजी का वांछाचिन्तामणि मन्त्र बन जाता है ॥१०-११॥ इस मन्त्र की महिमा का वर्णन हजारों मुखों और सैकड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी नहीं किया जा सकता है ॥१२॥ इस मन्त्र को सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण ने भक्तिपूर्वक ग्रहण किया था । इस मंत्र का उपदेश मूल प्रकृति देवी ने गोलोक के रासमण्डल में भगवान् श्रीकृष्ण को दिया था ॥१३॥ उन्होंने इस मन्त्र का उपदेश भगवान् विष्णु को दिया और भगवान् विष्णु ने उस मन्त्र का उपदेश ब्रह्माजी को और विराट् को दिया । ब्रह्माजी ने इसका उपदेश धर्म को दिया और धर्म ने मुझे इसका उपदेश दिया । यही इस मन्त्र की परम्परा है ॥१४॥ इस मन्त्र को जानने के ही कारण मैं ऋषि कहा जाता हूँ । ब्रह्मा आदि सभी देवता सदा श्रीराधाजी का ध्यान करते रहते हैं ॥१५॥ चूकि राधाजी की पूजा किए विना किसी को भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने का अधिकार नहीं मिलता है । अतएव सभी वैष्णवों को राधाजी की अर्चना करनी चाहिए । राधाजी भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठातृ देवी हैं, अतएव भगवान् श्रीकृष्ण उनके अधीन रहते हैं। वे उनकी रासेश्वरी हैं भगवान् श्रीकृष्ण कहीं भी राधाजी के बिना नहीं रहते हैं ॥१६-१७॥ सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने के कारण ही इन देवी का नाम राधा है । राधाजी के जितने भी मन्त्र बतलाये गये हैं, उन सभी मन्त्रों का ऋषि (द्रष्टा) मैं (श्रीनारायण) ही हूँ ॥१८॥ उन मन्त्रों का गायत्री छन्द है और उन मंत्रों की देवता राधा हैं । इन मन्त्रों की शक्ति ताराबीज और शक्तिबीज हैं ॥१९॥ मूलमंत्र की ही आवृत्ति करके इन मंत्रों का षडङ्गन्यास करना चाहिए। उसके बाद रास की नायिका राधिका का ध्यान करना चाहिए ॥२०॥ राधाजी का ध्यान सामवेद में वर्णित है जो पहले कहा जा चुका है । श्वेत चम्पक के वर्ण के सदृश कान्ति वाली, शरच्चन्द्र के समान मुखवाली ॥२१॥ करोड़ों चन्द्रमा के समान मनोहर, शरत्कालीन कमल के समान नेत्रोंवाली विम्बफल के समान

करिकुंभयुगस्तनीम् । सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२४॥ शृङ्गारसिंधुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम् । मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम्॥२५॥ सुकुमाराङ्गलतिकां रासमंडलमध्यगाम् । वराभयकरां शान्तां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥२६॥ रत्नसिंहासनासीनां गोपीमंडलनायिकाम् । कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितां परमेश्वरीम् ॥२७॥ एवं ध्यात्वा ततो ब्राह्मे शालग्रामे घटेऽथवा । यंत्रे वाऽष्टदले राधां पूजयेत्तु विधानतः ॥२८॥ आवाह्य देवीं तत्पश्चादासनादि प्रदीयताम् । मूलमन्त्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत् ॥२९॥ पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम् । मुखे त्वाचमनीयं स्यात्त्रिवारं मूलविद्यया ॥३०। मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम् । ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत् ॥३१॥ अभ्यांगादिस्नानविधिं कल्पयित्वाऽथ वाससी । ततश्च चन्दनं दद्यान्नानालंकारपूर्वकम् ॥३२॥ पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमञ्जरीयुताः । पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च ॥३३॥ ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः । अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वंगपूजनम् ॥३४॥ कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणावर्ततोऽग्रतः ।

ओष्ठों वाली, पृथुश्रोणी वाली, करधनी से युक्त नितम्बों वाली ॥२२॥ कुन्द की पंक्ति के समान दाँतों की पंक्ति से सुशोभित, रेशमी परिधान को धारण करने वाली अग्निशौच वस्त्रों को धारण करने वाली ॥२३॥ मन्दमुस्कान से सुशोभित मुख वाली तथा हाथी के कुम्भस्थल के समान विशाल पयोधरों वाली, सर्वदा बारह वर्ष की ही अवस्था में रहने वाली रत्न निर्मित भूषणों से संमलकृत ॥२४॥ शृङ्गार सागर की उर्मियों के समान, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए सदा उद्यत रहने वाली । जूही तथा मालती के पुष्पों की माला से सुशोभित केशपाश वाली, सुकुमार अङ्ग रूपी लताओं वाली, रासमण्डल के मध्य में विराजमान श्रेष्ठ अभयमुद्रा से सुशोभित, शान्त स्वभाव वाली तथा शश्वत स्थिर यौवन वाली ॥२५-२६॥ रत्ननिर्मित सिंहासन पर बैठी हुई, गोपी मण्डल की नायिका, भगवान् कृष्ण की प्राणाधिष्ठातृ देवी परमेश्वरी श्रीराधा जी का ध्यान करना चाहिए ॥२७॥ इस तरह से ध्यान करके शालग्राम की शिला पर अथवा कलश के ऊपर, अष्टदल कमल बनाकर श्रीराधाजी की पूजा सविधि करनी चाहिए ॥२८॥ उसके पश्चात् राधा देवि का आवाहन करके आसन आदि प्रदान करे। मूलमन्त्र का उच्चारण करके आसन आदि की कल्पना करे ॥२९॥ चरणों में पाद्य समर्पित करे और शिर पर अर्ध्य समर्पित करे । मुख में तीन बार आचमन मूल मन्त्र से समर्पित करे ॥३०॥ उसके बाद मधुपर्क समर्पित करे । उस समय एक दुधारु गाय देवी को देना चाहिए । उसके बाद वहीं पर स्नान गृह की कल्पना करके राधा देवी को उसमें ले जाने की भावना करे ॥३१॥ तैल मर्दन आदि स्नान विधि करके दो वस्त्रों को चढ़ाये । उसके बाद अनेक अलंकारों को चढ़ाकर चन्दन चढाये ॥३२॥ तुलसी की मञ्जरी से युक्त अनेक प्रकार की पुष्पमालाओं को चढ़ाये । फिर पारिजात पुष्प तथा कमल पुष्प आदि चढ़ाये॥३३॥ उसके बाद पवित्र आदि करके राधाजी के परिवार की अर्चना करे । उसके बाद अग्नि कोण, ईशानकोण, नैऋत्यकोण तथा वायव्यकोण में तथा इन कोणों के बीच की दिशाओं में अङ्गपूजा करनी चाहिए ॥३४॥ उसके बाद यंत्र को अपने आगे करके उसके आठो दलों पर पूजा करे । आगे के दल पर

मालावतीमग्रदले वह्निकोणे च माधवीम् ॥३५॥ रत्नमालां दक्षिणे न नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम् । पश्चाद्दले शशिकलां पूजयेन्मतिमान्नरः ॥३६॥ मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम् । ईशानकोणे संपूज्या सुंदरी प्रियकारिणी ॥३७॥ ब्राह्म्यादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥३८॥ ततो देवीं सावरणां गंधाद्यैरुपचारकैः । राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः ॥३९॥ ततः स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः। सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥४०॥ य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम् । स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति संततम् ॥४१॥ यः कार्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः । कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा ॥४२॥ केनचित्कारणेनैव राधा वृन्दावने वने । वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा ॥४३॥ अत्रोक्तानां तु मन्त्राणां वर्णसंख्याविधानतः । पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत् ॥४४॥ तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः । नारद उवाच– **स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति ॥४५॥** श्रीनारायण उवाच– **नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि । रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥४६॥ नमस्त्रैलोक्य जननि प्रसीद करुणार्णवे । ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे॥४७॥**

मालावती की पूजा करे, अग्नि कोण वाले दल पर माधवी की पूजा करे ॥३५॥ दक्षिण दिशा में रत्नमाला की पूजा करे, नैऋत्य कोण में सुशीला की पूजा करे । पश्चिम वाले दल पर शशिकला की पूजा करे ॥३६॥ वायव्य कोण में पारिजात की पूजा करे और ईशान कोण में प्रियकारिणी नामक गोपी की पूजा करे ॥३७॥ उसके बाह्यभाग में ब्रह्मा आदि की पूजा करनी चाहिए । उसके बाहर वाले भाग में भी दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । भूपुर में वज्र आदि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस तरह से राधा देवी की पूजा करनी चाहिए ॥३८॥ उसके बाद आवरणों के साथ देवी की पूजा चन्दन आदि उपचारों से करनी चाहिए । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह राधा देवी की पूजा राजोपचार से करे ॥३९॥ उसके बाद देवेशी राधा की स्तुति सहस्रनाम स्तोत्र से करना चाहिए । प्रतिदिन मूलमन्त्र का एक हजार जप करना चाहिए ॥४०॥ जो व्यक्ति इस प्रकार से परा देवी रासेश्वरी राधा की पूजा करता है, वह भगवान् विष्णु के समान होकर विष्णुलोक में जाता है ॥४१॥ जो व्यक्ति कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को राधा जन्म महोत्सव को मनाता है उसको पराम्बा रासेश्वरी अपना सान्निध्य प्रदान करती हैं ॥४२॥ गोलोक में निरन्तर निवास करने वाली श्रीराधाजी किसी कारण वशात् वृन्दावन में आयीं और वे श्रीवृन्दावन में ही रह गयी और वृषभानुसुता स्थायि रूप से गोलोक में ही रहने लगीं ॥४३॥ यहाँ बतलाये गये जिस मन्त्र में वर्णों की जितनी संख्या होती है, उतने लाख का ही उनका पुरश्चरण ऋषियों ने बतलाया है और उसका दशांश होम करना चाहिए ॥४४॥ दूध, मधु और घी से मिश्रित तिलों से भक्तिपूर्वक होम करना चाहिए । **नारदजी ने कहा–** हे मुने ! आप उस स्तोत्र को बतलायें जिससे देवी सद्यः प्रसन्न होती हैं ॥४५॥ नारायण ने राधा देवी का स्तोत्र बतलाते हुए कहा हे रासमण्डल में निवास करने वाली परम स्वामिनि । रासेश्वरि भगवान् कृष्ण को प्राण से भी अधिक प्रिय लगने वाली देवि

नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्री शंकरि । गंगापद्मावतीरूपे षष्ठि मंगलचण्डिके ॥४८॥ नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि । नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि ॥४९॥ मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम् । संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु ॥५०॥ इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः । न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिच्च भविष्यति ॥५१॥ देहांते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले । इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित् ॥५२॥ अधुना शृणु विप्रेन्द्र दुर्गादेव्या विधानकम् । यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः ॥५३॥ एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित् । सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता ॥५४॥ सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी । दुर्गसंकटहंत्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि ॥५५॥ वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः । मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यंतकारिणी ॥५६॥ तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम् । वाग्भवं शंभुवनिता कामबीजं ततः परम् ॥५७॥ चामुंडायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम् । नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः ॥५८॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां ऋषयोऽस्य प्रकीर्तिताः । छन्दांस्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ॥५९॥ महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यपि

आपको नमस्कार है ॥४६॥ हे त्रैलोक्य जननि आप प्रसन्न होइये, आप करुणा के सागर हैं । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता आपके चरण कमलों की वन्दना किया करते हैं ॥४७॥ हे सरस्वति रूपिणि, सावित्रि, हे शांकरि ! हे गंगा स्वरूपे, हे पद्मावती स्वरूपे ! हे षष्ठिदेवि ! हे मङ्गलचण्डिके ॥४८॥ हे तुलसी स्वरूपे ! हे लक्ष्मी स्वरूपिणि आपको नमस्कार है । हे दुर्गे ! हे भगवति ! आपको नमस्कार है । हे सर्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है ॥४९॥ मूल प्रकृति स्वरूपिणी तथा करुणा के सागर स्वरूप, आप हमलोगों का इस संसार सागर से उद्धार कीजिये । आप दया कीजिये माँ ॥५०॥ जो व्यक्ति, राधा का स्मरण करते हुए इस स्तोत्र को तीनों सन्ध्याओं में पढ़ता है । उसके लिए कोई भी वस्तु कभी भी दुर्लभ नहीं होगी ॥५१॥ शरीर त्याग करने के पश्चात् उसका गोलोक के रासमण्डल में निवास होगा । यह अत्यन्त रहस्य की बात है, इसे किसी को भी नहीं बतलाना चाहिए ॥५२॥ हे ब्राह्मणवर्य! आप दुर्गादेवी की पूजा की विधि का श्रवण करें । उस दुर्गा देवी का स्मरण करने से बहुत बड़ी विपत्ति भी समाप्त हो जाती है ॥५३॥ ऐसा कोई नहीं है जो इस दुर्गा देवी की आराधना नहीं करता हो । वे सबों की उपास्या, सबों की माता, अद्भुत शैवी शक्ति हैं ॥५४॥ ये सबों की बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी हैं । तथा सबों की अन्तर्यामी स्वरूपिणी हैं । ये भयंकर संकट को विनष्ट करती हैं, इसीलिए संसार में दुर्गा देवी के नाम से विख्यात हैं ॥५५॥ ये वैष्णवों तथा शैवों के लिए सदैव उपास्य हैं । वे मूलप्रकृति स्वरूपिणी, सृष्टि, स्थति तथा संहार करने वाली हैं ॥५६॥ मैं उनका सर्वोत्तम नवाक्षर मंत्र बतलाता हूँ । सर्वप्रथम वाग बीज (ऐं) उसके बाद मायाबीज (ह्रीं) तथा अन्त में कामबीज (क्लीं) उसके बाद चामुण्डायै पद तथा उसके बाद बिच्चे यह

देवताः । स्याद्रक्तदंतिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा ॥६०॥ नंदाशाकंभरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग
उदाहृतः॥६१॥ ऋषिच्छंदो दैवतानि मौलौ वक्त्रे हृदि न्यसेत् । स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये ॥६२॥ बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण
चैव हि । षडंगानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि देशिकः ॥६३॥ शिखायां लोचनद्वन्द्वे श्रुतिनासाननेषु च । गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्सर्वेण व्यापकं
चरेत्॥६४॥ खड्गचक्रगदाबाणचापानि परिघं तथा । शूलं भुशुण्डीं च शिरः शंखं संदधतीं करैः ॥६५॥ महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम्।
नीलाञ्जनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे ॥६६॥ मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः । एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम् ॥६७॥
अक्षमालां च परशुं गदेषुकुलिशानि च । पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दंडशक्तिमसिं तथा ॥६८॥ चर्मांबुजं तथा घंटां सुरापात्रं च शूलकम् । पाशं
सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम् ॥६९॥ रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम् । महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम् ॥७०॥ घंटाशूले हलं

दो अक्षरों वाला मन्त्र । इसतरह (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) इन नव अक्षरों वाला मन्त्र भक्तों के लिए कल्पवृक्ष के समान है ॥५७-५८॥ इस मन्त्र
के ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ऋषि कहे गये हैं । इसके गायत्री, उष्णिक् तथा अनुष्टुप छन्द बतलाये गये हैं ॥५९॥ इसके महाकाली, महालक्ष्मी तथा
महासरस्वती देवता हैं । रक्तदन्तिका दुर्गा और भ्रामरी बीज हैं ॥६०॥ नन्दा, शाकम्भरी और भीमा शक्तियाँ हैं, इसका प्रयोग, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष
की प्राप्ति के लिए होता है । इस मन्त्र के ऋषि, छन्द और देवता का हृदय, शिर तथा मुख में न्यास करें । शक्ति बीजों का दोनों स्तनों में न्यास करना
चाहिए । तथा शक्तित्रय का सर्वार्थ सिद्धि के लिए न्यास करे ॥६१-६२॥ इस मन्त्र के ऐं ह्रीं क्लीं तीन बीज मन्त्र चामुण्डायै ये चार अक्षर तथा विच्चे
ये दो अक्षर ये इस मन्त्र के अङ्ग हैं । प्रत्येक के साथ नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट्, तथा फट् इन छह जातिसंज्ञक वर्णों को जोड़कर क्रमशः शिखा,
दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनो नाक तथा मुख तथा गुदा प्रदेश में न्यास करना चाहिए । उसके बाद व्यापक करना चाहिए ॥६३-६४॥ महाकाली का ध्यान
इसप्रकार है वे खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष तथा परिघ शूल, भुशुण्डी, शिर, तथा शंख को अपने हाथों में धारण करती हैं । वे तीन नेत्रों वाली तथा अनेक
भूषणों से अलंकृत हैं । काजल के समान काला उनका वर्ण है । उनके दश पैर और दश मुख हैं । ऐसी महाकाली की मैं आराधना करता हूँ ॥६५-६६॥
मधु तथा कैटभ नामक दैत्यों का नाश करने के लिए ब्रह्माजी ने महाकाली की स्तुति की थी । इस तरह से कामबीज स्वरूपिणी महाकाली का ध्यान करना
चाहिए ॥६७॥ **महालक्ष्मी का ध्यान–** अक्ष, माला, परशु, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कमण्डलु, दण्ड, शक्ति, तलवार, चर्म, कमल, घण्टा,
मदिरापान पात्र, त्रिशूल, पाश, सुदर्शन चक्र, धारण करने वाली, अरुण वर्ण की कान्ति वाली, रक्त कमल के आसन पर बैठने वाली, मायाबीज (ह्रीं)
स्वरूपिणी, महिषासुर का मर्दन करने वाली महालक्ष्मी देवी की आराधना करनी चाहिये ॥६८-७०॥ **महासरस्वती का ध्यान–** घण्टा, शूल, शंख, मुसल,

शंखं मुसलं च सुदर्शनम् । धनुर्बाणान्हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम् ॥७१॥ शुम्भादिदैत्यसंहंत्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम् । महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानंदविग्रहाम् ॥७२॥ यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्त्रं षट्कोणसंयुतम् । ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम् ॥७३॥ भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिन्तयेत् । शालग्रामे घटे वाऽपि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा ॥७४॥ बाणलिंगेऽथवा सूर्ये यजेद्देवीमनन्यधीः । जयादिशक्तिसंयुक्तं पीठे देवीं प्रपूजयेत् ॥७५॥ पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत् । श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत् ॥७६॥ पार्वत्या सहितं शंभुं वायुकोणे समर्चयेत् । देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम् ॥७७॥ महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात् । नंदजां रक्तदन्तां च तथा शाकंभरीं शिवाम् ॥७८॥ दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च । ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा ॥७९॥ वाराहीं नारसिंहीं च ऐन्द्रीं चामुण्डकां तथा । पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः ॥८०॥ विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा । छायां शक्तिं परां तृष्णां शान्तिं जातिं च लज्जया ॥८१॥ शान्तिं भद्रां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम् । दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात् ॥८२॥ ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम् । वटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः ॥८३॥ इन्द्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान् । पूजयेदनया रीत्या देवीं

चक्र, धनुष तथा बाण को अपने हाथों में धारण करने वाली कुन्द के सदृश वर्ण वाली, शुम्भ आदि दैत्यों का मर्दन करने वाली वाणी बीज (क्लीं) स्वरूपिणी, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी महासरस्वती का ध्यान करना चाहिए ॥७१-७२॥ हे प्राज्ञ ! दुर्गादेवी का यन्त्र त्रिभुज तथा षट्कोण होता है । उसके तीनों ओर अष्टदल कमल होते हैं । उन सबों के मिलकर चौबीस दल होते हैं ॥७३॥ उसे भूपुर से युक्त होना चाहिए । इस प्रकार के यन्त्र का चिन्तन करना चाहिए । शालग्राम अथवा कलश पर या यन्त्र पर या प्रतिमा पर ॥७४॥ अथवा बाण के चिह्न पर अथवा सूर्य में अनन्यमना होकर देवी की आराधना करनी चाहिए । जया आदि शक्तियों से युक्त देवी की पूजा करनी चाहिए ॥७५॥ पूर्व कोण पर सरस्वती के साथ ब्रह्माजी की पूंजा करनी चाहिए नैर्ऋत्यकोण में लक्ष्मीजी के साथ श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए ॥७६॥ वायव्यकोण में पार्वतीजी के साथ शंकरजी की पूजा करनी चाहिए देवी के उत्तर दिशा में सिंह की पूजा करे और वायी ओर महिषासुर की पूजा करे । अन्त में क्रमशः छहो कोणों में नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, शिवा ॥७७-७८॥ दुर्गा, भ्रामरी, भीमा की पूजा करनी चाहिए । उसके बाद आठो दलों में क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी ॥७९॥ वाराही नारसिंही, ऐन्द्री तथा चामुण्डा की पूजा करे । उसके पश्चात् चौबीस पत्रों में इस तरह से विष्णु माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति तथा लज्जा तत्त्व की पूजा करे ॥८०-८१॥ क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, मातृ तथा भ्रान्ति इन तत्त्वों की क्रमशः पूजा करे ॥८२॥ उसके

सावरणां ततः ॥८४॥ राजोपचारान्विविधान्दद्यादम्बाप्रतुष्टये । ततो जपेन्नवार्णं च मंत्रं मंत्रार्थपूर्वकम् ॥८५॥ ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु संपेठत् । नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये ॥८६॥ ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत्प्रत्यहं नरः । धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः ॥८७॥ इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम् । कृतार्थता येन भवेत्तत्तत्कथितं तव ॥८८॥ सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा । मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाश्रमास्तथा ॥८९॥ लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायन्ति तां शिवाम् । तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत् ॥९०॥ चतुर्दशापि मनवो ध्यात्वा चरणपङ्कजम् । मनुत्वं प्राप्तवन्तश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा ॥९१॥ तदेतत्सर्वमाख्यातं रहस्यातिरहस्कम् । प्रकृतीनां पञ्चकस्य तदंशानां च वर्णनम् ॥९२॥ श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् । लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥९३॥ अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी पाप्नुयाच्च ताम् । यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात् ॥९४॥ नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः । परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम् ॥९५॥ नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः । तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः ॥९६॥ शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि।

बाद भूपुर के कोणों में गणेश क्षेत्रपाल वटुक तथा योगिनी की पूजा करनी चाहिए ॥८३॥ उसके बाहर वज्र आदि आयुधों के साथ इन्द्र आदि दिक्पालों की पूजा करे । इस तरह से आवरण के साथ देवी की पूजा करे ॥८४॥ उसके बाद अम्बा की प्रसन्नता के लिए सविधि राजोपचारों को समर्पित करना चाहिए। उसके बाद मन्त्रपूर्वक नवार्ण मन्त्र का जप करे ॥८५॥ उसके बाद देवी के सम्मुख सप्तशती स्तोत्र का पाठ करना चाहिए । इसके समान त्रैलोक्य में कोई भी स्तोत्र नहीं है ॥८६॥ इस तरह से मनुष्य को चाहिए कि वह प्रतिदिन देवी को प्रसन्न करे । ऐसा करने वाला मनुष्य, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का आश्रय बन जाता है ॥८७॥ हे विप्र इस तरह से मैंने आपको दुर्गा के पूजन का विधान सुनाया । इसके प्रभाव से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है ॥८८॥ सभी देवता, श्रीहरि, ब्रह्माजी, मनुगण, मुनिजन, ज्ञानीजन, योगिजन, सभी आश्रमों के मनुष्य, लक्ष्मी आदि देवियाँ उन पराम्बा शिवा का ही ध्यान करते हैं । दुर्गाजी का स्मरण करने से ही जन्म सफल होता है ॥८९-९०॥ चौदहो मनु देवी के चरणकमलों का ध्यान करके ही मनुत्व को प्राप्त किए तथा सभी देवता अपने-अपने पद को प्राप्त किए हैं ॥९१॥ इस तरह से मैंने अत्यन्त रहस्य की बातों को बतलाया है । पाँच प्रकृतियों तथा उनके अंशों का वर्णन मैंने किया है ॥९२॥ मेरी यह सत्यवाणी है कि इसका श्रवण करके मनुष्य पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर लेता है । इसमें कोई भी संदेह नहीं है ॥९३॥ पुत्रहीन पुत्र को प्राप्त कर लेता है और विद्यार्थी विद्या को प्राप्त कर लेता है । इस उपाख्यान का श्रवण करने वाला जो चाहता है, वह उसे ही प्राप्त कर लेता है ॥९४॥ नवरात्र में मनुष्य को देवी के समक्ष इसका पाठ सावधानी पूर्वक करना चाहिए । ऐसा करने से देवी निश्चित रूप से प्रसन्न होती हैं । जो

कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकराम्बुजात् ॥९७॥ मनोरथं तु संकल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः । देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥९८॥ सुस्नातां कन्यकां तत्रानीयाभ्यर्च्य यथाविधि । शलाकां रोपयेन्मध्ये तथा स्वर्णेन निर्मिताम् ॥९९॥ शुभं वाऽप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत् । उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम् ॥१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

बाणाक्षिरसरामैस्तु सार्धैः (३६२५) श्लोकैः सुविस्तरैः । देविभागवतस्यास्य नवमः स्कन्ध ईरितः ॥९॥

मनुष्य प्रतिदिन सप्तशती के एक-एक अध्याय का पाठ करता है, देवी उसके वश में हो जाती हैं । यह पाठ देवी को प्रसन्न करने वाला है । इसमें विधिपूर्वक शकुन की परीक्षा करनी चाहिए । किसी कुमारी के हाथ से अथवा बटुक के हाथ से ॥९५-९७॥ अपने मनोरथ का संकल्प करके पुस्तक की पूजा करनी चाहिए । पुनः जगत् की स्वामिनी देवी को बार-बार प्रणाम करना चाहिए ॥९८॥ स्नान की हुई कन्या को लिवाकर उसकी विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए। उसके बीच सुवर्ण की शालाका रख देनी चाहिए ॥९९॥ उसके बाद उस कुमारी को सुवर्ण की शलाका दे । उससे यदि वह कन्या प्रसन्न हो तो भगवती की प्रसन्नता समझनी चाहिए और कुमारी को अप्रसन्न होने पर भगवती को अप्रसन्न समझना चाहिए । कुमारी के उदासीन होने पर भगवती को उदासीन समझना चाहिए ॥१००॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५०।।

इस तरह तीन हजार छह सौ पचीस श्लोकों के द्वारा देवीभागवत का नवाँ स्कन्ध कहा गया ।।९।।

इस तरह नवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

दशमः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

नारद उवाच– **नारायण धराधार सर्वपालनकारण । भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम् ॥१॥ मन्वंतरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी। यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी ॥२॥ तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान् । यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुताऽपि हि ॥३॥ मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला । तन्नः शूश्रूषमाणनां देवीचरितमुत्तमम् ॥४॥ वर्णयस्व कृपासिंधो येनाप्नोति सुखं महत् ।** श्रीनारायण उवाच– **आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम् ॥५॥ भक्तानां भक्तिजननं महासंपत्तिकारकम् । जगद्योनिमहातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥६॥ आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः । स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते ॥७॥ मनुं स्वायभुवं नाम जनयामास मानसात् । स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥८॥ शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्म स्वरूपिणीम् । स मनुः क्षीरसिन्धोश्च तीरे परमपावने ॥९॥ देवीमाराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम् । मूर्तिं च मृण्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः ॥१०॥ उपासतेस्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः । निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः ॥११॥ एकपादेन संतिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः । शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना ॥१२॥ भेजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ**

स्वायम्भुव मनु की उत्पत्ति आदि का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे पृथिवी के आधार सबों का पालन करने वाले नारायण ! आपने पापों को विनष्ट करने वाली देवी के चरित को सुनाया है ॥१॥ जिन-जिन मन्वन्तरों में महेश्वरी जगदम्बा का जिस-जिस आकार से प्रादुर्भाव होता है ॥२॥ आप उन सबों को मुझे सुनायें और देवी के माहात्म्य को भी सुनायें। जिस-जिस के द्वारा पूजा तथा स्तुति किए जाने पर भक्तवत्सला देवी सेवा करने वालों के मनोरथ को पूर्ण की हैं, उस देवी चरित को आप सुनायें ॥३-४॥ उसके सुनने से महान सुख की प्राप्ति होती है। **श्रीनारायण ने कहा–** हे महर्षे ! आप देवी के पापविनाशक चरित को सुनें ॥५॥ वह भक्तों की भक्ति को उत्पन्न करने वाला तथा महासंपत्ति को प्रदान करने वाला चरित है । जगत् के कारण स्वरूप महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा जी ॥६॥ चक्रधारी भगवान् विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न हुए थे । हे महामते ! चतुर्मुख ब्रह्मा जी जन्म प्राप्त करके ॥७॥ अपने मन से स्वायम्भुव मनु को उत्पन्न किए । वे परमेष्ठी ब्रह्माजी के मानसपुत्र हैं । उनकी धर्मस्वरूपिणी पत्नी शतरूपा को भी उन्होंने उत्पन्न किया । पृथिवी पति मनु परमपवित्र क्षीरसागर के तट प़र देवी की महाभाग्यरूपी फल को प्रदान करने वाली मिट्टी की मूर्ति को बनाकर ॥८-१०॥ एकान्त में वाणी बीज के मन्त्र को जपा करते थे । वे उस समय निराहार गहकर अपने श्वास को रोककर तथा नियमित व्रत करने के कारण कृश शरीर वाले हो गये थे ॥११॥ वे सदा पृथिवी पर एक पैर पर खड़े रहते थे । वे महात्मा सदा काम तथा क्रोध को जीतकर सौ वर्ष तक देवी के चरणों का ध्यान करते हुए स्थावर हो गये थे । उनकी उस तपस्या से प्रसन्न होकर जगन्मयी जगदम्बा प्रकट हो

चिन्तयन् हृदि । तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥१३॥ उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप । तत आनंदजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः॥१४॥ वरयामास तान् हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान् । मनुरुवाच– जय देवि विशालाक्षि जय सर्वान्तरस्थिते ॥१५॥ मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमंगलमंगले । त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत् ॥१६॥ वैकुंठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात् । शचीपतिस्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया ॥१७॥ प्राणिनः शिक्षयत्येव दण्डेन च परेतराट् । यदसामधिपः पाशी पालनं मादृशामपि ॥१८॥ कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः हुतभूङ्नैऋतो वायु रीशांनः शेष एव च ॥१९॥ त्वदांरासंभवा एवत्वच्छतिपरिबृंहिताः । अथापि यदि मे देवि वरो देयोस्ति साम्प्रतम्॥२०॥ तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे । वाग्भवस्यापि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः ॥२१॥ तेषां सिद्धिः सत्वराऽपि कार्याणां जयतामपि । ये संवादमिमं देवि पठंति श्रावयंति च ॥२२॥ तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे । जातिस्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा ॥२३॥ ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि । पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायदित्येव मे वचः ॥२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

गयीं ॥१२-१३॥ उन्होंने दिव्य वाणी में कहा– राजन् वर माँगो । उसके बाद आनंदजनक वाक्य को सुनकर राजा ॥१४॥ स्वायम्भुव ने अपने हृदयस्थित अत्यन्त दुर्लभ वरदानों को माँगा । **मनु ने कहा–** हे विशालाक्षि देवी ! हे सबों के हृदय में विराजमान रहने वाली देवि आपकी जय हो ॥१५॥ हे मान्य तथा पूज्य ! हे जगद्धात्रि, हे सर्वश्रेष्ठ मङ्गलस्वरूपिणि ! आपके द्वारा कृपाकटाक्षपूर्वक देखने मात्र से ही ब्रह्मा जी जगत् की सृष्टि करते हैं ॥१६॥ भगवान् विष्णु पालन करने का काम करते हैं और शंकर जी संहार करने का काम करते हैं। आपकी आज्ञा से ही इन्द्र त्रैलोक्य का पालन करते हैं । परेतराट् यमराज आपकी आज्ञा से ही पापियों को दण्डित करके उनको शिक्षा देते हैं। जल के स्वामी वरुण भी हम जैसे लोगों का पालन करते हैं ॥१८॥ निधियों के स्वामी कुबेर भी पालन करने का कार्य करते हैं। अग्नि, निऋति, वायु, ईशान तथा शेष॥१९॥ ये सबके सब आपके अंश से ही उत्पन्न हैं और आपकी ही शक्ति से परिबृंहित हैं। अतएव हे देवि ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहती हैं ॥२०॥ तो फिर मेरे सृष्टि के कार्य को करने में किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं हो। जो लोग वाणी के बीजमंत्र (ऐं) की उपासना करते हैं ॥२१॥ उनके कार्यों की सिद्धि शीघ्र हो जाय । हे देवि! इस संवाद को जो लोग पढ़ें और सुनायें॥२२॥ हे शिवे ! उनके लिए इस लोक में भोग तथा मोक्ष दोनों सुलभ हो जाय । वे लोग अपने पूर्वजन्म की बातों को याद रखने वाले हों तथा उनमें सौष्ठव हो ॥२३॥ उनको ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्ग की सिद्धि हो तथा उनके पुत्र तथा पौत्रों की समृद्धि हो, यही मैं वरदान माँगता हूँ ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुण के दशवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीदेव्युवाच– **भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति । यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप ॥१॥ अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रानशनाऽमोघविक्रमा। वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम् ॥२॥ राज्यं निष्कंटकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि । मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षान्ते मत्पदे भवेत् ॥३॥ एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने । पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विंध्यपर्वतम् ॥४॥ योऽसौ विंध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा । भानुमार्गाविरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन् ॥५॥ सा विंध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी । बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम ॥६॥** ऋषय ऊचुः– **कोऽसो विंध्याचलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन् । भानुमार्गाविरोधं च किमर्थं कृतवानसौ ॥७॥ कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम् । प्रकृतिस्थं चकारेति सर्वं विस्तरतो वद ॥८॥ न हि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम् । देव्याश्चरित्र रूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते ॥९॥** सूत उचाच– **आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम् । महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः ॥१०॥ सुपुष्पितैरनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः । मृगा वराहा**

भगवती का विन्ध्यगिरि पर जाना

श्रीदेवी ने कहा– हे महाबाहो राजन् ! ये सारी बातें होंगी । हे राजन् ! आपने जो कुछ भी माँगा है, वह सब कुछ मैं आपको प्रदान करती हूँ ॥१॥ मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । बड़े-बड़े दैत्यों का विनाश करने के लिए मेरा पराक्रम स्वाभाविक है । तुम्हारे वाणी बीज के जप से तथा तपस्या से ही ये सारी बातें निश्चित हैं ॥२॥ तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा । तुम्हारे पुत्र वंश को बढ़ाने वाले होंगे । हे वत्स ! तुम्हारी मुझमें दृढ़भक्ति होगी, और तुम्हें अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥३॥ इस तरह से राजा स्वायम्भुव मनु को वरदान प्रदान करके, उनके देखते ही देखते देवी विन्ध्यपर्वत पर चली गयीं ॥४॥ यह जो विन्ध्याचल पर्वत है, वह भगवान् सूर्य के मार्ग को रोक देने के लिए बढ़ता चला जा रहा था उसको रोकने का काम अगस्त्य महर्षि ने किया ॥५॥ वे देवी विन्ध्यवासिनी भगवान् की अनुजा हैं । वे वर प्रदान करने वाली हैं । हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! वे सभी मनुष्यों के लिए पूज्य हो गयीं ॥६॥ **ऋषियों ने कहा**– हे सूतजी ! यह विन्ध्याचल पर्वत कौन है, यह आकाश को स्पर्श करके सूर्य के मार्ग को क्यों रोकना चाहता था ॥७॥ महर्षि मैत्रावरुणि (अगस्त्य) उस अत्यन्त ऊँचे पर्वत को किस प्रकार से प्रकृतिस्थ किए, इन सारी बातों को आप विस्तार के साथ बतायें ॥८॥ हे साधो ! आपके मुख से निस्सृत देवी चरित रूपी अमृत का पान करने से हमलोगों को तृप्ति नहीं हो रही है। अपितु उसको सुनने की इच्छा बढ़ती ही जाती है ॥९॥ **सूतजी ने कहा**– सभी पर्वतों में श्रेष्ठ विन्ध्याचल नामक पर्वत था। उस पर बड़े-बड़े वन थे और वह बड़े-बड़े वृक्षों से भरा था ॥१०॥ विकसित पुष्पों से अनेक प्रकार की लताओं

महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि ॥११॥ वानराः शशका ऋक्षाः शृंगालाश्च समंततः । विचरन्ति सदा हृष्टाः पुष्टा एव महोद्यमाः ॥१२॥ नदीनदजलाक्रान्तो देवगंधर्वकिन्नरैः । अप्सरोभिः किंपुरुषैः सर्वकामफलद्रुमैः ॥१३॥ एतादृशे विंध्यनगे कदाचित्पर्यटन्महीम् । देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः ॥१४॥ तं दृष्ट्वा स नगो मंक्षु तूर्णमुत्थाय संभ्रमात् । पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत् ॥१५॥ सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान् । विंध्य उवाच– **देवर्षे कथ्यतां जातु आगमः कुत उत्तमः ॥१६॥ तवागमनतो जातमनर्घ्यं मम मंदिरम् । तव चंक्रमणं देवाभयार्थं हि यथा रवेः ॥१७॥ अपूर्वं यन्मनोवृत्तं तद्ब्रूहि मम नारद ।** नारद उवाच– **ममागमनमिंद्रारे जातं स्वर्णगिरेरथ ॥१८॥ तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम् । सर्वेषां लोकपालानां भवनानि समंततः ॥१९॥ मया दृष्टानि विन्ध्याग नानाभोगप्रदानि च । इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्वासमाविशत् ॥२०॥ उच्छ्वसंतं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट् । उच्छ्वासकारणं किं तद्ब्रूहि देवऋषे मम ॥२१॥ इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः । अब्रवीच्छ्रूयतां वत्स ममोच्छ्वास्य कारणम् ॥२२॥ गौरीगुरुस्तु हिमावान्छिवस्य श्वशुरः किल । संबंधित्वात्पशुपते पूज्य आसीत्क्षमाभृताम् ॥२३॥ एवमेव च कैलासः शिवस्यावसथः प्रभुः । पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघदारणः॥२४॥**

तथा बल्लियों से वह भरा हुआ था । मृग, वराह, महिष, व्याघ्र, शार्दूल ॥११॥ वानर, खरगोश, ऋक्ष, स्यार उस पर्वत पर चारो ओर विचरण किया करते थे तथा हृष्ट, पुष्ट एवं प्रसन्न रहा करते थे । वह नदियों तथा नदों के जल से भरा था। उस पर देवता, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ, किंपुरुष तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले फलों तथा वृक्षों से भरा था। ॥१२-१३॥ एक बार पृथिवी पर भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद अपनी इच्छा से ही घूमते हुए इस विन्ध्य पर्वत पर आये॥१४॥ आये हुए देवर्षि नारद जी को देखकर वह पर्वत शीघ्र उठ खड़ा हुआ और उन्हें पाद्य तथा अर्घ्य समर्पित करके श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। सुखपूर्वक बैठे हुए प्रसन्न देवर्षि को देखकर उस पर्वत ने कहा । **विन्ध्य पर्वत ने कहा–** देवर्षे ! आप बतलायें कि आपका आगमन कहाँ से हुआ है ॥१६॥ आपके आ आने से मेरा घर अत्यन्त पवित्र हो गया । सूर्य के ही समान आपका आगमन देवताओं को अभय प्रदान करने के ही लिए होता है ॥१७॥ हे नारद जी ! आपको जो अपूर्व वृत ज्ञात हुआ हो उसे आप बतलायें । **नारदजी ने कहा–** हे पर्वतराज ! मैं तो सुमेरु पर्वत से आ रहा हूँ ॥१८॥ वहा मैंने इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण इत्यादि सभी लोकपालों के भवनों को देखा है ॥१९॥ वे सभी गृह अनेक प्रकार के भोगों को प्रदान करने वाले हैं । इस तरह से कहकर नारदजी ने लम्बी श्वास ली ॥२०॥ दीर्घ उच्छ्वास लेते हुए मुनि को देखकर पर्वतराज विन्ध्य ने पुनः पूछा हे देवर्षे ! आपके इस उच्छ्वास का कारण क्या है? विन्ध्यगिरि की बातों को सुनकर अमित कान्ति सम्पन्न **देवर्षि ने कहा–** हे वत्स ! आप मेरे उच्छ्वास का कारण सुनें ॥२१-२२॥ गौरी

निषधः पर्वतो नीलो गंधमादन एव च । पूज्या स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्षमाभृतः ॥२५॥ यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट् । सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः ॥२६॥ आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च धराभृताम् । सर्वेषामहमेवाग्र्यो नास्ति लोकेषु मत्समः ॥२७॥ एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्रवासो मायोज्झितः । अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग ॥२८॥ प्रसंगतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम् ।

ष्ठइति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच– **एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट् । जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः ॥१॥ गते मुनिवरे विंध्यश्चिन्तां लेभेऽनपायिनीम् । नैव शांतिं स लेभे च सदांतःकृतशोचनः ॥२॥ कथं किं त्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम् । नैव शांतिं लभे नापि स्वास्थ्यं**

के पिता हिमालय हैं । वे शंकरजी के श्वशुर हैं । शंकरजी के संबन्धी होने के कारण वे सभी पर्वतों में श्रेष्ठ हैं ॥२३॥ कैलास पर्वत भगवान् शंकर का निवास स्थान है, अतएव वह भी श्रेष्ठ है । संसार के पापों का विनाशक होने के कारण पर्वतों में पूज्य हो गया ॥२४॥ निषध, पर्वत, नील, गंधमादन ये सभी पर्वत भी अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं ॥२५॥ सुमेरु पर्वत की परिक्रमा विश्वात्मा सूर्य सभी ग्रह गणों के साथ करते हैं ॥२६॥ इसी के कारण सुमेरु पर्वत भी अपने को सभी पर्वतों से श्रेष्ठ और वरिष्ठ मानता है। वह कहता है कि सभी पर्वतों में श्रेष्ठ मैं इसलिए हूँ कि सभी ग्रह मेरी परिक्रमा करते हैं ॥२६-२७॥ उसके इसी प्रकार के अभिमान को सोचकर मैंने लम्बी श्वास ली है । हम तपस्वियों को इन सब बातों से कोई भी प्रयोजन नहीं है ॥२८॥ मैंने यह बात प्रसंगतः कह दी अब मैं अपने घर जाऊँगा ।

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशमस्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सर्म्पूण हुआ ।।२।।

विन्ध्यपर्वत द्वारा सूर्य के मार्गावरोध का वर्णन

सूतजी ने कहा– इस तरह से विन्ध्यपर्वत से कहकर अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करने वाले नारदजी ब्रह्मलोक चले गये ॥१॥ मुनिवर नारद के चले जाने के पश्चात् विन्ध्यपर्वत को भी नहीं समाप्त होने वाली चिन्ता हो गयी । वह निरन्तर सोचने लगा, उसको शान्ति नहीं मिल पा रही थी ॥२॥

CC-0. Swami Kanya Maha Vidyalaya Collection.

मे मानसे भवेत् ॥३॥ (धिगुत्साहं च मानं च धिङ्मे कीर्तिं च धिक्कुलम् ।) धिग्बलं मे पौरुषंधिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः । एव चिंतयमानस्य विंध्यस्य मनसि स्फुटम् ॥४॥ प्रादुर्भूता मतिः कार्ये कर्तव्ये दोषकारिणी । मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः ॥५॥ सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः । तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः ॥६॥ तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम् । एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च ॥७॥ भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चितम् । एवं निश्चित्य विंध्याद्रिः खं स्पृशन्ववृधे भुजैः ॥८॥ महोन्नतैः शृंङ्गवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः । कदोदेष्यिति भास्वांस्तं रोधयिष्याम्यहं कदा ॥९॥ एवं संचिन्तयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी । प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः ॥१०॥ कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदयायोदये गिरौ । प्रकाशतेस्म विमलं नभो भानुकरैः शुभैः ॥११॥ विकासं नलिनी भेजे मीलनं च कुमुद्वती । स्वानि कार्याणि सर्वे च लोकाः समुपतस्थिरे ॥१२॥ हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन् । प्राहणापराहणमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः ॥१३॥ एवं प्राचीं तथाऽऽग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम् । ज्वलन्तीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम् ॥१४॥ भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं नूनं विहाय च । याम्यां गंतुं ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः ॥१५॥ न शशाकाग्रतो गंतुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् । अनूरुरुवाच— भानो मानोन्नतो

वह सोचता था कि मैं कौन सा ऐसा काम करूँ कि सुमेरु पर्वत को जीत लूँ । मुझे बिल्कुल शान्ति नहीं मिल पा रही है । मेरा मन स्वस्थ नहीं है । मेरा मन कैसे शान्त हो ॥३॥ मेरे उत्साह, मन, कीर्ति और कुल को धिक्कार है । मेरे बल, पौरुष जिसका वर्णन प्राचीन महापुरुष किया करते हैं। इस तरह चिन्ता करने वाले विन्ध्य के मन में यह दूषित विचार आया कि चूकि सूर्य प्रतिदिन ग्रहों तथा नक्षत्रों के साथ सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं, इसीलिए यह पर्वत गर्व करता है । मैं अपने शिखरों के द्वारा सूर्य के मार्ग को ही रोक लेता हूँ । उस समय निरुद्ध होने के कारण सूर्य सुमेरु पर्वत की परिक्रमा कैसे करेंगे । इस तरह से जब मैं सूर्य के मार्ग को रोक दूँगा ॥७॥ तब तो सुमेरु पर्वत का दर्प विनष्ट हो जायेगा । इस तरह से निश्चित करके विन्ध्य पर्वत अपनी भुजाओं से आकाश को छू लिया ॥८॥ वह अपने अत्यन्त ऊँचे शिखरों से सबको व्याप्त कर लिया । वह इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्योदय होगा कि मैं उनका मार्ग रोक लूँगा ॥९॥ विन्ध्यपर्वत के इस तरह से सोचते-सोचते रात्रि बीत गयी । स्वच्छ प्रकाश हो गया । सूर्य भी अपनी किरणों से दिशाओं को अन्धकार रहित बनाते हुए प्रकाशित हो गये ॥१०-११॥ कमल विकसित हो गये । कुमुदनी मुकुलित हो गयी । सभी संसारी जीव अपने काम में लग गये ॥१२॥ पूर्वाह्न, पराह्ण तथा मध्याह्न के विभाग पूर्वक सूर्य अपनी किरणों से देवताओं के लिए हव्य, पितरों के लिए कव्य तथा भूतबलि के कार्यों को बढ़ाते हुए चिरकाल से विरहिणी कामिनी के समान वियोग संतप्त प्राची एवं आग्नेयी दिशारूपी नायिका को सन्तोष दिलाकर सूर्य आग्नेयी दश को छोड़कर शीघ्र ही दक्षिण दिशा के लिए प्रस्थान किए ॥१३-१५॥ किन्तु वे जब आगे नहीं जा सके तो अरुण नामक उनके सारथि

विंध्यो निरुध्य गगनं स्थितः ॥१६॥ स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम् । सूत उवाच– **अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यास चिंतयन्॥१७॥ अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चातिविस्मयः । प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः ॥१८॥ निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम् । राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते ॥१९॥ स चिरं रुद्धामार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली । एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः ॥२०॥ नान्वविंदन्त शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत । चित्रगुप्तादयः सर्वे कालं जानन्ति सूर्यतः ॥२१॥ स रुद्धो विंध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः । यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा ॥२२॥ नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत् । एवं च पश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च ॥२३॥ निद्रामीलितचक्षुष्का निशामेव प्रपेदिरे । प्रांचस्तथोत्तरस्थाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः ॥२४॥ मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन्प्रजाः । हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम् । देवाः सेंद्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवादिनः ॥२५॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

ने कहा– **अरुण ने कहा–** हे सूर्यदेव ! अत्यन्त गर्व से भरकर विन्ध्यपर्वत आकाश में खड़ा हो गया है ॥१६॥ वह आपके द्वारा सुमेरु पर्वत की की जाने वाली प्रदक्षिणा को स्वयं प्राप्त करना चाहता है । **सूतजी ने कहा–** अरुण की बात सुनकर सूर्य चिन्तित हो गये ॥१७॥ यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि आकाश का भी रास्ता रुक गया । उन्मार्गगामी कोई वीर कौन सा अनुचित कार्य नहीं कर सकता है ? ॥१८॥ राहु की बाहुओं से जकड़ जाने पर भी मेरे जिन घोड़ों का मार्ग निरुद्ध नहीं होता था मेरे उन घोड़ों का मार्ग ही रुक गया यह बड़े आश्चर्य की बात है । भाग्य सबसे अधिक बलवान है ॥१९॥ यह बलवान् विधि मेरा दीर्घकाल तक मार्ग रोककर न जाने कौन सा कार्य करेगा । इस तरह से मार्ग के रुक जाने पर सभी लोकेश्वर और लोक अपना कर्तव्य पालन नहीं कर सके । चित्रगुप्त इत्यादि सभी जीव सूर्य के द्वारा ही तो समय को जान पाते हैं ॥२१॥ उन सूर्य को विन्ध्याचल पर्वत ने रोक दिया । यह तो भाग्य का ही फेर है । विन्ध्यपर्वत के द्वारा की जाने वाली स्पर्धा के कारण जब सूर्य रुक गये उस समय ॥२२॥ स्वाहाकार तथा स्वधाकार नष्ट हो गये । यह संसार भी नष्टप्राय हो गया । इसी तरह पश्चिम तथा दक्षिण के लोग ॥२३॥ निद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द किए रहे क्योंकि वहाँ रात्रि ही बनी रही । पूर्व तथा उत्तर दिशा के जीव सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से संतप्त होने लगे ॥२४॥ इसके कारण बहुत से प्राणी विनष्ट हो गये, बहुत से मर गये और बहुत से प्राणी भग्न हो गये। स्वधा और कव्य से रहित सम्पूर्ण जगत् में हाहाकार मच गया । इन्द्र के साथ सभी देवता घबराकर कहने लगे कि अब क्या किया जाय ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच– **ततः सर्वे सुरगणा महेन्द्रप्रमुखास्तदा । पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरणमन्वयुः ॥१॥ उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः। देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम् ॥२॥** देवा ऊचुः– **जय देव गणाध्यक्ष उमालालितपद्मज । अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय ते ॥३॥ महामायाविलसितस्थानाय परमात्मने । वृषाङ्कायामरेशाय कैलासस्थितिशालिने ॥४॥ अहिर्बुन्ध्याय मान्याय मनवे मानदायिने । अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शंभवे ॥५। गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते । महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च ॥६॥ विष्णुहृत्कंजवासाय महायोगरताय च । योगगम्याय योगाय योगिनां पतये नमः ॥७॥ योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने । दीनदानपरायापि दयासागरमूर्तये॥८॥ आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्याय गुणमूर्तये । वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः ॥९॥** सूत उवाच– **एवं स्तुतः स देवेशो यज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः । प्राह गंभीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षमान् ॥१०॥** श्रीभगवानुवाच– **प्रसन्नोऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तमपूरुषाः । मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः॥११॥**

शंकरजी द्वारा देवी की स्तुति

सूतजी ने कहा– उसके बाद इन्द्र आदि सभी प्रधान देवता ब्रह्मा जी को आगे करके रुद्र के शरण में गये ॥१॥ उन सभी लोगों ने अपनी सुन्दर स्तुतियों द्वारा देवाराध्य, पर्वतवासी, चन्द्रमा से सुशोभित शिर वाले शंकर जी की प्रार्थना की ॥२॥ **देवताओं ने कहा–** हे गणों के स्वामी ! देवी के द्वारा सेवित चरण कमल वाले आप की जय हो । अपने भक्तों को आठों सिद्धियों तथा ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले आपकी जय हो ॥३॥ महामाया से सुशोभित स्थान वाले, परमात्मा, वृषभवाहन, देवताओं के स्वामी, कैलास पर्वत पर रहने वाले ॥४॥ अहिर्बुध्न्य, मान्य, मनु, मान प्रदान करने वाले, अजन्मा, अनेक रूपों वाले, अपनी आत्मा में ही आनन्दानुभव करने वाले, शम्भु ॥५॥ गणनाथ तथा गिरीश को नमस्कार है । महाविभूति प्रदान करने वाला, महाविष्णु के द्वारा स्तुत ॥६॥ विष्णु के हृदय कमल में निवास करने वाले महायोगी, योगगम्य योगस्वरूप तथा योगियों के स्वामी आपको नमस्कार है ॥७॥ योगियों के स्वामी, योगों का फलप्रदान करने वाले, दीनजनों को अभिलषित वस्तु प्रदान करने वाले तथा दया के सागर एवं दयामूर्ति ॥८॥ दुःखों को दूर करने वाले, उग्रवीर्य, गुणों की साक्षात् मूर्ति, वृषध्वज, कालस्वरूप, काल को भी कवलित करने वाले आपको नमस्कार **है** ॥९॥ **सूतजी ने कहा–** इस तरह से देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर यज्ञभोक्ता वृषभध्वज ने गंभीर वाणी से हँसते हुए उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा ॥१०॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे देवताओं मैं प्रसन्न हूँ । मैं आपलोगों के मनोरथों को पूरा करूँगा ॥११॥ **देवताओं ने कहा–** हे सर्वदेवेश ! हे गिरीश ! हे चन्द्रमौलि ! हे महाबलवान् ! आप आर्तजीवों

देवा ऊचुः— **सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजित । आर्तानां शंकरस्त्वं च शं विधेहि महाबल ॥१२॥ पर्वतो विंध्यनामाऽस्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः। भानुमार्गं निरोद्धा हि सर्वेषां दुःखदोऽनघ ॥१३॥ तद्वृद्धिं स्तंभयेशान सर्वकल्याणकृद्भव । भानुसंचाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत्॥१४॥ नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत् । अस्माकं च भयार्तानां भवानेव विदृश्यते ॥१५॥ दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते ।** श्रीशिव उवाच— **नास्माकं शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तम्भने सुराः ॥१६॥ इममेवं वदिष्यामो भगवंतं रमाभवम् । सोऽस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक्॥१७॥ गोविंदो भगवान्विष्णुः सर्वकारणकारणः । तं गत्वा कथयिष्यामः स दुःखांतो भविष्यति ॥१८॥ इत्येवमाकर्ण्य गिरीशभाषितं देवाश्च सेंद्राः सपयोजसंभवाः । रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना वैकुण्ठलोकं प्रतिजग्मुरंजसा ॥१९॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

का कल्याण करने वाले हैं । आप हमलोगों का कल्याण करें । ।१२।। हे अनघ ! सुमेरु पर्वत से द्वेष करने वाला, विन्ध्यगिरि अत्यन्त बढ़कर सूर्य के मार्ग को रोक दिया है । वह सबों को दुःख दे रहा है ।।१३।। हे ईशान ! सबों का कल्याण करने के लिए आप उसकी वृद्धि को रोक दें । सूर्य के संचार के रुक जाने पर समय का ज्ञान कैसे होगा ।।१४।। संसार में जब स्वाहाकार एवं स्वधाकार रुक जायेगा तो फिर आपको छोड़कर हमलोगों की रक्ष कौन कर सकता है ।।१५।। हमलोगों के दुःख को आप दूर कीजिये हे गिरिजापते ! हे देव ! आप प्रसन्न हो जाइये । **श्रीशिवजी ने कहा** — हे देवताओं ! मुझमें उसकी वृद्धि को रोकने की शक्ति नहीं है ।।१६।। इस बात को हमलोग रमापति से निवेदित करें । वे हमलोगों की आत्मा, पूज्य एवं जगत्कारण हैं ।।१७।। भगवान् विष्णु गोविन्द हैं । समस्त कारणों के भी कारण है । उन्हीं के पास चलकर हमलोग इस बात को कहेंगे तो हमलोगों का दुःख दूर हो जायेगा।।१८।। इस तरह से शंकर जी की बात को सुनकर ब्रह्माजी के साथ सभी देवता शंकरजी को आगे करके काँपते हुए वैकुण्ठ लोक में गये ।।१९।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसादद्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच– **ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम् । विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम् ॥१॥ स्तोत्रेण तुष्टवुर्भक्त्या गद्गदस्वरसत्कृताः।** देवाः ऊचुः– **जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज ॥२॥ दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद । महावराह गोविंद महायज्ञस्वरूपक् ॥३॥ महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण । मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक ॥४॥ सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः । जयाकूपार दैत्यारे सुरकार्यसमर्थक ॥५॥ अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः । जयादिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥६॥ मह्युद्धारकृतोद्योग कोलरूपाय ते नमः। नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः ॥७॥ करजैर्वरदृप्तांगं तस्मै नृहरये नमः । वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥८॥ बलिं संछलयामास तस्मै वामनरूपिणे । दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे ॥९॥ रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः । दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे॥१०॥ श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनंतक्रमाय च । कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलांछनैः ॥११॥ भाराक्रांतां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः । धर्मं**

देवताओं द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति

सूतजी ने कहा– वे सभी देवता रमापति, जगत् के स्वामी, कमलनयन भगवान् विष्णु को कान्ति सम्पन्न रूप से देखे ॥१॥ उन देवताओं ने गद्गद स्वर में भगवान् विष्णु की स्तुति की । **देवताओं ने कहा–** हे विष्णो ! हे रमेश ! हे आद्यमहापुरुष आप की जय हो ॥२॥ हे दैत्यारे ! हे कामजनक ! हे सभी कामनाओं का फलप्रदान करने वाले ! हे महावराह ! हे गोविन्द ! हे महायज्ञ स्वरूप धारण करने वाले ॥३॥ हे महाविष्णो ! हे ध्रुवेश ! हे जगत् की उत्पत्ति के कारण ! हे मत्स्यावतार धारण करने वाले प्रभो ! हे वेदों के उद्धारणार्थ रूप धारण करने वाले ॥४॥ हे सत्यव्रत ! हे पृथिवीपते ! हे मत्स्यरूप धारण करने वाले प्रभो आपको नमस्कार है । हे दैत्यों के शत्रो ! हे देवताओं के कार्य का समर्थन करने वाले ! दयासागर आपकी जय हो ॥५॥ हे अमृत की प्राप्ति कराने वाले स्वामिन् ! हे कूर्मरूप धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है । आदिदैत्य हिरण्याक्ष का वध करने के लिए आदि वाराहरूप धारण करने वाले प्रभो आपकी जय हो ॥६॥ पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूकर का रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है, जिन्होंने नरसिंह रूप धारण करके महादैत्य का नाश किया ॥७॥ जिन्होंने अपने नखों से उस दैत्य को फाड़ दिया उन नृसिंह को नमस्कार है । वामन रूप धारण करके ऐश्वर्य के मद से मोहित ॥८॥ बलि से जिन्होंने छल किया उन वामन रूपधारी भगवान् को नमस्कार है । दुष्ट क्षत्रियों का विनाश करने के लिए सहस्रबाहु के शत्रु तथा रेणुका के गर्भ से उत्पन्न होने वाले जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी को नमस्कार है । दुष्टराक्षस रावण का शिर काटने में पटु ॥१०॥ श्रीमान् दाशरथि

संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः ॥१२॥ तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो । दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये ॥१३॥ बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः । म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते ॥१४॥ कल्किरूपं समादध्यौ देवेदेवाय ते नमः । दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै ॥१५॥ दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत् । जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु ॥१६॥ रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः । इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम् ॥१७॥ प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टागं विबुधर्षभाः । तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः ॥१८॥ उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयन्छ्रीगदाधरः । श्रीभगवानुवाच– **प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहं देवास्तापं विमुंचथ ॥१९॥ भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम् । वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम् ॥२०॥ ददामि परमप्रीतः स्तवस्यास्य प्रसादतः । य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥२१॥ मयि भक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा । अलक्ष्मीः कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः ॥२२। नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्ममानवाः । न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसंभविनस्तथा ॥२३॥ नाकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति । संततिश्चिरकालस्था**

तथा अनंत पराक्रम सम्पन्न आपको मेरा नमस्कार है। पृथिवी के राजाओं के कलङ्कस्वरूप कंस तथा दुर्योधन आदि दैत्यों के पाप के भार से दबी हुई भूमि का जिन श्रीभगवान् ने उद्धार किया तथा पाप को विनष्ट करके ॥११-१२॥ धर्म की स्थापना की, उन भगवान् श्रीकृष्ण को बार-बार नमस्कार है । दोषयुक्त यज्ञों को ध्वंस करके की जाने वाली पशुओं की हिंसा को बन्द करने के लिए ॥१३। जिन्होंने बौद्धरूप धारण किया ऐसे आपको नमस्कार है। संसार के म्लेच्छप्राय हो जाने पर तथा पृथिवी के दुष्ट राओं द्वारा पीड़ित होने पर ॥१४। जिन्होंने कल्किरूप धारण किया ऐसे देवताओं के आराध्य आपको नमस्कार है । हे देव ! आप अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए दश अवतारों को ॥१५॥ तथा दुष्टों एवं दैत्यों का विनाश करने के लिए धारण करते हैं । अतएव आप सबों के दुःख को दूर करने वाले हैं । आपकी जय हो । आपने भक्तों का दुःख दूर करने के लिए स्त्री तथा जलजंतुओं का रूप धारण किया अतएव आपसे बढ़कर दयानिधि कौन हो सकता है ? इस तरह से पीताम्बरधारी श्रीभगवान् की स्तुति करके ॥१६-१७॥ देवताओं ने भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया । देवताओं की स्तुति को सुनकर श्रीभगवान् सभी देवताओं को प्रहर्षित करते हुए बोले । **श्रीभगवान् ने कहा–** हे देवताओं ! मैं आपलोगों की स्तुति से प्रसन्न हूँ । आप लोग अपना संताप छोड़ दें ॥१८-१९॥ आप लोगों के बड़े से बड़े कष्ट को मैं दूर करूँगा । आपलोग मुझसे दुर्लभ से भी दुर्लभ वरदान माँगें ॥२०॥ इस स्तुति से प्रसन्न होने के कारण मैं उसे देने के लिए तैयार हूँ । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्र को पढ़ेगा ॥२१॥ उसकी मुझमें श्रेष्ठ भक्ति होगी, उसका स्पर्श शोक नहीं कर पाये[illegible] नहीं आयेगी ॥२२॥ बिमारी, बेताल, ग्रह, ब्रह्मराक्षस, वात,

भोगाः सर्वे सुखादयः ॥२४॥ संभविष्यन्ति तन्मर्त्यगृहे यः स्तोत्रपाठकः । किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम् ॥२५॥ एतस्य पठनान्नृणां भुक्तिमुक्ती न दूरतः । देवा भवत्सु यद्दुःखं कथ्यतां तदसंशयम् ॥२६॥ नाशयामि न संदेहश्चात्र कार्योऽणुरेव च । एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः । प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरुचुर्वृषाकपिम् ॥२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच– **श्रीशस्य वचनाद्देवाः संतुष्टाः सर्व एव हि । प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे ॥१॥** देवा ऊचुः– **देवदेव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यंतकारण । विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्य मार्गरोधं करोति हि ॥२॥ तेन भानुनिरोधेन सर्व एव महाविभो । अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र याम हि ॥३॥** श्रीभगवानुवाच– **या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी । देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः ॥४॥ अगस्त्यो मुनिवर्योऽसौ**

पित्त तथा कफजन्य रोग उसके घर में नहीं होंगे ॥२३॥ उसकी कभी अकालमृत्यु नहीं होगी । उसके घर में सन्तान तथा दीर्घ स्थायी सुखभोग प्राप्त होंगे॥२४॥ इस स्तोत्र को पढ़ने वाले व्यक्ति के घर में ये सारी वस्तुएँ होंगी । अधिक क्या कहूँ यह स्तोत्र सभी प्रकार के अर्थों को प्रदान करने वाला है॥२५॥ इस स्तोत्र को पढ़ने से मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्राप्त होंगे । देवताओं आपलोग अपना कष्ट बतलायें ॥२६॥ उसको मैं दूर करूँगा । इसमें आपलोग थोड़ी से भी शंका न करें । श्रीभगवान् की इस तरह की बात को सुनकर सभी देवताओं ने प्रसन्नमना होकर उनसे निवेदन किया ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

अगस्त्य महर्षि के द्वारा देवी की स्तुति किए जाने पर विन्ध्यगिर की वृद्धि का रुकना

सूतजी ने कहा– श्रीहरि की बातों को सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये । उसके बाद देवताओं ने श्रीहरि से कहा– **देवताओं ने कहा–** हे देवाधिदेव! महाविष्णो ! जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार के कारणस्वरूप ! विन्ध्यपर्वत ने सूर्य का मार्गावरोध कर दिया है ॥२॥ उसके द्वारा किए जाने वाले सूर्य

वाराणस्यां समासते । तत्तेजोवञ्चकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः ॥५॥ तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम् । याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसः पुरीम् ॥६॥ सूत उवाच– एवं समुपदिष्टास्ते विष्णुना विबुधोत्तमाः । प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम् ॥७॥ क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम् । मणिकर्णीं समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः ॥८॥ संतर्प्य देवाँश्च पितृन्दत्त्वा दानं विधानतः । आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत् ॥९॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णं नानापादपसंकुलम् । मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम् ॥१०॥ महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूलकैरपि । मृगै रुरुभिरत्यर्थं खड्गैः शरभकैरपि ॥११॥ समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा । दंडवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥१२॥ देवा ऊचुः– जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर । वातापीबलनाशाय नमस्ते कुम्भयोनये ॥१३॥ लोपामुद्रापते श्रीमान्मैत्रावरुणसंभव। सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते ॥१४॥ यास्योदये प्रसन्नानि भवन्त्युज्ज्वलभांज्यपि । तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु नः॥१५॥ काशपुष्पविकासाय लंकावासप्रियाय च । जटामण्डलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तु ते ॥१६॥ जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने । वरिष्ठाय च पूज्याय सश्रीकाय नमोऽस्तु ते ॥१७॥ प्रसादः क्रियतां स्वामिन् वयं त्वां शरणं गताः । दुस्तराच्छैलजाद्दुःखात्पीडिताः परमद्युते॥१८॥

के मार्गावरोध के कारण हम लोगों को भोगों की प्राप्ति नहीं हो रही है । हमलोग क्या करें ? कहाँ जायँ ॥३॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** जो संपूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली तथा वंश को बढ़ाने वाली भगवती देवी हैं, उनकी पूजा करने वाले परमकान्ति सम्पन्न महर्षि अगस्त्य वाराणसी में निवास करते हैं, वे ही विन्ध्यपर्वत के उत्कर्ष को रोकने में समर्थ हैं ॥५॥ आपलोग वाराणसी जायँ और परम तेजस्वी द्विजवर्य अगस्त्य से प्रार्थना करें, वे ही आपलोगों का कल्याण करेंगे ॥६॥ **सूतजी ने कहा–** श्रीभगवान् से उपदिष्ट होकर उन पर ही विश्वास करके सभी देवता वाराणसी गये ॥७॥ क्षणभर में सभी देवता वाराणसी आकर मणिकर्णिका में भक्तिपूर्वक वस्त्र सहित स्नान किए ॥८॥ देवताओं और पितरों का तर्पण करके अनेक प्रकार का दान दिए । उसके बाद वे सब महर्षि अगस्त्य के आश्रम में आये ॥९॥ वह आश्रम अत्यन्त शान्त था। उसमें अनेक प्रकर के जीव तथा वृक्ष थे । उसमें मयूर, हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियों का निवास था ॥१०॥ बड़े-बड़े वाराह, सूकर, व्याघ्र, मृग, रुरु, गैंडे तथा सांभर आदि जीव वहाँ पर अत्यधिक संख्या में विद्यमान थे ॥११॥ उसके बाद देवताओं ने परमतेजस्वी महर्षि अगस्त्य को साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥१२॥ **देवताओं ने कहा–** हे ब्राह्मण समुदाय के स्वामिन् ! मान्य तथा पूज्य भूदेव ! आपकी जय हो । वातापी नामक राक्षस के बल को विनष्ट करने वाले कुम्भयोनि को नमस्कार है । हे लोपामुद्रा के पतिदेव, श्रीमान् मैत्रावरुण के पुत्र ! सभी विद्याओं के आकर ! शास्त्रयोनि महर्षे अगस्त्य आपको नमस्कार है ॥१४॥ जिसके उदय होने पर नदियों का जलसमूह स्वच्छ हो जाता है, ऐसे आपको नमस्कार है ॥१५॥ काशपुष्प को विकसित करने वाले तथा लंका में प्रेमपूर्वक निवास करने वाले जटामण्डल तथा शिष्य समुदाय से समलंकृत आपको नमस्कार है ॥१६॥ सभी देवता आपकी स्तुति कर रहे हैं, हे गुणों के समूह, महामुने ! वरिष्ठ पूज्य तथा श्रीसम्पन्न आपको नमस्कार है ॥१७॥ हे स्वामिन्!

इत्येवं संस्तुतोऽगस्त्यो मुनिः परमधार्मिकः । प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः ॥१९॥ मुनिरुवाच– **भवन्तः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः। लोकपाला महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥२०॥ योऽमरावत्यधीशानः कुलिशं यस्य चायुधम् । सिद्ध्यष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः॥२१॥ वैश्वानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम् । मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम् ॥२२॥ रक्षोगणाधिपो भीमः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः । दंडव्यग्रकरो देवः किं तस्यासुकरं सुराः ॥२३॥ तथापि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत् । अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः ॥२४॥ एवं मुनिवरेणोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः । प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाः कार्यं निजगदुर्निजम् ॥२५॥ महर्षे विंध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः । त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम् ॥२६॥ तद्वृद्धिं स्तम्भय मुने निजया तपसः श्रिया । भवतस्तेजसाऽगस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति । एतदेवास्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि ॥२७॥**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

◆

आप हमलोगों पर कृपा कीजिए । हमलोग आपकी शरण में आये हैं । हे परमकान्तिसम्पन्न हमलोग पर्वत से उत्पन भयंकर कष्ट के कारण आपके शरण में आये हैं ॥१८॥ इस तरह से देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर परमधार्मिक मुनि अगस्त्य हंसते हुए देवताओं से कहने लगे ॥१९॥ **मुनि ने कहा–** आपलोग परमश्रेष्ठ देवता हैं । त्रिभुवन के स्वामी हैं, लोकपाल हैं तथा किसी का भी निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ हैं ॥२०॥ जो अमरावती के स्वामी हैं, वज्र ही जिनका आयुध है, जिनके द्वार पर आठों सिद्धियाँ रहा करती हैं, वे देवताओं के स्वामी इन्द्र हैं ॥२१॥ वैश्वानर, अग्नि हव्य तथा कव्य का वहन करने वाले हैं तथा सभी देवताओं के मुख हैं, उनके लिए कौन सा कार्य दुष्कर है ॥२२॥ राक्षसों के स्वामी, भयंकर तथा सबों के कर्म के स्वामी, हाथ में दण्ड धारण करने वाले देवता उन यमराज के लिए क्या दुष्कर हो गया ? ॥२३॥ हे देवेशों ! इसपर भी यदि कोई कार्य मेरी शक्ति से सिद्ध होने वाला हो तो उसे आपलोग बतलाइये। उसे मैं अवश्य करूँगा ॥२४॥ मुनिवर्य की इस वाणी को सुनकर देवगण प्रसन्न हो गये और वे अपना कठिन प्रयोजन महर्षि को बतलाये ॥२५॥ हे महर्षे ! विन्ध्यगिरि ने सूर्य के मार्ग को रोक दिया है । उसके कारण त्रैलोक्य में हाहाकार मच गया है ॥२६॥ हे मुने ! आप अपनी तपस्या की शक्ति से उसकी वृद्धि को रोक दें । हे अगस्त्य महर्षे ! आपके तेज से वह निश्चित रूप से झुक जायेगा । हमलोगों का यही कार्य आपको करना है ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

◆

सप्तमोऽध्यायः

सूत उवाच– **इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः । करिष्ये कार्यमेतद्वै प्रत्युवाच ततो मुनिः ॥१॥ अङ्गीकृते तदा कार्ये मुनिना कुंभजन्मना । देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥२॥ ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः । पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम् ॥३॥ अये नृपसुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः । भानुमार्गनिरोधेन कृतो विन्ध्यमहीभृता ॥४॥ आः ज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम् । काशीमुद्दिश्य यद्गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥ अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः । किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यां निवसतां सताम् ॥६॥ सोऽन्तरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये । इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः ॥७॥ मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम् । दंडपाणिं समाभ्यर्च्य कालराजं समागतः ॥८॥ कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक । कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वर॥९॥ त्वं काशीवासविघ्नानां नाशको भक्तरक्षकः । मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तार्तिविनिवारक ॥१०॥ परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम् । केन कर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम् ॥११॥ एवं प्रार्थ्य च तं कालनाथं कुम्भोद्भवो मुनिः । जगाम साक्षिविघ्नेशं सर्वविघ्ननिवारणम्॥१२॥**

अगस्त्य महर्षि द्वारा विन्ध्यगिरि की वृद्धि को रोकना

सूतजी ने कहा– देवताओं की इस बात को सुनकर महर्षि ने कहा– मैं आपलोगों का कार्य अवश्य करूँगा ॥१॥ महर्षि द्वारा कार्य को स्वीकार कर लेने पर हे द्विजश्रेष्ठों ! सभी देवता प्रसन्न हो गये ॥२॥ मुनि के कहने से सभी देवता अपने घर चले आये उसके बाद महर्षि ने राजकन्या अपनी पत्नी से कहा ॥३॥ राजकुमारि ! विन्ध्याचल पर्वत ने सूर्य के मार्ग को रोककर अनर्थकारी कार्य को किया है, उससे बहुत बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया है ॥४॥ मुझे पुरानी बात याद आ गयी; अतएव उसका कारण भी मैंने जान लिया है। काशी के विषय में तत्त्वदर्शी मुनियों ने कहा भी है ॥५॥ मुमुक्षु पुरुषों को कभी अविमुक्त क्षेत्र काशी नहीं छोड़ना चाहिए। किन्तु काशी में रहने वाले सज्जनों को विघ्न होता है ॥६॥ हे प्रिये ! मैं काशी में रहता हूँ मेरे सामने वही विघ्न आ गया । इस तरह से अपनी पत्नी को कहकर परमतेजस्वी मुनि ने ॥७॥ मणिकर्णिका में स्नान करके विश्वेश्वर का दर्शन किया । फिर दण्डपाणि की पूजा करके वे कालभैरव का दर्शन करने आये ॥८॥ हे महाबाहो कालराज ! आप भक्तों के भय को दूर करने वाले हैं, आप तो काशी पुरी के स्वामी हैं । आप इस नगरी से मुझे दूर क्यों कर रहे हैं ॥९॥ आप काशीवास के विघ्नों को दूर करने वाले तथा भक्तों के रक्षक हैं । हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले स्वामिन् ! मुझको आप अपने से दूर क्यों कर रहे हैं ? ॥१०॥ मैंने न तो किसी की निन्दा की है, न चुगली ही की है, न तो मैंने कभी

तं दृष्ट्वाऽभ्यर्च्य सम्प्रार्थ्य ततः पुर्या विनिर्गतः । लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्यो दक्षिणां दिशम् ॥१३॥ काशीविरहसंतप्तो महाभाग्यनिधिर्मुनिः
संस्मृत्यानुक्षणं काशीं जगाम सह भार्यया ॥१४॥ तपोयानमिवारुह्य निमिषार्धेन वै मुनिः । अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्धांबरमथोन्नतम् ॥१५॥ चकम्पे
चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रे स्थितं मुनिम् । गिरिः खर्वतरो भूत्वा विविक्षुरवनीमिव ॥१६॥ दंडवत्पतितो भूमौ साष्टांगं भक्तिभावितः । तं दृष्ट्वा
नम्रशिखरं विन्ध्यं नाम महागिरिम् ॥१७॥ प्रसन्नवदनोऽगस्त्यो मुनिर्विन्ध्यमथाब्रवीत् । वत्सैवं तिष्ठ तावत्त्वं यावदागम्यते मया ॥१८॥ अशक्तोऽहं
गंडशैलारोहणे तव पुत्रक । एवमुक्त्वा मुनिर्याम्यदिशं प्रति गमोत्सुकः ॥१९॥ आरुह्य तस्य शिखराण्यवारुहदनुक्रमात् । गतो याम्यदिशं चापि
श्रीशैलं प्रेक्ष्य वर्त्मनि ॥२०॥ मलयाचलमासाद्य तत्राश्रमपरोऽभवत् । सापि देवी तत्र विन्ध्यमागता मनुपूजिता ॥२१॥ लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति
च शौनक । सूत उवाच– एतच्चरित्रं परमं शत्रुनाशनमुत्तमम् ॥२२॥ अगस्त्यविंध्यनगयोराख्यानं पापनाशम् । राज्ञां विजयदं तच्च द्विजानां
ज्ञानवर्धनम् ॥२३॥ वैश्यानां धान्यधनदं शूद्राणां सुखदं तथा । धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ॥२४॥ कामानवाप्नुयात्कामी भक्त्या

झूठ बोला है । मेरे किस कर्म के परिणामस्वरूप मुझे काशी से दूर कर रहे हैं ॥११॥ इस तरह से कालभैरव से प्रार्थना करके अगस्त्य महर्षि सभी विघ्नों
को दूर करने वाले साक्षीगणेश का दर्शन करने गये ॥१२॥ उनका दर्शन तथा पूजन करके महर्षि अगस्त्य काशी से बाहर निकल गये । लोपांमुद्रा के पति
महाभाग्यवान् महर्षि अगस्त्य काशी के विरह से संतप्त होकर निरन्तर काशी का स्मरण करते हुए अपनी पत्नी के साथ दक्षिण दिशा में चल पड़े ॥१३-१४॥
अपनी तपस्या रूपी विमान पर चढ़कर वे मुनि आधे निमेष में ही विन्ध्यगिरि के पास पहुँच गये और उन्होंने देखा कि विन्ध्यगिरि इतना ऊँचा हो गया है
कि वह आकाश को रोक रहा है ॥१५॥ विन्ध्यपर्वत अपने समक्ष महर्षि अगस्त्य को देखकर काँप गया । वह शीघ्र ही अत्यन्त छोटा हो गया । जैसे वह
भूमि के भीतर प्रवेश कर जाना चाहता हो ॥१६॥ वह भक्तिभाव से भरकर महर्षि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उस झुके हुए शिखर वाले विन्ध्य नामक पर्वत
को देखकर ॥१७॥ महर्षि अगस्त्य प्रसन्न हो गये । उन्होंने विन्ध्यपर्वत से कहा– हे वत्स ! जब तक मैं लौटकर न आ जाऊँ तब तक तुम ऐसे ही पड़े
रहो ॥१८॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारे शिखरों पर चढ़ने में असमर्थ हूँ । इस तरह कहकर दक्षिण दिशा में जाने के लिए उत्सुक मुनि ॥१९॥ उस पर्वत के शिखरों
पर चढ़कर उसके दूसरी ओर क्रमशः उतर गये । वे दक्षिण दिशा में जाकर रास्ते में श्रीशैल को देखे ॥२०॥ मलयाचल पहुँच कर वहीं पर उन्होंने अपना
आश्रम बना लिया । महाराज मनु के द्वारा पूजित देवी भी वहीं चली आयीं ॥२१॥ हे शौनक ! वे लोक में विन्ध्यवासिनी के नाम से प्रख्यात हुईं ।
सूतजी ने कहा– महर्षि का यह चरित्र शत्रुओं का विनाश करने वाला है ॥२२॥ महर्षि अगस्त्य और विन्ध्यगिरि की कथा पापों को विनष्ट करने वाली है।
यह राजाओं को विजय दिलाने वाली और ब्राह्मणों के ज्ञान को बढ़ाने वाली है ॥२३॥ यह कथा वैश्यों को धन-धान्य प्रदान करने वाली तथा शूद्रों

चास्य सकृच्छ्रवात् । एवं स्वायंभुवमनुर्देवीमाराध्य भक्तितः ॥२५॥ लेभे राज्यं धरायाश्च निजमन्वन्तराश्रयम् । इत्येतद्वर्णितं सौम्य मया मन्वन्तराश्रितम् । आद्यं चरित्रं श्रीदेव्याः किं पुनः कथयामि ते ॥२६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

शौनक उवाच– **आद्यो मन्वंतरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः । अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्यतेजसाम् ॥१॥** सूत उवाच– **एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वायम्भुवस्य हि । अन्येषां क्रमशस्तेषां संभूतिं परिपृच्छति ॥२॥ नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः ।** नारद उवाच– **मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन ॥३॥** श्रीनारायण उवाच– **प्रथमोऽयं मनुः स्वायम्भुव उक्तो महामुने । देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकंटकम्॥४॥**

को सुख देने वाली है । इसका एक बार भी भक्तिपूर्वक श्रवण कर लेने से धमार्थी धर्म को प्राप्त कर लेता है और धनार्थी धन को प्राप्त करता है ॥२४॥ कामी पुरुष अपने काम्य पदार्थों को प्राप्त कर लेता है । इस तरह से स्वायम्भुव मनु देवी की भक्तिपूर्वक आराधना करके ॥२५॥ अपने मन्वन्तर के राज्य को प्राप्त कर लिए । हे सौम्य ! इस तरह से मैंने श्रीदेवी के आद्यचरित्र को सुनाया अब आप क्या सुनना चाहते हैं उसे मैं आपको सुनाऊँ ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

स्वारोचिष् , उत्तम, तामस तथा रैवतमनु की कथा

शौनक महर्षि ने कहा– आपने प्रथम मन्वन्तर की उत्तम कथा सुनायी है । आप मुझे दिव्यतेज से सम्पन्न अन्य मनुओं की उत्पत्ति की कथा सुनाइये। **सूतजी ने कहा–** इस प्रकार से प्रथम मनु की कथा को सुनकर नारदजी ने अन्य मनुओं की कथा सुनने की इच्छा से नारायण मुनि से पूछा ॥२॥ देवी तत्त्व के ज्ञाता परम ज्ञानी नारदजी ने पूछा **नारदजी ने कहा–** हे सनातन ! आप मुझे अन्य मनुओं की कथा बतलाएँ ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** हे महामुने ! मैंने प्रथम स्वायम्भुव मनु का चरित बतलाया । उन्होंने देवी की आराधना करके अकण्टक राज्य प्राप्त किया ॥४॥ मनु के दो महाप्रतापी पुत्र हुए प्रियव्रत

प्रियव्रतोंत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ । राजयपालनकर्त्तारौ विख्यातौ वसुधातले ॥५॥ द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः । प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयप्रराक्रमः ॥६॥ स स्वारोचिषनामापि कालिन्दीकूलतो मनुः । निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियंकरः ॥७॥ जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः देव्या मूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥८॥ एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः । देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः॥९॥ ततः प्रसन्ना देवेशी स्तवराजेन सुव्रता । ददौ स्वारोचिषायैव सर्वमन्वन्तराश्रयम् ॥१०॥ आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात् । एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः ॥११॥ आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवर्जितम् ॥ धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः ॥१२॥ भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात् । तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥१३॥ गंगाकूले तपस्तप्त्वा वाग्भवं संजपन्नहः । वर्षाणि त्रीण्युपवसन्देव्यनुग्रहमाविशत् ॥१४॥ स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः । राज्यं निष्कण्टकं लेभे संततिं चिरकालिकीम् ॥१५॥ राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्त्वा धर्मान्युगस्य च । सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम् ॥१६॥ चतुर्थस्तामसो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः । नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम् ॥१७॥ महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः । वासंते शारदे काले नवरात्रसपर्यया ॥१८॥ तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम्।

और उत्तानपाद, वे भूलोक में राज्य पालनकर्ता के रूप में विख्यात थे ॥५॥ मनीषियों दूसरा मनु स्वारोचिष मनु को बतलाया गया है । ये प्रियव्रत के पुत्र थे एश्वर्य सम्पन्न और पराक्रमी थे ॥६॥ स्वारोचिष् नामक मनु ने भी यमुना नदी के तट पर अपना निवास बनाया । ये सभी प्राणियों के प्रिय थे ॥७॥ इन्होंने सूखे पत्तों को खाकर व्रत किया । ये भक्तिपूर्वक देवी की मिट्टी की मूर्ति की पूजा करते थे । इस तरह वन में रहकर तपस्या करते हुए इनके बारह वर्ष बीत गये । उसके बाद इनके समक्ष हजारों सूर्य के समान कान्ति वाली देवी प्रकट हो गयीं ॥९॥ उसके बाद स्वारोचिष मनु के द्वारा किए गये स्तवराज से प्रसन्न होकर देवी ने उस मन्वन्तर का सम्पूर्ण राज्य का स्वामित्व स्वारोचिष् मनु को प्रदान कर दिया ॥१०॥ उसके कारण देवी तारिणी की प्रथा से प्रथित हुई। इस तरह से स्वारोचिष मनु तारिणी देवी की आराधना से ॥११॥ सभी शत्रुओं से रहित स्वामित्व प्राप्त किए अपने पुत्रों के साथ राज्य का भोग करके वे मनु पुत्रों को राज्य विधिवत् समर्पित करके इस लोक के सुखों को भोगकर स्वर्ग लोक चले गये । तीसरे मनु का नाम उत्तम मनु है । ये भी राजा प्रियव्रत के पुत्र थे ॥१३॥ इन्होंने गंगा के तट पर तपस्या करके दिन भर वाणी बीज 'ऐं' का जप करते थे । तीन वर्ष तक उपवास करके देवी की कृपा के पात्र बन गये ॥१४॥ भक्ति से परिपूर्ण स्तोत्रों से देवी की स्तुति करके ये निष्कण्टक राज्य तथा चिरस्थायी सन्तान को प्राप्त किए थे ॥१५॥ राज्य से प्राप्त होने वाले सुख का भोग करके तथा युग के अन्य धर्मों का पालन करके जिस स्थान को प्राप्त किया जा सकता है, उस स्थान को इन्होंने प्राप्त किया ॥१६॥ चतुर्थ मनु का नाम तामस मनु था । ये भी प्रियव्रत के पुत्र थे । इन्होंने नर्मदा नदी के दाहिने तट पर रहकर जगन्माता की आराधना की ॥१७॥ ये देवी

तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तौत्रैरनुत्तमैः ॥१९॥ अकंटकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः । पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दश वीर्यनिकेतनान् ॥२०॥ उत्पाद्य निजभार्यायां जगामाम्बरमुत्तमम् । पंचमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः ॥२१॥ कालिंदीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम् । बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम् ॥२२॥ एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम् । बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम् ॥२३॥ संततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम् । धर्मान्वयस्य व्यवस्थाय विषयानुपभुज्य च । जगामाप्रतिमः शूरो महेंद्रालयमुत्तमम् ॥२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । अंगपुत्रेण मनुना यथाऽऽप्तं राज्यमुत्तमम् ॥१॥ अङ्गस्य राज्ञः पुत्रोऽ**

के कामराजकूट मन्त्र का जप करते थे । वसंत तथा शरद् ऋतु में नवरात्र व्रत करके इन्होंने अपनी पूजा से जलाक्षी देवी को प्रसन्न किया। उस देवी की कृपा प्राप्त करके तथा सर्वोत्तम स्तोत्रों से देवी की आराधना करके इन्होंने निष्कण्टक तथा विस्तृत राज्य का भोग किया । इन्होंने अपनी पत्नी में महापराक्रमी शूरवीर दश पुत्रों को उत्पन्न किया और अन्त में स्वर्ग लोक में चले गये । पाँचवें मनु का नाम रैवत मनु है । ये तामस मनु के अनुज थे। ये यमुना के तट पर रहकर कामबीज संज्ञक मन्त्र का जप किए । यह मन्त्र साधकों को सम्मान प्रदान करने वाला है।।२२।। इस आराधना के फलस्वरूप इन्होंने अत्यन्त समृद्ध राज्य प्राप्त किया । इन्होंने सभी सिद्धियों को देने वाला अप्रतिहत बल भी प्राप्त किया । इन्होंने चिरकाल स्थायी पुत्रों तथा पौत्रों की समृद्धि प्राप्त की । इन्होंने धर्म की व्यवस्था करके उसकी रक्षा का प्रबन्ध किया और राज्य सुख भोगने के पश्चात् ये इन्द्रलोक में चले गये ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

चाक्षुष मनु की कथा

श्रीनारायण ने कहा– अब आप अत्यन्त अद्भुत देवी का माहात्म्य सुनें । जिस प्रकार अङ्ग के पुत्र मनु ने राज्य प्राप्त किया उसे बतलाता हूँ ॥१॥

**भूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः । षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः ॥२॥ ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन् । शाधि मां किंकरं स्वामिन् येनाहं
प्राप्नुयां श्रियम् ॥३॥ मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखंडितम् । अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षमम् ॥४॥ संततिश्चिरकालीनाऽप्यखंडं वय
उत्तमम् । अंतेऽपवर्गलाभश्च स्यात्तथोपदिशाद्य मे ॥५॥ इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत् । प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान्देव्याः संराधनं
परम्॥६॥ राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत् । शिवामाराधयाद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत् ॥७॥** चाक्षुष उवाच– **कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः
परमपावनम् । केनाकारेण कर्तव्यं करुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥८॥** मुनिरुवाच– **राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम् । वाग्भवं बीजमव्यक्तं
संजप्यमनिशं तथा ॥९॥ त्रिकालं संजपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु सः । न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनन्दन ॥१०॥ जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धिकरं
परम् । एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः ॥११॥ विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः । महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप ॥१२॥
लोकपालास्तथान्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः । यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः ॥१३॥ एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदम्बिकाम् । समाराध्य
महर्षिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः ॥१४॥ एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः । अङ्गपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम् ॥१५॥ स च तेपे तपस्तीव्रं**

राजा अङ्ग के पुत्र तथा उत्तम मनु चाक्षुष हुए । ये छठे मनु थे । इन्होंने पुलह मुनि की शरणागति की ॥२॥ हे शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले
महर्षे मैं आपके शरण में हूँ । मैं आपका दास हूँ । आप मुझे ऐसा उपदेश दें कि मैं राज्यश्री प्राप्त कर लूँ ॥३॥ पृथिवी का अखण्ड राज्य प्राप्त हो जाय।
शस्त्रों तथा अस्त्रों के विषय में अव्याहत भुजाबल प्राप्त हो ॥४॥ मेरी सन्तान दीर्घकाल पर्यन्त स्थायी हो और उन सबों की आयु भी अखण्ड हो । अन्त
में मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो, इस प्रकार का उपदेश मुझे आप दें ॥५॥ उस मनु की इस प्रकार की वाणी को सुनकर मुनि ने देवी के सर्वश्रेष्ठ आराधना
का उपदेश दिया ॥६॥ हे राजन् ! आप कानों को सुख देने वाली मेरी वाणी को सुनें । तुम भगवती शिवा की आराधना करो । उनकी ही कृपा से ये
सारी चीजें उपलब्ध हो जायेंगी ॥७॥ **चाक्षुष ने कहा–** देवी की परम पावन अराधना कैसी है ? वह कैसे की जाती है ? इसे आप कृपा करके बतलायें॥८॥
मुनि ने कहा– हे राजन् ! आप देवी के परमाराधन को सुनें । आप निरन्तर वाणी के बीज मन्त्र का जप करें । इस बीज मंत्र का तीनों सन्ध्यायों में जप
करने वाला व्यक्ति भोग तथा मोक्ष दोनों को प्राप्त करता है । हे राजकुमार ! वाणी बीज से बढ़कर कोई भी दूसरा मन्त्र नहीं है ॥१०॥ इसका जप करने
से ही सिद्धि मिल जाती है तथा बल, वीर्य की प्राप्ति होती है । इसी का जप करके ब्रह्मा जी सृष्टिकर्ता बन गये और महाबलवान हैं ॥११॥ उसी का जप
करके विष्णु पालक हैं, शंकर जी संहार करने वाले हुए हैं ॥१२॥ हे राजन् उसी मन्त्र के जप के प्रभाव से लोकपाल किसी का निग्रह करने तथा किसी
पर अनुग्रह करने में समर्थ हुए हैं। उन जगदम्बा की ही कृपा से देवता भी बल एवं वीर्य के मद से उद्धत हो जाते हैं ॥१३॥ हे राजन् ! आप भी माहेशी

वाग्भवस्य जपे रतः । बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः ॥१६॥ प्रथमेऽब्दे पल्लवाशी द्वितीये तोयभक्षणः । तृतीयेऽब्दे पवनभुक्तस्थौ
स्थाणुरिवाचलः ॥१७॥ एवं द्वादश वर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः ॥ वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता ॥१८॥ तथा च देव्याः परमं
मन्त्रं संजपतो रहः । प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी ॥१९॥ तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी । उवाचाङ्गतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम्॥२०॥
देव्युवाच– पृथिवीपाल ते यत्स्याच्चिन्तितं परमं वरम् । तद्ब्रूहि सम्प्रदाम्यामि तपसा ते सुतोषिता ॥२१॥ चाक्षुष उवाच– जानासि देवदेवेशि
यत्प्रार्थ्यं मनसेप्सितम् । अन्तर्यामीस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते ॥२२॥ तथापि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम् । ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं
मन्वन्तराश्रितम् ॥२३॥ श्रीदेव्युवाच– दत्तं मन्वन्तरस्यास्य राज्यं राजन्यसत्तम । पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यन्ति गुणाधिकाः ॥२४॥ राज्यं
निष्कंटकं भावि मोक्षोऽन्ते चापि निश्चितः । एवं दत्त्वा वरं देवी मनवे वरमुत्तमम् ॥२५॥ जगामादर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता । सोऽपि
राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात् ॥२६॥ बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः । पुत्रास्तस्य बलोद्युक्ताः कार्यभारसहादृताः ॥२७॥

शक्ति की आराधना करके तथा महर्षि पुलह की कृपा प्राप्त करके शीघ्र ही राज्य को प्राप्त कर लेंगे ॥१४॥ इस तरह से महर्षि पुलह के द्वारा कहे जाने पर महाराज अङ्ग का पुत्र तपस्या करने के लिए विरजा नदी के तट पर चला गया ॥१५॥ वह वाणी बीज के जप में सदा निरत रहकर तीव्र तप करने लगा । 'ऐं' इस वाणी बीज का जप करता था और सूखे तथा गिरे हुए पत्तों को खाता था ॥१६॥ पहले वर्ष में वह पत्तों को खाता था, दूसरे वर्ष में वह केवल पानी पीकर रहने लगा, तीसरे वर्ष में वह वायु पीकर स्थाणु के समान स्थिर रहता था ॥१७॥ इस तरह आहार त्यागकर बारह वर्षों तक वाणी बीज का जप करने के कारण बुद्धि शुद्ध हो गयी ॥१८॥ वह राजा एकान्त में देवी के मन्त्र का जप करता था। चाक्षुष के समक्ष परमेश्वरी देवी साक्षात् प्रकट हो गयीं ॥१९॥ वे तेजोमयी, दुराधर्ष तथा सर्वदेवमयी हैं । उन्होंने प्रसन्न होकर चाक्षुष से मधुर वाणी में कहा ॥२०॥ **देवी ने कहा–** राजन् ! तुम्हारे मन में जो कोई भी इच्छा हो वह वरदान माँगो, मैं दूँगी, तुम्हारी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ ॥२१॥ **चाक्षुष ने कहा–** हे देवि ! मैं जो चाहता हूँ उसे आप अच्छी तरह जानती हैं । हे देवताओं द्वारा पूजित देवि ! आप अन्तर्यामी होने के कारण सब जानती हैं ॥२२॥ फिर मेरे सौभाग्य से मुझे आपका दर्शन मिला है । मैं कहता हूँ कि आप इस मन्वन्तर का राज्य मुझे दे दें ॥२३॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे राजन् ! मैंने आपको इस मन्वन्तर का राज्य प्रदान कर दिया है । आपके पुत्र महाबलवान गुणवान् होंगे ॥२४॥ आपको निष्कण्टक राज्य प्राप्त होगा तथा मोक्ष भी मिलेगा । इस तरह से मनु को देवी ने वर दिया ॥२५॥ राजा ने उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति की, इसके बाद वे अन्तर्धान हो गयीं । वे छठे मनु राजा भी देवी की कृपा से मनुओं में श्रेष्ठ हो गये । वह सार्वभौम राजा के सुख से सम्पन्न हो गया । उनके अनेक बलवान् तथा कार्यभार सँभालने वाले पुत्र हुए ॥२७॥ वे सब देवी के भक्त, वीर तथा अत्यन्त

देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः । अन्यत्र माननीयाश्च महराज्यसुखास्पदाः ॥२८॥ एवं च चाक्षुषमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः । बभूव मनुवर्योऽसौ जगामांते शिवापदम् ॥२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।।९।।

दशमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः । श्राद्धदेवः परानन्दभोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम् ॥१॥ स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादतः । तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वन्तराधिपः ॥२॥ अष्टमो मनुराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ । स जन्मान्तर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः ॥३॥ जातो मन्वन्तरपतिः सर्वराजन्यपूजितः । महापराक्रमी धीरो देवीभक्तिपरायणः ॥४॥** नारद उवाच– **कथं जन्मान्तरे तेन मनुनाऽऽराधनं कृतम् । देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥५॥** श्रीनारायण उवाच– **चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽन्तरे । सुरथो**

पराक्रमी थे । सर्वत्र माननीय महाराज्य के सुख के योग्य थे ॥२८॥ इस तरह से चाक्षुष मनु देवी की आराधना से मनुओं में श्रेष्ठ हो गये और अन्त में भगवती के लोक में चले गये ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

सावर्णि मनु की कथा

श्रीनारायण ने कहा– सातवें मनु वैवश्वत मनु हुए परमानन्द से सम्पन्न होने के कारण इनको श्राद्धदेव मनु भी कहा जाता है ॥१॥ ये वैवश्वत मनु तपस्या के प्रभाव से देवी की कृपा को प्राप्त करके मन्वन्तर के अधिप हो गये ॥२॥ पृथिवी पर आठवें मनु सावर्णि मनु हुए । इन्होंने दूसरे जन्म में देवी की आराधना की थी और देवी का वरदान प्राप्त किया था ॥३॥ वे मन्वन्तराधिप हुए तथा सभी राजाओं के द्वारा पूजित हो गये । ये महापराक्रमी धीर तथा देवी के भक्त थे ॥४॥ **नारदजी ने कहा–** उस मनु ने जन्मान्तर में किस प्रकार से आराधना की थी और कैसी पार्थिव मूर्ति की पूजा की थी । उसे आप

नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ॥६॥ गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती । धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमण्डले ॥७॥ अरीणां मर्दनो मानी सर्वास्त्रकुशलो बली । तस्यैकदा बभूवुस्ते कोलाविध्वंसिनो नृपाः ॥८॥ शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः । रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि ॥९॥ तदा सः सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः । निर्ययौ नगरात्स्वीयात्सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥१०॥ तदा स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः । आमात्यैर्मंत्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम् ॥११॥ हृतं सर्वमशेषेण तदाऽतप्यत भूमिपः । निष्काशितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः॥१२॥ जगामाश्वमथारुह्य मृगयामिषतो वनम् । एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रांतमानसः ॥१३॥ मुनेः कस्यचिदागत्य स्वाश्रमं शांतमानसः । प्रशांतजंतुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम् ॥१४॥ उवास कंचित्कालं स राजा परमशोभने । आश्रमे मुनिवर्यस्य दीर्घदृष्टेः सुमेधसः ॥१५॥ एकदा स महीपालो मुनिं पूजावसानके । काले गत्वा प्रणम्याशु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥१६॥ मुने मम मनोदुखं बाधते चाधिसंभवम् । ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च संततम् ॥१७॥ शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः । तथापि तेषु मनसि ममत्वं जायते स्फुटम् ॥१८॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने । त्वदनुग्रहमाशासे वद वेदविदां वर ॥१९॥ मुनिरुवाच— **आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम् । देवीमाहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं**

मुझे बतलाइये ॥५॥ **श्रीनारायण ने कहा**— स्वारोचिष् मन्वन्तर मे राजा चैत्रवंश में उत्पन्न हुए थे । उनका नाम सुरथ था। वे महान् बल एवं पराक्रम से सम्पन्न थे । वे गुणग्राही, धनुर्धर माननीय, श्रेष्ठ कवि, कुशल तथा धनसंग्रह करने तथा याचकों को दान करने वाले थे ॥७॥ वे शत्रुओं का मर्दन करने वाले मनस्वी, और सभी अस्त्रों में कुशल थे । एक बार कोलाविध्वंसी नामक राजा उनके शत्रु हो गये ॥८॥ शक्तिशाली शत्रुओं ने उनपर आक्रमण कर दिया। उसने इस मनु की नगरी को घेर लिया ॥९॥ उस समय सुरथ अपनी सेना के साथ नगर से बाहर निकले ॥१०॥ किन्तु वे युद्ध में शत्रुओं से पराजित हो गये । उनके मन्त्रियों ने कोश के धन को पूर्णरूप से चुरा लिया । उसके कारण राजा को बड़ा ही कष्ट हुआ । परमकान्ति सम्पन्न वे राजा नगर से निकाल दिये गये ॥१२॥ वे आखेट के बहाने घोड़े पर सवार होकर वन में चले गये और व्याकुल मन वाला होकर वन में अकेले घूमने लगे ॥१३॥ मन के शान्त होने पर वे किसी मुनि के आश्रम में आये । वह आश्रम शान्त जीवों तथा मुनि के शिष्यों से घिरा हुआ था ॥१४॥ उस अत्यन्त सुन्दर आश्रम में वे राजा कुछ दिनों तक निवास किये ॥१५॥ एक दिन जब मुनि पूजा कर चुके थे तो राजा ने जाकर मुनि को प्रणाम किया और नम्रतापूर्वक कहने लगे॥१६॥ हे मुने ! मेरा मानसिक दुःख मुझे सता रहा है । हे मुने ! मैं तत्त्वों को जानता हूँ । फिर भी प्रज्ञाहीन हो गया हूँ ॥१७॥ यद्यपि शत्रुओं ने मुझे परास्त कर दिया है, मेरा सर्वस्व छिन गया है । मेरा राज्य चला गया है फिर भी मुझको उन सबों के प्रति ममत्व बना हुआ है ॥१८॥ मैं क्या

परम्॥२०॥ जगन्मयी महामाया विष्णुब्रह्महरोद्भवा । सा बलादपहृत्यैव जंतूनां मानसानि हि ॥२१॥ मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीहि भूमिप । सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा ॥२२॥ संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप । कामदात्री महामाया कालरात्रिर्दुरत्यया ॥२३॥ विश्वसंहारिणी काली कमला कमलालया । तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥२४॥ लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा । तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप । स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते ॥२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

करूँ ? कहा जाऊँ ? मुझे कहाँ शान्ति मिले । आपका मैं अनुग्रह चाहता हूँ । हे वेदज्ञश्रेष्ठ ! मुझे आप ज्ञान का उपदेश दीजिए ॥१९॥ **मुनि ने कहा**–हे राजन् ! आप देवी के अत्यन्त आश्चर्यकारी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला माहात्म्य सुनें ॥२०॥ महामाया जगत् स्वरूपिणी हैं । उनसे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उद्भूत होते हैं । वे बलपूर्वक जीवों के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं और अज्ञानमोहित कर देती है, इस बात को आप जानिए। वे ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करती हैं और उसका पालन भी करती हैं ॥२२॥ हे राजन् ! संहारकाल के उपस्थित होने पर वे शंकर के रूप में उसका संहार कर देती हैं । महामाया सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं । वे कालरात्रि हैं । उनका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है ॥२३॥ वे ही विश्व का संहार करने वाली काली हैं, वे ही लक्ष्मी हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली हैं । उनमें ही सारा जगत् प्रतिष्ठित है ॥२४॥ उनमें सम्पूर्ण जगत् का लय भी होने वाला है । अतएव वे परात्परतत्त्व हैं ॥२५॥ उन देवी की कृपा जिस मनुष्य पर हो जाती है, वही इस संसार का अतिक्रमण कर सकता है । दूसरा कोई नहीं ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

राजोवाच– का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदां वर । का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद्द्विज ॥१॥ कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका । सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः ॥२॥ मुनिरुवाच– राजन्देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय । यथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी ॥३॥ यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट् । आस्तीर्य शेषं भगवान्समुद्रे निद्रितोऽभवत् ॥४॥ तदा प्रस्वापवशगो देवदेवो जनार्दनः । तत्कर्णमलसंजातौ दानवौ मधुकैटभौ ॥५॥ ब्रह्माणं हंतुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ । तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ ॥६॥ निद्रितं देवदेवेशं चिंतामाप दुरत्ययाम् । निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ ॥७॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम् । एवं चिंतयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः ॥८॥ बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसाधनी । यस्या वशं गतो देवो निद्रितो भगवान्हरिः ॥९॥ तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम् । ब्रह्मोवाच– देवि देवि जगद्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे ॥१०॥ जगन्माये महामाये समुद्रशयने शिवे । त्वदाज्ञावशगाः सर्वे स्वस्वकार्यविधायिनः ॥११॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिर्मदोत्कटा । व्यापिनी वशगा मान्या महानंदैकशेवधिः ॥१२॥

देवी का वर्णन

राजा सुरथ ने कहा– हे कालतत्त्वज्ञों में श्रेष्ठ द्विज ! आपने जिनके विषय में अभी-अभी बतलाया है वे देवी कौन हैं ? वे किसलिए अवतार ग्रहण करती हैं ? उनका स्वरूप क्या है? वे किसी भी जीव को क्यों मोहित करती हैं ?॥१॥ वे किसलिए अवतार ग्रहण करती हैं ? उनका स्वरूप क्या है? हे भूदेव ! इन सारी बातों को मुझे बतलाएँ ॥२॥ **मुनि ने कहा–** हे राजन् ! आपको मैं देवी का स्वरूप बतलाता हूँ, उसे आप सुनें । वे देवी जैसे उत्पन्न हुई तथा जिससे उत्पन हुई उसको मैं बतलाता हूँ ॥३॥ जब योगिराज श्रीभगवान् सम्पूर्ण विश्व का संहार करके शेषशय्या पर शयन कर रहे थे ॥४॥ उस समय वे निद्रित हो गये । उनके कानों के मैल से दो दानव उत्पन्न हो गये ॥५॥ वे भयंकर दोनों दानव ब्रह्मा जी को मारने के लिए उद्यत हो गये । जब ब्रह्माजी ने उन दोनों (मधु और कैटभ) को देखा ॥६॥ देवदेवेश भगवान् को सोये हुए देखकर वे चिन्तित हो गये । वे सोचने लगे भगवान् सोए हुए हैं और ये दोनों दानव भयंकर हैं ॥७॥ मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? मुझे शान्ति कैसे मिले ? इस तरह से जब ब्रह्माजी सोच रहे थे ॥८॥ उसी समय कार्य को सिद्ध करने वाली उनकी बुद्धि हो गयी । जिसके वशवर्ती होकर भगवान् सोए हुए हैं और सो गये हैं ॥९॥ मैं उसी देवी की शरणागति करूँ। वे ही जगत् को उत्पन्न करने वाली हैं । **ब्रह्माजी ने कहा–** हे देवि ! आप जगत् की माता हैं । हे भक्तों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाली ॥१०॥ हे

महनीया महाराध्या माया मधुमती मही । परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता ॥१३॥ लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कान्तिकारुण्यविग्रहा ।
कमनीया जगद्वंद्या जाग्रदादिस्वरूपिणी ॥१४। परमा परमेशानी परानंदपरायणा । एकाऽप्येकस्वरूपा च सद्द्वितीया द्वयात्मिका ॥१५॥ त्रयी
त्रिवर्गनिलया तुर्या तुर्यपदात्मिका । पंचमी पंचभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च ॥१६॥ सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा । अष्टमी वसुनाथा च
नवग्रहमयीश्वरी ॥१७॥ नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी । दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा ॥१८॥ एकादशात्मिका चैकादशरुद्रनिषेविता।
एकादशीतिथिप्रीता एकादशगणाधिपा ॥१९॥ द्वादशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः । त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया ॥२०॥ त्रयोदशाभिधा
भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता । चतुर्दशेंद्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः ॥२१॥ पंचाधिकदशी वेद्या पञ्चाधिकदशी तिथिः । षोडशी षोडशभुज षोडशेन्दुकलामयी॥२२॥
षोडशात्मकचंद्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा । एवंरूपाऽसि देवेशि निर्गुणे तामसोदये ॥२३॥ त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः । एतौ दुरासदौ

जगन्मये ! हे महामाये ! समुद्र में शयन करने वाली शिवे ! सभी आपकी आज्ञा के वश में ही रहकर अपना-अपना कार्य करते हैं ॥११॥ आप कालरात्रि,
महारात्रि, मोहरात्रि, मदोत्कटा, व्यापिनी, वशगा, मान्या तथा महान् आनंद की सर्वोत्कृष्ट सीमा हैं ॥१२॥ आप पूजनीय हैं, महाआराध्य, माया, मधुमती,
महीस्वरूपिणी और सभी तत्त्वों से सर्वोत्कृष्ट तत्त्व कही गयी हैं ॥१३॥ आप ही लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति तथा कारुण्य स्वरूपा हैं । आप ही
कमनीय, जगद्वंद्य तथा जाग्रत स्वप्न स्वरूपिणी हैं ॥१४॥ आप ही परमा, परमेशानी, परानन्दस्वरूपिणी हैं । आप एक हैं, एक स्वरूप हैं । द्वयात्मक होने
के कारण आप द्वितीय विशिष्ट हैं ॥१५॥ त्रिवर्ग, (धर्म , अर्थ तथा काम) के आश्रय होने के कारण आप त्रयी हैं और तुरीयावस्था रूप होने के कारण
आप चतुर्थी हैं । पंचभूतों की स्वामिनी होने के कारण आप पञ्चमी हैं और काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ तथा मत्सर की आप अधीश्वरी हैं ॥१६॥ सात
वारों (रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) की स्वामिनी होने के कारण आप सप्त हैं और सात-सात वरदान देने के कारण आप सप्तमी हैं।
वसुओं की स्वामिनी होने के कारण आप अष्टमी हैं । नवग्रहों की स्वामिनी होने के कारण आप नवमी हैं ॥१७॥ आपकी नवरागों की कला मनोहर है,
आप की संख्या नव है और आप नवों की स्वामिनी हैं । दशो दिशाओं में पूज्य, दशों दिशाओं में व्यापक लक्ष्मी स्वरूपा होने के कारण आप दशमी
हैं॥१८॥ एकादश रुद्रों के द्वारा सेवित तथा एकादश गणों की स्वामिनी होने के कारण आप एकादशात्मिंका हैं ॥१९॥ आपकी द्वादश भुजाएँ हैं तथा
द्वादशादित्यों को जन्म देने वाली होने के कारण आप द्वादशी हैं । त्रयोदश गण का प्रिय (पुरुषोत्तममास को लेकर तेरह मास समूह की प्रिय) होने के कारण
देवी त्रयोदशात्मिका हैं ॥२०॥ आप विश्वेदेव की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण भी त्रयोदशी हैं । आप चतुर्दशी हैं; क्योंकि आप चौदह इन्द्रों को वरदान
देने वाली हैं और चौदह मनुओं की माता हैं ॥२१॥ आप पञ्चदशी (त्रिपुर सुन्दरी विद्या) के द्वारा जानने योग्य होने के कारण आप पञ्चदशी (पूर्णिमा) तिथि
स्वरूपिणी हैं । सोलह कला स्वरूपिणी तथा सोलह भुजाओं वाली होने के कारण आप षोडशी हैं ॥२२॥ आपका दिव्य कलेवर षोडशकलात्मक चन्द्रविम्ब

दैत्यौ विक्रान्तौ मधुकैटभौ ॥२४॥ एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रतिबोधय । मुनिरुवाच— **एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया ॥२५॥ देवदेवं**
तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ । तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः ॥२६॥ प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ । तदा तौ दानवौ घोरौ
दृष्ट्वा तं मधुसूदनम् ॥२७॥ युद्धाय कृतसंकल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः । युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः ॥२८॥ पंचवर्षसहस्राणि
बाहुप्रहरणो विभुः । तौ तदाऽतिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ ॥२९॥ व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम् । एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः॥३०॥
वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम् । तौ तदाऽतिबलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम् ॥३१॥ आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता ।
तथेत्युक्त्वा भगवता गदाशंखभृता नृप ॥३२॥ कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः । एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप ॥३३॥
महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी । महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महीपते ॥३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः॥११॥

से सुशोभित हैं, अतएव आप षोडशात्मिका हैं । हे देवेशि ! आप निर्गुण स्वरूपिणी हैं, किन्तु तमोगुणाी होकर अवतार ग्रहण करती हैं ॥२३॥ आपने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को अपने अधीन बना लिया हैं । ये मधु तथा कैटभ नामक दोनों दैत्य अत्यन्त पराक्रमी तथा अत्यन्त भयंकर हैं ॥२४॥ इन दोनों का वध करने के लिए आप देवताओं के स्वामी भगवान् को जगा दें । **मुनि ने कहा—** इस तरह से स्तुति किए जाने पर श्रीभगवान् की प्रियतमा तामसी देवी ने देवताओं के आराध्य भगवान् विष्णु को छोड़कर उन दोनों दैत्यों को मोहित कर दिया। उसी समय जगत् के स्वामी परमात्मा भगवान् विष्णु ॥२६॥ जग गये और उन्होंने उन दोनों दानवों को देखा । वे दोनों युद्ध करने का संकल्प करके भगवान् विष्णु के सन्निकट गये । उन दोनों को देखकर भगवान् मधुसूदन युद्ध करने लगे ॥२८॥ श्रीभगवान् उन दोनों के साथ पाँच हजार वर्षों तक बाहु युद्ध किए । उस समय अत्यन्त बलवान् मधु तथा कैटभ जगन्माया के द्वारा अत्यन्त मोहित कर दिए गये ॥२९॥ उन दोनों ने भगवान् विष्णु से कहा कि आप हमसे वरदान माँगिये । उन दोनों की बातों को सुनकर आदिपुरुष भगवान् ने यह वरदान माँगा कि तुम दोनों मेरे हाँथों मारे जाओ । उस समय उन दोनों ने श्रीहरि से कहा ॥३०-३१॥ आप हम दोनों को वहाँ मारिये जहाँ पर पृथिवी जल से व्याप्त न हो । हे राजन् ! उस समय गदा एवं शंखधारी श्रीभगवान् ने कहा कि ऐसा ही होगा ॥३२॥ उन्होंने अपनी जाँघ पर उन दोनों के शिर को रखकर चक्र से काट दिया । हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्माजी से स्तुति किए जाने पर महायोगेश्वरेश्वरी महाकाली देवी प्रकट हुयीं । हे राजन् आप अब महालक्ष्मी की उत्पत्ति की कथा का श्रवण करें ॥३४॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

मुनिरुवाच– **महिषीगर्भसंभूतो महाबलपराक्रमः । देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः ॥१॥ सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः । बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम् ॥२॥ ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युताः । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम् ॥३॥ यत्रोत्तमौ देवदेवौ संस्थितौ शंकराच्युतौ । वृत्तान्तं कथयामासुर्महिषस्य दुरात्मनः ॥४॥ देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसाऽसुरः । विनिर्जित्य स्वयं भुंक्ते बलवीर्यमदोद्धतः ॥५॥ महिषासुरनामाऽसौ दुष्टदैत्योऽमरेश्वरौ । वधोपायश्च तस्याशु चिंत्यतामसुरार्दनौ ॥६॥ एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः । चक्रतुः परमं कोपं तदा शंकरपद्मजौ ॥७॥ एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते । तेजः प्रादुरभूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति॥८॥ अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् । शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान् ॥९॥ यदभूच्छंभुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत । केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाःहवः ॥१०॥ सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेन्द्रेण च मध्यमः । वारुणेन ततो भूप जंघोरूसंबभूवतुः ॥११॥ नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा । पादाङ्गुल्यो भानवेन वासवेन कराङ्गुली ॥१२॥ कौबरेण तथा नासा दन्ताः संजिज्ञिरे तदा । प्राजापत्येनोत्तमेन तेजसा**

महालक्ष्मी तथा महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा

सुमेधा ऋषि ने कहा– भैंस के गर्भ से उत्पन्न, महाबलवान् तथा महापराक्रमी महिषासुर सभी देवताओं को परास्त करके जगत् का स्वामी बन गया॥१॥ वह सभी लोकपालों के अधिकार को बलपूर्वक जीतकर त्रैलोक्य के अद्भुत ऐश्वर्य का भोग करने लगा ॥२॥ उसके बाद परास्त देवता ब्रह्माजी को आगे करके उस उत्तम लोक में गए जहाँ पर भगवान् शंकर तथा भगवान् विष्णु विद्यमान थे और उन दोनों को दुष्ट महिषासुर के वृत्तान्त को सुनाये ॥३-४॥ देवताओं ने कहा वह असुर सभी देवताओं के स्थानों को बलपूर्वक जीतकर बल तथा पराक्रम के मद से उद्धत बना हुआ सबों का उपभोग कर रहा है। हे देवताओं के स्वामिन् ! आपलोग असुरों का वध करने वाले हैं, अतएव उसके भी वध का उपाय शीघ्र सोंचें ॥५-६॥ इस तरह से देवताओं की आर्ति भरी वाणी को सुनकर भगवान् विष्णु, शंकरजी तथा ब्रह्माजी अत्यधिक क्रोध किए ॥७॥ इस तरह से क्रुद्ध हुए भगवान् विष्णु के मुख से हजारों सूर्य के समान देदीप्यमान तेज प्रादुर्भूत हुआ ॥८॥ उसके पश्चात् सभी देवताओं के शरीर से तेज उत्पन्न हुआ और उससे देवताओं को प्रसन्नता हुई ॥९॥ शंकरजी का जो तेज था उससे उसका मुख बन गया । यमराज के तेज से उसके केश बन गये । भगवान् विष्णु के तेज से उसकी भुजायें बन गयीं ॥१०॥ चन्द्रमा के तेज से उसके दोनों स्तन बन गये और इन्द्र के तेज से उसके शरीर का बीच भाग बन गया । वरुण के तेज से उसकी जंघा और पिण्डली बन गये॥११॥

वसुधाधिप ॥१३॥ पावकेन न संजातं लोचनत्रितयं शुभम् । सांध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी ॥१४॥ कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप । सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिषमर्दिनी ॥१५॥ शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शङ्खं च पाशभृत् । हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ॥१६॥ वज्रं महेन्द्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद्गजात् । कालदण्डं यमो ब्रह्मा चाक्षमालाकमण्डलू ॥१७॥ दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु संददौ । कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप ॥१८॥ समुद्रो निर्मलं हारमजरे चाम्बरे नृपः । चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथाऽङ्गदे ॥१९॥ अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ । ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः ॥२०॥ विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते । हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥२१॥ पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः । शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः ॥२२॥ अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी । तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवा महिषपीडिताः ॥२३॥ नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम् । तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता॥२४॥ महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह । तेन नादेन महिषश्चकितोभूद्धरापते ॥२५॥ आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः । ततः स युयुधे देव्या

पृथिवी के तेज से उसका नितम्ब भाग बना, ब्रह्मा जी के तेज से उसके दोनों पैर बने । सूर्य के तेज से उसकी अंगुलियाँ बनीं । इन्द्र के तेज से उसके हाथ की अंगुलियाँ बनीं ॥१२॥ कुबेर के तेज से उसकी नाक बनी । हे राजन् ! प्रजापति के उत्तम तेज से उसके दाँत बने ॥१३॥ अग्नि के तेज से उसके शुभकारक तीनों नेत्र बने, संध्या के तेज से उसके तेजों के आकर दोनों भृकुटियाँ बनीं ॥१४॥ हे राजन् ! वायु के तेज से उसके दोनों कान बने। इस तरह से सबों के तेज से जगदम्बा महिषासुरमर्दिनी उत्पन्न हो गयीं । उनको शंकर जी ने त्रिशूल प्रदान किया, भगवान् विष्णु ने उन्हें चक्र दिया और वरुण ने शंख प्रदान किया । अग्नि ने उन्हें शक्ति प्रदान किया, वायु ने उन्हें धनुष और बाण प्रदान किया ॥१६॥ इन्द्र ने उन्हें वज्र प्रदान किया और ऐरावत हाथी से उन्हें घण्टा प्राप्त हुआ । यमराज ने उन्हें कालदण्ड प्रदान किया, ब्रह्माजी ने उन्हें अक्षमाला और कमण्डलु प्रदान किया ॥१७॥ सूर्य ने उनके समस्त रोमकूपों में अपनी किरणें भर दी । काल ने देवी को खड्ग और ढाल प्रदान किया ॥१८॥ समुद्र ने उन्हें हार तथा कभी पुराने नहीं होने वाले दो वस्त्रों, चूडामणि, कुण्डल, कटक, अंगद, स्वच्छ अर्द्धचन्द्र (सिरवेंदी), नूपुर तथा गले का आभूषण प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किया ॥१९-२०॥ हे राजन् ! विश्वकर्मा ने उन्हें अंगूठियाँ प्रदान की । हिमालय ने उन्हें सिंहवाहन तथा अनेक प्रकार के रत्नों को प्रदान किया ॥२१॥ कुबेर ने उन्हें सुरा से परिपूर्ण पानपात्र प्रदान किया । शेषनाग ने उन्हें नागहार प्रदान किया ॥२२॥ दूसरे सभी देवताओं ने उन जगन्मयी देवी का सम्मान किया । महिषासुर से पीड़ित देवताओं ने महेशानी तथा जगत् की सृष्टि करने वाली देवी की अनेक स्तोत्रों से स्तुति की । देवताओं से पूजित देवी ने उन देवताओं की स्तुति को सुनकर महिषासुर का वध करने के लिए महानाद किया । हे राजन् ! उस नाद को सुनकर महिषासुर आश्चर्यचकित हो गया ॥२३-२५॥ वह अपनी

महिषाख्यो महासुरः ॥२६॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नंबरांतरम् । चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ ॥२७॥ बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः। एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामांतकसन्निभैः ॥२८॥ योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः । ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी ॥२९॥ जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान् । ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्छितः ॥३०॥ आससाद तदा देवीं तूर्णं मायाविशारदः । रूपांतराणि संभेजे मायया दानवेश्वरः ॥३१॥ तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा । ततोऽन्ते महिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम् ॥३२॥ पाशेन बद्ध्वा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः । पातयामास महिषं देवी देवगणांतकम् ॥३३॥ हाहाकृतं ततः शेषं सैन्यं भग्नं दिशो दश । तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवाः प्रमोदिताः ॥३४॥ एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी । राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् ॥३५॥ एकदा शुम्भनामाऽऽसदैत्यो मदबलोत्कटः । निशुंभश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः ॥३६॥ तेन संपीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप । हिमवंतमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात्॥३७॥ देवाः ऊचुः– जय देवेशि भक्तानामार्तिनाशनकोविदे । दानवांतकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे ॥३८॥ देवेशि भक्तिसुलभे महाबल पराक्रमे ।

सम्पूर्ण सेना के साथ देवी के पास आया । उसके पश्चात् महिषासुर ने देवी के साथ युद्ध किया ॥२६॥ और अनेक प्रकर के शस्त्रास्त्रों का प्रहार करके पृथिवी से आकाश तक के मार्ग को भर दिया । उसके प्रधान सेनापति चिक्षुर, दुर्धर दुर्मुख, वाष्कल, ताम्रक तथा विडालमुख थे । वे संग्राम में यमराज के समान भयंकर थे ॥२७-२८॥ इन सभी वीरों को साथ लेकर दानवश्रेष्ठ महिषासुर युद्ध कर रहा था। उसके पश्चात् क्रोध से लाल आँखें करके लोकमोहिनी देवी ने महिषासुर के आश्रित योद्धाओं को युद्ध में मार दिया । उन योद्धाओं के मार दिए जाने पर वह क्रोध से पागल हो गया ॥३०॥ माया करने में निपुण वह शीघ्र ही देवी से युद्ध करने के लिए आया । वह अपनी माया से अनेक रूपों को धारण किया ॥३१॥ उस समय देवी ने उसके उन सभी रूपों को नष्ट कर दिया । अन्त में देवताओं के शत्रु महिषासुर ने महिष का रूप धारण किया ॥३२॥ देवी ने उसे पास में कसकर बाँध दिया और खड्ग से उसका शिर काट दिया । इस तरह से देवताओं को मारने वाले महिषासुर का वध कर दिया॥३३॥ उसके बाद हाहाकार करती हुई उसकी सेना विभिन्न दिशाओं में भाग गयी । प्रसन्न होकर सभी देवताओं ने देवी की स्तुति की ॥३४॥ इस तरह से महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मी उत्पन्न हुईं । हे राजन् ! अब आप महासरस्वती के अवतार की कथा सुनें ॥३५॥ एक बार शुम्भ नामक दैत्य अपने मद तथा बल से अत्यन्त अहंकारी हो गया । उसका भाई निशुम्भ भी बहुत बलवान और पराक्रमी हुआ ॥३६॥ उसके द्वारा पीडित सभी देवता राज्यविहीन हो गये । वे हिमालय पर्वत पर आकर प्रेमपूर्वक देवी की स्तुति करने लगे॥३७॥ **देवताओं ने कहा–** हे भक्तों की विपत्ति को दूर करने में चतुर देवि ! आपकी जय हो । हे अनघे ! आप अजर, अमर तथा दैत्यों का विनाश करने वाली हैं ॥३८॥ हे देवताओं की स्वामिनि ! हे महाबल तथा पराक्रम से युक्त देवि, आप भक्ति के द्वारा आसानी से प्राप्त होने वाली हैं । अनंत

विष्णुशंकरब्रह्मादिस्वरूपेऽनंतविक्रमे ॥३९॥ सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कांतिदायिनि । महातांडवसुप्रीते मोददायिनि माधवि ॥४०॥ प्रसीद
देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे । निशुंभशुंभसंभूतभयापारांबुवारिधेः ॥४१॥ उद्धरास्मान्प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान् । एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां
धरापते ॥४२॥ प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम् । एतस्मिन्नंतरे तस्याः कोशरूपात्समुत्थिता ॥४३॥ कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत्।
प्रसन्नाऽहं सुरश्रेष्ठाः स्तवेनोत्तमरूपिणी ॥४४॥ व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम् । शुंभनामाऽवरो भ्राता निशुंभस्तस्य विश्रुतः ॥४५॥
त्रैलोक्यमोजसाऽऽक्रांतं दैत्येन बलशालिना । तद्वधश्चिन्त्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः ॥४६॥ बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा । श्रीदेव्युवाच—
देवशत्रुं पातयिष्ये निशुंभं शुंभमेव च ॥४७॥ स्वस्थास्तिष्ठंतु भद्रं वः कंटकं नाशयामि वः । इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेंद्रान्दयामयी ॥४८॥
जगामादर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम् । देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभाम् ॥४९॥ चंडमुंडौ पश्यतःस्म भृत्यौ शुंभनिशुंभयोः ।
दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं देवीं लोकविमोहिनीम् ॥५०॥ कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चंडमुंडकौ । देव सर्वासुरश्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद ॥५१॥
अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपुमर्दन । तस्याः सम्भोगयोग्यत्वमस्त्येव तव सांप्रतम् ॥५२॥ तां समानय चार्वंगीं भुंक्ष्व सौख्यसमन्वितः ।

पराक्रम से सम्पन्न आप विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा आदि देवस्वरूपिणी हैं ॥३९॥ हे जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा नाश करने वाली, कान्ति प्रदान करने वाली, आनन्द प्रदान करने वाली, हे माधवि ! ॥४०॥ हे देवदेवेशि ! हे करुणानिधे ! आप प्रसन्न होइये । अपार पारावार (समुद्र) के समान निशुम्भ तथा शुम्भ से उत्पन्न हमलोगों के भय का आप नाश करें । हे राजन् ! इस प्रकार से स्तुति करने वाले उन देवताओं से गिरिजा देवी ने कहा कि आपलोग क्यों स्तुति कर रहे हैं ? कारण बतलाइये । उस समय उनके शरीर रूपी कोश से ॥४२-४३॥ जगत्पूज्य कौशिकी देवी उत्पन्न हो गयीं और प्रसन्न होकर वे कहने लगीं। मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूँ । आपलोग वरदान माँगे । उसके बाद देवताओं ने वरदान माँगा कि शुंभ नामक दैत्य का छोटा भाई निशुम्भ है ॥४४-४५॥ वह अपने पराक्रम से त्रैलोक्य को कष्ट पहुँचा रहा है आप उस दैत्य का वध कर दें । वह दानवों का राजा दुरात्मा है। वह अपने पराक्रम से हमेशा दुःख देता रहता है। **श्रीदेवी ने कहा—** मैं देवताओं के शत्रु निशुम्भ तथा शुम्भ का वध कर दूँगी ॥४६-४७॥ आपलोग सुखी रहें मैं आपलोगों के शत्रुओं का नाश कर देती हूँ । इस तरह से इन्द्र सहित समस्त देवताओं को कहकर दयामयी देवी देवताओं के सामने से अन्तर्धान हो गयीं । वहाँ से प्रसन्नता पूर्वक सभी देवता सुमेरु पर्वत की गुफा में चले आये ॥४९॥ शुम्भ, निशुम्भ के दो भृत्य थे चण्ड और मुण्ड उन दोनो ने संसार को मोहित करने वाली सर्वाङ्ग सुन्दरी देवी को देखा ॥५०॥ वे दोनों आकर राजा शुम्भ को देवी के विषय में कहने लगे— हे देव ! हे समस्त असुरों में श्रेष्ठ ! हे रत्नों का भोग करने योग्य! हे मान प्रदान करने वाले ! हे रिपुमर्दन ! हम दोनों ने एक अपूर्व सुन्दरी को देखा है। उसका सम्भोग करने की योग्यता आप में ही है ॥५२॥ आप उस

तादृशी नासुरी नारी न गंधर्वी न दानवी ॥५३॥ न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा । एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः ॥५४॥ दूतं संप्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम् । स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात् ॥५५॥ वृत्तांतं कथयामास देव्यै शुम्भस्य यद्वचः । देवि शुम्भासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥५६॥ सर्वेषां रत्नवस्तूनां भक्ता मान्यो दिवौकसाम् । तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताऽहमव्ययः ॥५७॥ त्वं चापि रत्नभूताऽसि भज मां चारुलोचने । सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च ॥५८॥ तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजैरसैः । देव्युवाच– सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियंकरम् ॥५९॥ प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साप्यनृता कथम् । भवेत्तां शृणु मे दूत या प्रतिज्ञा यथा कृता ॥६०॥ यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति । यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगभाक् ॥६१॥ तत एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वा सुरेश्वरः । गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि ॥६२॥ तस्माद्गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः । प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः ॥६३॥ एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः । कथयामास शुंभाय देव्या वृत्तांतमादितः ॥६४॥ तदाऽप्रियं दूतवाक्यं शुम्भः श्रुत्वा महाबलः । कोपमाहारयामास महांतं दनुजाधिपः ॥६५॥ ततो धूम्राक्षनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः । आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः ॥६६॥ तां दुष्टां

सुन्दरी को लाकर उसका सुखपूर्वक उपभोग करें, उसके समान सुन्दरी न तो कोई असुर की स्त्री है, न कोई गान्धर्वी है, न दानवी है और न तो कोई मानवी है । शत्रुओं की सेना को मारने वाले शुम्भ ने अपने भृत्य की वाणी सुनकर ॥५४॥ सुग्रीव नामक दानव को उस देवी के पास अपने दूत के रूप में भेजा। वह दूत शीघ्र ही उस देवी के पास जाकर आदरपूर्वक ॥५५॥ शुम्भ की बात को कहने लगा– हे देवि ! त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त करने वाले शुम्भ नामक असुर हैं वे सभी रत्नों का उपभोग करने वाले हैं तथा देवताओं के मान्य हैं । आप उनकी बातों को सुनें । उन्होंने कहा है कि हम रत्नों का उपभोग करने वाले हैं हे सुन्दर नेत्रों वाली ! तुम भी रत्नस्वरूपिणी हो, अतएव तुम मेरा वरण कर लो । देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के पास जितने भी रत्न हैं,॥५८॥ हे सुन्दरि वे सब मेरे पास हैं । अतएव तुम कामजन्य रसों के द्वारा मेरा वरण करो । **देवी ने कहा–** हे दूत ! तुम दैत्यराज को प्रसन्न करने वाली सत्य बातें कर रहे हो ॥५९॥ किन्तु मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है, उसको कैसे झुठलाया जा सकता है? अतएव हे दूत मैने जो पहले प्रतिज्ञा की है, उसे तुम सुनो ॥६०॥ जो मेरे अभिमान को चूर-चूर कर दे, जो मेरे बल के घमण्ड को विनष्ट कर दे तथा जो मेरे सदृश युद्ध कर सके वही मेरा पति होगा ॥६१॥ अतएव मेरी इस प्रतिज्ञा को सत्य करके असुरेश्वर मेरा पाणिग्रहण कर लें । वे क्या नहीं कर सकते हैं । अतएव हे दूत ! तुम अपने स्वामी के पास जाकर उनसे समादरपूर्वक कहो कि वे ही मेरी प्रतिज्ञा सत्य कर सकते हैं ॥६२-६३॥ देवी के इस बात को सुनकर वह दानव शुम्भ को उसका सारा वृत्तान्त सुना डाला ॥६४॥ दूत के उस अप्रिय वाक्य को सुनकर महाबलवान असुरेश्वर ने बहुत अधिक क्रोध किया ॥६५॥ उसके बाद दैत्याधिपति ने धूम्राक्ष को बुलाकर

केशपाशेषु धृत्वाऽप्यानीयतां मम । समीपमविलंबेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः ॥६७॥ इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः । षष्ट्याऽसुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः ॥६८॥ तुहिनाचलमासाद्य देव्या सविधमेव सः । उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्यपतिं शुभे ॥६९॥ शुम्भं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि । नोचेत्केशान्गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति ॥७०॥ इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा । उवाच दैत्य यद्ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल ॥७१॥ राजा शुंभासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद्वद । इत्युक्तो दैत्यपोऽधवत्तूर्णं शस्त्रसमन्वितः ॥७२॥ भस्मसात्तं चकाराशु हुंकारेण महेश्वरी । ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते ॥७३॥ दिशो दशभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम् । तद्वृत्तांतं समाश्रुत्य स शुम्भो दैत्यराड्विभुः॥७४॥ चुकोप च महाकोपाद्भ्रुकुटीकुटिलाननः । ततः कोपपरीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान् ॥७५॥ चण्डं मुण्डं रक्तबीजं क्रमशः प्रैषयद्विभुः । ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रांता बहुविक्रमाः ॥७६॥ देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नास्ते ह्यभवन्बलात् । तानपातयदेवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा॥७७॥ शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले । ससैन्यान्निहतान्छ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ ॥७८॥ शुंभश्चैव निशुंभश्च समाजग्मतुरोजसा । निशुंभश्चैव शुंभश्च

कहा कि तुम मेरी बात को सुनो ॥६६॥ तुम जाओ और उस दुष्टा का केश पकड़कर उसे मेरे सामने लाओ ॥६७॥ इस तरह से आदेश पाकर महाबलवान् धूम्राक्षलोचन साठ हजार की सेना लेकर ॥६८॥ देवी के सन्निकट हिमाचल पर आया और जोर से कहा कि तुम शीघ्र दैत्याधिपति का वरण करो ॥६९॥ महाबलवान् शुम्भ का वरण करके सभी भोगों को भोगो । यदि तुम ऐसा नहीं करती हो तो मैं तुम्हरा केश पकड़कर दैत्यराज के पास ले चलूँगा ॥७०॥ देवशत्रु धूम्रलोचन की बात सुनकर देवी ने कहा– हे दैत्य ! तुम जो कहते हो वह सत्य ही है, क्योंकि तुम महाबलवान हो ॥७१॥ राजा शुम्भ और तुम क्या करोगे, यह बतलाओ । देवी की बात को सुनकर वह धूम्रलोचन शस्त्र लेकर दौड़ पड़ा ॥७२॥ और उसे महेश्वरी ने अपने हुंकार मात्र से भस्म कर दिया । उसके बाद देवी के वाहन ने उसकी सेना को भगा दिया ॥७३॥ धूम्रलोचन की सेना हाहाकार करती हुई दशों दिशाओं में भाग गयी । इस समाचार को सुनकर दैत्यराज शुम्भ ने ॥७३-७४॥ टेड़ी भौहें करके अत्यधिक क्रोध किया । उसके बाद प्रतापी दैत्यराज सेना लेकर ॥७५॥ क्रमशः चण्ड, मुण्ड और रक्तबीज को भेजा । वे सभी दैत्य अत्यन्त प्रतापी तथा बलवान थे ॥७६॥ वे वहाँ जाकर बलपूर्वक देवी को पकड़ने की कोशिश करने लगे । मद से उत्कट बनी हुई देवी भी उन सबों के ऊपर टूट पड़ीं ॥७७॥ और त्रिशूल लेकर उन्होंने उन सबों को भूमि पर गिरा दिया । सेना सहित उन तीनों को मरा हुआ सुनकर दानवेश्वर शुम्भ तथा निशुम्भ अत्यधिक अमर्षपूर्वक आ गये । शुम्भ और निशुम्भ दोनों ने देवी के साथ युद्ध किया और वे दोनों मारे गये । इस

कृत्वा युद्धं महोत्कटम् ॥७९॥ देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयाऽसुरौ । इति दैत्यवरं शुम्भं घातयित्वा जगन्मयी ॥८०॥ विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा । एवं ते वर्णितो राजन्प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः ॥८१॥ काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च । परा परेश्वरी देवी जगत्सर्वं करोति च ॥८२॥ पालनं चैव संहारं सैव देवी दधाति हि । तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम् ॥८३॥ महामायां पूज्यतमां सा ते कार्यं विधास्यति । नारायण उवाच– **इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम् ॥८४॥ देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम् । निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः ॥८५॥ देवीमूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः । पूजनांते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत् ॥८६॥ तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्योनिः कृपावती । प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी ॥८७॥ स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम् । राज्यं निष्कंटकं चैव याचतिस्म महेश्वरीम् ॥८८॥** श्रीदेव्युवाच– **राजन्निष्कंटकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम् । भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव ॥८९॥ अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मांतरविचेष्टितम् । भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान् ॥९०॥ तत्र मन्वंतरस्यापि पतित्वं बहुविक्रमम् । सन्ततिं बहुलां**

तरह से जगन्मयी देवी ने दैत्यश्रेष्ठ शुम्भ और निशुम्भ दोनों को मारा ॥७८-८०॥ उसके बाद वागीश्वरी देवी की देवताओं ने स्तुति की । हे राजन् ! इस महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के प्रादुर्भाव की अत्यन्त मनोहर कथा मैंने सुनायी । देवी सबों की स्वामिनी तथा सबों से श्रेष्ठ तत्त्व हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करती हैं ॥८२॥ वे ही जगत् का पालन तथा संहार भी करती हैं । अतएव संसार के अज्ञान को दूर करने वाली उस देवताओं की स्वामिनी की तुम शरणागति करो ॥८३॥ महामाया ही पूज्यतमा हैं । वे ही आपके कार्य को करेंगी । **नारायण ने नारदजी से कहा–** इस तरह से महर्षि व्यास की अत्यन्त सुन्दर वाणी सुनकर राजा सुरथ ॥८४॥ सभी अभिलषित अर्थों को प्रदान करने वाली देवी की शरणागति किए । वे निराहार रहकर शान्त, समाधिस्थ और देवी की भावना से भावित थे ॥८५॥ उन्होंने देवी की मृण्मयी मूर्ति की पूजा भक्तिपूर्वक की । पूजन के अन्त में उन्होंने अपने शरीर के खून की बलि प्रदान की ॥८६॥ उस समय जगत् के कारण स्वरूपा कृपाकारिणी भगवती राजा के समक्ष प्रकट होकर कहीं कि तुम वरदान माँगो ॥८७॥ राजा ने देवी से अपने अज्ञान का नाश उत्तम ज्ञान की प्राप्ति तथा अपने निष्कण्टक राज्य का वरदान माँगा ॥८८॥ **श्रीदेवी ने कहा–** हे राजन् ! मेरे द्वारा प्रदत्त आपका निष्कण्टक राज्य तथा अज्ञान नाशक ज्ञान आपको इसी जन्म में प्राप्त हो जायेगा ॥८९॥ हे राजन् ! आप अपने दूसरे जन्म के विषय में भी सुनें । आप सूर्य के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर सावर्णिमनु होंगे ॥९०॥ आप मेरे वरदान के फलस्वरूप अगले जन्म में उस मन्वन्तर के अत्यन्त पराक्रमी स्वामी और बहुत सी सन्तानों को प्राप्त करेंगे ॥९१॥ इस तरह से वरदान देकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और वे भी देवी की कृपा के फलस्वरूप मन्वन्तर के

चापि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान् ॥९१॥ एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा । सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वंतराधिपः ॥९२॥ एवं ते वर्णितं साधो सावर्णेर्जन्म कर्म च । एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात् ॥९३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते दशमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम् । यस्य स्मरणमात्रेण देवीभक्तिः प्रजायते ॥१॥ आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड्विमलोदयाः । करूषश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च ॥२॥ शर्यातिश्च त्रिशंकुश्च सर्व एव महाबलाः । ततः षडेव ते गत्वा कालिंद्यास्तीरमुत्तमम्॥३॥ निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः । देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक् ॥४॥ विविधैरुपचारैस्तां पूजयामासुरादृताः । ततश्च सर्व एवैते तपः सारा महाबलाः ॥५॥ जीर्णपर्णाशिना वायुभक्षणास्तोयजीवनाः । धूम्रपाना रश्मिपाना क्रमशश्च बहुश्रमाः ॥६॥ ततस्तेषामादरेणाराधनं**

स्वामी हुए ॥९२॥ हे साधो ! इस प्रकार से मैंने आपको सावर्णि मनु के जन्म तथा कर्म की कथा सुनायी । इस कथा को पढ़ने वाले तथा सुनने वाले देवी की कृपा को प्राप्त करते हैं ॥९३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

नवम आदि मनुओं की कथा

श्रीनारायण ने कहा— अब आप अवशिष्ट मनुओं की उत्पत्ति की विचित्र कथा को सुनें । उस कथा का स्मरण करने मात्र से ही देवी में भक्ति हो जाती है ॥१॥ वैवस्वत मनु के छह निर्मल पुत्र थे । उनके नाम थे— करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु । ये सबके सब महाबलवान् थे । ये छहो यमुना पदी के तट पर जाकर देवी की उपासना किए ॥३॥ वे सब निराहार रहकर तथा अपने श्वास को रोककर मृण्मयी देवी की अलग-अलग मूर्ति बनाकर पूजा किये ॥४॥ उन लोगों ने देवी की मूर्ति की अनेक प्रकार के उपचारों से आदरपूर्वक पूजा की । उसके कारण तपः प्रधान वे सब महाबलवान् हो गये॥५॥

कुर्वतां सदा । विमला मतिरुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी ॥७॥ बभूवुर्मनुपुत्रास्ते । देवीपादैकचिन्तनाः । मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत्॥८॥ दर्शनं संजगामाशु तदद्भुतमिवाभवत् । एवं द्वादशवर्षांते तपसा जगदीश्वरी ॥९॥ प्रादुर्बभूव देवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः । तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेव ते ॥१०॥ तुष्टुवुर्भक्तिनम्रांतःकरणा भावसंयुताः । राजपुत्रा ऊचुः– महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये ॥११॥ वाग्भवाराधनप्रीते वाग्भवप्रतिपादिते । क्लींकारविग्रहे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनी ॥१२॥ कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि । महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि॥१३॥ विष्ण्वर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि । एवं स्तुता भगवती राजपुत्रैर्महात्मभिः ॥१४॥ प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम् । श्रीदेव्युवाच– राजपुत्रा महात्मानो भवंतस्तपसा युताः ॥१५॥ निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात् । वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलंबितम् ॥१६॥ प्रसन्नाऽहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम् । राजपुत्रा ऊचुः– देवि निष्कंटकं राज्यं संततिश्चिरजीविनी ॥१७॥ भोगा अव्याहताः कामं यशस्तेजो मतिश्च ह। अकुण्ठितत्वं सर्वेषामेष एव वरो हितः ॥१८॥ श्रीदेव्युवाच– एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम् । अथान्यदपि मे

वे सब पहले पुराने पत्ते खाते थे, उसके बाद वे वायु पीकर रहने लगे, फिर वे जल पीकर रहने लगे । उसके बाद धूम पीकर रहने लगे, फिर किरणों का ही पान करके रहने लगे ॥६॥ इस तरह से प्रेमपूर्वक आराधना करने वाले उन सबों में निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७॥ इस तरह से वे मनु के पुत्र केवल देवी के चरणों का ही चिन्तन करते रहते थे । निर्मल ज्ञान के हो जाने के कारण उनको अपने भीतर ही सम्पूर्ण जगत् दिखायीं देने लगा । इस तरह से उनको तपस्या करते हुए बारह वर्ष बीत गये ॥८-९॥ उसके बाद देवी ने उन लोगों को दर्शन दिया । उस समय देवी की कान्ति हजारों सूर्य के समान थी । देवी का दर्शन करके स्वच्छ आत्मा वाले वे राजकुमार ॥१०॥ भक्ति भूषित अन्तःकरण के कारण विनयावनत होकर देवी की स्तुति किये । **राजकुमारों ने कहा–** हे परम करुणा के सागर महेश्वरि ! आपकी जय हो ॥११॥ हे देवि ! आप वाणी बीज से आराधना करने पर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं, वाणी बीज से आपका प्रतिपादन किया जाता है । हे देवि ! आप 'क्लीं' स्वरूपिणी हैं क्लीं बीज से आप प्रसन्न होती हैं ॥१२॥ आप कामेश्वर को आनन्दित करने वाली तथा उन्हें प्रसन्न करने वाली हैं । हे महामाये ! हे आनन्दस्वरूपिणी, हे महासाम्राज्य प्रदान करने वाली देवि ॥१३॥ हे विष्णु, सूर्य, शंकर, इन्द्र आदि स्वरूपिणि ! हे भोगों को बढ़ाने वाली । इस तरह से उन महाभाग राजकुमारों द्वारा स्तुति किए जाने पर ॥१४॥ प्रसन्न होकर देवी कल्याणमयी वाणी में बोलीं । **श्रीदेवी ने कहा–** हे महाभाग ! राजकुमारों आपलोग तपस्वी हैं ॥१५॥ मेरी उपासना करने के कारण आप लोग पापरहित तथा शुद्ध ज्ञान वाले हो गये हैं । आपलोग शीघ्र अपना मनोवांछित वरदान माँगें । मैं प्रसन्न हूँ आपलोगों को अभिलषित वर प्रदान करूँगी । **राजपुत्रों ने कहा–** हे देवि ! हमलोगों को निष्कंटक राज्य तथा दीर्घकाल तक जीने वाली सन्तान मिले ॥१७॥ हमलोगों की सारी कामनाएँ पूर्ण हों हमारा यश और तेज बढ़ता

वाक्यं श्रूयतामादरादिदम् ॥१९॥ भवन्तः सर्व एवैते मन्वन्तरपतीश्वराः । संतत्या दीर्घया भोगैरनेकैरपि संगमः ॥२०॥ अखंडितबलैश्वर्य यशस्तेजोविभूतयः । भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः क्रमेण तु ॥२१॥ श्रीनारायण उवाच– **एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदम्बिका । अन्तर्धानं जगामाशु भक्त्या तैः संस्तुता सती ॥२२॥ ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम् । राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः ॥२३॥ संततिं चाखंडितां ते समुत्पाद्य महीतले । वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन् ॥२४॥ भवान्तरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः । प्रथमो दक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः ॥२५॥ अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः । द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च ॥२६॥ बभूव मन्वन्तरपो महादेवीप्रसादतः । तृतीयो मनुराख्यातः सूर्यसावर्णिनामकः ॥२७॥ एकादशो महोत्साहस्तपसा स्वेन भावितः । चतुर्थश्चंद्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभुः ॥२८॥ देवीसमाराधनेन जातो मन्वन्तरेश्वरः । पंचमो रुद्रसावर्णिस्त्रयोदशमनुः स्मृतः ॥२९॥ महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः । षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुः कृती ॥३०॥ बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः । चतुर्दशैते मनवो महातेजोबलैर्युताः ॥३१॥ देव्याराधनतः पूज्या वंद्या लोकेषु नित्यशः । महाप्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः ॥३२॥** नारद उवाच– **केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका ।**

रहे । हम सब यही वर माँगते हैं । **श्रीदेवी ने कहा–** आपलोग जो चाहते हैं वह आपलोगों को प्राप्त होगा । आपलोग मेरी बात को प्रेमपूर्वक सुनें ॥१९॥ आप सभी मन्वन्तरों के स्वामी होंगे । आपलोगों की बहुत अधिक सन्तानें होंगी और भोगों की समृद्धि होगी ॥२०॥ हे राजकुमारों आपलोग मेरी कृपा से अखण्ड बल, ऐश्वर्य, यश, तेज तथा विभूति से सम्पन्न होंगे ॥२१॥ **श्रीनारायण ने कहा–** इस प्रकार से उन मनुपुत्रों को वरदान देकर जगदम्बा भ्रामरी देवी शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं ॥२२॥ वे सभी महापराक्रमी राजकुमार उस जन्म में राज्य तथा भूलोक के भोगों का उभभोग किए ॥२३॥ उन सबों ने अखण्ड सन्तानों को उत्पन्न किया, अपने वंशों की स्थापना करके सबके सब मन्वन्तरों के स्वामी हुए ॥२४॥ दूसरे जन्म में वे सब सावर्णि कहलाये । सर्वप्रथम दक्षसावर्णि नवाँ मनु हुए ॥२५॥ उन्होंने मन्वन्तरपर्यन्त राज्य किया ।तीसरे मनु सूर्यसावर्णि हुए ॥२६॥ वे अपनी तपस्या के प्रभाव से महोत्साह से सम्पन्न थे । चौथे राजकुमार चन्द्रसावर्णि हुए और ये बारहवें मनु थे ॥२७-२८॥ ये देवी की कृपा से मन्वन्तर के स्वामी हुए । पाँचवें राजकुमार रुद्रसावर्णि हुए ये तेरहवें मनु हुए ॥२९॥ ये महाबलवान् महापराक्रमी तथा जगत् के स्वामी हुए । छठे राजकुमार विष्णुसावर्णि हुए और ये चौदहवें मनु हुए । देवी के वरदान के कारण संसार के प्रख्यात स्वामी हुए । ये चौदहों मनु अत्यधिक तेज और बल से सम्पन्न थे ॥३०-३१॥ देवी की आराधना के प्रभाव से ये संसार में वंद्य तथा पूज्य हुए । भ्रामरी देवी की कृपा से ये सभी अत्यधिक प्रतापी हुए ॥३२॥ **नारदजी ने कहा–** ये भ्रामरी देवी कौन हैं ? ये क्यों उत्पन्न हुयीं

तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम् ॥३३॥ न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम् । अमृतं पिबतां मृत्युर्नास्य श्रवणतो यतः ॥३४॥ श्रीनारायण उवाच– **शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम् अचिंत्याव्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्षदायकम् ॥३५॥ यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे । निर्व्याजयाकरुणया पुत्रं मातुर्यथा तथा ॥३६॥ पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः । पाताले दैत्यसंस्थाने देवद्वेषी महाखलः॥३७॥ स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः । पद्मसंभवमुद्दिश्य स नस्त्राता भविष्यति ॥३८॥ गत्वा हिमवतः पार्श्वे गङ्गाजलसुशीतले । पक्वपर्णाशनो योगी संनिरुध्य मरुद्गणम् ॥३९॥ गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः । दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः ॥४०॥ दशवर्षसहस्राणि ततः पवनभोजनः । दशवर्षसहस्राणि निराहारोऽभवत्ततः ॥४१॥ एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः । ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत्॥४२॥ किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकंपिरे । संत्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥४३॥ विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः । गायत्रीसहितो हंससमारुढो ययौ मुदा ॥४४॥ प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशतसंकुलम् । शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यानमीलितलोचनम् ॥४५॥ ददर्श**

तथा उनका स्वरूप क्या है ? हे प्राज्ञ ! उनका शोकनाशक विचित्र आख्यान बतलाइये ॥३३॥ मुझे देवी के कथामृत को सुनने से तृप्ति नहीं होती है । इसके श्रवण रूपी अमृत का पान करने से मृत्यु नहीं होती है ॥३४॥ **श्रीनारायण ने कहा–** हे नारद जी ! मैं अचिन्त्य, अव्यक्त रूप वाली देवी का मोक्ष प्रदान करने वाला जगन्माता का विचित्र आख्यान बतला रहा हूँ ॥३५॥ जिस तरह माता की अपने पुत्र पर स्वाभाविक कृपा होती है, उसी तरह देवी के समस्त चरित्र लोककल्याण करने के लिए होता है ॥३६॥ प्राचीनकाल में पाताल में दैत्यों के स्थान में रहने वाला देवताओं से द्वेष करने वाला महाखल अरुण नामक दैत्य हुआ ॥३७॥ उसने संसार पर विजय प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा जी की घोर तपस्या की । वह जानता था कि ब्रह्मा जी ही हमारी रक्षा कर सकते हैं ॥३८॥ वह हिमालय के सन्निकट जाकर गङ्गा जी के शीतल जल में योग करते हुए पुराने पत्तों को खाकर रहता था, उसने अपने श्वास को रोक दिया ॥३९॥ वह गायत्री मन्त्र का जप करता रहता था । वह तमोगुणाी तथा सकाम तप करता था । उसके बाद वह दश हजार वर्षों तक जलविन्दु को पीकर रहा ॥४०॥ उसके बाद वह दश हजार वर्षों तक वायु पीकर रहा । उसके बाद वह दश हजार वर्षों तक निराहार रहा ॥४१॥ इस तरह से तपस्या करने वाले उसके शरीर से अग्नि की ज्वाला निकली और उससे सम्पूर्ण संसार जलने लगा । वह अत्यन्त आश्चर्यमय था ॥४२॥ यह क्या है? कहते हुए देवता काँपने लगे । सारा संसार भयभीत होकर ब्रह्माजी के शरण में गया ॥४३॥ देवताओं से समाचार जानकर ब्रह्माजी गायत्री के साथ हंस पर आरूढ होकर उसके सन्निकट गये ॥४४॥ उस समय उस अरुण नामक दैत्य के प्राण मात्र अवशिष्ट थे । सैकड़ों धमनियों से युक्त उसका पेट सूख गया था । शरीर दुर्बल हो गया था, ध्यान में उसके नेत्र बन्द थे ॥४५॥ उसने तेज से देदीप्यामान तथा दूसरे सूर्य के समान ब्रह्माजी को देखा । **ब्रह्माजी ने कहा–** वत्स तुम्हारा

तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम् । वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम् ।।४६।। श्रुतिमात्रेण संतोषकारकं वाक्यमूचिवान् । श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः ।।४७।। उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्श जलजोद्भवम् । गायत्रीसहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम् ।।४८।। अक्षस्त्रक्कुण्डिकाहस्तं जपंतं ब्रह्म शाश्वतम् । दृष्ट्वोत्थाय ननामाथ स्तुत्वा च विविधैः स्तवैः ।।४९।। वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि । श्रुत्वाऽरुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ।।५०।। ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या कालेन कवलीकृताः । तदाऽन्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ।।५१।। वरं योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया । नात्राग्रहं प्रकुर्वन्ति बुद्धिमंतो जनाः क्वचित् ।।५२।। इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम् । न युद्धे न च शास्त्रास्त्रान्न पुम्भ्यो नापि योषितः ।।५३।। द्विपाद्भ्यो चा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा । भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो ।।५४।। बलं च विपुलं देहि येन देवजयो भवेत् । इति तस्य वचः श्रुत्वा तथाऽस्त्विति वचोऽब्रवीत् ।।५५।। दत्त्वा वरं जगामाशु पद्मजः स्वं निकेतनम् । ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तु पातालात्स्वाश्रयस्थितान् ।।५६।। दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः । आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ।।५७।। दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम् । दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकम्पितः ।।५८।। देवैः सार्धं जगामाशु ब्रह्मणः सदनं प्रति । ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य

कल्याण हो, तुम्हारे मन में जो हो वह वरदान माँगो ।।४६।। सुनने मात्र से सन्तोषकारी वाक्य ब्रह्माजी ने कहा, ब्रह्माजी के मुख से निकली हुई अमृत धारा के समान वाणी को सुनकर अरुण ।।४७।। ने अपने नेत्र को खोलकर सामने ब्रह्मा जी को देखा । उस समय ब्रह्मा जी के साथ गायत्री देवी तथा चारो वेद थे ।।४८।। वे अक्षमाला तथा कमण्डलु धारण किए हुए थे । वे शाश्वत ब्रह्म (वेद) का पाठ कर रहे थे । ब्रह्मा जी को देखकर वह उठ खड़ा हुआ, फिर प्रणाम करके अनेक प्रकार से स्तुति किया ।।४९।। उसने अपने मन में विद्यमान वर को माँगते हुए कहा कि मेरी मृत्यु न हो । अरुण की बातों को सुनकर ब्रह्मा जी ने प्रेमपूर्वक बतलाया ।।५०।। हे दानवोत्तम ! जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवताओं की मृत्यु होती है तो दूसरों के विषय में क्या कहा जा सकता है ? ।।५१।। अतएव ऐसा वर माँगों जो दिया जा सके । इस विषय में कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आग्रह नहीं करता है ।।५२।। ब्रह्मा जी की वाणी को सुनकर उसने कहा कि मेरी मृत्यु न तो युद्ध में, न शस्त्रों से, न अस्त्रों से, न पुरुष से, न स्त्री से, न द्विपाद से, न चतुष्पाद से, न तो दोनों प्रकार के आकार वालों से हो यही मुझे आप वरदान दीजिये ।।५३-५४।। मुझे विपुल बल प्रदान करें जिससे कि मैं देवताओं पर विजय प्राप्त कर सकूँ। उसकी उस वाणी को सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा कि ऐसा ही हो ।।५५।। उसको वरदान देकर ब्रह्माजी अपने धाम में चले गये । उसके बाद अरुण ने पाताल से अपने आश्रित दैत्यों को बुलाया । वे सभी दैत्य आकर अरुण को दैत्यों का स्वामी बना दिए ।।५६-५७।। उन सबों ने युद्ध करने के लिए इन्द्र की

जग्मुस्ते शंकरालयम् ।।५९।। विचारं चक्रिरे तत्र वधार्थं ते सुरद्रुहाम् । एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेनासमावृतः ।।६०।। अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाशु त्रिविष्टपम् । सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ।।६१।। स्वयं चकार तपसा नानारूपधरो मुने । स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमण्डलम् ।।६२।। शशंसुः शंकरं देवाः स्वस्वदुःखं पृथक् पृथक् । महान्विचारस्तत्रासीत्किंकर्तव्यमतः परम् ।।६३।। न युद्धे न च शास्त्रास्त्रैर्न पुंभ्यो नापि योषितः । द्विपाद्भयो वा चतुष्पाद्भयो नोभयाकारतोऽपि वा ।।६४।। मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः । इति चिंतातुराः सर्वे कर्तुं किंचिन्न च क्षमाः ।।६५।। एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी । भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति ।।६६।। गायत्रीजपसंसक्तो दैत्यराड्यदि तां त्यजेत् । मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी ।।६७।। श्रुत्वा दैवीं तथा वाणीं मंत्रयामासुरादृताः । बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट् ।।६८।। गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति । यथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु ।।६९।। अस्माभिः परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः ।प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति ।।७०।। इत्यादिश्य गुरुं सर्वे जग्मुर्जांबूनदेश्वरीम् । साऽस्मान्दैत्यभयत्रस्तान्पालयिष्यति शोभना ।।७१।। तत्र गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः । मायाबीजजपासक्ता देवीमखपरायणाः ।।७२।।

नगरी अमरावती में दूत को भेजा । दूत की बात को सुनकर इन्द्र भय से काँप गये ।।५८।। सबों ने दैत्यों के वध के विषय में विचार किया । उसी समय अरुण अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच गया ।।६०।। अरुण नामक दैत्यराज त्रैलोक्य में शीघ्र गया । फिर उसने सूर्य, चन्द्रमा, यम और अग्नि के अधिकार को स्वयं ले लिया ।।६१।। हे मुने ! उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से अनेक रूपों को धारण कर लिया। अपने पद से च्युत होकर सभी देवता कैलास पर गये ।।६२।। सबों ने शंकर जी को अपना दुःख बतलाया । उसके बाद बहुत अधिक विचार किया गया कि अब क्या करना चाहिए ।।६३।। चूंकि ब्रह्मा जी ने कहा है कि तुम्हारी मृत्यु न युद्ध में, न शस्त्रास्त्रों से, न पुरुष से, न स्त्री से, न दो पैर वाले से और न चार पैर वालें से और न दोनों प्रकार के आकार वालों से होगी । वे इस तरह से चिन्ता के कारण घबराए हुए थे और कुछ भी करने में समर्थ नहीं थे ।।६४-६५।। उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई । तुमलोग भुवनेश्वरी की आराधना करो । वे ही आप लोगों का कार्य करेंगी ।।६६।। दैत्यराज सदा गायत्री का जप करता रहता है, वह यदि गायत्री का जप करना छोड़ दे तो वह मृत्यु के योग्य होगा, यह सबसे अधिक संतोष की बात है ।।६७।। उस आकाशवाणी को सुनकर देवताओं ने विचार किया और इन्द्र ने बृहस्पति को बुलाकर कहा ।।६८।। आचार्य आप देवताओं का कार्य करने के लिए दैत्यराज के पास जाइये और ऐसा कुछ कीजिये कि वह गायत्री का जप करना छोड़ दे ।।६९।। हमलोग ध्यानयोग के द्वारा देवी की आराधना कर रहे हैं । प्रसन्न होकर भगवती आपकी सहायता करेंगी ।।७०।।

बृहस्पतिस्तदा शीघ्रं जगामासुरसन्निधौ । आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाथ स दैत्यराट् ॥७३॥ मुने कुत्रागमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद । नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युतारातिरेव च ॥७४॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः । अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम् ॥७५॥ तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद । इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया ॥७६॥ तत्याज परमं मंत्रमभिमानेन सत्तम । गायत्री त्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह ॥७७॥ कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः । ततो वृत्तान्तमखिलं कथयामास वज्रिणे ॥७८॥ संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम् । एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने ॥७९॥ प्रादुरासीज्जगन्माता जगन्मङ्गलकारिणी । कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकन्दर्पसुन्दरी॥८०॥ चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता । विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका ॥८१॥ वराभयकरा शांता करुणामृतसागरा। नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता ॥८२॥ भ्रामरीभिविचित्राभिरसंख्याभिः समावृता । भ्रमरैर्गायमानैश्च ह्रींकारमनुमन्वहम् ॥८३॥ समंततः परिवृता कोटिकोटिभिरंबिका । सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता ॥८४॥ सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमंगलरूपिणी । सर्वज्ञा सर्वजजनी सर्वा

इस तरह बृहस्पति से कहकर सभी देवता जम्बूनदेश्वरी की शरण में यह सोचकर गये कि वे ही हमलोगों की दैत्य के भय से रक्षा करेंगी ॥७१॥ वहाँ जाकर वे सब भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगे । वे सब मायाबीज (क्लीं) का जप करते थे और देवी का यज्ञ करते थे ॥७२॥ इसके बाद बृहस्पति शीघ्र ही दैत्यराज के पास गये । आये हुए मुनि बृहस्पति से दैत्राज ने पूछा मुने ! आप कहाँ से आ रहे हैं ? आपके आने का प्रयोजन क्या है ? आप बतलाइये । मैं आपलोगों का पक्षपाती नहीं अपितु शत्रु हूँ ॥७४॥ उसकी इस वाणाी को सुनकर **मुनिनायक ने कहा**— जो देवी हमारी पूज्या हैं, उसी देवी की आप भी सदा सेवा करते हैं ॥७५॥ तो फिर आप हमलोगों के पक्षपाती क्यों नहीं हैं ? बृहस्पति की इस वाणी को सुनकर अरुण देवताओं की माया से मोहित हो गया॥७६॥ और उसने गायत्री मंत्र का जप करना छोड़ दिया । गायत्री का त्याग करने के कारण वह निस्तेज हो गया ॥७७॥ अपना कार्य करके बृहस्पति उस स्थान से निकल गये और सारा वृत्तान्त इन्द्र को सुनाये ॥७८॥ सभी देवता सन्तुष्ट होकर देवी की आराधना करने लगे । हे मुने ! इस प्रकार से बहुत समय बीत जाने पर एक बार ॥७९॥ जगन्माता तथा जगत् का कल्याण करने वाली देवी प्रकट हुयीं । उनकी कान्ति करोड़ो सूर्य के समान थी तथा वे करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर थीं ॥८०॥ उनके शरीर में अद्भुत अनुलेप लगा था। वे दो विचित्र वस्त्रों को धारण किए थीं । उनकी माला और आभूषण विचित्र थे । वे चारो ओर से विचित्र भ्रमरों से घिरी हुयी थीं ॥८१॥ उनके हाथ में श्रेष्ठ तथा अभय मुद्रा थी, वे शान्त तथा करुणामृत के सागर के समान थीं । वे अनेक भ्रमरों से युक्त पुष्प की माला से सुशोभित थीं । वे विचित्र भ्रमरियों से घिरी थीं । भ्रमरियाँ 'ह्रीं' मन्त्र का निरन्तर गायन कर रही थीं ॥८३॥ वे चारो ओर से कई करोड़ भ्रामरियों से घिरी थीं । वे समस्त श्रृङ्गारिक वेष से समलङ्कृत तथा सभी वेदों से प्रशंसित थीं ॥८४॥ सर्वात्मिका, सर्वमयी, सर्वमङ्गलस्वरूपिणी,

सर्वेश्वरी शिवा ॥८५॥ दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमाः । तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसं शिवाम् ॥८६॥ देवाः ऊचुः– **नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी । नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते ॥८७॥ सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः । नमो व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नमः ॥८८। दुर्गे सर्गादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले । निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥८९॥ नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति । उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमो नमः ॥९०॥ नमः पीताम्बरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि । नमो भैरवि मातंगि धूमावति नमो नमः ॥९१॥ छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके । नमः शाकंभरि शिवे नमस्ते रक्तदन्तिके ॥९२॥ निशुंभशुंभदलनि रक्तबीजविनाशिनि । धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि॥९३॥ चंडमुण्डप्रमथिनि दानवांतकरे शिवे । नमस्ते विजये गंगे शारदे विकचानने ॥९४॥ पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमो नमः । प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते ॥९५॥ विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमो नमः । देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥९६॥ गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति । नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमो नमः ॥९७॥ नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः । सर्वे प्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम् ॥९८॥ भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद्भ्रामरी या ततः स्मृता । तस्यै दैव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः ॥९९॥ नमस्ते**

सर्वज्ञा, सर्वजननी, सर्वा सर्वेश्वरी तथा शिवा उनके नाम थे ॥८५॥ उन देवी का दर्शन करके ब्रह्मा आदि सभी देवता देवी की स्तुति करने लगे । **देवताओं ने कहा–** हे देवि ! हे महाविद्ये ! हे जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करने वाली देवि ! हे कमलनेत्रे, हे सर्वाधारस्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है ॥८७॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ, विराट् तथा सूत्र स्वरूपिणी आपको नमस्कार है । हे दुर्गे ! हे सर्गादि से रहित देवि ! दुष्टों को रोकने के लिए अर्गला के समान हे देवि ! हे स्वाभाविक प्रेम से प्राप्त होने वाली तेजः स्वरूपिणी देवि आपको नमस्कार है ॥८९॥ हे कालिकामाता आपको नमस्कार है, हे नीलसरस्वति ! हे उग्रतारे ! हे महोग्रे आपको सदा नमस्कार है ॥९०॥ हे पीताम्बरे देवि ! हे त्रिपुरसुन्दरि देवि ! हे भैरवि देवि ! हे मातङ्गि देवि ! हे धूमावती देवि! हे छिन्नमस्तके देवि आपको नमस्कार है ॥९१॥ हे लक्ष्मी देवि ! हे शाकम्भरि देवि ! हे शिवे ! हे रक्तदन्तिके देवि ! हे निशुम्भ तथा शुम्भ का वध करने वाली देवि ! हे रक्तबीज का विनाश करने वाली देवि ! हे धूम्रलोचन का विनाश करने वाली देवि ! हे वृत्रासुर का वध करने वाली देवि ॥९२-९३॥ हे चण्ड और मुण्ड का विनाश करने वाली ! हे दानवों का विनाश करने वाली देवि ! हे शिवे ! हे गङ्गे ! हे शारदे ! हे विकचानने ॥९४॥ हे पृथिवीस्वरूपिणि ! हे दया स्वरूपिणि, हे तेजः स्वरूपिणि ! हे प्राणस्वरूपिणि ! हे महारूपे ! हे भूतस्वरूपिणि आपको नमस्कार है ॥९५॥ हे विश्वमूर्ते! हे दयामूर्ते आपको बारम्बर नमस्कार है । हे देवमूर्ते ! ज्योतिमूर्ते ! ज्ञानमूर्ते आपको नमस्कार है ॥९६॥ हे गायत्रिं ! वरदे ! हे देवि ! हे सावित्रि ! हे सरस्वति! हे स्वाहे ! हे स्वधे ! हे मातः ! हे दक्षिणे ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥९७॥ सभी वेद जिसका वर्णन, 'नेति नेति' वाक्य से करते हैं उस प्रत्यक्

पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोऽम्बिके । नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमो नमः ॥१००॥ कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि । अनन्तकोटिब्रह्मांडनायिके जगदम्बिके ॥१०१। जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे । जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे ॥१०२॥ कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि। प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतोरणे ॥१०३॥ श्रीनारायण उवाच– **इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः । उवाच जगदम्बा सा मत्तकोकिलभाषिणी॥१०४॥** देव्युवाच– **प्रसन्नाऽहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः । ब्रुवन्तु विबुधाः सर्वे यदेव स्याच्चिकीर्षितम् ॥१०५॥ देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम् । दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम् ॥१०६॥ देवब्राह्मण वेदानां हेलनं नाशनं तथा । स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृता ॥१०७॥ ब्रह्माणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे । श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा ॥१०८॥ प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रामरी तदा । पार्श्वस्थानग्रभगस्थान्नानारूपधरांस्तदा ॥१०९॥ जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम् । मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः ॥११०॥ तदांतरिक्षं तैर्व्याप्तमंधकारः क्षितावभूत् । दिवि पर्वतशृङ्गेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि ॥१११॥ भ्रमरा एव संजातास्तदद्भुतमिवाभवत्।**

स्वरूपा परा देवी की हम आराधना करते हैं ॥९८॥ भ्रमरों से घिरी हुई होने के कारण जो भ्रामरी देव कही जाती हैं उस देवी को हम सदा नमस्कार करते हैं ॥९९॥ हे देवि आपको हम पार्श्वभाग से, पीछे से तथा आगे से नमस्कार करते हैं । आपको हम ऊपर की ओर से तथा नीचे की ओर से नमस्कार करते हैं॥१००॥ हे मणिद्वीप की अधिष्ठात्रि देवि आप हमलोगों पर कृपा करें । हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की स्वामिनि ! हे जगदम्बिके आप कृपा करें॥१०१॥ हे जगन्मातः देवि आपकी जय हो, हे परात्पर स्वरूपिणि देवि ! आपकी जय हो । हे सर्वोत्तमोत्तम श्रीभुवनेश्वरि देवि ! आपकी जय हो ॥१०२॥ हे कल्याणकारी गुणों के आकरस्वरूपिणि ! हे भुवनेश्वरि ! हे परमेश्वरि ! हे जगत् की तोरणस्वरूपिणि देवि आप प्रसन्न होइये ॥१०३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** इस तरह से देवताओं के प्रेमपूर्ण मधुर वचन को सुनकर मत्तकोकिल के समान बोलने वाली जगदम्बा ने कहा ॥१०४॥ **देवी ने कहा–** हे देवों ! वरदान देने वालों में सर्वश्रेष्ठ मैं प्रसन्न हूँ आपलोग बतलाइये कि क्या चाहते हैं ॥१०५॥ देवी की मधुरवाणी को सुनकर अपने दुःख के कारणस्वरूप, संसार को दुःख देने वाले दुष्ट दैत्य के चरित को देवताओं ने बतलाया ॥१०६॥ देवतओं ने उसके द्वारा की जाने वाली देवता, ब्राह्मण और वेदों की अवमानना, वेदों का नाश, देवताओं को स्थानभ्रष्ट करना, आदि कर्म को बतलाया ॥१०७॥ देवताओं ने ब्रह्मा जी द्वारा दिए गये वरदान को ठीक-ठीक बतलाया । उसके बाद देवताओं की वाणी सुनकर ॥१०८॥ देवी ने अपने हाथ में विद्यमन भ्रमरों तथा भ्रामरियों को अपने बगल में, आगे तथा अनेक रूपों को धारण करने वाले भ्रमरों एवं भ्रामरियों को प्रेरित किया ॥१०९॥ उन्होंने अनेक भ्रमरों को उत्पन्न कर दिया । टिड्डीदल के समान उनसे भ्रमरों का समूह निकला॥११०॥ उन सबों से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया । पृथिवी पर अन्धेरा छा गया । स्वर्ग, पर्वतशिखर, वृक्षों तथ पर्वतों पर भी भौंरे ही भौंरे भर गये।

ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासुरुद्धताः ॥११२॥ नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः । उपायो न च शस्त्राणां तथाऽस्त्राणां तथाऽभवत्॥११३॥
न युद्धं न च संभाषा केवलं मरणं खलु । यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा ॥११४॥ तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः।
परस्परं समाचारो न कस्याप्यवत्तदा ॥११५॥ क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्यपुंगवाः । कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देवीनिकटमाययुः ॥११६॥
आर्श्चयमेतदार्श्चयमिति लोकाः समूचिरे । किं चित्रं जगदम्बाया यस्या मायेयमीदृशी ॥११७॥ ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । निमग्ना
हर्षजलधौ पूजयामासुरंबिकाम् ॥११८॥ नानोपचारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः । जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः सुमनांसि च ॥११९॥ दिवि दुंदुभयो
नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठा गंधर्वाद्या जगुस्तथा ॥१२०॥ मृदङ्गमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः । घंटाशंखनिनादैश्च
व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्॥१२१॥ नानास्तोत्रैस्तदा स्तुत्वा मूर्ध्न्याधायांजलींस्तथा । जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे ॥१२२॥ ततस्तुष्टा महादेवी
वरान्दत्त्वा पृथक्पृथक् । स्वस्मिंश्च विपुलां भक्तिं प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम् ॥१२३॥ पश्यतामेव देवनामन्तर्धानं गता ततः । इति ते सर्वमाख्यातं

यह अद्भुत दृश्य था। उन सबों ने उड़कर उस दैत्य के हृदय को फाड़ दिया ॥१११-११२॥ जिस तरह से छत्ते से मधु निकालने वाले को मधुमखियाँ
काटती हैं, उसी तरह वे उसे काट रहे थे । उसके लिए शस्त्रों तथा अस्त्रों का प्रयोग नहीं करना पड़ा ॥११३॥ न युद्ध हुआ न संभाषण केवल मृत्यु ही
हुई । जो दैत्य जिस स्थान पर थे वे सब वहीं मर गये । उन सबों का परस्पर में कोई संभाषण भी नहीं हो सका ॥११४-११५॥ वे सभी दैत्य क्षणभर
में मर गये । इस तरह से काम पूरा करके वे भौंरे देवी के सन्निकट आ गये ॥११६॥ लोगों ने कहा कि यह अत्यन्त आश्चर्यमय कार्य हुआ । जिन देवी
की ऐसी माया है, उनके लिए कौन सा काम आश्चर्यजनक है ॥११७॥ उसके बाद सभी देववर्य आनन्दमग्न हो गये। उन लोगों ने जगदम्बा की पूजा अनेक
प्रकार के उपहार को लेकर अनेक प्रकार के उपचारों से पूजा की । जय-जयकार करते हुए देवताओं ने जगदम्बा के ऊपर फूलों की वृष्टि की ॥११८-११९॥
स्वर्ग में दुन्दुभी बजने लगी, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । श्रेष्ठ मुनिगण वेदपाठ करने लगे और गन्धर्वों ने गीत गया ॥१२०॥ मृदङ्ग, मुरज, वीणा, ढक्का
तथा उमरू की ध्वनि से तथा घण्टा एवं शंख की ध्वनि से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया ॥१२१॥ अनेक स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करके सबों ने हाथ जोड़कर
और उसे शिर से लगाकर कहा– लोकस्वामिनी माता की जय हो ॥१२२॥ इसके बाद प्रसन्न होकर जगदम्बा ने सबों को अलग-अलग वरदान दिया। उन
देवताओं की प्रार्थना सुनकर उन्हें अपनी भक्ति प्रदान की ॥१२३॥ उसके बाद देवताओं के सामने से ही वे अन्तर्धान हो गयीं । इस तरह से मैंने भ्रामरी
देवी के महान् चरित्र का वर्णन किया ॥१२४॥ जो व्यक्ति इसे पढ़ता और सुनता है उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । यह सुनने में अत्यन्त आश्चर्यकारी

भ्रामर्याश्चरितं महत् ॥१२४॥ पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् । श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम् ॥१२५॥ एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम् । देवी माहात्म्यसंयुक्तं पठञ्शृण्वञ्शुभप्रदम् ॥१२६॥ यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्योऽनिशं नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥१२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

सार्धरुद्रैः पंचशत (५११॥ श्लोकैर्व्यासकृतैः शुभैः ॥ देवीभागवतस्यास्य दशमस्कन्ध ईरितः ॥१०॥

* * *

है तथा संसार-सागर को पार करने वाला है ॥१२५॥ इसी तरह से मनुओं का चरित पापों का नाश करने वाला है । यह देवी के माहात्म्य से युक्त तथा पढ़ने और सुनने वालों का कल्याण करने वाला है ॥१२६॥ जो व्यक्ति इसका नित्य ही पाठ करता है अथवा सदा सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर देवी के सायुज्य को प्राप्त करता है ॥१२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

महर्षि व्यास के द्वारा प्रणीत पाँच सौ साढे ग्यारह श्लोकों से युक्त देवीभागवत का दशवां स्कन्ध कहा गया है ।

इस तरह दशवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

* * *

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

एकादशः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

नारद उवाच– **भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन । आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचरितमुत्तमम् ॥१॥ प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम्। अधिकाराप्तिरुक्ताऽत्र देवीपूर्णकृपावशात् ॥२॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा । स्वभक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो ॥३॥**
नारायण उवाच– **शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम् । यदनुष्ठानमात्रेण देवी प्रीणाति सर्वदा ॥४॥ प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्द्विजेन दिने दिने। तदहं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥५॥ उदयास्तमयं यावद्द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत् । नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥६॥ आत्मैव न सहायार्थं पिता माता न तिष्ठति । न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम् ॥७॥ तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनु साधनैः । धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम् ॥८॥ आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च । तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः ॥९॥ आचारल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः । आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हंति पातकम् ॥१०॥ आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः । इह लोके सुखी भूत्वा**

सदाचार का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे भगवन् ! हे भूतभव्येश !! हे नारायण !!! हे सनातन !!!! आपने परम आश्चर्यमय देवी के उत्तम चरित्र का वर्णन किया ॥१॥ आपने बतलाया कि देवताओं का कार्य करने के लिए देवी का प्रादुर्भाव होता है तथा देवी की ही कृपा से देवताओं को अपने अधिकार की प्राप्ति हुई ॥२॥ अब मैं उस सदाचार का वर्णन सुनना चाहता हूँ जिससे प्रसन्न होकर देवी अपने भक्तों का पालन करती हैं ॥३॥ **नारायण ने कहा–** हे नारदजी ! अब मैं आपको उस सदाचार की विधि तथा क्रम को सुना रहा हूँ जिसके अनुष्ठान से देवी सदा प्रसन्न रहती हैं ॥४॥ अब मैं उस सदाचार का वर्णन करूँगा जिसका अनुष्ठान द्विजों को प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर करना चाहिये । वह अनुष्ठान द्विजों का कल्याण करने वाला है ॥५॥ किसी भी द्विज को चाहिए कि वह प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त वेदविहित नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों को करे ॥६॥ क्योंकि आत्मा की सहायता पिता, माता, पुत्र, पत्नी और बाँधव नहीं करते हैं । केवल धर्म ही आत्मा का सहायक है ॥७॥ अतएव आत्मा की सहायता के लिए नित्य ही धर्म का संचय करना चाहिए । धर्म की ही सहायता से जीव दुस्तर अज्ञानान्धकार को पार कर पाता है ॥८॥ श्रुतियों तथा स्मृतियों में बतलाये गये आचार ही सर्वप्रधान धर्म हैं; अतएव द्विज को चाहिए कि वह आत्मकल्याण के लिए उसका सदा पालन करे ॥९॥ आचार से ही आयु, प्रजा तथा अक्षय अन्न (भोग्य पदार्थ) की प्राप्ति होती है । सदाचार पाप को विनष्ट कर देता है ॥१०॥ सदाचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है । वह मनुष्यों का कल्याण करने वाला है । आचार का पालन करने वाला इस

परत्र लभते सुखम् ॥११॥ अज्ञानांधजनानां तु मोहितैर्भ्रमितात्मनाम् । धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः ॥१२॥ आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते । कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम् ॥१३॥ सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः । तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते॥१४॥ यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः । स शूद्रवद्बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः ॥१५॥ आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा । उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता ॥१६॥ ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः । परिग्राह्या नृभिः सर्वैर्नैव ताँल्लघयेन्मुने ॥१७॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः । दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च ॥१८॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ॥१९॥ नारद उवाच– बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने । कियत्प्रमाणं तद्ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णयम्॥२०॥ नारायण उवाच– श्रुतिस्मृति उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम् । एतत्त्रयोक्तं एवं स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥२१॥ विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम् । श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्याद्द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥२२॥ श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ । स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां

लोक में सुखी रहकर परलोक में भी सुख को प्राप्त करता है ॥११॥ धर्मरूपी महादीपक (प्रदीप) के बिना वह अज्ञान के कारण अन्धे बनकर मोहित होकर भवाटवी में भटकता है । मनु ने कहा है कि सदाचार का पालन करने से ही श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है, उसी से वह सत्कर्म करने वाला बन जाता है। सत्कर्म के ही करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥१३॥ सदाचार सभी धर्मों से श्रेष्ठ है, वही सबसे बड़ी तपस्या है । उसी को ज्ञान कहा गया है और उससे सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥१४॥ उत्तम कोटि का ब्राह्मण होकर भी जो सदाचार का पालन नहीं करता है, वह शूद्र के ही समान सभी सत्कर्मों से बहिष्कृत किए जाने योग्य है ॥१५॥ आचार दो प्रकार का बतलाया गया है शास्त्रीय सदाचार और लौकिक सदाचार । कल्याण चाहने वालों को उन दोनों प्रकार के सदाचारों का पालन करना चाहिए ॥१६॥ हे मुने ! सभी मनुष्यों को ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म तथा कुलधर्म का पालन करना चाहिए। उन धर्मों का उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए ॥१७॥ दुराचारी मनुष्य संसार में निन्दा का पात्र होता है । उसे दुःख मिलता है और वह व्याधिग्रस्त हो जाता है ॥१८॥ धर्म के विपरीत अर्थ एवं काम का परित्याग कर देना चाहिए लोक विरुद्ध धर्म सुखप्रद नहीं होता है ॥१९॥ **नारदजी ने कहा–** हे मुने! शास्त्र तो अनेक हैं, अतएव धर्मों का निर्णय कैसे किया जा सकता है ? कृपया आप यह बतलाएँ कि धर्म मार्ग के निर्णायक प्रमाण कितने हैं ?॥२०॥ **नारायण ने कहा–** श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ ये दोनों धर्म के नेत्र कहे गये हैं । पुराणों को धर्म का हृदय बतलाया गया है । इन तीनों में वर्णित ही धर्म अनुष्ठेय हैं, इन तीनों से भिन्न शास्त्रों में वर्णित कोई धर्म नहीं है ॥२१॥ इन तीनों में जहाँ परस्पर में विरोध की प्रतीति हो तो उनमें श्रुति ही श्रेष्ठ है और जहाँ पुराण और स्मृति में विरोध हो तो वहाँ स्मृति को ही प्रमाण मानना चाहिए ॥२२॥ यदि श्रुति दो प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन करती है तो उन दोनों को धर्म

पृथक्॥२३॥ पुराणेषु क्वचिच्चैव तंत्रदृष्टं यथातथम् । धर्मं वदंति तं धर्मं गृहणीयान्न कथंचन ॥२४॥ वेदाविरोधि चेत्तंत्रं तत्प्रमाणं न संशयः। प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च ॥२५॥ सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः । तेनाविरुद्धं यत्किंचित्तत्प्रमाणं न चान्यथा ॥२६॥ यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः । कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसंति हि ॥२७॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत् । स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तंत्रं वा शास्त्रमेव च ॥२८॥ तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन । ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयंतीह मानवान् ॥२९॥ अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यंति नरकार्णवम् । कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिंगधारिणः ॥३०॥ तप्तमुद्रांकिता ये च वैखानसमतानुगाः । ते सर्वे निरयं यांति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥३१॥ वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा । उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं कि मयाऽद्य कृतं कृतम् ॥३२॥ दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम् । उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि ॥३३॥ अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् । ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौ तथोत्तरम् ॥३४॥ उत्तानं किचिदुत्तानं मुखमाच्छाद्य चोरसा । निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥३५॥ तालुस्थाचलजिह्वश्च

मानना चाहिए । यदि स्मृति दो प्रकार के धर्मों को प्रतिपादन करती है तो उन दोनों की कल्पना प्रसङ्गानुसार कर लेनी चाहिए ॥२३॥ सभी पुराण वेदमूलक नहीं हैं, क्योंकि उनमें कहीं-कहीं तन्त्र देखे जाते हैं । ऋषिप्रोक्त धर्म को धर्म मानना चाहिए अन्य को नहीं ॥२४॥ जो तंत्र वेदानुकूल हैं वे धर्म हैं । प्रत्यक्ष श्रुति के विरुद्ध धर्म को धर्म नहीं मानना चाहिए ॥२६॥ वेद ही पूर्ण रूप से धर्ममार्ग के प्रवर्तक हैं । वेद विरोधी धर्म का प्रमाण नहीं मानना चाहिए ॥२६॥ जो वैदिक धर्म का परित्याग करके वेद से भिन्न को प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसको दण्ड देने के लिए यमलोक में नरककुण्ड हैं ही ॥२७॥ अतएव हर प्रकार के प्रयास के द्वारा वैदिकधर्म या स्मार्तधर्म या पौराणिकधर्म या शास्त्रोक्तधर्म का पालन करना चाहिए ॥२८॥ वेदमूलक धर्म प्रामाणिक होता है तद् व्यतिरिक्त नहीं । जो लोग मनुष्यों को कुशास्त्र का उपदेश देते हैं ॥२९॥ वे लोग नीचे मुँह और ऊपर पैर करके नरकों में डाल दिए जाते हैं । मनमानी आचारण करने वाले पाशुपत मतानुयायी लिङ्ग धारण करने वाले या तप्तमुद्रा को धारण करने वाले, या वैखानसमतानुयायी ये सबके सब नरक में जाते हैं तथा वेदमार्ग वहिष्कृत हैं ॥३०-३१॥ अतएव मनुष्य को वैदिक धर्म का ही पालन करना चाहिए । मनुष्य को सदा यह सोचना चाहिए कि आज मैंने क्या किया है ?॥३२॥ मैंने क्या दान किया है ? क्या दिलाया है ? और किसी को मैंने क्या कहा है ? अथवा जो छोटे बड़े उपपातक हैं उन सबों को तो मैंने नहीं किया है ?॥३३॥ जब रात्रि का एक प्रहर बच जाय तो जगकर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए । छाती को उत्तान करने पद्मासन से बैठ जाना चाहिए ॥३४॥ उत्तान की हुई छाती मे मुँह को सटा दे । अपनी आँखे बन्द करके सत्त्व सम्पन्न होकर ऊपर तथा नीचे के दाँतों को न सटाये॥३५॥

संवृतास्यः सुनिश्चलः । सन्निरुद्धेंद्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः ॥३६॥ द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् । ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ॥३७॥ धारयेत्तत्र चात्मानं धारणं धारयेद्बुधः । सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः ॥३८॥ सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्राणायामस्तु षड्विधः । प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः ॥३९॥ प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः । वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुम्भकाः॥४०॥ स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः । इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ॥४१॥ शनैः षोडशमात्राभिरन्यथा तं विरेचयेत् । एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने ॥४२॥ आधारो लिंगनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के । वासांते बालमध्ये डफकङ्गसहिते कण्ठदेशे स्वराणां हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नामामि ॥४३॥ अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुंजवर्णा हरनियमितचिह्ना पद्मतंतुस्वरूपा । रविहुतवहराकानायकास्यस्तानाढ्या सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः ॥४४॥ स्थितिः सैवागतिर्यात्रा

उसके बाद तालु से जीभ को लगा दे । उसके बाद मुँह बंद करके । निश्चल होकर बैठे रहे । आसन को अधिक नीचे नहीं रहना चाहिए । अपनी इन्द्रियों को वश में करके दो गुना या तीन गुना प्राणायाम करे । उसके पश्चात् हृदय में प्रकाश स्वरूप विद्यमान परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥३७॥ यह सदा ध्यान करना चाहिए कि मेरे हृदय में परमात्मा का निवास है । प्राणायाम के छह भेद हैं सधूम (श्वास युक्त) विधूम (श्वास रहित) सगर्भ (मन्त्रजप के साथ) अगर्भ (मन्त्रजप से रहित) सलक्ष्य (आराध्य परामात्मा के ध्यान से युक्त) तथा अलक्ष्य (परमात्मा के ध्यान रहित) ॥३८-३९॥ रेचक, पूरक तथा कुम्भक इन तीनों को मिलाकर एक प्राणायाम होता है । ये तीनों पूरक, कुम्भक तथा रेचक प्रणव के तीन वर्ण (क्रमशः अ, उ तथा म्) स्वरूप हैं ॥४०॥ उसी को (पूरक कुम्भक तथा रोचक को) ही प्राणायाम कहा जाता है । इडा (चन्द्रनाड़ी) से वायु को खींचकर अपने अन्दर में स्थापित करे ॥४१॥ उसके बाद धीरे-धीरे सोलह मात्राओं से उदर में स्थापित वायु को पिङ्गला (सूर्य नाडी) से निकालना चाहिए । हे मुने ! इस तरह से किए जाने वाले प्राणायाम को ही सधूम प्राणायाम कहते हैं ॥४२॥ मूलाधार चक्र, लिङ्ग नाभि, हृदय, कण्ठ और भ्रूमध्य में क्रमशः दो दल वाले सोलह दल वाले बारह दल वाले, बारह दल वाले, छह दल वाले तथा चार दल वाले कमल दल के ऊपर क्रमशः 'व से लेकर स' तक ब से लेकर ल तक 'ड' से लेकर 'फ' तक 'क' से लेकर 'ठ' तक वर्ण विद्यमान हैं । कण्ठ देश वाले कमलदल पर सभी स्वर वर्ण विद्यमान हैं । तत्त्वार्थ से युक्त और 'क्ष' वर्ण सभी दलों पर विराजमान हैं । इस तरह से वर्ण स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥४३॥ यदि किसी के अन्तःकरण में लाल कमल पर बैठी हुई, और उस कमल के पराग के समान गौर वर्ण वाली कामबीज (क्लीं) से चिह्नित कमल तन्तु स्वरूपिणी सूर्य अग्नि तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली तथा सुन्दर स्तनों से सुशोभित जगदम्बा किसी के हृदय में एक बार भी निवास कर जायँ तो फिर वह व्यक्ति मुक्त हो जाता है ॥४४॥ उपासक को इस प्रकार से चिन्तन करना चाहिए कि वे देवी

मतिश्चिंता स्तुतिर्वचः । अहं सर्वात्मको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम् ॥४५॥ अहं देवीं न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् । सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिंतयेत् ॥४६॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् । अंतःपदव्यामनुसंचरंतीमानंदरूपामबलां प्रपद्ये ॥४७॥ ततो निजब्रह्मरंध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम् । उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तं यथाविधि ॥४८॥ स्तुवीतानेन मंत्रेण साधको नियतात्मवान् । गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यदप्यधीताः सह षड्भिरंगैः । छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजंति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥१॥**

ही स्थिति, गति, मति, चिन्ता, तथा स्तुति स्वरूपिणी हैं । मैं सर्वात्मक परमात्मा हूँ । मेरे द्वारा की जाने वाली स्तुति ही देवी की पूजा है ॥४५॥ मैं देवी स्वरूप हूँ उनसे भिन्न नहीं हूँ । मैं ही ब्रह्म हूँ मुझे कभी भी शोक नहीं हो सकता है । मैं ही सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ॥४६॥ जो कुण्डलिनी देवी प्रथम प्राणायाम (पूरक) में प्रकाशित होती हैं, प्रतिप्राणायाम में (कुम्भक में) जो अमृत के सदृश हो जाती हैं और अन्तिम प्राणायाम में (सुषुम्णा नाड़ी में) संचरण करती हैं, उन आनन्द स्वरूपिणी देवी की मैं शरणागति करता हूँ ॥४७॥ उसके पश्चात् ब्रह्म रन्ध्र (दशम द्वार) में ईश्वर स्वरूप गुरु का ध्यान करना चाहिए। और उनकी मानसिक उपचारों से सविधि पूजा करनी चाहिए । इसके बाद संयमित चित्त वाले साधक को इस मंत्र से स्तुति करनी चाहिए ॥४८॥ गुरु ही ब्रह्मा हैं । वे ही विष्णु स्वरूप हैं तथा महेश्वर स्वरूप हैं गुरु ही परंब्रह्म है । ऐसे श्रीगुरु को नमस्कार है ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

शौचाचार विचार

श्रीनारायण ने कहा– नारद ! छहो वेदागों के साथ अध्ययन कर लिए जाने पर भी वेद, सदाचार विहीन व्यक्ति को पवित्र नहीं बना पाते हैं । मृत्यु

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् । रात्रेरंतिमयामे तु वेदाभ्यासं चरेद्बुधः ॥२॥ किंचित्कालं ततः कुर्यादिष्टेदेवानुचिंतनम् । योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥३॥ जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरंतरम् । जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद ॥४॥ पंचपंच उषःकालः सप्तपंचारुणोदयः । अष्टपंच भवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥५॥ प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः । नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥६॥ विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः । निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः ॥७॥ कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलंबितम्। विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी ॥८॥ अंतर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा । वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः ॥९॥ न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते । जीर्णे देवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले ॥१०॥ न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः । संध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दंतधावने ॥११॥ पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः । उत्साहे मैथुने वापि तथा वै गुरु सन्निधौ ॥१२॥ यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत् । देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः ॥१३॥ इतो गच्छंतु भूतानि बहिर्भूमि करोम्यहम् । इति संप्रार्थ्य पश्चग्त्तु

की बेला आ जाने पर वेद जीव का उसी प्रकार से त्याग कर देते हैं जैसे पंखों के जम जाने पर पक्षी घोसलेका परित्याग कर देते हैं ॥१॥ ब्राह्म मुहूर्त में जगकर सदाचार का पालन करना चाहिए और रात्रि के अन्तिम प्रहर में विद्वान को वेदाभ्यास करना चाहिए ॥२॥ उसके बाद कुछ समय तक अपने इष्टदेव का चिन्तन करना चाहिए । योगी को चाहिए कि वह पूर्वोक्त प्रकार से ब्रह्म का ध्यान करे ॥३॥ हे नारद ! उस ब्रह्म का ध्यान करने से ही जीव और ब्रह्म की एकता हो जाती है और वह योगी उसी क्षण मुक्त हो जाता है ॥४॥ रात्रि के पचपन घटी के बाद उष:काल होता है, सत्तावन घड़ी के बाद अरुणोदय काल होता है और अठावन घड़ी के बाद प्रात:काल होता है उसके बाद सूर्योदय होता है ॥५॥ श्रेष्ठ द्विज को चाहिए कि वह प्रात: काल नैऋत्यदिश में धनुष से छूटा हुआ बाण जितना दूर जाता है, उससे आगे जाकर मलमूत्र का त्याग करे ॥६॥ मलमूत्र त्याग के समय ब्रह्मचारी को अपना यज्ञोपवीत कान पर चढ़ाना चाहिए । गृहस्थ तथा वानप्रस्थी को अपने यज्ञोपवीत को माला की तरह करके उसे पीछे की ओर लटका लेना चाहिए ॥७॥ गृहस्थ को यज्ञोपवीत कण्ठ में लटकाकर मलमूत्र त्यागना चाहिए और ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत कान पर चढ़ाकर मलमूत्र त्यागना चाहिए ॥८॥ भूमि को तृणों से ढंक कर तथा शिर को वस्त्र से ढँककर मलमूत्र त्यागना चाहिए उस समय न तो बोलना चाहिए और न थूकना चाहिए ॥९॥ न जोते हुए खेत में, न जल में, न श्मशान में, न पर्वत पर, न टूटे हुए देवालय में, न सर्प के बिल पर और न हरी घास पर मलमूत्र त्यागना चाहिए ॥१०॥ न तो उस गड्ढे में जिसमें जीव हों, न तो दोनों संध्याओं में, न तो जप करते समय, न भोजन के समय, और न तो दतौन करते समय मलमूत्र त्यागना चाहिए । श्राद्ध के समय, देव पूजन के समय पानी के झरने पर, मैथुन के समय, गुरुजनों के सन्निकट में भी मलमूत्र का परित्याग नहीं करना चाहिए ॥१२॥ यज्ञ, दान

कुर्याच्छौचं यथाविधि ॥१४॥ वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः । न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥१५॥ उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः । तत आच्छाद्य विण्मूत्रं लोष्ठपर्णतृणादिभिः ॥१६॥ गृहीतलिंग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ । पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि ॥१७॥ गृहीत्वा मृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः । रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृहणीयुश्चान्यवर्णकाः ॥१८॥ अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्या द्विजोत्तमैः । अंतर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥१९॥ कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः पञ्च मृत्तिकाः । मूत्रात्तु द्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम् ॥२०॥ एका लिंगे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् । मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद्द्विगुणं स्मृतम् ॥२१॥ विट्शौचे लिंगदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम् । पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥२२॥ वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च । प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेपयेत्सुधी ॥२३॥ एवं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः । त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम् ॥२४॥ आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि । प्रत्येकं तु सदा ग्राह्यो नातो न्यूना कदाचन ॥२५॥ एतद्दिवा स्याद्विट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम् । आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य

तथा ब्रह्मयज्ञ में ब्राह्मण को मौन रहना चाहिए । मलमूत्र का त्याग करने से पहले यह मंत्र पढ़ना चाहिए, सभी देवता, ऋषि, पिशाच, सर्प, राक्षस सबके सब यहाँ से हट जायँ मैं यहाँ मलमूत्र का त्याग करना चाहता हूँ ॥१३-१४॥ वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल तथा गौ को देखते हुए मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ॥१५॥ दिन में उत्तर की ओर मुँह करके और रात्रि में दक्षिण की ओर मुँह करके मलमूत्र का त्याग करना चाहिए । उसके बाद ढेले, पत्ते अथवा तृण आदि से मलमूत्र को ढंककर ॥१६॥ लिङ्ग पकड़कर उठे और जल के सन्निकट जाय । फिर पात्र में जल लेकर दूसरी जगह चला जाय॥१७॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण को चाहिए कि वह तट से उजली मिट्टी ले तथा दूसरे वर्ण वाले (क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) क्रमशः लाल, पीली और काली मिट्टी लें ॥१८॥ अथवा जिस स्थान में जो मिट्टी हो उसी को श्रेष्ठ ब्राह्मण भी ले लें । जल के भीतर से, मन्दिर से वल्मीक से चूहे के द्वारा खनकर मिट्टी निकाले गये स्थान से तथा शौच से बचे हुए स्थान से इन पाँच प्रकार की मिट्टियों को नहीं लेना चाहिए । मूत्र त्याग की अपेक्षा मल त्याग में दो गुनी मिट्टी लेनी चाहिए और मैथुन में तीन गुनी मिट्टी लेनी चाहिए ॥२०॥ लिङ्ग में एक बार, हाथ में तीन बार और दोनों हाथो में सात बार मिट्टी लगानी चाहिए । मूत्र त्याग के बाद लिङ्ग में एक बार और दोनों हाथ में तीन-तीन बार मिट्टी लगानी चाहिए ॥२१॥ मलत्याग में लिङ्ग में दो बार, गुदा प्रदेश में पाँच बार एक हाथ में दश बार और दोनों हाथ में सात बार मिट्टी लगाना चाहिए ॥२२॥ पहले बाएँ पैर में और उसके बाद दाहिने पैर में चार-चार बार मिट्टी लगाना चाहिए ॥२३॥ यह तो गृहस्थ के लिए शौच का नियम है । ब्रह्मचारी को उसके दो गुना पवित्र करना चाहिए । वानप्रस्थी तथा संन्यासी को गृहस्थ के चार

तदर्धकम् ॥२६॥ स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि । यथा गंधक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम् ॥२७॥ गंधलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते । सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः ॥२८॥ वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न । नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः॥२९॥ शौचकर्मणि विज्ञेयो नान्यथा द्विजपुंगवैः । जलपात्रं न गृहणायाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः ॥३०॥ गृहणीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चितं चरेत्ततः । मोहाद्वाप्यथवाऽऽलस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः ॥३१॥ जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति । देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तींश्च सर्वशः ॥३२॥ ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत् । पुरीषोत्सर्जने कुर्याद्गंडूषान्द्वादशैव तु ॥३३॥ चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन । अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः ॥३४॥ आचम्य च ततः कुर्याद्दंतधावनमादरात् । कंटकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमव्रणम् ॥३५॥ कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम् । करंजोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ ॥३६॥ बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दंतप्रधावने । अन्नाद्याय व्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत्।

गुना मिट्टी लगाना चाहिए ॥२४॥ शौचकर्म में ताजे आँवले के बराबर मिट्टी हर बार लेनी चाहिए, इससे कम कभी नहीं ॥२५॥ यह तो दिन में शौच की विधि बतलायी गयी है और रात्रि में इसके आधा शौच बतलाया गया है । रोगी के लिए उसके आधा शौच होता है, और रास्ते में उसके भी आधा शौच होता है ॥२६॥ स्त्री, शूद्र, असमर्थ तथा बालकों के लिए कोई संख्या नहीं है । उतना ही इनके लिए मिट्टी लगाना चाहिए जितने से दुर्गंध मिट जाय ॥२७॥ जब तक गन्ध न समाप्त हो तब तक इन सबों को पवित्र करना चाहिए । इस तरह के नियम को मनु ने सभी वर्ण वालों के लिए बतलाया है ॥२८॥ पवित्र करने का कार्य बायें हाथ से करना चाहिए दाहिने हाथ से नहीं । नाभि के नीचे वायें हाथ से शौच करना चाहिए और नाभि के ऊपर दाहिने हाथ से पवित्र करने का काम करना चाहिए ॥२९॥ द्विज श्रेष्ठों के लिए ऐसे ही पावित्र्य कर्म को जानना चाहिए दूसरे प्रकार का नहीं । मलमूत्र त्याग करते समय हाथ में जलपात्र नहीं लिए रहना चाहिए ॥३०॥ अज्ञान के कारण यदि जलपात्र लिए रहे तो फिर उसका प्रायश्चित करे । अज्ञान अथवा आलस्य वशात् प्रायश्चित न कर सके तो तीन दिन तक जल पीकर रहे अथवा गायत्री का जप करे तो शुद्धि हो जाती है । देश, काल, द्रव्य, शक्ति और अपनी उपपत्ति पर अच्छी रीति से विचार करके ही शुद्धि कर्म करना चाहिए उसमें आलस्य नहीं करना चाहिए । मलत्याग करने पर बारह बार कुल्ला करना चाहिए ॥३२-३३॥ मूत्र त्याग करने पर चार बार कुल्ला करना चाहिए उससे कम नहीं । कुल्ला करते समय मुँह को नीचे की ओर करके वायीं ओर कुल्ले के जल को फेंकना चाहिए ॥३४॥ उसके बाद आचमन करके दतौन करना चाहिए । कांटे वाले तथा दूध वाले वृक्ष का छिद्रहीन तथा बारह अंगुल का दतौन होना चाहिए॥३५॥ उसे कनिष्ठिका अंगुलि के ब्रराबर मोटी होनी चाहिए । उसके आगे वाले भाग में कूंची बनाना चाहिए । करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध्र, चम्पा तथा बैर के वृक्ष दतौन के लिए प्रशस्त कहे गये हैं । दतौन का मन्त्र है– अन्न को खाने वाले, विघ्नों का विनाश करने वाले राजा सोम यहाँ पधारे हैं । वे

स मे मुखं प्रक्षाल्येत तेजसा च भगेन च ॥३७॥ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां त्वन्नो देहि वनस्पते ॥३८॥ अभावे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च । अपां द्वादशगंडूषैर्विदध्याद्दंतधावनम् ॥३९॥ रवेर्दिने यः कुरुते प्राणी दन्तस्य धावनम् । सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम् ॥४०॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीरवौ । दन्तानां कष्ठासंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥४१॥ कृत्वाऽलं पादशौचं ह्यमलमथ जलं त्रिःपिबेद्द्विर्विमृज्य तर्जन्यांगुष्ठवत्या सजलमभिमृशेन्नासिकारंध्रयुग्मम् । अंगुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं कर्णयुग्मं कनिष्ठांगुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तलेनांगुलीभिः शिरांसि ॥४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा । तांत्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम् ॥१॥ विण्मूत्रादिकशौचं च**

अपने तेज तथा ऐश्वर्य से मेरे मुख का प्रक्षालन करें ॥३६-३७॥ हे वनस्पते ! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, सम्पत्ति, ब्रह्मज्ञान एवं मेधा प्रदान करें ॥३८॥ निषिद्ध दिनों में दतौन के अभाव में बारह कुला करके मुख को साफ करना चाहिये ॥३९॥ जो व्यक्ति रविवार के दिन दतौन करता है उसको सूर्य का भक्षण करने तथा अपने कुल का विनाश करने का पाप लगता है ॥४०॥ प्रतिपत्, अमावस्या, षष्ठी, नवमी, तथा एकादशी इन तिथियों में दतौन करना सात पीढ़ियों तक के पुरुषों को भस्म कर देता है ॥४१॥ जल से पैरों को शुद्ध करने के बाद स्वच्छ जल से तीन बार आचमन करके तथा दो बार मुँह पोंछ कर अंगूठे और अनामिका से नाक के दोनों छिद्र दोनों नेत्र तथा दोनों कानों को पोंछना चाहिए । उसके बाद कनिष्ठिका तथा अंगूठे से नाभि का और हथेली से हृदय का स्पर्श करके अंगुलि से शिर का स्पर्श करना चाहिए ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

सदाचार वर्णन और रुद्राक्ष का महत्त्व

श्रीनारायण ने कहा– (श्रुतियों में छह प्रकार के आचमन बतलाये गये हैं शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक तथा तांत्रिक ॥१॥ मल-मूत्र आदि त्यागने

शुद्धं च परिकीर्तितम् । स्मार्तं पौराणिकं कर्म आचांतं विधिपूर्वकम् ।।२।। वैदिकं श्रौतमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम् । अस्त्रविद्यादिकं कर्म तांत्रिको विधिरुच्यते ।।३।।) स्मृत्वा चोंकारगायत्रीं निबन्ध्नीयाच्छिखां तथा । पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कंधौ च संस्पृशेत् ।।१।। क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते । पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।।२।। अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा । सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।।३।। ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातःस्नानं विशोधनम् । समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धिहेतवे ।।४।। अत्यंतमलिनो देहो नवद्वारैर्मलं वहन् । सदाऽऽस्ते तच्छोधनया प्रातःस्नानं विधीयते ।।५।। अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात् । रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा ।।६।। अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवंति विफला यतः । तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानं नित्यमेव दिने दिने ।।७।। दर्भयुक्तश्चरेतस्नानं तथा संध्याभिवंदनम् । सप्ताहं प्रातरस्नायी संध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः ।।८।। द्वादशाहमग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात् । अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ।।९।। प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोमकाले विगर्हितः । गायत्र्यास्तु परं नाति इह लोके परत्र च ।।१०।। गायंतं त्रायते यस्माद्गायत्रीत्यमिधीयते । प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम् ।।११।। वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात् । ब्राह्मणः श्रुति संपन्नः स्वधर्मनिरतः सदा ।।१२।। स वैदिकं जपेन्मंत्रं लौकिकं

के बाद पावित्र्य के लिए किया जाने वाला आचमन स्मार्त और पौराणिक कहलाता है ।।२।। ब्रह्मयज्ञ प्रारम्भ करने से पहले किया जाने वाला आचमन श्रौत तथा वैदिक कहलाता है । अस्त्रविद्या प्रारम्भ करने से पूर्व किया जाने वाला आचमन तांत्रिक होता है ।।३।।) ओंकार सहित गायत्री मंत्र को पढ़कर शिखा को बाँधना चाहिए । उसके बाद आचमन करके हृदय, दोनों भुजाओं तथा दोनों कन्धों का स्पर्श करना चाहिए ।।१।। छिंकने, थूकने, दांतो का उच्छिष्ट छू जाने असत्य भाषण करने तथा पतितों के साथ बातें करने पर दाहिने कान का स्पर्श करना चाहिए ।।२।। हे नारदजी ! ब्राह्मण के दाहिने कान में अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य तथा वायु ये सभी देवता निवास करते हैं ।।३।। उसके बाद नदी आदि में जाकर शरीर को शुद्ध करने के लिए प्रातःस्नान विधिपूर्वक करे ।।४।। यह शरीर अत्यन्त मलिन है इसके नवों द्वारों से मल निकलता रहता है उसी का संशोधन करने के लिए प्रातः स्नान किया जाता है ।।५।। अगम्या गमन करने, दान लेने तथा एकान्त में किए गये कर्म से होने वाला पाप प्रातः स्नान से विनष्ट हो जाता है ।।६।। जो स्नान नहीं करता है उसकी सारी कियाएँ निष्फल हो जाती हैं । अतएव प्रतिदिन प्रातःकाल में स्नान करना चाहिए ।।७।। कुश लेकर स्नान तथा संध्या वन्दन करना चाहिए । एक सप्ताह तक स्नान नहीं करने वाला, तीन दिन तक संध्या नहीं करने वाला ।।८।। बारह दिन तक अग्निहोत्र नहीं करने वाला ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त कर लेता है । होम करने में समय बहुत कम लगता है और स्नान आदि कर्मों में बहुत अधिक समय लगता है ।।९।। अतएव होम के लिए अधिक समय निकालने के लिए प्रातः स्नान शीघ्र कर लेना चाहिए । गायत्री से बढ़कर कोई दूसरा मन्त्र नहीं है ।।१०।। अपना गायन (जप) करने वाले की रक्षा करने के कारण

न कदाचन । गोश्रृंगे सर्षपो यावत् तावद्येषां न स स्थिरः ॥१३॥ न तारयंत्युभौ पक्षौ पितॄनेकोत्तरं शतम् । सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः ॥१४॥ स्नानांगतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम् । शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद्बहिरुपागतः ॥१५॥ विभूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम् । क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः ॥१६॥ रुद्राक्षान्कंठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे द्वेषट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव । बाह्वोरिंदोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकंठः ॥१७॥ बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाथवा मुने । शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ॥१८॥ यज्ञोपवीते हस्ते वा कंठे तुंदेऽथवा नरः । श्रीमत्पंचाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ॥१९॥ निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा । रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥२०॥ रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् । कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत् ॥२१॥ यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् । कंठे सरस्वतीं देवीं पावकं

ही इस मंत्र को गायत्री कहते हैं । प्रणव (ओम्) तथा तीनो व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः) से युक्त ही गायत्री का जप करना चाहिए ॥११॥ गायत्री के जप के समय प्राण, अपान तथा समान इन तीनों वायुओं को अपने वश में रखना चाहिए । ब्राह्मण को चाहिए कि वह श्रुति संलग्न रहकर वैदिक मन्त्रों का जप करे लौकिक मन्त्र का जप न करे । ज़ितनी देर तक गौ के शृङ्ग पर सर्षप (सरसों का दाना) रुक सकता है, उतनी देर तक भी जिस ब्राह्मण की प्राण वायु प्राणायाम के समय नहीं रुक सकती है, वह अपने माता-पिता की एक सौ एक पीढ़ियों को नहीं तार सकता है । मन्त्र जप के साथ किया जाने वाला प्राणायाम सगर्भ प्राणायाम कहलाता है । और मन्त्र जप से रहित प्राणायाम अगर्म प्राणायाम कहलाता है । उसमें केवल इष्टदेव का ध्यान किया जाता है॥१४॥ स्नान के अंगभूत देवता, ऋषि तथा पितरों को सन्तुष्ट करने वाले तर्पण को करके दो शुद्ध वस्त्रों को जल से बाहर निकालकर धारण करना चाहिए॥१५॥ उसके बाद भस्म धारण करके रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए । जप करने वाले साधकों को इन सभी कर्मों को क्रमशः करना चाहिए ॥१६॥ जो साधक अपने गले में दांतों के बराबर परिमाण (बतीस) में, मस्तक पर चालिस, दोनों कानों में छह-छह दोनों हाथों में बारह-बारह, दोनों भुजाओं में सोलह-सोलह, शिखा में एक तथा वक्षःस्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करता है, वह स्वयं नीलकण्ठ (शंकर) स्वरूप हो जाता है ॥१७॥ हे मुने ! सुवर्ण अथवा रजत (चांदी) के तार में रुद्राक्ष को गुथवा कर अपने कानों अथवा शिखा में उसे धारण किए रहना चाहिए ॥१८॥ यज्ञोपवीत में, हाथ में, गले में तथा पेट पर सावधानी से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए और अपनी स्वाभाविक भक्ति से रुद्राक्ष को धारण करके प्रणव सहित पञ्चाक्षर मंत्र (ॐ नमः शिवाय) का जप करना चाहिए । रुद्राक्ष को धारण करना शिव ज्ञान का साधन है ॥१९-२०॥ शिखा में रुद्राक्ष को धारण करना ओंकार तत्त्व के समान होता है । दोनों कानों में रुद्राक्ष धारण करने में शिव तथा शिवा की भावना करनी चाहिए ॥२१॥ यज्ञोपवीत में रुद्राक्ष धारण वेदों के समान तथा

चापि भावयेत् ॥२२॥ सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् । कर्तव्यं मंत्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम् ॥२३॥ रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः । पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥२४॥ जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन्प्रलपन्नपि संततम् । कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः ॥२५॥ रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते । अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ॥२६॥ पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत्। रुद्राक्षधारणे लज्जा, येषामस्ति महामुने ॥२७॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः । रुद्राक्षधारणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ॥२८॥ उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः । रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥२९॥ मुनयः सत्यसंकल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागमत् । रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते ॥३०॥ रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥३१॥ रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत् विमोदतः । पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥३२॥ रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥३३॥ हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः । रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्रुद्रतामियात् ॥३४॥ रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र

हाथों में रुद्राक्ष धारण दिशाओं के समान होता है । कण्ठ में रुद्राक्ष धारण को सरस्वती देवी तथा अग्नि की भावना करनी चाहिए ॥२२॥ चारो आश्रमों तथा चारो वर्णों के लोगों को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए । किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के लोगों को मन्त्रपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिए तथा शूद्रों को अमन्त्रक रुद्राक्ष धारण करना चाहिए ॥२३॥ रुद्राक्ष धारण करने मात्र से मनुष्य रुद्रस्वरूप हो जाता है । वह निषिद्धवस्तुओं को देखकर, निषिद्ध बातों को सुनकर, स्मरण करके, सूंघकर, खाकर तथा बोलकर तथा निषिद्ध कार्यों को करके निषिद्ध मार्ग पर चलकर, तथा निषिद्ध त्याग को करके भी पापों से संलिप्त नहीं होता है । ऐसे मनुष्य के द्वारा किया गया भोजन शिवजी के द्वारा किये गये भोजन के समान होता है ॥२४-२६॥ इसके द्वारा पिया गया जल आदि रुद्र के द्वारा पिये गये के समान और सूंघा गया रुद्र के द्वारा सूंघे गये के समान होता है । हे महामुने ! जो रुद्राक्ष को धारण करने में लज्जा करते हैं ॥२७॥ वे जीव करोड़ों जन्म में भी मुक्त नहीं हो सकते हैं । जो लोग रुद्राक्षधारी को देखकर उसकी निन्दा करते हैं ॥२८॥ उसके जन्म में निश्चित रूप से सांकर्य दोष होता है । रुद्राक्ष को धारण करके ही रुद्र ने रुद्रत्व को प्राप्त किया है ॥२९॥ रुद्राक्ष धारण करके ही मुनिजन सत्यसंकल्प वाले हो गये और ब्रह्माजी ने ब्रह्मत्व को प्राप्त किया । रुद्राक्ष धारण से कोई भी श्रेष्ठ वस्तु नहीं है ॥३०॥ जो व्यक्ति रुद्राक्षधारी को वस्त्र तथा अन्न प्रदान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है ॥३१॥ जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करने वाले को श्राद्ध में खिलाता है, वह निश्चित रूप से शिवलोक में जाता है ॥३२॥ जो व्यक्ति रुद्राक्ष को धारण करने वाले के पैरों को धोकर उस जल को पी लेता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित होता है ॥३३॥

महामते । समंत्रकं वा मंत्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥३५॥ यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपि वा । सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥३६॥ अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच– **एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवताऽनघ । वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद ॥१॥** नारायण उवाच– **एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः । षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत् ॥२॥** ईश्वर उवाच– **शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः । त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीत्सर्वदुर्जयः ॥३॥ जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः । सर्वैस्तु कथितं तस्मिंस्तदाऽहं त्रिपुरं प्रति ॥४॥ अचिंतयं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम् । सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलंतं घोररूपि यत् ॥५॥ त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च । सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिंतयम्॥६॥**

जो व्यक्ति रुद्राक्ष से युक्त सुवर्ण के हार को या वलय (कंकण) को धारण करता है, वह रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है ॥३४॥ जो व्यक्ति केवल रुद्राक्ष को मंत्र पूर्वक या विना मन्त्र के ही, विना भक्ति के अथवा लज्जा पूर्वक भी धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ॥३५-३६॥ मैं भी रुद्राक्ष की महिमा का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकता हूँ । अतएव जिस किसी भी प्रकार से रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए॥३७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे अनघ ! आपने यह जो रुद्राक्ष की महिमा बतलायी है, उसके इस प्रकार से महापुरुष के द्वारा पूजित होने का क्या कारण है?॥१॥ **नारायण ने कहा**– इसी तरह का प्रश्न कार्तिकेय ने शंकरजी से किया था, शंकरजी ने जो उसका उत्तर दिया उसे आप सुनें ॥२॥ **शंकरजी ने कहा**– हे षण्मुख ! मैं रुद्राक्ष की महिमा का संक्षेप में वर्णन करता हूँ, उसे तुम सुनो । प्राचीन काल में त्रिपुर नामक दुर्जय असुर हुआ था ॥३॥ उसने

दिव्यवर्षसहस्त्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया । पश्चान्मयाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिंदवः ॥७॥ तत्राश्रुबिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः । ममाज्ञया महासेन
सर्वेषां हितकाम्यया ॥८॥ बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः । सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः ॥९॥ सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते
षोडशविधाः क्रमात् । वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवंति हि ॥१०॥ श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते । क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो
वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ॥११॥ एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति । द्विवक्त्रो देवदेव्यौ स्याद्विविधं नाशयेदघम् ॥१२॥ त्रिवक्त्रस्त्वनलः
साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् । चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ॥१३॥ पंचवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामनामतः ।
अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥१४॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु पंचवक्त्रस्य धारणात् । षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ॥१५॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः । सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनंगो नाम नामतः ॥१६॥ तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः । अष्टवक्त्रो

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओं को परास्त कर दिया । सभी देवताओं ने उसके बारे में मुझे बतलाया तब मैंने त्रिपुर के वध के लिए सर्वदेवमय, देदीप्यमान, भयंकर अघोर नामक महाशस्त्र का चिन्तन किया, जिससे कि देवताओं का उद्धार हो सके । मैंने सभी विघ्नों को शान्त करने वाले अघोरास्त्र का चिन्तन किया ॥५-६॥ मैंने दिव्य एकहजार वर्ष के बाद अपनी आँखों को खोला । उसके बाद मेरी व्याकुल आँखों से जल की बूंदे टपक पड़ीं ॥७॥ उसी स्थान पर मेरी आज्ञा से सबों का कल्याण करने के लिए रुद्राक्ष के वृक्ष जम गये ॥८॥ उन रुद्राक्षों के अड़तीस भेद हो गये । मेरे सूर्य नेत्र (दाहिने नेत्र) से बारह प्रकार के पीले रंग के रुद्राक्ष उत्पन्न हुए ॥९॥ मेरे सोमनेत्र (बायें नेत्र) से सोलह प्रकार के उजले रुद्राक्ष उत्पन्न हुए और मेरे अग्नि नेत्र (ललाट स्थित नेत्र) से दश प्रकार के काले रुद्राक्ष उत्पन्न हुए ॥१०॥ श्वेत वर्ण के रुद्राक्ष की ब्राह्मण जाति है, उसे ब्राह्मण धारण करते हैं । लाल वर्ण का रुद्राक्ष क्षत्रिय जाति का हुआ, उसे क्षत्रिय धारण करते हैं । पीत वर्ण का रुद्राक्ष वैश्य जाति का होता है उसे वैश्य धारण करते हैं, और कृष्णवर्ण का रुद्राक्ष शूद्र जाति का होता है, उसे शूद्र धारण करते हैं ॥११॥ एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव स्वरूप होता है, वह ब्रह्महत्या के पाप को विनष्ट कर देता है । दो मुखी रुद्राक्ष देवता एवं देवी स्वरूप होता है और वह अनेक प्रकार के पापों को विनष्ट कर देता है ॥१२॥ तीन मुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि स्वरूप होता है, वह स्त्री हत्या के पाप को नष्ट करता है । चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मा स्वरूप होता है, वह नर हत्याजन्य पाप का नाश करता है ॥१३॥ पञ्चमुखी रुद्राक्ष का नाम कालाग्नि है । वह रुद्र स्वरूप होता है । वह अभक्ष्य भक्षण तथा अगम्यागमनजन्य पाप का नाश करता है ॥१४॥ पञ्चमुखी रुद्राक्ष को धारण करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है । छहमुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वरूप होता है । उसे दाहिने हाथ में धारण करना चाहिए ॥१५॥ उसे धारण करने वाला ब्रह्महत्या आदि सभी पापों से मुक्त हो जाता है । सप्तमुखी रुद्राक्ष महाभाग्यशाली कामदेव स्वरूप होता है उसका नाम अनंग है ॥१६॥

महासेन साक्षाद्देवो विनायकः ॥१७॥ अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च । दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम् ॥१८॥ एवमादीनि
पापानि हंति सर्वाणि धारणात् । विघ्नास्तस्य प्रणश्यंति याति चांते परं पदम् ॥१९॥ भवंत्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात् । नववक्त्रो
भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके ॥२०॥ भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् । भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ॥२१॥ सद्यः प्रलयमायांति
नववक्त्रस्य धारणात् । दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः ॥२२॥ ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः । पन्नगाश्चोपशाम्यंति
दशवक्त्रस्य धारणात् ॥२३॥ वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम् । शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४॥ अश्वमेधसहस्रस्य
वाजपेयशतस्य च । गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥२५॥ तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् । द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे
तु धारणात् ॥२६॥ आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः । गोमेधे चाश्वमेधे यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥२७॥ शृंगिणां शस्त्रिणां चैव
व्याघ्रादीनां भयं न हि । न च व्याधिभयं तस्य नैव चाधिः प्रकीर्तितः ॥२८॥ न च किंचिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते । न कुतश्चिद्भयं तस्य
सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥२९॥ हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान् । खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥३०॥ मुच्यते नात्र संदेहो वक्त्रद्वादशधारणात्।

उसको धारण करने वाला सुवर्ण की चोरीजन्य पाप से मुक्त हो जाता है । हे कार्तिकेय ! अष्टमुखी रुद्राक्ष साक्षात् गणेश स्वरूप होता है ॥१७॥ उसको धारण करने वाले के यहाँ अन्न, वस्त्र तथा सुवर्ण की समृद्धि होती हैं और दूषित कुल की स्त्री के साथ सम्भोग करने तथा गुरुपत्नी के साथ बलात्कार करने का पाप विनष्ट हो जाता है । उसके समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं । और अन्त में वह परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥१८-१९॥ ये आठ मुखी रुद्राक्ष के धारण के सभी गुण हैं । नवमुखी रुद्राक्ष भैरव स्वरूप होता है और उसे वायीं भुजा में धारण करना चाहिए ॥२०॥ यह भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला होता है उसको धांरण करने वाला मेरे समान बलवान् होता है । नवमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से शीघ्र ही हजारों भ्रूणहत्या तथा सैकड़ों ब्रह्महत्या के पाप विनष्ट हो जाते हैं । दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् जनार्दन स्वरूप होता है ॥२१-२२॥ दशमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से ग्रहों, पिशाचों, बेतालों, ब्रह्मराक्षसों तथा सर्पों का भय समाप्त हो जाता है ॥२३॥ एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र स्वरूप होता है । इसको अपनी शिखा में धारण करने वाले को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे तुम सुनो ॥२४॥ एकादश मुखी रुद्राक्ष को धारण करने से हजारों अश्वमेघ और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ के करने से तथा लाखों गायों का दान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति होती है । द्वादशमुखी रुद्राक्ष को कान में धारण करने से सविता देवता प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि उस रुद्राक्ष में सूर्य का नि[illegible] तथा गोमेध तथा अश्वमेध यागों को करने का फल प्राप्त होता है ॥२७॥ उसे शृङ्ग वाले पशुओं सिंह आदि क्रूर पशुओं तथा शस्त्रधारी शत्रुओं का भय नहीं होता है । उसे किसी भी प्रकार की आधिव्याधिका भी भय नहीं होता है ।

वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥३१॥ कार्तिकेयसमो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः । रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिद्ध्यति ॥३२॥ तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा । मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहंति यः ॥३३॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षणमुख । चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक ॥३४॥ धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिंडः शिवस्य तु । किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥३५॥ पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः । रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ॥३६॥ षड्विंशद्भिः शिरोमाला पंचाशद्धृदयेन तु । कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणिबंधनम्॥३७॥ अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्राक्षैर्धार्यते यदि ॥३९॥ क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षणमुख । त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

उसको किसी से भी भय नहीं होता है और वह सुखी एवं स्वामी हो जाता है ॥२९॥ वह हाथी, घोड़े, मृग, बिल्ली, चूहा, मेढकं, गधे, कुत्ते स्यार आदि अनेक जीवों के मारने के पाप से मुक्त हो जाता है । यह बारह मुखी रुद्राक्ष के धारण का फल है । हे वत्स ! यदि त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष मिल जाता है ॥३०-३१॥ तो वह कार्तिकेय के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला और सिद्धि प्रदान करने वाला होता है । उस दुर्लभ रुद्राक्ष को प्राप्त करने वाले को सभी रसों एवं रसायनों की सिद्धि हो जाती है ॥३२॥ उसको सभी भोग्यपदार्थों की प्राप्ति हो जाती है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए । हे कार्तिकेय! जो तेरह मुखी रुद्राक्ष को धारण करता है, वह माता, पिता और भाई की हत्या करके भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे पुत्र ! यदि किसी को दुर्लभ चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष मिल जाता है और वह उसे सदा अपने शिर पर धारण करता है तो वह मेरे तुल्य हो जाता है । हे मुने ! उसके बारे में बार-बार बहुत कहने से क्या लाभ है ? उसकी पूजा सदा देवता करते हैं, और वह परमागति को प्राप्त कर लेता है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक एक रुद्राक्ष शिर पर धारण करना चाहिए । छब्बीस रुद्राक्ष की माला गले में धारण करे और पचास रुद्राक्ष की माला हृदय पर धारण करे । सोलह रुद्राक्ष की माला भुजाओं पर धारण करे और बारह रुद्राक्ष के दोनों से कंकण बनाये ॥३७॥ जो लोग एक सौ आठ रुद्राक्ष की माला या पचास रुद्राक्ष की माला, या सत्ताइस रुद्राक्ष की माला बनाकर उसे धारण करते हैं, अथवा उससे जप करते हैं तो उन्हें अनन्त फल की प्राप्ति होती है । यदि एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला कोई धारण करता है तो उसे पग-पग पर अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त होता है । वह अपने इक्कीस पीढी के जीवों का उद्धार करके शिवलोक में पूजा प्राप्त करता है ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच– **लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षणमुख । रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा विंदू रुद्र इतीरितः ॥१॥ विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम् । पंचविंशतिभिश्चाक्षैः पंचवक्त्रैः सकंटकैः ॥२॥ रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरंध्रविदर्भितैः । अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति॥३॥ वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् । मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम् ॥४॥ एवं संग्रथितां मालां मंत्रसिद्धिप्रदायिनीम् । प्रक्षाल्य गंधतोयेन पंचगब्येन चोपरि ॥५॥ ततः शिवांभसा क्षाल्य ततो मंत्रगणान्न्यसेत् । स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमंत्रेण कवचेनावगुंठयेत् ॥६॥ मूलमंत्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा । सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥७॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च । तस्योपरि न्यसेत्सांबं शिवं परमकारणम् ॥८॥ प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा । यस्य देवस्य यो मंत्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत् ॥९॥ मूर्ध्नि कंठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम् । रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना ॥१०॥ कण्ठे मूर्ध्नि हृदि प्रांते कर्णे बाहुयुगेऽथवा । रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया**

जप की माला का लक्षण

शिवजी ने कहा– हे स्कन्द ! अब मैं जपमाला का लक्षण बतला रहा हूँ । रुद्राक्ष का मुख ब्रह्मा है । उसके विन्दु (उपरी भाग) को रुद्र कहा गया है ॥१॥ उसका पुच्छ भाग विष्णु स्वरूप है । यह माला भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली होती है उजले या लाल या पीला वर्ण के रुद्राक्ष के पच्चीस काँटेदार दानों को लेकर उसमें छेद करके गौ के पुच्छ के आकार की माला बनाये ॥२-३॥ उसके मुख को मुख से तथा पीछे के भाग को पीछे के भाग स मिला दे । उसके ऊपर सुमेरु बनाकर उसके ऊपर नागपाश की गाँठ बना दे । इस प्रकार से गुथी हुई माला मंत्र की सिद्धि प्रदान करने वाली होती है। उस माला को पहले चन्दन के जल से घोए उसके बाद उसे पञ्चगव्य से धोए ॥५॥ उसके बाद उसे शुद्ध जल से धोकर उसमें मन्त्रों का न्यास करे । उसके बाद षडङ्गन्यास के मंत्रों से न्यास करे फिर कवच मन्त्र से अवगुण्ठन करे ॥६॥ उसके बाद माला में मूलमंत्र पंचाक्षर मंत्र का न्यास करे या आचार्य के द्वारा न्यास कराये फिर 'सद्योजात' इत्यादि मंत्र को पढ़कर माला का जल से एक सौ आठ बार प्रेक्षण करे ॥७॥ उसके बाद मूलमंत्र पढकर उसे शुद्धभूमि पर रखे । उसके बाद उस माला में परमकारण साम्ब सदाशिव का न्यास करे ॥८॥ इस प्रकार से प्रतिष्ठित की गयी माला सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली होती है । जिस देवता का जो मंत्र हो उसी मंत्र से माला की पूजा करनी चाहिए ॥९॥ इसके बाद उस माला को अपने शिर पर या गले में या कान पर न्यस्त करना चाहिए । संयमी को उसी माला से जप करना चाहिए ॥१०॥ कण्ठ में, शिर पर, हृदय पर, कान में अथवा दोनों भुजाओं में नित्य ही

युतः ॥११॥ किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः । रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते ॥१२॥ स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने । प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥१३॥ अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् । कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ॥१४॥ रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कंठे सूत्रे करेऽथवा । सुवर्णमणिसंभिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम् ॥१५॥ नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्तयैव धारयेत् । रुद्राक्षतरुसंभूतवातोद्धूततृणान्यपि ॥१६॥ पुण्यलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । रुद्राक्षं धारयन्पापं कुर्वन्नपि च मानवः ॥१७॥ सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि । पशवोऽपि हि रुद्राक्षधारणाद्यांति रुद्रताम् ॥१८॥ किमु ये धारयन्ति स्म नरा रुद्राक्षमालिकाम् । रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा ॥१९॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम् । व्याहरन्ति च नामानि ये शंभोः परमात्मनः ॥२०॥ रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः । रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः ॥२१॥ कर्णपाशे शिखायां च कण्ठे हस्ते तथोदरे । महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः ॥२२॥ देवाश्चान्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः । गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः ॥२३॥ तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः

भक्तिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिए ॥११॥ इस विषय में बार-बार बहुत क्या कहना है नित्य ही रुद्राक्ष को धारण करना कल्याणकारी होता है ॥१२॥ विशेष रूप से स्नान करने में, दान करने में, जप करते समय, होम करते समय, वैश्वदेव कर्म में, देवताओं की पूजा करते समय ॥१३॥ विना रुद्राक्ष धारण किए जो कोई भी वैदिक कर्म करता है, वह निश्चित रूप से नरक में जाता है ॥१४॥ रुद्राक्ष को शिर पर, था गले में, या यज्ञोपवीत में, या हाथ में, सुवर्ण अथवा मणि में मढकर पहनना चाहिए । दूसरे के द्वारा धारण किया हुआ रुद्राक्ष कल्याणकारी नहीं होता है ॥१५॥ अपवित्र रुद्राक्ष को नहीं धारण करना चाहिए रुद्राक्ष को सदा भक्तिपूर्वक धारण करना चाहिए । रुद्राक्ष के पेड़ से होकर आने वाली हवा के लगने से उस वृक्ष के सन्निकट जमी हुई घास भी पवित्र लोकों में पहुँच जाती है, वह पुनः नहीं जन्म लेती है । रुद्राक्ष को धारण करके यदि कोई पाप भी करता है ॥१६-१७॥ तो जाबालश्रुति बतलाती है कि उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं । रुद्राक्ष को धारण करने वाले पशु भी रुद्रत्व को प्राप्त कर लेते हैं ॥१८॥ ऐसी स्थित में जो मनुष्य रुद्राक्ष की माला धारण करते हैं, उनके विषय में क्या कहना है ? रुद्र के भक्तों को एक रुद्राक्ष शिर पर धारण करना चाहिए ॥१९॥ ऐसा करने से सभी दुखों का नाश हो जाता है । सभी पापों से मुक्ति हो जाती है । जो मनुष्य भगवान् शंकर के नामों का उच्चारण करते हैं, तथा रुद्राक्ष से अपने को अलंकृत करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं । सभी प्रकार के कल्याण चाहने वाले को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए ॥२०-२१॥ जो लोग दोनों कानों में, शिखा में, कण्ठ में, हाथ में तथा पेट पर रुद्राक्ष धारण करते हैं, उनकी महादेव, विष्णु तथा ब्रह्मा विभूति हैं ॥२२॥ दूसरे देवता, गोत्रप्रवर्तक ऋषिगण तथा वंशों के संस्थापक

सकला अपि । श्रौतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः ॥२४॥ श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे । बहूनां जन्मनामन्ते महादेवप्रसादतः॥२५॥ रुद्राक्षधारणे वांछा स्वभावदेव जायते । रुद्राक्षस्य तु महात्म्यं जाबालैरादरेण तु ॥२६॥ पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च । रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२७॥ फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत् । शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥२८॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च । जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥२९॥ हस्ते चोरसि कंठे च कर्णयोर्मस्तके तथा । रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः ॥३०॥ अवध्यः सर्व भूतानां रुद्रवद्धि चरेद्भुवि । सुराणामसुराणां च वंदनीयो यथा शिवः ॥३१॥ रुद्राक्षधारी सततं वंदनीयस्तथा नरैः । उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ॥३२॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् । कंठे रुद्राक्षमाबध्य श्वाऽपि वा म्रियते यदि ॥३३॥ सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः । जपध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥३४॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां

पुरुष ये सबके सब भक्तिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करते हैं ॥२३॥ वंशों को उत्पन्न करने वाले सभी ऋषिगण तथा श्रौतधर्म परायण शुद्ध पुरुष ये सभी रुद्राक्ष धारण करते हैं ॥२४॥ पहले भले ही वेद प्रतिपादित तथा मोक्षप्रद रुद्राक्ष के धारण में श्रद्धा न उत्पन्न हो किन्तु जन्म जन्मान्तर के बाद भगवान् शंकर की कृपा से रुद्राक्ष धारण में श्रद्धा हो जाती है ॥२५॥ जाबालशाखा के मुनि आदर के साथ बतलाते हैं कि रुद्राक्ष के धारण की इच्छा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती है ॥२६॥ हे पुत्र कार्तिकेय ! सभी मुनि तथा मैंने भी रुद्राक्ष धारण की महिमा को जबाल श्रुति में पढ़ा है । रुद्राक्ष की महिमा त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है ॥२७॥ रुद्राक्ष के फल का दर्शन करने से ही पुण्य होता है और उसका स्पर्श करने से सौ करोड़ गुना फल होता है ॥२८॥ रुद्राक्ष की माला से जप करने से धारण करने की अपेक्षा हजारो करोड़ गुना फल होता है । इसके विषय में शंका नहीं करनी चाहिए ॥२९॥ जो मनुष्य हाथ में, हृदय पर, गले में, दोनों कानों में तथा मस्तक पर रुद्राक्ष धारण करता है वह निःसन्देह रूप से रुद्र स्वरूप हो जाता है ॥३०॥ वह सभी जीवों के लिए अबध्य होकर रुद्र के ही समान सञ्चरण करता है । वह सभी देवों तथा असुरों के लिए शिव के ही समान बन्दनीय होता है ॥३१॥ रुद्राक्षधारी की सभी मनुष्यों को वन्दना करनी चाहिए । चाहे वह उच्छिष्टभोजी हो या दुष्कर्म करने वाला हो, या सभी पातकों से युक्त हो ॥३२॥ रुद्राक्ष को धारण करने से वह मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । यदि गले में रुद्राक्ष बाँधकर कोई कुत्ता भी मर जाय ॥३३॥ तो वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है तो मनुष्य के विषय में क्या कहना है । जप तथा ध्यान नहीं करने वाला भी व्यक्ति यदि रुद्राक्ष धारण करता है ॥३४॥ तो सभी पापों से छूटकर वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता

गतिम् । एवमेव हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत् ॥३५॥ एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते । अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम् ॥३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

ईश्वर उवाच– **महासेन कुशग्रंथिपुत्रजीवादयः परे । रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम् ॥१॥ पुरुषाणां यथा विष्णु र्ग्रहाणां च यथा रविः । नदीनां तु यथा गंगा मुनीनां कश्यपो यथा ॥२॥ उच्चैःश्रवा यथाऽश्वानां देवानामीश्वरो यथा । देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्टमिदं भवेत् ॥३॥ नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम् । अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥४॥ शिवभक्ताय शान्ताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलस्यान्तं न चाहं वक्तुमुत्सहे ॥५॥ धृतरुद्राक्षकंठाय यस्त्वन्नं संप्रयच्छति । त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥६॥ यस्य भाले**

है । अतएव प्रयास करके भी रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए ॥३५॥ ऐसा मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करके स्वयं रुद्रलोक में पूजित होता है। अब मैं पुनः रुद्राक्ष धारण की विधि को बतलाऊँगा ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

रुद्राक्ष धारण विधि

शिवजी ने कहा– हे कार्तिकेय ! कुश की ग्रंथि से बनी हुई अथवा पुत्रजीव आदि से बनी हुई माला की महिमा रुद्राक्ष की माला के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं होती है ॥१॥ जिसतरह पुरुषों में विष्णु, ग्रहों में सूर्य, नदियों में गङ्गा, मुनियों में कश्यप मुनि ॥२॥ अश्वों में उच्चैःश्रवा, देवताओं में महादेव और देवियों में गौरी श्रेष्ठ हैं, उसी तरह मालाओं में रुद्राक्ष की माला श्रेष्ठ है ॥३॥ रुद्राक्ष धारण से बढ़कर न तो कोई स्तोत्र है और न व्रत है । अक्षय्य दानों में रुद्राक्ष का दान सर्वश्रेष्ठ है । शान्त प्रकृति के शिवभक्त को उत्तम रुद्राक्ष का दान देना चाहिए । रुद्राक्ष के दान से-होने वाले पुण्य के फल को मैं भी पूर्ण रूप से नहीं बना सकता हूँ ॥५॥ गले में रुद्राक्ष धारण करने वाले को जो अन्न प्रदान करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ी का

विभूतिर्न नांगे रुद्राक्षधारणम् । न शंभोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः ॥७॥ खादन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्नंत्यजानपि । पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥८॥ सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम् । तत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥९॥ वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च । यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वविद्यादिभिस्तथा ॥१०॥ तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् । प्रयाणकाले रुद्राक्षं बंधयित्वा म्रियेद्यदि ॥११॥ स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते । रुद्राक्षं धारयेत्कंठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि ॥१२॥ कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः। ब्राह्मणो वाऽपि चांडालो निर्गुण; सगुणोऽपि च ॥१३॥ भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत् । शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाऽभक्ष्यस्य भक्षकः ॥१४॥ म्लेच्छो वाप्यथ चांडलो युतो वा सर्वपातकैः । रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः ॥१५॥ शिरसा धारिते कोटिः कर्णयोर्दश कोटयः । शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥१६॥ अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते । मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः॥१७॥ रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किंचित्कर्म वैदिकम् । कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम् ॥१८॥ रुद्राक्षमालिकां कंठे धारयेद्भक्तिवर्जितः।

उद्धार करके रुद्रलोक में जाता है ॥६॥ जिसके ललाट में भस्म न हो तथा शरीर में रुद्राक्ष न हो जो शिव मन्दिर में जाकर पूजा नहीं करता हो वह चाण्डाल से भी अधम है ॥७॥ मांस खाने वाला, मदिरा पीने वाला तथा शूद्रों के साथ रहने वाला भी अपने शिर पर रुद्राक्ष धारण करके पापों से मुक्त हो जाता है ॥८॥ सभी यज्ञों, तपस्याओं तथा दानों के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति रुद्राक्ष के धारण मात्र से मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥९॥ चारो वेदों तथा पुराणों का पाठ करने से तीर्थों की सेवा करने से तथा सभी विद्याओं आदि से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है ॥१०॥ उस पुण्य की प्राप्ति रुद्राक्ष के धारण मात्र से हो जाती है । यदि कोई मृत्यु के समय रुद्राक्ष बाँधकर मर जाता है ॥११॥ तो वह रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है, उसका पुनः जन्म नहीं होता है । यदि कोई गले में या भुजाओं में रुद्राक्ष बाँधकर मर जाता है ॥१२॥ वह अपनी इक्कीस पीढी का उद्धार करके रुद्रलोक में निवास करता है । ब्राह्मण हो या चाण्डाल निर्गुण हो या सगुण ॥१३॥ यदि वह भस्म तथा रुद्राक्ष को धारण करता है तो शिवत्व को प्राप्त कर लेता है । पवित्र हो या अपवित्र चाहे अभक्ष्य भक्षक हो, म्लेक्ष हो, चाण्डाल हो या सभी पापों को करने वाला हो, वे सभी रुद्राक्ष को धारण करने मात्र से रुद्रस्वरूप हो जाते हैं ॥१४-१५॥ शिर पर रुद्राक्ष धारण करने का करोड़ गुना पुण्य होता है । कानों में रुद्राक्ष धारण करने का दश करोड़ गुना पुण्य होता है । गला में रुद्राक्ष धारण करने का सौ करोड़ गुना पुण्य होता है और मस्तक पर उसे धारण करने का फल हजार करोड़ गुना होता है ॥१६॥ यज्ञोपवीत में उसे धारण करने का फल दश हजार करोड़ गुना होता है और भुजा में रुद्राक्ष धारण करने का फल लाख करोड़ गुना होता है । मणिबन्ध में धारण किया गया रुद्राक्ष मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन बन जाता है ॥१७॥ रुद्राक्ष धारण करके वैदिक कर्म करने वाला ब्राह्मण उसका महान् फल प्राप्त

पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबंधनात् ॥१९॥ रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तेन वै धृतः । असौ माहेश्वरे लोके नमस्यः स तु लिंगवत् ॥२०॥
अविद्यो व सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात् । शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा ॥२१॥ स्कंद उवाच– रुद्राक्षं संदधे देव गर्दभः केन
हेतुना । कीकटे केन वा दत्तस्तद्ब्रूहि परमेश्वर ॥२२॥ श्रीभगवानुवाच– शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विन्ध्यपर्वते । धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः
पथिकेन तु ॥२३॥ श्रांतोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि । प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः ॥२४॥ मत्प्रसादान्महासेन मदंतिकमुपागतः।
यावद्वक्त्रस्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम् ॥२५॥ तावद्युग सहस्राणि शिवलोके महीयते । स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन॥२६॥
अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत् । अभक्तो वाऽस्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा ॥२७॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥२८॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः । सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥२९॥ तं नमंति
सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः । अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश ॥३०॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु । द्वात्रिंशत्कंठदेशे

करता है ॥१८॥ यदि कोई पापी मनुष्य भी रुद्राक्ष की माला अपने कण्ठ में धारण करता है तो वह संसार के सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥१९॥
रुद्राक्ष का ही चिन्तन करने वाला तथा रुद्राक्ष को धारण करने वाला ब्राह्मण संसार में ही महेश्वर स्वरूप हो जाता है, और सभी लोगों के लिए शिवलिङ्ग
के ही समान नमस्करणीय हो जाता है ॥२०॥ जिस तरह कीकट देश का एक गधा शिवलोक चला गया उसी तरह चाहे कोई मूर्ख हो या विद्वान् वह भी
रुद्राक्ष धारण करने के कारण शिवलोक का अधिकारी होता है । **स्कन्द ने पूछा–** हे देव ! गधे ने क्यों रुद्राक्ष को धारण किया था ? कीकट देश में उसे
रुद्राक्ष किसने दे दिया ? इसे आप बतलायें ॥२२॥ **श्रीभगवान् ने कहा–** हे पुत्र ! मैं तुम्हें पुराना वृतान्त बतलाता हूँ । विन्ध्यपर्वत पर एक गधा था ।
वह एक व्यापारी का गधा था । व्यापारी उस पर रुद्राक्ष लादता था । एक दिन उस पर इतना बोझ लादा गया कि वह चलने में असमर्थ हो गया और
ठोकर खाकर गिर पड़ा तथा मर गया । इसके बाद तीन नेत्रों वाला और त्रिशूल अपने हाथ में लिए हुए मेरे लोक में आया । जिस रुद्राक्ष के मुखों की
जितनी अधिक संख्या होती है वह उतना ही दुर्लभ रुद्राक्ष होता है ॥२३-२५॥ और उसको धारण करने वाला उतने ही हजार युगों तक शिवलोक में निवास
करता है । इस बात को अपने शिष्यों को ही बतलाना चाहिए जो शिष्य न हो उसे नहीं बतलाना चाहिए ॥२६॥ भक्तिहीनों तथा मूर्खों को भी यह बात
नहीं बतलानी चाहिए । कोई भक्त हो या अभक्त या अत्यन्त नीच ही क्यों न हो ॥२७॥ रुद्राक्ष के धारण मात्र से वह सभी पातकों से छूट जाता है ।
रुद्राक्ष के धारणमात्र से वह सभी पातकों से छूट हाता है । रुद्राक्ष धारण के समान कोई भी पुण्यप्रद कार्य नहीं है ॥२८॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने इसे महाव्रत
कहा है । जो व्रतधारी हजार रुद्राक्षों को धारण करता है ॥२९॥ उसको सभी देवता रुद्र के ही समान नमस्कार करते हैं । यदि हजार रुद्राक्ष न हो सके

तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥३१॥ एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् । यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्स तु पूज्यते ॥३२॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकांचनैः । समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥३३॥ केवलानपि रुद्राक्षान् यद्यालस्याद्बिभर्ति यः । तं न स्पृशंति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥३४॥ रुद्राक्षमालया मंत्रो जप्तोऽनंतफलप्रदः । यस्यांगे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ॥३५॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यथा । रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः ॥३६॥ गंगास्नानफलं तस्य जायते नात्रसंशयः । एकवक्त्रः पञ्चमुख एकादशमुखाः परे ॥३७॥ चतुर्दशमुखाः केचिद्रुदाक्षा लोकपूजिताः । भक्त्या संपूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शंकरात्मकः ॥३८॥ दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि । अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम् ॥३९॥ कोसलेषु द्विजः कश्चिद्गिरिनाथ इति श्रुतः । महाधनश्च च धर्मात्मा वेदवेदांगपारगः ॥४०॥ यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुंदराकृतिः । नानागुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः ॥४१॥ गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्तावलीमथ । मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च ॥४२॥ संगतस्तु तया सार्धं कंचित्कालं ततो भिया । विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चातु निर्भयः॥४३॥ यदा माता पिता कर्म किंचिज्जानाति तत्क्षणम् । मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात् ॥४४॥ नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये

तो दोनो भुजाओं में सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण करे ॥३०॥ एक रुद्राक्ष शिखा में तथा हाथों में बारह-बारह रुद्राक्ष धारण करे । गले में बत्तीस तथा मस्तक पर चालिस रुद्राक्ष धारण करे ॥३१॥ दोनों कानों में एक-एक रुद्राक्ष तथा वक्षः स्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करे । इस तरह से रुद्राक्षों को धारण करने वाला रुद्र के समान पूजित होता है ॥३२॥ जो व्यक्ति मोती, मूंगा, स्फटिक, चाँदी, वैडूर्य तथा सुवर्ण में मढ़वाकर रुद्राक्ष को धारण करता है तो वह शिव स्वरूप हो जाता है ॥३३॥ जो आलस्य के कारण केवल रुद्राक्षों को ही धारण करता है उसको पाप उसी तरह से नहीं स्पर्श करता है, जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं स्पर्श कर पाता है ॥३४॥ रुद्राक्ष की माला से जिस मन्त्र का जप किया जाता है, उसका अनन्तफल होता है । जिसके शरीर में बहुत अधिक पुण्यप्रद एक भी रुद्राक्ष नहीं होता ॥३५॥ उसका जन्म उसी प्रकार से निरर्थक होता है जैसे ललाट में त्रिपुण्ड्र नहीं लगाने वाले का जीवन होता है । जो व्यक्ति शिर पर रुद्राक्ष धारण करके स्नान करता है ॥३६॥ उसको निःसन्देह रूप से गंगा में स्नान करने का फल प्राप्त होता है । एकमुखी, पञ्चमुखी, एकादशमुखी॥३७॥ चतुर्दश मुखी रुद्राक्ष लोक पूजित हैं । भक्तिपूर्वक नित्य ही रुद्राक्ष की पूजा करने वाले ॥३८॥ वे चाहे रुद्र ही क्यों न हो वे राजा हो जाते हैं । इस विषय में मैं तुम्हें एक पुराना इतिहास सुनाता हूँ ॥३९॥ कोसल प्रदेश में एक गिरनाथ नाम का महाधनी, धर्मात्मा तथा वेदों तथा वेदान्तों में पारंगत ब्राह्मण रहता था॥४०॥ उसके सुन्दर आकार वाले पुत्र का नाम यज्ञकृत था । वह अनेक गुणों से सम्पन्न, युवक तथा कामदेव के समान सुन्दर था ॥४१॥ उसने अपने सुधीषण नामक गुरु की पत्नी मुक्तावली को अपने रूप यौवन तथा मद के द्वारा मोहित कर लिया ॥४२॥ उसने कुछ दिनों तक गुरु के भय से उसके साथ

ततः । ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः ॥४५॥ सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहिष्कृतः । ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः॥४६॥ मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम् । मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान्बहून् ॥४७॥ एवं बहुगते काले ममार स तदाऽधमः । नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥४८॥ शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः । तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत ॥४९॥ यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि । ब्रुवंतु सेवकाः शंभोर्यद्येन नेतुमिच्छथ ॥५०॥ शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः । दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि ॥५१॥ तत्प्रभावेण हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम् । ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः ॥५२॥ गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शंकरालयम्। इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत ॥५३॥ एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया । सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः ॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

चुपके से भोग किया और कुछ दिनों के बाद वह विष देकर अपने गुरु को मार दिया और निर्भय हो गया ॥४३॥ जब उसके माता-पिता को उसके इस कर्म का पता चला तो उसने अपने माता-पिता को भी विष देकर मार दिया ॥४४॥ अनेक प्रकार से भोग विलास करने के कारण जब उसका धन समाप्त हो गया तो वह दुष्ट ब्राह्मणों के घर में चोरी करने लगा ॥४५॥ उस समय मदिरापान के मद से मत हुए उसके बान्धवों ने उसे जाति से बहिस्कृत कर दिया, जब सबों ने उसे उस ग्राम से निकाल दिया तो वह वन में रहने लगा ॥४६॥ वह मुक्तावली के साथ घोर वन में चला गया । वह मार्ग में छिपकर बैठता था और धन के लोभ से बहुत से ब्राह्मणों को भी मार दिया ॥४७॥ बहुत समय बीत जाने पर वह भी मर गया और उसके लेने के लिए हजारों यमदूत आये ॥४८॥ उसी तरह से उसे लेने के लिए शिव के गण भी आये । हे पार्वतीपुत्र ! इसके बाद यमदूतों तथा शिवगणों में विवाद होने लगा ॥४९॥ यमराज के दूतों ने पूछा कि इसमें कौन सा पुण्य है ? अतएव शिव के गण इसे ले जाना चाहते हैं बतलायें ॥५०॥ इस पर शिव के दूतों ने कहा कि यह जहाँ पर मरा है उस भूमि में दश हाथ नीचे रुद्राक्ष पड़ा है॥५१॥ अतएव हे दूतों ! उसी के प्रभाव से हमलोग इसे शिव के सन्निकट ले जायेंगे । उसके बाद वह ब्राह्मण दिव्य रूप धारण करके उस विमान पर चढकर ॥५२॥ भगवान् शंकर के दूतों के साथ शिवलोक में चला गया । हे सुव्रत ! इस प्रकार से मैंने तुम्हें रुद्राक्ष का माहात्म्य बतलाया ॥५३॥ इस तरह से मैंने तुम्हें संक्षेप में रुद्राक्ष की महिमा बतलायी यह सभी पापों को विनष्ट करने वाला और महान पुण्य रूपी फल प्रदान करने वाली हैं ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **एवं नारद षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः । रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वाऽऽसीत्स कृतार्थकः ॥१॥ इत्थंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्णितो मया । सदाचारप्रसङ्गेन शृणु चान्यत्समाहितः ॥२॥ यथा रुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनंतपुण्यदः । लक्षणं मन्त्रविन्यासं तथाऽहं वर्णयामि ते ॥३॥ लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् । तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥४॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च । तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ॥५॥ रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम् । धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतुदुदाहृतम् ॥६॥ बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः । अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥७॥ ब्राह्मणः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया । वृक्षाज्जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥८॥ श्वेता तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः । पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥९॥ ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान्रक्तान्राजा तु धारयेत् । पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥१०॥ समाः स्निग्धाः दृढास्तद्वत्कंटकैः**

रुद्राक्ष के लक्षण और मन्त्रविन्यास

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! इस प्रकार शङ्करजी ने कार्तिकेय को रुद्राक्ष की महिमा सुनायी और उसे सुनकर वे कृतकृत्य हो गये ॥१॥ इस प्रकार से मैंने भी आपको रुद्राक्ष के प्रभाव को सदाचार के प्रसङ्ग में सुनाया अब आप दूसरी बातों को सावधानी से सुनें ॥२॥ रुद्राक्ष की महिमा अनन्त पुण्यप्रद बतलायी गयी है । अब मैं आपको रुद्राक्ष का लक्षण और उसके मन्त्र विन्यास को बतला रहा हूँ ॥३॥ रुद्राक्ष का दर्शन करने से जो पुण्य होता उसका स्पर्श करने पर करोड़ गुना पुण्य होता है । उसको धारण करने से स्पर्श करने की अपेक्षा करोड़ गुना पुण्य होता है ॥४॥ रुद्राक्ष के धारण करने की अपेक्षा रुद्राक्ष की माला से जप करने से एक हजार लाख गुना अधिक फल हाता है ॥५॥ रुद्राक्ष के नहीं मिलने पर भद्राक्ष को धारण करना चाहिए वह भी महान फलप्रद होता है । आँवले के फल के बराबर प्रमाण वाला रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है ॥६॥ बैर के फल के बारबार प्रमाण वाला रुद्राक्ष मध्यम कोटि का होता है । चने के बराबर आकार वाला रुद्राक्ष अघम कोटि का होता है । यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥७॥ शिवजी की आज्ञा से, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चारों जातियों के रुद्राक्ष पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं ॥८॥ श्वेत वर्ण का रुद्राक्ष ब्राह्मण जाति का, रक्त वर्ण का रुद्राक्ष क्षत्रिय जाति का, पीत वर्ण का रुद्राक्ष वैश्य जाति का और कृष्णा वर्ण का रुद्राक्ष शूद्र जाति का है । श्वेतवर्ण के रुद्राक्ष को ब्राह्मणों को धारण करना चाहिए, रक्त वर्ण के रुद्राक्ष को क्षत्रियों को धारण करना चाहिए, पीतवर्ण के रुद्राक्ष को वैश्यों को धारण करना चाहिए और कृष्ण वर्ण के रुद्राक्ष को शूद्रों को धारण

संयुताः शुभाः कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कंटकै रहितांस्तथा ॥११॥ व्रणैर्युक्तानावृताश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत् । स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः॥१२॥ यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् । समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥१३॥ सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविलक्षणा । निर्घर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते ॥१४॥ तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः । शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत् ॥१५॥ षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश । मणिबंधे द्वादशाक्षान्स्कंधे पञ्चाशतं भवेत् ॥१६॥ अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत् । द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कंठदेशतः ॥१७॥ कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च । केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथैव च ॥१८॥ सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः । त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ॥१९॥ सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत् । शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ॥२०॥ अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च । अघोरबीजमंत्रेण करयोर्धारयेत्पुनः ॥२१॥ पञ्चाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे । पञ्चब्रह्मभिरंगैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम् ॥२२॥ ग्रथितान्मूलमंत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् । एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः ॥२३॥ परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम्।

करना चाहिए ॥१०॥ समान आकार का, चिकना, सुदृढ तथा काँटों की साफ-साफ रेखाओं वाला रुद्राक्ष शुभ कोटि का होता है, क्रीड़ों का खाया हुआ, कटा हुआ, काँटों के चिह्न से रहित ॥११॥ व्रणयुक्त, चुटीला तथा जिन पर परत चढ़ी हो इन छह प्रकार के रुद्राक्षों को धारण नहीं करना चाहिए । जिसमें स्वयं पिरोने के लिए छिद्र बना हो वह उत्तम रुद्राक्ष होता है ॥१२॥ जिस रुद्राक्ष में छिद्र करना पड़ता है वह मध्यम कोटि का रुद्राक्ष होता है । चौकोर, चिकने, मजबूत तथा गोला रुद्राक्षों को रेशम को धागे में पिरोकर धारण करना चाहिए ॥१३॥ जिस तरह कसौटी पर घिसकर सुवर्ण की पहचान की जाती है, उसी तरह रगड़ने पर सुवर्ण के समान रेखा दिखायी दे वह रुद्राक्ष उत्तम कोटि का होता है । शिवभक्तों को उसी रुद्राक्ष को पहनना चाहिए । शिखा में एक और शिर पर तीस रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए ॥१४-१५॥ गले में छत्तीस रुद्राक्षों को धारण करे और भुजाओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों को धारण करे । मणिबन्धों में बारह-बारह और कन्धे पर पचास रुद्राक्षों को धारण करे ॥१६॥ एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला को यज्ञोपवीत बनाये ऐसी दो लर की अथवा तीन लर की माला को यज्ञोपवीत के समान धारण करना चाहिए ॥१७॥ रुद्राक्ष को कुण्डल में, मुकुट में, कर्णपाश में, हार में, विजाइठ में, कड़ा में तथा करधनी में भी धारण करे ॥१८॥ खाते, सोते, पीते हुए सभी समयों में रुद्राक्ष धारण किए रहना चाहिए । तीन सौ रुद्राक्षों का धारण अधम, पाँच सौ रुद्राक्षों को धारण करना मध्यम और एक हजार रुद्राक्षों को धारण करना उत्तम होता है । रुद्राक्ष को शिर पर ईशान मन्त्र से हृदय पर भी उसी मन्त्र से तथा दोनों हाथों में अघोर के बीज मन्त्र (हसों) से धारण करना चाहिए ॥२१॥ गुंथी हुई पचास रुद्राक्षों की माला को उदर पर वामदेव मन्त्र, पाँच ब्रह्म मन्त्र तथा छह षडङ्ग न्यास से धारण करना चाहिए ॥२२॥ गुंथे हुए सभी रुद्राक्षों को मूलमन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से धारण करे । एकमुखी रुद्राक्ष

द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ॥२४॥ धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः । त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥२५॥ त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः । तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यशः ॥२६॥ चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः । तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥२७॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः । पंचमुखस्तु रुद्राक्षः पंचब्रह्मस्वरूपकः ॥२८॥ तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति महेश्वरः । षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्तिकेयाधिदैवतः ॥२९॥ विनायकं चापि देवं प्रवदन्ति मनीषिणः । सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः॥३०॥ सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तैकदैवतः । तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥३१॥ महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः । अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः ॥३२॥ वस्वष्टकप्रीतिकरो गंगाप्रीतिकरः शुभः । तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥३३॥ नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः । तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा ॥३४॥ दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः । दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः ॥३५॥ एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः । तमिंद्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ॥३६॥ रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः। द्वादशादित्यदैवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥३७॥ त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः । तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥३८॥

परतत्त्व का प्रकाशक होता है । परतत्त्व को धारण करने से परतत्त्व का प्रकाश होता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर होता है ॥२३-२४॥ उस रुद्राक्ष को धारण करने से भगवान् अर्धनारीश्वर प्रसन्न होते हैं । तीन मुखी रुद्राक्ष अग्नि स्वरूप होता है, और स्त्री की हत्याजन्य पाप को जला देता है ॥२५॥ तीन मुखी रुद्राक्ष तीनों अग्नि स्वरूप होता है । उसको धारण करने वाले पर अग्नि नित्य ही प्रसन्न रहते हैं ॥२६॥ चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मस्वरूप होता है । उसको धारण करने वाला बहुत बड़ा धनी तथा निरोग रहता है ॥२७॥ विशाल ज्ञान सम्पत्ति अर्जित करने के लिए मनुष्य को उसे धारण करना चाहिए । पञ्चमुखी रुद्राक्ष पञ्चब्रह्मस्वरूप होता है ॥२८॥ उसको धारण करने मात्र से महेश प्रसन्न होते हैं । षण्मुखी रुद्राक्ष के अधिष्ठातृदेवता कार्तिकेय हैं॥२९॥ कुछ विद्वान् उसके अधिष्ठाता विनायक (गणेशजी) को भी बतलाते हैं । सप्तमुखी रुद्राक्ष के अधिदेवता सप्त मातृकाएँ, सप्तर्षि तथा सूर्य हैं । उसको धारण करने वाला महाधनी, तथा आरोग्य सम्पन्न होता है ॥३०-३१॥ उसको धारण करने वाला महाज्ञानी और पवित्र होता है । अष्टमुखी रुद्राक्ष की अधिदेवता अष्टमातृकाएँ है । ब्रह्मी, माहेश्वरी, चण्डी वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुण्डा तथा चर्चिका ये अष्ट मातृकायें हैं । इसके धारण करने से अष्टवसु तथा गंगा ये सभी सत्यवादी प्रसन्न होते हैं ॥३३॥ नवमुखी रुद्राक्ष के अधिदेवता यम हैं । इसके धारण करने से यम का भय नहीं रहता है ॥३४॥ दशमुखी रुद्राक्ष के अधिदेवता दशोदिक्पाल हैं । इसको धारण करने से दश दिशाओं की प्रसन्नता होती है ॥३५॥ एकादशमुखी रुद्राक्ष के अधिदेवता एकादश रुद्र हैं । उसे इन्द्रदैवत भी कहा गया है । यह सुख को बढ़ाने वाला होता है । द्वादशमुखी रुद्राक्ष महाविष्णु स्वरूप होता है । इसके अधिदेवता द्वादशादित्य

चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः । सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ॥३९॥ मद्यं मांसं च लशुनं पलांडुं शिग्रुमेव च । श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥४०॥ ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा । दर्शे च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि । रुद्राक्षारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने । मूलाधारात्समुत्थाय कुण्डलीं परदेवताम् ॥१॥ सुषुम्नामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरंध्रगतां स्मरेत् । जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमंत्रेण साधकः ॥२॥ पादादिं जानुपर्यंतं चतुष्कोणं सवज्रकम् । लंबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमण्डलम् ॥३॥**

हैं । सूर्य के भक्त इसे धारण करते हैं ॥३७॥ त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष कामनाओं तथा सिद्धियों को प्रदान करता है उसके धारण करने से कामदेव प्रसन्न होते हैं । चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष भगवान शिव के नेत्र से समुद्भूत हैं । यह धारण करने वाले के सभी रोगों को दूर करने वाला तथा सभी प्रकार के नैरुज्य को प्रदान करने वाला होता है ॥३९॥ रुद्राक्ष धारण करने वाले को मदिरा, मांस, लशुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा, विष्ठाभोजी सूअर का मांस नहीं खाना चाहिए ॥४०॥ ग्रहण के समय, सूर्य के विषवत् रेखा पर संक्रमण के समय अर्थात् सूर्य के तुला और मेष की संक्रान्ति के समय, उत्तरायण में, अमावस्या के दिन पूर्णिमा को तथा दूसरे पुण्य दिनों पर रुद्राक्ष को धारण करने वाले सभी पापों से छूट जाते हैं ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भूतशुद्धि का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– हे महामुने ! नारदजी ! अब मैं भूतशुद्धि का वर्णन करूँगा । कुण्डलिनी नामक परादेवता को मूलाधार चक्र से उठाकर ॥१॥ सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त तक गयी है इस तरह से चिन्तन (ध्यान) करना चाहिए । उसके बाद में साधक 'हंस' मन्त्र के द्वारा जीव को ब्रह्म से मिलकर ॥२॥ पैर से लेकर घुटने पर्यन्त 'लं' बीज से युक्त स्वर्ण वर्ण के चतुष्कोण भूमण्डल का वज्र के साथ स्मरण करे ॥३॥ उसके बाद वह

जान्वाद्यान्नादिचंद्रार्धनिभं पद्मद्वयांकितम् । वंबीजयुक्तं श्वेताभमंभसो मंडलं स्मरेत् ।।४।। नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् । रं बीजेन युतं
रक्तं स्मरेत्त्वापकमण्डलम् ।।५।। हृदो भ्रूमध्यपर्यंतं वृत्तं षड्बिंदुलांछितम् । यं बीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मंडलं स्मरेत् ।।६।। आब्रह्मरंध्रभ्रूमध्याद्वृत्तं
स्वच्छं मनोहरम् । हं बीजयुक्तमाकाशमंडलं च विचिंतयेत् ।।७।। एवंभूतानि संचिंत्य प्रत्येकं संविलापयेत् । भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ
नभस्यमुम् ।।८।। विलाप्य खमहंकारे महत्तत्त्वेऽप्यहंकृतिम् । महांतं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत् ।।९।। शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिंतयेत्पापपूरुषम्।
वामकुक्षिस्थितं कृष्णमंगुष्ठपरिमाणकम् ।।१०।। ब्रह्महत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम् । मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम् ।।११।।
तत्संसर्गिपदद्वंद्वमुपपातकमस्तकम् । खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ।।१२।। वायुबीजं स्मरन्वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत् । स्वशरीरयुतं मंत्रो
वह्निबीजेन निर्दहेत् ।।१३।। कुंभके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् । बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुं बीजेन रेचयेत् ।।१४।। सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म
संप्लावयेत्सुधीः । भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकांडवत् ।।१५।। विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः । मूर्धादिपादपर्यंतान्यंगानि रचयेत्सुधीः।।१६।।
आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः । सोऽहंमंत्रेण चात्मानमानयेद्धृदयांबुजे ।।१७।। कुण्डलीं जीवमादाय परसंगात्सुधामयम् । संस्थाप्य हृदयांभोजे

जानु से लेकर नाभि पर्यन्त अर्द्धचन्द्राकार 'वं' बीज से धवल वर्ण के जल मण्डल का ध्यान करे ।।४।। नाभि से लेकर हृदय पर्यन्त स्वस्तिक से युक्त त्रिकोण
'रं' बीज वाले रक्तवर्ण के तेजो मण्डल का ध्यान करना चाहिए ।।५।। हृदय से लेकर भौहों के बीच पर्यन्त छह बिन्दुओं से युक्त 'यं' बीज वाले धूम्रवर्ण
के वायु मण्डल का ध्यान करे ।।६।। भौहों के मध्य से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्वच्छ एवं सुन्दर 'हं' बीज से युक्त आकाश मण्डल का चिन्तन करना
चाहिए।।७।। इस तरह से पञ्चभूतों का चिन्तन करके उन सबों को विलय करना चाहिए । पृथिवी जल में, जल का तेज में, तेज का वायु में और वायु
का आकाश तत्त्व में ।।८।। अपने को अहंकार में, अहंकार को महत् तत्त्व में, महान को प्रकृति में और प्रकृति को आत्मा में विलयन करे ।।९।। शुद्ध ज्ञान
स्वरूप होकर पाप पुरुष का चिन्तन करे कि उसका परिमाण अंगुष्ठ परिमाणक है तथा वायी कुक्षि में प्रविष्ट है ।।१०।। ब्रह्महत्या ही पाप पुरुष का शिर
है, सुवर्ण की चोरी ही उसका हाथ है । मदिरापान ही उसका हृदय है, गुरु की शय्या पर सोना ही उसकी कमर है ।।११।। उसका सम्बन्ध रखना ही उसके
दोनों पैर हैं । उपपातक ही उसका मस्तक है । वह खड्ग एवं ढाल धारण किए हुए है, वह अपना भयङ्कर मुख नीचे किए हुए है ।।१२।। वायुबीज का
स्मरण करते हुए वायु को खींच कर उसका शोषण करे । अग्नि के बीजमंत्र से अपने शरीर का दाहन करे ।।१३।। कुम्भक प्राणायाम के द्वारा पाप पुरुष
के भस्म को शरीर से हटाकर और वायु बीजमंत्र से उसको बाहर निकाले ।।१४।। अमृत [illegible] से शरीर के भस्म का सींचन करे । पृथिवी बीज के
द्वारा उसको सुवर्णमय अण्डे के समान उसका पिण्ड बनाये ।।१५।। शुद्ध दर्पण के समान आकाश बीज को जपते हुए शिर से लेकर सभी अङ्गों का निर्माण

मूलाधारगतां स्मरेत् ॥१८॥ रक्तांभोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः शूलं कोदण्डमिक्षूद्भवमणिगुणमप्यंकुशं पंचबाणान्। बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥१९॥ एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम् । विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतसिद्धये ॥२०॥ विभूतेर्विस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम् । श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम्॥२१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः । तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम् ॥१॥ विधिवच्छ्रद्धया सार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम् । श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः ॥२॥ शिरोव्रतसमाचारादेव ब्रह्मादिदेवताः । देवता अभवन्विद्वन् खलु नान्येन हेतुना॥३॥**

करे ॥१६॥ उसके पश्चात ज्ञान तत्त्व के आकाश आदि महाभूतों को उत्पन्न करे । सोऽहम् मन्त्र के द्वारा आत्मा को हृदय कमल में प्रवेश कराये ॥१७॥ कुण्डली रूपी अमृतमय जीव को लेकर परमात्मा के साथ उसको हृदय में स्थापित करे और आधार चक्र में कुण्डलिनी का स्मरण करे ॥१८॥ उसके बाद यह ध्यान करे कि हमारी परा प्राणशक्ति रक्तकमल पर स्थित है और उसके रक्तकमल के सदृश दोनों चरण हैं । वह अपने हाथ में शूल इक्षुदण्ड निर्मित धनुष धारण किए है । मणियाँ उसकी डोरी हैं । वह अंकुश और पाँच बाणों को धारण किए हुए है । उसके कपोल सुन्दर हैं । उसके तीन नेत्र हैं । उसके स्तन मोटे है । उसका वर्ण बाल सूर्य के समान है । इस प्रकार की प्राणशक्ति हमें सुख प्रदान करे ॥१९॥ परमात्म स्वरूपिणी प्राणशक्ति का इस प्रकार से ध्यान करके, सभी प्रकार के अधिकारों की प्राप्ति के लिए भस्म धारण करे ॥२०॥ मैं आगे महान फल देने वाले विभूति धारण की विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा। उत्तम भस्म धारण में श्रुतियों तथा स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं ॥२१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

शिरोव्रत का माहात्म्य

श्रीनारायण ने नारदजी से कहा– इस प्रकार से शिरोव्रत (ललाट पर भस्म लगाने का व्रत) को सविधि करने वाले ब्राह्मणों को ही इस अज्ञान की

शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि ॥४॥ सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः । शिरोव्रतमिदं
येन चरितं विधिवद्बुध ॥५॥ शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः । यदुक्तं तद्धि नैवान्यत्तत् पुण्येन लभ्यते ॥६॥ शाखाभेदेषु नामानि
व्रतस्यास्य विभेदतः । पठ्यंते मुनिशार्दूल शाखास्वेकव्रतं हि तत् ॥७॥ सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम् । तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव
च शिरोव्रतम् ॥८॥ शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वधर्मविवर्जितः । अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः ॥९॥ शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकांतारदाहकम्।
साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत् ॥१०॥ श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी । यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत् ॥११॥
अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैः षड्भिःशुद्धेन भस्मना । सर्वांगोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम् ॥१२॥ एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्संध्याकालेषु सादरम् ।
यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा ॥१३॥ द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम् । प्रकुर्याद्द्वादशाहं वा संकल्पेन शिरोव्रतम् ॥१४॥

विनाशिनी पराविद्या को बतलाना चाहिए ॥१॥ जिसने इस शिरोव्रत को विधि तथा श्रद्धा पूर्वक नहीं किया है उसके लिए यह श्रौत एवं स्मार्त सदाचार उपकारक नहीं होता है ॥२॥ हे विद्वन् ! इस शिरोव्रत का ही आचरण करके ब्रह्मा आदि देवता हो गये, किसी दूसरे साधन से नहीं ॥३॥ इस शिरोव्रत की महिमा को जानने वाले प्राचीन ऋषि और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता इस भस्म को धारण करते हैं ॥४॥ यदि कोई हर प्रकार के पापों को करने वाला भी व्यक्ति इस व्रत को विधिपूर्वक करता है तो वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५॥ अथर्वशिरः उपनिषद् में यह शिरोव्रत वर्णित है, उससे भिन्न नहीं। उसका ज्ञान बड़े ही पुण्य के द्वारा होता है ॥६॥ भिन्न-भिन्न शाखाओं में इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! उसको भिन्न-भिन्न मुनियों ने भिन्न-भिन्न शाखाओं में बतलाया है ॥७॥ जिस तरह सभी शाखाओं में एक सच्चिदानन्द परमात्मा का वर्णन है, उसी तरह उसका शिरोव्रत नामक एक ही ज्ञान तत्-तत् शाखाओं में पढ़ा गया है ॥८॥ शिरोव्रत नहीं करने वाला साधक सभी धर्मों से रहित है, वह किसी भी विद्या का अधिकारी नहीं हो सकता है ॥९॥ यह शिरोव्रत नामक व्रत पाप के वन को जलाकर भस्म कर देने वाला है । वह सभी विद्याओं का साधन है, अतएव उसका अच्छी तरह से आचरण करना चाहिए ॥१०॥ अथर्वण वेद की सूक्ष्म श्रुति सूक्ष्म अर्थ का प्रकाश करने वाली है । अतएव जिस व्रत का श्रुति उपदेश करती है, उसका अच्छी तरह से अनुष्ठान करना चाहिए ॥११॥ अतएव शुद्ध भस्म से अग्नि इत्यादि छह मन्त्रों के द्वारा इस शिरोव्रत करने वाले को अपने सम्पूर्ण अंगों में भस्म लगाना चाहिये ॥१२॥ इस शिरोव्रत का प्रतिदिन तीनों संध्याओं (प्रात:संध्या, मध्यम संध्या और सायं संध्या) के समय प्रेमपूर्वक तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि उत्तम विद्या की प्राप्ति न हो जाय ॥१३॥ इस व्रत को प्रारम्भ करने से पहले यह संकल्प करना चाहिए कि मैं इस व्रत को बारहवर्ष, एक वर्ष, या आधा वर्ष या तीन मास या बारह दिन तक करूँगा ॥१४॥ जो गुरु शिरोव्रत करने वाले शिष्य को इस विद्या का उपदेश नहीं देता है उसकी विद्या

शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः । तस्य विद्या विनष्टा स्यान्निर्घृणः स गुरुः खलु ॥१५॥ ब्रह्मा विद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु। यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदु; कारुणिकः खलु ॥१६॥ जन्मांतरसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः । तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन ॥१७॥ प्रत्युतात्तानबाहुल्याद्द्वेष एव विजायते । अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम् ॥१८॥ ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः । त एव नेतरे विद्वन्ये तु स्नाताः शिरोव्रतैः ॥१९॥ व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु । तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम् ॥२०॥ यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत् । तान्हत्वा न स पापीयान्भवेद्वेदांतनिश्चयः ॥२१॥ त्रिपुण्ड्रधारणं प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु । त्रियंबकेन मंत्रेण सतारेण शिवेन च ॥२२॥ त्रिपुंड्रं धारयेन्नित्य गृहस्थाश्रममाश्रितः । ओंकारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुंड्रकम् । धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः । त्रियंबकेन मंत्रेण प्रणवेन शिवेन च ॥२४॥ गृहस्थश्च वनस्थश्च धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् । मेधावीत्यादिना वाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ॥२५॥ भस्मना सजलेनापि धारयेच्च त्रिपुंड्रकम् । ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नस्त्रिपुण्ड्रभस्म नैव तु ॥२६॥ ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुंठनम् । (महादेवस्य सम्बन्धात्तद्धर्मेऽप्यस्ति संगतिः ।) सम्यक् त्रिपुण्ड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत् ॥२७॥ आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुंड्र भस्मना धृतम् । यतोऽत एव

नष्ट हो जाती है और वह निर्दय गुरु है ॥१५॥ जिस तरह परमात्मविद्योपदेश करने वाले कारुणिक गुरु हैं, उसीतरह ब्रह्मविद्या का भी उपदेश करने वाले गुरु भी ब्रह्मा, ऋषि तथा करुणा के अवतार होते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य हजारों जन्म तक लगातार धर्माचरण करते हैं, उनकी ही श्रद्धा इस शिरोव्रत में होती है, दूसरे की नहीं ॥१७॥ दूसरों को तो अज्ञान की बहुलता के कारण शिरोव्रत के प्रति द्वेष की ही भावना होती है । अतएव द्वेष करने वाले को आत्मज्ञान होता ही नहीं है ॥१८॥ हे विद्वन् ! शिरोव्रत के स्नातक ही ब्रह्मविद्या के साक्षात् अधिकारी होते हैं, दूसरे नहीं ॥१९॥ जिसने पाशुपत व्रत का आदर पूर्वक अनुष्ठान किया है उसी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देना चाहिए यह वेद का अदेश है ॥२०॥ जो पशु अपने पशुत्व का परित्याग कर देता है, उसका वध कर देने में कोई पाप नहीं लगता है, वह वेदान्तों का निश्चय है ॥२१॥ जाबालश्रुति में कहा गया है कि प्रणव के साथ त्र्यम्बक मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) से प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥२२॥ गृहस्थ तथा वानप्रस्थी को ॐकार तथा हंस मंत्र का तीन बार उच्चारण करके त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥२३॥ जाबालश्रुति बतलाती है कि संन्यासी को भी त्रिपुण्ड्र लगाने का विधान है । शिवजी के प्रणव (ॐ हौं) तथा त्र्यम्बक मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) इस मन्त्र से संन्यासी त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥२४॥ गृहस्थ तथा वानप्रस्थी ये दोनों शिव प्रणव (ॐ हौं) तथा त्र्यम्बक मंत्र (ॐ नमः शिवाय) से त्रिपुण्ड्र को धारण करें । ब्रह्मचारी प्रतिदिन ‘मेधावी’ इत्यादि मन्त्र से त्रिपुण्ड्र धारण करें ॥२५॥ भस्म में जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए । ब्रह्माजी ने ब्राह्मण को त्रिपुण्ड्र तथा भस्म से ही उत्पन्न किया है ॥२६॥ ललाट पर भस्म की तीन तिरछी रेखा करने को ही त्रिपुण्ड्र कहते हैं । इसका महादेव से

विप्रस्तु त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सदा ॥२८॥ भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुण्ड्रं देहगुण्ठनम् । रुद्रलिंगार्चनं वाऽपि मोहतोऽपि च न त्यजेत् ॥२९॥ त्रियंबकेन मंत्रेण सतारेण तथैव च । पंचाक्षरेण मंत्रेण प्रणवेन तथैव च ॥३०॥ ललाटे हृदये चैव दोर्द्वंद्वे च महामुने । त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रितः॥३१॥ त्रियायुषेण मंत्रेण मेधावीत्यादिनाऽथवा । गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं ब्रह्मचारिणा ॥३२॥ नमोंतेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषते रतः । उद्धूलनं त्रिपुण्डं च नित्यं भक्त्या समाचरेत् ॥३३॥ अन्येषामपि सर्वेषां विना मंत्रेण सुव्रत । उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने ॥३४॥ भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुण्डस्य च धारणम् । वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तस्मान्नित्यं समाचरेत् ॥३५॥ भस्माग्निहोत्रजं वाऽथ विरजाग्निसमुद्भवम् । आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत् ॥३६॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः । गृहीत्वा भस्म तत्पंचब्रह्ममंत्रैः शनैः शनैः ॥३७॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादिमंत्रितम् । तैरेव सप्तभिर्मन्त्रैस्त्रिवारमभिमंत्रयेत् ॥३८॥ ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मंत्रानुदीरयेत् । सितेन भस्मनां पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम् ॥३९॥ विपापे विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः । ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथं जलाधिपम् ॥४०॥ संयोज्य भस्मना

संबन्ध होने के कारण इसकी संगति शैव धर्म से ही है । ब्राह्मण को प्रतिदिन अच्छी तरह से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ॥२७॥ सर्वप्रथम ब्राह्मण ने चूकि त्रिपुण्ड्र ही धारण किया था अतएव ब्राह्मण को सदा त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ॥२८॥ वेद प्रतिपादित भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाना देह में भस्म लगाना, शिवलिङ्ग की पूजा करना कभी नहीं त्यागना चाहिए ॥२९॥ ॐकार सहित त्र्यम्बक मन्त्र तथा पञ्चाक्षर मन्त्र से तथा प्रणव से भस्म लगाना चाहिए ॥३०॥ हे महामुने! ललाट पर हृदय में तथा दोनों भुजाओं में संन्यासी को सदा त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए ॥३१॥ ब्रह्मचारी को 'त्र्यायुष' तथा 'मेधावी' इत्यादि मंत्र से गौण भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥३२॥ शूद्र को 'शिवाय नमः' इस मंत्र से भस्मोद्धूलन तथा त्रिपुण्ड्र धारण भक्ति पूर्वक करना चाहिए ॥३३॥ हे मुने ! दूसरे लोगों को भी भक्तिपूर्वक भस्मोद्धूलन तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ॥३४॥ भस्म स्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण ही सबसे श्रेष्ठ धर्म हैं अतएव उसे नित्य ही करना चाहिए ॥३५॥ निर्धूम अग्नि अथवा अग्निहोत्र का भस्म लेकर, उसको आदर पूर्वक शुद्ध पात्र में रखकर ॥३६॥ दोनों हाथ और दोनों पैर को धोकर, दो बार आचमन करना चाहिए । उसके बाद भस्म को पंचब्रह्म मन्त्र (सद्यो जातम्० इत्यादि पाँच मन्त्र) का धीरे-धीरे उच्चारण करे ॥३७॥ फिर तीन बार प्राणायाम करे । अग्निरितिभस्म इत्यादि (जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, वायुरिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं इदंवा भस्म) इन छहो मंत्रों में वृहज्जाबालोपनिषत् के 'तेजो भस्म' इस एक मन्त्र को जोड़कर कुल सात मंत्रों से तीन बार अभिमंत्रित करे । ॐ आपो ज्योति रसो इस मन्त्र से शिव का ध्यान करके सातो मंत्रों से अभिमंत्रित करना चाहिए । उसके बाद सम्पूर्ण शरीर में सफेद भस्म को लगा लेना चाहिए ॥३८-३९॥ ऐसा करने वाला मनुष्य

तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः । विमृज्य सांबं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम् ॥४१॥ ते च भावनया ब्राह्मभूतेन सितभस्मना । ललाटवक्षःस्कंधेषु स्वाश्रमोचितमंत्रतः ॥४२॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरनुलोमविलोमतः । त्रिपुड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः ॥४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम् । गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर ॥१॥ अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने । औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम् ॥२॥ पंचाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम् । त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ॥३॥ विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने । औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः ॥४॥ समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा । शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम्॥५॥**

निःसन्देह रूप से निष्पाप तथा रजोगुण रहित हो जाता है । उसके बाद जगन्नाथ और जलाधिप विष्णु का ध्यान करे । उसके बाद भस्म में जल मिलाकर साम्ब सदाशिव का ध्यान करके मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाये ॥४१॥ इसके बाद ब्रह्म स्वरूप भस्म में शिवजी का ध्यान करके, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी ललाट, वक्षःस्थल तथा कन्धा पर अपने आश्रम के लिए विहित मन्त्र से त्रिपुण्ड्र लगायें ॥४२॥ मध्यमा, अनामिका तथा अंगुष्ठा इन तीनों अंगुलियों से अनुलोम तथा विलोम पूर्वक तीनों संध्याओं में त्रिपुण्ड्र भक्तिपूर्वक लगाना चाहिए ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

शिरोव्रतविधि का निरूपण

श्रीनारायण ने कहा— हे ब्रह्मवेताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मन् ! गौण भस्म भी कई प्रकार का होता है वह भी अज्ञान को नष्ट करने वाला ज्ञान का साधन है । वह अग्नि से उत्पन्न होता है ॥१॥ अग्निहोत्र की अग्नि से उत्पन्न होने वाला, विरजाग्नि (निर्धूम अग्नि) जन्य भस्म, औपासनाग्निजन्य भस्म, समिधाग्निजन्य भस्म ॥२॥ ब्राह्मण के घर की रसोई घर की अग्नि से उत्पन्न होने वाला भस्म तथा दावाग्नि जन्य भस्म । ये सभी गौण भस्म हैं । सभी त्रैवर्णिकों को अग्निहोत्र जन्य भस्म तथा विरजाग्नि जन्य भस्म धारण करना चाहिए । गृहस्थों को विशेष रूप से औपासनाग्निजन्य भस्म ही लेना चाहिए ॥३-४॥

अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावनलोद्भवम् । कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परिग्रहः ॥६॥ क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः । तत्र पूर्वंत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः ॥७॥ अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च । पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लांबरधरः स्वयम् ॥८॥ शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः । दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ॥९॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः । ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना ॥१०॥ व्रतमेतत्करोमीति भवेत्संकल्पदीक्षितः । यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा ॥११॥ तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा । तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा ॥१२॥ दिनद्वादशकं वाऽपि दिनषट्कमथापि वा । तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसंकल्पनावधि ॥१३॥ अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात् । हुत्वाऽऽज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि ॥१४॥ पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन् । जुहुयान्मूलमंत्रेण तैरेव समिदादिभिः ॥१५॥ तत्त्वान्येतानि मे देहे शुद्ध्यन्तामित्यनुस्मरन् । पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥१६॥ ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्च पञ्च विभागशः । त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः ॥१७॥ मनोबुद्धिरहंकारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ । रागो

ब्रह्मचारियों को समिदग्निजन्य भस्म ही धारण करना चाहिए । शूद्रों को श्रोत्रिय ब्राह्मण के रसोई घर में उत्पन्न भस्म को धारण करना चाहिए । अन्य सभी लोगों को दावाग्नि जन्य भस्म धारण करना चाहिए । जिस पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र हो उसी दिन को स्थापित की गयी अग्नि के भस्म को विरजाग्नि कहते हैं । उसके लिए उपयुक्त स्थान अपना निवास स्थान होता है ॥६॥ इसके अतिरिक्त क्षेत्र, बाग उद्यान तथा अरण्य भी विरजा होम के लिए प्रशस्त स्थान बतलाये गये हैं । पहले त्रयोदशी के दिन अच्छी तरह से स्नान करके आह्निक कियाओं को सम्पन्न करे ॥७॥ उसके बाद अपने आचार्य की आज्ञा लेकर उनकी पूजा करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करे । उसके पश्चात् आचार्य की आज्ञा लेकर विशेष पूजा करे । स्वयम् श्वेत वस्त्र धारण करे ॥८॥ शुद्ध यज्ञोपवीत धारण करे । श्वेत चन्दन का अनुलोपन लगाकर कुश के आसन पर बैठकर दर्भमुष्टि को धारण करे ॥९॥ पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर तीन प्राणयाम करे तदनंतर देवाधिदेव महादेव का तथा महादेवी का ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना करना चाहिए । उसके पश्चात् मैं इस व्रत को आजीवन करूँगा, या बारह वर्ष तक करूँगा ॥१०-११॥ अथवा छह वर्ष तक करूँगा, या तीन वर्ष तक करूँगा, या एक वर्ष तक करूँगा, या छह मास तक करूँगा, या तीन मास तक करूँगा, या एक मास तक करूँगा ॥१२॥ या बारह दिन तक करूँगा, या छह दिन तक करूँगा, या तीन दिन तक करूँगा, या एक दिन करूँगा, इस प्रकार से संकल्प करना चाहिए ॥१३॥ फिर विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना करके विरजाहोम करे और विधिपूर्वक घी, समिधा तथा चरु से होम करे ॥१४॥ चतुर्दशी के दिन मूलमंत्र से आज्य (घी) समिधा तथा चरु से एक सौ आठ आहुति दे ॥१५॥ मेरे शरीर के ये तत्त्व शुद्ध हो जायँ इस भावना से होम करना चाहिए । उसके पाँचों तन्मात्राओं, पञ्च कर्मेन्द्रियों तथा पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के शुद्धि के उद्देश्य से पाँच-पाँच आहुतियों का होम करे । फिर त्वक्

विद्या कला चैव नियतिः काल एव च ॥१८॥ माया च शुद्धिविद्या च महेश्वरसदाशिवौ । शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः ॥१९॥ मंत्रै र्विरजैर्हुत्वा होताऽसौ विरजो भवेत् । अथ गोमयमादाय पिंडीकृत्याभिमंत्र्य च ॥२०॥ न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन्हविष्यभुक् । प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम् ॥२१॥ तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत् । प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः ॥२२॥ उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः । ततश्च जटिलो मुंडः शिखैकजट एव च ॥२३॥ भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगंबर । अन्यः काषायवसनश्चर्मचीरांबरोऽथ वा ॥२४॥ एकांबरो वल्कलवान्भवेद्दंडी च मेखली । प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्द्विराचम्यात्मनस्तनुम् ॥२५॥ संकुलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसंभवम् । अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात् ॥२६॥ विमृज्यांगानि मूर्धादिचरणांतं च तैः; स्पृशेत् । ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य च भस्मना ॥२७॥ सर्वांगोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा । ततश्च पुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम् ॥२८॥ शिवभावं समागम्य शिवभावमथाचेरत् । कुर्यात्त्रिसंध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम् ॥२९॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत् । तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं

इत्यादि सप्तधातुओं तथा पञ्च प्राणों ॥१६-१७॥ मन, बुद्धि अहंकार तीनों गुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण) प्रकृति, पुरुष, प्राण, राग, विद्या, कला, भाग्य, काल, अविद्या, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव शक्ति तथा शिवतत्त्व इन सबों के लिए मंत्रों से विरजा होम करके, होता विरज (रजोगुण से रहित) हो जाता है । इसके बाद गोबर लेकर उसकी पिण्डी बनाकर उसे मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ॥१८-२०॥ उसको अग्नि में रखकर उस दिन उसकी रखवाली करे और उस दिन हविष्य का भोजन करे । प्रात:काल चतुर्दशी में जगकर पूर्वोक्त सभी कर्मों को करे ॥२१॥ उस दिन निराहार रहकर पूरा समय बिता दे। प्रात:काल पूर्णिमा के दिन इसी प्रकार नित्यकृत्य करके पञ्चाक्षर मन्त्र से होम करे ॥२२॥ रुद्राग्नि का विसर्जन करे और सारा भस्म ले ले । उसके पश्चात् जटा धारण करके या शिर मुंडवाकर, अथवा एकजटा ही धारण कर ले ॥२३॥ यदि लज्जा न लगती हो तो दिगम्बर हो जाय । यदि लज्जा लगती हो तो कषायवस्त्र धारण करे अथवा चीर धारण करे ले । एक वस्त्र धारण करे, अथवा वल्कल (पेड़ों की छाल) धारण कर ले, दण्ड और मेखला धारण करे । अपने पैरों को धोकर दो बार आचमन करे । विरजाग्नि के एकत्रित किए हुए भस्म को 'अग्नि इति भस्म' इत्यादि मन्त्र से पूरे शरीर में लगाये । फिर उसी क्रम में भस्म से अपनी शरीर का उद्धूलन करे ॥२६-२७॥ सम्पूर्ण शरीर का उद्‌धूलन प्रणव अथवा शिवमन्त्र से करे । फिर त्र्यायुष मन्त्र से त्रिपुण्ड्र लगाये ॥२८॥ ऐसा करके वह शिवभाव को प्राप्त कर लेता है अतएव उसे शिव के ही समान आचरण करना चाहिए । उसे तीनो कालों (प्रात: मध्याह्न तथा सायम्) में सन्ध्या करनी चाहिए । इसी को पाशुपतव्रत कहते हैं ॥२९॥ यह पाशुपत व्रत पशुत्व को विनष्ट करके भोग तथा मोक्ष को प्रदान

व्रतम् ॥३०॥ पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सदाशिवः । भस्मस्नानं महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम् ॥३१॥ आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः। रक्षार्थं मंगलार्थं च सर्वसंपत्समृद्धये ॥३२॥ भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च । शांतिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत् ॥३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

नारद उवाच– **त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम् । एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम ॥१॥** नारायण उवाच– **त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु । महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम् ॥२॥ गोमयं योनिसंबद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते । ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु संदग्धं तच्छांतिकृदिहोच्यते॥३॥ सावधानस्तु गृहणीयान्नरो वै गोमयं तु तत् । अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडंगेन दहेत्ततः ॥४॥ पौष्टिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणुः । प्रासादेन**

करने वाला है । अतएव पाशुपत व्रत को करके पशुत्त्व को दूर कर दे ॥३०। उसे सदा शिव के लिङ्गमूर्ति की पूजा करनी चाहिए । भस्मधारण अत्यन्त पुण्यप्रद तथा हर कामना को पूर्ण करने वाला है ॥३१॥ वह आयु, बल तथा अरोग्य प्रदान करने वाला श्री (ऐश्वर्य) तथा पुष्टि को बढ़ाने वाला है । वह रक्षा, मंगल तथा हर प्रकार की समृद्धियों को प्रदान करने वाला है ॥३२॥ भस्म लगाने वाले मनुष्य को महामारी का भय नहीं होता है । उससे शान्ति, पुष्टि तथा कामनाओं की पूर्ति ये तीन कार्य होते हैं ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भस्म का त्रैविध्य तथा उसकी विशेषता

नारदजी ने श्रीनारायण से पूछा– आपने इस भस्म की त्रिविधता कैसे बतलायी है ? मेरे मन में बहुत अधिक कौतूहल है इसे आप मुझे बतलाइये।।१।। **नारायण ने कहा–** नारदजी ! मैं तीनों प्रकार के भस्मों का वर्णन कर रहा हूँ उसे आप सुनें । ये भस्म महापाप को विनष्ट करने वाले और महती कीर्ति प्रदान करने वाले हैं ॥२॥ गाय के पेट से निकलने पर पृथिवी पर गिरने से पहले ही जो गोबर हाथ पर रोक लिया जाता है । उसके बाद उसे सद्योजात इत्यादि ब्राह्म मन्त्रों से जलाकर जो भस्म बनाया जाता है उस भस्म को शान्तिक भस्म कहते हैं ॥३॥ गाय के पेट से निकलने पर पृथिवी पर गिरने से

दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम् ॥५॥ प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः । गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्य तु गोकुलम् ॥६॥ गवां वर्णानुरूपाणां गृहणीयाद्गोमयं शुभम् । ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च ॥७॥ पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते । पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः ॥८॥ प्रासादेन तु मंत्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम् । हृदयेन तु मंत्रेण पिंडीकृत्य च गोमयम् ॥९॥ रविरश्मिसुसंतप्तं शुचौ देशे मनोहरे । तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥१०॥ अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजं तु वा । तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मंत्रतः ॥११॥ गृहणीयादथ तत्राग्निकुंडाद्भस्म विचक्षणः । नवं पात्रं समादाय प्रासादेन तु निक्षिपेत् ॥१२॥ केतकी पाटली तद्वदुशीरं चन्दनं तथा । नानासुगन्धिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च ॥१३॥ निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्योमन्त्रेण शुद्धधीः । जलस्नानं पुरा कृत्वा भस्मस्नानमतः परम् ॥१४॥ जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत् । प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः ॥१५॥ समुद्धूल्य ततः पश्चादास्यं तत्पुरुषेण तु । अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम् ॥१६॥ सद्योमंत्रेण सर्वाङ्गं समुद्धल्य विचक्षणः । पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत् ॥१७॥ प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत् । भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुण्ड्रं तु विधीयते ॥१८॥ मध्याह्नात्प्राग्ज्लैर्युक्तं परतो जलवर्जितम्।

पहले ही सावधानी पूर्वक हाथ पर लेकर यदि उसका षडक्षर मंत्र से भस्म बनाया जाता है तो उसे पौष्टिकभस्म कहते है । अब आप कामदभस्म के विषय में सुनिये । उसी प्रकार से लिये गये गोबर को प्रसाद मन्त्र से जलाकर जो भस्म बनाया जाता है उसको कामद भस्म कहते हैं ॥५॥ हे देवर्षे ! प्रातःकाल जगकर पवित्र होकर भस्मव्रत धारण करने वाले को चाहिए कि गोशाला में जाकर गायों को प्रणाम करे ॥६॥ फिर गायों के वर्ण के अनुसार गोबर को ले ले । ब्राह्मण की गौ श्वेत वर्ण की होती है, क्षत्रिय की गौ रक्त वर्ण की होती है ॥७॥ वैश्य की गौ का वर्ण पीला होता है और शूद्रों की गौ का वर्ण काला होता है । व्रती को चाहिए कि पूर्णिमा, अष्टमी या अमावस्या के दिन प्रसाद मंत्र से गोबर को लेकर हृदय मन्त्र (नमः) से उसकी पिण्डी बनाये॥९॥ पवित्र तथा मनोहर स्थान में उसे सूर्य की किरणों में सुखा ले । फिर उसको प्रसाद मन्त्र से धान की भूसी अथवा भूसा में डाल दे ॥१०॥ उसके बाद दावाग्नि अथवा श्रोत्रिय ब्राह्मण के रसोई घर की अग्नि में शिव बीज (होम) मन्त्र से उसे कुण्ड में डालकर जलाये ॥११॥ बुद्धिमानी पूर्वक कुण्ड से उस भस्म को लेकर किसी नये पात्र में प्रसाद मन्त्र (होम) से सुरक्षित कर ले ॥१२॥ उसके बाद बुद्धि वाला व्रती उस भस्म में 'सद्योजातम्' मन्त्र से केवड़ा, गुलाब या खश या चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों को मिला दे । जल से स्नान पहले करके उसके बाद वह भस्म स्नान करे ॥१३-१४॥ जल स्नान करने में समर्थ नहीं होने पर वह केवल भस्म स्नान ही कर ले । उसके पहले वह ईशान मन्त्र (ईशानं सर्वविद्यानाम्०) से हाथ पैर और शिर को जल से धो ले ॥१५॥ तदनंतर वह तत्पुरुष मन्त्र से अपने मुख पर भस्म लगाये । अघोर मन्त्र से हृदय पर 'वामदेव' मन्त्र से नाभि पर भस्म लगाये ॥१६॥

तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुंड्रं च समाचरेत् ॥१९॥ मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च । हृदये चैव बाह्वोथ न्यासस्थानं हि चोच्यते ॥२०॥ पंचांगुल्यैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः । त्र्यंगुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमन्त्रेण देशिकः ॥२१॥ सव्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः। अघोरेण तु कंठे च मध्यांगुल्या स्पृशेद्गुदम् ॥२२॥ हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरंगुलिभिः स्पृशेत् । विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामंत्रेण देशिकः ॥२३॥ वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियङ्गुलैः । मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इत मंत्रतः ॥२४॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्त्रो रेखा इति स्मृताः । आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः॥२५॥ एकांगुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता । शिरोमध्ये स्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके ॥२६॥ कर्णयोरश्विनौ देवौ गणेशस्तु गले तथा । क्षत्रियश्च तथा वैश्यः शूद्राश्चोद्धूलनं त्यजेत् ॥२७॥ सर्वेषामंत्यजातीनां मंत्रेण रहितं भवेत् । (अदीक्षितमनुष्याणामपि मंत्रं विना भवेत्) ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

फिर 'सद्योजातम्०' इत्यादि मन्त्र से सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाना चाहिए । फिर पहले के वस्त्र को हटाकर शुद्ध वस्त्र को धारण करे । तदनंतर हाथ और पैर को धोकर आचमन करे । यदि भस्म स्नान नहीं कर सके तो त्रिपुण्ड्र लगा ले ॥१७-१८॥ मध्याह्न से पहले जल मिश्रित भस्म से और उसके बाद जल से रहित भस्म से तर्जनी, मध्यमा अनामिका इन तीन अंगुलियों से त्रिपुण्ड्र लगाये ॥१९॥ शिर, ललाट, कान, कण्ठ, हृदय तथा दोनों भुजायें ये ही त्रिपुण्ड्र लगाने के स्थान हैं ॥२०॥ शिर पर प्रसाद मंत्र से पाँचों अंगुलियों से त्रिपुण्ड्र लगाये । ललाट में शिरोमन्त्र (स्वाहा) से तीन अंगुलियों से त्रिपुण्ड्र लगाये ॥२१॥ सद्यो मन्त्र से दाहिने कान में और वामदेव मन्त्र से वायें कान में, अधोर मन्त्र से कण्ठ में, त्रिपुण्ड्र लगाकर मध्यमांगुलि से गुदामार्ग का स्पर्श करे ॥२२॥ फिर हृदय मन्त्र से तीन अंगुलियों से हृदय में, शिखा मन्त्र (वौषट्) से दाहिनी भुजा में, त्रिपुण्ड्र लगाये ॥२३॥ वायीं भुजा में बुद्धिमान् व्यक्ति को कवच मन्त्र (हुम्) से तीन अंगुलियों से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। ईशान मन्त्र से वह अपनी मध्यमा अंगुलि से नाभि का स्पर्श करे । त्रिपुण्ड्र की तीन रेखायें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश कही गयी हैं । सबसे नीचे की रेखा ब्रह्मा स्वरूप, उसके ऊपर वाली रेखा विष्णु स्वरूप और सबसे ऊपर वाली रेखा महेश्वर स्वरूप होती है ॥२४-२५॥ एक अंगुलि से की गयी रेखा के देवता ईश्वर हैं । शिर में ब्रह्मा, ललाट में ईश्वर, दोनों कानों में दोनों अश्विनी कुमार तथा गले में विद्यमान त्रिपुण्ड्र के देवता गणेश हैं । क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को सर्वाङ्ग में भस्म नहीं लगाना चाहिए । सभी अन्त्यज जातियों को विना मन्त्र के ही भस्म लगाना चाहिए । दीक्षा विहीन को भी विना मन्त्र के ही भस्म लगाना चाहिए ॥२६-२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **देवर्षे शृणु तत्सर्वं भस्मोद्धूलनजं फलम् । सरहस्यविधानं च सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥ कपिलायाः शकृत्स्वच्छं**
गृहीत्वा गगने पतत् । न क्लिन्नं नापि कठिनं न दुर्गंधं न चोषितम् ॥२॥ उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि । पिंडीकृत्य शिवाग्न्यादौ
तत्क्षिपेन्मूलमंत्रकम् ॥३॥ आदाय वाससाऽऽच्छाद्य भस्माधाने विनिक्षिपेत् । सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे ॥४॥ विन्यस्य मंत्री मंत्रेण
पात्रे भस्म विनिक्षिपेत् । तैजसं दारवं चाथ मृण्मयं चैलमेव च ॥५॥ अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत् । क्षौमे चैवातिशुद्धे वा
घनवद्भस्म निक्षिपेत् ॥६॥ प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोऽपि वा । न चायुक्तकरे दद्यान्न चाशुचितले क्षिपेत् ॥७॥ न संस्पृशेत्तु नीचांगैर्न
क्षिपेन्न च लंघयेत् । तस्माद्भसितमादाय विनियुंजीत मंत्रितम् ॥८॥ विभूतिधारणविधिः स्मृतिप्रोक्तो मयेरितः । यदीयाचरणेनैव शिवतुल्यो न
संशयः ॥९॥ शैवैः संपादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ । भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत् ॥१०॥ तंत्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्म

भस्म धारण करने का फल वर्णन

श्रीनारायण ने कहा– हे देवर्षे ! आप विधान पूर्वक भस्मोद्धूलन (भस्म स्नान) से होने वाले फल का श्रवण करें । वह सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥१॥ कपिला गौ के गोबर को जमीन पर गिरने से पहले ही हाथ पर रोक ले उसको न तो बहुत गीला और न बहुत अधिक कड़ा होना चाहिए। उसे दुर्गन्धि युक्त तथा वासी भी नहीं होना चाहिए ॥२॥ यदि वह जमीन पर गिर जाय तो ऊपर और नीचे के भाग को छोड़कर बीच के ही भाग को लेना चाहिए । उसकी पिण्डी बनाकर शिवाग्नि इत्यादि में उसे मूलमंत्र (ॐ नमः शिवाय) से डाल देना चाहिए । भस्म बन जाने पर उसे कपड़े से छानकर भस्म के पात्र में रख देना चाहिए । उस पात्र को सुन्दर मजबूत, शुद्ध तथा पोंछा हुआ होना चाहिए ॥४॥ मन्त्रज्ञ को उसे मूलमन्त्र पढकर भस्म के पात्र में रखना चाहिए । पात्र को किसी धातु (सोना, चाँदी, ताम्बा आदि) का या लकड़ी का या मिट्टी का या कपड़े का या किसी अन्य पदार्थ का होना चाहिए । अथवा रेशम के वस्त्र से बने पात्र में उस भस्म को धन के समान रखे ॥५-६॥ कहीं जाते समय उसे स्वयं ले ले, या अनुचर उसे ले चले । उसे न तो किसी अयोग्य व्यक्ति के हाथ में दे और न तो अपवित्र स्थान पर रखे ॥७॥ उस भस्म को कभी नीचे के (पैर आदि) अंगों से न छुए, न फेंके और न लाँघे । उस अभिमंत्रित भस्म को ही लेकर भस्म लगाना चाहिए ॥८॥ इस तरह से मैंने स्मृतियों में प्रोक्त विभूति धारण की विधि को बतलाया । उसका पालन करने वाला मनुष्य शिवजी के समान हो जाता है ॥९॥ शिवजी के सन्निकट में वैदिकों द्वारा बनाये गये भस्म को माँग कर ले लेना चाहिए और भक्तिपूर्वक उसकी

तांत्रिकपूजकैः । यत्र कुत्रापि दत्तं चेत्तद्ग्राह्यं नैव वैदिकैः ॥११॥ शूद्रैः कापालिकैर्वाथ पाखंडैरपरैस्तु तत् । त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या मनसाऽपि न
लंघयेत् ॥१२॥ श्रुत्वा विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् । त्रिपुण्ड्रधारणं भक्त्या तथा देहावगुंठनम् ॥१३॥ द्विजः कुर्याद्धि मंत्रेण तत्त्यागी
पतितो भवेत् । उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च भक्त्या नैवाचरन्ति ये ॥१४॥ तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः । येन भस्मोक्तमार्गेण धृतं न
मुनिपुंगव ॥१५॥ तस्य विद्धि मुने जन्म निष्फलं सौकरं यथा । येषां वपुर्मनुष्याणां त्रिपुण्ड्रेण विना स्थितम् ॥१६॥ श्मशानसदृशं तत्स्यान्न प्रेक्ष्यं
पुण्यकृज्जनैः । धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ॥१७॥ धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् । त्रिपुण्ड्रं ये विनिदंति निन्दन्ति
शिवमेव ते ॥१८॥ धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते । तथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते ॥१९॥ अशेषसाधनेऽप्येवं भस्महीनं
शिवार्चनम् । उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरंति ये ॥२०॥ तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि । भस्मना वेदमंत्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च
धारणम्॥२१॥ विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम् । कृतं स्यादकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत् ॥२२॥ अधीतमनधीतं च त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत्।

प्रार्थना करके पूजा करनी चाहिए ॥१०॥ तंत्रोक्त विधि से तांत्रिकों द्वारा मनमानी ढंग से बनाये गये भस्म को वैदिकों को नहीं लेना चाहिए॥११॥ शूद्रों,
कापालिकों या दूसरे पाखण्डियों से भी भस्म नहीं लेना चाहिए । त्रिपुण्ड्र को भक्तिपूर्वक लगाना चाहिए और मन से भी भस्म का तिरस्कार नहीं करना
चाहिए॥१२॥ वेदों में कहा गया है कि भस्म का परित्याग करने वाला पतित हो जाता है । अतएव भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण और भस्मस्नान करना
चाहिये॥१३॥ भस्म स्नान करना द्विजों का कर्तव्य हैं भक्तिपूर्वक मंत्र पढकर त्रिपुण्ड्र धारण करे उसका त्याग करने वाला पतित हो जाता है ॥१४॥ हे
मुनिश्रेष्ठ ! जो उपर्युक्त प्रकार से भस्मस्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते हैं, उनकी करोड़ों जन्मों में भी मुक्ति नहीं होती है ॥१५॥ जिन मनुष्यों का शरीर
त्रिपुण्ड्र से रहित है, उनका जन्म सूकरों के समान व्यर्थ है ॥१६॥ जिस ललाट पर त्रिपुण्ड्र नहीं है तथा जिस ग्राम में शिवालय नहीं है उन दोनों को
धिक्कार है । वे श्मशान के समान पवित्र लोगों के द्वारा देखने योग्य नहीं हैं ॥१७॥ शिवजी की पूजा से रहित जन्म और शिव व्यतिरिक्त विषयिणी विद्या,
इन दोनों को धिक्कार है । जो त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते हैं उनको शिवजी की निन्दा करने का पाप लगता है ॥१८॥ जो लोग ललाट पर त्रिपुण्ड्र
लगाते हैं वे मानों शिवजी को ही धारण करते हैं । जिस तरह अग्निहोत्र से रहित ब्राह्मण की शोभा नहीं होती है, उसी तरह त्रिपुण्ड्र धारण किए विना
सभी साधनों से की गयी शिवजी की पूजा भी सुशोभित नहीं होती है । जो लोग श्रद्धापूर्वक भस्मस्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते हैं ॥१९-२०॥ उन
लोगों के द्वारा पहले का किया गया सारा अनुष्ठान विपरीत हो जाता है । वेद मन्त्रोच्चारण पूर्वक भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाये विना वैदिक तथा स्मार्त सम्पूर्ण
आचार अनर्थ का कारण हो जाता है । उसके द्वारा किये गये कर्म नहीं किए गये कर्म के समान और श्रवण भी अश्रवण के समान हो जाता है ॥२२॥

वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा वेदा वृथा तपः ॥२३॥ वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत् । भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः
पुमान्॥२४॥ विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः । स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥२५॥ ससर्ज सललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न
वर्तुलम् । तिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम् ॥२६॥ तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वंति त्रिपुण्ड्रकम् । न तद्ध्यानं न तन्मोक्षं न तज्ज्ञानं न
तत्तपः ॥२७॥ विना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम् । वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत् ॥२८॥ त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी
शिवार्चने । प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत् ॥२९॥ प्राणानायम्य संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् । आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम्॥३०॥
ईशानेन तु मंत्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत् । तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु ॥३१॥ अघोराख्येन हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च । सद्योजाताभिधानेन
भस्म पादद्वये क्षिपेत् ॥३२॥ सर्वांगं प्रणवेनैव मंत्रेणोद्धूलनं ततः । एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः ॥३३॥ सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं
बुधः । ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि ॥३४॥ तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं विधिना ललाटे हृदये गले । पंचभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च ॥३५॥
धृतमेतत्त्रिपुण्ड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम् । शूद्रैरंत्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म च क्वचित् ॥३६॥ भस्मना साग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत् ।

त्रिपुण्ड्र धारण के विना किया गया वेदाध्ययन नहीं किए गये के समान हो जाता है । त्रिपुण्ड्र नहीं धारण करने वाले के द्वारा किए गये यज्ञ, दान,
वेदाध्ययन, तपस्या तथा व्रतोपवास व्यर्थ हो जाते हैं । भस्म धारण किए विना जो व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करना चाहता है ॥२१-२४॥ वह ऐसा समझता है
कि मैं विषपान करके अमर हो जाऊँगा । स्रष्टा ब्रह्मा ने मस्तक की सृष्टि के बहाने ही त्रिपुण्ड्र धारण का महत्त्व बतला दिया है ॥२५॥ इसीलिए ब्रह्मा
ने ललाट को तिर्यक् (तिरक्षा) रेखा से युक्त बनया है गोल अथवा लम्बा नहीं बनाया है । सभी शरीरधारियों के ललाट में तिर्यक् रेखा ही दिखायी पड़ती
है ॥२६॥ फिर भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र नहीं लगाते हैं । तिर्यक् त्रिपुण्ड्र से रहित ब्राह्मण के द्वारा अनुष्ठित ध्यान, मोक्ष, ज्ञान और तप व्यर्थ हो जाते हैं।
जिस तरह से शूद्र का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं होता है ॥२८॥ उसी तरह त्रिपुण्ड्र के विना ब्राह्मण शिवार्चन का अधिकारी नहीं होता है । पूर्वाभिमुख
होकर अपने हाथों और पैरों को धोकर आचमन करें ॥२९॥ उसके बाद प्राणायाम करके संकल्प करे फिर भस्म स्नान करे । अग्निहोत्र से उत्पन्न भस्म को
लेकर वह ईशान मन्त्र से अपने ललाट में भस्म लगाये । उसके बाद वह तत्पुरुष मन्त्र से मुँह में भस्म लगाये ॥३०-३१॥ अधोर मन्त्र से हृदय में तथा
वामदेव मन्त्र से गुप्ताङ्ग में भस्म लगाये । उसके बाद सद्योजात मन्त्र से दोनों पैरों में भस्म लगाना चाहिए । उसके बाद प्रणव से अपने सम्पूर्ण अङ्गों में
भस्म लगाना चाहिए । इसको परमार्थियों ने आग्नेय स्नान कहा है ॥३२-३३॥ सभी कर्मों की समृद्धि के लिए सर्वप्रथम भस्म स्नान करना चाहिए । उसके बाद
हाथ इत्यादि धोकर सविधि आचमन करे ॥३४॥ फिर पञ्च ब्रह्ममन्त्रों के द्वारा भस्म से तिर्यक् त्रिपुण्ड्र को ललाट, हृदय तथा गले में धारण करे ॥३५॥ इस

अन्यथा सर्वकर्माणि न फलंति कदाचन ॥३७॥ सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम् । तस्य व्यर्थमिदं सर्वं,यस्त्रिपुंड्रं न धारयेत्॥३८॥ त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः । स हंति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान् ॥३९॥ समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः। स पंक्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि ॥४०॥ श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने । धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥४१॥ भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयामि ते ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **महापातकसंघाश्च पातकान्यपराण्यपि । नश्यन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥१॥ एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु । यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम् ॥२॥ गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मबृद्धिकरं तथा । ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च॥३॥**

तरह से धारण किया गया त्रिपुण्ड्र सभी कर्मों में पवित्र होता है । शूद्रों को भी शूद्र के हाथ से भस्म नहीं धारण करना चाहिए ॥३६॥ अग्निहोत्र जन्य भस्म को सर्वाङ्ग में लगाकर ही किसी भी कर्म को करना चाहिए । ऐसा नहीं करने से किसी भी कर्म का फल नहीं प्राप्त होता है ॥३७॥ त्रिपुण्ड्र को नहीं करने वाले के सत्यभाषण, पावित्र्य पालन, जप, होम, तीर्थ सेवन और देवपूजन ये सबके सब व्यर्थ हो जाते हैं ॥३८॥ पवित्र, त्रिपुण्ड्र तथा रुद्राक्षधारी ब्राह्मण रोग, पाप, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा चोरों के भय को विनष्ट कर देता है ॥३९॥ अन्त में ब्रह्म को प्राप्त करके पुनः जन्म नहीं लेता है । वह श्राद्धकर्म में पंक्तिपावन होता है तथा ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा पूजित होता है ॥४०॥ त्रिपुण्ड्र धारण करके श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलिवैश्वदेव तथा देवार्चन करने वाला मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता हे ॥४१॥ इसके बाद मैं पुनः भस्म धारण की महिमा बतला रहा हूँ ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिंदी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भस्मधारण की महिमा

श्रीनारायण ने कहा– हे मुने ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि भस्म धारण करने से पञ्च महापातक तथा दूसरे पाप भी नष्ट हो जाते है ।।१।। केवल भस्म

शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम् । भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥४॥ रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥५। यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः । भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥६॥
सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः । भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥७॥ माहेश्वराणां लिगार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः ।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम् ॥८॥ विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः । शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा ॥९॥
हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः । देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम् ॥१०॥ उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः ।
सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥११॥ यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरादिभिः । मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥१२॥ ब्राह्मणैः
क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च संकरैः । अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ॥१३॥ उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च यैः समाचरितं मुदा । त एव शिष्टा विद्वांसो
नेतरे मुनिपुंगव ॥१४॥ शिवलिंगं मणिः सख्यं मंत्रः पञ्चाक्षरस्तथा । विभूतिरौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि ॥१५॥ भुनक्ति यत्र भस्मांगो मूर्खो
वा पंडितोऽपि वा । तत्र भुंक्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ॥१६॥ भस्मसंछन्नसर्वांगमनुगच्छति यः पुमान् । सर्वपातकयुक्तोऽपि पूजितो

को धारण करने की महिमा को आप सुनें । यह संन्यासियों को ज्ञान देने वाला तथा वानप्रस्थियों को वैराग्य प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥२॥ उसी तरह यह गृहस्थों की समृद्धि प्रदान करता है और ब्रह्मचारियों को स्वाध्याय (वेदज्ञान) प्रदान करता है ॥३॥ यह शूद्रों को पुण्य प्रदान करता है और अन्य लोगों के पापों को विनष्ट करता है । भस्म स्नान त्रिपुण्ड्र धारण का विधान श्रुति सबों की रक्षा करने के लिए करती है ॥५॥ भस्म से स्नान तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण का विधान श्रुति सबों के लिए यज्ञ रूप से करती है ॥६॥ उन सबों के लिए वैदिक वाक्य सबों के लिए धर्म रूप से भस्म स्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण को बतलाती है ॥७॥ माहेश्वरों (शिवभक्तों) के चिह्न रूप से श्रुति भस्मस्नान तथा त्रिपुण्ड्र को बतलाती है ॥८॥ वेदवाक्यानुसार यह विज्ञान प्रद है । शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, हिरण्यगर्भ उनके अवतार, वरुण तथा अन्य देवता भी भस्म स्नान तथा त्रिपुण्ड धारण किये थे ॥९-१०॥ उमादेवी, लक्ष्मीजी, सरस्वतीजी तथा अन्य आस्तिक देवताओं की स्त्रियों ने भी भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाया था ॥११॥ यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि तथा मुनियों ने भी भस्मस्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था ॥१२॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा वर्णसंकर, वनेचर आदि अपभ्रंशों ने भी भस्मस्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था ॥१३॥ हे मुनिपुंगव ! जिन लोगों ने भस्म स्नान तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वे ही शिष्ट विद्वान हैं, दूसरे नहीं ॥१४॥ मुक्तिरूपी स्त्री को अपने वश में करने के लिए शिवलिङ्ग ही मणि है, पञ्चाक्षर मन्त्र जप ही मित्रता है, भस्म धारण करना ही औषधि का काम करता है ॥१५॥

मानवोऽचिरात् ॥१७॥ भस्मसंछन्नसर्वाङ्गं यः स्तौति श्रद्धया सह । सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात् ॥१८॥ त्रिपुंड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम् । तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ॥१९॥ येन विप्रेण शिरसि त्रिपुंड्रं भस्मना कृतम् । कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः॥२०॥ मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत् । दुःशीलः शीलयुक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः ॥२१॥ भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत् । छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमैश्वरम् ॥२२॥ सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि । संपर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः ॥२३॥ विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम् । शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम् ॥२४॥ पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम्। न दानेन न यज्ञेन न तपोभिः सुदुर्लभैः ॥२५॥ न तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुंड्रेण च लभ्यते । दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद ॥२६॥ ध्यानं तपस्त्रिपुंड्रस्य कलां नार्हति षोडशीम् । यथा राजा स्वचिह्नाङ्कं स्वजनं मन्यते सदा ॥२७॥ तथा शिवस्त्रिपंड्रांकं स्वकीयमिव मन्यते । द्विजातिर्वाऽन्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना ॥२८॥ धारयेद्यस्त्रिपुंड्रांकं रुद्रस्तेन वशीकृतः । त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः ॥२९॥ सकृत्तिर्यक्त्रिपुंड्रांकं धारयेत्सोऽपि

भस्म धारण करके कोई मूर्ख अथवा पण्डित जहाँ भोजन करता है, वहाँ पर साक्षात् शंकरजी अपनी पत्नी पार्वती के साथ भोजन करते हैं ॥१६॥ भस्म से भूषित सर्वाङ्ग पुरुष का जो अनुसरण करता है, वह सभी पातकों से युक्त होकर भी शीघ्र ही पूजित हो जाता है ॥१७॥ जिसके सभी अङ्ग भस्म से आच्छन्न हैं ऐसे मनुष्य की स्तुति करने वाला सभी पापों को करने वाला भी मनुष्य शीघ्र ही पूजित हो जाता है ॥१८॥ त्रिपुण्ड्रधारी मनुष्य शीघ्र ही पूजित हो जाता है ॥१८॥ त्रिपुण्ड्रधारी मनुष्य को जो भिक्षा प्रदान करता है उसको वेदों के अध्ययन, श्रवण और समस्त विहित कर्मों के अनुष्ठान करने का फल प्राप्त हो जाता है ॥१९॥ यदि कोई विप्र अपने ललाट पर त्रिपुण्ड्र धारण करके कीकट देश में भी निवास करता है तो भी उसका वहाँ निवास काशीवास के समान होता है । यदि कोई दुराचारी हो या सदाचारी; योगी हो या भोगी ॥२०-२१॥ यदि वह भस्म धारण करता है तो वह मेरे पुत्र (ब्रह्मा) के समान पूज्य है । जो व्यक्तिं कपट पूर्वक भी भस्म धारण करता है तो वह जिस गति को प्राप्त करता है उस गति को सैकड़ों यज्ञों को करके भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है । यदि कोई भय से या लीलापूर्वक या सम्पर्क के कारण सविधि विभूति धारण करता है तो ॥२२-२३॥ वह मेरे (नारायण के) ही समान पूज्य है । यह विभूति धारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को तृप्त करने वाला है ॥२४॥ यह पार्वती, महालक्ष्मी तथा सरस्वती को भी तृप्त करने वाला है॥२५॥ दान, यज्ञ, धर्म, तीर्थयात्रा, तथा तीर्थ यात्रा से प्राप्त होने वाला पुण्य त्रिपुण्ड्र धारण से प्राप्त होने वाले पुण्य के समान नहीं होता है ॥२६॥ ध्यान तथा तपस्या से प्राप्त होने वाला पुण्य त्रिपुण्ड्र धारण जन्य पुण्य के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकता है । जिस तरह कोई राजा अपने चिह्न से अंकित

मुच्यते । नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा ॥३०॥ त्रिपुंड्रांकितभालेन पूज्य एव हि नारद । शिवमन्त्रात्परो मंत्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम्॥३१॥ शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थं च भस्मना । रुद्राग्नेर्यत्परं तीर्थं तद्भस्म परिकीर्तितम् ॥३२॥ ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम्। अंत्यजो वाऽधनो वाऽपि मूर्खो वा पंडितोऽपि वा ॥३३॥ यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः । तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः । सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा ॥३४॥ एतानि पंचशिवमंत्रपवित्रितानि भस्मानि कामदहनांगविभूषितानि । त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुंपंति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥३५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

व्यक्ति को अपना आदमी मानता है ॥२७॥ उसी तरह शिवजी भी त्रिपुण्ड्रधारी को अपना मानते हैं । चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा अन्य किसी जाति का हो वह यदि शुद्ध मन से त्रिपुण्ड्र धारण करता है तो रुद्र को अपने वश में कर लेता है । अपने वर्ण तथा आश्रम के आचार को त्याग देने वाला तथा जिसकी सारी कियायें लुप्त हो गयी हैं, ऐसा व्यक्ति भी यदि तिर्यक् त्रिपुण्ड्र को धारण करता है, तो उसे भी मुक्ति मिल जाती है । त्रिपुण्ड्रधारी पुरुष के ज्ञान, कुल तथा व्रत की परीक्षा नहीं करनी चाहिए ॥२८-३०॥ क्योंकि हे नारदजी ! वह पूज्य ही है । शिव मन्त्र से बढ़कर न तो कोई मन्त्र है, शिव के समान कोई देवता भी नहीं है ॥३१॥ शिवार्चन से बढ़कर कोई भी पुण्यकर्म नहीं है, और भस्म से बड़ा कोई तीर्थ भी नहीं है । रुद्राग्नि जन्य जो सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, उसे ही भस्म कहा जाता है ॥३२॥ वह सभी दुःखों को विनष्ट करने वाला तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला है । कोई अन्त्यज हो निर्धन हो मूर्ख हो पण्डित हो यदि वह भस्म धारी है ॥३३॥ तो वह जिस स्थान में रहता है । वहीं पर उमा के साथ सदाशिव का निवास होता है। उसके सन्निकट सदाशिव सभी भूतगणों तथा सभी तीर्थों के साथ निवास करते हैं ॥३४॥ पाँच शिव मन्त्रों से पवित्र किए गये इन भस्मों को सर्वप्रथम भगवान् शिव ने अपने अङ्गों में लगाया था । ललाट पर भस्म से लगाया गया त्रिपुण्ड्र भाग्य के द्वारा लिखे गये बुरे अक्षरों को मिटा देता है ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **भस्मदिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा । तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यंति न संशयः ॥१॥ श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः
पुराणान्यखिलान्यपि । वदंति भूतिमाहात्म्यं तत्तस्माद्धारयेद् द्विजः ॥२॥ सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसंध्यं यस्त्रिपुंड्रकम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके
महीयते ॥३॥ योगी सर्वाङ्गकं स्नानमापादतलमस्तकम् । त्रिसंध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात् ॥४॥ भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत्।
भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम् ॥५॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः ॥६॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः । भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेंधनम् ॥७॥ भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते । एवमुक्तं
शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः ॥८॥ तदाप्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः । सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे ॥९॥ तस्मादेतच्छिरः
स्नानमाग्नेयः यः समाचरेत् । अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः ॥१०॥ ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवंति ते । देवासुरमुनीद्रैश्च पूज्या
नित्यं न संशयः ॥११॥ भस्मसंछन्नसर्वांगं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान् । तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दंडवत्प्रणमिष्यति ॥१२॥ अभक्ष्यभक्षणं येषां**

भस्मधारी की महिमा

श्रीनारायण ने कहा– जो कोई अपने अङ्गों में भस्म लगाये हुए व्यक्ति को प्रसन्नतापूर्वक धन प्रदान करता है नि:सन्देह रूप से उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१॥ श्रुतियाँ स्मृतियाँ सभी पुराण भस्म का माहात्म्य बतलाते हैं अतएव (ब्राह्मण को) भस्म धारण करना चाहिए ॥२॥ जो ब्राह्मण उजले भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में पूजित हाता है ॥३॥ जो योगी पैर से लेकर शिर पर्यन्त तीनों सन्ध्याओं के समय भस्म स्नान करता है वह योग को प्राप्त कर लेता है ॥४॥ भस्म स्नान के द्वारा पुरुष अपने वंश का उद्धार करने वाला हो जाता है । भस्म स्नान जल स्नान की अपेक्षा असंख्य गुना गुणकारी है ॥५॥ सभी तीर्थों में जाने से जिस पुण्य और फल की प्राप्ति होती है उस पुण्य और फल की प्राप्ति भस्म स्नान से ही हो जाती है ॥६॥ महापातकों तथा उपपातकों से युक्त व्यक्ति के समस्त पापों को भस्म स्नान उसी तरह जलाकर भस्म कर देता है जैसे अग्नि इन्धन को जलाकर भस्म कर देता है ॥७॥ सर्वप्रथम शिवजी यह बतलाकर कि भस्म स्नान से बढ़कर कोई स्नान नहीं है, स्वयं भी भस्मस्नान किए ॥८॥ उसी समय से शिवभक्त ब्रह्मा आदि देवता तथा सभी मुनिगण सभी कर्मों [illegible] करने लगे ॥९॥ अतएव जो व्यक्ति शिर से यह भस्म स्नान करता है वह इसी शरीर से रुद्र स्वरूप हो जाता है ॥१०॥ जो लोग भस्मधारी व्यक्ति को देखकर प्रसन्न होते हैं, वे सदा देवता, असुर तथा मुनीन्द्रों के पूज्य

भस्मधारणपूर्वकम् । तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा ॥१३॥ यः स्नाति भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात् ॥१४॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् । आग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां च विशिष्यते ॥१५॥ आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रुवः । आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बंधनं विदुः ॥१६॥ प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते । भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि ॥१७॥ रक्षार्थं मङ्गलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः । भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु ॥१८॥ तस्मादेतच्छिरः स्नानमाग्नेयं यः समाचरेत् । भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥१९॥ ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः । भगंदराणि सर्वाणि चाशीतिर्वातरोगकाः॥२०॥ चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्माः सप्तत्रिपंचकाः । व्याघ्रचौरभयं चैवाप्यन्य दुष्टग्रहा अपि ॥२१॥ भस्मस्नानेन नश्यन्ति सिंहेनेव यथा गजाः । शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम् ॥२२॥ यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः । (भस्मना च त्रिपुंड्रं च यः कोऽपि धारयेत्परम् । स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः ।) यथाविधि ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात् ॥२३॥ नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम् ।

होते हैं ॥११॥ भस्म से गुण्ठित शरीर वाले पुरुष को देखकर उसके सम्मान में जो लोग खड़े जो जाते हैं उस व्यक्ति को देखकर इन्द्र भी उसे प्रणाम करते हैं ॥१२॥ यदि कोई भस्म धारण करके अभक्ष्य भक्षण करता है, उसके लिए वही भक्ष्य हो जाता है, इसमें कोई विचार करने की बात है ही नहीं ॥१३॥ जो व्यक्ति पहले जल में स्नान करके नित्य ही भस्म स्नान करता है वह चाहे ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ हो या वानप्रस्थ हो ॥१४॥ वह सभी पापों से रहित होकर परमगति को प्राप्त करता है । यतियों के लिए तो आग्नेय स्नान (भस्म स्नान) विशेष रूप से विहित है ॥१५॥ आर्द्रस्नान (जल स्नान) से भस्म स्नान श्रेष्ठ है, उसीसे आर्द्र (प्रकृति पुरुष संबन्ध) विनष्ट होता है । प्रकृति को ही आर्द्र जाने और प्रकृति (माया) को ही बन्धन कहा गया है ॥१६॥ प्रकृति के सम्बन्ध का नाश करने के लिए भस्म स्नान करना चाहिए । हे नारदजी ! भस्म के समान पवित्र कोई वस्तु त्रैलोक्य में भी नहीं है ॥१७॥ प्राचीन काल में देवताओं ने अपनी रक्षा के लिए, मङ्गल के लिए तथा पवित्र होने के लिए भस्म को ही स्वीकार किया था । सर्वप्रथम भगवान् शङ्कर ने भस्म को पार्वतीजी को प्रदान किया था ॥१८॥ अतएव जो व्यक्ति वह आग्नेय शिरः स्नान करता है, वह संसार के बन्धन से मुक्त होकर शिवलोक में सम्मानित होता है ॥१९॥ ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतना, कुष्ठ, तापलिल्ली कारोग, तथा भगदंर, चौरासी प्रकार के वातरोग ॥२०॥ चौसठ प्रकार के पित्तरोग एक सौ पाँच प्रकार के कफरोग, व्याघ्र तथा चोरो का भय, तथा दूसरे दुष्ट ग्रह भी भस्म स्नान से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे कोई सिंह हाथी को मार देता है ॥२१॥ भस्म में शुद्ध तथा ठंढ़ा जल मिलाकर जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह निःसन्देह रूप से ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । जो कोई भी भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाता है वह निःसन्देह रूप से सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र को ललाट में धारण करने से ॥२३॥ ललाट में यम की

कंठोपरि कृतं पापं नाशयेत्तत्प्रधारणात् ॥२४॥ कंठे च धारणात्कंठभोगादिकृतपातकम् । बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम् ॥२५॥ नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत् । पार्श्वयोर्धारणाद्ब्रह्मन्परस्त्र्यालिंगनादिकम् ॥२६॥ तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिंगकम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम् ॥२७॥ गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम् । भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वन्महापातकसंभवैः ॥२८॥ दोषैर्वियुज्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः । भस्मनिष्ठस्य दह्यंते दोषा भस्माग्निसंगमात् ॥२९॥ भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इति स्मृतः । भस्मना दिग्धसर्वांगो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः ॥३०॥ भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः । भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः ॥३१॥ भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवंति न संशयः । भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात् ॥३२॥ भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पुरा । त्रिपुण्ड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः ॥३३॥ भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं नश्यन्त्येव न संशयः । स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति ॥३४॥ अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना । तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम् ॥३५॥ कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः । भस्मस्नानो

लिपि विनष्ट हो जाती है । कण्ठ में भस्म लगाने से कण्ठ से अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण जन्य पाप विनष्ट हो जाते हैं । भुजाओं पर लगाने से भुजा जनित पाप प्रणष्ट हो जाते है । वक्षःस्थल पर भस्म लगाने से मानसिक पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२४-२५॥ नाभि में भस्म लगाने से लिङ्ग जन्य पाप नष्ट हो जाते हैं तथा गुदामार्ग में भस्म लगाने से गुदा जन्य पाप नष्ट हो जाते हैं । हे ब्रह्मन् बगल में लगाने से परस्त्री स्पर्शनादि जन्य पाप प्रणष्ट हो जाते हैं ॥२६॥ अतएव तीनों प्रकार के भस्मों को धारण करना सर्वत्र श्रेष्ठ बतलाया गया है । त्रिपुण्ड्र के तीन चिह्नों को धारण करना ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को धारण है अथवा तीनों अग्नियों (आहवनीय, दक्षिणाग्नि एवं गार्हपत्यग्नि) को धारण है ॥२७॥ त्रिपुण्ड्र जिसनें धारण किया । उसने तीनों गुणों (सत्त्व, रज एवं तम) तथा तीनों लोकों (भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक) को धारण कर लिया । हे विद्वन् ! भस्म स्नान करने वाला पुरुष महापातक जन्य ॥२८॥ पापों से सद्यः मुक्त हो जाता है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । भस्म में निष्ठा रखने वाले पुरुष के सभी दोष भस्माग्नि के संसर्ग से भस्म हो जाते हैं ॥२९॥ भस्म स्नान से शुद्ध बना हुआ पुरुष आत्मनिष्ठ कहा गया है । सर्वाङ्ग में भस्म लगाने वाले, भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाने वाले ॥३०॥ तथा भस्म पर शयन करने वाले पुरुष भस्मनिष्ठ कहे गये है । भस्मनिष्ठ के सन्निकट से भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि तथा भयंकर रोग शीघ्र ही भाग जाते हैं । भस्म को प्रकाशित होने के कारण भसित तथा पापों का भक्षण करने के कारण भस्म कहा गया है ॥३२॥ अणिमादि अष्ट सिद्धियों को प्रदान करने के कारण भूति, तथा पुरुषों की रक्षा करने के कारण रक्षा (राख) कहते हैं । त्रिपुण्ड्रधारी पुरुष को देखकर भूत प्रेत आदि भयभीत होकर काँपते हुए भाग जाते हैं । और शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । जिस तरह रुद्र का स्मरण करने से पाप का नाश हो जाता है ॥३३-३४॥ जो व्यक्ति हजारो पापों को भी करके भस्म स्नान कर लेता

भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते ॥३६॥ भस्मस्नानाद्विशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः । मत्समीपं समागत्य न स भूयोऽभिवर्तते ॥३७॥ वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः । अर्चितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३८॥ आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोऽथवा नरः । नित्यं वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः ॥३९॥ त्रिपुण्ड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्कम् । ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजंतवः ॥४०॥ त्रिपुण्डधारिणं दृष्ट्वा पलायन्ते न संशयः । कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले ॥४१॥ भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम् । केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्यमलापहम् ॥४२॥ विभूतिस्नानमनघं बाह्यांतरमलापहम् । त्यक्त्वापि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः ॥४३॥ कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने । भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते ॥४४॥ अंतर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत् । यद्बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नानमस्ति तत् ॥४५॥ तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यांतरं मलम् । कृत्वाऽपि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात् ॥४६॥ न भवत्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने । यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वेदो वेद तत्त्वतः ॥४७॥ यद्वा वेद महादेवः सर्ववेदशिखामणिः । भस्मस्नानमकृत्यैव यः कुर्यात्कर्म

है तो भस्म उसके सभी पापों को उसी तरह जला देता है जैसे अग्नि वन को जला डालती है ॥३५॥ अतुलनीय पाप करके भी जो व्यक्ति मृत्यु की बेला में भस्म स्नान कर लेता है वह शीघ्र ही पापों से मुक्त हो जाता है ॥३६॥ भस्म स्नान करने के कारण विशुद्ध आत्मा वाला जितेन्द्रिय तथा जितक्रोध पुरुष मेरे पास आकर जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है ॥३७॥ जो लोग सोमवती अमावस्या के दिन अपने शरीर में भस्म लगाकर शिवलिङ्ग का दर्शन करते हैं वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं । उस दिन चन्द्रमा, वनस्पतियों में प्रवेश कर जाता है ॥३८॥ दीर्घायु चाहने वाले, या ऐश्वर्य चाहने वाले अथवा मोक्ष चाहने वाले विद्वान् ब्राह्मण को भस्म धारण करना चाहिए ॥३९॥ त्रिपुण्ड्र अत्यन्त पुण्यमय है, वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवमय होता है । त्रिपुण्ड्र धारी को देखकर भयंकर राक्षस, प्रेत, छोटे-छोटे हिंसंक जीव, उसके सामने से भाग जाते हैं । शौच आदि क्रियाओं को करके शुद्ध जल से स्नान करे ॥४१॥ उसके बाद पैर के तलवे से लेकर मस्तक पर्यन्त भस्म स्नान करना चाहिए । केवल जल में स्नान करने से शरीर का बाह्य मल दूर होता है ॥४२॥ किन्तु भस्म स्नान से वाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार के मल विनष्ट हो जाते हैं । जल में स्नान को छोड़कर भस्म स्नान करना चाहिए ॥४३॥ हे मुने ! भस्म स्नान किए विना किया गया भी कृत्य नहीं किए गये के समान होता है । श्रुतियों में भस्म स्नान को आग्नेय स्नान कहा गया है ॥४४॥ भस्म स्नान करने से भीतर तथा बाहर से शुद्ध होने के कारण शिवपूजा करने का फल मिलता है । जल में किया गया स्नान तो बाहरी मल को विनष्ट करने वाला है ॥४५॥ भस्म स्नान प्राणी के बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार के मलों को नष्ट कर देता है । करोड़ों बार जल स्नान करके भी ॥४६॥ हे मुने ! पुरुष भस्म स्नान के विना शुद्ध नहीं होता है । जो व्यक्ति भस्म स्नान की महिमा को जानता है वही वेद के तत्त्व को जानता है ॥४७॥ अथवा भस्म की महिमा को सर्वदेव

वैदिकम् ॥४८॥ स तत्कर्मकलार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः । यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि ॥४९॥ स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुतिश्रुतः । पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम् ॥५०॥ न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत् । अनन्तैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः ॥५१॥ ततोऽनंत गुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते । कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५२॥ भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत् । मूत्राद्युत्सर्जनांते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः ॥५३॥ कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यंति मानवाः । विंधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः॥५४॥ न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि । अपानवायुनिर्याते जृम्भणे स्कन्दने कृते ॥५५॥ श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः । श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः ॥५६॥ पुनश्च संप्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम् । सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुङ्गव॥५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

शिखामणि महादेव ही जानते हैं । भस्म स्नान किए विना ही कोई यदि वैदिक कर्म करता है तो वह कर्म भस्म स्नान करके कर्म करने वाले के फल के चतुर्थांश फल के समान भी फलद नहीं होता है ॥४८-४९॥ श्रुति कहती है कि भस्म स्नान करने वाला ही सभी कर्मों को करने का एकमात्र अधिकारी होता है । श्रुति के अनुसार भस्म स्नान सर्वश्रेष्ठ पवित्र कारक है ॥५०॥ जो अज्ञान के कारण भस्म स्नान नहीं करता वह महापातकी हो जाता है । ब्राह्मण अनन्त वारुणस्नान (जलस्नान) करके जिस फल को प्राप्त करते हैं ॥५१॥ उसके अनन्तगुना अधिक फल भस्म स्नान से होता है । अतएव प्रयत्न पूर्वक त्रिकाल भस्म स्नान करना चाहिए ॥५२॥ भस्म स्नान वेद प्रतिपादित है, उसको त्यागने वाला पतित हो जाता है । मूत्र इत्यादि त्यागने के बाद तो भस्म स्नान अवश्य करना चाहिए ॥५३॥ उसके बिना कोई पवित्र नहीं होता है । विधिपूर्वक पावित्र्य क्रिया सम्पादित करके भी कोई ब्राह्मण ॥५४॥ न तो पवित्र होता है और न कर्म करनें का अधिकारी होता है । अपान वायु के निकलने पर ब्राह्मण न तो पवित्र होता है और न कर्म करने का अधिकारी होता है। अपान वायु के निकलने पर, जम्भाई आने पर, पतली टट्टी होने पर तथा खाँसने पर भी भस्म स्नान अवश्य करना चाहिए । यहाँ पर मैंने भस्म स्नान की महिमा का एक अंश बतलाया है ॥५५-५६॥ इसके बाद भी भस्म स्नान की महिमा को मैं बतलाऊँगा । हे मुनिपुंगव ! उसे सावधानमना होकर सुनना चाहिए ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्याय:

नारायण उवाच– अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्भस्म संशोध्य सादरम् । धारणीयं ललाटादौ त्रिपुंड्रं केवलं द्विजैः ॥१॥ ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः। तस्माद्द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुंड्रं धार्यमन्वहम् ॥२॥ यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते । तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् ॥३॥ विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्म समाचरेत् । तत्कृतं चाकृतंप्रायं भवत्येव न संशयः ॥४॥ न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना । ततो धृत्वैव भस्मांगो गायत्रीजपमाचरेत् ॥५॥ गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुङ्गव । सा भस्मधारणाभवे न केनाप्युपदिश्यते ॥६॥ न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने । यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम् ॥७॥ भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम् । एवमेव मया ब्रह्मन्हेतुरुक्तः सुपुण्यदः ॥८॥ मंत्रपूतं सितं भस्म ललाटे यस्य वर्तते । स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥९॥ यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे । स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन्सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥१०॥ न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे । स चांडल इति ज्ञेयो जन्मजन्मांतरे ध्रुवम् ॥११॥ न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिषु । स चांडाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते ॥१२॥ ये भस्मधारणं त्यक्त्वा

भस्मधारण की महिमा

नारायण ने कहा– आदरपूर्वक 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रों से भस्म का संशोधन करके केवल ललाट इत्यादि अङ्गों में ही भस्म लगाना चाहिए।।१।। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों वर्णों को द्विज कहा गया है । अतएव द्विजों को प्रतिदिन भस्म धारण करना चाहिए ।।२।। हे ब्रह्मन् ! जिसका उपनयन संस्कार होता है उसे ही द्विज कहा जाता है । अतएव द्विजों को श्रौत त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए ।।३।। यदि कोई विभूति धारण किए बिना किसी सत्कर्म को करता है तो उसके द्वारा किया गया वह सत्कर्म नहीं किए गये के बराबर ही होता है ।।४।। भस्म धारण किए विना गायत्री का उपदेश भी नहीं मिलता है । अतएव भस्म धारण करके ही गायत्री का जप करना चाहिए ।।५।। हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मण्य प्राप्ति का मूल कारण गायत्री ही कही गयी है, और भस्म धारण के बिना कोई भी गायत्री का उपदेश नहीं देता है ।।६।। हे मुने ! गायत्री ग्रहण करने का अधिकार तब तक नहीं मिलता है जब तक की अग्नि से उत्पन्न भस्म को ललाट आदि में धारण न कर लिया जाय ।।७।। भस्म से रहित ललाट को देखकर ब्राह्मणत्व का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, इसीलिए मैंने भस्म को इतना पुण्यप्रद बतलाया है ।।८।। हे नारदजी ! मैं यह सत्य कहता हूँ कि जिसके ललाट में मन्त्र से पवित्रित उजला भस्म विद्यमान है, वही ब्राह्मण है ।।९।। हे ब्रह्मन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि जिसका मणि के संग्रह के समान ही भस्म के संग्रह में प्रेम है वही ब्राह्मण है ।।१०।। जिसका

भुंजंते च फलादिकम् । ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥१३॥ (''विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति । स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः । सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः ॥'') विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि । न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः ॥१४॥ यथोपवीतरहितैः संध्या न क्रियते द्विजैः । तथा संध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि ॥१५॥ गतोपवीतैः सन्ध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्वचित् । जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम् ॥१६॥ विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति प्रतिनिधिः क्वचित् । विभूतिधारणं त्यक्त्वा यदि सन्ध्यां करोति यः ॥१७॥ प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः । यथा श्रुत्वांत्यजो वेदान्प्रत्यवैति तथा द्विजः ॥१८॥ प्रत्यवैति न सन्देहः सन्ध्याकृद्भस्मवर्जितः । संपादनीयं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजैः ॥१९॥ स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः । यादृशं तादृशं वाऽस्तु पवित्रं भस्म संततम् ॥२०॥ धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः संध्यादिकर्मसु । न संविशंति पापानि भस्मनिष्ठे ततः सदा ॥२१॥ कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम् । मध्यांगुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ॥२२॥ षडङ्गुलायतं मानमपि चाधिकमानकम् । नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुंड्रकम्॥२३॥

मणि के संग्रह में होने वाले प्रेम के समान भस्म के संग्रह में प्रेम नहीं है, उसके विषय में जानना चाहिए कि यह पूर्वजन्म का चाण्डाल है ॥११॥ जिसका त्रिपुण्ड्र धारण तथा भस्म स्नान में स्वाभाविक प्रेम नहीं है, उसे चाण्डाल समझना चाहिए, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥१२॥ जो व्यक्ति भस्मधारण किए विना फल आदि खा लेता है, वह निश्चित रूप से घोर नरक में जाता है ॥१३॥ (विभूति धारण किए विना शिवजी की पूजा करेगा वह दौर्मात्य युक्त, शिव से द्वेष करने वाला है । द्वेष से नरक की प्राप्ति होती है । भस्म धारण नहीं करने वाला किसी भी काम को करने का अधिकारी नहीं होता है ।) जो लोग विभूति धारण किए विना सुवर्ण की तुला का दान करके भी उसके फल को नहीं प्राप्त करते हैं, वे पतित हो जाते हैं ॥१४॥ जिस तरह यज्ञोपवीत से रहित पुरुष का संध्या करने में अधिकार नहीं है, उसी तरह विभूतिधारण से रहित व्यक्ति का संध्या करने में अधिकार नहीं हैं ॥१५॥ जिसका यज्ञोपवीत किसी प्रकार से उत्तर जाता है तो वह उसके प्रायश्चित रूप से गायत्री जप, व्रत तथा उपवास करके संध्या बन्दन करता है ॥१६॥ किन्तु विभूति नहीं धारण का तो कोई प्रायश्चित है नहीं अतएव विभूति धारण किए विना यदि कोई सन्ध्या करता है ॥१७॥ तो उसे पाप लगता है, अतएव विभूति धारण के विना द्विज संध्या करने का अधिकारी नहीं होता है । जिसतरह शूद्र वेद का श्रवण करके पाप का ही भागी बनता है, उसी तरह द्विज भी ॥१८॥ विभूति धारण किए विना संध्या करके पाप का भागी ही बनता है । इसीलिए द्विज को श्रौत भस्म प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए ॥१९॥ श्रौत न प्राप्त हो तो स्मार्त यदि वह भी न प्राप्त हो तो लौकिक ही विभूति सम्पादित करना चाहिए । [illegible] भी विभूति हो वह सदा पवित्र ही होती है ॥२०॥ अतएव द्विजों को संध्या आदि कर्मों में प्रयत्न पूर्वक विभूति धारण करना चाहिए । भस्म निष्ठ व्यक्ति से पापों का संपर्क नहीं होता है ॥२१॥ ब्राह्मणों को भी प्रयत्न पूर्वक

कदाचिद्भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः । अकारोऽनामिका प्रोक्ता उकारो मध्यमांगुलिः ॥२४॥ मकारस्तर्जनी तस्मात्त्रिपुंड्रं त्रिगुणात्मकम् । त्रिपुंड्रं मध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः ॥२५॥ अत्र ते कथयाम्येनमितिहासं पुरातनम् । कदाचिदथ दुर्वासाः पितृलोकं गतोऽभवत् ॥२६॥ भस्मसंदिग्धसर्वांगो रुद्राक्षाभरणान्वितः । शिव शङ्कर सर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदम्बिके ॥२७॥ नामानीति गृणन्नुच्चैस्तापसानां शिखामणिः । कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२८॥ आसनाद्युपचारैश्च संमानं बहु चक्रिरे । नानाकथाभिरन्योन्यसंभाषां चक्रिरे तदा ॥२९॥ तस्मिंस्तु समये कुंभीपाकस्थानां तु पापिनाम् । घोरः समभवच्छब्दो हा हताः स्मेतिवादिनाम् ॥३०॥ मृताः स्मेति वंदत्येके दग्धाः स्मेति परे जगुः । छिन्ना स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणः ॥३१॥ श्रुत्वा तं करुणं शब्दं दुःखितो मुनिराड् हृदि । पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यति ॥३२॥ ते समूचुर्मुनेऽत्रैव पुरी संयमनी परा । वर्तते यमराडत्र पापिनां भोगदायकः । नानादूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयङ्करैः । सहितोऽत्रैव तत्पुर्या नायको विद्यतेऽनघ ॥३४॥ तत्र कुण्डान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च । षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैः परिकृतानि च ॥३५॥ तत्र मुख्यतमं कुण्डं कुंभीपाकाभिधं महत् । वर्तते तद्गतानां

भस्म धारण करना चाहिए अपने दाहिने हाथ के बीच की तीन अंगुलियों से ही ॥२२॥ छह अंगुल लम्बा अथवा उससे अधिक लम्बा त्रिपुण्ड्र लगाये । जो लोग अपने ललाट पर एक नेत्र से दूसरे नेत्र पर्यन्त लम्बा तथा देदीप्यमान त्रिपुण्ड्र लगाते हैं वे रुद्रस्वरूप हो जाते हैं । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । 'ओम्' के अकार से अनामिका अंगुलि बतलायी गयी है, उकार से मध्यमांगुलि ॥२३-२४॥ मकार से तर्जनी अंगुलि कही गयी है अतएव त्रिपुण्ड्र त्रिगुणात्मक है कभी भी मध्यमा, तर्जनी और अनामिका इन तीनों अंगुलियों से अनुलोम क्रोध से भी (वायें से दाहिनी ओर) त्रिपुण्ड्र की रेखाओं को नहीं बनानी चाहिए ॥२५॥ इस विषय में मैं एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ । एक बार महर्षि दुर्वासा पितृलोक में गये ॥२६॥ वे सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाये थे और रुद्राक्ष के आभूषणों को धारण किए हुए थे । वे तापस शिरोमणि जोर-जोर से भगवान् शिव और माता जगदम्बा के नाम का उच्चारण कर रहे थे । उनका कव्यवाड तथा अनल आदि पितरों ने खड़ा होकर प्रणाम करके सम्मान किया और परस्पर में उन लोगों ने अनेक प्रकार की चर्चा भी की॥२९॥ उसी समय कुम्भीपाक नामक नरक में रहने वाले पापी जीवों का हाय हमलोग मारे गये, इस प्रकार का शब्द जोर से सुनायी दिया ॥३०॥ किसी ने कहा मैं मर गया, दूसरे ने कहा हम जल गये । कुछ ने कहा हम तो कट गये इस तरह से चिल्लाकर वे रो रहे थे ॥३१॥ उन जीवों के करुण शब्द को सुनकर महर्षि दुर्वासा हृदय से दुःखी हो गये । उन्होंने पितृनाथों से पूछा यह किसका शब्द है ?॥३२॥ उनको पितृनाथों ने बतलाया यहीं पर संयमनी पुरी है । यहाँ यमराज पापियों को दण्ड देते हैं ॥३३॥ काल के समान अत्यन्त भयंकर काले काले यमदूतों के साथ वे संयमनी पुरी में विराजमान रहते हैं ॥३४॥ पापियों को भोग प्रदान करने वाले वहाँ पर अनेक कुण्ड हैं । उन कुण्डों की संख्या छियासी है । उन कुण्डों की रक्षा वे भयंकर यमदूत किया

च यातनानां तु वर्णनम् ॥३६॥ कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि । ये शिवद्रोहिणः संति तथा देवीविनिंदकाः ॥३७॥ ये विष्णुद्रोहिणः सन्ति पतंत्यत्रैव ते मुने । ये वेदनिंदकाः संति सूर्यस्य च गणेशितुः ॥३८॥ ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतंत्यत्रैव ते मुने । कामाचाराश्च ये संति तप्तमुद्रांकिताश्च ये ॥३९॥ त्रिशूलधारिणो ये च पतंत्यत्रैव ते मुने । मातृपितृगुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिंदकाः ॥४०॥ ये धर्मदूषकाः सन्ति पतंत्यत्रैव ते मुने । तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः ॥४१॥ श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत् । इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया॥४२॥ उत्थाय चलितस्तूर्णं ययौ कुंडसमीपतः । अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने ॥४३॥ तत्रस्थानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम् । हसंति केचिद्गायंति नृत्यन्ति च तथापरे ॥४४॥ परस्परं रमंते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात् । मृदंगमुरजवीणाढक्कादुन्दुभिनिःस्वनाः ॥४५॥ समुद्भूतास्तु मधुराःपञ्चस्वरविभूषिताः । वसंतवल्लीपुष्पाणां सुगंधमरुतो ववुः ॥४६॥ मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः । शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने ॥४७॥ महाराज महाश्चर्यमधुनैवाभवद्विभो । स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुम्भीपाकस्थपापिनाम् ॥४८॥ निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो।

करते हैं ॥३५॥ उन सबों में मुख्य कुण्ड का नाम कुम्भीपाक है । उस कुण्ड में पड़ने वाले जीवों की जो यातना दी जाती है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी कोई नहीं कर सकता है । हे मुने ! जो जीव शिवजी से द्रोह करते हैं, देवी की निन्दा करते हैं ॥३७॥ भगवान् विष्णु से द्रोह करते हैं, वे इसी कुण्ड में गिरते हैं । जो वेद की निन्दा करते हैं, सूर्य और गणेश की निन्दा करते हैं तथा जो ब्राह्मणों के द्रोही है, वे भी इसी कुण्ड में गिरते हैं । जो मनमाना आचरण करते हैं, तथा तप्त मुद्राओं को धारण करते हैं ॥३८-३९॥ जो अपने हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, हे मुने ! वे भी इसी कुण्ड में गिरते हैं । जो अपनी माता, पिता, गुरु तथा अपने से बड़े लोगों की निन्दा करते हैं तथा पुराणों एवं स्मृतियों की निन्दा करते हैं ॥४०॥ धर्म को जो दूषित करने वाले हैं, हे मुने ! वे भी इसी कुण्ड में गिरते हैं । उन्हीं जीवों के ये अत्यन्त भयंकर कठोर शब्द हैं ॥४१॥ उन शब्दों को हमलोग सदा सुनते रहते हैं । इसके सुनने से ही संसार से वैराग्य हो जाता है । इस तरह से उन पितृनाथों की वाणी को सुनकर उन जीवों को देखने की इच्छा से॥४२॥ मुनिराज दुर्वासा उठकर शीघ्र चल दिये और उस कुण्ड के समीप आये । हे नारदजी वे जिस समय नीचे की ओर मुँह करके देखने लगे उसी समय उन पापी जीवों को स्वर्ग से भी अधिक सुख मिलने लगा । उसमें से कुछ हँसने लगे, कुछ गाने लगे तथा कुछ परस्पर में रमण करने लगे, क्योंकि उन सबों को अत्यधिक सुख मिल रहा था । मृदंग मुरज वीणा ढक्का तथा दुन्दुभि की ध्वनि सुनायी देने लगी ॥४३-४५॥ ये सभी मधुर तथा पञ्चम स्वर से भूषित ध्वनियाँ सुनायी दे रही थीं । वासन्ती लता की सुगन्धि लेकर हवा चलने लगी ॥४६॥ यह देखकर दुर्वासा मुनि और यमदूत सभी आश्चर्यचकित हो गये। उन सबों ने शीघ्र ही जाकर इन सारी बातों को यमराज को बतलाया ॥४७॥ उन सबों ने यमराज से कहा— हे स्वामिन् ! इस समय कुम्भीपाक के पापी

**चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदंतिकम् ॥४९॥ निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः । महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापिनः ॥५०॥
तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वाराऽमरावतीम् । श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह ॥५१॥ ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुण्ठाद्विष्टरश्रवाः ।
तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह ॥५२॥ परिवार्य स्थिताः सर्वे कुम्भीपाकमितस्ततः । अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान्॥५३॥
चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम् । अहो पापस्य भोगार्थं कुण्डमेतद्विनिर्मितम् ॥५४॥ तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम् ।
उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम् ॥५५॥ भगवांस्तस्य संकल्पं वितथं कृतावान्कथम् । आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येव भाषिणः ॥५६॥ तटस्था
अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम् । एतस्मिन्नंतरे शौरिः संमंत्र्य विबुधादिभिः ॥५७॥ ययौ कैश्चित्सुरगणैः सहितः शङ्करालयम् । पार्वत्या सहितं
देवं कोटिकंदर्पसुन्दरम् ॥५८॥ रमणीयतमांगं तं लावण्यखनिमद्भुतम् । सदा षोडशवर्षीयं नानालंकारभूषितम् ॥५९॥ नानागुणैः परिवृतं लालयंतं
परां शिवाम् । ददर्श चंद्रमौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह ॥६०॥ वृत्तांतं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम् । एतस्य कारणं देव न जानीमः कथंचन॥६१॥**

जीवों को स्वर्ग से भी अधिक सुख मिलने लगा है ॥४८॥ इसका कारण क्या है ? इस बात को हमलोग नहीं जानते हैं । इसी बात को बतलाने के लिए हमलोग आपके पास आये हैं ॥४९॥ यमदूतों की बात सुनकर यमराज शीघ्र उठकर महामहिष पर सवार होकर उन पापियों के पास आये ॥५०॥ उन्होंने इस समाचार को दूत द्वारा अमरावती भेजा । इस बात को सुनकर देवराज भी देवताओं के साथ आ गये ॥५१॥ ब्रह्मलोक से ब्रह्माजी, वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु तथा विभिन्न लोकों से सभी दिक्पाल भी अपने समाज के साथ आ गये ॥५२॥ वे सब कुम्भीपाक को घेरकर खड़े हो गये और स्वर्गलोक से भी अधिक सुखी कुम्भीपाक के जीवों को देखने लगे ॥५३॥ वे सभी आश्चर्यित थे और उसका कारण नहीं जान पा रहे थे । वे सोच रहे थे कि यह कुम्भीपाक तो पापों का फल भोगने के लिए बना है ॥५४॥ यदि यहाँ भी सुख मिलने लगा तो पाप करने से कौन सा भय होगा ?। परमात्मा के द्वारा बनायी गयी वेद की मर्यादा कैसे विनष्ट हो गयी ॥५५॥ परमात्मा ने अपने संकल्प को कैसे बदल दिया । सभी लोग यही कह रहे थे कि यह तो यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है ॥५६॥ जब सभी देवता तटस्थ हो गये तो भगवान् विष्णु देवताओं आदि से परामर्श करके ॥५७॥ कुछ देवताओं के साथ कैलास गये । वहाँ उन्होंने करोड़ो कामदेवों से भी सुन्दर ॥५८॥ अत्यन्त मनोहर अङ्गों वाले अद्भुत लावण्य सागर सदा सोलह वर्ष की अवस्था वाले, अनेक अलंकारों से अलंकृत ॥५९॥ पार्वतीजी के साथ शङ्करजी को देखा । उस समय शङ्करजी के चारो ओर अनेक गण खड़े थे और शङ्करजी पराम्बिका पार्वतीजी को प्यार कर रहे थे । चन्द्रमौलि शङ्करजी तथा चारोवेदों को देखकर विष्णु भगवान् ने नमस्कार किया ॥६०॥ और उस अत्यन्त अद्भुत चमत्कार को सुनाया और कहा कि हमलोग इस चमत्कार का कारण नहीं जान पा रहे हैं ॥६१॥ हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, बतलाइयें इसका कारण क्या है ? भगवान् विष्णु की

वद यत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो । विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपंकजः ॥६२॥ उवाच मधुरं वाक्यं मेघगंभीरया गिरा । शृणु
विष्णो तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते ॥६३॥ भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्न हि । कुंभीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसंमतः ॥६४॥
अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदा वायुवशाद्धरे । भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः ॥६५॥ तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम् । इतः परं तु
तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम् ॥६६॥ भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत् । पितृतीर्थे तु तन्नाम्नाऽप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति ॥६७॥
मल्लिंगस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम । पूजयिष्यंति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः ॥६८॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत् ।
पित्रीश्वरीपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥६९॥ नारायण उवाच— **इति देववचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च । तदनुज्ञां समादाय ययौ देवांतिकं**
हरिः ॥७०॥ तत्सर्वं कथयामास कारणं शंकरोदितम् । साधु साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः ॥७१॥ शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः
सुराः । पितरश्चैव संतुष्टास्तीर्थलाभात्परन्तप ॥७२॥ तत्तीर्थतीरे लिगं च देव्या मूर्तिं यथाविधि । स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम् ॥७३॥
तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः । ते विमानं समारुह्य गताः कैलासमंडलम् ॥७४॥ नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसंत्यद्यापि तत्र हि । पुनश्च

बात सुनकर शङ्करजी का मुख कमल प्रसन्न हो गया ॥६२॥ उन्होंने मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा— हे विष्णो ! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, आप
इसका कारण सुनें ॥६३॥ यह भस्म की महिमा है । भस्म से क्या नहीं हो सकता है ? कुम्भीपाक को देखने के लिए शैवमतावलम्बी महर्षि दुर्वासा गये
थे ॥६४॥ उन्होंने नीचे मुख करके देखा, उस समय हवा के कारण उनके ललाट से भस्म के कण भाग्यवशात् नीचे गिरे ॥६५॥ उसी के कारण यह सब
हुआ है, यह सब कुछ भस्म की महिमा है । आज के बाद वह कुण्ड पितृलोक में रहने वालों के लिए तीर्थ ॥६६॥ हो जायेगा । उसमें स्नान करके जीव
सुखी हो जायेंगे । और आज से उसका नाम पितृतीर्थ हो जायेगा ॥६७॥ हे देवश्रेष्ठ ! वहाँ पर मेरे लिङ्ग तथा देवी की मूर्ति की स्थापना कर देनी चाहिए
और पितृलोक में रहने वाले जीव उसकी पूजा करेंगे ॥६८॥ त्रैलौक्य में जितने तीर्थ हैं उन सबों में यह श्रेष्ठ तीर्थ होगा और पित्रीश्वरी की पूजा करने
से त्रैलोक्य की पूजा हो जायेगी ॥६९॥ **नारायण ने कहा—** इस प्रकार से शङ्करजी की वाणी को सुनकर श्रीहरि ने शिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और
उनकी आज्ञा लेकर श्रीहरि देवताओं के पास गये ॥७०॥ शङ्करजी के द्वारा कही गयी सारी बातों को देवताओं को सुनाये । सभी देवताओं ने अपना शिर
हिलाकर धन्य-धन्य कहा ॥७१॥ हे परन्तप ! उसी समय श्रीहरि तथा ब्रह्मा आदि देवता भस्म की महिमा का बखान करने लगे और तीर्थ का लाभ हो जाने
से पितृगण भी सन्तुष्ट हो गये ॥७२॥ उस तीर्थ के तट पर देवताओं ने शिवलिङ्ग तथा देवी की मूर्ति की स्थापना करके प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगे॥७३॥

दूरदेशे तु कुंभीपाको विनिर्मितः ॥७५॥ निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात् । इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥७६॥ नातः परतरं किचिदधिकं विद्यते मुने । ऊर्ध्वपुंड्रविधिं चैवाप्यधिकारिविभेदतः ॥७७॥ प्रवक्ष्ये मुनिशार्दूल वैष्णवागमलोकनात् । ऊर्ध्वपुंड्रप्रमाणानि दिव्यान्यंगुलिभेदतः॥७८॥ वर्णाभिमंत्रदेव्याश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च । पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः ॥७९॥ सिंधुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते । मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः ॥८०॥ श्यामं शांतिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत् । श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते ॥८१॥ अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत् अनामिकान्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ॥८२॥ एतैरंगुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् । बर्तिदीपावलिकृतिं वेणुपत्राकृतिं तथा ॥८३॥ पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः । मत्स्यकूर्माकृति वापि शंखाकारं ततः परम्॥८४॥ दशांगुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते । नवांगुलं मध्यमं स्यादष्टांगुलमतः परम् ॥८५॥ सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम् । चतुस्त्रिद्व्यंगुलैः पुंड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत् ॥८६॥ ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे । माधवं हृदि विन्यस्य गोविंदं कंठकूपके ॥८७॥ उदरे

उस समय वहाँ पर जो जीव थे वे विमान पर आरुढ होकर कैलास मण्डल में चले गये ॥७४॥ आज भी वे जीव कैलास मण्डल में भद्रगण के नाम से निवास करते हैं । उसके बाद उस स्थान से दूर कुम्भीपाक नामक कुण्ड का निर्माण हुआ ॥७५॥ उसी दिन से देवता उस कुम्भीपाक के पास शैवों को जाने से रोकते हैं । इस तरह से मैंने आपको भस्म के उत्तम तथा सम्पूर्ण माहात्म्य को सुनाया ॥७६॥ हे मुने ! भस्म से बढ़कर कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है । अधिकारी के भेद से ऊर्ध्वपुण्ड्र भी लगाने का विधान है ॥७७॥ मैं आपको वैष्णवागम के अनुसार अंगुलि के भेद से ऊर्ध्वपुण्ड्र के दिव्य प्रमाणों को सुनाऊँगा ॥७८॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र के वर्ण, मन्त्र, देवता तथा फल का वर्णन करूँगा । पर्वत की चोटी की, या नदी के तीर की विशेष रूप से शिवक्षेत्र की ॥७९॥ विशेष रूप से सिन्धु के तीर की, वल्मीक की अथवा तुलसी के जड़ की मिट्टी को लेना चाहिए, दूसरी मिट्टी को नहीं लेना चाहिए ॥८०॥ श्याम वर्ण की मिट्टी शान्ति प्रदान करने वाली, रक्त वर्ण की मिट्टी अपने वश में करने वाली होती है, पीत वर्ण की मिट्टी धन प्रदान करने वाली होती है ॥८१॥ अंगूठे से लगाया गया ऊर्ध्वपुण्ड्र पुष्टि प्रदान करने वाला होता है, मध्यमा अंगुलि से ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाने से आयु बढ़ती है । अनामिका अंगुलि अन्न (भोग्य पदार्थ) को प्रदान करती है और तर्जनी अंगुलि मोक्ष प्रदान करने वाली है ॥८२॥ इन्हीं अंगुलियों से ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने चाहिए ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने में नख का स्पर्श नहीं होना चाहिए । ऊर्ध्वपुण्ड्र दीपक की वत्ती के आकार का, या बांस के पत्ते के आकार का ॥८३॥ या कमल की कली के आकार का लगाना चाहिए । या मछली के आकार का या कछुए के आकार का या शंख के आकार का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना चाहिए ॥८४॥ दश अंगुल लम्बा ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तमोत्तम होता है । नव अंगुल, आठ अंगुल भी उत्तम है ॥८५॥ सात अंगुल या छह तथा पाँच अंगुल लम्बा ऊर्ध्व पुण्ड्र मध्यम कोटि का होता है, इसी तरह

दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते । तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च ॥८८॥ त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम् । श्रीधरं बाहुके वामे
हृषीकेशं तु कर्णके ॥८९॥ पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत् । द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि ॥९०॥ पूजाकाले च होमे च
सायंप्रातः समाहितः । नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥९१॥ अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् । शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि
पुण्ड्रांकितो नरः ॥९२॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् । श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥९३॥ एकांतिनो महाभागा
मत्स्वरूपविदोऽमलाः । सांतरालान्प्रकुर्वंति पुण्ड्रान्विष्णुपदाकृतीन् ॥९४॥ परमैकांतिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः । हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु
वाऽमलान् ॥९५॥ अन्ये तु वैष्णवाः पुण्ड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः । प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥९६॥ अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान्कुर्युः
केवलवैष्णवाः । अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते ॥९७॥ एकांतिनां प्रपन्नानां परमैकान्तिनामपि । अच्छिद्रपुण्ड्रकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत्॥९८॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु यः कुर्याद्दण्डाकारं तु शोभनम् । मध्येछिद्रं वैष्णवाश्च नमोन्तैः केशवादिभिः ॥९९॥ विमलान्यूर्ध्वपुण्ड्राणि सांतरालानि यो नरः ।

अधम कोटि का ऊर्ध्वपुण्ड्र तीन प्रकार का होता है ॥८६॥ ललाट के ऊर्ध्वपुण्ड्र में केशव का विन्यास करे उदर पर के ऊर्ध्वपुण्ड्र में नारायण का, हृदय
के ऊर्ध्वपुण्ड्र में माधव का और कण्ठ के ऊर्ध्वपुण्ड्र में गोविन्द का विन्यास करे ॥८७॥ उदर के दाहिने भाग वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र में विष्णु का विन्यास बतलाया
गया है । उदर के वामपार्श्व वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र में मधुसुदन का दाहिने कान वाले पार्श्व में त्रिविक्रम का, वायीं कुक्षि में वामन का, वायी भुजा में श्रीधर का,
वाये कर्णप्रदेश में हृषीकेश का विन्यास करे ॥८८-८९॥ पृष्ठभाग के ऊर्ध्वपुण्ड्र में पद्मनाभ का और ककुद भाग में दामोदर का न्यास करे । ये सभी द्वादश
नाम ऊर्ध्वपुण्ड्रों के हैं । शिरोभाग में वासुदेव का न्यास करे ॥९०॥ पूजा करते समय तथा होम की बेला में सायंकाल तथा प्रातःकाल सावधानी पूर्वक इन
उपर्युक्त नाम का उच्चारण करते हुए ऊर्ध्व पुण्ड्रों को धारण करना चाहिए ॥९१॥ अपवित्र, अनाचारी, मन से पाप करने वाले भी इन ऊर्ध्वपुण्ड्रों को लगाने
से पवित्र हो जाते हैं ॥९२॥ चाण्डाल जाति का भी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला चाहें जहाँ कहीं भी अपने शरीर का त्याग करे, वह विमान में बैठकर
मेरे (नारायण के) लोक में आकर पूजित होता है ॥९३॥ निर्मल ऐकान्तिक भक्त जो मेरे स्वरूप को जानते हैं वे सच्छिद्र तथा भगवान् विष्णु के पैर की
आकृति वाले ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करते हैं ॥९४॥ इसी तरह जो मेरे परम ऐकान्तिक भक्त है, वे निर्मल, त्रिशूल के आकार वाले हरिद्राचूर्ण से युक्त
ऊर्ध्वपुण्ड्रों को धारण करते हैं ॥९५॥ जो केवल वैष्णव हैं, वे गृहस्थ श्रीवैष्णव भक्तिपूर्वक निश्चिछद्र भी, पद्मपत्र या बाँस के पत्र के समान आकार वाले
ऊर्ध्वपुण्ड्रों को लगाते हैं ॥९६॥ केवल वैष्णव गृहस्थ चाहे निश्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें या सच्छिद्र उनको किसी भी प्रकार का पाप नहीं लगता है ॥९७॥
किन्तु जो एकान्ती तथा परमैकान्ती भगवद् भक्त हैं वे यदि निश्छिद्र ऊर्ध्वपुवड्र लगाते हैं तो उनको बहुत बड़ा पाप लगता है ॥९८॥ जो श्रीवैष्णत दण्ड

करोति विपुलं तत्र मन्दिरं मे करोति सः ॥१००॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे । लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः॥१०१॥
निरंतरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः । स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति ॥१०२॥ अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु यः करोति विमूढधीः ।
स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम् ॥१०३॥ ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सांतरालानि विन्यसेत् । ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दण्डाब्जदीपमत्स्यनिभानि च॥१०४॥
शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजेन च । विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने ॥१०५॥ तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः ।
ऊर्ध्वपुंड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रकम् ॥१०६॥ अर्धचन्द्रादिकं लिंगं वेदनिष्ठो न धारयेत् । जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपंथानमाश्रितः ॥१०७॥
पुण्ड्रांतं भ्रमाद्वापि ललाटे नैव धारयेत् । ख्यातिकांत्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्ण्वागमादिषु ॥१०८॥ स्थितं पुण्ड्रांतरं नैव धारयेद्वैदिको जनः ।
तिर्यक्त्रिपुंड्रं संत्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात् ॥१०९॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम् । विना पुंड्रांतरं मोहाद्धारयन्नारकी भवेत्॥११०॥
वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि । पतत्येव न संदेहस्तथा पुंड्रांतरादपि ॥१११॥ नांकनं विग्रहे कुयद्विदमार्गं समाश्रितः । श्रौतधर्मैकनिष्ठानां

के आकार के सुन्दर तथा नीच में छिद्र युक्त केशवाय नमः इत्यदि द्वादश नमों का उच्चारण करते हुए ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं ॥९९॥ जो श्रीवैष्णव स्वच्छ, अतंराल युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्रों को लगाते हैं उनको मेरे विशाल मन्दिर के निर्माण का फल प्राप्त होता है ॥१००॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र के मनोहर तथा विशाल अन्तराल में लक्ष्मीजी के साथ भगवान् विष्णु का निवास होता है ॥१०१॥ जो वैष्णव निश्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगता है वह ऊर्ध्वपुण्ड्र में स्थित भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी का वध करता है ॥१०२॥ जो अज्ञानी निश्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगाता है, वह क्रमशः इक्कीस प्रकार के नरकों में बारी-बारी से जाता है॥१०३॥ अतएव स्पष्ट पार्श्वभाग वाले तथा सच्छिद्र दण्ड, कमल, दीप अथवा मत्स्य इत्यादि के आकार वाले ऊर्ध्वपुण्ड्रों को लगाना चाहिए ॥१०४॥ द्विजों को चाहिए कि वह शिखा तथा यज्ञोपवीत के ही समान सदा ऊर्ध्वपुण्ड्रों को भी धारण करे । ऊर्ध्वपुण्ड्र किए विना जितने भी कर्मों को वह करता है वे व्यर्थ हो जाते हैं ॥१०५॥ इसलिए बुद्धिमान ब्राह्मण को चाहिए कि वह समस्त नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते समय त्रिशूल अथवा गोल या चौकोर ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे ॥१०६॥ किन्तु वैदिक ब्राह्मणों को अर्द्धचन्द्र के आकार का तिलक नहीं लगाना चाहिए । जो जन्म से ब्राह्मण हों और वैदिकमार्गानुयायी हों उन्हें भूलकर भी अपने ललाट पर त्रिपुण्ड से भिन्न पुण्ड्र नहीं धारण करना चाहिए । वैष्णवागम आदि में ख्याति प्राप्त करने तथा शारीरिक कान्ति की प्राप्ति के लिए बतलाये गये दूसरे पुण्ड्रों को वैदिकों को नहीं धारण करना चाहिए । तिरक्षा त्रिपुण्ड्र को छोड़कर भ्रम के कारण ॥१०७-१०८॥ भी अपने ललाट पर दूसरा कोई पुण्ड्र नहीं धारण करना चाहिए । त्रिपुण्ड्र से भिन्न पुण्ड्र धारण करने वाला नारकी होता है ॥११०॥ केवल वेदमार्गी में

तु लिंगं श्रौतमेव हि ॥११२॥ अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिंगमीरितम् । देवता वेदसिद्धा यास्तासां लिंगं तु वैदिकम् ॥११३॥ अश्रौततंत्रनिष्ठा यास्तासामश्रौतमेव हि । वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः ॥११४॥ भक्तानामुपकाराय श्रौतं लिंगं दधाति च । वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिंगं न चेतरत् ॥११५॥ प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि । श्रौतं लिंगं तु विज्ञेयं त्रिपुंड्रोद्धूलनादिकम् ॥११६॥ अश्रौतमूर्ध्वपुंड्रादि नैव तिर्यक्त्रिपुंड्रकम् । वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना ॥११७॥ ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि ॥११७॥ यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् । धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गंधवारिणा ॥११८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

निष्ठा रखने वाला यदि मोह (अज्ञान) से भी दूसरे पुण्ड्र को धारण कर लेता है तो निश्चित रूप से उसका पतन हो जाता है ॥१११॥ वेदमार्ग को अपने शरीर पर कोई चिह्न भी नहीं लगाना चाहिये । वैदिक धर्म वालों के लिए केवल लिङ्ग का ही चिह्न विहित है ॥११२॥ जो लोग श्रौतमार्गानुयायी नहीं हैं, उनके लिए ही अश्रौत चिह्न बतलाया गया है । वेद प्रतिपादित देवताओं में लिङ्ग ही सर्वश्रेष्ठ है ॥११३॥ जो वैदिकतंत्रनिष्ठ देवता हैं उनमें ही अवैदिक चिह्न प्रसिद्ध हैं । साक्षात् संसार से मुक्ति देने वाले महादेव ही वेदसिद्ध देवता हैं ॥११४॥ भक्तों का उपकार करने के ही लिए वे श्रौत चिह्न को धारण करते हैं । विष्णु भगवान् भी वेदसिद्ध देवता है । वे भी वेद सिद्ध चिह्न को छोड़कर दूसरा चिह्न नहीं धारण करते हैं ॥११५॥ भगवान् विष्णु के अवतार विशेष (रामकृष्ण इत्यादि) हैं, वे भी त्रिपुण्ड्र तथा भस्म स्नान से भिन्न चिह्न नहीं धारण करते हैं ॥११६॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र इत्यादि सभी चिह्न अवैदिक हैं केवल त्रिपुण्ड्र ही वैदिक है । केवल वेदमार्ग में निष्ठा रखने वालों को वैदिक विधि से अपने ललाट पर तिर्यक् त्रिपुण्ड्र ही धारण करना चाहिए ॥११७॥ जो भगवान् नारायण के भक्त हैं वे सुगन्धित चन्दन इत्यादि से अपने ललाट पर त्रिशूल इत्यादि के आकार का पुण्ड्र धारण करें ॥११८॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

नारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां पुण्यं संध्योपासनमुत्तमम् । भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात् ॥१॥ प्रातः संध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ । प्रातःसंध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम् ॥२॥ ससूर्यां पश्चिमां संध्यां तिस्रः संध्या उपासते । तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम ॥३॥ उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका । अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥४॥ उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमाऽस्तमिते रवौ। अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥५॥ विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र संध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा ॥६॥ संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥७॥ तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं संध्योपासनमुत्तमम् । तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्न हि ॥८॥ उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम् । तावत्संध्यामुपासीत प्रायश्चितं ततः**

सन्ध्योपासन का विवेचन

नारायण ने कहा– मैंने विस्तार से भस्मधारण के माहात्म्य को बतलाया, अब आप उत्तम सन्ध्योपासन का श्रवण करें ॥१॥ हे अनघ ! अब मैं आपको प्रातः सन्ध्या के विधान को बतलाता हूँ । जब तारे दिखायी देते हों उसी समय प्रातः सन्ध्या करनी चाहिए । जब सूर्य आकाश के मध्य में हो उस समय मध्याह्न संध्या करनी चाहिए ॥२॥ जब सूर्य दिखयी देते हों उसी समय सायं सन्ध्या करनी चाहिए । इस तरह संध्या की तीन प्रकार से उपासना की जाती है । उन संध्याओं का भी भेद मैं बतला रहा हूँ । हे देवर्षि श्रेष्ठ ! उसे आप सुनें ॥३॥ प्रातः संध्या तीन प्रकार की होती है । जब तारे दिखायी दे रहे हों उस समय की प्रातः संध्या उत्तम होती है । तारे जब छिप जायँ तो वह मध्यम कोटि की प्रातः सन्ध्या होती है । सूर्य के उदित हो जाने पर की जाने वाली प्रातः सन्ध्या अधम कोटि की होती है ॥४॥ इसी तरह सायं सन्ध्या भी तीन प्रकार की होती है । जब सूर्य दिखायी देते हों उस समय की सायं सन्ध्या उत्तम, सूर्यास्त के बाद में की जाने वाली सायं सन्ध्या मध्यम और तारों के निकल आने पर की जाने वाली सायं संध्या अधम कोटि की होती है ॥५॥ ब्राह्मण एक वृक्ष है । सन्ध्या ही उसकी जड़ है । वेद ही उस वृक्ष की शाखाएँ हैं और वैदिक धर्म विहित कर्म ही उसके पत्ते हैं । अतएव मूल की रक्षा सप्रयास करनी चाहिए । मूल (जड़) के कट जाने पर न तो शाखा रहती है न पत्ते ॥६॥ जो ब्राह्मण संध्या नहीं जानता है और न तो सन्ध्योपासन करता है वह जीते ही जी शूद्र हो जाता है और मरने के बाद कुत्ते की योनि में जाता है ॥७॥ अतएव प्रत्येक दिन उत्तम सन्ध्या करनी चाहिए, संध्या के विना ब्राह्मण किसी भी कर्म को करने का अधिकारी नहीं होता है ॥८॥ सूर्योदय तथा सूर्यास्त के तीन-तीन घड़ी बाद तक संध्या की जा सकती

परम् ॥९॥ कालातिक्रमणे जाते चतुर्थाऽर्घ्यं प्रदापयेत् । अथवाऽष्टशतं देवीं जप्त्वाऽऽदौ तां समाचरेत् ॥१०॥ यस्मिन्काले तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम् । संध्यामुपास्य पश्चातु तत्कालीनं समाचरेत् ॥११॥ गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा भवेत् । नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहे तदुत्तमा ॥१२॥ यतो देव्या उपासेयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ । संध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदाऽनंत्याय कल्पते ॥१३॥ एतस्या अपरं दैव ब्राह्मणानां न विद्यते । न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥१४॥ यथा भवेन्महादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता । सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना ॥१५॥ ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायंति जपंति च । वेदा जपंति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता ॥१६॥ तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः । आदिशक्तिमुपासंते गायत्रीं वेदमातरम् ॥१७॥ आचांतः प्राणमायम्य केशवादिकनामभिः । केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च ॥१८॥ गोविंदो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च । त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम् ॥१९॥ हृषीकेशः पद्मनाभो

है, उसके बाद प्रायश्चित्त करना पड़ता है । संध्या के समय के बीत जाने पर चार-चार सूर्यार्ध्य देना पड़ता है । पहले संध्या करके उसके बाद प्रायश्चित्त करना चाहिए । अथवा पहले प्रापश्चित्त के रूप में गायत्री का अष्टोत्तरशत जप करके सन्ध्या करनी चाहिए ॥९-१०॥ जिस समय में जो कर्म करना हो उस समय की अधीश्वर गायत्री देवी होती हैं । इसलिए पहले संध्या करके ही उस समय के कृत्य को करना चाहिए ॥११॥ अपने घर में की जाने वाली संध्या साधारण होती है गोशाला में की जाने वाली संध्या मध्यम कोटि की होती है, नदी के तट में की जाने वाली संध्या उत्तम कोटि की होती है तथा देवी के मन्दिर में की जाने वाली सन्ध्या उत्तमोत्तम होती है ॥१२॥ गायत्री देवी के उपासकों को देवी के सन्निकट ही संध्या करनी चाहिए । वहाँ सन्ध्योपासन करने से अनन्तानंत फल की प्राप्ति होती है ॥१३॥ ब्राह्मणों के लिए गायत्री से भिन्न कोई देवता नहीं है । भगवान् विष्णु अथवा शिव की उपासना ब्राह्मणों के लिए उस तरह से नित्य नहीं है ॥१४॥ जैसे श्रुति प्रतिपादित महादेवी गायत्री की उपासना नित्य है । अतएव गायत्री की समर्चा वेद का सार है ॥१५॥ ब्रह्मा आदि देवता भी संध्याकाल में गायत्री का ध्यान और जप करते हैं वेद भी गायत्री का नित्य जप करते हैं । अतएव गायत्री वेदोपास्य हैं ॥१६॥ अतएव सभी द्विज न तो शाक्त हैं न शैव हैं और न वैष्णव वे सब आदि शक्ति वेदमाता गायत्री के उपासक हैं ॥१७॥ **सन्ध्योपासन विधि–** सर्वप्रथम केशव आदि नामों का उच्चारण करके आचमन करके प्राणायाम करना चाहिए । आचमन करने के ये चौबीस मंत्र हैं । १. ॐ केशवाय नमः स्वाहा, २. ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ३. ॐ माधवाय नमः स्वाहा, ४. ॐ गोविन्दाय नमः स्वाहा, ५. ॐ विष्णवे नमः स्वाहा, ६. ॐ मधुसूदनाय नमः स्वाहा, ७. ॐ त्रिविक्रमाय नमः स्वाहा, ८. ॐ वामनाय नमः स्वाहा, ९. ॐ श्रीधराय नमः स्वाहा, १०. ॐ हृषीकेशाय नमः स्वाहा, ११. ॐ पद्मनाभाय नमः स्वाहा, १२. ॐ दामोदराय नमः स्वाहा, १३. ॐ संकर्षणाय नमः स्वाहा, १४. ॐ वासुदेवाय नमः स्वाहा, १५. ॐ अनिरुद्धाय नमः स्वाहा, १६. ॐ

दामोदर अतः परम् । संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः ॥२०॥ पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा । जनार्दन उपेन्द्रश्च हरिः कृष्णोऽन्तिमस्तथा ॥२१॥ ॐ कारपूर्वकं नाम चतुर्विंशतिसंख्यया । स्वाहान्तैः प्राशयेद्वारि नमोन्तैः स्पर्शयेत्तथा ॥२२॥ केशवादि त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ । मुखं प्रक्षालयेद्द्वाभ्यां द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा ॥२३॥ एकेन पाणिं संप्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च । संकर्षणादिदेवानां द्वादशांगानि संस्पृशेत् ॥२४॥ दक्षिणेनोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद्बुधः । तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत् ॥२५॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत् । ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापायी भवेद्द्विजः ॥२६॥ संहतांगुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु । मुक्तांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः ॥२७॥ प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम् । गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुतम् ॥२८॥ दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम् । कुंभेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः ॥२९॥ पीडयेद्दक्षिणां नाडीमंगुष्ठेन तथोत्तराम् । कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत्॥३०॥ रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः । प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥३१॥ रेचकः सृजते वायुं पूरकः पूरयेत्तु तम्।

पुरुषोत्तमाय नमः स्वाहा, १७. ॐ अधोक्षजाय नमः स्वाहा, १८. ॐ नारसिंहाय नमः स्वाहा, २०. ॐ अच्युताय नमः स्वाहा, २१. ॐ जनार्दनाय नमः स्वाहा, २२. ॐ उपेन्द्राय नमः स्वाहा, २३. हरये नमः स्वहा, २४. श्रीकृष्णाय नमः स्वाहा । इन चौबीस मंत्रों का उच्चारण करके जल से आचमन करना चाहिए ॥१७-२२॥ उसके बाद केशव आदि तीन नामों से जल पीकर उसके बाद के दो नामों से हाथ धोना चाहिए । उसके बाद के दो नाम से मुख पोंछना चाहिए । फिर दो नामों से जल से अपने ऊपर मर्जन करे ॥२३॥ उसके बाद एक नाम से हाथ पैर तथा शिर का प्रोक्षण करके संकर्षण आदि अवशिष्ट द्वादश नामों से द्वादश अंगों का स्पर्श करे ॥२४॥ विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह दाहिने हाथ से पानी पीते समय उसे बायें हाथ से स्पर्श किए रहे । वायें हाथ से स्पर्श किए विना जल शुद्ध नहीं होता है ॥२५॥ गौ के कान के समान हाथ बनाकर उदर के बराबर जल पीना चाहिए । उससे कम अथवा अधिक जल से आचमन करने पर मदिरा पीने का दोष लगता है ॥२६॥ दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और अंगूठे को अलग करके और अंगुलियों को सटाकर आचमन करना चाहिए ॥२७॥ उसके बाद प्राणायाम करना चाहिए । सबसे पहले प्रणव का उच्चारण करे । उसके बाद तीन व्याहृतियों का उच्चारण करके तुरीय पाद के साथ गायत्री का उच्चारण करते हुए प्राणायाम करना चाहिए ॥२८॥ प्राणायाम का मन्त्र है ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ आपोज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भू र्भुवः स्वरोम् ।' प्राणायाम करते समय पहले दाहिनी नाक से वायु निकल दे । उसके बाद मंत्र पढ़ते हुए बायीं नाक से वायु को खीचें, उसके बाद मंत्र पढ़ते हुए वायु को रोक रहे । इसके बाद दाहिनी नाक से मंत्र पढ़ते हुए वायु को बाहर निकाले । इसी को प्राणायाम कहते हैं ॥२९॥ पूरक करते समय दाहिनी नासिका को अंगूठे से दबाये रखे । फिर कुम्भक करते समय कनिष्ठिका और अनामिका

साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुंभकः परिकीर्तितः ।।३२।। नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिंतयेद्धरिम् ।।३३।।
कुम्भके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तु कमलासनम् । प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ।।३४।। रेचके शंकरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ।।३५।। पूरके विष्णुसायुज्यं कुंभके ब्रह्मणो गतिम् । रेचकेन तृतीयां तु प्राप्नुयादीश्वरं पदम् ।।३६।।
पौराणाचमनाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम । श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने ।।३७।। प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम् । पादादौ
व्याहृतीस्तिस्त्रः श्रौताचमनमुच्यते ।।३८।। गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रितयं प्राणसंयमः ।।३९।। (सलक्षणं तु
प्राणानामायामं कीर्त्यतेऽधुना । नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम् ।) पंचांगुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु । सर्वपापहरा मुद्रा वानप्रस्थगृहस्थयोः।।४०।।
कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्यतिश्च ब्रह्मचारिणः । आपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः ।।४१।। ऋगंते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः । नवप्रणवयुक्तेन
आपोहिष्ठेत्यनेन तु ।।४२।। नश्येदघं मार्जनेन संवत्सरसमुद्भवम् । तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः ।।४३।। अंतःकरणसंभिन्नं पापं तस्य

इन दो अंगुलियों से वायीं नाक को भी दबा दे । मध्यमा और तर्जनी इन दो का प्रयोग न करे ।।३०।। रेचक करते समय दाहिनी नाक को छोड़ दे । संयमी
योगियों ने रेचक, पूरक तथा कुम्भक इन तीनों को प्राणायाम कहा है ।।३१।। रेचक वायु को एकत्रित करता है, पूरक वायु को पूर्ण करता है दोनों की समता
बनाये रखने को ही कुम्भक कहते हैं ।।३२।। पूरक करते समय अपनी नाभि में नील कंमल के समान वर्ण वाले चतुर्भुज भगर्वान् विष्णु का ध्यान करे।।३३।।
कुम्भक करते समय चतुर्मुख, कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्माजी का ध्यान करना चाहिए ।।३४।। रेचक करते समय अपने ललाट प्रदेश में स्थित पापों का
विनाश करने वाले शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाले महेश्वर शङ्करजी का ध्यान करना चाहिए ।।३५।। पूरक प्राणायाम से मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य
को प्राप्त करता है । कुम्भक के द्वारा वह ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करता है और रेचक प्राणायाम से वह शङ्करजी के पद को प्राप्त करता है ।।३६।। हे
नारदजी ! पहले मैंने पौराणिक आचमन बतलाया है, अब आप श्रौत आचमन सुनें । यह पापों को विनष्ट करने वाला है ।।३७।। पहले प्रणव का उच्चारण
करे उसके बाद गायत्री को तीन व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक पढ़े इसे ही श्रौत आचमन कहते हैं ।।३८।। तुरीय पाद के साथ तथा प्रणव सहित तीनों
व्याहृतियों के उच्चारण पूर्वक गायत्री को पढ़कर आचमन करना ही श्रौताचमन कहलाता है ।।३९।। (अब में प्राणायाम को लक्षण के साथ बतला रहा हूँ।
यह अनेक पापों को विनष्ट करने वाला तथा महान् पुण्य रूपी फल प्रदान करने वाला है । वानप्रस्थियों तथा गृहस्थों के लिए प्रणवोचारण पूर्वक नासिका
के अग्रभाग को दबान ही प्राणायाम की मुद्रा है । यह सभी पापों को विनष्ट करने वाली है ।।४०।। संन्यासी तथा ब्रह्मचारी को कनिष्छिका तथा अंगूठे से
नाक को दबाकर प्राणायाम करना चाहिए । आपोहिष्ठा इत्यादि तीन मंत्रों से कुश के जल से अपने को मार्जन करना चाहिए ।।४१।। इन तीनों ऋचाओं

विनश्यति । प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥४४॥ आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव कारयेत् । उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते॥४५॥ नीत्वा तं नासिकाग्रं तु वामकुक्षौ स्मरेदघम् । पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः ॥४६॥ द्रुपदां वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च । श्वासमार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि ॥४७॥ नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत् । निष्पापं तु शरीरं मे संजातमिति भावयेत् ॥४८॥ उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ समौ सन्नियोजयेत् । जलांजलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यंगुष्ठवर्जितम् ॥४९॥ वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमंत्रितम् । त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने ॥५०॥ ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः । मध्याह्ने सकृदेव स्यात्संध्ययोस्तु त्रिवारतः ॥५१॥ ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दण्डवत्स्थितः । आसने चोपविष्टस्तु द्विजः सायं क्षिपेदपः ॥५२॥ उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु । त्रिंशत्कोट्यो महावीरा मन्देहा नाम राक्षसाः ॥५३॥ कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्यमिच्छंति खादितुम् । ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥५४॥ उपासते महासंध्यां प्रक्षिपंत्युदकांजलिम् । दह्यंते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा ॥५५॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः संध्यां नित्यमुपासते । महापुण्यस्य जननं संध्योपासनमीरितम्॥५६॥

से प्रत्येक के अन्त में कुशोदक से प्रोक्षण करे अथवा इन मन्त्रों के प्रत्येक पाद से प्रोक्षण करे । आपोहिष्ठा इत्यादि तीनों मन्त्रों में नव प्रणव से युक्त नव पाद हैं । उन से ही मार्जन करे ॥४२॥ मार्जन करने से एक वर्ष के किए हुए पाप विनष्ट हो जाते हैं । उसके बाद 'सूर्यश्च मा मन्युश्च' इस मन्त्र से आचमन के जल को पी जाय ॥४३॥ इससे अन्तःकरण में संसक्त पाप विनष्ट हो जाते हैं । कुछ लोगों का मत है प्रणव सहित गायत्री के उच्चारण पूर्वक 'आपोहिष्ठा' इत्यादि सूक्त से मार्जन करना चाहिए । पहले हाथ को गोकर्ण के समान बनाये हुए हाथ में जल निकाल ले ॥४५॥ उस जल को नासिका के अग्रभाग से लगाये और सोचे कि हमारी वायीं कुक्षि में पाप का निवास है । उसका वर्ण काला है । उसके बाद 'ऋतञ्च सत्यञ्च' इत्यादि मन्त्र को पढ़े ॥४६॥ इसके बाद 'द्रुपदादिव' इत्यादि मन्त्र को पढकर दाहिनी नाक के मार्ग से शरीर स्थित पाप को हस्तस्थित जल में डाल दे ॥४७॥ उसके बाद उस जल को देखे विना अपनी वायीं ओर पत्थर पर पटक दे । फिर ऐसा सोचे कि हमारा शरीर निष्पाप हो गया ॥४८॥ तदनन्तर खड़ा होकर अपने दोनों पैरों को सटा दे और तर्जनी तथा अंगूठे को अलग रखकर हाथ के अंजलि में जल भरकर ॥४९॥ उस गायत्री से अभिमंत्रित जल को सूर्य की ओर छोड़े । हे मुने ! इस प्रकार से अर्घ्य देने की विधि तीन बार करनी चाहिए ॥५०॥ मध्याह्न संध्या में तो एक ही अंजलि सूर्यार्घ्य देना चाहिए । बाकी दोनों सन्ध्याओं में तीन-तीन अञ्जलि सूर्यार्घ्य देना चाहिए ॥५१॥ प्रातः संध्या में थोड़ा झुककर सूर्यार्घ्य देना चाहिए, मध्याह्न संध्या में दण्ड के समान सीधे खड़े होकर सूर्यार्घ्य देना चाहिए और सायंकाल में अपने आसन पर बैठकर सूर्यार्घ्य देना चाहिए ॥५२॥ जल सूर्य की ओर फेंकने का कारण आप सुनें । मन्देहा नामक राक्षसों की संख्या तीस करोड़ है ॥५३॥ वे अत्यन्त भयंकर हैं और सूर्य को खा जाना चाहते हैं । इसीलिए सभी देवता तथा तपस्वी ऋषिगण उस महासंध्या की

अर्घ्याङ्गभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद । यदुच्चारणमात्रेण सांगं संध्याफलं भवेत् ॥५७॥ सोऽहमर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः ।
आत्मज्योतिरहं शुक्लः सर्वज्योति रसोऽस्म्यहम् ॥५८॥ आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि । जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम ॥५९॥
उत्तिष्ठ देवि गंतव्यं पुनरागमनाय च । अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम ॥६०॥ ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद्बुधः । तत्रारुह्य
जपेत्पश्चाद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥६१॥ अत्रैव खेचरी मुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने । प्रातःसंध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुङ्गव ॥६२॥ तन्नामार्थं प्रवक्ष्यामि
सादरं शृणु नारद । चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता ॥६३॥ भ्रुवोरंबर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी । न चासनं सिद्धसमं न
कुंभसदृशोऽनिलः ॥६४॥ न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद । घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुंनिर्जित्य यत्नतः ॥६५॥ स्थिरासने स्थिरो भूत्वा
निरहंकारनिर्ममः । लक्षणं नारदमुने शृणु सिद्धासनस्य च ॥६६॥ योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा
समं विग्रहम् । स्थाणुः संयमितेंद्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरं तिठेद्यत्तदतीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥६७॥ आयात्तु वरदा देवी अक्षरं

उपासना करके जलांजलि फेंकते हैं । वह जलाञ्जलि वज्र स्वरूप होकर उन राक्षसों को जला देने का काम करती है ॥५४-५५॥ इसीलिए सभी ब्राह्मण नित्य
ही सन्ध्योपासन करने का काम करते हैं । संध्योपासन को महान् पुण्य जनक बतलाया गया है ॥५६॥ हे नारदजी ! आप अर्ध्य के अङ्गभूत मन्त्र को सुनें।
उसके उच्चारण करने मात्रसे ही साङ्गसन्ध्या सम्पन्न हो जाती हैं ॥५७॥ मन्त्र का स्वरूप है सोऽहमर्कोऽस्म्यहम्० इत्यादि । इसका अर्थ है कि मैं ही वह सूर्य
स्वरूप हैं मैं ही आत्मज्योति हूँ, मैं ही शिव ज्योति हूँ । आत्मज्योति मेरा ही रूप है । मैं सर्वशुक्ल ज्योति हूँ और मैं ही रस स्वरूप हूँ ॥५८॥ हे
ब्रह्मरूपिणि, वरदे गायत्री देवि, जप तथा अनुष्ठान की सिद्धि के लिए आप मेरे हृदय में प्रवेश कर जायँ ॥५९॥ हे देवि ! आप उठिये और पुनः आने
के लिए जायँ और इस अर्ध्य जल में ही आप जायँ और मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर आप पुनः मुझे दर्शन दें ॥६०॥ उसके बाद विद्वान् को चाहिए कि
वह अपना आसन फिर किसी शुद्ध स्थान पर लगाये । उस आसन पर चढ़कर वेदमाता गायत्री का जप करे ॥६१॥ हे मुनिपुंगव ! यहाँ पर प्राणायाम के
पश्चात् खेचरी मुद्रा करने का विधान है ॥६२॥ हे नारदजी ! आप सुनें उस खेचरी नाम का मैं अर्थ बतला रहा हूँ । चूकि मन आकाश में संचरण करता
है और जिह्वा भी आकाश में संचरण करती है । जब दृष्टि भौहों के बीच में लग जाता है उसी समय खेचरी मुद्रा होती है । सिद्धासन के समान कोई आसन
नहीं है, और कुम्भक वायु के समान कोई वायु नहीं है ॥६४॥ खेचरी मुद्रा के समान कोई मुद्रा नहीं है, यह मैं परम सत्य बतला रहा हूँ । वायु को प्रयत्न
पूर्वक रोककर घण्टा ध्वनि के समान प्रणव का उच्चारण करना करके ॥६५॥ स्थिर आसन पर अहंकार तथा ममकार
से रहित होकर स्थित हो जाना चाहिये । हे नारद मुने ! आप सिद्धासन का लक्षण सुनें ॥६६॥ एक पैर लिङ्ग के मूल पर और दूसरा पैर मूल अण्डकोश

ब्रह्मसंमितम् । गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥६८॥ यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते । यद्रात्र्याकुरुते पापं तद्रात्र्याप्रतिमुच्यते ॥६९॥ सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति । अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते ॥७०॥ तेजोसीत्यादिमन्त्रेण देवीमावाहयेत्ततः । यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे ॥७१॥ ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत् । ब्रह्मशापस्ततो विश्वामित्रस्य च तथैव च ॥७२॥ वसिष्ठशाप इत्येद्द्विविधं शापलक्षणम् । ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्तति ॥७३॥ विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः । वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति॥७४॥ हृत्पद्ममध्ये पुरुषप्रमाणं सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम् । ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम् ॥७५॥ अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अङ्गसंभवम् । ॐकारं पूर्ववद्योज्यं ततो मन्त्रानुदीरयेत् ॥७६॥ भूरित्युक्त्वा च पादाभ्यां नम इत्येव वोच्चरेत् । भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वः कटिभ्यां नमो वदेत् ॥७७॥ महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः । कण्ठाय च ततः सत्यं ललाटे परिकीर्तयेत् ॥७८॥ अङ्गुष्ठाभ्यां तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां

के नीचे दृढ स्थिर रखे । हृदय आदि शरीर दण्ड के समान सीधा रखे । इन्द्रियों को साधक पूर्ण रूप से संयमित रखे । अपनी दृष्टि को निश्चल करके भौहों के बीच में देखे । यही सिद्धासन है और योगियों को सुख प्रदान करने वाला है ॥६७॥ इसके बाद गायत्री का आवाहन करते हुए आयातु वरदा देवी इत्यादि मन्त्र को पढ़नाा चाहिए । इसका अर्थ है कि हे छन्दों की माता भगवती गायत्री देवी आप यहाँ आयें आप ही अक्षरब्रह्म सदृश हैं । हे ब्रह्म स्वरूपिणी देवि ! आप मुझपर प्रसन्न होएँ ॥६८॥ मनुष्य रात्रि में जिन पापों को करता है, वह प्रातःकाल में गायत्री की उपासना करने से तथा दिन में किया गया पाप सायंकालिक गायत्री की उपासना से नष्ट होता है ॥६९॥ हे सभी वर्णों वाली महादेवि ! संध्या विद्या तथा सरस्वती स्वरूपिणी अजर तथा अमर आप हैं । हे देवि ! आप सर्वदेवि स्वरूपिणी हैं आपको नमस्कार है । उसके बाद उपासक 'तेजोऽसि, शुक्रमसि' इत्यादि मन्त्र से गायत्री देवी का आवाहन करे। और प्रार्थना करे कि मैंने आपका जो अनुष्ठान किया है, वह पूर्ण हो जाय ॥७१॥ उसके बाद अच्छी तरह से शापविमोचन करना चाहिए । सभी शाप तीन प्रकार के होते हैं ब्रह्मशाप, विश्वामित्र शाप तथा वसिष्ठ शाप । ब्रह्माजी का स्मरण करने से ब्रह्मशाप दूर होता है । विश्वामित्र का स्मरण करने से विश्वामित्र शाप दूर होता है तथा वसिष्ठ महर्षि का स्मरण करने से वसिष्ठ शाप दूर होता है ॥७३-७४॥ हृत्पद्ममध्ये० इत्यादि मन्त्र से परमात्मा का ध्यान करे कि; मेरे हृदय रूपी कमल पर परंपुरुष परमात्मा विराजमान हैं वे सत्यस्वरूप तथा सर्वजगत् स्वरूप हैं । मैं ऐसे वाणी के अविषय भूत चित्स्वरूप परमात्मा का ध्यान करता हूँ ॥७५॥ इसके बाद मैं सन्ध्या के अङ्गभूत न्यासविधि का वर्णन करता हूँ । सभी मंत्रों में पहले के ही समान ओम् जोड़ना चाहिए ॥७६॥ ॐ भूः पादाभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों पैरों का स्पर्श करे । ॐ भुवः जानुभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों घुटनों का स्पर्श करे । ॐ स्वः कटिभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों कटिप्रदेश का स्पर्श करे । ॐ महः नाभ्यै नमः इस मन्त्र से नाभि का स्पर्श करे । ॐ जनः हृदयाय नमः इस मंत्र से हृदय का स्पर्श

वरेण्यकम् । भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव कीर्तयेत् ॥७९॥ अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं वदेत् । प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधीः॥८०॥ ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा । विष्णवात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्यपि ॥८१॥ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै परिकीर्तितम् । शक्तयात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम् ॥८२॥ कालात्मने धियो यो नो नेत्रत्रय उदीरितम् । प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम् ॥८३॥ अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने । गायत्रीवर्णसंभूतो न्यासः पापहरः परः ॥८४॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वर्णन्यासः प्रकीर्तितः । तत्कारमादावुच्चार्य पादांगुष्ठद्वये न्यसेत् ॥८५॥ सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जंघयोर्न्यसेत् । जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम् ॥८६॥ रेकारं च गुदे न्यस्य णिकारं लिंग एव च । कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले ॥८७॥ गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः । वकारं हृदि विन्यस्य स्यकारं कण्ठकूपके ॥८८॥ धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालुदेशके । हिकारं नासिकाग्रे तु धीकारं नेत्रमण्डले ॥८९॥ भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके । नकारं वै पूर्वमुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे ॥९०॥ चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे

करना चाहिए । ॐ तपः कण्ठाय नमः इस मन्त्र से कण्ठ का स्पर्श करे । ॐ सत्यं ललाटाय नमः इस मंत्र से ललाट का स्पर्श करे । ॐ तत्सवितुः अंगुष्ठाभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों अंगुष्ठों का स्पर्श करे । ॐ वरेण्यम् तर्जनीभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों तर्जनी अंगुलियों का स्पर्श करे । ॐ भर्गोदेवस्य मध्यमाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों मध्यमा अंगुलियों का स्पर्श करे। ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः इस मन्त्र से दोनों अनामिका अंगुलियों का स्पर्श करे। ॐ धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, इस मन्त्र से दोनों कनिष्ठिका अंगलियों का स्पश्र करे । ॐ प्रचोदयात् इस मन्त्र से दोनों हथेलियों तथा उनके पृष्ठभाग का स्पर्श करना चाहिए ॥७७-८०॥ उसके बाद हृदयादि न्यास इस प्रकार करे ॐ ब्रह्मात्मने तत्सवितुः हृदयाय नमः, इस मन्त्र से हृदय का स्पर्श करे ॐ विष्णवात्म्ने वरेण्यं शिरसे स्वाहा इस मन्त्र से शिर का स्पर्श करे। ॐ रुद्रात्मने भर्गो देवस्य शिखायै वषट् इस मन्त्र से शिखा का स्पर्श करे । ॐ शक्तयात्मने धीमहि कवचाय हुम्, इस मन्त्र से दोनों कन्धों का स्पर्श करे । ॐ सर्वात्मने धियो योनः प्रचोदयात् अस्त्राय फट् मन्त्र से अस्त्रन्यास करे ॥८१-८३॥ हे महामुने! अब मैं आपको अक्षर न्यास बता रहा हूँ । यह न्यास गायत्री के वर्णों से उद्भूत है तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला है ॥८४॥ पहले प्रणव का उच्चारण करके वर्णन्यास बतलाया गया है । ॐ तत् नमः उच्चारण करके पैरों के अंगूठोंका स्पर्श करे ॥८५॥ ॐ सं नमः से दोनों गुल्फों का स्पर्श करे । ॐ विं नमः से दोनों जंघों में न्यास करे । ॐ तुं नमः से दोनों घुटनों का स्पर्श करे । ॐ वं नमः कहकर दोनों उरुओं का स्पर्श करे॥८६॥ ॐ रें नमः गुदे, ॐ णिं नमः लिङ्गे फिर हस्त प्रक्षालन करें । ॐ यं नमः कट्याम् । ॐ भं नमः नाभौ ॥८७॥ ॐ गों नमः हृदये, ॐ दें नमः स्तनयोः । ॐ वं नमः हृदि । ॐ स्यं नमः कण्ठकूपे ॥८८॥ ॐ धीं नमः मुखे ॐ मं नमः तालौ, ॐ हिं नमः नासिकाग्रे । ॐ धीं

मुखे । याकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत् ॥९१॥ एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छन्ति जपतत्पराः । ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमम्बिकाम्॥९२॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम् । रक्तांबुजासनारूढां रक्तगन्धानुलेपनाम् ॥९३॥ रक्तमाल्यांबरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम् । द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुंडिकां चैव बिभ्रतीम् ॥९४॥ सर्वाभरणसंदीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम् । हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम् ॥९५॥ चतुष्पदामष्टकुक्षि सप्तशीर्षां महेश्वरीम् । अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत् ॥९६॥ ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं सांख्यायनं स्मृतम् । आदित्यमंडलांतःस्थां ध्यायेद्देवीं महेश्वरीम् ॥९७॥ एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम् । ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः ॥९८॥ सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा । द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पंचकं तथा ॥९९॥ षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा । शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ॥१००॥ विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् । सिहाक्रांतं महाक्रांतं मुद्गरं पल्लवं तथा ॥१०१॥ चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः संप्रदर्शयेत् । शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः ॥१०२॥ चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि । जातवेदसनाम्नीं च

नमः नेत्र मण्डले ॥८९॥ ॐ यों नमः भ्रूमध्ये ॐ यों नमः ललाटे । ॐ नं नमः मुख पूर्व मुखे , ॐ प्रं नमः मुखदक्षिण भागे, ॐ चों नमः मुख पश्चिम भागे, ॐ दं नमः मुखस्योत्तर भागे । ॐ यां नमः मूर्ध्नि, ॐ तं नमः अस्त्राय फट् ॥९०-९१॥ कुछ गायत्री जप करने वाले इस न्यास विधि को नहीं करते हैं । न्यास करने के पश्चात् महादेवी ज़गन्माता अम्बिका का ध्यान करना चाहिए ॥९२॥ कुमारी परमेश्वरी की कान्ति चमकते हुए जपाकुसुम के समान है । वे रक्त कमल के आसन पर बैठी हुई हैं । उनके शरीर में रक्त चन्दन का लेप लगा है ॥९३॥ वे रक्त वर्ण की माला तथा वस्त्र धारण की है । उनके चार मुख और चार भुजाएँ है, उनके दो नेत्र हैं वे स्रुक्, स्रुव, माला तथा कमण्डलु को धारण की हैं ॥९४॥ वे सभी आभूषणों से सुशोभित हैं और ऋग्वेद का पाठ करती है । उनका वाहन हंस है । वे ब्रह्माजी की आराध्या हैं तथा आहवनीयाग्नि में स्थित हैं ॥९५॥ उनके चार पैर और आठ कुक्षि हैं । (चारो वेद ही इनके पैर है और आठो दिशाएँ ही इनकी कुक्षि हैं) अग्नि ही इनका मुख है, रुद्र ही शिखा है तथा विष्णु ही इनका मन हैं। इस तरह से गायत्री देवी का ध्यान करना चाहिए ॥९६॥ ब्रह्माजी इनके कवच हैं सांख्यायन इनका गोत्र है, तथा ये आदित्य मण्डल के भीतर स्थित हैं। इस तरह की महेश्वरी देवी का ध्यान करना चाहिए ॥९७॥ इस तरह से विधिपूर्वक वेदमाता गायत्री का ध्यान करके इसके बाद देवी को प्रसन्न करने वाली चौबीस मुद्राओं को करना चाहिए ॥९८॥ वे मुद्रायें हैं सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख ॥९९॥ षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्बन, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर तथा पल्लव । चौबीस मुद्राओं को गायत्री देवी को प्रदर्शित करना चाहिए । उसके बाद एक बार शताक्षरा गायत्री पढ़ना चाहिए ॥१००-१०२॥ शताक्षरा गायत्री का स्वरूप इस प्रकार है ॐ

ऋचमुच्चारयेत्ततः ॥१०३॥ त्र्यम्बकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका । भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम् ॥१०४॥ ॐ कारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च । चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः ॥१०५॥ एवं नित्यं जपं कुर्याद्ब्राह्मणो विप्रपुंगवः । स समग्रं फलं प्राप्य संध्यायाः सुखमेधते ॥१०६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी । अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ॥१॥ अच्छन्नपादां गायत्रीं जपं कुर्वन्ति ये द्विजाः । अधोमुखाश्च तिष्ठंति कल्पकोटिशतानि च ॥२॥ संपुटैका षडोंकारा गायत्री त्रिविधा मता । धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु**

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो मुक्षीय मा मृतात्। ॐ जातवेदसे सुवद सोममरातीयतो निर्दहति वेदः । स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः । इसमें तीन व्याहृतियाँ नहीं जोड़ी जाती हैं । इसमें प्रणव एक ही है । यह अत्यन्त पुण्यप्रद है ॥१०३-१०४॥ विद्वान् पुरुष ॐ भुर्भूवः स्वः इन तीनों व्याहृतियों के साथ चौबीस अक्षरों वाली गायत्री का जप करे ॥१०५॥ विप्रपुंगव इसी प्रकार से प्रतिदिन गायत्री का जप करे । इस तरह से गायत्री का जप करने वाला संध्या के समग्र फल को प्राप्त करके सुखी हो जाता है ॥१०६॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

गायत्रीजप विवेचन

श्रीनारायण ने कहा— भिन्न पादों वाली गायत्री ब्रह्महत्या के दोषों को विनष्ट करती है, किन्तु *अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्या के दोष को उत्पन्न करती है ।* गायत्री के प्रत्येक चरण को अलग-अलग करके जप करना ही उसका भिन्नपदत्व है ॥१॥ जो द्विज *अभिन्नपादा गायत्री का जप करते हैं,* उनको

**सुव्रत॥३॥ पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम् । जपसंख्याऽष्टभागान्ते पादो जप्यस्तुरीयकः ॥४॥ स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात् ।
अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत् ॥५॥ संपुटैका षडोंकारा भवेत्सा ऊर्ध्वरितसाम् । गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरियां जपेत् ॥६॥
तुरीयपादो गायत्र्याः परोरजसे सावदोम् । ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि जपसांगफलप्रदम् ॥७॥ हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिंबं प्रणवमयमचिंत्यं
यस्य पीठं प्रकल्प्यम् । अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानंदरूपः ॥८॥ त्रिशूलयोनिं सुरभिमक्षमालां च लिङ्गकम्।
अम्बुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत् ॥९॥ या संध्या सैव गायत्री सच्चिदानंदरूपिणी । भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः ॥१०॥
ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः । लं पृथिव्यात्मने गंधमर्पयामि नमो नमः ॥११॥ हमाकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः । यं च
वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत् ॥१२॥ रं च वह्नयात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत् । वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत् ॥१३॥ यं रं लं
वं हमिति च पुष्पांजलिमथार्पयेत् । एवं पूजां विधायाथ चांते मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥१४॥ ध्यांयेत्तु मनसा देवीं मंत्रमुच्चारयेच्छनैः । न कंपयेच्छिरो**

सैकड़ों करोड़ कल्प पर्यन्त नीचे मुख करके रहना पड़ता है ॥२॥ हे सुव्रत ! धर्मशास्त्रों, इतिहासों तथा पुराणों में छह ओंकारों वाली सम्पुटित गायत्री तीन
प्रकार की बतलायी गयी है ॥३॥ पाँच प्रणवों से संयुक्त सम्पुटित गायत्री के जप का विधान किया गया है । जितना जप करना अभिष्ट हो उसके आठवें
भाग में गायत्री के चतुर्थ पाद का जप करना चाहिए ॥४॥ इस तरह से जप करने वाला ही द्विज श्रेष्ठ है वह गायत्री के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है,
इससे भिन्न कल्प से जप करना व्यर्थ होता है ॥५॥ सम्पुटैका तथा षडोंकारा गायत्री केवल ऊर्ध्वरितसों (नैष्ठिक ब्रह्मचारियों) के लिए हैं । मोक्ष चाहने वाले
गृहस्थ अथवा ब्रह्मचारियों को गायत्री के चतुर्थ पाद का जप करना चाहिए ॥६॥ 'परोरज से सावदोम्' को ही गायत्री का चतुर्थ पाद कहते हैं । अब मैं गायत्री
जप के साङ्गफल प्रदान करने वाले ध्यान को बतलाता हूँ ॥७॥ सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के समान बिम्ब वाले विकसित कमल पर जिनका आसन है,
ऐसे परं ब्रह्म अचल, अत्यन्त सूक्ष्म, ज्योति स्वरूप तथा हार्दाकाश के सारस्वरूप हैं । सच्चिदानन्द स्वरूप वे परंब्रह्म मुझको कल्याण प्रदान करें । इस तरह
से ध्यान करना चाहिए ॥८॥ उसके बाद त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्ष, माला, लिङ्ग तथा अम्बुज (कमल) इन सात महा मुद्राओं को प्रदर्शित करना
चाहिए॥९॥ जो संध्या है वही गायत्री है । वह सच्चिदानन्द स्वरूपिणी है । ब्राह्मण को चाहिए कि वह भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करके उसे नमस्कार करे ॥१०॥
ध्यान करने के बाद परंब्रह्म की मानसिक पञ्चोपचार पूजन करना चाहिए । लं पृथिव्यात्मने नमः' गन्धं समर्पयामि, इससे चन्दन चढ़ाये ॥११॥ हम्
आकाशात्मने नमः पुष्पं समर्पयामि, इस मंत्र से पुष्प समर्पित करे । यं वायवात्मने नमः धूपं समर्पयामि, इस मन्त्र से धूप समर्पित करे ॥१२॥ रं बह्नयात्मने

ग्रीवां दंतान्नैव प्रकाशयेत् ॥१५॥ विधिनाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा । दशवारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन ॥१६॥ तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः । न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथंचन ॥१७॥ यतः साऽग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः । सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पंकजम् ॥१८॥ लिङ्गं निर्वाणकं चैव जपांतेऽष्टौ प्रदर्शयेत् । यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम् ॥१९॥ तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि । गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने ॥२०॥ गायत्रीछन्द आख्यातं विश्वामित्रऋषिः स्मृतः । सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे ॥२१॥ भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च । भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत् ॥२२॥ स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत् । मह इत्येतदुक्त्वांतेऽथर्ववेदं च तर्पयेत् ॥२३॥ जनः पदांत इतिहासपुराणमितीरयेत् । तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च ॥२४॥ सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च । ॐ भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत् ॥२५॥ भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च । स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम् ॥२६॥ ॐ

नमः दीपं दर्शयामि’ इस से दीप प्रदर्शित करे । वम् अमृतात्मने नमः नैवेद्यं सर्म्पयामि इस मन्त्र से नैवेद्य समर्पित करे ॥१३॥ यं, रं, लं, वं, हम् पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि, इस मंत्र से पुष्पांजलि समर्पित करे । इस तरह पूजा करने के बाद मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए ॥१४॥ इसके बाद गायत्री देवी का मन में ध्यान करके धीरे-धीरे मन्त्र (गायत्री मन्त्र) का उच्चारण करे । न तो शिर हिलाये और न तो अपने दाँतों को दिखने देना चाहिए ॥१५॥ गायत्री का सविधि अष्टोत्तर शत, अथवा अठाइस बार या अशक्त होने पर दश बार इससे कम नहीं जप करना चाहिए ॥१६॥ उसके बाद ‘उत्तमे शिखरे देवी’ इत्यादि मन्त्र से गायत्री का विजर्सन करना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि वह कभी भी जल में खड़ा होकर जप न करे ॥१७॥ क्योंकि कुछ महर्षियों ने गायत्री को अग्निमुखी बतलाया है । जप करने के अन्त में सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज ॥१८॥ लिङ्ग तथा निर्वाण इन आठ मुद्राओं को दिखाना चाहिए। इसके बाद यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे देवि ! मेरे उच्चारण करने में जो अक्षर, पद, स्वर तथा व्यञ्जन की त्रुटि हो गयी हो उसे आप क्षमा कर दें। आप कश्यप के प्रति प्रिय बोलने वाली हैं । हे महामुने ! उसके बाद गायत्री का तर्पण करना चाहिए ॥१८-२०॥ गायत्री के तर्पणमन्त्र का गायत्री छन्द है, विश्वामित्र ऋषि हैं, सविता देवता हैं, और उसका तर्पण में विनियोग है । इस तरह विनियोग का ‘अस्य श्रीगायत्री तर्पण मन्त्रस्य गायत्री छन्दः विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता तर्पणे विनियोगः ।’ स्वरूप हुआ ॥२१॥ तर्पण इस तरह से करना चाहिए ॐ भूः ऋग्वेद पुरुषं तर्पयामि, ॐ भुवः यजुर्वेद पुरुषं तर्पयामि ॥२२॥ ॐ स्वः सामवेद पुरुषं तर्पयामि, ॐ महः अथर्ववेद पुरुषं तर्पयामि ॥२३॥ ॐ जनः इतिहासपुराण पुरुषं तर्पयामि, ॐ तपः सर्वागम पुरुषं तर्पयामि ॥२४॥ ॐ सत्यम् सत्यलोक पुरुषं तर्पयामि । ॐ भूः भूर्लोक पुरुषं तर्पयामि ॥२५॥ ॐ भुवः भुवर्लोक पुरुषं तर्पयामि । ॐ स्वः स्वर्गलोक

भूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च । भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत् ॥२७॥ स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत् । ॐ भूर्भुवः
स्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम् ॥२८॥ उषसीं चैव गायत्रीं सावत्रीं च सरस्वतीम् । वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम् ॥२९॥
सांकृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत् । तर्पणांते च शांत्यर्थं जातवेदसमीरयेत् ॥३०॥ मानस्तोकेति मंत्रं च शांत्यर्थं प्रजपेत्सुधीः । ततोऽपि
त्र्यम्बको मंत्रः शांत्यर्थः परिकीर्तितः ॥३१॥ तच्छंयोरिति मंत्रं च जपेच्छांत्यर्थमेव तु । अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वांगस्पर्शनं चरेत् ॥३२॥
स्योनापृथिविमंत्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम् । यथाविधि च गोत्रादीनुच्चरेद्द्विजसत्तमः ॥३३॥ एवं विधानं संध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम् ।
संध्याकर्म समाप्यांतेऽत्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत् ॥३४॥ पञ्चायतनपूजां च ततः कुर्यात्समाहितः । शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथाऽर्चयेत् ॥३५॥
पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः । मूलमंत्रेण वा कुर्याच्छ्रीश्च ते इति मन्त्रतः ॥३६॥ भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम् ।
आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि ॥३७॥ वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थितिक्रमः । षोडशानुपचारांश्च षोडशर्भिहरिन्नरः ॥३८॥ देवीमभ्यर्च्य
पुरतो यजेदन्याननुक्रमात् । न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते ॥३९॥ अतएव तु संध्यासु संध्योपास्तिः श्रुतीरिता । नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न

पुरुषं तर्पयामि ॥२६॥ ॐ भूः एकपदां गायत्रीं तर्पयामि, ॐ भुवः द्विपदां गायत्रीं तर्पयामि ॥२७॥ ॐ स्वः त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि । ॐ भू र्भुवः स्वः
चतुष्पदां गायत्रीं तर्पयामि ॥२८॥ उसके बाद उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथिवी, अजा कौशिकी, सांकृति और सर्वजिती, इन नमों का
उच्चारण करके गायत्री का तर्पण करना चाहिए । तर्पण के अन्त में 'जातवेदसं' इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए ॥२९-३०॥ तदनन्तरं 'मानस्तोके तनये
मान' इत्यादि मन्त्र को या 'त्र्यम्बकं यजामहे०' इत्यादि मन्त्र का शान्ति के लिए उच्चारण करना चाहिए ॥३१॥ शान्ति के लिए 'तच्छं यो रावृणीमहे०' तथा
'अतो देवा अवन्तुनो' इन दोनों मन्त्र से अपने सर्वाङ्ग का स्पर्श करना चाहिए ॥३२॥ 'स्योना पृथिवी नो भवा' इस मंत्र से पृथिवी को प्रणाम करे । उसके
बाद सविधि अपने नाम तथा गोत्र इत्यादि का उच्चारण करना चाहिए ॥३३॥ इस तरह से प्रातः सन्ध्या का विधान बतलाया गया । संध्याकर्म पूरा करके
अग्निहोत्र करना चाहिए ॥३४॥ उसके बाद पञ्चायतन पूजा करनी चाहिए । इसमें शिव, पार्वती, गणपति, सूर्य तथा विष्णु की पूजा करनी चाहिए ॥३५॥
पूजा या तो पुरुषसूक्त से करे अथवा व्याहृतियों से करे । या मूल मन्त्र या 'श्रीश्चते लक्ष्मीश्च' इत्यादि मन्त्र से पूजा करनी चाहिए ॥३६॥ भवानी की मूर्ति
बीच में रखे, ईशान कोण में विष्णु की पूजा करे, अग्निकोण में शिवजी की पूजा करे और नैऋत्य कोण में गणेशजी की पूजा करे ॥३७॥ वायव्य कोण
में सूर्य की पूजा करे, यही मूर्तियों की स्थिति का क्रम है । पुरुषसूक्त के सोलह मन्त्रों से देवताओं की षोडशोपचार पूजा करनी चाहिए ॥३८॥ सबसे पहले

तुलस्या गणेश्वरम् ॥४०॥ दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम् । मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा ॥४१॥ किंशुकं बकुलं कुन्दं लोघ्रं तु करवीरकम् । शिंशपाऽपराजितापुष्पं बंधूकागस्त्यपुष्पके ॥४२॥ मदंतं सिन्दुवारं च पालाशकुसुमं तथा । दूर्वांकुरं बिल्वदलं कुशमंजरिकां तथा॥४३॥ । शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमंदारपुष्पकम् । केतकीं कर्णिकारं च कदंबकुसुमं तथा ॥४४॥ पुन्नागश्चंपकस्तद्वद्यूथिका तगरौ तथा । एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च ॥४५॥ गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः । कृत्वेत्थं देवतापूजां ततो मूलमनुं जपेत् ॥४६॥ एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद्बुधः । तपः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम् । तृतीयदिनभागे तु नियमेन विचक्षणः ॥४७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

देवी की पूजा करके उसके बाद देवताओं की पूजा क्रमशः करे । देवी की पूजा से अधिक पुण्य किसी भी देवता की पूजा से नहीं होता है ॥३९॥ इसीलिए संध्यायों में संध्या की पूजा बतलायी गयी है । अक्षत से विष्णु की पूजा न करे तुलसी से गणेशजी की पूजा न करे ॥४०॥ दुर्वा से देवी की पूजा नहीं करनी चाहिए, और केतकी (केवडा) के फूल से शंकरजी की पूजा न करे । मल्लिका (मालती), चमेली, कुटज, कटहल, पलाश, बकुल, कुन्द, लोध्र, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, बन्धूक, अगस्त्य, मदंत (मदार) सिन्धुवार, पलाश, विल्वपत्र, कुशमंजरी, शल्लकी, माधवी, आक, मंदार, केतकी, कर्णिकार, कदम्ब, पुन्नाग, चम्पा, जुही और तगर के पुष्प देवी को सन्तुष्ट करने वाले होते है ॥४१-४५॥ देवी को गुग्गुल का धूप दिखाना चाहिए और दीपक में तिली का तेल होना चाहिए । इसतरह से देवी की पूजा करके मन्त्र का जप करना चाहिए ॥४६॥ इस तरह पूजा समाप्त करके विप्र को चाहिए कि वह वेदभ्यास करे अपनी वृत्ति के अनुसार अपने पोष्य वर्ग का पालन दिन के तीसरे प्रहर करना चाहिए ॥४७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

अष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारद उवाच— **पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद । येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत् ॥१॥** श्रीनारायण उवाच— **देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम् ॥२॥ आचम्य मौनी संकल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत् । मातृकान्यासपूर्वं तु षडंगन्यासमाचरेत् ॥३॥ शङ्खस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च । पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः ॥४॥ गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत् । पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम् ॥५॥ आसनाद्युपचारैश्च भक्तिप्रेमयुतः सदा । स्नापयेत्परदेवीं तां पंचामृतरसादिभिः॥६॥ पौड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः । स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते ॥७॥ यश्च चूतरसैरेवं स्नापयेज्ज्गदंबिकाम् । वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा ॥८॥ तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती । यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन् ॥९॥ अभिषिंचेन्महेशानीं सकुटुम्बो नरोत्तमः । रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते ॥१०॥ कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपंकपंकिलैः । सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपरायणं चरन् ॥११॥**

श्रीदेवी की विशेष पूजा का वर्णन

श्रीनारादजी ने कहा— हे मानद ! मैं श्रीदेवी के उस पूजा विशेष को सुनना चाहता हूँ कि जिसके करने से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥१॥ **श्रीनारायण ने कहा—** हे नारदजी ! आप भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले, साक्षात् समस्त आपत्तियों को दूर करने वाले श्रीमाता के पूजाक्रम को सुनें ॥२॥ उपासक को चाहिए कि वह मौन रहकर आचमन करे, फिर संकल्प करके भूतशुद्धि आदि करे । मातृकान्यास करने के पश्चात् षडङ्गन्यास करे ॥३॥ शंख की स्थापना करके सामान्य अर्घ्य प्रदान करे उसके बाद अस्त्रमन्त्र से पूजा के द्रव्यों का प्रोक्षण करे ॥४॥ अपने आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके पूजन प्रारम्भ करे । पहले पीठपूजा करके तदन्तर देवी का ध्यान करे ॥५॥ प्रेमपूर्वक आसन आदि उपचारों को देवी को समर्पित करके देवी को पञ्चामृत एवं रस आदि से स्नान कराये॥६॥ जो मनुष्य पौण्ड्र नामक गन्ने के सौ घड़े रस से देवी को स्नान कराता है उसको पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है ॥७॥ जो व्यक्ति इसी प्रकार से आम के रस से देवी को स्नान कराता है अथवा वेद का पाठ करके ईख के रस से स्नान कराता है ॥८॥ उसके घर को लक्ष्मी और सरस्वती कभी त्याग नहीं करती हैं । जो व्यक्ति अंगूर के रस से ही वेद पारायण करते हुए जगदम्बा का अभिषेक करे, वह उत्तम मनुष्य अपने परिवार के साथ देवी के लोक में जाकर उतने समय तक पूजित होता है, जितने उस रस के कण हो सकते हैं ॥९-१०॥ जो व्यक्ति कर्पूर, अगरु, केसर तथा कस्तूरी मिश्रित जल से वेद का पारायण करते हुए देवी को स्नान कराता है ॥११॥ उसके सौ जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं । जो व्यक्ति वेद का पाठ करते हुए देवी को

भस्मीभवंति पापानि शतजन्मार्जितानि च । यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः ॥१२॥ आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन्वै क्षीरसागरे । यस्तु दध्नाऽभिषिञ्चेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत् ॥१३॥ मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयाऽपि च । स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत् ॥१४॥ सहस्रकलशैर्देवीं स्नापयन्भक्तितत्परः । इह लोके सुखी भूत्वाऽप्यन्यलोके सुखी भवेत् ॥१५॥ क्षौमं वस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति । रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत् ॥१६॥ काश्मीरचंदनं दत्त्वा कस्तूरीबिंदुभूषितम् । तथा सीमंतसिंदूरं चरणेऽलक्तकपत्रकम् ॥१७॥ इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः । पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि साधवः ॥१८॥ तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम् । बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये ॥१९॥ तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति । बिल्वपत्रत्रये रक्तचन्दनेन तु संलिखेत् ॥२०॥ मायबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुंदरम् । मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यंतं समुच्चरेत् ॥२१॥ नमोऽन्तं परया भक्त्या देवीचरणपंकजे । समर्पयेन्महादेव्यै कोमलं तच्च पत्रकम् ॥२२॥ य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः । यस्तु कोटिदलैरेवं कोमलैरतिनिर्मलैः ॥२३॥ पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्मांडाधिपतिर्भवेत्। कुंदपुष्पैर्नवीनैस्तु ललितैरष्टगंधतः ॥२४॥ कोटिसंख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद्ध्रुवम् । मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगंधेन लोलितैः ॥२५॥ कोटिसंख्यैः

दूध के घड़ों से स्नान कराता है ॥१२॥ वह कल्प पर्यन्त क्षीर सागर में जाकर निवास करता है । जो दही के घड़ों से देवी को स्नान कराता है, वह दधिकुल्या का स्वामी होता है ॥१३॥ जो व्यक्ति मधु या घी या शर्करा (चीनी) से देवी को स्नान कराता है, वह मधुकुल्या आदि नदियों का स्वामी होता है ॥१४॥ जो व्यक्ति हजार घड़ों से देवी का स्नपन करता है वह इस लोक में सुखी होकर परलोक में भी सुखी होता है ॥१५॥ देवी को दो रेशमी वस्त्र समर्पित करके मनुष्य वायुलोक में जाता है । देवी को रत्नों से निर्मित भूषणों को समर्पित करने वाला निधियों का स्वामी होता है ॥१६॥ जो देवी को केसर तथा कस्तूरी की विन्दी तथा माँग में सिन्दूर तथा चरणों में महावर लगाता है ॥१७॥ वह देवताओं का स्वामी होकर इन्द्रासन को प्राप्त करता है । साधु पुरुषों ने देवी के पूजन में अनेक प्रकार के पुष्पों को बतलाया है, उन पुष्पों को देवी को समर्पित करके ॥१८॥ मनुष्य स्वयं कैलास धाम में जाता है । जो देवि को विल्वपत्र समर्पित करता है ॥१९॥ उसको कभी भी कहीं पर भी किसी प्रकार का दुःख नहीं होता है । जो व्यक्ति तीन पत्र वाले विल्वपत्र पर रक्त चन्दन से सुन्दर तथा सुस्पष्ट अक्षरों में तीन बार मायाबीज लिखकर और उस चतुर्थ्यन्त नाम के साथ नमः पद को जोड़कर ॐ भुवनेश्वर्यैः नमः इस नाम से देवी के चरणों पर भक्तिपूर्वक उस कोमल विल्वपत्र को चढ़ाता है ॥२०-२२॥ वह मनुत्व को प्राप्त करता है । जो व्यक्ति इस प्रकार से एक करोड़ कोमल तथा स्वच्छ विल्वपत्रों से ॥२३॥ भुवनेश्वरी की पूजा करता है, वह ब्रह्माण्ड का स्वामी होता है । जो व्यक्ति एक करोड़ सुन्दर और नवीन

पूजया तु जायते स चतुर्मुखः । दशकोटिभिरप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने ॥२६॥ विष्णुत्वं लभते मर्त्योयत्सुरेष्वपि दुर्लभम् । विष्णुनैतद्व्रतं पूर्वं कृतं स्वपदलब्ध्ये ॥२७॥ शतकोटिभिरप्येवं सूत्रात्मत्वं व्रजेद्ध्रुवम् । व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः ॥२८॥ तेन व्रतप्रभावेण हिरण्योदरतां व्रजेत् । जपाकुसुमपुष्पस्य बंधूककुसुमस्य च ॥२९॥ दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः । एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनाऽर्पयेत् ॥३०॥ तस्य पुण्यफलस्यान्तं न जानातीश्वरोऽपि सः । तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया ॥३१॥ समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतंद्रितः । य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः ॥३२॥ उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः । देहांते श्रीपदाम्भोजं दुर्लभं देवसत्तमैः ॥३३॥ प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः । कृष्णागुरुं सकर्पूरं चंदनेन समन्वितम् ॥३४॥ सिल्हकं चाज्यसुयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम् । धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितं गृहम् ॥३५॥ तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम् । दीपं कर्पूरखंडैश्च दद्याद्देव्यै निरन्तरम् ॥३६॥ सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान् वा समाहितः ॥३७॥ नैवेद्यं पुरतो देव्याः स्थापयेत्पर्वताकृतिम् । लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः ॥३८॥

कुन्द पुष्पों को अष्टगन्ध से युक्त करके देवी की पूजा करता है वह निश्चित रूप से प्राजापत्य को प्राप्त करता है । जो व्यक्ति, मल्लिंका तथा मालती के पुष्प को उत्कृष्ट गन्ध से युक्त करके देवी की पूजा करता है वह ब्रह्मा होता है । हे मुने ! इन्ही दश करोड़ पुष्पों से देवी की पूजा करने वाला मनुष्य ॥२४-२६॥ देवताओं को भी दुर्लभ विष्णु पद को प्राप्त करता है । प्राचीन काल में विष्णु ने भी अपने पद की प्राप्ति के लिए इस प्रकार की पूजा किया था ॥२७॥ इस तरह से सौ करोड़ पुष्पों से पूजा करने वाला सूत्रात्मा होता है । इस व्रत को प्रयत्न पूर्वक किया जा चुका है ॥२८॥ इस व्रत के प्रभाव से ही कोई जीव हिरण्यगर्भ होता है । इस तरह से जपाकुसुम (ओड़हुल के फूल) बन्धूक पुष्प (दुपहरिया के फूल) तथा अनार के फूल से जगदम्बा की पूजा का विधान है । इसी तरह अन्य पुष्पों को भी श्रीदेवी को सविधि समर्पित करना चाहिए ॥३०॥ इस तरह से पूजा करने का कितना फल होता है इस बात को ईश्वर भी नहीं जानते हैं । विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पुष्पों से निरालस होकर देवी को प्रतिवर्ष देवी के सहस्र नामों से समर्पित करना चाहिए । जो व्यक्ति इस प्रकार की पूजा भक्तिपूर्वक करता है, वह महापातकों तथा उपपातकों से युक्त हो तो भी उन पापों से मुक्त हो जाता है । वह श्रेष्ठ साधक शरीर त्यागने के बाद श्रेष्ठ देवताओं के साथ श्रीदेवी के दुर्लभ चरण कमलों को ॥३१-३३॥ प्राप्त करता है इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । जो व्यक्ति काला अगरु कर्पूर, चन्दन, सिल्हक (लोहबान) घी तथा गुग्गुल मिलाकार देवी को धूप प्रदान करता है जिससे की देवी का मन्दिर सुगन्धित हो जाय ॥३४-३५॥ उससे प्रसन्न होकर देवी उसे त्रिभुवन प्रदान कर देती हैं । सदा कर्पूर के खण्ड (टुकड़ों) से देवी को दीप दिखाना चाहिए ॥३६॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति

नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनिरसवंति च । स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरन्तरम् ॥३९॥ तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्त्रयम् । यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा ॥४०॥ ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गङ्गाजलं महत् । कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम् ॥४१॥ तांबूलं च ततो देव्यै कर्पूरशकलान्वितम् । एलालवंगसंयुक्तं मुखसौगन्ध्यदायकम् ॥४२॥ दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवी प्रसीदति । मृदङ्गवीणामुरजढक्कादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥४३॥ तोषयेज्जगतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः । वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिभिरप्युत ॥४४॥ छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः। राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत् ॥४५॥ प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्देव्या अनेकधा । क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः ॥४६॥ सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवी प्रसीदति । एतादृशोपचारैश्च प्रसीदेदत्र कः स्मयः ॥४७॥ स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती । तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम् ॥४८॥ अत्र ते कथयिष्यामि पुरा वृत्तं सनातनम् । बृहद्रथस्य राजर्षेः प्रियं भक्तिप्रदायकम् ॥४९॥ चक्रवाकोऽभवत्पक्षी क्वचिद्देशे हिमालये । भ्रमन्नानाविधान्देशान् ययौ काशीपुरीं प्रति ॥५०॥ अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः । जगाम

निःसन्देह सूर्यलोक को प्राप्त करता है । देवी को सौ अथवा हजार दीप प्रदर्शित करना चाहिए ॥३७॥ देवी के समक्ष पर्वत के समान ऊँचे ढेर वाले नैवेद्य को समर्पित करना चाहिए । उस नैवेद्य को लेह्य, चोष्य तथा पेय पदार्थों तथा षड्रसों से युक्त होना चाहिए ॥३८॥ देवी को सदा सोने के पात्र में अनेक प्रकार के रसभरे तथा स्वादिष्ट फलों को प्रदान करना चाहिए ॥३९॥ जिस तरह रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है, उसी तरह यह सम्पूर्ण जगत् देव्यात्मक है । अतएव उनके तृप्त हो जाने पर त्रैलोक्य तृप्त हो जाता है ॥४०॥ उसके बाद शुद्ध गंगाजल देवी को पानीयक के रूप में निवेदित करे । कर्पूर तथा नारियल के जल से युक्त कलश में सुरक्षित शीतल जल देवी को समर्पित करे ॥४१॥ उसके बाद कर्पूर के टुकड़े से युक्त पान देवी को समर्पित करे । लवंग, इलायची से युक्त उस पान को मुख में सुगन्धित लाने वाला होना चाहिए ॥४२॥ अत्यन्त भक्तिपूर्वक पान प्रदान करने से देवी प्रसन्न होती हैं । मृदङ्ग, वीणा, मुरज तथा दुन्दुभि की ध्वनि से ॥४३॥ वेदपाठ, स्तोत्रपाठ तथा पुराणादि के पाठ तथा मधुर गीतों से देवी को सन्तुष्ट करना चाहिए ॥४४॥ देवी को छत्र तथा दो चामर प्रदान करे तथा देवी को नित्य ही राजोपचार समर्पित करे ॥४५॥ अनेक बार प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके जगदम्बा से बार-बार क्षमा प्रार्थना करनी चाहिए ॥४६॥ जब देवी एक बार भी स्मरण करने से प्रसन्न होती हैं तो इस तरह के उपचारों से वे प्रसन्न होती हैं, इसमें कौन सा आश्चर्य है ॥४७॥ जब माता स्वाभाविक रूप से अपने पुत्र पर अत्यन्त कृपा करती है, तो पुत्र के द्वारा भक्ति किए जाने पर उसकी प्रसन्न के बारे में क्या कहना है ?॥४८॥ इस विषय में एक राजर्षि वृहद्रथ से सम्बन्धित कथा है ॥४९॥ हिमालय में एक चक्रवाक पक्षी रहता था वह अनेक देशों में

लीलया तत्र कणलोभादनाथवत् ॥५१॥ कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम स विहायसा । देशान्तरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम् ॥५२॥ कालांतरे ममारासौ गतः स्वर्गपुरीं प्रति । बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा ॥५३॥ कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति । क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम् ॥५४॥ बृहद्रथेति नाम्नाऽभूत्प्रसिद्धः क्षितिमण्डले । महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥५५॥ त्रिकालज्ञः सार्वभौमो जयी परपुरंजयः । पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य वर्तते दुर्लभा भुवि ॥५६॥ इति श्रुत्वा किंवदन्तीं मुनयः समुपागताः । कृतातिथ्या नृपेन्द्रेण विष्टरेषूषुरेव ते ॥५७॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप । केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव ॥५८॥ त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्यप्रभावतः। ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवान्तिकम् ॥५९॥ वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम् । श्रीनारायण उवाच– **इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥६०॥ उवाच सकलं ब्रह्मंस्त्रिकालज्ञानकरणम् । श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम् ॥६१॥ चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा । अज्ञानतोऽपि कृतवानन्नपूर्णाप्रदक्षिणाम् ॥६२॥ तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे कल्पद्वयस्थितिः । त्रिकालज्ञानताऽप्यस्मिन्नभूज्जन्मनि**

घूमता हुआ काशी पहुँच गया ॥५०॥ वह अनाथ के समान घूमता हुआ अन्नपूर्णा देवी के स्थान में पहुँच गया ॥५१॥ आकाश में भ्रमण करता हुआ उसने अन्नपूर्णा मन्दिर की परिक्रमा किया । उसके बाद में किसी दूसरे देश में नहीं जाकर मुक्तिप्रदायिनी काशी में ही रह गया ॥५२॥ कुछ समय मे मरकर वह स्वर्ग में गया । युवाशरीर धारण करके अनेक प्रकार के भोगों को भोगा ॥५३॥ दो कल्पों तक स्वर्ग सुख भोगने के बाद वह भूलोक में अत्यन्त उत्तम क्षत्रियों के वंश में जन्म लिया ॥५४॥ उसकी प्रसिद्धि पृथिवी पर बृहद्रथ के नाम से हुई । वह महान् यज्ञकर्ता, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय हुआ ॥५५॥ वह त्रिकालज्ञ, शत्रु विजयी, संयमी और सार्वभौम राजा हुआ । उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी जो अत्यन्त दुर्लभ होती है ॥५६॥ इसके विषय में किंवदन्ती को सुनकर मुनिगण उसके पास आये । राजा ने उन मुनियों का अतिथि सत्कार किया, उसके बाद मुनियों के आसन पर बैठ जाने पर ॥५८॥ मुनियों ने राजा से पूछा कि राजन् ! हमलोगों को यह बहुत बड़ा सन्देह है कि किस पुण्य के प्रभाव से आपको पूर्वजन्म की बातें याद हैं ?॥५८॥ किस पुण्य के प्रभाव से आपको त्रिकाल ज्ञान है ? इसी बात को जानने के लिए हमलोग आपके यहाँ आये हैं ॥५९॥ आप इन बातों को बिना किसी छिपाव के हमलोगों को ठीक-ठीक बतलायें । **श्रीनारायण ने कहा–** इस तरह से उन मुनियों की वाणी सुनकर परमधार्मिक राजा ने ॥६०॥ त्रिकाल ज्ञान के सभी कारणों को बतलाया । हे मुनियों ! आपलोग मेरे ज्ञान के कारण को सुनें ॥६१॥ यद्यपि मैं नीच योनि चक्रवाक था फिर भी मैंने अनजाने में ही अन्नपूर्णा मन्दिर की प्रदक्षिणा कर ली ॥६२॥ उस पुण्य के प्रभाव से मैं दो कल्पों तक स्वर्ग में रहा और इस जन्म में मुझे त्रिकाल का ज्ञान भी उसी के प्रभाव

सुव्रताः ॥६३॥ को वेद जगदम्बायाः पदस्मृतिफलं कियत् । स्मृत्वा तन्महिमानं तु पतंत्यश्रुणि मेऽनिशम् ॥६४॥ धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम् । ये सर्वमातरं देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति हि ॥६५॥ न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा । नित्योपास्तिः परा देव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता ॥६६॥ किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते । सेवनीयं पदांभोजं भगवत्या निरंतरम् ॥६७॥ नातः परतरं किंचिदधिकं जगतीतले । सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाऽथवा ॥६८॥ श्रीनारायण उवाच– इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च । प्रसन्नहृदयाः सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम् ॥६९॥ एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत् । अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित् ॥७०॥ येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते । येषां तु जन्मसांकर्यं तेषां श्रद्धा न जायते ॥७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते एकादशस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

से है ॥६३॥ जगदम्बा के चरणों का स्मरण करने का फल कितना होता है, इस बात को कौन जान सकता है ? उनकी महिमा को स्मरण करके मेरी आँखों से सदा आँसू गिरते रहते हैं ॥६४॥ उन पापियों तथा कृतघ्नों के जन्म को धिक्कार है, जिन सबों ने सम्पूर्ण जगत् की माता देवी को अपना उपास्य नहीं बनाया ॥६५॥ शिवोपासना अथवा विष्णु की उपासना को नित्य नहीं बतलाया गया है, नित्य श्रुति देवी की ही उपासना को नित्य बतलाती है ॥६६॥ इस संशयरहित विषय में मुझे बहुत अधिक क्या कहना है ? सदा देवी के ही चरणकमलों की नित्य उपासना करनी चाहिए ॥६७॥ देवी के सगुण अथवा निर्गुण रूप की सदा सेवा करनी चाहिए, संसार में इससे बढ़कर कोई भी कल्याणकारी वस्तु नहीं है ॥६८॥ **श्रीनारायण ने कहा**– उस धार्मिक राजर्षि की बातों को सुनकर सभी महर्षि प्रसन्न मन से अपने-अपने घर चले गये ॥६९॥ देवी का ऐसा ही प्रभाव है, उनकी पूजा का कितना महत्त्व है, इस विषय में न तो किसी को पूछना चाहिए और न कहना चाहिए ॥७०॥ जिन लोगों के जन्म सफल हैं, उन लोगों की श्रद्धा होती है तथा जिन लोगों के जन्म में सांकर्य दोष है, उनकी श्रद्धा देवी की आराधना में नहीं होती है ॥७१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् संध्यां माध्याह्निकीं शुभाम् । यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम् ॥१॥ सावित्रीं युवतीं श्वेतवर्णां चैव त्रिलोचनाम् । वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलाभयहस्तकाम् ॥२॥ वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदैवताम् । तमोगुणयुतां चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम्॥३॥ आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम् । आदिदेवीमथध्यात्वाऽऽचमनादि च पूर्ववत् ॥४॥ अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः । तदलाभे बिल्वपत्रतोयेन मिश्रयेत्ततः ॥५॥ ऊर्ध्वं च पूर्वाभिमुखं क्षिप्त्वाऽर्घ्यं प्रतिपादयेत् । प्रातःसंध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम्॥६॥ मध्याह्ने केचिदिच्छन्ति सावित्रीं तु तदित्यृचम् । असंप्रदायं तत्कर्म कार्यहानिस्तु जायते ॥७॥ कारणं संन्ध्ययोश्चात्र मन्देहा नाम राक्षसाः । भक्षितुं सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम् ॥८॥ अतस्तु कारणाद्विप्रः संध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः । संध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च ॥९॥ अंभस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः । आकृष्णेनेति मंत्रेण पुष्पैर्वांबुविमिश्रितम् ॥१०॥ अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम् । अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन**

मध्याह्न संध्याविधि

श्रीनारायण ने कहा– हे ब्रह्मन् ! अब आप मध्याह्न संध्या की विधि को सुनें । उसका अनुष्ठान करने से सर्वोत्तम फल मिलता है ॥१॥ इस संध्यामें सावित्री देवी का ध्यान करे । सावित्री देवी श्वेतवर्ण की युवती हैं, उनके तीन नेत्र हैं । वे वरदमुद्रा धारण किए हुई हैं, अक्षमाला धारण की हैं । उनके हाथ में भयंकर त्रिशूल है ॥२॥ वे बैल पर सवार है, उनकी यजुर्वेद संहिता है । रुद्रदेवता हैं । वे तमोगुण से युक्त तथा भुवर्लोक में स्थित है ॥३॥ वे आदित्य मार्ग में संचरण करने वाली हैं । ऐसी माया को मैं नमस्कार करता हूँ । इस तरह से आदि देवी का ध्यान करके पहले के ही समान आचमन करना चाहिए ॥४॥ अब मैं अर्घ्य का प्रकार बतलाता हूँ । इसके लिए फूलों को चुन ले । पुष्प के नहीं मिलने पर जल में विल्वपत्र मिलाकर अर्घ्य देना चाहिए ॥५॥ पूर्वाभिमुख होकर ऊपर की ओर जल फेंककर अर्घ्य देना चाहिए । प्रातः संध्या के ही समान और सभी कार्यों को करना चाहिए ॥६॥ कुछ लोग मध्याह्न संध्या में 'तत्सवितुर्वरेण्यम्०' इत्यादि मंत्र पढ़कर सूर्यार्ध्य देना चाहते हैं, किन्तु ऐसा करना सम्प्रदाय परम्परा से प्राप्त नहीं होने के कारण इससे कार्य की हानि हो सकती है ॥७॥ इन दोनों संध्याओं को करने का कारण मन्देहा नामक राक्षस हैं । वे सूर्य को खा जाना चाहते हैं । यह श्रुति बतलाती है ॥८॥ इसीलिए विप्र को सप्रयास सन्ध्या करनी चाहिए । जिससे कि उन राक्षसों क निवारण हो सके । इसीलिए प्रणव युक्त गायत्री से जल को ऊपर फेंकना चाहिए, उससे भिन्न उन राक्षसों का विनाश करने वाला कुछ नहीं है । अथवा फूल मिश्रित जल 'आकृष्णेन राजसा' इत्यादि मन्त्र से ॥१०॥ पुष्प

सांगं संध्याफलं लभेत् ॥११॥ अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम । भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमो नमः ॥१२॥ यजुर्वेदं तर्पयामि मंडलं तर्पयामि च । हिरण्यगर्भं च तथाऽन्तरात्मानं तथैव च ॥१३॥सावित्रीं च ततो देवमातरं सांकृतिं तथा । संध्यां तथैव युवतीं रुद्राणीं नीमृजां तथा॥१४॥ सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमंत्रार्थसिद्धिदाम् । भूर्भवः स्वः पुरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम् ॥१५॥ उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च। चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत् ॥१६॥ ततो जपं प्रकुर्वीत मंत्रसाधनतत्परः । जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि शृणु नारद ॥१७॥ कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधःकरौ तथा । मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥१८॥ पर्वद्धयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु । तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता ॥१९॥ गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः । ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुरां पिबेत् ॥२०॥ स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः । मानसं वाचिकं पापं विषयेन्द्रियसंगजम् ॥२१॥ तत्किल्विषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः । गायत्रीं यो न जानाति वृथा

के नहीं मिलने पर विल्वपत्र अथवा दूर्वा आदि मिलाकर अर्घ्य देना चाहिए । इस प्रकार से अर्घ्यप्रदान करने से संध्या करने का साङ्गफल प्राप्त होता है॥११॥ हे देवर्षिश्रेष्ठ ! अब मैं तर्पण बतला रहा हूँ उसे आप सुनें । तर्पण के मन्त्र हैं भुवः पुरुषं तर्पयामि नमो नमः । यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः । मण्डलं तर्पयामि नमो नमः, हिरण्यगर्भं तर्पयामि. नमो नमः, अन्तरात्मानं तर्पयामि नमो नमः । सावित्रीं तर्पयामि नमो नमः, देवसेनां तर्पयामि नमो नमः, सांकृतिं तर्पयामि नमो नमः । संध्यां तर्पयामि नमो नमः, युवतीं तर्पयामि नमो नमः, रुद्राणीं तर्पयामि नमो नमः । नीमृजां तर्पयामि नमो नमः । सर्वार्थसिद्धिकरीं तर्पयामि नमो नमः। सर्वमंत्र सिद्धिदां तर्पयामि नमो नमः । भूर्भुवः स्वः पुरुषं तर्पयामि नमो नमः । यह मध्याह्न संध्या का तर्पण है ॥१२-१५॥ उसके बाद 'उदुत्यंजात वेदसम्' तथा 'चित्रं देवानाम्' इत्यादि मंत्रों से सूर्योपस्थान करे ॥१६॥ मन्त्र को सिद्ध करने वाले मनुष्य को इसके बाद जप करना चाहिए । हे नारदजी ! मैं जप का भी प्रकार बतलाता हूँ, उसे आप सुनें ॥१७॥ प्रातःकाल हाथ को ऊपर उठाकर जप करना चाहिए, सायंकाल हाथों को नीचे करके जप करना चाहिए और मध्याह्न में हृदय पर हाथ रखकर जप करना चाहिए ॥१८॥ अनामिका अंगुलि के दो पर्व तथा तर्जनी अंगुलि के मूल पर्यन्त कर माला बतलायी गयी है ॥१९॥ जो गौ को मारने वाला, पिता को मारने वाला, माता को मारने वाला, गर्भपात करने वाला, गुरु की पत्नी के साथ सहगमन करने वाला, ब्रह्मस्व का अपहरण करने वाला, दूसरे का खेत ले लेने वाला, और सुरापायी हो ॥२०॥ वह भी एक हजार गायत्री का जप करके पवित्र हो जाता है । कायिक, वाचिक तथा विषय एवं इन्द्रिय के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले ॥२१॥ इन सभी पापों को वह मनुष्य नष्ट कर देता है और तीन जन्म के पापों को विनष्ट कर देता है । जो गायत्री नहीं जानता है उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ॥२२॥ एक तरफ चारो वेदों का पाठ करे और

तस्य परिश्रमः ॥२२॥ पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत् । वेदानां चावृतेस्तद्वद्गायत्रीजप उत्तमः ॥२३॥ इति मध्याह्नसंध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया । अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम् ॥२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **त्रिराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत् । उपस्पृशेत्सव्यपाणिः पादौ च प्रोक्षयेत्ततः ॥१॥ शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके । हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत् ॥२॥ देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत्. । द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामे त्रीनासने सकृत् ॥३॥ उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत् । विमुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि ॥४॥ सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम्। गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीडे ततः परम् ॥५॥ यदंगेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्तयेत् । अथ महाव्रतं चैव पंथा एतश्च कीर्तयेत् ॥६॥ अथातः संहितायाश्च विदा**

दूसरी तरफ गायत्री का जप करे तो गायत्री के जप का फल उत्तम होता है ॥२३॥ इस तरह से मैंने मध्याह्न संध्या के प्रकार को बतलाया । इसके बाद मैं ब्रह्मयज्ञ का क्रम बतलाऊँगा ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

ब्रह्मयज्ञ तथा सायंसन्ध्या विधि

श्रीनारायण ने कहा– द्विज को चाहिए कि वह तीन बार आचमन करके दो बार मार्जन करे । इसके बाद वह अपने दाहिने हाथ तथा पैरों का प्रेक्षण करे ॥१॥ शिर, नेत्र, नासिका, दोनों कान, हृदय तथा शिखा का अच्छी तरह से प्रोक्षण करके ॥२॥ उसके बाद संकल्प करके वह ब्रह्मयज्ञ करे । दो कुश दायें हाथ में तीन बायें हाथ में, तीन कुश आसन की नीचे, यज्ञोपवीत, शिखा और तलवे के नीचे एक-एक कुश रखे । इसके बाद संकल्प करे कि मुक्ति की प्राप्ति, सभी पापों के विनाश और सूत्रोक्त देवताओं की प्रसन्नता के लिए मैं ब्रह्मयज्ञ कर रहा हूँ । इसके बाद पहले तीन बार गायत्री पढ़े फिर

मघवदित्यपि । महाव्रतस्येति तथा इषेत्वोर्ज इतीव हि ॥७॥ अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नोदेवीरितीति च । अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि॥८॥ अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पंचसंवत्सरेति च । मयरसतजभेत्येव गौर्ग्मा इत्येव कीर्तयेत् ॥९॥ अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि । तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि ॥१०॥ तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम् । प्रजापतिश्च ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः ॥११॥ सर्वाणि चैव छन्दांसि तथोङ्कारस्तथैव च । वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम् ॥१२॥ गायत्री चैव यज्ञाश्च द्यावापृथिवी इत्यपि । अंतरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम् ॥१३॥ सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततः परम् । क्षेत्रौषधिवनस्पत्यो गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥१४॥ नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च । यक्षा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत् ॥१५॥ अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्संतर्पयेदपि । शतर्चिनो माध्यमाश्च गृत्समदस्तथैव च ॥१६॥ विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च । वसिष्ठश्च प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम् ॥१७॥ क्षुद्रसूक्ता महासूक्ताः सनकश्च सनन्दनः । सनातनस्तथैवात्र सनत्कुमार एव च ॥१८॥ कपिलासुरिनामानौ वोहलिः पञ्चशीर्षकः । प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम् ॥१९॥ सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशंपायनः पैलसूत्रयुक् । भाष्यभारतपूर्वं च महाभारत इत्यपि ॥२०॥ धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत् । जानन्ति बाहविर्गार्ग्यगौतमाश्चैव शाकलः ॥२१॥ बाभ्रव्यमांडव्ययुतो मांडूकेयस्ततः परम् । गार्गी वाचक्नवी चैव बडवा

अग्निमीडे पुरोहितम् इत्यादि मंत्र पढे ॥३-५॥ उसके बाद 'यदङ्गे' 'अग्निर्वै०' 'अथ महाव्रतं चैव पन्थाः' इत्यादि मन्त्रों का पाठ करे ॥६॥ उसके बाद संहिता के 'विदाम मघव०' 'महाव्रतस्य०', 'इषेत्वोर्जेत्वा०', 'अग्न आयाहि', 'शान्नो देवी', 'अथतस्य सामान्नायः' 'वृद्धिरादैच्' 'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि' 'पंच संवत्सर' 'मयरसतजभ' तथा 'गौग्मा०' इत्यादि मन्त्रों का पाठ करना चाहिए ॥७-९॥ उसके पश्चात् 'अथतो धर्मजिज्ञासा' 'अथतो ब्रह्मजिज्ञासा', 'तच्छं योरा वृणीमहेः', 'ब्रह्मणे नमः' का भी पाठ करे ॥१०॥ इसके बाद देवताओं का तर्पण करके प्रदक्षिणा करे । प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देव, ऋषिगण ॥११॥ सभी छन्दों ओंकार, वषट्कार, व्याहृतियों, सावित्री ॥१२॥ गायत्री, यज्ञ, द्यावापृथिवी, अतंरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य ॥१३॥ सिद्ध, समुद्र, नदियों, पर्वत, क्षेत्र, औषधियों, वनस्पतियों, गन्धर्व, अप्सरागण ॥१४॥ नाग, पक्षिगण (वयांसि) गौ, साध्य, विप्र, यक्ष, राक्षस, तथा भूत, इन सबों का नाम लेकर तर्पण करना चाहिए॥१५॥ इसके बाद माला के समान यज्ञोपवीत करके ऋषियों का तर्पण करना चाहिए । शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ इन ऋषियों का तर्पण करके, प्रगाथ, पवमान ॥१६-१७॥ क्षुद्रसूक्त, महासूक्त का पाठ करे । फिर सनक, सन्दन, सनातन, सनत्कुमार ॥१८॥ कपिल, आसुरि, वोहलि और पञ्चशीर्ष इन ऋषियों का तर्पण करे । इसके बाद अपसव्य होकर सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत ॥१९-२०॥

प्रातिथेयिका ॥२२॥ सुलभा युक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततः परम् । कौषीतकं महाकौशीतकं वै तर्पयेत्ततः ॥२३॥ भारद्वाजं च पैंग्यं च महापैङ्ग्य सुयज्ञकम् । सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च ॥२४॥ बाष्कलं शाकलं चैव सुजातवक्त्रमेव च । औदवाहि च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम्॥२५॥ ये चान्ये सर्व आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः । ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ॥२६॥ ते गृहणन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्। एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तो महामुने ॥२७॥ यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम् । सर्ववेदांगपाठस्य फलमाप्नोति साधकः ॥२८॥ वैश्वदेवं ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च । अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत् ॥२९॥ गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुञ्जीत ब्राह्मणैः सह । अह्नस्तु पञ्चमे भागे प्रकुर्यादितदुत्तमम् ॥३०॥ इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् । अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः सन्ध्यां ततः पुनः ॥३१॥ अथ सायन्तनीं संन्ध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने । यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदति ॥३२॥ आचम्य प्राणनायम्य साधकः स्थिरमानसः । बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत् ॥३३॥ श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः । अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥३४॥ भूतशुद्ध्यादिकं

ये सभी ऋषितृप्त हो जायँ, इस तरह से कहना चाहिए । जानन्ति, बाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल ॥२१॥ बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय, गार्गी, वाचक्नवी, बडवा, प्रातिथेयिका ॥२२॥ सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक और महाकौषीतक का तर्पण करना चाहिए ॥२३॥ भारद्वाज, पैंग्य, महापैंग्य, सुयज्ञक, सांख्यायन, ऐतरेय, महाऐतरेय ॥२४॥ वाष्कल, शाकल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक तथा आश्वलायन ॥२५॥ ये ऋषि तथा अन्य आचार्य जितने हैं, वे सबके सब तृप्त हो जायँ । जो कोई भी हमारे गोत्र में निःसन्तान रहकर मर गये हों ॥२६॥ वे मेरे वस्त्र निचोड़ने के जल को स्वीकार करें। हे महामुने नारदजी ! मैंने इस तरह से आपको ब्रह्मयज्ञ की विधि बतलायी ॥२७॥ जो कोई भी साधक इस ब्रह्मयज्ञ को करता है । वह सम्पूर्ण वेदों तथा वेदाङ्गों के पाठ करने का फल प्राप्त करता है ॥२८॥ इसके बाद बलिवैश्वदेव तथा नित्यश्राद्ध करना चाहिए । इसके बाद अतिथियों को नित्य ही अन्नदान करे ॥२९॥ इसके बाद गोग्रास निकाल कर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे । दिन के पाँचवें भाग में इस ब्रह्मयज्ञ को करना चाहिए । दिन के छठे और सातवें भाग को इतिहासों तथा पुराणों के पाठ में विताना चाहिए । दिन के आठवें भाग में लौकिक कार्यों को करे । उसके बाद बाहर बैठकर सायं सन्ध्या करनी चाहिए ॥३१॥ हे महामुने ! अब मैं सायंसन्ध्या को बतला रहा हूँ । उसका अनुष्ठान करने मात्र से महामाया प्रसन्न होती है ॥३२॥ सायंकाल में योगी आचमन तथा प्राणायाम करने के बाद बद्धपद्मासन से स्थिर होकर बैठ जाय ॥३३॥ श्रौत तथा स्मार्त कर्मों के प्रारम्भ में सगर्भ (समन्त्रक) प्राणायाम करना चाहिए और ध्यान करते समय अगर्भ (अमन्त्रक) प्राणायाम करे ॥३४॥ भूतशुद्धि किए बिना कोई कर्म न करे । लक्ष्य स्थिर करके ही पूरक कुम्भक और

कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम् । सलक्ष्यो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥३५॥ ध्यानं प्रकुर्यात्संध्यायां सायंकाले विचक्षणः । वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णांगीं कृष्णवाससाम् ॥३६॥ शंखचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम् । नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मंजीरमेखलाम् ॥३७॥ अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारावलीयुताम् । ताटंकबद्धमाणिक्यकांतिशोभिकपोलकाम् ॥३८॥ पीताम्बरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना ॥३९॥ व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायांतीं सूर्यमण्डलात् ॥४०॥ एवं ध्यात्वा च तां देवीं सन्ध्यासंकल्पमाचरेत् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च ॥४१॥ विदध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदीरितम् । गायत्रीमन्त्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये॥४२॥ अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानस; । उभौ पादौ समौ कृत्वा हस्ते धृत्वा जलांजलिम् ॥४३॥ देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात् । अर्घ्यं दद्यातु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः ॥४४॥ उल्लंघ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद्द्विजः । ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमन्त्रतः॥४५॥ गायत्र्याश्च जपं कुर्यादुपविश्य ततो वृसीम् । सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥४६॥ यथा प्रातः पुनस्तद्वदुपस्थानादिकं चरेत् । सायं सन्ध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत् ॥४७॥ वसिष्ठो ऋषिरेवात्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः । देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती ॥४८॥

रेचक के द्वारा ही ॥३५॥ विद्वान पुरुष को सायंकालीन संध्या में ध्यान करना चाहिए । वृद्धा सरस्वती देवी का ध्यान करना चाहिए । उनका वर्ण कृष्ण वर्ण का है । कृष्ण वर्ण के उनके वस्त्र हैं, शंख, चक्र, गदा, और पद्म अपने हाथ में धारण की हुयी हैं । वे गरुड वाहना हैं । वे अनेक प्रकार के भूषणों को धारण किए हुयी हैं । उनके नूपुरों और करधनी से ध्वनि निकलती रहती है ॥३६-३७॥ इनका मुकुट अनर्घ्यरत्नों से निर्मित है । ये तार निर्मित हारावली धारण की हुई हैं । मणिमय कुण्डल से इनके कपोलों की कान्ति सुशोभित है ॥३८॥ ये पीताम्बर धारण की हैं और सच्चिदानन्द स्वरूपिणी हैं। इनका वेद सामवेद है और सत्त्वमार्ग से सम्पन्न हैं ॥३९॥ ये स्वर्गलोक में व्यवस्थित तथा आदित्यमार्ग पर चलने वाली हैं । मैं सूर्यमण्डल से आने वाली देवी का आवाहन करता हूँ ॥४०॥ इस तरह से गायत्री देवी का ध्यान करके संध्या करने का संकल्प करना चाहिए । 'आपोहिष्ठामयो भुवः' इत्यादि मन्त्र से तथा 'अग्निश्च मामन्युश्च' इत्यादि मन्त्र से आचमन करना चाहिए ॥४१॥ शेषकार्यों को प्रातः सन्ध्या के ही समान करना चाहिए । गायत्री मन्त्र पढकर अन्त में श्रीनारायण प्रीतये कहकर अर्घ्य देना चाहिए ॥४२॥ साधक को शुद्ध मन से सूर्यार्घ्य देना चाहिए । अर्घ्य देते समय दोनों पैरों को सटाकर तथा जल अंजलि में लेकर ॥४३॥ सूर्यमण्डल में विद्यमान सूर्यनारायण का ध्यान करके अर्घ्य सूर्य मण्डल की ओर फेंकना चाहिए । जो अज्ञानी व्यक्ति जल में सूर्यार्घ्य देता है वह प्रायश्चित्ती हो जाता है । उसके बाद 'असावादित्यः' इत्यादि मन्त्र से सूर्योपस्थान करना चाहिए ॥४५॥ उसके बाद मृगचर्म पर बैठकर गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिए । श्रीदेवी का ध्यान करते हुए एक हजार अथवा उसके आधा गायत्री मन्त्र का जप करे ॥४६॥ प्रातःकाल के ही समान

सायंकालीनसंध्यायास्तर्पणं विनियोगकः । स्वरित्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च ॥४९॥ मण्डलं चेति संप्रोच्यं हिरण्यगर्भकं तथा । तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम् ॥५०॥ वेदमातरमेवात्र संकृतिं तद्वदेव च । सन्ध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुषसीं तथा ॥५१॥ निमृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा । सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवःस्वश्च पूरुषम् ॥५२॥ इत्येवं तर्पणं कार्यं सन्ध्यायाः श्रुतिसंमतम् । सायं संध्यांविधानंच कथितं पापनाशनम् ॥५३॥ सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा । सदाचारेषु संध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुंगव । सन्ध्याचरणतो देवी भक्ताभीष्टं प्रयच्छति॥५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम् । पुरश्चरणकं पुण्यं यथेष्टफलदायकम् ॥१॥ पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले**

उपस्थान इत्यादि करना चाहिए । सायंकाल की संध्या के तर्पण में भी प्रातःकाल के ही समान तर्पण करे ॥४७॥ पहले विनियोग करते समय कहे 'अस्य श्रीतर्पणमन्त्रस्य वसिष्ठो ऋषिः विष्णुरूपा सरस्वती देवता सरस्वती छन्दः सायंकालिक संध्यायास्तर्पणे विनियोगः ।' इसके बाद इस तरह तर्पण करे 'स्वः पुरुषं तर्पयामि, सामवेदं तर्पयामि, मण्डलं तर्पयामि, हिरण्यगर्भं तर्पयामि, परमात्मानं तर्पयामि, सरस्वतीं तर्पयामि ॥४८-५०॥ वेदमातरं तर्पयामि, सांकृतिं तर्पयामि, विष्णुस्वरूपिणीं वृद्धां सरस्वतीं तर्पयामि, उषसीं तर्पयामि, निमृजीं तर्पयामि, सर्वसिद्धकरीं तर्पयामि, सर्वमन्त्राधीश्वरीं तर्पयामि, भूभुर्वः स्वः पुरुषं तर्पयामि ॥५१-५२॥ इस तरह संध्या का श्रुति सम्मत तर्पण करना चाहिए । इस तरह से मैंने पापों को विनष्ट करने वाले सायंसंध्या के विधान को बतलाया ॥५३॥ हे मुनिश्रेष्ठ! सादाचार के प्रसंग में संध्या का प्रधान स्थान है । यह सभी दुःखों का नाश करने वाला, व्याधि विनाशक तथा मोक्ष प्रदान करने वाला कर्म हैं ॥५४॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

गायत्री के पुरश्चरण की विधि

श्रीनारायण ने कहा– हे ब्रह्मन् ! अब आप यथेष्ट फल देने वाले पवित्र; गायत्री के पुरश्चरण विधि को सुनें ॥१॥ पर्वत के शिखर पर या नदी

जलाशये । गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने ।।२।। पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च । पुरश्चरणकृन्मंत्री सिध्यत्येव न संशयः।।३।। यस्य कस्यापि मंत्रस्य पुरश्चरणमारभेत् । व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत् ।।४।। नृसिंहार्कवराहाणां तांत्रिकं वैदिकं तथा । विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ।।५।। सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः । आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्।।६।। मंत्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः । मंत्रशोधनपूर्वांगमात्मशोधनमुत्तमम् ।।७।। आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद्बुधः । अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना ।।८।। आत्मशुद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः । निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम् ।।९।। तपसा तापयेद्देहं पितृन्देवांश्च तर्पयेत् । तपसा स्वर्गमप्नोति तपसा विंदते महत् ।।१०।। क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः । धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ।।११।। अतएव तु विप्रेन्द्रः तपः कुर्यात्प्रयत्नतः । शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ।।१२।। शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचांद्रयणादिभिः। अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद ।।१३।। आयाचितोञ्छंशुक्लाख्यभिक्षावृत्तिचतुष्टयम् । तांत्रिकैर्वैदिकैश्चैवं प्रोक्तान्नस्य विशुद्धता ।।१४।।

के तट में, विल्ववृक्ष के नीचे, जलाशय के निकट, गोशाला मे या देवमन्दिर में, या पीपल के पेड के नीचे, या उद्यान में, या तुलसी वन में ।।२।। पवित्र क्षेत्र में जाकर अथवा आचार्य के सन्निकट में जहाँ पर चित्त एकाग्र रह सके ऐसे स्थान में बैठकर पुरश्चरण करने वाले साधक को निःसन्देह रूप से सिद्धि मिलती ।।३।। जिस किसी भी मन्त्र का पुरश्चरण करना हो उसके पहले तीनों व्याहृतियों के साथ गायत्री का दश हजार जप कर लेना चाहिए ।।४।। नृसिंह, सूर्य, तथा वराह के तांत्रिक एवं वैदिक सभी मंत्र गायत्री जप के विना विफल हो जाते हैं ।।५।। सभी द्विज शाक्त होते हैं, वे न तो शैव होते हैं न वैष्णव होते हैं; क्योंकि वे आदिशक्ति वेदमाता गायत्री की उपासना करते हैं ।।६।। पुरश्चरण करने वाले को चाहिए कि वह गायत्री के जप के द्वारा मंत्र का शोधन कर ले । मंत्रशोधन से पहले आत्मशोधन करना आवश्यक होता है । विद्वानों को चाहिए कि वे आत्मशोधन के लिए श्रुतिप्रोक्त विधि से तीन लाख अथवा एक लाख गायत्री का जप करें ।।८।। आत्मशुद्धि किए बिना श्रुति बतलाती है कि कर्ता के द्वारा किये गये सभी जप और होम आदि निष्फल होते हैं ।।९।। तपस्या से देह को तपाना चाहिए तथा पितरों एवं देवताओं को तृप्त करना चाहिए । तपस्या से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा तपस्या से महान् फल की प्राप्ति होती है ।।१०।। क्षत्रिय को चाहिए कि वह बाहुबल से अपनी विपत्ति को दूर करे, वैश्य को धन के द्वारा अपनी विपत्ति दूर करनी चाहिए शूद्र को सेवा से तथा ब्राह्मण जप तथा होम आदि से अपनी विपत्ति को दूर करे ।।११।। हे द्विजश्रेष्ठ ! विप्र को प्रयत्न पूर्वक तपस्या करनी चाहिए तपस्वियों ने शरीर को सूखाना हीं उत्तम तप बतलाया है ।।१२।। उसे शास्त्रानुसार कृच्छ्र चान्द्रायण इत्यादि के द्वारा अपने शरीर को सूखाना चाहिये । हे

भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम् । एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः ॥१५॥ अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः ।
आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वा ग्रासविधिं क्रमात् ॥१६॥ आदौ क्षिप्त्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम् । तदूर्ध्वं ग्राससंख्या स्याद्वानप्रस्थगृहस्थोः॥१७॥
कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते । अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम् ॥१८॥ ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्रं विधिपूर्वकम् । प्रोक्षणं
नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम् ॥१९॥ निश्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् । मंत्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणे विधिरुच्यते ॥२०॥ चौरो
वा यादि चांडालो वैश्यः क्षत्रस्तथैव च । अन्नं दद्यात्तु यः कश्चिदधमो विधिरुच्यते ॥२१॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण च सहासनम् । ते यांति
नरकं घोरं यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥२२॥ गायत्रीच्छंदो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च । तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥२३॥ द्वात्रिंशल्लक्षमानं
तु विश्वामित्रमतं तथा । जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥२४॥ पुरश्चरणहीनस्तु तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः । ज्येष्ठाषाढ़ौ भाद्रपदं पौषं तु
मलमासकम् ॥२५॥ अङ्गारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम् । अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम् ॥२६॥ चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च

नारद ! अब मैं अन्नशुद्धि की विधि को बतलाता हूँ ॥१३॥ तांत्रिकों तथा वैदिकों ने चार प्रकार से अन्न शुद्धि को बतलाया है । १. अयाचित (जो विना माँगे मिल जाय), २. उञ्छ (खेत के कट जाने के बाद उसमें पशुओं के चर लेने के बाद खेत से बीन करके जो अन्न प्राप्त किया जाय), ३. शुक्ल (न्यायार्जित वृत्ति से प्राप्त अन्न) प्राप्त अन्न को चार भागों में विभक्त करे । उसका एक भाग तो ब्राह्मण के लिए दे दे । दूसरे भाग का गोग्रास निकालाना चाहिए । तीसरा भाग अतिथि के लिए होता है और चौथा भाग अपने तथा अपनी पत्नी के लिए होता है । जिस आश्रम की जो विधि हो उसी का पालन करना चाहिए ॥१५-१६॥ उस अन्न पर अपनी शक्ति तथा क्रम के अनुसार पहले गोमूत्र का छींटा देना चाहिए । उसके पश्चात् गृहस्थ तथा वानप्रस्थी ग्रास की विधि करे ॥१७॥ ग्रास का प्रमाण मूर्गे के अण्डे के बराबर होता है । गृहस्थ को आठ ग्रास लेना चाहिए, वानप्रस्थी को चार ग्रास लेना चाहिए ॥१८॥ ब्रह्मचारी को यथेष्ठ मात्रा में ग्रास लेना चाहिए । सर्वप्रथम गोमूत्र से प्रोक्षण की विधि करे, इसके बाद, नवबार, या छह बार या तीन बार गायत्री मंत्र से प्रोक्षण का कार्य करे ॥१९॥ अंगुलियों को सटाकर तत्सवितुः इत्यादि मंत्र पढकर गोमूत्र से अन्न का प्रोक्षण करे । प्रोक्षण में मन में ही गायत्री मन्त्र को पढ़ना चाहिए ॥२०॥ कृच्छ्रचान्द्रायण में चोरी का अन्न, चाण्डाल का अन्न, वैश्यों का अन्न तथा शूद्रों का अन्न अधम बतलाया गया है । शूद्र का अन्न लेने वाले, शूद्र के साथ सम्पर्क करने वाले तथा शूद्रों के साथ एक आसन पर बैठने वाले व्रती तब तक घोर नरक में निवास करता है जब तक कि सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं । गायत्री छन्द में जितने अक्षर होते हैं, उतने लाख (चौबीस लाख) उसका जप करने से एक पुरश्चरण होता है ॥२३॥ विश्वामित्र महर्षि के मतानुसार बत्तीस लाख पुरश्चरण का प्रमाण होता है । जैसे जीव से रहित शरीर किसी भी काम को करने में समर्थ नहीं होता है ॥२४-२५॥ उसी तरह

तथा निशाम् । यमाग्निरुद्रसर्पेन्द्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥२७॥ मेषकर्कतुलाकुम्भान्मकरं चैव वर्जयेत् । सर्वाण्येतानि वर्ज्यानि पुरश्चरणकर्मणि ॥२८॥ चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषतः । पुरश्चरणकं कुर्यान्मंत्रसिद्धिः प्रजायते ॥२९॥ स्वतिवाचनकं कुर्यान्नांदीश्राद्धं यथाविधि । विप्रान्सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः ॥३०॥ आरभेत्तु ततः पश्चादनुज्ञानपुरः सरम् । प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत् ॥३१॥ काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम् । त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पंच दीपा इमे भुवि ॥३२॥ सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम् । प्रारंभदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि ॥३३॥ न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने । नैरंतर्येण कुर्वंति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः ॥३४॥ प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यदिनावधि। मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मंत्रार्थचिंतनम् ॥३५॥ गायत्रीच्छन्दो मंत्रस्य यथासंख्याक्षराणि च । तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा ॥३६॥ जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोंधसा । तिलैः पत्रैः प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः ॥३७॥ कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः । गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा ॥३८॥ नित्ये नैमित्तिके काम्ये त्रितये तु परायणः । गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च ॥३९॥ मध्याह्नमितभुङ्मौनी

से पुरश्चरण रहित मन्त्र किसी काम के पूरा फल देने में समर्थ नहीं होता है । ज्येष्ठ, आषाढ, भाद्रपद, पौष तथा मलमास ये महीने ॥२६॥ भौमवार तथा शनिवार, व्यतीपात तथा वैधृति योग, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, प्रदोष तथा रात्रि के समय, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण तथा अपना जन्मनक्षत्र, ये नक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ और मकर ये लग्न ये सभी पुरश्चरण के कार्य में वर्जित हैं ॥२७-२८॥ विशेष रूप से चन्द्रमा तथा नक्षत्र अनुकूल हो तब पुरश्चरण प्रारम्भ करने में मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२९॥ पहले विधिपूर्वक, स्वस्तिवाचन तथा नान्दीमुख श्राद्ध करके भोजन तथा वस्त्र प्रदान करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे ॥३०॥ उसके पश्चात् आचार्य की आज्ञा लेकर पुश्चरण प्रारम्भ करे । ब्राह्मण को चाहिए कि शिवजी के मन्दिर में अथवा अन्य किसी स्थान में पश्चिमाभिमुख होकर जप करे ॥३१॥ पृथिवी पर जप करने में पाँच दोष होते हैं १. काशीपुरी, २. केदारनाथ, ३. महाकाल (उज्जैन), ४. नासिक तथा ५. श्रेष्ठ क्षेत्र त्र्यम्बक ॥३२॥ कूर्मासन को सर्वत्र दीप (सिद्धपीठ) कहा गया है । पुरश्चरण प्रारम्भ करने के दिन से लेकर समाप्ति के दिन पर्यन्त प्रतिदिन एक बराबर जप करना चाहिए अधिक अथवा कम नहीं । बड़े-बड़े मुनीश्वर निरन्तर पुरश्चरण करते रहते हैं ॥३४॥ प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न पर्यन्त विधिपूर्वक जप करना चाहिए । जप करते समय मन को एकाग्र करके पवित्रतापूर्वक ध्यान करना चाहिए तथा मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिए ॥३५॥ गायत्री छन्द नामक मन्त्र के पुश्चरण में उतने ही लाख मन्त्र का जप करना चाहिए मन्त्र में जितने अक्षर हों ॥३६॥ जप के दशांश, घृतयुक्त, खीर, तिल, विल्वपत्र, पुष्प, यव, तथा मधु से होम करना चाहिए ॥३६॥ दशांश होम करने पर ही मन्त्र सिद्ध होता है । गायत्री का सेवन करना चाहिए । गायत्री देवी धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को देने वाली है ॥३८॥ नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कार्मों

निःस्नानार्चनतत्परः । जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः ॥४०॥ कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयाऽपि वा । यावत्कालं न सिद्ध्येत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम् ॥४१॥ सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते । आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्त्रं प्रत्यहं जपेत् ॥४२॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम् । षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षात सिद्धिमाप्नुयात् ॥४३॥ पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने । प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्यत्येव न संशयः ॥४४॥ मंत्रसिद्धिं विना कर्तुजपहोमादिकाः क्रियाः । काम्यं वा यदि वा मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥४५॥ पञ्चविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात् । स्वदेहे सिध्यते जंतुर्महर्षीणां मतं तथा ॥४६॥ अष्टाङ्गयोगसिद्ध्या च नरः प्राप्नोति यत्फलम् । तत्फलं सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥४७॥ शक्तो वापि त्वशक्तो वा आहार नियतं चरेत् । षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद्गुरुभक्तिरतः सदा ॥४८॥ एकाहं पञ्चगव्याशी चैकाहं मारुताशनः । एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत् ॥४९॥ स्नात्वा गङ्गादितीर्थेषु शतमंतर्जले जपेत् । शतेनापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५०॥ चान्द्रायणादि कृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् । राजा वा यदि वा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे ॥५१॥ गृहस्थो

में इसका परायण किया जाता है । गायत्री से बढ़कर लोक तथा परलोक में कोई भी दूसरा मन्त्र नहीं है ॥३९॥ साधक को चाहिए कि वह मध्याह्न में कम भोजन करे, मौन रहे, तीन बार स्नान करे और पूजन करे । बुद्धिमान को चाहिए कि वह जल में खड़ा होकर एकाग्रमन से गायत्री का तीन लाख जप करे ॥४०॥ पहले इस प्रकार से पुरश्चरण कर लेने के पश्चात् अपनी इच्छा के अनुसार जप करे । जब तक कार्य की सिद्धि न हो जाय तब तक जप आदि करते रहना चाहिए ॥४१॥ सामान्य काम्य कर्मों में आवश्यक विधि मैं बतला रहा हूँ । सूर्योदय के समय स्नान करके प्रतिदिन एक हजार गायत्री का जप करना चाहिए ॥४२॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा धन निश्चित रूप से प्राप्त करता है । ऐसा करने वाला, छह मास, या तीन मास, या एक वर्ष में सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥४३॥ घी में डुबोकर एक लाख कमलों का होम करने से साधक अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है । इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ॥४४॥ होम करने वाला मन्त्र की सिद्धि हुए बिना जप, होम आदि क्रियाएँ, काम्य तथा मोक्ष सबके सब निष्फल होते हैं ॥४५॥ पच्चीस लाख गायत्री के जप तथा दूध एवं दही से मनुष्य इसी शरीर से सिद्ध हो जाता है, यह महर्षियों का मत है॥४६॥ अष्टाङ्गयोग के सिद्ध करने से मनुष्य को जो फल मिलता है, उस फल की प्राप्ति होती है, उस फल को तथा सिद्धि को यह जप और होम करने वाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है ॥४७॥ साधक चाहे सशक्त हो अथवा अशक्त गुरु के वचनों पर विश्वास करके यदि वह निश्चित आहार करे तथा जप करे तो उसे छह मास में सिद्धि मिल जाती है ॥४८॥ गायत्री जप करने वाला मनुष्य एक दिन केवल पञ्चगव्य प्राशन करके रहे, एक दिन वायु पीकर रहे, और एक दिन ब्राह्मण के हाथ से प्राप्त कुछ आहार करे ॥४९॥ गंगा आदि नदियों में स्नान करके सौ बार जल के भीतर जप करे और उसके बाद जल पीकर

ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथवापि च । अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम् ॥५२॥ श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकांक्षिभिः । साग्निकश्च सदाचारो विद्वद्भिश्च सुरक्षितः ॥५३॥ ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदकादिभिः । भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुजेत् ॥५४॥ एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मंत्रसिद्धिमवाप्नुयात् । देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यं विलयं व्रजेत् ॥५५॥ तच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

नारायण उवाच– **अथातः श्रूयतां ब्रह्मन्वैश्वदेवविधानकम् । पुरश्चर्याप्रसंगेन ममापि स्मृतिमागतम् ॥१॥ देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च। पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पंचमः ॥२॥ पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः । कंडणी चोदकुम्भश्च तेषां पापस्य शान्तये ॥३॥ न**

सौ बार जप करे ऐसा करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥५०॥ वह चन्द्रायण आदि कृच्छ्रव्रतों का भी फल प्राप्त करता है । साधक यदि राजा हो या ब्राह्मण हो वह अपने घर पर ही जप करे ॥५१॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ या वानप्रस्थी को भी अपने अधिकारानुसार जप करने से यज्ञादि का फल प्राप्त होता है ॥५२॥ मोक्ष चाहने वाला व्यक्ति यदि श्रौत-स्मार्त आदि कर्मों को करे तो उसे चाहिए कि वह विद्वानों से शिक्षा प्राप्त करके सदाचार का पालन करते हुए साग्निक होकर जप करे ॥५३॥ वह प्रयत्न पूर्वक फल मूल तथा जल से भिक्षा का शुद्ध अन्न आठ ग्रास खाये ॥५४॥ इस तरह से पुरश्चरण करने वाला सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । हे देवर्षे ! जिसका अनुष्ठान करने से दारिद्र्य का नाश हो जाता है, उसका श्रवण करके वह पुण्यों की महती सिद्धि को प्राप्त करता है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

बलिवैश्वदेव तथा प्राणग्निहोत्र की विधि

श्रीनारायण ने कहा– हे ब्रह्मन् ! आप बलिवैश्वदेव विधि को सुनें, पुरश्चरण का प्रसङ्ग होने से मुझे इसकी याद आ गयी ॥१॥ देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, और पाँचवाँ मनुष्य यज्ञ इसी को वैश्वदेव कहते हैं ॥२॥ गृहस्थ के घर में पाँच प्रकार से पाप होते रहते हैं, चुल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली

चुल्ल्यां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥४॥ न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः ।
मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत ॥५॥ पुटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् । पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ॥६॥ फलैर्दधिघृतैः
कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः । अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः ॥७॥ जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम् । दध्याक्तं वा पायसाक्तं
तदभावेऽम्भसापि वा ॥८॥ शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी । रुक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः ॥९॥ अंगारान्भस्ममिश्रांस्तु
निर्हृत्योत्तरतोऽनलात् । जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम् ॥१०॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुंक्ते मूढधीर्द्विजः । स मूढो नरकं याति
कालसूत्रमवाक्शिराः ॥११॥ शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम् । संकल्पयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि ॥१२॥ अकृते वैश्वदेवे तु
भिक्षौ भिक्षार्थमागते । उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥१३॥ वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् । न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो
व्यपोहति ॥१४॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥१५॥ वैश्वदेवानंतरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत्।

तथा जलपात्र के स्थान, उन पाञ्चों प्रकार के पापों की शान्ति के लिए, इस यज्ञ को करना चाहिए ॥३॥ बलिवैश्वदेव को न तो चुल्हा में, न तो लोहे के
पात्र में, न तो पृथिवी पर, न मिट्टी के पात्र में इसे कुण्ड अथवा स्थण्डिल पर करना चाहिए ॥४॥ अग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिए, हाथ या शूप
या मृगचर्म से हवा नहीं करनी चाहिए, अपितु मुँह से फूँककर अग्नि को प्रज्ज्वलित करना चाहिए, क्योंकि मुख से ही अग्नि उत्पन्न हुई है ॥५॥ कपड़े
से हवा करने पर रोग होता है, शूप से हवा करने पर धन का नाश होता है । हाथ से हवा करने पर मृत्यु होती है, मुख से हवा करने से कर्म की सिद्धि
होती है ॥६॥ फल, दही, घी, शाक, मूल तथा जल से बलिवैश्वदेव करना चाहिए, इन वस्तुओं के नहीं मिलने पर, काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि किसी
भी वस्तु से करना चाहिए ॥७॥ तेल अथवा लवण से रहित वस्तुओं को घी में अथवा दही में डुबाकर या पायस (खीर) से बलिवैश्व देव करे, उसके अभाव
में जल से हवन करे ॥८॥ सूखे तथा वासी अन्न का हवन करने वाला कोढी होता है, जूठे अन्न से बलिवैश्वदेव करने से शत्रु की अधीनता होती है ।
रुक्ष अन्न का हवन करने से दरिद्रता होती है, लवण मिश्रित अन्न का होम करने से पतन हो जाता है ॥९॥ भस्म मिश्रित कुछ अग्नि को निकाल कर
अग्नि के उत्तर ओर फेंक दे उसके बाद वैश्वदेव का होम करे; किन्तु उसमें नमक नहीं मिला होना चाहिए ॥१०॥ जो अज्ञानी द्विज वैश्वदेव किए बिना ही
भोजन कर लेता है वह मृत्यु के बाद कालसूत्र नामक नरक कुण्ड में नीचे की ओर शिर करके गिर पड़ता है ॥११॥ शाक, फल, मूल, पत्र जो कुछ
भी भोजन के लिए उपलब्ध हो उसी में सिद्ध अन्न लेकर अग्नि में होम करे ॥१२॥ यदि बलिवैश्वदेव करने से पहले ही भिक्षुक आ जाय तो भोज्य पदार्थ
में से कुछ अन्न निकाल कर वैश्वदेव के लिए रख ले और शेष अन्न में से भिक्षुक को भिक्षा देकर विदा करे ॥१३॥ भिक्षुक के अपमान से जो पाप होता

तद्विधानं प्रवक्ष्यामि श्रुणु देवर्षिपूजितः ।।१६।। सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता । गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम् ।।१७।। गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत् । गोग्रासेन तु गोमाता सुरभिः संप्रसीदति ।।१८।। ततो गोदोहनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहांगणे । अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तति ।।१९।। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति । माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः ।।२०।। अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः । एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम् ।।२१।। तस्य नायं तु न नरो लोको भवति धर्मतः । यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः ।।२२।। सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात् । अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ।।२३।। यज्ज्ञात्वा मुच्यते जंतुर्जन्ममृत्युजरादिभिः । परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्बिषैः ।।२४।। विधिना भुज्यते येन मुच्येत स ऋणत्रयात् । कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम् ।।२५।। सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति । हृत्पुण्डरीकमरणिर्मनो मंथानसंज्ञकम् ।।२६।। वायुरज्ज्वा

है उसको वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता है, किन्तु पहले वैश्वदेव नहीं करने से जो पाप होता है, उसको भिक्षुक शान्त कर देता है ।।१४।। संन्यासी तथा ब्रह्मचारी ये दोनो सिद्ध अन्न के स्वामी बतलाये गये हैं । अतएव इन दोनों को अन्न प्रदान किए बिना भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।।१५।। बलिवैश्वदेव करने के बाद गोग्रास निकालना चाहिए । हे देवर्षि ! अब मैं आपको गोग्रास विधि बतलाता हूँ ।।१६।। पहले प्रार्थना करे हे सुरभि, आप वैष्णवी माता हैं । सदा विष्णुपद में आपका निवास है । हे सुरभे ! मेरे द्वारा दिए गये गोग्रास को आप स्वीकार करें ।।१७।। गोभ्यो नमः कहकर गौ की पूजा करे और गौ को ग्रास अर्पित करे । गोग्रास प्रदान करने से गौओं की माता सुरभि प्रसन्न होती हैं ।।१८।। उसके बाद गो दोहन काल पर्यन्त अपने आंगन में खड़ा रहकर अतिथि के आने की प्रतीक्षा करे । निराश होकर अतिथि जिसके घर से लौट जाता है ।।१९।। वह उस गृहस्थ स्वामी को अपने पापों को देकर तथा उसके पुण्य को लेकर चला जाता है । माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजाएँ, दास तथा अपने आश्रित जीव ।।२०।। अभ्यागत तथा अग्नि इन सबों को पोष्य बतलाा गया है । इस तरह से जान कर भी अज्ञान के कारण जो गृहस्थाश्रम के नियमों का पालन नहीं करता है, उसके लिए न तो यह लोक है और न परलोक । कोई धनी व्यक्ति सोमयाग को करके जिस फल को प्राप्त करता है, उस फल को दरिद्र ब्राह्मण इन पञ्च महायागों को ही करके प्राप्त कर लेता है । हे मुनिपुंगव नारदजी अब मैं प्राणग्नि होत्र की विधि बतलाता हूँ ।।२१-२३।। उसका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मृत्यु, जन्म तथा जरा रूप संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । इस विधि का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य पापों से मुक्त हो जाते हैं ।।२४।। जो ब्राह्मण विधिपूर्वक भोजन करता है वह अपने वंशके इक्कीस पीढी के पूर्वजों का उद्धार कर देता है ।।२५।। उसको सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त हो जाता है और वही सभी लोकों में संचरण करता है यह भावना करना चाहिए कि हृदय कमल ही अरणि है मन ही मन्थन काष्ठ है ।।२६।। वायु रस्सी हैं, उससे मन्थन करने से अग्नि प्रकट

मथेदग्निं चक्षुरध्वर्युरिव च । तर्जनीमध्यमांगुष्ठैःप्राणस्याहुतिं क्षिपेत् ॥२७॥ मध्यमानामिकांगुष्ठैरपानस्याहुति क्षिपेत् । कनिष्ठानामिकांगुष्ठैर्व्यानस्य
तदनंतरम् ॥२८॥ कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठैरुदानस्याहुति क्षिपेत् । सर्वांगुलैर्गृहीत्वान्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत् ॥२९॥ स्वाहांतान्प्रणवाद्यांश्च नाममंत्रांश्च वै
पठेत् । मुखे चाहवनीयस्तु हृदये गार्हपत्यकः ॥३०॥ नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ । वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युरिव
च॥३१॥ मनो ब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थान एव च । अहंकारः पशुश्चात्र प्रणवः पय ईरितम् ॥३२॥ बुद्धिश्च पत्नी संप्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी।
उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्युश्च स्रुवो करौ ॥३३॥ प्राणमंत्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः । देवतादित्य एवात्र गायत्रीच्छंद उच्यते॥३४॥
प्राणाय च तथा स्वाहा मन्त्रांते कीर्तयेदपि । इदमादित्यदेवाय न ममेति वदेदपि ॥३५॥ अपानमन्त्रस्य तथा गोक्षीरधवलाकृतिः । श्रद्धाग्नि
ऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता ॥३६॥ उष्णिक्छंदस्तथाऽपानाय स्वाहेत्यपि कीर्तयेत् । सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः ॥३७॥
व्यानमन्त्रस्य चाख्यातोऽम्बुजवर्णो हुताशनः । ऋषिरुक्तो देवताग्निरनुष्टुप् छंद ईरितम् ॥३८॥ व्यानाय च तथा स्वाहाऽग्नयेदं न ममेत्यपि ।
उदानमंत्रस्य तथा शक्रगोपसवर्णकः ॥३९॥ ऋषिरग्निः समाख्यातो वायुर्वै देवता स्मृता । बृहतीच्छंद आख्यातमुदानाय च पूर्ववत् ॥४०॥

हो गयी है । नेत्र ही अध्वर्यु (होता) है । इसके बाद तर्जनी, मध्यमा तथा अंगुष्ठ से भोज्य पदार्थों की आहुति डाले । यह पहली आहुति ॐ प्राणाय स्वाहा
कहकर दे ॥२७॥ मध्यमा, अनामिका तथा अंगूष्ठ से दूसरी आहुति अपानाय स्वाहा कहकर दे । सभी अंगुलियों से ॐ समानाय स्वाहा कहकर दे ॥२९॥
इस तरह सभी प्राणों के नाम के आदि में प्रणव लगा कर तथा मुख में आहवनीयाग्नि, हृदय में गार्हपत्याग्नि, नाभि में दक्षिणाग्नि, नीचे के भाग में सभ्य
तथा आवसथ नामक अग्नि का निवास है । वाणी ही होता है, प्राण ही उद्गाता है । चक्षु ही अध्वर्यु है ॥३०-३१॥ मन ही ब्रह्मा है, श्रोत्र ही आग्नीध्र
है । इस तरह की भावना करे । अहंकार में पशु की और प्रणव में पय की भावना करनी चाहिए ॥३२॥ बुद्धि में यजमान पत्नी की भावना करे । उसी
के अधीन रहकर गृहस्थ सभी कार्यों को करता है । छाती में वेदी की रोमों में दर्भ की और हाथों में स्रुवा की बुद्धि करे ॥३३॥ ॐ प्राणाय स्वाहा इस
मन्त्र के ऋषि सुवर्ण के समान कान्ति वाले क्षुधाग्नि नामक ऋषि हैं । इसके देवता आदित्य हैं और गायत्री ही छन्द है ॥३४॥ प्राणाय स्वाहा इस मन्त्र
के अन्त में इदमादित्यदेवाय न मम यह भी बोलना चाहिए ॥३५॥ अपान मन्त्र के ऋषि गो दुग्ध के समान वर्ण वाले श्रद्धा ही ऋषि हैं । सोम ही देवता
हैं ॥३६॥ तथा उष्णिक् छन्द है । ॐ अपानाय स्वाहा इस मन्त्र के अन्त में इदं सोमाय न मम यह बोलना चाहिए ॥३७॥ व्यानमन्त्र के ऋषि कमल के
समान वर्ण वाले अग्नि ऋषि हैं, इसके देवता अग्नि हैं, अनुष्टुप् छन्द है ॥३८॥ ॐ व्यानाय स्वाहा इस मन्त्र के अन्त में इदं अग्नये न मम, यह बोलना

**वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद्द्विजः । समानवायुमंत्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः ।।४१।। ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता ।
पंक्तिश्छंदः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत् ।।४२।। पर्जन्यायेदमित्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत् । वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः ।।४३।।
गायत्रीच्छंद आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि । स्वाहांतो मंत्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत् ।।४४।। इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम् ।
एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते । प्राणाग्निहोत्रविद्येयं संक्षेपात्कथिता हि ते ।।४५।।**

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच— **अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः । उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादन्ते विचक्षणः ।।१।। ये के चास्मत्कुले जाता**

चाहिए । उदान मन्त्र के ऋषि शक्रगोप के समान लाल वर्ण वाले अग्नि हैं, वायु देवता हैं और बृहती छन्द है । ॐ उदानाय स्वाहा इस मन्त्र के अन्त में इदं वायवे न मम यह बोलना चाहिए । समानवायु के मन्त्र के विरूप नामक अग्नि ऋषि हैं ।।३९-४१।। पर्जन्य नामक देवता हैं, पंक्ति छन्द हैं । ॐ समानाय स्वाहा इस मन्त्र के अन्त में इदं पर्जन्याय न मम । यह उच्चारण करना चाहिए । इसके बाद छठी आहुति देनी चाहिए । इसके ऋषि वैश्वानर नामक महान् अग्नि ऋषि हैं, गायत्री छन्द है इसके देवता आत्मा हैं । ॐ परमात्मने स्वाहा इस मन्त्र के अन्त में इदं परमात्मने न मम यह कहना चाहिए । इस तरह से मैंने आपको प्राणाग्नि होत्र की विधि बतलायी । इस विधि को जानकर उपासक ब्रह्म स्वरूप हो जाता है । मैंने आपको संक्षेप में प्राणाग्निहोत्र विद्या को बतलाया ।।४४-४५।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

प्राजापत्यादि व्रतों का वर्णन

श्रीनारायण ने कहा— साधकश्रेष्ठ को चाहिए कि वह भोजन करने के बाद उच्छिष्टभाग को उच्छिष्टभोजी पितरों को अर्पित करे ।।१।। उस समय साधक

दासदास्योऽन्नकांक्षिणः । ते सर्वे तृप्तिमायांतु मया दत्तेन भूतले ॥२॥ रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् । अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥३॥ पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत् । पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पंक्तिदूषकः ॥४॥ उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्ट; शुना शूद्रेण च द्विजः । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५॥ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टैः स्नानमेव विधीयते । एकाहुतिप्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत् ॥६॥ पञ्चभिः पञ्चकोटीनां तदनंतफलं स्मृतम् । प्राणाग्निहोत्रे वेत्रे यो ह्यन्नदानं करोति च ॥७॥ दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम् । प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ ॥८॥ सपवित्रकरो भुंक्ते यस्तु विप्रो विधानतः । ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पञ्चगव्यसमं भवेत् ॥९॥ पूजाकालत्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च । होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥१०॥ अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः । लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शांतचेतसा ॥११॥ नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं स शुभभाषणः । स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ॥१२॥ चांडालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम । नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु ॥१३॥ मैथुनस्य तथालापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत् । कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१४॥ सर्वत्र मैथुनत्यागो

को 'ये केचास्मत्' इत्यादि मन्त्र को पढ़ना चाहिए । उसका अर्थ है कि जो कोई भी हमारे कुल में अन्न चाहने वाले मृत दास दासियाँ हैं वे मेरे द्वारा पृथिवी पर दिए गये अन्न से तृप्त हो जायँ ॥२॥ इसके बाद 'रौरवे०' इत्यादि मन्त्र से जल अर्पण करे रौरव नरक आदि घोर अपवित्र स्थान में असंख्य वर्षों से यातना भोगने वाले तथा जल चाहने वाले जीव मेरे द्वारा प्रदत्त अक्षय्योदक से तृप्त हो जायँ ॥३॥ इसके बाद पवित्री की ग्रन्थि को खोलकर उसे पृथिवी पर रख दे । जो ब्राह्मण उस पवित्री को पात्र में डाल देते हैं, वे पंक्ति दूषक हैं ॥४॥ यदि ब्राह्मण के उच्छिष्ट का चाण्डाल अथवा कुत्ते से स्पर्श हो जाय तो वह एक रात उपवास करके पञ्चगव्य लेने से पवित्र होता है ॥५॥ यदि अनुच्छिष्ट की स्थिति में स्पर्श हो जाय तो केवल स्नान कर ले । प्राणाग्नि में एक आहुति देने से एक करोड़ यज्ञ का फल प्राप्त होता है, पाञ्च आहुति देने से पाँच करोड़ और उससे अधिक आहुति देने पर अनंत फल की प्राप्ति होती है । जो प्राणाग्नि के ज्ञाता को अन्नदान करता है उसको भी वही फल प्राप्त होता है जो फल प्राणाग्नि करने वाले को होता है । वे दोनों स्वर्गगामी होते हैं ॥८॥ जो ब्राह्मण हाथ में पवित्री धारण करके विधि पूर्वक भोजन करता है, उसको प्रत्येक ग्रास में पञ्चगव्य के समान फल प्राप्त होता है । पूजा के समय नित्य ही जप एवं तर्पण करना चाहिए । होम तथा ब्राह्मणभोजन इन सबों को पुरश्चरण कहते हैं ॥१०॥ वह पृथिवी पर सोए, सदा धार्मिक भावना बनाये रखे, क्रोध को जीत ले अपनी इन्द्रियों को वश में रखे, हल्का तथा सीमित भोजन करे, विनीत तथा शान्त मन रखे ॥११॥ नित्य तीनों सन्ध्याओं में स्नान करे, कल्याणमयी बातें कहे, स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक तथा जूठेमुँह वाले से बात न करे ॥१२॥ चाण्डालों से वार्तालाप न करे, जप, होम तथा पूजन के कर्म में झुककर बातें न करे ॥१३॥ वह मैथुन तथा मैथुन विषयक गोष्ठी में न जाय । कर्म, मन तथा वाणी से सभी अवस्थाओं में मैथुन का त्याग

ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते । राज्ञश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥१५॥ ऋतुस्नातेषु दारेषु संगतिर्या विधानतः । संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः॥१६॥ रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत् । ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि ॥१७॥ तथा यज्ञाननिष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः। अजागलस्य यज्जन्म तज्जन्म श्रुतिचोदितम् ॥१८॥ अतः कार्यं तु विप्रेंद्र ऋणत्रयविशोधनम् । ते देवानामृषीणां च पितॄणामृणिनस्तथा ॥१९॥ ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः । मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत् ॥२०॥ क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक् । भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचांद्रायणादिकृत् ॥२१॥ लवणं क्षारमम्लं च गृञ्जनं कांस्यभोजनम् । तांबूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम् ॥२२॥ श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत् । वृथा न कालं गमयेद्द्यूतस्त्रीस्वापवादतः ॥२३॥ गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः । भूशय्याब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च ॥२४॥ नित्यं त्रिषवणस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम् । नित्यपूजा नित्यदानमानंदस्तुतिकीर्तनम् ॥२५॥ नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः । जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः ॥२६॥ नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत् । देवताप्रतिमादौ वा वह्नौ वाऽभ्यर्च्य

करे, इसी को ब्रह्मचर्य कहते हैं । राजा और गृहस्थ के लिए यही ब्रह्मचर्य बतलाया गया है कि वह अपनी पत्नी के ऋतुस्नाता होने पर ही उसका विधिपूर्वक सङ्ग करे । स्त्री के ऋतुस्नाता और सवर्णा होना चाहिए ॥१६॥ यदि कोई ऐसी स्त्री के साथ सहगमन करता है तो उससे ब्रह्मचर्य का भङ्ग नहीं होता है। तीनों ऋणों (देवऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋण) को उतारे विना पुत्र को उत्पन्न किए बिना ॥१७॥ तथा यज्ञों का अनुष्ठान किए बिना मोक्ष चाहने वाले का अधोगमन होता है । श्रुति बतलाती है कि जिस तरह बकरी के गले में लटकने वाला स्तन व्यर्थ होता है, उसी तरह से उसका जन्म व्यर्थ हो जाता है॥१८॥ अतएव हे विप्रेन्द्र ! तीनों ऋणों को अवश्य उतार देना चाहिए । ऐसा व्यक्ति देवताओं, ऋषियों तथा पितरों का ऋणी होता है ॥१९॥ ऋषियों का ऋण ब्रह्मचर्य पालन करने से, पितरों का ऋण श्राद्ध एवं तर्पण करने से तथा देवताओं का ऋण यज्ञों को करने से अपाकृत होता है । अपने आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए ॥२०॥ विद्वान् को चाहिए कि वह दुग्ध पीकर, या फल खाकर, या शाक खाकर या हविष्य खाकर, या भिक्षान्न खाकर गायत्री का जप करते हुए कृच्छ्र चान्द्रायण करे ॥२१॥ कृच्छ चान्द्रायण करने वाले को नमक, क्षारीय पदार्थ, खट्टा, गाजर, कांसे के पात्र में भोजन करना, पान खाना, दोनों समय में भोजन करना, दुष्ट व्यक्तियों के साथ रहना । दूषित वस्त्र धारण करना श्रुतियों तथा स्मृतियों का विरोध करना, तथा रात्रि में वैदिक मन्त्र का जप करना, जुआ, स्त्री तथा दूसरे की निन्दा करने में समय बिताना छोड़ देना चाहिए ॥२२-२३॥ साधक को अपना समय देवता की पूजा, स्तोत्रपाठ तथा आगमों के अवलोकन में बिताना चाहिए । उसे भूमि पर सोना चाहिए, [illegible] चाहिए और मौन रहना चाहिए ॥२३॥ नित्य ही त्रिकाल स्नान करना चाहिए और क्षुद्र कर्मों को त्याग देना चाहिए । नित्य ही पूजा, नित्य दान, आनन्द; स्तुति और कीर्तन करना चाहिए ॥२५॥ नैमित्तिक पूजा

तन्मुखः ॥२७॥ स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः । निष्कामो देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः ॥२८॥ एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत् ।
तस्माद्द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः ॥२९॥ तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकंपकः । तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विंदते महत् ॥३०॥
तपोयुक्तस्य सिद्ध्यन्ति कर्माणि नियतात्मनः । विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम् ॥३१॥ येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः । स स
कामः समृद्ध्येत तेषां तेषां तथा तथा ॥३२॥ तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम् । पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारणम् ॥३३॥
स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद्द्विजः । केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः ॥३४॥ तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत वाग्यतः ।
सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा ॥३५॥ ॐ काराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम् । आपोहिष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम्॥३६॥
पुनंत्यः स्वस्तिमत्यश्च पावनान्यस्तथैव च । सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावंते च कर्मणाम् ॥३७॥ आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत् । ॐ कारं
व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीमथवाऽयुतम् ॥३८॥ तर्पयित्वाऽद्भिराचार्यानृषींश्छंदांसि देवताः । अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः ॥३९॥ नापि

करे तथा गुरु एवं देवता में विश्वास रखे । जप करने वाले के ये जो बारह कर्म बतलाये गये हैं वे सिद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥२६॥ नित्य ही सूर्योपस्थान
करके सूर्याभिमुख होकर जप करे । देवता की प्रतिमा आदि में अथवा अग्नि में पूजा करके देवताभिमुख होकर स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम तथा तर्पण
करे और निष्काम भाव से अपने सभी कर्मों को देवता को समर्पित करे ॥२७-२८॥ पुरश्चरण करने वाले को इसी तरह नियमों का पालन करना चाहिए।
जप तथा होम करने वाले ब्राह्मण को प्रसन्न रहना चाहिए ॥२९॥ वह तपस्या तथा वेदाध्ययन करे और जीवों पर कृपा करे । तपस्या से वह स्वर्ग को प्राप्त
कर लेता है और महान हो जाता है ॥३०॥ नियम पूर्वक तपस्या करने वाले के सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं । विद्वेषण, संहार करना, मारण और रोग
नाश भी सिद्ध हो जाते हैं ॥३१॥ जिन ऋषियों ने जिस प्रयोजन के लिए जिस देवता की स्तुति की उन सबों की सभी कामनाओं की पूर्ति हो गयी ॥३२॥
मैं उन कर्मों तथा उनके कर्मों के विधान को बतलाता हूँ । ब्राह्मण को चाहिए वह वेदाभ्यास करने से पहले प्राजापत्य व्रत करे । उसके बाद वह केश,
दाढी, रोम, तथा नखों को कटवा करके पवित्र हो जाय ॥३४॥ उस दिन वह रात-दिन तक कम बोले तथा मौन रखे । सत्य बोले पवित्र मन्त्रों तथा
व्याहृतियों का जप करे ॥३५॥ व्याहृतियों से पहले प्रणव लगाकर जप करे । 'तत्सवितु:' इत्यादि ऋचा का जप करे । पापों का नाश करने वाले 'आपोहिष्ठा'
इत्यादि सूक्त का जप करे ॥३६॥ सभी कर्मों को आदि में तथा अन्त में 'पुनन्त्य: स्वस्तिमत्यश्च' तथा 'पावमान्य: पुनन्तु' इन दो मन्त्रों का जप करे ॥३७॥
शान्ति के लिए इन मन्त्रों का एक हजार या एक सौ या दश बार जप करना चाहिए । अथवा ॐकार सहित तीनों व्याहृतियों के साथ त्रिपदा गायत्री का

चोदक्यया बध्वा पतितैर्नांत्यजैर्नृभिः । न देवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिंदकैः ।।४०।। न मातृपितृविद्विष्टैर्नावमन्येत कंचन । कृच्छ्राणामेष सर्वेषां
विधिरुक्तोऽनुपूर्वशः ।।४१।। प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सांतपनस्य च । पराकस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चांद्रायणस्य च ।।४२।। पञ्चभिः पातकैः
सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते । तप्तकृच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात् ।।४३।। त्रिभिश्चांद्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते । अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत
वरदास्तदा ।।४४।। छन्दांसि दशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्मन्त्रान्समश्नुते । त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।।४५।। त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं
चरेद्द्विजः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरदधिसर्पिः कुशोदकम् ।।४६।। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् । एकैकं ग्रासमश्नीयादहानि त्रीणि
पूर्ववत्।।४७।। त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद्द्विजः । एवमेव त्रिभिर्युक्तं महासांतपनं स्मृतम् ।।४८।। तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ।।४९।। नियतस्तु पिबेदापः प्राजापत्यविधिः स्मृतः । यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।।५०।।

दश हजार जप करे ।।३८।। जल से आचार्यों तथा ऋषियों का तर्पण करके, अनार्यों, शूद्रों तथा निन्दित लोगों से बातें न करे ।।३९।। वह ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतित तथा अन्त्यजों से भी बात न करे । देवता और ब्राह्मण से द्वेष करने वालों, आचार्य तथा गुरु की निन्दा करने वालों ।।४०।। माता-पिता से द्वेष करने वालों, से भी बातें न करे । स्वयं किसी का अपमान न करे । सभी कृच्छ्रव्रतों का यही नियम है ।।४१।। यही प्राजापत्य कृच्छ्र सांतापन कृच्छ्र परमकृच्छ तथा चान्द्रायण की भी यही विधि है ।।४२।। इस नियम का पालन करने वाला पाँचों महापातकों तथा सभी पापों से मुक्त हो जाता है । साधक तप्त कृच्छ्र का अनुष्ठान करके क्षणभर में ही सभी पापों को जला देता है ।।४३।। तीन चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करने वाला ब्रह्मलोक में जाकर सम्मानित होता है । आठ चान्द्रायण करने वाला वरदान देने वाले देवताओं का साक्षात्कार कर लेता है ।।४४।। दश चान्द्रायणों का अनुष्ठान करने वाला वेदमन्त्रों का साक्षात्कार कर लेता है और उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो जाती हैं । साधक तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायं काल, और तीन दिन तक बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसका ही भोजन करे ।।४५।। उसके बाद वह द्विज तीन दिन तक उपवास करे, इस तरह से वह प्राजापत्य कृच्छ्र करे । पहले दिन गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दधि, घी तथा कुशोदक इन तीनों को एक में मिलाकर पीले ।।४६।। और दूसरे दिन दिन-रात उपवास करे इसी को कृच्छ्र संतापन कहते हैं । इसी तरह तीन दिन तक एक-एक ग्रास, तीन दिन तक दो ग्रास तीन दिन तक तीन-तीन ग्रास भोजन करके फिर तीन दिन तक उपवास करे इसी को अतिकृच्छ्र व्रत कहते हैं । इसी तरह तीन बार अतिकृच्छ्र व्रत करे तो उसको महासंतापन व्रत कहते हैं ।।४७-४८।। प्रतिदिन क्रमशः गर्म जल, दुग्ध, घी तथा वायु पीकर एक बार स्नान करे, इसको तप्त कृच्छ्र कहते हैं ।।४९।। प्राजापत्य व्रत करने वाले को प्रतिदिन केवल जल पीकर रहना चाहिए।

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः । एकैकं तु ग्रसेत्पिंडं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ॥५१॥ अमावास्यां न भुंजीत एवं चांद्रायणे विधिः ।
उपस्पृश्य त्रिषवणमेतच्चांद्रायणं स्मृतम् ॥५२॥ चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिडान्कृताह्निकः चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् ॥५३॥
अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिने स्थिते । नियतात्मा हविष्यस्य यतिचांद्रायणं व्रतम् ॥५४॥ एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरंति हि । सर्वे
कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह ॥५५॥ एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम् । त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा ॥५६॥ एकैकं
सप्तरात्रेण शुद्ध्यत्येव न संशयः । एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः ॥५७॥ एवं शुद्धस्य कर्माणि सिद्ध्यन्त्येव न संशयः । शुद्धात्मा कर्म
कुर्वीत सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥५८॥ इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्संप्राप्नोति न संशयः । त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितः सर्वकर्मणा ॥५९॥ त्रीणि नक्तानि वा
कुर्यात्ततः कर्म समारभेत् । एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम् ॥६०॥ गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी । कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी॥६१॥

अपने मन को वश में रखकर प्रमत्त के समान आचरण नहीं करते हुए रहना चाहिए इस तरह बारह दिनों तक उपवास करने को पराकृच्छ्र कहते हैं । यह सभी पापों को विनष्ट कर देता है । चान्द्रायण व्रत करने वाला साधक कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन कम करता जाय, और अमावश्या के दिन कुछ भोजन न करे और वह शुक्ल पक्ष में एक-एक ग्रास भोजन बढ़ाता जाय यही चन्द्रायण की विधि है । इसमे प्रतिदिन त्रिकाल स्नान करना चाहिए ॥५०-५१॥ अपना अह्निक कृत्य करके मध्याह्न में चार ग्रास भोजन करे और रात्रि में भी चार ग्रास भोजन करे इसी को शिशु चन्द्रायण कहते हैं।।५३।। आह्निक कृत्य करके केवल मध्याह्न में प्रतिदिन आठ-आठ ग्रास भोजन करने को यति चन्द्रायण कहते हैं ॥५४॥ इस व्रत का पालन रुद्र, आदित्य, वसुगण, पृथिवी, मरुद्गण तथा सभी कुशली देवता करते रहते हैं ॥५५॥ विधिपूर्वक इस व्रत के करने से सात रात्रियों में शरीर के, त्वक् असृक् मांस, हड्डी, मेरु, मज्जा तथा वसा ये सातो धातु शुद्ध हो जाते हैं । इन व्रतों के करने से जिसका मन शुद्ध हो गया है, वह नित्य ही कर्मों को करता रहे ॥५६-५७॥ इस तरह से शुद्ध हुए पुरुष के सभी कर्म सिद्ध हो जाते हैं । शुद्ध आत्मा वाला व्यक्ति कर्मों को करता रहे । उसको सत्य बोलना चाहिए और जितेन्द्रिय होना चाहिए ॥५८॥ ऐसा करने वाला अपने समस्त अभिप्रेत अर्थों को प्राप्त कर लेता है । वह सभी कर्मों से रहित होकर तीन रात्रि तक उपवास करे॥५९॥ तीन रात्रियों तक उपवास करने के बाद कर्म प्रारम्भ करे । इस तरह की विधि को पुरश्चरण के फल को प्रदान करने वाला कहा गया है ॥६०॥ गायत्री का पुरश्चरण सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । यह महान पापों को विनष्ट करने वाला है । हे देवर्षे ! मैंने इसे आपको बतला दिया ॥६१॥ मन्त्र

आदौ कुर्याद्व्रतं मंत्री देहशोधनकारकम् । पुरश्चर्यां ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत् ॥६२॥ इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम् । एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम् ॥६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नारद उवाच– **नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः । शांत्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव । न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च ॥२॥ अथ शांतिः पयोऽक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः । शमी समिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोगग्रहादयः ॥३॥ आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद्द्विजः । जुहुयाच्छकलैर्वापि भूतरोगादिशांतये ॥४॥ जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शांतिमाप्नुयात् । जानुदध्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत् ॥५॥ कंठदध्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणांतिकाद्भयात् । सर्वेभ्यः**

का जप करने वाले को पहले शरीर को शुद्ध करने वाले व्रत को करना चाहिए, उसके बाद वह पुरश्चरण प्रारम्भ करे । ऐसा करके ही वह फल को प्राप्त करता है ॥६२॥ इस तरह से मैंने आपको पुरश्चरण की गोपनीय विधि को बतलाया । यह श्रुतियों का सार है । इसे दूसरों को नहीं बतलाना चाहिए ॥६३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

गायत्री के विविध प्रयोग

नारदजी ने कहा– हे महाभाग नारायण ! हे करुणानिधे !! आप गायत्री के शान्ति आदि प्रयोगों को बतलाइये ॥१॥ **श्रीनारायण ने कहा–** हे ब्रह्मपुत्र! आपने अत्यन्त गोपनीय वस्तु को पूछा है, उसे दुष्टों तथा चुगलखोरों को नहीं बतलाना चाहिए ॥२॥ अब मैं शान्ति प्रयोग को बतला रहा हूँ । ब्राह्मण को चाहिये कि वह एक हजार गायत्री का जप करके दूध वाले पेड़ की समिधा से होम करे । वह समिधा शमी की हो । इससे सभी भौतिक रोग तथा ग्रह आदि शान्त हो जाते हैं ॥३॥ दूध वाले वृक्ष की गीली समिधाओं से होम करे । ऐसा करने से भूतों तथा रोगों की शान्ति होती है । होम के बाद

शांतिकर्मभ्यो निमज्ज्याप्सु जपः स्मृतः ॥६॥ सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा । क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृण्मयेऽपि वा ॥७॥ सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले । क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं संपादयेच्छनैः ॥८॥ प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम् । तेन तं प्रोक्षयद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन् ॥९॥ बलिं किरंस्ततस्तस्मिन्ध्यायेत्तु परदेवताम् । अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ॥१०॥ देवभूतपिशाचाद्यान् यद्येवं कुरुते वशे । गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते ॥११॥ निखनेन्मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च । मंडले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥१२॥ अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशांतये । सौवर्णं राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा ॥१३॥ मृण्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम् । स्थंडिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः ॥१४॥ दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः । एलाचन्दनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः॥१५॥ बिल्वपत्रं तथा क्रान्तां देवीव्रीहियवांस्तिलान् । सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥१६॥ सर्वाण्यभिविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम् । स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं मंत्रयेद्बुधः ॥१७॥ दिक्षु सौरानधीयीरन्मंत्रान्विप्रांस्त्रयीविदः । प्रोक्षयेत्पाययेदेनं

जल से सूर्य का तर्पण करे । घुटने भर पानी में खड़ा होकर जप करने से सभी दोषों की शान्ति होती है ॥४-५॥ गले भर पानी में जप करने से प्राणान्तक भय से भी मुक्ति मिल जाती है । सभी शान्ति कर्मों के लिए पानी में डूबकर जप बतलाया गया है ॥६॥ सोने, चाँदी, ताम्बे, तथा दूध वाले काष्ठ से बने पात्र, अथवा मिट्टी के पात्र में ॥७॥ पञ्चगव्य रखकर दूध वाले वृक्ष की समिधा से प्रज्वलित अग्नि में एक हजार गायत्री का जप करते हुए पञ्चगव्य से होम करे । यह कार्य धीरे-धीरे करे । गायत्री मंत्र पढकर समिधा को पंचगव्य में बोर ले फिर हवन करे । उसके बाद बचे हुए पञ्चगव्य से उस स्थान का मन्त्र पढ़ते हुए कुश से प्रोक्षण करे ॥९॥ इसके बाद परादेवता का ध्यान करते हुए बलि प्रदान करे । ऐसा करने से अभिचार कर्म के द्वारा उत्पन्न कृत्या तथा पाप का नाश होता है ॥१०॥ ऐसा करने से देवता, भूत तथा पिशाच आदि उस ब्राह्मण के वश में हो जाते हैं और वे गृह, ग्राम, नगर और राष्ट्र पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं डाल पाते हैं ॥११॥ भूमि पर चतुरस्र मण्डल बनाकर उसके बीच में गायत्री मन्त्र पढ़कर त्रिशूल गाड़ दे ॥१२॥. ऐसा कर देने से सभी प्रकार की शान्ति होती है । सोना, चाँदी, ताम्बा या मिट्टी के नवीन दिव्य सूत्र से वेष्टित तथा निश्छिद्र कलश को वेदी अथवा बालू पर स्थापित करके उसमें चारो दिशाओं के तीर्थों से ब्राह्मणों के द्वारा लाये गये जल को मन्त्रोच्चारण पूर्वक भर दे । उस कलश में इलायची, लवंग, चन्दन, कर्पूर, जायफल, गुलाब, मालती, विल्वपत्र, विष्णुकान्ता, सहदेई, धान, यव, तिल, सरसो तथा दूध वाले वृक्ष पीपल, गूलर, पाकड़ और वट के कोमल पल्लव को डाल दे ॥१३-१६॥ सत्ताइस कुशों से निर्मित कुश का कूर्च भी डाल दे । विद्वान् ब्राह्मण सावधानी से उस कलश को एक हजार गायत्री मन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित करे ॥१७॥ उसकी चारो दिशाओं में वेदज्ञ ब्राह्मण सूर्य के मन्त्रों का पाठ करें । उस अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करें तथा उसे रोगी को पिलायें

नीरं तेनाभिषिंचयेत् ॥१८॥ भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत् । अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः ॥१९॥ अवश्यं कारयेद्विदान्राजा दीर्घं जिजीविषुः । गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने ॥२०॥ दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथाशक्त्याऽथवा भवेत् । जपेदश्वत्थमालभ्य मंदवारे शतं द्विजः ॥२१॥ भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात् । गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोऽक्ता जुहुयाद्द्विजः ॥२२॥ एवं मृत्युंजयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः । आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोऽक्तैर्ज्वरशांतये ॥२३॥ वचाभिः पयसाऽक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् । मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥२४॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् । राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छांतिमाप्नुयात् ॥२५॥ लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद्द्विजः । सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोऽक्ताः क्षयशांतये ॥२६॥ कुसुमैः शंखवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् । अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तंडुलैः ॥२७॥ क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति । औदुम्बरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत् ॥२८॥ प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा । मधुत्रितयहोमेन नयेच्छांतिं मसूरिकाम् ॥२९॥ कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छांति मसूरिकाम् । उदुम्बरवटाश्वत्थैर्गोगजाश्वामयं

तथा अभिषेक करे ॥१८॥ ऐसा करने से रोगी भूतों, रोगों तथा अभिचार कर्मों से छुटकारा पाकर सुखी हो जाता है । अभिषेक करने पर मृत्यु के मुख में गया हुआ व्यक्ति भी मुक्त हो जाता है ॥१९॥ विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह दीर्घकाल तक जीने की इच्छा वाले राजा को इस प्रकार से अनुष्ठान कराने के लिए प्रेरित करें । हे मुने ! अभिषेक का कार्य पूरा हो जाने पर ऋत्विजों को सौ गायें दान दे ॥२०॥ ऋत्विजों को उतनी दक्षिणा देनी चाहिए जिससे कि ऋत्विजों को सन्तोष हो अथवा अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए । ब्राह्मण को चाहिए कि वह शनिवार के दिन पिप्पल के पेड़ का स्पर्श करके सौ बार गायत्री का जप करे ॥२१॥ ऐसा करके वह भूत, रोग तथा अभिचार कर्म से मुक्त हो जाता है । ब्राह्मण गुरुच को टुकड़ा-टुकड़ा करके उसको दूध में भिंगोकर होम करे । यह सभी रोगों को विनष्ट करने वाला मृत्युंजय होम है । ज्वर की शान्ति के लिए गायत्री मंत्र से दूध में डुबाकर आम के पत्ते का होम करे ॥२२-२३॥ दूध में डुबाकर मिट्ठी बचा का होम करने से क्षयरोग समाप्त होता है । त्रिमधु (दूध, दही और घी) से होम करने से राजयक्ष्मा नामक रोग समाप्त होता है ॥२४॥ खीर से होम करके, उसे सूर्य को भोग लगाये और बाद में उसे प्रसाद के रूप में स्वयं ग्रहण करे तो राजयक्ष्मा का रोगी शान्ति को प्राप्त करता है ॥२५॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह क्षय रोग की शान्ति के लिए सोमलता के टुकड़ों को दूध में डुबा कर होम करे॥२६॥ शंख वृक्ष के फूलों से होम करने से कुष्टरोग समाप्त होता है । अपामार्ग के चावल से होम करने से अपस्मार रोग समाप्त होता है ॥२७॥ दूध वाले वृक्ष की समिधा से होम करने से उन्माद भी नष्ट हो जाता है । गूलर की समिधा से होम करने से प्रमेह रोग समाप्त हो जाता है ॥२८॥ अथवा मधु या ईख

हरेत्॥३०॥ पिप्पीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम् । शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद्द्विजः ॥३१॥ तदुत्थं शांतिमायाति शेषैस्तत्र बलिं हरेत्।
अभ्रस्तनितभूकम्पलक्ष्यादौ वनवेतसः ॥३२॥ सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत् । यां दिशं शतजप्तेन लोष्ठेनाभि प्रताडयेत् ॥३३॥
ततोऽग्निमारुतादिभ्यो भयं तस्य विनश्यति । मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥३४॥ भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत् ।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाऽभिमंत्रितम् ॥३५॥ अभिमन्त्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशांतये । शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥३६॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः । अशक्तः कारयेच्छांतिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥३७॥ अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाऽऽप्नुयाद्द्विजः।
श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ॥३८॥ हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवैः शुभैः । शातितंडुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ॥३९॥
समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् । बिल्वस्य शकलैहुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥४०॥ श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि ।

के रस से होम करके प्रमेह रोग को दूर करना चाहिए । त्रिमधु (दूध, दही और घी) का होम करने से मसूरिका (चेचक) रोग समाप्त हो जाता है ॥२९॥
कपिला गौ के घी से होम करने से भी चेचक समाप्त होता है । गूलर, पीपल और वट की समिधा से होम करने से हाथी, घोड़े और गौ के रोग समाप्त
होते हैं ॥३०॥ चींटी, तथा मधु वाल्मीक नामक जीवों का घर में उपद्रव होने पर प्रत्येक कार्य के लिए दो-दो सौ शमी की समिधा को घी में डुबोकर होम
करना चाहिए ॥३१॥ इस प्रकार से होम करने से वह उपद्रव शान्त हो जाता है और अवशिष्ट द्रव्य से बलि प्रदान करे आकाश से विजली गिरने तथा
भूकम्प का भय होने पर वनैले वेत की समिधा, से सात दिनों तक होम करने पर राष्ट्र सुखी हो जाता है । कोई ब्राह्मण यदि सौ बार गायत्री पढ़कर जिस
दिशा में ढेला फेंके उस दिशा में अग्नि पवन तथा शत्रुओं का भय नहीं होता है । मन ही मन गायत्री का जप करते रहने वाला व्यक्ति बन्धन से मुक्त
हो जाता है ॥३३-३४॥ कुश से रोगी को स्पर्श करके गायत्री मन्त्र का जप करने से भूतों, रोगों तथा विष के भय से मुक्ति मिलती है । गायत्री से अभिमन्त्रित
जल को पीने से भूत आदि से मुक्ति मिलती है ॥३५॥ भूत आदि की शान्ति के लिए सौ बार गायत्री पढ़कर अभिमन्त्रित भस्म को शिर पर धारण कर
ले ॥३६॥ ऐसा करने वाला सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवित रहता है । असमर्थ व्यक्ति इस प्रयोग को ब्राह्मण से कराकर उसे दक्षिणा,
प्रदान करे ॥३७॥ पुष्टि, श्री तथा लक्ष्मी चाहने वाले ब्राह्मण को फूलों से होम करना चाहिए । यदि लाल कमल से होम करे तो श्री की प्राप्ति होती है॥३८॥
नवीन जूही के फूलों से होम करने से श्री की प्राप्ति होती है । साठी धान के चावल से होम करने से पुष्कल मात्रा में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥३९॥
विल्ववृक्ष की समिधा से होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । विल्वफल के टूकड़ों, पत्तों, तथा फूलों से होम करने से पुरुष उत्तम श्री को प्राप्त करता
है । समिधा भी विल्ववृक्ष की ही होनी चाहिए ॥४०॥ प्रतिदिन दूध तथा घी से भिंगे काष्ठ का दो-दो सौ बार यदि होम करे तो उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती

समिद्धिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा ॥४१॥ शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् । लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात् ॥४२॥ अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वांछितम् । रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात् ॥४३॥ सूर्यबिंबे जलं हुत्वा जलस्थं हेम चाप्नुयात् । अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत् ॥४४॥ करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात् । प्रियंगुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा ॥४५॥ निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् । भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ॥४६॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वा समाप्नुयात् । समिद्धिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वाऽऽयुषमवाप्नुयात् ॥४७॥ सप्ररोहाभिरार्द्राभी रक्ताभिर्मधुरत्रयैः । ब्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात् ॥४८॥ सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात् । दुर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषाऽपि वा ॥४९॥ शतं शतं च सप्तहमपमृत्युं व्यपोहति । शमी समिद्धिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा ॥५०॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति । न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः ॥५१॥ शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति। क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत् ॥५२॥ अनशनन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात् । निमज्ज्याप्सु जपदेवं सद्यो मृत्योर्विमुच्यते॥५३॥

है । त्रिमधु मिश्रित लावा से होम करने से कन्या की प्राप्ति होती है ॥४१-४२॥ इसी तरह का अनुष्ठान करके कन्या अपने मनोऽनुकूल पति को प्राप्त करती है । एक सप्ताह तक रक्त कमल की सौ-सौ आहुति देने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है । अन्न का होम करने से अन्न की तथा धान का होम करने से धान की प्राप्ति होती है ॥४३-४४॥ बछड़े के गोबर के उपलों का होम करने से पशुओं की वृद्धि होती है । प्रियंगु के खीर तथा घी से होम करने से प्रजाओं की प्राप्ति होती है ॥४५॥ होम करने के पश्चात् खीरान्न को सूर्य को निवेदित करक उसको यदि ऋतुस्नाता नारी को खिलाया जाय तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है ॥४६॥ गीली समिधा से होम करने से आयु की प्राप्ति होती है । दूध वाले वृक्ष के अग्रभाग से होम करने से आयु की प्राप्ति होती है ॥४७॥ त्रिमधु से आर्द्र तथा अग्रभाग से युक्त समिधा से होम करने से तथा धान से सौ आहुति का होम करने से सुवर्ण तथा आयु दोनों की प्राप्ति होती है ॥४८॥ स्वार्णिम कमल की कलियों की सौ आहुति प्रदान करने से सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है । दुर्वा, दूध, मधु अथवा घी से प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देने से एक सप्ताह में अपमृत्यु का भय समाप्त हो जाता है । शमी की समिधा, अन्न दूध अथवा घी से एक सप्ताह तक सौ-सौ आहुतियाँ देकर मनुष्य अपमृत्यु को दूर कर देता है । पहले बट की समिधा से होम करके खीर से होम करे ॥५०-५१॥ इस तरह से प्रतिदिन एक सप्ताह तक सौ-सौ आहुति देने से अपमृत्यु दूर होती है । जो व्यक्ति केवल दूध पीकर गायत्री से होम करता है वह सप्ताह भर में विजयी होता है ॥५२॥ तीन रात्रि तक उपवास करके मौन रहकर गायत्री का जप करने वाला व्यक्ति यमराज के भय से मुक्त हो जाता है । यदि जल में डूबकर इस तरह से जप करे तो

जपेद्बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमावाप्नुयात् । बिल्वं हुत्वाऽऽप्नुयाद्राज्यं समूलफलपल्लवम् ॥५४॥ हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकंटकम् । यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम् ॥५५॥ अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् । अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥५६॥ संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च । पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥५७॥ नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् । जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥५८॥ पालाशीभिराप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम् । पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात् ॥५९॥ पयो हुत्वाऽऽप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात् । अभिमन्त्र्य पिबेद्ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात् ॥६०॥ पुष्पहोमे भवेद्वासस्तंतुभिस्तद्विधं पटम् । लवणं मधुसंमिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत् ॥६१॥ नयेदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीं पुष्पैर्मधुप्लुतैः । नित्यमंजलिनाऽऽत्मानमभिषिंचेज्जले स्थितः ॥६२॥ मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात् । कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात् ॥६३॥ अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत् । आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम् ॥६४॥ आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः । भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत् ॥६५॥ आयुः श्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्च

शीघ्र ही मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है ॥५३॥ विल्ववृक्ष के नीचे बैठकर जप करे तो एक माह में उसे राज्य की प्राप्ति होती है । मूल, फल तथा पत्र के साथ विल्व के फल का होम करने से राज्य की प्राप्ति होती है ॥५४॥ एक मास तक कमल का होम करने से निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति होती है । साठी के चावल के साथ हलवे से होम करके ग्राम को प्राप्त किया जा सकता है ॥५५॥ पीप्पल वृक्ष की समिधाओं का हवन करके युद्ध में विजय मिलती है । मदार की समिधा से होम करने से सर्वत्र विजय की प्राप्ति होती है ॥५६॥ दूध से युक्त यदि वेंत के पत्तों या पुष्पों अथवा खीर से होम किया जाय तो एक सप्ताह में वृष्टि होती है ॥५७॥ नाभि पर्यन्त जल में गायत्री का जप करने से एक सप्ताह में वृष्टि होती है । जल में भस्म की सौ आहुति देने से महावृष्टि रुक जाती है ॥५८॥ पलाश की समिधाओं से होम करने से ब्रह्मतेज की समृद्धि होती है और पलाश के पुष्पों से होम करके साधक अपने समस्त अभिलषित अर्थों को प्राप्त कर लेता है ॥५९॥ दुग्ध का होम करने से मेधा की प्राप्ति होती है और धृत से होम करने से बुद्धि की प्राप्ति होती है । गायत्री से अभिमंत्रित करके ब्राह्मी के रस को पीने से मेधा बढ़ती है ॥६०॥ ब्राह्मी के पुष्पों से होम करने से वस्त्र की प्राप्ति होती है और तन्तुओं का होम करने से वैसे ही वस्त्र की प्राप्ति होती है । मधु मिश्रित नमक का होम करने से अपना अभिलषित व्यक्ति वश में हो जाता है ॥६१॥ मधुमिश्रित पुष्पों से होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और अभिप्रेत व्यक्ति वश में हो जाता है । यदि जल में खड़ा होकर अंजलि में जल भरकर कोई अपने ऊपर जल को छोड़ता है ॥६२॥ तो उसे श्रेष्ठ बुद्धि, आरोग्य, आयु, स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है । यदि यह कार्य दूसरे के लिए किया जाय तो वह भी पुष्टि को प्राप्त करता है ॥६३॥ आयु चाहने वाले को पवित्र स्थान में अच्छी तरह से एक महीने तक प्रतिदिन एक हजार गायत्री का जप करना चाहिए।

यशो जपात् । पुत्रदाराऽऽयुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पंचभिः ॥६६॥ एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत् । एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः ॥६७॥ मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् ॥६८॥ रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम् । यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात् ॥६९॥ एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वाऽनिलं वशी । मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः॥७०॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् । निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं वत्सरादृषितामियात् ॥७१॥ एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात् । एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः ॥७२॥ नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात् । गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम् ॥७३॥ त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम् । आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत् ॥७४॥ पंचभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत् । एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात्॥७५॥

ऐसा करने वाला उत्तम आयु को प्राप्त करता है ॥६४॥ आयु तथा आरोग्य दोनों चाहने वाले को उसी तरह दो मास तक गायत्री का जप करना चाहिए।॥६५॥ आयु, आरोग्य और श्री चाहने वाले को तीन मास तक उसी तरह से गायत्री का जप करना चाहिए ॥६५॥ आयु, श्री, पुत्र, स्त्री तथा यश चाहने वाले को चार मास तक जप करना चाहिए । पुत्र, स्त्री, आयु, आरोग्य तथा विद्या चाहने वाले को पाँच मास तक जप करना चाहिए ॥६६॥ इसी तरह से अधिकाधिक वस्तुओं की कामना से अधिकाधिक मात्रा में जप करना चाहिए । एक पैर पर खड़ा होकर, ऊपर की ओर हाथ उठाकर बिना किसी अवलम्बके॥६७॥ एक महीने तक तीन सौ गायत्रीमन्त्र का जप करने वाले ब्राह्मण की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । इसी तरह प्रतिदिन ग्यारह सौ गायत्री का जप करने से सब कुछ की प्राप्ति हो जाती है ॥६८॥ अपने प्राण तथा श्वास को रोककर इस तरह से गायत्री का एक मास तक तीन सौ जप करने से साधक जो चाहता है, उसकी ही प्राप्ति हो जाती है ॥६९॥ जितेन्द्रिय साधक एक पैर पर खड़ा होकर हाथ ऊपर करके तथा श्वास रोककर एक मास तक सौ गायत्री मन्त्र प्रतिदिन जपता है, वह अपने अभिलषित वस्तु को प्राप्त कर लेता है, यह विश्वामित्र का कहना है ॥७०॥ इस तरह से एक मास तक तेरह सौ जप करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है । इसी तरह से यदि वह जल में डूबकर एक वर्ष तक जप करे तो वह ऋषि हो जाता है ॥७१॥ इसी तरह तेरह सौ प्रतिदिन जप करने वाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है । एक पैर पर खड़ा होकर तथा ऊपर की ओर हाथ उठाकर तथा अपने प्राणों का नियमन करके विना किसी अवलम्ब के केवल रात्रि को हविष्यान्न खाकर एक वर्ष तक जप करने वाला ऋषि हो जाता है । इसी तरह से दो वर्ष तक गायत्री का जप करने वाले की वाणी अमोघ हो जाती है ॥७३॥ तीन वर्ष तक इस तरह से जप करने वाला त्रिकालदर्शी हो जाता है । चार वर्ष तक ऐसे ही जप करने वाले के पास भगवान् सूर्य आ जाते हैं ॥७४॥ पाँच वर्षों तक इस तरह से जप करने वाला अणिमा आदि सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता है। इसी तरह छह वर्षों तक जप करने वाला अपनी इच्छा के अनुसार अपना रूप बना लेता है ॥७५॥ सात वर्षों तक इस तरह से जप करने वाला देवत्व

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात् । मनुत्वं नवभिः सिद्धमिंद्रत्वं दशभिर्भवेत् ॥७६॥ एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः । ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं
जप्त्वा द्वादशवत्सरान् ॥७७॥ एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः । शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे ॥७८॥ घृतमन्ये परे सोममपरे
चरुवृत्तयः । ऋषयः पक्षमश्नंति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि ॥७९॥ हविष्यमपरेऽश्नंतः कुर्वंत्येव परं तपः । अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं
जपेद्द्विजः ॥८०॥ मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः । जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥ मासं जपेत्त्रिसाहस्रं शुचिः
स्याद्गुरुतल्पगः । त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन् ॥८२॥ ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम् । द्वादशाहं निमज्ज्याप्सु सहस्रं
प्रत्यहं जपेत् ॥८३॥ मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः । त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥८४॥ महापातकयुक्तो वा मुच्यते महतो
भयात् । प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महाऽपि विमुच्यते ॥८५॥ षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः । प्राणायामो भवेदेष सर्वपापप्रणाशनः॥८६॥
सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात् । द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः ॥८७॥ अगम्यागमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे । दशसाहस्रमभ्यस्ता

को प्राप्त कर लेता है । नव वर्षों तक इस तरह से जप करने वाले को मनुत्व तथा दश वर्षों तक इस तरह से जप करने वाले को इन्द्रत्व की प्राप्ति
होती है ॥७६॥ ग्यारह वर्षों में वह प्रजापतित्व को प्राप्त कर लेता है, और इसतरह से बारह वर्षों तक जप करके वह ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है ॥७७॥
इस तरह से ही तपस्या करके नारद आदि ऋषियों ने लोकों पर विजय प्राप्त किया है । कुछ ऋषि शाक खाकर, दूसरे ऋषि मूल खाकर, दूसरे ऋषि दूध
पीकर ॥७८॥ कुछ ऋषि चरु खाकर रहते थे । कुछ ऋषि एक पक्ष में एक बार भोजन करते थे और कुछ ऋषि दिन में केवल भिक्षा से प्राप्त अन्न ही
खाते थे ॥७९॥ कुछ हविष्य का ही भोजन करके घोर तपस्या करते थे । पातकों की शान्ति के लिए द्विज को तीन हजार जप करना चाहिए ॥८०॥ इस
तरह जप करके ब्राह्मण सुवर्ण की चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है । एक मास तक जप करने से मदिरा पीने से होने वाले पाप की शुद्धि होती है ॥८१॥
एक मास तक जप करके ब्राह्मण गुरु की पत्नी के साथ सहगमन के पाप से मुक्त हो जाता है । यदि ब्राह्मण वन में कुटी बनाकर एक मास तक गायत्री
का प्रतिदिन तीन हजार जप करता है तो वह ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है । यह महर्षि विश्वामित्र ने कहा है । बारह दिनों तक जल में डूबकर
प्रतिदिन तीन हजार गायत्री का जप करे तो ॥८२-८३॥ सभी पापों से ब्राह्मण मुक्त हो जाते हैं । अपने प्राणों को नियंन्त्रित करके एक मास तक प्रतिदिन
तीन हजार जप करे ॥८४॥ ऐसा करने वाला ब्राह्मण महान् पापों से भी मुक्त हो जाता है । प्रतिदिन एक हजार प्राणायाम करके ब्राह्मण को मारने वाला
भी पाप से मुक्त हो जाता है ॥८५॥ प्राण तथा अपान वायु को ऊपर चढ़ाकर छह बार गायत्री का जप करने से एक प्राणायाम होता है । यह प्राणायाम

गायत्री शोधयेद्द्विजम् ॥८८॥ प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् । सर्वेषामेव पापानां संकरे सति शुद्धये ॥८९॥ सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्यजापी वने वसन् । उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रं तदित्यृचम् ॥९०॥ चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता । चतुःषष्टिसहस्राणि चांद्रायणसमानि तु ॥९१॥ शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः । तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम् ॥९२॥ निमज्ज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम्। ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९३॥ इति ते सम्यगाख्याताःशांतिशुद्ध्यादिकल्पनाः । रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा ॥९४॥ इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः । विधिनाऽऽचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति ॥९५॥ नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यकर्म यथाविधि । आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक् ॥९६॥ आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी । इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचारफलं महत् ॥९७॥

सभी पापों को नष्ट कर देता है ॥८६॥ प्रतिदिन एक हजार गायत्री का जप करने से राजा भी पवित्र हो जाता है । यदि ब्राह्मण को गोहत्या का पाप लग जाय तो वह उसकी शुद्धि के लिए बारह दिनों तक प्रतिदिन तीन हजार गायत्री का जप करे ॥८७॥ दश हजार गायत्री का जप करने से ब्राह्मण की अगम्यागमन, चोरी, प्राणी हिंसा, तथा अभक्ष्य भक्षण के पाप से शुद्ध हो जाता है ॥८८॥ सौ प्राणायामों के करने से ब्राह्मण सभी पापों से मुक्त हो जाता है । सभी प्रकार के मिश्रित पापों से मुक्ति पाने के लिए ॥८९॥ वन में रहकर नित्य ही गायत्री का एक हजार जप करना चाहिए । गायत्री का तीन हजार जप करना उपवास के समान होता है ॥९०॥ चौबीस हजार गायत्री का जप कृच्छ्र चान्द्रायण के समान होता है । चौसठ हजार गायत्री का जप चन्द्रायण के समान होता है ॥९१॥ दोनों सन्ध्याओं में प्राणायाम करते हुए सौ-सौ गायत्री का जप करने से सभी पापों का नाश हो जाता है ॥९२॥ नित्य ही पानी में डूबकर गायत्री का सौ बार जप सूर्य स्वरूपिणी देवी का ध्यान करते हुए करना चाहिए ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥९३॥ हे नारदजी! मैंने शान्ति तथा शुद्धि का प्रसङ्ग विस्तार से बतलाया ये बातें अत्यन्त रहस्यमय हैं । इन सभी बातों को गोपनीय रखना चाहिए ॥९४॥ इस तरह से मैंने आपको सदाचार को बतलाया । इसका सविधि अनुष्ठान करने से दुर्गाजी प्रसन्न होती हैं ॥९५॥ नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मों का विधिपूर्वक आचारण करने वाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष रूपी फल का भागी होता है ॥९६॥ सदाचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और धर्म की स्वामिनी जगदम्बा हैं, इसीलिए सभी शास्त्रों में सदाचार का महान फल बतलाया गया है ॥९७॥ जो सदाचार का पालन करके हमेशा पवित्र रहता है और वह सदा सुखी रहता है । हे नारदजी ! यह परम सत्य है कि सदाचार का पालन करने वाला व्यक्ति सदा धन्य होता है ॥९८॥ सदाचार का विधान देवी को प्रसन्न करता है । जो मनुष्य

आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी । आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥९८॥ देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम् । यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासंपत्तिसौख्यभाक् ॥९९॥ सदाचारेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम् । तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सार्धै रामाब्धिनेत्रेन्दु (१२३४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः । देवीभागवतस्यास्यैकादशः स्कन्ध ईरितः ॥११॥

इसका श्रवण करता है वह सम्पत्तिशाली होता है ॥९९॥ वह सदाचार से लौकिक तथा पारलौकिक सुख को प्राप्त करता है । मैंने आपको सदाचार का प्रसङ्ग सुनाया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥१००॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

व्यास महर्षि कृत एक हजार दो सौ तैंतालिस श्लोको से देवीभागवत का ग्यारहवाँ स्कन्ध कहा गया है ।

इस तरह ग्यारहवाँ स्कन्ध पूरा हुआ ।।११।।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणम्

द्वादशः स्कन्धः

प्रथमोऽध्यायः

नारद उवाच– सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो । तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् ॥१॥ श्रुतं भवन्मुखांभोजच्युतं देवीकथामृतम्।
व्रतानि यानि चोक्तानि चांद्रायणमुखानि च ॥२॥ दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृसाध्यानि तानि च । तदस्मात्सांप्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम् ॥३॥
देवीप्रसादजनकं शुभानुष्ठानसिद्धिदम् । तत्कर्म वद मे स्वामिन्कृपापूर्वं सुरेश्वर ॥४॥ सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः तस्मिन्मुख्यतमं किं
स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम् ॥५॥ ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः । तेषां के ऋषयः प्रोक्ताः कानि छंदांसि वै मुने ॥६॥ तेषां का
देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो । महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते ॥७॥ श्रीनारायण उवाच– कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद्द्विजः ॥८॥ संध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च । सहस्त्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने ॥९॥ न्यासान्करोतु
वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत् । ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥१०॥ यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ।
हरिशंकरकंजोत्थसूर्यचंद्रहुताशनैः ॥११॥ अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वर्णऋष्यादिकांस्तथा । छंदांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्तत्वानि चैव हि ॥१२॥ वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः

गायत्री के ऋषि आदि का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे प्रभो ! आपने सदाचार की विधि का वर्णन किया और उसके सभी पापों को विनष्ट करने वाले अतुलनीय प्रभाव का भी आपने
वर्णन किया ॥१॥ आपके मुखकमल से निस्सृत देवी की कथा रूपी अमृत का मैंने श्रवण किया और चान्द्रायण आदि व्रतों का भी मैंने श्रवण किया ॥२॥
किन्तु ये सब के सब कर्ता के द्वारा बड़े ही कष्ट के द्वारा किए जा सकते हैं । अतएव अब आप ऐसे अनुष्ठानों को बतलायें जिसको शरीरधारी सुखपूर्वक
कर सकें ॥३॥ जो अनुष्ठान देवी को प्रसन्न करने वाले तथा सिद्धिप्रद हों । हे सुरेश्वर ! आप कृपा करके ऐसे ही कर्मों के अनुष्ठान को बतलाएँ ॥४॥
इस सदाचार विधि से आपने जो गायत्री की विधि को बतलाया है, उसमें मुख्य तथा अधिक पुण्यप्रद क्या है ?॥५॥ इस विषय में मेरे मन में बहुत अधिक
कौतूहल हो रहा है ॥७॥ **श्रीनारायण ने कहा–** कोई भी द्विज दूसरा अनुष्ठान करे अथवा न करे वह केवल गायत्रीनिष्ठ रहकर कृतकृत्य हो सकता है ॥६॥
तीनों संध्यायों में अर्घ्यदान और गायत्री का तीन हजार जप करने वाला द्विज देवताओं का भी पूज्य होता है ॥९॥ वह न्यासों को करे अथवा न करे,
वह निष्कपट भाव से सच्चिदानन्द स्वरूपिणी गायत्री का ध्यान करके जप करता रहे ॥१०॥ उसके प्रभाव से ब्राह्मण श्रीहरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा

शुक्रः कण्वः पराशरः । विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान् ॥१३॥ याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः गौतमो मुद्गलश्चैव
वेदव्यासश्च लोमशः ॥१४॥ अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो मांडुकस्तथा । दुर्वासास्तपतां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा ॥१५॥ इत्येते ऋषयः
प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥१६॥ त्रिष्टुभं जगती चैव तथाऽतिजगती मता । शक्वर्यतिशक्वरी च
धृतिश्चातिधृतिस्तथा ॥१७॥ विराट् प्रस्तारपंक्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः । विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपंक्तिस्तथैव च ॥१८॥ भूर्भुवः स्वरिति
छंदस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम् । इत्येतानि च छंदांसि कीर्तितानि महामुने ॥१९॥ दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः । आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं
प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥२०॥ तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम् । सावित्रं पंचमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम् ॥२१॥ बार्हस्पत्यं सप्तमं तु
मैत्रावरुणमष्टमम् । नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्थमैश्वरम् ॥२२॥ गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम् । पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैद्राग्नं च
चतुर्दशम् ॥२३॥ वायव्यं पञ्चदशकं वामदैव्यं च षोडशम् । मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम् ॥२४॥ अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशंतिमातृकम्।

तथा अग्नि के साथ स्पर्धा करने लगता है ॥११॥ हे ब्रह्मन् ! अब आप गायत्री के वर्णों के ऋषि आदि को सुनें । मैं उनके छन्दों, देवताओं आदि का
क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥१२॥ गायत्री के चौबीस अक्षरों के क्रमशः वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महातेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान्
शौनक ॥१३॥ याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, व्यास, लोमश ॥१४॥ अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य माण्डूक्य, श्रेष्ठ तपस्वी
दुर्वासा, नारद तथा कश्यप ये ऋषि बतलाये गये हैं ॥१५॥ हे महामुने ! इन वर्णों के क्रमशः छन्द ये हैं– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्,
जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, घृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः और
ज्योतिष्मती ॥१६-१९॥ हे प्राज्ञ ! अब आप उन वर्णों के देवताओं को क्रमशः सुनें गायत्री का प्रथम वर्ण, अग्नि देवताक है, दूसरा प्रजपति देवताक तीसरा
चन्द्र देवताक, चौथा ईशानदेवताक, पाँचवाँ सविता देवताक और छठा आदित्य देवताक है ॥२०-२१॥ सातवें वर्ण के देवता बृहस्पति हैं, आठवें के
मित्रावरुण हैं, नवें वर्ण के भग, दशवें के ईश्वर ॥२२॥ ग्यारहवें के गणेश, बारहवें के त्वष्टा, तेरहवें वर्ण के देवता पूषा और चौदहवें वर्ण के इन्द्राग्नि
देवता हैं ॥२३॥ पन्द्रहवें वर्ण के वायु, सोलहवें वर्ण के वामदेव, सत्रहवें वर्ण के मैत्रावरुणि, अठारहवें वर्ण के विश्वेदेव, उन्नीसवें वर्ण की मातृकाएँ देवता
हैं । बीसवें के विष्णु और इक्कीसवें वर्ण के वसु देवता हैं ॥२४-२५॥ बाइसवें वर्ण के देवता रुद्र हैं, तेइसवें वर्ण के कुबेर तथा चौबीसवें वर्ण के देवता

वैष्णवं विशतितमं वसुदैवतमीरितम् ॥२५॥ एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंश रुद्रदैवतम् । त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम् ॥२६॥ चतुर्विंशतिवर्णानां दैवतानां च संग्रहः । कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः । यदाकर्णनमात्रेण साङ्गंजाप्यफलं मुने ॥२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच– **वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने । वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रविलासिनी ॥१॥ प्रभावती जया शांता कांता दुर्गा सरस्वती । विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा ॥२॥ तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जया वशा । पद्मालया परा शोभा भ्रदा च त्रिपदा स्मृता ॥३॥ चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृता । अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम् ॥४॥ चंपका अतसीपुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा । स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम् ॥५॥ तरुणादित्यसंकाशं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् । प्रवालपद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम् ॥६॥**

अश्विनीकुमार हैं ॥२६॥ इस तरह से मैंने आपको वर्णों के देवताओं का नाम बतलाया । यह अत्यन्त श्रेष्ठ पापों का विनाश करने वाला है । इसके सुन लेने से ही गायत्री का जप करने का फल मिल जाता है ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराणके बारहवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

गायत्री की महिमा

श्रीनारायण ने कहा– हे महामुने ! आप वर्णों की शक्तियों को सुनें । वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी ॥१॥ प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला ॥२॥ तमोऽपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनिः, जया, वशा, पद्मालया, परा, शोभा, भद्रा और द्विपदा ये चौबीस वर्णों की शक्तियाँ कहीं गयी है । इसके बाद मैं इन वर्णों के रूप का क्रमशः वर्णन कर रहा हूँ ॥३-४॥ 'तत्सवितुः' इत्यादि गायत्री के चौबीस वर्णों के रूप क्रमशः चम्पा, अतसीपुष्प विद्रुम (मूंगा) स्फटिक, पद्मपुष्प, तरुणसूर्य, शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा, प्रवाल,

इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुंकुमप्रभम् । अंजनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम् ।।७।। हारिद्रं कुन्ददुग्धाभं रविकान्तिसमप्रभम् । शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा ।।८।। केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम् । करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः ।।९।। वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः । पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।।१०।। गंधो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च । उपस्थं पायुपादं च पाणी वागापिच क्रमात् ।।११।। प्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं च ततः परम् । प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम् ।।१२।। तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु । अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु ।।१३।। सुमुखं सुपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा । द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपंचमुखं तथा ।।१४।। षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकांजलिकं तथा । शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् ।।१५।। बिलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम् । सिंहाक्रांतं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा ।।१६।। त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिंगकम् । अंबुजं व महामुद्रासूर्यरूपाः प्रकीर्तिताः ।।१७।। इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने । महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कांतिदा मुने ।।१८।।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

रक्तकमल की पंखुड़ी, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, मोती, कुंकुम, काजल, रक्तचन्दन, वैदूर्यमणि, मधु, हल्दी, कुन्द या दुग्ध के समान, सूर्यकान्तमणि के समान, तोते की पूँछ के समान, कमल, केतकी, मल्लिका और कनेर के पुष्प के समान हैं ।।५-९।। ये अक्षरों के वर्ण महापाप का नाश करने वाले हैं । क्रमशः इन वर्णों के तत्त्व निम्नांकित प्रकार से बतलाए गये हैं । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, गंध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, उपस्थ, पायु, पाद, पाणि, वाक्, प्राण, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र, प्राण, अपान व्यान और समान । इसके बाद मैं वर्णों की मुद्राओ को क्रमशः बतला रहा हूँ ।।१०-१३।। सुमुख, संपुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अघोमुख, व्यापक, अञ्जलि, शकट, यमपाश, ग्रथित सन्मुख, उन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाकान्त, मुद्गर, पल्लव, त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिङ्ग, अम्बुज, ये महामुद्राएँ सूर्यस्वरूप बतलायी गयी हैं ।।१४-१७।। हे महामुने! ये वर्णों की मुद्राएँ बतलायी गयी हैं ये महापापों को विनष्ट करने वाली; कीर्ति प्रदान करने वाली तथा कान्ति प्रदान करने वाली हैं ।।१८।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच– **स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो । चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर ॥१॥ मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत् । देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः ॥२॥ कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम् । ऋषिश्छंदोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवत्प्रभो॥३॥** श्रीनारायण उवाच– **अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा । पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥ सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते । गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥५॥ ऋषयो ऋग्यजुः सामाथर्वश्छंदांसि नारद । ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला ॥६॥ तद्बीजं भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः । कीलकं च धियं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम् ॥७॥ चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम् । चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात्त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम् ॥८॥ चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम् ॥९॥ मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणैर्युक्तामिंदुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् । गायत्रीं वरदाभयांकुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं शंखं चक्रमथारविंदयुगलं हस्तैर्वहंतीं भजे ॥१०॥ गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे । ब्रह्मसंध्या तु मे पश्चादुत्तरस्यां सरस्वती ॥११॥ पार्वती**

गायत्री कवच

नारदजी ने कहा– हे स्वामिन् ! हे योगविदों में श्रेष्ठ ! हे सम्पूर्ण जगत् के नाथ ! चौसठ कलाओं के ज्ञाता ! मुझे इस बात का संशय है कि किस पुण्य के प्रभाव से मनुष्य ब्रह्म स्वरूप, उसका देह देवता रूप और मन्त्र स्वरूप हो जाता है ॥१-२॥ मैं उस कर्म को न्यास पूर्वक सुनना चाहता हूँ । उसके ऋषि, छन्द, अधिदेवता तथा सविधि ध्यान भी सुनना चाहता हूँ ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** एक गायत्री कवच ऐसा है जिसका पाठ करके तथा उसको धारण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४॥ वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके देवी स्वरूप हो जाता है । इस गायत्री कवच के ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ऋषि हैं, ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व छन्द है । उसके ब्रह्मस्वरूप देवता हैं, गायत्री श्रेष्ठ कला है ॥५-६॥ भर्ग इसका बीज है, विद्वानों ने इसे ही गायत्री की शक्ति बतलाया है । धियः उसका कीलक है, और इसका मोक्ष की प्राप्ति में विनियोग है ॥७॥ गायत्री के चार वर्ण इसके हृदय हैं, तीन वर्ण शिर हैं चार वर्णों से शिखा उसके बाद के तीन वर्ण कवच हैं ॥८॥ उसके बाद के चार वर्ण नेत्र है, और अन्तिम चार वर्ण अस्त्र बतलाए गये हैं। अब मैं साधकों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले ध्यान को बतलाता हूँ ॥९॥ इस देवी के मुक्ता, विद्रुम हेम (सुवर्ण) नीलमणि तथा धवल कान्ति से युक्त पाँच मुख हैं । तीन नेत्र हैं, उनके मुकुट में चन्द्रमा जटित हैं, तथा तत्त्वार्थों के समान चौबीस वर्ण हैं । वे अपने हाथों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, अंकुश,

मे दिशं रक्षेत्पावकी जलशायिनी । यातुधानी दिशं रक्षेद्यातुधानभयंकरी ॥१२॥ पावमानी दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी । दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राक्षी रुद्ररूपिणी ॥१३॥ ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा । एवं दश दिशो रक्षेत्सर्वांगं भुवनेश्वरी ॥१४॥ तत्पदं पातु मे पादौ जंघे मे सवितुः पदम् । वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥१५॥ देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः । धियः पदं च मे नेत्रे यःपदं मे ललाटकम् ॥१६॥ नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् । तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातुः भालकम् ॥१७॥ चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः । नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा ॥१८॥ ण्यकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यकारस्त्वधरोष्ठकम् । आस्यमध्ये भकारार्णो र्गोकारश्चिबुके तथा ॥१९॥ देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशकम् । स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम् ॥२०॥ मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा । धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥२१॥ गुह्यं रक्षतु योकार ऊरू द्वौ नःपदाक्षरम् । प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जंघदेशकम्॥२२॥

पाश, शुभ्र कपाल, रस्सी, शंख, चक्र, तथा दो कमलों को धारण करती हैं । ऐसी देवी का मैं भजन करता हूँ ॥१०॥ मेरी पूर्व दिशा में गायत्री रक्षा करें, दक्षिण दिशा में सावित्री रक्षा करें, पश्चिम दिशा में ब्रह्मसन्ध्या, उत्तर दिशा में सरस्वती रक्षा करें ॥११॥ जल मे शयन करने वाली पार्वती देवी मेरी अग्नि कोण में रक्षा करें, नैऋत्य कोण में यातुधान भयंकरी देवी रक्षा करें । वायव्य कोण में पवमानविलासिनी देवी रक्षा करें । ईशान कोण में मेरी रक्षा रुद्राणी देवी करें । ऊपर की ओर ब्रह्माणी देवी रक्षा करें और नीचे की ओर वैष्णवी देवी रक्षा करें । इसी तरह दशो दिशाओं में मेरे समस्त अङ्गों की रक्षा भुवनेश्वरी देवी करें ॥१४॥ गायत्री का तत् पद मेरे दोनों पैरों की रक्षा करे, सवितुः मेरी दोनों जंघाओं की रक्षा करे । वरेण्यं पद मेरे कटि प्रदेश की रक्षा करे। *भर्गः* पद मेरी नाभि की रक्षा करे ॥१५॥ देवस्य पद मेरे हृदय की रक्षा करे, धीमहि पद मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करे, *धियः* पद मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करे, यः पद मेरे ललाट की रक्षा करे ॥१६॥ नः पद मेरे मूर्धाप्रदेश की रक्षा करे, प्रचोदयात् पद मेरी शिखा की रक्षा करे । तत् पद मेरी मूर्धा की रक्षा करे, सकार मेरे भाल की रक्षा करे ॥१७॥ मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा वि करे, तु वर्ण मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करे न वर्ण मेरे दोनों नाकों की रक्षा करे, रेवर्ण मेरे मुख की रक्षा करे ॥१८॥ ऊपर के ओष्ठ की रक्षा ण्य करे, य नीचे के ओष्ठ की रक्षा करे । भकार मुख के बीच में रक्षा करे 'र्गो' कार दोनों ठुढियों की रक्षा करे ॥१९॥ दे वर्ण कण्ठ प्रदेश की रक्षा करे विकार स्कन्ध प्रदेश की रक्षा करे । स्यकार दाहिने हाथ की रक्षा करे धीकार बायें हाथ की रक्षा करे ॥२०॥ मकार हृदय की रक्षा करे धीकार उदर की रक्षा करे । धिकार नाभि की रक्षा करे, योकार कटिप्रदेश की रक्षा करे ॥२१॥ योकार गुप्ताङ्ग की रक्षा करे, नः पद दोनो ऊरूओं की रक्षा करे । प्रकार दोनों घुटनों की रक्षा करे चोकार जंघा प्रदेश की रक्षा करे ॥२२॥ दकार दोनों गुल्फों की रक्षा

दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम् । तकारव्यंजनं चैव सर्वांगे मे सदाऽवतु ॥२३॥ इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम् । चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम् ॥२४॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति । पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत् ॥२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच **भगवन्देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो । कवचं च श्रुतं दिव्यं गायत्रीमंत्रविग्रहम् ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम्। यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्रीजपतोऽखिलम् ॥२॥** श्रीनारायण उवाच– **देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणे स्फुटम् । तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्॥३॥ विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेदमातरम् । ध्यात्वा तस्यास्त्वथांगेषु ध्यायेदेताश्च देवताः ॥४॥ पिंडब्रह्मांडयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा । देवीरूपे**

करे, यकार दोनों पैरों की रक्षा करे । तकार वर्ण मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करे ॥२३॥ यह दिव्य कवच है, सैकड़ों बाधाओं को विनष्ट करने वाला है । यह चौसठ कलाओं की विद्याओं को देने वाला तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥२४॥ इसको पढने तथा सुनने से हजारो गोदान करने का फल होता है । सभी पाप से मुक्ति मिलती है तथा परब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

गायत्री हृदय का वर्णन

नारदजी ने कहा– हे प्रभो ! हे देवदेवेश ! आप भूत कालिक एवं भविष्यत् कालिक जगत् के स्वामी हैं । मैं गायत्री के दिव्यविग्रह तथा गायत्री कवच दोनों आप के मुख से सुन चुका हूँ ॥१॥ अब मैं गायत्री हृदय सुनना चाहता हूँ, जिसका धारण करने से गायत्री जप के सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाते हैं।।२।।

श्रीनारायण ने कहा– हे नारदजी ! अथर्ववेद में गायत्री हृदय स्पष्ट रूप से वर्णित है । वह अत्यन्त रहस्यमय है । उसे ही मैं आपको सुनाऊँगा ॥३॥ महादेवी वेदमाता गायत्री का विराट् रूप है । उन वेदमाता का अपने अङ्गों में ध्यान करके इन देवताओं का ध्यान करना चाहिए ॥४॥ साधक तन्मय होने से अपने

निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः ॥५॥ नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः । ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः ॥६॥ अथ तत्संप्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत् । गायत्रीहृदयस्यास्याप्यहमेव ऋषिः स्मृतः ॥७॥ गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी । पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् । आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः ॥८॥ अथाङ्गन्यासः । द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम् । दंतपंक्तावश्विनौ । उभे संध्ये चोष्ठौ । मुखमग्निः । जिह्वा सरस्वती । ग्रीवायां तु बृहस्पतिः । स्तनयोर्वसवोऽष्टौ बाह्वोर्मरुतः । हृदये पर्जन्यः । आकाशमुदरम् । नाभावंतरिक्षम् । कट्योरिंद्राग्नी । जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः । कैलासमलये ऊरू । विश्वेदेवा जान्वोः । जंघायां कौशिकः । गुह्यमयने । ऊरू पितरः । पादौ पृथिवी । वनस्पतयोऽङ्गुलीषु। ऋषयो रोमाणि । नखानि मुहूर्तानि । अस्थिषु ग्रहाः । असृङ्मांसमृतवः । संवत्सरा वै निमिषम् । अहोरात्रावादित्यश्चंद्रमाः । प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये । ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः । ॐ तत्पूर्वजाय नमः । तत्प्रातरादित्याय नमः । तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः । प्रातरधीयानो

शरीर के देवी स्वरूप होने के कारण अपने शरीर में ही पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का ध्यान करे ॥५॥ वेदज्ञों का कहना है कि देव स्वरूप ही होकर देवता की पूजा करनी चाहिए । इसीलिए अपने शरीर में ही इन देवताओं की भावना करे ॥६॥ अब मैं तन्मयत्व की विधि को बतलाता हूँ । गायत्री हृदय का मैं (नारायण) ही ऋषि हूँ ॥७॥ उसका गायत्रीच्छन्द है और परमेश्वरी ही उसके देवता हैं । पूर्वोक्त प्रकार से षडङ्गन्यास करना चाहिए निर्जन स्थान में आसन पर बैठकर एकाग्र मन से देवी का ध्यान करे । अब अङ्गन्यास बतलाया जाता है । मूर्धा प्रदेश में द्युलोक सम्बन्धी देवता की भावना करे । दाँतों की पंक्ति में अश्विनीकुमारों की भावना करे । दोनों ओष्ठों में दोनों संध्याओं की भावना करे । मुख में अग्नि की भावना करे । जिह्वा में सरस्वती की भावना करे । ग्रीवा में बृहस्पति का न्यास करे । दोनों स्तनों में आठो वसुओं का न्यास करे । दोनों भुजाओं में मरुद्गण का न्यास करे । हृदय में पर्जन्य की भावना करे । उदर में आकाश की भावना करे । नाभि में अन्तरिक्ष की भावना करे । दोनों कटियों में इन्द्र तथा अग्नि की भावना करे । जँघाओं में विज्ञानधन प्रजापति की भावना करे । दोनों ऊरुओं में कैलास और मलय की भावना करे । दोनों घुटनों में विश्वेदेवों की भावना करे । जंघा में कौशिक की भावना करे । गुप्ताङ्गों में दोनों अयनों का ध्यान करे । ऊरू प्रदेश में पितृगणों की भावना करे । दोनों पैरों में पृथिवी की भावना करे । अङ्गुलियों में वनस्पतियों की भावना करे । रोमों में ऋषियों की भावना करे । नखों में मुहूर्तो की भावना करे । अस्थियों में ग्रहों की भावना करे । खून तथा मांस में ऋतुओं की भावना करे । निमेषों में सवंत्सर की भावना करे । दिन-रात में आदित्य और चन्द्रमा की भावना करे । मैं हजारो नेत्रों वाली श्रेष्ठ तथा दिव्य गायत्री देवी की शरणागति करता हूँ । सविता देवता के उस वरेण्य तेज को मैं प्रणाम करता हूँ । पूर्वदिशा में उदित होने वाले भगवान् सूर्य को नमस्कार है । प्रातःकालीन उस आदित्य को नमस्कार है । प्रातःकालीन आदित्य की प्रतिष्ठा को नमस्कार है । प्रातः काल में इसका अध्ययन करने वाले के रात्रिकृत पाप नष्ट हो जाते

रात्रिकृतं पापं नाशयति । सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । सायंप्रातरधीयानो अपापो भवति । सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति । सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । अवाच्यवचनात्पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । अभोज्यभोजनात्पूतो भवति । अचोष्यचोषणात्पूतो भवति । असाध्यसाधनात्पूतो भवति । दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति । सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति । पंक्तिदूषणात्पूतो भवति । अनृतवचनात्पूतो भवति । अथाब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति । अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति । षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति । अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति । य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्य इति । ब्रह्मलोके महीयते । इत्याह भगवान् श्रीनारायणः ।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

◆

हैं । सायंकाल में इसका अध्ययन करने वाला दिन भर के पापों को नष्ट कर देता है । सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों कालों में अध्यन करने वाला पाप रहित हो जाता है । उसको सभी तीर्थों में स्नान करने का फल होता है । सभी देवताओं के आवाच्य वचनों के पाप से मुक्त हो जाता है । अभक्ष्यभक्षण के पाप से मुक्त होता है । अभोज्य भोजन जन्य पाप से मुक्त हो जाता है । अचोष्य चोषण जन्य पाप से मुक्त हो जाता है । असाध्य साधन से मुक्त हो जाता है । हजारों तथा सैकड़ों दुष्प्रतिग्रह के पापों से मुक्त हो जाता है । सभी प्रकार के प्रतिग्रह जन्य पाप से मुक्त हो जाता है । पंक्तिदूषण जन्य पाप से पवित्र हो जाता है । मिथ्याभाषण जन्य पाप से मुक्त हो जाता है । अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है । इस गायत्री हृदय का पाठ करने से हजारों यज्ञों के करने का फल प्राप्त हो जाता है । साठ लाख गायत्री का जप करने का फल प्राप्त होता है । जो आठ ब्राह्मणों को इसे अच्छी तरह से याद कराता है, उसको सिद्धि हो जाती है । नित्य ही पवित्र होकर जो इसका पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । ब्रह्मलोक में जाकर समादृत होता है । यह भगवान् श्रीनारायण ने कहा है ।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

◆

पञ्चमोऽध्याय:

नारद उवाच– **भक्तानुकंपिन्सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम् । गायत्र्याः कथितं तस्माद्गायत्र्याः स्तोत्रमीरय ॥१॥** श्रीनारायण उवाच– **आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि । सर्वत्र व्यापिकेऽनंते श्रीसंध्ये तु नमोऽस्तु ते ॥२॥ त्वमेव संध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती । ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा ॥३॥ प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः । वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा ॥४॥ हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी । ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः ॥५॥ यजुर्वेदं पठंती च अन्तरिक्षे विराजते । सा सामगाऽपि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि ॥६॥ रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी । त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी ॥७॥ सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा। शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा ॥८॥ आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते । वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी ॥९॥ गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी । नीलगंगा तथा संध्या सर्वदा भोगमोक्षदा ॥१०॥ भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि । त्रिलोकवाहिनी देवी**

गायत्री स्तोत्र

नारदजी ने कहा– हे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले सर्वज्ञ ! आपने पाप नाशक गायत्री हृदय को तो बतलाया अब आप गायत्री स्तोत्र का वर्णन करें॥१॥ **श्रीनारायण ने कहा**– हे आदिशक्ति स्वरूपिणि जगत् की माता, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली, सर्व व्यापक अनन्त स्वरूपिणी संध्या स्वरूपिणि ! आपको नमस्कार है ॥२॥ आप ही संध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री तथा रक्त, श्वेत तथा कृष्ण वर्ण वाली हैं ॥३॥ मुनिजन प्रातःकाल बाला रूप से मध्याह्न काल में युवती रूप से तथा सायंकाल वृद्धा रूप से भगवती का चिन्तन करते हैं ॥४॥ देवी का प्रातःकाल में वाहन हंस, मध्याह्न काल में गरुड़ तथा सायंकाल में वृषभ होता है । तपस्वीजन आपको प्रातःकाल भूमण्डल पर ऋग्वेद का अध्ययन करने वाली के रूप में मध्याह्न काल में अन्तरिक्ष में स्थित तथा यजुर्वेद को पढ़ती हुई तथा सायंकाल सामवेद का गायन करते हुए विभिन्न लोकों में भ्रमण करती हुई के रूप में देखते हैं ॥६॥ आप रुद्रलोक में जाने वाली विष्णुलोक में निवास करने वाली तथा ब्रह्माजी के लोक में देवताओं पर अनुग्रह करने वाली हैं ॥७॥ आप सप्तर्षियों को प्रसन्न करने वाली, महामाया अनेक वरों को प्रदान करने वाली शिव तथा शिवा के हाथ तथा नेत्र के स्वेद तथा अश्रु से उत्पन्न हैं । आप आनन्द को उत्पन्न करने वाली हैं तथा दुर्गादेवी के दश नामों से पढ़ी जाती हैं । वे नाम हैं वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, वरारोह, नीलगंगा, संध्या और भोग एवं मोक्षदा ॥८-१०॥ आप मर्त्यलोक में भागीरथी, पाताल में भोगवती तथा स्वर्गलोक में त्रिलोक वाहिनी के रूप में रहकर तीन स्थानों

स्थानत्रयनिवासिनी ॥११॥ भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री लोकधारिणी । भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः ॥१२॥ महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि । तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक् ॥१३॥ कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा । रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धाङ्गनिवासिनी ॥१४॥ अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे । साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी ॥१५॥ ततः परा परा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे । इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा ॥१६॥ गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती । सरयूर्देविका सिंधुर्नर्मदैरावती तथा ॥१७॥ गोदावरी शतद्रुश्च कावेरी देवलोकगा । कौशिकी चन्द्रभागा च वितस्ता च सरस्वती ॥१८॥ गंडकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि । इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ॥१९॥ गांधारी हस्तिजिह्वा च पूषाऽपूषा तथैव च । अलंबुषा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी ॥२०॥ नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः । हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कंठस्था स्वप्ननायिका ॥२१॥ तालुस्था त्वं सदाधारा बिंदुस्था बिंदुमालिनी । मूले कुण्डलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा ॥२२॥ शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी । किमन्यद्बहुनोक्तेन यत्किंचिज्जगतीत्रये ॥२३॥ तत्सर्वं त्वं महादेवी श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते । इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्यायां बहुपुण्यदम् ॥२४॥ महापापप्रशमनं

पर निवास करने वाली हैं ॥११॥ आप ही भूलोक में लोक को धारण करने वाली धरित्री हैं, भुवर्लोक में वायुशक्ति हैं, और स्वर्गलोक में तेजोनिधि हैं॥१२॥ महर्लोक में महासिद्धि हैं, जनलोक में जना, तपोलोक में तपस्विनी, सत्यलोक में सत्यवाक् ॥१३॥ विष्णुलोक में कमला (लक्ष्मी) ब्रह्मलोक में गायत्री, तथा रुद्रलोक में शङ्करजी के अर्धाङ्ग के रूप में निवास करने वाली गौरी हैं ॥१४॥ आपको ही अहंकार; महान् तथा प्रकृति रूप से गान किया जाता है । आप ही साम्यावस्थावस्थित शबल ब्रह्म स्वरूपिणी हैं ॥१५॥ अतएव आप ही पराशक्ति हैं आपको ही परमात्मा कहा जाता है । आप ही इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति तथा ज्ञानशक्ति इन तीनों को प्रदान करने वाली हैं ॥१६॥ प्राचीन पुरुष आपका ही गंगा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, कावेरी, देवलोकगा, कौशिकी, चन्द्रभागा, विस्तारा, सरस्वती ॥१८॥ गंडकी तपिनी, करतोया, गोमती, वेत्रवती ये सभी नदियाँ आपका रूप हैं । आप ही इडा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा रूप से सबों के शरीर में विद्यमान हैं ॥१९॥ गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहु शंखिनी प्राणवाहिनी ॥२०॥ इत्यादि नाड़ियों के रूप में आप ही विद्यमान है । आप ही हृदयकमल में प्राणशक्ति रूप से, कण्ठ मे, स्वप्न नायिका का रूप से, तालु में सदाचार रूप से भौहों के बीच में विन्दुरूप से विराजने वाली विन्दुमालिनी हैं । मूलाधारचक्र में कुण्डलिनी रूप से तथा रोमों में व्यापिका रूप से आप ही विराजती हैं ॥२१-२२॥ शिखा के मध्यभाग में आप परमात्मा रूप से और शिखा के अग्रभाग में मनोन्मनी रूप से रहती हैं । बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है ? त्रैलोक्य में जो कुछ भी है ॥२३॥ हे महादेवि ! वह सबकुछ आप ही हैं । हे श्रीदेवि ! हे संध्या स्वरूपिणि !! आपको नमस्कार

महासिद्धिविधायकम् । य इदं कीर्तयेत्स्तोत्रं संध्याकाले समाहितः ॥२५॥ अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात् । सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत्॥२६॥ भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमंते मोक्षमवाप्नुयात् । तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत् ॥२७॥ यत्र कुले जले मग्नः संध्यामज्जनजं फलम् । लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद ॥२८॥ शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्रमुच्यते । पीयूषसदृशं वाक्यं सन्ध्योक्तं नारदेरितम् ॥२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

नारद उवाच– **भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥१॥ सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते । केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम् ॥२॥ ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम् । ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन ॥३॥**

है । इस तरह से मैंने आपको गायत्री स्तोत्र बतलाया संध्या के समय पढ़ने से बहुत पुण्य होता है ॥२४॥ यह महापापों को विनष्ट करने वाला तथा महासिद्धि प्रदान करने वाला है । जो कोई भी सायंकाल सावधानी पूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करे ॥२५॥ पुत्रहीन हो तो पुत्र प्राप्त कर लेता है, धन चाहने वाला धन प्राप्त कर लेता है । तथा सभी तीर्थों, तपस्याओं, दानों, यज्ञों तथा भोग का फल प्राप्त कर लेता है ॥२६॥ वह दीर्घकाल तक भोगों को भोगकर अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है । तपस्वियों के द्वारा निर्मित इस स्तोत्र को जो स्नान के समय पढते हुए स्नान करे तो चाहे जहाँ कहीं भी वह स्नान करे वह निःसन्देह रूप से संध्या तथा स्नान करने का फल प्राप्त कर ले, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥२८॥ जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र को सुनता है वह पापों से मुक्त हो जाता है संध्या के लिए पढा गया यह स्तोत्र अमृत के समान फल देता है ॥२९॥

इस तरह से श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के पाचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र

नारदजी ने कहा— हे सभी शास्त्रों में दक्ष, सभी धर्मों के ज्ञाता भगवन् ! मैंने आपके मुख से, श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों के रहस्य को सुना ॥१॥ यह सभी पापों का विनाश करने वाला है । हे देव ! जिसके द्वारा विद्या की प्राप्ति होती है वह ब्रह्मविज्ञान तथा मोक्ष का साधन कौन है ?॥२॥ किस

वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः । श्रीनारायण उवाच– **साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयाऽनघ ॥४॥ शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम् । नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम् ॥५॥ सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते । अष्टोत्तरसहस्रम्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः ॥६॥ छंदोऽनुष्टुप्तथा देवी गायत्री देवता स्मृता । हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः ॥७॥ अङ्गन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै ॥८॥ रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम् । गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डांबुजां पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे ॥९॥ अचिंत्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी। अमृतार्णवमध्यस्थाऽप्यजिता चापराजिता ॥१०॥ अणिमादिगुणाधाराऽप्यर्कमंडलसंस्थिता । अजराऽजाऽपराऽधर्मा अक्षसूत्रधराऽधरा ॥११॥**

साधन के अनुष्ठान से ब्राह्मणों की सद्गति होती है, किसके द्वारा मृत्यु का नाश होता है । हे कमलनयन ! किस साधन के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक फलों की प्राप्ति होती है ?॥३॥ आप इन सारी बातों को आदि से लेकर अन्त तक बतलाएँ । **श्रीनारायण ने कहा–** हे महाभाग ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है ॥४॥ आप सुनें; आपको मैं गायत्री सहस्रनाम बतलाता हूँ । ये सभी नाम सभी पापों को विनष्ट करने वाले हैं ॥५॥ सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् ने जिसका उपदेश दिया था उसको मैं बतला रहा हूँ । इस अष्टोत्तर सहस्रनाम स्तोत्र के ऋषि ब्रह्माजी हैं ॥६॥ इसका छन्द अनुष्टुप् है तथा देवता गायत्री हैं । हल् वर्ण इसके बीज हैं और स्वर वर्ण इसकी शक्ति हैं ॥७॥ इसके अङ्गन्यास तथा करन्यास मातृकाक्षरों से बतलाये गये हैं । अब साधको के कल्याण के लिए मैं गायत्री का ध्यान बतलाता हूँ ॥८॥ इसके (गायत्री के) रक्त श्वेत, स्वर्णिम, नील तथा धवल वर्ण के पाँच मुख हैं, ये अपने तीन नेत्रों से सुशोभित हैं ये रक्त वर्ण की हैं और नवीन रक्त वर्ण की माला से समलंकृत हैं, मणि समूह को धारण की हैं । इस तरह की गायत्री देवी कुमारी हैं तथा कमल के आसन पर विराजमान हैं । इनके दो हाथों में कमल तथा कमण्डलु हैं । और दो हाथों में वरदमुद्रा तथा माला हैं, कमल के समान इनके मनोहर नेत्र हैं, हंस ही इनका वाहन है । इस प्रकार की गायत्री देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥९॥ इनके अष्टोत्तर सहस्रनाम इस प्रकार हैं । १. अचिन्त्यलक्षणा = जिनका सामान्य बुद्धि से चिन्तन नहीं किया जा सके, २. अव्यक्ता = जिनका स्वरूप व्यक्त नहीं है, ३. अर्थमातृमहेश्वरी = सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाली देवियों की स्वामिनी, ४. अमृता = अमृतस्वरूपिणी, ५. अर्णवमध्यस्था = ज्ञान समुद्र में निवास करने वाली, ६. अजिता = जिनको कोई जीत न सके ऐसे पराक्रम वाली, ७. अपराजिता = जिनको कोई युद्ध मे परास्त न कर सके ॥१०॥ ८. अणिमादिगुणाधारा = अणिमा आदि अष्ट ऐश्वर्यों के आश्रय स्वरूपिणी, ९. अर्कमण्डलसंस्थिता = सूर्य मण्डल के भीतर निवास करने वाली,. १०. अजरा = सर्वदा युवती ही रहने के क़ारण कभी वृद्ध नहीं होने वाली, ११. अजा = जो कभी भी कर्मों के परतंत्र होकर जन्म नहीं लेती हैं, १२. अपरा = सर्वोत्कृष्ट तत्त्वस्वरूपिणी, १३. अधर्मा = कर्मकृत लौकिक

आकारादिक्षकारांताप्यरिषड्वर्गभेदिनी । अंजनाद्रिप्रतीकाशाऽप्यंजनाद्रिनिवासिनी ॥१२॥ अदितिश्चाजपा विद्याऽप्यरविन्दनिभेक्षणा । अंतर्बहिः स्थिताऽविद्याध्वंसिनी चांतरात्मिका ॥१३॥ अजा चाजमुखाऽवासाऽप्यरविंदनिभानना । अर्धमात्रार्थदानज्ञाऽप्यरिमंडलमर्दिनी ॥१४॥ असुरघ्नीह्यमावस्याऽप्यलक्ष्मीघ्नन्यंत्यजार्चिता । आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥१५॥ आदित्यपदवीचाराऽप्यादित्यपरिसेविता । आचार्यावर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥१६॥ आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता । आधारनिलयाधारा चाकाशान्तनिवासिनी ॥१७॥ आद्याक्षरसमायुक्ता चान्तराकाशरूपिणी । आदित्यमंडलगता चांतरध्वांतनाशिनी ॥१८॥ इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेंदीवरनिभेक्षणा । इरावती चेंद्रपदा

धर्मों से रहित, १४. अक्षसूत्रधरा = अक्षमालाको धारण करने वाली, १५. अधरा = स्वव्यतिरिक्त आधार से रहित ॥११॥ १६. अकारादिक्षकारान्ता = अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त सम्पूर्ण वर्णों की मातृका स्वरूपिणी, १७. अरिषड्वर्गभेदिनी = काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य इन आभ्यन्तर छह शत्रुओं को विनष्ट करने वाली, १८. अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा = अञ्जनाचल के समान कृष्णवर्ण वाली, १९. अञ्जनाद्रिनिवासिनी = अञ्जनाचल पर निवास करने वाली ॥१२॥ २०. अदिति = देवमातृस्वरूपिणी, २१. अजपा = अजपाजप स्वरूपिणी, २२. अविद्या = अज्ञानी तथा नास्तिकों के लिए अज्ञान स्वरूपिणी, २३. अरविन्दनिभेक्षणा = कमल के समान मनोहर नेत्रों वाली, २४. अन्तर्बहिस्थिता = सम्पूर्ण चराचर के भीतर और बाहर व्यापक रूप से रहने वाली, २५. अविद्याध्वंसिनी = अपने आराधकों के सम्पूर्ण अज्ञान को विनष्ट करने वाली, २६. अन्तरात्मिका = सबों की अन्तरात्मा स्वरूपिणी॥१३॥ २७. अजा = प्रकृति स्वरूपिणी होने के कारण कभी उत्पन्न नहीं होने वाली, २८. अजमुखावासा = ब्रह्माजी के मुख में निवास करने वाली, २९. अरविन्दनिभानना = कमल के समान मनोहर मुखवाली, ३०. अर्धमात्रा = अर्धमात्रा स्वरूप परंब्रह्म स्वरूपिणी, ३१. अर्थदानज्ञा = सम्पत्ति देने में निपुण, ३२. अरिमण्डलमर्दिनी = युद्ध में शत्रुमण्डल का मर्दन करने वाली ॥१४॥ ३३. असुरघ्नी = दैत्यों का विनाश करने वाली, ३४. अमावास्या= अमावस्या तिथि स्वरूपिणी, ३५. अलक्ष्मीध्नन्त्यजार्चिता = दारिद्र्य को विनष्ट करने वाली तथा अन्त्यजा (मातङ्गी देवी) से पूजित ३६. आदिलक्ष्मी = आदिलक्ष्मी स्वरूपिणी, ३७. आदिशक्ति = आदि शक्ति महामाया स्वरूपिणी, ३८. आकृति = आकार वाच्य होने के कारण आकार स्वरूपा, ३९. आयतानना = बड़े-बड़े दैत्यों को निगलने के लिए युद्ध में अपने मुख का विस्तार करने वाली ॥१५॥ ४०. आदित्यपदवीचारा = सूर्य के मार्ग पर चलने वाली, ४१. आदित्यपरिसेविता = सूर्य जिसकी सेवा करते रहते हैं, ४२. आचार्या = अपने भक्तों को सदाचार की शिक्षा देने वाली, ४३. आवर्तना= जगत् की बार-बार रचना करने वाली, ४४. आचारा = सदाचार स्वरूपिणी, ४५. आदिमूर्तिनिवासिनी = आदिमूर्ति परंब्रह्म में निवास करने वाली ॥१६॥ ४६. आग्नेयी = अग्निदेव की अधिष्ठातृ देवी, ४७. आमरी [illegible] स्वरूपिणी, ४८. आद्या = आदि स्वरूपिणी, ४९. आराध्या = आदि आराध्या देवी,

चेंद्राणी चेंदुरूपिणी ॥१९॥ इक्षुकोदंडसंयुक्ता चेषुसंधानकारिणी । इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिंगलरूपिणी ॥२०॥ इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता। उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना ॥२१॥ उडुप्रभा चोडुमती ह्यडुपा ह्युडुमध्यगा । ऊर्ध्वं चाप्यूर्ध्वकेशी चात्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी ॥२२॥ ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमालावाग्ग्रंथदायिनी । ऋतं चर्षिऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता ॥२३॥ ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमंडलचारिणी । ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था

---

५०. आराध्या = सबों के लिए आराध्य स्वरूपिणी, ५१. आसनस्थिता = अपने आसन पर विराजमान रहने वाली, ५२. आधारनिलया = मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी रूप से विराजमान रहने वाली, ५३. आकाशान्तनिवासिनी = आकाश तत्त्व के भीतर निवास करने वाली ॥१७॥ ५४. आद्याक्षरसमायुक्ता = आदि अक्षर अकार वाच्य स्वरूपिणी, ५५. आन्तराकाशस्वरूपिणी = दहराकाश स्वरूपिणी, ५६. आदित्यमण्डलगता = आदित्य मण्डल के भीतर निवास करने वाली, ५७. आन्तरध्वान्तनाशिनी = अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने वाली ॥१८॥ ५८. इन्दिरा = लक्ष्मी स्वरूपिणी, ५९. इष्टदा = अपने आराधकों को अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करने वाली, ६०. इष्टा = साधक पुरुषों के लिए इष्ट रूपसे आराध्या, ६१. इन्दीवरनिभेक्षणा = नीलकमल के समान नेत्रों वाली, ६२. इरावती = इरावती नाम की नदी स्वरूपिणी, ६३. इन्द्रपदा = इन्द्र को उनका अपना पद प्रदान करने वाली, ६४. इन्द्राणी = इन्द्र की पत्नी शची के रूप में विराजमान रहने वाली, ६५. इन्दुरूपिणी = चन्द्रमा के समान अह्लादक स्वरूप वाली ॥१९॥ इक्षुकोदण्डसंयुक्ता = इक्षु के दण्ड का धनुष धारण करने वाली, ६७. इषुसंधानकारिणी = संग्राम स्थल में बाणों का सन्धान करने वाली, ६८. इन्द्रनीलसमाकारा = इन्द्र नीलमणि के समान आकार वाली, ६९. इडापिंगलरूपिणी = इडा तथा पिङ्गला नाड़ी स्वरूपिणी ॥२०॥ ७०. इन्द्राक्षी = इन्द्राक्षी नाम वाली शताक्षी देवी स्वरूपिणी, ७१. ईश्वरी देवीं= सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न तथा दिव्यगुणों वाली, ७२. ईहात्रयविवर्जिता = लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा इन तीनों प्रकार की एषणाओं से रहित, ७३. उमा = उमा देवी के नाम से प्रसिद्ध, ७४. उषा = उषः काल स्वरूपिणी, उडुनिभा = ताराओं के समान सदा देदीप्यमान रहने वालीं, ७६. उर्वारुकफलानना = खीरे के समान मुख वाली ॥२१॥ ७७. उडुप्रभा = तारों के समान कान्ति सम्पन्न, ७८. उडूमती = रात्रिस्वरूपिणी, ७९. उडूपा संसार सागर से पार लगाने के लिए नौका स्वरूपिणी, ८०. उडुमध्यगा = नक्षत्र मण्डल के बीच में विराजने वाली, ८१. ऊर्ध्वा = ऊर्ध्वप्रदेश स्वरूपिणी, ८२. ऊर्ध्वकेशी = ऊपर की ओर उठे हुए केशों वाली, ८३. ऊर्ध्वाघोगतभेदिनी = ऊर्ध्वगति तथा अधो गति इन दोनों गतियों का भेदन करके मोक्ष प्रदान करने वाली ॥२२॥ ८४. ऊर्ध्वबाहुप्रिया = जो भक्त अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर आराधना करते हैं उनसे प्रसन्न रहने वाली, ८५. ऊर्मिमाला वाग्ग्रन्थदायिनी= तरङ्गों के समान श्रेष्ठ वाणी से युक्त ग्रन्थ रचना करने की शक्ति प्रदान करने वाली, ८६. ऋतम् = सत्यवाणी स्वरूपिणी, ८७. ऋषि = वेद साक्षात्कार करने वाली ऋषि स्वरूपिणी, ८८. ऋतुमती = रजस्वला, ८९. ऋषिदेवनमस्कृता = ऋषिगण तथा देवगण जिसको नमस्कार करते हैं ॥२३॥

ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा ॥२४॥ ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लृतधर्मप्रवर्तिनी । लृतारिवरसंभूता लृतादिविषहारिणी ॥२५॥ एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता । ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा ॥२६॥ ओंकारा ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी । और्वा ह्यौषधसंपन्ना औपासनफलप्रदा॥२७॥ अंडमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी । कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी ॥२८॥ कमला कामिनी कांता कामदा कालकंठिनी । करिकुंभस्तनभरा करवीरासुवासिनी ॥२९॥ कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी । कुरुविंददलाकारा कुंडली कुमुदालया ॥३०॥ कालजिह्वा

---

९०. ऋग्वेदा = ऋग्वेद स्वरूपिणी, ९१. ऋणहर्त्री = ऋणत्रय (देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण) का नाश करने वाली, ९२. ऋषिमण्डलचारिणी =ऋषियों के समूह में संचरण करने वाली, ९३. ऋद्धिदा = समृद्धि प्रदान करने वाली, ९४. ऋजुमार्गस्था = सदाचार के सीधे मार्ग पर चलने वाली, ९५. ऋजुधर्मा= सीधे सदाचार के मार्ग को अपनाने वाली, ९६. ऋतुप्रदा = समयानुसार ऋतुओं को प्रदान करने वाली ॥२४॥ ९७. ऋग्वेदनिलया = ऋग्वेद में निवास करने वाली, ९८. ऋज्वी = सरल स्वभाव वाली, ९९. लृतधर्मप्रवर्तिनी = लृतधर्म को प्रवर्तित करन वाली, १००. लृतारिवरसंभूता = लृतारि से युक्त रोग को विनष्ट करने वाले मन्त्र जिनसे उद्भूत हैं, १०१. लृतादिविषहारिणी = लृत आदि रोगों के विष को विनष्ट करने वाली ॥२५॥ १०२. एकाक्षरा= एक अक्षर स्वरूपिणी, १०३. एकमात्रा = एकमात्रा में विराजने वाली, १०४. एका = सभी देवताओं में प्रधान, १०५. एकनिष्ठा = एकमात्र परंब्रह्म में निष्ठा वाली, १०६. ऐन्द्री = इन्द्र की शक्ति स्वरूपिणी, १०७. ऐरावतारूढा = ऐरावत नामक हाथी पर सवारी करने वाली, १०८. ऐहिकामुष्मिकप्रदा = लौकिक तथा पारलौकिक फलों (भोगों) को प्रदान करने वाली ॥२६॥ १०९. ओंकारा = ओंकार स्वरूपिणी, ११०. ओषधी = संसार रूपी रोग से ग्रस्त जीवों के लिए ओषधि स्वरूपिणी, १११. ओता = फल समूह को एक में पिरोने वाले सूत्र के समान सभी जीवों के अन्तःकरण में विराजमान रहने वाली, ११२. ओतप्रोतनिवासिनी = परंब्रह्म से ओतप्रोत जगत् के भीतर निवास करने वाली, ११३. और्वा = बाडवाग्नि स्वरूपिणी, ११४. औषधिसम्पन्ना = संसार रूपी रोग को विनष्ट करने की औषधि से सम्पन्न, ११५. औपासनफलप्रदा = उपासना करने वाले साधकों को उनके लिए अभिलषित फल प्रदान करने वाली ॥२७॥ ११६. अण्डमध्यस्थितादेवी = ब्रह्माण्ड के भीतर निवास करने वाली देवी, ११७. अःकारमनुरूपिणी = अः (विसर्ग) रूपी मन्त्र ही जिसका स्वरूप है, ११८. कात्यायनी = कात्ययन महर्षि ने जिसकी उपासना की हैं, ११९. कालरात्रि = राक्षसों का संहार करने के लिए कालरात्रि के रूप में प्रकट होने वाली, १२०. कामाक्षी = काम को अपने नेत्रों में धारण करने वाली देवी, १२१. कामसुन्दरी = कामदेव के समान सुन्दर श्रीविग्रह को धारण करने वाली ॥२८॥ १२२. कमला = लक्ष्मी स्वरूपिणी, १२३. कामिनी = उपासकों के लिए मङ्गलकामना करने वाली, १२४. कान्ता = अत्यन्त कमनीय श्रीविग्रह को धारण करने वाली, १२५. कामदा = अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली, १२६. कालकण्ठिनी = काल को भी अपने कण्ठ में

करालास्या कालिका कालरूपिणी । कमनीयगुणा कांतिः कलाधारा कुमुद्वती ॥३१॥ कौशिकी कमलाकारा कामाचारप्रभंजिनी । कौमारी करुणापांगी ककुबंता करिप्रिया ॥३२॥ केसरी केशवनुता कदंबकुसुमप्रिया । कालिंदी कालिका कांची कलशोद्भवसंस्तुता ॥३३॥ काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती । कुमारी कुंडनिलया किराती कीरवाहना ॥३४॥ कैकेयी कोकिलालापा केतकीकुसुमप्रिया । कमंडलुधरा काली

रखने वाली, १२७. करिकुम्भस्तनभरा = हाथी के कुम्भस्थल के समान विशाल एवं परिपुष्ट स्तनों से सम्पन्न, १२८. करवीरसुवासिनी = करवीर क्षेत्र (महालक्ष्मी क्षेत्र) में निवास करने वाली ॥२९॥ कल्याणी = कल्याणमय श्रीविग्रह वाली, १३०. कुण्डलवती = अपने कानों में अत्यन्त सुन्दर कुण्डलों को धारण करने वाली, १३१. कुरुक्षेत्रनिवासिनी = कुरुक्षेत्र में निवास करने वाली देवी, १३२. कुरुविन्ददलाकारा = मुस्तादल के समान मनोज्ञ आकार वाली, १३३. कुण्डली = कुण्डलिनी शक्ति के रूप में विराजमान रहने वाली, १३४. कुमुदालया = कुमुद पुष्प के भीतर निवास करने वाली ॥३०॥ १३५. कालजिह्वा = दुष्टों का संहार करने के लिए काल रूपी जिह्वा से सम्पन्न, १३६. करालास्या = भयंकर मुख वाली, १३७. कालिका = काले वर्ण वाली काली देवी स्वरूपिणी, १३८. कालरूपिणी = दैत्यों का संहार करने के लिए कालरूपी शरीर को धारण करने वाली, १३९. कमनीयगुणा = मनोहर गुणों से सम्पन्न देवी, १४०. कांतिः = दीप्ति स्वरूपिणी, १४१. कलाधरा = चतुषष्ठि कलाओं को धारण करने वाली, १४२. कुमुद्वती = कुमुदपुष्प को धारण करने वाली ॥३१॥ १४३. कौशिकी = कौशिक मुनि विश्वामित्र महर्षि ने जिसका साक्षात्कार किया था, १४४. कमलाकारा = कमल के समान मनोहर आकार वाली, १४५. कामचारप्रभञ्जिनी = दुष्टों की स्वेच्छाचारिता को विनष्ट करने वाली, १४६. कौमारी = सदा कुमारावस्था में ही रहने वाली, १४७. करुणापाङ्गी= अपने उपासकों पर करुणापूर्ण कटाक्षपात करने वाली, १४८. ककुबन्ता = दिशाओं के अन्तस्वरूपिणी, १४९. करिप्रिया = हाथी जिनको प्रिय हैं ऐसी महालक्ष्मी स्वरूपिणी ॥३२॥ १५०. केसरी = सिंहरूपिणी, १५७. केशवनुता = भगवान् श्रीकृष्ण ने जिसकी स्तुति की, १५२. कदम्बकुसुमप्रिया = कदम्ब के पुष्प जिनको अत्यन्त प्रिय हैं, १५३. कालिन्दी = कलिन्दकन्या यमुना स्वरूपिणी, १५४. कालिका = कालिका के नाम से प्रख्यात देवी, १५५. काञ्ची = मोक्षप्रद काञ्ची क्षेत्र स्वरूपिणी, १५६. कलशोद्भवसंस्तुता = महर्षि अगस्त्य ने जिनकी स्तुति की है ॥३३॥ १५७. काममाता = कामदेव की माता, १५८. क्रतुमती = यज्ञमय शरीर धारण करने वाली, १५९. कामरूपा = अपनी इच्छा के अनुसार शरीर को धारण करने वाली, १६०. कृपावती = अपने उपासकों पर कृपा करने वाली, १६१. कुमारी = सदा कुमारी के रूप में रहने वाली, १६२. कुण्डनिलया = उपासकों के अग्निहोत्र कुण्ड में निवास करने वाली, १६३. किराती = उपासकों के कार्य को सिद्ध करने के लिए किरात का वेष धारण करने वाली, १६४. कीरवाहना = कीर (तोतापक्षी) को अपना वाहन बनाने वाली ॥३४॥ १६५. कैकेयी = कैकय राज के गृह में उनकी पुत्री रूप से अवतीर्ण होकर

कर्मनिर्मूलकारिणी ॥३५॥ कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमंगला । कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः ॥३६॥ कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला
कुहराश्रया । कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा ॥३७॥ खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना । खट्वाङ्गधारिणी ख्याता
खगराजोपरिस्थिता॥३८॥ खलघ्नी खंडितजरा खंडाख्यानप्रदायिनी । खण्डेन्दुतिलका गङ्गा गणेशगुहपूजिता ॥३९॥ गायत्री गोमती गीता
गांधारी गानलोलुपा । गौतमी गामिनी गाधा गंधर्वाप्सरसेविता ॥४०॥ गोविंदचरणाक्रांता गुणत्रयविभाविता । गांधर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना

कैकेयी के नाम से प्रसिद्ध होने वाली, १६६. कोकिलालापा = कोयल के समान मधुर स्वर से गायन करने वाली, १६७. केतकी = केतकी (केवड़) पुष्प के समान सौगन्ध्य से परिपूर्ण विग्रह सम्पन्न, १६८. कुसुमप्रिया = पुष्पों को धारण करना जिसको अत्यन्त प्रिय है, १६९. कमण्डलुधरा = अपने हाथ में शुद्ध जल से परिपूर्ण कमण्डलु को धारण करने वाली, १७०. काली = कालिका देवी स्वरूपिणी, १७१. कर्मनिर्मूलकारिणी = उपासकों के पुण्यपाप रूप कर्मों को विनष्ट कर देने वाली ॥३५॥ १७२.कलहंसगतिः = हंस के समान मनोहर एवं मन्दगति से चलने वाली, १७३. कक्षा = कक्षा के नाम से प्रसिद्ध, १७४. कृतकौतुकमङ्गला = अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक अपने उपासकों का मङ्गल करने वाली, १७५. कस्तूरीतिलका = अपने ललाट में कस्तूरी का तिलक लगाने वाली, १७६. कम्रा = अत्यन्त मनोहर श्रीविग्रह को धारण करने वाली, १७७. करीन्द्रगमना = गजराज के समान, मन्दगति से चलने वाली, १७८. कुहूः = तिथियों में कुहू (जिस अमावस्या में चन्द्रमा की कला नष्ट हो जाती है ऐसी रात्रि) के नाम से पुकारी जाने वाली ॥३६॥ १७९. कर्पूरलेपना = अपने शरीर में कर्पूर का लेप लगाने वाली, १८०. कृष्णां = श्याम वर्ण के अङ्गों वाली, १८१. कपिला = कपिल वर्ण वाली, १८२. कुहराश्रया = बुद्धिरूपी गुफा में निवास करने वाली, १८३. कूटस्था = कभी भी विकारग्रस्त नहीं होने वाली, १८४. कुधरा = पृथिवी को धारण करने वाली, १८५. कम्रा = परम सुन्दरी, १८६. कुक्षिस्थाखिलविष्टपा = अपनी कुक्षि में सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाली ॥३७॥ खड्गखेटकरा = अपने हाथों में ढाल एवे तलवार को धारण करने वाली, १८८. खर्वा = छोटे आकार वाली, १८९. खेचरी = आकाशमार्ग से संचरण करने वाली, १९०. खगवाहना = आकाश में चलने वाले हंस को अपना वाहन बनाने वाली, १९१. खट्वाङ्गधारिणी = अपने आयुध के रूप में खट्वाङ्ग को धारण करने वाली, १९२. ख्याता = जगत् में आराध्य रूप से विख्यात, १९३. खगराजोपरिस्थता = पक्षियों के राजा गरुड पर सवारी करने वाली, १९४. खलघ्नी = दुष्टों का विनाश करने वाली, १९५. खंडितजरा = जिनको बुढांपा कभी स्पर्श नहीं करती है, १९६. खण्डाख्यान प्रदायिनी = भेदशास्त्र का उपदेश देने वाली, १९७. खण्डेन्दुतिलका = अपने ललाट पर तिलक के रूप में चन्द्रमा को धारण करने वाली, १९८. गङ्गा = स्वर्गलोक से भूलोक में गमन करने वाली अथवा ब्रह्मद्रव स्वरूपिणी, १९९. गणेशगुहपूजिता = गणेशजी तथा कार्तिकेय दोनों जिनकी पूजा करते हैं ॥३९॥ २००. गायत्री =

गमी ॥४१॥ गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी । गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी ॥४२॥ गिरिजा गुह्यमातंगी गरुडध्वजवल्लभा। गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा ॥४३॥ गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमंडलवर्तिनी । घर्मदा घनदा घंटा घोरदानवमर्दिनी ॥४४॥ घृणिमंत्रमयी घोषा घनसंपातदायिनी । घंटारवप्रिया घ्राणा घृणिसंतुष्टकारिणी ॥४५॥ घनारिमंडला घूर्णा घृताची घनवेगिनी । ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता

अपना जप करने वाले उपासकों की रक्षा करने वाली, २०१. गोमती = नैमिषारण्य में गोमती नदी के रूप में प्रवाहित होने वाली, २०२. गीता = ज्ञानगङ्गा भगवद् गीता स्वरूपिणी, २०३. गान्धारी = पृथिवी को धारण करने वाली, वाराही शक्ति स्वरूपिणी, २०४. गानलोलुपा = अपना गायन सुनने की हमेशा इच्छा करने वाली, २०५. गौतमी = महर्षि गौतम के यहाँ उनकी पत्नी के रूप में निवास करने वाली, २०६. गामिनी = व्यापक रूप से सर्वत्र विचरण करने वाली, २०७. गाधा = पृथिवी को धारण करने वाली, २०८. गन्धर्वाप्सरसेविता = गन्धर्व तथा अपसराएँ जिस देवी की सेवा करते हैं ॥४०॥ २०९. गोविन्दचरणाक्रान्ता = भगवान् विष्णु के चरणों से आक्रान्त, २१०. गुणत्रयविभाविता = सत्त्व, रजस् एवं तमस इन तीनों गुणों से सुशोभित, २११. गान्धर्वी = गन्धर्व जाति की स्त्री के रूप में आविर्भूत होने वाली, २१२. गह्वरी = गुफा के समान अत्यन्त दुरुह महिमा से मण्डित, २१३. गोत्रा= पृथिवी स्वरूपिणी, २१४. गिरीशा = पर्वतों की स्वामिनी, २१५. गहना = अत्यन्त दुर्ज्ञेय, २१६. गमी = पर्यालोचन कहने वाली ॥४१॥ २१७. गुहावासा= हृदय गुफा में निवास करने वाली, २१८. गुणवती = कल्याणकारी गुणों से सम्पन्न, २१९. गुरुपापप्रणाशिनी = बड़े से बड़े पापों को प्रनष्ट करने वाली, २२०. गुर्वी = गाम्भीर्य गुण से सम्पन्न, २२१. गुणवती = अनेक प्रकार के सद्गुणों से युक्त, २२२. गुह्या = अत्यन्त रहस्यमयी, २२३. गोप्तव्या = आराधकों द्वारा गुप्त धन के समान अपने हृदय में छिपाकर रखने योग्य, २२४. गुणदायिनी = अपने आराधकों को सद्गुण प्रदान करने वाली॥४२॥ २२५. गिरिजा = हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में अवतीर्ण होने वाली, २२६. गुह्यमातङ्गी = ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी, २२७. गरुडध्वजबल्लभा = भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी स्वरूपिणी, २२८. गर्वापहारिणी = अपने भक्तों में विद्यमान गर्व नामक दोष को दूर करने वाली, २२९. गोदा = अपने आराधकों को गौ अथवा पृथिवी प्रदान करने वाली, २३०. गोकुलस्था = गौ वंश में निवास करने वाली, २३१. गदाधरा= जो अपने हाथों में गदा को धारण करती हैं ॥४३॥ २३२. गोकर्ण निलयासक्ता = गोकर्ण तीर्थ रूपी निलय में जिनकी आसक्ति है २३३. गुह्यमण्डलवर्तिनी= जो अत्यन्त गुह्यमण्डल में रहती हैं, २३४. धर्मदा = जो सूर्य की प्रभा के रूप में सबों को उष्णता प्रदान करती हैं, २३५. घनदा= जो कृपा करके मेघ को प्रकट करती हैं, २३६. घण्टा = घण्टा रूप से विराजमान रहने वाली, २३७. घोरदानवमर्दिनी = बड़े-बड़े भयंकर दानवों का जो युद्ध स्थल में मर्दन करती हैं ॥४४॥ २२८. घृणिमन्त्रमयी = सूर्य को प्रसन्न करने वाले घृणिमन्त्र स्वरूपिणी, २३९. घोषा = समराङ्गण में भयंकर शब्द करने वाली,

चारुहासिनी ।।४६।। चटुला चंडिका चित्रा चित्रमाल्यविभूषिता । चतुर्भुजा चारुदंता चातुरी चरितप्रदा ।।४७।। चूलिका चित्रवस्त्रांता चन्द्रमः कर्णकुण्डला । चन्द्रहासा चारुदात्री चकोर चन्द्रहासिनी ।।४८।। चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चंडिका । चंचद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी ।।४९।। चारुचन्दनलिप्तांगी चंचच्चामरवीजिता । चारुमध्या चारुगतिश्चंदिला चंद्ररूपिणी ।।५०।। चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका।

---

२४०. घनसम्पातदायिनी = मेघों को जल बरसाने की आज्ञा प्रदान करने वाली, २४१. घण्टारवप्रिया = घण्टा की ध्वनि सुनकर प्रसन्न होने वाली, २४२. घ्राणा = नासिकेन्द्रिय की अधिष्ठात्री देवी, २४३. घृणिसन्तुष्टकारिणी = सूर्य को प्रसन्न करने वाली ।।४५।। २४४. घनारिमण्डला = जिनके अनेक दैत्य समूह शत्रु हैं, २४५. घूर्णा = सर्वत्र भ्रमण करने वाली, २४६. घृताची = सरस्वती देवी स्वरूपिणी, २४७. घनवेगिनी = अत्यधिक वेग से सम्पन्न, २४८. ज्ञानधातुमयी = ज्ञानमय धातु स्वरूपिणी, २४९. चर्चा = शास्त्रचर्चा स्वरूपिणी, २५०. चर्चिता = चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के द्वारा पूजित, २५१. चारुहासिनी = मनोहर हँसी से युक्त ।।४६।। २५२. चटुला = चञ्चल स्वभाव वाली, २५३. चण्डिका = शत्रुओं का विनाश करने के लिए भयंकर चण्डिका देवी का रूप धारण करने वाली, २५४. चित्रा = विचित्र रूप धारण करने वाली, २५५. चित्रमाल्यविभूषित = विचित्र मालाओं से समलंकृत रहने वाली, २५६. चतुर्भुजा = चार भुजाओं वाली, २५७. चारुदन्ता = सुन्दर दन्तपंक्ति से सुशोभित, २५८. चातुरी = चातुर्य स्वरूपिणी, २५९. चरितप्रदा= अपने उपासकों का सदाचार की शिक्षा प्रदान करने वाली ।।४७।। २६०. चूलिका = देवियों में सर्वश्रेष्ठ, २६१. चित्रवस्त्रान्ता = चित्रविचित्र वस्त्रों को धारण करने वाली, २६२. चन्द्रमः कर्णकुण्डला = अपने कानों में चन्द्रमा के समान आह्लादक कुण्डलों को धारण करने वाली, २६३. चन्द्रहासा = चन्द्रमा के समान अह्लादक हँसी वाली, २६४. चारुदात्री = अपने उपासकों को सुन्दर वस्तुओं को प्रदान करने वाली, २६५. चकोरी = चन्द्रमा में चकोरी के समान परामात्मा में सदा अनुरक्त रहने वाली, २६६. चन्द्रहासिनी = अपने मनोहर मुखमण्डल से चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाली ।।४८।। चन्द्रिका = ज्योत्स्ना स्वरूपिणी, २६८. चन्द्रधात्री = अपने मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाली, २६९. चौरी = अपनी शक्ति को छिपाकर रखने वाली, २७०. चौरा= अपने उपासकों के पापों को प्रणष्ट करने वाली, २७१. चण्डिका = चण्डिका देवी के नाम से संसार में प्रख्यात, २७१. चंचद्वाग्वादिनी = अत्यन्त विशद वाणी को बोलने वाली, २७३. चन्द्रचूडा = जो अपनी चूडा पर चन्द्रमा को धारण करती हैं, २७४. चोरविनाशिनी = चोरी करने वालों का विनाश करने वाली ।।४९।। २७५. चारुचन्दनलिप्ताङ्गी = सुन्दर चन्दन से जिनका शरीर चर्चित हैं, २७६. चञ्चच्चामरबीजिता = जिनको सुन्दर चामर से व्यजन किंया जाता है, २७६. चारुमध्या = अत्यन्त सुन्दर कटिप्रदेश वाली, २७८. चारुगति = अत्यन्त सुन्दर रीति से चलने वाली, २७९. चंडिला = कर्नाटक देश में प्रसिद्ध चंदिला देवी स्वरूपिणी, २८०. चन्द्ररूपिणी = चन्द्रमा स्वरूपिणी ।।५०।। २८१. चारुहोमप्रिया = सविधि किए जाने वाले होम से प्रसन्न

चन्द्रमंडलमध्यस्था चन्द्रमंडलदर्पणा ॥५१॥ चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी । चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चंदनप्रिया॥५२॥ चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी । छत्रयाता छत्रधरा छाया छंदःपरिच्छदा ॥५३॥ छायादेवी छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी । छंदोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठांता छिद्रोपद्रवभवेदिनी ॥५४॥ छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया । जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी ॥५५॥ जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।

होने वाली, २८२. चार्वाचरित = सुन्दर आचार से सम्पन्न, २८३. चक्रबाहुका = अपनी भुजा में चक्र को धारण करने वाली, २८४. चन्द्रमण्डल मध्यस्था= चन्द्र मण्डल के भीतर निवास करने वाली, २८५. चन्द्रमण्डल दर्पणा = चन्द्रमण्डल को ही दर्पण के रूप में धारण करने वाली, ॥५१॥ २८६. चक्रवाकस्तनी = चक्रवाक पक्षी के समान अत्यन्त मनोहर स्तनों वाली, २८७. चेष्टा = जिनकी ही कृपा से सभी प्राणियों में चेष्टाओं का संचार होता है, २८८. चित्रा = अद्भुत चरित्रों वाली, २८९. चारुविलासिनी = मनोहर विलासों वाली, २९०. चित्स्वरूपा = ज्ञान स्वरूपिणी, २९१. चन्द्रवती= अपने ललाट पर चन्द्रमा को धारण करने वाली, २९२. चन्द्रमाः = चन्द्र स्वरूपिणी, २९३. चन्दनप्रिया = जिनको चन्दन अत्यधिक प्रिय है ॥५२॥ २९४. चोदयित्री = अपने उपासकों को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाली देवी, २९५. चिरप्रज्ञा = सनातन विद्या स्वरूपिणी, २९६. चातका = चातक के समान अपने नियम पर अडिग रहने वाली, २९७. चारुहेतुकी = जगत् की सृष्टि करने में सुन्दर साधनों को अपनाने वाली, २९८. छत्रयाता = जब ये चलती हैं, तो इनके अनुचर वर्ग इनके शिर पर छत्र लगाये रखते हैं, २९९. छत्रधरा = छत्र को धारण करने वाली, ३००. छाया = छाया स्वरूपिणी, ३०१. छन्दः परिच्छदा = वेद ही जिनके अलंकार हैं ॥५३॥ ३०२. छायादेवी = छाया की अधिष्ठात्री देवी, ३०३. छिद्रनखा= जिनके नख में छिद्र है, ऐसी देवी, ३०४. छन्नेन्द्रियाविसर्पिणी = जितेन्द्रिय योगियों के पास जाने वाली, ३०५. छन्दोऽनुष्टुप् प्रतिष्ठान्ता = अनुष्टुप छन्द में विद्यमान जो गायत्री मन्त्र, उसमें प्रतिष्ठित रहने वाली, ३०६. छिद्रोपद्रव भेदिनी = उपासकों पर आने वाले, उपद्रवों तथा कमियों को दूर करने वाली॥५४॥ ३०७. छेदा = पापों को विनष्ट करने वाली, ३०८. छत्रेश्वरी = सम्पूर्ण ब्रह्माड पर एक छत्र प्रशासन करने वाली, ३०९. छिन्ना = छिन्नमस्ता स्वरूपिणी, ३१०. छुरिका = छुरिका नामक शस्त्र को धारण करने वाली, ३११. छेदनप्रिया = दैत्यों को छिन्न-भिन्न करना जिनको प्रिय है, ३१२. जननी= जगन्माता, ३१३. जन्मरहिता = कर्म प्रेरित जन्म से रहित, ३१४. जातवेदा = अग्नि स्वरूपिणी, ३१५. जगन्मयी = सम्पूर्ण जगत् में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त रहने वाली ॥५४॥ ३१६. जाह्नवी = जह्नु महर्षि के यहाँ पुत्री के रूप में प्रकट होने वाली गङ्गा स्वरूपिणी, ३१७. जटिला = जिनके रहस्य को सामान्य पुरुष नहीं जान सकते हैं, ३१८. जेत्री = संग्रामस्थल में सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाली, ३१९. जरामरणवर्जिता = वार्धक्य तथा मृत्यु रूपी विकारों से रहित, ३२०. जम्बूद्वीपवती = जम्बुद्वीप की स्वामिनी, ३२१. ज्वाला = तेजः स्वरूपिणी ज्वाला देवी, ३२२. जयन्ती = विजय प्राप्त कराने

जंबूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी ॥५६॥ जितेंद्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया । जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा ॥५७॥ जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी । ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा ॥५८॥ जिताक्रांतमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता । ज्वलंती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषस्फोटदिङ्मुखी ॥५९॥ जंभिनी जृम्भणा जृम्भा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला । झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी ॥६०॥ झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञमृता स्मृता । टंकबाणसमायुक्ता टंकिनी टंकभेदिनी ॥६१॥ टंकीगणकृताघोषा टंकनीयमहोरसा । टंकारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी ॥६२॥ डामरी डाकिनी डिम्भा डुंडुमारैकनिर्जिता । डामरीतंत्रमार्गस्था डमड्डुमरुनादिनी ॥६३॥ डिंडीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।

वाली जयन्ती नाम की देवी, ३२३. जलशालिनी = विश्व को जल प्रदान करने वाली, या जलशालिनी शताक्षी देवी ॥५५॥ ३२४. जितेन्द्रिया = अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाली, ३२५. जितक्रोधा = अपने क्रोध को जित लेने वाली, ३२६. जितामित्रा = अपने शत्रुओं को परास्त करने वाली, ३२७. जगत् प्रिया = सम्पूर्ण संसार को प्रिय लगने वाली, ३२८. जातरूपमयी = सुवर्ण के समान सुन्दर तथा गौर वर्ण वाली, ३२९. जिह्वा = सभी प्राणियों के शरीर में जिह्वा रूप से विराजमान रहने वाली, ३३०. जानकी = महाराज जनक की पुत्री के रूप में आविर्भूत होने वाली, ३३१. जगती = संसार स्वरूपिणी, ३३२. जरा = सायं सन्ध्या के समय वृद्धा के रूप को धारण करने वाली ॥५७॥ ३३३. जनित्री = सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने वाली, ३३४. जह्नुतनया = जह्नु ऋषि की पुत्री, ३३५. जगत्त्रय हितैषिणी = त्रैलोक्य का कल्याण करने वाली, ३३६. जवालामुखी = ज्वालामुखी पर्वत स्वरूपिणी, ३३७. जापवती = सर्वदा परंब्रह्म का जप करते रहने वाली, ३३८. ज्वरघ्नी = ज्वर का विनाश करने वाली, ३३९. जितविष्टपा = सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करने वाली ॥५८॥ ३४०. जिताक्रान्तमयी = सब के ऊपर अपना प्रभाव डालने वाली विजयशालिनी, ३४१. ज्वाला = ज्वाला स्वरूपिणी, ३४२. जाग्रती = निद्रा के प्रभाव से रहित, ३४३. ज्वरदेवता = ज्वरों की अधिष्ठातृ देवी, ३४४. ज्वालन्ती = सदा देदीप्यमान रहने वाली, ३४५. जलदा = मेघों के माध्यम से जल प्रदान करने वाली, ३४६. ज्येष्ठा = परमादरणीया देवी, ३४७. ज्याघोषस्फुटदिङ्मुखी = अपने धनुष के टङ्कार से दिशाओं को प्रतिध्वनित कर देने वाली ॥५९॥ ३४८. जंभिनी = अपने दाँतों से दैत्यों की पीस डालने वाली, ३४९. जृम्भणा = जम्भाई लेने वाली, ३५०. जृम्भा = जम्हाई की अधिष्ठात्री देवी, ३५१. ज्वलन्माणिक्युकुण्डला = देदीप्यमान माणिक्य निर्मित कुण्डलों से सुशोभित, ३५२. झिंझिका = झिंगुर इत्यादि जीवों को भी अपने अंश से उत्पन्न करने वाली, ३५३. झणनिर्घोषा = जिनके भूषण झन-झन की अवाज करते रहते हैं, ३५४. झंझामारुतवेगिनी= झंझावात के समान भयंकर वेग वाली ॥६०॥ ३५५. झल्लरीवाद्यरता = झल्लरी नामक वाद्य विशेष को बजाने में कुशल, ३५६. ञरूपा = बलीवर्दस्वरूपिणी, ३५७. ञभुजा = बलीवर्द के समान बलिष्ठ भुजाओं से सुशोभित होने वाली, ३५८. टङ्कबाणसमायुक्ता = फरसा तथा बाण को धारण

ढुंढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा ॥६४॥ नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी । त्रिगुणा त्रिपदा तंत्री तुलसी तरुणा तरुः ॥६५॥ त्रिविक्रमपदाक्रांता तुरीयपदगामिनी । तरुणादित्यसंकाशा तामसी तुहिनातुरा ॥६६॥ त्रिकालज्ञानसंपन्ना त्रिवेणी च त्रिलोचना । त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुंगा तुरंगवदना तथा ॥६७॥ तिमिंगिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी । तंत्रमंत्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा ॥६८॥ त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषसंस्था

करने वाली, ३५९. टंकिनी = संग्रामभूमि में धनुष का टङ्कोर करने वाली, ३६०. टंकभेदिनी = शत्रुओं के धनुष के टंकोर को अपने धनुष के टङ्कोर से अभिभूत कर देने वाली ॥६१॥ ३६१. टंकीगणकृताघोषा = रुद्रगणों के समान ध्वनि करने वाली, ३६२. टंकनीयमहोरसा = प्रशंसनीय विशाल वक्षः स्थल से सुशोभित, ३६३. टंकारकारिणी देवी = टंकार करने वाली देवियों की स्वामिनी, ३६४. ठठशब्दनिनादिनी = अपने भयंकर ठ ठ शब्द के द्वारा शत्रुओं को भयभीत कर देने वाली ॥६२॥ ३६५. डामरी = डामरतंत्र की अधिष्ठात्री देवी, ३६६. डाकिनी = डाकिनी स्वरूपा, ३६७. डिम्भा = बाल स्वरूपा, ३६८. डुंडुमारैकनिर्जिता = डुंडुमार नामक दैत्य को परास्त करने वाली, ३६९. डामरीतंत्रमार्गस्था = डामरतंत्र की साधना में स्थित रहने वाली, ३७०. डमड्डमरुनादिनी = डमरु नामक वाद्य को, डम-डम, डम-डम बजाने वाली ॥६३॥ ३७१. डिंडीरवसहा = डिंडी नामक वाद्य विशेष की ध्वनि को सुनने वाली, ३७२. डिम्भलसत् क्रीडा परायणा = बच्चों के समान, अत्यन्त मनोज्ञ क्रीडा करने वाली देवी, ३७३. ढुंढिविध्नेशजननी = ढुण्ढिराज गणेश की माता, ३७४. ढक्काहस्ता = अपने हाथ में ढक्का नामक वाद्य विशेष को धारण करने वाली, ३७५. ढिलिव्रजा = ढिलि नामक गण विशेष के समुदाय से सुशोभित ॥६४॥ ३७६. नित्यज्ञाना =नित्यज्ञान से सम्पन्न, ३७७. निरुपमा = जिनकी उपमा किसी भी दूसरे से नहीं दी जा सकती है, ३७८. निर्गुणा= त्रिगुण से रहित, ३७९. नर्मदा = नर्मदा नाम की नदी के रूप में रहने वाली, ३८०. नदी = नदी रूप में अव्यक्त शब्द को करने वाली, ३८१. त्रिगुणा= सत्त्वगुण रजोगुण एवं तमोगुण से सम्पन्न, ३८२. त्रिपदा = त्रिपदा गायत्री स्वरूपिणी, ३८३. तन्त्री = तन्त्र शास्त्र स्वरूपिणी, ३८४. तुलसीतरुणातरुः = तरुण तुलसी वृक्ष के रूप में विराजमान रहने वाली ॥६५॥ ३८५. त्रिविक्रमपदाक्रान्ता = पृथिवी रूप में त्रिविक्रम भगवान् वामन के चरणों से आक्रान्त, ३८६. तुरीयपदगामिनी = चतुर्थ चरण से संचरण करने वाली, ३८७. तरुणादित्य संकाशा = मध्याह्न के सूर्य के समान अपने तेज से सम्पन्न, ३८८. तामसी = दैत्यों का वध करने के समय तमोगुण प्रधान अपने रूप को धारण करने वाली, ३८९. तुहिना = अपने उपासकों को लिए वर्फ के समान शीतल स्वभाव वाली, ३९०. तुरा = शीघ्रगामिनीं ॥६६॥ ३९१. त्रिकालज्ञानसम्पन्ना = भूत भविष्यत् एवं वर्तमान इन तीनों कालों की बातों को जानने वाली, ३९२. त्रिवेणी = गंगा, यमुना तथा सरस्वती इन तीनों के संगम स्थल स्वरूपिणी, ३९३. त्रिलोचना = तीन नेत्रों वाली, ३९४. त्रिशक्तिः= इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति, तथा ज्ञान शक्ति स्वरूपिणी, ३९५. त्रिपुरा = त्रिपुरा देवी स्वरूपिणी, ३९६. तुङ्गा = उन्नत विग्रह को धारण करने वाली, ३९७. तुरङ्गवदना = हयग्रीवावतार के समय उनके समान ही मुख से युक्त उनकी शक्ति स्वरूपिणी ॥६७॥ ३९८. तिमिङ्गिलगिला = तिमिङ्गिल नामक

तालप्रतापिनी । ताटंकिनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी ॥६९॥ तंतुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया । तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः॥७०॥
तारका त्रियुता तन्वी त्रिशंकुपरिवारिता । तलोदरी तिलाभूषा ताटंकप्रियवाहिनी ॥७१॥ त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः । तप्तकांचनसंकाशा
तप्तकांचनभूषणा ॥७२॥ त्रैयंबका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी । तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुंबुरुस्तुता ॥७३॥ तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा

भयङ्कर मत्स्य को भी उदरस्थ कर लेने वाली, ३९९. तीव्रा = अत्यन्त तीव्र स्वभाव वाली, ४००. त्रिस्रोता = तीन धाराओ वाली, ४०१. तामसादिनी= अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने वाली, ४०२. तंत्रमंत्रविशेषज्ञा = तन्त्रों तथा मन्त्रों को विशेष रूप से जानने वाली, ४०३. तनुमध्या = जिनकी कमर पतली है, ४०४. त्रिविष्टपा = स्वर्ग लोक स्वरूपिणी ॥६८॥ ४०५. त्रिसन्ध्या = तीनों सन्ध्याओं की आराध्या देवी, ४०६. त्रिस्तनी = अपने तीन स्तनों से देवताओं पितरों तथा मनुष्यों को आप्यायित करने वाली, ४०७. तोषसंस्था = संतोष में विराजमान रहने वाली, ४०८. तालप्रतापिनी = अपनी ताली बजाकर शत्रुओं को भयभीत कर देने वाली, ४०९. ताटंकिनी = धनुष का टङ्कोर करने में अत्यन्त निपुण, ४१०. तुषाराभा = वर्फ के समान धवल कान्ति से सम्पन्न, ४११. तुहिनाचलवासिनी = हिमालय पर्वत पर निवास करने वाली ॥६९॥ ४१२. तन्तुजाल समायुक्ता = जिनकी माया का तन्तु जाल सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, ४१३. तारहारावली प्रिया = देदीप्यमान तारों से निर्मित हार जिनको अत्यन्त प्रिय है, ४१४. तिलहोमप्रिया = तिल के होम से प्रसन्न होने वाली, ४१५. तीर्था = प्रवित्रकारक तीर्थ स्वरूपिणी, ४१६. तमालकुसुमाकृतिः = तमाल पुष्प के समान श्यामवर्ण के आकार वाली ॥७०॥ ४१७. तारका = अपने उपासकों को इस संसार सागर से उद्धार करने वाली, ४१८. त्रियुता = तीन वेदों से सम्पन्न, ४१९. तन्वी = दुर्बल शरीर से सुशोभित होने वाली, ४२०. त्रिशंकुपरिवारिता = त्रिशंकु नामक राजा के द्वारा आराध्य रूप से स्वीकार की गयी देवी, ४२१. तलोदरी = पृथिवी तल ही जिनका उदर है, ४२२. तिलाभूषा = तिल पुष्प के समान अत्यन्त मनोहर अलंकार वाली, ४२३. ताटंकप्रियवाहिनी = अपने कानों में ताटंक नामक आभूषण को प्रेम पूर्वक धारण करने वाली ॥७१॥ ४२४. त्रिजटा = तीन वेणियों को धारण करने वाली, ४२५. तित्तिरी = अव्यक्त तित्ति शब्द करने वाली, ४२८. तृष्णा = तृष्णा की अधिष्ठात्री देवी, ४२७. त्रिविधा = तीन प्रकार के रूपों को धारण करने वाली, ४२८. तरुणाकृति = सर्वदा तारुण्य से समलंकृत रहने वाली, ४२९. तप्तकाञ्चनसंकाशा = संतप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाली, ४३०. तप्तकाञ्चन भूषणा = संतप्त सुवर्ण से निर्मित आभूषणों को धारण करने वाली, ४३१. त्र्यम्बका = तीन नेत्रों से विभूषित, ४३२. त्रिवर्गा = धर्म, अर्थ तथा काम रूप त्रिवर्ग से सम्पन्न, ४३३. त्रिकालज्ञानदायिनी= अपने उपासकों को त्रैकालिक ज्ञान प्रदान करने वाली, ४३४. तर्पणा = तर्पण स्वरूपिणी, ४३५. तृप्तिदा = अपने उपासकों को उनके अभिलषित समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करके तृप्त करने वाली, ४३६. तृप्ता = स्वयं स्वभावतः तृप्त रहने वाली, ४३७. तामसी = तमोगुण प्रधान उग्र रूप को धारण करने

त्रिभंगीतनुवल्लरिः । थात्कारी थारवा थांता दोहिनी दीनवत्सला ॥७४॥ दानवांतकरी दुर्गा दुर्गासुरनिवर्हिणी । देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुंदुभिस्वना॥७५॥ देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा । दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्वमोहिनी ॥७६॥ दंडकारण्यनिलया दंडिनी देवपूजिता । देववंद्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः ॥७७॥ दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी । धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी ॥७८॥ धुरंधरा धराधारा

वाली, ४३८. तुम्बुरुस्तुता = तुम्बुरु नामक गन्धर्व जिनकी सदा स्तुति करते रहते हैं ॥७३॥ ४३९. ताक्ष्यर्स्था = गरुड़ पर सवारी करने वाली, ४४०. त्रिगुणाकारा = जिनके आकार में सत्त्व, रजस् एवं तमस् तीनों गुण विद्यमान हैं, ४४१. त्रिभङ्गी = जिनका शरीर तीन स्थानों से टेढा मेढ़ा है, ४४२. तनुवल्लरी = कोमल लता के समान जिनके शरीर के समस्त अवयव अत्यन्त कोमल हैं, ४४३. थात्कारी = सभराङ्गण में 'थात्' शब्द का उच्चारण करने वाली, ४४४. थारवा = अपने उपासकों को भय से मुक्त करने वाला था शब्द का उच्चारण करने वाली, ४४५. थान्ता = मङ्गलमय शब्द का उच्चारण करने वाली, ४४६. दोहिनी = उपासकों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाली, ४४७. दीनवत्सला = अपने समक्ष दीन बने हुए जीवों के ऊपर वात्सल्य नामक गुण का प्रदर्शन करने वाली ॥७४॥ ४४८. दानवान्तकरी = दानवों का विनाश करने वाली देवी, ४४९. दुर्गा = उपासकों पर आये हुए संकट का निवारण करने, ४५०. दुर्गासुरनिवर्हिणी = दुर्ग नामक असुर को मारने वाली, ४५१. देवरीतिः = देवमार्ग को अपनाने वाली, ४५२. दिवारात्रि = दिन तथा रात्रि की अधिष्ठात्री देवी, ४५३. द्रौपदी = द्रुपद की पुत्री रूप से यज्ञवेदी से उत्पन्न होने वाली, ४५४. दुन्दुभिस्वना = दुन्दुभि नामक वाद्य के समान जोर से घोष करने वाली ॥७५॥ ४५५. देवयानी = शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के रूप में विराजमान रहने वाली, ४५६. दुरावासा= दुर्गम निवास वाली, ४५७. दिवा = दिन स्वरूपिणी, ४५९. दामोदरप्रिया = श्रीकृष्ण भगवान् की प्रिया, ४६०. दीप्ता = प्रकाशमय स्वरूप वाली, ४६१. दिग्वासा = दिशाएँ ही जिनके वस्त्र का काम करती हैं, ४६२. दिग्विमोहिनी = समस्त दिशाओं को मोहित कर देने वाली ॥७६॥ ४६३. दण्डकारण्यनिलया = दण्डकारण्य में निवास करने वाली, ४६४. दण्डिनी = अपने हाथ में दण्ड धारण करने वाली, ४६५. देवपूजिता = देवता जिसकी पूजा करते हैं, ४६६. देववंद्या = देवता जिसकी वन्दना करते हैं, ४६७. दिविषदा = स्वर्गलोक में विराजमान रहने वाली, ४६८. द्वेषिणी = राक्षसों से द्वेष करने वाली, ४६९. दानवाकृतिः = दानवों के समान अपना भयंकर रूप बनाने वाली ॥७७॥ ४७०. दीनानाथ् स्तुता = दीनों के स्वामी श्रीभगवान् जिनकी स्तुति करते हैं, ४७१. दीक्षा = दीक्षा स्वरूपिणी, ४७२. दैवतादि स्वरूपिणी = देवताओं आदि के स्वरूप वाली, ४७३. धात्री = जगत् को धारण-पोषण करने वाली, ४७४. धनुर्धरा = धनुष धारण करने वाली, ४७५. धेनुः = कामधेनु स्वरूपिणी, ४७६. धारिणी = जगत् को धारण करने वाली, ४७७. धर्मचारिणी = धर्म का आचरण करने वाली, ४७८. धुरंधरा = अखिल जगत् की धुरा को धारण करने वाली, ४७९. धराधरा = धरती को धारण

धनदा धान्यदोहिनी । धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा ॥७९॥ धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा । धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी॥८०॥
नंदा नंदप्रिया निद्रा नृनुता नंदनात्मिका । नर्मदा नलिनी नीला नीलकंठसमाश्रया ॥८१॥ नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः । निराधारा
निरुपमा नित्यशुद्धा निरंजना ॥८२॥ नादबिंदुकलातीता नादबिंदुकलात्मिका । नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता ॥८३॥ नरकक्लेशशमनी
नारायणपदोद्भवा । निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी ॥८४॥ नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका । नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी॥८५॥

करने वाली, ४८०. धनदा = धन प्रदान करने वाली, ४८१. धान्यदोहिनी = धान्य दोहन करने वाली, ४८२. धर्मशीला = धर्म पालन के स्वभाव वाली, ४८३. धनाध्यक्षा = धन की स्वामिनी, ४८४. धनुर्वेद विशारदा = धनुर्वेद विद्या में निपुण ॥७९॥ ४८५. धृतिः = धैर्य स्वरूपिणी, ४८६. धन्या = अत्यन्त श्लाघ्य स्वरूप वाली, ४८७. धृतपदा = उत्तम पद पर प्रतिष्ठित रहने वाली, ४८८. धर्मराजप्रिया = धर्मराज की प्रिया, ४८९. ध्रुवा = निश्चित स्वरूप वाली, ४९०. धूमावती = धूमावती के नाम से प्रख्यात महाविद्या स्वरूपिणी, ४९१. धूमकेशी = धुएँ के समान धूमिल केशों वाली, ४९२. धर्मशास्त्र प्रकाशिनी = धर्मशास्त्र को प्रकट करने वाली ॥८०॥ ४९३. नन्दा = आनन्द स्वरूपिणी, ४९४. नन्दप्रिया = नन्दगोप के घर उनकी प्रिया यशोदा रूप से विराजमान रहने वाली, ४९५. निद्रा = योगनिद्रा स्वरूपिणी, ४९६. नृनुता = सभी मनुष्य जिनको प्रणाम करते है, ४९७. नन्दनात्मिका = नन्द की पुत्री रूप से प्रकट होने वाली देवी, ४९८. नर्मदा = हास्यमयी वाणी बोलने वाली, ४९९. नलिनी = कमलिनी स्वरूपा, ५००. नीला = नील वर्ण के श्रीविग्रह से सम्पन्न, ५०१. नीलकण्ठ समाश्रया = नीलकण्ठ महादेव के आश्रय् में रहने वाली ॥८१॥ ५०२. नारायण प्रिया = भगवान् नारायण की प्रियतमा लक्ष्मी स्वरूपा, ५०३. नित्या = नित्य स्वरूपिणी, ५०४. निर्मला = समस्त दोषों से रहित श्रीविग्रह वाली, ५०५. निर्गुणा = तीनों गुणों से रहित, ५०६. निधिः = सम्पत्ति स्वरूपिणी, ५०७. निराधारा = जो किसी आधार की अपेक्षा नहीं रख्ती हैं ५०८. निरुपमा = सभी प्रकार के उपमानों से रहित, ५०९. नित्यशुद्धा = सर्वदा शुद्ध रहने वाली, जिनमें अशुद्धि आती ही नहीं, ५१०. निरञ्जना = निर्दोष॥८२॥ ५११. नादविन्दुकलातीत = नाद तथा विन्दु कला से भी परे, ५१२. नादविन्दुकलात्मिका = नाद तथा विन्दु कला स्वरूपिणी, ५१३. नृसिंहरूपा = नृसिंह स्वरूपिणी, ५१४. नगधरा = पर्वतों को धारण करने वाली, ५१५. नृपनागविभूषिता = सर्णों के राजा से समलंकृत रहने वाली, ५१६. नरकक्लेशशमनी= अपने उपासकों के नरकजन्य कष्ट को विनष्ट करने वाली, ५१७. नारायणपदोद्भवा = भगवान् नारायण के चरण कमल से उत्पन्न होने वाली, ५१८. निरवद्या = समस्त दोषों से रहित, ५१९. निराकारा = जिनका कोई भी अपना आकार नहीं है, ५२०. नारदप्रियकारिणी = नारदजी का कल्याण करने वाली ॥८४॥ ५२१. नानाज्योतिसमाख्याता = अनेक प्रकार की ज्योति रूप से प्रख्यात देवी, ५२२. निधिदा = अपने भक्तों

नंदजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी । नवनीतप्रिया नारी नीलजीमूतनिःस्वना ॥८६॥ निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी । नामावलिर्निशुंभघ्नि-नागलोकनिवासिनी ॥८७॥ नवजांबूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता । नूपुराक्रान्तचरणा नरचित्तप्रमोदिनी ॥८८॥ निमग्नरक्तनयना निर्घातसमनिःस्वना। नंदनोद्याननिलया निर्व्यूहोपचारिणी ॥८९॥ पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा । पंचकोशविनिर्मुक्ता पंचपातकनाशिनी ॥९०॥ परचित्तविधानज्ञा पंचिका पंचरूपिणी । पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी ॥९१॥ पुराणी पौरुषी पुण्या पुंडरीकनिभेक्षणा । पातालतलनिर्मग्रा प्रीतिः

को हर प्रकार की निधियों को प्रदान करने वाली, ५२३. निर्मलात्मिका = शुद्ध स्वरूपिणी, ५२४. नीतिः = नीति स्वरूपिणी, ५२५. नवसूत्रधरा = नवीन सूत्र धारण करने वाली ५२६. निरुपद्रवकारिणी = समस्त उपद्रवों को विनष्ट करने वाली ॥८५॥ ५२७. नन्दजा = नन्दजी के घर में पुत्री के रूप में प्रकट होने वाली, ५२८. नवरत्नाढ्या = नवीन रत्नों से समलंकृत रहने वाली, ५२९. नैमिषारण्यवासिनी = नैमिषारण्य में ललिता देवी के नाम से विख्यात देवी, ५३०. नवनीतप्रिया = नवनीत के नैवेद्य से अत्यधिक प्रसन्न होने वाली, ५३१. नारी = समस्त नारी स्वरूपिणी, ५३२. नीलजीमूतस्वना = काले मेघ के समान घोर गर्जना करने वाली ॥८६॥ ५३३. निमेषिणी = निमेषों (पक्ष्मपातों) की अधिष्ठात्री देवी, ५३४. नदीरूपा = नदी के रूप में विराजमान रहने वाली, ५३५. नीलग्रीवा = जिनका कण्ठ नील वर्ण का है, ५३६. निशीश्वरी = रात्रि की अधिष्ठात्री देवी, ५३७. नामावली = विविधनामों से विख्यात देवी, ५३८. निशुम्भघ्नी = निशुम्भ नामक दैत्य का वध करने वाली, ५३८. नागलोकनिवासिनी = नागलोक में निवास करने वाली ॥८७॥ ५३९. नवजाम्बूनदप्रख्या = नवीन सुवर्ण के समान देदीप्यमान वर्णवाली, ५४०. नागलोकाधिदेवता = नागलोक की स्वामिनी, ५४२. नूपुराक्रान्तचरणा = जिनके चरण कमलों में नूपुर सुशोभित होते हैं, ५४३. नरचित्तप्रमोदिनी = मनुष्यों के मन को अत्यधिक आनन्दित करने वाली ॥८८॥ ५४३. निमग्नरक्तनयना = जिनकी लाल-लाल आँखें धसी हुई हैं, ५४५. निर्घात समनिःस्वना = वज्रपात के समान धोर गर्जना करने वाली, ५४६. नन्दनोद्याननिलया = नन्दन वन में विहार करने वाली, ५४७. निर्व्यूहोपचारिणी = विना किसी व्यूह के आकाश में विचरण करने वाली ॥८९॥ ५४८. पार्वती = पार्वती देवी के नाम से प्रख्यात, ५४९. परमोदारा = अत्यधिक उदार स्वभाव वाली, ५५०. परब्रह्मात्मिका = परंब्रह्म स्वरूपिणी, ५५१. परा = पराविद्या स्वरूपिणी, ५५२. पञ्चकोश विनिर्मुक्ता = पञ्चकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोशों) से रहित दिव्य शरीर वाली, ५५३. पञ्चपातकनाशिनी = अपने भक्तों के पञ्च महापापों को विनष्ट करने वाली ॥९०॥ ५५४. परचित्तविधानज्ञा = शत्रुओं के चित्त की गतिविधि को जानने वाली, ५५५. पंचिका = पंचिका देवी के नाम से विख्यात, ५५६. पंचरूपिणी = प्रख्यात पाञ्च रूपों को धारण करने वाली, ५५७. पूर्णिमा = पूर्णिमा तिथि स्वरूपिणी, ५५८. परमा = सर्वश्रेष्ठतत्त्व स्वरूपिणी, ५५९. प्रीतिः = प्रेम स्वरूपिणी, ५६०. परमतेजः = सर्वश्रेष्ठ तेज

प्रीतिविवर्धिनी ।।९२।। पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी । प्रजापतिः परिश्रांता पर्वतस्तनमंडला ।।९३।। पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसंभवा । पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी ।।९४।। पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरंध्री पुरवासिनी । पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया ।।९५।। पतिव्रता पवित्रांगी पुष्पहासपरायणा । प्रज्ञावतीसुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी ।।९६।। पट्टिशपाशधरा पंक्तिः पितृलोकप्रदायिनी । पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी ।।९७।। प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा । पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना ।।९८।। पृथुजंघा पृथुभुजा

स्वरूपिणी, ५६१. प्रकाशिनी = अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने वाली ।।९१।। ५६२. पुराणी = सनातन देवी स्वरूपिणी, ५६२. पौरुषी= पौरुष की अधिष्ठातृ देवी अथवा परम पुरुष परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाली, ५६४. पुण्या = पुण्यमय विग्रह को धारण करने वाली, ५६५. पुण्डरीकनिभेक्षणा = कमल के समान मनोहर नेत्रों वाली, ५६६. पातालतलनिर्मग्ना = पातालोक में निमग्न रहने वाली, ५६७. प्रीता = सदा अपने भक्तों पर प्रसन्न रहने वाली, ५६८. प्रीतिविवर्धिनी = अपने उपासकों में प्रेम की वृद्धि करने वाली ।।९२।। ५६९. पावनी = पवित्र बना देने वाली, ५७०. पादसहिता = अपनी चरणों से शोभा पाने वाली, ५७१. पेशला = सुन्दर शरीर वाली, ५७२. पवनाशिनी = वायु का आहार करने वाली, ५७३. प्रजापतिः = प्रजाओं की रक्षा करने वाली, ५७४. परिश्रान्ता = भक्तों की रक्षा में अच्छी तरह से व्यस्त रहने वाली, ५७५. पर्वतस्तनमण्डला = पर्वत ही जिसके स्तन मण्डल हैं ।।९३।। ५७६. पद्मप्रिया = कमल पुष्प जिसको प्रिय है, ५७७. पद्मसंस्था = कमल के आसन पर बैठने वाली, ५७८. पद्माक्षी = कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, ५७९. पद्मसंभवा = कमल से प्रकट होने वाली, ५८०. पद्मपत्रा = कमल पत्र के समान संसार से निर्लिप्त, ५८१. पद्मपदा = कमल के समान कोमल चरणों वाली, ५८२. पद्मिनी = नारियों में श्रेष्ठ पद्मिनी नारी, ५८३. प्रियभाषिणी = प्रिय बातें कहने वाली ।।९४।। ५८४. पशुपशविनिर्मुक्ता = पशु सम्बन्धी बन्धन से सदा मुक्त रहने वाली, ५८५. पुरंध्री = गृहकार्य को संभालने वाली नारी के समान देवी, ५८६. पुरवासिनी = नगर में निवास करने वाली, ५८७. पुष्कला = सर्वत्र पर्याप्तमात्रा में विराजमान रहने वाली, ५८८. पुरुषा = पुरुष के समान पुरुषार्थ से सम्पन्न, ५८९. पर्वा = पर्वस्वरूपिणी, ५९०. पारिजातसुमप्रिया = जिनको पारिजात पुष्प प्रिय हैं ।।९५।। ५९१. पतिव्रता = पातिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली, ५९२. पवित्राङ्गी = पवित्र अंगों वाली, ५९३. पुष्पहासपरायणा = सदापुष्प के सदृश मनोहर हँसी से युक्त, ५९३. प्रज्ञावतीसुता = प्रज्ञावती के यहाँ पुत्री रूप से उद्भूत होने वाली, ५९५. पौत्री = पौत्री रूप से विराजमान रहने वाली, ५९६. पुत्रपूज्या = पुत्र से पूजा प्राप्त करने वाली, ५९७. पयस्विनी = प्रजाओं के लिए अमृतमय दुग्ध प्रदान करने वाली ।।९६।। ५९८. पट्टिशपाशधरा = अपनी भुजाओं में पट्टिश तथा पाश को धारण करने वाली, ५९९. पंक्तिः = पंक्तिबद्ध रहने वाली, ६००. पितृलोकप्रदायिनी = जिनकी कृपा को प्राप्त करके प्राणी पितरों के लोक में पहुँच जाता है,

पृथुपादा पृथूदरी । प्रवालशोभा पिंगाक्षी पीतवासाः प्रचापला ॥९९॥ प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः । पंचवर्णा पंचवाणी पंचिका पंजरस्थिता ॥१००॥ परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परा गतिः । पराकाष्ठा परेशानी पावनी पावकद्युतिः ॥१०१॥ पुण्यभद्रा परिच्छेदा पुष्पहासा पृथूदरी । पीतांगी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी ॥१०२॥ पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया । पंचभक्षप्रियाचारा पूतनाप्राणघातिनी॥१०३॥

६०१. पुराणी = सदा से विराजमान रहने वाली देवी , ६०२. पुण्यशीला = पुण्य से सुशोभित रहने वाली, ६०३. प्रणतार्तिविनाशिनी = शरणागत जीवों के कष्टों को दूर करने वाली, ६०४. प्रद्युम्नजननी = प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी स्वरूपिणी, ६०५. पुष्टा = पुष्टि स्वरूपिणी, ६०७. पितामहपरिग्रहा = आदि शक्ति के द्वारा पितामह (ब्रह्माजी) को प्रदत्त, ६०७. पुण्डरीकपुरावासा = पुण्डरीक पुरी (चिदम्बरम्) में निवास करने वाली, ६०८. पुण्डरीक समानना= कमल के समान सुन्दर मुख वाली, ६०९. पृथुजंघा = विशाल जंघों वाली, ६१०. पृथुभुजा = लम्बी भुजाओं वाली, ६११. पृथुपादा = लम्बे पैरों वाली, ६१२. पृथूदरी = बड़े पेट वाली, ६१३. प्रवालशोभा = मूंगे के समान सौन्दर्य वाली, ६१४. पिंगाक्षी = पीले नेत्रों वाली, ६१५. पीतवासा = पीले वस्त्रों को धारण करने वाली, ६१६. प्रचापला = अत्यधिक चंचल स्वभाव वाली ॥९९॥ ६१७. प्रसवा = सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली, ६१८. पुष्टिदा= पुष्टि प्रदान करने वाली, ६१९. पुण्या = पुण्य स्वरूपिणी, ६२०. प्रतिष्ठा = सम्पूर्ण जगत् के आधार स्वरूपा, ६२१. प्रणवागति = प्रणव वाच्य स्वरूपिणी, ६२२. पञ्चवर्णा = पाँच वर्णों (रूपों) से युक्त, ६२३. पञ्चवाणी = विस्तृत वाणी बोलने वाली देवी, ६२४. पञ्चिका = पञ्चिका नाम की एकविशेष देवी स्वरूपिणी, ६२५. पंजरस्थिता = सभी प्राणियों के शरीर रूपी पंजर में शक्ति रूप से निवास करने वाली ॥१००॥ ६२६. परमाया = परममाया स्वरूपिणी,; ६२७. परज्योतिः = सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूपिणी, ६२८. परप्रीतिः = सर्वोत्कृष्ट प्रेममयी देवी, ६२९. परागतिः = सर्वोत्कृष्ट प्राप्य स्वरूपिणी, ६३०. पराकाष्ठा = जिससे श्रेष्ठ संसार में कोई नहीं है । ६३१. परेशानी = सर्वश्रेष्ठ स्वामिनी, ६३२. पावनी = अपनी उपासना करने वाले जीवों को पवित्र बना देने वाली, ६३३. पावकद्युतिः = अग्नि के समान कान्ति वाली ॥१०१॥ ६३४. पुण्यभद्रा = सर्वश्रेष्ठ पवित्र बना देने वाली, ६३५. परिच्छेदा = स्वेतर समस्त वस्तु विलक्षणा, ६३६. पुष्पहासा = विकसित पुष्प के समान मधुर एवं मोहक मुसुकान वाली, ६३७. पृथूदरी = विशाल उदर वाली, ६३८. पीताङ्गी = पीत वर्ण के अङ्गों वाली, ६३९. पीतवसना = पीलेरङ्ग के वस्त्र को धारण करने वाली, ६४०. पीतशय्या = पीले रङ्ग की शय्या पर शयन करने वाली, ६४१. पिशाचिनी = पिशाचों के समूह के साथ रहने वाली ॥१०२॥ ६४२. पीतक्रिया = मधुपान करने वाली, ६४३. पिशाचघ्नी = पिशाचों को मारने वाली, ६४४. पाटलाक्षी = विकसित गुलाब के पुष्प के समान नेत्रों वाली, ६४५. पटुक्रिया = चतुरता पूर्वक कार्यों को सम्पन्न करने वाली, ६४६. पञ्चभक्षप्रियाचारा = भोज्य, चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय इन पाँचों प्रकार के भोजनों को करने वाली, ६४७. पूतनाप्राणघातिनी=

पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता । पंचाङ्गी च परा शक्तिः परमाह्लादकारिणी ॥१०४॥ पुष्पकांडस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा । पानप्रिया पंचशिखा पन्नगोपरिशायनी ॥१०५॥ पंचमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी । पुराणन्यायमीमांसापाटली पुष्पगंधिनी ॥१०६॥ पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा । प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी ॥१०७॥ फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः । फणींद्रभोगशयना फणिमंडलमंडिता ॥१०८॥ बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका । बलभद्रप्रिया वंद्या बडवा बुद्धिसंस्तुता ॥१०९॥ बंदीदेवी बिलवती बडिशघ्नी

पूतना को मार डालने वाली ॥१०३॥ ६४८. पुन्नागवनमध्यस्था = जायफल के वन में रहने वाली, ६४९. पुण्यतीर्थनिषेविता = पवित्र तीर्थों में निवास करने वाली, ६५०. पञ्चाङ्गी = पाञ्च अङ्गों से सुशोभित होने वाली, ६५१. पराशक्तिः = सर्वश्रेष्ठ शक्ति स्वरूपिणी, ६५२. परमाह्लादकारिणी = परमानन्द प्रदान करने वाली ॥१०४॥ ६५३. पुष्पकाण्डस्थिता = पुष्पित वृक्षों की शाखाओं पर रहने वाली, ६५४. पूषा = सदा परिपुष्ट रहने वाली, ६५५. पोषिताखिलविष्टपा = सम्पूर्ण जगत् का पोषण करने वाली, ६५६. पानप्रिया = मधु आदि पेय पदार्थों की पान क्रिया जिसको अत्यन्त प्रिय है, ६५७. पञ्चशिखा = पाँच वेणियों से सुशोभित, ६५८. पन्नगोपरिशायिनी = सर्प के ऊपर शयन करने वाली ॥१०५॥ ६५९. पञ्चमात्रात्मिका = पञ्च तन्मात्रा स्वरूपिणी, ६६०. पृथिवी = जगत् को धारण करने के लिए पृथ्वी स्वरूपिणी, ६६१. पथिका = अपने उपासकों का कल्याणकारिणी के रूप में विराजमान रहने वाली, ६६२. पृथुदोहिनी = अनेक वस्तुओं का दोहन करने वाली, ६६३. पुराणन्यायमीमांसा = पुराण, न्याय तथा मीमांसा शास्त्र स्वरूपिणी, ६६४. पाटली = गुलाब के पुष्प को धारण करने वाली, ६६५. पुष्पगन्धिनी = विकसित पुष्प के समान सुगन्धि सम्पन्न ॥१०६॥ ६६६. पुण्यप्रजा = पवित्र प्रजाओं वाली, ६६७. पारदात्री = संसार सागर से पार करने वाली, ६६८. परमार्गैक गोचरा = केवल शास्त्रीय मार्ग (परमार्थ मार्ग) से ही जिनको जाना जा सकता है, ६६९. प्रवालशोभा पूर्णाशा = अपनी शारीरिक कान्ति से मूगों की शोभा से परिपूर्ण, ६७०. पूर्णाशा = जिनकी सारी कमनाएँ परिपूर्ण हो चुकी हैं, ६७१. प्रणवा = ओंकार स्वरूपिणी, ६७२. पल्लवोदरी = नवीन कोमल पल्लवों के समान कोमल तथा सुन्दर उदर वाली ॥१०७॥ फलिनी= फल स्वरूपिणी, ६७९. फलदा = अपने उपासकों को फल प्रदान करने वाली, ६७५. फल्गु = फल्गुनदी के रूप में विराजमान रहने वाली, ६७६. फूत्कारी = क्रोध के आवेश में आकर फूत्कार करने वाली, ६७७. फलकाकृतिः = बाण के अग्रभाग के समान आकार वाली, ६७८. फणीन्द्रभोगशयना = शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाली, ६७९. फणिमण्डलमण्डिता = सर्पों के समूह से समलंकृत रहने वाली ॥१०८॥ ६८०. बालबाला = बालिकाओं से भी बालिका, ६८१. बहुमता = सबों के द्वारा सम्मानित रहने वाली, ६८२. बालातपनिभांशुका = प्रातःकालीन सूर्य की कान्ति के समान देदीप्यमान वस्त्र को धारण करने वाली, ६८३. बलभद्रप्रिया = बलभद्रजी की पत्नी रेवती के रूप में विराजमान रहने वाली, ६८४. वन्द्या=

बलिप्रिया । बांधवी बोधिता बुद्धिर्बंधूककुसुमप्रिया ॥११०॥ बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता । बृहस्पतिस्तुता बृंदा बृंदावनविहारिणी॥१११॥ बलाकिनी बिलाहारा बिलावासा बहूदका । बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका ॥११२॥ बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी । बिंदुनादकलातीता बिंदुनादस्वरूपिणी ॥११३॥ बद्धगोधांगुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी । बृंदारका बृहत्स्कंधा बृहती बाणपातिनी ॥११४॥ बृंदाध्यक्षा बहुनुता बनिता बहुविक्रमा । बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता ॥११५॥ बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिंदुदर्पणा । बाला बाणासनवती बडवानलवेगिनी॥११६॥

संसार जिसकी वन्दना करता है, ६८५. बडवा = बडवानल की पत्नी के रूप में विराजमान, ६८६. बुद्धिसंस्तुता = बुद्धि आदि देवियों के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी है, ६८७. वंदीदेवी = वन्दीजनों की आराध्या, ६८८. बिलवती = गुफा में निवास करने वाली, ६८९. बडिशघ्नी = कपट का विनाश करने वाली, ६९०. बलिप्रिया = पूजा जिसको प्रिय है, ६९१. बाँधवी = सभी प्राणियों के बाँधव स्वरूपिणी, ६९२. बोधिता = सम्पूर्ण ज्ञान स्वरूपिणी, ६९३. बुद्धि = बुद्धि की अधिष्ठातृ देवी, ६९४. बंधूककुसुमप्रिया = जिसको दूपहरिया के फूल प्रिय हैं ॥११०॥ ६९५. बालभानु प्रभाकारा = बाल सूर्य के समान कान्ति वाली, ६९६. ब्राह्मी = ब्रह्माजी की शक्ति के रूप में विराजमान रहने वाली, ६९७. ब्राह्मणदेवता = ब्राह्मणों के लिए आराध्य देवता स्वरूप, ६९८. बृहस्पति स्तुति = आचार्य बृहस्पति के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी है, ६९९. बृन्दा = वृन्दा के नाम से विख्यात, ७००. बृन्दावन विहारिणी = वृन्दावन में विहार करने वाली ॥१११॥ ७०१. बलाकिनी = बगुलों की पंक्ति का जिनका आकार माना जाता है, ७०२. बिलाहारा = कर्मों की त्रुटि को परिपूर्ण करने वाली, ७०३. बिलावासा = गुफा में भी निवास करने वाली, ७०४. बहूदका = बहुत अधिक जल से परिपूर्ण नदी के रूप में प्रकट होकर सुशोभित होने वाली, ७०५. बहुनेत्रा = बहुत नेत्रों वाली, ७०६. बहुपदा = असंख्य चरणों वाली देवी, ७०७. बहुकर्णावतंसिका = अपने कानों में बहुत अधिक आभूषणों को धारण करने वाली ॥११२॥ ७०८. बहुबाहुयुता = बहुत अधिक भुजाओं वाली, ७०९. बीजरूपिणी = बीजस्वरूपिणी, ७१०. बहुरूपिणी = अनेक रूपों को धारण करने वाली, ७११. बिन्दुनादकालतीता = बिन्दु, नाद और कला से परे, ७१२. बिन्दुनाद स्वरूपिणी = बिन्दु तथा नाद जिनका स्वरूप माना जाता है ॥११३॥ ७१३. बद्धगोधाङ्गुलीत्राणा = गोधा (गोह) के चमड़े से निर्मित अंगुलित्राण को धारण करने वाली, ७१४. बदर्याश्रमवासिनी = बदरिकाश्रम में निवास करने वाली, ७१५. बृन्दारका = देवस्वरूपिणी, ७१६. बृहत्स्कंधा = विशाल कन्धों से सुशोभित, ७१७. बृहती = बृहती छन्द के रूप में रहने वाली, ७१८. बाणपातिनी = शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाली ॥११४॥ ७१९. बृन्दाध्यक्षा = वृन्दा आदि भगवान् की सखियों की स्वामिनी, ७२०. बहुनुता = जिनकी स्तुति बहुत लोग करते है, ७२१. बनिता = परम सुन्दरी स्त्री स्वरूपिणी, ७२२. बहुक्रिया = अत्यधिक पराक्रमशालिनी, ७२३. बद्धपद्मासनसीना = बद्धपद्मासन से बैठने वाली, ७२४. विल्वपत्रतलस्थिता = बिल्वपत्र के तल में निवास

ब्रह्मांडबहिरंतःस्था ब्रह्मकंकणसूत्रिणी । भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी ॥११७॥ भद्रकाली भुजंगाक्षी भारती भारताशया । भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी ॥११८॥ भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा । भूतावासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्च्चिता ॥११९॥ भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा । भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा ॥१२०॥ भर्गात्मिका भीमवती भवबंधविमोचिनी । भजनीया भूतधात्री रंजिता भुवनेश्वरी ॥१२१॥ भुजंगवलया भीमा भेरुंडा भागधेयिनी । माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया ॥१२२॥

करने वाली ॥११५॥ ७२५. बोधिद्रुमनिजावासा = पीपल के पेड़ के नीचे जिनका निवास स्थान है, ७२६. बडिस्था = शीरो के भीतर शक्ति रूप से विराजमान रहने वाली, ७२७. बिन्दुदर्पणा = अव्यक्त माया ही जिनका दर्पण है, ७२८. बाला = कन्या के रूप में विराजमान रहने वाली, ७२९. बाणासनवती = बाणासन से बैठने वाली, ७३०. बडवानल वेगिनी = बाडवाग्नि के समान वेग सम्पन्न ॥११६॥ ७३१. ब्रह्मण्डबहिरन्तस्था = ब्रह्माण्ड की बाहर और भीतर व्यापक रूप से विराजमान रहने वाली, ७३२. ब्रह्मकंकण सूत्रिणी = ब्रह्माजी के कंकणसूत्र स्वरूपा, ७३३. भवानी = शिवपत्नी स्वरूपिणी, ७३४. भीषणवती = दैत्यों के लिए भयंकर आकार वाली, ७३५. भाविनी = सम्पूर्ण जगत् के कल्याण की भावना करने वाली, ७३६. भयहारिणी = भय को दूर करने वाली, ७३७. भद्रकाली = भद्रकाली के नाम से प्रख्यात देवी, ७३८. भुजङ्गाक्षी = सर्प के नेत्रों को सदृश नेत्रों वाली, ७३९. भारती = भाषास्वरूपिणी, ७४०. भारताशया = ज्ञाननिष्ठ महापुरुषों के अन्तःकरण में विराजमान रहने वाली, ७४१. भैरवी = भैरवी नाम से विख्यात देवी, ७४२. भीषणाकारा = दैत्यों के लिए भयंकर आकार वाली देवी, ७४३. विभूतिदा = ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, ७४४. भूमिमालिनी = प्रचुर ऐश्वर्य सम्पन्न ॥११८॥ ७४५. भामिनी = समयानुसार क्रोध करने वाली देवी, ७४६. भोगनिरता = परमात्मप्रदत्त भोगों को भोगने में सदा संलग्न रहने वाली देवी, ७४७. भद्रदा = अपने उपासकों का कल्याण करने वाली, ७४८. भूरिविक्रमा = अत्यधिक पराक्रम सम्पन्न, ७४९. भूतावासा = समस्त प्राणियों के भीतर अन्तरात्मा रूप से निवास करने वाली, ७५०. भृगुलता = भृगुलता के रूप में विराजमान रहने वालीं, ७५१. भार्गवी = महर्षि भृगु की शक्ति के रूप में विराजमान रहने वाली, ७५२. भूसुरार्चिता = ब्राह्मणों के द्वारा पूजित ॥११९॥ भागीरथी = राजा भगीरथ के द्वारा तपस्या करके पृथिवी पर लायी गयी गंगा नदी स्वरूपिणी । ७५४. भोगवती = अनेक प्रकार के भोगों से सम्पन्न अथवा भोगवती नदी के रूप में विराजमान देवी, ७५५. भवनस्था= भवन में विराजमान रहने वाली देवी, ७५६. भिषग्वरा = श्रेष्ठ चिकित्सक स्वरूपिणी, ७५७. भामिनी = उत्तम भावना से सम्पन्न रहने वाली, ७५८. भोगिनी = अनेक प्रकार के उत्तम भोगों को भोगने वाली, ७५९. भाषा = भाषा स्वरूपिणी, ७६०. भवानी = भवानी के नाम से प्रसिद्ध जगत् का कल्याण करने वाली देवी, ७६१. भूरिदक्षिणा= बहुत अधिक दक्षिणा प्रदान करने वाली ॥१२०॥ ७६२. भर्गात्मिका = तेजः स्वरूपिणी, ७६३. भीमवती=

महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना । मायातीता मधुमती मधुमासा मधुद्रवा ॥१ २ ३॥ मानवी मधुसंभूता मिथिलापुरवासिनी । मधुकैटभसंहर्त्री
मेदिनी मेघमालिनी ॥१ २ ४॥ मंदोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया । महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी ॥१ २ ५॥ माहेन्द्री मेरुतनया
मंदारकुसुमार्चिता । मंजुमंजीरचरणा मोक्षदा मंजुभाषिणी ॥१ २ ६॥ मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता । मेधा मरकतश्यामा मागधी
मेनकात्मजा ॥१ २ ७॥ महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता । मातृका मिहिराभाषा मुकुन्दपदविक्रमा ॥१ २८॥ मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।

संग्राम स्थल में भयंकर दिखायी देने वाली, ७६४. भवबन्धविमोचिनी = संसार के बन्धन को दूर करने वाली, ७६५. भजनीया = सेवन करने योग्य, ७६६. भूतधात्रीरञ्जिता = जो कृपा करके समस्त जीवों को प्रसन्न रखती हैं, और सभी प्राणियों को जीवित रखती हैं, ७६७. भुवनेश्वरी = सभी लोकों की स्वामिनी ॥१२१॥ ७६८. भुजंगबलया = सर्पों के कंकण को धारण करने वाली, ७६९. भीमा = भयंकर वेष धारण करने वाली, ७७०. भेरुण्डा = भेरुण्डा के नाम से विख्यात देवी, ७७१. भागधेयिनी = परम सौभाग्य शालिनी, ७७२. माता = जगज्जननी, ७७३. माया = माया स्वरूपिणी, ७७४. मधुमती = मधुपान करने वाली, ७७५. मधुजिह्वा = मधु का आस्वादन करने वाली, ७७६. मधुप्रिया = मधु पान करना जिनको प्रिय है ॥१२२॥ ७७७. महादेवी = समस्त देवियों में श्रेष्ठ, ७७८. महाभागा = अत्यन्त सौभाग्य शालिनी, ७७९. मालिनी = उत्तम मालाओं को धारण करने वाली, ७८०. मीनलोचना = मछली के समान चंचल नेत्रों वाली, ७८१. मायातीता = माया से परे, ७८२. मधुमती = सदा मधुपान करते रहने वाली, ७८३. मधुमासा = मधु (चैत्रमास) की अधिष्ठात्री देवी, ७८४. मधुद्रवा = मधु अर्पण करने से प्रसन्न रहने वाली ॥१२३॥ ७८५. मानवी = मानवरूप को धारण करने वाली, ७८६. मधुसम्भूता = चैत्रमास में प्रकट होने वाली, ७८७. मिथिलापुरवासिनी = मिथिलापुरी में सीतारूप से निवास करने वाली, ७८८. मधुकैटभसंहन्त्री = मधु तथा कैटभ नामक राक्षसों का विनाश करने वाली, ७८९. मेदिनी = पृथिवी स्वरूपिणी, ७९०. मेघमालिनी = मेघ समूह से घिरी रहने वाली ॥१२४॥ ७९१. मन्दोदरी = मन्दोदरी के रूप में प्रकट होने वाली, ७९२. महामाया = महामाया नाम से विख्यात देवी, ७९३. मैथिली= श्रीसीताजी के रूप में अवतीर्ण होने वाली, ७९४. मसृणप्रिया = मधुर एव कोमल पदार्थों से प्रेम करने वाली, ७९५. महालक्ष्मी = महालक्ष्मी स्वरूपिणी, ७९६. महाकाली = महाकाली स्वरूपिणी, ७९७. महाकन्या = महान् हिमाचल की कन्या का रूप धारण करने वाली, ७९८. महेश्वरी= परमेश्वरी ॥१२५॥ ७९९. माहेन्द्री = शची का रूप धारण करने वाली, ८००. मेरुतनया = सुमेरु पर्वत की पुत्री रूप से अवतीर्ण होने वाली, ८०१. मंदारकुसुमर्चिता = मन्दार के फूलों से जिनकी अर्चना की जाती है, ८०२. मञ्जुमञ्जीरचरणा = जिनके पैरों में सुन्दर मञ्जोर (नूपुर) विद्यमान है, ८०३. मोक्षदा = मोक्ष प्रदान करने वाली, ८०४. मञ्जुभाषिणी = मनोहर वाणी बोलने वाली ॥१२६॥ ८०५. मधुरद्राविणी = कृपा द्रवित होकर मधुर

मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी ॥१२९॥ योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया । यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी ॥१३०॥ यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी । यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा ॥१३१॥ यकारादिहकारांता याजुषी यज्ञरूपिणी । यामिनी योगनिरता यातुधानभयंकरी ॥१३२॥ रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः । रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया ॥१३३॥ रोहिणी

वाणी बोलने वाली, ८०६. मुद्रा = मुद्रा रूप से सुशोभित होने वाली, ८०७. मलया = मलयाचल पर निवास करने वाली, ८०८. मलयान्विता = मलयगिरि चन्दन को धारण करने वाली, ८०९. मेधा = बुद्धि स्वरूपिणी, ८१०. मरकतश्यामा = मरकत मणि के समान श्याम वर्ण के शरीर वाली, ८११. मागधी = मगध प्रदेश में पूजित होने वाली देवी, ८१२. मेनकात्मजा = हिमालय की पुत्री पार्वती के रूप में अवतीर्ण होने वाली ॥१२६॥ ८१३. महामारी = महामारी स्वरूपिणी, ८१४. महावीरा = निस्सीम शक्ति सम्पन्न, ८१५. महाश्यामा = अत्यन्त श्याम वर्ण के शरीर को धारण करने वाली, ८१६. मनुस्तुता = मनु ने जिनकी स्तुति की है, ८१७. मातृका = मातृका स्वरूपिणी, ८१८. मिहिराभासा = सूर्य के समान कान्ति वाली, ८१९. मुकुन्दपदविक्रमा = भगवान् विष्णु के पद का अनुगमन करने वाली ॥१२८॥ ८२०. मूलाधारस्थिता = मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी के रूप में विराजमान रहने वाली देवी, ८२१. मुग्धा = अत्यन्त मनोहर लगने वाली, ८२२. मणिपूरकवासिनी = शरीर के भीतर मणिपूरक चक्र में निवास करने वाली, ८२३. मृगाक्षी = मृगी के नेत्रों के समान सुन्दर और बड़े-बड़े नेत्रों वाली, ८२४. महिषारूढा = भैंसे पर सवार होने वाली यमराज की शक्ति स्वरूपिणी, ८२५. महिषासुरमर्दिनी = दुर्गा के रूप में महिषासुर का विनाश करने वाली ॥१२९॥ योगासना = योगासन से बैठने वाली, ८२७. योगगम्या= योग के ही द्वारा जिसे जाना जा सकता है, ८२८. योगा = योगस्वरूपिणी, ८२९. यौवनकाश्रया = सदा युवावस्था में ही रहने वाली, ८३०. यौवनी = यौवन स्वरूपिणी, ८३१. युद्धमध्यस्था = युद्ध के बीच में विद्यमान रहने वाली, ८३२. यमुना = यमुना नदी के रूप में प्रवाहित होने वाली, ८३३. युगधारिणी = युगों को धारण करने वाली ॥१३०॥ ८३४. यक्षिणी = यक्षिणी के रूप में प्रकट होने वाली, ८३५. योगयुक्ता = योग से सम्पन्न देवी, ८३६. यक्षराज प्रसूतिनी = यक्षराज को जन्म देने वाली, ८३७. यात्रा = शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए यात्रा करने वाली, ८३८. यानविधानज्ञा = विमानों के विधान को अच्छी तरह से जानने वाली, ८३९. यदुवंशसमुद्भवा = यदु के वंश में प्रकट होने वाली ॥१३१॥ ८४०. यकारदिहकारान्ता = 'य' से लेकर 'ह' पर्यन्त सभी वर्ण जिसके रूप हैं, ८४१. याजुषी = यजुर्विद्या के द्वारा प्रतिपादित किए जाने वाली देवी, ८४२. यज्ञरूपिणी = यज्ञस्वरूपिणी, ८४३. यामिनी = रात्रि का रूप धारण करने वाली, ८४४. योगनिरता = योग में संलग्न रहने वाली, ८४५. यातुधानभयंकरी = राक्षसों के लिए भयंकर आकार वाली ॥१३२॥ ८४६. रुक्मिणी = रुक्मिणी के नाम से विख्यात, ८४७. रमणी = आनन्द

राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना । राकेशी रूपसंपन्ना रत्नसिंहासनस्थिता ॥१३४॥ रक्तमाल्यांबरधरा रक्तगंधानुलेपना । राजहंससमारूढा रंभा
रक्तबलिप्रिया ॥१३५॥ रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला । रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका ॥१३६॥ रोगेशी रोगशमनी राविणी
रोमहर्षिणी । रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी ॥१३७॥ रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा । लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिंगधारिणी॥१३८॥
लक्ष्मीर्लोला लुप्ताविषा लोकिनी लोकविश्रुता । लज्जा लम्बोदरी देवी ललना लोकधारिणी ॥१३९॥ वरदा वंदिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।

स्वरूपिणी देवी, ८४६. रामा = योगियों के हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाली, ८४९. रेवती = महाराज रैवत की पुत्री के रूप में उत्पन्न होने वाली, ८५०. रेणुका = श्रीपरशुरामजी की माता, ८५१. रति = कामदेव की पत्नी के रूप में अवतीर्ण होने वाली, ८५२. रौद्री = भयंकर रूप वाली भगवान् रुद्र की पत्नी, ८५३. रौद्रप्रियाकारा = रौद्ररूप जिनको प्रिय है, ८५४. राममाता = श्रीराम की माता कौसल्या के रूप में उद्भुत होने वाली, ८५५. रतिप्रिया= रति से प्रेम करने वाली ॥१३३॥ ८५६. रोहिणी = रोहिणी के नाम से प्रसिद्ध, ८५७. राज्यदा = राज्य प्रदान करने वाली, ८५८. रेवा = नर्मदा नदी स्वरूपिणी, ८५९. रमा = लक्ष्मी स्वरूपिणी, ८६०. राजीवलोचना = कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, ८६१. राकेशी = चन्द्रमा को अपने ललाट पर धारण करने वाली, ८६२. रुपसम्पन्ना = अत्यधिक रूप सम्पन्ना देवी, ८६३. रत्नसिंहासनस्थिता = रत्ननिर्मित सिंहासन पर बैठने वाली ॥१३४॥ ८६४. रक्तमाल्याम्बरधरा = रक्त वर्ण की मालाओं और वस्त्रों को धारण करने वाली, ८६५. रक्तगन्धानुलेपना = रक्त चन्दन से अपने शरीर में अनुलोप करने वाली, ८६६. राजहंससमारुढा = राजहंस पर सवारी करने वाली, ८६७. रम्भा = रम्भा नामक अप्सरा स्वरूपिणी, ८६८. रक्तबलिप्रिया = जिनको रक्त की बलि अत्यन्त प्रिय है ॥१३५॥ ८६९. रमणीययुगाधारा = मनोहर युग के आश्रय स्वरूपिणी, ८७०. राजिताखिलभूतला = सम्पूर्ण भूमण्डल को सुशोभित करने वाली, ८७१. रुरुचर्मपरीधान = रुरुमृग के चर्म को अपना परिधान बनाने वाली, ८७२. रथिनी = रथ पर विराजमान रहने वाली, ८७३. रत्नमालिका = रत्नों की माला को धारण करने वाली ॥१३६॥ ८७४. रोगेशी = रोगों की स्वामिनी, ८७५. रोगशमनी = रोगों का शमन करने वाली, ८७६. राविणी = भयंकर गर्जना करने वाली, ८७७. रोमहर्षिणी = जिसके रोम सदा पुलकित रहते हैं, ८७८. रामचन्द्रपदाकान्ता = श्रीराम चन्द्र के चरणों से आक्रान्त देवी, ८७९. रावणच्छेदकारिणी = रावण का विनाश करने वाली ॥१३७॥ ८८०. रत्नवस्त्र परिच्छन्न = रत्नों तथा वस्त्रों को धारण करने वाली, ८८१. रथस्था = रथ पर स्थित रहने वाली, ८८२. रुक्मभूषणा = सुवर्ण के अलङ्कारों को धारण करने वाली, ८८३. लज्जाधिदेवा = लज्जा की अधिष्ठातृ देवी, ८८४. लोला = अत्यन्त चंचल स्वभाव वाली, ८८५. ललिता = परमसुन्दरी, ८८६. लिङ्गधारिणी = उत्तम चिह्न को धारण करने वाली ॥१३८॥ ८८७. लक्ष्मी = भगवती लक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध, ८८८. लोला = कभी स्थिर नहीं

वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी ॥१४०॥ विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता । वारुणी वेणुसंभूता वीतिहोत्रा विरूपिणी॥१४१॥
वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया । विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा ॥१४२॥ वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी ।
वेदाक्षरपरितांगी वाजपेयफलप्रदा ॥१४३॥ वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलया वरा । व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता ॥१४४॥ शाकम्भरी
शिवा शांता शारदा शरणागतिः । शातोदरी शुभाचारा शुंभासुरविमर्दिनी ॥१४५॥ शोभावती शिवाकारा शंकरार्धशरीरिणी । शोणा शुभाशया

रहने वाली, ८८९. लुप्तविषा = जिन पर विष का कोई भी प्रभाव नहीं होता है, ८९०. लोकिनी = जगत्स्वरूपिणी देवी, ८९१. लोकविश्रुता = संसार में प्रख्यात, ८९२. लज्जा = लज्जामयी देवी, ८९३. लम्बोदरीदेवी = लम्बा उदर (पेट) वाली देवी, ८९४. ललना = स्त्री स्वरूपिणी, ८९५. लोकधारिणी = लोकों को धारण करने वाली ॥१३९॥ ८९६. वरदा = वरदान देने वाली, ८९७. वन्दिता = संसार के सभी जीव जिसकी वन्दना करते हैं ८९२. विद्या = विद्यास्वरूपिणी, ८९९. वैष्णवी = भगवान् विष्णु की शक्ति स्वरूपिणी, ९००. विमलाकृति = स्वच्छ आकार वाली, ९०१. वराही= वराही देवी स्वरूपिणी, ९०२. विरजा = वैकुण्ठ की सीमा पर विद्यमान विरजा नदी स्वरूपिणी, ९०३. वर्षा = वर्षा स्वरूपिणी, ९०४. वरलक्ष्मी = श्रेष्ठ लक्ष्मी स्वरूपिणी, ९०५. विलासिनी = विलास करने वाली देवी ॥१४०॥ ९०६. विनता = गरुड की माता विनता देवी स्वरूपिणी, ९०७. व्योममध्यस्था = आकाश के मध्य में स्थित रहने वाली, ९०८. वारिजासनसंस्थिता = कमल के आसन पर बैठने वाली, ९०९. वारुणी= वरुण देव की शक्ति स्वरूपिणी, ९१०. वेणुसम्भूता = बाँस से प्रकट होने वाली, ९११. वीतिहोत्रा = होमकर्म स्वरूपिणी, ९१२. विरूपिणी = विशिष्ट रूप धारण करने वाली ॥१४१॥ ९१३. वायुमण्डल मध्यस्था = वायु मण्डल के भीतर रहने वाली, ९१४. विष्णुरूपा = विष्णुस्वरूपिणी देवी ९१५. विधिप्रिया = ब्रह्माजी की पत्नी ब्रह्माणी के रूप में विराजान, ९१६. विष्णुपत्नी = लक्ष्मी स्वरूपिणी, ९१७. विष्णुमती = विष्णु भगवान् के साथ सुशोभित होने वाली, ९१८. विशालाक्षी = बड़े-बड़े नेत्रों वाली, ९१९. वसुन्धरा = भूदेवी स्वरूपिणी, ९२०. वामदेव प्रिया = रुद्राणी स्वरूपिणी, ९२१. वेला = समय की अधिष्ठातृ देवी, ९२२. वज्रिणी = वज्र नामक आयुध को धारण करने वाली, ९२३. वसुदोहिनी = धन-धान्य सम्पत्ति का दोहन करने वाली, ९२४. वेदाक्षरपरीताङ्गी = जिनके प्रत्येक अङ्ग वेदों के अक्षर से समलङ्कृत हैं, ९२५. वाजपेय फलप्रदा = जो अपने उपासकों को वाजपेय यज्ञ करने का फल प्रदान करने वाली हैं ॥१४३॥ ९२६. वासवी = वासवी इन्द्राणी स्वरूपिणी, ९२७. वामजननी = वामदेव की माता, ९२८. वैकुण्ठनिलया = वैकुण्ठ लोक में रहने वाली, ९२९. वरा = परमरमणीया देवी, ९३०. व्यासप्रिया = वेदव्यास की प्रिया, ९३१. वर्मधरा= कवच धारण करने वाली, ९३२. वाल्मीकिपरिसेविता = महर्षि वाल्मीकि के द्वारा जिसकी अच्छी तरह से उपासना की गयी है ॥१४४॥ ९३३. शाकम्भरी=

शुभ्रा शिरः संधानकारिणी ॥१४६॥ शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना । शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना ॥१४७॥ श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानंददायिनी । शर्वाणी शर्वरीवंद्या षड्भाषा षड्तुप्रिया ॥१४८॥ षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता॥१४९॥ सरस्वती सदाधारा सर्वमंगलकारिणी । सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसंभवा ॥१५०॥ सर्वावासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा । सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबंधुपराक्रमा ॥१५१॥ सप्तर्षिमंडलगता सोममंडलवासिनी । सर्वज्ञा सांद्रकरुणा

शाकम्भरी के नाम से प्रसिद्ध देवी, ९३४. शिवा = कल्याण करने वाली देवी, ९३५. शान्ता = शान्त स्वरूपवाली देवी, ९३६. शारदा = शारदा के नाम से प्रसिद्ध देवी, ९३७. शरणागति = सम्पूर्ण जगत् को अपने शरण में लेने वाली, ९३९. शातोदरी = तेजः पूर्ण उदर वाली, ९३९. शुभाचारा= कल्याणमय आचरण करने वाली, ९४०. शुम्भासुरविमर्दिनी = शुम्भ नामक दैत्य का वध करने वाली ॥१४५॥ ९४१. शोभावती = शोभा सम्पन्न देवी, ९४२. शिवाकारा = कल्याणमय आकार वाली, ९४३. शङ्करार्द्धशरीरिणी = भगवान् शिव की अर्द्धाङ्गिनी, ९४४. शोणा = रक्तवर्ण के शरीर वाली देवी, ९४५. शुभाशया = मङ्गलमय अभिप्राय वाली, ९४६. शुभ्रा = शुभ्रवर्ण वाली देवी, ९४७. शिर:संधानकारिणी = शत्रुओं के शिर पर बाणों का संधान करने वाली ॥१४६॥ ९४८. शरावती = बाणों से अपने भक्तों की रक्षा करने वाली, ९४९. शरानन्दा = बाणों का प्रयोग करके प्रसन्न होने वाली, ९५०. शरज्ज्योत्स्ना = शरत् कालीन चन्द्रमा की ज्योति स्वरूपिणी, ९५१. शुभानना = मनोहर मुख वाली, ९५२. शरभा = शरभ पक्षी के रूप में वन में विचरण करने वाली, ९५३. शूलिनी = त्रिशूल धारण करने वाली, ९५४. शुद्धा = शुद्ध स्वरूप वाली, ९५५. शबरी= शबरी के रूप में प्रकट होने वाली, ९५६. शुकवाहना = शुकपक्षी को अपना वाहन बनाने वाली ॥१४७॥ ९५७. श्रीमती = ऐश्वर्य सम्पन्ना, ९५८. श्रीधरानन्दा = भगवान् विष्णु को आनन्दित करने वाली, ९५९. श्रवणानन्ददायिनी = जिनके चरित्र को सुनने से उपासकों को आनन्द की प्राप्ति होती है, ९६०. शर्वाणी = भगवान शिव की पत्नी पार्वती स्वरूपा, ९६१. शर्वरीवन्द्या = जो रात्रि में वन्दनीय हैं, ९६२. षड्भाषा = छह भाषाएँ जिनके रूप है, ९६३. षड्ऋतुप्रिया = छहो ऋतुएँ जिनको प्रिय हैं ॥१४८॥ ९६४. षडाधारस्थिता देवी = छह प्रकार के आधारों में स्थित रहने वाली देवी ९६५. षण्मुखप्रियकारिणी = स्वामी कार्तिकेय का प्रिय करने वाली, ९६६. षडङ्गरूपसुमति सुरासुहरनमस्कृता = षडङ्गनामक सुमतिसंज्ञक देवता तथा असुर जिसको नमस्कार करते हैं ॥१४९॥ ९६७. सरस्वती = वाणी की अधिष्ठात्री देवी, ९६८. सदाधारा = सत्पुरुषों के लिए आधार स्वरूपिणी, ९६९. सर्वमङ्गलकारिणी = सबों का मङ्गल करने वाली, ९७०. सामगानप्रिया = सामगान सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होने वाली, ९७१. सूक्ष्मा = सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों का विषय नहीं बनने वाली, ९७२. सावित्री = सावित्री देवी के नाम से विख्यात, ९७३. सामसंभवा = सामवेद से प्रकट होने वाली ॥१५०॥ ९७४. सर्वावासा = सबों के भीतर निवास

समानाधिकवर्जिता ॥१५२॥ सर्वोतुङ्गा संगहीना सद्गुणा सकलेष्टदा । सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः ॥१५३॥ हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी । क्षौमवस्त्रपरीतांगी क्षीराब्धितनया क्षमा ॥१५४॥ गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती । वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री परांबिका ॥१५५॥ इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद । पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासंपत्तिदायकम् ॥१५६॥ एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि । अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह ॥१५७॥ जपं कृत्वा होमपूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः । यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः॥१५८॥ सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै । भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बांधवेभ्यो न दर्शयेत् ॥१५९॥ यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं

करने वाली, ९७५. सदानन्दा = हमेशा आनन्दमग्न रहने वाली, ९७६. सुन्दर स्तनों से सुशोभित होने वाली, ९७७. सागराम्बरा = नील समुद्र ही जिसके वस्त्र का काम करता है, ९७८. सर्वैश्वर्यप्रिया = सभी प्रकार के ऐश्वर्य जिसको प्रिय हैं, ९७९. सिद्धिः = सिद्धि स्वरूपिणी, ९८०. साधुबंधुपराक्रमा = सज्जन पुरुष रूपी अपने बन्धुओं की रक्षा के लिए पराक्रम कों प्रदर्शित करने वाली ॥१५१॥ ९८१. सप्तर्षि मण्डलगता = सप्तर्षिमण्डल में निवास करने वाली, ९८२. सोममण्डलवासिनी = चन्द्रमण्डल में निवास करने वाली, ९८३. सर्वज्ञा = सबकुछ जानने वाली, ९८४. सान्द्रकरुणा = अत्यधिक करुणा करने वाली, समानाधिकवर्जिता= जिनके न तो कोई सादृश है और न तो कोई उनसे बाहर है ऐसी देवी ॥१५२॥ ९८६. सर्वोत्तुङ्गा = सर्वश्रेष्ठ देवी, ९८७. सङ्गहीना = सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित, ९८८. सद्गुणा = समस्त सद्गुणों से सम्पन्न, ९८९. सकलेष्टदा = अपने उपासकों को सम्पूर्ण अभिप्रेत अर्थों को प्रदान करने वाली, ९९०. सरघा = मधुमखियों का रूप धारण करने वाली, ९९१. सूर्यतनया = सूर्यपुत्री यमुना नदी के रूप में सुशोभित होने वाली, ९९२. सुकेशी = मनोहर केशों वाली, ९९३. सोमसंहतिः = चन्द्र समुदाय की शोभा से सुशोभित होने वाली, ९९४. हिरण्यवर्णा= सुवर्ण के समान गौर वर्ण वाली देवी, ९९५. हरिणी = हरिणी के समान चञ्चल, ९९६. ह्रींकारी = ह्रींकार स्वरूपिणी, ९९७. हंसवाहिनी = हंस को अपना वाहन बनाने वाली, ९९८. क्षौमवस्त्र परीताङ्गी = जिनके सम्पूर्ण अङ्ग रेशमी वस्त्र से अच्छादित हैं, ९९९. क्षीराब्धितनया = क्षीरसागर की पुत्री लक्ष्मी स्वरूपिणी, १०००. क्षमा = सहनशील पृथिवी स्वरूपा ॥१५४॥ १००१. गायत्री = गायत्री नाम से प्रसिद्ध, १००२. सावित्री = सावित्री के नाम से प्रसिद्ध, १००३. पार्वती = पार्वती नाम से प्रसिद्ध, १००४. सरस्वती = विद्या की अधिष्ठात्री देवी, १००५. वेदगर्भा = वेदस्वरूपा, १००६. वरारोहा, १००७. श्रीगायत्री = पराम्बिका १००८. जगन्माता = श्रीगायत्री देवी ॥१५५॥ हे नारदजी गायत्री के सहस्रनाम, पुण्यप्रदान करने वाले, सभी पापों को विनष्ट करने वाले, तथा महासंपत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥१५६॥ ये नाम गायत्री देवी को सन्तुष्ट करने वाले हैं । इसे ब्राह्मणों के साथ, अष्टमी तिथि को विशेष रूप से पढ़ना चाहिए ॥१५७॥ गायत्री सहस्रनाम को जप, होम, पूजा तथा ध्यान करने के बाद पढ़ना चाहिए, इसे सबों को नहीं बतलाना चाहिए ॥१५८॥ इसे भ्रष्टसाधक तथा बान्धवों को नहीं बतलाना चाहिए।

तस्य न कस्यचित् । चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति ॥१६०॥ इदं रहस्यं परमं गुह्याद्गुह्यतरं महत् । पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम् ॥१६१॥ मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम् । रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्यते बन्धनात् ॥१६२॥ ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः । गुरुतल्पगतो वाऽपि पातकान्मुच्यते सकृत् ॥१६३॥ असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः । पाषंडानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते॥१६४॥ इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव । ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः ॥१६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

श्रीनारद उवाच– **श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम् । स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम् ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम्।**

इसे भक्त, शिष्यवृत्ति से रहने वाले ब्राह्मण को बतलाना चाहिए ॥१५९॥ जिसके गृह में यह देवीभागवत महापुराण लिखित रूप से रहता है, उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है और उस घर की चञ्चला लक्ष्मी भी स्थिर रूप से रहती है ॥१६०॥ यह रहस्य परम गोपनीय है । यह मनुष्यों को पुण्य देने वाला तथा दरिद्रों को सम्पत्ति प्रदान करने वाला है । यह मुमुक्षुओं को मोक्ष प्रदान करने वाला और कामियों की कामना को पूर्ण करने वाला है, इसका पाठ करने से रोगी रोगमुक्त हो जाता है और बद्ध व्यक्ति बन्धन से छूट जाता है ॥१६१-१६२॥ इसका पाठ करके, ब्रह्महत्यारा, मदिरा पायी, सुवर्ण चुराने वाले तथा गुरुपत्नी के साथ सहगमन करने वाले भी पाप से मुक्ति पा लेते हैं ॥१६३॥ दुष्टप्रतिग्रह लेने वाले अभक्ष्य भक्षण करने वाले, पाखण्डी, मृषावादी भी इसका पाठ करके पापमुक्त हो जाते हैं ॥१६४॥ हे नारदजी ! मैंने यह परम पवित्र रहस्य आपको बतलाया है । यह मनुष्यों को सायुज्य देने वाला है॥१६५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

दीक्षाविधि का वर्णन

श्रीनारदजी ने कहा– मैंने महाभाग्य प्रदान करने वाले तथा महान् उन्नतिप्रद गायत्री सहस्रनाम स्तोत्र का श्रवण किया ॥१॥ अब मैं उस दीक्षाविधि को

बिना येन न सिध्येत देवीमंत्रेऽधिकारिता ॥२॥ ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च । सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो ॥३॥
श्रीनारायण उवाच– **शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भावितात्मनाम् । देवाग्निगुरुपूजादावाधिकारो यया भवेत् ॥४॥ दिव्यं ज्ञानं हि या**
दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या । सैव दीक्षेति संप्रोक्ता वेदतंत्रविशारदैः ॥५॥ अवश्यं सा तु कर्तव्या यतो बहुफला मता ।
गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ॥६॥ गुरुस्तु विधिवत्प्रातः कृत्यं सर्वं विधाय च । स्नानसंध्यादिकं सर्वं यथाविधि विधाय च ॥७॥
कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात् । यज्ञमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे ॥८॥ आचम्य प्राणानायम्य गंधपुष्पविमिश्रितम् । सप्तवारास्त्रमंत्रेण
जप्तं वारि सुसाधयेत् ॥९॥ वारिणा तेन मतिमानस्त्रमंत्रं समुच्चरन् । प्रोक्षयेद्द्वारमखिलं ततः पूजां समाचरेत् ॥१०॥ ऊर्ध्वोदुंबरके देवं गणनाथं
तथा श्रियम् । सरस्वतीं नाममंत्रैः पूजयेद्गन्धपुष्पकैः ॥११॥ द्वारदक्षिणशाखायां गंगाविघ्नेशमर्चयेत् । द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजम्॥१२॥
देहल्यां पूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमंत्रतः । सर्वं देवीमयं दृश्यमिति संचिंत्य सर्वतः ॥१३॥ दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमंत्र जपेन तु । अन्तरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तु

सुनना चाहता हूँ जिसके बिना मनुष्य देवी के मन्त्र का अधिकारी नहीं बन पाता है ॥२॥ हे प्रभो ! आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा स्त्रियों के लिए सामान्य
दीक्षाविधि को बतलायें ॥३॥ **श्रीनारायण ने कहा–** आप सुनें ! श्रद्धालु शिष्यों के लिए उस दीक्षा विधि को बतलाता हूँ जिसके द्वारा देव, अग्नि, तथा गुरु
की पूजा करने का मनुष्य को अधिकार प्राप्त होता है ॥४॥ वेद शास्त्र के ज्ञाताओं ने बतलाया है कि जिसके द्वारा दिव्यज्ञान की प्राप्ति तथा पापों का विनाश
हो जाता है, उसे ही दीक्षा कहते हैं ॥५॥ उस दीक्षा विधि को अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उससे बहुत फलों को प्राप्ति होती है । किन्तु उसके लिए
गुरु तथा शिष्य दोनों को शुद्ध होना आवश्यक है ॥६॥ गुरु को चाहिए कि वे प्रातःकाल सविधि प्रातः का कृत्य सम्पन्न करें । उसके बाद सविधि स्नान
तथा संध्या आदि करके ॥७॥ नदी तट से मौन होकर कमण्डलु हाथ में लिए हुए यज्ञ मण्डप में जायँ और श्रेष्ठ आसन पर बैठें ॥८॥ पुनः आचमन
तथा प्राणायाम करके गन्ध तथा पुष्प से युक्त कमण्डलु के जल को सात बार अस्त्र मंत्र (ॐ फट्) को पढकर अभिमन्त्रित करें । उसी जल से पुनः सभी
द्वारों का प्रोक्षण करें, उसके बाद वे पूजन प्रारम्भ करें ॥१०॥ गूलर की लकड़ी से निर्मित द्वार के उपरी भाग में एक ओर गणेशजी की, बीच में लक्ष्मीजी
की और दूसरी और सरस्वती की नाममंत्र पढ़कर चन्दन तथा फूल से पूजा करें ॥११॥ द्वार की दाहिनी शाखा पर गंगा तथा विघ्नेश की पूजा करें तथा
द्वार की वामशाखा में क्षेत्रपाल एवं यमुना की पूजा करें ॥१२॥ देहली पर ॐ फट् इस मंत्र से अस्त्र देवता की पूजा करें । सब जगह ऐसी भावना करे
कि सब कुछ देवीमय ही है ॥१३॥ अस्त्र मंत्र के द्वारा दिव्य विघ्नों का उत्सारण करके और पृथिवी पर होने वाले अन्तरिक्षस्थ विघ्नों को पादाघात से दूर

भूमिगान् ॥१४॥ वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणांघ्रिणा । प्रविश्य कुंभं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च ॥१५॥ तेन चार्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् । वास्तुनाथं पद्मयोनिं गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥१६॥ ततः कुर्यात्पंचगव्यं तेन चार्घ्योदकेन च । तोरणस्तंभपर्यंतं प्रोक्षयेन्मंडपं गुरुः॥१७॥ सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल । मूलमंत्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना ॥१८॥ शरमंत्रं समुच्चार्य ताडयेन्मंडपक्षमाम् । हुंमंत्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः ॥१९॥ धूपयेदंतरं धूपैर्विकरान्विकिरेत्ततः । मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः ॥२०॥ ईशानदिशि तत्पुंजं कृत्वा संस्थापयेन्मुने । पुण्याहवाचनं कृत्वा दीनानाथांश्च तोषयेत् ॥२१॥ विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम् । प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमंत्रस्य देवताम् ॥२२॥ भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना । ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमंत्रस्य वै मुने ॥२३॥ न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छंदः समीरितम् । देवतां हृदयांभोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः ॥२४॥ शक्तिं विन्यस्य पश्चातु तालत्रयरवात्ततः । दिग्बंधं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः॥२५॥ प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमंत्रमनुस्मरन् । मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते ॥२६॥ ॐ अं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मंत्रवित् । एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने ॥२७॥ मूलमंत्रं षडंगं च न्यसेदंगेषु सत्तमः। अङ्गुष्ठादिष्वंगुलीषु हृदयादिषु च क्रमात् ॥२८॥ नमः स्वाहावषड्युक्तैर्वौषट्फट्पदान्वितैः।

करे ॥१४॥ उसके बाद वामशाखा का स्पर्श करके यज्ञमण्डप में प्रवेश करते समय पहले दाहिने पैर को रखें । यज्ञमण्डप में प्रवेश करके कलशस्थापन करके अर्घ्य प्रदान करे ॥१५॥ उस अर्घ्य के जल से नैर्ऋत्य कोण में वास्तुनाथ तथा ब्रह्मा की पूजा गन्ध, पुष्प तथा अक्षत से पूजा करे ॥१६॥ उसके बाद गुरु उस अर्घ्य के जल से पञ्चगव्य का निर्माण करें तथा उससे स्तम्भ तथा तोरण आदि के साथ पूरे मण्डप का प्रोक्षण करें । फिर शरमंत्र (ॐ फट्) का उच्चारण करके मण्डप की भूमि का ताडन करे, ॐ हुम् मन्त्र से वहाँ जल का छींटा दे ॥१७-१८॥ धूप से उस स्थान को सुगन्धित करे विघ्नों को दूर करने के लिए वहाँ पर धूप, चन्दन, अक्षत, दूर्वा आदि को छीटे, फिर कुश से निर्मित कूर्च से उस स्थान को झाड़ दे ॥१९-२०॥ उसको एकत्रित करके ईशान कोण में रख दे । फिर पुण्याहवाचन करके दरिद्रों तथा अनाथों को सन्तुष्ट करे ॥२१॥ इसके बाद गुरु अपने गुरु को प्रणाम करके कोमल आसन पर बैठ जायँ । पूर्वाभिमुख होकर दिए जाने वाले मन्त्र की देवता का ध्यान करें ॥२२॥ फिर पूर्वोक्त प्रकार (ग्यारहवें स्कन्ध में वर्णित प्रकार) से भूतशुद्धि करे । हे मुने ! उसके बाद दिए जाने वाले मन्त्र का ऋष्यादिन्यास करे ॥२३॥ उस मन्त्र के ऋषि का शिर में, छन्द का मुख में, देवता का हृदय कमल में, बीज का गुप्ताङ्ग में तथा शक्ति का पैरों में न्यास करके तीन बार ताली बजाये । फिर तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्धन करे ॥२४-२५॥ उसके बाद मूलमंत्र का स्मरण करते हुए आचार्य तीन बार प्राणायाम करें । उसके पश्चात् अपने शरीर में उस मंत्र का मातृकान्यास करें । उसकी विधि इस प्रकार है॥२६॥

प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडंगकम् ॥२९॥ वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमंत्रस्य योजयेत् । स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः ॥३०॥ ततो निजे शरीरेऽस्मिंश्चिंतयेदासनं शुभम् । दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वामांसे ज्ञानमेव च ॥३१॥ वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत् । ऐश्वर्यम् मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम् ॥३२॥ वामापार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः । नञादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत् ॥३३॥ पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम । अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुंगवैः ॥३४॥ मध्येऽनंतं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले । प्रपंचपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥३५॥ न्यसेत्कलायुतान्मन्त्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम् । सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इन्दोः षोडश स्मृताः ॥३६॥ दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तु तान्स्मरेत् । सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषामथोपरि ॥३७॥ आत्मानमंतरात्मानं परमात्मानमेव च । ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वानित्थं पीठस्य कल्पना ॥३८॥ अमुकासनाय नम इति मंत्रेण साधकः । आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्परांबिकाम् ॥३९॥ कल्पोक्त विधिना मंत्री देयमंत्रस्य देवताम् । मानसैरुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि ॥४०॥ मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदकारिकाः । यभिर्विरचिताभिस्तु मोदो देव्यास्तु

मन्त्र पुरुष, ॐ अं नमः शिरसि कहकर शिर में न्यास करे इसीतरह से सभी स्थानों में न्यास करे ॥२७॥ उसके बाद मूल मंत्र से षडङ्गन्यास करना चाहिए। पहले अंगुष्ठ आदि अंगुलियों में उसके बाद हृदयादि में न्यास करे ॥२८॥ षडङ्गन्यास के आदि में प्रणव तथा हृदयादि में क्रमशः नमः स्वाहा वषट् हुम्, वषट्, और फट् को जोड़ दे । इसी को षडङ्गन्यास कहते हैं ॥२९॥ उसके बाद मूल मन्त्र के वर्णों का न्यास करे ॥२९॥ उसके पश्चात् मन्त्र के वर्णों का तत्-तत् अङ्गों में न्यास करे यही न्यास की विधि कही गयी है ॥३०॥ उसके बाद अपने शरीर में सुन्दर आसन की भावना करे । उसके बाद में दाहिने स्कन्ध में धर्म का, वायें स्कन्ध में ज्ञान का ॥३१॥ वामऊरु में वैराग्य का, दाहिने ऊरू में ऐश्वर्य का, मुख में अधर्म का न्यास करे ॥३२॥ उसके बाद वाम पार्श्व, नाभिस्थान तथा दक्षिण पार्श्व में पूर्वोक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य का तथा इसीतरह अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य आदि का न्यास करे ॥३३॥ उस पीठ के चारो चरणों में धर्म आदि हैं और उस पीठ के शरीर भाग अधर्म आदि बतलाये गये हैं ॥३४॥ इसके बाद कल्पना करे कि इस आसन के मध्य में अत्यन्त कोमल हृदय है । उस पर भगवान् अनन्त विराजमान हैं । उसके बाद प्रपञ्चमय स्वच्छ कमल का चिन्तन करे । उस पर कला से युक्त सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का न्यास करे ॥३५॥ सूर्य की बारह कलाएँ, चन्द्रमा की सोलह कलाएँ और अग्नि की दश कलायें कही गयी हैं ॥३६॥ उन सबों के ऊपर सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का न्यास करे ॥३७॥ उसके चारो ओर क्रमशः आत्मा, अन्तरात्मा परमात्मा और ज्ञानात्मा की कल्पना करे । विद्वान् को चाहिए कि वह इसी तरह पीठ की कल्पना करे ॥३८॥ इसके बाद मन्त्रज्ञ पुरुष 'अमुकासनाय नमः' कहकर उस आसन की पूजा करे और उस आसन के ऊपर पराम्बिका का ध्यान करे ॥३९॥ मंत्रज्ञ को चाहिए कि वह कल्पोक्त विधि से मन्त्र के देवता का मानसिक उपचारों से पूजा करे॥४०॥

जायते ॥४१॥ नारायण उवाच– ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम् । चतुरस्रयुतं सम्यङ्मध्ये मंडलमालिखेत् ॥४२॥ मध्ये त्रिकोणं संलिख्य शंखमुद्रां प्रदर्शयेत् । षडंगानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः ॥४३॥ अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडंगार्चनमाचरेत् । आधारपात्रमादाय शंखस्य मुनिसत्तम ॥४४॥ अस्त्रमंत्रेण संप्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मंडले । मं वह्निमंडलायोक्त्वा ततो दशकलात्मने ॥४५॥ अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि । मंत्रोऽयमुक्तः शंखस्याप्याधारस्थापने बुधैः ॥४६॥ आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु । दशवह्निकलाः पूज्या वह्निमंडलसंस्थिताः॥४७॥ ततो वै मूलमंत्रेण प्रोक्षितं शंखमुत्तमम् । स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमंत्रमनुस्मरन् ॥४८॥ अं सूर्यमंडलायोक्त्वा द्वादशांते कलात्मने । अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः ॥४९॥ शं शंखाय पदं प्रोच्य नम इत्येतदुच्चरेत् । प्रोक्षयेत्तेन तं शंखं तस्मिन्द्वादश पूजयेत् ॥५०॥ सूर्यस्य द्वादश कलास्तापिन्याद्या यथाक्रमम् । विलोममातृकां प्रोच्य मूलमंत्रं विलोमकम् ॥५१॥ जलैरापूरयेच्छंखं तत्र चेंदोः कलां न्यसेत् । ॐ सोममंडलायोक्त्वांते षोडशकलात्मने ॥५२॥ अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मंत्रांतो मनुः स्मृतः । पूजयेन्मनुनना तेन जलं तु सृणिमुद्रया ॥५३॥ तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्टकृत्वो जपेन्मनुम् । षडंगानि जले न्यस्य हृदांसे पूजयेदपः ॥५४॥ अष्टकृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया । ततो दक्षिणदिग्भागे शंखस्य प्रोक्षणीं न्यसेत्॥५५॥

विद्वान् को चाहिए कि कल्पोक्त विधि के आनन्दप्रद मुद्राओं को प्रदर्शित करे । उनको प्रदर्शित करने से देवी को प्रसन्नता होती है ॥४१॥ **नारायण ने कहा–** उसके बाद अपने वायें भाग में षट्कोण के बीच में या कोणों वाले गोल मण्डल को बनाये ॥४२॥ उसके बीच में त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा को प्रदर्शित करे; उसके बाद छह कोणों में छहो अंगों की पूजा करे ॥४३॥ अग्नि आदि कोणों में षडङ्गों की पूजा करे । हे मुनिश्रेष्ठ ! शंख के आधार पात्र को लेकर उसका अस्त्र मंत्र से प्रोक्षण करके उसे मण्डल में स्थापित करे फिर ॐ मं अग्नि मण्डलाय नमः कहकर फिर दशकलात्मने, अमुकदेव्याः अर्घ्यपात्र स्थानाय नमः यह कहे । इसी तरह शंख के भी आधार स्थापन में यही मन्त्र कहना चाहिए ॥४४-४६॥ आधार देश में पूर्व से आरम्भ करके दक्षिणावर्त क्रमशः अग्नि मण्डल में निवास करने वाली दश कलाओं की पूजा करे ॥४७॥ उसके बाद मूल मंत्र से प्रोक्षण किए गये शंख को उस आधार में मूलमंत्र का स्मरण करते हुए स्थापित करे ॥४९॥ उसके बाद 'ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकालात्मने अमुकदेव्याः अर्घ्यपात्राय नमः' कहे ॥४९॥ उसके बाद ॐ शं शंखाय नमः कहकर शंख का प्रोक्षण करे । उसके बाद उस शंख में द्वादश सूर्यों की पूजा करे ॥५०॥ सूर्य की जो तापिनी आदि बारह कलाएँ हैं उनकी पूजा करे । फिर विलोम मातृका का उच्चारण करके मूलमन्त्र का विलोम उच्चारण करे ॥५१॥ फिर जल से शंख को भर दे और उसमें चन्द्रकलाओं का न्यास करे। ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने आयुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः यह उस न्यास का मन्त्र है । उसी मन्त्र से अंकुश मुद्रा प्रदर्शित करके उस जल की पूजा करे ॥५२-५३॥ वहीं पर तीर्थों का आवाहन करके मन्त्र का आठ बार जप करे । फिर जल में न्यास करके हृदयाय नमः इस मंत्र से उस जल

शंखांबु किंचिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः । पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः ।।५६।। नारायण उवाच– **ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमंडलम्।
संलिख्य कर्णिकामध्यं पूरयेच्छालितंडुलैः ।।५७।। आस्तीर्य दर्भांस्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम् । आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वंतमर्चयेत् ।।५८।।
निर्व्रणं कुभमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितांतरम् । तंतुना वेष्टयेत्तं तु त्रिर्गुणेनारुणेन च ।।५९।। नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गंधादिपूजितम् । स्थापयेत्तत्र पीठे
तु तारामंत्रेण देशिकः ।।६०।। ऐक्यं कुंभस्य पीठस्य भावयेत्पूरयेत्ततः । मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने ।।६१।। मूलमंत्रं च संजप्य
पूरयेद्देवताधिया । अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः ।।६२।। छादयेत्कुंभवदनं चषकं सफलाक्षतम् । संस्थापयेत् मतिमान्वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्।।६३।।
प्राणस्थापनमंत्रेण प्राणस्थापनमाचरेत् । आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद्देवतां पराम् ।।६४।। ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः । स्वागतं कुशलप्रश्नंदेव्या
अग्रे समुच्चरेत् ।।६५।। पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाचमनीयकम् । मधुपर्कं च साभ्यंगं देव्यै स्नानं निवेदयेत् ।।६६।। वाससी च ततो दद्याद्रक्ते
क्षौमे सुनिर्मले । नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः ।।६७।। मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया विधानतः । देव्या अंगेषु विन्यस्य चन्दनाद्यैः समर्चयेत्।।६८।।**

की पूजा करे ।।५४।। उसके बाद मूलमंत्र का आठ बार जप करके मत्स्य मुद्रा से जल को ढंक दे । उसके बाद दक्षिण दिशा में शंख की प्रोक्षणी रखे ।।५५।।
शंख का थोड़ा सा जल छीटकर पूजा के द्रव्य तथा अपने शरीर का प्रोक्षण करके अपने में पवित्रता की भावना करे ।।५६।। **नारायण ने कहा–** उसके बाद
अपने सामने वेदी के ऊपर सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसकी कर्णिका में साठी धान का चावल भर दे ।।५७।। उसके बाद सताइस कुशों से निर्मित कूर्च को
कुशों के ऊपर रखे । उसके बाद आधार शक्ति से लेकर पीठमन्त्र पर्यन्त के मन्त्रों से पीठ की पूजा करे जैसे आधार शक्त्यै नमः, ॐ मूल प्रकृत्यै नमः,
ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ क्षमायै नमः, ॐ सुधासिन्धवे नमः, ॐ दुर्गादेवीयोगपीठाय नमः इन मंत्रों का उच्चारण करके पीठ की पूजा
करे।।५८।। निश्छिद्र कलश को अस्त्र के जल से अच्छी तरह से धोकर उसे लाल त्रिसूत्री से वेष्टित करे ।।५९।। उस कलश में नवरत्न और कूर्च को डालकर
उसकी चन्दन आदि से पूजन करे । उसके बाद उस पीठ पर तारा मन्त्र का उच्चारण करके कलश स्थापित कर दे ।।६०।। फिर कुम्भ तथा पीठ की एकता
की भावना करके उसे प्रतिलोम विधि से मातृका का जप करते हुए तीर्थ के जल से भर दे ।।६१।। उसमें देवता की बुद्धि करके मूलमंत्र का जप करके
पीपल, कटहल, अथवा आम के कोमल पल्लवों से भर देना चाहिए ।।६२।। उसके बाद फल तथा अक्षत से भरकर पूर्णपात्र से उस कलश को ढँक देना
चाहिए । फिर उस कलश को जोड़े वस्त्र से वेष्टित करना चाहिए ।।६३।। उसके बाद प्राणप्रतिष्ठा के मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करे, आवाहन आदि की मुद्राओं
से परादेवता को प्रसन्न करे ।।६४।। फिर पराम्बाका कल्पोक्त विधि से ध्यान करे । उसके बाद देवी का स्वागत करके उनसे कुशल पूछे ।।६५।। तदनन्तर देवी
को पाद्य, अर्घ्य, आचमन मधुपर्क, तैलमर्दन तथा स्नान निवेदित करे ।।६६।। तदनंतर देवी को स्वच्छ, सुन्दर रेशमी दो वस्त्र प्रदान करे, फिर अनेक मणियों

गंधः कालागुरुभवः कपूरिण समन्वितः । काश्मीरं चंदनं चापि कस्तूरीसहितं मुने ॥६९॥ कुन्दपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत् । धूपोऽगुरुपुरुव्रातोशीरचन्दनशर्कराः ॥७०॥ मधुमिश्राः स्मृता देव्याः प्रिया धूपात्मना सदा । दीपाननेकानदत्त्वाऽथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः ॥७१॥ प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा । ततः कुर्यादंगपूजां कल्पोक्तावरणानि च ॥७२॥ सांगां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत् । दक्षिणे स्थंडिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम् ॥७३॥ मूर्तिस्थां देवतां तत्रावाह्य सम्पूज्य च क्रमात् । तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमंत्रेण वै ततः ॥७४॥ पञ्चविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा । हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने ॥७५॥ गंधाद्यैरर्चयित्वा च देवीं पीठे तु योजयेत् । वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरद्बलिम् ॥७६॥ देवतायाः पार्षदेभ्यो गंधपुष्पादिसंयुतान् । पञ्चोपचारान्दत्त्वाऽथ ताम्बूलं छत्रचामरे ॥७७॥ दद्याद्देव्यै ततो मंत्रं सहस्रावृत्तितो जपेत् । जपं समर्प्य चैशान्यै विकिरे दिशि संस्थिते ॥७८॥ कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत् । रक्षरक्षेति चोच्चार्य्य नालमुक्तेन वारिणा ॥७९॥ अस्त्रमंत्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम् । कर्करी स्थापयेत्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम् ॥८०॥ पश्चाद्गुरुस्तु शिष्येण सह

से जटित देवी को आभूषण निवेदित करे ॥६७॥ फिर मन्त्र से सम्पुटित वर्णों द्वारा सविधि देवी के अङ्गों में मातृकान्यास तथा चन्दन आदि उपचारों से देवी की पूजा करे ॥६८॥ हे मुने ! काला अगरु कर्पूर कस्तूरी केसर युक्त चन्दन तथा कुन्द के पुष्प को देवी को समर्पित करे । उसके बाद विद्वान पुरुष को चाहिए कि वह देवी को अगरु, गुग्गुल, खश, चन्दन, शर्करा ॥६९-७०॥ तथा मधु मिश्रित धूप निवेदित करके अनेक दीपों का दान करे, फिर देवी को नैवेद्य समर्पित करे ॥७१॥ प्रत्येक द्रव्य प्रदान करने के बाद प्रोक्षणी में स्थित जल निवेदित करे । तदनंतर देवी की अङ्गपूजा तथा कल्पोक्त अवरणों की पूजा करे ॥७२॥ इस तरह देवी की साङ्गपूजा करके बलिवैश्वदेव करे । उसके लिए दाहिनी ओर वेदी के ऊपर अग्नि की स्थापना करके ॥७३॥ उसमें मूर्तिस्थ देवता का आवाहन करके पूजन करे । उसके बाद प्रणव पूर्वक व्याहृति के साथ मूल मन्त्र का उच्चारण करके हे मुने ! घृतमिश्रित खीर की पच्चीस आहुतियों व्याहृतियों से ही दे ॥७४॥ तदनंतर चन्दन आदि से देवी की पूजा करके उन्हें पीठ पर पधरावे फिर अग्नि का विसर्जन करके चारो तरफ बलि प्रदान करे ॥७५-७६॥ देवी के पार्षदों की भी पञ्चोपचार पूजा करके देवी को ताम्बूल तथा दो चामरों को समर्पित करके मन्त्र का एक हजार जप करे और उसे देवी को समर्पित करे । पहले से ही ईशान कोण को स्वच्छ करके रखे तथा वहाँ दो मुँह का करवा स्थापित करके, उसी में दुर्गादेवी का आवाहन करके देवी तथा अस्त्र देवता की पूजा करे । उसके बाद देवि रक्षा करो ! रक्षा करो !! कहकर करक की टोंटी से जल गिराकर ॥७७-७९॥ अस्त्र मन्त्र पढ़ते हुए प्रदक्षिण क्रम से सींचे । फिर कर्करी (करवा) को उसके स्थान पर स्थापित करके अस्त्र देवता की पूजा करे ॥८०॥ उसके पश्चात् गुरु अपने शिष्य के साथ मौन होकर

भुंजीत वाग्यतः । तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः ॥८१॥ नारायण उवाच– **ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थंडिलस्य च वा मुने । प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः ॥८२॥ मूलमंत्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमंत्रतः । प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु ॥८३॥ अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्रस्तिस्रस्ततः परम् । प्रागग्रा उदग्राश्च लिखेल्लेखाः समंततः ॥८४॥ प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत् । आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रावसानकम् ॥८५॥ तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ । गन्धाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः ॥८६॥ देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शंकरेण तु । कामातुरां तयोः क्रीडां किंचित्कालं विभावयेत् ॥८७॥ अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत् । क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः ॥८८॥ संस्कृत्य वह्निं रंबीजमुच्चार्य तदनन्तरम् । चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रणवेनाभिमंत्रयेत् ॥८९॥ सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां संदर्शयेद्गुरुः । शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुंठयेत् ॥९०॥ अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिण्येन सत्तमः । कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः॥९१॥ शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत् । आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदम्बिकाम् ॥९२॥ चित्पिंगल हन दहपचयुग्मं ततः परम् । सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मंत्रोऽयं वह्निदीपने ॥९३॥ अग्निं प्रज्वलितं वंदे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥९४॥ मंत्रेणानेन तं वह्निं**

भोजन करें और उस रात्रि को उसी वेदी पर सावधानी से सोएँ ॥८१॥ **नारायण ने कहा**– अब मैं कुण्ड अथवा वेदी का जिस प्रकार से संस्कार किया जाता है, उसे संक्षेप में बतलाता हूँ ॥८२॥ मूलमंत्र का उच्चारण करके उसको अस्त्र मन्त्र पढ़ते हुए देखे । उसके बाद अस्त्रमंत्र का उच्चारण करके समिधा का प्रोक्षण तथा उसका ताडन कवच मन्त्र से करे ॥८३॥ उसके बाद उन समिधाओं पर जल छिड़के । फिर तीन-तीन रेखाएँ खींचे । उन रेखाओं को पूर्वाग्र अथवा उत्तराग्र होना चाहिए ॥८४॥ प्रणव से जल का छींटा देकर देवी के पीठ की पूजा करे । यह पूजा आधार शक्ति से लेकर पीठ पूजा पर्यन्त होनी चाहिए ॥८५॥ उस पीठ पर पार्वती एवं शिव का आवाहन करके सावधानी पूर्वक उन दोनों की पूजा करे ॥८६॥ इसके बाद ऋतुस्नाता पार्वती शंकरजी के पास विराजमान हैं, और इनके मन में कुछ हास-विलास की इच्छा है, इस तरह से भावना करनी चाहिए ॥८७॥ उसके बाद अग्नि को पात्र में लेकर अपने सामने रखे क्रव्यादंश अग्नि को निकाल कर उस अग्नि का निरीक्षण आदि संस्कार करे । फिर 'रं' बीज का उच्चारण करके, उसमें चेतना को योजित करे । तदन्तर एक बार प्रणव का उच्चारण करके उस अग्नि को अभिमन्त्रित करे ॥८८-८९॥ उसके बाद गुरु को चाहिए कि वे सात बार धेनुमुद्रा प्रदर्शित करें, पुनः शरमंत्र (ॐ फट्) से अग्नि को सुरक्षित करके कवच (ॐ हुम्) मन्त्र से उसको आवृत करें ॥९०॥ उस अग्नि की पूजा करके उसे प्रदक्षिण क्रम से कुण्ड के चारो ओर तीन बार घुमायें । फिर अपने घुटनों को पृथिवी पर टिका कर ॥९१॥ उस अग्नि में शिव बीज की बुद्धि करके कुण्ड रूपी देवी की योनि में उसे डाल दे । उसके बाद शंकर और पार्वती दोनों को आचमन कराये ॥९१-९२॥ उसके बाद 'चित्पिंगल हन-हन, दह-दह पच-पच

स्तुवीत परमादरात् । ततो न्यसेद्वह्निमंत्रं षडंगं देशिकोत्तमः ॥९५॥ सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः । धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात् ॥९६॥ जातियुक्ताः षडंगाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत् । ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम् ॥९७॥ इष्टशक्तिस्वस्तिकाभिर्धारकं मंगलं परम् । परिषिंचेत्ततः कुंडं मेखलोपरि मंत्रवित् ॥९८॥ दर्भैः परिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ । त्रिकोणवृत्तषट्कोणं साष्टपत्रं सभूपुरम् ॥९९॥ यंत्रं विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिखेदथ । तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मंत्रेणानेन वै मुने ॥१००॥ वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चादिहावह । लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय ॥१०१॥ वह्निजायांतको मन्त्रस्तेन वह्निं तु पूजयेत् । मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गमना तथा ॥१०२॥ रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपाऽतिरक्तिका । पूजयेत्सप्तजिह्वास्ताः केसरेष्वंगपूजनम् ॥१०३॥ दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः । जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च ॥१०४॥ अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः । कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ॥१०५॥ तारागनये पदाद्याः

सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इस मंत्र को पढ़कर अग्नि को प्रज्वलित करे ॥९३॥ उसके बाद जातवेद संज्ञक प्रज्ज्वलित सुवर्ण के समान पीत वर्ण वाले अग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ, इस तरह से कहकर अग्नि की स्तुति करे । इसके बाद आचार्य अग्नि का षडङ्ग न्यास करें ॥९३-९५॥ ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूम व्यापिने कवचाय हुम्, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट, ॐ धनुर्धरय अस्त्राय फट् इस तरह से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥९६॥ इन नामों से अङ्गन्यास के समय नमः स्वाहा वषट्, हुम्, वौषट्, तथा फट् से युक्त होकर छह अंगों में न्यस्त होते हैं । सुवर्ण वर्ण की अग्नि का पद्मासन पर उपविष्ट रूप से ध्यान करना चाहिए ॥९७॥ उसके बाद इष्टशक्ति, स्वस्ति, अभय, धारक और परम मङ्गल इन मुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिए । मन्त्रज्ञ को तदनंतर कुण्ड की मेखला पर जल का छींटा देना चाहिए ॥९७-९८॥ उसके बाद कुश से परिस्तरण करना चाहिए । पुनः कुण्ड के चारो ओर परिधि बनाये । अग्नि स्थापन से पूर्व अथवा पश्चात् त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदलकमल तथा भूपुर सहित यन्त्र लिखे । उसके बीच में वह्निमंत्र से उसका पूजन करे ॥९९-१००॥ वह मन्त्र इस प्रकार है– ॐ वैश्वानर जातवेदा इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय-साधय स्वाहा ॥१०१॥ बीच के छह कोणों में अग्नि की हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अतिरिक्तका इन सात जिह्वाओं की पूजा करे । और कमल के केसरों में अङ्गों की तथा दलों में शक्ति और स्वस्ति धारण करने वाली मूर्तियों की पूजा करे । जातवेदा, सप्तजिह्वा, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेजा, विश्वमुख तथा देवमुख ये आठ अग्नियाँ प्रसिद्ध हैं । इन मूर्तियों के आदि में प्रणव तथा अग्नये और अन्त में नमः पद को जोड़कर आठो मूर्तियों और आठो दलों की पूजा करनी चाहिए । जैसे ॐ अग्नये जातवेदसे नमः ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, ॐ आग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये

स्युर्नत्यंता वह्निमूर्तयः । लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुधसंयुतान् ॥१०६॥ श्रीनारायण उवाच– **ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च ।
कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम् ॥१०७॥ दक्षिणाद्घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने । जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः ॥१०८॥
सोमाय स्वाहेति मध्याद्घृतमादाय सत्तम । अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः ॥१०९॥ पुनर्दक्षिणभागात्तु घृतमादाय वै मुखे । अग्नये
स्विष्टकृते स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः ॥११०॥ सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः । जुहुयादग्निमंत्रेण त्रिवारं तु ततः परम् ॥१११॥ ततस्तु
प्रणवेनैवाप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः । गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने ॥११२॥ गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः । जातकर्म नामकर्माप्युपनिष्क्रमणं
तथा ॥११३॥ अन्नाशनं तथा चूडाव्रतवंधस्तथैव च । महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथोपनिषदं व्रतम् ॥११४॥ गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्कारा
श्रुतिचोदिताः । ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥११५॥ जुहुयात्पंच समिधो वह्निमुद्दिश्य साधकः । पश्चादावरणानां चाप्येकैकामाहुतिं
हुनेत् ॥११६॥ घृतं स्रुचि समादाय चतुर्वारं स्रुवेण च । पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने ॥११७॥ वौषडन्तेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः ।
महागणेशमंत्रेण जुहुयादाहुतीर्दश ॥११८॥ वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य देयमन्त्रस्य देवताम् । वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्त्रं पंचविंशतिसंख्यया ॥११९॥**

देवमुखाय नमः ॥१०२-१०५॥ चारो दिशाओं में वज्र आदि आयुधों से युक्त लोकपालों की पूजा करे ॥१०६॥ उसके बाद स्रुक् एवं स्रुवका संस्कार करके स्रुवा से घी लेकर होम करे ॥१०७॥ हे मुने ! घी को दक्षिण भाग से उठाकर ॐ अग्नये स्वाहा इस मंत्र से अग्नि के दक्षिण नेत्र में, वामभाग से घी को लेकर ॐ सोमाय स्वाहा, इस मंत्र से अग्नि के वायें नेत्र में आहुति दे । पात्र के मध्य भाग से घी लेकर अग्निषोमाभ्यां स्वाहा इस मन्त्र से अग्नि के मध्यनेत्र में होम करे ॥१०८-१०९॥ उसके बाद पुनः दक्षिण भाग से घी लेकर अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इस मन्त्र से अग्नि में आहुति दे ॥११०॥ इसके बाद प्रणव युक्त तीन व्याहृतियों के द्वारा होम करे । फिर तीन बार अग्नि के मन्त्र से होम करे ॥१११॥ उसके बाद प्रणव से गर्भाधान आदि संस्कारों के लिए आठ-आठ आहुतियाँ दे ॥११२॥ गर्भाधन, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण ॥११३॥ अन्नप्राशन, चूडाकरंण, व्रतबन्ध, ये आठ संस्कार हैं । इसी तरह चार वैदिक संस्कारों के लिए प्रणव से चार-चार आहुतियाँ देनी चाहिए महाम्नाय, उपनिषद्व्रत ॥११४॥ गोदान तथा विवाह ये चार वैदिक संस्कार हैं । उसके बाद शिव और पार्वती की पूजा करके उनका विसर्जन कर दे ॥११५॥ उसके बाद अग्नि के लिए पाँच समिधाओं का होम करे । उसके बाद प्रत्येक आवरणों के लिए एक-एक आहुति दे ॥११६॥ उसके बाद सुवा से चार बार स्रुक में घी डालकर अपने आसन पर बैठे हुए घी को स्रुवा से ढँक दे ॥११७॥ फिर उसी घी से अग्नि के मन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर चार बार होम करे । फिर महागणेश के मन्त्र से दश

मूलमंत्रेण जुहुयाद्वक्त्रैकीकरणाय च । वह्निदेवतयोरैक्यं भावयान्नात्मना सह ॥१२०॥ एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः । षडङ्गं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक् ॥१२१॥ एकादशैव जुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम् । एतेन नाडीसंधानं वह्निदेवतयोर्मुने ॥१२२॥ एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च । एकैकक्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने ॥१२३॥ ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथवा तिलैः । देवतामूलमंत्रेण गजांतकसहस्रकम् ॥१२४॥ एवं हुत्वा ततो देवीं संतुष्टां भावयन्मुने । तथैवावृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि ॥१२५॥ ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसंध्यादिकक्रियम् । वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम् ॥१२६॥ कमंडलुं करशुद्ध्यै कुंडस्यांतिकमानयेत् । नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः ॥१२७॥ कुलदेवं नमस्कृत्य विशेत्तत्राथ विष्टरे । गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत् ॥१२८॥ तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्संगतं त्विति । ततः शिष्यतनुस्थानामध्वनां परिशोधनम् ॥१२९॥ कुर्यात्तु होमतो विद्वान्दिव्यदृष्ट्याऽवलोकनात् । येन जायेत शुद्धात्मा योग्योदेवाद्यनुग्रहे ॥१३०॥ श्रीनारायण उवाच– तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु । पादयोस्तु कलाध्वानं लिंगे तत्त्वाध्वकं पुनः ॥१३१॥ नाभौ तु भुवनाध्वानं

आहुति दे ॥११८॥ उसके बाद पीठ पर अग्नि की पूजा करके अग्नि को दिए जाने वाले मन्त्र के देवता के पचीस मुखों का ध्यान करे ॥११९॥ उसके बाद उन सभी मुखों को एक में मिलाने के लिए पचीस आहुतियाँ देनी चाहिए । आहुति देते समय ऐसी भावना करनी चाहिए कि मुझमें, अग्नि में तथा देयमन्त्र के देवता में अभेद स्थापित हो जाय । उसके बाद देवताओं के षडङ्ग के लिए आहुति दे ॥१२०-१२१॥ हे मुने ! अग्नि तथा देयमन्त्र के देवता की नाड़ियों की एकता के लिए ग्यारह आहुतियाँ दे ॥१२२॥ उसके बाद क्रमशः एक-एक देवता के लिए घी की एक-एक आहुति प्रदान करे ॥१२३॥ उसके बाद कल्पोक्त द्रव्य से अथवा तिल से देवता के मूल मन्त्र से एक हजार आठ आहुतियों को देना चाहिए ॥१२४॥ इस तरह से होम करके मन में भावना करे कि देवी सन्तुष्ट हो गयीं । इसी तरह भावना करे कि अब देवी, मन्त्र के देवता और अग्नि भी प्रसन्न हो गये ॥१२५॥ उसके पश्चात् अच्छी तरह से स्नान करे संध्या बन्दन किए हुए दो वस्त्र तथा सुवर्णालंकार धारण किए हुए एवं कमडलु लिए हुए शिष्य को कुण्ड के सन्निकट बुलाये ॥१२६॥ उसके बाद शिष्य को चाहिए कि वह गुरु, सभासदों तथा कुलदेवता को नमस्कार करके, वहाँ पर आसन पर बैठ जाय । उसके बाद गुरु उस शिष्य को अपनी कृपा दृष्टि से देखें ॥१२८॥ फिर गुरु यह भावना करें कि अब शिष्य की चेतना मेरे शरीर में आ गयी है । उसके बाद शिष्य के शरीर में विद्यमान अध्वाओं का गुरु शोधन करें ॥१२९॥ विद्वान् होम करते हुए अपनी दिव्य दृष्टि से शिष्य के शरीर की अध्वाओं का अवलोकन करे । जिससे कि शिष्य देवताओं की कृपा का पात्र बन जाय ॥१३०॥ **श्रीनारायण ने कहा–** गुरु शिष्य के शरीर में इस क्रम से छह अध्वाओं का ध्यान करें । दोनों पैरों में कलाध्वा

वर्णाध्वानं तथा हृदि । पदाध्वानं तथा भाले मंत्राध्वानं तु मूर्धनि ॥१३२॥ शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः । शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन् ॥१३३॥ ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि । षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान्ब्रह्मणि भावयेत् ॥१३४॥ पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः । आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत् ॥१३५॥ पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत् । पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरंगाहुतीस्तथा॥१३६॥ एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्वह्निमात्मनि । ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः ॥१३७॥ नेत्रमंत्रेण तं शिष्यं कुण्डतो मंडलं नयेत् । पुष्पांजलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः ॥१३८॥ नेत्रंबंधं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे । भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात्प्रोक्तेन वर्त्मना ॥१३९॥ मंत्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः । मंडले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुम्भसंस्थितान् ॥१४०॥ पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां जपेत् । कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः ॥१४१॥ वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमंजसा । ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च ॥१४२॥ कृतभस्मावलेपश्च

का, लिङ्ग में तत्त्वाध्वा का, नाभि में भुवनाध्वा का, हृदय में वर्णाध्वा का, ललाट में पदाध्वा का तथा शिर में मन्त्राध्वा का ध्यान करें ॥१३१-१३२॥ फिर कूर्च से शिष्य का स्पर्श करते हुए गुरु 'ॐ अमुकाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इस मंत्र को पढ़कर घृतमिश्रित तिल से होम करे ॥१३३॥ प्रत्येक अध्वा के लिए आठ आहुतियाँ देनी चाहिए । ऐसा करके यह भावना करनी चाहिए कि शिष्य के सभी अध्वा ब्रह्म में लीन हो गये हैं ॥१३४॥ पुनः गुरु अध्वाओं को सृष्टि मार्ग से उत्पन्न करने की भावना करें । उसके बाद गुरु अपने शरीर में स्थित शिष्य के चैतन्य को, शिष्य के शरीर से योजित कर दें ॥१३५॥ उसके बाद पूर्णाहुति देकर कलश के देवताओं को कलश पर स्थापित करें उसके बाद व्याहृतियों द्वारा अग्नि के अंगों के लिए आहुति दें ॥१३६॥ एक-एक देवता के लिए एक-एक आहुति देकर आत्मा में अग्नि का विसर्जन कर दें । उसके बाद गुरु वस्त्र से वौषट् मन्त्र पढ़कर शिष्य की आँखों को बाँध दें ॥१३६॥ तदनन्तर शिष्य को कुण्ड के सन्निकट से उठाकर मण्डल (कलश) के सन्निकट लाएँ और शिष्य के हाथ से मुख्य देवी की पुष्पांजलि करायें॥१३८॥ शिष्य के आँखें को खोलकर उसे कुश के आसन पर बैठायें । तदनन्तर उपर्युक्त प्रकार से शिष्य की भूतशुद्धि करें ॥१३९॥ उसके बाद मंत्र के न्यासों को शिष्य के शरीर में करें । तदन्तर वे शिष्य को दूसरे मण्डल के सन्निकट शान्तभाव से बैठ जाने की आज्ञा दें ॥१४०॥ उसके बाद आचार्य कलश में रखे हुए पल्लवों को शिष्य के शिर पर रखकर कलश के दिव्य जल से उसे स्नान करने की आज्ञा प्रदान करें ॥१४१॥ उसके बाद रक्षा के लिए वर्धनी के जल से शिष्य का अभिषेक करें, उसके बाद उठकर शिष्य वस्त्रों को धारण करके, भस्म लगाकर गुरु के सन्निकट बैठे, उसके बाद गुरु

संविशेद्गुरुसन्निधौ । ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम् ॥१४३॥ प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः ॥१४४॥ ततस्त्रिंशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद्गुरुः । महामंत्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसेत् ॥१४५॥ अष्टोत्तरशतं मंत्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने । दंडवत्प्रणमेद्भूमौ तं गुरुं देवतात्मकम् ॥१४६॥ सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥१४७॥ सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः । दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥१४८॥ कृतार्थता स्वस्य बुद्ध्वा नित्यमाराधयेन्मनुम् । इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः ॥१४९॥ विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम् । नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्यात्र विद्यते ॥१५०॥ वैदिकः स्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम् । तांत्रिकस्तंत्ररीत्या तु स्थितिरेषा सनातनी ॥१५१॥ तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा । श्रीनारायण उवाच– इति सर्वं मयाऽऽख्यातं यत्पृष्टं नारद त्वया ॥१५२॥ अतः परं परांबाया भज नित्यं पदांबुजम् । नित्यमाराध्य

अपने हृदय से निकली हुई पार्वती का ॥१४२-१४३॥ ध्यान करें कि वे अब शिष्य के हृदय में प्रवेश कर गयी हैं, अतएव उन दोनों में ऐक्य के लिए करुणासागर गुरु गन्ध, पुष्प आदि से पूजा करें ॥१४४॥ उसके बाद शिष्य के शिर पर हाथ रखकर उसके दाहिने कान में महादेवी के महामंत्र का तीस बार उपदेश करें ॥१४५॥ हे मुने ! शिष्य भी उस मन्त्र का अष्टोत्तर शत जप कर ले । उसके बाद देवता स्वरूप गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥१४६॥ उसके बाद अपने जीवन पर्यन्त अपना सबकुछ गुरु को समर्पित करे । पुनः ऋत्विजों को दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥१४७॥ वह कंजूसी का परित्याग करके, सौभाग्यवती स्त्रियों, कुमारियों, बटुकों, दीनानाथों तथा दरिद्रों को भोजन कराये ॥१४८॥ उसके बाद वह अपने को कृतार्थ मानकर प्रतिदिन मन्त्र की आराधना करे । इस तरह मैंने आपको सर्वोत्तम दीक्षा की विधि को बतलाया ॥१४९॥ इन सारी बातों का विचार करके आप देवी के चरण कमलों की उपासना करें । इससे भिन्न कोई भी मन्त्र ब्राह्मणों के लिए नहीं है ॥१५०॥ वैदिकों को चाहिये कि वे अपने-अपने गृह्यसूत्रों में बतलाये गये मन्त्रों का ही उपदेश करें । तांत्रिक मन्त्रोक्त विधि से ही उपदेश देना चाहिए यही सनातन विधि है ॥१५१॥ विभिन्न उक्त प्रयोगों को उसके अधिकारी व्यक्ति ही करें । **श्रीनारायण ने कहा–** हे नारदजी आपने जो-जो पूछा है मैंने वह सबकुछ बतला दिया ॥१५२॥ अब आप पराम्बा के चरण कमलों की आराधना करें । उनकी ही आराधना करके मैंने परम सिद्धि को प्राप्त किया है । हे राजन् जनमेजय ! इस तरंह से नारदजी को सबकुछ कहकर श्रीनारायण

तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः ॥१५३॥ इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम् । समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदांबुजम् ॥१५४॥ नारायणस्तु भगवान्मुनिवर्यशिखामणिः । नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम् । जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः ॥१५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच– **भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतां वर । द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता ॥१॥ संध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन्काले नित्यतया विभो । तां विहाय द्विजाः कस्माद्गृहणीयुश्चान्यदेवताः ॥२॥ दृश्यन्ते वैष्णवाः केचिद्गाणपत्यास्तथाऽपरे । कापालिकाश्चीनमार्गरता बल्कलधारिणः ॥३॥ दिगम्बरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयः । दृश्यन्ते बहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः ॥४॥ किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । बुद्धिमन्तः पंडिताश्च नानातर्कविचक्षणाः ॥५॥ अपि संत्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवर्जिताः । न हि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या**

अपनी आँखों को मूँदकर देवी के चरण कमलों का ध्यान करने लगे ॥१५३-१५४॥ भगवान् नारायण तो श्रेष्ठ मुनियों में अग्रगण्य हैं । नारदजी भी अपने गुरु नारायण को नमस्कार करके देवी के दर्शन की लालसा से शीघ्र ही तपस्या करने क लिए चले गये ॥१५५॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

देवताओं का गर्व ध्वसं

जनमेजय ने पूछा– हे भगवन् ! सभी धर्मों के अभिज्ञ, सभी शास्त्रज्ञों में श्रेष्ठ ! जब श्रुति सभी द्विजातियों के लिए देवी की उपासना बतलाती है।।१।। तो फिर तीनों संध्या कालों तथा दूसरे समयों में देवी की नित्य आराधना का परित्याग करके ब्राह्मण दूसरे देवताओं की आराधना क्यों करते हैं ?।।२।। कुछ लोग गणपति की आराधना करते हैं, कुछ वैष्णव हैं, कुछ कापालिक हैं ,तो कुछ लोग चीन मार्गानुयायी हैं, कुछ लोग वल्कल धारी हैं ।।३।। कुछ लोग दिगम्बर हैं, कुछ लोग बौद्ध हैं तो कुछ चार्वाक । इस तरह बहुत द्विज वेद में श्रद्धा रहित दिखायी देते हैं ।।४।। हे ब्राह्मण् ! इसका कारण क्या

हातुमिहेच्छति ॥६॥ किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदां वर । मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा ॥७॥ कीदृक्तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं महत्तरम् । तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ ॥८॥ प्रसन्नास्तु वदंत्येव गुरवो गुह्यमप्युत । सूत उवाच– **इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान्बादरायणः ॥९॥ निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः । यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते ॥१०॥** व्यास उवाच **सम्यक्पृष्टं त्वया राजन्समये समयोचितम् । बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे ॥११॥ पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धं तु चक्रिरे । शतवर्षं महाराज महाविस्मयकारकम् ॥१२॥ नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम् । जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप ॥१३॥ पराशक्तिकृपावेशाद्देवैर्दैत्या जिता युधि । भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालवेश्मनि ॥१४॥ ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रमवर्णनम् । चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमाना समंततः॥१५॥ जयोऽस्माकं कुतो न स्यादस्माकं महिमा यतः । सर्वोत्तमः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः ॥१६॥ सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः । अस्मदग्रे पामराणां दैत्यानां चैव का कथा ॥१७॥ पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः । तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जगदाम्बिका ॥१८॥**

है ? उसे आप बतलाएँ । वे सब बुद्धिमान् पण्डित तथा अनेक प्रकार का तर्क करने मे निपुण भी हैं ॥५॥ ऐसा होने पर भी उनकी वेदों में श्रद्धा नहीं है । कोई भी जानकार अपने कल्याण का परित्याग नहीं करना चाहता है ॥६॥ वेदज्ञ श्रेष्ठ ! आपने इसका कारण बतलायें, आप पहले मणिद्वीप की महिमा भी बतलायी है ॥७॥ वह मणिद्वीप कैसा है ? कि वह देवी का सर्वश्रेष्ठ स्थान बन गया है । हे अनघ ! मैं आपका भक्त हूँ और आपकी बातों में मेरी श्रद्धा है । आप उसे मुझे बतलायें ॥८॥ प्रसन्न होकर गुरुजन, गोपनीय बात को भी बतला देते हैं । **सूतजी ने कहा–** इस तरह से जनमेजय की बात को सुनकर भगवान् बादरायण ने ॥९॥ जनमेजय की बात को सुनकर उन्होंने सारी बातों को क्रमशः बतलाया, उसको सुनकर द्विजातियों की वेद में श्रद्धा बढ जाती है ॥१०॥ **व्यासजी ने कहा–** हे राजन् ! आपने उचित समय पर समयोचित्त प्रश्न किया है । लगता है कि तुम बुद्धिमान हो तथा तुम्हारी वेद में श्रद्धा है ॥११॥ प्राचीन काल में मदमत्त होकर दैत्यों ने देवताओं के साथ युद्ध किया। राजन् ! वह अत्यन्त विस्मयकारी युद्ध सौ वर्षों तक चलता रहा ॥१२॥ हे राजन् ! उन देवताओं एवं दैत्यों के युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों के प्रहार होते थे, और अनेक प्रकार की विचित्र मायाओं का प्रयोग होता था । लगता था कि इस युद्ध से संसार का ही नाश हो जायेगा ॥१३॥ पराशक्ति की कृपा प्राप्त करके देवताओं ने दैत्यों पर विजय प्राप्त कर लिया । और दैत्य भूलोक तथा स्वर्गलोक का परित्याग करके पाताल लोक में चले गये ॥१४॥ उसके बाद अत्यन्त हर्षित होकर देवता अज्ञान जन्य अभिमान के कारण परस्पर में अपने-अपने पराक्रम की प्रशंसा करने लगे ॥१५॥ वे कहते थे कि हमारी विजय क्यों न हो, क्योंकि हमारी बहुत बड़ी महिमा है, दैत्य तो अज्ञानी तथा पराक्रम से हीन हैं ॥१६॥ हमलोग सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले तथा यशस्वी हैं । हमलोगो के सामने अज्ञानी दैत्यों की

प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप । कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीलतम् ॥१९॥ विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादिवर्जितम् । अदृष्टपूर्वं
तददृष्ट्वा तेजः परमसुन्दरम् ॥२०॥ सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति । दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया काऽपि महीयसी ॥२१॥
केनचिन्निर्मिता वाऽथ देवानां स्मयकारिणी । सम्भूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम् ॥२२॥ यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि ।
महाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥२३॥ ततो वह्नि समाहूय प्रोवाचेन्द्रः सुराधिपः । गच्छ बह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम् ॥२४॥
ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि । सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम् ॥२५॥ वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य संनिधौ । तदा
प्रवोच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम् ॥२६॥ वीर्यं च त्वयि किं यत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः । अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत् ॥२७॥
सर्वस्य दहने शक्तिर्मयि विश्वस्य तिष्ठति । तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम् ॥२८॥ दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि । तदा
सर्वबलेनैवाकरोद्यत्नं हुताशनः ॥२९॥ न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति । पृष्टे देवैस्तु वृत्तान्ते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक् ॥३०॥
वृथाऽभिमानो ह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः । ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत् ॥३१॥ त्वयि प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम् । त्वं

कौन सी बात है ?॥१७॥ अज्ञानी दैत्य पराशक्ति के प्रभाव को नहीं जानते थे । देवताओं पर कृपा करने के लिए जगदम्बिका यक्षरूप से प्रकट हो गयीं। राजन् उनका श्रीविग्रह करोड़ो सूर्य के समान प्रकाशमय तथा करोड़ो चन्द्रमा के समान शीतल था ॥१८-१९॥ करोड़ों विद्युत् के समान यक्ष का शरीर हाथ-पैर आदि से रहित था । देवताओं ने उस अदृष्ट पूर्वं सौन्दर्य सम्पन्न तेज को देखा ॥२०॥ वे देवता आश्चर्य चकित होकर कहने लगे यह यक्ष कौन है ? क्या दैत्यों की कोई चेष्टा है ? अथवा कोई बड़ी माया है ?॥२१॥ लगता है देवताओं को विस्मित करने के लिए किसी ने इस माया का निर्माण किया है । वे सबके सब एकत्रित होकर विचार किए कि ॥२२॥ यक्ष के सन्निकट जाकर उससे पूछना चाहिए कि तुम कौन हो ? उसके महाबल को जानकर ही कोई प्रतिकार करना चाहिए ॥२३॥ उसके बाद देवराज इन्द्र, अग्नि को बुलाकर कहे हे अग्ने ! आप जाइये आप देवताओं के उत्तम मुख हैं ॥२४॥ अतएव जाकर इस बात का पता लगाइये कि यह कौन यक्ष है ? इन्द्र की अपने पराक्रम विषय वाणी को सुनकर ॥२५॥ वहाँ से निकलकर अग्नि वेगपूर्वक उस यक्ष के सन्निकट गये । अग्नि से यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो ?॥२६॥ तुममें कौन सा पराक्रम है ? यह मुझे बतलाओ । अग्नि ने कहा कि मैं जातवेदा अग्नि हूँ ॥२७॥ मुझमें विश्व को जला डालने की शक्ति है । उसी समय परम तेजस्वी यक्ष ने अग्नि के समक्ष एक तृण रख दिया और कहा॥२८॥ यदि तुममें विश्व को जला डालने की शक्ति है तो फिर इसको जला दो । इसके बाद अग्नि उस तृण को जलाने में अपनी सारी शक्ति लगा दिए ॥२९॥

प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः ।।३२।। त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि । नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः ।।३३।। सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुम्फितम् । साभिमानो जगामाशु यत्र यक्षं विराजते ।।३४।। यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया । कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः ।।३५।। ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत् । मातरिश्वाऽहमस्मीति वायुरस्मीति चाब्रवीत् ।।३६।। वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेऽस्ति हि । मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्यापारवद्भवेत् ।।३७।। इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः । तृणमेतत्तवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम् ।।३८।। नोचेद्गर्वं विहायैनं लज्जितो गच्छ वासवम् । श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः ।।३९।। उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह । लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वे हित्वा गर्वं स चानिलः ।।४०।। वृत्तांतमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम् । नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्यागर्वाभिमानिनः ।।४१।। अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम् । ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे ।।४२।। देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः । तत इन्द्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत् ।।४३।। प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम् । अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवाग्रतः।।४४।।

किन्तु वे तृण को जलाने में समर्थ नहीं हो सके, उसके बाद वे लज्जित होकर देवताओं के पास चले गये । देवताओं ने जब पूछा तो अग्नि ने सारी बात बता दी ।।३०।। उन्होंने कहा देवताओं हमलोगों का सर्वेश्वर होने का अभिमान व्यर्थ है । उसके बाद इन्द्र ने वायुदेवता को बुलाकर कहा ।।३१।। तुममें ही सारा जगत् ओत-प्रोत है, तुम्हारी ही चेष्टा से जगत् में कोई भी चेष्टा होती है । तुम सबों के प्राण स्वरूप हो और सबों को धारण करते हो ।।३२।। तुम्हीं जाकर पता लगाओं कि यह कौन सा यक्ष है ? इस परंतेजः स्वरूप यक्ष का पता दूसरा कोई नहीं लगा सकता है ।।३३।। वायु ने अपने विषय में गुण तथा गौरवपूर्ण इन्द्र की उक्ति को सुना और अभिमान से पूर्ण उस यक्ष के पास गया ।।३४।। यक्ष ने वायु को देखकर कोमल वाणी से कहा, तुम कौन हो ? तुममें कौन सी शक्ति है, ये सारी बातें मुझे बतलाओ ।।३५।। यक्ष की वाणी को सुनकर वायु ने घमण्ड पूर्वक कहा मेरा नाम मातरिश्वा है । मैं वायु हूँ ।।३६।। मुझमें सबों के संचालन तथा ग्रहण करने की शक्ति है, मेरी ही चेष्टा से सारे जगत् में कोई भी व्यापार होता है ।।३७।। वायु की इस तरह की वाणी को सुनकर परंतेज ने कहा तुम्हारे सामने जो यह तृण है, उसको अपनी इच्छा के अनुसार संचालित कर दो ।।३८।। यदि ऐसा न कर सके तो लज्जित होकर इन्द्र के पास लौट जाओ । यक्ष की वाणी को सुनकर वायु ने अपनी सारी शक्ति से उस तृण को संचालित करने का प्रयास किया, किन्तु वह तृण उस स्थान से हिला तक नहीं । इसके बाद वायु अपने गर्व का परित्याग करके देवताओं के पास चला गया ।।४८।। अपने अभिमान के त्यागने के कारणभूत सम्पूर्ण वृत्तान्त को वायु ने देवताओं को बतलाया । **वायु ने कहा**– हमलोग इस यक्ष का पता नहीं लगा सकते, हमलोगों का अभिमान मिथ्या है ।।४१।। यह यक्ष अलौकिक प्रतीत होता है, इसका तेज अत्यन्त भयंकर है । उसके बाद सभी देवताओं ने इन्द्र से कहा ।।४२।। आप देवराज हैं ? आप यक्ष की

अतीव लज्जितो जातो वासवो देवराडपि । यक्षसंभाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि ॥४५॥ अतः परं न गंतव्यं मया तु सुरसंसदि । किं मया तत्र वक्तव्यं स्वलघुत्वं सुरान्प्रति ॥४६॥ देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम् । माने नष्टे जीवितं तु मृततुल्यं न संशयः ॥४७॥ इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः । चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः ॥४८॥ तस्मिन्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभस्तले । मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव ॥४९॥ ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम् । लक्षवर्षं निराहारो ध्यानमीलितलोचनः ॥५०॥ अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ । तदैवाविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः ॥५१॥ तेजोमंडलमध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम् । भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम्॥५२॥ बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रांतर्व्यंजितस्तनीम् । चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशांकुशाभयान् ॥५३॥ दधानां रमणीयांगीं कोमलांगलतां शिवाम् । भक्तकल्पद्रुमामंबां नानाभूषणभूषिताम् ॥५४॥ त्रिनेत्रां मल्लिकामालाकबरीजूटशोभिताम् । चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम् ॥५५॥ दंतच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्ष्माम्। प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकंदर्पसुन्दराम् ॥५६॥ रक्तांबरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम् । उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम् ॥५७॥ निर्व्याजकरुणामूर्ति

वास्तविकता का पता लगाइये । उसके बाद इन्द्र अत्यन्त अभिमान के साथ उस यक्ष के पास आये ॥४३॥ किन्तु यक्ष रूपी वह सर्वश्रेष्ठ तेज इन्द्र के सामने से गायब हो गया ॥४४॥ यह देखकर इन्द्र भी अत्यन्त लज्जित हो गये । वे यक्ष से बात भी नहीं कर सके, अतएव उन्हें अपनी अत्यन्त लघुता प्रतीत हुई ॥४५॥ वे सोच रहे थे कि अब तो मुझे लौटकर देवताओं के समाज में जाना भी नहीं चाहिए, मैं देवताओं से अपनी कौन सी लघुता बतलाऊँगा?॥४६॥ महापुरुषों का सम्मान ही धन है । अच्छा तो है कि मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँ । सम्मान के नष्ट हो जाने पर तो जीवन मृत के समान हो जाता है ॥४७॥ इस तरह से निश्चय करके वहीं पर इन्द्र अपने अभिमान का त्याग करके उस जगदम्बा की शरणागति किए जिनका वह चरित्र था ॥४८॥ उसी समय आकाशवाणी हुई हे इन्द्र ! तुम मायाबीज का जप करो, उसी से सुखी हो जाओगे ॥४९॥ उसके बांद इन्द्र ने अपनी आँखें मूँद कर तथा निराहार रहकर एक लाख .वर्ष तक मायाबीज का जप किया ॥५०॥ अकस्मात् चैत्रमास की नवमी तिथि को दोपहर की बेला में उस स्थान पर महान् तेज प्रकट हुआ ॥५१॥ उस तेज मण्डल के भीतर एक कुमारी युवती प्रकट हुई । उसकी नयी जवानी थी । जपाकुसुम के समान उसकी कान्ति चमक रही थी, करोड़ो बाल सूर्य के समान उसकी प्रभा थी ॥५२॥ द्वितीया के चन्द्रमा का उनका मुकुट था । वस्त्रों के भीतर से उसके स्तन व्यक्त हो रहे थे । वह अपने चार हाथों में श्रेष्ठ पाश, अंकुश और अभय मुद्रा धारण किए थी ॥५३॥ उस शिवा देवी के अङ्ग लता के समान कोमल थे । भक्तों के कल्पद्रुम के संमान वे पराम्बा अनेक आभूषणों से अलङ्कृत थीं ॥५४॥ उनके तीन नेत्र थे, उनके बालों में मालती पुष्प की माला सुशोभित हो रही थी। चारो ओर चार वेद उनकी स्तुति कर रहे थे ॥५५॥ उनके दाँतों की कान्ति से लगता था कि पृथिवी पद्मराग मणि की हो गयी हो । करोड़ों कामदेव से

सर्वकारण कारणम् । ददर्श वासवस्तत्र प्रेमगद्गदितांतरः ॥५८॥ प्रेमाश्रुपूर्णनयनो रोमांचिततनुस्ततः । दंडवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः ॥५९॥
तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकंधरः । उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमित्यपि ॥६०॥ प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने । इति तस्य वचः
श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा ॥६१॥ रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम् । मायाऽधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम् ॥६२॥ सर्वे वेदा यत्पदमा
मनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति । यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥६३॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम् । द्वे बीजे
मम मंत्रौ स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम ॥६४॥ भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत् । तत्रैकभागः संप्रोक्तः सच्चिदानंदनामकः ॥६५॥ मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु
द्वितीयो भाग ईरितः । सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी ॥६६॥ चंद्रस्य चंद्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता । साम्यावस्थात्मिका चैषा माया
मम सुरोत्तम ॥६७॥ प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति । प्राणिकर्मपरीपाकवशतः पुनरेव हि ॥६८॥ रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तिभावमुपैति च ।
अंतर्मुखा तु याऽवस्था सा मायेत्यभिधीयते ॥६९॥ बहिर्मुखा तु या माया तमः शब्देन सोच्यते । बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसंभवः ॥७०॥

भी सुन्दर थीं तथा मुस्कुरा रही थीं ॥५६॥ वे हिमवान् की पुत्री कल्याण कारिणी शिवा (पार्वती) थीं । उनका नाम उमा था । उनके वस्त्र लाल रङ्ग के थे।
उनका शरीर लालचन्दन से चर्चित था ॥५७॥ समस्त जगत् के कारण स्वरूपा वे स्वाभाविक रूप से करुणा की साक्षात् मूर्ति थीं । उनका दर्शन करके इन्द्र
का मन प्रेम से गद्गद हो गया ॥५८॥ इन्द्र की आँखों में प्रेमाश्रु भर गये, उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया । उन्होंने जगदम्बा के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम
किया ॥५९॥ उनका कन्धा भक्ति से झुक गया । उन्होंने अनेक स्तोत्रों से देवी की स्तुति की ॥५८॥ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र ने जगदम्बा से पूछा कि
यह यक्ष कौन था ॥६०॥ वह किसलिए प्रकट हुआ था ? हे मातः ! इन सारी बातों को आप बतलायें । इन्द्र की इस वाणी को सुनकर करुणा सागर
जगदम्बा ने कहा ॥६१॥ सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप यह मेरा ब्रह्म रूप था । यह माया का आधार, सम्पूर्ण जगत् का साक्षी तथा निर्दोष मेरा रूप
है ॥६२॥ सभी वेद जिसका आम्नान करते है, सारे तप जिसका वर्णन करते है । जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं,
उसको मैं संक्षेप में बतला रही हूँ ॥६३॥ ओम् यह जो एकाक्षर वेद है उसी को ह्रीम् कहते हैं । हे इन्द्र ! ह्रीम् तथा ओम् ये दोनों बीज मेरे मुख्य मन्त्र
हैं ॥६४॥ इन्हीं दोनों से मैं जगत् की सृष्टि करती हूँ । उसका एक भाग सच्चिदानन्द स्वरूप है ॥६४॥ दूसरे भाग को माया तथा प्रकृति कहते हैं । वह
माया मेरी शक्ति है और माया से युक्त सम्पूर्ण जगत् की मैं स्वामिनी हूँ ॥६६॥ चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान यह मुझसे अभिन्न है । हे इन्द्र ! यह मेरी
अपनी साम्यावस्था में रहती है ॥६७॥ प्रलयकाल में यह मुझसे अभिन्न होकर रहती है, सृष्टिकाल के आने पर प्राणियों के कर्मानुसार ॥६८॥ यह अव्यक्त

रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम । गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥७१॥ रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत् । तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥७२॥ स्थूलदेहो भवेद्ब्रह्मा लिंगदेहो हरिः स्मृतः । रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि ॥७३॥ साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपिणी । अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम् ॥७४॥ निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते । निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम् ॥७५॥ साऽहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदंतः संप्रविश्य च । प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥७६॥ सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि । ब्रह्माणं च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम् ॥७७॥ मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति । इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता ॥७८॥ मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा । युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्तलिकोपमान् ॥७९॥ कदाचिद्देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित् । स्वतंत्रा स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरोधतः ॥८०॥ तां मां सर्वात्मिकां यूयं विस्मृत्य निजगर्वतः । अहंकारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरंतकम् ॥८१॥ अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम् । निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि ॥८२॥ अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम् । मामेव शरणं यात सच्चिदानंदरूपिणीम् ॥८३॥ व्यास उवाच– **इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।**

होकर भी व्यक्त हो जाती है, इसकी जो अन्तर्मुखी अवस्था है । उसे माया कहते हैं ॥६९॥ जो बहिर्मुखी माया है, उसे तमः (अविद्या) शब्द से अभिहित किया जाता है । माया के उस अज्ञानमय बहिर्मुख से सृष्टि होती है ॥७०॥ हे इन्द्र ! सृष्टि के प्रारम्भ में रजोगुण ही रहता है । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये गुण त्रयात्मक हैं ॥७१॥ ब्रह्मा में रजोगुण की अधिकता होती है, विष्णु में सत्त्वगुण की अधिकता होती है और सम्पूर्ण जगत् के कारण रूप शङ्कर में तमोगुण की अधिकता होती है ॥७२॥ ब्रह्मा स्थूल शरीर वाले हैं, विष्णु सूक्ष्म शरीर वाले हैं और रुद्र कारणशरीरधारी हैं । इस तीनों से परे चतुर्थ (तुरीय) शरीर धारिणी मैं हूँ ॥७३॥ सबों की अन्तर्यामिरूपिणी जो साम्यावस्था बतलायी गयी है, उसके ऊपर मेरा रूप रहित ब्रह्मरूप है ॥७४॥ मेरे दो रूप हैं निर्गुण तथा सगुण । निर्गुण रूप माया से रहित है और सगुण रूप माया से युक्त है ॥७५॥ वही मैं जगत् की सृष्टि करके उसके अन्दर प्रेवश कर गयी हूँ और जीवों को उनके कर्म तथा शास्त्र के अनुसार प्रेरित करती रहती हूँ ॥७६॥ मैं ही जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वंर को प्रेरित करती हूँ ॥७७॥ मेरे भय से वायु तथा सूर्य सदा चलते रहते हैं । इन्द्र, अग्नि तथा मृत्यु भी अपना कार्य करते रहते है । अतएव मैं सर्वोत्तम कही गयी हूँ ॥७८॥ मेरी ही कृपा से आपलोगों ने विजय प्राप्त की है, मैं आपलोगों को कठपुतली के समान नचाती रहती हूँ ॥७९॥ जीवों के कर्मानुसार मैं अपनी इच्छा से कभी देवताओं को तो कभी दैत्यों को विजयी बना देती हूँ ॥८०॥ आपलोग मुझको भूलकर अपने गर्व के कारण भयंकर अज्ञान तथा अहंकार से युक्त हो गये थे ॥८१॥ आपलोगों पर कृपा करने के लिए आपलोगों के शरीर से मेरा तेज सहसा निकलकर यक्ष का रूप

अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता ॥८४॥ ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पदपंकजम् । सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याः परात्परम् ॥८५॥ त्रिसंध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः । यज्ञभागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे ॥८६॥ एवं सत्ययुगे सर्वे गायत्रीजपतत्पराः । तारहृल्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः ॥८७॥ न विष्णूपासना नित्या वेदे प्रोक्ता तु कुत्रचित् । न विष्णुदीक्षा नित्याऽस्ति शिवस्यापि तथैव च ॥८८॥ गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता । यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥८९॥ तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि । गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९०॥ कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम् । विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणाः॥९१॥ शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा । तस्मादाद्ययुगे राजन्गायत्रीजपतत्पराः । देवीपदांबुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमाः ॥९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

धारण कर लिया ॥८२॥ अब आपलोग अपने अभिमान को त्याग कर सच्चिदानंद स्वरूपिणी मेरी सदा शरणागति करेंगे ॥८३॥ **व्यासजी ने कहा**— इस तरह से कहकर देवताओं के द्वारा स्तुति की गयी सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी महादेवी मूल प्रकृति अन्तर्धान हो गयीं ॥८४॥ उसके बाद सभी देवता अपने गर्व का त्याग करके जगदम्बा के चरणों की आराधना किए ॥८५॥ तीनों सन्ध्याओं में गायत्री का जप करते हुए सबलोगों ने यज्ञभाग आदि के द्वारा सदा देवी की सेवा करने लगे ॥८६॥ इस तरह सत्ययुग में सभी लोग गायत्री का जप करते थे । उनका मन सदा 'ॐ ह्रीम्' इस मन्त्र के भी जप में लगा रहता था ॥८७॥ वेदों में कहीं भी नित्य विष्णु की उपासना नहीं बतलायी गयी है और न तो कहीं विष्णु अथवा शिव की दीक्षा ही बतलायी गयी है ॥८८॥ वेदों में गायत्री की नित्य उपासना बतलायी गयी है, उसके बिना ब्राह्मण का अधः पतन हो जाता है ॥८९॥ ब्राह्मण की कृतकृख्यता गायत्री के जप से ही हो जाती है, उसीसे उसको मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है ॥९०॥ गायत्री जप से भिन्न ब्राह्मण कोई उपासना करे या न करे, ऐसा मनु ने कहा है । गायत्री का परित्याग करके विष्णु अथवा शिव की उपासना करने वाला ब्राह्मण नरक में जाता है । अतएव हे राजन् ! सत्ययुग में सभी श्रेष्ठ द्विज गायत्री का जप तथा देवी के चरणकमलों की सेवा करते थे ॥९१-९२॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

नवमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **कदाचिदथ काले तु दश पंच समा विभो । प्राणिनां कर्मवशतो न ववर्ष शतक्रतुः ॥१॥ अनावृष्ट्याऽतिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम्। गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते ॥२॥ केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयंति क्षुधार्दिताः । शवानि च मनुष्याणां भक्षयंत्यपरे जनाः ॥३॥ बालकं बालजननी स्त्रियं पुरुष एव च । भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः ॥४॥ ब्राह्मणा बहवस्तत्र विचारं चक्रुरुत्तमम् । तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति ॥५॥ सर्वैर्मिलित्वा गंतव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना । गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥६॥ सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः । एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुम्बिनः ॥७॥ सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याश्रमं ययुः । पूर्वदिशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः॥८॥ पाश्चात्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः । दृष्ट्वा समाजं विप्राणां प्रणनाम स गौतमः ॥९॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास बाडवान् । चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम् ॥१०॥ ते सर्वे स्वस्ववृत्तांतं कथयामासुरुत्स्मयाः । दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रानभयं दत्तवान्मुनिः ॥११॥ युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा । का चिंता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति ॥१२॥ धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपोधनाः । येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं**

महर्षि गौतम द्वारा असंख्य ब्राह्मणों की रक्षा और कृतघ्न ब्राह्मणों को महर्षि का शाप

व्यासजी ने कहा– राजन् ! एक बार जीवों के कर्मानुसार इन्द्र ने पन्द्रह वर्ष तक वर्षा नहीं किया ॥१॥ इस अनावृष्टि के कारण विनाशकारी दुर्भिक्ष हो गया । प्रत्येक घर में असंख्य शव पड़े रहे ॥२॥ कुछ लोग भूख के मारे घोड़े तथा सूकरों को खाने लगे । कुछ लोग मनुष्यो का शव ही खाने लगे। माता बालकों को तथा पुरुष स्त्री को खाने लगे । भूख से व्याकुल मनुष्य एक दूसरे को देखकर खाने के लिए दौड़ पड़ते थे ॥४॥ यह देखकर ब्राह्मणों ने विचार किया कि महर्षि गौतम तपोधन हैं, वे ही हमलोगों के कष्ट को दूर करेंगे ॥५॥ अतएव हमसब लोगों को मिलकर महर्षि गौतम के आश्रम में चलना चाहिए । इस समय महर्षि गौतम अपने आश्रम में गायत्री का जप कर रहे हैं ॥६॥ सुनाई पड़ता है कि वहाँ सुभिक्ष है, वहाँ बहुत से जीव गये हुए हैं । इस तरह से विचार करके ब्राह्मण अपने अग्निहोत्र तथा कुटुम्ब के साथ वहाँ गये ॥७॥ वे लोग अपने गौओं तथा दासों के साथ गौतम महर्षि के आश्रम में गये । कुछ लोग पूर्व दिशा से गये तथा कुछ लोग दक्षिण दिशा से गये ॥८॥ पश्चिम तथा उत्तर देश से भी वे गये । ब्राह्मणों के समाज को देखकर गौतम ने उन सबों को प्रणाम किया ॥९॥ उन्होंने ब्राह्मणों को आसन आदि प्रदान करके उनकी पूजा की कुशल पूछने के बाद उनके उस आश्रम में आने का कारण पूछा ॥१०॥ वे सभी ब्राह्मण अपना-अपना कष्ट बतलाये । उन ब्राह्मणों को दुःखी देखकर महर्षि गौतम ने उन्हें अभय प्रदान

सुकृतायते ॥१३॥ ते सर्वे पादरजसा पावयन्ति गृहं मम । को मदन्यो भवेद्धन्यो भवतां समनुग्रहात् ॥१४॥ स्थेयं सर्वैः सुखेनैव संध्याजपपरायणैः। व्यास उवाच– **इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनिराट् ततः ॥१५॥ गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकंधरः । नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे॥१६॥ व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपे प्रणवरूपिणि । साम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणि ॥१७॥ स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम्। भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम् ॥१८॥ तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानंदरूपिणीम् । सर्ववेदांतसंवेद्यां सूर्यमंडलवासिनीम् ॥१९॥ प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम् । सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम् ॥२०॥ सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरि । इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ ॥२१॥ पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम् । उवाच मुनिमंबा सा यं यं कामं त्वमिच्छसि ॥२२॥ तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति । इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी गायत्री परमा कला ॥२३॥ अन्नानां रशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः । षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च ॥२४॥ भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च । यज्ञानां च समारंभाः पात्राणि विविधानि च ॥२५॥ यद्यदिष्टमभूद्राजन्मुनेस्तस्य**

किया ॥११॥ उन्होंने कहा यह आपलोगों का घर है, मैं आपलोगों का दास हूँ । ब्राह्मणों ! मुझ जैसे दास के रहते आपलोगों को कौन सी चिन्ता है?॥१२॥ मैं तो धन्य हो गया, आप सभीलोग तपस्वी हैं जिनका दर्शन करने मात्र से पाप भी पुण्य बन जाता है ॥१३॥ ऐसे ब्राह्मण मेरे घर को पवित्र बना रहे हैं । आपलोगों की कृपा के कारण मुझको छोड़कर दूसरा कौन धन्य हो सकता है ?॥१४॥ संध्या तथा जप करते हुए आपलोग सुखपूर्वक रहें । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से सबलोगों को आश्वासन देकर मुनिराज गौतम ॥१५॥ ने भक्तिपूर्वक गायत्री देवी से प्रार्थना किया । हे परात्पर, वेदमातः, महविद्ये देवि आप को नमस्कार है ॥१६॥ हे व्याहृति इत्यादि मंत्र स्वरूपिणि ! प्रणव स्वरूपिणि, साम्यावस्था में रहने वाली, ह्रींकार स्वरूपिणी, मातः ॥१७॥ सम्पूर्ण अर्थों को प्रदान करने वाली स्वाहा, स्वधा स्वरूपिणि, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । भक्तों के कल्याण स्वरूपिणि, तीनों अवस्थाओं में रहने वाली साक्षिस्वरूपिणी ॥१८॥ आपका स्वरूप तुरीयातीत है, आप सच्चिदानंद स्वरूपिणी हैं । सभी वेदान्त आपका ही प्रतिपादन करते हैं, आप सूर्य मण्डल में निवास करती हैं ॥१९॥ आप प्रातःकाल में बाल सूर्य के समान रक्त वर्ण की, मध्याह्न में श्रेष्ठ युवती स्वरूपिणी तथा सायंकाल में कृष्णवर्ण की वृद्धा स्वरूपिणी रहती हैं । आपको मैं नित्य ही नमस्कार करता हूँ ॥२०॥ सभी भूतों कां उद्धार करने वाली परमेश्वरी ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ । महर्षि गौतम द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर जगन्माता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥२१॥ उन्होंने महर्षि गौतम को ऐसा पूर्णपात्र प्रदान किया कि उससे सबों का भरण-पोषण हो सकता था । परामबा ने मुनि से कहा कि तुम जो-जो चाहोगे ॥२२॥ इस मेरे द्वारा प्रदत्त पात्र से सबों की पूर्ति हो जायेगी । इस तरह से कहकर सर्वश्रेष्ठ कला गायत्री अन्तर्धान हो गयीं ॥२३॥ राजन् उस पात्र से पर्वत के ढेर जैसे षड्रस अन्न निकले । अनेक प्रकार की घासें निकलीं ॥२४॥

महात्मनः । तत्सर्वं निर्गतं तस्माद्गायत्रीपूर्णपात्रतः ॥२६॥ अथाहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड्गौतमस्तदा । धन्यधान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुदा ॥२७॥
गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः । निर्गतान्यज्ञसंभारान्स्त्रुक्स्त्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥२८॥ ते सर्वे मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः । स्थानं तदेव
भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम् ॥२९॥ यत्किंचित्त्रिषु लोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते । तत्सर्वं तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः ॥३०॥ देवांगनासना दाराः
शोभंते भूषणादिभिः । मुनयो देवसदृशा शस्त्रचन्दनभूषणैः ॥३१॥ नित्योत्सवः प्रववृते मुनेराश्रममंडले । न रोगादिभयं किंचिन्न च दैत्यभयं
क्वचित् ॥३२॥ स मुनेराश्रमो जातः समंताच्छतयोजनः । अन्ये च प्राणिनो येऽपि तत्र तेऽपि समागताः ॥३३॥ तांश्च सर्वान्पुपोषायं दत्त्वाभयमथात्मवान्।
नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवत्कल्पितैः सुराः ॥३४॥ सन्तोषं परमं प्रापुर्मुनिश्चैव जगुर्यशः । सभायां वृत्रहा भूयो जगौ श्लोकं महायशाः ॥३५॥ अहो
अयं नः किल कल्पपादपो मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः । नोचेदकाण्डे क्व हविर्लभामहे सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा ॥३६॥ इत्थं द्वादश वर्षाणि
पुपोष मुनिपुंगवान् । पुत्रवन्मुनिराड्गर्वगंधेन परिवर्जितः ॥३७॥ गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनिसत्तमः । यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदम्बिका॥३८॥

दिव्य भूषण तथा रेशमी वस्त्र निकले, यज्ञ के साधन तथा अनेक प्रकार के पात्र निकले ॥२५॥ हे राजन् ! महर्षि गौतम को जो वस्तु अभिप्रेत थी वह सब गायत्री के पूर्णपात्र से निकली ॥२६॥ उसके बाद मुनिराज गौतम सभी मुनियों को बुलाकर प्रसन्नता पूर्वक धन-धान्य भूषण तथा वस्त्र प्रदान किए ॥२७॥ उस पूर्णपात्र से निकले हुए गौ, भैंस आदि पशु यज्ञ के साधन स्त्रुक्, स्त्रुव आदि भी महर्षि ने ब्राह्मणों को दिया ॥२८॥ वे सब ब्राह्मण महर्षि गौतम की आज्ञा से यज्ञ करने लगे । वह स्थान स्वर्ग के समान हो गया ॥२९॥ त्रैलोक्य में जो कोई भी सुन्दर वस्तु दिखायी देती हैं वे सब के सब उस गायत्री पात्र से वहाँ उपस्थित हो गयी ॥३०॥ भूषण आदि के द्वारा मुनियों की पत्नियाँ देवाङ्गनाओं के समान शोभती थीं और मुनिजन वस्त्र, चन्दन तथा भूषणों से देवता के समान सुशोभित होते थे ॥३१॥ मुनि के आश्रम मण्डल में नित्य ही उत्सव होने लगा । वहाँ न तो रोग का भय था और न दैत्यो का भय था ॥३२॥ मुनि का वह आश्रम चारो ओर से सौ योजन में फैल गया । दूसरे भी जो प्राणी आये उन सबों को भी मुनि ने अभय प्रदान कर दिया और उनका पोषण किया । अनेक प्रकार के सविधि अनुष्ठित यज्ञों से देवता भी ॥३४॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और मुनि का यशोगान करने लगे । महायशस्वी इन्द्र ने भी मुनि का यशोगान सभा में किया ॥३५॥ इन्द्र ने कहा कि हमलोगों के लिए इस समय ये मुनि ही कल्पवृक्ष बन गये है, अन्यथा इस दुष्काल में जब कि जीने की आशा भी नहीं थी, हमलोगों को हविष्य कैसे प्राप्त होता ॥३६॥ इस तरह से मुनि ने उन मुनिश्रेष्ठों का बारह वर्षों तक गर्व से रहित होकर पुत्र के समान पोषण किया ॥३७॥ मुनिवर्य ने गायत्री के लिए एक श्रेष्ठ स्थान भी बनवा दिया । जहाँ पर सभी मुनिश्रेष्ठ जगदम्बा गायत्री की अत्यन्त भक्तिपूर्वक, पुरश्चरण कर्मों द्वारा त्रिकाल पूजा करते थे । प्रातःकाल वहाँ आज भी देवी कुमारी रूप में दर्शन देती हैं ॥३८-३९॥ मध्याह्न काल में वे युवती

त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्चरणकर्मभिः । अद्यापि यत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते ॥३९॥ मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते । तत्रैकदा
समायातो नारदो मुनिसत्तमः ॥४०॥ रणयन्महतीं गायन्यगायत्र्याः परमान्गुणान् । निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम् ॥४१॥ गौतमादिभिरत्युच्चैः
पूजितः शांतमानसः । कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च ॥४२॥ ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः । जगौ बहुविधं स्वच्छं
मुनिपोषणजं परम् ॥४३॥ श्रुत्वा शचीपतेर्वाणीं त्वां द्रष्टुमहामागतः । धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाप्रसादतः ॥४४॥ इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं
गायत्रीसदनं ययौ । ददर्श जगदम्बां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः ॥४५॥ तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः । अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा
मुनिपोषिताः ॥४६॥ उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वाऽसूयया खेदमागताः । यथाऽस्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि ॥४७॥ काले समागते पश्चाददिति
सर्वैस्तु निश्चितम् । ततः कालेन कियताऽप्यभूद्वृष्टिर्धरातले ॥४८॥ सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषु नृपसत्तम । श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्वबाडवाः॥४९॥
गौतमं शप्तुमुद्योगं हा हा राजन्प्रचक्रिरे । धन्यौ तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी ॥५०॥ कालस्य महिमा राजन्वक्तुं केन हि शक्यते । गौर्निर्मिता
माययैका मुमूर्षुर्जरती नृप ॥५१॥ जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा । हुंहुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ॥५२॥ गौर्हताऽनेन

रूप में तथा सायंकाल में वृद्धा रूप में दिखायी देती हैं । वहाँ पर एक बार मुनिश्रेष्ठ नारदजी आये ॥४०॥ उस समय वे अपनी वीणा को बजा रहे थे
और गायत्री के गुणों का गायन कर रहे थे । वे पुण्यात्मा मुनियों की सभा में आकर बैठ गये ॥४१॥ शान्तमना देवर्षि की गौतम आदि मुनियों ने खूब
पूजा की । देवर्षि ने गौतम महर्षि के यश का अनेक प्रकार से गुणगान किया ॥४२॥ उन्होंने कहा ब्रह्मर्षे ! देवों की सभा में इन्द्र ने आपके मुनियों के
पोषण सम्बन्धी जिन श्रेष्ठ यशों का वर्णन किया है ॥४३॥ इन्द्र की उस वाणी को सुनकर मैं आपका दर्शन करने के लिए आया हूँ । हे मुनिश्रेष्ठ ! आप
जगदम्बा की कृपा से धन्य हो गये हैं ॥४४॥ इस तरह से मुनिश्रेष्ठ की प्रशंसा करके प्रेमातिरेक के कारण विकसित नेत्र वाले नारदजी गायत्री सदन में जाकर
जगदम्बा का दर्शन किए ॥४५॥ उन्होंने विधिपूर्वक देवी का दर्शन किया और वे स्वर्गलोक चले गये । उसके बाद मुनि के द्वारा पोषित वहाँ पर जो ब्राह्मण
थे ॥४६॥ मुनि गौतम के उत्कर्ष को सुनकर असूया से भरकर दुःखी हो गये और सोचने लगे कि अब ऐसा कोई काम करना चाहिए जिससे कि मुनि का
यश न हो ॥४७॥ जब सबों ने ऐसा निश्चय किया । उसके कुछ दिन पश्चात् पृथिवी पर वर्षा होने लगी ॥४८॥ हे राजन् ! पृथिवी पर सुभिक्ष हो गया।
सुभिक्ष का समाचार सुनकर सभी ब्राह्मण एकत्रित हो गये ॥४९॥ वे सब गौतम को शाप देने का उपाय सोचने लगे । धन्य हैं वे माता-पिता जिनके वंश
में ऐसे कुल के कलंक उत्पन्न होते हैं ॥५०॥ राजन् ! काल की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? उन ब्राह्मणों ने माया से एक ऐसी बूढी गौ का

दुष्टेनेत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः । होमं समाप्य मुनिराड् विस्मयं परमं गतः ॥५ ३॥ समाधिमीलिताक्षः संश्चिन्तयामास कारणम् । कृतं सर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः ॥५४॥ दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत् । शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः ॥५ ५॥ वेदमातरि गायत्र्यां तद्ध्याने तन्मनोजपे । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः ॥५ ६॥ वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥५ ७॥ शिवे शिवस्य मंत्रे च शिवशास्त्रे तथैव च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥५ ८॥ मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यास्तद्ध्याने तत्कथासु च । भवतानुन्मुख यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥५ ९॥ देवीमंत्रे तथा देव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणधमाः ॥६ ०॥ देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ १॥ देवीभक्तस्य सान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ २॥ शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने । भवतानुन्मुख यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ ३॥ रुद्राक्षे बिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ ४॥ श्रौतस्मार्तसदाचारे ज्ञानमार्गे तथैव च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ ५॥ अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शान्तिदांत्यादिसाधने । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६ ६॥ नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने।

निर्माण किया जो मरने वाली ही थी ॥५१॥ मुनि के होम के समय में वह गौ यज्ञशाला में प्रवेश कर गयी । गौतम महर्षि ने 'हुं' 'हुं' कहकर उसको रोका तो उसी क्षण वह मर गयी ॥५२॥ सभी ब्राह्मण भी चिल्लाने लगे कि इस दुष्ट ने गौ की हत्या कर दी । होम समाप्त करके मुनिराज अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥५३॥ वे आँखे बन्द करके समाधिस्थ हो गये और उन्होंने जान लिया कि यह ब्राह्मणों के द्वारा किया गया है ॥५४॥ इसके बाद उन्हें ऐसा क्रोध हुआ जैसे प्रलयकाल में रुद्र क्रोध करते हैं । क्रोध से आँखें लाल करके उन्होंने सभी ऋषियों को शाप दे दिया ॥५५॥ कि तुमलोग वेदमाता गायत्री के जप तथा ध्यान के तुमलोग अधिकारी न रहो । तुमलोग ब्राह्मणाधम हो जाओ ॥५६॥ ब्राह्मणाधमों ! वेद, वेदोक्तयज्ञों तथा वेद की वार्ताओं के तुमलोग अधिकारी न रहो ॥५७॥ शिवजी, शिवजी के मन्त्र में तथा शैवशास्त्र में तुमलोगों का अधिकार न रहे ॥५८॥ मूल प्रकृति श्रीदेवी के ध्यान में तथा उनकी कथाओं में तुम सबों का अधिकार न रहे ॥५९॥ ब्राह्मणाधमों देवी भक्तों के सान्निध्य में तथा देवी के स्थान में अनुष्ठान करनें में तुम सब लोग उन्मुख न होओ ॥६०॥ कथाओं में देवी के उत्सवों के देखनें में तथा देवी के नामों का कीर्तन करने में हे ब्राह्मणधमों तुम लोग सदा अनुन्मुख रहो ॥६१॥ देवी के भक्त का सान्निध्य प्राप्त करने में तथा देवीभक्त की अर्चना करने में तुमलोग सदा अनधिकारी बनकर रहो ॥६२॥ शिवजी के उत्सव का दर्शन करने में तथा शिवभक्त की पूजा करने में तुमलोग सदा अनधिकारी बन कर रहो ॥६३॥ रुद्राक्ष के धारण, विल्वपत्र तथा शुद्ध भस्म के विषय में तुम लोग अनधिकारी बनकर रहो ॥६४॥ ब्राह्मणाधमों श्रौत तथा स्मार्त सदाचार के विषय में तथा ज्ञानमार्ग के विषय में तुमलोग सदा अनधिकारी बनकर रहो ॥६५॥ ब्राह्मणाधमों

भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६७॥ स्वाध्यायाध्ययने चैव तथा प्रवचनेऽपि च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६८॥ गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥६९॥ कृच्छ्रचांद्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च । भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः ॥७०॥ श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः । शंखचक्राद्यङ्किताश्च भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७१॥ कापालिकमतासक्ता बौद्धाशास्त्ररताः सदा । पाखंडाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७२॥ पितृमातृसुतभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा । भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः॥७३॥ वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा । धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७४॥ पांचरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते । बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणधमाः ॥७५॥ मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामिनस्तथा । परस्त्रीलंपटाः सर्वे भवत ब्राह्मणाधमाः ॥७६॥ युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा । मद्दत्तशापदग्धास्ते भविष्यन्ति भवत्समाः ॥७७॥ किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी । गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता ॥७८॥ अंधकूपादिकुण्डेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः । व्यास उवाच– वाग्दंडमीदृशं कृत्वाऽप्युपस्पृश्य जलं ततः ॥७९॥ जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः । प्रणनाम महादेवीं साऽपि देवी परात्परा ॥८०॥ ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्वयं चित्ते चकार ह । अद्यापि तस्या

अद्वैतज्ञान की निष्ठा के विषय में तथा शमदमादि साधनों के विषय में तुमलोग सदा अनधिकारी बनकर रहो ॥६६॥ ब्राह्मणाधमों नित्य आदि कर्मों के अनुष्ठान में एवं अग्निहोत्र आदि कर्मों में तुमलोग सदा अनधिकारी बनकर रहो ॥६७॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोग वेदाध्ययन करने में तथा वेद का प्रवचन करने में सदा अनधिकारी बन कर रहो ॥६८॥ गोदान आदि दानों में तथा पितृश्राद्ध में तुमलोग अनधिकारी बनकर रहो ॥६९॥ कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत के करने में तथा प्रायश्चित्त कर्म में तुमलोगों का अधिकार न हो ॥७०॥ श्रीदेवी से भिन्न देवताओं में तथा शंख चक्र आदि के चिह्नों को धारण करने में तुम लोगों का अधिकार होए ॥७१॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोग कापालिकमतानुरागी, बौद्धशास्त्रानुरागी, तथा पाखण्डी हो जाओ ॥७२॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोग पिता, माता, पुत्र तथा कन्या को बेचने वाले एवं अपनी पत्नी को बेंचने वाले हो जाओ ॥७३॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोग वेद बेचने वाले, तीर्थ बेचने वाले तथा धर्म बेंचने वाले हो जाओ ॥७४॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोगों की पाञ्चरात्र, कामशास्त्र, कापालिक मत तथा बौद्धागमों में श्रद्धा हो जाय ॥७५॥ ब्राह्मणाधमों तुमलोग मातृगामी, कन्यागामी, भगिनीगामी तथा परस्त्री लंपट हो जाओ ॥७६॥ तुमलोगों के वंश में उत्पन्न होने वाले स्त्री तथा पुरुष मेरे शाप से अभिशप्त होने के कारण तुमलोगों के ही समान हो जायँ ॥७७॥ मैं अधिक क्या कहूँ, सर्वश्रेष्ठ देवता गायत्री तुमलोगों पर कुपित हो जायँ ॥७८॥ तुमलोग अन्धकूप आदि नरक कुण्डों में सदा पड़े रहो । **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से शाप देकर महर्षि गौतम ने जल से आचमन किया ॥७९॥ उसके बाद वे अत्यन्त उत्सुक होकर

वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते ॥८१॥ उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखांबुजा । भुजंगायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते ॥८२॥ शांतिं कुरु महाभाग
कर्मणो गतिरीदृशी । इति देवीं प्रणम्याथ ततोऽगात्स्वाश्रमं प्रति ॥८३॥ ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः । गायत्री विस्मृता
सर्वैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥८४॥ ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु पश्चात्तापयुतास्तथा । प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दंडवत्पतिता भुवि ॥८५॥ नोचुः किंचन वाक्यं तु
लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः । प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः ॥८६॥ प्रार्थयामासुरभितः परिवार्य मुनीश्वरम् । करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच
ह ॥८७॥ कृष्णावतारपर्यन्तं कुंभीपाके भवेत्स्थितिः । न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा ॥८८॥ ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि
वाम् । मदुक्तं सर्वमेतत्तु भवेदेव न चान्यथा ॥८९॥ मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्यदीषणा । तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपंकजम् ॥९०॥
व्यास उवाच– **इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः । प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शांतिं जगाम ह ॥९१॥ एतस्मात्कारणाद्राजन्गते कृष्णे तु**
धीमति । कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुम्भीपाकात्तु निर्गताः ॥९२॥ भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये । संध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः॥९३॥
वेदभक्तिविहीनाश्च पाखण्डमतगामिनः । अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥९४॥ मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जानंति कर्हिंचित् । तप्तमुद्रांकिताः

गायत्री का दर्शन करने के लिए गये । उन्होंने गायत्री देवी को प्रणाम किया और परात्पर देवी गायत्री का भी ब्राह्मणों के इस कृत्य को देखकर मुख आश्चर्य
युक्त हो गया । आज भी उनका मुख आश्चर्य युक्त दिखता है ॥८०-८१॥ गायत्री देवी ने मुनि गौतम से मुस्कुराते हुए कहा, सर्प को दुग्ध पिलाने से उसका
विष ही बढ़ता है ॥८२॥ हे महाभाग ! आप धैर्य धारण करें, कर्मों की ऐसी ही विचित्र गति होती है । इस तरह से देवी को प्रणाम करके महर्षि अपने
आश्रम में आये ॥८३॥ उसके बाद अभिशप्त उन ब्राह्मणों की वेदराशि भूल गयी । वे सब गायत्री भी भूल गये, यह बड़े आश्चर्य की बात हो गयी ॥८४॥
वे सब मिलकर पश्चात्ताप करते हुए पृथिवी पर गिरकर मुनि को साष्टाङ्ग प्रणाम किये ॥८५॥ वे कुछ भी बोल न सके लंज्जा के कारण उनका मुख नीचे
हो गया था । वे बार-बार कह रहे थे, प्रसन्न हो जाइये । प्रसन्न हो जाइये !! प्रसन्न हो जाइये !!!॥८६॥ उन सबों ने चारो ओर से घेर कर मुनि से प्रार्थना
किया यह देखकर करुणापूर्ण हृदय वाले मुनि ने उन सबों से कहा ॥८७॥ मेरा वाक्य झूठा नहीं हो सकता है । कृष्णावतार पर्यन्त तुमलोग कुम्भीपाक में
पड़े रहोगे ॥८८॥ उसके बाद कलियुग में तुम लोगों का जन्म होगा मैंने जो कुछ कहा है वह मृषा नहीं हो सकता है ॥८९॥ मेरे शाप से मुक्ति पाने के
लिए यदि तुमलोगों की इच्छा हो तो गायत्री के चरण कमलों की सेवा करना ॥९०॥ **व्यासजी ने कहा–** इस तरह से उन सबों को त्यागकर महर्षि गौतम
यह सब कुछ प्रारब्धकर्म जन्य मानकर शान्त हो गये ॥९१॥ हे राजन ! इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण के परंधाम चले जाने पर वे ब्राह्मण कलियुग के प्रारम्भ
में कुम्भीपाक से निकले ॥९२॥ पहले से ही शापदग्ध होने के कारण वे ब्राह्मण त्रिकाल संध्या तथा गायत्री जप से रहित हो गये ॥९३॥ वे वेद

केचित्कामाचाररताः परे ॥९५॥ कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथापरे । पंडिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः ॥९६॥ लपटाः परदारेषु दुराचारपरायणाः । कुम्भीपाकं पुनः सर्वे यास्यन्ति निजकर्मभिः ॥९७॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्संसेव्या परमेश्वरी । न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा ॥९८॥ नित्या चोपासना शक्तेर्यां विना तु पतत्यधः । सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयाऽनघ ॥९९॥ अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम् । यत्परं स्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः ॥१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

व्यास उवाच– **ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः । मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते ॥१॥ सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः । पुरा परांबयैवायं कल्पितो मनसेच्छया ॥२॥ सर्वादौ निजवासार्थं प्रकृत्या मूलभूतया । कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः ॥३॥**

की भक्ति से रहित तथा पाखण्ड मतानुयायी होकर अग्निहोत्र तथा स्वाहा एवं स्वधा कर्म से रहित हो गये ॥९४॥ उनको अव्यक्त मूलप्रकृति का ज्ञान नहीं हैं, कुछ लोगों ने तप्तमुद्रा धारण कर लिया तो कुछ स्वच्छन्दचारी हो गये ॥९५॥ वे सब पण्डित होकर भी कापालिक, कौलिक, बौद्ध तथा जैन होकर दुराचारी हो गये ॥९६॥ परस्त्री लंपट तथा दुराचारी होने के कारण वे पुनः कुम्भीपाक नरक में जायेंगे ॥९७॥ अतएव हे राजन् ! हर प्रकार से परमेश्वरी की आराधना करनी चाहिए । विष्णु तथा शिव की उपासना नित्य नहीं है ॥९८॥ नित्य ही शक्ति की उपासना करनी चाहिए, उसके बिना ब्राह्मण का पतन हो जाता है । हे अनघ! आपने जो कुछ भी पूछा है, उसे मैंने संक्षेप में बतला दिया ॥९८॥ इसके बाद पराम्बा के सर्वश्रेष्ठ स्थान मणिद्वीप का वर्णन आप सुनें ॥१००॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

मणिद्वीप का वर्णन १

व्यासजी ने कहा– ब्रह्मलोक से ऊपर जो सर्वलोक सुना जाता है, वही मणिद्वीप है, वहीं पर देवी विराजती है ॥१॥ यह लोक सभी लोकों से श्रेष्ठ

गोलोकादपि सर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः । नैतत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरं विद्यते क्वचित् ॥४॥ छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसंतापनाशकम् ।
छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्मांडानां तु सत्तमः ॥५॥ बहुयोजनविस्तीर्णो गंभीरस्तावदेव हि । मणिद्वीपस्य परितो वर्तते त सुधोदधिः ॥६॥
मरुत्संघट्टनोत्कीर्णतरंगशतसंकुलः । रत्नाच्छवालुकायुक्तो झषशंखसमाकुलः ॥७॥ वीचिसंघर्षसंजातलहरीकणशीतलः ।
नानाध्वजसमायुक्तनानापोतगतागतैः॥८॥ विराजमानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान् । तदुत्तरमयोधातुनिर्मितो गगने ततः ॥९॥ सप्तयोजन विस्तीर्णः
प्राकारो वतति महान् । नाना शस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥१०॥ रक्षका विवसंत्यत्र मोदमानाः समंततः । चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वितः॥११॥
नानागणैः परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप । दर्शनार्थं समायांति ये देवा जगदीशितुः ॥१२॥ तेषां गणा वसंत्यत्र वाहनानि च तत्र हि ।
विमानशतसंघर्षघंटास्वनसमाकुलः ॥१३॥ हयह्रेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुखः । गणैः किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिताः ॥१४॥ सेवका देवसंघानां
भ्राजंते तत्र भूमिप । तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्दः केनचित्क्वचित् ॥१५॥ कस्यचिच्छ्रूयतेऽत्यंतं नानाध्वनिसमाकुले । पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्णसरांसि

होने के कारण सर्वलोक कहा जाता है । प्राचीन काल में पराम्बा ने अपने मन से इसका निर्माण किया था । सबसे पहले मूलप्रकृति ने अपने निवास के
लिए कैलास, वैकुण्ठ तथा गोलोक इन सबों से श्रेष्ठ चूकि इसको बनाया है, इसीलिए इसको सर्वलोक कहते हैं । त्रैलोक्य में इसके समान सुन्दर कोई भी
दूसरा स्थान नहीं है ॥४॥ यह त्रैलोक्य के छत्रस्वरूप तथा संसार के सन्ताप को नष्ट करने वाला है । वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की छत्रछाया रूप है ॥५॥
मणिद्वीप के चारो ओर अनेक योजन विस्तृत तथा उतना ही चौड़ा सुधासागर विद्यमान है । वायु के संघर्ष से उठी हुई अनेक तरङ्गों से वह युक्त है । वह
रत्नमय बालू तथा मत्स्यों एवं शंख से भरा पड़ा है ॥७॥ लहरियों के संघर्ष से उठी हुई बड़ी-बड़ी लहरें चारो ओर शीतल जल का कण फैलाती है ।
अनेक ध्वजों तथा अनेक नौकाओं के आने-जाने से उस सुधासागर की शोभा बढ़ती है ॥८॥ उस सुधामय समुद्र के चारो ओर रत्नमय वृक्ष सुशोभित होते
हैं । उस समुद्र के बाद लौहनिर्मित गगन चूम्बी चाहारदिवारी है । यहाँ पर अनेक शस्त्रों तथा आयुधों से सम्पन्न अनेक प्रकार के युद्ध करने में निपुण ॥१०॥
चारो ओर प्रसन्नतापूर्वक रक्षक निवास करते हैं । उस प्रकार (चाहारदिवारी) में चार द्वार हैं तथा सैकड़ो द्वारपाल हैं ॥११॥ राजन् उस चाहारदिवारी के भीतर
देवी के भक्त के अनेक गण रहते हैं । जगदम्बा का दर्शन करने के लिए जो देवी के भक्त देवता आते हैं, उन सबों के गण और वाहन वहीं रहते हैं।
वहाँ सैकड़ों विमानों की घंटा ध्वनि होती रहती है ॥१३॥ घोड़ों की हिनहिनाहट तथा खुर के अघात से दिशाएँ ध्वनित होती रहती हैं । वहाँ वेत्रधारी गणों
की हँसी की ध्वनि सुनायी देती है ॥१४॥ राजन् ! उस कोलाहल में किसी को भी कोई भी बात समझ में नहीं आती हैं, बड़ा ही प्रयास करने पर
किसी की बात समझ में आती है । वहाँ पर पद-पद पर मीठे जल के सरोवर हैं ॥१५-१६॥ राजन् वहाँ पर रत्न वृक्षों से सुशोभित अनेक वाटिकाएँ हैं।

च ॥१६॥ वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिताः । तदुत्तरं महासारधातुनिर्मितमंडलः ॥१७॥ सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पर्शि यच्छिरः । तेजसा स्याच्छतगुणः पूर्वसालादयं परः ॥१८॥ गोपुरद्वारसहितो बहुवृक्षसमन्वितः । या वृक्षजातयः संति सर्वास्तास्तत्र संति च ॥१९॥ निरंतरं पुष्पयुताः सदाफलसमन्विताः । नवपल्लवसंयुक्ताः परसौरभसंकुलाः ॥२०॥ पनसा बकुला लोध्राः कर्णिकाराश्च शिंशपाः । देवदारुकांचनारा आम्राश्चैव सुमेरवः ॥२१॥ लिकुचा हिंगुलाश्चैला लवंगाः कट्फलास्तथा । पाटला मुचुकुन्दाश्च फलिन्यो जघनेफलाः ॥२२॥ तालास्तमालाः सालाश्च कंकोला नागभद्रकाः । पुन्नागाः पीलवः साल्वका वै कर्पूरशाखिनः ॥२३॥ अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः । गणिका बंधुजीवाश्च जंबीराश्च कुरंडकाः ॥२४॥ चांपेया बंधुजीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः । कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चन्दनपादपाः ॥२५॥ खर्जूरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः । क्षीरवृक्षाश्च खदिराश्चिंचाभल्लातकास्तथा ॥२६॥ रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च । तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च ॥२७॥ इत्यादितरुजातीनां वनान्युपवनानि च । नानावापीशतैर्युक्तान्येवं संति धराधिप ॥२८॥ कोकिलारावसंयुक्ता गुंजद्भ्रमरभूषिताः । निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्धच्छायास्तरूत्तमाः ॥२९॥ नानाऋतुभवा वृक्षा ननापक्षिसमाकुलाः । नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः ॥३०॥ पारावतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः । हंसपक्षसमुद्भूतवातव्रातैश्चलद्द्रुमम् ॥३१॥ सुगंधग्राहिपवनपूरितं

उस लौहनिर्मित परकोटे के बाद कांस्य निर्मित परकोटा है ॥१७॥ यह परकोटा पहले वाले परकोटे से बहुत बड़ा है । इसका शिखर गगन चुम्बी है । यह पहले परकोटे से सौ गुना अधिक तेजः सम्पन्न है ॥१८॥ गोपुर तथा द्वार से युक्त इस परकोटे में अनेक प्रकार के वृक्ष हैं । वृक्षों की जितनी जातियाँ होती है, वे सबके सब यहाँ विद्यमान हैं ॥१९॥ वे सब सदा पुष्प, फल, नवीन पल्लव तथा सर्वोत्तम सुगन्धि से युक्त रहते हैं ॥२०॥ कटहल, मौलिश्री, लोध्र कर्णिकार, शिंशपा, देवदारु, कचनार, आम और सुमेरु के वृक्ष वहाँ विद्यमान हैं ॥२१॥ लिकुच (बड़हर) हिंगुल, लवंग, इलायची, जायफल, गुलाब, मुचकुन्द, फलिनी तथा कठूमर के वृक्ष वहाँ विद्यमान हैं ॥२२॥ ताड़, तमाल, साल, कंकोल, नागभद्रक, पुन्नाग, पीलु, साल्व, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, अनार, गणिका, दुपहरिया, जंबीर, कुरंकि, चम्पा, बन्धुजीव, धतूर, कालागुरु, चन्दन, खर्जूर, जूही, तालपर्णी, ईख, दूध वाले वृक्ष (पीपल, पाकड़, वर, गूलर आदि) खैर, ईमली, भल्लातक, रुचक (रेंड़) कूटज, विल्ववृक्ष, तुलसीवन तथा मालती के वन विद्यमान हैं ॥२२-२७॥ इस तरह की वृक्ष की जातियों के वन तथा उपवन वहाँ पर हैं । हे राजन् ! इसी तरह की सैकड़ों बावलियाँ हैं ॥२८॥ कोयलों के कूजन से युक्त तथा भ्रमरों की गुञ्जन ध्वनि से भूषित वहाँ के वृक्षों से सदा रस टपकते रहते हैं, ऐसे उत्तम वृक्षों की वहाँ सधन छाया बनी रहती है ॥२९॥ अनेक ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले वे

तद्वनोत्तमम् । सहितं हरिणीयूथैर्धावमानैरितस्ततः ॥३२॥ नृत्यद्बर्हिकदंबस्य केकारावैः सुखप्रदैः । नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्त्रावि समंततः ॥३३॥ कांस्यसालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः । चतुरस्त्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः ॥३४॥ द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये संप्रोक्ता कल्पवाटिका । येषां तरूणां पुष्पाणि कांचनाभानि भूमिप ॥३५॥ पत्राणि कांचनाभानि रत्नबीजफलानि च । दशयोजनगंधो हि प्रसर्पति समंततः ॥३६॥ तद्वनं रक्षितं राजन्वसंतेनर्तुनाऽनिशम् । पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः ॥३७॥ पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासवविघूर्णितः । मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥३८॥ क्रीडतः स्मेरवदने सुमस्तबककंदुकैः । अतीव रम्यं विपिनं मधुस्त्रावि समंततः ॥३९॥ दशयोजनपर्यंतं कुसुमामोदवायुना । पूरितं दिव्यगंधर्वैः सांगनैर्गानलोलुपैः ॥४०॥ शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तकोकिलनादितम् । वसंतलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम् ॥४१॥ ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः । समुच्छ्रायः स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया ॥४२॥ संतानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप । दशयोजनगंधस्तु प्रसूनानां

वृक्ष, अनेक प्रकार के पक्षियों से भरे रहते हैं, अनेक प्रकार के रसों को प्रवाहित करने वाली नदियों से वे सुशोभित होते हैं ॥३०॥ पारावत (कबूतर) तोते, मैना तथा हंस आदि पक्षिसमूह के पंखों से निकली हुई हवा से वे वृक्ष सदा हिलते रहते हैं ॥३१॥ वहाँ के उत्तम वन की सुगन्धि लेकर चलने वाली वायु से वन सुगन्धित रहते हैं । इधर-उधर दौड़ने वाली हरिणियों के समूह से वे सम्पन्न हैं ॥३२॥ नाचते हुए मयूरों की सुखप्रद केकाध्वनि से वह वन ध्वनित होता रहता है । वहाँ चारो ओर दिव्य मधु टपकता रहता है ॥३३॥ कांस्य प्राकार के बाद ताम्बे का परकोटा बतलाया गया है । उसका आकार चतुरस्त्र तथा समान आकर वाला है । वह सात योजन ऊँचा है ॥३४॥ दोनों परकोटों के बीच में कल्पवृक्ष की वाटिका लगी है । राजन् ! जिस वन के वृक्षों के फल स्वर्णिम हैं, उनके पत्ते भी सुवर्ण के समान चमकते हैं, उनके फलों के बीज रत्नों के हैं । उस वन की सुगन्धि दशयोजन पर्यन्त चारो ओर फैलती रहती है ॥३६॥ राजन् ! इस वन की रक्षा सदा वसन्त ऋतु करती है । वसन्त पुरुष रत्न सिंहासन पर बैठा रहता है, फूलों के बने छत्र से सुशोभित रहता है ॥३७॥ वह फूलों के अलंकार से अलंकृत रहता है, तथा पुष्प रसों से निर्मित मदिरा के मद में विघूर्णित होता रहता है । उसकी दो अनुकूल पत्नियाँ हैं, मधुश्री और माधवश्री ॥३८॥ मुस्कान मण्डित मुख वाली वे दोनों पुष्प गुच्छ से निर्मित कंदुकक्रीडा करती रहती हैं । उस अत्यन्त मनोहर वन में चारो ओर मधु बहता रहता है ॥३९॥ फूलों की सुगन्धि लेकर चलने वाली वायु दश योजन पर्यन्त के वातावरण को सुगन्धिमय बनाये रखती है । वह वन पत्नियों से युक्त गानलोलुप गन्धर्वों से भरा रहता है ॥४०॥ वह सुन्दर दिव्य वन मत्तकोयलों की ध्वनि से निनादित होता रहता है । कामियों के कामरस को बढ़ाने वाले उस वन में सदा वसन्त ऋतु ही बनी रहती है ॥४१॥ उस ताम्बे के परकोटे के बाद शीशे का परकोटा बतलाया गया है । यह सात योजन ऊँचा है । राजन् ! उन दोनों परकोटों के बीच में सन्तान वृक्ष की वाटिका बतलायी गयी है । उस वाटिका के पुष्पों की सुगन्धि से दश योजन पर्यन्त

समंततः ॥४३॥ हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरंतरम् । अमृतद्रवसंयुक्तफलानि मधुराणि च ॥४४॥ ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्या वाटिकाया नृपोत्तम। शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य संमते ॥४५॥ संतापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः । नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः॥४६॥ विलासिनीनां बृंदैस्तु चंदनद्रवपंकिलैः । पुष्पमालाभूषितैस्तु तालवृंतकरांबुजैः ॥४७॥ प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलांबुनिषेविभिः । सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः ॥४८॥ प्राकारो वर्तते राजन्मुनियोजनदैर्घ्यवान् । हरिचन्दनवृक्षाणां वाटी मध्ये तयोः स्मृता ॥४९॥ सालयोरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मेघवाहनः । विद्युत्पिंगलनेत्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः ॥५०॥ वज्रनिर्घोषमुखरश्चेंद्रधन्वा समंततः । सहस्रशो वारिधारा मुंचन्नास्ते गणावृतः ॥५१॥ नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्यारस्यमालिनी । अंबादुला निरत्निश्चाभ्रमंती मेघयंतिका ॥५२॥ वर्षयंती चिबुणिका वारिधारा च संमताः । वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मदविह्वलाः ॥५३॥ नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः । हरितानि तृणान्येव वेष्टिता यैर्धराऽखिला ॥५४॥ नदीनदप्रवाहाश्च प्रवहंति च वेगतः । सरांसि कलुषांबूनि रागिचित्तसमानि च ॥५५॥ वसंति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः। वापीकूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिताः ॥५६॥ ते गणा निवसंत्यत्र सविलासाश्च सांगनाः । आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥५७॥ पंचलोहात्मकः

सुगन्धित रहता है ॥४३॥ उस वाटिका में सदा सुवर्ण के समान कान्ति वाले पुष्प विकसित होते रहते हैं । उसके मधुर फल अमृत रस से परिपूर्ण रहते हैं ॥४४॥ राजन् ! उस वाटिका का रक्षक ग्रीष्मऋतु है । सदा अनुकूल रहने वाली उसकी दो पत्नियाँ हैं, शुक्रश्री और शुचिश्री ॥४५॥ वहाँ के वृक्षों की छाया संताप के भय से वृक्षों की छाया में निवास करते हैं । वह वन अनेक सिद्धों तथा अनेक देवों से समन्वित है ॥४६॥ चन्दन रस से लगायी हुई फूलों की माला से अलंकृत, हाथ में पंखा लिए हुई तथा शीतल जल का सेवन करने वाली विलासिनियों के समूह से वह वन सुशोभित है । शीशे के परकोटे के बाद आरकूट (पीतल) का परकोटा है ॥४५-४८॥ उसकी लम्बाई सात योजन है । शीशे तथा पीतल इन दोनों परकोटों के बीच मलय चन्दन के वृक्षों की वाटिका है ॥४९॥ उस वाटिका का रक्षक मेघवाहन वर्षा ऋतु पुरुष है । उसके बिजली के समान पीले नेत्र हैं, मेघ निर्मित उसका कवच है ॥५०॥ वज्र के समान ध्वनि करने वाला इन्द्रधनुष ही उसका धनुष है । वह अपने सहस्र गणों के साथ चारो ओर जल की धारा बरसाता रहता है ॥५१॥ नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमलिनी, अंबादुला, निरत्नि, अभ्रमंती, मेघयंतिका ॥५२॥ वर्षयन्ती, चिबुणिका, वरिधारा और सम्मता ये बारह देवियाँ वर्षा ऋतु की शक्तियाँ है । वे सदा मद से विह्वल बनी रहती है ॥५३॥ वहाँ के वृक्ष नवीन पल्लवों तथा नवीन लताओं से सुशोभित रहते हैं । वहाँ की हरी घासों से सारी पृथिवी भरी रहती है ॥५४॥ वहाँ की नदियों तथा नदों में प्रवाह वेग से बहता है । रागी मनुष्यों के चित्त के समान सरोवरों में गदला पानी भरा

सालो मध्ये मंदारवाटिका । नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता ॥५८॥ अधिष्ठाताऽत्र संप्रोक्तः शरदृतुरनामयः । इषुलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य संमते ॥५९॥ नानासिद्धा वसंत्यत्र सांगनाः सपरिच्छदाः । पंचलोहमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् ॥६०॥ दीप्यमानो महाशृंगैर्वर्तति रौप्यसालकः। पारिजाताटवीमध्ये प्रसूनस्तबकान्विता ॥६१॥ दशयोजनगंधीनि कुसुमानि समंततः । मोदयन्ति गणान्सर्वान् ये देवीकर्मकारिणः ॥६२॥ तत्राधिनाथः संप्रोक्तो हेमन्तर्तुर्महोज्ज्वलः । सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रंजयन्नृप ॥६३॥ सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते । वसंति तत्र सिद्धाश्च ये देवीब्रतकारिणः ॥६४॥ रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान् । सौवर्णसालः संप्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः ॥६५॥ मध्ये कदम्बवाटी तु पुष्पपल्लवशोभिता। कदम्बमदिराधाराः प्रवर्तन्ते सहस्रशः ॥६६॥ याभिर्निपीतपीताभिर्निजानन्दोऽनुभूयते । तत्राधिनाथः संप्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः ॥६७॥ तपःश्रीश्च तपस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य संमते । मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः ॥६८॥ नानाविलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः । निवसन्ति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः ॥६९॥ नानाभोगसमुत्पन्नमहनन्दसमन्विताः । सांगनाः परिवारैस्तु संघशः परिवारिताः ॥७०॥ स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान्।

रहता है ॥५५॥ वहाँ पर देवी की परिचर्या करने वाले देवता एवं सिद्ध निवास करते हैं । जो देवी के लिए वापी, कूप तथा तालाबों को बनाकर समर्पित करते हैं, उन लोगों का समूह ही यहाँ रहता है ॥५६॥ वे अपनी विलासिनियों के साथ यहाँ रहते हैं । पीतल के परकोटे के बाद सात योजन लम्बा पञ्च लोह निर्मित परकोटा है । उन दोनों परकोटों के बीच में मन्दार नामक वृक्षों की वाटिका है । वह अनेक फूलों तथा लताओं से भरी हुई तथा नवीन पल्लवों से सुशोभित रहती है ॥५७-५८॥ इस वाटिका का रक्षक निर्मल शरद ऋतु हैं । उसकी दो अनुकूल पत्नियाँ है, इषुलक्ष्मी और ऊर्जलक्ष्मी ॥५९॥ यहाँ पर अपनी पत्नियों तथा परिच्छदों के साथ अनेक सिद्धगण रहते हैं । पञ्चलौहमय प्रकार के बाद चाँदी की चाहर दिवारी है, उसका विस्तार सात योजन है॥६०॥ यह अपने शिखरों से प्रकाशित होता है । इन दोनों प्राकारों के बीच में पुष्पगुच्छों से सुशोभित पारिजातवन है ॥६१॥ यहाँ के सुगन्धित पुष्प दश योजन पर्यन्त देवी के सेवकों को अपने सुगन्ध से प्रसन्न रखते हैं ॥६२॥ इस वाटिका का रक्षक हेमन्त ऋतु पुरुष हैं । यह अपने गणों तथा आयुध के सभी रागियों को प्रमुदित रखने का काम करता है ॥६३॥ उसके अनुकूल रहने वाली अपनी दो पत्नियाँ हैं सहश्री और सहस्यश्री ॥६४॥ यहाँ पर देवी का व्रत करने वालों का निवास है । उस चाँदी के प्राकार के बाद तप्त स्वर्ण से निर्मित सात योजन विस्तार वाला सुवर्ण का प्राकार है ॥६५॥ इन दोनों प्राकारों के बीच में पुष्पों से सुशोभित कदम्बवृक्ष की वाटिका है । यह पुष्पों एवं पल्लवों से सुशोभित है । यहाँ पर कदम्ब की मदिरा की हजारो धाराएँ प्रवाहित होती हैं ॥६६॥ उस मदिरा का पान करने से निजानन्द की अनुभूति होने लगती हैं । उस वन का संरक्षक शिशिर ऋतु पुरुष है ॥६७॥ उसकी दो अनुकूल पत्नियाँ हैं तपःश्री तथा तपस्या श्री । वह इन दोनों के साथ यहाँ शिशिर रूप में प्रसन्न रहता है ॥६८॥ वह वहाँ पर अनेक विलासों तथा

पुष्परागमयः सालः कुंकुमारुणविग्रहः ॥७१॥ पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च । रत्नवृक्षालबालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः ॥७२॥ प्राकारो यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः । वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्णजलानि च ॥७३॥ मंडपा मंडपस्तंभाः सरांसि कमलानि च । प्रकारे तत्र यद्यत्स्यात्तत्सर्वं तत्समं भवेत् ॥७४॥ परिभाषेयमुद्दिष्टारत्नसालादिषु प्रभो । तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप ॥७५॥ दिक्पाला निवसंत्यत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम् । दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः स्फूर्जद्वरायुधाः ॥७६॥ पूर्वाशायां समुंत्तुङ्गश्रृंगा पूरमरावती । नानोपवनसंयुक्तो महेद्रस्तत्र राजते ॥७७॥ स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका । समष्टिशतनेत्रस्य सहस्रगुणतः स्मृता ॥७८॥ ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान् । देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः ॥७९॥ देवांगनागणयुता शची तत्र विराजते । वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप ॥८०॥ स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते । निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः ॥८१॥ याम्याशायां यमपुरी तत्र दंडधरो महान् । स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः ॥८२॥ निजशक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान् । नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः ॥८३॥ खड्गधारी

अनेक गणों के साथ निवास करता है । वहाँ पर अपनी पत्नी तथा परिवार के साथ, अनेक प्रकार के भोगों से उत्पन्न आनन्द युक्त उन महासिद्धों का समुदाय निवास करता है जो देवी के लिए अनेक प्रकार का दान देता हैं ॥६९-७०॥ उस हिरण्मय प्राकार के बाद सात योजन लम्बा कुंकुम के समान अरुण विग्रह वाला पुष्परागमणि से निर्मित प्राकार है ॥७१॥ वहाँ की भूमि वन तथा उपवन की भूमि पुष्परागमणिमय है । वृक्ष तथा उनके आलबाल भी पुष्पराग मणिमय ही हैं ॥७२॥ जिस रत्न से निर्मित प्राकार है, उसी रत्न के वृक्ष भी हैं, यही नहीं वनभूमि, पक्षी, रत्नों के वर्ण तथा जल भी पुष्पराग मणिमय ही है ॥७३॥ मण्डप, मण्डप के स्तम्भ सरोवर तथा कमल भी उसी वर्ण के हैं जिस वर्ण का प्राकार है ॥७४॥ राजन् ! परकोटों के विषय में यह संक्षिप्त परिचय है। पूर्व-पूर्व परकोटों की अपेक्षा उत्तरोत्तर परकोटों का तेज लाख गुणा अधिक है ॥७५॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डों के दिक्पाल, अपने देदीप्यमान आयुध धारण करके एक समाज बनाकर यहाँ निवास करते हैं ॥७६॥ इसके पूर्व दिशा में उन्नत शिखरों वाली अमरावती नगरी है । अनेक उपवनों से युक्त वहाँ पर इन्द्र निवास करते हैं ॥७७॥ स्वर्गलोक में स्वर्ग की जितनी शोभा है, उसकी अपेक्षा यहाँ अधिक शोभा है । यहाँ इन्द्र का समुदाय सहस्र गुणा अधिक गुणवान् है ॥७८॥ यहाँ ऐरावत हाथी पर विराजमान तथा हाथ में वज्र लिए हुए प्रतापी इन्द्र देवताओं की सेना से घिरे हुए रहते हैं ॥७९॥ वहाँ देवस्त्रियों के समूह से युक्त शची विराजती हैं । यहाँ के अग्निकोण में अग्नि की पुरी स्वर्ग की अग्निनगरी के समान है ॥८०॥ वहाँ स्वाहा तथा स्वधा नामक अपनी पत्नियों के साथ अग्नि देव विराजते हैं । वे वहाँ अपने वाहन, तथा अलंकार से अलंकृत तथा अपने देवगणों के साथ रहते हैं ॥८१॥ दक्षिण दिशा में यम की नगरी हैं। वहाँ यम दण्ड धारण किए रहते हैं । उनके साथ चित्रगुप्त आदि यमदूत भी रहते हैं ॥८२॥ यहाँ सूर्यपुत्र यमराज अपनी शक्ति के साथ विराजते है । नैर्ऋत्य

स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्तियुक् । वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान् ॥८४॥ महाझषसमारूढो वारुणीमदविह्वलः । निजशक्तिसमायुक्तो निजयादोगणान्वितः ॥८५॥ समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः । वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधितिष्ठति ॥८६॥ वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिः परिवारितः । ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः ॥८७॥ मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः । उत्तरस्यां दिशि महान् यक्षलोकोऽस्ति भूमिप ॥८८॥ यक्षाधिराजस्तत्रास्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः । नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुंदिलो धननायकः ॥८९॥ मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः। मणिभूषो मणिस्त्रग्वी मणिकार्मुकधारकः ॥९०॥ इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक् । ईशानकोणे संप्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः ॥९१॥ अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतः । मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः ॥९२॥ स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः । स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः ॥९३॥ विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः । दशहस्तैः शतकरैः सहस्त्रभुजसंयुतैः ॥९४॥ दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः। अन्तरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः स्मृताः ॥९५॥ रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः । रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः॥९६॥

कोण में राक्षसों के साथ, खड्ग धारण किए हुए, तथा अपनी शक्ति के साथ निऋति देवता विराजमान हैं । पश्चिम दिशा में पाशधारी तथा प्रतापी वरुण विराजमान हैं ॥८४॥ वे सदा वारुणी के मद में विह्वल तथा घडियाल पर सावरी करते हैं । वे वहाँ अपनी शक्ति तथा यादोगण (जलचरों) के साथ रहते हैं ॥८५॥ वरुण लोक में वरुण अपनी पत्नी से प्रेम करते रहते हैं । यहाँ वायव्यकोण में विद्यमान वायुलोक में वायु का निवास है ॥८६॥ वे प्राणायाम सिद्ध योगियों से घिरे रहते हैं । वायुदेवता हाथ में ध्वज धारण करते हैं, उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं और उनका वाहन मृग है ॥८७॥ वायु देवता, मरुद्गणों तथा अपनी शक्ति के साथ रहते हैं । राजन मणिद्वीप की उत्तर दिशा में यक्षलोक है । वहाँ पर यक्षों के राजा कुबेर वृद्धि तथा ऋद्धि आदि शक्तियों के साथ विराजमान रहते हैं । धनों के स्वामी का पेट निकला हुआ है । उनके साथ नवनिधियाँ रहती हैं ॥८९॥ मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूषण, मणिमाली तथा मणिधनुर्धर ॥९०॥ इत्यादि यक्ष सेनापतियों के साथ अपनी शक्ति से सुशोभित कुबेर यहाँ विराजते हैं । यहाँ के ईशानकोण में महान रुद्रलोक है ॥९१॥ यह लोक अनेक रत्नों से जटित है और रुद्र इसके स्वामी हैं । क्रोध से इनके नेत्र चमकते हैं, ये अपने पीठ पर महातुणीर बाँधे रहते हैं ॥९२॥ इनके वायें हाथ में धनुष चमकता रहता है और इनके समान अनेक धनुर्धरी तथा त्रिशूल आदि धारण करने वाले असंख्य रुद्र इनके साथ बने रहते हैं॥९३॥ इन रुद्रों के विकृत मुख भयंकर हैं ये मुख से अग्नि वमन करते हैं । इनमें किसी के दशहाथ, किसी के सौ हाथ तथा किसी के हजार हाथ हैं ॥९४॥ इनके दश पैर, दशग्रीव, तीन नेत्र भयंकर शरीर हैं । ये अन्तरिक्ष तथा भूलोक में [illegible] वाले बतलाये गये हैं ॥९५॥ रुद्राध्याय में जिन रुद्रों का वर्णन है, उन रुद्रों से ये रुद्र समन्वित रहते हैं । इनके साथ करोड़ो रुद्राणियाँ तथा भद्रकाली आदि मातृकाएँ हैं ॥९६॥ ये रुद्र अनेक शक्तियों से युक्त

नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः । वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन्विराजते ॥९७॥ मुण्डमालाधरो नागबलयो नागकंधरः । व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः ॥९८॥ चिताभस्मांगलिप्तांगः प्रमथादिगणावृतः । निनदड्डुमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥९९॥ अट्टहासास्फोटशब्दैः संत्रासितनभस्तलः। भूतसंघसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः । ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च ॥१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **पुष्परागमयादग्रे कुंकुमारुणविग्रहः । पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी ॥१॥ दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वारसंयुतः । तन्मणिस्तंभसंयुक्ता मण्डपाः शतशो नृप ॥२॥ मध्ये भुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कला: । नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः ॥३॥**

डामरी आदि गणों से घिरे हुए वीरभद्र आदि के साथ विराजते हैं ॥९७॥ ये मुण्डों की माला धारण करते हैं, नागों से इनका वलय (कंकण) निर्मित है। इनके गले में नाग विराजमान हैं । व्याघ्रचर्म का इनका वस्त्र है और ये हाथी के चर्म का उत्तरीय (दुपट्टा) धारण करते हैं ॥९८॥ इनके अंगों में चिता के भस्म का लेप है, इनके साथ प्रमथ आदि गण रहा करते हैं । डमरु बजाकर ये दिशाओं का शब्द से भर देते हैं ॥९९॥ इसके अट्टहास से प्रतिध्वनित होकर आकाश संत्रस्त हो जाता है । ये भूतों के समूह से घिरे रहते हैं तथा भूतों के निवास रूप हैं । महेश्वर इनका नाम है । ईशानकोण का स्वामी होने के कारण इनका नाम ईशान है ॥१००॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

मणिद्वीप का वर्णन २

व्यासजी ने कहा– पुष्परागमय परकोटे के बाद पद्मराग मणिमय परकोटा है । इसका वर्ण कुंकुम के समान अरुण है । उसके बीच की भूमि भी पद्मराग मणिमय है ॥१॥ यह दश योजन लम्बा है । और इसमें गोपुर है । राजन् ! इसमें पद्मराग मणिमय सैकड़ों मण्डप है ॥२॥ उन दोनों प्रकारों के बीच में वीरवेष वाली अनेक भूषणों से भूषित तथा अनेक प्रकार के आयुध धारण की हुई चौसठ कलायें है ॥३॥ तत्-तत् लोकों में रहने वाली तथा अपने-अपने

प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः । समन्तात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा ॥४॥ स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः । तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय ॥५॥ पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च । श्रद्धा स्वाहा स्वाधाभिख्यामाया संज्ञा वसुन्धरा ॥६॥ त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी । सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताऽच्युतप्रिया ॥७॥ विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी । प्रकृति र्बिकृतिःसृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च ॥८॥ सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा । देवमाता भगवती देवकी कमलासना ॥९॥ त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी । लंबोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा बृकोदरी ॥१०॥ रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथाऽपरा । गगनवेगा पवनवेगा वेगा चैव ततः परम् ॥११॥ अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा । अनंगाऽनंगमथना तथैवानंगमेखला ॥१२॥ अनंगकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका । क्षयंकरी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम् ॥१३॥ सत्यवादिन्यथा प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता । उदाराख्या च वागीशा चतुःषष्टिमिताः स्मृताः ॥१४॥ ज्वलज्जिह्वाननाः सर्वा वमंत्यो वह्निमुल्बणम् । जलं पिबामः सकलं संहरामो विभावसुम् ॥१५॥ पवनं स्तंभयामोऽद्य भक्षयामोऽखिलं जगत् । इति वाचं संगिरंते क्रोधसंरक्तलोचनाः ॥१६॥ चापबाणधराः सर्वा युद्धायैवोत्सुकाः सदा । दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥१७॥ पिंगोर्ध्वकेश्यः संप्रोक्ताश्चापबाणकराः सदा । शताक्षौहिणिका सेनाऽप्येकैकस्याः प्रकीर्तिता ॥१८॥

लोक की अधीश्वरी पद्मराग परकोटे को चारो ओर से घेरे रहती हैं ॥४॥ ये अपने-अपने लोक के लोगों से युक्त तथा उस लोक के आयुधों से सम्पन्न हैं। हे जनमेजय ! मैं उन कलाओं का नाम बतलाता हूँ उसे आप सुनें ॥५॥ पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा ॥६॥ त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया ॥७॥ विमला, अमला, अरूणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति ॥८॥ सन्धा, माता, सती, हंसी, मर्दिका, वज्रिका, सप्तमुखी, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी॥१०॥ रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, परवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनङ्गा, अनङ्गमथना, अनंगमेखला ॥११-१२॥ अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशा ये चौसठ कलायें हैं ॥१३-१४॥ ये सब के सब अपने मुख से अग्नि की ज्वाला उगलती हैं । वे कहती रहती है हमलोग सारा जल पी जायेंगी, अग्नि को खा जायेंगी, वायु को स्तम्भित कर देंगी सम्पूर्ण जगत् को खा जायेंगी । क्रोध से अपनी आँखें लाल करके इसी तरह की वाणी कहती रहती हैं ॥१५-१६॥ ये सदा धनुष बाण धारण करके युद्ध करने के लिए उत्सुक रहती हैं । अपने दाँतों को कटकटाने की ध्वनि से दिशाओं को बहरी बना देती हैं ॥१७॥ इनके खड़े खड़े केश पीले वर्ण के हैं । हाथ में सदा धनुष-बाण धारण करती

एकैकशक्तेः सामर्थ्यं लक्षब्रह्मांडनाशने । शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम ॥१९॥ किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्नशक्यं वक्तुमेव तत् । सर्वाऽपि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थिता मुने ॥२०॥ रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा । शस्त्राणां गणना तद्वद्गणानां गणना तथा ॥२१॥ पद्मरागमयादग्रे गोमेदमणिनिर्मितः । दशयोजनदैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान् ॥२२॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी । गोमेदकल्पितान्येव तद्वासिसदनानि च ॥२३॥ पक्षिणः स्तंभवर्याश्च वृक्षा वाप्यः सरांसि च । गोमेदकल्पिता एव कुंकुमारुणविग्रहाः ॥२४॥ तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः । नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिताः ॥२५॥ प्रत्येकलोकवासिन्यः परिवार्य समंततः । गोमेदसाले सन्नद्धाः पिशाचवदना नृप ॥२६॥ स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः । क्रोधरक्तेक्षण भिंधि पच छिंधि दहेति च ॥२७॥ वदंति सततं वाचं युद्धोत्सुकहृदंतराः । एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता ॥२८॥ सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्मांडनाशिनी । तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप ॥२९॥ रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च । सर्वयुद्धसमारंभस्तत्र देव्या विराजते ॥३०॥ तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च । विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा

हैं । इनमें प्रत्येक के सौ-सौ अक्षौहिणी सेना है ॥१८॥ इनमें प्रत्येक की सेना में ब्रह्माण्ड का नाश कर देने की शक्ति है । और सौ अक्षौहिणी सेना भी उसी तरह की है ॥१९॥ यह कहा नहीं जा सकती है कि ये क्या नहीं कर सकती हैं । हे मुने उस प्राकार में सारी युद्ध सामग्री विद्यमान है ॥२०॥ यहाँ पर विद्यमान, रथों, घोड़ों, हाथियों, शस्त्रों तथा गणों की गणना नहीं की जा सकती है ॥२१॥ पद्मरागमय परकोटे के आगे गोमेद रत्न से बना हुआ दश योजन लम्बा परकोटा है ॥२२॥ इस परकोटे की कान्ति जपाकुसुम के समान है । उसके बीच की भूमि भी वैसी ही है । वहाँ के निवासियों का गृह भी गोमेद रत्न से ही बना है ॥२३॥ वहाँ के पक्षी, स्तम्भ, वृक्ष, वापियाँ तथा सरोवर भी गोमेद रत्न से ही निर्मित हैं । उनका विग्रह भी गोमेद निर्मित है॥२४॥ उसके बीच में बत्तीस शक्तियों का निवास है । वे गोमेदरत्न से निर्मित अनेक शस्त्रों एवं अस्त्रों को धारण करती हैं ॥२५॥ वहाँ रहने वाली शक्तियाँ उस गोमेद परकोटे को घेरे रहती हैं । उन सबों का मुख पिशाच के मुख के समान है ॥२६॥ ये अपने हाथ में चक्र धारण करती हैं और स्वर्गलोक निवासी सदा इनकी पूजा किया करते हैं । इनकी आँखें क्रोध से लाल रहती हैं । और सदा पच-पच, दह-दह, भिंधि-भिंधि, छिंधि-छिंधि बोलती रहती हैं ॥२७॥ इनका हृदय सदा युद्ध करने के लिए उत्सुक रहता है । इन एक-एक महाशक्तियों की सेना दश-दश अक्षैहिणी है ॥२८॥ इनमें प्रत्येक महाशक्ति की शक्ति लाखों ब्रह्माण्डों को विनष्ट कर देने की है । राजन् ! इस प्रकार की शक्तियों की महासेना का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? यहाँ के रथों तथा वाहनों की गणना नहीं की जा सकती है । वहाँ पर देवी की समस्त युद्ध सामग्री विराजमान रहती है ॥२९-३०॥ उन महाशक्तियों के पाप नाशक नामों को मैं बतला

सिनीवाली कुहूस्तथा ॥३१॥ रुद्रा वीर्या प्रभा नन्दा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा । कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी ॥३२॥ विकृतिर्दंडिमुण्डिन्यौ सेंदुखंडा शिखंडिनी । निशुंभशुंभमथिनी महिषासुरमर्दिनी ॥३३॥ इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्धशरीरिणी । नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ॥३४॥ अंबिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृता; । यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्मांडनाशनम् ॥३५॥ पराजयो न चैतासां कदाचित्क्वचिदस्ति हि । गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः ॥३६॥ दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारसंयुतः । कपाटशृंखलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः॥३७॥ सालस्तन्मध्यभूम्यादि सर्वं हीरमयं स्मृतम् । गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गाङ्गणानि च ॥३८॥ वृक्षालबालतरवः सारंगा अपि तादृशाः । दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूपसंयुताः ॥३९॥ तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसंति परिचारिकाः । एकैका लक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः ॥४०॥ तालवृंतधराः काश्चिच्चषकाढ्यकरांबुजाः । काश्चित्तांबूलपात्राणि धारयंत्योऽतिगर्विताः ॥४१॥ काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणां विधारिकाः । नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकरांबुजाः ॥४२॥ नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुंकुमलेपनम् । धारयंत्यः कज्जलं च सिदूरचषकं पराः ॥४३॥ काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रताः । काश्चित्तु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः ॥४४॥ पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गारकारिकाः । नानाविलासचतुरा

रहा हूँ । विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू ॥३१॥ रुद्रा, वीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषिणी, ऋद्धि, कालरात्रि, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथिनी, महिषासुर मर्दिनी ॥३२-३३॥ इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्द्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी॥३४॥ अम्बिका तथा ह्लादिनी ये शक्तियाँ बतलायी गयी है । यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ तो ब्रह्माण्ड का नाश हो जाय ॥३५॥ इन सबों का कभी भी कहीं भी पराजय नहीं होता है । गोमेदमय प्राकार के आगे हीरे से निर्मित ॥३६॥ तथा दशयोजन ऊँचे गोपुर द्वार वाला प्राकार है । उसमें शृंखलावद्ध कपाट है, वह नवीन वृक्षों से सुशोभित है ॥३७॥ उसके बीच में विद्यमान सम्पूर्ण भूमि आदि हीरे की हैं । गृह, वीथियाँ, गलियाँ, राजमार्ग तथा आङ्गन ॥३८। वृक्ष उनके आलबाल, तथा मृग आदि भी हीरे के हैं ॥३९॥ यहाँ पर श्रीभुवनेश्वरी की परिचारिकायें रहती हैं । प्रत्येक की लाखों मद के गर्व से युक्त लाखो दासियाँ हैं ॥४०॥ कुछ पंखा लिए रहती हैं, कुछ अपने हाथ में चषक (पान पत्र) लिए रहती हैं । कुछ मद के गर्व से युक्त दासियाँ ताम्बूल पात्र को लिए रहती हैं ॥४१॥ कुछ छत्र तथा कुछ चामर धारण करती हैं । कुछ अनेक प्रकार के वस्त्रों को लिए रहती हैं, कुछ अपने हाथ में पुष्प लिए रहती हैं ॥४२॥ कुछ अनेक दर्पणों को लिए रहती हैं और कुछ कुंकुम का लेप लिए रहती हैं । कुछ काजल लिए रहती हैं तथा कुछ सिन्दूर के पात्र को लिए रहती हैं॥४३॥ कुछ चित्र बनाती हैं तो कुछ दासियाँ पैर दबाने का काम करती हैं । कुछ अनेक भूषणों को धारण करके आभूषण सजाने का काम करती हैं ॥४४॥ कुछ

बह्व्य एवंविधाः पराः ॥४५॥ निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि । देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः ॥४६॥ एता दूत्यः स्मृता देव्याः श्रृङ्गारमदगर्विताः । तासां नामानि वक्ष्यामि श्रृणु मे नृपसत्तम ॥४७॥ अनंगरूपा प्रथमाऽप्यनंगमदना परा । तृतीया तु ततः प्रोक्ता सुंदरी मदनातुरा॥४८॥ ततो भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका । स्यात्सर्वशिशिराऽनंगवदनाऽनंगमेखला ॥४९॥ विद्युद्दामसमानांग्यः क्वणत्कांचीगुणान्विताः। रणन्मंजीरचरणा बहिरंतरतस्ततः ॥५०॥ धावमानास्तु शोभन्ते सर्वा विद्युल्लतोपमाः । कुशलाः सर्वकार्येषु वेत्रहस्ताः समन्ततः ॥५१॥ अष्टदिक्षु तथैतासां प्राकाराद्बहिरेव च । सदनानि विराजंते नानावाहनहेतिभिः ॥५२॥ वज्रसालादग्रभागे सालो वैदूर्यनिर्मितः । दशयोजनतुंगोऽसौ गोपुरद्वारभूषितः॥५३॥ वैदूर्यभूमिः सर्वाणि गृहाणि विविधानि च । वीथ्यो रथ्या महामार्गाः सर्वे वैदूर्यनिर्मिताः ॥५४॥ वापीकूपतडागाश्च स्रवंतीनां तटानि च । बालुका चैव सर्वाऽपि वैदूर्यमणिनिर्मिता ॥५५॥ तत्राष्टदिक्षु परितो ब्राह्म्यादीनां च मंडलम् । निजैर्गणैः परिवृतं भ्राजते नृपसत्तम ॥५६॥ प्रतिब्रह्माण्डमातॄणां ताः समष्टय ईरिताः । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कुमारी वैष्णवी तथा ॥५७॥ वाराही तथेंद्राणो चामुण्डाः सप्त मातरः । अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः ॥५८॥ ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः । जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः॥५९॥

पुष्पों का भूषण बनाती हैं तो कुछ फूलों से श्रृङ्गार करने का काम करती हैं । इस तरह की वहाँ बहुत सी श्रेष्ठ दासियाँ रहती हैं । जो अनेक प्रकार के विलास में चतुर हैं ॥४५॥ ये सभी दासियाँ युवती हैं तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं । देवी की कृपा के लेशमात्र से ये त्रैलोक्य को तुच्छ समझती हैं ॥४६॥ ये सभी देवी की दूतियाँ हैं और श्रृङ्गार के मद से गर्वित रहती हैं । राजन् ! मैं उन सबों का नाम बतलाता हूँ, आप उन्हें सुनें ॥४७॥ पहली दूती अनंगरूपा है, दूसरी दूती का नाम अनंगमदना है । तीसरी सुन्दरी है, चौथी मदनातुरा है, उसके बाद हैं ॥४८॥ भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनङ्गवदना और अनङ्गमेखला ॥४९॥ इन सबों के अङ्ग बिजली के समान देदीप्यमान हैं । उनकी करधनी से रुन-झुन की ध्वनि निकलती रहती है । उनके नुपूर बजते रहते हैं । ये सभी कार्यों में कुशल हैं । हाथ में बेंत लेकर भीतर बाहर दौड़ती रहती हैं । इनकी शोभा विद्युल्लता के समान होती है ॥५०-५१॥ इस प्रकार की भीतरी आठो दिशाओं में और बाहर भी इनके रहने के गृह हैं । उन गृहों में अनेक वाहन और आयुध हैं ॥५२॥ हीरा के प्राकार के आगे वैदूर्यमणि से निर्मित प्राकार है । यह दशयोजन ऊँचा और गोपुर के द्वार से भूषित है ॥५३॥ यहाँ की सारी भूमि, सभी गृह, वीथियाँ, गलियाँ, राजमार्ग, वापी, कूप, तड़ाग तथा झरनों के तट भी वैदूर्यमणि से निर्मित हैं । सारी बालुका भी वैदूर्यमणि से निर्मित है ॥५४-५५॥ वहाँ पर आठो दिशाओं में ब्राह्मी आदि माताओं का मण्डल रहता है । यह मण्डल अपने गणों से घिरा रहता है ॥५६॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड की मातृकाओं की यह समष्टि रूप है । ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा ये सात मातृकाएँ हैं, आठवीं मातृका महालक्ष्मी हैं । इस तरह से आठ मातृकाएँ कही गयी हैं ॥५७-५८॥

तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः । सज्जानि नृपते संति सालंकाराणि नित्यशः ॥६०॥ दंतिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिबिकास्तथा । हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा ॥६१॥ तैर्युक्ताः स्यंदनास्तद्वत्कोटिशो नृपनंदन । पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजैराकाशचुम्बिनः ॥६२॥ कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च । नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च ॥६३॥ वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः । दशयोजन तुंगोऽसाविंद्रनीलाश्मनिर्मितः ॥६४॥ तन्मध्यभूस्तथा वीथ्यो महामार्गा गृहाणि च । वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः ॥६५॥ तत्र पद्मं तु संप्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम् । षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम् ॥६६॥ तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च । सर्वोपस्करयुक्तानि समृद्धानि वसंति हि ॥६७॥ तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम । कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती ॥६८॥ श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः । श्रद्धा मेधा मतिः कांतिरार्या षोडश शक्तयः ॥६९॥ नीलजीमूतसंकाशाः करबालकरांबुजाः । समाः खेटकधारिण्यो युद्धोपक्रांतमानसाः ॥७०॥ सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः । प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः ॥७१॥ ब्रह्मांडक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः । नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः ॥७२॥ एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः । इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु

इन मातृकाओं का आकार ब्रह्मा रुद्र आदि देवताओं के समान है । ये अपनी-अपनी सेना के साथ रहकर जगत् का कल्याण करती हैं ॥५९॥ राजन् उस प्रकार के चारो द्वारों पर महेश्वरी के वाहन अलंकार से सजे हुए रहा करते हैं ॥६०॥ करोड़ों हाथी, करोड़ों पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड़, मयूर, तथा वृषभ ये सभी वाहन हैं ॥६१॥ राजन् ! इन वाहनों से युक्त करोड़ो रथ हैं । इनके पार्ष्णिग्रह दोनों बगाल रहने वाले सैनिक भी अपने हाथ में गगनचुम्बी ध्वजा लिए रहते हैं ॥६२॥ अनेक प्रकार के चिह्नों से युक्त करोड़ों विमान हैं, जो अनेक वाद्यों तथा महाध्वजों से युक्त हैं ॥६३॥ वैदूर्यमणि परकोटा के आगे इन्द्रनील मणि से निर्मित परकोटा है । यह दशयोजन ऊँचा है ॥६४॥ उस परकोटे के बीच की भूमि, वीथियाँ, महामार्ग, गृह, वापी, कूप तथा जलाशय ये सबके सब इन्द्रनील मणि से निर्मित हैं ॥६५॥ वहाँ पर अनेक योजन विस्तृत एक कमल है । लगता है कि वह सोलह आरों वाला दूसरा सुदर्शन चक्र हो ॥६६॥ वहाँ पर सोलह शक्तियों के अनेक स्थान हैं, जो सभी साधनों से युक्त और समृद्ध हैं । उन्हीं में वे सोलह शक्तियाँ रहती हैं ॥६७॥ राजन् ! आप सुनें, मैं उन सबों का नाम बतलाता हूँ । कराली, विकराली, उमा, सरस्वती ॥६८॥ श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति तथा आर्या ये सोलह शक्तियाँ हैं ॥६८-६९॥ इनकी कान्ति नीलमेघ के समान है । ये हाथ में तलवार तथा खेटक धारण किए रहती हैं और युद्ध करने के लिए उद्यत रहती हैं ॥७०॥ ये सभी श्रीजगदीश्वरी की सेनानियाँ हैं । ये ब्रह्माण्ड में रहने वाली शक्तियों की स्वामिनी हैं ॥७१॥ देवी की

बहुविस्तृतः ॥७३॥ मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्यवान् । मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलांबुजम् ॥७४॥ मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम् । तत्र देवीसमाकारा देव्यायुधधराः सदा ॥७५॥ संप्रोक्ता अष्ट मंत्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः । देवीसमानभोगास्ता इङ्गितज्ञास्तु पंडिताः॥७६॥ कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः । देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः ॥७७॥ नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम्। प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदन्ति च ॥७८॥ तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम । अनङ्गकुसुमा प्रोक्ताऽप्यनंगकुसुमातुरा ॥७९॥ अनंगमदना तद्वदनंगमदनातुरा । भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ॥८०॥ शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम् । पाशांकुशवराभीतिधरा अरुणविग्रहाः ॥८१॥ विश्वसंबन्धिनीं वार्ता बोधयन्ति प्रतिक्षणम् । मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोऽपरः ॥८२॥ सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान्। नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसमन्वितः ॥८३॥ मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च । षट्कोणयंत्रविस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु ॥८४॥ पूर्वकोणे चतुर्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः । कुण्डिकाक्षगुणाभीतिदंडायुधधरः परः ॥८५॥ तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता । वेदाः सर्वे मूर्तिमंतः

शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ब्रह्माण्ड को क्षुब्ध कर देने वाली हैं । वे अनेक रथों पर बैठी हुई तथा अनेक शक्तियों से युक्त हैं ॥७२॥ इन सबों के पराक्रम को बतलाने में हजार मुख वाले शेषनाग भी समर्थ नहीं है । इन्द्रनील मणि के प्राकार के आगे मुक्तामणि से निर्मित प्राकार बतलाया गया है । यह बहुत विस्तृत है । यह दशयोजन लम्बा है । इसके बीच की भूमि भी मुक्तमणि की ही है । इसके बीच में अष्टदल कमल है ॥७३-७४॥ गिरे हुए मुक्ता समूह के समान इसके केसर हैं । उन आठ दलों पर भुवनेश्वरी के ही समान आकार वाली, हाथ में आयुध लिए हुए देवियाँ विराजमान रहती हैं ॥७५॥ ये जगत् का समाचार बतलाने वाली देवी की आठ मंत्रिणियाँ हैं । इन सबों को देवी के ही समान भोग प्राप्त है, ये देवी के ईशारे को समझने में चतुर हैं ॥७६॥ ये सभी कार्यों को करने में निपुण तथा सदा अपनी स्वामिनी का कार्य करती रहती हैं । ये देवी के अभिप्राय को जानने वाली अत्यन्त सुन्दर तथा अत्यन्त चतुर हैं ॥७७॥ ये अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त हैं । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहने वाले प्राणियों का समाचार अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जानती हैं ॥७८॥ राजवर्य ! मैं उन सबों का नाम बतलाता हूँ, उसे आप सुनें । इनके नाम हैं अनङ्गकुसुमा, अनङ्गकुसुमातुरा, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा । इनका विग्रह अरुण वर्ण का है तथा ये अपने हाथों में पाश, अंकुश तथा श्रेष्ठ अभयमुद्रा धारण करती हैं ॥७९-८१॥ ये प्रत्येक क्षण विश्व का समाचार जानती रहती हैं । मुक्ता प्राकार के आगे महामरकत मणि निर्मित एक दशयोजन लम्बा उत्तम प्राकार है। यह अनेक प्रकार के सौभाग्य से युक्त तथा अनेक भोगों से सम्पन्न है ॥८२-८३॥ यहाँ की बीच की भूमि तथा गृह भी महामरकत मणि के ही बने हैं । इसमें विस्तृत षट्कोण यन्त्र है । उसके कोणों के देवताओं को आप सुनें ॥८४॥ इसके पूर्व वाले कोण में गायत्री देवी के साथ चतुर्मुख ब्रह्माजी हैं । ये

शास्त्राणि विविधानि च ॥८६॥ स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमंति वसंति हि । ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्रीविग्रहाश्च ये ॥८७॥ व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र संति हि । रक्षःकोणे शंखचक्रगदांबुजकरांबुजा ॥८८॥ सावित्री वर्तते तत्र महाविष्णुश्च तादृशः । ये विष्णुविग्रहाः सन्ति मत्स्यकूर्माद्योऽखिलाः ॥८९॥ सावित्रीविग्रहा ये च ते सर्वे तत्र सन्ति हि । वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः ॥९०॥ महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी । ये ये तु रुद्रभेदाः स्युर्दक्षिणा स्यादयो नृप ॥९१॥ गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसन्ति हि । चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः ॥९२॥ ते सर्वे मूर्तिमंतश्च तत्रैव निवसन्ति हि । अग्निकोणे रत्नकुम्भं तथा मणिकरंडकम् ॥९३॥ दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः । नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः ॥९४॥ देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः । वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः ॥९५॥ पाशांकुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते । शृंगारा मूर्तिमंतस्तु तत्र सन्निहिताः सदा ॥९६॥ ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः । पाशांकुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजते ॥९७॥ विभूतयो गणेशस्य या याः सन्ति नृपोत्तम । ताः सर्वा निवसंत्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः॥९८॥ प्रतिब्रह्मांडसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः । एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवन्ते जगदीश्वरीम् ॥९९॥ महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान् प्रवालसालोऽस्त्यपरः

कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभयमुद्रा, दण्ड और श्रेष्ठ आयुध धारण किए हुए हैं ॥८५॥ परादेवता गायत्री भी इन्हीं आयुधों को धारण करती हैं । यहाँ सभी वेद तथा अनेक शास्त्र मूर्तिमान रूप से विराजमान हैं ॥८६॥ स्मृतियाँ तथा पुराण भी यहाँ मूर्तरूप से रहते हैं । जो ब्रह्मा विग्रह, गायत्री विग्रह तथा व्याहृति विग्रह हैं ये ही यहाँ रहते हैं । नैऋत्व्य कोण में शंख, चक्र, गदा तथा कमल हाथ में धारण करने वाली सावित्री देवी हैं, तथा इनके साथ रहने वाले महाविष्णु भी उसी तरह के हैं । जो मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के विग्रह हैं ॥८७-८८॥ तथा जो सावित्री विग्रह हैं वे सबके सब वहाँ निवास करते हैं । वायव्यकोण में फरसा, अक्षमाला, तथा अभयमुद्रा धारण करने वाले ॥९०॥ महारुद्र विद्यमान हैं और उनके साथ रहने वाली सरस्वती भी उसी प्रकार की हैं । दक्षिणास्य आदि भेद वाले जितने रुद्र हैं तथा गौरी आदि भेद वाली जितनी पार्वती हैं, वे सब यहाँ पर निवास करते हैं । जो चौसठ आगम हैं, और उनके अतिरिक्त जो आगम हैं ॥९-९२॥ वे भी वहाँ पर मूर्तिमान रूप से निवास करते हैं । घन के स्वामी कुबेर अपने दोनों हाथों में क्रमशः रत्नकुम्भ तथा मणिकरण्ड (मणि मञ्जूषा) लिए हुए । अनेक प्रकार की वीथियों के साथ महालमी के साथ यहाँ निवास करते हैं ॥९३-९४॥ कुबेर जगदम्बा के निधिपति हैं । वरुण महाकोण में रति के साथ कामदेव का निवास है ॥९५॥ ये सदा पाश, अंकुश, धनुष तथा बाण धारण करते हैं । वहाँ पर श्रृंगार मूर्तिमान रूप से रहता है ॥९६॥ ईशानकोण में नित्य ही पुष्टि देवी के साथ गणेशजी विराजते हैं । वे विघ्न विनाशक हैं तथा पाश एवं अंकुश धारण करते हैं॥९७॥ राजन् ! गणेशजी की जो भी विभूतियाँ हैं वे वहाँ उन सबों के साथ विराजती हैं । गणेशजी की वे विभूतियाँ महाऐश्वर्य सम्पन्न हैं ॥९८॥ प्रत्येक

कुंकुमारुणविग्रहः ॥१००॥ मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत् । तन्मध्ये पंचभूतानां स्वामिन्यः पंच संति च ॥१०१॥ हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका । महोच्छुष्मा पंचमी च पंचभूतसमप्रभाः ॥१०२॥ पाशांकुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः । देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः ॥१०३॥ प्रवालसालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः । बहुयोजनविस्तीर्णो महासालोऽस्ति भूमिप ॥१०४॥ तत्र चाम्नातदेवीनां सदनानि बहून्यपि । नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च ॥१०५॥ श्रीदेव्या येऽवताराः स्युस्ते तत्र निवसन्ति हि । महाविद्यामहाभेदाः संति तत्रैव भूमिप ॥१०६॥ निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनैः । सर्वदेव्यो विराजंते कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥१०७॥ सप्तकोटि महामंत्रदेवताः संति तत्र हि । नवरत्नमयादग्रे चिंतामणिगृहं महत् ॥१०८॥ तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिंतामणिविनिर्मितम् । सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चंद्रोद्गारोपलैस्तथा ॥१०९॥ विद्युत्प्रभोपलैः स्तम्भाः कल्पितास्तु सहस्रशः । येषां प्रभाभिरन्तःस्थं वस्तु किंचिन्न दृयश्ते ॥११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणे द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

ब्रह्माण्ड में रहने वाली ब्रह्माजी की जो समष्टि है वे सभी ब्रह्मा इत्यादि देवता अपने-अपने ब्रह्माण्ड में जगदीश्वरी की सेवा करते हैं ॥९९॥ इस महामरकत प्राकार के आगे प्रबाल (मूंगा) निर्मित सौ योजन लम्बा प्राकार है । उसका वर्ण कुंकुम के समान अरुण वर्ण का है ॥१००॥ इसकी भी भूमि तथा गृह पहले के प्राकारों के समान हैं । उसके बीच में पञ्चभूतों की पाँच स्वामिनियों का निवास है ॥१०१॥ इन सबों के नाम हैं हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका और महोच्छुष्मा इन सबों की कान्ति अपने अपने भूतों के ही समान है ॥१०२॥ निःसीम आभूषणों से युक्त ये अपने हाथों में पाश, अंकुश, वरदमुद्रा और अभयमुद्रा धारण करती हैं । इन सबों की नवीन जवानी हैं और इन सबों का वेष देवी के ही समान हैं ॥१०३॥ प्रबाल प्राकार के आगे नवरत्नों से निर्मित अनेक योजन विस्तृत महाप्राकार है ॥१०४॥ वहाँ पर वेदवर्णित देवियों के बहुत से गृह हैं । वे गृह तथा तडाग एवं सरोवर भी नवरत्नमय ही हैं ॥१०५॥ श्रीदेवी के जो अवतार हैं वे सबके सब वहाँ रहते हैं । महाविद्या के भी जितने अवतार हैं वे भी वहाँ रहते हैं ॥१०६॥ करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाली ये सभी देवियाँ अपने वाहनों तथा भूषणों से सुशोभित होती हैं ॥१०७॥ वहाँ पर महामंत्रों के सात करोड़ देवताओं का निवास है । नवरत्न प्राकार के आगे महान चिन्तामणि गृह है ॥१०८॥ वहाँ की सभी वस्तुएँ चिन्तामणि से निर्मित हैं । उसमें सूर्य, चन्द्रमा तथा विद्युत् के समान कान्ति वाले हजारों स्तम्भ हैं । और उन सबों की प्रभा से उस मन्दिर के भीतर विद्यमान कोई भी वस्तु नहीं दिखायी देती हैं ॥१०९-११०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

द्वादशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **तदेव देवीसदनं मध्यभागे विराजते । सहस्रस्तंभसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मंडपाः ।।१।। शृंगारमंडपश्चैको मुक्तिमंडप एव च । ज्ञानमंडपसंज्ञस्तु तृतीयः परिकीर्तितः ।।२।। एकांतमंडपश्चैव चतुर्थः परिकीर्तितः । नानावितानसंयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिताः ।।३।। कोटिसूर्यसमाः कांत्या भ्राजंते मंडपाः शुभाः । तन्मंडपानां परितः काश्मीरवनिका स्मृता ।।४।। मल्लिका कुन्दवनिका यत्र पुष्कलकाः स्थिताः असंख्याता मृगमदैः पूरितास्तत्स्रवा नृप ।।५।। महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता । सुधारसेन संपूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता ।।६।। हंसकारंडवा कीर्णा गंधपूरितदिक्तटा। वनिकानां सुगंधैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम् ।।७।। शृंगारमंडपे देव्यो गायंति विविधैः स्वरैः । सभासदो देववरा मध्ये श्रीजगदंबिका ।।८।। मुक्तिमंडपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा । ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृप मंडपे ।।९।। चतुर्थमंडपे चैव जगद्रक्षाविचिंतनम् । मंत्रिणीसहिता नित्यं करोति जगदंबिका ।।१०।। चिंतामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः । सोपानैर्दशभिर्युक्तो मंचकोऽप्यधिराजते ।।११।। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवाः । एते मंचखुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः ।।१२।। तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते । या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता**

मणिद्वीप का वर्णन ३

व्यासजी ने कहा– उसके बीच में विद्यमान वही जगदम्बा का सदन है । उसमें हजार स्तम्भ वाले चार मण्डप हैं ।।१।। पहला शृङ्गार मण्डप हैं, दूसरा मुक्तिमण्डप है, तीसरा ज्ञानमण्डप है और चौथा एकान्तमण्डप है । वे सबके सब अनेक प्रकार के वितानों से युक्त अनेक प्रकार के धूपों से धूपित हैं ।।३।। ये मण्डप अपनी कान्ति से करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं । उन मण्डपों के चारो ओर केसर, मालती तथा कुन्द वाटिकाएँ हैं ।।४।। वाटिका में कस्तूरी मृग की कस्तूरी की सुगन्धि से परिपूर्ण मदस्रावी असंख्य दिव्य भ्रमर विराजमान हैं ।।५।। उन वाटिकाओ के चारो ओर महापद्माटवी हैं । जिसकी सीढ़ियाँ रत्न निर्मित हैं । वे सभी अमृत रस से परिपूर्ण हैं और भौरे गुञ्जन करते रहते हैं ।।६।। कारण्डव तथा हंसों से वह महापद्माटवी भरी रहती है । उसके तट सुगन्धि भरे हैं । वाटिकाओं की सुगन्धि से मणिद्वीप. सुगन्धित बना रहता है ।।७।। शृंगार मण्डप में देवियाँ अनेक स्वरों में गायन करती हैं । वे सब देवी के सभासद हैं । उस मण्डप के मध्य में श्रीजगदम्बिका बैठी रहती हैं ।।८।। मुक्तिमण्डप में जगदम्बिका मुक्ति प्रदान करने का काम करती हैं। हे राजन् ! तीसरे ज्ञानमण्डप में जगदम्बिका ज्ञानोपदेश करती हैं ।।८।। चौथे मण्डप में जगदम्बिका जगत् की रक्षा करने का विचार अपनी मंत्रिणियों के साथ करती हैं ।।९-१०।। चिन्तामणि गृह में शक्ति तत्त्वात्मक दश सोपानों के द्वारा श्रीदेवी का ऊँचा मञ्च सुशोभित होता है ।।११।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र

बभूव ह ॥१३॥ सृष्ट्यादौ तु स एवायं तदर्धांगो महेश्वरः । कंदर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकंदर्पसुंदरः ॥१४॥ पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः । हरिणाभीतिपरशून् वरं च निजबाहुभिः ॥१५॥ दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान् । कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चंद्रकोटिसुशीतलः ॥१६॥ शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः वामांके सन्निषण्णाऽस्य देवी श्रीभुवनेश्वरी ॥१७॥ नवरत्नगणाकीर्णकांचीदामविराजिता । तप्तकांचनसन्नद्धवैदूर्यांगदभूषणा॥१८॥ कर्णच्छ्रीचक्रताटंकविटंकवदनांबुजा । ललाटकांतिविभवविजितार्धसुधाकरा ॥१९॥ बिंबकांतितिरस्कारिरदच्छदविराजिता। लसत्कुंकुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥२०॥ दिव्यचूडामणिस्फारचंचच्चद्रंकसूर्यका । उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥२१॥ हृदये लंबितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता । पाटीरपंककर्पूरकुकुंमालंकृतस्तनी ॥२२॥ विचित्रविविधाकल्पा कंबुसंकाशकंधरा । दाडिमीफलबीजाभदंतपंक्तिविराजिता ॥२३॥ अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटांचितमस्तका । मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखांबुजा ॥२४॥ कलंककार्श्यनिर्मुक्तशरच्चंद्रनिभानना । जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता॥२५॥ माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकांगुलिभूषिता । पुंडरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥२६॥ कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा । रत्नकिंकिणिकायुक्तरत्न-

---

तथा सदाशिव ये चारो मञ्च के खुर कहे गये हैं । सदा शिव उसके फलक हैं ॥१२॥ उस मञ्च के ऊपर महादेवी विराजती हैं । जो देवी लीला करने के लिए दो भागों में विभक्त हो गयीं ॥१३॥ सृष्टि के प्रारम्भ में उनके दायें भाग से करोड़ों काम के दर्प का दलन करने वाले महेश्वर हैं ॥१४॥ उनके पाँच मुख, तीन नेत्र हैं, मणि के भूषणों से वे भूषित हैं । वे अपने हाथों में हरिण, अभयमुद्रा, फरसा तथा वरदमुद्रा धारण करते हैं ॥१५॥ उन महान सर्वेंश्वर की सोलहवर्ष की अवस्था है । उनकी कान्ति करोड़ों सूर्य के समान तथा वे करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल हैं ॥१६॥ वे शुद्ध स्फटिक के समान देदीप्यमान हैं, उनके तीन नेत्र हैं और शीतल कान्ति है । उनके वायें अङ्ग में श्रीभुवनेश्वरी देवी बैठी हुई हैं ॥१७॥ नवरत्नों से जटित काञ्ची (करधनी) से वे सुशोभित हैं । तप्तकाञ्चन और वैदूर्यमणि से उनका बाजूबन्द निर्मित है ॥१८॥ सुवर्ण के समान देदीप्यमान और श्रीचक्र के समान आकार वाले कर्णफूल से उनका मुख कमल सुशोभित हो रहा है । उनके ललाट की कान्ति के समक्ष अष्टमी का चन्द्रमा फीका प्रतीत होता है । कुंकुम मिश्रित कस्तूरी के तिलक से उनका मुख प्रकाशित हो रहा है ॥२०॥ ये चन्द्रमा तथा सूर्य जैसे प्रकाशमान चूड़ामणि अपने मस्तक पर धारण किए हुई हैं ॥२१॥ वे हृदय पर्यन्त लटकने वाले स्वच्छ मोती की माला से सुशोभित हैं । उन्होंने अपने स्तनों को चन्दन, कुंकुम तथा कर्पूर के लेप से अलंकृत कर रखा है । अद्भुत तथा अनेक कल्पों वाली उनकी ग्रीवा शंख के समान सुन्दर है । अनार के फल के बीज की कान्ति के समान कान्ति वाली दाँतों की पंक्ति से वे सुशोभित हैं ॥२३॥ उनके मस्तक पर बहुमूल्य रत्न जटित मुकुट सुशोभित हो रहा है । उनके मुख कमल पर अलकावली सुशोभित हो रही है, और उस पर मदमत्त भ्रमर मँडरा रहे हैं ॥२४॥ कलंक की कालिमा से रहित शरत्कालीन चन्द्रमा के समान आह्लादक उनका मुख है । गंगा के आवर्त के समान गहरी उनकी नाभि है॥२५॥

कंकणशोभिता ॥२७॥ मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसंततिः । रत्नांगुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥२८॥ कंचुकीगुंफितापारनानारत्नततिद्युतिः । मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता॥२९॥ सुवृत्तनिविडोत्तुङ्गकुचभारालसा शिवा । वरपाशांकुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥३०॥ सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमारांगवल्लरी । सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी ॥३१॥ निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी । कोटिकोटिरवींदूनां कांति या बिभ्रती परा॥३२॥ नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवांगनादिभिः । सर्वाभिर्देवताभिस्तु समंतात्परिवेष्टिता ॥३३॥ इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियाशक्त्या समन्विता। लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कांतिः क्षमा दया ॥३४॥ बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽङ्गनाः स्मृताः । जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता॥३५॥ नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मंगला नव । पीठशक्तय एतास्तु सेवंते यां परांबिकाम् ॥३६॥ तस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शंखपद्मकौ। नवरत्नवहा नद्यस्तथा वै कांचनस्रवाः ॥३७॥ सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः । सुधासिंध्वंतगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम ॥३८॥ सा

माणिक्य जटित अंगूठियां से उनकी अंगुलियाँ सुशोभित हैं । कमलदल के समान सुन्दर और विस्तृत उनके तीनों नेत्र हैं ॥२६॥ शाण पर चढ़ाकर तरासे गये महाराग तथा पद्मराग से चमकने वाली, रत्न की किरणों से युक्त कंगन से वे सुशोभित हैं ॥२७॥ मणियों तथा मोतियों में पायी जाने वाली शोभा उनके चरण कमलों से उद्भूत है । रत्नांगुलियों से निकलने वाली कान्ति समूह से उनका हाथ सुशोभित हो रहा है ॥२८॥ उनकी कंचुकी में गुथे हुए रत्नों की कान्ति चारो ओर फैल रही है । मालती की माला से उनकी कबरी (चोटी) सुगन्धित है ॥२९॥ अत्यन्तगोल, सघन तथा उन्नत उरोजों के भार से शिवा देवी अलसाई हुयी सी हैं । उनकी चारो भुजाएँ, वरदमुद्रा, पाश, अंकुश तथा अभयमुद्रा से सुशोभित हैं । उनकी अङ्गलता समस्त श्रैंगारिक वेष की शोभा से सुशोभित है । वे सौन्दर्य धारा की सर्वस्व स्वरूपा तथा स्वाभाविक रूप से करुणामयी हैं ॥३१॥ उनके स्वरमाधुर्य के समक्ष वीणा की ध्वनि भी फीकी प्रतीत होती है । वे पराम्बा करोड़ों सूर्य तथा चन्द्रमा की कान्ति से सुशोभित हैं ॥३२॥ उनको अनेक सखियाँ, दासियाँ, देवाङ्गनायें तथा देवगण चारो ओर से घेरे रहते हैं ॥३३॥ वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति से समन्वित हैं । भगवती के पास, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया ॥३४॥ बुद्धि, मेधा, स्मृति और लक्ष्मी सदा मूर्तिमान रूप से विराजती हैं । उन पराम्बा की सेवा जया, विजया, अजिता, अपराजिता ॥३५॥ नित्या, विलासिनी, दोग्धी, अधोरा तथा मङ्गला ये नव पीठ शक्तियाँ करती हैं ॥३६॥ उनके बगल में दो निधियाँ विद्यमान रहती हैं शंख तथा पद्म । नवरत्नवहा, काञ्चनस्रवा, सप्तधातु को प्रवाहित करने वाली नदियाँ उन्हीं दोनों निधियों से निकली हैं । हे राजन् ! वे नदियाँ सुधासागर में जाकर मिल जाती हैं ॥३८॥ इस प्रकार

देवी भुवनेशानी तद्वामांके विराजते । सर्वेशत्वं महेशस्य यत्संगादेव नान्यथा ॥३९॥ चिंतामणिगृहस्यास्य प्रमाणं शृणु भूमिप । सहस्रयोजनायामं महांतस्तत्प्रचक्षत्ते ॥४०॥ तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद्द्विगुणाः स्मृताः । अन्तरिक्षगतं त्वेतन्निराधारं विराजते ॥४१॥ संकोचश्च विकासश्च जायतेऽस्य निरंतरम् । पटवत्कार्यवशतः प्रलये सर्जने तथा ॥४२॥ शालानां चैव सर्वेषां सर्वकांतिपरावधि । चिंतामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी ॥४३॥ ये ये उपासकाः संति प्रतिब्रह्मांडवर्तिनः । देवेषु नागलोकेषु मुनष्येष्वितरेषु च ॥४४॥ श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि व्रजंत्यत्रैव भूमिप। देवीक्षेत्रे ये त्यजन्ति प्राणान्देव्यर्चने रताः ॥४५॥ ते सर्वे यांति तत्रैव यत्र देवी महोत्सवा । घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्रवाः ॥४६॥ स्यंदन्ति सरितः सर्वास्तथाऽमृतवहाः पराः । द्राक्षारसवहाः काश्चिज्जंबूरसवहाः पराः ॥४७॥ आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः । मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च ॥४८॥ यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किञ्चिदस्ति हि । न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन ॥४९॥ न चिंता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा । सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः ॥५०॥ भजन्ति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम् । केचित्सलोकतापन्नाः केचीत्सामीप्यतां गताः ॥५१॥ सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः । या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्मांडवर्तिनाम् ॥५२॥

की भुवनेश्वरी देवी महेश्वर के वाम अङ्ग में सुशोभित होती हैं । उनके सङ्ग के ही कारण महेश सर्वेश हैं ॥३९॥ राजन् ! इस चिन्तामणि गृह का परिमाण सुनो । यह अत्यन्त विशाल भवन हजार योजन लम्बा, चौडा है ॥४०॥ उसके उत्तर दिशा में उसके दो गुना विस्तृत प्राकार है । अन्तरिक्ष में यह बिना किसी आधार के स्थित है ॥४१॥ प्रलयकाल तथा सृष्टिकाल में कार्यानुसार इस गृह में उसी तरह संकोच और विस्तार होता रहता है जिस तरह किसी कपड़े को आवश्यकतानुसार समेट दिया जाता है, अथवा फैला दिया जाता है ॥४२॥ वहाँ पर जितने भी भवन हैं, उन सबों की शोभा चिन्तामणि गृह से कम ही है । उस चिन्तामणि गृह में ही उत्सवमयी देवी का निवास है ॥४३॥ हे राजन् ! देवताओं, नागों, मनुष्यों तथा अन्य योनियों में श्रीदेवी के जितने भी उपासक हैं वे सब मरकर यहीं पर पहुँचते हैं । देवी की अर्चना करने वाले देवी क्षेत्र से अन्यत्र भी मरते हैं तो भी वे यहीं आते है ॥४४-४५॥ वहाँ पर देवी का महोत्सव मनता रहता है । वहाँ पर घृतकुल्या, दुग्धकुल्या, दधिकुल्या, मधुस्रवा, अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा तथा आम्रेक्षुरसावह हजारों श्रेष्ठ नदियाँ प्रवाहित होती हैं । वहाँ के वृक्ष इच्छा के अनुसार फल देते हैं । वापी तथा कुएँ भी ॥४६-४८॥ यथेष्ठ पेय पदार्थ देने वाले हैं । वहाँ पर किसी भी प्रकार की कमी नहीं है । मणिद्वीप में किसी का शरीर रोग से क्षीण नहीं होता है न बुढापा होती है ॥४९॥ न चिन्ता होती है, न द्वेष होता है; काम और क्रोध आदि विकार भी नहीं होते हैं । सबलोग युवक तथा अपनी पत्नी के साथ रहते हैं । सबों की हजारों सूर्य के समान कान्ति रहती है।।५०॥

समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवंते जगदीश्वरीम् । सप्तकोटिमहामंत्रा मूर्तिमंतउपासते ॥५३॥ महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम् । कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम् ॥५४॥ इत्थं राजन्मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम् । न सूर्यचन्द्रौ नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च ॥५५॥ एतस्य भासा कोट्यंशकोट्यंशेनापि ते समाः । क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि ॥५६॥ विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित् । विद्युत्कोटिमहाधारा सारकांतिततं क्वचित् ॥५७॥ क्वचित्सिंदूरनीलेंद्रमाणिक्यसदृशच्छवि । हीरसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम् ॥५८॥ कान्त्या दावानलसमं तप्तकांचनसन्निभम् । क्वचिच्चन्द्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारं च कुत्रचित् ॥५९॥ रत्नशृंगिसमायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम् । रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमंडितम् ॥६०॥ नृत्यन्मयूरसंघैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम् । कालकीकोकिलालापैः शुकालापैश्च शोभितम् ॥६१॥ सुरम्यरमणीयांबुलक्षावधिसरोवृतम्। तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपंकजैः ॥६२॥ सुगंधिभिः समंतात्तु वासितं शतयोजनम् । मंदमारुतसंभिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम् ॥६३॥ चिंतामणिसमूहानां ज्योतिषा विततांबरम् । रत्नप्रभाभिरभितो धगद्धगितदिक्तटम् ॥६४॥ वृक्षव्रातमहागंधवातव्रातसुपूरितम् । धूपधूपायितं राजन्मणिदीपायुतोज्ज्वलम्॥६५॥

सबके सब श्रीभुवनेश्वरी देवी की उपासना करते हैं । कुछ लोग देवी की सलोकता प्राप्त हैं, कुछ लोग सान्निध्य प्राप्त हैं ॥५१॥ कुछलोग सरूपता प्राप्त हैं तथा कुछ सार्ष्टिता । प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रहने वाले जितने भी देवता हैं ॥५२॥ उनकी समष्टि मणिद्वीप में रहकर श्रीदेवी की उपासना करती है । सात करोड़ मन्त्र मूर्तिमान रूप से देवी की उपासना करते हैं ॥५३॥ सारी महाविद्याएँ भी मायाशबलित शरीर वाली कारण ब्रह्म स्वरूपिणी, साम्यावस्थावस्थित शिवा देवी की उपासना करती हैं ॥५४॥ राजन् ! मैंने इस तरह से विशाल मणिद्वीप का वर्णन किया, मणिद्वीप की कान्ति के करोड़ो अंशों के समान भी, सूर्य, चन्द्रमा, करोड़ों विद्युत् तथा अग्नि की कान्ति नहीं है । मणिद्वीप की कान्ति कहीं पर विद्युत् के समान कहीं पर मरकतमणि के समान ॥५६॥ कहीं पर विद्युत् तथा सूर्य की कान्ति के समान, कहीं पर मध्याह्नकालिक सूर्य की कान्ति के समान, कहीं पर करोड़ों विद्युत् की महाधारा के समान है ॥५७॥ कहीं पर इसकी कान्ति, सिन्दूर तथा इन्द्रनीलमणि हीरा की कान्ति के समान दिखती हैं ॥५८॥ कहीं पर दावनल की कान्ति के समान, कहीं पर संतप्त सुवर्ण की कान्ति के समान, कहीं पर चन्द्रकान्त मणि के समान, तथा कहीं पर सूर्यकान्तामणि की कान्ति के समान है ॥५९॥ इसके शिखर, प्राकार तथा गोपुर रत्नमय हैं । यह रत्नमय पत्तों, फलों तथा वृक्षों से समलंकृत है ॥६०॥ कहीं पर मयूरों का समूह नृत्य करता रहता है, कहीं कबूत्तर बोलते रहते हैं । मणिद्वीप कोयल की कूक तथा शुकों के मधुर आलाप से मुखरित रहता है ॥६१॥ यह सुन्दर तथा रमणीय जलवाले लाखों सरोवरों से भरा है । उन सरोवरों के बीच में रत्ननिर्मित कमल विकसित रहते हैं । उन कमलों की सुगन्धि से चारो ओर सौ योजन तक का परिसर सुगन्धित रहता है । यहाँ मन्दमन्द चलने वाली वायु वृक्षों को धीरे-धीरे स्पन्दित करती है ॥६२-६३॥ चिन्तामणियों के समूह की कान्ति से आकाश जगमगाता रहता है । चारो ओर विखरे हुए रत्नों

मक्षिजालकसच्छिद्रतरलोदरकान्तिभिः । दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम् ॥६६॥ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शृंगारस्याखिलस्य च । सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखिलस्य च ॥६७॥ पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च । सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते ॥६८॥ राज्ञ आनंदमारभ्य ब्रह्मलोकांतभूमिषु । आनंदा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवांतर्भवंति हि ॥६९॥ इति ते वर्णितं राजन्मणिद्वीपं महत्तरम् । महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥७०॥ एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वपापं विनश्यति । प्राणोत्क्रमणसंधौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति ॥७१॥ अध्यायपञ्चकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः । भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्न हि ॥७२॥ नवीनगृहनिर्माण वास्तुयागे तथैव च । पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते ॥७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

◆

से पृथिवी जगमगाती रहती है ॥६४॥ यह द्वीप वृक्ष समूह की सुगन्धि से परिपूरित है । दश हजार योजन विस्तृत मणिद्वीप धूप की सुगन्धि से सुगन्धित रहता है ॥६५॥ रत्नमयी जालियों के छिद्रों से निकलने वाली किरणों से दर्पण युक्त यह मणिद्वीप दिङ्मोह को उत्पन्न करता है ॥६६॥ राजन् ! यह मणिद्वीप सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण शृङ्गार, सम्पूर्ण सर्वज्ञता, सम्पूर्ण तेज ॥६७॥ सम्पूर्ण पराक्रम, सम्पूर्ण सद्गुण तथा सम्पूर्ण दया की पराकाष्ठा रूप है ॥६८॥ राजा के आनन्द से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने भी आनन्द हैं, उन सबों का इसमें अन्तर्भाव हो जाता है ॥६९॥ राजन् ! मैंने महादेवी के सर्वोत्तम स्थान मणिद्वीप का इस प्रकार से वर्णन किया ॥७०॥ इसका स्मरण करते ही सभी पापों का विनाश हो जाता है । मृत्यु के समय इसका स्मरण करने वाले इस द्वीप में जाते हैं । इसके पाञ्च अध्यायों का प्रतिदिन सावधान होकर पाठ करने वाले के यहाँ, भूतों प्रेतों और पिशाचों की बाधा नहीं होती है ॥७२॥ नवीन गृह का निर्माण करते समय, वास्तु पूजन के समय, इसका पाठ प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए, उससे परमकल्याण होता है ॥७३॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

◆

त्रयोदशोऽध्यायः

व्यास उवाच– **इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयाऽनघ । नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने ॥१॥ श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं**
परमाद्भुतम् । कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः ॥२॥ कुरु चांबामखं राजन्स्वपित्रुद्धरणाय वै । खिन्नोऽसि येन राजेंद्र पितुर्ज्ञात्वा तु
दुर्गतिम् ॥३॥ गृहाण त्वं महादेव्या मंत्रं सर्वोत्तमोत्तमम् । यथाविधि विधानेन जन्मसाफल्यदायकम् ॥४॥ सूत उवाच– **तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलः**
प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम् । तस्मादेव महामंत्रं देवीप्रणवसंज्ञकम् ॥५॥ दीक्षां विधिविधानेन जग्राह नृपसत्तमः । तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे॥६॥
अंबायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः । ब्राह्मणैः पाठयामास पुराणं त्वेतदुत्तमम् ॥७॥ श्रीदेव्यग्रेऽम्बिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम् ।
ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः ॥८॥ कुमारीर्बटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च । द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान्संतोष्य वसुधाधिपः ॥९॥ समाप्य
यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि । तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत् ॥१०॥ रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्निशिखोपमः । ससंभ्रमः
समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम् ॥११॥ आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः । कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम् ॥१२॥ राजोवाच–

राजा जनमेजय द्वारा अम्बायज्ञ और देवीभागवत की महिमा

व्यासजी ने कहा– हे निष्पाप राजन् ! आपने जो-जो पूछा वह मैंने सुना दिया, इसको नारायण ने स्वयं नारदजी को सुनाया था ॥१॥ महादेवी के इस उत्तम पुराण का क्षवण करके मनुष्य कृतकृत्य तथा देवी का प्रियतम हो जाता है ॥२॥ राजन् आप अपने पिता के उद्धार के लिए अम्बा यज्ञ करें क्योंकि आप अपने पिता की दुर्गति को सुनकर उदास हो गये हैं ॥३॥ आप जन्म को सफल बना देने वाले महादेवी के सर्वोत्तम मन्त्र को विधिपूर्वक ले लें ॥४॥ **सूतजी ने कहा–** महर्षि की वाणी सुनकर राजा जनमेजय ने उनकी प्रार्थना करके देवीप्रणव नामक मन्त्र की विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की । उसके बाद नवरात्र के आने पर उन्होंने धौम्य आदि ऋषियों को बुलाकर ॥५-६॥ अम्बायज्ञ को बिना किसी कंजूसी के किया । उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा इस पुराण का श्रीदेवी की प्रसन्नता के लिए उनके समक्ष पाठ कराया । असंख्य ब्राह्मणों सुवासिनियों तथा कुमारियों को, बटुकों को तथा दिनानाथों को भोजन कराया और द्रव्य प्रदान करके उन्हें सन्तुष्ट किया ॥७-९॥ जब राजा जनमेजय यज्ञ समाप्त करके अपने स्थान पर स्थित हुए उसी समय आकाश से नारदजी उतरे ॥१०॥ जलती हुई अग्नि की शिखा के समान देदीप्यमान वे अपनी वीणा बजा रहे थे । उन नारद मुनि को देखकर वे उठकर खड़े हो गये ॥११॥ उन्होंने आसन आदि उपचारों से उनकी पूजा की; कुशल प्रश्न के बाद उन्होंने देवर्षि से आगमन का कारण पूछा ॥१२॥ **राजा ने कहा–** भगवन् ! आप कहाँ से आ रहे

कुत आगमनं साधो ब्रूहि किं करवाणि ते । सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणात् ॥१३॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः । अद्याश्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम ॥१४॥ तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः । पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निजकर्मविपर्ययात् ॥१५॥ स एवायं दिव्यरूपवपुर्भूत्वाऽधुनैव हि । देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समंततः ॥१६॥ विमानवरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत् । देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थफलेन च ॥१७॥ अम्बामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः । धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव ॥१८॥ नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण । देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवाद्य विपुलाऽभवत् ॥१९॥ सूत उवाच– नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्गदितांतरः । पपात पादाम्बुजयो र्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥२०॥ तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने । किं मया प्रति कर्तव्यं नमस्कारादृते तव ॥२१॥ अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने । इति राज्ञो वचः श्रुत्वाप्याशीर्भिरभिनंद्य च ॥२२॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवान्बादरायणः । राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदांबुजम्॥२३॥ देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः । अम्बामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतंद्रितः ॥२४॥ अनायासेन तेन त्वं मोक्ष्यसे भवबन्धनात् । सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च ॥२५॥ देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः ॥२६॥

हैं ? मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? आपके आने से मैं सनाथ एवं कृतार्थ हो गया ॥१३॥ राजा की वाणी सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने कहा राजन्! मैंने देवलोक में अत्यन्त आश्चर्य देखा ॥१४॥ उसी को बतलाने के लिए मैं आपके पास आया हूँ । अपने कर्म की विपरीतता के कारण आपके पिता की दुर्गति हो गयी थी ॥१५॥ वे दिव्यरूप धारण करके आज ही श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर मणिद्वीप में गये । उनकी स्तुति श्रेष्ठ देवता और अप्सराएँ कर रही थीं । यह देवीभागवत के श्रवण से उत्पन्न पुण्य का फल है ॥१६-१७॥ अम्बायज्ञ करने के फल से आपके पिता सुगति को प्राप्त कर लिए । आपका जीवन सफल हो गया । आप धन्य और कृत-कृत्य हैं ॥१८॥ हे कुलभूषण ! आपने नरक से अपने पिता का उद्धार कर दिया है । आज आपकी देवलोक में विपुलमात्रा में विशद कीर्ति हो गयी है ॥१९॥ **सूतजी ने कहा**– नारदजी की वाणी को सुनकर राजा जनमेजय प्रेम से गद्गद हो गये और अद्भुत कर्म करने वाले व्यासजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥२०॥ हे महामुने ! आपकी कृपा से आज मैं कृतार्थ हो गया । मैं इसके बदले में नामस्कार करने के अतिरिक्त क्या कर सकता हूँ ?॥२१॥ हे मुने ! आप इसी प्रकार मुझ पर कृपा करते रहेंगे । राजा की इस वाणी को सुनकर व्यासजी ने राजा को आशीर्वाद देकर अनुगृहीत किया । उसके बाद उन्होंने मधुर वाणी में कहा राजन् ! आप सब कुछ त्यागकर देवी के चरण कमलों की सेवा करें ॥२२॥ प्रतिदिन सावधानी पूर्वक देवीभागवत का पाठ करें । निरालस होकर सदा अम्बामख करते रहे ॥२३-२४॥ उसके फलस्वरूप आप बिना प्रयास के ही संसार के बन्धन से मुक्त

मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते । समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम ॥२७॥ पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय । पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः ॥२८॥ इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः । जग्मुश्चैव यथास्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः ॥२९॥ देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम् । राजा शशास धरणीं ततः संतुष्टमानसः । देवीभागवतं चैव पठञ्छृण्वन्निरंतरम् ॥३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सूत उवाच– **अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम् । श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धांतबोधकम् ॥१॥ उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने। शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा ॥२॥ तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे । अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम् ॥३॥ देवीभागवतं**

हो जायेंगे । इसके अतिरिक्त श्रीहरि तथ रुद्र की प्रधानता बतलाने वाले भी पुराण हैं ॥२५॥ किन्तु उनकी महत्ता देवीभागवत के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं है । यह पुराण सभी पुराणों तथा वेदों का सार है ॥२६॥ इसमें मूल प्रकृति की ही प्रधानता प्रतिपादित की गयी है । अतएव राजन् ! इसके समान दूसरे पुराण कैसे हो सकते हैं ?॥२७॥ हे जनमेजय ! इसका पाठ करने से वेदपाठ के समान फल होता है । अतएव श्रेष्ठ विद्वानों को इसका ही पाठ करना चाहिए ॥२८॥ राजा जनमेजय को इस तरह कहकर व्यासजी वहाँ से चले गये और धौम्य आदि ऋषि भी वहाँ से चले गये ॥२९॥ वे लोग देवीभागवत का ही उत्तम प्रशंसा किए । उसके बाद राजा प्रसन्न मन से पृथिव्री का प्रशासन करने लगे वे सदा देवीभागवत का ही पाठ एवं श्रवण करते थे ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

देवीभागवत की महिमा

सूतजी ने कहा– ऋषियों ! श्रीदेवी के मुख से सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातन यह जो आद्य श्लोक निकला था, वह वेद के सिद्धान्त का बोध कराने वाला है तथा उसी का नाम 'श्रीमद्भागवत' है ॥१॥ उन्होंने इसका उपदेश वटपत्रशायी भगवान् विष्णु को दिया था । उसी का ब्रह्माजी ने सौ करोड़

नाम पुराणं ग्रथितं पुरा । अद्यापि देवलोके तद्बहुविस्तीर्णमस्ति हि ॥४॥ नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ॥५॥ पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः । व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः ॥६॥ लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाथवा मुने । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ॥७॥ दद्यात्पौराणिकायाथ दक्षिणां च पयस्विनीम् । सालंकृतां सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम्॥८॥ भोजयेद्ब्राह्मणानंतेऽप्यध्यायपरिसंमितान् । सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीर्वटुकैः सह ॥९॥ देवीबुद्ध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः । पायसान्नवरेणापि गन्धस्त्रक्कुसुमादिभिः ॥१०॥ पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत् । इह लोके सुखी भूत्वाऽप्यंते देवीपुरं व्रजेत् ॥११॥ नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम् । न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ॥१२॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमानुयात् । विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः ॥१३॥ वंध्या वा काकवंध्या वा मृतवंध्या च यांगना । श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः ॥१४॥ यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति । तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती ॥१५॥ नेक्षंते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः । ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा

श्लोकों में विस्तार किया ॥२॥ उसके सारभाग को एकत्रित करके व्यासजी ने उसे शुकदेवजी को सुनाने के लिए इस पुराण की रचना अठारह हजार श्लोक में की इसमें बारह स्कन्ध हैं ॥३॥ यह देवी भागवत के नाम से पुराण ग्रथित हुआ । आज भी वह देवलोक में अत्यन्त विस्तृत हैं ॥४॥ इसके समान पवित्र तथा पापों का विनाशक दूसरा कुछ भी नहीं है । इससे पद-पद पर अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है ॥५॥ यजमान को चाहिए कि वह व्यासकी वस्त्र तथा भूषण आदि से पूजा करे । उनमें व्यासजी की बुद्धि रखकर प्रतिदिन उनके मुख से कथा को सुने ॥६॥ हे मुने ! इसको स्वयं लिखकर अथवा किसी से लिखवाकर सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर प्रौष्ठपदी की पूर्णिमा (भाद्रपद की पूर्णिमा) को पौराणिक को दान दे, दक्षिणा तथा गौ का दान दे । गौ को अलंकृत करके, सुवर्ण की माला पहनाकर घड़े के साथ दान दे ॥७-८॥ इस पुराण में जितने अध्याय हैं उतने ब्राह्मणों को सुवासिनयों, कुमारियों तथा बटुकों के साथ भोजन कराये ॥९॥ उन सबों की पूजा वस्त्रों तथा भूषणों से करे । चन्दन, माला तथा फूल आदि से पूजन करके उन्हें पायस (खीर) का भोजन कराये॥११॥ इस पुराण का दान करने से भूमिदान का फल मिलता है । वह इस लोक में सुखी रहकर अन्त में देवी के लोक में जाता है ॥११। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देवीभागवत सुनता है उसके लिए कहीं भी कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ॥१२॥ पुत्रहीन को पुत्र मिलता है, धनार्थी को धन प्राप्त होता। विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके पृथिवी पर कीर्ति से मण्डित होता है ॥१३॥ यदि कोई बन्ध्या, या काकबन्ध्या, या मृतबन्ध्या नारी इस पुराण का श्रवण करे तो बन्ध्यात्व दोष से रहित हो जाती है । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१४॥ जिस घर में यह देवीभागवत ग्रन्थ पूजित होता है उस घर का कभी भी लक्ष्मी तथा सरस्वती त्याग नहीं करती हैं ॥१५॥ वहाँ पर कभी वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि की दृष्टि नहीं पड़ती है । ज्वरग्रस्त व्यक्ति का

पठेदेतत्समाहितः ॥१६॥ मंडलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः । शतावृत्त्याऽस्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति ॥१७॥ प्रतिसंध्यं पठेद्यस्तु संध्यां कृत्वा समाहितः । एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत् ॥१८॥ शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि । तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने ॥१९॥ नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः । तस्यांबिका तु संतुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम् ॥२०॥ वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा । सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये ॥२१॥ पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये । वैदिकैर्निज गायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने ॥२२॥ पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नाहि कस्यचित् । उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्ताऽस्ति सर्वदा ॥२३॥ तच्छक्तेरेव तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः । स्त्रीशूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः ॥२४॥ शृणयाद्द्विजवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थितिः । किं पुनर्बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥२५॥ वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः । वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि ॥२६॥ सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम् । नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७॥ इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः । पूजयामासुरत्युच्चैः सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥२८॥ प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादांबुजार्चकाः।

स्पर्श करके इस पुराण का सावधानी पूर्वक पाठ करना चाहिए ॥१६॥ इसका पाठ करने से उस मण्डल से दाहकारक ज्वर नष्ट हो जाता है इस पुराण का सौ पाठ करने से क्षयरोग विनष्ट हो जाता है ॥१७॥ जो व्यक्ति प्रत्येक सन्ध्याओं में सन्ध्या करके सावधानी पूर्वक इसके एक-एक अध्याय का पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है ॥१८॥ इससे अच्छे-बुरे शकुनों को जाना जा सकता है उसकी विधि को नवें स्कन्ध में बतलाया जा चुका है ॥१९॥ जो व्यक्ति शारदीय नवरात्र में अत्यन्त भक्तिपूर्वक इसका नित्य पाठ करता है उससे सन्तुष्ट होकर अम्बिका उसकी इच्छा से भी अधिक फल प्रदान- करती हैं ॥२०॥ वैष्णव, शैव, सौर और गाणपत्य अपने इष्टदेवी रमा, उमा आदि शक्तियों के सन्तोष के लिए इसका पाठ करें ॥२१॥ हे मुने ! वैदिकों को अपनी गायत्री देवी की प्रसन्नता के लिए इसका चारो नवरात्रों में पाठ करना चाहिए । इस पुराण का प्रयत्न पूर्वक पाठ करना चाहिए इससे किसी का विरोध नहीं है । सबों की उपासना तो सर्वदा शक्तियुक्त हुआ ही करती है ॥२३॥ उस शक्ति के सन्तोष के लिए द्विजों को इसका पाठ करना चाहिए । अज्ञानवशात् स्त्री, शूद्र इत्यादि कभी भी पाठ न करें ॥२४॥ उन्हें बैठकर ब्राह्मण के मुख से इसे सुनना चाहिए । बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है मैं इसका सार बतलाता हूँ ॥२५॥ द्विजश्रेष्ठों ! यह पुराण वेदों का सार है । इसके पढ़ने और सुनने वाले लोग वेद के समान ही फल प्राप्त करते हैं ॥२६॥ गायत्री जिनका प्रतिपादन करती है, उन सच्चिदानन्द स्वरूपिणी ह्रींमयी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ । वे हमलोगों की बुद्धि को सत्प्रेरणा प्रदान करें ॥२७॥ इस तरह से सूतजी की वाणी सुनकर नैमिषारण्य में रहने वाले तपस्वियों ने पौराणिकों में श्रेष्ठ सूतजी की पूजा की ॥२८॥ इस पुराण के प्रभाव से देवी

निर्वृति परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः ॥२९॥ नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः । संसारवारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि ॥३०॥ इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम् । नतमथ मुनिसंघं वर्धयित्वाशिषाऽम्बाचरणकमलभृङ्गो निर्जगामाथ सूतः॥३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

◆

के चरणकमलों की पूजा करने वाले वे प्रसन्न हृदय वाले होकर परम शान्ति को प्राप्त किए ॥२९॥ बार-बार क्षमा प्रार्थना करके उनलोगों ने सूतजी को प्रणाम किया और कहा हे तात ! इस संसार सागर को पार करने के लिए आप हमारे लिए नौका के समान हैं ॥३०॥ यह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण वेदों का रहस्यात्मक विषय है । इसके प्रत्येक पद में दुर्गा की चर्चा की गयी है । अम्बा के चरणकमल के भृङ्ग स्वरूप सूतजी इस पुराण को मुनिवर्यों को सुनाकर नतमस्तक हुए मुनिसमूह को आशीर्वाद प्रदान करके वहाँ से चले गये ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

इस तरह श्रीमद्देवीभागवत महापुराण सम्पूर्ण हुआ ।

।।श्रीजगदाम्बार्पणमस्तु।।

◆

अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
अथर्ववेदसंहिता
ऋग्वेद-संहिता
सामवेदसंहिता
ब्रह्मसूत्रम्
मनुस्मृतिः
सर्वदर्शनसंग्रहः
ब्रह्ममीमांसासूत्रम्
कौण्डिन्न्यायनशिक्षा
उपनिषद्वाक्यमहाकोषः
श्रीगजानन शम्भु साधले
न्यायामृताद्वैतसिद्धी
ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्यम्
चौखम्बा विद्याभवन
MINOR WORKS OF ŚRĪ ŚAṄKARĀCĀRYA
व्याकरणमहाभाष्यम्
श्रीभाष्यम्

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी